दी इंडियन लॉ रिपोर्ट्स

इलाहाबाद संस्करण

*****

सत्यमेव जयते

इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२३ – भाग २

(फरवरी)

पृष्ठ १ से १६०९

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित

इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

****

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

******

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी

माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव

****

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता

२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बर्णवाल, अधिवक्ता

२. सुश्री प्रिया अग्रवाल, अधिवक्ता

३. श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी, अधिवक्ता

४. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता

५. श्री सरोज गिरी, अधिवक्ता

६. सुश्री मनीषा चतुर्वेदी, अधिवक्ता

७. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता

८. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता

९. श्री प्रशान्त मिश्रा, अधिवक्ता

१०. श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

****

माननीय न्यायमूर्तिगण

मुख्य न्यायमूर्ति माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री राजेश बिंदल	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रीतिंकर दिवाकर	३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मोईन
२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज मिश्रा	३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश कुमार सिंह
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री रमेश सिन्हा (वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ)	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा
४. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री देवेन्द्र कुमार उपाध्याय	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट
६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सूर्य प्रकाश केसरवानी	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी
७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्रा	४०. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर
९. माननीय न्यायमूर्ति डा० कौशल जयेन्द्र ठाकर	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चंद्र त्रिपाठी	४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया
११. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुनीत कुमार	४३. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अत्तउ रहमान मसूदी	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्री पीयूष अग्रवाल
१४. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम समशेरी
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन रॉय	४७. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरविन्द कुमार मिश्रा-प्रथम	४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	४९. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	५०. माननीय न्यायमूर्ति श्री करूणेश सिंह पवार
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	५१. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
२०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव जोशी	५३. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री राहुल चतुर्वेदी	५४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ
२३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय	५५. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० फैज आलम खान
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी	५६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेश कुमार गुप्ता
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान	५७. माननीय न्यायमूर्ति श्री नरेन्द्र कुमार जोहरी
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	५८. माननीय न्यायमूर्ति श्री राज बीर सिंह
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	५९. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजीत सिंह
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री जे० जे० मुनीर	६०. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	६१. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	६२. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजीत कुमार	६३. माननीय न्यायमूर्ति श्री डॉ. गौतम चौधरी
३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	६४. माननीय न्यायमूर्ति श्री शमीम अहमद

६५. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
६६. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार
६७. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
६८. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी
६९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा
७०. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सरोज यादव
७१. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर)
७२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद आफताब हुसैन रिजवी
७३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम
७४. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय
७५. माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल
७६. माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन
७७. माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव
७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्यार्थी
७९. माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह
८०. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्री प्रकाश सिंह
८१. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुद्धवार
८२. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश त्रिपाठी
८३. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान
८४. माननीय न्यायमूर्ति श्री उमेश चन्द्र शर्मा
८५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव
८६. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला
८७. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेनू अग्रवाल
८८. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० अजहर हुसैन रिजवी
८९. माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायन मिश्रा
९०. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा
९१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मयंक कुमार जैन
९२. माननीय न्यायमूर्ति श्री शिव शंकर प्रसाद
९३. माननीय न्यायमूर्ति श्री गजेन्द्र कुमार
९४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेन्द्र सिंह-प्रथम
९५. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव
९६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद क़मर हसन रिज़वी
९७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार निगम
९८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनीश कुमार गुप्ता
९९. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती नंद प्रभा शुक्ला
१००. माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेन्द्र
१०१. माननीय न्यायमूर्ति श्री विनोद दिवाकर
१०२. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रशांत कुमार
१०३. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजीव शुक्ला
१०४. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरूण कुमार सिंह देशवाल

भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम मेसर्स गुप्ता एवं कंपनी एवं अन्य **पृष्ठ- 7**

अब्दुल रजाक पीडियाक्कल बनाम भारत संघ **पृष्ठ- 10**

डॉ. सुशील सूरी बनाम हरि सूरी एवं अन्य **पृष्ठ- 22**

असलम कदीर बनाम नैय्यर जहाँ रज़ा और अन्य **पृष्ठ- 35**

लोकेश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ- 40**

कुशवाहा महासभा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ- 58**

राम सिंह बनाम अमर सिंह एवं अन्य **पृष्ठ- 68**

मध्य भोजन रसोइया मजदूर संघ, हुसैनगंज, लखनऊ बनाम भारत संघ एवं अन्य **पृष्ठ- 78**

डॉ. श्याम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ- 102**

राजेंद्र प्रसाद भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ- 118**

सजीवन लाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ- 141**

अवधेश कुमार शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ- 186**

श्रीमती लाली देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-195**

मेसर्स रेटोरिक टेक्नोलॉजीज प्रा. लिमिटेड और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ- 209**

भरत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ- 224**

मनोज कुमार यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ- 228**

मीना पांडे बनाम भारत संघ एवं अन्य **पृष्ठ- 246**

श्रीमती कलावती देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-256**

परमानन्द बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ- 265**

अनिल कुमार अग्रवाल बनाम कमिश्नर फैजाबाद एवं अन्य **पृष्ठ-272**

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी उ.प्र. और अन्य **पृष्ठ- 276**

मुरारीलाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ- 282**

अनुवादित

ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती कल्लो एवं अन्य पृष्ठ-294

प्रीतम सिंह बनाम श्रीमती उर्मीला देवी एवं अन्य पृष्ठ- 297

श्रीमती विद्यावती (मृत) और अन्य बनाम द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य पृष्ठ- 312

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवराज पृष्ठ- 323

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राधे श्याम और अन्य पृष्ठ-331

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी बनिया और अन्य पृष्ठ- 335

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मूल चंद और अन्य पृष्ठ- 341

श्रीमती सबीरा बेगम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 350

मेसर्स अल्पाइन रिकोर्सेज एल.एल.पी., मध्य प्रदेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 359

श्याम नारायण राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 369

राम चंद्र और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-391

संजय कुमार तिवारी @ संजय तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 397

शिव कुमार बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी उ.प्र. और अन्य पृष्ठ- 401

उल्फत एवं अन्य बनाम अतिरिक्त आयुक्त (न्यायिक), मुरादाबाद एवं अन्य पृष्ठ-410

अरशद और अन्य बनाम ए.सी. (प्रशासन), सहारनपुर एवं अन्य पृष्ठ- 426

अजय अग्रवाल एवं अन्य बनाम आयुक्त, लखनऊ एवं अन्य पृष्ठ- 434

टी.आर.सी. महाविद्यालय सतरिख, नवाबगंज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 444

श्रीमती जीतेन्द्र देवी पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 448

संदीप कुमार मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 455

ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती भाषा विश्वविद्यालय एवं अन्य बनाम डॉ. आरिफ अब्बास एवं अन्य पृष्ठ- 463

राजेंद्र यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 471

सुधीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 484

सर्वेश कुमार गुप्ता बनाम डॉ. नीरज बोरा पृष्ठ- 503

अनुवादित

ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम लोकेश और अन्य पृष्ठ- 530

द न्यू इंडिया कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती सुनीता यादव एवं अन्य पृष्ठ- 542

इरशाद अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 553

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम खुशबू कुमारी गुप्ता पृष्ठ- 585

सी/एम नेशनल इंटर कॉलेज, बाराबंकी बनाम जे.डी. शिक्षा विभाग, फैजाबाद एवं अन्य पृष्ठ- 591

पुष्पा सिंह बनाम जी.एम. बड़ौदा यू.पी. ग्रामीण बैंक, जीकेपी और अन्य पृष्ठ- 611

बालकृष्ण एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 621

अमित नारायण राय एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 644

लीलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 654

नीलम देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 673

ओमपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 687

वीरपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 699

श्रीमती रमा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 717

लाल जीत एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 729

सुनील कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 751

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम गौरी शंकर सिंह पृष्ठ- 761

शाखा प्रबंधक, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रमोद कुमार यादव एवं अन्य पृष्ठ- 770

रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राघव शरण और अन्य पृष्ठ- 773

देवेन्द्र बहादुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 791

हीरा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 799

श्री पुरुषोत्तम अग्रवाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 804

लाल सिंह एवं अन्य बनाम सक्षम प्राधिकारी शहरी भूमि (सीमा एवं विनियमन) अधिनियम, 1976, अलीगढ़ एवं अन्य पृष्ठ- 812

अबू तालिब और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 818

मुन्ना लाल पटेल बनाम राज्य पृष्ठ- 830

सुशील कुमार जयसवाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 845

अनुवादित

ताजीम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 860

बब्लू @ रंजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 875

सर्वजीत एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 881

इबरार @ राजू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 885

भूरा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 894

प्रेम नारायण पाण्डेय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-901

सादाब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 907

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम डॉ. रूद्र प्रताप पृष्ठ- 918

अंजलि चौरसिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 925

सी/एम, गांधी राष्ट्रीय विद्यालय, रथ, जिला हमीरपुर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 938

अवनीश कुमार पांडे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 941

यू.पी.एस.आर.टी.सी. बनाम श्रीपाल सिंह पृष्ठ- 950

ननकू @ ननकूलाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 966

श्याम बाबू शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-973

सुनील एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 983

मुन्ना उर्फ ओम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 991

पुतन यादव @ विपिन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 1006

मिथलेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 1022

धर्मेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 1039

अमित कुमार दूबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1047

धर्मेन्द्र एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 1053

मो. शीबू @ शीबू चौधरी बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ- 1060

श्रीमती किरण सोनकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1075

सुभाष चंद्रा बनाम जिला वेसिक शिक्षा अधिकारी, बाराबंकी एवं अन्य पृष्ठ- 1083

अनुवादित

शिवराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 1087

श्रीमती शारदा देवी एवं अन्य बनाम डी.जे. हरदोई एवं अन्य पृष्ठ-1094

जागे राम भाटी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1108

श्रीमती रशीदा बेगम और अन्य बनाम अरशद हुसैन एवं अन्य पृष्ठ- 1111

भरत सिंह चौहान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 1120

शैलेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 1124

जाकिर हुसैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 1133

डेविड मारियो डेनिस बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ-1138

ज्ञानेन्द्र मौर्य @ गुल्लू बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ- 1156

डॉ. सुरेखा सक्सैना एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 1171

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मैसर्स एस.जे.पी. इन्फ्रा. लिमिटेड और अन्य पृष्ठ- 1183

विकास आयुक्त एवं अन्य बनाम डॉ. आलोक कुमार एवं अन्य पृष्ठ-1212

सी/एम इंटरमीडिएट कॉलेज नटौली एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1219

कांस्टेबल महेश चंद्रा (महेश सिंह) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1249

एकलव्य कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1259

नफ़ीसा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1290

किशोरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 1300

संजू @ संजय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 1308

अतीक अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 1317

सऊद अख्तर एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ- 1324

बी.एच.यू., वाराणसी एवं अन्य बनाम डॉ. आलोक कुमार पृष्ठ- 1349

सुरेंद्र यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1366

अरविन्द सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 1379

अनुवादित

मैसर्स एएनएस हस्तशिल्प बनाम आयुक्त, वाणिज्यिक कर एवं अन्य पृष्ठ- 1404

सदाशिव द्विवेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1410

मेसर्स पायनियर इंडस्ट्रीज 485, छोटा कैला, स्क्रैप मार्केट, पीएसी चौक, गाजियाबाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1412

राजेंद्र प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1414

प्रधान आयुक्त, आयकर (केंद्रीय) बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ- 1422

श्री सुबोध अग्रवाल बनाम प्रधान मुख्य आयकर आयुक्त, कानपुर एवं अन्य पृष्ठ- 1441

मदन मोहन सक्सैना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1473

सोनू कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 1481

बिलाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1486

जकी उर रहमान सिद्दीकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 1490

वेद कृष्ण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 1589

धर्मेंद्र यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 1598

मनीष कुमार पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1602

मदन सिन्हा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1607

अनुवादित

(2023) 2 ILRA 6

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता,

मध्यस्थता और सुलह आवेदन अंतर्गत धारा11(4) संख्या 58/2021

भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड

...आवेदक

बनाम

मेसर्स गुप्ता एंड कंपनी एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री कोमल मेहरोत्रा

अधिवक्ता विपक्षीगण: श्री प्रीतपाल सिंह राठौड़, श्री चंद्रभान गुप्ता, श्री कमलेश कुमार सिंह, श्री बालमुकुंद सिंह

ए. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996- धारा 11(4)। धारा 40 - मध्यस्थ की नियुक्ति - विचरण के लिए वाद यह उत्पन्न हुआ कि क्या फर्म के सहभागियों में से किसी एक की मृत्यु के पश्चात, यह न्यायालय दावा निर्धारित करने के लिए एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण नियुक्त कर सकता है - आयोजित-अधिनियम की धारा 40 के अंतर्गत, एक मध्यस्थता समझौता किसी भी पक्ष की मृत्यु के कारण उ से तब तक मुक्त नहीं किया जाएगा, जब तक कि कार्यवाही का अधिकार विधि द्वारा समाप्त न हो जाए -

अधिनियम की धारा 45 स्पष्ट रूप से निर्धारित करती है कि किसी फर्म के विघटन के पर भी सहभागी पक्षों में से किसी के द्वारा कारित किसी भी फर्म के कार्य के लिए तीसरे पक्ष के प्रति उत्तरदायी बना रहेगा यदि विघटन से पहले किया गया हो, जब तक कि विघटन की सार्वजनिक सूचना नहीं दी जाती - आवेदक का विशिष्ट वाद यह है कि जीवित सहभागियों ने एक सहभागी की मृत्यु के संबंध में आवेदक को सूचित किए बिना इसके साथ व्यापार करना जारी रखा- परिणामस्वरूप, इस विवाद में कोई बल नहीं है कि सहभागियों में से एक की मृत्यु के कारण और फर्म के विघटन के परिणामस्वरूप, पक्षों के मध्य विवाद को मध्यस्थ के पास निर्णय के लिए नहीं प्रेषित किया जा सकता है- यद्धपि कानून के संचालन के अनुसार, निदेशक, या उसका नामांकित व्यक्ति मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, इसलिए, आवेदक ने उचित रूप से मध्यस्थ न्यायाधिकरण के गठन न्यायालय से संपर्क किया। (पैरा1 से 17)

आवेदन की अनुमति है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता, द्वारा प्रदत्त)

पुनः पुकार में मामला उठाया गया।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री कोमल मेहरोत्रा और प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री चंद्रभान गुप्ता उपस्थित हैं।

प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं है।

वर्तमान आवेदन मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (इसके बाद 'मध्यस्थता अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 11 (4) के अंतर्गत आवेदक और महेश चंद्र गुप्ता (बाद में मृत), देवी प्रसाद गुप्ता- विपक्षी पक्ष संख्या 2 और शिव प्रसाद गुप्ता-विपक्षी पक्ष संख्या 3, जो मेसर्स गुप्ता एंड कंपनी (विपक्षी पक्ष संख्या 1),के

अनुवादित

नाम और शैली से, आवेदक के साथ "पंप वितरण और बिक्री लाइसेंस" से संबंधित समझौता दिनांकित 08.02.2014 के अनुसरण में व्यवसाय कर रहे थे, के बीच विवादों को सुलझाने के लिए मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए दायर किया गया है।

आवेदक का मामला यह है कि फर्म के एक साझेदार महेश चंद्र गुप्ता की 15.08.2018 को मृत्युहो गई। शेष साझेदार, विपक्षी पक्ष क्रमांक 2 और 3, ने आवेदक-कंपनी को सूचित किए बिना, फर्म के नाम पर व्यवसाय करना जारी रखा और 28.09.2018 को पेट्रोलियम उत्पादों की आपूर्ति प्राप्त की, लेकिन उसका भुगतान नहीं किया।

मध्यस्थता खंड 19 में कहा गया है कि पक्षकारों के बीच समझौते से उत्पन्न होने वाले किसी भी विवाद या मतभेद को पूर्णरूपेण आवेदक-कंपनी के निदेशक (विपणन) या उनके द्वारा नामित कंपनी के किसी अधिकारी को मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया जाएगा। मध्यस्थता अधिनियम के प्रावधानों को मध्यस्थता कार्यवाही पर लागू किया गया है। यह आग्रह किया गया है कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 12(5) के दृष्टिगत, कंपनी का निदेशक (विपणन) या कंपनी का कोई भी अधिकारी मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं कर सकता है। इस प्रकार, समझौते के तहत निर्धारित प्रक्रिया, कानून के संचालन में विफल होने पर, इस न्यायालय द्वारा एक मध्यस्थ नियुक्तकिया जाना चाहिए।

विपक्षी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री चंद्र भान गुप्ता ने कहा कि चूंकि लाइसेंस साझेदारी फर्म के नाम पर था और चूंकि फर्म के एक साझेदार महेश चंद्र गुप्ता की मृत्यु हो गई थी, इसलिए, फर्म स्वतः ही विघटित हो गई। यह प्रस्तुत किया गया है कि ऐसी परिस्थितियों में, मामले को मध्यस्थता के लिए भेजा ही नहीं जा सकता है। वह साझेदारों के बीच साझेदारी विलेख के खंड 13 का आश्रय लेते हैं, जो इस प्रकार है:

> *"(13) कि किसी भी भागीदार की मृत्यु की स्थिति में, साझेदारी विलेख समाप्त हो जाएगा और इसे केवल भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड की औपचारिक लिखित मंजूरी के साथ पुनर्गठित किया जा सकता है। यद्यपि, जीवित भागीदार निगम की लिखित मंजूरी के साथ, निगम द्वारा पूर्णतः अपने विवेक पर निर्धारित किए जाने वाले नियमों और शर्तों पर, उक्त फर्म का व्यवसाय पूर्णरूपेण अस्थायी आधार पर जारी रख सकते हैं।"*

दूसरी ओर, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि दो जीवित साझेदारों ने फर्म के नाम पर व्यवसाय करना जारी रखा और उन्होंने पेट्रोलियम उत्पादों की आपूर्ति भी प्राप्त की, और इसलिए, मध्यस्थ की नियुक्ति में कोई बाधा नहीं है और न ही उक्त आधार पर आवेदक का दावा स्वतः ही पराजित हो जायेगा।

अतः जो मुद्दा विचार के लिए उठता है वह यह है कि क्या फर्म के भागीदारों में से किसी एक की मृत्यु के बाद, यह न्यायालय फर्म के खिलाफ आवेदक के दावे पर निर्णय लेने के लिए एक मध्यस्थ अधिकरण नियुक्त कर सकता है। निःसंदेह, भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932 (बाद में 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 42 के आधार पर, एक साझेदारी फर्म स्वतः ही भंग हो जाती है, यदि फर्म के भागीदारों में से

अवैधानिक

किसी एक की मृत्यु हो जाती है, लेकिन यह इस बात के अधीन है कि इसके विपरीत कोई अनुबंध न हो। साझेदारी विलेख के खंड 13 में साझेदारों के मध्य इसके विपरीत अनुबंध शामिल है। इसने जीवित साझेदारों को आवेदक-कंपनी की मंजूरी के साथ फर्म के नाम पर व्यवसाय चलाने की अनुमति दी। इसके अलावा, आवेदक का मामला यह है कि 15.08.2018 को एक साझेदार की मृत्यु के बारे में आवेदक को सूचित किए बिना जीवित साझेदारों ने फर्म के नाम पर व्यापार करना जारी रखा और 28.09.2018 को पेट्रोलियम उत्पादों की आपूर्ति भी प्राप्त की और इस प्रकार, भुगतान करने या विवाद को निर्णित कराने के दायित्व से बच नहीं सकते हैं, न ही आवेदक के दावे पर निर्णय देने के लिए मध्यस्थ अधिकरण के गठन का विरोध कर सकते हैं।

साझेदारी अधिनियम की धारा 50, जो प्रासंगिक है, नीचे दी गई है:

"50. विघटन के बाद अर्जित व्यक्तिगत लाभ *- साझेदारों के बीच अनुबंध के अधीन, धारा 16 के खंड (क) के प्रावधान, किसी भी जीवित साझेदार द्वारा या किसी मृत साझेदार के प्रतिनिधियों द्वारा, किसी साझेदार की मृत्यु के कारण फर्म के भंग होने के बाद और उसके मामलों के पूरी तरह से समाप्त होने से पहले किए गए लेनदेन, पर लागू होंगे :*

बशर्ते कि जहां किसी साझेदार या उसके प्रतिनिधि ने फर्म की सद्भावना प्राप्त की हो, धारा की कोई भी बात फर्म के नाम का उपयोग करने के उसके अधिकार को प्रभावित नहीं करेगी।"

अधिनियम की धारा 16 का प्रासंगिक भाग भी नीचे दिया गया है:-

" 16. साझेदारों द्वारा अर्जित व्यक्तिगत लाभ *- - साझेदारों के बीच अनुबंध के अधीन, -*

(ए) यदि कोई साझेदार फर्म के किसी भी लेनदेन से, या फर्म की संपत्ति या व्यावसायिक संबंध या फर्म के नाम के उपयोग से स्वयं के लिए कोई लाभ प्राप्त करता है, तो वह उस लाभ का हिसाब देगा और फर्म को इसका भुगतान करेगा; "

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 40 के अंतर्गत, एक मध्यस्थता समझौता किसी भी पक्ष की मृत्यु के कारण समाप्त नहीं होता है, जब तक कि किसी कानून के संचालन द्वारा कार्रवाई का अधिकार समाप्त नहीं हुआ हो। अधिनियम की धारा 45 स्पष्ट रूप से निर्धारित करती है कि किसी फर्म के विघटन के बावजूद, जब तक कि विघटन की सार्वजनिक सूचना नहीं दी जाती, साझेदार उनमें से किसी के द्वारा किए गए किसी भी कार्य के लिए, जो यदि विघटन से पहले किया गया होता तो फर्म का एक कार्य होता, तीसरे पक्ष के प्रति उत्तरदायी बने रहते हैं। आवेदक का मामला यह है कि जीवित साझेदारों ने, आवेदक को एक साझेदार की मृत्यु के बारे में सूचित किए बिना, उसके साथ व्यापार करना जारी रखा। नतीजतन, मुझे इस तर्क में कोई दम नहीं लगता कि साझेदारों में से एक की मृत्यु के कारण और इस वजह से, फर्म के विघटन के परिणामस्वरूप, पक्षों के बीच विवाद को मध्यस्थ के पास निर्णय के लिए नहीं भेजा जा सका।

चूँकि कानून के अनुसार, निदेशक (विपणन) या उसका नामित व्यक्ति मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, इसलिए, आवेदक ने एक मध्यस्थ अधिकरण के गठन के लिए, उचित ही इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

अनुवादित

आवेदन **स्वीकृत** किया जाता है।

यह न्यायालय मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति के लिए अधिवक्ता श्री राहुल सहाय का नाम प्रस्तावित करता है। उनका पता 20/12 ए, पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद (मोबाइल नंबर 9415235110) है। उन्हें चौथी अनुसूची के अनुसार फीस का भुगतान किया जाएगा।

कार्यालय द्वारा अधिनियम की धारा 11(8) सपठित धारा 12(1) के अनुसार श्री राहुल सहाय, अधिवक्ता की सहमति उन्हें एक पत्र भेजकर प्राप्त की जाए।

यदि प्रस्तावित मध्यस्थ धारा 12 की उप-धारा (1) के अनुसार अपनी सहमति या प्रकटीकरण नहीं देता है, तो वैकल्पिक मध्यस्थ के नाम का प्रस्ताव करने के सीमित उद्देश्य के लिए आवेदन को न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध किया जाएगा।

(2023) 2 ILRA 8

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 7719/2022

अब्दुल रजाक पीडियाक्कल

...आवेदक

बनाम

भारत संघ

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: प्रणव अग्रवाल

अधिवक्ता विपक्षीगण: कुलदीप श्रीवास्तव, शिव पी. शुक्ला

(ए) आपराधिक कानून - जमानत - धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 - धारा 2(यू) - "अपराध का परिणाम", धारा 3, 4, 44, 45 और 70, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120बी और 121ए, 143, 147, 153बी सपठित 149, 153ए/295ए/124ए, शस्त्र अधिनियम, 1959 - धारा 3,5 (1) (ए) सपठित 25 (1) (ए), विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 धारा 3, 4 और 5, गैरकानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1967 धारा 13,16,18,20, सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2002 - धारा 65/72/76।

(बी) धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 - धारा 45 - अपराध संज्ञेय और गैर-जमानती - प्रतरूप परिस्थिति - (i) लोक अभियोजक को ऐसी जमानत आवेदन का विरोध करने का अवसर प्रदान किया गया; और (ii) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, न्यायालय संतुष्ट है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके कोई अपराध करने की संभावना नहीं है। (पैरा-23)

धन शोधन के अपराध से संबंधित वाद - आवेदक (पीएफआई सदस्य) अबू धाबी में स्थित एक बड़ा व्यवसायी - आवेदक की भूमिका सह-अभियुक्तों से भिन्न - आपराधिक षडयंत्र - अवैध गतिविधियों में सम्मिलित होने का आरोप - हवाला या अन्य भूमिगत चैनलों के माध्यम से पीएफआई को धन भेजना - जांच में सहयोग नहीं करना - पीएफआई, सीएफआई और उनके संबंधित संगठनों द्वारा विदेशों में जुटाई/एकत्रित की गई विदेशी धनराशि - पिछले कुछ वर्षों में पीएफआई और इसकी संबंधित संस्थाओं में 100

अनुवादित

करोड़ रुपये से अधिक जमा किए गए। (पैरा-13,14,16)

आयोजित:- वर्तमान आवेदक का जमानत आवेदन पीएमएलए की धारा 45 की दोहरी शर्तों के अनुरूप नहीं है, क्योंकि आवेदक अबू धाबी में स्थित है और अपराध की आय करोड़ों में है। विचारणीय न्यायालय के समक्ष अपराध के तथ्य को साबित या अस्वीकृत किया जा सकता है। छह माह के अंदर विचरण समाप्त करने और विधि अनुरूप उचित कार्रवाई करने के लिए निर्देशित किया गया। **(पैरा 23)**

जमानत आवेदन निरस्त। **(ई-7)**

उद्धृत वाद सूची:-

1. विजय मदनलाल चौधरी और अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 929
2. बाबूलाल वर्मा एवं अन्य बनाम प्रवर्तन निदेशालय एवं अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन बॉम 392

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान, द्वारा प्रदत्त)

1. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री रिजवान और प्रवर्तन निदेशालय के विद्वान अधिवक्ता श्री कुलदीप श्रीवास्तव को सुना गया।

2. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, वर्तमान प्रार्थी धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 3, 4 और 70 के अन्तर्गत ईसीआईआर संख्या ईसीआईआर / 02/ एचआईयू/2018, थाना - प्रवर्तन निदेशालय, एपीजे अब्दुल कलाम रोड, नई दिल्ली में 10.03.2022 से जेल में है।

3. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान प्रार्थी को प्रवर्तन निदेशालय (एतस्मिनपश्चात "प्रवर्तन निदेशालय" के रूप में संदर्भित) द्वारा मामले में झूठा फँसाया गया है, जबकि आरोपी-प्रार्थी के विरुद्ध धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 (एतस्मिनपश्चात "पीएमएलए" के रूप में संदर्भित) की धारा 3 के अन्तर्गत कोई मामला नहीं बनता है, जो पीएमएलए की धारा 4 के अन्तर्गत दंडनीय है।

4. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पीएमएलए की धारा 3 के अन्तर्गत धन शोधन के अपराध को परिभाषित करते हुए विशेष रूप से कहा गया है कि जो कोई भी 'प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल होने का प्रयास करता है या जानबूझकर सहायता करता है या जानबूझकर एक पक्ष बनता है या वास्तव में किसी अपराध की आय में शामिल है या अपराध की आय से जुड़ी गतिविधि जिसमें इसे छिपाना, कब्ज़ा करना, अधिग्रहण या उपयोग करना और इसे बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना या दावा करना शामिल है, धन शोधन के अपराध का दोषी होगा।

5. विद्वान अधिवक्ता ने पुनः प्रस्तुत किया है कि 'अपराध के आगम' की परिभाषा अधिनियम की धारा 2 (यू) के अन्तर्गत प्रदान की गई है जिसका अर्थ "आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त या अर्जित की गई कोई भी संपत्ति" किसी अनुसूचित अपराध या ऐसी किसी संपत्ति की प्रकृति से है।

अनुवादित

6. अतएव, अनुसूचित/विधेय अपराध का कारित किया जाना, जिसके माध्यम से 'प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त या प्राप्त की गई कोई भी संपत्ति' 'संपत्ति' को 'अपराध के आगम' बनने हेतु एक अनिवार्य आवश्यकता है। अपने तर्क के समर्थन में, प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **विजय मदनलाल चौधरी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 929** के प्रस्तर-251 का उल्लेख किया है, जिसे अधोउद्धृत किया जा रहा है:-

> *"251. "अपराध का आगम" अभिव्यक्ति का, धन-शोधन के अपराध को बनाने वाले तत्वों का मूल होने के कारण , सख्ती से निर्वचन किया जाना चाहिये। इसमें, संबंधित आपराधिक गतिविधि के संबंध में जाँच अभिकरण द्वारा बरामद या कुर्क की गई सभी संपत्तियाँ सामान्य विधि के अन्तर्गत किसी अनुसूचित अपराध को अपराध के आगम के रूप में नहीं माना जा सकता है। ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहाँ उस अपराध से निपटने वाली जाँच अभिकरण द्वारा कुर्क की गई अनुसूचित अपराध में शामिल संपत्ति को अधिनियम 2002 की धारा 2(1)(यू) के अर्थ के अंतर्गत पूर्ण रुप या आंशिक रूप से अपराध के आगम के रूप में नहीं माना जा सकता है - जब तक कि संपत्ति का पूरा या कुछ हिस्सा कथित अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के "परिणामस्वरूप" किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त या प्राप्त न किया गया हो। अतएव, अपराध की आय होने हेतु, संपत्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, एक अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के "परिणामस्वरूप" उत्पन्न या प्राप्त की जानी चाहिए। इसे पृथक रुप कहें तो, अनुसूचित अपराध कारित करने में प्रयोज्य वाहन संबंधित मामले (अपराध) में संपत्ति के रूप में संलग्न किया जा सकता है, फिर भी यह अधिनियम 2002 की धारा 2(1)(यू) के अर्थ में अपराध का आगम नहीं हो सकती है। इसी प्रकार, विधिक रीतियों से अर्जित बेहिसाब संपत्ति पर कब्ज़ा, कर उल्लंघन के अन्तर्गत कार्रवाई योग्य हो सकता है और फिर भी, इसे अपराध की आय के रूप में नहीं माना जाएगा जब तक कि संबंधित कर विधि इस प्रकार के उल्लंघन को अपराध के रूप में निर्धारित नहीं करता है और ऐसा अपराध अधिनियम 2002 की अनुसूची में शामिल है। अपराध के आगम के रूप में माने जाने हेतु, अनुसूचित अपराध से जुड़ी संपत्ति को संबंधित अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के "परिणामस्वरूप" किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त या प्राप्त किया जाना चाहिए। अधिनियम 2002 के प्रयोजन हेतु अनुसूचित अपराध में निर्दिष्ट किसी भी संपत्ति को अपराध की आय के रूप में मानते समय इस अंतर को ध्यान में रखा जाना चाहिए। किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि के माध्यम से अपराध के आगम से व्यवहार अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत धन-शोधन का अपराध है।"*

अनुवादित

7. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विचाराधीन मुद्दे से संबंधित तीन विधेय अपराध हैं जिनमें वर्तमान प्रार्थी नामजद नहीं था। प्राथमिकी संख्या 276/2013 [प्रथम विधेय अपराध'] दिनांक 23.04.2013 को 22 व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 143, 147, 153बी आर/डब्ल्यू 149 ; शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 5 (1) (ए) आर/डब्ल्यू 25 (1) (ए); विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 की धारा 4 और 5 और विधिविरुद्ध क्रिया-कलाप (निवारण) - संशोधन अधिनियम, 1967 की धारा 18 के अन्तर्गत दर्ज किया गया था। प्राथमिकी से उत्पन्न उक्त मामला माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों के अन्तर्गत एसएलपी (आपराधिक) संख्या क्रमशः 4511-4513/2017 और 2875/2017 में दिनांक 13.04.2017 और 04.07.2017 बंद कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त, प्राथमिकी संख्या 199/2020 दिनांक 07.10.2020 [द्वितीय विधेय अपराध'], भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 153A/295A/124A, यूएपीए की धारा 17 और 18 और सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2002 की धारा 65/72/76 के अन्तर्गत दर्ज किया गया है। अंशद बदरुद्दीन और फिरोज खान के विरुद्ध प्राथमिकी संख्या 04/2021 दिनांक 16.02.2021 [तीसरा विधेय अपराध'] भारतीय दंड संहिता की धारा 120बी और 121ए, यूएपीए की धारा 13, 16, 18 और 20; विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 3, 4, और 5 और शस्त्र अधिनियम की धारा 3 और 25 के अन्तर्गत दर्ज किया गया है।

8. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने दोहराया है कि वर्तमान प्रार्थी उपरोक्त तीन अपराधों में से किसी में भी आरोपी नहीं है। यद्यपि, उन्हें प्रश्नगत ईसीआईआर के अनुसार 10.03.2022 को गिरफ्तार कर लिया गया है।

9. पीएमएलए की धारा 44 और 45 के प्रावधानों के अन्तर्गत, प्रवर्तन निदेशालय ने क्रमशः 06.02.2021 और 06.05.2022 को पीएमएलए की धारा 3, 4 और 70 के अन्तर्गत शिकायत और पूरक शिकायत दर्ज की है। उपरोक्त शिकायत पाँच आरोपी व्यक्तियों, अर्थात् के.ए. रऊफ शेरिफ, अतीकुर रहमान, मसूद अहमद, सिद्दीक कप्पन और मोहम्मद आलम के विरुद्ध दर्ज की गई है। यद्यपि, पूरक शिकायत के अनुसार चार व्यक्तियों/संस्थाओं अर्थात् अब्दुल रजाक पीडियाक्कल (वर्तमान आरोपी-प्रार्थी), अशरफ खादिर उर्फ अशरफ एमके, मुन्नार विला विस्टा प्राइवेट लिमिटेड तथा तमर इंडिया स्पाइसेस प्राइवेट लिमिटेड को प्रवर्तन निदेशालय द्वारा आरोपी बनाया गया है। प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जमानत आवेदन के प्रस्तर -12 में वर्तमान प्रार्थी के विरुद्ध आरोपों को स्पष्ट रूप से निम्नानुसार दर्शाया है :-

> *"12. निम्नलिखित मुख्य आरोप और पूरक शिकायत में प्रार्थी/अभियुक्त के विरुद्ध स्थापित मामला इस प्रकार है:*
>
> *I. कथित प्रथम और द्वितीय विधेय अपराध ही वह आधार है जिस पर वर्तमान शिकायत और अनुपूरक शिकायत में प्रार्थी/अभियुक्त की जाँच की जा रही है अर्थात् अपराधों का वही समूह जिसमें एर्नाकुलम निर्णय में मुख्य षड्यन्त्रकर्ता को जमानत पर छोड़ने हेतु कोई सार नहीं पाया गया है।*

अनुवादित

II. निस्सन्देह प्रार्थी/अभियुक्त पॉपुलर फ्रंट ऑफ इंडिया [पीएफआई] नामक संगठन का लंबे समय से सदस्य है और कथित तौर पर पीएफआई के विरुद्ध 12 मामले दर्ज किए गए हैं, जिसमें माना जाता है कि आरोपी/प्रार्थी आरोपी नहीं है;

III. जाहिर है, जाँच के संदर्भ में एक आवासीय भूखंड अर्थात मुन्नार विला विस्टा प्रोजेक्ट [परियोजना], मुन्नार, केरल को धन शोधन के उद्देश्य से विकसित किया जा रहा है और प्रार्थी/अभियुक्त परियोजना का सबसे बड़ा शेयरधारक है;

IV. पूरक शिकायत के संदर्भ में, परियोजना ने उसमें उल्लिखित अनुदान में कुछ विसंगतियों/अनियमितताओं का खुलासा किया है। परियोजना के वित्तपोषण में कुछ विसंगतियों/अनियमितताओं के संबंध में प्रार्थी/अभियुक्त के संबंध में कोई आरोप नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रार्थी/अभियुक्त के विरुद्ध कोई आरोप नहीं लगाया जा सकता क्योंकि वह परियोजना में मात्र एक शेयरधारक है और उसकी भूमिका न तो प्रबंधकीय और न ही निदेशकीय है। कंपनी की मास्टर डेट की सत्य प्रतिलिपि www.mca.nic.in पर उपलब्ध है व इसके साथ संलग्न है और इसे अनुलग्नक ए-6 के रूप में चिह्नित किया गया है। कंपनी 'मुन्नार विला विस्टा प्राइवेट लिमिटेड' की दिनांक 30.07.2018 और 01.07.2020 की बोर्ड बैठक के कार्यवृत्त की सत्य प्रतिलिपियां इसके साथ संलग्न हैं और अनुलग्नक ए-7 के रूप में चिह्नित हैं;

V. यह प्रस्तुत किया गया है कि अनुपूरक शिकायत के प्रस्तर 8 की तालिका को पढ़ने मात्र से निम्नलिखित स्थापित होता है:

क) 11.07.2012 से 10.06.2020 तक 33,72,043/- रुपये की धनराशि रिहैब इंडिया फाउंडेशन, एक गैर सरकारी संगठन, को हस्तांतरित की गई है;

ख) ये आरटीजीएस/एनईएफटी के माध्यम से वैध लेनदेन हैं, जो प्रार्थी/अभियुक्त के कोष से निर्गत हैं;

ग) ऐसा कोई दावा नहीं है कि उक्त धनराशि किसी विधेय/अनुसूचित अपराध को कारित कर प्राप्त किया गया है, प्रथम विधेय अपराध की तो बात ही छोड़ दें;

घ) किसी भी मामले में, दूसरे और तीसरे तथाकथित विधेय अपराध को कारित किया जाना, प्रार्थी/अभियुक्त के दिनांक 11.07.2012 से 10.06.2020 के लेनदेन के उपरान्त हुआ, अतएव, दूसरे और तीसरे "विधेय अपराधों द्वारा जबरन 'अपराध के आगम' को अंजाम नहीं दिया जा सकता है।

VI. इसके अतिरिक्त, प्रस्तर 8.3 से 8.7 को पढ़ने से यह कहीं भी स्पष्ट नहीं होता है कि प्रार्थी/अभियुक्त द्वारा हस्तांतरित धन किसी भी विधेय अपराध से उद्भूत होता है;

अनुवादित

VII. प्रार्थी/अभियुक्त ने पुनः प्रस्तुत किया कि उसका कतर, मलेशिया और स्विटजरलैंड में कोई व्यापारिक हित नहीं है। प्रार्थी/अभियुक्त का मात्र अबू धाबी में व्यापारिक हित हैं। प्रार्थी/अभियुक्त के व्यापारिक हितों की सत्य प्रति इसके साथ संलग्न है और इसे अनुलग्नक ए-8 के रूप में चिह्नित किया गया है।"

V. यह प्रस्तुत किया गया है कि अनुपूरक शिकायत के प्रस्तर 8 की तालिका को पढ़ने मात्र से निम्नलिखित स्थापित होता है:

क) 11.07.2012 से 10.06.2020 तक 33,72,043/- रुपये की धनराशि रिहैब इंडिया फाउंडेशन, एक गैर सरकारी संगठन को हस्तांतरित की गई है;

ख) ये आरटीजीएस/एनईएफटी के माध्यम से वैध लेनदेन हैं, जो प्रार्थी/अभियुक्त के कोष से निकलते हैं;

ग) ऐसा कोई दावा नहीं है कि उक्त धनराशि किसी विधेय/अनुसूचित अपराध को कारित कर प्राप्त किया गया है, प्रथम विधेय अपराध की तो बात ही छोड़ दें;

घ) किसी भी मामले में, दूसरे और तीसरे तथाकथित विधेय अपराध को कारित किया जाना, प्रार्थी/अभियुक्त के दिनांक 11.07.2012 से 10.06.2020 के लेनदेन के उपरान्त हुआ, अतएव, दूसरे और तीसरे "विधेय अपराधों द्वारा बलपूर्वक 'अपराध की आय' को अंजाम नहीं दिया जा सकता है।

VI. इसके अतिरिक्त, प्रस्तर 8.3 से 8.7 को पढ़ने से यह कहीं भी स्पष्ट नहीं होता है कि प्रार्थी/अभियुक्त द्वारा हस्तांतरित धन किसी भी विधेय अपराध से उद्भूत होता है;

VII. प्रार्थी/अभियुक्त ने पुनः प्रस्तुत किया कि उसका कतर, मलेशिया और स्विटजरलैंड में कोई व्यापारिक हित नहीं है। प्रार्थी/अभियुक्त के मात्र अबू धाबी में व्यापारिक हित हैं। प्रार्थी/अभियुक्त के व्यापारिक हितों की सत्य प्रति इसके साथ संलग्न है और इसे अनुलग्नक ए-8 के रूप में चिह्नित किया गया है।"

10. विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि शिकायत के प्रस्तर-10 के संदर्भ में मुख्य षड्यन्त्रकर्ता, अर्थात् के.ए. रऊफ शेरिफ को 12.02.2021 को केरल के एर्नाकुलम में पीएमएलए के अन्तर्गत पीएमएलए मामलों की विशेष न्यायालय ने जमानत पर रिहा कर दिया था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दिनांक 20.12.2021 को ई-मेल के माध्यम से आरोपी-प्रार्थी को आवश्यक दस्तावेजों के साथ 27.12.2021 को नई दिल्ली में उपस्थित होने हेतु कहा गया। इसके प्रत्युत्तर में, आरोपी-प्रार्थी ने प्रवर्तन निदेशालय से मेल दिनांक 20.12.2021 द्वारा उन्हें अपने कोचीन कार्यालय में बुलाने हेतु अनुरोध किया। एतस्मिनपश्चात, आरोपी-प्रार्थी को 19.02.2022 को नई दिल्ली में उपस्थित होने हेतु दिनांक 14.02.2022 का एक और समन प्राप्त हुआ और आरोपी-प्रार्थी यथासमय नई दिल्ली में अधिकारियों के समक्ष उपस्थित हुआ। यद्यपि, प्रवर्तन निदेशालय ने वर्तमान प्रार्थी को बिना

अनुवादित

किसी ठोस कारण के कालीकट हवाई अड्डे से 10.03.2022 को गिरफ्तार कर लिया है। एतस्मिनपश्चात उसे 16.03.2022 को न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया था।

11. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत करने हेतु शीर्ष न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का सन्दर्भ दिया है कि यह एक सामान्य विधि है कि किसी भी आरोपी व्यक्ति को जमानत देते समय तीन मुख्य कारक मौजूद होते हैं अर्थात् (ए) आरोपी सबूतों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा; (बी) आरोपी गवाहों को प्रभावित नहीं करेगा और (सी) आरोपी के भागने की आशंका नहीं होगी , अतएव, अपराध की गंभीरता जमानत से इनकार करने का एकमात्र आधार नहीं हो सकती है। प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान प्रार्थी वचन देता है कि यदि उसे जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत आदेश के सभी नियमों और शर्तों का पालन करेगा और जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा।

12. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 13642/2022 में पारित आदेश दिनांक 23.12.2022 की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है जिसके अन्तर्गत सह-अभियुक्त सिद्दीकी कप्पन को जमानत दे दी गई है। अतएव, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि चूँकि सह-अभियुक्त सिद्दीक कप्पन को जमानत पर रिहा कर दिया गया है, अतएव, वर्तमान प्रार्थी को भी समानता के सिद्धांतों के आधार पर जमानत पर रिहा कर दिया जाए।

13. इसके विपरीत, श्री कुलदीप श्रीवास्तव, प्रवर्तन निदेशालय के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पीएमएलए जाँच के दौरान, यह तथ्य सामने आया कि पीएफआई, सीएफआई और उनके संबंधित संगठनों के पदाधिकारियों/सदस्यों /कार्यकर्ताओं द्वारा विदेशों में जुटाई/एकत्रित की गई 1.36 करोड़ रुपये की धनराशि सीएफआई के राष्ट्रीय महासचिव के.ए. रऊफ़ शेरिफ़ के बैंक खातों में प्रेषित की गई थी। इसके अतिरिक्त, पीएफआई के विरुद्ध अब तक की जाँच से पता चला है कि पीएफआई और उससे संबंधित संस्थाओं के खातों में पिछले कुछ वर्षों में 100 करोड़ रुपये से अधिक जमा किए गए हैं। जाँच अभिकरण के संज्ञान में यह आया है कि हवाला/गुप्त स्रोतों/ प्रेषण द्वारा और पीएफआई /सीएफआई और अन्य संबंधित संगठनों के सदस्यों/कार्यकर्ताओं/पदाधिकारियों के खातों में विदेशी धन भारत भेजा गया है।

14. प्रारंभ में, पाँच आरोपी व्यक्तियों की, जिनके नाम पहली शिकायत में दर्शाए गए हैं, सक्रिय भागीदारी पूर्ण रुप से विश्वसनीय साक्ष्य और सामग्री द्वारा पायी गई है, परन्तु अग्रिम जाँच के उपरान्त, वर्तमान प्रार्थी का नाम संज्ञान में आया, अतएव, पूरक शिकायत में, प्रार्थी को आरोपी बनाया गया है। अग्रिम जाँच के माध्यम से की जा रही कवायद के अनुसार, उपरोक्त अवैध गतिविधियों को करने हेतु वर्तमान प्रार्थी, जो केरल और अबू धाबी में स्थित पीएफआई का सदस्य है, की भूमिका सामने आई है। एतस्मिनपश्चात उन्हें जाँच में सहयोग करने हेतु समन जारी किया गया है। चूँकि वर्तमान प्रार्थी अबू धाबी में है और उपरोक्त अवैध गतिविधियों में शामिल है अर्थात् हवाला या अन्य गुप्त स्रोतों के माध्यम से पीएफआई को धन प्रेषित कर रहा है, अतएव, उसने जाँच में उचित सहयोग नहीं किया है, अपितु बार-बार प्रस्तुत किया है कि प्रवर्तन निदेशालय द्वारा माँगा गया स्पष्टीकरण उनके चार्टर्ड एकाउंटेंट द्वारा दिया जाएगा। प्रवर्तन

अधिवक्ता

निदेशालय के समक्ष वर्तमान प्रार्थी की स्वीकारोक्ति के अनुसार, उसने अभिकथन किया है कि वह 2014-15 में पीएफआई का सदस्य बना और अभी भी एक सदस्य है। उसे जून, 2021 में मंडल अध्यक्ष बनाया गया था, कालान्तर में उसने दिसंबर, 2021 में इस पद से इस्तीफा दे दिया। वह मासिक सदस्यता शुल्क के रूप में पीएफआई में योगदान करते थे। जब उससे पूछा गया कि क्या उसने किसी अन्य संगठन में कोई पैसा दिया है, तो उसने कहा कि उसने रिहैब इंडिया फाउंडेशन (एतस्मिनपश्चात इसे "आरआईएफ" के रूप में संदर्भित किया जाएगा) को ज़कात के रूप में धन दान किया था और सटीक राशि याद नहीं है परन्तु यह उसके बैंक खातों के विवरण से प्राप्त किया गया।

15. प्रवर्तन निदेशालय के विद्वान अधिवक्ता श्री श्रीवास्तव के अनुसार, प्रार्थी ने स्वीकार किया है कि यद्यपि वह अबू धाबी में था, फिर भी उसे 2010 में थेजस का निदेशक बनाया गया था। जाँच अभिकरण ने देखा है कि आरोपी-प्रार्थी ने 11.07.2012 से 22.07.2020 की अवधि में आरआईएफ को 33,72,043.00 रुपये की बड़ी धनराशि हस्तांतरित की है। उसने बताया कि उसने उक्त धनराशि जकात के रूप में आरआईएफ को दान कर दी थी। श्री श्रीवास्तव ने इस न्यायालय का ध्यान शिकायत के प्रस्तर-7 की ओर आकर्षित किया है जिसमें वर्तमान प्रार्थी से संबंधित पीएमएलए के अन्तर्गत जाँच के परिणाम का संक्षिप्त सारांश प्रस्तुत किया गया है, जो दर्शाता है कि वर्तमान प्रार्थी ने रिहैब इंडिया फाउंडेशन को तीन बैंक खातों के माध्यम से; एक एचडीएफसी बैंक से और दो साउथ इंडियन बैंक से, दो अलग-अलग बैंक खातों के माध्यम से एक बड़ी धनराशि हस्तांतरित की है। श्री श्रीवास्तव ने इस न्यायालय का ध्यान शिकायत के प्रस्तर-7 के शेष प्रस्तर, विशेष रूप से प्रस्तर 7.10 की ओर भी आकर्षित किया है, जो "विदेशों में धन जुटाने और उन्हें अवैध स्रोतों के माध्यम से भारत में स्थानांतरित करने" की व्याख्या करता है। प्रस्तर 7.10 (i) (ii) और (iii) इंगित करता है कि दो किस्तों में 10 करोड़ रुपये की धनराशि वर्तमान प्रार्थी द्वारा कालीकट के एक अन्य पीएफआई सदस्य मोहम्मद अशरफ पिलाशेरी को हस्तांतरित की गई थी और प्लॉट खरीदने के प्रस्ताव का स्पष्टीकरण एक सोची-समझी बात थी और धनराशि के अन्तरण की वास्तविक प्रकृति को छिपाने हेतु प्रार्थी द्वारा इस्तेमाल किया गया एक बहाना मात्र था। शिकायत में दस्तावेजों के प्रासंगिक उद्धरण दिखाए गए हैं।

16. अतएव, श्री श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान प्रार्थी की भूमिका अत्यन्त गंभीर है और वह अबू धाबी में स्थित एक बड़ा व्यवसायी है, यदि उसे जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह भाग सकता है या मुकदमे की कार्यवाही को प्रभावित कर सकता है क्योंकि मुकदमा विद्वान विचाराधीन न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है जहाँ आरोप तय किए गए हैं। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि वर्तमान प्रार्थी की भूमिका सह-अभियुक्त सिद्दीक कप्पन से बिल्कुल अलग है, जिसे इस न्यायालय ने 23.12.2022 को जमानत दे दी है, क्योंकि सिद्दीक कप्पन को सौंपी गई भूमिका के.ए. रऊफ़ शेरिफ़ के साथ आपराधिक षड्यन्त्र रचने के संबंध में है। इस आरोप के अतिरिक्त कि सह-अभियुक्त अतीकुर रहमान के बैंक खाते में 5,000/- रुपये स्थानांतरित किए गए थे, सिद्धिक कप्पन के बैंक खाते या सह-अभियुक्त के बैंक खाते में कोई अन्य लेनदेन नहीं है।

अनुवादित

17. श्री श्रीवास्तव ने यह भी प्रस्तुत किया है कि यदि वर्तमान प्रार्थी की जमानत पर विचार किया जाता है, तो पीएमएलए की धारा 45 के संबंध में इस सीमा तक संतुष्टि प्राप्त की जा सकती है कि जब तक पीएमएलए की धारा 45 के अन्तर्गत उल्लिखित दोहरी शर्तें पूरी नहीं हो जातीं, जमानत नहीं दी जा सकती है। अतएव, श्री श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान प्रार्थी **विजय मदनलाल चौधरी** (उपरिवर्णित) वाद में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का आश्रय नहीं ले सकता है; चूँकि विधि में तय किया गया है कि भले ही किसी व्यक्ति का नाम विधेय अपराध में नहीं है, फिर भी यदि प्रवर्तन निदेशालय के अपराध से संबंधित जाँच के दौरान उसकी सहापराधिता सामने आती है, तो वह भली भांति मामले में फंस सकता है।

18. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।

19. प्रारम्भ में ही धन शोधन निवारण अधिनियम की धारा 2(u), 3 एवं 4 का उल्लेख करना उचित होगा जो निम्नवत है:-

> *2 (u)- "अपराध के आगम" से किसी व्यक्ति द्वारा अनुसूचित से सम्बंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्युत्पन्न या अभिप्राप्त की गई को संपत्ति या ऐसी किसी संपत्ति का मूल्य अभिप्रेत है;*
>
> *3 - धन-शोधन का अपराध - जो कोई अपराध के आगमों से सम्बंधित ऐसी किसी प्रक्रिया या क्रियाकलाप में, जिसके अंतर्गत उसका छिपाया जाना, कब्ज़ा रखना, अर्जन या उपयोग भी है, प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः लिप्त होने का प्रयत्न करेगा या जानते हुए सहायता करेगा या जानते हुए उसका पक्षकार बनेगा या वास्तव में उसमें अंतर्वलित होगा और निष्कलंक संपत्ति के रूप में उसे प्रस्तुत करेगा या उसका दावा करेगा, वह धन-शोधन के अपराध का दोषी होगा।*
>
> *4- धन-शोधन के लिये दण्ड - जो कोई धन-शोधन का अपराध करेगा वह कठोर कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष से काम की नहीं होगी किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और वह जुर्माने से भी दंडनीय होगा, जो रु. पांच लाख तक हो सकेगा:*
>
> *परन्तु जहाँ धन-शोधन में अंतर्वलित अपराध के आगम अनुसूची के भाग क के पैरा 2 के अधीन विनिर्दिष्ट किसी अपराध से सम्बंधित है, वहां इस धारा के उपबंधों का ऐसा प्रभाव होगा मानो "जो साथ वर्ष तक की हो सकेगी" शब्दों के स्थान पर "जो दस वर्ष तक की हो सकेगी" शब्द रखे गए हों।*

20. विधि के उपरोक्त प्रावधानों का बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा बाबूलाल वर्मा एवं एक अन्य बनाम प्रवर्तन निदेशालय एवं एक अन्य, के प्रस्तर 29 से 34 तक समुचित निरुपण किया गया है जो अधोवर्णित है :-

> *29. धन शोधन निवारण अधिनियम की धारा 3 एवं 4 की भाषा से यह स्पष्ट है कि धारा 3 के अंतर्गत अपराध, जो धारा 4 के अंतर्गत दंडनीय है, का अन्वेषण विधेय/ अनुसूचित अपराध के अंतिम परिणाम पर निर्भर नहीं है। दूसरे शब्दों में, जैसा कि धारा 2(na) में परिभाषित*

अनुवादित

एवं संकल्पित है, यह उक्त अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत कारित अपराध का पूर्णतः स्वतंत्र अन्वेषण है।

30. धन शोधन निवारण अधिनियम एक विशिष्ट उद्देश्य अर्थात धन-शोधन के मामलों का अनुसरण करने एवं अन्वेषण हेतु अधिनियमित एक विशेष विधि है। अतः किसी विधेय/ अनुसूचित अपराध के दर्ज होने के उपरान्त, इसका अंतिम निर्णय धन शोधन निवारण अधिनियम के अंतर्गत अपराध के दर्ज होने/ अन्वेषण को प्रभावित नहीं करेगा, एवं धन शोधन निवारण अधिनियम के अंतर्गत अपराध जीवित रहेगा एवं स्थिर रहेगा। कोई विधेय/ अनुसूचित अपराध धन शोधन निवारण अधिनियम के अंतर्गत अपराध को दर्ज करने / अभियोजन को संस्थित करने हेतु आवश्यक है, एवं एक बार जब कोई अपराध धन शोधन निवारण अधिनियम के अंतर्गत दर्ज होता है तो प्रवर्तन निदेशालय तो इसे इसके तार्किक समापन तक ले जाना होगा, जैसा कि अधिनियम की धारा 44 में संकल्पित है।

31. पीएमएलए स्वयं, मौजूदा मामले की तरह किसी भी आकस्मिकता हेतु प्रावधान नहीं करता है और आवेदकों हेतु विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है। धारा 44(बी) मात्र पीएमएलए के अन्तर्गत जाँच अभिकरण द्वारा शिकायत दर्ज करने या समाप्ति रिपोर्ट जमा करने का प्रावधान करती है और किसी अन्य बात का नहीं।

32. यदि प्रार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि एक बार नींव हटा दी जाती है, तो उस पर संरचना/कार्य के गिरने को स्वीकार कर लिया जाता है तो इससे पीएमएलए को अधिनियमित करने में विधायिका की मंशा पर निराशाजनक प्रभाव होगी। पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर, (उपरिवर्णित) के प्रस्तर संख्या 107 और संजयसिंह रामराव चव्हाण (उपरिवर्णित) के प्रस्तर संख्या 17 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियाँ निम्नलिखित उक्त मामले के तथ्यों के संदर्भ में हैं और भारतीय दंड संहिता और पी.सी. अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत अपराधों से संबंधित है और अतएव, इसे उस मामले पर लागू नहीं किया जा सकता है जो एक विशेष विधि अर्थात् विधानमंडल द्वारा अधिनियमित पीएमएलए एक स्वीकृत उद्देश्य के साथ उत्पन्न होता है।

33. काल्पनिक रूप से, एक पूर्व विधेय/अनुसूचित अपराध में "एक आरोपी" या तो आर्थिक रूप से या बाहुबल द्वारा अत्यधिक प्रभावशाली होता है और अपने प्रभाव का उपयोग करके , या तो विधेय/अनुसूचित अपराध में या उससे प्रकट हुई किसी भी गतिविधि में प्रवर्तन निदेशालय द्वारा अग्रिम जाँच अर्थात् धन शोधन या उसके द्वारा किए गए अपराध के आगम के चिह्नों से सम्बंधित जांच को टालने के

अनुवादित

लिये मूल अपराध का शमन अथवा समझौता करा देता है। और, यदि आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता की उपरोक्त दलील को स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह प्रवर्तन निदेशालय की स्वतंत्र जाँच को समाप्त कर देगा अर्थात् जैसी कि निश्चित रूप से पीएमएलए को लागू करने में विधानमंडल की मंशा नहीं होगी। अतएव, यदि आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता के तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो उस स्थिति में, पीएमएलए के अन्तर्गत किसी मामले में आरोपी हेतु पीएमएलए के अन्तर्गत जाँच को रोकना और/या समाप्त करना सबसे आसान तरीका होगा। अतः उक्त विवाद को खारिज किया जाना आवश्यक है।

34. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि, भले ही किसी अनुसूचित अपराध की जाँच करने वाले जाँच अभिकरण ने इसमें समाप्ति रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी हो और सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय ने इसे स्वीकार कर लिया हो, फिर भी वह धन-शोधन के अपराध में प्रतिवादी संख्या 1 (प्रवर्तन निदेशालय) द्वारा इसकी की जा रही जाँच को खत्म नहीं करेगी या जारी रखना बंद नहीं करेगी। प्रतिवादी संख्या 1 की जाँच तब तक जारी रहेगी जब तक यह जांच पीएमएलए की धारा 44 के अन्तर्गत अपेक्षित चरण तक नहीं पहुँच जाती।"

21. यह स्पष्ट है कि भले ही कोई व्यक्ति मूल आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप अपराध का आगम उत्पन्न हुआ है, परन्तु वह धन शोधन के अपराध की आय के अपराध को करने में मदद करके मुख्य आरोपी के साथ या तो दुष्प्रेरक या षड्यन्त्रकर्ता के रूप में शामिल हो सकता है। अतएव, मात्र इसलिए कि प्रार्थी नामजद नहीं था या उस पर विधेय अपराध हेतु मुकदमा नहीं चलाया गया था, धन शोधन हेतु उसके अभियोजन को अवैध नहीं कहा जा सकता है। पुनः **विजय मदनलाल चौधरी** (उपरिवर्णित) के निर्णय के प्रस्तर-271 को यहाँ पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"271. जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, "धन-शोधन" की प्रारंभिक समझ यह है कि आम तौर पर धन-शोधन के तीन स्वीकृत चरण हैं, वे हैं:

(ए) प्लेसमेंट: जो अपराध के प्रत्यक्ष सहयोग से धन को स्थानांतरित करना है।

(बी) लेयरिंग: जो पीछा विफल करने हेतु ट्रेल छिपा रहा है।

(सी) एकीकरण: ऐसा प्रतीत हो कि जो अपराधी को वैध स्रोतों से धन उपलब्ध करा रहा है।"

22. उल्लेखनीय रूप से, सर्वोच्च न्यायालय ने **विजय मदनलाल चौधरी** (उपरिवर्णित) में माना है कि पीएमएलए की धारा 45 के रूप में प्रावधान, 2018 के संशोधन के उपरान्त लागू, युक्तियुक्त है और धन शोधन के खतरे से निपटने हेतु पीएमएलए द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों और वस्तुओं से प्रत्यक्ष सम्बंधित है, जिनमें

अनुवादित

अंतरराष्ट्रीय परिणाम सहित वित्तीय प्रणालियों और देश की संप्रभुता और अखंडता को प्रभावित करना शामिल है। किसी आरोपी व्यक्ति को जमानत देते समय पीएमएलए की धारा 45 की दोहरी शर्तों का पालन करना होगा।

23. सुविधा हेतु, पीएमएलए की धारा 45 अधोउद्धृत है:-

> *"45. **अपराध संज्ञेय और गैर-जमानती होंगे।**--(1) [दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी भी बात के बावजूद, इस अधिनियम के अन्तर्गत अपराध के आरोपी किसी भी व्यक्ति को जमानत या अपने स्वयं के बांड पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि: -*
>
> *(i) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया गया है; और*
>
> *(ii) जहाँ लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, न्यायालय संतुष्ट है कि यह मानने हेतु उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके कोई अपराध करने की संभावना नहीं है:*
>
> *परंतु कोई व्यक्ति जो सोलह वर्ष से कम आयु का है या एक महिला है या बीमार या अशक्त है [या खुद पर या अन्य सह-अभियुक्तों के साथ एक करोड़ रुपये से कम के धन-शोधन का आरोपी है], जमानत पर रिहा किया जा सकता है, यदि विशेष न्यायालय ऐसा निदेश दे:*
>
> *परंतु विशेष न्यायालय धारा 4 के अन्तर्गत दंडनीय किसी भी अपराध का संज्ञान निम्नलिखित द्वारा की गई लिखित शिकायत के अतिरिक्त नहीं लेगा।*
>
> *(i) निदेशक; या*
>
> *(ii) केंद्र सरकार या राज्य सरकार का कोई भी अधिकारी, जिसे केंद्र सरकार द्वारा इस संबंध में उस सरकार द्वारा दिए गए सामान्य या विशेष आदेश द्वारा लिखित रूप में अधिकृत किया गया हो।*
>
> *[(1-ए) आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2), या इस अधिनियम के किसी भी अन्य प्रावधान में निहित किसी भी बात के बावजूद, कोई भी पुलिस अधिकारी इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी अपराध की जाँच नहीं करेगा जब तक कि केंद्र सरकार द्वारा एक सामान्य या विशेष आदेश द्वारा विशेष रूप से अधिकृत न किया जाए और, ऐसी शर्तों के अधीन, जो निर्धारित की जा सकती हैं।]*
>
> *(2) उप-धारा (1) के [***] में निर्दिष्ट जमानत देने की परिसीमा आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या फिलहाल किसी अन्य विधि के अन्तर्गत प्रवर्तित जमानत सम्बन्धी विधि की परिसीमाओं के अतिरिक्त है।"*

24. विचाराधीन मुद्दे के तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत, वर्तमान प्रार्थी की जमानत याचिका पीएमएलए की धारा 45 की दोहरी शर्तों पर अर्ह नहीं है क्योंकि इस स्तर पर यह नहीं देखा जा

अनुवादित

सकता है कि वर्तमान प्रार्थी ने अपराध कारित नहीं किया है जिस हेतु उनके विरुद्ध शिकायत दर्ज कराई गई है। अपराध का आगम भी करोड़ों में है। प्रार्थी अबू धाबी में है। अपराध के तथ्य को विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष सिद्ध या अस्वीकृत किया जा सकता है। प्रवर्तन निदेशालय के विद्वान अधिवक्ता ने सूचित किया है कि वर्तमान मामले में सुनवाई अच्छी गति से चल रही है और इसके शीघ्र ही समाप्त होने की संभावना है, अतएव, मैं वर्तमान प्रार्थी को जमानत देने का इच्छुक नहीं हूँ, अपितु मैं विद्वान विचारण न्यायालय को विचारण क त्वरित समापन हेतु निदेश जारी करना चाहूँगा।

25. जहाँ तक सह-अभियुक्त सिद्दीक कप्पन के साथ समानता के दावे का प्रश्न है, सिद्दीक कप्पन की भूमिका के.ए. रऊफ़ शेरिफ़ के साथ आपराधिक षड्यन्त्र रचने के संबंध में है। इस आरोप के अतिरिक्त कि सह-अभियुक्त अतीकुर रहमान के बैंक खाते में 5,000/- रुपये स्थानांतरित किए गए थे, सिद्धिक कप्पन के बैंक खाते में या सह-अभियुक्त के बैंक खाते में कोई अन्य लेनदेन नहीं है, जबकि वर्तमान प्रार्थी की भूमिका प्रार्थी सह-अभियुक्त सिद्दीक कप्पन से बिल्कुल अलग है क्योंकि वर्तमान प्रार्थी अबू धाबी में स्थित है और अपराध का आगम करोड़ों में है, अतएव, वर्तमान प्रार्थी सह-अभियुक्त सिद्दीक कप्पन के साथ समानता का दावा नहीं कर सकता है।

26. तदनुसार, जमानत प्रार्थना पत्र **खारिज** किया जाता है।

27. विद्वान विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह शीघ्रता से, अधिमानतः छह महीने की अवधि के भीतर काम समयांतराल वाली तारीखें नियत कर विचारण का समापन करें, और किसी भी पक्ष को कोई अनावश्यक स्थगन न दिया जाए। यदि कोई भी पक्ष मुकदमे की कार्यवाही में सहयोग नहीं करता है, तो विद्वान विचारण न्यायालय विधि के अनुसार कोई भी उचित कठोर कदम उठा सकती है।

28. यदि उपरोक्त निर्धारित समय के भीतर विचारण समाप्त नहीं होता है, तो प्रार्थी को एक और जमानत प्रार्थनापत्र प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता दी जाती है।

29. यह स्पष्ट किया जाता है कि मैंने मुद्दे के गुण-दोषों में प्रवेश नहीं किया है, अतएव, विद्वान विचारण न्यायालय इस आदेश की किसी भी टिप्पणी या निष्कर्ष से प्रभावित हुए बिना विचारण का संचालन और समापन करेगा क्योंकि टिप्पणी मात्र जमानत प्रार्थना पत्र के निस्तारण तक ही सीमित हैं।

(2023) 2 ILRA 18

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

सिविल पुनरीक्षण क्रमांक 4 /2023

डॉ. सुशील सूरी

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

हरि सूरी एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री प्रीतीश कुमार, शांतनु गुप्ता

अनुवादित

अधिवक्ता विपक्षीगण: अकबर अहमद, हर्ष वर्धन मेहरोत्रा

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 115 - न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 - धारा 7(iv-ए), 7(वी), (वी-ए), (वी-बी) (जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रविष्ट किया गया) - न्यायालय शुल्क- गणना- बाजार मूल्य- ऐसे वाद में जहां परिवाद असीमित आर्थिक क्षेत्राधिकार वाली न्यायालय के समक्ष योजित किया जाता है- प्रतिवादी के पास परिवाद की संपत्ति के मूल्यांकन और उस पर भुगतान की गई न्यायालय शुल्क के संबंध में आपत्तियां प्रस्तुत करने का कोई निहित अधिकार नहीं है- यद्धपि यह संबंधित न्यायालय पर निर्भर करता है यदि उसे परिवाद की संपत्ति का मूल्यांकन और उस पर भुगतान की गई न्यायालय शुल्क मनमाना या प्रदर्शनात्मक रूप से कम प्रतीत होती है तो- उक्त मुकदमे के लिए न्यायालय शुल्क की गणना धारा 7(iv)(सी) सपठित धारा 7(वी) के संदर्भ में वादपत्र में दिए गए कथनों के संदर्भ में की जानी होगी और बाजार मूल्य पर यथामूल्य न्यायालय शुल्क नहीं-यदि मुकदमा केवल परिणामी राहत के बिना घोषणात्मक डिक्री के लिए होता, तो अनुसूची ई के अनुच्छेद 17(iii) लागू होगा। (पैरा 1 से 25)

पुनरीक्षण की अनुमति है। **(ई-6)**

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रीतिश कुमार व उनके सहायक अधिवक्ता श्री शांतनु गुप्ता, प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस.के. कालिया व उनके सहायक अधिवक्ता श्री अकबर अहमद, और प्रतिवादी संख्या 3 और 4 हेतु विद्वान अधिवक्ता श्री अभिनव भट्टाचार्य को सुना।

पक्षकार के विद्वान अधिवक्ता स्वीकार करते हैं कि प्रतिवादी संख्या 2, प्रतिवादी संख्या 3 और 4 के सम्बन्धी है, जिनका पहले से ही प्रतिनिधित्व किया जा चुका है और नोटिस से छूट दी जा सकती है। उपरोक्त के दृष्टिगत, प्रतिवादी संख्या 2 को दिए गए नोटिस को खारिज कर दिया गया है और वाद को पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से प्रवेश स्तर पर निर्णीत किया जा रहा है क्योंकि तथ्य का कोई प्रश्न सम्मिलित नहीं है।

नियमित वाद संख्या 342/ 2015 में पारित आदेश दिनांक 3 दिसंबर, 2022 के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अंतर्गत सिविल रिवीजन दायर किया गया है, जिसके अंतर्गत वाद के मूल्यांकन और उस पर भुगतान किये गए न्यायालय शुल्क के संबंध में प्रारंभिक मुद्दा संख्या 3 को पुनरीक्षणकर्ता-वादी के विरुद्ध निर्णीत किया गया है। पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि पुनरीक्षणकर्ता ने वाद-पत्र में इंगित संपत्तियों के विभाजन हेतु वाद दायर किया था जिसमें एक आवासीय भूखंड, एक व्यावसायिक भूखंड और एक इमारत सम्मिलित था। यह कथन किया गया है कि वाद का मूल्यांकन 2,72,12,403/- रुपये था और दो भूखंडों के संबंध में उस पर न्यायालय शुल्क का भुगतान न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 की धारा 7(v)(I)(c) के संदर्भ में वार्षिक किराया मूल्य का 20 गुना किया गया था और इसी प्रकार धारा 7(v)(II) के संदर्भ में नगर पालिका किराये के

अनुसार न्यायालय शुल्क का भुगतान किया गया था। यह कथन किया गया है कि संपत्तियों के बाजार मूल्य निर्धारण की उपरोक्त विधि निर्धारण की उन विधियों में से एक है जो उत्तर प्रदेश न्यायालय शुल्क (संशोधन) अधिनियम, 1870 के अनुसार विभिन्न निर्णयों में एक स्वीकृत सिद्धांत रहा है।

यह कथन किया गया है कि हालांकि विचारण न्यायालय ने धारा 7(v)(I)(ग) और धारा 7(v)(II) के संदर्भ में न्यायालय शुल्क को देय मानते हुए प्रश्नगत आदेश के माध्यम से न्यायालय शुल्क को इस आधार पर न्यून पाया है कि पुनरीक्षणकर्त्ता-वादी को संपत्तियों के बाजार मूल्य पर न्यायालय शुल्क का भुगतान करना आवश्यक था। तदोपरान्त यह कथन किया गया है कि उपरोक्त प्रावधानों के संदर्भ में भुगतान की जाने वाली न्यायालय शुल्क को इंगित करते हुए प्रश्नगत आदेश यह नहीं दर्शाता है कि विचारण न्यायालय द्वारा बाजार मूल्य कैसे निर्धारित किया गया है और यहां तक कि न्यायालय शुल्क में कमी का भी संकेत नहीं दिया गया है एवं कमी को पूरा करने हेतु इसे पुनरीक्षणकर्त्ता-वादी के विवेक पर छोड़ दिया गया है। इस प्रकार यह कथन किया गया है कि प्रश्नगत आदेश न केवल अधिनियम की धारा 7 के प्रावधानों के विरुद्ध है, बल्कि उसके बाद विनिश्चित विधि के विरुद्ध भी है और अस्पष्ट भी।

विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि वर्तमान वाद में विचारण न्यायालय के पास असीमित आर्थिक क्षेत्राधिकार है, अतः विपक्षी पक्षकारों प्रतिवादीगण के पास पुनरीक्षणकर्त्ता-वादी द्वारा भुगतान किये जाने वाले न्यायालय शुल्क को चुनौती देने का कोई अधिकार अथवा अधिस्थिति नहीं है।

प्रतिवादीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने पुनरीक्षणकर्त्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी प्रस्तुत तर्कों को इस तर्क द्वारा खारिज कर दिया कि यद्यपि 'बाजार मूल्य' शब्द को अधिनियम में कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन इसे वार्षिक किराया मूल्य के रूप में नहीं लिया जा सकता है विशेषतः इसलिये कि प्रश्नगत भूखंडों को कभी किराए पर नहीं दिया गया था और वास्तव में इसे कलेक्टर द्वारा अधिसूचित सर्किल दर के अनुसार निर्धारित किया जाना आवश्यक है। पुनः यह कथन किया गया है कि चूँकि वाद संपत्तियों के विभाजन हेतु है, इसमें वादी और प्रतिवादी की कोई अवधारणा नहीं है, और कार्यवाही के सभी पक्षों का संपत्तियों में समान हित है और इसलिये प्रतिवादी के पास वाद के अल्पमूल्यांकन और न्यायालय शुल्क की न्यूनता के संबंध में आपत्ति प्रस्तुत करने का अधिकार है।

यह भी कथन किया गया है कि कि वाद की संपत्तियों के बाजार मूल्य के उचित निर्धारण के उद्देश्य से प्रतिवादीगण ने कमीशन जारी करने हेतु विचारण न्यायालय के समक्ष आवेदन संख्या सी-144 दायर किया था और हालांकि पुनरीक्षणकर्त्ता-वादी द्वारा आपत्ति सी-155 दायर की गई थीं, इसका निर्णय इस आधार पर नहीं किया गया है कि इस पर किसी विचार की आवश्यकता नहीं है।

विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है कि पक्षकारों के मध्य स्थाई निषेधाज्ञा हेतु पूर्व कार्यवाहियों, वर्तमान

अप्रमाणित

वादियों द्वारा दायर नियमित वाद संख्या 1364/2012, में उपरोक्त तीन संपत्तियों का मूल्य दस करोड़ रुपये दिखाया गया था और अतः यह समझ से परे है कि उपरोक्त तीन संपत्तियों का बाजार मूल्य उस सीमा तक कम हो गया है जैसा कि वर्तमान कार्यवाही में दावा किया गया है जो इसके केवल तीन साल बाद दायर की गई है, हालांकि लखनऊ में भूमि के मूल्य में प्रति वर्ष15% की दर से वृद्धि हो रही है। यह कथन किया गया है कि प्रश्नगत संपत्तियों का उचित मूल्यांकन प्रतिवादीगण द्वारा दायर लिखित बयान में स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है तदनुसार वाद का मूल्यांकन एवं न्यायालय शुल्क भी अदा किया जाना आवश्यक था ।

विद्वान अधिवक्ता ने वाद और उसमें निहित प्रार्थना की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है और यह भी कहा है कि पुनरीक्षणकर्त्ता-वादी स्वर्गीय गोविंद राम सूरी द्वारा 11 जून, 2004 को निष्पादित पंजीकृत वसीयत को रद्द करने की मांग कर रहा है जिस हेतु विशिष्ट अनुतोष की प्रार्थना नहीं की गई है और ऐसी परिस्थितियों में भी वाद-पत्र में की गई प्रार्थना दोषपूर्ण थी और वसीयतनामा को रद्द करने के संदर्भ में न्यायालय शुल्क का भुगतान भी करना आवश्यक था।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों के दृष्टिगत वर्तमान पुनरीक्षण में निर्धारण हेतु निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होते हैं: -

> (ए) क्या धारा 7(v)(i)(ग) के अंतर्गत 'बाजार मूल्य' के निर्धारण में निर्धारण की अन्य रीतियों की श्रेणी में भूखंडों या इमारत पर वार्षिक किराया मूल्य/नगर पालिका किराये को सम्मिलित किया जाएगा?
>
> (बी) विचारण न्यायालय के असीमित आर्थिक क्षेत्राधिकार के वादों में, क्या वादी को वाद के मूल्यांकन और उस पर भुगतान किये गए न्यायालय शुल्क के संबंध में आपत्तियां प्रस्तुत करने का कोई अधिकार है?
>
> (सी) क्या वसीयत के संबंध में घोषणा के अनुतोष के संबंध में मूल्यानुसार न्यायालय शुल्क देय था, हालांकि इसे रद्द करने हेतु कोई विशेष प्रार्थना नहीं की गई थी?

उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर निम्नवत दिया जा रहा है:-

<u>प्रश्न-क:</u> विभाजन के वाद में संपत्तियों से संबंधित न्यायालय शुल्क के भुगतान का प्रावधान अधिनियम की धारा 7 में दर्शाया गया है; जिसके प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं:-

> **"7 (vi-**क) विभाजन हेतु **-** विभाजन के वाद में**-**
>
> ऐसे अंश के सम्पूर्ण मूल्य के अनुसार यदि वाद पेश होने की तिथि पर वाद संपत्ति**,** जिसका वह सहदायिक या सह**-**स्वामी होने का दावा करता है**,** के कब्जे के बाहर है **,** और तिथि पर उसका सहदायिक या सह**-**स्वामी होने के उसके दावे को प्रत्याख्यात कर दिया जाता है।
>
> स्पष्टीकरण**.-** इस उपधारा के प्रयोजन हेतु संपत्ति का मूल्य बाजार मूल्य होगा

अनुवादित

जो स्थावर संपत्ति की दशा में उपधारा **(v), (v-**क**)** या **(v-**ख**),** के अनुसार संगणित मूल्य होना माना जाएगा, जैसी भी स्थिति हो।

7(v) भूमि, गृहों और उद्यानों के कब्जे हेतु भूमि, गृहों और उद्यानों के कब्जे के वादों में- विषय वस्तु के मूल्य के अनुसार; और यह समझा जायेगा, कि ऐसा मूल्य-

(i) जहां विषय-वस्तु भूमि है, और-

(क**)** जहां भूमि सरकार को वार्षिक राजस्व देने वाली सकल सम्पदा या सम्पदा का निश्चित अंश है, या ऐसी सम्पदा का भाग है और कलेक्टर के रजिस्टर में यही अभिलिखित है कि उस पर ऐसा राजस्व पृथक्तः निर्धारित हैं, और ऐसा राजस्व स्थायी रूप से परिनिर्धारित है-

वहाँ ऐसे संदेय राजस्व का तीस गुना है।

(ख**)** जहां भूमि सरकार को वार्षिक राजस्व देने वाली सकल सम्पदा या सम्पदा और ऐसा राजस्व परिनिर्धारित है, किन्तु स्थायी रूप से नही वहां ऐसे संदेय, राजस्व का दस गुना है;

(ग) जहां भूमि ऐसा कोई भी राजस्व नहीं देती है या ऐसे संदाय से भागतः छूट प्राप्त है या ऐसे राजस्व के बदले किसी नियत संदाय से भारित है और वाद-पत्र के पेश होने की तारीख के ठीक पूर्व तीन वर्षों की अवधि में उस भूमि से शुद्ध लाभ उद्भूत हुए हैं-

वहां ऐसे शुद्ध लाभों का बीस गुना है किन्तु जहां ऐसे कोई भी शुद्ध लाभ उससे उद्भूत नहीं हुए हैं वहां, वह रकम हैं, जो न्यायालय पड़ोस की वैसी ही भूमि के मूल्य के प्रति निदेश से उस भूमि हेतु प्राक्कलित करे।

(घ**)** जहां भूमि सरकार को राजस्व देने वाली किसी सम्पदा का भाग है, किन्तु ऐसी सम्पदा का निश्चित अंश नहीं है और ऊपर के खण्ड **(**क**), (**ख**)** या **(**ग**)** के अन्तर्गत नही आता है-

भूमि का बाजार मूल्य जो भूमि के भाटक मूल्य, साम्पत्तिक खेती पर कल्पित भाटक, यदि कोई हो, शामिल करके, में पन्द्रह के गुणा द्वारा निर्धारित किया जायेगा।

(II) जहां विषयवस्तु किसी भवन या बाग की हो-

भवन या भाग के बाजार मूल्य के अनुसार, जैसी भी स्थिति हो ।

स्पष्टीकरण **-** इस उपधारा में यथा प्रयुक्त सम्पदा शब्द से अभिप्रेत है वह भूमि जो राजस्व का संदाय करने हेतु दायी है और जिस हेतु भू-स्वामी या कृषक या रैयत ने सरकार से अलग वचनबन्ध निष्पादित किया है या जिस पर ऐसे वचनबन्ध के अभाव में राजस्व पृथकतः निर्धारित होता।**"**

अधिनियम के अवलोकन से यह भी ज्ञात होता है कि 'बाजार मूल्य' शब्द को अधिनियम में कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है, यद्यपि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के कई निर्णयों में भी इसकी व्याख्या की गई है।

अनुवादित

धारा 7(V)(I)(ग) उन भूमियों के संबंध में न्यायालय शुल्क के मूल्यांकन और भुगतान का प्रावधान करता है जो या तो कोई राजस्व नहीं देते हैं या जिन्हें ऐसे भुगतान से आंशिक रूप से छूट दी गई है या जिनसे इस राजस्व के बदले में कोई निश्चित भुगतान लिया जाता है और यह भी इंगित करता है कि जब भूमि से शुद्ध लाभ उत्पन्न हुआ है या अन्यथा भी जब ऐसा कोई शुद्ध लाभ उत्पन्न नहीं हुआ है तो यह बाजार मूल्य है जिसे निर्धारित किया जाना है। जैसा कि ऊपर देखा गया है 'बाजार मूल्य' शब्द को अधिनियम के अंतर्गत परिभाषित नहीं किया गया है, किन्तु सी.एल. बसरा बनाम प्यारे लाल बसरा और एक अन्य एआईआर 1960, इलाहाबाद 590 के वाद में निम्नानुसार धारित किया गया है:-

> " 19. वाद कब्जे हेतु होने के कारण न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7(v)(II) के अंतर्गत अर्थात भवन के बाजार मूल्य पर न्यायालय शुल्क देय था। अधिनियम में 'बाजार मूल्य' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। और इस कारण से इसे किसी भी उचित रीति से निर्धारित किया जा सकता है। यह निश्चित है कि किसी भवन की निर्माण लागत से विमूल्यन को घटाने से प्राप्त राशि को उसका बाजार मूल्य नहीं माना जा सकता है। यदि भवनों की मांग अत्यधिक है और आवास की कमी है, तो लोग बहुत अधिक कीमत चुकाने को तैयार हो सकते हैं। किन्तु यदि भवनों की कोई मांग नहीं है, उदाहरण हेतु,मसूरी जैसे हिल स्टेशनों पर, तो उसका बाजार मूल्य अर्थात जिस मूल्य पर लोग उन्हें क्रय करने के इच्छुक हैं, वह भवनों की निर्माण लागत से विमूल्यन को घटाने से प्राप्त राशि से कम होगा।
>
> इस प्रकार बाजार मूल्य काफी हद तक भवनों की आपूर्ति और मांग पर अर्थात परिवर्तनशील कारक पर निर्भर करेगा; परिणामस्वरूप कार्यवाही में सम्मिलित पक्षों हेतु किसी भवन के बाजार मूल्य के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत करना और न्यायालयों हेतु यह निर्धारित करना कठिन है कि बाजार मूल्य की गणना कैसे की जाए। यही कारण है कि निर्माण की लागत से विमूल्यन को घटाकर किसी भवन के बाजार मूल्य की गणना करना प्रायः एक सुरक्षित तरीका माना जाता है। बाजार मूल्य अन्य रीतियों से, उदाहरणार्थ, सरकार द्वारा बनाया गया कोई नियम या न्यायालयों द्वारा अनुमोदित नियम, या किसी क्षेत्र में विधि समान शक्ति प्राप्त किसी प्रथा एवं परम्परा से भी निर्धारित किया जा सकता है।
>
> कस्टोडियन जनरल ऑफ इवैक्यू प्रॉपर्टी के एक निर्णय, मोसम्मत ऐसलिया बी बनाम कस्टोडियन ऑफ इवैक्यू प्रॉपर्टी, भोपाल, भवानी लाल एंड हरबंस लाल मित्तल कृत किलिंग्स ऑफ़ द कस्टोडियन जनरल, वॉल्यूम I का वाद संख्या **27**, से यह स्पष्ट होता है कि इवैक्यू विभाग 20 वर्ष के उत्पाद को किसी भवन के बाजार मूल्य का उचित

अनुवादित

प्राक्कलन मानता है। वास्तव में, जैसा कि उल्लिखित है, कई अवसरों पर किसी घर का मूल्य 25 से 30 वर्ष के किराये के आधार पर तय किया गया था। जब एक अर्ध-न्यायिक न्यायाधिकरण ने वार्षिक किराए के 20 गुना पर मूल्यांकन का निर्धारण करने का नियम अपनाया है, तब अधीनस्थ न्यायालय इस नियम को अपना सकती हैं, विशेषतः तब, जब सरकारी भवनों हेतु किराया लगभग समान आधार पर तय किया जाता है।

उत्तर प्रदेश में राज्य के स्वामित्व वाले आवासीय भवनों का वार्षिक किराया अनिवार्य रूप से सुपर-स्ट्रक्चर (लागत से भूमि के मूल्य को घटाने से प्राप्त राशि) के मूल्यांकन का 6 प्रतिशत तय किया जाता है। यदि इस आंकड़े को मार्गदर्शक माना जाए, तो वार्षिक किराए का मात्र 16 2/3 गुना भवन का मूल्यांकन होगा। जब मुंसिफ और विद्वान जिला न्यायाधीश ने भी भूमि सहित भवन का बाजार मूल्य वार्षिक किराए का 20 गुना निर्धारित किया, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वे गलत थे। किसी भी वाद मे यह इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का आधार नहीं होगा।"

मिट्ठू लाल बनाम गोपाल चंद, एआईआर 1979 इलाहाबाद 226 के वाद में विभाजन के वाद से संबंधित धारा 7 के प्रावधानों पर अधोवर्णित विचार किया गया है: -

19. न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7(vi-a)' विभाजन के मुकदमों से संबंधित है। मोहम्मद मुस्ताक बनाम मोसम्मत बक्रिदान , एआईआर **1952** के वाद में यह माना गया कि अधिनियम की धारा 4 के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार के प्रयोजनों हेतु वादी के अंश के विभाजन हेतु किसी वाद का मूल्य निर्धारण वादी के अंश के अनुसार किया जाना चाहिए। इस वाद में इस न्यायालय के पूर्व निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया था। इस प्रकार अपीलकर्ता के विरुद्ध इस न्यायालय का प्रत्यक्ष प्राधिकार है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित शब्द प्रयुक्त किये गए हैं- "सम्मिलित संपत्ति या जिसका समग्र भाग वांछित अनुतोष से प्रभावित होता है"। वर्तमान वाद में प्रतिवादी संपत्ति में आधे हिस्से का दावा किया है। इस प्रकार यह वाद संपत्ति में प्रतिवादी के आधे अंश से संबंधित है। दावाकृत अनुतोष संपत्ति में प्रतिवादी के आधे अंश से संबंधित है। संपत्ति में अपीलकर्ता के आधे अंश पर कोई विवाद नहीं है।

इस बिन्दु पर एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है। विभाजन के ऐसे वादों के सम्बन्ध में, जहाँ वादी विभाजन हेतु चाही गई संपत्ति का वास्तविक कब्जा धारित नहीं करता है एवं कब्जे का दावा किया गया है, न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7(VI-A) में कहा गया है कि यदि वाद प्रस्तुत करने की तिथि पर वादी कब्जा धारित नहीं करता था तब विभाजन के वाद में न्यायालय शुल्क वादी के अंश

अनुवादित

के मूल्य के एक चौथाई के अनुसार, या वादी के अंश के पूर्ण मूल्य के अनुसार प्रभारित किया जाएगा । इस उपधारा के साथ एक स्पष्टीकरण संलग्न है। इस स्पष्टीकरण में कहा गया है कि संपत्ति का मूल्य उप-धारा (V) के अनुसार आगणित बाजार मूल्य होगा, उप-धारा (V- क) और (V-ख) का उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है क्योंकि वे वर्तमान वाद पर लागू नहीं होते हैं। धारा 7(V)(II) में उपबंधित है कि किसी भवन के कब्जे के वाद में, प्रभार्य न्यायालय शुल्क इमारत के बाजार मूल्य के अनुसार होता है। वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 4 भी धारा 7(V) को संदर्भित करते हुए स्पष्ट उपबंध करती है कि क्षेत्राधिकार के प्रयोजनों हेतु किसी इमारत के कब्जे हेतु वादों का मूल्यांकन सम्बन्धित संपत्ति के बाजार मूल्य पर किया जाएगा। इस प्रकार जहाँ विभाजन के वाद में वादी उसे आवंटित संपत्ति पर कब्जे का भी दावा करता है, वह उस संपत्ति के बाजार मूल्य पर न्यायालय शुल्क का भुगतान करने हेतु उत्तरदायी होगा जिस पर वह कब्जा चाहता है। अतः क्षेत्राधिकार के प्रयोजनों हेतु के अंतर्गत जिस संपत्ति पर कब्जे का दावा किया गया है, उसका मूल्य उसके बाज़ार मूल्य पर तय किया जाना चाहिए। इस प्रकार न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7(V) और वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 4 के मध्य अन्योन्यता है।

xxxx xxxx xxxx

22. बाजार मूल्य के संबंध में विद्वान मुंसिफ का निष्कर्ष स्पष्ट है। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त मूल्य के आगणन में कोई त्रुटि नहीं हुई है। यह उल्लेखनीय होगा कि विद्वान मुंसिफ ने वार्षिक किराये का 20 गुना मूल्य तय किया था। यह मूल्यांकन तय करने के तरीकों में से एक है और निश्चित ही इसे गलत नहीं कहा जा सकता है।"

तदोपरांत मिट्ठू लाल **(** पूर्वोक्त**)** के उपरोक्त निर्णय का रमाकांत मालवीय बनाम जिला न्यायाधीश**,** इलाहाबाद और अन्य **(2002)48** एएलआर **156** में पालन किया गया है।

इसके बाद तारा देवी बनाम श्री ठाकुर राधा कृष्ण महाराज द्वारा सेवायतगण चंदेश्वर प्रसाद और मेश्वर प्रसाद और एक अन्य **(1987) 4** सुप्रीम कोर्ट केस **69** में यह धारित किया गया कि : -

"सथप्पा चेट्टियार बनाम रामनाथन चेट्टियार **[**एआईआर **1958** एससी **245: 1958** मद्रास एलजे **(**क्रि**.) 148: 1958** एससीआर **1024]** और मीनाक्षीसुंदरम चेट्टियार बनाम वेंकटचलम चेट्टियार **[(1980) 1** एससीसी **616:** एआईआर **1979** एससी **989: (1979) 3** एससीआर **385]"** में इस न्यायालय के निर्णयों से यह भली-भाँति विनिश्चित हो गया है कि न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 की धारा 7(iv)(सी) के अंतर्गत आने वाली परिणामी राहत के साथ घोषणा हेतु वाद में वादी अपने प्राक्कलन हेतु स्वतंत्र है। वाद-पत्र में मांगे गए अनुतोषों, और न्यायालय शुल्क तथा क्षेत्राधिकार दोनों प्रयोजनों हेतु इस प्रकार

अनुवादित

के मूल्यांकन को सामान्यतया स्वीकार किया जाना चाहिए। मात्र उन वादों में जहाँ वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने पर न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि मूल्यांकन मनमाना है , अयुक्तियुक्त है और स्पष्टतः वाद का अल्प मूल्यांकन किया गया है, न्यायालय मूल्यांकन की जांच कर सकती है और उसे संशोधित कर सकती है। वादी ने किराए के आधार पर पट्टाहित का मूल्यांकन किया है। ऐसा मूल्यांकन, जिसे अधीनस्थ न्यायालयों में सही माना गया है, युक्तियुक्त है, स्पष्ट रूप से मनमाना नहीं है और न ही अनुतोषों का कोई सुविचारित अल्पप्राक्कलन हुआ है।"

आगरा डायोसेसन ट्रस्ट एसोसिएशन बनाम अनिल डेविड और अन्य, **(2020) 19** सुप्रीम कोर्ट केस **183** में यह धारित किया गया कि: -

"इस न्यायालय की राय में, वाद दायर करने के चरण में, वादी पर यह दावा कि वाद की भूमि पर राजस्व का भुगतान किया जा रहा था और इस प्रकार भुगतान किये गए राजस्व के विवरण को सिद्ध अथवा स्थापित करने की कोई बाध्यता नहीं थी । एक बार यह मान लिया जाता है कि भूमि का मूल्य [धारा 7(iv-ए) के स्पष्टीकरण के अनुसार] अधिनियम के उप-खंड (v), (va) या (vb) के अनुसार निर्धारित किया जाना है, इसका तात्पर्य है कि "बाजार मूल्य " की अवधारणा, जो अन्य संदर्भों में एक व्यापक अवधारणा है , को धारा 7(iv-ए) के उप-खंड (v), (va) या (vb) के अंतर्गत मूल्य निर्धारित करने के एक या अन्य तरीकों हेतु संदर्भित माना जाता था। इस वाद के तथ्यों में उच्च न्यायालय द्वारा इस पक्ष को अनदेखा कर दिया गया था । अतः उच्च न्यायालय के तर्क एवं निष्कर्ष पोषणीय नहीं हैं।"

उपरोक्त निर्णयों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उपरोक्त निर्णयों में बाजार मूल्य की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है कि इसकी अवधारणा व्यापक होगी और धारा 7(iv-ए) के उप खंड (v) (va) या (vb)के अंतर्गत मूल्य निर्धारित करने के एक या अन्य तरीकों हेतु संदर्भित माना जाएगा और किसी भूखंड या भवन का वार्षिक किराया-मूल्य वाद संपत्ति के मूल्यांकन और तदोपरांत न्यायालय शुल्क के भुगतान के निर्धारण के वैध तरीकों में से एक होगा।

जिला कलेक्टर द्वारा अधिसूचित सर्कल रेट का पक्ष , इस न्यायालय की सुविचारित राय में, किसी वाद संपत्ति के बाजार मूल्य का निर्धारण करने हेतु एक वैध प्रस्थापना नहीं हो सकती है क्योंकि उक्तपक्ष राजस्व अधिकारियों द्वारा मात्र विलेखों के पंजीकरण और स्टाम्प शुल्क लगाने के उद्देश्य से भू-संपत्ति के बाजार मूल्य आकलन से संबंधित है। इसका प्रयोग विभाजन के वादों से संबंधित संपत्तियों के मूल्यांकन और उस पर न्यायालय शुल्क के भुगतान हेतु नहीं किया जा सकता है। इस अवधारणा को एक अन्य रूप में भी समझाया जा सकता है कि सर्किल रेट मांग और आपूर्ति के अनुसार अचल संपत्तियों के बाजार मूल्य पर भी निर्भर करता है और उक्त कारक

अनुवादित

को सी.एल. बसरा (उपरोक्त) के वाद में भी उचित नहीं माना गया है जैसा कि उपरोक्त पंक्तियों में उद्धृत किया गया है, विशेषतः इसलिये क्योंकि किसी विशेष क्षेत्र या जिले या यहाँ तक कि राज्य में भी अचल संपत्तियों की मांग और आपूर्ति परिवर्ती है और एक संभाव्य परिवर्तनशील कारक है।

बाजार मूल्य के प्रयोजनों हेतु ग्राह्य सर्किल रेट के पक्ष को मेसर्स नदीम अपार्टमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य **2004(55)** एएलआर **575** के वाद में इस न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा पहले ही इस आशय हेतु प्रभावहीन कर दिया गया है कि भू-संपत्ति के वास्तविक बाजार मूल्य का आकलन करने हेतु सर्किल रेट को कभी भी उचित दर नहीं माना जा सकता है क्योंकि यह राजस्व प्राधिकारी द्वारा मात्र विक्रय विलेख के पंजीकरण पर स्टांप शुल्क आरोपित करने के निमित्त है।

प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने स्थायी निषेधाज्ञा हेतु पुनरीक्षणकर्त्ता-वादी द्वारा दायर पूर्ववाद का भी उल्लेख किया है जिसमें संपत्तियों के अत्यधिक मूल्यांकन का संकेत दिया गया था और यह कहा है कि संपत्ति का मूल्यांकन इतने अधिक स्तर तक कम नहीं होगा जैसा कि वर्तमान वाद में संकेत दिया गया है जो तत्पश्चात तीन वर्ष की अवधि में दायर किया गया है।

सीएल बसरा (उपरोक्त) के वाद में धारित यह मत ध्यान रखते हुए उपरोक्त आवेदन उचित आधार नहीं रखता है क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में संपत्ति के मूल्यों में समय-समय पर उतार-चढ़ाव होता रहता है और किसी भी न्यायालय हेतु प्रति वर्ष ऐसी परिवर्तनशील दरों का निर्धारण करना एक कठिन कार्य होगा और इस प्रकार यह उचित होगा कि संपत्ति का औसत किराया मूल्य ग्रहण कर गुणित किया जाना चाहिए, जैसा कि अधिनियम के प्रावधानों में दर्शाया गया है।

प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अपनी दलीलों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का उल्लेख किया है:-

ओंकारलाल और अन्य बनाम राम सरूप और अन्य ILR 1954 इलाहाबाद 106(एफबी), संजय तोमर बनाम शोभा सकलानी और अन्य, 2018 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 993: और मोहम्मद यामीन और अन्य बनाम मुल्ला अब्दुल सत्तार और अन्य 2000 एससीसी ऑनलाइन ऑल 492 ।

जहां तक ओंकारलाल (उपरोक्त) के वाद में निर्णय का प्रश्न है, यह स्पष्ट है कि यह उस स्थिति में न्यायालय शुल्क के निर्धारण से संबंधित है, जब वादी के पास संपत्ति का कब्जा नहीं है, जिसे वाद में विभाजित करने की प्रार्थना की गई है। उपरोक्त निर्णय का वाद के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में कोई अनुप्रयोग नहीं है, जो केवल 'बाजार मूल्य' शब्द की परिभाषा से संबंधित है, न कि इस संबंध में कि आनुषंगिक अनुतोष के दृष्टिगत यथामूल्य न्यायालय शुल्क देय है अथवा नहीं।

संजय तोमर और मोहम्मद यामीन (उपरोक्त) के वाद भी इस वाद के तथ्यों में अनुपयुक्त हैं क्योंकि इसमें यह बिंदु भी सम्मिलित है कि क्या देय न्यायालय शुल्क वादी के अंश के अनुसार होना चाहिए या सम्पूर्ण संपत्ति पर होना चाहिए क्योंकि जिस संपत्ति के विभाजन की प्रार्थना की गयी है, उस पर वादी का कब्जा नहीं था। इस

अनुवादित

प्रकार उक्त निर्णय बाजार मूल्य के निर्धारण से संबंधित नहीं होने के कारण भी प्रयोज्य नहीं हैं।

उपरोक्त के दृष्टिगत, यह स्पष्ट है कि किसी भी अचल संपत्ति के वार्षिक किराया मूल्य के आधार पर न्यायालय शुल्क का भुगतान अधिनियम की धारा 7 (v)(i)(सी) के संदर्भ में संपत्ति के बाजार मूल्य का निर्धारण करने हेतु सुरक्षित तरीकों में से एक है। अतः विचारण न्यायालय ने इसे स्वीकार न करके स्पष्ट रूप से त्रुटि की है। अतः इस प्रश्न का उत्तर पुनरीक्षणकर्त्ता-वादी के पक्ष में सकारात्मक दिया जाता है।

प्रश्न-बी: जहां तक इस प्रश्न का संबंध है, दोनों पक्षकारों के मध्य यह तथ्य स्वीकृत है कि संबंधित वाद उस न्यायालय में दायर किया गया है जिसके पास असीमित आर्थिक क्षेत्राधिकार है।

उक्त प्रश्न के संबंध में, पक्षकारों के मध्य यह स्वीकार किया गया है कि वाद की कार्यवाही एक ऐसे न्यायालय में लंबित है जिसके पास असीमित आर्थिक क्षेत्राधिकार है। उपरोक्त के आलोक में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने में सुजिर केशव नायक बनाम सुजिर गणेश नायक (1992) 1 सुप्रीम कोर्ट केस 731 के वाद में निम्नानुसार निर्णय दिया है: -

> "सथप्पा चेट्टियार बनाम रामनाथन चेट्टियार **[1958** एससीआर **1024:** एआईआर **1958** एससी **245]** और मीनाक्षीसुंदरम चेट्टियार बनाम वेंकटचलम चेट्टियार **[(1980) 1** एससीसी **616]** वादों में इस न्यायालय के पारित निर्णयों से अब यह भली-भांति तय हो गया है कि न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 की धारा 7(iv)(सी) के अंतर्गत आनुषंगिक अनुतोष सहित घोषणा हेतु वाद में, वादी वाद-पत्र में मांगे गए अनुतोषों स्वप्राक्कलन हेतु स्वतंत्र है और न्यायालय शुल्क और क्षेत्राधिकार दोनों ही उद्देश्यों हेतु ऐसा मूल्यांकन सामान्यतः स्वीकार किया जाना चाहिए। ऐसा मात्र उन वादों में होगा जहां वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने पर न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि मूल्यांकन मनमाना है, अनुचित है और वाद-पत्र का स्पष्ट रूप से अल्प-मूल्यांकन किया गया है, न्यायालय मूल्यांकन की जांच कर सकती है और उसे संशोधित कर सकती है।"

किन्तु प्रतिवादी को ऐसी आपत्ति करने का कोई अधिकार नहीं है और न ही न्यायालय को साक्ष्य पर लिखित बयान दाखिल होने के बाद वाद की जांच करनी चाहिए। अतः इस पक्ष पर विधि अधोवर्णित रूप में ग्रहण करना चाहिए:

(1) जहां न्यायालय शुल्क का प्रश्न क्षेत्राधिकार से सम्बंधित है, वहां प्रतिवादी को आपत्ति प्रस्तुत करने का अधिकार है और न्यायालय को इसे प्राथमिक बिंदु के रूप में विनिश्चित करना चाहिए।

(2) लेकिन उन वादों में जहां वाद असीमित क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में दायर किया गया है, वादी द्वारा घोषित मूल्यांकन या वाद-पत्र या अपील के ज्ञापन में दावाकृत अनुतोष पर

अनुवादित

न्यायालय शुल्क की राशि के भुगतान को सही माना जाना चाहिए।

(3) यह न्यायालय को यहाँ तक कि असीमित क्षेत्राधिकार वाली न्यायालयों में दायर मुकदमों में भी यह परीक्षण करने से नहीं रोकता है कि क्या वाद-पत्र में दिए गए कथनों के अनुसार मूल्यांकन मनमाना है।"

श्रीमती संतोष कुमारी एवं अन्य बनाम सुखदेव सिंह, सिविल पुनरीक्षण संख्या **555** सन् **2014** के वाद में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने धारित किया :-

"5. न्यायालय शुल्क अधिनियम राज्य के लाभ हेतु राजस्व एकत्र करने हेतु अधिनियमित किया गया था और कोई प्रतिपक्षी इसे वाद में बाधा डालने हेतु एक साधन के रूप में प्रयोग नहीं कर सकता है। यह समझना कठिन है कि इस प्रश्न पर कि क्या वादी ने अपने वाद-पत्र पर पर्याप्त न्यायालय शुल्क का भुगतान किया है, प्रतिवादी पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार लागू करने मांग करके किस शिकायत का समाधान प्राप्त कर सकता है। यह प्रश्न मुख्य रूप से वादी और राज्य के मध्य का है कि भले ही प्रतिवादी ईमानदारी से विश्वास करता हो कि वादी द्वारा उचित न्यायालय-शुल्क का भुगतान नहीं किया गया है, फिर भी उसे वाद-पत्र पर देय न्यायालय-शुल्क के भुगतान के निर्णय के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील का कोई अधिकार नहीं है।"

वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में पूर्वोक्त निर्णयों की प्रयोज्यता के संबंध में यह स्पष्ट है कि वर्तमान वाद की भांति वाद में जहां न्यायालय के पास असीमित आर्थिक क्षेत्राधिकार है, प्रतिवादी को आपत्ति करने का कोई निहित अधिकार नहीं है और ऐसे वाद में जहां दावाकृत अनुतोष के प्रति वादी ने मूल्यांकन की घोषणा की हो, उसे ही सही माना जाना चाहिए। चूंकि वादी वाद में मांगे गए अनुतोषों के स्वप्राक्कलन हेतु स्वतंत्र है, अतः न्यायालय शुल्क के प्रयोजनों हेतु उसका मूल्यांकन सामान्यतः स्वीकार किया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में सावधानी तभी बरती जाती है जब संबंधित न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि मूल्यांकन मनमाना, अयुक्तियुक्त अथवा स्पष्टतः अल्प-मूल्यांकित हो। हालाँकि, यह प्रतिवादी को वादी के दावों को विफल करने हेतु इसे बचाव के रूप में उपयोग करने का कोई अधिकार नहीं देता है।

आर. राममूर्ति अय्यर बनाम राजा राजेश्वर राव **(1972) 2** सुप्रीम कोर्ट केसेस **721** के उपरोक्त वाद के सम्बन्ध में प्रतिपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों का वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में कोई अनुप्रयोग नहीं है क्योंकि उनमें कार्यवाही वाद की कार्यवाही को वापस लेने से संबंधित और मूल्यांकन के अनुसार एक सह-हिस्सेदार द्वारा विभाजन में हिस्सेदारी की खरीद हेतु थी, जो न्यायालय शुल्क के भुगतान के प्रयोजनों हेतु नहीं था। इसी तरह धीरेन घोष बनाम मायारानी **@** करिबाला घोष और अन्य **2018** एससीसी ऑनलाइन कैल **3487** का वाद सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1 नियम (10) के अन्तर्गत सह-हिस्सेदार द्वारा

अनुवादित

दायर एक आवेदन से संबंधित था क्योंकि कार्यवाही विभाजन से संबंधित थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उस बिंदु पर उद्धृत निर्णयों का वर्तमान वाद में कोई अनुप्रयोग नहीं है और इसलिये यह माना जाता है कि ऐसे वाद में जो असीमित आर्थिक क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में दायर किए गए हैं, प्रतिवादी को वाद संपत्ति के मूल्यांकन और उस पर भुगतान किये गए न्यायालय शुल्क के संबंध में आपत्ति प्रस्तुत करने का कोई निहित अधिकार नहीं है। हालाँकि यह संबंधित न्यायालय पर निर्भर करता है कि वह इस पर विचार करे यदि उसे वाद संपत्ति का मूल्यांकन और तदोपरांत किया गया न्यायालय शुल्क मनमाना या स्पष्टतः अल्पआंकलित लगती है, जिसके बारे में प्रश्नगत आदेश में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है।

अतः प्रश्न संख्या बी का उत्तर पुनरीक्षणकर्त्ता-वादी के पक्ष में दिया गया है।

प्रश्न-सी: उपरोक्त प्रश्न के संबंध में, हालांकि प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि वाद-पत्र में की गई प्रार्थना श्री गोविंद राम सूरी द्वारा दिनांक 11.06.2004 को निष्पादित वसीयत को चुनौती देने की प्रकृति में है, लेकिन इसे रद्द करने की कोई विशिष्ट प्रार्थना नहीं की गई है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त वसीयतनामा के निरस्तीकरण या उसके संबंध में किसी भी घोषणा संबंध में कोई विशिष्ट प्रार्थना नहीं है, परन्तु पुनरीक्षणकर्ता-वादी को उसके अनुसार यथामूल्य न्यायालय शुल्क का भुगतान करना होगा।

उपरोक्त प्रश्न के संबंध में, यह स्पष्ट है कि प्रश्नगत आदेश में ऐसे किसी विवाद पर विचार नहीं किया गया है और न ही ऐसा प्रतीत होता है कि इसे पहले उठाया गया है। वाद-पत्र के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि उसमें किसी वसीयतनामा को रद्द करने या उसे शून्य घोषित करने की कोई प्रार्थना नहीं की गई है। इस प्रकार, उपरोक्त प्रश्न पर इस न्यायालय द्वारा किसी भी न्याय निर्णयन की आवश्यकता नहीं है, विशेषतः इस तथ्य के दृष्टिगत कि उक्त प्रश्न का उत्तर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुहृद सिंह बनाम रणधीर सिंह और अन्य (2010) 12एससीसी 112 के वाद में पहले ही दिया जा चुका है जो निम्नवत है: -

> "7. जहां किसी विलेख का निष्पादक चाहता है कि इसे रद्द कर दिया जाए, तो उसे विलेख को रद्द करने की मांग करनी होगी। लेकिन यदि कोई गैर-निष्पादक किसी विलेख को रद्द कराना चाहता है, तो उसे एक उदघोषणा की मांग करनी होगी कि विलेख अमान्य है, या गैर-कानूनी है, या अवैध या कि यह उस पर बाध्यकारी नहीं है। हस्तांतरण/संवहन के विलेख के संबंध में निरस्तीकरण करने की प्रार्थना और घोषणा के बीच अंतर, ए और बी, दो भाइयों से संबंधित निम्नलिखित उदाहरण द्वारा सामने लाया जा सकता है। ए सी के पक्ष में एक विक्रय विलेख निष्पादित करता है। इसके बाद ए बिक्री से बचना चाहता है। ए को विलेख रद्द करने हेतु वाद करना होगा। दूसरी ओर, यदि बी, जो विलेख का निष्पादक नहीं

अनुवादित

है, इससे बचना चाहता है, तो वह इस उदघोषणा हेतु मुकदमा करना होगा कि ए द्वारा निष्पादित विलेख अमान्य/शून्य और गैर-स्थायी/अवैध है और वह इससे बाध्य नहीं है। मर्म यह है कि दोनों ही व्यक्ति विलेख को रद्द करने या गैर-बाध्यकारी घोषित करने हेतु वाद कर सकते हैं। लेकिन उनके स्वरूप अलग है और न्यायालय शुल्क भी अलग है। यदि ए, विलेख का निष्पादक, विलेख को रद्द करने की मांग करता है, तो उसे बिक्री विलेख में वर्णित मूल्य पर न्यायालय शुल्क का भुगतान करना होगा। यदि बी, जो एक गैर-निष्पादक है, कब्जे में है और एक उदघोषणा हेतु वाद करता है कि विलेख शून्य या अमान्य है और उसे या उसके हिस्से को बाध्य नहीं करता है, तो उसे अधिनियम की दूसरी अनुसूची के अनुच्छेद 17(iii) के अन्तर्गत केवल रुपये 19.50/- के एक निश्चित न्यायालय शुल्क का भुगतान करना होगा। लेकिन यदि बी, एक गैर-निष्पादक, कब्जे में नहीं है, और वह न केवल यह घोषणा चाहता है कि बिक्री विलेख अमान्य है, बल्कि कब्जे का परिणामी अनुतोष भी चाहता है, तो उसे अधिनियम की धारा 7(iv)(सी) के अन्तर्गत मूल्यानुसार न्यायालय शुल्क का भुगतान करना होगा।

8. धारा 7(iv)(सी) में प्रावधान है कि वांछित अनुतोष के साथ घोषणात्मक डिक्री के मुकदमों में, न्यायालय शुल्क की गणना उस राशि के अनुसार की जाएगी जिसका मूल्यांकन वाद-पत्र में है। इसका प्रावधान यह स्पष्ट करता है कि जहां वांछित अनुतोष के साथ घोषणात्मक डिक्री का वाद किसी संपत्ति के संदर्भ में है, ऐसा मूल्यांकन धारा 7 के खंड (v) द्वारा प्रावधानित प्रक्रिया से गणना की गई संपत्ति के मूल्य से कम नहीं होगा।"

तदनुसार प्रश्न-सी उत्तरित किया जाता है।

उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, प्रश्न संख्या ए और बी का उत्तर पुनरीक्षणकर्ता के पक्ष में दिया गया है। परिणामस्वरूप, पुनरीक्षण सफल होता है और स्वीकृत किया जाता है। पक्षकार अपना व्यय स्वयं वहन करें।

(2023) 2 ILRA 27

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव

सिविल पुनरीक्षण संख्या 115 /2022

असलम कदीर

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

नैय्यर जहाँ रज़ा और अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री कुमार अनीश

अधिवक्ता विपक्षीगण:

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 151 आदेश 22 - नियम 4 -

अनुसंधान

प्रतिवादी संख्या 1 के विधिक उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने के लिए योजित प्रतिस्थापन आवेदन - आवेदन को प्रतिवादी उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने के लिए विधि में निर्धारित समय सीमा के अंतर्गत किया जाना है और वाद तभी समाप्त होगा जब उक्त आवेदन निर्धारित समय के अंतर्गत योजित नहीं किया गया हो। (पैरा 1 से 27)

पुनरीक्षण निरस्त किया जाता है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 151 - आदेश 22 - नियम 4 - प्रत्यर्थी नंबर 1 के विधिक उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने के लिए दायर प्रतिस्थापन आवेदन - प्रत्यर्थी के उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने के लिए कानून में निर्धारित समय के भीतर आवेदन करना होगा और मुकदमा तभी समाप्त होगा जब उक्त आवेदन निर्धारित समय के भीतर दाखिल नहीं किया गया हो। (पैराग्राफ 1 से 27)

पुनरीक्षण खारिज किया जाता है. (ई-6)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री कुमार अनीश को सुना।

2. वर्तमान पुनरीक्षण प्रत्यर्थी संख्या 6, असलम कादिर द्वारा मूल वाद संख्या 1003/2015 में फातिमा इमरान द्वारा दायर किया गया है, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 (मूल वाद में प्रतिवादी संख्या-1 से 3) के खिलाफ संविदा के विशिष्ट अनुपालन की डिक्री की मांग की गई है। आगे की प्रार्थना के साथ कि प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 के साथ प्रत्यर्थी संख्या 4 से 7 (मूल वाद में प्रतिवादी संख्या - 5 से 8) को बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए निर्देशित किया जाए।

3. मुक़दमे के लंबित रहने के दौरान, नैय्यर जहाँ रज़ा (प्रतिवादी संख्या - 1) की 30.01.2021 को मृत्यु हो गई। नैय्यर जहाँ रज़ा की मृत्यु के बाद, वादी/प्रत्यर्थी संख्या 8 ने स्वर्गीय नैय्यर जहाँ रज़ा के विधिक उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने के लिए सी.पी.सी. की धारा 151 के साथ पठित आदेश 22 नियम 4 के तहत प्रतिस्थापन आवेदन 144ए1/1 दायर किया।।

4. प्रतिस्थापन आवेदन 144ए1/1 के लंबित रहने के दौरान, स्वर्गीय नैय्यर जहां रजा के उत्तराधिकारियों में से एक इरफान खान की भी 30.05.2021 को मृत्यु हो गई। इफरान खान की मृत्यु के बाद, वादी/प्रत्यर्थी संख्या 8 ने एक पुनरीक्षण आवेदन 146जीए दायर किया, जिसमें प्रतिस्थापन आवेदन 144ए1/1 में पुनरीक्षण की मांग की गई, जिसे विचारण न्यायालय ने दिनांक 20.04.2022 के आदेश के तहत अनुमति दी थी।

5. दिनांक 20.04.2022 के आदेश को पुनरीक्षणकर्ता द्वारा के सिविल पुनरीक्षण संख्या-65/2022 के माध्यम से चुनौती दी गई थी, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 27.06.2022 के फैसले के तहत वादी/प्रत्यर्थी संख्या 8 को एक अलग प्रतिस्थापन आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता के साथ इरफ़ान खान के उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने की अनुमति दी थी।

6. इसके बाद, वादी/प्रत्यर्थी संख्या-8 ने फिर से पुनरीक्षण आवेदन 175ए दायर किया, जिस पर संशोधनकर्ता ने यह कहते हुए आपत्ति दर्ज की कि

उक्त आवेदन विचारणीय नहीं है क्योंकि इस न्यायालय के दिनांक 27.06.2022 के आदेश के कारण वादी/प्रत्यर्थी संख्या 8 को अलग से प्रतिस्थापन आवेदन दाखिल करना था।

7. पुनरीक्षणकर्ता की आपत्ति पर, आवेदन 175ए को विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 02.09.2022 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था, जिसमें वादी/प्रत्यर्थी संख्या-8 को सी.पी.सी. के आदेश 22 नियम 4 के तहत एक नया प्रतिस्थापन आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता दी गई थी।

8. वादी/प्रत्यर्थी संख्या-8 ने विचारण न्यायालय के दिनांक 02.09.2022 के आदेश के बाद सी.पी.सी. के आदेश 22 नियम 4 के तहत स्वर्गीय इरफ़ान खान के उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने के लिए नया प्रतिस्थापन आवेदन 179ए दायर किया।

9. आवेदन 179ए पर पुनरीक्षणकर्ता द्वारा आपत्ति दाखिल कर आपत्ति जताई गई कि आवेदन 179ए सी.पी.सी. के आदेश 22 नियम 4 के तहत लागू है। यह पोषणीय नहीं था और खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि प्रतिस्थापन आवेदन 179ए दाखिल करने में देरी को माफ करने वाला कोई आवेदन दायर नहीं किया गया है। यह भी कहा गया है कि अन्यथा भी इस न्यायालय ने दिनांक 27.06.2022 के आदेश के तहत वादी/प्रत्यर्थी संख्या-8 को छह सप्ताह के भीतर दिवंगत इरफान खान के उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने के लिए एक अलग प्रतिस्थापन आवेदन दायर करने का निर्देश दिया था, और चूंकि छह सप्ताह की अवधि समाप्त हो चुकी है और विलंब माफी आवेदन दायर नहीं किया गया है, इसलिए, उक्त आवेदन पोषणीय नहीं था और इस प्रकार, स्वर्गीय इरफान खान के खिलाफ मुकदमा समाप्त कर दिया गया है।

10. विचारण न्यायालय ने दिनांक 3.10.2022 के आदेश के तहत दोनों आवेदनों यानी आवेदन 179ए और आवेदन 144ए को अनुमति दी। जहां तक स्वर्गीय नैय्यर जहां रज़ा के उत्तराधिकारियों के प्रतिस्थापन के संबंध में आवेदन 144ए1/1 का सवाल है, पुनरीक्षणकर्ता को कोई शिकायत नहीं है। वर्तमान पुनरीक्षण में, पुनरीक्षणकर्ता ने दिनांक 03.10.2022 के आदेश की इस हद तक चुनौती दी है कि यह वादी/प्रत्यर्थी संख्या- 8 के आवेदन 179ए को स्वर्गीय इरफान खान के उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने की अनुमति देता है।

11. आवेदन 179ए की अनुमति देने वाले विचारण न्यायालय के आदेश के संबंध में ही पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दलील दी गयी है। पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि विचारण न्यायालय ने उक्त आवेदन को अनुमति देने में क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि की है, क्योंकि आवेदन 179ए सुनवाई योग्य नहीं था क्योंकि स्वर्गीय इरफान खान के उत्तराधिकारियों को पक्षकार बनाने के लिए प्रतिस्थापन आवेदन दायर करने की सीमा समाप्त हो गई है और प्रतिस्थापन आवेदन के साथ देरी को माफ करने के लिए कोई आवेदन दायर नहीं किया गया है। पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया है कि चूंकि दिवंगत इरफान खान के उत्तराधिकारियों को पक्षकार बनाने के लिए आवेदन समय के भीतर दायर नहीं किया गया है, इसलिए, प्रतिस्थापन आवेदन दाखिल करने के लिए सीमा

अनुवादित

की अवधि समाप्त होने पर, इरफान खान के खिलाफ मुकदमा दायर किया जाता है। निरस्त कर दिया गया है और इस प्रकार, विचारण न्यायालय का आदेश जहां तक वह आवेदन 179ए की अनुमति देता है, अपास्त किए जाने योग्य है।

12. मैंने पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

13. रिकॉर्ड से प्रकट होने वाले तथ्य यह हैं कि का मूल वाद संख्या - 1003/2015 वादी/प्रत्यर्थी संख्या -8 द्वारा पुनरीक्षणकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या 1 से 7 (प्रत्यर्थी संख्या - 1 से 5 और 7 से 8) के खिलाफ संविदा के विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री के लिए स्थापित किया गया है। उपरोक्त मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, नैय्यर जहाँ रज़ा (प्रत्यर्थी संख्या 1) की 30.01.2021 को मृत्यु हो गई थी, और वादी/प्रत्यर्थी संख्या-8 ने एक आवेदन 144A1/1 स्वर्गीय नैय्यर जहाँ रज़ा के उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने के लिये दायर किया था

14. इससे पहले कि उक्त आवेदन को अनुमति दी जाती, स्वर्गीय नैय्यर जहां रजा के उत्तराधिकारियों में से एक इरफान खान की 30.05.2021 को मृत्यु हो गई। इरफ़ान खान की मृत्यु के बाद, वादी/प्रत्यर्थी संख्या-8 ने प्रतिस्थापन आवेदन 144A1/1 में पुनरीक्षण आवेदन 146A दायर किया, जिसे विचारण न्यायालय ने आदेश दिनांक 20.04.2022 द्वारा अनुमति दी थी। उक्त आदेश को इस न्यायालय ने के सिविल पुनरीक्षण संख्या- 65/2022 में पारित निर्णय दिनांक 27.06.2022 के माध्यम से रद्द कर दिया था, जिसमें वादी/प्रत्यर्थी संख्या-8 को स्वर्गीय इरफान खान के उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थपित करने के लिए एक नया प्रतिस्थापन आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता दी गई थी।

15. इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.06.2022 के बाद, वादी/प्रत्यर्थी संख्या-8 ने वादपत्र में पुनरीक्षण के लिए एक आवेदन 175ए प्रस्तुत किया, जिसे पुनरीक्षणकर्ता ने फिर से चुनौती दी। विचारण न्यायालय ने दिनांक 02.09.2022 के आदेश के तहत वादी/प्रत्यर्थी के वाद में पुनरीक्षण के आवेदन को खारिज कर दिया। इसके बाद, वादी/प्रत्यर्थी नंबर 8 ने प्रतिस्थापन आवेदन 179ए दायर किया, जिसे विचारण न्यायालय ने दिनांक 03.10.2022 के आदेश के तहत अनुमति दी थी।

16. ऐसी तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, वर्तमान पुनरीक्षण में विचार के लिए यह प्रश्न उठता है कि क्या वादी/प्रत्यर्थी संख्या 8 को प्रतिस्थापन आवेदन 179ए को दाखिल करने में देरी को माफ करने के लिए प्रतिस्थापन आवेदन के साथ विलंब माफी आवेदन दायर करना चाहिए था। वादी/प्रत्यर्थी संख्या 8 द्वारा उपशमन को रद्द करने के लिए एक आवेदन भी किया जाना चाहिए था क्योंकि इरफान खान के संबंध में मुकदमा इरफान खान की मृत्यु की तारीख से 90 दिनों की अवधि के भीतर प्रतिस्थापन आवेदन दाखिल नहीं करने के कारण समाप्त कर दिया गया था।

17. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए विवाद का निस्तारण करने के लिए आगे बढ़ने से पहले, वर्तमान विवाद में प्रासंगिक सी.पी.सी. के आदेश 22 नियम 4 (1) और (3) को पुन: प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा: -

"4. कई प्रतिवादियों में से एक या एकमात्र प्रत्यर्थी की मृत्यु के मामले में प्रक्रिया- (1) जहां

अनुवादित

दो या दो से अधिक प्रतिवादियों में से एक की मृत्यु हो जाती है और जीवित प्रत्यर्थी या अकेले प्रतिवादी, या एकमात्र प्रत्यर्थी या के खिलाफ मुकदमा करने का अधिकार जीवित नहीं रहता है। एकमात्र जीवित प्रत्यर्थी की मृत्यु हो जाती है और मुकदमा करने का अधिकार जीवित रहता है, तो न्यायालय, उस संबंध में किए गए आवेदन पर, मृत प्रत्यर्थी के विधिक उत्तराधिकारी को एक पक्ष बनाएगा और मुकदमे के साथ आगे बढ़ेगा।

(2)...

(3) जहां कानून द्वारा सीमित समय के भीतर उप नियम (1) के तहत कोई आवेदन नहीं किया जाता है, मृतक प्रत्यर्थी के खिलाफ मुकदमा समाप्त हो जाएगा।

18. सी.पी.सी. के आदेश 22 नियम 4(1) का पठन सुझाव देता है कि जब प्रत्यर्थी की मृत्यु हो जाती है और मुकदमा करने का अधिकार बच जाता है, तो अदालत उस ओर से किए गए आवेदन पर प्रत्यर्थी के विधिक उत्तराधिकारी को एक पक्ष बनाएगी और मुकदमे के साथ आगे बढ़ेगी। आदेश 22 नियम 4(3) सी.पी.सी. प्रावधान है कि जहां कानून द्वारा सीमित समय के भीतर उप-नियम (1) के तहत कोई आवेदन नहीं किया जाता है, तो मृत प्रत्यर्थी के खिलाफ मुकदमा समाप्त हो जाएगा।

19. अब, उक्त मुद्दे पर विचार करते समय, पहला प्रश्न जो उठता है वह यह है कि किसी व्यक्ति को मुकदमे में प्रत्यर्थी कब कहा जाता है और प्रतिस्थापन आवेदन दाखिल करने की सीमा कब शुरू होगी।

20. एडवांस्ड लॉ लेक्सिकन के 6वें संस्करण खंड 2 में 'प्रतिवादी' शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: -

"(i). पार्टी ने एक कार्रवाई में मुकदमा दायर किया। जिस पर मुकदमा चलाया गया (या मुकदमा चलाया गया)। "प्रतिवादी" शीर्षक आमतौर पर आपराधिक मुकदमे या कार्यवाही की तुलना में सिविल वाद में एक पक्षकार पर अधिक लागू होता है।

(ii). वह पक्ष जिसके विरुद्ध कोई आरोप या शिकायत लाई गई है।"

21. ब्लैक लॉ डिक्शनरी के नौवें संस्करण में 'प्रतिवादी' शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: -

"एक व्यक्ति ने सिविल कार्यवाही में मुकदमा दायर किया या आपराधिक कार्यवाही में आरोपी बनाया।"

22. इस प्रकार, 'प्रतिवादी' शब्द के उपरोक्त शब्दकोश अर्थ से, यह पता लगाया जा सकता है कि प्रत्यर्थी वह व्यक्ति है जिसे किसी मुकदमे में फंसाया गया है और जिसके खिलाफ वादी के पास कार्रवाई का कारण है और उक्त कारण के आधार पर कार्रवाई के मामले में, वादी राहत का हकदार है जैसा कि उक्त व्यक्ति के खिलाफ मुकदमे में दावा किया गया है। दूसरे शब्दों में, 'प्रतिवादी' का अर्थ वह व्यक्ति है जिसके विरुद्ध कोई दावा या आरोप लाया गया है जिसका वह खंडन करना चाहता है। इस प्रकार, कोई व्यक्ति किसी भी मुकदमे या कार्यवाही में केवल तभी 'प्रतिवादी' बनेगा जब उसे पक्षकार बनाया गया हो और उसे मुकदमे की पैरवी या उसके खिलाफ कार्यवाही का खंडन करने के लिए कहा गया हो।

23. अब, यह पता लगाने के लिए कि स्वर्गीय इरफान खान मुकदमे में प्रत्यर्थी कब बने और उनकी मृत्यु के बाद, सी.पी.सी. के आदेश 22 नियम 4 का प्रावधान कब हुआ। दिवंगत इरफान खान के उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापन आवेदन

अनुवादित

दायर करने में सक्षम बनाने के लिए मामले के तथ्यों की जांच करने की आवश्यकता है।

24. वर्तमान मामले में, यह विवाद का विषय नहीं है कि वादी/प्रतिवादी संख्या 8 द्वारा दायर आवेदन 144ए1/1 पर इरफान खान की मृत्यु की तिथि को निर्णय नहीं लिया गया था, जिनकी मृत्यु प्रतिस्थापन आवेदन के लंबित रहने के दौरान हो गई थी। इस बीच, वादी/प्रत्यर्थी संख्या 8 ने दो गलत आवेदन दाखिल किये जिन्हें अदालत ने खारिज कर दिया। इसके बाद, वादी/प्रत्यर्थी नंबर 8 ने प्रतिस्थापन आवेदन 179ए दायर किया।

25. प्रतिस्थापन आवेदन 144ए1/1 की अनुमति नहीं थी, जब आवेदन 179ए दायर किया गया था, इसलिए, इरफान खान के खिलाफ मुकदमा समाप्त नहीं हो सकता था क्योंकि वह प्रतिस्थापन आवेदन 144ए1/1 पर किसी भी आदेश के अभाव में मुकदमे में प्रत्यर्थी नहीं बने थे। प्रतिस्थापन आवेदन 144ए1/1 को विचारण न्यायालय द्वारा अनुमति दिए जाने के बाद ही दिवंगत इरफान खान प्रत्यर्थी बनेंगे और उनके प्रतिस्थापन आवेदन की अनुमति मिलने और उन्हें प्रतिस्थापित किए जाने के बाद वादी/प्रत्यर्थी संख्या 8 के दावे को अस्वीकार या अस्वीकार करने के पात्र बन जाएंगे। इस प्रकार, वह सी.पी.सी. के आदेश 22 नियम 4 के प्रयोजन के लिए प्रत्यर्थी बन जाएगा। जिस तारीख को उसके प्रतिस्थापन आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा अनुमति दी जाती है। सी.पी.सी. के आदेश 22 नियम 4 (1) (3) के तहत इस्तेमाल की गई भाषा को देखते हुए, प्रत्यर्थी के उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने के लिए आवेदन कानून में निर्धारित समय के भीतर किया जाना चाहिए और मुकदमा तभी समाप्त होगा जब उक्त आवेदन नहीं किया गया हो। निर्धारित समय के भीतर दाखिल किया जाए।

26. वर्तमान मामले में, इरफ़ान खान को प्रतिस्थापित करने का आवेदन लंबित था और इसकी अनुमति नहीं थी और जब तक इसकी अनुमति नहीं दी गई, स्वर्गीय इरफ़ान खान के उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने का कोई सवाल ही नहीं था। इस प्रकार, दिवंगत इरफान खान के उत्तराधिकारियों को स्थानापन्न करने की सीमा 03.10.2022 से शुरू होगी जब दिवंगत नैय्यर जहां रजा के उत्तराधिकारियों के प्रतिस्थापन के संबंध में आवेदन 144A1/1 को विचारण न्यायालय द्वारा अनुमति दी जाएगी। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि जिस दिन स्वर्गीय नैयर जहाँ रजा के उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने के लिए प्रतिस्थापन आवेदन 144 ए को अनुमति दी गई थी, स्वर्गीय इरफान खान के उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने के लिए आवेदन 179ए दायर किया गया था और अदालत के समक्ष लंबित था। इस प्रकार, इस न्यायालय का मानना है कि इरफान खान के उत्तराधिकारियों को स्थानापन्न करने के लिए प्रतिस्थापन आवेदन 179ए दाखिल करने में कोई देरी नहीं हुई थी, न ही इरफान खान के खिलाफ मुकदमा समाप्त किया जा सकता था क्योंकि प्रतिस्थापन आवेदन 144ए1/1 का फैसला नीचे की अदालत द्वारा नहीं किया गया था।

27. इस प्रकार, ऊपर दिए गए कारणों से, सिविल पुनरीक्षण में मेरिट का अभाव है और तदनुसार, वादव्यय के बारे में कोई आदेश दिए बिना *खारिज* कर दिया जाता है।

(2023) 2 ILRA 31

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 28.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद,

अनुवादित

आपराधिक अपील संख्या 1371/2015

लोकेश एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री अरफ खान, सनाक्षी अरोड़ा, श्री लिहाजुरा आर खान, श्री राजेश पथिक, श्री गौरव कक्कड़, श्री संजय कुमार दुबे **अधिवक्ता प्रतिवादी:** शासकीय अधिवक्ता, श्री सतीश सोलंकी

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 धारा 302 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 धारा 32 - मृत्युपूर्व कथन - अभियोजन पक्ष के लिए यह स्थापित करना आवश्यक है कि मृत्युकालीन कथन तब दर्ज की गई थी जब पीड़ित मानसिक रूप से स्वस्थ स्थिति में था - केवल यह प्रमाणित करना कि बयान दर्ज के समय पीड़िता होश में थी, पर्याप्त नहीं है - पीड़ित की स्वस्थ मानसिक स्थिति के संबंध में एक विशिष्ट संतुष्टि की स्पष्टता दी गई थी - चिकित्सा विज्ञान में दो चरण अर्थात् सचेत और स्वस्थ मस्तिस्क की स्थिति अलग-अलग हैं और पर्यायवाची नहीं हैं - एक सचेत हो सकता है लेकिन जरूरी नहीं कि वह मस्तिस्क की स्वस्थ अवस्था में हो - यह कहने से कि रोगी चिकित्सकीय रूप से स्वस्थ है, रोगी की मानसिक स्थिति ठीक होने के संबंध में संतुष्टि नहीं है, मृत्युपूर्व कथन में कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा इस आशय का प्रमाण पत्र होना चाहिए कि यह मृतक द्वारा दिया गया एक स्वैच्छिक बयान था और उसने उसको कथन को पढ़कर सुनाया। (पैरा 46, 48, 50)

बी. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 धारा 302 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 धारा 32 - मृत्यु पूर्व कथन - घटना की तिथि पर ही डॉक्टर द्वारा यह प्रमाणित करने के पश्चात कि पीड़िता की आयु 18 वर्ष और मृत्यु पूर्व कथन के लिए चिकित्सकीय रूप से स्वस्थ थी, पीड़िता का मृत्यु पूर्व कथन दर्ज किया गया था - उपस्थित चिकित्सक द्वारा कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई कि पीड़िता स्वैच्छिक बयान देने के लिए मानसिक रूप से स्वस्थ थी - डिप्टी कलेक्टर, जो पीड़िता के मृत्यु पूर्व कथन के अभिकथन के समय उपस्थित थे, उन्होंने स्वीकार किया कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं था कि पीड़िता के बयान में कहा गया है कि बयान पीड़िता को पढ़कर सुनाया गया था और यह मृतक द्वारा दिया गया एक स्वैच्छिक बयान था - उपस्थित चिकित्सक ने कहा कि पीड़िता का 90% से अधिक शरीर जल गया था और उसकी हालत लगातार बिगड़ रही थी, उसकी स्पंद कमजोर थी - जिरह में उन्होंने कहा कि पीड़िता की हालत सामान्य से काफी नीचे थी लेकिन वह होश में थी - आयोजित - वर्तमान वाद के तथ्यों में मृत्युपूर्व कथन विश्वसनीय नहीं है क्योंकि पीड़िता कोई भी बयान देने की स्थिति में नहीं थी - पीड़िता की हालत गंभीर थी और उसकी श्वासनली अवरुद्ध थी जिसके लिए ऑपरेशन प्रस्तावित था और इसलिए, पीड़िता बोलने या अपना मृत्युपूर्व बयान दर्ज करवाने की स्थिति में नहीं थी - पीड़िता के उसके कथन देने के संबंध में उसकी मानसिक स्थिति स्वस्थ होने के संबंध में डॉक्टर द्वारा कोई संतुष्टि दर्ज नहीं किया गया - इसके अतिरिक्त, मृत्युपूर्व कथन की सामग्री अभियोजन पक्ष के गवाहों के कथन से असंगत है। (पैरा 55, 56,)

अनुवादित

सी. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1872 धारा 376 - बलात्कार - यह दावा किया गया था कि चार युवकों ने 18 वर्ष की पीड़िता के साथ बलात्कार किया था, लेकिन उसके निजी अंगों पर कोई चोट नहीं पाई गई और उसका हाइमन पुराना फटा हुआ था - योनि स्वैब पीड़िता को पैथोलॉजिकल जांच के लिए भेजा गया, जिसमें पीड़िता पर कोई शुक्राणु नहीं पाया गया, चिकित्सा साक्ष्य पीड़िता के साथ बलात्कार किए जाने का समर्थन नहीं करता है (पैरा 37)

निरस्त। (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. पपराम्बका रोसम्मा और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1999) 7 एससी 695
2. नरेश कुमार बनाम कलावती एवं अन्य 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 260
3. सुरेंदर कुमार बनाम हरियाणा राज्य (2011) 10 एससीसी 173
4. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984) 4 एससीसी 116

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्र द्वारा प्रदत्त)

1. यह आपराधिक अपील सत्र परीक्षण संख्या 97 वर्ष 2013 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम लोकेश और 2 अन्य) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 3, हाथरस द्वारा पारित 11 फरवरी, 2015 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के खिलाफ निर्देशित है, जो अपराध संख्या 296 वर्ष 2007 से उत्पन्न है, जिसके तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता- लोकेश, दानी और इंद्र को दोषी ठहराया गया है और प्रत्येक को धारा 452 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए एक-एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है। प्रत्येक को के साथ 1,000 रुपये का जुर्माना, इसमें चूक करने पर एक महीने की अतिरिक्त कारावास से गुजरना होगा; धारा 302/34 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए आजीवन कारावास के साथ 5,000 रुपये का जुर्माना, इसमें चूक करने पर, तीन महीने की अतिरिक्त कैद से गुजरना होगा; धारा 376 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए दस साल के सश्रम कारावास और प्रत्येक पर 5,000 रुपये का जुर्माना, इसमें चूक करने पर प्रत्येक अतिरिक्त कारावास में तीन महीने की अतिरिक्त सजा काटनी होगी; इस टिप्पणी के साथ कि सभी सजाएं समवर्ती रूप से चलेंगी।

2. हमने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री अरफ खान और राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री अरुणेंद्रसिंह को सुना और रिकॉर्ड पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्रियों का भी अवलोकन किया है।

3. यह मामला इस बात का एक उत्कृष्ट उदाहरण है कि कैसे एक बेईमान व्यक्ति अपने दुश्मन को झूठा फंसाकर अपनी दुश्मनी का बदला लेने के लिए उस पर हुए दुख का भी उपयोग कर सकता है।

4. इस मामले के तथ्यों में, एक लिखित रिपोर्ट (प्रदर्शक-1) के आधार पर एक प्रथम सूचना रिपोर्ट थाना-एम.एम गेट, आगरा में 29 अप्रैल, 2007 को धारा 376 भ०द०वि० और 307 भ०द०वि०के तहत ...NIL.. वर्ष 2007, 27.04.2007 को लगभग 02:30 बजे हुई घटना के संबंध मेंअपराध संख्या नंबर 10 के रूप में दर्ज की गई, जिसके बाद प्राथमिकी को थाना-सादाबाद में स्थानांतरित कर दिया गया है, जहां इसे धारा 376, 307 और

अनुवादित

452 भ०द०वि० के तहत अपराध संख्या नंबर 296 वर्ष 2007 के रूप में लिखा गया। सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 पीड़िता का पिता है जो अपनी पत्नी के साथ अपने रिश्तेदार के पास गया था घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद नहीं था। मृतका मथुरा के बी.एस.ए कॉलेज में प्रथम वर्ष की छात्रा थी। जब वह अपने घर में अकेली थी और उसके दादा-दादी जंगल की ओर गए थे। लगभग 2:30 बजे आरोपी लोकेश, दानी, इंदु/इंद्र, सूरजमल के सभी बेटे और लोकेश के दोस्त हुकुम ने सूचनाकर्ता के घर में प्रवेश किया; पीड़िता को जो घरेलू कामों में भाग ले रही थी पकड़ लिया और नशे में थी(?) पीड़िता ने इसका विरोध किया था लेकिन चारों आरोपियों ने उसका मुंह बंद कर दिया और जबरन दुष्कर्म किया। अपराध के सबूतों को मिटाने के इरादे से, आरोपी ने मृतिका पर मिट्टी का तेल डाला; और उसे आग लगाकर भाग गया। पीड़िता घर की पहली मंजिल पर थी, चिल्लाता हुआ बाहर निकला और किसी तरह सीढ़ियों से नीचे आने में कामयाब रहा, जिसके बाद पड़ोसियों ने आग बुझाने की कोशिश की। सूचनाकर्ता को घटना के बारे में सूचित किया गया और बताया गया कि वे (पड़ोसी) पीड़िता को आगरा ला रहे हैं। सूचनाकर्ता को एस.एन मेडिकल कॉलेज, आगरा में मिलने के लिए कहा गया था। गांव के लोग पीड़िता को घायल अवस्था में लेकर आए, उसकी हालत गंभीर थी। पीड़िता को इमरजेंसी वार्ड में भर्ती कराया गया। वह जीवन और मृत्यु से जूझ रही थी। पूछने पर पीड़िता ने घटना की सूचना अ०सा०-1/सूचनाकर्ता को दी। उपचार और अन्य अत्यावश्यकताओं के कारण सूचना देने वाले/अ०सा०-1 के लिए समय पर रिपोर्ट दर्ज कराना संभव नहीं था और चूंकि घटना की सूचना पुलिस को दी जानी है, इसलिए सूचना देने वाले ने थाना में रिपोर्ट दर्ज कराई। प्राथमिकी शुरू में थाना-एम.एम गेट, आगरा में दर्ज की गई थी और बाद में इसे थाना-सादाबाद, जिला हाथरस में स्थानांतरित कर दिया गया था, जहां इसे धारा 376 भ०द०वि० और 307 के तहत अपराध संख्या नंबर 621-35 -शून्य वर्ष 2007के रूप में दर्ज किया गया।

5. घटना की तारीख यानी 27.04.2007 को पीड़िता का मृत्युपूर्व बयान डॉक्टर द्वारा प्रमाणित करने के बाद दर्ज किया गया था कि पीड़िता, जिसकी आयु 18 वर्ष है, उसे मृत्यु पूर्व बयान देने के लिए चिकित्सकीय रूप से फिट है। मृत्युपूर्व बयानयहाँ प्रस्तुत किया जाता है:

> "आज दिनांक २७.४.०७ को थाना-एम.एम. गेट की सूचना के आधार पर S.N. Medical College में Burn Patient कु० प्रीति D/o प्रकाश वीर, उम्र-लगभग १८ वर्ष, R/o- ऊँचा गाँव, P/S- सादाबाद, जिला-हाथरस का D.D. (मृत्युपूर्व बयान) दर्ज किया। मरीज ने बताया कि आज दिनांक २७.४.०७ को समय लगभग २.३० pm. हमारे गांव के लोकेश, इन्दर, दानी S/o सूरजमल तथा हुकुम S/o अज्ञात मेरे घर में घुस आए। मैं घर पर अकेली थी तथा बरता साफ कर रही थी। मेरे पिताजी खेत पर गए थे। माँ भी बहार जानवरों के बेड़े में गई थी। इन लड़कों ने मुझे कोई चीज सुँघाई, जिससे मैं बेहोश होने लगी। इसके बाद इन लोगों ने मेरे साथ दुराचार (बलात्कार) किया। जब मुझे होश आने लगा तो देखा

कि ये लोग अब भी मेरे साथ दुराचार कर रहे थे। ये लोग मेरे मुंह में कपड़ा ठूस दिए थे। मुझे होश आता देख ये सभी मुझे कमरे में बन्द कर दिए तथा घर में रखे मिट्टी के तेल को मेरे ऊपर डालकर आग लगा दिए और दरवाजा खोलकर भाग गए। आग लगने पर मैं जोर से चिल्लाई। मेरी आवाज (चीख) सुनकर लोग आए तथा आग बुझाए तथा Hospital में भर्ती कराए। इन लोगों के घर से हमारी पुरानी दुश्मनी है। इसी कारण इन लोगों ने ऐसा किया। इनको सख्त सजा मिलनी चाहिए। अब मुझे कुछ नहीं कहना है।"

6. पीड़िता को पहले एस.एन मेडिकल कॉलेज, आगरा ले जाया गया, जहां डॉक्टर ने उसकी जांच की। पीड़िता 90 फीसदी झुलस गई थी। उस पर मिट्टी के तेल की गंध मौजूद थी। पीड़िता को आंतरिक जांच के लिए आगरा के जिला राजकीय महिला अस्पताल में रेफर किया गया था। डॉ. मीरा माथुर (अ०सा०-6) ने पीड़िता की आंतरिक जांच की और निम्नानुसार राय दी:

आंतरिक परीक्षा- प्राइवेट पार्ट पर कोई चोट नहीं देखी गई। जघन बाल मौजूद हैं। योनि दो उंगलियों को आसानी से स्वीकार करती है। हाइमन पुराना फटा हुआ था। गर्भाशय पूर्ववर्त। सामान्य आकार। प्राइवेट पार्ट पर जलने का कोई निशान नहीं है।

2 वजाइनल स्मीयर लिया गया और पैथोलॉजी विभाग, जिला अस्पताल, आगरा को शुक्राणुजोजा की उपस्थिति की जांच के लिए भेजा गया। आयु के निर्धारण के लिए, मामला मुख्य चिकित्सा अधिकारी, आगरा को भेजा जाता है।

7. अ०सा०-6 की राय के संदर्भ में, योनि स्वैब को पैथोलॉजिकल रिपोर्ट के लिए भेजा गया था, जिसमें स्वैब पर कोई शुक्राणुजोज़ा नहीं देखा गया था।

8. जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य के अनुसार, 28 अप्रैल, 2007 को पीड़िता पर कुछ प्रक्रिया की जानी थी। जैसे ही पीड़िता की हालत बिगड़ गई, उसे सफदरजंग अस्पताल, नई दिल्ली ले जाया गया, जहां अंतत 14 मई, 2007 को उसकी मौत हो गई। शव परिक्षण रिपोर्ट रिकॉर्ड में है, जिसके अनुसार जलने से लगने वाली चोटों का अनुमानित प्रतिशत 90% है। मृत्यु का कारण निम्नलिखित पूर्व-मृत्यु बाहरी जलने की चोटों के कारण सेप्टीसीमिया था:

"सिर, पेट, श्रोणि और दोनों पैरों के पैच को छोड़कर पूरे शरीर पर मौजूद है। जलने की चोटों की स्थिति में, सभी शामिल क्षेत्रों पर लालिमा, चारिंग, दानेदार ऊतक की रेखा मौजूद होती है।

9. शव परिक्षण रिपोर्ट में, पीड़िता की आंतरिक परीक्षा की स्थिति निम्नलिखित है:

सिर (खोपड़ी और खोपड़ी) में कोई असामान्यता नहीं पाई गई। मस्तिष्क; संकुलित। गर्दन में, नासो-लैरींगो-ग्रसनी-म्यूकोस्ड भीड़। छाती में, फेफड़े भीड़भाड़, श्वासनली और ब्रोंकाई, म्यूकोसल भीड़। छाती में आगे, दिल में कोई असामान्यता नहीं पाई गई। पेट खाली था, म्यूकोसल दीवार में कोई असामान्यता नहीं पाई गई थी। आंतों, यकृत, प्लीहा, गुर्दे और अग्न्याशय में कोई असामान्यता नहीं पाई गई। श्रोणि में, मूत्राशय खाली था, गर्भाशय में कोई असामान्यता नहीं पाई गई थी, उपचार चरण में हाइमन फटा। शरीर के अंदर

अनुवादित

बाकी संरचनाओं में कोई असामान्यता नहीं पाई गई।

शव परिक्षण सर्जन ने आगे कहा है कि आत्महत्या के प्रयास सहित अन्य कारणों से पीड़िता की मौत हो सकती है।

10. पीड़िता की मृत्यु के बाद, प्राथमिकी को धारा 307 भ०द०वि० के स्थान पर धारा 302 भ०द०वि० के तहत एक में परिवर्तित कर दिया गया था। इस मामले में जांच आगे बढ़ी जिसमें विभिन्न गवाहों के बयान दर्ज किए गए। धारा 161 द०प्र०स० के तहत जिन व्यक्तियों का बयान दर्ज किया गया था, उनमें से एक बाबू लाल हैं जो पीड़िता के दादा हैं। 31 जुलाई, 2007 को चार अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किए जाने के साथ जांच समाप्त हुई। अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए जाने वाले गवाहों की सूची में एक अनुपस्थित व्यक्ति यानी पीड़िता के दादा बा, अर्थात् बाबू लाल शामिल हैं। अध्याय XII द०प्र०स० के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत करने पर, संबंधित मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया जहां 13 जून, 2008 को धारा 376, 302/34 और 452 भ०द०वि० के तहत अभियुक्त के खिलाफ आरोप तय किए गए थे। इस तरह से लगाए गए आरोपों को आरोपियों-अपीलकर्ताओं को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा!

11. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए पहले सूचनाकर्ता प्रकाश वीर को अ०सा०-1 के रूप में पेश किया है। इस गवाह ने अपने मुख्य परीक्षण में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। उसने साफ कहा है कि जब उसके माता-पिता (पीड़िता के दादा-दादी) घेर और जंगल की ओर गए थे, तो दोपहर करीब 2:30 बजे चार आरोपी घर में घुस आए; पीड़िता को पकड़ लिया; उसके साथ बलात्कार किया; और उसके बाद मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी ताकि सबूत नष्ट किए जा सकें। उन्होंने मामले में दर्ज प्राथमिकी की सामग्री को साबित कर दिया है। उन्होंने कहा है कि पीड़िता को दिनांक 02-05-2007 तक एस.एन मेडिकल कॉलेज, आगरा में भर्ती कराया गया था, जिसके बाद उसे दिल्ली के सफदरगंज अस्पताल ले जाया गया जहां उसकी मृत्यु हो गई।

12. जिरह में अ०सा०-1 ने बताया है कि वह और अ०सा०-3 सगे भाई हैं। वे एक दो मंज़िला मकान में रहते हैं जहां उनके शेयर पहले से ही अलग हैं। पहली मंजिल का उत्तरी भाग अ०सा०-1 के हिस्से में आता है, जबकि दक्षिणी भाग अ०सा०-3 के हिस्से में आता है। यह गवाह विधि स्नातक है, यद्यपि उसने अपना पंजीकरण नहीं कराया है। जिरह में इस गवाह ने स्वीकार किया है कि उसके भाई (अ०सा०-3) के पांच बच्चे हैं, जो एक ही घर में रह रहे थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि या तो पीड़िता ने खुद को आग लगा ली या खाना बनाते समय गलती से आग लग गई। उन्होंने आगे कहा है कि पीड़िता को अस्पताल ले जाते समय, पीड़िता ने अपनी मां को बताया कि अगर वह मौजूद होती, तो घटना को टाला जा होती जा सकता था। उन्होंने कहा कि जब पीड़िता को अशोका अस्पताल ले जाया जा रहा था, तब उसे होश नहीं था। वह काफी हद तक बेहोश थी और बीच में अपनी आँखें खोल सकती थी। पीड़िता की गंभीरता बढ़ गई और जब वह आगरा के एस.एन अस्पताल पहुंची तो वह बेहोश थी। इसके बाद कहा जाता है कि लगभग 06:00 बजे पीड़िता को प्राथमिक उपचार दिए जाने के बाद वह होश में आ गई। उन्होंने यह भी

अनुवादित

कहा कि वह आपातकालीन कक्ष में अपनी बेटी के साथ थे और उसने उन्हें पूरी घटना सुनाई। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि घटना के समय उनके माता-पिता घर पर थे। उन्होंने अपने और आरोपी व्यक्तियों के बीच पिछली दुश्मनी से भी इनकार किया है। फिर भी उन्होंने स्वीकार किया है कि 1989 में एक घटना हुई थी जिसके संबंध में अभियुक्त के पिता और सूचना देने वाले के परिवार के बीच क्रॉस केस दर्ज किए गए थे, जिसमें अंततः उनके बीच एक समझौता हुआ था। उन्होंने किसी भी आपराधिक मामले के अस्तित्व से इनकार किया है।

13. अ०सा०-1 से लंबी जिरह की गई है और उसने अपने घर की नक्शा नज़री का खुलासा किया है। घर के भूतल में 5-6 कमरे मौजूद हैं जबकि घर की पहली मंजिल पर 5-6 कमरे हैं। ऊपरी मंजिल पर एक खुला आंगन है और छत पश्चिम की तरफ खुली है। अ०सा०-1 के घर के चारों ओर करीब 10 फीट ऊंचाई की बाउंड्री है। ऊपरी मंजिल पर 8 x 7 फीट की एक रसोई है। घटना के समय सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के माता-पिता घर में मौजूद थे। जबकि अ०सा०-1 की मां अ०सा०-3 के साथ रहती थी, उसके पिता उसकी तरफ रह रहे थे। उसने स्वीकार किया है कि वह अपनी पत्नी के साथ घर गया था और उसे इस बात की जानकारी नहीं है कि उसकी बेटी ने क्या पकाया था। उन्होंने पीड़िता के सीढ़ियों से नीचे उतरने के बाद आग बुझाने वाले व्यक्ति के बारे में किसी भी जानकारी से इनकार किया है।

14. अ०सा०-1 ने यह भी स्वीकार किया है कि पीड़िता को आपातकालीन वार्ड में भर्ती किए जाने के बाद उसकी हालत में कोई सुधार नहीं हुआ था जो बाद में बिगड़ गया। अ०सा०-1 ने अपनी जिरह में कहा है कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत उनके पिता का बयान उनके बारे में उनकी पत्नी (अ०सा०-1 और अ०सा०-2) के साथ आगरा में रिश्तेदार के घर पर था और दादा पिता बाबू लाल और पीड़िता अकेले घर में थे, सही है। उन्होंने स्वीकार किया है कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत उनके पिता का बयान उनकी अनुपस्थिति में दर्ज किया गया था। इस गवाह ने अंत में कहा है कि अदालत के समक्ष उसका बयान दूसरों से प्राप्त सुनवाई की जानकारी पर आधारित है।

15. अ०सा०-2, अर्थात्, कमलेश चौधरी (प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 की पत्नी) पीड़िता की मां है और उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। उसने परीक्षण के चरण में अ०सा०-1 द्वारा लिए गए रुख को काफी हद तक अपनाया है। जिरह में उसने स्वीकार किया है कि उक्त घटना में उसके ससुर बाबू लाल के हाथ भी जल गए थे। हालांकि, बाबू लाल पीड़िता के साथ अस्पताल नहीं गया था। उसने स्वीकार किया है कि घटना के समय उसके ससुर बाबू लाल उसके साथ रह रहे थे। उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसके ससुर और खुद के बीच कोई मनमुटाव, जलन या दुश्मनी नहीं थी। अ०सा०-2 ने स्वीकार किया है कि उसके ससुर उनसे प्यार करते थे। एक विशिष्ट बयान दिया गया था कि पीड़िता और उसके दादा के बीच प्यार की कोई कमी नहीं थी। यह भी स्वीकार किया गया है कि घटना की तारीख पर पीड़िता द्वारा उसके ससुर के लिए भोजन तैयार किया गया था।

16. अ०सा०-3 राज बहादुर, जो पीड़िता के चाचा हैं, ने अपनी जिरह में कहा है कि उन्होंने आग लगने की घटना के तुरंत बाद आरोपी को गली में भागते हुए देखा था। उसका दावा है कि पीड़िताको देखने के बाद उसने शोर मचाया और ग्रामीणों की मदद से उसने आग बुझाई। उन्होंने

यह भी कहा है कि पीड़िता को इलाज के लिए योगेश की गाड़ी से आगरा ले जाया गया। उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का पूरा समर्थन किया है। इस गवाह से जिरह की गई है। उसने कहा है कि उसकी पत्नी और बच्चे उसके साथ एक ही घर में रहते हैं और उसकी सबसे बड़ी बेटी की उम्र 20 साल है। इस गवाह ने बताया है कि आग बुझाने में करीब आधा घंटा लग गया।

17. अ०सा०-4 को थाना-एम.एम गेट जिला आगरा में हेड मोहरिर के रूप में तैनात किया गया था, जब प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उन्होंने चिक प्राथमिकी उन्होंने स्वीकार किया है कि जी.डी में 27 अप्रैल, 2007 की प्रविष्टि संख्या 28 के तहत, थाना में एक जले हुए मरीज के संबंध में एक प्रविष्टि की गई थी, जिसे 90% जलने के साथ भर्ती किया गया था।

18. अ०सा०-5 डॉक्टर रामकुमार गुप्ता हैं जिन्होंने पैथोलॉजिकल रिपोर्ट को साबित किया है जिसके अनुसार पीड़िता के पास कोई मृत या जीवित शुक्राणु नहीं पाया गया है। अ०सा०-6 डॉक्टर मीना माथुर हैं, जिन्होंने एस.एन मेडिकल कॉलेज, आगरा द्वारा जिला सरकारी महिला अस्पताल में रेफर किए जाने के तुरंत बाद पीड़िता की आंतरिक जांच की थी। इस गवाह ने साफ कहा है कि मृतका के प्राइवेट पार्ट पर कोई चोट नहीं थी और उसका हाइमन पुराना फटा हुआ था। अ०सा०-7 शिवराज सिंह थाना-एम.एम गेट, आगरा में उप-निरीक्षक के रूप में तैनात थे और उन्होंने केस डायरी में प्राथमिकी की सामग्री को शामिल किया है और मामले को संबंधित थाना यानी थाना-सादाबाद, जिला हाथरस को संदर्भित किया है।

19. अ०सा०-8 उदय वीर सिंह बालियान विवेचनाधिकारी हैं, जो थाना-सादाबाद में तैनात थे। उन्होंने स्वीकार किया है कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान में यह दर्ज किया गया है कि पीड़िता प्रीति काफी हद तक जल गई है और बोलने की स्थिति में नहीं है और श्वासनली में बाधा के कारण 28 अप्रैल, 2007 को एक ऑपरेशन किया जाना प्रस्तावित है। अ०सा०-1 ने हालांकि उन्हें लिखित रिपोर्ट की कॉपी देने से इनकार कर दिया। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि पीड़िता अपना बयान देने की स्थिति में नहीं थी और संबंधित डॉक्टर ने इस संबंध में कोई पूछताछ नहीं की।

20. अ०सा०-9 महेश चंद्र, तत्कालीन सहायक उप-निरीक्षक, सरोजिनी नगर थाना, नई दिल्ली में तैनात थे, जिसकी क्षेत्रीय सीमा के भीतर सफदरजंग अस्पताल स्थित है, ने दिल्ली में मृतिका की जांच की है और यह भी साबित हुआ है।

21. अ०सा०-10 अनिल कुमार सोन विधि विज्ञान प्रयोगशाला, आगरा के अधिकारी हैं जिन्होंने फोरेंसिक रिपोर्ट को साबित किया है जिसके अनुसार पीड़िता पर कोई वीर्य नहीं पाया गया है। अ०सा०-11 हकीम सिंह इस मामले में दूसरे विवेचनाधिकारी थे।

22. अ०सा०-12 रणवीर सिंह थाना-सादाबाद से पहले विवेचनाधिकारी थे। इस गवाह ने बाबू लाल का बयान दर्ज किया है, जो अ०सा०-1 के पिता हैं। धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज बाबू लाल के बयान का उद्धरण अ०सा०-12 के बयान में संदर्भित है, जिसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

> "बाबूलाल ने मुझे अपने बयान में बताया था कि रसोई में प्रीति ने खाना बनाने की तैयारी भी की थी। प्रीति अचानक जल गई। बाबूलाल

अनुवादित

प्रीति के दादा हैं। बाबूलाल ने अपने बयान में मुझे यह भी बताया कि मैं प्रकाश वीर वाले मकान के हिस्से में रसोई के बराबर वाले कमरे में पहली मंजिल पर मौजूद था। प्रीति घर के बाहर खरंजे पर जली हुयी अवस्था में पहुंची थी। बाबूलाल से मेरे द्वारा यह पूंछने पर कि आग कैसे लगी तो बाबूलाल ने मुझे बताया था कि जब वह खड़ंजे पर पहुंचा जहाँ प्रीति जल रही थी तो वह केवल बचाओ-बचाओ कह रही थी। बाबूलाल ने अपने बयान में मुझे बताया था कि जब प्रीति जल रही थी तो उसने नहीं बताया था कि उसे किसी व्यक्ति ने जलाया था।"

23. इस गवाह ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत रघुराज का बयान भी दर्ज किया है, जिसने कहा है कि लड़की प्रीति ने आग के सिलसिले में किसी का नाम नहीं लिया था। इस गवाह द्वारा तारा सिंह का बयान भी दर्ज किया गया है जिसमें उसने कहा है कि घटना की तारीख पर, जलते समय, उसने (पीड़िता) ने शिकायत नहीं की कि किसी ने उसे आग लगा दी थी या किसी ने उसके साथ बलात्कार किया था। इस गवाह ने भूरी सिंह का बयान भी दर्ज किया है, जिसमें कहा गया है कि खाना बनाते समय पीड़िता को आग लग गई थी। उसने यह नहीं बताया था कि आरोपी लोकेश, दानी, इंदल, हुकुम सिंह ने उसके साथ बलात्कार किया और उसके बाद उसे आग लगा दी। अ०सा०-12 द्वारा रमेश का बयान भी दर्ज किया गया है जिसमें उन्होंने उसी संस्करण को दोहराया है जो भूरी सिंह द्वारा कहा गया था। इसी तरह भजन लाल की पत्नी भूदेवी के बयान में जो अ०सा०-12 ने दर्ज किया है, उसमें कहा गया है कि पीड़िता ने किसी का नाम नहीं लिया है और उसने बताया कि खाना बनाते समय उसे आग लग गई थी।

24. डॉ. आर. बी. लाल, को अ०सा०-13 के रूप में पेश किया गया है, जिन्होंने पीड़िता को उसकी मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के समय फिटनेस प्रमाण पत्र दिया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि घायल के शरीर का 90% से अधिक हिस्सा जल गया था और उसकी हालत लगातार बिगड़ रही थी। हालांकि, पीड़िता होश में थी लेकिन उसकी नब्ज कमजोर थी। उन्होंने कहा है कि जब उन्होंने पीड़िता से पूछा कि क्या कोई अप्रिय कृत्य किया गया है, तो पीड़िता ने हां में इशारा किया। जिरह में इस गवाह ने स्वीकार किया है कि उसने जलने के कारण के बारे में पूछताछ नहीं की थी क्योंकि पीड़िता की हालत ठीक नहीं थी और उसकी जान बचाने के प्रयास किए जा रहे थे। इस पीड़िता से एक सवाल पूछा गया कि क्या पीड़िता से पूछताछ से उसकी जान को कोई खतरा हो सकता है? जवाब में, डॉक्टर ने कहा कि जब उसकी जान बचाने के लिए सभी प्रयास किए जा रहे थे, तो वह पीड़िता की देखभाल करने वाली टीम के साथ हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं थे। उन्होंने यह भी कहा है कि पीड़िता की हालत सामान्य से काफी कम थी लेकिन वह होश में थी। उन्होंने यह भी कहा है कि सिर्फ इसलिए कि चल रहे उपचार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा, इसलिए उन्होंने पीड़िता से कोई अनावश्यक प्रश्न नहीं पूछा था।

25. अ०सा०-14 राजेश कुमार प्रजापति मथुरा के डिप्टी कलेक्टर हैं, जो पीड़िता के मृत्यु पूर्व बयान दर्ज होने के समय मौजूद थे। उन्होंने कहा है कि

अनुवादित

पीड़िता होश में थी और डॉक्टर ने उसे बयान देने के लिए फिट होने के लिए प्रमाणित किया था। हालांकि यह गवाह यह नहीं बता पाया है कि डॉक्टर कौन मौजूद था और डॉक्टर और कंपाउंडर में क्या अंतर है। उन्होंने स्वीकार किया है कि पीड़िता की घोषणा में ऐसा कोई बयान नहीं है कि पीड़िता को बयान पढ़ा गया था और न ही डॉक्टर से पूछा गया था कि पीड़िता के साथ घटना कैसे हुई।

26. अ०सा०-15 एन.के.चौधरी विवेचनाधिकारी हैं, जिन्होंने उस घर की नक्शा नज़री साबित की है जिसमें घटना हुई थी। अ०सा०-16 डॉ. अलेक्जेंडर एफ. खानवा हैं, जो शव परिक्षण सर्जन हैं और उन्होंने शव परिक्षण रिपोर्ट को साबित किया है। अ०सा०-17 राकेश चंद्र शर्मा, जो विवेचनाधिकारी थे और उन्होंने मामले में आरोप पत्र प्रस्तुत किया। अ०सा०-18 जगदीश गांव चौकीदार है, जिसने कहा है कि उसने अपनी पत्नी से फोन पर इसकी जानकारी मिलने के बाद संबंधित थाना को घटना की जानकारी दी। उन्होंने अपनी जिरह में कहा है कि ग्रामीणों ने उन्हें सूचित किया कि जब पीड़िता खाना बना रही थी, तो गलती से उसमें आग लग गई और वह जल गई।

27. अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए उपरोक्त सबूतों के आधार पर, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए हैं जिसमें अभियुक्तों ने उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार किया है। उन्होंने कहा है कि चूंकि पीड़िता पर वीर्य नहीं पाया गया है, इसलिए बलात्कार का अपराध साबित नहीं हुआ है। उन्होंने यह भी कहा है कि सबूत झूठे तरीके से बनाए गए हैं और उन्हें पिछली दुश्मनी के कारण वर्तमान मामले में फंसाया गया है। 28. अभियोजन पक्ष द्वारा इस मामले में इस प्रकार के साक्ष्य के आधार पर निचली अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है और परिणामस्वरूप अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को धारा 452, 302/34 और 376 भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया है और जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है, जैसा कि पहले ही ऊपर दर्ज किया गया है।

29. श्री अराफ खान के नीचे अदालत के फैसले को चुनौती देते हुए, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आरोपी-अपीलकर्ताओं को दुश्मनी के कारण मामले में झूठा फंसाया गया है और उन्हें फंसाने के लिए झूठे सबूत बनाए गए हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि पीड़िता के दादा, बाबू लाल, घर में मौजूद थे और उन्होंने धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था कि पीड़िता को खाना बनाते समय गलती से आग लग गई थी और इसीलिए अभियोजन पक्ष ने जानबूझकर उन्हें चार्जशीट में तैयार गवाहों की सूची से बाहर कर दिया था। श्री खान ने आगे कहा कि जांच दोषपूर्ण है और सच्चाई का पता लगाने का प्रयास नहीं किया गया है और ऐसे उद्देश्यों के लिए संबंधित गवाहों, जो सदन में मौजूद थे, को पेश नहीं किया गया है। आग्रह है कि बाबू लाल के अलावा घर में जो अन्य लोग मौजूद थे, वे अ०सा०-3 के परिवार के सदस्य थे, जिन्हें पेश नहीं किया गया है। श्री खान आगे प्रस्तुत करते हैं कि पीड़िता पर बलात्कार का आरोप प्रमाणित नहीं है क्योंकि उस पर कोई चोट नहीं पाई गई थी और यहां तक कि पैथोलॉजिकल रिपोर्ट भी बलात्कार के कमीशन का समर्थन नहीं करती है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि मृत्यु पूर्व

बयान वर्तमान मामले के तथ्यों में विश्वसनीय नहीं है क्योंकि पीड़िता कोई बयान देने की स्थिति में नहीं था। इसके बाद वह कहता है कि डॉक्टर द्वारा पीड़िता के बयान देने के लिए फिट मानसिक स्थिति में होने के बारे में कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की जाती है। अन्यथा ऐसी कोई संतुष्टि मजिस्ट्रेट/डिप्टी कलेक्टर द्वारा दर्ज नहीं की जाती है। वह प्रस्तुत करता है कि माता-पिता के गांव में मौजूद होने के बारे में मृत्यु पूर्व बयान में सामग्री अन्यथा अभियोजन पक्ष के गवाहों यानी अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के बयान से गलत साबित होती है, जो स्पष्ट रूप से दिखाती है कि मृत्यु पूर्व बयान में तथ्यों का वर्णन गलत है। वह यह भी प्रस्तुत करता है कि पीड़िता की स्थिति गंभीर थी और उसकी श्वासनली को अवरुद्ध कर दिया गया था जिसके लिए ऑपरेशन प्रस्तावित किया गया था और इसलिए, पीड़िता अन्यथा बोलने या उसकी मृत्यु की घोषणा दर्ज करने की स्थिति में नहीं थी।

30. इसलिएश्री खान, अधिवक्ताप्रस्तुत करता है कि यह पीड़िता द्वारा भोजन पकाने के दौरान आकस्मिक आग का मामला है और परिवार के सदस्यों ने आरोपी को झूठा फंसाने के लिए इसका फायदा उठाया है और इस तरह अपनी पुरानी दुश्मनी को सुलझाया है। यह आग्रह किया जाता है कि विचारण न्यायालय द्वारा रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की सही परिप्रेक्ष्य में जांच नहीं की गई है।

31. आरोपी-अपीलकर्ताओं की ओर से यह भी आग्रह किया गया है कि घटना की सूचना थाना-सादाबाद में ही अ०सा०-8 द्वारा पुलिस को दी गई थी और बाबू लाल, रघुराज सिंह, तारा सिंह, भूरी सिंह और भूदेवी आदि सहित विभिन्न गवाहों के बयान दर्ज किए गए थे, जिसके अनुसार यह आकस्मिक जलने का मामला था और इसे खत्म करने के लिए बाद में प्राथमिकी दर्ज की गई थी, बाद में आरोपी-अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाना जिसके आधार पर आरोपी-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया है।

32. दूसरी ओर श्री अरुणेंद्र सिंह, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि मृत्यु पूर्व बयान साबित हो गया है जिसमें पीड़िता पर बलात्कार और मिट्टी का तेल डालने के विशिष्ट आरोप लगाए गए हैं, साथ ही उसे आग लगाने का आरोप लगाया गया है और इसलिए, अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को उचित संदेह से परे स्थापित किया है। श्री सिंह यह भी प्रस्तुत करते हैं कि अ०सा०-3 ने अन्यथा आरोपी व्यक्तियों को घटना के तुरंत बाद लेन से बाहर भागते हुए देखा है, जो अभियुक्त द्वारा किए जा रहे अपराध के बारे में अभियोजन पक्ष के मामले का भी समर्थन करता है। इस प्रकार वह प्रस्तुत करता है कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें एक युवा लड़की के साथ बलात्कार किया गया है और फिर उसे जला दिया गया है, जिसमें कोई नरमी की ज़रूरत नहीं है और इसलिए, आरोपी-अपीलकर्ताओं की सजा में कोई हस्तक्षेप की ज़रूरत नहीं है।

33. अभियोजन का मामला यह है कि जब प्रथम सूचनाकर्ता (अ०सा०-1) और उसकी पत्नी (अ०सा०-1 और अ०सा०-2) घर से बाहर थे और पीड़िता अकेले घर में घरेलू काम में लगी हुई थी, तब चारों आरोपी दोपहर लगभग 2:30 बजे घर में घुसे और पीड़िता को अकेला पाया, उसे पकड़ा और कुछ नशीला पदार्थ सूंघा जिसके कारण वह अपनी चेतना खो बैठी। आरोपियों ने एक के बाद एक कपड़े से उसका मुंह भी दबाया और उसके साथ बलात्कार किया और सबूतों को अलग करने

अनुवादित

के इरादे से पीड़िता पर मिट्टी का तेल डाला और उसे आग लगा दी गई। आग की लपटों में पीड़िता ऊपरी मंजिल से नीचे आया और पड़ोसी पहुंचे और आग बुझा दी गई। इसके बाद पीड़िता को आगरा ले जाया गया और सूचना देने वाले को एस.एन मेडिकल कॉलेज, आगरा पहुंचने के लिए भी कहा गया। पीड़िता की उम्र 18 साल थी और वह एल.एल.बी प्रथम वर्ष की छात्रा थी। अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए अनिवार्य रूप से अभियोजन पक्ष के गवाहों की मौखिक गवाही पर भरोसा किया है और मृत्यु पूर्व बयान पर भी भरोसा किया है जिसमें पीड़िता ने विशेष रूप से आरोपी को उसके साथ बलात्कार करने और उसके बाद उसे आग लगाने के लिए फंसाया है।

34. विचारण न्यायालय ने गवाहों को विश्वसनीय पाया है और मृत्यु पूर्व बयान को भी विश्वसनीय पाया गया है जो अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बना। अभियोजन पक्ष के मामले को चुनौती मुख्य रूप से इस आधार पर रखी गई है कि मृत्यु पूर्व बयान विश्वसनीय नहीं है; अभियोजन पक्ष के गवाहों ने सूचनाकर्ता और आरोपी के परिवारों के बीच पूर्व दुश्मनी के कारण झूठी गवाही दी है। अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री खान ने यह भी प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य पेश नहीं किए गए हैं और यह सूचनाकर्ता (अ०सा०-1) द्वारा अपने व्यक्तिगत हिसाब किताब को निपटाने के लिए सुझाए गए तर्क का पालन करता है।

35. बचाव पक्ष की ओर से दिए गए तर्क की जांच करने के लिए, हम एक-एक करके सभी तीन पहलुओं से अलग-अलग निपटने का प्रस्ताव करते हैं।

36. इस अपील में उठाए गए मुद्दों पर चर्चा करने से पहले हम कुछ पृष्ठभूमि तथ्यों को नोट कर सकते हैं। तीन आरोपी लोकेश, दानी और इंदु सूरजमल नाम के एक व्यक्ति के बेटे हैं, जिनके सूचनाकर्ता के साथ शत्रुतापूर्ण संबंध थे। यह दुश्मनी वर्ष 1989 में शुरू हुई पक्षों के बीच एक मुकदमेबाजी के कारण हुई थी जिसमें पक्षों के बीच एक समझौता होने का आरोप है। दोनों पक्षों के बीच कुछ आपराधिक कार्यवाही भी हुई। यह बचाव पक्ष के गवाहों द्वारा स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। अपने बयान में अ०सा०-1 ने कहा है कि हालांकि पक्षों के बीच दुश्मनी थी, लेकिन वह आरोपी के प्रति कोई दुश्मनी नहीं रखता है, हालांकि आरोपी उसके प्रति शत्रुतापूर्ण हो सकता है। सूचनाकर्ता और आरोपी के पिता के बीच क्रॉस केस दर्ज किए गए। आपराधिक कार्यवाही के संबंध में टालमटोल भरा जवाब दिया गया। अभियोजन पक्ष के अन्य गवाहों ने भी पक्षों के बीच पूर्व दुश्मनी के तथ्य पर विवाद नहीं किया है। अन्यथा पीड़िता के कथित मृत्युपूर्व बयान में दुश्मनी का तथ्य स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। इसलिए, रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य से, यह कमोबेश स्वीकार किया जाता है कि अभियुक्त के पिता, अर्थात् सूरजमल और सूचनादाता के अतीत में सिविल और आपराधिक कार्यवाही के कारण शत्रुतापूर्ण संबंध थे। अभियोजन पक्ष के गवाहों ने भी कुछ समझौते का आरोप लगाया है लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा इस संबंध में विवरण साक्ष्य में नहीं रखा गया है। कानून तय है कि दुश्मनी एक दोधारी तलवार है क्योंकि यह अपराध करने और किसी व्यक्ति को झूठा फंसाने का कारण भी हो सकता है। इसलिए, इस मामले में

अनुवादित

रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की पक्षों के बीच शत्रुतापूर्ण संबंधों के संदर्भ में सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी।

37. अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सबूतों से पता चलता है कि 27.04.2007 को घटना के तुरंत बाद, पीड़िता को एस.एन मेडिकल कॉलेज, आगरा ले जाया गया था। आंतरिक जांच के लिए पीड़िता को आगरा के जिला राजकीय महिला अस्पताल रेफर कर दिया गया। शरीर के प्रमुख हिस्सों पर गंभीर जलन के बावजूद, पेट और उसके निजी अंगों को सौभाग्य से बचा लिया गया था। पीड़िता की आंतरिक जांच से पता चलता है कि पीड़िता के प्राइवेट पार्ट पर कोई चोट नहीं थी। पीड़िता का हाइमन पुराना फटा हुआ पाया गया। पीड़िता के प्राइवेट पार्ट पर जलने के कोई निशान नहीं थे। अ०सा०-6 द्वारा तैयार की गई इंजरी रिपोर्ट को विचारण के दौरान डॉक्टर ने साबित कर दिया है। चिकित्सीय साक्ष्य से यह भी पता चलता है कि पीड़िता के योनि के नमूने पैथोलॉजिकल जांच के लिए भेजे गए थे जिसमें पीड़िता के शरीर पर कोई शुक्राणुजोज़ा मौजूद नहीं पाया गया था। इसलिए, रिकॉर्ड पर मौजूद चिकित्सा साक्ष्य पीड़िता पर बलात्कार के कमीशन का समर्थन नहीं करता है।

38. हम अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता के तर्क में दम पाते हैं कि एक घटना में जहां एक युवा लड़की/महिला को चार व्यक्तियों द्वारा धारा 376 भ०द०वि० के तहत जबरन अपराध के अधीन किया जाता है, उसे किसी प्रकार की चोट पहुंचाई जाएगी। अत बलात्कार के अभियोजन के मामले की चिकित्सीय साक्ष्य से पुष्टि नहीं होती है। इस पहलू को अभियोजन पक्ष ने न तो नीचे की अदालत के सामने समझाया है और न ही हमारे सामने।

39. अभियोजन मामला पीड़िता की मृत्यु की घोषणा पर बहुत अधिक निर्भर करता है जिसे पहले ही ऊपर दिया जा चुका है। यह मृत्यु पूर्व घोषणा डॉक्टर की संतुष्टि को दर्ज करती है कि पीड़िता अपने मरने के बयान को दर्ज करने के लिए चिकित्सकीय रूप से फिट थी।

40. मृत्यु पूर्व बयान की सामग्री यह है कि पीड़िता/मृतिका घर पर अकेला थीऔर जब आरोपी घर में घुसा तो बर्तन साफ कर रहा थी। पीड़िता ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसके पिता खेत गए थे और उसकी मां अपने बाड़े (बाड़ा) में जानवरों को देख रही थी। मृत्यु पूर्व बयान में निहित तथ्य का यह बयान, हालांकि, अभियोजन पक्ष के गवाहों से स्वयं समर्थन नहीं पाता है। पीड़िता के माता-पिता की उपस्थिति के संबंध में सबूत, सिर्फ अन्यथा है। पीड़िता के पिता को साक्ष्य में अ०सा०-1 के रूप में पेश किया गया है, जिसने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह घटना की तारीख को सुबह जल्दी एक रिश्तेदार के घर चला गया था। इसी तरह का बयान पीड़िता की मां ने दिया है, जो अ०सा०-2 के रूप में दिखाई दी थी। घटना के दो दिन बाद दर्ज की गई प्राथमिकी में अभियोजन पक्ष का कहना है कि घटना के समय पीड़िता के माता-पिता एक रिश्तेदार के यहां गए थे। इसलिए, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य स्पष्ट रूप से साबित करते हैं कि मृतिका के बयान में पीड़िता के पिता के खेत में जाने और मां के जानवरों के बाड़े (बाड़ा) में जाने के बारे में कथन गलत है। मृत्यु पूर्व बयान और अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में यह विरोधाभास हमें मृत्यु पूर्व बयान की सामग्री की अधिक सावधानी से जांच करने के लिए मजबूर करता है।

41. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की ओर से जिन परिस्थितियों में मृतिका के मृत्युपूर्व बयान पर

विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अ०सा०-1 के बयान पर भरोसा किया गया है जिसमें उसने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि जब तक पीड़िता अशोक अस्पताल पहुंची, तब तक वह काफी हद तक बेहोश हो चुकी थी और केवल कभी-कभी उसने अपनी आंखें खोलीं। अ०सा०-1 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि समय बीतने के साथ पीड़िता की गंभीरता बढ़ती गई। यह भी कहा गया है कि जब वह एस.एन अस्पताल/मेडिकल कॉलेज, आगरा पहुंची तो वह बेहोश थी। तब कहा जाता है कि पीड़िता शाम करीब 6:00 बजे होश में आई। मरने से पहले पीड़िता की जांच करने वाले डॉक्टर ने कहा है कि पीड़िता के शरीर के बड़े हिस्से में सतही से लेकर गहरे जलने के घाव थे और उसमें जलने की मात्रा 90 प्रतिशत तक है। पीड़िता की हालत लगातार बिगड़ती जा रही थी। डॉक्टर द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या मृतिका के साथ कोई अप्रिय घटना हुई है, उसने सिर हिलाया और इस तरह अपने इशारे से हां में जवाब दिया। डॉक्टर ने यह नहीं बताया है कि पीड़िता ने खुद कोई बयान दिया है। इस डाक्टर की प्रतिपरीक्षा की गई है और उनसे एक विशिष्ट प्रश्न पूछा गया है कि क्या पीड़िता को जलने के कारण का पता लगाने के लिए कोई प्रयास किया गया था। इस पर डॉक्टर ने जवाब दिया कि पीड़िता की स्थिति को देखते हुए उससे अनावश्यक सवाल करना उचित नहीं था क्योंकि चिंता किसी तरह उसकी जान बचाने की थी। एक अन्य प्रश्न के उत्तर में कि क्या पीड़िता की पूछताछ के दौरान मृत्यु हो सकती है, डॉक्टर ने कहा है कि उसकी जान बचाने के लिए गंभीर प्रयास किए जा रहे थे और उन्होंने उस टीम के प्रयास में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा जो पीड़िता को बचाने की कोशिश कर रही थी। उन्होंने आगे कहा है कि चिकित्सा जांच के समय पीड़िता की स्थिति सामान्य से बहुत कम थी (जाहिर तौर पर यह सुझाव देते हुए कि वह गंभीर थी) लेकिन वह होश में थी।

42 इस मौके पर, हम विवेचनाधिकारी के बयान का भी उल्लेख करना चाहेंगे जिसने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अ०सा०-1 का बयान दर्ज किया था, जिसमें उसने स्वीकार किया है कि पीड़िता काफी हद तक जल गया थी और बोलने की स्थिति में नहीं थी। श्वासनली में बाधा आ रही थी और ऑपरेशन करने का प्रयास किया जा रहा था। इस संबंध में वक्तव्य यहां दिया गया है:-

> "लड़की प्रीति काफी जल गई थी तथा बोलने की स्थिति में नहीं है, स्वांश नली में अवरोध होने के कारण कल दिनांक २८-४-०७ की आपरेशन तैयारी हो रही थी। प्रकाश वीर से मैंने कल दिनांक २८-४-०७ को घटना के सम्बन्ध में तहरीर मांगी तो उसने तहरीर देने से मना कर दिया।"

43. इस गवाह ने आगे कहा है कि पीड़िता अपना बयान देने की स्थिति में नहीं थी और उसने उस संबंध में डॉक्टर से कोई पूछताछ नहीं की।

44. इसलिए, रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य से पता चलता है कि पीड़िता गंभीर अवस्था में थी और उसकी श्वासनली जाम थी।

45. इसलिए यह देखा जाना चाहिए कि क्या पीड़िता अपनी मृत्यु की घोषणा करने की स्थिति में थी और क्या अभियोजन पक्ष द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सावधानी बरती गई थी कि पीड़िता एक घोषणा करने के लिए उचित मानसिक स्थिति में थी।

अनुवादित

46. प्राथमिक सबूत है कि पीड़िता मरने की घोषणा करने के लिए एक फिट मानसिक स्थिति में था, उपस्थित चिकित्सक का है जिसे अ०सा०-13 के रूप में पेश किया गया है। हमने गौर किया है कि इस गवाह ने अपने बयान में पीड़िता की गंभीर स्थिति का जिक्र किया है। मरने के बाद दिए गए इस बयान पर डॉक्टर द्वारा कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है कि पीड़िता स्वैच्छिक बयान देने के लिए फिट मानसिक स्थिति में थी। अ०सा०-1 ने अन्यथा स्वीकार किया है कि पीड़िता को शाम लगभग 6:00 बजे एस.एन मेडिकल कॉलेज में लाया गया था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि प्राथमिक उपचार देने के बाद ही पीड़िता की स्थिति में सुधार हुआ और वह होश में आई। यह स्पष्ट नहीं है कि घायल पीड़िता को किस तरह की प्राथमिक चिकित्सा दी गई थी, लेकिन उसकी गंभीर स्थिति को देखते हुए, यह उम्मीद करना तर्कसंगत है कि उसे कुछ कम दर्द निवारक दवा दी गई होगी। ऐसी परिस्थितियों में, डॉक्टर द्वारा केवल संतुष्टि दर्ज करना कि रोगी सचेत था, पर्याप्त नहीं था। पीड़िता की फिटनेस की स्थिति के बारे में एक विशिष्ट संतुष्टि की आवश्यकता थी। डॉक्टर द्वारा ऐसी कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है। केवल यह कहना कि रोगी चिकित्सकीय रूप से फिट है, रोगी की फिट मानसिक स्थिति के संबंध में संतुष्टि नहीं है। अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के अनुसार पीड़िता की बोलने की क्षमता से गंभीर रूप से समझौता किया गया था।

47. इसलिए हमें संदेह है कि पीड़िता ने एक उचित मानसिक स्थिति में एक सचेत स्वेच्छा से बयान दिया है जो मृत्यु पूर्व घोषणाके योग्य हो सकता है। पीड़िता की मृत्यु से पहले बयान दर्ज करने वाले मजिस्ट्रेट/डिप्टी कलेक्टर ने भी स्वीकार किया है कि पीड़िता से उसकी मानसिक स्थिति के बारे में कोई सवाल नहीं किया गया था।

48. इस मोड़ पर, हम (1999) 7 एस.सी 695 में रिपोर्ट किए गए पापरम्बका रोसम्मा और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी का उल्लेख करना चाहेंगे, जिसमें न्यायालय ने मृत्यु पूर्व घोषणा का जिक्र करते हुए कहा कि बयान दर्ज करते समय केवल यह बयान पर्याप्त नहीं है कि रोगी सचेत है। ऐसे मामले में जहां घायल 90% जलने की चोटों को बरकरार रखा गया था, मृत्यु पूर्व बयान को स्वीकार करने से पहले घायल की फिट मानसिक स्थिति का पता लगाना आवश्यक था। निर्णय के पैराग्राफ- 9 को यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"9. यह सच है कि चिकित्सा अधिकारी डॉ. के. विष्णुप्रिया देवी (अ०सा०-10) ने मृत्यु की घोषणा के अंत में प्रमाणित किया था कि बयान दर्ज करते समय रोगी सचेत है। यह रिकॉर्ड पर आया है कि घायल श्रीमती वेंकट रमण को उनके व्यक्ति पर व्यापक रूप से जलने की चोटें आई थीं। शव परिक्षण करने वाले डॉ. पी. कोटेश्वर राव (अ०सा०-9) ने बताया कि घायलों को 90 फीसदी झुलसने की चोटें आई हैं। इस मामले में, जैसा कि पहले कहा गया है, अभियोजन पक्ष का मामला पूरी तरह से मृत्यु पूर्व बयान पर टिका हुआ था। इसलिए, अभियोजन पक्ष के लिए यह आवश्यक था कि वह मृत्यु पूर्व बयान को वास्तविक, सत्य और सभी संदेहों से मुक्त साबित करे और यह तब दर्ज किया गया जब घायल मानसिक रूप से स्वस्थ था। हमारी राय में, डॉ. श्रीमती के. विष्णुप्रिया देवी (अ०सा०-10) द्वारा अंत में मृत्यु पूर्व बयान के साथ संलग्न प्रमाण

*पत्र ने आवश्यकता का अनुपालन नहीं किया क्योंकि वह यह प्रमाणित करने में विफल रही है कि मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करते समय घायल मानसिक रूप से स्वस्थ था। अंत में उक्त विशेषज्ञ का प्रमाण पत्र केवल यह कहता है कि रोगी बयान दर्ज करते समय सचेत है। इन भौतिक चूकों को देखते हुए, मृत्यु पूर्व घोषणा (Ex.P-14) को सत्य और वास्तविक के रूप में स्वीकार करना सुरक्षित नहीं होगा और यह तब किया गया था जब घायल मन की स्वस्थ स्थिति में था। नीचे दिए गए न्यायालयों के निर्णयों से, ऐसा प्रतीत होता है कि इस पहलू को ध्यान में नहीं रखा गया था और परिणामस्वरूप उक्त मृत्यु पूर्व घोषणा (Ex.P-14) को एक सच्चा, वास्तविक के रूप में स्वीकार करने में गलती हुई थी और तब बनाई गई थी जब घायल मन की स्वस्थ स्थिति में था। चिकित्सा विज्ञान की सचेतन और स्वस्थ अवस्था नामक दो अवस्थाएं भिन्न हैं और पर्यायवाची नहीं हैं। कोई सचेत हो सकता है लेकिन जरूरी नहीं कि वह मन की स्वस्थ स्थिति में हो। इस अंतर को नीचे की अदालतों द्वारा अनदेखा किया गया था।"**(महत्व हमारे द्वारा आपूर्ति)***

49. पापरम्बका रोसम्मा (उपरोक्त) के मामले में किए गए अवलोकन को नरेश कुमार बनाम कलावती और अन्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट के बाद के फैसले में दोहराया गया है, जिसे 2021 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 260 में रिपोर्ट किया गया था, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने उपरोक्त उद्धृत पैराग्राफ नंबर 9 का उल्लेख करने के बाद पैरा -13 में निम्नानुसार देखा: -

"13. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, यह देखते हुए कि मृतिका के बयान ढुलमुल हो गए हैं, डॉक्टर की उपस्थिति सहित मृत्यु पूर्व बयान देने के लिए मृतिका की मानसिकता के बारे में कोई सबूत नहीं है, मृत्यु पूर्व बयान की सत्यता और सत्यता संदिग्ध बनी हुई है। आत्महत्या के संभावित बचाव को खारिज करना, बरी करने और उत्तरदाताओं को दोषी ठहराना सुरक्षित नहीं होगा। (महत्व हमारे द्वारा आपूर्ति)

50. मजिस्ट्रेट/डिप्टी कलेक्टर का बयान स्पष्ट है कि मृत्यु पूर्व बयान की सामग्री पीड़िता को नहीं पढ़ी गई थी और उस संबंध में कोई संतुष्टि अन्यथा मृत्यु पूर्व बयान में दर्ज नहीं की गई है। (2011) 10 एस.सी.सी 173 में रिपोर्ट किए गए सुरेंद्र कुमार बनाम हरियाणा राज्य में, सुप्रीम कोर्ट ने मृत्यु पूर्व बयान पर इस आधार पर भी सवाल उठाया कि पीड़िता को पढ़े जाने वाले मृत्यु पूर्व बयान की सामग्री के बारे में इस तरह की संतुष्टि गायब थी। फैसले के पैराग्राफ नंबर 25 में सुप्रीम कोर्ट ने इस तरह कहा: -

"अभियोजन पक्ष के अनुसार, घटना 26.06.1991 को 2 बजे हुई थी और उसके बयान के अनुसार, जलने की घटना 25.06.1991 की शाम को हुई थी, यानी पिछले दिन। मृत्यु पूर्व बयान में कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा इस आशय का प्रमाण पत्र नहीं था कि यह मृतिका द्वारा दिया गया एक स्वैच्छिक बयान था और उसने उसे बयान पढ़ा था। मरने की घोषणा को डॉक्टर ने भी सत्यापित नहीं किया था। जैसा कि पहले कहा गया था, हालांकि मजिस्ट्रेट ने कहा था कि बयान हिंदी और पंजाबी की मिश्रित बोली में किया गया था और बयान केवल हिंदी में दर्ज किया गया था। एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इस बात के सबूत थे कि कमलेश रानी फोर्टविन और पेथिडीन इंजेक्शन के प्रभाव में थीं और उन्हें सामान्य सतर्कता नहीं बरतनी चाहिए थी। हमारे विचार में, विचारण न्यायालय ने संदिग्ध

परिस्थितियों से घिरे और अभियोजन पक्ष की कहानी के विपरीत मृत्यु पूर्व बयान को पूरी तरह से खारिज कर दिया और अपीलकर्ता को बरी कर दिया। ***(महत्व हमारे द्वारा आपूर्ति)***

51. यह पूर्वोक्त विचार-विमर्श के संदर्भ में है कि हम पिता के क्षेत्र में होने और पीड़िता की मां के जानवरों के बाड़े (बाड़ा) में होने की घोषणा में तथ्यों के गलत वर्णन को महत्व देने के लिए राजी हैं। तथ्य यह है कि मृत्यु की घोषणा परिवार के बीच एक पुरानी दुश्मनी को संदर्भित करती है, यह भी बहुत स्वाभाविक नहीं है। हालांकि अन्यथा यह दावा किया जाता है कि चार युवकों ने पीड़िता के साथ बलात्कार किया, लेकिन यह तथ्य कि उसके निजी अंगों पर कोई चोट नहीं पाई गई, भी महत्व रखता है। अन्यथा यह स्वीकार किया जाता है कि दोनों परिवारों के बीच पुरानी दुश्मनी थी, और इसलिए, पुरानी दुश्मनी के लिए उचित बदला सुनिश्चित करने के लिए तीन सगे भाइयों के झूठे फंसाने की संभावना हो सकती थी। इसलिए मृत्यु पूर्व बयान को न तो विश्वसनीय पाया जाता है और न ही वर्तमान मामले के तथ्यों पर भरोसा किया जा सकता है। मामले के इस पहलू की विचारण न्यायालय ने जांच नहीं की है। अभियोजन पक्ष ऊपर देखी गई परिस्थितियों की व्याख्या करने में विफल रहा है, जो मृत्यु पूर्व बयान पर संदेह पैदा करता है।

52. यह हमें अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के दूसरे अंग पर ले जाता है जो इसके गवाहों की मौखिक गवाही है। बेशक, किसी भी गवाह ने इस घटना को नहीं देखा है और कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। अ०सा०-1 और अ०सा०-2 घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे। प्रासंगिक एकमात्र गवाही अ०सा०-3 की है जो मृतिका के चाचा हैं। उनका दावा है कि उन्होंने चारों आरोपियों को उस समय के आसपास गली से बाहर आते देखा है जब पीड़िता आग लगने के बाद नीचे आई थी। अ०सा०-3 की यह गवाही भी विश्वसनीय नहीं है और उसी दुर्बलता से ग्रस्त है, जिससे अ०सा०-1 यानी पुरानी दुश्मनी की गवाही मिलती है। हालांकि, अ०सा०-3 का कहना है कि उसने पड़ोसियों को फोन किया और पीड़िता पर आग बुझाने में सहायता की, लेकिन अ०सा०-1 और अ०सा०-2 ने अपने बयानों में दावा किया है कि घटना की सूचना उन्हें जगवीर (पेश नहीं किया गया) ने दी थी, न कि अ०सा०-3 द्वारा। घटना के स्थान पर अ०सा०-3 की उपस्थिति पर अन्यथा इस आधार पर सवाल उठाया जाता है कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत अन्य गवाहों, श्रीमती सुमित्रा और श्रीमती सुखबीरी के बयानों में, यह देखा गया है कि अ०सा०-3 अपनी कार चला रहा था जब उसे टेलीफोन पर सूचना मिली कि पीड़िता को जलने की चोटें आई हैं।

53. श्रीमती सुमित्रा और श्रीमती सुखबीरी के प्रासंगिक बयान नीचे पुन: प्रस्तुत किए जा रहे हैं: श्रीमती सुमित्रा का कथन

> "दिनांक २७.४.०७ को सुबह मैं और सुखबीरी, गीता, सविता, चन्द्रावती, किशन सिंह, स्वतन्त्र सिंह हंसराज, विनोद ग्राम सिन सिनी नेम सिंह के घर मिलने गए थे। नेम सिंह की माता जी का स्वर्गवास हो गया। हम राज बहादुर S/o बाबू लाल जो हमारे गांव के हैं उनकी टाटा सूमो से गए थे। ६०० रु० डीजल के राज बहादुर को दिए थे राज बहादुर गाड़ी चला कर ले गया था। जब हम लौट रहे थे तो राया के पास राज बहादुर पर फ़ोन आया

कि कु० प्रीति जल गई है तो राज बहादुर बहुत तेज गाड़ी चलकर गांव आया था। तब तक लड़की प्रीति को गांव के लोग अस्पताल ले गये थे हमें लड़की प्रीति गांव में नहीं मिली थी। राज बहादुर बाद में आगरा गया था।"

सुखबिरी का बयान:

"दिनांक २७.४.०७ को सुबह मैं और सुमित्रा, गीता, सविता, चन्द्रावती मेरे पति किशन सिंह, स्वतन्त्र सिंह हंसराज, विनोद राज बहादुर की टाटा सूमो से सिन सिनी गए थे। राज बहादुर गाड़ी चलाकर ले गया था। जब हम लोग वापस सिन सिनी से आ रहे थे तो (का० फटा) के पास ३.०० बजे के लगभग राज बहादुर पर फ़ोन आया था कि लड़की प्रीति काफी जल गयी है। तो उसने गाड़ी तेज भगायी थी। जब हम लोग गांव में आए तो प्रीति को गांव वाले अस्पताल आगरा ले गए थे हम लोग सिन सिनी नेम सिंह के घर मिलने गए थे। उनकी माता जी का स्वर्ग वास हो गया था।"

अभियोजन पक्ष द्वारा इन दो गवाहों को पेश नहीं किया जाता है। उनके न पेश होने का अन्यथा कोई कारण नहीं देखा जा सकता है, सिवाय इसके कि यह स्पष्ट नहीं था कि वे अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन करेंगे या नहीं।

54. इसलिए, हम अ०सा०-3 की मौखिक गवाही से ज्यादा प्रभावित नहीं हैं और न ही हम अभियुक्तों के खिलाफ या उनकी जटिलता के संबंध में प्रतिकूल राय बनाने के लिए उनकी गवाही को विश्वसनीय पाते हैं। अभियोजन पक्ष द्वारा तथ्य का कोई अन्य गवाह पेश नहीं किया गया है। इस प्रकार मामले के तथ्यों में मौखिक गवाही आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ अपराध की खोज करने के लिए पर्याप्त नहीं है। घटनास्थल पर अ०सा०-3 की उपस्थिति से संबंधित परिस्थितियों को अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट नहीं किया गया है।

55. अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में सबूतों की पृष्ठभूमि में, हमें यह अजीब और अप्राकृतिक लगता है कि पीड़िता के दादा, अर्थात् बाबू लाल, जो घर में मौजूद थे और जिनके हाथ में जलने की चोटें भी थीं (अ०सा०-2 के अनुसार) अभियोजन पक्ष द्वारा पेश नहीं किया गया था। इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। बाबू लाल अन्यथा एक स्वाभाविक गवाह था जो माना जाता है कि पीड़िता के प्रति शत्रुतापूर्ण नहीं था। धारा 161 द०प्र०स० के तहत बाबू लाल के बयान पर अ०सा०-12 द्वारा ध्यान दिया गया है जो बचाव पक्ष की दलील का समर्थन करता है कि यह घटना अभियोजन पक्ष द्वारा सुझाए गए तरीके के अलावा किसी अन्य तरीके से हुई थी। बाबू लाल ने यह भी स्वीकार किया है कि पीड़िता ने कभी भी उसे यह नहीं बताया कि मिट्टी का तेल डालने या मृतिका को जलने के लिए कोई जिम्मेदार था। भजनलाल की पत्नी भू देवी का बयान भी इसी तरह का है और उन्हें भी साक्ष्य में पेश नहीं किया गया है। तथ्य के गवाह जो मौके पर मौजूद थे, वे संबंधित व्यक्ति थे जो इस बात पर प्रकाश डाल सकते थे कि घटना किस तरह से हुई थी। तथ्य यह है कि अभियोजन पक्ष द्वारा इस तरह के सबूतों को रोक दिया गया है, अभियोजन पक्ष के संस्करण को पूरी तरह से

अनुवादित

अविश्वसनीय बनाता है। हालांकि, नीचे के न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का उल्लेख किया है, लेकिन तथ्य यह है कि मृत्यु पूर्व बयान की सामग्री अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों के साथ असंगत है और पीड़िता की मानसिक स्थिति के बारे में कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई थी। पक्षों के बीच शत्रुतापूर्ण संबंधों को भी इसमें शामिल नहीं किया गया है।

56. मृत्यु पूर्व बयान देने के समय पीड़िता जिस गंभीर स्थिति में था, उसका भी सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन नहीं किया गया है। ऐसी परिस्थितियों में, हम नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा लौटाए गए निष्कर्षों को मंजूरी नहीं दे सकते हैं कि अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को उचित संदेह से परे स्थापित किया है। आरोपी-अपीलकर्ताओं को अपराध का दोषी ठहराने वाले न्यायालय के निष्कर्ष उलट गए हैं।

57. ऊपर आयोजित चर्चाओं और विचार-विमर्श के मद्देनजर, यह अपील सफल होती है और इसकी अनुमति दी जाती है। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के खिलाफ सत्र विचारण नंबर 97 वर्ष 2013 (यू.पी राज्य बनाम लोकेश और 2 अन्य) में सत्र विचारण नंबर 97 वर्ष 2013 (यूपी राज्य बनाम लोकेश और 2 अन्य) में अपर सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 3, हाथरस द्वारा पारित 11 फरवरी, 2015 के फैसले और सजा के आदेश को अपास्त किया जाता है।

58. अभियुक्त अपीलकर्ता- दानी और इंद्र, जिन्हें 2007 से जेल में बताया गया है, को तुरंत रिहा कर दिया जाएगा, जब तक कि वे धारा 437-ए द०प्र०स० के अनुपालन में किसी अन्य मामले में वांछित न हों, जबकि आरोपी अपीलकर्ता लोकेश, जिसे जमानत पर बताया गया है, को आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है और उसकी जमानत बांड धारा 437-ए द०प्र०स० के अनुपालन के अधीन मुक्त हो जाएगी।

59. इस निर्णय की एक प्रति मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, हाथरस को भेजी जाए, जो इस निर्णय के संदर्भ में अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की रिहाई के लिए इसे संबंधित जेल अधीक्षक को प्रेषित करेंगे।

(2023) 2 ILRA 47

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 24.01.2023

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

जनहित याचिका क्रमांक 1969 / 2022

कुशवाहा महासभा और अन्य

... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री गुलाब चन्द्र

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री ए.के. गोयल, अतिरिक्त. सी.एस.सी., श्री सिद्धार्थ श्रीवास्तव

ए. जनहित याचिका (पीआईएल) - भारतीय संविधान, 1950-अनुच्छेद 226- पोषणीयता - भौतिक तथ्यों का दमन-याचिकाकर्ताओं ने जानबूझकर याचिकाकर्ता संख्या 2 के बेसिक शिक्षा बोर्ड के तहत सहायक शिक्षक के रूप में कार्यरत एक सरकारी कर्मचारी होने के तथ्य को छुपाया है-उसने इसके अनिरिक्त निजी प्रतिवादियों द्वारा उसके द्वारा/उसके विरुद्ध दर्ज किए गए विभिन्न आपराधिक वाद के तथ्य को भी छुपाया है- भारी लागत के साथ जनहित याचिका निरस्त। (पैरा 1 से 22)

अनुवादित

याचिका निरस्त की गई। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अभ्युदय संस्था बनाम भारत संघ (2011) 6 SCC145
2. हरि नारायण बनाम बद्री दास (1963) एआईआर एससी 1558
3. जी नारायणस्वामी रेड्डी बनाम कर्नाटक राज्य (1991) 3 एससीसी 261
4. दलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2010) 2 एससीसी 114
5. मोती लाल सोनगरा बनाम प्रेम प्रकाश उर्फ पप्पू एवं अन्य (2013) 9 एससीसी 199
6. अमर सिंह बनाम भारत संघ और अन्य (2011) 7 एससीसी 69
7. किशोर समरीते बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2013) 2 एससीसी 398
8. एबीसीडी बनाम भारत संघ और अन्य (2020) एससीसी 52
9. पुष्पा देवी एम. जटिया बनाम एम.एल. वधावन और अन्य (1987) 3 एससीसी 367
10. शशि बनाम अनिल कुमार वर्मा (1995) 1 एससीसी 421
11. के.डी. शर्मा बनाम सेल एवं अन्य। (2008) 12 एससीसी 481
12. धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (1995) 3 एससीसी 757

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

&

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

<u>आदेश</u>

1. याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान याचिका दायर की गई थी, जिसमें इसे जनहित में होने का दावा किया गया था, जिसमें निम्नलिखित राहतों के लिए प्रार्थना की गई थी: -

(i) परमादेश रिट की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसमें प्रतिवादी जिला मजिस्ट्रेट को भूमि संख्या 509, 510, 567, 569,570,571 सैदपुर हाकिंस जिला बरेली पर निजी प्रतिवादियों द्वारा उठाए गए अनधिकृत निर्माणों और अवरोधों को हटाने के लिए आवश्यक कार्रवाई करने का आदेश दिया जाए, जिसे न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उचित समय के भीतर सार्वजनिक सुविधा के लिए मिनी बाई पास रोड बनाने के लिए अधिग्रहित किया गया है।

(ii) परमादेश रिट की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी करना, जिसमें प्रतिवादी प्राधिकारियों को आदेश दिया गया हो कि वे प्रतिवादी अनुपमा द्वारा गलत तरीके से प्राप्त मुआवजे की सार्वजनिक धनराशि को उचित ब्याज के साथ वसूल करें और इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्धारित निर्धारित समय के भीतर न्याय के हित में प्राधिकारियों के साथ धोखाधड़ी करने के लिए उसके खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई शुरू करें।

(iii) प्रतिवादी जिला मजिस्ट्रेट को दिनांक 05.07.2022 की शिकायत पर उचित कार्रवाई करने का आदेश देते हुए रिट आदेश या निर्देश जारी करना,

अनुवादित

जिसमें न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए उचित समय के भीतर ग्राम सैदपुर हकिंस में स्थित मिनीबाईपास रोड की सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर अवरोधों और अतिक्रमण को रोकने के लिए प्रतिवादी जिला मजिस्ट्रेट को उचित कार्रवाई करने का आदेश दिया गया है।

2. नवंबर, 2022 में निजी प्रतिवादियों द्वारा जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, इसकी प्रति 28 नवंबर, 2022 को याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता को दी गई थी, लेकिन आज तक कोई प्रत्युत्तर हलफनामा दायर नहीं किया गया है। इसे दायर करने के लिए स्थगन की मांग की गई है, जिसे हम अस्वीकार करते हैं क्योंकि याचिकाकर्ताओं के पास विशेषरूप से जवाबी हलफनामे में की गई दलीलों को ध्यान में रखते हुए प्रत्युत्तर हलफनामा दायर करने के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध था।

3. निजी प्रतिवादियों द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में, प्राथमिकी की प्रतिसंलग्न की ग ईहै, जिसे निजी प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा याचिकाकर्ता संख्या 2 के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 419, 420, 467, 468 और 471, थाना बारादरी, जिला बरेली के तहत दर्ज किया गया था। जवाबी हलफनामे में आगे कहा गया है कि जांच के बाद, याचिकाकर्ता संख्या 2 के खिलाफ आरोपपत्र दायर किया गया था और संबंधित अदालत ने भी संज्ञान लिया है और मुकदमा लंबित है।

4. काउंटर के रूप में, याचिकाकर्ता संख्या 2 ने प्रतिवादी संख्या 5 के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 195, 195-ए और 420 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज कराई, जिसमें प्रतिवादी संख्या 5 को गिरफ्तार किया गया था, जिला बरेली का थाना बारादरी, जिला बरेली, जिसमें प्रतिवादी संख्या 5 को गिरफ्तार किया गया था, जमानत पर रिहाकर दिया गया। उसमें भी आरोप-पत्र दाखिल किया जा चुका है। हालांकि, प्राथमिकी और आगे की कार्यवाही को रद्द करने के लिए प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा दायर आपराधिक विविध आवेदन संख्या 31925/2022 में, इस न्यायालय द्वारा 10 अक्टूबर, 2022 को अंतरिम रोक लगा दी गई है। यह मामला अभी भी लंबित है।

5. आगे यह दलील दी गई है कि प्रतिवादी संख्या 5 की पत्नी ने भी याचिकाकर्ता संख्या 2 के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 452, 307, 323, 504, 506 और 427, थाना इज्जतनगर, जिला बरेली के तहत एक प्राथमिकी दर्ज कराई, जिसमें आरोप पत्र प्रस्तुत की गई है।

6. आगे यह दलील दी जाती है कि प्रतिवादी संख्या 5 के घरेलू सहायक द्वारा याचिकाकर्ता संख्या 2 के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 427, 323, 394 और 336 के तहत एक और प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसमें थाना इज्जतनगर, जिला बरेली के तहत जांच चल रही है।

7. इसके बाद, याचिकाकर्ता संख्या 2 ने प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के खिलाफ धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसे विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण, न्यायालय संख्या 1, बरेली ने 24 सितंबर, 2021 के आदेश के तहत खारिज क रदिया।

8. प्रतिवादी संख्या 5 ने याचिकाकर्ता संख्या 2 और अन्य के खिलाफ आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के तहत विशेष न्यायाधीश,

अनुवादित

भ्रष्टाचार निवारण, न्यायालय संख्या 1, बरेली के समक्ष एक आवेदन भी दायर किया, जिसे 28 मार्च, 2022 के आदेश के तहत एक शिकायत मामले के रूप में माना गया।

9. इसके अलावा, जवाबी हलफना मे में यह दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता संख्या 2 बेसिक शिक्षा बोर्ड के तहत सहायक शिक्षक के रूप में काम कर रहा है और वर्तमान में मिडिल स्कूल (पूर्वमाध्यमिक विद्यालय), सिंधौली, जिला बरेली में तैनात है।

10. जवाबी हलफनामे के पैरा -12 में, यह दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता संख्या 2 एक हिस्ट्री-शीटर है। इस न्यायालय के समक्ष उनके द्वारा दायर की गई याचिका आपराधिक है। हिस्ट्रीशीट को बंद करने के लिए विविध रिट याचिका संख्या 11931/2020, इस न्यायालय द्वारा 14 अक्टूबर, 2022 को खारिज कर दी गई थी।

11. जवाबी हलफना मे के पृष्ठ -54 पर, पुलिस अधीक्षक, बरेली द्वारा वर्ष 2017 में बरेली के जिला मजिस्ट्रेट को भेजा गया एक पत्र संलग्न किया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता संख्या 2 के खिलाफ दर्ज विभिन्न मामलों के विवरण का उल्लेख किया गया है, जो निम्नानुसार है: -

(i) भारतीय दंड संहिता की धारा 149, 307, 323 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 162ए/1989, थाना मीरगंज, जिला बरेली;

ii) भारतीय दंड संहिता की धारा 307, 504 के तहत मामला अपरा धसंख्या 74/1996, थाना मीरगंज, जिला बरेली;

iii) भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 447, 511, 307, 504, 506 के तहत मामला अपराध संख्या 773/2014, थाना इज्जतनगर, जिला बरेली;

iv) भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 307, 452, 323, 504, 506, 427, 341 के तहत मामला अपराध संख्या 140/2017, थाना इज्जतनगर, जिला बरेली;

v) भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 427 के तहत मामला अपराध संख्या 164/2017, थाना इज्जतनगर, जिला बरेली;

vi) भारतीय दंड संहिता की धारा 188 और 30 शस्त्र अधिनियम के तहत मामला अपराध संख्या 165/2017, थाना इज्जतनगर, जिला बरेली;

12. राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्राप्त निर्देशों में, याचिकाकर्ता संख्या 2 की साख के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है या वह एक सरकारी कर्मचारी है, हालांकि, जो कहा गया है वह यह है कि निजी प्रतिवादी को मुआवजे का कोई दोहरा भुगतान नहीं किया गया है और अतिक्रमण के संबंध में, उस पहलू को देखने के लिए एक समिति का गठन किया गया था और यह पाया गया कि कोई अतिक्रमण नहीं था।

13. रिट याचिका के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ताओं ने जानबूझकर याचिकाकर्ता संख्या 2 के बेसिक शिक्षा बोर्ड के तहत सहायक शिक्षक के रूप में काम करने वाले सरकारी कर्मचारी होने के तथ्य को छिपाया है। उन्होंने निजी प्रतिवादियों द्वारा उनके खिलाफ/उनके खिलाफ दर्ज किए गए विभिन्न आपराधिक मामलों के तथ्य को भी छिपाया है।

अनुवादित

14. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में तथ्य को छिपाया गया है।

15. एक वादी जो न्यायालय से भौतिक तथ्यों को छुपाता है, उसके साथ किस प्रकार व्यवहार किया जाना है, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा बार-बार देखा गया है और सुसंगत राय यह है कि वह गुण-दोष के आधार पर सुनवाई का भी हकदार नहीं है।

16. अभ्युद्य संस्था बनाम भारत संघ (2011) 6 एससीसी 145 मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं को राहत देने से इनकार करते हुए, जिन्होंने साफ हाथों से अदालतका दरवाजा नहीं खटखटाया, निम्नानुसार राय दी:

> "18. हमारे विचार में, अपीलकर्ता गैर-उपयुक्त होने के लायक हैं क्योंकि उन्होंने साफ हाथों से अदालत का दरवाजा नहीं खटखटाया है। अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा अनजाने में की गई गलती की दलील और उनकी यह दलील कि अदालत उदार दृष्टिकोण अपना सकती है और पहले से ही प्रवेश को नियमित करने का आदेश दे सकती है, आकर्षक लगता है, लेकिन स्वीकृति के योग्य नहीं है। प्रत्येक अपीलकर्ता ने जानबूझ कर एक बयान दिया कि उसे एनसीटीई द्वारा मान्यता दी गई थी, जिसका अर्थ है कि मान्यता अधिनियम की धारा 14 के संदर्भ में दी गई थी, जिसे 2007 के विनियमों के विनियम 7 और 8 के साथ पढ़ा गया था। अपीलकर्ताओं के मामलों का प्रबंधन करने वाले निर्दोष, अनपढ़/अशिक्षित व्यक्तियों की श्रेणी से संबंधित नहीं हैं, जो प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों और अदालत की प्रक्रिया से परिचित नहीं हैं। तथ्य यह है कि प्रत्येक अपीलकर्ता ने विनियम 7 के संदर्भ में एलपीएएसडब्ल्यू संख्या 82/2019 पृष्ठ 7 आवेदन प्रस्तुत किया था और डब्ल्यूआरसी, भोपाल द्वारा गठित टीम द्वारा निरीक्षण के लिए खुद को उपलब्ध कराया था, यह दर्शाता है कि वे इस तथ्य से पूरी तरह अवगत थे कि वे अधिनियम और विनियमों में निर्दिष्ट शर्तों को पूरा करने के बाद ही मान्यता प्राप्त कर सकते हैं और डब्ल्यूआरसी भोपाल ने उन्हें मान्यता नहीं दी थी। इसके बावजूद, उन्होंने साहसिक बयान दिया कि उन्हें सक्षम प्राधिकारी द्वारा मान्यता दी गई थी और इस तरह इस न्यायालय को विशेष अनुमति याचिकाओं पर विचार करने और अंतरिम आदेश पारित करने के लिए राजी करने में सफल रहे। अपीलकर्ताओं के बारे में जो न्यूनतम कहा जा सकता है, वह यह है कि उन्होंने साफ हाथों से अदालत का दरवाजा नहीं खटखटाया है और स्पष्ट रूप से झूठे बयान देकर न्याय की धारा को प्रदूषित करने में सफल रहे हैं। इसलिए, वे संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत राहत के हकदार नहीं हैं। इस दृष्टिकोण को कई उदाहरणों से समर्थन मिलता है।

19. हरि नारायण बनाम बद्री दास एआईआर 1963 एससी 1558, जीनायण स्वामी रेड्डी बनाम कर्नाटक

अनुवादित

सरकार (1991) 3 एससीसी 261 और बड़ी संख्या में अन्य मामलों में, इसअ दालत ने याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता को इस आधार पर राहत देने से इनकार कर दिया कि उन्होंने साफ हाथों से अदालत का दरवाजा नहीं खटखटाया था। हरि नारायण बनाम बद्रीदास (सुप्रा) मामले में, अदालत ने अपीलकर्ता को दी गई अनुमति को रद्द कर दिया और कहा:

> "यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत किए गए विशेष अनुमति के लिए आवेदनों में भौतिक बयान देने और आधार निर्धारित करने में, इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि कोई भी बयान न दिया जाए जो गलत, असत्यया भ्राम कहो। विशेष अनुमति के आवेदनों से निपटने में, न्यायालय स्वाभाविक रूप से याचिकाओं में निहित तथ्यों और तथ्यों के आधारों को उनके अंकित मूल्य पर लेता है और एलपीएएसडब्ल्यू संख्या 82/2019 पृष्ठ 8 ऐसे बयान देकर अदालत के विश्वास को धोखा देना अनुचित होगा जो असत्य और भ्रामक हैं । इस प्रकार, यदि अपील की सुनवाई में सर्वोच्च न्यायालय संतुष्ट है कि विशेष अनुमति के लिए अपने आवेदन में अपीलकर्ता द्वारा दिए गए भौतिक बयान गलत और भ्राम कहैं, और प्रतिवादी यह तर्क देने का हकदार है कि अपीलकर्ता ने विशेष अनुमति के लिए याचिका में निहित तथ्यों के गलत प्रतिनिधित्व के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय से विशेष अनुमति प्राप्त की होगी, सर्वोच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि ऐसे मामले में अपीलकर्ता को दी गई विशेष अनुमति को रद्द किया जाना चाहिए।

20. जी.नारायण स्वामी रेड्डी बनाम कर्नाटक सरकार के मामले (सुप्रा) में, न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित स्थगन आदेश के बारे में तथ्य को ध्यान में रखते हुए, जो निर्धारित समय अवधि के भीतर भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा निर्णय पारित करने से रोकता है, को छिपाया गया था और उपरोक्त संदर्भ में, यह पाया गया कि:

> "2. ... दिल चस्प बात यह है कि विशेष अनुमति याचिकाओं में किसी भी स्थगन आदेश का कोई संदर्भ नहीं है और हमें इन आदेशों के बारे में तब पता चला जब प्रतिवादी नोटिस के जवाब में उपस्थित हुए और अपना जवाबी हलफनामा दायर किया। हमारे विचार में, उक्त अंतरिम आदेशों का उठाए गए प्रश्न पर सीधा प्रभाव पड़ता है और इसका खुलासा न करना निश्चित रूप से भौतिक तथ्यों को दबाने के समान है। केवल इसी आधार पर विशेष अनुमति याचिकाएं खारिज की जा सकती हैं। यह

अनुवादित

कानून में अच्छी तरह से स्थापित है कि संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत राहत विवेकाधीन है और एक याचिकाकर्ता जो इस तरहकी राहत के लिए इस न्यायालय से संपर्क करता है, उसे तथ्यों के स्पष्ट और पूर्ण प्रकटीकरण के साथ आना चाहिए। यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है और भौतिक तथ्यों को दबाता है, तो उसका आवेदन खारिज कर दिया जाएगा। हम तदनुसार विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज करते हैं।

21. दलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2010) 2 एससीसी 114 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन मूल्यों में उत्तरोत्तर गिरावट पर ध्यान दिया और कहा:

1. कई शताब्दियों तक भारतीय समाज ने जीवन के दो बुनियादी मूल्यों यानी "सत्य" (सत्य) और "अहिंसा" (अहिंसा) को संजोया। महावीर, गौतमबुद्ध और महात्मा गांधी ने लोगों को अपने दैनिक जीवन में इन मूल्यों को शामिल करने के लिए मार्ग दर्शन किया। सत्य न्याय वितरण प्रणाली का एक अभिन्न अंग था जो स्वतंत्रता पूर्व युग में प्रचलन में था और लोग परिणामों के बावजूद अदालतों में सच्चाई बताने में गर्व महसूस करते थे। हालांकि, स्वतंत्रता के बाद की अवधि में हमारी मूल्य प्रणाली में भारी बदलाव देखा गया है। भौतिक वाद ने पुराने लोकाचार पर पानी फेर दिया है और व्यक्तिगत लाभ की खोज इतनी तीव्र हो गई है कि मुकदमेबाजी में शामिल लोग अदालती कार्यवाही में झूठ, गलत बयानी और तथ्यों को दबाने का आश्रय लेने में संकोच नहीं करते हैं।

2. पिछले 40 वर्षों में, वादियों का एक नया पंथ उभरा है। जो लोग इस पंथ से संबंधित हैं, वे सत्य के लिए कोई सम्मान नहीं रखते हैं। वे बेशर्मी से अपने लक्ष्यों कोप्राप्त करने के लिए झूठ और अनैतिक साधनों का सहारा लेते हैं। वादियों के इस नए पंथ द्वारा उत्पन्न चुनौती का सामना करने के लिए, अदालतों ने समय-समय पर नए नियम विकसित किए हैं और अब यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक वादी, जो न्याय की धारा को प्रदूषित करने का प्रयास करता है या जो दागदार हाथों से न्याय के शुद्ध फव्वारे को छूता है, अंतरिम या अंतिम किसी भी राहत का हकदार नहीं है।

(जोर दिया गया)

17. मोती लाल सोनगरा बनाम प्रेमप्रकाश @ पप्पू और अन्य (2013) 9 एससीसी 199 मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायालय के समक्ष तथ्यों को छिपाने के मुद्दे पर विचार करते हुए कहा कि "अदालत एक प्रयोगशाला नहीं है जहां बच्चे खेलने के लिए आते हैं", निम्नानुसार राय व्यक्त की:

"19. प्रस्तुतीकरण का दूसरा अंग यह है कि क्या तथ्यात्मक मैट्रिक्स प्राप्त करने में, आरोपी-प्रतिवादी को आरोपमुक्त करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश कानून में उचित है। हमने स्पष्ट रूप से कहा है कि यद्यपि

अनुवादित

प्रतिवादी इस तथ्य से पूरी तरह अवगत था कि विद्वान ट्रायल जज द्वारा उसके खिलाफ आरोप तय किए गए थे, फिर भी उसने संज्ञान लेते हुए आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण अदालत की सुनवाई कर रही पुनरीक्षण अदालत के संज्ञान में नहीं लाया। यह दमन का स्पष्ट मामला है। यह आरोपी की विशेष जानकारी में था। जो कोई भी न्यायालय में दमन के तरीके का सहारा लेता है, वह वास्तव में न्यायालय के साथ धोखाधड़ी कर रहा है, और जो सत्य का दमनहै, वह असत्य की अभिव्यक्ति के बराबर है, आकर्षित हो जाता है। हम ऐसा कहने के लिए मजबूर हैं क्योंकि पुनरीक्षण अदालत के समक्ष तथ्यों को जानबूझ कर छिपाया गया है। यह दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है कि आरोपी-प्रतिवादी ने इस तरह के तथ्यात्मक दमन से लाभ प्राप्त करने की कोशिश की। धोखाधड़ी का इरादा बहुत बड़ा है। वास्तव में, उन्होंने अज्ञानता का अपना साहस दिखाया है और पॉसम खेलने की कोशिश की है।

20. जैसा कि हमने देखा है, उच्च न्यायालय ने इस सिद्धांत को लागू किया कि "जब बुनियादी ढांचा ढह जाता है, तो अधिरचना का पतन होना तय है"। हालांकि, चूंकि आदेश धोखाधड़ी का अभ्यास करके और लाभ प्राप्त करने के लिए कानून की अदालत के समक्ष भौतिक तथ्य को दबाकर प्राप्त किया गया है, इसलिए उक्त आदेश को टिकने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(जोर दिया गया)

18. अमर सिंह बनाम भारतसंघ और अन्य, (2011) 7 एससीसी 69 और किशोर समरीते बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2013) 2 एससीसी 398 में भी इसी तरह के विचार व्यक्त किए गए हैं।

19. एबीसीडी बनाम भारतसंघ और अन्य (2020) 2 एससीसी 52 में हाल ही के एक फैसले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उस मामले में जहां भौतिक तथ्यों को छिपाया गया था, याचिकाकर्ता को नोटिस जारी करते हुए, अपनीस्वत: अवमानना शक्ति का प्रयोग करते हुए निम्नानुसा रकहा:

> 15. शपथ लेकर गलत बयान देना आईपीसी की धारा 181 के तहत दंडनीय अपराध है, जब कि लोक सेवक को किसी अन्य व्यक्ति को चोट पहुंचाने के लिए अपनी वैधशक्ति का उपयोग करने के इरादे से झूठी जानकारी प्रस्तुत करना भारतीय दंड संहिता की धारा 182 के तहत दंडनीय है। संहिता की धारा 195 (1) (ए) (आई) के आधार पर इन अपराधों का संज्ञान किसी भी अदालत द्वारा केवल लिखित में उचित शिकायत पर लिया जा सकता है जैसा कि उक्त धारा में कहा गया है। संहिता की धारा 195 (1) (बी) (आई) के तहत आने वाले मामलों के संबंध में, पुष्पा देवी एम. जटिया बनाम एम.एल.वधावन आदि में, (1987) 3 एससीसी 367 अभियोजन शुरू करने का निर्देश दिया गया था जब इस न्यायालय द्वारा प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज की गई थी।

16. चंद्रा शशि बनाम अनिल कुमार वर्मा (1995) 1 एससीसी 421 मामले में इस

अनुवादित

न्यायालय द्वारा यह भी निर्धारित किया गया है कि एक व्यक्ति जो अदालत को धोखा देने का प्रयास करता है, वह न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप करता है और उसे अदालत की अवमानना का दोषी ठहराया जा सकता है। उस मामले में एक पति जिसने वैवाहिक कार्यवाही के स्थानांतरण की मांग करने वाली अपनी पत्नी की प्रार्थना का विरोध करने के लिए एक मनगढ़ंत दस्तावेज दायर किया था, उसे अदालत की अवमानना का दोषी पाया गया और दो सप्ताह के कारावास की सजा सुनाई गई। यह निम्नानुसार देखा गया था:

> 1. न्याय प्रशासन की धारा को अप्रदूषित रहना चाहिए ताकि न्यायालय के वातावरण की शुद्धता राज्य के सभी अंगों को जीवन शक्ति दे सके। इसलिए, अदालत के वातावरण की सीमा को बनाए रखने के लिए न्यायिक व्यवस्था के प्रदूषकों की अच्छी तरह से देखभाल की जानी चाहिए; इसलिए इसे निष्पक्ष रूप से और सभी संबंधितों की संतुष्टि के लिए न्याय का संचालन करने में सक्षम बनाना है।
>
> 2. जो कोई भी धोखाधड़ी का सहारा लेता है, वह न्यायिक कार्यवाही की दिशा को भटकाता है; या अगर कुछ भी परोक्ष उद्देश्य से किया जाता है, तो वही न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप करता है। ऐसे व्यक्तियों से उचित तरीके से निपटने की आवश्यकता है, न केवल उन्हें गलत किए गए के लिए दंडित करने के लिए, बल्कि दूसरों को भी इसी तरह के कृत्यों में लिप्त होने से रोकने के लिए जो न्याय प्रशासन की प्रणाली में लोगों के विश्वास को हिला देते हैं।
>
> * * *
>
> 14. इस प्रकार कानूनी स्थिति यह है कि यदि प्रकाशन अदालत को धोखा देने के इरादे से किया गया है या धोखाधड़ी के इरादे से किया गया है, तो यह अवमानना होगी, क्योंकि यह न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप करेगा। यह, किसी भी मामले में, उसी के साथ हस्तक्षेप करेगा। यह निश्चित रूप से ऐसा होगा यदि उपरोक्त में सरीके साथ एक मनगढ़ंत दस्तावेज दायर किया जाता है। मामले में मनगढ़ंत दस्तावेज स्पष्ट रूप से अदालत को धोखा देने के लिए था; धोखाधड़ी करने का इरादा बहुत बड़ा है। इसलिए अनिल कुमार अवमानना के दोषी हैं।

17. के डी शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड और अन्य (2008) 12 एससीसी 481 में यह देखा गया:

अनुवादित

"39. यदि कैंसिंग्टन आयकर आयुक्तों, (1917) 1 KB 486: 86 LJKB 257: 116 LT 136 (CA) में चिह्नांकित किए गए प्राथमिक उद्देश्य को ध्यान में रखा जाता है, तो एक आवेदक जो स्पष्ट तथ्यों और "स्वच्छस्तन" के साथ नहीं आता है, वह "गंदेहाथों" से अदालत की रिट नहीं पकड़ सकता है। भौतिक तथ्यों को दबाना या छिपाना वकालत नहीं है। यह एक बाजीगरी, हेरफेर, पैंतरेबाजी या गलत बयानी है, जिसका न्याय संगत और विशेषाधिकार वाले अधिकार क्षेत्र में कोई स्थान नहीं है। यदि आवेदक सभी भौतिक तथ्यों को निष्पक्ष और सही मायने में प्रकट नहीं करता है, लेकिन उन्हें विकृत तरीके से बताता है और अदालत को गुमराह करता है, तो अदालत के पास खुद को बचाने और नियमनिसी का निर्वहन करने की अपनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए अंतर्निहित शक्ति है और गुण-दोष के आधार पर मामले की जांच के साथ आगे बढ़ने से इनकार करना है। यदि अदालत उस आधार पर याचिका को खारिज नहीं करती है, तो अदालत अपने कर्तव्य में विफल हो जाएगी। वास्तव में, ऐसे आवेदक के खिलाफ अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के लिए अदालत की अवमानना के लिए कार्रवाई की जानी चाहिए।

18. धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (1995) 3 एससीसी 757 में गलत हलफनामा दाखिल करना अवमानना क्षेत्राधिकार में कार्रवाई शुरू करने का आधार था और संबंधित व्यक्तियों को दंडित किया गया था।

20. ऊपर उल्लिखित निर्णयों में यह माना गया था कि सदियों से भारतीय समाज द्वारा पोषित दो बुनियादी मूल्यों में से एक "सत्य" (सत्य) है और इसे याचिकाकर्ता द्वारा कालीन के नीचे रखा गया है। स्वतंत्रता-पूर्वयुग में सत्य न्याय-वितरण प्रणाली का एक अभिन्न अंग था, हालांकि, स्वतंत्रता के बाद की अवधि ने हमारी मूल्य प्रणाली में भारी बदलाव देखा है। भौतिक वाद ने पुराने लोकाचार पर पानी फेर दिया है और व्यक्तिगत लाभ की खोज इतनी तीव्र हो गई है कि मुकदमे बाजी में शामिल लोग अदालती कार्यवाही में झूठ, गलत बयानी और तथ्यों को दबाने का आश्रय लेने में संकोच नहीं करते हैं। पिछले 40 वर्षों में, मूल्यों में गिरावट आई है और अब एक वादी अदालत को गुमराह करने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है। उनके मन में सच्चाई के लिए कोई सम्मान नहीं है। वादकारियों की इस नई नस्ल द्वारा उत्पन्न चुनौती का सामना करने के लिए सिद्धांत विकसित किया गया है। अब यह अच्छी तरह से तय है कि एकवादी, जो न्याय की धारा को दूषित करने का प्रयास करता है या जो दूषित

अनुवादित

हाथों से न्याय के शुद्ध फव्वारे को छूता है, अंतरिम या अंतिम किसी भी राहत का हकदार नहीं है। अदालत से भौतिक तथ्यों को छिपाना, वास्तव में अदालत के साथ धोखाधड़ी करना है। सबसे अधिक दबाव वाली अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति फैसी, यानी सत्य का दमन झूठ की अभिव्यक्ति के बराबर है, आकर्षित हो जाता है।

21. मौजूदा मामले में, याचिकाकर्ता नंबर 2, जो एक सरकारी कर्मचारी है, ने यह खुलासा नहीं किया है कि वह बेसिक शिक्षा बोर्ड में सहायक शिक्षक के रूप में कार्यरत है और इसके अलावा पक्षकारों के बीच लंबित विभिन्न आपराधिक मामलों के बारे में भी, इसलिए एक याचिका में मांग की गई है कि उनके द्वारा जनहित में दायर याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता है। हमारी राय में, वर्तमान याचिका विशेष लागत के साथ खारिज किए जाने के लायक है।

22. वर्तमान रिट याचिका तदनुसार ₹ 1,00,000/- के जुर्माने के साथ खारिज की जाती है, जिसे याचिकाकर्ता संख्या 2 द्वारा आज से एक महीने के भीतर जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, बरेली में जमा किया जाएगा। असफल होने पर, बेसिक शिक्षा अधिकारी, बरेली याचिकाकर्ता संख्या 2 के वेतन से ₹ 20,000 /- की पांच किस्तों में राशि वसूलने का हकदार होगा, क्योंकि उसका वेतन लगभग ₹ 70,000/ - प्रतिमाह बताया गया है।

23. आदेश देने से पहले, हम यह नोट करने के लिए विवश हैं कि राज्य के अधिवक्ता द्वारा प्राप्त निर्देश पूर्ण और व्यापक नहीं हैं। याचिकाकर्ता संख्या 2 की साख का उल्लेख नहीं किया गया है, हालांकि यह अभिलेख का हिस्सा है क्योंकि याचिकाकर्ता संख्या 2 के खिलाफ कई आपराधिक मामले दर्ज किए गए हैं और वह निजी प्रतिवादियों के साथ मुकदमेबाजी में है। इस तथ्य का भी उल्लेख नहीं किया गया है कि वह बेसिक शिक्षा बोर्ड के साथ एक कार्यरत सहायक शिक्षक हैं। बेसिक शिक्षा बोर्ड याचिकाकर्ता संख्या 2 के खिलाफ कदाचार और सेवानियमों के उल्लंघन के लिए उचित कार्रवाई कर सकताहै क्योंकि वह खुद को याचिकाकर्ता संख्या 1 का अध्यक्ष होने का भी दावा कर रहा है।24. आज पारित आदेश की प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा सचिव, बेसिक शिक्षा बोर्ड, उत्तर प्रदेश, लखनऊ और बेसिक शिक्षा अधिकारी, बरेली को प्रेषित की जाए।

(2023) 2 ILRA 54

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 19.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

द्वितीय अपील संख्या 313 /1997

राम सिंह

...अपीलकर्ता

बनाम

अमर सिंह एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री विजय कुमार राय, श्री के.डी. तिवारी, श्री के.डी. त्रिपाठी, श्री शादाब अली अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री के.के. तिवारी, श्री एस.के. पांडे, श्री ए. सिंह जादौन, श्री अनिल कुमार यादव, श्री अनिला सिंह, डॉ. जी.एस.डी. मिश्रा, श्री जे.एस. तोमर, श्री कृपाशंकर यादव, श्री प्रदीप सक्सैना, श्री आर.एस. तोमर

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 100 - स्थायी निषेधात्मक

अनुवादित

निषेधाज्ञा - विधि का पर्याप्त प्रश्न - निचली पीलीय न्यायालय ने कार्यवाही के कारण की अनुपस्थिति के आधार पर वाद निरस्त कर दिया - अपीलीय न्यायालय ने वादी के शांतिपूर्ण कब्जे के खतरे के संबंध में साक्ष्य द्वारा वादी की अपनी बात सिद्ध करने में विफलता के कारण इसे निरस्त कर दिया मामला- वास्तव में, वादी द्वारा अपनी तर्कों में कार्रवाई का एक कारण पर्याप्त मात्रा में व्यक्त किया है कि वह अपने शीर्षक और कब्जे को सिद्ध करने में सक्षम है, लेकिन वाद प्रतिवादियों से वादी के कब्जे की रक्षा के लिए निषेधाज्ञा है - उसके वाद की निरस्तीकरण किसी भी तरह से वादी को अपने कब्जे की रक्षा के लिए कार्रवाई करने से नहीं रोकेगी, क्या भविष्य में प्रतिवादियों के हाथों वाद संपत्ति पर उसके शांतिपूर्ण कब्जे के लिए कोई खतरा हो सकता है या कोई और उनके माध्यम से या उनके अधीन दावा कर रहा है-वाद की कार्रवाई का कारण बहुत सीमित है और यह केवल प्रतिवादियों द्वारा वादी की भूमि के अधिग्रहण से संबंधित है जिसे वादी सिद्ध नहीं कर पाया है, जिसे संरक्षित करने की आवश्यकता है - विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि निषेधाज्ञा केवल वास्तविक हस्तक्षेप या हस्तक्षेप की धमकी के प्रमाण पर ही जारी की जा सकती है, इसके अभाव में नहीं। (पैरा 1 से 41))

अपील निरस्त की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों सूची:</u>

1. हाफ़िज़ मुहम्मद इब्राहिम और अन्य बनाम पांडे चंदन सिंह और अन्य (1921) 63 इंड कैस 727
2. आर.जी. जनथकल बनाम भारत पारिख एंड कंपनी (1981)एससीसी ऑनलाइन कर 72
3. बारिद बरन लाहा बनाम मंजुरी घोषाल (2011) एससीसी कल ऑनलाइन 204

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

यह वादी की द्वितीय अपील है, जो स्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक वाद से उत्पन्न हुई है।

2. इस अपील को 1 अप्रैल, 1997 को कानून के एकमात्र महत्वपूर्ण प्रश्न पर सुनवाई के लिए स्वीकार किया गया था, यथा: "क्या वादी के स्वामित्व एवं कब्जे के कथन के विपरीत प्रतिवादियों के लिखित कथन में यह सकारात्मक कथन कि वे वसीयत के आधार पर वाद संपत्ति के मालिक एवं काबिज थे, निचली अपीलीय अदालत को वादमूल के अभाव मे वाद को निरस्त कर देना चाहिए था?

3.इस अपील के तथ्य हैं कि:

राम सिंह ने अमर सिंह व छह अन्य प्रतिवादियों के विरुद्ध मुंसिफ, रामपुर के न्यायालय मूल वाद संख्या-494/1992 योजित किया, जिसमें इस आशय के स्थायी निषेधाज्ञा के अनुतोष की मांग की गई कि प्रतिवादी, उनके नौकर और एजेंट को वादी को प्लॉट संख्या-82 और 190 वाली वाद संपत्ति से जबरन बेदखल करने या किसी भी तरह से उसके कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोका जाए। अमर सिंह, प्रतिवादी संख्या-1,वादी के पिता के भाई हैं, जबकि अन्य प्रतिवादी उनके पिता के भाई के बेटे बताए जाते हैं। वादी-अपीलकर्ता, अमर सिंह, जिसे इसके बाद 'वादी' कहा जाएगा, 20 साल का एक युवा व्यक्ति था, जब उसने मुकदमा योजित किया था। उनके पिता, कुंवर सेन का 13 जनवरी, 1990 को एक संक्षिप्त बीमारी के बाद निधन हो गया। वह अन्यथा फिट और स्वस्थ थे और उनके निधन के समय उनकी आयु लगभग 50 वर्ष थी। वादी के पिता भूमिधर के पास 0.097 हेक्टेयर का प्लॉट संख्या82 और 0.507 हेक्टेयर का प्लॉट संख्या190 था, जो गांव- सेंडू का मजरा, तहसील-स्वार, जिला-रामपुर में स्थित

है। उक्त संपत्ति को इसके बाद 'वाद संपत्ति' कहा जाएगा।

4. वादी के पिता की अचानक मृत्यु पर, वादी अकेला रह गया था, क्यूंकी उसकी माँ,उसके पिता से पहले ही मर चुकी थी। वाद संपत्ति, उसके पिता की मृत्यु के परिणामस्वरूप, वादी को अंतरित हो गई और उसका नाम निर्वसीयत उत्तराधिकार द्वारा 05.02.1990 को राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया। इस प्रकार वादी, वाद संपत्ति का कब्जे में भूमिधर बन गया।

5. वादी का मामला यह है कि प्रतिवादी संख्या-1, उसके पिता के भाई और अन्य प्रतिवादी, उसके चचेरे भाई, शातिर पुरुष हैं, जो गलत इरादे रखते हैं। प्रतिवादी, बिना किसी अधिकार के, वाद संपत्ति पर कब्जा करने की इच्छा को बढ़ावा देते हैं, वादी को नुकसान पहुंचाते हैं, जिससे उसके जीवन और संपत्ति के लिए खतरा हो रहा है। प्रतिवादियों का इरादा वादी की संपत्ति को हड़पना है। वादी का मामला यह है कि प्रतिवादियों का उक्त संपत्ति में कोई स्वामित्व, हित या हिस्सा नहीं है और न ही वे उसके कब्जे में हैं। प्रतिवादी वसीयत के आधार पर वाद संपत्ति पर अधिकार जताते हैं। वादी के पिता के निधन के बाद, वादी को नुकसान पहुंचाने के लिए प्रतिवादियों ने कुछ फर्जी और काल्पनिक वसीयत हासिल की है, जिसे वादी के पिता द्वारा कथित रूप से प्रतिवादियों के पक्ष में निष्पादित किया गया है।

6. यह वादी का मामला है कि उसके पिता अच्छे स्वास्थ्य में थे और एक संक्षिप्त बीमारी के बाद उनकी मृत्यु हो गई। उनके द्वारा की गई वसीयत, जालसाजी है। यह शून्य है। वादी पर इसका कोई बाध्यकारी प्रभाव नहीं है। वादी इकलौता बेटा है और अपने पिता की संपत्ति का वारिस होने का हकदार एकमात्र वारिस है।

7. वाद-पत्र के अनुसार, प्रतिवादियों ने बिना किसी अधिकार के और कानून के उल्लंघन में, 21.07.1992 को वाद संपत्ति में जबरन अतिचार करने का प्रयास किया और इसे जोतने का प्रयास किया। वे वादी को जबरन बेदखल करना चाहते थे, लेकिन तीसरे पक्ष की सहायता से, वादी ने प्रतिवादियों द्वारा अतिक्रमण के प्रयास को विफल कर दिया। हालांकि, प्रतिवादी मौत की धमकी देते हुए चले गए और साथ ही जबरन वाद संपत्ति पर कब्जा करने की धमकी भी दी। इसके बाद यह कहा जाता है कि यदि प्रतिवादी वादी को जबरन बेदखल करने में सफल हो जाता है, तो उसे अपूरणीय क्षति और हानि होगी। वादी के मामले को सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाने के प्रयासों को प्रतिवादीने मना कर दिया है, जिससे वादी को वर्तमान मुकदमा योजित करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

8. प्रतिवादी संख्या 1 से 6 ने एक संयुक्त लिखित कथन दिया। उन्होंने आम तौर पर वादी के आरोपों से इनकार किया और ज्यादातर अतिरिक्त दलीलों के माध्यम से पक्ष रखा। प्रतिवादियों द्वारा यह विवादित नहीं है कि वाद संपत्ति के दर्ज काश्तकार कुंवर सेन, वादी के पिता, थे। प्रतिवादियों के अनुसार, अपने जीवनकाल में, कुंवर सेन ने प्रतिवादियों के पक्ष में एक वसीयत निष्पादित की थी। कुंवर सेन के निधन के बाद, यह प्रतिवादी हैं, जो फसलों के कब्जे, जुताई और कटाई में हैं। प्रतिवादियों ने कुंवर सेन द्वारा छोड़ी गई वसीयत के आधार पर तहसीलदार, स्वार, जिला-रामपुर को दाख़िल-खारिज करके उनके नामों को दर्ज़ करने की मांग की। तहसीलदार ने

प्रकरण संख्या 164/89-90 में पारित अपने आदेश दिनांक 26.07.1990 द्वारा कुंवर सेन की अंतिम वसीयत और वसीयतनामा के आधार पर वादी के साथ प्रतिवादी के नाम का नामांतरण करने का आदेश दिया था।

9. प्रतिवादी और वादी,वाद-संपत्ति के सह-हिस्सेदार और सह-काश्तकार हैं, जिसमें वादी का एक तिहाई हिस्सा था। प्रतिवादियों के अनुसार, 05.02.1990 को, वादी ने कानूनगो और लेखपाल के साथ मिलीभगत से पूरी वाद संपत्ति को अवैध रूप से अपने नाम पर दर्ज करवा लिया था, लेकिन कानूनगो के आदेश दिनांक 05.02.1990 को तहसीलदार, स्वार ने अपने आदेश दिनांक 26.07.1990 के द्वारा रद्द कर दिया था। चूंकि वादी और प्रतिवादी,वाद संपत्ति में सह-हिस्सेदार और सह-काश्तकार हैं, इसलिए वादी निषेधाज्ञा का हकदार नहीं है।

10. प्रतिवादी का आगे का मामला यह है कि प्रतिवादी संख्या-7, हरीश चंद्र नाबालिग है, जिसकी उम्र 12 साल है। वादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में, "संहिता") के आदेश 32 नियम 1 के प्रावधानों के अनुसार उसके विरुद्ध कार्यवाही नहीं की है। इस आधार पर मुकदमा खारिज किए जाने योग्य है। वादी ने अदालत में धोखाधड़ी की है और अपर्याप्त आधार पर एक अस्थायी निषेधाज्ञा हासिल की है। अब वह इसी तरह की आज्ञप्ति चाहता है। प्रतिवादियों ने उपरोक्त मामले के आधार पर वाद को विशेष लागत के साथ खारिज करने के लिए कहा है।

11. पक्षकारों की दलीलों पर, ट्रायल कोर्ट द्वारा निम्नलिखित वाद बिन्दु निर्मित किए गए:-

"1. क्या वादी प्लॉट संख्या-82 है, 0.097 हेक्टेयर और प्लॉट संख्या-190, 0.507 हेक्टेयर हैका काबिज भूमिधर है?

2. क्या वादी के पास मुकदमा योजित करने के लिए कोई वादमूल नहीं है?

3. क्या विवादित संपत्ति का असली मालिक कुंवर सेन था, जिसने प्रतिवादियों के पक्ष में एक वसीयत की थी और उसके निधन के बाद, यह अकेले प्रतिवादी हैं, जो विवादित संपत्ति के काबिज व मालिक हैं?

4. क्या मुकदमे का मूल्यांकन कम किया गया है और अदालत-शुल्क का भुगतान अपर्याप्त है?

5. क्या प्रतिवादी संख्या7, हरीश चंद्र नाबालिग है और मुकदमा आदेश-32 नियम-1 सीपीसी के प्रावधानों द्वारा बाधित है?

6. वादी किस अनुतोष का हकदार है?"

12. वादी ने अपने मामले के समर्थन में, तीन साक्षियों का परीक्षण किया, यथा-पीडब्लू-1, राम सिंह, वादी स्वयं, गोकल, पीडब्लू-2 और राम लाल, पीडब्लू-3। प्रतिवादियों की ओर से, दो गवाहों का परीक्षण किया गया, अर्थात्, अमर सिंह, डीडब्ल्यू-1, जो मुकदमे के प्रतिवादी संख्या-1 हैं और सुखलाल, डीडब्ल्यू-2।

13. किसी भी न्यायालय ने आक्षेपित निर्णयों में दस्तावेजी साक्ष्य का उल्लेख नहीं किया है, लेकिन अभिलेखों के अवलोकन से, इस न्यायालय ने पाया कि वादी ने एक सूची, पेपर संख्या-9सी के माध्यम से दो दस्तावेज दाखिल किए। इन दस्तावेजों में से पहला प्रदर्श-1 है, जो वाद संपत्ति से संबंधित 09.08.1990 को जारी किए गए फसली वर्ष 1395-1400 के लिए छह वर्षीय खतौनी के उद्धरण की प्रमाणित प्रति है। वादी द्वारा दाखिल अन्य दस्तावेज प्रदर्श संख्या-2 है।

अनुवादित

यह फसली वर्ष 1399 के लिए वाद संपत्ति से संबंधित एक खसरा है।

14. प्रतिवादियों की ओर से, 1395-1400 फसली की अवधि के लिए छह वर्षीय खतौनी की प्रमाणित प्रति का एक उद्धरण दाखिल किया गया था और प्रदर्श क-1 के रूप में चिह्नित किया गया था।

15. विद्वान मुंसिफ, जिन्होंने वाद की सुनवाई की, उन्होने वाद बिन्दु संख्या-1 व 3 के साथ-साथ वाद बिन्दु संख्या-2 को वादी के पक्ष मे पाया। वाद बिन्दु संख्या-5 भी वादी के पक्ष में और प्रतिवादियों के विरुद्ध तय किया गया था। विभिन्न वाद बिन्दुओं पर अपने निष्कर्षों के परिणामस्वरूप, विद्वान मुंसिफ ने अपने निर्णय और डिक्री दिनांक 30.03.1996 द्वारा वाद को डिक्री किया।

16. सभी सातप्रतिवादियों ने जिला न्यायाधीश,रामपुर के यहाँ सिविल अपील संख्या-40/1999 में मुंसिफ की डिक्री की अपील की। यह अपील 18.12.1996 को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश-III, रामपुर के समक्ष सुनवाई के लिए आई, जिन्होंने अपने निर्णय और उक्त तारीख की डिक्री द्वारा अपील स्वीकृत की, और विचारण न्यायालय के निर्णय को निरस्त करते हुए, वाद को खारिज कर दिया।

17. अपीलीय डिक्री से व्यथित होकर वादी ने वर्तमान अपील योजित की है।

18. वादी के विद्वान अधिवक्ता श्री विजय कुमार राय और प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री के.के.तिवारी को सुना।

19. दोनों निचले न्यायालयों ने समवर्ती रूप से यह पाया है कि वादी, वाद संपत्ति पर काबिज व मालिक है। जाहिर है, वादी को अपने पिता कुंवर सेन से वाद संपत्ति विरासत में मिली है, जिसका स्वामित्व प्रतिवादियों द्वारा विवादित नहीं है। वादी अपने पिता की भूमिधरी के उत्तराधिकारका एकमात्र वारिस है। निचले न्यायालयों ने स्वीकार किया है कि वादी इसमें सफल रहा और उसी पर अपना कृषक कब्जा भी स्थापित किया। वादी को राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज है, वह भी उसी आधार पर। इसमें कोई संदेह नहीं है प्रतिवादियों ने उत्तराधिकार द्वारा वादी के अनन्य स्वामित्व पर सवाल उठाने का प्रयास किया है और एक वसीयत पर निर्भरता व्यक्त की है, जो मुकदमे में प्रस्तुत नहीं की गई है। प्रतिवादियों द्वारा उसे साक्ष्य में कभी भी पेश नहीं किया गया था।

20. प्रतिवादियों ने केवल एक सह-धारक के अधिकार का दावा किया है, जो उन्हें एक वसीयत के आधार पर मिला है,जो उनके दावे के अनुसार कुंवर सेन ने उनके पक्ष में की थी। वसीयत को प्रतिवादियों द्वारा निचले न्यायालयों के समक्ष साक्ष्य में कभी भी पेश नहीं किया जा रहा है, और कानून द्वारा प्रावधानित तरीके से हाशिये के गवाहों का परीक्षण करके उसे सिद्ध करना तो बहुत दूर की बात है, और ऐसे में निचली अदालतों ने प्रतिवादियों के मामले को सही तरीके से अस्वीकार कर दिया है। उत्तराधिकार के आधार पर वादी का वाद संपत्ति का स्वामित्व एवं कब्जा दोनों स्वीकार कर लिया गया है। परंतु प्रश्न यह है कि क्या वादी के कब्जे को प्रतिवादियों द्वारा धमकी दी गई है, जिसे न्यायालय के निषेधाज्ञा द्वारा संरक्षित किया जा सकता है।

21. वादी अपने कब्जे को सुरक्षित रखना चाहता है, क्योंकि प्रतिवादियों ने अपने लिखित कथन में और दाख़िल खारिज की कार्यवाही में,कुंवर सेन की कथित वसीयत के आधार पर वादी के अनन्य

अनुवादित

शीर्षक और वाद संपत्ति के कब्जे को चुनौती दी है। राजस्व अधिकारियों ने प्रतिवादियों के मामले को उस वसीयत के आधार पर दर्ज करने के लिए स्वीकार नहीं किया है,जिस पर वे निर्भर है; न ही निचले न्यायालयों ने। जैसा कि पहले ही कहा गया है, विवादास्पद प्रश्न यह हैकि: क्या प्रतिवादी वाद संपत्ति के अधिकार का दावा करते हुए, उसमें एक हिस्से का दावा करते हुए, वाद संपत्ति में वादी के कब्जे के लिए पर्याप्त खतरा है या किसी भी रूप में खतरा है? इस अपील में शामिल महत्वपूर्ण प्रश्न इसी के बारे में है।

22. विद्वान मुंसिफ ने कुंवर सेन की कथित वसीयत के आधार पर अधिकार का दावा करने के लिखित कथन में प्रतिवादी के पक्ष एवं साक्ष्य से उत्पन्न खतरे को वादी का उसके कब्जे की रक्षा करने के लिए निषेधाज्ञा की मांगके वादमूल के लिए पर्याप्त माना है। विद्वान मुंसिफ ने वादमूल को व्यापक अर्थ देने के लिए अभिलेख पर उपलब्ध सभी तथ्यों को शामिल किया है, जो वादी को अनुतोष का हकदार बना सकता है। विद्वान मुंसिफ के विचार में, प्रतिवादी का वादी के अधिकार के कमी करते हुए वसीयत के आधार पर वाद संपत्ति में एक हिस्से का दावा करना, वादमूल का आधार माना जाना चाहिए, जो वादी को उसके कब्जे की रक्षा करने वाली निषेधाज्ञा का हकदार बनाता है। उन्होंने एक धमकी भरे बेदखली के कुछ सबूतों पर भी ध्यान दिया है,जिसे उन्होंने प्रतिवादियों के दावे को वादी के अधिकार को खतरे में डालने के लिए पर्याप्त माना है, जिसे वादी न्यायालय के निषेधाज्ञा द्वारा संरक्षित करने का हकदार है।

23. हमारे समक्ष वादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवादियों के स्वीकृत रुख को देखते हुए, जो वादी के अनन्य शीर्षक और कब्जे मे कमी करता है, उसी दिशा में तर्क दिया है, वादी को वादमूल के अभाव में विफल नहीं किया जा सकता, जैसा निचली अपीलीय न्यायालय ने किया है।

24. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि प्रतिवादियों द्वारा वाद संपत्ति में किसी भी प्रकार के अतिचार या आशंकित अतिचार के बारे में कोई भी सबूत नहीं है,जिसके आधार पर वादी को निषेधाज्ञा का हकदार हो।

25. निचली अपीलीय अदालत ने वादी के पक्ष और गवाह-बॉक्स में उसके साक्ष्य को देखा है, जहां उसने पीडब्लू-1 के रूप में गवाही दी है।

26. अपने अधिकार के धमकी भरे आक्रमण और गवाह बॉक्स में उसकी गवाही के बारे में वादी के वाद-पत्र की सावधानीपूर्वक जांच पर, निचली अपीलीय अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि वादी अपने साक्ष्य में अतिचार के बारे में अपने मामले का समर्थन करने में विफल रहा है या यह कि प्रतिवादियों द्वारा वाद संपत्ति के अतिक्रमण की धमकी दी है,जिससे निषेधाज्ञा केअनुतोष के लिए वादमूल स्पष्ट हो सके।

27. निचली अपीलीय न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि वाद, वसीयत को रद्द करने के लिए नहीं है,जिसके आधार पर प्रतिवादियों ने वाद संपत्ति पर दावा किया है। यह वाद संपत्ति से बेदखली या अतिक्रमण के अनधिकृत कार्य को रोकने के लिए है, अर्थात, वादमूल एवं अनुतोष उस अतिक्रमण को रोकना के लिए है। निचली अपीलीय अदालत ने विशेष रूप से वादी की जिरह पर विचार किया है ताकि यह पता लगाया जा सके कि प्रतिवादियों द्वारा उसके कब्जे को कोई खतरा नहीं है, जिसे वादी न्यायालय के निषेधाज्ञा द्वारा संरक्षित करना चाहता है।

28. यह न्यायालय इस अपील में शामिल कानून के पर्याप्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए वादी के मामले और साक्ष्य का भी संक्षेप में उल्लेख करेगा, लेकिन ऐसा करने से पहले, इस बिंदु पर असर डालने वाले कानून पर विचार करना अनिवार्य है कि प्रतिवादियों के कथित अतिक्रमण से वादी को अपने कब्जे की रक्षा के लिए संस्थित कार्रवाई में सफल होने के लिए क्या सिद्ध करना चाहिए, चाहे वह स्वामित्व द्वारा समर्थित हो। वादी के लिए यह सिद्ध करना एक विषय हो सकता है कि उसके पास वाद संपत्ति का स्वामित्व है और यह भी कि उसके पास उसका कब्जा है; लेकिन, इसकी रक्षा के लिए निषेधाज्ञा देने के लिए अपने मामले को सिद्ध करना, दूसरा विषय। यहां तक कि अगर वादी के पास वाद संपत्ति का स्वामित्व नहीं है, लेकिन वह अपने कब्जे को सिद्ध करता है, तो वह असली मालिक या स्वामित्व वाले को छोड़कर बाकी सभी के विरुद्ध पूरी तरह से संरक्षित होने का हकदार है। वादी भी एक सीमित निषेधाज्ञा द्वारा असली मालिक या स्वामित्व-धारक के विरुद्ध अपने कब्जे की रक्षा करने का हकदार हो सकता हैकि उसे कानून के अनुसार छोड़कर, बेदखल नहीं किया जाए। लेकिन, यह विषय नहीं है और यहां शामिल प्रश्न के परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए उल्लेख किया गया है।

29. इसमें कोई संदेह नहीं हैकि वादी के पास वाद संपत्ति का स्वामित्व और कब्जा दोनों ही है और इसके बारे में कोई विवाद नहीं है। सवाल यह है कि वादी को किस वादमूल का आधार लेना चाहिए और फिर सिद्ध करना चाहिए, जिससे उसे अपने कब्जे की रक्षा के लिए निषेधाज्ञा का हकदार बनाया जा सके, स्वामित्व या कब्जा स्वामित्व के आधार पर। कब्जे की रक्षा के लिए वादमूल प्रतिवादियों के हाथों धमकी भरे बेदखली के आरोप से उत्पन्न होना चाहिए। बेदखली की धमकी,एक संभावित चोट है, जिसे वादी द्वारा असंदिग्ध साक्ष्य के माध्यम से साबित किया जाना चाहिए। यदि वादी यह बिल्कुल भी दलील नहीं देता है कि उसे वाद संपत्ति के संबंध में अपने कब्जे के लिए खतरा है, तो यह कहा जा सकता है कि उसके पास कोई वादमूल नहीं है। यदि वह अपनी दलीलों में धमकी का आरोप लगाता है, लेकिन इसे साक्ष्यों से साबित करने में विफल रहता है, तो यह उसकी कार्रवाई की विफलता का मामला होगा; न कि वादमूल का खुलासा न करने का मामला। यहाँ, यह पूर्व वाला मामला है; बाद वाला नहीं।

30. वादी ने वाद के पैराग्राफ संख्या 5, 8, 9 और 10 में इस प्रकार कहा है:

"5- यह कि वादी अपने पिता का अकेला पुत्र है। प्रतिवादीगण निहायत असरदार व शरपसन्द तथा बदनियत किस्म के व्यक्ति हैं और वह बिला हक व विरुद्ध वादी की आराजी का वादी को अकेला जानकर कब्जा करना चाहता है तथा वादी को जानी व माल नुकसान पंहुचाना चाहते हैं तथा प्रतिवादीगण हर समय जान से मारने की फिक्र में लगे हुए हैं ताकि वादी को जान से मारकर उसकी समस्त जायदाद हड़प लें।

8- यह कि प्रतिवादीगण ने बिला हक व विरुद्ध कानून दिनांक 21.07.1992 को आराजी निजाई पर जबरदस्ती कब्जा करने तथा उसे जोतने की कोशिश की और वादी को जबरदस्ती आराजी निजाई से बेदखल करना चाहा लेकिन वादी ने दीगर लोगों की मदद से प्रतिवादीगण को उनके मकसद में कामयाब नहीं होने दिया लेकिन प्रतिवादीगण वादी को आइन्दा मारने व आराजी निजाई पर जबरदस्ती कब्जा करने की धमकी देते हुए चले गये।

9- यह कि अगर प्रतिवादीगण अपने मकसद में कामयाब हो गए और उन्होंने वादी की आराजी पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया तो वादी को नाकाबिले तलाफी नुकसान होगा तथा वादी तबाह व बर्बाद हो जायेगा। प्रतिवादीगण मना करने पर सुनवा नहीं हो रहे हैं मजबूरन वादी नालिशी है।
10- यह कि बिनाये दावा व तारीख 21.07.1992 को प्रतिवादीगण द्वारा वादी को आराजी निजाई से जबरदस्ती बेदखल करने की कोशिश करने से तथा मना करने पर सुनवा न होने से बमुकाम रामपुर अन्दर हदूद अदालत हाजा पैदा हुआ तथा न्यायालय को वाद की सुनवाई का क्षेत्राधिकार प्राप्त है। "

31. वादी, जिसने पीडब्लू -1 के रूप में गवाह-बॉक्स में गवाही दी है, ने अपनी मुख्य परीक्षामें इस प्रकार कहा है:
"विवादित आराजी पर प्रतिवादीगण जबरदस्ती कब्जा करना चाहते थे इसलिए मैंने दावा कर दिया। प्रतिवादीगण के विरुद्ध मैंने तहसीलदार स्वार के यहां कार्यवाही की थी जिससे इनका नाम खारिज हो गया था और खतौनी में भी उसका अमल दरामद हो गया था। प्रतिवादीगण बदनियती के तौर पर मेरी आराजी पर नाजायज कब्जा करना चाहते हैं जिसका उन्हें कोई अधिकार नहीं है। "
32. इसके विपरीत, पीडब्लू-1 के रूप में गवाही देते हुए,उसने अपनी जिरह में कहा है:

"..... मैंने यह दावा इसलिए किया है कि वसीयतनामा झूठा है खारिज किया जाये इसी बात के बाबत मैंने अदालत से सहायता मांगी है। उस वसीयतनामे की तारीख मुझे याद नहीं जिसको मैंने खारिज कराना चाहा हो। मैंने सिर्फ यही सहायता मांगी है कि वसीयतनामा फर्जी है उसकी जांच की जाये।

..... प्रतिवादीगण जोतने बोने कभी नहीं आये न उन्होंने कोई हक मांगा। अब से चार पांच वर्ष पहले भी उन्होंने नहीं जोता बोया । यह कहना गलत है कि 21.7.92 को प्रतिवादीगण विवादित सम्पत्ति को जोता हो और तब से मैं ही जोत बो रहे हैं।"

(न्यायालय द्वारा बल प्रदान)

33. वादी की ओर से परीक्षित अन्य गवाह, अर्थात्, पीडब्लू-2, ने भी प्रतिवादियों द्वारा बेदखली या अतिक्रमण के खतरे के बारे में अपनी पूरी गवाही में एक शब्द नहीं बोला है, जिसका वादी ने अतीत में सामना किया हैया अभी भी कर रहा हो। इसी तरह, पीडब्लू-3 ने भी वादी द्वारा अतिक्रमण के खतरे के संबंध में अपनी गवाही में कुछ नहीं कहा है। इन सभी गवाहों ने प्रतिवादियों के पक्ष में कुंवर सेन द्वारा वसीयत के निष्पादन से इनकार किया है और इस तथ्य की पुष्टि की है कि वादी अपने पिता के निधन के बाद वाद संपत्ति के कब्जे में है।

34. वादी ने अपनी जिरह में स्पष्ट रूप से कहा है कि उसने वर्तमान वाद को योजित किया है, क्योंकि वह चाहता है कि न्यायालय वसीयत को रद्द कर दे, जो फर्जी है। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि न्यायालय से वह केवल एक ही सहायता चाहते हैं कि वह जाली वसीयत की वैधता की जांच करे, जो प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत हैं। वादी ने अपनी जिरह में कहा है कि प्रतिवादी कभी भी वाद संपत्ति पर खेती करने के लिए नहीं आए हैं और न ही उन्होंने इसमें कोई अधिकार मांगा है। उन्होंने 4-5 साल पहले भी वाद संपत्ति पर खेती

अनुवादित

नहीं की है। पीडब्ल्यू-1 द्वारा अपनी जिरह में सबसे महत्वपूर्ण शब्द यह है कि यह कहना गलत है कि 21.07.1992 को प्रतिवादियों ने वाद संपत्ति को जोता था। बल्कि, वादी ने अपने बारे में कहा कि वह तब से इसकी खेती कर रहा है।

35. वादी की गवाही का अवलोकनसे वाद संपत्ति में उसके कब्जे के धमकी भरे अतिक्रमण के बारे में एक शब्द भी नहीं है। बल्कि, वह प्रतिवादियों द्वारा कभी भी अपने कब्जे के लिए किसी भी खतरे को अस्वीकार करता है। इसी कारण से निचली अपीलीय अदालत ने वादी को निषेधाज्ञा के लिए यह कहते हुए अयोग्य ठहराया हैकि कोई वादमूल नहीं है। ऐसे कहने में निचली अपीलीय अदालत से थोड़ी गलत हो गई है, जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है। वादमूल वास्तव में वादी द्वारा अपनी दलीलों में बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट किया गया है, लेकिन वह अपने साक्ष्य द्वारा प्रतिवादियों द्वारा वाद संपत्ति से धमकी देने या बलपूर्ण बेदखली को साबित करने में सफल नहीं रहा है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वादी वाद संपत्ति पर अपना स्वामित्व या कब्जा साबित करने में असफल रहा है, जो उसने पर्याप्त रूप से किया है। बल्कि, यह प्रतिवादी हैं, जो वसीयत के आधार पर वाद संपत्ति के लिए अपना स्वामित्व स्थापित करने में असफल रहे हैं,जैसा वे तर्क करते हैं। वे वाद संपत्ति में अपना कब्जा भी स्थापित नहीं कर पाए हैं।

36. वाद, वादी के कब्जे को प्रतिवादियों द्वारा किसी गड़बड़ी या आसन्न गड़बड़ी से बचाने के लिए निषेधाज्ञा के लिए है, और यह साबित करना,वादी के लिए अवलंबी था। ऐसा प्रतीत होता है कि वादी ने अपने उत्तराधिकार को स्थापित करने और अपने साक्ष्यों से प्रतिवादियों की वसीयत को झूठा सिद्ध करने का प्रयास किया है, जैसे कि यह प्रतिवादियों की वसीयत को शून्य घोषित करने या उसे रद्द करने की मांग करने के लिए वाद था। लेकिन, वाद उस लिए नहीं है। मुकदमे का वादमूल बहुत सीमित है और यह केवल वही है जिसे वादी साबित करने में सफल नहीं रहा है, यथा-, प्रतिवादियों द्वारा वादी के कब्जे पर आक्रमण की धमकी दी गई है, जिसे संरक्षित करने की आवश्यकता है। इस संबंध में, हाफिज मुहम्मद इब्राहिम व अन्य बनाम पांडे चंदन सिंहव अन्य, (1921) 63 इंडकस 727में इस न्यायालय की पीठ के फैसले का संदर्भ दिया जा सकता है,जहां यह निर्धारित किया गया है:

"निषेधाज्ञा दिए जाने से पहले, आवेदक को एक कानूनी अधिकार स्थापित करना होगा। फिर उसे उस विशेष व्यक्ति द्वारा उस कानूनी अधिकार का वास्तविक या धमकी भरा आक्रमण दिखाना चाहिए, जिसके विरुद्ध वह निषेधाज्ञा का दावा कर रहा है, और उसे सबूत देना होगा,जो न्यायालय की इस सोच को समर्थित करेगा कि एक वास्तविक पर्याप्त संभावना है कि यदि न्यायालय द्वारा रोका न गया, तो शिकायत किया गया गलत कार्य या उसकी संभावना, को दोहराया जाएगा या किया जाएगा। उन मामलों को सामने लाने के लिए साक्ष्य नहीं दिये गए थे और ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधीश ने दोनों मामलों में बहुत ही लापरवाह तरीके से निषेधाज्ञा प्रदान की है। हमारी राय है कि उक्त कारणों से,हम प्रतिवादियों को निर्देश देती हुई निषेधाज्ञा नहीं दे सकतेकि चबूतरे की मरम्मत में हस्तक्षेप न करें।

37. आर.जी. जनथकल बनाम भारत पारिख एंड कंपनी, 1981 एससीसी ऑनलाइन केएआर 72 में कर्नाटक उच्च न्यायालय ने इस मामले में

विचार के लिए उत्पन्न होने वाले जैसे मुद्दे से निपटते हुए कहा:

"9. मैं उस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हूं। निचली अपीलीय अदालत के लिए उचित बात यह होगी कि प्रतिवादी के तर्कों के आलोक में वाद (अपील) को इस टिप्पणी के साथ खारिज कर देना चाहिए था कि प्रतिवादी का किसी भी तरह से, वादी के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने पर, वादी नए सिरे से निषेधाज्ञा प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र होगा। ऐसा करने के बजाय, रिकॉर्ड पर सबूतों पर चर्चा किए बिना या इस निष्कर्ष को दर्ज किए बिना कि प्रतिवादी ने किसी भी समय वादी द्वारा वाद-पत्र अनुसूची बी क्षेत्र में खनन कार्यों को करने के शांतिपूर्ण कब्जे और अधिकार के साथ किसी तरह से हस्तक्षेप किया था, निचली अपीलीय अदालत के लिए निषेधाज्ञा देना उचित नहीं था, खासकर जब घोषणा के लिए प्रार्थना अचल पत्ति से संबंधित नहीं थी, अर्थात्,वाद-पत्र अनुसूची बी क्षेत्र में खनन क्षेत्र।

10. यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि निषेधाज्ञा केवल वास्तविक हस्तक्षेप या हस्तक्षेप की धमकी के प्रमाण पर जारी की जा सकती है न कि इसके अभाव में.....

38. बारिद बरन लाहा बनाम मंजुरी घोषाल, 2011 एससीसी ऑनलाइन सीएएल-204 में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने निषेधाज्ञा से पहले खतरे के सबूत के बारे में सवाल पर विचार करते हुए टिप्पणी की:

"12. ट्रायल कोर्ट के फैसले से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने वर्तमान प्रतिवादी/विपक्षी के साक्ष्य के कुछ हिस्सों पर बहुत भरोसा किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपीलकर्ता वादी का कब्जा खतरे में था। प्रतिवादी/विपक्षी के उक्त बयानों के प्रासंगिक भाग, जिन पर ट्रायल कोर्ट ने विशेष जोर दिया, नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"मैं अपनी संपत्ति का भोग करने के अपने संवैधानिक अधिकार से वंचित हूं।" फिर हलफनामे के पैराग्राफ 22 ए में डीडब्ल्यू-1 ने स्वीकार किया कि "वैध सक्षम न्यायालयों द्वारा उक्त घोषणा के बावजूद, वादी मेरे लिए वाद संपत्ति पर विचार नहीं कर रहे हैं।" यहां तक कि जिरह में डीडब्ल्यू-1 ने कहा:- "यह कथन कि मैं स्वामित्व का दावा करता हूं और स्वामित्व का दावा करने के बावजूद मैं वाद संपत्ति का भोग नहीं कर सकता, सही है। यह एक तथ्य है कि वर्तमान में संपत्ति वादीगण के कब्जे में है। वे संपत्तियों का कब्जा मेरे पक्ष में नहीं दे रहे हैं।

13. बेशक, एक गवाह के सबूत की उचित विवेचना के लिए, पूरे साक्ष्य को समग्र रूप से पढ़ा जाना आवश्यक है। इसके अलावा अगर मैं प्रतिवादी/विपक्षी के बयानों के उन चुने हुए हिस्सों की विवेचना करता हूं, तब भी ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता/वादी को बेदखली के लिए कोई धमकी नहीं दी गई थी। विद्वान निचली अपीलीय अदालत को यह मानने में उचित थी कि यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं था कि वर्तमान प्रतिवादी/विपक्षी वाद संपत्ति को बेचने और/या अपीलकर्ता/वादी को बेदखल करने की योजना बना रहा था।

39. इस अपील में विरचित कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने से पहले, यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि यहां एक मामला है, जहां वादी ने वाद संपत्ति के लिए अपना स्वामित्व और कब्जा दोनों साबित कर दिया है। वह जो साबित करने में विफल रहा है, वह अपने कब्जे मे एक धमकी भरा अतिक्रमण है, जब उसने वाद संस्थित

किया था। इसका परिणाम यह होगा कि उसके वाद का निरस्तीकरण किसी भी तरह से वादी को उसके कब्जे की रक्षा के लिए कार्रवाई करने से नहीं रोकेगी, यदि भविष्य में कभी भी प्रतिवादियों या उनके माध्यम से या उनके द्वारा दावा करने वाले किसी अन्य व्यक्ति के हाथों वाद संपत्ति के शांतिपूर्ण कब्जे के लिए खतरा उत्पन्न होता है।

40. इस अपील में विरचित कानून का महत्वपूर्ण प्रश्न इस प्रकार उत्तरित किया जाता है कि वादी के स्वामित्व एवं कब्जे के कथन के विपरीत प्रतिवादियों के लिखित कथन मे किए गए कथन कि वसीयत के आधार परवे वाद संपत्ति के मालिक थे और उनके पास कब्जा भी था,निचली अपीलीय न्यायालय को वादमूल के अभाव मे वाद निरस्त नहीं करना चाहिए था, अपितु उसे इस आधार पर निरस्त करना चाहिए था कि वादी अपने शांतिपूर्ण कब्जे के खतरे को साक्ष्य द्वारा सिद्ध करने में विफल रहा था।

41. इस प्रकार, उन कारणों से थोड़ा अलग,जिन पर निचली अपीलीय न्यायालय ने भरोसा किया,यह न्यायालय निष्कर्ष में सहमत है।

42. परिणाम में, यह द्वितीय अपील विफल हो जाती है और निरस्त की जाती है। मामले की परिस्थितियों में, पक्षकार सभी न्यायालयों में अपनी लागत स्वयं वहन करेंगे।

43. तदनुसार एक डिक्री तैयार की जाए।

(2023) 2 ILRA 63

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 08.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट ए संख्या 3479 /2015

मध्य भोजन रसोइया मजदूर संघ, हुसैनगंज, लखनऊ

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: मृणाल चंद्रा, प्रदीप सरन

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., ए.एस.जी., अर्चना सिंह तोमर, जी.एम. कामिल, नीरज चौरसिया

भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226, 23 और 24 - वेतन संहिता, 2019- धारा 2 (वाई) और 67 - वेतन संहिता (केंद्रीय) नियम, 2019 सरकार द्वारा संचालित और सहायता प्राप्त संस्थानों में मध्याह्न भोजन तैयार करने के लिए कार्यरत रसोइयों को वेतन भुगतान रु. 2,000/- प्रति माह, जो न्यूनतम मजदूरी से कम है - आयोजित - इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि "मानदेय' नामक राशि नियमित रूप से किए जाने वाले काम के लिए रसोइयों को नियमित आधार पर भुगतान की जाती है, यह वेतन संहिता, 2019 धारा 2(y) के तहत परिभाषित मजदूरी के अतिरिक्त कुछ अन्य नहीं है - मध्याह्न भोजन उपलब्ध कराने में लगे रसोइया सहायकों को न्यूनतम मजदूरी से काफी कम दरों पर मानदेय का भुगतान, जबरन श्रम का एक अन्य रूप है, जो भारतीय संविधान अनुच्छेद 23 और 24 के तहत निषिद्ध है - जी.ओ. दिनांक 28.01.2014 एवं 20.09.2022 - रसोइया अर्ध कुशल श्रमिक - राज्य सरकार ने संस्थानों में मध्याह्न भोजन बनाने वाले रसोइयों को, क्रमांक 22 पर वर्गीकृत, अर्ध कुशल श्रमिकों के रूप में रखा और उनके

अनुवादित

लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जी. ओ. दिनांक 28.01.2014 के अनुसार 6,325/- रुपये प्रति माह की दर से और जिसे बाद में जी.ओ. दिनांक 20.09.2022 के अनुसार बढ़ाकर 10,483/- रुपये कर दिया गया - कोई कारण नहीं है कि जो याचिकाकर्ता एक ही प्रकार के कार्य में कार्यरत न्यूनतम वेतन का लाभ नहीं दिया जाना चाहिए, जैसा कि समान कार्य करने वाले लेकिन विभिन्न नियोक्ताओं द्वारा नियोजित व्यक्तियों को दिया गया है - मध्याह्न भोजन तैयार करने वाले और नियोजित रसोइया सह सहायकों को न्यूनतम वेतन का भुगतान सुनिश्चित करने के लिए परमादेश जारी किए गए। (पैरा 31) , 37, 38, 41)

अनुमत। (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम भी संघ और अन्य (रिट याचिका (सी) क्रमांक 196, 2001)
2. पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स एवं अन्य बनाम भारत संघ अन्य; (1982) 3 एससीसी 235
3. चन्द्रावती देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य रिट - 2020 का ए नंबर 9927
4. करभारी भीमाजी रोहमारे बनाम शंकर राव जेनुजी कोल्हे; (1975) 1 एससीसी 252

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मृणाल चंद्रा, प्रतिवादी/भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता श्री देव ऋषि कुमार और मध्याह्न भोजन प्राधिकरण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मुकुंद माधव अस्थाना को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका विभिन्न सरकारी संचालित और सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में मध्याह्न भोजन तैयार करने में लगे श्रमिकों की दुर्दशा को उजागर करते हुए दायर की गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि याचिकाकर्ता एक संघ है जो उन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है जो सरकार द्वारा संचालित और सहायता प्राप्त संस्थानों में मध्याह्न भोजन तैयार करने के लिए रसोइयों के रूप में कार्यरत हैं। याचिकाकर्ता संघ एक पंजीकृत ट्रेड यूनियन है। बताया जाता है कि उत्तर प्रदेश के विभिन्न विद्यालयों में बच्चों को पोषण प्रदान करने के उद्देश्य से केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार लागत साझाकरण के आधार पर प्राथमिक शिक्षा को सहायता हेतु राष्ट्रीय पोषण कार्यक्रम के अंतर्गत 'मध्याह्न भोजन कार्यक्रम' के नाम से एक कार्यक्रम चलाती हैं।

4. यह सूचित किया जाता है कि बच्चों को पोषण संबंधी सहायता प्रदान करने का निर्णय शुरू में ***पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम भारत संघ और अन्य (रिट याचिका (सी) संख्या 196 / 2001)*** (इसके बाद 'पीयूसीएल' के रूप में संदर्भित) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों दिनांक 28.11.2001 और 20.04.2004 से लिया गया था।

अनुवादित

5. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्देशों के क्रम में शासनादेश दिनांक 25.06.2004 (अनुलग्नक-5) जारी किया गया जिसमें एक कैलेण्डर वर्ष में न्यूनतम 200 दिन की अवधि के लिए विद्यार्थियों को मध्याह्न भोजन उपलब्ध कराने का निर्णय लिया गया। यह भी प्रावधान किया गया था कि उक्त उद्देश्य के लिए किए गए खर्च का 25% राज्य द्वारा पी0एम0जी0वाई0 योजना के माध्यम से वहन किया जाएगा, अन्य 25% राज्य द्वारा अपने स्वयं के कोष से प्रदान किया जाएगा और शेष 50%, जिसमें अनाज इत्यादि का लागत भी शामिल है, भारत संघ द्वारा निःशुल्क प्रदान किया जाएगा। उक्त शासनादेश में संबंधित स्कूलों और नगर निगम स्तरों पर एक समिति के गठन का भी प्रावधान है।

6. उक्त शासनादेश के अनुसार विभिन्न प्राथमिक विद्यालयों/जूनियर हाई स्कूलों में रसोइया सह सहायक की नियुक्ति एक वर्ष की अवधि के लिए की जानी थी।

7. ऐसा कहा जाता है कि मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने दिनांक 24.11.2009 को एक पत्र जारी किया था जिसमें यह प्रावधान किया गया था कि योजना के अनुसार मध्याह्न भोजन तैयार करने वाले रसोइया/सहायक रुपये 1,000/- प्रति माह के *'मानदेय'* के हकदार होंगे।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि राज्य/स्थानीय निकायों, गैर सरकारी सहायता प्राप्त कॉलेजों और मदरसों आदि द्वारा प्रबंधित विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों को मध्याह्न भोजन उपलब्ध कराने के लिए शासनादेश दिनांक 24.04.2010 (अनुलग्नक - 8) जारी किया गया था, और प्रति माह 1,000/- रुपये के मानदेय के भुगतान के संबंध में समान प्रावधान किया गया था। उक्त शासनादेश में, यह भी प्रावधान किया गया था कि सहायता प्राप्त संस्थानों, मदरसों, स्वयं सहायता समूहों और गैर सरकारी संगठनों के संबंध में रसोइयों का चयन उनके द्वारा किया जाएगा, हालांकि, राज्य और स्थानीय निकायों द्वारा प्रबंधित अन्य संस्थानों के संबंध में, चयन राज्य द्वारा किया जाना है। इस प्रकार, मानदेय की मात्रा के भुगतान के उद्देश्य से, एक ओर निजी प्रबंधन द्वारा संचालित संस्थान/मदरसे और दूसरी ओर सरकार द्वारा संचालित/सरकार की सहायता से संचालित/स्थानीय निकायों द्वारा प्रबंधित संस्थानों के साथ समान आधार पर व्यवहार किया गया।

9. मानदेय की मात्रा परिपत्र दिनांक 29.07.2010 के माध्यम से 1,000/- रुपये प्रति माह तय की गई थी, जिसे केंद्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा उपर्युक्त तय और दर्ज किए गए हिस्से में भुगतान किया जाना था।

10. इसके बाद दिनांक 09.07.2014 के आदेश के माध्यम से यह प्रावधान किया गया कि रसोइया सह सहायक को एक कैलेंडर वर्ष में केवल 220 कार्य दिवस और/या 10 महीने

की अवधि के लिए मानदेय का भुगतान किया जाएगा।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 12.01.2015 के शासनादेश पर भी विश्वास व्यक्त किया है जिसमें 10 महीने की अवधि के लिए मानदेय के भुगतान के संबंध में एक समान व्यवस्था की गई है। यह सूचित किया गया है कि बाद में मानदेय को 1,000/- रुपये प्रति माह से बढ़ाकर 1,500/- रुपये प्रति माह कर दिया गया और अंततः दिनांक 28.04.2022 के शासनादेश के माध्यम से, राज्य सरकार ने मानदेय में और राशि की वृद्धि करने का निर्णय लिया। एक कैलेंडर वर्ष में 10 महीने की अवधि के लिए रु. 500/- से रु. 2,000/- प्रति माह का भुगतान किया जाएगा। उक्त मानदेय राशि के अतिरिक्त पोशाक भत्ता मद में 500/- रूपये की राशि वर्ष में दो बार भुगतान करने का प्रावधान किया गया।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि याचिकाकर्ता मध्याह्न भोजन का काम कर रहे हैं, जो एक अर्द्ध कुशल व्यवसाय है, लेकिन उन्हें दिया जाने वाला मानदेय अत्यधिक अपर्याप्त है और यहाँ तक कि न्यूनतम मजदूरी के अनुरूप भी नहीं है जो अर्द्ध कुशल कार्य करने वाले समान व्यक्तियों को भुगतान किया जा रहा है।

13. उपर्युक्त दलील पर बल देने के लिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने शासनादेश दिनांक 28.01.2014 पर विश्वास व्यक्त किया, जिसमें राज्य सरकार ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा 3 (2) सहपठित धारा 3 (1) (ख) के तहत शक्तियों का प्रयोग किया था तथा विभिन्न अभ्यावेदनों पर विचार करने के बाद और बोर्ड से परामर्श करने के बाद न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा 5(1)(ख) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के संबंध में न्यूनतम मजदूरी का पुनर्मूल्यांकन किया और न्यूनतम मजदूरी को सुनिश्चित करने की दृष्टि से विभिन्न क्षेत्रों में उद्योगों को उक्त आदेश के क्रम संख्या 1 से 58 तक समूहों में वर्गीकृत करने और क्रम संख्या 1 से 58 पर उल्लिखित प्रत्येक उद्योग के संबंध में अकुशल श्रमिकों, अर्ध कुशल श्रमिकों और कुशल श्रमिकों को देय न्यूनतम मजदूरी की दरें उक्त शासनादेश में निर्दिष्ट दर पर उपबंधित की गई थीं।

14. उन्होंने मेरा ध्यान उक्त सूची के क्रम संख्या 22 की प्रविष्टि की ओर भी आकर्षित किया, जिसमें मुस्लिम समुदाय द्वारा संचालित मदरसे शामिल हैं जहाँ कोई शुल्क नहीं लिया जा रहा है, धार्मिक संस्थानों द्वारा संचालित निजी संस्थान जहाँ कोई शुल्क नहीं लिया जा रहा है या न्यूनतम शुल्क लिया जा रहा है, निजी कोचिंग संस्थान, निजी स्कूलों आदि को एक साथ जोड़ दिया गया है।

15. क्रम संख्या 22 में शामिल संस्थानों के संबंध में, रसोइयों को "अर्ध कुशल श्रमिक" के रूप में रखा गया है, प्रविष्टि संख्या 22 पर निर्दिष्ट संस्थान और श्रमिकों का वर्गीकरण यहां उद्धृत किया गया है:

परिशिष्ट - 1	परिशिष्ट - 1 के (क्रमांक 22) के सम्मुख उल्लिखित नियोजन के सम्बन्ध में श्रेणीकरण -
22- (क) मुस्लिम सम्प्रदाय द्वारा संचालित किसी मदरसा, जहाँ विद्यार्थियों से कोई फीस नहीं ली जा रही है या नाममात्र की फीस ली जा रही है; (ख) किसी धार्मिक या पूर्त संस्था द्वारा संचालित किसी प्राइवेट विद्यालय, जहाँ विद्यार्थियों से फीस नहीं ली जा रही है या नाममात्र की फीस ली जा रही है; (ग) उ०प्र० बाल कल्याण परिषद द्वारा संचालित बाल वाड़ियों; और	**अकुशल-** चपरासी, चौकीदार, रिक्शाचालक, माली, क्लीनर, बेलदार, मसालची. आया, बेयरा, केयर टेकर और इसी प्रकार का कार्य करने वाला कोई अन्य कर्मचारी चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाये। **अर्द्धकुशल** -दफ्तरी, राजगीर (मैसन) रसोईया और इसी प्रकार का कार्य करने वाला कोई अन्य कर्मचारी चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाये। **कुशल**- बस / ट्रक ड्राईवर, बढ़ई, प्लम्बर, इलेक्ट्रीशियन, लैब असिस्टेन्ट, टेलर, नर्स, कम्पाउण्डर, लिपिक/टंकक, लाईब्रेरियन / कॅशियर, कनिष्ठ लेखाकार, ज्येष्ठ लेखाकार, प्रधान लिपिक, हेड कैशियर और इसी प्रकार का कार्य करने वाला कोई अन्य कर्मचारी चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाये।
(घ) मान्यता प्राप्त किसी प्राइवेट विद्यालय, जिसे सरकार से सहायता मिल रही है, से भिन्न प्राइवेट कोचिंग कक्षाओं, प्राइवेट विद्यालयों, जिनमें नर्सरी स्कूल और निजी प्राविधिक संस्थाएं भी सम्मिलित हैं, में नियोजन ।	

16. उसी के आलोक में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि मदरसों विभिन्न धार्मिक संस्थानों द्वारा प्रबंधित संस्थानों और निजी निकायों द्वारा प्रबंधित संस्थानों में रसोइया के रूप में काम करने वाले व्यक्तियों को अर्ध कुशल के रूप में वर्गीकृत किया गया है और दिनांक 28.01.2014 के शासनादेश द्वारा न्यूनतम वेतन 6,325/- रूपये प्रति माह निर्धारित किया गया है।

17. आगे बताया गया है कि 20.09.2022 को, राज्य सरकार ने शासनादेश दिनांक 28.01.2014 में निर्दिष्ट विभिन्न श्रेणियों के संबंध में न्यूनतम मजदूरी को संशोधित किया गया है और हर छह महीने में महंगाई

अनुवादित

भत्ता बढ़ाने के प्रावधान के साथ अर्द्ध कुशल श्रमिकों के लिए मजदूरी 6,325/- रुपये प्रति माह से बढ़ाकर 10,483/- रुपये प्रति माह किया गया है।

18. उक्त के आलोक में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दो तर्क प्रस्तुत किए हैं, पहला, कि भारत संघ और राज्य सरकार की योजना के अनुसरण में रसोइयों को 1,000/- रुपये प्रति माह शुल्क के भुगतान को बढाकर प्रति माह 1,500/- रुपये और तत्पश्चात 2,000/- रुपये प्रति माह तक बढ़ाया जाना *'बलात् श्रम का एक और रूप'* है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 23 के तहत निषिद्ध है, और दूसरा यह कि संघ और राज्य याचिकाकर्ता सदस्यों को समान कार्य करने वाले लेकिन अन्यत्र कार्यरत रसोइयों को भुगतान के लिए राज्य द्वारा निर्धारित वेतन से बहुत कम वेतन देने में भेदभाव कर रहे हैं।

19. विधिज्ञ परिषद् में यह तर्क दिया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसरण में केंद्र सरकार ने स्वयं 'वेतन संहिता (केंद्रीय)नियमावली, 2019' के रूप में ज्ञात नियम बनाए हैं, जिसमें न्यूनतम वेतन तय करने के लिए कुछ मानदंड निर्धारित किए गए हैं। यह सूचित किया जाता है कि उक्त वेतन संहिता (केंद्रीय) नियमावली, 2019 को अनुमति मिल गई और 08.08.2019 को राजपत्र में अधिसूचित किया गया। उक्त के आलोक में, उनका तर्क है कि अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी प्रदान न करना *'शोषण'* के अलावा और कुछ नहीं है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 23 के तहत भी निषिद्ध है।

20. उनका यह भी तर्क है कि राज्य सरकार ने भी उन रसोइयों को न्यूनतम वेतन के भुगतान के लिए निर्देश जारी किया है जो समान काम कर रहे हैं लेकिन मदरसों, अन्य धार्मिक संस्थानों, निजी शैक्षणिक संस्थानों आदि में कार्यरत हैं, और इस प्रकार, कोई कारण नहीं है कि राज्य सरकार व केंद्र सरकार को सरकारी संस्थानों में मध्याह्न भोजन बनाने वाले रसोइयों को उक्त लाभ नहीं देना चाहिए।

21. उसने आगे यह तर्क प्रस्तुत किया कि किसी विशेष कैलेंडर वर्ष में केवल 10 महीने की अवधि के लिए मानदेय की सीमा तय करने का कोई औचित्य नहीं है।

22. उनका आगे तर्क है कि मध्याह्न भोजन बनाने वाले कुछ रसोइयों को एक वर्ष के लिए अनुबंध पर नियोजित किया जाता है और हालांकि अधिकांश मामलों में अनुबंध वार्षिक आधार पर बढ़ाए जाते हैं, लेकिन कुछ मामलों में गरीब रसोइयों को कोई राहत उपलब्ध कराए बिना अनुबंधों को आगे नहीं बढ़ाया जाता है। कुछ मामलों में मध्याह्न भोजन बनाने वाले रसोइयों को बिना किसी सामाजिक सुरक्षा लाभ के अल्प मानदेय पर 15 वर्षों से नियोजित किया गया है और गरीब रसोइये अपनी गरीबी के कारण कोई शिकायत करने में असमर्थ हैं। उनका तर्क है कि मध्याह्न भोजन के रसोइयों को न तो कोई वित्तीय सुरक्षा दी जा रही है और न ही

कोई सामाजिक सुरक्षा और संघ व राज्य उक्त रसोइयों का शोषण कर रहे हैं।

23. उन्होंने बताया कि इस न्यायालय ने मध्याह्न भोजन रसोइयों की दुर्दशा को देखते हुए की रिट - ए नंबर 9927 / 2020 (चंद्रवती देवी बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य) में एक आदेश पारित किया था, जिसमें एक समान मुद्दा, मध्याह्न भोजन तैयार करने वाले रसोइयों को प्रति माह 1,000/- रुपये की दर से मजदूरी के भुगतान के संबंध में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 23 के तहत निषिद्ध बलात् श्रम के अन्य प्रकार के रूप में माना गया था। न्यायालय ने ***पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स एंड अदर्स बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एंड अदर्स; (1982) 3 एससीसी 235*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विश्वास व्यक्त करते हुए रिट याचिका को स्वीकार कर लिया था और दिनांक 15.12.2020 के फैसले के जरिए सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश राज्य में रसोइयों को न्यूनतम मजदूरी के भुगतान के निर्देश दिए थे। उन्होंने आगे तर्क दिया कि उक्त आदेश को विशेष अपील त्रुटिपूर्ण संख्या 123 / 2021 में मुख्य रूप से इस आधार पर अपास्त कर दिया गया था कि न्यायालय द्वारास्वीकृत अनुतोष उक्त रिट याचिका में प्रार्थित अनुतोष से परे था।

24. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क देकर निर्दिष्ट दरों पर मानदेय के भुगतान को उचित ठहराने की कोशिश की कि केंद्र सरकार ने स्कूल जाने वाले बच्चों में स्वास्थ्य देखभाल में सुधार करने और समाज के कम विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग को शिक्षा प्रदान करने की दृष्टि से, योजना की पहुँच बढ़ाने के उद्देश्य से बच्चों को मध्याह्न भोजन उपलब्ध कराने की योजना को बढ़ावा दिया, योजना के प्रशंसनीय उद्देश्य को अधिकतम करने और प्राप्त करने के लिए धन की अल्पता और आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, मानदेय निर्धारित किया।

25. आगे यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि योजना के तहत रसोइयों को दिए जाने वाले मानदेय को वेतन के बराबर नहीं किया जा सकता है, जैसा कि याचिकाकर्ताओं द्वारा तर्क दिया जा रहा है।

26. परस्पर विरोधी प्रस्तुतिकरण के अलोक में इस न्यायालय को यह तय करना है कि क्या मध्याह्न भोजन योजना के तहत नियोजित रसोइयों को दिया जाने वाला मानदेय पर्याप्त है, और क्या उन्हें सरकारी स्कूलों के अलावा अन्य संस्थानों में समान कार्य करने वाले रसोइयों को दिए जाने वाले न्यूनतम वेतन के संबंध में भेदभाव का सामना करना पड़ रहा है।

27. वर्तमान रिट याचिका में उठाए गए मुद्दे को याचिकाकर्ता संघ के सदस्यों, जो समाज के वंचित वर्ग से है तथा जिन्हें योजना के अनुसार उनके द्वारा किए जा रहे कार्यों के लिए अल्प मानदेय का भुगतान किया जा रहा है, के अधिकारों का निर्वचन करते हुए सामाजिक संदर्भ निर्णय तकनीक

को अपनाकर न्यायनिर्णीत किया जाना चाहिए, ।

28. शॉर्टर ऑक्सफ़ोर्ड शब्दकोष में परिभाषित *"मानदेय"* शब्द *"एक मानद पुरस्कार, प्रदान की गई पेशेवर सेवा के लिए एक शुल्क"* है और इसका उपयोग अक्सर श्रमवश नियमित आधार पर भुगतान किए जाने वाले पारिश्रमिक के लिए किया जाता है जिसे आम तौर पर 'वेतन' या 'मजदूरी' कहा जाता है। "मानदेय" शब्द आम तौर पर किसी प्रदर्शन के लिए किए गए भुगतान को संदर्भित करता है जो किसी विशेष कार्य के प्रतिकार के रूप में होता है।

29. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***करभारी भीमाजी रोहमारे बनाम शंकर राव जेनुजी कोल्हे के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय; (1975) 1 एससीसी 252*** के प्रकरण में व्याख्यायित किया कि किए गए भुगतानों का निर्धारण करने के लिए, यह उसके नामकरण के बजाय भुगतान के सार के रूप को प्रस्तुत करने वाला पदार्थ है जो 'मानदेय' या 'वेतन' या 'भत्ता' शब्द के उपयोग के बावजूद किए गए भुगतान की प्रकृति को निर्धारित करने के लिए मार्गदर्शक कारक होना चाहिए। माननीय उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तर-6 में निम्नानुसार अभिलिखित किया:

> *"6. पूरा विवाद वेतन बोर्ड के सदस्यों को देय मानदेय के इर्द-गिर्द केंद्रित है। अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया है कि मद 11 में विशेष रूप से कहा गया है कि प्रतिकारात्मक भत्ता का मतलब यात्रा भत्ता, दैनिक भत्ता या ऐसा अन्य भत्ता होगा जो समिति या निकाय की बैठक में भाग लेने या उक्त कार्यालय के धारक के रूप में किसी अन्य कार्य को करने में व्यक्तिगत व्यय को पूरा करने के उद्देश्य से कार्यालय के धारक को भुगतान किया जाता है, और जो मानदेय वहाँ उल्लेखित नहीं है उसे उस मद में पाए गए "ऐसे अन्य भत्ते" शब्दों के अर्थ में,नहीं लाया जा सकता है क्योंकि यह कोई भत्ता नहीं है। "मानदेय" शब्द के शब्दकोश अर्थ का संदर्भ दिया गया और कहा गया कि जहाँ दैनिक भत्ते से बोर्ड की बैठक में भाग लेने के दौरान संबंधित सदस्य के खर्चों को पूरा करने की उम्मीद की जाती है, वहाँ मानदेय, उन दिनों अपने कर्तव्यों का पालन करने के परिपेक्ष में शुल्क के रूप में होता है। <u>शॉर्टर ऑक्सफ़ोर्ड शब्दकोष में "मानदेय" शब्द का अर्थ एक मानद पुरस्कार, प्रदान की गई पेशेवर सेवा के लिए एक शुल्क के रूप में दिया गया है, जबकि "वेतन" शब्द का एक अर्थ है, किसी व्यक्ति को नियमित काम के लिए मुआवजे के रूप में समय-समय पर किया जाने वाला निश्चित भुगतान, प्रदान की गई सेवाओं के लिए पारिश्रमिक, शुल्क, मानदेय। इस प्रकार, एक पहलू में मानदेय और शुल्क का उपयोग</u>*

लगभग इस तरह किया जाता है जैसे कि वे विनिमेय शब्द हों, फिर भी, पहले प्रतिवादी को जो भुगतान किया गया था उसे वेतन नहीं कहा जा सकता है। यह नियमित कार्य के प्रतिकर के रूप में समय-समय पर किया जाने वाला निश्चित भुगतान नहीं था। हमें नहीं लगता कि शब्दकोश का अर्थ यहां बहुत सहायक है। ***हमारी राय है कि इस मामले को प्रकृति के बजाय तात्विक रूप में, इसके नामकरण के बजाय भुगतान के सार के रूप में माना जाना चाहिए। फिर भी, अपीलकर्ता की ओर से यह आग्रह किया गया है कि इस मामले में मानदेय का भुगतान उन विशेष दिनों में, जब वेतन बोर्ड की बैठकें आयोजित की गई थीं, प्रदान की गई सेवाओं के भुगतान के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं हो सकता है। हम इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते।"***

30. वेतन संहिता, 2019 धारा 2 के खंड (म) में "मजदूरी" को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:

"2. इस संहिता में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो।

(म) "मजदूरी " से धन के रूप में अभिव्यक्त अथवा इस प्रकार अभिव्यक्त हो सकने वाला ऐसे सभी पारिश्रमिक चाहे वह वेतन, भत्तों के रूप में हो या अन्यथा हो अभिप्रेत है, जो यदि किसी नियोजित व्यक्ति को, नियोजन के अभिव्यक्त या विवक्षित निबंधनों की पूर्ति हो गयी होती तो, उसके नियोजन की बाबत या ऐसे नियोजन में किये गए काम की बाबत ऐसे संदेय होता, और निम्नलिखित इसके अंतर्गत आते हैं, -

(i) मूल वेतन;

(ii) महंगाई भत्ता; और

(iii) प्रतिधारण भत्ता, यदि कोई हो;

किन्तु इसके अंतर्गत निम्नलिखित नहीं आते हैं -

(क) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन संदेय कोई बोनस, जो नयोजन के निबंधनों के अधीन संदेय पारिश्रमिक का भाग नहीं है;

(ख) किसी गृहवास सुविधा का या रोशनी, जल, चिकित्सीय परिचर्या या अन्य सुख- सुविधा के प्रदाय का या किसी ऐसी सेवा का मुल्य, जो राज्य सरकार के साधारण या विशेष

आदेश द्वारा मजदूरी की संगणना के अपवर्जित है;

(ग) किसी पेंशन या भविष्य - निधि में नियोजक द्वारा संदत्त कोई अभिदाय और ब्याज जो उस पर प्रोदभूत हुआ हो ;

(घ) कोई वाहन भत्ता या किसी रियायत का मूल्य ;

(ड़) किसी नियोजित व्यक्ति को विशेष व्यय चुकाने के लिए संदत्त कोई राशि, जो उसे अपने नियोजन की प्रकृति के कारन उठाने पड़े;

(च) मकान किराया भत्ता ;

(छ) पक्षकारों के बीच के किसी अधिनिर्णय या समझौता अथवा किसी न्यायालय या अधिकरण के आदेश के अधीन संदेय पारिश्रमिक;

(ज) कोई अतिकाल भत्ता;

(झ) कर्मचारी को संदेय की कमीशन;

(ञ) नियोजन के पर्यवसित होने पर संदेय कोई उपदान ;

(ट) किसी कर्मचारी को कोई छंटनी प्रतिकर या कोई सेवानिवृत्ति लाभ या नियोजन के पर्यवसान पर उसे कोई अनुग्रहपूर्वक किया गया संदाय;

परन्तु यह कि इस खंड के अधीन मजदूरी की संगणना के लिए आधे से अधिक या ऐसे अन्य प्रतिशत, जो केंद्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किया जाये, यदि खंड (क) से (झ) के अधीन नियोजन द्वारा संदाय किया गया है तो इस खंड के अधीन विनिर्दिष्ट सभी पारिश्रमिक के रकम के आधे से अधिक से इस प्रकार अधिसूचित प्रतिशत से अधिक है, संदाय किया गया है, पारिश्रमिक के रूप जोड़ी जाएगी, इस खंड के अधीन सभी परिश्रमिकों में तदनुसार जोड़ी जाएगी :

परन्तु यह कि सभी लिंगों के लिए सामान मजदूरी के प्रोयोजन के लिए और मजदूरी के संदाय के प्रयोजन के लिए खंड (घ), खंड (च), खंड (छ), और खंड (ज) में निर्दिष्ट

उपलब्धियां मजदूरी के संगणना के लिए ली जाएगी।

स्पष्टीकरण - जहाँ कोई कर्मचारी उसे संदेय योग्य मजदूरी के पूर्णतः या भागतः उसके बदले उसके नियोजक द्वारा वास्तु रूप में ऐसी पारिश्रमिक का मूल्य जो उसको संदेय कुल मजदूरी के पंद्रह प्रतिशत से अधिक नहीं है वस्तु रूप में ऐसे परिश्रमिक कर्मचारी की मजदूरी के भाग के रूप में समझा जायेगा;"

31. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि नियमित कार्य के लिए रसोइयों को नियमित आधार पर 'मानदेय' नामक राशि का भुगतान किया जाता है, यह वेतन संहिता, 2019 धारा 2 के खंड (म) के तहत परिभाषित "मजदूरी" के अलावा और कुछ नहीं है।

32. केंद्र सरकार नेवेतन संहिता, 2019 की धारा 67 सहपठित साधारण खण्ड अधिनियम की धारा 24 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए वेतन संहिता (केंद्रीय) नियमावली, 2019 के रूप में जाने जाने वाले नियमों को अधिसूचित किया है और इन्हें संपूर्ण भारत में लागू किया गया है।

33. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अन्य तर्क का परीक्षण करने के लिए कि भुगतान किया जाने वाला मानदेय और कुछ नहीं बल्कि बलात श्रम का एक अन्य रूप है, ***पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (उपरोक्त)*** के मामले में उच्चतम न्यायालय के फैसले पर ध्यान देना प्रासंगिक है जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

12. अनुच्छेद 23 निम्नलिखित निबंधनों में एक बहुत ही महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार अधिनियमित करता है:

"23. मानव के दुर्व्यापार और बलात् श्रम का प्रतिषेध:–

(1) मानव का दुर्व्यापार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात् श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है और इस उपबंध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।

(2) इस अनुच्छेद में कुछ भी राज्य को सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए अनिवार्य सेवा लागू करने से नहीं रोकेगा, और ऐसी सेवा लागू करने में राज्य केवल धर्म, नस्ल, जाति या वर्ग या उनमें से किसी के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।"

अब भाग III में अधिनियमित कई मौलिक अधिकार राज्य की शक्ति पर निर्बंधनों के रूप में कार्य करते हैं और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अतिक्रमण न करने के लिए राज्य पर नकारात्मक दायित्व डालते हैं और वे केवल राज्य के विरुद्ध

प्रवर्तनीय हैं। लेकिन संविधान द्वारा प्रदत्त कुछ मौलिक अधिकार हैं जो पूरी दुनिया के विरुद्ध प्रवर्तनीय हैं और उन्हें अन्य बातों के साथ-साथ अनुच्छेद 17, 23 और 24 में पाया जाता है। हम इस फैसले के पहले हिस्से में अनुच्छेद 24 के वास्तविक परिधि और विस्तार पर पहले ही चर्चा कर चुके हैं और इसलिए हम इसके बारे में और कुछ कहने का प्रस्ताव नहीं करते हैं। इसलिए, हमें अनुच्छेद 17 में निहित मौलिक अधिकार के उचित अर्थ और प्रभाव के बारे में विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वर्तमान रिट याचिका में हमारा उस अनुच्छेद से कोई सरोकार नहीं है। यह अनुच्छेद 23 है जिससे हम चिंतित हैं और वह अनुच्छेद स्पष्ट रूप से न केवल राज्य के विरुद्ध बल्कि अन्य निजी नागरिकों के विरुद्ध भी व्यक्ति की रक्षा के लिए बनाया गया है। अनुच्छेद 23 राज्य के विरुद्ध अपने आवेदन में सीमित नहीं है, लेकिन यह "मानव तस्करी और बेगार और किसी अन्य द्वारा किए जाने वाले जबरन श्रम के अन्य समान रूपों" को प्रतिबंधित करता है। अनुच्छेद 23 का दायरा व्यापक और असीमित है और यह "मानव तस्करी और बेगार और बलात् श्रम के अन्य समान रूप" पर प्रहार करता है, जहाँ भी वे पाए जाते हैं। मौलिक अधिकारों के अध्याय में इस प्रावधान को लागू करने का कारण संविधान लागू होने के समय लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में पाया जाना है। संविधान निर्माताओं ने, जब संविधान का निर्माण करना शुरू किया, तो उन्होंने पाया कि उनके सामने देश की सामाजिक-आर्थिक संरचना को बदलने और सामाजिक और आर्थिक न्याय तक पहुंचने की दृष्टि से सामाजिक-आर्थिक उत्थान लाने का बहुत बड़ा काम था। आम आदमी. लगभग दो शताब्दियों के विदेशी शासन के कारण लहूलुहान हो चुके लोगों का एक बड़ा समूह था जो घोर गरीबी और अभाव में जी रहा था, अज्ञानता और निरक्षरता उनकी असहायता और निराशा को बढ़ा रही थी। समाज एक स्थिति-उन्मुख पदानुक्रमित समाज में बदल गया था, जिसमें उस व्यक्ति की गरिमा के लिए बहुत कम सम्मान था जो सामाजिक सीढ़ी के निचले पायदान पर था या आर्थिक रूप से कमजोर स्थिति में था। राजनीतिक क्रांति पूरी हो गई थी और वह देश में आजादी लाने में सफल रही थी, लेकिन आजादी अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं थी, यह केवल लक्ष्य को पाने का एक साधन था, लक्ष्य था लोगों को उपलब्धि के ऊंचे स्तर तक पहुंचाना और संपूर्ण उन्नति एवं कल्याण हासिल करना था। राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई

मतलब नहीं था जब तक कि इसके साथ सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता न हो और इसलिए सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को बनाने की दृष्टि से सामाजिक और आर्थिक क्रांति को आगे बढ़ाना आवश्यक था जिससे हर कोई बुनियादी मानवाधिकारों का आनंद ले सकेगा और समतावादी सामाजिक और आर्थिक ढांचे में स्वतंत्रता और स्वतंत्रता के फल में भाग ले सकेगा। इसी उद्देश्य से संविधान निर्माताओं ने एक नई सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के संवैधानिक लक्ष्य को निर्धारित करते हुए संविधान के भाग IV में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों को अधिनियमित किया। अब हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक विशेषता थी जो बदसूरत और शर्मनाक थी और जिस पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता थी और वह थी देश के बड़े हिस्से में बंधुआ या बलात् मजदूरी का अस्तित्व। यह बुराई एक सामंती शोषक समाज का अवशेष थी और यह नई समतावादी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के साथ पूरी तरह से असंगत थी, जिसे "हम भारत के लोग" बनाने के लिए प्रतिबद्ध थे और यह बुनियादी मानवीय गरिमा का घोर और सबसे विद्रोही खंडन था। इसलिए इस हानिकारक प्रथा को खत्म करना और इसे राष्ट्रीय परिदृश्य से पूरी तरह से मिटा देना आवश्यक था और यह तुरंत किया जाना था क्योंकि स्वतंत्रता के आगमन के साथ, इस तरह की प्रथा को अब राष्ट्रीय जीवन को कलंकित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी। जाहिर है, केवल राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में बलात् श्रम के उन्मूलन को शामिल करना पर्याप्त नहीं होता, क्योंकि तब इस प्रथा को गैरकानूनी घोषित करना कानूनी रूप से प्रवर्तनीय नहीं होता और यह बुनियादी संवैधानिक मानदंडों और मूल्यों का उल्लंघन करके हमारे राष्ट्रीय जीवन को तब तक प्रभावित करता रहेगा जब तक विधायिका द्वारा इस तरह की प्रथा पर रोक लगाने के लिए कोई उचित कानून नहीं लाया जाता। इसलिए संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों के अध्याय में इसके विरुद्ध संवैधानिक निषेध लागू करके इस बुरी प्रथा को खत्म करने के अपने संकल्प को आगे बढ़ाने का फैसला किया, ताकि संविधान के लागू होते ही ऐसी प्रथा का उन्मूलन प्रवर्तनीय एवं प्रभावशील हो सके। यही कारण है कि अनुच्छेद 23 में अधिनियमित प्रावधान को मौलिक अधिकारों के अध्याय में शामिल किया गया। "मानव तस्करी और बेगार और बलात् श्रम के अन्य समान रूपों" के विरुद्ध निषेध का स्पष्ट रूप से एक सामान्य निषेध है, जो अपने

प्रभाव में पूर्ण और अपनी सीमा में व्यापक है और यह न केवल राज्य के विरुद्ध बल्कि किसी अन्य व्यक्ति के भी विरुद्ध लागू करने योग्य है, जो ऐसी किसी प्रथा में लिप्त है।

13. तो फिर सवाल यह है कि अनुच्छेद 23 में "मानव तस्करी और बेगार और बलात् श्रम के अन्य समान रूप" अभिव्यक्ति का सही दायरा और अर्थ क्या है? उस अनुच्छेद द्वारा निषिद्ध "बलात् श्रम" के कौन से रूप हैं और किसी व्यक्ति द्वारा प्रदान किए गए किस प्रकार के श्रम को "बलात् श्रम" माना जा सकता है ताकि वह इस निषेध के अंतर्गत आ सके? जब संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद 23 को अधिनियमित किया तो उनके सामने मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा का अनुच्छेद 4 था, लेकिन वे जानबूझकर इसकी भाषा से हट गए और ऐसे शब्दों का इस्तेमाल किया जो अनुच्छेद 23 की पहुंच और विषयवस्तु को मानव अधिकारों का सार्वजनिक घोषणापत्र का अनुच्छेद 4 की तुलना में बहुत व्यापक बना देते।। उन्होंने "मानव तस्करी" पर प्रतिबंध लगा दिया, जो "दास व्यापार" की तुलना में बहुत बड़े पैमाने की अभिव्यक्ति है और उन्होंने "बेगार और बलात् श्रम के अन्य समान रूपों" पर भी रोक लगा दी। प्रश्न यह है कि "बेगार" और बलात् श्रम के अन्य समान रूपों की अभिव्यक्ति का परिधि क्षेत्र और दायरा क्या है? क्या यह अभिव्यक्ति इतनी व्यापक है कि इसमें जबरन श्रम के हर कल्पनीय रूप को शामिल किया जा सके और "बलात् श्रम" शब्द का वास्तविक दायरा और अर्थ क्या है? इस लेख में "बलात्" शब्द अंग्रेजी भाषा में आम उपयोग का शब्द नहीं है। यह भारतीय मूल का शब्द है जिसने कई अन्य शब्दों की तरह अंग्रेजी शब्दावली में अपना स्थान बना लिया है। "बेगार" शब्द की सटीक परिभाषा तैयार करना बहुत मुश्किल है, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह बलात् श्रम का एक रूप है जिसके तहत किसी व्यक्ति को बिना कोई पारिश्रमिक प्राप्त किए काम करने के लिए मजबूर किया जाता है। मोल्सवर्थ ने "बेगार" का वर्णन "किसी सरकार या सत्ता में बैठे व्यक्ति द्वारा बिना पारिश्रमिक दिए लिया गया श्रम या सेवा" के रूप में किया है। विल्सन की न्यायिक और राजस्व शर्तों की शब्दावली "बेगार" शब्द का निम्नलिखित अर्थ देती है: "एक मजबूर मजदूर, जिसे व्यक्तियों या जनता के लिए बोझ ढोने के लिए मजबूर किया जाता है। पुरानी व्यवस्था के तहत सार्वजनिक सेवा के लिए दबाव डालने पर कोई वेतन

नहीं दिया जाता था। बेगारी, हालांकि अभी भी सार्वजनिक वस्तुओं के लिए दबाव डालने के लिए उत्तरदायी है, अब उसे वेतन मिलता है। निजी सेवा के लिए बलात् श्रम निषिद्ध है।" इसलिए "बेगार" को मोटे तौर पर श्रम या सेवा के रूप में वर्णित किया जा सकता है जिसे किसी व्यक्ति को इसके लिए कोई पारिश्रमिक प्राप्त किए बिना देने के लिए मजबूर किया जाता है। एस वासुदेवन बनाम एस डी मिताल [एआईआर 1962 बॉम 53: 63 बॉम एलआर 774: (1961-62) 21 एफजेआर 441] मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा स्वीकार किए गए "बेगार" शब्द का यही अर्थ था। इस प्रकार "बेगार" स्पष्ट रूप से बलात् श्रम का एक रूप है। अब यह केवल "बेगार" नहीं है जो अनुच्छेद 23 द्वारा असंवैधानिक रूप से निषिद्ध है, बल्कि बलात् श्रम के अन्य सभी समान रूपों पर भी प्रतिबंध है। यह अनुच्छेद किसी भी रूप में बलात् श्रम पर प्रहार करता है, क्योंकि यह मानवीय गरिमा का उल्लंघन है और बुनियादी मानवीय मूल्यों के विपरीत है। मानव अधिकारों से संबंधित लगभग हर अंतरराष्ट्रीय दस्तावेज़ में बलात् श्रम की प्रथा की निंदा की गई है। यह जानना दिलचस्प है कि मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा के अस्तित्व में आने से बहुत पहले 1930 में, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने कन्वेंशन संख्या 29 को अपनाया था जिसमें कहा गया था कि अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रत्येक सदस्य जो इस कन्वेंशन की पुष्टि करता है, "इसके सभी रूपों में बलात् या अनिवार्य श्रम के उपयोग को रोक देगा" इस निषेध को 1957 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा अपनाए गए कन्वेंशन संख्या 105 में विस्तृत किया गया था। कन्वेंशन संख्या 29 में "बलात् या अनिवार्य श्रम" शब्द का अर्थ निश्चित रूप से सीमित था, लेकिन कन्वेंशन के अनुच्छेद 2 में दी गई इन शब्दों की सीमित परिभाषा के कारण ऐसा था। मानव अधिकारों पर यूरोपीय कन्वेंशन के अनुच्छेद 4 और नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध के अनुच्छेद 8 भी बलात् या अनिवार्य श्रम पर रोक लगाते हैं। अनुच्छेद 23 भी इसी प्रकृति का है और यह किसी भी रूप में बलात् श्रम के विरुद्ध प्रतिबंध लगाता है। प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने "समरूप" शब्द पर कुछ जोर दिया और तर्क दिया कि यह हर प्रकार का बलात् श्रम नहीं है जो अनुच्छेद 23 द्वारा निषिद्ध है, बल्कि केवल जबरन श्रम का ऐसा रूप है जो "बेगार" के समान है और चूंकि "बेगार" का अर्थ श्रम

या सेवा है जिसे किसी व्यक्ति को इसके लिए कोई पारिश्रमिक प्राप्त किए बिना देने के लिए मजबूर किया जाता है, अनुच्छेद 23 का निषेध केवल बलात् श्रम के उन रूपों तक ही सीमित है जहां किसी व्यक्ति से बिना कोई पारिश्रमिक दिए श्रम या सेवा ली जाती है। सभी और यदि कुछ पारिश्रमिक का भुगतान किया जाता है, हालांकि यह अपर्याप्त है, तो यह "बलात् श्रम के अन्य समान रूपों" शब्दों के अंतर्गत नहीं आएगा। यह विवाद अनुच्छेद 23 में अधिनियमित बलात् श्रम के विरुद्ध निषेध के दायरे को अनावश्यक रूप से प्रतिबंधित करने का प्रयास करता है और हमारी राय में यह भली भाँति स्थापित नहीं है। यह मेनका गांधी बनाम भारत संघ [(1978) 1 एससीसी 248: एआईआर 1978 एससी 597: (1978) 2 एससीआर 621] में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के अनुरूप नहीं है कि मौलिक अधिकार प्रदान करने वाले संविधान के प्रावधानों की व्याख्या करते समय न्यायालय का प्रयास मौलिक अधिकारों की परिधि और दायरे का विस्तार करना होना चाहिए न कि उनके अर्थ और सामग्री को कमजोर करना। यह कल्पना करना कठिन है कि संविधान-निर्माताओं का उद्देश्य केवल कुछ प्रकार के बलात् श्रम पर प्रहार करने का था, जिससे समुदाय के सामाजिक या आर्थिक रूप से शक्तिशाली वर्गों को अन्य प्रकार के बलात् श्रम का सहारा लेकर गरीबों और कमजोर वर्गों का शोषण करने की छूट मिल गई थी। क्या इसे अधिनियमित करने में कोई तर्क या कारण हो सकता है कि यदि किसी व्यक्ति को किसी भी पारिश्रमिक प्राप्त किए बिना किसी अन्य को श्रम या सेवा देने के लिए मजबूर किया जाता है, तो इसे अनुच्छेद 23 के उल्लंघन को आकृष्ट करने के लिए पर्याप्त हानिकारक कृत्य माना जाना चाहिए, लेकिन यदि कुछ पारिश्रमिक इसके लिए भुगतान किया जाता है, तो यह उस लेख के निषेध से बाहर होना चाहिए? यदि यह सही व्याख्या होती, तो अनुच्छेद 23 मात्र रेत की दीवार बनकर रह जाता, क्योंकि तब किसी शोषक समाज में सामाजिक या आर्थिक रूप से प्रभुत्वशाली वर्ग के किसी व्यक्ति के लिए यह सबसे आसान काम होगा कि वह समुदाय के वंचित और कमजोर वर्ग के किसी व्यक्ति से नगण्य पारिश्रमिक देकर श्रम या सेवा ले और इस प्रकार अनुच्छेद 23 की कठोरता से बच निकालें। हमें नहीं लगता कि अनुच्छेद 23 की भाषा में ऐसी व्याख्या करना सही होगा जो इसके लाभकारी प्रावधानों को शक्तिहीन कर देगी और उन्हें लागू करने के

उद्देश्य को ही विफल कर देगी। हमारा स्पष्ट मानना है कि अनुच्छेद 23 का उद्देश्य हर प्रकार के बलात् श्रम को समाप्त करना है। अनुच्छेद 23 में "बलात् श्रम के अन्य समान रूप" शब्दों का उपयोग "बेगार" की विशेष विशेषता को आयात करने की दृष्टि से नहीं किया गया है कि श्रम या सेवा को किसी भी पारिश्रमिक के भुगतान के बिना लिया जाना चाहिए, बल्कि बलात् श्रम के अन्य सभी रूपों को उस अनुच्छेद के परिधि और विस्तार के दायरे में लाने की दृष्टि से किया गया है और चूंकि "बेगार" बलात् श्रम का एक रूप है, इसलिए संविधान निर्माताओं ने "बलात् श्रम के अन्य समान रूप" शब्दों का इस्तेमाल किया। यदि यह आवश्यकता कि श्रम या काम बिना किसी पारिश्रमिक के कराया जाना चाहिए, बलात् श्रम के अन्य रूपों में आयात किया जाता है, तो वे सीधे "बेगार" शब्द के अर्थ में आ जाएंगे और उस स्थिति में अतिरिक्त शब्दों "बलात् श्रम के अन्य समान रूप" की कोई आवश्यकता नहीं होगी। ये शब्द निरर्थक और अर्थहीन हो जाएंगे और यह व्याख्या का एक सर्वमान्य नियम है कि न्यायालय को ऐसे निर्माण से बचना चाहिए जिसका विधायिका द्वारा उपयोग किए गए किसी भी शब्द को अनावश्यक या व्यतिरिक्त बना देने का प्रभाव हो। इन शब्दों को जोड़ने का उद्देश्य स्पष्ट रूप से उस अनुच्छेद के निषेध के अंतर्गत "बेगार" के अलावा, बलात् श्रम के अन्य रूपों को शामिल करके अनुच्छेद 23 की पहुंच और सामग्री का विस्तार करना था। हर प्रकार का बलात् श्रम, "बेगार" या अन्यथा, अनुच्छेद 23 के निषेध के अंतर्गत है और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि जिस व्यक्ति को अपना श्रम या सेवा दूसरे को देने के लिए मजबूर किया जाता है उसे पारिश्रमिक मिलता है या नहीं। भले ही पारिश्रमिक का भुगतान किया गया हो, किसी व्यक्ति द्वारा आपूर्ति किया गया श्रम इस अनुच्छेद के अंतर्गत आएगा यदि यह श्रम, बलात् श्रम है, अर्थात, स्वेच्छा से नहीं बल्कि बल या मजबूरी के परिणामस्वरूप आपूर्ति किया गया। उदाहरण के लिए एक ऐसा मामला लीजिए जहां एक व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति के साथ तीन वर्ष की अवधि के लिए सेवा का अनुबंध किया है और वह तीन साल की अवधि समाप्त होने से पहले ऐसे अन्य व्यक्ति की सेवा बंद करना चाहता है। यदि कोई कानून यह प्रावधान करता है कि ऐसे मामले में अनुबंध को विशेष रूप से प्रवर्तनीय किया जाएगा और उसे तीन साल की पूरी अवधि के लिए सेवा करने के लिए मजबूर किया

जाएगा, तो यह स्पष्ट रूप से बलात् श्रम के समान होगा और ऐसा कानून अनुच्छेद 23 का उल्लंघन करने के कारण अमान्य होगा। इसीलिए सेवा अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन को किसी कर्मचारी के विरुद्ध लागू नहीं किया जा सकता है और कर्मचारी को नियोक्ता की सेवा जारी रखने के लिए कानून की बाध्यता से मजबूर नहीं किया जा सकता है। बेशक, यदि सेवा के अनुबंध का उल्लंघन होता है, तो कर्मचारी नियोक्ता को हर्जाना देने के लिए उत्तरदायी होगा, लेकिन उसे अनुच्छेद 23 के व्यादेश का उल्लंघन किए बिना नियोक्ता की सेवा जारी रखने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। तेरहवें संशोधन में इसी तरह के प्रावधान से सम्बंधित बेली बनाम अलबामा [219 यूएस 219: 55 एल एड 191] में संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बिल्कुल यही दृष्टिकोण अपनाया गया था। वहां, अलबामा राज्य द्वारा अधिनियमित एक कानून यह अभिनिर्धारित करता है कि जब कोई व्यक्ति अपने नियोक्ता को चोट पहुंचाने या धोखा देने के इरादे से किसी सेवा के उद्देश्य से लिखित अनुबंध में प्रवेश करता है और नियोक्ता से धन या अन्य संपत्ति प्राप्त करता है और पैसे वापस किए बिना या संपत्ति ऐसी सेवा करने से इंकार करता है या विफल रहता है, तो उसे जुर्माने से दंडित किया जाएगा। इस कानून की संवैधानिक वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि इसने तेरहवें संशोधन का उल्लंघन किया है जो अन्य बातों के साथ-साथ प्रदान करता है: "न तो गुलामी और न ही अनैच्छिक दासता ... संयुक्त राज्य अमेरिका या उनके अधिकार क्षेत्र के अधीन किसी भी स्थान पर मौजूद होगी।" इस चुनौती को न्यायालय के बहुमत ने बरकरार रखा और श्री न्यायमूर्ति ह्यूजेस ने बहुमत की राय देते हुए कहा:

"हम इस निष्कर्ष से बच नहीं सकते हैं कि यद्यपि क़ानून धोखाधड़ी को दंडित करने के लिए है, फिर भी इसका प्राकृतिक और अपरिहार्य प्रभाव उन लोगों को अपराध के लिए दोषी ठहराना है जो ऋण के परिसमापन में व्यक्तिगत सेवा के अनुबंधों को पूरा करने में असफल होते हैं या इनकार करते हैं, और इसके प्रभाव से इसका उद्देश्य आंकलन करते हैं कि यह इस तरह से मजबूरी के साधन प्रदान

करना चाहता है जिसके माध्यम से ऐसी सेवा का प्रदर्शन सुरक्षित किया जा सके। सवाल यह है कि क्या ऐसा क़ानून संवैधानिक है।"

विद्वान न्यायाधीश ने "अनैच्छिक दासता" अभिव्यक्ति के विस्तार और परिधि को निम्नलिखित शब्दों में समझाया:

"स्पष्ट इरादा किसी भी नाम और रूप की दासता और उसके सभी चिह्नों और घटनाओं को समाप्त करना था, बंधन की किसी भी स्थिति को असंभव बना देना था; उस नियंत्रण पर रोक लगाकर श्रम को मुक्त बनाना जिसके द्वारा एक व्यक्ति की व्यक्तिगत सेवा का निपटान किया जाता है या दूसरे के लाभ के लिए उसे मजबूर किया जाता है, जो अनैच्छिक दासता का सार है।"

फिर, इस विवाद से निपटते हुए कि उस मामले में कर्मचारी ने स्वेच्छा से उस सेवा को करने के लिए अनुबंध किया था जिसे मजबूर करने की मांग की गई थी और इसलिए तेरहवें संशोधन के प्रावधानों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ, विद्वान न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया:

"तथ्य यह है कि ऋणी ने उस श्रम को करने के लिए अनुबंध किया है जिसमे बाध्यता की मांग निहित है, यह क़ानून की निंदा से प्रवर्तन के प्रयास को वापस नहीं लेता है। संवैधानिक प्रावधान के पूर्ण इरादे को स्पष्ट सुविधा के साथ पराजित किया जा सकता है यदि अनुबंध की आड़ में जो अग्रिम दिए गए थे, देनदारों को अनिवार्य सेवा के लिए रखा जा सकता था। यह सेवा की बाध्यता है जिसे क़ानून रोकता है, क्योंकि जब ऐसा होता है, तो अनुसेवकत्व की स्थिति निर्मित होती है जो ऋणग्रस्तता को पूरा करने के मूल समझौते के कारण कम अनैच्छिक नहीं होगी। अनुबंध देनदार को उल्लंघन के कारण होने वाले नुकसान के लिए दायित्व में बांधता है, लेकिन बलात् श्रम को लागू नहीं करता है।"

और इस सिद्धांत की व्याख्या निम्नवत की -

> *"दासता को कभी-कभी स्वैच्छिक या अनैच्छिक के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, लेकिन इसका तात्पर्य केवल उत्पत्ति के तरीके में अंतर है, लेकिन अनुसेवकत्व के चरित्र में कोई अंतर नहीं है। इसका अस्तित्व वहाँ है जहाँ देनदार स्वेच्छा से अपने लेनदार की सेवा में प्रवेश करने के लिए अनुबंध करता है। दूसरा है कानून के कुछ प्रावधानों द्वारा देनदार पर दबाव डाला जाता है। लेकिन चाहे जैसे भी बनाई गयी हो,वह एक अनिवार्य सेवा और अनैच्छिक अनुसेवकत्व है। यह सच है कि दास कर्ज के भुगतान से खुद को मुक्त कर सकता है, लेकिन अन्यथा सेवा प्रवर्तनीय है। दासता और ऋण के भुगतान में स्वैच्छिक श्रम प्रदर्शन या सेवाएं प्रदान करने के बीच एक स्पष्ट अंतर मौजूद है। बाद के मामले में देनदार श्रम या सेवा द्वारा अपने ऋण का भुगतान करने के लिए अनुबंध कर रहा है, और किसी भी अन्य ठेकेदार की तरह उस अनुबंध के उल्लंघन के लिए क्षतिपूर्ति की कार्रवाई के अधीन है, किसी भी समय इसे तोड़ने का चुनाव कर सकता है, और कोई भी कानून या बल, प्रदर्शन या सेवा की निरंतरता के लिए मजबूर नहीं करता है।"*

इसलिए यह स्पष्ट है कि भले ही किसी व्यक्ति ने सेवा करने के लिए किसी अन्य के साथ अनुबंध किया हो और ऐसी सेवा के लिए ऋण का परिसमापन या यहां तक कि पारिश्रमिक के रूप में प्रतिफल हो, उसे कानून की बाध्यता या अन्यथा, ऐसा सेवा जारी रखने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। क्योंकि वह अनुच्छेद 23 के निषेध के अंतर्गत बलात् श्रम होगा। यह अनुच्छेद हर प्रकार के बलात् श्रम पर प्रहार करता है, भले ही इसकी उत्पत्ति श्रम या सेवा प्रदान करने के लिए बाध्य व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से किए गए अनुबंध में हुई हो (पोलक बनाम विलियम्स देखें)। [322 यूएस 4:88 एल एड 1095])। इसका कारण यह है कि यदि कोई व्यक्ति ऐसा नहीं करना चाहता है तो उसे किसी अन्य को श्रम या

सेवा प्रदान करने के लिए मजबूर करना मानवीय गरिमा के विरुद्ध है, भले ही यह उसके द्वारा किए गए अनुबंध का उल्लंघन हो। एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक भारत में, जो व्यक्ति की गरिमा और मानव व्यक्ति के मूल्य का सम्मान करता है, कोई दास प्रथा या अनैच्छिक दासता नहीं होनी चाहिए। इसके अलावा, भारत जैसे देश में जहां इतनी गरीबी और बेरोजगारी है और सौदेबाजी की शक्ति की कोई समानता नहीं है, सेवा का अनुबंध ऊपर से स्वैच्छिक प्रतीत हो सकता है, लेकिन वास्तव में, यह अनैच्छिक हो सकता है, क्योंकि अनुबंध में प्रवेश करते समय कर्मचारी को, अपनी आर्थिक रूप से असहाय स्थिति के कारण, हॉब्सन की पसंद अर्थात "एक स्पष्ट रूप से स्वतंत्र विकल्प जहाँ कोई वास्तविक विकल्प नहीं है" का सामना करना पड़ा होगा, जिसमे या तो भूखा रहना होगा या शक्तिशाली नियोक्ता द्वारा निर्धारित शोषणकारी शर्तों को स्वीकार करना होगा। ऐसे मामले में कर्मचारी को अनुबंध की शर्तों से बांधना और उसे नियोक्ता की सेवा करने के लिए मजबूर करना, भले ही वह ऐसा न करना चाहे, न्याय का उपहास होगा। इससे असमानता और अन्याय बढ़ेगा जिससे कर्मचारी अपनी आर्थिक रूप से वंचित स्थिति के कारण भी पीड़ित होता है और आर्थिक रूप से शक्तिशाली नियोक्ता द्वारा गरीब असहाय कर्मचारी के शोषण के लिए कानून का अधिकार देता है। इसलिए अनुच्छेद 23 की घोषणा है कि किसी को भी उसकी इच्छा के विरुद्ध श्रम या सेवा प्रदान करने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा, भले ही यह सेवा के अनुबंध के तहत हो।

*14. **अब अगला प्रश्न जो विचार के लिए उठता है वह यह है कि क्या अनुच्छेद 23 का उल्लंघन उस स्थिति में होता है जब कोई व्यक्ति राज्य या किसी अन्य व्यक्ति को श्रम या सेवा प्रदान करता है और उसे इसके लिए न्यूनतम मजदूरी से कम भुगतान किया जाता है।** यह स्पष्ट है कि आम तौर पर कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा से किसी दूसरे को न्यूनतम वेतन से कम पर श्रम या सेवा की आपूर्ति नहीं करेगा, जब वह जानता है कि कानून के तहत वह अपने द्वारा प्रदान किए गए श्रम या सेवा के लिए न्यूनतम वेतन पाने का हकदार है। इसलिए वैध रूप से यह माना जा सकता है कि जब कोई व्यक्ति न्यूनतम वेतन से कम पारिश्रमिक प्राप्त करने पर दूसरे को श्रम या सेवा प्रदान करता है, तो वह किसी मजबूरी के तहत कार्य कर रहा है जो उसे काम करने के लिए प्रेरित करता है, भले ही उसे कानून के तहत वह जितना पाने का*

हकदार है, उससे कम भुगतान किया जाता है। अनुच्छेद 23 "बलात् श्रम" को प्रतिबंधित करता है, जो कि श्रम या सेवा है जिसे प्रदान करने के लिए एक व्यक्ति को मजबूर किया जाता है और "बल" जो ऐसे श्रम या सेवा को "बलात् श्रम" बनाता है, कई तरीकों से उत्पन्न हो सकता है। यह शारीरिक बल हो सकता है जो किसी व्यक्ति को दूसरे को श्रम या सेवा प्रदान करने के लिए मजबूर कर सकता है या इसे कानूनी प्रावधान के माध्यम से लगाया जा सकता है जैसे कि कर्मचारी द्वारा श्रम या सेवा प्रदान करने में विफल रहने पर कारावास या जुर्माने का प्रावधान या ऐसा भी हो सकता है कि भूख और गरीबी, अभाव और हीनता से उत्पन्न मजबूरी द्वारा। कोई भी कारक जो किसी व्यक्ति को विकल्पों की पसंद से वंचित करता है और उसे कार्रवाई का एक विशेष तरीका अपनाने के लिए मजबूर करता है उसे उचित रूप से "बल" माना जा सकता है और यदि ऐसे "बल" के परिणामस्वरूप श्रम या सेवा प्रदान करने के लिये मजबूर किया जाता है, तो इसे "बलात् श्रम" माना जाएगा। जहां एक व्यक्ति भूख या भुखमरी से पीड़ित है, जब उसके पास बीमारी से लड़ने या अपनी पत्नी और बच्चों को खिलाने या यहां तक कि अपनी नग्नता को छिपाने के लिए कोई संसाधन नहीं है, जहां अत्यधिक गरीबी ने उसकी कमर तोड़ दी है और उसे असहाय स्थिति में ला दिया है और निराशा और जहां उसकी गरीबी की कठोरता को कम करने के लिए कोई अन्य रोजगार उपलब्ध नहीं है, उसके पास उसके सामने आने वाले किसी भी काम को स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा, भले ही उसे दिया जाने वाला पारिश्रमिक न्यूनतम मजदूरी से कम हो। वह नियोक्ता के साथ मोल तोल करने की स्थिति में नहीं होगा; उसे वह स्वीकार करना होगा जो उसे दिया गया है। और ऐसा करने पर वह विकल्पों के बीच चयन करने वाले एक स्वतंत्र एजेंट के रूप में नहीं बल्कि आर्थिक परिस्थितियों की मजबूरी के तहत कार्य करेगा और उसके द्वारा प्रदान किया गया श्रम या सेवा स्पष्ट रूप से "बलात् श्रम" होगी। ऐसा कोई कारण नहीं है कि "बलात्" शब्द का निर्वचन संकीर्ण और प्रतिबंधित तरीके से किया जाए ताकि इसे केवल भौतिक या कानूनी "बल" तक ही सीमित रखा जाए, खासकर तब जब राष्ट्रीय चार्टर, जिसके मौलिक दस्तावेज में एक नए समाजवादी गणराज्य के निर्माण का वादा किया गया हो, में सभी के लिए सामाजिक-आर्थिक न्याय होगा और सभी को काम करने, शिक्षा और आजीविका के पर्याप्त साधन पाने का अधिकार

*होगा। संविधान निर्माताओं ने हमें एक नई सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की शुरूआत के लिए इतिहास में सर्वाधिक उल्लेखनीय दस्तावेजों में से एक दिया है और उन्होंने हमारे लिए जो संविधान बनाया है उसका एक सामाजिक उद्देश्य और एक आर्थिकलक्ष्य है और इसलिए संविधान में प्रत्येक शब्द या वाक्यांश की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए जिससे संविधान के सामाजिक-आर्थिक उद्देश्य को आगे बढ़ाया जा सके। यह असामान्य नहीं है कि पूंजीवादी समाज में किसी व्यक्ति को किसी विशेष कार्य के लिए प्रेरित करने में शारीरिक बाध्यता या विधायी प्रावधानों की तुलना में आर्थिक परिस्थितियाँ कहीं अधिक दबाव डालती हैं। इसलिए "बल" शब्द का अर्थ न केवल शारीरिक या कानूनी बल, बल्कि आर्थिक परिस्थितियों की मजबूरी से उत्पन्न बल भी माना जाना चाहिए, जो किसी जरूरतमंद व्यक्ति के लिए कोई विकल्प नहीं छोड़ता है और उसे श्रम या सेवा प्रदान करने के लिए बाध्य करता है, भले ही इसके लिए प्राप्त पारिश्रमिक न्यूनतम वेतन से कम हो। निःसंदेह, यदि कोई व्यक्ति न्यूनतम वेतन प्राप्त करने के एवज में दूसरे को श्रम या सेवा प्रदान करता है, तो यह कहना संभव नहीं होगा कि उसके द्वारा प्रदान किया गया श्रम या सेवा "बलात् श्रम" है क्योंकि उसे वही मिलता है जिसे पाने का वह कानून के तहत हकदार है। ऐसे मामले में तर्कसंगत रूप से कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि उसे केवल इस कारण से वह किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह, जो किसी भी मजबूरी के अधीन नहीं है, कानूनी रूप से देय राशि की प्राप्ति पर श्रम या सेवा प्रदान करेगा। **इसलिए हमारा विचार है कि जहाँ कोई व्यक्ति न्यूनतम वेतन से कम पारिश्रमिक के लिए दूसरे को श्रम या सेवा प्रदान करता है, तो उसके द्वारा प्रदान किया गया श्रम या सेवा स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 23 के तहत "बलात् श्रम" शब्द की परिधि में आती है। ऐसा व्यक्ति अनुच्छेद 23 के तहत अपने मौलिक अधिकार के प्रवर्तन हेतु न्यायालय की शरण में आने का हकदार होगा और न्यायालय से उसे न्यूनतम मजदूरी का भुगतान करने का निर्देश देने का अनुरोध करेगा ताकि उसके द्वारा प्रदान किया गया श्रम या सेवा "बलात् श्रम" न रह जाए और अनुच्छेद 23 के उल्लंघन का निवारण हो जाए। इसलिए यह स्पष्ट है कि जब याचिकाकर्ताओं ने आरोप लगाया कि ठेकेदारों द्वारा नियोजित श्रमिकों को न्यूनतम वेतन का भुगतान नहीं किया गया था, तो शिकायत वास्तव में प्रभावी थी और अनुच्छेद 23 के तहत***

श्रमिकों के मौलिक अधिकार के उल्लंघन के विरुद्ध एक शिकायत थी।

34. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित तथ्य के आलोक में, यह स्पष्ट है कि 1,000/- रुपये प्रति माह का भुगतान बाद में बढ़कर 1,500/- रुपये प्रति माह और फिर 2,000/- रुपये प्रति माह हो गया है जो न्यूनतम मज़दूरी से बहुत कम है और यह बलात् श्रम के अलावा और कुछ नहीं है।

35. प्रतिवादियों द्वारा दायर शपथ-पत्र में, भारत संघ द्वारा निर्धारित राशि की मात्रा के संबंध में कोई तर्कसंगतता प्रदान नहीं की गई है, सिवाय प्रतिशपथ-पत्र के प्रस्तर - 12 के जहाँ यह कहा गया है कि कार्यक्रम अनुमोदन बोर्ड - मध्याह्न भोजन योजना, मध्याह्न भोजन योजना को लागू करने के लिए केवल 1,000/- रुपये प्रति रसोईया सह सहायक की दर से मानदेय के भुगतान को मंजूरी दी गई, जिसे केंद्र सरकार और राज्य सरकार के बीच निर्धारित अनुपात में साझा किया जाना है।

36. प्रतिवादियों का उक्त रुख, बिना किसी औचित्य के, स्पष्ट रूप से उसी शोषणकारी प्रकृति का है। यह भली भाँति स्थापित है कि राज्य को एक योजना बनाते समय/लाभकारी उपाय प्रदान करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि योजनाओं के प्रशंसनीय उद्देश्य को प्राप्त करने की प्रक्रिया भी कानून के ढांचे के भीतर होनी चाहिए और ऐसी नहीं होनी चाहिए जो शोषणकारी प्रकृति का हो। रसोईया सह सहायक की दुर्दशा का अंदाज़ा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि वे वर्ष 2015 से मुकदमेबाजी कर रहे हैं और उस दावे के लिए राज्य की शक्ति से सामना कर रहे हैं जिसकी उन्हें भारत का संविधान के अनुच्छेद 23 और 24 के आधार पर कानून के तहत गारंटी दी गई है।

37. समाज में अपनी स्थिति के कारण, उन्होंने भारत के संविधान द्वारा गारंटीकृत शोषण के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष के क्रम में इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाकर एक प्रंशसनीय कार्य किया है। इस प्रकार, मुझे यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि मध्याह्न भोजन उपलब्ध कराने में लगे रसोइया सह सहायकों को न्यूनतम मजदूरी से काफी कम दर पर मानदेय का भुगतान बलात् श्रम का एक और रूप है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 और 24 के तहत स्पष्ट रूप से निषिद्ध है।

38. अब भेदभाव के प्रश्न पर विचार करते हैं। यह पहले ही ऊपर अभिलिखित किया जा चुका है कि राज्य सरकार ने स्वयं विभिन्न उद्योगों/प्रतिष्ठानों को उनके द्वारा किए जा रहे कार्य की प्रकृति के आधार पर वर्गीकृत किया है और श्रमिकों को कुशल, अर्ध कुशल और अकुशल की श्रेणी में वर्गीकृत किया है और संस्थानों में मध्याह्न भोजन बनाने वाले रसोइयों को क्रमांक 22 पर अर्ध कुशल श्रमिकों के रूप में वर्गीकृत किया गया है और उनके लिए दिनांक 28.01.2014 के शासनादेश के माध्यम से 6,325/- रुपये प्रति माह की दर से न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की गई है और जिसे बाद में शासनादेश दिनांक 20.09.2022 के संदर्भ में बढ़ाकर 10,483/- रुपये कर दिया गया है। ऐसा

कोई कारण नहीं है कि सरकार के साथ कार्यरत याचिकाकर्ता को , जो समान कार्य कर रहे हैं, लेकिन उन्हें न्यूनतम वेतन का लाभ नहीं दिया जा रहा जैसा कि समान कार्य करने के लिए विभिन्न नियोक्ताओं द्वारा नियुक्त व्यक्तियों को दिया जाता है। इस प्रकार, उस आधार पर भी याचिकाकर्ताओं के साथ भेदभाव हुआ है।

39. यह न्यायालय इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता है कि राज्य को एक कल्याणकारी राज्य होने के नाते निष्पक्ष रूप से कार्य करना है और वह ऐसा कोई निर्णय नहीं ले सकता है जिसमें हमारे लोकतंत्र के मौलिक मूल्यों का उल्लंघन करने की प्रवृत्ति हो, जिसे सभी मनुष्यों की गरिमा और समानता और सुशासन सुनिश्चित करना है। वर्तमान मामले में 1,000/- रुपये प्रति माह का मानदेय प्रदान करके, केंद्र और राज्य दोनों इन रसोइया सह सहायकों की गरिमा सुनिश्चित करने में विफल रहे हैं और उक्त कार्रवाई को निश्चित रूप से सुशासन नहीं कहा जा सकता है।

40. इस प्रकार, उपरोक्त सभी कारणों से, रिट याचिका स्वीकार करने और तदनुसार आदेश पारित किये जाने योग्य है।

41. केंद्र सरकार और राज्य सरकार को समय-समय पर जारी किए गए अपने परिपत्रों और वेतन संहिता (केंद्रीय) नियमावली, 2019 के अधिदेश में आवश्यक संशोधन करने और विभिन्न परिपत्रों के अनुसार उत्तर प्रदेश राज्य भर में कार्यरत और मध्याह्न भोजन तैयार करने वाले रसोइया सह सहायकों को न्यूनतम वेतन का भुगतान सुनिश्चित करने के लिए एक परमादेश जारी किया जाता है।

42. हालाँकि, रिट याचिका में बकाया भुगतान के संबंध में कोई प्रार्थना नहीं की गई है, लेकिन यह न्यायालय इसे उचित मानता है और महसूस करता है कि अनुतोष देना न्यायालय का कर्तव्य है, भले ही इसके लिए प्रार्थना न की गई हो, विशेष रूप से समाज के वंचित वर्ग अर्थात् रसोइया, जो दयनीय परिस्थितियों में और बहुत कम धन पर कार्य कर रहे हैं, के संबंध में यह न्यायालय समय-समय पर निर्धारित न्यूनतम मजदूरी का भुगतान सुनिश्चित करने के लिए प्रतिवादियों भारत संघ एवं राज्य सरकार को निर्देश जारी करना उचित समझता है। वर्ष 2014 से मध्याह्न भोजन तैयार करने के लिए रसोइया सह सहायक के रूप में नियोजित व्यक्ति, वह तिथि जब राज्य सरकार द्वारा यह निर्णय लिया गया था कि संस्थान में भोजन तैयार करने वाले रसोइयों को अर्ध कुशल के रूप में वर्गीकृत किया जाएगा, 28.01.2014 से न्यूनतम मजदूरी पाने के हक्दार होंगे। रसोइया सह सहायक के रूप में कार्यरत सभी व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से पहले से भुगतान किए गए मानदेय की कटौती के बाद मजदूरी की बकाया राशि का भुगतान आज से चार महीने की अवधि के भीतर किया जाएगा। केंद्र सरकार और राज्य सरकार उस अनुपात में बोझ वहन करेंगी जिस अनुपात में उनके द्वारा भुगतान किया जा रहा था। यह स्पष्ट किया जाता है कि इस निर्णय की तिथि से, रसोइया सह सहायकों को समय-समय पर निर्धारित और संशोधित न्यूनतम मजदूरी की दर से पारिश्रमिक का भुगतान किया जाएगा, इसका बोझ केंद्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा अनुपात में साझा किया जाएगा जिस अनुपात में वे योजना के तहत वित्तीय बोझ साझा करते रहे हैं।

(2023) 2 ILRA 78

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी,

रिट ए संख्या 8968/2022

संलग्न

रिट ए संख्या 6343/2020

और अन्य संबंधित वाद

डॉ. श्याम कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: विवेक सिरसवाल, बी.एन. सिरसवाल

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

A. सिविल कानून - उ.प्र. अर्हक सेवा पेंशन और मान्यता अधिनियम, 2021- धारा 2 - पेंशन के प्रयोजन के लिए अर्हक सेवा - कार्य प्रभार वाले कर्मचारियों, दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों, तदर्थ नियुक्तियों के संबंध में पेंशन के प्रयोजन के लिए अर्हक सेवा की गणना के लिए अधिनियम 2021 की धारा 2 की पेंशन व्याख्या और आवेदन के लिए अर्हक सेवा पद के साथ-साथ सामयिक संग्रह अमीन - आयोजित - यदि अधिनियम 2021 की धारा 2 का शाब्दिक अर्थ दिया गया है तो इसका अर्थ यह होगा कि किसी व्यक्ति द्वारा अस्थायी या स्थायी पद पर प्रदान की गई सेवाएँ अकेले पेंशन के लिए गिनी जा सकती हैं - वही एक शोषणकारी उपकरण और श्रम कदाचार होगा, क्योंकि इसके द्वारा, राज्य सरकार नियमित कर्मचारियों की तरह व्यक्तियों को दीर्घकालिक आधार पर उन्हें लाभ प्रदान किए बिना काम करने का प्रयास कर रही है, जो वे नियमित कर्मचारियों के रूप में हकदार हैं - अधिनियम 2021 की धारा 2 को अनैतिकता/मनमानेपन से बचाने के लिए, अधिनियम 2021 की धारा 2 में प्रयुक्त 'पद' शब्द, चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, उसको 'सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवाएँ' के रूप में पढ़ा जाना है। चाहे वह अस्थायी या स्थायी प्रकृति का हो' (पैरा 10, 21)

बी. यू.पी. अर्हक सेवा पेंशन और मान्यता अधिनियम, 2021, धारा 2 - दैनिक वेतन भोगी - पेंशन लाभ - पुरानी पेंशन योजना समाप्त होने के पश्चात नियमितीकरण - यह अच्छी तरह से स्थापित है कि दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी अपनी प्रारंभिक नियुक्ति तिथि से अपनी सेवाओं की गणना करते हुए पेंशन लाभों के हकदार हैं न कि उनके नियमितीकरण की तिथि से - दैनिक वेतनभोगी पेंशन लाभ के लिए दैनिक वेतन भोगी के रूप में की गई उनकी सेवाओं की गिनती के हकदार हैं। (पैरा 17)

सी- उत्तर प्रदेश अर्हक सेवा पेंशन और मान्यता अधिनियम, 2021 - धारा 2 - तदर्थ कर्मचारी - पेंशन लाभ - तदर्थ आधार पर मूल पदों पर नियुक्त कर्मचारी - ऐस कर्मचारी पेंशन प्रयोजनों के लिए तदर्थ कर्मचारी के रूप में उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की गणना के हकदार हैं । (पैरा 18)

डी. यू.पी. अर्हक सेवा पेंशन और मान्यता अधिनियम, 2021 - धारा 2 - पेंशन - सामयिक संग्रह चपरासी/संग्रह अमीन - चूंकि, सामयिक संग्रह चपरासी/संग्रह अमीन की नियुक्ति एक पद के लिए है, इसलिए, वे गैर-नियमित कर्मचारियों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं में गिनती करके पेंशन के हकदार हैं। (पैरा 21)

अनुवादित

अनुमत। (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2019) 10 एससीसी 516
2. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम महेंद्र सिंह (S.A.D. No.1003 of 2020), दिनांक 4.2.2021
3. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम भानु प्रताप शर्मा (S.A. No.97 of 2021) दिनांक 9.6.2021
4. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम भानु प्रताप (S.A. No. 152 of 2021) दिनांक 14.7.2021
5. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम भानु प्रताप विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 10381/ 2022, दिनांक 11.7.2022
6. राम दास यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (याचिका संख्या 25955/2017)
7. जंगपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (एस.ए. क्रमांक 240 /2021) दिनांक 16.5.2022
8. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम गुलाम सर्वर (विशेष अपील संख्या 165/2022)
9. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम राज बहादुर पादरी, 2022(3) एडीजे 5 (डीबी)
10. किशुन देव राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (रिट-ए नं.38221 / 2011)

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्तागण श्री विवेक सिरसवाल, श्री राकेश कुमार सिंह, श्री अंग्रेज नाथ शुक्ला, कु. प्रतिमा देवी, श्री विवेक कुमार राय, श्री जितेन्द्र कुमार पांडे, श्री लालजी यादव, श्री मनेन्द्र नाथ राय, श्री फहमीद अहमद, श्री मो. अतीक खान, श्री सुनील कुमार सिंह कलहंस, श्री शोभ नाथ पांडे, श्री सुदीप कुमार, श्री रमेश कुमार श्रीवास्तव, श्री मो. तौसीफ सिद्दीकी, श्री प्रदीप कुमार शुक्ल, श्री योगेश चन्द्र श्रीवास्तव, श्री जय बहादुर सिंह, श्री मृणाल त्रिपाठी, श्री निरंकार सिंह, श्री अशोक कुमार मिश्र, श्री विमल कुमार, कु. विश्व मोहिनी, श्री अश्वनी कुमार, श्री अरविन्द प्रताप सिंह, श्री वी.के. शुक्ला, श्री आदित्य विक्रम शाही, श्री विनोद कुमार सिंह, श्री मुकेश कुमार, श्री दिग्विजय सिंह यादव, श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव, श्री लालेंद्र प्रताप सिंह, श्री ए.पी. सिंह, श्री सतीश कुमार शर्मा एवं राज्य हेतु विद्वान् स्थाई अधिवक्ता श्री प्रफुल्ल यादव को सुना।

2. रिट याचिकाओं का यह समूह कार्य प्रभारित कर्मचारियों, दैनिक वेतन भोगी कर्मचारियों, पद के प्रति तदर्थ नियुक्तिधारकों के साथ-साथ सीजनल संग्रह अमीन के संबंध में पेंशन के उद्देश्य से अर्हक सेवा की गणना हेतु वर्ष 2021 के अधिनियम की धारा 2 के निर्वचन एवं प्रार्थनापत्र से संबंधित है। चूँकि धारा 2021 की धारा 2 निर्वचन के संबंध में समस्त रिट याचिकाओं में समान वादबिंदु सम्मिलित है,अतः इस सार्व निर्णय द्वारा इसका विनिश्चयन किया जा रहा है।

कार्य-प्रभारित कर्मचारी:

3. याचिकाकर्ता वर्ष 1979 से वर्ष 1988 के मध्य नियुक्त और वर्ष 1994 से वर्ष 2013 के मध्य विभिन्न विभागों में नियमित किए गए कार्य-प्रभारित कर्मचारी हैं। सभी याचिकाकर्ता अब

अनुवादित

सेवानिवृत्त हो चुके हैं। वे कार्य-प्रभारित कर्मचारी के रूप में उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के दृष्टिगत पेंशन के अधिकार का दावा कर रहे हैं।

रिट-ए संख्या 6343/ 2020 में, याचिकाकर्ता के दावे को 28.1.2020 के आक्षेपित आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि ***प्रेम सिंह बनाम उ. प्र. राज्य और अन्य, (2019) 10 एससीसी 516*** के वाद में घोषित निर्णय अंतिम नहीं था।

रिट-ए संख्या 7877/ 2022 मे, याचिकाकर्ता ने बिना किसी विशिष्ट दिनांक के वर्ष 2022 में पारित आदेश को चुनौती दी है।उसके दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि 5.3.2021 को जारी अध्यादेश के अनुसार, याचिकाकर्ता का मामला इससे आच्छादित नहीं है;

रिट-ए संख्या 9/ 2023 में, दिनांक 11.11.2022 का आक्षेपित आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ता का दावा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उसकी प्रारंभिक नियुक्ति कार्य प्रभारित पद पर थी;

रिट-ए संख्या 18054/ 2021 में, दिनांक 29.12.2020 के आक्षेपित आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि वे ***प्रेम सिंह (उपरोक्त)*** के वाद में पक्षकार नहीं हैं; एवं

रिट-ए संख्या 3662/ 2019 में, याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 10.7.2018 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं का दावा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उनकी सेवाएं 21.1.2013 को यानी पुरानी पेंशन योजना समाप्त होने के बाद नियमित की गई थीं।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्तागण ने ***प्रेम सिंह*** (उपरोक्त) वाद के साथ-साथ ***उ.प्र. राज्य और अन्य बनाम महेंद्र सिंह (विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 1003/ 2020, निर्णीत - 4.2.2021)***; ***उ.प्र. राज्य और अन्य बनाम भानु प्रताप शर्मा (विशेष अपील संख्या 97/ 2021, निर्णीत - 9.6.2021) ; उ.प्र. राज्य एवं अन्य बनाम भानु प्रताप (विशेष अपील संख्या 152/2021, निर्णीत - 14.7.2021);*** एवं ***उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम भानु प्रताप (विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 10381/ 2022)*** में पारित आदेश दिनांक 11.7.2022, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया है, के मामलों में इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है।

5. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने इसका विरोध करते हुए कहा कि ***प्रेम सिंह*** (उपरोक्त) के वाद में निर्णय तत्कालीन सिविल सेवा विनियम (सीएसआर विनियम) के आधार पर पारित किया गया है। उस दृष्टिकोण को उ.प्र. अध्यादेश संख्या 19/ 2020 (उत्तर प्रदेश पेंशन हेतु अर्हकारी सेवा तथां विधिमान्यकरण अध्यादेश, 2020)द्वारा अतिष्ठित किया गया, जो उत्तर प्रदेश सरकार के असाधारण राजपत्र में प्रकाशित हुआ, तथा जिसके अनुसरण में दिनांक 21.10.2020 को उत्तर प्रदेश पेंशन हेतु अर्हकारी सेवा तथां विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 (संक्षेप में 'अधिनियम, 2021') पारित किया गया। अधिनियम 2021 की धारा 2 के अनुसार,अर्हकारी सेवा का तात्पर्य सरकार द्वारा विहित सेवा नियमावली के अनुसार किसी अस्थाई

अनुवादित

या स्थाई पद पर नियुक्त किसी अधिकारी द्वारा उक्त पद के लिए की गई सेवाओं से है। चूँकि याचिकाकर्ता किसी पद पर नियुक्त नहीं थे, अपितु कार्य-प्रभारित कर्मचारी थें, इसलिए, उक्त सेवाओं की गणना नहीं की जा सकती और इस प्रकार, वे पेंशन लाभ के अधिकारी नहीं हैं। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने ***राम दास यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट याचिका संख्या 25955/ 2017)*** के वाद में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा पारित निर्णय; ***जंग पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (विशेष अपील संख्या 240/ 2021)*** के वाद में इस न्यायालय के निर्णय दिनांक 16.5.2022; ***उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम गुलाम सरवर (विशेष अपील संख्या 165/ 2022); उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम राज बहादुर पास्टर, 2022(3) एडीजे 5 (डीबी)*** के वाद में अंतरिम आदेश दिनांक 26.4.2022; एवं ***किशुन देव राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट-ए संख्या 38221/ 2011)*** के मामले में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 7.5.2022 पर विश्वास व्यक्त किया।

6. सुप्रीम कोर्ट ने ***प्रेम सिंह*** वाद (उपरोक्त) में उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 और सीएसआर विनियमावली की प्रयोज्यता और वैधता पर विचार किया, जिसके द्वारा कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में कार्य करने वाले व्यक्तियों को पेंशन के भुगतान पर रोक है और यह धारित किया:

> *"30. हम उपरोक्त तर्कोंसे प्रभावित नहीं हैं। प्रश्नगत कार्य-प्रभारित कर्मचारी की नियुक्ति मासिक वेतन पर की गई थी और उन्हें दक्षता सीमा प्राप्त करना भी आवश्यक था। उनकी सेवाएं नियमित कर्मचारियों से गुणात्मक रूप से कैसे भिन्न हैं? साधारण बयान के अतिरिक्त गुणात्मक अंतर दर्शाने वाली किसी भी सामग्री को इंगित नहीं किया गया है। नियुक्ति किसी विशेष परियोजना के लिए नहीं की गई थी जो कि कार्य-प्रभारित कर्मचारियों की मूल अवधारणा है। अपितु उस कार्य हेतु, जो प्रकृति में नियमित और स्थाई है, शोषणकारी शर्तों पर नियोजन कर कार्य-प्रभारित नियोजन की अवधारणा का दुरुपयोग किया गया है। कार्य-प्रभारित कर्मचारियों को नियमित कर्मचारियों की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया गया था जैसा कि अभिलेख पर प्रस्तुत किये गए दस्तावेजों से स्पष्ट है। नारायण दत्त शर्मा बनाम यूपी राज्य में [सीए संख्या _____2019 एसएलपी (सी) संख्या 5775/ 2018 से उत्पन्न] अपीलकर्ताओं को कार्य-प्रभारित सेवाओं की अवधि के दौरान भी, "8" वर्षों की निरंतर सेवा के बाद, दक्षता सीमा प्राप्त करना अनुमन्य किया गया था। अपीलकर्ता नारायण दत्त शर्मा को दिनांक 15-9-1978 से गेज मापक के रूप में कार्य-प्रभारित कर्मचारी की भाँति नियुक्त किया गया था। भुगतान मासिक होता था किन्तु नियुक्ति 200-320 रुपये वेतनमान में हुई थी। प्रारंभ में, उन्हें वर्ष 1978 में 205 रुपये प्रति माह के निश्चित मासिक वेतन पर नियुक्त किया गया था। उन्हें दक्षता सीमा प्राप्त करना भी अनुमन्य किया गया था*

अनुवादित

क्योंकि वेतनमान का लाभ उन्हें उस अवधि के दौरान दिया गया था जब उन्होंने कार्य-प्रभारित कर्मचारियों के रूप में तीन से चार दशकों तक सेवा की थी और बाद में विभिन्न आदेशों द्वारा समय-समय पर सेवाओं को नियमित किया गया था। यद्यपि, कुछ याचिकाओं/अपीलों के कुछ अपीलकर्ताओं की सेवाओं को नियमित नहीं किया गया है, भले ही उन्होंने कई दशकों तक सेवा की और अंततः सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंच गए।

31. उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में राज्य सरकार एवं उसके अधिकारियों द्वारा कर्मचारियों से कार्य प्रभार के आधार पर कार्य लेना अनुचित था। उन्हें नियमित आधार पर नियुक्तियां करनी चाहिये थी। कार्य प्रभार के आधार पर लंबे समय तक काम लेना शोषणकारी युक्ति अपनाने के समान है। यद्यपि बाद में उनकी सेवाएं नियमित कर दी गयीं। तथापि, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में उनके द्वारा बिताई गई अवधि को अर्हक सेवा में नहीं गिना गया है। इस प्रकार, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर सेवा की अवधि के दौरान उन्हें न केवल उनकी उचित परिलब्धियों से वंचित किया गया है,अपितु पेंशन लाभ हेतु अवधि की गणना से भी वंचित किया गया है, जैसे कि उनके द्वारा कोई सेवा प्रदान ही नहीं की गई थी। अपने जीवन के सुनहरे दिनों में कार्यभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से राज्य को लाभ हुआ है।

32. नियमावली, 1961 के नियम 3(8) से युक्त टिप्पणी के दृष्टिगत, कार्य-प्रभारित, आकस्मिकताओं या गैर-पेंशन योग्य सेवा पर व्यय की गई सेवा की गणना करने का प्रावधान है, यदि किसी व्यक्ति ने पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में दो अस्थायी नियुक्तियों की अवधि के मध्य ऐसी सेवा प्रदान की हो अथवा अस्थायी और स्थायी नियुक्तियों की दो अवधियों के अंतराल में ऐसी सेवा प्रदान की हो। उपरोक्त अत्यावश्यक परिस्थितियों में कार्य-प्रभारित सेवा को पेंशन हेतु अर्हक सेवा के रूप में गिना जा सकता है।

33. अब यह प्रश्न उठता है कि क्या यह शर्त आरोपित करना कि ऐसी सेवा की गणना तभी की जायेगी जब ऐसी सेवा अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवा के दो चरणों के मध्य प्रदान गई हो, विधिक एवं उचित है? हम पाते हैं कि जब एक बार रिक्त पदों पर नियमितीकरण किया गया था, यद्यपि कर्मचारी ने इससे पूर्व अस्थायी आधार पर सेवा नहीं की थी, नियुक्ति की प्रकृति पर विचार करते हुए, यद्यपि यह नियमित नियुक्ति नहीं थी, इसे मासिक वेतन पर एवं तत्पश्चात कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान वेतनमान में दक्षता सीमा प्राप्त करना अनुमन्य किया गया था। नियमावली, 1961 के नियम 3(8)की टिप्पणी में निहित शर्त के कारण यह

अनुवादित

अत्यधिक भेदभावपूर्ण और अतार्किक होगा, विशेष रूप से ऐसी सेवा की गणना नहीं करना, जब इसे गिना जा सकता है, यदि ऐसी सेवा दो अस्थायी अथवा अस्थायी और स्थायी सेवाओं के मध्य प्रदान की गई हो। यदि कार्यप्रभारित अवधि की सेवा नियमितीकरण से पहले प्रदान की गई है तब उसकी गणना न करने का कोई तुक या कारण नहीं है। हमारे मत में नियम 3(8) के अंतर्गत एक अनुचित वर्गीकरण किया गया है। ऐसे कर्मचारियों को अर्हक सेवा के लाभ से वंचित करना अत्यधिक अन्यायपूर्ण, अनुचित और अतार्किक होगा। कार्यप्रभारित अवधि की सेवा सभी कर्मचारियों के लिए समान रहती है। जब एक बार इसकी गणना एक वर्ग हेतु की जा सकती है तब भेदभाव को रोकने के लिए इसकी गणना सबके निमित्त की जानी चाहिए। वर्गीकरण तर्कहीन आधार पर नहीं किया जा सकता है और जब उत्तरदाता स्वयं ऐसी सेवा में बिताई गई अवधि की गणना कर रहे हैं, तो अशक्त वर्गीकरण के आधार पर सेवा की गणना न करना अत्यधिक भेदभावपूर्ण होगा। उस कार्य-प्रभारित सेवा पर आरोपित शर्त कि इसके पूर्व अस्थायी क्षमता में नियोजित होना चाहिये, भेदभावपूर्ण और तर्कहीन है और एक अस्वीकार्य वर्गीकरण बनाता है।

34. चूँकि नियम 3(8) को वैध और अभेदभावपूर्ण बनाने के लिए उपरोक्त वर्गीकरण करना अन्यायपूर्ण, अवैध और अनुचित होगा, अतः हमें नियम 3(8) के प्रावधानों को पढ़ना होगा और यह मानना होगा कि नियमितीकरण से पूर्व भी कार्य-प्रभारित कर्मचारियों, आकस्मिक भुगतान निधि कर्मचारी या गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान की क्षमता में प्रदान की गई सेवाओं को भी अर्हक सेवा में गिना जाएगा, भले ही ऐसी सेवा पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या नियमित नियुक्ति से पूर्व न प्रदान की गई हो।

35. नियम 3(8) से युक्त टिप्पणी के दृष्टिगत, जिसे हमने पढ़ा है, सिविल सेवा विनियमों के विनियम 370 में निहित प्रावधान और वित्तीय हस्तपुस्तिका के प्रस्तर 669 में निहित निर्देशों को भी रद्द किया जाना चाहिए।

36. कुछ कर्मचारी ऐसे हैं जिन्हें 30-40 या उससे अधिक वर्षों तक सेवाएँ देने के बावजूद नियमित नहीं किया गया है जबकि वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं। चूँकि उन्होंने कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में काम किया है, किसी विशेष परियोजना के विरुद्ध नहीं, अतः उनकी सेवाओं को सरकारी निर्देशों के तहत और यहाँ तक कि कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3) [कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3), (2006) 4 एससीसी 1: 2006 एससीसी (एल एंड एस) 753] में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार नियमित किया जाना चाहिए था।। इस न्यायालय ने उक्त निर्णय में यह प्रतिपादित किया है

अनुवादित

कि यदि न्यायालय के आदेश की आड़ में दस वर्षों से अधिक समय तक सेवाएं प्रदान की गई हैं, तो एकबारगी समाधान के रूप में, ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित किया जाएगा। वाद के तथ्यों के अनुसार, जिन कर्मचारियों ने दस वर्ष या उससे अधिक समय तक काम किया है, उन्हें नियमित किया जाना चाहिए था। नियमितीकरण पर विचार के लिए उन्हें इस कारण से नियमित करना उचित नहीं होगा कि अन्य लोगों को नियमित कर दिया गया है। हम निदेश देते हैं कि उनकी सेवाओं को नियमित माना जाए। हालाँकि, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि वे सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने से पूर्व नियमित रूप से सेवा में बने रहे हैं तो वे वेतन में अंतर के किसी भी अवशेष का दावा करने के अधिकारी नहीं होंगे। वे पेंशन प्राप्त करने के अधिकारी होंगे जैसे कि वे नियमित अधिष्ठान से सेवानिवृत्त हुए हों और कार्य-प्रभारित अधिष्ठान में प्रवेश के दिन से ही उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन के उद्देश्य के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा।

37. उ.प्र.सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 के नियम 3(8) के विशिष्ट निर्वाचन के दृष्टिगत हमयह धारित करते हैं कि कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन अनुदान के लिए उपरोक्त नियम के तहत अर्हक सेवा माना जाएगा। पेंशन की अवशेष राशि आदेश की तिथि से मात्र तीन वर्ष पूर्व तक ही सीमित रहेगी। तीन माह की अवधि में तदनुसार अनुमन्य लाभ का भुगतान किया जाए। परिणामस्वरूप, कर्मचारियों द्वारा दायर की गई अपीलों को स्वीकार किया जाता है और राज्य द्वारा दायर की गई अपीलों को खारिज किया जाता है।"

अतः सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि चूँकि राज्य सरकार ने कार्य-प्रभारित कर्मचारियों से दीर्घकालिक आधार पर कार्य लेना प्रारंभ कर दिया है, इसलिए ऐसे कार्य-प्रभारित कर्मचारियों और राज्य सरकार के नियमित कर्मचारियों द्वारा किए गए कार्यों के मध्य तर्कसंगत वर्गीकरण नहीं किया गया है। नियमों का सकारात्मक निर्वचन अपेक्षित है, अन्यथा वे मनमाने होंगे और इस प्रकार, पेंशन लाभ के लिए अर्हक सेवा की अवधि की गणना में कार्य-प्रभारित कर्मचारियों के रूप में प्रदान की गई सेवाओं का लाभ दिया जाएगा।

7. अब राज्य सरकार द्वारा अधिनियम, 2021 के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के उक्त निर्णय के प्रभाव को समाप्त करने का प्रयास किया गया है। यह धारा 2 का उपबंध करता है , जो निम्नवत है:

"2. सभी अधिकारियों को पेंशन की पात्रता के प्रयोजनों के लिए किसी भी नियम, विनियम या शासनादेश में किसी भी बात के होने के उपरान्त भी, "अर्हक सेवा" का अर्थ है सरकार द्वारा किसी पद हेतु निर्धारित सेवा नियमावली के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी या स्थायी

अनुवादित

पद पर नियुक्त अधिकारी द्वारा प्रदान की गई सेवाएँ।"

इस प्रकार, अधिनियम, 2021 की धारा 2 के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति सेवा नियमों के अनुसार अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त नहीं किया गया था, तब उसकी सेवाएँ पेंशन के प्रयोजनों हेतु अर्हक सेवा नहीं होंगी। किसी निर्णय के प्रभाव को विधायिका द्वारा निरस्त या संशोधित कर सकने संबंधी विधि बहुत पहले से निर्धारित है। ***इंडियन एल्युमीनियम कंपनी और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य (1996) 7 एससीसी 637*** वाद का उल्लेख करना पर्याप्त है। उक्त वाद में, इस विषय पर संपूर्ण विधि पर विचारोपरांत, सर्वोच्च न्यायालय ने विर्णय के प्रस्तर 56 में सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, जो निम्नवत है:

"56. उपरोक्त निर्णयों के परिणामस्वरूप निम्नलिखित सिद्धांत सम्मुख प्रस्तुत होते हैं :

(1) पक्षकारों के अधिकारों का निर्णयन अनिवार्य न्यायिक कार्य है। विधानमंडल को आचरण के मानदंड या नियम निर्धारित करने होंगे जो पक्षकारों और संव्यवहारों को नियंत्रित करेंगे और न्यायालय से उन्हें प्रभावी बनाने की अपेक्षा होगी;

(2) संविधान ने विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका द्वारा संप्रभु शक्ति के प्रयोग में नाजुक संतुलन की रूपरेखा तैयार की;

(3) विधिसम्मत शासन द्वारा शासित लोकतंत्र में, विधायिका विधिनिर्माण हेतु अनुच्छेद 245 और 246 और सातवीं अनुसूची में संबंधित सूचियों में प्रविष्टियों के साथ पठित अन्य सहयोगी लेखों के तहत शक्ति का प्रयोग करती है जिसमें विधि में संशोधन करने की शक्ति सम्मिलित है।

(4) न्यायालयों को अपने सरोकार और न्यायिक शक्ति को संरक्षित करने के प्रयास में तीनों संप्रभु कार्यपालकों के मध्य संविधान द्वारा प्रदत्त सूक्ष्म संतुलन को बनाए रखने के लिए, उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करना चाहिए। समतावादी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के संवैधानिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विधि का शासन लागू हो, इसके लिए संबंधित संप्रभु पदाधिकारियों द्वारा संक्रमणीय क्षेत्रों में स्वतंत्र भूमिका निभाना अपेक्षित है ताकि सामाजिक प्रगति और व्यवस्था की प्रगति निर्बाध बनी रहे। यह नाजुक एवं सहज संतुलन हमेशा बनाए रखा जाना चाहिए;

(5) न्यायिक शक्ति की रक्षा करने की अपनी चिंता में, अति उत्साही होना और सक्षम रूप से निर्मित विधि को अमान्य करते हुए न्यायिक संरक्षण में घुसपैठ करना अनावश्यक है;

(6) इसलिए, न्यायालय को यह पता लगाने के लिए विधि का सावधानीपूर्वक परिक्षण करना अपेक्षित है कि : (ए)

अनुवादित

क्या न्यायालय द्वारा इंगित दोष एवं विगत विधि की हीनता विधिक एवं संवैधानिक आवश्यकताओं का अनुपालन करते हुए ठीक हो गई है; (बी) क्या विधायिका विधि को मान्य करने हेतु सक्षम है; (सी) क्या ऐसी मान्यता संविधान के भाग III में गारंटीकृत अधिकारों के अनुरूप है।

(7) न्यायालय के पास किसी अमान्य विधि को मान्य करने या अवैध रूप से बनाए और एकत्र किए गए कर को वैध बनाने या अमान्यता के मानदंड को हटाने या कोई उपाय प्रदान करने की शक्ति नहीं है। ये न्यायिक कार्य नहीं हैं बल्कि विधायिका के विशिष्ट क्षेत्र हैं। इसलिए, वे न्यायिक शक्ति का अतिक्रमण नहीं कर रहे हैं।

(8) विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए, विधायिका मात्र घोषणा द्वारा, बिना किसी और बात के, किसी न्यायिक निर्णय को सीधे तौर पर खारिज, संशोधित या रद्द नहीं कर सकती है। यह अपने विधायी क्षेत्र की सीमा में इस विषय पर वैध विधि का निर्माण कर, उसमें मौलिक रूप से परिवर्तन करके या इसके चरित्र को भूतलक्षी प्रभाव से परिवर्तित कर न्यायिक निर्णय को अप्रभावी बना सकता है। परिवर्तित हुई अथवा संशोधित हुई स्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि यदि विधि को अमान्य घोषित करने के समय वे स्थितियाँ मौजूद होतीं तो विगत निर्णय न्यायालय द्वारा नहीं घोषित किया गया होता। इसे भूतलक्षी विधि को एक विचारणीय तिथि के साथ या किसी विशेष तिथि से प्रभावी बनाने का भी अधिकार है। विधायिका कर या शुल्क के चरित्र को अननुमन्य से अनुमन्य कर में परिवर्तित कर सकती है, लेकिन कर या शुल्क को ऐसे चरित्र का उत्तर देने में सक्षम होना चाहिए, और विधायिका करदाता से शुल्क हेतु अमान्य आधार को हटाकर ऐसे कर को मान्य करते हुए अमान्य कर की वसूली करने में सक्षम है, अथवा राज्य द्वारा शुल्क की वसूली को निष्प्रभावी बना सकती है। विधायिका सक्षम है कि वह भूतलक्षी प्रभाव से विधि का निर्माण करे और अपनी एजेंसियों को उस आधार पर कर आरोपित और एकत्र करने के लिए अधिकृत करे, तथा वसूले गए शुल्क के अधिरोपण और कर की वसूली को न्यायालय की घोषणा अथवा उसके निदेश, जो उसकी वसूली के लिए दिया गया, के उपरान्त भी वैध बनाए।

(9) इस न्यायालय के सभी निर्णयों में सतत प्रचलित सूत्र यह है कि विधायिका प्रत्यक्षतः निर्णय को उलट नहीं सकती है या उसे कोई निदेश नहीं दे सकती है क्योंकि यह बाध्यकारी नहीं होगा, लेकिन जिस आधार पर निर्णय लिया गया था, उसे हटाकर निर्णय को अप्रभावी बनाने की शक्ति धारण करती है जो कि संविधानसम्मत है तथा विधायिका में ऐसा करने की अधिकारिता होनी चाहिये।"

अनुवादित

8. दीर्घकाल से स्थापित विधि यह है कि विधायिका मौलिक रूप से सुधार कर अथवा भूतलक्षी प्रभाव से इसके चरित्र में परिवर्तन कर, अपने विधायी क्षेत्र की सीमा में स्थित विषय पर मान्य विधि का निर्माण कर न्यायिक निर्णय को अप्रभावी बना सकती है। परिवर्तित या संशोधित शर्तें ऐसी होनी चाहिए कि न्यायालय द्वारा विगत निर्णय नहीं दिया गया होता, यदि विधि को अमान्य घोषित करने के समय वे शर्तें वर्तमान होतीं।

9. इसलिए, अब इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह है कि क्या 2021 का अधिनियम लाकर, राज्य सरकार ने ***प्रेम सिंह*** (उपरोक्त) वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इंगित दोष का निराकरण कर दिया है। उक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि राज्य सरकार ने बिना किसी तर्कसंगत वर्गीकरण के कार्य-प्रभारित कर्मचारियों से दीर्घकालिक आधार पर नियमित कर्मचारियों का कार्य लेकर शोषणकारी श्रम प्रथा अपनाई है, जबकि उन्हें नियमित कर्मचारियों को मिलने वाले लाभों से वंचित कर दिया है। सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष रूप से धारित किया कि राज्य सरकार भ्रष्ट श्रम प्रथाओं में सम्मिलित नहीं हो सकती। उपरोक्त आधार पर,सर्वोच्च न्यायालय ने नियमावली,1961 के नियम 3(8) के प्रावधानों का सकारात्मक निर्वचन किया तथा और सिविल सेवा विनियमावली के विनियम 370 और वित्तीय हस्तपुस्तिका के प्रस्तर 669 को रद्द कर दिया।

10. राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपनी आवश्यकतानुसार नए अस्थायी या स्थायी पद सृजित करे और उन पर नियुक्तियाँ करे। विधि राज्य को दैनिक वेतनभोगी या कार्य-प्रभारित कर्मचारियों को नियुक्त करने की भी अनुमति देती है, किन्तु मात्र तब ही जब कार्य अल्प अवधि हेतु अथवा किसी कार्य-प्रभार अधिष्ठान में निश्चित अवधि हेतु हो। विधि राज्य को अस्थायी या कार्य प्रभार के आधार पर किसी व्यक्ति से लंबी अवधि, यहाँ तक कि संपूर्ण कामकाजी जीवन, तक कार्य लेने की अनुमति नहीं देता है। ऐसे मामलों में, यह राज्य का कर्तव्य है कि वह नियमित कर्मचारियों के सभी लाभ देते हुए नए पद सृजित करे और नियुक्तियाँ करे, अन्यथा राज्य द्वारा शोषणकारी श्रम प्रथा अपनाना माना जाएगा। यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***प्रेम सिंह*** (उपरोक्त) वाद में इंगित किया गया दोष है, और इसे निराकरित करने के स्थान पर राज्य ने अधिनियम, 2021 की धारा 2 द्वारा अपनी अवैधता की सीमा की वृद्धि कर दी है। अधिनियम, 2021 की धारा 2 के अनुसार, यह पेंशन लाभ के लिए ऐसी सेवा की उक्त अवधि की गणना न करके, समय पर पद सृजित करने और उस पर नियुक्तियाँ करने में अपनी विफलता का लाभ उठाना चाहता है। राज्य अभी भी उस तर्क एवं उस रीति को समझाने में विफल है जिसके आधार पर उसने इस नवीन वर्गीकरण की रचना की है और जिस तरीके से उसने संशोधित प्रावधान द्वारा अतार्किकता को दूर किया है।

अधिनियम, 2021 की धारा 2 के शाब्दिक अर्थ का तात्पर्य यह होगा कि किसी व्यक्ति द्वारा मात्र अस्थायी या स्थायी पद पर प्रदान की गई सेवा द्वारा भी पेंशन हेतु गणना की जा सकती है। पुनः यह एक शोषणकारी उपक्रम और श्रम कदाचार होगा, क्योंकि इसके द्वारा, राज्य सरकार पुनः नियमित कर्मचारियों की भाँति व्यक्तियों को दीर्घकालिक आधार पर कार्य हेतु उपयोग करने का प्रयास कर रही है, बिना उन्हें वे लाभ दिए जिसके वे नियमित कर्मचारियों के रूप में

अनुवादित

अधिकारी होते। कार्य-प्रभार कर्मचारियों के संबंध में ***प्रेम सिंह*** (उपरोक्त) वाद के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इंगित दोष, वास्तव में, अब और भी बड़ी संख्या में कर्मचारियों पर प्रयोज्य हो गया हैं और दैनिक वेतन भोगियों और कार्य-प्रभार कर्मचारियों सहित अन्य व्यक्तियों, जो अस्थायी अथवा स्थाई पद पर कार्यरत नहीं है, पर भी लागू कर दिया गया है।

वी. सुकुमारन बनाम केरल राज्य (2020) 8 एससीसी 106 के वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया:

> *"22. पुनः हम एक बार इस तथ्य पर बल देते हुए यह कहना चाहते हैं कि पेंशन संबंधी प्रावधानों का, एक समाज कल्याण उपाय के रूप में उदारतापूर्वक निर्वचन करना चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं है कि नियमों के विपरीत कुछ भी दिया जा सकता है, लेकिन ऐसी पेंशन देने का मूल आधार ध्यान में रखा जाना चाहिए, अर्थात एक सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी अपने जीवन के उत्तरार्ध में सम्मानपूर्वक जीवननिर्वाह कर सके और इस प्रकार, किसी कर्मचारी को इस तरह के लाभ से अयुक्तियुक्तपूर्ण रीति से, वह भी तकनीकी आधार पर, वंचित नहीं किया जाना चाहिए।*

इस प्रकार, पुनः अधिनियम, 2021 के अधिनियम की धारा 2 को, प्रेम सिंह (उपरोक्त) के निर्णय की भावना के अनुरूप, दोष/मनमानी से बचाने के लिए 'पद' शब्द को हल्का करने की आवश्यकता है और इसलिए, अधिनियम, 2021 के अधिनियम की धारा 2 में प्रयुक्त शब्द 'पद', चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, का 'सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवाएं, चाहे वह अस्थायी या स्थायी प्रकृति की हो' के रूप में निर्वचन किया जाना चाहिए।

11. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा उद्धृत अन्य निर्णयविधियाँ, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वर्तमान वाद के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं हैं, क्यों कि उपरोक्त उद्धृत वादों में से किसी में भी अधिनियम, 2021 की धारा 2 का निर्वचन नहीं किया गया है।

12. उपरोक्त के आलोक में,चूँकि अधिनियम, 2021 की धारा 2 भी ***प्रेम सिंह*** (उपरोक्त) के वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इंगित दोषों से ग्रस्त है, इसलिए,स्वेच्छाचारिता के पंजे से निकालने के लिये, इसका सकारात्मक निर्वचन किया जाता है, और अस्थायी या स्थायी पद पर प्रदान की गई सेवाओं का निर्वचन सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के रूप में किया जाता है चाहे वह अस्थायी प्रकृति की हो अथवा स्थायी प्रकृति की। अतः, यह धारित किया जाता है कि याचिकाकर्तागण भी ***प्रेम सिंह*** (उपरोक्त) के निर्णय का लाभ पाने के अधिकारी हैं। सभी प्रश्नगत आदेश निरस्त किये जाते हैं।

<u>दैनिक श्रमिक</u>:

13. याचिकाकर्ताओं को वर्ष 1978 से वर्ष 1992 के मध्य उत्तर प्रदेश राज्य के विभिन्न विभागों में दैनिक श्रमिकों के रूप में नियुक्त किया गया था। इन सभी को बाद में वर्ष 2005 से वर्ष 2012 के मध्य विभिन्न पदों पर नियमित कर दिया गया।

अनुवाद

रिट-ए संख्या 32317/2019 में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 30.9.2019 के आदेश को चुनौती दी है जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता का दावा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि चूँकि उसका नियमितीकरण पुरानी पेंशन योजना समाप्त होने के पश्चात हुआ है, इसलिए, वह सेवानिवृत्ति उपरांत किसी भी लाभ का हकदार नहीं है;

रिट-ए संख्या 5274/2019 , 493/ 2023, 14750/ 2021 एवं ***1020/ 2023*** में याचिकाकर्ताओं ने विरोधी पक्षकारगण को उनके नियमितीकरण से पहले दैनिक वेतनभोगी के रूप में उनकी सेवाओं की गणना कर उन्हें सेवानिवृत्ति लाभ देने का आदेश देने हेतु परमादेश की प्रार्थना की है;

रिट-ए संख्या 126/ 2023 में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 1.12.2022 के आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का दावा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि चूँकि उसका नियमितीकरण पुरानी पेंशन योजना समाप्त होने के पश्चात हुआ है, अतः वह सेवानिवृत्ति उपरांत किसी भी लाभ का हकदार नहीं है;

रिट-ए संख्या 21878/ 2020 में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.5.2020 के आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का दावा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि चूँकि उसका नियमितीकरण पुरानी पेंशन योजना समाप्त होने के पश्चात हुआ है, अतः वह सेवानिवृत्ति उपरांत किसी भी लाभ का हकदार नहीं है;

रिट-ए संख्या 2122/ 2022 में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता संख्या 8, 10, 12, 13 और 14 की ओर से ओर से नई रिट याचिका दायर करने की स्वतंत्रता के साथ रिट याचिका वापस लेने की प्रार्थना की है।

अनुमति दी जाती है।

मात्र पूर्वोक्त प्रार्थना के अनुरूप स्वतंत्रता के साथ याचिकाकर्ता संख्या 8, 10, 12, 13 और 14 के संबंध में बल न दिये जाने के कारण रिट याचिका खारिज की जाती है।

अब रिट याचिका मात्र याचिकाकर्ता संख्या 1 से 7, एवं 9 से 11 के पक्ष से ही शेष है, जिन्होंने 17.12.2019 के प्रश्नगत आदेश को इस आधार पर चुनौती दी है कि चूँकि याचिकाकर्ताओं को प्रारंभ में दैनिक वेतनभोगी के रूप में नियुक्त किया गया था, अतः उनकी नियमितीकरण से पूर्व सेवाएं सेवानिवृत्ति पश्चात लाभ के प्रयोजन हेतु नहीं गिनी जा सकती;

रिट-ए संख्या 5685/2022 याचिकाकर्ता द्वारा प्रश्नगत आदेश दिनांक 18.01.2016 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को तत्काल प्रभाव से नियमित किया गया था, जबकि उसने दावा किया था कि उसे उसकी प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से नियमित किया जाए।

रिट-ए संख्या 8059/2019 में, याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक 28.2.2019 को चुनौती दी है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का दावा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि चूँकि उसका नियमितीकरण पुरानी पेंशन योजना समाप्त होने के पश्चात हुआ है, अतः वह सेवानिवृत्ति उपरांत किसी भी लाभ का अधिकारी नहीं है;

अधिवक्ता

रिट-ए संख्या 1592/2021 में याचिकाकर्ता के दावे को प्रश्नगत आदेश दिनांक 28.2.201927.5.2020 द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि ***प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2019) 10 एससीसी 516*** वाद में घोषित निर्णय अंतिम नहीं है ; और

रिट-ए संख्या 25891/ 2021 में याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक 23.9.2021 को चुनौती दी है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का दावा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि चूँकि उसका नियमितीकरण पुरानी पेंशन योजना समाप्त होने के पश्चात हुआ है, अतः वह सेवानिवृत्ति उपरांत किसी भी लाभ का अधिकारी नहीं है।

14. यह दीर्घ काल से स्थापित है कि दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी अपनी प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से अपनी सेवाओं की गणना कर पेंशन लाभ प्राप्त के अधिकारी हैं न कि उनके नियमितीकरण की तिथि से। ***हरि शंकर असोपा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य 1989(1) यूपीएलबीईसी 501; यशवंत हरि कटक्कर बनाम भारत संघ और अन्य, 1996 (7) एससीसी 113;*** और ***प्रेम सिंह*** (उपरोक्त) के वाद में निर्णय का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। वास्तव में पहले ये उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 के नियम 2 और अन्य सिविल सेवा विनियमावली से आच्छादित थें।

15. अब विद्वान स्थायी वकील का तर्क है कि अधिनियम, 2021 की धारा 2 के दृष्टिगत, चूँकि याचिकाकर्ताओं को प्रारंभ में अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त नहीं किया गया था, अतः उन्हें उक्त सेवाओं का लाभ नहीं दिया जा सकता है।

16. मामले के उक्त पक्ष पर पहले ही ऊपर विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। अधिनियम, 2021 की धारा 2 का पहले ही सकारात्मक निर्वचन किया जा चुका है और यह धारित किया गया है कि अधिनियम, 2021 की धारा 2 में प्रयुक्त शब्द 'पोस्ट', चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी,का सकारात्मक निर्वचन 'सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवाएं' के रूप में किया जाना चाहिए चाहे वह अस्थायी प्रकृति का हो अथवा स्थायी प्रकृति का।'

17. इसके दृष्टिगत, याचिकाकर्तागण भी अधिनियम, 2021 की धारा 2 की उपरोक्त व्याख्या से आच्छादित हैं जैसा कि वर्तमान निर्णय में प्रस्तुत किया गया है। उपरोक्त कथित आधारों पर विभिन्न रिट याचिकाओं में प्रश्नगत आदेश, पहले के निर्णयों के साथ-साथ इस निर्णय में ऊपर प्रस्तुत निष्कर्षों द्वारा आच्छादित हैं और इसलिए, याचिकाकर्ताओं को पेंशन लाभ हेतु दैनिक वेतनभोगी के रूप में प्रदान की गई उनकी सेवाओं की गणना हेतु अधिकारी माना जाता है। सभी प्रश्नगत आदेश अपास्त किये जाते हैं।

<u>तदर्थ कर्मचारी</u>:

18. ***रिट-ए संख्या 8968 / 2022, 1127 / 2023, 816/ 2023, 2740 / 2022, 4859 / 2022, 6074 / 2020, 2581 / 2022, 5071 / 2022, 93/ 2023*** और ***1931/ 2022*** में याचिकाकर्ता ने उनके नियमितीकरण से पूर्व तदर्थ

अनुवादित

आधार पर प्रदान की गई उनकी सेवाओं की गणना करते हुए विरोधी पक्षकारगण को उन्हें सेवानिवृत्ति लाभ प्रदान करने का आदेश देने के लिए परमादेश जारी करने की प्रार्थना की;

रिट-ए संख्या 3234/ 2022, 4316/ 2021, 22080/ 2021, 27977/ 2021, 26309/ 2021, 19227/ 2021, 29184/ 2019, 10079/ 2021, 26130/ 2021, 23027/ 2021, 43/ 2023, 20/ 2023, 6421/ 2020, 1360/ 2022, 20119/ 2021, 19931/ 2021, 27/ 2023 और ***30/ 2023*** में, याचिकाकर्ताओं ने प्रश्नगत आदेशों को चुनौती दी है क्योंकि उन सभी में याचिकाकर्ताओं के दावों को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उनकी नियुक्ति तदर्थ आधार पर है, अतः वे सेवानिवृत्ति पश्चात किसी भी लाभ के अधिकारी नहीं हैं;

19. प्रारंभिक नियुक्ति पत्रों से यह प्रदर्शित होता है कि याचिकाकर्ताओं को तदर्थ आधार पर मूल पदों पर नियुक्त किया गया था। चूँकि उनकी नियुक्ति एक मूल पद के प्रति है,अतः वे भी अधिनियम, 2021 की धारा 2 से आच्छादित हैं। इसके अतिरिक्त अधिनियम, 2021 की धारा 2 के पूर्व उपबंधित व्याख्या के दृष्टिगत यह धारित किया जाता है कि अस्थायी या स्थायी प्रकृति में की गई सेवाओं की गणना पेंशन उद्देश्यों हेतु की जानी चाहिए; अन्यथा, पुनः यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***प्रेम सिंह*** (उपरोक्त) वाद में प्रदत्त निर्णय से अतिक्रमित होगा। इस प्रकार, इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता है कि सभी याचिकाकर्ता पेंशन प्रयोजनों के लिए तदर्थ कर्मचारियों के रूप में उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की गणना के अधिकारी हैं।

उपरोक्त के दृष्टिगत समस्त विवादित आदेश निरस्त किये जाते हैं।

<u>सीजनल संग्रह चपरासी/अमीन</u>

20. याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति वर्ष 1978 से वर्ष 1988 के मध्य सीजनल संग्रह चपरासी और सीजनल संग्रह अमीन के मूल पदों पर की गई है। इन सभी को बाद में वर्ष 2007 से वर्ष 2019 के मध्य संग्रह चपरासी और संग्रह अमीन के पद पर नियमित कर दिया गया।

रिट-ए संख्या 9665/2019 में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता संख्या2 अभी तक सेवानिवृत्त नहीं हुआ है। इसलिए उसका वाद वर्तमान समूह से भिन्न है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता नंबर 2 की ओर से वर्तमान रिट याचिका को वापस लेने का अनुरोध इस प्रार्थना के साथ किया है कि आवश्यकता पड़ने पर नई याचिका दायर करने की स्वतंत्रता दी जाए। प्रार्थना स्वीकृत की जाती है। उपरोक्त स्वतंत्रता के साथ याचिकाकर्ता संख्या 2 की ओर से बल न दिये जाने के कारण रिट याचिका खारिज की जाती है। अब मात्र याचिकाकर्ता संख्या 1 द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका शेष है।

याचिकाकर्ता सं. 1 का दावा प्रश्नगत आदेश दिनांक 11.02.2019 द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उसकी नियुक्ति मौसमी कार्य हेतु थी, इसलिए वह नियमित कर्मचारियों को प्रदान किए जाने वाले सेवानिवृत्ति पश्चात लाभों का दावा नहीं कर सकते;

रिट संख्या 23115/ 2020 और ***394/ 2023*** में, याचिकाकर्ता ने मौसमी संग्रह चपरासी के पद पर

अनुवादित

विरोधी पक्षकारों द्वारा उसके नियमितीकरण से पहले की सेवाओं की गणना कर उसे सेवानिवृत्ति लाभ देने का आदेश देने हेतु परमादेश जारी करने की प्रार्थना की है;

रिट-ए संख्या 17032/ 2020 में, प्रश्नगत आदेश दिनांक 29.06.2020 को चुनौती दी गई है, जिसके माध्यम से याचिकाकर्ताओं के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि चूँकि उसका नियमितीकरण पुरानी पेंशन योजना समाप्त होने के बाद हुआ है, इसलिए वह सेवानिवृत्ति पश्चात किसी भी लाभ का अधिकारी नहीं है; और

रिट-ए संख्या 1089/ 2022 में, याचिकाकर्ताओं ने आदेश दिनांक 18.01.2022 को चुनौती दी है जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं का दावा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उनकी नियुक्ति मौसमी कार्य हेतु थी, न कि वास्तविक नियमित पद पर।

रिट-ए संख्या 945/ 2023 में, याचिकाकर्ता का दावा प्रश्नगत आदेश दिनांक 26.11.2022 द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि अपने नियमितीकरण के बाद से उसने 10 वर्ष से कम अवधि हेतु कार्य किया है, इसलिए वह किसी भी सेवानिवृत्ति लाभ का अधिकारी नहीं है।

21. सेवानिवृत्ति पश्चात लाभों की गणना हेतु सीजनल संग्रह चपरासी/संग्रह अमीन के रूप में पूर्व में प्रदान की गई सेवाओं की अवधि की गणना करने के संबंध में विधि का निर्धारण लंबे समय से बड़ी संख्या में विभिन्न निर्णयों द्वारा किया गया है। इस सम्बन्ध में अ***ध्यक्ष के माध्यम से राजस्व बोर्ड: जिला मजिस्ट्रेट और उत्तर प्रदेश-जिला अधिकारी बनाम प्रसिध नारायण उपाध्याय, 2006 (5) एडब्ल्यूसी 5194 (डीबी)*** के वाद में इस न्यायालय की खण्डपीठ के निर्णय का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। उक्त निर्णय का आज तक पालन किया जा रहा है। इसके अलावा, मौलिक नियम 56, जैसा कि यह उत्तर प्रदेश संशोधन अधिनियम संख्या 24, 1975 द्वारा संशोधित किया गया, किसी अस्थायी कर्मचारी की सेवानिवृत्ति की अनुमति देता है और मौलिक नियम 56 के खंड (ई) में यह प्रावधान है कि इस नियम के अंतर्गत सेवानिवृत्त होने वाले प्रत्येक कर्मचारी को सेवानिवृत्ति लाभ उपलब्ध कराया जाएगा। अधिनियम, 2021 के लागू होने के बाद भी, चूंकि, उनकी नियुक्ति किसी पद के प्रति है, अतः वे अधिनियम, 2021 की मूल धारा 2 से भी आच्छादित होते हैं। इसके अतिरिक्त अधिनियम, 2021 की धारा 2 के पूर्व उपबंधित व्याख्या के दृष्टिगत, जहाँ यह धारित किया गया है कि अस्थायी या स्थायी पद पर प्रदान की गई सेवाओं का निर्वचन किसी स्थिति में, चाहे वह अस्थाई हो अथवा स्थाई, किसी व्यक्ति से लिये गए कार्य के रूप में किया जाना चाहिए; अन्यथा, पुनः यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***प्रेम सिंह*** (उपरोक्त) वाद में प्रदत्त निर्णय से अतिक्रमित होगा। इस प्रकार यह निर्विवाद है कि सभी याचिकाकर्ता पेंशन प्रयोजनों हेतु अनियमित कर्मचारियों के रूप में उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की गणना के अधिकारी हैं।

22. मामले के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, रिट याचिकाओं में प्रश्नगत समस्त आदेश या तो इस आधार पर पारित किए गए हैं कि वे वर्ष 2021 के अध्यादेश/अधिनियम के अंतर्गत आते हैं, अथवा वे ***प्रेम सिंह*** (उपरोक्त) के मामले में

अनुवादित

पक्षकार नहीं थे, अथवा ***प्रेम सिंह*** (उपरोक्त) के निर्णय पर विचार किए बिना पारित किए गए हैं, अतः ये ऊपर प्रस्तुत निष्कर्ष से यह स्पष्ट रूप से आच्छादित होता है। अतः प्रश्नगत आदेश अपोषणीय हैं एवं खारिज किए जाते हैं। हालाँकि, याचिकाकर्ता मात्र विगत तीन वर्षों के लिए पिछले पेंशन लाभ के हकदार होंगे।

23. सभी रिट याचिकाएँ ***स्वीकार*** की जाती हैं।

(2023) 2 ILRA 90

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

रिट ए संख्या 15770/2019

राजेंद्र प्रसाद भारती

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: वरदराज श्रीदत्त ओझा, मो. अनस खान

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., गौरव मेहरोत्रा

A. भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - विभागीय अधिकारियों के निर्णय की वैधता की जांच करते समय न्यायिक समीक्षा की सीमा- यदि जांच अधिकारी अस्वीकार्य, असंगत और सुनी-सुनाई साक्ष्यों पर भरोसा करके और प्रासंगिक और स्वीकार्य साक्ष्यों की अनदेखी करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचा है, तब उच्च न्यायालय को न केवल इस तरह के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का अधिकार है, बल्कि हस्तक्षेप करना उसका कर्तव्य भी है ताकि न्याय के अपराध को रोका जा सके - एक विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है - जांच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है - जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री पर विचार करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचे, जांच अधिकारी को जांच के दौरान न तो बाहरी स्रोतों से कोई सामग्री एकत्र करने की अनुमति है और न ही आरोपों से अन्तंत्र जांच करने की अनुमति है और किसी ऐसे निष्कर्ष के आधार पर आरोपित कोई भी सजा जो आरोपों की विषय-वस्तु नहीं थी, पूरी तरह से अवैध है - वह उन आरोपों की जांच नहीं कर सकता, जिनके लिए दोषी अधिकारी पर आरोप नहीं लगाए गए - घरेलू जांच प्रक्रिया में निष्पक्षता प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का एक हिस्सा है (पैरा 45, 57)

बी. न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही - केवल इसलिए कि आदेश गलत है या कृत कार्यवाही भिन्न हो सकती है, न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ करने की आवश्यकता नहीं है - प्रस्तुत तथ्यों के समूह पर एक अन्य निष्कर्ष पर पहुंचने की संभावना है लेकिन यह किसी न्यायिक अधिकारी को एक दृष्टिकोण अपनाने के लिए दोषी ठहराने का कोई आधार नहीं है - यदि प्रत्येक वाद में जहां अधीनस्थ न्यायालय का आदेश दोषपूर्ण पाया जाता है, अनुशासनात्मक कार्रवाई प्रारंभ की जाती है, तो अधीनस्थ न्यायपालिका का विश्वास अस्थिर हो जाएगा और अधिकारियों को निर्णय लिखने के निरंतर डर होगा ताकि अनुशासनात्मक जांच का सामना न करना पड़े और इस प्रकार न्यायिक अधिकारी स्वतंत्र रूप से या निडर होकर कार्य नहीं कर सकते। (पैरा 58)

अनुवादित

सी. अनुशासनात्मक कार्यवाही - सेवा से निलंबन - न्यायिक अधिकारी - शिकायतकर्ता ने याचिकाकर्ता, सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के विरुद्ध शिकायत दर्ज की, जिसमें कहा गया कि उसके कनिष्ठ ग्राहक ने उसे बताया था कि उसने याचिकाकर्ता की अवैध मांग को पूरा करके आवेदन की अनुमति ले ली है - याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक अन्य आरोप यह था कि वह एक वाद में दो समवर्ती आदेश पत्र चला रहा था और अपनी इच्छा के अनुसार अलग-अलग फाइलों में अलग-अलग आदेश पारित कर रहा था, हालांकि ऐसा कोई आरोप नहीं था कि याचिकाकर्ता ने किसी बाहरी विचार के लिए विरोधाभासी आदेश पारित किए थे, शिकायतकर्ता का बयान केवल सुनी-सुनाई साक्ष्य था, जो भौतिक विरोधाभासों से परिपूर्ण था - आयोजित- जांच अधिकारी ने सुनी-सुनाई बातों को ईश्वरीय सत्य मान लिया और उसमें मौजूद विरोधाभासों को नजरअंदाज कर दिया - जांच अधिकारी ने अन्य प्रासंगिक गवाहों के बयानों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया - जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया कि उसने याचिकाकर्ता के स्पष्टीकरण के निस्तारण बिना विरोधाभासी आदेश पारित किए - याचिकाकर्ता द्वारा अन्य मामलों में पारित आदेशों को ध्यान में रखते हुए सजा आदेश पारित किया गया, जिसके लिए न तो कोई आरोप लगाया गया था और न ही याचिकाकर्ता को अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया - हालांकि दिए गए तथ्यों के आधार पर एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचना संभव है, लेकिन यह एक न्यायिक अधिकारी को एक दृष्टिकोण के लिए दोषी ठहराने का आधार नहीं है - याचिकाकर्ता को केवल गलत आदेश पारित करने के लिए सेवा से हटाकर दंडित नहीं किया जाना चाहिए था - याचिकाकर्ता द्वारा आरोप संख्या 1 के संबंध में स्पष्टीकरण आरोप संख्या 1 का खंडन करने के लिए पर्याप्त था - सामग्री के आधार पर पारित दंड आदेश, जो अप्रासंगिक था, दंड आदेश को दूषित करता था - याचिकाकर्ता को सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के निलंबन आदेश निरस्त कर दिया गया, और याचिकाकर्ता को सेवा में पुनर्स्थापित कर दिया गया - पूर्व वेतन के अतिरिक्त, याचिकाकर्ता निष्कासन आदेश निरस्त होने के परिणामस्वरूप वरिष्ठता आदि सहित अन्य सभी लाभ प्राप्त करने का अधिकारी है। (62, 62, 62, 65)

अनुमत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1.मुजफ्फर हुसैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 567

2.भारत संघ बनाम के.के. धवन (1993) 2 एससीसी 56

3.राजस्थान उच्च न्यायालय बनाम वेद प्रिया, 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 337

4. भारत संघ बनाम पी. गुणसेकरन, (2015) 2 एससीसी 610

5.साधना चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2020) 11 एससीसी 760

6.पी.सी. जोशी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2001) 6 एससीसी 491

7.रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2009) 2 एससीसी 570

8.एम.वी. बिजलानी बनाम भारत संघ., (2006) 5 एससीसी 88

9.नरिंदर मोहन आर्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2006) 4 एससीसी 713

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

1. विद्वान अधिवक्ता श्री वरदराज श्रीदत्त ओझा की सहायता से, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित को सुना गया एवं विपक्षी संख्या 2 इलाहाबाद में उच्च न्यायालय हेतु श्री उत्सव मिश्रा एवं सुश्री रानी सिंह अधिवक्ता की सहायता से श्री गौरव मेहरोत्रा को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने दिनांक 02.04.2019 के आदेश को चुनौती दी है जिसके अंतर्गत उसे सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के पद से हटा दिया गया है। उन्होंने वर्ष 2011-12 हेतु वार्षिक गोपनीय आख्या, प्रशासनिक न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.01.2013- जिसके द्वारा वर्ष 2011-12 के लिए उनकी वार्षिक गोपनीय आख्या में प्रतिकूल टिप्पणियों के विरूद्ध याचिकाकर्ता के प्रतिवेदन को खारिज कर दिया गया था एवं जिसके अंतर्गत यह प्रस्तावित किया गया था कि याचिकाकर्ता के विरूद्ध एक विभागीय जाँच की जानी चाहिए, इस न्यायालय के तीन माननीय न्यायाधीशों की एक समिति की दिनांक 07.12.2016 की संस्तुति जिसके द्वारा प्रतिकूल टिप्पणियों के विरूद्ध याचिकाकर्ता के प्रतिवेदन दिनांक 05.11.2015 को खारिज कर दिया गया था, एवं माननीय प्रशासनिक समिति द्वारा पारित दिनांक 11.01.2017 का संकल्प जिसके द्वारा तीन सदस्यीय समिति की संस्तुतियों को स्वीकार करते हुए माननीय प्रशासनिक समिति द्वारा दिनांक 12.11.2017 को पारित प्रस्ताव में मामले को पूर्ण न्यायालय के समक्ष रखने का निर्देश दिया गया था, को भी चुनौती दी।

3. संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को 26.05.2006 को सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के रूप में नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता जिला मुरादाबाद के संभल में दूरस्थ न्यायालय में अतिरिक्त सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के रूप में तैनात रहे एवं उसके बाद उनका तबादला मिर्ज़ापुर कर दिया गया।

4. 25.11.2011 को, जबकि याचिकाकर्ता को सिविल जज (जूनियर डिवीजन) संभल के पद पर तैनात किया गया था, श्री महेश पाल सिंह यादव एक अधिवक्ता ने जिला न्यायाधीश मुरादाबाद को एक शिकायत दी, जिसमें याचिकाकर्ता के विरूद्ध निम्नलिखित आरोप लगाए गए: -

*" **माननीय** जनपद न्यायाधीश महोदय,*

जनपद- मुरादाबाद

*विषय :- न्यायिक अधिकारी सम्भल श्री राजेन्द्र प्रसाद भारती जी की **दोषपूर्ण कार्य प्रणाली** के सम्बन्ध में -*

महोदय,

सविनय निवेदन है कि न्यायिक अधिकारी श्री राजेन्द्र प्रसाद भारती महोदय की

कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में निम्नलिखित निवेदन है-

> *1- यह कि श्री राजेन्द्र प्रसाद भारती न्यायिक अधिकारी महोदय न्यायालय में प्रतिदिन दो बजे दिन बैठते है और केवल अर्जेन्ट मामले जैसे- बैल रिमांड व दावे को*

जो उसी दिन दायर होते है, पर ही सुनवाई होती है और कोई फाइल पर न तो कोई सुनवाई होती है, ना ही कोई आदेश होता है।

2- यह कि उक्त सभी अजमानतीय व गम्भीर प्रकृति के अपराधो में उक्त महोदय संबंधित पक्ष से हमसाज होकर उसी दिन जमानत का आदेश दे देते है। मिलने पर खारिज कर देते है।

3- यह कि उक्त अधिकारी महोदय नये दावो में धनराशि लेकर ही स्थगनादेश देते है अन्यथा सिर्फ नोटिस ही जारी करते है।

4- यह कि 156(3) दं.प्र.सं. के प्रा०पत्र को स्वीकार करने हेतु 2000/रूपये न देने पर खारिज कर देते है। ऐसे ही कोर्ट न० 1 में पीठासीन रहते हुये उक्त अधिकारी महोदय ने प्रकीर्ण वाद सं०58/11 रामकिशोर बनाम राम निवास प्रार्थी द्वारा पैसे ना देने पर प्रा०पत्र 15.4.11 को खारिज कर दिया वादहू वादी द्वारा उक्त अधिकारी की अनुचित मांग पूरी करने पर उसकी फर्देहकाम निकाल कर दूसरी फर्देहकाम लगाकर प्रा० पत्र उसी दिन 15.4.11 को स्वीकार कर दिया गया। प्रमाण स्वरूप छायाप्रति संलग्न है।

5- यह कि उक्त श्री राजेन्द्र प्रसाद भारती द्वारा न्यायालय के सभी न्यायिक व्यवस्था खराब कर रही है। कोई भी कार्य बगैर पैसे लिये उक्त अधिकारी महोदय नही कर रहे है। वादकारियो का उक्त कार्यप्रणाली से विश्वास समाप्त होता जा रहा है। उक्त अधिकारी महोदय की कार्यप्रणाली से वादकारियो का अहित हो रहा है। और न्यायालय की गरिमा धूमिल हो रही है और ईमानदार वादकारी न्याय से वंचित हो रहे है।

6- यह कि श्री राजेन्द्र प्रसाद भारती महोदय जब से सम्भल से स्थानान्तरित आये है, भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। इनके कार्यकाल को किसी भी माह की फौजदारी रिमाण्ड पत्रावली थाना-हयातनगर व सम्भल गढ़ी को तलब कर ली जाय तथा नये दीवानी वादी वाद भी तलब कर लिये जाय।

अनुवादित

श्रीमान जी के समक्ष उक्त सभी तथ्यों की सच्चाई सामने जायेगी।

न्यायालय की साफ सुथरी व गरिमा बनाये रखने के लिये आप से करबद्ध प्रार्थना है कि उक्त श्री राजेन्द्र प्रसाद भारती न्यायिक अधिकारी महोदय सम्भल दोषपूर्ण कार्यों की जांच कर उनके खिलाफ कार्यवाही की जाये।

श्रीमान जी की अति कृपा होगी।

25/11/11 ***प्रार्थी***

महेश पाल सिंह यादव एड०

सिविल कोर्ट, सम्भल।"

5. वर्ष 2011 की रिट बी संख्या 69275 में दिनांक 01.12.2011 के पारित आदेश में, इस न्यायालय ने देखा था कि वाद संख्या 1426/2011 में याचिकाकर्ता ने दिनांक 19.11.2011 को एक अंतरिम आदेश पारित किया था जिसमें पक्षकारों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया था जबकि उन्होंने वर्ष 2011 के वाद संख्या 1478 में दिनांक 26.11.2011 को एक आदेश पारित किया, जिसमें एक अधिनिर्णय को लागू करने हेतु अंतरिम आदेश जारी किया गया, जो कि 19.11.2011 के पूर्व के आदेश के विपरीत था। इस न्यायालय ने रजिस्ट्रार जनरल को याचिकाकर्ता से स्पष्टीकरण मांगने का निर्देश दिया। दिनांक 02.01.2012 को, याचिकाकर्ता ने एक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया कि आगामी वाद में, अलग-अलग तर्क दिये गये एवं अलग-अलग साक्ष्य प्रस्तुत किए गए, जिसके कारण 26.11.2011 को आदेश पारित किया गया।

6. दिनांक 15.12.2011 को श्री महेश पाल सिंह यादव अधिवक्ता ने माननीय मुख्य न्यायाधीश को शिकायत भेजकर याचिकाकर्ता पर निम्नलिखित आरोप लगाये:-

"**माननीय** *मुख्य न्यायाधीश महोदय,*

उच्च न्यायालय इलाहाबाद

विषयः- *न्यायिक अधिकारी सम्भल श्री राजेन्द्र प्रसाद भारती जी की दोषपूर्ण कार्यप्रणाली के*

सम्बन्ध में-

महोदय,

सविनय निवेदन है कि न्यायिक अधिकारी श्री राजेन्द्र प्रसाद भारती महोदय की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में निम्नलिखित निवेदन करना है-

1- यह कि श्री राजेन्द्र प्रसाद भारती न्यायिक अधिकारी महोदय न्यायालय में प्रतिदिन 2 बजे दिन में बैठते है और केवल अर्जेन्ट मामले जैसे- बेल रिमांड व दावे को जो उसी दिन दायर होते है, पर ही सुनवाई होती है और कोई रेगुलर फाइल

अनुवादित

पर न तो कोई सुनवाई होती है, ना ही कोई आदेश होता है।

2- यह कि सभी अजमानतीय व गम्भीर प्रकृति के अपराधो में उक्त महोदय सम्बन्धित पक्ष से अवैध धनराशि लेकर उसी दिन जमानत का आदेश देते है न मिलने पर खारिज कर देते है।

3- यह कि उक्त अधिकारी महोदय नये दावो में धनराशि लेकर भी स्थगन आदेश देते है अन्यथा सिर्फ नोटिस ही जारी करते है।

4- यह कि 156(3) दं०प्र०सं० के प्रा०पत्र को स्वीकार करने हेतु 2000/रूपये लेते है न देने पर खारिज कर देते है। ऐसे ही कोर्ट न०1 में पीठासीन रहते हुये उत्तराधिकारी महोदय ने प्रकीर्ण वाद सं०58/11 रामकिशोर बनाम रामनिवास प्रार्थी द्वारा पैसे ना देने पर प्रा०पत्र15.4.11 को खारिज कर दिया वादहू वादी द्वारा उक्त अधिकारी की अनुचित से सीधे सम्पर्क करने व उक्त अधिकारी अनुचित मांग पूरी करने पर उक्त प्रकीर्ण वाद की फर्दे काम निकाल कर दूसरी फर्देहकाम लगाकर प्रा० पत्र उसी दिन 15.4.11 को स्वीकार कर दिया गया। प्रमाण स्वरूप छायाप्रति संलग्न है।

5- यह कि उक्त श्री राजेन्द्र प्रसाद भारती द्वारा न्यायालय के सभी न्यायिक व्यवस्था खराब कर रखी है कोई भी कार्य बगैर सुविधा शुल्क लिये उक्त अधिकारी महोदय नही कर रहे है। वादकारियों का उक्त कार्यप्रणाली से विश्वास समाप्त होता जा रहा है। उक्त अधिकारी महोदय की कार्यप्रणाली से वादकारियों का अहित हो रहा है। और न्यायालय की गरिमा धूमिल हो रहा है और ईमानदार वादकारी न्याय से वंचित हो रहे है।

*6- यह कि पीठासी महोदय जब से सम्भल में स्थानान्तरित होकर कार्यभार सम्भाला है भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। इनके कार्यकाल की किसी भी माह की फौजदारी रिमांड पत्रावली थाना हयातनगर व सम्भल, व थाना हजरत नगर गढ़ी की तलब कर ली जाये तथा नये दीवानी वाद की पत्रावलियां भी तलब फरमा ली जाये जिससे उक्त पीठासीन अधिकारी की कार्यशैली की **स्पष्टता** श्रीमान जी के समक्ष उजागर हो जायेगी।*

7- यह कि इतना ही नहीं दीवानी वादों में पक्षकारो की सहमति से हुए सुलेहनामें को स्वीकार करने के बाद की सुलेहनामें वाद में कोई अन्तिम निर्णय न लेकर अनुचित लाभ प्राप्ति हेतु बराबर उनमें तारीखों नियत करते रहते हैं जिससे वादकारियों को न्याय नहीं मिलता।

8- यह कि अभियुक्त पुनीत त्यागी की न्यायालय में उपस्थिति के बगैर ही उक्त अधिकारी द्वारा जमानत का आदेश पारित कर दिया गया और न्यायालय के आदेश का पालन न करने के बावजूद अभियुक्त की रिहाई आदेश दे दिया गया। अभियुक्त के निजी बन्धपत्र पर हस्ताक्षर नही कराये गये मु०अ०सं० 119/11 है।

अनुवादित

न्यायालय की साफ सुथरी छवि व गरिमा बनाये रखने के लिये आप से करबद्ध प्रार्थना है कि उक्त श्री राजेन्द्र प्रसाद भारती न्यायिक अधिकारी महोदय सम्भल दोषपूर्ण कार्यों की जांच कर उनके खिलाफ कार्यवाही की जाये। श्रीमान् जी की अति कृपा होगी।

15/12/2011 ***प्रार्थी महेश पाल सिंह यादव एडवोकेट***

सिविल कोर्ट, सम्भल।"

7. जिला न्यायाधीश ने उपरोक्त शिकायत में लगाए गए आरोपों के आधार पर याचिकाकर्ता की सत्यनिष्ठा को संदिग्ध पाते हुए वर्ष 2011-12 की वार्षिक गोपनीय आख्या में प्रतिकूल प्रविष्टियाँ दी थीं।

8. याचिकाकर्ता द्वारा उसे दी गई प्रतिकूल प्रविष्टियों के विरूद्ध दिए गए एक अभ्यावेदन को माननीय प्रशासनिक न्यायाधीश ने दिनांक 29.01.2013 के एक आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 05.11.2015 को एक अभ्यावेदन दिया, जिसे तीन माननीय न्यायाधीशों की एक समिति ने खारिज कर दिया।

9. 21.01.2012 को याचिकाकर्ता ने जिला जज को उत्तर दिया कि आरोप नितान्त गलत हैं। वाद संख्या 58/2011 के संबंध में उन्होंने कहा कि अभियोजन के अभाव में प्रार्थनापत्र खारिज कर दिया गया था, लेकिन उसके बाद अधिवक्ता उपस्थित हुए एवं अनुरोध किया, जिसके बाद प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया गया और मामला दर्ज कर जाँच करने का निर्देश जारी किया गया। याचिकाकर्ता ने कहा कि आदेश किसी निहित स्वार्थ के कारण नहीं, बल्कि उसके अधिवक्ता के उपस्थित होने एवं मौखिक अनुरोध करने के बाद वादी के हित में पारित किया गया था।

10. माननीय मुख्य न्यायाधीश को दिनांक 15.12.2011 को भेजी गई शिकायत के अनुसरण में, प्रशासनिक न्यायाधीश ने जिला न्यायाधीश से रिपोर्ट मांगी, जिला न्यायाधीश ने जाँच अधिकारी श्री संजय कुमार वर्मा, एच.जे.एस., से जाँच करायी जिन्होंने 02.07.2016 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जिसमें कहा गया था कि उन्होंने एक जाँच की थी और शिकायतकर्ता श्री महेश पाल सिंह यादव अधिवक्ता, का बयान दर्ज किया था जिन्होंने कुछ सामान्य एवं अस्पष्ट आरोप लगाने के अतिरिक्त, कहा था कि याचिकाकर्ता ने प्रकीर्ण वाद संख्या 58/2011, राम किशोर बनाम राम निवास है, धारा 156 (3) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत को खारिज कर दिया था क्योंकि उसे कोई पैसा नहीं मिला, लेकिन बाद में जब प्रार्थी ने सीधे याचिकाकर्ता से संपर्क किया और उसकी अवैध मांग पूरी की, तब प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया गया। शिकायतकर्ता ने पुनः कहा कि याचिकाकर्ता ने मुकदमा अपराध संख्या 119/2011 में धारा 498 ए, 452, 323, 324, 504 और 506 भारतीय दंड संहिता एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4, के अंतर्गत ए.पी.ओ. द्वारा समय मांगे जाने के बावजूद, आरोपी पुनीत त्यागी को न्यायालय में उपस्थित हुए बिना जमानत दे दी थी।

11. जाँच अधिकारी ने दर्ज किया कि शिकायतकर्ता के बयान के अतिरिक्त आरोपों के समर्थन में कोई अन्य साक्ष्य नहीं था। जाँच अधिकारी ने श्री परवेज़ आलम अधिवक्ता, का

अनुवादित

बयान दर्ज किया था जिन्होंने कहा था कि वह प्रकीर्ण वाद संख्या 58/ 2011 मामले में अधिवक्ता थे और उन्होंने याचिकाकर्ता को कोई अवैध राशि नहीं दी थी। उन्होंने आगे कहा कि शिकायतकर्ता श्री महेश पाल सिंह यादव प्रकीर्ण वाद संख्या 58/2011 में अधिवक्ता नहीं थे।

12. जाँच अधिकारी ने श्री राम किशोर, प्रकीर्ण वाद संख्या 58/ 2011 के प्रार्थी का बयान दर्ज किया था जिसमें कहा गया कि उन्होंने याचिकाकर्ता को कोई अवैध राशि नहीं दी है। उन्होंने पुनः कहा कि वह शिकायतकर्ता श्री महेश पाल सिंह यादव अधिवक्ता को नहीं जानते थे एवं वह प्रकीर्ण वाद संख्या 58/2011 में अधिवक्ता नहीं थे।

13. जाँच अधिकारी ने माना कि पहले उपरोक्त प्रार्थनापत्र उपस्थिति में चूक के कारण खारिज कर दिया गया था एवं वाद के गुण दोषों के आधार पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, परन्तु बाद में सुनवाई के पश्चात, प्रार्थनापत्र की अनुमति दी गई और हालांकि याचिकाकर्ता ने बिना किसी प्रार्थनापत्र के वाद को प्रत्यावर्तित कर प्रक्रियात्मक त्रुटि की थी , वाद के प्रार्थी एवं उनके अधिवक्ता श्री परवेज़ आलम ने कहा था कि कोई अवैध भुगतान नहीं किया गया था एवं अधिवक्ता श्री महेश पाल सिंह यादव इस मामले में अधिवक्ता नहीं थे, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता था कि याचिकाकर्ता ने कोई अवैध परितोषण स्वीकार किया था।

14. शिकायतकर्ता के इस आरोप के संबंध में कि पुनीत त्यागी को उनकी उपस्थिति के बिना जमानत दे दी गई, जाँच अधिकारी ने तत्कालीन कोर्ट मोहर्रिर श्री लक्षम सिंह का बयान दर्ज किया जिनका कहना था कि न्यायालय ने अभियुक्त को हिरासत में लेने का आदेश पारित कर दिया था, उन्होंने अभियुक्त को हिरासत में ले लिया था एवं उन्होंने अभियुक्त पुनीत की 'रोबकार हाजिरी' थाना असमोली भेज दी थी, जिसे जाँच अधिकारी के समक्ष पेश किया गया था। जाँच अधिकारी ने आगे दर्ज किया कि जमानत प्रार्थनापत्र पर आरोपी पुनीत के हस्ताक्षर थे और यह सिद्ध करने हेतु कोई सामग्री उपलब्ध नहीं थी कि आरोपी पुनीत त्यागी को उसकी उपस्थिति के बिना एवं अवैध रिश्वत लेने के बाद जमानत दी गई थी।

15. जिला न्यायाधीश ने दिनांक 11.07.2016 को उच्च न्यायालय को एक रिपोर्ट भेजी, जिसमें कहा गया कि वह उपरोक्त जाँच रिपोर्ट से सहमत थे एवं 22.11.2018 को, प्रशासनिक न्यायाधीश ने जाँच रिपोर्ट के अवलोकन के बाद एक आदेश पारित किया, कि मामले में आगे कार्रवाई की जरूरत नहीं थी।

16. दिनांक 24.12.2011 को अमजदी बेगम नाम की महिला ने जिला न्यायाधीश को एक और शिकायत दी थी, जिसमें कहा गया था कि उन्होंने वाद संख्या 633/2011 दायर किया था, जिसमें याचिकाकर्ता ने 25.07.2011 को एक आदेश पारित किया था, जिसमें पार्टियों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया था और कोई भी निर्माण कार्य नहीं करने का आदेश दिया था। इसके बाद, शफीक अहमद ने अमजदी बेगम को निर्माण कार्यों में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए वाद संख्या 925/2011 दायर किया जिसमें अमजदी बेगम उपस्थित हुईं और प्रार्थना का विरोध किया और कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया जा सका। उपरोक्त दोनों वादों के लंबित होने के तथ्य को छुपाते हुए शफीक अहमद ने एक और वाद संख्या 1066/2011 दायर किया

अनुवादित

और न्यायालय को गुमराह करके लिनटेल बिछाने की अनुमति प्राप्त कर ली। शिकायतकर्ता ने यह भी आरोप लगाया कि कुछ अनुचित लाभ लेकर यह आदेश पारित किया गया है।

17. अमजदी बेगम की उक्त शिकायत पर प्रशासनिक न्यायाधीश ने जिला न्यायाधीश से रिपोर्ट मांगी थी। जिला न्यायाधीश ने श्री संजय कुमार वर्मा, एच.जे.एस. से जाँच करायी। याचिकाकर्ता ने यह कहते हुए अपना उत्तर प्रस्तुत किया था कि उसने अपने समक्ष उपलब्ध सामग्री के आधार पर वाद संख्या 1066/2011 में अंतरिम आदेश पारित किया था एवं आदेश XXXIX नियम 4 के अंतर्गत प्रार्थनापत्र का निपटारा नहीं किया जा सका क्योंकि मामले की पत्रावली पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तलब की गयी थी।

18. जाँच अधिकारी ने शिकायतकर्ता अमजदी बेगम को नोटिस भेजा था, लेकिन यह बताया गया कि उनकी मृत्यु हो गई थी एवं उनका कोई भी उत्तराधिकारी सामने नहीं आया।

19. अपनी रिपोर्ट दिनांक 06.01.2017 में, जाँच अधिकारी ने निष्कर्ष निकाला कि वाद संख्या 1066/2011 में अंतरिम आदेश देने के समय, पूर्व के लंबित मामलों के विषय में आधिकारिक तौर कुछ भी उल्लेख नहीं था। यह सिद्ध करने हेतु कुछ भी नहीं था कि कोई अवैध लाभ लेने के बाद आदेश पारित किया गया था एवं शिकायत निराधार थी।

20. 21.02.2017 को, प्रशासनिक न्यायाधीश ने जाँच रिपोर्ट के अवलोकन के बाद एक आदेश पारित किया, शिकायत को अभिलेख से बद्ध करने हेतु भेज दिया।

21. इसके बाद याचिकाकर्ता के विरूद्ध एक आरोप पत्र तैयार किया गया, जिसे माननीय मुख्य न्यायाधीश ने दिनांक22.03.2017 को मंजूरी दे दी, जिसमें निम्नलिखित दो आरोप लगाए गए: -

"1. जब आप 17.12.2009 से 16.04.2012 तक सिविल जज (जूनियर डिवीजन) संभल, मुरादाबाद के पद पर तैनात थे, तब आपने विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए न्यायिक आदेश पारित किया। आपने ओ.एस संख्या 1478/2011 एवं 1426/2011 में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 39 (2) के अंतर्गत दो विरोधाभासी आदेश पारित किए। दोनों मुकदमे दिनांक 01.08.2007 के अवार्ड से संबंधित थे।

2. कि आप आपराधिक प्रकीर्ण वाद संख्या 58/2011, राम किशोर बनाम रामनिवास एवं अन्य दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अंतर्गत प्रार्थनापत्र में दो समवर्ती आदेश पत्र चला रहे थे और विधि द्वारा स्थापित विधिक मानदंडों एवं प्रक्रियाओं का उल्लंघन करके अपनी इच्छा के अनुसार अलग-अलग फाइलों में अलग-अलग आदेश पारित कर रहे थे और आपके द्वारा पारित आदेश आपकी ईमानदारी और प्रतिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।"

अनुवादित

22. आरोप-पत्र में आरोपों के समर्थन में प्रस्तुत किये जाने वाले निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्यों का उल्लेख है:-

(i) श्री महेश पाल सिंह, अधिवक्ता की दिनांक 25.11.2011 की शिकायत।

(ii) श्री ए.के. उपाध्याय, अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, मुरादाबाद की दिनांक 23.03.2011 की जाँच रिपोर्ट।

(iii) दोनों आदेश पत्र आपराधिक प्रकीर्ण वाद संख्या 58/2011, धारा 156(3) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत की पत्रावली पर अंकित करने हेतु बनाए रखे गए, राम किशोर द्वारा 08.03.2011 को पत्रावली पर अंकित किया गया।

(iv) मूल वाद संख्या 1426/2011 मो. इश्तियाक बनाम मो. इरफ़ान एवं अन्य एवं 1478/2011, मो. मुशर्रफ एवं अन्य बनाम मो. इश्तियाक एवं अन्य की शिकायत एवं आदेश-पत्रक की प्रति।

23. आरोप पत्र पर आगे कार्यवाही करते हुए एक जाँच की गई। जाँच रिपोर्ट में एक कथन है कि जाँच, जिला जज द्वारा 28.09.2012 को वर्ष 2011-12 के लिए दर्ज की गई वार्षिक गोपनीय टिप्पणियों से उद्भूत है, जिसके आधार पर दिनांक 20.06.2013 को माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के तहत सतर्कता ब्यूरो जाँच प्रारंभ की गई थी। याचिकाकर्ता ने आरोपों से इनकार करते हुए दिनांक 19.04.2017 को अपना लिखित बयान प्रस्तुत किया। दो मुकदमों में विरोधाभासी आदेश पारित करने के संबंध में, याचिकाकर्ता ने प्रस्तुत किया कि दोनों मुकदमों की कार्रवाई का कारण काफी अलग था और दोनों मुकदमों में दायर दस्तावेज भी अलग-अलग थे और दोनों मुकदमों में से उनके द्वारा पारित किसी भी आदेश के विरुद्ध किसी भी पक्ष ने कोई आपत्ति या विरोध नहीं किया।

24. अभियोग क्रमांक 2 के संबंध में कि वह एक मामले में दो समवर्ती आदेश पत्र चला रहा था, याचिकाकर्ता ने प्रस्तुत किया कि आरोप झूठा था और यह श्री महेश पाल सिंह यादव, अधिवक्ता, जो मामले में अधिवक्ता नहीं थे, द्वारा दायर दिनांक 25.11.2011 की शिकायत से उत्पन्न हुआ था जैसा कि श्री महेश पाल सिंह यादव, श्री परवेज आलम और प्रार्थी राम किशोर के पूर्व की पूछताछ के दौरान दर्ज किए गए बयानों से स्पष्ट था। दिनांक 23.04.2016 की रिपोर्ट में जाँच अधिकारी ने आरोपों को झूठा पाया था।

25. जाँच अधिकारी ने आरोप संख्या 1 के संबंध में याचिकाकर्ता के तर्कों को नोट किया कि उन्होंने उपरोक्त मुकदमों में उनके सामने रखी गई सामग्री के आधार पर वर्ष 2011 के वाद संख्या 1478 एवं वर्ष 2011 के 1426 में आदेश पारित किए थे। उन्होंने आगे कहा कि वाद संख्या 1478/2011 में, पिछले वाद संख्या 1426/2011 और उसमें पारित अंतरिम आदेश का कोई उल्लेख नहीं था। जाँच रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता ने 'कुछ दस्तावेजी साक्ष्यों की प्रस्तुति के माध्यम से अपने बचाव साक्ष्य प्रस्तुत किए थे', लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए

अनुवादित

बचाव साक्ष्यों का विवरण जाँच रिपोर्ट में प्रकट नहीं किया गया है और इसके संबंध में कोई चर्चा नहीं है।

26. जाँच रिपोर्ट में जाँच अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए 9 मामलों में याचिकाकर्ता द्वारा पारित कुछ आदेशों का विवरण शामिल है। इन आदेशों का आरोप पत्र में उल्लेख नहीं किया गया था एवं पत्रावली पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि जाँच अधिकारी द्वारा जिस सामग्री पर विश्वास व्यक्त किया गया वह याचिकाकर्ता को प्रदान की गई थी।

27. जाँच अधिकारी ने निष्कर्ष निकाला कि "याचिकाकर्ता द्वारा पारित आदेशों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि याचिकाकर्ता नियमित आधार पर अंतरिम निषेधाज्ञा देने का आदी था; इस बिंदु पर विधि का स्थापित सिद्धांत यह है कि एकपक्षीय अंतरिम निषेधाज्ञा देना एक अपवाद है जबकि दोनों पक्षों को सुनने हेतु नोटिस जारी करना सामान्य नियम है। आरोपित अधिकारी का कृत्य विधि के इस स्थापित सिद्धांतों का उल्लंघन करता प्रतीत होता है।'

28. जाँच अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि याचिकाकर्ता ने एक ही अधिनिर्णय से उत्पन्न दो वादों में विरोधाभासी आदेश पारित किए थे और वह आरोप संख्या 1 का दोषी था। हालाँकि, जाँच अधिकारी ने आगे दर्ज किया कि इस बिंदु पर कोई राय नहीं बनाई जा सकी, क्योंकि मामला सिविल विविध रिट याचिका संख्या 69275/2011 माननीय उच्च न्यायालय में विचाराधीन था।

29. आरोप क्रमांक 2, के संबंध में जाँच अधिकारी ने शिकायतकर्ता श्री महेश पाल सिंह यादव, श्री परवेज आलम, अधिवक्ता एवं श्री राम किशोर के बयानों पर विश्वास व्यक्त किया।

30. श्री. महेश पाल सिंह ने कहा था कि याचिकाकर्ता अपने न्यायालय में देर रात लगभग 02:00 बजे बैठता था; कि वह नियमित मामलों की सुनवाई नहीं करते थे, बल्कि वह केवल जमानत एवं नये मुकदमों जैसे अत्यावश्यक मामलों की ही सुनवाई करते थे; कि उनकी प्रतिष्ठा अच्छी नहीं थी एवं आम धारणा थी कि वे रिश्वत लेते थे; कि वह दोषपूर्ण आदेश पारित करते थे। हालाँकि, उक्त साक्षी ने पुनः कहा था कि याचिकाकर्ता ने उससे कभी रिश्वत की माँग नहीं की थी। उन्होंने कहा कि प्रकीर्ण वाद संख्या 58/2011 धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत राम किशोर बनाम राम निवास शीर्षक वाली याचिका उनके कनिष्ठ द्वारा दायर की गई थी एवं उनके कनिष्ठ के मुवक्किल ने उन्हें बताया था कि उन्होंने याचिकाकर्ता की अवैध माँग को पूरा करके प्रार्थनापत्र की अनुमति ले ली है, लेकिन साक्षी को यह नहीं पता था कि कथित अवैध माँग क्या थी। श्री. महेश पाल सिंह ने कहा कि उन्होंने याचिकाकर्ता के विरूद्ध उनके द्वारा पारित आदेश एवं सामान्य धारणा के आधार पर शिकायत की थी। उन्होंने कहा कि उनके तीन कनिष्ठ सहयोगी हैं - श्री प्रशांत गुप्ता, श्री मोनू गुप्ता एवं 1-2 अधिवक्ता और उसकी सीट पर बैठते थे लेकिन वह उनके नाम नहीं जानता था। वह 15.04.2011 से पहले राम किशोर को नहीं जानता था एवं उसे यह भी नहीं पता था कि राम किशोर उसकी सीट पर कैसे आया।

अनुवादित

31. याचिकाकर्ता द्वारा जिरह किए जाने पर, श्री महेश पाल सिंह यादव ने कहा कि उन्हें नहीं पता कि वर्ष 2011-12 के दौरान याचिकाकर्ता द्वारा कितने मामलों का निर्णय योग्यता के आधार पर किया गया था और याचिकाकर्ता ने उसे सौंपे गए कार्य का 189.95% कोटा पूरा किया था। उन्होंने स्वीकार किया कि वह राम किशोर के मामले में अधिवक्ता नहीं थे एवं उन्होंने इस मामले में बहस नहीं की थी। पहले उनके कनिष्ठ एवं राम किशोर ने उन्हें बताया था कि प्रार्थनापत्र खारिज कर दिया गया है और बाद में राम किशोर ने बताया कि प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया गया है।

32. दूसरे साक्षी श्री. परवेज आलम एडवोकेट ने बताया कि उन्होंने 15.04.2011 को धारा 156 (3) दं.प्र.सं के अंतर्गत राम किशोर बनाम राम निवास के विरूद्ध प्रार्थना पत्र दर्ज किया था एवं याचिकाकर्ता ने उसे बताया था कि प्रार्थनापत्र व्यतिक्रम में खारिज कर दिया गया था; उन्होंने याचिकाकर्ता से मौखिक प्रार्थना की कि वह पानी पीने गया था और उसके प्रार्थनापत्र पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाए, जिस पर याचिकाकर्ता ने उसके तर्कों को सुना एवं उस पर आदेश पारित किया। उनके मुवक्किल राम किशोर उस तिथि पर न्यायालय नहीं आये थे। रामकिशोर ने प्रार्थनापत्र हेतु शुल्क के रूप में उन्हें मात्र 250/- से 300/- रुपये का भुगतान किया था। उन्होंने आगे कहा कि श्री महेश पाल सिंह यादव की पत्नी. जिला पंचायत की सदस्य थी एवं वह न्यायालय में कम ही आते थे एवं सस्ती लोकप्रियता हासिल करने हेतु झूठी शिकायतें दर्ज कराने की उनकी आदत थी। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि याचिकाकर्ता एक ईमानदार अधिकारी के रूप में प्रसिद्ध थे।

33. जाँच अधिकारी ने प्रार्थी राम किशोर से भी पूछताछ की, जिसने बताया कि उसने धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत दिनांक 08.03.2011 को श्री परवेज आलम अधिवक्ता के माध्यम से एक प्रार्थनापत्र दिया था लेकिन वह उस तिथि के बाद प्रार्थनापत्र की पैरवी करने न्यायालय नहीं गये। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि वह 15.04.2011 को न्यायालय नहीं गये थे; कि उसने कोई रिश्वत नहीं दी एवं यह बात उसने श्री महेश पाल सिंह यादव या किसी अन्य व्यक्ति को नहीं बताई कि उसने रिश्वत दी थी।

34. जाँच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के तर्कों पर गौर किया कि यह आरोप एडवोकेट श्री महेश पाल सिंह यादव द्वारा दिनांक 25.11.2011 को दायर एक शिकायत से उत्पन्न हुआ है जो याचिकाकर्ता द्वारा धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 58/2011 में पारित आदेश के संबंध में है। एक जाँच शुरू की गई थी और जाँच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को दोषी नहीं मानते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। जिला न्यायाधीश मुरादाबाद ने उच्च न्यायालय को रिपोर्ट सौंपी थी।

35. हालाँकि, जाँच अधिकारी ने माना कि *"अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश द्वारा प्रस्तुत दिनांक 23.03.12 की एक रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि मैंने विद्वान सिविल जज (जूनियर डिवीजन) संभल से उक्त तथ्यों के बारे में पूछा एवं उन्होंने स्वीकार किया कि दोनों आदेश-पत्रक के हस्ताक्षर(एक फोटो स्टेट कॉपी) उसकी हैं एवं उसने दोनों आदेश-पत्रक पर हस्ताक्षर भी किए हैं, लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि उक्त फाइल की पिछला आदेश-पत्रक , जिस पर दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत*

अनुवादित

प्रार्थनापत्र अस्वीकृत किया गया था, पीठासीन अधिकारी द्वारा गुम हो गई है। इस प्रकार, उपधारणा पीठासीन अधिकारी के विरूद्ध जाती है कि उन्होंने शिकायत के कारण जानबूझकर ऑर्डर शीट को गुम कर दिया और चूंकि फाइल उसके निर्णय बॉक्स में रखी गई थी, इसलिए भी उपधारणा उसके विरूद्ध जाती है। इस प्रकार शिकायत की सामग्री पीठासीन अधिकारी के विरूद्ध सिद्ध होती है कि वह एक ही फाइल में दो समानांतर ऑर्डर शीट चला रहे थे और एक ऑर्डर शीट पर उसने दं.प्र.सं की धारा 156 (3) के अंतर्गत दायर प्रार्थनापत्र को खारिज कर दिया है जबकि एक अन्य ऑर्डर शीट पर उन्होंने दं.प्र.सं की धारा 156 (3) के अंतर्गत प्रार्थनापत्र की अनुमति दी है जिनका कारण उन्हें ही बेहतर ज्ञात हैं।"

36. याचिकाकर्ता ने जाँच रिपोर्ट के विरूद्ध अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने कहा कि जाँच अधिकारी ने शिकायतकर्ता महेश पाल सिंह यादव के बयान का शब्दशः पुनरुत्पादन किया था जो 26.07.2014 को विशेष सतर्कता जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था एवं उन्होंने मात्र इसकी तिथि बदल कर 28.06.2017 कर दी गई एवं श्री परवेज़ आलम एवं श्री राम किशोर के पास विशेष सतर्कता जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए उनके पूर्व बयानों की शब्दशः प्रतियां भी थीं, जो के जारी किये गये बयान को दर्शाता है कि जाँच अधिकारी ने कोई स्वतंत्र जाँच नहीं की थी। जाँच अधिकारी ने श्री महेश पाल सिंह यादव के स्पष्ट कथन पर ध्यान नहीं दिया कि याचिकाकर्ता ने उनसे रिश्वत की मांग नहीं की थी और उनके कनिष्ठ मोनू गुप्ता ने उन्हें प्रार्थनापत्र के बारे में बताया था, लेकिन मोनू गुप्ता की जाँच नहीं की गई। याचिकाकर्ता ने आगे कहा था कि जाँच अधिकारी का निष्कर्ष, जो ऊपर उद्धृत किया गया है, विशेष सतर्कता अधिकारी ए.के. उपाध्याय की पूर्व रिपोर्ट का शब्दशः पुनरुत्पादन था।

37. हालाँकि, 22.11.2017 को उच्च न्यायालय की प्रशासनिक समिति ने जाँच रिपोर्ट दिनांक 29.08.2017 को स्वीकार करने और मामले को माननीय पूर्ण न्यायालय के समक्ष रखने का निर्णय लिया। दिनांक 26.05.2018 को हुई अपनी बैठक में, पूर्ण न्यायालय ने याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने के साथ दंडित करने का निर्णय लिया। तदनुसार, सरकार ने याचिकाकर्ता को सेवा से हटाते हुए दिनांक 02.04.2019 को एक कार्यालय ज्ञापन जारी किया।

38. वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत हुए और कहा कि याचिकाकर्ता को उन आरोपों के लिए दंडित किया गया है जिसके लिए पूर्व में उसे प्रतिकूल प्रविष्टि दी गई थी और एक जाँच की गई थी जिसमें याचिकाकर्ता को दोषी नहीं पाया गया था और इस पर विचार करने के बाद जाँच रिपोर्ट के अनुसार प्रशासनिक न्यायाधीश ने मामला बंद कर दिया था। उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता को बाद में उन्हीं आरोपों के लिए दंडित किया गया है, जो विधि में स्वीकार्य नहीं है। उन्होंने पुनः कहा कि सजा का आदेश याचिकाकर्ता द्वारा 9 अन्य मामलों में पारित आदेशों पर विचार करने के बाद पारित किया गया है, जिसके संबंध में न तो कोई आरोप लगाया गया था और न ही याचिकाकर्ता को अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का कोई अवसर दिया गया था और सजा का आदेश ऐसी

अनुवादित

सामग्री के आधार पर पारित किया गया जो अप्रासंगिक थी, जो दंड आदेश को ख़राब करती है।

39. श्री. दीक्षित ने नरेंद्र मोहन आर्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2006) 4 SCC 713, एम. वी. बिजलानी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (2006) 5 SCC 88, उत्तरांचल राज्य बनाम खड़क सिंह, (2008) 8 SCC 236, रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2009) 2 SCC 570, पी.सी. जोशी बनाम यूपी राज्य, (2001) 6 SCC 491 के मामलों में दिए गए निर्णयों एवं कुछ अन्य निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया और हम निम्नलिखित प्रस्तरों में इस पर विचार करेंगे।

40. इसके विरूद्ध, उच्च न्यायालय हेतु विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के एक न्यायिक अधिकारी होने के नाते, मात्र कदाचार का आरोप ही हटाने के दंड आदेश का समर्थन करने हेतु पर्याप्त था एवं यह आवश्यक नहीं था कि वाह्य प्रतिफल का आरोप सिद्ध किया जाना चाहिए था। याचिकाकर्ता के विरूद्ध उन्होंने प्रस्तुत किया है कि वर्ष 2011-12 की वार्षिक रिपोर्ट में दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि दंड के माध्यम से नहीं दी गई थी और इसलिए, दोहरे दण्ड का सिद्धांत वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है और पहले की प्रतिकूल प्रविष्टि इसके लिए दण्ड आदेश पारित करने में कोई रोक नहीं थी। उन्होंने आगे कहा कि पहले, प्रशासनिक न्यायाधीश ने मात्र प्रारंभिक जाँच के बाद शिकायत को बंद करने का आदेश दिया था और मामले में कोई विस्तृत जाँच नहीं की गई थी और इसलिए, प्रशासनिक न्यायाधीश द्वारा शिकायत को समापन करने से बाद की विस्तृत जाँच एवं निष्कासन का परिणामी आदेश पर रोक नहीं लगेगी।

41. श्री. मेहरोत्रा ने मुजफ्फर हुसैन बनाम उ.प्र.राज्य, 2022 SCC ऑनलाइन एससी 567, भारत संघ बनाम के.के.धवन (1993) 2 SCC 56, राजस्थान उच्च न्यायालय बनाम वेद प्रिया, 2020 SCC ऑनलाइन एससी 337 और भारत संघ बनाम पी. गुणसेकरन, (2015) 2 SCC 610 के मामलों के निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है और प्रस्तुत किया है कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए, यह न्यायालय को जाँच अधिकारी के समक्ष पेश किए गए साक्ष्यों की दोबारा जाँच नहीं करनी चाहिए और यह न्यायालय अपील की शक्ति का प्रयोग नहीं कर रहा है।

42. यह सत्य है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत किसी भी निर्णय की वैधता की जाँच करते समय न्यायिक समीक्षा का दायरा निर्णय लेने की प्रक्रिया में त्रुटियों की जाँच करने तक ही सीमित है। मुजफ्फर हुसैन बनाम उ.प्र.राज्य, 2022 SCC ऑनलाइन एससी 567 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: -

> *"8. यह सामान्य कथन है कि संवैधानिक न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक समीक्षा की शक्ति अपीलीय प्राधिकरण की नहीं है, बल्कि मात्र निर्णय लेने की प्रक्रिया तक ही सीमित है। विभागीय अधिकारियों के निर्णय में हस्तक्षेप की अनुमति केवल तभी है जब कार्यवाही चल रही हो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में या ऐसी कार्यवाहियों को*

अनुवादित

विनियमित करने वाले वैधानिक नियमों के उल्लंघन में या यदि प्रथम दृष्टया निर्णय एकपक्षीय या मनमाना पाया जाता है तो अदालतें अपीलीय अदालत के रूप में कार्य करेंगी और घरेलू जाँच में साक्ष्य दिए गए, न ही इस आधार पर हस्तक्षेप किया जाना चाहिए कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर एक और दृष्टिकोण संभव है। यदि जाँच निष्पक्ष और उचित तरीके से की गई है, और निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित हैं, तो साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता साक्ष्य विभागीय जाँच में दर्ज निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का आधार नहीं होगा।"

43. **भारत संघ बनाम पी.गुणसेकरन** (2015) 2 SCC 610 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि: -

"12. *भली-भाँति स्थापित स्थिति के बावजूद, यह देखना अत्यधिक पीड़ादायक है कि उच्च न्यायालय ने अनुशासनात्मक कार्यवाही में एक अपीलीय प्राधिकरण के रूप में कार्य किया है, यहां तक कि जाँच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन भी किया है। प्रथम आरोप पर निष्कर्ष अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पृष्ठांकन किया गया था, एवं केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा भी इसका समर्थन किया गया था। अनुशासनात्मक कार्यवाही में, उच्च न्यायालय प्रथम अपील का द्वितीय न्यायालय नहीं है और न ही इस रूप में कार्य कर सकता है। उच्च न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए , साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने का उद्यम नहीं करेगा। उच्च न्यायालय केवल यह देख सकता है कि*

(ए) जाँच एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा की जाती है;

(बी) जाँच उस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की जाती है;

(सी) कार्यवाही के संचालन में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है;

(डी) अधिकारियों ने मामले के साक्ष्य एवं गुणों से परे कुछ विचारों के कारण खुद को निष्पक्ष निष्कर्ष तक पहुँचने से अक्षम कर दिया है;

(ई) अधिकारियों ने खुद को अप्रासंगिक या असंगत विचारों से प्रभावित होने दिया है;

(एफ) यह निष्कर्ष, प्रथम दृष्टया, इतना मनमाना और मनमौजी है कि कोई भी उचित व्यक्ति कभी भी इस तरह के निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है;

(जी) अनुशासनात्मक प्राधिकारी गलती से स्वीकार्य और भौतिक साक्ष्य स्वीकार करने में विफल रहा था;

अनुवादित

(एच) अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने गलती से अस्वीकार्य साक्ष्य स्वीकार कर लिया था जिसने निष्कर्ष को प्रभावित किया;

(आई) तथ्य की खोज किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है।"

44. श्री. गौरव मेहरोत्रा ने अंत में कहा कि पूर्ण न्यायालय ने याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने की अनुशंसा की है एवं इस खंडपीठ को पूर्ण न्यायालय के सामूहिक प्रज्ञा पर संदेह नहीं करना चाहिए। उन्होंने **राजस्थान उच्च न्यायालय बनाम वेद प्रिया**, 2020 SCC ऑनलाइन एससी 337 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि: -

"13. प्रारंभ में, हम देख सकते हैं कि अपीलकर्ता और प्रश्नगत निर्णय दोनों ने प्रशासनिक पक्ष पर पूर्ण न्यायालय द्वारा लिए गए निर्णयों पर उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा की आयाम एवं व्यापकता के संबंध में विधि का सही विवरण स्पष्ट किया है। यद्यपि ऐसे मामलों में रिट क्षेत्राधिकार के दायरे को विस्तृत रूप से चित्रित करना एक निरर्थक कार्य होगा, लेकिन अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एक उच्च न्यायालय का दायरा सीमित है एवं उसे सावधानीपूर्वक हस्तक्षेप करना चाहिए। ऐसे क्षेत्राधिकार के आयाम को 'अपीलीय प्राधिकरण', के रूप में विस्तारित नहीं किया जा सकता है, और इसलिए इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि सामग्री के एक ही सेट पर कोई अन्य संभावित व्याख्या न हो या अनुशासनात्मक प्राधिकरण की राय हेतु न्यायालय की राय को प्रतिस्थापित न किया जाए। संविधान के अनुच्छेद 235 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को सौंपे गए उत्तरदायित्व एवं शक्तियों के दृष्टिगत यह विशेष रूप से सत्य है। पूर्ण न्यायालय की सामूहिक प्रज्ञा न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया में उचित सम्मान, महत्व एवं विचार की अधिकारिणी है।

45. जैसा कि विगत प्रस्तरों में पहले ही देखा जा चुका है, वर्तमान मामले में जाँच अधिकारी ने 9 अन्य मामलों में पारित आदेशों पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसके संबंध में याचिकाकर्ता के विरूद्ध कोई आरोप तय नहीं किया गया था, याचिकाकर्ता को उन 9 आदेशों के संबंध में स्पष्टीकरण देने का अवसर नहीं दिया गया था, जाँच अधिकारी ने श्री महेश पाल सिंह यादव के बयान में विरोधाभासों को नजरअंदाज कर दिया था, और उन्होंने इस बात को नजरअंदाज कर दिया था कि उनकी गवाही महज सुनी सुनाई बातों पर आधारित थी और जाँच अधिकारी ने अन्य साक्षी श्री परवेज़ आलम एडवोकेट एवं श्री राम किशोर- धारा 156 (3) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रार्थनापत्र में प्रार्थी के बयानों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया था। जाँच अधिकारी द्वारा इस तरह से अस्वीकार्य वाह्य और सुनी-सुनाई बातों पर आधारित साक्ष्यों पर विश्वास व्यक्त करके एवं प्रासंगिक और स्वीकार्य साक्ष्यों की अनदेखी करके दर्ज किए गए निष्कर्षों को मात्र विकृत कहा जा सकता है एवं इस न्यायालय

अनुवादित

को इस तरह के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का न केवल अधिकार है, लेकिन हस्तक्षेप करने के लिये कर्तव्यबद्ध है ताकि न्याय की विफलता को रोका जा सके। हमारे विचार को **नरेंद्र मोहन आर्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड,** (2006) 4 SCC 713 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार से समर्थन मिलता है, जिसमें यह माना गया था कि: -

"26... एक दोषी कर्मचारी द्वारा सिविल न्यायालय एवं रिट न्यायालय में दायर किए गए मुकदमे में, यदि विभागीय कार्यवाही में आए निष्कर्षों पर उसके समक्ष सवाल उठाया जाता है, तो उसे निम्नलिखित को ध्यान में रखना चाहिए:

(1) ***जाँच अधिकारी को जाँच के दौरान बाहरी स्रोतों से कोई भी सामग्री एकत्र करने की अनुमति नहीं है।***

(2) ***घरेलू जाँच में प्रक्रिया में निष्पक्षता प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का एक हिस्सा है।***

(3) विवेकाधीन शक्ति के प्रयोग में दो तत्व शामिल होते हैं - (i) उद्देश्य, एवं (ii) व्यक्ति-निष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ तत्व के प्रयोग का अस्तित्व व्यक्तिपरक तत्व के प्रयोग हेतु एक शर्त है।

(4) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के किसी भी कठोर नियम को निर्धारित करना संभव नहीं है जो प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है लेकिन कार्रवाई में निष्पक्ष व्यवहार की अवधारणा इसका आधार है।

(5) ***जाँच अधिकारी को आरोपों से आगे जाने की अनुमति नहीं है और किसी ऐसे निष्कर्ष के आधार पर लगाई गई कोई भी सजा जो आरोपों की विषय-वस्तु नहीं थी, पूरी तरह से अवैध है।***

(6) आतंरिक जाँच में भी संदेह या अनुमान प्रमाण का स्थान नहीं ले सकता। रिट न्यायालय कुछ परिस्थितियों में किसी भी न्यायाधिकरण या प्राधिकरण के तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का हकदार है।"

46. फिर, **एम.वी.बिजलानी बनाम भारत संघ, (2006) 5 SCC 88**, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि: -

"25. यह सच है कि न्यायिक समीक्षा में न्यायालय का क्षेत्राधिकार सीमित है। हालांकि अनुशासनात्मक कार्यवाही के अर्ध-आपराधिक प्रकृति की होने के कारण, आरोप सिद्ध करने हेतु कुछ साक्ष्य होने चाहिए। हालांकि विभागीय कार्यवाही में आरोपों का आपराधिक वाद की भाँति युक्ति-युक्त संदेह से परे सिद्ध किया जाना आवश्यक नहीं है, किंतु हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि जाँच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है, जिसे दस्तावेजों का विश्लेषण करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि संभावना

अधिवक्ता

थी कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर आरोपों को सिद्ध करें। ***ऐसा करते समय, वह किसी भी अप्रासंगिक तथ्य पर विचार नहीं कर सकता।*** *वह प्रासंगिक तथ्यों पर विचार करने से इनकार नहीं कर सकता। वह मात्र अनुमानों के आधार पर सबूत का भार स्थानंतरित नहीं कर सकता। वह गवाहों की प्रासंगिक गवाही को अस्वीकार नहीं कर सकता।* ***वह उन आरोपों की जाँच नहीं कर सकता जिनके लिए दोषी अधिकारी पर आरोप नहीं लगाए गए थे।"***

47. जब हम उपर्युक्त मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के आलोक में वर्तमान मामले के तथ्यों की जाँच करते हैं, तो हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता के विरूद्ध लगाए गए एकमात्र आरोप यह थे कि उसने 39(2) सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत मूल वाद संख्या 1478/2011 एवं 1426/2011 में दो विरोधाभासी आदेश पारित किए थे और वह आपराधिक विविध संख्या 58/2011, राम किशोर बनाम रामनिवास एवं अन्य दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के तहत प्रार्थनापत्र में दो समवर्ती आदेश पत्र चला रहा था एवं विधि द्वारा स्थापित विधिक मानदंडों एवं प्रक्रियाओं का उल्लंघन कर अपनी इच्छा अनुसार विभिन्न फाइलों में अलग-अलग आदेश पारित कर रहा था एवं उसके द्वारा पारित आदेश उसकी ईमानदारी और प्रतिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहे थे। आरोप-पत्र में उल्लिखित आरोपों के समर्थन में जिन साक्ष्यों पर विश्वास व्यक्त किया जाना चाहिए वे थे (i) श्री महेश पाल सिंह, अधिवक्ता की शिकायत दिनांक 25.11.2011, (ii) श्री ए.के. उपाध्याय, अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, मुरादाबाद की जाँच रिपोर्ट दिनांक 23.03.2011 (iii) दोनों आदेश पत्रक आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थनापत्र संख्या 58/2011, दिनांक 08.03.2011, द्वारा राम किशोर, अंतर्गत धारा 156(3) दंड प्रक्रिया संहिता, की पत्रावली में प्रयोग हेतु, एवं (iv) मूल वाद संख्या 1426/2011 मो. इश्तियाक बनाम मो. इरफ़ान एवं अन्य एवं 1478/2011, मो. मुशर्रफ एवं अन्य बनाम मो. इश्तियाक एवं अन्य की शिकायत की प्रति एवं आदेश पत्रक।

48. याचिकाकर्ता द्वारा किसी अन्य मामले में पारित किसी अन्य आदेश के संबंध में याचिकाकर्ता के विरूद्ध कोई आरोप नहीं लगाया गया था एवं किसी अन्य मामले में पारित आदेश का उल्लेख आरोप-पत्र में सामग्री के रूप में किया गया हो, जिसे आरोप के समर्थन में विचार किया जाएगा। हालाँकि, जाँच अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट में दर्ज किया है कि जाँच के दौरान, उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा 9 मामलों में पारित आदेशों को उनके द्वारा एकत्र किया गया था। जाँच अधिकारी ने निष्कर्ष निकाला कि 'याचिकाकर्ता द्वारा पारित आदेशों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि याचिकाकर्ता नियमित आधार पर अंतरिम निषेधाज्ञा देने का आदी था; इस बिंदु पर विधि का स्थापित सिद्धांत यह है कि एकपक्षीय अंतरिम निषेधाज्ञा देना एक अपवाद है जबकि दोनों पक्षों को सुनने हेतु नोटिस जारी करना सामान्य नियम है। आरोपित अधिकारी का कृत्य विधि के इस स्थापित सिद्धांतों का उल्लंघन करता प्रतीत होता है।'

49. यह बताने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि जाँच कार्यालय ने याचिकाकर्ता को यह

अनुवादित

नोटिस दिया था कि 9 अन्य मामलों में पारित आदेशों को भी उसके विरूद्ध माना जाएगा ताकि वह उन आदेशों के संबंध में स्पष्टीकरण दे सके। इस प्रकार रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि जाँच अधिकारी ने अप्रासंगिक सामग्री पर विचार किया है, जो स्पष्ट रूप से **नरेंद्र मोहन आर्य (उपरोक्त)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि का उल्लंघन है, कि जाँच अधिकारी उसे आरोपों से परे विचार करने की अनुमति नहीं है और जाँच के दौरान उसे बाहरी स्रोतों से कोई भी सामग्री एकत्र करने की अनुमति नहीं है।

50. याचिकाकर्ता के विरूद्ध अभियोग क्रमांक. 1 यह है कि उसने वाद संख्या 1426/2011 एवं 1478/2011 में विरोधाभासी आदेश पारित किए थे। जाँच अधिकारी ने आरोप संख्या 1 के संबंध में याचिकाकर्ता के अभिकथन पर ध्यान दिया कि उन्होंने उपरोक्त मुकदमों 1478/2011 एवं 1426/2011 में उनके सामने रखी गई सामग्री के आधार पर आदेश पारित किए थे। उन्होंने आगे कहा कि वाद संख्या 1478/2011 के पिछले वाद संख्या 1426/2011 का एवं उसमें पारित अंतरिम आदेश का कोई उल्लेख नहीं था। जाँच रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता ने "कुछ दस्तावेजी साक्ष्यों की प्रस्तुति के माध्यम से अपने बचाव साक्ष्य पेश किए थे", लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए बचाव साक्ष्यों के विवरण का जाँच रिपोर्ट में खुलासा नहीं किया गया है और इसके संबंध में कोई चर्चा नहीं की गई है। बचाव साक्ष्य पर चर्चा किए बिना, जाँच अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि याचिकाकर्ता ने एक ही अधिनिर्णय से उत्पन्न दो मुकदमों में विरोधाभासी आदेश पारित किए थे एवं वह आरोप संख्या 1 का दोषी था। हालाँकि, जाँच अधिकारी ने आगे दर्ज किया कि इस बिंदु पर कोई राय नहीं बनाई जा सकी, क्योंकि मामला सिविल विविध रिट याचिका संख्या 9275/2011 माननीय उच्च न्यायालय में विचाराधीन था।

51. जाँच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को याचिकाकर्ता के स्पष्टीकरण के बिना विरोधाभासी आदेश पारित करने का दोषी ठहराया है कि उसने संबंधित मुकदमों के तर्कों के अनुसार एवं दोनों मुकदमों में उसके सामने रखी गई सामग्री के आधार पर आदेश पारित किए थे, कि बाद के मुकदमे में पहले के मुकदमे और उसमें पारित आदेश का कोई जिक्र नहीं किया गया। इस प्रकार जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के स्पष्टीकरण पर विचार किए बिना आरोप संख्या 1 के संबंध में अपना निष्कर्ष दर्ज किया है, जो निष्कर्ष को विकृत बनाता है।

52. याचिकाकर्ता के विरूद्ध दूसरा आरोप यह था कि उसने आपराधिक प्रकीर्ण संख्या 58/2011, राम किशोर बनाम रामनिवास एवं अन्य, दं.प्र.सं. की धारा 156(3) के अंतर्गत प्रार्थनापत्र के दो समवर्ती आदेश पत्र बनाए रखे थे और विधि द्वारा स्थापित विधिक मानदंडों एवं प्रक्रियाओं का उल्लंघन करके अपनी इच्छा के अनुसार विभिन्न फाइलों में अलग-अलग आदेश पारित कर रहा था और उसके द्वारा पारित आदेश उसकी ईमानदारी और प्रतिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहे थे। यह आरोप श्री महेश पाल सिंह यादव एडवोकेट की शिकायत से उद्भूत हुआ है। जाँच अधिकारी का दावा है कि उन्होंने श्री महेश पाल सिंह यादव एडवोकेट की शिकायत दिनांक 28.06.2017 का बयान दर्ज कर लिया है और याचिकाकर्ता ने तर्क

अधिवक्ता

दिया है कि यह बयान शिकायतकर्ता महेश पाल सिंह यादव के बयान का शब्दशः पुनरुत्पादन था जो 26.07.2014 को विशेष सतर्कता जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था एवं उन्होंने केवल इसकी दिनांक 28.06.2017 बदल दी थी, यह दर्शाता है कि जाँच अधिकारी ने केवल उस सामग्री पर कार्रवाई की है जो पहले की सतर्कता जाँच में एकत्र की गई थी।

53. श्री महेश पाल सिंह यादव ने कहा था कि वह धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत प्रकीर्ण वाद संख्या 58/2011 में अधिवक्ता नहीं थे जिसका शीर्षक राम किशोर बनाम राम निवास था एवं याचिकाकर्ता ने उससे किसी रिश्वत की मांग नहीं की थी। उन्होंने कहा कि यह प्रार्थनापत्र उनके जूनियर ने दाखिल किया है एवं उनके जूनियर के मुवक्किल श्री राम किशोर ने उनसे कहा था कि उन्होंने याचिकाकर्ता की अवैध मांग को पूरा करके प्रार्थनापत्र की अनुमति ले ली है एवं इसलिए, उनका साक्ष्य केवल सुनी-सुनाई साक्ष्य है एवं स्वीकार्य नहीं है। इस गवाह को यह नहीं पता था कि कथित अवैध मांग क्या थी। गवाह राम किशोर ने स्पष्ट रूप से कहा कि याचिकाकर्ता ने उनसे किसी भी पैसे की मांग नहीं की थी और उन्होंने श्री महेश पाल सिंह यादव को या किसी अन्य व्यक्ति को भी नहीं बताया था कि याचिकाकर्ता ने उनसे रिश्वत की मांग की थी।

54. श्री महेश पाल सिंह यादव ने कहा था कि उनके तीन कनिष्ठ सहयोगी हैं - श्री प्रशांत गुप्ता, श्री मोनू गुप्ता उनकी सीट पर एवं 1-2 अधिवक्ता और बैठते थे लेकिन उन्हें उनके नाम नहीं पता थे और उन्होंने यह भी नहीं बताया कि श्री राम किशोर के अधिवक्ता श्री परवेज आलम उनके जूनियर थे। श्री महेश पाल सिंह ने आगे कहा कि उन्होंने याचिकाकर्ता के विरूद्ध उनके द्वारा पारित आदेश और सामान्य धारणा के आधार पर शिकायत की थी। इस प्रकार उनका कथन केवल सुनी-सुनाई बातों का साक्ष्य था, जो भौतिक विरोधाभासों से भरा हुआ था, लेकिन जाँच अधिकारी ने सुनी-सुनाई बातों को ईश्वरीय सत्य मान लिया एवं उन्होंने उसमें मौजूद विरोधाभासों को नजरअंदाज कर दिया।

55. दूसरे साक्षी श्री परवेज आलम एडवोकेट ने बताया कि उन्होंने 15.04.2011 को धारा 156 (3) दं.प्र.सं के अंतर्गत राम किशोर बनाम राम निवास के विरूद्ध प्रार्थना पत्र दाखिल किया था एवं याचिकाकर्ता ने उसे बताया था कि प्रार्थनापत्र व्यतिक्रम में खारिज कर दिया गया था; उन्होंने याचिकाकर्ता से मौखिक प्रार्थना की कि वह पानी पीने गया था और उसके प्रार्थनापत्र पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाए, जिस पर याचिकाकर्ता ने उसके तर्कों को सुना एवं उस पर आदेश पारित किया। उनके मुवक्किल राम किशोर उस तिथि पर न्यायालय नहीं आये थे। रामकिशोर ने प्रार्थनापत्र के लिए शुल्क के रूप में उन्हें मात्र 250/- से 300/- रुपये का भुगतान किया था। उन्होंने आगे कहा कि श्री महेश पाल सिंह यादव की पत्नी जिला पंचायत की सदस्य थी एवं वह न्यायालय में कम ही आता था एवं सस्ती लोकप्रियता हासिल करने हेतु झूठी शिकायतें दर्ज कराने की उसकी आदत थी। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि याचिकाकर्ता एक ईमानदार अधिकारी के रूप में प्रसिद्ध था। हालाँकि, जाँच अधिकारी

अधिवक्ता

ने बिना कोई कारण बताए अधिवक्ता परवेज़ आलम के बयान को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया एवं उन्होंने याचिकाकर्ता के विरूद्ध अपने निष्कर्ष दर्ज किए।

56. जाँच अधिकारी ने प्रार्थी राम किशोर से भी पूछताछ की थी, जिसने बताया था कि उसने धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत 08.03.2011 को अधिवक्ता श्री परवेज आलम के माध्यम से एक प्रार्थनापत्र किया था किंतु वह उस तिथि के बाद प्रार्थनापत्र की पैरवी करने न्यायालय नहीं गये। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि वह 15.04.2011 को न्यायालय नहीं गये थे; कि उसने कोई रिश्वत नहीं दी और यह बात उसने श्री महेश पाल सिंह यादव को या किसी अन्य व्यक्ति को नहीं बताई कि उसने रिश्वत दी थी। हालाँकि, जाँच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के विरूद्ध अपने निष्कर्ष दर्ज करते समय, इस प्रासंगिक साक्ष्य की अनदेखी का कोई कारण बताए बिना, प्रार्थी राम किशोर के बयान को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया।

57. **रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक**, (2009) 2 SCC 570 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि *"निर्विवाद रूप से, एक विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जाँच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी के विरूद्ध लगाए गए आरोप सिद्ध होने चाहिए।* ***जाँच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षकारों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री पर विचार करके निष्कर्ष पर पहुँचे...***" जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्ष, श्री महेश पाल सिंह यादव के सुने हुए साक्ष्यों पर विश्वास व्यक्त करके एवं दोनों आरोपों के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण से निपटने के बिना, याचिकाकर्ता के स्पष्टीकरण और गवाहों अधिवक्ता श्री परवेज़ आलम एवं श्री रामकिशोर, के बयानों के रूप में प्रासंगिक सामग्री पर विचार किए बिना नहीं पहुंचा जा सकता है और यह प्रक्रिया विकृत और दोषपूर्ण है।

58. इसके अतिरिक्त, ऐसा कोई आरोप नहीं था कि याचिकाकर्ता ने किसी अनावश्यक विचार हेतु वाद में विरोधाभासी आदेश पारित किए थे। **पी.सी.जोशी बनाम उ.प्र.राज्य,** (2001) 6 SCC 491, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि: -

> *"7. वर्तमान वाद में, हालांकि जाँच अधिकारी द्वारा विस्तृत जाँच की गई है, परन्तु एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने हेतु न्यायिक पक्ष में अपीलकर्ता द्वारा दिए गए प्रत्येक आदेश की जाँच करने के अतिरिक्त शायद ही कोई सामग्री सामने आई है। यह कि दिए गए तथ्यों के समूह पर एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने की संभावना थी, किसी न्यायिक अधिकारी को एक ही दृष्टिकोण अपनाने के लिए दोषी ठहराने और मात्र इस कारण से कथित कदाचार करने का कोई आधार नहीं है । जाँच अधिकारी को कोई अन्य सामग्री नहीं मिली है, जो उसकी प्रतिष्ठा या सत्यनिष्ठा या सद्भावना या कर्तव्य के प्रति समर्पण को प्रतिबिंबित करेगा या कि वह किसी भ्रष्ट उद्देश्य से प्रेरित हुआ है। अधिक से अधिक, वह यह कह सकता है कि अपीलकर्ता*

अधिवक्ता

द्वारा लिया गया दृष्टिकोण उचित या सही नहीं है एवं एह किसी भी ऐसे उद्देश्य को प्रदर्शित नहीं करता जो वाह्य प्रतिफल से संबंधित हो और उसने उस रीति से कार्य किया है। ***यदि प्रत्येक मामले में जहां अधीनस्थ न्यायालय का आदेश दोषपूर्ण पाया जाता है, अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू की जाती है, तो अधीनस्थ न्यायपालिका एवं अधिकारियों का विश्वास हिल जाएगा निर्णय लिखने में लगातार भय रहेगा ताकि अनुशासनात्मक जाँच का सामना न करना पड़े एवं इस प्रकार न्यायिक अधिकारी स्वतंत्र या निडर होकर कार्य नहीं कर सकेंगे।*** *दरअसल सावधानी के शब्द के.के.धवन वाद (1993) 2 SCC 56 एवं ए.एन.सक्सेना वाद (1992) 3 SCC 124 में दिए गए हैं कि मात्र इसलिए कि आदेश गलत है या की गई कार्रवाई अलग हो सकती थी, न्यायिक अधिकारी के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ करने का औचित्य नहीं है। इतनी सावधानी के बावजूद, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उच्च न्यायालय ने इस वाद में अपीलकर्ता के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ करने का विकल्प चुना है।"*

59. गवाह महेश पाल सिंह यादव ने कहा था कि याचिकाकर्ता ने धारा 156 (3) दं.प्र.सं के अंतर्गत प्रकीर्ण वाद संख्या 58/2011 जिसका शीर्षक राम किशोर बनाम राम निवास है, को खारिज कर दिया था लेकिन प्रार्थनापत्र बाद में उसी दिन स्वीकार कर लिया गया, जिसमें कथित तौर पर एक ही तिथि पर दो अलग-अलग आदेश पारित किए गए थे। हालाँकि, मात्र इस बयान पर, जाँच अधिकारी ने जो आरोप सिद्ध पाया, वह यह था कि याचिकाकर्ता ने *"आपराधिक विविध संख्या 58/2011, राम किशोर बनाम राम निवास एवं अन्य, धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत प्रार्थनापत्र के दो समवर्ती आदेश पत्र बनाए रखे थे एवं अलग-अलग फाइलों में अलग-अलग आदेश पारित कर रहा था"* जैसे कि यह कई तिथियों हेतु जारी रहा। यह इंगित करता है कि जाँच अधिकारी का दृष्टिकोण याचिकाकर्ता के विरूद्ध आरोपों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करना था जबकि साथ ही उस सामग्री की अनदेखी करना था जो उसके पक्ष में थी। जाँच अधिकारी के इस तरह के दृष्टिकोण की सराहना नहीं की जा सकती क्योंकि वह एक अर्ध-न्यायिक कार्य कर रहा था एवं उससे निष्पक्ष एवं उचित तरीके से कार्य करने की उम्मीद की गई थी।

60. **साधना चौधरी बनाम उ.प्र.राज्य,** (2020) 11 SCC 760 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने चेतावनी दी है कि *"कोई भी इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता है, कि हमारे देश में जहाँ अनगिनत शिकायतकर्ता मात्र पैसे या सस्ती क्षणिक लोकप्रियता हेतु बिना किसी हिचकिचाहट न्यायपालिका की छवि को बिगाड़ना चाहते हैं। कभी-कभी, बार के कुछ असंतुष्ट सदस्य भी उनके साथ हाथ मिला लेते हैं, और अधीनस्थ*

अनुवादित

न्यायपालिका के अधिकारी आमतौर पर सबसे आसान लक्ष्य होते हैं। इसलिए, यह उच्च न्यायालयों का कर्तव्य है कि वो अपनी सुरक्षा छत्रछाया को बढ़ायें और यह सुनिश्चित करें कि ईमानदार न्यायिक अधिकारियों पर बेवजह हमला न हो।"

61. **के.के. धवन** (1993) 2 SCC 56 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित छह उदाहरण सूचीबद्ध किए थे जब ऐसी कार्रवाई की जा सकती थी: -

> *"(i) जहां अधिकारी ने ऐसे तरीके से कार्य किया था जो उसकी ईमानदारी या सद्भावना या कर्तव्य के प्रति समर्पण की प्रतिष्ठा को दर्शाता हो;*
>
> *(ii) यदि उसके कर्तव्य के निर्वहन में लापरवाही या कदाचार दिखाने के लिए प्रथम दृष्टया सामग्री है;*
>
> *(iii) यदि उसने ऐसा कार्य किया है जो सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय है;*
>
> *(iv) यदि उसने लापरवाही से काम किया है या उसने निर्धारित शर्तों को छोड़ दिया है जो वैधानिक शक्तियों के प्रयोग के लिए आवश्यक हैं;*
>
> *(v) यदि उसने किसी पक्षकार को अनुचित लाभ पहुंचाने हेतु कार्य किया हो;*
>
> *(vi) यदि वह भ्रष्ट उद्देश्य से प्रेरित हुआ था, भले ही रिश्वत कितनी भी छोटी क्यों न हो क्योंकि लॉर्ड कोक ने बहुत पहले कहा था "हालांकि रिश्वत छोटी हो सकती है, फिर भी गलती बड़ी है"।*

62. पहले रखी गई सामग्री और जाँच अधिकारी द्वारा जाँच की गई, मात्र इतना सिद्ध हुआ कि याचिकाकर्ता ने दो अलग-अलग मुकदमों में दो अलग-अलग तिथियों पर दो विरोधाभासी आदेश पारित किए थे और हालांकि उन्होंने धारा 156 (3) दं.प्र.सं के अंतर्गत एक प्रार्थनापत्र उपस्थित न होने पर, खारिज कर दिया था, उसके पश्चात अधिवक्ता के उपस्थित होने और सुनवाई हेतु मौखिक प्रार्थना करने के बाद, उसकी बात सुनी गई एवं प्रार्थनापत्र की अनुमति दी गई। याचिकाकर्ता के विरूद्ध ऐसा कोई आरोप नहीं था कि उसने किसी बाहरी कारण से आदेश पारित किया हो। के.के. धवन (उपरोक्त) वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उल्लिखित किसी भी उदाहरण में याचिकाकर्ता के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई एवं उसे सेवा से हटाकर उसकी सजा को उचित ठहराने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। पी. सी. जोशी, रमेश चंद्र सिंह और कृष्ण प्रसाद वर्मा मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के आलोक में, याचिकाकर्ता को मात्र गलत आदेश पारित करने

अनुवादित

हेतु सेवा से हटाकर दंडित नहीं किया जाना चाहिए था।

63. जैसा कि हम पहले ही मान चुके हैं कि जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्ष, श्री महेश पाल सिंह यादव के सुने हुए साक्ष्यों और दोनों आरोपों के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के निस्तारण के बिना, याचिकाकर्ता के स्पष्टीकरण और गवाहों के सुने हुए साक्ष्यों श्री परवेज़ आलम एडवोकेट एवं श्री राम किशोर के बयानों पर भरोसा करते हुए प्रासंगिक सामग्री पर विचार किए बिना निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता है, जो कि विकृत और दोषपूर्ण है, ऐसी जाँच रिपोर्ट पर आधारित सजा का आदेश भी विधि की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता और इसे रद्द किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता द्वारा आरोप संख्या 1 के संबंध में दिया गया स्पष्टीकरण आरोप संख्या 1 का खंडन करने के लिए पर्याप्त प्रतीत होता है और गवाहों के बयान श्री. परवेज़ आलम एडवोकेट एवं श्री. रामकिशोर ने आरोप संख्या 2 को गलत ठहराया। यही वजह है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ पहले हुई जाँच के बाद प्रशासनिक जज ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध शिकायतों पर कार्यवाही का समापन कर दिया था।

64. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, रिट याचिका को ***आंशिक रूप से अनुमति*** दी जाती है। राज्य सरकार द्वारा याचिकाकर्ता को सिविल जज(जूनियर डिवीजन) के पद से हटाने का दिनांक 02.04.2019 का आदेश **रद्द** किया जाता है। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को सिविल जज(जूनियर डिवीजन) के पद पर सेवा में बहाल किया जाता है।

65. यद्यपि याचिकाकर्ता ने पिछले वेतन और अन्य परिणामी लाभों के भुगतान का दावा किया है, लेकिन उपरोक्त प्रार्थना का समर्थन करने हेतु न तो कोई सामग्री रिकॉर्ड पर रखी गई है, जिससे यह सिद्ध हो सके कि याचिकाकर्ता को उस अवधि के दौरान लाभकारी रूप से नियोजित नहीं किया गया था, जब उसे सेवा से बाहर रहना पड़ा था, न ही याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस प्रार्थना पर दबाव डालने हेतु कोई अनुरोध किया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता को अवशेष वेतन देने की प्रार्थना खारिज की जाती है। हालाँकि, यह प्रावधान किया जाता है कि विगत वेतन के अतिरिक्त , याचिकाकर्ता वरिष्ठता आदि सहित निष्कासन आदेश को रद्द करने के परिणामस्वरूप अन्य सभी लाभ प्राप्त करने का अधिकारी होगा।

66. जहां तक वर्ष 2011-12 हेतु दी गई प्रतिकूल टिप्पणियों को याचिकाकर्ता की चुनौती का प्रश्न है, उसे सजा के रूप में नहीं दिया गया था एवं यह जिला न्यायाधीश और याचिकाकर्ता के कार्य मूल्यांकन पर आधारित है। प्रशासनिक न्यायाधीश ने प्रतिकूल टिप्पणी के विरूद्ध याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन को खारिज कर दिया था। हमें प्रतिकूल टिप्पणियों में हस्तक्षेप करने का कोई बेहतर आधार नहीं मिला एवं इस संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा की गई प्रार्थना खारिज की जाती है।

(2023) 2 ILRA 107

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल,रिट ए संख्या 22586 /2019

एवम अन्य संबंधित वाद

अभिमत

सजीवन लाल और अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: सुभाष चंद्र पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

सिविल कानून - पेंशन - अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर - सिंचाई विभाग ट्यूबवेल ऑपरेटर सेवा नियमावली 1953 - यू.पी. सिंचाई विभाग ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पदों पर अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों का नियमितीकरण नियम, 1996 - पेंशन लाभ के लिए "अर्हक सेवा" की गणना - याचिकाकर्ताओं को वर्ष 1987 से 1994 के दौरान "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" के रूप में नियुक्त किया गया था - उनकी सेवाओं को वर्ष 2008 से 2009 के दौरान नियमित किया गया था - पेंशन लाभ सहित परिणामी सेवाओं के लाभों के प्रयोजनों के लिए याचिकाकर्ताओं ने उनकी प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से सेवाओं को "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" के रूप में मानने की प्रार्थना की थी, अर्थात सभी सेवा लाभ उनकी संबंधित नियुक्ति की तिथि से माना जाए, न कि उनके नियमितीकरण की तिथि से - आयोजित - "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को प्रारंभ में 'कार्यकारी निर्देश' अंतर्गत 1953 नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना नियुक्त किया गया था - अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को उनके नियमितीकरण से पूर्व न तो अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त किया गया था - उन्हें उनके नियमितीकरण के पश्चात ही किसी मूल पद पर नियुक्त किया गया था और इस तरह अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के रूप में उनकी सेवा की गणना उनकी नियुक्ति की तिथि से नहीं की जा सकती है, लेकिन यह उनके नियमितीकरण की तिथि से होनी चाहिए - पेंशन के उद्देश्य के लिए "योग्य सेवा" की गणना उस तिथि से की जाएगी, जब उन्हें ट्यूबवेल ऑपरेटर के रूप में नियमित पद पर नियुक्त कर दिया गया था - यहां तक कि, याचिकाकर्ताओं की सेवाएं दिनांक 17.12.1996, अर्थात "यूपी सिंचाई विभाग ट्यूबवेल ऑपरेटर नियम 1996 के पदों पर अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के नियमितीकरण" की प्रख्यापन की तिथि से नही मानी जा सकती क्योंकि नियमितीकरण के नियम स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं कि उक्त नियम केवल उन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों पर लागू होते हैं जिन्हें 01.10.1986 से पूर्व नियुक्त किया गया था - नियमितीकरण भावी हो सकता है और पूर्वव्यापी नहीं - क्योंकि, याचिकाकर्ताओं को दिनांक 01.10.1986 के पश्चात नियुक्त किया गया था और 2008-2009 में ही नियमित किया गया, जब "यू.पी. सेवानिवृत्ति लाभ (संशोधन) नियम, 2005" 01.04.2005 के अनुसार नई पेंशन योजना प्रभावी हुई, इसलिए रिट याचिकाकर्ता पुरानी पेंशन योजना के अधिकारी नहीं हैं (पैरा 75, 80, 81)

अनुमत। (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. सुरेश चंद्र तिवारी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य डब्ल्यू.पी. 1992 का क्रमांक 3558/1992
2. प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2019 (10) एससीसी 516
3. दुख हरण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (एसएलपी संख्या 27713/2009)

4. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम दुख हरण सिंह और अन्य। (विशेष अपील संख्या 240/2009),
5.सी.एन. रुद्रमूर्ति बनाम के. बरकथुल्ला खान एवं अन्य। (1998) 8 एससीसी 275
6. नमो नारायण राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (रिट याचिका संख्या 13626/2017)
7. सुभाष चंद्र मिश्रा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य। रिट याचिका संख्या- ए 52397/2009
8. शीतला प्रसाद शुक्ल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एआईआर 1986एससी 1859
9. यू.पी. पंचायत अधिकारी संघ एवं अन्य बनाम दया राम सरोज एवं अन्य, (2007) 2 एससीसी 138
10. मुरारी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (रिट ए नं. 35425/1997)
11. सीधी भर्ती सीधी भर्ती क्लास-2 इंजीनियरिंग ऑफिसर्स एसोसिएशन बनाम सेंट ऑफ मह. एआईआर 1990 एससी 1607
12. सिंचाई मजदूर संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य: 1996 (1) यूपीएलबीईसी 9
13. बिहार राज्य बनाम राजमती देवी
14. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम उत्तम सिंह सिविल अपील क्रमांक 4575/2021
15. उड़ीसा राज्य बनाम सुधांशु शेखर मिश्रा, (1968) 2 एससीआर 154
16. भारत के रजिस्ट्रार जनरल एवं अन्य बनाम वी. थिप्पा सेट्टी और अन्य 1998 वॉल्यूम. 8 एससीसी 690
17. भारत संघ और अन्य बनाम शीला रानी (2007) 15 एससीसी 230)
18. हरियाणा राज्य बनाम जसमेर सिंह (1996) 11 एससीसी 77

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल द्वारा प्रदत्त)

1. किसी पद पर नियमित होने वाले कर्मचारी को पेंशन लाभ देने हेतु "अर्ह सेवा' की गणना के उद्देश्य से तिथियों की गणना से संबंधित समस्या पूर्व में कई निर्णयों में विनिश्चयन का विषय रही है और यद्यपि इस न्यायालय ने कई पूर्व निर्णयों में उक्त विषय पर सेवा विधिशास्त्र के विकास हेतु एक स्थान स्थापित किया है, लेकिन दुर्भाग्य से विवाद समाप्त नही हो रहा है और अभी भी वादों का वर्तमान समूह इस न्यायालय के समक्ष विचार हेतु आया है।

2. चूँकि इन सभी रिट याचिकाओं में समान विषय उठाया गया है, इसलिए इस समूह की रिट याचिकाओं के एक साथ अंतिम निस्तारण हेतु विचार किया जा रहा है।

3. स्पष्ट रूप से, याचिकाओं के इन समूह में याचिकाकर्ताओं के दो वर्ग हैं, प्रथम वे याचिकाकर्ता हैं, जिन्होंने इस न्यायालय के निदेश के अनुसार प्राधिकरण को एक विस्तृत प्रत्यावेदन दिया था और उनके प्रत्यावेदन पर दिनांक 05.11.2020, 10.07.2018 आदि के आदेश सहित विभिन्न आदेशों द्वारा उनके विरुद्ध प्रतिकूल निर्णय दिया गया था, जो उक्त आक्षेपित आदेशों को चुनौती देते हुए पुनः इस न्यायालय की ओर उन्मुख हुए है, और उस श्रेणी से संबंधित याचिकाकर्ताओं की द्वितीय वर्ग में वे याचिकाकर्ता हैं जो पहली बार स्वयं-समान विषय पर प्रकाश डालते हुए इस न्यायालय की ओर उन्मुख हुए है, जो मुकदमे के प्रथम चरण में याचिकाकर्ताओं के प्रथम समूह द्वारा उठाया गया था। हालाँकि, समानता सेवा में प्रवेश में निहित

अनुवादित

है, इसलिए, समान अधिकार के अनुसरण में उपरोक्त वर्गीकरण सारहीन है। यह कहना पर्याप्त है कि सेवा के सदस्य के रूप में सेवा में प्रवेश या तो सेवा नियमावली के अनुसार नियमित नियुक्ति द्वारा या नियमितीकरण नियमावली के अनुसार नियमितीकरण द्वारा होता है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री कुंज बिहारी पांडे द्वारा सहाय्यित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुदीप सेठ और राज्य के लिए विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्तागण श्री प्रत्यूष त्रिपाठी, श्री संजय सरीन द्वारा सहाय्यित अपर महाधिवक्ता श्री रमेश कुमार सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता, तथा विरोधी पक्षों के लिए विद्वान विशेष अधिवक्ता श्री तुषार वर्मा को सुना।

5. याचिकाकर्ताओं का सामान्य वाद यह है कि उन्हें वर्ष 1987 से 1994 की अवधि में "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" के रूप में नियुक्त किया गया था और उनकी सेवाओं को वर्ष 2008 से 2009 के दौरान नियमित किया गया था। उनका वाद यह है कि यद्यपि उन्हें वर्ष 2008-2009 में नियमित किया गया, तथापि उन्होंने इस न्यायालय की रिट याचिका संख्या 3558/1992 **(सुरेश चंद्र तिवारी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)** में एकल पीठ द्वारा 18.05.1994 को पारित निर्णय के दृष्टिगत, जिसे बाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 22.03.1995 के आदेश के माध्यम से बरकरार रखा, जिसमें इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को वही परिलब्धियाँ प्रदान की गईं जो नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों को प्रदान की गयी थी। अब इस उद्देश्य हेतु पूर्व सेवाओं को प्रारंभिक नियोजन से सम्मिलित करके पेंशन लाभ आदि का दावा किया है।

6. विधि का शासन एक लोकतांत्रिक समाज की पहचान है। इस उद्देश्य के अनुसरण में सार्वजनिक सेवाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सार्वजनिक सेवाओं में कार्मिकों की नियुक्ति एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जमीनी स्तर पर सार्वजनिक सेवाओं में कार्मिकों की नियुक्ति और सेवा शर्तों के विनियमन के विषय में हर समय कठिन समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 ने वर्गीकरण और भेदभाव को समाप्त किया है, परन्तु सेवा के अंतिम परिणाम के रूप में पेंशन की स्थिति को विनियमित करने के लिए उत्पन्न असमानता को समान स्तर पर समान अवसर के उद्देश्य को समाप्त नहीं करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, पेंशन नियमावली का अनुप्रयोग कोई अपवाद या भेदभाव नहीं करता है, एक बार यह दृढ़ता से उपबंधित है कि पद (अस्थायी या स्थायी) के साथ असंतोष के बंधन को किसी व्यक्ति को सेवा के सदस्य के रूप में मान्यता हेतु सेवा नियमावली के सख्त अनुपालन द्वारा कार्मिकों की नियुक्ति के साथ कसौटी पर कसा जाना चाहिए। यही कारण है कि सेवा में अनुचित रीति से प्रवेश तब तक सेवा में सदस्यता प्रदान नहीं करता है जब तक कि किसी पदधारी को विधिवत नियमित नहीं कर दिया जाता है और इस प्रकार नियमितीकरण की तिथि वरिष्ठता के निर्धारण हेतु निर्णायक आधार मानी जाती है।

7. इस प्रकार, इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" ने दावा किया है कि 18.05.1994 से,चूँकि सरकार ने उन्हें नियमित ट्यूबवेल

अनुवादित

ऑपरेटरों के समान वेतनमान दिया था, हालांकि अन्य सेवा लाभों जैसे कि उक्त तिथि से एसीपी, पेंशन, जीपीएफ, उपादान की गणना आदि नहीं दिया गया है, इसलिए वे इसके हकदार हैं। एक और राहत का भी दावा किया जा रहा है, जिसमें कुछ याचिकाकर्ताओं ने प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2019 (10) SCC 516 के मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के दृष्टिगत अपनी नियुक्ति की तिथि से एसीपी, पेंशन, जीपीएफ, उपादान की गणना के समान राहत की मांग की है। इसके अतिरिक्त, कुछ याचिकाकर्ताओं ने नियमितीकरण की तिथि को 17.12.1996 से मानने की भी प्रार्थना की है, यानी शासनादेश निर्गत करने की तिथि जिसके द्वारा अंशकालिक ट्यूबवेल आपरेटर/ट्यूबवेल सहायकों का संवर्ग, उत्तर प्रदेश सिंचाई विभाग-ट्यूबवेल ऑपरेटर के पदों पर नियमितीकरण नियमावली 1996 के अंतर्गत, समाप्त कर दिया गया।

याचिकाकर्ताओं का तर्क:

8. याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री कुंज बिहारी पांडे के साथ विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुदीप सेठ, ने तर्क प्रस्तुत किया। श्री सेठ ने लिखित तर्कों को प्रस्तुत किया और स्पष्ट रूप से इस विषय को इस निष्कर्ष तक पहुंचाया कि **प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2019 (10) SCC 516** में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों हेतु पूर्णतः प्रयोज्य है। उनके अनुसार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह मानते हुए कि कार्य-प्रभारित अधिष्ठान में प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन हेतु अर्हक सेवाओं के रूप में माना जाएगा, न केवल पेंशन नियमावली, 1961 के नियम 3(8) को अमान्य किया है, बल्कि सिविल सेवा विनियमावली के विनियम 370 को भी रद्द कर दिया है। श्री सेठ ने प्रामाणिक रूप से तर्क दिया है कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" जैसी नियमित अधिष्ठान में सेवाएं कार्य-प्रभारित अधिष्ठान में सेवाओं की तुलना में बेहतर स्तर पर हैं, जो अनिवार्य रूप से प्रकृति में अस्थायी हैं। उनका कथन है कि कार्य-प्रभार कर्मचारियों को अस्थायी आधार पर नियुक्त किया जाता है और उनकी नियुक्ति एक निर्दिष्ट कार्य के निष्पादन के लिए की जाती हैं, और कार्य पूर्ण होने पर उनकी सेवाएँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं। हालाँकि, नियमित अधिष्ठान प्रकृति में स्थायी है और इसलिए नियमित अधिष्ठान , कार्य-प्रभारित अधिष्ठान की तुलना में काफी बेहतर स्तर पर है। जहाँ तक1961 नियमावली को केवल उन्हीं व्यक्तियों पर लागू करने से संबंधित दिनांक 07.04.2005 की अधिसूचना का सम्बन्ध है जो 01.04.2005 से पहले नियुक्त/नियमित किए गए थे, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कथन है कि उक्त अधिसूचना उस समय महत्व खो देती है जब याचिकाकर्ताओं की उनकी संबंधित नियुक्तियों की तिथि हेतु पूर्व सेवाओं की, *प्रेम सिंह* वाद में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के संदर्भ में पेंशन लाभ के उद्देश्य से , गणना की जाती है।

9. इसके अतिरिक्त, जहाँ तक दिनांक 05.03.2021 से लागू उत्तर प्रदेश पेंशन हेतु अर्हकारी सेवा तथा विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 हेतु अर्हकारी सेवा का सम्बन्ध है, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कथन है कि उक्त संशोधन अधिनियम को इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ

अनुवादित

ने (i) विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 1003/2020 में पारित निर्णय दिनांक 04.02.2021 (ii) विशेष अपील संख्या 97/2021 में पारित निर्णय दिनांक 09.06.2021 (iii) विशेष अपील संख्या 152 2021 में पारित निर्णय दिनांक 14.07.2021 में , यह विचार करते हुए धारित किया है कि उक्त अधिनियम याचिकाकर्ताओं के लाभ हेतु है न कि राज्य के लिए और उनके अनुसार हर बार खंडपीठ ने *प्रेम सिंह* वाद के अनुसार पेंशन लाभ हेतु अस्थायी पद/ कार्य प्रभार कार्य-प्रभारित अधिष्ठानों की पूर्व सेवाओं का लाभ प्रदान किया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि खण्ड पीठ के एक आदेश के विरुद्ध राज्य द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिका को भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया है।

10. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान उत्तराखंड राज्य द्वारा पारित दिनांक 11.08.2020 के एक शासनादेश की ओर भी आकर्षित किया, जिसमें *प्रेम सिंह* वाद का लाभ उत्तराखंड राज्य में "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को दिया गया था। उनके अनुसार, चूँकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत मामलों में से एक याचिका उत्तराखंड राज्य के "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की थी, इसलिए उत्तर प्रदेश राज्य में अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर से संबंधित विषय में भी इसी प्रकार निर्णय लेना होगा। इसके अतिरिक्त, उन्होंने सीजनल संग्रह अमीनों के मामले के साथ एक सादृश्यता की मांग की, जिन्हें विशेष अपील संख्या 438/ 2017 (ब्रह्मानंद सिंह बनाम राज्य) में इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा *प्रेम सिंह* वाद के निर्णय का लाभ दिया गया है। उन्होंने अपनी बात को पुष्ट करने के लिए मृतक "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के आश्रित की अनुकंपा नियुक्ति में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी का भी उल्लेख किया है कि उस मामले में याचिकाकर्ता को राज्य सरकार द्वारा नियमित कर्मचारी के रूप में माना गया था, भले ही उन्हें "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" के रूप में वर्गीकृत किया था। (सिविल अपील संख्या 4575 / 2021के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश राज्य बनाम उत्तम सिंह)

11. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपने तर्क को प्रबलता से प्रस्तुत किया कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" पर लागू होने वाले नियमित वेतनमान की अनुमन्यता से संबंधित विषय भ्रमपूर्ण था, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करना पड़ा और, न्यायालय ने राकेश कुमार बनाम उ०प्र० राज्य [विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 34861/2015] में पारित अपने निर्णय दिनांक 04.01.2016 द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि उच्च न्यायालय के *सुरेश चंद्र तिवारी* (ऊपर उल्लिखित) के मामले के निर्णय के आलोक में अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर नियमित वेतनमान के हकदार होंगे। उन्होंने आगे कहा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **दुख हरण सिंह बनाम उ.प्र. राज्य** (विशेष अनुमति याचिका संख्या 27713/2009) के मामले में पारित निर्णय दिनांक 25.09.2013 पर राज्य सरकार द्वारा विश्वास किये जाने के कारण पेंशन लाभों हेतु "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के रूप में पिछली सेवाओं को गणना हेतु न ही विचार किया जा रहा था तथा न ही उक्त याचिका में यह विषय उठाया गया था, और इस प्रकार उनके अनुसार उक्त वाद में सर्वोच्च न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा पारित निर्णय विवक्षित रूप

अनुवादित

से खारिज कर दिया गया था तथा *प्रेम सिंह वाद* में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिए गए निर्णय के विपरीत था।

12. किसी भी स्थिति में, उनका तर्क है कि यद्यपि उनके द्वारा प्रस्तुत दो संग्रहों में राज्य सरकार द्वारा कई निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया गया है , लेकिन उनके अनुसार इनमें से अधिकांश एकल पीठ या खण्ड पीठ की समन्वय पीठों के परस्पर विरोधी निर्णय पेंशन लाभ हेतु "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के रूप में पिछली सेवाओं की गणना या तो *दुख हरण सिंह वाद* मामले में पारित खण्ड पीठ के निर्णय पर आधारित है या *प्रेम सिंह वाद* में निर्णय की तिथि से पूर्व की है। इस प्रकार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा *प्रेम सिंह वाद* में दिनांक 02.09.2019 को दिए गए निर्णय के साथ, सेवाओं की गणना के विषय से संबंधित पूर्व के समस्त निर्णयों को विवक्षित रूप से खारिज कर दिया गया है। विधि की उक्त प्रस्थापना को प्रबल करने हेतु, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **सी.एन. रुद्रमूर्ति बनाम के. बरकथुल्ला खान एवं अन्य (1998) 8 SCC 275** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया। इसके अतिरिक्त, जहाँ तक राज्य सरकार की **नमो नारायण राय बनाम उ.प्र. राज्य** (रिट याचिका संख्या 13626/2017) के मामले में पारित पूर्ण पीठ के निर्णय दिनांक 26.11.2021 पर निर्भरता का संबंध है, विद्वान अधिवक्ता ने यह तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि उक्त निर्णय का "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के पूर्ण संवर्ग पर कोई बाध्यकारी प्रभाव नहीं है, क्योंकि उक्त निर्णय उक्त मामले के प्रभावित पक्षों के बीच हुए समझौते पर आधारित था। उनके अनुसार, न्यायालय की एकल पीठ द्वारा प्रस्तुत संदर्भ का उत्तर पूर्ण पीठ द्वारा नहीं दिया गया है और इस प्रकार निर्णय बाध्यकारी नहीं है और यही सिद्धांत उक्त मामले में पूर्ण पीठ द्वारा पारित पुनर्विलोकन आदेश दिनांक 22.04.2022 के लिए भी लागू होता है।

13. इस प्रकार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि राज्य सरकार को निर्देश जारी किया जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं की "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के रूप में उनकी प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से लेकर उनके नियमितीकरण तक की सेवाओं को पेंशन लाभ सहित परिणामी सेवा लाभों हेतु गणना किया जायेगा। दूसरा तर्क इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को सेवा लाभ की तिथि 18.05.1994 से, यानी जब उन्हें नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटर के साथ वेतन-समानता प्रदान की गई थी, या 17.12.1996 की तिथि अर्थात "उ.प्र. सिंचाई विभाग द्वारा ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पदों पर अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की नियमितीकरण नियमावली, 1996 के प्रख्यापन की तिथि जिस पर या तो बहस नहीं की गई है या इसे विवक्षित रूप से माफ कर दिया गया है, से सम्बन्धित है। इस प्रकार, पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा उठाये गये विषयों और तर्कों का सार है कि याचिकाकर्ताओं को राज्य द्वारा दिए गए सभी सेवा लाभ उनकी संबंधित नियुक्ति की तिथि से माने जाने चाहिए, न कि उनके नियमितीकरण की तिथि से। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सशक्त तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा कि यदि एक बार इन "अंशकालिक ट्यूबवेल

अधिवक्ता

ऑपरेटरों" की सेवा उनकी नियुक्ति की तिथि से मानी जाएगी जैसा कि प्रार्थना की जा रही है तो पुरानी पेंशन योजना की प्रयोज्यता सहित अन्य सेवा लाभ के के अनुतोष भी प्रयोज्य होंगे, तब इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को 01.04.2005 के बाद नव प्रवेशी नहीं कहा जाएगा, जिससे वे नई पेंशन योजना के दायरे में आ सकें।

उत्तरदाताओं का तर्क:

14. दूसरी ओर, उत्तर प्रदेश राज्य के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता रमेश कुमार सिंह, विद्वान अपर महाधिवक्ता ने श्री संजय सरीन द्वारा तथा प्रत्यूष त्रिपाठी, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्तागण और विद्वान विशेष अधिवक्ता, तुषार वर्मा के सहयोग से तर्क का नेतृत्व किया।

15. विद्वान अपर महाधिवक्ता इस न्यायालय को इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की नियुक्ति के इतिहास और पृष्ठभूमि में ले गये और कहा कि यद्यपि उत्तर प्रदेश राज्य ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक द्वारा प्रदत्त शक्तियों के दृष्टिगत सिंचाई विभाग ट्यूबवेल ऑपरेटर्स सेवा नियमावली 1953 तैयार किया था, जिसे 5.10.1953 को अधिसूचित किया गया था, हालांकि, इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को सिंचाई अनुभाग, उ.प्र. सरकार द्वारा जारी आदेश दिनांक 22.12.1981 के अन्तर्गत "कार्यकारी निर्देशों" के अन्तर्गत नियुक्त किया गया था, जिसमें यह प्रावधान किया गया था कि उत्तर प्रदेश राज्य के ट्यूबवेलों को चलाने के लिए रुपये 354- 514 के वेतनमान में पूर्णकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर सह मैकेनिक के 2300 नियमित पद सृजित किए जा रहे हैं। उक्त कार्यकारी आदेश में यह भी उल्लेख किया गया था कि अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के अन्य 2147 पद दिनांक 20.02.1982 तक, रुपये 150/- प्रति माह के नियत वेतन पर सृजित किये जा रहे हैं, यदि ऐसी तिथि से पहले उन्हें समाप्त नहीं किया जाता है। इस प्रकार, विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा उठाया गया पहला बिन्दु यह है कि इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को नियमावली की व्यवस्था के अनुसार नियुक्त नहीं किया गया था और स्पष्ट तौर पर नियुक्ति सरकारी आदेशों के आधार पर और नियमावली, 1953 के अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना की गई थी। श्री सिंह ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं को उनकी नियुक्ति की तिथि से ही पता था कि वे अंशकालिक नियुक्त व्यक्ति थे और उन्हें कोई सेवा लाभ नहीं मिलेगा। इस तर्क को स्थापित करने हेतु विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने 18.2.1982 को मुख्य अभियंता, सिंचाई विभाग द्वारा निर्गत एक कार्यालय ज्ञापन पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसके द्वारा अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के ऐसे पदों की नियुक्ति और सेवाओं को शासित करने वाली शर्तें निर्धारित की गई थीं।

16. इसके बाद विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपने तर्क का दूसरा भाग यह कहते हुए प्रस्तुत किया कि, उ.प्र. राज्य ने 20.2.1992 को क शासनादेश जारी किया था, जिसके अन्तर्गत "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" का नामकरण "ट्यूबवेल सहायक" में परिवर्तित कर दिया गया था और उनका मानदेय रुपये 299 प्रति माह से बढ़ाकर रुपये 550 प्रति माह कर दिया गया था। उक्त शासनादेश में प्रावधान है कि सभी कार्यरत अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को नियुक्ति पत्र

निर्गत किया जा सकता है और उन्हें उनके प्रदर्शन के आधार पर प्रोत्साहन भत्ता भी प्रदान किया जा सकता है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कथन है कि उपरोक्त शासनादेश के अनुपालन में सभी कार्यरत अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को नियुक्ति पत्र निर्गत किए गए थे। हालाँकि, मध्य की अवधि में, दो मामले वाद संख्या 256/1988 और वाद संख्या 20/1989 क्रमशः आठ और पचास "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" द्वारा श्रम न्यायालय के समक्ष दायर किये गये, जिसमें उ.प्र. औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के प्रावधानों के अन्तर्गत नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के साथ वेतन समानता का दावा किया गया था। दोनों मामलों के निर्णय क्रमशः दिनांक 15.7.1989 और 1.2.1991 "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के पक्ष में किये गये, जिसमें श्रम न्यायालय ने एक निष्कर्ष निकाला कि चूंकि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" ने नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटर की तरह ही काम किया था, अतः वे भी नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान वेतन पाने के हकदार हैं। स्पष्ट है, उत्तर प्रदेश राज्य, श्रम न्यायालय के उक्त निर्णय से संतुष्ट नहीं था और इसलिए उन्होंने रिट याचिका संख्या 1502/ 1992 के माध्यम से उक्त निर्णय को चुनौती दी। इसके साथ ही एक और रिट याचिका संख्या 3558/ 1992 (सुरेश चंद्र तिवारी और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य), उपरोक्त शासनादेश दिनांक 20.2.1992 को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई थी। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उक्त मामले पर प्रकाश डालने हेतु उक्त याचिका में याचिकाकर्ताओं द्वारा की गई प्रार्थना /मांगे गए अनुतोष पर विश्वास करने की मांग की, और तर्क दिया कि उक्त रिट याचिका में मांगा गया अनुतोष याचिकाकर्ताओं को ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पद पर सेवा में नियमित करने के निर्देश से संबंधित था तथा उन्हें पूर्णकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान नियमित वेतनमान देना अनुमन्य है।

17. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कथन है कि श्रम न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दायर की गई अपील और साथ ही सुरेश चंद तिवारी एवं अन्य द्वारा दायर रिट पर समान निर्णय दिनांक 18.5.1994 पारित किया गया था, जिसमें इस न्यायालय की एकल पीठ ने "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के वेतन समानता के दावे को उचित पाया और इसलिए उन्हें नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान वेतन का अनुतोष प्रदान किया। इसके अतिरिक्त, उक्त निर्णय के विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दायर एक विशेष अनुमति याचिका को भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 22.3.1995 को यह देखते हुए खारिज कर दिया था कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के कर्तव्य, योग्यता और काम के घंटे "नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान हैं और इस प्रकार समान काम के लिए समान वेतन के सिद्धांत के आधार पर, शीर्ष न्यायालय ने राज्य की विशेष अनुमति याचिका को खारिज कर दिया। इस प्रकार, माननीय शीर्ष न्यायालय ने "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों द्वारा आहरित किये जा रहे वेतन (भविष्यलक्षी प्रभाव से) के समान भुगतान का हकदार माना। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता घटनाओं की समग्र श्रृंखला को पूर्ण करने हेतु प्रस्तुत करते है कि राज्य द्वारा दायर पुनर्विलोकन याचिका भी दिनांक 18.10.1995 को खारिज कर दी गई थी। इस प्रकार, माननीय

अनुवादित

सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में राज्य ने 27.10.1995 को आदेश निर्गत किया, जिसके बाद 10-11-1995 को एक आदेश निर्गत कर "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को वही वेतनमान प्रदान किया गया, जो नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों को दिया जाता था, जो दिनांक 18.5.1994 के उक्त निर्णय और अन्य समान स्थिति वाले याचिकाकर्ताओं से आच्छादित थे।

18. घटनाएँ वर्णित करने के पश्चात विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सुरेश चंद तिवारी मामले के उपरोक्त निर्णय के संदर्भ में, इस न्यायालय या माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत एकमात्र विषय अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर और पूर्णकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर के बीच वेतन-समानता से संबंधित था, जो समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत पर निर्णीत था और किसी अन्य विषय पर निर्णय नहीं लिया गया था और, इस प्रकार उक्त निर्णय के निर्वचन से यह माना गया कि चूँकि अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर को वेतन-समानता प्रदान की गई थी, इसलिए उन्हें पेंशन आदि जैसे अन्य सेवा लाभ भी दिया जाना निर्णय के दायरे से बाहर होगा और विधि के संगत नहीं होगा।

19. वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपने तर्क को और सशक्त करने हेतु इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के नियमितीकरण के सम्बन्ध में इस न्यायालय का अपने तर्क के तीसरे भाग पर ध्यान आकर्षित किया कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को सुरेश चंद्र तिवारी मामले के आधार पर पूर्णकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर के समान नहीं किया जा सकता है। विद्वान अपर महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि राज्य ने "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के नियमितीकरण के लिए "उ.प्र. सिंचाई विभाग अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर नियमितीकरण नियमावली 1996" अधिनियमित किया और नियमावली के अनुसार इसे केवल उन उम्मीदवारों पर लागू किया जिनकी नियुक्ति 1.10.1986 से पूर्व की गई थी और जो 16.12.1996 तक निरन्तर कार्यरत रहे। नियमावली में यह भी उल्लेख किया गया है कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" या ट्यूबवेल सहायक के रूप में नियुक्त उम्मीदवारों के बीच कोई अंतर नहीं था और उक्त नियमावली उन पर समान रूप से लागू थी, बशर्ते वे अंतिम तिथि के मानदंड को पूर्ण करते हो। राज्य ने शासनादेश दिनांक 17.12.1996 भी निर्गत किया, जिसके द्वारा "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के संवर्ग को समाप्त कर दिया गया और यह प्रावधान भी किया गया कि ट्यूबवेल ऑपरेटरों के रिक्त पदों के सापेक्ष नियमितीकरण की कार्यवाही केवल पूर्वोक्त विनियमन नियमावली 1996 के प्रावधानों के अन्तर्गत प्रारम्भ की जाएगी। इसलिए "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के नियमितीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और वरिष्ठता के आधार पर रिक्त पदों को भरा गया तथा विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, वर्ष1997 से वर्ष2000 की अवधि में लगभग 6735 अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को नियमित किया गया और पुरानी पेंशन योजना का लाभ दिया गया जैसा कि उनके नियमितीकरण के समय पूर्व से लागू था।

20. पुनः यह प्रस्तुत किया गया कि राज्य ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ सुरेश चंद तिवारी मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में प्रतिपादित "समान कार्य के लिए समान

वेतन" के सिद्धांतों को पूर्णतः प्रभावी करने हेतु शासनादेश दिनांक 3.3.1998 निर्गत कर सभी "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों की तरह ग्रामीण मकान किराया भत्ता, बोनस आदि के साथ वेतन वृद्धि और भत्तों का हकदार होने का निदेश दिया। हालांकि, उक्त शासनादेश को बाद में दिनांक 28.5.2003 के एक अन्य शासनादेश द्वारा स्पष्ट और संशोधित किया गया, जिसके अन्तर्गत शासनादेश दिनांक 03.03.1998 में उल्लिखित वाक्यांश "अन्य सेवा लाभ" को हटा दिया गया था, हालांकि बाद के शासनादेश दिनांक 28.5.2003 द्वारा सुरेश चंद्र तिवारी मामले के के निर्णय के आलोक में वेतन वृद्धि, ग्रामीण मकान किराया और बोनस के लाभ प्रदान किया जाना जारी रहा।

21. इस प्रकार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की स्थिति अस्थायी सरकारी सेवक की नहीं थी, बल्कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के रूप में बनी हुई थी और "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के नियम और शर्तें शासनादेश आदेश दिनांक 18.2.1982 द्वारा शासित थी, जो उनके नियमितीकरण तक समान रहा, सिवाय इस तथ्य के कि उन्हें सुरेश चंद्र तिवारी मामले में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 18.5.1994 के संदर्भ में "समान काम के लिए समान वेतन" का लाभ दिया गया था। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को वेतन समानता प्रदान करने मात्र से उन्हें अस्थायी सरकारी कर्मचारी का दर्जा नहीं मिल सकता है, अन्यथा ऐसी स्थिति बन जाएगी जिससे, "हर संविदा, दैनिक वेतनभोगी/ तदर्थ/ अस्थायी/ अंशकालिक नियुक्त कार्मिक को परिणामस्वरूप नियमित सरकारी कर्मचारी का दर्जा प्राप्त होगा।

22. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने चेतनापूर्ण निर्णय और गलत निर्णय के बीच अंतर व्यक्त करने की कोशिश की है। उनके अनुसार, कुछ अधिवक्ताओं का यह तर्क कि 03.03.1998 के शासनादेश के पश्चात उनके खाते से जीपीएफ कटौती की गयी है और इस तरह वे पुरानी पेंशन योजना के हकदार हैं, सही नहीं होगा और जैसा कि कहा गया है कि किसी भ्रम के अन्तर्गत राशि की कटौती की गयी है, विधि के संगत नहीं होगा। उनका कथन है कि याचिकाकर्ता विधिक रूप से फंड की सदस्यता लेने के हकदार नहीं थे और उनकी नियुक्ति की प्रकृति संविदात्मक थी और उन्हें उचित नियमितीकरण के बाद ही सरकारी कर्मचारी का दर्जा प्राप्त होगा। इस प्रकार, उनके अनुसार, "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की नियुक्ति की प्रकृति विभिन्न सेवा लाभों के संदर्भ में भिन्न नहीं हो सकती है, यानी, पेंशन प्राप्त करने के लिए नियमितीकरण से पहले उनकी सेवाओं को वास्तविक या स्थायी या अस्थायी भी नहीं माना जा सकता है।

23. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने याचिकाकर्ताओं के नियमितीकरण पर इस न्यायालय को संबोधित करते हुए पुनः तर्क प्रस्तुत किया कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की सेवाओं को नियमित करने के उद्देश्य हेतु, जिनकी सेवाएं नियमितीकरण नियमावली 1996 से आच्छादित नहीं थीं, राज्य ने उ.प्र. सिंचाई विभाग अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों का ट्यूबवेल ऑपरेटर के पद पर नियमितीकरण (प्रथम संशोधन) नियमावली 2008 अधिनियमित किया, जो उन अभ्यर्थियों

अनुवादित

पर लागू किया गया जिनकी नियुक्ति 30.6.1998 से पूर्व हुई थी और जिन्होंने 05.05.2008 तक निरन्तर कार्य किया था। इस प्रकार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि वर्तमान रिट याचिकाकर्ताओं को इस संशोधन के दृष्टिगत नियमित कर दिया गया है और इस प्रकार ये याचिकाकर्ता नियमितीकरण का लाभ ले चुके हैं और अब अपनी नियुक्ति की तिथि से सेवा लाभ देने की तिथि की गणना करने के विषय को उठाने हेतु प्रयासरत हैं, जो कि नियमितीकरण की व्यवस्था और इस न्यायालय के साथ-साथ माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों की सतत श्रृंखला के दृष्टिगत विधि के अनुसार अनुमन्य नहीं किया जा सकता।

24. राज्य द्वारा सर्वप्रथम **उ.प्र. राज्य और अन्य बनाम दुख हरण सिंह और अन्य** (विशेष अपील संख्या 240/ 2009) के वाद में निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है, जिसमें बड़ी संख्या में पदधारको को वर्तमान रिट याचिकाकर्ताओं के समान स्तर पर रखा गया था, जिनके मामले सेवा नियमावली 1996 और संशोधित नियमावली 2008 से आच्छादित थें, उन्होंने पहले उक्त नियमों की वैधता को इस न्यायालय की एकल पीठ के समक्ष चुनौती दी थी और उन्हें राहत प्रदान की गयी क्योंकि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को उनकी नियुक्ति की तिथि की गणना करके पेंशन लाभ प्रदान किया गया था। हालाँकि, रूचिकर यह है कि एकल पीठ के उक्त आदेश को इस न्यायालय की खंडपीठ के दिनांक 21.7.2009 के निर्णय से खारिज कर दिया गया था, जिसमें कहा गया था कि नियमितीकरण से पूर्व प्रदान की गई सेवा, विनियम 361 और 370 के संदर्भ में पेंशन देने हेतु अर्ह नहीं है क्योंकि इससे पहले प्रदान की गई सेवायें न तो वास्तविक, स्थायी और न ही अस्थायी हैं। इसके अतिरिक्त, उक्त दुख हरण सिंह (विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 27713/2009, दुख हरण सिंह बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य) में दायर विशेष अनुमति याचिका में माननीय शीर्ष न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांक 25.09.20113 द्वारा याचिकाकर्ता ("अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर") की उक्त विशेष अनुमति याचिका को, इस न्यायालय की खण्ड पीठ के निर्णय को दोहराते हुए, पुनः खारिज कर दिया और आगे कहा कि चूँकि संबंधित नियमावली के अनुसार पेंशन के लिए न्यूनतम अर्ह सेवा 10 वर्ष है, याचिकाकर्ता ने उस न्यूनतम अर्हता को पूर्ण नहीं किया है, अतः उन्हें पेंशन के लिए पात्र नहीं माना जा सकता है, हालांकि वह प्रयोज्य नियमों के अधीन ग्रेच्युटी और अन्य लाभों का हकदार होगा।

25. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने रिट याचिका संख्या- ए 52397/2009, **सुभाष चंद्र मिश्रा और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य** में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 10.05.2011 का भी सन्दर्भ दिया, ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि वेतनमान के मामले में समानता प्रदान करने मात्र से अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की सेवा की अन्य शर्तें स्वयमेव उनके प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से नियमित रूप से नियुक्त ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान नहीं हो जाती हैं। राज्य के अनुसार, दोनों सेट दो अलग-अलग धाराओं का गठन करते हैं और वे अन्तःपरिवर्तनीय नहीं थे, और वे अलग-अलग अवधारणाओं, अलग-अलग स्थिति, सेवा की शर्तों आदि से सम्बद्ध थे। इस प्रकार उनका कथन यह है कि याचिकाकर्ताओं और नियमित

अनुवादित

रूप से नियुक्त ट्यूबवेल ऑपरेटरों के साथ सभीपक्षों में समान स्तर पर व्यवहार करने का कोई भी प्रयास असमानों को समान मानने की श्रेणी में आयेगा।

26. इसके अतिरिक्त, विशेष अपील संख्या 146/2008, (उ.प्र.राज्य और अन्य बनाम राम निवास) और संबंधित अपील में इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा पारित निर्णय दिनांक 30.07.2014 को संदर्भित किया गया था, जिसमें खण्ड पीठ ने उ०प्र० में ट्यूबवेल ऑपरेटरों की नियुक्ति से संबंधित नियमावली, 1953 के विभिन्न खंडों को अभिलिखित करने के बाद "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की नियुक्ति की तिथि से सुरेश चंद्र तिवारी मामले का निर्णय पारित होने तक अवशेष वेतन देने की याचिका को इस आधार पर निरस्त कर दिया इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की नियुक्ति में नियमावली , 1953 के अनुसार निर्दिष्ट किसी भी प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है।

27. वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता ने यह दर्शाने हेतु विभिन्न निर्णयों का सन्दर्भ दिया कि इसी तरह की याचिकाएं इस न्यायालय द्वारा पूर्व में भी खारिज की जा चुकी हैं, जिसमें इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से नियमितीकरण को इस न्यायालय ने खारिज कर दिया है। ये निर्णय निम्नानुसार हैं:

(i) रिट याचिका संख्या 8722/2009,(इस्तगर अहमद बनाम उ.प्र.राज्य एवं अन्य) में पारित निर्णय दिनांक 08.11.2012, जिसमें न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को अन्य सेवा लाभों हेतु "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के रूप में उनकी सेवा प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से गणना करने के तर्क को निरस्त कर दिया एवं तदनुसार जीपीएफ की कटौती के संबंध में अन्य प्रार्थना को भी तर्कसंगत नहीं पाया गया क्योंकि याचिकाकर्ताओं की सेवाओं का नियमितीकरण 7.1.2009 को किया गया था एवं वे अधिसूचना दिनांक 21.3.2005 से आच्छादित थे।

(ii) इस न्यायालय द्वारा वर्ष 2013 की रिट ए संख्या 55344 (मदन गोपाल पांडे बनाम उ.प्र.राज्य एवं अन्य) में पारित आदेश दिनांक 13.06.2013

(iii) इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा वर्ष2014 की विशेष अपील संख्या 227, (उ.प्र.राज्य एवं अन्य बनाम ट्यूबवेल ऑपरेटर्स वेलफेयर एसोसिएशन एवं अन्य) एवं अन्य संबंधित अपीलों में पारित आदेश दिनांक 31.03.2014, जिसमें खण्ड पीठ को इस तर्क में कोई सार नहीं मिला कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" सेवा के सभी लाभों के अधिकारी हैं, जो उनके नियमितीकरण की तिथि से पूर्व किसी भी मूल पद पर नियुक्त अस्थायी या स्थायी कर्मचारियों पर लागू होता है।

(iv) वर्ष 1997 की रिट ए संख्या-35425, (मुरारी लाल बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य) एवं अन्य संबंधित याचिका में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय

अनुवादित

दिनांक 21.11.2014, जिसमें इस न्यायालय को नियुक्ति की प्रारंभिक तिथि से नियमितीकरण प्रभावी न करने के लिए नियमितीकरण नियमावली को संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 16 से अधिकारातीत मानने हेतु कोई वैध आधार नहीं मिला।

(v) वर्ष 2016 की रिट याचिका संख्या 22375 (बृज पाल सिंह एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य) में इस न्यायालय की एकल पीठ द्वारा दिनांक 19.9.2016 को पारित निर्णय, जिसमें इस न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के दावे, कि वे पुरानी पेंशन योजना का लाभ पाने के अधिकारी थे क्योंकि वे 1987 एवं 1993 के मध्य नियोजित हुए थे, को खारिज कर दिया था। उस मामले में न्यायालय ने माना कि इस प्रकार याचिकाकर्ताओं के उक्त तर्क में कोई सार नहीं था कि जिस तिथि को उन्हें नियमित स्थापना में नियमित किया गया था, पेंशन के उद्देश्य से गणना हेतु उस तिथि पर विचार किया जाय तथा न कि उस वर्ष को जब वे "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" के रूप में नियोजित हुए थे एवं इस प्रकार रिट याचिका गुणविहीन होने के कारण खारिज कर दी गई थी। यहाँ तक कि, उक्त एकल पीठ के आदेश के विरूद्ध दायर अपील को इस न्यायालय की खण्ड पीठ ने वर्ष2017 की विशेष अपील संख्या 65 राजेश कुमार तिवारी एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, से संबंधित वर्ष2017 की विशेष अपील संख्या 70 (मनमोहन सतवाल एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य) में पारित आदेश दिनांक 15.02.2017 के अंतर्गत खारिज कर दिया था।

(vi) रिट याचिका संख्या 122/2012, (शिव शंकर लाल एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य) एवं अन्य संबंधित रिट याचिकाओं में पारित निर्णय दिनांक 17.01.2017, जिसमें समान मुद्दा निर्णीत किया गया था, जिसमें एकल पीठ ने "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों", जो 1987 से 1993 के बीच किसी समय नियोजित हुए थे एवं उनकी सेवाओं को वर्ष 2008 में किसी समय नियमित किया गया था, को भी इसी प्रकार का अनुतोष प्रदान करना अस्वीकृत कर दिया था। एकल पीठ के उक्त निर्णय को विशेष अपील संख्या 65/2017, राजेश कुमार तिवारी एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य तथा अन्य संबंधित अपीलों में पारित आदेश दिनांक 15.02.2017 द्वारा बरकरार रखा गया, जिनमें खण्ड पीठ ने "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के इस तर्क को अस्वीकृत कर दिया कि "नई भर्ती" शब्द में वे लोग सम्मिलित नहीं हैं जिन्हें पूर्व में नियुक्त किया गया था, भले ही उन्हें बाद में नियमित नहीं किया गया हो। उस मामले में माननीय खंडपीठ ने धारित किया कि यदि ऐसा निर्वचन किया गया है तो दिनांक 28.3.2005 से पूर्व की किसी भी प्रकार की नियोजन या नियुक्ति स्पष्ट रूप से

अनुवादित

भर्ती होगी, लेकिन साथ ही ऐसी भर्तियां नियमित नहीं होने के कारण उक्त भर्ती किये गए कार्मिक पुरानी या नई पेंशन योजना के हकदार नही होंगे जब तक वे अपनी सेवाओं में नियमित नहीं हो जाते। इस संदर्भ में एक नई भर्ती का मतलब एक नियमित मूल नियुक्त व्यक्ति होगा, न कि अंशकालिक या तदर्थ आदि नियुक्त व्यक्ति।

28. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने विस्तारपूर्वक अभिकथन प्रस्तुत करते हुए इस न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया है कि कुछ "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" का जी.पी.एफ. पुरानी पेंशन योजना के अंतर्गत गलत तरीके से कटौती किया गया है, जिसके कारण वे भी पेंशन लाभ आदि का दावा कर रहे थे, जबकि उक्त "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की सेवाओं का नियमितीकरण 01.04.2005 के बाद नई पेंशन योजना के अंतर्गत किया गया था। इस संबंध में विद्वान अपर महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यद्यपि शासनादेश दिनांक 15.9.2011 में यह प्रावधान है कि पुरानी पेंशन योजना के अन्तर्गत जी.पी.एफ की गलत कटौती की स्थिति में कटौती की गई राशि पदधारियों को वापस कर दी जाएगी, तथापि इस न्यायालय के समक्ष कुछ 2152 "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों", जिन्हें 01.04.2005 के बाद नियमित किया गया था, ने यह प्रार्थना करते हुए रिट याचिका दायर की कि उनकी जीपीएफ कटौती पूर्व की भाँति जारी रखी जा सकती है, एवं उपरोक्त कटौतियों के अनुसरण में उन्हें पुरानी पेंशन योजना का लाभ दिया जा सकता है, एवं उनकी अधिवर्षता के बाद तदनुसार पेंशन का भुगतान किया जा सकता है। विद्वान अपर महाधिवक्ता ने अभिकथन प्रस्तुत किया कि रिट याचिका के उपरोक्त समूह में प्रमुख रिट याचिका संख्या 13626/ 2017 (नमो नारायण राय एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य एवं अन्य संबंधित रिट याचिका) में इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 08.09.2017 के माध्यम से विवाद को एक प्रश्न (जीपीएफ कटौती के संबंध में) के रूप में संदर्भित किया है, जिसका निर्णय वृहद पीठ द्वारा किया गया है, जिसमें वृहद पीठ ने अपने आदेश दिनांक 26.11.2021 द्वारा विशेष रूप से निर्देश दिया है (i) 1 अप्रैल, 2005 के बाद नियमित किए गए सभी "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के मामले में जो अभी भी सेवा में हैं एवं जिनके जीपीएफ की कटौती उनके नियमितीकरण की तिथि से अब तक की गई है, जमा हुई राशि जीपीएफ नियमानुसार उस पर अर्जित ब्याज के साथ पेंशन निधि में स्थानांतरित कर दी जाएगी एवं राज्य भी नियमितीकरण की तिथि से पेंशन निधि में अपना योगदान एकमुश्त प्रयोज्य नियमानुसार हस्तांतरित कर देगा (ii) ऐसे मामले में जहाँ न तो जीपीएफ की कटौती की गई एवं न ही नई पेंशन योजना के अंतर्गत खाता खोला गया, यद्यपि उनकी सेवा 1 अप्रैल 2005 के पश्चात विभिन्न तिथियों से नियमित की गई थी, उस मामले में जहाँ कर्मचारी वर्तमान में भी सेवा में हैं, वे नई पेंशन योजना के सदस्य बनने हेतु अपने फॉर्म भरेंगे एवं भविष्य में उनके वेतन से कटौती पेंशन योजना के अनुसार की जाएगी, (iii) जहाँ तक उन कर्मचारियों, जो पहले ही सेवा से सेवानिवृत्त हो चुके हैं, के जीपीएफ खाते में जमा धनराशि का विषय है, माननीय वृहद पीठ ने अभिलिखित किया कि यह पहले ही कर्मचारियों को ब्याज के साथ वापस कर दिया गया है एवं

अनुवादित

यदि ऐसा नहीं किया जाता है, तो इसे उस तिथि से तीन माह की अवधि में जीपीएफ नियमों के अनुसार भुगतान ब्याज सहित वापस कर दिया जाएगा और (iv) उन कर्मचारियों, जिन्हें 1 अप्रैल, 2005 के पश्चात नियमित किया गया है, के मामले में, यदि उनके जीपीएफ खाते में उनके नियमितीकरण होने की तिथि से पूर्व कोई राशि जमा थी, तो इसे पेंशन निधि खाते में स्थानांतरित कर दिया जाएगा। उनके नियमितीकरण से पूर्व किसी भी अवधि के लिए राज्य को पेंशन निधि में योगदान करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

29. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि उक्त आदेश के विरूद्ध दायर पुनर्विलोकन को भी वृहद पीठ ने अपने आदेश दिनांक 22.04.2022 द्वारा खारिज कर दिया है। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय की वृहद पीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.11.2021 एवं पुनर्विलोकन आदेश दिनांक 22.04.2022 विशेष अनुमति याचिकाओं (एसएलपी) के एक समूह में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय था, जिसमें प्रमुख थी विशेष अनुमति याचिका संख्या 9180-9185/2022 (महंथ सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य), जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 25.07.2022 के माध्यम से उक्त विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज किया था। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि वृहद पीठ के आदेश की पुष्टि की जाती है एवं इस प्रकार यह सभी पक्षों हेतु बाध्यकारी है।

30. इसके पश्चात विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इसका अर्थ कि किसे सरकारी सेवक कहा जा सकता है एवं कौन अस्थायी सरकारी सेवक है,अपने तर्क को पुष्ट करने हेतु व्यक्त करने की कोशिश की कि सेवा विधिशास्त्र के अंतर्गत दो प्रकार की अस्थायी व्यवस्था हो सकती है; अर्थात वे अस्थायी कर्मचारी जिन्हें प्रासंगिक सेवा नियमों के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए नियमित रूप से नियुक्त किया गया है एवं दूसरी श्रेणी है जिनकी नियुक्ति आवश्यकता के आधार पर की गई है। उनका कहना है कि मौलिक नियुक्ति के लिए एक मौलिक पद होना चाहिए। प्रचलित विधि की दृष्टि से मूल पद का सामान्य अर्थ है वे पद जो वैधानिक संवैधानिक नियमावली के अंतर्गत एक संवर्ग बनाते हुए निर्मित किये गये हैं, जैसा कि भारत सरकार अधिनियम 1935 के अन्तर्गत बनाए गए उ.प्र. मौलिक नियम के नियम 9 (4) के अन्तर्गत परिभाषित किया गया है जिसके अनुसार संवर्ग का अर्थ है किसी सेवा के पदों या किसी सेवा के एक भाग के, जिसको एक अलग इकाई मानकर स्वीकृत किया गया हो। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उस संबंध में उ.प्र. अस्थायी सरकारी सेवक (सेवा समाप्ति) नियमावली, 1975 का भी सन्दर्भ दिया। इस प्रकार, उनके अनुसार याचिकाकर्ता किसी मूल पद पर नियुक्त नहीं होने के कारण अस्थायी पद पर नियुक्त होने का दावा नहीं कर सकते।

31. इसके बाद विद्वान अपर महाधिवक्ता ने यह दर्शाने हेतु सिविल सेवा विनियमन के अनुच्छेद 361 के खंड (बी) का उल्लेख किया कि अंशकालिक सेवाओं को पेंशन अर्हता हेतु वास्तविक एवं स्थायी नहीं माना जा सकता है और यह दर्शाने हेतु सिविल सेवा विनियमन के अनुच्छेद 368 का सन्दर्भ दिया कि सेवा अर्ह नहीं होगी जब तक कि अधिकारी किसी स्थायी अधिष्ठान में कोई मूल पद धारण न कर ले।

अनुवादित

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961 के नियम 3 (8) पर भी विश्वास व्यक्त किया एवं तर्क दिया कि "अर्ह सेवा" का अर्थ ऐसी सेवा है जो सिविल सेवा विनियमन के अनुच्छेद 368 के प्रावधानों के अनुसार पेंशन के लिए अर्ह है, जिसका अर्थ है कि अर्हक सेवा हेतु नियोजन मूल एवं स्थायी होना चाहिए एवं नियुक्ति की अवधि को पेंशन लाभ देने हेतु चुनौती नहीं दी जा सकती है, जब तक कि यह मूल एवं स्थायी न हो, इसलिए अंशकालिक सेवाओं को अर्हक सेवा के रूप में नहीं माना जा सकता है।

32. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, सिविल सेवा विनियम एवं उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961 दोनों, केवल अस्थायी या स्थानापन्न सेवा को संदर्भित करते हैं एवं अंशकालिक सेवा का बिल्कुल भी उल्लेख नहीं करते हैं। इस प्रकार, उनके अनुसार, अस्थायी एवं स्थानापन्न नियुक्तियाँ अंशकालिक नियुक्तियों से भिन्न हैं एवं अन्तःपरिवर्तनीय नहीं हैं एवं केवल उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक स्थायीकरण नियमावली-1991 के प्रावधानों के अंतर्गत स्थायीकरण के बाद की अस्थायी या स्थानापन्न सेवाओं को पेंशनरी लाभ हेतु मूल सेवा/अर्हक सेवा माना जा सकता है, परन्तु अंशकालिक सेवा को पेंशन लाभ प्रदान करने हेतु अर्हक सेवा के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त, प्रकृति में भिन्न एवं किसी भी अंशकालिक कर्मचारी द्वारा किसी भी नियम के अन्तर्गत किसी समानता/लाभ का दावा नहीं किया जा सकता है जो विशेष रूप से तदर्थ कर्मचारियों के लिए बनाया गया है। इसके अतिरिक्त, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि उपरोक्त नियमावली, 1961 के नियम 2 को उ.प्र. सेवानिवृत्ति लाभ (संशोधन) नियमावली, 2005 जिसके द्वारा उप-नियम (2) द्वारा संशोधित किया गया था, एक नया उप-नियम (3) जोड़ा गया है। उपरोक्त उपनियम (3) द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि जो भी कर्मचारी 1 अप्रैल 2005 के बाद राज्य की सेवाओं एवं पदों पर प्रवेश कर रहा है ऐसे कर्मचारियों पर उ.प्र. सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 लागू नही होगी।

33. इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" थे एवं उनकी स्थिति दुख हरण वाद में खण्ड पीठ द्वारा धारित की गई है , एवं एक बार जब यह स्थापित हो गया है कि वे अस्थायी कर्मचारी नहीं थे, याचिकाकर्ता किसी भी पूर्व तिथि से नियमितीकरण की मांग नहीं कर सकते हैं एवं वे निधि की सदस्यता नहीं ले सकते थे एवं भले ही उन्हें निधि की सदस्यता प्रदान की गई थी, यह एक त्रुटि थी जिसे याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ अन्य "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" के मामले में भी सुधारा गया है। विद्वान अधिवक्ता ने उत्तर प्रदेश अर्हक सेवा एवं विधिमान्यकरण अधिनियम (1 अप्रैल 1961 से लागू/प्रभावी) के खंड 2 में परिभाषित अर्हक सेवा की परिभाषा का भी सन्दर्भ दिया, जो कहती है "किसी नियम, विनियमन या शासनादेश में कुछ भी सम्मिलित होने के बावजूद किसी अधिकारी को पेंशन की पात्रता के उद्देश्य से "अर्हक सेवा" का अर्थ है सरकार द्वारा पद हेतु निर्धारित सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त अधिकारी द्वारा प्रदान की गई सेवाएँ।" विद्वान अपर महाधिवक्ता के अनुसार, याचिकाकर्ता पेंशन एवं अन्य सेवा लाभों के अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि

अनुवादित

उनकी नियुक्ति 1953 के उपरोक्त सेवा नियमावली के प्रावधानों के अनुसार नहीं की गई है एवं किसी भी मामले में किसी भी याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश अर्हता सेवा को चुनौती नहीं दी है। पेंशन एवं विधिमान्यकरण अधिनियम जिसके द्वारा "अर्हक सेवा" को परिभाषित किया गया है एवं इस अधिनियम को चुनौती दिए बिना याचिकाकर्ता अपनी अधिवर्षता के बाद पेंशन अनुदान के लाभ का दावा नहीं कर सकता है।

34. पुनः विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क को आगे बढ़ाते हुए प्रस्तुत किया कि एक और सहायक विषय है जो हालांकि तत्काल वाद में प्रत्यक्ष तौर पर सम्मिलित नहीं है, परंतु विवक्षित रूप से उस सीमा तक वर्तमान वाद से युक्त है, जहाँ तक विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार ये "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" नियमितीकरण की पूर्व की तिथियों की मांग करके वास्तव में पुरानी पेंशन योजना का लाभ प्राप्त करना चाहते हैं जो 1.4.2005 से पहले प्रचलित थी, जो विधितः मान्य नहीं है। प्रस्तुत विषय कि क्या "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" निधि की सदस्यता के अधिकारी थे, इस माननीय न्यायालय की माननीय खण्ड पीठ द्वारा दो विशेष अपीलों के समूह, विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 227/ 2014, (उ.प्र. राज्य एवं अन्य बनाम ट्यूबवेल ऑपरेटर्स एसोसिएशन) में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 31.3.2014 के प्रकाश में अनिर्णीत है, जिसमें माननीय खण्ड पीठ द्वारा यह धारित किया गया था कि ट्यूबवेल ऑपरेटर्स जिनके लाभ के लिए रिट याचिका दायर की गयी है, जी.पी.एफ सहित सेवा एवं अन्य लाभ जैसे पेंशन आदि उनके नियमित होने की तिथि से पाने के अधिकारी होंगे न कि उससे पहले की किसी तिथि से।

35. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रेम सिंह वाद में शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को अलग करने के अपने प्रयास में कहा कि याचिकाकर्ता के "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" के कार्य की तुलना उन व्यक्तियों से नहीं की जा सकती है, जो कार्य प्रभारित अधिष्ठान में कार्य कर रहे हैं/थे, क्योंकि दोनों पूरी तरह से अलग हैं एवं रोजगार एवं कार्य की प्रकृति की अलग-अलग श्रेणियां हैं। कार्य प्रभारित अधिष्ठान के अंतर्गत नियोजन का प्रावधान वित्तीय हस्त पुस्तिका के खंड 6 भाग 1 के प्रस्तर 667, 678 एवं 669 के अंतर्गत प्रदान किया गया है एवं उसका व्यय उक्त विशिष्ट कार्य पर आधारित/प्रभारित थे, जबकि याचिकाकर्ताओं (एवं इसी तरह अन्य व्यक्तियों) के अंशकालिक नियोजन को सरकार के आदेश दिनांक 22.12.1981 के 'कार्यकारी निर्देश' अंतर्गत एवं मुख्य अभियंता, सिंचाई विभाग द्वारा निर्गत कार्यालय ज्ञापन दिनांक 18.2.1982 के अंतर्गत किया गया था, जिसके द्वारा अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के ऐसे अस्थायी पदों की नियुक्ति एवं सेवाओं को नियंत्रित करने वाली शर्तें विहित की गईं थी। उपरोक्त के दृष्टिगत "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की सेवाओं को उन व्यक्तियों के समान नहीं किया जा सकता है, जो कार्य प्रभारित अधिष्ठान में कार्यरत हैं/थे, क्योंकि दोनों पूरी तरह से अलग हैं, एवं याचिकाकर्ता प्रेम सिंह वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित उक्त निर्णय का लाभ पाने का अधिकारी नहीं है।

<u>विश्लेषण एवं चर्चा:</u>

अनुवादित

36. इन याचिकाओं के समूह में विवाद के समस्त पक्षों एवं दोनों पक्षों द्वारा संदर्भित अनेक निर्णयों पर विचार के पश्चात, जिनमें से कुछ को इस न्यायालय द्वारा भी संदर्भित किया गया है, इस न्यायालय के समक्ष विषय सुस्पष्ट हो गया है। स्पष्ट रूप से, ऐसा प्रतीत होता है कि मामला जटिल हो गया है क्योंकि अलग-अलग समय पर कई याचिकाएं दायर की गईं एवं इस न्यायालय द्वारा उन पर निर्णय सुनाया गया। हालाँकि, इन मामलों पर सूक्ष्मता से विचार करने पर स्पष्ट होगा कि वास्तविक मुद्दा इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के लिए प्रेम सिंह मामले में पारित निर्णय की प्रयोज्यता के सन्निकट है, जो प्रेम सिंह मामले के पारित होने से पहले एवं बाद में इस न्यायालय द्वारा उनके सेवा लाभ से संबंधित पूर्व में पारित निर्णयों की श्रृंखला के साथ युक्त है। इस मामले का एक दूसरा पहलू यह भी है कि यदि प्रेम सिंह मामले को वर्तमान रिट याचिकाकर्ताओं के समूह पर प्रयोज्य माना जाता है, तो क्या इन रिट याचिकाकर्ताओं को पुरानी पेंशन योजना का लाभ दिया जा सकता है, जो 01.04.2005 के बाद नियमित कर दिये गये है, यानी जब नई पेंशन योजना लागू हुई, जैसा कि प्रेम सिंह मामले में स्वीकार किया गया था जो यद्यपि 2019 में निर्णीत किया गया, तथापि 01.04.2005 को लागू होने वाली नई पेंशन योजना से संबंधित विषय कोई विषय नहीं था, संभवतः इसलिए क्योंकि वर्णित तथ्य यह था कि एक व्यक्ति को 13.03.2002 को नियमित किया गया था, यानी नई पेंशन योजना के अस्तित्व में आने से बहुत पहले।

37. जहाँ तक तथ्यों का संबंध है, वाद के वर्तमान समूह में सामान्य सूत्र एक संकीर्ण दिशा में है, क्योंकि सभी रिट याचिकाकर्ताओं का दावा है कि वे 1987 से 1994 के मध्य किसी समय "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" के रूप में कार्यरत थे। स्वीकार्य रूप से उन्हें नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटर के रूप में नियुक्त नहीं किया गया था एवं उनकी सेवाओं को वर्ष 2008-2009 में किसी समय नियमित किया गया था। नई पेंशन योजना दिनांक 1.4.2005 से लागू हुई, जिसका अर्थ है वे सरकारी कर्मचारी, जिन्हें 1.4.2005 को या उसके बाद नियमित आधार पर नियुक्त किया गया है, वे अंशदायी योजना के अंतर्गत आएंगे, न कि पुरानी पेंशन योजना के अंतर्गत। हालाँकि, याचिकाकर्ता पुरानी पेंशन योजना के लाभ का दावा कर रहे हैं एवं पुरानी पेंशन योजना का अनुतोष प्राप्त करने हेतु उन्होंने इस न्यायालय से घोषणात्मक अनुतोष की मांग की है कि उनकी नियुक्ति की तिथि को पेंशन आदि सहित सेवा लाभों की पात्रता की तिथि के रूप में माना जाए।

<u>याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति:</u>

38. यह न्यायालय पाता है कि, यह विवाद में नहीं है कि नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों की नियुक्ति एवं सेवा शर्तें उ.प्र.सिंचाई विभाग ट्यूबवेल ऑपरेटर सेवा नियमावली, 1953 द्वारा शासित होती हैं जिसके अनुसार नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों की नियुक्ति हेतु नियम 3 (बी) के अंतर्गत अधीक्षण अभियंता द्वारा एक चयन समिति का गठन किया जाना है, एवं इस चयन समिति में दो अधिशासी अभियंता सम्मिलित होंगे, एवं वरिष्ठतम अधिशासी अभियंता संयोजक के रूप में होंगे। नियमावली, 1953 के नियम 12 में प्रावधान है कि समिति के संयोजक चयनित अभ्यर्थियों के बारे में संबंधित अधीक्षण अभियंता

को सूचित करेंगे। नियम 13 में तीन महीने के लिए प्रशिक्षु प्रशिक्षण का प्रावधान है एवं सफल उम्मीदवारों को प्रमाणपत्र दिया जाएगा। नियम 14 चयनित उम्मीदवारों के नाम एवं जन्मतिथि सहित उनकी सूची का प्रावधान करता है। नियम 15 रिक्तियों की उपलब्धता के अधीन नियम 14 के अंतर्गत तैयार सूची में से नियुक्ति का प्रावधान करता है। हालाँकि, वर्तमान मामले में, संबंधित अधिशासी अभियंता द्वारा किसी भी निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था। कोई विज्ञापन जारी नहीं किया गया; रोजगार कार्यालय से कोई मांग नहीं की गई थी; कोई चयन समिति गठित नहीं की गई; एवं नियमावली, 1953 के नियम 12 के अंतर्गत अपेक्षित कोई चयन सूची प्रकाशित नहीं की गई थी।

<u>शासनादेश दिनांक 22.12.1981 एवं कार्यालय ज्ञापन दिनांक 15.02.1982</u>

39. स्वीकार्यतः, यद्यपि राज्य ने उपरोक्त उ.प्र. सिंचाई विभाग ट्यूबवेल ऑपरेटर्स सेवा नियमावली 1953 तैयार किया था, तथापि वर्तमान रिट याचिकाकर्ताओं को उक्त सेवा नियमावली, 1953 के अंतर्गत नियुक्त नहीं किया गया था, बल्कि सिंचाई विभाग, उ.प्र. सरकार द्वारा दिनांक 22.12. 1981 के आदेश के अंतर्गत जारी 'कार्यकारी निर्देशों' के अंतर्गत नियुक्त किया गया था, जिसमें यह प्रावधान किया गया था कि 354-514 रुपये के वेतनमान में उत्तर प्रदेश राज्य के ट्यूबवेलों को चलाने हेतु पूर्णकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर सह मैकेनिक के 2300 नियमित पद सृजित किये जा रहे हैं। उक्त कार्यकारी आदेश में यह भी उल्लेख किया गया था कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" के अन्य 2147 पद 150/- प्रति माह रुपये के निश्चित वेतन पर दिनांक 20.02.1982 तक सृजित किए जा रहे हैं, यदि ऐसी तिथि से पूर्व उन्हें समाप्त नहीं किया जाता है तो। इस प्रकार, स्पष्ट रूप से इस न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ताओं की "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" के रूप में नियुक्ति एक सामयिक उपाय व्यवस्था थी एवं शासनादेशों के आधार पर एवं नियमावली, 1953 के अंतर्गत निर्धारित उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना की गई थी। इसके अतिरिक्त, यह एक निर्विवादित तथ्य है कि सिंचाई विभाग के मुख्य अभियंता ने 18.2.1982 को "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के ऐसे पदों की नियुक्ति एवं सेवाओं को शासित करने वाली कुछ शर्तें निर्गत कीं, जो अन्य बातों के साथ-साथ निम्नवत उपबंधित करती हैं: -

- खण्ड 6 के अनुसार अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर सुबह 09:30 बजे से दोपहर 12:00 बजे तक काम करेंगे एवं दिन की शेष अवधि में वे अपना निजी काम करने हेतु स्वतंत्र होंगे।

- खण्ड 11 के अनुसार, अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर अस्थायी होंगे, जिनका कार्य संतोषजनक न होने पर एक माह का नोटिस देकर हटाया जा सकेगा।
- खण्ड-12 के अनुसार अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को पेंशन, भविष्य निधि एवं ग्रेच्युटी आदि की पात्रता नहीं होगी।

40. उपरोक्त ज्ञापन दिनांक 18.02.1982 कार्यालय ज्ञापन दिनांक 19.04.1983 के माध्यम से संशोधित किया गया था, जिसमें खण्ड 11 में संशोधन करके यह शर्त भी सम्मिलित की गई थी कि अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के रूप में उनकी सेवा तीन वर्ष की अवधि के लिए होगी एवं उक्त तीन वर्षों की

अनुवादित

समाप्ति के बाद,यदि कार्य संतोषजनक पाया गया तो उन्हें फिर से "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। सिंचाई विभाग द्वारा जारी ज्ञापन दिनांक 24.08.1989 के माध्यम से इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों का निर्धारित वेतन बढ़ाकर 299रु. प्रति माह किया गया, जिसमें कुछ एवं शर्तों का उल्लेख किया गया था, जैसे इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की सेवाओं को उ.प्र.अस्थायी सरकारी सेवक (सेवा समाप्ति) नियमावली, 1975 के अनुसार किसी भी समय बिना सूचना के समाप्त किया जा सकता है एवं वे किसी भी पेंशन, ग्रेच्युटी एवं अन्य नियमित सेवा लाभों के अधिकारी नहीं होंगे।

41. इसलिए, यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि रिट याचिकाकर्ता "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" (दिन में तीन घंटे से कम कार्य करना) के रूप में कार्य कर रहे थे। नियुक्ति सामयिक उपाय व्यवस्था हेतु थी। उन्हें किसी भी मूल पद पर नियुक्त नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त, यह विवाद में नहीं है एवं इस पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि उन्हें नियमित या अस्थायी रूप से ट्यूबवेल ऑपरेटरों के किसी भी स्वीकृत पद पर नियुक्त नहीं किया गया था। रिट याचिकाकर्ताओं की ओर से यह भी नहीं कहा गया है कि उनकी नियुक्ति चयन की उचित प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात की गई थी। इस न्यायालय द्वारा तैयार की गई उपरोक्त सादृश्यता का खंडन करने वाले पक्षों द्वारा न तो कोई दस्तावेज़ एवं न ही कोई प्रस्तुतीकरण किया गया है। इस प्रकार यह नियुक्ति सदैव अनियमित रही।

<u>ट्यूबवेल ऑपरेटरों के साथ वेतन-समानता</u>

42. इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की सेवाएं प्रारंभ से ही विवादों से घिरी हुई प्रतीत होती थीं क्योंकि यह कहा गया है कि इनमें से कुछ "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" ने औद्योगिक विवाद अधिनियम,1947 के प्रावधानों के अन्तर्गत श्रम न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था जिसमें वर्ष 1989 में उनके पक्ष में एक अधिनिर्णय पारित किया गया था, जिससे निर्देश दिया गया था कि इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को वेतन एवं भत्तों की अनुमन्यता के संबंध में एक नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटर के समान माना जाएगा, हालांकि, दिलचस्प बात यह है कि जहाँ तक उनकी सेवा के नियमितीकरण का प्रश्न है, श्रम न्यायालय ने यह धारित किया एवं मात्र यह अभिलिखित किया कि इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को विभाग के पास कोई रिक्त पद उपलब्ध होने पर प्राथमिकता दी जाएगी। इस प्रकार, श्रम न्यायालय ने हालांकि वेतन-समानता प्रदान की, लेकिन नियमितीकरण सरकार पर छोड़ दिया, जो निस्संदेह उमा देवी [(2006) 4 एससीसी 1] के वाद में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के आदेश के अनुसार भी था, जिसने आधिकारिक रूप से यह धारित किया कि नियमितीकरण का कोई निहित अधिकार नहीं है। वर्तमान वाद पर वापस आते हुए, राज्य स्पष्ट रूप से श्रम न्यायालय के उक्त निर्णय से सहमत नहीं था एवं उसने इसे इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी थी। इस बीच, राज्य ने "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के नामकरण को भी ट्यूबवेल सहायकों में बदल दिया एवं 20.02.1992 के शासनादेश के माध्यम से उनके मानदेय में वृद्धि की, हालांकि उक्त मानदेय नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटर हेतु भुगतान किए जाने वाले मानदेय के समान

अनुवादित

नहीं था। इस प्रकार, उक्त शासनादेश के आधार पर, "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" द्वारा इस न्यायालय में कई याचिकाएं दायर की गईं, जिसमें याचिकाकर्ताओं को ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पद पर सेवा में नियमित करने एवं नियमित वेतनमान का भुगतान करने का निर्देश देने की मांग की गई जैसा कि पूर्णकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के लिए अनुमन्य है।

43. रिट याचिकाओं की दोनों श्रेणियों का निर्णय इस न्यायालय द्वारा "सुरेश चंद्र तिवारी एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य (रिट याचिका संख्या 3558 (एस/एस) 1992 एवं 49 अन्य समान संबंधित रिट याचिकाएं) के मुख्य वाद में किया गया था। स्पष्ट तौर पर, इस न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 18.05.1994 द्वारा इन रिट याचिकाओं का निर्णय किया, जिससे राज्य को सभी रिट याचिकाकर्ताओं को समान परिलब्धियां अर्थात समान वेतनमान का भुगतान करने का निर्देश दिया गया, जैसा कि अन्य नियमित रूप से नियुक्त ट्यूबवेल ऑपरेटरों को भुगतान किया जा रहा था। इस न्यायालय के उक्त निर्देश के अनुपालन में, राज्य ने अन्य संबंधित मामलों के साथ विशेष अनुमति याचिका संख्या 16219/1994 के माध्यम से माननीय सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, एवं सर्वोच्च न्यायालय ने 23.09.1995 के एक आदेश के अंतर्गत राज्य की विशेष अनुमति याचिका को दो न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का कोई आधार न मिलने पर खारिज कर दिया, जिसने याचिकाकर्ताओं को "समान कार्य हेतु समान वेतन" के सिद्धांत के आधार पर अनुतोष प्रदान किया था। यहाँ तक कि पुनर्विलोकन को सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 18.10.1995द्वरा यह स्पष्ट करते हुए खारिज कर दिया कि उक्त कार्यवाही में विषय नियमितीकरण से संबंधित नहीं था, अपितु अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को समान कार्य समान वेतन के सिद्धांत पर नियमित ऑपरेटरों के बराबर वेतन-समानता प्रदान करने के प्रश्न से संबंधित था। प्रासंगिक रूप से, राज्य सरकार ने दिनांक 27.10.1995 को शासनादेश जारी किया, जिससे इस न्यायालय के निर्णय की तिथि यानी 18.05.1994 से नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों हेतु अनुमन्य समान वेतनमान "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को देने के निर्देश जारी किए गए। इसके अतिरिक्त, कुछ याचिकाकर्ताओं का यह मत है कि उक्त शासनादेश के बाद भी "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को नियमित वेतनमान की अनुमन्यता के संबंध में इस न्यायालय के निर्णय विरोधाभासी थे एवं इस प्रकार विशेष अनुमति याचिका संख्या 34861/2015 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय दिनांक 04.01.2016 पारित किया गया जिसके अंतर्गत वाद का निस्तारण हो गया एवं स्पष्ट हो गया कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर", दिनांक 18.05.1994 से सुरेश चंद्र तिवारी मामले में इस न्यायालय के निर्णय के आलोक में नियमित वेतनमान के अधिकारी होंगे।

44. इस बीच, इस न्यायालय के निर्देश के दृष्टिगत, *"उ.प्र. सिंचाई विभाग ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पदों पर अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों का नियमितीकरण नियमावली, 1996"* को औपचारिक रूप दिया गया, जिससे अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर, को नियमित करने हेतु प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया, जो 01.10.1986 से पूर्व नियुक्त किए गए थे एवं उक्त नियमावली के

अनुवादित

प्रख्यापन की तिथि तक उक्त सामर्थ्य में काम जारी रखे थे। उक्त नियमितीकरण नियमावली में वाद का अपना कारण था क्योंकि यह इस न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय भी था, हालांकि निर्णय के अगले भाग में इस पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।

45. वेतन-समानता के विषय पर वापस आते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि सुरेश चंद्र तिवारी मामले के पूर्वोक्त निर्णय सहित कुछ अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों ने भी समान कार्य हेतु समान वेतन के सिद्धांत पर इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुए थे कि नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटर की तरह सभी सेवा लाभ उनकी नियुक्ति की तिथि से होने चाहिये न कि उनके नियमितीकरण की तिथि से। इस न्यायालय ने **सुभाष चंद्र मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** (रिट ए संख्या 52397/2009) के वाद में दिनांक 10.05.2011 के एक आदेश के अंतर्गत इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के तर्क को यह कहकर खारिज कर दिया था कि वाद में मात्र वेतनमान समानता प्रदान करने से "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की सेवा की अन्य शर्तें "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के रूप में प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से नियमित रूप से नियुक्त ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान स्वतः नहीं हो जाती हैं। इस न्यायालय ने उक्त निर्णय में धारित किया कि दोनों वर्ग दो अलग-अलग धाराओं का गठन करते हैं एवं अंतःपरिवर्तनीय नहीं है क्योंकि वे अलग-अलग अवधारणाओं, अलग-अलग स्थिति, सेवा की शर्तों आदि से सम्बद्ध थे एवं इस तरह नियमित रूप से नियुक्त ट्यूबवेल ऑपरेटरों के साथ सभी पक्षों में समान स्तर पर व्यवहार करने का कोई भी प्रयास असमानों को समान मानने की श्रेणी में आयेगा। इस न्यायालय ने उस निर्णय में यह भी कहा कि "समान कार्य हेतु समान वेतन" की अवधारणा का अगर किसी वाद में पालन किया जाता है, तो यह दो अलग-अलग वर्ग के व्यक्ति को अन्य सभी वाद में समान नहीं बनाएगा, अर्थात यदि किसी अस्थायी कर्मचारी को नियमित रूप से नियुक्त स्थायी कर्मचारी के समान वेतन दिया जाता है, तो इससे अस्थायी कर्मचारी को कार्यकाल की सुरक्षा उस प्रकार नहीं मिलेगी, जैसी नियमित रूप से नियुक्त स्थायी कर्मचारी को मिलती है। **शीतला प्रसाद शुक्ला बनाम उ.प्र. राज्य** AIR 1986 SC 1859 मामले में शीर्ष न्यायालय की टिप्पणी का उल्लेख करने के पश्चात, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि अलग-अलग धाराओं से संबंधित कुछ मतभेद रखने वाले व्यक्तियों को सभी मामलों में विशेष रूप से वरिष्ठता आदि में समान नहीं रखा जा सकता है क्योंकि यह असमानों को समान मानने के समान होगा, इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय पारित किया। इस न्यायालय ने पाया कि *सुभाष चंद्र मिश्रा वाद* में निर्णय वर्तमान रिट याचिकाकर्ताओं पर पूरी तरह से लागू होता है, जहाँ तक उन्हें नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के साथ वेतन समानता देने की तिथि से पेंशन लाभ प्रदान करने के उनके तर्क का प्रश्न है।

46. इस न्यायालय ने यह भी पाया कि केवल वेतनमान के वाद में समानता प्रदान करने से अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटर की तरह अन्य लाभ नहीं मिलते हैं। जैसा कि पूर्वोक्त ही चर्चा की जा चुकी है कि इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की नियुक्तियाँ सेवा नियमावली के अनुसार नहीं अपितु एक कार्यकारी आदेश के अंतर्गत की गई

अनुवादित

थीं एवं इसका उद्देश्य एक अस्थायी व्यवस्था थी। समय-समय पर जारी किए गए ज्ञापनों में यह भी स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों " के पक्ष में पेंशन एवं समान लाभ प्रोद्भूत नहीं होंगे। वे मुख्य रूप से विभिन्न उद्देश्यों, तंत्र एवं सेवा की शर्तों से जुड़े हुए थे। याचिकाकर्ताओं जैसे व्यक्तियों को सभी मामलों में नियमित रूप से नियुक्त ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान मानने का कोई भी प्रयास असमान लोगों के साथ समान व्यवहार करने जैसा होगा तथा भेदभावपूर्ण होगा। इसके अतिरिक्त यहाँ तक कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी *सुरेश चंद वाद* में पुनर्विलोकन याचिका में स्पष्ट किया कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया मुद्दा मात्र वेतन समानता से संबंधित था एवं विनियमितीकरण आदि से संबंधित नहीं था। अतः यह तर्क कि इन याचिकाकर्ताओं की सेवा की गणना उसी दिनाँक से की जानी चाहिये जिस दिनाँक से उन्हें वेतन-समानता का लाभ दिया गया था अर्थात दिनाँक 18.05.1994 से, शीर्ष न्यायालय द्वारा दिये गए स्पष्टीकरण की परिधि से ही बाहर नहीं होगा अपितु विधि के अनुरुप भी नहीं होगा। अतः रिट याचिकाकर्ताओं का यह तर्क है कि सेवा की गणना उस तिथि से की जानी चाहिए जब उन्हें नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के साथ वेतन-समानता प्रदान की गई थी जो स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यह रुचिकर है कि *सुरेश चंद वाद* में भी याचिकाकर्ता अपनी नियुक्ति की प्रारंभिक तिथि से नियमित नियुक्ति अथवा सेवाओं के विनियमितीकरण का दावा कर सकते थे परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया, न ही ऐसी कोई राहत दी गई जैसा कि शीर्ष न्यायालय ने स्पष्ट किया था तथा इस प्रकार नियुक्ति की प्रारंभिक तिथि से वेतन समानता भी प्रदान नहीं की गई है अपितु केवल इस न्यायालय द्वारा *सुरेश चंद वाद* में निर्णय पारित करने की तिथि से ही प्रदान की गई है। अतः इस न्यायालय का मानना है कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के साथ वेतन समानता देने की तिथि से पेंशन का लाभ नहीं दिया जा सकता है एवं इस प्रकार इसे ***खारिज किया जाता है।***

<u>अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों का विनियमितीकरण:</u>

47. यह न्यायालय इस पक्ष पर विचार करेगी कि क्या इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की सेवा की गणना दिनांक 17.12.1996 , अर्थात "उ.प्र. सिंचाई विभाग द्वारा अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों का ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पदों पर विनियमितीकरण नियमावली, 1996" के प्रवर्तन की तिथि से की जा सकती है। यह ध्यातव्य है कि उक्त नियम निर्धारित किए गए थे एवं उन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों पर लागू किए गए थे जो दिनांक 01.10.1986 से पूर्व नियुक्त किए गए थे तथा उक्त नियमावली की प्रवर्तन की तिथि तक उक्त क्षमता में कार्य करना जारी रखा था। अंतिम तिथि वर्ष 2008 में संशोधित की गई तथा उपरोक्त उल्लिखित अंतिम तिथि को 13.06.1998 कर दिया गया। रिट याचिकाकर्ताओं का वाद यह है कि मध्यवर्ती अवधि में राज्य ने दिनाँकित 03.03.1998 को शासनादेश जारी किया जिसमें " अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों " को नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान लाभ के भुगतान तथा इस न्यायालय के आदेश के साथ सुरेश चंद्र तिवारी वाद में पारित शीर्ष न्यायालय के निर्णय के अनुपालन पर जोर दिया गया। उक्त शासनादेश में राज्य ने वार्षिक वेतन वृद्धि, ग्राम गृह भत्ता, बोनस और अन्य सेवा लाभों का

भुगतान करने का भी प्रस्ताव किया। यद्यपि राज्य ने अपने दूसरे शासनादेश दिनाँकित 28.05.2003 के माध्यम से "अन्य सेवा लाभ" वाक्यांश को हटा दिया, अतः यह तर्क दिया गया कि, यद्यपि उन्होंने राज्य के उक्त संशोधन शासनादेश को चुनौती नहीं दी क्योंकि यह उनके संज्ञान में नहीं आया था, परंतु राज्य उन्हें सभी सेवा लाभ देने हेतु बाध्य है जैसा कि दिनाँक 03.03.1998 के शासनादेश में उनके द्वारा विचार किया गया था अथवा किसी भी हाल में ये लाभ उन्हें 17.12.1996 अर्थात उस तिथि से प्रदान किया जाना चाहिए जब "उ०प्र० सिंचाई विभाग" ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पद पर अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों का विनियमितीकरण नियमावली, 1996", उक्त प्रख्यापन के अनुसरण में अस्तित्व में आया। यद्यपि अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों का पद समाप्त कर दिया गया था, तथापि याचिकाकर्ताओं ने उक्त प्रवर्तन के बाद भी कार्य करना जारी रखा, अतः यह प्रस्तुत किया गया है कि 1996 के नियमावली की प्रवर्तन की उक्त तिथि से सेवाओं की गणना की जानी चाहिए।

48. प्रथम दृष्टया रिट याचिकाकर्ताओं के तर्क को यह न्यायालय अत्यधिक आकर्षक पाता है। यद्यपि सतर्कतापूर्वक देखने पर ज्ञात होगा कि सेवा लाभ के विस्तार से संबंधित संपूर्ण शासनादेश, वेतन समानता से संबंधित बिंदु का निस्तारण करता है तथा इस न्यायालय के साथ शीर्ष न्यायालय द्वारा सुरेश चंद्र तिवारी वाद में पारित निर्णय से संबंधित है, जो समान कार्य हेतु समान वेतन के सिद्धांत पर आधारित था। माननीय शीर्ष न्यायालय ने स्वयं पुनर्विलोकन आदेश में स्पष्ट किया कि उक्त निर्णय केवल वेतन समानता से संबंधित है। राज्य द्वारा जारी शासनादेश दिनाँकित 03.03.1998 वेतन समानता एवं दिए जाने वाले भत्तों से संबंधित था। उक्त शासनादेश में उल्लिखित वाक्यांश, अन्य सेवा लाभ, की परिधि को पेंशन तथा इसी प्रकार के अन्य लाभों तक नहीं बढ़ाया जा सकता है क्योंकि ये लाभ नियमों में पाए जाते हैं न कि शासनादेश में। किसी भी स्थिति में राज्य ने उक्त शासनादेश द्वारा उत्पन्न भ्रम को समझते हुए दिनांक 28.05.2003 को उक्त वाक्यांश को पहले ही संशोधित कर/ हटा दिया है। अतः जहाँ तक पेंशन जैसे सेवा लाभों के अनुतोष का प्रश्न है, रिट याचिकाकर्ताओं के उक्त तर्क उनके वाद हेतु सहायक नहीं है, विशेषकर जब इस न्यायालय का मत है कि इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की नियुक्ति अनियमित थी तथा 1953 की नियमावली के अनुसार नहीं थी। रिट याचिकाकर्ताओं के तर्क का आगामी चरण यह है कि उनकी सेवाओं की गणना "उ०प्र० सिंचाई विभाग ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पद पर अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों का विनियमितीकरण नियमावली 1996" की प्रख्यापन की तिथि से की जा सकती है। इस न्यायालय ने पाया कि इसमें कोई संदेह नहीं कि शासनादेश दिनाँकित 17.12.1996 द्वारा 1996 के उक्त विनियमितीकरण नियमावली के अंतर्गत पात्र व्यक्तियों की सेवाओं को नियमित करने के निर्देश सहित अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर के संवर्ग को समाप्त कर दिया गया था, हालांकि 1996 के उक्त नियमावली का नियम 7 बहुत महत्वपूर्ण है, जिसमें अन्य बातों के साथ कहा गया है:

अनुवादित

"7. अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर के पद पर नियुक्त व्यक्ति, जो उपयुक्त नहीं पाया जाता है अथवा जिसका वाद इन नियमावली के नियम 4 के उप नियम (1) के अंतर्गत नहीं आता है, की सेवाएं तत्काल समाप्त कर दी जाएंगी एवं समाप्ति के समय वह एक माह के वेतन प्रतिकर का हकदार होगा जो सेवा के प्रत्येक पूर्ण वर्ष अथवा उसके छह माह से अधिक के किसी भी भाग हेतु पंद्रह दिनों के औसत वेतन के समान होगा।

राज्य ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ताओं ने स्वयं 277 रिट याचिकाओं के समूह में पारित दिनांकित 01.08.2000 के एक निर्णय एवं आदेश को संलग्न किया है, जिसमें यह पूर्णतः स्पष्ट है कि दिसंबर 1996 में 1996 की विनियमितीकरण नियमावली के प्रवर्तन के पश्चात अंतिम तिथि से व्यथित होकर अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों द्वारा यह 277 रिट याचिकाएं प्रस्तुत की गई थीं जैसा कि उक्त नियमावली दिनांक 01.10.1986 में अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की सेवाओं को नियमित करने हेतु प्रावधानित है तथा इन रिट याचिकाओं में अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पक्ष में एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था जिसके आधार पर वे सेवा में निरंतर बने हुए थे; अतः राज्य का तर्क है कि रिट याचिकाकर्ताओं का यह आधार पूर्णतः गलत है क्योंकि वे अपनी गलती का लाभ उठाने की कोशिश कर रहे हैं। अतः याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क कि यदि वे 1996 के उक्त नियमों के अंतर्गत विनियमितीकरण हेतु पात्र नहीं थे तो उनकी अंशकालिक सेवाएं 1996 के उक्त नियमों के नियमावली 7 के प्रावधान के अनुसार वर्ष 1996 में ही समाप्त कर दी जानी चाहिए थीं, तथा उसके अंतर्गत ऐसा नहीं किए जाने पर वे उक्त तिथि से विनियमितीकरण के हकदार हैं, असफल हो जाता है क्योंकि यह "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" उपरोक्त रिट याचिकाओं में इस न्यायालय के अंतरिम आदेश के आधार पर सेवा में निरंतर बने हुए थे। इस न्यायालय की राय में, मात्र यह कारण कि अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को इस न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेश के अंतर्गत कार्य करने की अनुमति दी गई थी, उन्हें उक्त तिथि से अन्य लाभों हेतु हकदार नहीं बनाता है, क्योंकि जिन्होंने वाद दायर किया है वे अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर हैं। अतः वाद की निरंतरता याचिकाकर्ताओं के पेंशन लाभ का निर्धारण करते समय उन्हें बचाव नहीं प्रदान कर सकती। रिट याचिकाकर्ताओं की ओर से एक अन्य साम्पार्श्विक तर्क यह है कि उन्हें वर्ष 1999 में सिंचाई विभाग से ग्राम पंचायत विभाग में स्थानांतरित कर दिया गया था जहाँ वे अन्य नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों सहित बहुउद्देशीय कार्यकर्ता के रूप में कार्य कर रहे थे, तथा वे वर्ष 2005 में पुनः सिंचाई विभाग में वापस आ गए। चूंकि स्थानांतरण एक स्थायी पुनर्नियुक्ति की घटना है अतः उन्हें वर्ष 1999 से स्थायी रोजगार पर माना जा सकता है। इस संबंध में इस न्यायालय ने पाया कि शासनादेश दिनाँकित 01.07.1999 के माध्यम से आठ विभागों के कर्मचारियों को उनके संबंधित विभागों के कार्य करने हेतु बहुउद्देशीय कार्यकर्ता के नाम सहित ग्राम पंचायत के नियंत्रण में स्थानांतरित कर दिया गया था। इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को भी उनके संबंधित नलकूपों का कार्य करने हेतु सिंचाई विभाग से ग्राम पंचायत विभाग में

स्थानांतरित कर दिया गया था, परंतु उनका धारणाधिकार सदैव मूल विभाग के समक्ष था। तत्पश्चात दिनाँकित 19.07.2005 के शासनादेश द्वारा पुनः इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की समान क्षमता में सिंचाई विभाग के नियंत्रण में वापस ले लिया गया। प्रश्न यह था कि क्या यह सिंचाई विभाग से ग्राम पंचायत विभाग तथा ग्राम पंचायत विभाग से सिंचाई विभाग में कर्मचारियों का स्थानांतरण है अथवा यह सिंचाई विभाग से ग्राम पंचायत विभाग में प्रतिनियुक्ति है, एवं क्या वर्ष 2005 में सिंचाई विभाग के नियंत्रण में वापस लेने के पश्चात इन व्यक्तियों की स्थिति अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की थी अथवा स्थायी कर्मचारी की। यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि मुकदमों की श्रृंखला के पश्चात, वाद के इस पक्ष को **उ०प्र० पंचायत अधिकारी संघ एवं अन्य बनाम दया राम सरोज एवं अन्य**, (2007) 2 SCC 138, वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मूल सूत्र माना गया था जिसमें यह माना गया कि यह स्थानांतरण नहीं था बल्कि प्रतिनियुक्ति मात्र था तथा ये अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर स्थायी कर्मचारी नहीं थे। इस निर्णय में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा शासनादेश दिनाँकित 19.07.2005 (जिसके द्वारा इन व्यक्तियों को ग्राम पंचायत विभाग से अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर की समान क्षमता में सिंचाई विभाग के नियंत्रण में वापस ले लिया गया था) को सभी परिणामी आदेशों सहित बहाल कर दिया गया था, अर्थात् शासनादेश दिनाँकित 19.07.2005 द्वारा ग्राम पंचायत विभाग से सिंचाई विभाग में वापस लौटने के पश्चात इन व्यक्तियों की स्थिति अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर के रूप में बनी रही। उ०प्र० पंचायत अधिकारी संघ एवं अन्य बनाम दया राम सरोज एवं अन्य के वाद में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित दिनाँकित 11.12.2006 के उपर्युक्त निर्णय तथा आदेश का प्रासंगिक भाग/ प्रस्तर अधोवर्णित है:

> *"35. उच्च न्यायालय ने यह भी निर्देश दिया है कि अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को यथासंभव ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान सेवा शर्तों के अंतर्गत स्थायी कर्मचारियों के रूप में माना जाएगा। यह निदेश सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम उमा देवी (3) एवं अन्य (2006) 4 SCC 1 में संविधान पीठ के निर्णय के सिद्धांतों की सीमा में है। वास्तव में मात्र इसी आधार पर उच्च न्यायालय की खंडपीठ का निर्णय अपास्त किये जाने योग्य है।"*

49. किसी भी स्थिति में इस न्यायालय ने पाया कि "उ०प सिंचाई विभाग ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पदों पर अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों का विनियमितीकरण नियमावली, 1996" के प्राधिकार को भी कुछ अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों द्वारा **मुरारी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** (रिट ए संख्या 35425/1997) के वाद में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसमें इस न्यायालय ने दिनांकित 21.11.2014 के एक आदेश के माध्यम से चुनौती को खारिज करते हुए यह माना है कि रिट याचिकाकर्ता प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से पूर्वव्यापी प्रभाव से नियमितीकरण के अधिकारी नहीं थे। इस न्यायालय ने विशेष रूप से धारित किया:

> *"...उमा देवी [(2006) 4 SCC 1] के वाद में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान*

अनुवादित

पीठ के निर्णय के मद्देनजर, विनियमितीकरण का कोई निहित अधिकार नहीं है। प्रारंभिक नियुक्ति की प्रकृति इस संबंध में विचार किया जाने वाला प्रासंगिक कारक है। संविधान पीठ ने स्पष्ट रूप से माना है कि जिस व्यक्ति को अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया है, वह अपनी नियुक्ति की प्रकृति एवं विधि के बारे में पूर्ण रुप से जानता है तथा यह भी कि वह नियुक्ति पत्र में उल्लिखित अवधि अथवा उसमें उल्लिखित शर्तों के अनुसार समाप्त हो सकती है। विनियमितीकरण का कोई निहित अधिकार उसके पक्ष में उत्तरवर्ती चरण में भी मात्र लंबे वर्षों की सेवा के कारण प्रोद्भूत नहीं होता है। यह भी माना गया है कि विनियमितीकरण भर्ती की एक रीति नहीं है और न ही हो सकती है।

भले ही कितना भी प्रबल कारण क्यों न हो, प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से पूर्वव्यापी प्रभाव से विनियमितीकरण का अधिकार नहीं हो सकता है।

नियमित कार्य करने हेतु अस्थायी, तदर्थ, संविदात्मक नियुक्तियाँ भी की जा सकती हैं परंतु इससे ऐसी नियुक्तियाँ नियमित कर्मचारियों की स्थिति की अधिकारी नहीं हो जाती हैं। इस संदर्भ में उमादेवी (उपरोक्त) के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के प्रमाणिक निर्णय सहित ऑफिशियल लिक्विडेटर बनाम दयानंद (2010 Vol 10 SCC 1) के वाद का भी संदर्भ दिया जा सकता है।"

50. यह न्यायालय पाता है कि इस न्यायालय के निर्देशों के अनुसरण में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की सेवाओं के विनियमितीकरण के नियम बनाए गए थे तथा इन्हें शासनादेश दिनाँकित 17.12.96 द्वारा प्रसारित किया गया था जिसमें स्पष्ट उल्लेख है कि ऐसे विनियमितीकरण हेतु अतिरिक्त पद सृजित/स्वीकृत किये जा रहे हैं। नियमावली 3 (डी) के अनुसार, 'अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों' में वह व्यक्ति शामिल है जिसे शासनादेश दिनाँकित 20.02.92 द्वारा नलकूप सहायक के रूप में नामित अथवा नियुक्त किया गया था। नियम 4 (I) के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो दिनांक 1.10.86 से पूर्व अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पद पर नियुक्त किया गया था तथा इन नियमावलियों के प्रारंभ होने की तिथि पर सेवा में था, ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पद पर नियमित नियुक्ति हेतु निर्धारित अपेक्षित योग्यता रखता था, ऐसे अंशकालिक नियुक्ति के समय सेवा नियमावली के अनुसार ऐसे पद पर किसी भी नियमित नियुक्ति से पूर्व ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पद पर नियमित नियुक्ति पर विचार किया जाएगा। नियमावली 6 (I) में प्रावधान है कि इस नियमावली के अंतर्गत नियुक्त व्यक्ति, इस नियमावली के अनुसार चयन के पश्चात नियुक्ति के आदेश की तिथि से ही वरिष्ठता का हकदार होगा अर्थात उसके विनियमितीकरण की तिथि से एवं इन नियमावली के अंतर्गत ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति से पूर्व सेवा नियमावली के अनुसार सभी

अनुवादित

स्थितियों में ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पद पर नियुक्त व्यक्तियों के अधीन रखा जाएगा।

51. यह उल्लेख करना उचित है कि विनियमितीकरण के प्रावधान करते समय भी नियम निर्धारण प्राधिकारी ने हमेशा इस बात का ध्यान रखा है कि वरिष्ठता के प्रयोजन हेतु गणना बिंदु विनियमितीकरण के आदेश की तिथि होगी एवं पूर्व की सेवा इसके लिए अर्ह नहीं होगी। यह अवधारणा डायरेक्ट रिक्रूट्स डायरेक्ट रिक्रूट्स क्लास-II इंजीनियरिंग ऑफिसर्स एसोसिएशन बनाम महाराष्ट्र राज्य AIR 1990 SC 1607 वाद में शीर्ष अदालत के संविधान पीठ के निर्णय के अनुरूप है। अतः इस न्यायालय की राय में रिट याचिकाकर्ता एक अलग संवर्ग का गठन करते हैं फिर नियमित रूप से ट्यूबवेल ऑपरेटरों की नियुक्त की जाती है जिन पर पेंशन, ग्रेच्युटी, अवकाश नकदीकरण आदि के संबंध में लाभ देने वाले वैधानिक प्रावधान नियुक्ति की प्रारंभिक तिथि से लागू नहीं होते हैं अपितु विनियमितीकरण नीति के अनुसार नियमित सेवाओं में शामिल होने की तिथि से लागू होते हैं। यह ध्यान रखना हितकर होगा कि डायरेक्ट रिक्रूट्स वाद में प्रतिपादित सिद्धांत का पालन केशव चंद्र जोशी बनाम भारत संघ 1992 Supp (1) SCC 272, राशि मणि मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2021 SCC OnLine SCC 509 एवं मलूक सिंह बनाम पंजाब राज्य, में शीर्ष न्यायालय द्वारा पालन किया गया था जिसमें प्रत्येक अवसर पर शीर्ष न्यायालय ने पाया कि तदर्थ कर्मचारियों द्वारा उनके विनियमितीकरण से पूर्व प्रदान की गई सेवाओं को वरिष्ठता के उद्देश्य से नहीं गिना जा सकता है। वस्तुतः राशि मणि मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के वाद में शीर्ष न्यायालय ने उत्तर प्रदेश तदर्थ नियुक्ति नियमावली की व्याख्या करते हुए कहा था कि विनियमितीकरण से पूर्व तदर्थ कर्मचारियों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को वरिष्ठता के उद्देश्य से नहीं गिना जा सकता है तथा विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि लागू नियमों के अंतर्गत, "मौलिक नियुक्ति" में तदर्थ नियुक्ति शामिल नहीं है तथा इस प्रकार वरिष्ठता जिसे "मौलिक नियुक्ति" से गिना जाना है उसमें तदर्थ सेवा शामिल नहीं होगी। शीर्ष न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि तदर्थ सेवा के आधार पर वरिष्ठता का लाभ प्रदान करने हेतु डायरेक्ट रिक्रूट्स (उपरोक्त) वाद में दिए गए निर्णय पर विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें स्पष्ट रूप से कथित है कि सामयिक व्यवस्था के रूप में की गई तदर्थ नियुक्तियां वरिष्ठता निर्धारण हेतु तदर्थ सेवा को पात्र नहीं बनाती हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में निम्नवत टिप्पणियाँ की :

> *"36. उपरोक्त चर्चा का सार यह होगा कि नियमावली, 1979, जिसका समय-समय पर विस्तार किया गया, का निष्पक्ष रूप से अध्ययन करने पर वर्ष 1985 में प्रारंभिक नियुक्ति आदेश तथा वर्ष 1989 में तदर्थ नियुक्तियों के विनियमितीकरण के उत्तरवर्ती आदेश पर एवं प्रासंगिक सेवा नियमावली अर्थात् सेवा नियमावली, 1993 एवं वरिष्ठता नियमावली, 1991 पर हमारा निष्कर्ष यह होगा कि नियमावली,1979 के अनुसार उनके विनियमितीकरण से पूर्व तदर्थ नियुक्तियों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को सीधी भर्ती वाले उन लोगों, जिन्हें वर्ष1989 से पूर्व नियुक्त किया गया था, के समकक्ष वरिष्ठता के उद्देश्य से नहीं आंका जाएगा; तथा वे*

वर्ष 1985 में अपनी प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से वरिष्ठता के हकदार नहीं हैं। परिणामी प्रभाव यह होगा कि वर्ष 2016 में वरिष्ठता के बाद के पुनर्निर्धारण को बरकरार नहीं रखा जा सकता है, जिसके अनुसार वर्ष 1989 से पूर्व अर्थात वर्ष 1985 में उनकी प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से तदर्थ नियुक्तियों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं पर विचार किया गया था। इसे बरकरार नहीं रखा जा सकता है एवं यह अभिखंडित तथा अपास्त किए जाने योग्य है, एवं वर्ष 1989 में उनके विनियमितीकरण की तिथि से तदर्थ नियुक्तिधारियों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की गणना करते हुए वर्ष 2001 की वरिष्ठता सूची को बहाल किया जाना चाहिए।"

52. यह न्यायालय इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हो सकती कि पूर्वव्यापी प्रभाव से कोई भी नियुक्ति, जैसा कि वर्तमान मामलों में आग्रह किया जा रहा है, सामान्यतः स्वीकार्य नहीं है। इसका एक कारण यह है कि इससे वरिष्ठता, पदोन्नति आदि के मामले में उन अन्य लोगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, जिन्हें इस अवधि के दौरान नियुक्त किया गया है। सेवा के विनियमितीकरण के वाद में पूर्वव्यापी रूप से उन अन्य लोगों के अधिकारों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जो पूर्व से सेवा नियमावली के अनुसार नियमित संवर्ग में नियमित रूप से नियुक्त किए गए हैं एवं बेहतर स्थिति में हैं। इसी उद्देश्य से 1996 के विनियमितीकरण नियमावली के नियम 6 में यह शर्त है कि इन नियमावली के अंतर्गत नियमित होने वालों को उनसे पहले सेवा नियमावली के अनुसार नियुक्त लोगों से नीचे रखा जाएगा। नियमावली दो अलग-अलग वर्गों के कर्मचारियों के मध्य वैध अंतर का निर्माण करती है- एक जो नियमित है तथा दूसरा जो नियमित नहीं है। भारत के महा निबंधक एवं एक अन्य बनाम वी. थिप्पा सेट्टी एवं अन्य (1998 Vol. 8 SCC 690) के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधरित किया कि विनियमितीकरण भावी होना चाहिए न कि पूर्वव्यापी ताकि जो लोग पूर्व से ही सेवा में हैं उनकी वरिष्ठता प्रभावित न हो। इस निर्णय का पालन भारत संघ एवं अन्य बनाम शीला रानी (2007) 15 SCC 230) एवं हरियाणा राज्य बनाम जसमेर सिंह (1996) 11 SCC 77) के वाद में किया गया है। अतः इस न्यायालय की राय में उमा देवी वाद में शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के मद्देनजर, रिट याचिकाकर्ताओं को विनियमितीकरण का अधिकार नहीं है। परिणामस्वरूप रिट याचिकाकर्ताओं को 'उत्तर प्रदेश सिंचाई विभाग द्वारा ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पदों पर अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों का विनियमितीकरण नियमावली, 1996' के प्रख्यापन के कारण नियमितीकरण का कोई विहित अधिकार नहीं है।,जिसकी अंतिम तिथि प्रारंभ में 01.10.1986 विहित थी तथा वर्ष 2008 में जिसे संशोधित कर 13.06.1998 कर दिया गया था।

53. यह इस न्यायालय को उत्तर देने हेतु अंतिम एवं प्रासंगिक प्रश्न पर लाता है कि किस तिथि से रिट याचिकाकर्ताओं की सेवा को पेंशन तथा अन्य लाभों हेतु पात्र बनाने के लिए गिना जा सकता है। इस न्यायालय ने पाया कि रिट याचिकाओं के एक समूह में, प्रमुख मामला रिट-

अनुवादित

ए संख्या 3483/2003 (ट्यूबवेल ऑपरेटरों वेलफेयर एसोसिएशन बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य) में इस न्यायालय की एकल पीठ ने राज्य को सुरेश चंद्र तिवारी बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य (रिट याचिका संख्या 3558/1992) एवं सिंचाई मजदूर संघ बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य: 1996 (1) UPLBEC 9, के निर्णय के संदर्भ में याचिकाकर्ता संघ के सदस्यों के दावे पर विचार करने का निदेश जारी किया था। यद्यपि राज्य प्राधिकारियों ने विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 227/2014 तथा 226/2014 दाखिल की जिसमें इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 31.03.2014 के निर्णय एवं आदेश के अंतर्गत विशेष निम्नानुसार अपील का निस्तारण किया:

"अतः विशेष अपीलों को इस स्पष्टीकरण सहित निस्तारित किया जाता है कि सभी रिट याचिकाकर्ता, जिनके लाभ हेतु रिट याचिका प्रस्तुत की गई है, उनकी सेवाओं को उनके विनियमित होने की तिथि से, न कि उससे पूर्व की किसी तिथि से, प्रभावी मानते हुए ,जीपीएफ, पदोन्नति तथा चयन ग्रेड एवं पेंशन सहित सेवा के लाभ के अधिकारी होंगे।

54. उपरोक्त निर्णय तथा आदेश दिनाँक 31.3.2014 को पुनर्विलोकन प्रार्थनापत्र संख्या 406577/2014 में चुनौती दी गई है, जिसे निर्णय एवं आदेश दिनाँक 15.5.2015 द्वारा खारिज कर दिया गया था। अतः निर्णय एवं आदेश दिनाँक 31.3.2014 को अंतिम है क्योंकि इस न्यायालय के नोटिस में कोई उत्तरवर्ती प्रगति प्रस्तुत नहीं की गई है। इसके अतिरिक्त विशेष अपील संख्या 240/2009 (उ०प्र० राज्य बनाम दुख हरण सिंह) में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस प्रश्न की जांच की कि क्या ऐसे "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" की विनियमितीकरण से पूर्व की सेवाओं को पेंशन भुगतान हेतु अर्हक सेवा में गिना जाएगा या नहीं। इस मुद्दे का व्यापक परीक्षण करने के पश्चात यह न्यायालय निम्नवत धारित करती है : -

" वर्तमान वाद में मैंने पहले ही देखा है कि आदेश दिनाँकित 25.9.1997 के द्वारा विनियमितीकरण से पूर्व रिट याचिकाकर्ता द्वारा प्रदान की गई सेवा, पेंशन अनुदान हेतु अर्ह नहीं है क्योंकि विनियम 361 तथा 370 के अनुसार, इससे पूर्व प्रदान की गई सेवाएं न तो मौलिक है, न स्थायी हैं और न ही अस्थायी। मेरी राय में दिनांक 25.9.1997 को उनके विनियमितीकरण के पश्चात रिट याचिका द्वारा प्रदान की गई सेवा केवल पेंशन हेतु अर्ह है तथा 10 साल की निरंतर सेवा प्रदान करने से पूर्व सेवानिवृत्त होने के कारण, वह पेंशन पाने के हकदार नहीं हैं।

उपरोक्त के दृष्टिगत, विद्वान न्यायाधीश का यह निष्कर्ष नहीं माना जा सकता कि याचिकाकर्ता ने 32 वर्ष की वर्ष की सेवा की है तथा वह पेंशन का अधिकारी है।

परिणामस्वरूप, अपील सफल होती है तथा स्वीकार की जाती है। रिट याचिका

अनुवादित

संख्या 1378 (SS)/2008 में विद्वान न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनाँकित 22.8.2008 को अपास्त किया जाता है, परंतु वाद व्यय के बारे में कोई आदेश दिए बिना।"

55. उ०प्र० राज्य बनाम दुख हरण सिंह (उपरोक्त) में निर्णय को SLP (C) No.27713/2009 में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसे निम्नलिखित टिप्पणी सहित आदेश दिनाँक 25.09.2013 द्वारा खारिज कर दिया गया: -

"इस याचिका के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुब्रमण्यम प्रसाद तथा प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रत्नाकर दाश को सुना।

(2) पेंशन लाभ हेतु याचिकाकर्ता के दावे को उच्च न्यायालय ने प्रश्नगत आदेश दिनाँकित 21.7.2009 द्वारा खारिज कर दिया था एवं यही कारण है कि वर्तमान विशेष अनुमति याचिका प्रस्तुत की गई है।

(3) वर्ष 1996 में निर्धारित किये गए विनियमितीकरण नियमावली के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता की सेवाएं दिनांक 28 सितंबर,1997 को नियमित हो गईं। याचिकाकर्ता 30 नवंबर, 2005 को सेवानिवृत्त हो गया तथा उसने पेंशन लाभ सहित सेवानिवृत्ति लाभों की मांग की। चूँकि संबंधित नियमावली के अनुसार पेंशन हेतु न्यूनतम अर्हक सेवा 10 वर्ष है, अतः याचिकाकर्ता ने उस न्यूनतम आवश्यकता को पूरा नहीं किया था। परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को पेंशन हेतु पात्र नहीं माना जा सकता है, यद्यपि वह लागू नियमों के अधीन ग्रेच्युटी तथा अन्य लाभों का हकदार होगा। उपरोक्त के मद्देनजर, हमें उच्च न्यायालय के प्रश्नगत आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता।

(4) तदनुसार विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है।"

56. इसके अतिरिक्त याचिकाओं के एक समूह, नमो नारायण राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (रिट संख्या 1326/2017) के प्रमुख वाद में इस न्यायालय की एकल पीठ ने आदेश दिनाँकित 08/09/2017के अंतर्गत दिनांक 01.04.2005 के पश्चात नियमित किए गए अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों पर जीपीएफ की प्रयोज्यता के मामले का उल्लेख करते हुए बहुत ही संक्षिप्त रीति से उन याचिकाओं में इस मुद्दे को निम्नवत धारित किया:

"4. शीर्ष न्यायालय द्वारा इस मुद्दे पर आधिकारिक घोषणा के मद्देनजर, अब यह पूर्णतः निर्धारित हो गया है कि विनियमितीकरण से पूर्व अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन के भुगतान हेतु नहीं गिना जाएगा। चूँकि याचिकाकर्ताओं का नियमितीकरण दिनांक 1.4.2005 के पश्चात किया है, अतः उन्हें नई पेंशन योजना के अंतर्गत सम्मलित किया जाएगा। शासनादेश

अधिवक्ता

दिनाँक 24.5.2017 सहित परिणामी आदेश दिनाँक 27.5.201,7 जहाँ तक प्रस्तर 2(1) में निहित निर्देश का प्रश्न हैं, दिनांक 1.4.2005 के पश्चात नियमित होने वालों के लिए नई पेंशन योजना के अंतर्गत कटौती की आवश्यकता है तथा इस प्रकार उन्हें नई पेंशन योजना के अंतर्गत अपेक्षित फॉर्म भरने की आवश्यकता की पुष्टि की जाती है। विधिक स्थिति को समझते हुए, याचिकाकर्ताओं ने भी रिट याचिकाओं की सुनवाई के दौरान उस संबंध में अपना दावा नहीं किया है। अतः यह स्पष्ट किया जाता है कि सभी याचिकाकर्ता जिन्हें दिनांक 1.4.2005 के पश्चात नियमित किया गया है, दिनांक 28.3.2005 को आरंभ की गई नई पेंशन योजना द्वारा शासित होंगें तथा इन याचिकाओं में उस सीमा तक की गई चुनौती तदनुसार विफल हो जाती है।

5. इन याचिकाओं में चुनौती मात्र शासनादेश के उस भाग तक ही सीमित है जिसके अंतर्गत दिनांक 1.4.2005 के पश्चात याचिकाकर्ताओं के वेतन से जीपीएफ की कटौती नहीं करने का निर्देश जारी किया गया है तथा रिट याचिकाएं मात्र उसी सीमा तक अनुतोष की मांग करती है।"

57. यद्यपि यह बताया गया है कि वृहद पीठ ने राज्य सरकार द्वारा दायर कुछ शपथपत्रों के आधार पर दिनाँक 12/11/2021 का निर्णय तथा दिनाँक 26/11/2021 का पुनर्विलोकन आदेश पारित किया है तथा उस अर्थ में रिट याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि उस वाद में पक्षकारगण के मध्य समझौते के आधार पर पारित निर्णय एक पूर्वनिर्णय (दृष्टान्त) नहीं हो सकता है एवं अन्य समान स्थिति वाले अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों पर बाध्यकारी नहीं हो सकता है, अतः वाद का तथ्य यह है कि वृहद पीठ द्वारा निपटाया निस्तारित बिंदु जीपीएफ से संबंधित था जो इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के वेतन से या तो त्रुटिपूर्ण रीति से काटा गया था अथवा काटा ही नहीं गया था। वृहद पीठ ने इस अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत करते हुए इन सभी श्रेणियों के लिए जीपीएफ को एक भिन्न वाद में धारित किया एवं निदेश दिया यद्यपि मुद्दे का सार यह था कि इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को उसी तिथि से पेंशन लाभ दिया गया था जब से उनको नियमित किया गया, तदनुसार नई पेंशन योजना का लाभ इन याचिकाकर्ताओं को दिया गया क्योंकि वे दिनांक 01.04.2005 के पश्चात विनियमित हुए थे।

58. अतः उपरोक्त आधिकारिक घोषणा से संकेत लेते हुए यह पूर्णतः निर्धारित हो चुका है कि "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" द्वारा उनके विनियमितीकरण से पूर्व प्रदान की गई सेवाओं

अनुवादित

को पेंशन के भुगतान हेतु नहीं गिना जाएगा तथा पेंशन लाभ उनके संबंधित विनियमितीकरण की तिथि से ही दिया जाएगा।

59. हालाँकि, रिट याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि उपरोक्त दुख हरण वाद में न तो पेंशन लाभ की गणना हेतु "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के रूप में पूर्व सेवाओं की गणना के मुद्दे पर विचार किया जा रहा था और न ही उक्त याचिका में ऐसा कोई मुद्दा उठाया गया था, अतः उनके अनुसार उक्त वाद में सर्वोच्च न्यायालय की पीठ द्वारा पारित निर्णय को अप्रत्यक्ष रूप से खारिज कर दिया गया था एवं प्रेम सिंह वाद में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा पारित निर्णय असंगत था। अतः वास्तव में इस न्यायालय ने पाया कि दुख हरण एक ऐसा वाद था जिसमें एक ऐसे अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर द्वारा पेंशन का सेवा लाभ मांगा गया था जिसे दिनांक 28.09.1997 को नियमित किया गया था। चूँकि उस वाद में याचिकाकर्ता दिनांक 30.11.2005 को सेवानिवृत्त हो गया था अर्थात नियमित पद पर उसे पेंशन लाभ हेतु पात्र बनाया जा सकने के लिये अनिवार्य 10 वर्ष की सेवा से पूर्व। उस वाद में याचिकाकर्ता को उक्त लाभ से वंचित कर दिया गया था। अतः दुख हरण वाद एक ऐसा वाद था जिसमें नियुक्ति की तिथि से सेवा लाभ की गणना कर पेंशन लाभ प्रदान करने की मांग की गई थी, जिसे इस न्यायालय सहित शीर्ष न्यायालय ने भी खारिज कर दिया था, जिसमें न्यायालयों ने टिप्पणी की थी कि 32 साल की सेवा में याचिकाकर्ता को पेंशन लाभ प्राप्त नहीं होगा।

<u>प्रेम सिंह वाद:</u>

60. अतः रिट याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार प्रेम सिंह वाद के निर्णय के पश्चात विधि में परिवर्तन होने के कारण वर्तमान मुद्दे का निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उक्त निर्णय के आलोक में किया जाना चाहिए। यद्यपि प्रेम सिंह वाद के तथ्यों के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन विवाद के संबंध में विचाराधीन तथ्य रिट याचिकाओं के वर्तमान समूह के तथ्यों से पूर्णतया भिन्न थे। इन तथ्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन तथ्य विनियमितीकरण से पूर्व एक कार्य प्रभारित अधिष्ठान के अंतर्गत प्रदान की गई सेवाओं के संबंध में "अर्हक सेवाओं" के निर्णय के विवाद के संबंध में था कि क्या यह सिविल सेवा विनियम के विनियम 370 पर विचार करते हुए पेंशन के उद्देश्य हेतु उत्तरदायी हो सकता है। उक्त निर्णय के प्रस्तर 3 में वाद के तथ्यों को भी उद्धृत किया गया है जिसमें सर्वाधिक प्रासंगिक मुद्दा यह था कि अपीलकर्ता अर्थात प्रेम सिंह की सेवाएं वर्ष 1965 में कार्य प्रभार अधिष्ठान में एक वेल्डर के रूप में थीं। उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया गया एवं इसके बाद अंततः चयन समिति ने नियमितीकरण की संस्तुति की तथा उनकी सेवाएं दिनांक 13/03/2002 को नियमित कर दी गईं। तत्पश्चात अपीलकर्ता दिनांक 31/01/2007 को सेवानिवृत्त हो गया। अपनी सेवानिवृत्ति के पश्चात अपीलकर्ता ने कार्य प्रभार अधिष्ठान में व्यतीत की गई अवधि को नियमावली, 1961 के अंतर्गत अर्हक सेवा के रूप में गणना हेतु उच्च न्यायालय में रिट याचिका प्रस्तुत की।

अनुवादित

61. इस न्यायालय ने पाया कि वर्तमान रिट याचिकाकर्ता अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर के रूप में कार्य कर रहे थे एवं इस प्रकार उन व्यक्तियों के साथ इनकी तुलना नहीं की जा सकती है जो कार्य प्रभारित अधिष्ठान में कार्य कर रहे हैं/थे क्योंकि दोनों स्पष्ट रूप से भिन्न तथा पृथक हैं जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी टिप्पणी की गई है। कार्य प्रभारित अधिष्ठान (01.01.2000 से पूर्व) के अंतर्गत नियोजन का प्रावधान वित्तीय हस्त पुस्तिका, खंड 6 भाग 1 के प्रस्तर 867, 678 एवं 669 के अंतर्गत प्रदान किया गया है तथा उक्त विशेष कार्य के व्यय पर आधारित/ प्रभारित किया गया था, जबकि याचिकाकर्ताओं (और इसी प्रकार के अन्य व्यक्तियों) का अंशकालिक नियोजन कार्यकारी आदेश दिनाँक 22.12.1981 के निबंधनों के अनुरूप था, एवं इसकी नियम एवं शर्तें सिंचाई विभाग के मुख्य अभियंता द्वारा निर्गत उत्तरवर्ती कार्यालय ज्ञापन दिनांकित 18.2.1982 द्वारा विहित की गई, जिसके द्वारा अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के ऐसे अंशकालिक पदों की नियुक्ति और सेवाएं आच्छादित थीं। अतः कार्य प्रभारित अधिष्ठान की सेवा नियमावली में पाई जा सकती है जबकि अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की सेवा एक कार्यकारी आदेश द्वारा अस्तित्व में आई। उपरोक्त के दृष्टिगत अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की सेवा शर्तों को उन व्यक्तियों के समान आंका नहीं जा सकता है जो कार्य प्रभारित अधिष्ठान में कार्य कर रहे हैं/थे, क्योंकि दोनों पूर्णतः पृथक एंव भिन्न हैं।

नई पेंशन योजना

62. इसके अतिरिक्त, अंतर का एक और बिंदु है, दुख हरण सिंह मामले और प्रेम सिंह दोनों मामलों में उन सभी व्यक्तियों हेतु निर्णय लिया गया था जिन्हें 01.04.2005 से पूर्व नियमित किया गया था, यद्यपि अधिसूचना दिनांक 28.3.2005 के माध्यम से भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए माननीय राज्यपाल द्वारा उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961, जिसे "उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ (संशोधन) नियमावली, 2005" के रूप में जाना जाता है, में संशोधन किया गया है। उक्त नियमावली दिनांक 01.04.2005 से लागू कर दी गई है और उसमें यह स्पष्ट किया गया है कि नियमावली, राज्य पेंशनयोग्य अधिष्ठान के मामलों के संबंध में 1 अप्रैल, 2005 को या उसके पश्चात सेवाओं में प्रवेश करने वाले अस्थायी या स्थायी कर्मचारियों पर लागू नहीं होगी। इतना ही नहीं, सामान्य भविष्य निधि (उत्तर प्रदेश) (संशोधन) नियमावली 2005 के माध्यम से, भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, माननीय राज्यपाल द्वारा सामान्य भविष्य निधि (उत्तर प्रदेश) नियमावली 1985 में भी संशोधन किया गया है और ये नियम भी दिनांक 1.1.2005 से लागू कर दिए गए हैं। नियम-4 में अर्हता की शर्तों के साथ एक परंतुक भी जोड़ा गया है जिसमें उल्लेख किया गया है कि 1 अप्रैल, 2005 को या उसके पश्चात भर्ती होने वाला कोई भी सरकारी कर्मचारी सेवा में सम्मिलित होने की तिथि से निधि में योगदान नहीं देगा।

63. यह ध्यान रखना आवश्यक है कि याचिकाकर्ता नई पेंशन योजना को मनमाना या अनुचित नहीं मानते हैं। पेंशन सहित सेवानिवृत्ति पश्चात लाभों की पात्रता, सेवा नियमों और शर्तों से संबंधित मामला है। यह नियोक्ता और कर्मचारी के मध्य का मामला है। नियंत्रक विधियों के अधीन, एक नियोक्ता उन परिलब्धियों को तय

करने का हकदार है जिस पर वह नियोजन प्रदान करता है। कर्मचारी प्रस्तावित शर्तों पर नियोजन स्वीकार कर सकता है या अपनी नियुक्ति से पूर्व बेहतर शर्तों हेतु प्रयास कर सकता है। किसी भी दृष्टिकोण से, एक बार जब नियोक्ता और कर्मचारी शर्तों पर सहमत हो जाते हैं, तो उसके पश्चात उनमें से किसी हेतु भी इस पर प्रश्न उठाना संभव नहीं होता है। स्पष्ट है, यह इस अपवाद के अधीन है कि नियम और शर्तें किसी संविधि या प्रयोज्य विधि के अनुरूप नहीं हैं।

64. जैसा कि उपरिवर्णित है, वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता नई पेंशन योजना की विधिमान्यकरणता पर प्रश्न नहीं उठाते ह। उनका मामला यह नहीं है कि उक्त योजना किसी संविधि या प्रयोज्य विधि के विरुद्ध है। वे अनिवार्य रूप से, पुरानी पेंशन योजना के अधीन होना चाहते हैं क्योंकि इसे अधिक लाभकारी माना जाता है। एक बार जब यह स्वीकृत कर लिया जाता है कि नई पेंशन योजना अमान्य नहीं है और रिट याचिकाकर्ताओं ने बिना किसी आपत्ति के अपने संबंधित नियमितीकरण को स्वीकार कर लिया है, तो वे विधिमान्यकरण के 15 वर्षों पश्चात के चरण में इस पर प्रश्न नहीं उठा सकते, सिवाय इस आधार पर कि यह विधि के किसी प्रावधान के विरुद्ध है। यह उल्लेख करना प्रासंगिक हो सकता है कि पेंशन का अधिकार भारत के संविधान के भाग III के किसी भी अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत मौलिक अधिकार नहीं है। यह महज सेवा की शर्त है। सरकार या किसी सांविधिक निगम का कोई कर्मचारी पेंशन का हकदार हैं या नहीं, यह उसके नियोजन के नियमों और शर्तों से निर्धारित होता है। ये नियम और शर्तें प्रकृति में संविदात्मक या सांविधिक हो सकती हैं। सरकार या किसी सार्वजनिक या निजी निगम का कोई भी कर्मचारी अपनी सेवा की शर्तों को नियंत्रित करने वाले नियमों और विनियमों से परे सेवानिवृत्ति पेंशन का दावा नहीं कर सकता है। यह सत्य है कि उत्तर प्रदेश सिविल सेवा विनियम के अन्तर्गत, एक सरकारी कर्मचारी, जो "उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ (संशोधन) नियम, 2005" जारी होने तक पद पर था, पुरानी पेंशन योजना का हकदार था। यहाँ तक कि जो सरकारी कर्मचारी "उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ (संशोधन) नियम, 2005" में उल्लिखित निर्दिष्ट तिथि के पश्चात भर्ती/नियुक्त हुए हैं, वे भी पेंशन के हकदार नहीं हैं, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि जो सरकारी कर्मचारी किसी विशेष तिथि के पश्चात नियुक्त होते हैं, वे भी अब पेंशन के हकदार नहीं हैं। यह सत्य है कि सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारी को नियोक्ता को प्रदान की गई उसकी लंबी अवधि की सेवा के सम्मान में और उसकी सेवानिवृत्ति के पश्चात की आवश्यकताओं का ख्याल रखने हेतु पेंशन का भुगतान किया जाता है। सेवानिवृत्त कर्मचारी को ऐसी सहायता विभिन्न रूपों में हो सकती है। कुछ नियोक्ता वार्षिकी के भुगतान हेतु प्रावधान करते हैं, कुछ पेंशन के रूप में मासिक भुगतान हेतु और कुछ एकमुश्त राशि के भुगतान हेतु प्रावधान करते हैं। ऐसी राशि संचित कर्मचारी भविष्य निधि या सेवानिवृत्ति ग्रेच्युटी या किसी अन्य प्रकार के अनुग्रह भुगतान के रूप में हो सकती है। इस प्रकार किसी नियोक्ता हेतु यह अनिवार्य नहीं है कि वह अपने सेवानिवृत्त कर्मचारियों को पेंशन के माध्यम से मासिक राशि के भुगतान का प्रावधान करे, क्योंकि ऐसा कोई अधिकार किसी कर्मचारी को विरासत में नहीं मिलता है।`

65. इस प्रकार यह अत्यन्त ही स्पष्ट है कि प्रेम सिंह के मामले में अपीलकर्ता की सेवाओं को उस अवधि के भीतर नियमित किया गया था जिसके अंतर्गत पुरानी पेंशन योजना प्रचलित थी और आगे विनियमन ***370*** को हटा दिया गया है और

नियम 3(8) एक कर्मचारी की कार्य प्रभार अधिष्ठान में प्रदान की गई पूर्व सेवाओं की गणना के सीमित उद्देश्यों मात्र हेतु, जिसका नियमितीकरण तब किया गया है जब पुरानी पेंशन योजना प्रचलित थी और अन्यथा नहीं। यद्यपि, रिट याचिकाओं का वर्तमान समूह रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा निस्संदेह प्रस्तुत किया गया है, जिन्हें वर्ष 2008-2009 में किसी समय नियमित किया गया था। एक बार नई पेंशन योजना, अंशदान पेंशन प्रणाली को लागू करने हेतु नीतिगत निर्णय ले लिया गया है। 1 अप्रैल, 2005 को सेवा में नए प्रवेशकों को कोई अपवाद नहीं दिया गया और एकमात्र अपवाद जो निकाला गया है वह उन अभ्यर्थियों के संदर्भ में है जिनकी सेवा 1 अप्रैल, 2005 को दस वर्ष से कम होगी, तो उन्हें मौजूदा पेंशन योजना के स्थान पर स्वेच्छा से नई पेंशन प्रणाली का विकल्प चुनने हेतु विकल्प दिया गया है। । इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि सेवा में नए प्रवेशकों को अनिवार्य रूप से नई पेंशन योजना का विकल्प चुनना होगा, और उनके पास बचने का कोई रास्ता नहीं है।

66. यह न्यायालय इस तथ्य से भी अनभिज्ञ नहीं हो सकती कि प्रेम सिंह मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय, उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमवली, 1961 नियम 3(8) के अन्तर्गत कार्य प्रभारित कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को अर्हक सेवा में शामिल करने के प्रश्न की जाँच कर रहा था। हबीब खान बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, (2019) 10 एससीसी 542 में न्यायालय के पूर्व निर्णय के आलोक में, जिसमें याचिकाकर्ताओं को 01.04.2005 की अवधि से पूर्व नियमित किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961 (संक्षेप में, "1961 नियमावली") के नियम 3(8) को अभिलिखित करने के पश्चात पेंशन लाभ के प्रयोजनों हेतु नियमितीकरण से पूर्व कार्य प्रभारित अधिष्ठान को प्रदान की गई सेवा को कार्य में लाने हेतु उक्त नियम से युक्त टिप्पणी का अध्ययन किया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायसंगत निर्णय पर पहुँचने हेतु उत्तर प्रदेश सिविल सेवा विनियमावली के नियम 361, 368 और 370 का भी उद्धरण दिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कार्य प्रभार अधिष्ठान में कर्मचारियों की नियुक्ति से संबंधित वित्तीय हस्तपुस्तिका, खंड (VI) के प्रस्तर 667, 668 और 669 पर भी ध्यान दिया। न्यायालय ने कार्य प्रभार कर्मचारी के रूप में प्रदान की गई सेवाओं को अर्हक सेवा में समावेश करने की याचिका के विरोध में राज्य के तर्क पर ध्यान दिया, एवं प्रस्तर 35 और 37 के अंतर्गत निम्नवत टिप्पणी की :

> "35. नियम 3(8) से जुड़े टिप्पणी के दृष्टिगत, जिसे हमने पढ़ा है, सिविल सेवा विनियमावली के विनियमन 370 में निहित प्रावधान और साथ ही वित्तीय हस्तपुस्तिका के पैरा 669 में निहित निर्देशों को भी रद्द किया जाना चाहिए।"
>
> "37. उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 के नियम 3(8) के दृष्टिगत, हम मानते हैं कि कार्य-प्रभारित अधिष्ठान में प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन अनुदान हेतु उपरोक्त नियम के अन्तर्गत अर्हक सेवा माना जाएगा। पेंशन की शेष राशि आदेश की

अनुवादित

तिथि से पूर्व मात्र तीन वर्ष तक ही सीमित रहेगी। स्वीकार्य लाभों का भुगतान तदनुसार तीन माह की अवधि में किया जाएगा। परिणामस्वरूप, कर्मचारियों द्वारा दायर की गई अपीलें स्वीकृत की जाती हैं और राज्य द्वारा दायर की गई अपील खारिज की जाती है।"

67. यद्यपि, जैसा कि यहाँ पहले ही देखा जा चुका है, प्रेम सिंह वाद और वर्तमान मामलों के समूह के तथ्यों में , विषय और इसकी प्रयोज्यता- दोनों के ही संदर्भ में, काफी भिन्नता हैं। इस न्यायालय ने पाया कि प्रेम सिंह मामले में शीर्ष न्यायालय ने नियम 3(8) से जुड़े टिप्पणी के प्रावधानों का विशिष्ट निर्वचन किया और सिविल सेवा नियमावली के विनियमन 370 को भी रद्द कर दिया, परंतु नियम 3(8) के परन्तुक को स्पर्श नहीं किया इस सामान्य कारण से कि परंतुक अनिवार्य रूप से एक सांविधिक उपाय था जिसने प्रेम सिंह वाद की नींव को सुदृढ़ किया, क्योंकि कार्य प्रभारित कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवा की लंबी अवधि के फल से इन्कार करना शोषणकारी और पूर्णरुपेण एकपक्षीय होगा। इस प्रकार, यदि नियम 3(8) से युक्त टिप्पणी की बात की जाये तो प्रेम सिंह वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह धारित करते हुए विशिष्ट निर्वचन किया गया था कि नियमितीकरण से पूर्व प्रदान की गई सेवा भी अर्हकारी सेवा की गणना के प्रयोजनों हेतु गणना किये जाने योग्य होगी। प्रेम सिंह मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय को अनिवार्य रूप से नियमितीकरण से पूर्व कार्य-प्रभारित अधिष्ठान में प्रदान की गई सेवा को शामिल न करने या उपरोक्त सेवा को मात्र उस स्थिति तक सीमित करने का कोई औचित्य नहीं मिला, जहाँ यह पाया गया कि ऐसी सेवा अस्थायी सेवा की दो अवधियों अथवा अस्थायी और स्थायी सेवा के मध्य प्रदान की गई थी। यद्यपि, यह ध्यान दिया जा सकता है कि विनियमन 370 में निहित प्रावधानों के समान प्रावधान नियम 3(8) के परंतुक में संरक्षित और अछूते रहते हैं। उस परंतुक को न तो संशोधित किया गया है और न ही विलोपित किया गया है। इस संबंध में, यह उल्लेख करना लाभदायक होगा कि यह किसी परंतुक का सुस्थापित और स्वीकृत कार्य है कि मुख्य प्रावधान में अन्यथा नियंत्रित होने वाले अपवाद कोस्पष्ट करे। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दुर्गाबाई देशमुख मेमोरियल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बनाम जे.ए.जे. वासु सेना (2019) 17 एससीसी 157 ने निम्नानुसार धारित किया है: -

"35. यह एक सुस्थापित विधि है कि एक परंतुक का उद्देश्य मुख्य धारा से एक वर्ग या श्रेणी को बाहर निकालना है जिस पर मुख्य धारा लागू नहीं होती है। एक परंतुक को प्रथम दृष्टया पढ़ा जाना चाहिए और मुख्य मामले के संबंध में विचार किया जाना चाहिए जिसके लिए यह एक परंतुक है। यह एक अलग या स्वतंत्र अधिनियम नहीं है।"

68. यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ ने विशेष अपील संख्या 2114/2011 (राम आश्रय यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 13.04.2017 को निर्णीत) में सिविल सेवा विनियमावली के विनियम 361, 368 और 370 पर विचार करते हुए विनियम 352 पर भी विचार करने की कृपा की है जो

विशेष रूप से उस मामले से संबंधित है जिसमें पेंशन के दावे अस्वीकार्य हैं। उपरोक्त विनियमन 352 के अवलोकन से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति को सार्वजनिक सेवा में पूर्ण अवधि हेतु पदासीन नहीं रखा जाता है, अपितु उसे मात्र राज्य हेतु किए गए कार्य हेतु भुगतान किया जाता है, ऐसे व्यक्ति को कार्यमुक्ति का एक माह का नोटिस दिया जाना चाहिए। व्यक्ति और उसके वेतन को किसी भी अवधि हेतु भुगतान किया जाना चाहिए जब तक कि ऐसा नोटिस महीने से कम न हो जाए और एक अधिकारी जिसने अनुबंध के अन्तर्गत सेवा की है, जिसमें पेंशन के संबंध में कोई शर्त नहीं है, जब तक कि राज्य सरकार विशेष रूप से किसी अधिकारी को ऐसी सेवा को पेंशन में गणना करने हेतु अधिकृत नहीं करती है, इस प्रकार की सेवाओं हेतु पेंशन स्वीकार्य नहीं होगी। उक्त खंडपीठ ने कहा कि एक बार याचिकाकर्ता के दावे पर नियमितीकरण का लाभ देने हेतु प्रासंगिक सेवा नियमावली के अन्तर्गत विचार किया गया है, तो उसे प्रश्नगत नियमावली और उसकी नियुक्ति के अनुसार सेवा में नियुक्त माना जाना चाहिए। संबंधित सेवा नियमावली के अन्तर्गत एक नई/नियमित नियुक्ति के रूप में माना जाना चाहिए और तदनुसार, उक्त तिथि पर जो भी शर्तें लागू थीं, उन्हें मात्र सेवा में शामिल किया जाना चाहिए। खण्डपीठ ने यह टिप्पणी करते हुए निष्कर्ष दिया कि जब एक बार याचिकाकर्ता को नई/नियमित नियुक्ति प्रस्तुत की गई है, तो याचिकाकर्ता यह दावा नहीं कर सकता कि उसे पुरानी पेंशन योजना द्वारा आच्छादित किया जाना चाहिए और अन्य लाभ उसे उपलब्ध कराए जाने चाहिए। यद्यपि यह कहा गया है कि खण्डपीठ के उक्त निर्णय के विरुद्ध एक विशेष अनुमति याचिका लंबित है, यद्यपि इसे मार्गदर्शन हेतु संदर्भित किया जा रहा है क्योंकि माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा उक्त आदेश के विरुद्ध कोई स्थगन नहीं है।

69. जहाँ तक वर्तमान वाद का प्रश्न है, शासनादेश दिनांक 22/12/1981 और कार्यालय ज्ञापन दिनांक 15/02/1982 के परिशीलन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि रिट याचिकाकर्ताओं को मात्र अंशकालिक आधार पर नियुक्त किया गया है और पूर्णकालिक नियमित कर्मचारी के रूप में कार्य पर नहीं लगाया गया है और उसे मात्र एक निर्दिष्ट कर्तव्य अर्थात ट्यूबवेल का प्रचालन करना होता था, जबकि इसके विपरीत एक नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटर को ट्यूबवेल के अनुरक्षण और मरम्मत का कर्तव्य भी निभाना होता था। इसके अतिरिक्त, शर्त संख्या 12 में विशेष रूप से निर्धारित किया गया कि अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को कोई भविष्य निधि, पेंशन या ग्रेच्युटी प्रदान नहीं की जाएगी। सेवाओं में आने के प्रारंभ से ही विनियम 352 के दृष्टिगत, याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रदान की गई सेवाएँ पेंशन के प्रयोजनों हेतु अस्वीकार्य हैं, अतः अब नियमितीकरण के पश्चात याचिकाकर्ता अंशकालिक ट्यूबवेल के रूप में पूर्व में प्रदान की गई सेवाओं का दावा नहीं कर सकते हैं। ऑपरेटरों को उनके नियमितीकरण की तिथि से पूर्व सेवाओं को "अर्हक सेवाओं" के रूप में मानने के उद्देश्य से गिना जाएगा और चूँकि याचिकाकर्ताओं का नियमितीकरण 2008 को या उसके पश्चात किया गया है, जो 01/04/2005 से नई पेंशन योजना के प्रवर्तन की आंतरिक तिथि है, अतः उपरोक्त तिथि के पश्चात नियमित होने वाली याचिकाकर्ताओं की सेवाएँ मात्र नई पेंशन

अनुवादित

योजना प्राप्त करने के उद्देश्य हेतु उत्तरदायी होंगी जो अन्य राज्य सरकार के कर्मचारियों को प्रदान की जा रही है।

70. इस प्रकार, इस न्यायालय की राय में, प्रेम सिंह मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित किये गये निर्णय वर्तमान वाद के तथ्यों पर प्रयोज्य नहीं है क्योंकि उपरोक्त मामले के विवाद्यक तथ्य रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत रिट याचिकाओं के वर्तमान समूह में मुद्दे के तथ्यों से सर्वथा भिन्न है एवं अंतर्निहित तथ्यों के आधार पर विभेदकारी है। यह विधि का एक स्थापित सिद्धांत है कि कोई भी निर्णय किसी अन्य वाद में नजीर के रूप में बाध्यकारी नहीं है यदि पश्चातकथित में भौतिक तथ्य या वादबिंदु समान नहीं हैं क्योंकि एक निर्णय मात्र उन्हीं बिंदुओं हेतु एक प्राधिकार है जिनके निस्तारण हेतु वास्तव में वह निर्णय लिया गया। किसी भी वाद में, निर्धारित विधि है कि नियमित होने पर सरकारी कर्मचारी पर लागू होने वाली नियमावली नियमितीकरण के समय प्रचलित नियमावली ही होगी जैसा कि बिहार राज्य बनाम राजमती देवी के मामले में भी माना गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 20/05/2022 के एक निर्णय के अन्तर्गत प्रस्तर 6 में इस प्रकार धारित किया कि:

> ***"6. सर्वप्रथम, यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि प्रतिवादी संख्या 1 के पति वर्ष 2014 में 02.03.2009 से सरकारी सेवा में शामिल हो गए। 02.03.2009 तक, वह बिहार रिसर्च सोसायटी के कर्मचारी बने रहे, जिसके वह कर्मचारी थे और कार्यरत थे। पुरानी पेंशन नियमावली, 1950 को समाप्त कर दिया गया और 01.09.2005 से नई अंशदायी पेंशन योजना शुरू की गई। नई अंशदायी पेंशन योजना के अन्तर्गत, पेंशन/पारिवारिक पेंशन का कोई प्रावधान नहीं है। योजना के अनुसार, 31.08.2005 के पश्चात नियुक्त सभी लोग नई अंशदायी पेंशन योजना के अधीन होंगे। अतएव, उस समय जब प्रतिवादी संख्या 1 के पति, जिनकी वर्ष 2013 में मृत्यु हो गई थी, को समाहित किया गया, पुरानी पेंशन नियमावली को समाप्त हो चुकी थी और नई अंशदायी पेंशन योजना अस्तित्व में थी। नियुक्ति आदेश में जारी शुद्धिपत्र एवं खंड 6 के अनुसार संबंधित कर्मचारी द्वारा उसके आमेलन से पूर्व, प्रदान की गई पूर्व सेवा को सरकारी सेवा नहीं माना जाएगा। अतएव, प्रतिवादी संख्या 1 के पति को मात्र दिनांक 02.03.2009 से सरकारी सेवा में सरकारी सेवक कहा जा सकता है । अतएव, प्रतिवादी संख्या 1 का पति नई अंशदायी पेंशन योजना के अधीन था जिसके अन्तर्गत पेंशन/पारिवारिक पेंशन का कोई प्रावधान नहीं है। अतएव, उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को पुराने पेंशन नियमों को लागू कर, , जो 31.08.2005 से पूर्व लागू थे, प्रतिवादी संख्या 1 को पारिवारिक पेंशन का भुगतान करने का निर्देश देकर गंभीर त्रुटि की है।***
>
> ***उपरोक्त पक्ष पर उच्च न्यायालय द्वारा बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है और विद्वान एकल न्यायाधीश ने मात्र यह माना***

अद्यावधिक

है कि प्रतिवादी संख्या 1 के पति की मृत्यु पर, जिनकी सेवा के दौरान मृत्यु हो गई, प्रतिवादी संख्या 1 पारिवारिक पेंशन योजना के अन्तर्गत पारिवारिक पेंशन का हकदार है। यद्यपि, उच्च न्यायालय ने इस बात पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया है कि नई अंशदायी पेंशन योजना लागू होने पर, 31.08.2005 के पश्चात नियुक्त कोई भी सरकारी कर्मचारी नई अंशदायी पेंशन योजना के अतिरिक्त किसी अन्य लाभ का हकदार नहीं होगा। वाद के मद्देनजर, प्रतिवादी संख्या 1 पुरानी पेंशन नियमावली के अन्तर्गत पारिवारिक पेंशन का हकदार नहीं होगा, जो उस समय लागू नहीं थे जब प्रतिवादी संख्या 1 का पति सरकारी सेवा में 02.03.2009 से समाहित हो गया था।"

<u>उत्तर प्रदेश पेंशन एवं विधिमान्यकरण अर्हकारी सेवा अधिनियम, 2021</u>

71. इसके अतिरिक्त, प्रेम सिंह वाद (उपरिवर्णित) में कार्य प्रभारित कर्मचारियों की सेवाओं को पेंशन हेतु अर्हक सेवा के उद्देश्य से सम्मिलित करने का निर्देश दिया गया था। यद्यपि, परिणामस्वरुप उत्तर प्रदेश सरकार ने अध्यादेश संख्या 19/2020 प्रख्यापित किया है जो अब उत्तर प्रदेश राजपत्र (असाधारण) दिनांक 21.10.2020 में अधिसूचित होने के पश्चात उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1/2021 हो गया है। प्रेम सिंह (उपरिवर्णित) और उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1/2021 के प्रभाव पर उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम राज बहादुर पास्टर, 2022(3) एडीजे 5 वाद में इस न्यायालय की एक खण्डपीठ द्वारा पर विस्तृत रुप से विचार किया गया है। यह न्यायालय इस तथ्य से भी अनभिज्ञ नहीं हो सकती कि प्रेम सिंह (उपरिवर्णित) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के नियम 3(8) के अन्तर्गत अर्हकारी सेवा हेतु हबीब खान बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, (2019) 10 एससीसी 542 में न्यायालय के पूर्व निर्णय के आलोक में एक कार्य प्रभारित कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को सम्मिलित करने के प्रश्न का परीक्षण किया जा रहा था, जिसमें याचिकाकर्ताओं को 01.04.2005 की अवधि से पूर्व नियमित किया गया था। यद्यपि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णय घोषित किये जाने के पश्चात, राज्य ने 'अर्हकारी सेवा' को निर्दिष्ट करते हुए उत्तर प्रदेश अध्यादेश संख्या 19/2020 को प्रख्यापित किया है, जिसका अर्थ अस्थायी या स्थायी पद पर पद हेतु सरकार द्वारा निर्धारित सेवा नियमावली के प्रावधानों के अनुसार नियुक्त अधिकारी द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से है। अध्यादेश के खंड 3 में उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के नियम 3 के उपनियम (8) में भी पूर्वव्यापी प्रभाव 1 अप्रैल, 1961 से संशोधन किया गया है। अध्यादेश के खंड 2 और 3 को एतस्मिन पश्चात पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

> *"2. किसी अधिकारी को पेंशन की पात्रता के प्रयोजनों हेतु किसी भी नियम, विनियम या शासनादेश में कुछ भी निहित होने के बावजूद, "अर्हक सेवा" का अर्थ पद हेतु सरकार द्वारा निर्धारित सेवा नियम के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त अधिकारी द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से है।*

3. इस अध्यादेश के प्रारंभ होने से पूर्व, किसी भी न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के बावजूद, उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के नियम 3 के उप-नियम (8) के अन्तर्गत या उसके संबंध में कुछ भी किया गया या किया जाना और की गई या की जाने वाली कार्रवाई को इस अध्यादेश के प्रावधानों के अन्तर्गत किया जाना या किया गया माना जाएगा और सदैव वैध माना जाएगा जैसे कि इस अध्यादेश के प्रावधान अप्रैल 1,1961 से सभी तात्विक अवसरों पर प्रभावी थे।"

72. उपरोक्त अध्यादेश का अनुपालन उत्तर प्रदेश अर्हकारी सेवा पेंशन एवं विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1/2021) के प्रख्यापन के साथ किया गया। इस प्रकार उपरोक्त संशोधन के परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961, नियमावली 1961 के नियम 3(8) में अब तक निहित 'अर्हकारी सेवा' की परिभाषा, उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1/2021 की धारा 2 और 3 के संदर्भ में पूर्वलक्षी प्रभाव से संशोधित की गई है। यह संशोधन किसी भी न्यायालय के निर्णय, डिक्री या आदेश के बावजूद दिनांक 1 अप्रैल, 1961 से लागू किया गया है।

73. इस न्यायालय का अवलोकन है कि उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1/2021 द्वारा प्रतिस्थापित वर्ष 2020 का अध्यादेश, रिट याचिकाओं के इस समूह में चुनौती के अधीन नहीं है। एक बार विधि को पूर्वलक्षी प्रभाव से संशोधित कर दिए जाने के पश्चात, रिट न्यायालय द्वारा विधि के प्रावधानों की अनदेखी करना उचित नहीं होगा, विशेषकर जब वे चुनौती के अधीन नहीं हैं और अन्यथा विधि निर्वचन के किसी भी सिद्धांत के अनुसार उनका विशिष्ट निर्वचन नहीं किया गया है। किसी भी स्थिति में, चूँकि विधायी अधिनियम हमें इस आधार पर आगे बढ़ने हेतु बाध्य करता है कि अर्हक सेवा की उपरोक्त परिभाषा अस्तित्व में है और 1 अप्रैल 1961 से लागू है, अतएव सभी पेंशन दावों का आवश्यक रूप से मूल्यांकन और तदनुसार जाँच की जानी चाहिए। यह निष्कर्ष अनिवार्य रूप से किसी भी चुनौती के अधीन होगा जो विधिमान्यकरण अधिनियम के प्रावधानों के समक्ष प्रस्तुत की जा सकती है।

74. इस प्रकार, इस न्यायालय का मत है कि इसके विपरीत किसी भी अन्य अधिनियम, नियम या विनियमन में निहित होने के बावजूद अभिव्यक्ति "अर्हक सेवा" की व्याख्या अब विधिमान्यकरण अधिनियम में किए गए प्रावधानों के अनुसार की जानी चाहिए। विधिमान्यकरण अधिनियम 1 अप्रैल 1961 से पूर्वलक्षी प्रभाव से प्रावधानों को समाविष्ट करता है। विधिमान्यकरण अधिनियम के खंड 2 के अनुसार, "अर्हक सेवा" का अर्थ पद हेतु सरकार द्वारा निर्धारित सेवा नियमावली के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त अधिकारी द्वारा प्रदान की गई सेवाएँ हैं। इस प्रकार, पेंशन लाभ का दावा करने के अधिकार की व्याख्या अब उक्त अर्हक सेवा के संदर्भ में की जानी है, जिसमें घटक सम्मिलित हैं:- (i) अस्थायी पद पर नियुक्त अधिकारी या (ii) स्थायी पद और (iii) पद हेतु सरकार द्वारा निर्धारित सेवा नियम के प्रावधानों के अनुसार।

अनुवादित

75. निस्सन्देह, रिट याचिकाकर्ताओं को उनके नियमितीकरण से पूर्व नियुक्त किया गया था और वे अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर बने रहे। नियमितीकरण से पूर्व वे न तो किसी अस्थायी या स्थायी पद पर थे और न ही उन्हें नियुक्त किया गया था। उनके नियमितीकरण के पश्चात ही उन्हें किसी मूल पद पर नियुक्त किया जाने लगा और इस प्रकार उनकी सेवा अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के रूप में उनकी नियुक्ति की तिथि से नहीं मानी जाएगी, अपितु यह उनके नियमितीकरण की तिथि से होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, विधिमान्यकरण अधिनियम में महत्वपूर्ण रूप से उल्लेख किया गया है कि यह आवश्यक नहीं है कि अधिकारी को मात्र अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त किया जाए, अपितु यह भी सुनिश्चित करता है कि उक्त अस्थायी या स्थायी नियुक्ति सेवा नियम के प्रावधानों के अनुसार होनी चाहिए। जहाँ तक वर्तमान रिट याचिकाकर्ताओं का प्रश्न है, यद्यपि सिंचाई विभाग ट्यूबवेल ऑपरेटर सेवा नियमावली 1953 उपलब्ध थी और नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों को उक्त सेवा नियमावली के अन्तर्गत नियुक्त किया गया था, यद्यपि इन "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों" को 'सिंचाई अनुभाग, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी आदेश दिनांक 22.12.1981 द्वारा "कार्यकारी निर्देशों" के अन्तर्गत नियुक्त किया गया था। इस प्रकार, इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को सेवा नियमावली के अनुसार नियुक्त नहीं किया गया था, मान्यता मात्र तब दी गई और सेवा नियमावली के अनुसार नियुक्त किया गया जब उनकी सेवाएँ नियमित हो गईं। इस प्रकार, पेंशन लाभ हेतु अर्हक सेवा की गणना उस तिथि से नहीं की जा सकती, जब इन रिट याचिकाकर्ताओं को सेवा नियमों के अनुसार नियुक्त भी नहीं किया गया था।

76. जहाँ तक भानु प्रताप शर्मा के मामले में खण्डपीठ के निर्णय का प्रश्न है, रिट याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क का सम्बन्ध है, यह ध्यान दिया जा सकता है कि न्यायालय का निर्णय मामले के तथ्यों पर था, क्योंकि याचिकाकर्ता को कार्य प्रभार के आधार पर नियमित अधिष्ठान हेतु नियमित किया गया था और यह राज्य का वाद नहीं था कि उनकी नियुक्ति सेवा नियमावली के प्रावधानों के अनुरूप नहीं थी। यद्यपि, वर्तमान वाद में, इस न्यायालय ने पाया कि न तो याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति किसी कार्य प्रभारित अधिष्ठान में है, और न ही यह कहीं भी स्वीकृत किया गया है कि याचिकाकर्ता की नियोजन/नियुक्ति सेवा नियमावली के अनुसार थी। किसी भी मामले में, यह न्यायालय दूसरी ओर पाती है कि राज्य ने खण्डपीठ के पारित दो निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है (i) विशेष अपील संख्या 398/2021 (श्री चंद्र सिंह का वाद) में आदेश दिनांक 22.04.2022 और (ii) विशेष अपील संख्या 240/2021 (जंगपाल का वाद) में आदेश दिनांक 16.05.2022 में, जिसमें माननीय लखनऊ खंडपीठ और माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने क्रमशः प्रेम सिंह के निर्णय के लाभ के अधिकार से संबंधित प्रश्न तैयार करने के पश्चात उत्तर प्रदेश अर्हक सेवा के सम्बन्ध में पेंशन और विधिमान्यकरण अधिनियम, 2019 को अस्वीकार कर दिया गया था।

77. रिट याचिकाकर्ताओं ने **सिविल अपील संख्या 4575/2021 (उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम उत्तम सिंह)** में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 03.08.2021 पर भी विश्वास व्यक्त किया है। उक्त निर्णय, सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण, अंशकालिक ट्यूबवेल

अनुवादित

ऑपरेटर के रूप में काम कर रहे पिता के निधन के कारण उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 के अन्तर्गत अनुकम्पा नियुक्ति का लाभ देने से संबंधित है। द्वितीय, उक्त निर्णय ऐसे किसी भी मुद्दे का समाधान नहीं करता है, जो इस न्यायालय के समक्ष इन मामलों में उपस्थित है। सर्वोच्च न्यायालय उक्त मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर उक्त अनुकम्पा नियुक्ति का परीक्षण कर रहा था, जिसमें पाया गया कि कम से कम दो व्यक्तियों को इसी तरह के परिदृश्य में नियोजन प्रदान किया गया था, यद्यपि संभवतः राज्य और मृत पिता के मध्य पूर्व मुकदमे के कारण उक्त मामले में व्यक्ति के साथ भेदभाव किया गया था। इस प्रकार, मामले के तथ्यों पर, शीर्ष न्यायालय ने राज्य के स्पष्टीकरण को संतोषजनक नहीं पाया और राज्य को उत्पीड़न जारी रखने की अनुमति नहीं दी और राज्य-विभाग की अपील को खारिज कर दिया। कोई निर्णय मात्र उस वादबिंदु हेतु एक प्राधिकार है जिसके प्रति वास्तव में वह निर्णय लिया जाता है। किसी निर्णय का सार उसका निर्णयाधार होता है न कि उसमें पाया गया प्रत्येक अवलोकन और न ही यह तथ्य कि उसमें किए गए विभिन्न अवलोकनों से तार्किक रूप से क्या परिणाम प्राप्त होता है। किसी निर्णय से इधर-उधर से कोई वाक्य निकालना और उस आधार पर एक नया निर्णय गढ़ देना कोई लाभकारी उद्यम नहीं है।

उड़ीसा राज्य बनाम सुधांशु शेखर मिश्रा,(1968) 2 एससीआर 154।

<u>निष्कर्ष</u>

78. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, यह मानने में कोई संदेह नहीं है कि याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति कार्यकारी आदेश दिनांक 22/12/1981 और कार्यालय ज्ञापन दिनांक 15/02/1982 के दृष्टिगत अनियमित रही। यद्यपि, इस न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत उन्हें नियमित रूप से नियुक्त ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समक्ष वेतन-समानता प्रदान की गई थी और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इसे बरकरार रखा था, तथापि सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं पुनर्विलोकन आदेश दिनांक 18.10.1995 में स्पष्ट किया था कि सुरेश चंद्र तिवारी का वाद नियमितीकरण से संबंधित नहीं था, अपितु "समान काम हेतु समान वेतन" के सिद्धांत के आधार पर वेतन-समानता के प्रश्न से संबंधित था।

79. इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ताओं की सेवाओं की गणना दिनांक 17.12.1996 से, अर्थात "उत्तर प्रदेश सिंचाई विभाग द्वारा ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पदों पर अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को नियमित करने की नियमावली, 1996" के प्रख्यापन की तिथि से नहीं की जा सकती। जैसा कि नियमितीकरण के नियमों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उक्त नियम मात्र उन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों पर लागू होते हैं जिनकी नियुक्ति 01.10.1986 से पूर्व हुई थी। माना जाता है कि वर्तमान मामलों में याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति 01.10.1986 के पश्चात की गई थी। यहाँ तक कि उमा देवी के मामले [(2006) 4 एससीसी 1] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में उक्त नियमों को दी गई चुनौती को भी इस न्यायालय ने खारिज कर दिया है। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने पूर्व में ही भारत के रजिस्ट्रार जनरल व अन्य बनाम वी. थिप्पा सेट्टी व अन्य (1998 वॉल्यूम 8 एससीसी

अनुवादित

690) और भारत संघ और अन्य बनाम शीला रानी (2007) 15 एससीसी 230) के मामले में और हरियाणा राज्य बनाम जसमेर सिंह (1996) 11 एससीसी 77) माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत यह धारित किया है कि नियमितीकरण भविष्यलक्षी हो सकता है न कि पूर्वलक्षी।

80. इस न्यायालय ने यह भी धारित किया है कि कार्य प्रभारित अधिष्ठान की सेवा नियमों में पाई जा सकती है, जबकि अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की सेवा एक कार्यकारी आदेश द्वारा अस्तित्व में आई, और उपरोक्त वर्णित विभिन्न अन्य कारणों से, अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों की सेवा शर्तों की समानता उन व्यक्तियों की सेवा शर्तों के साथ नहीं की जा सकती है, जो कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में काम कर रहे हैं/ कर रहे थें, क्योंकि दोनों पूर्णतः भिन्न एवं पृथक हैं। इसके अलावा, प्रेम सिंह वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की आधिकारिक घोषणा पुरानी पेंशन योजना के युग में नियमितीकरण से संबंधित थी, जबकि वर्तमान याचिकाकर्ता को मात्र वर्ष 2008-2009 में नियमित किया गया था, जब दिनांक 01.04.2005 से "उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ (संशोधन) नियमावली, 2005" के दृष्टिगत नई पेंशन योजना प्रचलन में थी। इस प्रकार, बिहार राज्य बनाम राजमती देवी वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत, नई पेंशन योजना याचिकाकर्ताओं को नियमित किए जाने के बाद उन पर लागू की जाएगी। इसके अतिरिक्त,उत्तर प्रदेश पेंशन विधिमान्यकरण हेतु अर्हक सेवा अधिनियम, 2021 से भी याचिकाकर्ताओं को सहायता नहीं मिलती क्योंकि वे अपने नियमितीकरण से पहले न तो अस्थायी या स्थायी पद धारण करते थें, न ही उन पदों पर नियुक्त किए गए थे। उन्हें उनके नियमितीकरण के बाद ही एक मूल पद पर नियुक्त किया गया था, और सभी आशय और उद्देश्यों हेतु सेवाओं की गणना मात्र नियमितीकरण की संबंधित तिथि से की जा सकती है।

81. रिट याचिकाओं के इस समूह पर विचार करने के बाद, यह न्यायालय निम्नलिखित निदेश देती है:-

क. पेंशन के प्रयोजनार्थ रिट याचिकाकर्ताओं की अर्हक सेवा की गणना उस तिथि से की जाएगी, जब उन्हें ट्यूबवेल ऑपरेटर के रूप में नियमित पद पर नियमितीकृत किया गया था।

ख. रिट याचिकाकर्ता पुरानी पेंशन योजना के हकदार नहीं होंगे क्योंकि उनके संबंधित नियमितीकरण के समय प्रचलित पेंशन योजना नई पेंशन योजना थी।

ग. नमो नारायण मामले में 12.11.2021 के आदेश के अंतर्गत वृहद पीठ द्वारा पारित निर्णय से प्रेरणा लेते हुए, राज्य समस्त सेवा लाभ, जो नियमित होने पर रिट याचिकाकर्ताओं पर प्रयोज्य हो, प्रदान करने हेतु नियमानुसार सभी कदम उठाएगा । यह न्यायालय धारित करती है कि जहाँ तक जीपीएफ की वापसी और/या इस पर विचार का संबंध है, वर्तमान रिट याचिकाकर्ताओं को वही राहत दी जाती

अनुवादित

है जो उक्त निर्णय में वृहद पीठ द्वारा दी गई है।

घ. पुनर्विचार की प्रक्रिया त्वरित रूप से एवं यथासंभव इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से 3 माह की अवधि में समाप्त की जा सकती है।

ड. यह स्पष्ट किया जाता है कि आक्षेपित आदेशों को रद्द करने या अन्य सेवा लाभ प्रदान करने से संबंधित रिट याचिकाकर्ताओं की अन्य सभी प्रार्थनाओं को खारिज और अस्वीकृत किया जा रहा है।

सभी रिट याचिकाओं का निस्तारण उपरोक्त निबंधनों के अंतर्गत किया जाता है। वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 2 ILRA 142

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.02.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया,

सिविल विविध पुनरीक्षण आवेदन संख्या 40/2019

अंतर्गत

रिट सी संख्या 16532 /2017

अवधेश कुमार शर्मा

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री एम. डी. सिंह शेखर, श्री जे. नागर (सीनियर एडवोकेट), श्री आर. एन. मिश्रा, श्री वैभव गोस्वामी, श्री प्रतीक जे. नागर, सुप्रिया प्रतीक नगर

अधिवक्ता प्रतिवादी: अजीत कुमार सिंह (अतिरिक्त महाधिवक्ता), श्री सुधांशु श्रीवास्तव (अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील), श्री विवेक सरन

भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन में उचित क्षतिपूर्ति और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 - धारा 73 - उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 161 - विनिमय - याचिकाकर्ता ने वर्ष 2010 में बिक्री-विलेख के माध्यम से एक भूखंड क्रय किया - याचिकाकर्ता ने दावा किया कि उसका भूखंड यूपीएसआईडीसीएल द्वारा अधिग्रहित भूमि से घिरा हुआ था और उक्त भूखंड से कोई निकास या प्रवेश नहीं था - याचिकाकर्ता ने प्रार्थना की कि या तो उसकी भूमि अधिग्रहण कर ली और क्षतिपूर्ति दिया जाए या बिक्री विलेख निष्पादित किया जाए - राज्य ने इस आधार पर दावे का विरोध किया कि भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही वर्ष 1988 में हुई थी, और याचिकाकर्ता को वर्ष 2010 में भूमि क्रय करते समय इसके संबंध में ज्ञात हुआ - आयोजित - राज्य प्राधिकारियों को वर्ष 1988 में राज्य सरकार द्वारा अधिग्रहीत भूमि पर याचिकाकर्ता को प्रवेश और निकास प्रदान करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है - हालांकि, न्याय के हित में, याचिकाकर्ता को 9% की दर से ब्याज के साथ निवेश की राशि देकर क्षतिपूर्ति प्रदान किया गया। (पैरा 24) (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया, द्वारा प्रदत्त)

<u>सीएम समीक्षा आवेदन संख्या 40/2019 पर आदेश</u>

अनुवादित

1. वर्तमान समीक्षा आवेदन 5.11.2019 के आदेश की समीक्षा/प्रत्याह्वान लेने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है, रिट याचिका को उसकी मूल संख्या में बहाल करके, रिट याचिका में प्रार्थना की गई राहत देकर या किसी अन्य राहत के साथ रिट याचिका की अनुमति देने की प्रार्थना के साथ,जिसे यह न्यायालय न्याय के हित में उचित और उचित मानता है।

2. मामले के तथ्य यह हैं कि वादी ने रिट याचिका में दावा किया कि वह गांव दौलतपुर, तहसील फिरोजाबाद, जिला फिरोजाबाद में भूखंडसंख्या38/302, क्षेत्र 2300 वर्ग मीटर का मालिक है। उक्त भूखंड वादी द्वारा वर्ष 2010 में एक पंजीकृत बिक्री विलेख द्वारा खरीदा गया था। रिट याचिका में आगे कहा गया है कि वादी के भूखंड के आसपास उसी गांव की 101.01 एकड़ भूमि उत्तर प्रदेशराज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड (इसके बाद 'उत्तर प्रदेश स्टेट इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट कारपोरेशन 'के लिए संदर्भित) द्वारा अधिग्रहित की गई थी। उपर्युक्त क्षेत्र में से 9560 एकड़ भूमि उत्तर प्रदेश स्टेट इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट कारपोरेशन के नाम दर्ज की गई थी और शेष 0641 एकड़ भूमि कलेक्टर, फिरोजाबाद के नाम दर्ज की गई थी। उक्त अधिग्रहण वर्ष 1988 में किया गया था।

3. रिट याचिका में आगे कहा गया है कि वादी द्वारा खरीदी गई भूमि का अधिग्रहण नहीं किया गया था, जबकि आसपास के भूखंडों का अधिग्रहण किया गया था। इस प्रकार, वादी के पास अपने भूखंड में कोई प्रवेश और निकास नहीं था।

4. वादी ने अपनी भूमि के आदान-प्रदान के लिए अन्य भूमि के साथ आवेदन किया, जैसा कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियमकी धारा 161 के तहत विचार किया गया है। उक्त आवेदन पर निर्णय नहीं लिया गया था, इसलिए, वादी ने 2013 की रिट याचिका संख्या 43249 दायर की, जिसमें अपने भूखंड के आदान-प्रदान के संबंध में आवेदन पर निर्णय लेने के लिए राज्य प्राधिकरण को निर्देश देने की प्रार्थना की गई। उक्त रिट याचिका का निपटारा प्राधिकारियों को वादी के दावे पर विचार करने और समयबद्ध अवधि के भीतर उचित आदेश पारित करने के निर्देश के साथ किया गया था। विनिमय के लिए वादी के आवेदन को संबंधित प्राधिकरण द्वारा दिनांक 23092013 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। आदेश को चुनौती देने वाली वादी द्वारा दायर याचिका को आगरा डिवीजन, आगरा के आयुक्त ने भी खारिज कर दिया था। उक्त आदेश को वादी ने राजस्व मंडल के समक्ष पुनरीक्षण दायर करके चुनौती दी थी। वादी के पुनरीक्षण को एकपक्षीय अनुमति दी गई थी। इसके बाद, राज्य प्राधिकरण ने राजस्व मंडल के समक्ष एक समीक्षा आवेदन दायर किया और राजस्व मंडल ने अपने पहले के आदेश पर रोक लगा दी। वादी ने राज्य प्राधिकरण द्वारा दायर समीक्षा आवेदन

अनुवादित

पर निर्णय लेने के लिए राजस्व मंडल को निर्देश देने के लिए 2017 की रिट याचिका संख्या 111 दायर की। अंततः, राज्य प्राधिकरण के समीक्षा आवेदन की अनुमति दी गई और वादी द्वारा दायर संशोधन को दिनांक 19.1.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। राजस्व मंडल द्वारा पारित दिनांक 19.1.2018 का आदेश वादी द्वारा 2018 की रिट याचिका संख्या 2976 में चुनौती का विषय था। उक्त रिट याचिका भी 19.3.2018 को खारिज कर दी गई थी।

5. वर्तमान रिट याचिका में वादी ने कहा है कि वादी की भूमि राज्य सरकार द्वारा अधिग्रहित भूमि से घिरी हुई है। इस प्रकार, वादी के भूखंड में कोई प्रवेश और निकास नहीं है। रिट याचिका में आगे कहा गया है कि वादी की भूमि अधिग्रहित भूमि पर बनाए जा रहे सरकारी मेडिकल कॉलेज की चारदीवारी के भीतर है।

6. इस न्यायालय ने दिनांक 5.11.2019 के एक आदेश द्वारा रिट याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि राज्य सरकार ने वादी की भूमि पर अपने कब्जे से इनकार कर दिया था और वादी की भूमि का अधिग्रहण करने में रुचि रखने से भी इनकार कर दिया था। जहां तक वादी के भूखंड में प्रवेश और निकास का संबंध है, इस न्यायालय ने वादी को सामान्य कानून के तहत उपाय का लाभ उठाने के लिए खुला रखा है।

7. वादी ने तर्क दिया है कि विवादित भूमि पर कब्जे के संबंध में अतिरिक्त महाधिवक्ता का बयान अभिलेख के विपरीत है।

8. उक्त तर्क को विस्तार से बताते हुए, वादी के विद्वान अधिवक्ता ने दस्तावेज पर भरोसा किया है, अर्थात श्री कमल कुमार, सहायक निवासी अभियंता, मैनपुरी, उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लिमिटेड, मैनपुरी द्वारा दायर जवाबी हलफनामे और निर्माण निगम द्वारा प्रस्तुत प्रगति प्रतिवेदन में कहा गया है कि वादी का भूखंड सरकारी मेडिकल कॉलेज की चारदीवारी के भीतर है।

9. यह आगे तर्क दिया गया है कि राजस्व मंडल ने अपने आदेश दिनांक 19.1.2018 में आगे यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि वादी की भूमि अधिग्रहित भूमि के बीच में स्थित है। आगे यह तर्क दिया गया है कि राजस्व मंडल ने एक निष्कर्ष दर्ज किया है कि विवादित भूमि सरकारी मेडिकल कॉलेज के निर्माण के लिए आवंटित भूमि के बीच में स्थित है।

10. उपरोक्त दो दस्तावेजों के आधार पर, यह तर्क दिया जाता है कि दिनांक 5.11.2019 के आदेश में दर्ज निष्कर्ष अभिलेख के विपरीत हैं, इसलिए, निर्णय समीक्षा के योग्य है।

अनुवादित

11. वादी के अधिवक्ता को सुनने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्व मण्डलके निष्कर्ष कि वादी की भूमि राज्य सरकार द्वारा अधिग्रहित भूमि के बीच में स्थित है और बाद में, सरकारी मेडिकल कॉलेज के निर्माण के लिए आवंटित की गई है, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 5.11.2019 के आदेश को पारित करते हुए विचार नहीं किया गया है। जैसे, समीक्षा आवेदन अनुमति देने योग्य है और इसके द्वारा अनुमति दी जाती है और दिनांक 5.11.2019 के आदेश को वापस लिया जाता है और रिट याचिका को बहाल किया जाता है।

<u>रिट याचिका पर आदेश</u>

1. दिनांक 5.11.2019 के आदेश को वापस लेने के बाद, वादी के अधिवक्ता को सुनवाई का एक नया अवसर प्रदान किया गया है और रिट याचिका पर वादी गण के अधिवक्ता की सहमति से निर्णय लिया जा रहा है। वादी के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि चूंकि वादी का भूखंड राज्य सरकार द्वारा अधिग्रहित भूमि के बीच में स्थित है और सरकारी मेडिकल कॉलेज के निर्माण के लिए आवंटित किया गया है, इसलिए वादी को अपनी भूमि का उपयोग करने के लिए वंचित किया जा रहा है, क्योंकि वादी की भूमि के लिए कोई प्रवेश और निकास नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 300ए के तहत संपत्ति के अधिकार की गारंटी राज्य प्राधिकरण द्वारा उल्लंघन की जा रही है। आगे यह तर्क दिया गया है कि राज्य सरकार को भूमि का अधिग्रहण करना चाहिए और 2013 के नए अधिनियम में निहित प्रावधानों के अनुसार वादी को मुआवजे का भुगतान करना चाहिए।
2. रिट याचिका में बताए गए तथ्य यह हैं कि वादी गांव दौलतपुर, तहसील और जिला फिरोजाबाद में स्थित भूखंडसंख्या38/302 का भूमिधर है, जिसकी माप 0.230 हेक्टेयर है और उसका नाम राजस्व अभिलेख में विधिवत दर्ज है। वादी के पक्ष में 16.8.2010 को निष्पादित बिक्री विलेख की प्रति प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से दायर पूरक जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न की गई थी। उक्त बिक्री विलेख में यह तथ्य है कि वादी द्वारा 4,50,000/- रुपये का बिक्री प्रतिफल का भुगतान किया गया था और स्टांप शुल्क और पंजीकरण शुल्क के भुगतान के प्रयोजनों के लिए संपत्ति का मूल्य 4,55,000/- रुपये किया गया था। स्टाम्प शुल्क के भुगतान के प्रयोजनार्थ उक्त मूल्यांकन कलेक्टर द्वारा दिनांक 1-8-2010 से प्रभावी अपनी सूची में निर्धारित सकल दर के आधार पर किया गया था। वादी द्वारा 31,850 रुपये की स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया गया था।
3. उपरोक्त विक्रय विलेख के आधार पर राजस्व अभिलेख में वादी का नाम भूमिधर दर्ज किया गया।

अनुवादित

4. वादी का मामला यह है कि वादी द्वारा खरीदी गई भूमि अधिग्रहित भूमि से घिरी हुई थी। इस प्रकार, वादी के पास अपनी भूमि तक पहुंचने का कोई रास्ता नहीं है और वादी के लिए तदनुसार अपनी भूमि में प्रवेश करना असंभव हो जाता है। वादी ने उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 161 के तहत अपनी भूमि के आदान-प्रदान के लिए एक आवेदन दायर किया, जो सक्षम प्राधिकारी के समक्ष लंबित है, इस प्रकार, वादी ने 2013 की रिट याचिका संख्या 43249 दायर की, जिसमें वादी के आवेदन पर निर्णय लेने का निर्देश देने की प्रार्थना की गई, जो उसकी भूमि संख्या 38/302, क्षेत्र 0.230 हेक्टेयर को किसी अन्य भूमि के साथ बदलने के लिए है। उपरोक्त रिट याचिका का निपटारा इस न्यायालय द्वारा सक्षम प्राधिकारी को छह महीने की अवधि के भीतर अपनी भूमि के आदान-प्रदान के लिए वादी के अनुरोध की जांच करने के निर्देश के साथ किया गया था।

5. 2013 की रिट याचिका संख्या 43249 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 7.8.2013 के पूर्वोक्त आदेश के अनुपालन में, सहायक कलेक्टर (प्रथम श्रेणी)/उप कलेक्टर, सदर,फिरोजाबाद ने वादी के आवेदन को खारिज करते हुए दिनांक 23.9.2013 को एक आदेश पारित किया।

6. दिनांक 23.09.2013 के पूर्वोक्त आदेश से व्यथित होकर वादी ने आयुक्त, आगरा मंडल, आगरा के समक्ष उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियमकी धारा 331 के तहत 2012-13 की याचिका संख्या 47 को प्राथमिकता दी। वादी की उपरोक्त याचिका को भी अपर आयुक्त (न्यायिक), फिरोजाबाद द्वारा पारित दिनांक 30/01/2014 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

7. दिनांक 30.01.2014 के पूर्वोक्त आदेश से व्यथित होकर, वादी ने राजस्व मण्डलके समक्ष 2014 का पुनरीक्षण संख्या 26 दायर किया। राजस्व मण्डलके न्यायिक सदस्य ने एकपक्षीय आदेश दिनांक 27.05.2017 द्वारा वादी द्वारा दायर पुनरीक्षण की अनुमति दी और उप कलेक्टर द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.9.2013 और अतिरिक्त आयुक्त द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.1.2014 को रद्द कर दिया। राजस्व मण्डलने वादी की भूमि को गाटासंख्या53 के साथ समान क्षेत्र के साथ बदलने का आदेश पारित किया। राज्य सरकार ने कलेक्टर, फिरोजाबाद के माध्यम से राजस्व मण्डलके समक्ष 2014 के पुनरीक्षण संख्या 26 में समीक्षा आवेदन दायर किया। राजस्व मंडल ने अपने आदेश दिनांक 29.3.2016 द्वारा वर्ष 2014 के पुनरीक्षण क्रमांक 26 में पारित आदेश दिनांक 27.05.2015 के प्रभाव एवं

अनुवादित

संचालन पर रोक लगा दी। इसके बाद वादी ने पुनर्विचार आवेदन पर अपनी आपत्ति दर्ज की और मामला राजस्व मण्डलके समक्ष लंबित रहा।

8. इसके बाद वादी ने 2017 की रिट-बी संख्या 111 (अवधेश कुमार शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर की, जिसमें समीक्षा आवेदन में राजस्व मण्डलद्वारा पारित दिनांक 29.3.2016 के आदेश को चुनौती दी गई। इस न्यायालय ने राजस्व मण्डलको निर्देश के साथ रिट याचिका का निपटारा किया कि वह राजस्व मण्डलके समक्ष आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से छह सप्ताह की अवधि के भीतर 4.1.2017 के आदेश द्वारा समीक्षा आवेदन पर निर्णय ले।

9. इसके बाद वादी ने 2017 की रिट-बी संख्या 20986 (अवधेश कुमार शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर की, जिसमें रजिस्ट्रार राजस्व मण्डल के संचार को चुनौती दी गई, जिसमें राजस्व बोर्ड, लखनऊ के अध्यक्ष के आदेश को 2.2.2017 को सूचित किया गया, जिसके तहत 2014 के संशोधन संख्या 26 में राज्य द्वारा दायर समीक्षा आवेदन को डॉ. ललित वर्मा द्वारा सुनवाई करने का निर्देश दिया गया था। लखनऊ में न्यायिक सदस्य। राजस्व मण्डलके न्यायिक सदस्य डॉ.ललित वर्मा के विरुद्ध दुर्भावना के कतिपय आरोप लगाए गए थे।

10. इस न्यायालय ने दिनांक 26.5.2017 के एक आदेश द्वारा निम्नलिखित आदेश के साथ उक्त रिट याचिका का निपटारा किया:

> *"मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और प्रतिद्वंद्वी विवादों, आरोपों और प्रतिआरोपों में प्रवेश किए बिना, यह प्रदान किया जाता है कि छठे प्रतिवादी के नोट के साथ मामले का अभिलेख राजस्व बोर्ड, लखनऊ के अध्यक्ष के समक्ष रखा जाएगा, जो स्वयं अकेले या डिवीजन बेंच में बैठकर समीक्षा याचिका की सुनवाई करेंगे। वादी गण को सूचना देने के बाद। वादी के विद्वान अधिवक्ता ने वचन दिया कि वादी अनावश्यक स्थगन की मांग किए बिना कार्यवाही में सहयोग करेगा। उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ, रिट याचिका का अंततः निपटारा किया जाता है।"*

11. इसके बाद 2017 का एक और विविध एकल संख्या 22033 (भारत के संविधान के 227 के तहत याचिका) दायर की गई थी, जिसमें अध्यक्ष, राजस्व मंडल, लखनऊ को 2014 के संशोधन संख्या 26 की कार्यवाही को लखनऊ से इलाहाबाद स्थानांतरित करने और

अनुवादित

राजस्व मंडल, लखनऊ के अध्यक्ष को मामले की सुनवाई से प्रतिबंधित करने का निर्देश देने का आदेश या निर्देश देने की मांग की गई थी। उपरोक्त याचिका को अंततः इस न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश के साथ खारिज कर दिया था: -

> *"उपरोक्त के मद्देनजर, यह रिट याचिका खारिज कर दी गई है। अध्यक्ष, राजस्व बोर्ड, लखनऊ इलाहाबाद में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के संदर्भ में समीक्षा आवेदन पर निर्णय लेंगे।"*
> *इस संबंध में आदेश की प्रति अध्यक्ष, राजस्व मंडल, लखनऊ को भेजी जाएगी।*
> *इस स्तर पर, श्री नगर प्रस्तुत करते हैं कि वादी के लिए इलाहाबाद में इस न्यायालय से स्पष्टीकरण मांगने के लिए खुला छोड़ा जा सकता है, जिसने पहले रिट याचिका का फैसला किया है। यदि इस तरह का आवेदन स्वीकार्य और बनाए रखने योग्य है, तो इस न्यायालय से किसी निर्देश की आवश्यकता नहीं है।"*

12. राजस्व मंडल लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 19.1.2018 के आदेश के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि राजस्व मंडल, लखनऊ द्वारा जिला न्यायाधीश, फिरोजाबाद और निदेशक भूमि अधिग्रहण, उत्तर प्रदेश लखनऊ को यह निर्देश जारी किया गया था कि भूखंडसंख्या38/302 की भूमि का अधिग्रहण कैसे और किस परिस्थिति में नहीं किया गया था। हालांकि यह अधिग्रहित भूमि से घिरा हुआ है।

13. वादी ने 2018 की रिट याचिका संख्या 2976 दायर करके दिनांक 19.1.2018 के आदेश को चुनौती दी। उक्त रिट याचिका को भी इस न्यायालय ने दिनांक 19.3.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था।

14. वादी ने निम्नलिखित प्रार्थना के साथ वर्तमान रिट याचिका दायर की है:

> *(i) कि परमादेश की प्रकृति में जारी किए गए उपयुक्त आदेश या निर्देश द्वारा, माननीय न्यायालय प्रतिवादी को वादी की भूमि का अधिग्रहण किए बिना और उसे मुआवजा दिए बिना गांव-दौलतपुर, जिला-फिरोजाबाद में स्थित वादी के भूखंडसंख्या38/302 और 53 पर अतिक्रमण करने से रोकने की कृपा करेगा।*
>
> *(ii) परमादेश की प्रकृति में जारी एक उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश द्वारा, माननीय न्यायालय प्रतिवादीओं को 01.03.2015 से ब्याज और नुकसान के साथ नई भूमि*

अनुवादित

अधिग्रहण नीति के अनुसार वादी को भूमि के वास्तविक मूल्य का भुगतान करने का निर्देश देने की कृपा करेगा।

(iii) कि परमादेश की प्रकृति में जारी उपयुक्त रिट, आदेश या निदेश द्वारा माननीय न्यायालय द्वारा विनिदष्ट समय के भीतर वादी की भूमि वापस करने के लिए माननीय न्यायालय द्वारा प्रतिवादियों को निदेश देने की कृपा की जाए।

(iv) प्रतिवादियों के विरुद्ध वादी को रिट याचिका की लागत प्रदान की जाए;

(v) कोई अन्य उपयुक्त आदेश या निर्देश जो माननीय न्यायालय न्याय के अंत में और मामले की परिस्थितियों में उचित और उचित समझता है, कृपया इस मामले में वादी के पक्ष में और प्रतिवादीओं के खिलाफ जारी किया जा सकता है, इसके अलावा दावा की गई राहत के लिए प्रतिस्थापन या प्रतिस्थापन।"

15. प्रारंभ में रिट याचिका केवल इस प्रार्थना के साथ दायर की गई थी कि प्रतिवादीओं को वादी की भूमि प्राप्त किए बिना और उसे मुआवजा दिए बिना गांव दौलतपुर, जिला फिरोजाबाद में भूखंड संख्या 38/302 और 53 का अतिक्रमण करने से रोका जाए।

16. इसके बाद संशोधन द्वारा, नई भूमि अधिग्रहण नीति के अनुसार वादी को वास्तविक मूल्य के मुआवजे के भुगतान के साथ-साथ ब्याज और क्षति के साथ-साथ निर्माण को हटाने के बाद वादी को भूमि वापस करने की प्रार्थना की गई थी।

17. यह स्वीकार किया जाता है कि 101.01 एकड़ भूमि के आस-पास के अधिग्रहण के संबंध में धारा 4 के तहत एक अधिसूचना जारी की गई थी। उपरोक्त 101.01 एकड़ भूमि में से 95.60 एकड़ भूमि उत्तर प्रदेश स्टेट इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट कारपोरेशन के नाम दर्ज की गई थी और शेष 06.41 एकड़ भूमि कलेक्टर, फिरोजाबाद के नाम दर्ज की गई थी।

18. कलेक्टर, फिरोजाबाद के नाम दर्ज भूमि पर सरकारी मेडिकल कॉलेज का निर्माण वर्ष 2016 में शुरू हुआ था।

यह स्थापित करने के लिए अभिलेख पर कोई दस्तावेज नहीं है कि वादी की भूमि पर मेडिकल कॉलेज के किसी भी भवन का निर्माण करके वादी की भूमि का अतिक्रमण किया गया था। इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश के अनुसरण में, जिला न्यायाधीश,

अनुवादित

फिरोजाबाद और उसके अधीनस्थ अधिकारी द्वारा वादी की सहमति से भूमि लेकर वादी के साथ विवाद को निपटाने का प्रयास किया गया था। वादी और राज्य प्राधिकारियों के बीच बैठक आयोजित की गई और राज्य प्राधिकारियों ने वादी की भूमि के लिए बिक्री प्रतिफल के रूप में वादी को 1,65,60,000/- रुपये की राशि की पेशकश की।

19. जिला न्यायाधीशकी प्रतिवेदन दिनांक 15.5.2019 को पूरक जवाबी हलफनामे के अनुलग्नक 6 के रूप में दायर की गई है, जो यह स्पष्ट करती है कि वादी की भूमि को कृषि भूमि के रूप में मानते हुए 2015 के नए अधिनियम के अनुसार वादी को मुआवजा/बिक्री प्रतिफल की पेशकश की गई थी, क्योंकि भूमि आज तक राजस्व अभिलेख में कृषि भूमि के रूप में दर्ज है,लेकिन वादी ने दावा किया कि उसे अति वाणिज्यिक क्षेत्र के लिए तय दर पर मुआवजा दिया जाना चाहिए।

20. इस न्यायालय के आदेश के अनुसरण में की गई बातचीत/निपटान की विफलता के बाद, राज्य अधिकारियों ने वादी की भूमि की खरीद/अधिग्रहण नहीं करने का निर्णय लिया।

21. वादी या प्रतिवादीओं द्वारा दायर की गई कोई भी प्रतिवेदन यह स्पष्ट नहीं करती है कि राज्य प्राधिकरण या उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम ने वादी की भूमि पर कोई निर्माण किया है। पूरक जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न नक्शा यह स्पष्ट करता है कि वादी की जमीन अभी भी खाली है।

22. वादी ने दिनांक 16.8.2010 को पंजीकृत बिक्री विलेख द्वारा ₹4,50,000/- के बिक्री प्रतिफल का भुगतान करके भूमि खरीदी है और स्टाम्प शुल्क के प्रयोजनों के लिए भूमि का मूल्य ₹4,55,000/- है। वादी ने स्टांप शुल्क के रूप में 31,850 रुपये का भुगतान किया है। जमीन खरीदने के समय, वादी अच्छी तरह से जानता था कि भूमि अधिग्रहित भूमि से घिरी हुई है और भूमि पर कोई प्रवेश और निकास नहीं है। भूमि के आदान-प्रदान के लिए किए गए उसके सभी प्रयास विफल हो गए थे, क्योंकि वह अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत निहित प्रावधानों के अनुसार भूमि के आदान-प्रदान के हकदार नहीं थे।

23. वादी ने पूरी जानकारी होने का मौका लिया है कि खरीदी गई जमीन अधिग्रहित भूमि से घिरी हुई है। राज्य प्राधिकारियों ने वादी की भूमि लेने से मना कर दिया है क्योंकि यह उनके लिए उपयोगी नहीं है और उन्होंने विवादित भूमि पर कोई निर्माण भी नहीं किया है।

24. वादी दावा कर रहा है कि उसकी जमीन अधिग्रहित भूमि से घिरी हुई है और यह

अनुवादित

25. उसके लिए उपयोगी नहीं है। भूमि के सभी तथ्यों और स्थलाकृति को जानने के बाद, वादी ने ₹4,50,000/- में जमीन खरीदी है और ₹31,850/- की स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया है। वादी ने जोखिम लिया है और ₹4,81,850/- का निवेश किया है। वादी का मामला यह है कि भूमि उसके लिए उपयोगी नहीं है क्योंकि कोई प्रवेश और निकास नहीं है। राज्य प्राधिकरणों को वर्ष 1988 में राज्य सरकार द्वारा अधिग्रहित भूमि पर वादी को प्रवेश और निकास प्रदान करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है। हालांकि, न्याय के हित में, वादी को 2013 के अधिनियम की धारा 73 के तहत @ 9% ब्याज के साथ निवेश की राशि देकर मुआवजा दिया जा सकता है।

26. ऊपर बताए गए तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका को अंतिम रूप से प्रतिवादी संख्या 1 को इस निर्देश के साथ निपटाया जाता है कि वह बिक्री विलेख की तारीख से ब्याज सहित ₹4,50,000/+ ₹31,850/- का स्टाम्प शुल्क, यानी 16.8.2010 को भुगतान किए जाने की तारीख तक ब्याज का भुगतान करे और वादी को प्रतिवादी संख्या1 के पक्ष में उपरोक्त राशि प्राप्त होने पर बिक्री विलेख निष्पादित करने का निर्देश दिया जाए।

(2023) 2 ILRA 149

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 02.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन,

रिट सी संख्या 900/2023

श्रीमती लाली देवी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: दिनेश कुमार मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी:

सी.एस.सी., अनिलेश तिवारी, बीना किशोर, उमाशंकर सहाय

(ए) चुनाव - उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 - धारा 12-सी और 12 सी (6) - चुनाव पर प्रश्न उठाने के लिए आवेदन - उत्तर प्रदेश पंचायत राज (सदस्यों, प्रधान औरउप-प्रधानों का चुनाव नियम), 1994 - नियम 4 - निर्वाचन अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर) - यह रिटर्निंग ऑफिसर है जिसे जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रत्येक चुनाव में नियम, 1997 के अध्याय II के तहत आवश्यक कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता है - अधिनियम और नियमों में प्रदान किए गए तरीके से चुनाव को प्रभावी ढंग से संचालित करने के लिए आवश्यक सभी कार्य कारित करना। (पैरा 27)

ग्राम प्रधान के पद के लिए चुनाव - याचिकाकर्ता द्वारा विभिन्न आधारों पर चुनौती दी गई - मतगर्ना पर्यवेक्षक ने केवल वोटों के दो बंडलों की दोबारा गिनती की - रिटर्निंग ऑफिसर द्वारा जारी निर्देश के खिलाफ- चुनाव न्यायाधिकरण ने चुनाव याचिका का निस्तारण करते हुए वोटों की दोबारा गिनती का निर्देश दिया - याचिकाकर्ता ने एक रिट याचिका दायर की - न्यायालय पुनरीक्षण

अनुवादित

के उपाय के लिए उसे पदावनत कर दिया - पुनरीक्षण न्यायालय ने चुनाव न्यायाधिकरण के आदेश को निरस्त करते हुए पुनरीक्षण की अनुमति दी - विधिनुसार इसका निस्तारण करते हुए चुनाव याचिका को उसकी मूल संख्या में पुनर्स्थापित कर दिया। (पैरा-18)

(बी) चुनाव - नियम 1994 के नियम 4 - रिटर्निंग ऑफिसर के नियंत्रण - चुनाव के प्रभावी संचालन के लिए सभी कार्य और चीजें करने का कर्तव्य - रिटर्निंग ऑफिसर के निर्देश पर - मतगर्ना पर्यवेक्षक को रिटर्निंग ऑफिसर के निर्देशों का पालन करना आवश्यक था - सभी वोटों की गिनती रिटर्निंग ऑफिसर के निर्देशों के अनुसार की जानी चाहिए थी - ऐसा नहीं किया गया - चुनाव याचिका में विशिष्ट आधार लिया गया - चुनाव न्यायाधिकरण ने आपेक्षित आदेशों के माध्यम से सभी वोटों की दोबारा गिनती करने का निर्देश देना उचित था। (पैरा-28)

आयोजित: - पुनर्मतगणना का निर्देश देते समय चुनाव न्यायाधिकरण या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए कारणों में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है। याचिकाकर्ता द्वारा लिए गए आधार निरस्त कर दिए गए। हस्तक्षेप का कोई वाद नहीं प्राप्त होता है। (पैरा-34,35)

रिट याचिका निरस्त। (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:-

1. उदय चंद बनाम सूरत सिंह एवं अन्य (2009) 10 एससीसी 170,
2. अरिकाला नरसा रेड्डी बनाम वेंकट राम रेड्डी रेड्डीगारी और अन्य, (2014) 5 एससीसी 312
3. अमित नारायण राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2011 की रिट-सी संख्या 63380
4. राम आधार सिंह बनाम डी.जे., ग़ाज़ीपुर एवं अन्य 1985 एससीसी ऑनलाइन सभी 246
5. प्रेम शीला बनाम पी.ए./एस.डी.एम. एवं अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन सभी 5564

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित हुए श्री एच.जी.एस.परिहार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता जिनकी सहायता श्री दिनेश कुमार मिश्रा, विद्वान आधिवक्ता कर रहे हैं, प्रतिवादी संख्या 1 से 3 की ओर से उपस्थित हुए डॉ. उदय वीर सिंह, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता तथा प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से उपस्थित हुए श्री यू.एस.सहाय, विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह रिट याचिका निम्नलिखित मुख्य अनुतोषों हेतु प्रार्थना करते हुए दाखिल की गई है:-

(i) सिविल पुनरीक्षण संख्या *47/2022* - श्रीमती लाली देवी बनाम. एस.डी..एम.महोली व अन्य में विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश कोर्ट संख्या *2*/विशेष न्यायाधीश ई.सी.एक्ट, सीतापुर द्वारा पारित आदेश दिनांक *03.01.2023* जो इस याचिका का संलग्नक संख्या *1* है, में केवल पुनर्गणना के आदेश को अपास्त करने से इनकार करने की सीमा तक न्याय हित में उत्प्रेषण प्रकृति का एक रिट आदेश या निदेश जारी करें।

(ii) उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, *1947* की धारा *12 (*सी*)* के अंतर्गत प्रकरण संख्या *1678/2021 (*चुनाव याचिका संख्या *19/23)* महावीर बनाम श्रीमती लाली देवी व अन्य में उपजिलाधिकारी महोली/विहित प्राधिकारी जिला सीतापुर द्वारा पारित आदेश दिनांक *02.09.2022,* जो इस याचिका का संलग्नक संख्या *2* है, को निरस्त करते हुए न्याय हित में उत्प्रेषण प्रकृति का रिट आदेश या निदेश जारी करें।

(iii) दिनांक *23.01.2022-23* का विहित प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया आदेश, जो इस याचिका का संलग्नक संख्या *3* है, जिसके माध्यम से फिर से पुनर्गणना का आदेश जारी किया गया था,को अपास्त करने हेतु न्याय हित में उत्प्रेषण प्रकृति का एक रिट आदेश या निदेश जारी करें।

3. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत मामला यह है कि वर्ष 2021 में ग्राम प्रधान का चुनाव हुआ था। याचिकाकर्ता को ग्राम पीरपुर, ग्राम पंचायत दादाबाद, डाकघर- हथिया कासिमपुर, न्यायपंचायत उरदौली, विकास खंड महोली, तहसील- महोली जिला - सीतापुर के ग्राम प्रधान के रूप में निर्वाचित घोषित किया गया था। प्रतिवादी सं. 5 अर्थात् श्री महावीर ने उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 (इसके बाद "अधिनियम, 1947" के रूप में संदर्भित) की धारा 12-सी के अंतर्गत विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण के समक्ष चुनाव याचिका दायर की, जिसमें याचिका के चुनाव को चुनौती दी गई। चुनाव याचिका की एक प्रति रिट याचिका के संलग्नक 4 के रूप में दायर की गई है। विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण ने दिनांक 02.09.2022 के आदेश के अंतर्गत, जिसकी एक प्रति याचिका का संलग्नक 2 है, विभिन्न मुद्दों को तय करने के पश्चात मतों की पुनर्गणना के लिए निदेशित किया और चुनाव याचिका का निस्तारण कर दिया।

4. व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने एक रिट याचिका रिट-सी संख्या 6140/2022 - श्रीमती लाली देवी बनाम उ॰प्र॰ राज्य व अन्य दायर की और इस न्यायालय ने दिनांक 08.09.2022 के आदेश के अंतर्गत, जिसकी एक प्रति रिट याचिका का संलग्नक 6 है, याचिकाकर्ता को वैधानिक मंच के समक्ष अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी (6) के प्रावधानों के अंतर्गत पुनरीक्षण दायर करने की स्वतंत्रता के साथ रिट याचिका का निस्तारण कर दिया। ।

5. इसके अनुसरण में, याचिकाकर्ता ने विद्वान अपर जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, सीतापुर के न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण संख्या 47/2022 - लाली देवी बनाम एस.डी.एम. महोली एवं अन्य नामक एक पुनरीक्षण दायर किया। पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 22.09.2022 के आदेश के अंतर्गत, जिसकी एक प्रति रिट याचिका का संलग्नक 8 है, पुनरीक्षण को खारिज कर दिया।

6. याचिकाकर्ता ने व्यथित होकर रिट-सी संख्या 7328/2022 - लाली देवी बनाम. उ॰प्र॰ राज्य व अन्य नामक एक रिट याचिका दायर की और इस न्यायालय ने दिनांक 22.10.2022 के निर्णय और आदेश के माध्यम से, जिसकी एक प्रति रिट याचिका का संलग्नक 9 है, पुनरीक्षण न्यायालय

अनुवादित

द्वारा दिनांक 22.09.2022 को पारित आदेश को अपास्त कर दिया और पुनरीक्षण न्यायालय को मामले के त्वरित निस्तारण की आवश्यकता बताई।

7. इसके अनुसरण में, पुनरीक्षण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश दिनांक 03.01.2023 के अंतर्गत, जिसकी एक प्रति रिट याचिका का संलग्नक 1 है, याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया है और विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण के आदेश को उस सीमा तक अपास्त कर दिया है जहां तक इसने निदेश दिया कि चुनाव याचिका के अभिलेखों को पत्रावली का एक भाग बना दिया जाए। इसके अलावा, पुनरीक्षण न्यायालय ने चुनाव याचिका को उसकी मूल संख्या में बहाल कर दिया है और विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण को चुनाव याचिका विधि अनुसार त्वरित निस्तारित करने का निदेश दिया है।

8. इसके बाद, विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण ने आदेश दिनांक 23.01.2023 (त्रुटिवश टंकित 23.01.2022), जिसकी एक प्रति रिट याचिका का संलग्नक 3 है, के माध्यम से 07.02.2023 को पुनर्मतगणना का निदेश दिया है, जिसके लिए पर्याप्त सुरक्षा आदि की भी आवश्यकता है। दिनांक 23.01.2023 के आदेश को पूर्व आदेश दिनांक 02.09.2022 का हिस्सा बनाने का निदेश भी दिया गया है।

9. दिनांक 23.01.2023, 22.09.2022 और 03.01.2023 के आदेशों से व्यथित होकर यह रिट याचिका दायर की गई है।

10. उपरोक्त आदेशों को चुनौती देते हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने मुख्य रूप से निम्नलिखित आधार प्रस्तुत किये हैं, (ए) विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा कोई कारण दर्ज नहीं किया गया है कि पुनर्मतगणना का निदेश क्यों दिया गया है (बी) दिनांक 23.01.2023 के आदेश में, पूर्व आदेश दिनांक 02.09.2022 को आदेश का भाग बनाने के लिए इंगित किया गया है। यह तर्क दिया गया है कि विलय का सिद्धांत लागू होगा और इस प्रकार, एक बार पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 03.01.2023 के आदेश के अंतर्गत आंशिक रूप से संशोधन की अनुमति दे दी थी, जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 02.09.2022 का आदेश पुनरीक्षण न्यायालय के दिनांक 03.01.2023 के आदेश के साथ विलय हो गया और परिणामस्वरूप, विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण के लिए आक्षेपित आदेश दिनांक 23.01.2023 में यह निदेश देने का कोई अवसर नहीं हो सकता है कि दिनांक 02.09.2022 का आदेश इस आदेश का हिस्सा बनेगा। (सी) पुनर्मतगणना, जिसके लिए विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा निदेशित किया गया है, चुनाव को चुनौती देने वाले व्यक्तियों द्वारा अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के अंतर्गत याचिका दायर करते समय अनियमितताओं को इंगित करते हुए तर्क दिये जाने चाहिए थे और तर्कों के अभाव में विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा ऐसा अनियत आदेश नहीं दिया जा सकता है और न ही पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा इसे आंशिक रूप से बरकरार रखा जा सकता है। इस संबंध में, उदय चंद बनाम सूरत सिंह और अन्य, **(2009) 10 SCC 170,** अरिकाला नरसा रेड्डी बनाम वेंकट राम रेड्डीगारी व अन्य**, (2014) 5 SCC 312** के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर तथा इस न्यायालय द्वारा **09.04.2012** को निर्णीत रिट सी संख्या

अनुवादित

63380/2011 - अमित नारायण राय बनाम उ॰ प्र॰ राज्य व अन्य के मामले मे दिये गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है। (डी) आक्षेपित आदेश दिनांक 03.01.2023 के एक भाग में पुनरीक्षण न्यायालय ने दर्ज किया है कि आदेश दिनांक 02.09.2022 के विरुद्ध पुनरीक्षण एक अंतर्वर्ती आदेश होने के कारण पोषणीय नहीं है और आदेश के दूसरे भाग में, यह इंगित किया गया है कि पुनरीक्षण पोषणीय होगा, जो इस प्रकार इंगित करता है कि पुनरीक्षण न्यायालय स्वयं इस बारे में निश्चित नहीं था कि पुनरीक्षण पोषणीय था या नहीं (ई) पुनरीक्षण के ज्ञापन में दिए गए किसी भी आधार को पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण निर्णीत करते समय विचारण में नहीं लिया गया है और (एफ) जो निर्णय लिखित तर्क में इंगित किए गए थे उन पर भी पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है।

11. किसी अन्य आधार का उल्लेख नहीं किया गया है।

12. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री यू.एस.सहाय का तर्क है कि चुनाव होने और मतगणना होने के बाद, यह देखा गया कि मतगणना में कुछ अनियमितताएं थीं, जिसने प्रतिवादी संख्या 5 को पुनर्मतगणना हेतु आवेदन करने को मजबूर कर दिया। पुनर्मतगणना हेतु आवेदन को निर्वाचन अधिकारी द्वारा अनुमति प्रदान कर दी गई तथापि मतगणना पर्यवेक्षक ने केवल दो बंडल वोटों की दोबारा गिनती की, अन्य वोटों की नहीं। इस प्रकार निर्वाचन अधिकारी ही समग्र प्रभारी होता है और उसे प्रतिवादी संख्या 5 के आवेदन पर आदेश पारित करना था और वास्तव में उसने पुनर्मतगणना के उद्देश्य से एक आदेश पारित किया भी, जबकि मतगणना पर्यवेक्षक ने डाले गए पूरे वोटों के बजाय केवल दो बंडल वोटों की दोबारा गिनती कर अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया। यह भी तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा पुनर्मतगणना हेतु दायर आवेदन पर वादी द्वारा कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी।

13. चूंकि पुनर्मतगणना केवल दो बंडलों के संबंध में की गई थी, परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को एक वोट के आधार पर ग्राम प्रधान के रूप में निर्वाचित घोषित किया गया था। प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा पुनर्मतगणना हेतु दायर आवेदन पर विचार करते हुए और जिसकी वास्तव में निर्वाचन अधिकारी द्वारा अनुमति दी गई है, लेकिन मतगणना पर्यवेक्षक द्वारा इसका पूरी तरह से पालन नहीं किया गया है, इसने प्रतिवादी संख्या 5 को विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण के समक्ष चुनाव याचिका दायर करने के लिए मजबूर किया। उपरोक्त याचिका के प्रस्तर 5 और 6 पर विश्वास व्यक्त करते हुए यह तर्क दिया गया है कि यह आधार विशेष रूप से चुनाव याचिका में लिया गया था जो प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा दायर किया गया था और जिसे विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण का समर्थन मिला, जिसने सभी वोटों की पुनर्मतगणना करने का निदेश दिया है।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस आधार पर दिए गए तर्क पर कि मतों की गणना असावधानीपूर्वक नहीं की जानी चाहिए, इस मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा

अनुवादित

राम आधार सिंह बनाम जिला जज, गाजीपुर व अन्य, **1985 SCC OnLine All 246** के मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है साथ ही प्रेम शीला बनाम निर्धारित प्राधिकारी/ उपजिलाधिकारी व अन्य, **2019 SCC OnLine All 5564** के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिये गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है यह तर्क देने के लिए कि जिन स्थितियों में पुनर्मतगणना का निदेश दिया जा सकता है, उन पर इस न्यायालय के पूर्ण पीठ द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर विश्वास व्यक्त करते हुए विस्तार से विचार किया गया है और यह माना गया है कि जहां निर्वाचन याचिका की सुनवाई करने वाला न्यायालय प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि ऐसा आदेश जारी करना विवाद को सुलझाने और पक्षकारों के बीच पूर्ण और प्रभावी न्याय करने के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है, वहां पुनर्मतगणना का निदेश दिया जा सकता है।

15. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के इस तर्क के संबंध में कि पुनरीक्षण न्यायालय ने पुनरीक्षण में उठाए गए आधारों पर विचार नहीं किया और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के एक भाग में यह इंगित किया गया है कि पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है, जबकि आदेश के दूसरे भाग में यह इंगित किया गया है कि पुनरीक्षण पोषणीय है, यह प्रस्तुत किया जाता है कि जहां पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा यह मुद्दा उठाया गया था कि क्या पुनरीक्षण पोषणीय है या नहीं, पुनरीक्षण न्यायालय स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि पुनरीक्षण वास्तव में पोषणीय है और उसके बाद पुनरीक्षण को आंशिक रूप से स्वीकार किया है और इस प्रकार केवल इस तथ्य पर कि आधार (बी) पर विचार करते हुए जो पुनरीक्षण में लिया गया था, न्यायालय ने शायद सतही तौर पर पाया कि पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है, पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा मुद्दे पर विचार करने और निर्णय लेने के अधिकार क्षेत्र को नहीं छीनेगा।

16. जहां तक विलय के आधार की बात है, तो यह तर्क दिया गया है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने केवल पुनरीक्षण याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण को आंशिक रूप से ही स्वीकार किया है और केवल दिनांक 02.09.2022 के आदेश के उस हिस्से को ही अलग रखा है जिसके द्वारा चुनाव याचिका को अंततः निस्तारित कर दिया / पत्रावली का भाग बना दिया गया था, जिसका अर्थ है कि आदेश का शेष भाग अभी भी बरकरार है, जिसे विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 23.01.2023 के आदेश का हिस्सा माना जाना आवश्यक है। अतः, आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है और रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

17. विरोधी पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

18. विरोधी पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों और अभिलेखों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विचाराधीन गांव में ग्राम प्रधान पद के लिए चुनाव हुआ था। मतगणना के बाद प्रतिवादी संख्या 5 ने मतगणना में अनियमितताओं का हवाला देते हुए पुनर्मतगणना के लिए निर्वाचन अधिकारी को आवेदन दिया। यह स्वीकार्य है कि उक्त आवेदन पर याचिकाकर्ता द्वारा कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई थी। निर्वाचन अधिकारी ने डाले गए मतों की पुनर्गणना का निदेश दिया। हालांकि, मतगणना

अनुवादित

पर्यवेक्षक ने मतों के केवल दो ही बंडलों की गणना की। इसके बाद, याचिकाकर्ता को ग्राम प्रधान पद के लिए निर्वाचित घोषित किया गया। प्रतिवादी संख्या 5 ने विभिन्न आधारों पर याचिकाकर्ता के चुनाव को चुनौती देते हुए चुनाव याचिका दायर की, जिसमें एक आधार यह भी था कि जब निर्वाचन अधिकारी ने पुनर्मतगणना का निदेश दिया था, तो मतगणना पर्यवेक्षक ने केवल दो बंडलों की ही पुनर्गणना की, जो निर्वाचन अधिकारी द्वारा जारी निदेश के विरुद्ध था और इस प्रकार, अकेले इस आधार पर ही पुनर्मतगणना रद्द हो गई। अभिलेखों में प्रक्षेपण भी देखा गया है। उक्त आधार को विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण ने स्वीकार कर लिया, जिसने दिनांक 02.9.2022 के आदेश द्वारा पुनर्मतगणना का निदेश दिया और चुनाव याचिका का निपटारा किया। इससे व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने रिट याचिका दायर की लेकिन इस न्यायालय ने दिनांक 8.9.2022 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के अंतर्गत उपलब्ध पुनरीक्षण के उपचार के लिए पुनर्निर्देशित किया। याचिकाकर्ता ने पुनरीक्षण दायर किया और पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 22.9.2022 के आदेश द्वारा पुनरीक्षण को खारिज कर दिया, जिसके कारण याचिकाकर्ता को इस न्यायालय के समक्ष एक अन्य रिट याचिका दायर करनी पड़ी और इस न्यायालय ने दिनांक 22.10.2022 के निर्णय और आदेश द्वारा पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त कर दिया और पुनरीक्षण न्यायालय को नए सिरे से मामले को त्वरित निस्तारित करने का निदेश दिया। इसके अनुपालन में, पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 3.1.2023 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया और विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण के आदेश को उस सीमा तक अपास्त कर दिया जहां तक इसने निदेश दिया कि चुनाव याचिका के अभिलेखों को पत्रावली का भाग बना दिया जाए। पुनरीक्षण न्यायालय ने निर्वाचन याचिका को भी उसकी मूल संख्या पर बहाल कर दिया और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा आगे निदेश दिया गया कि वह निर्वाचन याचिका का निस्तारण विधि के अनुसार करे। इसके अनुपालन में, विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण ने दिनांक 23.01.2023 के आक्षेपित आदेश द्वारा दिनांक 07.02.2023 को पुनर्मतगणना कराने का निदेश दिया है और दिनांक 02.09.2022 के आदेश को भी दिनांक 23.01.2023 के आदेश का भाग बनाने का निदेश दिया है।

19. आक्षेपित आदेशों को उपरोक्तानुसार विभिन्न आधारों पर चुनौती दी गई है।

20. चुनौती का पहला आधार यह है कि माननीय निर्वाचन न्यायाधिकरण द्वारा पुनर्मतगणना का निदेश देने के कारणों को अभिलिखित नहीं किया गया है।

21. उक्त आधार स्पष्ट रूप से गलत है क्योंकि दिनांक 22.09.2022 और 23.01.2023 के आक्षेपित आदेशों के अवलोकन से यह इंगित होता है कि माननीय निर्वाचन न्यायाधिकरण ने इस तथ्य पर विचार किया है कि प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा पुनर्मतगणना के लिए दिए गए आवेदन को निर्वाचन अधिकारी ने स्वीकार कर लिया था क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा कोई आपत्ति नहीं दी गई थी और उसके बाद पुनर्मतगणना का निदेश दिया गया था। मतगणना पर्यवेक्षक जो निर्वाचन अधिकारी द्वारा पारित आदेश द्वारा और

अनुवादित

पुनर्मतगणना हेतु बाध्य थे, केवल दो मतपेटियों की मतगणना तक ही सीमित रहे, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को ग्राम प्रधान घोषित कर दिया गया। माननीय निर्वाचन न्यायाधिकरण को पुनर्मतगणना का निदेश देने के लिए जो कारण प्रभावी हुए हैं, वह यह है कि जब निर्वाचन अधिकारी का आदेश इस प्रकार मतों की पुनर्मतगणना के लिए था, तो मतगणना पर्यवेक्षक केवल दो मतपेटियों की पुनर्मतगणना तक ही सीमित नहीं रह सकता था बल्कि सभी मतों की गणना की जानी चाहिए थी, खासकर जब प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा दायर उक्त आवेदन पर याचिकाकर्ता द्वारा कोई आपत्ति नहीं दर्ज की गई थी। इस दृष्टिकोण से, यह न्यायालय चुनौती के आधार को वैध नहीं पाता है और तदनुसार उक्त आधार को खारिज किया जाता है।

22. चुनौती का अगला आधार यह है कि विलय का सिद्धांत लागू होगा और जब पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 03.01.2023 के आदेश द्वारा पुनरीक्षण को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया था, तो दिनांक 02.09.2022 का आदेश स्वतः ही पुनरीक्षण न्यायालय के दिनांक 03.01.2023 के आदेश के साथ संविलीन हो गया और निर्वाचन न्यायाधिकरण के लिए दिनांक 23.01.2023 के आदेश में यह निदेश देने का कोई अवसर नहीं रहा कि दिनांक 02.09.2022 का आदेश दिनांक 23.01.2023 के आदेश का भाग बनेगा।

23. इस संबंध में, दिनांक 23.01.2023 को पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश का अवलोकन यह दर्शाता है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 02.09.2022 को पारित सम्पूर्ण आदेश को अपास्त नहीं किया है, वरन केवल उसी आदेश को अपास्त किया है, जिसके द्वारा निर्वाचन न्यायाधिकरण ने मामले के अभिलेखों को पत्रावली का भाग बनाया था, जिसका अर्थ है कि आदेश का केवल वह भाग ही अपास्त किया गया था और शेष आदेश की पुष्टि की गई थी। अतः, विलय का सिद्धांत विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण के दिनांक 02.09.2022 के सम्पूर्ण आदेश पर लागू नहीं होगा। तदनुसार, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया यह आधार भी खारिज किया जाता है।

24. आक्षेपित आदेशों को चुनौती देने का अगला आधार यह है कि निर्वाचन याचिका में पुनर्मतगणना से संबंधित तर्क अनियत थे और ऐसे अनियत तर्कों के आधार पर पुनर्मतगणना का आदेश नहीं पारित किया जा सकता था।

25. प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा दायर निर्वाचन याचिका का अवलोकन करने से यह इंगित होता है कि प्रतिवादी संख्या 5 ने पुनर्मतगणना की आवश्यकता के विशिष्ट आधार स्पष्ट किए थे, यद्यपि यह विशेष रूप से कहा गया था कि प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा आवेदन दाखिल करने पर निर्वाचन अधिकारी ने उक्त आवेदन को पुनर्मतगणना कराने हेतु स्वीकार कर लिया था, लेकिन मतगणना पर्यवेक्षक ने स्वयं को मतों के दो बंडलों की पुनर्गणना तक ही सीमित रखा। जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है, मतगणना पर्यवेक्षक उत्तर प्रदेश पंचायत राज (सदस्यों, प्रधानो और उप प्रधानो का निर्वाचन) नियमावली, 1994 (इसके बाद "नियमावली, 1994" के रूप में संदर्भित) के नियम 4 को ध्यान में रखते हुए निर्वाचन अधिकारी के आदेशों से बाध्य था। इस

अनुवादित

संबंध में, निर्वाचन अधिकारी की शक्तियों के बारे में नियमावली, 1994 के नियम 4 पर विचार करना प्रासंगिक होगा।

26. सहूलियत के लिए, नियमावली, 1994 के नियम 4 को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"4. निर्वाचन अधिकारी *(1)* प्रत्येक पंचायत क्षेत्र के लिए, ग्राम पंचायत में कोई स्थान या स्थानों को भरने के लिए जिला मजिस्ट्रेट एक निर्वाचन अधिकारी *(*रिटर्निंग आफिसर*)* नियुक्त करेगा जो राज्य सरकार का अधिकारी होगा*:*

प्रतिबन्ध यह है कि एक पंचायत क्षेत्र से अधिक के लिए उसी व्यक्ति को निर्वाचन अधिकारी नियुक्त करने से जिला मजिस्ट्रेट को इस नियम की कोई बात निवारित नहीं करेगी।

(2) निर्वाचन अधिकारी इस अध्याय के अधीन अपेक्षित कृत्य करेगा और किसी भी निर्वाचन में उसका यह सामान्य कर्तव्य होगा कि यह वे सब कार्य और बातें करें जो अधिनियम और नियमावली द्वारा उपबन्धित रीति में निर्वाचन का प्रभावी रूप से संचालन करने के लिए आवश्यक हों।

(3) उपनियम *(2)* की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, राज्य निर्वाचन आयोग, यदि ऐसा करना आवश्यक समझे, आदेश द्वारा यह निदेश दे सकता है कि इस नियमावली के अधीन निर्वाचन अधिकारी की ऐसी शक्तियाँ, कर्त्तव्य और कृत्य, जो उसके द्वारा सामान्य अनुदेशों में विनिर्दिष्ट किए जायें, आदेश में यथाविनिर्दिष्ट ऐसे निर्बन्धनों और शर्तों के अधीन रहते हुए मतदान स्थल पर मतदान अध्यक्ष द्वारा प्रयोग की जायेगी या निर्वहन की जायेगी।*".*

27. नियमावली, 1994 के नियम 4 को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि यह निर्वाचन अधिकारी है जिसे जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रत्येक चुनाव के लिए नियुक्त किया जाता है, जो नियमावली, 1997 के अध्याय II के अंतर्गत आवश्यक कार्यों को पूरा करने के लिए और अधिनियम व नियमों में प्रदान किए गए तरीके से चुनाव को प्रभावी ढंग से आयोजित कराने के लिए आवश्यक सभी कार्य और चीजें करता है।

28. नियमावली, 1994 के नियम 4 को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि निर्वाचन अधिकारी के नियंत्रण में होने के कारण, मतगणना पर्यवेक्षक का यह कर्तव्य था कि निर्वाचन अधिकारी के निर्देशानुसार चुनाव के प्रभावी संचालन हेतु सभी कार्य और चीजें करे और इसलिए, मतगणना पर्यवेक्षक को निर्वाचन अधिकारी के निदेशों का पालन करना आवश्यक था और उसी के अनुसार सभी मतों की गणना निर्वाचन अधिकारी के निदेशों के अनुसार होनी चाहिए थी और ऐसा नहीं किया गया और निर्वाचन याचिका में एक विशिष्ट आधार लिया गया था, अतः, विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण द्वारा आक्षेपित आदेशों के माध्यम से सभी मतों की पुनर्गणना का निदेश देना विधि की दृष्टि में पूर्णतः सही था।

29. इस संबंध में, उदय चंद **(उपरोक्त), अरिकाला नरसा रेड्डी (उपरोक्त) और अमित नारायण राय (उपरोक्त)** के निर्णय, जिन पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विश्वास व्यक्त किया है, सभी इंगित करते हैं कि पुनर्मतगणना के लिए

एक निदेश दिया जा सकता है और न्यायालय के लिए मतपत्रों की दोबारा गिनती का आदेश देना न्यायसंगत होगा, जहां याचिका पर विचार करने वाला न्यायालय प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि विवाद का निपटारा करने और पक्षों के बीच पूर्ण और प्रभावी न्याय के लिए ऐसा आदेश देना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

30. इस संबंध में, यह उचित होगा कि शीर्ष न्यायालय द्वारा उदय चंद (उपरोक्त) के मामले में रखी गई धारणा को पुनः पेश किया जाए :-

11. पक्षों द्वारा वैधानिक प्रावधानों के संदर्भ में उठाए गए मुद्दे के गुण-दोषों पर विचार करने से पहले, निर्वाचन कानून में स्थापित इस महत्वपूर्ण सिद्धांत को ध्यान में रखना उचित होगा कि चूंकि मतपत्रों के निरीक्षण और पुनर्गणना का आदेश मतपत्र की गोपनीयता को प्रभावित करता है, इसलिए ऐसा आदेश नियमित रूप से नहीं दिया जा सकता है। निस्संदेह, पूरी चुनाव प्रक्रिया में, मतपत्र की गोपनीयता पवित्र और अक्षुण्ण है, सिवाय इसके कि गिनती में शुद्धता, उपयुक्तता और वैधता पर संदेह करने के लिए प्रथम दृष्टया मजबूत परिस्थितियाँ बनती हों।

12. मतपत्रों की गोपनीयता बनाए रखने का महत्व और किन परिस्थितियों में उस गोपनीयता को भंग किया जा सकता है, इस पर इस न्यायालय ने कई मामलों में विचार किया है। यह कहना बिल्कुल सही होगा कि निर्वाचन न्यायाधिकरण द्वारा मतपत्रों की जांच की अनुमति देने और पुनर्गणना का आदेश देने से पहले, दो बुनियादी आवश्यकताएं अर्थात्

(i) मतपत्रों की पुनर्गणना का अनुरोध करने वाली निर्वाचन याचिका में गणना में अनियमितता या गैरकानूनी होने के आरोपों पर आधारित सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का पर्याप्त विवरण होना चाहिए, और

(ii) आरोपों के समर्थन में पेश किए गए साक्ष्यों के आधार पर, न्यायाधिकरण को प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना चाहिए कि विवाद को निर्णायक रूप से सुलझाने और पक्षों के बीच पूर्ण और प्रभावी न्याय करने के लिए, ऐसा आदेश देना जरूरी है, पूरी होनी चाहिए।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

31. इसी तरह, शीर्ष न्यायालय ने अरिकला नरसा रेड्डी (उपरोक्त) के मामले में भी निर्णय दिया है:-

13. यह एक स्थापित कानूनी प्रकथन है कि निर्वाचन कानून से संबंधित वैधानिक आवश्यकताओं का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए, क्योंकि निर्वाचन विवाद एक वैधानिक कार्यवाही है जो आम कानून में अज्ञात है और इसलिए, समता का सिद्धांत आदि ऐसे विवाद में लागू नहीं होता है। निर्वाचन कानून में निर्धारित/आवश्यक सभी तकनीकी प्रक्रियाएं चुनाव प्रक्रिया की शुचिता की सुरक्षा हेतु प्रदान की गई हैं और न्यायालयों का कर्तव्य है कि इन्हें पूरी सख्ती से लागू करें और इनका न्यूनीकरण न करें। चुने जाने का अधिकार न तो मौलिक अधिकार है और न ही सामान्य कानूनी अधिकार, हालांकि यह लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के लिए बहुत मौलिक हो सकता है। इसलिए, निर्वाचन विवाद में उठाए गए हर सवाल का जवाब कानून के दायरे में ही सुलझाया जाना चाहिए। निर्वाचन

अधिकारी द्वारा घोषित परिणाम सरकार के गठन की ओर ले जाता है जिसके लिए चुनाव प्रक्रिया में स्थिरता और निरंतरता आवश्यक गुण है और इसलिए, मतपत्रों की गणना में प्रायः हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। और भी महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि मतपत्रों की पुनर्गणना आसान हो जाती है तो मतपत्र की गोपनीयता, जो कि पवित्र है, उजागर हो जाती है। जब चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के बीच का अंतर बहुत कम होता है तो न्यायालय को अधिक सावधान रहना पड़ता है। "संख्यात्मक सौभाग्य या अप्रत्याशित लाभ की तलाश में मतपत्रों की अवैध अस्वीकृति या प्राप्ति की खोज से बचना चाहिए, क्योंकि यह एक खतरनाक दिशाहीनता की ओर ले जा सकता है जो घोषित परिणामों को फिर से खोलने का अवसर प्रदान करके लोकतांत्रिक व्यवस्था को खतरे में डालता है।" हालाँकि, गलत गिनती या अवैधता की वास्तविक आशंका और न्याय की अन्य बाध्यताओं के कारण कठोर कदम उठाना पड़ सकता है।

14. न्यायालय द्वारा पुनर्गणना की अनुमति देने से पूर्व, निम्नलिखित शर्तें पूरी होनी चाहिए*:*

(i) न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि प्रथम दृष्टया मामला स्थापित है*;*

(ii) मतगणना में अनियमितताओं को बताते हुए महतावपूर्ण तथ्यों और पूर्ण विवरणों का उल्लेख किया गया है*;*

(iii) मतपत्रों की पुनर्गणना के आदेश के माध्यम से एक खुली और अंधाधुंध जांच का निर्देश नहीं दिया जाना चाहिए*;*

(iv) आपत्ति दाखिल करने का अवसर दिया जाना चाहिए*;* और

(v) मतपत्र की गोपनीयता की रक्षा की जानी चाहिए*."*

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया**)**

32. राम आधार सिंह **(उपरोक्त)** के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"11. राम सेवक यादव बनाम हुसैन कामिल किदवई *AIR 1964 SC 1249* के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने जनप्रतिनिधित्व अधिनियम के अंतर्गत उठने वाले एक समान प्रश्न पर विचार करते हुए निर्णय दिया कि निर्वाचन याचिका से संबंधित किसी प्राधिकरण या न्यायालय को तब तक गौर नहीं करना चाहिए या मतपत्रों के निरीक्षण का निर्देश नहीं देना चाहिए जब तक कि निम्नलिखित दो शर्तें सह-अस्तित्व में न हों*:*

(i) चुनाव को रद्द करने की याचिका में उन महत्वपूर्ण तथ्यों का पर्याप्त विवरण हो जिन पर याचिकाकर्ता ने अपने मामले के समर्थन में विश्वास व्यक्त किया था *(*याचिका निर्वाचन याचिका की विषयवस्तु के संबंध में लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा *83(1)* की आवश्यकता को पूरा करती हो*),* और

(ii) न्यायाधिकरण को प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना चाहिए कि विवाद को निपटाने और पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए मतपत्रों का निरीक्षण आवश्यक है*."*

12. इस संबंध में, सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने इस प्रकार टिप्पणी की*:*

"लेकिन याचिका में किए गए ऐसे अस्पष्ट तर्कों के समर्थन में मतपत्रों के निरीक्षण का आदेश नहीं दिया जा सकता है, जो महत्वपूर्ण तथ्यों से समर्थित नहीं है या ऐसे तर्कों का समर्थन करने के लिए साक्ष्य निकालने के लिए है। याचिकाकर्ता का मामला महत्वपूर्ण तथ्यों के आधार पर प्रावधान के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इस प्रकार प्रस्तुत किए गए मामले को स्थापित करने के लिए, यदि न्याय हित में आवश्यक हो, तो निःसंदेह निरीक्षण का आदेश दिया जा सकता है। लेकिन केवल यह आरोप लगाना कि याचिकाकर्ता को संदेह है या विश्वास है कि वोटों की कोई अनुचित प्राप्ति, इनकार या अस्वीकृति हुई है, निरीक्षण के आदेश का समर्थन करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा।"

13. भाभी बनाम शिव गोविंद, *AIR 1975 SC 2117* के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने राम सेवक के मामले *(उपरोक्त)* में निर्धारित मतपत्रों के निरीक्षण के सिद्धांतों को मंजूरी दी और डॉ. जगजीत सिंह बनाम ज्ञानी करतार सिंह*: AIR 1966 SC 773,* जितेंद्र बहादुर सिंह बनाम कृष्ण बिहारी *AIR 1970 SC 276,* शशि भूषण बनाम प्रोफेसर बलराज मधोक*: AIR 1972 SC 1251,* सुमित्रा देवी बनाम श्री शिव शंकर प्रसाद यादव *AIR 1973 SC 215,* बेलीराम भलाइक बनाम जय बिहारी लाल काची *AIR SC 283,* बलदेव सिंह बनाम तेजा सिंह*: AIR 1975 SC 693* और सुरेश प्रसाद यादव बनाम जय प्रकाश मिश्रा*: AIR 1975 SC 376* के मामलों में अपने निर्णयों पर गौर करने के बाद कोर्ट ने इस प्रकार कहा*:*

इस प्रकार समय-समय पर इस न्यायालय के विभिन्न प्राधिकारियों के बारीकी और सावधानीपूर्वक विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि न्यायालय द्वारा मतपत्रों के निरीक्षण, या उस मामले के लिए नमूना निरीक्षण की अनुमति देने से पहले निम्नलिखित शर्तें अनिवार्य हैं*;*

(1) मतपत्र की गोपनीयता बनाए रखना सर्वोपरि है और तुच्छ, अस्पष्ट एवं अनिश्चित आरोपों के आधार पर इसका उल्लंघन नहीं होने देना चाहिए।

(2) निरीक्षण की अनुमति देने से पहले निर्वाचित उम्मीदवार के खिलाफ लगाए गए आरोप स्पष्ट और विशिष्ट होने चाहिए तथा ठोस तथ्यात्मक बयानों द्वारा समर्थित होने चाहिए।

(3) न्यायालय को पुनर्मतगणना के लिए लगाए गए आरोपों की सत्यता के संबंध में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना चाहिए।

(4) न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि निरीक्षण का आदेश पक्षों के बीच पूर्ण न्याय सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है।

(5) न्यायालय को प्रदत्त विवेक का प्रयोग इस तरह से नहीं किया जाना चाहिए, जिससे आवेदक को चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए साक्ष्य खोजने के उद्देश्य से व्यापक जांच करने में सक्षम बनाया जा सके।

(6) नमूना निरीक्षण का आदेश किसी मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर पुनर्मतगणना के

लिए किए गए आरोपों की सत्यता के संबंध में न्यायालय के प्रथम दृष्टया संतुष्टि को और अधिक बल देने के लिए दिया जा सकता है, न कि साक्ष्य खोजने के उद्देश्य से।

14. भाभी के मामले *(उपरोक्त)* में निर्धारित सिद्धांतों को एन. नारायणन बनाम एस. सेमालइ*:* एआईआर *1980* एससी *206* के मामले में उस न्यायालय द्वारा पुनः लागू किया गया और उसका पालन किया गया, जिसमें उसने इस प्रकार अवलोकन किया

अंत में, जिन परिस्थितियों के अंतर्गत पुनर्गणना का आदेश दिया जा सकता था, उस विषय पर संपूर्ण निर्णय विधि को भाभी बनाम शेओ गोविंद*: 1975 SCR 202* के मामले में इस न्यायालय द्वारा पूरी तरह से संक्षेपित और सूचीबद्ध किया गया था, जिसमें हम में से एक *(फजल अली, जे.)* एक पार्टी थी और जिसे इस प्रकार निकाला जा सकता है*:*

न्यायालय केवल तभी मतपत्रों की पुनर्मतगणना का आदेश देने के लिए प्रेरित होगा, जब*:*

(1) निर्वाचन याचिका में अनियमितता या अवैध मतगणना के आरोपों पर आधारित सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का पर्याप्त विवरण उपलब्ध हो*;*

(2) प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर ऐसे आरोप प्रथम दृष्टया स्थापित हो जाएं, जिससे यह विश्वास करने का एक अच्छा आधार मिल सके कि मतगणना में कोई गलती हुई है*;* और

(3) याचिका की सुनवाई करने वाला न्यायालय प्रथम दृष्टया संतुष्ट हो कि ऐसा आदेश देना विवाद को निपटाने और पक्षकारों के बीच पूर्ण और प्रभावी न्याय करने के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

15. इस न्यायालय ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अंतर्गत उठने वाले मामलों में मतपत्रों की जांच और निरीक्षण की अनुमति देने के लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त सिद्धांतों को उ.प्र. पंचायत राज अधिनियम के अंतर्गत उठने वाले समान मामलों में भी लगातार लागू किया है। धनई प्रसाद बनाम उपजिलाधिकारी, चुनार, जिला मिर्ज़ापुर *1974 ALJ 371,* चरण सिंह बनाम उपजिलाधिकारी *1974 ALJ 748,* काली प्रसाद बनाम विहित प्राधिकारी *(एसडीओ),* प्रतापगढ़ *1980 ALJ 378* और मोहम्मद हुसैन बनाम एस.डी.ओ. शाहाबाद *1983 AWC 430* देखें। ।

16.....

17.....

18. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अंतर्गत उठाए जाने वाले मामलों में मतपत्रों के निरीक्षण के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित सिद्धांत को उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम के अंतर्गत निपटाए गए निर्वाचन याचिका पर लागू करते हुए, इस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता है कि उक्त अधिनियम के अंतर्गत निर्वाचन याचिका की सुनवाई करने वाले प्राधिकारी को मतपत्रों को देखने या निरीक्षण का निर्देश देने की अनुमति देने से पहले, निम्नलिखित दो शर्तों का एक साथ होना आवश्यक है*:*

(1) यह कि निर्वाचन को रद्द करने की याचिका में उन आधारों का उल्लेख हो, जिन पर प्रतिवादी

के निर्वाचन को चुनौती दी जा रही है, साथ ही साथ ऐसे आधारों पर चुनाव को चुनौती देने के औचित्य के लिए आरोपित परिस्थितियों का सारांश भी हो; और

(2) प्राधिकारी, उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर, प्रथम दृष्टया संतुष्ट हो कि ऐसा आधार मानने का कारण है और ऐसा निरीक्षण करना विवाद को निपटाने और पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है।"

33. जहां तक इस आधार की बात है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 03.01.2023 के एक भाग में पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 02.09.2022 के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण को पोषणीय अभिलेखित किया है, जबकि आदेश के दूसरे भाग में यह इंगित किया है कि यह पोषणीय नहीं है, यह कहा जा सकता है कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष तीन निर्धारण बिंदु थे, जिनमें से बिंदु (ए) यह था कि क्या पुनरीक्षण पोषणीय है। पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा इस आधार पर स्पष्ट रूप से पाया गया कि आक्षेपित आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण पोषणीय था। पुनरीक्षण न्यायालय ने दूसरे निर्धारण बिंदु पर विचार करते हुए, अर्थात् पुनर्मतगणना के आदेश की तर्कसंगतता और क्या उसी को केवल पुनरीक्षण में देखा जा सकता है, तर्क के उद्देश्य से केवल यह दर्ज किया कि यदि उक्त तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के दुरुपयोग के समान होगा, जो पुनरीक्षण न्यायालय को प्राप्त नहीं था। तथ्य यह है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने माना है कि दिनांक 02.09.2022 को विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण पोषणीय था। तदनुसार, उक्त आधार को भी खारिज किया जाता है।

34. जहां तक आधार (ई) और (एफ) का सवाल है कि पुनरीक्षण ज्ञापन में लिए गए आधार और लिखित कथन में इंगित किये गए निर्णयों पर पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है, तो यह कहना पर्याप्त है कि पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष यह मुद्दा था कि क्या निर्वाचन याचिका में उठाए गए आधार द्वारा पुनर्मतगणना के लिए मामला बनता है जैसा कि विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण द्वारा आदेश दिनांक 02.09.2022 के माध्यम से निदेशित किया गया है। याचिका में उठाए गए आधारों पर पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचार किया गया है जैसा कि उसके द्वारा बनाए गए निर्धारण बिंदुओं से स्पष्ट होता है। इसके बाद, पुनरीक्षण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि मतपत्रों की पुनर्मतगणना गुण-दोष के आधार पर निर्वाचन याचिका के निपटारे के लिए उचित और सटीक निर्णय पर पहुंचने का साधन है। वोटों की पुनर्मतगणना का निदेश देने के लिए आक्षेपित आदेश में विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण द्वारा लिए गए आधारों को पुनरीक्षण न्यायालय ने स्वीकार किया। इसके अलावा, पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष विचाराधीन मुद्दा केवल एक संक्षिप्त बिंदु था जो पहले से ही ऊपर उद्धृत निर्णयों द्वारा स्थापित है। पुनर्मतगणना का निदेश क्यों दिया गया है, इस संबंध में विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 02.09.2022 और 23.01.2023 के आदेशों में पर्याप्त कारण उभर कर आते हैं। इस प्रकार, इस न्यायालय को पुनर्मतगणना का निदेश देने के दौरान विद्वान निर्वाचन न्यायाधिकरण या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दर्ज

किए गए कारणों में कोई अवैधता या कमजोरी नहीं दिखाई देती है। तदनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा लिए गए उपरोक्त आधारों को भी खारिज किया जाता है।

35. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है। रिट याचिका खारिज की जाती है।

36. विद्वान स्थायी अधिवक्ता इस आदेश की प्रमाणित प्रति की प्रतीक्षा किए बगैर प्राधिकारियों को इस आदेश के बारे में सूचित करेंगे।

(2023) 2 ILRA 160

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा,

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार,

रिट सी संख्या 6210/2022

संलग्न

रिट सी संख्या 6534/2022

मेसर्स रेटोरिक टेक्नोलॉजीज प्रा. लिमिटेड और अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: आकाश प्रसाद, अमिताव सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., अजय कुमार, आयुष चौधरी, राकेश कुमार चौधरी, विवेक कुमार राय

(ए) भारतीय संविधान - अनुच्छेद 226 - संविदात्मक वाद में न्यायिक समीक्षा की सीमा - निविदा दस्तावेज की व्याख्या की प्रक्रिया - राज्य सरकार निविदा - आर.एफ.बी. (बोली के लिए अनुरोध) - धारा 2 के खंड 13 और 15 - नीलामीकर्ता को निर्देश, धारा 12 - अनुबंध की सामान्य शर्तें, धारा 12(1)(iii) - आर.एफ.बी. अनुबंध की तकनीकी शर्तों में निर्दिष्ट अन्य तकनीकी दस्तावेजों के साथ दायर किया जाना है, खंड-iii - "बोलीदाता दस्तावेज़", खंड 2 (एफ) - बोली दस्तावेज़ को कंपनी द्वारा अपने बोर्ड संकल्प के माध्यम से अधिकृत व्यक्ति द्वारा मुहर और हस्ताक्षरित किया जाना चाहिए - खंड 23 - बोलीदाताओं का प्रतिनिधित्व और वारंटी खंड 8 (एफ) - दस्तावेज जो बोलीदाता की तकनीकी बोली के साथ प्रस्तुत किए जाने हैं।

(बी) सरकारी निविदाओ में न्यायिक पुनरीक्षण की सीमा- सीमित - प्राधिकरण जो अनुबंध या निविदा जारी करता है और जिसने निविदा दस्तावेजों को लिखा है, वह सबसे अच्छा न्यायाधीश है कि दस्तावेजों की व्याख्या कैसे की जानी है - यदि दो व्याख्याएं संभव हैं तो लेखक की व्याख्या को स्वीकार किया जाना चाहिए - सिद्धांत समता और नैसर्गिक न्याय की दूरी पर रहना - न्यायिक समीक्षा की कार्यवाही में न्यायालय द्वारा व्याख्या का दूसरा अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए - विशेषज्ञ सलाहकारों के निर्णय में हस्तक्षेप - बोली लगाने वाले की तकनीकी योग्यता का वाद - उच्च न्यायालय को

अनुवादित

अपीलीय प्राधिकारी के रूप में पक्षों की तकनीकी बोलियों और वित्तीय बोलियों का स्वतंत्र रूप से निष्कर्ष पर आने के लिए मूल्यांकन नहीं करना चाहिए - जब तक कि किसी के पक्ष में दुर्भावनापूर्ण इरादे या पूर्वाग्रह, मनमानी, तर्कहीनता या विकृति की सीमाएं पूरी न हो जाएं - यदि निर्णय पूर्ण रूप से सार्वजनिक हित में लिया जाता है तो न्यायालय को आमतौर पर न्यायिक संयम बरतना चाहिए। (पैरा-15, 28, 29)

परिवहन विभाग ने बोली के लिए अनुरोध (आर.एफ.बी.) जारी किया - दो चरण की प्रक्रिया तकनीकी मूल्यांकन और वित्तीय बोली - निरीक्षण और प्रमाणन (1&सी) से संबंधित निविदा कार्य का पुरस्कार - वाणिज्यिक वाहन - सड़क योग्यता के प्रमाणीकरण का उद्देश्य - चुनौती - परिणामों का प्रकाशन - आर.एफ.बी. ने दस्तावेजों में किसी भी सुधार, कोई सुधार या परिवर्तन पर रोक लगा दी - संपादन प्राधिकारी को समीक्षा की शक्ति नहीं प्रदान की गई। (पैरा-1 से 7)

आयोजित:- बोली लगाने वालों के लिए निर्देश (धारा 2) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि बोली दस्तावेजों पर अधिकृत प्रतिनिधियों द्वारा मुहर और हस्ताक्षर किए जाने चाहिए, और परिवहन विभाग, यूपी सरकार सक्षम प्राधिकारी था। परिवहन आयुक्त केवल उत्तर प्रदेश सरकार का एक एजेंट था। न्यायालय की बोलीदाताओं की तकनीकी योग्यता का मूल्यांकन करने की क्षमता सीमित है, क्योंकि यह पहले से ही सक्षम प्राधिकारी और संपादन प्राधिकरण द्वारा गठित दो विशेषज्ञ समितियों द्वारा किया जा चुका है। (पैरा-31,36)

रिट याचिकाएँ निरस्त। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1.कन्हैयालाल अग्रवाल बनाम भारत संघ एवं अन्य, एआईआर 2002 सुप्रीम कोर्ट 2766

2. जी.जे. फर्नांडीज बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, 1990 (1) एससीआर 229

3. इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड पश्चिम बंगाल राज्य बनाम पटेल इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, 2001 खंड। 2 एससीसी पृष्ठ 451

4. एम.सी.यू. और अन्य. बनाम बी.वी.जी. इंडिया लिमिटेड एवं अन्य, 2018 वॉल्यूम 5 एससीसी 462

5. एन.जी. प्रोजेक्ट्स लिमिटेड बनाम विनोद कुमार जैन एवं अन्य ,2022 (6) एससीसी 127

6. पोद्दार स्टील कार्पोरेशन बनाम गणेश इंजीनियरिंग वर्क्स एवं अन्य, 1991 (3) एससीसी 273

7. एग्माटेल इंडिया प्रा. लिमिटेड बनाम रिसोर्सिस टेलीकॉम एवं अन्य ,2022 (5) एससीसी 362

8. गैलेक्सी ट्रांसपोर्ट एजेंसियां बनाम न्यू जे.के. रोडवेज, बेड़े के मालिक और परिवहन ठेकेदार, (2021) 16 एससीसी 808

9. एफकॉन्स इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड बनाम नागपुर मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2016) 16 एससीसी 818

10. सिल्पी कंस्ट्रक्शन कॉन्ट्रैक्टर्स बनाम भारत संघ, (2020) 16 एससीसी 489

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा,
एवं
माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार, द्वारा प्रदत्त)

<u>(मौखिक)</u>

अभ्यावेदन

1. रिट-सी संख्या 6210/ 2022 (अधिकृत प्रतिनिधि के माध्यम से मेसर्स रेटोरिक टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम प्रमुख सचिव, परिवहन विभाग के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य और 6 अन्य) के साथ रिट- सी संख्या 6534/2022 (अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के माध्यम से मैसर्स रोसमेर्टा टेक्नोलॉजीज लिमिटेड लखनऊ बनाम प्रमुख सचिव परिवहन के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य) को एक साथ सुना गया, क्योकि दोनों रिट याचिकाएं राज्य सरकार द्वारा लगभग समान आधार पर दिये गए एक ही निर्णय को चुनौती देती हैं ।

2. रिट याचिकाओं के माध्यम से बैठक दिनांक 23.06.2022 के कार्यवृत्त और दिनांक 27.07.2022/ 28.07.2022 के परिणामों के प्रकाशन को, उस सीमा तक जहाँ तक यह अर्हित है और इसमें प्रतिवादी संख्या 5, 6 और 7 है के कंसोर्टियम का नाम सम्मिलित है, को चुनौती दी गयी है। एक और प्रार्थना, प्रतिवादी संख्या 1 से 4 तक को निविदा मूल्यांकन समिति, जो परिवहन आयुक्त द्वारा गठित की गई थी, की संस्तुति, जिसकी प्रति परिवहन आयुक्त द्वारा अनुमोदन हेतु राज्य सरकार को भेजी गई थी तथा जिसके अनुसार निविदा को आगे बढ़ाने के लिए निदेश देने हेतु की गई है।

3. जब रिट-सी संख्या 6210/ 2022 दायर की गई, तो इस न्यायालय ने 12.09.2022 को एक विस्तृत अंतरिम आदेश पारित किया जो निम्नवत हैः-

"अधिवक्ता श्री विवेक कुमार राय, प्रतिवादी संख्या 5, 6 और 7 की ओर से उपस्थित हुए हैं। प्रस्तुत मामला वाणिज्यिक वाहनों की मार्ग योग्यता के प्रमाणीकरण के उद्देश्य से उनके निरीक्षण और प्रमाणन (I&C) से संबंधित कार्य हेतु निविदा प्रदान करने से संबंधित है।

याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जयदीप नारायण माथुर ने सहयोगी विद्वान अधिवक्तागण श्री आकाश प्रसाद, शांतनु सक्सेना और श्री अमिताव सिंह की सहायता से कथन किया है कि प्रतिवादी संख्या 5, जोन्यूनतम बोली प्रस्तुत करने वाले निविदादाता के रूप में चुने गए कंसोर्टियम के प्रमुख सदस्य हैं, ने निविदा दस्तावेजों के साथ आरएफबी जमा नहीं किया गया है, हालांकि "निविदा दस्तावेज", जैसा कि अनुबंध की सामान्य शर्तों की परिभाषा खंड के खंड 1 (iii) में परिभाषित किया गया है, का अर्थ है "आरएफबी के अतिरिक्त" अनुबंध के अन्तर्गत निविदाकर्ता द्वारा तैयार किए जाने वाले कुछ दस्तावेज । पुनः उन्होंने हमारा ध्यान तकनीकी बिड मूल्यांकन समिति के कार्यवृत्त की ओर आकर्षित किया है, जिसमें भाग लेने वाले निविदादाताओं की तकनीकी बिड के मूल्यांकन के बाद स्पष्ट रूप से प्रतिवादी संख्या 5 को तकनीकी रूप से अर्हक नहीं पाया गया था, जबकि उक्त समिति ने याचिकाकर्ताओं को अर्हक पाया है। श्री माथुर का यह भी तर्क है कि निबंधनों एवं शर्तों के अनुसार तकनीकी समिति द्वारा की गई किसी भी संस्तुति पर परिवहन आयुक्त,, उ.प्र. द्वारा विचार किया जाना चाहिए था न कि राज्य सरकार द्वारा। उन्होंने हमारा ध्यान प्रमुख सचिव, परिवहन की अध्यक्षता में आयोजित बैठक के कार्यवृत्त की ओर भी आकर्षित किया है, जिसके परिशीलन से पता चलता है कि सभी प्रतिभागियों की तकनीकी बिड के संबंध में 03.06.2022को

आहूत तकनीकी बिड मूल्यांकन समिति की संस्तुति उपरान्त प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा दिनांक 05.06.2022 को कोई अभ्यावेदन दिया गया था और उक्त अभ्यावेदन के आलोक में ही इस मामले पर परिवहन विभाग के प्रधान सचिव की अध्यक्षता वाली एक समिति द्वारा पुनः विचार किया गया था। पुनः श्री माथुर द्वारा तर्क दिया गया है कि तकनीकी बिड मूल्यांकन समिति द्वारा दिनांक 03.06.2022 को आयोजित बैठक में लिए गए निर्णय के अन्तर्गत की गई संस्तुति पर परिवहन आयुक्त द्वारा अभी तक विचार नहीं किया गया था और उक्त संस्तुति कभी प्रकाशित नहीं की गई थी और इस प्रकार, यह एक पहेली है कि यह सूचना याचिकाकर्ताओं को कैसे प्राप्त हुई जिससे उन्हें दिनांक 05.06.2022 को अभ्यावेदन देने का अवसर मिला । याचिकाकर्ताओं के अनुसार, पूरी निविदा प्रक्रिया को गोपनीय रखा जाना था और वर्तमान वाद में गोपनीयता का उल्लंघन हुआ है। उपरोक्त के साथ-साथ रिट याचिका में सम्मिलित सभी बिंदुओं पर भी विद्वान राज्य अधिवक्ता द्वारा कल अर्थात दिनांक 13.09.2022 तक निर्देश प्राप्त कर लिए जाएं ।

इस मामले को कल अर्थात 13.09.2022 को सूचीबद्ध करें।

हमें सूचित किया गया है कि निविदा प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात, प्रतिवादी संख्या 5 को लेटर ऑफ अवार्ड (LOA) अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है । तदनुसार प्रतिवादीगण को सलाह दी जाती है कि वे कल अर्थात 13.09.2022 तक इसे जारी न करें या इस पर कार्रवाई न करें।"

इसके बाद, विगत कुछ अवसरों पर यह वाद प्रस्तुत किया गया किन्तु गुण-दोष के आधार पर सुनवाई नही हो सकी और प्रतिवादियों द्वारा दायर स्थगन रद्द करने हेतु आवेदन लंबित रहे जबकि अंतरिम आदेश समय-समय पर विस्तारित किया गया। राज्य प्रतिवादीगण ने प्रार्थना की है कि मामले की सुनवाई की जाए और इसका शीघ्र निस्तारण किया जाए और पिछले तीन दिनों से हम इस पर सुनवाई कर रहे हैं।

4. याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत वाद यह है कि परिवहन विभाग, यू.पी. सरकार ने लखनऊ, उत्तर प्रदेश में वाहनों के संबंध में पाँच वर्ष की अवधि हेतु निरीक्षण और प्रमाणन केंद्र (इसके बाद 'आई एंड सी' के रूप में संदर्भित) के संचालन के लिए निविदा (इसके बाद 'आर.एफ.बी.' के रूप में संदर्भित) आमंत्रित की। आर.एफ.बी. निविदा प्रस्तुत करने का तरीका और पद्धति तथा निविदादाताओं हेतु आवश्यक आवश्यक अर्हकताएं निर्धारित करता है। निविदा प्रक्रिया दो चरणों में होनी निर्धारित थी। प्रथम चरण में सभी निविदादाताओं का तकनीकी मूल्यांकन किया जाना था। जो निविदादाता तकनीकी रूप से अर्हक पाए जाते उनकी वित्तीय बिड पर विचार किया जाना था। आर.एफ.बी. ने दस्तावेज एक बार प्रस्तुत करने के बाद उनमें कोई भी सुधार, या परिवर्तन वर्जित कर दिया। सभी दस्तावेज़ों को नोटरीकृत शपथपत्रों पर प्रस्तुत किया जाना था। क्रय प्राधिकारी को समीक्षा की कोई शक्ति नहीं दी गई थी।

5. याचिकाकर्ता - मेसर्स रेटोरिक टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री जे.एन. माथुर द्वारा सहयोगी अधिवक्तागण श्री अमिताव सिंह और श्री शांतनु सक्सेना की सहायता से यह कथन किया गया है

अनुवादित

कि दिनांक 17.01.2022 को एक पूर्व-निविदा बैठक आयोजित की गई थी, जिसमें 49 सुझाव दिए गए, तदोपरान्त विभाग द्वारा स्पष्टीकरण जारी किए गए। ऐसे शुद्धिपत्र/परिशिष्ट जारी होने के बाद निविदा जमा करने की तिथि बढ़ा दी गई थी। निर्धारित निविदाएं जमा करने के अंतिम दिन अर्थात दिनांक 19.04.2022 को याचिकाकर्ता के कंसोर्टियम और प्रतिवादी 5, 6 एवं 7 के कंसोर्टियम की निविदाओं सहित मात्र छह निविदाएं प्राप्त हुईं । तकनीकी स्तर पर निविदाओं के मूल्यांकन हेतु परिवहन आयुक्त द्वारा छह सदस्यीय तकनीकी समिति का गठन किया गया था। तकनीकी मूल्यांकन समिति की बैठक तीन तिथियों को हुई और तकनीकी मूल्यांकन समिति की बैठको का संयुक्त कार्यवृत्त 01.06.2022 को प्रकाशित किया गया, जिसके अनुसार समिति ने याचिकाकर्ता मेसर्स रेटोरिक टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड सहित मात्र तीन निविदाकर्ताओं को अर्हक पाया। उसके द्वारा प्रतिवादी संख्या 5 के नेतृत्व वाले कंसोर्टियम सहित तीन निविदादाताओं को अयोग्य घोषित कर दिया गया । दिनांक 05.06.2022 को, प्रतिवादी संख्या 5 के नेतृत्व वाले कंसोर्टियम ने प्रमुख सचिव/अपर मुख्य सचिव, उ. प्र. सरकार को इसकी कमी बताते हुए ई-मेल के माध्यम से अभ्यावेदन भेजा और परिवहन आयुक्त द्वारा गठित तकनीकी मूल्यांकन समिति के निर्णय की समीक्षा करने की मांग की।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि सभी निविदाकर्ताओं को न केवल अपनी तकनीकी और वित्तीय निविदा जमा करते समय अपितु निविदाओं के मूल्यांकन की प्रक्रिया के दौरान भी पूर्ण गोपनीयता बनाए रखनी थी और इसलिए यह समझ से परे है कि प्रतिवादी संख्या 5 - 7 को अपनी तकनीकी निविदाओं को अस्वीकार करने का कारण कैसे पता चला और उन्होंने प्रतिवादी संख्या 1को एक ई-मेल भेजा। प्रमुख सचिव, परिवहन ने 23.06.2022 को उनके द्वारा गठित एक नवीन तकनीकी मूल्यांकन समिति की बैठक बुलाई, जिसमें विगत तकनीकी मूल्यांकन समिति के दो सदस्य शामिल थे और नवीन समिति ने प्रतिवादी संख्या 5के नेतृत्व वाले कंसोर्टियम के प्रस्ताव पर विचार किया । यह तर्क दिया गया है कि इस प्रकार गठित समिति पूर्णतः अवैध थी और इसके द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया मनमानी थी क्योंकि राज्य सरकार के पास निविदा प्रक्रिया में किसी भी स्तर पर हस्तक्षेप करने की कोई शक्ति नहीं थी । प्रतिवादी सं. 1 ने स्वयं अपने में निहित अधिकार क्षेत्र से परे, तकनीकी बिड के पुनर्मूल्यांकन हेतु समिति का गठन किया और आर.एफ.बी के स्पष्ट प्रावधानों के विरुद्ध, उसने प्रतिवादी संख्या 5 के नेतृत्व वाले कंसोर्टियम को एक अन्य निविदादाता के साथ सफल घोषित किया, जिसे परिवहन आयुक्त द्वारा गठित पूर्व तकनीकी मूल्यांकन समिति द्वारा असफल घोषित किया गया था। प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा गठित समिति के तकनीकी मूल्यांकन का परिणाम दिनांक 27.07.2022 को घोषित किया गया था और उसी तिथि को, वित्तीय बिड खोली गईं और प्रतिवादी संख्या 5 के कंसोर्टियम को L1 घोषित किया गया, भले ही इसने I&C के संचालन हेतु असामान्य रूप से कम मूल्य उद्धृत किया था।

7. रिट याचिकाकर्ता- मेसर्स रेटोरिक टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड का वाद यह है कि जांच-पड़ताल के उपरान्त, प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रतिवादी संख्या 5-7 को अनुचित लाभ पहुँचाने हेतु शक्ति

के छद्दम प्रयोग का तथ्य ज्ञात हुआ । याचिकाकर्ता ने ऐसी अवैधताओं की शिकायत करते हुए मुख्यमंत्री को पत्र लिखा लेकिन कोई ध्यान नहीं दिया गया और अंततः याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका प्रस्तुत की।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कथन किया गया है कि प्रतिवादी द्वारा निर्गत आर.एफ.बी. के आधार पर, जिसकी प्रतिलिपि संलग्नक संख्या 2 के रूप में रिट याचिका में प्रस्तुत की गई है, कहा गया है कि धारा 2 के अन्तर्गत अर्थात निविदाकर्ताओं को निर्देश- खंड 2 (एफ) में स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि कंपनी द्वारा अपने बोर्ड संकल्प के माध्यम से विधिवत प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा निविदा दस्तावेज पर मुहर लगानी होगी और हस्ताक्षर करना होगा। कोई भी निविदा जो आर.एफ.बी. में निर्धारित नियमों और शर्तों का अनुपालन नहीं करती है और/ या प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित नहीं होने पर अस्वीकार कर दिया जाएगा।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि निविदा दस्तावेजों को परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन "निविदाकर्ताओं के दस्तावेजों" को परिभाषित किया गया है। उन्होंने धारा 12 में निहित अनुबंध की सामान्य शर्तों का उल्लेख किया है, जहाँ परिभाषा खंड, उप-खंड-iii में, "निविदाकर्ताओं के दस्तावेज़" को आर.एफ.बी. से अतिरिक्त, उन दस्तावेजों के रूप में वर्णित किया गया है, जिन्हें निविदाकर्ता द्वारा अनुबंध के अन्तर्गत तैयार किया गया है, जिसमें परिसीमा रहित ऐसे तकनीकी दस्तावेज़ और ऐसे डेटा, चित्र, डिज़ाइन, जानकारी, गणना आदि जो अनुबंध की तकनीकी शर्तों में निर्दिष्ट हों और कार्यों के निष्पादन से संबंधित या अन्यथा निष्पादन से संबंधित सुपाठ्य डेटा सहित अन्य सभी जानकारी और दस्तावेज़ अनुबंध सम्मिलित है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि चूँकि धारा 12(1) (iii) के अन्तर्गत परिभाषित "निविदादाताओं के दस्तावेज़" आर.एफ.बी. के साथ दाखिल किये जाने वाले अनुबंध की तकनीकी शर्तों में निर्दिष्ट अन्य तकनीकी दस्तावेजों संदर्भित करते है, अतः ऐसे आर.एफ.बी. को मुहरबंद और हस्ताक्षर कर तकनीकी बिड के साथ जमा करना था और ऐसी स्थिति की सही व्याख्या परिवहन आयुक्त की तकनीकी मूल्यांकन समिति द्वारा की गई थी जब उसने प्रतिवादी संख्या 5 के नेतृत्व वाले कंसोर्टियम को इस आधार पर अयोग्य घोषित कर दिया था कि आर.एफ.बी. दस्तावेज़ पर न तो हस्ताक्षर किए गए, न ही मुहर लगाई गई और न ही प्रतिस्पर्धी उत्तरदाताओं के तकनीकी दस्तावेजों/तकनीकी निविदा के साथ प्रस्तुत किया गया था।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि राज्य सरकार परिवहन आयुक्त द्वारा गठित तकनीकी मूल्यांकन समिति की बैठक की कार्यवृत्ति की समीक्षा करने में सक्षम नहीं थी क्योंकि धारा 12 के अन्तर्गत परिवहन आयुक्त को 'सक्षम प्राधिकारी' के रूप में परिभाषित किया गया है । यह प्रस्तुत किया गया है कि अनुबंध सफल निविदादाता और परिवहन आयुक्त के मध्य किया जाना था और सफल निविदादाता और परिवहन विभाग के मध्य करार का निष्पादन परिवहन आयुक्त के माध्यम से

अनुवादित

होना था जैसा कि धारा 1 अर्थात आर.एफ.बी. की प्रस्तावना में उल्लिखित है, जहाँ परिवहन आयुक्त को 'क्रय प्राधिकारी' के रूप में परिभाषित किया गया है, जो विहित प्रोफार्मा में निविदाकर्ताओं से निष्पादन हेतु ई-निविदाएं आमंत्रित करेगा, जो तदोपरान्त आर.एफ.बी. में निहित निबंधनों और शर्तों के आधार पर एक तकनीकी मूल्यांकन समिति का गठन करेगा।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निविदा दस्तावेज के खंड 23 का भी उल्लेख किया है जहाँ निविदादाताओं का प्रतिनिधित्व और वारंटी प्रस्तुत की गई है जो कि निविदादाता द्वारा परिवहन विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार को दिए गए वचन से संबंधित है, और यह तर्क दिया है कि चूँकि समस्त वचनबद्धता आर.एफ.बी. के अनुरुप और उसमें उल्लिखित नियमों और शर्तों पर दी जानी थी, इसलिए आर.एफ.बी. दस्तावेज़ को भी बोलीदाताओं द्वारा ही हस्ताक्षरित, मुहरबंद जमा करना होता था । उन्होंने भुगतान अनुसूची आदि के संबंध में विभिन्न शर्तों और आर.एफ.बी. में उल्लिखित वैधानिक दायित्वों का भी उल्लेख यह तर्क देने के लिए किया है कि जब तक निविदादाता आर.एफ.बी. पर हस्ताक्षर नहीं करता और इसे तकनीकी बिड के साथ प्रस्तुत नही करता, तब तक क्रय प्राधिकारी द्वारा यह नहीं माना जा सकता कि वह आर.एफ.बी. में उल्लिखित सभी शर्तों से सहमत है और विवाद की स्थिति में उनसे आबद्ध होने को तैयार था।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **कन्हैयालाल अग्रवाल बनाम भारत संघ और अन्य एआईआर 2002 उच्चतम न्यायालय 2766** (पैराग्राफ 6),में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें उच्चतम न्याायालय ने टिप्पणी की है कि जब निविदा की आवश्यक शर्त का अनुपालन नहीं किया जाता है, तो निविदा आमंत्रित करने वाले व्यक्ति के पास उसे अस्वीकार करने का अधिकार होता है । क्या कोई शर्त आवश्यक है या संपार्श्विक है, इसका निर्धारण उसके गैर-अनुपालन के परिणाम के संदर्भ में लगाया जा सकता है। यदि आवश्यकता पूरी न करने के परिणामस्वरूप निविदा को अस्वीकार कर दिया जाता है, तो यह निविदा का अनिवार्य हिस्सा होगा, अन्यथा यह **जी.जे. फर्नांडीज बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य 1990 (1) एससीआर 229** में दिए गए निर्णय पर अवलंब रखते हुए मात्र एक संपार्श्विक निबंधन है।

14. रिट-सी संख्या 6534/2022 में रिट याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि मेसर्स रोसमेर्टा टेक्नोलॉजीज लिमिटेड लखनऊ ने न केवल याचिकाकर्ता- मेसर्स रेटोरिक टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड के तकनीकी मूल्यांकन को चुनौती दी है अपितु अयोग्यता के आधार पर हरि फिलिंग सेंटर के नेतृत्व में कंसोर्टियम प्रतिवादी संख्या 5 से 7 तक को भी चुनौती दी है। याचिकाकर्ता रोसमेर्टा टेक्नोलॉजीज लिमिटेड की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश कुमार चौधरी ने बताया कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 5, दोनों के ही पास I&C को चलाने के लिए आवश्यक तकनीकी योग्यता और अनुभव का अभाव है और रोसमेर्टा टेक्नोलॉजीज लिमिटेड, जो पहले ही I&C को चलाने के लिए अर्हता प्राप्त कर चुका है और सक्षम पाया जा चुका है, के पास ऐसा करने के

अनुवादित

लिए आवश्यक अनुभव और क्षमता थी । उन्होंने प्रतिवादी संख्या 5 के नेतृत्व वाले कंसोर्टियम द्वारा वित्तीय निविदा में उद्धृत असामान्य रूप से कम मूल्य का उल्लेख किया है यहाँ तक कि क्रय प्राधिकारी, परिवहन आयुक्त ने भी प्रतिवादी संख्या 5 पर आई एंड सी चलाने के लिए कम मूल्य के संबंध में उसकी वचनबद्धता पर दृढ़ रहने की क्षमता के संबंध में संदेह व्यक्त किया है । उन्होंने राज्य सरकार की क्षमता संबंधी और तकनीकी बिड दस्तावेजों सहित आर.एफ.बी. प्रस्तुत करने संबंधी प्रश्न पर भी रेटोरिक टेक्नोलॉजीज लिमिटेड की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जे.एन. माथुर, द्वारा दिए गए तर्कों को मान लिया है।

15. श्री राकेश चौधरी ने सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है, जो निम्नवत हैं:-

i) पश्चिम बंगाल राज्य विद्युत बोर्ड बनाम पटेल इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2001 वॉल्यूम 2 एससीसी पृष्ठ 451 (प्रस्तर 24, 25, 27, 28, 31, 33, 34)

ii) नगर निगम उज्जैन एवं अन्य वी.बी.वी.जी. इंडिया लिमिटेड और अन्य 2018 वॉल्यूम 5 एससीसी 462 (प्रस्तर 42,43)

पश्चिम बंगाल राज्य विद्युत बोर्ड (उपरोक्त) के वाद में, उच्चतम न्याायालय ने कहा कि निविदा दस्तावेजों में उपेक्षापूर्ण त्रुटियों को साम्य के आधार पर ठीक करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जहाँ तथ्यों से यह संकेत मिलता है कि निविदा प्रस्तुति से पहले त्रुटि को ठीक करना निविदादाता के नियंत्रण से परे नहीं था, और वह सतर्क नहीं था, और उसने अवसर रहते सुधार करने की कोशिश नहीं की । निविदादाताओं हेतु निर्देशों का कड़ाई से पालन आवश्यक है और इसे रुढ़िवादी दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता है। सरकारी निविदाओं में न्यायिक समीक्षा का दायरा सीमित है, लेकिन इसका मतलब निविदादाताओं को निविदा दस्तावेजों में ऐसी त्रुटियों को ठीक करने की अनुमति देना नहीं हो सकता है, जो मात्र लिपिकीय या यांत्रिक नहीं थी, जबकि निविदा प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाले नियमों के अन्तर्गत ऐसे सुधारों की अनुमति नहीं थी । इसके अलावा, यह देखा गया कि न्यूनतम बिड प्रस्तुत करने वाले को अनुबंध देने की कोई बाध्यता नहीं है और सरकार या उसकी एजेंसी सदैव अगले न्यूनतम बिड प्रस्तुत करने वाले के साथ वार्ता करने और आर्थिक रूप से व्यवहार्य और पारस्परिक रूप से स्वीकार्य मूल्य तक पहुँचने का प्रयास करने के लिए स्वतंत्र है।

नगर निगम उज्जैन (उपरोक्त) में, उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की थी कि उच्च न्यायालय को सामान्यतः बिड प्रस्तुत करने वाले की तकनीकी योग्यता के मुद्दे पर विशेषज्ञ सलाहकारों के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जब परामर्शदाता ने निविदादाता के गैर निष्पादन के आधार सहित विभिन्न कारकों पर विचार किया था। अपीलीय प्राधिकारी के रूप में न्यायालय पक्षकारों की तकनीकी निविदाओं और वित्तीय निविदाओं का स्वतंत्र रूप से मूल्यांकन करने के लिए स्वतंत्र नहीं है, जब तक कि किसी की पक्षधरता हेतु दुर्भावना या पूर्वाग्रह, मनमानी, तर्कहीनता या विकृति की सीमाओं का उल्लंघन न हो। न्यायालय ने कहा कि यदि निर्णय पूर्णरुपेण सार्वजनिक हित में लिया गया है, तो सामान्यतः न्यायालयों को न्यायिक संयम बरतना चाहिए।

16. राज्य-प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित श्री राजेश तिवारी, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी

अनुवादित

अधिवक्ता ने विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री निशांत शुक्ला की सहायता से यह तर्क दिया है कि रेटोरिक टेक्नोलॉजीज में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दोनों तर्क जो सक्षम प्राधिकरण' और आर.एफ.बी. जमा करने की आवश्यकता के संबंध में तकनीकी अयोग्यता से संबंधित है, इस आधार पर अस्वीकार्य हैं कि आर.एफ.बी. प्रस्ताव मात्र एक आमंत्रण है । उन्होंने राज्य सरकार की शक्ति का उल्लेख किया है जो कि निविदा दस्तावेज की धारा 2 के खंड 13 और 15 अर्थात निविदाकर्ताओं हेतु निर्देश में उल्लिखित है। उन्होंने खंड 13 (डी) और (ई) का उल्लेख किया है जहाँ परिवहन विभाग, उ.प्र. सरकार निविदाकर्ताओं से स्पष्टीकरण मांग सकता है और परिवहन विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के पास ऐसे स्पष्टीकरण मांगने और वित्तीय बिड खोलने के समय से पहले मूल्यांकन कर तकनीकी मूल्यांकन को अंतिम रूप देने का अधिकार सुरक्षित था। उन्होंने धारा 2 के खंड 15 का भी उल्लेख किया है जहाँ परिवहन विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार किसी भी निविदा को स्वीकार या अस्वीकार करने, निविदा प्रक्रिया को रद्द करने और सभी निविदाओं को अनुबंध प्रदान करने से पहले किसी भी समय, ऐसी स्वीकृति/अस्वीकृति के लिए कोई कारण बताए बिना, प्रभावित निविदाकर्ता के प्रति कोई दायित्व वहन किए बिना एवं प्रभावित निविदादाताओं को ऐसी कर्रवाई के आधार के संबंध में सूचित करने के किसी दायित्व के बिना इस तरह के अवशिष्ट और पर्यवेक्षी अधिकार का प्रयोग यदि एक बार उ.प्र. सरकार द्वारा किया जाता है तब परिवहन विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा किसी भी निविदादाता को उनकी बिड अस्वीकार करने के लिए किसी भी मुआवजे का दावा करने के लिए हेतुक नहीं बताया जाएगा ।

17. राज्य प्रतिवादीगण हेतु उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अनुबंध की धारा 12 की सामान्य शर्तों के अन्तर्गत उल्लिखित 'सक्षम प्राधिकारी' की परिभाषा का भी उल्लेख किया है, जहाँ 'सक्षम प्राधिकारी' को परिवहन विभाग, उ.प्र. सरकार के रूप में परिभाषित किया गया है न कि परिवहन आयुक्त के रूप में।

18. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आर.एफ.बी. की परिभाषा का भी उल्लेख किया है जैसा कि धारा 12 (1) (XXIX) के अन्तर्गत प्रस्तुत है जहाँ आर.एफ.बी. से अभिप्राय परिवहन विभाग, उ.प्र. सरकार द्वारा ई-निविदा के माध्यम से लखनऊ में वाहन, निरीक्षण और प्रमाणन केंद्र की स्थापना के लिये जारी निविदा हेतु अनुरोध के रुप में परिभाषित किया गया है, और इसमें निविदा प्रक्रिया के दौरान समय-समय पर जारी किए गए अनुलग्नकों, अनुलग्नकों, अनुसूचियों, अनुभागों, प्रपत्रों, परिशिष्ट/शुद्धिपत्र और स्पष्टीकरण आदि के साथ निविदा दस्तावेज़ शामिल हैं,

19. राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने बताया है कि निविदा दस्तावेज में आर.एफ.बी. शामिल नही होगा किन्तु आर.एफ.बी. में निविदा दस्तावेज़ शामिल होगा, और तकनीकी मूल्यांकन के समय निविदाकर्ताओं द्वारा मात्र निविदा दस्तावेज़ प्रस्तुत किया जाना था और इस तथ्य को सक्षम प्राधिकारी यानी राज्य सरकार द्वारा गठित समिति की बैठक में स्पष्ट किया गया था, जिसके कार्यवृत्त को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है।

अनुवादित

20. राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान उन धाराओं की ओर आकृष्ट किया है जो तकनीकी दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के संबंध में प्रासंगिक हैं। उन्होंने खंड 8 (एफ) का उल्लेख किया है जो उन दस्तावेजों को संदर्भित करता है जिन्हें निविदादाता की तकनीकी बिड के साथ प्रस्तुत किया जाना है। खंड 8 (एफ) के अंतर्गत निहित तालिका 2, आर.एफ.बी. तकनीकी बिड के साथ जमा किए जाने की आवश्यकता की मांग नहीं करता है ।

21. राज्य प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि यदि निविदा दस्तावेज के अन्तर्गत मूल्यांकन समिति की रिपोर्ट प्रतिवादी क्रमांक 1 को प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं होता तो इसकी स्वीकृति हेतु परिवहन आयुक्त ने तकनीकी मूल्यांकन समिति की अनुशंसा राज्य सरकार की स्वीकृति हेतु कदापि प्रस्तुत न की होती । दिनांक 01.06.2022 को प्रकाशित परिणाम मात्र तकनीकी मूल्यांकन समिति की संस्तुति थी, न कि तकनीकी मूल्यांकन समिति द्वारा लिया गया निर्णय और इसलिए, इसे अनुमोदन हेतु सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था।

22. याचिकाकर्ता-रोज़मेर्टा टेक्नोलॉजीज लिमिटेड के विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश कुमार चौधरी द्वारा रेटोरिक टेक्नोलॉजीज या प्रतिवादी संख्या 5 - 7 तक की अनुभव संबंधी अक्षमता के संबंध में दिए गए तर्कों का उत्तर देते हुए यह तर्क दिया गया है कि परिवहन आयुक्त द्वारा गठित तकनीकी मूल्यांकन समिति की अनुशंसा को याचिकाकर्ता-रोसमेर्टा टेक्नोलॉजीज लिमिटेड द्वारा चुनौती नहीं दी गई है, अतः आई एंड सी को चलाने के लिए प्रतिवादी संख्या 5 से 7 की क्षमता को चुनौती देने के लिए कोई अन्य आधार लेने का अर्थ यह होगा कि पहली बार में ही चुनौती दिए बिना समग्र निविदा प्रक्रिया को सुलझा लिया गया है।

23. राज्य प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय द्वारा एन.जी.प्रोजेक्ट्स लिमिटेड बनाम विनोद कुमार जैन और अन्य 2022 (6) एससीसी 127; और उसके पैराग्राफ 13, 14, 15 और 23 में दिए गए निर्णय पर विश्वास जताया है । उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि किसी परियोजना का स्वामी या नियोक्ता, जिसने निविदा दस्तावेज तैयार किया हैं, उसकी आवश्यकताओं को समझने और उसके दस्तावेजों की व्याख्या करने हेतु सर्वोत्तम व्यक्ति है । अनुबंध के निबंधनों की व्याख्या के संबंध में और इस प्रश्न पर कि क्या अनुबंध में कोई विशेष निबंधन आवश्यक है या नहीं, नियोक्ता द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए । न्याायलयों को निविदाओं का अवलोकन करते समय किसी आवर्धक लेंस का उपयोग नहीं करना चाहिए और हर छोटी-मोटी त्रुटि को किसी बड़ी गलती के रूप में प्रदर्शित नहीं करना चाहिए । वास्तव में, न्यायालयों को अनुबंध के मामलों में सरकार और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को "उचित भूमिका" देनी चाहिए । न्यायालयों को वहाँ भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जहाँ इस तरह के हस्तक्षेप से सरकारी कोष को अनावश्यक क्षति हो और रिट याचिका पर विचार करते समय और/या स्थगन देते समय, जो अंततः सार्वजनिक परियोजनाओं के निष्पादन में विलम्ब का कारण बन सकता है, यह याद रखना चाहिए कि इससे परियोजनाओं के

अनुवादित

निष्पादन में गंभीर बाधा आ सकती है जो राज्य या उसकी एजेंसियों/संस्थाओं को नागरिकों के प्रति उनके संवैधानिक और कानूनी दायित्व का निर्वहन कर पाने में अक्षम कर सकती है । सर्वोच्च न्यायालय द्वारा टिप्पणी की गयी कि उच्च न्यायालय को ऐसी याचिकाओं पर विचार करते समय और/या ऐसे मामलों में स्थगन देते समय अपने विवेक का प्रयोग करते समय अत्यधिक सावधान और सतर्क रहना चाहिए। रिट न्यायालय को किसी निविदादाता की निविदा को स्वीकार करने या ना करने के संबंध में नियोक्ता के निर्णय पर अपना निर्णय थोपने से बचना चाहिए। न्यायालय के पास राज्य की वर्तमान आर्थिक गतिविधियों के नियमों और शर्तों की जांच करने की विशेषज्ञता नहीं है और इस सीमा का ध्यान रखा जाना चाहिए। न्यायालयों को तकनीकी मुद्दों से जुड़े अनुबंधों में हस्तक्षेप करने से और भी अधिक बचना चाहिए क्योंकि ऐसे विषयों पर निर्णय लेने हेतु आवश्यक विशेषज्ञता अपेक्षित होती है । न्यायालय को मात्र इस तथ्य की जाँच करनी चाहिए कि क्या निर्णय प्रक्रिया निविदा शर्तों द्वारा अपेक्षित प्रक्रिया का अनुपालन करने के उपरांत की गयी है । यदि न्यायालय को पता चलता है कि पूरी तरह से मनमानी हुई है या निविदा दुर्भावनापूर्ण रीति से प्रदान की गई है, तो न्यायालय को अनुबंध के निष्पादन पर रोक लगाने के बजाय पक्षकारों को दोषपूर्ण अपवर्जन हेतु क्षतिपूर्ति की मांग करने के लिए निर्देशित करना चाहिए । निविदा में व्यादेश या हस्तक्षेप से राज्य पर अतिरिक्त लागत आती है और यह सार्वजनिक हित के भी विरुद्ध है । सार्वजनिक सेवा के किसी भी अनुबंध में हल्के ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए और किसी भी मामले में व्यापक सार्वजनिक हित वाली सेवाओं की पूरी प्रक्रिया को अस्त-व्यस्त करने वाला कोई अंतरिम आदेश नहीं होना चाहिए ।

24. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री प्रशांत चंद्रा ने विद्वान अधिवक्ता सुश्री राधिका सिंह की सहायता से प्रतिवादी संख्या 5 से 7 की तरफ से निविदा दस्तावेज और उसमें संभावित निविदादाताओं और परिवहन विभाग के अधिकारियों के मध्य निविदा-पूर्व बैठक आयोजित करने की अपेक्षा का तथ्य इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया है । निविदा-पूर्व बैठक में प्रतिवादी संख्या 5 - 7 से इस विषय पर स्पष्टीकरण मांगा गया था कि क्या आर.एफ.बी. को तकनीकी बिड के साथ प्रस्तुत किया जाना था और विचार-विमर्श के दौरान यह तथ्य सामने आया था कि मात्र निविदा दस्तावेजों को निविदादाता के अधिकृत प्रतिनिधि द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित और मुहर लगाकर प्रस्तुत किया जाना था, न कि आरएफबी को, और इसलिए जैसे ही परिवहन आयुक्त द्वराा गठित तकनीकी मूल्यांकन समिति ने प्रतिवादी संख्या 5 से 7 के विरुद्ध अनुशंसा की, प्रतिवादी संख्या 5 से 7 ने परिकलित अनुमान लगाया कि चूँकि आर.एफ.बी. प्रस्तुत नहीं किया गया था संभवतः इसी आधार पर उन्हें अयोग्य घोषित कर दिया गया था। उन्होंने रिट याचिका संख्या 6210/ 2022 में प्रतिवादी संख्या 5 से 7 की ओर से दायर प्रतिशपथपत्र के प्रस्तर 11 का उल्लेख किया है जिसका याचिकाकर्ताओं- रेटोरिक टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड द्वारा कोई उत्तर नहीं दिया गया है । उन्होंने निविदा दस्तावेजों के खंड 7 (बी) और धारा 2 के खंड 8 (एफ) का भी उल्लेख किया है, जो निविदाकर्ताओं के लिए निर्देश है । खंड 7 (बी) तकनीकी निविदा प्रस्तुत करने को

अनुवादित

संदर्भित करता है और यह कहता है कि दस्तावेज़ आवश्यक सहायक दस्तावेजों के साथ आर.एफ.बी. में दिए गए प्रारूपों के अनुसार भरे जाएंगे । तकनीकी निविदा को अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित होना चाहिए और स्कैन कर ई-टेंडर पोर्टल पर अपलोड किया जाना चाहिए। क्लॉज 7 (बी) में दी गई तकनीकी निविदा प्रस्तुत करने की एकमात्र अपेक्षा यह थी कि निविदादाता को आर.एफ.बी. में दिए गए प्रारूपों में समस्त जानकारी भरनी होगी। तकनीकी बिड के साथ आर.एफ.बी की हस्ताक्षरित और मुहर लगी प्रति जमा करने की कोई आवश्यकता नहीं थी ।

25. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री प्रशांत चंद्रा ने भी खंड 8 (एफ) के संबंध में वह तर्क दोहराए हैं जो राज्य उत्तरदाताओं हेतु उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं, जहाँ तकनीकी बिड के साथ प्रस्तुत किए जाने वाले दस्तावेजों का उल्लेख एक तालिका के रूप में, नामतः तालिका-2, के रुप में किया गया है, जिसमें केवल मूल प्रमाणपत्रों की नोटरीकृत प्रतियां और निविदादाता द्वारा दिए जाने वाले नोटरीकृत शपथपत्र आदि की आवश्यकता होती है, जिसमें संबंधित निविदाकर्ता के अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित प्रारूप/फॉर्म (बी) में प्रस्तुत वचन पत्र भी सम्मिलित है। यह तर्क दिया गया है कि तालिका-2 में आरएफबी जमा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसमें बारह दस्तावेजों का उल्लेख किया गया है और ऐसी सभी बारह अपेक्षाओं को प्रतिवादी संख्या 5 - 7 द्वारा पूर्ण किया गया था।

26. राज्य सरकार की क्षमता के संबंध में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने राज्य उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को माना है और खंड 9 (सी) का उल्लेख किया है जो यह स्पष्ट करता है कि परिवहन विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के पास बिना किसी सीमा के, और किसी भी निविदादाता के प्रति कोई दायित्व उठाए बिना, स्वतंत्र रूप से किसी या सभी निविदाओं को अस्वीकार/स्वीकार करने सत्यापित करने और अयोग्य घोषित करने का अधिकार सुरक्षित था।

27. प्रतिवादी संख्या 5 - 7 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भी यह तर्क दिया गया है कि उनके द्वारा प्रस्तुत असामान्य रूप से कम कीमत वाली वित्तीय निविदा के संबंध में तर्कों का उनके द्वारा दिनांक 08.08.2022 को परिवहन आयुक्त को प्रस्तुत उत्तर में उचित उत्तर दिया गया है, जो कि सफल निविदादाता अर्थात प्रतिवादी संख्या 5 से 7 के पक्ष में की गई परिवहन आयुक्त की संस्तुति से स्पष्ट है । यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 08.08.2022 के पत्र में, प्रतिवादी सं. 5 - 7 ने यह स्पष्ट किया है कि उनके पास I&C चलाने के लिए विभिन्न राज्यों में पर्याप्त अनुभव है और वे उ.प्र. राज्य में भी प्रवेश करना चाहते हैं । अतः उन्होंने एक ऐसा मूल्य बताया है जो आकर्षक और संभवतः सबसे कम है, और उनके पास परिवहन विभाग की आवश्यकताओं के अनुसार I & C को चलाने के लिए पर्याप्त वित्तीय क्षमता है । प्रतिवादी सं. 5 - 7 ने यह भी स्पष्ट किया था कि चूँकि वे विभिन्न राज्यों में I&C चला रहे थे, इसलिए उनके पास तकनीकी जानकारी और योग्यता थी । इसके अलावा, वे एक राज्य अर्थात उ.प्र.. राज्य में काली सूची में डाले जाने के जोखिम से भी अवगत थे यदि वे आर.एफ.बी. के अन्तर्गत आवश्यक अवधि के लिए

अनुवादित

आई एंड सी को सफलतापूर्वक चलाने के अपने वचन को पूरा नहीं कर पाते हैं; और वे अनुबंध का पालन करना बीच में नहीं छोड़ेंगे क्योकि इस प्रकार, अन्य राज्यों में भी उनकी संभावनाएं धूमिल हो जाएंगी । प्रतिवादी सं. 5 से 7 ने I&C को चलाने के लिए पर्फारमेंस बैंक गारंटी दी थी, और यह भी जानते थे कि R.F.B के अन्तर्गत दी गई शर्तों के अनुसार I&C को चलाने में विफलता के मामले में ऐसी पर्फारमेंस बैंक गारंटी को जब्त किया जा सकता है । मात्र प्रतिवादी संख्या 5- 7 द्वारा अपने पत्र दिनांक 08.08.2022 के माध्यम से दिए गए अभ्यावेदन/स्पष्टीकरण के आधार पर ही परिवहन आयुक्त ने अपने पत्र दिनांक 16.08.2022 द्वारा प्रतिवादी संख्या 5 - 7 के कंसोर्टियम को अनुबंध प्रदान करने की अनुशंसा की थी, यह वित्तीय बिड में पाया गया सबसे कम बिड प्रस्तुत करने वाला/एल-1 भी है ।

28. प्रतिवादी संख्या 5 से 7 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है, नामतः-

i) पोद्दार स्टील कॉर्पोरेशन बनाम गणेश इंजीनियरिंग वर्क्स और अन्य 1991 (3) एससीसी 273 (प्रस्तर 6);

ii) एग्माटेल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम रिसोर्सिस टेलीकॉम और अन्य 2022 (5) एससीसी 362 (प्रस्तर 2, 24, 25, 28, 30)

पोद्दार स्टील कॉर्पोरेशन (उपरोक्त) मामले में, उच्चतम न्यायालय की टिप्पणी थी कि इसे सामान्य अवधारणा के रूप में नहीं माना जा सकता है कि निविदाएं आमंत्रित करने वाला प्राधिकरण नोटिस में उल्लिखित प्रत्येक निबंधन को सावधानीपूर्वक लागू करने के लिए बाध्य है, और वह कम या बिना महत्व की तकनीकी अनियमितता का अधित्याग करने का भी अधिकारी नहीं है। निविदा सूचना में आवश्यकताओं को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है- वे जो पात्रता की आवश्यक शर्तें निर्धारित करती हैं, और अन्य- जो शर्त द्वारा प्राप्त किए जाने वाले मुख्य उद्देश्य के साथ मात्र आनुषंगिक या सहायक हैं। पहले मामले में, निविदा जारी करने वाले प्राधिकरण को उन्हें सख्ती से लागू करने की आवश्यकता हो सकती है । अन्य मामलों में, प्राधिकरण के लिए यह खुला होना चाहिए कि वह उचित मामलों में शर्तों के सख्त शाब्दिक अनुपालन पर जोर न दे।

एग्माटेल (उपरोक्त) मामले में उच्चतम न्याायालय इस बिन्दु पर विचार कर रहा था कि क्या निविदा आमंत्रित करने वाले प्राधिकारी द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में हस्तक्षेप करना उच्च न्यायालय के लिए उचित था। उच्चतम न्यायालय ने हमारे सामने उद्धृत प्रस्तरों में इस आशय की टिप्पणियां कि संविदात्मक मामलों में न्यायिक समीक्षा का दायरा, और विशेष रूप से निविदा दस्तावेज़ की व्याख्या की प्रक्रिया के संबंध में, न्यायालय के विभिन्न पूर्व निर्णयों में विचार किया गया है और इस तथ्य का **गैलेक्सी ट्रांसपोर्ट एजेंसीज़ बनाम न्यू जे.के. रोडवेज, फ्लीट ओनर्स और ट्रान्सपोर्ट कॉन्ट्रैक्टर (2021) 16 एससीसी 808**; और **एफकॉन्स इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड बनाम नागपुर मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (2016) 16 एससीसी 818** में उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णयों का सन्दर्भ दिया है। निविदादाताओं द्वारा पूरी की जाने वाली आवश्यकताओं से संबंधित पात्रता शर्तों की निविदा आमंत्रित प्राधिकारी द्वारा प्रस्तुत व्याख्या में उच्च

अनुवादित

न्यायालय द्वारा हल्के ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि निर्णयों की एक श्रृंखला में उसने माना था कि निविदा दस्तावेज तैयार करने वाला प्राधिकारी उसकी आवश्यकताओं के मूल्यांकन हेतु सर्वोत्तम व्यक्ति है, और इस प्रकार न्यायिक समीक्षा कार्यवाही में किसी न्यायालय द्वारा इसकी व्याख्या का कोई अन्य अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए। संवैधानिक न्यायालयों को परियोजना के स्वामी द्वारा दी गयी निविदा दस्तावेजों की व्याख्या को तब तक स्वीकार करना चाहिए जब तक कि ऐसी व्याख्या या निविदा शर्तों की निबंधनो की प्रयोज्यता में दुर्भावना या विकृति न हो । यह संभव है कि किसी निविदा का स्वामी या नियोक्ता, निविदा दस्तावेजों की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करे जो संवैधानिक न्यायालयों को स्वीकार्य न हो, किंतु यह स्वयमेव उस प्रकार की गयी व्याख्या में हस्तक्षेप करने का कारण नहीं है ।

29. उच्चतम न्यायालय ने **सिल्पी कंस्ट्रक्शन कॉन्ट्रैक्टर्स बनाम भारत संघ (2020) 16 एससीसी 489** के निर्णय और उसके प्रस्तर 20 में इस आशय की टिप्पणियों का भी सन्दर्भ दिया है कि जो प्राधिकारी अनुबंध या निविदा जारी करता है और जिसने निविदा दस्तावेज तैयार किए हैं, वह इस तथ्य हेतु सर्वोत्तम न्यायाधीश है कि दस्तावेजों की व्याख्या कैसे की जानी है। यदि दो व्याख्याएँ संभव हों तो लेखक की व्याख्या अवश्य स्वीकार की जानी चाहिए । न्यायालय मात्र मनमानी, तर्कसंगतता, पूर्वाग्रह, दुर्भावना या विकृति को रोकने के लिए हस्तक्षेप करेंगे । *पुनः न्यायालय ने टिप्पणी की कि निविदाओं का मूल्यांकन करना और अनुबंध देना अनिवार्य रूप से व्यावसायिक कार्य हैं। साम्य और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत इससे कुछ लेना देना नहीं है। यदि अनुबंध देने से संबंधित निर्णय प्रामाणिक है और सार्वजनिक हित में है, तो न्यायालय न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप नहीं करेंगे, भले ही कोई प्रक्रियात्मक विचलन या मूल्यांकन में त्रुटि या निविदादाता के प्रति पूर्वाग्रह का प्रश्न ज्ञात होता हो। सार्वजनिक हित के मूल्य पर निजी हित की रक्षा के लिए, या संविदात्मक विवादों का निर्णय करने के लिए न्यायिक समीक्षा की शक्ति को लागू करने की अनुमति नहीं दी जाएगी । शिकायत करने वाला निविदादाता या ठेकेदार सदैव सिविल न्यायालय में क्षतिपूर्ति की मांग कर सकता है । असफल निविदादाताओं द्वारा काल्पनिक शिकायतों, आहत अभिमान और व्यावसायिक प्रतिद्वंद्विता के साथ, कुछ तकनीकी/प्रक्रियात्मक उल्लंघन या स्वयं के प्रति कुछ पूर्वाग्रहों की राई को पहाड़ बनाने और न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करके न्यायालयों को हस्तक्षेप करने के लिए मनाने के प्रयासों को हतोत्साहित किया जाना चाहिए । इस तरह का हस्तक्षेप चाहे वह अंतरिम हो या अंतिम, वर्षों तक सार्वजनिक कार्यों या हजारों और लाखों लोगों की राहत और सहायता को रोक सकता है और परियोजना लागत को कई गुना बढ़ा सकता है । इसलिए, किसी न्यायालय को न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए निविदा या संविदात्मक मामलों में हस्तक्षेप करने से पहले, उसे स्वयं से निम्नलिखित प्रश्न पूछना चाहिए:*

(i) क्या अधिकारियों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया या लिया गया निर्णय दुर्भावनापूर्ण है और इसका उद्देश्य किसी की पक्षधरता है;

या

क्या अपनाई गई प्रक्रिया या लिया गया निर्णय इतना मनमाना और अतार्किक है कि न्यायालय कह सके कि "यह निर्णय ऐसा है जिसे कोई भी

अनुवादित

जिम्मेदार प्राधिकारी उचित रूप से और प्रासंगिक कानून के अनुसार न ले पाता";

(ii) क्या जनहित प्रभावित होता है ।

यदि उत्तर नकारात्मक हैं, तो अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए ।

30. इस न्यायालय को सभी पक्षकारों के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के माध्यम से संदर्भित किया गया है, जिनका उल्लेख मात्र अभिलेख के उद्देश्य से किया गया है क्योंकि यह न्यायालय रिट-सी संख्या 6210/ 2022 और रिट-सी संख्या 6534/2022 के याचिकाकर्ताओं द्वारा वाद में प्रस्तुत तर्को द्वारा रेखांकित तथ्यात्मक पक्ष से संतुष्ट नहीं है ।31. इस न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर सम्यक विचारोपरांत एवं निविदा दस्तावेजों के परिशीलन में भी यह पाया है कि निविदादाताओं हेतु निर्देश (धारा 2) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मात्र निविदा दस्तावेजों पर कंपनी/निविदादाता के विधिवत अधिकृत प्रतिनिधि द्वारा मुहरबंद एवं हस्ताक्षरित किया जाना चाहिए, निविदा दस्तावेजों में आर.एफ.बी. शामिल नहीं था किन्तु आर.एफ.बी. में निविदा दस्तावेज़ सम्मिलित था । इसके अतिरिक्त परिवहन विभाग, उ.प्र. सरकार निविदा दस्तावेज़ के अन्तर्गत परिभाषित सक्षम प्राधिकारी है और परिवहन विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार किसी भी या सभी निविदाओं को स्वतंत्र रूप से सत्यापित करने, अयोग्य घोषित करने/अस्वीकार करने या स्वीकार करने का अधिकार सुरक्षित था। परिवहन आयुक्त भले ही क्रय प्राधिकारी रहे हो, लेकिन अनुबंध उत्तर प्रदेश सरकार के नाम पर परिवहन आयुक्त द्वारा निष्पादित किया जाना था । यह उ.प्र. सरकार का एजेंट मात्र थें और जब मालिक स्वयं द्वारा व्याख्याकृत निविदा दस्तावेजों के आधार पर एक विशेष तरीके से कार्य करने का निर्णय लेता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने परिवहन आयुक्त द्वारा लिए गए निर्णय की समीक्षा के लिए एक समिति का गठन कर अपने अधिकार क्षेत्र का उलंघन किया है। 32. इस न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 5 - 7 द्वारा दिए गए प्रतिशपथ-पत्र में प्रस्तुत तर्कों का अध्यन किया है जो निविदाकर्ताओं और राज्य प्रतिवादीगण के मध्य आयोजित निविदा-पूर्व बैठक और प्रतिवादी संख्या 5 - 7 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए विशिष्ट तर्कों से संबंधित है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया था कि आरएफबी को निविदा दस्तावेजों के साथ प्रस्तुत नहीं किया जाना था, जिसका किसी भी याचिकाकर्ता यानी मेसर्स रेटोरिक टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड और मेसर्स रोसमेर्टा टेक्नोलॉजीज लिमिटेड लखनऊ द्वारा विरोध नहीं किया गया है । अतः इसे याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए गोपनीयता के मुद्दे के समाधान के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए ।

33. इस न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ताओं मेसर्स रेटोरिक टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड द्वारा उठाए गए दोनों तर्क अस्वीकार्य है, अतः रिट सी संख्या 6210/2022 खारिज किए जाने योग्य है ।

34. चूँकि, मेसर्स रोसमेर्टा टेक्नोलॉजीज लिमिटेड, लखनऊ ने, तकनीकी बिड के मूल्यांकन के मामले में हस्तक्षेप करने की राज्य सरकार की क्षमता के संबंध में और तकनीकी बिड दस्तावेजों के साथ

अनुवादित

आर.एफ.बी. प्रस्तुत किये जाने की आवश्यकता के संबंध में, मेसर्स रेटोरिक टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड के विद्वान अधिवक्ता के दोनों तर्कों को स्वीकार किया है, जिन्हें अस्वीकार्य पाया गया है। अतः इन आधारों पर सरकार द्वारा लिए गए निर्णय के सम्बन्ध में मेसर्स रोसमेर्टा टेक्नोलॉजीज लिमिटेड लखनऊ द्वारा दी गयी चुनौती भी खारिज करने योग्य है ।

35. चूँकि, मेसर्स रोसमेर्टा टेक्नोलॉजीज लिमिटेड लखनऊ ने प्रतिवादी संख्या 5 - 7 के अनुभव और अन्य तकनीकी योग्यताओं के संबंध में तकनीकी मूल्यांकन समिति दिनांक 01.06.2022 की अनुशंसा को चुनौती नहीं दी है, अतः यह न्यायालय प्रतिवादी संख्या 5 - 7 की क्षमता या अनुभव के मामले या अन्यथा के संबंध में कोई टिप्पणी करना आवश्यक नहीं समझता है ।

36. यह न्यायालय प्रत्येक निविदाकर्ता की तकनीकी अर्हताओं का मूल्यांकन करने की अपनी क्षमताओं में स्वयं को अन्यथा भी सीमित पाता है क्योंकि इसका मूल्यांकन सक्षम प्राधिकारी और क्रय प्राधिकारी द्वारा गठित दो विशेषज्ञ समितियों द्वारा पहले ही किया जा चुका है।

37. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, दोनों रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं ।

(2023) 2 ILRA 172

मूल न्यायाधिकार

सिविलपक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

रिट सी संख्या 7616/2020

भरत सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: मोहन सिंघा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

(ए) सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 47ए - मूल्यांकन - धारा 56 अपील, उत्तर प्रदेश (संपत्ति का मूल्यांकन) नियम, 1997 - नियम 7(3)(सी) - पूर्व सूचना, उत्तर प्रदेश राज स्वसंहिता, 2006 (उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 143) - धारा 80- औद्योगिक, वाणिज्यिकया आवासीय उद्देश्यों के लिए जोत का उपयोग - केवल आकस्मिक परिस्थिति में किसी निर्धारिती के मौके पर निरीक्षण के समय उपस्थित होने पर पूरी तरह से अप्रासंगिक होगा। (पैरा-9,10)

याचिकाकर्ता द्वारा दो भूखंड क्रय किए- हस्तांतरण विलेख द्वारा - प्रकृति में आवासीय माना जाता है - हस्तांतरण दस्तावेज में कृषि के रूप में दर्शाया गया - अतिरिक्त स्टांप शुल्क लगाया गया है - उपरजिस्ट्रार द्वारा याचिकाकर्ता स्थल निरीक्षण रिपोर्ट-कोई पूर्व सूचना नहीं - विलेख निष्पादन के पश्चात स्थल निरीक्षण किया गया -संपत्ति पर स्थायी निर्माण- संपत्ति का भाग जो विक्रय विलेख का विषय था - आदेश द्वारा स्थल निरीक्षण के माध्यम से गैर-कृषि घोषित किया गया - स्थल निरीक्षण देरी से किया गया- विपक्षी ने रिट याचिका में आपत्ति से इनकार नहीं किया। (पैरा-1से12)

अधिवक्ता

आयोजित: -आक्षेपित आदेश नियम1997 के नियम 7(3)(सी) और रामखेलावन के मामले में न्यायालय और अंबरीश टंडन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश दोनों का उल्लंघन हैं। अतः विपक्षीगण संख्या 3 एवं 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 28 मार्च 2018 एवं 11 दिसम्बर 2019 को निरस्त किया जाता है। (पैरा- 13 से 16)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. रामखेलावन@ बच्चा बनाम सेंट ऑफ उ.प्र. एवं अन्य, 2005 (23) लखनऊ सिविल खंडपीठ168
2. गंगाराम बनाम उत्तरप्रदेश राज्य एवं अन्य, 2020 (38) एलसीडी 1991
3. अंबरीश टंडन एवं अन्य, (2012) 5 एससीसी 566

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता और प्रतिपक्षियों की ओर से पेश होने वाले राज्य के अधिवक्ता को सुना। याचिका स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 47-ए के तहत पारित दिनांक 28 मार्च, 2018 के आदेश के साथ-साथ अधिनियम की धारा 56 के तहत पारित 11 दिसंबर, 2019 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता पर 22 अगस्त 2015 को हस्तांतरण विलेख के माध्यम से खरीदे गए दो भूखंडों के संबंध में अतिरिक्त स्टांप शुल्क लगाया गया है। जिसे आवासीय प्रकृति का माना गया है, हालांकि इसे हस्तांतरण के अभिलेख में कृषि भूमि के रूप में इंगित किया गया है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 22 अगस्त, 2015 को बिक्री विलेख के माध्यम से, प्रश्नगत गांव मे गाटा संख्या 495 केए, 818, 819 और 820 में इंगित चार संपत्तियों के हिस्से याचिकाकर्ता द्वारा खरीदे गए थे। यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि खरीद के समय संपत्तियों का उपयोग कृषि उद्देश्य के लिए किया जा रहा था, इसलिए उसके अनुसार स्टांप शुल्क का भुगतान किया गया था, लेकिन उसके बाद अधिनियम की धारा 47-ए के तहत संपत्तियों को आवासीय प्रकृति के मानने के लिए संदर्भ दिया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि 18 जनवरी 2016 को उप रजिस्ट्रार द्वारा संबंधित स्थल निरीक्षण रिपोर्ट के मद्देनजर संदर्भ दिया गया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अधिकारियों ने 18 जनवरी, 2016 की एकपक्षीय संबंधित स्थल निरीक्षण रिपोर्ट के साथ-साथ 27 सितंबर, 2017 की बाद की संबंधित स्थल निरीक्षण रिपोर्ट पर भरोसा करने में गलती की है। उपर्युक्त स्थल निरीक्षण रिपोर्टों के विरुद्ध इस आशय के दो तर्कों को उठाया गया है कि स्थानांतरण विलेख के निष्पादन के बाद उपर्युक्त स्थल निरीक्षण बहुत अधिक किया गया था जबकि इसे आयोजित किया जाना अपेक्षित था और प्रकृति का उल्लेख किया गया था। खरीदी गई संपत्ति पर भी विलेख के निष्पादन के समय विचार करना आवश्यक था, उसके बाद नहीं। एक अन्य आधार यू.पी स्टाम्प (संपत्ति का मूल्यांकन) नियम, 1997 (इसके बाद 'नियम 1997' के रूप में संदर्भित) के नियम 7(3)(सी) के उल्लंघन के संबंध में है, क्योंकि मौके का निरीक्षण करने से पहले याचिकाकर्ता को कोई पूर्व सूचना नहीं दी गई थी। इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया है कि विलेख के निष्पादन के कुछ समय बाद संबंधित स्थल निरीक्षण किया गया था, आक्षेपित आदेशों का आधार नहीं बन सकता था क्योंकि उन्होंने

अनुवादित

संपत्तियों की खरीद के बाद संपत्तियों की स्थिति का संकेत दिया था न कि विलेख के निष्पादन की तारीख को। अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा संबंधित स्थल निरीक्षण रिपोर्ट पर विशिष्ट आपत्तियां ली गई थीं ताकि यह प्रस्तुत किया जा सके कि विलेख के निष्पादन की तारीख तक संपत्ति पर कोई निर्माण नहीं हुआ था, लेकिन उक्त आपत्तियों को आक्षेपित आदेश में विज्ञापित नहीं किया गया है और सबूत का बोझ गलत तरीके से याचिकाकर्ता पर रखा गया है। अधिवक्ता यह भी प्रस्तुत करता है कि अन्यथा भी उपरोक्त नियमों के संदर्भ में कलेक्टर द्वारा स्वयं संबंधित स्थल निरीक्षण नहीं किया गया है, आक्षेपित आदेश पारित करने का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है। उस स्थिति में, याचिकाकर्ता ने 2005 (23) लखनऊ सिविल निर्णय 1681 में रिपोर्ट किए गए राम खेलावन उर्फ बच्चा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में इस अदालत के फैसले पर भरोसा किया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलीय प्राधिकारी ने भी अपील में उठाए गए दलीलों का विज्ञापन नहीं किया है और केवल संबंधित स्थल निरीक्षण रिपोर्ट के आधार पर इसे खारिज कर दिया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अधिकारियों ने 18 जनवरी, 2016 की एकपक्षीय स्थल निरीक्षण रिपोर्ट के साथ-साथ 27 सितंबर, 2017 की बाद की स्थल निरीक्षण रिपोर्ट पर भरोसा करने में गलती की है। उपर्युक्त स्थल निरीक्षण रिपोर्टों के विरुद्ध इस आशय के दो तर्कों को उठाया गया है कि स्थानांतरण विलेख के निष्पादन के बाद उपर्युक्त स्थल निरीक्षण बहुत अधिक किया गया था जबकि इसे आयोजित किया जाना अपेक्षित था और प्रकृति का उल्लेख किया गया था। खरीदी गई संपत्ति पर भी विलेख के निष्पादन के समय विचार करना आवश्यक था, उसके बाद नहीं। एक अन्य आधार यूपी स्टाम्प (संपत्ति का मूल्यांकन) नियम, 1997 (इसके बाद 'नियम 1997' के रूप में संदर्भित) के नियम 7 (3)(सी) के उल्लंघन के संबंध में है, क्योंकि मौके का निरीक्षण करने से पहले याचिकाकर्ता को कोई पूर्व सूचना नहीं दी गई थी। इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया है कि विलेख के निष्पादन के कुछ समय बाद संबंधित स्थल निरीक्षण किया गया था, आक्षेपित आदेशों का आधार नहीं बन सकता था क्योंकि उन्होंने संपत्तियों की खरीद के बाद संपत्तियों की स्थिति का संकेत दिया था, न कि विलेख के निष्पादन की तारीख को। अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा संबंधित स्थल निरीक्षण रिपोर्ट पर विशिष्ट आपत्तियां ली गई थीं ताकि यह प्रस्तुत किया जा सके कि विलेख के निष्पादन की तारीख तक संपत्ति पर कोई निर्माण नहीं हुआ था, लेकिन उक्त आपत्तियों को आक्षेपित आदेश में विज्ञापित नहीं किया गया है, और सबूत का बोझ गलत तरीके से याचिकाकर्ता पर रखा गया है। अधिवक्ता यह भी प्रस्तुत करता है कि अन्यथा भी उपरोक्त नियमों के संदर्भ में कलेक्टर द्वारा स्वयं संबंधित स्थल निरीक्षण नहीं किया गया है, आक्षेपित आदेश पारित करने का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है। उस स्थिति में, याचिकाकर्ता ने 2005 (23) लखनऊ सिविल निर्णय 1681 में रिपोर्ट किए गए राम खेलावन उर्फ बच्चा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में इस अदालत के फैसले पर भरोसा किया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलीय प्राधिकारी ने भी अपील में उठाए गए दलीलों को प्रदर्शित नहीं किया

है और केवल संबंधित स्थल निरीक्षण रिपोर्ट के आधार पर इसे खारिज कर दिया है।

नियम 7(3)(सी) के तहत एक निर्धारिती को पूर्व सूचना देने का प्राथमिक उद्देश्य उसकी पूर्व सूचना के लिए है कि इस तरह का निरीक्षण हो रहा है और उसे खरीदी गई संपत्ति की वास्तविक स्थिति पर आपत्ति करने के लिए उपलब्ध होना चाहिए जब संबंधित स्थल निरीक्षण हो रहा है। इस प्रकार, पूर्व सूचना नियम 1997 के नियम 7(3)(सी) के अनिवार्य प्रावधानों का एक अनिवार्य घटक है और मौके पर निरीक्षण के समय एक निर्धारिती के उपस्थित होने की आकस्मिक परिस्थिति पूरी तरह से अप्रासंगिक होगी। वर्तमान मामले में, यह स्पष्ट रूप से न केवल याचिकाकर्ता द्वारा की गई आपत्तियों में, बल्कि याचिका में भी स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि मौके का निरीक्षण करने से पहले याचिकाकर्ता को कोई पूर्व सूचना नहीं दी गई थी, उक्त आपत्ति आक्षेपित आदेशों में अप्राप्य रहती है और यहां तक कि रिट याचिका में ली गई विशिष्ट दलील को भी प्रतिपक्षियों द्वारा विशेष रूप से अस्वीकार नहीं किया गया है। ऐसी परिस्थिति में, नियम, 1997 के नियम 7(3)(सी) के उल्लंघन के संबंध में प्रतिपक्षियोंद्वारा रिट की जाती है। विचार की आवश्यकता वाले मामले का एक अन्य पहलू यह है कि आक्षेपित आदेश पूरी तरह से केवल दो संबंधित स्थल निरीक्षण रिपोर्टों पर आधारित हैं। इस मामले का पहला पहलू यह है कि 18 जनवरी, 2016 या 27 सितंबर, 2017 के निरीक्षण के माध्यम से संबंधित स्थल निरीक्षण काफी देर से किया गया है और बिक्री विलेख के निष्पादन के समय प्रश्नगत संपत्ति के वास्तविक कब्जे को इंगित करने के प्रयोजनों के लिए संज्ञान में लेने की आवश्यकता नहीं थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अंबरीश टंडन और (2012) 5 एससीसी 566 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य मामले में निम्नानुसार आयोजित किया है: -

> *15. उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश से पता चलता है कि यह इमारत के उपयोगकर्ता की प्रकृति, अर्थात् खरीद की तारीख पर आवासीय उद्देश्य के बारे में गंभीरता से विवादित नहीं था। केवल इसलिए कि संपत्ति का उपयोग बाद में वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए किया जा रहा है, स्टाम्प ड्यूटी के उद्देश्य के लिए मूल्य का आकलन करने के लिए एक प्रासंगिक मानदंड नहीं हो सकता है। उपयोगकर्ता की प्रकृति खरीद की तारीख से संबंधित है और यह स्टाम्प शुल्क की गणना के उद्देश्य से प्रासंगिक है। यद्यपि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा इस मामले पर हमारे तर्क को ध्यान में रखते हुए विचार किया जा सकता था कि कोई गंभीर आपत्ति नहीं थी और वास्तव में उक्त वैकल्पिक उपाय को गंभीरता से चुनौती नहीं दी गई थी, और तथ्यात्मक विवरणों को ध्यान में रखते हुए, जिसके आधार पर उच्च न्यायालय ने अपर जिला कलेक्टर द्वारा पारित दिनांक 27-9-2004 के आदेश को रद्द कर दिया है, हम इस समय हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं।*

उपर्युक्त के मद्देनजर, प्रस्तुत मामले में बहुत देर से होने वाले संबंधित स्थल निरीक्षणों को बिक्री विलेख के निष्पादन के समय संपत्ति की वास्तविक स्थिति पर विचार करने के लिए एक अच्छा आधार नहीं माना जा सकता है। वर्तमान याचिका में लगाए

अनुवादित

गए आदेश स्पष्ट रूप से न केवल नियम 1997 के नियम 7(3)(सी) का उल्लंघन हैं, बल्कि राम खेलावन (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के साथ-साथ अंबरीश टंडन (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के खिलाफ भी हैं। ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर, 28 मार्च, 2018 के आक्षेपित आदेश के साथ-साथ प्रतिपक्षी-3 और 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 11 दिसंबर, 2019 को कानून के खिलाफ होने के कारण एतद्द्वारा रद्द किया जाता है। नतीजतन, रिट याचिका सफल होती है और परिणामों के साथ अनुमति दी जाती है। पक्षों को अपनी लागत वहन करनी होगी।

(2023) 2 ILRA 176

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 13.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन,

रिट सी संख्या 16298/2021

मनोज कुमार यादव

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: शांतनु शर्मा, अंशुमान शर्मा, अतहर अली

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

(ए) सिविल कानून - भारतीय शस्त्र अधिनियम, 1959 - धारा 3 - आग्नेयास्त्रों और गोला-बारूद के अधिग्रहण और कब्जे के लिए लाइसेंस - धारा 4 - कुछ वाद में निर्दिष्ट विवरण के हथियारों के अधिग्रहण और कब्जे के लिए लाइसेंस - धारा 5 - हथियारों और गोला-बारूद के निर्माण, बिक्री आदि के लिए लाइसेंस - धारा 13 - लाइसेंस प्रदान करना, धारा 14 - लाइसेंस से इनकार - आग्नेयास्त्र लाइसेंस प्रदान करना कोई उदारता नहीं है और व्यक्ति अपने अधिकार पर अनुचित प्रतिबंध के आधार पर उक्त लाइसेंस प्राप्त करने का हकदार है - हथियार रखना और धारण करना निराधार भय पर आधारित नहीं होना चाहिए और सामान्यतः लाइसेंस तब तक दिया जाता है जब तक कि कुछ प्रतिकूल न हो। (पैरा-7,19)

(बी) भारतीय संविधान - अनुच्छेद 21 - जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार, जिसमें सुरक्षा और सुरक्षा का अधिकार शामिल है, प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है - व्यक्तिगत सुरक्षा और सुरक्षा के उद्देश्य से आग्नेयास्त्र लाइसेंस रखना एक स्वयं की सुरक्षा का तरीका है और इस अधिकार के आनंद के लिए अधिकार की वैधानिक शक्ति को क़ानून के उद्देश्य और उद्देश्य के संदर्भ में लागू किया जाना चाहिए, और मनमौजी नहीं होना चाहिए। (पैरा-18)

याचिकाकर्ता (प्रैक्टिसिंग एडवोकेट) ने शस्त्र लाइसेंस के लिए आवेदन किया - उद्देश्य - व्यक्तिगत सुरक्षा और संपत्ति की सुरक्षा - जिसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं था - आवेदन प्रारंभ में जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित था - न्यायालय ने आवेदन पर विचार करने और निर्णय लेने के निर्देश के साथ याचिका का निस्तारण किया - आवेदन निरस्त कर दिया गया - याचिकाकर्ता द्वारा अपील दायर की गई जिसे निरस्त कर दिया गया था - इसलिए याचिका योजित। (पैरा-3,10)

अनुवादित

आयोजित:-दिनांक 07.09.2020 का आदेश, जिसने याचिकाकर्ता के आग्नेयास्त्र लाइसेंस के आवेदन को निरस्त कर दिया, अधिनियम, 1959 की धारा 14 के प्रावधानों के विरुद्ध है। आदेश में निहित कारण अधिनियम, 1959 की धारा 14 के तहत प्रस्तुत गए कारणों से परे हैं। दिनांक 12.04.2021 और 07.09.2020 को लागू आदेश निरस्त कर दिए गए। छह सप्ताह के भीतर आग्नेयास्त्र लाइसेंस प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन पर आदेश पारित करने के लिए वाद जिला मजिस्ट्रेट को प्रेषित किया गया। **(पैरा-21)**

रिट याचिका स्वीकार की गई। **(ई-7)**

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. दिनेश कुमार पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2012 की रिट-सी संख्या 16565

2. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम जसवन्त सिंह सरना एआईआर 1968 सभी 383
3. अब्दुल काफ़ी बनाम डी.एम., एल्ड., 2002 (45) एसीसी 1121
4. बृज नंदन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2011 (9) एडीजे 135
5. पवन कुमार झा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2010 (10) एडीजे 782
(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादिओं के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. प्रस्तुत याचिका निम्नलिखित मुख्य अनुतोषों हेतु प्रार्थना करते हुए दायर की गई है:-

"1.) अपील संख्या 01052/2020, मनोज कुमार यादव बनाम राज्य, भारतीय शस्त्र अधिनियम, 1959 अन्तर्गत धारा 18 के प्रकरण में संभागीय आयुक्त, प्रयागराज मंडल, प्रयागराज अर्थात् विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित अवैध, आक्षेपित आदेश दिनांक 12.04.2021 को तथा याचिकाकर्ता को शस्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट, प्रतापगढ़, विपक्षी संख्या 3 द्वारा पारित अवैध, आक्षेपित आदेश दिनांक 07.09.2020, याचिकाकर्ता के शस्त्र अनुज्ञप्ति आवेदन के अनुदान के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट, प्रतापगढ़ यानी विपरीत पक्ष संख्या 2 द्वारा पारित अवैध आक्षेपित आदेश दिनांक 07.09.2020, क्रमशः अनुलग्नक संख्या 1 और 2, को न्याय के हित में रद्द करने हेतु उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश, निर्देश जारी करें।

2.) विपक्षियों को याचिकाकर्ता के शस्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने के आवेदन पर विचार करने और न्यायहित में विधि के अनुसार एक निर्धारित अवधि के भीतर शस्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने के मुद्दे पर निर्णय

अनुवादित

लेने की आज्ञा देते हुए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश, निर्देश जारी करें।"

3. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रकरण यह है कि वह जिला प्रतापगढ़ में एक वृत्तिशील अधिवक्ता है और बिना किसी आपराधिक अभिलेख के विधि का पालन करने वाला नागरिक है। उसने व्यक्तिगत बचाव और अपनी संपत्ति की सुरक्षा के उद्देश्य से आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने लिए आवेदन किया था। प्रारम्भ में, याचिकाकर्ता का आवेदन जिला मजिस्ट्रेट, प्रतापगढ़ के पास लंबित रहा, जिसके कारण याचिकाकर्ता को मनोज कुमार बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य के प्रकरण में रिट याचिका संख्या 27645 (एमएस)/ 2016 इस न्यायालय के समक्ष दायर करने की आवश्यकता हुई। इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 22.01.2020 के माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट को याचिकाकर्ता के आवेदन पर विचार करके और निर्णय लेने के निर्देश के साथ याचिका को निस्तारित कर दिया। इसके अनुसरण में, आक्षेपित आदेश दिनांक 07.09.2020 के माध्यम से, आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त किये जाने हेतु याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को भी दिनांक 12.04.2019 के आदेश से खारिज कर दिया गया और इसलिए याचिका प्रस्तुत की गई है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 07.09.2020 के आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया गया है, को चुनौती देते हुए तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश के अवलोकन से संकेत मिलेगा कि जिला मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करते हुए तीन कारण बताए हैं यथा (क) याचिकाकर्ता द्वारा कोई कारण नहीं बताया गया है कि उसे आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति की आवश्यकता क्यों है (ख) प्राधिकारियों द्वारा शस्त्र अनुज्ञप्ति की वास्तविक आवश्यकता की कोई आख्या नहीं दी गयी है, और (ग) याचिकाकर्ता को किसी खतरे की आशंका नहीं है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि आक्षेपित आदेश को पढ़ने से विदित होता है कि कोतवाली नगर, प्रतापगढ़ के भारसाधक निरीक्षक और साथ ही तहसील प्राधिकारीगण, दोनों अपनी आख्या प्रस्तुत कर चुके हैं, जैसा कि आक्षेपित आदेश में दर्ज है, जिससे यह विदित है कि याचिकाकर्ता शस्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त किए जाने हेतु उपयुक्त व्यक्ति है। यह तर्क दिया गया है कि आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करते समय जिला मजिस्ट्रेट द्वारा लिए गए आधार शस्त्र अधिनियम, 1959 (इसके बाद 'अधिनियम, 1959' के रूप में संदर्भित) की धारा 14 में निहित प्रावधानों से पूर्णतया प्रतिकूल हैं।

अनुवादित

6. उसी को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि अधिनियम, 1959 की धारा 14 में नकारात्मक शर्तें वर्णित है यानी ऐसी परिस्थितियाँ जिनमें अनुज्ञप्ति से इन्कार किया जा सकता है। उनका तर्क है कि आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति हेतु याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करते समय जिला मजिस्ट्रेट द्वारा बताए गए कोई भी आधार अधिनियम, 1959 की धारा 14 के दायरे में नहीं आते हैं और इस प्रकार मात्र इसी आधार पर ही आक्षेपित आदेश रद्द किये जाने योग्य है।

7. इस संबंध में, **दिनेश कुमार पांडे बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य** के प्रकरण में रिट-सी संख्या 16565/ 2012 निर्णीत दिनांकित 25.07.2012 में इस न्यायालय द्वारा पारित एक निर्णय पर भरोसा व्यक्त करते हुए तर्क दिया गया कि सदृश परिस्थितियों में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से व्यवस्था दी है कि आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करना कोई उदारता नहीं है और एक व्यक्ति स्वयं उक्त अनुज्ञप्ति अनुदत्त किए जाने का अधिकारी है।

8. दूसरी ओर, जवाबी हलफनामे में निहित कथनों के आधार पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क है कि आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह विदित होता है कि सक्षम प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं पाया है यद्यपि याचिकाकर्ता के विरुद्ध किसी खतरे की आशंका नहीं है जोकि आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने लिए याचिकाकर्ता के आवेदन पर विचार करने से पूर्व मांगी गई किसी भी आख्या से परिलक्षित है। यह भी तर्क दिया गया है कि विभिन्न शासनादेश, जिनमें आवेदन करने वाले व्यक्ति को आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति देने की विधि का विवरण दिया गया है, जारी किए जा चुके हैं। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश में कोई अवसन्नता या अवैधता नहीं है और रिट याचिका खारिज किये जाने योग्य है।

9. सुना एवं अभिलेखों का अवलोकन किया।

10. अभिलेखों के अवलोकन से यह प्रकट होता है कि याचिकाकर्ता, जिला प्रतापगढ़ के एक वृत्तिशील अधिवक्ता, ने सक्षम प्राधिकारी के समक्ष आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने लिए आवेदन किया था। यह सक्षम प्राधिकारी के समक्ष लंबित रहा और रिट न्यायालय द्वारा जारी निर्देश के पश्चात ही आदेश पारित किए गए हैं। जैसा भी हो, आदेश दिनांक 07.09.2020, जिसके तहत आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति हेतु आवेदन को इन आधारों पर खारिज कर दिया गया यथा (क) याचिकाकर्ता द्वारा कोई कारण नहीं बताया गया है कि उसे आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति की आवश्यकता क्यों है (ख) प्राधिकारियों द्वारा शस्त्र अनुज्ञप्ति की वास्तविक आवश्यकता की कोई आख्या नहीं दी है, और (ग) याचिकाकर्ता को किसी खतरे की आशंका नहीं है।

11. आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने और उसे अनुदत्त करने से इन्कार करने की प्रक्रिया अधिनियम, 1959 में निहित

अनुवादित

है। अधिनियम, 1959 की धारा 13 अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से संबंधित है जबकि अधिनियम, 1959 की धारा 14 अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से इन्कार करने से संबंधित है। सुविधा हेतु, अधिनियम, 1959 की धारा 13 और 14 निम्नवत् प्रस्तुत हैं: -

*"13. **अनुज्ञप्तियों का अनुदान -** (1) अध्याय 2 के अधीन अनुज्ञप्ति के अनुदान के लिए आवेदन अनुज्ञापन प्राधिकारी को दिया जायेगा और वह ऐसे प्रारूप में होगा, उसमें ऐसी विशिष्टियाँ अन्तर्विष्ट होंगी और उसके साथ ऐसी फीस होगी, यदि कोई हों, जैसा या जैसी विहित किया जाये या की जाये।*

[(2) आवेदन की प्राप्ति पर अनुज्ञापन प्राधिकारी उस आवेदन पर निकटतम पुलिस थाने के भारसाधक आफिसर से रिपार्ट मंगवायेगा और ऐसा आफिसर विहित समय के भीतर अपनी आख्या भेजेगा।

(2-क) अनुज्ञापन प्राधिकारी, ऐसी जाँच यदि कोई हो, करने के पश्चात जैसी वह आवश्यक समझे और उपधारा (2) के अधीन प्राप्त आख्या पर विचार करने के पश्चात्, इस अध्याय के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए लिखित आदेश द्वारा अनुज्ञप्ति या तो अनुदत्त करेगा या अनुदत्त करने से इन्कार करेगा :

परन्तु जहाँ निकटतम पुलिस थाने का भारसाधक आफिसर आवेदन पर विहित समय के भीतर अपनी आख्या नहीं भेजता है, वहां यदि अनुज्ञापन-प्राधिकारी ठीक समझे तो वह विहित समय के अवसान के पश्चात्, उस आख्या की और प्रतीक्षा किये बिना, ऐसा आदेश कर सकेगा।]

(3) अनुज्ञापन प्राधिकारी अनुदत्त करेगा-

(क) धारा 3 के अधीन अनुज्ञप्ति, जहाँ कि वह अनुज्ञप्ति की आवश्यकता-

(i) संरक्षा या खेल में उपयोग में लाये जाने के लिये बीस इंच से अन्यून लम्बी नाल वाली चिकने बोर की आग्नेयास्त्र के सम्बन्ध में या फसल संरक्षा के लिए सद्भावपूर्वक उपयोग में लाई जाने के लिए नालमुख से भरी जाने वाली आग्नेयास्त्र के सम्बन्ध में भारत के नागरिक द्वारा अपेक्षित की जाये:

परन्तु जहाँ कि किसी प्रकरण की परिस्थितियों का ध्यान रखते हुये अनुज्ञापन प्राधिकारी का समाधान हो जाये कि नालमुख से भरी जाने वाली आग्नेयास्त्र फसल संरक्षा के लिए पर्याप्त न होगी, वहाँ अनुज्ञापन प्राधिकारी ऐसी संरक्षा के लिए यथापूर्वोक्त किसी अन्य चिकने बोर की आग्नेयास्त्र के संबंध में अनुज्ञप्ति अनुदत्त कर सकेगा, अथवा

(ii) केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुज्ञप्त या मान्यता प्राप्त राइफल क्लब या राइफल संगम के सदस्य द्वारा निशाना लगाने का अभ्यास करने में उपयोग में लाई जाने के लिए प्वाइंट 22 बोर राइफल या हवाई राइफल के संबंध में अपेक्षित की जाये ;

(ख) किसी अन्य प्रकरण में धारा 3 के अधीन की अनुज्ञप्ति या धारा 4, धारा 5,

अनुवादित

धारा 6, धारा 10 या धारा 12 के अधीन की अनुज्ञप्ति उस दशा में अनुदत्त करेगा, जिसमें अनुज्ञापन प्राधिकारी को समाधान हो जाये कि उस व्यक्ति के पास जिसके द्वारा अनुज्ञप्ति अपेक्षित है, उसे अभिप्राप्त करने के लिये अच्छा कारण है।

*14. **अनुज्ञप्तियाँ अनुदत्त करने से इन्कार करना** (1) धारा 13 में किसी बात के होते हुए भी, अनुज्ञापन प्राधिकारी अनुदत्त करने से इन्कार करेगा-*

(क) धारा 3, धारा 4 या धारा 5 के अधीन अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से वहाँ इन्कार करेगा, जहाँ कि ऐसी अनुज्ञप्ति किन्हीं प्रतिषिद्ध आयुध या प्रतिषिद्ध गोलाबारूद के बारे में अपेक्षित हो ;

(ख) अध्याय 2 के अधीन के किसी अन्य प्रकरण में अनुज्ञप्ति-

(i) जहां कि ऐसी अनुज्ञप्ति उस व्यक्ति द्वारा अपेक्षित है, जिसके बारे में अनुज्ञापन प्राधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है, कि वह

(1) किसी आयुध या गोलाबारूद को अर्जित करने, अपने कब्जे में रखने या वहन करने से इस अधिनियम या किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा प्रतिषिद्ध है, अथवा

(2) विकृत-चित्त का है, अथवा

(3) इस अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति के लिए किसी कारण से अयोग्य है, अथवा

(ii) जहाँ कि अनुज्ञापन प्राधिकारी लोक शान्ति की सुरक्षा के लिए या लोक क्षेम के लिए ऐसी अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से इन्कार करना आवश्यक समझता है।

(2) अनुज्ञापन प्राधिकारी किसी भी व्यक्ति को कोई भी अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से केवल इस आधार पर इन्कार नहीं करेगा कि ऐसे व्यक्ति के स्वामित्व या कब्जे में पर्याप्त सम्पत्ति नहीं है।

(3) जहाँ कि अनुज्ञापन प्राधिकारी किसी व्यक्ति को अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से इन्कार करे वहाँ वह ऐसे इन्कार के लिए कारण लेखन द्वारा अभिलिखित करेगा और उनका संक्षिप्त कथन मांग किए जाने पर उस व्यक्ति को उस दशा के सिवाय देगा जिसमें अनुज्ञापन प्राधिकारी का यह मत हो कि ऐसा कथन देना लोक हित में नहीं होगा।"

12. अधिनियम, 1959 की धारा 13 के अवलोकन से, यह विदित होता है कि अध्याय II के तहत अनुज्ञप्ति अनुदत्त किए जाने हेतु एक आवेदन पत्र अनुज्ञापन प्राधिकारी को दिया जाएगा और इस तरह के प्रारुप, जिसमें ऐसे विवरण हों, में होना चाहिए और इसके

अनुवादित

साथ एक शुल्क होना चाहिए। उक्त आवेदन की प्राप्ति पर, अनुज्ञापन प्राधिकारी को निकटतम पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी से एक आख्या मांगनी होगी और जांच के बाद, यदि कोई हो, जैसा वह आवश्यक समझे और आख्या पर विचार करने के बाद, अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन होगा, लिखित आदेश द्वारा या तो अनुज्ञप्ति अनुदत्त करेगा या उसे अनुदत्त करने से इन्कार कर देगा।

13. अधिनियम, 1959 की धारा 14 का अवलोकन विदित करता है कि अधिनियम, 1959 की धारा 13 में किसी बात के होते हुए भी, अनुज्ञापन प्राधिकारी धारा 3, धारा 4 या धारा 5 के अधीन अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से वहाँ इन्कार करेगा, जहाँ कि ऐसी अनुज्ञप्ति किन्हीं प्रतिषिद्ध आयुध या प्रतिषिद्ध गोलाबारूद के बारे में अपेक्षित हो; जहां कि ऐसी अनुज्ञप्ति उस व्यक्ति द्वारा अपेक्षित है, जिसके बारे में अनुज्ञापन प्राधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है, कि वह (i) किसी आयुध या गोलाबारूद को अर्जित करने, अपने कब्जे में रखने या वहन करने से इस अधिनियम या किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा प्रतिषिद्ध है, (ii) विकृत-चित्त का है, अथवा (iii) इस अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति के लिए किसी कारण से अयोग्य है, अथवा जहाँ कि अनुज्ञापन प्राधिकारी लोक शान्ति की सुरक्षा के लिए या लोक क्षेम के लिए ऐसी अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से इन्कार करना आवश्यक समझता है। यद्यपि अनुज्ञापन प्राधिकारी किसी भी व्यक्ति को कोई भी अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से केवल इस आधार पर इन्कार नहीं करेगा कि ऐसे व्यक्ति के स्वामित्व या कब्जे में पर्याप्त सम्पत्ति नहीं है। इसके अलावा, किसी भी व्यक्ति को अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से इन्कार करने वाले अनुज्ञापन प्राधिकारी को ऐसे इन्कार के कारणों को अभिलिखित करना होगा।

14. उपरोक्त प्रावधान के अवलोकन से, यह विदित होता है कि यद्यपि प्राधिकरण को अनुज्ञप्ति के अनुदत्त करने से इन्कार करने या अनुदत्त करने की शक्ति प्राप्त है, फिर भी ऐसा इन्कार केवल अधिनियम, 1959 की धारा 14 की उप-धारा (1) में निहित शर्तों तक ही सीमित होगा, जैसा कि पहले ही ऊपर बताया जा चुका है। स्पष्ट रूप से अधिनियम, 1959 की धारा 14 की उप-धारा (3) में दिए गए कारणों को प्राधिकारी द्वारा इंगित करना आवश्यक है, उन कारणों, अर्थात् अधिनियम, 1959 की धारा 14 की उप-धारा (1) में बताए गए कारणों, जिन पर इन्कार किया जा सकता है, का पालन करना होगा।

15. आक्षेपित आदेश दिनांक 07.09.2020 में निहित कारणों से यह इंगित नहीं होता है कि अधिनियम, 1959 की धारा 14 के तहत अनुज्ञप्ति

अनुवादित

अनुदत्त किए जाने से इन्कार किए जाने वाले कारणों में से कोई भी कारण नहीं हैं जोकि जिला मजिस्ट्रेट, प्रतापगढ़ को अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से इन्कार करते समय अभिभावी हुए, बल्कि यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से इन्कार करते समय, जिला मजिस्ट्रेट, प्रतापगढ़ को जो कारण अभिभावी हुए, वे अधिनियम, 1959 के प्रावधानों से पूरी तरह से प्रतिकूल हैं। भले ही आक्षेपित आदेश में दर्शाये गये कुछ शासनादेशों को देखा जाना है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि समय-समय पर जारी किए गए उक्त शासनादेश या परिपत्र अधिनियम, 1959 की धारा 14 के अनिवार्य प्रावधानों के विरुद्ध नहीं जा सकते।

16. इस संबंध में अधिनियम 1959 की धारा 13 और 14 के प्रावधानों पर इस न्यायालय की एक खण्डपीठ द्वारा **उ.प्र. राज्य और अन्य बनाम जसवन्त सिंह सरना, एआईआर 1968 इला. 383** में प्रतिवेदित प्रकरण में विचार किया गया, जिसमें निम्नवत् व्यवस्था दी गयी:

"यह स्पष्ट है कि धारा 13 अनुज्ञप्ति के अधिकार को मान्यता देती है। उन प्रकरणों के अलावा जहां सुरक्षा या खेल या फसल सुरक्षा के लिए या राइफल क्लब या राइफल संघ में लक्ष्य अभ्यास के लिए आग्नेयास्त्र की आवश्यकता होती है, कोई भी इसका हकदार है यदि उसके पास इसे प्राप्त करने का अच्छा कारण है। अनुज्ञप्ति प्राप्त करने का अच्छा कारण होना चाहिए, और वह शर्त अनुज्ञप्ति अनुदत्त किए जाने को नियंत्रित करती है। यह अपेक्षा जनता के सदस्यों द्वारा अधिकार के दुरुपयोग को रोकने के लिए आरोपित की गई है। फिर भी, जैसे ही शर्त पूरी हो अनुदत्त किया जाना अनिवार्य है और मनमाने ढंग से अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा अनुज्ञप्ति से इन्कार करना संभव नहीं है।" (पैरा 8) (बल दिया गया)"

17. **अब्दुल काफ़ी बनाम जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद, 2002 (45) एसीसी 1121** से प्रतिवेदित प्रकरण में इस न्यायालय ने व्यवस्था दी है कि अधिनियम 1959 की योजना इस पर विचार नहीं करती है कि आग्नेयास्त्र की अनुज्ञप्ति केवल तभी दी जाएगी जब किसी को अपने जीवन के लिए किसी से खतरे की आशंका हो और ऐसे आधार पर आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति की अस्वीकृति का तात्पर्य पूर्णतया अप्रासंगिक विचारोपरान्त पारित निर्णय है।

18. **बृज नंदन सिंह बनाम उ.प्र. राज्य और एक अन्य, 2011 (9) एडीजे 135** से प्रतिवेदित प्रकरण में इस न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी कि:

"सिर्फ अनुमानों और अटकलों के आधार पर और संविधि के उद्देश्यों, जिसके अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग किया जा रहा है, के मूल्यांकन किए बिना एक आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति से इनकार नहीं किया जा सकता है। जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार

अनुवादित

जिसके अन्तर्गत किसी व्यक्ति की बचाव और सुरक्षा का अधिकार शामिल है और ऐसे बचाव और सुरक्षा के लिए आवश्यक साधनों को ग्रहण, अंगीकार एवं अनुकरण करना, प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। व्यक्तिगत बचाव और सुरक्षा के उद्देश्य के लिए आग्नेयास्त्र रखना, स्वयं की सुरक्षा का एक साधन और तरीका है और संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत जीवन और स्वतंत्रता के उपभोग का मौलिक अधिकार है। विधि और व्यवस्था बनाए रखने के हित में इस तरह के अधिकार पर कुछ उचित प्रतिबंध लगाए गए हैं, लेकिन इससे मौलिक अधिकार स्वयं कार्यकारी प्राधिकारियों की उच्छृंखलता के पराधीन नहीं हो जाएंगे। यह सरकार द्वारा किसी व्यक्ति को दिया गया एक प्रकार का विशेषाधिकार नहीं है, परन्तु केवल उस सीमा तक जहां किसी व्यक्ति को आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से समाज में शांति और शांतिचिता सहित विधि और व्यवस्था के रखरखाव पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े, आमतौर पर ऐसे अधिकार से इनकार नहीं किया जाएगा। ...." (पैरा 7) "अधिनियम के तहत अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने लिए अधिकृत प्राधिकारियों को ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए जैसे कि वे पुरानी ब्रिटिश संप्रभुता का हिस्सा हैं और आवेदक एक दीन प्रजा है जिसकी हर मांग को किसी एक अथवा दूसरे बहाने से कुचला जाना है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत विधि के शासन द्वारा शासित एक भारतीय नागरिक की आवश्यकता पर अधिक आदर और सम्मान के साथ विचार किया जाना चाहिए। इस प्रकार प्राधिकारियों को अधिक व्यवहारमूलक और व्यवहारिक दृष्टिकोण के साथ आवेदक की आवश्यकता पर विचार करना चाहिए। जब तक उन्हें यह नहीं पता चलता कि बचाव और सुरक्षा की आड़ में, आवेदक वास्तव में आत्मरक्षा के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए अनुज्ञप्ति प्राप्त करके हथियार का उपयोग करने का इरादा रखता है, तो उसे ऐसे अनुज्ञप्ति से इनकार नहीं किया जाना चाहिए। मैं संबंधित प्राधिकारी की वैधानिक शक्ति को एक कोष्ठ में नहीं रख रहा हूं क्योंकि आवेदक के खिलाफ वैधानिक विवेक का प्रयोग करने के एक से अधिक कारण हो सकते हैं, लेकिन फिर वह, विधि के प्रस्ताव और उद्देश्य के संदर्भ में, उचित होना चाहिए और अनिवार्य रूप से मनमाना नहीं होना चाहिए।"

19. पुनः इस न्यायालय ने **पवन कुमार झा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2010 (10) एडीजे 782** से प्रतिवेदित प्रकरण में व्यवस्था दी कि शस्त्र रखने और वहन करने पर अनुचित प्रतिबंध निराधार भय पर आधारित नहीं होना चाहिए और अनुज्ञप्ति आम तौर पर तब तक दिया जाना है, जब तक कि कुछ प्रतिकूल न हो।

20. उपरोक्त आदेशों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने **दिनेश कुमार पांडे (उपरोक्त)** के प्रकरण में आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने लिए अनुज्ञापन प्राधिकारी के विवेक और इस संबंध में जारी किए गए विभिन्न शासनादेशों और परिपत्रों पर भी विचार करते हुए निम्नानुसार व्यवस्था दी: -

"62. मुझे यह टिप्पणी करने में कोई संकोच नहीं है कि धारा 13 और 14 के संचयी और सामंजस्यपूर्ण पठन से इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुज्ञापन प्राधिकारी को वस्तुनिष्ठ विचार का अधिदेश है। वह किसी व्यक्ति को अपनी सरासर सनक, मनमर्जी, कल्पना इत्यादि के कारण

अनुवादित

अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से इन्कार नहीं कर सकता है। यहां यह तर्कसंगतता की आवश्यकता का भी उत्तर देती है। यह प्रक्रिया प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत की आवश्यकता के अनुरूप है। कुछ हद तक, यह संविधान के अनुच्छेद 14 को विचारण में लाती है। कोई भी ऐसा नहीं कह सकता है, "कोई कारण", "अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने लिए अयोग्य", या अनुज्ञप्ति प्राप्त करने के लिए "अच्छे कारण" की अनुपस्थिति शब्दों की आड़ में, एक अनुज्ञापन प्राधिकारी को मामूली आधार पर अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से इन्कार करने का अधिकार है, यथा, वह अनुज्ञप्ति केवल ऐसे लोगों को जिनके पास सफेद बाल या नीली आंखें हैं या एक विशेष ऊंचाई और इस प्रकार के हैं, उन्हें अनुदत्त करेगा। इसी तरह, अनुज्ञापन प्राधिकारी अनुज्ञप्ति प्राप्त करने के लिए "अच्छे कारणों" के भीतर कुछ पूर्व-दृष्टया बेतुके कारणों की खोज नहीं कर सकता है, यथा, यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष राजनीतिक दल से संबंधित है , या, कि कोई व्यक्ति किसी विशेष वर्ग या जाति का है और इत्यादि। ये विचार अस्वीकार्य हैं और इन्हें "अच्छा कारण" नहीं माना जा सकता। अनुज्ञप्ति प्राप्त करने के लिए "अच्छे कारण" की आड़ में, कोई भी ऐसी स्थिति तक नहीं पहुंच सकता है जिसे निष्पादित करना या अभिलेख पर रखना लगभग असंभव हो।

69. अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुज्ञप्ति अनुदत्त करना राज्य की उदारता के वितरण के बराबर विशेषाधिकार देने जैसा है या एक अविवेकपूर्ण अनुमति है जिसके परिणामस्वरूप आवेदक का कोई हित नहीं है। क्या इसका अनुदान किसी प्राधिकारी के सरासर सनक और मनमर्जी, पूर्णतया अनियंत्रित और निरंकुश विवेक पर निर्भर करता है या वह युक्तिपूर्वक, न्यायपूर्वक, निष्पक्षतापूर्वक और सभी पर लागू कुछ मानदंडों के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है, अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने हेतु आवेदन करने वाले सभी व्यक्तियों के साथ बिना किसी भेदभाव, पक्षपात आदि के बर्ताव करना है।

70. न्यायालय की टिप्पणियों, किसी को भी आग्नेयास्त्र रखने का अधिकार नहीं है परन्तु यह एक विशेषाधिकार है जिसे अनुज्ञप्ति प्राधिकारियों के विवेक से दिया जा सकता है, की अनुज्ञप्ति प्राधिकारियों द्वारा प्राधिकार की ऐसी अर्थ लगाया गया और व्याख्या की गई है जैसे कि यह उनका पूरी तरह से निरंकुश, अनियंत्रित और पूर्ण विवेकाधिकार है जिसके लिए वे किसी के प्रति जवाबदेह नहीं हैं। इसी संदर्भ में अक्सर दिन-प्रतिदिन आदेश दिए जा रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप पूरे देश में न्यायालयों में मुकदमेबाजी की बाढ़ आ गई। इससे यह पता लगाना आवश्यक हो गया है कि क्या जब अनुज्ञापन प्राधिकारी अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन या पूर्व में अनुदत्त आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति के निलंबन या रद्दीकरण के प्रकरण पर विचार करता है, तो अनुज्ञापन प्राधिकारी के आदेश की यर्थाथता के निर्णयन हेतु क्या अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत समानता और निष्पक्षता के अधिकार आकर्षित होगा।

89. जो भी हो, अधिनियम 1959 की धारा 13, 14 और 17 के संदर्भ में उपरोक्त चर्चा से जो पता चलता है और आग्नेयास्त्र रखने और वहन करने का अधिकार को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

(i) किसी भी व्यक्ति को आग्नेयास्त्र वहन करने या रखने का मौलिक या अन्यथा अधिकार नहीं है, जब तक कि उसे अधिनियम 1959 के तहत सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुदत्त अनुज्ञप्ति के तहत ऐसा करने की अनुमति न दी गई हो।

(ii) यह इसे प्राप्त करने वाले व्यक्ति का व्यक्तिगत विशेषाधिकार है। अनुज्ञापन प्राधिकारी इसे अविवेकपूर्ण ढंग से अनुदत्त करने या अस्वीकार करने को अपना विशेषाधिकार नहीं मान सकता।

(iii) आग्नेयास्त्र की अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने या अस्वीकार करने के विचार, अधिनियम 1959 की धारा 13 और 14 द्वारा कठोरता से शासित होते हैं।

(iv) आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने या अस्वीकार करने के लिए प्रासंगिक कारक एक अलग क्षेत्र में यात्रा करते हैं। अतः दूसरे पक्ष को सुनने का सिद्धांत लागू नहीं है। लेकिन एक बार अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने के बाद, ऐसे अधिकार को छीनने की कोई भी शक्ति अलग विचारों पर निर्भर करेगी और उक्त सिद्धांत को आकर्षित करेगी।

(v) आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने से इन्कार करने वाले आदेश की न्यायालयों द्वारा समीक्षा की जा सकती है यदि यह निरंकुश तरीके से, मनमाने ढंग से, बिना विवेक का इस्तेमाल किए, अप्रासंगिक विचारों पर या दुर्भावना आदि के कारण पारित किया गया हो।

(vi) आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति को रद्द करने या प्रतिसंहरण करने के लिए प्रासंगिक विचार अधिनियम 1959 की धारा 17 द्वारा शासित होते हैं।

(vii) यदि अनुज्ञापन प्राधिकारी प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि धारा 17 की उपधारा (3) (क) से (ङ) में उल्लिखित आधार मौजूद हैं, तो वह आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति को अविलम्ब निलंबित या रद्द कर सकता है। हालाँकि ऐसा आदेश "एक अनंतिम आदेश" होगा।

(viii) अनंतिम आदेश पारित करने के बाद अनुज्ञापन प्राधिकारी अनुज्ञप्ति धारक को कारण बताने का अवसर देने के लिए बाध्य है यानी आदेश के बाद की सुनवाई और उसे (अनुज्ञप्तिधारी) ऐसे अनंतिम आदेश के खिलाफ अपनी आपत्ति(याँ) प्रस्तुत करने का अधिकार होगा।

(ix) अनुज्ञप्ति धारक के पास अनुज्ञप्ति प्राधिकारी के समक्ष आपत्ति दर्ज करने के बजाय धारा 18 के तहत उपरोक्त अनंतिम आदेश के खिलाफ अपील दायर करने का विकल्प भी है।

(x) जहां अनुज्ञप्ति धारक अपनी आपत्ति प्रस्तुत करता है, अनुज्ञापन प्राधिकारी उस पर विचार करेगा और एक तर्कसंगत आदेश पारित करेगा। ऐसा आदेश या तो अनुज्ञप्ति रद्द करने या निलंबन के लिए हो सकता है। यदि अंतिम आदेश निलंबन का है तो यह एक निर्दिष्ट अवधि के लिए होगा।

अनुवादित

(xi) यदि अनंतिम आदेश के विरुद्ध, अनुज्ञप्ति धारक सीधे अपील के उपचार का लाभ उठाता है, तो अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा पारित किए जाने वाले अंतिम आदेश का प्रश्न ही नहीं उठता है क्योंकि उसके बाद यह अपीलीय आदेश है जो प्रचलित होगा।

(xii) जहां अनुज्ञापन प्राधिकारी को अधिनियम 1959 की धारा 17(3)(क) से (ङ) में संदर्भित आधारों के अस्तित्व के बारे में कोई संदेह है और ऐसे आधारों के अस्तित्व की जांच करने के लिए आगे बढ़ें, जांच की इस अंतराल अवधि के दौरान, वह न तो आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति को निलंबित करने की शक्ति का प्रयोग कर सकता है और न ही रद्द करने की शक्ति का प्रयोग कर सकता है। यह दृष्टिकोण वृहद पीठ द्वारा बलराम सिंह (उपरोक्त) में अन्यथा टिप्पणियों को खारिज करने के पश्चात राणा प्रताप सिंह (उपरोक्त) में दोहराया गया है।

106. अनुज्ञापन और अपीलीय प्राधिकारी दोनों ने व्यवस्था दी है कि आवेदक यह नहीं दर्शा सका कि वह कौन सा विशेष खतरा है जो उसकी व्यक्तिगत बचाव और सुरक्षा के लिए आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति को उचित ठहरा सके। विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता अधिनियम के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं दिखा सके जिसमें यह माना गया हो कि आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति केवल तभी दिया जा सकता है जब किसी व्यक्ति को अपने जीवन के लिए विशेष प्रकार के खतरे की आशंका हो। "विशेष खतरा" शब्द अत्यंत अस्पष्ट है और यहां तक कि विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता भी इसकी व्याख्या नहीं कर सके। इस न्यायालय ने उनसे यह बताने की अपेक्षा की कि कोई व्यक्ति यह कैसे अनुमान लगा सकता है कि कब, कहां और किस समय और किससे उसके व्यक्ति और संपत्ति को खतरा हो सकता है या होगा। ऐसा पूर्वानुमान लगभग असंभव है। यदि किसी को एक निश्चित खतरे और योजना के बारे में पता होगा, तो एक विवेकशील नागरिक के रूप में वह तुरंत पुलिस के पास शिकायत दर्ज कराएगा और उसके बाद उचित कार्यवाही करना राज्य की जिम्मेदारी होगी ताकि ऐसा व्यक्ति या योजनाकार अपराध करने के अपने अनैतिक लक्ष्य को प्राप्त न कर सके लेकिन जब सामान्य रूप से व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति की आवश्यकता होती है, तो व्यक्ति को अपने जीवन और संपत्ति के लिए खतरे की धारणा पर क्षेत्र में सामान्य कानून और व्यवस्था की स्थिति, उसकी नौकरी की प्रकृति और विभिन्न अन्य कारकों को ध्यान में रखना होगा। यह किसी व्यक्ति और संपत्ति पर आक्रमण आदि की आपात स्थिति उत्पन्न होने की स्थिति में खुद को तैयार रखने का एक प्रकार है, अन्यथा नहीं।

107. मैंने विशेष रूप से विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता से स्पष्ट करने की अपेक्षा की कि एक आवेदक को अपनी व्यक्तिगत बचाव और सुरक्षा के कारणों के साथ किन विवरणों का खुलासा करना चाहिए ताकि एक "अच्छा कारण" बन सके, लेकिन वह इस संबंध में एक भी उदाहरण देने में विफल रहे। उन्होंने बहुत ही निष्पक्षता से कहा कि संबंधित अधिकारी भी कुछ बता पाने में सक्षम नहीं हैं।

108. मेरे विचार में, "अच्छे कारण" वाक्यांश को "असाधारण कारण", "बहुत अच्छे कारण",

"उत्कृष्ट कारण", "अतिरिक्त कारण" आदि बनाने के लिए दोबारा नहीं कहा जा सकता है। जब विधायिका ने कुछ शब्दों का उपयोग किया है, तो इन्हें सामान्य अर्थों में पढ़ा, व्याख्या और लागू किया जाना चाहिए, जब तक कि ऐसा कोई आवेदन प्रावधान को अस्पष्ट, अव्यवहारिक या पूरी तरह से अनुचित परिणाम न दे दे। यह प्रतिवादियों का प्रकरण नहीं है कि "अच्छे कारण" शब्द को यदि इसके सामान्य अर्थ में पढ़ा जाए तो ऐसी कोई बात घटित होने की संभावना है। इसलिए, परिस्थितियों जिन्हें "अच्छे कारण" वाक्यांश द्वारा आच्छादित किया जाएगा, उन्हें उपरोक्त वाक्यांश को, और वह भी उल्लंघन होने पर और व्यक्तिगत अधिकारियों के मनमाने विवेक पर या सरकार द्वारा जारी एक कार्यकारी आदेश करके, एक अलग प्रकार की स्थिति तक सीमित करके, किसी भी तरह से बाहर नहीं किया जा सकता है।

109. इस स्तर पर, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने न्यायालय के विशिष्ट प्रश्न का सीधे उत्तर देने के बजाय, श्री हृषिकेश भास्कर यशोद, निवर्तमान जिला मजिस्ट्रेट, देवरिया द्वारा प्रतिशपथपत्र के परिशिष्ट प्रतिशपथपत्र-1, प्रतिशपथपत्र-4 के रूप में दायर किए गए, समय-समय पर जारी किए गए सरकारी परिपत्रों/आदेशों का हवाला देते हुए तर्क दिया है कि इसमें दिए गए दिशानिर्देशों के आलोक में, आग्नेयास्त्र रखने या वहन करने के लिए अनुज्ञप्ति अनुदत्त नहीं किया जाता है, जब तक कि अनुज्ञापन प्राधिकारी निश्चित रूप से किसी के जीवन और स्वतंत्रता के लिए खतरे की आसन्न आशंका नहीं पाता है।

110. केंद्र और राज्य सरकार के उपरोक्त शासनादेशों (इसके बाद इसे "शासनादेश" कहा जाएगा) को मेरे द्वारा पढ़े जाने पर दिये गये तर्क से कुछ अलग ही दर्शित होता है। पूर्वतर शासनादेश दिनांक 03.06.1998 का है जोकि सचिव, गृह विभाग, उ0प्र0 शासन द्वारा उ0प्र0 राज्य के सभी आयुक्तों और जिला मजिस्ट्रेटों को जारी किया गया है। यह दिशानिर्देश निर्धारित करता है कि कितने समय के भीतर कार्यवाही पूरी की जाएगी जब भी आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त किए जाने हेतु धारा 13 के अंतर्गत आवेदन दिया जाता है। एक पुलिस आख्या अधिकतम बीस दिन के भीतर प्रस्तुत की जानी आवश्यक है। उपरोक्त अवधि को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा स्वविवेक से कम किया जा सकता है। पुलिस को शस्त्र नियमावली की अनुसूची III सहपठित नियम 51 में दी गई समस्त जानकारी एकत्र करना आवश्यक है। यह भी पता लगाया जाएगा कि आवेदक का आपराधिक इतिहास है या नहीं। थाना भारसाधक वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक या क्षेत्राधिकारी के माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट को आख्या सौंपेंगा। इस संबंध में वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/ पुलिस अधीक्षक द्वारा आवश्यक निर्देश जारी किये जायेंगे तथा एक सप्ताह के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को इससे अवगत कराया जायेगा तथा जब तक वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक से ऐसा कोई निर्देश प्राप्त नहीं होता है, तब थाना भारसाधक वरिष्ठतम पुलिस अधिकारी के माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट को आख्या प्रस्तुत करेगा। जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय से तहसील को भेजे गए आवेदन, उप-प्रभागीय मजिस्ट्रेट के माध्यम से आगे बढ़ेंगे जोकि नायब तहसीलदार से भी एक आख्या मांगेंगा और एक महीने के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को अपनी सिफारिश प्रस्तुत करेंगा। पुलिस एवं तहसील द्वारा आख्या विशेष दूतों के माध्यम से अग्रेषित नहीं की जायेगी। आग्नेयास्त्र आवेदनों का यथासंभव तीन माह के भीतर

निस्तारण किया जाएगा। विधान सभा/ परिषद सदस्य और सांसद जिनका कोई आपराधिक अभिलेख नहीं है और जिन्होंने किसी जघन्य अपराध की घटना का सामना किया है और सरकारी अधिकारी, जिन्हें अपने कर्तव्यों के निर्वहन के लिए आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति की आवश्यकता है, उन्हें क़ानून में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के बाद अनुज्ञप्ति प्राधिकारी द्वारा अनुज्ञप्ति जारी की जाएगी। जो व्यक्ति बड़े पैमाने पर व्यवसाय में लगे हुए हैं और उनके अपहरण, लूट, डकैती आदि की आशंका है, लेकिन उनके पास कोई आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति नहीं है, उन्हें सरकार की नीति के अनुसार आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति देने पर विचार किया जाएगा। सामान्यतया, आवेदकों की उपयुक्तता की जांच, उनसे आयकर और व्यापारकर या अन्य दस्तावेजों के प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद और उन्हें खतरे की धारणा का आकलन करने और इस तथ्य पर भी कि उनके पास अपनी सुरक्षा के लिए कोई अन्य शस्त्र या विधि या जीवन की सुरक्षा का स्रोत नहीं है, के बाद की जाएगी। अनुज्ञप्ति धारक की वृद्धावस्था के कारण उत्तराधिकार पर आधारित आवेदनों की जांच की जाएगी और उत्तराधिकारी/वारिस आवेदक की पात्रता पर विचार करने के बाद एक महीने के भीतर उचित आदेश पारित किया जाएगा।

111. निस्संदेह, पूर्व दृष्टया, प्रतिवादियों द्वारा आक्षेपित आदेशों को पारित करने में इस शासनादेश का अनुपालन नहीं किया गया है, इस कारण से कि आग्नेयास्त्र आवेदन के निपटान के लिए तीन महीने की अवधि निर्धारित है, लेकिन वर्तमान प्रकरण में, अनुज्ञापन प्राधिकारी को एक प्रकरण में बारह वर्षों की अवधि तथा दूसरे प्रकरण में दो वर्षों से अधिक की अवधि, ऐसी असाधारण देरी के लिए बिना कोई कारण बताए, आदेश देने में लग गयी।

112. राज्य सरकार का दूसरा शासनादेश दिनांकित 05.06.1999 केवल जिला मजिस्ट्रेटों का ध्यान अधिनियम 1959 की धारा 13(3)(ख) की ओर आकर्षित करता है जिसमें कहा गया है कि अनुज्ञापन प्राधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसे व्यक्तियों को आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति जारी न किया जाए जिन्हें वास्तव में इसकी आवश्यकता नहीं है। अनुज्ञप्ति तभी जारी किया जाना चाहिए जब अनुज्ञापन प्राधिकारी संतुष्ट हो कि आवेदक के पास इसे प्राप्त करने का "अच्छा कारण" है। इसमें यह भी कहा गया है कि चुनाव की घोषणा के बाद, चुनाव प्रक्रिया पूरी होने तक कोई नयी अनुज्ञप्ति जारी नहीं की जाएगी।

113. इसके बाद भारत सरकार का आदेश दिनांक 18/20.03.2009 है, जिसके बारे में कहा गया है कि इसे गृह सचिव के पत्र दिनांक 19.05.2009 के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा प्रसारित किया गया था। उक्त शासनादेश में यह भी कहा गया है कि आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति उन व्यक्तियों को अनुदत्त की जानी चाहिए जिन्हें इसकी वास्तविक आवश्यकता है। पैरा 3 (i) से (iii) के अनुसार, आवेदन पर तभी विचार किया जाएगा जब वह क़ानून, अर्थात् अधिनियम और उसके तहत बनायी गयी नियमावली के तहत अपेक्षित औपचारिकताओं का अनुपालन करता है।

114. हालाँकि, शासनादेश (केंद्रीय) दिनांक 18/20.03.2009 के पैरा 3 (iii) (ख) के अनुसार अनुज्ञापन प्राधिकारी को धारा 13 की उप-धारा (2क) को लागू नहीं करने की आवश्यकता है क्योंकि यह समीक्षाधीन है। निर्देश का यह भाग पूर्णतया गलत है, जब तक क़ानून वास्तव में

संशोधित नहीं होता है, तब तक अनुज्ञापन प्राधिकारी से क़ानून की 'समीक्षा' के बहाने उसके किसी भी भाग की अनदेखी करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। कार्यकारी आदेश किसी वैधानिक प्राधिकारी को क़ानून के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करने से बाध्य नहीं कर सकते हैं और उस सीमा तक कार्यकारी आदेश में निर्देश पूरी तरह से बिना क्षेत्राधिकार और अधिकार के होगा।

115. अन्यथा भी, किसी शासनादेश में "समीक्षा के अधीन" के उल्लेख मात्र से क़ानून में संशोधन नहीं होगा जब तक कि वास्तविक संशोधन नहीं किया जाता है।

116. उक्त शासनादेश के पैरा 3 (v) में कहा गया है, जहां खतरे की धारणा के आधार पर अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने हेतु आवेदन दिया जाता है, अनुज्ञापन प्राधिकारी यह सुनिश्चित कर सकता है कि आवेदक के जीवन के लिए वास्तव में "आसन्न और गंभीर खतरा" है। मेरे मत में, यह उस प्रकरण पर लागू होता है जहां किसी व्यक्ति द्वारा आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन करने के लिए खतरे की आशंका का कारण बताते हुए आवेदन प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे प्रकरण में, उसे खतरे की आशंका का ब्योरा देना होगा। परन्तु, जहां "व्यक्तिगत बचाव और सुरक्षा" के आधार पर अनुज्ञप्ति मांगा गया है, वहां स्थिति भिन्न होगी और केंद्रीय शासनादेश दिनांक 18/20.03.2009 के इस भाग की कोई प्रायोज्यता नहीं होगी। शासनादेश के शेष भाग में कोई अन्य निर्देश नहीं है जो निर्णय हेतु विचार के लिए प्रश्न पर कोई प्रकाश डाल सके, और शासनादेश का शेष भाग प्रतिवादियों के लिए सहायक नहीं है।

117. इसके बाद अंतिम शासनादेश (केंद्रीय) दिनांक 31.3.2010 आता है जिसमें शस्त्रों के अधिग्रहण/ धारण करने के लिए आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने के विभिन्न पहलुओं पर कुछ दिशानिर्देश हैं। ऐसा कहा जाता है कि इसे देश में शस्त्रों के प्रसार पर अंकुश लगाने और सभी मौजूदा निर्देशों का अधिक्रमण करते हुए जारी किया गया है। पैरा (i) में कहा गया है कि भारत सरकार ने निर्णय लिया है कि निम्नलिखित श्रेणी के व्यक्तियों के लिए प्रतिबंधित बोर शस्त्र के अनुदत्त करने हेतु आवेदन पर विचार किया जा सकता है:

क) वे व्यक्ति जो किसी भौगोलिक क्षेत्र (या क्षेत्रों) के निवासी होने के कारण अपने जीवन के लिए गंभीर और आसन्न खतरे का सामना करते हैं, जहां आतंकवादी सबसे अधिक सक्रिय हैं और/या आतंकवादियों की दृष्टि में प्रमुख 'लक्ष्य' माने जाते हैं और/या आतंकवादियों के लक्ष्यों और उद्देश्यों के लिए शत्रुतापूर्ण माने जाते हैं और इस प्रकार उनके जीवन को ख़तरा होता है।

ख) वे सरकारी अधिकारी जिन्होंने अपने पद पर रहते हुए और/या अपने द्वारा किए गए कर्तव्यों की प्रकृति और/या अपने आधिकारिक कर्तव्य के उचित निर्वहन के कारण स्वयं को आतंकवादियों की दृष्टियों में लक्ष्य बना लिया है और आतंकवादी आक्रमण के प्रति संवेदनशील हैं।

ग) वे सांसद और विधायक जिनमें गैर-सरकारी/निजी व्यक्ति भी शामिल हैं निकटता से और/या सक्रिय रूप से आतंकवाद विरोधी

कार्यक्रम और सरकारी नीतियों से जुड़े रहने होने के कारण या केवल उनके राजनीतिक या अन्यथा विचार रखने का कारण, आतंकवादियों की पसंद नहीं हैं, स्वयं को आतंकवादियों द्वारा आक्रमण हेतु उन्मुक्त छोड़ रखा है।

घ) उन लोगों के परिवार के सदस्य/सगे-संबंधी जोकि उनके कर्तव्यों की प्रकृति या पालन (अतीत या वर्तमान) या सरकार में धारित पद (अतीत या वर्तमान) या अन्यथा भी ज्ञात/अज्ञात कारणों से असुरक्षित हैं, जिन्हें आतंकवादियों द्वारा उन्मूलन हेतु उपयुक्त लक्ष्य के रूप में माना जाने लगा है।"

118. स्पष्टतः, उपरोक्त निर्देश कुछ श्रेणी के आवेदकों को "निषिद्ध बोर शस्त्र" अनुदत्त करने के लिए है। इस न्यायालय को प्रकरण के वर्तमान समूह में शासनादेश के इस भाग से कोई सरोकार नहीं है। यहां हमारा संबंध "गैर निषिद्ध बोर शस्त्र" से है जिसके लिए अनुज्ञप्ति की आवश्यकता होती है। यहां शासनादेश यह भी कहता है कि जो व्यक्ति अपने जीवन के लिए गंभीर और आसन्न खतरे का सामना कर सकता है या महसूस कर सकता है, उसे पुलिस अधिकारियों से खतरे का आकलन प्राप्त करने के बाद गैर-निषिद्ध बोर शस्त्र अनुज्ञप्ति देने पर विचार किया जा सकता है। यहां फिर से यह ऐसे प्रकरणों को संदर्भित करता है जहां एक व्यक्ति विशेष रूप से अपने जीवन के लिए गंभीर और आसन्न खतरे की आशंका के बारे में शिकायत करता है लेकिन यह उस स्थिति के बारे में बात नहीं करता है जहां किसी ने केवल अपने जीवन और सम्पत्ति के लिए किसी भी समय अप्रत्याशित, संभावित खतरे या आक्रमण से बचाव और सुरक्षा के लिए और संबंधित क्षेत्र की सामान्य अपराध स्थितियों सहित विभिन्न कारणों से आवेदन किया है। विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा संदर्भित उपरोक्त शासनादेश का कोई अन्य भाग नहीं है जो मौजूदा प्रकरणों में लागू हो सकता है।

*119. **इस प्रकार पुनरावृत्ति की पीड़ा पर, मैं कह सकता हूं कि उपरोक्त शासनादेशों को मेरे द्वारा पढ़ने से पता चलता है कि यदि आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति का आवेदक ऊपर बताए गए कारकों के अस्तित्व को दिखाने में सक्षम है, तो उसे आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त किया जाना चाहिए और इन्कार नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि उसके आचरण आदि के संबंध में अन्य प्रासंगिक कारक न हों।** हालाँकि, उपरोक्त शासनादेश कहीं भी इस बात पर रोक नहीं लगाते हैं कि ऐसे प्रकरणों में जो अन्यथा अधिनियम की धारा 13 के दायरे में हैं और उसमें सभी आवश्यक शर्तें पूरी करते हैं, फिर भी उन्हें अनुज्ञप्ति अनुदत्त नहीं किया जाएगा जब तक कि उपरोक्त शासनादेश(शों) में बताया गया अस्तित्व में न पाया गया हो। **मैं आगे यह टिप्पणी करने के लिए बाध्य हूँ कि प्रकरण पर कोई भी अन्य दृष्टिकोण उपरोक्त शासनादेशों को अधिनियम 1959 के अधिकारातीत कर देगा क्योंकि यहां तक कि सरकार एक कार्यकारी आदेश जारी करके अनुज्ञापन प्राधिकारी की अधिनियम 1959 की धारा 13 और 14 के अनुसार शक्ति, जिसका प्रयोग किया जाना है, को बढ़ा या घटा नहीं सकती है। इसके अलावा, ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, कम से कम, अधिनियम 1959 के तहत इस***

अनुवादित

न्यायालय को कोई भी प्रावधान नहीं दिखाया गया है जो सरकार को ऐसा कार्यकारी आदेश जारी करने का अधिकार देता हो जिससे अनुज्ञापन प्राधिकारी के वैधानिक विचार को नियंत्रित किया जा सके। किसी क़ानून की प्रभावकारिता को किसी कार्यकारी आदेश द्वारा विस्तारित या प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है।

120. अब अंतिम तर्क यह है। विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने आशंका जताई कि यदि केवल व्यक्तिगत बचाव और सुरक्षा के आधार पर आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने की अनुमति दे दी गई, तो पूरे समाज में आग्नेयास्त्रों की बाढ़ आ सकती है, जिससे स्वयं समाज के लिए बड़ा खतरा उत्पन्न हो सकता है। उनका कथन है कि हर माह हर जनपद में आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त किये जाने के लिए सैकड़ों आवेदन प्राप्त होते हैं और लगभग सभी आवेदनों में एक ही कारण होता है, यानी व्यक्तिगत बचाव और सुरक्षा। उन्होंने तर्क दिया कि राज्य को सामान्य विधि और व्यवस्था का ध्यान रखना है और इसके अलावा केवल मांगने पर आग्नेयास्त्र का अनुज्ञप्ति देना राज्य में विधि और व्यवस्था की स्थिति को खतरे में डालने के अलावा पूरे समाज के हित के विरुद्ध होगा।

121. प्राथमिक दृष्टि में, समाज को खतरे की आशंका का तर्क काफी आकर्षक प्रतीत होता है, लेकिन गहराई से विचार करने पर, मैं इसे सतही, और तात्विक से कहीं अधिक खतरे की प्रकृति का पाता हूँ। इसके अन्तर्गत पहले से ही मान लिया गया है कि हर कोई आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति प्राप्त करने के लिए बहुत उत्सुक है। हालांकि कोई रोक नहीं है लेकिन जमीनी हकीकत को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। अगर मैं स्वयं को उ.प्र. राज्य की जमीनी स्तर की स्थितियों तक ही सीमित रखूं, जनसंख्या लगभग 20 करोड़ है जबकि 2.5 लाख से भी कम पुलिसकर्मी, पूरे राज्य की बचाव और सुरक्षा की देखभाल के लिए उपलब्ध हैं। इसमें से 5% से अधिक शक्ति, ऐसे वर्ग की व्यक्तिगत सेवा में पहले से ही तैनात है जो वीआईपी कहलाते हैं जिन्हें अविभाज्य साथी, गनर, स्कॉर्ट्स, आदि बाहरी/ अतिरिक्त सुरक्षा के रूप में प्रदान किये जाते हैं। जन-प्रतिनिधि ज्यों ही निर्वाचित होते हैं उनके लिए समाज इतना असुरक्षित हो जाता है कि तुरंत ही वे अपने ही उन लोगों से, जिन्होंने उन्हें चुना है, अतिरिक्त सुरक्षा की मांग करते हैं और उन्हें अतिरिक्त सुरक्षा अनुदत्त की जाती है। उ.प्र. कैडर की भारतीय प्रशासनिक सेवा एवं भारतीय पुलिस सेवा की संख्या 1500 से अधिक है। इन सेवाओं के लगभग हर सदस्य को एक निजी सुरक्षा अधिकारी उपलब्ध कराया जाता है। इसी प्रकार न्यायिक अधिकारियों सहित ऐसे अधिकारी भी हैं जिनके पास अतिरिक्त/ बाह्य सुरक्षा है। इनमें से अधिकांश प्रकरणों में अतिरिक्त सुरक्षा को उचित ठहराने वाले खतरे के स्तर की किसी भी धारणा के बारे में कोई अध्ययन, कोई अन्वेषण, कोई जांच नहीं की गई है। कई बार यह राजनीतिक या अन्य कारणों से प्रदान किया जाता है। बहुत ही दुर्लभ प्रकरणों में अपराधियों, असामाजिक तत्वों, आतंकवादियों आदि से खतरे की धारणाएं वास्तव में मौजूद होती हैं जहां अतिरिक्त सुरक्षा उचित होगी लेकिन इस श्रेणी से संबंधित अधिकांश लोगों के लिए, यह बचाव और सुरक्षा के साधन से अधिक एक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया है। राज्य में विधि व्यवस्था की स्थिति अच्छी या संतोषजनक है इसकी डींग नहीं मारी

जी सकती है। ऐसे अपराधों की संख्या जो किए गए लेकिन उजागर नहीं हो पाए, उनकी संख्या उन अपराधों की तुलना में बहुत अधिक है जिनकी जांच की गई और उन पर काम किया गया। राज्य में अनाधिकृत एवं अवैध शस्त्रों पर नियंत्रण लगभग नगण्य है। हाल के दिनों में रक्षक भी गंभीर अपराधी और विधि का उल्लंघन करने वाले साबित हुए हैं। एक सामान्य व्यक्ति को अपने व्यक्ति और संपत्ति के प्रति डर और भय की सभी धारणाएँ होती हैं। सुरक्षा को लेकर आशंका सामान्य तौर पर निराधार नहीं कही जा सकती। हालाँकि, यह अपने आप में आवेदन करने वाले सभी व्यक्तियों को आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने को उचित ठहरा भी सकता है और नहीं भी, लेकिन एक बात बहुत स्पष्ट है कि राज्य का एक बड़ा हिस्सा इतनी दयनीय वित्तीय स्थिति में जी रहा है कि उसे दो समय का भोजन जुटाना कठिन हो रहा है। इन लोगों के लिए आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति रखने या आग्नेयास्त्र खरीदने की चाहत एक दिवास्वप्न है। वे इसके बारे में सोच भी नहीं सकते।

122. इस न्यायालय द्वारा की गई उपरोक्त टिप्पणियाँ, इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा गयूर हसन बनाम उ.प्र. सरकार व अन्य, 2008(10) एडीजे 575, निर्णीत दिनांकित 20.11.2008 के पैराग्राफ संख्या 14, 15 और 16 में कही गई बातों से पुष्ट होती हैं, जिसे निम्नानुसार प्रस्तुत करना उपयोगी होगा:

"14. हालाँकि, पृथक होने से पूर्व, हम व्यक्तियों को गनर/सुरक्षाकर्मी अनुदत्त करने की प्रणाली पर अपना असंतोष और पीड़ा दर्ज करना अनिवार्य समझते हैं, जिस तरह से इसे लागू किया गया है, जबकि पूरा राज्य एक बहुत ही कठिन विधि और व्यवस्था, सामान्य प्रकार की नहीं बल्कि बड़े पैमाने पर आतंकवादी और अन्य कार्यकर्ताओं के आंदोलन और संचालन के कारण उच्च जोखिम वाली, की स्थिति के तहत जूझ रहा है। राज्य का संवैधानिक दायित्व है कि वह प्रत्येक निवासी को उसकी जाति, पंथ, धर्म, स्थिति, पद आदि की परवाह किए बिना पर्याप्त सुरक्षा अनुदत्त करे। सबसे सामान्य व्यक्ति का जीवन भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि राज्य में उच्च पद पर आसीन व्यक्ति का। हम सामान्य व्यक्तियों के साथ गिन्नी सुअर की तरह का व्यवहार नहीं कर सकते, जिनकी मृत्यु केवल संख्या में होती है बल्कि यह राष्ट्र के लिए क्षति होती है। प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह कितना भी सामान्य आदमी क्यों न हो, राज्य के लिए एक संपत्ति है। उसकी रक्षा के लिए हर संभव कदम उठाना राज्य का सबसे पवित्र और गंभीर दायित्व है। राज्य को प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरित करना चाहिए और उसमें पूर्ण विश्वास पैदा करना चाहिए कि उसका जीवन और स्वतंत्रता सभी प्रकार की न्यायनिष्ठ गतिविधियों द्वारा सुरक्षित है और वह बिना किसी अतिरिक्त जोखिम, भय आदि के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत निहित अपने संवैधानिक अधिकार का आनंद उठा सकता है। उ.प्र. राज्य की जनसंख्या जबकि पहले से ही 20 करोड़ से अधिक है, सुरक्षा बलों अर्थात् पुलिस बल में कार्यरत लोगों की संख्या बेहद अपर्याप्त है। जैसा कि हमें सूचित किया गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य में संपूर्ण पुलिस बल 2 लाख से भी कम है। इससे तात्पर्य है कि प्रत्येक 1000 या उससे अधिक व्यक्तियों पर उनकी सुरक्षा का ध्यान रखने के लिए केवल एक पुलिस कर्मी उपलब्ध है। ऐसी परिस्थितियों में, यदि राज्य

अनुवादित

व्यक्तिगत सुरक्षा आवरण अनुदत्त करने के उद्देश्य से बड़ी संख्या में सुरक्षा कर्मियों को वापस लेना, व्यक्तिगत सुरक्षा की कीमत पर आम और साधारण व्यक्ति को उसके जीवन और स्वतंत्रता के लिए अधिक जोखिम में डालने जैसा होगा। इसकी न तो सराहना की जा सकती है और न ही यह उस संवैधानिक योजना के अनुरूप है जो हर व्यक्ति के साथ उसके जीवन और स्वतंत्रता के प्रश्न को समान मानती है। यहां तक कि एक सामान्य भारतीय भी, जैसा कि माननीय न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने कहा था, सबसे शक्तिशाली व्यक्ति के बराबर व्यवहार किए जाने का हकदार है। कुछ असाधारण प्रकरणों में व्यक्तिगत सुरक्षा आवश्यक हो सकती है लेकिन यह सामान्य व्यक्ति की सामूहिक सुरक्षा की कीमत पर नहीं हो सकती।।"

21. उपरोक्त चर्चा के साथ-साथ **दिनेश कुमार पांडे (उपरोक्त), जसवन्त सिंह सरना (उपरोक्त), अब्दुल काफ़ी (उपरोक्त), बृज नंदन सिंह (उपरोक्त)** और **पवन कुमार झा (उपरोक्त)** के प्रकरण में इस न्यायालय के आदेशों को दृष्टिगत रखते हुए यह स्पष्ट है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 07.09.2020, जिसके माध्यम से सक्षम प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त किए जाने के आवेदन को खारिज कर दिया गया है, स्पष्ट रूप से अधिनियम, 1959 की धारा 14 के प्रावधानों के विरुद्ध है। आक्षेपित आदेश में निहित कारण अधिनियम, 1959 की धारा 14 के तहत प्रगणित कारणों से भी परे हैं। अपीलीय प्राधिकारी ने भी अपने आदेश दिनांक 12.04.2021 के माध्यम से याचिकाकर्ता की अपील को खारिज करते समय प्रकरण के इस पहलू पर भी विचार नहीं किया है। परिणामतः, रिट याचिका स्वीकार किये जाने योग्य है और **स्वीकार** की जाती है। आक्षेपित आदेश दिनांक 12.04.2021 और 07.09.2020, जिनकी प्रतियां रिट याचिका के क्रमशः अनुलग्नक 1 और 2 हैं, रद्द किए जाते हैं। प्रकरण जिला मजिस्ट्रेट, प्रतापगढ़ को, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्ति की तिथि से छः सप्ताह की अवधि के भीतर आग्नेयास्त्र अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने हेतु याचिकाकर्ता के आवेदन पर उपरोक्त टिप्पणियों को दृष्टिगत रखते हुए, आदेश पारित किए जाने हेतु भेजा जाता है।

(2023) 2 ILRA 189

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 30.01.2023-

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV,

रिट सी संख्या 25066/2022

संलग्न

रिट सी नंबर 25115/2022

मीना पांडे ...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता : श्री तरूण अग्रवाल, श्री रवि कांत (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी.आई., श्री संजय कुमार ओम

(ए) सिविल कानून - भारतीय सुखाचार अधिनियम, 1882 - धारा 60 - लाइसेंस जब निरस्त किया जा सकता है - भारत सरकार

अनुवादित

अधिनियम, 1833 - धारा 43 - भूमि में स्वामित्व भारत संघ में निहित रहता है - अनुदान प्राप्तकर्ता को केवल लाइसेंस के तहत अधिभोग अधिकारों का आनंद मिलता है - स्थायी संरचना खड़ी करने की अनुमति, जिसे केवल उसके द्वारा हस्तांतरित किया जा सकता है, न कि भूमि को - भारत संघ एक माह का नोटिस देकर किसी भी समय पुनः प्राप्त करने का निर्बाध अधिकार रखता है - भवन की राशि या मूल्य का निर्धारण एक मंत्रिस्तरीय कार्य है और उसका भुगतान परिणामी प्रक्रिया है - बहाली की वैध सूचना देने के लिए पूर्व शर्त नहीं है। (पैरा - 8,14,)

याचिकाकर्ता ने भूमि पर स्थायी ढांचा निर्मित कर दिया - जिसका उसे लाइसेंस प्रदान किया गया - प्रभाव - याचिकाकर्ता को पुनः आरंभ करने का नोटिस दिया गया - विचाराधीन भूमि को पुंज प्राप्त करने के लिए - उस पर मौजूद निर्माण - भूमि का कब्ज़ा - पुरानी अनुदान शर्तें - गवर्नर जनरल-इन-काउंसिल ऑर्डर (जी.जी.ओ.) में निहित हैं। **(पैरा-1 से 9)**

आयोजित:-जीजीओ संख्या 179 एक वैधानिक अभ्यास और एक प्रभावी कानून था। स्थायी संरचना के निर्माण का अधिकारी है। निर्माण के मूल्य का निर्धारण और उसका भुगतान भूमि को पुनः प्राप्त करने के लिए एक शर्त नहीं थी और परिणामस्वरूप पुनः प्राप्त करने के नोटिस को अमान्य नहीं कहा जा सकता है। **(पैरा-15,17)**

याचिका निरस्त। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. उषा कपूर और अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2014) 16 एससीसी 481
2. गंगा सहाय बनाम बदरुल इस्लाम, एआईआर (29) 1942 एएलआईडी 330
3. वरिष्ठ अधीक्षक, आर.एम.एस. कोचीन एवं अन्य बनाम के.वी. गोपीनाथ, सॉर्टर, (1973) 3 एससीसी 867
4. छोटे लाल बनाम माउंट. दुर्गा बाई, एआईआर 1950 एल्ड 661
5. भारत संघ बनाम हरीश चंद आनंद, एआईआर 1996 (एससी) 203
6. भारत संघ बनाम टेक चंद, (1999) 3 एससीसी 565
7. राज सिंह बनाम भारत संघ, एआईआर 1973 डेल 169
8. सी.ई.ओ. बनाम सुरेंद्र कुमार वकील एवं अन्य, 1993 (3) एससीसी 555
9. मिर्जा मोहम्मद हसन बनाम बुद्धू, AIR 1932 All.32
10. नबी मोहम्मद बनाम भागवत प्रसाद शुकुल, 1931 एएलजे 649
11. छोटे लाल बनाम माउंट दुर्गा बाई, एआईआर 1950 एआईआई 661

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता, द्वारा प्रदत्त)

1.प्रस्तुत याचिकाएं भारतीय राष्ट्रपति द्वारा कार्यरत महानिदेशक, रक्षा संपदा, रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली (प्रतिवादी संख्या 1) द्वारा जारी किए गए पुनर्ग्रहण नोटिस दिनांक 01.07.2022 पर प्रश्न उठाती हैं। इस प्रकार, पूर्व अनुदान शर्तों पर याचिकाकर्ताओं द्वारा भूमि का कब्ज़ा नोटिस की तारीख से एक महीने की समाप्ति पर, उस पर बनी संरचनाओं के साथ फिर से शुरू करने की मांग की गई थी। चूंकि याचिकाओं में तथ्यों और विधि के समान तथ्य

अनुवादित

शामिल हैं, इसलिए दोनों याचिकाओं पर एक साथ सुनवाई की गई और इस सामान्य निर्णय द्वारा निर्णय लिया जा रहा है।

रिट - सी नंबर 25066 वर्ष 2022:

2. याचिकाकर्ता के पूर्ववर्ती हितधारक गंगा प्रसाद ने गवर्नर जनरल-इन-काउंसिल आदेश संख्या 179 दिनांक 12.09.1836 (संक्षेप में, 'जी.जी.ओ. संख्या 179' के रूप में संदर्भित) में निहित पूर्व अनुदान शर्तो के अंतर्गत दिनांक 27.10.1892 के एक समझौते के अनुसरण में अनुदान का आनंद लिया। उन्होंने उक्त भूमि पर पक्का निर्माण कर लिया। इसमें बंगला नंबर 8, पोनप्पा रोड, जनरल लैंड रजिस्टर (जी.एल.आर.) सर्वे नंबर 122, न्यू कैंट, इलाहाबाद (प्रयागराज) है और यह सैन्य छावनी की सीमा के भीतर स्थित है। यह आरोप लगाया गया है कि गंगा प्रसाद ने अपनी पत्नी राजवंती देवी के पक्ष में सीमित अधिकार की वसीयत दिनांक 12.11.1953 को निष्पादित की। दिनांक 18.5.1994 को उनकी मृत्यु के बाद, संपत्ति में उनकी अधिकार उनके भतीजे कृष्ण द्विवेदी को हस्तांतरित हो गई। याची कृष्णा द्विवेदी की पुत्रवधू है। कृष्ण द्विवेदी ने अपने जीवनकाल के दौरान, रक्षा संपदा अधिकारी को संबंधित संपत्ति में किरायेदार के रूप में शामिल किया। यह आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 के विरुद्ध बेदखली और बकाया किराये की वसूली के लिए 2004 का एस.सी.सी. वाद संख्या 34 लंबित है। यह भी आरोप है कि इससे नाराज होकर प्रतिवादी सं. 2 ने जी.जी.ओ. संख्या 179 दिनांक 12.9.1836 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए, प्रश्नगत भूमि और उस पर मौजूद निर्माणों को फिर से शुरू करने की मांग करते हुए, याचिकाकर्ता को आक्षेपित पुनर्ग्रहण नोटिस दिया।

2022 की रिट - सी नंबर 25115:

3. प्रस्तुत वाद में विवादित संपत्ति बंगला नंबर 1, अशोक रोड, जनरल लैंड रजिस्टर (जी.एल.आर.) सर्वे नंबर 122, न्यू कैंट, इलाहाबाद (प्रयागराज) है। इसे गवर्नर जनरल-इन-काउंसिल आदेश संख्या 179 दिनांक 12.09.1836 (जी.जी.ओ. संख्या 179) में निहित पूर्व अनुदान शर्तों के अंतर्गत गंगा प्रसाद के साथ भी तय किया गया था। यह कृष्ण द्विवेदी उसी तरह को सौंप दिया गया। उक्त संपत्ति में, कृष्ण द्विवेदी ने एक लेखा अधिकारी, इलाहाबाद सर्कल, रक्षा मंत्रालय को किरायेदार के रूप में शामिल किया। एस.सी.सी. वाद संख्या 79 वर्ष 2004 याचिकाकर्ता, जो कृष्ण द्विवेदी का बेटा है, द्वारा बकाया किराए की वसूली और बेदखली के लिए दायर किया गया था। इसे दिनांक 01.08.2009 को डिक्री किया गया था और उसके बाद जे.एस.सी.सी. के उक्त फैसले और डिक्री के खिलाफ दायर एक पुनरीक्षण को भी खारिज कर दिया गया था। वाद इस अदालत के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत 2011 की रिट - सी संख्या 46076 में लंबित है और उत्तरदाताओं के पक्ष में एक अंतरिम आदेश लागू है। उक्त रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता को दिनांक 1.7.2022 को पुनर्ग्रहण का नोटिस दिया गया था।

प्रविष्टियां:

4. याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री रवि कांत, वरिष्ठ अधिवक्ता दोनो वाद में उपस्थित हुए और तर्क प्रस्तुत किया कि:-

(ए) अनुदान प्राप्तकर्ताओं, यानी याचिकाकर्ताओं की स्थिति अनुज्ञप्तिधारी की है, न कि किरायेदार

अनुवादित

की। याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती-हित ने स्थायी चरित्र का काम निष्पादित किया है और इसके निष्पादन में व्यय किया है और इसलिए, लाइसेंस भारतीय सुखाचार अधिनियम, 1882 की धारा 60 (संक्षेप में 'अधिनियम') के अंतर्गत अपरिवर्तनीय हो गया था। विवादित भूमि को पुनः शुरू करने की मांग करने वाला नोटिस विधिक रूप से शून्य है। अपनी प्रस्तुति के समर्थन में, उन्होंने उच्चतम न्यायालय के निर्णय **उषा कपूर और अन्य बनाम भारत सरकार और अन्य** (2014) 16 एससीसी 481 तथा इस न्यायालय के निर्णय **गंगा सहाय बनाम बदरुल इस्लाम** एआईआर (29) 1942 एल्ड 330 पर निर्भरता व्यक्त किया।

(बी) जी.जी.ओ. संख्या 179 के खंड 6 के अंतर्गत, भवन के मूल्य के भुगतान पर पुनः शुरू करने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, जैसा कि बनाया गया हो। पुनर्ग्रहण की सूचना के साथ मुआवजा राशि की पेशकश की जानी है, जबकि प्रस्तुत वाद में ऐसा नहीं किया गया है। केवल यह आश्वासन दिया गया कि नोटिस में निर्दिष्ट समिति जब भी मुआवजे की राशि निर्धारित करेगी, उसका भुगतान कर दिया जाएगा। परिणामस्वरूप, नोटिस अवैध है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **वरिष्ठ अधीक्षक, आर.एम.एस. कोचीन और अन्य बनाम के.वी. गोपीनाथ, सॉर्टर** (1973) 3 एससीसी 867 के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की।

(सी) विवादग्रस्त भूमि के निकट स्थित समान रूप से स्थित अन्य भूमियों की एक बड़ी संख्या को पुनः शुरू नहीं किया गया है और इसके अलावा अतीत में पुनः शुरू की गई कुछ संपत्तियों का उपयोग उस उद्देश्य के लिए नहीं किया गया था जिसके लिए पुनर्ग्रहण किया गया था और इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि विवादित भूमि का पुनर्ग्रहण सत्ता के मनमाने प्रयोग का परिणाम था, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 13, 14 और 21 का उल्लंघन है। इसके विपरीत, उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार ओम ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि:

(ए) जी.जी.ओ. संख्या 179 दिनांक 12.9.1836 के अंतर्गत, याचिकाकर्ता के हित में पूर्ववर्ती के पक्ष में केवल सीमित अधिकार प्रदान किया गया था। वह विशेष रूप से विदित था कि प्रश्नगत भूमि के पुनर्ग्रहण की शक्ति अनुदानकर्ता के पास रहेगी और इसलिए, भारतीय सुखाचार अधिनियम 1882 की की धारा 60 का कोई प्रयोज्यता नहीं होगी। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने इस न्यायालाय के निर्णय **छोटे लाल बनाम माउंट दुर्गा बाई** एआईआर 1950 इलाहाबाद 661 और **गंगा सहाय बनाम बदरुल इस्लामा** (सुप्रा) में पर निर्भरता व्यक्त किया।

(बी) प्रश्नगत भूमि पर निर्मित भवन के मूल्य के मुआवजे का निर्धारण और उसका भुगतान, मंत्रालय के कार्य होने के नाते, पुनर्ग्रहण की सूचना दिए जाने के बाद अनुमत है, जैसा कि **भारत संघ बनाम हरीश चंद आनंद** एआईआर 1996 (एससी) 203 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आयोजित किया गया है।

(सी) प्रश्नगत भूमि का कब्ज़ा दिनांक 31.08.2022 को लिया गया था और वर्तमान में इसका उपयोग भारत संघ द्वारा अपने कार्यालयों को चलाने के लिए किया जा रहा है। यह आरोप कि भेदभाव किया गया है, सही नहीं है, क्योंकि किसी विशेष भूमि का पुनर्ग्रहण सार्वजनिक

उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए कई कारकों पर आधारित होता है और भूमि का पुनर्ग्रहण करते समय किसी भी संवैधानिक या वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन नहीं होता है। यह आरोप कि अतीत में पुनर्ग्रहण की गई कुछ अन्य भूमि का उपयोग किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए नहीं किया गया है, गलत है और इसके अलावा, यहां लगाए गए पुनर्ग्रहण नोटिस की वैधता पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(घ) याचिकाकर्ताओं की सुनवाई के बाद समिति द्वारा राशि निर्धारित होते ही मुआवजे का भुगतान किया जाएगा।

विश्लेषण:

पूर्व अनुदान - अधिकारों की प्रकृति

5. हम सबसे पहले अनुदान के तहत अनुदान प्राप्तकर्ता को प्रदत्त अधिकारों की प्रकृति की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं। विदित है कि अनुदान गवर्नर जनरल-इन-काउंसिल द्वारा दिनांक 12.9.1836 को जारी आदेश संख्या 179 द्वारा विनियमित पूर्व अनुदान' था। **भारत संघ बनाम टेक चंद** (1999) 3 एससीसी 565 के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने **राज सिंह बनाम भारत संघ** एआईआर 1973 डेल 169 के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को मंजूरी दी, जिसमें जी.जी.ओ. नंबर 179 को भारत सरकार अधिनियम, 1833 की धारा 43 के तहत एक वैधानिक अभ्यास माना गया था। जी.जी.ओ. संख्या 179 दिनांक 12.9.1836 के प्रासंगिक भाग का उद्धरण नीचे दिया गया है: -

6. अधिभोग की शर्तें: निम्नलिखित शर्तों के अलावा कोई आधार नहीं दिया जाएगा, जिसकी सदस्यता प्रत्येक अनुदान प्राप्तकर्ता के साथ-साथ उन लोगों को भी देनी होगी जिन्हें बाद में उसका अनुदान हस्तांतरित किया जा सकता है:-

1. भूमि का पुनःग्रहण। सरकार को किसी भी समय एक महीने का नोटिस देकर और ऐसी इमारतों के मूल्य का भुगतान करके पुनर्ग्रहण करने की शक्ति बरकरार रखनी होगी जिन्हें निर्माण करने के लिए अधिकृत किया गया हो।
2. भूमि सरकार की है। अनुदानग्राही द्वारा भूमि नहीं बेची जा सकती।

   सैन्य अधिकारियों के बीच मकानों का स्थानांतरण।

   भूमि, हर मामले में सरकार की संपत्ति होने के कारण, अनुदान प्राप्तकर्ता द्वारा बेची नहीं जा सकती; लेकिन मकान या उस पर स्थित अन्य संपत्ति को एक सैन्य या चिकित्सा अधिकारी द्वारा बिना किसी प्रतिबंध के राहत के मामले को छोड़कर स्थानांतरित किया जा सकता है, जब, यदि आवश्यक हो, तो बिक्री या हस्तांतरण की शर्तों को मध्यस्थता समिति द्वारा समायोजित किया जाएगा।

   3. राहत पर स्थानांतरण के मामले में मध्यस्थता। नागरिकों को मकानों का हस्तांतरण। यदि जमीन पर निर्माण किया गया है, तो इमारतों का निपटान किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं किया जाना चाहिए, चाहे वह किसी भी प्रकार का हो, जो सेना से संबंधित नहीं है, जब तक कि स्टेशन का कमांडिंग ऑफिसर की उसके अधीन पूर्व सहमति प्राप्त कर लिया गया होगा।

   4. मूल निवासी को स्थानांतरण। जब सामान्य अधिकारी की सहमति से, किसी मूल निवासी को कब्ज़ा हस्तांतरित करने का प्रस्ताव किया जाता है, तो हस्तांतरित किए जाने वाले घर, भवन या संपत्ति का मूल्य 5000 रुपये से

अधिक होना चाहिए, बिक्री तब तक प्रभावी नहीं होनी चाहिए जब तक महामहिम कमांडर-इन-चीफ के माध्यम से सरकार की मंजूरी प्राप्त न हो जाए।

7. ऐसे मकान जो मालिक मध्यस्थता समिति के विकल्प पर खरीदने या किराए पर लेने के लिए दावा किए जा सकते हैं। सैन्य छावनी में सभी घर ऐसे व्यक्तियों की संपत्ति हैं जो सेना से संबंधित नहीं हैं, जिन्हें स्टेशन के कमांडिंग ऑफिसर द्वारा अधिकारियों के आवास के लिए उनके इलाके से उपयुक्त समझा जा सकता है, मालिक के विकल्प पर खरीद या किराए पर लेने के लिए दावा किया जाएगा, पूर्व मामले में मूल्यांकन पर, और उत्तरार्द्ध में, एक किराए पर, तय किया जाना है, पार्टियों के मामले में मध्यस्थता समिति द्वारा असहमत होने के मामले में निम्नानुसार गठित किया गया है:

नोट:- इस खंड में "सेना से संबंधित नहीं व्यक्तियों की संपत्ति होना" शब्दों के स्थान पर भारतीय परिषद के अध्यक्ष द्वारा 3 जुलाई 1855 को परिषद संख्या 700 में जी.. द्वारा निम्नलिखित शब्द प्रतिस्थापित किए गए थे।

"स्टेशन पर ड्यूटी पर तैनात सेना से संबंधित किसी व्यक्ति द्वारा कब्जा नहीं किया जा सकता है, या जिसका निवास वहां सरकार द्वारा अधिकृत किया जा सकता है"।

"7. सैन्य अधिकारी को घर देने के लिए मालिक की आवश्यकता की शक्ति। सैन्य छावनी में किसी भी घर का मालिक, जिस पर उसके एजेंट का कोई व्यक्ति कब्जा नहीं करता है, छावनी के भीतर या उसके आसपास के क्षेत्र में निवासी नहीं होगा, इसका मतलब उस दिन से 14 दिन पहले की एक आधिकारिक अधिसूचना है, जिस दिन समिति को इकट्ठा होना है, यह कमांडिंग अधिकारी का कर्तव्य होगा कि वह समिति के एक सदस्य को नामित करे और उसके बाद मध्यस्थता के लिए आगे बढ़े।"

नोट - जी.ओ. जी..-इन-सी., संख्या 174, दिनांक 5 अगस्त, 1840 द्वारा उपरोक्त पैराग्राफ 2 में "14 दिन" के स्थान पर "एक महीना" प्रतिस्थापित किया गया था। ।

6. जी.जी.ओ. नंबर 179 के तहत अनुदान प्राप्तकर्ता को प्रदान किए गए अधिकारों की प्रकृति पर उच्चतम न्यायालय ने **मुख्य कार्यकारी अधिकारी बनाम सुरेंद्र कुमार वकील और अन्य**1993 (3) एससीसी 555 के मामले में विचार किया था। ऐसा माना गया है कि इसके तहत, स्वामित्व सरकार के पास रहता है और भूमि अनुदान प्राप्तकर्ता द्वारा बेची नहीं जा सकती है। मूल अनुदान प्राप्तकर्ता को भूमि पर स्थायी संरचना बनाने का अधिकार दिया जाता है और जिसे केवल उसके द्वारा हस्तांतरित किया जा सकता है। जहां स्थानांतरण किसी सैन्यकर्मी को किया जाता है, वहां कोई प्रतिबंध नहीं था, लेकिन किसी नागरिक को स्थानांतरण के मामले में, स्टेशन कमांडिंग ऑफिसर से पूर्व अनुमति की आवश्यकता होती थी। उच्चतम न्यायालय ने इस विषय से संबंधित जे.पी. मित्तल की पुस्तक कैंटोनमेंट लॉज़ का भी उल्लेख किया। यह उल्लेख किया गया है कि "पूर्व अनुदान" भूमि स्वामित्व की एक प्रजाति थी। अनुदान का प्राथमिक उद्देश्य सैन्य अधिकारियों के उनके कर्तव्य स्थल के निकट आवासीय आवास की आवश्यकता को पूरा करना था। समय के साथ-साथ, नागरिकों को भी सरकारी भूमि पर बंगले बनाने के लिए प्रोत्साहित किया गया, इस शर्त के साथ कि भूमि पर उनका कोई अधिकार नहीं होगा और यह कभी भी पुनर्ग्रहण हो सकता है।

7. **उषा कपूर और अन्य** (सुप्रा) मामले में, उच्चतम न्यायालय ने माना था कि जी.जी.ओ. नंबर 179 के अंतर्गत अधिकार प्राप्तकर्ता को उसके द्वारा निर्मित संरचना के संबंध में केवल स्वामित्व या अधिभोग का अधिकार प्राप्त है। अनुदान की शर्तें वैधानिक प्रकृति की हैं। भूमि का स्वामित्व भारत संघ के पास बना हुआ है और इसलिए, उसे पुनर्ग्रहण की शक्ति का आनंद मिलता रहेगा। अवलोकन इस प्रकार हैं:-

"13. *मुख्य कार्यकारी अधिकारी बनाम सुरेंद्र कुमार वकील* मामले में इस न्यायालय के निर्णय में जी.एल.आर. में प्रविष्टियों के कानूनी प्रभाव पर भी विचार किया गया था, जो रजिस्टर छावनी भूमि के प्रावधानों के तहत छावनी के सैन्य संपदा अधिकारी द्वारा बनाए रखा जाना आवश्यक है। छावनी अधिनियम, 1924 की धारा 280 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रशासनिक नियम बनाए गए हैं। छावनी बोर्ड द्वारा सामान्य भूमि रजिस्टर का रखरखाव छावनी अधिनियम के अंतर्गत किया जाता है और उसके तहत बनाए गए नियम एक सार्वजनिक दस्तावेज हैं और उनमें दर्ज प्रविष्टियां शीर्षक के निर्णायक साक्ष्य हैं। यह विचार इस न्यायालय ने *मुख्य कार्यकारी अधिकारी बनाम सुरेंद्र कुमार वकील* के निर्णय के अलावा दो अन्य निर्णयों, अर्थात् *भारत संघ बनाम इब्राहिम उद्दीन और अन्य, भारत संघ एवं अन्य बनाम कमला वर्मा* में व्यक्त किया है। जी.एल.आर. में स्वामित्व की प्रकृति यानी पूर्व अनुदान और धारक के अधिकारों की प्रकृति यानी अधिभोग अधिकार का संदर्भ दिया गया है। ऊपर दिया गया निष्कर्ष, हमारे सुविचारित दृष्टिकोण से, इस तथ्य पर निर्णायक है कि भूमि एक पूर्व अनुदान से आच्छादित है और अपीलकर्ताओं द्वारा प्राप्त अधिकार केवल उस पर संरचनाओं के संबंध में स्वामित्व या अधिभोग अधिकार थे। इस तरह के अनुदान की शर्तें वैधानिक हैं और भारत संघ में भूमि का स्वामित्व पुनर्ग्रहण करने की शक्ति के साथ निहित है, दिनांक 14 दिसंबर, 2001 और 5 फरवरी, 2002 के विवादित नोटिस को कानूनी और वैध माना जाना चाहिए।"

8. जी.जी.ओ. नंबर 179 की व्याख्या करते समय सर्वोच्च न्यायालय की सुसंगत राय यह है कि वह भूमि स्वामित्व है जो भारत संघ में निहित है। अनुदान प्राप्तकर्ता को केवल लाइसेंस के तहत अधिभोग अधिकारों का आनंद मिलता है। उसे स्थायी संरचना खड़ी करने की अनुमति है, जिसे वह अकेले हस्तांतरित कर सकता है, भूमि नहीं। भारत संघ एक महीने का नोटिस देकर किसी भी समय पुनर्ग्रहण करने का निर्बाध अधिकार रखता है।

सुखाचार अधिनियम की धारा 60 का प्रभाव:

9. अब हम दूसरे दृष्टिकोण की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं, यानी याचिकाकर्ता द्वारा उस भूमि पर स्थायी संरचना खड़ी करने का क्या प्रभाव होगा जिसके संबंध में अनुज्ञप्ति दिया गया था। निर्विवाद रूप से निर्मित संरचना एक स्थायी संरचना थी। सुखाचार अधिनियम की धारा 60 इस प्रकार है: -

"60. अनुज्ञप्ति कब प्रतिसंहरणीय होगी - अनुज्ञप्ति, अनुदानकर्ता द्वारा प्रतिसंहृत की जा सकेगी, जब तक कि—

(क) वह सम्पत्ति के अन्तरण से सम्बद्ध न हो और ऐसा अन्तरण प्रभावशील न हो;

(ख) अनुज्ञप्तिधारी ने, अनुज्ञप्ति के आधार पर कार्य करते हुए, स्थायी प्रकृति का कर्म सम्पादित न किया हो और सम्पादन में व्यय उपगत न किया हो।"

10. हमने पहले ही जी.जी.ओ. संख्या 1791 के प्रासंगिक खंड का उल्लेख किया है और हमने नोट किया है कि अनुदानकर्ता ने अनुदान प्राप्तकर्ता को स्थायी संरचना बनाने का अधिकार देते समय, पुनर्ग्रहण करने का अधिकार अपने पास रखा था। अनुदान प्राप्तकर्ता अनुदान स्वीकार करते समय विशेष रूप से अनुदान की उपरोक्त शर्तों से सहमत था। इसने जी.जी.ओ. नंबर 179 में निहित वैधानिक बल के अलावा, पक्षों के बीच एक बाध्यकारी अनुबंध को अस्तित्व में लाया था। **मिर्जा मोहम्मद हसन बनाम बुद्धू** ए.आई.आर. 1932 ऑल. 32 में, यह माना गया था कि किसी भी कानून के तहत कोई रोक नहीं है जो किसी पक्ष को भूमि समर्पण करने से रोकता है, यद्यपि उस पर कोई संरचना खड़ी हो सकती है। इस सिद्धांत पर इस न्यायालय द्वारा **गंगा सहाय** (सुप्रा) में भरोसा किया गया है। उस मामले में, प्रतिवादी ने किराएनामा निष्पादित किया था जिसके तहत वह निर्माण करने का हकदार था। हालाँकि, उन्होंने विशेष रूप से सहमति व्यक्त की थी कि जब भी मकान मालिक को जमीन की आवश्यकता होगी, वह इसे खाली कर देंगे। प्रतिवादी को अधिनियम की धारा 60 के लाभ के विस्तार से संबंधित प्रश्न का निर्णय यह मानते हुए किया गया था कि वह सुखचार अधिनियम की धारा 60 के प्रावधानों के विपरीत एक शर्त पर सहमत होने के बाद उसके लाभ का दावा नहीं कर सकता है। उक्त दृष्टिकोण को अपनाते समय, विद्वान न्यायाधीश ने **मिर्जा मोहम्मद हसन** (सुप्रा) और **नबी महोमेद बनाम भागवत प्रसाद शुकुल**1931 ए.एल.जे. 649 में इस न्यायालय के दो पिछले निर्णयों पर भरोसा किया है। निर्णय से प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे दिया गया है:

"प्रतिवादी द्वारा सुखाचार अधिनियम की धारा 60 का तर्क किया गया था, और मैं प्रतिवादी के लिए मान सकता हूं कि परिसर में जो निर्माण किया गया है वह धारा 60, सुखाचार अधिनियम में उस अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर एक स्थायी चरित्र का कार्य है। हालाँकि, मैं मोहम्मद इस्माइल, जे. द्वारा एआईआर 1938 ऑल 32 पृष्ठ 34 पर में कही गई बात से सहमत हूँ:

"पुनः, मुझे कानून के किसी भी प्रावधान का उल्लेख नहीं किया गया है जो किसी पक्ष को भूमि आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य करने से रोकता है, हालांकि उस पर स्थायी चरित्र का निर्माण हो सकता है।"

1931 में ए.एल.जे. 649 में इस न्यायालय की एक पीठ, जिसका मैं सदस्य था, ने कहा:

"इसके विपरीत किसी भी स्पष्ट शब्द के अभाव में, मामला धारा 60, सुखाचार अधिनियम के तहत आएगा, जिसके तहत लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकता है जब लाइसेंसधारक ने लाइसेंस पर कार्य करते हुए स्थायी चरित्र का काम किया है और निष्पादन में खर्च किया है।"

इस मामले में यह स्पष्ट रूप से मान्यता दी गई थी कि इसके विपरीत एक अनुबंध लाइसेंसधारी को धारा 60, सुखाचार अधिनियम द्वारा प्रदत्त लाभ प्राप्त करने से वंचित कर देगा, और वर्तमान मामले में, प्रतिवादी ने स्पष्ट भाषा में व्यक्त शब्दों में कहा है कि मकान मालिक को यह अधिकार होगा कि वह जब भी चाहे, उस जगह को खाली करा ले।"

11. पुनः, **छोटे लाल बनाम माउंट दुर्गा बाई** ए.आई.आर. 1950 ऑल 661 में, जिसमें कुछ इसी तरह की स्थिति उत्पन्न हुई, इस न्यायालय द्वारा यह माना गया कि सुखाचार अधिनियम की धारा 60 का लाभ अनुदान प्राप्तकर्ता को

उपलब्ध नहीं होगा, जिसने यह पूर्ण रूप से जानते हुए भी अनुदान में प्रवेश किया कि उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों के पास कोई अधिकार नहीं बचेगा। उक्त मामले में, एक मुसमात कल्लो वादी की नौकरानी थी। उसे इस शर्त पर विवादित स्थल पर घर बनाने की अनुमति दी गई थी कि कब्जे का अधिकार यह केवल उसके जीवनकाल के लिए था और उसकी मृत्यु पर वादी उस स्थान पर कब्जे का हकदार होगा। मुसमात कल्लो की मृत्यु के बाद, उसके उत्तराधिकारियों ने वादी को कब्जा सौंपने का विरोध किया, जिससे उसे निष्कासन के लिए एक वाद दर्ज करने के लिए मजबूर होना पड़ा। उपरोक्त पृष्ठभूमि में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कानून निर्धारित किया गया था। ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित बेदखली के फैसले को बरकरार रखा गया। यह माना गया है कि अनुदान प्राप्तकर्ता लाइसेंस स्वीकार करते समय उसके द्वारा दिए गए वचन से बाध्य होगा और उसके उत्तराधिकारियों को सुखाचार अधिनियम की धारा 60 के लाभ का दावा करने से रोका जाएगा।

12. हमने याचिकाकर्ता के शीर्षक में पूर्ववर्ती के पक्ष में अनुदान की शर्तों को पहले ही उल्लेख कर लिया है। उसके खंड 6 में विशेष रूप से प्रावधान किया गया है कि सरकार पुनर्ग्रहण की शक्ति बरकरार रखेगी और उक्त शक्ति का प्रयोग एक महीने का नोटिस देकर किसी भी समय किया जा सकता है। पुनर्ग्रहण की शक्ति इस तथ्य से किसी भी तरह से कमजोर नहीं होगी कि अनुदान प्राप्तकर्ता को स्थायी संरचना बनाने का अधिकार दिया गया था। इसलिए याचिकाकर्ता जी.जी.ओ. संख्या 179 में इस संबंध में निहित शर्तों से बंधा हुआ है और सुखाचार अधिनियम की धारा 60 से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है। तर्क तथ्यहीन है और इसलिए खारिज कर दिया गया है।

क्या नोटिस सहित अनुदान का भुगतान आवश्यक है

13. इस मुद्दे पर आते हुए कि क्या पुनर्ग्रहण करने का नोटिस अवैध होगी क्योंकि उत्तरदाताओं ने विवादित नोटिस के साथ मुआवजे की पेशकश नहीं की है, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **वरिष्ठ अधीक्षक आर.एम.एस. कोचीन** (सुप्रा) के मामले में निर्णय पर भरोसा जताया जिससे कोई मदद नहीं होगी। उक्त मामले में उच्चतम न्यायालय ने एक सरकारी कर्मचारी की सेवा समाप्ति से संबंधित वैधानिक प्रावधान की व्याख्या किया। इसके अंतर्गत सरकार को एक महीने का नोटिस देकर किसी भी समय सेवा समाप्त करने की शक्ति दी गई। यदि सरकार ने सेवा को तुरंत समाप्त करने का निर्णय लिया, उसे नोटिस के बदले में एक महीने के वेतन और भत्ते के बराबर राशि का भुगतान करना पड़ा। उक्त खंड की व्याख्या करते समय, यह माना गया कि एक महीने का वेतन मय भत्ते का भुगतान, सेवा को तुरंत समाप्त करने की एक शर्त थी और उक्त आवश्यकता को समाप्त नहीं किया जा सकता था। उक्त निर्णय में ही, एक अन्य वैधानिक प्रावधान, हालांकि समान स्थिति को कवर करता है लेकिन अलग-अलग शब्दों में लिखा गया है, फिर भी विचार किया गया था। यह माना गया कि उक्त वैधानिक प्रावधान की भाषा को ध्यान में रखते हुए, नोटिस के बदले में भुगतान सेवा की वैध समाप्ति के लिए एक शर्त नहीं थी, हालांकि सरकारी कर्मचारी उचित समय पर इसका हकदार होगा।

14. वास्तव में, हमें सेवा न्यायशास्त्र पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उदाहरणों की सहायता

अनुवादित

नहीं लेनी पड़ सकती है, क्योंकि यह मुद्दा सीधे तौर पर **भारत संघ बनाम हरीश चंद आनंद** (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा समाविष्ट किया गया है, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने जी.जी.ओ. नंबर 179 दिनांक 12.9.1836 के संदर्भ में ठीक यही मुद्दा तय किया था। यह माना गया है कि भवन की राशि या मूल्य का निर्धारण एक मंत्रिस्तरीय कार्य है और उसका भुगतान परिणामी परिणाम है। यह पुनर्ग्रहण की वैध सूचना देने के लिए पूर्व शर्त नहीं है। इस संबंध में विधि रिपोर्ट के पैराग्राफ 6 में निर्धारित कानून नीचे दिया गया है: -

"6. ऐसा प्रतीत होता है कि इस संबंध में विस्तृत निर्देश स्थायी आदेश संख्या 241 में दिए गए थे, जिसे इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष प्रस्तुत किया गया था जिसमें सैन्य अभियंता को इमारत के मूल्य का मूल्यांकन करने का निर्देश दिया गया जिसे पूर्ववर्ती लाइसेंसधारक को राशि का भुगतान करने के लिए सरकार द्वारा पुनर्ग्रहण किया गया था। हम इस अपील में मूल्यांकन की पद्धति के बारे में चिंतित नहीं हैं। यह कहना पर्याप्त है कि आदेश संख्या 241 हालांकि पूर्ववर्ती को पूर्व नोटिस जारी करने पर विचार नहीं करता है। लाइसेंसधारक जिसका लाइसेंस अधिनियम के खंड I के तहत निर्धारित किया गया है वास्तविक राशि के निर्धारण से पहले अनुदानग्राही एक नोटिस का हकदार होता है, ताकि अनुदानग्राही को भवन के मूल्य का निर्धारण करने और उसकी राशि के भुगतान के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष सभी प्रासंगिक सामग्री प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता हो। <u>यह देखा गया है कि पहली बार में, एक अवसर देने के बाद मुआवजे को निर्धारित करना एक शर्त मिसाल नहीं है: इसका भुगतान करें और फिर संपत्ति का पुनर्ग्रहण शुरू करें। एक शर्त यह है कि एक महीने का नोटिस जारी किया जाए और उसकी समाप्ति पर सरकार भूमि को पुनर्ग्रहण करने की हकदार हो। अवसर दिए जाने के बाद संबंधित प्रावधानों के तहत आवश्यकतानुसार राशि निर्धारित की जानी है और जो उसके बाद की जा सकती है। आखिरकार, संपत्ति को सार्वजनिक उपयोग के लिए पुनर्ग्रहण किया जाएगा और बनाए गए भवन के मूल्य का निर्धारण एक मंत्रिस्तरीय कार्य है और इसका भुगतान परिणामी परिणाम है।</u> इस प्रक्रिया में कुछ समय लगेगा और यदि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तर्क को लागू किया जाता है, तो यह सार्वजनिक उद्देश्य को विफल कर देगा। दिल्ली उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण योजना के अनुरूप है और व्यावहारिक और यथार्थवादी प्रतीत होता है। <u>इसलिए, उच्च न्यायालय अपने निष्कर्ष में सही नहीं था कि पहली बार में इमारत के मूल्य की राशि निर्धारित करना और संपत्ति को फिर से शुरू करने से पहले उसका भुगतान करना एक शर्त है।"</u>

(हमारे द्वारा दिया गया जोर)

15. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्माण के मूल्य का निर्धारण और उसका भुगतान भूमि पुनर्ग्रहण के लिए एक शर्त नहीं थी और परिणामस्वरूप उपरोक्त आधार पर पुनर्ग्रहण नोटिस को अमान्य नहीं कहा जा सकता है।

पुनर्ग्रहण करने की शक्ति के दुरुपयोग के संबंध में तर्क

16. यह आग्रह किया गया कि उत्तरदाताओं ने इसी तरह कई जमीनें खाली करा ली हैं, लेकिन जो अभी भी अप्रयुक्त पड़ी हैं। हालाँकि, हमें विवाद में कोई बल नहीं दिखता। जहां तक विवादित जमीनों का सवाल है, यह सर्वमान्य तथ्य है कि

अनुवादित

वहां पहले से ही सरकारी कार्यालय चल रहे हैं। यह भी विवादित नहीं है कि उत्तरदाताओं ने पुनर्ग्रहण के विवादित नोटिस के अनुसरण में भूमि पर कब्जा कर लिया था और वे अपने कार्यालय चलाना जारी रखते हैं।

निष्कर्ष

17. जी.जी.ओ. नंबर 179 एक वैधानिक अभ्यास और एक मौजूदा विधि था। इसके तहत अनुदान प्राप्तकर्ता को प्रदत्त अधिकार भूमि स्वामित्व की एक प्रजाति थी, जहां अनुदान प्राप्तकर्ता को केवल भूमि पर स्वामित्व अधिकार प्रदान किया जाता था। वह स्थायी संरचना बनाने का हकदार था, जिसे वह कुछ प्रतिबंधों के अधीन हस्तांतरित भी कर सकता था, लेकिन भूमि का स्वामित्व भारत संघ में निहित रहा, एक महीने का नोटिस देकर सार्वजनिक प्रयोजन के लिए किसी भी समय पुनर्ग्रहण करने का निर्बाध अधिकार था। मुआवज़े का भुगतान भूमि के वैध पुनर्ग्रहण के लिए पूर्व शर्त नहीं थी। यह एक मंत्रिस्तरीय कार्य और भुगतान जिसका परिणाम था।

18. उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, याचिकाओं में कोई योग्यता नहीं है। तदनुसार, इन्हें खारिज कर दिया जाता है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 2 ILRA 197

मूल क्षेत्राधिकार

दिनांक: इलाहाबाद 18.01.2023

सिविल पक्ष

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ,

रिट सी संख्या 41628 /2011

श्रीमती कलावती देवी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री वी.बी. खरे, श्री ए.के. शुक्ल

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री आशीष कुमार श्रीवास्तव

(ए) भूमि कानून - शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 - धारा 6 - अधिकतम सीमा से अधिक खाली भूमि रखने वाले व्यक्ति विवरण प्रस्तुत कर सकते हैं, धारा 8 - अधिकतम सीमा से अधिक खाली भूमि के संबंध में मसौदा विवरण तैयार करना , धारा 10 - अधिकतम सीमा से अधिक खाली भूमि का अधिग्रहण धारा 10(1)/10(3) - अधिसूचना अर्थात भूमि राज्य में निहित - अधिनियम की धारा 10(5) और 10(6) के पीछे तर्क - धारा 10 (5) कार्रवाई का एक सामान्य और तार्किक मध्यम निर्धारित करता है जिसका पालन अधिकारियों द्वारा धारा 10(6) के तहत कब्जेदार को बहिस्कृत करने के लिए बल का उपयोग करने का निर्णय लेने से पूर्व किया जाना चाहिए - धारा 10(5) के कथित उल्लंघन के पश्चात लंबे समय तक शिकायत नहीं उठाई जा सकती है, क्योंकि पूर्ववर्ती मालिक को राज्य द्वारा अभी भी बहिष्कृत किया जा सकता है यदि वे कब्जा देने में विफल रहते हैं -शहरी भूमि सीमा और विनियमन (निरसन अधिनियम, 1999) । (पैरा 15,11,18)

अधिशेष भूमि का कब्ज़ा - राज्य द्वारा लिया गया - प्रश्न- क्या याचिकाकर्ता को अधिनियम

अनुवादित

की धारा 10 (3) के तहत राज्य में भूमि निहित होने के बाद पूर्व मालिक द्वारा उसे हस्तांतरित अधिशेष भूमि पर कब्ज़ा बनाए रखने का अधिकार है। **(पैरा - 20)**

आयोजित:-याचिकाकर्ता के पास अधिकार का अभाव है। धारा 10(3) के तहत अधिसूचना पर अधिशेष भूमि राज्य के पास निहित हो गई, जिसके पश्चात वर्ष 1981 में धारा 10(5) के तहत भूमि के पूर्व मालिक (खेलाई) को बहिस्कृत कर दिया गया। मालिक ने कभी भी किसी न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष अपनी बेदखली का विरोध या आंदोलन नहीं किया। अनुवर्ती क्रेता (याचिकाकर्ता) बिक्री विलेख के प्रारंभ से ही अमान्य होने के आधार पर विलंबित चरण में बहिस्करण की प्रक्रिया को चुनौती नहीं दे सकता है। **(पैरा-23)**

रिट याचिका निरस्त। **(ई-7)**

उद्धृत वाद सूची:-

1. शिव राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य., रिट सी संख्या 37964/2009
2. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम, (2013) 4 एससीसी 280
3. असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति सरमा, (2015) 5 एससीसी 321

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

1. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. याचिकाकर्ता शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 (संक्षेप में "अधिनियम") के तहत घोषित अधिशेष भूमि के एक हिस्से के भूमि धारक से बिक्री विलेख दिनांक 25.01.1994 के माध्यम के खरीदार होने का दावा करता है।

3. तत्काल रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने उत्तरदाताओं को यह निर्देश देने की मांग की है कि वे याचिकाकर्ता को ग्राम बसारतपुर टप्पा, क़स्बा, परगना हवेली, तहसील सदर, जिला गोरखपुर में स्थित प्लॉट नंबर 12633 से बेदखल न करें, वह भूमि जिसे 23.09.1978 कोअधिशेष घोषित किया गया था इसके अलावा, याचिकाकर्ता केप्रत्यावेदन को खारिज करते हुए दूसरे प्रतिवादी जिला मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.04.2011 को रद्द करने का भी निर्देश मांगा गया है।

4. तथ्य,परस्पर, पक्ष इस बात पर विवाद में नहीं हैं कि भूमिधारक खेलई, पुत्र स्वर्गीय गणपत नेअधिनियम की धारा 6(1) के तहत, भूखंड संख्या 1263, 1538 और आवासीय घरके संबंध में एक रिटर्न नंबर254,प्रस्तुत किया था। । सर्वेक्षण के बाद सक्षम प्राधिकारी ने मसौदा विवरण तैयार किया और रिटर्नकर्ता को अधिनियम की धारा 8(3) के तहत आपत्तिदाखिल करने के लिए नोटिस दिया गया। खेलई ने 15.07.1978 को आपत्तियां दायर कीं, सक्षम प्राधिकारी ने अधिनियम की धारा 8(4) के तहत दिनांक 23.09.1978 के आदेश के तहत उपरोक्त उल्लिखित भूखंडों में से 1475.67 वर्ग मीटर भूमि को अतिरिक्त भूमि घोषित कर दिया। आदेश के खिलाफ कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई, परिणामस्वरूप, अधिनियम की धारा 10(1) के तहत 26.12.1978 को आधिकारिक राजपत्र मेंअधिसूचना प्रकाशित की गई, इसके बाद अधिनियम की धारा 10(3) के तहत अधिसूचना 29.08.1980 को विधिवत अधिसूचित की

अनुवादित

गई। इसके बाद,17.10.1981 को अधिनियम की धारा 10(5) के तहत नोटिस दिया गया। इसके अनुसरण में, सर्कल लेखपाल ने 14.12.1983 को कब्जा ले लिया। अतिरिक्त भूमि के संबंध में राजस्व अभिलेख में काश्तकार खेलई का नाम हटाकर राज्य का नाम 1399-1404 फसली में दर्ज किया गया।

5. उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि मूल भूमि मालिक यानी खेलई ने बिक्री विलेख दिनांक 25.01.1994 के माध्यम से प्लॉट संख्या 1263,की 275 वर्ग मीटर अतिरिक्त घोषित भूमि याचिकाकर्ता के पक्ष मेंहस्तांतरित की।इसके बाद, याचिकाकर्ता का नाम 15.04.1994 (1401 फसली) को राजस्व रिकॉर्ड में तहसीलदार द्वाराउत्परिवर्तित किया गया। यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि राज्य ने पूर्ववर्ती मालिक से कब्जा नहीं लिया था, इसलिए याचिकाकर्ता शहरी भूमि सीमा और विनियमन (निरसन अधिनियम, 1999) (संक्षेप में "निरसन अधिनियम") के मद्देनजर कब्जा बरकरार रखने का हकदार है, जो 18.03.1999 को लागू हुआ था।

6.यह प्रस्तुत किया गया है कि निरसन अधिनियम में यह आदेश दिया गया है कि मूल अधिनियम के तहत किए गए किसी भी आदेश से संबंधित सभी कार्यवाही, निरसन अधिनियम के शुरू होने से पहले, किसी भी न्यायालय, न्यायाधिकरण या प्राधिकरण के समक्ष तुरंत लंबित हो जाएगी, बशर्ते कि धारा ऐसी कार्यवाही पर लागू नहीं होगी,जिसकाकब्ज़ा राज्य सरकार या राज्य द्वारा इस संबंध में अधिकृत किसी प्राधिकरण द्वारा ले लियागया है।

7.विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने खंडन में कहा कि अधिनियम के तहत कार्यवाही के खिलाफ, मूल भूमि धारक ने कोई आपत्ति या अपील दायर नहीं की। कार्यवाही 19.08.1981 को समाप्त हुई, अधिशेष भूमि राज्य में निहित हो गई, और उसके बाद, 14.12.1983 को अधिनियम की धारा 10(5) के तहत कब्ज़ा ले लिया गया, उसके बाद, राज्य का नाम विधिवतराजस्व रिकार्डमें दर्ज किया गया। इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिसूचना के बाद याचिकाकर्ता के पास राज्य में निहित भूमि (धारा 10(1)/10(3)) के बाद के क्रेता होने का कोई अधिकार नहीं होगा, और इसलिए, यह आग्रह किया जाता है कि स्थानांतरण शून्य है यानी प्रारंभिक-शून्य है।

8. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ विचार के लिए आती हैं।

9. **शिव राम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य**[1] मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष उठाया गया प्रश्नयह था:

"*न्यायालय के समक्ष जो मुद्दा उठाया गया है वह यह है कि क्या 18 मार्च 1999 से मूल अधिनियम के निरसन के परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता निरसन अधिनियम के लाभ का हकदार होगा। यह, बदले में, इस पर निर्भर करेगा कि क्या भूमि का कब्ज़ा राज्य द्वारा या किसी अधिकृत व्यक्ति द्वारा 18 मार्च 1999 से पहले ले लिया गया था।*"

10. न्यायालयमुख्य न्यायमूर्ति श्रीडी.वाई. चंद्रचूड़(जैसा कि उस समय माई लॉर्ड थे) के

माध्यम से बोल रहा है कि याचिकाकर्ता की ओर से की गई दलील पर गौर किया गया:

"याचिकाकर्ता की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम2। सुप्रीम कोर्ट के फैसले को ध्यान में रखते हुए धारा 10(5) के साथ-साथ धारा 10(6) के तहत नोटिस जारी करना अनिवार्य है। वर्तमान मामले में, यह आग्रह किया गया है कि राज्य यह स्थापित करने में सक्षम नहीं है कि याचिकाकर्ता को धारा 10(5) या धारा 10(6) के तहत नोटिस विधिवत दिया गया था। दूसरे, यह प्रस्तुत किया गया है कि मूल अधिनियम की धारा 35 के तहत जारी उत्तर प्रदेश शहरी भूमि सीमा (कब्जा लेना, राशि का भुगतान और संबद्ध मामले) निर्देश, 1983 के तहत, अतिरिक्त खाली भूमि पर कब्जा लेने के लिए एक विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित की गई है। और जब तक उस प्रक्रिया का विधिवत पालन नहीं किया जाता, यह नहीं माना जा सकता कि कब्ज़ा कानून की नज़र में वैध रूप से लिया गया था।"

11. न्यायालय के समक्ष राज्य का रुख इस प्रकार नोट किया गया:

"राज्य की ओर से, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है, सबसे पहले, कि हरिराम के वाद (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर सुप्रीम कोर्ट ने बाद के फैसलेस्टेट ऑफ असम बनाम भास्कर ज्योति सरमा3 में विचार किया है। जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि पहले के फैसले में इस सवाल पर विचार नहीं किया गया था कि क्या मूल अधिनियम की धारा 10(5) का उल्लंघन और बिना नोटिस के संभावित बेदखली, बेदखली के कार्य को ही स्थायी बना देगी। "

12. न्यायालय ने निम्नलिखित सवाल पर प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार किया

"इन कार्यवाहियों में विचार के लिए मूल मुद्दा यह है कि क्या अधिशेष घोषित भूमि का कब्ज़ा 18 मार्च 1999 से पहले याचिकाकर्ता से ले लिया गया था। निरसन अधिनियम की धारा 3 (1) (ए) में मूल अधिनियम को निरस्त करने का प्रावधान है धारा 10 की उप-धारा (3) के तहत किसी भी खाली भूमि के निहितार्थ को प्रभावित नहीं करेगा, जिसका कब्ज़ाराज्य सरकार द्वारा या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में या सक्षम प्राधिकारी द्वारा अधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा ले लिया गया है।"

13. कब्ज़ा लेने के लिए प्रासंगिक प्रावधान मूल अधिनियम की धारा 10 की उपधारा (5) और (6) में पाए जाते हैं।उपधारा (5) और (6) इस प्रकार हैं:

"(5) जहां उप-धारा (3) के तहत कोई खाली भूमि राज्य सरकार में निहित है, सक्षम प्राधिकारी, लिखित रूप में नोटिस द्वारा, किसी भी व्यक्ति को, जो उस पर कब्जा कर सकता है, उसे आत्मसमर्पण करने या कब्जा देने का आदेश दे सकता है। राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में विधिवत अधिकृत किसी व्यक्ति को नोटिस की सेवा के तीस दिनों के भीतर।

(6) यदि कोई व्यक्ति उप-धारा (5) के तहत दिए गए आदेश का पालन करने से इनकार करता है या विफल रहता है, तो सक्षम प्राधिकारी खाली

अनुवादित

भूमि पर कब्जा कर सकता है या इसे संबंधित राज्य सरकार या किसी अधिकृत व्यक्ति को दे सकता है। इस संबंध में ऐसी राज्य सरकार द्वारा और उस उद्देश्य के लिए ऐसे बल का उपयोग किया जा सकता है जो आवश्यक हो।

स्पष्टीकरण.-इस धारा में धारा 11 की उपधारा (1) तथा धारा 14 एवं 23 में "राज्य सरकार" के संबंध में -

(ए) केंद्र के स्वामित्व वाली कोई खाली भूमिसरकार, का अर्थ है केंद्र सरकार;

(बी) किसी भी राज्य सरकार के स्वामित्व वाली और केंद्र शासित प्रदेश में या छावनी अधिनियम, 1924 (1924 का 2) की धारा 3 के तहत घोषित छावनी की स्थानीय सीमा के भीतर स्थित किसी भी खाली भूमि का मतलब उस राज्य सरकार से है।"

14. **शिव राम सिंह** (सुप्रा) मामले में न्यायालय ने **हरि राम** (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के पहले के फैसले पर विचार किया, जिसके बाद सरकार / अधिकृत व्यक्ति / की विफलता के संबंध में **भास्कर ज्योति शर्मा** (सुप्रा) में दिए गए फैसले पर विचार किया गया। सक्षम प्राधिकारी, अधिनियम की धारा 10(5) के तहत भूमि मालिकों को नोटिस जारी करेगा। खंडपीठ ने **शिव राम सिंह** (सुप्रा) में धारा 10(5) के तहत नोटिस की कमी के प्रभाव और निरसन अधिनियम के मद्देनजर इसके परिणाम पर निम्नलिखित शब्दों में चर्चा की।

"मूल अधिनियम की धारा 10 की उपधारा (5) के तहत, जहां कोई भी खाली भूमि उपधारा (3) के तहत राज्य सरकार में निहित है, सक्षम प्राधिकारी को लिखित रूप में नोटिस द्वारा, किसीभी व्यक्ति को आदेश देने का अधिकार है। नोटिस की सेवा के तीस दिनों के भीतर सरकार या विधिवत अधिकृत व्यक्ति को भूमि का कब्जा सौंपना या सौंपना हो सकता है। उप-धारा (6) के तहत, यदि कोई व्यक्ति किसी आदेश का पालन करने से इनकार करता है या विफल रहता है उप-धारा (5) के तहत, सक्षम प्राधिकारी खाली भूमि पर कब्जा कर सकता है और उस उद्देश्य के लिए आवश्यक बल का उपयोग कर सकता है। ये प्रावधान ***हरि राम*** *(सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आए थे। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि धारा 10 की उपधारा (5) शांतिपूर्ण आत्मसमर्पण और कब्जे की डिलीवरी की स्थिति की कल्पना करती है, जबकि धारा 10 की उपधारा (6) बलपूर्वक बेदखली की स्थिति पर विचार करती है। बलपूर्वक बेदखली, यह माना गया था, परिणाम जहां एक व्यक्ति धारा 10(5) के तहत शांतिपूर्वक आत्मसमर्पण करने या कब्जा देने में विफल रहा था। हालाँकि धारा 10(5) नोटिस जारी करने के संबंध में 'हो सकता है' अभिव्यक्ति का उपयोग करती है, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि प्रावधान को 'करेगा' के रूप में समझा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, धारा 10 की उपधारा (5) के तहत नोटिस जारी करना अनिवार्य होगा। इस निर्णय पर तब से* ***भास्करज्योति सरमा(सुप्रा) में विचार किया गया है। बाद के फैसले में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि जिस मुद्दे की जांच की जरूरत है वह यह है कि क्या धारा 10(5) के तहत भूमि मालिकों को नोटिस जारी करने में सरकार या अधिकृत अधिकारी या सक्षम प्राधिकारी की विफलता के परिणामस्वरूप कोई निष्कर्ष निकलेगा या नहीं। कानून की नजर में बेदखली कोई बेदखली नहीं है और इसलिए इस पर निरसन अधिनियम की धारा 3 के प्रावधान लागू होंगे। उस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक माना गया।"***

15. **शिव राम सिंह** (सुप्रा) मामले में न्यायालय ने धारा 10(3), 10(5) और 10(6) के प्रावधानों पर गौर

करने के बाद यह दृढ़ विचार व्यक्त किया कि धारा 10(5) के कथित उल्लंघन के लंबे समय बीत जाने के बाद शिकायत नहीं उठाई जा सकती है। यह मानते हुए कि कथित बेदखली को अधिनियम की धारा 10(5) के तहत किसी भी नोटिस द्वारा आगे नहीं बढ़ाया गया था, पूर्व मालिक धारा 10(5) के आधार पर शिकायत कर सकता था, और यहां तक कि बहाली की मांग भी कर सकता था। उस स्थिति में, भूमि की ऐसी बहाली पर, कब्जा देने में विफलता पर अधिनियम की धारा 10(5)/10(6) का सहारा लेकर राज्य द्वारा पूर्व मालिक को अभी भी बेदखल किया जा सकता है। इसलिए, एक व्यक्ति, जिसके पास धारा 10(3) के तहत अधिशेष घोषित होने पर अपनी भूमि है, उचित प्रक्रिया के अभाव में धारा 10(5) के उल्लंघन के लिएआंदोलन करना उचित नहीं समझ सकता है, उस स्थिति में मालिक को राज्य द्वारा बेदखल किया जा सकता है। अधिकारी अगले ही दिन प्रक्रिया का पालन करके धारा 10(5) के तहत कब्जा ले लेंगे। इस मामले को ध्यान में रखते हुए, कब्जे वाले मालिक के लिए इस आधार पर उसकी बेदखली में गलती ढूंढना एक अकादमिक अभ्यास होगा कि उसे धारा 10(5) के तहत कोई नोटिस नहीं दिया गया था। मामले के इस दृष्टिकोण से धारा 10(3) के तहत अधिसूचना के बाद मालिक ने अपनी बेदखली के संबंध में कोई विरोध या आंदोलन नहीं किया है।

16. इसके अलावा, अधिनियम की धारा 10(5) के आधार पर कोई भी शिकायत मालिक द्वारा ऐसी बेदखली के उचित समय के भीतर की जानी चाहिए। ऐसी किसी भी स्थिति में, मालिक या कब्जे वाले व्यक्ति को अधिनियम की धारा 10(5)के तहत अपना अधिकार माफ कर दिया गया माना जाना चाहिए कोई भी अन्य दृष्टिकोण एक वादी को शिकायत करने का लाइसेंस देगा, इसलिए नहीं कि उसे किसी वास्तविक पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा है जिसका निवारण किया जाना चाहिए, बल्कि केवल निरसन अधिनियम की कठिन परिस्थितियों का लाभ उठाना माना जाएगा।

17. इसके बाद **शिव राम सिंह** (सुप्रा) ने अधिनियम की धारा 10(5) के तहत बिना किसी नोटिस के भूमि मालिक को बेदखल करने से संबंधित कानून की व्याख्या की।

"इसलिए, जो कानून निर्धारित किया गया है वह यह है कि धारा 10(5) के तहत बिना किसी नोटिस के भूमि मालिक को बेदखल करने से भूमि मालिक को बिना नोटिस के बेदखली के कार्य की शिकायत करने का अधिकार होगा, ऐसी स्थिति में राज्य एक नया आदेश जारी कर सकता है जमीन के मालिक को बेदखल करने से पहले नोटिस दें, लेकिन जब तक कि कुछ स्वाभाविक रूप से गलत न हो जिससे कब्जा लेने की प्रक्रिया ही प्रभावित हो, जैसे कि जमीन की पहचान या उसकी सीमाएं , एक व्यक्ति जिसने भूमि को धारा 10(3) के तहत अधिशेष घोषित किए जाने के कारण अपनी भूमि खो दी है। वह कोई शिकायत नहीं कर सकता क्योंकि वह इस तथ्य से अवगत होगा कि राज्य नोटिस देने के एक साधारण कार्य द्वारा कब्जा ले सकता है। सुप्रीम कोर्ट के विचार में, धारा 10(5) के कथित उल्लंघन के बाद लंबे समय तक ऐसी शिकायत नहीं उठाई जा सकती। हम यहां नीचे फैसले में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियों को उद्धृत कर रहे हैं:

"...जांच की जरूरत यह है कि क्या धारा 10(5) के तहत भूमि मालिकों को नोटिस जारी करने में सरकार या अधिकृत अधिकारी या सक्षम प्राधिकारी की विफलता का मतलब यह होगा कि

इस तरह की बेदखली नजर में कोई बेदखली नहीं है कानून का और इसलिए निरसन अधिनियम की धारा 3 को आकर्षित करने के लिए अपर्याप्त है। उस प्रश्न का हमारा उत्तर नकारात्मक है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि सामान्य प्रक्रिया में वास्तविक भौतिक कब्ज़ा धारा 10(5) के तहत नोटिस के बाद ही कब्जे वाले व्यक्ति से लिया जा सकता है। उसे ऐसा कब्ज़ा राज्य सरकार, या प्राधिकृत अधिकारी या सक्षम प्राधिकारी को सौंपने के लिए जारी किया जाता है। उस प्रक्रिया में पर्याप्त अच्छी समझ है क्योंकि किसी व्यक्ति को कब्जे से बेदखल करने के लिए बल का उपयोग करने की आवश्यकता आमतौर पर केवल तभी उत्पन्न होनी चाहिए जब संबंधित व्यक्ति सहयोग करने और विचाराधीन भूमि पर कब्जा देने या आत्मसमर्पण करने से इनकार करता है। अधिनियम की धारा 10(5) और 10(6) के पीछे लेकिन स्थिति क्या होगी यदि किसी भी कारण से सक्षम प्राधिकारी या सरकार या अधिकृत अधिकारी स्वैच्छिक आत्मसमर्पण या मांग पर ऐसे कब्जे की डिलीवरी की संभावना तलाशने के बिना भी पूर्व मालिक को जबरन बेदखल करने का सहारा लेता है। क्या इस तरह के बल प्रयोग से बेदखली ही ख़राब हो सकती है या क्या यह केवल एक अनियमितता होगी जो पीड़ित मालिक या कब्ज़ा करने वाले व्यक्ति के लिए कार्रवाई का कारण बनेगी ताकि उसे नोटिस जारी करने के बाद ही उसे फिर से बेदखल किया जा सके। यही वह पहलू है जिसने हमें कुछ हद तक परेशान किया है। उच्च न्यायालय ने माना है कि कथित बेदखली से पहले अधिनियम की धारा 10(5) के तहत कोई नोटिस नहीं दिया गया था। मान लीजिए कि मामला यही है कि 7 दिसंबर, 1991 को जब तत्कालीन मालिक को संबंधित भूमि से बेदखल कर दिया गया था, तो वह धारा 10(5) के आधार पर शिकायत करसकता था और यहां तक कि कब्जा वापस पाने की मांग भी कर सकता था। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह इस तरह की बहाली पर एक बार फिर इस तरह के कब्जे को देने या आत्मसमर्पण करने में असफल होने पर अधिनियम की धारा 10 (5) और 10 (6) के तहत बेदखल होने के लिए उत्तरदायी होगा। ***वास्तव में इसलिए जब तक कि ऐसा कुछ न हो जो स्वाभाविक रूप से गलत था ताकि अधिग्रहण की प्रक्रिया ही प्रभावित हो जैसे कि भूमि की पहचान या उसकी सीमाएं या समान प्रकृति की कोई अन्य परिस्थिति मामले की जड़ तक जा रही है, इसलिए एकन्यायनिर्णयन की आवश्यकता है, एक व्यक्ति जिसने कारणवश अपनी भूमि खो दी है धारा 10(3) के तहत इसे अधिशेष घोषित किए जाने पर धारा 10(5) के उल्लंघन के लिए आंदोलन करना उचित नहीं होगा क्योंकि वह अच्छी तरह से समझ सकते हैं कि भले ही न्यायालय उनके इस तर्क को बरकरार रख सकता है कि निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए। , यह अभी भी उसके लिए भूमि को बरकरार रखने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है क्योंकि अधिकारी अगले ही दिन धारा 10(5) के तहत एक नोटिस देकर उसे उससे बेदखल कर सकते हैं। उस दृष्टि से, किसी भी मालिक या कब्जे वाले व्यक्ति के लिए इस आधार पर उसकी बेदखली में गलती ढूंढना एक अकादमिक अभ्यास होगा कि उसे धारा 10(5) के तहत कोई नोटिस नहीं दिया गया था।"***

फिर से, सुप्रीम कोर्ट ने कहा:

"इस मुद्दे को दूसरे दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। यह मानते हुए कि कब्जे वाला व्यक्ति शिकायत कर सकता है, भले ही अंतिम विश्लेषण में बहुत अधिक लाभ न हो, सवाल यह है कि क्या

*ऐसी शिकायत धारा 10(5) के कथित उल्लंघन के लंबे समय बाद की जा सकती है यदि वास्तविक भौतिक कब्ज़ा 7 दिसंबर 1991 को भूतपूर्व भूमि मालिक से ले लिया गया था, जैसा कि वर्तमान मामले में आरोप लगाया गया है, धारा 10(5) के आधारपर कोई भी शिकायत की जानी चाहिए थी ऐसी बेदखली के उचित समय के भीतर यदि मालिकऐसा नहीं करने पर जबरन कब्जा कर लिया जायेगा समय की चूक से वैधता प्राप्त करें।**यदि मालिक ने ऐसा नहीं किया, तो जबरन कब्ज़ा लेना समय की चूक से वैधता प्राप्त कर लेगा।***

ऐसी किसी भी स्थिति में मालिक या कब्जे वाले व्यक्ति को अधिनियम की धारा 10(5) के तहत अपना अधिकार माफ कर दिया गया माना जाना चाहिए। हमारी राय में, कोई भी अन्य दृष्टिकोण एक वादी को शिकायत करने का लाइसेंस देगा, इसलिए नहीं कि उसे किसी वास्तविक पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा है जिसका निवारण किया जाना चाहिए, बल्कि केवल इसलिए कि निरसन अधिनियम की आकस्मिक परिस्थिति ने उसे अपने बेदखली के उल्लंघन के संबंध में मुद्दा उठाने के लिए प्रेरित किया। "

18. **हरि राम** (सुप्रा) में पहले के निर्णय को निम्नलिखित टिप्पणियों में प्रतिष्ठित किया गया है:

"...*यह न्यायालय हरि राम के मामले (सुप्रा) में इस बात पर विचार कर रहा था कि क्या धारा 10(5) में आने वाला शब्द 'हो सकता है' सक्षम प्राधिकारी को भौतिक कब्ज़ा लेने से पहले नोटिस जारी करने या न जारी करने का विवेक देता है धारा 10(6) के तहत विचाराधीन भूमि,* ***यह सवाल कि क्या धारा 10(5) का उल्लंघन और बिना नोटिस के संभावित बेदखली बेदखली के कार्य को ख़राब कर देगी या इसे कानून की नज़र में गैर-स्थायी बना देगी, उस मामले में विचाराधीन नहीं है। हमारी राय में, धारा 10(5) जो निर्धारित करती है वह कार्रवाई का एक सामान्य और तार्किक तरीका है जिसका अधिकारियों द्वारा धारा 10(6) के तहत कब्जेदार को बेदखल करने के लिए बल का उपयोग करने का निर्णय लेने से पहले पालन किया जाना चाहिए। मौजूदा मामले में यदि अपीलकर्ता की दिसंबर 1991 में पूर्वमालिक को बेदखल करने के संबंध में संस्करण सही है, तथ्य यह है कि इस तरह की बेदखली धारा 10(5) के तहत बिना किसी नोटिस के थी, इसका कोई परिणाम नहीं होगा और धारा 3 के प्रयोजनों के लिए कब्जा लेने के कार्य को ख़राब या नष्ट नहीं करेगा। निरसन अधिनियम का।"***

19. **शिव राम सिंह** (सुप्रा) की खंडपीठ ने भूमि मालिक या किसी व्यक्ति द्वारा देरी से और प्रासंगिक समय पर शिकायत उठाने पर निम्नलिखित टिप्पणी की:

"हमें मामले के दूसरे पहलू पर भी ध्यान देना चाहिए, खासकर भास्कर ज्योति सरमा (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले को ध्यान में रखते हुए, मुद्दा यह है कि क्या ऐसी शिकायत लंबे समय बाद कोर्ट के समक्ष की जा सकती है। याचिकाकर्ता ने इंतजार किया था निरसन अधिनियम लागू होने के बाद पहली रिट याचिका दायर करने के लिए लगभग तीन साल तक और उसके बाद जिला मजिस्ट्रेट की खोज के बावजूद कि 25 जून 1993 को कब्जा ले लिया गया था, अभ्यावेदन के निपटान के बाद दो साल से अधिक की अवधि के लिए। हमारा विचार है, किसी भी स्थिति में इस तरह की देर से दी गई चुनौती पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।"

20. अधिशेष भूमि के कब्जे के संबंध में उपर्युक्त कानूनी प्रस्ताव में, जो अंततः राज्य द्वारा ले लिया गया, दिए गए तथ्यों में यह प्रश्न उठता है कि क्या अधिनियम की धारा 10(3) केअंतर्गत,याचिकाकर्ता कोभूमिपर कब्ज़ा बनाए रखने का अधिकार होगा उसेपूर्व मालिक द्वाराहस्तांतरितअधिशेष भूमि को राज्य में निहित करने के बाद

21. धारा 10(4) का प्रासंगिक प्रावधान निकाला गया है:"*10(4) उप-धारा (1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से शुरू होने और उप-धारा (3) के तहत की गई घोषणा में निर्दिष्ट तिथि के साथ समाप्त होने वाली अवधि के दौरान -*

(i) कोई भी व्यक्ति पूर्वोक्त अधिसूचना में निर्दिष्ट किसी अतिरिक्त खाली भूमि (उसके किसी भी हिस्से सहित) को बिक्री, बंधक, उपहार, पट्टे या अन्यथा के माध्यम से स्थानांतरित नहीं करेगा और इस प्रावधान के उल्लंघन में किया गया कोई भी हस्तांतरण शून्य माना जाएगा। और शून्य; और

(ii) कोई भी व्यक्ति ऐसी अतिरिक्त खाली भूमि के उपयोग में परिवर्तन नहीं करेगा या परिवर्तन नहीं कराएगा।"

22. अधिनियम की धारा 10(1) के तहत नोटिस की तारीख से 16 साल बाद याचिकाकर्ता को धारा 10(5) के तहत नोटिस जारी करने का सवाल ही नहीं उठता। राज्य ने 1981 में ही जमीन के मालिक से कब्जा ले लिया था। 1994 में जमीन के हस्तांतरण और उसके बाद याचिकाकर्ता के नाम में बदलाव से याचिकाकर्ता के अधिकार पर कोई असर नहीं पड़ेगा। पूर्व मालिक द्वारा अधिशेष भूमि का हस्तांतरण, कानून की नजर में शून्य यानी शून्य होने से याचिकाकर्ता को कोई अधिकार या स्वामित्व नहीं मिलेगा। अधिनियम के तहत कार्यवाही समाप्त होने के बाद याचिकाकर्ता का कब्ज़ा, राज्य द्वारा कब्ज़ा लेने पर, केवल राज्य भूमि के अतिक्रमण का मामला होगा। निरसन अधिनियम याचिकाकर्ता की सहायता के लिए नहीं आएगा, बल्कि, याचिकाकर्ता का मामला धारा 10(1)/10(3)के तहत अधिसूचना के बाद अधिशेष भूमि के बाद के खरीदार होने के नाते निरसन अधिनियम के दायरे में नहीं आएगा।

23. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता के पास अधिकार का अभाव है, और किसी भी मामले में, 2006 में याचिकाकर्ता द्वारा इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाकर कार्यवाही देर से शुरू की गई और 2006 की रिट याचिका संख्या 14698 याचिका दायर की गई, जिसे कलेक्टर को निर्णय लेने का निर्देश देते हुए निपटाया गया। इसके अनुसरण में, 27.04.2011 को आक्षेपित आदेश पारित किया गया, जिसके तहत, दूसरा प्रतिवादी तथ्यों को दर्ज करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि पूर्व मालिक द्वारा भूमि का हस्तांतरण, अधिशेष घोषित, राज्य में निहित, शून्य है दस्तावेज़ और याचिकाकर्ता को कोई अधिकार और स्वामित्व प्रदान नहीं करता है। पूर्ववर्ती कार्यकाल धारक (खेलई) के पास भूमि हस्तांतरित करने का कोई शीर्षक या स्वामित्व नहीं था, याचिकाकर्ता राज्य भूमि पर कथित कब्जे के बल पर निरसन अधिनियम के मद्देनजर अपनी बेदखली के लिए आंदोलन नहीं कर सकता है। धारा 10(3) के तहत अधिसूचना पर अधिशेष भूमि राज्य के पास निहित हो गई, जिसके बाद 1981 में धारा 10(5) के तहत भूमि के पूर्व मालिक (खेलाई) को बेदखल कर दिया गया। मालिक ने कभी भी किसी प्राधिकारी या न्यायालय के समक्ष अपनी बेदखली का विरोध या आंदोलन नहीं किया। इन परिस्थितियों में, बाद वाला खरीदार (याचिकाकर्ता) बिक्री विलेख के शुरू से ही अमान्य होने के आधार पर विलंबित

चरण में बेदखली की प्रक्रिया को चुनौती नहीं दे सकता है।

24. तदनुसार, रिट याचिका गुणहीन होने के कारण **खारिज** की जाती है।

25. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 2 ILRA 204

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 27.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा,

सिविल विविध समीक्षा आविन संख्या 1/ 2021

अंतर्गत

रिट सी संख्या 58005/2009

परमानन्द

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अरुण श्रीवास्तव, श्री गौरी शंकर मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट याचिका - समीक्षा - आवेदन याचिकाकर्ता का उचित मूल्य की दुकान का लाइसेंस इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि यह अधिकांश दिनों में बंद पाया गया था - याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि वह अस्वस्थ था और उसके चिकित्सा उपचार के कारण दुकान 4 या 5 महीने की अवधि के लिए बंद रही थी - रिट न्यायालय ने कहा कि यदि याचिकाकर्ता अस्वस्थ था तो उसे अधिकारियों को सूचित करना चाहिए था, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया, जबकि समझौते के तहत वह बंद होने के बारे में अधिकारियों को सूचित करने के लिए बाध्य था ताकि अधिकारी वैकल्पिक व्यवस्था कर सकें - रिट न्यायालय ने माना कि अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता का लाइसेंस निरस्त करना उचित था - रिट याचिका पर दिनांक 05.09.2023 को योग्यता के आधार पर निर्णय लिया गया - याचिकाकर्ता ने रिट न्यायालय के आदेश को चुनौती नहीं दी - इसके बजाय लगभग 7 वर्षों के बाद समीक्षा आवेदन दायर किया - याचिकाकर्ता को सुनवाई का पूर्ण अवसर प्रदान करने के पश्चात आपेक्षित आदेश पारित किए गए - हालांकि वह केवल एक लाइसेंसधारी है, लेकिन वह कानूनी अधिकार के रूप में अनिश्चित काल के लिए लाइसेंसधारी बनना चाहता है - समीक्षा आवेदन में कोई योग्यता नहीं है (पैरा 20, 21, 22)

निरस्त। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. मीना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट सी संख्या 58035/ 2017
2. पूर्ण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2010(3) एडीजे 659

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चांद शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरी शंकर मिश्रा एवं विपक्षी/राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री सतीश मोहन तिवारी को सुना एवं पत्रावली का सम्यक रूप से परिशीलन किया।

2. याची परमानन्द ने कमिश्नर झांसी के आदेश दिनांकित 31.07.2009 तथा उप जिलाधिकारी महरौनी, ललितपुर के आदेश दिनांकित 05.03.2008 को खण्डित करने के लिए याचिका प्रस्तुत किया कि वह नियमित रूप से आवश्यक

अनुवादित

वस्तुओं का वितरण करता था। वह दिनाँक 15.10.2007 से 25.02.2008 तक बीमार रहा एवं चिकित्सा में रहा तथा उक्त कारणोंवश वह वस्तुओं को न तो ले सका न ही बाँट सका। उसका चिकित्सीय प्रमाण- पत्र संलग्नक-1 के रूप में याचिका के साथ संलग्न है तथापि उसकी अनुज्ञप्ति निलम्बित कर दी गई। उसे एक सप्ताह के अन्तर्गत उत्तर देना था परन्तु बीमारी के कारण वह आरोपों का उत्तर नहीं दे सका। गाँव की पार्टीबन्दी के का रण ग्राम प्रधान एवं ग्राम पंचायत के सदस्यों ने फर्जी एवं झूठे आधारों पर शिकायत किया जिसकी जाँच वितरण निरीक्षक महरौनी द्वारा किया गया। ग्राम प्रधान के दबाव में एक पक्षीय रूप से उसके विरुद्ध प्रश्नगत आदेश पारित किया गया। उत्तरदाता संख्या-2 ने तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार किये बिना तथा सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किये बगैर उचित दर के गले की दुकान की अनुज्ञप्ति को अपने आदेश दिनांकित 05.03.2008 संलग्रक-2 के द्वारा खारिज कर दिया जिससे क्षुब्ध होकर याची ने अपील संख्या 27/2007 एक पक्षीय आदेश है तथा याची को : सुनवाई का उचित अवसर प्रदान नहीं किया गया है। अनुज्ञप्ति निरस्त करने के पूर्व उस पर सूचना की तामीला नहीं हुई थी। उक्त दोनों आदेश अतार्किक एवं विस्तृत आदेश से पारित नहीं किये गये हैं तथा प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेश विकृत एवं अनुमानों पर आधारित है, प्रश्नगत आदेश निरस्त किये जाएं।

3. याची ने याचिका में सन्दर्भित सभी आदेशों की छायाप्रतियाँ संलग्न किया है। आदेश दिनांकित 05.03.2008 में स्पष्ट रूप से वर्णित है कि दिनाँक 25.10.2007 के आदेश द्वारा याची के दुकान की अनुज्ञप्ति निलम्बित कर दी गई थी तथा उससे एक सप्ताह के अन्दर स्पष्टीकरण माँगा गया था। उक्त के अतिरिक्त उसके बारे में राशन वितरण की शिकायतें प्राप्त हुई थी जिनकी जाँच कराई गई। जाँच के दौरान गम्भीर अनियमितताएं पाई गई। अतः उसे दिनांकित 25.10.2007 को कारण बताओ नोटिस जारी कर स्पष्टीकरण माँगा गया तथा तीन माहों के वितरण अभिलेख साक्ष्य सहित एक सप्ताह में प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित किया गया परन्तु उसके द्वारा न तो कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया न ही कोई बांछित अभिलेख प्रस्तुत किये गए। अतः याची के दुकान का अनुबन्ध पत्र तत्काल प्रभाव से निरस्त किया गया।

4. उक्त आदेश के विरुद्ध याची ने अपील संख्या 2008-09 प्रस्तुत धारा 11 उत्तर प्रदेश कंट्रोल आदेश 1990 के अधीन प्रस्तुत किया गया जिस पर सुनवाई के उपरान्त उक्त अपील को दिनांक 31.07.2009 को आयुक्त झांसी मण्डल, झांसी द्वारा खण्डित कर दिया गया तथा यह आधार दिया गया कि अपीलार्थी याची द्वारा निर्धारित रोस्टर के अनुसार धनराशि जमा नहीं की गई जिसके प्रश्नानुसार कार्डधारकों को वस्तु वितरण नहीं हो सका न ही उसके द्वारा बीमार रहने सम्बन्धी जानकारी ही अवर न्यायालय को दी गई न ही अवर न्यायालय से कोई अवकाश स्वीकृत कराया गया जिसके परिणामस्वरूप आवश्यक वस्तुओं का वितरण नहीं हो सका। अतः अपीलार्थी याची द्वारा अनुबन्ध शर्तों का उल्लेख किया गया है।

5. अपीलीय न्यायालय ने इस तथ्य का भी संज्ञान लिया कि पूर्ति निरीक्षक द्वारा जाँच करते समय कार्डधारकों ग्रामवासियों मलखान, खिलावन सिंह, लालता प्रसाद, इंदल सिंह, जगना, गरईबहू श्रीमती रामकली आदि ने संयुक्त रूप से आवेदन पत्र

अनुवादित

प्रस्तुत किया कि उन्हें मिट्टी का तेल नहीं मिला. है तथा याची राशन बाँटने की कोई सूचना नहीं देता है। उपरोक्त के अतिरिक्त कीरत, राजन सिंह, करन सिंह, रतिराम, ग्यासी, मझली बहू, अट्टू एवं बिजई ने यह लिखित बयान दिया है कि गेहूँ चावल चीनी एवं मिट्टी का तेल नहीं मिलता है तथा कम मात्रा में दिया जाता है, वस्तु वितरण में अनियमितताएं की गई हैं जो कार्डधारकों के बयानों से स्पष्ट है। खाद्य वितरण का अनुबन्ध पत्र सम्बन्धित व्यक्ति अपीलकर्ता को इसलिए दिया जाता है कि ग्राम के गरीबी रेखा (बी०पी०एल०) एवं गरीबी रेखा से ऊपर (ए०पी०एल०), अंत्योदय कार्डधारकों को राशन वितरित करे। अपीलकर्ता कई महीनों से बीमार रहने के कारण वितरण कार्य नहीं किया न ही आवश्यक वस्तुओं का उठान किया। इससे स्पष्ट है कि अपीलकर्ता दुष्ट एवं लापरवाह है। खाद्यान्न वितरण की व्यवस्था इसलिए की जाती है कि ग्रामवासियों के लिए नियमित रूप से खाद्यान्न प्राप्त हो सके परन्तु अपीलकर्ता द्वारा खाद्यान्न का उठान नहीं किये जाने के कारण कार्डधारकों को परेशानी हुई। इसके अतिरिक्त अपीलकर्ता द्वारा वितरण में गम्भीर अनियमितताएं की गई हैं। अतएव अपील बलहीन है एवं निरस्त किया जाता है।

6. याचिका की सुनवाई के दौरान इस न्यायालय की एकल पीठ कक्ष संख्या-2 ने उभयपक्षों को सुनकर दिनाँक 05.09.2013 को यह निष्कर्ष दिया कि याची की दुकान काफी समय से बन्द थी, यह तथ्य विवादित नहीं है। यह अत्यन्त चिन्ताजनक है कि यदि याचिकाकर्ता अस्वस्थ था तो उसे अधिकारियों को सूचित करना चाहिए था परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। जबकि अनुबन्ध पत्र के अनुसार दुकान बन्द करने के सम्बन्ध में भी अधिकारियों को सूचित करने के लिए वह बाध्य था तथापि उसने ऐसा नहीं किया ताकि अधिकारी वैकल्पिक व्यवस्था करें, चूँकि ऐसा नहीं किया गया था, अतः अधिकारियों का याचिकाकर्ता का लाइसेंस रद्द करना उचित था। आक्षेपित आदेश में किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। याचिका विफल होती है एवं खारिज की जाती है।

7. उक्त आदेश के विरुद्ध खण्डपीठ एवं अन्य उच्चतर न्यायालय में कोई याचिका अथवा कोई अपील प्रस्तुत नहीं की गयी। याची द्वारा पुनर्विलोकन याचिका संख्या 01/2021 अतिविलम्ब से प्रस्तुत की गई। विलम्ब क्षमा प्रार्थना पत्र 03/2021 अन्तर्गत धारा 5 परिसीमा अधिनियम में यह कथन किया गया कि उसे दिनाँक 06.01.2021 के पूर्व उक्त आदेश की जानकारी नहीं थी, अतः विलम्ब को क्षमा कर पुनर्विलोकन प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाए। इस न्यायालय के मतानुसार दिनाँक 05.09.2013 को पारित आदेश से ही यह स्पष्ट है कि उक्त तिथि को याची के विद्वान अधिवक्ता एवं शासकीय अधिवक्ता को सुनकर आदेश पारित किया गया था, ऐसी दशा में याची यह आधार नहीं ले सकता कि उसे प्रश्नगत आदेश दिनाँकित 05.09.2013 की सूचना दिनाँक 06.01.2021 के पूर्व नहीं थी इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि वास्तव में बाद में सोच-समझकर विधिक राय एवं मशविरा से याची ने यह पुनर्विलोकन प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया है।

8. याची ने पुनर्विलोकन प्रार्थना पत्र 01/2021 में याचिका के तथ्यों को ही दुहराया है तथा यह कथन किया है कि बीमारी के कारण तथा अपरिहार्य कारणोंवश दुकान के बन्द होने की

अनुवादित

सूचना प्राधिकारियों को नहीं दे सका। प्रश्नगत आदेश दिनांकित 05.09.2013 उप जिलाधिकारी महरौनी एकपक्षीय तथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध है। अपीलीय न्यायालय ने अपने समक्ष विद्यमान समस्त सामग्री एवं अभिलेखों का तथा अपील के आधारों को विचार में नहीं लिया तथा आम तौर पर अनुमानों के आधार पर आदेश पारित किया है। ग्राम प्रधान एवं सदस्यों ने पृथक प्रस्ताव एवं प्रमाण पत्र याची के पक्ष में उसके ईमानदार एवं कर्तव्यनिष्ठ तथा सतर्क एवं सावधान होने तथा वैधानिक कर्तव्य को निर्वाह करने वाला जारी किया है। इस न्यायालय के समक्ष निस्तारण के समय इन तथ्यों पर उचित तरीके से बल नहीं दिया गया था तथा गुण-दोष पर आदेश पारित करने के बजाय सरसरी तौर पर याचिका को खारिज कर दिया गया। बाद में एक दूसरे अधिवक्ता श्री गौरीशंकर मिश्रा ने 29.08.2013 को प्रतिउत्तर शपथपत्र एवं वकालतनामा प्रस्तुत किया था। याचिका को मात्र इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि दुकान 4-5 महीने के लिए बिना किसी कारण बन्द रही है तथा याची ने प्राधिकारियों को अपने बीमारी की सूचना नहीं दिया ताकि वैकल्पिक व्यवस्था की जा सके। अतः आदेश दिनांकित 05.09.2013 को निलम्बित किया जाए तथा याचिका को स्वीकार कर दिनाँक 05 मार्च, 2008 एवं 31 जनवरी, 2009 के आदेश को खण्डित किया।

9. सुना एवं पत्रावली का अवलोकन किया।

10. याची की तरफ से दिनाँक 29.07.2004 के प्रमुख सूचना खाद्य तथा रसद अनुभाग-6 लखनऊ के शासनादेश पर बल दिया गया तथा सहायक मुख्य शासकीय अधिवक्ता द्वारा रिट याचिका-सी संख्या 15420/2020, नजाकत अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 4 अन्य जिसके साथ 10 अन्य जिसके साथ इसी प्रकार की अन्य याचिकाओं को निस्तारित किया गया था के निर्णय दिनांकित 22.10.2021 पर बल दिया गया जिसमें प्रारम्भ से अब तक की उचित गना राशन की दुकानों के सम्बन्ध में विधिक व्यवस्था की विवेचना की गई है। उक्त याचिका में इस न्यायालय की एकल पीठ द्वारा यह अवधारित किया गया है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 47 तथा अनुच्छेद 21 को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 पारित किया ताकि गरीबी रेखा के नीचे तथा गरीबी रेखा के ऊपर के व्यक्तियों तथा अन्त्योदय अन्न योजना के अन्तर्गत व्यक्तियों को धारा 2(23) अधिनियम 2013 के अन्तर्गत आवश्यक वस्तुओं को राशन कार्ड धारकों को उचित गल्ले की दुकान के द्वारा आवश्यक वस्तुओं को प्रदान किया जा सके। इसी के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश राज्य खाद्य सुरक्षा नियम 2015 बनाया गया। आधार अधिनियम 2016 की उच्चतम न्यायालय ने के०एस० पुट्टास्वामी (सेवानिवृत्त) एवं एक अन्य (आधार) बनाम भारत संघ एवं एक अन्य (2019) 1 एस०सी०सी० 1 में वैधता को सही ठहराया है। पूर्व में आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 के क्रियान्वयन हेतु समय-समय पर राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न जी०ओ० जारी किये गए। उक्त अधिनियम की धारा 3 में राज्य सरकारों को आवश्यक वस्तुओं के नियंत्रण एवं विनियमन के लिए आदेश निर्गत करने की शक्ति प्रदान की गई है। तदुपरान्त उत्तर प्रदेश अधिसूचित वस्तु वितरण आदेश 1990 जारी किया गया तथा पूर्व के 1977 तथा 1989 के आदेशों को निरस्त किया गया। 2004 के आदेश में प्रथम बार गरीबी रेखा के नीचे (बी०पी०एल०) तथा गरीबी रेखा के ऊपर (ए०पी०एल०) के

अनुवादित

सम्बन्ध में विभाजन किया गया तथा उसके धारा उपधारा 2 (सी) के अन्तर्गत अभिकर्ता (एजेन्ट) को परिभाषित किया गया। उप-धारा (1) में उचित दर की दुकान (फेयर प्राइज शॉप) को परिभाषित किया गया तथा उप-धारा 2(4) के अन्तर्गत यह वर्जित किया गया कि उचित दर की दुकान चलाने वाला व्यक्ति राज्य का अभिकर्ता होगा तथा वह एक अनुबन्ध पत्र निष्पादित करेगा । उपधारा 21 उसके निगरानी तथा उपधारा 27 किसी उल्लंघन की दशा में दण्ड का प्रावधान करता है तथा उप-धारा 28 में अपील की व्यवस्था की गई है।

11. पूरन सिंह एवं उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2010 (3) ए०डी०जे० 659 में अवधारित किया गया कि दुकान के निलम्बन एवं अनुबन्ध पत्र के निरस्तीकरण के आदेश स्पीकिंग आदेश से पारित किया जाना चाहिए, तदुपरान्त राज्य सरकार ने दिनांक 16.10.2014 को जी०ओ० जारी किया, जिसमें ग्राम स्तर पर सतर्कता समिति एवं पर्यवेक्षक अधिकारी नियुक्त किये गए। 2013-16 के अधिनियमों के उपरान्त राज्य सरकार ने 2015 के नियम पहले ही बनाकर उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (विक्रय एवं वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश 2016 जारी किया तथा 20.12.2004 के जी०ओ० को अधिक्रमित कर दिया।

12. खण्ड 8 के उपखण्ड (7) में उचित मूल्य की दुकान के मालिक द्वारा वितरण में अनियमितता के जाँच का प्रावधान है तथा यदि लाइसेंस निलम्बित किया जाता है तो जांच के उपरान्त सक्षम प्राधिकारी द्वारा कारण बताओ नोटिस जारी किया जाना चाहिए तथा डीलर द्वारा उत्तर / स्पष्टीकरण दिये जाने के बाद ही उसकी जांच सम्बन्धित अधिकारी द्वारा किये जाने एवं आदेश जारी किये जाने का प्रावधान निर्गत किया गया। उपधारा 9 में खाद्य "आयुक्त द्वारा निगरानी का प्रावधान किया गया तथा नियंत्रण आदेश 2016 के खण्ड 13 में अधिकारियों द्वारा कृत कार्यवाही के विरुद्ध अपील करने का प्रावधान बनाया गया।

13. राज्य सरकार ने दिनाँक 05.08.2019 को एक और शासनादेश जारी किया गया जिसमें निलम्बन/निरस्तीकरण की पूरी प्रक्रिया निर्धारित की गई तथा पूर्व के शासनादेश को निरस्त कर दिया गया। उक्त सरकारी आदेश शिकायतकर्ता/कार्डधारकों के बयान दर्ज करने तथा लाइसेंस धारक को जिरह का अवसर प्रदान करने, सक्षम प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित होने का प्रावधान करता है। उक्त निर्णय में लॉ लेक्सीकन के तृतीय संस्करण का उल्लेख करते हुए न्यायालय ने अवधारित किया कि लाइसेंस का तात्पर्य ऐसा करने का अधिकार है जो अन्यथा, निष्क्रिय, गलत या अवैध होगा जब तक कि एक गठित प्राधिकरण से औपचारिक अनुमति प्राप्त न की गयी हो। लाइसेंसधारी का अर्थ है वह व्यक्ति जो कब्जे में है तथा जिसके साथ एक समझौता विद्यामान है। इस प्रकार, एक डीलर / अभिकर्ता का पूरा दावा उसके द्वारा राज्य के साथ किये गये समझौते पर निर्भर करता है। यह भी अवधारित किया गया कि एक बार नोटिस जारी होने के उपरान्त आडि अल्टरम प्राटेम के सिद्धांत का अनुपालन किया जाता है तथा डीलर / अभिकर्ता को अपना उत्तर प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया जाता है तथा अधिकारियों द्वारा उस पर विचार किया जाता है। यह दावा कि प्राधिकारियों द्वारा डीलर के पक्ष में प्रस्तुत किये गए साक्षीकरण, अभिलेखों की प्रति, शिकायत और वाद के शपथ पत्रों पर विचार करने का अवसर प्रदान करते हुए एक पूर्ण जाँच की जा

सकती है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह विभागीय जाँच नहीं है न ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 के अन्तर्गत नियमित जाँच है वरन् संक्षिप्त प्रकृति जाँच है जहाँ लाइसेंस की शर्तों के उल्लंघन के मामले में कार्यवाही प्रारम्भ की जाती है तथा अन्तरिम आदेश 2016 के अन्तर्गत अवसर प्रदान किया जाता है।

14. इसी निर्णय में मीना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट सी० संख्या 58035 वर्ष 2017 के निर्णय दिनांकित 30.07.2018 का उल्लेख किया गया जिसके पैरा 51 में निम्न अवधारणा किया गया।

"इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि उचित मूल्य की दुकान का अनुज्ञप्तिधारी मात्र सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत निश्चित वस्तुओं के वितरण के लिए एक अभिकर्ता है। वह एक अभिकर्ता होने के कारण कार्यकर्ता है अर्थात सरकार एक निश्चत दर के साथ आवश्यक वस्तुओं के आबंटन की राशि पर कमीशन और उनके वजन के बराबर वितरण प्रणाली की परिकल्पना सरकार द्वारा गरीबों एवं जरूरतमंदो की मदद के लिए की गई है। यह ईमानदार कर दाता का पैसा है जो ऐसी आवश्यक वस्तुओं की कीमत को सब्सिडी देने के लिए उपयोग में लाया जाता है ताकि ये वस्तुएं उनके पहुँच में आ सकें तथा वह अपना पेट भरने में सक्षम हो सकें एवं उनका परिवार सम्मानजनक ढंग से भरण-पोषण कर सकें और यह व्यवस्था उन्हें भिक्षावृत्ति की ओर नहीं ले जाता है। वितरण में अनियमितता होने पर सरकार इस अनुज्ञप्ति को वापस लेने की अधिकारी है यद्यपि ऐसी अनुज्ञप्ति को वापस लेने की प्रथा होनी चाहिए तथा शिकायत प्राप्त होने की स्थिति में सुनवाई का कुछ अवसर दिया जाना आवश्यक है यद्यपि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 के समान ऐसे अनुज्ञप्तिधारी के लिए न तो कोई मौलिक अधिकार हैं न ही कोई संवैधानिक अधिकार विद्यमान हैं।

15. खण्ड 8 के उपखण्ड 7 में आडि अल्टरम प्राटेम के सिद्धांत का पालन किया गया है। एक डीलर के अधिकार के रूप में इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि डीलर लाइसेंस के नियमों एवं शर्तों से बंधा होता है तथा किसी शर्त के उल्लंघन के परिणामस्वरूप ऐसे अनुज्ञप्ति निलम्बन के निरसन की कार्यवाही की जा सकती है।

16. सरकार के दिनाँक 05.08.2019 के आदेश का खण्ड 1 (2) (ख) मात्र कार्डधारक द्वारा शिकायत के सम्बन्ध में प्रारम्भिक जाँच का विधान करता है। जाँच के दौरान, डीलर द्वारा किये गए वितरण के पोर्टल को देखा एवं सत्यापित किया जा सकता है तथा वैकल्पिक रूप से कार्डधारकों के कार्ड से इसका सत्यापन किया जा सकता है। यह सरकारी आदेश नियंत्रण आदेश 2016 के वैधानिक प्रावधानों एवं खण्ड 8 के उपखण्ड 7 को कम नहीं करता है वरन् मात्र जाँच के दौरान सावधानी बरतने का प्रावधान करता है। लाइसेंस अधिकार नहीं है परन्तु व्यक्ति और घर को भोजन उपलब्ध कराने के अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक डीलर को राज्य द्वारा रोपित किया गया है तथा इस प्रकार सौंपे गए कर्तव्य में डीलर का अधिकार शामिल नहीं है क्योंकि वह कर्तव्य से बँधा होता है। अनुज्ञप्ति के शर्तों का कोई भी उल्लंघन राज्य के दण्डात्मक कार्यवाही को आमंत्रित करेगा। इस कर्तव्य का लाइसेंसी द्वारा सख्ती से पालन करना होता है तथा वह निष्पादित समझौते से परे नहीं जा सकता। यह समझौता उस पर विभिन्न प्रतिबन्ध

अनुवादित

आरोपित करता है। एक बार कार्यवाही हो जाने के बाद किसी भी उल्लंघन पर डीलर पलट नहीं सकता है।

17. न्यायालय समाज के गरीब दयनीय वर्ग की दुर्दशा की ओर आँख नहीं मूंद सकता है और जाँच रिपोर्ट की आपूर्ति को प्रदान नहीं करने को प्रतिपरीक्षा का अवसर तथा बाद में जमा किये गए शपथ पत्रों आदि की तकनीकी आड में लाइसेंस बहाल करने का लाभ प्रदान नहीं कर सकता। डीलर/अभिकर्ता के पास नियंत्रण आदेश 2016 के खण्ड 13 के तहत एक अपील का उपाय है जिसमें वह सभी आधार ले सकता है। एक बार आधार ले लिये जाने के उपरान्त और अपीलीय प्राधिकारी के निष्कर्ष निकलने के उपरान्त अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करने पर विचार करने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता। यह न्यायालय तभी अनुग्रह प्रदान कर सकता है। जब नियंत्रण आदेश 2016 के नियंत्रण प्रक्रिया का अनुपालन नहीं किया गया हो अथवा खण्ड 8 के उपखण्ड 7 के अन्तर्गत परिकल्पित अवसर प्रदान नहीं किया गया हो। जब एजेंट/अभिकर्ता द्वारा एक बार कवायद पूरी कर ली जाती है तथा उपलब्ध सभी आधारों के साथ अपील तैयार कर दी जाती है तो अपीलीय प्राधिकारी द्वारा निष्कर्ष दिये जाने के उपरान्त अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए कुछ भी देखने और विचार करने के लिए शेष नहीं रहता है।

18. प्रस्तुत मामले में उप जिलाधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांकित 05.03.2008 से स्पष्ट है कि याची को सुनवाई का पूर्ण अवसर प्रदान किया गया। उसे वितरण अभिलेख एवं साक्ष्य प्रदान करने का अवसर प्रदान किया गया परन्तु उसने कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किये तथा बिना सूचना कई माह तक दुकान को बन्द रखा।

19. याची को अपील में भी सुनवाई का पूर्ण अवसर प्रदान किया गया तथा उप- जिलाधिकारी द्वारा जिन सामग्रियों पर विचार किया गया था उनके अतिरिक्त अन्य विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत शिकायतों को भी विचार में लिया गया एवं उसके उपरान्त अपीलीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि याची सस्ते गल्ले की दुकान का अनुज्ञतिधारी रहने योग्य नहीं है तथा अपील निरस्त कर दिया।

20. तदुपरान्त याची ने इस न्यायालय में याचिका प्रस्तुत किया जिसे सुनवाई के उपरान्त दिनांक 05.09.2013 को गुण-दोष पर निरस्त कर दिया गया तथा प्रश्नगत आदेशों को उचित एवं वैध माना गया। याची ने उक्त एकल न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध अन्य कोई उपचार प्राप्त करने के बजाय लगभग सवा सात वर्ष के उपरान्त पुनर्विलोकन याचिका प्रस्तुत किया है। दोनों अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा तथा इस न्यायालय द्वारा पूर्व में याची को सुनवाई का पूर्ण अवसर प्रदान किया जा चुका है। घटना वर्ष 2007 की है. तथा उस समय विद्यमान नियम एवं विधि के अनुसार याची को सम्यक सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया था। अतएव प्रश्नगत आदेशों को पारित करते समय मूल उप-जिलाधिकारी द्वारा एवं अपीलीय न्यायालय द्वारा तत्समय विद्यमान नियमों के अनुसार आदेश पारित किये गए थे। याची मात्र एक अनुज्ञप्तिधारी है परन्तु वह अधिकार के रूप में अनन्तकाल तक अनुज्ञप्तिधारी के रूप में अधिकारपूर्वक सस्ते गल्ले की दुकान का अनुज्ञप्तिधारी बना रहना चाहता है।

अनुवादित

21. उपरोक्त दशाओं में इस न्यायालय का यह अभिमत है कि यह पुनर्विलोकन प्रार्थना पत्र एवं याचिका निराधार है एवं निरस्त किये जाने योग्य है।

आदेश

22. यह पुनर्विलोकन प्रार्थना पत्र एवं याचिका उपरोक्तानुसार निरस्त की जाती है।

(2023) 2 ILRA 210

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

रिट सी संख्या 1002014/2003

अनिल कुमार अग्रवाल

...याचिकाकर्ता

बनाम

कमिश्नर फैजाबाद एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: राकेश पाठक, आई.डी. शुक्ला, एस.के. मेहरोत्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

(ए) सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 47-ए - लिखत का कम मूल्यांकन, धारा 56 - अपील - स्टांप शुल्क केवल हस्तांतरण के विलेख में दर्शाए गए क्षेत्र पर आरोपित किया जा सकता है क्योंकि याचिकाकर्ता को विलेख में दर्शाए गए क्षेत्र से अन्य किसी संपत्ति पर स्वामित्व या कोई शीर्षक प्राप्त नहीं होगा। (पैरा-3,6,7)

अधिनियम की धारा 47-ए के तहत कार्यवाही प्रारंभ - क्षेत्र निरीक्षण रिपोर्ट के आधार - याचिकाकर्ता पर आरोपित किए गए जुर्माने के साथ अतिरिक्त स्टांप शुल्क - आधार- बिक्री विलेख में प्रश्नगत भूखंड पर इंगित की तुलना में अतिरिक्त क्षेत्र का अधिग्रहण। **(पैरा-1 से 6)**

आयोजित: -याचिकाकर्ता अतिक्रमी हो सकता है या विक्रय विलेख से अधिक क्षेत्र पर अवैध कब्जा कर सकता है, लेकिन स्टांप शुल्क केवल हस्तांतरण के दस्तावेज में दर्शाए गए क्षेत्र पर लगाया जाता है। आक्षेपित आदेश और अपीलीय आदेश इस न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त निर्णयों के अनुरूप नहीं हैं, इसलिए निरस्त कर दिया गया। याचिकाकर्ता को अधिकारियों के पास जमा की गई राशि की वापसी का दावा करने की स्वतंत्रता दी गई, जिसे तीन महीने के भीतर और 6% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ वापस किया जाएगा। **(पैरा-6 से 8)**

रिट याचिका स्वीकार की गई। **(ई-7)**

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. मो. मुस्तफा अली खान बनाम राज राजेश्वरी देवी, 1959 ए.आई.आर इलाहाबाद 583

2. श्रीमती बिन्दु सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2008 (26) लखनऊ सिविल डिसीजन 1158

3. मद्रास रिफाइनरीज लिमिटेड बनाम सी.सी.आर. ए., बी.ओ.आर., मद्रास, (1977) 2 एससीसी 308

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता एवं विपरीत पक्ष की ओर से उपस्थित विद्वान राज्य अधिवक्ता को सुना।

भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 23 अगस्त, 2002 के साथ-साथ अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत अपील में पारित अपीलीय आदेश दिनांक 12 जून, 2003 को चुनौती देते हुए यह याचिका दायर की गई है, जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ता पर जुर्माने के साथ अतिरिक्त स्टांप शुल्क मुख्य रूप से इस आधार पर लगाया गया कि 25 जून, 2002 के विक्रय विलेख में उसका कब्जा प्रश्नगत भूखंड पर दर्शाए गए क्षेत्र से अधिक क्षेत्र पर है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि दिनांक 25 जून 2002 के अंतरण लिखत के माध्यम से, उन्होंने ग्राम जनोरा, परगना हवेली अवध, तहसील एवं जिला फैजाबाद में स्थित गाटा संख्या 438 का एक भाग स्थल निरीक्षण के आधार पर खरीदा था। 28 जुलाई 2002 को तहसीलदार द्वारा किए गए एक पक्षीय निरीक्षण के उपरान्त याचिकाकर्ता के विरूद्ध अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही प्रारम्भ की गई। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता ने स्थल निरीक्षण रिपोर्ट पर अपनी आपत्तियां दर्ज की थीं, जिस पर हालांकि विचार नहीं किया गया एवं मूल्यांकन प्राधिकारी द्वारा मुख्य रूप से स्थल निरीक्षण रिपोर्ट पर इस आधार पर आदेश पारित किया गया कि याचिकाकर्ता के कब्जे में, विक्रय विलेख में दर्शायी गयी खरीदी गई संपत्ति की माप के अनुसार अतिरिक्त भूमि है। तत्पश्चात अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत अपीलीय प्राधिकारी द्वारा उपरोक्त निष्कर्ष की पुष्टि इस पक्ष पर विचार किए बिना की गई है कि स्टांप शुल्क मात्र अंतरण लिखत में दर्शाए गए क्षेत्र पर प्रभार्य है क्योंकि याचिकाकर्ता को लिखत में दर्शाये गये क्षेत्र के अतिरिक्त किसी भी संपत्ति पर कोई हक़ या स्वामित्व प्राप्त नहीं होगा। इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया है कि प्राधिकारियों ने अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत निर्देश की अनुमति देने में त्रुटि की। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अन्यथा भी स्थल निरीक्षण आख्या एक पक्षीय थी, एवं इसके अतिरिक्त याचिकाकर्ता को कभी भी इसकी कोई पूर्व सूचना नहीं दी गई थी। उन्होंने अपने तर्कों की पुष्टि हेतु मुस्तफा अली खान बनाम राज राजेश्वरी देवी 1959 ए.आई.आर. इलाहाबाद 583 एवं श्रीमती. बिन्दु सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2008(26) लखनऊ सिविल डिसीजन्स1158 वादों में इस न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है।

विद्वान राज्य अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों का खंडन इन तर्कों के साथ किया है कि स्थल निरीक्षण रिपोर्ट के अवलोकन से ज्ञात होगा कि याचिकाकर्ता द्वारा खरीदे गए वास्तविक क्षेत्र की माप नायब तहसीलदार द्वारा की गई थी एवं याचिकाकर्ता के पास विक्रय विलेख में दर्शाये गये क्षेत्र से अतिरिक्त संपत्ति पाई गई थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि विक्रय विलेख में दर्शाए गए क्षेत्र एवं याचिकाकर्ता द्वारा खरीदे गए क्षेत्र की वास्तविक माप में बड़ी विसंगति थी।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के

अवधवाणिज्य

अवलोकन पर विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही स्थल निरीक्षण आख्या के आधार पर प्रारंभ की गई थी, जिसमें स्थल निरीक्षण के समय की गई माप द्वारा संपत्ति का क्षेत्रफल विक्रय विलेख में दर्शाये गए क्षेत्रफल से अधिक पाया गया था । इसी आधार पर धारा 47-ए के अंतर्गत आदेश पारित किया गया है एवं याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपत्ति के आधार पर भी कि वह मौजूदा दुकानों को ध्वस्त कर देगा एवं खरीदी गई संपत्ति के शेष क्षेत्रफल के संबंध में एक विक्रय विलेख निष्पादित करेगा। यही तर्क अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत कार्यवाही में अपीलीय प्राधिकारी द्वारा ग्रहण किया गया है।

उपरोक्त आदेशों का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह आदेश 28 जुलाई, 2002 की स्थल निरीक्षण आख्या पर आधारित हैं, जो याचिकाकर्ता द्वारा अतिरिक्त क्षेत्र पर कब्जा करने का संकेत देता है जैसा कि अंतरण लिखत में दर्शाया गया है। यह सुस्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को उस क्षेत्र पर हक या स्वामित्व प्राप्त नहीं होगा जो विक्रय विलेख में सम्मिलित नहीं है। अधिक से अधिक सुरक्षित रूप से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि याचिकाकर्ता अतिचारी हो सकता है या उस क्षेत्र पर अवैध कब्जा कर सकता है जो विक्रय विलेख से अधिक है, किंतु अधिनियम खरीदी जाने वाली संपत्ति पर वास्तविक कब्जे के अनुसार स्टांप शुल्क लगाने का प्रावधान नहीं करता है, अपितु यह मात्र अंतरण लिखत में दर्शाए गए क्षेत्र पर ही आरोपित किया जाएगा।

पूर्वोक्त दृष्टिकोण को मोहम्मद मुस्तफा अली खान एवं श्रीमती बिंदु सिंह (उपरोक्त) के वाद में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा पारित निर्णय के साथ-साथ मद्रास रिफाइनरीज लिमिटेड बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण, राजस्व बोर्ड, मद्रास (1977) 2 सुप्रीम कोर्ट केसेज 308 वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से भी बल मिलता है कि जिसमें यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि स्टांप शुल्क मात्र निम्नलिखित प्रभाव वाले अंतरण लिखत की विषयवस्तु के अनुसार आरोपित किया जा सकता है: -

मोहम्मद मुस्तफा अली खान (उपरोक्त)

"4. किसी भी लिखत पर स्टांप, शुल्क लिखत के निबंधनों के संदर्भ में निर्धारित किया जाना होता है। गैटी बनाम फ्राई, (1877) 2 एक्स डी 265 में, प्रश्न यह था कि क्या एक उत्तरदिनांकित चेक जो धारक को देय हो एवं जिस पर मांग पर देय विनिमय पत्र की भाँति मुहर लगाई जाएगी, क्या वह बिल के दिनांक के बाद साक्ष्य में स्वीकार्य था। क्लीस्बी, बी. ने न्यायालय का निर्णय सुनाते हुए कहा: "इसलिए प्रश्न यह है कि क्या, अगर लिखत पर स्टांप पर्याप्त है, जैसा कि यहाँ मामला था, चूँकि विचारण के समय चेक मांग पर देय था, अत: इसका उपयोग साक्ष्य में नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वास्तव में जब यह दिया गया था, तब उत्तरदिनांकित होने के कारण यह देय नहीं था। हमारा मानना है कि इस मामले का निष्कर्ष प्राधिकारी द्वारा

अनुवादित

निकाला गया है, एवं यह विचार करते समय कि क्या स्टांप पर्याप्त है, हमें केवल लिखत को ही देखना चाहिए। संदर्भ: विलियम्स बनाम जेरेट (1833) 5-बी एवं Ad 32; व्हिसलर बनाम फॉरेस्टर, (1863) 14 सीबी (एन. एस.) 248; ऑस्टिन बनाम बुनयार्ड, (1865) 6 बी एवं धारा 687,

....अधिनियम की अपेक्षा यह है कि एक विशेष लिखत अर्थात एक कागज जिस पर कुछ बातें लिखी हैं: उस लिखत पर एक विशिष्ट स्टाम्प प्रयोज्य होगी, परन्तु तब नहीं जब उस लिखत पर अन्य परिस्थितियां उल्लिखित हो।" रॉयल बैंक ऑफ स्कॉटलैंड बनाम टोटेनहम, (1894) 2 क्यूबी 715 वाद में अपीलीय न्यायालय द्वारा (1877)2 Ex D 265 को स्वीकृति दी गई थी एवं इस प्रकार प्रतिपादित विधि का भारत में लगातार पालन किया गया है। संदर्भ: रेमन चेट्टी बनाम महोमेद गौस, आईएलआर 16 Cal 432; सखाराम शंकर बनाम रामचन्द्र बाबू, आईएलआर 27 Bom 279, इन री सीआर. एम.एम.एल.ए. चेट्टियार फर्म, आईएलआर 13 Rang 613: (एआईआर 1935 Rang 243) (एसबी) श्रीमती बिंदु सिंह (उपरोक्त)

विधि के अंतर्गत, स्टांप शुल्क मात्र उस भाग के मूल्य के लिए प्रभार्य होता है जिसके लिए विलेख निष्पादित किया गया है। यदि याचिकाकर्ता द्वारा विधिक या अवैध रूप से किसी अतिरिक्त क्षेत्र पर कब्जा कर लिया गया है, तो संबंधित प्राधिकारी या व्यक्ति ऐसे भाग का कब्जा वापस पाने के लिए उचित कार्रवाई कर सकता है, जिसे याचिकाकर्ता ने नहीं खरीदा है। हालाँकि, ऐसे भाग पर स्टांप शुल्क नहीं लगाया जा सकता है जिसे याचिकाकर्ता ने विक्रय विलेख के माध्यम से नहीं खरीदा है। याचिकाकर्ता ने अपने द्वारा खरीदे गए क्षेत्र के विक्रय विलेख पर स्टांप शुल्क का भुगतान कर दिया है, अब ऐसे किसी भी क्षेत्रफल के लिए अतिरिक्त स्टांप शुल्क नहीं लगाया जा सकता है जो न तो उसके द्वारा खरीदा गया है एवं न ही ऐसे किसी क्षेत्रफल के लिए उसके पक्ष में कोई विलेख निष्पादित किया गया है। ऐसे में नीचे के अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा खरीदी गई भूमि के क्षेत्र से परे कथित तौर पर अवैध निर्माण करने के लिए उस पर आरोपित अतिरिक्त स्टाम्प शुल्क जुर्माना एवं ब्याज रद्द किए जाने योग्य है।"

मद्रास रिफाइनरीज लिमिटेड (उपरोक्त) "5, लिमर एस्फाल्ट पेविंग कंपनी बनाम आईआरसी [(1872) एलआर 7 Exch 211] में यह कहा गया था: "यह निर्धारित करने के लिए कि क्या कोई, एवं यदि कोई है, तो किसी लिखत पर कौन सा स्टांप शुल्क प्रभार्य होगा, विधिक नियम यह है कि लिखत का वास्तविक एवं सही अर्थ सुनिश्चित

अनुवादित

किया जाए; पक्षकारों द्वारा दस्तावेज़ में दिया गया इसका विवरण सारहीन है, भले ही उनका मानना है कि इसका प्रभाव एवं प्रचालन स्टाम्प अधिनियम में उल्लिखित सुरक्षा हेतु था, एवं उन्होंने ऐसा घोषित किया। ....

11. .....यह न्यास एवं बंधक विलेख और प्रत्याभूति समझौते का वास्तविक एवं सही अर्थ ही है जिसका निर्धारण किया जाना है, एवं इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि इस संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण सही है एवं इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। श्री राम रेड्डी ने अपने तर्क का समर्थन करने के लिए कुछ निर्णयों का अवलम्ब लिया कि प्रत्याभूति समझौता ऋण के लिए प्रत्याभूति थी एवं प्रमुख या प्राथमिक दस्तावेज था, लेकिन इन मामलों का निर्णय अलग-अलग तथ्यों के आधार पर किया गया था एवं हमारे समक्ष प्रस्तुत विवाद से इसका कोई वास्तविक संबंध नहीं है।"

इस तथ्य के दृष्टिगत कि विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित विवादित आदेश दिनांक 23 अगस्त, 2002 एवं विपक्षी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 12 जून 2003 के अपीलीय आदेश इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाए गए निर्णयों के अनुरूप नहीं हैं, अत: त्रुटिपूर्ण होने के कारण खारिज किये जाते हैं। परिणामस्वरुप, रिट याचिका स्वीकृत की जाती है। पक्षकार अपना वाद व्यय स्वयं वहन करें।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि विवादित आदेशों के अनुपालन में, याचिकाकर्ता ने पहले ही अधिकारियों के पास कुछ राशि जमा कर दी है। याचिकाकर्ता को उपरोक्त राशि की वापसी का दावा करने की स्वतंत्रता दी गई है, जिसे इस आदेश की एक प्रति के साथ संबंधित प्राधिकारी के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करने की तारीख से तीन माह की अवधि में 6% प्रति वर्ष की दर से वास्तविक भुगतान की तिथि तक ब्याज के साथ वापस किया जाएगा।

(2023) 2 ILRA 213

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

रिट सी संख्या 1003352/2006

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी उ.प्र. और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: सी.एस.सी.

अधिवक्ता प्रतिवादी: अनूप कुमार, रामजी दास

(ए) सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 47 ए - मूल्यांकन - धारा 47 ए (3) - संदर्भ - धारा 56 - अपील, उत्तर प्रदेश (संपत्ति का मूल्यांकन) नियम, 1997 - नियम 5 (ए) - मूल्यांकन, नियम 5 (बी) - स्टांप शुल्क की गणना की प्रणाली - किसी बगीचे आदि में स्थित पेड़ों से संबंधित स्टांप शुल्क का निर्धारण

अवलोकन

करते समय - अधिनियम 1899 की धारा 47ए के तहत वाद पर विचार करते समय संबंधित प्राधिकारी द्वारा उदाहरणों का विज्ञापन किया जाना चाहिए - मूल्यांकन की तिथि पर क्षेत्र में समान पेड़ों के लिए उदाहरण के संबंध में मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है - किसी विशेष तिथि से लागू क्षेत्रीय मूल्य को सभी आने वाला समय के लिए एक उदाहरण के रूप में नहीं लिया जा सकता है - नियमावली 1997 के नियम 5(बी) के प्रावधानों के विपरीत होगा।(पैरा-11,13)

प्रश्नगत संपत्ति - उपवन की प्रकृति - अचल हिस्से पर देय स्टांप शुल्क के संबंध में कोई विवाद नहीं - नियम 1997 के नियम 5 (बी) के अनुसार क्षेत्रीय दर अधिसूचित - विवाद - अचल संपत्ति पर पेड़ों का मूल्यांकन - दस्तावेज का विषय स्थानांतरण - चाहे क्षेत्रीय मूल्य के अनुसार लिया जाना आवश्यक हो या नियम 1997 के अनुसार - क्या नियमों के अनुरूप है? (पैरा-8,9)

आयोजित:- यद्यपि किसी भी प्राधिकारी द्वारा किया गया मूल्यांकन नियम 1997 के नियम 5(बी) के अनुरूप नहीं है, लेकिन चूंकि अपीलीय आदेश दिनांक 07.07.2000 के शासनादेश के अनुरूप प्रतीत होता है, इसलिए इस न्यायालय को चुनौती के तहत आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई कारण प्राप्त नहीं होता है। **(पैरा-17)**

याचिका निरस्त। **(ई-7)**

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

(01) याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान राज्य अधिवक्ता श्री देवेन्द्र मोहन शुक्ला और विरोधी पक्ष संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री रामजी दास और श्री अनूप कुमार को सुना।

(02) आदेश पारित किए जाने के प्रस्ताव के दृष्टिगत विरोधी पक्ष संख्या 1 की नोटिस को अभिमुक्त किया जाता है।

(03) भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 56 के अधीन दिनांक 28.02.2005 को पारित आदेश को चुनौती देते हुए याचिका दायर की गई है, जिसके अधीन अधिनियम की धारा 47 ए के अधीन मूल्यांकन के विरुद्ध विपक्षी संख्या 2 द्वारा की गई अपील को स्वीकृत किया गया था।

(04) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में, विक्रय लिखत दिनांक 20.12.2003 पंजीकरण हेतु प्रस्तुत किया गया था जिसमें अचल संपत्ति के अलावा, विभिन्न पेड़ों का भी संकेत दिया गया था और संपत्ति स्वयं एक बाग की प्रकृति में थी। पुनः प्रस्तुत किया गया है कि यद्यपि अचल संपत्ति पर भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क के संबंध में कोई विवाद नहीं था, लेकिन संपत्ति पर लगे पेड़ों के संबंध में स्टाम्प शुल्क में कमी का संकेत दिया गया था और इसलिए अधिनियम की धारा 47 ए (3) के अधीन आदेश दिनांक 03.01.2005 के माध्यम से ऐसे पेड़ों पर कम स्टाम्प शुल्क का निर्धारण दर्शाया गया तथा ब्याज सहित जुर्माना लगाया गया। उसके बाद धारा 56 के अधीन विपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर अपील को मात्र विपक्षी संख्या 2 के स्व-मूल्यांकन के आधार पर प्रश्नगत आदेश के माध्यम से स्वीकृत किया गया था।

(05) विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि धारा 47ए के अधीन पारित आदेश वास्तव में सही निर्धारण था और कलेक्टर द्वारा 04.08.2003

को जारी सर्किल दर पर आधारित था, जबकि प्रश्नगत आदेश 16.06.2004 को जारी किए गए बाद के सर्किल दर पर विश्वास व्यक्त किया गया है, जो अंतरण-लिखत के निष्पादन के बाद था और जैसा कि इसे कहा गया है, अपीलीय आदेश का आधार नहीं मिल सका क्योंकि यह प्रभाव में भूतलक्षी नहीं था। पुनः कथन किया गया है कि अपील को मात्र विपक्षी संख्या 2 के 1.50 रुपये प्रति पेड़ की दर के स्व- निर्धारण के आधार पर स्वीकृत किया गया था, जो कि गलत था क्योंकि सर्किल दर दिनांक 04.08.2003 स्पष्ट रूप से लिखत पर लागू था जिसके अनुसार 10 वर्ष की आयु तक के पेड़ों हेतु 1000/- रुपये प्रति इकाई की दर से निर्धारण किया जाना आवश्यक था, जिसके बाद 20 वर्ष या उससे अधिक की आयु तक के पेड़ों हेतु 2000/- रुपये की दर से निर्धारण किया जाना आवश्यक था।

(06) इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रश्नगत आदेश दो मायनों में अनुपयुक्त है, प्रथम यह कि यह सर्किल दर पर निर्भर है जो अंतरण लिखत के निष्पादन के बाद जारी किया गया था और द्वितीय यह कि यह मात्र विपक्षी पार्टी संख्या 2 के स्व-निर्धारण पर आधारित है।

(07) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्कों का खंडन करते हुए विरोधी पक्ष की ओर से उत्तर देने हेतु उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि अचल संपत्ति पर देय स्टाम्प शुल्क के संबंध में कोई विवाद नहीं है और मात्र उपरोक्त अचल संपत्ति स्थित पेड़ों के सम्बन्ध में निर्दिष्ट किया गया है, जो अंतरण-लिखत की विषय वस्तु है और उस पर स्थित भूमि, बाग, उद्यान और पेड़ों के न्यूनतम मूल्य की गणना उत्तर प्रदेश (संपत्ति का मूल्यांकन) 1997 नियमावली के नियम 5(बी) के अनुसार की जानी आवश्यक है। (एतद्पश्चात 1997 के नियम के रूप में संदर्भित) जिसके द्वारा नियमावली 1997 के नियम 5(ए) के अनुसार राजस्व निर्धारण का तरीका निर्धारित किया और साथ ही उस पर खड़े पेड़ों का मूल्य विलेख निष्पादन तिथि पर उस क्षेत्र में उपस्थित एक समान प्रकृति के पेड़ों के औसत मूल्य के आधार पर निकालना विहित किया गया। इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया है कि पेड़ों के निर्धारण पर स्टाम्प शुल्क का आकलन करने हेतु अधिकारियों द्वारा उदाहरण को ध्यान में रखा जाना आवश्यक था। विद्वान अधिवक्ता ने शासनादेश दिनांक 07.07.2000 की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है, जिसे प्रतिशपथ पत्र संलग्नक सीए-1 के रूप में अभिलेख में प्रस्तुत किया गया है, जिसके द्वारा राज्य सरकार ने स्वयं निर्देश जारी किए हैं कि मात्र सम्पत्ति पर स्थित पेड़ों से संबंधित विवाद के संबंध में निर्देश नहीं दिया जाना चाहिए और ऐसे पेड़ों का उचित बाजार मूल्य का निर्धारणकर्ता द्वारा स्व-निर्धारण किया जाना आवश्यक है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रश्नगत आदेश में 16.06.2004 को जारी सर्किल दर पर विश्वास नहीं व्यक्त किया गया है और यह वास्तव में उत्तरदाता विरोधी पक्ष के स्व-निर्धारण पर आधारित है, जो शासनादेश दिनांक 07.07.2000 के अनुरूप है और अतः इसमें कोई अपवाद नहीं ग्रहण किया जा सकता है।

(08) पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने पर यह स्पष्ट है कि इसमें सम्मिलित लघु विवाद यह है कि क्या अचल संपत्ति पर पेड़ों का मूल्यांकन, जो अंतरण विलेख की विषयवस्तु है, सर्किल दर के अनुसार किया जाना आवश्यक है अथवा 1997 के

अनुवादित

नियमावली के अनुसार, एवं क्या इसे सर्किल दर के अनुसार मूल्यांकन नियमों के अनुरूप कहा जा सकता है?

(09) पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता स्वीकार करते हैं कि प्रश्नगत संपत्ति एक बाग की प्रकृति की थी और संपत्ति के अचल भाग पर देय स्टाम्प शुल्क के संबंध में कोई विवाद नहीं था और वास्तव में संदर्भ, अधिनियम1899 की धारा 47 ए के अंतर्गत किया गया था जो मात्र उस पर लगे पेड़ों से संबंधित स्टाम्प शुल्क के विवाद के संबंध में है। यह भी कहा गया है कि स्टाम्प शुल्क की गणना की पद्धति नियमावली 1997 के नियम 5 (बी) में स्पष्ट रूप से विहित है। हालांकि, विद्वान राज्य अधिवक्ता का कथन है कि 04.08.2003 को अधिसूचित सर्किल दर नियमावली 1997 नियम 5(बी) के अनुरूप है, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने इसका विरोध किया है।

(10) विवाद के उचित मूल्यांकन हेतु नियमावली 1997, नियम 5(ए) एवं (बी) का मूल्यांकन करना आवश्यक है जो निम्नवत हैं:-

"5- भूमि, बाग, उद्यान और भवन के न्यूनतम मूल्य की गणना-

	(क) भूमि की स्थिति में	**न्यूनतम मूल्य**
(क)	भूमि की स्थिति में चाहे कृष्य है या अकृष्य	नियम 4 के अधीन जिले के कलेक्टर द्वारा नियत न्यूनतम मूल्य द्वारा गुणित भूमि का क्षेत्रफल

(ख) बाग या उद्यान की की स्थिति में-

(एक)	यदि राजस्व के लिए निर्धारित हो।	भूमि का न्यूनतम मूल्य जैसा खण्ड (क) में दी गई रीति से निकाला गया हो और उस पर लगे वृक्ष का मूल्य जिसे लिखत के दिनांक को उस परिक्षेत्र में विद्यमान उसी प्रकृति, आकार और आयु के वृक्षों की औसत कीमत के आधार पर निकाला गया हो, का जोड़,
(दो)	यदि राजस्व के लिए निर्धारित न हो या उससे छूट दी गई हो और किराये पर उठाया गया हो	वार्षिक किराया या बीस गुना और प्रीमियम यदि कोई हो, उपखण्ड (एक) के अनुसार अवधारित उस पर लगे वृक्षों के मूल्य, का जोड़
(तीन)	यदि राजस्व के लिए निर्धारित न हो या उससे छूट दी गई हो और लिखत के दिनांक से ठीक पूर्ववर्ती तीन वर्षों के	औसत वार्षिक लाभ का बीस गुना और उपखण्ड (एक) के अनुसार अवधारित उस पर लगे वृक्षों के मूल्य, का जोड़े,

अनुवादित

	दौरान लाभ हुआ हो।	
(चार)	यदि राजस्व के लिए निर्धारित न हो या उससे छूट दी गई हो और लिखत के दिनांक से ठीक पूर्ववर्ती तीन वर्षों के दौरान लाभ न हुआ हो।	कल्पित वार्षिक लाभ का बीस गुना और उपखण्ड (एक) के अनुसार अवधारित उस पर लगे वृक्षों के मूल्य, का जोड़े,

(11) नियमावली 1997 के नियमों के पूर्वोक्त नियम 5(बी) के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अचल संपत्ति पर लगे पेड़ों के संबंध में स्टाम्प शुल्क का निर्धारण करते समय, पेड़ों के मूल्य को लिखत की तिथि पर क्षेत्र में उपस्थित समान प्रकृति, आकार और आयु के पेड़ों की औसत कीमत के सम्बन्ध में उदाहरण के आधार पर ज्ञात किया जाना अपेक्षित है। अतः यह स्पष्ट है कि किसी बाग आदि में लगे पेड़ों से संबंधित स्टाम्प शुल्क का निर्धारण करते समय, अधिनियम 1899 की धारा 47 ए के अधीन वाद पर विचार करते समय संबंधित प्राधिकारी द्वारा उदाहरणों का सन्दर्भ लिया जाना चाहिए।

(12) जहाँ तक यह प्रश्न है कि क्या जिले के कलेक्टर द्वारा अधिसूचित सर्किल दर को नियमावली 1997 के नियम 5(बी) के अनुरूप कहा जा सकता है, परिपत्र दिनांक 04.08.2003 से यह स्पष्ट है कि यह मात्र इसके प्रभावी होने की तारीख को इंगित करता है जो कि 04.08.2003 है, और उसमें अवधि के संबंध में कोई संकेत नहीं है जिस हेतु यह लागू रहेगा। यद्यपि, बाद में 16.06.2004 को एक और सर्किल दर जारी की गई जो 16.06.2004 से ही प्रभावी होगी किन्तु अधिसूचना में कहीं भी इसके प्रचालन की समयावधि का उल्लेख नहीं किया गया है।

(13) नियमावली 1997 के नियम 5(बी) के प्रावधानों पर विचार करने पर, यह स्पष्ट है कि लिखत की तिथि पर क्षेत्र में समान पेड़ों हेतु उदाहरण का सन्दर्भ ग्रहण करते हुए मूल्यांकन किया जाना अपेक्षित है। किसी विशेष तिथि से बिना किसी प्रचालन अवधि के लागू किए गए सर्किल दर को नियमावली 1997 के नियम 5(बी) के प्रावधानों के अनुरूप नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह कुछ मास, कुछ वर्षों या यहाँ तक अनन्त समय हेतु भी लागू हो सकता है। अतः इसे एक सर्वकालिक उदाहरण के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय की सुविचारित राय में यह नियमावली 1997 के नियम 5(बी) के प्रावधानों के विरुद्ध होगा।

(14) विद्वान राज्य अधिवक्ता ने नियमावली 1997 के नियम 4(2) का सन्दर्भ देते हुए कहा है कि ऐसी सर्किल दरें प्रत्येक दो वर्षों में जारी की जानी आवश्यक हैं और इसलिए, उक्त सर्किल दरें मात्र दो वर्षों की अवधि हेतु लागू होंगी, उससे अधिक नहीं। यह सूचित किया गया है कि बाद में एक संशोधन के द्वारा सर्किल दरों का प्रचालन मात्र एक वर्ष की अवधि हेतु ही किया गया है। फिर भी, उपरोक्त सर्किल दरों के व्यावहारिक पक्ष

अनुवादित

को भी नियमावली 1997 के नियम 5 (बी) के अधीन विशिष्ट वैधानिक प्रावधानों के संदर्भ में छूट दी जा सकती है, जो विशेष रूप से लिखत निष्पादन की तिथि के अनुसार उसी क्षेत्र हेतु उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। आवश्यक व्यावहारिक पक्ष यह है कि इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि किसी अचल संपत्ति पर लगे पेड़ों का मूल्य समय-समय पर भिन्न हो सकता हैं और जो मूल्य किसी एक वर्ष में होगा, दूसरे वर्ष में या उसी वर्ष के अन्य महीनों में भी समान नहीं हो सकता है। इस प्रकार, नियमावली 1997 के नियम 5 (बी) में स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि किसी विलेख निष्पादन की तिथि के संदर्भ में उदाहरणों को ग्रहण किया जाना है। नियमों में ऐसी शर्त जोड़ने का प्राथमिक उद्देश्य समय-समय पर एक ही क्षेत्र में समान पेड़ों के मूल्यों में परिवर्तन को ध्यान में रखना होगा। इस प्रकार, एक विशिष्ट समयावधि हेतु किसी विशेष जिले के सभी क्षेत्रों हेतु एक ही सर्किल दर को उदाहरण के रुप में नहीं माना जा सकता है और इस न्यायालय की सुविचारित राय में, यह नियमावली 1997 के नियम 5(बी) के प्रावधानों से असंगत होगा।

(15) वर्तमान वाद में यह स्पष्ट है कि अधिनियम 1899 की धारा 47ए के अधीन पारित आदेश स्पष्ट रूप से 04.08.2003 को अधिसूचित सर्किल दरों पर आधारित है। नियमावली 1997 के नियम 5(बी) के संदर्भ में उपरोक्त आदेश में किसी भी उदाहरण का संकेत नहीं दिया गया है। अपीलीय प्राधिकारी ने भी 16.06.2004 को सर्किल दरों की बाद की अधिसूचना के दृष्टिगत इसके अनुसार स्टाम्प शुल्क की गणना विरोधी पक्ष संख्या 2 के स्व-निर्धारण के अनुसार करने का संकेत दिया है। ऐसा निर्धारण दिनांक 07.07.2000 के शासनादेश के अनुरूप प्रतीत होता है। यह स्पष्ट है कि दोनों में से किसी भी आदेश में नियमावली 1997 के नियम 5(बी) का कोई पालन नहीं किया गया है। हालाँकि, इस तथ्य के दृष्टिगत कि सत्रह साल बीत चुके हैं, इस न्यायालय को वाद को वापस भेजने का कोई अवसर नहीं दिखता है क्योंकि इतने वर्ष बीत जाने के बाद, नए सिरे से विचार हेतु, वाद के नए विनिश्चयन हेतु उदाहरण उपलब्ध नहीं हो सकते हैं, विशेषकर तब जब प्रश्नगत आदेश दिनांक 07.07.2000 के शासनादेश के अनुसार पारित किया गया प्रतीत होता है, जो अंतरण-लिखत से पूर्व का है और अंतरण-लिखत की निष्पादन तिथि पर लागू होना प्रतीत होता है।

(16) उपरोक्त शासनादेश दिनांक 07.07.2000 को प्रतिशपथ पत्र के साथ अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है और स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि विभिन्न जिलों में भिन्न-भिन्न दरों पर स्टाम्प शुल्क प्रभारित किया जा रहा है, इसलिए इस समस्या से निराकरण हेतु, यह निर्णय लिया गया कि मूल्यांकन का संकेत, निर्धारणकर्ता द्वारा ऐसे शुल्क के संबंध में स्व-मूल्यांकन द्वारा दर्शाये गये वास्तविक मूल्यांकन के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए और स्टाम्प शुल्क में किसी भी कमी का संकेत देने वाले वाद के रुप में इसे कलेक्टर को संदर्भित नहीं किया जाना चाहिए, विशेषकर इसलिए क्योंकि ऐसी कमी से राजस्व प्राप्ति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है।

(17) इस तथ्य के दृष्टिगत कि यद्यपि दोनों में से किसी भी प्राधिकारी द्वारा मूल्यांकन

अनुवादित

नियमावली 1997 के नियम 5(बी) के अनुरूप नहीं है, लेकिन चूँकि अपीलीय आदेश दिनांक 07.07.2000 के शासनादेश के अनुरूप प्रतीत होता है, अतः इस न्यायालय को चुनौती के अधीन आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता है।

(18) रिट याचिका गुणहीन होने के कारण खारिज की जाती है। पक्षकार अपना वाद व्यय स्वयं वहन करें।

(2023) 2 ILRA 218

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 30.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर,

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,

कैपिटल वाद संख्या 2 /2020

संलग्न

सन्दर्भ क्रमांक 02/2020

मुरारी लाल और अन्य

...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री वी.पी. श्रीवास्तव (सीनियर एडवोकेट), श्री राजीव नयन सिंह, श्री लव श्रीवास्तव, श्री विजेन्द्र पाल

अधिवक्ता विपक्षीगण: श्री जे.के. उपाध्याय, ए.जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या - मृत्युदंड - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 24 - न्यायेतर स्वीकारोक्ति - विश्वसनीयता - न्यायेतर स्वीकारोक्ति साक्ष्य का एक कमजोर भाग है क्योंकि इसे आसानी से कभी भी प्राप्त किया जा सकता है जब प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध नहीं है - एक न्यायेतर स्वीकारोक्ति, यदि स्वैच्छिक, सच्ची और आत्मविश्वास प्रेरित करती है और स्वस्थ मन से की गई है, तो न्यायालय उस पर भरोसा कर सकती है - दोषसिद्धि स्वेच्छा से स्वीकारोक्ति पर आधारित हो सकती है लेकिन विवेक के नियम के लिए आवश्यक है कि जहां भी संभव हो स्वतंत्र भौतिक साक्ष्य द्वारा पुष्टि की जानी चाहिए। (पैरा 25)

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - मृत्यु - न्यायेतर स्वीकारोक्ति - अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति अभियुक्त द्वारा पी.डब्ल्यू. 6 के समक्ष की गई थी, जो कान साफ़ करने वाले के रूप में काम करता था - उस गवाह को अविश्वसनीय माना गया क्योंकि आरोपी अपीलकर्ता उसे नहीं जानते थे - उन्होंने किसी ऐसे व्यक्ति के सामने ऐसी अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति नहीं की होगी जो उनके लिए अज्ञात था - आरोपी अपीलकर्ता द्वारा डॉक्टर के समक्ष अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति पूरी तरह से अविश्वसनीय हैं क्योंकि इसे समान भाषा में दर्ज किया गया है और संबंधित समय पर आरोपी अपीलकर्ता पुलिस हिरासत में थे - कैसे और किस परिस्थिति में अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति दर्ज की गई, अभियोजन पक्ष ऐसा सिद्ध करने में पूर्ण रूप से विफल रहा - बरामदगी- आरोपी द्वारा दिए गए इकबालिया बयान के आधार पर,

अनुवादित

कथित तौर पर मृतक का एक 'सलवार' गन्ने के खेत से जब्त किया गया था - अभियोजन पक्ष विधिनुसार बरामदगी सिद्ध करने में विफल रहा - न तो आरोपी का ज्ञापन दर्ज किया गया और न ही बरामदगी का समर्थन किसी भी स्वतंत्र गवाह द्वारा किया गया - किसी खुले स्थान से की गई बरामदगी, जो हर किसी के लिए सुलभ हो - अभियोजन उचित संदेह से परे आरोपों को सिद्ध करने में विफल रहा, मृत्युदंड की पुष्टि के लिए संदर्भ निरस्त कर दिया गया (पैरा 24)

अनुमत। **(ई-5)**

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

रामानन्द उर्फ नन्दलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 64-65 /2022 दिनांकित 13.10.2022

(माननीय न्यायमूर्ति प्रिटिंकर दिवाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलार्थियों के लिये उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.पी.श्रीवास्तव,जिनकी सहायता अधिवक्ता श्री राजीव नयन सिंह ने की और राज्य के लिये उपस्थित अपर शासकीय अधिवक्ता श्री जे.के. उपाध्याय।

2. अपीलकर्ताओं को दी गई मौत की सजा की पुष्टि के लिए मृत्युदण्ड का यह संदर्भ आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'सी.आर.पी.सी.') की धारा 366 के तहत इस न्यायालय में लाया गया था। मृत्यु दण्ड का संदर्भ और मृत्यु दण्ड मामले की सुनवाई एक साथ की जाती है और यह निर्णय मृत्यु दण्ड मामले और मृत्यु संदर्भ दोनों को नियंत्रित करेगा।

3. यह मृत्यु संदर्भ और मृत्यु मामला अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, पोक्सो अधिनियम, न्यायालय संख्या 9, बरेली द्वारा आपराधिक मामले संख्या 753/2019 (सी.आई.एस. संख्या 1500286/2018)(राज्य बनाम मुरारी लाल और अन्य) में पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 10.1.2020 से उत्पन्न हुआ है, आईपीसी की धारा 302/34, 201, 376 डी एवं पॉस्को अधिनियम की धारा 6 और अनुसूचित जाति की धारा 3 (2) (v) के तहत मामला अपराध संख्या 50/ 2016 से उत्पन्न एवं अनुसूचित जनजाति डीबी (अत्याचार निवारण) अधिनियम, थाना नवाबगंज, जिला-बरेली और भुगतान न करने पर धारा 302 आईपीसी के तहत 50,000/- रुपये के जुर्माने के साथ मौत की सजा सुनाई गई। जुर्माना, एक वर्ष अतिरिक्त कारावास, धारा 201 आईपीसी के तहत 7 वर्ष कारावास और 10000/- रुपये जुर्माना, जुर्माना न देने पर तीन माह अतिरिक्त कारावास, धारा 376डी आईपीसी के तहत आजीवन कारावास और 50000/- रुपये जुर्माना जुर्माना अदा न करने पर एक वर्ष अतिरिक्त कारावास, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत 50000/- रूपये जुर्माने के साथ आजीवन कारावास, जुर्माना, एक वर्ष अतिरिक्त कारावास, और पोक्सो अधिनियम की धारा 6 के तहत 50000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास, जुर्माना न देने पर एक वर्ष अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा।

4. अभियोजन पक्ष के अनुसार, 29.1.2016 को दोपहर लगभग 12 बजे मृतका, जो कि 12 वर्ष की नाबालिग लड़की थी, खेत के लिए

अनुवादित

निकली और उसके बाद वह वापस नहीं लौटी। शुरुआत में उसके परिवार के सदस्यों ने उसे गांव में ही खोजा और उसके लापता होने की जानकारी उसके पिता हेमराज (पी.डब्ल्यू. 1) को भी दी गई, जो संबंधित समय पर दूसरे गांव इदगांव गए थे। शाम करीब चार बजे कुछ बच्चों ने पीडब्लू 1 ने एक सूचना दी की लाही के खेत में एक शव पड़ा हुआ है एवं जब पी डब्लू 1 एवं गाँव के लोग धटना स्थल पर पहुचे, उन्हें मृतक का नग्न शरीर मिला और उन्होंने उसके गुप्तांग पर चोटें भी देखीं।

5. पुलिस को सूचना दी गई और लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क1) के आधार पर अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ धारा 302, 201, 376 आईपीसी के साथ सपठित पॉक्सो अधिनियम की धारा 4 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क.2) दर्ज की गई।29.1.2016 को शाम 5.30 बजे शव के बारे में पंचनामा तैयार की गई। प्रदर्श क-4 के माध्यम से शव को पोस्टमॉर्टम के लिए भेज दिया गया, जो 30.1.2016 को डॉ. नीलम आर्य (पी.डब्ल्यू. 5) द्वारा प्रदर्श क-5 के माध्यम से किया गया था। शवपरीक्षण सर्जन को निम्नलिखित चोटें मिलीं:

"1. दाहिनी ओर गर्दन के ऊपर एवं 1.0 x 1.0 सेमी.,दाहिने कान के नीचे 4.00 सेमी का रगड़न।

2. थायरॉइड कार्टिलेज के ऊपर गर्दन के सामने और बाईं ओर का ऊपरी भाग में 5.0 x 4.0 सेमी. का रगड़न।

3. बाईं ओर की गर्दन के ऊपर 1.0 x 0.1 सेमी., मैंडिबल के दाहिले तरफ नीचे 3.सेमी का घर्षण।

4. चेहरे-गाल के दायी ओर भाग मे0.3 x 0.3 सेमी का 4.0 सेमी मुँह की तरफ का घर्षण।

5. रगड़न 2.0 x 0.6 सेमी. नासिका के ऊपरी होंठ पर सूजन ।

6. निचले होंठ पर सूजन के साथ 3.0 x 1.0 सेमी का रगड़न।

7. योनी और योनि में खून से सने स्राव के साथ और योनी पर खून के धब्बे मौजूद होते हैं।

8. घड़ी के7 बजे की स्थिति के समान हाइमन क्षतिग्रस्त है और हाइमन के किनारों पर सूजन, रक्तस्राव मोजूद है।

9. 14.0 x 5 सेमी. का बायीं बांह और हाथ के पीछे कलाई के जोड़ पर एवं7.0 सेमी. कोहनी के नीचे का घर्षण।

10. 1.0 x 0.3 सेमी. बायीं बांह के पिछले हिस्से पर एवं 3.0 सेमी. कोहनी के नीचे का घर्षण।"

6. आरोप तय करते समय, विचारण न्यायाधीश ने आरोपी अपीलकर्ताओं के

अनुवादित

खिलाफ आईपीसी की धारा 302/34, 201, 376 डी, पॉक्सो अधिनियम की धारा 6 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3 (2) (v) के तहत आरोप तय किया है।

7. अभियुक्त अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने के लिए अभियोजन पक्ष ने 11 गवाहों की जांच की है जबकि बचाव पक्ष के एक गवाह महेंद्र लाल से भी पूछताछ की गई है आरोपी अपीलकर्ताओं का बयान सीआरपीसी की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया जिसमें उन्होंने अपनी बेगुनाही और झूठे आरोप की दलील दी और विचारण का दावा किया।

8. आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा, विचारण न्यायाधीश ने अपीलकर्ताओं को आईपीसी की धारा 302/34, 201, 376 डी, पॉस्को अधिनियम की धारा 6 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम की धारा 3 (2) (v) के तहत दोषी ठहराया है। इसलिए, यह अपील है।

9. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है:

(i) घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है और अपीलकर्ताओं को केवल कमजोर परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषी ठहराया गया है;

(ii) मुरारी लाल द्वारा दिए गए इकबालिया बयान के आधार पर, कथित तौर पर मृतक का एक 'सलवार' 31.1.2016 को गन्ने के खेत से जब्त किया गया था। हालाँकि, अभियोजन पक्ष इस बरामदगी को कानून के अनुसार साबित करने में विफल रहा है क्योंकि न तो अभियुक्त का ज्ञापन दर्ज किया गया था और न ही किसी स्वतंत्र गवाह द्वारा बरामदगी का समर्थन किया गया था। इसके अलावा, यह बरामदगी एक खुली जगह से की गई है, जो हर किसी के लिए सुलभ है;

(iii) 1.2.2016 को आरोपी उमाकांत गंगवार के प्रकटीकरण बयान पर, गेहूं के खेत से प्रदर्श क-13 के माध्यम से कथित तौर पर एक 'चादर' (चादर) जब्त की गई थी। लेकिन यहां भी ज्ञापन दर्ज नहीं किया गया और न ही किसी स्वतंत्र गवाह द्वारा वसूली का समर्थन किया गया और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह घटना खुले कृषि क्षेत्र में होने के कारण सभी के लिए सुलभ था;

(iv) आरोपी अपीलकर्ताओं की चिकित्सीय जांच में, उनके शरीर पर कोई चोट नहीं पाई गई, जबकि आरोप के अनुसार, पीड़िता 12 साल की लड़की थी और ऐसी स्थिति में, आरोपी अपीलकर्ताओं को कुछ चोटें लगनी चाहिए थीं;

अनुवादित

(v) कि चादर में कोई खून नहीं पाया गया, जबकि कथित तौर पर मृतक की 'सलवार' में मानव रक्त पाया गया था, लेकिन इसकी उत्पत्ति साबित नहीं हुई है क्योंकि रक्त का समूह परीक्षण नहीं किया गया है;

(vi) योनि स्लाइड तैयार की गई थी लेकिन रिकॉर्ड पर कोई एफएसएल रिपोर्ट नहीं है;

(vii) अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, अभियुक्त अपीलकर्ताओं द्वारा पी.डब्ल्यू 6/राम चंद्र, जो कान साफ करने का काम करता था, के समक्ष अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति की गई थी, लेकिन यह गवाह पूरी तरह से अविश्वसनीय है क्योंकि आरोपी अपीलकर्ता उसे नहीं जानते थे और ऐसा क्यों करेंगे वे किसी ऐसे व्यक्ति के सामने ऐसी अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति करते हैं जो उनके लिए विदेशी है और अपीलकर्ताओं के पास प्रतिवादी संख्या 6 के समक्ष उक्त अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति करने का कोई अवसर या कारण नहीं था। इसके अलावा, कथित अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति 30.1.2016 को सुबह 10 बजे और उस समय तक अभियोजन पक्ष को अपराध करने में आरोपी अपीलकर्ताओं की संलिप्तता के बारे में पता नहीं था;

(viii) इसी तरह, आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा पी.डब्लू. 7/डॉ. जगवीर सिंह के समक्ष प्रदर्श क-6 और प्रदर्श क-8 के रूप में किया गया तथाकथित अतिरिक्त न्यायिक बयान भी गलत है पूरी तरह से अविश्वसनीय हैं क्योंकि इन्हें समान भाषा में दर्ज किया गया है और प्रासंगिक समय पर आरोपी अपीलकर्ता पुलिस हिरासत में थे। आरोपी अपीलकर्ताओं के लिए डॉक्टर द्वारा दर्ज की गई तथाकथित अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति करने का बिल्कुल भी अवसर नहीं था। इसके अलावा, अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति को एक कॉलम में दर्ज किया जाता है जहां घटना का विवरण दिया जाना है और कैसे और किस परिस्थिति में अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति दर्ज की गई है, अभियोजन पक्ष ऐसा करने में पूरी तरह से विफल रहा है;

(ix) कि पी.डब्ल्यू.2/श्रीमती मोती, मृतक की माँ के अनुसार, उसने आरोपी मुरारी लाल को घटना स्थल से तेजी से चलते हुए देखा था जबकि उक्त कथन का पी.डब्लू.3/श्रीमती. रामकली, द्वारा समर्थन नहीं किया गया है जो पी.डब्लू. 2 के साथ थी।

(x) कि अपीलकर्ताओं को केवल अनुमानों और अनुमानों के आधार पर दोषी ठहराया गया है; और

(xi) कि यदि संपूर्ण अभियोजन साक्ष्य को वैसे ही माना जाए, तो वर्तमान साक्ष्य रहित मामला बन जाता है, फिर भी अपीलकर्ताओं को

अनुवादित

न केवल आईपीसी की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया गया है, बल्कि सबसे आश्चर्यजनक रूप से उन्हें मौत की सजा दी गई है।

10. दूसरी ओर, आक्षेपित निर्णय का समर्थन करते हुए, राज्य के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है:

(i) कि अपीलकर्ताओं की सजा कानून के अनुसार है और इसमें कोई कमजोरी नहीं है;

(ii) कि लगभग 12 वर्ष की एक नाबालिग लड़की के साथ पहले बलात्कार किया गया और फिर उसकी हत्या कर दी गई और महत्वपूर्ण बात यह है कि सबूत स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि अपीलकर्ताओं ने ही उक्त अपराध किया था; और

(iii) कभी-कभी सबूतों से निष्कर्ष निकालना पड़ता है और अभियोजन द्वारा एकत्र किए गए सबूतों कर उचित अवलोकन किया जाना चाहिए और इस कानूनी स्थिति पर विचार करते हुए, अपीलकर्ताओं की सजा कानून के अनुसार है और इसमें कोई कमजोरी नहीं है जो उसी।

11. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

12. पी.डब्लू.1/हेमराज मृतक का पिता और सूचनादाता है। सबसे पहले, उन्होंने कहा है कि उनकी बेटी लापता हो गई थी, और खोज के दौरान लाही के खेत में कुर्ता पहने हुए एक शव पाया गया'और उन्हें आशंका थी कि उनकी बेटी के साथ किसी अज्ञात व्यक्ति ने बलात्कार और हत्या की है। उन्होंने कहा कि उन्होंने ही एफआईआर दर्ज कराई है. जिरह में उन्होंने कहा है कि उनकी मौजूदगी में कुछ भी बरामद नहीं हुआ और न ही इस आशय की कोई लिखित औपचारिकता की गई। पुलिस ने सादे कागज पर उसके अंगूठे के निशान ले लिए।

13. पी.डब्ल्यू.2/श्रीमती. मोरी P.W.1 की पत्नी और मृतक की माँ है। उसने कहा है कि घटना की तारीख पर, वह और उसकी बेटी गन्नें के खेत में गन्नें के पत्तियों को इकठ्ठा करने के लिए गये और उसके बाद, उसने मृतका को पत्तियों के बंडल के साथ घर भेजा था और उसे वापस घर लौटने के लिए कहा था। लेकिन जब वह वापस नहीं लौटी तो उसकी तलाश की गई और बाद में उसका शव खेत में मिला. उसने आगे कहा कि उसने आरोपी अपीलकर्ता मुरारी लाल को घटना स्थल से बहुत तेजी से चलते हुए बाहर आते देखा। पी.डब्ल्यू.3/श्रीमती. राजकली मृतक की दादी पक्षद्रोही हो गई है।

14. पी.डब्ल्यू.4/अनिल कुमार पुलिस कांस्टेबल है और उसने अभियोजन में सहायता की है।

15. पी.डब्ल्यू.5/डॉ. नीलम आर्य डॉक्टरों के उस पैनल की सदस्य हैं, जिन्होंने शव का

अनुवादित

पोस्टमॉर्टम किया और उन्होंने पोस्टमॉर्टम जांच रिपोर्ट को प्रदर्श क-5 के जरिए साबित किया।

16. पी.डब्ल्यू.6/राम चंद्र गांव का एक कान साफ करने वाला व्यक्ति है जिसके समक्ष कथित न्यायेतर स्वीकारोक्ति आरोपी व्यक्तियों द्वारा की गई है। उन्होंने कहा है कि आरोपी अपीलकर्ताओं ने हाथ जोड़कर उनसे मदद करने का अनुरोध किया और उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने पीड़िता के साथ बलात्कार करके और फिर उसकी हत्या करके बहुत बड़ी गलती की है।

17. जिरह में पी.डब्लू. 6 ने कहा है कि आरोपी व्यक्ति उसे पहले से नहीं जानते थे। उन्होंने आगे स्वीकार किया कि उन्हें सुनने में कठिनाई होती है और चूंकि पुलिसकर्मी उन्हें जानते हैं, इसलिए उन्होंने आरोपी अपीलकर्ताओं को आश्वासन दिया कि वह पुलिस के साथ मामले को सुलझा लेंगे।

18. पी.डब्ल्यू.7/डॉ. जगवीर सिंह एक रेडियोलॉजिस्ट हैं जिनके समक्ष कथित अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति प्रदर्श क-6 और प्रदर्श क-8 के तहत दोनों आरोपियों द्वारा की गई थी। यहां यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि इस गवाह द्वारा लिखे गए तथाकथित न्यायेतर बयान की प्रकृति और भाषा लगभग समान है।

19. पी.डब्ल्यू.8/इंस्पेक्टर आर.के.सिंह जांच अधिकारी हैं और उन्होंने अभियोजन मामले का विधिवत समर्थन किया है।

20. पी.डब्ल्यू.9/डॉ. संजय कुमार डॉक्टरों के उस पैनल के सदस्य थे, जिन्होंने मृतक का पोस्टमार्टम किया था, उन्होंने अपनी रिपोर्ट प्रदर्श क-5 में मृतक के शरीर पर पाए गए चोटों का विवरण दिया है। पी.डब्ल्यू.10/एस.एस.आई. मुकेश कुमार ने पूछताछ और प्रारंभिक जांच की। पी.डब्ल्यू.11/सी.ओ. नरेश कुमार दूसरे जांच अधिकारी हैं, जिन्होंने जांच पूरी कर आरोप पत्र दाखिल किया।

21. डी.डब्लू.1/महेन्द्र पाल, जिस जमीन पर मृतक का शव मिला था, उसके मालिक ने अपने खेत से शव को जब्त करने के बारे में अपनी अनभिज्ञता जाहिर की है।

22. परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर सजा के संबंध में कानून बहुत स्पष्ट है। सुप्रीम कोर्ट के ***रामानन्द उर्फ नन्दलाल भारती बनाम यूपी राज्य सरकार। मामले के*** फैसले पर भरोसा रखा जा सकता है ***आपराधिक अपील संख्या***64-65/2022 पर 13***अक्टूबर*** 2022 ***को फैसला हुआ,*** जिसमें यह अवधारित किया गया है:

> "47. ...यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि किसी आरोपी को परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में भी दोषी पाए जाने पर दंडित किया जा सकता है, अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे घटनाओं और परिस्थितियों की पूरी श्रृंखला को साबित करने में सक्षम है जो निश्चित रूप से संलिप्तता की ओर इशारा करता है और जैसा भी मामला हो, संदिग्ध या अभियुक्त को दोषी ठहराया जाए। केवल इस आधार पर कि मामले में कोई चश्मदीद गवाह नहीं है, आरोपी बरी होने का हकदार नहीं होगा।

यह भी उतना ही सच है कि किसी आरोपी को परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है, बशर्ते उस संबंध में अपेक्षित सिद्धांत संतुष्ट हों।

48. इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ शरद बिरधीचंद सारडा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116, निम्नानुसार अवधारित किया है:

> "152. उच्च न्यायालय द्वारा भरोसा किए गए मामलों पर चर्चा करने से पहले हम एक आपराधिक मामले में आवश्यक प्रकृति, चरित्र और आवश्यक सबूत पर कुछ निर्णयों का हवाला देना चाहेंगे जो केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित हैं। इस कोर्ट का सबसे मौलिक और बुनियादी फैसला है हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य[एआईआर 1952 एससी 343: 1952 एससीआर 1091: 1953 सीआरआई एलजे 129]। इस मामले को इस न्यायालय द्वारा बाद के कई निर्णयों में समान रूप से लागू किया गया है, उदाहरण के लिए, तुफैल (उर्फ) सिम्मी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1969) 3 एससीसी 198: 1970 एससीसी (सीआरआई) 55] और रामगोपाल बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1972) 4 एससीसी 625 : एआईआर 1972 एससी 656] के मामलों में भी समान रूप से लागु किया गया है। हनुमंत मामले में महाजन, जे. ने जो कहा है उसे समझना उपयोगी हो सकता है [एआईआर 1952 एससी 343: 1952 एससीआर 1091: 1953 सीआरआई एलजे 129]:

> यह अच्छी तरह से याद रखना चाहिए कि ऐसे मामलों में जहां साक्ष्य परिस्थितिजन्य प्रकृति का है, जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पहले पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए, और इस प्रकार स्थापित सभी तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए। फिर, परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए और वे ऐसी होनी चाहिए जो सिद्ध होने के लिए प्रस्तावित परिकल्पना को छोड़कर प्रत्येक परिकल्पना को बाहर कर दें। दूसरे शब्दों में, सबूतों की एक श्रृंखला अब तक पूरी होनी चाहिए ताकि आरोपी की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छूटे और यह ऐसा होना चाहिए जो

अनुवादित

यह दिखाए कि आरोपी द्वारा सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर कार्य किया गया होगा।

153. इस निर्णय के गहन विश्लेषण से पता चलेगा कि किसी आरोपी के खिलाफ मामला पूरी तरह से स्थापित होने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए: (1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया है कि संबंधित परिस्थितियों को 'स्थापित किया जाना चाहिए' और 'नहीं' किया जा सकता है। 'साबित किया जा सकता है' और 'साबित किया जाना चाहिए' के बीच न केवल व्याकरणिक बल्कि कानूनी अंतर है, जैसा कि इस न्यायालय नेShivaji Sahabrao Bobade v. State of Maharashtra [(1973) 2 एससीसी 793: 1973 एससीसी (सीआरआई) 1033: 1973 सीआरआई एलजे 1783] में माना था। जहां निम्नलिखित टिप्पणियां की गईं: [एससीसी पैरा 19, पृ. 807 : एससीसी (सीआरआई) पी. 1047] निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने से पहले आरोपी को दोषी होना चाहिए और न कि केवल दोषी होना चाहिए और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और अस्पष्ट अनुमानों को निश्चित निष्कर्षों से विभाजित करती है। (2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर समझाने योग्य नहीं होना चाहिए सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है, (3) परिस्थितियाँ होनी चाहिए एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति, (4) उन्हें सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभावित परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और (5) सबूतों की एक श्रृंखला होनी चाहिए जो इतनी पूर्ण हो कि निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न बचे। अभियुक्त को यह दिखाना होगा कि पूरी मानवीय संभावना में यह कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।

154. ये पांच सुनहरे सिद्धांत, अगर हम ऐसा कह सकते हैं,

अनुवादित

परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले को साबित करने के पंचशील का गठन करते हैं।

23. अब यदि कानून के उपरोक्त सिद्धांत को वर्तमान मामले में लागू किया जाए तो स्थिति इस प्रकार सामने आती है:

24. वर्तमान मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, हालांकि, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत परिस्थिति यह संकेत नहीं देती है कि अभियोजन पक्ष के पक्ष में केवल एक ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है, बल्कि यह विपरीत है जहां परिस्थितियां आरोपी की बेगुनाही की ओर इशारा करती हैं। सबूतों के अनुसार, अभियोजन पक्ष अपने मामले को पूरी तरह से अपने पक्ष में साबित करने में विफल रहा है और सबूत केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के साथ असंगत हैं। साक्ष्य प्रकृति में निर्णायक नहीं है और सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर किसी संभावित परिकल्पना का संकेत नहीं देता है। साक्ष्यों से, यह स्पष्ट है कि साक्ष्यों की श्रृंखला परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर मामलों के बुनियादी सिद्धांतों को पूरी तरह से नियंत्रित नहीं कर रही है। सामान की बरामदगी कानून और मेडिकल रिपोर्ट के अनुरूप साबित नहीं हुई है. वर्तमान मामले में, पीडब्लू-7 के समक्ष आरोपी के न्यायेतर कबूलनामे के आधार पर, यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष सभी उचित संदेहों से परे अपना मामला साबित करने में सफल रहा है।

25. इसके अलावा न्यायेतर स्वीकारोक्ति के संबंध में कानून भी बहुत स्पष्ट है और रामानंद (उपरोक्त) के मामले पर भरोसा किया जा सकता है जिसमें यह माना गया है:

"82. न्यायेतर स्वीकारोक्ति साक्ष्य का एक कमजोर टुकड़ा है और अदालत को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि यह विश्वास को प्रेरित करता है और अन्य अभियोजन साक्ष्य द्वारा इसकी पुष्टि की जाती है। इसे साक्ष्य का एक कमजोर टुकड़ा माना जाता है क्योंकि जब भी प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता है तो इसे आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। न्यायेतर स्वीकारोक्ति स्वीकार करने के लिए, यह स्वैच्छिक होना चाहिए और आत्मविश्वास को प्रेरित करना चाहिए। यदि अदालत संतुष्ट है कि न्यायेतर स्वीकारोक्ति स्वैच्छिक है, तो दोषसिद्धि को आधार बनाने के लिए इस पर कार्रवाई की जा सकती है।

83. सहदेवन और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य, (2012) 6 एससीसी 403 में विभिन्न निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति की स्वीकार्यता और साक्ष्य मूल्य पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा: "15.1.बलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य में[1995 सप्लिमेंट (4) एससीसी 259: 1996 एससीसी (सीआरआई) 59] इस न्यायालय ने सिद्धांत बताया कि: (एससीसी पृष्ठ 265, पैरा 10) "10।

अनुवादित

अपनी प्रकृति से न्यायेतर स्वीकारोक्ति एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है और इसमें बहुत अधिक देखभाल और सावधानी के साथ अवलोकन की आवश्यकता होती है। जहां कोई न्यायेतर स्वीकारोक्ति संदिग्ध परिस्थितियों से घिरी हो, उसकी विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाती है और उसका महत्व खत्म हो जाता है।" x x x x 15.4. एक न्यायेतर स्वीकारोक्ति की स्वीकार्यता और साक्ष्य मूल्य को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के आयामों की व्याख्या करते हुए इस न्यायालय में राजस्थान राज्य वि. राजा राम [(2003) 8 एससीसी 180: 2003 एससीसी (सीआरआई) 1965] ने सिद्धांत बताया कि: (एससीसी पृष्ठ 192, पैरा 19)

> "19. एक न्यायेतर स्वीकारोक्ति, यदि स्वैच्छिक और सच्ची हो और मानसिक स्थिति में सही हो, तो अदालत उस पर भरोसा कर सकती है। किसी भी अन्य तथ्य की तरह इस स्वीकारोक्ति को भी साबित करना होगा। किसी भी अन्य साक्ष्य की तरह, स्वीकारोक्ति के साक्ष्य का मूल्य उस गवाह की सत्यता पर निर्भर करता है जिससे यह किया गया है।" न्यायालय ने आगे यह विचार व्यक्त किया कि: (एससीसी पृष्ठ 192, पैरा 19)

"19. ...इस तरह की स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया जा सकता है और उस पर दोषसिद्धि की स्थापना की जा सकती है यदि स्वीकारोक्ति के बारे में साक्ष्य उन गवाहों के मुंह से आता है जो निष्पक्ष प्रतीत होते हैं, अभियुक्त के प्रति दूर-दूर तक पक्षद्रोही नहीं हैं, और जिनके संबंध में कुछ भी सामने नहीं आया है यह संकेत दे सकता है कि उसका उद्देश्य अभियुक्त पर असत्य बयान देने का हो सकता है।..."

XXX XXX XXX 15.6. न्यायालय ने न्यायेतर स्वीकारोक्ति की स्वीकार्यता को स्वीकार करते हुए संसार चंद वि. राजस्थान राज्य[(2010) 10 एससीसी 604: (2011) 1 एससीसी (सीआरआई) 79] ने कहा कि: (एससीसी पृष्ठ 611, पैरा 2930) "29। ऐसा कोई पूर्ण नियम नहीं है कि एक न्यायेतर स्वीकारोक्ति कभी भी दोषसिद्धि का आधार

अनुवादित

नहीं हो सकती, हालाँकि आमतौर पर एक न्यायेतर स्वीकारोक्ति की पुष्टि किसी अन्य सामग्री से की जानी चाहिए। [वीडियो थिम्मा और थिम्मा राजू बनाम मैसूर राज्य[(1970) 2 एससीसी 105: 1970 एससीसी (सीआरआई) 320], मुल्क राज बनाम यूपी राज्य [एआईआर 1959 एससी 902: 1959 सीआरआई एलजे 1219],शिवकुमार बनाम राज्य[(2006) 1 एससीसी 714: (2006) 1 एससीसी (सीआरआई) 470] (एससीसी पैरा 40 और 41: एआईआर पैरा 41 और 42),शिव करम पयस्वामी तिवारी वि. महाराष्ट्र राज्य[(2009) 11 एससीसी 262 : (2009) 3 एससीसी (सीआरआई) 1320] और मो. आजाद बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [(2008) 15 एससीसी 449 : (2009) 3 एससीसी (सीआरआई) 1082]]"

84. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि दोषसिद्धि स्वेच्छा से स्वीकारोक्ति पर आधारित हो सकती है लेकिन विवेक के नियम के अनुसार जहां भी संभव हो इसकी पुष्टि स्वतंत्र साक्ष्य द्वारा की जानी चाहिए। सभी मामलों में अभियुक्तों की न्यायेतर स्वीकारोक्ति की पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। मदन गोपाल कक्कड़ बनाम नवल दुबे और अन्य में, (1992) 3 एससीसी 204, इस न्यायालय का उल्लेख करने के बाद पियारा सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, (1977) 4 एससीसी 452, ने माना कि कानून की आवश्यकता नहीं है कि सभी मामलों में एक अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति के साक्ष्य की पुष्टि की जानी चाहिए। विवेक के नियम की आवश्यकता नहीं है कि स्वीकारोक्ति में उल्लिखित प्रत्येक परिस्थिति को अलग से और स्वतंत्र रूप से पुष्टि की जानी चाहिए

85. उपरोक्त का सार यह है कि एक न्यायेतर स्वीकारोक्ति अपने स्वभाव से ही एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है और इसमें बहुत अधिक देखभाल और सावधानी के साथ अवलोकन की आवश्यकता होती है। जहां एक न्यायेतर स्वीकारोक्ति संदिग्ध परिस्थितियों से घिरी हो, उसकी विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाती है और वह हाथ में आए मामले की तरह अपना महत्व खो देता है। अदालतें आम तौर पर किसी अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति पर भरोसा करने से पहले एक स्वतंत्र विश्वसनीय पुष्टि की तलाश करती हैं।"

अनुवादित

26. वर्तमान मामले के तथ्यों और विभिन्न न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानून से, यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में अपीलकर्ताओं के खिलाफ कानूनी तौर पर शायद ही कोई स्वीकार्य सबूत है और हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि अभियोजन पक्ष साबित करने में विफल रहा है। उचित संदेह से परे आरोप जिसके लिए आरोपी-अपीलकर्ताओं पर मुकदमा चलाया गया और इसलिए, अपीलकर्ता संदेह का लाभ पाने के हकदार हैं।

27. इसलिए, हमें मौत की सजा की पुष्टि के संदर्भ को खारिज करने और अपीलकर्ताओं को उनकी दोषसिद्धि और सजा के आदेश के खिलाफ अपील की अनुमति देने में कोई हिचकिचाहट नहीं है। अपीलकर्ताओं की अपील स्वीकार की जाती है। विचारण न्यायालय द्वारा मौत की सजा की पुष्टि के लिए भेजा गया रेफरेंस खारिज कर दिया गया है. विचारण न्यायालय के दिनांक 10.1.2020 के फैसले और आदेश को रद्द किया जाता है। अपीलकर्ताओं को उन सभी आरोपों से बरी किया जाता है जिनके लिए उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें दोषी ठहराया गया। विचारण न्यायालय की संतुष्टि के लिए सीआरपीसी की धारा 437-ए के प्रावधानों के अनुपालन के अधीन, अपीलकर्ताओं को तुरंत जेल से रिहा किया जाएगा, जब तक कि किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

28. इस आदेश की एक प्रति विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड के साथ नीचे की अदालत को सूचना और अनुपालन के लिए भेजी जाए।

(2023) 2 ILRA 225

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 637 /2005

और

एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 643 /2005

ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

...अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती कल्लो एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री मिथिलेश कुमार तिवारी

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अचिंत्य कुमार

ए. दुर्घटना दावा-कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923-धारा 30-न्यायसंगत क्षतिपूर्ति-घातक दुर्घटना-कानून का महत्वपूर्ण प्रश्न-क्या 61 वर्ष की आयु के व्यक्ति को चालक के रूप में नियुक्त किया जा सकता है या नहीं-उम्र कारक का अधिनियम में कहीं भी वर्णन नहीं किया गया है कि 60 वर्ष से अधिक उम्र का व्यक्ति ड्राइवर के रूप में नौकरी नहीं कर सकता - ड्राइविंग लाइसेंस की अवधि समाप्त होने के बाद इसे बीमा कंपनी द्वारा स्पष्ट रूप से सिद्ध नहीं किया गया है - उच्च न्यायालय तथ्यों के क्षेत्र में तब तक प्रवेश नहीं कर सकता जब तक कि वे विकृत सिद्ध न हो जाएं - संशोधन के पश्चात ब्याज की दर अधिनियम, 1923 के अनुसार 12% है - प्रस्तुत दोनों वाद का उत्तर बीमा कंपनी के विरुद्ध दिया जाता है। (पैरा 1 से 12)

अनुवादित

अपील निरस्त की जाती है. **(ई-6)**

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. ओरिएंटल इंस. कंपनी बनाम सिबी जियोगे एवं अन्य (2012) 4 टी.ए.सी. 4 एससी
2. न्यू इंडिया अस्र. कंपनी लिमिटेड बनाम कमला एवं अन्य
3. ओरिएंटल इं. कंपनी. लिमिटेड बनाम पूनम केसरवानी और अन्य (2008) मुकदमा (ऑल) 1557
4. राष्ट्रीय इं.सं. कंपनी लिमिटेड बनाम जुगल किशोर एवं अन्य (1988) एआईआर एससी 719
5. मायन बनाम मुस्तफा और अन्य (2022) एसीजे 524
6. सलीम बनाम न्यू इंडिया अस्र. कंपनी लिमिटेड और अन्य. (2022) एसीजे 526
7. उत्तर पूर्व कर्नाटक रोड ट्रांस निगम बनाम श्रीमती सुजाता, सिविल अपील संख्या 7470/2009
8. गोला राजन्ना आदि बनाम डिवी.एमजीआर और अन्य (2017) 1 टीएसी 259

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मिथिलेश कुमार तिवारी और प्रतिवादी-मूल दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री अचिंत्य कुमार को सुना। मालिक की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

2. यह दोनों अपील एक ही घटना से उत्पन्न हुई हैं जिसमें एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी और एक व्यक्ति घायल हो गया था। आदेश से प्रथम अपील संख्या - 637 वर्ष 2005 मृतक के दावेदार/उत्तराधिकारी द्वारा दायर दावा याचिका से उत्पन्न है जबकि आदेश से प्रथम अपील संख्या - 643 वर्ष 2005 घायल-दावेदार द्वारा दायर दावा याचिका से उत्पन्न है।

3. यह प्रस्तुत किया गया है कि दुर्घटना के समय मृतक की आयु लगभग 61 वर्ष थी और उसे लगभग रु. 4,000/- प्रति माह का भुगतान किया जा रहा था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान आयुक्त के समक्ष यह आग्रह किया गया था कि 61 वर्ष की आयु के व्यक्ति को चालक के रूप में नियोजित नहीं किया जा सकता था। इसके अलावा, उनका ड्राइविंग लाइसेंस 26.01.2002 को समाप्त हो गया था और इसलिए, बीमा कंपनी पर भी दायित्व नहीं डाला जा सकता था। आयुक्त ने मृतक के वारिस को 2,27,540/- रुपये और घायल-दावेदार को 3,18,772.80 रुपये दिए, जबकि दावा याचिकाएं रुपये 2,00,000/- प्रत्येक के लिए थीं। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि ब्याज दर 5% से 6% होगी और आयुक्त ने उक्त तथ्य को नजरअंदाज किया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि ऐसा कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है जिसने बयान दिया हो कि दुर्घटना दूसरे वाहन के लापरवाही और असावधानी पूर्वक गाड़ी चलाने के कारण हुई थी। अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान आयुक्त ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया है कि दावेदार यह साबित करने में असफल रहे कि मृतक विपक्षी पक्ष संख्या 1 के अधीन रोजगार में था।

4. बीमा कंपनी द्वारा उठाए गए महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न इस प्रकार हैं:

"1. क्या, विद्वान आयुक्त के पास अपीलार्थी के खिलाफ 2,27,540/- रुपये का मुआवजा देने का

अनुवादित

अधिकार क्षेत्र है, जबकि दावेदारों ने उनकी दावा याचिका में केवल रु. 2,00,000/- मुआवजे की राशि का दावा किया है?

2. क्या दावा याचिका दायर करने से पहले विपक्षी पक्ष को कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 के अंतर्गत नोटिस दिए बिना अपीलार्थी, ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी, के विरुद्ध 12% प्रति वर्ष का ब्याज लगाया जा सकता है?

3. क्या 61 वर्ष का ड्राइवर कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के तहत कर्मकार है?

4. क्या, गणना के निष्कर्ष दिए बिना, 2,27,540/- रुपये मुआवजे की राशि का अनुदान, कानून के अंतर्गत धारणीय है?"

5. इन अपीलों को स्वीकार करते समय, खंड पीठ ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 (इसके बाद 'अधिनियम, 1923' के रूप में संदर्भित) की धारा 30 के अंतर्गत आवश्यक कोई भी विधिक प्रश्न नहीं निरूपित किया। जैसा भी हो, इस न्यायालय के लिए बीमा कंपनी द्वारा उठाए गए विधिक प्रश्नों से निपटना उपयोगी होगा।

6. इससे पहले कि यह न्यायालय किसी अन्य मुद्दे पर विचार करे, प्रश्न संख्या 2 जो उठाया गया है वह, **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी बनाम सिबी जॉर्ज और अन्य, 2012 (4) टीएसी 4 (एससी)** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के दृष्टिगत बीमा कंपनी के विरुद्ध उत्तरित है। अधिनियम, 1923 में संशोधन के बाद ब्याज दर, 12% है।

7. जहां तक प्रश्न संख्या 1 की बात है, शीर्ष न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि जहां तक लाभकारी कानून का सवाल है, अदालतें उचित मुआवजे के रूप में जाना जाने वाला अनुदान दे सकती हैं, यदि वह अधिनियम, 1923 के तहत फार्मूले के अनुसार काम कर जाता है, जिसे इस मामले में आयुक्त द्वारा उचित रूप से इस्तेमाल किया गया है। जहां तक दंड का सवाल है, यह वह था जिसे व्यक्तिपरक दंड के रूप में जाना जाता है और इसलिए, इसमें इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

8. यह इस न्यायालय को अंतिम प्रश्न पर ले जाता है कि क्या 61 वर्ष की आयु के व्यक्ति को ड्राइवर के रूप में नियुक्त किया जा सकता है या नहीं। सिर्फ इसलिए कि जांच अधिकारी ने जांच रिपोर्ट में उसकी उम्र लगभग 61 वर्ष 47 दिन बता दी है, इससे वह गैर-कर्मचारी नहीं बन जाएगा क्योंकि कर्मकार प्रतिकर अधिनियम में उम्र कारक का कहीं भी वर्णन नहीं किया गया है, कि 60 वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्ति को ड्राइवर के रूप में कार्यरत नहीं किया जा सकता है। बीमा कंपनी द्वारा इस तथ्यात्मक सामग्री का खंडन करने के लिए कुछ भी नहीं प्रस्तुत किया गया है कि उसे मालिक द्वारा नियोजित किया गया था।

9. यह इस न्यायालय को इस तथ्य पर ले जाता है कि लाइसेंस दुर्घटना की तारीख से बहुत पहले समाप्त हो गया था। ड्राइविंग लाइसेंस की समय सीमा समाप्त होने की बात को बीमा कंपनी द्वारा ठोस रूप से साबित नहीं किया गया है। **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पूनम केसरवानी और अन्य, 2008 लॉ सुइट (सभी) 1557** के निर्णय के आलोक में, जब बीमा कंपनी

अनुवादित

द्वारा यह साबित नहीं किया गया कि पॉलिसी की शर्तों का उल्लंघन हुआ है, तो अपील सफल नहीं हो सकती। इसके विपरीत, बीमा कंपनी ने पॉलिसी नहीं प्रस्तुत की है, इसलिए, बीमा कंपनी के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकाल रहा है क्योंकि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम जुगल किशोर और अन्य, एआईआर 1988 एससी 719** में शीर्ष न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत, बीमा पॉलिसी प्रस्तुत करना बीमा कंपनी का बाध्य कर्तव्य था।

10. 2.11.2018 को निर्णित **उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाता में, गोल्ला राजन्ना आदि आदि बनाम डिविजनल मैनेजर और अन्य, 2017 (1) टीएसी 259 (एससी) और मायन बनाम मुस्तफा और अन्य, 2022 एसीजे 524** में भी, शीर्ष अदालत ने माना है कि श्रमिक प्रतिकर अधिनियम की धारा 30 के अंतर्गत, उच्च न्यायालय तथ्यों के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकता है जब तक कि वे विकृत साबित न हो जाएं और न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कि इसमें विधिक प्रश्न शामिल न हो। **सलीम बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2022 एसीजे 526** का निर्णय भी इस न्यायालय को विद्वान आयुक्त के तर्कसंगत निर्णय में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं देगा।

11. उपरोक्त के दृष्टिगत, ये दोनों अपील विफल होती हैं और खारिज की जाती हैं।

12. सावधि जमा में रखी गई राशि दावेदारों को तुरंत वितरित की जाए।

(2023) 2 ILRA 228

अपील न्यायिक क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 19.01.20231

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 1111 /2019

साथ

एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 2886 /2011

प्रीतम सिंह

...प्रतिवादी/अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती उर्मीला देवी एवं अन्य

...उत्तरदाता

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राम सिंह

अधिवक्ता उत्तरदाता: दीपाली श्रीवास्तव सिन्हा, श्री अमित कुमार सिन्हा, श्री सिद्धार्थ जायसवाल, श्री विद्याकांत शुक्ल

ए. सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 168-क्षतिपूर्ति - मृतक की आय का निर्धारण-मृतक लगभग 25 वर्ष का था और उनकी चाय की दुकान थी - उनकी आय के दस्तावेजी रिकॉर्ड की उम्मीद नहीं की जा सकती - 40 वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति के लिए, नियम 220-ए (3) भविष्य की संभावनाओं के लिए उनकी आय में 50% जोड़ने का प्रावधान करता है - न्यायाधिकरण ने विचार किया उसकी आय रु. 4500 प्रति माह लेकिन भविष्य में आय की हानि की अनुमति नहीं दी गई है - मृतक के चार आश्रित बचे थे - कुल शतिपीर्ति रु 11,22,000/- और ब्याज दर 7% प्रति वर्ष होगी। (पैरा 1 से 36)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

(ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

अनुवादित

1. श्रीमती दुलारा एवं अन्य बनाम यू.पी.एस.आर.टी.सी थ्रू रेग। एमजीआर. और अन्य.. एफ.ए.एफ.ओ. क्रमांक 2887/2011
2. ओआईसी लिमिटेड बनाम श्रीमती शशि देवी एवं अन्य (2015) एससीसी ऑनलाइन ऑल 8594
3. सरला वर्मा (श्रीमती) बनाम डीटीसी एवं अन्य (2009) 6 एससीसी 121
4. एनआईसी बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) 16 एससीसी 680
5. न्यू इंडिया अस्र कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 822
6. सुशील कुमार एवं अन्य बनाम मैसर्स संपर्क लॉजिस्टिक प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (2017) 35 एलसीडी 1311
7. मैग्मा जनरल इंस. कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम @चुहरू राम और अन्य (2018) 18 एससीसी 130

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, जे. द्वारा प्रदत्त)

1. यह निर्णय, एफएएफओ संख्या-1111/2019 और एफएएफओ संख्या-2886/2011 का निस्तारण करेगा।

2. दोनों अपीलें एक ही दुर्घटना से संबंधित हैं और मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-14, इलाहाबाद द्वारा पारित एक ही आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय दिनांक 24.02.2011 से उत्पन्न होती हैं, जो एमएसीपी संख्या-657/2008 में पारित किया गया था। तदनुसार, दोनों अपीलों का निस्तारण इस सामान्य निर्णय द्वारा किया जा रहा है।

3. एफएएफओ संख्या-1111/2019 को अग्रणी वाद और तथ्यों के रूप में माना जाएगा। शुरुआत में यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि अग्रणी अपील, उस मालिक द्वारा की गई है जिस पर आक्षेपित पुरस्कार को संतुष्ट करने का दायित्व डाला गया है। अपील, मालिक को दोषमुक्त करने और बीमा कंपनी पर देयता को स्थानांतरित करने हेतु है। संबद्ध अपील, यानी एफएएफओ संख्या-2886/2011 को दावेदारों द्वारा दिए गए मुआवजे को बढ़ाने की मांग करते हुए योजित किया गया है।

4. अपीलकर्ता-मालिक की ओर से श्री राम सिंह, प्रतिवादी संख्या 4, बीमा कंपनी की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ जायसवाल और दावेदार-उत्तरदाताओं के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अमित कुमार सिन्हा को सुना।

5. इसके बाद, अपीलकर्ता-मालिक को 'मालिक', बीमा कंपनी को 'बीमाकर्ता', और दावेदार-उत्तरदाता को 'दावेदार' कहा जाएगा।

6. संबद्ध अपील में, अपील के समर्थन में दावेदारों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अमित कुमार सिन्हा, बीमाकर्ताओं की ओर से श्री सिद्धार्थ जायसवाल और मालिक के विद्वान अधिवक्ता श्री राम सिंह को सुना गया है।

7. अपील के तथ्य ये हैं कि: 22 अगस्त, 2008 को दोपहर 1.30 बजे, एक व्यक्ति राम चंद्र उर्फ बाबू लाल यादव, जो 25 वर्ष का था, होंडा मोटरसाइकिल नं. UP70AL/4090 चला रहा था, जिस पर राजेश यादव पीछे बैठा था। दोनों इलाहाबाद-लखनऊ हाईवे पर मंसूराबाद से लाल गोपाल गंज जा रहे थे। जैसे ही दोनों खूदा बख्श का पुरा (श्रृंगवेरपुर) पहुंचे, हाईवे के लखनऊ छोर से रोडवेज बस आई। यह ठेके का वाहन था, जिसका पंजीकरण सं.-यूपी53टी/7042 था। इसे

अनुवादित

तेजी और लापरवाही से चलाया जा रहा था। बस ने मोटरसाइकिल को टक्कर मार दी, जिससे सवार और पीछे बैठा व्यक्ति घायल हो गए। दोनों घायलों को स्वरूप रानी नेहरू, अस्पताल, इलाहाबाद ले जाया गया, जहां उन्हें आवश्यक चिकित्सा के लिए भर्ती कराया गया। राम चंद्र ने दम तोड़ दिया, जबकि पीछे बैठे राजेश यादव की हालत गंभीर थी, जिसका दाहिना पैर फ्रैक्चर हो गया था और उसके सिर पर गंभीर चोटें आई थीं। इस घटना के बारे में, मृतक राम चंद्र के पिता ने पीएस-नवाबगंज, इलाहाबाद के पास एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की, जो अपराध संख्या-28/2008 के रूप में धारा 279, 337, 338, 304 ए आईपीसी के तहत दर्ज की गई थी। निधन के समय मृतक की उम्र करीब 25 साल थी और उसने मिठाई और चाय बेचने की दुकान खोली थी। यह दावेदारों का मामला है कि मृतक अपने परिश्रम से प्रति माह लगभग 7,000/- रुपये कमा लेता था। दावेदारों में मृतक की विधवा, पिता, माता और मरणोपरांत पैदा हुआ एक बच्चा शामिल है। दावेदारों ने मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 166 के तहत अधिकरण में याचिका दायर की, जिसमें ब्याज के साथ 10 लाख रुपये की राशि का मुआवजा मांगा गया।

8. दावा याचिका के विपक्षी संख्या-1, वाहन मालिक, जो यहां अपीलकर्ता है, ने एक लिखित कथन दायर किया और याचिका में लगाए गए आरोपों से इनकार किया। अतिरिक्त दलील में यह कहा गया है कि उल्लंघनकर्ता वाहन का बीमा, बीमा कंपनी के साथ कवर नोट संख्या 343637 के तहत किया गया था, जो वैध था और 23.7.2008 से 22.7.2009 तक प्रभावी था। ऐसा कोई भी दावा जो मालिक के विरुद्ध तय हो सकता है, उल्लंघनकर्ता वाहन का मालिक होने के कारण, उसकी ज़िम्मेदारी संबंधित बीमाकर्ताओं की होने का दावा किया गया है। यह कथन किया गया कि दुर्घटना की तिथि एवं समय पर, वाहन मो. सलीम पुत्र श्री साबिर अली द्वारा चलाया जा रहा था, जिसके पास वाहन चलाने के लिए वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। चालक के पास जो लाइसेंस है, उसका नं. एम08621/एलकेडब्ल्यू/2005 है जो 10-9-1979 को जारी किया गया था। यह दिनांक 11-06-2007 से 10-6-2010 तक वैध था। उल्लंघनकर्ता वाहन से संबंधित फिटनेस प्रमाण पत्र 3-8-2008 से 2-8-2009 तक वैध था। दुर्घटना की तिथि एवं समय पर, उल्लंघनकर्ता वाहन का रूट परमिट, पंजीकरण प्रमाण पत्र सभी वैध थे, इसके अलावा सभी आवश्यक करों का भुगतान किया गया था। इसके बाद मालिक की ओर से यह दलील दी गई है कि उल्लंघनकर्ता वाहन ने दुर्घटना नहीं की और न ही उसके चालक ने कथित दुर्घटना में कोई लापरवाही की। किसी को कोई चोट नहीं आई और न ही चोट लगने के कारण मौत हुई। दावेदारों को तोड़-मरोड़ कर पेश किए गए तथ्यों पर दावा याचिका दायर करने और सही तथ्यों को दबाने के लिए दोषी ठहराया गया, जिससे याचिका खारिज होने योग्य हो गई। उल्लंघनकर्ता वाहन को बीमा पॉलिसी के नियमों और शर्तों के अनुसार संचालित किया जा रहा था, और इस घटना में, यदि न्यायालय की राय यह रहती है कि दावेदार मुआवजा प्राप्त करने के हकदार हैं, तो उसका बोझ बीमाकर्ताओं पर रहेगा।

9. बीमाकर्ताओं की ओर से एक अलग लिखित कथन दायर किया गया था, जिन्होंने भी आम तौर पर दावा याचिका में आरोपों से इनकार किया था। लिखित कथन में यह कहा गया कि मृतक

अपनी लापरवाही के कारण दुर्घटना की तिथि एवं समय पर अपने दुर्भाग्य को प्रपट हुआ। बस चालक की कोई लापरवाही नहीं थी। बीमाकर्ताओं का यह भी कथन है कि कथित दुर्घटना की तिथि एवं समय पर मृतक को घातक चोटों का कोई सबूत नहीं था। यह भी कहा गया है कि दावेदारों ने मृतक की उम्र, पेशा और आय को सिद्ध करने के लिए कोई दस्तावेजी साक्ष्य पेश नहीं किए हैं। मृतक एक बेरोजगार युवक था, जिसकी अपनी कोई आय नहीं थी। दावेदारों ने याचिका दायर करने से पहले और दुर्घटना के बाद, बीमाकर्ताओं से मुआवजे की मांग कभी नहीं की। यदि मांग उठाई गई होती, तो बीमाकर्ता दुर्घटना के तुरंत बाद तथ्यों की जांच करवाते और कानून के अनुसार आगे बढ़ते। यह भी बीमाकर्ताओं का मामला है कि दुर्घटना में उल्लंघनकर्ता वाहन शामिल नहीं था, लेकिन कोई अन्य मोटर वाहन शामिल था।

10. पक्षकारों की दलीलों पर, अधिकरण ने निम्नलिखित वाद बिन्दु निर्मित किए: -

1. क्या दिनांक 22.8.2008 को दोपहर लगभग 1.30 बजे, थाना-नवाबगंज के अंतर्गत आने वाले गांव-खुदाबख्श का पुरा (श्रृंगवेरपुर) की सीमा के भीतर इलाहाबाद-लखनऊ राजमार्ग पर बस संख्या-53टी/7042 के चालक ने लापरवाही से और तेज गति से गाड़ी चलाते हुए, अपनी तरफ से धीमी गति से जा रही मोटरसाइकिल संख्या-यूपी70ए.एल./4090 को टक्कर मार दी, जिसके परिणामस्वरूप मोटरसाइकिल सवार रामचंद्र यादव @ गुड्डू पुत्र श्री बाबू लाल यादव की मृत्यु हो गई?

2. क्या दुर्घटना की तिथि एवं समय पर, उपरोक्त बस संख्या यूपी -53 टी / 7042 के चालक के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था?

3. क्या दुर्घटना की तिथि एवं समय पर, बस संख्या यूपी-53टी/7042 ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी के साथ बीमित थी?

4. क्या मोटरसाइकिल संख्या यूपी-70ए.एल./4090 के सवार ने भी दुर्घटना में अंशदायी लापरवाही बरती थी? यदि हां, तो इसका प्रभाव?

5. क्या दावेदार, जो मृतक के आश्रित हैं, मुआवजे के हकदार हैं? यदि हां, तो कितना और किस विपक्षी से?

11. दावेदारों की ओर से मृतक की पत्नी श्रीमती सरिता यादव का पीडब्लू-1, मुन्नू लाल यादव का पीडब्लू-2 और राजेश कुमार यादव का पीडब्लू-3 के रूप में परीक्षण किया गया। दावेदारों ने दस्तावेजी साक्ष्य भी पेश किए, जिसमें प्रथम सूचना रिपोर्ट की एक फोटोकॉपी और दस्तावेजों की एक सूची, पेपर संख्या 18-सी, चालक के ड्राइविंग लाइसेंस, फिटनेस प्रमाण पत्र और पंजीकरण प्रमाण पत्र सहित उल्लंघनकर्ता वाहन से संबंधित दस्तावेजों की फोटोस्टेट प्रतियां शामिल हैं। एक अन्य सूची के माध्यम से, पेपर संख्या 23-जीए, एफआईआर की एक प्रति, उल्लंघनकर्ता वाहन के चालक के खिलाफ दायर चार्जशीट की एक प्रति, उल्लंघनकर्ता वाहन से संबंधित तकनीकी निरीक्षण रिपोर्ट, साइट प्लान और मृतक की शव परीक्षण रिपोर्ट की प्रमाणित प्रति दायर की गई है।

12. मालिक और बीमाकर्ताओं की ओर से, किसी भी गवाह का परीक्षण नहीं किया गया और न ही कोई दस्तावेज पेश किया गया।

अनुवादित

13. वाद बिन्दु संख्या-1 को अधिकरण ने दावेदारों के पक्ष में निर्णीत करते हुए कहा कि दुर्घटना उल्लंघनकर्ता वाहन के चालक द्वारा लापरवाह ड्राइविंग के कारण हुई। वाद बिन्दु संख्या- 4 पर, निष्कर्ष यह था कि दुर्घटना पूरी तरह से उल्लंघनकर्ता वाहन के चालक की लापरवाही के कारण हुई थी और मृतक द्वारा कोई अंशदायी लापरवाही नहीं थी। वाद बिन्दु संख्या- 2 और 3 पर, निष्कर्ष हैं कि उल्लंघनकर्ता वाहन के चालक के पास दुर्घटना की तिथि एवं समय पर एक वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था, और इसी तरह, उल्लंघनकर्ता वाहन को दुर्भाग्यपूर्ण दिन और समय पर एक वैध बीमा पॉलिसी द्वारा बीमित किया गया था। अधिकरण ने वाद बिन्दु संख्या-5 पर निर्णय लेते समय शब्दों के बीच कहीं एक बहुत ही संक्षिप्त निष्कर्ष दर्ज किया है, जिसमें उल्लंघनकर्ता वाहन के लिए अन्य सभी दस्तावेजों को मान्य किया गया है सिवाय फिटनेस प्रमाण पत्र के जो 3.8.2005 से 2.8.2007 तक वैध था। चूंकि दुर्घटना 22-8-2008 को हुई थी, इसलिए यह माना गया कि दुर्घटना की तिथि को कोई वैध फिटनेस प्रमाणपत्र नहीं था। अधिकरण ने माना कि बीमा पॉलिसी का उल्लंघन हुआ था और मालिक को मुआवजे की भरपाई करने के लिए उत्तरदायी ठहराया। वाद बिन्दु संख्या-5 पर चर्चा के दौरान एक टिप्पणी है कि दुर्घटना की तिथि पर, उल्लंघनकर्ता वाहन के चालक के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था और इसलिए, मालिक उत्तरदायी है। उक्त टिप्पणी एक स्पष्ट गलती का परिणाम प्रतीत होती है क्योंकि वाद बिन्दु संख्या-2 पर दिया गया निष्कर्ष स्पष्ट और साफ है कि दुर्घटना की तिथि एवं समय पर उल्लंघनकर्ता वाहन के चालक के पास एक वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था। वाद बिन्दु संख्या-5 पर दिये गए निष्कर्ष को इसके साथ पढ़ने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि भ्रमवश, अधिकरण ने अमान्य फिटनेस प्रमाण पत्र को ड्राइविंग लाइसेंस समझा है।

14. यह न्यायालय, इसलिए, इस आधार पर आगे बढ़ता है कि अधिकरण ने फिटनेस प्रमाण पत्र की कमी के लिए बीमाकर्ताओं को बरी कर दिया है। इस न्यायालय के समक्ष मालिक ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI नियम 27 के तहत या उस प्रावधान के अनुरूप सिद्धांतों पर एक आवेदन दायर किया, जिसमें अतिरिक्त साक्ष्य रिकॉर्ड पर लाने की मांग की गई। इसमें मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-13, इलाहाबाद द्वारा एमएसीपी संख्या 415/2011 में पारित निर्णय और अधिनिर्णय दिनांक 27.8.2015 की प्रमाणित प्रति शामिल है, जिसमें बीमाकर्ताओं को उत्तरदायी ठहराया गया है। यह अधिनिर्णय रिकॉर्ड पर लाया गया है, क्योंकि यह उसी दुर्घटना से संबंधित है जो यहां शामिल है और दुर्घटना के घायल-पीड़ित राजेश कुमार यादव द्वारा योजित दावे से उत्पन्न होता है। उस मामले में, फिटनेस प्रमाण पत्र सहित उल्लंघनकर्ता वाहन से संबंधित सभी दस्तावेज थे और बीमाकर्ताओं द्वारा पॉलिसी का कोई उल्लंघन नहीं पाया गया था। इसके अलावा, उल्लंघनकर्ता वाहन से संबंधित फिटनेस प्रमाण पत्र की एक फोटोकॉपी भी रिकॉर्ड पर लाई गई है। अधिनिर्णय की प्रमाणित प्रति और उल्लंघनकर्ता वाहन से संबंधित फिटनेस प्रमाण पत्र की एक फोटो प्रति, जिसमें यह दिखाया गया है कि यह 3-8-2008 से 2-8-2009 तक प्रमाणित फिटनेस पर है, क्षेत्रीय निरीक्षक (तकनीकी) द्वारा जारी किया

अनुवादित

गया है, और यह सब अतिरिक्त साक्ष्य के लिए आवेदन के साथ संलग्न किया गया है। दिनांक 11.7.2022 के आदेश के द्वारा आवेदन की अनुमति दी गई और दो दस्तावेजों को बिना आपत्ति के स्वीकार कर लिया गया। उन दस्तावेजों को क्रमशः प्रदर्श-1 और प्रदर्श-2 के रूप में चिह्नित किया गया है, और रिकॉर्ड का हिस्सा बनाया गया है।

15. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रदर्श-2 से पता चलता है कि उल्लंघनकर्ता वाहन के पास 03.08.2008 से 02.08.2009 की अवधि के लिए वैध फिटनेस प्रमाण पत्र था, बीमाकर्ताओं को बीमा पॉलिसी की शर्तों के उल्लंघन के लिए उनकी देयता से मुक्त करने का कोई आधार नहीं है।

16. यह न्यायालय, तदनुसार, पाता है कि मालिक द्वारा अपील स्वीकृत होनी चाहिए और बीमाकर्ताओं को अधिनिर्णय को संतुष्ट करने के लिए उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए।

17. अब, यह न्यायालय दावेदारों की ओर से योजित एफएएफओ संख्या-2886/2011 को ले सकता है।

18. इस अपील में, राशि को छोड़कर कोई अन्य मुद्दा शामिल नहीं है।

19. दावेदार मृतक राम चंद्र उर्फ गुड्डू की विधवा, पिता और माता हैं। निर्धारित किया जाने वाला पहला प्रासंगिक तथ्य मृतक की मासिक आय है। मृतक की आय के बारे में उसकी विधवा पी.डब्ल्यू.1, श्रीमती सरिता यादव की गवाही रिकॉर्ड में है। पीडब्लू 1 ने अपनी परीक्षा में कहा है कि निधन के समय, उनके पति की आयु 25 वर्ष थी। उनकी चाय, पान और मिठाइयां बेचने की दुकान थी। दुकान मंसूराबाद बाजार में स्थित थी। दुकान किराए के परिसर में स्थित थी। दुर्घटना के 4-5 साल पहले से दुकान चल रही थी। गवाह के अनुसार, मृतक प्रति माह लगभग 5,000/- रुपये से 6,000/- रुपये कमाता था।

20. गवाह के पति के असामयिक निधन ने विधवा को वित्तीय सहायता के बिना छोड़ दिया है। उसके साक्ष्य से यह पता चलता कि मृतक के पिता और मां भी उसकी आय पर निर्भर थे। मरणोपरांत पक्षों के एक बच्चे के पैदा होने का भी उल्लेख है, लेकिन उसकी ओर से कोई दावा नहीं है, चाहे जो भी कारण हो। बीमाकर्ताओं ने इस गवाह से जिरह की, जिसे मृतक की आय के बारे में जानकारी थी और उसने जिरह में कहा कि वह 6,000 रुपये से 7,000 रुपये प्रति माह की बचत करेगा। इस साक्षी ने यह भी कहा है कि कोई लेखा नहीं रखा गया था और वह जो कह रही थी, वह अनुमान के आधार पर था। अधिकरण ने मृतक की आय के बारे में दावेदारों के मामले पर अविश्वास किया है, जो 5,000/- रुपये - 6,000/- रुपये या 7,000/- रुपये है। विधवा की गवाही के बावजूद, अधिकरण ने कहा है कि मृतक की पूरी परिस्थितियों को देखते हुए, मृतक की मासिक आय को 2,000 रुपये माना जा सकता है।

21. इस न्यायालय को यह टिप्पणी करनी है कि मृतक की आय को मात्र 2,000/- रुपये मानने में, अधिकरण ने ठीक नहीं किया है। यह दुर्घटना के समय में मृतक की आय का कोई उचित अनुमान नहीं है। मृतक की आय के बारे में अधिकरण का आकलन, समाज में लंबे समय से चली आ रही धारणा पर आधारित है कि केवल सरकारी कर्मचारियों द्वारा अर्जित राज्य द्वारा वहन किया जाने वाला वेतन ही है, जो आय का एक भरोसेमंद स्रोत प्रदान कर सकता है।

अनुवादित

22. ये राय आम तौर पर इस लिए बनाई जात है क्योंकि असंगठित क्षेत्र से होने वाली अधिकांश आय, सरकारी सेवाओं या अधिक संगठित रोजगारों की तरह दर्ज नहीं होती है, लेकिन, इसका मतलब यह नहीं है कि असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले स्व-नियोजित व्यक्तियों के लिए, न्यायालय को राष्ट्र के सकल घरेलू उत्पाद में उनके योगदान के बारे में निराशावादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। मृतक मंसूराबाद बाजार में चाय, पान और मिठाई बेचने की दुकान चला रहा था। रिकॉर्ड पर स्पष्ट सबूत हैं कि दुकान 4-5 साल से वहां चल रही थी, जो दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना में उनकी मृत्यु से पहले थी। मृतक अपने अलावा तीन लोगों के परिवार का भरण-पोषण कर रहा था। उस समय प्रचलित समकालीन मूल्य सूचकांक के अनुसार, अधिकरण द्वारा मृतक के लिए पाई गई आय की गणना नहीं की जा सकती है।

23. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि मृतक जैसे स्व-नियोजित व्यक्ति के लिए, जिस पैमाने पर वह काम कर रहा था, उसकी आय के बारे में प्रलेखित रिकॉर्ड की उम्मीद करना मुश्किल है। मुझे **श्रीमती दुलारा एवं अन्य बनाम यू.पी.एस.आर.टी.सी. जरिये क्षेत्रीय प्रबंधक और अन्य, एफएएफओ संख्या 2887/2011, निर्णीत 17.11.2022** में इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर मिला, जहां मैंने निर्धारित किया:

> *"17. किसी व्यक्ति की आय का आकलन करने के लिए एक सुरक्षित बेंचमार्क, जहां आंकड़े के बारे में कोई सबूत या पुष्टिकारक नहीं है, घटना के समकालीन समय में प्राप्त एक अकुशल आकस्मिक मजदूर की आय के संदर्भ में है। 16 मई, 2009 को हुई एक दुर्घटना में इस न्यायालय की खण्डपीठ ने* ***ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती शशि देवी और अन्य, 2015 एससीसी ऑनलाइन सभी 8594*** *में ट्रिबुनल के उस दृष्टिकोण को सहमति दी, जिसने एक साधारण मजदूर के लिए आकलन करते हुए, 150 रुपये प्रतिदिन की आय का अनुमान लगाया और भविष्य की संभावना के लिए 30% उसमे जोड़ते हुए, उसे 240 रुपये प्रति दिन निर्धारित किया।* ***शशि देवी*** *(उपरोक्त), मे खंडपीठ के न्यायमूर्तिगण द्वारा यह निर्धारित किया गया:*
>
> > *"9. जहां तक अधिकरण द्वारा दिए गए मुआवजे का सवाल है, अधिकरण ने मृतक की उम्र 44 वर्ष के रूप में नोट की है और पोस्टमार्टम रिपोर्ट में उल्लिखित मृतक की उम्र और रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों को ध्यान में रखते हुए, अधिकरण ने मृतक की आय को 4500 रुपये प्रति माह (150 रुपये प्रति दिन) के रूप में लेते हुए 14 का गुणक लागू किया। यहां तक कि एक साधारण मजदूर/कुली के व्यक्ति के लिए भी आय 240/- रुपये प्रति दिन से अधिक होगी। उस दर पर, वार्षिक आय 86,400/- रुपये होगी। वर्तमान मामले में, मृतक की मृत्यु के समय (अर्थात वर्ष 2009 में) उसकी आयु 44-45 वर्ष थी, और*

अनुवादित

अधिकरण ने उसकी आय 150 रुपये प्रति दिन के रूप में आंकी है और उस दर पर उसकी वार्षिक आय 54,000/- आंकी गई थी और मृतक की भविष्य की संभावनाओं को देखते हुए अधिकरण ने संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2012 एसीजे 1428: ((2012) 6 एससीसी 421: एआईआर 2012 एससी 2185) के मामले के सिद्धान्त को लागू करते हुए, कुल आय में 30% की वृद्धि की है। भविष्य की संभावनाओं की गणना के उद्देश्य के लिए यह आवश्यक नहीं है कि निश्चित आय होनी चाहिए या मृतक स्व-नियोजित हो। अधिकरण ने गुणक को सही तरीके से लागू किया है और मुआवजा दिया है और इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।"

24. **श्रीमती दुलारा व अन्य** (उपरोक्त) में इंगित कारणों से और प्रासंगिक समय पर एक अकुशल दैनिक मजदूर की दैनिक आय को देखते हुए, मृतक की आय को 150/- रुपये प्रति दिन निर्धारित करना सही रहेगा। लेकिन **दुलारा देवी** के विपरीत, यहां मृतक एक दिहाड़ी मजदूर नहीं था और स्वरोजगार में था, जहां उसकी एक दुकान थी। यदि कोई कटौती होगी, जो अक्सर दिहाड़ी मजदूरों के मामलों में की जाती है, तो मृतक के मामले में ऐसा करने का कोई कारण नहीं है। इसलिए, उसकी आय पूरे महीने के लिए 150/- रुपये की दर से तय की जानी है। इससे मृतक को 4500 रुपये की मासिक आय होगी।

25. अतः मृतक की वार्षिक आय रु. 54,000/- होगी। मृतक अपने पीछे तीन वारिस छोड़ गया जैसा कि दावा याचिका इंगित करती है। वे श्रीमती सरिता देवी (विधवा), श्रीमती उर्मिला देवी (मां) और बाबू लाल यादव (पिता) हैं। **सरला वर्मा (श्रीमती) बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य, (2009) 6 एससीसी 121** में दिए गए निर्णय के पैरा संख्या 30 के अनुसार, जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 2-3 है, मृतक के व्यक्तिगत और रहने के खर्च के लिए कटौती एक तिहाई है। अधिकरण ने भी ऐसा ही निर्देश दिया है। फिर, जहां तक गुणक का प्रश्न है, **सरला वर्मा** (उपरोक्त) में निर्धारित अनुसूची के पैराग्राफ संख्या 40 के अनुसार, 18 उपयुक्त गुणक होगा, जब मृतक 21-25 वर्ष की आयु वर्ग में है।

26.अगला प्रश्न जो हमारे विचार के लिए आता है, वह भविष्य की संभावनाओं के बारे में है, यदि कोई हो, जिसके दावेदार हकदार हो सकते हैं। भविष्य की संभावनाओं के मुद्दे को उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ के **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) 16 एससीसी 680** में निर्णय द्वारा निर्धारित किया गया है। **प्रणय सेठी** (उपरोक्त) ने स्व-नियोजित या निश्चित वेतन पर नियोजित व्यक्तियों को भविष्य की संभावनाओं का लाभ दिया है। **प्रणय सेठी** में यह निर्धारित किया गया है:

"56. मौलिक मुद्दा मृतक के मामलों में भविष्य की संभावनाओं का निर्धारण है जो स्व-नियोजित हैं या एक निश्चित वेतन पर हैं। सरला वर्मा [सरला वर्मा बनाम डीटीसी, (2009) 6 एससीसी

121: (2009) 2 एससीसी (सीआईवी) 770: (2009) 2 एससीसी (सीआरआई) 1002] ने भविष्य की संभावनाओं को जोड़ने का लाभ प्राप्त करने के लिए दावेदारों को रिकॉर्ड पर सामग्री लाने की अनुमति देते हुए एक अपवाद बनाया है। इसने स्वत उक्त श्रेणी के संबंध में किसी भावी संभावना की अनुमति नहीं दी है।

57. उत्सुकतापूर्वक विचार करने के बाद, हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि जब हम मानकीकरण के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, तो वास्तव में स्व-नियोजित या एक निश्चित वेतन पर रहने वाले व्यक्ति पर उक्त सिद्धांत को लागू नहीं करने का कोई औचित्य नहीं है। मृत्यु के समय वास्तविक आय के सिद्धांत का पालन करना और गुणक के निर्धारण के उद्देश्य से आय में भविष्य की संभावनाओं के संबंध में कोई राशि नहीं जोड़ना अन्यायपूर्ण होगा। मुआवजे की गणना करते समय आय के निर्धारण में भविष्य की संभावनाओं को शामिल करना होगा ताकि अधिनियम की धारा 168 के तहत निर्धारित मुआवजे के दायरे में आ जाए। ऐसे मृतक के मामले में, जिसने स्थायी नौकरी की थी और इनबिल्ट वार्षिक वेतनवृद्धि दी गई थी, वहाँ सुनिश्चित स्वीकार्यता है। लेकिन यह कहना कि मृतक के कानूनी प्रतिनिधि जो एक निश्चित वेतन पर थे, मुआवजे की गणना के उद्देश्य से भविष्य की संभावनाओं के लाभ के हकदार नहीं होंगे, अनुचित होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि उस घटना में दोनों के बीच अंतर की कसौटी एक तरफ निश्चितता और दूसरी तरफ स्थिरता होगी। कोई यह समझ सकता है कि तुलनात्मक माप एक ओर निश्चितता है और दूसरी ओर अनिश्चितता है, लेकिन ऐसी धारणा भ्रामक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मूल्य वृद्धि एक स्व-नियोजित व्यक्ति को प्रभावित करती है; और इसके अलावा, जीविका के लिए किसी की आय बढ़ाने के लिए हमेशा एक निरंतर प्रयास होता है। स्थायी नौकरी पर एक वेतनभोगी व्यक्ति की क्रय क्षमता जब वेतन वृद्धि और वेतन संशोधन के अनुदान या सेवा शर्तों में कुछ अन्य परिवर्तन के कारण बढ़ती है, तो निजी क्षेत्र में कर्मचारियों से बेहतर दक्षता प्राप्त करने के लिए वेतन बढ़ाने के लिए हमेशा एक प्रतिस्पर्धी रवैया होता है। इसी तरह, एक व्यक्ति जो स्व-नियोजित है, वह अपने संसाधनों को जुटाने और अपने शुल्क/शुल्क बढ़ाने के लिए बाध्य है ताकि वह समान सुविधाओं के साथ रह सके। यह धारणा रखना कि उसके स्थिर रहने की संभावना है और उसकी आय स्थिर रहने की संभावना है, मानव दृष्टिकोण की मूल अवधारणा के विपरीत है, जो हमेशा गतिशीलता के साथ जीने और समय के साथ आगे बढ़ने और बदलने का इरादा रखता है। हालांकि यह उचित लग सकता है कि स्थायी नौकरी रखने वाले व्यक्ति के मामले के विपरीत मौजूदा आय के लिए भविष्य की संभावनाओं के अलावा निश्चितता नहीं

अनुवादित

हो सकती है, फिर भी उक्त धारणा वास्तव में स्वीकृति के योग्य नहीं है। हम यह सोचने के इच्छुक हैं कि स्व-नियोजित या निश्चित वेतन पर रहने वाले व्यक्ति की तुलना में मृतक की ओर से दावा करने वाले कानूनी प्रतिनिधियों के संबंध में प्रतिशत के संबंध में कुछ हद तक अंतर हो सकता है, जिनके पास स्थायी नौकरी थी। लेकिन निश्चितता की कथित कमी की नींव पर मानकीकरण के सिद्धांत को लागू नहीं करना जमीनी हकीकत से बेखबर रहने के समान होगा। और इसलिए डिग्री-परीक्षण अनिवार्य है। जब तक डिग्री-परीक्षण लागू नहीं किया जाता है और पार्टियों को सिद्ध करने के लिए सबूत पेश करने के लिए छोड़ दिया जाता है, यह अनुचित और असमान होगा। डिग्री-परीक्षण में प्रतिशत की अंतनहित अवधारणा होनी चाहिए। संचयी कारकों, अर्थात् समय बीतने, बदलते समाज, मूल्य में वृद्धि, मूल्य सूचकांक में परिवर्तन, जीवन के एक विशेष पैटर्न का पालन करने के लिए मानवीय दृष्टिकोण आदि को ध्यान में रखते हुए, भविष्य की संभावनाओं के लिए मृतक की स्थापित आय का 40% जोड़ना और जहां मृतक की आयु 40 वर्ष से कम थी, जहां मृतक की आयु 40 से 50 वर्ष के बीच थी, वहां 25% की वृद्धि उचित होगी।

27. एक और मुद्दा जो विचार के लिए उठता है वह यह है कि क्या भविष्य की संभावनाओं के लिए **प्रणय सेठी** (उपरोक्त) या यूपी मोटर वाहन नियम, 1998 का नियम 220-ए (3) (संक्षेप में "1998 के नियम') का पालन करना है। **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822**, में यह निर्धारित किया गया था:

"9. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि नियमों की वैधता पर किसी भी तरह से वर्तमान मामले में सवाल नहीं उठाया गया था और इस प्रकार एकमात्र प्रश्न जिस पर हमें विचार करना है, वह यह है कि क्या नियम 220ए के उप-नियम 3 (iii) को सीमित गुंजाइश दी जानी चाहिए या इसे पूरी तरह से संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. प्रणय सेठी में इस मुद्दे पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि एक संकेतक, वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध हो, जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी के निर्णय को ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने के लिए नहीं किया जा सकता है, विशेष रूप से जब नियमों की वैधता को कोई चुनौती नहीं दी गई हो। ऐसे मामलों में 15% का प्रावधान, जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी में कहा गया है, अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी भी शासी सिद्धांत की अनुपस्थिति में, यह केवल एक संकेत के रूप में था। यदि एक वैधानिक उपचार ने एक ऐसा फार्मूला

अनुवादित

तैयार किया है, जो बेहतर या अधिक लाभ प्रदान करता है, तो ऐसे वैधानिक उपचार को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक उपचार अन्यथा अमान्य न पाया जाए।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत तर्क को अस्वीकार करते हैं और अधिकरण के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं और बिना व्यय के किसी आदेश के, इस अपील को खारिज करते हैं।"

28. अतः, सिद्धांत यह है कि भविष्य की संभावनाओं के लिए 1998 के नियमों का नियम 220-ए (3) लागू होगा न कि **प्रणय सेठ** का निर्णय**,** जहां तक उत्तर प्रदेश राज्य का संबंध है, जहां ये नियम लागू हैं।

29. आगे उत्तर दिया जाने वाला प्रश्न यह है कि क्या 1998 के नियमों के नियम 220-ए (3) जिसे अधिसूचना संख्या 777/XXX-4-2011-4 (3)-2010 दिनांक 26 सितंबर, 2011 द्वारा प्रख्यापित किया गया था, यथा-उत्तर प्रदेश मोटर वाहन (ग्यारहवां संशोधन) नियम, 2011, 1998 वे पूर्ववर्ती प्रभाव से एक ऐसी दुर्घटना पर लागू होंगे, जो नियम 220-ए के प्रख्यापन से पूर्व हुई थी। इस प्रश्न पर इस न्यायालय की एक खण्डपीठ द्वारा **सुशील कुमार एवं अन्य बनाम मैसर्स संपर्क लोजास्टिक प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य, 2017 (35) एलसीडी 1311** में विचार किया गया। **सुशील कुमार** (उपरोक्त) में खंडपीठ के न्यायमूर्तिगण ने निर्धारित किया था:

"31. घायल/मृतक को भविष्य की संभावनाओं के आधार पर लाभ प्रदान करने के लिए विधि न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों के मद्देनजर, उत्तर प्रदेश मोटर यान नियम, 1998 में नियम 220-ए प्रख्यापित किया गया था। इसमें क्षतिपूत के निर्धारण के प्रयोजनार्थ घायल/मृतक की आयु के आधार पर, उसकी वास्तविक आय में घायल/मृतक की आय का कुछ प्रतिशत को जोड़ने का प्रावधान है। उपर्युक्त नियम, दावा याचिका के निर्णय के बाद लेकिन अपील दायर करने से पहले दिनांक 26-09-2011 को प्रभावी हुआ, यद्यपि दुर्घटना उपर्युक्त नियम के लागू होने से काफी पहले 08-05-2010 को हुई थी।

32. उपरोक्त के कारण यह तर्क उठाया जा रहा है कि नियम 220-ए, जो 26.09.2011 को लागू हुआ, 08.05.2010 को हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा।

33. राम सरूप बनाम मुंशी, एआईआर 1963 एससी 553 में यह निर्धारित किया गया था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षकारों के अधिकार शामिल होंगे।

34. ऊपर व्यक्त किए गए दृष्टिकोण का सुप्रीम न्यायालय ने मुला बनाम गोधू एआईआर 1971 एससी 89 में अनुसरण किया।

35. दयावती बनाम इंद्रजीत, एआईआर 1966 एससी 1423 में न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की थी- यदि नया कानून की भाषा ऐसी है, जो स्पष्ट रूप

अनुवादित

से या स्पष्ट इरादे से, लंबित मामलों में भी प्रभावी होता है, तो ट्रायल न्यायालय के साथ-साथ अपील की अदालत को इस तरह व्यक्त किए गए इरादे का संज्ञान लेना चाहिए, और अपीलीय अदालत, प्रथम उपलब्ध के न्यायालय के फैसले के बाद भी, इस तरह के कानून को प्रभावी कर सकती है।

36. अमरजीत कौर बनाम प्रीतम सिंह, एआईआर 1974 एससी 2068 में अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को लागू किया गया था, क्योंकि इस देश के प्रक्रियात्मक कानून के तहत अपील की सुनवाई, उच्चतर न्यायालय द्वारा वाद की पुनर्सुनवाई की प्रकृति में है।

37. उपरोक्त निर्णयों के आलोक में, लक्ष्मी नारायण गुइन व अन्य बनाम निरंजन मोडक, एआईआर 1985 एससी 111 में यह निर्धारित किया गया था कि अपील के लंबित रहने की अवधि में कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षकारों का अधिकार शामिल होगा।

38. उपरोक्त निर्णय का अनुसरण उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती मधु शर्मा और अन्य, 2003 (4) एडब्ल्यूसी 2620 में इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा किया गया था, जो मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों से संबन्धित मामला था और यह पाया गया था कि स्पष्ट रूप से मूल कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए जिससे पक्षकारों के अधिकारों को संरक्षित किया जा सके।

39. उपरोक्त निर्णय के कारण, आईसीआईसीआई लोम्बार्ड (उपरोक्त) में इस अदालत की खंडपीठ द्वारा व्यक्त किया गया विचार अच्छा कानून नहीं है, क्योंकि वह ऊपर संदर्भित निर्णयों को ध्यान में नहीं रखता है और यह निर्धारित करता है चूंकि नियम 220ए 26.09.2011 को लागू हुआ था, इसलिए उक्त तिथि से पूर्व हुई दुर्घटना पर यह लागू नहीं होगा, विशेष रूप से तब जब नियम को पूर्वव्यापी प्रकृति नहीं बनाया गया है।"

30. खण्डपीठ द्वारा **सुशील कुमार** (उपरोक्त) में निर्धारित विधि, बाध्यकारी पूर्व-निर्णय है। भविष्य की संभावनाओं के लिए अधिनिर्णय नियम, 1998 के नियम 220-ए (3) के अनुसार किया जाना आवश्यक है। मृतक की उम्र के व्यक्ति के लिए, जो निश्चित रूप से 40 वर्ष से कम था, नियम 220-ए (3) भविष्य की संभावनाओं के लिए उसकी आय में 50% जोड़ने का प्रावधान करता है।

31. अभी भी एक और बिन्दु है, जिस पर विचार करने की आवश्यकता है और, वह है, पारंपरिक शीर्षों के तहत दावेदारों को देय मुआवजा। इस संबंध में, **प्रणय सेठी** (उपरोक्त) का निर्णय पुनः प्रासंगिक हो जाता है जहां, यह टिप्पणी की गई थी:

"48. इस पहलू को स्पष्ट करने और उचित रूप से कहने की आवश्यकता है। अधिनियम की दूसरी अनुसूची में

अभिमत

पारंपरिक राशि का प्रावधान किया गया है। उक्त अनुसूची को दोषपूर्ण पाया गया है, जैसा कि त्रिलोक चंद्र [यूपीएसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्र, (1996) 4 एससीसी 362] में न्यायालय द्वारा कहा गया है। हाल ही में, पुट्टम्मा बनाम केएल नारायण रेड्डी [पुट्टम्मा वीकेएल नारायण रेड्डी, (2013) 15 एससीसी 45: (2014) 4 एससीसी (सीआईवी) 384: (2014) 3 एससीसी (सीआरआई) 574] में इसे दोहराया गया है:

(एससीसी पी. 80, पैरा 54)

> *"54. ... हमारा मानना है कि 1994 में अधिनियमित दूसरी अनुसूची अब जीवन यापन की वर्तमान लागत और मुद्रास्फीति की वर्तमान दर और जीवन प्रत्याशा में वृद्धि सहित बदले हुए परिदृश्य के कारण निरर्थक, तर्कहीन और असाध्य हो गई है।*

49. जहां तक गुणक या गुण्य का संबंध है, इसे इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा तय कर दिया गया है। दूसरी अनुसूची के पैरा 3 में मृत्यु के मामले में सामान्य क्षतियों का भी प्रावधान है। वह इस प्रकार है:

> "3. सामान्य क्षति (मृत्यु के मामले में):
> ऊपर उल्लिखित मुआवजे के अतिरिक्त निम्नलिखित सामान्य नुकसान देय होंगे:

(i)	अंतिम संस्कार का खर्च	2000 रु
(ii)	कंसोर्टियम का नुकसान, यदि लाभार्थी पति या पत्नी है	5000 रु
(iii)	संपत्ति का नुकसान	2500 रु
(iv)	चिकित्सा व्यय-मृत्यु से पहले किए गए वास्तविक खर्च बिल/वाउचर द्वारा समर्थित लेकिन इससे अधिक नहीं	15,000 रुपये"

50. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अवलोकन पर, यह स्पष्ट होता है कि त्रिलोक चंद्र [यूपीएसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्र, (1996) 4 एससीसी 362] के निर्णय से दूसरी अनुसूची का पालन नहीं किया गया है और इसमें कोई संशोधन नहीं किया गया है। पारंपरिक क्षति राशि को उचित रूप से निर्धारित करने की आवश्यकता है। जैसा कि हमने पाया, अलग-अलग मामलों में अलग-अलग राशियां दी गई हैं। राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सीआईवी) 179: (2013) 3 एससीसी (क्रि) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] में कंसोर्टियम के लिए 1,00,000 रुपये की राशि दी गई थी। कंसोर्टियम के अनुदान का औचित्य, जैसा कि हम राजेश [राजेश बनाम

अनुवादित

राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सीआईवी) 179: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] से पाते हैं, उस टिप्पणी पर आधारित है, जिसे हमने यहां पहले उद्धृत किया है।

51. पूर्वोक्त आधार पर, न्यायालय ने पारंपरिक प्रमुखों के तहत मुआवजा देने की प्रथा पर फिर से विचार किया है।

52. जहां तक पारंपरिक प्रमुखों का संबंध है, हमें राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सीआईवी) 179: (2013) 3 एससीसी (क्रि) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] में व्यक्त दृष्टिकोण से सहमत होना मुश्किल लगता है। इसने अंतिम संस्कार खर्च के लिए 25,000 रुपये, कंसोर्टियम के नुकसान के लिए 1,00,000 रुपये और नाबालिग बच्चों की देखभाल और मार्गदर्शन के नुकसान के लिए 1,00,000 रुपये मंजूर किए हैं। देखभाल और नाबालिग बच्चों के नुकसान से संबंधित शीर्षक मौजूद नहीं है। हालांकि राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सीआईवी) 179: (2013) 3 एससीसी (क्रि) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149], संतोष देवी [संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2012) 6 एससीसी 421: (2012) 3 एससीसी (सीआईवी) 726: (2012) 3 एससीसी (क्रि) 160: (2012) 2 एससीसी (एल एंड एस) 167] को संदर्भित करता है, यह उसका अनुसरण करता प्रतीत नहीं होता है। कहने की जरूरत नहीं है कि परम्परागत और पारंपरिक शीर्षों का निर्धारण प्रतिशत के आधार पर नहीं किया जा सकता क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त शीर्षों की मात्रा निर्धारित की जानी चाहिए। किसी भी परिमाणीकरण में एक उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि कई क्षेत्रों में मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। अदालत इससे बेखबर नहीं रह सकती। इस पहलू में यह स्थापित नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक स्थापित नियम लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता की कमी के कारण अत्यधिक भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरणों और न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों के दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए, हम सोचते हैं कि उचित रकम तय करना सही लगता है। हमें ऐसा लगता है कि पारंपरिक मदों पर उचित आंकड़े, अर्थात् संपत्ति का नुकसान, कंसोर्टियम का नुकसान और अंतिम संस्कार खर्च क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और 15,000 रुपये होना चाहिए। उक्त शीर्षों की पुनवचार करने का सिद्धांत एक स्वीकार्य सिद्धांत है। लेकिन पुनरीक्षण तथ्य-केंद्रित या राशि-केंद्रित नहीं होना चाहिए। हम समझते हैं कि यह सही होगा कि हमने जो राशि निर्धारित की है, उसे प्रत्येक तीन वर्षों में प्रतिशत के आधार पर बढ़ाया जाना चाहिए और तीन वर्षों की अवधि में वृद्धि 10 प्रतिशत की दर से होनी चाहिए। हम ऐसा करने के लिए तैयार

हैं, क्योंकि इससे उन शीर्षों के संबंध में स्थिरता आएगी।(न्यायालय द्वारा बल प्रदत्त)

32. जहां तक कंसोर्टियम के नुकसान के शीर्ष के तहत मुआवजे के अधिनिर्णय का संबंध है, उसी पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहरू राम और अन्य, (2018) 18 एससीसी 130** में विचार किया गया था. **मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**. (उपरोक्त), में यह निर्धारित किया गया है:

> "21. प्रणय सेठी [नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एससीसी 680: (2018) 3 एससीसी (सीआईवी) 248: (2018) 2 एससीसी (क्रि) 205] में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने उन विभिन्न शीर्षों का निपटान किया, जिनके अंतर्गत मृत्यु के मामले में मुआवजा दिया जाना है। इनमें से एक प्रमुख कंसोर्टियम का नुकसान है। कानूनी भाषा में, "कंसोर्टियम" एक व्यापक शब्द है, जिसमें "पति-पत्नी कंसोर्टियम", "पैतृक कंसोर्टियम" और "संतान कंसोर्टियम" शामिल हैं। कंसोर्टियम के अधिकार में मृतक का साथ, देखभाल, सहायता, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए नुकसान है। पति या पत्नी के संबंध में, इसमें मृत पति या पत्नी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे: [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सीआईवी) 179: (2013) 3 एससीसी (क्रि) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149]
>
> 21.1. <u>पति-पत्नी कंसोर्टियम को आम तौर पर पति-पत्नी के रिश्ते से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो जीवित पति या पत्नी को "साथ, समाज, सहयोग, स्नेह और हर वैवाहिक संबंध में दूसरे की सहायता" के नुकसान के लिए मुआवजे की अनुमति देता है। [ब्लैक लॉ डिक्शनरी (5 वां संस्करण, 1979)।</u>
>
> 21.2. माता-पिता की अकाल मृत्यु पर, बच्चे को "माता-पिता की सहायता, संरक्षण, स्नेह, समाज, अनुशासन, मार्गदर्शन और प्रशिक्षण" के नुकसान के लिए पैतृक कंसोर्टियम प्रदान किया जाता है
>
> 21.3. <u>बच्चे की आकस्मिक मृत्यु के मामले में मुआवजे के लिए फिलीअल कंसोर्टियम माता-पिता का अधिकार है। एक बच्चे की मृत्यु के कारण होने वाली दुर्घटना, मृतक के माता-पिता और परिवार को बहुत सदमा और पीड़ा देती है। माता-पिता के लिए सबसे बड़ी पीड़ा अपने जीवनकाल के दौरान अपने बच्चे को खोना है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, साहचर्य और परिवार इकाई में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है</u>.न्यायालय द्वारा बल प्रदत्त)

33. इस न्यायालय ने जो पाया है, उसे देखते हुए, इस अपील में दावेदारों को देय मुआवजे को निम्नलिखित तरीके से संशोधित करना होगा:

(i) मासिक आय (मृतक की) = **4500/-**

(ii) मासिक आय + भविष्य की संभावनाएं (मासिक आय x 50%) = 4500+2250= **6750/-**

अनुवादित

(iii) वार्षिक आय (मृतक की) = 6750x12 = **81,000/-**

(iv) वार्षिक निर्भरता = वार्षिक आय-एक तिहाई कटौती मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए = 81000-27000 = **54,000/-**

(v) कुल निर्भरता = वार्षिक निर्भरता x एप्लाइड गुणक = 54000x18 = **9.72,000/-**

(vi) दावेदारों की पात्रता

पारंपरिक प्रमुख = संपत्ति का नुकसान + अंतिम संस्कार खर्च + आश्रितों का कंसोर्टियम = 15000 + 15000 + 40000 x 3 = **1,50,000/-**

इसलिए कुल मुआवजा होगा,

रु. 9,72,000/- + रु. 1,50,000/- = 11,22,000/-

34. परिणामतः, एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 1111/2019 **सफल** होता है और **स्वीकृत** किया जाता है।

35. यह आदेश दिया जाता है कि इस निर्णय और अधिनिर्णय द्वारा दिया गया मुआवजा बीमाकर्ता द्वारा देय होगा न कि मालिक द्वारा।

36. एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-2886/2011 **सफल** होता है और **स्वीकृत** किया जाता है। अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय **संशोधित** किया जाता है और दिए गए मुआवजे को बढ़ाकर 11,22,000/- रुपये कर दिया गया है। उपर्युक्त धनराशि पर दावा याचिका दायर किए जाने की तिथि से वसूली तक 7% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज देय होगा। आक्षेपित अधिनिर्णय के या इस न्यायालय के अंतरिम आदेशों के अनुपालन में, अधिकरण के पास पहले से जमा की गई राशि अधिनिर्णय से समायोजित किया जाएगा। अधिकरण द्वारा दिए गए अन्य निर्देश बरकरार रहेंगे।

37. दोनों अपीलों में व्यय का कोई आदेश नहीं।

38. स्वामी द्वारा की गई सांविधिक जमा राशि उसे वापस कर दी जाएगी।

39. निचली अदालत के रिकॉर्ड को तुरंत अधिकरण को भेजा जाए।

(2023) 2 ILRA 240

अपील न्यायिक क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 08.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 1843/2002

श्रीमती विद्यावती (मृत) और अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य

...उत्तरदाता

अधिवक्ता अपीलकर्ताओं: श्री ऋषि भूषण जौहरी, श्री अशोक कुमार पांडे

अधिवक्ता उत्तरदाता: श्री अरविन्द कुमार

ए. सिविल कानून-मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 173-दावे को चुनौती-मृतक एक प्राथमिक शिक्षक था, न्यायाधिकरण ने उसकी आय रुपये 58,968/- प्रति वर्ष मानी लेकिन भविष्य में आय की हानि की अनुमति नहीं दी गई है - मृतक के तीन आश्रित बचे थे - कुल क्षतिपूर्ति रु. 5,74,584/- और ब्याज दर दावा याचिका शुरू होने की तारीख से 7% होगी। (पैरा 1 से 27)

अनुवादित

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।
(ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. एनआईसी बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) 16 एससीसी 680

2. सरला वर्मा (श्रीमती) एवं अन्य बनाम डीटीसी एवं अन्य (2009) 6 एससीसी 121
3. न्यू इंडिया अस्र. कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 822
4. सुशील कुमार एवं अन्य बनाम मैसर्स पर्कलोजेस्टिक प्रा. लिमिटेड एवं अन्य (2017) 35 एलसीडी 1311
5. जिउती देवी और अन्य बनाम मनोज (2022) एससीसी ऑनलाइन ऑल 46

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, जे. द्वारा प्रदत्त)

1. यह मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 173 के तहत एक दावेदार की अपील है, जिसमें दुर्घटना न्यायाधिकरण / चतुर्थ अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, शाहजहाँपुर दवारा दिनांक 26.03.2002 को एमएसीपी क्रमांक 38/1999 में के तहत दिए गए मुआवजे को बढ़ाने की मांग की गई है।

2. दावा मृतक की विधवा श्रीमती विद्यावती द्वारा यह कहते हुए दायर की गई है कि दिनांक 31.12.1998 को सायं लगभग 4:30 बजे रामकृष्ण कुशवाहा, कनारी बांके से ग्राम ठिंगरी, थाना अल्हागंज के क्षेत्राधिकार में, जनपद के विद्यालय से पढ़ाकर साइकिल से जा रहे थे। वह ग्राम थिंगरी, तहसील जलालाबाद, जिला शाहजहाँपुर के प्राथमिक विद्यालय में अध्यापक थे। वह सड़क के बायीं ओर आगे बढ़ रहे थे। उस दुर्भाग्यपूर्ण क्षण में, एक डीसीएम ट्रक, जिसका पंजीकरण संख्या डीबीएल-9399, हरे रंग का था,जलालाबाद की ओर से आया। इसे इसके चालक, धैन सिंह (संक्षेप में, 'चालक') दद्वारा तेज़ गति और लापरवाही से चलाया गया था। चालक बिना हॉर्न बजाए आगे बढ़ गया और राम कृष्ण की साइकिल को टक्कर मार दी, जिससे वह पहिए के नीचे कुचल गई राम कृष्ण छिटककर जमीन पर गिर गये और गंभीर रूप से घायल हो गये। उनकी मौके पर ही मृत्यु हो गई।

3. निधन के समय राम कृष्ण सिंह की उम्र 55 वर्ष थी। प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक के रूप में उनके रोजगार से उन्हें रु. 6500/- की मासिक आय होती थी। खेतों में उनके परिश्रम से रुपये 4000/- की अतिरिक्त आय होती थी, जिससे यह राशि 10,500/- प्रति माह हो जाती है। मृतक के आश्रितों में उनकी विधवा विद्यावती, उम्र 52 वर्ष और दो बेटे, हरिपाल, उम्र 29 वर्ष और श्रीपाल, उम्र 27 वर्ष हैं। दुर्घटना करने वाले का पंजीकृत मालिक राज सिंह पुत्र अमर सिंह, निवासी

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

शेरगढ़ी, थाना मेरठ (संक्षेप में, 'मालिक') है। दुर्घटना करने वाले वाहन का बीमा एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, जिला शाहजहाँपुर से किया गया था, जिसे इसके बाद 'बीमाकर्ता' कहा जाएगा।

अनुवादित

दावा याचिका दायर की गई थी, जिसमें कुल मांग 195000/- रुपये के मुआवजे की की गई थी।

4. दावा याचिका में आम तौर पर लिखित बयान दायर किया Translated Version. Not इनकार करते हुए बीमाकर्ताओं की ओर से एक यह तर्क दिया गया कि वर्तमान याचिका दायर करने के लिए दावेदारों के पास कार्रवाई का कोई कारण नहीं है, जो कानून के अनुसार अनुमोदित और सत्यापित नहीं है। बीमाकर्ताओं के अनुसार, बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64 के याचिका वर्जित थी। यह भी दलील दी गई थी कि सभी आवश्यक पक्षों को पक्षकार नहीं बनाया गया है, जो याचिका को आवश्यक पक्षों को नहीं जोड़ने के कारण याचिका को खराब बनाता है। मृतक नौकरी नहीं करता था और उसके पास आय का कोई स्रोत नहीं था। दुर्घटना करने वाले वाहन उस दुर्घटना में शामिल नहीं था, जिससे पीड़ित की मृत्यु हुई और न ही दुर्घटना के कारण उसे कोई चोट आई। मृतक की साइकिल उसकी उतावलेपन और लापरवाही के कारण किसी अज्ञात वाहन से टकरा गई और वर्तमान दावा याचिका संस्थित करने के लिए जानबूझकर उसका नंबर सुनिश्चित करने के बाद दुर्घटना करने वाले वाहन को शामिल किया गया है।

5. दुर्घटना की तिथि पर, दुर्घटना करने वाले वाहन के पास वैध बीमा पॉलिसी नहीं थी। बीमा पॉलिसी के सत्यापन के बाद, यह सही नहीं पाई गई और मांगा गया मुआवजा पॉलिसी के मूल्य से परे है। मुआवज़ा बहुत अधिक है। दुर्घटना को साबित करने के लिए, दस्तावेजी साक्ष्य, जैसे कि प्रथम सूचना रिपोर्ट, शव परीक्षण रिपोर्ट, वाहन के रिलीज ऑर्डर की प्रतियां और दुर्घटना करने वाले वाहन से संबंधित अन्य दस्तावेज दाखिल नहीं किए गए हैं। बीमाकर्ताओं का यह भी मामला है कि चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। दुर्घटना करने वाले वाहन के पास फिटनेस प्रमाणपत्र या जहां वह चल रहा था उसका रूट परमिट नहीं था। मालिक और चालक ने पॉलिसी का उल्लंघन किया है, जिससे बीमाकर्ता अपनी देनदारी से राहत पाने के हकदार हो दावेदार के बीच मिलीभगत है, जिससे दावेदार राहत पाने का हकदार नहीं है।

6. मालिक की ओर से एक अलग लिखित बयान दायर गया था. जिसने आम तौर पर दावा याचिका के तथ्यों से इनकार किया था। यह मालिक का कहना है कि दावा याचिका अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन नहीं करती है। यह खराब है कि जरूरी पक्षों को नही जोड़ा गया है। दावेदार के समक्ष कार्रवाई का कोई कारण उत्पन्न नहीं होता। माँगा गया मुआवज़ा अधिनियम के अनुरूप नहीं है। यह दलील दी गई है कि दुर्घटना की तारीख यानी 31.12.1998 को, मालिक के वाहन, पंजीकरण संख्या डीबीएल- 9399 के पास पंजीकरण प्रमाणपत्र, बीमा पॉलिसी, रूट परमिट, माल कर भुगतान रसीद सहित चलने के लिए सभी वैध कागजात थे। एक चालक द्वारा चलाया गया, जिसके पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था। दुर्घटना करने वाले वाहन का कवर नोट संख्या 0326 के तहत बीमाकर्ताओं द्वारा बीमा किया गया है, जो 01.06.1998 से 30.05.1999 तक वैध है। बीमाकर्ताओं को देय प्रीमियम का भुगतान कर दिया गया है। चालक का ड्राइविंग लाइसेंस संख्या टी-239/एमआरटी 193 दिनांक 17.03.1993 को लाइसेंसिंग प्राधिकारी, मेरठ द्वारा जारी

अनुवादित

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

किया गया था। यह 15.06.1996 से 25.05.1999 तक वैध एवं प्रभावी था। दावेदार को मृतक की संपत्ति विरासत में मिली है और इसलिए वह मुआवजे का हकदार नहीं है। दावा याचिका परिसीमा द्वारा वर्जित है।

7. दावा याचिका में आरोपों से इनकार करते हुए चालक द्वारा एक अलग लिखित बयान दायर किया गया था। यह कहा गया है कि चालक के पास मेरठ में क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी कार्यालय द्वारा 17.03.1993 को जारी किया गया वैध ड्राइविंग लाइसेंस था, जिसका नंबर टी-239/एमआरटी 193 था। यह 24.05.1999 तक वैध था। दावा याचिका में वर्णित दुर्घटना मृतक की लापरवाही के कारण घटित हुई। दावेदार किसी भी मुआवजे का हकदार नहीं है, जो किसी भी मामले में चालक द्वारा देय नहीं है। दुर्घटना के कारण जो भी दायित्व सुनिश्चित किया जा सकता है, वह मालिक या बीमाकर्ताओं के कंधों पर आना चाहिए।

8. पक्षों की दलील पर, निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए:

"1. क्या राम कृष्ण सिंह की मृत्यु याचिका में बताए तरीके से वाहन संख्या डीबीएल-9399 के चालक द्वारा तेज गति और लापरवाही से गाडी चलाने के कारण31.12.98 को दुर्घटना में हुई थी?

2. क्या आवश्यक पक्षों के शामिल न होने से याचिका खराब है?

3. कथित तिथि और समय पर क्या उल्लंघन करने वाले वाहन के चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था या नहीं ?

4. राहत?" Version स्थिति में, इसका प्रभाव?

9. न्यायाधिकर दावेदार के पक्ष में और बीमाकर्ताओं, मालिक और चालक के खिलाफ 2 और 3 का उत्तर दिया। मुद्दा संख्या 1, 2 और 3 के निष्कर्षों के बारे 1, में कोई संदेह नहीं है। इस अपील में कारण मुआवजे की मात्रा तक सीमित है, जिसके दावेदार या मृतक के अन्य दो आश्रित, उसके बेटे, हकदार हैं।

10. यह दर्ज किया जाना चाहिए कि इस अपील के लंबित रहने पर, दावेदार, श्रीमती विद्यावती की मृत्यु हो गई और मृतक के दो बेटों में से एक हरिपाल सिंह की भी मृत्यु हो गई। दूसरे बेटे, श्रीपाल सिंह, जिसे अपील में प्रतिवादी संख्या 5 के रूप में रखा गया था, दावेदार की मृत्यु के बाद, अपीलकर्ता संख्या 1/3 के रूप में स्थानांतरित कर दिया गया था। हरिपाल सिंह और दावेदार के हितों का प्रतिनिधित्व स्वर्गीय हरिपाल सिंह के पुत्र उत्कर्ष सिंह, नाबालिग द्वारा वाद मित्र के माध्यम से, श्रीपाल सिंह व ब्रह्म सिंह की पत्नी व हरीपाल सिंह की पुत्री श्रीमती रीता सिंह द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाता है। उत्कर्ष सिंह, श्रीमती रीता सिंह और श्रीपाल सिंह अपील लंबित होने के कारण अब अपीलकर्ताओं की सूची में अपीलकर्ता संख्या

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी

और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

1/1, 1/2 और 1/3 के रूप में शामिल हैं। उन सभी को एक साथ दावेदार के रूप में भी संदर्भित किया जाएगा (जब तक कि संदर्भ के लिए व्यक्तिगत संदर्भ की आवश्यकता न हो)।

11. दावेदार के विद्वान अधिवक्ता श्री ऋषि भूषण जौहरी और बीमाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अरविंद कुमार को ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

12. दावेदार के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिय कि दिया गया मुआवजा बेहद अपर्याप्त है, क्योंकि गलत गुणक लागू है गया है और भविष्य की संभावनाओं के लिए कुछ भी नहीं दिया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि दावेदार नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी व अन्य, (2017) 16 एससीसी 680 मामले में सुप्रीम न्यायालय की संविधान पीठ दद्वारा निर्धारित कानून के अनुसार पारंपरिक मानदंडों के तहत मुआवजे का भी हकदार है।

13. बीमाकर्ता विद्वान अधिवक्ता ने विवादित फैसले का समर्थन किया है और कहा है कि उचित फैसला है, जिसमें किसी हस्तक्षेप की जरूरत नहीं है।

14. निर्भरता निकालने का आधार मृतक की मासिक आय है। रिकॉर्ड और न्यायाधिकरण के निष्कर्षों का अवलोकन, जो विवाद में नहीं हैं, बताते हैं कि मृतक राम कृष्ण प्राथमिक विद्यालय में हेडमास्टर थे, जहां उनका मूल वेतन, अंतिम बार 31.12.1998 को निकाला गया था, जो कि 1600/- रुपये और महँगायी भते के साथ 2822/- रुपये था। उन्हें 100/-, 166/- व 166/- रुपये की प्रति महीने अंतरिम राहत मिली थी। जिससे कुल मासिक परिलब्धियों रु. 4914/- हो गई थीं। यह मृतक की उपरोक्त मासिक आय है, जिसके आधार पर दावेदार की निर्भरता की गणना की जानी है। दावेदार की ओर से कृषि से आय को अन्य स्रोत के रूप में दावा किया गया है, जिसे न्यायाधिकरण ने स्वीकार नहीं किया है, हालांकि इसके बारे में ज्यादा चर्चा नहीं हुई है। यह न्यायालय भी, रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों को देखने के बाद, मृतक के लिए किसी भी आय को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं है, जिसके बारे में उसके कृषि कार्यों से होने का दावा किया गया हो। इसके बारे में ज्यादा पुख्ता सबूत नहीं हैं। 4914/- रूपये मासिक वेतन के आधार पर मृतक की वार्षिक आय 58,968/- रूपये होगी।

15. मृतक अपने पीछे तीन आश्रित छोड़ गया। सरला वर्मा (श्रीमती) व अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम व एक अन्य, (2009) 6 एससीसी 121 में निर्धारित कानून के अनुसार, न्यायाधिकरण मृतक के व्यक्तिगत खर्चो के लिए एक तिहाई कटौती करने में सही है।

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

16. निर्भरता की कुल हानि निर्धारित करने के लिए न्यायाधिकरण ने 8 का गूढ़ाक लागू किया है। मृत्यु की तिथि पर मृतक की उम्र साढ़े

अनुवादित

सातवां वर्ष थी। सरला रिपोर्ट के पैरा संख्या 40 में निर्धारित कानून के अनुसार 56-60 वर्ष की उम्र के वर्ग के लिए लागू गूढ़ाक 9 है। यह 8नह इहै इसलिए न्यायाधिकरण ने लागू गूढ़ाक से कम गूढ़ाक अपनाया।

17.न्यायाधिकरण ने भविष्य की संभावनाओं के लिए कुछ भी नहीं दिया है। मृतक एक वेतनभोगी व्यक्ति था। और, हमारे देश में वेतनभोगी पुरुषों के लिए भविष्य की संभावनाओ को पारंपरिक रूप से उच्चतम माना जाता है। यह गौर करने योग्य है कि अन्य वर्गों के व्यक्ति, जो हो सकता है अपने व्यवसायों या कार्यों में कहीं अधिक कमाते हों, पर परंपरागत रूप से अपनी भविष्य की संभावनाओं के बारे में संदेह रखते रहे हैं; किंतु, सेवा वर्ग के साथ ऐसा कभी भी नहीं होता है। प्रणय सेठी (सुप्रा) में, जिसने दृढ़ता से स्थापित किया कि स्वरोजगार में भी भविष्य की संभावनाएं हैं, सेवा वर्ग की तुलना में थोड़ी कम हो सकती हैं, निम्नलिखित शर्तों में वेतन पर नियोजित लोगों के लिए भविष्य की संभावनाएं प्रदान करता है:

"58. विवाद यहीं खत्म नहीं होता है। प्रश्न अभी भी बना हुआ है कि क्या मृतक की उम्र 50 वर्ष से अधिक होने पर कुछ भी अतिरिक्त नहीं मिलना चाहिए। सरला वर्मा (सरला वर्मा बनाम डीटीसी, (2009) 6 एससीसी 121: (2009)) 2 एससीसी (सिव) 770: (2009) 2 एससीसी (क्रि.) 1002] किसी भी अतिरिक्त राशि को नहीं देना उचित समझता है और रेशमा कुमारी में इसे मंजूरी दे दी गई है [रेशमा कुमारी बनाम मदन मोहन (2013) 9 एससीसी 65: (2013)4 एससीसी (सीआईवी) 191: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 826]। इस तथ्य पर न्यायिक संज्ञान लिया जा सकता है कि जब कोई व्यक्ति स्थायी नौकरी में होता है तो वेतन समान नहीं रहता है किसी न किसी कारण से हमेशा वृद्धि होती रहती है। एक सामान्य नियम के रूप में यह निर्धारित करना कि 50 वर्षों के बाद कोई वृद्धि नहीं होगी, एक अस्वीकार्य अवधारणा होगी, यदि मृतक की आयु 50 से 60 वर्ष चाहिए और उसके बाद कोई वृद्धि नहीं के बीच में है तो 15% की वृद्धि वृद्धि होनी हीं होनी चाहिए, इसी प्रकार, स्व-रोजगार या निश्चित वेतन वाले व्यक्ति के मामले में, 50 से 60 वर्ष की आयु के बीच 10% वृद्धि होनी चाहिए। उपरोक्त मानदंड इसलिए तय किया गया है ताकि न्यायाधिकरणों और Version दृष्टिकोण में एकरूपता बनी रहे।"

18. अगला मुद्दा जिनके लिए दावेदार के लिए उठता है वह यह है कि क्या भविष्य की संभावनाएं हकदार है, प्रणय सेठी या उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 1998 के नियम) के नियम 220-ए (3) में निर्धारित कानून द्वारा शासित होंगे। यह मुद्दा न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला व अन्य 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822 मामले में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्तिगणों के समक्ष विचार के लिए आया, जहां न्यायालय ने यह कहा किः

"9. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि नियमों की वैधता पर, किसी भी तरह से, प्रस्तुत मामले में सवाल नहीं उठाया गया था और इस प्रकार एकमात्र प्रश्न जिस पर हमें विचार करने के लिए कहा गया है वह यह है कि क्या इसके आवेदन में, उप-नियम 3 (iii) नियमों के नियम 220ए को प्रतिबंधित दायरा दिया जाना चाहिए या इसे पूरी तरह से संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

अनुवादित

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

10. प्रणय सेठी ने मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से चर्चा की।

11. यदि कोई संकेत एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल उपाय प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी निर्णय में ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित नहीं किया जा सकता है, खासकर जब नियमों की वैधता को किसी भी चुनौती के तहत नहीं रखा गया था। जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में है, 15% के निर्धारण वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी संचालित संकेत के रूप में था। यदि किसी वैधानिक दस्तावेज में यह केवल कोई ऐसा फॉर्मूला तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ देता है, तो ऐसे वैधानिक दस्तावेज को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक दस्तावेज अन्यथा अमान्य न पाया जाए।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता ओर से दी गई दलील को अस्वीकार करते हैं और न्यायाधिकरण के साथ साथ उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं और न्याय-व्यय के संबंध में बिना किसी आदेश के इस अपील को निरस्त करते हैं।"

19 .इस प्रकार , यह तय हो गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य में भविष्य की संभावनाओं का निर्धारण नियमावली 1998 के नियम 220-ए (3) के अनुसार किया जाना है, न कि प्रणय सेठी मामले में निर्णय के अनुसार।

20. दूसरा मुद्दा जो विचार के लिए उठता है वह है: क्या 1998 के नियमों का नियम 220-ए (3), जिसे 26 सितंबर की अधिसूचना संख्या 777/XXX-4-2011-4(3)-2010 द्वारा पेश किया गया था, 2011 यानी उत्तर प्रदेश मोटर वाहन (ग्यारहवां संशोधन) नियमावली, 2011 संशोधन से बहुत पहले हुई दुर्घटना पर पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू होगी? इस प्रश्न पर सुशील कुमार और अन्य बनाम मैसर्स संपर्क लोजैस्टिक प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, 2017 (35) एलसीडी 1311 मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा विचार किया गया था, जहा यह अभिनिर्धारित किया गया :

"31. घायल/मृतक की भविष्य की संभावनाओं के आधार पर लाभ प्रदान करने के लिए विधि न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों के मद्देनजर उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 में नियम 220-ए शामिल किया गया था। यह घायल/मृतक की उम्र के आधार पर मुआवजे के निर्धारण के लिए घायल/मृतक की वास्तविक आय में कुछ प्रतिशत अतिरिक्त जोड़ने का प्रावधान करता है। उपरोक्त नियम दावा याचिका के निर्णय के बाद लेकिन पहले 26.09.2011 को लागू हुआ। हालांकि दुर्घटना उपरोक्त नियम के लागू होने से बहुत पहले 08.05.2010 को हुई थी।

32. उपरोक्त के मद्देनजर यह तर्क उठाया जा रहा है कि 26.09.2011 को लागू हुए नियमों का नियम 220-ए 08.05.2010 को हई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा।

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए

प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

33. राम स्वरुप बनाम मुंशी एआईआर 1963 एससी 553 में यह निर्धारित किया गया था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षों शामिल होंगे।

34. ऊपर व्यक्त दृष्टिकोण का सर्वोच्च न्यायालय ने मुला बनाम गोधु आर 1971 एससी 89 में पालन किया था।

35. दयावती बनाम इंद्रजीत एआईआर 1966 एससी 1423 में न्यायालय ने इस प्रकार कहा थाः यदि नया कानून ऐसी भाषा में है, जो स्पष्ट रूप से या स्पष्ट इरादे से लंबित मामलों को भी अपने में समाहित करता है, तो परीक्षण न्यायालय के साथ-साथ अपीलीय न्यायालय को भी उपरोक्त आशय पर ध्यान देना चाहिए, और अपील की न्यायालय प्रथम दृष्टया न्यायालय के निर्णय के बाद भी ऐसे कानून को प्रभावी कर सकती है।

36. अमरजीत कौर बनाम प्रीतम सिंह एआईआर 1974 एससी 2068 में किसी अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को लागू किया गया था क्योंकि इस देश के प्रक्रियात्मक कानून के तहत अपील की सुनवाई उच्चतर न्यायालय द्वारा मुकदमे की दोबारा सुनवाई की प्रकृति में है।

37. उपरोक्त निर्णयों के आलोक में ही लक्ष्मी नारायण गुइन व अन्य बनाम निरंजन मोदक एआईआर 1985 एससी 111 में यह माना गया कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और यह पक्षों के अधिकारों को भी समाहित करेगा।

38. उपरोक्त निर्णय का पालन इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने यूपी राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती मधु शर्मा और अन्य, 2003 (4) एडब्ल्यूसी 2620 में यह माना गया कि जो मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों के संबंध में एक मामला था और यह देखा गया कि स्पष्ट है कि मूल कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कानून जाना चाहिए ताकि पक्षों के अधिकारों को समाहित किया जा सके।

39. उपरोक्त निर्णय के मद्देनजर आईसीआईसीआई लोम्बार्ड (सुप्रा) में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा व्यक्त की गई राय अच्छे कानून के अनुरूप नहीं है क्योंकि यह नियम 220-ए को ध्यान में रखते हुए ऊपर उल्लिखित निर्णयों को ध्यान में है ।" ऊपर दिए गए निर्णयों को ध्यान में नहीं रखते हुए यह अभिनिर्धारित करता है कि नियमावली का नियम 220 ए जो को

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

लागू हुआ था, उन दुर्घटनाओ पर जो उक्त दिनांक के पहले घटित हुई है, केवल इस कारण लागू नहीं होगा कि नियम को स्पष्ट रूप प्रकृति का नहीं बताया गया था,

21. सुशील कुमार (सुप्रा) में डिवीजन बेंच द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, जो स्पष्ट रूप से

अनुवादित

इस न्यायालय को बाध्य करता है, भविष्य की संभावनाओं का अवॉर्ड नियमावली, 1998 के नियमावली के नियम 220-ए (3) के अनुसार किया जाना है। इस तथ्य के बावजूद कि दुर्घटना संशोधन से पहले हुई थी। अब, नियम 220-ए (3) के अनुसार, मृतक की उम्र, जो 50 वर्ष से अधिक है, को ध्यान में रखते हुए, भविष्य की संभावनाओं के लिए उसकी आय में 20% जोड़ा जाना है।

22. एक और मामला जिस पर विचार करने की आवश्यकता है वह है पारंपरिक मानंदण्डों के तहत दावेदार की पात्रता के बारे में। यहां फिर से, प्रणय सेठी का सिद्धांत प्रासंगिक है, जहां यह अभिनिर्धारित किया गया किः

"48. इस पहलू को स्पष्ट करने और उचित रूप से बताए जाने की आवश्यकता है। पारंपरिक राशि अधिनियम की दूसरी अनुसूची में प्रदान की गई है। उक्त अनुसूची को त्रिलोक चंद्र [यूपी एसआरटीसी बनाम त्रिलोक में न्यायालय द्वारा बताए अनुसार दोषपूर्ण पाया गया है। चंद्रा, (1996) 4 एससीसी 362]। हाल ही में, पुट्टम्मा बनाम केएल नारायण रेड्डी में [पुट्टम्मा वीकेएल नारायण रेड्डी, (2013) 15 एससीसी 45: (2014) 4 एससीसी (सिव) 384: (2014) 3एससीसी (सीआरआई) 574] यह दोबारा कहा गया है किः (एससीसी पृष्ठ 80, पैरा 54)

"54/ ... हमारा मानना है कि 1994 में अब जीवन यापन की वर्तमान लागत की गई दूसरी अनुसूची की वर्तमान दर और बढ़ी हई जीवन प्रत्याशा सहित बदले हुए परिदृश्य के कारण निरर्थक, तर्कहीन और अव्यवहारिक हो गई है।

49. जहां तक गणको या गणांकों का सवाल है, इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा उसको निर्धारित कर दिया गया है। दूसरी अनुसूची के पैरा 3 में मृत्यु की स्थिति में सामान्य क्षति का भी प्रावधान है। यह इस प्रकार है:

"3 सामान्य छति(मृत्यु के मामले में):

पर उल्लिखित मुआवजे के अतिरिक्त निम्नलिखित सामान्य क्षतियाँ देय

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

1	अंत्येष्टि व्यय	2000
2	जीवनसाथी की हानि, यदि लाभर्थी पति या पत्नी है तो	5000
3	संपत्ति का नुकसान	2500
4	चिकित्सा व्यय मृत्यु से पहले किए गए वास्तविक खर्च बिल/वाउचर द्वारा समर्थित परंतु अधिकतम	15000

50. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कित्रिलोक चंद्रा मामले में निर्णय से लेकर दूसरी अनुसूची का पालन नहीं किया गया है [यूपी एसआरटीसी बनाम त्रिलोक चंद्रा, (1996) 4 एससीसी 362] और उसमें कोई संशोधन नहीं हुआ है। पारंपरिक क्षति राशि को उचित रूप से निर्धारित करने की आवश्यकता है। जैसा कि हमने देखा कि विभिन्न मामलों में अलग-अलग राशियाँ प्रदान की गई हैं। राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिव) 179:

अनुवादित

(2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149) में जीवनसाथी के लिए 1,00,000 रुपये की राशि प्रदान की गई के अनुदान का औचित्य, जैसा कि हम राजेश (राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिव) 179: (2013) 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 हैं अवलोकन पर आधारित है जैसा कि एस) 149], से पाते भी दोहराया है।

51. उपरोक्त आधार पर, न्यायालय ने पारंपरिक मानदंडों के तहत मुआवजा देने की प्रथा पर फिर से विचार किया है।

52. जहां तक पारंपरिक मानदंडों का सवाल है, हमें राजेश (राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिव) 179: (2013) व्यक्त विचार से सहमत होना मुश्किल लगता है। 3 एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149]। इसने अंतिम के खर्च के लिए 25,000 रुपये, जीवनसाथी के नुकसान के लिए 1,00,000 रुपये और नाबालिग बच्चों की देखभाल और मार्गदर्शन के नुकसान के लिए 1,00,000 रुपये दिए हैं। देखभाल की हानि और नाबालिग बच्चों से संबंधित बिन्दु मौजूद नहीं है। हालाँकि राजेश [राजेश बनाम राजबीर सिंह, (2013) 9 एससीसी 54: (2013) 4 एससीसी (सिव) 179: (2013) 3एससीसी (सीआरआई) 817: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 149] संतोष देवी को संदर्भित करता है । संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2012) 6 एससीसी 421: (2012) 3 एससीसी (सिव) 726:(2012) 3 एससीसी (सीआरआई) 160: (2012) 2 एससीसी (एल एंड एस)167], परंतु यह उसका अनुपालन करता हुआ नहीं दिख रहा है। यह कहने की जरूरत नहीं है कि पारंपरिक और रुढ़ि-गत बिंदुओं को प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त बिंदुओं को परिमाणित करना होगा। किसी भी परिमाणीकरण का उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। न्यायालय इससे बेखबर नहीं रह सकती. इस पहलू में एक अचूक नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक अचूक नियम लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता की कमी के कारण भारी भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरण और न्यायालयों दद्वारा पारित आदेश दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए, हमारा मानना कि उचित राशि निर्धारित करना सही प्रतीत होता है। हमें ऐसा लगता है कि पारंपरिक बिंदुओं, अर्थात् संपत्ति की हानि, जीवनसाथी की हानि और अंतिम संस्कार व्यय पर उचित आंकड़े क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और 15,000 रुपये होने चाहिए। उक्त बिंदुओं पर दोबारा विचार करने का सिद्धांत एक स्वीकार्य नियम है। लेकिन पुनरावलोकन तथ्य-केन्द्रित या परिमाण-केन्द्रित नहीं होना चाहिए। हमारा यह उचित होगा कि हमने जो राशि निर्धारित की है उसे न साल में प्रतिशत के आधार

पर बढ़ाया जाना चाहिए और तीन साल सवधि में वृद्धि 10% की दर से होनी चाहिए। हम ऐसा करने के लिए तैयार हैं क्योंकि इससे उन बिंदुओं के संबंध में एकरूपता आएगी।"

(न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

23. जहां तक मृतक के बच्चों को माता-पिता के साथ के नुकसान के मुआवजे का अधिकार का सवाल है, जो बच्चे नाबालिग हैं और जो वयस्क हैं, उनके बीच अंतर किया जाना चाहिए। मैंने जिउती देवी और अन्य बनाम मनोज 2022 एससीसी ऑनलाइन ऑल 46 में इस प्रश्न पर विचार किया और अभिनिर्धारित किया:

"39. कंसोर्टियम का नुकसान, जिसमें माता-पिता का साथ भी शामिल है, निर्भरता के अलावा कोई ठोस आर्थिक नुकसान नहीं है। यह एक मोटर दुर्घटना के मृतक पीड़ित के निकटतम रिश्तेदार के लिए एक भावनात्मक नुकसान है। माता-पिता के नुकसान के मामले में, यह कारण बनता है नाबालिगों और छोटे बच्चों को एक विशेष वंचितता, जिसके बारे में यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सतिंदर कौर उर्फ सतविंदर कौर मामले में सुप्रीम न्यायालय ने कहा है, माननीय न्यायमूर्ति शब्दों में कहें तो, "माता-पिता के साथ की क्षतिपूर्ति बच्चों को प्रदान की जाती है जो मोटर वाहन दुर्घटनाओं में अपने माता-पिता की देखभाल और सुरक्षा खो देते हैं"।

40. इस न्यायालय की समझ के अनुसार, मृतक के बच्चों के साथ का नुकसान का प्रभाव, उस नुकसान की प्रकृति में, बच्चों की उम्र पर निर्भर करता है। परिपक्वता की किसी भी उम्र को खोना बच्चे के लिए एक निराशाजनक और भावनात्मक घटना है, लेकिन माता-पिता के साथ के तहत मुआवजे प्रकृति के अनुसार, एक बच्चे या नाबालिग को जो अभाव झेलना पड़ता है, निर्धारक होता है। एक बच्चा, जो परिपक्व वयस्कता है या अन्यथा जीवन की मुख्यधारा में है,तहत मुआवजे का हकदार नहीं होगा।"

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

24.वर्तमान मामले में दोनों बच्चे वयस्क हैं, माता-पिता संघ के नुकसान के लिए मुआवजा देय नहीं होगा। हालाकि, दावेदार जीवनसाथी के नुकसान के लिए मुआवजे का हकदार होगा।

25. हालाँकि, जहाँ तक संपत्ति के नुकसान और वित्तीय खर्चों का सवाल है, प्रणय सेठी के नियम के अनुसार, इसे एक सेट में दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित पारंपरिक बिंदुओं के तहत दिया गया मुआवजा गलत है और इसे भी संशोधित किया जाना है।

26. दावेदार और अन्य आश्रितों को देय मुआवजे के निर्धारण के लिए लागू सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय उपरोक्त को निम्नानुसार निर्धारित करती हैः

(i) मासिक आय (मृतक की) = 4914/-

(ii) मासिक आय भविष्य की संभावनाएँ (मासिक आय x 20%) =4914+983 = 5897/-

(iii) वार्षिक आय (मृतक की) = 5897x12
=70,764/-

अनुवादित

(iv) वार्षिक निर्भरता = वार्षिक आय - मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए एक तिहाई कटौती =70764- 23588=47176

(v) कुल निर्भरता = वार्षिक निर्भरता x अनुप्रयुक्त गुणक =47,176x9 = 4,24,584/-

(vi) पारंपरिक मदों के प्रति दावेदारों का अधिकार संपति का नुकस अंत्येष्टि व्यय + आश्रितों का संघ

= 47,176x9 4,24,584/-

इसलिए, कुल मुआवजे का आंकड़ा होगा = रु.4,24,584+ रु.70,000 = 5,94,584/-

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

27. परिणामस्वरूप, यह अपील आंशिक रूप कार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित विवादित अवॉर्ड को संशोधित किया गया है और दिया गया मुआवजा बढ़ाकर रु.5,74,584/- उपरोक्त धनराशि पर दावा याचिका दायर होने की तारीख से वसूली होने तक 7% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज लगेगा। विवादित अवॉर्ड या इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों के धनराशि, इस यथावत रहेंगे Translated Version आदेश दिनांकः- सार बीमाकर्ताओं द्वारा न्यायाधिकरण में। पहले से जमा की गई कोई भी समायोजित की जाएगी। अवॉर्ड में न्यायाधिकरण के अन्य निर्देश यशुल्क पर कोई आदेश नहीं।

(2023) 2 ILRA 248

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 04.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी,

शासकीय अपील संख्या 967/1992

उत्तर प्रदेश राज्य

...अपीलकर्ता

बनाम

देवराज

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: ए.जी.ए.

अधिवक्ता विपक्षीगणः श्री डी.एन. वली, श्री भुवनेश कुमार सिंह

(ए) आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 और 378 - दोषमुक्ति के संबंध में अपील, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376 - बलात्कार - अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करते हुए दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपीलीय न्यायालय की शक्तियां - भले ही अभिलेख पर साक्ष्य के आधार पर दो उचित विचार/निष्कर्ष संभव हों, अपीलीय अदालत को विचारणीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए दोषमुक्ति के निष्कर्ष को अस्तव्यस्त नहीं करना चाहिए - दोषमुक्ति अपीलों में, अपीलीय न्यायालय को निर्णय को पुनः से लिखने या नए तर्क देने की आवश्यकता नहीं है, जब नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा बताए गए कारण उचित और उचित पाए जाएं। (पैरा -11,12,13,14,18)

(बी) आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 378 - दोषमुक्त वाद में अपील -अपीलीय न्यायालय द्वारा विचारणीय न्यायालय के दोषमुक्त आदेश को निरस्त करते

अनुवादित

समय, इसे आरोपी के पक्ष में निर्दोषता की धारणा को उचित महत्व और विचार देना चाहिए, और इस सिद्धांत के अनुसार कि इस तरह की धारणा को विचारणीय न्यायालय द्वारा प्रबलित, पुन: पुष्टि और मजबूत किया जाता है - दोषमुक्त निर्णय को, जहां दो दृष्टिकोण संभव हैं, अलग नहीं रखा जाना चाहिए, भले ही अपीलीय अदालत द्वारा गठित दृष्टिकोण अधिक संभावित हो, हस्तक्षेप दोषमुक्ति को केवल तभी उचित ठहराया जा सकता है जब यह विकृत दृष्टिकोण पर आधारित हो। (पैरा-22)

अभियुक्त-प्रतिवादी पर बलात्कार का अपराध करने का वाद चलाया गया - श्रृंखलाबद्ध अधूरे चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन का समर्थन नहीं करते हैं, विशेष रूप से चोट रिपोर्ट और पूरक रिपोर्ट - दोषमुक्त - इसलिए अपील। **(पैरा-23)**

आयोजित:-निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। आईपीसी की धारा 375 सपठित धारा 375(5) के प्रावधान न्यायालय को सत्र न्यायाधीश से सहमत होने की अनुमति देते हैं। अभिलेख और कार्यवाही विचारणीय न्यायालय को वापस प्रेषित की गई। **(पैरा-23,24,25)**

अपील निरस्त। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. एम.एस. नारायण मेनन @ मणि बनाम केरल राज्य एवं अन्य, (2006) 6 एस.सी.सी. 39 बनाम
2. चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, (2007) 4 एस.सी.सी. 415
3. गोवा राज्य बनाम संजय ठकरान और अन्य, (2007) 3 एस.सी.सी. 75
4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम वीर सिंह एवं अन्य, 2007 ए.आई.आर.एस.सी.डब्ल्यू. 5553
5. गिरजा प्रसाद (मृत) आई.आर.एस बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2007 ए.आई.आर.एस.सी.डब्लू. द्वारा। 5589
6. लूना राम बनाम भूपत सिंह एवं अन्य, (2009) एससीसी 749
7. मुक्कियाह और अन्य बनाम राज्य, पुलिस निरीक्षक द्वारा प्रतिनिधि, तमिलनाडु, एआईआर 2013 एससी 321
8. कर्नाटक राज्य बनाम हेमारेड्डी, एआईआर 1981, एससी 1417
9. शिवशरणप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, जेटी 2013 (7) एससी 66
10. पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा, (2013) 14 एससीसी 153
11. जयस्वामी बनाम कर्नाटक राज्य, (2018) 7 एससीसी 219
12. शैलेन्द्र राजदेव पासवान बनाम गुजरात राज्य, (2020) 14 एससी 750
13. सैमसुल हक बनाम असम राज्य, (2019) 18 एससीसी 161

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, एवं
माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी, द्वारा प्रदत्त)

1. राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री पतंजलि मिश्रा को सुना, मूल आरोपी के लिए कोई मौजूद नहीं था। यह वर्ष 1992 की सरकारी अपील है जिसे बार-बार सूचीबद्ध किया गया है।

अनुवादित

2. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद 'द०प्र०स०' के रूप में संदर्भित) की धारा 378 के तहत यह अपील, राज्य की ओर से, विद्वान विशेष न्यायाधीश, बिजनौर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 28.2.1992 के खिलाफ दायर की गयी है, जिसमें अभियुक्त-प्रतिवादी को बरी कर दिया गया था, जिसे भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'भ०द०वि०' के रूप में संदर्भित) की धारा 376 के तहत अपराध करने के लिए मुकदमा चलाया गया था।

3. रिकॉर्ड से लिए गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 1/2.07.1990 को लगभग आधी रात को आरोपी जो बाहर सो रहा था, ने अभियोक्त्रि-मंजू को बताया कि उसकी बहन अनेटा, मृतक की पत्नी, हैजा से पीड़ित थी और उसे बिजनौर ले जाया गया था और उसे भी बिजनौर तक उनके पीछे जाना था, लेकिन जब अभियोक्त्रि सीढ़ियों से नीचे आयी तो आरोपी देवराज ने चाकू दिखाया और जबरन अभियोक्त्रि को कमरे के अंदर खींच लिया और उसके साथ बलात्कार किया।

4. प्राथमिकी चार्जशीट में परिणत हुई और आरोपी सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध हुए।

5. सम्मन किए जाने पर, आरोपी-व्यक्ति को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा। जिस अपराध के लिए अभियुक्त पर आरोप लगाया गया था, वह सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए, अभियुक्त-प्रतिवादी सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध थे। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने भारतीय दंड संहिता (भ०द०वि०) की धारा 376 के तहत दंडनीय अपराध करने के लिए आरोप तय किए।

6. मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने नीचे गिनाए गए 4 गवाहों की जांच की:

1	मंजू का बयान	अ०सा०-1
2	अनीता का बयान	अ०सा०-2
3	डॉ जैबुन्निसां खान का बयान	अ०सा०-3
4	गुलज़ार का बयान	अ०सा०-4

7. चक्षुक संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए थे:

1	तहरीर रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
2	पेटीकोट की फर्द बरामदगी और चोट रिपोर्ट	प्रदर्श क-2
3	पूरक रिपोर्ट	प्रदर्श क-3
4	नक़्शा नज़री सारणी के साथ	प्रदर्श क-4
5	कच्छा की फर्द बरामदगी	प्रदर्श क-5
6	प्राथमिकी	प्रदर्श क-7

अनुवादित

7	विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट	प्रदर्श क-10

8. मुकदमे के अंत में और धारा 313 द०प्र०स० के तहत आरोपी व्यक्तियों के बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने ऊपर वर्णित प्रतिवादियों को बरी कर दिया।

9. राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि बरी करने का आदेश कानून की नजर में उचित नहीं है क्योंकि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के खिलाफ मामले को बहुत अच्छी तरह से स्थापित किया था। अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने सबूतों को गलत पढ़ा और समझा है। अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने अंत में प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित निर्णय गलत है और इसे अपास्त किये जाने योग्य है।

10. इससे पहले कि हम गवाही और नीचे न्यायालय के फैसले को लें, आपराधिक अपील जहां अभियुक्त को गैर दोषी होना माना गया है, में हस्तक्षेप करने के लिए रूपरेखा पर चर्चा की आवश्यकता होगी.

11. विचारण न्यायालय द्वारा पारित बरी करने के आदेश के खिलाफ इस न्यायालय द्वारा अपील की सुनवाई को नियंत्रित और विनियमित करने वाले सिद्धांतों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रेणी में बहुत संक्षेप में समझाया गया है। "एम.एस. नारायण मेनन @ मणि बनाम केरल राज्य और अन्य", (2006) 6 एस.सी.सी 39 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील में उच्च न्यायालय की शक्तियों का वर्णन किया है। निर्णय के पैरा 54 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"54. किसी भी घटना में उच्च न्यायालय ने बरी होने के खिलाफ अपील के रूप में एक अपील लेना, यह वास्तव में पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा था। बरी करने के फैसले के खिलाफ अपीलीय शक्ति का प्रयोग करते हुए भी, उच्च न्यायालय को कानून के अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिए था कि जहां दो दृष्टिकोण संभव हैं, अपीलीय न्यायालय को निचली अदालत द्वारा दर्ज बरी करने के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

12. इसके अलावा, "चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य" के मामले में, (2007) 4 एस.सी.सी 415 में रिपोर्ट किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए;

"42. उपरोक्त निर्णयों से, हमारे सुविचारित दृष्टिकोण में, बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील से निपटने के दौरान अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के बारे में निम्नलिखित सामान्य सिद्धांत सामने आते हैं:

[1] एक अपीलीय न्यायालय के पास उन सबूतों की समीक्षा, पुनर्मूल्यांकन और पुनर्विचार करने की पूरी शक्ति है, जिन पर बरी करने का आदेश स्थापित किया गया है.

[2] दंड प्रक्रिया संहिता, 1973, इससे पहले कि वह अपने आप तक पहुंच सके, ऐसी शक्ति के प्रयोग पर साक्ष्य पर अपीलीय न्यायालय निष्कर्ष, तथ्य और कानून दोनों के सवालों पर कोई सीमा, प्रतिबंध या शर्त नहीं लगाती है।

[3] विभिन्न अभिव्यक्तियाँ, जैसे, "पर्याप्त और अपरिहार्य कारण", "अच्छे और पर्याप्त आधार",

अनुवादित

"बहुत मजबूत परिस्थितियां", "विकृत निष्कर्ष", "स्पष्ट गलतियाँ", आदि बरी होने के खिलाफ अपील में अपीलीय न्यायालय की व्यापक शक्तियों को कम करने का इरादा नहीं रखते हैं। इस तरह के वाक्यांश-विज्ञान "भाषा के उत्कर्ष" की प्रकृति में अधिक हैं, जो सबूतों की समीक्षा करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर आने के लिए न्यायालय की शक्ति को कम करने की तुलना में अपीलीय न्यायालय की अनिच्छा को बरी करने में हस्तक्षेप करने पर जोर देते हैं।

[4] एक अपीलीय न्यायालय, हालांकि, यह ध्यान में रखना चाहिए कि बरी होने के मामले में अभियुक्त के पक्ष में दोहरी धारणा है। सबसे पहले, निर्दोषता का अनुमान उपलब्ध है; उन्होंने दांडिक न्यायशास्त्र के मूलभूत सिद्धांत के तहत यह निर्णय लिया है कि प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि उसे किसी सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी सिद्ध नहीं कर दिया जाता। दूसरे, अभियुक्त को बरी कर दिए जाने पर, उसकी बेगुनाही की धारणा को विचारण न्यायालय द्वारा और अधिक प्रबलित, पुन: पुष्टि और मजबूत किया जाता है।

[5] यदि रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर दो उचित निष्कर्ष संभव हैं, तो अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए बरी होने के निष्कर्ष के साथ हस्तक्षेप/दस्तंदाजी नहीं करना चाहिए।

13. इस प्रकार, यह एक स्थापित सिद्धांत है कि अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करते समय, भले ही रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर दो उचित विचार/निष्कर्ष संभव हों, अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज बरी करने के निष्कर्ष के साथ हस्तक्षेप/दस्तंदाजी नहीं करना चाहिए।

14. (2007) 3 एस.सी.सी 75 में रिपोर्ट किए गए "गोवा राज्य बनाम संजय ठाकरान और अन्य" शीर्षक वाले मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने बरी होने के खिलाफ अपील में उच्च न्यायालय की शक्तियों को दोहराया है। उक्त निर्णय के पैरा 16 में, न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है:

"16. पूर्वोक्त निर्णयों से, यह स्पष्ट है कि बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील में शक्तियों का प्रयोग करते समय अपीलीय अदालत आमतौर पर बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगी जब तक कि निचली अदालत का दृष्टिकोण कुछ प्रकट अवैधता से दूषित न हो और निष्कर्ष किसी भी उचित व्यक्ति द्वारा नहीं पहुंचा जाएगा (?) इसलिए निर्णय को विकृत के रूप में वर्णित किया जाना चाहिए। केवल इसलिए कि दो विचार संभव हैं, अपीलीय अदालत उस दृष्टिकोण को नहीं लेगी जो निचली अदालत द्वारा दिए गए निर्णय साथ हस्तक्षेप/दस्तंदाजी करेगा। हालांकि, यदि विचार यह है कि नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष विकृत है और न्यायालय ने कानून की स्पष्ट त्रुटि की है और रिकॉर्ड पर महत्वपूर्ण और सुसंगत साक्ष्य की अनदेखी की है, तो अपीलीय न्यायालय के पास साक्ष्य की समीक्षा करने की शक्ति है। अपीलीय न्यायालय पर ऐसी परिस्थितियों में, एक कर्तव्य डाला जाता है कि रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री के आधार पर एक उचित निर्णय पर पहुंचने के लिए, यह पता लगाने के लिए कि क्या कोई अभियुक्त उस अपराध के कमीशन से जुड़ा हुआ है जिस पर वह आरोप लगाया गया है, सबूतों का फिर से मूल्यांकन करे।

15. इसी तरह का सिद्धांत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा "उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम वीर सिंह और अन्य", 2007 ए.आई.आर एस.सी.डब्ल्यू

5553 और एल.आर बनाम राज्य द्वारा "गिरजा प्रसाद (मृत) एम.पी", 2007 ए.आई.आर एस.सी.डब्ल्यू 5589 शीर्षक वाले मामलों में निर्धारित किया गया है। इस प्रकार, शक्तियां, जो यह न्यायालय बरी करने के आदेश के खिलाफ प्रयोग कर सकता है, अच्छी तरह से तय हैं।

16. (2009) एस.सी.सी 749 में रिपोर्ट किए गए "लूना राम बनाम भूपत सिंह और अन्य" के मामले में, पैरा 10 और 11 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"10. उच्च न्यायालय ने कहा है कि अभियोजन पक्ष का संस्करण स्पष्ट रूप से विश्वसनीय नहीं था। कुछ तथाकथित चश्मदीद गवाहों ने कहा कि मृतक की मृत्यु इसलिए हुई क्योंकि एक आरोपी द्वारा उसका टखना मोड़ा गया था। दूसरों ने कहा कि उसका गला घोंटा गया था। अभियोजन पक्ष का यह मामला था कि घायल गवाहों को बस से बाहर फेंक दिया गया था। पोस्टमॉर्टम करने वाले और गवाहों की जांच करने वाले डॉक्टर ने स्पष्ट रूप से कहा था कि यह संभव नहीं है कि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को उस समय बाहर फेंक दे जब वह दौड़ती हालत में हो।

11. बरी करने के फैसले के खिलाफ अपील के मापदंडों को ध्यान में रखते हुए, हम इस अपील में हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं। उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को विकृत नहीं कहा जा सकता है और यह साक्ष्य पर एक संभावित दृष्टिकोण है।

17. "मुक्किया और अन्य" शीर्षक वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय के हाल के फैसले में, ए.आई.आर 2013 एस.सी 321 में रिपोर्ट किए गए ए.आई.आर 2013 एस.सी 321 में रिपोर्ट किए गए मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"4. यह विवाद में नहीं है कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन और बचाव पक्ष के नेतृत्व में मौखिक और दस्तावेजी सबूतों का मूल्यांकन करने पर, अभियुक्तों को उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में बरी कर दिया। राज्य द्वारा अपील पर, उच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय को उलट दिया और आरोपी को भ०द०वि० की धारा 34 सपठित धारा 302 के तहत दोषी ठहराया और जीवन के लिए कठोर कारावास से दंडित किया। चूंकि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि में बरी करने के आदेश को उलटने में अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर लिया है, आइए हम बरी करने के आदेश के खिलाफ दायर अपील में उच्च न्यायालय के दायरे और शक्ति का विश्लेषण करें। इस न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला में बार-बार यह निर्धारित किया है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय, बरी करने के खिलाफ अपील से निपटने के बावजूद, पूरे साक्ष्य को स्कैन करने और यदि आवश्यक हो तो पुनर्मूल्यांकन करने का भी हकदार था, और साथ ही बाध्य था, हालांकि हस्तक्षेप करते समय अदालत को रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर अपराध का पूर्ण विश्वास होना चाहिए न कि केवल इसलिए कि उच्च न्यायालय केवल एक और संभव या अलग दृष्टिकोण ले सकता है। उपर्युक्त को छोड़कर, जहां अपील के विचार की सीमा और गहराई के मामले का संबंध है, अपील से निपटने में दृष्टिकोण में कोई भेद या अंतर परिकल्पित नहीं है, क्योंकि एक दोषसिद्धि के खिलाफ था या दूसरा बरी होने के खिलाफ था। [राजस्थान राज्य बनाम सोहन लाल और अन्य, (2004) 5 एस.सी.सी 573]

18. यह भी एक स्थापित कानूनी स्थिति है कि बरी करने की अपील में, अपीलीय न्यायालय को निर्णय को, जब नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा सौंपे गए कारण उचित पाए जाते हैं, फिर से लिखने या नए तर्क देने की आवश्यकता नहीं है। इस तरह के सिद्धांत को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा "कर्नाटक राज्य बनाम हेमरेड्डी", ए.आई.आर 1981, एस.सी 1417 के मामले में निर्धारित किया गया है, जिसमें यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

"... इस न्यायालय ने गिरिजा नंदिनी देवी बनाम बिगेंद्र नंदिनी चौधरी (1967) 1 एस.सी.आर 93: (ए.आई.आर 1967 एस.सी 1124) में कहा है कि साक्ष्य के कथन को दोहराना या विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों को दोहराना अपीलीय न्यायालय का कर्तव्य नहीं है, न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों के साथ सामान्य समझौते की अभिव्यक्ति जिसका निर्णय अपील के अधीन है, आमतौर पर पर्याप्त होगा।

19. शिवशरणप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य", जेटी 2013 (7) एस.सी 66 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"अपीलीय न्यायालय को पूरे साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने का अधिकार है, हालांकि, कुछ अन्य सिद्धांतों का भी पालन किया जाना है और यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि बरी होने से निर्दोषता की दोहरी धारणा होती है।

20. इसके अलावा, "पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा", (2013) 14 एस.सी.सी 153 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"इस मुद्दे पर कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि 1988 अधिनियम के तहत अपराध बनाने के लिए अवैध रिश्वत की मांग अनिवार्य है। जब मामले में ठोस सबूत विश्वसनीय नहीं है, तो अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए केवल दागी धन की बरामदगी पर्याप्त नहीं है, जब तक कि रिश्वत के भुगतान को साबित करने या यह दिखाने के लिए सबूत न हो कि धन स्वेच्छा से रिश्वत के रूप में लिया गया था। अवैध परितोषण के रूप में राशि की मांग और स्वीकृति के संबंध में किसी भी सबूत के अभाव में अभियुक्त द्वारा केवल राशि की प्राप्ति अपराध को मजबूत करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए, 1988 के अधिनियम की धारा 20 के तहत उठाए गए वैधानिक अनुमान को विस्थापित करने का भार, रिकॉर्ड पर साक्ष्य लाकर, या तो प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य साक्ष्य लाकर, उचित संभावना के साथ स्थापित करने के लिए, कि धन उसके द्वारा स्वीकार किया गया था, 1988 अधिनियम की धारा 7 में निर्दिष्ट मकसद के अलावा, अभियुक्त पर रहता है। अधिनियम की धारा 20 के प्रावधानों को लागू करते समय, अदालत को अभियुक्त द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण, यदि कोई हो, पर केवल संभाव्यता की प्रबलता की कसौटी पर विचार करना आवश्यक है, न कि सभी उचित संदेह से परे सबूत की कसौटी पर। हालांकि, इससे पहले कि अभियुक्त को यह बताने के लिए कहा जाए कि उसके कब्जे में विचाराधीन राशि कैसे पाई गई, अभियोजन पक्ष द्वारा मूलभूत तथ्यों को स्थापित किया जाना चाहिए। शिकायतकर्ता एक हितबद्ध और पक्षपातपूर्ण गवाह है जो फसाने के जाल की सफलता से संबंधित है और उसके साक्ष्य का परीक्षण उसी तरह किया जाना चाहिए जैसे किसी अन्य हितबद्ध गवाह का। एक उचित मामले में, अदालत व्यक्ति को आरोपी

समझने से पहले स्वतंत्र पुष्टि की तलाश कर सकती है।

21. जयस्वामी बनाम कर्नाटक राज्य के मामले में हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने (2018) 7 एस.सी.सी 219, ने एक ऐसे मामले में साक्ष्य की फिर से मूल्यांकन करने में अपीलीय अदालत की शक्तियों को निर्धारित किया है जहां राज्य ने बरी होने के खिलाफ अपील दायर की है, जो इस प्रकार है:

"10. अब तक अच्छी तरह से तय हो गया है कि अपीलीय अदालत फैसले और बरी करने के आदेश के खिलाफ दायर अपील की सुनवाई कर रही है, अगर अपीलीय अदालत को ऐसा करने के लिए पर्याप्त और बाध्यकारी कारण नहीं मिलते हैं तो विचारण न्यायालय के बरी होने को खारिज या अन्यथा हस्तक्षेप नहीं करेगा। यदि तथ्यों के संबंध में विचारण न्यायालय का निष्कर्ष स्पष्ट रूप से गलत है; यदि विचारण अदालत का फैसला कानून के गलत दृष्टिकोण पर आधारित था; यदि विचारण न्यायालय के फैसले से न्याय की गंभीर हत्या होने की संभावना है; यदि साक्ष्य से निपटने में विचारण न्यायालय का पूरा दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अवैध था; यदि विचारण न्यायालय का फैसला स्पष्ट रूप से अन्यायपूर्ण और अनुचित था; और यदि विचारण न्यायालय ने सबूतों को नजरअंदाज कर दिया है या महत्वपूर्ण और सुसंगत साक्ष्य को गलत पढ़ा है या बैलिस्टिक विशेषज्ञ की मृत्यु पूर्व घोषणा/रिपोर्ट आदि जैसे महत्वपूर्ण और सुसंगत दस्तावेजों की अनदेखी की है, तो इसे पर्याप्त और बाध्यकारी कारणों के रूप में माना जा सकता है और प्रथम अपीलीय अदालत बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप कर सकती है। हालांकि, यदि अभियुक्त को बरी करते समय विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत संभावित विचारों में से एक है, तो अपीलीय न्यायालय आम तौर पर उपरोक्त कारकों की अनुपस्थिति में विशेष रूप से बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

..... रामानंद यादव बनाम प्रभुनाथ झा और अन्य, (2003) 12 एस.सी.सी 606 के मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों को नोट करना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:

"21. अपीलीय अदालत पर उन सबूतों की समीक्षा करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है जिन पर बरी करने का आदेश आधारित है। आम तौर पर, बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा क्योंकि अभियुक्त की बेगुनाही की धारणा को बरी करने से और मजबूत किया जाता है। आपराधिक मामलों में न्याय प्रशासन के जाल के माध्यम से चलने वाला सुनहरा सूत्र यह है कि यदि मामले में पेश किए गए सबूतों पर दो विचार संभव हैं, एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी बेगुनाही की ओर इशारा करता है, तो अभियुक्त के अनुकूल दृष्टिकोण को अपनाया जाना चाहिए। अदालत का सर्वोपरि विचार यह सुनिश्चित करना है कि न्याय की हत्या को रोका जाए। न्याय की हत्या जो दोषी के बरी होने से उत्पन्न हो सकती है, एक निर्दोष की सजा से कम नहीं है। ऐसे मामले में जहां स्वीकार्य साक्ष्य की अनदेखी की जाती है, अपीलीय अदालत पर एक कर्तव्य डाला जाता है कि वह यह पता लगाने के उद्देश्य से कि क्या किसी अभियुक्त ने कोई अपराध किया है या नहीं, ऐसे मामले में साक्ष्य की फिर से मूल्यांकन करे जहां अभियुक्त को बरी कर दिया गया है।

22. सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में शैलेंद्र राजदेव पासवान बनाम गुजरात राज्य, (2020)

14 एस.सी 750 में माना है कि अगर अपीलीय अदालत विचारण न्यायालय के बरी होने के आदेश को उलट रही है, तो उसे अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषता की धारणा को उचित वजन और विचार देना चाहिए, और इस सिद्धांत पर कि इस तरह की धारणा को प्रबलित किया जाता है, विचारण न्यायालय द्वारा समसुल हक बनाम असम राज्य, (2019) 18 एस.सी.सी 161 में पुष्टि और मजबूत किया गया कि बरी करने का निर्णय, जहां दो विचार संभव हैं, एक को अपास्त नहीं किया जाना चाहिए, भले ही अपीलीय अदालत द्वारा गठित दृष्टिकोण अधिक संभावित हो, बरी करने में हस्तक्षेप केवल तभी उचित हो सकता है जब यह एक विकृत दृष्टिकोण पर आधारित हो।

23. हमने अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों, चक्षुक संस्करणों का समर्थन करने वाले दस्तावेजी साक्ष्य, पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों का अवलोकन किया है। हमने रिकॉर्ड का अवलोकन किया। हम निम्नलिखित कारणों से राज्य के अधिवक्ता की प्रस्तुतियों और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं जो बरी होने के खिलाफ अपील पर विचार करने के मानदंड निर्धारित करते हैं। चेन अधूरी पाई गई है। निर्णय और गवाहों के साक्ष्य को देखते हुए हम बहुत स्पष्ट हैं कि चिकित्सा साक्ष्य विशेष रूप से प्रदर्श क-2 और प्रदर्श क-3 में साक्ष्य जो चोट रिपोर्ट और पूरक रिपोर्ट है, अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करते हैं, इसलिए हमारी सुविचारित राय है कि निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। विद्वान न्यायाधीश द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वे भी इस मामले के तथ्यों पर पूरी ताकत से लागू होंगे। धारा 375 भ०द०वि० सपठित धारा 375 के प्रावधान भी हमें निचली अदालत से सहमत होने की अनुमति देंगे। इस प्रकार हम नीचे दिए गए न्यायालय के निष्कर्षों से सहमत हैं।

24. इसलिए, मामले के मद्देनजर और सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की रूपरेखा पर, हम विद्वान सत्र न्यायाधीश से सहमत हैं।

25. अपील योग्यता से रहित है अत: ख़ारिज की जाती है। रिकॉर्ड और कार्यवाही को निचली अदालत में वापस भेजा जाए। जमानत और जमानत बांड, यदि कोई हो, रद्द किया जाता है।

26. हम न्यायालय की सहायता करने के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता के अनुग्रहीत हैं।

(2023) 2 ILRA 255

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह,

शासकीय अपील संख्या 1581/1986

उत्तर प्रदेश राज्य

...अपीलकर्ता

बनाम

राधे श्याम और अन्य

...आरोपी प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: ए.जी.ए.

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री एस.ए.एन. शाह, श्री अक्षय कुमार शुक्ला, श्री रवीन्द्र पाल सिंह काशी

अनुवादित

(ए) आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 और 378 - दोषमुक्ति के वाद में अपील, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302/34 - हत्या - दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपीलीय न्यायालय की शक्तियां - अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करते समय, भले ही रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर दो उचित विचार/निष्कर्ष संभव हों, अपीलीय अदालत को विचारणीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए दोषमुक्ति के निष्कर्ष को अस्तव्यस्त नहीं करना चाहिए - दोषमुक्ति अपीलों में, अपीलीय न्यायालय को निर्णय को पुनः लिखने या नए तर्क प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है जब नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा बताए गए कारण न्यायसंगत और उचित पाए जाएं। (पैरा-9,10,11,14)

(बी) आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 378 - दोषमुक्त वाद में अपील - अपीलीय न्यायालय द्वारा विचारणीय न्यायालय के दोषमुक्त करने के आदेश को निरस्त करते समय इसे आरोपी के पक्ष में निर्दोषता की धारणा को उचित महत्व और विचार देना चाहिए, और इस सिद्धांत के अनुसार कि इस तरह की धारणा को विचारणीय न्यायालय द्वारा प्रबलित, पुन: पुष्टि और मजबूत किया जाता है - दोषमुक्त करने के निर्णय को, जहां दो दृष्टिकोण संभव हैं, निरस्त नहीं करना चाहिए, भले ही अपीलीय अदालत द्वारा गठित दृष्टिकोण अधिक संभावित हो, हस्तक्षेप दोषमुक्ति को केवल तभी उचित ठहराया जा सकता है जब यह विकृत दृष्टिकोण पर आधारित हो। (पैरा-18)

चार आरोपी - तीन आरोपियों की मृत्यु हो गई - जीवित आरोपियों के विरुद्ध अपील का निर्णय किया गया - पीडब्लू4, पीडब्लू1 के प्रति शत्रुतापूर्ण था - दोनों घटना से पूर्व मुकदमेबाजी में सम्मिलित थे - एफआईआर का तथ्य कि आरोपी ने पीडब्लू4 से दहेज की मांग की थी, झूठी है - विचारणीय न्यायालय ने पीडब्लू1, पीडब्लू2, पीडब्लू3 और PW4 के बयानों पर विश्वास नहीं किया है - विचारणीय न्यायालय का निष्कर्ष - अभियोजन आरोपी-प्रतिवादियों के विरुद्ध अपना वाद सिद्ध करने में विफल रहा - दोषमुक्त - इसलिए अपील की गई। **(पैरा-3,7,20)**

आयोजित:-साक्ष्य मौखिक और चिकित्सीय साक्ष्यों का खंडन करता है। किसी भी अन्य आरोपी पर कोई प्रत्यक्ष कार्रवाई नहीं की गई। शीर्ष अदालत के दोषमुक्ति के निर्णय के साथ समापन। रिकॉर्ड और कार्यवाही निचली अदालत को वापस भेज दी गई। **(पैरा-20,22,23)**

अपील निरस्त। **(ई-7)**

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. एम.एस. नारायण मेनन @ मणि बनाम केरल राज्य एवं अन्य, (2006) 6 एस.सी.सी. 39

2. चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, (2007) 4 एस.सी.सी. 415

3. गोवा राज्य बनाम संजय ठकरान और अन्य.. (2007) 3 एस.सी.सी. 75

4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम वीर सिंह एवं अन्य, 2007 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 5553

अनुवादित

5. गिरजा प्रसाद (मृत) एल.आर.एस. बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2007 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 5589
6. लूणा राम बनाम भूपत सिंह एवं अन्य (2009) एससीसी 749
7. मुक्किया और अन्य बनाम राज्य, प्रतिनिधि, पुलिस निरीक्षक द्वारा, टी.एन., एयर 2013 एससी 321
8. कर्नाटक राज्य बनाम हेमारेड्डी, एयर 1981 एससी 1417
9. शिवशरणप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, जेटी 2013 (7) एससी 66
10. पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा, (2013) 14 एससीसी 153
11. जयस्वामी बनाम कर्नाटक राज्य, (2018) 7 एससीसी 219
12. शैलेन्द्र राजदेव पासवान बनाम गुजरात राज्य, (2020) 14 एससी 750
13. सैमसुल हक बनाम असम राज्य, (2019) 18 एससीसी 161

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, जे.
&
माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मिथिलेश कुमार तिवारी और प्रतिवादी-मूल दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री अचिंत्य कुमार को सुना। मालिक की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

2. यह दोनों अपील एक ही घटना से उत्पन्न हुई हैं जिसमें एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी और एक व्यक्ति घायल हो गया था। आदेश से प्रथम अपील संख्या - 637 वर्ष 2005 मृतक के दावेदार/उत्तराधिकारी द्वारा दायर दावा याचिका से उत्पन्न है जबकि आदेश से प्रथम अपील संख्या - 643 वर्ष 2005 घायल-दावेदार द्वारा दायर दावा याचिका से उत्पन्न है।

3. यह प्रस्तुत किया गया है कि दुर्घटना के समय मृतक की आयु लगभग 61 वर्ष थी और उसे लगभग रु. 4,000/- प्रति माह का भुगतान किया जा रहा था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान आयुक्त के समक्ष यह आग्रह किया गया था कि 61 वर्ष की आयु के व्यक्ति को चालक के रूप में नियोजित नहीं किया जा सकता था। इसके अलावा, उनका ड्राइविंग लाइसेंस 26.01.2002 को समाप्त हो गया था और इसलिए, बीमा कंपनी पर भी दायित्व नहीं डाला जा सकता था। आयुक्त ने मृतक के वारिस को 2,27,540/- रुपये और घायल-दावेदार को 3,18,772.80 रुपये दिए, जबकि दावा याचिकाएं रुपये 2,00,000/- प्रत्येक के लिए थीं। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि ब्याज दर 5% से 6% होगी और आयुक्त ने उक्त तथ्य को नजरअंदाज किया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि ऐसा कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है जिसने बयान दिया हो कि दुर्घटना दूसरे वाहन के लापरवाही और असावधानी पूर्वक गाड़ी चलाने के कारण हुई थी। अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान आयुक्त ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया है कि दावेदार यह साबित करने में असफल रहे कि मृतक विपक्षी पक्ष संख्या 1 के अधीन रोजगार में था।

अनुवादित

4. बीमा कंपनी द्वारा उठाए गए महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न इस प्रकार हैं:

"1. क्या, विद्वान आयुक्त के पास अपीलार्थी के खिलाफ 2,27,540/- रुपये का मुआवजा देने का अधिकार क्षेत्र है, जबकि दावेदारों ने उनकी दावा याचिका में केवल रु. 2,00,000/- मुआवजे की राशि का दावा किया है?

2. क्या दावा याचिका दायर करने से पहले विपक्षी पक्ष को कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 के अंतर्गत नोटिस दिए बिना अपीलार्थी, ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी, के विरुद्ध 12% प्रति वर्ष का ब्याज लगाया जा सकता है?

3. क्या 61 वर्ष का ड्राइवर कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के तहत कर्मकार है?

4. क्या, गणना के निष्कर्ष दिए बिना, 2,27,540/- रुपये मुआवजे की राशि का अनुदान, कानून के अंतर्गत धारणीय है?"

5. इन अपीलों को स्वीकार करते समय, खंड पीठ ने कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 (इसके बाद 'अधिनियम, 1923' के रूप में संदर्भित) की धारा 30 के अंतर्गत आवश्यक कोई भी विधिक प्रश्न नहीं निरूपित किया। जैसा भी हो, इस न्यायालय के लिए बीमा कंपनी द्वारा उठाए गए विधिक प्रश्नों से निपटना उपयोगी होगा।

6. इससे पहले कि यह न्यायालय किसी अन्य मुद्दे पर विचार करे, प्रश्न संख्या 2 जो उठाया गया है वह, **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी बनाम सिबी जॉर्ज और अन्य, 2012 (4) टीएसी 4 (एससी)** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के दृष्टिगत बीमा कंपनी के विरुद्ध उत्तरित है। अधिनियम, 1923 में संशोधन के बाद ब्याज दर, 12% है।

7. जहां तक प्रश्न संख्या 1 की बात है, शीर्ष न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि जहां तक लाभकारी कानून का सवाल है, अदालतें उचित मुआवजे के रूप में जाना जाने वाला अनुदान दे सकती हैं, यदि वह अधिनियम, 1923 के तहत फार्मूले के अनुसार काम कर जाता है, जिसे इस मामले में आयुक्त द्वारा उचित रूप से इस्तेमाल किया गया है। जहां तक दंड का सवाल है, यह वह था जिसे व्यक्तिपरक दंड के रूप में जाना जाता है और इसलिए, इसमें इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

8. यह इस न्यायालय को अंतिम प्रश्न पर ले जाता है कि क्या 61 वर्ष की आयु के व्यक्ति को ड्राइवर के रूप में नियुक्त किया जा सकता है या नहीं। सिर्फ इसलिए कि जांच अधिकारी ने जांच रिपोर्ट में उसकी उम्र लगभग 61 वर्ष 47 दिन बता दी है, इससे वह गैर-कर्मचारी नहीं बन जाएगा क्योंकि कर्मकार प्रतिकर अधिनियम में उम्र कारक का कहीं भी वर्णन नहीं किया गया है, कि 60 वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्ति को ड्राइवर के रूप में कार्यरत नहीं किया जा सकता है। बीमा कंपनी द्वारा इस तथ्यात्मक सामग्री का खंडन करने के लिए कुछ भी नहीं प्रस्तुत किया गया है कि उसे मालिक द्वारा नियोजित किया गया था।

9. यह इस न्यायालय को इस तथ्य पर ले जाता है कि लाइसेंस दुर्घटना की तारीख से बहुत

अनुवादित

पहले समाप्त हो गया था। ड्राइविंग लाइसेंस की समय सीमा समाप्त होने की बात को बीमा कंपनी द्वारा ठोस रूप से साबित नहीं किया गया है। **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पूनम केसरवानी और अन्य, 2008 लॉ सुइट (सभी) 1557** के निर्णय के आलोक में, जब बीमा कंपनी द्वारा यह साबित नहीं किया गया कि पॉलिसी की शर्तों का उल्लंघन हुआ है, तो अपील सफल नहीं हो सकती। इसके विपरीत, बीमा कंपनी ने पॉलिसी नहीं प्रस्तुत की है, इसलिए, बीमा कंपनी के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकाल रहा है क्योंकि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम जुगल किशोर और अन्य, एआईआर 1988 एससी 719** में शीर्ष न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत, बीमा पॉलिसी प्रस्तुत करना बीमा कंपनी का बाध्य कर्तव्य था।

10. 2.11.2018 को निर्णित **उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाता में, गोल्ला राजन्ना आदि आदि बनाम डिविजनल मैनेजर और अन्य, 2017 (1) टीएसी 259 (एससी) और मायन बनाम मुस्तफा और अन्य, 2022 एसीजे 524** में भी, शीर्ष अदालत ने माना है कि श्रमिक प्रतिकर अधिनियम की धारा 30 के अंतर्गत, उच्च न्यायालय तथ्यों के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकता है जब तक कि वे विकृत साबित न हो जाएं और न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कि इसमें विधिक प्रश्न शामिल न हो। **सलीम बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2022 एसीजे 526** का निर्णय भी इस न्यायालय को विद्वान आयुक्त के तर्कसंगत निर्णय में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं देगा।

11. उपरोक्त के दृष्टिगत, ये दोनों अपील विफल होती हैं और खारिज की जाती हैं।

12. सावधि जमा में रखी गई राशि दावेदारों को तुरंत वितरित की जाए।

(2023) 2 ILRA 262

अपील न्यायिक क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 20.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी,

शासकीय अपील संख्या 1818 /2004

उत्तर प्रदेश राज्य

...अपीलकर्ता

बनाम

लक्ष्मी बनिया और अन्य

...अभियुक्त-प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: जी.ए.

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री विनय कुमार सिंह, श्री अया प्रसाद तिवारी, श्री अजय कुमार सिंह, श्री प्रकाश चंद्र श्रीवास्तव, श्री शिव शंकर त्रिपाठी, श्री सिद्धार्थ शुक्ला

(ए) आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161,313 और 378 - दोषमुक्ति के वाद में अपील, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या - दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में हस्तक्षेप करते समय उच्च न्यायालय की शक्ति और क्षेत्राधिकार - उच्च न्यायालय को साक्ष्य की संपूर्णता में दोबारा सराहना नहीं करनी चाहिए, विशेषकर जब विचारणीय न्यायालय के निष्कर्षों में कोई गंभीर दुर्बलता मौजूद नहीं थी - केवल मृत्युपूर्व घोषणा

अनुवादित

के आधार पर दोषसिद्धि का साक्ष्य मूल्य और निर्वाह - मृत्युपूर्व घोषणा को रिकॉर्ड करने के लिए न्यायिक या कार्यकारी मजिस्ट्रेट की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है और यह केवल विवेक के नियम के रूप में आवश्यक है ताकि अभियोजन पक्ष को अतिरिक्त ताकत मिल सके, निर्दोषता की दोहरी धारणा आरोपी प्रतिवादियों के पक्ष में कार्य करती है। (पैरा-11,17,18)तथ्य के गवाह पक्षद्रोही हो गए - विरोधाभासी कथन - सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया कथन - मृत्युपूर्व कथन के रूप में दावा किया गया - लेकिन कोई पुष्ट साक्ष्य नहीं, आरोपी व्यक्तियों को अपराध से जोड़ने के लिए कोई अन्य साक्ष्य नहीं - ऐसे कथन दर्ज करने की तिथि से दो दिन का अंतराल और कथन देने का समय मृतक की मृत्यु - अभियोजन पक्ष वाद को संदेह से परे सिद्ध नहीं कर सका - आरोपी व्यक्ति को संदेह का लाभ दिया गया, विचारणीय न्यायालय ने दोषमुक्त का निर्णय सुनाया - इसलिए अपील योजित की गई। **(पैरा-6,18)**

आयोजित:- विचारणीय न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत संपूर्ण साक्ष्यों की सराहना करते हुए वाद पर एक प्रशंसनीय और संभावित दृष्टिकोण अपनाया, जिसे इस न्यायालय द्वारा एक अलग दृष्टिकोण से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है। **(पैरा-19)**

अपील निरस्त। **(ई-7)**

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. बन्नारेड्डी एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, (2018) 5 एससीसी 790
2. जयम्मा बनाम कर्नाटक राज्य, 2021 (6) एससीसी 213
3. वीरेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2022 (3) एडीजे 354 डीबी
4. राजेश प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2022) 3 एससीसी 471
5. पद्मबेन शामलभाई पटेल बनाम गुजरात राज्य, (1991) 1 एससीसी 744
6. के. रामचन्द्र रेड्डी एवं अन्य बनाम पब्लिका अभियोजक, एआईआर 1976 एससी 1994
7. लक्ष्मण बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2002) 6 एससीसी 710
8. जगबीर सिंह बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2019) 8 एससीसी 779
9. जयम्मा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2021) 6 एससीसी 213

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,
एवं
माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता-राज्य यूपी के लिए उपस्थित श्री रतन सिंह, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना आरोपी प्रतिवादी-लक्ष्मी बनिया और श्री विनय कुमार सिंह के अधिवक्ता श्रीप्रकाश चंद्र श्रीवास्तव को सुना,
और आरोपी प्रतिवादी-चंद्रभान कुर्मी के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. वर्तमान सरकारी अपील को सत्र परीक्षण संख्या-338 वर्ष 2002 (राज्य बनाम लक्ष्मी बनिया) में अतिरिक्त सत्र न्यायधीश, न्यायालय संख्या-3 द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 31.10.2003 के खिलाफ और सत्र परीक्षण संख्या-420 वर्ष 2002 (राज्य बनाम चंद्रभान कुर्मी) में धारा 302 भ०द०वि० के तहत मुकदमा अपराध संख्या-33/89 से उत्पन्न किया गया है,

अनुवादित

पुलिस थाना-खजनी, जिला गोरखपुर जिसमें दोनों अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत आरोपों से बरी कर दिया गया है।

3. प्राथमिकी के अनुसार अभियोजन की कहानी संक्षेप में यह है कि सूचनाकर्ता भजूराम पुत्र पूर्णावाशी बनिया, निवासी ग्राम भिउरी, थाना-खजनी, जिला गोरखपुर ने अपने भाई बैजनाथ के साथ बंसगांव से खजनी तक पक्की सड़क पर एक जमीन खरीदी थी, जो गांव उनवाल में रह रहा है। उक्त जमीन पर सूचनाकर्ता ने मकान बना लिया। उक्त कन्हैया त्रिपाठी के रिश्तेदार लक्ष्मी और अन्य लोगों ने भी उक्त जमीन के कुछ हिस्से पर एक घर बनाया था और उक्त घर में रहते थे। भूमि के कुछ हिस्से के संबंध में नीचे की अदालत के समक्ष एक दीवानी मुकदमा भी लंबित था। दिनांक 05.05.1989 को रात्रि लगभग 11:00 बजे जब उसका भाई बैजनाथ, भतीजी कोतवाल एवं उसकी पुत्रवधू श्रीमती फेकनादेवी उसके घर के सामने लेटे हुए बातें कर रहे थे और वह दूर पश्चिम की ओर सो कर जागृत अवस्था में था, तभी अचानक उसे अपने भाई का 'बचाओ बचाओ' का शोर सुनाई दिया। टॉर्च जलाने के बाद वह अपने भाई की तरफ भागा। एक हरि कोइरी भी उस स्थान पर पहुंचा जहां लालटेन जल रही थी। उन्होंने देखा कि बैजनाथ को लखमी बनिया और दो अन्य लोगों ने पकड़ लिया और चंद्रभान ने चाकू से लैस होकर अपने भाई बैजनाथ को चाकू मार दिया और पश्चिम की ओर भाग गया। उन्होंने लालटेन की रोशनी में आरोपी को देखा और पहचाना। अधिक खून बह जाने के कारण सूचनाकर्ता व अन्य को उसके भाई बैजनाथ को सदर अस्पताल में भर्ती कराया गया है, जहां उसका इलाज किया जा रहा है। वह अपने भाई को परिवार के सदस्यों और मेहमानों की देखरेख में छोड़कर घटना की जानकारी देने पहुंचा। उक्त लिखित तहरीर पर दिनांक 06.05.1989 को प्रातः 9:15 बजे थाना-खजानी में आरोपी लखमी बनिया, चंद्रभान कुर्मी एवं दो अन्य के विरुद्ध प्रथम सूचना दर्ज कर धारा 307 भ०द०वि० की धारा 33 YEAR12989 के तहत मामला दर्ज किया गया।

4. विवेचनाधिकारी को नामित किया गया था और उन्होंने जांच की थी। अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान भी दर्ज किए गए और उसके बाद आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। मामला सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध था और आरोपी के खिलाफ आरोप तय किए गए थे जिन्होंने अपनी बेगुनाही की दलील दी थी और दोषी नहीं था।

5. अभियोजन मामले के समर्थन में, अ०सा०-1 कोतवाल, अ०सा०-2 भुजराम, अ०सा०-3 फेकना साक्षी, अ०सा०-4 हरि, अ०सा०-5 शिवराम को नीचे की अदालत के समक्ष पेश किया गया और उनकी जांच की गई।

6. बरी करने का फैसला निचली अदालत द्वारा इस आधार पर पारित किया गया था कि अ०सा०-1 कोतवाल (मृतक का बेटा) को छोड़कर, तथ्य के अन्य सभी गवाह मुकर गए हैं। यह पाया गया कि अ०सा०-2 भाजूराम (मृतक का सगा भाई), अ०सा०-3 फेकना साक्षी (मृतक की पत्नी), अ०सा०-4 हरि जिसे तथ्य का स्वतंत्र गवाह कहा जाता है, अ०सा०-5 शिव राम मुकर गए हैं और उनकी जिरह में कुछ भी नहीं निकला। आगे यह पाया गया कि अभियोजन पक्ष ने यह रुख अपनाया है कि मृतक के द०प्र०स० की धारा 161 के तहत दर्ज बयान, जो घायल अवस्था में था, को मृत्यु पूर्व बयान के रूप में माना जा सकता है क्योंकि मृत्यु घटना की तारीख से दो दिन बाद

हुई थी, हालांकि, नीचे की अदालत ने पाया कि न तो डॉक्टर और न ही विवेचनाधिकारी (आईओ) को यह साबित करने के लिए पेश किया गया था कि मृतक का बयान ऐसा है आईओ द्वारा दर्ज किए गए मामले को महत्वपूर्ण अभियोजन पक्ष के गवाह, अर्थात् डॉक्टर और आईओ के पेशी के अभाव में मृत्यु पूर्व बयान के रूप में नहीं माना जा सकता है, जिन्होंने कथित तौर पर मृतक का बयान दर्ज किया था जब वह घायल स्थिति में था। आगे यह पाया गया कि अ०सा०-1 कोतवाल लगभग 13 साल का बच्चा था और उसका बयान लगभग 14 साल के अंतराल के बाद दर्ज किया गया था और घटना का वर्णन तथ्य के अन्य गवाहों द्वारा दिए गए बयान के प्रकाश में विश्वास करने योग्य नहीं था, जो मुकर गए थे। यह भी पाया गया कि अ०सा०-2 भुजरम, जो मृतक का सगा भाई है और कहा जाता है कि वह घटनास्थल से लगभग पांच कदम की दूरी पर सो रहा था, वह भी मुकर गया था और उसने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि उसने घटना नहीं देखी है। अ०सा०-3 फेकना साक्षी (मृतक की पत्नी) ने कहा था कि वह कहीं और सो रही थी और इसलिए, अ०सा०-1 द्वारा उठाए गए रुख का भी समर्थन नहीं किया था। ऐसी परिस्थितियों में, निचली अदालत ने पाया कि अभियोजन पक्ष अपने मामले को संदेह से परे साबित नहीं कर सका और आरोपी व्यक्ति को संदेह का लाभ दिया गया और बरी करने का फैसला पारित किया गया।

7. आक्षेपित निर्णय को चुनौती देते हुए, श्री रतन सिंह, अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि यहां आरोपी व्यक्तियों को दोषी ठहराने के लिए ठोस सबूत थे। वह आगे प्रस्तुत करता है कि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है जहां घटना को कम से कम चार गवाहों द्वारा देखा गया था और एक गवाह यानी अ०सा०-1 कोतवाल (मृतक का बेटा) ने अभियोजन पक्ष के संस्करण का स्पष्ट रूप से समर्थन किया था और अभियोजन पक्ष के खिलाफ उसकी जिरह में कुछ भी सामने नहीं आया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि केवल इसलिए कि कुछ अन्य गवाह मुकर गए हैं, यह अपने आप में बचाव पक्ष को लाभ नहीं दे सकता है और इसलिए, गवाहों के बयानों पर विचार किया जा सकता है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि मृतक का अंतिम बयान जब आईओ द्वारा द०प्र०स० की धारा 161 के तहत बयान के रूप में दर्ज किया गया था, उसे मृत्यु पूर्व बयान के रूप में माना जा सकता है और यह अपने आप में निर्णय को उलटने के लिए पर्याप्त है। इसलिए, सबमिशन यह है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित बरी करने के फैसले और आदेश पर गंभीरता से विचार करने और उलटने की आवश्यकता है और यहां आरोपी व्यक्ति दोषी ठहराए जाने के लिए उत्तरदायी हैं।

8. प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री प्रकाश चंद्र श्रीवास्तव और श्री विनय कुमार सिंह ने प्रस्तुत किया है कि अ०सा०-1 कोतवाल (मृतक का बेटा) का बयान जो घटना के समय 13 साल का था और जिसका बयान YEAR124 साल के अंतराल के बाद दर्ज किया गया था, विशेष रूप से तथ्य के अन्य गवाहों द्वारा उठाए गए विरोधाभासी रुख को देखते हुए विश्वास के लायक नहीं है जो सीधे मृतक से संबंधित हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अ०सा०-2, अ०सा०-3, अ०सा०-4 और अ०सा०-5 मुकर गए हैं और उनकी जिरह में कुछ भी सामने नहीं आया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि द०प्र०स० की धारा 161 के तहत आईओ द्वारा दर्ज मृतक के बयान को मृत्यु पूर्व बयान के रूप में नहीं माना जा सकता है क्योंकि

अनुवादित

बयान की रिकॉर्डिंग और मृत्यु के समय के बीच एक लंबा अंतराल था और इसलिए, निर्णय और आदेश में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता है।

9. हमने प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

10. आगे बढ़ने से पहले, बरी करने के खिलाफ अपील पर कानून पर ध्यान देना उचित होगा।

11. बन्नारेड्डी और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य, (2018) 5 एस.सी.सी. 790 के मामले में, पैराग्राफ 10 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बरी होने के खिलाफ अपील में हस्तक्षेप करते हुए उच्च न्यायालय की शक्ति और अधिकार क्षेत्र पर विचार किया है और पैराग्राफ 26 में यह माना गया है कि "उच्च न्यायालय को अपनी संपूर्णता में साक्ष्य की पुनर्मूल्यांकन नहीं करनी चाहिए थी, खासकर जब विचारण न्यायालय के निष्कर्षों में कोई गंभीर कमजोरी मौजूद नहीं थी। निचली अदालत द्वारा पारित बरी करने के आदेश को रद्द करने के पीछे कोई औचित्य नहीं है, खासकर जब अभियोजन पक्ष का मामला कई विरोधाभासों और कमजोरियों से ग्रस्त है

12. जयम्मा बनाम कर्नाटक राज्य, 2021 (6) एस.सी.सी. 213 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील में उच्च न्यायालय द्वारा जांच की शक्ति के प्रयोग की सीमाओं की व्याख्या की है।

13. वीरेंद्र सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2022 (3) एडीजे 354 डीबी में इस न्यायालय के हालिया फैसले में, शामिल मुद्दे पर कानून पर विचार किया गया है।

14. इसी तरह के विचार को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राजेश प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2022) 3 एस.सी.सी. 471 में दोहराया है।

15. रिकॉर्ड के अवलोकन पर, हम पाते हैं कि तथ्य के चार गवाहों में से, तीन गवाह मृतक से निकटता से संबंधित हैं; एक मृतक का बेटा है, दूसरा पत्नी है और तीसरा सगा भाई है, जिनमें से दो ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है, हालांकि उन्हें चश्मदीद गवाह होने का दावा किया गया था और यहां तक कि स्वतंत्र चश्मदीद गवाह ने भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है और अ०सा०-1 कोतवाल (मृतक का बेटा) को छोड़कर, सभी शत्रुतापूर्ण और विरोधाभासी रुख वर्तमान मामले के चेहरे पर स्पष्ट से अधिक है। अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की उपस्थिति भी संदिग्ध है, क्योंकि उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह भी कहा है कि वे मौके पर मौजूद नहीं थे, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि उन्होंने अ०सा०-1 कोतवाल द्वारा अपनाए गए रुख का समर्थन नहीं किया है।

16. जहां तक विवेचनाधिकारी द्वारा द०प्र०स० की धारा 161 के तहत दर्ज मृतक के बयान को मृत्यु पूर्व बयान के रूप में मानने के प्रश्न का संबंध है, पद्मबेन शामलभाई पटेल बनाम गुजरात राज्य, (1991) 1 एस.सी.सी. 744; के. रामचंद्र रेड्डी और एक अन्य बनाम लोक अभियोजक, ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 1994; लक्ष्मण बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2002) 6 एस.सी.सी. 710; जगबीर सिंह बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2019) 8 एस.सी.सी. 779; और जयम्मा और एक अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2021) 6 एस.सी.सी. 213।

17. जहां तक वर्तमान मामले के तथ्यों का संबंध है, जयम्मा (उपरोक्त) के फैसले का उल्लेख करना

पर्याप्त है, जिसमें मृत्यु पूर्व घोषणा के आधार पर दोषसिद्धि के साक्ष्य मूल्य और निर्वाह पर व्यापक रूप से विचार किया गया था और सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया था। यह माना गया कि मृत्युपूर्व बयान को रिकॉर्ड करने के लिए न्यायिक या कार्यकारी मजिस्ट्रेट की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है और यह केवल विवेक के नियम के रूप में आवश्यक है ताकि अभियोजन पक्ष के मामले में अतिरिक्त ताकत जुटाई जा सके। पूर्वोक्त मामले में, विचारण न्यायालय ने पाया कि मृत्यु पूर्व बयान (प्रदर्श क- पी -5) विश्वास के लायक नहीं था क्योंकि बयान (प्रदर्श क- पी -5) के लिए कोई पुष्टिकारक सबूत नहीं था और अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपी व्यक्तियों को अपराध से जोड़ने के लिए कोई अन्य सबूत नहीं दिया गया था, सिवाय बयान (प्रदर्श क- पी -5) के, जिसे केवल मृत्यु पूर्व बयान के आधार पर आरोपी व्यक्तियों को दोषी ठहराने के लिए असुरक्षित माना गया था। उच्च न्यायालय ने अपीलीय शक्तियों के प्रयोग में मृत्युपूर्व बयान पर भरोसा करते हुए आरोपी व्यक्तियों को बरी करने के फैसले को उलट दिया। अपीलीय की शक्तियों पर चर्चा करते हुए और इस संबंध में सिद्धांतों को संक्षिप्त करने के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि मृत्यु पूर्व घोषणा पर रखा गया भरोसा टिकाऊ नहीं था और आरोपी व्यक्तियों को बरी करने के विचारण न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि की। जयम्मा (उपरोक्त) के पैराग्राफ 26 और 27 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"26. अतिरिक्त सत्र न्यायधीश, चित्रदुर्ग ने अपने निर्णय दिनांक 30-11-2001 में बिंदु संख्या-1 तैयार किया कि क्या अभियोजन पक्ष सभी उचित संदेह से परे साबित करने में सक्षम था कि जयम्मा को मारने के इरादे से आरोपी व्यक्ति उसके पास गए और पिछले विवाद के संबंध में झगड़ा उठाया और फिर उसे मिट्टी के तेल से डुबो दिया और उसे आग लगा दी। अतिरिक्त सत्र न्यायधीश ने पूरे साक्ष्य की व्यापक जांच की और इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद कि मकसद या घटना के सभी गवाहों ने मुकर लिया है और मुकर जाने की घोषणा की है, उन्हें यह तय करने के लिए अवशिष्ट प्रश्न के साथ छोड़ दिया गया था कि क्या मौत आत्महत्या या मानव वध थी। इसके बाद, उन्होंने मृत्यु पूर्व बयान (प्रदर्श क- पी -5) पर बारीकी से विचार किया और पुलिस अधिकारी (अ०सा०-11) और डॉक्टर (अ०सा०-16) के बयानों का गंभीर विश्लेषण किया। कारक जैसे: (i) मृत्यु पूर्व घोषणा विस्तार P-5 में प्रक्षेप, (ii) हथेली पर चोटों के संबंध में अ०सा०- 11 और अ०सा०- 16 के बयानों में विरोधाभास, (iii) 80% चोटों वाली पीड़िता स्पष्ट रूप से बात करने या बयान देने की स्थिति में नहीं थी, (iv) मृतक के बेटे अ०सा०- 2 ने खुद कहा है कि उसकी माँ ने आत्महत्या कर ली क्योंकि वह यह सहन नहीं कर सकती थी कि उसके दूसरे बेटे को जेल भेजा गया था, (v) बयान के लिए कोई पुष्टिकारक सबूत नहीं होने के कारण पी-5, और (vi) अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में अपीलकर्ताओं को अपराध से जोड़ने के लिए कोई अन्य सबूत नहीं है, सिवाय बयान के पी-5, उन्होंने अपीलकर्ताओं को मृत्युपूर्व बयान (प्रदर्श क- पी-5) के एकांत आधार पर दोषी ठहराना असुरक्षित माना।

27. हम विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का पूरी तरह से समर्थन करते हैं। इस आदेश के पैरा 22 में हमने जो कारण बताए हैं, वे अभियोजन मामले की

अनुवादित

वास्तविकता पर बादल डालने के लिए पर्याप्त हैं। हमें केवल मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क- पी-5 के आधार पर सजा को बरकरार रखना मुश्किल लगता है।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

18. वर्तमान मामले में, यह रिकॉर्ड पर स्पष्ट है कि न तो डॉक्टर का उत्पादन किया गया था जिसने कहा है कि मृतक जो बयान देने के लिए मन की स्थिति में था; और यहां तक कि आईओ को भी इस तरह के बयान को साबित करने के लिए पेश नहीं किया गया था। हम आगे पाते हैं कि इस तरह के बयान की रिकॉर्डिंग की तारीख और मृतक की मृत्यु के समय से लगभग दो दिनों का अंतर था। वर्तमान मामले में भी, हम पाते हैं कि द०प्र०स० की धारा 161 के तहत दर्ज बयान की पुष्टि करने वाला कोई सबूत नहीं था, जिसे ऊपर बताए गए कारणों के लिए मृत्यु पूर्व बयान के रूप में दावा किया जा रहा है और अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में बयान को छोड़कर आरोपी व्यक्तियों को अपराध से जोड़ने के लिए कोई अन्य सबूत नहीं था। इस प्रकार, ऐसी परिस्थितियों में, जब तक कि इस तरह के बयान को संदेह से परे साबित नहीं किया जाता है, इसे आरोपी उत्तरदाताओं को दोषी ठहराने के लिए एकमात्र आधार बनाने के लिए मृत्यु पूर्व बयान के रूप में नहीं माना जा सकता है या किसी भी मामले में, भले ही इसे मृत्यु पूर्व बयान के रूप में माना जाता हो, यह किसी भी परिस्थिति में, अभियुक्त-उत्तरदाताओं को केवल इसके आधार पर दोषी ठहराने के लिए सुरक्षित नहीं होगा। वह भी बरी करने के फैसले को उलटकर, जब तय कानून के अनुसार निर्दोषता की दोहरी धारणा आरोपी प्रतिवादियों के पक्ष में संचालित होती है।

19. उपरोक्त के मद्देनजर, जैसा कि साक्ष्य के अवलोकन से परिलक्षित होता है, हम पाते हैं कि नीचे के न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद संपूर्ण साक्ष्य की सराहना पर मामले का एक प्रशंसनीय और संभावित दृष्टिकोण लिया है, जिसे इस न्यायालय द्वारा ऊपर चर्चा किए गए कानून के अनुसार एक अलग दृष्टिकोण अपनाकर प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है।

20. ऊपर की गई चर्चा से, सरकारी अपील खारिज हो जाती है।

(2023) 2 ILRA 268

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति मो. अजहर हुसैन इदरीसी,

शासकीय अपील संख्या 2103/1992

उत्तर प्रदेश राज्य

...अपीलकर्ता

बनाम

मूल चंद और अन्य

...आरोपी प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: ए.जी.ए.

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री राजीव शर्मा **(ए) आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 और 378 (3) - दोषमुक्ति के वाद में अपील, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302/34 - हत्या - दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपीलीय न्यायालय की शक्तियां - अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करते समय, भले ही रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर दो उचित विचार/निष्कर्ष संभव हों, अपीलीय अदालत को विचारणीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए**

अनुवादित

दोषमुक्ति के निष्कर्ष को अस्तव्यस्त नहीं करना चाहिए - दोषमुक्ति अपीलों में, अपीलीय न्यायालय को निर्णय को पुनः लिखने या नए तर्क प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है जब नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा बताए गए कारण न्यायसंगत और उचित पाए जाएं। (पैरा-12, 17) (बी) आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 378 - दोषमुक्त वाद में अपील - अपीलीय न्यायालय द्वारा विचारणीय न्यायालय के दोषमुक्त करने के आदेश को निरस्त करते समय इसे आरोपी के पक्ष में निर्दोषता की धारणा को उचित महत्व और विचार देना चाहिए, और इस सिद्धांत के अनुसार कि इस तरह की धारणा को विचारणीय न्यायालय द्वारा प्रबलित, पुन: पुष्टि और मजबूत किया जाता है - दोषमुक्त करने के निर्णय को, जहां दो दृष्टिकोण संभव हैं, निरस्त नहीं करना चाहिए, भले ही अपीलीय अदालत द्वारा गठित दृष्टिकोण अधिक संभावित हो, हस्तक्षेप दोषमुक्ति को केवल तभी उचित ठहराया जा सकता है जब यह विकृत दृष्टिकोण पर आधारित हो। (पैरा-21)

चार आरोपी - तीन आरोपियों की मृत्यु हो गई - जीवित आरोपियों के विरुद्ध अपील का निर्णय किया गया - विचारणीय न्यायालय ने रिकॉर्ड पर सबूतों की सही सराहना की - आईपीसी की धारा 34 के तहत आरोपियों के विरुद्ध वाद स्थापित किया - शृंखला अधूरी है - न्यायालय का निष्कर्ष है कि कम साक्ष्य के कारण अभियुक्तों को उन अपराधों के लिए दंडित नहीं किया जा सकता है या दोषी ठहराया जा सकता है जिनके लिए उन पर आरोप लगाया गया है - दोषमुक्त - इसलिए अपील की जाएगी। **(पैरा-22,23)**

आयोजित:- वर्तमान वाद में तथ्यात्मक परिदृश्य न्यायालय को विचारणीय न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण अपनाने की अनुमति नहीं देगा। यह न्यायालय विचारणीय न्यायालय के निष्कर्षों से सहमत है। अभिलेख और कार्यवाही विचारणीय न्यायालय को पुनः प्रेषित की गई। **(पैरा-24,25)**

अपील निरस्त। **(ई-7)**

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. एम.एस. नारायण मेनन @ मणि बनाम केरल राज्य एवं अन्य, (2006) 6 एस.सी.सी. 39
2. चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, (2007) 4 एस.सी.सी. 415
3. गोवा राज्य बनाम संजय ठकरान और अन्य.. (2007) 3 एस.सी.सी. 75
4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम वीर सिंह एवं अन्य, 2007 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 5553
5. गिरजा प्रसाद (मृत) एल.आर.एस. बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2007 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 5589
6. लूणा राम बनाम भूपत सिंह एवं अन्य (2009) एससीसी 749
7. मुक्किया और अन्य बनाम राज्य, प्रतिनिधि, पुलिस निरीक्षक द्वारा, टी.एन., एयर 2013 एससी 321
8. कर्नाटक राज्य बनाम हेमारेड्डी, एयर 1981 एससी 1417
9. शिवशरणप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, जेटी 2013 (7) एससी 66

अनुवादित

10. पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा, (2013) 14 एससीसी 153
11. जयस्वामी बनाम कर्नाटक राज्य, (2018) 7 एससीसी 219
12. शैलेन्द्र राजदेव पासवान बनाम गुजरात राज्य, (2020) 14 एससी 750
13. सैमसुल हक बनाम असम राज्य, (2019) 18 एससीसी 161

(माननीय न्यायमूर्ति मो. अजहर हुसैन इदरीसी)

1. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 (3) के तहत यह अपील (संक्षेप में 'द०प्र०स०'), राज्य के आदेश पर, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-4, एटा द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 205 वर्ष 1990 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मूलचंद्र और अन्य) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 24.8.1992 के खिलाफ धारा 302/34 भ०द०वि० थाना-मलावन, जिला: एटा के तहत दायर की गई है जिसमें विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-प्रतिपक्षी को बरी कर दिया। आरोपी प्रतिपक्षी संख्या-1, 2 और 4 की मृत्यु हो चुकी है और अभियुक्त-प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने भी बरी किए जाने का आवेदन दिया है जिसे रिकॉर्ड में लिया गया है। प्रतिपक्षी संख्या-1, 2 और 4 के खिलाफ अपील अपास्त होती है।

2. इस मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि शिकायतकर्ता लक्ष्मण सिंह और उनके बेटे तारा सिंह, निवासी गांव दलेलपुर थाना-मलावां, जिला: एटा सरकारी गूल से अपने खेतों में पानी भरते थे। दिनांक 22.4.90 को, लक्ष्मण सिंह और उसका पुत्र तारा सिंह (मृतक) अपने खेत के लिए पानी लाने के लिए सरकारी गूल पहुंचे और लगभग 2:00 बजे जब वे अपने खेत के लिए पानी ला रहे थे। अभियुक्त-मूलचंद्र जो शिकायतकर्ता लक्ष्मण सिंह के चचेरे भाई (शिकायतकर्ता के पिता के सगे भाई का बेटा) वहां पहुंचे और कहा कि वह उन्हें इस गूल से पानी नहीं लाने देंगे क्योंकि वह अपने इंजन के लिए इससे पानी लेता है और धमकी दी अगर वे (शिकायतकर्ता और मृतक) वहां अभी भी ठहरते हैं तो उन्हें गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। डर के मारे लक्ष्मण सिंह और उसका पुत्र मृतक तारा सिंह अपने घर की ओर चल पड़े। इसके बाद मूलचंद्र ने अपने बेटों भरत सिंह, रामवीर सिंह के साथ-साथ अपनी पत्नी लाडो को बुलाया। बुलाने पर भरत सिंह, श्रीमती लाडो व रामवीर सिंह चाकू, लाठी-डंडा लेकर वहां पहुंचे और मृतक तारा सिंह को पकड़ लिया। सभी आरोपियों ने मृतक को घेर लिया और आरोपी भरत सिंह ने उसके सीने पर चाकू से वार कर दिया, जिससे घायल तारा सिंह बबूल के पेड़ के पास सड़क पर गिर गया। रोने की आवाज सुनकर आंगनलाल, सुमेर सिंह व बदन के साथ कई अन्य व्यक्तियों ने शिकायतकर्ता लक्ष्मण सिंह को वहां पहुंचकर बचाया और उक्त घटना को देखा। तारा सिंह की मौके पर ही मौत हो गई। ग्रामीणों को देखते ही आरोपी भरत सिंह, रामवीर व मूलचंद्र मौके से फरार हो गए और श्रीमती लाडो वहीं पकड़ ली गई।

इस घटना की शिकायत फूल सिंह द्वारा लिखी गई थी और उसी दिन मालवां थाना में प्रस्तुत की गई थी। दिनांक 22-4-90 को मामले के शिकायतकर्ता द्वारा मामला दर्ज किया गया और लिखित शिकायत सूचना प्रदर्श क-1 के आधार पर शाम 5.10 बजे आरोपी के खिलाफ मामला दर्ज किया गया। इसकी चिक/प्राथमिकी को प्रदर्श क-11

के रूप में चिह्नित किया गया है और मामले की प्रविष्टि जनरल डायरी (जीडी) में की गई थी, जिसकी कार्बन कॉपी प्रदर्श क (अपठनीय) है। इस मामले की जांच पुलिस उपनिरीक्षक श्री सी.आर मलिक द्वारा की गई थी। सूचना मिलने पर उन्होंने मामले के शिकायतकर्ता लक्ष्मण सिंह के बयान दर्ज किए और घटनास्थल पर पंचनामा प्रदर्श क-3 तैयार की। नक्शा नज़री प्रदर्श क-4 को उनके द्वारा मौके का निरीक्षण करने के बाद तैयार किया गया था। मृतक तारा सिंह के शव को सीलबंद कर दिया गया और फिर उसे शव परीक्षण के लिए भेजा गया और इस संबंध में सभी जरूरी कागजात तैयार किए गए। गवाहों के बयान दर्ज किए गए और उसके बाद जांच थानाध्यक्ष श्री बाबूराम वर्मा द्वारा संभाली गई और उन्होंने 11-5-1990 को आरोपी के खिलाफ अदालत में आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

3. इस लिखित रिपोर्ट के आधार पर मूलचंद्र समेत सभी आरोपियों के खिलाफ मामला दर्ज किया गया था। मामला दर्ज होने के बाद जांच शुरू की गई। विवेचनाधिकारी ने शिकायतकर्ता और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए, घटनास्थल का दौरा किया और नक्शा नज़री तैयार किया। जांच के बाद मामले के विवेचनाधिकारी ने आरोपी मूलचंद्र के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल की।

4. अभियुक्त-मूल चंद्र और अन्य पर धारा 302/34 भ०द०वि० के तहत आरोप लगाए गए थे। मामले के अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय होने के कारण सक्षम मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय में विचारण के लिए प्रतिबद्ध किया गया था। आरोपी को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उसने इन्कार किया और विचारण चाहा।

5. आरोपों को क़ानून के दायरे में लाने के लिए, अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों को पेश किया,

1	लक्ष्मण सिंह	अ०सा०-1
2	सुमेर सिंह	अ०सा०-2
3	डॉ वी के गुप्ता	अ०सा०-3
4	बाबू राम वर्मा	अ०सा०-4

6. गवाहों के चक्षुक संस्करण के समर्थन में, निम्नलिखित दस्तावेजों का उत्पादन किया गया था और सामग्री प्रमुख साक्ष्य द्वारा साबित की गई थी:

1	तहरीरी रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
2	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-2
3	पंचायतनामा	प्रदर्श क-3
4	नक़्शा नज़री	प्रदर्श क-4
5	नाश की फ़ोटो	प्रदर्श क-8
6	जी डी रिपोर्ट	प्रदर्श क-12

7. अभियोजन साक्ष्य के बाद आरोपी व्यक्ति से धारा 313 द०प्र०स० के तहत पूछताछ की गई जिसमें उसने बताया कि उसके खिलाफ झूठे साक्ष्य पेश किए गए हैं।

8. हमने विकास गोस्वामी, राज्य-अपीलकर्ता के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री राजीव शर्मा, अभियुक्त प्रतिपक्षी संख्या-3 के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

अनुवादित

9. इससे पहले कि हम गवाही और निचली अदालत के फैसले को लें, आपराधिक अपीलों में हस्तक्षेप करने के लिए रूपरेखा जहां अभियुक्त को गैर-दोषी माना गया है, पर चर्चा करने की आवश्यकता होगी।

10. सिद्धांत, जो विचारण न्यायालय द्वारा पारित बरी करने के आदेश के खिलाफ इस न्यायालय द्वारा अपील की सुनवाई को नियंत्रित और विनियमित करेंगे, को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रेणी में बहुत संक्षेप में समझाया गया है। एम.एस. नारायण मेनन @ मणि बनाम केरल राज्य और अन्य, (2006) 6 एस.सी.सी. 39 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील में उच्च न्यायालय की शक्तियों का वर्णन किया है। निर्णय के पैरा-54 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"54. किसी भी घटना में उच्च न्यायालय ने बरी होने के खिलाफ अपील के रूप में एक अपीलको लिया। यह वास्तव में पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा था। बरी करने के फैसले के खिलाफ अपीलीय शक्ति का प्रयोग करते समय भी, उच्च न्यायालय को कानून के अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिए था कि जहां दो दृष्टिकोण संभव हैं, अपीलीय न्यायालय को निचली अदालत द्वारा दर्ज किए गए बरी करने के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।"

11. इसके अलावा, चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य के मामले में, (2007) 4 एस.सी.सी. 415 में रिपोर्ट किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए;

"42. उपरोक्त निर्णयों से, हमारे सुविचारित राय में, बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील से निपटने के दौरान अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के बारे में निम्नलिखित सामान्य सिद्धांत सामने आते हैं:

[1] एक अपीलीय न्यायालय के पास उन सबूतों की समीक्षा, पुनर्मूल्यांकन और पुनर्विचार करने की पूरी शक्ति है, जिन पर बरी करने का आदेश स्थापित किया गया है।

[2] दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 इस तरह की शक्ति के प्रयोग पर कोई सीमा, प्रतिबंध या शर्त नहीं रखती है और एक अपीलीय न्यायालय साक्ष्य पर इससे पहले कि वह तथ्य और कानून दोनों के सवालों पर अपने निष्कर्ष पर पहुंच सके।

[3] विभिन्न अभिव्यक्तियां, जैसे, "पर्याप्त और सम्मोहक कारण", "अच्छे और पर्याप्त आधार", "बहुत मजबूत परिस्थितियां", "विकृत निष्कर्ष", "स्पष्ट गलतियाँ", आदि का उद्देश्य बरी होने के खिलाफ अपील में अपीलीय न्यायालय की व्यापक शक्तियों को कम करना नहीं है। इस तरह के वाक्यांश "भाषा के उत्कर्ष" की प्रकृति में अधिक हैं, जो साक्ष्य की समीक्षा करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर आने के लिए न्यायालय की शक्ति को कम करने की तुलना में बरी होने में हस्तक्षेप करने के लिए एक अपीलीय न्यायालय की अनिच्छा पर जोर देते हैं।

[4] एक अपीलीय न्यायालय, हालांकि, यह ध्यान में रखना चाहिए कि बरी होने के मामले में अभियुक्त के पक्ष में दोहरी धारणा है। सबसे पहले, आपराधिक न्यायशास्त्र के मूल सिद्धांत के तहत उसे निर्दोषता की धारणा उपलब्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि वह सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी साबित नहीं हो जाता। दूसरे, अभियुक्त को बरी कर दिया गया है, उसकी बेगुनाही की धारणा को

अनुवादित

विचारण न्यायालय द्वारा और प्रबलित, पुष्ट और मजबूत किया गया है।

[5] यदि रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर दो उचित निष्कर्ष संभव हैं, तो अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए बरी होने के निष्कर्ष को छेड़ना नहीं चाहिए।

12. इस प्रकार, यह एक स्थापित सिद्धांत है कि अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करते समय, भले ही रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर दो उचित विचार/निष्कर्ष संभव हों, अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज बरी करने के निष्कर्ष हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

13. यहां तक कि गोवा राज्य बनाम संजय ठाकरान और अन्य के मामले में, (2007) 3 एस.सी.सी. 75 में रिपोर्ट किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय की शक्तियों को दोहराया है। उक्त निर्णय के पैरा 16 में, न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"16. पूर्वोक्त निर्णयों से, यह स्पष्ट है कि बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील में शक्तियों का प्रयोग करते समय अपील न्यायालय आमतौर पर बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगा जब तक कि निचली अदालत का दृष्टिकोण कुछ प्रकट अवैधता से दूषित न हो और निष्कर्ष पर पहुंचा कोई मत किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नहीं पहुंचा जाएगा और, इसलिए, निर्णय को विकृत के रूप में वर्णित किया जाना है। केवल इसलिए कि दो विचार संभव हैं, अपील की अदालत उस दृष्टिकोण को नहीं लेगी जो निचली अदालत द्वारा दिए गए निर्णय में हस्तक्षेप करेगा। हालांकि, यदि यह विचार है कि नीचे न्यायालय द्वारा निष्कर्ष निकाला गया विकृत है और न्यायालय ने कानून की स्पष्ट त्रुटि की है और रिकॉर्ड पर भौतिक साक्ष्य की अनदेखी की है तो अपीलीय न्यायालय के पास साक्ष्य की समीक्षा करने की शक्ति है। ऐसी परिस्थितियों में, अपीलीय न्यायालय पर एक कर्तव्य डाला जाता है कि रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री के आधार पर एक न्यायसंगत निर्णय पर पहुंचने के लिए सबूतों का फिर से मूल्यांकन करने के लिए यह पता लगाने के लिए कि क्या अभियुक्त उस अपराध के कमीशन से जुड़ा है जिसका उस पर आरोप लगाया गया है।

14. इसी तरह के सिद्धांत को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम वीर सिंह और अन्य, 2007 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 5553 और गिरजा प्रसाद (मृत) में एल.आर. बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2007 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 5589 के मामलों में निर्धारित किया गया है। इस प्रकार, शक्तियां, जो यह न्यायालय बरी करने के आदेश के खिलाफ प्रयोग कर सकता है, अच्छी तरह से तय हैं।

15. लूना राम बनाम भूपत सिंह और अन्य के मामले में, (2009) एस.सी.सी. 749 में रिपोर्ट किया गया, पैरा 10 और 11 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"10. उच्च न्यायालय ने नोट किया है कि अभियोजन पक्ष का संस्करण स्पष्ट रूप से विश्वसनीय नहीं था। कुछ तथाकथित चश्मदीद गवाहों ने कहा कि मृतक की मृत्यु इसलिए हुई क्योंकि एक आरोपी ने उसका टखना मोड़ दिया था। दूसरों ने कहा कि उसका गला घोंटा गया था। अभियोजन पक्ष का मामला था कि घायल गवाहों को बस से बाहर फेंक दिया गया था। जिस डॉक्टर ने शव परीक्षण किया और गवाहों की जांच की, उसने स्पष्ट रूप से कहा था कि यह संभव नहीं था कि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को बस

से बाहर फेंक दे, जब वह चलने की स्थिति में था।

11. बरी करने के फैसले के खिलाफ अपील के मापदंडों को ध्यान में रखते हुए, हम इस अपील में हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं। उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को विकृत नहीं कहा जा सकता है और ये सबूतों पर एक संभावित दृष्टिकोण है।

16. यहां तक कि ए.आई.आर. 2013 एस.सी. 321 में रिपोर्ट किए गए पुलिस निरीक्षक, तमिलनाडु द्वारा मुक्किया और अन्य बनाम राज्य प्रतिनिधियों के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के हाल के फैसले में, पैरा 4 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"4. यह विवाद में नहीं है कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन और बचाव पक्ष के नेतृत्व में मौखिक और दस्तावेजी सबूतों के मूल्यांकन पर, अभियुक्तों को उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में बरी कर दिया। राज्य की अपील पर उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा उक्त निर्णय को पलट दिया और आरोपी को धारा 302 सपठित धारा 34 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया और आजीवन कारावास की सजा सुनाई। चूंकि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि में बरी करने के आदेश को उलटने में अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर लिया है, आइए हम बरी करने के आदेश के खिलाफ दायर अपील में उच्च न्यायालय के दायरे और शक्ति का विश्लेषण करें। इस न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला में बार-बार यह निर्धारित किया है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय के रूप में, बरी किए जाने के खिलाफ अपील पर सुनवाई करते हुए भी उच्च न्यायालय को भी हक था, और साथ ही साथ वो बाध्य भी था कि वह स्कैन करे और यदि आवश्यक हो तो पूरे साक्ष्य की पुनर्मूल्यांकन करे, हालांकि हस्तक्षेप करते समय केवल अदालत को रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर अपराध का पूर्ण आश्वासन मिलना चाहिए, न कि केवल इसलिए कि उच्च न्यायालय केवल एक और संभव, या एक अलग दृष्टिकोण ले सकता है। उपर्युक्त को छोड़कर, जहां अपील की सीमा और गहराई के विचार के मामले का संबंध है, किसी अपील से निपटने में किसी भेद या दृष्टिकोण में अंतर की परिकल्पना केवल इसलिए नहीं की गई है क्योंकि एक दोषसिद्धि के विरुद्ध थी या दूसरी दोषमुक्ति के विरुद्ध थी। [राजस्थान राज्य बनाम सोहन लाल एवं अन्य, (2004) 5 एस.सी.सी. 573]

17. यह भी एक स्थापित कानूनी स्थिति है कि बरी अपील में, अपीलीय न्यायालय को निर्णय को फिर से लिखने या नए तर्क देने की आवश्यकता नहीं है, जब निचली अदालत द्वारा बताए गए कारण न्यायसंगत और उचित पाए जाते हैं। इस तरह के सिद्धांत को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कर्नाटक राज्य बनाम हेमारेड्डी, ए.आई.आर. 1981, एस.सी. 1417 के मामले में निर्धारित किया गया है, जिसमें इसे निम्नानुसार माना जाता है:

"... इस न्यायालय ने गिरिजा नंदिनी देवी बनाम बिगेंद्र नंदिनी चौधरी (1967) 1 एस.सी.आर. 93: (ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 1124) में देखा है कि साक्ष्य के वर्णन को दोहराना या विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों को दोहराना अपीलीय न्यायालय का कर्तव्य नहीं है, न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों के साथ सामान्य सहमति

की अभिव्यक्ति जिसका निर्णय अपील के अधीन है, आमतौर पर पर्याप्त होगा।

18. हाल के एक फैसले में, शिवशरणप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, जेटी 2013 (7) एस.सी. 66 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"अपीलीय न्यायालय को पूरे सबूतों का पुनर्मूल्यांकन करने का अधिकार है, हालांकि, कुछ अन्य सिद्धांतों का भी पालन किया जाना है और यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि बरी होने से निर्दोषता की दोहरी धारणा होती है।

19. इसके अलावा, पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा, (2013) 14 एस.सी.सी. 153 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"इस मुद्दे पर कानून अच्छी तरह से तय है कि 1988 अधिनियम के तहत अपराध का गठन करने के लिए अवैध रिश्वत की मांग अनिवार्य है। मामले में ठोस सबूत विश्वसनीय नहीं होने पर आरोपी को दोषी ठहराने के लिए केवल दागी धन की वसूली पर्याप्त नहीं है, जब तक कि रिश्वत के भुगतान को साबित करने के लिए सबूत न हों या यह दिखाने के लिए कि धन स्वेच्छा से रिश्वत के रूप में लिया गया था। अवैध परितोषण के रूप में राशि की मांग और स्वीकृति के संबंध में किसी भी सबूत के अभाव में, अभियुक्त द्वारा केवल राशि प्राप्त करना अपराध को बढ़ाने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए, 1988 अधिनियम की धारा 20 के तहत उठाए गए वैधानिक अनुमान को विस्थापित करने का भार अभियुक्त पर है, रिकॉर्ड साक्ष्य लाकर, या तो प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य, उचित संभावना के साथ स्थापित करने के लिए, कि धन उसके द्वारा स्वीकार किया गया था, सिवाय 1988 अधिनियम की धारा 7 में निर्दिष्ट मकसद या इनाम के रूप में। अधिनियम की धारा 20 के प्रावधानों को लागू करते समय, अदालत को अभियुक्त द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण, यदि कोई हो, पर विचार करने की आवश्यकता होती है, तो केवल संभाव्यता की प्रधानता की कसौटी पर और सभी उचित संदेह से परे सबूत की कसौटी पर नहीं। हालांकि, इससे पहले कि अभियुक्त को यह बताने के लिए बुलाया जाए कि उसके कब्जे में राशि कैसे पाई गई, अभियोजन पक्ष द्वारा मूलभूत तथ्यों को स्थापित किया जाना चाहिए। शिकायतकर्ता जाल की सफलता से संबंधित एक हितबद्ध और पक्षपातपूर्ण गवाह है और उसके साक्ष्य का परीक्षण उसी तरह किया जाना चाहिए जैसे किसी अन्य हितबद्ध गवाह का। एक उचित मामले में, अदालत आरोपी व्यक्ति को आश्वस्त करने से पहले स्वतंत्र पुष्टि की तलाश कर सकती है।

20. सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में जयस्वामी बनाम कर्नाटक राज्य, (2018) 7 एस.सी.सी. 219 में, एक ऐसे मामले में साक्ष्य का फिर से मूल्यांकन करने में अपीलीय न्यायालय की शक्तियों को निर्धारित करने के लिए सिद्धांत निर्धारित किए हैं, जहां राज्य ने बरी होने के खिलाफ अपील दायर की है, जो इस प्रकार है:

"10. अब तक यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि अपीलीय न्यायालय फैसले और बरी करने के आदेश के खिलाफ दायर अपील की सुनवाई नहीं करेगा, अगर अपीलीय न्यायालय को ऐसा करने के लिए पर्याप्त और बाध्यकारी कारण नहीं मिलते हैं तो विचारण न्यायालय के बरी होने को रद्द या अन्यथा हस्तक्षेप नहीं करेगा। यदि तथ्यों के संबंध में विचारण न्यायालय का निष्कर्ष स्पष्ट रूप से गलत है; यदि विचारण न्यायालय का

अनुवादित

निर्णय कानून के गलत दृष्टिकोण पर आधारित था; यदि विचारण न्यायालय के फैसले के परिणामस्वरूप न्याय की गंभीर हानि होने की संभावना है; यदि सबूतों से निपटने में विचारण न्यायालय का पूरा दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अवैध था; यदि विचारण न्यायालय का निर्णय स्पष्ट रूप से अन्यायपूर्ण और अनुचित था; और यदि विचारण न्यायालय ने सबूतों की अनदेखी की है या भौतिक साक्ष्य को गलत पढ़ा है या बैलिस्टिक विशेषज्ञ की मृत्यु पूर्व घोषणा/रिपोर्ट आदि जैसे भौतिक दस्तावेजों की अनदेखी की है, तो इसे पर्याप्त और बाध्यकारी कारणों के रूप में माना जा सकता है और प्रथम अपीलीय न्यायालय बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है। हालांकि, यदि अभियुक्त को बरी करते समय विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत संभावित विचारों में से एक है, तो अपीलीय अदालत आम तौर पर बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगी, विशेष रूप से उपरोक्त कारकों की अनुपस्थिति में।

..... रामानंद यादव बनाम प्रभु नाथ झा और अन्य, (2003) 12 एस.सी.सी. 606 के मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों पर ध्यान देना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:

"21. अपीलीय अदालत द्वारा उन सबूतों की समीक्षा करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है, जिन पर बरी करने का आदेश आधारित है। आम तौर पर, बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा क्योंकि अभियुक्त की बेगुनाही की धारणा को बरी करने से और मजबूत किया जाता है। आपराधिक मामलों में न्याय प्रशासन के जाल में जो स्वर्णिम धागा चलता है, वह यह है कि यदि मामले में पेश किए गए सबूतों पर दो विचार संभव हैं, एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी बेगुनाही की ओर इशारा करता है, तो अभियुक्त के पक्ष में जो दृष्टिकोण है, उसे अपनाया जाना चाहिए। न्यायालय का सर्वोपरि विचार यह सुनिश्चित करना है कि न्याय की हत्या को रोका जाए। न्याय की हानि जो दोषी के बरी होने से उत्पन्न हो सकता है, वह किसी निर्दोष की दोषसिद्धि से कम नहीं है। ऐसे मामले में जहां स्वीकार्य साक्ष्य की अनदेखी की जाती है, अपीलीय अदालत पर एक कर्तव्य डाला जाता है कि वह उस मामले में, यह पता लगाने के उद्देश्य से कि क्या किसी आरोपी ने कोई अपराध किया है या नहीं, सबूतों का फिर से मूल्यांकन करे जहां आरोपी को बरी कर दिया गया है।

21. सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में शैलेंद्र राजदेव पासवान बनाम गुजरात राज्य, (2020) 14 एस.सी. 750 में माना है कि अपीलीय अदालत बरी करने के विचारण न्यायालय के आदेश को उलट रही है, उसे आरोपी के पक्ष में निर्दोषता की धारणा को उचित वजन और विचार देना चाहिए, और इस सिद्धांत पर कि इस तरह की धारणा को मजबूत किया जाता है, विचारण न्यायालय द्वारा और शमसुल हक बनाम असम राज्य, (2019) 18 एस.सी.सी. 161 में पुनर्पुष्टि और मजबूती से कहा गया कि बरी करने का निर्णय, जहां दो विचार संभव हैं, को अलग नहीं रखा जाना चाहिए, भले ही अपीलीय अदालत द्वारा गठित दृष्टिकोण अधिक संभावित हो, बरी करने में हस्तक्षेप को केवल तभी उचित ठहराया जा सकता है जब यह विकृत दृष्टिकोण पर आधारित हो।

22. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर साक्ष्य का सही मूल्यांकन किया है। अभियोजन

पक्ष द्वारा पेश किए गए साक्ष्य विश्वास को प्रेरित नहीं करते हैं जैसा कि विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा अवधारित किया गया था और मौखिक गवाही को छांटते हुए, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि धारा 34 भ०द०वि० के तहत अभियुक्त के खिलाफ मामला बनता है।

23. हमने अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों, चक्षुक संस्करणों का समर्थन करने वाले दस्तावेजी सबूत, पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क, का अवलोकन किया है। हमारा ध्यान अभिलेख के माध्यम से आकर्षित किया गया है। हम निम्नलिखित कारणों से राज्य के अधिवक्ता की प्रस्तुतियों और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं जो बरी किए जाने के खिलाफ अपील पर विचार करने के लिए मानदंड निर्धारित करते हैं। श्रंखला अधूरी पाई गई है। निर्णय का अध्ययन करते समय यह बहुत स्पष्ट है कि निचली अदालत ने एक स्पष्ट निष्कर्ष दिया है कि सबूत इतने कम हैं कि अभियुक्तों को उन अपराधों के लिए दंडित या दोषी नहीं ठहराया जा सकता है जिनके लिए उन पर आरोप लगाया गया है। वर्तमान मामले में तथ्यात्मक परिदृश्य हमें निचली अदालत द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण अपनाने की अनुमति नहीं देगा। इस मामले को देखते हुए हम स्वयं को संतुष्ट करने में असमर्थ हैं। इस प्रकार हम निचली अदालत के निष्कर्षों से सहमत हैं।

24. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने और रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के मूल्यांकन और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा निर्धारित रूपरेखा के बाद, हमारे पास उपरोक्त कारणों से विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा दर्ज किए गए बरी करने के तर्क से सहमत होने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है।

25. अपील बिना-योग्यता के है और एतद्द्वारा खारिज की जाती है। रिकॉर्ड और कार्यवाही को निचली अदालत वापस भेजा जाए। जमानतदार उन्मोचित किये जाते हैं और जमानत बांड रद्द किये जाते हैं।

(2023) 2 ILRA 275

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन,

रिट-सी संख्या 3034/2022

श्रीमती सबीरा बेगम

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: अभय प्रताप यादव, शिव कुमार यादव

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - भारतीय वन अधिनियम, 1927 - धारा 52, 52-ए और 52-बी - वाहन अधिहरण - संपत्ति अधिहरण करने की शक्ति, कब प्रयोग की जा सकती है - ऐसा कोई आदेश नहीं है जो प्रदर्शित करता हो कि विचाराधीन वाहन का उपयोग वन अपराध के लिए किया जा रहा था - प्रभाव - आयोजित, अधिनियम 1927 के प्रावधानों के तहत संपत्ति अधिहरण अधिकारी, विशेष रूप से अधिनियम 1927 की धारा 52 ए सपठित अधिनियम की धारा 52 (1) ऐसे वन उपज को औजारों सहित वे वाहन जब्त कर सकता है जिनका उपयोग वन अपराध करने में किया

अनुवादित

गया है। इस प्रकार, अधिहरण समय, यह दर्ज करना होगा कि वाहन और अन्य उपकरण जो जब्त किए गए हैं, उनका उपयोग वन अपराध करने में किया जा रहा था - उच्च न्यायालय ने वाहन अधिहरण को अधिनियम, 1927 के प्रावधानों के विरुद्ध माना। (पैरा 23 और 24)

रिट याचिका स्वीकार की गई। **(ई-1)**

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. सहायक वन संरक्षक एवं अन्य बनाम शरद रामचन्द्र काले; (1998) 1 एससीसी 48

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता और राज्य प्रतिवादियों के लिए डॉ. उदय वीर सिंह, अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. दिनांक 24.01.2023 के आदेश के अनुपालन में विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा मूल अभिलेख प्रस्तुत किए गए हैं और जिन्होने स्वयं अभिलेखों का अवलोकन किया है।

3. अभिलेखों के अवलोकन के पश्चात, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने कहा है कि ऐसा कोई आदेश या दस्तावेज अभिलेख में नहीं है, जिसके आधार पर प्राधिकरण ने यह दर्ज किया हो कि बरामद मोटरसाइकिल का इस्तेमाल वन अपराध कारित करने में किया गया था।

4. उपरोक्त कथन अभिलेखित किया गया है।

5. यह याचिका निम्नलिखित मुख्य अनुतोषों की प्रार्थना करते हुए दायर की गई है:-

"(i) प्रतिपक्षी संख्या 2 और 3 द्वारा क्रमशः अपील संख्या 03/81-2-2021-13G/2021 में पारित आदेश दिनांक 02.12.2021 और रेंज प्रकरण संख्या 22/2019-2020 सह पठित अधिहरण प्रकरण संख्या 05/2019-2020 में पारित आदेश दिनांक 04.03.2020 जो इस रिट याचिका के संलग्नक संख्या 1 और 2 हैं, को अपास्त करने हेतु उत्प्रेषण प्रकृति का एक रिट, आदेश या निदेश जारी करें।"

(ii) प्रतिपक्षियों को याचिकाकर्ता के पक्ष में मोटरसाइकिल रॉयल एनफील्ड UP-46-H-2760, चेसिस संख्या ME3U3S5C1HLC216071 और इंजन संख्या U3S5C1HL216071 को छोड़े जाने का आदेश देते हुए परमादेश प्रकृति का एक रिट, आदेश या निदेश जारी करें।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत मामला यह है कि याचिकाकर्ता मोटरसाइकिल रॉयल एनफील्ड नंबर UP-46-H-2760 की पंजीकृत स्वामी है (**इसके बाद 'वाहन' के रूप में संदर्भित)**। 26.12.2019 को, याचिकाकर्ता के सद्दाम नामक एक रिश्तेदार ने याचिकाकर्ता से अनुरोध किया कि वह उसे अपने व्यक्तिगत आवश्यक कार्य हेतु एक दिन के लिए वाहन उधार दे दे। चूंकि याचिकाकर्ता गाँव की निवासी है और पड़ोसियों/रिश्तेदारों की जरूरत के समय उनकी मदद करना आम चलन है, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा वाहन सद्दाम को दिया गया था।

7. यह दावा किया गया है कि दिनांक 27.12.2019 को सायं करीब 04:00 बजे याचिकाकर्ता को एक ग्रामीण द्वारा सूचना मिली कि दिनांक 27.12.2019 को प्रातः करीब 05:00 बजे सद्दाम को पुलिस द्वारा आरक्षित वन क्षेत्र

अनुवादक

से वृक्षों की अवैध कटाई में शामिल होने के आरोप में वन क्षेत्र से गिरफ्तार किया गया है और प्रश्नगत स्थान से अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता का वाहन भी बरामद किया गया है।

8. यह तर्क दिया गया है कि क्षेत्रीय वन अधिकारी ने दिनांक 27.12.2019 के अपने आदेश के माध्यम से, जिसकी एक प्रति जवाबी हलफनामे के संलग्नक सीए-3 के रूप में दायर की गई है, वाहन के अधिहरण की सिफारिश की। उसके अनुपालन में, याचिकाकर्ता को भारतीय वन अधिनियम, 1927 (इसके बाद 'अधिनियम, 1927' के रूप में संदर्भित) की धारा 52-ए के अंतर्गत दिनांक 18.01.2020 को एक नोटिस जारी किया गया, जिसमें उससे पूछा गया कि वाहन को क्यों न अधिहरित कर लिया जाए। याचिकाकर्ता दावा करती है कि उसने 19.02.2020 को अपना जवाब प्रस्तुत कर दिया था, जिसकी एक प्रति जवाबी हलफनामे का संलग्नक सीए-4 है, जिसमें यह इंगित किया गया है कि (क) उसके रिश्तेदार सद्दाम ने 26.12.2019 को वाहन लिया था, और (ख) याचिकाकर्ता कभी भी किसी आपराधिक गतिविधि में लिप्त नहीं हुई है या अधिनियम, 1927 के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं किया है।

9. याचिकाकर्ता द्वारा उसके उत्तर में बताए गए दोनों आधारों पर विश्वास करते हुए प्रार्थना की गई कि वाहन को छोड़ दिया जाए।

10. सक्षम प्राधिकारी दिनांक 04.03.2020 के आदेश के माध्यम से, जिसकी एक प्रति याचिका का संलग्नक-2 है, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर से सहमत नहीं हुआ और इस प्रकार अधिनियम, 1927 की धारा 52-ए (1) के अंतर्गत वाहन के अधिहरण का आदेश पारित किया।

11. व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 1927 की धारा 52-बी के अंतर्गत एक अपील दायर की जिसे दिनांक 02.12.2021 के आदेश के माध्यम से, जिसकी एक प्रति याचिका का संलग्नक-1 है, खारिज कर दिया गया, मुख्य रूप से उन आधारों को दोहराते हुए जो प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 04.03.2020 के आक्षेपित आदेश को पारित करने के दौरान लिया गया था।

12. दोनों आदेशों के विरुद्ध व्यथित होकर यह याचिका दायर की गई है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि अधिनियम, 1927 की धारा 52(1) सहपठित अधिनियम 1927 की धारा 52ए(1) और (2), स्पष्ट रूप से उस संपत्ति के अभिग्रहण की शक्ति देती है, जिसके लिए माना जाए कि उसका उपयोग किसी वन अपराध को कारित करने में किया गया है, किन्तु संबंधित अधिकारी को यह अभिलखित करना होगा कि अभिग्रहीत की जाने वाली संपत्ति का उपयोग वन अपराध कारित करने में किया गया है। यह तर्क दिया गया है कि प्राधिकारी अपने आदेशों में यह अभिलिखित करने में विफल रहे हैं कि विचाराधीन वाहन का उपयोग किसी वन अपराध को कारित करने में किया गया था या किया जा रहा था और इस तरह से वाहन का अभिग्रहण और बाद में अधिहरण अधिनियम, 1927 के प्रावधानों के विरुद्ध है।

14. आगे यह तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 04.03.2020 द्वारा यह इंगित होता है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 19.02.2020 के अपने उत्तर में स्पष्ट रूप से कहा है कि उसका

अनुवादित

रिश्तेदार सद्दाम कुछ आवश्यक व्यक्तिगत कार्य हेतु वाहन ले गया था और याचिकाकर्ता कभी भी किसी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं रही है, ऐसे में इसका स्वाभाविक निष्कर्ष यह निकलता है कि वाहन का उपयोग सद्दाम द्वारा उसकी जानकारी के बिना अवैध गतिविधियों में किया गया था, तथापि सक्षम प्राधिकारी दिनांक 04.03.2020 के अपने आक्षेपित आदेश में यह धारणा बनाने में विफल रहे है कि चूंकि वाहन का उपयोग याचिकाकर्ता की जानकारी में वन अपराध कारित करने हेतु किया गया था, इसलिए वाहन अधिहरण करने योग्य है।

15. उपरोक्त तर्क को विस्तारित करते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि जब अधिनियम, 1927 की धारा 52-ए की उप-धारा (5) के प्रावधानों के अंतर्गत जब संबंधित प्राधिकारी पर अधिनियम, 1927 की धारा 52-ए की उप-धारा (5) के संबंध में निष्कर्ष देने हेतु एक कर्तव्य आरोपित किया जाता है, तो बिना किसी ऐसे निष्कर्ष के कि वाहन का उपयोग वाहन मालिक की सक्रिय मिलीभगत या जानकारी के साथ वन अपराध कारित करने हेतु किया गया था, दिनांक 04.03.2020 का अधिहरण का आदेश कानून की दृष्टि में वैध नहीं होगा। यह भी तर्क दिया गया है कि यहां तक कि अपीलीय प्राधिकारी भी इस पहलू पर विचार करने में विफल रहा है और इसलिए दोनों आक्षेपित आदेश रद्द करने के योग्य हैं।

16. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता जवाबी हलफनामे में निहित कथनों के आधार पर तर्क देते हैं कि जवाबी हलफनामे में सद्दाम के खिलाफ दर्ज आपराधिक मामलों को संलग्नक सीए-2 के माध्यम से अभिलेख पर लाया गया है, जिसका अवलोकन करने से यह इंगित होता है कि अधिनियम, 1927 के प्रावधानों के अंतर्गत सद्दाम के खिलाफ 12 मामले दर्ज हैं। सद्दाम के आपराधिक इतिहास पर विश्वास जताते हुए, यह तर्क दिया गया है कि जब याचिकाकर्ता का रिश्तेदार सद्दाम अधिनियम, 1927 के प्रावधानों का एक जाना माना उल्लंघनकर्ता था, ऐसे में याचिकाकर्ता को सद्दाम को उपयोग के लिए अपना वाहन देते समय अधिक सचेत रहना चाहिए था। यह भी तर्क दिया गया है कि इस पहलू पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिनांक 04.03.2020 के आक्षेपित आदेश को पारित करते समय विस्तार से विचार किया गया है और उक्त आदेश की दिनांक 02.12.2021 के आदेश के माध्यम से अपील खारिज करने के साथ पुष्टि कर दी गई है और इस तरह उक्त आदेशों में कोई कमी या अवैधता नहीं है और रिट याचिका खारिज किए जाने की योग्य है।

17. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

18. जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है, न्यायालय द्वारा तलब किए गए अभिलेखों को विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है। विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने अभिलेखों का अवलोकन भी किया है ताकि इस बात का निश्चय किया जा सके कि क्या कोई ऐसा आदेश है जिसमें अधिनियम, 1927 की धारा 52(1) के अंतर्गत उन कारणों को अभिलिखित किया गया हो कि अभिग्रहीत वाहन का उपयोग वन अपराध कारित करने के लिए किया जा रहा था और यह इंगित किया है कि

अधिवक्ता

अभिलेखों में ऐसा कोई आदेश नहीं है, जिसमें यह दर्ज किया गया हो या कहा गया हो कि घटनास्थल से बरामद वाहन का उपयोग वन अपराध कारित करने में किया जा रहा था।

19. अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि विवादित वाहन की मालिक याचिकाकर्ता है। वह एक गाँव की रहने वाली है। उसके रिश्तेदार सद्दाम ने 26.12.2019 को किसी आवश्यक व्यक्तिगत कार्य हेतु लिए याचिकाकर्ता से वाहन लेने का अनुरोध किया और याचिकाकर्ता ने उसे वाहन दे दिया। 27.12.2019 को, याचिकाकर्ता का दावा है कि उसे यह ज्ञात हुआ कि सद्दाम को एक अन्य व्यक्ति के साथ आरक्षित वन क्षेत्र में वृक्षों की अवैध कटाई करने के आरोप में पकड़ा गया था और याचिकाकर्ता का वाहन भी घटनास्थल से बरामद हुआ था। वाहन के अधिहरण के उद्देश्य से सक्षम प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को एक नोटिस जारी किया गया था, जिस पर याचिकाकर्ता ने 19.02.2020 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें स्पष्ट रूप से यह तर्क दिया गया कि (क) उसके रिश्तेदार सद्दाम ने 26.12.2019 को वाहन ले लिया था, और (ख) याचिकाकर्ता कभी भी किसी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं हुई है या अधिनियम, 1927 के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं किया है। उनके उत्तर को प्राधिकारी द्वारा स्वीकार नहीं किया गया और दिनांक 04.03.2020 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के वाहन का अधिहरण कर लिया गया। उक्त आदेश के खिलाफ दायर अपील को भी अपीलीय प्राधिकारी ने दिनांक 02.12.2021 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया है। दोनों आदेशों से व्यथित होकर, यह याचिका दायर की गई है।

20. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का मुख्य तर्क यह है कि अधिनियम, 1927 की धारा 52(1) और धारा 52ए(1) के अनुसार, किसी वाहन के अभिग्रहण के लिए, प्राधिकारियों को यह दर्ज करना होगा कि वाहन का उपयोग वन अपराध कारित करने में किया जा रहा था।

21. तर्क पर विचार करने के लिए, अधिनियम, 1927 की धारा 52 और 52ए (उत्तर प्रदेश के लिए संशोधन) के प्रावधानों पर विचार किया जाना है, जो सुविधा हेतु नीचे पुनर्प्रस्तुत किए गए हैं:

> ***"52. अधिहरणीय सम्पत्ति का अभिग्रहण-***
>
> *(1) जबकि यह विश्वास करने का कारण है कि किसी वन-उपज के बारे में कोई वन विषयक अपराध किया गया है, जब ऐसी उपज सब औजारों, नावों, छक़ड़ों या पशुओं सहित, जिनका प्रयोग ऐसे अपराध के करने में हुआ है, किसी वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी द्वारा अभिगृहीत की जा सकेगी।*
>
> *(2) इस धारा के अधीन किसी सम्पत्ति का अभिग्रहण करने वाला हर अधिकारी ऐसी सम्पत्ति पर यह उपदर्शित करने वाला चिह्न लगाएगा कि उसका इस प्रकार अभिग्रहण हो गया है, और यथाशक्य शीघ्र ऐसे अभिग्रहण की रिपोर्ट उस अपराध का, जिसके कारण अभिग्रहण हुआ है, विचारण करने के*

अनुवादित

लिए अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को भेजेगाः

बशर्ते वह वन-उपज, जिसके बारे में यह विश्वास है कि ऐसा अपराध हुआ है, सरकार की सम्पत्ति है, और अपराधी अज्ञात है, तब यदि यथाशक्य शीघ्र अधिकारी परिस्थितियों के बारे में रिपोर्ट अपने वरिष्ठ अधिकारी को दे देता है, तो वह पर्याप्त होगा।

उत्तर प्रदेश

(i) गुजरात के (1) और (2) के समान (उत्तर प्रदेश अधिनियम 21/1960, धारा 7 (दिनांक 2-11-1960 से प्रभावी)

गुजरात-

(1) "गाड़ियों" शब्द के स्थान पर "वाहनों" शब्द रखे जाएंगे।

(गुजरात अधिनियम 15/1960, धारा 3 और 4(2) (दिनांक 8-12-1960 से प्रभावी)

(2) उपधारा (1) के पश्चात निम्नलिखित उपधारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात:-

"(1क) कोई वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी, यदि उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि कोई यान किसी ऐसी वन उपज के परिवहन के लिए प्रयोग किया गया है या किया जा रहा है, जिसकी बाबत यह विश्वास करने का कारण है कि कोई वन विषयक अपराध किया गया है या किया जा रहा है, तो वह ऐसे यान के ड्राईवर या प्रभारी अन्य व्यक्ति से यान को रोकने की अपेक्षा कर सकेगा और उसे तब तक रोके रख सकेगा जो यान की अंतर्वस्तुओं की परीक्षा करने और ऐसे ड्राईवर या यान के प्रभारी अन्य व्यक्ति या यान में कोई अन्य व्यक्ति के कब्जे में वन-उपज से संबन्धित सभी अभिलेखों के निरीक्षण के लिए समुचित रूप से आवश्यक हो।"

[गुजरात अधिनियम 19/1983, धारा 2 (दिनांक 24-5-1983 से प्रभावी)

उत्तर प्रदेश

(एक) उपधारा (1) में, शब्द "यानों या पशुओं" के स्थान पर शब्द "यानों या पशुओं, रस्सियों, जंजीरों, या अन्य वस्तुओं" रख दिये जाएंगे;

(दो) उपधारा (2) के स्थान पर निम्नलिखित उपधाराएं रख दी जाएंगी, अर्थात:-

"(2) कोई वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी, यदि उसे यह विश्वास करने का कारण हो कि किसी नाव या यान का प्रयोग ऐसी किसी वन उपज के परिवहन के लिए किया गया है या किया जा रहा है, जिसके संबंध में कोई वन अपराध किया गया है या किया जा रहा है, तो वह ऐसी नाव या यान के चालक या अन्य प्रभारी व्यक्ति से उसे रोकने कि अपेक्षा कर सकता है और वह ऐसी किसी नाव या यान को ऐसे युक्ति युक्त समय के लिए जैसा कि ऐसी नाव या यान में रखी वस्तुओं का परीक्षण करने के लिए और ऐसी नाव या यान के चालक या अन्य प्रभारी व्यक्ति के प्रश्नगत वन उपज के

अनुवादित

स्वामित्व और विधिक उत्पत्ति से संबन्धित दावों, यदि कोई हो, को अभिनिश्चित करने के लिए परिवहित माल से संबन्धित अभिलेखों का निरीक्षण करने के लिए, आवश्यक हो, निरुद्ध कर सकता है।

(3) इस धारा के अधीन किसी संपत्ति का अभिग्रहण करने वाला हर अधिकारी ऐसी संपत्ति पर यह उपदर्शित करने वाला चिन्ह लगाएगा कि उसका इस प्रकार अभिग्रहण हो गया है, और यथाशक्य शीघ्र ऐसे अभिग्रहण की रिपोर्ट उस अपराध का, जिसके कारण अभिग्रहण हुआ है, विचारण करने के लिए अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को भेजेगा और यदि अभिग्रहण वन उपज के संबंध में हो, जो कि राज्य सरकार की संपत्ति है तो वह प्राधिकृत अधिकारी को भी रिपोर्ट करेगा।"

(उत्तर प्रदेश अधिनियम 1/2001, धारा 6)

52क. अभिग्रहण पर प्रक्रिया. *(1) इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी वन उपज, जो राज्य सरकार की संपत्ति है, के संबंध में किसी वन अपराध के किए जाने का विश्वास हो, वहाँ धारा-52 की उपधारा (1) के अधीन संपत्ति का अभिग्रहण करने वाला अधिकारी, बिना युक्तियुक्त विलंब के, उस अपराध करने में प्रयुक्त ऐसे समस्त औजारों, नावों, यानों, पशुओं, रस्सियों, जंजीरों और अन्य वस्तुओं सहित राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अधिकारी के समक्ष, जो प्रभागीय वन अधिकारी की रैंक से निम्न न हो, प्रस्तुत करेगा जो ऐसी संपत्ति की अभिरक्षा, कब्जा, परिदान, निस्तारण या वितरण के संबंध में कारणों सहित, जो अभिलिखित किए जाएंगे, एक लिखित आदेश देगा और औजारों, नावों, यानों, पशुओं, रस्सियों, जंजीरों और अन्य वस्तुओं की स्थिति में उन्हें अधिहरित भी कर सकता है।*

(2) प्राधिकृत अधिकारी बिना किसी अनुचित विलंब के, उपधारा (1) के अधीन दिये गए आदेश की एक प्रति अपने वरिष्ठ अधिकारी को अग्रसारित करेगा।

(3) जहां उपधारा (1) के अधीन आदेश पारित करने वाले प्राधिकृत अधिकारी की राय हो कि संपत्ति शीघ्र और प्रकृत्या क्षयशील है, वहाँ ऐसी संपत्ति या उसके किसी भाग को लोक नीलाम द्वारा बेचे जाने का आदेश दे सकता है और अगमों को इस प्रकार बरत सकता है जैसा कि वह उस संपत्ति को बरतता यदि वह बेची न गयी होती और प्रत्येक ऐसी बिक्री की रिपोर्ट अपने वरिष्ठ अधिकारी को करेगा।

(4) उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश उस व्यक्ति को जिससे संपत्ति का अभिग्रहण किया जाय, और किसी अन्य व्यक्ति को जो प्राधिकृत अधिकारी को ऐसी संपत्ति में कुछ हित; रखने वाला प्रतीत हो, बिना लिखित

अनुवादित

सूचना दिये नहीं दिया जाएगा: परंतु किसी यान को अधिहरित करने के किसी आदेश में जहां अपराधी का कोई पता न चल सके, उसके रजिस्ट्रीकृत स्वामी को लिखित सूचना देना और उसकी आपत्तियों पर, यदि कोई हो, विचार करना, पर्याप्त होगा।

(5) किसी औज़ार, नाव, यान, पशु, रस्सी, जंजीर या अन्य वस्तु को अधिहरित करने का कोई आदेश नहीं दिया जाएगा यदि उपधारा (4) में निर्दिष्ट कोई व्यक्ति प्राधिकृत अधिकारी के संतोषानुसार यह साबित कर दे कि ऐसे किसी औज़ार, नाव, यान, पशु, रस्सी, जंजीर या अन्य वस्तु का प्रयोग बिना उसकी जानकारी के या मौनानुकूलता से या, यथास्थिति, बिना उसके सेवक या अभिकर्ता की जानकारी के या मौनानुकूलता से, किया गया था और वन अपराध के किए जाने के लिए उपर्युक्त वस्तुओं के प्रयोग के विरुद्ध सभी युक्तियुक्त पूर्वोपाय किए गए थे।"

22. अधिनियम, 1927 की धारा 52(1) के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि जहां यह विश्वास करने का कारण है कि किसी वन-उपज के संबंध में कोई वन अपराध कारित किया गया है, तो ऐसी उपज, **किसी ऐसे अपराध को कारित करने में उपयोग किए गए** सभी औजारों, नावों, वाहनों, मवेशियों, रस्सियों, जंजीरों या अन्य सामग्रियों सहित, किसी भी वन-अधिकारी या पुलिस-अधिकारी द्वारा अभिग्रहीत की जा सकती है। राज्य संशोधन के अनुसार, यदि वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी को यह विश्वास करने का कारण है कि किसी वाहन का उपयोग उस वन उपज के परिवहन के लिए किया गया है या किया जा रहा है, जिसके संबंध में यह विश्वास करने का कारण है कि कोई वन अपराध कारित किया गया है या किया जा रहा है, तो ऐसे वाहन को सामग्री की जांच करने हेतु रोका जा सकता है। इसी तरह, अधिनियम, 1927 की धारा 52ए(1) में प्रावधान है कि जहां यह विश्वास हो जाए कि वन उपज के संबंध में कोई वन अपराध कारित किया गया है, तो अधिनियम, 1927 की धारा 52(1) के अंतर्गत संपत्ति को जब्त करने वाला अधिकारी उसे उन सभी औजारों, नावों, वाहनों और अन्य सामग्रियों के साथ, **जिनका उपयोग अपराध कारित करने में किया गया था**, किसी ऐसे अधिकारी जो जिला वन अधिकारी की रैंक से निम्न का न हो, के समक्ष प्रस्तुत करेगा, जो ऐसी संपत्ति की अभिरक्षा, कब्जा, परिदान, निस्तारण या वितरण के संबंध में कारणों सहित, जो अभिलिखित किए जाएंगे, एक लिखित आदेश देगा और औजारों, नावों, यानों, पशुओं, रस्सियों, जंजीरों और अन्य वस्तुओं की स्थिति में उन्हें अधिहरित भी कर सकता है।

23. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि अधिनियम, 1927 के प्रावधानों, विशेष रूप से अधिनियम की धारा 52(1) सहपठित अधिनियम, 1927 की धारा 52ए के अंतर्गत संपत्ति का अभिग्रहण करने वाला अधिकारी ऐसे वन उपज का उन साधनों सहित अभिग्रहण कर सकता है जिनमें वाहन भी शामिल हैं, जिनका उपयोग वन अपराध कारित करने में किया गया था। अतः अभिग्रहण के समय यह अभिलिखित किया जाना होगा कि अभिग्रहीत

अनुवादित

किए गए वाहन और अन्य साधनों का उपयोग वन अपराध कारित करने में किया जा रहा था।

24. वर्तमान मामले में, अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि प्रतिवादियों के पास ऐसा कोई आदेश अभिलिखित नहीं है जो इंगित करता हो कि प्रश्नगत वाहन को वन अपराध कारित करने में प्रयोग किए जाने वाले वाहन के रूप में अभिलिखित किया गया था। संयोग से, दिनांक 27.12.2019 के नोटिस में, जिसकी एक प्रति जवाबी हलफनामे का संलग्नक सीए 3 है, प्राधिकारी ने केवल विवादित स्थल से वाहन बरामद होने के बारे में अभिलिखित किया है, लेकिन यह अभिलिखित करने में विफल रहा है कि वाहन का प्रयोग वन अपराध कारित करने के उद्देश्य से किया जा रहा था। तदनुसार, अधिनियम, 1927 की धारा 52 सहपठित धारा 52ए के दृष्टिगत, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के वाहन का अभिग्रहण अधिनियम, 1927 के प्रावधानों के विरुद्ध है।

25. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का एक अन्य तर्क कि वन अधिनियम, 1927 की धारा 52-ए की उपधारा (5) के अंतर्गत, यह तय करने की ज़िम्मेदारी प्राधिकारी पर है कि वाहन का उपयोग वाहन मालिक की जानकारी या मिलीभगत के बिना किया गया था, इसमें भी योग्यता है क्योंकि आक्षेपित आदेश में, प्राधिकारी आक्षेपित आदेश पारित करते समय इस ज़िम्मेदारी के निर्वहन में विफल रहा है और मामले के इस पहलू पर अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी अपील खारिज करते समय विचार नहीं किया गया है और इस प्रकार आक्षेपित आदेश इस आधार पर भी अपास्त किए जाने योग्य हैं। वन अधिनियम, 1927 की धारा 52-ए के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उक्त धारा प्राधिकारी द्वारा अभिग्रहण के उद्देश्य से अपनाई जाने वाली प्रक्रिया से संबंधित है। उक्त प्रावधान में किसी भी अधिहरण से पूर्व वाहन मालिक को नोटिस जारी करने की आवश्यकता होती है और वन अधिनियम, 1927 की धारा 52-ए की उपधारा (5) यह प्रावधान करती है कि यदि कोई व्यक्ति प्राधिकृत अधिकारी को इस बात के लिए संतुष्ट कर दे कि ऐसे वाहन का उपयोग वाहन मालिक की जानकारी या मिलीभगत के बिना किया गया था, तो किसी भी वाहन के अधिहरण का कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

26. याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 19.02.2020 को दिए गए उत्तर के अवलोकन से यह इंगित होता है कि याचिकाकर्ता का वाहन उसके किसी रिश्तेदार को किसी आवश्यक व्यक्तिगत कार्य हेतु दिया गया था। याचिकाकर्ता ने अपने उत्तर में विशेष रूप से यह भी बताया है कि वह कभी भी अधिनियम, 1927 के तहत किसी भी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं रही है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के उत्तर का सार यह था कि वाहन का उपयोग बिना याचिकाकर्ता की जानकारी के कि वाहन का उपयोग किसी कथित आपराधिक गतिविधियों के लिए किया जाएगा, सद्दाम द्वारा किया गया था, जिसे आरक्षित वन से वृक्षों की अवैध कटाई में पकड़ा गया था। इस प्रकार, वन अधिनियम, 1927 की धारा 52-ए की उपधारा (5) के अंतर्गत आदेश पारित करते समय सक्षम प्राधिकारी को यह अभिलिखित करना आवश्यक था कि याचिकाकर्ता के वाहन को वन अपराध कारित करने के लिए उसकी जानकारी और

अनुवादित

मिलीभगत से उपयोग किया गया था, तभी याचिकाकर्ता के वाहन का अधिहरण करने का आदेश दिया जा सकता था किंतु आदेश के अवलोकन से यह इंगित होता है कि संबंधित प्राधिकारी द्वारा दिनांक 04.03.2020 के आदेश को पारित करते समय ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया था और इस प्रकार इस आधार पर वन अधिनियम, 1927 की धारा 52 की उपधारा (5) के अनिवार्य प्रावधानों के विरुद्ध होने के कारण **बनाम शरद रामचंद्र काले (1998) 1 SCC 48** के मामले में भी विचार किया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

> *"प्रतिवादी के ट्रक को सहायक वन संरक्षक द्वारा अधिहरित किए जाने का आदेश दिया गया था, क्योंकि यह वन अपराध कारित करने में शामिल पाया गया था। इस आदेश की पुष्टि वन संरक्षक द्वारा की गई थी। इस आदेश के विरुद्ध प्रतिवादी ने सत्र न्यायालय में अपील दायर की, लेकिन उसे खारिज कर दिया गया था। इसलिए, उसने संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की।* ***उच्च न्यायालय ने अधिहरण के आदेश को इस आधार पर अपास्त कर दिया कि प्राधिकारी यह स्थापित करने में विफल रहे हैं कि ट्रक के मालिक को इस तथ्य की कोई जानकारी थी कि उसके ट्रक का उपयोग वन अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन में वन उपज ले जाने के लिए किया जा सकता है। यह निष्कर्ष अभिलेख के साक्ष्य पर आधारित था। इसलिए, हम इस निष्कर्ष में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझते हैं।"***

आक्षेपित आदेश दिनांक 04.03.2020 अपास्त किए जाने योग्य है। चूंकि इस मामले के इस पहलू पर दिनांक 02.12.2021 के आदेश को पारित करते समय अपीलीय प्राधिकरण द्वारा भी विचार नहीं किया गया है, अतः उक्त आदेश भी अपास्त किए जाने योग्य है।

27. इस मामले के इस पहलू पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **सहायक वन संरक्षक व अन्य**

28. तदनुसार, उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। दिनांक 02.12.2021 और 04.03.2020 के आक्षेपित आदेश जिनकी प्रतियाँ याचिका के क्रमशः संलग्नक 1 और 2 हैं, अपास्त किए जाते हैं। प्राधिकरण को निर्देश दिया जाता है कि इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से छह सप्ताह की अवधि के भीतर विधि के अनुसार याचिकाकर्ता के वाहन को छोड़ दिया जाए, बशर्ते कोई कानूनी बाधा न हो।

(2023) 2 ILRA 282

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन,

रिट-सी संख्या 5636/2022

मेसर्स अल्पाइन रिकोर्सेज एल.एल.पी., मध्य प्रदेश

...अपीलकर्ता

बनाम

अनुवादित

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: राहुल श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - यूपी लघु खनिज (रियायत) नियम, 1963 - अध्याय IV - खनन पट्टे की अनुमति - नीलामी को अंतिम रूप दिया गया - आवंटित क्षेत्र पर कुछ खनन गतिविधियां पाई गईं - दावा किए गए खनिजों की अनुमानित मात्रा का पुनर्मूल्यांकन - हालांकि, पट्टा विलेख निष्पादित करने से इनकार करने पर प्रतिभूति राशि जब्त कर ली गई - वैधता को चुनौती दी गई - आयोजित, याचिकाकर्ता को आवंटित भूमि किसी अन्य व्यक्ति के क्षेत्र के साथ अतिव्यापित करते हुए पाई गई, जिसका पट्टा विलेख लगभग दो माह पहले ही निष्पादित किया जा चुका था। इस पर विचार करते हुए याचिकाकर्ता ने अनुमानित खनिजों के पुनर्मूल्यांकन के लिए अनुरोध किया, जिसे अधिकारियों ने स्वीकार नहीं किया, बल्कि आग्रह पट्टा विलेख के निष्पादन के लिए था, जिसे याचिकाकर्ता ने निष्पादित करने से इनकार कर दिया - आगे कहा गया, प्रतिवादियों की ओर से पट्टे के निष्पादन के लिए जोर दिया गया। याचिकाकर्ता द्वारा किया गया विलेख और याचिकाकर्ता के इनकार करने पर प्रतिभूति राशि और स्वत्व राशि को जब्त कर लिया जाना विधिनुसार टिकाऊ नहीं कहा जा सकता। (पैरा 24)

रिट याचिका स्वीकार की गई। **(ई-1)**

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. विशेष अनुमति अपील याचिका (सी) संख्या 19619- 19620 /2017; पुन: मेसर्स प्लैनेट स्टील प्राइवेट लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य और अन्य निर्णित दिनांक 10.04.2018

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल श्रीवास्तव एवं प्रतिवादी संख्या 1 से 4 के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता डॉ. उदय वीर सिंह को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित मुख्य अनुतोषों हेतु प्रार्थना सहित प्रस्तुत की गई है:

"1. संलग्नक संख्या- 1 के रूप में संलग्न पुनरीक्षण संख्या 36(आर)/एस.एम. 2022 "मेसर्स अल्पाइन रिसोर्सेज एलएलपी बनाम आयुक्त चित्रकूट धाम मंडल बांदा एवं अन्य" में प्रतिवादी संख्या-1/राज्य सरकार द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.06.2022 को रद्द करने हेतु उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निदेश जारी करें।

2. क्रमशः संलग्नक संख्या- 2 एवं 3 के रूप में संलग्न, आयुक्त, चित्रकूट धाम मंडल, बांदा द्वारा अपील संख्या 00132/2020 में पारित आदेश दिनांक 30.04.2022 एवं जिला मजिस्ट्रेट, हमीरपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 08.01.2020 को रद्द करने हेतु उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में रिट, आदेश या निदेश जारी करें।

3. प्रतिवादीगण को जमा की तारीख से धन वापसी की तारीख तक 18% ब्याज सहित

पुनरीक्षणकर्ता द्वारा जमा की गई सुरक्षा राशि तथा पट्टा राशि की प्रथम त्रैमासिक किस्त वापस करने का निदेश जारी करें।

अथवा

प्रतिवादीगण को प्रश्नगत क्षेत्र हेतु खनिज की वर्तमान उपलब्धता एवं आंकलित मात्रा अर्थात् 2,59,104 घन मीटर/वर्ष पर पुनरीक्षणकर्ता के पक्ष में खनन पट्टा निष्पादित करने का निदेश जारी करें एवं तदनुसार पुनरीक्षणकर्ता को संशोधित आशय पत्र जारी करें।"

3. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत वाद यह है कि दिनांक 14.08.2017 को राज्य सरकार द्वारा एक शासनादेश जारी किया गया था जिसके अनुसार भविष्य में खनन पट्टे उत्तर प्रदेश उपखनिज (परिहार) नियमावली, 1963 (इसके पश्चात नियम 1963 के रूप में संदर्भित) के अध्याय IV के अंतर्गत ई-निविदा-सह-ई-नीलामी द्वारा प्रदान किये जाएंगे। उक्त शासनादेश के अनुसरण में, जिला मजिस्ट्रेट, हमीरपुर द्वारा नियमावली 1963 के अन्तर्गत ई- निविदा द्वारा कई खनन ब्लॉकों हेतु हमीरपुर जिले में रेत/मौरम के खनन पट्टों के निस्तारण हेतु दिनांक 09.05.2018 को एक नोटिस/विज्ञापन जारी किया गया था, जिसकी एक प्रति याचिका की संलग्नक 5 है। शासनादेश की शर्त संख्या 13(6) के अनुसार, आवेदकों को आवेदन शुल्क के रूप में रु15,000/- एवं धरोहर राशि के रुप में निविदा राशि का 25% प्रत्येक क्षेत्र हेतु पृथक जमा करना होगा।

4. याचिकाकर्ता का दावा है कि उक्त विज्ञापन के क्रम में उसने तहसील सरीला, ग्राम भेरी खरका, खंड संख्या 23/21 स्थित कुल क्षेत्रफल 24.291 हेक्टेयर, प्रति वर्ष 3,88,608/- घन मीटर खनिज की आंकलित मात्रा में स्थित खनन-पट्टा देने हेतु नीलामी की कार्यवाही में भाग लिया था। निविदा के द्वितीय चरण में याचिकाकर्ता की बोली, 302 रुपये प्रति घन मीटर, उच्चतम घोषित की गई एवं नीलामी प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को उक्त आशय का एक ई-मेल भेजा गया था। याचिकाकर्ता का दावा है कि उसने औपचारिकताएं पूरी कर ली थी एवं दिनांक 07.06.2018 को याचिकाकर्ता को एक आशय-पत्र भी जारी किया गया था, जिसके द्वारा उसे प्रथम वर्ष हेतु पट्टा राशि की एक त्रैमासिक किस्त के बराबर प्रतिभूति जमा राशि अर्थात 2,93,44,704 रुपये की राशि एवं प्रथम वर्ष की पट्टा राशि की पहली त्रैमासिक किस्त हेतु 2,93,44,704 रुपये, कुल मिलाकर 5,86,89,408 रुपये जमा करना अपेक्षित था। उपरोक्त राशि याचिकाकर्ता द्वारा जमा कर दी गई थी। इसके पश्चात याचिकाकर्ता को दिनांक 31.01.2019 को एक पर्यावरण मंजूरी प्रमाणपत्र भी जारी किया गया, जिसकी एक प्रति याचिका की संलग्नक 7 है।

5. जब याचिकाकर्ता ने आवंटित खनन स्थल का दौरा किया तो उसने पाया कि उसके आवंटित क्षेत्र पर कुछ खनन गतिविधियाँ हो रही हैं। यह तथ्य जिलाधिकारी, हमीरपुर द्वारा निदेशक, भूतत्व एवं खनिकर्म, उ0प्र0 सरकार को दिनांक 21.02.2019 को प्रेषित पत्र के अनुसार भी स्वीकार किया गया है। जिसकी एक प्रति याचिका के संलग्नक 8 है। उक्त पत्र में विभिन्न क्षेत्रों का उल्लेख किया गया था परंतु जहाँ तक याचिकाकर्ता के क्षेत्र का प्रश्न था, जो 23/21 था, यह इंगित किया गया था कि एक व्यक्ति अर्थात्

अनुवादित

मेसर्स यादव एंड संस जिसे 23/12 क्षेत्र आवंटित किया गया था एवं जिसे दिनांक11-12-2018 को पट्टा विलेख निष्पादित किया गया है, याचिकाकर्ता के क्षेत्र में कार्य करता हुआ पाया गया। पत्र में यह भी कहा गया है कि अधिकारियों द्वारा जो सीमांकन किया गया है, वह उचित रुप से नहीं किया गया है। फलस्वरुप जिला मजिस्ट्रेट ने उक्त पत्र में दर्शाए गए सभी क्षेत्रों हेतु नए सिरे से सीमांकन करने का आदेश दिया था, जिसमें याचिकाकर्ता का क्षेत्र एवं मेसर्स यादव एंड संस को आवंटित क्षेत्र अर्थात क्रमशः क्षेत्र संख्या 23/21 एवं 23/12 सम्मिलित थे। दिनांक 09.03.2019 को एक पत्र के माध्यम से, जिसकी एक प्रति याचिका की संलग्नक 9 है जो कि सभी पट्टाधारकों को जारी किया गया पत्र है, जिसमे यह इंगित किया गया था कि सीमांकन कार्य किया गया है।

6. याचिकाकर्ता का वाद यह था कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जारी पत्र दिनांकित 21.02.2019 के अनुसार याचिकाकर्ता को आवंटित क्षेत्र भी मेसर्स यादव एंड संस को आवंटित क्षेत्र के साथ अतिच्छादित हो रहा था। चूँकि पट्टा विलेख दिनांक11.12.2018 को मेसर्स यादव एंड संस के रुप में निष्पादित किया गया था, अतः निश्चित ही कुछ निष्कर्षण हुआ होगा। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता ने अपने पत्र दिनांकित 23.12.2019,जिसकी एक प्रति याचिका में संलग्नक 11 है, के माध्यम से खनिजों की मात्रा के पुनर्मूल्यांकन हेतु जिला मजिस्ट्रेट से संपर्क किया।

7. उक्त पत्र पर कोई ध्यान नहीं दिया गया अपितु याचिकाकर्ता को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 26.12.2019 को एक नोटिस जारी किया गया, जिसकी एक प्रति याचिका की संलग्नक 14 है, जिसमें यह कहा गया था कि अधिसूचना के अनुसार, खनिज की एक विशेष मात्रा इंगित की गई थी एवं याचिकाकर्ता की निविदा के आधार पर, आशय-पत्र जारी किया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता को पट्टा विलेख निष्पादित करना आवश्यक था, एवं यह कहा गया था कि ऐसा न करने पर आशय पत्र रद्द कर दिया जाएगा एवं जमा की गई राशि जब्त कर ली जाएगी।

8. उत्पन्न हुई उपरोक्त विशिष्ट स्थिति को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता ने पट्टा विलेख निष्पादित नहीं किया, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि रु 5,86,89,408/- दिनांकित 08.01.2020 के प्रश्नगत आदेश द्वारा जब्त कर ली गई।

9. व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने एक अपील दायर की जिसे दिनांक 30.04.2022 के प्रश्नगत आदेश, जिसकी एक प्रति याचिका की संलग्नक 2 है, द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। पुनः व्यथित याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर किया जिसे भी दिनांक 29.06.2022 के आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है, जिसकी एक प्रति याचिका की संलग्नक 1है, जिससे व्यथित होकर वर्तमान याचिका दायर की गई है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि जब प्रतिवादीगण ने आवेदन आमंत्रित करते हुए निविदा जारी की थी एवं उक्त नोटिस में याचिकाकर्ता के क्षेत्र से संबंधित खनिज की अनुमानित मात्रा 3,88,608 घन मीटर प्रति वर्ष निर्दिष्ट की गई थी, एवं जिला मजिस्ट्रेट द्वारा

अनुवादित

निदेशक, भूतत्व एवं खनिकर्म को जारी पत्र दिनांकित 21.02.2019 के अनुसार यह विदित हुआ कि याचिकाकर्ता का क्षेत्र अर्थात् क्षेत्र संख्या-23/21 मैसर्स यादव एंड संस के क्षेत्र के साथ अतिच्छादित हो रहा था, जिसका क्षेत्र संख्या 23/12 था, जिसका पट्टा विलेख दिनांक11.12.2018 को अर्थात उक्त पत्र से दो माह पूर्व ही निष्पादित किया जा चुका था। अतः मेसर्स यादव एंड संस द्वारा कुछ निष्कर्षण पहले ही हो चुका होगा। जिससे उस खनिज की मात्रा कम हो गई जिस हेतु याचिकाकर्ता ने बोली लगाई थी एवं धरोहर राशि भी जमा कर दी थी। याचिकाकर्ता को पट्टा विलेख निष्पादित करने हेतु बाध्य करते समय प्राधिकारियों को इस तथ्य पर विचार करना चाहिए था।

11. तथ्य का विस्तार करते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रारंभिक ई-निविदा दिनांक 09.05.2018 को जारी की गई थी जिसमें याचिकाकर्ता ने भाग लिया था, जिसके अनुसार 23/21 नामक क्षेत्र की अनुमानित खनिज मात्रा 3,88,604 घन मीटर प्रति वर्ष थी। इसके पश्चात प्रतिवादीगण ने दिनांक 21.04.2022 को एक ई-निविदा जारी की, जिसकी एक प्रति याचिका की संलग्नक16 है, जिसके अनुसार, जहाँ तक याचिकाकर्ता के क्षेत्र अर्थात 23/21 का संबंध है, खनिज की अनुमानित मात्रा 2,59,104 घन मीटर प्रति वर्ष दर्शाई गई थी जो स्वयं इस तथ्य का द्योतक है कि खनिज की अनुमानित मात्रा कम हो गयी है।

12. उनका यह भी तर्क है कि इस तथ्य से यह स्पष्ट है कि जब याचिकाकर्ता ने कोई पट्टा विलेख निष्पादित ही नहीं किया था एवं उक्त क्षेत्र अर्थात् 23/21 को कभी भी ई-निविदा या ई-नीलामी में नहीं रखा गया था एवं मेसर्स यादव एंड संस के अतिरिक्त, खनन करने वाला कोई अन्य व्यक्ति नहीं था जिसका क्षेत्र याचिकाकर्ता के क्षेत्र के साथ अतिच्छादित हो रहा थ,। अतः लगभग 4 वर्षों की अवधि में मात्रा 3,88,604 घन मीटर प्रति वर्ष से घटकर 2,59,104 घन मीटर प्रति वर्ष हो गई है जो इस तथ्य का संकेत है कि खनन गतिविधि गुप्त रूप से या अन्यथा हुई थी जिसके परिणामस्वरूप खनिज की अनुमानित मात्रा में कमी आई है जिस पर अधिकारियों द्वारा प्रश्नगत आदेश पारित करते समय विचार नहीं किया गया है एवं इस प्रकार मात्र इसी आधार पर प्रश्नगत आदेश रद्द किए जाने योग्य हैं एवं प्रतिवादीगण को अधिकारियों द्वारा जब्त की गई राशि ब्याज सहित याचिकाकर्ता को वापस करने का निदेश दिया जाए।

13. इस संबंध में विशेष अनुमति अपील(सी) संख्या 19619-19620/2017 मैसर्स प्लैनेट स्टील प्राइवेट लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य में दिनांक 10.04.2018 को दिए गए पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है।

14. दूसरी ओर, प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता डॉ. उदय वीर सिंह ने प्रतिशपथपत्र में निहित कथनों के आधार पर तर्क दिया कि नीलामी के निबन्धनों एवं शर्तों में ही यह निर्धारित है कि याचिकाकर्ता द्वारा नोटिस में निर्दिष्ट खनिज के अनुमान के आधार पर सुरक्षा राशि के साथ वार्षिक रायल्टी की पहली त्रैमासिक किस्त जमा करने की आवश्यकता है जो वास्तव में

अनुवादित

याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई थी। हालाँकि, तत्पश्चात यह याचिकाकर्ता ही था जिसने पट्टा विलेख को निष्पादित करने से इनकार कर दिया, जिससे राज्य को होने वाले राजस्व की हानि को रोकने हेतु जमा की गई राशि को जब्त कर लिया गया एवं परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता जमा की गई सुरक्षा राशि और रायल्टी राशि की वापसी का हकदार नहीं है। क्योंकि उसकी चूक के कारण याचिकाकर्ता को आवंटित उपरोक्त क्षेत्र को दूसरी नीलामी में नहीं रखा जा सका एवं राज्य सरकार को घाटा हुआ है। प्राधिकरण ने उचित रुप से प्रश्नगत आदेशों के माध्यम से राशि जब्त करने की कार्यवाही की है एवं जो नियमावली 1963 के नियम 59 के अनुरूप भी है।

15. जहाँ तक मैसर्स यादव एंड संस के साथ याचिकाकर्ता के क्षेत्र के अतिच्छादित होने का प्रश्न है, प्रति शपथपत्र के प्रस्तर 12 एवं 13 में निहित कथनों पर विश्वास व्यक्त करते हुए अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता का तर्क है कि निदेशालय ने बाद में सीमांकन किया गया एवं सभी पट्टा धारकों को उनके संबंधित आवंटित क्षेत्रों से संबद्ध कर दिया गया है।

16. जहाँ तक खनिज की मात्रा में सारभूत कमी का प्रश्न है, यह तर्क देने हेतु प्रति शपथपत्र के प्रस्तर 26 में प्रस्तुत कथनों पर विश्वास व्यक्त किया गया है कि भारी वर्षा के कारण खनिजों की अनुमानित मात्रा कम हो गई है।

17. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना एवं अभिलेख का परिशीलन किया।

18. अभिलेख के परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि राज्य सरकार द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में खनन के उद्देश्य से नोटिस दिनांकित 09.05.2018 के माध्यम से निविदाएं आमंत्रित की गई थीं। जहाँ तक वर्तमान विवाद का प्रश्न है, यह क्षेत्र क्रमांक 23/21 तहसील सरीला स्थित ग्राम भेरी खरका से संबंधित है। । नोटिस दिनांकित 09.05.2018 के अनुसार खनिज की अनुमानित मात्रा 3,88,604 घन मीटर प्रति वर्ष निर्दिष्ट की गई थी। सुरक्षा जमा राशि एवं वार्षिक रायल्टी की पहली त्रैमासिक किस्त का भुगतान सफल निविदादाताओं द्वारा किया जाना था। इस वाद में याचिकाकर्ता ने कुल रु. 5,86,89,408/- की राशि जमा की। याचिकाकर्ता को उक्त क्षेत्र में खनन हेतु पर्यावरण मंजूरी प्रमाण पत्र भी मिला। विवाद तब उत्पन्न हुआ जब जिलाधिकारी ने दिनांक 21.02.2019 को निदेशालय, भूतत्व एवं खनिकर्म को इस आशय का एक पत्र भेजा कि विभिन्न आवंटित क्षेत्रों में अतिच्छादन हुआ है। जहाँ तक वर्तमान विवाद का प्रश्न है, याचिकाकर्ता का क्षेत्र अर्थात् क्षेत्र संख्या 23/21, मेसर्स यादव एंड संस, जिसका क्षेत्र 23/12 था, को आवंटित क्षेत्र के साथ अतिच्छादित पाया गया। उक्त पत्र में यह भी संकेत दिया गया कि मेसर्स यादव एंड संस के संबंध में पट्टा विलेख दिनांक11 दिसंबर 2018 को निष्पादित किया गया है। पत्र दिनांक 21.02.2019 को भेजा गया है, जिसका अर्थ है कि पहले ही पर्याप्त समयावधि समाप्त हो चुकी है क्योंकि जहाँ तक यह मेसर्स यादव और संस से संबंधित है, मेसर्स यादव एंड संस का पट्टा विलेख पहले ही निष्पादित हो चुका है एवं क्षेत्रों में अतिच्छादन था। इस प्रकार स्वाभाविक धारणा यह थी कि मेसर्स यादव एंड संस ने याचिकाकर्ता के क्षेत्र में खनन किया होगा जो उनके अपने क्षेत्र के साथ अतिच्छादित हो रहा था। यद्यपि प्रतिवादीगण ने संबंधित क्षेत्रों का सीमांकन कर लिया है, जैसा कि जिला मजिस्ट्रेट के आदेश दिनांकित 21.02.2019 में अपेक्षित था एवं जैसा

कि पत्र दिनांकित 09.03.2019 के परिशीलन से स्पष्ट है, जिसकी एक प्रति याचिका में संलग्नक 9 है। परंतु अभी तक जो विवाद बना हुआ था वह यह था कि जब याचिकाकर्ता का क्षेत्र उस क्षेत्र के साथ अतिच्छादित था जिस हेतु मेसर्स यादव एंड संस को पट्टा विलेख बहुत पहले निष्पादित किया जा चुका था, एवं खनिजों की अनुमानित मात्रा, जैसा कि नोटिस दिनांकित 09.05.2018 में निर्दिष्ट थी एवं जिस हेतु याचिकाकर्ता ने बोली लगाई थी एवं धरोहर राशि भी जमा की थी, एवं रायल्टी की किश्त कम हो गई होगी। इस तथ्य के दृष्टिगत याचिकाकर्ता ने खनिजों की अनुमानित मात्रा के पुनर्मूल्यांकन हेतु कई अनुरोध किए परंतु कोई लाभ नहीं हुआ। प्रतिवादीगण ने ऐसा करने से इंकार कर दिया। प्रतिवादीगण ने याचिकाकर्ता को पट्टा विलेख निष्पादित करने हेतु बाध्य किया परंतु याचिकाकर्ता ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। दिनांक 26.12.2019 को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा याचिकाकर्ता को नोटिस भेजने एवं याचिकाकर्ता द्वारा पट्टा विलेख निष्पादित करने से इनकार करने के पश्चात, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जमा धरोहर राशि एवं रायल्टी की त्रैमासिक किश्त 5,86,89,408/- रु. जब्त करने का प्रश्नगत आदेश दिनांकित 08.09.2020 को पारित किया गया। उपरोक्त तथ्यों एवं आधारों को दर्शाते हुए याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील एवं संशोधन को भी दिनांक 30.04.2022 एवं 29.06.2022 के आदेशों के माध्यम से खारिज कर दिया गया था। अतः वर्तमान याचिका प्रस्तुत की गई।

19. वाद का मर्म यह है कि जब प्रतिवादीगण ने ई-निविदा दिनांकित 09.05.2018 के माध्यम से याचिकाकर्ता के क्षेत्र सहित विभिन्न क्षेत्रों हेतु आवेदन आमंत्रित किए गए थे एवं खनिज की अनुमानित मात्रा 3,88,604 घन मीटर प्रति वर्ष दर्शायी गई थी, एवं स्वीकार्य रूप से याचिकाकर्ता का उक्त क्षेत्र अर्थात क्षेत्र संख्या 23/21 को मेसर्स यादव एंड संस को आवंटित क्षेत्र संख्या 23/12 के साथ अतिच्छादित पाया गया एवं मेसर्स यादव एंड संस के पास पूर्व से ही उनके पक्ष में निष्पादित पट्टा विलेख था एवं इस तथ्य का पता लगभग दो माह की अवधि के पश्चात चला, जैसा कि जिला मजिस्ट्रेट के पत्र दिनांकित 21.02.2019 से स्पष्ट है, जिसके परिणामस्वरूप अनुमान लगाया गया था खनिजों की मात्रा याचिकाकर्ता को पट्टा विलेख निष्पादित करने हेतु बाध्य करने से पूर्व प्रतिवादीगण द्वारा पुनः अनुमानित होनी चाहिए थी।

20. खनिज की मात्रा में काफी कमी आई है, यह इस तथ्य से स्पष्ट होगा कि ई-निविदा आमंत्रित करने वाले पूर्व आवेदन की तिथि 09.05.2018 थी, जहाँ तक यह याचिकाकर्ता के क्षेत्र अर्थात् क्षेत्र संख्या 23/21 से संबंधित थी, एवं जब प्रतिवादीगण ने नई ई-निविदा आमंत्रित की, जैसा कि नोटिस दिनांकित 21.04.2022 के परिशीलन से स्पष्ट है, खनिजों की अनुमानित मात्रा 3,88,604 घन मीटर प्रति वर्ष से घटकर 2,59,104 घन मीटर हो गई जो लगभग 33% की कमी है। निःसंदेह नोटिस दिनांकित 09.05.2018 के पश्चात उक्त क्षेत्र की नीलामी नहीं की गई थी, अपितु इसे दिनांक 21.04.2022 को ही किया जाना था। निःसंदेह याचिकाकर्ता के क्षेत्र का पट्टा 11.12.2018 से 01.03.2019 तक अर्थात क्षेत्रों का पुनर्सीमांकन होने की अवधि तक मेसर्स यादव एंड संस के क्षेत्र के साथ अतिच्छादित हो रहा था, जैसा कि जिला

अनुवादित

मजिस्ट्रेट, हमीरपुर एवं खनन अधिकारी द्वारा क्रमशः दिनांक 28.02.2019 एवं 09.03.2019 को निर्गत पत्रों के परिशीलन से स्पष्ट है। ऐसा नहीं है कि याचिकाकर्ता पट्टा विलेख को निष्पादित करने हेतु इच्छुक नहीं था, अपितु वह प्रतिवादीगण से खनिज की मात्रा का पुनःआंकलन करने हेतु कह रहा था ताकि पट्टा विलेख को निष्पादित किया जा सके क्योंकि याचिकाकर्ता के पास पूर्व से ही अपने पक्ष में पर्यावरण मंजूरी प्रमाणपत्र था। हालाँकि, प्रतिवादीगण की ओर से पट्टा विलेख के निष्पादन हेतु बाध्य किया जा रहा था (बावजूद इस तथ्य के कि इस मामले में अनुमानित खनिज भंडार में लगभग 33% की कमी आई है, जैसा कि बाद में स्पष्ट हुआ)। अतः जिला मजिस्ट्रेट द्वारा 08.01.2020 को जारी किए गए आदेश, जिसकी एक प्रति याचिका का अनुलग्नक 3 है, में याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि को जब्त करने की कार्यवाही, विधि की किसी भी प्रकल्पना से समझी नहीं जा सकती है। उसी प्रकार, प्रश्नगत आदेश दिनांकित 30.04.2022, जिसके द्वारा अपील अस्वीकृत कर दी गई, एवं आदेश दिनांक 29.06.2022, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण अस्वीकृत कर दिया गया, भी विधिक रूप से अपोषणीय है।

21. इस संबंध में, न्यायालय मेसर्स प्लैनेट स्टील (उपरोक्त) के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ ग्रहण कर सकती है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने समान परिस्थितियों पर यह विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया था कि पूर्ण राशि को जमा की तारीख से भुगतान की तारीख तक 9% ब्याज के साथ वापस किया जाएगा।

22. सुविधा हेतु, मेसर्स प्लैनेट स्टील (उपरोक्त) के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अधोवर्णित है:

> *"हरियाणा राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि खनन प्रयोजनों हेतु नीलाम किया गया क्षेत्र 558.53 हेक्टेयर था। वास्तव में खनन हेतु 141.76 हेक्टेयर क्षेत्र उपलब्ध था। इस कथन की पुष्टि सूचना का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत प्रस्तुत एक आवेदन पर प्रदान उत्तर से भी होती है, जो पेपर बुक के पृष्ठ 531 से 535 पर उपलब्ध है। इन परिस्थितियों में याचिकाकर्ता ने नीलाम किए जाने वाले क्षेत्र पर कब्जा लेने से इनकार कर दिया। हरियाणा राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने नीलामी के निबंधन एवं शर्तों के खंड 5 का संदर्भ देते हुए कहा कि यह याचिकाकर्ता का कर्तव्य था कि वह यह सुनिश्चित करता कि भूमि वास्तव में 558.53 हेक्टेयर थी या नहीं। निबंधन एवं शर्तों का खंड 5 निम्नवत है:*
>
> > *"5. सभी भावी निविदादाताओं से अपेक्षा की जाती है एवं माना जाता है कि जिन क्षेत्रों हेतु निविदाएं प्रस्तुत की जानी हैं, उनकी क्षमता का स्व आकलन करने हेतु उन्होंने क्षेत्रों का सर्वेक्षण कर लिया है। राज्य सरकार निविदादाताओं/ठेकेदारों को किसी भी समय (अनुबंध देने से पहले या बाद में) होने वाले किसी भी प्रकार की क्षति*

हेतु उत्तरदायी नहीं होगी। इसके अलावा, निविदादाताओं से यह भी अपेक्षा की जाती है कि उन्होंने नीलामी नोटिस के निबन्धनों एवं शर्तों एवं खनन से संबंधित लागू अधिनियमों एवं नियमों को भी पढ़ लिया होगा।"

खंड 5 के सामान्य वाचन से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि भावी निविदादाता को मापन के उद्देश्य से क्षेत्र का सर्वेक्षण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। भावी निविदादाता उस क्षेत्र की क्षमता का आकलन कर सकता है जिस हेतु निविदा प्रस्तुत की जानी हैं।

यह सुनिश्चित करना राज्य का कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व है कि खनन प्रयोजनों हेतु नीलाम किया जाने वाला क्षेत्र विज्ञापन के अनुरूप हो। यह दृष्टिकोण पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा 15 जनवरी 2015 को मैसर्स हरियाणा रायल्टी कंपनी बनाम हरियाणा राज्य एवं एक अन्य [वर्ष2014 का सीडब्ल्यूपी संख्या. 15431] के वाद में भी व्यक्त किया गया है। स्वीकृत स्थिति यह है कि पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय का यह निर्णय अंतिम रूप ले चुका है। अतः राज्य द्वारा यह तर्क देना दोषपूर्ण है कि खनन उद्देश्यों हेतु नीलाम किए जाने वाले क्षेत्र को मापने की एकमात्र उत्तरदायित्व याचिकाकर्ता की थी।

परिणामस्वरूप, हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त किया जाना आवश्यक है एवं याचिकाकर्ता जमा राशि की वापसी का अधिकारी है। विज्ञापन में उल्लिखित भूमि के क्षेत्रफल में अत्यधिक विसंगति को देखते हुए याचिकाकर्ता को यह राशि जमा करने की तारीख से भुगतान की तारीख तक 9% प्रति वर्ष ब्याज के साथ आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर वापस कराई जाए एवं क्षेत्र उपलब्ध कराया जाए।

विशेष अनुमति याचिकाओं का निस्तारित किया जाता है यदि कोई लंबित आवेदन हो तो वह भी निस्तारित किया जाता है।
(बल प्रदान किया गया)

23. मेसर्स प्लैनेट स्टील प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का परिशीलन यह संकेत देगा कि उपरोक्त वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारण हेतु यह एक ऐसा मामला था जिसमें खनन प्रयोजन हेतु नीलाम किए गए क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल खनन हेतु उपलब्ध कराये गये वास्तविक क्षेत्र से भिन्न था अर्थात क्षेत्र काफी कम हो गया था। सफल निविदाकर्ता ने नीलामी हेतु मांगे गए क्षेत्र पर कब्ज़ा लेने से इनकार कर दिया जिसके परिणामस्वरूप सफल निविदाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि जब्त कर ली गई। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि सफल निविदाकर्ता द्वारा नीलाम किए जाने वाले क्षेत्र पर कब्ज़ा लेने से इनकार करना वैध था क्योंकि क्षेत्रफल कम हो गया था

अनुवादित

एवं इस प्रकार सफल निविदाकर्ता ब्याज सहित जमा राशि वापस पाने का अधिकारी था।

24. इस वाद में भी याचिकाकर्ता को आवंटित किया गया क्षेत्र किसी अन्य व्यक्ति के क्षेत्र के साथ अतिच्छादित होता हुआ पाया गया, जिस हेतु पट्टा विलेख लगभग दो माह पूर्व ही निष्पादित किया जा चुका था। इस पर विचार करते हुए याचिकाकर्ता ने अनुमानित खनिजों के पुनर्मूल्यांकन हेतु अनुरोध किया, जिसे अधिकारियों ने स्वीकार नही किया अपितु पट्टा विलेख के निष्पादन हेतु आग्रह किया जिसे याचिकाकर्ता ने निष्पादित करने से इनकार कर दिया। अस्वीकृति के कारण अनुमानित खनिज मात्रा के पुनर्मूल्यांकन हेतु याचिकाकर्ता का पक्ष स्वयं प्रतिवादीगण द्वारा जारी किए गए आदेशों से मजबूत होता है, जैसा कि दिनांक 09.05.2018 एवं 21.04.2022 की दो ई-निविदाओं से स्पष्ट होगा, जिसके अनुसार खनिज की अनुमानित मात्रा लगभग 33% कम हो गई। इस प्रकार याचिकाकर्ता द्वारा पट्टा विलेख के निष्पादन हेतु प्रतिवादीगण की ओर से आग्रह करना एवं याचिकाकर्ता के इनकार करने पर सुरक्षा जमा राशि एवं रायल्टी राशि की जब्ती को विधिक रूप से पोषणीय नहीं कहा जा सकता है।

25. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत रिट याचिका को स्वीकृत किया जाता है। दिनांकित 29.06.2022, 30.04.2022 एवं 08.01.2022 के प्रश्नगत आदेश, जिनकी प्रतियां याचिका की क्रमशः संलग्नक 1, 2 एवं 3 हैं, रद्द किए जाते हैं। प्रतिवादीगण को जमा के दिनांक से वास्तविक भुगतान के दिनांक तक प्रति वर्ष 9% ब्याज के साथ 5,86,89,408/- रुपये की राशि वापस करने का निर्देश दिया जाता है। 9% की दर से ब्याज देते समय यह न्यायालय मेसर्स प्लैनेट स्टील प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अनुसरण कर रहा है। इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन माह की अवधि में राशि वापस की जाए।

26. वाद को समाप्त करने से पूर्व न्यायालय इस तथ्य का न्यायिक नोटिस ले सकता है कि प्रश्नगत क्षेत्र हेतु अनुमानित खनिज भंडार वर्ष2018 से 2022 तक लगभग 33% कम हो गया है। स्वीकार्य रूप से उक्त क्षेत्र में कोई खनन गतिविधि नहीं हुई क्योंकि याचिकाकर्ता पट्टा विलेख निष्पादित करने में असफल रहा एवं उक्त क्षेत्र उस अवधि को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति को आवंटित नहीं किया गया था जब याचिकाकर्ता का क्षेत्र मेसर्स यादव एंड संस के क्षेत्र के साथ अतिच्छादित हुआ था। प्रति शपथपत्र, विशेष रुप से प्रस्तर 26 में, भारी बारिश के कारण अनुमानित खनिज भंडार कम होने का जो अभिकथन किया गया है, वह विश्वसनीय न हो कर हास्यास्पद है।

26. जो भी हो, वाद का तथ्य यह है कि राज्य के मूल्यवान खनिज भंडार का प्रथम दृष्टया संबंधित अधिकारियों की निष्क्रियता / मिलीभगत / साँठ-गाँठ एवं लापरवाही एवं अवैध खननकर्ताओं के कारण निष्कर्षण होने दिया गया। यह एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक मुद्दा है। यह न्यायालय उत्तर प्रदेश राज्य के मुख्य सचिव से इस मामले की जांच करने की अपेक्षा करता है कि चार वर्षों की अवधि में उपरोक्त क्षेत्र में मूल्यवान खनिज

अनुवादित

भंडार कैसे नष्ट हो गए एवं वस्तुतः कम हो गए। उक्त उद्देश्य हेतु मुख्य सचिव स्वतंत्र है कि वह या तो स्वयं जाँच करें अथवा उक्त जाँच हेतु जिम्मेदार वरिष्ठ अधिकारियों की तीन सदस्यीय समिति बनाएं, जिसमें से एक प्रमुख सचिव स्तर का होना चाहिए जो उक्त जाँच का संचालन करे।

27. आज से तीन माह की अवधि में इस न्यायालय के वरिष्ठ निबंधक को एक जाँच रिपोर्ट सौंपी जाए।

28. यह वाद मात्र उक्त उद्देश्य हेतु दिनांक25.04.2023 को उपयुक्त न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध किया जाएगा।

29. कार्यालय द्वारा आदेश की एक प्रति 10 दिन में राज्य के मुख्य सचिव को भेजी जाये।

(2023) 2 ILRA 290

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 20.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,
माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता,
माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी,

रिट-सी संख्या 16538 /2018

श्याम नारायण राम

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री शशि नंदन (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री उदयन नंदन, श्री कमलेश कुमार त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री एम.सी. चतुर्वेदी, अति. महाधिवक्ता, श्री विनीत पांडे, मुख्य स्थायी वकील, श्री सुधांशु श्रीवास्तव, अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील, श्री सैफुल इस्लाम सिद्दीकी

A. स्थानीय निकाय - भारतीय संविधान अनुच्छेद 243-बी - उ.प्र. (क्षेत्र पंचायतें और जिला पंचायतें) अधिनियम 1961 - धारा 15 - क्षेत्र पंचायत - अविश्वास प्रस्ताव - सदस्यों द्वारा पद की शपथ नहीं ली जा सकेगी - सदस्यता पर प्रभाव - आयोजित, ऐसे निर्वाचित सदस्य का निर्वाचित सदस्य नहीं रहेगा और न ही उसका स्थान रिक्त माना जाता है - निर्वाचित सदस्य पद की शपथ न लेने पर अपने पद पर बने रहना बंद नहीं करते हैं। (पैरा 23 और 31)

B. स्थानीय निकाय - उ.प्र. (क्षेत्र पंचायतें और जिला पंचायतें) अधिनियम 1961 निर्वाचित सदस्य - अर्थ - निर्वाचित सदस्य वे होते हैं जो पंचायत क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से सीधे चुनाव द्वारा चयनित किए जाते हैं। (पैरा 31)

सी. स्थानीय निकाय - उ.प्र. (क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत) अधिनियम 1961 - धारा 15 - क्षेत्र पंचायत सदस्यों द्वारा पद की शपथ की कोई सदस्यता नहीं - ऐसे सदस्यों को अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने और अविश्वास प्रस्ताव के लिए आयोजित बैठक में मतदान करने का अधिकार - आयोजित- अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए विशिष्ट उद्देश्य के साथ एक बैठक आयोजित की गई और यह अपने

अनुवादित

सामान्य व्यवसाय को निस्तारण के लिए आयोजित क्षेत्र पंचायत की बैठक से भिन्न है। एक निर्वाचित सदस्य, भले ही उसने शपथ न ग्रहण की हो, अविश्वास की बैठक में भाग लेने का अधिकारी है, हालांकि क्षेत्र पंचायत के सामान्य व्यवसाय को निपटाने के लिए आयोजित बैठक में भाग लेने का अधिकारी नहीं होगा। (पैरा 40 और 42)

डी. विधि में अभाव- कैसे निपटा जाए - विधायी कैसस ओमिसस को न्यायिक व्याख्या की प्रक्रिया द्वारा आपूर्ति नहीं की जा सकती - उच्च न्यायालय ने आशा व्यक्त की कि बिना किसी देरी के आवश्यक सुधारात्मक कदम उठाए जाएंगे (पैरा 26 और 30)

ई. क़ानून की व्याख्या - वैधानिक व्याख्या मैक्सिम 'यूट रेस मैगिस वैलेट क्वाम पेरेआ- एक क़ानून या उसमें कोई भी अधिनियमित प्रावधान इस प्रकार समझा जाना चाहिए कि वह प्रभावी और क्रियाशील हो सके। (पैरा 41)
सन्दर्भ निर्धारित। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद:-</u>

1. श्याम नारायण राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य अन्य.; 2019 (2) एडीजे 21

2. राम पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य.; (2018) 6 एससीसी 692
3. श्रीमती कमला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य.; 2004 (8) एडीजे 525
4. अलका देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य.; 2014 (10) एडीजे 179
5. के.सी. चांडी बनाम आर. बालकृष्ण पिल्लई; एआईआर 1986 केईआर 116
6. मैसर्स यूनिक ब्यूटाइल ट्यूब इंडस्ट्रीज प्रा. लिमिटेड बनाम यू.पी. वित्तीय निगम एवं अन्य; एआईआर 2003 एससी 2103
7. डी.आर वेंकटचलम एवं अन्य आदि बनाम उप. परिवहन आयुक्त एवं अन्य; एआईआर 1977 एससी 842
8. बिक्री कर आयुक्त, उ.प्र. लखनऊ बनाम मैसर्स पार्सन टूल्स एंड प्लांट्स, कानपुर; (1975) 4 एससीसी 22
9. मैनचेस्टर शिप कैनाल कंपनी बनाम मैनचेस्टर रेसकोर्स कंपनी; (1904) 2 अध्याय 352. पृ. 360, 361
10. व्हिटनी बनाम आईआरसी, (1926) एसी 37, पृ. 52
11. सीआईटी बनाम एस. तेजा सिंह, एआईआर 1959 एससी 352, पी. 356: 1959 पूरक (1) एससीआर 394
12. गुरसहाय बनाम सीआईटी, एआईआर 1963 एससी 1062, पी. 1065: (1963) 3 एससीआर 893
13. सोढ़ी ट्रांसपोर्ट कंपनी बनाम सेंट ऑफ यूपी, (1986) 2 एससीसी 486, पृष्ठ 492: एआईआर 1986 एससी 1099
14. तिनसुखिया इलेक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड बनाम असम राज्य

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,
माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता
एवम
माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी, द्वारा प्रदत्त)

<u>निर्णय</u>

अनुवादित

1. वृहद पीठ का वर्तमान संदर्भ **श्याम नारायण राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [2019 (2) एडीजे 21]** में एक खंडपीठ द्वारा पारित दिनांक 7.12.2018 के एक आदेश से उत्पन्न होता है, जिसकी उत्पत्ति **राम पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [2018 (6) एससीसी 692]** में माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों की विभाजित राय में हुई थी। वृहद पीठ को संदर्भित प्रश्न है-

> "क्या क्षेत्रा पंचायत के निर्वाचित सदस्य, जिन्होंने सदन में अपनी सीट लेने से पहले सदस्य के रूप में पद की शपथ नहीं ली है या सदस्यता नहीं ली है, प्रमुख के खिलाफ 'अविश्वास प्रस्ताव' लाने के इरादे के नोटिस पर हस्ताक्षर करने और इस तरह के अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए आयोजित बैठक में भाग लेने और मतदान करने के हकदार हैं।"

परिचय

2. खण्डपीठ के समक्ष उपर्युक्त मुद्दा जिस पृष्ठभूमि के तथ्य में उठा था, वह यह था कि याचिकाकर्ता एक क्षेत्रा पंचायत का निर्वाचित प्रमुख था, जिसके कुल सदस्यों की संख्या 120 थी। उनके खिलाफ 81 सदस्यों ने अविश्वास प्रस्ताव पेश किया। इस उद्देश्य के लिए आयोजित क्षेत्र पंचायत की बैठक में इसे सफलतापूर्वक पारित किया गया। बैठक में 79 सदस्यों ने भाग लिया, जिनमें से 74 ने प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया। याचिकाकर्ता के खिलाफ पारित अविश्वास प्रस्ताव को इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका में इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि कुल निर्वाचित सदस्यों में से केवल 69 ने पद की शपथ ली थी और शेष 51 ने शपथ नहीं ली थी। बड़ी संख्या में शपथ नहीं लेने वाले सदस्यों (13 सदस्यों) ने अविश्वास प्रस्ताव लाने के इरादे के नोटिस पर हस्ताक्षर किए थे और उन्होंने उस बैठक में भी भाग लिया था जिसमें अविश्वास प्रस्ताव पारित किया गया था। यह तर्क दिया गया था कि निर्वाचित सदस्य जिन्होंने शपथ की सदस्यता नहीं ली थी, वे नोटिस पर हस्ताक्षर करने और/या बैठक में भाग लेने के हकदार नहीं थे। यदि इन निर्वाचित सदस्यों को बाहर रखा जाता है, तो अविश्वास प्रस्ताव पर निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या के आधे से अधिक द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे। इस प्रकार, अविश्वास प्रस्ताव वैध रूप से पारित नहीं किया गया था।

3. इससे पहले कि हम आगे बढ़ें**, राम पाल सिंह** (उपरोक्त) के मामले के तथ्यों और **श्याम नारायण राम** (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा नोट की गई राय के विचलन को विज्ञापित करना उपयोगी होगा, जिसके परिणामस्वरूप वृहद पीठ का संदर्भ दिया गया है।

राम पाल सिंह के मामले के तथ्य

4. क्षेत्रा पंचायत, जसराना, जिला फिरोजाबाद में 63 निर्वाचित सदस्य शामिल थे। क्षेत्र पंचायत की पहली बैठक 18.03.2016 को हुई थी, जिसमें याचिकाकर्ता राम पाल सिंह को प्रमुख चुना गया था। उन्होंने उक्त बैठक में पद की शपथ ली। इसके बाद उन्होंने 17 को छोड़कर शेष 17 सदस्यों को पद की शपथ दिलाई। इसके विपरीत, निजी उत्तरदाताओं (निर्वाचित सदस्यों) का संस्करण यह था कि सभी 63 निर्वाचित सदस्यों

अनुवादित

ने पद की शपथ ली। समय के साथ, राम पाल सिंह के खिलाफ 13 सदस्यों सहित 39 निर्वाचित सदस्यों द्वारा अविश्वास प्रस्ताव पेश किया गया था, जिन्होंने कथित तौर पर पद की शपथ नहीं ली थी। अविश्वास प्रस्ताव को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि 13 निर्वाचित सदस्य, जिन्होंने शपथ नहीं ली थी, अविश्वास प्रस्ताव लाने के इरादे के नोटिस पर हस्ताक्षर करने के हकदार नहीं थे और यदि उन्हें बाहर रखा जाता है, तो प्रस्ताव पर केवल 26 निर्वाचित सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, जो कुल 63 निर्वाचित सदस्यों की संख्या के आधे से भी कम है और इस प्रकार यह विफल हो जाएगा।"।

5. "राम पाल सिंह (उपरोक्त) के मामले में निर्णय माननीय न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर और माननीय न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता द्वारा दिया गया है। उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने सर्वसम्मति से यह माना कि पद की शपथ को अत्यधिक पवित्रता प्रदान की जानी चाहिए और यह भी माना कि किसी निर्धारित अयोग्यता के अभाव में, निष्ठा की शपथ न लेने का परिणाम स्वतः किसी निर्वाचित सदस्य की अपात्रता या अयोग्यता या सीट के रिक्त होने के रूप में नहीं होता। तथापि, निम्नलिखित पहलुओं पर मतभेद है:" -

> ("क) माननीय न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर ने यह माना है कि किसी निर्वाचित सदस्य के लिए अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षरकर्ता होने पर कोई प्रतिबंध नहीं है, जबकि माननीय न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता ने माना है कि ऐसा निर्वाचित सदस्य अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर नहीं कर सकता।
>
> (ख) जहाँ माननीय न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर ने यह मुद्दा अनिर्णीत छोड़ दिया है कि क्या अविश्वास प्रस्ताव की कार्यवाही क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्य का विधायी कार्य है या गैर-विधायी कार्य है, सिवाय इस टिप्पणी के कि ऐसे सदस्यों की अनुपस्थिति में, प्रस्ताव विफल हो सकता है, वहीं माननीय न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता ने माना है कि यह पंचायत की कार्यवाही का हिस्सा है और इसलिए ऐसे सदस्य अविश्वास प्रस्ताव पर विचार के लिए आयोजित बैठक में भाग नहीं ले सकते या मतदान नहीं कर सकते।
>
> (ग) यद्यपि माननीय न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर ने इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **श्रीमती कमला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** [2004 (8) एडजे 525] में निर्धारित कानून पर निर्भर किया था, जो समान मुद्दों पर निर्णय लेते हुए यह मानता था कि निर्वाचित सदस्य के अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने में कोई रोक नहीं है, लेकिन माननीय न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता ने माना है कि उक्त निर्णय कानून की सही स्थिति नहीं बताता। कमला देवी के मामले (उपरोक्त) में यह माना गया है कि (i) पद की शपथ न लेने वाले निर्वाचित सदस्य पर कोई अयोग्यता लागू नहीं होती (ii) ऐसा सदस्य अविश्वास प्रस्ताव लाने के इरादे की सूचना पर हस्ताक्षर करने का हकदार है, और (iii) अविश्वास की बैठक में भाग लेने का हकदार है।"

अनुवादित

6. उन बिंदुओं को छोड़कर, जिन पर राय में विरोधाभास है, **राम पाल सिंह** (उपरोक्त) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून इस न्यायालय पर बाध्यकारी है।

प्रस्तुतियाँ

7. "याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन ने निवेदन किया कि उत्तर प्रदेश (क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत) अधिनियम, 1961 (जिसे आगे 'अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 15 के अंतर्गत प्रदान की गई अविश्वास प्रस्ताव की प्रक्रिया को इस प्रकार विभाजित नहीं किया जा सकता कि जिस निर्वाचित सदस्य ने शपथ नहीं ली है, वह अविश्वास की बैठक में भाग लेने का हकदार नहीं है परंतु प्रस्ताव लाने के इरादे की सूचना पर हस्ताक्षर कर सकता है। दूसरे शब्दों में, उनका निवेदन है कि निर्वाचित सदस्य, जिसने पद की शपथ नहीं ली है, यदि अविश्वास की बैठक में भाग नहीं ले सकता, तो वह सूचना पर भी हस्ताक्षर नहीं कर सकता।

उन्होंने आगे निवेदन किया कि धारा 15(13) के अंतर्गत प्रमुख द्वारा पद ग्रहण करने के एक वर्ष के भीतर अविश्वास प्रस्ताव की सूचना नहीं दी जा सकती। धारा 15 के अंतर्गत एक वर्ष की अवधि पद ग्रहण करने की तिथि से प्रारंभ होती है, न कि निर्वाचन की तिथि से। पद ग्रहण करने की तिथि का अर्थ है वह तिथि जिस दिन प्रमुख पद की शपथ लेता है, न कि वह तिथि जिस दिन उसे निर्वाचित घोषित किया जाता है। अपने निवेदन के समर्थन में, उन्होंने इस न्यायालय के खंडपीठ निर्णय **अलका देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** [2014 (10) एडजे 179] का हवाला दिया है।

अतः यह तर्क दिया गया है कि निर्वाचित सदस्य जिसने पद की शपथ नहीं ली है, उसे निर्वाचित सदस्य के रूप में पद ग्रहण किया हुआ नहीं माना जा सकता और परिणामस्वरूप वह अविश्वास प्रस्ताव लाने या ऐसी कार्यवाही में भाग लेने का हकदार नहीं है। उन्होंने अपने निवेदन को मजबूत करने के लिए अधिनियम की धारा 79 का सहारा लिया। उन्होंने **केरल उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ निर्णय के.सी. चांडी बनाम आर. बालकृष्ण पिल्लै** [एआईआर 1986 केर 116] का हवाला देते हुए पद की प्रतिज्ञा की शपथ की पवित्रता पर भी जोर दिया।"

8. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री एम.सी. चतुर्वेदी ने क्षेत्र पंचायत और क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्य के बीच अंतर स्पष्ट करने का प्रयास किया। उन्होंने निवेदन किया कि क्षेत्र पंचायत का गठन धारा 6 के अंतर्गत होता है और इसमें प्रमुख, खंड के सभी ग्राम पंचायतों के प्रधान, निर्वाचित सदस्य, लोकसभा के सदस्य और राज्य विधानसभा के सदस्य जो उन निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो पूर्णतः या आंशिक रूप से खंड में शामिल हैं, और राज्यसभा के सदस्य तथा राज्य विधान परिषद के सदस्य जो खंड के भीतर मतदाता के रूप में पंजीकृत हैं, शामिल होते हैं। अधिनियम की धारा 6(2) केवल निर्वाचित सदस्यों को प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव में भाग लेने की अनुमति देती है और यह दर्शाता है कि अविश्वास प्रस्ताव क्षेत्र पंचायत की कार्यवाही नहीं है, इसलिए ऐसी कार्यवाही में वे निर्वाचित सदस्य भी भाग ले सकते हैं, जिन्होंने पद की शपथ नहीं ली है। उन्होंने अपने तर्क के समर्थन में अधिनियम की धारा 62 और 65 का भी उल्लेख किया है।

अनुवादित

अपने निवेदन को विस्तृत करते हुए, उन्होंने बताया कि अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बैठक कलेक्टर द्वारा बुलाई जाती है, जबकि क्षेत्र पंचायत के कार्य संचालन के लिए बैठक प्रमुख द्वारा बुलाई जाती है। अविश्वास प्रस्ताव की बैठक क्षेत्र पंचायत के कार्यालय में आयोजित की जानी चाहिए और जिसमें केवल अविश्वास प्रस्ताव पर बहस के लिए रखा जाता है और कोई अन्य एजेंडा नहीं हो सकता, जबकि क्षेत्र पंचायत के कार्य संचालन के लिए बुलाई गई साधारण बैठक क्षेत्र पंचायत के कार्यालय के अलावा किसी अन्य स्थान पर भी आयोजित की जा सकती है और ऐसी बैठक में एजेंडे की मदों की संख्या से संबंधित कोई प्रतिबंध नहीं है। उन्होंने उच्चतम न्यायालय के **पशुपति नाथ शुक्ल** (उपरोक्त) निर्णय और इस न्यायालय के **श्रीमती कमला देवी** (उपरोक्त) निर्णय का हवाला दिया है।"-

<u>संविधान और अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधान</u>

9. इससे पहले कि हम संबंधित मुद्दों का विश्लेषण करें, प्रासंगिक अधिनियमनों का संक्षिप्त अवलोकन आवश्यक है। संविधान (तिहत्तरवां संशोधन) अधिनियम, 1992 द्वारा, पंचायतों से संबंधित भाग IX जोड़ा गया। अनुच्छेद 243 पंचायत को ग्रामीण क्षेत्रों के लिए अनुच्छेद 243-ख के अधीन गठित स्वशासन की संस्था के रूप में परिभाषित करता है। 'पंचायत' शब्द एक व्यापक पद है जो अपने दायरे में (क) ग्राम स्तर (ख) मध्यवर्ती स्तर और (ग) जिला स्तर की पंचायतों को शामिल करता है। अनुच्छेद 243-ग पंचायतों की संरचना का प्रावधान करता है और कहता है कि भाग IX के प्रावधानों के अधीन, राज्य का विधानमंडल, कानून द्वारा, पंचायतों की संरचना के संबंध में प्रावधान बना सकता है। अनुच्छेद 243-ग का खंड (2) प्रदान करता है कि पंचायत में सभी सीटें पंचायत क्षेत्र में क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गए व्यक्तियों द्वारा भरी जाएंगी और इस उद्देश्य के लिए, प्रत्येक पंचायत को क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाएगा। खंड (5) निर्धारित करता है कि मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत का अध्यक्ष उसके निर्वाचित सदस्यों द्वारा और उनमें से चुना जाएगा। अनुच्छेद 243-ङ पंचायत आदि की अवधि का प्रावधान करता है और यह निर्धारित करता है कि प्रत्येक पंचायत, जब तक कि तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन पहले ही विघटित न कर दी जाए, अपनी प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख से पांच वर्ष तक और उससे अधिक नहीं, बनी रहेगी। पंचायतों की शक्तियों, प्राधिकार और उत्तरदायित्व का ध्यान अनुच्छेद 243-छ द्वारा रखा गया है। ये पंचायतों को राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून द्वारा प्रदान किए जाते हैं ताकि वे स्वशासन की संस्थाओं के रूप में कार्य कर सकें। यह उन्हें राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून द्वारा निर्धारित ऐसे कर, शुल्क, पथकर और फीस लगाने, संग्रह करने और विनियोजित करने के लिए अधिकृत कर सकता है। अनुच्छेद 243-क राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा पंचायत के सभी चुनावों के लिए मतदाता सूचियों की तैयारी और संचालन के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण का प्रावधान करता है। अनुच्छेद 243-ञ द्वारा लगाए गए प्रतिबंध के कारण किसी भी पंचायत के चुनाव को चुनाव याचिका के अलावा प्रश्नगत नहीं किया जा सकता।

10. क्षेत्र पंचायत संविधान के अनुच्छेद 243-ख के तहत परिकल्पित मध्यवर्ती स्तर की पंचायत है। उत्तर प्रदेश (क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत) अधिनियम, 1961 क्षेत्र पंचायत के निगमन,

अनुवादित

गठन और शक्तियों और कार्यों के स्रोत तथा कार्य संचालन से संबंधित एक पूर्ण संहिता है। अधिनियम के प्रावधानों में संविधान (तिहत्तरवां संशोधन) अधिनियम, 1992 के अनुरूप लाने के लिए उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 21, 1995 द्वारा व्यापक संशोधन किए गए थे।"

11. अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत, प्रत्येक खंड के लिए उस खंड के नाम वाली एक क्षेत्र पंचायत होगी। यह एक निगमित निकाय है। क्षेत्र पंचायत की संरचना अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत प्रदान की गई है, जो निम्नानुसार है:

> **"6. क्षेत्र पंचायत की संरचना** - (1) एक क्षेत्र पंचायत में एक प्रमुख होगा, जो उसका अध्यक्ष होगा और
>
> (क) खंड में ग्राम पंचायतों के सभी प्रधान;
>
> (ख) निर्वाचित सदस्य, जो पंचायत क्षेत्र में क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाएंगे और इस उद्देश्य के लिए पंचायत क्षेत्र को क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों में इस प्रकार विभाजित किया जाएगा कि, जहां तक व्यावहारिक हो, प्रत्येक क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या दो हजार हो:
>
> परंतु नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, टेहरी, पौड़ी, देहरादून, चमोली या उत्तरकाशी के पहाड़ी जिलों में, राज्य सरकार इस संबंध में उसके द्वारा निर्दिष्ट गांव के केंद्र से एक किलोमीटर की त्रिज्या (दो किलोमीटर का व्यास) के भीतर के क्षेत्र को क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्र घोषित कर सकती है, भले ही ऐसे क्षेत्र की जनसंख्या दो हजार से कम हो:
>
> परंतु यह और कि क्षेत्र पंचायत के क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्र में, किसी घटक ग्राम पंचायत का कोई क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्र आंशिक रूप से शामिल नहीं किया जाएगा।
>
> (ग) लोकसभा के सदस्य और राज्य विधानसभा के सदस्य जो उन निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो पूर्णतः या आंशिक रूप से खंड में शामिल हैं;
>
> (घ) राज्यसभा के सदस्य और राज्य विधान परिषद के सदस्य जो खंड के भीतर मतदाता के रूप में पंजीकृत हैं।
>
> (2) उपधारा (1) के खंड (क), (ग) और (घ) में उल्लिखित क्षेत्र पंचायत के सदस्य क्षेत्र पंचायत की बैठकों में कार्यवाही में, सिवाय प्रमुख या [***]*(उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 44/2007 द्वारा 'उप-प्रमुख' शब्द को जहां भी आता है, हटा दिया गया है। तथापि, जोड़ने वाले वाक्यांश 'या', 'और', 'ऐसे' को नहीं हटाया गया है।)* के निर्वाचन के मामलों में, और उनके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पर भाग लेने और मतदान करने के हकदार होंगे।
>
> (3) उपधारा (1) के खंड (ख) में संदर्भित प्रत्येक क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व एक सदस्य द्वारा किया जाएगा।
>
> (4) जिला पंचायत का प्रत्येक निर्वाचित सदस्य जो उस निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है जो पूर्णतः या आंशिक रूप से किसी क्षेत्र पंचायत को

अनुवादित

शामिल करता है, ऐसी क्षेत्र पंचायत की बैठकों में विशेष आमंत्रित के रूप में भाग लेने और अपने विचार व्यक्त करने का हकदार होगा लेकिन ऐसी बैठकों में मतदान का अधिकार नहीं होगा।"

12. धारा 7 प्रदान करती है कि प्रत्येक क्षेत्र पंचायत में एक प्रमुख होगा जो क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने में से चुना जाएगा। क्षेत्र पंचायत और उसके सदस्यों की अवधि धारा 8 के अंतर्गत प्रदान की गई है। यह कहता है कि प्रत्येक क्षेत्र पंचायत, जब तक कि इस अधिनियम के अधीन पहले ही विघटित न कर दी जाए, अपनी प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख से पांच वर्ष तक और उससे अधिक नहीं, बनी रहेगी। धारा 9 के अंतर्गत, प्रमुख की अवधि उसके निर्वाचन से प्रारंभ होगी और क्षेत्र पंचायत की अवधि तक विस्तारित होगी। धारा 11 प्रमुख और सदस्य के त्यागपत्र से संबंधित है और धारा 13 क्षेत्र पंचायत की सदस्यता से अयोग्यताओं से संबंधित है। धारा 15 प्रमुख में अविश्वास प्रस्ताव से संबंधित है और नीचे पुनः प्रस्तुत की गई है:

"15. प्रमुख या [***](पूर्वोक्त पृष्ठ 09) **में अविश्वास प्रस्ताव** -

(1) क्षेत्र पंचायत के प्रमुख या किसी [***](पूर्वोक्त पृष्ठ 09) में अविश्वास व्यक्त करने वाला प्रस्ताव निम्नलिखित उपधाराओं में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किया जा सकता है और आगे बढ़ाया जा सकता है।

(2) प्रस्ताव करने के इरादे की लिखित सूचना ऐसे प्रारूप में जो निर्धारित किया जाए, क्षेत्र पंचायत के तत्समय कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या के कम से कम आधे सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित, प्रस्तावित प्रस्ताव की एक प्रति के साथ, सूचना पर हस्ताक्षर करने वाले किसी एक सदस्य द्वारा व्यक्तिगत रूप से क्षेत्र पंचायत के अधिकार क्षेत्र वाले कलेक्टर को सौंपी जाएगी।

(3) कलेक्टर तदुपरांत:

(i) प्रस्ताव पर विचार के लिए क्षेत्र पंचायत की बैठक उसके द्वारा नियत तिथि को क्षेत्र पंचायत के कार्यालय में बुलाएगा, जो उपधारा (2) के अंतर्गत उसे सूचना सौंपे जाने की तिथि से तीस दिन से अधिक नहीं होगी; और

(ii) क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को ऐसी बैठक का कम से कम पंद्रह दिन का नोटिस ऐसी रीति से देगा जो निर्धारित की जाए।

स्पष्टीकरण - इस उपधारा में निर्दिष्ट तीस दिन की अवधि की गणना में, वह अवधि जिसके दौरान इस धारा के अंतर्गत किए गए प्रस्ताव के विरुद्ध दायर याचिका पर सक्षम न्यायालय द्वारा जारी किया गया स्थगन आदेश, यदि कोई हो, प्रभावी है, और साथ ही सदस्यों को बैठक के नए नोटिस जारी करने में आवश्यक ऐसा अतिरिक्त समय, को शामिल नहीं किया जाएगा।

(4) उस उपमंडल का उपखंड अधिकारी जिसमें क्षेत्र पंचायत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करती है, ऐसी बैठक की अध्यक्षता करेगा:

परंतु यदि क्षेत्र पंचायत एक से अधिक उपमंडल में अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करती है या उपखंड अधिकारी किसी

अनुवादित

कारण से अध्यक्षता नहीं कर सकता है, तो कलेक्टर द्वारा नामित कोई वैतनिक अपर या सहायक कलेक्टर बैठक की अध्यक्षता करेगा:

(4-क) यदि बैठक के लिए नियत समय से एक घंटे के भीतर ऐसा अधिकारी बैठक की अध्यक्षता करने के लिए उपस्थित नहीं होता है, तो बैठक उपधारा (4-ख) के अधीन उसके द्वारा नियत की जाने वाली तिथि और समय के लिए स्थगित हो जाएगी।

(4-ख) यदि उपधारा (4) में उल्लिखित अधिकारी बैठक की अध्यक्षता करने में असमर्थ है, तो वह अपने कारणों को अभिलिखित करने के बाद, बैठक को ऐसी अन्य तिथि और समय के लिए स्थगित कर सकता है जो वह नियत करे, लेकिन यह उपधारा (3) के अधीन बैठक के लिए नियत तिथि से 25 दिन से अधिक नहीं होगा। वह बिना विलंब के कलेक्टर को बैठक के स्थगन के बारे में लिखित रूप में सूचित करेगा। कलेक्टर सदस्यों को अगली बैठक का कम से कम दस दिन का नोटिस उपधारा (3) के अधीन निर्धारित रीति से देगा।

(5) उपधारा (4-क) और (4-ख) में प्रदान किए गए को छोड़कर, इस धारा के अधीन प्रस्ताव पर विचार करने के प्रयोजन से बुलाई गई बैठक स्थगित नहीं की जाएगी।

(6) जैसे ही इस धारा के अधीन बुलाई गई बैठक प्रारंभ होती है, पीठासीन अधिकारी क्षेत्र पंचायत को वह प्रस्ताव पढ़कर सुनाएगा जिस पर विचार करने के लिए बैठक बुलाई गई है और उसे बहस के लिए खुला घोषित करेगा।

(7) इस धारा के अधीन प्रस्ताव पर कोई बहस स्थगित नहीं की जाएगी।

(8) ऐसी बहस बैठक के प्रारंभ के लिए नियत समय से दो घंटे की समाप्ति पर स्वतः समाप्त हो जाएगी, यदि वह पहले समाप्त नहीं होती है। बहस की समाप्ति पर या उक्त दो घंटे की अवधि की समाप्ति पर, जो भी पहले हो, प्रस्ताव मतदान के लिए रखा जाएगा जो निर्धारित रीति से गुप्त मतदान द्वारा होगा।

(9) पीठासीन अधिकारी प्रस्ताव के गुणावगुण पर नहीं बोलेगा और वह उस पर मतदान करने का हकदार नहीं होगा।

(10) बैठक की कार्यवाही के विवरण की एक प्रति, प्रस्ताव की एक प्रति और उस पर मतदान के परिणाम के साथ, बैठक की समाप्ति पर पीठासीन अधिकारी द्वारा तत्काल राज्य सरकार और अधिकार क्षेत्र रखने वाली जिला पंचायत को अग्रेषित की जाएगी।

(11) यदि प्रस्ताव तत्समय क्षेत्र पंचायत के कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या के [आधे से अधिक] के समर्थन से पारित हो जाता है -

(क) पीठासीन अधिकारी इस तथ्य को क्षेत्र पंचायत के कार्यालय के सूचना पट्ट पर एक सूचना चिपकाकर और राजपत्र में भी अधिसूचित करके प्रकाशित करवाएगा; और

अप्रमाणित

(ख) प्रमुख या [***(पूर्वोक्त पृष्ठ 09)] जैसा भी मामला हो, ऐसे पद पर नहीं रहेगा और उस तिथि के अगले दिन से पद रिक्त कर देगा जिस दिन उक्त सूचना क्षेत्र पंचायत के कार्यालय के सूचना पट्ट पर चिपकाई जाती है।

(12) यदि प्रस्ताव उपरोक्तानुसार पारित नहीं होता है या यदि गणपूर्ति के अभाव में बैठक नहीं हो सकी, तो उसी प्रमुख या [***(पूर्वोक्त पृष्ठ 09)] में अविश्वास व्यक्त करने वाले किसी अनुवर्ती प्रस्ताव की कोई सूचना ऐसी बैठक की तिथि से एक वर्ष की समाप्ति के बाद तक प्राप्त नहीं की जाएगी।

(13) इस धारा के अधीन किसी प्रस्ताव की कोई सूचना प्रमुख या [***पूर्वोक्त पृष्ठ 09], जैसा भी मामला हो, द्वारा पद ग्रहण करने के [एक वर्ष] के भीतर प्राप्त नहीं की जाएगी।"

13. धारा 16 राज्य सरकार द्वारा प्रमुख के हटाए जाने से संबंधित है और निम्नानुसारहै:

"16. प्रमुख या [***](पूर्वोक्त पृष्ठ 09) **का हटाया जाना** - (1) यदि राज्य सरकार की राय में किसी क्षेत्र पंचायत का प्रमुख या कोई [***पूर्वोक्त पृष्ठ 09] इस अधिनियम के अधीन अपने कर्तव्यों और कार्यों का पालन करने में जानबूझकर चूक करता है या मना करता है, या उसमें निहित शक्तियों का दुरुपयोग करता है या अपने कर्तव्यों के निर्वहन में कदाचार का दोषी पाया जाता है या अपने कर्तव्यों के पालन के लिए शारीरिक या मानसिक रूप से अक्षम हो जाता है, तो राज्य सरकार, प्रमुख या ऐसे [***पूर्वोक्त पृष्ठ 09] को, जैसा भी मामला हो, स्पष्टीकरण का उचित अवसर देने के बाद और संबंधित जिला पंचायत के अध्यक्ष से इस मामले में परामर्श करने के बाद और उसकी राय पर विचार करने के बाद, यदि ऐसे परामर्श के लिए संचार के प्रेषण की तिथि से तीस दिनों के भीतर प्राप्त हो, आदेश द्वारा, ऐसे प्रमुख या [***पूर्वोक्त पृष्ठ 09] को, जैसा भी मामला हो, पद से हटा सकती है, और ऐसा आदेश अंतिम होगा और किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकेगा:

परंतु जहां, ऐसे व्यक्ति द्वारा और ऐसी रीति से जैसा निर्धारित किया जाए, की गई जांच में, कोई प्रमुख या [***पूर्वोक्त पृष्ठ 09] प्रथम दृष्टया वित्तीय और अन्य अनियमितताएं करने का दोषी पाया जाता है, ऐसा प्रमुख या [***पूर्वोक्त पृष्ठ 09] वित्तीय और प्रशासनिक शक्तियों और कार्यों का प्रयोग और पालन करना बंद कर देगा, जो, जब तक वह अंतिम जांच में आरोपों से मुक्त नहीं हो जाता, राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में नियुक्त क्षेत्र पंचायत के तीन निर्वाचित सदस्यों की एक समिति द्वारा प्रयोग और पालन किए जाएंगे।

(2) इस धारा के अधीन अपने पद से हटाया गया प्रमुख या [***पूर्वोक्त पृष्ठ 09], अपने हटाए जाने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि के लिए प्रमुख या

अनुवादित

[***पूर्वोक्त पृष्ठ 09] के रूप में पुनः निर्वाचन के लिए पात्र नहीं होगा।"

14. धारा 84 क्षेत्र पंचायत की बैठकें आयोजित करने और आयोजित की जाने की रीति से संबंधित है और यह निम्नानुसार है:

"84. क्षेत्र पंचायत की बैठकें - (1) क्षेत्र पंचायत कार्य संचालन के लिए कम से कम प्रत्येक दो माह में एक बार बैठक करेगी:

परंतु क्षेत्र पंचायत की पहली बैठक के लिए नियत की जाने वाली तिथि उसके गठन की तिथि से तीस दिनों के भीतर होगी।

(2) प्रमुख, [***पूर्वोक्त पृष्ठ 09], क्षेत्र पंचायत की बैठक बुला सकता है जब भी वह उचित समझे और क्षेत्र पंचायत के कम से कम एक-पांचवें सदस्यों द्वारा लिखित में की गई मांग पर और प्रमुख को तामील की गई या पंजीकृत डाक पावती देय द्वारा क्षेत्र पंचायत के कार्यालय को संबोधित भेजी गई, ऐसी मांग की तामील या प्राप्ति की तिथि से एक माह की अवधि के भीतर क्षेत्र पंचायत की बैठक बुलाएगा।

(3) कोई बैठक अगले या किसी अनुवर्ती दिन तक स्थगित की जा सकती है और स्थगित बैठक इसी प्रकार आगे स्थगित की जा सकती है।

(4) प्रत्येक बैठक क्षेत्र पंचायत के कार्यालय में या किसी अन्य सुविधाजनक स्थान पर आयोजित की जाएगी जिसकी सूचना विधिवत दी गई हो।"

15. धारा 85 क्षेत्रीय पंचायत की बैठकों की प्रक्रिया आदि से संबंधित है जो जिला पंचायत की बैठकों के मामले में धारा 62 के तहत निर्दिष्ट के समान होगी और इस प्रकार पढ़ी जाती है: -

"62. अधिवेशन आदि की प्रक्रिया- जिला पंचायत की बैठकों से संबंधित निम्नलिखित मामले नियमों द्वारा शासित होंगे-

(क) बैठक में कार्य संचालन;

(ख) कार्य निष्पादन के लिए गणपूर्ति;

(ग) अध्यक्ष और [***पूर्वोक्त पृष्ठ 09] की अनुपस्थिति में बैठक की अध्यक्षता करना;

(घ) सदस्यों द्वारा प्रश्न पूछना;

(ङ) बैठक का प्रचार;

(च) बैठक में व्यवस्था बनाए रखना;

(छ) मत द्वारा निर्णय;

(ज) कार्यवृत्त पुस्तिका और संकल्प;

(झ) सरकारी कर्मचारियों, राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत व्यक्तियों और अन्य व्यक्तियों को विचार-विमर्श में भाग लेने और भाग लेने का अधिकार;

(ञ) बैठकों में उपस्थित होने के लिए राज्य सरकार के सेवकों की उपस्थिति की अपेक्षा करने का जिला पंचायत का अधिकार;

(ट) बैठकों के संबंध में जिला पंचायत के अधिकारियों का अधिकार;

(ठ) रिपोर्टों,विवरणियों की अपेक्षा करने का जिला पंचायत का अधिकार; आदि मुख्य अधिकारी से; और

अनुवादित

(ड) अन्य आकस्मिक मामले जिन्हें निर्धारित करने की आवश्यकता है या निर्धारित किया जाना चाहिए।"

16. अधिनियम की धारा 15, जो अविश्वास प्रस्ताव से संबंधित है, में निम्नलिखित की परिकल्पना की गई (i) तत्समय के लिए क्षेत्र पंचायत के **निर्वाचित सदस्यों** की कुल संख्या के कम से कम आधे सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित निर्धारित प्रारूप में लिखित आशय की सूचना देकर अविश्वास प्रस्ताव लाना, तथा (ii) प्रस्ताव का तत्समय के लिए क्षेत्र पंचायत के **निर्वाचित सदस्यों** की कुल संख्या के आधे से अधिक सदस्यों के समर्थन से पारित होना।

मुद्दे

17. बेहतर विश्लेषण के लिए, वृहद पीठ को संदर्भित मुख्य मुद्दे को निम्नलिखित चार मुद्दों में विभाजित किया जा सकता है:

(i) निर्वाचित सदस्य कौन हैं?

(ii) निर्वाचित सदस्य के पद की शपथ न लेने का क्या प्रभाव पड़ता है?

(iii) क्या कोई निर्वाचित सदस्य, जिसने पद की शपथ नहीं ली है, अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर सकता है,

(iv) क्या कोई निर्वाचित सदस्य, जिसने पद की शपथ नहीं ली थी, अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बुलाई गई बैठक में भाग ले सकता है और मतदान कर सकता है।

मुद्दे (i) और (ii):

18. अभिव्यक्ति 'निर्वाचित सदस्य' अधिनियम में परिभाषित नहीं है। हालाँकि, हमें धारा 6 से सुराग मिलता है कि अभिव्यक्ति 'निर्वाचित सदस्य' किसे संदर्भित करती है। इसके अनुसार, निर्वाचित सदस्य वे होते हैं जिन्हें पंचायत क्षेत्र में क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुना जाता है। अधिनियम की धारा 6 उन सदस्यों के बीच स्पष्ट अंतर करती है जो वयस्क मताधिकार के आधार पर सीधे चुने जाते हैं और जो अपने पद के आधार पर क्षेत्र पंचायत के सदस्य बन जाते हैं, अर्थात, खंड में ग्राम पंचायतों के सभी प्रधान; लोक सभा के सदस्य; राज्य की विधान सभा के सदस्य, उन निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनमें पूर्ण या आंशिक रूप से खंड शामिल हैं; राज्य सभा के सदस्य और राज्य विधान परिषद के सदस्य जो खंड के भीतर निर्वाचकों के रूप में रजिस्ट्रीकृत हैं। हालांकि, इन पदेन सदस्यों को प्रमुख के चुनाव और या अविश्वास प्रस्ताव के मामलों में भाग लेने से वंचित कर दिया जाता है।

19. राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा 237 के अधीन अपनी नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग करते हुए 'उत्तर प्रदेश क्षेत्रा पंचायतें और जिला पंचायतें (अध्यक्ष या प्रमुख आदि के पद की शपथ) नामक आदेश या प्रमुख आदि के पद की शपथ को शासित करने वाले नियम बनाए हैं। नियम, 1994 (इसके बाद 'नियमावली' के रूप में संदर्भित)। नियम 2 (2) क्षेत्र पंचायत के मामले में सदस्यों को परिभाषित करता है, अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) के खंड (बी) के तहत चुने गए सदस्य।

20. उक्त नियमावली का नियम 3, जो हमारे प्रयोजन के लिए प्रासंगिक है, निम्नानुसार उद्धृत किया जाता है:

> **"3. शपथ या प्रतिज्ञान लेने की रीति.-** (1) जिला पंचायत का अध्यक्ष, अध्यक्ष के रूप में पहली बार अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व, जिलाधिकारी के समक्ष

अनुवादित

परिशिष्ट में इस प्रयोजन हेतु निर्धारित प्रारूप में शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा।

(2) क्षेत्र पंचायत का प्रमुख, प्रमुख के रूप में पहली बार अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व, उप-जिलाधिकारी या इस निमित्त जिलाधिकारी द्वारा नियुक्त किसी अन्य अधिकारी के समक्ष परिशिष्ट में इस प्रयोजन हेतु निर्धारित प्रारूप में शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा।

(3) जिला पंचायत और क्षेत्र पंचायत के सदस्य, ऐसे सदस्यों के रूप में पहली बार अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व, जिला पंचायत के सदस्य के मामले में अध्यक्ष के समक्ष और उसकी अनुपस्थिति में मुख्य अधिकारी के समक्ष, तथा क्षेत्र पंचायत के सदस्यों के मामले में प्रमुख के समक्ष और उसकी अनुपस्थिति में खंड विकास अधिकारी के समक्ष, परिशिष्ट में निर्धारित प्रारूप में शपथ लेंगे या प्रतिज्ञान करेंगे।"

21. नियम 3 निर्धारित करता है कि क्षेत्र पंचायत के सदस्य, ऐसे सदस्यों के रूप में पहली बार अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व, प्रमुख के समक्ष और उसकी अनुपस्थिति में खंड विकास अधिकारी के समक्ष परिशिष्ट में निर्धारित प्रारूप में शपथ लेंगे या प्रतिज्ञान करेंगे। एक निर्वाचित सदस्य, जो शपथ या प्रतिज्ञान नहीं लेता है, क्षेत्र पंचायत में स्थान ग्रहण नहीं कर सकता और, इसलिए, सदन की कार्यवाही में भाग नहीं ले सकता। तथापि, शपथ या प्रतिज्ञान न लेने पर अधिनियम या नियमों के अंतर्गत कोई अन्य प्रतिकूल परिणाम प्रदान नहीं किया गया है। ऐसा सदस्य पद की शपथ न लेने के कारण निर्वाचित सदस्य नहीं रहना समाप्त नहीं होता। 'सदस्यों' की परिभाषा उन लोगों तक सीमित नहीं है जो शपथ लेते हैं, बल्कि केवल उन लोगों का संदर्भ देती है जो अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अंतर्गत निर्वाचित हुए हैं, चाहे उन्होंने शपथ ली हो या नहीं।

22. यह निष्कर्ष **राम पाल सिंह** (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय के सर्वसम्मत दृष्टिकोण के अनुरूप है। इस संबंध में किए गए अवलोकनों का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार है:

माननीय न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर,ने उक्त पहलू पर विचार करते हुए निम्नानुसार कहा:

"2. अधिनियम 'निर्वाचित सदस्य' अभिव्यक्ति को परिभाषित नहीं करता। वर्तमान याचिका के प्रयोजनों के लिए हम इस आधार पर आगे बढ़ रहे हैं कि 'निर्वाचित सदस्य' वह व्यक्ति है जो विधिवत निर्वाचित हुआ है। 'निर्वाचित सदस्य' ने उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत (अध्यक्ष या प्रमुख आदि का पद की शपथ) नियमावली, 1994 (इसके बाद नियमों के रूप में संदर्भित) के अनुसार पद की शपथ ली हो या न ली हो। हम यह कहते हैं, यद्यपि पद की शपथ लेने से कुछ पवित्रता जुड़ी है, जिसका हम बाद में उल्लेख करेंगे।

6. दूसरे शब्दों में, अधिनियम की धारा 6(1)(ख) के अंतर्गत क्षेत्र पंचायत के लिए विधिवत निर्वाचित व्यक्ति को 'निर्वाचित सदस्य' के रूप में वर्णित किया जाता है और वह 'निर्वाचित सदस्य' बना रहता है, और यदि वह 'निर्वाचित सदस्य' पद की शपथ नहीं लेता है, तो वह 'निर्वाचित सदस्य' नहीं रहना समाप्त नहीं होता। एकमात्र परिणाम यह है कि 'निर्वाचित सदस्य'

क्षेत्र पंचायत में स्थान ग्रहण नहीं कर सकता और इसलिए पंचायत की कार्यवाही में भाग नहीं ले सकता। इस चर्चा का महत्व आगे स्पष्ट होगा।" *(हमारे द्वारा बल दिया गया)*

माननीय न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता, ने भी वही दृष्टिकोण लेते हुए निम्नानुसार कहा: -

"2. ..... उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत (अध्यक्ष या प्रमुख आदि का पद की शपथ) नियमावली, 1994 (जिसे आगे 'नियमावली' कहा जाएगा) के नियम 2(2) में 'सदस्यों' को परिभाषित किया गया है। क्षेत्र पंचायत के मामले में, 'सदस्य' का अर्थ उन व्यक्तियों से है जो उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम, 1961 (संक्षेप में "अधिनियम") की धारा 6 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अंतर्गत निर्वाचित हुए हैं। अधिनियम प्रावधान करता है कि एक क्षेत्र पंचायत में एक प्रमुख होगा, जो उसका अध्यक्ष होगा और निर्वाचित सदस्य होंगे, जो पंचायत क्षेत्रों में क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाएंगे। इन्हीं निर्वाचित सदस्यों में से अधिनियम की धारा 6(1)(ख) के अनुसार एक प्रमुख का निर्वाचन किया जाता है। नियमावली के नियम 3(3) के अनुसार, जिसे मेरे विद्वान सहयोगी के निर्णय में उद्धृत किया गया है, क्षेत्र पंचायत का एक सदस्य, ऐसे सदस्य के रूप में पहली बार अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व, प्रमुख के समक्ष और उसकी अनुपस्थिति में खंड विकास अधिकारी के समक्ष अधिनियम के परिशिष्ट में निर्धारित प्रारूप में शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा। अतः, नियम 3(3) यह परिकल्पना करता है कि पहली बार स्थान ग्रहण करने से पूर्व सदस्य को शपथ लेनी या प्रतिज्ञान करना चाहिए (जोर दिया गया है)। 'प्रथम बैठक' शब्दों को कुछ महत्व दिया जाना चाहिए और महत्व यह है कि ये निर्वाचित सदस्य केवल अपने में से प्रमुख का चुनाव करते समय बिना शपथ लिए मतदान कर सकते हैं क्योंकि उसके बाद, प्रमुख उन्हें शपथ दिलाता है और फिर, सदन की बैठक होती है।

3. नियम 3 की भाषा यह इंगित करती है कि एक सदस्य को पंचायत की बैठक में भाग लेने से पहले शपथ लेनी चाहिए। निःसंदेह, एक निर्वाचित सदस्य सदस्य बना रहता है क्योंकि शपथ न लेने पर कोई अयोग्यता प्रदान नहीं की गई है, लेकिन मूल मुद्दा यह है कि क्या ऐसा सदस्य पंचायत की कार्यवाही में भाग ले सकता है। इस संदर्भ में इस न्यायालय के पशुपति नाथ शुक्ल बनाम नेम चंद्र जैन और अन्य, (1984) 2 एससीसी 404 के मामले में दिए गए निर्णय, कलकत्ता उच्च न्यायालय के भूपेंद्र नाथ बसु बनाम रणजीत सिंह, एआईआर 1964 कल. 152 के मामले में दिए गए निर्णय और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के कमला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2014 (8) एडीजे 525 के मामले में दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया गया है।"

अनुवादित

(हमारे द्वारा बल दिया गया)

23. उपरोक्त दृष्टिकोण अपनाते हुए, उच्चतम न्यायालय ने यह नोट किया है कि एक निर्वाचित सदस्य द्वारा शपथ न लेने पर विधि में प्रदान किया गया एकमात्र परिणाम यह है कि वह सदन में स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। विधि में कोई अन्य प्रतिकूल परिणाम प्रदान नहीं किया गया है और परिणामस्वरूप, यह माना गया है कि ऐसा निर्वाचित सदस्य निर्वाचित सदस्य नहीं रहना समाप्त नहीं होगा और न ही उसकी सीट रिक्त मानी जाएगी।

<u>अन्य समरूप कानूनों में स्थिति</u>

24. इसके विपरीत, कुछ संबंधित विधानों में, यह विशेष रूप से प्रावधानित है कि ऐसा सदस्य या पदाधिकारी अपनी सीट रिक्त कर दिया गया माना जाएगा। इस संदर्भ में, हम उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 12-ई का उल्लेख कर सकते हैं जिसमें उपरोक्त परिणाम प्रदान किया गया है:

> "12-ई. पद की शपथ.- (1) प्रत्येक व्यक्ति, धारा 11-क, 12, 43 या 44 में संदर्भित किसी भी पद पर कार्यभार संभालने से पूर्व, ऐसे प्राधिकारी के समक्ष जो निर्धारित किया जाए, निर्धारित किए जाने वाले प्रारूप में शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा।
>
> (2) कोई भी सदस्य जो उपरोक्तानुसार ऐसी शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से इनकार करता है या अन्यथा मना करता है, उसे तत्काल पद रिक्त कर दिया गया माना जाएगा।"

25. इसी प्रकार, उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 की धारा 85(2) के अंतर्गत, समान निषेध निहित है और उक्त प्रावधान निम्नानुसार उद्धृत किया जाता है:

> **"85. महापौर और सदस्यों द्वारा ली जाने वाली निष्ठा की शपथ:-** (2) कोई भी व्यक्ति जो निगम पार्षद या महापौर [***पूर्वोक्त पृष्ठ 09] के रूप में निर्वाचित हुआ है या विकास समिति के सदस्य के रूप में सहयोजित किया गया है, यदि अपने पद की अवधि प्रारंभ होने की तिथि से तीन महीने के भीतर या उक्त तिथि के बाद आयोजित निगम की पहली तीन बैठकों में से किसी एक में, जो भी बाद में हो, उपधारा (1) में निर्धारित और ली जाने वाली अपेक्षित शपथ या प्रतिज्ञान नहीं लेता है, तो वह अपना पद धारण करना समाप्त कर देगा और उसकी सीट रिक्त हो गई मानी जाएगी।"

26. *विधायी कासुस ओमिसस (चूक) को न्यायिक व्याख्या की प्रक्रिया द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता।* **मैसर्स यूनीक ब्यूटाइल ट्यूब इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश वित्तीय निगम और अन्य [एआईआर 2003 एससी 2013]** में, उच्चतम न्यायालय ने *कासुस ओमिसस* की याचिका को निस्तारित करने के दौरान निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"11. यह विधि में एक सुस्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय किसी सांविधिक प्रावधान में, जो स्पष्ट और अस्पष्ट नहीं है, कुछ भी नहीं पढ़ सकता। एक कानून विधायिका का आदेश है। कानून में प्रयुक्त भाषा विधायी आशय का निर्धारक कारक है। निर्माण का पहला और प्राथमिक नियम यह है कि विधायिका के आशय को विधायिका द्वारा स्वयं प्रयुक्त शब्दों में पाया जाना चाहिए। प्रश्न

अनुवादित

यह नहीं है कि क्या माना जा सकता है और क्या आशय रहा होगा, बल्कि यह है कि क्या कहा गया है। "कानूनों की व्याख्या यूक्लिड के प्रमेयों की तरह नहीं की जानी चाहिए"। न्यायाधीश लर्नड हैंड ने कहा, "लेकिन शब्दों की व्याख्या उन उद्देश्यों की कुछ कल्पना के साथ की जानी चाहिए जो उनके पीछे निहित हैं"। (देखें लेहाई वैली कोल कंपनी बनाम येन्सावेज 218 एफआर 547)। इस दृष्टिकोण को भारत संघ और अन्य बनाम फिलिप टियागो डी गामा ऑफ वेदेम वास्को डी गामा (एआईआर 1990 एससी 981) में पुनः दोहराया गया।"

27. डी.आर. वेंकटचलम और अन्य आदि बनाम उप परिवहन आयुक्त और अन्य आदि [एआईआर 1977 एससी 842] के मामले में यह अवलोकन किया गया था कि न्यायालयों को किसी प्रावधान के अर्थ का पूर्व निर्धारण करने के खतरे से बचना चाहिए जो उनकी अपनी पूर्वधारणाओं या वैचारिक संरचना या योजना पर आधारित हो, जिसमें व्याख्या किए जाने वाले प्रावधान को कुछ हद तक फिट किया जाता है। वे व्याख्या के बहाने विधायी कार्य को हथियाने के हकदार नहीं हैं।

28. यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान अधिनियम में हाल ही में उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 14, 2022 द्वारा संशोधन किया गया था, लेकिन विधायिका ने किसी अन्य प्रतिकूल परिणाम का प्रावधान नहीं किया है जैसा कि संबंधित कानूनों में निर्धारित है यदि कोई निर्वाचित सदस्य पद की शपथ नहीं लेता है। उसकी सीट रिक्त नहीं मानी जाएगी।

29. आयुक्त बिक्री कर, उ.प्र. लखनऊ बनाम मेसर्स पार्सन टूल्स एंड प्लांट्स, कानपुर [1975 4 एससीसी 22] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह माना है कि जहां विधायिका जानबूझकर बाद के कानून में कुछ समान कानून को शामिल करने से चूक जाती है, वहां न्यायालय इस चूक को पूरा नहीं कर सकता। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय के अवलोकन को नीचे उद्धृत किया गया है:

> "16. यदि विधायिका जानबूझकर बाद के कानून में कुछ समान कानून को शामिल करने से चूक जाती है, या यहां तक कि यदि किसी कानून में कोई चूक है, जिसकी भाषा अन्यथा स्पष्ट और अस्पष्ट नहीं है, तो न्यायालय इस चूक को पूरा करने के लिए सक्षम नहीं है, न ही व्याख्या के बहाने, समानता या निहितार्थ द्वारा, कुछ ऐसा जोड़ने या प्रस्तुत करने के लिए जो वह न्याय और समानता का सामान्य सिद्धांत समझता है। ऐसा करना "विधायिका के क्षेत्र पर अतिक्रमण करना होगा" (प्रेमनाथ एल गणेश बनाम प्रेमनाथ एल राम नाथ, एआईआर 1963 पंजाब 62 में पृष्ठ 65 पर, टेक चंद, जे. द्वारा), कानून की अदालत का प्राथमिक कार्य जस डिसेरे होना है, न कि जस डेयर।"

30. उच्चतम न्यायालय ने वर्तमान कानून के संबंध में **राम पाल सिंह** (उपरोक्त) के मामले में दिए गए अपने निर्णय में इस कानून में उपरोक्त कमी को देखा है और विधायिका को कानून में उपयुक्त संशोधन करने की सलाह भी दी थी। हालांकि, इस मुद्दे को संबोधित नहीं किया गया है। यह विवादों को जन्म देना जारी रखता है जो अन्यथा टाले जा सकते हैं। हमें आशा और विश्वास है कि आवश्यक सुधारात्मक कदम बिना किसी और देरी के उठाए जाएंगे।

अनुवादित

31. इस प्रकार, मुद्दे (i) और (ii) का हमारा उत्तर निम्नानुसार है:

> मुद्दा (i): निर्वाचित सदस्य वे हैं जो पंचायत क्षेत्र में क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष
>
> चुनाव द्वारा चुने जाते हैं।
>
> मुद्दा (ii): निर्वाचित सदस्य पद की शपथ न लेने पर अपना पद धारण करना बंद नहीं करते हैं।

<u>मुद्दे (iii) और (iv):</u>

32. ये मुद्दे परस्पर संबंधित हैं, इसलिए इन्हें एक साथ निपटाया जा रहा है।

33. जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है, केवल क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को अविश्वास प्रस्ताव लाने और ऐसे उद्देश्य के लिए आयोजित बैठक में मतदान करने का अधिकार दिया गया है। धारा 6 की उपधारा (1) के खंड (ए), (सी) और (डी) के तहत उल्लिखित अन्य सभी सदस्यों को चुनाव और अविश्वास प्रस्ताव के सभी मामलों में भाग लेने से स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित किया गया है।

34. अधिनियम की धारा 15, जो अविश्वास प्रस्ताव से संबंधित संपूर्ण प्रक्रिया से संबंधित है, यह निर्धारित करती है कि प्रस्ताव करने के इरादे पर क्षेत्र पंचायत के कुल निर्वाचित सदस्यों की कम से कम आधी संख्या द्वारा हस्ताक्षर किए जाने चाहिए। पुनः, प्रस्ताव को सफलतापूर्वक पारित माना जाता है यदि "तत्समय के लिए क्षेत्र पंचायत के कुल निर्वाचित सदस्यों" की आधे से अधिक संख्या इसके पक्ष में मतदान करती है। हमने ऊपर चर्चा की है कि कोई निर्वाचित सदस्य केवल इसलिए निर्वाचित सदस्य नहीं रहता क्योंकि उसने पद की शपथ नहीं ली है। 'तत्समय के लिए' वाक्यांश का सीमित अर्थ है जिससे उन लोगों को बाहर रखा जाता है जो मृत्यु या त्यागपत्र (धारा 11) के कारण या धारा 13 के तहत निर्दिष्ट अयोग्यता के कारण निर्वाचित सदस्य नहीं रह गए हैं। यह बिल्कुल भी इरादा नहीं है कि एक निर्वाचित सदस्य, जिसने पद की शपथ नहीं ली है, को भी प्रमुख के चुनाव और उसके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव के मामलों में बाहर रखा जाएगा। ऐसे उद्देश्य के लिए आंकड़ों की गणना करते समय, यह स्पष्ट है कि निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या पर विचार किया जाना चाहिए क्योंकि अन्यथा यह असंगत और भ्रामक परिणामों की ओर ले जाएगा। इस पहलू को माननीय न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर, ने **राम पाल सिंह** के मामले में निम्नलिखित शब्दों में संक्षेप में बताया है:

> "21. त्रुटि और विरोधाभास इस प्रकार उत्पन्न होता है: या तो 13 निर्वाचित सदस्य क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्य बने रहते हैं, भले ही उन्होंने पद की शपथ न ली हो या वे क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्य नहीं रहते। यदि वे अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने के उद्देश्य से निर्वाचित सदस्य नहीं हैं, तो अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने वालों की संख्या 39 से घटकर 26 हो जाएगी। इसी के अनुरूप, क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों की संख्या भी 63 से घटकर 50 हो जाएगी। परिणामस्वरूप, यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि चूंकि क्षेत्र पंचायत के 50 निर्वाचित सदस्यों में से 26 ने अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किए हैं, जो निर्वाचित सदस्यों के 50% से अधिक हैं। इसलिए, अधिनियम की धारा

अनुवादित

15 के प्रावधानों के तहत अविश्वास प्रस्ताव मान्य होगा।

22. दूसरे शब्दों में, याचिकाकर्ता के लिए सीखे हुए वकील की ओर से यह तर्क देना सही नहीं है कि अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने के उद्देश्य से 13 निर्वाचित सदस्य निर्वाचित सदस्य नहीं हैं लेकिन क्षेत्र पंचायत की संरचना के उद्देश्य से वे निर्वाचित सदस्य हैं, जिससे क्षेत्र पंचायत की संख्या 63 बनी रहती है। यदि 13 निर्वाचित सदस्य एक उद्देश्य के लिए निर्वाचित सदस्य नहीं हैं, तो उनकी स्थिति दूसरे उद्देश्य के लिए अलग नहीं हो सकती। उनकी स्थिति अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने के समय और क्षेत्र पंचायत की संरचना के लिए एक निर्वाचित सदस्य (या निर्वाचित सदस्य नहीं) के रूप में समान रहनी चाहिए।"

(हमारे द्वारा बल दिया गया)

35. अधिनियम की योजना अविश्वास प्रस्ताव की बैठक आयोजित करने और क्षेत्र पंचायत की नियमित कार्य संचालन की बैठकों के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में स्पष्ट अंतर करती है। अविश्वास प्रस्ताव की बैठक केवल तभी बुलाई जा सकती है जब प्रस्ताव करने के इरादे की लिखित सूचना पर तत्कालीन क्षेत्र पंचायत के कुल निर्वाचित सदस्यों की कम से कम आधी संख्या द्वारा हस्ताक्षर किए गए हों। कलेक्टर क्षेत्र पंचायत के कार्यालय में अपने द्वारा नियुक्त दिन पर प्रस्ताव पर विचार के लिए क्षेत्र पंचायत की बैठक बुलाता है, जो उसे प्रस्ताव की सूचना प्राप्त होने की तारीख से 30 दिन से अधिक नहीं होगी और निर्वाचित सदस्यों को इसकी सूचना देने की तारीख से 15 दिन बीतने से पहले नहीं होगी। दूसरी ओर, क्षेत्र पंचायत के कार्य संचालन के लिए बैठकें कम से कम हर दो महीने में एक बार होनी चाहिए। बैठक प्रमुख द्वारा बुलाई जाती है। क्षेत्र पंचायत के केवल 1/5 सदस्य ऐसी बैठक बुलाने के लिए मांग करने के लिए सक्षम हैं। बैठक क्षेत्र पंचायत के कार्यालय या किसी अन्य सुविधाजनक स्थान पर हो सकती है। जिस उप-मंडल में क्षेत्र पंचायत अपना अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करती है, उस उप-मंडल के उप-मंडल अधिकारी को अविश्वास प्रस्ताव की बैठक की अध्यक्षता करने का दायित्व होता है, जबकि क्षेत्र पंचायत के कार्य संचालन के लिए साधारण बैठक अधिनियम की धारा 81, 82 और 83 के आधार पर प्रमुख की अध्यक्षता में होती है। अविश्वास प्रस्ताव की बैठक में, अधिनियम की धारा 6(2) में निहित प्रतिबंध के दृष्टिगत केवल क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्य ही भाग लेने के हकदार हैं। जबकि क्षेत्र पंचायत के कार्य संचालन की बैठक में, धारा 6 की उपधारा (1) के खंड (ए), (सी) और (डी) में उल्लिखित क्षेत्र पंचायत के सदस्य भी भाग लेने और मतदान करने के हकदार हैं। अविश्वास प्रस्ताव की बैठक में, एकमात्र एजेंडा अविश्वास प्रस्ताव होता है, जबकि क्षेत्र पंचायत की कार्य संचालन के लिए आयोजित साधारण बैठक में एजेंडे में कई मद हो सकते हैं। पीठासीन अधिकारी को अविश्वास प्रस्ताव के गुण-दोष पर बोलने से रोका जाता है और वह मतदान का भी हकदार नहीं होता है, जबकि क्षेत्र पंचायत के कार्य संचालन के लिए आयोजित बैठक की अध्यक्षता करने वाले व्यक्ति पर ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं होता है। अविश्वास प्रस्ताव की बैठक को कोरम की कमी के लिए भी स्थगित नहीं किया जा सकता है, जबकि क्षेत्र पंचायत के कार्य संचालन

के लिए आयोजित बैठक के मामले में यह अनुमत है। यदि कोरम की कमी के कारण या आवश्यक समर्थन की कमी के कारण अविश्वास प्रस्ताव पारित नहीं होता है, तो दो वर्ष की समाप्ति तक नया प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता है, लेकिन क्षेत्र पंचायत के सामान्य कार्य के मामले में ऐसी कोई बाधा नहीं है।

36. अधिनियम की धारा 79 प्रावधान करती है कि अनुसूची VI के दूसरे कॉलम में निर्दिष्ट शक्तियां, कर्तव्य और कार्य, उन शक्तियों को छोड़कर जिनके विरुद्ध अनुसूची के तीसरे कॉलम में कोई प्रविष्टि दिखाई गई है, क्षेत्र पंचायत द्वारा बैठक में पारित संकल्प द्वारा और अन्यथा नहीं, प्रयोग किए जा सकते हैं और निष्पादित किए जाएंगे। अनुसूची VI में निर्दिष्ट क्षेत्र पंचायत की कुछ महत्वपूर्ण शक्तियां और कार्य हैं:-

धारा	शक्ति या कार्य	टिप्पणियां
1	2	3
11(1)-(35(1)	X X X X	X X X X
38(a)	**यह तय करना कि क्या किसी अन्य क्षेत्र पंचायत या अन्य स्थानीय प्राधिकरण के साथ उन कार्यों या उपक्रमों में एकजुट होना है जो क्षेत्र पंचायत द्वारा नियंत्रित सभी क्षेत्रों को लाभान्वित करते हैं।**	....
(38b)	**यह तय करना कि क्या किसी ऐसे कार्य या संस्था के लिए योगदान देना है जिससे खंड को लाभ होता है, भले ही ऐसा कार्य या संस्था खंड के बाहर शुरू की गई हो या उसका रखरखाव किया गया हो या किसी [नगर निगम], नगर पालिका, छावनी, में सम्मिलित हो।**	....
86	**खंड की मसौदा योजना पर विचार करना और उसे अनुमोदित करना।**	....
87(1) and (2)	**समिति की नियुक्ति करना।**	....
87(3)	**सलाहकार समितियों की नियुक्ति करना।**	....
115(4)	**बजट के संबंध में नियोजन समिति की सिफारिशों पर विचार करना।**	....
142	**क्षेत्र पंचायत में निहित या उसके प्रबंधन को सौंपी गई अचल संपत्ति के उपयोग या कब्जे के लिए शुल्क लेना और शुल्क लगाना या वसूल करना।**	....
143	**लाइसेंस, मंजूरी और अनुमति के लिए शुल्क वसूलना।**	....

अनुवादित

144	**इस धारा में वर्णित कुछ अन्य शुल्क और पथकर तय करना और लगाना।**	....
145	**क्षेत्रा पंचायतों द्वारा स्थापित, अनुरक्षित या प्रबंधित बाजारों में शुल्क या पथकर लगाना।**	....
184(3)	**एक नियंत्रित ग्रामीण क्षेत्र में एक निजी सड़क को सार्वजनिक सड़क घोषित करना।**	....
190	**एक निजी सड़क को सार्वजनिक सड़क घोषित करने के लिए**	....
196	**किसी भवन, दीवार या अन्य संरचना के निर्माण या सार्वजनिक नाली या पुलिया या जलकार्य पर पेड़ लगाने की अनुमति देना और हटाने का आदेश देना और चूक पर, किसी भी अनधिकृत संरचना या पेड़ को स्वयं हटाना और संबंधित व्यक्ति से व्यय की वसूली करना।**	....
228(2)(236 के साथ पढ़े)	**किसी संकल्प या आदेश के निष्पादन या आगे निष्पादन पर रोक लगाने वाले निर्धारित प्राधिकारी के आदेश के संबंध में स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना।**	....

37. ये कार्य क्षेत्र पंचायत की बैठक में अधिनियम की धारा 84 और धारा 85 के साथ पठित धारा 62 के अंतर्गत प्रदान की गई रीति से संचालित किए जाते हैं। धारा 6 की उपधारा (1) के खंड (क), (ग) और (घ) में उल्लिखित क्षेत्र पंचायत के सदस्य भी भाग लेने और मतदान करने के हकदार हैं। यह स्पष्ट रूप से इस कारण से है कि ऐसे सदस्य निर्वाचित सदस्यों के साथ मिलकर क्षेत्र पंचायत का गठन करते हैं और ग्रामीण क्षेत्र में मध्यवर्ती स्तर पर स्वशासन की एक इकाई के रूप में पंचायत द्वारा लिए गए निर्णयों के लिए सामूहिक रूप से जिम्मेदार हैं। दूसरी ओर, अविश्वास प्रस्ताव लाने और प्रमुख को हटाने की शक्ति केवल क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों में निहित है क्योंकि वे ही अपने में से एक प्रमुख का चुनाव करते हैं।

38. नियमों के नियम 3 (2) के अंतर्गत, एक प्रमुख के रूप में पहली बार अपना स्थान ग्रहण करने से पहले, उसे उप-मंडल अधिकारी के समक्ष नियमों के परिशिष्ट में निर्धारित प्रारूप में शपथ लेनी होती है। उसके बाद वह अन्य सदस्यों को शपथ दिलाता है। इसका अर्थ है कि निर्वाचित सदस्य शपथ लेने से पहले भी प्रमुख के चुनाव में मतदान करने के हकदार हैं। विधायी योजना के अनुसार, एक प्रमुख, जो निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने में से चुना जाता है, तब तक पद धारण करने का हकदार है जब तक वह निर्वाचित सदस्यों के बहुमत का विश्वास रखता है। यदि वह कानून में निर्दिष्ट संख्या के अनुसार निर्वाचित सदस्यों का विश्वास खो देता है (जो पहले "कुल निर्वाचित सदस्यों की आधे से अधिक संख्या" था और अब उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 14, 2022 के अनुसार "कम से कम दो-तिहाई"

अनुवादित

है), तो उसे अविश्वास प्रस्ताव लाकर उनके द्वारा हटाया जा सकता है। इसी कारण से, ऐसा लगता है कि विधायिका ने निर्वाचित सदस्यों को केवल इसलिए अविश्वास प्रस्ताव लाने या उस पर मतदान करने से वंचित नहीं किया है क्योंकि उसने या उसने पद की शपथ नहीं ली है। निर्वाचित सदस्य जो पद की शपथ लिए बिना प्रमुख का चुनाव करते हैं, वे क्षेत्र पंचायत के सामान्य कार्य संचालन के लिए आयोजित बैठकों में भाग लेने से अयोग्य हो जाते हैं, लेकिन अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए आयोजित बैठक में नहीं।

39. यह अंतर अधिनियम की योजना से स्पष्ट रूप से दिखाई देता है और यह उच्चतम न्यायालय द्वारा **पशुपति नाथ शुक्ल** (उपरोक्त) के मामले में विधान सभा के विधायी और गैर-विधायी कार्य के बीच किए गए अंतर के समान है। उक्त मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह माना था कि जिस व्यक्ति ने विधान सभा के सदस्य के रूप में शपथ नहीं ली है, वह भी राज्यसभा में रिक्ति भरने के लिए किसी व्यक्ति का नाम प्रस्तावित करने और चुनाव में मतदान करने का हकदार होगा। इस दृष्टिकोण को लेते हुए, संविधान के अनुच्छेद 188 [सदस्यों द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान.- किसी राज्य की विधान सभा या विधान परिषद का प्रत्येक सदस्य, अपना स्थान ग्रहण करने से पहले, राज्यपाल या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा और उस पर हस्ताक्षर करेगा। जैसा की तीसरी अनुसूची में इस उद्देश्य के लिए निर्धारित प्रपत्र मे प्रावधान है ।] पर विचार किया गया था, जिसमें नियम 3(2) के समान प्रतिबंध शामिल है। इस संबंध में किए गए प्रासंगिक अवलोकन निम्नानुसार हैं:

"18. .....अब प्रश्न यह है कि क्या शपथ या प्रतिज्ञान लेना राज्यसभा के चुनाव के लिए वैध नामांकन के प्रस्तावक के रूप में कार्य करने के लिए पात्र होने की पूर्व शर्त है। जैसा कि पहले कहा गया है, संविधान के अनुच्छेद 193 में निहित नियम यह है कि विधान सभा के लिए निर्वाचित सदस्य शपथ या प्रतिज्ञान लेने से पूर्व सदन में बैठ और मतदान नहीं कर सकता। संविधान के अनुच्छेद 193 में 'बैठने और मतदान करने' शब्दों का तात्पर्य संविधान के अनुच्छेद 174 के अंतर्गत राज्यपाल द्वारा ऐसे समय और स्थान पर सदन को बुलाने से है जैसा वह उचित समझे और उक्त आह्वान के अनुसरण में या स्थगित बैठक के अनुसार सदन की बैठक आयोजित करने से है। कोई निर्वाचित सदस्य संविधान के अनुच्छेद 193 का उल्लंघन करने पर दंड का भागी केवल तब होता है जब वह सदन की ऐसी बैठक में बैठता और मतदान करता है। अपरिवर्तनीय रूप से आम चुनाव के बाद अधिनियम की धारा 73 के प्रावधान के अनुसार सदन के गठन और सदन की प्रथम बैठक बुलाने के बीच समय का अंतराल होता है। उस अंतराल के दौरान विधान सभा का वह निर्वाचित सदस्य जिसका नाम अधिनियम की धारा 73 के अंतर्गत जारी अधिसूचना में प्रकट होता है, विधान सभा के सदस्य के सभी विशेषाधिकारों, वेतन और भत्तों का हकदार होता है, जिनमें से एक राज्यसभा में एक सीट भरने के लिए आयोजित चुनाव में मतदाता के रूप में कार्य करने का

अनुवादित

अधिकार है। यही अधिनियम की धारा 73 का प्रभाव है जो कहता है कि इसके अंतर्गत अधिसूचना के प्रकाशन पर सदन का गठन हुआ माना जाएगा।

प्रश्नगत चुनाव सदन की बैठक में चलने वाली विधायी कार्यवाही का हिस्सा नहीं बनता है। न ही ऐसे चुनाव में डाला गया मत सदन के समक्ष उठे किसी मुद्दे पर सदन में दिया गया मत है। अध्यक्ष का चुनाव पर कोई नियंत्रण नहीं होता है। चुनाव इस उद्देश्य के लिए नियुक्त रिटर्निंग ऑफिसर द्वारा आयोजित किया जाता है....."

"20. हमारा मत है कि एक निर्वाचित सदस्य जिसने शपथ नहीं ली है लेकिन जिसका नाम अधिनियम की धारा 73 के अंतर्गत प्रकाशित अधिसूचना में प्रकट होता है, वह एक निर्वाचित सदस्य के सभी गैर-विधायी गतिविधियों में भाग ले सकता है। राज्यसभा के चुनाव में मतदान का अधिकार भी उसके द्वारा प्रयोग किया जा सकता है....."

40. उपरोक्त चर्चाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए आयोजित बैठक एक विशेष बैठक है, जिसका विशिष्ट उद्देश्य है। ऐसी बैठक को बुलाने और आयोजित करने की प्रक्रिया क्षेत्र पंचायत के सामान्य कार्य संचालन के लिए आयोजित बैठक से भिन्न और अलग है। दोनों बैठकों में भाग लेने के लिए अधिकृत व्यक्ति समान नहीं हैं। क्षेत्र पंचायत के वे सदस्य जो प्रधान का चुनाव करने के योग्य नहीं हैं, वे उसके/उसकी हटाने के लिए आयोजित बैठक में भाग लेने के लिए भी सक्षम नहीं हैं। ऐसी बैठक में भाग लेने वाला एक निर्वाचित सदस्य नियमों के नियम 3(3) में निहित प्रतिबंध से आच्छादित नहीं है। यदि हम निर्वाचित सदस्य को अविश्वास की बैठक में भाग लेने से बाहर करते हैं, तो यह कई *विसंगतियों [राम पाल सिंह के मामले के निर्णय मे पैरा संख्या 21 और 22]* की ओर ले जाता है, जिन्हें अधिनियम के प्रावधानों को कार्यशील बनाने के लिए टालना होगा।

41. न्यायालय एक ऐसी व्याख्या के विरुद्ध दृढ़ता से झुकते हैं जो कानून को निरर्थक बनाती है। सांविधिक व्याख्या के सिद्धांतों (13वां संस्करण) में, प्रसिद्ध लेखक (न्यायमूर्ति जी.पी. सिंह) पहले ही अध्याय में टिप्पणी करते हैं कि एक कानून या उसमें कोई भी अधिनियमन प्रावधान अवश्य ही इस सूत्र वाक्य के अनुसार होना चाहिए: यूटी रेस मैगिस वैलेट क्वाम पेरेट" ("ut res magis valeat quam pereat") मैक्सिम में, लॉर्ड डनेडिन ने **मैनचेस्टर शिप कैनाल कंपनी बनाम मैनचेस्टर रेसकोर्स कंपनी** [1904 2 चैप्टर 352 प्रष्ट 360,361] में अवलोकन किया कि यह हमारा कर्तव्य है कि हम कानूनों का जो कुछ भी कर सकें, वह करें, यह जानते हुए कि वे प्रभावी होने के लिए बनाए गए हैं, न कि अनुपयुक्त, और असंभवता से कम कुछ भी मेरे निर्णय में किसी न्यायाधीश को एक कानून को अकार्यशील घोषित करने की अनुमति नहीं देना चाहिए। इस सिद्धांत को उन्होंने एक बाद के मामले में दोहराया जहां उन्होंने अवलोकन किया: "एक कानून कार्यशील होने के लिए डिज़ाइन किया गया है, और न्यायालय द्वारा उसकी व्याख्या उस उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए होनी चाहिए, जब तक कि महत्वपूर्ण चूक या स्पष्ट निर्देश उस लक्ष्य को अप्राप्य न बना दे।[व्हिटनी बनाम आईआरसी, (1926) एसी 37,

अनुवादित

पृ. 52; सीआईटी बनाम एस. तेजा सिंह, एआईआर 1959 एससी 352, पी में संदर्भित। 356 : 1959 पूरक (1) एससीआर 394; गुरसहाय बनाम सीआईटी, एआईआर 1963 एससी 1062, पृ. 1065: (1963) 3 एससीआर 893; सोढ़ी ट्रांसपोर्ट कंपनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1986) 2 एससीसी 486, पृ. 492: एआईआर 1986 एससी 1099; तिनसुखिया इलेक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड बनाम असम राज्य।] "

42. इस प्रकार, मुद्दे (iii) और (iv) का हमारा उत्तर निम्नानुसार है:

> मुद्दा (iii): एक निर्वाचित सदस्य को प्रस्ताव करने के इरादे की लिखित सूचना पर हस्ताक्षर करने से वंचित नहीं किया जाता है, भले ही उसने पद की शपथ लेने में विफल रहा हो।
>
> मुद्दा (iv): अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए आयोजित बैठक एक विशेष बैठक है जिसका विशिष्ट उद्देश्य है और यह क्षेत्र पंचायत के सामान्य कार्य संचालन के लिए आयोजित बैठक से अलग है। एक निर्वाचित सदस्य, भले ही उसने शपथ नहीं ली हो, अविश्वास की बैठक में भाग लेने का हकदार है, हालांकि वह क्षेत्र पंचायत के सामान्य कार्य संचालन के लिए आयोजित बैठक में भाग लेने का हकदार नहीं होगा।

<u>निष्कर्ष</u>

43. इस प्रकार, तय किए गए मुद्दों का हमारा उत्तर निम्नानुसार है:

> मुद्दा (i): निर्वाचित सदस्य वे हैं जो पंचायत क्षेत्र में क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुने जाते हैं।
>
> मुद्दा (ii): निर्वाचित सदस्य पद की शपथ न लेने पर अपना पद धारण करना बंद नहीं करते हैं।
>
> मुद्दा (iii): एक निर्वाचित सदस्य को प्रस्ताव करने के इरादे की लिखित सूचना पर हस्ताक्षर करने से वंचित नहीं किया जाता है, भले ही उसने पद की शपथ लेने में विफल रहा हो।
>
> मुद्दा (iv): अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए आयोजित बैठक एक विशेष बैठक है जिसका विशिष्ट उद्देश्य है और यह क्षेत्र पंचायत के सामान्य कार्य संचालन के लिए आयोजित बैठक से अलग है। एक निर्वाचित सदस्य, भले ही उसने शपथ नहीं ली हो, अविश्वास की बैठक में भाग लेने का हकदार है, हालांकि वह क्षेत्र पंचायत के सामान्य कार्य संचालन के लिए आयोजित बैठक में भाग लेने का हकदार नहीं होगा।

44. संदर्भ का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

45. कागजात को आगे की कार्यवाही के लिए मामले में अधिकार क्षेत्र रखने वाली पीठ के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

(2023) 2 ILRA 308

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 03.08.2022

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर,

रिट-सी संख्या 19800/2022

राम चंद्र और अन्य

...याचिकाकर्ता

अनुवादित

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: सुश्री पूजा अग्रवाल

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री ए.के. रे (अतिरिक्त सी.एस.सी.), श्री प्रमोद सिंह

ए. अधिग्रहण कानून - भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 - धारा 18 और 28-ए - अनुदान में वृद्धि - समीक्षा शक्ति की कमी के आधार पर आवेदन निरस्त कर दिया गया था - वैधता को चुनौती दी गई थी - आयोजित, आपेक्षित आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ताओं का उपाय, धारा 28-ए की उप-धारा (3) के तहत वाद को न्यायालय में प्रेषित की प्रार्थना करते हुए कलेक्टर को आवेदन प्रस्तुत करना होगा। एक बार जब वह संदर्भ दिया जाता है, तो यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि संदर्भ न्यायालय पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य के आधार पर प्रश्न की जांच करेगा - आवेदन समय सीमा के भीतर है और गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए। (पैरा 16 और 19)

रिट याचिका निस्तारित। (ई-1)

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

एवं

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

निर्णय

1. यह रिट याचिका अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (भूमि अधिग्रहण)/(आवास), कानपुर नगर द्वारा पारित दिनांक 27.04.2022 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसमें भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (संक्षेप में, 'अधिनियम 1894') की धारा 28-ए के तहत मुआवजे में वृद्धि के लिए याचिकाकर्ताओं के आवेदन को खारिज कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त, एक परमादेश की प्रकृति का रिट भी मांगा गया है जो प्रतिवादियों को निर्देश दे कि वे याचिकाकर्ताओं को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कानपुर नगर द्वारा मामला संख्या 257/70 वर्ष 1993 में पारित दिनांक 25.01.2021 के निर्णय के अनुसार और विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी (आवास), कानपुर नगर द्वारा पारित दिनांक 24.09.2009 के संशोधित निर्णय के मद्देनजर मुआवजा दें।

2. याचिकाकर्ता मुख्य रूप से अधिनियम 1894 की धारा 28-ए के तहत अपने अधिकार का प्रयोग करने का दावा करते हैं, इस आधार पर कि उन्होंने कलेक्टर के निर्णय को अधिनियम 1894 की धारा 18 के तहत संदर्भ के माध्यम से चुनौती नहीं दी है, बल्कि उसी अधिग्रहण से संबंधित कुछ भूमिधारकों के लिए दिनांक 24.09.2009 के संशोधित निर्णय के आधार पर धारा 28-ए के तहत इसका पुनर्निर्धारण मांगा है।

3. चूंकि अधिनियम 1894 की धारा 28-ए के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर लंबे समय तक निर्णय नहीं लिया गया था और उन्होंने कलेक्टर को आवेदन पर निर्णय लेने के निर्देश के लिए रिट - सी संख्या 33973 वर्ष 2012 दायर की थी। उपरोक्त रिट याचिका में पारित दिनांक 15.09.2016 के आदेश द्वारा आवेदन पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया था। आदेश का पालन नहीं किया गया, जिससे अवमानना की कार्यवाही शुरू हुई। अवमानना कार्यवाही शुरू होने के बाद, अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (भूमि अधिग्रहण) ने दिनांक 20.03.2017 के आदेश द्वारा आवेदन को खारिज

अनुवादित

कर दिया, यह मानते हुए कि अधिनियम 1894 की धारा 28-ए के तहत याचिकाकर्ताओं का मुआवजे में वृद्धि का दावा मान्य नहीं था।

4. उस आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं ने रिट - सी संख्या 17190 वर्ष 2017 दायर की। इस न्यायालय ने दिनांक 23.10.2019 के आदेश में देखा कि दिनांक 20.03.2017 के आदेश में दिनांक 17.01.2017 की एक रिपोर्ट/पत्र का संदर्भ है, जो याचिकाकर्ताओं को नहीं दिया गया था। इसलिए, अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (भूमि अधिग्रहण) का आदेश रद्द कर दिया गया और दिनांक 17.01.2017 की रिपोर्ट एक महीने के भीतर याचिकाकर्ताओं को देने और नए सिरे से निर्णय लेने का निर्देश दिया गया। जिला मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर ने दिनांक 20/21.10.2020 के आदेश द्वारा फिर से याचिकाकर्ताओं के अधिनियम की धारा 28-ए के तहत दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया कि उनके पास अपने पूर्व के दिनांक 20.03.2017 के आदेश की समीक्षा करने का अधिकार नहीं था। इस दिनांक 20/21.10.2020 के आदेश को याचिकाकर्ताओं ने रिट - सी संख्या 26177 वर्ष 2020 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी।

5. जिला मजिस्ट्रेट के दिनांक 20/21.10.2020 के आदेश को इस न्यायालय ने रिट - सी संख्या 26177 वर्ष 2020 में पारित दिनांक 21.01.2021 के निर्णय और आदेश द्वारा रद्द कर दिया और मामले को जिला मजिस्ट्रेट को वापस भेज दिया, यह आवश्यक करते हुए कि वे याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए सभी आपत्तियों पर विचार करने के बाद नए आदेश पारित करें। इस न्यायालय द्वारा लौटाए गए मामले का निर्धारण करते हुए, जिला मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर ने माना कि विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी (संक्षेप में, 'एसएलएओ') द्वारा पारित दिनांक 24.09.2009 का निर्णय उन पक्षों तक सीमित था, जिन्होंने इस न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में मुकदमा लड़ा था, न कि अन्य भूमि विस्थापितों तक। रिट याचिकाकर्ता उन रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ता नहीं थे जो पहले इस न्यायालय के समक्ष संबंधित भूमि अधिग्रहण अधिसूचनाओं को चुनौती देते हुए दायर की गई थीं। यह भी राय दी गई कि अधिनियम 1894 एक भूमिधारक द्वारा संदर्भ मांगने का प्रावधान करता है, यदि वह कलेक्टर द्वारा दिए गए मुआवजे से असंतुष्ट है, अधिनियम 1894 की धारा 18 के तहत। वे भूमिधारक, जो धारा 18 के तहत अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करते हैं, अन्य भूमिधारकों के अनुरोध पर उसी अधिसूचना से संबंधित संदर्भ न्यायालय द्वारा निर्णय की घोषणा पर, अधिनियम 1894 की धारा 28-ए के तहत तीन महीने के भीतर आवेदन कर सकते हैं। यह माना गया कि याचिकाकर्ताओं ने न तो धारा 18 के तहत और न ही धारा 28-ए के तहत आवेदन किया। यह प्रतिनिधित्व, जो उन्होंने रिट सी संख्या 26177 वर्ष 2020 में पारित इस न्यायालय के दिनांक 21.01.2021 के आदेश के अनुपालन में 01.02.2021 को प्रस्तुत किया था, अधिनियम 1894 के अनुरूप नहीं पाया गया और खारिज करने योग्य माना गया। हालांकि, याचिकाकर्ताओं को अधिनियम 1894 के तहत सक्षम न्यायालय के समक्ष मुआवजे में वृद्धि की मांग करने के लिए अपने उपायों को आगे बढ़ाने की स्वतंत्रता दी गई।.

6. यह तत्काल ध्यान देने योग्य है कि जिला मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर द्वारा दिनांक 24.03.2021 को पारित आदेश को

अनुवादित

याचिकाकर्ताओं द्वारा इस न्यायालय या किसी अन्य सक्षम मंच में चुनौती देते हुए प्रस्तुत किया गया प्रतीत नहीं होता है। इसके बजाय, 1894 के अधिनियम की धारा 28-ए के अंतर्गत एक आवेदन भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा दिनांक 24.09.2009 को पारित संशोधित अधिनिर्णय के आधार पर मुआवजे में वृद्धि की मांग करते हुए किया गया था, और एल.ए.आर. संख्या 257/70 of 1993, नंकू (मृतक) द्वारा उनके कानूनी उत्तराधिकारियों के माध्यम से बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में संदर्भ न्यायालय के अधिनिर्णय के अतिरिक्त आधार पर, जो कि 25.01.2021 को अपर जिला न्यायाधीश-XII, कानपुर नगर द्वारा निर्णीत किया गया था, जिसका दावा किया गया था कि वह उसी अधिग्रहण से संबंधित था। 1894 के अधिनियम की धारा 28-ए के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं के इस आवेदन को अपर जिला मजिस्ट्रेट, भूमि अधिग्रहण/(आवास), कानपुर नगर द्वारा दिनांक 27.04.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

7. हमने रिट याचिकाकर्ताओं की ओर से सुश्री पूजा अग्रवाल, आवास एवं विकास परिषद की ओर से श्री प्रमोद सिंह, और राज्य की ओर से श्री ए.के. राय, अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता की दलीलें सुनी हैं।

8. जैसा कि अभिलेख से प्रतीत होता है कि दो अलग-अलग पहलू हैं, जिनके आधार पर याचिकाकर्ताओं ने 1894 के अधिनियम की धारा 28-ए के अंतर्गत मुआवजे के संशोधन की मांग की है। एक विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा दिनांक 24.09.2009 को पारित संशोधित अधिनिर्णय पर आधारित है और दूसरा संदर्भ न्यायालय के दिनांक 25.01.2021 के अधिनिर्णय पर। जहां तक 1894 के अधिनियम की धारा 28-ए के अंतर्गत अधिकार के प्रयोग का संबंध है, यह कलेक्टर/विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा कुछ भूमि धारकों के संबंध में किसी भी आधार पर पारित एक संशोधित अधिनिर्णय के आधार पर नहीं किया जा सकता। धारा 28-ए के अंतर्गत आवेदन करने का अधिकार संदर्भ न्यायालय के निर्णय के आधार पर उस व्यक्ति के पक्ष में उत्पन्न होता है, जिसने स्वयं धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ नहीं मांगा है, लेकिन उसी अधिसूचना द्वारा कवर किया गया है, जहां संदर्भ न्यायालय ने वृद्धि की है। इसलिए, कलेक्टर या विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा पारित संशोधित अधिनिर्णय के आधार पर 1894 के अधिनियम की धारा 28-ए के अंतर्गत मुआवजे में वृद्धि का कोई अधिकार नहीं मांगा जा सकता, चाहे वह उसी अधिसूचना से संबंधित हो। याचिकाकर्ताओं के मामले का यह हिस्सा टिकाऊ नहीं है।

9. हालांकि, मामले का एक अन्य पहलू है, जिसे सुश्री पूजा अग्रवाल, याचिकाकर्ताओं की अधिवक्ता ने हमारे समक्ष बड़ी मेहनत से प्रस्तुत किया है। और वह यह है कि रिट याचिकाकर्ता उसी अधिसूचना द्वारा कवर किए गए हैं जिसके तहत अन्य भूमि धारकों के मामले में दिनांक 24.09.2009 का संशोधित अधिनिर्णय पारित किया गया है, इसलिए याचिकाकर्ताओं को वही लाभ न देने का कोई कारण नहीं है। यदि ऐसा नहीं किया जाता है, तो अधिवक्ता के अनुसार, यह भेदभावपूर्ण होगा।

इस तर्क का विरोध प्रतिवादियों के अधिवक्ताओं द्वारा किया गया है, जो कहते हैं कि दिनांक 24.09.2009 का संशोधित अधिनिर्णय विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा कुछ भूमि धारकों के पक्ष में बहुत ही विशिष्ट परिस्थितियों

में पारित किया गया था। हमने अभिलेख का अवलोकन किया है और इस बिंदु पर तर्क पर सावधानीपूर्वक विचार किया है।

10. अभिलेख के अवलोकन और घटनाओं के क्रम से यह स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद अधिनियम, 1965 (संक्षेप में, '1965 का अधिनियम') की धारा 32 के अंतर्गत जारी अधिसूचना द्वारा कवर किए गए कुछ मामलों में, कुछ भूमि धारकों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष सफलतापूर्वक चुनौती दी गई थी, जिसमें अधिग्रहण को दिनांक 03.10.1985 के आदेश द्वारा रिट याचिका संख्या 4776 of 1984 में रद्द कर दिया गया था।

11. उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद द्वारा विशेष अनुमति याचिका, जो सिविल अपील संख्या 1807 of 1986 थी, के माध्यम से दायर अपील पर, उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 13.02.2002 के निर्णय और आदेश द्वारा इस न्यायालय के आदेश को निरस्त कर दिया और अधिग्रहण को बहाल कर दिया। असफल भूमि धारकों, जिन्होंने उच्चतम न्यायालय तक मुकदमा लड़ा था, ने रिट याचिका (सिविल) संख्या 452 of 2002 के माध्यम से उच्चतम न्यायालय का रुख किया। उक्त रिट याचिका को 02.09.2002 को खारिज कर दिया गया, जिसमें पक्षकारों को कानून के अनुसार अपना उपाय खोजने की स्वतंत्रता दी गई। उन भूमि धारकों को राहत नहीं मिली और उन्होंने फिर से इस न्यायालय का रुख रिट याचिका संख्या 44131 of 2004, श्रीकुमार सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के माध्यम से किया, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 28.10.2004 के आदेश द्वारा निर्णीत किया, यह निर्देश देते हुए कि संबंधित भूमि धारक कानून के अनुसार मुआवजा मांगने के हकदार हैं।

12. ऐसा प्रतीत होता है कि इस न्यायालय के पूर्व निर्णय दिनांक 03.10.1985, जो रिट याचिका संख्या 4776 of 1984 के याचिकाकर्ताओं से संबंधित अधिग्रहण को रद्द करता था, के कारण कुछ कठिनाई उत्पन्न हुई या महसूस की गई। जो कठिनाई महसूस की गई वह यह थी कि उक्त अधिसूचना के रद्द होने से, अधिग्रहण के लिए सभी बाद की कार्यवाहियां, जिसमें संबंधित भूमि धारकों से संबंधित दिनांक 23.09.1986 का अधिनिर्णय शामिल था, शून्य हो गईं। विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने सरकार से मार्गदर्शन मांगा, जिसने एक सरकारी आदेश दिनांक 10.10.2007 के माध्यम से मामलों को स्पष्ट किया और निर्देश दिए। उन निर्देशों पर कार्य करते हुए, विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने दिनांक 24.09.2009 को एक नया अधिनिर्णय पारित किया।

13. इस अधिनिर्णय द्वारा, विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने 45/- रुपये प्रति वर्ग गज की उच्च दर से मुआवजा प्रदान किया, जो 1894 के अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत न्यायालय के निर्धारण पर आधारित था, उन मामलों में जहां उसी अधिसूचना से प्रभावित भूमि धारकों ने संदर्भ के लिए आवेदन किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान याचिकाकर्ता, हालांकि उसी अधिसूचना से प्रभावित होने का दावा करते हैं, ने अधिग्रहण को चुनौती नहीं दी थी और प्रतिवादियों का मामला यह है कि दिनांक 24.09.2009 का अधिनिर्णय केवल उन भूमि धारकों तक ही सीमित है, जिन्होंने अधिग्रहण पर सवाल उठाया था और उच्चतम न्यायालय तक मुकदमा लड़ा था। याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 23.09.1986 के अधिनिर्णय को स्वीकार कर लिया था जो मूल रूप से पारित किया गया था और कभी भी

अनुवादित

अधिग्रहण पर सवाल नहीं उठाया। प्रतिवादियों ने एक स्थिति ली, जिसे विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा दिनांक 20.10.2010 के आदेश द्वारा स्वीकार किया गया, कि विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 24.09.2009 का अधिनिर्णय रिट याचिका संख्या 4776 of 1984 के याचिकाकर्ताओं तक ही सीमित है और इसमें 138-19-0 बीघा भूमि शामिल है और इससे अधिक कुछ नहीं ।

14. दिनांक 24.09.2009 का अधिनिर्णय याचिकाकर्ताओं पर लागू नहीं होने का निर्णय कलेक्टर, कानपुर नगर द्वारा दिनांक 20/21.10.2020 के आदेश द्वारा लिया गया। आवास एवं विकास परिषद के अनुसार, याचिकाकर्ता विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी के दिनांक 24.09.2009 के संशोधित अधिनिर्णय के आधार पर अधिकारों का दावा नहीं कर सकते।

15. उपरोक्त तथ्यों के विवरण में स्पष्ट कारणों से, दिनांक 24.09.2009 का अधिनिर्णय भूमि से विस्थापित लोगों के एक बहुत ही विशिष्ट वर्ग पर लागू होता है, अर्थात् वे जो रिट याचिका संख्या 4776 of 1984 में याचिकाकर्ता थे और उच्चतम न्यायालय तक मुकदमा लड़े थे। याचिकाकर्ता, जो उस मुकदमेबाजी के पक्षकार नहीं हैं, के साथ विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा मूल अधिनिर्णय से भिन्न, उच्च दरें प्रदान करते हुए संशोधित अधिनिर्णय पारित करने के मामले में भेदभाव किया गया है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अतः तर्क का यह भाग भी टिकाऊ नहीं है।

16. अब, यह हमें याचिकाकर्ताओं के तर्क के दूसरे पहलू की ओर ले जाता है कि संदर्भ न्यायालय ने एल.ए.आर. संख्या 257/70 of 1993 में दिनांक 25.01.2021 का अधिनिर्णय पारित किया है, जो उसी अधिसूचना से संबंधित है, याचिकाकर्ताओं को 1894 के अधिनियम की धारा 28-ए के अंतर्गत अपना आवेदन, जो 17.04.2021 को किया गया है, बनाए रखने का अधिकार देता है। उक्त आवेदन परिसीमा के भीतर है और इसे गुणावगुण के आधार पर निर्णीत किया जाना चाहिए था।

17. अपर जिला मजिस्ट्रेट, भूमि अधिग्रहण ने आवेदन को एक संक्षिप्त टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया है, यह कहते हुए कि आवास एवं विकास परिषद द्वारा उठाई गई आपत्तियां मान्य हैं और धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन कानून के विपरीत है। अब, उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद के कार्यकारी अभियंता द्वारा जो आपत्ति उठाई गई है, वह अपर जिला मजिस्ट्रेट, भूमि अधिग्रहण को संबोधित दिनांक 02.03.2022 के पत्र में निर्धारित की गई है। उक्त पत्र में कहा गया है कि धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन भूमि विकास-सह-आवासीय योजना संख्या 3 से प्रभावित भूमि से संबंधित है, जबकि संदर्भ न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 25.01.2021 का अधिनिर्णय, जिसके आधार पर धारा 28-ए के अंतर्गत अधिकारिता का आह्वान किया गया है, भूमि विकास-सह-आवासीय योजना संख्या 1 से संबंधित है।

18. यह भी कहा गया था कि भूमि विकास-सह-आवासीय योजना संख्या 3 से प्रभावित भूमि का अधिग्रहण 1965 के अधिनियम की धाराओं 28 और 32 के अंतर्गत दिनांक 08.03.1980 और 28.08.1982 की अधिसूचनाओं के माध्यम से किया गया था, जबकि भूमि विकास-सह-आवासीय योजना संख्या 1, जो याचिकाकर्ताओं की भूमि से संबंधित है, में दिनांक 17.02.1973 और 27.02.1980 की अधिसूचनाओं के माध्यम से

अनुवादित

अधिगृहीत भूमि शामिल है। प्रभावी रूप से, इसलिए, कार्यकारी अभियंता, आवास एवं विकास परिषद ने कहा कि संदर्भ न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 25.01.2021 का अधिनिर्णय एक अलग अधिग्रहण से संबंधित था जो उन अधिसूचनाओं से पूरी तरह से भिन्न अधिसूचनाओं के माध्यम से किया गया था जिनके द्वारा याचिकाकर्ताओं की भूमि का अधिग्रहण किया गया था। यह एक ऐसा मामला है जिसमें साक्ष्य के आधार पर जांच की आवश्यकता होगी, कम से कम प्लॉट संख्याओं और अधिग्रहण अधिसूचनाओं की तुलना करते हुए। यह कुछ ऐसा नहीं है जिसे एक संक्षिप्त टिप्पणी के साथ निपटाया जा सकता है जो कार्यकारी अभियंता, आवास एवं विकास परिषद द्वारा अपर जिला मजिस्ट्रेट, भूमि अधिग्रहण को संबोधित पत्र में कही गई सभी बातों को स्वीकार करता है। मामले को किसी भी तरह से देखा जाए, यह अंततः साक्ष्य का मामला है, जहां याचिकाकर्ताओं की भूमि कथित रूप से वह है जिसका अधिग्रहण उसी अधिसूचना के माध्यम से किया गया है यानी एल.ए.आर. संख्या 257/70 of 1993 में पारित दिनांक 25.01.2021 के अधिनिर्णय का विषय। अपर जिला मजिस्ट्रेट, भूमि अधिग्रहण का आदेश, जो उक्त आवेदन को खारिज करता है, अंततः किसी भी आधार पर अधिनिर्णय का पुनर्निर्धारण करने से इनकार करता है। यह, इसलिए, उतना ही अधिनिर्णय है जितना कि वह जो दावे को गुणावगुण पर न्यायनिर्णीत करता है और संदर्भ न्यायालय के निर्णय के अनुसार किए गए संशोधन पर देय मुआवजे की राशि निर्धारित करता है।

19. हमारी राय में, इसलिए, आक्षेपित आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ताओं का उपचार कलेक्टर को धारा 28-ए की उपधारा (3) के अंतर्गत मामले को न्यायालय को संदर्भित करने की आवश्यकता वाला आवेदन करना होगा। एक बार जब वह संदर्भ किया जाता है, तो यह कहना अनावश्यक है कि संदर्भ न्यायालय पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य के आधार पर प्रश्न की जांच करेगा, यदि वास्तव में याचिकाकर्ता एल.ए.आर. संख्या 257/70 of 1993 में पारित दिनांक 25.01.2021 के अधिनिर्णय का लाभ दावा करने के हकदार हैं। संबंधित अधिसूचना का प्रश्न, जिसके माध्यम से याचिकाकर्ताओं की भूमि का अधिग्रहण किया गया है और जो एल.ए.आर. संख्या 257/70 of 1993 का विषय है, एक है या नहीं, की भी न्यायालय द्वारा जांच की जाएगी, क्योंकि यह मुद्दा एक ऐसा विवाद है जिसे न्यायालय को तय करना चाहिए।

20. याचिकाकर्ताओं द्वारा कलेक्टर, कानपुर नगर को आवेदन किए जाने पर, 1894 के अधिनियम की धारा 28-ए की उपधारा (3) के अंतर्गत संदर्भ किया जाएगा। यह कहना अनावश्यक है कि संबंधित न्यायालय संदर्भ को स्वीकार करेगा और पक्षकारों को सुनने के बाद कानून के अनुसार उसका निर्णय करेगा।

21. याचिका तदनुसार निस्तारित की जाती है।

(2023) 2 ILRA 313

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 18.10.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा,

रिट-सी संख्या 21923/2019

संजय कुमार तिवारी@संजय तिवारी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री चन्द्र शेखर सिंह, श्री संजय कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - जन्म और मृत्यु पंजीकरण अधिनियम, 1969 - धारा 13(3) और 15 - मृत्यु तिथि - सुधार कार्यवाही प्रकृति - राय, कितना प्रासंगिक - आयोजित, धारा 13 के तहत विचार की गई जांच संबंधित व्यक्ति के जन्म या मृत्यु से संबंधित जानकारी की प्रामाणिकता सत्यापित करने के उद्देश्यों के लिए सीमित है - ऐसी जांच में बनी राय जन्म या मृत्यु की तारीख का निर्णायक निर्धारण नहीं है और इसलिए यह किसी व्यक्ति की जीवित स्थिति या तथ्य के अन्य प्रश्न से संबंधित प्रश्नों का निर्णय करने के लिए सक्षम नियमित अदालत पर बाध्यकारी नहीं है। (पैरा 11)

बी. सिविल कानून - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 35 - जन्म और मृत्यु के रजिस्टर में प्रविष्टि - स्वीकार्यता - निर्णायक साक्ष्य के रूप में इसकी प्रासंगिकता - आयोजित, इसमें कोई संदेह नहीं है कि जन्म और मृत्यु के रजिस्टर में की गई प्रविष्टि साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अंतर्गत एक प्रासंगिक तथ्य के रूप में स्वीकार्य है और मृत्यु या जन्म की तारीख को साबित करने के लिए जन्म और मृत्यु पंजीकरण अधिनियम, 1969 की धारा 17(2) के तहत साक्ष्य के रूप में भी स्वीकार्य है। लेकिन, न तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 और न ही जन्म और मृत्यु पंजीकरण अधिनियम, 1969 की धारा 17(2) में यह प्रावधान है कि जन्म और मृत्यु के रजिस्टर में दर्ज जन्म या मृत्यु की तारीख मृत्यु की तारीख या संबंधित व्यक्ति का जन्म का निर्णायक साक्ष्य है। (पैरा 10)

रिट याचिका निस्तारित। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा,
&
माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता और उत्तरदाताओं 1,2,3 और 7 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने उप-मंडल अधिकारी, बरहज, देवरिया द्वारा जन्म और मृत्यु पंजीकरण अधिनियम, 1969 की धारा 13(3) के अंतर्गत मामला संख्या 6 में पारित दिनांक 10.04.2019 और 26.10.2012 के आदेशों को चुनौती दी है।

3. एक संपत्ति विवाद से उत्पन्न, याचिकाकर्ता और निजी प्रतिवादी 4 से 6 धनुषधारी के पुत्र जगत नारायण की मृत्यु की तिथि के संबंध में विवाद में हैं। याचिकाकर्ता के अनुसार, उनकी मृत्यु वर्ष 1970 में हुई थी जबकि निजी प्रतिवादियों के अनुसार उनकी मृत्यु 29.08.1971 को हुई थी।

अनुवादित

4. याचिकाकर्ता के अनुसार जगत नारायण का मृत्यु वर्ष पहले रजिस्टर में 1970 के रूप में दर्ज किया गया था। बाद में, सुधार करने और उनकी मृत्यु की तिथि 29.08.1971 के रूप में दर्ज करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था। उक्त आवेदन पर, एडीओ (पंचायत) द्वारा दिनांक 10.01.2000 को प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर, दिनांक 26.10.2012 के आदेश द्वारा, उप जिला अधिकारी, बरहज, देवरिया ने निर्देश दिया कि उनकी मृत्यु की तिथि 29.08.1971 दर्ज की जाए। याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 28.05.2014 को दिनांक 26.10.2012 के आदेश को वापस लेने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था, इस आधार पर कि राम गरीब तिवारी (याचिकाकर्ता के पूर्वाधिकारी), जो उस कार्यवाही में एक प्रतिवादी थे, की मृत्यु हो गई थी और इसलिए दूसरे पक्ष द्वारा स्थापित दावे को चुनौती देने के लिए कोई नहीं था, परिणामस्वरूप, आदेश एकपक्षीय था। याचिकाकर्ता के इस आवेदन को दिनांक 10.04.2019 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है।

5. दिनांक 26.10.2012 के आदेश को वापस लेने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करते हुए, उप जिला अधिकारी, बरहज, देवरिया ने अवलोकन किया है कि जन्म और मृत्यु के पंजीकरण के संबंध में कार्यवाही प्रशासनिक प्रकृति की है और उनके पास पहले पारित आदेश को वापस लेने/समीक्षा करने की कोई शक्ति नहीं है, इसलिए उनके पास याचिकाकर्ता द्वारा किए गए ऐसे आवेदन पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। उन्होंने आदेश में यह भी अवलोकन किया कि जो कार्यवाही दिनांक 26.10.2012 के आदेश की ओर ले गई, जो दिनांक 10.01.2000 की रिपोर्ट के आधार पर थी, एक दशक से अधिक समय से लंबित थी और किसी न किसी कारण से स्थगित कर दी गई थी, इसलिए, यह ऐसा मामला नहीं है जहां याचिकाकर्ता पक्ष को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान जन्म और मृत्यु पंजीकरण अधिनियम, 1969 की धारा 15 की ओर आकर्षित किया है जो प्रदान करता है कि यदि रजिस्ट्रार की संतुष्टि के लिए यह सिद्ध हो जाता है कि इस अधिनियम के अधीन उसके द्वारा रखे गए किसी रजिस्टर में जन्म या मृत्यु की कोई प्रविष्टि रूप या सार में त्रुटिपूर्ण है, या कपटपूर्वक या अनुचित रूप से की गई है, तो वह, राज्य सरकार द्वारा बनाए गए ऐसे नियमों के अधीन जो ऐसी प्रविष्टियों के सुधार या रद्द किए जाने की शर्तों और परिस्थितियों के संबंध में हो सकते हैं, मूल प्रविष्टि में कोई परिवर्तन किए बिना, मार्जिन में उपयुक्त प्रविष्टि करके त्रुटि को सुधार सकता है या प्रविष्टि को रद्द कर सकता है, और मार्जिनल प्रविष्टि पर हस्ताक्षर करेगा और उसमें सुधार या रद्द करने की तिथि जोड़ेगा।

7. उपरोक्त प्रावधान के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता के आवेदन को एक

अनुवादित

सुधार आवेदन के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए था और इसलिए, इसे अनुरक्षणीय न होने के कारण खारिज नहीं किया जाना चाहिए था।

8. विद्वान स्थायी अधिवक्ता, जो राज्य प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित हुए हैं, का तर्क है कि यह एक ऐसा मामला है जहां पहले की गई प्रविष्टि के सुधार के लिए आवेदन किया गया था और, रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद, दिनांक 26.10.2012 के आदेश द्वारा, सुधार का निर्देश दिया गया था। ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता का आवेदन मूल प्रविष्टि को सुधारने के लिए नहीं था बल्कि वास्तव में 26.10.2012 को पारित आदेश की समीक्षा करने के लिए था। यह तर्क दिया गया कि चूंकि समीक्षा की कोई शक्ति नहीं है, उप जिला अधिकारी, बरहज, देवरिया आवेदन को अनुरक्षणीय न मानने में उचित था।

9. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर ध्यान देते हुए, अभिलेखों के सूक्ष्म परीक्षण पर, हम पाते हैं कि जगत नारायण की मृत्यु की तिथि समेकन न्यायालय के समक्ष लंबित मुकदमेबाजी में पक्षों के बीच विवाद का मुख्य कारण है। उन कार्यवाहियों में एक मुद्दा उठा है कि क्या जगत नारायण वर्ष 1971 में संशोधन दाखिल कर सकते थे जब उनकी मृत्यु वर्ष 1970 में हो गई थी। जन्म और मृत्यु के रजिस्टर में जगत नारायण की मृत्यु के संबंध में वर्ष 1970 में एक प्रविष्टि दिखाई दी थी। यह प्रविष्टि कब की गई थी, यह याचिका में प्रकट नहीं किया गया है। याचिका में जो प्रकट किया गया है वह यह है कि निजी प्रत्यर्थियों ने वर्ष 1999 में उस प्रविष्टि के सुधार के लिए आवेदन किया था। यह भी प्रतीत होता है कि आवेदन पर एडीओ (पंचायत) द्वारा दिनांक 10.01.2000 की एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, जो रिकॉर्ड पर अनुलग्नक 6 के रूप में मौजूद है। उस रिपोर्ट से यह प्रतीत होता है कि जगत नारायण का नाम परिवार रजिस्टर में उल्लिखित है। रिपोर्ट में कहा गया है कि चूंकि परिवार रजिस्टर नियम जून, 1970 के महीने में राजपत्र में अधिसूचित किए गए थे, इसलिए 1970 में जगत नारायण के जीवित होने की संभावना अधिक है क्योंकि रजिस्टर संभवतः उसके बाद ही अस्तित्व में आया होगा। रिपोर्ट में दर्ज है कि जगत नारायण द्वारा प्रस्तुत आवेदन की तिथि और परिवार रजिस्टर से यह प्रतीत होता है कि जगत नारायण की मृत्यु 29.08.1971 को हुई थी।

10. निःसंदेह, जन्म और मृत्यु के रजिस्टर में की गई प्रविष्टि साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के तहत एक प्रासंगिक तथ्य के रूप में स्वीकार्य है और जन्म और मृत्यु पंजीकरण अधिनियम, 1969 की धारा 17(2) के तहत मृत्यु या जन्म की तिथि साबित करने के लिए एक साक्ष्य के टुकड़े के रूप में भी स्वीकार्य है। लेकिन, न तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 और न ही जन्म और मृत्यु पंजीकरण अधिनियम, 1969 की धारा 17(2) यह प्रावधान करती है कि जन्म और मृत्यु के रजिस्टर में दर्ज जन्म या मृत्यु की तिथि संबंधित व्यक्ति की मृत्यु या जन्म की तिथि का निर्णायक प्रमाण है।

अनुवादित

11. 1969 के अधिनियम के तहत कार्यवाही की प्रकृति का पता लगाने के लिए, हमने उसके प्रावधानों को देखा। हमारे प्रयास के बावजूद हम जन्म और मृत्यु पंजीकरण अधिनियम, 1969 में कोई ऐसा प्रावधान नहीं पा सके जो रजिस्ट्रार को किसी व्यक्ति को शपथ पर उसका बयान दर्ज करने के लिए समन करने का अधिकार देता हो। याचिकाकर्ता के वकील भी उक्त अधिनियम के तहत कोई ऐसा प्रावधान नहीं दिखा सके जो रजिस्ट्रार को गवाहों को समन करने और उनका बयान शपथ पर दर्ज करने तथा उन गवाहों की जिरह की अनुमति देने के लिए न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार देता हो। धारा 13 के तहत परिकल्पित जांच संबंधित व्यक्ति के जन्म या मृत्यु से संबंधित जानकारी की प्रामाणिकता की जांच करने तक सीमित है, जो रजिस्ट्रार या मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, के ध्यान में लाई गई हो, ताकि वह यह राय बना सके कि क्या प्रदान की गई जानकारी को रजिस्टर में दर्ज किया जाना है या नहीं और इस उद्देश्य के लिए वह एक शपथपत्र ले सकता है। ऐसी जांच में बनाई गई राय जन्म या मृत्यु की तिथि का निर्णायक निर्धारण नहीं है और इसलिए किसी व्यक्ति की जीवित स्थिति या तथ्य के अन्य प्रश्नों से संबंधित प्रश्नों का निर्णय करने के लिए सक्षम नियमित न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं है। हालांकि, इन प्रविष्टियों को साक्ष्य के एक टुकड़े के रूप में विचार में लिया जा सकता है। ऐसी प्रविष्टि को कितना महत्व दिया जाना चाहिए, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा, जो तथ्य के ऐसे प्रश्नों का निर्णय करने के लिए अधिकृत न्यायालय के समक्ष पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर आधारित होंगे।

12. इस तरह की स्थिति में, जब इन प्रविष्टियों की सत्यता की जांच एक नियमित न्यायालय की कार्यवाही में वहां प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर की जा सकती है, तो इन कार्यवाहियों में प्रविष्टि की सत्यता की जांच करने का कोई लाभदायक उद्देश्य पूरा नहीं होगा। इसलिए, हम इस याचिका में चुनौती दिए गए आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार करते हैं और याचिकाकर्ता के लिए यह खुला छोड़ देते हैं कि वे जगत नारायण की मृत्यु की तिथि के संबंध में, जैसा उन्हें सलाह दी जाए, ऐसे स्वीकार्य साक्ष्य प्रस्तुत करें, उस सक्षम न्यायालय के समक्ष जहां कार्यवाही लंबित है।

13. उपरोक्त के अधीन, याचिका का **निस्तारण** किया जाता है।

14. यह स्पष्ट किया जाता है कि हमने जगत नारायण की मृत्यु की तिथि के संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं की है।

(2023) 2 ILRA 316

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा,

रिट-सी संख्या 39549/1998

शिव कुमार

...याचिकाकर्ता

अनुवादित

बनाम

मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी उ.प्र. और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री टी.एस. डबास, श्री अर्पित अग्रवाल

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 47-ए और 56 - यूपी स्टाम्प नियम, 1942 - नियम 341 - नियम 142 को 1997 में निरस्त कर दिया गया - वर्ष 1992 में निष्पादित बिक्री-विलेख के संबंध में 1942 के नियम की प्रयोज्यता - आयोजित, यह उल्लेखनीय है कि वर्ष 1997 में उ.प्र. स्टाम्प नियम 1942 निरस्त कर दिया गया। चूंकि यह 1992 का वाद है और प्रश्नगत संपत्ति दिनांक 04.06.1992 को क्रय गई थी, इसलिए स्टांप शुल्क यूपी स्टाम्प नियम, 1942 के प्रावधानों के अनुसार देय होगा - विचाराधीन संपत्ति एक इमारत है जिसका मूल्यांकन गृह जल और अन्य संबंधित नगरपालिका करों के प्रयोजनों के लिए किया गया है, इसलिए, नियम 341 (iii) (बी) के प्रावधान प्रश्न में संपत्ति पर लागू होते हैं - प्रतिवादी ने विक्रय-पत्र का निष्पादन के समय यूपी स्टाम्प नियम, 1942, के प्रावधानों का उल्लंघन किया है। (पैरा 19, 20 और 32)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:-

1. विजय कुमार एवं अन्य बनाम आयुक्त, मेरठ मंडल एवं अन्य; मनु/0682/2008
2. महाबीर प्रसाद बनाम कलेक्टर, कटक [1987] 2 एससीआर 289
3. राम खेलावन उर्फ बच्चन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा कलेक्टर, हेयरपुर एवं अन्य 2005 (98) आरडी 511
4. प्रकाशवती बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी राजस्व परिषद, इलाहाबाद 1996 (87) आर.डी. 419
5. कलेक्टर, नीलगिरी, ऊटाकामुंड बनाम महावीर प्लांटेशन प्राइवेट लिमिटेड; मनु/टीएन/0285/1982

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

यह रिट याचिका प्रतिवादी संख्या 1 - सीसीआरए उ.प्र./ राजस्व परिषद, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.08.1098 अनुलग्नक 5 एवं आदेश दिनांक 14.06.1994 अनुलग्नक सं. 2 प्रतिवादी क्रमांक 2 अर्थात अपर कलेक्टर (एफ एंड आर), जिला सहारनपुर द्वारा पारित आदेश को रद्द करने के लिए दायर की गई है जिसके द्वारा दोनों अधिकारियों ने डीड को जब्त कर लिया है और 16,325/- रुपये का जुर्माना लगाया है और 16,675/- रुपये कुल रु. 33,000/- की स्टांप ड्यूटी की कमी को पूरा करने और घाटे को पूरा करने का निर्देश दिया है और इसे याचिकाकर्ता से वसूलने का निर्देश दिया।

संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने मोहल्ला रेलवे सहारनपुर में

अनुवादित

स्थित 23.24 वर्ग गज के भूतल पर एक कमरा 35,000 रुपये में खरीदा और दुकान खरीदते समय उसी के अनुसार स्टांप शुल्क का भुगतान किया। विचाराधीन बिक्री-पत्र के निष्पादन के बाद, उप-पंजीयक ने स्टांप प्रयोजनों के लिए सही मूल्यांकन के लिए बिक्री-पत्र को प्रतिवादी संख्या 2 को संदर्भित किया, जिसमें रिपोर्ट दी गई कि मौके पर निरीक्षण के बाद, ऐसा प्रतीत होता है कि संपत्ति एक पॉश इलाके में मौजूद है और इसे आवासीय उद्देश्यों के लिए नहीं बल्कि वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए खरीदा गया है। उनके अनुसार, विचाराधीन संपत्ति का किराया 500 रुपये प्रति माह हो सकता है। संपत्ति का मासिक किराया 100 रुपये प्रति माह है, क्योंकि याचिकाकर्ता एक पुराना किरायेदार था।

याचिकाकर्ता को दिनांक 21.04.1994 को प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष आपत्ति (अनुलग्नक संख्या 1) दाखिल करने के लिए नोटिस जारी किया गया था, जिसमें आरोप/आपत्ति थी कि उसके द्वारा पर्याप्त स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया गया था। विचाराधीन संपत्ति खरीद के समय उसके किरायेदारी में थी। याचिकाकर्ता को उप पंजीयक की रिपोर्ट के खिलाफ आपत्ति दर्ज करने और साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर नहीं दिया गया। उप पंजीयक की रिपोर्ट में सही तथ्य नहीं हैं और घटनास्थल की गलत तस्वीर पेश की गई है।

याची ने अपने कथन के समर्थन में वर्ष 1991-96 के मूल्यांकन की प्रति दाखिल की है, जिसमें सम्पत्ति का वार्षिक किराया 900 रुपये दर्शाया गया है। प्रतिवादी संख्या 2 ने मामले की गहराई में जाए बिना आपत्ति को खारिज कर दिया तथा सम्पत्ति का मूल्यांकन गलत तरीके से 5,00 रुपये मासिक किराया दर्शाते हुए किया तथा विचाराधीन सम्पत्ति का मूल्यांकन 1,50,000 रुपये किया, जिसमें 1,15,000 रुपये का घाटा दर्शाया गया, जिस पर स्टाम्प की कमी 16,675 रुपये दर्शाई गई तथा 16,325 रुपये का जुर्माना लगाया, जो कुल 33,000 रुपये याची को उत्तर प्रदेश राज्य को देना होगा। इस रिट याचिका के साथ दिनांक 14.06.1994 का निर्णय अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न है।

विचारण न्यायालय में याचिकाकर्ता ने नगर पालिका परिषद का एक उद्धरण दाखिल किया, जिसमें प्रश्नगत मकान का वार्षिक मूल्यांकन दर्शाया गया था। याचिकाकर्ता को किराएदार बताया गया था और वार्षिक मूल्य 9,00/- रुपये था। 01.08.1991 से 31 मार्च, 1997 तक के खसरे की एक प्रति अनुलग्नक संख्या 3 के रूप में दाखिल की गई है।

याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 2 के आदेश से व्यथित होकर 20 जुलाई, 1994 को प्रतिवादी संख्या 1 के समक्ष भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 56 के तहत स्टाम्प संशोधन अनुलग्नक संख्या IV दायर किया।

प्रतिवादी सं. 1 ने 24.08.1998 को निर्णय और आदेश (अनुलग्नक संख्या 5) पारित किया, और 16,675/- रुपये की स्टांप कमी लगाई, लेकिन 16,325/- रुपये का जुर्माना

अनुवादित

अलग कर दिया। प्रतिवादी का आदेश क्र. 1 कानून की नजर में बुरा था. उन्होंने न्यायिक दिमाग का उपयोग नहीं किया है और निष्कर्ष को दर्ज किया है, जो कानून में मान्य नहीं है, उन्होंने भारतीय स्टांप नियमों के नियम 341 में दिए गए निर्देशों का पालन नहीं किया है और निर्धारित सिद्धांतों पर विचार किए बिना अपनी मर्जी से संपत्ति का गलत मूल्यांकन किया है। भारतीय स्टाम्प नियमों के नियम 341 के तहत। व्यावसायिक क्षेत्र में संपत्ति मौजूद होने से यह कहने का कोई आधार नहीं है कि जो संपत्ति खरीदी गई है वह व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए है।

प्रतिवादी संख्या 1 ने 24.08.1998 को निर्णय और आदेश पारित किया (अनुलग्नक संख्या 5) और 16,675/- रुपए का स्टाम्प डिफेसिस लगाया, लेकिन 16,325/- रुपए का जुर्माना रद्द कर दिया। प्रतिवादी संख्या 1 का आदेश कानून की नज़र में गलत था। उसने न्यायिक विवेक का इस्तेमाल नहीं किया और निष्कर्ष दर्ज किया, जो कानून में मान्य नहीं है, उसने भारतीय स्टाम्प नियमों के नियम 341 में दिए गए निर्देशों का पालन नहीं किया और भारतीय स्टाम्प नियमों के नियम 341 के तहत निर्धारित सिद्धांतों पर विचार किए बिना अपनी मर्जी से संपत्ति का गलत मूल्यांकन किया। वाणिज्यिक क्षेत्र में मौजूद संपत्ति यह कहने का कोई आधार नहीं है कि खरीदी गई संपत्ति वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए है।

प्रतिवादी संख्या 1 ने न्यायिक बुद्धि का प्रयोग नहीं किया है तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का पालन नहीं किया है कि इस संबंध में स्टाम्प ड्यूटी के निर्धारण के लिए केवल मकान के मूल्यांकन पर विचार किया जाए। प्रतिवादी संख्या 1 ने बिना किसी साक्ष्य, उदाहरण अथवा राज्य द्वारा दाखिल की गई किराया रसीद के गलत तरीके से मासिक किराया 500 रुपये निर्धारित किया है। इस संबंध में इतने छोटे क्षेत्र की संपत्ति का 1,50,000 रुपये निर्धारित करना इतनी ऊंची दर पर स्टाम्प ड्यूटी निर्धारित करने का कोई आधार नहीं है। याचिकाकर्ता का स्पष्ट मामला है कि वह खरीदी गई इमारत का पुराना किरायेदार था तथा मासिक किराया 5,00 रुपये प्रति माह नहीं हो सकता। तहसील प्राधिकरण की ओर से कोई स्वतंत्र जांच नहीं की गई है, जो भी निचली अदालत द्वारा की गई है, जिससे विवादित निर्णय की अवहेलना होती है। यह निर्णय उप-पंजीयक की रिपोर्ट पर आधारित है, जो एकपक्षीय है, साक्ष्य में अस्वीकार्य है और जिस पर भरोसा नहीं किया जा सकता था। मनमाने तरीके से स्टाम्प ड्यूटी में कमी दर्शाने से याचिकाकर्ता को अपूरणीय क्षति और क्षति होगी, इसलिए माननीय न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रतिवादी संख्या 1 और 2 द्वारा पारित विवादित आदेशों को रद्द करने की कृपा करेगा।

संबंधित आदेश एवं नगर पालिका परिषद के गृह एवं जल कर के उद्धरणों की फोटो

अनुवादित

प्रति संलग्न की गयी है, जिसमें प्रश्नगत सम्पत्ति का वार्षिक किराया रू. 9,00/- अंकित किया गया है।

प्रतिवादी ने जवाबी हलफनामा दाखिल कर याचिका के सभी आरोपों का खंडन किया है तथा प्रतिवादी संख्या 1 व 2 द्वारा पारित आदेश के तथ्यों को दोहराया है तथा कहा है कि उक्त संपत्ति में शिव एवं मणिकोटी चार्टर्ड अकाउंटेंट एंड कंपनी का कार्यालय है तथा इसकी बिक्री केवल व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए है। विचाराधीन संपत्ति का मूल्यांकन 1,50,000/- रुपये से कम नहीं हो सकता। संपत्ति सूर्या होटल के पास भवन की पहली मंजिल पर स्थित है। वर्ष 1993 में बाजार मूल्य (किराया) 5,00/- रुपये प्रतिमाह से कम नहीं है तथा उक्त किराए पर प्रश्नगत संपत्ति का मूल्यांकन 1,50,000/- रुपये से कम नहीं हो सकता, अत: 16,675/- रुपये स्टांप शुल्क के रूप में गणना की गई तथा 16,325/- रुपये का जुर्माना लगाया गया है।

धारा 33/47-ए के अन्तर्गत याची को नोटिस जारी किया गया था तथा याची ने दिनांक 21.04.1994 को अपनी आपत्ति प्रस्तुत की थी। उसे सुनवाई का पूर्ण अवसर प्रदान किया गया था। दुर्भावनावश उसने स्टाम्प ड्यूटी से बचने के लिए व्यवसायिक भवन को कमरे के रूप में दर्शाया है। उसने उक्त सम्पत्ति व्यवसायिक प्रयोजन के लिए खरीदी है, अतः सम्पत्ति का मूल्यांकन वर्ष 1993 में 1,50,000/- रूपये से कम नहीं होना चाहिए, नगर पालिका के वर्ष 1991-96 के मूल्यांकन बिल में उल्लेख है कि वहां दुकान है तथा स्टाम्प ड्यूटी से बचने के दुर्भावनावश उक्त सम्पत्ति को कमरे के रूप में दर्शाया गया है।

यह स्वीकार किया गया कि याचिकाकर्ता ने मूल्यांकन बिल प्रस्तुत किया है लेकिन उक्त भूखंड का निरीक्षण करने के बाद घाटे के स्टांप शुल्क का जुर्माना लगाया गया। नगर पालिका परिषद के उद्धरण के अनुसार रु. वर्ष 1990 में 9,00/- वार्षिक किराया निर्धारित किया गया था। यह संपत्ति रेलवे स्टेशन रोड पर स्थित है, जो जिला सहारापुर का गर्म स्थान और वाणिज्यिक क्षेत्र है और इसे वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए बेच दिया गया है। दुकान का किराया 500/- रूपये प्रति माह से कम नहीं हो सकता तथा प्रत्येक परिस्थिति में वर्तमान याचिका निराधार है तथा जुर्माने सहित खारिज किये जाने योग्य है।

याचिकाकर्ता ने जवाबी हलफनामा दाखिल किया है, जिसमें उसने याचिका के तथ्यों को दोहराया है और जवाबी हलफनामे की तथ्यों से इनकार किया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अर्पित अग्रवाल और राज्य-प्रतिवादी के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री जितेंद्र नारायण राय को सुना और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि चूंकि बिक्री विलेख यूपी के लागू होने से पहले निष्पादित किया गया था। स्टाम्प (संपत्ति का मूल्यांकन) नियम,

अनुवादित

1997, अत: उ.प्र. के प्रावधान। स्टाम्प नियम, 1942, वर्तमान कार्यवाही पर लागू होते हैं।

वर्तमान कार्यवाही वर्ष 1994 में उप रजिस्ट्रार की दिनांक 21.09.1994 की रिपोर्ट के आधार पर शुरू की गई थी और निचली अदालत ने कानून के प्रावधानों पर विचार किए बिना अपने आदेश दिनांक 14.06.1994 के तहत घाटे की राशि की गलत और अवैध गणना की है।

नियम 341 का प्रावधान किसी उपकरण के स्टांप शुल्क के निर्धारण और निर्धारण के लिए संपत्ति के बाजार मूल्य की गणना के लिए विधि प्रदान करता है।

नियम 341 इस प्रकार है:-

स्टांप शुल्क के भुगतान के प्रयोजनों के लिए, अधिनियम की धारा 47-ए (1) में निर्दिष्ट परिवहन, विनिमय, उपहार, निपटान, पुरस्कार या ट्रस्ट के साधन का विषय बनने वाली अचल संपत्ति का न्यूनतम बाजार मूल्य, नीचे दिए गए गुणकों के आधार पर प्राप्त राशि से कम नहीं माना जाएगा:-

(i) जहां विषय भूमि है:-

(ए) भूमिदरी के मामले में - भू-राजस्व का 800 गुना।

(बी) सिरदारी भूमि के मामले में - भू-राजस्व का 400 गुना।

(सी) जहां भूमि का राजस्व मूल्यांकन नहीं किया गया है, लेकिन उपकरणों की तारीख से तुरंत पहले तीन वर्षों के दौरान उससे शुद्ध लाभ उत्पन्न हुआ है, ऐसे लाभों के वार्षिक औसत का 25 गुना।

(डी) जहां भूमि का राजस्व मूल्यांकन नहीं किया गया है और साधन की तारीख से तुरंत पहले तीन वर्षों के दौरान इससे कोई लाभ नहीं हुआ है, अनुमानित वार्षिक किराए का 400 गुना।

(ई) जहां भूमि गैर-कृषि योग्य है और नियम 340 के उपनियम (i) के खंड (ग) में निर्दिष्ट किसी स्थानीय निकाय की सीमा के भीतर स्थित है - वह उस स्थान पर प्रति वर्ग मीटर औसत मूल्य के आधार पर निकाले गए मूल्य के बराबर होगी जो कि दस्तावेज की तिथि को प्रचलित था।

(ii) जहां विषय उपवन या उद्यान है:

(ए) यदि राजस्व पर मूल्यांकन किया जाता है तो

अनुवादित

भूमि का मूल्य नियम 341 (i) (क) में निर्धारित तरीके से निकाला जाएगा और उस पर खड़े पेड़ों का मूल्य उसी आकार और आयु के पेड़ों की औसत कीमत के अनुसार निकाला जाएगा जो उपकरणों की तारीख को इलाके में प्रचलित थे।

(बी) यदि उस पर राजस्व का निर्धारण नहीं किया गया है या उसे राजस्व से छूट दी गई है तो उसका मूल्य वार्षिक किराये तथा प्रीमियम के 20 गुना अथवा उपकरण की तिथि से ठीक पहले के तीन वर्षों के दौरान उत्पन्न हुई वार्षिक औसत आय के 20 गुना के आधार पर निर्धारित किया जाएगा तथा उस पर लगे वृक्षों का मूल्य नियम 341 (ii) (क) के अनुसार निर्धारित किया जाएगा।

(iii) जहां विषय भवन है

(ए) जहां भवन गृहकर के लिए निर्धारित है और है मालिक द्वारा कब्जा कर लिया गया है या पूरी तरह या आंशिक रूप से किराए पर दे दिया गया है किरायेदार-वास्तविक या निर्धारित वार्षिक किराये का 25 गुना मूल्य, जो भी मामला हो, अधिक हो।

(बी) जहां भवन पर गृह कर निर्धारण नहीं किया गया है और है मालिक द्वारा कब्जा कर लिया गया है या पूरी तरह या आंशिक रूप से किराए पर दे दिया गया है किरायेदार-वास्तविक या अनुमानित वार्षिक किराये का 25 गुना मूल्य, जो भी मामला हो, अधिक हो।

उल्लेखनीय है कि वर्ष 1997 में उ.प्र. स्टाम्प नियम 1942 निरस्त कर दिया गया था। चूंकि यह वर्ष 1992 का मामला है तथा प्रश्नगत सम्पत्ति 04.06.1992 को क्रय की गई थी, अतः स्टाम्प शुल्क उ.प्र. स्टाम्प नियम 1942 के प्रावधानों के अनुसार देय होगा।

यह निर्विवाद है कि विचाराधीन संपत्ति एक इमारत है जिसका मूल्यांकन गृह जल और अन्य संबंधित नगरपालिका करों के प्रयोजनों के लिए किया गया है, इसलिए, नियम 341 (iii) (बी) के प्रावधान प्रश्न में संपत्ति पर लागू होते हैं।

उपरोक्त प्रावधानों में यह प्रावधान है कि यदि संपत्ति का बाजार मूल्य नगरपालिका बोर्ड द्वारा निर्धारित किया गया है, तो इसकी गणना केवल निर्धारित मूल्य या

अनुवादित

वास्तविक उचित मूल्य के 25 गुना से गुणा करके की जा सकती है। नगरपालिका बोर्ड के रजिस्टर के अंशों से विचाराधीन संपत्ति का मूल्यांकन केवल 9,00/- रुपये है।

अतः नियमानुसार संपत्ति का मूल्यांकन मात्र 22,500/- रूपये बनता है। निचली अदालत ने किराया मूल्य रु. 500/- प्रति माह मानते हुए गणना की कि स्टांप शुल्क के भुगतान में कमी है और जुर्माना भी लगाया, हालांकि राजस्व बोर्ड (सी.सी.आर.ए., यूपी) द्वारा जुर्माना हटा दिया गया है। उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि उप रजिस्ट्रार की संलग्न रिपोर्ट के आधार पर, ए.डी.एम. (एफ एंड आर) ने प्रश्नगत कमरे का किराया मूल्य रु. 5,00/- प्रति माह स्वीकार किया। किराये की दर रु.5,00/- निर्धारित करने के लिए विद्वान उप रजिस्ट्रार ने पास की दुकान या आसपास से कोई डेटा एकत्र नहीं किया। यह भी उल्लेखनीय है कि याचिकाकर्ता विक्रय-पत्र के निष्पादन से पहले से ही विचाराधीन संपत्ति का किरायेदार था। यदि नगर पालिका परिषद द्वारा किराये के मूल्य का गलत उल्लेख किया गया था, तो यह प्रतिवादियों का कर्तव्य था कि वे आपत्ति उठाएं और इसे ठीक करें, लेकिन कानूनी तरीके से उचित और ठोस तरीका अपनाने के बजाय, उप रजिस्ट्रार ने काल्पनिक रूप से यह राय दी कि प्रश्नगत कमरे का किराया रु. 5,00/- प्रति माह से कम नहीं होगा।

इस न्यायालय की राय है कि यदि प्रश्न में संपत्ति का मूल्यांकन नगर पालिका परिषद द्वारा नहीं किया गया होगा, तो उप रजिस्ट्रार और प्रतिवादी के पास धारा 341 (iii) (बी) के प्रावधानों को लागू करने का विकल्प था।

जब प्रश्नगत संपत्ति का मूल्यांकन नगर पालिका द्वारा किया गया, जो कि संबंधित रजिस्टर और यू.पी. के उद्धरण से बहुत स्पष्ट है। स्टाम्प नियम, 1942 अस्तित्व में था, उत्तरदाताओं और उप रजिस्ट्रार के पास नियम 341 (iii) (ए) के अनुसार कार्य करने के अलावा कोई अवसर नहीं था, जिसके अनुसार भवन का गृह कर निर्धारण किया जाता है और उस पर कब्जा कर लिया जाता है। मालिक द्वारा या पूरी तरह या आंशिक रूप से, किरायेदार को किराए पर दिया गया है, वास्तविक या निर्धारित वार्षिक किराये मूल्य का 25 गुना, जो भी मामला हो, स्टांप शुल्क के भुगतान के लिए विचार किया जाएगा।

इस मामले में नगर पालिका ने विचाराधीन संपत्ति का वार्षिक किराया मूल्य 9,00/- रुपये निर्धारित किया है, इसलिए वर्ष 1992 में विद्यमान कानून के अनुसार, याचिकाकर्ता नियम 341 (iii) (ए) के अनुसार स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने के लिए बाध्य था। यदि हम 9,00/- रुपये को 25 बार से गुणा करते हैं, तो संपत्ति का मूल्य 22,500/- रुपये हो जाता है। याचिकाकर्ता ने 35,000/- रुपये की संपत्ति खरीदी है और इस राशि पर उसने तदनुसार स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया है, जो नियम 341 (iii) (ए) के अनुसार गणना की गई बाजार मूल्य से अधिक है।

अनुवादित

चूंकि उत्तर प्रदेश स्टाम्प नियम, 1997 के नियम लागू नहीं हुए थे और उप पंजीयक ने संबंधित संपत्ति के किराये के संबंध में कोई डेटा नहीं दिया था, इसलिए प्रतिवादियों को उत्तर प्रदेश स्टाम्प नियम, 1942 के प्रावधानों के अनुसार कार्य करना पड़ा।

विजय कुमार एवं सुरेन्द्र कुमार दोनों पुत्र श्री दौलत राम बनाम आयुक्त, मेरठ मण्डल एवं अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व) MANU/0682/2008 दिनांक 27.03.2008 को निर्णीत, में यह माना गया है कि कलेक्टर द्वारा नियम के अन्तर्गत निर्धारित न्यूनतम मूल्य से अधिक बाजार मूल्य को सिद्ध करने का भार कलेक्टर पर है। उप-पंजीयक या तहसीलदार की रिपोर्ट ही उस भार को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

महाबीर प्रसाद बनाम कलेक्टर, कटक [1987] 2 एससीआर 289 में यह माना गया है कि भूमि के 'बाजार मूल्य' का अर्थ वह मूल्य है जिस पर खरीदार और विक्रेता दोनों व्यापार करने के लिए तैयार हैं; बाजार या वर्तमान मूल्य।

राम खेलावन उर्फ बच्चन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य कलेक्टर, हैदरपुर एवं अन्य के माध्यम से 2005 (98) आरडी 511 में यह माना गया है कि तहसीलदार की रिपोर्ट अधिनियम की धारा 47-ए के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए एक प्रासंगिक कारक हो सकती है, लेकिन इस पर उक्त धारा के तहत आदेश पारित करने के लिए भरोसा नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में उक्त रिपोर्ट अधिनियम की धारा 47-ए के तहत पारित आदेश का आधार नहीं बन सकती।

प्रकाशवती बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण बोर्ड ऑफ रेवेन्यू, इलाहाबाद 1996 (87) आर.डी. 419 में "माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि किसी सभ्य कॉलोनी के नजदीक स्थित संपत्ति की स्थिति उसे उसका हिस्सा नहीं बनाती है और बाजार मूल्य निर्धारित करने में प्राधिकरण के दृष्टिकोण के लिए यह एक कारक नहीं होना चाहिए।

नीलगिरि के कलेक्टर ऊटाकामुंड बनाम महावीर प्लांटेशन प्राइवेट लिमिटेड MANU/TN/0285/1982 में, मूल्यांकन दिशा-निर्देशों पर विचार करते हुए मद्रास उच्च न्यायालय ने माना है कि धारा 47-ए के तहत कलेक्टर दिशा-निर्देशों को अपनाकर बाजार मूल्य निर्धारित करने की अपनी जिम्मेदारी से पीछे नहीं हट सकता है और न ही वह उचित सामग्री और साक्ष्य के बिना बाजार मूल्य तय कर सकता है। धारा 47-ए द्वारा परिकल्पित जांच का विचार और संबंधित नियमों में निर्धारित विस्तृत प्रक्रिया यह दर्शाती है कि कलेक्टर के निष्कर्ष को साक्ष्य द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए। राजस्व बोर्ड के कहने पर राजस्व अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए मूल्यांकन दिशा-निर्देश संबंधित पक्षों की किसी खुली सुनवाई या संबंधित संपत्तियों के बाजार मूल्य को जानने के उद्देश्य से किसी दस्तावेज के आधार पर तैयार नहीं किए गए थे। वे भूमि के वर्गीकरण, भूमि के समूहीकरण और इसी

अनुवादित

तरह के संदर्भ में व्यापक रूप से एकत्र किए गए डेटा पर आधारित थे। ऐसा होने पर, धारा 47-ए के तहत कार्य करने वाला कलेक्टर बाजार मूल्य के विषय पर दिशा-निर्देशों के मूल्यांकन को अंतिम शब्द नहीं मान सकता।

उपरोक्त चर्चाओं से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रत्यर्थियों ने यू.पी. के प्रावधानों का उल्लंघन किया है। स्टाम्प नियम, 1942, जो विक्रय-पत्र के निष्पादन के समय प्रचलित था।

उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, न्यायालय की यह राय है कि प्रतिवादियों ने उचित रूप से और मौजूदा यू.पी. स्टाम्प नियम, 1942 के अनुसार कार्य नहीं किया है एवं मनमाने और अवैध तरीके से आक्षेपित आदेश पारित किए हैं, इसलिए रिट याचिका को अनुमति दी जाती है और इस रिट याचिका के आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 14.06.1994 अनुलग्नक संख्या 2 और दिनांक 24.08.1998 अनुलग्नक संख्या 5 को रद्द किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 322

मूल क्षेत्राधिकार

दिनांक: इलाहाबाद 20.12.2022

सिविल पक्ष

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार,

रिट-सी संख्या 41347/2012

उल्फत एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

अतिरिक्त आयुक्त (न्यायिक), मुरादाबाद एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री वी.सी. श्रीवास्तव, श्री आई.पी. सिंह, श्री सैफुल इस्लाम सिद्दीकी, सुश्री ताहिरा काज़मी, विनय कुमार पाठक

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री महेश नारायण सिंह, श्री तरुण अग्रवाल, श्री शशांक भारतीय, श्री अरुण कुमार पांडे

ए. सिविल कानून - यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 132 और 198 (4) - समीक्षा शक्ति - आयुक्त के समक्ष पोषणीयता - आयोजित, समीक्षा की शक्ति केवल राजस्व बोर्ड के पास होगी। न्यायिक कार्यवाही के लिए निर्धारित अनुसूची अनुसूची (1) है जो समीक्षा के किसी भी मंच का प्रावधान नहीं करती है। इसलिए समीक्षा का मंच केवल राजस्व बोर्ड है - आगे आयोजित, न्यायालय ने योग्यता के आधार पर अपने आदेश की समीक्षा की, जो निश्चित रूप से उसके लिए उपलब्ध नहीं था। (पैरा 13 और 19)

बी. मूल समीक्षा और प्रक्रियात्मक समीक्षा - भिन्नता - मूल समीक्षा की विशिष्ट शक्ति का प्रयोग किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण या प्राधिकरण द्वारा किया जाना है यदि ऐसी शक्ति विशेष रूप से प्रासंगिक क़ानून के तहत उसे प्रदान की गई है लेकिन प्रक्रियात्मक समीक्षा शक्ति, जिसे एक अर्थ में पुनरीक्षण माना जा सकता है, उसका प्रयोग किया जा सकता है। (पैरा 18)

अनुवादित

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. शिवराजी बनाम उप निदेशक चकबन्दी, इलाहाबाद; 1997 0 सुप्रीम (ऑल) 806
2. श्री राम साहू (मृत) द्वारा वारिसन एलआरएस एवं अन्य बनाम विनोद कुमार रावत एवं अन्य, 2020 लॉसूट (एससी) 685
3. इंडो गल्फ इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2016 (2) एडब्ल्यूसी 16454. शकुंतला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2019 (5) एडब्ल्यूसी 5007
5. बाबूलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य.; 2012 (12) एडीजे 37
6. ग्रिंडलेज़ बैंक लिमिटेड बनाम सेंट्रल इंडस्ट्रियल ट्रिब्यूनल, एआईआर 1981 एससी 606
7. कपड़ा मजदूर एकता यूनियन बनाम बिड़ला कॉटन स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स लिमिटेड, 2005 (13) एससीसी 777

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवकता श्री सैफुल इस्लाम सिद्दीकी और सुश्री ताहिरा काजमी, गांव सभा के विद्वान अधिवकता श्री अरुण कुमार पांडे और श्री शशांक भारतीय, विद्वान अधिवक्ता श्री तरुण अग्रवाल, कैविएटर-प्रतिवादी के विद्वान अधिवकता और श्री अशोक कुमार कुशवाहा, विद्वान स्थायी अधिवकता को सुना।

इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता अपर आयुक्त (न्यायिक), मुरादाबाद मंडल, मुरादाबाद द्वारा पारित दिनांक 04.01.2011 और 18.04.2012 के आदेशों से व्यथित हैं, जिसके तहत उन्होंने पहली बार में अपने पहले के आदेश दिनांक 13.03.2008 की समीक्षा की और इसलिए परिणामस्वरूप याचिकाकर्ताओं की पुनरीक्षण याचिका को बहाल कर दिया और फिर कलेक्टर द्वारा दिनांक 28.04.2007 को पारित आदेश को बरकरार रखते हुए योग्यता के आधार पर रिट याचिका को खारिज कर दिया।

मामले के संक्षेप में बताए गए तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ताओं ने भूमि प्रबंधन समिति दिनांक 12.04.1997 द्वारा पारित संकल्प के आधार पर विचाराधीन भूमि के वैध पट्टाधारक होने का दावा किया, जिसे उपखंड अधिकारी ने दिनांक 13.05.1997 के आदेश द्वारा अनुमोदित किया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि उपखण्ड अधिकारी, साहाबाद द्वारा दिनांक 24.06.2006 को प्रस्तुत कुछ रिपोर्ट के आधार पर उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 198 (4) के तहत एक मामला दर्ज किया गया था। पट्टाधारकों द्वारा नोटिस जारी किए गए थे, जिस पर

अनुवादित

गंभीर आपत्ति की गई थी, हालांकि, भूमि को उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 132 द्वारा कवर किया गया था और इस प्रकार, पट्टा रद्द करने का आदेश 28-04-2007 को पारित किया गया था। उक्त आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ताओं ने अतिरिक्त आयुक्त, मुरादाबाद डिवीजन, मुरादाबाद के समक्ष पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी, जिन्होंने अभिलेखों के अवलोकन के बाद कहा कि कलेक्टर ने आवंटन रिकॉर्ड की सही और सूक्ष्मता से जांच नहीं की क्योंकि याचिकाकर्ताओं को भूमिधारी की श्रेणी में गैर-हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ आवंटन किया गया था और सिर्फ इसलिए कि पेपर संख्या 57-बी को पट्टा धारकों के संबंध में सिरदारी अधिकारों का गलत प्रतिलेखन मिला, इससे भूमिधारी अधिकारों के आवंटन के माध्यम से याचिकाकर्ताओं के अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, हालांकि यह अहस्तांतरणीय है। आयुक्त द्वारा यह माना गया था कि याचिकाकर्ताओं/आवंटियों को इस तरह की टंकण त्रुटि के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि भूमिधारी पट्टे के प्रयोजनों के लिए एक संकल्प था। अदालत ने कहा कि समय के प्रवाह से उन्होंने भूमिधारी अधिकार भी हासिल कर लिए हैं और इसलिए, इस तरह के देरी के चरण में, पट्टा रद्द नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार, पुनरीक्षण में बैठे न्यायालय ने याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण आवेदन को स्वीकार कर लिया और अतिरिक्त कलेक्टर द्वारा पट्टा रद्द करने के पारित आदेश को रद्द कर दिया।

ऐसा प्रतीत होता है कि अपर आयुक्त (न्यायिक), मुरादाबाद के समक्ष एक समीक्षा याचिका दायर की गई थी, जिस पर उन्होंने दिनांक 04.01.2011 के आदेश द्वारा अपने पहले के आदेश दिनांक 23.05.2007 की समीक्षा की और उसी आदेश के तहत गुण-दोष के आधार पर इसके निपटान के प्रयोजनों के लिए पुनरीक्षण याचिका को बहाल कर दिया। पुनरीक्षण याचिका की समीक्षा करने के बाद, अदालत ने उसी समय निचली अदालत के रिकॉर्ड को तलब करने का आदेश दिया, लेकिन मामले में अंतिम सुनवाई के लिए वर्तमान याचिकाकर्ताओं को कोई नया नोटिस जारी नहीं किया गया। इसके बाद न्यायालय ने अंततः मामले की फिर से सुनवाई की और इस बार दिनांक 18.04.2012 के आदेश के तहत पुनरीक्षण को खारिज कर दिया और अतिरिक्त कलेक्टर, रामपुर द्वारा दिनांक 28.04.2007 को पारित आदेश की पुष्टि की।

दिनांक 04.01.2011 और 18.04.2012 के इन दो आदेशों का विरोध करते हुए, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवकता ने प्रस्तुत किया कि पहली बार में अतिरिक्त आयुक्त

अनुवादित

(न्यायिक) के पास समीक्षा की कोई शक्ति नहीं थी। वह प्रस्तुत करता है कि समीक्षा की शक्ति केवल उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 219 के तहत राजस्व बोर्ड के पास है, जिसे उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की अनुसूची III के तहत लागू किया गया था। वह प्रस्तुत करता है कि समीक्षा की शक्ति एक वैधानिक शक्ति है और जब तक क़ानून अधिनियम के तहत किसी विशेष न्यायिक प्राधिकरण को शक्ति प्रदान नहीं करता है, तब तक कोई भी अदालत या अधिकरण या अर्ध न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने वाला प्राधिकरण समीक्षा की शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है।

इस संबंध में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवकता ने **शिवराज बनाम चकबंदी उप निदेशक, इलाहाबाद, 1997 0 सुप्रीम (सभी) 806** और श्री **राम साहू (मृत) के मामले में एलआरएस और अन्य बनाम विनोद कुमार रावत और अन्य, 2020 लॉसूट (एससी) 685** के मामले में इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के अधिकार पर भरोसा किया है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवकता ने **इंडो गल्फ इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2016 (2) एडब्ल्यूसी 1645** के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के निर्णय पर भी भरोसा किया है और दूसरी बात, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवकता ने तर्क दिया है कि प्राधिकरण द्वारा दिनांक 04.01.2011 और 18.04.2012 को पारित आदेश दोनों एकपक्षीय आदेश हैं क्योंकि आदेश की समीक्षा करने से पहले या नया आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ताओं को कोई नोटिस या सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया गया है।

यह तर्क दिया जाता है कि एक बार याचिकाकर्ताओं के पक्ष में भूमिधारी अधिकार बन जाने के बाद, याचिकाकर्ताओं को केवल पट्टा धारक नहीं माना जा सकता था ताकि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 198 (4) के तहत निहित प्रावधानों को आकर्षित किया जा सके। फिर भी याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवकता द्वारा दिया गया एक और तर्क यह है कि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ धोखाधड़ी का कोई पता नहीं चल रहा है, इस तरह की जालसाजी या धोखाधड़ी की वकालत किए जाने के अभाव में, धारा 198 (4) के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए प्रतिवादी राजस्व अधिकारियों द्वारा शक्ति का स्वत: संज्ञान प्रयोग बिल्कुल समय से परे था और इसलिए बनाए रखने योग्य नहीं था। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवकता ने **2019 (5) एडब्ल्यूसी 5007, सकुंतला और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। 2012 (12)**

अनुवादित

एडीजे 37, बाबूलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य।

आगे यह तर्क दिया गया है कि अतिरिक्त कलेक्टर ने पट्टों को रद्द करते समय, केवल तहसील अधिकारियों की रिपोर्ट पर भरोसा किया है और इस तथ्य की अधिक खोज नहीं की है कि आवंटन के समय भूमि कैसी थी, जो उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 132 के तहत आती है।

इसके विपरीत राज्य के विद्वान स्थायी अधिवकता श्री कुशवाहा के साथ-साथ गाँव सभा के विद्वान अधिवकता श्री अरुण कुमार पांडे द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 132 के तहत कवर की गई भूमि भूमिधारी पट्टे के माध्यम से आवंटित नहीं की जा सकती थी और इसलिए, इस तरह की शक्ति का प्रयोग धारा 198 (4) के तहत किया जा सकता था।

राज्य के साथ-साथ गांव सभा की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं ने तर्क दिया कि अतिरिक्त कलेक्टर के साथ-साथ आयुक्त द्वारा पारित आदेश बाद में ठोस तर्क पर पारित अंतिम आदेश हैं और यदि भूमि स्वयं पट्टे की विषय वस्तु नहीं हो सकती है, तो पट्टा शून्य हो गया है और केवल इसलिए कि आयुक्त के पास समीक्षा की शक्ति नहीं है, कानून अन्यथा भी भूमि पर याचिकाकर्ताओं के अधिकारों को मान्यता नहीं देगा। इसलिए, वह प्रस्तुत करता है कि अदालत द्वारा 04.01.2011 के समीक्षा के आदेश और 18.04.2012 के परिणामी आदेश को रद्द करने की स्थिति में अतिरिक्त आयुक्त के स्तर पर मामले को फिर से उठाने के लिए प्रतिवादियों के लिए खुला छोड़ दिया जा सकता है।

संबंधित पक्षों के विद्वान वकीलों और बार भर में उठाए गए उनके तर्कों और रिट याचिका में उठाए गए दलीलों के साथ-साथ आक्षेपित आदेशों को सुनने के बाद, मुझे लगता है कि वर्तमान याचिका में शामिल मूल कानूनी प्रश्न यह होगा कि एक बार अपर आयुक्त (न्यायिक) एक बार योग्यता के आधार पर आदेश पारित करने के लिए आ गया है जिसमें अतिरिक्त कलेक्टर द्वारा पारित आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ताओं की पुनरीक्षण याचिका को रद्द करने की अनुमति दी गई है पट्टों, आदेश की समीक्षा कर सकते थे। अपर आयुक्त द्वारा पारित प्रारंभिक आदेश 13.03.2008 का है और समीक्षा का आदेश 04.01.2011 को पारित किया गया था। उत्तरदाताओं पर तामील के संबंध में दर्ज एकमात्र टिप्पणी यह है कि समन की तामील के बावजूद विरोधी पक्ष हैं। पट्टाधारक उपस्थित नहीं हुए हैं और फिर अदालत ने इस आधार पर अपने आदेश की समीक्षा करने के

अनुवादित

लिए कार्यवाही की है कि भूमि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 132 की श्रेणी में आ रही थी। एकमात्र आधार जिस पर समीक्षा की अनुमति दी गई है, वह राज्य द्वारा दिया गया विवाद था कि भूमि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 132 की श्रेणी में आती है, लेकिन प्रथम दृष्टया संतुष्टि भी दर्ज नहीं की गई थी कि भूमि उस श्रेणी में आती है। अपर आयुक्त (न्यायिक) ने अपने दिनांक 13.03.2008 के आदेश की समीक्षा करते हुए स्पष्ट रूप से दर्ज किया है कि भूमि धारा 117 के तहत श्रेणी में आती है और केवल इसलिए कि सिरदारी पेपर संख्या 57-बी में लिप्यंतरित हो गई है, यह असमी पट्टे को कोई भूमिधारी पट्टा रंग नहीं देगा। यदि आदेश की समीक्षा की जानी थी तो पहली बार में इस निष्कर्ष को उलटने की आवश्यकता थी, लेकिन मुझे दिनांक 04.01.2011 के समीक्षा के आदेश में इसकी काफी कमी लगती है। हालांकि, गुण-दोष के आधार पर यह आदेश जीवित नहीं रह सकता था, लेकिन मुझे याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवकता द्वारा उठाए गए तर्क अधिक आकर्षक लगते हैं कि समीक्षा की शक्ति अतिरिक्त आयुक्त (न्यायिक) के पास नहीं थी। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम अपनी दूसरी अनुसूची के तहत उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम के लागू प्रावधान करता है जो उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 220 के तहत निहित समीक्षा के लिए प्रदान करता है। प्रावधान निम्नानुसार चलता है:

"220. बोर्ड की अपने आदेश और डिक्री का पुनर्विलोकन करने और उसमें परिवर्तन करने की शक्ति

(1) बोर्ड [निपटान से संबंधित कारबार] के दौरान स्वयं द्वारा या अपने किसी सदस्य द्वारा किए गए किसी आदेश की समीक्षा कर सकेगा और उसे रद्द कर सकेगा, बदल सकेगा या उसकी पुष्टि कर सकेगा। उसके द्वारा या उसके किसी सदस्य द्वारा न्यायिक रूप से पारित किसी डिक्री या आदेश की समीक्षा टायर डिक्री या आदेश के पारित होने से नब्बे दिन की अवधि के भीतर किए गए मामले के लिए किसी पक्षकार के आवेदन को छोड़कर या ऐसी अवधि के बाद की गई यदि टायर आवेदक टायर बोर्ड को संतुष्ट करता है कि उसके पास ऐसी अवधि के भीतर आवेदन न करने का पर्याप्त कारण था।

सदस्यों को एक दूसरे के आदेशों को बदलने का अधिकार नहीं है। - टायर बोर्ड की सभी या किसी भी शक्ति के साथ निहित एक एकल

अनुवादित

सदस्य के पास टायर बोर्ड द्वारा या स्वयं के अलावा किसी अन्य सदस्य द्वारा पारित डिक्री या आदेश को बदलने या उलटने की शक्ति नहीं होगी।

इस प्रकार, उपर्युक्त उद्धृत प्रावधानों के अनुसार समीक्षा की शक्ति केवल राजस्व बोर्ड के पास होगी। न्यायिक कार्यवाहियों के लिए विहित अनुसूची अनुसूची (1) है जिसमें पुनवलोकन के किसी मंच का उपबंध नहीं है। इसलिए समीक्षा का मंच केवल राजस्व बोर्ड है। उपर्युक्त कानूनी स्थिति होने के कारण, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अपर आयुक्त (न्यायिक) राजस्व बोर्ड में निहित नहीं है। **शिवराजी** (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने समीक्षा की शक्ति पर विचार करते हुए, यदि कोई समेकन प्राधिकरणों के साथ निहित है, जो यूपी कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट, 1953 के तहत विवाद और शीर्षक मामलों का फैसला करते समय न्यायिक कार्य करते हैं, तो अनुच्छेदग्राफ संख्या 33 और 34 के माध्यम से न्यायालय ने इस प्रकार आयोजित किया:

"33. इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णय, जैसा कि हम उन्हें पढ़ते हैं, कानून के प्रस्ताव का समर्थन नहीं करते हैं कि न्यायिक या अर्ध न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने वाला कोई भी न्यायाधिकरण, जो स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा क़ानून के तहत समीक्षा की शक्ति के साथ निहित नहीं है, के पास किसी भी परिस्थिति में अपने पिछले आदेश की समीक्षा की अंतर्निहित शक्ति है। हमारे विचार में निर्णय केवल इस प्रस्ताव को निर्धारित करते हैं कि न्यायिक या अर्ध न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने वाले न्यायाधिकरण के पास अपने आदेश में एक लिपिकीय गलती या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने की अंतर्निहित शक्ति है और उसके पास एक आदेश की समीक्षा करने की शक्ति है जो अदालत में धोखाधड़ी का अभ्यास करके प्राप्त किया गया है, बशर्ते कि इस तरह के आदेश से किसी पक्ष पर अन्याय किया गया हो। इसलिए, इन निर्णयों को कानून के किसी भी प्रस्ताव को कानून के अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत के विपरीत निर्धारित करने के रूप में नहीं माना जाना चाहिए कि न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण द्वारा दिया गया और हस्ताक्षरित कोई भी आदेश अधिनियम के तहत प्रदान की गई याचिका या संशोधन के अधीन अंतिम रूप से प्राप्त होता है और यदि आदेश पारित करने वाला प्राधिकारी विशेष रूप से कानून के तहत समीक्षा की शक्ति के साथ निहित नहीं है, यह कार्यवाही को फिर से नहीं खोल सकता है और अपने पिछले आदेश की समीक्षा/संशोधन नहीं कर सकता है।

अनुवादित

34. उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम के प्रावधानों पर आते हुए, यह हमारा सुविचारित विचार है कि चकबंदी प्राधिकारी, विशेष रूप से चकबंदी के उप निदेशक एक पुनरीक्षण याचिका का निर्णय करते समय न्यायिक या अर्ध न्यायिक शक्ति का प्रयोग करते हैं और इसलिए, उनका आदेश अधिनियम के तहत वरिष्ठ प्राधिकारी में निहित याचिका या पुनरीक्षण की किसी भी शक्ति के अधीन अंतिम है। चकबंदी प्राधिकारी, विशेष रूप से चकबंदी के उप निदेशक, अपने आदेश की समीक्षा की किसी भी शक्ति के साथ निहित नहीं हैं और इसलिए, किसी भी कार्यवाही को फिर से नहीं खोल सकते हैं और अपने पहले के आदेश की समीक्षा या संशोधन नहीं कर सकते हैं। हालांकि, एक न्यायिक या अर्ध न्यायिक प्राधिकरण के रूप में उनके पास न्यायाधिकरण के रूप में अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए अपने आदेश में किसी भी लिपिकीय गलती/अंकगणितीय त्रुटि प्रकट त्रुटि को ठीक करने की शक्ति है।

न्यायालय ने राजस्व बोर्ड की समीक्षा की शक्ति पर विचार करते हुए और निहितार्थ द्वारा चकबंदी प्राधिकरणों के लिए किसी भी शक्ति को आकर्षित करने के बिंदु पर, अनुच्छेदग्राफ संख्या 36, 37 और 39 के माध्यम से न्यायालय ने इस प्रकार आयोजित किया है:

"36. जिस प्रश्न पर विचार किया जाना बाकी है, वह उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 220 के आवेदन द्वारा चकबंदी के उप निदेशक में समीक्षा की शक्ति निहित करने से संबंधित है। प्रतिवादी प्रतिवादियों के विद्वान अधिवकता श्री राधेश्याम ने जोरदार आग्रह किया कि चकबंदी अधिनियम की धारा 41 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए पृष्ठ 691 और उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 220 में यह माना जाना चाहिए कि समीक्षा की शक्ति चकबंदी के उप निदेशक में निहित है जो चकबंदी अधिनियम के तहत अंतिम पुनरीक्षण प्राधिकारी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि चकबंदी अधिनियम की धारा 41 अध्याय IX और (X) पूर्व अधिनियम के तहत याचिका और आवेदन सहित सभी कार्यवाहियों पर लागू है, धारा 220, जो अध्याय X का एक भाग है, धारा में विनिदष्ट कतिपय शर्तों/प्रतिबंधों के अध्यधीन राजस्व बोर्ड में समीक्षा की शक्ति निहित करती है। प्रश्न यह है कि चकबंदी अधिनियम में समीक्षा के किसी विशिष्ट उपबंध के अभाव में क्या यह कहा जा सकता है कि राजस्व बोर्ड में निहित समीक्षा की शक्ति का प्रयोग चकबंदी प्राधिकारियों, विशेषकर चकबंदी उप निदेशक द्वारा

अनुवादित

किया जा सकता है? हमारे सुविचारित विचार में, प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में दिया जाना चाहिए। धारा 41 या चकबंदी अधिनियम की किसी अन्य धारा में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो चकबंदी की कार्यवाही में लागू करने के उद्देश्य से भू-राजस्व अधिनियम के किसी प्रावधान में संशोधन का अधिकार देता हो। इसके अलावा, धारा 41, जैसा कि हम इसे पढ़ते हैं, केवल यह प्रदान करता है कि भू-राजस्व अधिनियम के अध्याय IX और X के तहत निर्धारित प्रक्रियाएं चकबंदी अधिनियम के तहत याचिका और आवेदनों सहित सभी कार्यवाहियों पर लागू होंगी। भू-राजस्व अधिनियम के उपर्युक्त अध्यायों में मूल प्रावधान, जिनका चकबंदी अधिनियम में कोई समरूप प्रावधान नहीं है, उक्त अधिनियम के तहत कार्यवाही के लिए कोई आवेदन नहीं हो सकता है। यदि चकबंदी अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है, तो ऐसी कार्यवाही के लिए भू-राजस्व अधिनियम के अध्याय IX और X के प्रावधानों को लागू करने का सवाल ही नहीं उठता। चकबंदी अधिनियम के तहत अधिकारियों में समीक्षा की शक्ति निहित करने वाले किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में, इस तरह की कार्यवाही बिल्कुल भी शुरू नहीं की जा सकती है। वैकल्पिक रूप से, यह मानते हुए कि धारा 220 चकबंदी कार्यवाही पर लागू होती है और दो अधिनियमों के तहत कार्यवाही के बीच एक सादृश्य तैयार किया जाता है, यह चकबंदी निदेशक है, जो चकबंदी अधिनियम के तहत सर्वोच्च प्राधिकारी है, जिसे अनुमान लगाया जा सकता है कि उसके पास भू-राजस्व अधिनियम की धारा 220 में प्रदान की गई समीक्षा की शक्ति है, न कि चकबंदी के उप निदेशक, जो चकबंदी अधिनियम के तहत पुनरीक्षण प्राधिकरणों में से एक है। इस प्रश्न पर इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने <u>बादाम सिंह और एक अन्य बनाम गंगा सरन और राम सरन</u>, 1960 (58) एएलजे 836 के मामले में विचार किया था, जिसमें इस न्यायालय ने चकबंदी अधिनियम की धारा 41 का निर्माण करते हुए निम्नलिखित अवलोकन किया था:

"भूमि राजस्व अधिनियम के अध्याय X में धारा 220 शामिल है जो राजस्व बोर्ड को कुछ परिस्थितियों में अपने स्वयं के आदेशों की समीक्षा करने की शक्ति प्रदान करती है, और यह तर्क दिया जाता है कि इस धारा को यूपी कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट के तहत कार्यवाही करने के लिए लागू करने में समीक्षा की शक्ति को चकबंदी के उप निदेशक को प्रदान किया जाना चाहिए जो राजस्व बोर्ड से मेल खाता है, जहां तक वह संशोधन का अंतिम न्यायालय है। हमारी राय में यह तर्क अच्छी तरह से स्थापित नहीं है, क्योंकि धारा 41 उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम के तहत कार्यवाही

अनुवादित

के लिए उनके आवेदन में भू-राजस्व अधिनियम के अध्याय IX और X में किसी भी धारा के संशोधन, परिवर्तन या अनुकूलन के लिए कोई प्रावधान नहीं करती है। धारा 220 विशेष रूप से राजस्व बोर्ड पर अपने स्वयं के निर्णय की समीक्षा करने की शक्ति प्रदान करती है और किसी अन्य प्राधिकरण पर नहीं, और इस न्यायालय के लिए यह धारण करना संभव नहीं है कि यूपी कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट की धारा 41 के साथ पठित उस धारा के तहत अपने स्वयं के निर्णय की समीक्षा करने की शक्ति समेकन के सभी उप निदेशकों को प्रदान की गई है।

37. इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने राम प्यारे बनाम चकबंदी के उप निदेशक के मामले में इसी प्रश्न पर विचार किया। 1973 आरडी 79 न्यायालय ने देखा:?

"हमारी राय में अधिनियम की धारा 41 केवल यूपी भू-राजस्व अधिनियम के अध्याय IX और X के प्रावधानों को यूपी चकबंदी अधिनियम के तहत शुरू की गई कार्यवाही पर लागू करती है, जिसमें याचिका और संशोधन की कार्यवाही शामिल है। एक बार इस अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू हो जाने के बाद, अध्याय IX और X में निर्धारित प्रक्रिया लागू होगी। धारा 41, हालांकि, अधिनियम द्वारा अपेक्षित या अधिकृत नहीं की गई कार्यवाही शुरू करने को अधिकृत नहीं करती है। समीक्षा की शक्ति विशेष रूप से प्रदान की जानी चाहिए और जब तक अधिनियम में ऐसी कार्यवाही शुरू करने की अनुमति देने वाला कोई प्रावधान नहीं है, तब तक उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम के अध्याय IX और X में निर्धारित प्रक्रिया की प्रयोज्यता का प्रश्न नहीं उठता। कदम सिंह बनाम गंगा सरन, 1960 आरडी 347 के मामले में इस न्यायालय ने यह विचार किया था कि कोई समीक्षा झूठ नहीं है। हमारा भी यही विचार है।

39. पूर्वगामी अनुच्छेदग्राफ में चर्चा पर यह हमारा सुविचारित विचार है कि यह चकबंदी अधिकारियों के लिए निहित शक्तियों के प्रयोग में यूपी कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट के तहत कार्यवाही में पारित अपने अंतिम आदेशों की समीक्षा/वापस लेने के लिए खुला नहीं है। इस प्रकार, पहले तैयार किए गए प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है। इस फैसले के आलोक में रिट याचिका को निपटान के लिए उपयुक्त पीठ के समक्ष रखा जाएगा।

इंडो गल्फ (सुप्रा) में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ समीक्षा की शक्ति से निपट रही थी, यदि कोई श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण में निहित हो। अनुच्छेदग्राफ 19 के तहत न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

अनुवादित

"19. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित प्राधिकारी के पास अपने आदेश की समीक्षा करने की कोई शक्ति नहीं है जिसका अर्थ गुण-दोष के आधार पर वास्तविक समीक्षा करना है। इस प्रकार, समीक्षा करने की किसी वैधानिक शक्ति के अभाव में, निर्धारित प्राधिकारी के पास कार्यवाही में पहले पारित अपने किसी भी आदेश की समीक्षा करने के लिए कानून का कोई अधिकार नहीं है। इस मामले को देखते हुए निर्धारित प्राधिकारी के पास गुण-दोष के आधार पर अपने पहले के आदेशों को छूने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है

उपरोक्त निर्णय में, न्यायालय ने समीक्षा और याद करने के विषय को अलग करने के लिए आगे बढ़ा और इस संबंध में **ग्रिंडलेज बैंक लिमिटेड बनाम केंद्रीय औद्योगिक न्यायाधिकरण, एआईआर 1981 एससी 606 और कापरा मजदूर एकता यूनियन बनाम बिड़ला कॉटन स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स लिमिटेड, 2005 (13) एससीसी 777** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के दो निर्णयों को अपने अनुच्छेदग्राफ संख्या 23 और 24 में संदर्भित किया जो निम्नानुसार हैं:

"23. ग्रिंडलेज बैंक लिमिटेड में यह माना गया था कि एकपक्षीय आदेश को रद्द करने के लिए आवेदन इस तथ्य के बावजूद सुनवाई योग्य था कि अधिनियम के तहत इस आशय का कोई प्रावधान नहीं था। उच्चतम न्यायालय ने आगे कहा कि औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अंतर्गत अधिकरण अपने एकपक्षीय अधिनिर्णय को रद्द करने में सक्षम है यदि वह इस बात से संतुष्ट है कि पीड़ित पक्ष को पर्याप्त कारणों से उपस्थित होने से रोका गया था। एकपक्षीय पंचाट को रद्द करना प्रक्रियात्मक समीक्षा की प्रकृति का होगा न कि गुण-दोष के आधार पर समीक्षा। अधिनिर्णय की घोषणा के बाद कार्यपालक अधिकारी बनने के बावजूद अधिकरण ऐसे आवेदन पर विचार कर सकता है और उनके पास किसी अधिनिर्णय को वापस लेने पर विचार करने के लिए सहायक या आनुषंगिक शक्तियां हैं, यदि एकपक्षीय हो।

24. कापरा मजदूर एकता यूनियन में सुप्रीम कोर्ट के तीन न्यायाधीशों ने समीक्षा और रिकॉल आवेदनों के बीच अंतर पर विचार किया और माना कि हालांकि अधिनियम स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा समीक्षा की कोई शक्ति प्रदान नहीं करता है, लेकिन प्रक्रियात्मक शक्ति एक अलग श्रेणी से संबंधित है और यदि पार्टी यह स्थापित करने में सक्षम है कि मंच द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया दूषित है और इसलिए, आदेश को वापस बुलाने की आवश्यकता है कि उसके पास ऐसा करने के लिए पर्याप्त शक्ति है।

अनुवादित

इस प्रकार, समन्वय पीठ ने अपने अंतिम दृष्टिकोण में कहा कि किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण या प्राधिकरण द्वारा मूल समीक्षा की शक्ति का प्रयोग किया जाना है यदि इस तरह की शक्ति विशेष रूप से प्रासंगिक क़ानून के तहत इसे प्रदान की जाती है, लेकिन प्रक्रियात्मक समीक्षा की शक्ति जिसे एक अर्थ में वापस बुलाने के लिए आयोजित किया जा सकता है, व्यायाम किया जा सकता है। अनुच्छेद 25 के तहत न्यायालय ने इस प्रकार आयोजित किया है:

"25. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि मूल समीक्षा की शक्ति किसी भी अदालत, न्यायाधिकरण या प्राधिकरण द्वारा प्रयोग करने योग्य नहीं है, जब तक कि इसे विशेष रूप से प्रासंगिक क़ानून के तहत प्रदान नहीं किया जाता है, जबकि प्रक्रियात्मक समीक्षा की शक्ति प्रत्येक न्यायालय, न्यायाधिकरण या प्राधिकरण में निहित है और इसका प्रयोग किया जा सकता है, भले ही अधिनियम के तहत उन्हें ऐसी कोई शक्ति न दी गई हो, लेकिन उसी के प्रयोग के लिए आवेदन करने वाले पक्ष को यह स्थापित करना होगा कि उसे नोटिस नहीं दिया गया था या उसे कार्यवाही में भाग लेने से पर्याप्त अच्छे कारण के लिए रोका गया था या फोरम द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया दूषित हो गई थी क्योंकि यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था।

वर्तमान मामले में, न्यायालय ने दिनांक 04.01.2011 के समीक्षा के आदेश को पारित करते समय किसी भी प्रक्रियात्मक दोष का उल्लेख नहीं किया है जो 13.03.2018 के पहले के आदेश को पारित करने में हुआ था ताकि राज्य के उत्तरदाताओं को समीक्षा आवेदन बनाए रखने में सक्षम बनाया जा सके। इसके बजाय मुझे लगता है कि न्यायालय ने योग्यता के आधार पर अपने आदेश की समीक्षा की जो निश्चित रूप से उसके लिए उपलब्ध नहीं था।

यहां मैं यह उल्लेख करना चाहूंगा कि समीक्षा का आदेश पारित होने के बाद और अपर आयुक्त (न्यायिक) द्वारा अपने आदेश दिनांक 04.01.2011 के तहत निचली अदालत के रिकॉर्ड तलब किए जाने के बाद, उन्हें इस मामले को लड़ने के लिए उत्तरदाताओं को नोटिस जारी करना चाहिए था, लेकिन दिनांक 04.01.2011 का आदेश इस पहलू पर बिल्कुल चुप है और इसलिए, परिणामी क्रम भी इसी कारण से खराब हो जाता है।

धारा 198 (4) के तहत कार्रवाई के संबंध में आगे बढ़ाए गए दूसरे पहलू पर आते हुए, *शकुंतला* (सुप्रा) के मामले में, इस न्यायालय ने परिसीमा के उद्देश्य से धारा 198 (6) से बड़े पैमाने पर निपटा है और अनुच्छेदग्राफ संख्या 21 और 22 के तहत सुप्रीम कोर्ट के पहले

अनुवादित

के फैसले पर भरोसा किया है और इस प्रकार आयोजित किया है:

"21. अंतिम प्रश्न पर विचार किया जाना है कि क्या धोखाधड़ी के आरोप मौजूद होने पर कोई सीमा लागू नहीं होती है। मैंने पहले ही पूर्वगामी अनुच्छेद में कहा है कि धोखाधड़ी के आरोप मौजूद नहीं थे। हालांकि, भले ही धोखाधड़ी के आरोप मौजूद हों, इस सवाल पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या कोई सीमा अवधि लागू है या नहीं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संयुक्त कलेक्टर रंगा रेड्डी जिला और अन्य बनाम डी नरसिंग राव और अन्य, 2015 3 एससीसी 695 के मामले में उक्त प्रश्न पर विचार किया और निम्नानुसार आयोजित किया:

"25. कानूनी स्थिति इस न्यायालय के निर्णयों की एक लंबी लाइन द्वारा काफी अच्छी तरह से तय की गई है, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि भले ही किसी भी शक्ति, पुनरीक्षण या अन्यथा के प्रयोग के लिए निर्धारित सीमा की कोई अवधि न हो, ऐसी शक्ति का प्रयोग उचित अवधि के भीतर किया जाना चाहिए। यह उन मामलों में भी है जहां धोखाधड़ी के आरोपों ने किसी भी सुधारात्मक शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता की है। हम संक्षेप में कुछ निर्णयों का उल्लेख केवल इस बात को घर लाने के लिए कर सकते हैं कि जहां तक शक्ति के प्रयोग का संबंध है, परिसीमा की निर्धारित अवधि की अनुपस्थिति से बहुत कम या कोई फर्क नहीं पड़ता है, जिसकी अनुमति केवल तभी दी जानी चाहिए जब शक्ति का उपयोग उचित अवधि के भीतर किया जाता है।

31. संक्षेप में, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के विलंबित अभ्यास पर सिकोड़ी जाती है क्योंकि यदि कार्रवाई या लेनदेन चुनौती के लिए हमेशा के लिए खुले रहना था, तो इसका मतलब मानव मामलों में परिहार्य और अंतहीन अनिश्चितता होगी, जो कानून की नीति नहीं है। क्योंकि, यहां तक कि जब ऐसी शक्तियों के प्रयोग के लिए निर्धारित सीमा की कोई अवधि नहीं होती है, तो हस्तक्षेप करने वाले विलंब के कारण तीसरे पक्ष के अधिकारों का सृजन हो सकता है, जिसे विवेकाधीन शक्ति के देर से प्रयोग से कुचला नहीं जा सकता है, खासकर जब देरी के लिए कोई ठोस स्पष्टीकरण दृष्टि में नहीं है। कहा जाता है कि कानून के शासन को जीवन के नियम के साथ निकटता से चलना चाहिए। यहां तक कि उन मामलों में जहां संशोधित किए जाने वाले आदेश कपटपूर्ण हैं, शक्ति का प्रयोग धोखाधड़ी की खोज के उचित अवधि के भीतर होना चाहिए। केवल किसी कार्य या लेन-देन को कपटपूर्ण बताने से उसके सुधार का समय अनंत तक नहीं बढ़ेगा; अन्यथा पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग स्वयं उस क़ानून पर धोखाधड़ी के समान होगा जो

अनुवादित

इस तरह की शक्ति को एक प्राधिकरण में निहित करता है।

32. इस मामले में, जबकि सही करने की मांग की गई प्रविष्टि को धोखाधड़ी के रूप में वर्णित किया गया है, उच्च न्यायालय के समक्ष आक्षेपित नोटिस में कुछ भी नहीं है कि राज्य द्वारा कथित धोखाधड़ी का पता कब लगाया गया था। उस संबंध में एक विशिष्ट बयान आवश्यक था क्योंकि यह एक क्षेत्राधिकार संबंधी तथ्य था, जिसे उत्तरदाताओं को जारी किए गए नोटिस में स्पष्ट रूप से कहा जाना चाहिए। याचिकाकर्ता-राज्य का यह प्रदर्शित करने का प्रयास कि नोटिस कथित धोखाधड़ी की खोज के उचित अवधि के भीतर जारी किया गया था, इसलिए, निरर्थक है। किसी भी दर पर, जब सरकार ने वर्ष 1991 में सरकारी कर्मचारियों को आवासीय स्थलों के लिए विचाराधीन भूमि को देने की अनुमति दी थी, तो यह माना जाना चाहिए कि आधिकारिक व्यवसाय के सामान्य पाठ्यक्रम में किए गए भूमि के पार्सल से संबंधित रिकॉर्ड और राजस्व प्रविष्टियों के बारे में पता होना चाहिए। जहां तक नोटिस 31 दिसम्बर, 2004 को देर से जारी किया गया था, इसमें लगभग 13 वर्षों का विलंब हुआ। इस विलंब के लिए भी कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, यह मानते हुए कि इसे केवल वर्ष 1991 से गिना जाना चाहिए। किसी भी कोण से आधी सदी पहले की गई प्रविष्टियों को उलटने की मांग करने वाला नोटिस, स्पष्ट रूप से उचित समय से परे था और इसे सही तरीके से रद्द कर दिया गया था।

22. इस प्रकार सुप्रीम कोर्ट ने भी माना है कि धोखाधड़ी के मामलों में भी उचित समय के भीतर कार्रवाई की जानी चाहिए। वर्तमान मामले में, कार्रवाई 12 साल की अवधि के बाद की गई है जिसे उचित समय नहीं कहा जा सकता है और इस प्रकार मैं मानता हूं कि धोखाधड़ी के मामलों में भी कार्रवाई सीमा की अवधि के भीतर की जानी चाहिए। इस प्रकार, मैं निम्नानुसार तैयार किए गए प्रश्नों के उत्तर में निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत करता हूं:

"(ए) पट्टा प्रदान करते समय भौतिक अनियमितता के आधार पर पट्टे को रद्द करने का प्रस्ताव करने वाला कारण बताओ नोटिस अधिनियम की धारा 198 (6) के तहत निर्धारित सीमा की अवधि से परे जारी नहीं किया जा सकता है।

(ख) पुनरीक्षण न्यायालय अधिनियम की धारा 333 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए पुनरीक्षण चरण में रिकार्ड पर कोई साक्ष्य लिए बिना तथ्य के निष्कर्षों को अभिलिखित नहीं कर सकता है।

(सी) पट्टे के अनुदान के लिए निर्धारित वैधानिक प्रावधानों को देखे बिना पट्टों

अनुवादित

को धोखाधड़ी नहीं कहा जा सकता है और

(डी) भले ही धोखाधड़ी का आरोप लगाया गया हो, रद्द करने का सहारा उचित समय के भीतर लिया जाना चाहिए।

फिर से **बाबूलाल** (*सुप्रा*) के हालिया फैसले में छिद्दा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2019 0 सर्वोच्च (सभी) 1085, न्यायालय ने उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 198 (4) के तहत कलेक्टर की शक्ति के संबंध में मामले के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया और उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 198 (6) के तहत निर्धारित सीमाओं पर विचार किया, और अनुच्छेदग्राफ 15 के माध्यम से इस प्रकार आयोजित किया है:

"15. उक्त तर्क एकमात्र कारण के लिए स्वीकृति के योग्य नहीं है कि विचाराधीन भूमि को उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम के तहत सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए अलग रखा जाना है। वर्तमान मामले में यह स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर विशिष्ट तर्क और दस्तावेज है कि विचाराधीन भूमि से संबंधित जोत की कार्यवाही को कभी भी अंतिम रूप नहीं दिया गया था और बीच में ही छोड़ दिया गया था और इस प्रकार, यह नहीं माना जा सकता है कि अधिनियम की धारा 132 के तहत प्रदान की गई कोई भी रोक विचाराधीन भूमि से संबंधित थी। मैं इस तर्क से भी प्रभावित नहीं हूं कि अधिनियम की धारा 132 के अंतर्गत आने वाले मामलों में कोई सीमा लागू नहीं होगी। इस संबंध में, यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि जहां कोई सीमा निर्धारित नहीं है, उचित समय के भीतर कार्रवाई की जानी चाहिए, वर्तमान मामले में कार्यवाही लगभग 16 वर्षों के बाद शुरू की गई थी जिसे कभी भी उचित अवधि नहीं कहा जा सकता है। संयुक्त कलेक्टर रंगा रेड्डी जिला और अन्य बनाम डी नरसिंग राव और अन्य, 2015 3 एससीसी 695 के मामले में सुप्रीम कोर्ट की प्रासंगिक टिप्पणी और निम्नानुसार आयोजित किया गया:

"25. कानूनी स्थिति इस न्यायालय के निर्णयों की एक लंबी लाइन द्वारा काफी अच्छी तरह से तय की गई है, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि भले ही किसी भी शक्ति, पुनरीक्षण या अन्यथा के प्रयोग के लिए निर्धारित सीमा की कोई अवधि न हो, ऐसी शक्ति का प्रयोग उचित अवधि के भीतर किया जाना चाहिए। यह उन मामलों में भी है जहां धोखाधड़ी के आरोपों ने किसी भी सुधारात्मक शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता की है। हम संक्षेप में कुछ निर्णयों का उल्लेख केवल इस बात को

अनुवादित

घर लाने के लिए कर सकते हैं कि जहां तक शक्ति के प्रयोग का संबंध है, परिसीमा की निर्धारित अवधि की अनुपस्थिति से बहुत कम या कोई फर्क नहीं पड़ता है, जिसकी अनुमति केवल तभी दी जानी चाहिए जब शक्ति का उपयोग उचित अवधि के भीतर किया जाता है।

31. संक्षेप में, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के विलंबित अभ्यास पर सिकोड़ी जाती है क्योंकि यदि कार्रवाई या लेनदेन चुनौती के लिए हमेशा के लिए खुले रहना था, तो इसका मतलब मानव मामलों में परिहार्य और अंतहीन अनिश्चितता होगी, जो कानून की नीति नहीं है। क्योंकि, यहां तक कि जब ऐसी शक्तियों के प्रयोग के लिए निर्धारित सीमा की कोई अवधि नहीं होती है, तो हस्तक्षेप करने वाले विलंब के कारण तीसरे पक्ष के अधिकारों का सृजन हो सकता है, जिसे विवेकाधीन शक्ति के देर से प्रयोग से कुचला नहीं जा सकता है, खासकर जब देरी के लिए कोई ठोस स्पष्टीकरण दृष्टि में नहीं है। कहा जाता है कि कानून के शासन को जीवन के नियम के साथ निकटता से चलना चाहिए। यहां तक कि उन मामलों में जहां संशोधित किए जाने वाले आदेश कपटपूर्ण हैं, शक्ति का प्रयोग धोखाधड़ी की खोज के उचित अवधि के भीतर होना चाहिए। केवल किसी कार्य या लेन-देन को कपटपूर्ण बताने से उसके सुधार का समय अनंत तक नहीं बढ़ेगा; अन्यथा पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग स्वयं उस क़ानून पर धोखाधड़ी के समान होगा जो इस तरह की शक्ति को एक प्राधिकरण में निहित करता है।

32. इस मामले में, जबकि सही करने की मांग की गई प्रविष्टि को धोखाधड़ी के रूप में वर्णित किया गया है, उच्च न्यायालय के समक्ष आक्षेपित नोटिस में कुछ भी नहीं है कि राज्य द्वारा कथित धोखाधड़ी का पता कब लगाया गया था। उस संबंध में एक विशिष्ट बयान आवश्यक था क्योंकि यह एक क्षेत्राधिकार संबंधी तथ्य था, जिसे उत्तरदाताओं को जारी किए गए नोटिस में स्पष्ट रूप से कहा जाना चाहिए। याचिकाकर्ता-राज्य का यह प्रदर्शित करने का प्रयास कि नोटिस कथित धोखाधड़ी की खोज के उचित अवधि के भीतर जारी किया गया था, इसलिए, निरर्थक है। किसी भी दर पर, जब सरकार ने वर्ष 1991 में सरकारी कर्मचारियों को आवासीय स्थलों के लिए विचाराधीन भूमि को देने की अनुमति दी थी, तो यह माना जाना चाहिए कि आधिकारिक व्यवसाय के सामान्य पाठ्यक्रम में किए गए भूमि के पार्सल से संबंधित रिकॉर्ड और राजस्व प्रविष्टियों के बारे में पता होना चाहिए। जहां तक नोटिस 31 दिसम्बर, 2004 को देर से जारी किया गया था, इसमें लगभग 13 वर्षों का विलंब हुआ। इस विलंब के लिए भी कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, यह मानते हुए कि इसे केवल वर्ष 1991 से गिना जाना चाहिए।

अनुवादित

किसी भी कोण से आधी सदी पहले की गई प्रविष्टियों को उलटने की मांग करने वाला नोटिस, स्पष्ट रूप से उचित समय से परे था और इसे सही तरीके से रद्द कर दिया गया था।

(महत्व दिया)"

इसलिए, मामले के इस तरह के उपरोक्त दृष्टिकोण में, अतिरिक्त आयुक्त (न्यायिक) द्वारा पारित समीक्षा का आदेश दिनांक 04.01.2011 कानून में अस्थिर है और इसलिए, इसे अलग रखा जाना चाहिए। एक बार जब मैं दिनांक 04.01.2011 के समीक्षा के आदेश को रद्द करने की कार्यवाही करता हूं, तो इसके 18.04.2012 के परिणामी आदेश को भी रद्द करने की आवश्यकता हो सकती है। यदि इन दो आदेशों को रद्द कर दिया जाता है, जैसा कि मैं इस याचिका में करने का प्रस्ताव रखता हूं, तो मुझे पट्टे आदि की वैधता के संबंध में अन्य प्रश्नों पर जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मेरे विचार से इसे इतने वर्षों के अंतराल के बाद फिर से खोलने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस प्रकार अपर आयुक्त (न्यायिक) द्वारा दिनांक 04.01.2011 को पारित आदेश, जिसमें राज्य के प्रतिवादियों के पुनरीक्षण आवेदन और दिनांक 18.04.2012 के परिणामी आदेश की अनुमति दी गई है, को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

उपरोक्त के मद्देनजर, इस याचिका को **अनुमति** दी जाती है। प्रतिवादी संख्या 1 और 2 द्वारा क्रमशः पारित दिनांक 04.01.2011 और 18.04.2012 के आदेश एतद्द्वारा रद्द किए जाते हैं।

(2023) 2 ILRA 332

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 13.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार,रिट-सी संख्या 66973/2012

अरशद और अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

ए.सी. (प्रशासन), सहारनपुर एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री एम.ए. खान

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री डी.डी. चौहान, श्री अभिषेक तिवारी

ए. सिविल कानून - यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 168-ए - खंडित भूमि का आदान प्रदान - यूपी जेडए और एलआर (संशोधन अधिनियम) 2004 - धारा 4 और 11 - सिद्धांत की धारा 168-ए का विलोपन अधिनियम - प्रभाव - धारा 11 का लाभ, कहां तक बढ़ाया जा सकता है - आयोजित, किसी विशेष लेनदेन को शून्य घोषित करने की शक्ति का स्रोत बहुत हद तक छीन लिया गया था, और इसलिए, कलेक्टर के पास ऐसी किसी भी शक्ति का प्रयोग करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था - आयोजित

अनुवादित

इसके अलावा, वाद के लिए लाभ ग्रहण हो गया, लेकिन चूंकि बचत खंड होने के कारण लेनदेन अब शून्य नहीं रहा, इसलिए याचिकाकर्ता को पीड़ित नहीं किया जा सकता है और उस हद तक, संशोधन अधिनियम 2004 की धारा 11 का लाभ याचिकाकर्ता को प्रदान सकता है। (पैरा 11 और 17)

रिट याचिका निस्तारित। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. राम प्रताप एवं अन्य बनाम गुलाब (2013) 1एलआर 2ए11909
2. रिट सी संख्या 14489/2008; श्रीमती सुमिता देवी बनाम सुशीला देवी एवं अन्य
3. कोल्हापुर केनसुगर वर्क्स लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2000) 2 एससीसी 536
4. द्वितीय अपील संख्या 2585/1974; श्रीमती जानकी और अन्य. बनाम मुरारी लाल एवं अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान एम.ए. खान, राज्य के लिए विद्वान संक्षिप्त धारक श्री अभिषेक तिवारी और गांव सभा के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री डी.डी. चौहान को सुना। अधिकार

2. संविधान के छेद 226 के तहत दायर इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं ने कलेक्टर, सहारनपुर द्वारा पारित दिनांक 3.9.2004 के आदेश और अतिरिक्त आयुक्त (प्रशासन), सहारनपुर मंडल, सहारनपुर द्वारा है। पारित दिनांक 1.6.2012 के आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट की मांग की

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क यह है कि 23.8.2004 से अधिसूचित उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 2004 के तहत उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 2004 में धारा 168 ए क़ानून से हटाए जाने गाने के बाद अब कोई कानून मौजूद नहीं था जिसके तहत विखंडन में भूमि के लेनदेन को शून्य ठहराया जा सकता था।

4. यह तर्क दिया जाता है कि हालांकि संशोधन कानून ने भावी प्रभाव से तत्काल प्रभाव लिया है, लेकिन उन लेनदेन को भी बचाया है जो यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की पूर्ववर्ती धारा 168 ए के तहत बनाए गए

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

कानून की कल्पना से शून्य हो गए होंगे। उन्होंने 2004 के संशोधन अधिनियम की धारा 4 और धारा 11 की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जो पहले उदाहरण में संविधि से धारा 168क को हटाने और दूसरा

अनुवादित

उन लेन-देन 168 द्वारा सृजित कल्पना के मद्देनजर यथा Tor Legal का उपबंध करता है जिन्हें अधिनियम की धारा शून्य माना जाना था।

5. यह तर्क दिया जाता है कि उन लेनदेन को अब शून्यकरणीय के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा और राज्य सरकार की अधिसूचना द्वारा निर्धारित किए जा सकने वाले शुल्क को जमा करके मान्य किया जा सकता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि कलेक्टर द्वारा दिनांक 3.9.2004 को पारित दोनों आदेश संशोधन के बाद 23.8.2004 को जारी अधिसूचना के अनुसार अस्तित्व में लाए गए थे और प्रावधान इसलिए अतिरिक्त आयुक्त, सहारनपुर द्वारा पारित आदेश, और इसलिए, पोषणीय नहीं हैं।

6. इसके विपरीत, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान संक्षिप्त धारक श्री अभिषेक तिवारी द्वारा यह तर्क दिया गया है कि संशोधन अधिनियम, 2004 की धारा 11 के रूप में प्रावधान ने संशोधन अधिनियम के लागू होने से पहले इस तरह के लेनदेन को शून्य करने के लिए केवल एक वर्ष की बनाई है यदि घाटे की शर्त केवल एक वर्ष की अवधि के भीतर प्रमाणित है। आगे यह निर्धारित अवधि तर्क दिया गया है कि एक और संशोधन अधिनियम यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 2005 29.3.2005 को अधिसूचना के साथ लागू हुआ, जिसके तहत पुराने संशोधन अधिनियम की धारा 11 को धारा 4 की उप-धारा 2 द्वारा पूरी तरह से हटा दिया गया है। हालांकि, मांकि, धारा 4 (1) ने एक वर्ष की अवधि के भीतर जमा करके पुराने लेनदेन को वैध बनाने की स्थिति को दोहराया। विद्वान संक्षिप्त धारक ने इस न्यायालय के समक्ष यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 2014 और 2015 को आगे रखा, जिसमें धारा 2 द्वारा करने के लिए इस लाभ को दो साल की अवधि आवश्यक जमा द्वारा हस्तांतरण को मान्य यानी 2015 और 2016 तक बढ़ा दिया गया था।

7. मैंने पक्षकारों के अधिनियम के रिकॉर्ड विद्वान अधिवक्ता:S और प्रासंगिक अवलोकन किया है और मुझे कलेक्टर द्वारा 3-9-2004 न्यायोचित ठहराया को सुना है और उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार संशोधन प्रावधान और इस याचिका में यहां दिए गए आदेशों का इस मामले में केवल दो प्रश्न विचार के लिए उठते हुए मिलते हैं: (क) क्या को आदेश पारित करके प्रश्न में किए गए लेन-देन को खंडित मानते हुए ठहराया गया था: 3.9.2004 को धारा 168-ए के तहत निषिदध होने के लिए; और (ख) क्या याचिकाकर्ता को संशोधनकारी अधिनियम, 2004 की धारा 11 और संशोधनकारी अधिनियम, 2005 की धारा 4(1) के अंतर्गत प्रदत्त लाभ उपलब्ध होगा?

8. पहले प्रश्न पर आते हुए, मैं पाता हूं कि उक्त अधिनियम की धारा 11 के आधार पर पुराने लेन-देन को बचाने के लिए संशोधन अधिनियम, 2004 द्वारा उपबंध

अनुवादित

धारा 168-क को तत्काल प्रभाव से कानून की किताब से हटा दिया गया था। यू.पी. जेडए और एलआर अधिनियम, 1950 की धारा प्रासंगिक प्रावधानों को देखना आवश्यक होगाः

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

"168-ए टुकड़ों का हस्तांतरण- तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबंधों के होते हुए भी, कोई भी व्यक्ति किसी समेकित क्षेत्र में स्थित किसी टुकड़े को बिक्री, उपहार या विनिमय हस्तांतरित नहीं करेगा, द्वारा सिवाय इसके कि जहां अंतरण कार्यकाल-धारक के पक्ष में हो, जिसके पास खंड से सटा हुआ भूखंड है या जहां हस्तांतरण किसी भी ऐसे कार्यकाल धारक के पक्ष में नहीं है, पूरे पूरे या इतने भूखंड जिसमें व्यक्ति को भूमिधारी अधिकार हैं, जो टुकड़े से संबंधित है, इस प्रकार स्थानांतरित किया जाता है। (2) उपधारा (1) के उपबन्धों के विपरीत किसी भूमि का अन्तरण शून्य होगा। (3) जब भूमिधर ने उपधारा (1) के उपबंधों के उल्लंघन में कोई अंतरण किया है होंगे।" तो धारा 167 के उपबंध यथोचित परिवर्तनों के साथ लागू होंगे।

9. 30प्र0 जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 2004 की धारा 4 और धारा 11 निम्नानुसार है:-

"मूल अधिनियम धारा धारा 4- धारा 168-क का लोप किया जाएगा।"

धारा 11 यह एतददवारा घोषित किया जाता है कि किसी टुकड़े का कोई भी हस्तांतरण जो धारा 168- ए के तहत शून्य हो गया था, जैसा कि इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले खड़ा था, शून्यकरणीय माना जाएगा, कोई भी व्यक्ति इस तरह के शुल्क जमा करके और ऐसे समय के भीतर और ऐसी रीति से जो राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किया जा सकता है, इस तरह के हस्तांतरण को वैध कर सकता है, बशर्ते कि इस अधिनियम के लागू होने की तारीख से एक वर्ष की समाप्ति के बाद उपरोक्त प्रावधान लागू नहीं होंगे।"

10. पूर्वोक्त हटाए गए प्रावधानों और संशोधन अधिनियम के नए प्रावधानों को पढ़ने कि खंडित भूमि के लिए लेन-देन जो पहले शून्य थे, अब शून्य नहीं होंगे और आगे आगे ऐसे जो संशोधन अधिनियम की धारा 4-ए के तहत संशोधन से पहले शून्य हो ऐसे लेन-देनों को शून्यकरणीय संविदाओं की श्रेणी में रखा गया था धारा 11 के अंतर्गत यथा निहित प्रावधानों का अनुपालन था। करते गए थे व था और संशोधन का है ऐसे सभी लेनदेन बच गए, तथापि, अधिनियम की संशोधन उपबंधों को लागू किया गया

11. विचाराधीन लेन-देन भी स्वतः सहेजा और इसलिए, कलेक्टर अपने अधिकार क्षेत्र और अधिकार से बाहर हो गया था कि हटाए गए प्रावधान, अर्थात् उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार

अनुवादित

अधिनियम धारा 168-ए के तहत खंडित भूमि के ऐसे लेनदेन को शून्य घोषित कर सके। किसी विशेष लेनदेन को" शून्य घोषित करने की शक्ति का स्रोत बहुत अधिक छीन लिया गया था,और इसलिए, कलेक्टर के पास ऐसी किसी भी शक्ति का प्रयोग करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। इसलिए,कलेक्टर द्वारा पारित आदेश पोषणीय नहीं है। विद्वान अपर आयुक्त ने भी इस मामले में शामिल इस कानूनी पहलू की जांच नहीं की है और इसलिए कलेक्टर द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करने वाला अपर आयुक्त, सहारनपुर द्वारा पारित आदेश भी पोषणीय नहीं है।

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

12. अब दूसरा प्रश्न याचिकाकर्ता को दिए जाने वाले लाभ के बारे में है। संशोधन अधिनियम, 2004 की धारा 11 जिसे वर्ष 2005 में धारा 4(1) के आधार पर नए प्रावधान के साथ निरस्त कर दिया गया था, जिसने केवल उन भूमियों को अधिनियम के भूमि पर राजस्व अभिलेखों में दर्ज नहीं हुआ था।

13. मैं यहां आगे संशोधन अधिनियमों का उल्लेख करना चाहूंगा जो ऐसे खरीदारों के बचाव में जिन्हें एक वर्ष के भीतर लाभान्वित नहीं किया जा सकता था, भले ही राज्य ऐसी भूमि पर ने ही रा किया गया था। आए दर्ज नहीं दूसरे संशोधन अधिनियम अर्थात् उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 2005 ने पिछले अधिनियम की धारा 11 को धारा 4 के माध्यम से दोहराया और धारा (1) 4 (2) के तहत धारा 11 का लोप किया। धारा 4 (2) निम्नानुसार चलती है:

"(2) राज्य सरकार के लिए, यदि वह ऐसा आवश्यक समझे, तो वह उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिसूचना को केवल ऐसे क्षेत्र या क्षेत्रों के संबंध में, जो विनिर्दिष्ट की जाएँ, समय-समय पर जारी करना विधिपूर्ण होगा और उपधारा (1) के सभी उपबंध ऐसी प्रत्येक अधिसूचना के सभी उपबंध को और उसकी दशा में लागू होंगे।

14. उपरोक्त प्रावधानों को उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (विशेष प्रावधान) अधिनियम, धारा 2 के तहत 2010 की धारा 2 के तहत दोहराया गया था। धारा 2 निम्नानुसार चलती है: -

"यह घोषित किया जाता है कि इस तरह के टुकड़े का कोई भी हस्तांतरण जो उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 168-ए के तहत शून्य हो गया था, जैसा कि यह उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 2004 (2004 का यूपी अधिनियम संख्या 27) के शुरू होने से पहले था और राज्य सरकार के पक्ष में राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज नहीं किया गया था, इसे विभाजित किया गया माना जाएगा और

अनुवादित

कोई भी व्यक्ति इस तरह के शुल्क जमा करके और ऐसे समय के भीतर और ऐसे तरीके से इस तरह के हस्तांतरण को वैध करवा सकता है जैसा कि राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किया जा सकता है; परन्तु यह विशेष उपबंध की तारीख से दो वर्ष की समाप्ति के पश्चात् प्रवृत्त नहीं रहेगा।"

15. भूमि सुधार (विशेष उपबंध) विधेयक, 2010 को लाने के उद्देश्य, उद्देश्य और कारण इस प्रकार स्पष्ट किए गए हैं:-

"उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 168-ए के तहत शून्य हो गए ऐसे टुकड़े के किसी भी हस्तांतरण में, जो उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 2004 (2004 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 27) के प्रारंभ होने से पहले था और राज्य सरकार के पक्ष में राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज नहीं किया सत्यापन का अवसर प्रदान करने की ह for गया था, ऐसे किसी भी टुकड़े के हस्तांतरण में उत्तर प्रदेश जमींदारी उत्सादन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (1951 का उ0प्र0 अधिनियम संख्यांक 1) के सम्बन्ध में विशेष उपबंध करने के लिए कानून लिया गया बनाने का निर्णय है। तदनुसार, उत्तर देश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (विशेष प्रावधान) विधेयक, 2010 पेश किया गया है।,

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

16. अब विभिन्न संशोधन अधिनियमों के इतिहास और उद्देश्यों, उद्देश्यों और कारणों को बताने वाले अंतिम संशोधन अधिनियमों को देखते हुए, राज्य विधानमंडल का इरादा था कि यदि धारा 168 के प्रावधानों को हटा दिया गया है, तो पहले से ही पहुंची ऐसी खंडित भूमि के लेन-देन को बचाया जा सकता है। निर्दोष ग्रामीण, जो वंडी थे, उन्हें कुछ औपचारिकताएं पूरी करने की आवश्यकता थी, बशर्ते कि राज्य के नाम पर प्रवेश भूमि पर नहीं किया गया था, क्योंकि इस तरह के लेनदेन पहले शून थे।

17. मेरे विचार से, कलेक्टर के समक्ष मुकदमा याचिकाकर्ता को 2004 के संशोधन 11 का लाभ नहीं मिलने का कारण था। मुकदमेबाजी के लिए लाभ ग्रहण हो खंड होने के कारण लेनदेन अब शून्य नहीं रह गया था, इसलिए सकता है और उस हद तक, इसलिए, संशोधन अधिनियम, गया, अधिनियम की धारा लेकिन चूंकि बचत याचिकाकर्ता को पीड़ित नहीं किया जा 004 धारा 11 का लाभ याचिकाकर्ता को दिया जा सकता है। जहां तक इस तथ्य का संबंध है है कि संशोधन अधिनियम, 2005 की धारा 4(1) के कारण इस उपबंध को और निरसित कर दिया गया है, और इसका लाभ केवल उन मामलों के लिए उपलब्ध था जहां राज्य के नाम के संचालन मामले में, यह पक्षकारों के लिए एक भी याचिकाकर्ताओं

अनुवादित

के नाम पर हैं। कृत म प्रविष्टियों तथ्य को परिवर्तित नहीं किया गया था। वर्तमान है कि विचाराधीन भूमि के संबंध में प्रविष्टियां अभी

18. राम प्रताप और अ ने कानून को तो बाधित ns प बनाम गुलाब (2013) 1 एलआर 2 एएलएल 909 के मामले में, इस न्यायालय करने का अवसर दिया था। इस मामले में मुद्दा यह है कि संशोधन अधिनियम की स्थिति क्या होगी, एक प्रावधान को हटा देता है तक उन लेनदेन के संबंध में और लंबित कार्यवाही को नहीं बचाता है और फिर सुरक्षा प्रदान करता है जो अन्यथा हटाए गए प्रावधान के लिए शून्य होते। न्यायालय ने उन उद्देश्यों और उद्देश्यों के दृष्टिकोण से मामले की जांच करने के लिए कार्यवाही की जिसके साथ विशेष प्रावधान को हटा दिया गया है और इसके स्थान पर एक और प्रावधान जोड़ा गया है।

19. न्यायालय ने श्रीमती सुमिता देवी बनाम सुशीला देवी और अन्य (रिट-सी संख्या 14489 के निर्णय का उल्लेख किया, जिसमें यह निम्नानुसार माना गया थाः -

"इसके अलावा, धारा 168-ए के प्रावधान काफी कठोर थे। 2004 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 27 जिसने धारा 168-ए को हटा दिया, उक्त धारा द्वारा प्रभावित पिछले लेनदेन को शून्य (शून्य के स्थान पर) और एक विशेष अवधि के भीतर दु पर इलाज योग्य (मान्य होने में सक्षम) बना दिया जो कुछ मामूली शुल्क के भुगतान अब समाप्त हो गया है (धारा 11)। तदनुसार, जो अब इन दो कारणों से धारा की व्याख्या (पिछले लेनदेन के लिए) उदारतापूर्वक विक्रेता और प्रतिशोध के पक्ष में की जाएगी।"

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

20. न्यायालय ने कोल्हापुर कैनेशुगर वह वर्क्स लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2000)एससीसी 536 में माननीय 2 न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया है: -

"स्थिति सर्वविदित है है कि साग सामान्य कानून में, किसी क़ानून को निरस्त करने या किसी प्रावधान को हटाने का सामान्य प्रभाव क़ानून की किताब से पूरी तरह से मिटा देना है जैसे कि यह कभी पारित नहीं हुआ था, और क़ानून को एक कानून के रूप में माना जाना चाहिए जो कभी अस्तित्व में नहीं था। इस नियम के लिए,एक अपवाद धारा 6 (1) के प्रावधानों द्वारा संलग्न है। यदि किसी क़ानून के प्रावधान को लंबित कार्यवाही के पक्ष में बचत खंड के बिना बिना शर्त छोड़ दिया जाता है, तो सभी कार्यों को रोकना चाहिए जहां चूक उन्हें मिलती है, और यदि चूक प्रभावी होने से पहले अंतिम राहत नहीं दी गई है, तो इसे बाद में नहीं दिया जा सकता है। धारा 6

अनुवादित

या विशेष अधिनियमों में निहित प्रकृति की बचत स्थिति को संशोधित कर सकती है। इस प्रकार भविष्य और अतीत के रूप में निरसन या विलोपन का संचालन काफी हद तक लागू बचत पर निर्भर करता है। ऐसे मामले में जहां एक क़ानून में एक विशेष प्रावधान को छोड़ दिया जाता है और इसके स्थान पर एक ही आकस्मिकता से निपटने वाला एक और प्रावधान लंबित कार्यवाही के पक्ष में बचत खंड के बिना पेश किया जाता है, तो उचित रूप से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विधायिका का इरादा यह है कि लंबित कार्यवाही जारी नहीं रहेगी, लेकिन उसी उद्देश्य के लिए एक नई कार्यवाही नए प्रावधान के तहत तहत शुरु जा सकती है। वर्तमान की मामले में, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 का कोई अनुप्रयोग नहीं है। लंबित कार्यवाही के पक्ष में कोई बचत प्रावधान नहीं है। इसलिए रिफंड की गई राशि की वसूली के लिए कार्रवाई केवल नए प्रावधान के तहत उसकी " शर्तों के के अनुसार की जा सकती है।

21. न्यायालय ने श्रीमती जानकी और अनुसार की जा सकती है।" सन् 1974) के मामले में निर्णय का मुरारी लाल और अन्य (दूसरी अपील संख्या 2585 उल्लेख किया, जिसमें यह इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है:

"वर्तमान मामले में युक्त दिनांक 15.1. 1.1969 अमर ि संशोधनों के संदर्भ में, श्रीमती गंगा देवी द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख 1969 अमर सिंह और मुरारी लाल के पक्ष में धारा 168-ए के तहत शून्य होने के रूप में यह धारा 168-ए के तहत शून्य है क्योंकि यह अधिनियम 2004 को विशेष प्रावधानों की धारा 11 के Franss संदर्भ में शून्यकरणीय माना गया था और 2004 के अधिनियम संख्या 27 द्वारा आगे संशोधित किया गया था जिसके द्वारा धारा 11 को भी हटा दिया गया है और 2004 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 4 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है, जिसके संदर्भ में कथित रूप से शून्य हो गया दिनांक 15.1.1969 का कथित बिक्री विलेख ऐसे टुकड़े के हस्तांतरण के मामले में शून्यकरणीय है, बशर्ते, यह राज्य सरकार के पक्ष में राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज नहीं किया गया है, 2004 के यूपी अधिनियम संख्या 27 या 2005 के यूपी अधिनियम संख्या 13 के प्रारंभ की तारीख को, जैसा भी मामला हो हस्तांतरणकर्ता इस तरह के शुल्क जमा करके और ऐसे समय के भीतर और ऐसे तरीके से इस तरह के और ऐसे हस्तांतरण को वैध करवा सकते हैं जो राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किया जा सकता है। उपरोक्त निष्कर्षों के मद्देनजर, पहला प्रश्न तदनुसार तय किया जाता है।"

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

अनुवादित

22. पूर्वोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने अपील for अनुमति दी और प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री को रद्द कर दिया और प्रतिवादी को बिक्री विलेख निष्पादित करने का निर्देश दिया गया। मेरे विचार से कानून का प्रस्ताव, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है और निर्धारित किया गया है, वर्तमान मामले के लिए पूरी तरह से है, आकर्षित और इसलिए, कलेक्टर द्वारा पारित आदेश और आयुक्त द्वारा पारित आदेश हैं और इसे अपास्त किया जाना चाहिए।

23. कलेक्टर द्वारा दिनांक को पारित आदेश और अतिरिक्त आयुक्त, सहारनपुर द्वारा पारित 3.9.2004 आदेश दिनांक 1.6.2012 को इस याचिका को अनुलग्नक 2 और 4 के रूप में रद्द किया जाता है।

24. याचिकाकर्ता पहले से ही हुए लेनदेन को मान्य करने के लिए आवश्यक जमा करने के लिए एक याचिकाकती उपयुक्त आवेदन करने के लिए स्वतंत्र है, जिसके संबंध में उसका नाम तीन महीने की अवधि के भीतर राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया है और यदि इस तरह का कोई आवेदन किया जाता है, तो याचिकाकर्ता को वह राशि जमा करने की आवश्यकता हो सकती है यदि कोई हो जो उसे वर्ष 2004-05 में भुगतान करने की आवश्यकता होती और ऐसी राशि पर कोई ब्याज नहीं लगाया जाएगा। उपर्युक्त संबंध में एक उपयुक्त आदेश आवेदन प्राप्त होने के दो सप्ताह के भीतर पारित किया जाएगा।

25. उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, इस याचिका का निस्तारण किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 338

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

रिट-सी संख्या 1000019/2008

अजय अग्रवाल एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

आयुक्त, लखनऊ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: सुदीप कुमार, ए.के. पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - यूपी स्टांप अधिनियम, 1899 - धारा 47-ए खंड (1) और (2) - यूपी स्टांप (संपत्ति का मूल्यांकन) नियम, 1997 - नियम 7 - नियम 7 की प्रयोज्यता - आयोजित, नियम 1997 के नियम 7 के तहत धारा 47 ए के तहत पालन की जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में कोई भी भेद नहीं किया गया है - अधिनियम के प्रावधानों के तहत कोई भेद नहीं प्रदर्शित है, नियम 1997 के नियम 7 धारा 47 ए (1) के साथ धारा 47ए (3) के तहत कार्यवाही पर लागू होंगे और अनिवार्य प्रकृति के हैं। (पैरा 14 और 21)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

अनुवादित

उद्धृत वाद सूची:-

1. राम खेलावन @बच्चा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2005 (2) जेसीएलआर 610 (इलाहाबाद)
2. गंगा राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2020(38) एलसीडी 1991

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री देवेन्द्र मोहन शुक्ला को सुना गया।

2. उत्तर प्रदेश स्टाम्प अधिनियम, 1899 के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 29.03.2006 के साथ-साथ उक्त अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत अपील में पारित आदेश दिनांक 04.10.2007 को चुनौती देते हुए याचिका प्रस्तुत की गई है।

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि याचिकाकर्ताओं ने प्लॉट संख्या बी-3/122, विवेक खंड, गोमती नगर पर निर्मित एक भवन के तृतीय तल पर स्थित 1473 वर्ग फुट क्षेत्रफल वाला एक फ्लैट 06.11.2003. को निष्पादित विक्रय विलेख के माध्यम से खरीदा था।

4. यह कहा गया है कि अंतरण लिखत की प्रस्तुति पर इसे पंजीकृत किया गया था किन्तु स्थल निरीक्षण के उपरांत अधिनियम की धारा 47ए (3) के अंतर्गत अभिदिष्ट किया गया था और दिनांक 18.11.2003 की आख्या प्रस्तुत की गई थी जिसमें प्रश्नगत संपत्ति की व्यावसायिक प्रकृति का संकेत दिया गया था। हालांकि आवासीय प्रकृति की संपत्ति के संदर्भ में स्टांप शुल्क का भुगतान किया गया था। अधिनियम की धारा 47ए(3) के अंतर्गत कार्यवाही जुर्माना एवं अतिरिक्त स्टांप शुल्क आरोपित करने के साथ समाप्त हुई, जिसे याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत वर्ष 2005-2006 की अपील संख्या 552 में चुनौती दी थी, जिसे भी आदेश दिनांक 04.10.2007 द्वारा खारिज कर दिया गया है।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अधिनियम की धारा 47 के अंतर्गत पारित दिनांक 29.03.2006 के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कार्यवाही एक पक्षीय निर्णीत की गयी है और यह मात्र स्थल निरीक्षण आख्या, जो संपत्ति के व्यावसायिक महत्त्व को इंगित करती है, पर आधारित है। यह कथन किया गया है कि आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ताओं ने विशेष रूप से यह तर्क देते हुए अपील दायर की कि अधिनियम की धारा 47 के अंतर्गत पारित आदेश एक पक्षीय था जिसमें उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर कभी प्रदान नहीं किया गया था। इसके अतिरिक्त अपील में प्रस्तुत आधार यह था कि याचिकाकर्ताओं को पूर्व सूचना दिए बिना स्थल निरीक्षण किया गया था, जैसा कि उत्तर प्रदेश स्टाम्प (संपत्ति का मूल्यांकन) नियमावली, 1997 के नियम

अनुवादित

7(iii)(सी) के संदर्भ में किया जाना आवश्यक है, और चूँकि अधिकारियों के लिए यह अनिवार्य था कि वे प्रश्नगत संपत्ति के स्थल निरीक्षण से पहले पूर्व-सूचना दें, इसलिए विवादित आदेश उसी आधार पर रद्द किए जाने योग्य हैं। विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क भी प्रस्तुत किया है कि अन्यथा भी अधिकारियों को संपत्ति, जो अंतरण विलेख की विषयवस्तु है, के बाजार मूल्य की शुद्धता के संबंध में अधिनियम की धारा 47(3) के संदर्भ में अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज करने की आवश्यकता होती है। यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिनियम की धारा 47 या यहाँ तक कि अन्य धारा 56 के अंतर्गत भी ऐसी कोई व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है। आदेश मस्तिष्क की अप्रयोज्यता के दोष से ग्रस्त हैं और धारा 47(3) के अनिवार्य वैधानिक प्रावधान के भी विरुद्ध हैं। विद्वान अधिवक्ता ने **राम खेलावन उर्फ बच्चा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2005(2) जेसीएलआर 610 (इलाहाबाद**) के वाद में समन्वय पीठ के निर्णय का अवलंब लिया है।

6. विपरीत पक्ष की ओर से उपस्थित विद्वान राज्य अधिवक्ता ने याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों का इस तर्क के साथ खण्डन किया कि वर्तमान रिट याचिका द्वारा चुनौती दिए गए आदेशों में कोई त्रुटि नहीं है क्योंकि प्राधिकारीगण स्थल निरीक्षण आख्या पर विश्वास करने में सही थे, जिसके लिए अधिनियम के नियम 7(3)(सी) के अंतर्गत याचिकाकर्ता को पूर्व सूचना देने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उपरोक्त प्रावधान वर्तमान मामले में लागू नहीं था। यह कथन किया गया है कि अधिनियम की धारा 47ए(i)(ए) के अंतर्गत पंजीकृत किए जाने वाले लिखत के अल्प मूल्यांकन से संबंधित प्रावधानों और धारा 47 ए(3) के प्रावधानों में तात्विक अंतर है। यह कथन किया गया है कि अधिनियम की धारा 47 ए (i) के अंतर्गत किसी लिखत के अल्प मूल्यांकन के सम्बन्ध में पंजीकरण से पूर्व कलेक्टर द्वारा आवश्यक परीक्षण से संबंधित है जब कि अधिनियम की धारा 47 ए (3) पंजीकरण के बाद अल्पमूल्यांकन के विनिश्चय हेतु अंतरण लिखत के परीक्षण से सम्बंधित है। यह कथन किया गया है कि उपबंधित प्रक्रिया के संदर्भ में प्रारंभिक स्थल निरीक्षण के पश्चात कलेक्टर को अभिदिष्ट किया जाता है, जिसके लिए याचिकाकर्ताओं को कोई पूर्व सूचना देने की आवश्यकता नहीं थी।

7. विद्वान राज्य अधिवक्ता ने आगे यह कहा है कि नियम 7(3)(सी) के प्रावधान केवल तभी लागू होंगे जब याचिकाकर्ताओं ने प्रारंभिक स्थल निरीक्षण आख्या पर अपनी आपत्तियां प्रस्तुत की हो और चूँकि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रारंभिक स्थल निरीक्षण आख्या पर कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई थी अतः वर्ष 1997 की नियमावली के नियम 7(3)(सी) के अंतर्गत कलेक्टर द्वारा संपत्ति का निरीक्षण करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। यह भी कहा गया है कि अन्यथा भी, अधिनियम की धारा 47(ए)(3) के अंतर्गत अंतरण लिखत के अल्प मूल्यांकन को अंतरण

लिखत के परीक्षण के पश्चात ही देखा जाना आवश्यक है और यह अधिनियम की धारा 47ए (1) के संदर्भ में कलेक्टर द्वारा की जाने वाली जाँच से अलग है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि जिन मामलों में कलेक्टर अल्प मूल्यांकन का निर्धारण करने के उद्देश्य से अंतरण लिखत की जाँच प्रारम्भ करता है, वहाँ स्थलीय निरीक्षण करने की कोई आवश्यकता नहीं है और इसलिए नियम 7(3)(सी) के प्रावधान वर्तमान वाद में लागू नहीं होंगे जहाँ लिखत का परीक्षण मात्र अधिनियम की धारा 47ए(3) के अनुसार की गई थी। यह भी कहा गया है कि अधिनियम की धारा 47ए (3) के अंतर्गत भी, यदि स्थल निरीक्षण किया जाता है, तो 1997 की नियमावली के नियम 7(3)(सी) के अंतर्गत नहीं होने पर, इसका कोई भी उल्लंघन महत्वहीन होगा।

8. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में कार्यवाही अंतरण लिखत के पंजीकरण के पश्चात वर्ष 1899 के अधिनियम की धारा 47ए(3) के अनुसार की गई है न कि अधिनियम की धारा 47ए(1) के अंतर्गत। यह भी प्रतीत होता है कि कार्यवाही दिनांक 18.11.2003 की स्थल निरीक्षण आख्या के अनुसरण में की गई है, जो याचिकाकर्ताओं की उपस्थिति या उन्हें कोई पूर्व सूचना दिए जाने का संकेत नहीं देती है। अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत अपील दायर करते समय याचिकाकर्ताओं द्वारा विशिष्ट तर्क प्रस्तुत किया गया है कि निर्धारित प्राधिकारी द्वारा स्थल निरीक्षण आख्या पर विश्वास किया गया है, किन्तु एकपक्षीय प्रकृति का होने के कारण यह उपेक्षणीय है। अपील के ज्ञापन में विशिष्ट अभिकथनों के उपरान्त भी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा उस पर ध्यान नहीं दिया गया है।

9. फिर भी विद्वान राज्य अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों के दृष्टिगत, निर्धारण हेतु उठने वाला प्रश्न यह होगा कि क्या अधिनियम की धारा 47(ए)(1) के साथ-साथ धारा 47ए (3) के अंतर्गत कार्यवाही में नियम 7(3) (सी) का अनुपालन आवश्यक है? यहाँ यह इंगित करना भी प्रासंगिक है कि वर्तमान रिट याचिका में प्रश्नगत दोनों आदेश मात्र उपरोक्त स्थल निरीक्षण आख्या पर आधारित हैं जो एकपक्षीय प्रकृति की थी।

10. अधिनियम की धारा 47 ए के प्रावधान में उपधारा (1) के साथ दो अलग-अलग घटक हैं, जो पंजीकरण से पूर्व एवं पंजीकरण के लिए प्रस्तुति पर किसी अंतरण लिखत के मूल्यांकन के निर्धारण के लिए की जाने वाली जांच से संबंधित है, जबकि उक्त धारा की उप-धारा 3 संपत्ति के बाजार मूल्य पर प्रभार्य स्टांप शुल्क के निर्धारण के प्रयोजनों हेतु अंतरण लिखत की जाँच से संबंधित है। वर्तमान वाद में, कार्यवाही इसके पंजीकरण के बाद और अभिदिष्ट किये जाने पर वर्ष 1899 के अधिनियम की धारा 47 ए(3) के अनुसार की गई है।

11. संपत्ति के बाजार मूल्य के निर्धारण के लिए अपनाई जाने वाली आवश्यक प्रक्रिया

अनुवादित

और अंतरण लिखत पर भुगतान किए जाने वाले स्टांप शुल्क को धारा 47 ए की उपधारा (4) में दर्शाया गया है, जिसमें स्पष्ट रूप से उपबंधित है कि यदि उप-धारा (2) के अंतर्गत जाँच और उपधारा (3) के अंतर्गत परीक्षण में कलेक्टर को ज्ञात होता कि संपत्ति का बाजार मूल्य ठीक प्रकर से उल्लिखित है या वास्तव में ठीक प्रकार से उल्लिखित नहीं है, तो वह समुचित आदेश पारित करेगा। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि संपत्ति के सही बाजार मूल्य का पता लगाने और देय स्टाम्प शुल्क के निर्धारण के लिए कलेक्टर द्वारा क्रमशः उप-धारा (2) के अंतर्गत एक जाँच प्रारंभ करने और उप-धारा 3 के अंतर्गत अंतरण लिखत का परीक्षण अपेक्षित हैं।

12. विद्वान राज्य अधिवक्ता ने अपने अभिकथनों में इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि अधिनियम की धारा 47 (ए) की उप-धारा (3) के अंतर्गत अभिदिष्ट किये जाने पर या स्वतः संज्ञान लेने पर कलेक्टर को बाजार मूल्य की वास्तविकता के बारे में स्वयं को संतुष्ट करने हेतु लिखत का परीक्षण करना अपेक्षित है। यह कहा गया है कि चूँकि परीक्षण मात्र अंतरण लिखत के परीक्षण के संबंध में है, इसलिए इसमें कलेक्टर द्वारा किसी भी स्थल निरीक्षण की आवश्यकता नहीं होगी, विषेशतः जब एकपक्षीय स्थल निरीक्षण पर याचिकाकर्ता द्वारा कोई प्रारंभिक आपत्ति नहीं की गई हो। इस प्रकार यह तर्क दिया गया है कि चूँकि कलेक्टर को प्रश्नगत संपत्ति का स्थल निरीक्षण करने की आवश्यकता नहीं थी, इसलिए नियम 7(3)(सी) के प्रावधान लागू नहीं होंगे।

13. उपरोक्त प्रश्न के विनिर्धारण हेतु धारा 47 और नियम 7 के प्रावधान प्रासंगिक हैं और जिनका अवलोकन आवश्यक है एवं जो निम्नवत हैं: -

> 47. अस्टाम्पित दशा में प्राप्त बिल आफ एक्सचेंज और प्रोमेसरी नोटों को स्टाम्पित करने का अदा करने वाले का अधिकार जब कोई बिल आफ एक्सचेंज या प्रोमेसरी नोट, जिस पर दस पैसे से अनधिक शुल्क प्रभारणीय हो, अस्टाम्पित दशा में भुगतान के लिये प्रस्तुत किया जाये, तो जिस व्यक्ति के समक्ष वह अदायगी लिये प्रस्तुत किया जाये वह उस पर वांछित चिपकाऊ स्टाम्प लगा ले और इसमें पहले बताई विधि से उसे निरस्त कर, उस बिल या नोट पर देय धन अदा करे और उस शुल्क को उस व्यक्ति से वसूल कर ले, जिसके द्वारा उसे अदा किया जाना था या उपरोक्तानुसार देय धनराशि में से उसे मुजरा कर ले, और जहाँ तक शुल्क का प्रश्न है, वह बिल या नोट सही और वैध माना जायेगा।
>
> परन्तु इसमें की कोई बात किसी व्यक्ति को किसी दण्ड या कार्रवाई से बरी नहीं करेगी जिसका उस बिल या नोट के सम्बन्ध में वह भागी हो ।

अनुवादित

(3) कलेक्टर, स्वप्रेरणा से, या किसी न्यायालय या स्टाम्प आयुक्त या किसी अपर स्टाम्प आयुक्त या उप स्टाम्प आयुक्त या सहायक स्टाम्प आयुक्त या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अधिकारी के अभिदेश पर, किसी लिखत को, जिस पर सम्पत्ति के बाजार मूल्य पर शुल्क प्रभार्य हो और जो उपधारा (1) के अधीन उसे पहले से, अभिदिष्ट न हो, सम्पत्ति का बाजार मूल्य जो ऐसे लिखत की विषयवस्तु हो, और उस पर देय शुल्क की सत्यता के सम्बन्ध में अपना समाधान करने के प्रयोजन के लिये, निबन्धन की तारीख से चार वर्ष के भीतर मँगा सकता है और उसका परीक्षण कर सकता है, और यदि ऐसे परीक्षण के पश्चात् उसे यह विश्वास करने का कारण हो कि लिखत में ऐसी सम्पत्ति का बाजार मूल्य ठीक प्रकार से नहीं दिखाया गया है तो वह ऐसी सम्पत्ति का बाजार मूल्य और उस पर देय शुल्क अवधारित कर सकता है:

परन्तु राज्य सर्कार की पूर्व अनुमति से, इस उपधारा के अधीन कोई कार्यवाही लिखत के जिस पर संपत्ति के बाजार मूल्य पर शुल्क प्रभार्य हो, निबंधन की तारीख से चार वर्ष की अवधि के पश्चात किन्तु आठ वर्ष की अवधि के पूर्व की जा सकती है।

7. किसी निर्देश की प्राप्ति पर या धारा 47- क के अधीन स्वप्रेरणा से कार्यवाही प्रस्तावित किये जाने पर अपनाई जाने वाली प्रक्रिया-

(1) किसी निर्देश की प्राप्ति पर या जहाँ धारा 47- क के अधीन स्वप्रेरणा से की जाने वाली कार्यवाही प्रस्तावित हो कलेक्टर लिखत के पक्षकारों को ऐसी नोटिस जारी करेगा कि वे ऐसी नोटिस की प्राप्ति के तीस दिन के भीतर कारण बतायें कि लिखत में दी गई सम्पत्ति का बाजार मूल्य और उस पर देय शुल्क को उसके द्वारा क्यों न अवधारित किया जाये।

(2) कलेक्टर लिखत के पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किये गये मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य, यदि कोई हो, स्वीकार कर सकता है और लिखत की विषय वस्तु के बाजार मूल्य की शुद्धता के संबंध में अपना समाधान करने के लिए और उस पर देय शुल्क का अवधारण करने के लिए

अनुवादित

मूल लिखत माँग सकता है या उसका परीक्षण कर सकता है।

(3) कलेक्टर-

(क) सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकरण के किसी लोक कार्यालय, अधिकारी या प्राधिकारी से सूचना या अभिलेख माँग सकता है।

(ख) सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकरण के किसी लोक अधिकारी या प्राधिकारी या परियोजना और उनका कथन अभिलिखित कर सकता है, और

(4) पक्षकारों के अभ्यावेदन, यदि कोई हो, पर विचार करने और अभिलेखों और अन्य साक्ष्य का परीक्षण करने के पश्चात् कलेक्टर लिखत की विषयवस्तु के बाजार मूल्य, और

(5) यदि, ऐसी जाँच के फलस्वरूप, बाजार मूल्य पूर्ण रूप से और सही तौर पर उपवर्णित है और लिखत ऐसे मूल्य के अनुसार सम्यक् रूप से स्टाम्पित है, तो इसे उस व्यक्ति जिसने निर्देश दिया हो को उस प्रभाव के प्रमाण पत्र के साथ वापस कर दिया जाएगा। ऐसे प्रमाणपत्र की एक प्रति सम्बन्धित रजिस्ट्रीकर्ता अधिकारी को भी भेजी जायेगी।

(6) यदि, जाँच के परिणामस्वरूप यह पाया जाये कि लिखत का न्यून मूल्यांकन किया गया है और सम्यक रूप स्टाम्पित नहीं है, तो अधिनियम के सुसंगत उपबन्धों के अनुसार इसके सम्बन्ध में आवश्यक कार्यवाही की जायेगी।

14. यह बिल्कुल स्पष्ट है कि नियम 7 का प्रारंभिक प्रावधान स्वयं इस सीमा तक नियम की प्रयोज्यता को इंगित करता है कि एक निर्देश प्राप्त होने पर या जहाँ धारा 47 ए के अंतर्गत स्वप्रेरणा से कार्यवाही करने का प्रस्ताव है, कलेक्टर लिखत के पक्षकारों को कारण बताओ नोटिस जारी करेगा। उपरोक्त प्रावधान को पढ़ने से यह

अनुवादित

स्पष्ट होता है कि धारा 47 ए के अंतर्गत पालन की जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में वर्ष 1997 की नियमावली के नियम 7 के अंतर्गत कोई भी विभेद नहीं किया गया है। इसके विपरीत, यह विशेष रूप से इंगित करता है कि अधिनियम की धारा 47 ए के अंतर्गत स्वप्रेरणा से कार्यवाही किये जाने की स्थिति में भी उपरोक्त नियम का पालन करना आवश्यक है, जो वास्तव में किसी अंतरण लिखत के दस्तावेज़ के पंजीकरण के पश्चात स्टांप शुल्क के निर्धारण के संबंध में वर्ष 1899 के अधिनियम की धारा 47 ए (3) से संबंधित है। चूँकि नियम 7 के अंतर्गत ऐसा कोई विभेद नहीं किया गया है, इसलिए विद्वान राज्य अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि नियमावली का नियम 7 (3) (सी) अधिनियम की धारा 47 ए के अंतर्गत कार्यवाही के मामले में लागू नहीं होगा।

15. उपरोक्त प्रावधान को पढ़ने से ऐसी किसी प्रक्रिया का संकेत नहीं मिलता है जिसके लिए याचिकाकर्ता को प्रारंभिक स्थल निरीक्षण आख्या के विरुद्ध आपत्ति दर्ज करने की आवश्यकता होती है, जिसके पश्चात कलेक्टर को नियमावली के नियम 7(3)(सी) के संदर्भ में संपत्ति का मात्र निरीक्षण करना आवश्यक हो। यद्यपि यह कहा गया है कि उपरोक्त प्रावधान अनिवार्य प्रकृति के नहीं है, लेकिन इस न्यायालय की समन्वय पीठों ने विशेष रूप से **गंगा राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2020(38) एलसीडी 1991**, के वाद में स्पष्ट रूप से नियम 7(3)(सी) के प्रावधान को प्रकृति में अनिवार्य माना है।

16. अधिनियम की धारा 47(3) के अंतर्गत कार्यवाही किये जाने पर क्या कलेक्टर को नियम 7(3)(सी) के संदर्भ में संपत्ति का निरीक्षण करना अनिवार्य है? इस प्रश्न पर वर्तमान में विचार करने की आवश्यकता नहीं है। विशेष रूप से तब जब यह स्वीकार किया जाता है कि कलेक्टर द्वारा ऐसा कोई निरीक्षण नहीं किया गया था जिसके लिए लिखत के पक्षकारों को पूर्व और उचित नोटिस देना अपेक्षित होता।

17. हालाँकि, अधिनियम की धारा 47ए (3) के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि कलेक्टर को बाजार मूल्य की शुद्धता के संबंध में स्वयं को संतुष्ट करने के प्रयोजनों के लिए या तो स्वप्रेरणा से या निर्देश के आधार पर संपत्ति का बाजार मूल्य और उस पर देय शुल्क निर्धारित करना आवश्यक है जो ऐसे लिखत की विषयवस्तु है। अधिनियम की धारा 47ए(3) के प्रावधान स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि अंतरण लिखत के आधार पर संपत्ति के बाजार मूल्य का निर्धारण करते समय, कलेक्टर को बाजार मूल्य की शुद्धता के संबंध में स्वयं को संतुष्ट करना होगा और यदि ऐसे परीक्षण के पश्चात उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि ऐसी संपत्ति का बाजार मूल्य लिखत में ठीक से उल्लिखित नहीं किया गया है, तो वह ऐसी संपत्ति का बाजार मूल्य और उस पर देय शुल्क निर्धारित कर सकता है।

18. अधिनियम की धारा 47ए (3) के प्रावधान स्पष्ट रूप से विहित करते हैं कि

अनुवादित

उपरोक्त प्रावधान के संदर्भ में आदेश पारित करने से पूर्व कलेक्टर को स्वयं को संतुष्ट होना होगा, जिसका वास्तव में अर्थ यह होगा कि उसे इस संपत्ति के बाजार मूल्य की शुद्धता के संबंध में अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि अभिलिखित करनी होगी। इसके अतिरिक्त उसे यह मानने के कारण भी दर्ज करने होंगे कि ऐसी संपत्ति का बाजार मूल्य लिखत में ठीक से उल्लिखित नहीं किया गया है, जिसके पश्चात उसे संपत्ति का बाजार मूल्य और उस पर देय शुल्क निर्धारित करने की भी आवश्यकता है। स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 47 ए(3) के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए कलेक्टर को न केवल स्थल निरीक्षण आख्या पर विश्वास करना होगा, अपितु अंतरण लिखत के अल्प मूल्यांकन के संबंध में अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि भी अभिलिखित करनी होगी। ऐसे में अधिनियम की धारा 47 के अंतर्गत आदेश पारित करते समय कलेक्टर मात्र निरीक्षण-पश्चात आख्या पर विश्वास नहीं कर सकते।

19. **राम खेलावन (उपरोक्त)** के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने भी पूर्वोक्त प्रावधानों की और ध्यान आकृष्ट किया और विधि प्रतिपादित की है कि बाजार मूल्य निर्धारित करने की विधि और कारकों को उक्त उद्देश्य के लिए विशेषतः भूमि अधिग्रहण कानूनों के अंतर्गत मुआवजे की धनराशि निर्धारित करने के लिए ध्यान में रखा जाना चाहिये एवं यह अधिनियम की धारा 47 ए के अंतर्गत कलेक्टर द्वारा वाद का निर्णय करते समय बाजार मूल्य निर्धारित करने के लिए भी लागू होते हैं। भूमि अधिग्रहण मामलों में बाजार मूल्य निर्धारित करने के तीन मानक सिद्धांतों को उपरोक्त निर्णय के प्रस्तरों 9 और 11 में भी दर्शाया गया है जो इस प्रकार हैं;

> "9. तहसीलदार की आख्या और ए.डी.एम. के निर्णय का समग्र आधार यह है कि भूमि आवासीय संभावना (आवासीय प्रयोजन) की है। यदि तर्क के लिए यह मान भी लिया जाए कि विवाद ग्रस्त भूमि आबादी की संभावना वाली है, फिर भी इसके मूल्यांकन को निर्धारण करने का कोई आधार नहीं प्रस्तुत किया गया है। एक बार विक्रय पत्र पंजीकृत हो जाने के पश्चात धारा 47-ए स्टाम्प अधिनियम के अंतर्गत भूमि के बाजार मूल्य का निर्धारण करने के लिए वर्ष 1997 की नियमावली का अवलंबन नहीं लिया लिया जा सकता है। यदि स्टाम्प अधिनियम के अंतर्गत विलेख, विशेष रूप से विक्रय-विलेख के पंजीकरण के बाद, कोई वाद धारा 47-ए के अंतर्गत संस्थित किया गया है तब अचल संपत्ति के बाजार मूल्य निर्धारण हेतु प्रयोज्य सामान्य सिद्धांतों के आधार पर मूल्यांकन का निर्धारण किया जाना चाहिए। बाजार मूल्य निर्धारित करने की विधि और उक्त उद्देश्य के लिए विचार किए जाने वाले कारकों की न्यायालयों द्वारा भूमि अधिग्रहण

अनुमोदित

कानूनों के अंतर्गत मुआवजे की धनराशि का निर्धारण करते समय विस्तार से चर्चा की गई और परिशुद्धता सहित प्रतिपादन किया गया। स्टांप अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत कलेक्टर द्वारा वाद का निर्णय करते समय बाजार मूल्य निर्धारित करने के लिए बिल्कुल वही सिद्धांत लागू होंगे।

11. भूमि अधिग्रहण मामलों में बाजार मूल्य निर्धारित करने के तीन मानक सिद्धांत हैं; तुलनीय बिक्री विधि यानी निकट अतीत में बेची गई समान निकटवर्ती संपत्ति का मूल्य, मासिक या वार्षिक किराये, आय या उपज का उपयुक्त गुणक द्वारा गुणा; और निर्माण की लागत को भूमि के मूल्य में जोड़ना।"

20. उपरोक्त के दृष्टिगत यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 47 ए (3) के अंतर्गत कलेक्टर द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति परिशुद्धतापूर्ण प्रकृति की नहीं है, अपितु इनका प्रयोग विशेष रूप से इस संबंध में ऊपर की गई टिप्पणियों के आधार पर ही किया जाना अपेक्षित है। विशेषतः इस तथ्य के दृष्टिगत कि उसे अपने मस्तिष्क का प्रयोग करने और न केवल अंतरण लिखत के अल्प मूल्यांकन के संबंध में व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज करने की आवश्यकता है, बल्कि संपत्ति के बाजार मूल्य और उसके बाद देय शुल्क के संबंध में एक पृथक संतुष्टि भी अभिलिखित करनी है, और वह मात्र स्थल निरीक्षण आख्या पर विश्वास नहीं कर सकता है।

21. यह भी स्पष्ट है कि चूँकि अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत कोई विभेद नहीं स्पष्ट किया गया है, अतः नियमावली 1997 का नियम 7 धारा 47 ए (1) के साथ-साथ धारा 47 ए (3) के अंतर्गत कार्यवाही पर लागू होगा एवं यह अनिवार्य प्रकृति का है।

22. वर्तमान मामले में पूर्वोक्त की प्रयोज्यता के सम्बन्ध में, आक्षेपित आदेशों को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि वे केवल स्थल निरीक्षण आख्या पर आधारित हैं और प्राधिकरण द्वारा अधिनियम की धारा 47ए या धारा 56 के अंतर्गत कोई भी व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है। अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत जैसा कि ऊपर दिए गए अवलोकन के अनुसार किया जाना आवश्यक है।

23. उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, उ0प्र0 स्टाम्प अधिनियम, 1989 की धारा 47ए(3) के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 29.03.2006 को और उक्त अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत अपील में पारित आदेश दिनांक 04.10.2007, जो प्रतिपादित विधि के अनुरूप नहीं है, को रद्द किया जाता है।

24. परिणामस्वरूप रिट याचिका स्वीकार की जाती है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे। पक्षकार वादव्यय स्वयं वहन करें।

अनुवादित

(2023) 2 ILRA 345

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 20.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

रिट-सी संख्या 1003921/2015

टी.आर.सी. महाविद्यालय सतरिख, नवाबगंज

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: राम नारायण गुप्ता, एम.के. दीक्षित, राम कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 33 और 47-ए - यूपी स्टाम्प (संपत्ति का मूल्यांकन) नियम, 1997 - नियम 7(3)(सी) - स्टाम्प की कमी - विचाराधीन संपत्ति एक खड़ंजा सड़क से सटी हुई है, जो पक्की सड़क नहीं है- दिनांक 01.08.2010 के परिपत्र में सड़क शब्द का अर्थ पक्की या आरसीसी सड़क के रूप में समझाया गया है - आयोजित, एक बार अधिकारी स्वयं अधिनियम 1899 की धारा 47ए के तहत अपने आदेश में प्रश्नगत संपत्ति के स्थान का संकेत पक्की/आरसीसी सड़क से सटे होने के कारण देते हैं, उनके लिए सड़क से लगी गैर-कृषि संपत्ति के संदर्भ में बाजार मूल्य स्थापित करने का कोई अवसर नहीं था - उच्च न्यायालय ने प्राधिकरण को विचाराधीन संपत्ति गैर-कृषि लेकिन सड़क के आसपास नहीं मानते हुए अतिरिक्त स्टांप शुल्क का पुनः निर्धारित करने का निर्देश दिया। । (पैरा 11 और 13)

बी. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 33 और 47-ए - जुर्माना आरोपित करना - कारण, कैसे आवश्यक है - कोई तथ्य छुपाया नहीं गया - प्रभाव - आयोजित, इस तरह के जुर्माना लगाने के लिए कोई भी तर्क नहीं दिया गया है विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि स्थानांतरण के दस्तावेज़ में याचिकाकर्ता-संस्था द्वारा कोई छिपाव नहीं किया गया था - आगे कहा गया, आदेश यह भी संकेत नहीं देते हैं कि स्थानांतरण के दस्तावेज़ में कोई तथ्य छुपाया गया है और इसलिए इस न्यायालय की सुविचारित राय में , अधिकारियों के पास जुर्माना लगाने का कोई अवसर नहीं था। (पैरा 12)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. गंगा राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2020 (38) एलसीडी 1991

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान शासकीय अधिवक्ता को सुना।

अनुवादित

2. याचिका भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए/33 (एतद्पश्चात वर्ष 1899 के अधिनियम के रूप में संदर्भित) के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 12.10.2012 के साथ-साथ 1899 के अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 16.03.2015 को चुनौती देते हुए दायर की गई है। पुन: दिनांक 29.12.2012 के पुनर्प्राप्ति उद्धरण के संबंध में याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई भी आक्रामक उपाय न अपनाने के लिए विपक्षी पक्षों को निदेश देने की मांग संबंधी एक और प्रार्थना की गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि विचाराधीन संपत्ति गाटा संख्या 88 का एक भाग है, जिसका क्षेत्रफल 0.731 हेक्टेयर है, जो संबंधित गांव में स्थित है, जिसे उमेश चंद्र चतुर्वेदी नाम के व्यक्ति ने पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 03.01.2005 के माध्यम से खरीदा था। चूंकि उक्त संपत्ति का उपयोग कृषि प्रयोजनों के लिए किया जा रहा था, इसलिए क्रेता ने उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 143 के अंतर्गत घोषणा हेतु दिनांक 09.06.2005 को एक आवेदन प्रस्तुत किया। उक्त आवेदन को आदेश दिनांक 28.11.2005 द्वारा स्वीकृति दी गई थी, किंतु बाद में उक्त व्यक्ति द्वारा यू०पी० जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 144 के तहत एक और आवेदन दायर किया गया था जो उपरोक्त संपत्ति के एक हिस्से को कृषि-भूमि के रूप में घोषित करने से संबंधित है। उक्त आवेदन को भी दिनांक 26.05.2011 को स्वीकृत कर दिया गया, जिसके बाद याचिकाकर्ता-संस्था ने उक्त गाटा संख्या 88 का 0.522 हेक्टेयर क्षेत्रफल का एक भाग अंतरण लिखत दिनांक 25.06.2011 के माध्यम से खरीदा था। पंजीकरण के लिए उक्त दस्तावेज़ की प्रस्तुति पर, स्थल निरीक्षण किया गया था और इसके पंजीकरण के बाद 1899 के अधिनियम की धारा 47ए(3) के अंतर्गत निदेश जारी किया गया था और धारा 47ए के अंतर्गत प्रश्नगत आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता-संस्था पर अतिरिक्त स्टांप शुल्क और जुर्माना लगाया गया है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कथन किया गया कि आक्षेपित आदेश मुख्य रूप से इस आधार पर पारित किए गए हैं कि खरीदी गई संपत्ति पर एक कॉलेज स्थापित है और इस प्रकार इसे कृषि प्रकृति का नहीं माना जा सकता है। आगे यह कथन किया गया है कि संपत्ति को गैर-कृषि मानते हुए अतिरिक्त स्टांप शुल्क भी लगाया गया है और सड़क से सटी संपत्ति की स्थिति के अनुसार स्टांप शुल्क भी लगाया गया है। हालांकि लिखत पर सड़क से दूर संपत्ति की वास्तविक स्थिति के अनुसार अतिरिक्त स्टांप शुल्क का भुगतान किया गया है। पुन: यह कथन किया गया है कि प्राधिकारियों ने इस तथ्य पर विचार न करके त्रुटि की है कि कॉलेज पूरे 0.522 हेक्टेयर में स्थापित नहीं है और यहाँ तक कि स्थल निरीक्षण आख्या के अनुसार, यह

अनुवादित

मात्र 0.209 हेक्टेयर पर स्थित है जबकि शेष संपत्ति का उपयोग कृषि उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है। आगे यह भी कहा गया है कि स्थल निरीक्षण आख्या भी उत्तर प्रदेश (संपत्ति का मूल्यांकन) नियमावली, 1997 (एतद्पश्चात 1997 की नियमावली के रूप में संदर्भित) के नियम 7(3)(सी) का उल्लंघन है।

5. प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों का खंडन करते हुए कहा कि स्थल निरीक्षण आख्या स्पष्ट रूप से इस तथ्य को इंगित करती है कि कॉलेज अंतरण लिखत दिनांक 25.06.2011 के माध्यम से खरीदी गई संपत्ति पर स्थापित है और यह भी इंगित करता है कि वहाँ पर कोई कृषि गतिविधि नहीं की जा रही है। इस प्रकार यह कथन किया गया है कि आदेश में कोई त्रुटि नहीं है, विशेषतः जब आदेश में इस तथ्य पर भी ध्यान दिया गया है कि प्रश्नगत संपत्ति को अंतरण लिखत के निष्पादन के बमुश्किल एक माह पूर्व अकृषि भूमि में परिवर्तित किया गया है।

6. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने पर, अभिलेख से यह स्पष्ट है कि पहले विचाराधीन संपत्ति को उ० प्र० जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 143 के अंतर्गत दिनांक 28.11.2005 के आदेश द्वारा अकृषि भूमि घोषित किया गया था। तत्पश्चात उसके बाद उसके एक भाग, अर्थात 0.522 हेक्टेयर को उ० प्र० जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 144 के अतंर्गत आवेदन को दिनांक 26.05.2011 को स्वीकृत करते हुए कृषि-भूमि घोषित किया गया था। तत्पश्चात उक्त संपत्ति के संबंध में अंतरण लिखत दिनांक 25.06.2011 को निष्पादित किया गया।

7. स्थल निरीक्षण आख्या दिनांक 11.07.2011 का परिशीलन यह इंगित करता है कि याचिकाकर्ता-संस्था द्वारा अंतरण लिखत के माध्यम से खरीदे गए 0.522 हेक्टेयर के कुल क्षेत्रफल में से कॉलेज भवन 0.209 हेक्टेयर पर स्थापित है, जिस पर उ० प्र० जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 144 के अंतर्गत दिनांक 26.05.2011 को आदेश पारित किया गया हैं। आख्या यह भी दर्शाती है कि उक्त भूखंड पर कोई कृषि गतिविधि नहीं चल रही है।

8. यह भी स्पष्ट है कि 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत आदेश मुख्य रूप से इस आधार पर पारित किया गया है कि विचाराधीन संपत्ति पर एक कॉलेज भवन स्थापित है और स्थल निरीक्षण के समय संपत्ति पर कोई कृषि गतिविधि नहीं देखी गई। आक्षेपित आदेश में इस तथ्य पर भी संदेह जताया गया है कि अंतरण लिखत के निष्पादन से ठीक एक माह पूर्व अकृषि संपत्ति को कृषि संपत्ति में परिवर्तित कर दिया गया है। 1899 के अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत आदेश

अनुवादित

पारित करते समय अपीलीय अदालत ने भी इसी तर्क का अनुसरण किया है।

9. जहाँ तक 1997 की नियमावली के नियम 7(3)(सी) के अनिवार्य प्रावधानों के पालन के का प्रश्न है, इस न्यायालय ने ***गंगा राम बनाम उ०प्र० राज्य व अन्य, 2020(38) एलसीडी 1991*** मामले में स्पष्ट रूप से इसे अनिवार्य प्रकृति का माना है। वर्तमान वाद में, हालाँकि ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता-संस्था को कोई पूर्व सूचना नहीं दी गई थी, किंतु अभिलेख से यह भी स्पष्ट है कि स्थल निरीक्षण आख्या में जहाँ तक यह बताया गया है कि भवन का निर्माण खरीदी गई संपत्ति के एक भाग पर किया गया है, इसे स्वयं याचिकाकर्ता द्वारा विशेष रूप से निर्माण के क्षेत्र के संबंध में स्वीकार किया गया है। चूँकि याचिकाकर्ता ने भवन निर्माण के संबंध में तथ्यात्मक स्थिति को पहले ही स्वीकार कर लिया है, अतः इस न्यायालय की सुविचारित राय में, अधिनियम के नियम 7(3)(सी) का अनुपालन न करने पर याचिकाकर्ता-संस्था पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है। यद्यपि उपरोक्त नियम प्रकृति में अनिवार्य है, किंतु यदि स्थल निरीक्षण आख्या पर निर्धारिती द्वारा विवाद नहीं किया जा रहा है तो उसके प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं होगा और इसलिए स्टांप शुल्क के मूल्यांकन के आदेश मात्र उस आधार पर दूषित नही हो सकते हैं।

10. वर्तमान वाद में, अभिलेख में यह देखा गया है और याचिकाकर्ता द्वारा स्वीकार किया गया है कि संपूर्ण गाटा संख्या 88, जिसका क्षेत्रफल 0.731 हेक्टेयर है, में से प्रश्नगत अंतरण लिखत मात्र 0.522 हेक्टेयर से संबंधित है जिस पर 0.209 हेक्टेयर के एक भाग पर कॉलेज भवन का निर्माण किया गया है। हालांकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि भवन का निर्माण संपत्ति के मात्र एक भाग पर किया गया है, जबकि शेष भूमि का उपयोग कृषि भूमि के रूप में किया जा रहा है, एवं अधिनियम के अंतर्गत कोई प्रावधान नहीं बताया जा सकता है जिसके द्वारा एक ही भूमि पर अलग-अलग स्टांप शुल्क लगाया जा सकता है। एक बार जब याचिकाकर्ताओं द्वारा यह स्वीकार कर लिया जाता है कि प्रश्नगत संपत्ति पर एक भवन का निर्माण किया गया है और स्थल निरीक्षण आख्या स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि अंतरण लिखत के दिनांक तक गैर-निर्मित हिस्से पर कोई कृषि गतिविधि नहीं की जा रही है, तो इस संबंध में आक्षेपित आदेशों में कोई अपवाद ग्राह्य नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, अधिकारी का यह निष्कर्ष सही था कि संपत्ति का उपयोग गैर-कृषि उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है।

11. जहाँ तक सड़क से सटी संपत्ति के आधार पर स्टांप शुल्क लगाने के संबंध में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्कों का प्रश्न है तो दिनांक 01.08.2010 से प्रभावी अधिसूचित सर्कल रेट से यह पता चलता है कि गैर कृषि प्रयोजनों हेतु सम्पत्तियों, जो सड़क से सटी हुई हैं और जो सड़क से नहीं लगी हैं, का अलग-अलग मूल्यांकन होगा।

अनुवादित

वर्तमान वाद में, 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत पारित आदेश को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि विचाराधीन संपत्ति एक खड़ंजा सड़क से सटी हुई है, जो पक्की सड़क नहीं है। दिनांक 01.08.2010 के परिपत्र में सड़क शब्द का अर्थ पक्की या आर.सी.सी. सड़क बताया गया है। एक बार जब अधिकारियों ने 1899 के अधिनियम की धारा 47ए के अंतर्गत अपने आदेश में यह स्पष्ट कर दिया कि संपत्ति की स्थिति पक्की/आर.सी.सी. सड़क से सटी हुई नहीं है, तो उनके लिए सड़क से सटी गैर-कृषि संपत्ति के संदर्भ में बाजार मूल्य स्थापित करने का कोई अवसर नहीं था। इस हद तक आक्षेपित आदेशों में कतिपय त्रुटि है।

12. यह भी ध्यान देने योग्य है कि आक्षेपित आदेश के माध्यम से, याचिकाकर्ता-संस्था पर 6,42,400/- रुपये का जुर्माना लगाया गया है। हालाँकि, इस तरह का जुर्माना लगाने के लिए कोई भी तर्क नहीं दिया गया है, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता-संस्थान द्वारा अंतरण-विलेख में कुछ भी छिपाया नहीं गया था, जो स्पष्ट रूप से संपत्ति के रूपांतरण- पहले गैरकृषि प्रयोजनों हेतु और बाद में कृषि प्रयोजनों हेतु, और साथ ही याचिकाकर्ता संस्था द्वारा अंतरण लिखत के माध्यम से खरीदी गई संपत्ति के भाग के तथ्य सहित सभी तथ्यों का विवरण दर्शाता है । आदेशों में यह भी दर्शाया नहीं दिया गया है कि अंतरण लिखत में कोई तथ्य छिपाया गया है और इसलिए इस न्यायालय की सुविचारित राय में प्राधिकारियों के लिए जुर्माना लगाने का कोई अवसर नहीं था।

13. उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, सड़क से सटी संपत्ति के लिए जुर्माना लगाने और बाजार दर के निर्धारण की सीमा तक आक्षेपित आदेश 12.10.2012 और 16.03.2015 को रद्द किया जाता है। प्राधिकारियों को निदेश दिया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा दंड-खण्ड को उपेक्षित करते हुए देय अतिरिक्त स्टांप शुल्क की पुनर्गणना की जाए और विचाराधीन संपत्ति को गैर-कृषि, किंतु सड़क के आसपास नहीं, मानते हुए अतिरिक्त स्टांप शुल्क का पुनर्निर्धारण किया जाए।

14. परिणामस्वरूप, रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है। पक्षकारों को अपना व्यय स्वयं वहन करना होगा।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि विवादित आदेशों के अनुसरण में याचिकाकर्ता द्वारा अतिरिक्त स्टांप शुल्क जमा कर दिया गया है। इसे अतिरिक्त स्टांप शुल्क के नए भावी निर्धारण के संबंध में अधिकारियों द्वारा समायोजित किया जाएगा।

(2023) 2 ILRA 348

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

रिट-सी संख्या 1007067/2012

श्रीमती जीतेन्द्र देवी पांडे

...याचिकाकर्ता

बनाम

अनुवादित

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: बजरंगी वर्मा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 33 और 47-ए - स्टाम्प अभाव - पट्टा अधिकारों को हस्तांतरित करने वाला उपकरण, शीर्षक नहीं - यद्धपि, असाइनमेंट के विलेख को बिक्री-विलेख के रूप में माना गया था - वैधता को चुनौती दी गई विलेख का नामकरण, कितना प्रासंगिक है - विचाराधीन विलेख के माध्यम से, याचिकाकर्ता को केवल पट्टा विलेख अधिकार प्रदान किए गए हैं, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पट्टादाता के पास केवल पट्टा का अधिकार था और विचाराधीन संपत्ति पर स्वामित्व नहीं था - विलेख की प्रकृति केवल विलेख के सार के अनुसार विचार किया जाता है, न कि उसके नामकरण के अनुसार। विलेख केवल 30 वर्षों की अवधि के लिए अचल संपत्ति पर अधिकार प्रदान करते हुए जारी किया गया था और इसलिए पट्टादाता के पास स्वयं के लिए प्रत्यावर्तन का अधिकार सुरक्षित था और इस प्रकार विलेख को बिक्री के विलेख के बजाय केवल पट्टा विलेख के रूप में माना जा सकता था। (पैरा 12 और 13)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. रिट याचिका संख्या 3056/2003 (एमबी); अजय शंकर दीक्षित एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य निर्णय दिनांक 09.08.2018
2. रेजिडेंट वेलफेयर एसोसिएशन नोएडा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2009) 14 एससीसी 716
3. मद्रास रिफाइनरी लिमिटेड सी.एस. का वाद; (1977)2 एससीआर 564

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

वादी के विद्वान अधिवक्ता और विरोधी पक्षों की ओर से पेश होने वाले विद्वान राज्य अधिवक्ता को सुना।

याचिका में भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए के तहत पारित दिनांक 13 सितंबर, 2011 के आदेश के साथ-साथ अधिनियम की धारा 56 के तहत याचिका में पारित 27 जुलाई, 2012 के आदेश को चुनौती दी गई है।

वादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विचाराधीन संपत्ति जो प्रकृति में अचल है, को श्रीमती नीरा खन्ना पत्नी श्री महेंद्र सिंह खन्ना को उत्तर प्रदेश अवाश और विकास परिषद, लखनऊ द्वारा निष्पादित पंजीकृत पट्टा विलेख दिनांक 10 मार्च, 1995 के माध्यम से 30 साल की अवधि के लिए पट्टे पर दिया गया था। उन्होंने प्रदीप अग्रवाल के पक्ष में अभिहस्तांकन के माध्यम से लीज होल्ड अधिकारों को हस्तांतरित किया, जिन्होंने बदले में 15.02.2008 को लीज

अनुवादित

डीड के माध्यम से वादी को अपने लीज होल्ड अधिकार हस्तांतरित किए, जिसे पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किया गया था और इसके बाद अधिनियम की अनुसूची 1-बी के अनुच्छेद 63 के संदर्भ में स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया गया था, जिसके बाद अधिनियम की धारा 47-ए (3) के तहत कार्यवाही को संदर्भित किया गया था, जिससे समनुदेशन विलेख को उसमें निहित खंडों के मद्देनजर बिक्री विलेख माना गया है। अधिनियम की धारा 56 के तहत उनके खिलाफ दायर याचिका को भी खारिज कर दिया गया है।

वादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अधिकारियों ने पट्टे के अभिहस्तांकन के विलेख को केवल इस आधार पर बिक्री का विलेख मानने में कानून में गलती की है कि भूमि के लीजहोल्ड प्लॉट का खाली कब्जा समनुदेशिती को हस्तांतरित किया जा रहा था और साथ ही तथ्य यह है कि समनुदेशिती को म्यूटेशन के अधिकार दिए गए थे और उक्त संपत्ति को उसके पक्ष में फ्रीहोल्ड प्राप्त करने के लिए। यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिकारियों ने इस तथ्य को पूरी तरह से खो दिया है कि संपत्ति के शीर्षक का कोई हस्तांतरण नहीं हुआ था और पट्टे के अभिहस्तांकन के संदर्भ में संपत्ति पर कब्जे का केवल अधिकार एक विशेष विचार के लिए प्रदान किया गया था और इस तरह, अधिकारियों ने इसे शीर्षक के हस्तांतरण के साधन के रूप में मानने में कानून में गलती की है।

विद्वान अधिवक्ता ने **श्री अजय शंकर दीक्षित और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य और 2003 की रिट याचिका संख्या 3056 (एमबी)** में अन्य संबंधित मामलों के मामले में इस न्यायालय के खण्ड पीठ के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें इस न्यायालय ने निर्णय और आदेश दिनांक 09.08.2018 के माध्यम से माना है कि विलेख की भाषा हस्तांतरण के विलेख की प्रकृति का फैसला नहीं करेगी और यदि हस्तांतरणकर्ता केवल लीज होल्ड अधिकारों को देखते हुए, केवल लीज होल्ड अधिकारों को आगे स्थानांतरित किया जा सकता है और पूर्ण स्वामित्व नहीं। इसलिए, यह माना गया है कि विलेख की भाषा के बावजूद, इसे पट्टा विलेख के रूप में माना जाना चाहिए, न कि पूर्ण बिक्री के विलेख के रूप में और इसलिए, स्टाम्प शुल्क को बाजार मूल्य के अनुसार भुगतान करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है, इस तरह के विलेख को बिक्री का विलेख माना जाता है। फैसले के प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं:

> "*उन्होंने कहा, 'स्टांप ड्यूटी तय करने की मूल अवधारणा इस सिद्धांत पर आधारित है कि कोई व्यक्ति अपने पास*

अनुवादित

मौजूद उपाधि से बेहतर टाइटल तबादला नहीं कर सकता।

अब, एक व्यक्ति जिसके पक्ष में पट्टा विलेख निष्पादित किया गया है, केवल पट्टा धारण अधिकारों को स्थानांतरित करने का हकदार है और वह संपत्ति में पूर्ण स्वामित्व को स्थानांतरित नहीं कर सकता है।

विलेख की भाषा हस्तांतरण के विलेख की प्रकृति का फैसला नहीं करेगी और यहां तक कि अगर यह विलेख में लिखा गया है कि हस्तांतरणकर्ता को संपत्ति के संबंध में पूर्ण अधिकार है, तो इसे इस तरह स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यदि हस्तांतरणकर्ता को केवल पट्टा धारण अधिकार दिए गए थे, तो वह केवल पट्टा धारण अधिकारों को स्थानांतरित करने का हकदार है, न कि पूर्ण स्वामित्व।

तदनुसार, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता का पहले तर्क कि विलेख की भाषा के अनुसार, इसे पूर्ण बिक्री या पट्टा विलेख के रूप में माना जाना है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है और स्टांप शुल्क को बाजार मूल्य के अनुसार भुगतान करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है। हालांकि, सबूतों में यह आया है कि वर्तमान में, विवादित संपत्ति पर कोई निर्माण नहीं है और केवल जमीन को एक अभिहस्तांकन के माध्यम से स्थानांतरित किया जाना है। यदि निर्माण भी होता है, तो जहां तक भूमि का संबंध है, हस्तांतरणकर्ता का पूर्ण अधिकार नहीं है और तद्नुसार वह भूमि का पूर्णत अंतरण नहीं कर सकता है। जहां तक भूमि का संबंध है, इसके लीज होल्ड अधिकारों को स्थानांतरित किया जा सकता है, लेकिन यदि निर्माण होता है, तो पूर्ण स्वामित्व के आधार पर इसे स्थानांतरित किया जा सकता है और उस पर बाजार मूल्य पर

अनुवादित

स्टांप शुल्क लगाया जाएगा। यदि पट्टाधारकों द्वारा कोई निर्माण किया जा रहा है, तो निर्माण पट्टा धारक के स्वामित्व में होगा और यदि निर्माण के संदर्भ में कोई विलेख निष्पादित किया जाता है, तो उसे पूरी तरह से स्थानांतरित किया जा सकता है, लेकिन जहां तक भूमि का संबंध है, उसे केवल एक अभिहस्तांकन के माध्यम से पट्टे के हस्तांतरण के साधन द्वारा स्थानांतरित किया जा सकता है। "

रेजीडेंट वेलफेयर एसोसिएशन नोएडा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2009) 14 एससीसी 716 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून का भी संदर्भ लिया गया है।

दूसरी ओर, विद्वान राज्य अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अभिहस्तांकन का विलेख स्वयं अनुच्छेद संख्या 2, 6 और 7 में तीन शर्तों को इंगित करता है कि खाली अचल संपत्ति पर कब्जा वादी को हस्तांतरित कर दिया गया है, जिसे राजस्व अभिलेख में अपना नाम उत्परिवर्तित करने का अधिकार भी दिया गया है, आगे यह अधिकार दिया जा रहा है कि समनुदेशिती अपने खर्च पर प्लॉट के फ्रीहोल्ड को निष्पादित करने का हकदार होगा। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि पूर्वोक्त लिखत के माध्यम से, संपत्ति में ब्याज को उस पर कब्जे के साथ स्थानांतरित कर दिया गया है और, इस तरह, उपकरण के बावजूद इसे पट्टा विलेख होने का संकेत देने के बावजूद, संपत्ति पर अधिकार और शीर्षक हस्तांतरित कर दिया गया है और इसलिए, स्टांप शुल्क को बिक्री का विलेख मानते हुए लगाया गया है।

पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों और अभिलेख पर सामग्री के अवलोकन पर विचार करने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि अधिनियम की धारा 47-ए (3) के तहत आदेश मुख्य रूप से अभिहस्तांकन के विलेख में खंडों के कारण पारित किए गए हैं, जिसके तहत लीज होल्ड प्लॉट का कब्जा समनुदेशिती को दिया गया है, जिसे राजस्व अभिलेख में अपना नाम उत्परिवर्तित करने के अधिकार भी दर्ज किए गए हैं,

अनुवादित

सरकार ने अपनी लागत पर भूखंड फ्रीहोल्ड प्राप्त करने की पात्रता के अधिकार के साथ भी इस संबंध में कोई कार्रवाई की है। उपर्युक्त तीन शर्तें दी गई हैं जिन पर समनुदेशन विलेख को बिक्री विलेख माना गया है और उसके अनुसार स्टाम्प शुल्क लगाया गया है।

श्री अजय शंकर दीक्षित (सुप्रा) के मामले में खण्ड पीठ के फैसले से, यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा प्रतिपादित कानून के अनुसार, यह माना गया है कि स्टांप शुल्क तय करने की मूल अवधारणा सिद्धांत पर आधारित है कि कोई व्यक्ति अपने पास से बेहतर शीर्षक हस्तांतरित नहीं कर सकता है। एक प्राकृतिक सहसंबंध के रूप में, एक व्यक्ति जिसके पास केवल पट्टा धारिता अधिकार है, उसे हस्तांतरित शीर्षक नहीं माना जा सकता है क्योंकि उसके पास स्वयं संबंधित संपत्ति पर शीर्षक नहीं है और इस तरह, केवल पट्टा धारक के हस्तांतरित अधिकारों के लिए समझा जा सकता है। खण्ड पीठ ने यह भी माना है कि विलेख की भाषा हस्तांतरण के विलेख की प्रकृति का फैसला नहीं करेगी, भले ही संपत्ति के संबंध में पूर्ण अधिकार के संबंध में कुछ शर्तों को मुख्य रूप से इस आधार पर इंगित किया गया हो कि कोई व्यक्ति एक बेहतर शीर्षक हस्तांतरित नहीं कर सकता है जो उसके पास है।

रेजिडेंट वेलफेयर एसोसिएशन, नोएडा (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

> *"..... इसके अतिरिक्त, संबंधित पट्टा विलेख में प्रत्यावर्तन के अधिकार के साथ भूमि के 99 वर्ष के पट्टे के साथ-साथ उसके उपांगों का विशेष रूप से प्रावधान है। इसलिए उपर्युक्त प्रावधान से यह स्पष्ट है कि भूमि को उसके सहायक के साथ निर्धारित अवधि के बाद पट्टेदार को वापस कर दिया जाएगा। इसलिए कथित दस्तावेज पट्टे के अभिहस्तांकन का हस्तांतरण है और इसके सहायक की एकमुश्त बिक्री नहीं है। ....."*

उक्त निर्णय **मद्रास रिफाइनरी लिमिटेड सी.एस.** के मामले को भी संदर्भित करता है **(1977) 2**

अनुवादित

एससीआर 564; निम्नलिखित तरीके से:

"23. इससे पहले कि हम मामले के इस पहलू के साथ भाग लें, यह कहना है कि क्या दस्तावेज़/उपकरण वास्तव में अभिहस्तांकन का विलेख था या एकमुश्त बिक्री थी, हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अभिहस्तांकन के दस्तावेज़ के नामकरण को यह तय करने में निर्धारण कारक नहीं कहा जा सकता है कि क्या कोई विशेष विलेख या दस्तावेज़ पट्टा या अभिहस्तांकन का विलेख था। मद्रास रिफाइनरी लिमिटेड बनाम सीएस मनु/एससी/एससी/0292/ 1977:[1977]2 एससीआर 564 में, यह माना गया था कि यह तय करने के लिए कि कोई विशेष दस्तावेज पट्टा है या अभिहस्तांकन का विलेख, किसी को दस्तावेज़ के अभिहस्तांकन के विलेख के पदार्थ को देखना होगा, न कि नामकरण को। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि दस्तावेज़ के नामकरण को कोई महत्व नहीं दिया जा सकता है। हालांकि एसोसिएशन के कुछ सदस्यों ने दस्तावेज़ को अभिहस्तांकन के विलेख के बजाय बिक्री या हस्तांतरण सह बिक्री विलेख के रूप में करार दिया था, लेकिन यह अभिहस्तांकन के विलेख के रूप में बना हुआ है जैसा कि हमारे द्वारा ऊपर उल्लेख किया गया है।"

उपरोक्त निर्णयों की प्रयोज्यता पर, यह स्पष्ट है कि वादी के पक्ष में निष्पादित दिनांक 15 फरवरी, 2008 के प्रश्न में विलेख के माध्यम से, वादी को केवल लीज होल्ड अधिकार दिए गए हैं, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पट्टेदार के पास केवल लीज होल्ड अधिकार थे और विचाराधीन संपत्ति पर शीर्षक नहीं था।

पूर्वोक्त निर्णय यह भी स्पष्ट करते हैं कि किसी विलेख की प्रकृति को केवल विलेख के सार

अनुवादित

के अनुसार माना जाना चाहिए, न कि उसके नामकरण के अनुसार। वर्तमान मामले में, यह ध्यान दिया जाता है कि विलेख केवल 30 वर्ष की अवधि के लिए अचल संपत्ति पर अधिकार प्रदान करते हुए जारी किया गया था और इसलिए पट्टेदार के पास प्रत्यावर्तन के अधिकार सुरक्षित थे और इस तरह विलेख को बिक्री के विलेख के बजाय केवल पट्टा विलेख के रूप में माना जा सकता था।

उपर्युक्त निर्णयों और खण्ड पीठ द्वारा प्रतिपादित कानून के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि आक्षेपित आदेश पूर्वोक्त निर्णयों के विपरीत हैं और इसलिए, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए के तहत पारित 13 सितंबर, 2011 के उपरोक्त आदेश और साथ ही अधिनियम की धारा 56 के तहत याचिका में पारित 27 जुलाई, 2012 के आदेश, रद्द कर दिए गए हैं।

नतीजतन, रिट याचिका की ***अनुमति*** दी जाती है। पक्षों को खुद की लागत वहन करनी होगी। पालन करने के लिए परिणाम।

(2023) 2 ILRA 352

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल,

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 32824/2020

संलग्न

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 12486 /2022

संदीप कुमार मिश्रा ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री पुलक गांगुली, श्री वीरेंद्र कुमार मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री शिवम यादव

(ए) आपराधिक कानून - जमानत - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376-डी, 342 और 506, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161,162 और 164, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 114-ए - बलात्कार के लिए कुछ मुकदमों में सहमति की अनुपस्थिति के बारे में अनुमान - सामूहिक बलात्कार का अपराध - पीड़िता, वादी और आवेदक एक ही संगठन में कार्यरत थे - "जनेऊ क्रांति अभियान' के नाम से संचालित - एफआईआर दर्ज करने में देरी हुई - आयोजित, एफआईआर दर्ज करने में अत्यधिक देरी हुई जमानत आवेदन पर निर्णय के समय विचार किया जाना है। वाद अपने निर्णायक अंत पर है। आवेदकों ने जमानत के लिए वाद स्थापित किया। (पैरा-21,22)

अनुवादित

जमानत याचिका स्वीकृत। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. भारत संघ बनाम के.ए. नजीब, एआईआर 2021 एससी 712
2. भरवाड़ा भोगीनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य, (1983) 3 एससीसी 217

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सुधीर मेहरोत्रा, श्री पुलक गांगुली एवं सूचनाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री शिवम यादव तथा राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री वी.के.एस. परमार को सुना गया।

2. चूंकि ये जमानत प्रार्थना पत्र एक ही घटना से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए इनका निर्णय इस सामान्य आदेश द्वारा किया जा रहा है।

अस्वीकारणः अनुवादित निर्णय वादी समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

3. वर्तमान जमानत प्रार्थना पत्र आवेदकों द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 511/2019, धारा 376-डी, 342 और 506 आईपीसी के अंतर्गत पुलिस स्टेशन रोहनिया, जिला वाराणसी में जमानत पर रिहा किये जाने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है।

अभियोजन पक्ष की कहानीः

4. अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, थाना दौराला, जिला मेरठ में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी जिसमें कहा गया था कि सूचनाकर्ता ग्राम मछरी, थाना दौराला का निवासी है और परम धाम न्यास, अरिहंतपुरम, वलीदपुर, दौराला से जुड़ा हुआ है और उसकी पत्नी उम्र लगभग 24 वर्ष अन्य सहयोगियों के साथ पिछले एक वर्ष से बरोरनपुर, थाना रोहनिया, वाराणसी में रह रही है। वह संगठन के कार्यों के लिए मेरठ और वाराणसी आती-जाती रहती है। वाराणसी में सूचनाकर्ता और उसकी पत्नी सुशील पटेल नामक व्यक्ति के यहां किराये के मकान में रहते थे। 18.06.2019 को सूचनाकर्ता मेरठ आया था और उसकी पत्नी संगठन के अन्य सहयोगियों के साथ वाराणसी में ही रह गई थी। 03.08.2019 को सूचनाकर्ता की पत्नी वाराणसी से मेरठ आई और उसे वाराणसी में अपने साथ घटी घटना के बारे में बताया। उसने सूचनाकर्ता को बताया कि दिनांक 01.07.2019 को लगभग 10:00 बजे, चंदन कुमार पुत्र राम नारायण और संदीप पुत्र देव कुमार मिश्रा ने उसके कमरे में उसके साथ बलात्कार किया। जब उसने शोर मचाने की कोशिश की, तो संदीप ने उसका मुंह अपने हाथ से बंद कर दिया। कुछ देर बाद अंकित पुत्र सतवीर वहां पहुंचा, जिस पर आरोपी कमरे से चले गए और अंकित ने चंदन को थप्पड़ मारा, लेकिन दोनों मोटरसाइकिल पर भाग गए। जब सूचनाकर्ता ने उक्त अपराधियों से घटना के बारे में पूछा, तो उन्होंने उसे धमकी दी कि वे उसे और उसकी पत्नी को बर्बाद कर देंगे।

अनुवादित

उक्त प्रार्थना पत्र दिनांक 05.08.2019 को थाने में दिया गया और इसे मुकदमा अपराध संख्या 349/2019 धारा 376-डी, 342, 506 आईपीसी के तहत थाना दौराला, जिला मेरठ में पंजीकृत किया गया।

5. उक्त एफआईआर को एसएसपी, मेरठ द्वारा भेजे गए पत्र पर थाना रोहनिया, जिला वाराणसी की पुलिस द्वारा जांच के लिए भेजा गया था क्योंकि मामला जिला वाराणसी के अधिकार क्षेत्र में आता था। एफआईआर संख्या 511/2019 पर थाना रोहनिया में 09.09.2019 को दर्ज किया गया था।

प्रतिद्वन्द्वी विवादः

आवेदकों के लिएः

6. आवेदकों के विद्वान अधिवक्तागण ने कहा है कि पीड़िता की 12.09.2019 को जिला अस्पताल, वाराणसी में चिकित्सकीय जांच की गई थी और अभियोजन पक्ष के आरोपों की पुष्टि करने के लिए उसके शरीर पर कोई आंतरिक या बाहरी चोट नहीं पाई गई। धारा 161 और 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज पीड़िता के बयान एफआईआर में लगाए गए आरोपों के शब्दशः हैं। विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि उन्हें मामले में झूठा फंसाया गया है क्योंकि उन्होंने पीड़िता और आश्रम के अन्य कार्यकर्ताओं द्वारा की जा रही अवैध गतिविधियों के बारे में पूछताछ की थी। यह कहानी सिर्फ़ आवेदकों को परेशान करने और उन्हें उनकी अवैध गतिविधियों को सामने लाने से रोकने के लिए गढ़ी गई है।

अस्वीकारणः अनुवादित निर्णय वादी समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

7. विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि अभियोजन पक्ष ने नए गवाहों को पेश करके अतिरिक्त सबूत तैयार किए थे और एसएसपी मेरठ के समक्ष अपने हलफनामे दायर किए थे, जो धारा 162 सीआरपीसी के तहत आते हैं और कानून में स्वीकार्य नहीं हैं। विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि गवाहों में से एक श्रीमती संजना ने 23.09.2019 को मेरठ में शपथ लेकर एक और हलफनामा दायर किया था, जिसमें उन्होंने अपने पहले हलफनामे की सामग्री से इनकार किया था। उक्त हलफनामे को आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 23824/2020 के अनुलग्नक संख्या 7 के रूप में संलग्न किया गया है। विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि यह उल्लेख करना उचित है कि 06.08.2019 से पहले, "जनेऊ क्रांति अभियान" के संस्थापक चंद्र मोहन के किसी भी अनुयायी द्वारा कोई अन्य प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी विद्वान अधिवक्तागण ने धर्मगुरु चंद्र मोहन के कहने पर उनके अनुयायियों द्वारा उनके बताए मार्ग पर न चलने के विरुद्ध दर्ज की गई एफआईआर का चार्ट रिकार्ड पर लाया है, जो नीचे प्रस्तुत हैः-

मुकदमा	अन्तर्गत धारा	थाना	जिला	सूचना कर्ता	अभियुक्त

अनुवादित

अपराध संख्या					
349/2019	376डी, 342, 506 भा०दं० सं०	दौराला 26.08.2020	मेरठ	नीरज कुमार	चन्दन कुमार सन्दीप
352/2019	386, 295, 500, 120 बी, 504, 506 भा0दं० सं०, व 66 ए, 67 आई.टी. एक्ट	दौराला 06.08.2019	मेरठ	श्रीमती सोनिया	चन्दन दीपक, आकाश, पुष्पेन्द्र, विशाल
456/2019	504, 506, 500भा०दं० सं० व 66 आई.टी. एक्ट	नई मंडी 07.08.2019	मुजफ्फरनगर	अमित कुमार	चन्दन दीपक, आकाश, विशाल, पुष्पेन्द्र
260/2019	500, 506भा0दं0 सं0 व 66 आई.टी. एक्ट	मंडी धनुरा 10.08.2019	जे.पी. नगर	राजेश	दीपचन्द, कर्मवीर
327/2019	386, 504, 506 भा०दं० सं०	तितावी 08.10.2019	मुजफ्फरनगर	विनोद कुमार	राजीव
1028/2019	418, 420, 384 भा0दं0 सं0 व 66डी, 67 आई.टी. एक्ट	कोतवाली नगर 25.10.2019	मुजफ्फरनगर	श्रीमती पंकज	विनोद कुमार, मोनू, जितेन्द्र, देवेन्द्र, जितेन्द्र, अमित, चिन्टू, अनिल,
30/2020	376डी, 506 भा0दे0 सं0 व 5/6 पॉक्सो एक्ट	हसनपुर 18.01.2020	जे.पी. नगर	प्रिया कुमारी भानु	कोविंद चौहान, चयवीर चौहान, पुष्पेन्द्र चौहान, एक लड़का अज्ञात

अनुवादित

224/2020	67 आई.टी. एक्ट	*खतौली* 26.05.2020	मुजफ्फरनगर	श्रृष्टि	जगनू भारतीय
428/2020	506 व 67 आई.टी. एक्ट	दौराला 20.09.2020	मेरठ	श्रीमती शिरोमणि मोनिका	पुनीत
455/2020	323,504, 506 भा०दं० सं०	कैन्ट 25.08.2021	वाराणसी	नीरज कुमार	कमल, अरुन, कुलदीप, एक अज्ञात
459/2020	147, 323, 504, 506, 392 भा०द० सं०	कैन्ट 26.08.2021	वाराणसी	कमल वर्मा	नीरज, मनीष,एक अज्ञात
44/2020	174 ए भा०दं० सं०	रोहनिया	वाराणसी	इंस्पेक्टर क्राइम मोहित यादव	चन्दन कुमार, सन्दीप कुमार मिश्रा

अस्वीकारणः अनुवादित निर्णय वादी समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

8. विद्वान अधिवक्तागण ने उपरोक्त चार्ट में उल्लिखित सम्पूर्ण प्रथम सूचना रिपोर्ट की फोटोकॉपी भी दाखिल की है।

9. विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा कि पीड़िता 'जनेऊ क्रांति अभियान' की राष्ट्रीय अध्यक्ष थी और उसका पति/सूचनाकर्ता इसमें कोषाध्यक्ष था। मुख्य गवाह अंकित भी उक्त संगठन का सदस्य है। आवेदक भी लगभग 10 वर्षों से भगवान चंद्र मोहन से जुड़े थे और 2018 से स्थायी रूप से उसके साथ रहते थे। आवेदक चंदन कुमार ने चंद्र मोहन के निर्देश पर संजना शर्मा (जो संगठन की सदस्य भी थी) से शादी भी की थी। कुछ समय बाद आवेदक चंदन कुमार को पता चला कि उसे उक्त भगवान चंद्र मोहन ने धोखा दिया है और उसकी अवैध गतिविधियों का पता चला और इस तरह, उसने 01.08.2019 से 03.08.2019 तक एक व्हाट्सएप ग्रुप 'हर हर महादेव' में कई संदेश पोस्ट किए, जिसे कमल नामक व्यक्ति द्वारा संचालित किया जा रहा था। कमल को चन्द्र मोहन व उसके समर्थकों द्वारा धमकी भी दी गई थी, जिसका पत्र उसने दिनांक 26.08.2019 को एसएसपी मेरठ को भी भेजा था, जो कि रिकार्ड में दर्ज है। उक्त व्हाट्सएप ग्रुप पर की गई पोस्ट से क्षुब्ध होकर झूठी कहानी गढ़कर वर्तमान एफआईआर दर्ज कराई गई है।

10. विद्वान अधिवक्तागण ने यह भी संकेत दिया है कि चंद्र मोहन के खिलाफ

अनुवादित

कई एफआईआर दर्ज हैं, जिनमें मुकदमा अपराध संख्या 317/2005, धारा 302 और 307 आईपीसी के तहत, थाना भोपा, जिला मुजफ्फरनगर और मुकदमा अपराध संख्या 131/2019, थाना राजपुर, जिला देहरादून, उत्तराखंड, श्रीमती नीरज द्वारा दर्ज कराया गया है।

11. विद्वान अधिवक्तागण ने यह भी कहा है कि व्हाट्सएप पर पोस्ट के कारण भगवान चंद्र मोहन के खिलाफ भारी विरोध प्रदर्शन हुआ और उनके लगभग सभी अनुयायी दो वर्गों में बंट गए और उनके शिष्यों का एक बड़ा वर्ग उनके खिलाफ उठ खड़ा हुआ। उक्त कृत्य के परिणामस्वरूप, उक्त भगवान चंद्र मोहन को दान के रूप में भारी नुकसान उठाना पड़ा क्योंकि उनके नियमित शिष्यों ने अपना योगदान देना बंद कर दिया, जिससे विभिन्न अभियान और योजनाएं रुक गईं। आश्रम में नई भर्ती भी लगभग रुक गई। वर्तमान एफआईआर उक्त व्हाट्सएप संदेशों के वायरल होने के तीन दिन बाद ही दर्ज की गई है।

12. आवेदकों के अधिवक्तागण ने यह भी तर्क दिया है कि आवेदकों के खिलाफ फिरौती मांगने और आईटी एक्ट के तहत भी एक और एफआईआर संख्या 352/2019 दर्ज की गई है। इसी तरह की कार्यप्रणाली को हसनपुर, जिला अमरोहा, उ0प्र0 में कोविंदर और अन्य के खिलाफ दर्ज की गई एक अन्य एफआईआर संख्या 30/2020 में भी अपनाया गया है। विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि उक्त चश्मदीद गवाह अंकित का बयान भी इस आधार पर गलत है कि वह निश्चित रूप से मामले की रिपोर्ट कर सकता था क्योंकि यह घटना के पांच मिनट बाद उसके संज्ञान में आई थी।

अस्वीकारणः अनुवादित निर्णय वादी समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

13. विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा कि वर्तमान परिदृश्य में हर कोई मोबाइल रखता है और पीड़िता अपने पति को मोबाइल पर ही कहानी बता सकती थी और वह खुद एक शिक्षित महिला है। वह अंकित के माध्यम से या खुद वाराणसी में ही एफआईआर दर्ज करवा सकती थी, लेकिन वाराणसी से लगभग 800 किलोमीटर दूर मेरठ में एफआईआर दर्ज कराना सूचनाकर्ता की दुर्भावना को दर्शाता है, जो कि भगवान चंद्र मोहन के इशारे पर आवेदकों को फंसाने के लिए है। विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा कि यहां तक कि उनके पैरोकारों को भी भगवान चंद्र मोहन के अनुयायियों द्वारा धमकाया और पीटा गया है।

14. विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा कि मुकदमे में सा आवेदकों द्वारा साक्ष्यों से छेड़छाड़ की कोई संभावना वना नहीं नहीं है। है। गवाहों की जांच की गई है और

15. विद्वान अधिवक्तागण ने भारत संघ बनाम के.ए. नजीब के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर अधिक भरोसा किया है, टिप्पणी की है :- जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित

अनुवादित

"हम इस तथ्य से अवगत हैं कि प्रतिवादी के खिलाफ लगाए गए आरोप गंभीर हैं और सामाजिक सद्भाव के लिए गंभीर खतरा हैं। अगर यह मामला शुरुआती चरण में होता, तो हम प्रतिवादी की प्रार्थना को पूरी तरह से खारिज कर देते। हालांकि, हिरासत में बिताए गए उसके लंबे समय और जल्द ही मुकदमे के पूरा होने की संभावना को ध्यान में रखते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के पास जमानत देने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा है।"

16. आवेदक चंदन कुमार के खिलाफ दो अन्य मामले दर्ज हैं, मुकदमा अपराध संख्या 352/2019, थाना दौराला, जिला मेरठ और मुकदमा अपराध संख्या 456/2019, थाना नई मंडी, मुजफ्फरनगर। विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि वर्तमान मामले की पीड़िता मुकदमा अपराध संख्या 131/2019 में आरोपी है, जिसमें शुरू में क्लोजर रिपोर्ट पेश की गई थी, लेकिन उक्त क्लोजर रिपोर्ट को खारिज कर दिया गया था और विद्वान न्यायालय द्वारा आगे की जांच का आदेश दिया गया था जो अभी भी लंबित है। विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि ट्रायल के दौरान, सूचनाकर्ता और पीड़िता उनके खिलाफ मुकदमा अपराध संख्या 131/2019 के पंजीकरण के संबंध में उनसे पूछे गए सवालों का जवाब देने से भी बच गए थे। उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों की मिथ्याता को प्रदर्शित करने के लिए आवेदकों की ओर से कई अन्य प्रस्तुतियाँ की गई हैं। आवेदक क्रमशः 28.02.2020 और 01.03.2020 से जेल में हैं। यदि आवेदक जमानत पर रिहा होते हैं, तो वे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेंगे। इस स्तर पर आवेदकों द्वारा सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने की कोई संभावना नहीं है।

अस्वीकारणः अनुवादित निर्णय वादी समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

राज्य के लिए:

17. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. और सूचना देने वाले के विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर ज़मानत याचिकाओं का पुरज़ोर विरोध किया है कि आवेदकों ने पीड़िता के साथ सामूहिक बलात्कार का जघन्य कृत्य किया है और भारतीय समाज में किसी महिला के लिए बलात्कार का झूठा आरोप लगाना संभव नहीं है। यौन उत्पीड़न के ऐसे कई अपराध रिपोर्ट नहीं किए जाते। विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों की जाँच की गई है और उन्होंने आवेदकों के खिलाफ़ स्पष्ट रूप से गवाही दी है।

18. विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि एफआईआर दर्ज करने में हुई देरी स्वाभाविक है, क्योंकि भारतीय मूल्यों के कारण पीड़िता पर उसके साथ किए गए उक्त कृत्य को उजागर न करने का अत्यधिक दबाव था। पीड़िता को उसके कमरे में अकेली पाकर आवेदकों ने हवस के कारण बलात्कार किया। विद्वान

अनुवादित

अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि यह एक स्वीकृत तथ्य है कि पीड़िता, सूचनाकर्ता और आवेदक 'जनेऊ क्रांति अभियान' के नाम से संचालित एक ही संगठन में काम कर रहे थे। पहले ही सात गवाहों की जांच की जा चुकी है और केवल डॉक्टर का बयान दर्ज किया जाना बाकी है। विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 32824/2020 में सूचनाकर्ता की ओर से दायर पूरक हलफनामे से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि आवेदक परीक्षण में सहयोग नहीं कर रहे हैं। यहां तक कि आवेदकों में से एक के अधिवक्ता को भी हटा दिया गया और उसे एक एमिकस क्यूरी प्रदान किया गया। आवेदकों ने किसी न किसी बहाने से मुकदमे में देरी करवाई है।

19. विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114-ए के प्रावधानों के अनुसार, पीड़िता के बयान की पुष्टि की आवश्यकता नहीं है और उस पर भरोसा किया जाना चाहिए। विद्वान अधिवक्तागण ने आगे कहा है कि आवेदकों ने खुद को उनके द्वारा किए गए गंभीर अपराधों से बरी करवाने के लिए भगवान चंद्र मोहन की संलिप्तता की झूठी कहानी गढ़ी है। सामूहिक बलात्कार का अपराध गंभीर प्रकृति का है और जमानत प्रार्थना पत्र खारिज किए जाने योग्य हैं। हालांकि, वे इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सके कि एफआईआर दर्ज करने में देरी हुई है।

निष्कर्षः

20. सर्वोच्च न्यायालय ने भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य मामले में स्पष्ट रूप से कहा है कि वर्तमान गैर-अनुमोदित भारतीय समाज में, कोई भी लड़की समाज में बदनामी से बचने के लिए किसी भी व्यक्ति के खिलाफ यौन उत्पीड़न का झूठा मामला दर्ज नहीं कराएगी।

अस्वीकारणः अनुवादित निर्णय वादी समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

21. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णय पारित किए जाने के बाद से बहुत कुछ बदल चुका है। लगभग 40 वर्षों की अवधि के दौरान भारतीय समाज में पूर्ण परिवर्तन आया है और अब यह अक्सर देखा जाता है कि यौन अपराधों में झूठे आरोप लगाने की घटनाएं बढ़ रही हैं। जमानत पर निर्णय लेते समय एफआईआर दर्ज करने में अत्यधिक देरी पर विचार किया जाना चाहिए।

22. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा प्रस्तुत दलीलों, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों, सूचनाकर्ता द्वारा एफआईआर दर्ज कराने में अत्यधिक देरी तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मुकदमा अपने अंतिम चरण में है, तथा मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, न्यायालय का विचार है कि आवेदकों ने जमानत के लिए मामला बनाया है। जमानत प्रार्थना पत्र स्वीकार किए जाते हैं।

अनुवादित

- उपरोक्त मुकदमा अपराध संख्या में संलिप्त आवेदक संदीप कुमार मिश्रा एवं चंदन कुमार को 23. संबंधित न्यायालय की संतुष्टि हेतु व्यक्तिगत बन्ध पत्र एवं समान धनराशि के दो भारी जमानती प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के अधीन जमानत पर रिहा किया जाए-

(i) आवेदक परीक्षण के दौरान साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेंगे।

(ii) आवेदक अभियोजन पक्ष के गवाह पर दबाव नहीं डालेंगे/डरायेंगे नहीं।

(iii) आवेदक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे, जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो।

(iv) आवेदक उस अपराध के समान कोई अपराध नहीं करेगा जिसका उस पर आरोप है, या जिस अपराध के किए जाने का संदेह है।

(v) आवेदक मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेंगे जिससे कि वह न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से विमुख हो जाए या साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ कर सके।

24. उपरोक्त शर्तों में से किसी का भी उल्लंघन होने पर यह जमानत रद्द करने का आधार होगा। बंध पत्र स्वीकार करने से पहले संबंधित न्यायालय द्वारा आवेदकों और जमानतदारों की स्थिति और निवास प्रमाण की पुष्टि की जानी चाहिए।

25. यह स्पष्ट किया जाता है कि आवेदकों को जमानत देने में गवाहों की गवाही के आधार पर विद्वान विचारण न्यायाधीश की स्वतंत्र राय बनाने पर किसी भी तरह का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(2023) 2 ILRA 358

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 25.07.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

सिविल पुनरीक्षण क्रमांक 47/2022

ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती भाषा विश्वविद्यालय एवं अन्य

...पुनिरीक्षणकर्ता

बनाम

डॉ. आरिफ अब्बास एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: कुमार आयुष, प्रीतीश कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: फ़ारूक़हमद, सैयद अज़ीज़ुल हसन रिज़वी

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 115 - आदेश XXVI - नियम 9 - वादी द्वारा दायर कमीशन जारी करने के लिए आवेदन की अनुमति - स्वीकृत रूप से, दस्तावेजों की जांच करने के लिए कमीशन जारी करने के लिए हलफनामा समर्थित नहीं है यद्धपि आवेदन आदेश XXVI, नियम 9 सीपीसी के संदर्भ में पोषणीय नहीं है - ऐसे आवेदनों को केवल एक या दूसरे पक्ष के वाद को सुविधाजनक

अनुवादित

बनाने के उद्देश्य से अनुमति नहीं दी जा सकती है और किसी भी पक्ष के साक्ष्य के बोझ का निर्वहन करना अदालतों का काम नहीं है। पार्टी-आक्षेपित आदेश को निरस्त किया जाता है। (पैरा 1 से 22)

पुनरीक्षण की अनुमति है (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. शिव शक्ति कंपनी हाउसिंग साइंसेज, नागपुर बनाम मेसर्स स्वराज डेवलपर्स एवं अन्य। (2003) एआईआर एससीडब्ल्यू 2445
2. पोर्मुसामी पंडाराम बनाम द सेलम वैयाप्पमलाई जंगमार (1986) एआईआर मद्रास 33
3. ललित देवी एवं अन्य बनाम बिन्दु बिहारी वर्मा एवं अन्य, 2013 की रिट सी संख्या 41940
4. रमा शंकर तिवारी बनाम महादेव एवं अन्य (1968) एडब्ल्यूआर 103
5. अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय बनाम 7वाँ अतिरिक्त. सीजेएम अलीगढ एवं अन्य. (1999) एएलआर 571
6. परवेज अख्तर एवं अन्य बनाम चतुर्थ एडीजे आगरा एवं अन्य। (1993) 2 एआरसी 304
7. एच.वी. नागेंद्रप्पा बनाम एम.एच. हनुमप्पा और अन्य (2000) एससीसी ऑनलाइन कर 164
8. नसीब दीन और अन्य बनाम हरनेक सिंह (2019) एससीसी ऑनलाइन एचपी 1034

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

.

पुनरिक्षणकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रीतिश कुमार और विपक्षी संख्या 1 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री विश्वनाथ मिश्रा को सुना। पारित किए जा रहे आदेश के दृष्टिगत, विपक्षी 2, 3 और 4 को नोटिस देने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है।

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अंतर्गत पुनरिक्षण नियमित वाद संख्या 2216 वर्ष 2022 में दिनांक 15 नवंबर, 2022 के आदेश के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसके द्वारा वादी-विपक्षी संख्या 1 द्वारा दायर की गई संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के अंतर्गत आयोग बनाने के लिए आवेदन को स्वीकृत किया गया था।

प्रारंभ में ही, विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने संहिता की धारा 115 के अंतर्गत पुनरिक्षण की स्वीकार्यता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई है, यह कहते हुए कि आक्षेपित आदेश केवल अंतरिम प्रकृति का है और संहिता की धारा 115 के अंतर्गत परिकल्पित रूप में निर्णीत मामले की श्रेणी में नहीं आता है, और इसलिए पुनरिक्षण स्वीकार्य नहीं होगा। उन्होंने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा शिव शक्ति सहकारी आवास समिति, नागपुर बनाम मेसर्स स्वराज डेवलपर्स और अन्य के मामले में दिए गए निर्णय, जो 2003 ए.आई.आर. (एससीडब्ल्यू) 2445 में प्रकाशित है, के साथ-साथ मद्रास उच्च

अनुवादित

न्यायालय द्वारा पोरमुसामी पंडारम बनाम द सेलम वैयप्पमलाई जंगमार के मामले में दिए गए निर्णय, जो ए.आई.आर. 1986 मद्रास 33 में प्रकाशित है, पर भरोसा किया है।

पुनरिक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने खंडन में कहा है कि विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए उपरोक्त निर्णयों में से कोई भी वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है, क्योंकि वे संहिता की धारा 115 में शामिल किए गए उत्तर प्रदेश पुनरिक्षण पर विचार नहीं करते हैं, और उन्होंने बदले में इस न्यायालय की समान पीठ द्वारा लल्ती देवी और अन्य बनाम बिंदु बिहारी वर्मा और अन्य, रिट सी संख्या 41940 वर्ष 2013 के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है, यह कहते हुए कि संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के अंतर्गत आवेदन पर निर्णय के विरुद्ध संहिता की धारा 115 के अंतर्गत पुनरिक्षण, संहिता की धारा 115(1)(ग) और धारा 115(3)(ii) के संदर्भ में स्वीकार्य होगा, क्योंकि एक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग अवैध रूप से और भौतिक अनियमितता के साथ, संहिता के आदेश XXVI नियम 9 में दर्शाई गई विशिष्ट शर्तों की अनदेखी करते हुए किया गया है ।

जहां तक संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के अंतर्गत आयोग बनाने के लिए आवेदन में पारित आदेश से संहिता की धारा 115 के अंतर्गत पुनरिक्षण की स्वीकार्यता का संबंध है, यह न्यायालय पाता है कि इस न्यायालय की समान पीठ द्वारा लल्ती देवी (उपरोक्त) में दिया गया निर्णय इस बिंदु पर है, क्योंकि इसने इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा रामशंकर तिवारी बनाम महादेव और अन्य के मामले में दिए गए निर्णय पर विचार किया है, जो 1968 एडब्ल्यूआर 103 में प्रकाशित है, जिसमें 'निर्णीत मामले' शब्द को निम्नलिखित तरीके से समझाया गया है:

"23. इसलिए, मेरी राय में, अभिवचन में पुनरिक्षण के लिए आवेदन को स्वीकृत या खारिज करने वाला प्रत्येक आदेश संहिता की धारा 115 के अंतर्गत संशोधनीय निर्णीत मामला नहीं देगा। अभिवचन में पुनरिक्षण के लिए आवेदन को अनुमति देने या अस्वीकार करने का आदेश हालांकि उस धारा के अंतर्गत संशोधनीय निर्णीत मामला दे सकता है यदि मांगा गया पुनरिक्षण पक्षकारों के अधिकारों और दायित्वों पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है या डालने की संभावना है और न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करता है या प्रभावित करने की संभावना है। इस सीमा तक मुझे लगता है कि मुझिज़या सुरज पाली के मामले में निर्णय अब अच्छा कानून नहीं माना जा सकता।

24. पूर्ण पीठ का गठन करने वाले न्यायाधीशों की बहुमत की राय है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI नियम 17 के अंतर्गत पारित आदेश, चाहे वह पुनरिक्षण की अनुमति दे या पुनरिक्षण की अनुमति देने से इनकार करे, संहिता की धारा 115 में उस अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर एक "निर्णीत मामला" है।"

समान पीठ ने उसके बाद उत्तर प्रदेश राज्य में लागू संशोधित धारा 115 के अंतर्गत

अनुवादित

पुनरिक्षण को निम्नलिखित शब्दों में स्वीकार्य माना है:

"26. उपरोक्त चर्चाओं के दृष्टिगत, यह न्यायालय मानता है कि विचारण न्यायालय ने सी.पी.सी. के आदेश 26 नियम 9 के अंतर्गत आवेदन को गुण-दोष के आधार पर निर्णीत न करके और एक शब्दजाल दृष्टिकोण अपनाकर उसे खारिज करके अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग अवैध रूप से और भौतिक अनियमितता के साथ किया है, इसलिए, मामला सी.पी.सी. की धारा 115(1)(ग) और धारा 115(3)(ii) के अंतर्गत आता है, पुनरिक्षण स्वीकार्य होगा। तथ्य के इस दृष्टिकोण में, यह न्यायालय पाता है कि वर्तमान मामले में पुनरिक्षण स्वीकार्य है।"

जहां तक विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय का संबंध है, यह स्पष्ट है कि वह संहिता की धारा 115 में शामिल किए गए उत्तर प्रदेश पुनरिक्षण पर विचार नहीं करता है और इसलिए वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होगा।

वर्तमान मामले में, हालांकि संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के अंतर्गत आवेदन को स्वीकृत किया गया है, लेकिन धारा 115 के अंतर्गत कानून का प्रस्ताव कि ऐसे मामले में भी यदि अधिकार क्षेत्र का प्रयोग अवैध रूप से और भौतिक अनियमितता के साथ किया गया है, तो पुनरिक्षण स्वीकार्य होगा, लल्ती देवी (उपरोक्त) के मामले में दी गई समान पीठ के निर्णय से समर्थन प्राप्त करता है और उसके प्रकाश में, वर्तमान पुनरिक्षण को स्वीकार्य माना जाता है।

इसी प्रकार का दृष्टिकोण इस न्यायालय के एक खंडपीठ निर्णय में भी लिया गया है, जो अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बनाम 7वें अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अलीगढ़ और अन्य के मामले में 1999 ए.एल.आर. 571 में प्रकाशित है।

वर्तमान पुनरिक्षण नियमित वाद संख्या 2216 वर्ष 2022 में संबंधित न्यायालय द्वारा दिनांक 15 नवंबर, 2022 को पारित आदेश के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसके द्वारा संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के अंतर्गत आयोग बनाने के लिए आवेदन को स्वीकृत किया गया था। पुनरिक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि आयोग बनाने का आदेश वादपत्र प्रस्तुत करने के पहले ही दिन पारित किया गया था, बिना पुनरिक्षणकर्ता/प्रतिवादियों को आपत्तियां दाखिल करने का कोई अवसर दिए। यह कहा गया है कि अन्यथा भी आक्षेपित आदेश में कोई तर्क नहीं दिया गया है जो सरसरी तौर पर पारित किया गया है, बिना इस तथ्य पर ध्यान दिए कि क्या ऐसा आवेदन संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के दायरे के भीतर स्वीकृत किया जा सकता है, विशेष रूप से जब आवेदन कार्यकारी परिषद की बैठकों और उसके कार्यवृत्त से संबंधित दस्तावेजों की जांच और परीक्षण करने के लिए आयोग बनाने से संबंधित था और साथ ही कार्यकारी परिषद के गठन और कुलपति निवास के निर्माण से संबंधित

अनुवादित

दस्तावेजों और किए गए खर्च और संशोधनों, परिवर्तनों आदि से संबंधित था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आयोग बनाने के लिए आवेदन साक्ष्य संग्रह के उद्देश्यों के लिए स्वीकृत नहीं किया जा सकता है, बल्कि केवल प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के पुष्टीकरण के उद्देश्यों के लिए और इसलिए पहले से ही रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य के लिए जारी किया जा सकता है। यह कहा गया है कि आवेदन में, जो शपथपत्र द्वारा समर्थित नहीं है, आयोग बनाने के लिए कोई तर्क नहीं दिया गया है। यह कहा गया है कि इस प्रकार आवेदन स्वयं संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के अंतर्गत निर्दिष्ट शर्तों के अनुसार स्वीकार्य नहीं था। उन्होंने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पदम सेन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में दिए गए निर्णय, जो ए.आई.आर. 1961 सुप्रीम कोर्ट 218 में प्रकाशित है, और इस न्यायालय द्वारा परवेज अख्तर और अन्य बनाम 4थे अतिरिक्त जिला न्यायाधीश आगरा और अन्य के मामले में दिए गए निर्णय, जो (1993) 2 एआरसी 304 में प्रकाशित है, के साथ-साथ एच.वी. नागेंद्रप्पा बनाम एम.एच. हनुमप्पा और अन्य, जो 2000 एससीसी अनलाइन कर्नाटक 164 में प्रकाशित है, और नसीब दीन और अन्य बनाम हरनेक सिंह, जो 2019 एससीसी अनलाइन हिमांचल प्रदेश 1034 में प्रकाशित है, पर भरोसा किया है।

विपक्षी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने पुनरिक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों का खंडन किया है, यह कहते हुए कि आवेदन संहिता के आदेश XXVI नियम 9 में दर्शाई गई शर्तों के चार कोनों के भीतर था, विशेष रूप से जब उपरोक्त दस्तावेज विश्वविद्यालय अधिकारियों के कब्जे में हैं जो स्वयं प्रतिवादी हैं और इसलिए वादी-उत्तरदायी विपक्षी के पास उन दस्तावेजों तक पहुंच का कोई तरीका नहीं था और इसलिए उपरोक्त दस्तावेजों तक पहुंच के लिए आयोग बनाने की आवश्यकता थी। यह भी कहा गया है कि वादपत्र में, विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा धन के उपयोग के संबंध में विशिष्ट दावा किया गया है और साथ ही यह तथ्य कि कार्यकारी परिषद विश्वविद्यालय के प्रथम परिनियम के अनुसार नहीं है और जिसके साबित करने के लिए, उपरोक्त दस्तावेजों को अनिवार्य रूप से रिकॉर्ड पर लाने की आवश्यकता थी। पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करते हुए और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के अवलोकन पर, यह प्रतीत होता है कि संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के अंतर्गत दिनांक 15 नवंबर, 2022 का आवेदन कार्यकारी परिषद की बैठकों और विभिन्न तिथियों पर आयोजित कार्यवृत्त से संबंधित दस्तावेजों की जांच और परीक्षण करने के लिए और कार्यकारी परिषद के गठन से संबंधित दस्तावेजों और साथ ही प्रतिवादियों द्वारा उक्त भवन में किए गए संशोधनों, परिवर्तनों, वृद्धि में किए गए खर्च से संबंधित दस्तावेजों और कुलपति निवास के निर्माण के लिए आयोग बनाने हेतु दायर किया गया था। आवेदन किसी शपथपत्र

अनुवादित

द्वारा समर्थित नहीं है और वास्तव में वादपत्र का उल्लेख करता है जो शपथपत्र द्वारा विधिवत समर्थित था। उक्त आवेदन को उसी दिन स्वीकृत कर दिया गया था बिना प्रतिवादियों से कोई आपत्तियां आमंत्रित किए।

आक्षेपित आदेश, दिनांक 15 नवंबर, 2022 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि आयोग बनाने के लिए आवेदन को स्वीकृत करने का कोई कारण दर्ज नहीं किया गया है। "सुना, आवेदन स्वीकृत" के रूप मे साधारण एक पंक्ति का आदेश पारित किया गया है ।

वर्तमान विवाद के उचित मूल्यांकन के लिए, आयोग बनाने से संबंधित संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के प्रावधानों पर ध्यान देना आवश्यक होगा जो निम्नलिखित शब्दों में है:

*" **स्थानीय जांच करने के लिए आयोग** - किसी भी वाद में जिसमें न्यायालय किसी विवादग्रस्त मामले को स्पष्ट करने के उद्देश्य से, या किसी संपत्ति के बाजार मूल्य, या किसी मध्यवर्ती लाभ या नुकसान या वार्षिक शुद्ध लाभ की राशि का पता लगाने के लिए स्थानीय जांच आवश्यक या उचित समझता है, न्यायालय ऐसे व्यक्ति को जिसे वह उपयुक्त समझे, एक आयोग जारी कर सकता है, उसे निर्देश देते हुए कि वह ऐसी जांच करे और उस पर न्यायालय को रिपोर्ट दे:*

परंतु, जहां राज्य सरकार ने ऐसे व्यक्तियों के संबंध में नियम बनाए हैं जिन्हें ऐसा आयोग जारी किया जाएगा, न्यायालय ऐसे नियमों से बाध्य होगा।"

उपरोक्त प्रावधान के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि स्थानीय जांच करने के लिए आयोग न्यायालय द्वारा अनुमति दी जा सकती है जहां वह स्थानीय जांच को किसी विवादग्रस्त मामले को स्पष्ट करने के उद्देश्य से या किसी संपत्ति के बाजार मूल्य, या किसी मध्यवर्ती लाभ या नुकसान या वार्षिक शुद्ध लाभ की राशि का पता लगाने के लिए आवश्यक या उचित समझता है। आयोग बनाने का उद्देश्य इस प्रकार उसके अंतर्गत दर्शाई गई शर्तों से स्पष्ट है जो मुख्य रूप से किसी विवादग्रस्त मामले को स्पष्ट करने के उद्देश्यों के लिए ही है। संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के प्रावधान वादी की ओर से साक्ष्य संग्रह के उद्देश्यों के लिए लागू नहीं होते हैं।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने रेमको इंडस्ट्रियल वर्कर्स हाउस बिल्डिंग कोऑप. सोसाइटी बनाम लक्ष्मीशा एम. और अन्य के मामले में, जो (2003)11 एससीसी 666; ए.आई.आर. 2003 सुप्रीम कोर्ट 3167 में प्रकाशित है, पहले ही यह माना है कि एक वादी को अपने स्वयं के आधार पर सफल होना चाहिए, न कि प्रतिवादी की कमजोरी पर। इस प्रकार वादपत्र में किए गए अभिवचनों को साक्ष्य द्वारा पुष्ट या समर्थित करने की आवश्यकता होती है, जिसे वादी द्वारा स्वयं रिकॉर्ड पर रखने की आवश्यकता होती है। ऐसे मामले में एकमात्र अपवाद वह हो सकता है जहां ऐसा साक्ष्य वादी की पहुंच से बाहर है या ऐसे सुरक्षित स्थान पर है कि उसकी सामान्य रूप से वहां तक पहुंच नहीं होगी, लेकिन ऐसे मामले में दर्शाए गए प्रकृति के आयोग के

अनुवादित

जारी होने के लिए, वादी के लिए यह आवश्यक और अनिवार्य होगा कि वह विशेष रूप से अभिवचन करे कि वादी ऐसे साक्ष्य तक क्यों नहीं पहुंच सकता था, जिसके लिए इसलिए ऐसे साक्ष्य के संग्रह के उद्देश्यों के लिए आयोग बनाने की आवश्यकता होगी। माननीय उच्चतम न्यायालय ने पदम सेन (उपरोक्त) के मामले में स्पष्ट रूप से माना है कि किसी पक्ष के लिए साक्ष्य एकत्र करना या यहां तक कि प्रतिद्वंद्वी पक्ष को लेखा बहियों में जाली प्रविष्टि करने के बुरे परिणामों से बचाना न्यायालय का काम नहीं है। यह माना गया था कि प्रतिवादियों का अनुरोध, जो उस समय न्यायालयों द्वारा दस्तावेजी साक्ष्य एकत्र करने के बराबर था, जो प्रतिवादी अपने पक्ष में मानते थे, की अनुमति नहीं दी जा सकती थी। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ 15 निम्नानुसार हैं:

"15. यह, हालांकि, नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि सर्वेक्षण संख्या 132/2 में विशिष्ट भूमि के स्वामित्व और कब्जे के दावे को साबित करने का बोझ प्रारंभ में वादी पर था। प्रतिवादी 1 ने लिखित बयान में वादी के दावे का विरोध किया और स्वयं के लिए स्वामित्व का दावा किया। किरायेदार मुनियप्पा के पक्ष में दिए गए अधिभोग अधिकारों का अनुदान जो दिनांक 28-5-1965 के आदेश (प्रदर्श डी-3) में शामिल था, वादी की ओर से बिना किसी आपत्ति के विचारण न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था और उसे प्रदर्शित करने और प्रदर्श डी-3 के रूप में चिह्नित करने की अनुमति दी गई थी। जब प्रतिवादी 1 के पक्ष में 1 एकड़ 3 गुंटा की सीमा तक वाद भूमि के अनुदान का ऐसा दस्तावेज विचारण न्यायालय के समक्ष था, तो उसके लिए यह आवश्यक था कि वह पूर्व इनामदार के पक्ष में दिनांक 9-12-1969 (प्रदर्श पी-1) के बाद के अनुदान पर इसके प्रभाव पर विचार करे। विवाद में न रहने वाली कानूनी स्थिति यह है कि यदि सर्वेक्षण संख्या 132/2 में वाद भूमि - क्षेत्रफल 1 एकड़ 3 गुंटा पहले ही दिनांक 28-5-1965 के आदेश (प्रदर्श डी-3) द्वारा किरायेदार मुनियप्पा को दी जा चुकी थी, तो वही भूमि दिनांक 9-12-1969 के आदेश (प्रदर्श पी-1) में पूर्व इनामदार को 1/7वें हिस्से की सीमा तक अनुदान का हिस्सा नहीं हो सकती थी। दिनांक 28-5-1965 के पूर्व अनुदान (प्रदर्श डी-3) और दिनांक 9-12-1969 के बाद के अनुदान (प्रदर्श पी-1) के आधार पर एक स्पष्ट कानूनी मुद्दा, दोनों अनुदानों के तहत भूमि की पहचान के साथ, विचारण न्यायालय के साथ-साथ अपील न्यायालय के समक्ष उठा था। उक्त मुद्दे का जवाब नीचे की दोनों न्यायालयों में से किसी ने नहीं दिया है। वादी को अपने स्वयं के मामले की ताकत पर सफल होना है, न कि प्रतिवादी के मामले की कमजोरी पर। प्रेषण के लिए प्रार्थना का विरोध करते हुए, वादी-प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कंडा बनाम वाघु [ए.आई.आर. 1950 पीसी 68: 77 आईए 15] के मामले में प्रिवी काउंसिल के निर्णय पर मजबूत भरोसा किया है। प्रस्तुत तर्क यह है कि चूंकि प्रदर्श डी-3 के आधार पर अभिवचन प्रतिवादी 1 के लिखित बयान में नहीं उठाए

अनुवादित

गए थे और विचारण न्यायालय में प्रदर्श डी-3 के आधार पर कोई मुद्दा नहीं उठाया गया था, इस न्यायालय को उक्त मुद्दे पर पुनर्विचारण के लिए मामले को वापस नहीं भेजना चाहिए।"

इसी तर्क को इस न्यायालय की समान पीठ ने परवेज अख्तर (उपरोक्त) के मामले में निम्नलिखित तरीके से भी निकाला है:

"11. दूसरे शब्दों में, स्थानीय जांच का उद्देश्य इतना अधिक साक्ष्य एकत्र करना नहीं है, जो न्यायालय में लिया जा सकता है, बल्कि केवल प्रस्तुत किए गए साक्ष्य या पक्षकारों के बीच विवाद की प्रकृति के मूल्यांकन को सुविधाजनक बनाना है या न्यायालय के समक्ष पक्षकारों के साक्ष्य में छोड़े गए किसी बिंदु के मूल्यांकन को सुविधाजनक बनाना है। आयोग बनाने का उद्देश्य यह है कि आयुक्त द्वारा मौके पर जांच के बाद वास्तव में पाए गए उन तथ्यों से कुछ सहायता प्राप्त की जा सकती है, लेकिन वह जांच विवादग्रस्त मामले के संबंध में होनी चाहिए और अन्यथा नहीं। विधायिका ने यह आवश्यक समझा कि न्यायालय का विवेक सभी शर्तों का पालन करते हुए प्रयोग किया जा सकता है, जिससे आयुक्त द्वारा कुछ तथ्यों की जांच की जा सके जो विशिष्ट तथ्यों का वादा करते हैं और जो स्थल निरीक्षण से ही प्राप्त किए जा सकते हैं, लेकिन वह सीधे किसी विवादग्रस्त मामले के संबंध में होना चाहिए। यह न्यायालय को रिकॉर्ड पर साक्ष्य का उचित और सही ढंग से मूल्यांकन करने में सक्षम बनाने के लिए है। आयुक्त की रिपोर्ट किसी भी बिंदु को स्पष्ट करती है और समझाती है जो पक्षकारों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने के बाद संदिग्ध प्रतीत हो सकता है। आदेश XXVI नियम 9 का प्रावधान, रिकॉर्ड पर साक्ष्य और पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत स्वतंत्र साक्ष्य की पूर्वकल्पना करता है, जिसे स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती है।"

देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों ने भी आदेश XXVI नियम 9 के प्रावधानों को उसी तरह से स्पष्ट किया है जैसा कि हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा नसीब दीन (उपरोक्त) के मामले में और कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा एच.वी. नागेंद्रप्पा (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णयों में दर्शाया गया है।

वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उपरोक्त निर्णयों की प्रयोज्यता पर, यह स्पष्ट है कि दस्तावेजों की जांच और परीक्षण करने के लिए आयोग बनाने का आवेदन, हालांकि शपथपत्र द्वारा समर्थित नहीं था, अन्यथा भी संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के अनुसार स्वीकार्य नहीं था जैसा कि यहां ऊपर देखा गया है, विशेष रूप से जब वादी द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि वह आवश्यक दस्तावेजों तक क्यों और कैसे नहीं पहुंच सकता था या यहां तक कि उपरोक्त दस्तावेजों का महत्व और प्रासंगिकता किसी विवाद को स्पष्ट करने के उद्देश्यों के लिए क्या है, विशेष रूप से जब अभी तक मुद्दे भी तय नहीं किए गए हैं और प्रतिवादियों से आपत्तियां भी नहीं मांगी गई हैं।

यहां ऊपर पहले ही यह देखा जा चुका है कि आदेश XXVI नियम 9 के अंतर्गत

अनुवादित

आवेदनों को केवल एक या दूसरे पक्ष के मामले को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्यों के लिए स्वीकृत नहीं किया जा सकता है और यह न्यायालयों का काम नहीं है कि वे किसी भी पक्ष के साक्ष्य का बोझ वहन करें। उपरोक्त को दृष्टिगत रखते हुए, सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ खंड, मलिहाबाद, लखनऊ द्वारा नियमित वाद संख्या 2216 वर्ष 2022 में दिनांक 15 नवंबर, 2022 को पारित आक्षेपित आदेश, जोकानून के विरुद्ध है, अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, पुनरिक्षण **स्वीकृत** किया जाता है। पक्षकार अपने-अपने खर्चे वहन करेंगे।

(2023) 2 ILRA 364

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 02.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा,
माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद,

आपराधिक अपील संख्या 1240/2021

राजेंद्र यादव

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री कैलाश पति सिंह यादव, श्री राजीव लोचन शुक्ला, सुश्री सुमन भारती

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या- संदेह का लाभ - लिखित रिपोर्ट में, पी.डब्ल्यू.-1/वादी ने कहा कि शाम को, जब उसके पिता वापस लौट रहे थे, आरोपी ने शाम लगभग 7:45 बजे उस पर घात लगाकर हमला किया और तब तक ईंट से उस पर बार-बार हमला किया जब तक वह मर नहीं गया - आयोजित - न्यायालय ने यह अविश्वसनीय पाया कि पी.डब्लू.-4 और पी.डब्लू.-3, जिनकी उम्र क्रमशः 66 और 60 वर्ष थी, घटना को सही ढंग से अंधेरे में 15 से 20 कदम की दूरी से देख सकते थे और आरोपी की पहचान की, विशेष रूप से पास से गुजर रही जीप की थोड़ी रोशनी में हमले के हथियार यानी ईंट को विधिक जांच के लिए नहीं भेजा गया, जो अभियोजन पक्ष के वाद में संदेह उत्पन्न करता है - घटना स्थल में विसंगति थी - पी.डब्लू.-8 (जांच अधिकारी) द्वारा तैयार साइट प्लान के अनुसार, घटनास्थल जी.टी. रोड से 700 से 800 मीटर दूर था, जबकि तथ्य के अभियोजन पक्ष के गवाहों यानी पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 के बयान के अनुसार घटनास्थल गांव कटेशर भूसा मंडी बावन बिगहा खेत (मैदान) के पास था - दोनों स्थान एक दूसरे से बहुत दूर हैं - पी.डब्ल्यू.-3 के बयानों से यह स्पष्ट था कि जब पी.डब्ल्यू.-3 घटना स्थल पर पहुंचा तब तक मृतक की मृत्यु हो चुकी थी और जब यह घटना घटी तो उसने उसे नहीं देखा था - इन विसंगतियों के कारण अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची कि अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे अभियुक्त का अपराध

अनुवादित

स्थापित नहीं किया था जो अभियुक्त-अपीलकर्ता को संदेह के लाभ का अधिकारी बनाता है - सड़क दुर्घटना में भी मृतक की मृत्यु की संभावना नहीं हो सकती है। (पैरा 35, 36, 38, 40)

अनुमत। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद, द्वारा प्रदत्त)

यह आपराधिक अपील अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट-द्वितीय, चंदौली द्वारा 2013 के सत्र परीक्षण संख्या 04 (उ.प्र. राज्य बनाम राजेंद्र यादव) में पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 10.02.2021 के विरुद्ध निर्देशित है। मामला अपराध संख्या 232/2012, जिसमें अभियुक्त-अपीलकर्ता- राजेंद्र यादव को भा.द.सं. की धारा 302 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई, साथ ही 15,000/- रुपये का जुर्माना भी लगाया गया, और उसके चूक होने पर छह महीने अतिरिक्त कारावास की सजा सुनाई गई।

हमने अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव लोचन शुक्ला को, अधिवक्ता सुश्री सुमन भारती की सहायता से और राज्य की ओर से विद्वान सहा.शास.अधि. श्रीमती अर्चना सिंह को सुना है, साथ ही अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्रियों का भी गहन अध्ययन किया है।

1. अभियोजन पक्ष के अनुसार मुसे यादव (पी.डब्लू.1/प्रथम सूचनाकर्ता), जोकि मृतक का बेटा है, उसके द्वारा दिनांक 17.6.2012 को पुलिस स्टेशन मुगलसराय, जिला चंदौली को एक लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श.क-1) दी गई थी।यह कहते हुए कि उसके पिता दूध बेचते थे। हमेशा की तरह दिनांक 17.6.2012 को शाम को,वह दूध बेचने गये थे और जब वह गांव कटेसरा निवासी सरन यादव को दूध आपूर्ति कर वापस लौट रहे थे तो आरोपी उसी के गांव के निवासी जगनन्दन यादव का पुत्र राजेंदर यादव, जिनसे रास्ते और खुली जमीन को लेकर बीच विवाद चल रहा था, शाम करीब 7:45 बजे कटेसर भूसा मंडी के पास घात लगाकर बैठा और मृतक पर ईंट से लगातार तब तक वार किया, जब तक उनकी मौत नहीं हो गई और उनके पिता का शव मौके पर पड़ा हुआ है. उपरोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 17.6.2012 (प्रदर्श.क.6) दर्ज की गई और आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ भा.द.सं. की धारा 302 के तहत मामला अपराध संख्या 232/2012 के रूप में दर्ज किया गया।

प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद, पी.डब्लू.-8, अर्थात संजय सिंह, अन्वेषण अधिकारी उसी दिन यानी 17.6.2012 को लगभग अपराह्न 7:30 - 8:00 बजे घटना स्थल पर पहुंचे, हालांकि मृत्यु-समीक्षा की कार्यवाही अगले दिन पूर्वाह्न 06:00 बजे शुरू हुई और लगभग 7:30 बजे समाप्त हुआ. इस मामले के अन्वेषणअधिकारी पी.डब्लू-8 ने साइकिल और दूध की बाल्टी (बल्टा) (प्रदर्श.क-3), खून से सना हुआ ईंट का टुकड़ा (प्रदर्श.क-4) बरामद किया। खून

अनुवादित

से सना हुआ और सादी मिट्टी (प्रदर्श.क-5) और उस संबंध में रिकवरी मेमो तैयार किया।

2. पोस्टमॉर्टम 18.06.2012 को किया गया है जिसमें मृत्यु का कारण निम्नलिखित पूर्व मृत्यु सिर की चोटों के परिणामस्वरूप कोमा पाया गया है:

"1. .8 सेमी x 2 सेमी फटी हुई चोट, दाहिनी तरफ ललाट की हड्डी का भाग और बायीं ओर की पार्श्विका हड्डी का भाग, के ऊपर

2. कटे हुए घाव के ठीक ऊपर 10 सेमी x 6 सेमी की सूजन

3. पश्च भाग को छोड़कर खोपड़ी पर चोट लगी हुई है

4. नाक क्षेत्र और दोनों गालों के हिस्से सहित चेहरे पर 4 सेमी x 8 सेमी की सूजन। मैक्सिला के दोनों तरफ फ्रैक्चर हो गया।"

3. अन्वेषण अंततः 30.07.2012 को आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र (प्रदर्श.क-8) प्रस्तुत करने के साथ समाप्त हुई। संबंधित मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय को सौंप दिया, जहां 28.06.2014 को आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ आईपीसी की धारा 302 के तहत आरोप तय किए गए। आरोपी-अपीलकर्ता को आरोप पढ़कर सुनाए गए, जिसने आरोप से इनकार किया और विचारण की मांग की।

4. अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप को स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्यों पर भरोसा किया है, जो विधिवत साबित हुए और परिणामस्वरूप प्रदर्श के रूप में चिह्नित किए गए:

"दिनांक 17.6.2012 की लिखित रिपोर्ट को प्रदर्श.क-1 के रूप में चिह्नित किया गया है; एफआईआर दिनांक 17.6.2012 को प्रदर्श.क-6 के रूप में चिह्नित किया गया है; साइकिल और बकेट का रिकवरी मेमो दिनांक 18.6.2012 को प्रदर्श.क-3 के रूप में चिह्नित किया गया है; ईंटों के टुकड़े का रिकवरी मेमो दिनांक 18.6.2012 को प्रदर्श.क -4 के रूप में चिह्नित किया गया है; खून से सने और सादी मिट्टी के रिकवरी मेमो दिनांक 18.06.2012 को प्रदर्श.क-5 के रूप में चिह्नित किया गया है; पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट दिनांक 18.06.2012 को प्रदर्श.क-15 के रूप में चिह्नित किया गया है; पंचायतनामा दिनांक 18.06.2012 को प्रदर्श.क-10 अंकित किया गया है। दिनांक 18.06.2012 के सूचकांक के साथ साइट प्लान को प्रदर्श.क-9 के रूप में चिह्नित किया गया है एवं अभियोग पत्र दिनांक 30.07.2012 को प्रदर्श.क-8 के रूप में अंकित किया गया है।"

5. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों की मौखिक गवाही भी पेश की है: -

"पीडब्लू-1/सूचनाकर्ता, अर्थात्, मुसे यादव, मृतक का पुत्र; पीडब्लू-2, अर्थात् मृतक का पुत्र बोदर यादव; पीडब्लू-3, अर्थात्

अनुवादित

नखड़ू यादव; पीडब्लू-4, अर्थात्, शंकर यादव, पीडब्लू-5, अर्थात्,पंचायतनामा के गवाह पिंटू यादव, पीडब्लू-6, एफआईआर दर्ज करने वाले सब इंस्पेक्टर राम कुमार सिंह, पीडब्लू-7 द्वितीय अन्वेषण अधिकारी राम प्रकट यादव, पीडब्लू-8 प्रथम अन्वेषण अधिकारी संजय सिंह, पीडब्लू-9 एसआई प्रवीण कुमार सिंह, पीडब्लू-10, अर्थात् डॉ. अशोक कुमार, जिन्होंने मृतक का पोस्टमार्टम किया था।

6. विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर, आरोपी-अपीलकर्ता को द.प्र.सं. की धारा 313 के तहत अपना बयान दर्ज करने के लिए दोषी ठहराने वाली सामग्री रखी गई थी। आरोपी-अपीलकर्ता ने कहा है कि उसे दुश्मनी के कारण वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है और अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान गलत हैं। उसने आगे कहा कि मृतक की मृत्यु सड़क दुर्घटना में लगी चोटों के कारण हुई, जिसके लिए मृतक की पत्नी, जोखनी देवी को 5 लाख रुपये का चेक एक राज्य योजना के तहत, अर्थात् यूपी कृषक दुर्घटना बीमा योजना अंतर्गत 3.9.2013 को मिला।

7. बचाव पक्ष ने तीन गवाह भी पेश किए हैं, डीडब्ल्यू-1 लालता प्रसाद, तहसीलदार मुगलसराय, चंदौली, डीडब्ल्यू-2, फूलचंद्र यादव, तहसीलदार सदर, चंदौली और डीडब्ल्यू-3, खुशहाल प्रसाद, सेवानिवृत्त लेखपाल।

8. पक्षों द्वारा अभिलेख पर रखी गई सामग्री के परिशीलन और विचार के बाद, विचारण न्यायालय ने माना कि पीडब्लू-3 और पीडब्लू4 घटना के चश्मदीद गवाह हैं और उनके बयानों के आधार पर (मुख्य परीक्षण के साथ-साथ जिरह में) यह निष्कर्ष पर आया है कि मृतक कैलाश की हत्या आरोपियों ने ईंट से हमला करके की थी और घटना को प्रत्यक्षदर्शियों ने क्षेत्र से गुजर रही एक जीप की हेडलाइट में अपनी आंखों से देखा है। निचले न्यायालय ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि मृतक कैलाश की मृत्यु सड़क दुर्घटना में नहीं हुई थी, बल्कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा उसकी हत्या की गई थी। पीडब्लू-10, अर्थात् डॉ. अशोक कुमार ने इस बात से इनकार किया है कि मृतक की मृत्यु सड़क दुर्घटना में लगी चोटों के कारण हुई है और कहा है कि चोट संख्या 3 पहिये के नीचे कुचले जाने से नहीं आ सकती है और वही मृतक की मृत्यु का कारण हो सकता है, और इस चोट के कारण मृतक की खोपड़ी की हड्डियां टूट गईं। निचले न्यायालय ने यह भी कहा कि कृषक दुर्घटना बीमा योजना का लाभ केवल सड़क दुर्घटना में मरने वाले आश्रितों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि हत्या के मामले में भी दिया जा सकता है।उपरोक्त निष्कर्ष दर्ज करने के बाद विचारण न्यायालय ने माना कि मृतक की हत्या, आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा की गई है। इसलिए, अभियोजन उचित संदेह से परे आरोपी अपीलकर्ता के अपराध को साबित करने में सक्षम रहा है और तदनुसार उसे दोषी ठहराया गया है और जुर्माने के साथ

अनुवादित

आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है। दोषसिद्धि के इस निर्णय के विरुद्ध ही वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई है।

9. आरोपी-अपीलकर्ता के विद्वान वकील का कहना है कि आरोपी अपीलकर्ता को दुश्मनी के कारण वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने आगे कहा कि पक्षों के बीच रास्ते और खुली जमीन के संबंध में विवाद चल रहा था और मुखबिर ने जानबूझकर आरोपी अपीलकर्ता को फंसाया है। यह भी कहा गया है कि मृतक की सड़क पर दुर्घटना हुई थी और अभियोजन पक्ष ने इसे हत्या का रंग दे दिया है। मृतक की पत्नी जोखनी देवी को कृषक दुर्घटना बीमा योजना के तहत 5 लाख रुपये का चेक मिला है. यह घटना सड़क पर शाम लगभग 7:45 बजे घटी और प्रकाश का कोई स्रोत नहीं था और सभी गवाह, जिन्होंने आरोप लगाया है कि उन्होंने घटना देखी है, वे प्रत्यक्षदर्शी नहीं हैं क्योंकि वे घटना स्थल पर मृतक के मृत्यु के बाद पहुंचे थे।

10. दूसरी ओर विद्वान सहा.शास.अधि.का मानना है कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें शत्रुता स्वीकार की गई है और चश्मदीद गवाहों, पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 के बयान बिल्कुल विश्वसनीय और भरोसेमंद हैं और अभियोजन मामले के समर्थन के लिए आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ प्रत्यक्ष सबूत हैं। अभियोजन पक्ष द्वारा घटना स्थल पर कोई विवाद नहीं किया गया है। अभियोजन पक्ष के द्वारा दिए गए साक्ष्य की संचयी ताकत पर, विद्वान सहा.शास.अधि. का कहना है कि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है और आक्षेपित निर्णय और आदेश किसी भी दुर्बलता और अवैधता से ग्रस्त नहीं है और वर्तमान अपील इस न्यायालय द्वारा खारिज किए जाने योग्य है।

11. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दृढ़तापूर्वक निवेदित की गई संबंधित दलीलों की जांच की है और निचले न्यायालय के अभिलेखों सहित वर्तमान अपील के अभिलेखों का अवलोकन किया है।

12. इस अपील में संबोधित करने और निर्धारित करने के लिए आवश्यक एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अपराध का जो निष्कर्ष निकाला गया है और आरोपी-अपीलकर्ता को सजा दी गई, कानूनी और टिकाऊ है और इसमें कोई दुर्बलता और प्रतिकूलता नहीं है।

13. अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान सहा.शास.अधि.द्वारा स्थापित किए गए मामले के गुणदोषविवेचन में प्रवेश करने से पहले, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय और आदेश के दृष्टिगत,हमारे लिए अभियोजन पक्ष गवाहों के बयानों का संक्षेप में उल्लेख करना वांछनीय है।

14. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए पीडब्लू-1 अर्थात्, मुसे यादव (प्रथम सूचनाकर्ता) मृतक पुत्र, के

अनुवादित

बयान पर भरोसा किया है. उसने कहा है कि घटना 17.6.2012 की है। घटना के वक्त उसके पिता कैलाश यादव दूध बेचा करते थे. वह प्रतिदिन दूध इकट्ठा कर साइकिल से सरन यादव के यहां ले जाते थे. उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन पर,मृतक कैलाश यादव रोज की तरह शाम को दूध बेचने गये थे और जब वह घर लौट रहे थे तो शाम करीब 7:45 बजे सुनसान जगह पर घात लगाकर बैठे उसके गांव के ही जगनंदन यादव के पुत्र राजेंद्र यादव ने उसके पिता को धक्का देकर साइकिल से फेंक दिया और ईंट से हमला कर उनकी हत्या कर दी। घटना के पूर्व से ही आरोपी एवं उसके परिवार के बीच रास्ते एवं खुली जमीन को लेकर विवाद चल रहा था, जिसके कारण आरोपी-अपीलकर्ता मृतक से दुश्मनी रखता था। उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन, उसके गांव के नखड़ू यादव (पीडब्लू-3) और शंकर यादव (पीडब्लू-4) भी दूध की आपूर्ति करके लौट रहे थे। रात करीब आठ बजे नखड़ू यादव उसके घर आया और बताया कि गांव कटेसर भूसा मंडी बावन बिगहा खेत के पास राजेंद्र यादव ने उसके पिता की ईंट से हमला कर हत्या कर दी है. इस सूचना पर सूचनाकर्ता पीडब्लू -1 अपने भाई के साथ घटनास्थल पर पहुंचा तो देखा कि उसके पिता का शव भूसा मंडी से करीब 500 मीटर दूर उबड़-खाबड़ रास्ते पर एक सुनसान जगह पर पड़ा हुआ था। इसके बाद वह अपने भाई बोदर यादव (पीडब्लू-2) के साथ थाना कोतवाली मुगलसराय गया और थाने में लिखित रिपोर्ट दी जिस पर प्र.सू.रि. दर्ज की गई।

15. जिरह में, इस गवाह ने बताया कि उसे अपने पिता की हत्या की जानकारी नखड़ू यादव से मिली और जब वह घटनास्थल पर पहुंचा तो रात के करीब 8:15 बज रहे थे, उसने अपने पिता को हिलाया डुलाया लेकिन कोई जवाब नहीं मिला. जिससे उसे आशंका हुई थी कि उसके पिता की मौत हो गयी है. उसके पिता का सिर और चेहरा पूरी तरह कुचला हुआ था और चेहरे के एक तरफ से खून बह रहा था. इसके अलावा और कोई चोट नहीं आई थी. उसने आगे कहा कि नखड़ू यादव की सूचना पर उन्होंने राजेंद्र यादव के खिलाफ आवेदन दिया था. नखड़ू यादव ने उन्हें बताया था कि मृतक कैलाश यादव की हत्या अभियुक्त अपीलार्थी राजेंद्र यादव ने ईंट से हमला कर कर दी है. उसने यह भी कहा है कि नखड़ू यादव ने यह नहीं बताया कि घटना को किसी और ने भी देखा था या उसने मृतक को बचाने की कोशिश की थी. जब अन्वेषण अधिकारी द्वारा मृत्यु समीक्षा की गई थी तो नखड़ू यादव उपस्थित नहीं थे। उसने अन्वेषण अधिकारी को बताया कि मृतक के पास ईंट, साइकिल और दूध की बाल्टी (बल्टा) पड़ी थी।

16. पीडब्लू-2 अर्थात् मृतक के पुत्र बोदर यादव ने अभियोजन मामले का समर्थन किया है और विचारण के चरण में पीडब्लू-1 द्वारा अपनाए गए रुख को ही सारतः अपनाया है। हत्या बावन बिगहा भूसा मंडी के फुटपाथ पर हुई. उसने स्वीकार किया है कि उसने घटना नहीं देखी है और उसे तथा

अनुवादित

उसके भाई मुसे यादव को इसकी सूचना नखड़ू यादव ने दी थी. जब वह घटनास्थल पर पहुंचे तो देखा कि मृतक के चेहरे से खून बह रहा था और शरीर के अन्य हिस्सों से खून नहीं बह रहा था. रात के करीब 8 बजे थे और लाइट नहीं थी. घटनास्थल से उसका घर 500 मीटर की दूरी पर है. किसी भी ग्रामीण ने यह नहीं बताया कि राजेंद्र ने कैलाश की हत्या कर दी है. नखड़ू यादव उसका चचेरा भाई है. घटना से पहले नखड़ू यादव और राजेंद्र यादव के बीच विवाद हुआ था, जिसमें दोनों पक्षों ने एक-दूसरे को फंसाया है. उसने आगे कहा है कि उसे इस बात की जानकारी नहीं है कि उनकी मां को उनके पिता कैलाश यादव की सड़क दुर्घटना में मृत्यु के संबंध में कृषक दुर्घटना बीमा योजना के तहत मोटर दुर्घटना दावे के लिए 5 लाख रुपये का चेक मिला है। उसने इस बात से इनकार किया है कि नखड़ू यादव द्वारा दी गयी गलत सूचना पर मामला दर्ज किया गया है.

17. पीडब्लू-3, नखड़ू यादव ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि घटना 17.6.2012 को लगभग 7:45 बजे शाम को हुई थी। घटना दिनांक को वह और शंकर यादव दूध आपूर्ति के बाद लौट रहे थे. उनसे आगे कैलाश यादव (मृतक) था, वह भी दूध सप्लाई कर लौट रहा था. जब वे कटेशर भूसा मंडी बावन बिगहा खेत गांव के पास पहुंचे तो वहां से गुजर रही जीप की हेडलाइट में देखा कि जगनंदन यादव के पुत्र राजेंद्र यादव ने ईंट से हमला कर मृतक कैलाश यादव की हत्या कर दी है और कैलाश यादव साइकिल में फंसा हुआ है. उसने आगे कहा है कि उसने और शंकर (पीडब्लू4) ने घटना देखी है। वे मौके पर पहुंचे और राजेंद्र यादव को पकड़ने की कोशिश की लेकिन वह झाड़ी में भाग गया। उसने घर आकर मृतक के बेटों को घटना की जानकारी दी। उसने आगे कहा है कि रास्ते के विवाद को लेकर उसने आरोपी राजेंद्र यादव के खिलाफ मामला दर्ज कराया था. मृतक कैलाश यादव उसका सगा चाचा था. अभियुक्त-अपीलकर्ता राजेंद्र यादव को घटनास्थल से 20 कदम की दूरी से देखा गया था। जब आरोपी-अपीलकर्ता मृतक के साथ मारपीट कर रहा था तो उसने मृतक को बचाने की कोशिश की लेकिन अंधेरे के कारण वह उसे पकड़ नहीं सका।

18. इस गवाह ने आगे बताया है कि जब राजेंद्र, कैलाश पर हमला कर रहा था तो अंधेरा था।उसने स्वीकार किया है कि 10 से 15 या 20 दिनों के बाद पुलिस ने द.प्र.सं.की धारा 161 के तहत उनका बयान दर्ज किया है. उसने यह बताने में असमर्थता जताई है कि मृतक की पत्नी जोखनी देवी ने कैलाश की मौत को एक सड़क दुर्घटना में हुयी एक मौत के रूप में दिखाकर मुआवजे के रूप में 5 लाख रुपये प्राप्त किए थे या नहीं.

19. पीडब्लू-4 अर्थात शंकर यादव ने कहा है कि घटना के दिन, वह नखड़ू यादव के साथ दूध की आपूर्ति करके घर लौट रहे थे। उनसे आगे कैलाश यादव थे. शाम करीब

अनुवादित

7:45 बजे जब वे कटेशर भूसा मंडी, बावन बिगहा मैदान के पास पहुंचे तो सामने से आ रही एक जीप की हेडलाइट में देखा, जो एक-दो सेकेंड के लिए उपलब्ध था कि कैलाश यादव दूध की बाल्टी के साथ साइकिल में फंसा हुआ है और आरोपी राजेंद्र यादव ईंट से कैलाश पर हमला कर रहा था. आरोपी राजेंद्र यादव ने रास्ते और खुली जमीन के विवाद को लेकर दुश्मनी के कारण मृतक की हत्या कर दी. उसने आगे कहा है कि उसने और नखड़ू ने घटना को 15-20 कदम से अधिक दूरी से देखा है और घटना के समय अंधेरा था। उसने स्वीकार किया कि जीप मौके पर नहीं रुकी और वे उसका पंजीकरण संख्या नहीं देख सके। उसने स्वीकार किया है कि नखड़ू यादव और आरोपी राजेंद्र यादव के बीच वहाँ मुकदमा विचाराधीन था।

20. पीडब्लू-5, अर्थात्, पिंटू यादव मृत्यु समीक्षा(प्रदर्श क-1)का गवाह है।उसने साइकिल और दूध की बाल्टी का बरामदगी ज्ञाप भी साबित किया है। उससे जिरह की गई है जिसमें उसने कहा है कि उसने कोरे कागज पर हस्ताक्षर किए थे। उसने स्वीकार किया है कि चूंकि खून से सने व सादी मिट्टी का बरामदगी ज्ञाप उन्हें न्यायालय में नहीं दिखाया गया, इसलिए वह उक्त बरामदगी को साबित नहीं कर सका. उसने आगे स्वीकार किया कि राजेंद्र यादव और उनके पिता नखड़ू यादव के बीच मार-पिटाई को लेकर मुकदमा चल रहा था. उसने माना है कि दोनों के बीच दुश्मनी थी.

21. पीडब्लू- 6 अर्थात एसआई रामकुमार सिंह ने चिक प्र.सू.रि. (जिसे प्रदर्श.क-6 के रूप में चिह्नित किया गया है) को साबित किया है।

22. पीडब्लू-7 रामप्रकट यादव हैं, जिन्होंने आरोप पत्र संख्या 110/12, आरोपी-अपीलकर्ता राजेंद्र यादव पुत्र जगानंद यादव के खिलाफ, धारा 302 द.प्र.सं. के तहत प्रस्तुत की है, उनसे जिरह की गई है जिसमें उसने कहा है कि चूंकि कथित हथियार यानी ईंट का टुकड़ा उसे विचारण न्यायालय में नहीं दिखाया गया है, वह इसे साबित करने में असमर्थ था। उसने कहा है कि वह इस बात का खुलासा नहीं कर सकते कि किस तारीख और महीने में ईंट के टुकड़े को न्यायिक जांच के लिए न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला में भेजा गया है और न्यायिक आख्या भी पेश नहीं की गयी है. उसने अपनी जिरह में आगे कहा है कि चूँकि गवाहों द्वारा जीप की संख्या नहीं बताया गया था और उस सड़क पर हर दिन कई जीपें गुजरती थीं, इसलिए वह उस जीप का पता नहीं लगा सके जिसकी हेडलाइट में अभियोजन पक्ष के गवाहों ने घटना देखी थी।

23. पीडब्लू-8 संजय सिंह है. उसने इस मामले में आंशिक तौर पर अन्वेषण किया है. उसने स्वीकार किया कि शव जीटी रोड से 7-8 सौ मीटर की दूरी पर खेत में पड़ा था. उसने मृतक का शव पिच रोड पर पड़े होने की बात से इंकार किया है। उसने आगे स्वीकार किया है कि हमले के हथियार यानी

अनुवादित

ईंट के टुकड़े को न्यायिक जांच के लिए न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला में नहीं भेजा गया है. घटनास्थल पर बिजली की आपूर्ति नहीं थी और वहां पूरी तरह अंधेरा था. उसने स्वीकार किया है कि उसने साइट प्लान में वह स्थान अंकित नहीं किया है, जहां से गवाहों ने घटना देखी है. उसने हमले का हथियार यानी ईंट का टुकड़ा, खून से सना हुआ और सादी मिट्टी न्यायिक जांच के लिए नहीं भेजा. उसने इस बात का अन्वेषण नहीं किया है कि मृतक की पत्नी को सड़क दुर्घटना दावे/बीमा के लिए कोई राशि मिली थी या नहीं।

24. पीडब्लू-9 अर्थात् निरीक्षक प्रवीण कुमार सिंह से पूछताछ की गई है जिसने मृत्यु समीक्षा आख्या तैयार की है। उसने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि मृत्यु समीक्षा की कार्यवाही 18/6/12 को सुबह 6 बजे शुरू हुई और 7:30 बजे समाप्त हुई। पीडब्लू-10 अर्थात् डॉ. अशोक कुमार ने मृतक के शव का पोस्टमार्टम किया है। उनसे जिरह की गई है जिसमें उन्होंने कहा है कि चोट नं. 1 किसी तेज़ धार वाले हथियार से या ज़ोर से गिरने के कारण हो सकता है। चोट नंबर 2 किसी कठोर वस्तु पर गिरने से नहीं आ सकती, यह किसी कुंद हथियार से हमला करने या किसी वाहन से टकराने पर आ सकती है। चोट संख्या 2 किसी वाहन के जोरदार टक्कर से भी आ सकती है। उन्होंने स्वीकार किया कि चोट संख्या 3 किसी चीज के जोरदार प्रहार या किसी भारी वस्तु के जोरदार प्रहार के कारण हो सकती है और यह मृतक की मृत्यु का कारण हो सकता है क्योंकि उसकी खोपड़ी की हड्डी टूट गई थी। चोट नं. 4 गंभीर चोट थी. यह किसी कठोर वस्तु या टक्कर के कारण हो सकता है। यह गिरने से नहीं हो सकता और किसी कुंद हथियार से भी हो सकता है। चोट क्रमांक 4 वाहन में लगे लोहे के बम्पर या लोहे से जोर से टकराने पर हो सकती है. चोट नंबर 3 एक कुचलने वाली चोट थी।

25. DW-1 लालता प्रसाद, 2/3/14 को आज़मगढ़ में तैनात थे, चंदौली में नहीं। डीडब्ल्यू-2 फूल चंद्र यादव, तहसीलदार, सदर चंदौली ने कहा है कि वह 13/5/13 को सेवा में नहीं थे। किसान दुर्घटना बीमा का लाभ न केवल सड़क दुर्घटना में मृत्यु होने पर मृत किसान के आश्रितों को मिलता है, बल्कि नदी, तालाब आदि में डूबने, घर गिरने, वाहन दुर्घटना क्षेत्र, जानवरों द्वारा काटे जाने आदि की स्थिति में भी मिलता है। उन्होंने आगे कहा है कि इस मामले में मृतक कैलाश यादव की पत्नी जोखनी देवी को कृषक दुर्घटना बीमा योजना का लाभ 3/9/13 को तत्कालीन तहसीलदार सदर चंदौली द्वारा दिया गया है. वर्तमान में मृतक कैलाश नाथ का गांव मुगलसराय तहसील की क्षेत्रीय सीमा में है।

26. अभियोजन पक्ष के गवाहों के परिशीलन से, यह जाहिरा तौर पर स्पष्ट है कि अभियोजन मामले के अनुसार, पीडब्लू-

अनुवादित

3 नखड़ू यादव, जो मृतक का असली भतीजा है और पीडब्लू-4 शंकर यादव तथ्य के गवाह /चश्मदीद गवाह हैं, जबकि पीडब्लू -1 मुसे यादव, पीडब्लू-2 बोडर यादव, जो मृतक के बेटे हैं और पीडब्लू-5 पिंटू यादव, जो पीडब्लू-3 नखड़ू यादव के बेटे हैं, सुनी-सुनाई गवाह हैं और अन्य अभियोजन गवाह, अर्थात् , पीडब्लू-6 से पीडब्लू-10 औपचारिक गवाह हैं। अभियोजन पक्ष की ओर से दावा किया गया है कि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है जिसमें पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 ने घटना को अपनी आंखों से देखा है. इसलिए, पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 के बयानों की हमें गहन जांच की आवश्यकता है।

27. हमारे लिए पीडब्लू-3 के बयान का हवाला देना जरूरी है. मुख्य परीक्षण में, पीडब्लू-3, जिसकी उम्र 60 वर्ष बताई गई है, ने कहा है कि घटना के दिन वह और पीडब्लू-4, दूध की आपूर्ति करने के बाद एक साथ लौट रहे थे। मृतक उनके आगे साइकिल पर था, वह भी दूध सप्लाई कर वापस लौट रहा था। जब वे ग्राम कटेशर भूसा मंडी बावन बिगहा मैदान के पास पहुंचे तो सामने से आ रही एक जीप की हेडलाइट में देखा कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने मृतक के सिर पर ईंट से हमला कर उसकी हत्या कर दी है और मृतक साइकिल में फंसा हुआ है। उसने आगे कहा है कि यह घटना उसने और पीडब्लू-4 ने भी देखी थी। वे मौके पर पहुंचे और आरोपी-अपीलकर्ता को पकड़ने की कोशिश की लेकिन वह भागने में और खुद को झाड़ी में छिपाने में सफल रहा। उसने यह भी स्वीकार किया है कि मृतक और आरोपी-अपीलकर्ता के बीच रास्ते और खुली जमीन को लेकर विवाद था। उसने यह भी स्वीकार किया है कि आरोपी-अपीलकर्ता और उनके बीच एक मार्ग के कारण दुश्मनी थी और उन्होंने विवादित मार्ग पर स्वामित्व के लिए आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ मामला भी दायर किया है, जिसका अर्थ है कि आरोपी-अपीलकर्ता और पीडब्लू-3 के बीच दुश्मनी है, अभिलेख पर स्वीकार किया गया है, जिसके कारण पीडब्लू-3 द्वारा वर्तमान मामले में आरोपी-अपीलकर्ता को गलत फंसाने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है।

28. उसने अपने मुख्य परीक्षण में बताया है कि जब वह घटना स्थल पर शंकर यादव (पीडब्लू-4) के साथ पहुंचा, मृतक कैलाश यादव सड़क पर मृत पड़े थे। इसी प्रकार, जिरह में उसने कहा है कि जब वह शंकर यादव (पीडब्लू-4) के साथ ग्राम कटेशर भूसा मंडी बावन बिगहा खेत के पास पहुंचा तो देखा कि मृतक अपनी साइकिल में फंसा हुआ था। पीडब्लू-3 के उपरोक्त दोनों बयानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि जब पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 घटना स्थल पर पहुंचे तब तक मृतक की मृत्यु हो चुकी थी और जब यह घटना घटी तो उन्होंने उसे नहीं देखा। अपनी जिरह में एक जगह पीडब्ल्यू 3 ने कहा है कि उसने आरोपी-अपीलकर्ता को घटना स्थल पर 20 कदम दूर से देखा था, जबकि दूसरी जगह उसने कहा है कि रामनगर से पड़ाव की ओर सड़क

अनुवादित

के उत्तरी तरफ़ उसने मृतक को 1.6 किलोमीटर (एक मील) की दूरी से देखा था। इसी प्रकार अन्य स्थान पर पी.डब्लू -3 ने बताया है कि मृतक उससे 20 से 25 कदम आगे की दूरी पर था। जब अभियुक्त-अपीलकर्ता मृतक को पीट रहा था, तो उसने उसे बचाने की कोशिश की लेकिन अंधेरे के कारण वह उसे पकड़ नहीं सका। उसने आगे कहा कि जब तक वे पहुंचे, आरोपी-अपीलकर्ता भाग गया और खुद को झाड़ियों में छिपा लिया। जिस समय उसने आरोपियों को मृतक की हत्या कर भागते देखा, उस समय अंधेरा था। उपरोक्त कथन से, किसी भी व्यक्ति के लिए 20 से 25 कदम या 1.6 किलोमीटर की दूरी पर हुई घटना को देखना, जब अंधेरा था, और अपराध करने वाले हमलावर को पहचानना, संदिग्ध है।

29. पीडब्लू-4, पीडब्लू-3 का चाचा है और उसकी उम्र 66 वर्ष है। वह भी घटना का चश्मदीद गवाह बताया गया है। उसने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि शाम लगभग पौने 8 बजे वह और पीडब्लू-3 दूध बेचकर पैदल घर लौट रहे थे और जब वे ग्राम कटेशर भूसा मंडी बावन बिगहा फील्ड के पास पहुंचे, तो उन्होंने जीप की हेडलाइट में देखा, जो कि एक से दो सेकंड के लिए उपलब्ध था कि मृतक दूध की बाल्टी के साथ अपनी साइकिल में फंसा हुआ था और आरोपी-अपीलकर्ता मृतक पर ईंट से हमला कर रहा था। जिरह में, पीडब्लू-4 ने कहा है कि वह और पीडब्लू-3 एक साथ थे और वे मृतक से 70-80 कदम पीछे थे और अंधेरा हो रहा था और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। उसने आगे कहा है कि उसने आरोपियों को 15 से 20 कदम की दूरी से मृतक पर हमला करते हुए देखा था. उसने स्वीकार किया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता और मृतक के बीच एक मार्ग को लेकर दुश्मनी थी। उसने आगे बताया कि उसने मृतक को कुचली हुई हालत में देखा और जीप की दिशा उत्तर की ओर थी। उसने आगे कहा कि उसने आरोपी-अपीलकर्ता को भागते हुए देखा लेकिन तब तक कोई जीप नहीं थी। पीडब्लू-3 ने सबसे पहले मृतक की मौत के बारे में खुलासा किया था। एक अन्य स्थान पर, पीडब्लू-4 ने कहा है कि उस समय वह जानता था कि मौत आरोपी-अपीलकर्ता के कारण हुई थी। उसने आगे कहा है कि पीडब्लू-3 और आरोपी-अपीलकर्ता के बीच मुकदमा चल रहा था और उस मामले में, वह पीडब्लू-3 की ओर से न्यायालय में गए क्योंकि वह उनका भतीजा है।

30. पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 के बयानों से यह स्पष्ट है कि उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता को15 से 20 कदम की दूरी से भागते हुए देखा और यह अत्यधिक संदिग्ध है कि उन्होंने घटना को तब देखा जब यह वास्तव में घटित हुई थी। भले ही यह स्वीकार कर लिया जाए कि उन्होंने घटना को तब देखा जब यह एक जीप की हेडलाइट में हुई थी, लेकिन यह विश्वास करना मुश्किल है कि पीडब्लू-4 और पीडब्लू-3, जिनकी उम्र 66 और 60 वर्ष है, अंधेरे में 15 से 20 कदम दूर से घटना को सही ढंग से देख सकते थे और आरोपी की सही पहचान करें, और वह भी, चलती जीप की हेडलाइट में, जो

अनुवादित

पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 के अनुसार कुछ सेकंड (एक से दो सेकंड) के लिए उपलब्ध थी। पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 दोनों ने अपने बयानों में स्वीकार किया है कि वे जीप की संख्या का पता नहीं लगा सके। उपरोक्त के अलावा, पीडब्ल्यू -3 और पीडब्लू-4 द्वारा,वर्तमान मामले में आरोपी-अपीलकर्ता को गलत फंसाए जाने की प्रबल संभावना है क्योंकि उन्होंने स्वीकार किया है कि पीडब्लू-3 और आरोपी-अपीलकर्ता के बीच मुकदमा चल रहा था और पीडब्लू-4 पीडब्लू-3 की ओर से न्यायालय में जाता था।स्वीकृत रूप से, मौके पर प्रकाश का कोई अन्य स्रोत उपलब्ध नहीं था जैसा कि पीडब्लू8 यानी अन्वेषण अधिकारी के बयान से स्पष्ट है।

31. अभियोजन पक्ष के गवाहों, जिन्हें प्रत्यक्षदर्शी बताया गया है, के बयानों की जांच करने पर घटना स्थल पर उनकी उपस्थिति या घटना को देखने के संबंध में एक गंभीर संदेह पैदा होता है। अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों में भी विरोधाभास है. ऐसे में हम अभियुक्तों के खिलाफ अपराध का निष्कर्ष निकालने के लिए अभियोजन पक्ष के शत्रुवत और हितबद्ध गवाहों की गवाही पर भरोसा करना उचित नहीं समझते हैं।

32. उपरोक्त बयानों के साथ-साथ इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों से, हमने यह नहीं पाया है कि अभियोजन पक्ष की ओर से किसी ने भी घटना को उस समय देखा था जब यह घटित हुई थी। हमने यह भी पाया है कि मृतक की मृत्यु सड़क दुर्घटना में होने की संभावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि बचाव पक्ष ने साबित कर दिया है कि मृतक की पत्नी ने राज्य प्रायोजित दुर्घटना बीमा योजना में 5 लाख रुपये का मुआवजा स्वीकार किया था।

33. उपरोक्त के अलावा, हम यह भी देख सकते हैं कि हमले के हथियार यानी ईंट के टुकड़े की, न्यायिक जांच के संबंध में संबंधित न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की कोई आख्या नहीं है,जिसे कहा गया है कि आरोपी-अपीलकर्ता ने मृतक पर हमला करने में प्रयोग किया था जिससे मृतक को मौत के घाट उतार दिया गया।अन्वेषणकर्ता पीडब्लू-8 ने कहा है कि उसने हमले के हथियार यानी ईंट के टुकड़े को न्यायिक जांच के लिए नहीं भेजा है, जिससे अभियोजन पक्ष पर संदेह पैदा होता है।

34. इसी तरह, अन्वेषण के दौरान खून से सने और सादे मिट्टी के संबंध में तैयार किया गया बरामदगी ज्ञाप, जो कथित तौर पर घटना स्थल से बरामद किया गया था, पीडब्लू-5 द्वारा साबित नहीं किया गया है, जिस पर ऐसी बरामदगी का गवाह होने का अधिकथन है। पीडब्लू-5 ने कहा है कि ऐसी बरामदगी की तैयारी के समय पुलिस ने कोरे कागज पर उसके हस्ताक्षर ले लिये हैं।

अनुवादित

उपरोक्त तथ्य भी अभियोजन कथोपकथन पर धब्बा डालता है।

35. साइट प्लान (प्रदर्श-क/9) के अवलोकन से भी अभियोजन मामले में संदेह पैदा होता है क्योंकि साइट प्लान और अभिलेख पर मौजूद अन्य सबूतों के अनुसार घटना स्थल को स्थानांतरित कर दिया गया है। पीडब्लू-8 (अन्वेषण अधिकारी) द्वारा तैयार की गई घटनास्थल योजना के अनुसार, जिसका खुलासा उसने विचारण के दौरान अपने बयान में भी किया है, घटना स्थल जीटी रोड से 700 से 800 मीटर दूर है, जबकि अभियोजन पक्ष के तथ्य के गवाहों यानी पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 के बयान के अनुसार घटनास्थल गांव कटेशर भूषा मंडी बावन बिगहा खेत (मैदान) के पास है। दोनों स्थान एक-दूसरे से बहुत दूर हैं, जिसका अर्थ है कि अभियोजन के अनुसार घटना का स्थान स्थानांतरित कर दिया गया है, जो अभियोजन मामले में दोष बनाता है। स्थल योजना इस आधार पर भी विसंगति पैदा करती है कि वह स्थान, जहां से अभियोजनपक्ष के तथ्य के गवाहों यानी पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 ने घटना को घटित होते हुए देखा, चिन्हित नहीं किया गया है।

36. हम यह भी देख सकते हैं कि प्रथम सूचनादाता/पीडब्लू-1 की लिखित रिपोर्ट के आधार पर, प्रथम सूचना रिपोर्ट 17 जून, 2012 को 21:25 बजे दर्ज की गई है, जबकि जिरह में, पीडब्लू-8 ने कहा है कि वह शाम 07:30 से 08:00 बजे के बीच घटना स्थल पर पहुंचा, जिसका अर्थ है कि अन्वेषण समय से पहले हो गई है, जो अभियोजन पक्ष के कथोपकथन पर भी धब्बा डालता है।

37. उपरोक्त बहस और विचार-विमर्श के मद्देनजर, हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय ने हालांकि अभियोजन पक्ष के गवाहों विशेषकर पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 की गवाही और अन्य अभियोजन साक्ष्यों का उल्लेख किया है, लेकिन उनका सावधानीपूर्वक मूल्यांकन और परीक्षण नहीं किया है। हमारा मानना है कि अभियोजन उचित संदेह से परे अभियुक्त-अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित करने में सक्षम नहीं हुआ है। वर्तमान मामले के तथ्यों के अनुसार आरोपी-अपीलकर्ता संदेह का लाभ पाने का हकदार है।

38. परिणामस्वरूप, अपील सफल होती है और स्वीकार की जाती है।दिनांक 10.02.2021 के आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि और सजा के आदेश को रद्द किया जाता है। आरोपी अपीलकर्ता राजेंद्र यादव, जिसके बारे में बताया गया है कि वह 10 फरवरी, 2021 से जेल में है, को तुरंत रिहा किया जाएगा, जब तक कि वह द.प्र.सं. की धारा 437-ए के अनुपालन पर किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

39. इस फैसले की एक प्रति मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, चंदौली को भेजी जाए, जो इस फैसले के संदर्भ में आरोपी-

अनुवादित

अपीलकर्ता की रिहाई के लिए इसे संबंधित जेल अधीक्षक का भेजेंगे।

(2023) 2 ILRA 373

अपील न्यायिक क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.02.2023

समक्ष

माननीय कार्यवाहक मुख्य न्यायमूर्ति प्रितिंकर दिवाकर,

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,

आपराधिक अपील संख्या 3503/2012

संलग्न

जेल अपील संख्या 4478/2012

सुधीर

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री हेमेन्द्र प्रताप सिंह, श्री दिनेश कुमार मिश्र, श्री अंकित पाठक, श्री सौताभ यादव, श्री हरीश चन्द्र तिवारी (ए.सी.)

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 302 - हत्या - पक्षद्रोही गवाहों का परीक्षण - पक्षद्रोही गवाहों के कथन पर भी कुछ हद तक भरोसा किया जा सकता है, यह अभियोजन पक्ष के वाद का समर्थन करता है - पक्षद्रोही गवाहों की गवाही की सावधानीपूर्वक और बहुत सावधानी से जांच की जानी चाहिए और वह साक्ष्य का वह भाग जो अभियोजन या बचाव के मामले से सुसंगत है, उस पर भरोसा किया जा सकता है- यदि अन्य विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा पुष्टि की जाती है तो शत्रुतापूर्ण गवाह की गवाही पर दोषसिद्धि को आधार बनाने में कोई विधिक बाधा नहीं है ।(पैरा 26, 34)

बी. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32 - मृत्युपूर्व कथन - विधिक कहावत निमो मोरीटुरस प्रीसुमितूर मेंटर, जिसका अर्थ है, "एक आदमी अपने निर्माता से मुंह में झूठ लेकर नहीं मिलेगा" - मृत्युपूर्व कथन की विश्वसनीयता - यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मृत्युकालीन घोषणा सत्य और विश्वसनीय है, किसीव्यक्ति द्वारा उस समय दर्ज की गई है जब मृतक कथन के लिए शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ था और यह किसी ट्यूशन/दबाव/प्रेरणा के तहत नहीं किया गया है, सजा सुनाने का एकमात्र आधार हो सकता है - ऐसी स्थिति में, किसी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है - आयोजित - वर्तमान वाद में, संबंधित डॉक्टर द्वार चिकित्सक स्वस्थ का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के पश्चात, नायब तहसीलदार, सदर द्वारा मृत्युपूर्व बयान दर्ज किया गया- मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने में सम्मिलित कोई भी गवाह या अधिकारी अपने बयान से पक्षद्रोही नहीं हुआ - इन सभी ने अभियोजन पक्ष के वाद का पूर्ण

अनुवादित

रूप से समर्थन किया - मृत्यु से पूर्व दिया गया बयान विश्वसनीय, सच्चा था और मृतक द्वारा स्वेच्छा से दिया गया था, इसलिए, मृत्यु से पूर्व दिए गए बयान पर कार्रवाई की गई बिना किसी तथ्य की गवाहों द्वारा पुष्टि के और मृत्यु पूर्व दिए गए बयान को ही दोषसिद्धि का एकमात्र आधार बनाया गया। (पैरा 49, 58)

सी. आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) 1973 - धारा 313 - अभियुक्त के परीक्षण की शक्ति- सीआरपीसी की धारा 313 के तहत आरोपी व्यक्तियों / अपीलकर्ताओं के समक्ष मृत्युपूर्व कथन को प्रस्तुत करने, और यह विशेष रूप से पूछा गया था कि मृत्युपूर्व कथन में उन्हें विशेष रूप से दोषियों के रूप में उल्लेख करने के बारे में उन्हें क्या कहना है, उन्होंने इनकार किया और चुप रहे - आयोजित, सीआरपीसी की धारा 313 के तहत बयान दिया गया, आरोपियों की शांति से उनके विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकलता है। (पैरा 44)

तथ्य के गवाहों ने अपनी मौखिक गवाही में कहा कि उन्होंने यह नहीं देखा कि पीड़िता कैसे जली थी और पीड़िता ने उन्हें यह नहीं बताया था कि किसने उस पर मिट्टी का तेल डाला और उसे आग लगा दी - वादी और मृतक के दादा, चाचा और मृतक की चाची पक्षद्रोही हो गई - पीडब्लू-1 अपीलकर्ता के पिता, जो इस बिंदु पर पक्षद्रोही हुए कि उन्होंने घटना नहीं देखी है, दोनों अपीलकर्ताओं के नाम को अपराधी के रूप में प्रकट किया, भौतिक पहलुओं में अभियोजन मामले की पुष्टि की - मृतक को जलती हुई हालत में देखकर - उसके बयान की सावधानीपूर्वक जांच करने से एक निश्चित निष्कर्ष निकालने में सहायता प्राप्त होती है कि घटना का समय और दृश्य उसकी दुश्मनी के बावजूद, उसके बयान से पूर्ण रूप से समर्थन होता है - घटना का समय और साथ ही चोट की प्रकृति, जैसा कि आरोप लगाया गया है, अभियोजन पक्ष द्वारा पक्षद्रोही गवाहों के बयान पुष्टि की गई है - मृतक के मृत्युपूर्व कथन घटना के समय घटना स्थल पर दोनों अपीलकर्ताओं की उपस्थिति की पुष्टि करते है। **(पैरा 28, 38)**

निरस्त। **(ई-5)**

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. कोली लखमनभाई चंदाभाई बनाम गुजरात राज्य, 1999 (8) एससीसी 624

2. रमेश हरिजन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2012 (5) एससीसी 777

3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रमेश प्रसाद मिश्रा एवं अन्य, 1996 एआईआर (सुप्रीम कोर्ट) 2766

4. भगवान दास बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2011) 6 सुप्रीम कोर्ट मामले 396

5. शिवाजी साहब राव बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1973 एससीसी (सीआरआई) 1033

अनुवादित

6. प्रह्लाद बनाम राजस्थान राज्य, (2019) 14 SCC 438

7. पप्पू तिवारी बनाम झारखंड राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 109

8. विजय पाल बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार, (2015) 4 एससीसी 749

9. जीतेन्द्र कुमार बनाम हरियाणा राज्य, (2012) 6 एससीसी 204

10. एस.के. सत्तार बनाम महाराष्ट्र राज्य., (2010) 8 एससीसी 430

11. लाखन बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2010) 8 सुप्रीम कोर्ट केस 514

12. कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 3 सुप्रीम कोर्ट केस 280

13. रमीलाबेन हसमुखभाई ख्रीस्ती बनाम गुजरात राज्य, (2002) 7 एससीसी 56

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. चूंकि इन अपीलों को एक ही निर्णय के खिलाफ दायर किया गया है और एक ही अपराध संख्या से संबंधित है, इसलिए उन्हें एक साथ सुना गया और एक सामान्य निर्णय द्वारा निर्णय लिया जा रहा है।

2. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, गाजियाबाद ने सत्र विचारण संख्या 826/2011 (अपराध संख्या 29/2011) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 31.8.2012 द्वारा, थाना बहादुरगढ़, जिला गाजियाबाद ने अपीलकर्तागण को धारा 302 भा0दं0सं0 के तहत दोषी ठहराया और सजा सुनाई और धारा 34 भा0दं0सं0 के तहत दोषी ठहराया और सजा सुनाई कि प्रत्येक को चूक खंड की शर्त के साथ 5,000 रुपये के जुर्माने के साथ कठोर आजीवन कारावास की सजा सुनाई जाए। उक्त निर्णय से व्यथित होकर, अपीलकर्तागण द्वारा वर्तमान अपीलों को दायर किया गया है।

3. अभिलेख से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता गिरिराज पुत्र शेर सिंह, निवासी पलवाड़ा, थाना बहादुरगढ़, जिला आगरा द्वारा दिनांक 22.10.2011 को रात्रि 10.15 बजे इस कथन के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी कि उसका पुत्र सोमपाल अलग रह रहा था। सोमपाल की पुत्री श्रीमती करिश्मा का विवाह सुधीर पुत्र तेजवीर पुत्र ग्राम गोटका, थाना सरूरपुर, जिला मेरठ के साथ दो वर्ष पूर्व हुआ था। पिछले 15-20 दिनों से करिश्मा अपने पिता के घर में रह रही थीं। सूचनाकर्ता ने दो बीघा जमीन 4,04,000/- रुपये में बेची थी, जिसमें से एक लाख रुपये सोमपाल के हिस्से में आए थे और तब से सोमपाल शराब पीकर पैसे बर्बाद कर रहा था। दो दिन पहले सोमपाल ने करिश्मा के पति सुधीर को भी फोन किया था। सोमपाल और सुधीर दोनों सुबह से ही अल्कोहल पी रहे थे, जिसको लेकर करिश्मा और इन दोनों के बीच कहासुनी हो गई। आज रात करीब 9.00 बजे जब सोमपाल, सुधीर और करिश्मा घर पर थे तो अलार्म सुनकर सूचनाकर्ता उसका बेटा उपेंद्र उर्फ पप्पी और उसकी पत्नी श्रीमती बाला देवी, राजू पुत्र भीम सिंह सोमपाल के घर आए तो उन्होंने करिश्मा को जलते हुए कमरे से बाहर आते देखा। सोमपाल और सुधीर उसके पीछे से निकले और उन्हें

अनुवादित

देखकर भाग गए। करिश्मा ने उन्हें बताया कि उसके पिता सोमपाल ने उसे मारने के इरादे से उस पर मिट्टी का तेल डाला और उसके पति सुधीर ने उसे आग लगा दी। उसकी हालत गंभीर थी और उसे इलाज के लिए गढ़मुक्तेश्वर लाया गया था।

4. लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) के आधार पर 22.2.2011 को रात्रि 10.15 बजे संबंधित थाने में सोमपाल (पिता) एवं सुधीर (पति) के विरुद्ध धारा 307 एवं 326 भा0दं0सं0 के तहत अपराध क्रमांक 25 में दर्ज किया गया।

5. दिनांक 23.02.2011 को नायब तहसीलदार, सदर, मेरठ द्वारा पीड़ित का मृत्यु पूर्व बयान (प्रदर्श क-12) दर्ज किया गया। उसने उसके दाहिने पैर के अंगूठे का निशान भी लिया, क्योंकि उसके हाथ पूरी तरह से जल गए थे। बयान के समय पीड़िता होश में थी। उन्होंने इस संबंध में संबंधित चिकित्सक से प्रमाण पत्र भी प्राप्त किया।

6. संबंधित थाने के थाना प्रभारी द्वारा विवेचना शुरू की गई। विवेचना अधिकारी ने गवाहों और पीड़िता के बयान दर्ज किए। साइट प्लान तैयार किया गया। उपचार के दौरान, पीड़ित की 16-3-2011 को प्रात 930 बजे मृत्यु हो गई और मामले को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत अपराध में बदल दिया गया। विवेचना रिपोर्ट तैयार कर मृतक का पोस्टमार्टम किया गया। गहन विवेचना करने के बाद, अपीलकर्तागण के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। संबंधित मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया। यह मामला, सत्र न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय होने के कारण, सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध था।

7. तय किया गया आरोप भा0दं0सं0 की धारा 302 के तहत लगाया गया था। आरोपी-व्यक्तियों ने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और उन पर मुकदमा चलाना चाहा। मुकदमा शुरू हुआ और अपने मामले के समर्थन में, अभियोजन पक्ष ने 10 गवाहों की विवेचना की, जो इस प्रकार हैं:

1	गिरिराज सिंह	पीडब्लू-1 (सूचनाकर्ता) (मृतक का दादा)
2	राजू उर्फ रामेन्द्र	पीडब्लू-2 (मृतक का अंकल)
3	उपेन्द्र उर्फ पप्पी	पीडब्लू-3 (मृतक का अंकल)
4	बाला देवी	पीडब्लू-4 (मृतक की आंट)
5	डॉ0 राजेन्द्र कुमार	पीडब्लू-5 (जिसने मृतक का चिकित्सीय परीक्षण किया)

अनुवादित

6	डॉ0 राम प्रसाद शर्मा	पीडब्लू-6 (विवेचना अधिकारी)
7	एच.सी. राम चरन सिंह	पीडब्लू-7 (जिसने स्क्राईब के हस्ताक्षर को सिद्ध किया)
8	योगेश कुमार शर्मा	पीडब्लू-8 (जिसने डॉ0 श्वेता गर्ग के हस्ताक्षर को सिद्ध किया, जिसने मृतक का ऑटोप्सी किया)
9	हयात सिंह	पीडब्लू-9 (मृत्यु समरी रिपोर्ट को साबित किया)
10	रंजीत कुमार	पीडब्लू-10 (नायाब तहसीलदार, सदर, मेरठ, जिसने मृतक का मृत्यु पूर्व बयान अंकित किया।)

8. मौखिक संस्करण के समर्थन में, अभियोजन पक्ष की ओर से निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए और साबित हुए:

1	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श ए-1
2	अन्य तहरीर	प्रदर्श ए-2
3	साइट प्लान	प्रदर्श ए-3
4	फर्द	प्रदर्श ए-4
5	फर्द	प्रदर्श ए-5
6	आरोप पत्र	प्रदर्श ए-6
7	चिक एफ.आई.आर.	प्रदर्श ए-7
8	जी.डी. प्रविष्टि	प्रदर्श ए-8
9	जी.डी. प्रविष्टि	प्रदर्श ए-9
10	पोस्ट मार्टम रिपोर्ट	प्रदर्श ए-10
11	मृत्यु समरी रिपोर्ट	प्रदर्श ए-11
12	मृतक का मृत्यु पूर्व बयान	प्रदर्श ए-12

9. साक्ष्य के निष्कर्ष के बाद, आरोपी अपीलकर्तागण का बयान दं0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया, जिसमें उन्होंने अपने झूठे आरोप लगाए और बहाना साबित किया।

10. इस मामले में, पीडब्लू-1 (गिरि राज सिंह), पीडब्लू-2 (राजू @ रामेंद्र), पीडब्लू-3 (उपेंद्र @ पप्पी) और पीडब्लू-4 (बाला देवी) तथ्य के गवाह हैं।

11. इन गवाहों ने अपनी मौखिक गवाही में कहा है कि उन्होंने यह नहीं देखा कि करिश्मा को जलने की चोटें कैसे मिलीं। उन्होंने यह भी कहा कि करिश्मा ने उन्हें घटना के दिन या उसके बाद यह भी नहीं बताया कि

अनुवादित

किसने उन पर मिट्टी का तेल डाला और आग लगाई। उस समय वह बोलने की स्थिति में नहीं थीं। इन गवाहों को मुकर घोषित कर दिया गया है। हालांकि, पीडब्लू -1 ने लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 और मृतक की मृत्यु की जानकारी को साबित कर दिया है।

12. पीडब्लू-5 से पीडब्लू-10 औपचारिक गवाह हैं।

13. पीडब्लू-5, डॉ. राजेंद्र कुमार ने पीड़िता की मेडिकल लीगल रिपोर्ट प्रदर्श-का-3 तैयार की है, जब वह जीवित थी और उसे जली हुई हालत में पाया था।

14. पीडब्लू -6, डॉ राम प्रसाद शर्मा मामले के विवेचना अधिकारी हैं, जिन्होंने अपनी गवाही में विवेचना की कार्यवाही को साबित किया है और साइट प्लान, अन्य कागजात भी साबित किए हैं, जिसमें आरोप पत्र शामिल हैं।

15. पीडब्लू-7, हेड कांस्टेबल राम चरण सिंह एफआईआर के मुंशी हैं, जिन्होंने क्रमशः चिक एफआईआर प्रदर्श क-7 और जीडी को प्रदर्श क-8 और प्रदर्श क-9 के रूप में संशोधित करने का पंजीकरण साबित किया है।

16. पीडब्लू-8, योगेश कुमार वर्मा, सफदरजंग अस्पताल, नई दिल्ली में लैब असिस्टेंट के पद पर तैनात थे। द्वितीयक गवाह के रूप में, उन्होंने डॉ. श्वेता गर्ग के हस्ताक्षर को साबित किया है, जिन्होंने मृतक की शव परीक्षा की है और ऑटोप्सी रिपोर्ट प्रदर्श-10 तैयार की है।

17. ऑटोप्सी रिपोर्ट से पता चलता है कि सफदरजंग अस्पताल, दिल्ली में पीड़िता की मृत्यु 16.3.2011 को सुबह 9.30 बजे हुई, जहां उसे एलएलआरएम मेडिकल कॉलेज और संबद्ध एसवीबीपी अस्पताल, मेरठ से 23.2.2011 को शाम 5.45 बजे रेफर किया गया था। वह 50 फीसदी झुलस गई थी। उसके दोनों लंबे, छाती, झिल्ली और मस्तिष्क के साथ-साथ श्वासनली और ब्रांकाई और यकृत, गुर्दे और प्लीहा भी भीड़भाड़ वाले पाए गए। मृत्युपूर्व बाहरी चोटों के अनुसार, शरीर के जले हुए क्षेत्र निम्नानुसार पाए गए:

> *"शरीर पर जले हुए क्षेत्र: डर्मो एपिडर्मल लौ चेहरे, गर्दन, छाती, पेट, पूरे पीठ, दाहिने पैर की पूर्वकाल सतह के ऊपरी आधे हिस्से पर मौजूद है। सिर पर पूरा गंजा पैच मौजूद है। त्वचा की सतही परतों को जला दिया जाता है और उन स्थानों पर छील दिया जाता है जो दुर्गंधयुक्त मवाद से ढके पीले हरे रंग के आधार को प्रकट करते हैं। बिना छिली त्वचा को जगह-जगह जला दिया जाता है और काला कर दिया जाता है। शामिल हिस्से के बालों को जला दिया जाता है और जगह-जगह गाया जाता है। जलने का अनुमानित क्षेत्र शरीर की सतह के कुल क्षेत्रफल का 50% है।*

18. डॉक्टर की राय में मृत्यु सेप्टिकमिक शॉक के कारण हुई थी, जो कि मृत्युपूर्व संक्रमित लौ जलने के परिणामस्वरूप हुई थी और यह लगभग एक दिन पहले हुई थी।

अनुवादित

19. पीडब्लू -9, हयात सिंह लोअर डिवीजन क्लर्क, सफदरजंग अस्पताल, नई दिल्ली है। उन्होंने मृतक की डेथ समरी रिपोर्ट तैयार करने वाली डॉ. शोभा जैन के हस्ताक्षर को साबित किया है। उन्होंने एक्स्ट।

20. पीडब्लू-10, रंजीत कुमार, नायब तहसीलदार, सदर, मेरठ है। उन्होंने मृतक का मृत्युपूर्व बयान दर्ज किया है। उन्होंने कहा है कि पीड़िता का बयान दर्ज करने से पहले उन्होंने संबंधित डॉक्टर से फिटनेस सर्टिफिकेट ले लिया था। पीड़िता होश में थी और उस समय उस जगह और आदमी को पहचानने में सक्षम थी। उन्होंने आगे कहा है कि जब पीड़िता से सवाल किया गया कि वह कैसे जलती है, तो उसने जवाब दिया कि उसके पिता सोमपाल ने उस पर मिट्टी का तेल डाला और जब उसने भागने की कोशिश की, तो उसके पति सुधीर ने उस पर माचिस फेंकी जिसके कारण वह आग लग गई और जल गई। उसने उसे जलाने के कारण भी बताए।

21. उपरोक्त मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर, विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों की दोषसिद्धि को दर्ज किया और उन्हें सजा सुनाई, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

22. अपीलकर्ता-सुधीर की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अंकित पाठक के होल्डिंग ब्रीफ श्री सौरभ यादव, अपीलकर्ता-सोमपाल की ओर से विद्वान न्यायमित्र श्री हरीश चंद्र तिवारी और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री एच.एम.बी. सिन्हा को सुना।

23. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा मुख्य रूप से दो आधारों पर आक्षेपित निर्णय और आदेश पर हमला किया गया है। अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आरोपी व्यक्तियों को इस मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने वर्तमान अपराध नहीं किया है। विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि तथ्य के सभी गवाह मुकर गए हैं। पीडब्लू-1, मृतक के सूचनाकर्ता और दादा, पीडब्लू-2, पीडब्ल्यू-3, अंकल और मृतक की आंट पीडब्लू-4 मुकर गए हैं और अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन नहीं करते हैं। उन्हें तथ्य का गवाह कहा जाता है और उनके सबूतों के विश्लेषण के आधार पर, आरोपी अपीलकर्तागण के खिलाफ कोई अपराध स्थापित और साबित नहीं होता है।

24. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि मृतक की मृत्यु-घोषणा तब दर्ज की गई थी जब वह जीवित थी, लेकिन इस मृत्यु-घोषणा में किसी भी अभियोजन साक्ष्य के साथ कोई पुष्टि नहीं मिलती है। तथ्य के सभी गवाह मुकर गए हैं और कोई भी मृत्यु-घोषणा में उल्लिखित संस्करण का समर्थन नहीं करता है। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्तागण को मृत्यु-घोषणा के आधार पर दोषी ठहराने में गंभीर त्रुटि की, जब इसकी पुष्टि नहीं की गई थी।

25. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, प्रति विरोध, अपीलकर्तागण के

अनुवादित

लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों का जोरदार विरोध किया और प्रस्तुत किया कि अभियुक्त की सजा पूरी तरह से मृत्यु-घोषणा के आधार पर आधारित हो सकती है, यदि यह पूरी तरह से विश्वसनीय है। इसकी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। इसके अलावा, मुकरने वाले गवाहों की गवाही पर भी भरोसा किया जा सकता है, यह अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करता है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्तागण को धारा 302 भा0दं0सं0 के तहत दोषी ठहराया है और तदनुसार सजा सुनाई है। अपील में कोई योग्यता नहीं है और इसे खारिज किया जा सकता है।

26. स्थापित कानूनी क्षेत्र में प्रवेश करने पर, अपीलकर्तागण के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया पहला मुद्दा अनाड़ी लगता है क्योंकि मुकरने वाले गवाहों की गवाही को केवल इस तथ्य के आधार पर नहीं फेंका जा सकता है कि उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है और अभियोजक द्वारा जिरह की गई थी। मुकरने वाले गवाहों की गवाही पर उस हद तक भरोसा किया जा सकता है, जिस हद तक यह अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करता है। कहने की जरूरत नहीं है कि मुकरने वाले गवाहों की गवाही की सावधानीपूर्वक और बहुत सावधानी से विवेचना की जानी चाहिए।

27. अपीलकर्तागण के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए बिंदु हमें पीडब्लू-1, पीडब्लू-2, पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 की गवाही तक ले जाते हैं।

28. पीडब्लू -1 अपीलकर्ता सोमपाल का पिता है, जिसने हालांकि इस बिंदु पर शत्रुतापूर्ण घोषित किया कि उसने घटना को नहीं देखा था और अपनी लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 की सामग्री से इनकार किया है, यह दोनों अपीलकर्तागण के नाम को अपराधियों के रूप में प्रकट करता है, भौतिक पहलुओं में अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि करता है। उन्होंने सोमपाल के घर पर रात 9.00 बजे मृतक को जलती हुई हालत में देखा है। यहां यह उल्लेख करना उचित है कि पीडब्लू -1 अपीलकर्ता सोमपाल का पिता है और कहता है कि सोमपाल उससे अलग रहता है। वह इस तथ्य की भी पुष्टि करता है कि अपीलकर्ता सुधीर, मृतक का पति, घटना की तारीख को दूसरे अपीलकर्ता सोमपाल के घर आया था। हालांकि वह कहता है कि उसने घटना के समय अपीलकर्तागण को वहां मौजूद नहीं देखा था, फिर भी उसके बयान की सावधानीपूर्वक विवेचना हमें एक निश्चित निष्कर्ष निकालने में मदद करती है कि घटना का समय और दृश्य उसकी शत्रुता के बावजूद उसके बयान से पूरी तरह से साबित होता है। उन्होंने मृतक को जलती हुई हालत में देखा है और अभियोजन पक्ष का भी यही मामला है। पीडब्लू -1 भी एक्सटी का -2 साबित करता है, जो मृतक की मृत्यु के संबंध में पुलिस को सूचना के लिए एक प्रार्थना पत्र है।

29. इसी तरह, पीडब्लू -2, जो मृतक का अंकल है, इस तथ्य को भी साबित करता है कि मृतक को उसके द्वारा उसी स्थान और समय पर जलती हुई

स्थिति में देखा गया था, जैसा कि अभियोजन पक्ष का दावा है। उनका बयान कि दोनों अपीलकर्ता शराब पीने के बहुत शौकीन थे, अभियोजन पक्ष के संस्करण के लिए प्रासंगिक समर्थन प्रदान करता है।

30. पीडब्लू-3, जो आरोपी सोमपाल का भाई है, उसी तरह मृतक की घटना स्थल और जलने की स्थिति और घटना के समय को भी साबित करता है।

31. मृतक को जलाने के तथ्य की पुष्टि मृतक की आंट पीडब्लू -4 द्वारा भी की जाती है।

32. कोली लखमनभाई चंदभाई बनाम गुजरात राज्य, 1999 (8) एससीसी 624 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि मुत्थानपूर्ण गवाह के साक्ष्य पर उस हद तक भरोसा किया जा सकता है, यह अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन करता है और यह आवश्यक नहीं है कि इस पर भरोसा किया जाए या समग्र रूप से खारिज कर दिया जाए। यह एक स्थापित कानून है कि मुकर जाने वाले गवाह के साक्ष्य पर भी उस सीमा तक भरोसा किया जा सकता है जिस हद तक वह अभियोजन पक्ष के पक्ष का समर्थन करता है। ऐसे गवाह के साक्ष्य को रिकॉर्ड से बाहर नहीं माना जा सकता है। यह मुकदमे में स्वीकार्य रहता है और अन्य विश्वसनीय साक्ष्यों द्वारा पुष्टि किए जाने पर उसकी गवाही पर उसकी दोषसिद्धि को आधार बनाने के लिए कोई कानूनी रोक नहीं है।

33. रमेश हरिजन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2012 (5) एससीसी 777 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना है कि यह तय कानूनी स्थिति है कि अभियोजन पक्ष के गवाह के साक्ष्य को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि अभियोजन पक्ष ने उसे शत्रुतापूर्ण माना और उससे जिरह की। ऐसे गवाह के साक्ष्य को रिकॉर्ड से पूरी तरह से मिटा या धोया नहीं जा सकता है।

34. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रमेश प्रसाद मिश्रा और अन्य, 1996 एआईआर (सर्वोच्च न्यायालय) 2766 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अभियोजन पक्ष या अभियुक्त के पक्ष में बोलने पर एक मुत्थापूर्ण गवाह के साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जाएगा, लेकिन करीबी विवेचना के अधीन होना आवश्यक है और साक्ष्य का वह हिस्सा जो अभियोजन या बचाव पक्ष के मामले के अनुरूप है, उस पर भरोसा किया जा सकता है।

35. इस प्रकार, कानून एक शत्रुतापूर्ण गवाह के सबूत एक पूरे के रूप में खारिज नहीं किया जा सकता है कि प्रभाव के लिए संक्षेप किया जा सकता है, और उसके प्रासंगिक भाग, जो कानून में स्वीकार्य हैं, अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है.

36. पीडब्लू-1, पीडब्लू-2, पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 के बयान की उपरोक्त विवेचना हमें इस निष्कर्ष पर ले जाती है कि ये गवाह, अपनी शत्रुता के बावजूद, घटना के समय और स्थान और मृतक को चोट के कारण की पुष्टि करते हैं।

37. उपरोक्त सभी गवाह दं0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत दर्ज अपने

अवैधानिक

बयानों से मुकर गए और मुकर गए, हालांकि, विवेचना अधिकारी पीडब्लू -6 दृढ़ता से कहता है कि उसने विवेचना के दौरान उपरोक्त गवाहों के बयान दर्ज किए थे।

38. पीडब्लू -6 ने घटना के दृश्य की स्थलाकृति भी बनाई है और साइट प्लान प्रदर्श क -3 तैयार किया है, जिसे उपरोक्त चार अभियोजन गवाहों के बयानों से भी समर्थन मिलता है। पीडब्लू-6 से यह भी साबित होता है कि खाट, कैन और रजाई के टुकड़ों की रस्सियों के जले हुए टुकड़े और जब्ती ज्ञापन प्रदर्श क-4 उसके द्वारा साबित किया गया है। इसके अलावा, पृथ्वी से सादी मिट्टी और राख को भी घटना के स्थान से लिया गया था और तैयार किए गए ज्ञापन को पीडब्लू -6 द्वारा प्रदर्श क -5 साबित किया गया है। ये सभी तथ्य यह साबित करने के लिए काफी स्पष्ट हैं कि घटना का स्थान अभियोजन पक्ष के दावों के समान है और पीडब्लू -1, पीडब्ल्यू -2, पीडब्ल्यू -3, पीडब्ल्यू -4 और पीडब्ल्यू -6 द्वारा भी इसकी पुष्टि की गई है। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि घटना के समय के साथ-साथ अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप लगाए गए चोट की प्रकृति की पुष्टि मुकरने वाले गवाहों यानी पीडब्लू-1, पीडब्लू-2, पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 के साक्ष्य से भी होती है और उनकी गवाही उस हद तक मानी जाती है।

39. पीडब्लू-1, पीडब्लू-2, पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 का आचरण, जो परिवार के सदस्य हैं और दोनों अपीलकर्तागण के न्यायालय के समक्ष अपनी गवाही में मुकरने से संबंधित हैं, हमें **भगवान दास बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), (2011) 6 सर्वोच्च न्यायालय के मामलों 396** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून में ले जाता है, जिसमें अभियुक्त की मां मुकर गई और विवेचना अधिकारी को दिए गए अपने बयान से मुकर गई और दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस तरह देखा:

> *"**15.** आरोपी की मां श्रीमती ढिल्लो देवी ने पुलिस के सामने कहा कि उसके बेटे (आरोपी) ने उसे बताया था कि उसने सीमा की हत्या कर दी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दं0प्र0सं0 की धारा 162 (1) के मद्देनजर पुलिस को दिया गया बयान आमतौर पर साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं है, लेकिन जैसा कि दं0प्र0सं0 की धारा 162 (1) के परंतुक में उल्लेख किया गया है, इसका इस्तेमाल गवाह की गवाही का खंडन करने के लिए किया जा सकता है। श्रीमती ढिल्लो देवी भी विचारण न्यायालय के समक्ष एक गवाह के रूप में पेश हुईं, और उनकी जिरह में, उन्हें पुलिस को दिए गए उनके बयान के साथ सामना किया गया, जिसके लिए उन्होंने कहा था कि उनके बेटे (आरोपी) ने उन्हें बताया था कि उसने सीमा को मार दिया था। पुलिस को दिए अपने बयान*

अनुवादित

से इतना सामना करने पर उसने इनकार कर दिया कि उसने ऐसा बयान दिया था।

16. *हमारी राय है कि दं0प्र0सं0 की धारा 162 (1) के प्रावधान को ध्यान में रखते हुए पुलिस को दी गई श्रीमती ढिल्लो देवी के बयान पर विचार किया जा सकता है, और बाद में न्यायालय में उनका इनकार विश्वसनीय नहीं है क्योंकि वह स्पष्ट रूप से बाद में विचार कर रही थीं और अपने बेटे (अभियुक्त) को सजा से बचाना चाहती थीं। दरअसल, पुलिस को दिए अपने बयान में उसने कहा था कि सीमा के शव को बिस्तर से उतारकर फर्श पर लिटा दिया गया था। जब न्यायालय में उसका इस बयान से सामना कराया गया तो उसने इस बात से इनकार किया कि उसने पुलिस के सामने ऐसा बयान दिया था। हमारी राय है कि पुलिस को दिए गए उसके बयान को दं0प्र0सं0 की धारा 162 (1) के प्रावधान के मद्देनजर ध्यान में रखा जा सकता है।*

40. यदि हम पूर्वोक्त प्रस्ताव से उभरे कानूनी सिद्धांत को इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अनुवाद करते हैं, तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि पीडब्लू-1, पीडब्लू-2, पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 न्यायालय के समक्ष पड़े थे और विवेचना के दौरान विवेचना अधिकारी के समक्ष उन्होंने जो कुछ भी कहा था, वह मामले का सही संस्करण था और वे जानबूझकर मुकर गए और विवेचना अधिकारी को दिए गए अपने पहले के बयानों से मुकर गए न्यायालय में साक्ष्य की कार्यवाही। विवेचना अधिकारी, पीडब्लू-6 ने विशेष रूप से कहा है कि उन्होंने उपरोक्त गवाहों के बयान दर्ज किए थे और बचाव पक्ष द्वारा अपनी गवाही में दिए गए सुझाव से इनकार किया था।

41. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि चूंकि अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट शब्दों में तथ्य के गवाहों ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि उन्होंने घटना के समय घटना के स्थान पर किसी भी अपीलकर्ता को नहीं देखा था, इसलिए वे किसी भी बचाव साक्ष्य को पेश करने की आवश्यकता में खड़े नहीं थे। विद्वान राज्य के अधिवक्ता, प्रति विरोधाभास, ने जोरदार तर्क दिया है कि मृतक की मृत्यु की बयान, जो सबूत का मूल्यवान और विश्वसनीय टुकड़ा है, घटना के समय घटना के स्थान पर दोनों अपीलकर्तागण की उपस्थिति की पुष्टि करता है। हम वर्तमान मामले में मृतक की मृत्यु की घोषणा के साक्ष्य मूल्य और विश्वसनीयता पर चर्चा करने जा रहे हैं, बाद में इस फैसले में, लेकिन निस्संदेह 'ऐलिबी' साबित करने का बोझ सभी मामलों में अभियुक्त पर है। चूंकि ऐलिबी के बारे में कोई सबूत नहीं है, इसलिए हम मानते हैं कि अपीलकर्तागण द्वारा ली गई बहाना की दलील टिकाऊ नहीं है और बिल्कुल भी साबित नहीं हुई है।

अनुवादित

42. दं0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत अपने बयान में, दोनों अपीलकर्तागण ने कहा है कि वे घटना के समय घटना स्थल पर मौजूद नहीं थे। हमने दं0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत अपीलकर्तागण के बयान का अवलोकन किया है और पाया है कि बहाना के अलावा, अपीलकर्तागण की ओर से आपत्तिजनक परिस्थितियों और उनके खिलाफ अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सबूतों से इनकार किया गया है और कुछ भी विशिष्ट दावा नहीं किया गया है।

43. दं0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत बयान की प्रकृति और दायरे को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **शिवाजी साहब राव बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1973 एससीसी (सीआरआई) 1033** में समझाया गया है और यह देखा गया है कि:

> *"कैदी का ध्यान हर अभियोगात्मक सामग्री की ओर आकर्षित किया जाना चाहिए ताकि वह इसे समझाने में सक्षम हो सके। जहां इस तरह की चूक हुई है, यह वास्तव में कार्यवाही को दूषित नहीं करता है और इस तरह के दोष से उत्पन्न पूर्वाग्रह को अभियुक्त द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए। यह अपीलीय न्यायालय के लिए खुला है कि वह अभियुक्त के अधिवक्ता को यह दिखाने के लिए बुलाए कि अभियुक्त के पास उसके खिलाफ स्थापित परिस्थितियों के संबंध में क्या स्पष्टीकरण है, लेकिन उसे नहीं रखा गया है और यदि अभियुक्त अपीलीय न्यायालय को ऐसी परिस्थितियों का कोई प्रशंसनीय या उचित स्पष्टीकरण देने में असमर्थ है, तो न्यायालय यह मान सकती है कि कोई स्वीकार्य उत्तर मौजूद नहीं है और भले ही आरोपी से उचित समय पर पूछताछ की गई हो अवर न्ययालय में वह उन परिस्थितियों से बाहर निकलने के लिए कोई अच्छा आधार प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं होता, जिन पर विचारण न्यायालय ने अपनी दोषसिद्धि के लिए भरोसा किया था।*

44. यह उल्लेखनीय है कि एक अभियोजनकारी साक्ष्य के रूप में जब मृत्युपूर्व बयान को दं0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत अभियुक्त व्यक्तियों/अपीलकर्तागण के सामने उनके बयानों में रखा गया था, और यह विशेष रूप से पूछा गया था कि मृतक के बयान के बारे में उनका क्या कहना है, विशेष रूप से अपराधियों के रूप में उनके नाम का उल्लेख करते हुए, उन्होंने बस इसका खंडन किया और चुप रहे, जबकि उनसे मृतक की मृत्यु की घोषणा जैसे उपरोक्त विशिष्ट अभियोगात्मक साक्ष्य को पूरा करने के लिए कुछ और उम्मीद की गई थी। हम यहां **प्रहलाद बनाम राजस्थान राज्य, (2019) 14 एससीसी 438** पर सुरक्षित रूप से भरोसा कर सकते हैं, जिसमें यह माना गया

अनुवादित

है कि दं0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत बयान में आरोपी की चुप्पी उसके खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष की ओर ले जाती है।

45. यह एक अभियुक्त द्वारा बहाना की एक विशिष्ट दलील लेने का मतलब है कि वह पूरी तरह से दृश्य से बाहर बात करता है जब अपराध किया गया था और घटना के स्थान के अलावा कहीं और उसकी उपस्थिति का आश्वासन देता है और यही कारण है कि सबूत का बोझ के संबंध में सबूत का बोझ पूरी तरह से आरोपी पर झूठ है कि उल्लेख करने के लिए उचित है. हम पाते हैं कि अपीलकर्तागण द्वारा वर्तमान मामले में अपनी दलील के समर्थन में कोई बचाव साक्ष्य पेश नहीं किया गया है।

46. कई मामलों में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि बहाना साबित करने का बोझ विशेष रूप से अभियुक्त पर है। **पप्पू तिवारी बनाम झारखंड राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 109** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून को दोहराया गया था, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **विजय पाल बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली सरकार, (2015) 4 एससीसी 749** को संदर्भित किया था जिसमें यह माना गया था कि अभियुक्त पर बोझ भारी है और उसे प्रमाण के साथ बहाना स्थापित करने की आवश्यकता है। **जितेंद्र कुमार बनाम हरियाणा राज्य, (2012) 6 एससीसी 204** में निर्धारित कानूनी सिद्धांत को भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संदर्भित और इस आशय पर भरोसा किया गया था कि "ऐलिबी की दलील स्थापित करने का बोझ अपीलकर्तागण पर है और अपीलकर्ता ऐसे किसी भी सबूत को रिकॉर्ड पर लाने में विफल रहे हैं जो, यहां तक कि उचित संभावना से, उनकी बहाना की दलील स्थापित करें। वास्तव में बहाना की दलील को निश्चितता के साथ साबित करने की आवश्यकता है ताकि घटना के स्थान पर और उस घर में अभियुक्तों की उपस्थिति की संभावना को पूरी तरह से बाहर किया जा सके जो उनके रिश्तेदारों का घर था।

47. एस.के. सत्तार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 8 एससीसी 430 में, यह स्पष्ट किया गया था कि अभियुक्त द्वारा सकारात्मक साक्ष्य के आधार पर बहाना स्थापित किया जाना है। ऐसी दलील के विफल होने से अभियोजन के मामले की सफलता आवश्यक रूप से नहीं होगी जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा युक्तियुक्त संदेह से परे स्वतंत्र रूप से सिद्ध किया जाना है..... बहाना की दलील को पूर्ण निश्चितता के साथ साबित किया जाना चाहिए ताकि प्रासंगिक समय पर घटना के स्थान पर अपीलकर्ता की उपस्थिति की संभावना को पूरी तरह से बाहर किया जा सके।

48. जहां तक मृत्यु-घोषणा का संबंध है, इसे श्री रंजीत कुमार, नायब तहसीलदार, सदर, मेरठ द्वारा दर्ज किया गया था, जिनकी पीडब्लू -10 के रूप में विवेचना की गई थी। अस्पताल में डॉक्टर से मेंटल-फिटनेस का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद उनके द्वारा मृत्यु-घोषणा दर्ज की गई थी। यह वांछनीय है कि पीडब्लू -10 के बयान को शब्दशः संदर्भित किया जाना

अनुवादित

चाहिए कि वास्तव में मृतक द्वारा क्या कहा गया था, फिर घायल हो गया और यह इस प्रकार है:

> " मैने ब्यान प्रश्न उत्तर के क्रम में लिखा है। और अपने हस्तलेख में लिखा है। करिश्मा से यह पूछने पर कि तुम कैसे जली तो उसने जवाब दिया कि कल रात लगभग 10.30 बजे मेरे पापा सोमपाल सिंह ने मेरे उपर मिटटी का तेल छिड़क दिया तथा जब मैं भागने लगी तो मेरे पति ने मेरे उपर तीली फेंक दी।
>
> उसी से आग लग गई तथा मैं जल गई। करिश्मा से यह पूछने पर कि तुम्हें क्यो जलाया तो उसने जवाब दिया था कि मेरे पिता तथा मेरे पति दोनों साथ मे दारु पी रहे थे, मैने दारु पीने से मना किया, मैंने अपने पापा से कहा कि तुम खुद दारु पी रहे हो तथा मेरे पति को भी दारु पिला कर बरबाद कर रहे हो इस पर मेरे पापा ने कहा कि तू चुप रह नहीं तो तुझे मार डालेंगे। इस पर मेरे पिता जी के साथ झगड़ा हुआ, इस पर उसने मिटटी के तेल का कनस्तर लिया तथा मेरे ऊपर डाल दिया, जब मै भागने लगी तो उस समय मेरे पति ने माचिस की तिल्ली जलाकर मेरे ऊपर डाल दी जिससे आग लग गयी। उसने यह भी बताया कि उसे अस्पताल पप्पी अंकल व राजू अंकल लेकर आये थे। यह पूछने पर कि तुम्हें जलाने में किसका हाथ है तो करिश्मा ने बताया था कि मुझे जलाने में मेरे पापा सोमपाल सिंह व मेरे पति सुधीर का हाथ है। इसके अलावा और कोई नहीं है। "

49. मृत्यु पूर्व बयान के मुद्दे पर कानून को इस आशय से संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मृत्यु पूर्व बयान सत्य और विश्वसनीय है, तो किसी व्यक्ति द्वारा ऐसे समय में दर्ज किया गया है जब मृतक शारीरिक और मानसिक रूप से फिट था घोषणा करने के लिए और यह किसी भी ट्यूशन/दबाव/प्रोत्साहन के तहत नहीं किया गया है, यह दोषसिद्धि प्रदान करने का एकमात्र आधार हो सकता है। ऐसी स्थिति में, किसी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **लखन बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2010) 8 सुप्रीम कोर्ट केसेस 514** मामले में यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि एक सक्षम मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज की गई मृत्यु पूर्व घोषणा निचले रैंक के पद द्वारा दर्ज की गई घोषणा की तुलना में बहुत अधिक होगी, इस कारण से कि सक्षम मजिस्ट्रेट के पास पीड़ित की मृत्यु पूर्व घोषणा में नामित व्यक्ति के खिलाफ पीसने के लिए कोई कुल्हाड़ी नहीं है।

50. घटना होने के बाद मृतक 22 दिनों तक जीवित रहा। संबंधित चिकित्सक से मेडिकल फिटनेस का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद पीडब्लू-10, श्री रंजीत कुमार, नायब तहसीलदार, सदर, मेरठ द्वारा

अनुवादित

उसकी मृत्यु का बयान दर्ज किया गया। यह मृत्यु पूर्व घोषणा उनके द्वारा साबित की गई थी। यह गवाह पूरी तरह से एक स्वतंत्र गवाह है और दोषियों के प्रति उसकी कोई शत्रुता या दुश्मनी नहीं है।

51. अपीलकर्तागण के लिए सीखा अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि मृत्यु पूर्व बयान संदिग्ध है और तथ्य के गवाहों द्वारा पुष्टि नहीं की गई है, इसलिए, यह दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बन सकता है। मृत्यु पूर्व घोषणा की कानूनी स्थिति दोषसिद्धि का एकमात्र आधार यह है कि ऐसा किया जा सकता है यदि इसे पढ़ाया नहीं गया है, स्वेच्छा से बनाया गया है और पूरी तरह से विश्वसनीय है। इस संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **लखन** (पूर्वोक्त) के मामले में मृत्यु पूर्व बयान के संबंध में कानून को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। इस मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि मृत्यु घोषणा का सिद्धांत कानूनी कहावत निमो मोरिटुरस प्रेसुमितुर मेंटायर में निहित है, जिसका अर्थ है, "एक आदमी अपने मुंह में झूठ के साथ अपने निर्माता से नहीं मिलेगा"। मृत्यु पूर्व घोषणा का सिद्धांत साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 में साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 में निहित सामान्य नियम के अपवाद के रूप में निहित है, जो यह प्रदान करता है कि सभी मामलों में मौखिक साक्ष्य प्रत्यक्ष होना चाहिए, अर्थात, यह एक गवाह का साक्ष्य होना चाहिए, जो कहता है कि उसने इसे देखा था। मृत्यु पूर्व बयान वास्तव में एक व्यक्ति का बयान है जिसे गवाह नहीं कहा जा सकता है और इसलिए उसकी प्रतिपरीक्षा नहीं की जा सकती है। इस तरह के बयान स्वयं कुछ मामलों में प्रासंगिक तथ्य हैं।

52. पीडब्लू -10 के बयान के अनुसार, मृत्यु घोषणा प्रदर्श क-12, उनके द्वारा 23.2.2011 को अस्पताल में दर्ज की गई थी, जहां मृतक, तब घायल स्थिति में, भर्ती कराया गया था। बयान दर्ज करने से पहले डॉक्टर द्वारा फिटनेस प्रमाण पत्र और रोगी की स्थिति को प्रमाणित किया गया था और इसकी रिकॉर्डिंग के बाद, डॉक्टर द्वारा एक अन्य प्रमाण पत्र का समर्थन किया गया था कि बयान के दौरान रोगी सचेत था। मृत्युपूर्व घोषणा को पीडब्लू-10 द्वारा प्रदर्श क-12 के रूप में सिद्ध किया गया है। उल्लेखनीय है कि पीडब्लू-10 में यह भी कहा गया है कि घायल के हाथ पूरी तरह जल गए थे और इसी कारण बयान पर उसके अंगूठे के निशान का समर्थन नहीं किया जा सका, बल्कि उस पर दाएं पैर की अंगुली की छाप का समर्थन किया गया था। यहां हमारा ध्यान पीडब्लू-5 डॉ. राजेंद्र कुमार के बयान की ओर जाता है, जिन्होंने इस तथ्य की भी पुष्टि की है कि जब घायल को अस्पताल लाया गया तो उसके दोनों हाथ, छाती, गर्दन, चेहरा, बाएं पैर का ऊपरी हिस्सा, बाएं और दाएं जांघ जल गए थे। उसके दोनों पैर की उंगलियों की छाप मेडिको लीगल रजिस्टर पर ले ली गई। इस रजिस्टर को पीडब्लू-5 द्वारा प्रदर्श-का-3 के रूप में सिद्ध किया गया है। पीडब्लू-5 के बयान का यह टुकड़ा पीडब्लू-10 के बयान को मजबूत करता है कि मृत्यु पूर्व बयान

अनुवादित

पर सही पैर की अंगुली की छाप का समर्थन क्यों किया गया था। यहां यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि विवेचना रिपोर्ट रिकॉर्ड पर नहीं है और विवेचना अधिकारी - पीडब्ल्यू -6 ने अपने साक्ष्य में कहा है कि पूछताछ दिल्ली में की गई थी और विवेचना रिपोर्ट उसके द्वारा तैयार नहीं की गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि विवेचना अधिकारी ने विवेचना रिपोर्ट एकत्र करने से चूक की है, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि मृत्यु पूर्व बयान विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया जाता है और इस सबूत के प्रकाश में, विवेचना अधिकारी द्वारा की गई चूक अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती है। पीडब्लू-10 द्वारा मृतका से घटना का कारण भी पूछा गया और उसने बताया कि उसके पिता और पति एक साथ शराब पी रहे थे और जब उसने इस पर नाराजगी दिखाई तो उसके पिता नाराज हो गए और दोनों के बीच कहासुनी हो गई। उसके पिता ने उसे चुप रहने के लिए डांटा और उसे जान से मारने की धमकी दी। उसने मिट्टी का तेल उठाया और उसके ऊपर उड़ेल दिया और जब उसने भागने की कोशिश की, तो उसके पति ने उसके ऊपर एक जलती हुई माचिस की छड़ी फेंकी जिसमें आग लग गई। उसके अंकल पप्पी और राजू उसे अस्पताल ले गए। फिर से, उसने विशेष रूप से अपने पिता सोमपाल और पति सुधीर को हमलावरों के रूप में नामित किया। हमें पीडब्लू-10 के बयान की विश्वसनीयता और विश्वसनीयता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं मिलता है, जो एक स्वतंत्र गवाह है, और मृत्यु घोषणा के ऊपर वर्णित परिस्थितियों में Ext. Ka-12 सबूत का एक विश्वसनीय और भरोसेमंद टुकड़ा है।

53. लखन (पूर्वोक्त) के पूर्वोक्त निर्णय के मद्देनजर, मृत्यु पूर्व घोषणा पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है, यदि यह विश्वास को प्रेरित करता है। मृत्यु पूर्व बयान की विश्वसनीयता और पुष्टि के बिना उस पर कार्रवाई करने पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 3 सर्वोच्च न्यायालय मुकदमा 280** में कहा कि यह कानून का पूर्ण सिद्धांत नहीं है कि मृत्यु पूर्व बयान किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है। जहां मृत्यु पूर्व बयान सही और सही है, उपस्थित परिस्थितियां इसे विश्वसनीय दिखाती हैं और इसे कानून के अनुसार दर्ज किया गया है, मृतक ने अपनी इच्छा से मृत्यु की घोषणा की और मन और शरीर की स्थिति के संबंध में डॉक्टर द्वारा उचित प्रमाणीकरण पर, तो न्यायालय के लिए पुष्टि की तलाश करना आवश्यक नहीं हो सकता है। ऐसे मामलों में, मृत्युपूर्व बयान ही अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बन सकता है। इसलिए, परीक्षण विश्वसनीयता को पारित करने के लिए, एक मृत्यु पूर्व बयान को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए बहुत बारीकी से विवेचना के अधीन किया जाना चाहिए कि बयान अभियुक्त की अनुपस्थिति में दिया गया है, जिसके पास प्रतिपरीक्षा द्वारा बयान की सत्यता का परीक्षण करने का कोई अवसर नहीं था। लेकिन एक बार जब

अनुवादित

न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच जाता है कि मृत्यु पूर्व बयान मौत की परिस्थिति और पीड़ित के हमलावरों के बारे में सच्चा संस्करण था, तो आगे पुष्टि का कोई सवाल ही नहीं है।

54. रमीलाबेन हसमुखभाई ख्रिस्ती बनाम गुजरात राज्य, (2002) 7 एससीसी 56 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि कानून के तहत, मृत्यु पूर्व बयान दोषसिद्धि का एकमात्र आधार हो सकता है, यदि यह किसी भी प्रकार के संदेह से मुक्त है और इसे कानून के तहत प्रदान किए गए तरीके से दर्ज किया गया है। मृत्यु पूर्व बयान की पुष्टि की तलाश करना आवश्यक नहीं हो सकता है। जैसा कि परिकल्पना की गई है, मृत्यु पूर्व घोषणा को सामान्यत एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा बयान देने के लिए घोषणाकर्ता की मानसिक उपयुक्तता के बारे में चिकित्सा चिकित्सक के प्रमाण पत्र के साथ दर्ज किया जाना होता है। यह प्रश्न और उत्तर से हो सकता है और उत्तर घोषणा करने वाले व्यक्ति के शब्दों में लिखे जा सकते हैं। लेकिन न्यायालय बहुत तकनीकी नहीं हो सकती है और सार रूप में अगर वह बयान की विश्वसनीयता के बारे में आश्वस्त महसूस करती है जो विश्वास को प्रेरित कर सकती है, तो इस तरह की मृत्यु पूर्व घोषणा पर बिना किसी पुष्टि के कार्रवाई की जा सकती है।

55. उपरोक्त कानूनी सिद्धांतों से, यह स्पष्ट रूप से उभरता है कि यह कानून का एक पूर्ण सिद्धांत नहीं है कि एक मृत्यु पूर्व बयान एक अभियुक्त की सजा का एकमात्र आधार नहीं बन सकता है जब इस तरह की मृत्यु की घोषणा सत्य, विश्वसनीय है और स्थापित अभ्यास और सिद्धांतों के अनुसार दर्ज की गई है और यदि यह ऐसा दर्ज किया गया है, तब इसकी शुद्धता और प्रामाणिकता को लेकर कोई चुनौती नहीं हो सकती।

56. मृतक की मृत्यु की घोषणा (प्रदर्श क-12), यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है, 23.2.2011 को दर्ज किया गया था और मृतक की मृत्यु 16.3.2011 को हुई थी जबकि घटना 22.2.2011 को हुई थी। इसका मतलब है कि मृत्यु पूर्व घोषणा करने के बाद वह 21 दिनों तक जीवित रही। इसलिए, मृत्यु की घोषणा की सत्यता का मूल्यांकन इस तथ्य से किया जा सकता है कि वह इसे बनाने के बाद 21 दिनों तक जीवित रही, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह प्रासंगिक समय पर बयान देने के लिए फिट मानसिक स्थिति में थी। इसके अलावा, मृत्यु पूर्व बयान में, मृतक ने अनावश्यक रूप से आरोपी अपीलकर्तागण के परिवार के अन्य सदस्यों को शामिल नहीं किया था। उसने केवल अपने पिता और पति को जलाने की भूमिका को जिम्मेदार ठहराया, जो वास्तविक अपराधी थे।

57. ऐसी स्थिति में, तथ्य के गवाहों की शत्रुता मृतक की मृत्यु की घोषणा के मूल्य और विश्वसनीयता को ध्वस्त नहीं कर सकती है, जो अभियोजन पक्ष द्वारा कानून के अनुसार साबित की गई है और घटना का एक सच्चा संस्करण है जो हुआ

अनुवादित

और उसकी मृत्यु के प्रति परिस्थितियों को दर्शाती है।

58. जैसा कि पहले ही देखा गया है, मरने की घोषणा दर्ज करने में शामिल गवाहों या अधिकारियों में से कोई भी शत्रुतापूर्ण नहीं हो गया था। इसके विपरीत, उन्होंने अभियोजन के मामले का पूरा समर्थन किया है। मृत्यु पूर्व बयान विश्वसनीय, सत्य है और मृतक द्वारा स्वेच्छा से किया गया था, इसलिए, इस मृत्यु पूर्व बयान पर बिना पुष्टि के कार्रवाई की जा सकती है और इसे दोषसिद्धि का एकमात्र आधार बनाया जा सकता है। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने मृत्यु पूर्व बयान के एकमात्र आधार पर कार्रवाई करने में कोई त्रुटि नहीं की है। विद्वान विचारण न्यायालय ने मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क -12 पर भरोसा करने और इसके आधार पर आरोपी-अपीलकर्तागण को दोषी ठहराने में पूरी तरह से उचित था।

59. रिकॉर्ड पर अन्य साक्ष्य भी अभियोजन पक्ष के संस्करण पर हमला करने वाले अपीलकर्तागण के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा ली गई दलीलों को गलत ठहराते हैं। ऑटोप्सी रिपोर्ट पीडब्लू -8, सहायक रिकॉर्ड कीपर, सफदरजंग अस्पताल, नई दिल्ली द्वारा साबित की गई है, जिन्होंने गवाही दी है कि पोस्टमार्टम 17.3.2011 को डॉ श्वेता गर्ग द्वारा किया गया था, लेकिन अब उन्होंने इस्तीफा दे दिया था और उनका पता नहीं था। अस्पताल के रिकॉर्ड के आधार पर इस गवाह द्वारा पोस्टमार्टम रिपोर्ट को द्वितीयक साक्ष्य साबित किया गया है, जो मामले की परिस्थितियों में कानून के तहत स्वीकार्य था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट से साबित होता है कि मृतक की मौत जलने की चोटों के कारण हुई थी। मृतक की मृत्यु सारांश रिपोर्ट सफदरजंग अस्पताल, नई दिल्ली में डॉ. शोभा जैन द्वारा तैयार की गई थी, जो पीडब्लू -9 द्वारा अस्पताल के रिकॉर्ड के आधार पर साबित हुई थी, जो उपरोक्त अस्पताल में लोअर डिवीजन क्लर्क है।

60. पीडब्लू -6, विवेचना अधिकारी, ने विवेचना की कार्यवाही और साइट प्लान प्रदर्श क -3 को साबित कर दिया है जिसमें सभी प्रासंगिक तथ्य शामिल हैं, घटना की जगह निर्धारित करता है, जिसे अपीलकर्ता सोमपाल के घर के रूप में दिखाया गया है, अभियोजन पक्ष के मामले के अनुरूप। घटना के दृश्य की पूरी स्थलाकृति को प्रदर्श क -3 में स्केच किया गया है। गौरतलब है कि मौके पर एक प्लास्टिक की डिब्बे, जिसमें मिट्टी के तेल की गंध और रजाई के जले हुए टुकड़े, खाट की जली हुई रस्सी के टुकड़े और जली हुई खाट के टुकड़े मिले और उसके ज्ञापन को पीडब्लू-6 द्वारा तैयार और साबित किया गया, जो अभियोजन पक्ष के संस्करण की पुष्टि करता है। हमें विवेचना अधिकारी की ओर से विवेचना में कोई महत्वपूर्ण चूक या चूक नहीं मिली।

61. मामले की एफ.आई.आर. और जी.डी. शुरू में कांस्टेबल क्लर्क राजेश जिंदल द्वारा तैयार की गई थी, जो पीडब्लू -7 द्वारा गवाही के रूप में एक सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी, जबकि राजेश जिंदल के लिए माध्यमिक गवाह के रूप में

अनुवादित

पेश होने के दौरान मामले के एफआईआर और जीडी को प्रदर्श क-7 और प्रदर्श क -8 के रूप में साबित करने के लिए। वह दृढ़ता से कहता है कि उस समय, वह पुलिस स्टेशन बहादुरगढ़ में हेड कांस्टेबल के रूप में तैनात था और बाद में सूचनाकर्ता गिरिराज सिंह ने 22.2.2011 को पुलिस स्टेशन में एक लिखित रिपोर्ट दी और उस लिखित रिपोर्ट के आधार पर, धारा 302 भा0दं0सं0 के तहत मामला परिवर्तित किया गया और संबंधित जीडी प्रदर्श क -9 तैयार किया गया।

62. मामले में, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, अभियोजन पक्ष ने प्रासंगिक समय पर मौके पर अपीलकर्तागण की उपस्थिति के बारे में तथ्य स्थापित किया है और अपने दायित्व का निर्वहन किया है, इसलिए सबूत का बोझ अपीलकर्तागण पर सकारात्मक साक्ष्य द्वारा अपनी दलील स्थापित करने के लिए था और हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है किअपीलकर्ता अपनी दलील के अनुसार पूर्ण निश्चितता के अपने बोझ का निर्वहन करने में बुरी तरह विफल रहे हैं और इस विफलता को उनके खिलाफ एक अतिरिक्त परिस्थिति के रूप में पढ़ा जा सकता है।

63. आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर सबूतों की बहुत सावधानी से और उचित तरीके से विवेचना की है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध ठोस और विश्वसनीय सबूतों के आधार पर अपीलकर्तागण की दोषसिद्धि दर्ज की गई है और उन्हें ठीक से सजा सुनाई गई है।

64. विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया है और आक्षेपित निर्णय में प्रासंगिक मुकदमा कानूनों को भी संदर्भित किया है। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि विचारण न्यायालय की ओर से सबूतों की कोई भौतिक कमी या गलत व्याख्या नहीं है और हमारे पास अपीलकर्तागण की दोषसिद्धि को दर्ज करने के लिए अपने निष्कर्ष के साथ विद्वान विचारण न्यायालय से सहमत होने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

65. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में स्थापित कानूनी स्थिति के सावधानीपूर्वक विश्लेषण और विचार करने पर, हमारी राय है कि आक्षेपित निर्णय और आदेश में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया निष्कर्ष कानून और रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार है। इस प्रकार, इस न्यायालय का विचार है कि अभियोजन पक्ष धारा 302 भा0दं0सं0 के तहत आरोपी अपीलकर्तागण के अपराध को उचित संदेह से परे और न्यायालय के न्यायिक विवेक की संतुष्टि के लिए धारा 34 भा0दं0सं0 के साथ पठित करने में सक्षम रहा है।

66. दोषसिद्धि और सजा का आक्षेपित निर्णय, जिसे निष्क्रिय करने की मांग की गई है, अच्छी तरह से सोचा और अच्छी तरह से चर्चा की गई है और वही, कोई हस्तक्षेप नहीं है, बरकरार रखा जा सकता है और कोई बल नहीं होने वाली अपील खारिज करने के लिए उत्तरदायी है।

अनुवादित

तदनुसार, आक्षेपित निर्णय और आदेश को बरकरार रखा जाता है और अपील **खारिज** की जाती है।

67. विचारण न्यायालय के अभिलेख के साथ इस फैसले की एक प्रति आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय, गाजियाबाद को प्रेषित की जाए।

(2023) 2 ILRA 387

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 25.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

चुनाव याचिका संख्या 9/2022

सर्वेश कुमार गुप्ता

...याचिकाकर्ता

बनाम

डॉ. नीरज बोरा

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्रद्धा त्रिपाठी, पवन कुमार उपाध्याय

अधिवक्ता प्रतिवादी: डॉ. शैलेन्द्र शर्मा, अनुप्रिया श्रीवास्तव, कौशलेन्द्र यादव, शितेश झा

ए. चुनाव याचिका-जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951-धारा 6-इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952-नियम 5, 6,6(सी)-नियम 6(सी) का अनुपालन न होना-वर्तमान वाद में याचिकाकर्ता ने प्रकाशन के संबंध में नियम 6 का पालन नहीं किया है जो अनिवार्य है - याचिकाकर्ता ने प्रकाशन के लिए आवश्यक राशि जमा करने से इनकार कर दिया और उसे ऐसे प्रकाशन से छूट नहीं दी जा सकती - वर्तमान चुनाव याचिका स्वयं सुनवाई योग्य नहीं है। (1 से 26)

बी. आरपी अधिनियम की धारा 81(3) में याचिकाकर्ता द्वारा सत्यापित प्रतियों के साथ चुनाव याचिका दायर करने का प्रावधान है-आरपी अधिनियम की धारा 86 में प्रावधान है कि धारा 81 के प्रावधानों का पालन करने में विफलता के परिणामस्वरूप चुनाव याचिका प्रारंभिक चरण में निरस्त कर दी जाएगी। .(23,24)

याचिका निरस्त की जाती है।(ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. डॉ. विजय लक्ष्मी साधौ बनाम जगदीश (2001) एआई.आर.एससी 600

2. सरिता एस. नायर बनाम हिबी ईडन एसएलपी (सिविल) 2020 का नंबर 10678

3. टी.एम. जैकब बनाम सी. पॉलोज़ एवं अन्य , अपील (सिविल) संख्या 1455 /1996

4. मुरारका राधे श्याम कुमार बनाम रूप सिंह राठौर और अन्य (1964) एआईआर 1545

5. लाल बहादुर बनाम रितेश पांडे (2021) ILR 10 सभी 653; चुनाव याचिका संख्या 01/2019

6. डॉ. मोहम्मद इस्माइल फारुकी बनाम श्री राजनाथ सिंह, चुनाव याचिका संख्या 5/ 2014

अनुवादित

7. श्योधन सिंह बनाम मोहन लाल गौतम (1969) 3 एससीआर 417 पृष्ठ 421: (एआईआर) 1969 एससी 1024 पृष्ठ 1026)

8. के.के. रामचंद्रन मास्टर बनाम एम.वी. श्रेयाकुमार (2010) 7 एससीसी 428

9. उदय शंकर त्रियार बनाम राम कलेवर प्रसाद सिंह एवं अन्य (2006) 1 एससीसी 75

10. इनामती मल्लप्पा बसप्पा बनाम देसाई बसवराज अयप्पा और अन्य, एआईआर 1958 एससी 698

11. कामराज थेवर बनाम कंजू थेवर, सिविल अपील संख्या। 763 और 764/1957: सिविल अपील संख्या 48/ 1958 (एआईआर 1958 एससी 687)

12. डॉ. पी नल्ला थम्पी थेरा बनाम बी.एल. शंकर एवं अन्य एआई 1984 एससी 135

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान, द्वारा प्रदत्त)

(i) सी.एम. आवेदन (आईए) संख्या 01 वर्ष 2022; माननीय निबंधक द्वारा आदेश दिनांक 27.04.2022 के अनुपालन में निर्गत पत्र दिनांक 07.05.2022 के विरुद्ध आपत्ति, जिसमें याचिकाकर्ता को याचिकाकर्ता द्वारा चुनाव याचिका की सूचना के प्रकाशन के संबंध में 94500/- रुपये की राशि जमा करने की मांग की गई थी।

(ii) सी.एम. आवेदन (आईए) संख्या 02 वर्ष 2022; विरोधी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता डॉ. शैलेन्द्र शर्मा द्वारा प्रस्तुत वकालतनामा को अभिलेख पर लेने हेतु आवेदन।

(iii) सी.एम. आवेदन (आईए) संख्या 03 वर्ष 2022; चुनाव याचिका की पोषणीयता के विरुद्ध लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 86 (1) सहपठित धारा 87 (1) एवं सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के आदेश VII नियम 11 (ए) अन्तर्गत प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत चुनाव याचिका संख्या 09/2022 को अस्वीकार / खारिज करने के लिए आवेदन / प्रारंभिक आपत्ति।

(iv) सी.एम. आवेदन (आईए) संख्या 04 वर्ष 2022; प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत आपत्ति का उत्तर प्राप्त करने हेतु आवेदन।

1. याचिकाकर्ता की विद्वान अधिवक्ता सुश्री श्रद्धा त्रिपाठी और एकमात्र प्रतिवादी/विरोधी पक्षकार के विद्वान अधिवक्ता डॉ. शैलेन्द्र शर्मा को सुना।

2. वर्तमान चुनाव याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने प्रार्थना की है कि विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र 172 लखनऊ, उत्तर से निर्वाचित उम्मीदवार डॉ. नीरज बोरा, विरोधी पक्षकार, का निर्वाचन, जो 10.03.2022 को घोषित किया गया था, को शून्य घोषित और अपास्त किया जाए। न्यायहित में परिणामी आदेश भी पारित किया जा सकता है।

3. वाद ग्रहण करने के प्रथम दिनांक अर्थात 27.04.2022 को इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया है:-

"चुनाव याचिकाकर्ता की विद्वान अधिवक्ता सुश्री श्रद्धा त्रिपाठी को सुना।

अनुवादित

इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय XV-ए नियम 5 और 6 के अनुसार प्रतिवादी को नोटिस जारी करें।
सात कार्य दिवस में प्रतिवादी को नोटिस तामील करने हेतु कार्रवाई की जाए।
नोटिस की तामील के बाद सूचीबद्ध करें।"

4. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 का अध्याय-XV-ए (इसके बाद यह "नियमावली, 1952" के रूप में संदर्भित) चुनाव याचिका के विचारण से संबंधित विशेष प्रावधानों को परिभाषित करता है। चूँकि नियमावली, 1952 के नियम 5 और 6 के संदर्भ में विपक्षी पक्ष को नोटिस जारी किया गया है, इसलिए, सुविधा हेतु, नियम 5 और 6 को यहाँ पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

*"5. **प्रतिवादी को नोटिस जारी करना** - चुनाव याचिका बिना किसी देरी के गठित पीठ के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी, और जब तक इसे अधिनियम की धारा 86 की उप-धारा (1) के तहत या अन्यथा दोषपूर्ण होने के कारण खारिज नहीं किया जाता है, पीठ प्रतिवादी को उपस्थित होने और उसमें निर्दिष्ट तिथि पर दावे का उत्तर देने के लिए नोटिस जारी करने का निदेश दे सकती है। ऐसे नोटिस में यह निदेश भी दिया जाएगा कि यदि वह बचाव करना चाहता है तो उसे सभी दस्तावेजों की सूची के साथ अपना लिखित बयान प्रस्तुत करना होगा, चाहे वह उसके कब्जे अथवा शक्ति में हो या नहीं, जिस पर वह निर्धारित तिथि पर या उससे पहले अपने बचाव के समर्थन में साक्ष्य के रूप में विश्वास करता है; और इसके अतिरिक्त , नोटिस में निर्धारित तिथि पर या उससे पहले उपस्थिति दर्ज करने में चूक होने पर चुनाव याचिका पर उनकी अनुपस्थिति में सुनवाई और निर्णय किया जा सकता है। नोटिस फॉर्म संख्या 34-ए में होगी।*

*6. **प्रक्रिया शुल्क और प्रभार**- (ए) प्रतिवादी के लिए नोटिस सामान्य प्रक्रिया द्वारा और साथ ही पंजीकृत डाक द्वारा जारी किया जाएगा।*

(बी) चुनाव याचिका की सूचना निबंधक द्वारा चयनित समाचार पत्र में भी साथ ही प्रकाशित की जाएगी।

(सी) नोटिस, प्रक्रिया शुल्क, प्रभार और समाचार पत्र में प्रकाशन की लागत के कारण प्रारंभिक जमा के रूप में [250 रुपये की राशि] याचिकाकर्ता द्वारा नोटिस जारी करने के आदेश के सात दिनों में प्रदान की जाएगी। व्यतिक्रम की स्थिति में, चुनाव याचिका आदेश हेतु खंडपीठ के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी। जब तक कि पर्याप्त कारण होने पर अतिरिक्त समय नहीं दिया जाता है, पीठ चुनाव याचिका को खारिज कर सकती है।

(डी) जहाँ किसी समाचार पत्र में प्रकाशन का व्यय 50 रुपये से अधिक है, निबंधक याचिकाकर्ता को उसके द्वारा निर्धारित समय में अतिरिक्त राशि न्यायालय में में जमा करने का निर्देश देगा। याचिकाकर्ता द्वारा ऐसा व्यय जमा करने में विफलता पर, याचिका ऐसे आदेशों हेतु पीठ के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी जो पीठ उचित समझे। यदि प्रकाशन का व्यय 50 रुपये से कम है

अनुवादित

तो याचिकाकर्ता अतिरिक्त राशि की वापसी का अधिकारी होगा।"

5. नियमावली, 1952 के नियम 6 (सी) के अनुसार समाचार पत्र में प्रकाशन हेतु वरिष्ठ निबंधक ने अपने आदेश दिनांक 05.06.2022 में इंगित किया है कि "नियमावली के अनुसार हिंदी दैनिक समाचार पत्र दैनिक जागरण, लखनऊ संस्करण में सूचना प्रकाशित की जाए।"

6. चुनाव याचिका संख्या 09/ 2022 में दायर आपत्ति संख्या 01/2022 के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने 13.05.2022 को एक आपत्ति प्रस्तुत की और अनुरोध किया कि याचिकाकर्ता को नियमावली 1952 के नियम6 (सी) के संदर्भ में प्रकाशन की आवश्यकता से छूट दी जा सकती है, जिसमें कहा गया है कि याचिकाकर्ता समाचार पत्र में प्रकाशन के नाम पर इतनी बड़ी धनराशि अर्थात रुपये 94,450/- का भुगतान करने में असमर्थ है क्योंकि वह एक साधारण पृष्ठभूमि का व्यक्ति है और इतनी बड़ी धनराशि का भुगतान उसके नियंत्रण और साधन से परे है, जैसा कि इस आपत्ति के प्रस्तर -11 में कहा गया है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (इसके बाद "अधिनियम, 1951" के रूप में संदर्भित) की धारा 6 के आदेश का संदर्भ दिया है कि इस अधिनियम, 1951 में समाचार पत्र में प्रकाशन का संकेत नहीं दिया गया है, इसलिए याचिकाकर्ता को प्रकाशन के लिए इतनी बड़ी राशि जमा करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। उसने आगे कहा है कि नियमावली, 1952 का नियम 6 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के विपरीत है, जो अधिनियम, 1951 की धारा 87 के अंतर्गत चुनाव याचिका में प्रयोज्य है। उन्होंने यह भी कहा है कि चूँकि एकमात्र प्रतिवादी अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुआ है, इसलिए, प्रकाशन का कोई उद्देश्य नहीं है, और यदि याचिकाकर्ता को नियमावली, 1952 के नियम 6 (सी) के संदर्भ में राशि जमा करने के लिए बाध्य किया जाता है, तो यह अर्थहीन होगा और विधि का उपहास होगा जैसा कि इस आशय का कथन आपत्ति के प्रस्तर-10 के साथ-साथ उसके लिखित बयान के प्रस्तर-10 में भी है। अपनी तर्कों के समर्थन में उन्होंने **डॉ. विजय लक्ष्मी साधो बनाम जगदीश, एआईआर 2001 SC 600** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया है, जिसके प्रस्तर-16-ए, 20, 21 और 22 के प्रासंगिक अंशों का उल्लेख निम्नवत हैं :-

> *"16-ए चुनाव याचिकाओं की सुनवाई के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियम प्रकृति में मात्र प्रक्रियात्मक हैं और "मौलिक विधि" का गठन नहीं करते हैं। उच्च न्यायालय नियमावली का अनुपालन न करने के परिणाम के मूल्यांकन हेतु उस नियमावली को अन्य वैधानिक प्रावधानों के साथ पढ़ा जाना*

अनुवादित

चाहिए। अनुच्छेद 329 (बी) में कहा गया है कि संसद के किसी भी सदन या राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन के लिए किसी भी निर्वाचन पर ऐसे प्राधिकारी को प्रस्तुत निर्वाचन याचिका के अतिरिक्त और उस रीति से प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है जैसा कि विधायिका द्वारा बनाई गई किसी भी विधि द्वारा या उसके अन्तर्गत प्रदान किया गया है। अधिनियम की धारा 81 किसी चुनाव याचिका की प्रस्तुति से संबंधित है जबकि धारा 82 चुनाव याचिका के पक्षकारों से संबंधित है और धारा 83 ऐसी याचिका की सामग्री से संबंधित है।

20. यह प्रश्न कि क्या हिंदी भाषा में तैयार की गई चुनाव याचिका पोषणीय है या नहीं, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष चुनाव याचिका संख्या 9/ 1980, वीलाल पुत्र श्रीराम खाड़ा बनाम किंकर नर्मदा प्रसाद एवं अन्य वाद में, में विचार हेतु प्रस्तुत हुआ था। हिन्दी भाषा में तैयार की गई चुनाव याचिका की पोषणीयता को दी गई चुनौती को खारिज करते हुए कहा गया:-

> *"अब यह सच है कि उपरोक्त नियमावली के नियम 2 (बी) में यह प्रावधान है कि प्रत्येक चुनाव याचिका अंग्रेजी भाषा में लिखी जाएगी। लेकिन अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमावली में किसी भी प्रावधान के अभाव में, उपरोक्त नियमावली का नियम 2 (बी) का अनुपालन नहीं किया जाना अधिनियम की धारा 86 के अन्तर्गत याचिका को खारिज करने का आधार नहीं हो सकता है।"*

*21. हालाँकि, **जय भानसिंह पवैया बनाम श्री माधवराव सिंधिया** वाद में उस उच्च न्यायालय के एक अन्य एकल न्यायाधीश द्वारा एक विपरीत मत व्यक्त किया गया था। इस मामले में यह धारित किया गया कि दायर करने से संबंधित नियमावली के नियम 2 (बी) का उल्लंघन करते हुए हिंदी भाषा में दायर की गई चुनाव याचिकापोषणीय नहीं थी और अधिनियम की धारा 86 के तहत खारिज की जा सकती थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने मत व्यक्त किया (एआईआर का प्रस्तर-25):*

22. हमारे मत में, जय भानसिंह के मामले में, उच्च

अनुवादित

न्यायालय नियमावली के नियम 2 की व्याख्या, जो इसे संविधान के अनुच्छेद 348 (2) पर लगभग प्रधानता देती है, भ्रामक है। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस स्थिति को उपेक्षित कर दिया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 225 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियम मात्र प्रक्रियात्मक नियमावली हैं और मूल विधि का गठन नहीं करते है, तथा यह नियमावली संविधान के अनुच्छेद 348(2) में निहित संवैधानिक प्रावधान के महत्व को प्रभावित नहीं कर सकते हैं। जयभान सिंह के मामले में उच्च न्यायालय के नियमावली के नियम 2(बी) को जो उच्च स्थान प्रदान किया गया है, वह न केवल स्पष्ट संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करता है अपितु अधिनियम की धारा 86 में एक खंड भी प्रस्तुत करता है, जो अस्तित्व में नहीं है। अनुच्छेद 348(2) के अंतर्गत निर्गत अधिसूचना के प्रभाव पर विचार करने का संपूर्ण दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त, नियमावली के नियम 2(बी) के अनुसार चुनाव याचिका प्रस्तुत न करने का दोष उन दोषों में से एक नहीं है जो अधिनियम की धारा 81, 82 अथवा 117 के अंतर्गत आते हैं ताकि अधिनियम की धारा 86 की दृढ़ता को आकर्षित किया जा सके, जैसा कि देवीलाल (उपरोक्त) के वाद में सही माना गया ।

उन्होंने प्रस्तुत किया है कि शीर्ष अदालत के उपरोक्त निर्णय के दृष्टिगत तकनीकी कारणों से चुनाव याचिका खारिज नहीं की जा सकती।

8. निःसंदेह, अपनी आपत्ति के माध्यम से उन्होंने किसी वैकल्पिक समाचार पत्र हेतु प्रार्थना नहीं की है। याचिकाकर्ता की उपरोक्त आपत्ति के दृष्टिगत उन्होंने वह राशि जमा नहीं की है जो सूचना के प्रकाशन हेतु आवश्यक थी। तत्पश्चाच, संयुक्त निबंधक (जे) (एन) ने अपनी आख्या दिनांक 29.06.202 को प्रस्तुत की, जो निम्नवत है: -

"चुनाव याचिका सं० 09/2022

कार्यालय रिपोर्ट दिनांक 27.06.2022 के अनुसार, 05.05.2022 को बुक किए गए डिस्पैच नंबर 3613 दिनांक 04.05.2022 के माध्यम से विपरीत पक्ष को जारी किये गए पंजीकृत पोस्ट (एडी) नोटिस का अप्राप्य लिफाफा वापस नहीं प्राप्त हुआ है और न ही कोई

अनुवादित

वकालतनामा दाखिल किया गया है।

इसके अतिरिक्त, यह नोटिस जिला न्यायाधीश, लखनऊ के माध्यम से भी भेजा गया था, जो आदेश वाहक की टिप्पणी के साथ वापस प्राप्त हुआ कि नोटिस विपक्षी के कार्यालय में कंप्यूटर ऑपरेटर, हिमांशु पाटनी को दिया गया है।

आदेश वाहक और पंजीकृत डाक एडी की रिपोर्ट के आधार पर विपक्षी को नोटिस की तामील पर्याप्त है।

इसके अतिरिक्त, कार्यालय ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ने उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय XV-ए के नियम 5 और 6 के अनुसार आवश्यक प्रकाशन शुल्क जमा नहीं किया है, इसलिए, उच्च न्यायालय नियमावली-1952 के अध्याय XV-ए के नियम 6 (बी) के अनुसार दैनिक समाचार पत्र में नोटिस प्रकाशित नहीं किया जा सकता है।

माननीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करें।

संयुक्त

रजिस्ट्रार (जे) (एन)

29.06.2022"

9. सी.एम. आवेदन (आईए) संख्या 02/2022 के माध्यम से., डॉ. शैलेन्द्र शर्मा ने 28.07.2022 को वकालतनामा प्रस्तुत किया है। डॉ. शर्मा ने सी.एम. आवेदन (आईए) संख्या 03/2022 द्वारा चुनाव याचिका को पोषणीयता के आधार पर अस्वीकार/खारिज करने के लिए प्रारंभिक आपत्ति प्रस्तुत की है।

10. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता डॉ. शैलेन्द्र शर्मा ने प्रस्तुत किया है कि चुनाव याचिका अनिवार्य और वैधानिक शर्तों का पालन नहीं करती है, इसलिए इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए। उन्होंने कहा है कि उन्होंने यह प्रार्थना करते हुए आपत्ति दायर की है कि उन आपत्तियों के निस्तारण के बाद, यदि आवश्यक हो, तो उन्हें चुनाव याचिका का उत्तर/ लिखित तर्क प्रस्तुत करने के लिए समय दिया जाए। डॉ. शर्मा ने कहा है कि चुनाव याचिका के प्रस्तर 1 में कथनों को इस आशय हेतु स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि याचिकाकर्ता ने श्री सर्वेश कुमार गुप्ता के नाम पर 172 लखनऊ उत्तर विधानसभा क्षेत्र का चुनाव नहीं लड़ा है क्योंकि इस तरह के नाम का उल्लेख चुनावी नामांकित उम्मीदवारों की सूची में किया गया है, जो भारत निर्वाचन आयोग की आधिकारिक वेबसाइट पर उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त, नियमावली 1952 के नियम 3 में प्रावधान है कि प्रत्येक चुनाव याचिका निबंधक के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी। नियम 5 और 6, शुल्क और प्रभार की प्रक्रिया से संबंधित हैं। उपरोक्त नियमावली के आलोक में, यदि

अनुवादित

याचिकाकर्ता ने समाचार पत्र में प्रकाशन हेतु कार्रवाई नहीं की है, जो अनिवार्य आवश्यकता है, तो ऐसी चुनाव याचिका को दोषपूर्ण चुनाव याचिका माना जा सकता है और गुण-दोष के आधार पर आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है।

11. पुनः डॉ. शर्मा ने तर्क प्रस्तुत किया है कि अधिनियम, 1951 की धारा 83 (1) (सी) में प्रावधान है कि चुनाव याचिका पर याचिकाकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे और सिविल प्रक्रिया संहिता में निर्धारित तरीके से सत्यापित किए जाएंगे। अधिनियम, 1951 की धारा 83 (2) में आगे प्रावधान है कि याचिका के प्रत्येक अनुलग्नक पर याचिकाकर्ता द्वारा विहित रीति से ही हस्ताक्षर किए जाएंगे और इन्हें सत्यापित किया जाएगा। सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश VI, सिविल प्रक्रिया संहिता का नियम 15 अभिवचनों के सत्यापन का वर्णन करता है। डॉ. शर्मा के अनुसार, उपरोक्त अनिवार्य प्रक्रिया चुनाव याचिका में अनुपलब्ध है क्योंकि चुनाव याचिका के साथ-साथ इसके सभी अनुलग्नकों, अनुपूरक शपथ-पत्रों पर याचिकाकर्ता द्वारा अधिनियम, 1951 के धारा 83 (1) (सी) एवं 83 (2) सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम 15 आदेश VI द्वारा उपबंधित विधि से हस्ताक्षर और सत्यापन नहीं किया गया है।

12. डॉ. शर्मा ने कहा है कि चुनाव याचिका की मुख्य प्रति, चुनाव याचिका के साथ संलग्न अतिरिक्त प्रति और प्रतिवादी के लिए विद्वान अधिवक्ता को प्रदान की गई प्रति से भिन्न है, क्योंकि चुनाव याचिका की मुख्य प्रति में वर्तमान पृष्ठ संख्या 14के बाद कोई पृष्ठ संख्या नहीं है, हालाँकि, अतिरिक्त प्रति में पृष्ठ संख्या 15 है। इसके अतिरिक्त, मूल प्रति में निर्वाचित उम्मीदवार का नाम डॉ. नीरज बोरा टंकित किया गया है, जबकि अतिरिक्त प्रति में कलम द्वारा पहले लिखे गये व्यक्ति का नाम काटकर निर्वाचित अभ्यर्थी का नाम अंकित किया गया है। डॉ. शर्मा के अनुसार, अतिरिक्त प्रति और प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता को प्रदान की गई प्रति मुख्य प्रति के संगत और समान होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, उपरोक्त विसंगतियों को धोखाधड़ी माना जा सकता है। यदि याचिकाकर्ता चुनाव याचिका के किसी कथन या सामग्री को बदलना चाहता है, तो न्यायालय की पूर्व अनुमति से ऐसा किया जा सकता है।

13. प्रतिवादी के उपरोक्त तर्क का उत्तर देते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि पृष्ठांकन का दोष एक मामूली दोष है जो महत्वपूर्ण प्रकृति का नहीं है और अधिनियम, 1951 की धारा 81 (3) के अनुसार सत्य प्रतिलिपि की प्रकृति को समाप्त नहीं करता है। अतः, यह अधिनियम, 1951 की धारा 86 (1) को आकृष्ट नहीं करता। पृष्ठ संख्या की अनुपस्थिति प्रतिवादी को भ्रमित नहीं करती है।

14. डॉ. शर्मा के अनुसार, यदि प्रासंगिक पृष्ठों का परिशीलन किया जाए तो चुनाव याचिका में दावाकृत अनुतोष मूल चुनाव

अनुवादित

याचिका के साथ संलग्न अनिवार्य अतिरिक्त प्रति में दावाकृत अनुतोष से पूर्णतः भिन्न प्रतीत होता है क्योंकि प्रासंगिक पृष्ठों में कुछ विलोपन और संशोधन दर्शित होता हैं जिन्हें कभी भी नोटरीकृत नहीं किया गया था।

15. उपर्युक्त तर्कों का उत्तर देते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह एक साध्य दोष है और उन्होने **विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 10678/ 2020, सरिता एस. नायर बनाम हिबी ईडन** और **टी.एम. जैकब बनाम सी. पॉलोज़ एवं अन्य, अपील (सिविल) संख्या 1455/ 1996** निर्णय विधियों पर विश्वास व्यक्त किया है। **मुरारका राधे श्याम कुमार बनाम रूप सिंह राठौड़ और अन्य, एआईआर 1964 1545** की निर्णय विधि पर यह तर्क प्रस्तुत करने के लिये विश्वास व्यक्त किया गया है कि अधिनियम, 1951 की धारा 81(3) के अन्तर्गत एक प्रति प्रस्तुत करने का अर्थ पूर्णतः सदृश प्रतिलिपि नहीं है, अपितु इसका अर्थ यह है कि सत्य प्रतिलिपि इतनी सत्य होगी कि कोई भी किसी भी संभावना से इसे गलत नहीं समझ सकता है।

16. डॉ. शर्मा ने आगे प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा चुनाव याचिका के प्रस्तर 11 और 13 में प्रस्तुत कथन और याचिका के संलग्नक संख्या 7 में प्रस्तुत कथन परस्पर विपरीत हैं और इस प्रकार यह विधि की स्थापित प्रस्थापना के विरुद्ध है, जिसकी यह स्पष्ट घोषणा है कि किसी चुनाव याचिका में किसी विचारणीय वादबिन्दु को उत्पन्न करने में सक्षम सारवान तथ्यों का संक्षिप्त कथन होना चाहिए, जिसमें से एक भी सारवान तथ्य का हटाया जाना अपूर्ण वादहेतु को जन्म देगा, और सारवान तथ्य से हीन चुनाव याचिका अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत चुनाव याचिका कदापि नहीं है। ऐसी स्थिति में वर्तमान चुनाव याचिका धारा 83(1) की उपर्युक्त अनिवार्य अपेक्षाओं को पूर्ण करने में विफल रही है। चुनाव याचिका का मूल आधार दिनांक 04.02.2022 (अनुलग्नक संख्या 3) की आपत्ति है जो इस सीमा तक त्रुटिपूर्ण है कि इसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 173 को गलत तरीके से चित्रित और उद्धृत किया गया है और इस प्रकार, दिनांक 04.02.2022 की कथित आपत्ति कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि यह प्रकृति में दोषपूर्ण है।

17. डॉ. शर्मा ने यह अभिकथन भी प्रस्तुत किया है कि वर्तमान याचिका में चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा उठाया गया मुद्दा इस माननीय न्यायालय द्वारा विनिश्चयन की विषयवस्तु नहीं हो सकता है, क्योंकि राजनीतिक दलों की मान्यता के संबंध में उत्तर प्रदेश राज्य में 2022 के विधानसभा चुनाव की अधिसूचना से बहुत पहले कार्रवाई का कथित वादहेतु वर्तमान था, जैसा कि पत्र दिनांक 02.04.2022 (पृष्ठ 28 पर संलग्न) के परिशीलन से स्पष्ट है, इसलिए चुनाव याचिका गलत समझी जाने के कारण अस्वीकार किये जाने योग्य है।

अनुवादित

18. डॉ. शर्मा ने इस न्यायालय का ध्यान **चुनाव याचिका संख्या 01/ 2019 लाल बहादुर बनाम रितेश पांडे, (2021) आईएलआर 10 All 653** में दिए गए इस न्यायालय के दिनांक 25.10.2021 के निर्णय की ओर आकर्षित किया है कि इस न्यायालय द्वारा लगभग इसी प्रकार के विवाद पर विचार किया गया है और इस न्यायालय ने उस आवेदन को खारिज कर दिया है जिसके द्वारा प्रकाशन से छूट की मांग की गई थी। उस चुनाव याचिका को पोषणीय न पाते हुए खारिज कर दिया गया था। उपर्युक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ माननीय उच्च न्यायालय की प्रासंगिक निर्णय विधियों पर दोनों पक्षों द्वारा विचार किया गया है। इसलिए निर्णय और आदेश दिनांक 25.10.2021 का प्रासंगिक भाग यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

> *"8. मैंने पक्षों द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है। **(डॉ. मोहम्मद इस्माइल फारूकी बनाम श्री राजनाथ सिंह: 2014 की चुनाव याचिका संख्या 5)** के वाद में दिए गए निर्णय दिनांक 17.07.2015 में भी, न्यायालय ने अन्य तरीकों के साथ-साथ एक समाचार पत्र में प्रकाशन द्वारा नोटिस की तामील हेतु निर्देश दिया था। उक्त वाद में याचिकाकर्ता ने तामील हेतु साधारण डाक के साथ-साथ पंजीकृत डाक के माध्यम का प्रयोग किया। उन्हें चयनित समाचार पत्र में प्रकाशन की लागत रु 9024/- बताई गई। याचिकाकर्ता ने शपथ-पत्र के साथ प्रार्थना पत्र दिनांक 8.4.2015 इस प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया, कि उसे समाचार पत्र में नोटिस के प्रकाशन से इस आधार पर छूट दी जाए कि इतनी अधिक धनराशि की व्यवस्था करना उसके लिए संभव नहीं था। उक्त मामले में यह भी आधार लिया गया था कि प्रतिवादी को पंजीकृत डाक द्वारा प्रेषित नोटिस तामील किया गया है, और इस प्रकार प्रकाशन की कोई आवश्यकता नहीं है। इस न्यायालय ने तर्कों और पूर्व स्थापित विधि पर विचार करने के बाद निम्नवत धारित किया :*
>
> *"याचिकाकर्ता और प्रतिवादी के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर न्यायालय ने विचार किया।*
>
> *याचिकाकर्ता का प्रथम तर्क कि चूँकि विवाद याचिकाकर्ता और एकमात्र प्रतिवादी के बीच है, अतः न्यायालय को समाचार पत्र में नोटिस के प्रकाशन से छूट देनी चाहिए क्योंकि प्रतिवादी का प्रतिनिधित्व एक अधिवक्ता द्वारा किया जाता है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है।*
>
> *जैसा कि ऊपर उद्धृत है, नियमावली के अध्याय XV-ए में निहित नियम 3 में प्रावधान है कि*

अनुवादित

प्रत्येक चुनाव याचिका निबंधक के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी। नियम 5 में प्रावधान है कि पीठ प्रतिवादी को नोटिस जारी करने का निर्देश दे सकती है। इस प्रकार के नोटिस में यह भी निर्देश दिया जाएगा कि यदि प्रतिवादी बचाव करना चाहता है तो उसे अपना लिखित बयान उन सभी दस्तावेजों की सूची सहित दाखिल करना होगा, चाहे वह उसके कब्जे में या शक्ति के अधीन हो या न हो, जिस पर वह निर्धारित तिथि या उससे पूर्व अपने बचाव के समर्थन में साक्ष्य के रूप में विश्वास करना चाहता है, एवं इसके अतिरिक्त, नोटिस में तय तिथि पर या उससे पूर्व उपस्थित न होने पर, चुनाव याचिका उसकी अनुपस्थिति में सुनी एवं निर्णीत की जा सकती है। नियम 6 के उप-नियम (ए) में प्रावधान है कि प्रतिवादी हेतु नोटिस सामान्य प्रक्रिया एवं साथ ही पंजीकृत डाक द्वारा जारी किया जाएगा। हालाँकि, नियम 6 के उप-नियम (बी) में यह प्रावधान है कि चुनाव याचिका की सूचना निबंधक द्वारा चुने गए समाचार पत्र में भी साथ ही प्रकाशित की जाएगी। निबंधक ने एक समाचार पत्र का चयन किया था, एवं याचिकाकर्ता को इस तथ्य एवं नोटिस के प्रकाशन हेतु जमा की जाने वाली राशि की विधिवत जानकारी दी गई थी। इस स्तर पर याचिकाकर्ता ने समाचार पत्र में नोटिस के प्रकाशन से छूट हेतु एक आवेदन प्रस्तुत किया।

किसी चुनाव याचिका में विवाद मात्र याचिकाकर्ता एवं प्रतिवादी तक ही सीमित नहीं है अपितु इसमें संपूर्ण निर्वाचन क्षेत्र सम्मिलित होता है एवं प्रत्येक इच्छुक व्यक्ति को चुनाव याचिका की प्रस्तुति की सूचना मिलनी चाहिए। ***इनामती मल्लप्पा बसप्पा बनाम देसाई बसवराज अय्यप्पा एवं अन्य, एआईआर 1958 एससी 698*** *(उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यही टिप्पणी की थी। सर्वोच्च न्यायालय ने इस बिंदु पर उन असंशोधित प्रावधानों के आलोक में विचार किया जहाँ चुनाव याचिका को चुनाव आयोग के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक था। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णयों पर विश्वास व्यक्त करते हुए कहा कि आधिकारिक गजट में नोटिस के प्रकाशन से न केवल याचिका के प्रतिवादीगण को नोटिस मिलता है बल्कि संपूर्ण निर्वाचन क्षेत्र को ऐसी सूचना प्राप्त होती है जिससे निर्वाचन क्षेत्र का प्रत्येक मतदाता तथा एवं समस्त इच्छुक पक्षकार चुनाव याचिका के संबंध में अवगत होता है। अतः पूरा निर्वाचन क्षेत्र इस*

अनुवादित

तथ्य से अवगत हो जाता है कि विधिवत घोषित किए गए चुनाव के परिणाम पर विभिन्न आधारों पर प्रश्व उठाए गए हैं, जिसके संभावित परिणाम के अंतर्गत सभी या किसी भी निर्वाचित हुए उम्मीदवार का चुनाव शून्य घोषित किया जा सकता है और याचिकाकर्ता या किसी अन्य उम्मीदवार को निर्वाचित हुए उम्मीदवार के स्थान पर विधिवत निर्वाचित घोषित किया जा सकता है। अतः निर्वाचन क्षेत्र हेतु अधिकरण के समक्ष होने वाली कार्यवाहियां महत्वपूर्ण होती है, जिनकी विशेषता सामान्य सिविल कार्यवाहियों से भिन्न होती है। निर्णय के प्रस्तर 10 एवं 11 नीचे निम्नवत प्रस्तुत हैं:

"10. अतः सर्वप्रथम चुनाव याचिका की प्रकृति एवं दायरे को समझना आवश्यक है। जैसा कि ***कामराज थेवर बनाम कुंजू थेवर, सिविल अपील संख्या 763 एवं 764/1957 एवं 1958*** *एवं* ***सिविल अपील संख्या 48/1958: (ए.आई.आर. एस.सी. 687) (ए)*** *निर्णय विधि में टिप्पणी की गई है : -*

"चुनाव प्रक्रिया कोई विधि की कार्रवाई या साम्य पर आधारित वाद नहीं है अपितु सामान्य विधि हेतु अज्ञात एक पूर्णतः वैधानिक कार्यवाही है, जिस निमित्त न्यायालय के पास कोई सामान्य विधिक शक्ति नहीं है।"

.....

"चुनाव याचिका कोई ऐसा मामला नहीं है जिसमें मात्र वे उम्मीदवार ही हितबद्ध हों जो चुनाव में परस्पर प्रतिद्वंदी रहे हों। जनता भी इसमें अत्यंत रुचि रखती है एवं इसका मात्र यह तात्पर्य नहीं है कि चुनाव कोई महत्वपूर्ण समाचार है। चुनाव लोकतांत्रिक प्रक्रिया का एक अनिवार्य भाग है।"

.....

"चुनाव याचिका दो व्यक्तियों के मध्य वाद नहीं है, अपितु एक कार्यवाही है जिसमें निर्वाचन क्षेत्र ही मुख्य पक्षकार है।"

.....

11. चुनाव आयोग के समक्ष प्रस्तुत चुनाव याचिका की चुनाव आयोग द्वारा जांच की जाती है एवं यदि चुनाव आयोग, अधिनियम की धारा 81, धारा 82 या धारा 117 के प्रावधानों के अनुपालन के अभाव में इसे खारिज नहीं करता है, तो यह उसे स्वीकार कर लेता है ***तथा चुनाव याचिका की एक प्रति आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित करवाता है एवं उसकी एक प्रति प्रत्येक प्रतिवादी को डाक द्वारा भेजता है। याचिका के प्रतिवादीगण को ही इसकी सूचना नहीं मिलती है***

अनुवादित

अपितु संपूर्ण निर्वाचन क्षेत्र को आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन द्वारा ऐसी सूचना प्राप्त होती है। निर्वाचन क्षेत्र के प्रत्येक मतदाता एवं इच्छुक सभी पक्षकारों को ऐसी चुनाव याचिका प्रस्तुत किये जाने के संबंध में विधिवत जानकारी हो जाती है। *आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित चुनाव याचिका की एक प्रति उन सभी को यह तथ्य भी प्रदर्शित करेगी कि याचिकाकर्ता ने एक विशेष चुनाव याचिका में यह घोषणा करने का दावा का दावा तो किया ही है कि सभी निर्वाचित उम्मीदवारों या किसी भी निर्वाचित उम्मीदवार का चुनाव शून्य है, साथ ही साथ यह घोषणा किये जाने का दावा भी किया है कि वह स्वयं अथवा कोई अन्य उम्मीदवार विधिवत निर्वाचित हो गया है।* ***अतः पूर्ण निर्वाचन क्षेत्र इस तथ्य से अवगत होता है कि विधिवत घोषित किए गए चुनाव परिणाम को संभावित विधि द्वारा अनुमत विभिन्न आधारों पर प्रश्नगत किया गया है। अर्थात निर्वाचित उम्मीदवारों या किसी भी निर्वाचित उम्मीदवार का चुनाव शून्य घोषित किया जा सकता है एवं याचिकाकर्ता या किसी अन्य उम्मीदवार को निर्वाचित उम्मीदवार के स्थान पर विधिवत निर्वाचित घोषित किया जा सकता है।*** *निर्वाचन क्षेत्र को या तो यथास्थिति बनाए रखने में रुचि हो सकती है अथवा इस स्थिति में भी निर्वाचन क्षेत्र को रुचि हो सकती है जब कि संभवतया निर्वाचित उम्मीदवार का चुनाव रद्द कर दिया जाए है एवं उसके स्थान पर किसी अन्य योग्य उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित किया जाए। तथा यह भी आवश्यक नहीं है कि याचिकाकर्ता या उसके द्वारा प्रायोजित कोई अन्य उम्मीदवार हो जिसके चुनाव को धारा 100 (1) में उल्लिखित किसी भी आधार पर चुनौती दी जा सकती है।* ***यह समग्र रूप से निर्वाचन क्षेत्र का हित है जो चुनाव अधिकरण के समक्ष कार्यवाही में अपनी एक विशिष्टता सहित निहित है एवं उन्हें सामान्य सिविल कार्यवाही से अलग करता है। ....."***

(बल दिया गया)

यह दृष्टिकोण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***डॉ. पी. नल्ला थंपी थेरा बनाम बी.एल. शंकर एवं अन्य, एआईआर 1958 एससी 135 (उपरोक्त)*** *वाद में दोहराया गया था एवं यह तर्क स्वीकार नहीं किया गया कि* ***इनामती मल्लप्पा बसप्पा (उपरोक्त)*** *में सर्वोच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण है कि चुनाव विवाद में संपूर्ण निर्वाचन क्षेत्र के सम्मिलित होने का सिद्धांत सही*

अनुवादित

*नहीं है। **डॉ. पी. नल्ला (उपरोक्त)** में निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर 22 नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:*

*"22. अपीलकर्ता का तर्क है कि इस न्यायालय के पूर्व के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, इस निर्णय का निर्णयाधार एवं **बसप्पा वाद (एआईआर 1958 एससी 698)** में की गई टिप्पणियां त्रुटिपूर्ण है कि किसी चुनावी विवाद में संपूर्ण निर्वाचन क्षेत्र सम्मिलित होता है क्योंकि लोकतंत्र में चुनाव प्रक्रिया की शुचिता की रक्षा करना महती आवश्यकता है। हमें नहीं लगता कि अपीलकर्ता के तर्क को स्वीकार किया जा सकता है। इस न्यायालय के पूर्व के निर्णय किसी भी तरह से **धूम सिंह(उपरोक्त)** के वाद में अपनाए गए दृष्टिकोण एवं **बसप्पा (उपरोक्त)** के वाद में की गई टिप्पणियों के विरुद्ध नहीं हैं। उन निर्णयों का इस प्रश्न से कोई संबंध नहीं था कि क्या चुनाव याचिका को व्यतिक्रम में खारिज किया जा सकता है। इस न्यायालय में न्यायिक सर्वसम्मति सदैव यह रही है कि चुनाव संबंधी विधि का कठोर प्रवर्तन किया जाना चाहिये।,एवं जिस सीमा तक प्रावधान नहीं किया गया है, वहाँ संहिता लागू होगी। लगभग आठ वर्ष पूर्व इस न्यायालय को यह इंगित करने का अवसर मिला था कि यदि विधायिका का आशय यह था कि इस प्रकार के वाद को भी विशेष प्रावधान के अंतर्गत निहित किया जाना चाहिए, तब भी अधिनियम में एक त्रुटि होने के कारण यह आशय पूर्ण नहीं हुआ। हम पाते हैं कि **श्योधन सिंह बनाम मोहन लाल गौतम, (1969) 3 SCR 417, p. 421: (AIR 1969 SC 1024 at p. 1026)**, वाद में पूर्व में भी इस न्यायालय ने उल्लेख किया था:*

"उपरोक्त प्रावधानों से यह देखा गया है कि एक चुनाव याचिका में, विवाद वास्तव में एक ओर निर्वाचन क्षेत्र एवं दूसरी ओर शिकायतकर्ता व्यक्ति या व्यक्तियों के मध्य होता है। जब एक बार अधिनियम के तंत्र को किसी उम्मीदवार या निर्वाचक द्वारा गतिमान कर दिया जाता है तब वाद का संचालन पूर्ण रुप से याचिकाकर्ता पर निर्भर नहीं करता है। हमारे द्वारा पूर्व में विस्तृत प्रावधानों को अवलोकित किये जाने का कारण यह सुनिश्चित करना है कि निर्वाचन विधि का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को उनके दुष्कर्मों के परिणामों से बचने की अनुमति न दी जाए।

(बल दिया गया)

***इनामती मल्लप्पा बसप्पा (उपरोक्त)** एवं **डॉ. पी. नल्ला (उपरोक्त)** वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई उपरोक्त*

अनुवादित

टिप्पणियों के दृष्टिगत, किसी चुनाव याचिका में विवाद मात्र याचिकाकर्ता एवं उत्तरदाताओं के मध्य ही नहीं होता है, अपितु याचिकाकर्ता एवं संपूर्ण निर्वाचन क्षेत्र के मध्य होता है, अतः समाचार पत्र में सूचना का प्रकाशन आवश्यक है। याचिकाकर्ता का यह तर्क कि समाचार-पत्र में सूचना के प्रकाशन से उन्मुक्ति दे दी जानी चाहिये क्योंकि प्रतिवादी को नोटिस भेज दिया गया है, स्वीकार नहीं किया जा सकता।

याचिकाकर्ता का द्वितीय तर्क कि चूँकि याचिकाकर्ता के पास न्यायालय के निबंधक द्वारा चयनित समाचार पत्र में प्रकाशन हेतु व्यय के भुगतान का साधन नहीं है, अतः न्यायालय स्थगित भुगतान का आदेश दे सकता है जैसा कि चुनाव याचिका संख्या 4 /2014 में किया गया था।

याचिकाकर्ता के इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है। नियम 6(बी) के अनुसार स्पष्ट रूप से चुनाव याचिका की सूचनाओं को निबंधक द्वारा चयनित समाचार पत्र में एक साथ प्रकाशित करना अपेक्षित है। नियम 6(सी) के अनुसार यह भी अपेक्षित है कि सूचना, प्रक्रिया शुल्क, शुल्क एवं समाचार पत्र में प्रकाशन की लागत हेतु प्रारंभिक जमा राशि के दृष्टिगत 250/- रुपये की राशि याचिकाकर्ता द्वारा सूचना जारी करने के आदेश के सात दिनों के भीतर प्रदान की जाएगी। यह राशि भी याचिकाकर्ता द्वारा जमा नहीं की गई। नियम 6(डी) के अनुसार भी यह अपेक्षित है कि जहाँ समाचार पत्र में प्रकाशन का व्यय 50/- रुपये से अधिक हो, निबंधक याचिकाकर्ता को उसके द्वारा निर्धारित अवधि में अतिरिक्त राशि न्यायालय में जमा करने हेतु कहेगा। निबंधक ने याचिकाकर्ता को 9024/- रुपये जमा करने हेतु बुलाया था।

जैसा कि उपरोक्त प्रस्तर में देखा गया है, याचिकाकर्ता के पूर्व तर्क के निस्तारण के समय यह पाया गया है कि समाचार पत्र में प्रकाशन यह सुनिश्चित करने हेतु है कि संपूर्ण निर्वाचन क्षेत्र को चुनाव याचिका के लंबित होने के संबंध में अवगत कराया जाए। वाद के दृष्टिगत, स्थगित भुगतान से कोई प्रयोजन पूर्ण नहीं होगा। याचिकाकर्ता का यह तर्क कि नियम 6 (सी) के अनुसार जमा की जाने वाली 250/- रुपये की राशि भी अधिक है, भी स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह निश्चित रूप से उस राशि से कम है जो वास्तव में सूचना के प्रकाशन हेतु आवश्यक है।

यह चुनाव याचिका 27 जून 2014 को न्यायालय के निबंधक के

अनुवादित

समक्ष प्रस्तुत की गई थी। सूचना 6 फरवरी , 2015 को जारी की गई थी। न्यायालय को इस बात से संतुष्ट होना होगा कि समाचार पत्र में सूचना के प्रकाशन की छूट हेतु दायर आवेदन में याचिकाकर्ता द्वारा उल्लिखित आधार प्रामाणिक हैं एवं आवेदन दायर करने का उद्देश्य मात्र समाचार पत्र में प्रकाशन हेतु राशि जमा करने से बचना नहीं है। नियम 6(सी) में प्रावधान है कि सूचना, प्रक्रिया शुल्क, शुल्क एवं समाचार पत्र में प्रकाशन की लागत के रूप में प्रारंभिक जमा राशि के रूप में 250/- रुपये की राशि याचिकाकर्ता द्वारा नोटिस जारी करने के आदेश के सात दिनों के भीतर प्रदान की जाएगी। पुनः नियम 6(सी) में प्रावधान है कि व्यतिक्रम की स्थिति में चुनाव याचिका आदेश हेतु पीठ के समक्ष रखी जाएगी एवं पीठ चुनाव याचिका को खारिज कर सकती है जब तक कि पर्याप्त कारण होने पर वह अतिरिक्त समय न दे दे। न्यायालय का मत है कि समाचार पत्र में नोटिस के प्रकाशन से उन्मुक्ति पाने हेतु न तो पर्याप्त कारण प्रस्तुत किया गया है और न ही इसका अस्तित्व है। आवेदन प्रस्तुत करके याचिकाकर्ता मात्र समाचार पत्र में प्रकाशन हेतु राशि जमा करने से बच रहा है। अतः समाचार पत्र में नोटिस के प्रकाशन से उन्मुक्ति हेतु याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन सारहीन एवं खारिज किए जाने योग्य है।

इस प्रकार, उपरोक्त बताए गए सभी कारणों से समाचार पत्र में नोटिस के प्रकाशन से उन्मुक्ति हेतु याचिकाकर्ता द्वारा दायर सिविल प्रकीर्ण प्रार्थनापत्र संख्या 32181/2015 को खारिज कर दिया गया है।

आवेदन की अस्वीकृति के परिणामस्वरूप, चुनाव याचिका खारिज की जाती है।"

9. उपरोक्त वाद समग्र रूप से वर्तमान वाद को आच्छादित करता है। प्रकाशन की आवश्यकता पर उच्चतम न्यायालय द्वारा विधिवत विचार किया गया है एवं इस न्यायालय द्वारा इसे दोहराया गया है। प्रकाशन में असफलता वाद के मूल को प्रभावित करती है।

10. वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता नोटिस के प्रकाशन हेतु कदम उठाने में विफल रहा है। नोटिस के प्रकाशन से उन्मुक्ति मांगने हेतु याचिकाकर्ता द्वारा उठाया गया प्रथम आधार यह है कि प्रतिवादी को नोटिस की तामील कर दी गई है। जैसा कि उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि उक्त पक्ष ***डॉ. मोहम्मद इस्माइल फारूकी***

अनुवादित

(उपरोक्त) के वाद के निर्णय में पूर्णतः सम्मिलित है।

11. जहाँ तक याचिकाकर्ता के आगामी तर्क का प्रश्न है कि वरिष्ठ निबंधक ने दैनिक जागरण, अम्बेडकर नगर कार्यालय के स्थान पर दैनिक जागरण, लखनऊ कार्यालय से कोटेशन लिया था, तो यदि याचिकाकर्ता को ऐसी कोई आपत्ति होने पर उसके द्वारा ऐसी आपत्ति को वरिष्ठ निबंधक के समक्ष उचित समय पर प्रस्तुत किया जाना चाहिये था अथवा न्यायालय के समक्ष उचित प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया जाना चाहिये था। वह ऐसा कोई भी कदम उठाने में असफल रहा। इस समय भी, जब प्रतिवादी द्वारा इसका उल्लेख किया गया तो याचिकाकर्ता ने मात्र प्रकाशन से छूट हेतु एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया है। याचिकाकर्ता द्वारा ऐसी कोई प्रार्थना नहीं की गई है कि वह प्रकाशन हेतु धन राशि जमा करने हेतु तैयार या इच्छुक है। तर्क के दौरान भी, याचिकाकर्ता ने व्यक्तिगत रूप से अपना वाद प्रस्तुत करते हुए न्यायालय के इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया कि क्या वह अब नोटिस के प्रकाशन हेतु धन राशि जमा करने को तैयार है। उनका एक ही उत्तर रहा कि अब नोटिस के प्रकाशन की आवश्यकता नहीं है।

*12. वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, मैंने पाया कि याचिकाकर्ता नोटिस के प्रकाशन हेतु इस न्यायालय के दिनांक 18.7.2019 एवं 23.9.2019 के आदेशों का पालन करने में विफल रहा है। उसने न्यायालय के उक्त आदेशों के अनुपालन में विलंब हेतु कोई क्षमा नहीं मांगी है अथवा अब भी प्रकाशन करने की इच्छा नहीं दिखाई है। बल्कि उसने मात्र नोटिस के प्रकाशन से छूट मांगी है। उक्त छूट इस न्यायालय द्वारा नहीं दी जा सकती जैसा कि पहले ही इस न्यायालय द्वारा **डॉ. मोहम्मद इस्माइल फारूकी** (उपरोक्त) के वाद में एवं उक्त वाद में संदर्भित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में विनिश्चित किया जा चुका है।*

*27. मैंने पक्षकारों के तर्कों पर विचार किया है। सर्वोच्च न्यायालय ने चुनाव याचिका के साध्य एवं असाध्य दोषों के संबंध में विधि पर गहन विचार किया है। अंततः **सरिता एस. नायर बनाम हिबी ईडन, 2020 SCC Online SC 1006 (SLP (Civil) No.10678 of 2020 dated 9.12.2020),** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधिशों की पीठ ने अपने पूर्व निर्णयों का उल्लेख करते हुए,*

अवमानित

उक्त मुद्दे पर पुनः विचार किया। हमारे उद्देश्यों हेतु प्रासंगिक प्रस्तर निम्नवत हैं :

"21. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अध्याय-II, भाग-VI में "चुनावी याचिकाओं को उच्च न्यायालय में प्रस्तुत करने" के प्रावधान हैं एवं अध्याय III में "चुनाव याचिकाओं के विचारण" के प्रावधान हैं। धारा 86(1), जिसके साथ अध्याय-III प्रारंभ होता है, उच्च न्यायालय को किसी ऐसी चुनाव याचिका को खारिज करने हेतु बाध्य करता है जो धारा 81 या धारा 82 या धारा 117 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं करती है। धारा 86(1) के अंतर्गत स्पष्टीकरण के अनुसार, धारा 86(1) के अंतर्गत किसी चुनाव याचिका की बर्खास्तगी धारा 98(ए) के अंतर्गत एक निर्णय माना जाता है। धारा 98 निम्नलिखित तीन प्रकार के आदेशों का उल्लेख करती है जो एक चुनाव याचिका के विचारण के निष्कर्षस्वरुप पारित किए जा सकते हैं :-

(i) चुनाव याचिका खारिज करना; अथवा

(ii) यह घोषणा कि निर्वाचित उम्मीदवार का चुनाव शून्य है; अथवा

(iii) मात्र यह घोषणा ही नहीं कि निर्वाचित उम्मीदवार का चुनाव शून्य है, अपितु यह घोषणा भी करना कि याचिकाकर्ता अथवा कोई अन्य उम्मीदवार विधिवत निर्वाचित हुआ है।

22. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि धारा 98 के अंतर्गत उपरोक्त तीन भिन्न प्रकार के निर्णय उच्च न्यायालय द्वारा केवल वाद के निष्कर्षस्वरुप ही पारित किए जा सकते हैं। परंतु धारा 86(1) के अंतर्गत बर्खास्तगी एक अपवाद है। धारा 86(1) के अंतर्गत स्पष्टीकरण में धारा 98(ए) का संदर्भ यह स्पष्ट करता है कि उच्च न्यायालय की उस चुनाव याचिका को खारिज करने की शक्ति जो धारा 81 अथवा धारा 82 अथवा धारा 117 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं करती है, विचारण-पूर्व चरण में उपलब्ध है।"

28. यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि अधिनियम निम्नलिखित को दो भिन्न श्रेणियों में विभाजित करता है :-

(i) चुनाव याचिकाओं की प्रस्तुति; एवं

(ii) चुनाव याचिकाओं का विचारण।

चुनाव याचिकाओं की प्रस्तुति अध्याय-II के अंतर्गत धारा 80 से 84 में वर्णित है। चुनाव याचिकाओं का विचारण धारा 86 से 107 में

अनुवादित

वर्णित है एवं वे अध्याय-III में समाहित हैं।

29. यह निम्नलिखित दो तथ्यों के कारण महत्वपूर्ण हो सकता है: -

(i) धारा 80 के अंतर्गत "इस भाग" के प्रावधानों के अनुसार प्रस्तुत चुनाव याचिका के अतिरिक्त किसी भी चुनाव पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा; एवं

(ii) अध्याय-2 में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के प्रावधानों का सीमित संदर्भ मात्र उन स्थानों पर प्रदान किया गया है जहाँ हस्ताक्षर एवं सत्यापन का उल्लेख किया गया है।

35. धारा 86(1) उच्च न्यायालय को उस चुनाव याचिका को खारिज करने का अधिकार देती है जो धारा 81, धारा 82 अथवा धारा 117 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं करती है एवं इसकी परिधि में धारा 83 शामिल नहीं है। अतः यह प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष कई बार उपस्थित हुआ है कि क्या कोई चुनाव याचिका जो धारा 83 की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती है, धारा 86(1) के अंतर्गत विचारण-पूर्व चरण में खारिज की जा सकती है ? हम इस वाद में विशेष रूप से धारा 83 की उपधारा (1) के खंड (सी) की अपेक्षा एवं उसके अनुपालन में विफलता के परिणाम को लेकर चिंतित हैं।

*36. **मुरारका राधे श्याम राम कुमार बनाम रूप सिंह राठौर AIR (1964) SC 1545** वाद में चुनाव याचिका की पोषणीयता पर प्रारंभिक आपत्ति इस आधार पर उठाई गई थी कि सत्यापन दोषपूर्ण था। सत्यापन में कहा गया कि याचिका के कुछ प्रस्तरों में प्रस्तुत कथन याचिकाकर्ता के व्यक्तिगत ज्ञान के अनुसार सत्य थे एवं कुछ अन्य प्रस्तरों में प्रस्तुत कथनों को विधि एवं अन्य स्रोतों से प्राप्त सलाह एवं जानकारी पर सत्य होने हेतु सत्यापित किया गया था। ऐसा कोई कथन नहीं था कि चुनाव याचिकाकर्ता प्राप्त सलाह एवं जानकारी को सत्य मानता हो। चूँकि यह वाद 1966 के अधिनियम 47 के अंतर्गत अधिनियम में संशोधन से पूर्व का था, अतः चुनाव याचिका का निस्तारण अधिकरण द्वारा किया गया था। अधिकरण ने सत्यापन में इस त्रुटि को साध्य त्रुटि माना। अधिकरण के दृष्टिकोण को मु**रारका राधे श्याम राम कुमार** (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा कायम रखा गया था। इस न्यायालय ने धारित किया है कि "इस तर्क को स्वीकार करना असंभव है कि सत्यापन में कोई त्रुटि है जो धारा 83 के उप-धारा(1) के खंड (सी) द्वारा अपेक्षित प्रार्थना के सत्यापन हेतु सिविल*

अनुवादित

प्रक्रिया संहिता में प्रतिपादित रीति के अनुसार किया जाना है, जो याचिका की पोषणीयता हेतु घातक है।"

37. मुरारका वाद में प्रतिपादित निर्णयाधार को इस न्यायालय की तीन सदस्यीय पीठ ने ***एफ.ए. सापा बनाम सिंगोरा (1991) 3 SSC 375*** *में यह धारित करते हुए दोहराया था कि "चुनाव याचिका के सत्यापन मात्र में त्रुटि, याचिका की पोषणीयता के लिए घातक नहीं है, तथा याचिका को केवल उस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है।" एफ.ए. सापा में यह भी धारित किया गया था कि "चूँकि धारा 83, धारा 86(1) में उल्लिखित तीन प्रावधानों में से एक नहीं है, अतः सामान्यतः इसे अनिवार्य नहीं माना जा सकता है जब तक कि इसे धारा 81 के अंतर्गत याचिका का एक अभिन्न अंग नहीं प्रदर्शित किया जाता है" .*

38. एफ.ए. सापा (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने रिपोर्ट के प्रस्तर 20 में विचार हेतु उद्भूत दो प्रश्न तैयार किए। प्रथम प्रश्न यह था कि त्रुटिपूर्ण या अपूर्ण सत्यापन का परिणाम क्या होता है। उक्त प्रश्न का उत्तर देते समय इस न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किये:--

(i) सत्यापन में यदि कोई त्रुटि हो तो वह साध्य है

(ii) यह आवश्यक नहीं है कि याचिका अथवा उसके साथ संलग्न शपथपत्र का सत्यापन खंड उन प्रकथनों या आरोपों के संबंध में जानकारी के आधार अथवा स्रोतों का खुलासा करे जो सत्य मानी जाने वाली जानकारी पर आधारित हैं।

(iii) यदि प्रतिवादी ऐसे प्रकथनों या आरोपों के संबंध में और अधिक विवरण चाहता है, तो वह इसकी मांग कर सकता है। ऐसी स्थिति में याचिकाकर्ता को उसे प्रदान करना अपेक्षित हो सकता है, एवं

(iv) निर्धारित प्रपत्र 25 में शपथपत्र में त्रुटि तब तक साध्य है जब तक शपथपत्र याचिका का अभिन्न अंग न बन जाए। ऐसी स्थिति में भौतिक तथ्यों से संबंधित त्रुटि को धारा 81(3) के अंतर्गत सीमा के अधीन निस्तारित किया जाएगा, जैसा कि पूर्व इंगित है।"

39. एफ.ए. सापा (उपरोक्त) में यह भी धारित था कि यद्यपि भ्रष्ट आचरण से जुड़े आरोप को गंभीरतापूर्वक देखा जाना चाहिए, एवं उच्च न्यायालय को पक्षकारों के विचारण हेतु प्रस्तुत होने से पूर्व धारा 83 की अपेक्षाओं का अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिए, तथा त्रुटिपूर्ण शपथपत्र का त्रुटिपूर्ण सत्यापन घातक नहीं हो

अनुवादित

सकता है। इस न्यायालय ने धारित किया है कि उच्च न्यायालय को पक्षकारों के विचारण हेतु प्रस्तुत होने से पूर्व इसका अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिए। इस निर्णय के पश्चात ***आर.पी. मोइदुट्टी बनाम पी.टी. कुंजू मोहम्मद (2000) 1 SCC 481*** *वाद में एक अन्य तीन सदस्यीय पीठ ने निर्णय सुनाया।*

40. सरदार हरचरण सिंह बरार बनाम सुख दर्शन सिंह (2004) 11 SCC 196 *वाद में, इस न्यायालय ने धारित किया है कि यद्यपि धारा 83(1) का परन्तुक अनिवार्य रूप में उपबंधित है जिसके द्वारा भ्रष्ट आचरण का आरोप लगाने वाली याचिका सहित एक शपथपत्र संलग्न होना अपेक्षित है। अतः अपेक्षा का अनुपालन करने में विफलता धारा 86 (1) के अंतर्गत चुनाव याचिका को खारिज करने का आधार नहीं हो सकती है। न्यायालय ने दोहराया कि धारा 83 के प्रावधानों का अनुपालन न करने पर धारा 86(1) द्वारा संकल्पित परिणाम नहीं होंगे, एवं सत्यापन एवं शपथपत्र में त्रुटि एक साध्य त्रुटि है। निर्णय का अधोलिखित भाग महत्वपूर्ण है :-*

"14. xxxx

इसलिए, अधिनियम की धारा 83(1) या (2) के प्रावधानों अथवा परन्तुक के कथित गैर-अनुपालन हेतु, कोई चुनाव याचिका प्रारम्भिक चरण में ही अधिनियम की धारा 86 के अंतर्गत खारिज नहीं की जा सकती। सत्यापन एवं शपथ पत्र में त्रुटि एक साध्य त्रुटि है। कथित तौर पर "त्रुटिपूर्ण" शपथपत्र के अन्य परिणामों के संबंध में चुनाव याचिका के विचारण में निर्णय लिया जाना आवश्यक है, किन्तु अधिनियम की धारा 86 (1) ऐसे मामले में लागू नहीं होगी।

41. **के.के.रामचन्द्रन मास्टर बनाम एम.वी. श्रेयामाकुमार (2010) 7 एससीसी 428**, में इस न्यायालय ने एफ.ए. सापा (उपरोक्त) एवं सरदार हरचरण सिंह बरार (उपरोक्त) के निर्णय का अनुसरण करते हुए कहा कि त्रुटिपूर्ण सत्यापन साध्य है। न्यायालय ने पुनः दोहराया कि त्रुटिपूर्ण शपथपत्र से उत्पन्न होने वाले परिणामों का निर्णय चुनाव याचिका के विचारण में किया जाना आवश्यक है एवं ऐसी चुनाव याचिका को धारा 86(1) के अंतर्गत खारिज नहीं किया जा सकता है।

42. हालाँकि उपरोक्त सभी निर्णयों पर **पी.ए.मोहम्मद रियास**

अनुवादित

बनाम एम.के.राघवन (2012) 5 एससीसी 511, वाद में दो सदस्यीय पीठ द्वारा ध्यान दिया गया था। न्यायालय ने उस मामले में माना कि उचित सत्यापन के अभाव से यह निष्कर्ष निकल सकता है कि धारा 81 में उपबंधित आवश्यकताएं पूर्ण नहीं हुई थीं, एवं चुनाव याचिका के लिए वादहेतु अपूर्ण रहेगा। ऐसा दृष्टिकोण पिछले प्रस्तर में उल्लिखित निर्णयों की श्रृंखला के अनुरूप प्रतीत नहीं होता है, एवं इसलिए पी.ए. मोहम्मद रियास के निर्णय को विधि के उचित निरूपण के उद्देश्य से ग्रहण नहीं किया जा सकता। यह निर्णय के अंतिम प्रस्तर के पूर्व प्रस्तर से प्रकट होता है कि पी.ए.मोहम्मद रियास(उपरोक्त) में कहा कि न्यायालय को उस वाद में इस तथ्य के कारण चरम दृष्टिकोण अपनाने के लिए बाध्य थी कि याचिकाकर्ता के पास त्रुटि को ठीक करने का अवसर था, परंतु वह ऐसा करने में विफल रहा। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि पी.ए.मोहम्मद रियास(उपरोक्त) अपने विशिष्ट तथ्यों पर आधारित था। तथापि पी.ए.मोहम्मद रियास के निर्णय को **जी.एम.सिद्धेश्वर बनाम प्रसन्ना कुमार (2013) 4 एससीसी 776** में इस प्रश्न परउलट दिया गया कि क्या चुनाव याचिकाकर्ता हेतु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश VI नियम 15(4) के निबंधनों के अंतर्गत धारा 83(1) के प्रावधान के अनुसार (ऐसे मामले में जहाँ निर्वाचित उम्मीदवार के विरूद्ध भ्रष्ट आचरण का आरोप लगाया गया है) शपथपत्र के अतिरिक्त चुनाव याचिका में अपने कथनों के समर्थन में एक शपथपत्र दायर करना अनिवार्य है। वास्तव में, यहाँ तक कि एक त्रुटिपूर्ण शपथपत्र दाखिल करना, जो कि नियमानुसार फॉर्म 25 में नहीं है, भी जी.एम.सिद्धेश्वर के अनुसार एक साध्य त्रुटि माना गया एवं याचिकाकर्ता को त्रुटि को ठीक करने के अवसर का अधिकारी होना धारित किया गया।

43. उपरोक्त चर्चा का निष्कर्ष यह है कि त्रुटिपूर्ण सत्यापन एक साध्य त्रुटि है। किसी चुनाव याचिका को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि सत्यापन त्रुटिपूर्ण है।"

36. जहाँ तक प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क का संबंध है कि मूल याचिका न्यायालय के समक्ष नहीं प्रस्तुत की गई है, यह एक त्रुटि है जो लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 81(3) के अंतर्गत वर्णित है जिसके लिए आवश्यक है कि

अनुवादित

"प्रत्येक चुनाव याचिका के साथ उसकी उतनी ही प्रतियां संलग्न की जाएंगी....."।

धारा 81(3) हेतु आवश्यक है कि एक चुनाव याचिका होनी चाहिए एवं उसकी प्रतियां उसके साथ संलग्न होनी चाहिए। इसलिए, दोनों पूर्णतः पृथक हैं। याचिकाकर्ता को एक चुनाव याचिका दायर करने एवं प्रतिवादी को तामील करने के लिए उसकी प्रतियां भी दाखिल करने की आवश्यकता होती है।

37. यह स्वीकृत तथ्य है कि याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष मूल चुनाव याचिका प्रस्तुत नहीं की है। न्यायालय शुल्क के साथ दाखिल की गई प्रति "मूल सत्यापित प्रति" है। ऐसी घोषणा चुनाव याचिका एवं उसके अनुलग्नकों के प्रत्येक पृष्ठ पर की गई है। यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ इसे एक वास्तविक त्रुटि कहा जा सके, क्योंकि एक पृष्ठ या कुछ पृष्ठों पर ऐसी घोषणा की गई है। संपूर्ण चुनाव याचिका के प्रत्येक पृष्ठ पर यह घोषणा है कि यह " मूल सत्यापित प्रति" है। याचिकाकर्ता द्वारा की गई इस स्व-घोषणा को देखते हुए, इसे मूल चुनाव याचिका नहीं माना जा सकता है। यह कहना कि चूँकि इस पर न्यायालय शुल्क का भुगतान किया गया है एवं रजिस्ट्री ने भी इसकी सूचना दी है, इसलिए, इसे मूल याचिका माना जाना चाहिए, यह एक भ्रम है क्योंकि इसमें याचिकाकर्ता की घोषणा है कि यह "मूल प्रति सत्यापित" है, अर्थात वही घोषणा जो उसके साथ संलग्न प्रत्येक प्रति पर की गई है। न्यायालय शुल्क के भुगतान के अतिरिक्त दोनों के मध्य कोई अंतर नहीं है। कोई प्रति मात्र न्यायालय शुल्क एवं न्यायालय के समक्ष दाखिल होने के आधार पर मूल याचिका नहीं बन सकती जब कि उस पर यह घोषणा हो कि वह "मूल सत्यापित प्रति" है।

38. **उदय शंकर त्रियार बनाम राम कलेवर प्रसाद सिंह एवं अन्य (2006) 1 एससीसी 75** वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अपील/याचिका एवं उसके साथ प्रस्तुत वकालतनामे पर हस्ताक्षर करने में हुए दोषों के प्रभाव पर विचार किया है। निर्णीत विधि पर विचार करने के पश्चात, प्रस्तर-15 में उल्लिखित निष्कर्ष निम्नवत है: -

"15. इस प्रकार, यह अब भली भाँति निर्धारित हो गया है कि अपील के ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने में कोई त्रुटि या अपील के ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के अधिकार में कोई त्रुटि, या अपीलकर्ता द्वारा अपील के साथ निष्पादित वकालतनामा

अनुवादित

दाखिल करने में चूक, यदि ऐसी चूक या त्रुटि जानबूझकर नहीं की गई है एवं अपील के ज्ञापन पर हस्ताक्षर करना या अपीलीय अदालत के समक्ष उसकी प्रस्तुति अपीलकर्ता के ज्ञान एवं अधिकारिता में थी, अपील के ज्ञापन को अमान्य नहीं करेगी। यदि ऐसी चूक या त्रुटि किसी प्रक्रिया से संबंधित है, तो बाद में इसे ठीक किया जा सकता है। यह सत्यापित करना कार्यालय का कर्तव्य है कि क्या अपील के ज्ञापन पर अपीलकर्ता या उसके अधिकृत अभिकर्ता या समुचित वकालतनामा युक्त अधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे। यदि कार्यालय ऐसी त्रुटि एवं अपील को इंगित नहीं करता है, इसे स्वीकार कर लिया जाता है एवं आगे कार्यवाही की जाती है तो इस अपील की सुनवाई में मात्र इस त्रुटि के कौ

रण, अपीलकर्ता को इसे सुधारने का अवसर दिए बिना खारिज नहीं किया जा सकता है। निश्चय ही अपील पर अपीलकर्ता या उसके अभिवक्ता(विधिवत निष्पादित वकालतनामे द्वारा अधिकृत) द्वारा हस्ताक्षर अनिवार्य है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि अनुपालन न करने पर अपीलकर्ता को त्रुटि सुधारने का अवसर दिए बिना अपील स्वत: खारिज हो जाएगी। यदि एवं जब त्रुटि पर ध्यान जाता है या त्रुटि इंगित की जाती है, तो न्यायालय को या तो अपीलकर्ता के आवेदन पर या स्वत: संज्ञान लेते हुए अपीलकर्ता को अपील के ज्ञापन पर हस्ताक्षर करके या वकालतनामा प्रस्तुत करके त्रुटि को सुधारने की अनुमति देनी चाहिए।

तत्पश्चात, सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त नियम हेतु अपवाद निर्धारित किया है एवं प्रस्तर-17 में निम्नानुसार धारित किया है:

"17. किसी तर्क, अपील के ज्ञापन या आवेदन या अनुतोष हेतु याचिका से संबंधित किसी भी प्रक्रियात्मक अपेक्षा का अनुपालन न करने पर स्वत: बर्खास्तगी या अस्वीकृति नहीं होनी चाहिए, जब तक कि प्रासंगिक विधि या नियम में ऐसा आदेश न हो। प्रक्रियात्मक त्रुटियों एवं अनियमितताओं, जो साध्य हैं, को सारवान अधिकारों को नष्ट करने या अन्याय का कारण बनने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। प्रक्रिया, जो न्यायतंत्र की सहायक है, के प्रयोग को न्याय अस्वीकृत करने अथवा अन्याय करने का उपकरण नहीं बनाया जाना चाहिए। इस सिद्धांत के मान्यता प्राप्त अपवाद निम्नवत हैं: -

(i) जहाँ प्रक्रिया निर्धारित करने वाली विधि, गैर-अनुपालन के

अनुवादित

परिणाम को भी विशेष रूप से निर्धारित करती है;

(ii) जहाँ प्रक्रियात्मक त्रुटि बताए जाने एवं उसे सुधारने का उचित अवसर दिए जाने के पश्चात भी उसे ठीक नहीं किया जाता है;

(iii) जहाँ गैर-अनुपालन या उल्लंघन जानबूझकर या रिष्टिपूर्ण सिद्ध होता है;

(iv) जहाँ त्रुटि का सुधार वाद को गुण-दोष के आधार पर प्रभावित करेगा या न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करेगा;

(v) अपील के ज्ञापन के मामले में, प्राधिकार का पूर्ण अभाव होता है एवं अपील अपीलकर्ता की जानकारी, सहमति एवं प्राधिकार के अभाव में प्रस्तुत की जाती है।" अतः, सामान्य वाद में, हस्ताक्षर करने में त्रुटि सहित अभिवचनों में दोष साध्य हैं। यदि वर्तमान वाद कोई नियमित वाद होता या त्रुटि साधारण अनियमितता होती, तो यह न्यायालय उसे ठीक करने की अनुमति दे सकता था। वर्तमान याचिका एक चुनाव याचिका है एवं लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 81(3) विशेष रूप से याचिकाकर्ता द्वारा सत्यापित प्रतियों के साथ चुनाव याचिका प्रस्तुत करने का प्रावधान करती है। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 86 में यह प्रावधान है कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 81 की अपेक्षा का पालन करने में विफलता के परिणामस्वरूप प्रारंभिक चरण में ही चुनाव याचिका खारिज कर दी जाएगी।

इसके दृष्टिगत, **उदय शंकर त्रियार** (उपरोक्त) के प्रस्तर-17 की शर्त संख्या (i) वर्तमान वाद पर लागू होती है एवं इस प्रकार, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 86 के अंतर्गत निर्धारित परिणामों का पालन करना होगा, जैसा कि **सरिता एस. नायर** (उपरोक्त) के वाद में पूर्व में ही तय किया गया है।

39. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VII नियम 11 के अंतर्गत सिविल प्रकीर्ण आवेदन संख्या 118019/202, यह धारित करते हुए निस्तारित किया जाता है कि चुनाव याचिका ही पोषणीय नहीं है।

19. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।

20. उल्लेखनीय रूप से, न्यायालय के नियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 225 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा बनाए जाते हैं। अध्याय XV-ए चुनाव याचिका से संबंधित

अनुवादित

एक विशेष प्रावधान प्रस्तुत करता है। प्रतिवादी को नियम 5 के अनुसार नोटिस जारी करने और नियम 6 (सी) के अंतर्गत इसके प्रकाशन का उद्देश्य स्पष्ट है, जैसा कि **लाल बहादुर** (उपरोक्त), जो कि लगभग समान प्रकृति का वाद था, के संदर्भ में इस न्यायालय द्वारा, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के निर्णयों को संदर्भित करते हुए, धारित किया गया है, जिसके अनुसार संबंधित निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं के यह जानने हेतु चुनाव याचिका का प्रकाशन आवश्यक है कि एक चुनाव याचिका विचाराधीन है। सर्वोच्च न्यायालय ने **इनामती मल्लप्पा बसप्पा बनाम देसाई बसवराज अयप्पा और अन्य, एआईआर 1958 एससी 698** के प्रस्तर-10 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

> *"10. अतः प्रारंभ में ही चुनाव याचिका की प्रकृति और परिधि को समझना आवश्यक है जैसा कि **कामराज थेवर बनाम कंजू थेवर, सिविल अपील संख्या 763 & 764/ 1957** व **सिविल अपील संख्या: 48 of 1958: (AIR 1958 SC 687) (A)** में दिए गए निर्णय में हमने देखा है।*
>
> *"चुनाव कोई ऐसा मामला नहीं है जिसमें केवल वे उम्मीदवार ही रुचि रखते हैं जो चुनाव में एक-दूसरे के विरुद्ध खड़े हुए हैं। जनता भी इसमें अत्यन्त रुचि रखती है और यह मात्र इस अर्थ में नहीं है कि चुनाव का कोई समाचार संबंधी महत्त्व है। एक चुनाव लोकतांत्रिक प्रक्रिया का एक अनिवार्य हिस्सा है।"*
>
> *.....*
>
> *"चुनाव याचिका दो व्यक्तियों के बीच का वाद नहीं है, अपितु एक कार्यवाही है जिसमें निर्वाचन क्षेत्र ही मुख्य पक्ष है।"*

***कामराज थेवर** (उपरोक्त) वाद में घोषित उपरोक्त निर्णय पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **डॉ. पी. नल्ला थम्पी थेरा बनाम बी.एल. शंकर और अन्य ने AIR 1984 SC 135** वाद में विचार किया गया है।*

21. **इनामती मल्लप्पा बसप्पा** (उपरोक्त), **कामराज थेवर** (उपरोक्त), **डॉ. पी. नल्ला थम्पी थेरा** (उपरोक्त) और **डॉ. विजय लक्ष्मी साधो** (उपरोक्त) के संबंध में शीर्ष न्यायालय द्वारा जो विचार किया गया है, उसके दृष्टिगत, मेरी सुविचारित राय है कि प्रकाशन के संबंध में उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 के नियम 6 (सी) की अनिवार्य शर्त को टाला या उपेक्षित नहीं किया जा सकता है क्योंकि चुनाव याचिका के प्रकाशन का उद्देश्य स्पष्ट और सार्थक है। उस अनिवार्य शर्त को इस बहाने से उपेक्षित नहीं किया जा सकता कि वह प्रकृति में प्रक्रियात्मक है। उच्च न्यायालय के नियम/नियमावली, 1952 को उस नियम के गैर-अनुपालन के परिणाम के अधिमूल्यन हेतु नियम के उद्देश्य के साथ पढ़ा जाना चाहिए। अतः, उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 के नियम 6 (सी) के

अनुवादित

अनुपालन के संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की 'विधि का उपहास' के रूप में प्रस्तुति एक गैर-जिम्मेदार और अस्वीकार्य प्रस्तुति है क्योंकि उपरोक्त नियम का एक स्पष्ट उद्देश्य है और सभी चुनाव याचिकाओं में इसका अनुपालन किया जाना होता है।

22. वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है कि उसने नियमावली, 1952 के नियम 6 (सी) का पालन नहीं किया है क्योंकि उसने समाचार पत्र में प्रकाशन हेतु आवश्यक राशि जमा नहीं की है और समाचार पत्र में प्रकाशन का उद्देश्य स्पष्ट है। सर्वोच्च न्यायालय ने आरम्भ से ही इस बात पर विचार किया है कि चुनाव याचिका कोई ऐसा मामला नहीं है जिसमें केवल वे उम्मीदवार ही रुचि रखते हैं जो चुनाव में एक-दूसरे के विरुद्ध खड़े हुए हैं, अपितु जनता भी इसमें अत्यन्त रुचि रखती है, और यह मात्र इस अर्थ में नहीं है कि चुनाव का समाचार मूल्य होता है। चुनाव दो व्यक्तियों के बीच का मामला नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी कार्यवाही है जिसमें निर्वाचन क्षेत्र ही मुख्य भूमिका निभाता है। अतः, नियमावली, 1952 के नियम 6 (सी) का अनुपालन न करने से चुनाव याचिका दायर करने का मूल उद्देश्य ही दूषित हो जाएगा; अतः, इस चुनाव याचिका को मात्र उपरोक्त निष्क्रियता अर्थात् नियमावली, 1952 नियम 6 (सी) का अनुपालन न करने के आधार पर खारिज किया जा सकता है।

23. यह प्रचलित विधि है कि धोखाधड़ी हर गंभीर कार्य को दूषित कर देती है, और यदि धोखाधड़ी न्यायालय में या उसके समक्ष की जाती है, तो इसका ज्ञान रखने वाले ने एक त्रुटि की है जो अक्षम्य है, और उसने छलपूर्वक अनुकूल आदेश प्राप्त करने हेतु न्यायालय को दिग्भ्रमित किया है। उपरोक्त चुनाव याचिका में, याचिकाकर्ता ने पृष्ठ संख्या 15 को बदल दिया है, यद्यपि उस प्रासंगिक पृष्ठ पर पृष्ठ संख्या का उल्लेख नहीं किया गया है, तथापि इसके शीर्ष पर प्रार्थना के रूप में शीर्षक दिया गया है, पृष्ठ संख्या 14 के बाद और पृष्ठ संख्या 16 से पूर्व, चुनाव याचिका दायर करने के बाद पृष्ठ का धोखाधड़ीपूर्ण प्रक्षेप/बदलाव किया गया है, वह भी इस न्यायालय की अनुमति के बिना संलग्न किया गया है। प्रार्थना खंड की मुख्य प्रति टंकित की गई है जबकि अतिरिक्त प्रतिलिपि में यह बाद में नीली स्याही से की गई प्रतीत होती है।

24. अपील के ज्ञापन आदि में त्रुटि के पक्ष पर इस न्यायालय द्वारा **लाल बहादुर** (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों का उल्लेख करते हुए विचार किया गया है और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम और सिविल प्रक्रिया संहिता के विभिन्न प्रावधानों का भी उल्लेख किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों के आधार पर, **लाल बहादुर** (उपरोक्त) वाद में इस न्यायालय ने धारित किया है कि सामान्य वाद में हस्ताक्षर करने में त्रुटि सहित अभिवचनों में त्रुटि साध्य है। वर्तमान वाद चुनावी

अनुवादित

याचिका है, और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 81 (3) विशेष रूप से याचिकाकर्ता द्वारा सत्यापित प्रतियों के साथ चुनाव याचिका प्रस्तुत करने का प्रावधान करती है। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 86 में प्रावधान है कि धारा 81 के प्रावधानों का पालन करने में विफलता के परिणामस्वरूप प्रारंभिक चरण में चुनाव याचिका खारिज कर दी जाएगी, और यहाँ तक कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भी उन त्रुटियों को शुद्ध करने की प्रार्थना नहीं की है।

25. अतः, **उदय शंकर त्रियार** (उपरोक्त) के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के दृष्टिगत, उपरोक्त त्रुटि प्रारंभिक चरण में चुनाव याचिका को खारिज करने का कारण हो सकता है।

26. उपरोक्त के दृष्टिगत, चूँकि वर्तमान याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका के प्रकाशन हेतु आवश्यक राशि जमा करने से इन्कार कर दिया है और उसे ऐसे प्रकाशन से उन्मुक्ति नहीं दी जा सकती है, अतः, प्रकाशन से उन्मुक्ति हेतु आवेदन खारिज कर दिया गया है। परिणामस्वरुप, याचिकाकर्ता द्वारा समाचार पत्र में कोई प्रकाशन नहीं किया गया है, जो नियमावली, 1952 के नियम 6 (सी) के संदर्भ में एक अनिवार्य आवश्यकता है, अतः, वर्तमान चुनाव याचिका ही पोषणीय नहीं है।

27. तदनुसार वर्तमान चुनाव याचिका खारिज की जाती है। समस्त आवेदनों का निस्तारण उपरोक्त आदेशानुसार किया जाता है।

28. वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है।

[समापन से पूर्व, मैं वर्तमान वाद में प्रयोज्य प्रासंगिक निर्णय विधियों का पता लगाने हेतु मेरे साथ संयोजित लॉ क्लर्क प्रशिक्षु सुश्री त्रिशा सिंह और लॉ इंटर्न श्री आयुष निगम द्वारा किए गए प्रयासों और शोध की सराहना करता हूँ]

(2023) 2 ILRA 404

अपील न्यायिक क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 357 /2001

संलग्न

क्रॉस ऑब्जेक्शन क्रमांक 70/2022

ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

...अपीलकर्ता

बनाम

लोकेश और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री मनीष गोयल, श्री अमरेश सिन्हा, श्री अनुभव सिन्हा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री एस.एस. तिवारी, श्री ए.के. सिंह, श्री कोमल मेहरोत्रा, श्री एस.एस. शुक्ला, श्री वी.के. जयसवाल, श्री योगेन्द्र पाल सिंह

अनुवादित

ए. आपराधिक कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 168-क्षतिपूर्ति-चोट का वाद-दावेदार का बायां पैर कट गया था और वह 55% की स्थायी विकलांगता का शिकार हो गया था - आयोजित, न्यायाधिकरण का यह मानना सही है कि 55% स्थायी चिकित्सा विकलांगता का अर्थ समतुल्य कार्यात्मक विकलांगता होगा - आय की वार्षिक हानि की गणना करने और इसे 21,600 रुपये के आंकड़े पर निर्धारित करने में कोई दुर्बलता नहीं है -दावेदार 21 से 25 वर्ष के आयु वर्ग में आएगा, जिसके लिए निर्धारित उचित गुणक '18' है; '17' नहीं - कृत्रिम अंग के भविष्य और वर्तमान प्रतिस्थापन के लिए खर्च के क्षतिपूर्ति को रु. 35,000 से रु. 2 लाख रुपये की राशि से बढ़ाया जाना है - दुर्घटना के कारण हुई मानसिक और शारीरिक पीड़ा और दावेदार की नौकरी छूट जाने के लिए न्यायाधिकरण द्वारा अनुमानित 50,000 का अनुदान भी अपरिहार्य है-दावेदार जो दुर्घटना के समय 22 वर्ष का युवा था, वह निश्चित रूप से भविष्य की खोई हुई आय पर संभावनाओं का हकदार है - दावेदार की आयु, जो 40 वर्ष से कम है, भविष्य की संभावनाओं के लिए दावेदार की खोई हुई आय में 50% की सीमा तक वृद्धि होनी चाहिए (पैरा 1 से 31)

अपील स्वीकार की जाती है. (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सरला वर्मा (श्रीमती) एवं अन्य बनाम डीटीसी एवं अन्य (2009) 6 एससीसी 121
2. श्रीराम कुशवाह बनाम महाप्रबंधक, उ.प्र. राज्य शुगर कार्पोरेशन लिमिटेड (2015) 2 एडीजे 578
3. राज कुमार बनाम अजय कुमार एवं अन्य.. (2011) 1 एससीसी 343
4. यूनाइटेड इंडिया इं.स. कंपनी लिमिटेड बनाम संजय दीक्षित (2022) 2 एडब्ल्यूसी 1596
5. जगदीश बनाम मोहन एवं अन्य (2018) 4 एससीसी 571
6. न्यू इंडिया अस्र. कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 822
7. राष्ट्रीय इं.सं. कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य (2017) 16 एससीसी 680
8. अभ्युदय संस्था बनाम भारत संघ (2011) 6 एससीसी
9. हरि नारायण बनाम बद्री दास (1963) एआईआर एससी 1558
10. जी. नारायणस्वामी रेड्डी बनाम कर्नाटक राज्य (1991) 3 एससीसी 261
11. दलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2010) 2 एससीसी 114
12. मोती लाल सोनगरा बनाम प्रेम प्रकाश उर्फ पप्पू एवं अन्य (2013) 9 एससीसी 199
13. अमर सिंह बनाम भारत संघ और अन्य (2011) 7 एससीसी 69
14. किशोर समरीते बनाम भारत संघ एवं अन्य (2013) 2 एससीसी 398
15. एबीसीडी बनाम भारत संघ और अन्य (2020) 2 एससीसी 52

अनुवादित

16. पुष्पादेवी एम. जटिया बनाम एम.एल. वधावन आदि (1987) 3 एससीसी 367
17. शशि बनाम अनिल कुमार वर्मा (1995) 1 एससीसी 421
18. के.डी. शर्मा बनाम सेल एवं अन्य (2008) 12 एससीसी 481
19. धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (1995) 3 एससीसी 757

(माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

यह निर्णय आदेश से प्रथम अपील संख्या 357 वर्ष 2001 और क्रॉस ऑब्जेक्शन संख्या 70 वर्ष 2022 का निस्तारण करेगा।

2. उपरोक्त अपील और प्रति आपत्ति मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/ XIII अपर जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा एम.ए.सी.पी. संख्या 699 वर्ष 1998 में दिए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 20.02.2001 से उत्पन्न हुई है।

3. निम्नलिखित तथ्यों से यह अपील उद्भूत है:-

दिनांक 30.09.1998 को दोपहर लगभग पौने तीन बजे, दावेदार-प्रतिवादी (संक्षेप में, 'दावेदार') अपने स्कूटर पंजीकरण संख्या UP14 J-1607 पर सवार होकर ग्राम चौड़ा से सेक्टर 25, नोएडा की ओर जा रहा था उसके बाद जिला गाजियाबाद पड़ता था। जैसे ही दावेदार सेक्टर 21, 25 के पास पहुंचा, ट्रक पंजीकरण संख्या डीआइजी/2615, जिसका चालक बेहद लापरवाही से और तेज गति से चला रहा था, सेक्टर 31 की ओर से आया और दावेदार के स्कूटर को टक्कर मार दी। दुर्घटना के परिणामस्वरूप, दावेदार को गंभीर चोटें आईं जिससे वह स्थायी रूप से विकलांग हो गया। जिस समय दुर्घटना हुई, दावेदार की उम्र 22 वर्ष थी। वह मौत के कगार पर था। दावेदार का कहना है कि वह एक प्रशिक्षित तकनीशियन था और सुपरटोनिक्स इंडिया लिमिटेड में फोरमैन के पद पर कार्यरत था। वह अच्छा वेतन पा रहा था। दावेदार का मामला यह है कि लगी चोटों और परिणामी स्थायी विकलांगता के कारण, उसे मानसिक पीड़ा और शारीरिक पीड़ा हुई। उसने अपनी नौकरी खो दी। तदनुसार, ट्रिब्यूनल के समक्ष दावा याचिका में उन्होंने 50 लाख रुपये का मुआवजा मांगा।

4. गोरा लाल, जिसे दावा याचिका में विपक्षी पक्षकार संख्या-1 के रूप में शामिल किया गया था, आपत्तिजनक वाहन का मालिक है। उसने ट्रिब्यूनल के समक्ष एक लिखित बयान देकर दावे को खारिज कर दिया। यह रुख अपनाया गया कि उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन, उसका ड्राइवर सावधानी के साथ और धीमी गति से उक्त वाहन चला रहा था। अचानक, दावेदार द्वारा चलाया जा रहा स्कूटर घटनास्थल पर दिखाई दिया। इसे लापरवाही, गलत ढंग और तेज गति से चलाया जा रहा था। दावेदार ने खुद को ट्रक के आगे चल रही एक कार से टकराने से बचाने के लिए ब्रेक लगाया। इससे हादसा हो गया। उनकी यह भी दलील है कि दुर्घटना के समय दावेदार के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था।

5. अपीलकर्ता-ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी इंडिया लिमिटेड की ओर से एक अलग

अनुवादित

लिखित बयान दायर किया गया था, जो दावा याचिका के विपक्षी पक्षकार संख्या-2 थे। अपीलकर्ता को इसके बाद 'बीमाकर्ता' के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

6. बीमाकर्ताओं की ओर से दलील दी गई कि दावा किया गया मुआवजा बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है। यह दुर्घटना दावेदार की लापरवाही के कारण हुई। दावा याचिका नॉन-ज्वाइंडर के लिए गलत है। बीमाकर्ताओं का यह भी मामला था कि दुर्घटना के समय, दावेदार के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। एक दलील यह भी है कि दावेदार की अच्छी आय नहीं थी।

7. पक्षकारों की दलीलों पर, निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए, (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

(1) क्या दिनांक 30.09.1998 को, लगभग 03 बजे सेक्टर 21, 25, नोएडा, पुलिस स्टेशन दादरी, जिला गाजियाबाद के इलेक्ट्रिक स्टेशन चौराहे के पास, ट्रक नंबर DIG/2615 से उसके चालक द्वारा लापरवाही और तेज गति से चलाते हुए, स्कूटर पंजीकरण संख्या UP14 J 1607 में टक्कर मार दी, जिसके परिणामस्वरूप दावेदार को दुर्घटना में गंभीर चोटें आईं?

(2) क्या दुर्घटना दावेदार की लापरवाही के कारण हुई?

(3) क्या दुर्घटना के समय स्कूटर सवार के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था? यदि हां तो इसका प्रभाव क्या होगा?

(4) क्या दुर्घटना के समय ट्रक चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था?

(5) दावेदार किस मुआवजे का हकदार है और किस विपक्षी पक्षकार से?

8. अपने मामले के समर्थन में, दावेदार ने एक सूची, पेपर संख्या 19-ग, मेडिकल बिल के माध्यम से दस्तावेज दाखिल किए और अपने साक्ष्यों के रूप में पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2 और पी.डब्लू.-3 की जांच की। बीमाकर्ताओं की ओर से, डी.डब्लू.-1 की जांच की गई है।

9. मुद्दे संख्या 1 और 2, अर्थात् अपराधग्रस्त वाहन के चालक की लापरवाही और अंशदायी लापरवाही से संबंधित मुद्दे, दोनों का निर्णय ट्रिब्यूनल द्वारा एक साथ किया गया था। ट्रिब्यूनल ने दोनों मुद्दों पर दावेदार के पक्ष में फैसला सुनाया और कहा कि दुर्घटना पूरी तरह से दोषी वाहन के चालक की लापरवाही के कारण हुई, जिसमें दावेदार का कोई योगदान नहीं था।

10. बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने ट्रिब्यूनल के निष्कर्षों की आलोचना करते हुए कहा है कि ट्रिब्यूनल ने मुद्दे संख्या 1 और 2 पर निर्णय लेते समय लापरवाही और अंशदायी लापरवाही के संबंध में सबूतों का गलत मूल्यांकन किया है। यह कहा गया है कि ट्रिब्यूनल ने पी.डब्लू.-1 का बयान और नक्शा नजरी पर विचार नहीं किया है जो मुद्दा संख्या 1 और 2 पर उसके निष्कर्षों को दूषित करता है। ट्रिब्यूनल की टिप्पणियों की भी आलोचना की गई है जहां यह कहा गया है कि पी.डब्लू.-1 का बयान और नक्शा नजरी के बीच विरोधाभास है। इन दो संबंधित मुद्दों पर निष्कर्षों के बारे में बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा एक और आलोचना यह है कि ड्राइवर की गवाही में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि क्रॉसिंग पर कोई हरी बत्ती

अनुवादित

नहीं थी। इसी तरह, हालांकि दावेदार के बयान में क्रॉसिंग पर हरी बत्ती के न होने के बारे में कोई उल्लेख नहीं है, ट्रिब्यूनल द्वारा बनाई गई धारणा कि क्रॉसिंग पर कोई हरी बत्ती नहीं थी, को बिना किसी सबूत के आधार पर कहा जाता है।

11. दूसरी ओर, दावेदार के विद्वान अधिवक्ता ने ट्रिब्यूनल के निष्कर्षों का समर्थन किया है और कहा है कि ट्रिब्यूनल ने दावेदार, पीडब्लू-1 के साक्ष्य का सही ढंग से मूल्यांकन किया है, घटना के विवरण में जाकर दावेदार के पक्ष में निष्कर्ष निकालने के लिए दुर्घटना के दृश्य का पुनर्निर्माण किया है। इसमें इस बात पर जोर दिया गया कि पी.डब्लू.-1 से जिरह की गई थी और उसका बयान जिरह की कसौटी पर खरी उतरी है, ट्रिब्यूनल द्वारा इससे निकाला गया निष्कर्ष अप्राप्य है। इस बात पर भी जोर दिया गया है कि ट्रिब्यूनल द्वारा पी.डब्लू.-1 की गवाही की भी गहन जांच की गई है। डी.डब्लू.-1 ट्रक ड्राइवर है, जिसने अपने ट्रक के आगे एक मारुति कार चलने की बात कही है, जो स्टेडियम क्रॉसिंग पर हरी बत्ती को पार कर गई थी। उसने लापरवाही से गाड़ी चलाने के लिए स्कूटर सवार को दोषी ठहराया है, लेकिन ट्रिब्यूनल ने उसकी गवाही की बारीकी से जांच की है और इसकी तुलना नक्शा नजरी से की है और इसे अविश्वसनीय माना है।

12. इस मुद्दे पर पक्षों के विद्वान अधिवक्तागणों को सुनने और रिकॉर्ड का परिशीलनन करने पर, इस न्यायालय ने पाया कि स्कूटर के सवार और आपत्तिजनक वाहन के चालक से विटनेस-बॉक्स में ऐसे शब्द बोलने की उम्मीद की जाती है जो पूरी तरह से सत्य नहीं हो सकते हैं; लेकिन, इन गवाहों से विधिवत जिरह की गई है। ट्रिब्यूनल ने सही टिप्पणी की है कि ड्राइवर की यह गवाही कि स्कूटर ने ब्रेक लगाया, क्योंकि वह कार से टकराने से बचना चाहता था, सही प्रतीत नहीं होता क्योंकि कार पहले ही क्रॉसिंग पर हरी बत्ती पार कर चुकी थी। इस प्रकार, स्कूटर चालक के पास कार से टकराने से बचने के लिए कोई मौका नहीं था। ट्रिब्यूनल ने दावेदार के सबूतों की भी पूरी तरह से जांच की है कि उसकी गवाही से पता चलता है कि वह ग्राम चौड़ा से उत्तर-दक्षिण दिशा में आगे बढ़ रहा था, जबकि ट्रक पूर्व से क्रॉसिंग की ओर आ रहा था। ट्रिब्यूनल ने वास्तव में गवाही से सही अनुमान लगाया है कि दावेदार ने ट्रक को देखा था और टक्कर से बचने के लिए अपने दोपहिया वाहन को बाईं ओर घुमाया, लेकिन ट्रक चालक ने उसके स्कूटर के बाईं ओर टक्कर मार दी। ट्रिब्यूनल ने ठीक ही टिप्पणी की है कि ट्रक के चालक ने पूर्व से क्रॉसिंग की ओर बढ़ते समय दावेदार को बाईं ओर से टक्कर मार दी, जिससे पता चलता है कि ट्रक चालक ने लापरवाही बरती थी। साइट प्लान को देखने से यह भी पता चलता है कि हालांकि स्कूटर क्रॉसिंग में प्रवेश कर चुका था, लेकिन वह अपनी दाहिनी ओर मुड़ गया था और क्रॉसिंग के पूर्व से आगे बढ़ रहे ट्रक ने बाईं ओर उसे टक्कर मार दी थी।

13. पी.डब्लू.-1 और डी.डब्लू.-1 की गवाही को देखते हुए, दोनों की जिरह और नक्शा नजरी का परीक्षण किया गया है, इस

अनुवादित

न्यायालय की राय है कि ट्रक चालक की विशेष लापरवाही के बारे में ट्रिब्यूनल के निष्कर्ष अच्छी तरह से स्थापित हैं। दावेदार की ओर से कोई अंशदायी लापरवाही नहीं है। अन्यथा भी, किसी भारी वाहन के चालक को क्रॉसिंग में प्रवेश करते समय अधिक सावधानी बरतनी चाहिए। इसलिए, मुद्दे संख्या 1 और 2 पर ट्रिब्यूनल के निष्कर्षों की पुष्टि की जानी चाहिए।

14. मुद्दा संख्या 3 और 4, जो विपक्षी पक्षकारों द्वारा उठाए गए मुद्दे हैं, का फैसला दावेदारों के पक्ष में किया गया है, मुद्दा संख्या-3 पर बिल्कुल भी जोर नहीं दिया गया है, और मुद्दा संख्या-4 पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अपराधग्रस्त वाहन के चालक का ड्राइविंग लाइसेंस प्रस्तुत किया गया है, जिसे बीमाकर्ताओं द्वारा स्वीकार किया गया है। इस प्रकार, अपील में उक्त निष्कर्षों के बारे में कोई संदेह नहीं है।

15. मुद्दा संख्या-5 पर, ट्रिब्यूनल ने 3,67,200/- रुपये का मूल मुआवजा देने का आदेश दिया है। इसमें चिकित्सा व्यय के लिए 1,50,000/- रुपये की राशि जोड़ी गई है, जो बिल और वाउचर द्वारा समर्थित है। इसके अलावा, कृत्रिम अंग को सुरक्षित करने के उद्देश्य से 35,000/- रुपये की राशि प्रदान की गई है। यह नोट किया गया है कि हर दो साल में कृत्रिम अंग के प्रतिस्थापन के लिए 11,000/- रुपये की लागत की आवश्यकता होती है। मानसिक और शारीरिक पीड़ा, शारीरिक विकलांगता, नौकरी छूटने आदि के लिए 50,000/- रुपये देने का आदेश दिया गया है। भविष्य के चिकित्सा खर्चों, सुविधाओं की हानि और होने वाली मानसिक पीड़ा के लिए 50,000/- रुपये की राशि देने का आदेश दिया।

16. इस प्रकार, ट्रिब्यूनल ने कुल 6,52,200/- रुपये देने का आदेश दिया। दावेदार ने अपनी जिरह में कहा कि दिया गया मुआवजा उसकी पात्रता से काफी कम है। की गई आपत्तियों में से एक यह है कि देय संपूर्ण मुआवजे के बजाय केवल 1,50,000/- रुपये की राशि पर ब्याज दिया गया है, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। दावेदार की अगली आपत्ति यह है कि चोटों और भविष्य में आवश्यक चिकित्सा उपचार को देखते हुए, भविष्य के चिकित्सा खर्चों के तहत 50,000/- रुपये की राशि बहुत कम है। दावेदार को लगी चोटों को देखते हुए उसे 2 लाख रुपये का मुआवजा दिया जाना चाहिए। यह भी तर्क दिया गया है कि भविष्य में कृत्रिम अंग के नियमित परिवर्तन के लिए मुआवजे के रूप में दी गई 35,000/- रुपये की राशि भी बहुत कम है, जो दावेदार के जीवन के दौरान एक नियमित सुविधा होगी। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि दावेदार को दुर्घटना में 55% विकलांग घोषित कर दिया गया है, जिसके कारण वह कहीं भी आने-जाने में असमर्थ है और अपनी आजीविका कमाने के लिए कोई भी काम करने में असमर्थ है। दावेदार का कहना है कि उसकी नौकरी की प्रकृति को देखते हुए, जो कि एक तकनीशियन के लिए 55% शारीरिक विकलांगता या चिकित्सा विकलांगता थी, 100% कार्यात्मक विकलांगता में बदल जाएगी।

अनुवादित

17. ट्रिब्यूनल ने उन साक्ष्यों को स्वीकार कर लिया है जिनके बारे में बीमाकर्ताओं ने भी ज्यादा संदेह नहीं किया है, कि दावेदार ने वेतन के रूप में 3250/- रुपये की मासिक राशि अर्जित की है। वह 22 साल का युवक था। दावेदार एक तकनीशियन था जो इलेक्ट्रिक मोटर वाइंडिंग का काम करता था। इस बारे में ट्रिब्यूनल ने टिप्पणी की है कि यह एक इस प्रकार का कार्य है जिसे वह स्थिर रहते हुए भी कर सकता है। उसे अपना काम जारी रखने के लिए इधर-उधर जाने की जरूरत नहीं है। ट्रिब्यूनल ने तब राय दी है कि इस तथ्य के बावजूद कि दावेदार जो काम करता है वह अभी भी स्थिर रहते हुए भी कर सकता है, यह तथ्य कि उसे स्थायी विकलांगता का सामना करना पड़ा है, उसका उसके व्यवहार और मानसिक दृष्टिकोण पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपना काम जारी रख पाएगा और अपनी आजीविका कमा पाएगा या नहीं। ट्रिब्यूनल ने इस तथ्य पर भी गौर किया है कि दुर्घटना के कारण हुई स्थायी विकलांगता के कारण उसे नौकरी से हटा दिया गया है।

18. इन परिस्थितियों में, ट्रिब्यूनल ने 55% स्थायी विकलांगता को कार्यात्मक विकलांगता के संख्यात्मक समकक्ष में बदल दिया है। जिस समय दुर्घटना हुई, उस समय दावेदार का वेतन 3250/- रुपये था। 55% की कार्यात्मक विकलांगता के कारण उनकी मासिक आय की हानि 1800/- रुपये प्रति माह निर्धारित की गई है।

आय की वार्षिक हानि 21,600/- रुपये की राशि पर गणना की गई है। चूंकि दावेदार 22 साल का एक युवा व्यक्ति था, इसलिए ट्रिब्यूनल ने उसकी भविष्य की आय के बारे में 3,67,200/- रुपये के कुल नुकसान का निर्धारण करने के लिए '17' के गुणक को लागू किया है। जैसा कि पूर्व में ही ऊपर वर्णित किया जा चुका है, इसमें जो अन्य धनराशि जोड़ी गई है वह चिकित्सा व्यय, भविष्य के चिकित्सा व्यय, मानसिक पीड़ा और भविष्य में होने वाली पीड़ा के अलावा मुआवजे और उसके कृत्रिम अंग के द्विवार्षिक परिवर्तन की स्थायी आवश्यकता के कारण है।

19. बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि ट्रिब्यूनल द्वारा दिए गए मुआवजे में वृद्धि नहीं की जानी चाहिए, जो कि दावेदार के विद्वान अधिवक्ता ने वृद्धि के लिए अपने मामले के समर्थन में आग्रह किया है।

20. वृद्धि के मुद्दे पर पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि रिकॉर्ड में मुख्य चिकित्सा अधिकारी, गाजियाबाद के कार्यालय द्वारा जारी चिकित्सा प्रमाण पत्र दिनांक 15.04.1999 है, जिस पर तीन डॉक्टरों की एक टीम द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं, जिसमें मुख्य चिकित्सा अधिकारी के अलावा एक हड्डी रोग विशेषज्ञ और एक नेत्र विशेषज्ञ शामिल हैं। उक्त प्रमाणपत्र इंगित करता है कि दावेदार का बायां पैर कट गया है और वह 55% की स्थायी विकलांगता से पीड़ित है। प्रमाण पत्र पर दावेदार की सत्यापित तस्वीर चिपकाई गई है। इससे पता चलता है कि दावेदार का बायां पैर घुटने के नीचे से कट गया है और

अनुवादित

उसका बायां निचला अंग लगभग काम करना बंद कर चुका है। इसमें कोई संदेह नहीं है, दावेदार को बहुत कम उम्र में गंभीर और स्थायी विकलांगता का सामना करना पड़ा है। दावेदार एक तकनीशियन है, जिसे काम करने के लिए शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है। इस तथ्य के बावजूद कि इलेक्ट्रिक मोटर वाइंडिंग का काम स्थिर स्थिति में किया जा सकता है, इस न्यायालय की राय है कि ट्रिब्यूनल का यह मानना सही है कि 55% स्थायी चिकित्सा विकलांगता समकक्ष कार्यात्मक विकलांगता में बदल जाएगी। इसलिए, ट्रिब्यूनल ने उस समय दावेदार की आय की न्यूनतम हानि, 1800/- रुपये प्रति माह की राशि का सही अनुमान लगाया है। कार्यात्मक विकलांगता का निर्धारण करने में विभिन्न कारकों को ध्यान में रखना होगा, जिसमें दुर्घटना में हुई विकलांगता की प्रकृति, जैसे किसी अंग की हानि आदि और दुर्घटना से पहले दावेदार के काम की प्रकृति शामिल है, जबकि कार्यात्मक विकलांगता का अनुमान चिकित्सकीय रूप से स्थायी विकलांगता के रूप में प्रमाणित किया जाता है।

21. इस संबंध में **राज कुमार बनाम अजय कुमार और अन्य 2011(1) एससीसी 343** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, जहां यह अवधारित किया गया है:

12. इसलिए, ट्रिब्यूनल को पहले यह तय करना होगा कि क्या कोई स्थायी विकलांगता है और यदि हां, तो ऐसी स्थायी विकलांगता की सीमा क्या है। इसका मतलब यह है कि ट्रिब्यूनल को साक्ष्य के संदर्भ में विचार करना और निर्णय लेना चाहिए:

(i) क्या विकलांगता स्थायी है या अस्थायी;

(ii) यदि विकलांगता स्थायी है, तो क्या वह स्थायी पूर्ण विकलांगता है या स्थायी आंशिक विकलांगता;

(iii) यदि विकलांगता प्रतिशत को किसी विशिष्ट अंग के संदर्भ में व्यक्त किया गया है, तो अंग की ऐसी विकलांगता का प्रभाव पूरे शरीर की कार्यप्रणाली पर पड़ता है, अर्थात व्यक्ति को होने वाली स्थायी विकलांगता होती है।

यदि ट्रिब्यूनल यह निष्कर्ष निकालता है कि कोई स्थायी विकलांगता नहीं है तो आगे बढ़ने और भविष्य की उपार्जन क्षमता के नुकसान का निर्धारण करने का कोई सवाल ही नहीं है। लेकिन यदि ट्रिब्यूनल यह निष्कर्ष निकालता है कि स्थायी विकलांगता है तो वह इसकी सीमा का पता लगाने के लिए आगे बढ़ेगा। चिकित्सा साक्ष्य के आधार पर ट्रिब्यूनल दावेदार की स्थायी विकलांगता की वास्तविक सीमा का पता लगाने के बाद, यह निर्धारित करेगा कि क्या ऐसी स्थायी विकलांगता ने उसकी उपार्जन क्षमता को प्रभावित किया है या प्रभावित करेगा।

13. वास्तविक उपार्जन क्षमता पर स्थायी विकलांगता के प्रभाव का पता लगाने में तीन चरण शामिल हैं। ट्रिब्यूनल को पहले यह सुनिश्चित करना होगा कि दावेदार स्थायी विकलांगता के बावजूद कौन सी गतिविधियाँ कर सकता है और स्थायी विकलांगता के परिणामस्वरूप वह क्या नहीं

अनुवादित

कर सकता है (यह जीवन की सुविधाओं के नुकसान के तहत मुआवजा देने के लिए भी प्रासंगिक है)। दूसरा कदम दुर्घटना से पहले उसके व्यवसाय, पेशे और काम करने की प्रकृति के साथ ही उसकी उम्र का पता लगाना है। तीसरा चरण यह पता लगाना है कि क्या (i) दावेदार किसी भी प्रकार की आजीविका कमाने में पूरी तरह से अक्षम है, या (ii) क्या स्थायी विकलांगता के बावजूद, दावेदार अभी भी उन गतिविधियों और कार्यों को प्रभावी ढंग से कर सकता है, जो वह पहले कर रहा था, या (iii) क्या उसे उसकी पिछली गतिविधियों और कार्यों के निर्वहन से रोका या प्रतिबंधित किया गया था, लेकिन वह कुछ अन्य या कम पैमाने की गतिविधियाँ और कार्य कर सकता है ताकि वह कमाता रहे या अपनी आजीविका चलाता रहे।

14. उदाहरण के लिए, यदि किसी दावेदार का बायां हाथ कट गया हो तो स्थायी शारीरिक या कार्यात्मक विकलांगता का आकलन लगभग 60% किया जा सकता है। यदि दावेदार ड्राइवर या बढ़ई हो तो उपार्जन क्षमता का वास्तविक नुकसान वस्तुतः 100% हो सकता है, जिससे वह न तो गाड़ी चलाने में सक्षम है और न ही बढ़ईगीरी करने में सक्षम है। दूसरी ओर, यदि दावेदार सरकारी सेवा में क्लर्क हो तो उसके बाएँ हाथ की क्षति के परिणामस्वरूप रोजगार की हानि नहीं होगी और उसे अभी भी एक क्लर्क के रूप में जारी रखा जा सकता है क्योंकि वह अपना लिपिकीय कार्य कर सकता है; और उस स्थिति में उपार्जन क्षमता का नुकसान 100% नहीं होगा जैसा कि ड्राइवर या बढ़ई के मामले में होता है, न ही 60% होगा, जो कि वास्तविक शारीरिक विकलांगता है, लेकिन बहुत कम होगा। वास्तव में, यदि दावेदार सरकारी सेवा में बना रहता है, तो "भविष्य के उपार्जन के नुकसान" के तहत कोई मुआवजा देने की आवश्यकता नहीं हो सकती है, हालांकि उसे अपना हाथ खोने के परिणामस्वरूप सुविधाओं के नुकसान के तहत मुआवजा दिया जा सकता है। कभी-कभी घायल दावेदार को सेवा में जारी रखा जा सकता है, लेकिन अपनी विकलांगता के कारण वह पहले से जिस पद या नौकरी पर था, उससे जुड़े कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए उपयुक्त नहीं पाया जा सकता है, और इसलिए कम परिलब्धियों के साथ किसी अन्य उपयुक्त लेकिन कमतर पद पर स्थानांतरित किया जा सकता है, ऐसी स्थिति में कम उपार्जन क्षमता को ध्यान में रखते हुए, भविष्य की उपार्जन क्षमता के नुकसान की प्रधानता के तहत एक सीमित आदेश होना चाहिए।"

22. इस न्यायालय की राय में, आय की वार्षिक हानि की गणना करने और इसे 21,600/- रुपये के आंकड़े पर निर्धारित करने में कोई त्रुटि नहीं है।

23. हालाँकि, जहाँ तक '17' के गुणक का सवाल है, हमारी राय है कि ट्रिब्यूनल ने गलती की है। **सरला देवी (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन और अन्य, (2009) 6 एससीसी 121** मामले में निर्णय के प्रस्तर संख्या 40 में निर्धारित उचित गुणक को अपनाने के लिए

अनुवादित

तालिका के अनुसार, दावेदार की आयु 21 से 25 वर्ष के बीच होगी, जिसके लिए निर्धारित उचित गुणक '18' है; '17' नहीं। इसलिए, दावेदार को भविष्य की आय का वास्तविक नुकसान 21,600/- रुपये हुआ।

24. जहां तक चिकित्सा व्यय का सवाल है, जो पहले ही किया जा चुका है, इसके बारे में रिकॉर्ड पर विश्वसनीय दस्तावेजी साक्ष्य मौजूद हैं। 1,50,000/- रुपये के आंकड़े पर इसे निर्धारित करने में ट्रिब्यूनल की राय निर्विवाद है।

25. इस न्यायालय के समक्ष इस बात पर कोई संदेह या विवाद नहीं किया गया है कि दावेदार को वास्तव में हर दो साल में अपने कृत्रिम अंग के प्रतिस्थापन की आवश्यकता होगी। जिस समय ट्रिब्यूनल ने मामले की सुनवाई की उस समय प्रतिस्थापन की लागत 11,000/- रुपये थी। यह काफी समय पहले की बात है और इस सुविधा के प्रतिस्थापन पर भविष्य के खर्च का अनुमान लगाते समय बढ़ते मूल्य सूचकांक को ध्यान में रखना होगा। न्यायालय की राय में, कृत्रिम अंग के भविष्य और वर्तमान प्रतिस्थापन के लिए खर्च के मुआवजे को 35,000/- रूपये से बढ़ाकर 2 लाख रूपये किया जाना चाहिए। दुर्घटना के कारण हुई मानसिक और शारीरिक पीड़ा और दावेदार की नौकरी के नुकसान के लिए ट्रिब्यूनल द्वारा अनुमानित 50,000/- की राशि भी अपवाद योग्य नहीं है। हालाँकि, भविष्य की सुविधाओं के नुकसान और अभी आने वाली मानसिक पीड़ा के लिए दिया गया मुआवजा इस तथ्य के मद्देनजर स्वीकार्य नहीं होगा कि दावेदार अब भविष्य की संभावनाओं के मद में आय के वास्तविक नुकसान में कुछ अतिरिक्त चाहता है।

26. राज कुमार (उपरोक्त) मामले में यह अवधारित किया गया है:

"15. यह ध्यान दिया जा सकता है कि जब मुआवजा भविष्य की उपार्जन क्षमता के नुकसान को 100% (या 50% से अधिक कुछ भी) मानकर दिया जाता है, तो सुविधाओं के नुकसान या जीवन की उम्मीद के नुकसान के तहत अलग से मुआवजा देने की आवश्यकता गायब हो सकती है और इसके परिणामस्वरूप, सुविधाओं की हानि या जीवन की उम्मीदों की हानि के मद में केवल एक प्रतीकात्मक या नाममात्र राशि ही प्रदान करनी पड़ सकती है, अन्यथा मुआवजे के आदेश में दोहराव हो सकता है। इसलिए जैसा हो सकता है वैसा रहने दिया जाय।"

27. इसलिए, इस न्यायालय की राय है कि सुविधाओं की हानि या जीवन की आशा की हानि या भविष्य में कष्ट के लिए 50,000/- के स्थान पर 2,000/- की सांकेतिक राशि प्रदान की जानी चाहिए।

28. अब, भविष्य की संभावनाओं के पंचाट पर विचार करते हुए, दावेदार जो दुर्घटना के समय 22 वर्ष का युवा था, वह निश्चित रूप से खोई हुई आय पर काम की गई भविष्य की संभावनाओं का हकदार है। किसी दुर्घटना के कारण स्थायी विकलांगता से पीड़ित कर्मचारी के मामले में भविष्य की संभावनाओं के नुकसान का मुद्दा, **जगदीश बनाम मोहन और अन्य (2018) 4 एससीसी 571** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन था। उस

अनुवादित

मामले में, दावेदार एक बढ़ई था, दुर्घटना के समय उसकी उम्र 24 वर्ष थी। उन तथ्यों की पृष्ठभूमि में, सर्वोच्च न्यायालय ने नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एससीसी 680 मामले में संविधान पीठ के निर्णय पर अवलम्ब लेते हुए अवधारित किया:

"13. प्रणय सेठी (उपरोक्त) में संविधान पीठ के निर्णय में, इस न्यायालय ने अवधारित किया है कि भविष्य की संभावनाओं का लाभ केवल उन लोगों तक ही सीमित नहीं होना चाहिए जिनके पास स्थायी नौकरी है और यह स्व-रोज़गार वाले व्यक्तियों तक भी विस्तारित होगा। स्व-रोज़गार वाले व्यक्ति के मामले में, स्थापित आय का 40% अतिरिक्त किया जाना चाहिए, जहां दुर्घटना के समय पीड़ित की उम्र 40 वर्ष से कम थी। इसलिए, वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता भविष्य की संभावनाओं के नुकसान के लिए 2400/- रूपये की वृद्धि का हकदार होगा।

14. वर्तमान मामले में गणना करते समय, न्यायालय को इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए कि अपीलकर्ता को एक गंभीर विकलांगता का सामना करना पड़ा है जिसमें उसे अपने दोनों हाथों का उपयोग न कर पाने का नुकसान हुआ है। शारीरिक गतिविधियों में लगे व्यक्ति के लिए, इसे समझने के लिए किसी कल्पना की आवश्यकता नहीं है कि दिनांक 1 नवंबर 2012 निर्णीत, सिविल अपील संख्या 7750 वर्ष 2012 मामले में हाथों का खोना उपार्जन क्षमता का पूर्ण अभाव है। कुछ नहीं तो कम से कम इस मामले के तथ्यों द्वारा ही खोए हुए हाथों को इस रूप में दोबारा दे सकते हैं। लेकिन मुआवज़े का माप किसी प्राणी की गरिमा को बहाल करने के लिए कानून के वास्तविक प्रयास को प्रतिबिंबित करना चाहिए। मुआवज़े के हमारे पैमाने इतने ख़राब नहीं होने चाहिए कि कोई यह सवाल उठाए कि क्या हमारा कानून मानव जीवन को महत्व देता है। यदि ऐसा होता है, जैसा कि होना भी चाहिए, तो इसे नुकसान के दर्द और पीड़ा के आघात के लिए एक यथार्थवादी प्रतिपूर्ति प्रदान करनी चाहिए। मुआवजे का आदेश कानून की खैरात नहीं है। अधिकारों की चर्चा में, वे कानून के तहत अधिकार का गठन करते हैं। कानून के बारे में हमारी वार्तालाप व्यक्ति की पितृसत्तात्मक अधीनता से हटकर मानवीय गरिमा के लिए अनिवार्य अधिकारों के दावे की ओर होनी चाहिए।"

29. हालाँकि, **जगदीश** *(उपरोक्त)* मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्व-रोजगार वाले व्यक्ति के मामले में भविष्य की संभावनाओं के लिए स्थापित आय का 40% जोड़ने की मंजूरी दे दी, उत्तर प्रदेश राज्य में भविष्य की संभावनाएं उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 (संक्षेप में 'नियमावली 1998') द्वारा शासित होंगी।

30. **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822** मामले में **उर्मिला शुक्ला** *(उपरोक्त)* मामले में निम्नानुसार अवधारित किया गया:

"9. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि मौजूदा मामले में किसी भी तरह से नियमों की वैधता पर सवाल नहीं उठाया गया और

अनुवादित

इस प्रकार यह एकमात्र सवाल है कि हमें इस बात पर विचार करने के लिए कहा गया है कि क्या इसकी प्रयोज्यता में, नियमावली के नियम 220ए के उप-नियम 3(iii) को प्रतिबंधित दायरा दिया जाना चाहिए या इसे पूरी तरह से संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. प्रणय सेठी के मुद्दे पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि कोई संकेत एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी मामले में ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने का निर्णय नहीं लिया जा सकता है, विशेषकर जब नियमों की वैधता को किसी भी चुनौती के तहत नहीं रखा गया था। उन मामलों में, जैसा कि प्रणय सेठी ने कहा है, 15% देने के निर्देश को जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, वहां अधिकतम सीमा के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध, यह केवल एक संकेत के रूप में था। यदि किसी वैधानिक व्यवस्था ने कोई ऐसा सिद्धान्त बनाया है जो बेहतर या अधिक लाभ देता है, तो ऐसे वैधानिक सिद्धान्त को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक सिद्धान्त अन्यथा अमान्य न पाया जाए।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता की ओर से दी गई दलील को अस्वीकार करते हैं और ट्रिब्यूनल के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं और लागत के संबंध में बिना किसी आदेश के इस अपील को खारिज करते हैं।"

31. नियमावली 1998 के नियम 220-ए(3) और दावेदार की उम्र, जो कि चालीस वर्ष से कम है, के अनुसार भविष्य की संभावनाओं के लिए दावेदार की खोई हुई आय में 50% की सीमा तक वृद्धि होनी चाहिए।

32. ट्रिब्यूनल द्वारा दिया गया आदेश निम्नानुसार संशोधित और निर्धारित किए जाने योग्य है:-

(i)	मासिक आय की हानि (दावेदार को)	=	1800
(ii)	खोई हुई मासिक आय + भविष्य की संभावनाएँ (मासिक आय हानि x 50%) = 1800+900	=	2700
(iii)	खोई हुई वार्षिक आय (दावेदार को) = 2700x12	=	32,400
(iv)	कुल हानि हुई आय = वार्षिक हानि आय x अनुप्रयुक्त गुणक = 32400x18	=	5,83,000
(v)	चिकित्सा व्यय	=	1,50,000

अनुवादित

(vi)	कृत्रिम अंग के भविष्य और वर्तमान प्रतिस्थापन के लिए खर्च का मुआवजा	=	2,00,000
(vii)	मानसिक और शारीरिक पीड़ा के लिए दी गई राशि	=	50,000
(viii)	सुख-सुविधाओं की हानि या जीवन की अपेक्षाओं की हानि या भविष्य में कष्ट	=	2,000
	इसलिए, कुल मुआवज़े का एक आंकड़ा बनेगा	=	9,85,000

33. आक्षेपित आदेश को संशोधित किया गया है और यह आदेश दिया गया है कि बीमा कंपनी दावेदारों को मुआवजे के रूप में 9,85,000/- रूपये की राशि का भुगतान करेगी। उपरोक्त धनराशि पर दावा याचिका दायर होने की तारीख से वसूली होने तक 7% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज लगेगा।

34. आक्षेपित आदेश या इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश के अनुसार ट्रिब्यूनल के पास पहले से जमा की गई धनराशि को आदेश के विरुद्ध समायोजित किया जाएगा। ट्रिब्यूनल के अन्य निर्देश यथावत बने रहेंगे।

35. परिणामस्वरूप, एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 357 वर्ष 2001 को **खारिज** किया जाता है और प्रति-आपत्ति संख्या 70 वर्ष 2022 को आंशिक रूप से **अनुमति** दी जाती है। लागत आसान है।

(2023) 2 ILRA 413

अपील न्यायिक क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 16.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 1327/2015

संलग्न

आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 1925/2015

एवम

आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 1824/2016

द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

...अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती सुनीता यादव एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री कार्तिकेय सरन, श्री उज्वल

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अमित कुमार सिन्हा, दीपाली श्रीवास्तव सिन्हा, श्री विष्णु प्रकाश श्रीवास्तव

ए. आपराधिक कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 166-यू.पी. मोटर वाहन नियम, 1998-नियम 220 ए(3)(i)- क्षतिपूर्ति का निर्धारण-घातक दुर्घटना का

अनुवादित

वाद-मृतक की उम्र लगभग 28 वर्ष थी-वह टेंट हाउस का मालिक था - न्यायाधिकरण द्वारा रुपए 8,73,500/- का अनुदान दिया गया-वृद्धि की मांग की गई-मृतक की मासिक आय रु. 8000/- अर्थात 96,000 प्रति वर्ष थी - भविष्य की संभावनाओं को 50% पर लिया गया - मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए एक-चौथाई की कटौती की गई - 17 का गुणक लागू किया गया - निर्भरता का कुल नुकसान रुपये 18,36,000 पर आंकलन किया गया - विभिन्न क्षतियों के लिए 70,000 रुपये समेकित किया गया - क्षतिपूर्ति के लिए रू. 19,06,000 की गणना की गई- 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित। (पैरा 1 से 39)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। **(ई-6)**

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. एनआईसी बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) 16 एससीसी 680
2. सरला वर्मा (श्रीमती) एवं अन्य बनाम डीटीसी एवं अन्य (2009) 6 एससीसी 121
3. न्यू इंडिया अस्र. कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 822

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, जे. द्वारा प्रदत्त)

I. **प्रस्तावना**

1. दो अपीलें क्रमशः एफएएफओ संख्या 1327 सन् 2015 तथा एफएएफओ संख्या 1925 सन् 2015, का उद्भव मोटर वाहन दुर्घटना दावा वाद संख्या. 816 सन् 2013 में विद्वान मोटर वाहन दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद द्वारा पारित अधिनिर्णय दिनांक 24.02.2015 से हुआ है। ये अपीलें बीमा कंपनी तथा मृतकों के आश्रित दवाकर्ताओं के द्वारा दाखिल की गयी है।

2. एक अपील, एफएएफओ संख्या 1824 सन् 2016 का उद्भव मोटर वाहन दुर्घटना दावा वाद संख्या. 948 सन् 2013 में विद्वान मोटर वाहन दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद द्वारा चोटिल-दवाकर्ता का दावा आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए पारित अधिनिर्णय दिनांक 17.03.2016 से हुआ है। यह अपील चोटिल-दवाकर्ता द्वारा दाखिल की गई है।

3. उपरोक्त तीनों अपीलें एक ही दुर्घटना से उद्भूत हैं तथा एक ही आदेश के द्वारा निर्णीत की जा रही हैं।

II. **दवाकर्ताओं तथा प्रतिवादियों का विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष प्रकरण:**

संक्षिप्त में दवाकर्ताओं का विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष वाद था कि मृतक चरण सिंह दिनांक 12.06.2013 को एक दुर्घटना में हो गई जिसका एकमात्र कारण ड्राइवर द्वारा एक ट्रक जिसका रजिस्ट्रेशन संख्या यूपी 70 जे 9831 को तेज और लापरवाही पूर्वक चलाया जाना है। उस दिन मृतक चरण सिंह मोटर साइकिल जिसका रजिस्ट्रेशन संख्या यूपी 73 डी 0335 चला रहे थे और पीछे की सीट पर घनश्याम सिंह बैठे थे। घनश्याम सिंह को इस दुर्घटना में गंभीर चोटें आई हैं। हमलावर वाहन का

अनुवादित

बीमा न्यू इंडिया एश्योरेंस कं० लिमिटेड द्वारा किया गया था।

III. विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय

5. विद्वान न्यायाधिकरण ने अपने अधिनिर्णय दिनांक 24.03.2015 में दवा वाद को आंशिक रूप से स्वीकार किया तथा क्षतिपूर्ति अधिनिर्णीत की जो निम्नवत सारणी द्वारा प्रदर्शित की जा रही है।

क्रमांक	मद	न्यायाधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत राशि
1.	मासिक आय (A)	4,000/-
2.	वार्षिक आय (B) (Ax12 =B)	48,000/-
3.	संभावित प्रत्याशा (C)	50% (Rs. 24,000/-) 48,000+24,000=72,000/-
4.	व्यक्तिगत खर्चों की कटौती (D)	1/3 of 24,000/- = 72,000-24,000 =48,000/-
5.	निर्भरता की वार्षिक हानि (E) (B-D=E)	48,000
6.	गुणांक (F)	18
7.	निर्भरता की वार्षिक हानि (ExF)	48,000 x 18 = 8,64,000/-
8.	पारंपरिक मदें (a) वैवाहिक	9500/-

अनुवादित

	सुख की हानि (b) संपत्ति की हानि (c) अंतिम क्रिया के व्यय	
9.	कुल क्षतिपूर्ति	8,64,000 + 9500 = 8,73,500/-
10.	ब्याज	7%

6. विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा प्रश्नगत अधिनिर्णय दिनांक 17.03.2016 में घायल के पक्ष में अधिनिर्णीत क्षतिपूर्ति निम्नवत सारणी द्वारा प्रदर्शित किया गया है:

क्रमांक	मद	न्यायाधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत राशि
1.	चिकित्सीय व्यय	1,09,925.19/-
2.	विशेष भोजन	6,000/-
3.	गंभीर चोटें	5,000/-
4.	आय की हानि	6,000/-
5.	कुल क्षतिपूर्ति	1,09,925.19 + 6,000 + 5,000 + 6,000 = 1,26,925/-
6.	ब्याज	7%

7. दवाकर्ताओं यथा घायलों द्वारा दाखिल अपीलों में क्षतिपूर्ति में वृद्धि की प्रार्थना की गई है। बीमा कंपनी की अपील द्वारा क्षतिपूर्ति की धनराशि को अत्यधिक बता कर चुनौती दी गई है।

IV. **पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं का कथन:**

8. श्री उज्ज्वल, अधिवक्ता श्री कार्तिकेय सरन जो एफएएफओ संख्या 1327 सन् 2015 में अपीलकर्ता-बीमा कंपनी के विद्वान् अधिवक्ता हैं, के स्थान पर कथन करते हैं कि यद्यपि अपील पत्र में कई आधार प्रस्तुत किए गए हैं, मात्र तीन आधारों पर बल दिया जा रहा है। प्रथम, न्यायाधिकरण ने अपीलकर्ता-बीमा कंपनी पर संपूर्ण दायित्व निर्धारित कर कानूनी भूल की है जबकि यह प्रकरण सहभागी

अनुवादित

लापरवाही का है। द्वितीय, मृतक की आय निर्धारित नहीं की गई थी। तृतीय, प्रकरण के तथ्यों पर गलत गुणांक प्रयोग किया गया था।

9. एफएएफओ संख्या 1824 सन् 2016 में सुश्री अरुणा सिंह, विद्वान् अधिवक्ता सुश्री अर्चना सिंह, अपीलकर्ता-बीमा कंपनी की विद्वान् अधिवक्ता न्यायाधिकरण द्वारा उक्त दुर्घटना में घायल व्यक्ति के पक्ष में अधिनिर्णीत क्षतिपूर्ति की धनराशि का अत्यधिक होने के कारण विरोध करती हैं।

10. श्री अमित कुमार सिन्हा, दवाकर्ता-प्रतिवादी के विद्वान् अधिवक्ता उक्त कथनों का खण्डन करते हुए कहते हैं कि यह सहभागी लापरवाही का प्रकरण नहीं है तथा सम्पूर्ण दायित्व ट्रक मालिक/बीमा कंपनी को वहन करना है। मृतक की आय नियमतः मौखिक तथा लिखित साक्ष्यों द्वारा सिद्ध की गई थीं परंतु विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा उस पर विचार नहीं किया गया। क्षतिपूर्ति की वृद्धि किए जाने योग्य है।

V. विचारणीय बिंदु:

11. कोर्ट के समक्ष अपनी बहस करने के पश्चात, सभी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सहमत हैं कि इस अपील में मात्र निम्नवत प्रश्न विचारणीय हैं:

(I) क्या दुर्घटना मोटर वाहन चालक के पक्ष से सहभागी लापरवाही का परिणाम है तथा बीमा कंपनी का संपूर्ण धनराशि का भुगतान करने दायित्व नहीं है?

(ii) क्या विद्वान न्यायाधिकरण ने क्षतिपूर्ति निर्धारण करते समय ऐसी मदें जैसे: आय, भविष्य की संभावनाएं, गुणांक, तथा पारंपरिक मदों में राशि की विधिसम्मत गणना की है?

VI. सहभागी लापारवाही का बिंदु:

12. दुर्घटना तथा हमलावर वाहन की लापारवाही सिद्ध करने हेतु दवाकर्ताओं ने पीडब्लू-2 एक प्रत्यक्षदर्शी घनश्याम सिंह को प्रस्तुत किया। पीडब्लू-2 घनश्याम सिंह ने विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष बयान दिया कि उसने दुर्घटना होते हुए देखा है तथा ड्राइवर हमलावर ट्रक को बहुत तेजी से और लापरवाही पूर्वक चल रहा था उसने मोटरसाइकिल जिसे मृतक चला रहा था को पीछे से टक्कर मारी थी। मृतक की दुर्घटना में लगी चोटों के कारण मृत्यु हो गई। पीडब्लू-2 की बयान का प्रतिपरीक्षा के दौरान खंडन नहीं किया गया था।

13. वहन निरीक्षण रिपोर्ट के अनुसार मोटरसाइकिल के सभी हिस्से बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गए थे।

14. पीडब्लू-2 के बयान से मोटरसाइकिल पर हुई संपूर्ण क्षति की पुष्टि होती है। पीडब्लू-2 का बयान दावा याचिका में किए गए कथनों के अनुरूप है।

15. विद्वान न्यायाधिकरण ने जिसे साक्षी पीडब्लू-2 की भाव-भंगिमा के अवलोकन का लाभ प्राप्त था उसके बयान को विश्वसनीय मानते हुए विश्वास किया है। अभिलेख अथवा बहस में ऐसा कुछ भी नहीं है जो इस न्यायालय को इस प्रकरण में कोई अलग राय बनाने के लिए सहमत कर सके।

अनुवादित

16. अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य यह सिद्ध करते हैं कि एकमात्र लापरवाही हमलावर ट्रक ड्राइवर की रही है। मृतक मोटरसाइकिल चालक सावधानीपूर्वक मोटरसाइकिल चला रहा था। हमलावर ट्रक को तेज गति से चलाया जाना तथा उसकी अनियंत्रित गति ने मोटरसाइकिल चालक को कोई समय या अवसर नहीं दिया कि वह इस दुर्घटना को रोक सके या स्वयं को बचा सके। मृतक मोटरसाइकिल चालक को इस दुर्घटना के लिए दोष नहीं दिया जा सकता। यह सहभागी लापरवाही का प्रकरण नहीं है। हमलावर ट्रक का चालक ही एकमात्र रूप से दुर्घटना कारित करने का दोषी है और बीमा कंपनी का पूर्ण रूप से क्षतिपूर्ति का भुगतान करने का दायित्व है।

17. आमने-सामने से हुई टक्कर का यह अर्थ नहीं है कि यह प्रकरण सहभागी लापरवाही का है। सहभागी लापरवाही वहां होती है जब दोनों ही पक्ष लापरवाही पूर्वक वाहन चालान कर रहे होते हैं, यातायात नियम का उल्लंघन करते हैं या सुरक्षित वाहन चालान के नियमों का पालन नहीं करते हैं। सहभागी लापरवाही का अर्थ होता है कि दोनों ही पक्ष दुर्घटना के लिए दोषी हैं। इस तरह के प्रकरणों में न्यायालय को दुर्घटना में दोनों पक्षों की जिम्मेदारी तथा अनुपातिक उत्तरदायित्व निर्धारित करना होता है।

18. विद्वान न्यायाधिकरण ने दावाकर्ताओं के पक्ष में तथा बीमा कंपनी/हमलावर ट्रक ड्राइवर के विरुद्ध दुर्घटना के दोष तथा क्षतिपूर्ति के भुगतान का उत्तरदायित्व निर्णीत किया। विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा साक्ष्यों तथा अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों के कथन जांच में कोई कमी नहीं है। विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा क्षतिपूर्ति के भुगतान की संपूर्ण जिम्मेदारी सही और विधि समस्त रूप से बीमा कंपनी के ऊपर तय की गई है। विद्वान न्यायाधिकरण की निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है।

VI. आश्रितों की संख्या तथा खर्चों के प्रति कटौती:

क्रमांक	नाम	आयु	संबंध
1.	राम सुरेमन	64	पिता
2.	श्रीमती शिवपति	62	माता
3.	श्रीमती सुनीता यादव	27	पत्नी
4.	कृष्णा यादव	4	पुत्र

20. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सहमत हैं कि प्रकरण के तथ्यों तथा परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए व्यक्तिगत खर्चों के संबंध में मृतक की आय से 1/4 कटौती किया जाना उचित होगा।

अनुवादित

VII. मृतक की आय के संबंध में:

21. मृतक की पत्नी कटघरे में आईं और पीडब्लू 1 के तौर पर बयान दिया कि मृतक Rs.10,000 प्रतिमाह एक निजी व्यवसाय द्वारा तथा Rs.5,000 दूध बेचकर कमाता था। दूध बेचने से होने वाली आय के मुद्दे पर इस न्यायालय के समक्ष बल नहीं दिया गया क्योंकि इसके समर्थन में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। मृतक आर्मी टेंट हाउस के नाम और शैली से एक व्यवसाय चलता था। मृतक की आय सिद्ध करने के लिए कैश बुक से कई सारी रसीदें साक्ष्य के तौर पर प्रस्तुत की गई थी। पीडब्लू 1 ने रसीदों की पुष्टि की। इन रसीदों का कभी विरोध नहीं किया गया और न ही पीडब्लू 1 से रसीदों की वास्तविकता के संबंध में कोई प्रतिप्रश्न किया गया।

22. विद्वान् न्यायाधिकरण ने अपने आदेश में पाया कि उक्त व्यवसाय के पंजीकरण की अनुपस्थिति में उपरोक्त रसीदों की तथ्यपरकता संदिग्ध थी। विद्वान् न्यायाधिकरण का मत है कि टेंट हाउस का व्यवसाय साल भर चलने वाला व्यवसाय न हो कर सामायिक है। विद्वान् न्यायाधिकरण मृतक को अकुशल श्रमिक के तौर पर वर्गीकृत किया है और उसकी आय Rs.4,000/- प्रति माह निर्धारित की है।

23. विद्वान् न्यायाधिकरण ने आर्मी टेंट हाउस की रसीदों पर सम्यक विचार नहीं किया। विद्वान् न्यायाधिकरण ने अपना निर्णय दवाकर्ताओं द्वारा व्यवसाय के पंजीकरण प्रमाणपत्र प्रस्तुत न कर पाने पर आधारित किया है। विद्वान् न्यायाधिकरण का यह दृष्टिकोण अधिनिर्णय को दूषित कर देता है। इस प्रकृति के बहुत सारे व्यवसाय हमारे देश की अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्र का भाग हैं। इस प्रकार के व्यवसाय हमारे देश में बहुत अधिक अभिलेखित नहीं किए जाते। व्यवसाय के औपचारिक पंजीकरण की अनुपस्थिति मृतक की आय के निर्धारण को प्रभावित नहीं कर सकती।

24. मुझे आभास हो रहा है कि विद्वान् न्यायाधिकरण द्वारा मृतक की आय के निर्धारण में भूल हुई है।

25. आर्मी टेंट हाउस की रसीदें जिनमें ग्राहकों की मांग अभिलिखित हैं समुचित रूप से सिद्ध की गई हैं। किसी विश्वसनीय चुनौती की अनुपस्थिति में रसीदों की तथ्य परखता पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। उक्त रसीदें एक बारहमासी व्यवसाय जिसके निष्ठावान ग्राहक हों का निरूपण करती हैं। कार्यक्रम तथा उत्सव समाज की नियमित विशेषता है तथा किसी निश्चित समय अंतराल पर होने वाली घटना नहीं है।

26. टेंट हाउस व्यवसाय में उच्च स्तरीय संगठनात्मक, विपणन कौशल की आवश्यक्ता होती है। यह तथ्य की मृतक एक सफल टेंट हाउस व्यवसाय चलता था यह उसकी उद्यमिता कौशल तथा प्रबंध कुशलता का प्रमाण है।

27. मृतक की सटीक आय उपलब्ध साक्ष्यों से सिद्ध नहीं हुई है। न्यायालय मृतक की आय का निर्धारण करते हुए अपनी जांच में तमाम पहलुओं पर विचार करेगी। न्यूनतम

अनुवादित

मजदूरी के संबंध में अधिसूचना एक अच्छा प्रारंभ बिंदु है परंतु अंतिम राशि नहीं।

28. राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित एक कुशल मजदूर की न्यूनतम मजदूरी प्रासंगिक समय में Rs. 6,296/- प्रति माह है। तथापि अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी तथ्यों का संपूर्ण चित्रण नहीं करती। आय निर्धारण के समय व्यवसाय का सतत स्वभाव, निष्ठावान ग्राहक तथा मृतक की उद्यमिता कौशल का विचरण आवश्यक है। पी डब्लू 1 का बयान जहां तक विश्वसनीय पाया गया है इस न्यायालय द्वारा मृतक की आय निर्धारण में सहायक होगा।

29. उपरोक्त विचरण के आधार पर यह न्यायलय इस निष्कर्ष पर पहुंची कि मृतक की आय Rs. 8,000/- प्रति माह तय की जाती है।

VII. संभावित प्रत्याशाऐं

30. भविष्य की संभावनाओं की गणना उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 के अनुसार की जानी है। नियमावली का नियम 220A-3(i) प्रासंगिक है तथा निम्नवत उद्धरित किया जा रहा है:

(3) किसी मृतक की संभावित प्रत्याशाओं को मृतक के वास्तविक वेतन या न्यूनतम मजदूरी में नियमानुसार जोड़ दिया जाएगा।

(i) 40 वर्ष से कम आयु: वेतन का 50%

31. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एंड अदर्स में उत्तर प्रदेश नियमावली 1998, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचरण हेतु आई। उर्मिला शुक्ला सुप्रा में कई आदेशों के विचारण के पश्चात नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी व अन्य शामिल है:

"10. प्रणय सेठी के बिंदु पर विचारण एक "उचित क्षतिपूर्ति" तक पहुंचने उद्देश्य से धारा 168 मोटर वाहन अधिनियम 1988 के प्रावधानों के अनुसार किया गया था।

11. यदि एक दिशा निर्देश वैधानिक उपकरण के रूप में उपलब्ध कराया जाए जो सुसंगत आचरण सुनिश्चित करें, प्रणय सेठी में हुए निर्णय को सीमित प्रचलन का वैधानिक प्रावधान नहीं माना जा सकता विशेषतः जब नियमावली की वैधानिकता को कोई चुनौती नहीं दी गई हो। प्रणय सेठी के प्रकरण में मृतक की आयु 50-60 वर्ष के वर्ग में निर्धारित 15% को अधिकतम राशि नहीं माना जा सकता। वैधानिक व्यवस्था में किसी शासी सिद्धांत की अनुपस्थिति में, यह एक निर्देश मात्र था। <u>यदि कोई सूत्र वैधानिक उपकरण द्वारा निर्मित हो जिससे बेहतर या अधिकतम लाभ हो सकता है, ऐसे वैधनिक उपकारण के चलन को स्वीकार किया जाना चाहिए जब तक कि वह अमान्य न पाया गया हो।"</u> (जोर दिया गया)

32. प्रणय सेठी (सुप्रा) अथवा सरला वर्मा (श्रीमती) व अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी तथा अन्य में उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 माननीय सर्वोच न्यायालय के समक्ष विचरण का विषय नहीं था। प्रणय सेठी (सुप्रा) में संभावित प्रत्याशाओं का निर्धारण उ प्र नियमावली, 1998 को दृष्टिगत रखे बिना किया गया था। यह तथ्य उर्मिला शुक्ला सुप्रा में उल्लेखित किया गया था:

अनुवादित

"8. श्री राव द्वारा कहा गया कि प्रणय सेठी यह प्रदर्शित नहीं करता कि न्यायालय का ध्यान एक निश्चित नियम जैसे नियम 3(iii) पर लाया गया हो जिसमें आय में प्रणय सेठी में निर्देशित 15% के बजाय 20% की वृद्धि विचारित की गई है। उनका कथन है, क्योंकि वैधानिक उपकरण प्रभावी है जो की अधिक लाभ पहुंचता है, ऐसे में प्रणय सेठी में हुए निर्णय के आधार पर विचार करना वैधानिक नियम को अप्रभावी करना होगा।"

33. उ0 प्र0 नियमावली 1998, वैधानिक प्रकृति की है तथा इसका प्रभाव प्रणय सेठी सुप्रा द्वारा सीमित नहीं होता। उ0 प्र0 नियमावली, 1998 को विधि की संपूर्ण शक्ति प्राप्त है और सुसंगत प्रकरणों में पूर्ण शक्ति के साथ प्रयोग किया जाएगा। उ0 प्र0 नियमावली, 1998 दावाकर्ताओं के लिए प्रणय सेठी (सुप्रा) के प्रावधानों से अधिक लाभदाई है। प्रणय सेठी (सुप्रा) के निष्कर्ष उ0 प्र0 नियमावली, 1998 द्वारा योग्य लाभार्थियों को प्रदत्त लाभों को निष्प्रभावी नहीं कर सकते।

34. उ0 प्र0 नियमावली 1998 के अनुरूप उपरोक्त वैधानिक पृष्ठभूमि दावाकर्ता अपीलार्थी को मजदूरी में संभावित प्रत्याशाओं के आधार में पर 50% की वृद्धि का अधिकारी बनता है। अधिनिर्णय आवश्यक बदलाव यथोचित रूप से किए जाएंगे।

IV. गुणांक

35. मृतक की आयु मृत्यु के समय 28 वर्ष की थी। विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा गुणांक 17 सही तरीके से प्रणय सेठी सुप्रा तथा सरला वर्मा सुप्रा के अनुरूप प्रयोग किया गया है।

X. परंपरागत मदों की गणना:

36. प्रश्नगत अधिनिर्णय में परंपरागत मदों में निर्धारित राशि प्रणय सेठी (सुप्रा) से पृथक है। प्रणय सेठी (सुप्रा) में परंपरागत मदों का निर्धरण निम्नवत निष्कर्ष पर किया गया था:

"54. ..... पारंपरिक तथा परंपरागत मदें, जैसा कि स्पष्ट है कि प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह एक स्वीकार्य मापदंड नहीं होगा। इसके उलट आय के निर्धारण जैसी मदों की गणना आवश्यक है। प्रत्येक गणना का एक समुचित आधार आवश्यक है। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि मूल्य सूचकांक, बैंक की ब्याज दरों में गिरावट, विभिन्न क्षेत्रों में मूल्य वृद्धि को ध्यान में रखना आवश्यक है। न्यायालय इन बातों से अनजान नहीं रह सकती। इस संबंध में एक निश्चित नियम रहा है। यदि एक निश्चित नियम का अनुपालन न किया जाए तो ऐसे निर्धारण में बहुत अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है, ऐसे निर्धारणों में बहुत अधिक अंतर देखने को मिलेंगे जिसके परिणाम स्वरूप अधिकरणों तथा न्यायालयों द्वारा पारित आदेश और अनिर्देशित होंगे तथा उनमें किसी तरह की एकरूपता नहीं रह जाएगी। अतः हम इन समुचित राशियों का निर्धारण कर रहे हैं। हमारे विचार में परंपरागत मदों में समुचित

अनुवादित

राशि अर्थात संपत्ति की हानि, वैवाहिक सुख की हानि, अंतिम क्रिया के खर्च Rs. 15000,Rs.40,000/- अंतिम क्रिया के खर्च Rs.15000,Rs.40000/- तथा Rs.15000 होने चाहिए।"

37. वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर परंपरागत मदों की राशि निर्धारण में प्रणय सेठी (सुप्रा) प्रभावी होगा। अधिनिर्णय में समुचित बदलाव किया जाएगा।

XII. ब्याज

38. विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित 7% ब्याज तथा भुगतान का तरीका न्यायोचित तथा विधि सम्मत है और इस में किसी तरह के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

XIII. क्षतिपूर्ति का निर्धारण जिसके दावाकर्ता अधिकारी हैं

39. उपरोक्त विचारण के आधार पर, क्षतिपूर्ति की राशि जिसके दावाकर्ता अधिकारी है निम्नवत सारणी द्वारा प्रदर्शित किए जा रहे हैं:

दुर्घटना की तारीख - 12.06.2013
मृतक का नाम - चरण सिंह
मृतक की आयु - 28 वर्ष
मृतक का व्यवसाय टेंट हाउस संचालक
मृतक की आय 8,000/- प्रति माह
दवा कर्ताओं का नाम आय तथा मृतक के साथ संबंध:

क्रमांक	नाम	आयु	संबंध
1.	राम सुरेमन	64	पिता
2.	श्रीमती शिवपति	62	माता
3.	श्रीमती सुनीता यादव	27	पत्नी
4.	कृष्णा यादव	4	पुत्र

क्षतिपूर्ति की गणना

क्रमांक	मद	न्यायाधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत राशि
1.	मासिक आय (A)	8,000/-
2.	वार्षिक आय (B) (Ax12=B)	96,000/-
3.	संभावित प्रत्याशा (C)	50% (Rs. 96,000/-) =48,000/-
4.	वार्षिक आय + संभावित प्रत्याशा (B + C = D)	96,000 + 48,000/- = 1,44,000/-
5.	व्यक्तिगत खर्चों की कटौती (E)	1/4 of 1,44,000/-

अनुवादित

	(1/4 of D)	= 36,000
6.	निर्भरता की वार्षिक हानि (F) (D-E = F)	1,44,000 - 36,000 = 1,08,000/-
7.	गुणांक (G)	17
8.	निर्भरता की कुल हानि (FxG)	1,08,000 x 17 = 18,36,000/-
9.	पारंपरिक मदें: (a) वैवाहिक सुख की हानि (b) संपत्ति की हानि (c) अंतिम क्रिया के व्यय	70,000/-
10.	कुल क्षतिपूर्ति	18,36,000 + 70000 = 19,06,000/-
11.	ब्याज	7%

<u>एफएएफओ संख्या 1824 सन् 2016 (मेसर्स न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम घनश्याम सिंह यादव तथा 2 अन्य)</u>

40. एफएएफओ संख्या 1824 सन् 2016 दुर्घटना में घायल को प्रदत्त क्षतिपूर्ति से उद्भूत हुई है। घायल को Rs.1,26,925/- की क्षतिपूर्ति चिकित्सीय खर्चों के लिए अधिनिर्णित की गई है। क्षतिपूर्ति के घटक निम्नवत है:

1. चिकित्सीय खर्च - Rs.11925
2. विशेष भोजन और पोषण - Rs.6000
3. गंभीर चोटें - Rs.5000
4. आय की हानि - Rs.6000

41. उपरोक्त प्रकरण में, विद्वान अधिकरण ने पाया कि ड्राइवर का बयान इंश्योरेंस कंपनी तथा ट्रक मालिक द्वारा किए गए लिखित अभिकथनों से मिल नहीं खाता। विद्वान न्यायाधिकरण ने पाया कि घायल को दुर्घटना में गंभीर चोटे आई हैं जिससे कि उसे तात्कालिक बेरोजगारी का सामना करना पड़ा है। घायल को कोई स्थाई अक्षमता नहीं हुई है। अधिकरण ने कई मदों में क्षतिपूर्ति अभिनिर्णित की है जैसे चिकित्सीय खर्च, गंभीर चोटें, आय की हानि, उपरोक्तानुसार। उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर राशियों का पुनर्निर्धारण किया जा रहा है। चिकित्सीय खर्च अभिलेखों द्वारा पुष्ट हैं अतः किसी बदलाव की आवश्यकता नहीं है। हालांकि मृतक विभिन्न मदों में निम्नवत धनराशि का निम्नवत अधिकारी होगा:

मद	अधिकारी धनराशि
विशेष भोजन और पोषण	20,000/-
आय की हानि	30,000/-
गंभीर चोटें	20,000/-p
ब्याज	7%

एफएएफओ संख्या 1824 सन् 2016 में अधिनिर्णय दिनांक 17.03.2016 में निम्नवत बदलाव किए जा रहे हैं।

अनुवादित

XIII. निष्कर्ष तथा निर्देश:

42. उपरोक्त को दृष्टिगत रखते हुए, बीमा कंपनी द्वारा दाखिल की गई अपील अर्थात आदेश से पहली अपील संख्या 1824 सन 2016 खारिज की जाती है।

43. बीमा कंपनी तथा दावाकर्ताओं द्वारा दाखिल की गई अपील अर्थात आदेश से पहली अपील संख्या 1327 सन 2015 वर्तमान निर्णय में वर्णित सीमा तक आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

44. क्षतिपूर्ति की धनराशि जो दावाकर्ताओं के पक्ष में अधिनिर्णित हुई है बीमा कंपनी द्वारा 3 महीने के भीतर विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष जमा कर दी जाएगी। उसके पश्चात विद्वान न्यायाधिकरण उस धनराशि को दावाकर्ताओं के पक्ष में अविलंब अवमुक्त कर देगी। दावाकर्ताओं को पहले से मिली धनराशि का समायोजन कर लिया जाएगा।

45. बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान न्यायालय के समक्ष जमा की गई धनराशि विद्वान न्यायाधिकरण को भेज दी जाएगी तथा जिसे इस निर्णय में निर्धारित क्षतिपूर्ति के एक भाग के तौर पर दावाकर्ताओं के पक्ष में अवमुक्त कर दिया जाएगा।

(2023) 2 ILRA 421

अपील न्यायिक क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 24.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

द्वितीय अपील संख्या 2710/1984

इरशाद अहमद

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री अर्पित अग्रवाल, श्री रवि किरण जैन, श्री बी.डी.मिश्रा, श्री आर.बी.डी.मिश्रा, श्री आर.जी.प्रसाद, श्री आर.एस.मिश्रा, श्री एस.हसनैन

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री वी.के. नगाइच (एस.सी.), श्री अमित कुमार, श्री आर.एन. सिंह, श्री आर.एन. सिंह, श्री एस.एन. सिंह

ए. सिविल कानून-सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- धारा 11-पुनर्निर्णय-राजस्व न्यायालय की अपील का निर्णय, धारा 229-बी के तहत वादी द्वारा दायर वाद में मामले को प्रथम दृष्टया न्यायालय में भेजते समय, वर्तमान मुकदमे में पूर्व न्याय के रूप में कार्यरत, भूमि की प्रकृति के बारे में निषेधाज्ञा उत्पन्न नहीं होती- वादी द्वारा पूर्व प्रारंभ किए गए घोषणात्मक वाद से उत्पन्न अपील में वादी और प्रतिवादियों के मध्य उस सूट की संपत्ति पर एक पजावा बिंदु पर अतिरिक्त आयुक्त निर्णय पुनर्निर्णय था, और, इसलिए, चकबन्दी अधिनियम की धारा 3(5) का अर्थ के अंतर्गत भूमि नहीं थी - यही कारण है कि अपर आयुक्त ने माना कि चकबंदी अधिनियम की धारा 49 द्वारा वाद पर रोक नहीं लगाई जाएगी - फिर भी, अतिरिक्त आयुक्त ने विचारणीय न्यायालय को निरस्त करते हुए वाद को नवीन सिरे से सुनवाई के लिए भेज दिया, इसे

अनुवादित

अतिरिक्त धारा 49-निष्कर्ष के तहत रोक के बारे में प्रारंभिक मुद्दे के निर्णय पर निरस्त कर दिया - आयुक्त ने रिमांड के क्रम में केवल इतना दर्ज किया है कि भूमि ऐसी नहीं है जिसे चक में चकबंदी किया जा सके, क्योंकि यह खेती योग्य नहीं है- अतिरिक्त आयुक्त ने यह नहीं माना कि पजावा अधिनियम की धारा 9 के तहत परिकल्पित एक इमारत थी - यदि उन्होंने ऐसा किया होता, तो उन्होंने वाद को निरस्त कर दिया होता या सिविल न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए वादपत्र को वापस करने का निर्देश दिया होता - अतिरिक्त आयुक्त द्वारा मुकदमे का रिमांड प्रदर्शित करता है कि यद्यपि उन्होंने पजावा को एक ऐसी संरचना के रूप में पाया जो सी.एच. अधिनियम की धारा 3(5) के अर्थ के अंतर्गत 'भूमि' नहीं बल्कि उपयुक्त संपत्ति प्रदान करती है ताकि धारा 49 के प्रतिबंध को आकर्षित किया जा सके, उन्होंने अभी भी सोचा कि राजस्व न्यायालय के पास अधिनियम की धारा 229-बी के तहत वादी के मुकदमे की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र है, जहांवादी को यह सिद्ध करना होगा कि अधिनियम की धारा 9 के अर्थ के तहत वाद की संपत्ति पर कोई इमारत थी या नहीं, ताकि उसके साथ इसका समझौता हो सके- रिमांड पर, वादी को इस दलील पर अपने शीर्षक की घोषणा के लिए राजस्व न्यायालय के समक्ष वाद चलाना चाहिए था कि पजावा एक इमारत थी, जो निहित करने की तारीख पर अधिनियम की धारा 9 के तहत उसके साथ तय की गई थी - लेकिन, आयुक्त द्वारा सहायक कलेक्टर को रिमांड पर वादी ने स्पष्ट रूप से राजस्व न्यायालय के समक्ष मामले को छोड़ दिया और सिविल न्यायालय के समक्ष वर्तमान वाद दायर किया, और वह भी निषेधाज्ञा सरलीकरण के लिए-पुनर्निर्णय सिद्धांत लागू नहीं होगी। (पैरा 1 से 66)

अपील निरस्त की जाती है। **(ई-6)**

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. झारखंड राज्य हाउसिंग बोर्ड बनाम दीदार सिंह एवं अन्य (2019) 17 एससीसी 692
2. अनाथुला सुधाकर बनाम पी. बुची रेड्डी (मृत) द्वारा वारिसान और अन्य (2008) 4 एससीसी 594
3. कयालुल्ला परमबाथमोइदु हाजी बनाम नंबूदियिलविनोदन (2021) 6 एडब्ल्यूसी 5651 (एससी)
4. टी.वी. रामकृष्ण रेड्डी बनाम एम. मल्लप्पा एवं अन्य (2021) एआईआर एससी 4293
5. त्रिलोकी नाथ बनाम राम गोपाल और अन्य 1974 आरडी 5
6. घनश्याम दास बनाम डाबी प्रसाद और अन्य (1966) एससी 1998
7. नवंद राम और बनाम गाँव समाज रूरा और अन्य (1961) एएलजे 910
8. देवी प्रसाद बनाम घनश्याम दास और अन्य (1960) एससीसी ऑनलाइन ऑल 150
9. घनश्याम दास बनाम देबी प्रसाद

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

अनुवादित

1- यह एक अपीलकर्ता की अपील है जो स्थायी निषेधात्मक निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमे से उत्पन्न होती है।

2. 1979 का मूल वाद संख्या 441 इरशाद अहमद द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य के खिलाफ दायर किया गया था, जिसका प्रतिनिधित्व कलेक्टर, मुजफ्फर नगर और टाउन एरिया कमेटी, बुरहाना, जिला मुजफ्फर नगर द्वारा किया गया था, जिसका प्रतिनिधित्व इसके सचिव द्वारा किया गया था, जिसमें इस आशय के लिए एक स्थायी निषेधाज्ञा के लिए प्रार्थना की गई थी कि प्रतिवादियों को मुकदमा संपत्ति में अपीलकर्ता के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से मना किया जाए।

3. अपील को जन्म देने वाले तथ्य ये हैं: इरशाद अहमद (संक्षेप में, 'अपीलकर्ता') ने मुजफ्फर नगर के मुंसिफ के समक्ष एक मुकदमा दायर किया कि उनके पास खसरा नंबर 3299 में स्थित उनका पजावा (एक स्वदेशी ईंट-भट्ठा) था, जो 1 बीघा 8 बिस्वा और खसरा नंबर 3300 में स्थित था, जो 10 बिस्वा था, जो शहर और तहसील बुरहाना, जिला मुजफ्फर नगर में स्थित है। उक्त भूमि अपीलकर्ता की पैतृक संपत्ति थी, जिसे खेवट नंबर 19, महल अब्दुल आलम में शामिल किया गया था। इसके बाद उक्त संपत्ति को 'मुकदमा संपत्ति' कहा जाएगा। यह अपीलकर्ता का मामला है कि पजावा बहुत लंबे समय से मुकदमा संपत्ति में स्थित है, और, राजस्व रिकॉर्ड में इस तरह दर्ज है। खसरा नंबर 3299 में, अपीलकर्ता के परदादा ने एक पक्का कुआं खोजा था, जिस पर उनके नाम का पत्थर उत्कीर्ण था। मुकदमा संपत्ति उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 3 (14) के तहत परिकल्पित भूमि की परिभाषा के भीतर नहीं आती है।

4. बीते दिनों में खसरा नं 3299 की भूमि पर खेती की जाती थी और भूमि की सिंचाई के लिए अंतिम बार उल्लिखित कुआँ को डुबो दिया गया था। उत्तर प्रदेश राज्य, जिसका प्रतिनिधित्व कलेक्टर, मुजफ्फर नगर और टाउन एरिया कमेटी, बुरहाना द्वारा किया जाता है, जिसे बाद में क्रमशः 'प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2' के रूप में संदर्भित किया गया है, के पास मुकदमा संपत्ति का न तो स्वामित्व है और न ही कब्जा है और यह अपीलकर्ता के कब्जे में है। यह अपीलकर्ता का मामला है कि बिना किसी अधिकार के, प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 वाद संपत्ति में अपीलकर्ता के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करना चाहते हैं। अपीलकर्ता ने अधिनियम की धारा 229-बी के तहत एक घोषणात्मक मुकदमा दायर किया, लेकिन मुकदमा संपत्ति अधिनियम की धारा 3 (14) की परिभाषा के भीतर भूमि नहीं होने के कारण, मुकदमा खारिज कर दिया गया।

5. अपीलकर्ता ने 1978 की अपील संख्या 303 के तहत विचारण न्यायालय के फैसले पर सवाल उठाया, जिसे डिवीजन के आयुक्त के समक्ष अपील की गई थी। आयुक्त ने दिनांक 27.04.1979 के अपने आदेश द्वारा वाद को विचारण के लिए भेज

अनुवादित

दिया। यह माना गया था कि मुकदमा संपत्ति उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 (संक्षेप में, 'चकबंदी अधिनियम') की धारा 3 (5) के तहत भूमि नहीं थी, और इसलिए, उक्त अधिनियम के प्रावधान धारा 49 सहित आकर्षित नहीं होते हैं। इन परिस्थितियों में, अपीलकर्ता का कहना है कि उसने सिविल कोर्ट के समक्ष निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमा दायर किया है। अपीलकर्ता का यह भी मामला है कि उसने प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 को दिनांक 09.05.1979 को दो नोटिस दिए और ये 15.05.1979 को दिए गए।

6. मुकदमे में प्रतिपक्षी संख्या 3 से 10 के बारे में, जो इस अपील के पक्षकार नहीं हैं, उन कारणों के लिए जो जल्द ही इंगित किए जाएंगे, यह कहा गया था कि उक्त प्रतिवादियों का मुकदमा संपत्ति में कोई अधिकार नहीं है। यह भी कहा गया कि प्रतिपक्षी संख्या 3 से 10 ने अपीलकर्ता के पक्ष में अपने हिस्से की दस्ताबरदारी नाम के एक विलेख का निष्पादन किया गया था, जो अब पूरी मुकदमा संपत्ति के मालिक हैं। यह टिप्पणी की जा सकती है कि प्रतिपक्षी संख्या 3 से 10 के खिलाफ दावा की गई निषेधाज्ञा के माध्यम से कोई राहत नहीं है। अपीलकर्ता द्वारा अंत में यह कहा जाता है कि प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2, अपीलकर्ता के कहने के बावजूद, मुकदमा संपत्ति पर जबरन कब्जा करने और उसके शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने के अपने प्रयास में लगातार बने हुए हैं।

7. प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 ने एक संयुक्त लिखित बयान दायर किया है। यह उनका मामला है कि अपीलकर्ता ने गलत तथ्यों का हवाला देते हुए मुकदमा दायर किया है। इन प्रतिवादियों के अनुसार, मुकदमा संपत्ति पिछले 30 वर्षों से खाली है और बंजर है। न तो अपीलकर्ता और न ही किसी और के पास वहां स्थित पजावा है। मुकदमा संपत्ति अपीलकर्ता के कब्जे में नहीं है। यह प्रतिवादियों का मामला है कि अधिनियम के तहत निहित होने की तारीख पर या उसके बाद मुकदमा संपत्ति में कोई पजावा स्थित नहीं था। मुकदमा संपत्ति खाली और बंजर (बंजर) थी, और इसलिए, कानून के तहत, प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 इसके मालिक हैं। प्रतिवादियों की आपत्ति है कि अपीलकर्ता ने यह दलील नहीं दी है कि उसे मुकदमा संपत्ति का मालिकाना हक कैसे मिला। इसलिए, मुकदमा सुनवाई योग्य नहीं है। अपीलकर्ता के पास मुकदमा संपत्ति का कब्जा नहीं है। इस प्रकार, मुकदमा विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 34, 38 और 41 द्वारा निषिद्ध है। सिविल कोर्ट के पास मुकदमे की सुनवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 ने प्रार्थना की है कि मुकदमा विशेष लागत के साथ खारिज कर दिया जाए।

8. प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 ने एक अतिरिक्त लिखित बयान दायर किया है, जहां वे एक मामले के साथ आए हैं कि न तो अपीलकर्ता और न ही प्रतिपक्षी नंबर 3 से 10 का मुकदमा संपत्ति में कोई अधिकार है और न ही वे अतीत में कभी इसके हक्के-मिल्कियत के धारक रहे हैं। यह माना जाता है कि सूट संपत्ति राजस्व रिकॉर्ड में पजावा और बंजर के रूप में दर्ज है। प्रतिपक्षी नंबर

अनुवादित

1 और 2 मुकदमे की संपत्ति के मालिक हैं। जमींदारी उन्मूलन के समय पजावा नहीं था और निहित होने की तिथि पर उक्त संपत्ति खाली और बंजर (बंजर) थी। इसलिए, प्रतिवादियों ने आग्रह किया है कि मुकदमे को लागत के साथ खारिज कर दिया जाए।

9. प्रतिपक्षी नंबर 3 से 10 की ओर से एक अलग लिखित बयान दिया गया था, जिसमें पेपर नंबर 83-का था। यह उक्त प्रतिवादियों का मामला है कि मुकदमा संपत्ति मूल रूप से नूर मोहम्मद के स्वामित्व में थी, जो अपीलकर्ता और प्रतिपक्षी संख्या 3 से 10 के एक सामान्य पूर्वज थे। इस प्रकार, प्रतिपक्षी संख्या 3 से 10 अपीलकर्ता के साथ मुकदमा संपत्ति के कब्जे में सह-मालिक और सह-भागी हैं। इन प्रतिवादियों ने एक रुख अपनाया है कि उन्होंने अपीलकर्ता के पक्ष में अपने हिस्से का किसी भी प्रकार का विलेख का निष्पादन कभी नहीं किया है। इसलिए, वे कानून के अनुसार मुकदमा संपत्ति में अपने हिस्से के हकदार हैं। वर्ष 1974 में, अपीलकर्ता ने प्रतिपक्षी संख्या 3 से 10 को मुकदमा संपत्ति के संबंध में मुकदमा दायर करने के लिए कहा। इस उद्देश्य के लिए, अपीलकर्ता उक्त प्रतिवादियों के पास आया और कुछ कागजात पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त किए। उन्होंने एक खाली कागज पर उनके हस्ताक्षर भी हासिल किए। यह प्रतिनिधित्व किया गया था कि मुकदमा संपत्ति में पार्टियों के अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए मुकदमा शुरू करने के उद्देश्य से प्रतिपक्षी संख्या 3 से 10 के हस्ताक्षर आवश्यक थे। यह प्रतिपक्षी संख्या 3 से 10 का मामला भी है कि बाद में रिकॉर्ड के निरीक्षण से पता चला कि अपीलकर्ता ने उन्हें धोखा दिया था। उनकी पीठ के पीछे, अपीलकर्ता ने मुकदमा संपत्ति में अपने विशेष अधिकार दर्ज कराए हैं।

10. पक्षकारों की दलीलों पर, विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित मुद्दे तैयार किए (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

"1. क्या अपीलकर्ता विवाद में संपत्ति के कब्जे में मालिक है? यदि हां, तो इसका प्रभाव?

2. क्या यू.पी., जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम के प्रावधान वाद-पत्र में वर्णित विवाद में संपत्ति पर लागू होते हैं? यदि नहीं, तो इसका प्रभाव?

3. क्या मुकदमा सीपीसी की धारा 80 और संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 106 द्वारा प्रतिबंधित है?

4. क्या मुकदमे को कम आंका गया है और अदालत की फीस अपर्याप्त है?

5. क्या न्यायालय के पास वाद की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र है?

6. क्या मुकदमा विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 34, 38 और 41 द्वारा प्रतिबंधित है?

7. अपीलकर्ता किस राहत का हकदार है?

8. क्या प्रतिपक्षी संख्या 3 से 10 के पास मुकदमा संपत्ति का स्वामित्व है? यदि हां, तो इसका प्रभाव?

11. विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता के लिए मुद्दा संख्या 1 और 2 पर पाया। मुद्दा संख्या 3 को प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 की ओर से नहीं दबाया गया था, और

अनुवादित

इसलिए, अपीलकर्ता के पक्ष में फैसला सुनाया गया था। मुद्दा संख्या 4, जो मूल्यांकन और देय उचित अदालत-शुल्क से संबंधित है, को 25.04.1980 के आदेश द्वारा निपटाया गया था, जिसे फैसले का हिस्सा बनाया गया था। उक्त मुद्दे का जवाब देने में विचारण न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता के खिलाफ कुछ भी तय नहीं किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुद्दा संख्या 5 भी पहले ही तय हो चुका है, और जाहिर है, अपीलकर्ता के पक्ष में। जहां तक मुद्दा संख्या 6 का संबंध है, प्रतिवादियों ने इस पर अदालत को संबोधित नहीं किया और इसलिए, उनके खिलाफ फैसला किया गया। जहां तक मुद्दा संख्या 8 का संबंध है, यह प्रतिपक्षी संख्या 3 से 10 के पक्ष में और अपीलकर्ता के खिलाफ यह कहते हुए तय किया गया था कि वे वाद संपत्ति में सह-हिस्सेदार थे और उसमें पजावा का प्रबंधन भी कर रहे थे। मुकदमा संपत्ति को पैतृक और सभी को विरासत में मिला माना गया था।

12. इन निष्कर्षों पर, विचारण न्यायालय ने प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 के खिलाफ मुकदमा दायर किया, जिससे उन्हें अपीलकर्ता और प्रतिपक्षी नंबर 3 से 10 के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोक दिया गया।

13. विचारण न्यायालय की डिक्री को प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 द्वारा सिविल अपील संख्या 81 वर्ष 1981 के तहत अपील की गई थी। अपीलकर्ता ने 1981 के सिविल अपील नंबर 70 के तहत विचारण न्यायालय के डिक्री के खिलाफ भी अपील की, जिसमें अपीलकर्ता और प्रतिपक्षी नंबर 3 से 10 के बीच मुद्दा नंबर 8 पर दर्ज निष्कर्षों को चुनौती दी गई।

14. ऐसा प्रतीत होता है कि दो सिविल अपीलों को 8 वें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, मुजफ्फर नगर को सौंपा गया था। जहां तक सिविल अपील संख्या 70 वर्ष 1981 का संबंध है, अपीलकर्ता और प्रतिपक्षी संख्या 3 से 10 के बीच समझौता हुआ था, जिसमें उक्त प्रतिवादियों ने वाद संपत्ति में अपीलकर्ता के कब्जे को स्वीकार किया था। एक औपचारिक समझौता दायर किया गया और सत्यापित किया गया। हालांकि, सिविल अपील संख्या 81 वर्ष 1981 को गुण-दोष के आधार पर सुना और निर्धारित किया गया था।

15. निचली अपीलीय अदालत ने दोनों अपीलों पर एक आम फैसले से फैसला किया, लेकिन 21.09.1984 के अलग-अलग डिक्री द्वारा, जिसके तहत अपीलकर्ता द्वारा पसंद की गई सिविल अपील संख्या 70 वर्ष 1981 को समझौते के संदर्भ में निपटाया गया, जबकि प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 द्वारा पसंद की गई सिविल अपील संख्या 81 वर्ष 1981 को अनुमति दी गई, विचारण न्यायालय के फैसले को रद्द कर दिया गया और मुकदमा खारिज कर दिया गया।

16. व्यथित, अपीलकर्ता ने वर्तमान दूसरी अपील स्थापित की है।

17. अपील ज्ञापन में उल्लिखित विधि संख्या 2, 5 और 6 के पर्याप्त प्रश्नों के संदर्भ में इस न्यायालय द्वारा 31.10.1984 को अपील को सुनवाई के

अनुवादित

लिए स्वीकार कर लिया गया था। ये प्रश्न तैयार नहीं किए गए थे। हालांकि, सुनवाई शुरू होने से पहले, इस अदालत ने 22.04.2022 के आदेश में उपरोक्त प्रश्नों को दर्ज किया, जिसके बाद अपील स्वीकार की गई थी। यहां यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि दिनांक 22.04.2022 के आदेश में, क्रम संख्या 4 में उल्लिखित प्रश्न उन प्रश्नों में से एक नहीं थे, जिन पर 31.10.1984 के आदेश द्वारा अपील स्वीकार की गई थी। उस सीमा तक, दिनांक 22.04.2022 के आदेश को ठीक करने के लिए लिया जाना चाहिए। इस न्यायालय को यह दर्ज करना चाहिए कि 22.04.2022 को सुनवाई के साथ आगे बढ़ने से पहले, हमने कानून के अन्य तीन महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार किए, जिनकी संख्या 5, 6 और 7 है। यदि इन प्रश्नों के सार को ठीक किया जाता है, तो यह देखते हुए कि दिनांक 22.04.2022 के आदेश में उल्लिखित प्रश्न संख्या 4 को कभी भी कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों में से एक के रूप में नहीं माना गया था, पर्याप्त प्रश्न कानून संख्या 3 के बाद प्रश्नों की क्रम संख्या में एक-एक करके कमी आएगी। हालांकि, संदर्भ में आसानी के लिए, कानून के पर्याप्त प्रश्नों को दिनांक 22.04.2022 के आदेश में सीरियल नंबर के अनुसार निपटाया जाएगा। बेशक, प्रश्न संख्या 4 को इस निर्णय में बिल्कुल भी संदर्भित या निर्धारित नहीं किया जाएगा।

18. यह भी ध्यान रखना अनिवार्य है कि 22.04.2022 और 29.04.2022 को सुनवाई आगे बढ़ने और 05.05.2022 को फिर से शुरू होने के बाद, इस न्यायालय द्वारा यह पाया गया कि कानून का एक और महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार करने की आवश्यकता थी। तदनुसार, इसे दिनांक 05.05.2022 के आदेश में तैयार और दर्ज किया गया था।

19. इस अपील में कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार किए गए थे:

1. क्या विवाद में भूमि को 1359 फ़सली के राजस्व रिकॉर्ड में पजावा के रूप में दर्ज किया जा रहा है और उससे बहुत पहले, अपीलकर्ता के दस्तावेजी साक्ष्य और उत्तरदाताओं द्वारा किए गए स्वीकारोक्ति से साबित तथ्य के अनुसार, विवाद में संपत्ति को 1951 के यूपी अधिनियम 1 की धारा 3 (4) के अर्थ के भीतर "भूमि" कहा जा सकता है?

2. क्या निचली अपीलीय अदालत ने यह टिप्पणी करने में स्पष्ट रूप से त्रुटि की कि अधिनियम की धारा 229-बी के तहत मुकदमे में, टाउन एरिया कमेटी एक पक्ष नहीं थी?

3. जहां तक विवाद में संपत्ति की प्रकृति का प्रश्न है, क्या धारा 229-बी, यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम के तहत वाद संख्या 6 में दिया गया निर्णय, न्यायिक रूप से कार्य करेगा?

5. क्या निचली अपीलीय अदालत ने 1951 के यूपी अधिनियम 1 के प्रवर्तन के बाद भूमि की प्रकृति के बारे में एक अप्रासंगिक मुद्दा दर्ज किया?

6. क्या निचली अपीलीय अदालत ने अपीलकर्ता अपीलकर्ता की गवाही के भौतिक भाग को नजरअंदाज कर दिया है कि पजावा

अनुवादित

एक ईंट भट्टे से अलग था, जो उसे इसे स्थापित करने और चलाने के लिए जिला परिषद से लाइसेंस लेने के लिए कानून द्वारा बाध्य नहीं करता था?

7. क्या प्रतिपक्षी को अपीलकर्ता के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए एक स्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमा पार्टियों के वास्तविक भौतिक कब्जे के बारे में एक मुद्दा तैयार किए बिना तय किया जा सकता है?

8. क्या ऐसे मामले में जहां अपीलकर्ता के मालिकाना हक पर संदेह के बादल मंडरा रहे हैं, घोषणा के लिए मुकदमा दायर करना अनिवार्य है और निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा सुनवाई योग्य नहीं होगा?

20. इस अपील की सुनवाई में, जो कई दिनों तक जारी रही है, पार्टियों ने कानून संख्या 2, 3 और 8 के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपनी प्रस्तुतियां दी हैं, न कि दूसरों पर। तदनुसार, इस अपील पर कानून के उपर्युक्त महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सुनवाई की गई। यह भी दर्ज किया जाना चाहिए कि इस अपील के लंबित होने के कारण, अपीलकर्ता की मृत्यु हो गई और उसके उत्तराधिकारियों और एलआर, जो अपील के लिए अपीलकर्ता संख्या 1/1, 1/2, 1/3 और 1/4 हैं, को दिनांक 06.02.2014 के आदेश के अनुसार प्रतिस्थापित किया गया था। अपीलकर्ता के इन उत्तराधिकारियों और एलआर को भी इस फैसले में 'अपीलकर्ता' के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

21. अपीलकर्ता की ओर से पेश हुए वकील श्री अर्पित अग्रवाल, प्रतिपक्षी नंबर 1 की ओर से पेश हुए श्री वीके नगाइच और प्रतिपक्षी नंबर 2 की ओर से पेश हुए वकील श्री अमित कुमार को सुना।

<u>विचारण न्यायालय के निष्कर्ष</u>

22. विचारण न्यायालय के निष्कर्ष जिन पर घटना हुई, वे मुद्दे संख्या 1 और 2 पर दर्ज किए गए हैं। विचारण न्यायालय ने पीडब्ल्यू -2 और पीडब्ल्यू -3 के सबूतों पर विचार किया और कहा कि इन व्यक्तियों ने अपनी गवाही में आश्वस्त रूप से कहा था कि मुकदमा संपत्ति पर एक पजावा था। यह टिप्पणी की गई है कि पीडब्ल्यू -2 ने इस आशय की गवाही दी है कि उसने अपीलकर्ता के पजावा में बनी ईंटें खरीदी थीं, और आगे, गवाह को पिछले 50 वर्षों से इस पजावा के अस्तित्व के बारे में व्यक्तिगत ज्ञान था जिसे उसने अपीलकर्ता के पूर्वजों द्वारा काम करते हुए देखा था। पीडब्ल्यू -2 की गवाही खसरा नंबर 3299 में कुएं के अस्तित्व के बारे में भी देखी गई थी, जो अपीलकर्ता के पूर्वजों के नाम के साथ मुकदमा संपत्ति का हिस्सा था। पीडब्ल्यू -2 की गवाही को अपीलकर्ता के रुख का समर्थन करने वाले के रूप में भी देखा गया है, जो गवाह को निष्पक्षता के साथ श्रेय देता है, क्योंकि वह एक अलग गांव का था। विचारण न्यायालय ने फ़सली वर्ष 1383-1386 के लिए खतौनी की एक प्रति और फ़सली वर्ष 1357 के लिए खसरा होने के नाते एक अन्य दस्तावेज, एक्स 5 पर भी विचार किया। एक अन्य दस्तावेज एक्स 6 माना जाता था, जो फ़सली वर्ष 1325 के लिए खसरा की एक प्रति थी। अभी भी एक और दस्तावेज जिस पर विचार किया गया था, वह फ़सली वर्ष 1357 के

अनुवादित

लिए खसरा की एक प्रति है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह दस्तावेज़ प्रदर्शित नहीं किया गया है. इन दस्तावेजों के विवरण या चरित्र के बारे में विचारण न्यायालय के फैसले में किसी भी संदर्भ के बिना पेपर नंबर 56-सी से 66-सी का संदर्भ है और वे इस मुद्दे पर कैसे सटीक रूप से सहन करते हैं।

23. दस्तावेजी और मौखिक इन सभी सबूतों से, विचारण न्यायालय ने एक निष्कर्ष निकाला कि मुकदमा संपत्ति का उपयोग लंबे समय से पजावा के रूप में किया गया है। विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया कि प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 द्वारा इनकार करने के बावजूद, अतिरिक्त कलेक्टर ने रिकॉर्ड के सुधार के लिए कार्यवाही में, लेखपाल और पर्यवेक्षक कानूनगो की रिपोर्ट के आधार पर भूखंड की प्रकृति को पजावा के रूप में दर्ज करने का निर्देश दिया था। विचारण न्यायालय ने पाया है कि अतिरिक्त कलेक्टर के आदेशों के तहत की गई राजस्व प्रविष्टि भूमि की प्रकृति के बारे में निर्णायक नहीं हो सकती है, लेकिन यह भारी सबूत था, जिसे अगर प्रतिपक्षी खंडन में सबूत पेश करते हैं तो हटाया जा सकता है।

24. विचारण न्यायालय ने नोट किया कि प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 ने अतिरिक्त कलेक्टर को रिकॉर्ड करने का निर्देश दिया था, जिसे विस्थापित करने के लिए कोई ठोस सबूत पेश नहीं किया गया था। विचारण न्यायालय द्वारा एक टिप्पणी यह भी है कि प्रतिवादियों के गवाह प्रेम चंद के बयानों पर विचार करते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने कभी मुकदमा संपत्ति नहीं देखी थी। गवाह टाउन एरिया कमेटी के सचिव थे, जो वर्ष 1980 से इस पद पर थे। विचारण न्यायालय ने राय दी कि यह उक्त कारण है कि गवाह को मुकदमा संपत्ति के बारे में कम जानकारी थी। प्रतिवादियों की ओर से पेश किए गए दूसरे गवाह राम चंद टाउन एरिया कमेटी के कर्मचारी थे और उन्होंने कहा कि उन्होंने देवी सहाय को सूट प्रॉपर्टी पर पजावा का काम करते हुए देखा था। विचारण न्यायालय ने टिप्पणी की है कि ऐसा कोई मामला नहीं है, जिसके बारे में गवाह ने बात की हो। इन परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता के पक्ष में मुद्दा संख्या 1 का जवाब दिया।

25. मुद्दा संख्या 2 के संबंध में, विचारण न्यायालय ने अधिकांश भाग के लिए जांच की कि क्या एक पजावा 'इमारत' की परिभाषा में आएगा, ताकि अधिनियम के लागू होने पर, इमारत पूर्ववर्ती जमींदार में निहित हो, अर्थात, अपीलकर्ता के पूर्वज। विचारण न्यायालय ने प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 द्वारा भरोसा किए गए कानून को देखा और कहा कि पजावा तब तक एक इमारत नहीं होगी जब तक कि सभी तरफ एक चारदीवारी न हो, जो एक छत से ढकी हो। विचारण न्यायालय ने माना कि 1966 आरडी 310 में रिपोर्ट किए गए प्रतिपक्षी नंबर 1 द्वारा भरोसा किए गए फैसले ने उक्त प्रतिपक्षी के मामले में मदद नहीं की, क्योंकि यह केवल एक इमारत को परिभाषित करता है और कभी भी पजावा

अनुवादित

के मामले से नहीं निपटता है। विचारण न्यायालय की राय में, पजावा की साइट राज्य में निहित नहीं होगी, लेकिन जमींदार के साथ बस जाएगी, अर्थात अपीलकर्ता के पूर्वज।

26. यह मुख्य रूप से इन निष्कर्षों पर है कि विचारण न्यायालय ने मुकदमा सुनाया।

निचली अपीलीय अदालत के निष्कर्ष

27. निचली अपीलीय अदालत ने अपने फैसले को लिखित रूप में भी निर्णय के लिए औपचारिक रूप से बिंदु तय किए बिना मुद्दा संख्या 1 और 2 पर विचार किया है। वस्तुतः, निचली अपीलीय अदालत ने इन मुद्दों को निपटाए जाने वाले बिंदुओं के रूप में माना है। निचली अपीलीय अदालत ने विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को पलटते हुए पार्टियों के मामले पर काफी विचार किया है।

28. निचली अपीलीय अदालत ने विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को देखने के बाद दस्तावेजी सबूतों पर गौर किया है। यह टिप्पणी की गई है कि खसरा नंबर 3300 को पहले 3776 के रूप में नंबर दिया गया था और खसरा नंबर 3299 को पहले 3797 के रूप में जाना जाता था। 1295 फ़सली में, खसरा से पता चलता है कि प्लॉट नंबर 3300 (वर्तमान में क्रमांकित) में पजावा दर्ज है और इसी तरह प्लॉट नंबर 3300 से संबंधित खसरा में 1325 फ़सली में, पजावा को दिखाने वाली प्रविष्टि है। फ़सली वर्ष 1325 में फिर से खसरा की कागज संख्या 30-गा वाली प्रति में वही प्रविष्टि दिखाई गई है। आखिरी दस्तावेज फ़सली वर्ष 1383-1386 के लिए प्लॉट नंबर 3300 का खसरा है, जहां भी पजावा दिखाया गया है। यह टिप्पणी की जाती है कि 1295 फ़सली या 1325 फ़सली में, नक्शा आबकाशी (सिंचाई का रिकॉर्ड) में और खसरा में वर्ष 1386 फ़सली के लिए पेपर नंबर 78-गा, पजावा दर्ज नहीं है। इसके बजाय, निचली अपीलीय अदालत ने टिप्पणी की है कि खसरा नंबर 3299 में, बंजर दर्ज है, जो प्रतिपक्षी नंबर 1 के रुख का समर्थन करता है।

29. निचली अपीलीय अदालत ने तब टिप्पणी की है कि खसरा संख्या 3300 में, विचारण न्यायालय ने केवल दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर पजावा के अस्तित्व को स्वीकार किया है, और इसलिए, बिंदु पर मौखिक साक्ष्य पर भी विचार करने की आवश्यकता है। पजावा क्या है, इस पर निचली अपीलीय अदालत ने भी टिप्पणी की है कि यह एक ऐसी जगह है, जहां ईंटों को ढाला जाता है। निचली अपीलीय अदालत द्वारा यह माना गया है कि यह कहना गलत है कि अपीलकर्ता ईंट-भट्ठे का काम कर रहा था।

30. निचली अपीलीय अदालत ने गवाह-बॉक्स में अपीलकर्ता की गवाही पर विचार किया है, जहां उसने पीडब्ल्यू -1 के रूप में गवाही दी थी। यह ध्यान दिया जाता है कि इस गवाह ने कहा है कि पिछले 30 वर्षों से सूट संपत्ति में एक ईंट-भट्ठा था। यह भी टिप्पणी की गई है कि पीडब्ल्यू -1 ने यह भी गवाही दी है कि पजावा या ईंट-भट्ठा चलाने वालों को जिला परिषद से लाइसेंस लेना पड़ता था, जो शुल्क जमा करने पर जारी किया जाने वाला एक

अभिवादिन

वार्षिक लाइसेंस है। हालांकि, अपीलकर्ता ने पजावा से संबंधित किसी भी लाइसेंस को रिकॉर्ड पर नहीं लाया है। अपीलकर्ता की गवाही का भी संदर्भ है, जहां उन्होंने कहा कि लगभग 6-7 साल पहले, जिला परिषद को शुल्क में 10 रुपये के भुगतान पर एक लाइसेंस लिया गया था, लेकिन कोई रसीद या लाइसेंस की प्रति जारी नहीं की गई थी। गवाह ने स्वीकार किया कि लाइसेंस की एक प्रति साक्ष्य के तौर पर पेश नहीं की गई।

31. निचली अपीलीय अदालत ने कहा है कि उपरोक्त साक्ष्य से पता चलता है कि पजावा या किसी भी प्रकार के ईंट निर्माण कार्य की स्थापना और संचालन के लिए, जिला परिषद द्वारा एक लाइसेंस लेना होगा, लेकिन अपीलकर्ता द्वारा ऐसा कोई लाइसेंस प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह भी टिप्पणी की जाती है कि अपीलकर्ता के साक्ष्य, जहां वह कहता है कि उसने अपेक्षित लाइसेंस शुल्क का भुगतान किया, रसीद के अभाव में विश्वास नहीं किया जा सकता है। निचली अपीलीय अदालत ने रसीद पेश नहीं करने के बारे में अपीलकर्ता के स्पष्टीकरण को खारिज करते हुए कहा कि अपीलकर्ता ने इस मुद्दे पर जो कहा वह अविश्वसनीय है। रसीद पेश न करने के लिए अपीलकर्ता का स्पष्टीकरण यह था कि जिला परिषद द्वारा कोई रसीद जारी नहीं की गई थी। इस स्पष्टीकरण को निचली अपीलीय अदालत ने स्वीकार नहीं किया था।

32. निचली अपीलीय अदालत ने इस तथ्य पर भी नाराजगी जताई है कि अपीलकर्ता ने पजावा चलाने के लिए वार्षिक लाइसेंस की एक प्रति पेश नहीं की, एक तथ्य जिसके बारे में यह टिप्पणी की जाती है कि लाइसेंस, यदि पेश किया जाता है, तो मुकदमा संपत्ति को पजावा के रूप में इस्तेमाल किए जाने के बारे में अपीलकर्ता के मामले को स्थापित करेगा। निचली अपीलीय अदालत ने आगे तर्क दिया है कि यदि तर्क के लिए यह स्वीकार किया जाता है कि अपीलकर्ता ईंट-भट्ठा चला रहा था, तो बिक्री कर विभाग के साथ इसका पंजीकरण अनिवार्य है; और इस उद्देश्य के लिए, एक निश्चित प्रक्रिया है। अपीलकर्ता ने बिक्री कर विभाग या अन्य दस्तावेज के साथ कोई पंजीकरण नहीं किया है जो मुकदमा संपत्ति में पजावा के अस्तित्व को प्रमाणित कर सकता है।

33. अन्य गवाहों के मौखिक साक्ष्य पर भी निचली अपीलीय अदालत द्वारा टिप्पणी की गई है कि उन्होंने अलग-अलग समय दिया है, जिसके दौरान पजावा कार्यात्मक था। उनकी गवाही विरोधाभासी और असंगत पाई गई है; और उक्त कारण से विश्वसनीयता के लायक नहीं है। निचली अपीलीय अदालत ने कहा है कि गवाही पजावा की स्थापना या अस्तित्व को नहीं दर्शाती है और यदि ऐसा है, तो मुकदमा संपत्ति खाली भूमि होगी। फ़सली वर्ष 1383-1386 के खसरा में पेपर नंबर 28-गा, खसरा नंबर 3299 को बंजर के रूप में दर्ज किया गया है, जो निचली अपीलीय अदालत की राय में प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 के मामले का समर्थन करता है।

अनुवादित

34. मौखिक और दस्तावेजी सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच पर, निचली अपीलीय अदालत ने मुद्दा संख्या 1 पर विचारण न्यायालय के निष्कर्षों से असहमति व्यक्त की है और माना है कि अपीलकर्ता वाद संपत्ति का मालिक नहीं है और वहां कोई पजावा अस्तित्व में नहीं है।

35. जहां तक मुद्दा संख्या 2 के निष्कर्षों का संबंध है, निचली अपीलीय अदालत ने माना है कि भूमि, जिसका उपयोग कृषि, बागवानी, पशुपालन या पोल्ट्री फार्म के लिए किया जाता है, अधिनियम के तहत भूमि की परिभाषा के अंतर्गत आती है। यह टिप्पणी की जाती है कि रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है जो यह सुझाव दे सकता है कि सूट संपत्ति का उपयोग कृषि उद्देश्यों के लिए किया गया था। निचली अपीलीय अदालत के अनुसार, तार्किक निष्कर्ष यह है कि यह बंजर है और अधिनियम के तहत राज्य में निहित होगा। निचली अपीलीय अदालत की राय में, मुकदमा संपत्ति का उपयोग कृषि उद्देश्यों के लिए नहीं किया गया है और न ही उस पर कोई घर या इमारत खड़ी थी। इसलिए, अपीलकर्ता न तो मुकदमा संपत्ति का मालिक है और न ही भूमिधार। निचली अपीलीय अदालत की राय में, वाद संपत्ति अधिनियम के तहत राज्य में निहित होगी। इसलिए, मुद्दा संख्या 2 पर विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को रद्द कर दिया गया और उक्त मुद्दे का जवाब प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 के पक्ष में दिया गया।

36. निचली अपीलीय अदालत ने इन निष्कर्षों के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को उलट दिया।

<u>कानून के पर्याप्त प्रश्न जिन पर विचार करने और उनके आदेश की आवश्यकता होती है</u>

37. वकील द्वारा पक्षकारों की ओर से प्रस्तुतियों पर विचार करने से पहले, यह न्यायालय यह कहना उचित समझता है कि यद्यपि पक्षकारों के वकीलों ने कानून के सात महत्वपूर्ण प्रश्नों में से तीन पर न्यायालय को संबोधित किया है, प्रश्न संख्या 2, 3 और 8 पर, इस न्यायालय की राय है कि कानून संख्या 8 के पर्याप्त प्रश्न का पहले, और फिर अन्य दो के उत्तर देना सुविधाजनक और तार्किक होगा।

<u>कानून संख्या 8 का महत्वपूर्ण प्रश्न</u>

38. अपीलकर्ता के वकील ने प्रस्तुत किया है कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां मुकदमा सुनवाई योग्य नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि घोषणा की राहत की मांग नहीं की गई है और इसके बजाय अकेले एक निषेधाज्ञा का दावा किया गया है। अपीलकर्ता के वकील द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि यह एक याचिका है, जिसे प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 की ओर से नीचे की अदालतों के समक्ष नहीं लिया गया था और पहली बार यहां उठाया गया था, और वह भी अपील की सुनवाई में। यह तर्क दिया जाता है कि झारखंड राज्य आवास बोर्ड बनाम दीदार सिंह और अन्य, (2019) 17 एससीसी 692 में प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 की ओर से सुप्रीम कोर्ट के फैसले को यहां मामले के तथ्यों पर लागू नहीं

अनुवादित

किया जाएगा। आगे यह तर्क दिया जाता है कि एलआरएस और अन्य द्वारा अनाथुला सुधाकर बनाम पी बुची रेड्डी (मृत) (मृत) में निर्धारित सिद्धांत, (2008) 4 एससीसी 594, प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 की ओर से भी भरोसा किया गया है, घोषणा की मांग करने की अनिवार्यता के बारे में नियम में अपवाद प्रदान करता है, जैसा कि यहां ठीक मामला है। अपीलकर्ता के वकील ने अदालत का ध्यान अनाथुला सुधाकर (उपरोक्त) में रिपोर्ट के पैराग्राफ नंबर 15 की ओर आकर्षित किया है, जिसमें लिखा है:

"15. प्रतिपक्षी को अपीलकर्ता के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमे में, अपीलकर्ता को यह स्थापित करना होगा कि मुकदमे की तारीख को वह मुकदमा संपत्ति के कानूनी कब्जे में था और प्रतिपक्षी ने इस तरह के वैध कब्जे में हस्तक्षेप करने या परेशान करने की कोशिश की। जहां संपत्ति एक इमारत है जिसमें सहायक भूमि है, वहां कब्जा स्थापित करने में बहुत कठिनाई नहीं हो सकती है। अपीलकर्ता अपने परिवार के सदस्यों या एजेंटों या पट्टेदारों / लाइसेंसधारियों के माध्यम से स्वयं या उसके द्वारा भौतिक या वैध कब्जे को साबित कर सकता है। यहां तक कि संरचनाओं के बिना भूमि के संबंध में, उदाहरण के लिए एक कृषि भूमि, वास्तविक उपयोग और खेती के संदर्भ में कब्जा स्थापित किया जा सकता है। इस तरह के मुकदमे में मालिकाना हक का सवाल ही नहीं है, हालांकि यह संयोग से या संपार्श्विक रूप से उठ सकता है।

39. अपीलकर्ता की ओर से यह प्रस्तुत किया जाता है कि दीदार सिंह (उपरोक्त) मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने घोषणा की मांग करने की अनिवार्यता के बारे में नियम का अपवाद बनाया, जिसमें कहा गया है:

"11. इस न्यायालय के निर्णयों के वर्गीकरण द्वारा यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि प्रत्येक मामले में जहां प्रतिपक्षी अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत पर विवाद करता है, यह आवश्यक नहीं है कि उन सभी मामलों में अपीलकर्ता को घोषणा की राहत लेनी पड़े। केवल निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमा केवल तभी नहीं होता है जब प्रतिपक्षी हक्के-मिल्कियत के संबंध में एक वास्तविक विवाद उठाता है और जब वह अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत पर संदेह उठाता है, तो आवश्यक रूप से उन परिस्थितियों में, अपीलकर्ता बिना किसी निषेधाज्ञा के मुकदमा नहीं रख सकता है।

40. अपीलकर्ता के वकील द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि उनके दायर मामले और सबूतों पर, प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 अपीलकर्ता के अन्यथा निर्विवाद हक्के-मिल्कियत पर संदेह नहीं पैदा कर सके और अपीलकर्ता ने दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य द्वारा हक्के-मिल्कियत के साथ अपने कब्जे को भी साबित कर दिया है, जिस पर विचारण न्यायालय द्वारा विधिवत विचार किया गया था। हालांकि, निचली अपीलीय अदालत ने एक विकृत तर्क पर विचारण न्यायालय के फैसले को पलट दिया। इसके अलावा, अपीलकर्ता की ओर से कयालुल्ला परमबाथ मोइदु हाजी बनाम नंबूदियिल विनोदन, 2021 (6)

अनुवादित

एडब्ल्यूसी 5651 (एससी) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया गया है, जहां यह देखा गया है:

"11. मुद्दा अब कोई अखंडता नहीं है। इस न्यायालय द्वारा अनाथुला सुधाकर (उपरोक्त) के मामले में पैरा 21 में स्थिति स्पष्ट की गई है, जो इस प्रकार है:-

"21. संक्षेप में, अचल संपत्ति से संबंधित निषेधात्मक निषेधाज्ञा के लिए मुकदमों के संबंध में स्थिति निम्नानुसार है:

(a) x x x

(ख) चूंकि निषेधाज्ञा के लिए वाद केवल कब्जे से संबंधित है, अत सामान्यत स्वामित्व का मुद्दा प्रत्यक्ष और पर्याप्त रूप से जारी नहीं किया जाएगा। निषेधाज्ञा के लिए प्रार्थना का निर्णय कब्जे पर निष्कर्ष के संदर्भ में किया जाएगा। लेकिन ऐसे मामलों में जहां संपत्ति के स्वामित्व के आधार पर न्यायिक कब्जे को स्थापित किया जाना है, जैसा कि खाली स्थानों के मामले में होता है, हक्के-मिल्कियत का मुद्दा सीधे और काफी हद तक विचार के लिए उठ सकता है, क्योंकि उस पर निष्कर्ष के बिना, कब्जे के मुद्दे पर निर्णय लेना संभव नहीं होगा।

(ग) लेकिन हक्के-मिल्कियत संबंधी निष्कर्ष को निषेधाज्ञा के मुकदमे में तब तक दर्ज नहीं किया जा सकता जब तक कि हक्के-मिल्कियत के संबंध में आवश्यक दलीलें और उचित मुद्दे न हों (या तो विशिष्ट या निहित जैसा कि अन्नामुथु थेवर बनाम अलागम्मल, (2005) 6 एससीसी 202) में देखा गया है)। जहां किसी वाद पत्र में हक्के-मिल्कियत के संबंध में कथन अनुपस्थित हैं और जहां हक्के-मिल्कियत से संबंधित कोई मुद्दा नहीं है, तो अदालत निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमे में हक्के-मिल्कियत के प्रश्न पर जांच या निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं करेगी। यहां तक कि जहां आवश्यक दलीलें और मुद्दे हैं, यदि मामले में हक्के-मिल्कियत से संबंधित तथ्य और कानून के जटिल प्रश्न शामिल हैं, तो अदालत केवल निषेधाज्ञा के लिए मुकदमे में मुद्दे पर फैसला करने के बजाय, हक्के-मिल्कियत की घोषणा के लिए व्यापक मुकदमे के माध्यम से पार्टियों को उपाय के लिए भेज देगी।

(घ) जहां हक्के-मिल्कियत के संबंध में आवश्यक दलीलें हैं, और हक्के-मिल्कियत से संबंधित उपयुक्त मुद्दा है, जिस पर पक्षकार साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं, यदि शामिल मामला सरल और सीधा है, तो न्यायालय हक्के-मिल्कियत के संबंध में मुद्दे पर निर्णय ले सकता है, यहां तक कि निषेधाज्ञा के लिए मुकदमे में भी। लेकिन ऐसे मामले, सामान्य नियम के अपवाद हैं कि हक्के-मिल्कियत के प्रश्न को निषेधाज्ञा के लिए मुकदमों में तय नहीं किया जाएगा। लेकिन जिन लोगों के पास स्पष्ट मालिकाना हक और अधिकार है, वे निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा दायर करते हैं, उन्हें केवल इसलिए मुकदमे के महंगे और अधिक बोझिल उपाय के लिए प्रेरित नहीं किया जाना चाहिए, केवल इसलिए कि कुछ बदमाश जानबूझकर या गलत तरीके से दावा करते हैं या उसकी संपत्ति पर अतिक्रमण करने की कोशिश करते हैं। अदालत को उन मामलों की

पहचान करने के लिए अपने विवेक का सावधानीपूर्वक उपयोग करना चाहिए जहां वह हक्के-मिल्कियत की जांच करेगी और ऐसे मामले जहां वह अपीलकर्ता को मामले के तथ्यों के आधार पर अधिक व्यापक घोषणा त्मक मुकदमे के लिए संदर्भित करेगी।

12. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि इस न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जहां अपीलकर्ता का हक्के-मिल्कियत विवाद में नहीं है या संदेह के घेरे में नहीं है, वहां कब्जे पर निष्कर्ष के संदर्भ में निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमा तय किया जा सकता है। यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि यदि मामले में हक्के-मिल्कियत से संबंधित तथ्य और कानून के जटिल प्रश्न शामिल हैं, तो अदालत केवल निषेधाज्ञा के लिए मुकदमे में मुद्दे पर फैसला करने के बजाय, हक्के-मिल्कियत की घोषणा के लिए व्यापक मुकदमे के माध्यम से पार्टियों को उपाय के लिए भेज देगी।

13. इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस न्यायालय ने माना है कि जहां मालिकाना हक से संबंधित उचित मुद्दे के बारे में आवश्यक दलीलें हैं, जिस पर पक्ष साक्ष्य का नेतृत्व करते हैं, यदि इसमें शामिल मामला सरल और सीधा है, तो अदालत मालिकाना हक के मुद्दे पर फैसला कर सकती है, यहां तक कि निषेधाज्ञा के लिए मुकदमे में भी। हालांकि, यह माना गया है कि ऐसे मामले सामान्य नियम के अपवाद हैं कि हक्के-मिल्कियत के सवाल पर निषेधाज्ञा के लिए मुकदमों में फैसला नहीं किया जाएगा।

41. उपरोक्त सिद्धांतों के आधार पर, अपीलकर्ता के वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि यहां मुकदमा संपत्ति एक 'पजावा' और 'कुआं' है, जो एक निर्मित इमारत है, और, इस तरह, 'वास्तविक कब्जे' को देखने की आवश्यकता थी। लेकिन, निचली अपीलीय अदालत ने कब्जे के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं दिया था। यह प्रस्तुत किया जाता है कि कयालुल्ला परमबाथ मोइदु हाजी के साथ-साथ दीदार सिंह और अनाथुल सुधाकर में सिद्धांत लागू होगा, अगर यह एक ऐसा मामला है जहां प्रतिवादियों ने अपना हक्के-मिल्कियत साबित कर दिया था या अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत पर काफी हद तक संदेह के बादल डाल दिए थे। अन्यथा, घोषणा की मांग करने की कोई आवश्यकता नहीं है और मामला अपवाद में आएगा जहां केवल निषेधाज्ञा की राहत पर्याप्त होगी।

42. आगे यह तर्क दिया जाता है कि भले ही हक्के-मिल्कियत का प्रश्न शामिल हो, कयालुल्ला परमबाथ मोइदु हाजी में रिपोर्ट के पैराग्राफ नंबर 13 में सिद्धांत स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि जहां हक्के-मिल्कियत से संबंधित कोई मुद्दा उठाया गया है और पार्टियों ने सबूत का नेतृत्व किया है, तो अदालत निषेधाज्ञा के लिए मुकदमे में भी हक्के-मिल्कियत के बारे में मुद्दे पर फैसला कर सकती है। अपीलकर्ता के वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि यदि कुछ और नहीं, तो कयालुल्ला परमबाथ मोइदु हाजी में रिपोर्ट के पैराग्राफ नंबर 13 में सिद्धांत लागू होगा। आगे यह तर्क दिया जाता है कि इस मामले में, अदालत को वाद संपत्ति के

अनुवादित

अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत के सवाल पर जाने में सक्षम बनाने के लिए पर्याप्त दलीलें और सबूत हैं, और नीचे दिए गए न्यायालयों ने हक्के-मिल्कियत के बारे में निष्कर्ष दर्ज किया है। मामला सरल और सीधा है, जिसे इस मुकदमे में घोषणात्मक राहत की आवश्यकता के बिना तय किया जा सकता है। यह विशेष रूप से तर्क दिया जाता है कि इस मामले में दस्तावेजी साक्ष्य को जिला न्यायालय के रिकॉर्ड रूम में अवैध रूप से हटा दिया गया था, भले ही वर्तमान दूसरी अपील सुनवाई के लिए लंबित थी। अपीलकर्ता की ओर से दायर राजस्व रिकॉर्ड के अर्क को भी हटा दिया गया है और आज की तारीख में कोई राजस्व रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है। यह आग्रह किया जाता है कि इस दूरी पर, रिमांड से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा। यह भी तर्क दिया जाता है कि अपीलकर्ता को कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया अर्थात, यूपी राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत परिकल्पित प्रक्रिया या अधिनियम की धारा 122-बी में इसके संबंधित प्रावधान का पालन किए बिना प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 द्वारा बेदखल कर दिया गया है! अपीलकर्ता का अनधिकृत निष्कासन भी स्पष्ट रूप से अवैध और अन्यायपूर्ण है। निचली अपीलीय अदालत कानून को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त अधिनियम के प्रभाव पर विचार करने में विफल रही।

43. प्रतिपक्षी नंबर 1 के वकील श्री वीके नगाइच और प्रतिपक्षी नंबर 2 की ओर से पेश हुए विद्वान वकील श्री अमित कुमार ने एक स्वर में प्रस्तुत किया है कि मुकदमा एक ऐसा है जिसमें अनिवार्य रूप से अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत का निर्णय शामिल है, जो उक्त प्रतिवादियों की ओर से गंभीर रूप से विवादित है। इस प्रकार, घोषणात्मक राहत का दावा किए बिना केवल निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमा सुनवाई योग्य नहीं है। जैसा कि अपीलकर्ता की दलीलों को रिकॉर्ड करते समय पहले ही देखा जा चुका है, प्रतिवादियों के वकील का कहना है कि अनाथुला सुधाकर और दीदार सिंह में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के मद्देनजर मुकदमा सुनवाई योग्य नहीं है। यदि अपीलकर्ता को राहत का दावा करना था, तो उसे अपने अधिकारों के बारे में घोषणा करनी थी। अपीलकर्ता, केवल निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा दायर करके, राहत प्राप्त नहीं कर सकता है, जहां मुकदमा संपत्ति के अपीलकर्ता के दावे के हक्के-मिल्कियत को प्रभावित करने वाला एक गंभीर विवाद या संदेह का बादल है।

44. मुद्दे संख्या 1 और 2 पर नीचे दिए गए दो न्यायालयों द्वारा अलग-अलग दर्ज किए गए निष्कर्षों के अवलोकन से पता चलता है कि पार्टियों के बीच उत्पन्न होने वाली मुकदमा संपत्ति के हक्के-मिल्कियत के बारे में एक मोटा विवाद है, जिसमें दोनों पक्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा अपने मामले को साबित करने का प्रयास कर रहे हैं। अपीलकर्ता द्वारा जिन दस्तावेजी सबूतों पर भरोसा किया गया है, वे काफी हद तक राजस्व प्रविष्टियां हैं, और वह भी खसरा में अलग-अलग समय के लिए। इनमें कैलेंडर वर्ष 1887, 1917 और 1978 शामिल हैं। ये क्रमशः फ़सली वर्ष 1295, 1325 और 1386 के अनुरूप होंगे। निचली अपीलीय अदालत ने देखा है कि

अनुवादित

खसरा नंबर 3300 से संबंधित उपरोक्त वर्षों के लिए खसरा में पजावा के बारे में प्रविष्टि है, लेकिन अन्य खसरा के संबंध में नहीं, जो मुकदमा संपत्ति का हिस्सा है।

45. खसरा संख्या 3299 के संबंध में, निचली अपीलीय अदालत ने एक निष्कर्ष दर्ज किया है कि सापेक्ष वर्षों के लिए खसरा के अवलोकन से पता चलता है कि यह बंजर के रूप में दर्ज है। निचली अपीलीय अदालत इतने पर ही नहीं रुकी है और पार्टियों के मौखिक साक्ष्य पर गौर किया है, जहां ज्यादातर अपीलकर्ता के साक्ष्य को माना गया है कि मुकदमा संपत्ति में उस तरह का ईंट-भट्ठा जैसा कुछ भी नहीं है। अन्य सभी प्रकार के साक्ष्य, जो संभवतः वहां होंगे, यदि ईंट-भट्ठा चल रहा था, पर विचार किया गया है। विचारण न्यायालय ने मुद्दा संख्या 1 पर अपने निष्कर्ष को वापस करते समय मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य के इन पहलुओं पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया है।

46. जहां तक इस न्यायालय का संबंध है, हम पक्षकारों के मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य को प्रथम अपील न्यायालय के रूप में वस्तुतः पुन: प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं। इन निष्कर्षों और पार्टियों के मामले को यह पता लगाने के लिए संपूर्ण विस्तार से संदर्भित किया गया है कि क्या अपीलकर्ता के मुकदमे की संपत्ति के हक्के-मिल्कियत पर कोई बादल मंडरा रहा है, जिसके बारे में उन्होंने निषेधाज्ञा का दावा किया है। पक्षकारों की दलीलों और जिस तरह से मुकदमा आगे बढ़ा है, उससे इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि प्रतिपक्षी नंबर 1 और 2 ने अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत को चुनौती दी है, जिसमें दावा किया गया है कि मुकदमा संपत्ति बंजर राज्य में निहित है। अपीलकर्ता के पास ऐसा कोई मामला नहीं है, जिसमें वह बड़े करीने से दर्ज कार्यकाल-धारक या मुकदमा संपत्ति का मालिक है, जो निषेधाज्ञा की मांग करता है। उनका हक्के-मिल्कियत विवादों में घिरा हुआ है। इसके लिए स्थापना की आवश्यकता है।

47. अपीलकर्ता के वकील की यह दलील कि यदि घोषणा की राहत की मांग के बारे में यह आपत्ति प्रतिवादियों द्वारा उठाई जानी थी, तो इसे जल्द से जल्द और नीचे की अदालतों के समक्ष किया जाना चाहिए था। इसका कारण यह है कि दीदार सिंह और अनाथुला सुधाकर के सिद्धांत, जिनके लिए जल्द ही कुछ और संदर्भ दिया जाएगा, एक अपीलकर्ता के लिए उचित रूप से राहत मांगना अनिवार्य बनाते हैं। अपीलकर्ता को पता होगा कि उसके हक्के-मिल्कियत पर किस तरह का संदेह या बादल मौजूद है और उसे उचित रूप से अपनी राहत तैयार करनी चाहिए। अपीलकर्ता जल्द से जल्द इस संबंध में प्रतिपक्षी द्वारा आपत्ति की कमी के आधार पर नियम के अपवाद की दलील देते हुए अपने लिए एक जगह नहीं बना सकता है। अपीलकर्ता के पास निश्चित रूप से वह अवसर है जब प्रतिपक्षी अपना लिखित बयान दर्ज करते हैं। यदि उस स्तर पर, अपीलकर्ता पाता है कि प्रतिवादियों ने हक्के-मिल्कियत के बारे में एक गंभीर विवाद उठाया है, तो अपीलकर्ता को तुरंत अपनी राहत और अन्य दलीलों को उचित

अनुवादित

रूप से संशोधित करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए, और एक घोषणा की मांग करनी चाहिए। अपीलकर्ता घोषणा के लिए राहत की अनुपस्थिति से उत्पन्न दोष को दूर नहीं कर सकता है, जहां यह आग्रह करना अनिवार्य है कि प्रतिवादियों ने इस संबंध में आपत्ति नहीं उठाई। अनाथुला सुधाकर में दावा की जाने वाली राहत के बारे में सिद्धांत को पूरी तरह से इस प्रकार कहा गया है:

"13. स्थायी निषेधाज्ञा के लिए केवल मुकदमा कब निहित होगा, और परिणामी राहत के रूप में निषेधाज्ञा के साथ घोषणा और / या कब्जे के लिए मुकदमा दायर करना कब आवश्यक है, इस बारे में सामान्य सिद्धांत अच्छी तरह से तय किए गए हैं। हम उन्हें संक्षेप में संदर्भित कर सकते हैं।

13.1. जहां अपीलकर्ता किसी संपत्ति के वैध या शांतिपूर्ण कब्जे में है और इस तरह के कब्जे में प्रतिपक्षी द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है या धमकी दी जाती है, तो निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमा निहित होगा। एक व्यक्ति को किसी भी व्यक्ति के खिलाफ अपने कब्जे की रक्षा करने का अधिकार है जो निषेधात्मक निषेधाज्ञा की मांग करके बेहतर हक्के-मिल्कियत साबित नहीं करता है। लेकिन गलत कब्जे में एक व्यक्ति सही मालिक के खिलाफ निषेधाज्ञा का हकदार नहीं है।

13.2. जहां अपीलकर्ता का हक्के-मिल्कियत विवादित नहीं है, लेकिन वह कब्जे में नहीं है, उसका उपाय कब्जे के लिए मुकदमा दायर करना और यदि आवश्यक हो, तो निषेधाज्ञा की मांग करना है। कब्जे से बाहर एक व्यक्ति, कब्जे की राहत का दावा किए बिना, निषेधाज्ञा की राहत की मांग नहीं कर सकता है।

13.3. जहां अपीलकर्ता कब्जे में है, लेकिन संपत्ति के लिए उसका हक्के-मिल्कियत विवाद में है, या शक के घेरे में है, या जहां प्रतिपक्षी उस पर स्वामित्व का दावा करता है और प्रतिपक्षी से कब्जे का खतरा भी है, अपीलकर्ता को हक्के-मिल्कियत की घोषणा और निषेधाज्ञा की परिणामी राहत के लिए मुकदमा करना होगा। जहां अपीलकर्ता का हक्के-मिल्कियत शक के घेरे में या विवाद में है और वह कब्जे में नहीं है या कब्जा स्थापित करने में सक्षम नहीं है, आवश्यक रूप से अपीलकर्ता को घोषणा, कब्जे और निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा दायर करना होगा।

14. हालांकि, हम स्पष्ट कर सकते हैं कि घोषणा के लिए प्रार्थना केवल तभी आवश्यक होगी जब प्रतिपक्षी द्वारा हक्के-मिल्कियत से इनकार करना या अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत को चुनौती देने से अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत पर संदेह पैदा होता है। कहा जाता है कि किसी व्यक्ति के हक्के-मिल्कियत पर शक का घेरा तब उठता है, जब किसी संपत्ति के उसके हक्के-मिल्कियत में कुछ स्पष्ट दोष होता है, या जब उस पर किसी तीसरे पक्ष का प्रथम दृष्टया अधिकार बनता है या दिखाया जाता है। घोषणा के लिए एक कार्रवाई, संपत्ति के हक्के-मिल्कियत पर बादल को हटाने का उपाय है। दूसरी ओर, जहां अपीलकर्ता के पास दस्तावेजों द्वारा

अनुवादित

समर्थित स्पष्ट हक्के-मिल्कियत है, यदि हक्के-मिल्कियत के किसी भी दावे के बिना एक अतिचारी या बिना किसी स्पष्ट हक्के-मिल्कियत के एक हस्तक्षेपकर्ता, केवल अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत से इनकार करता है, तो यह अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत पर संदेह पैदा करने के बराबर नहीं है और अपीलकर्ता के लिए घोषणा के लिए मुकदमा करना आवश्यक नहीं होगा और निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा पर्याप्त हो सकता है। जहां अपीलकर्ता, यह मानते हुए कि प्रतिपक्षी केवल एक अतिचारी या हक्के-मिल्कियत के बिना एक गलत दावेदार है, निषेधाज्ञा के लिए केवल एक मुकदमा दायर करता है, और इस तरह के मुकदमे में, प्रतिपक्षी अपने बचाव में उसके द्वारा दावा किए गए अधिकार या हक्के-मिल्कियत के विवरण का खुलासा करता है, जो अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत पर गंभीर विवाद या शक का घेरा पैदा करता है! तो वाद में संशोधन करना और वाद को घोषणा में परिवर्तित करना अपीलकर्ता की आवश्यकता है वैकल्पिक रूप से, वह अदालत की अनुमति के साथ घोषणा और निषेधाज्ञा के लिए एक व्यापक मुकदमा दायर करने की अनुमति के साथ मुकदमा वापस ले सकता है। वह निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा खारिज होने के बाद भी परिणामी राहत के साथ घोषणा के लिए मुकदमा दायर कर सकता है, जहां वाद ने केवल कब्जे का मुद्दा उठाया है, न कि हक्के-मिल्कियत का कोई मुद्दा।

15. अपीलकर्ता के कब्जे में हस्तक्षेप करने से प्रतिपक्षी को रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमे में, अपीलकर्ता को यह स्थापित करना होगा कि मुकदमे की तारीख को वह मुकदमा संपत्ति के कानूनी कब्जे में था और प्रतिपक्षी ने इस तरह के वैध कब्जे में हस्तक्षेप करने या परेशान करने की कोशिश की। जहां संपत्ति एक इमारत या इमारत जिसमें मिली हुई सहायक भूमि है, वहां कब्जा स्थापित करने में बहुत कठिनाई नहीं हो सकती है। अपीलकर्ता अपने परिवार के सदस्यों या एजेंटों या पट्टेदारों / लाइसेंसधारियों के माध्यम से स्वयं या उसके द्वारा भौतिक या वैध कब्जे को साबित कर सकता है। यहां तक कि संरचनाओं के बिना भूमि के संबंध में, उदाहरण के लिए एक कृषि भूमि, वास्तविक उपयोग और खेती के संदर्भ में कब्जा स्थापित किया जा सकता है। इस तरह के मुकदमे में हक्के-मिल्कियत का सवाल मुद्दा नहीं है, हालांकि यह संयोग से या संपार्श्विक रूप से उत्पन्न हो सकता है।

16. लेकिन क्या होगा यदि संपत्ति एक खाली स्थान है, जिसका भौतिक रूप से कब्जा, उपयोग या आनंद नहीं लिया जाता है? ऐसे मामलों में सिद्धांत यह है कि कब्जा हक्के-मिल्कियत का अनुसरण करता है। यदि दो व्यक्ति किसी रिक्त स्थान पर अधिकार होने का दावा करते हैं, तो जो उस पर हक्के-मिल्कियत स्थापित करने में सक्षम है, उसे उस व्यक्ति के विपरीत कब्जे में माना जाएगा जो हक्के-मिल्कियत स्थापित करने में सक्षम नहीं है। इसका मतलब यह है कि भले ही एक खाली स्थान से संबंधित मुकदमा केवल निषेधाज्ञा के

अनुवादित

लिए है और मुद्दा कब्जे का है, फिर भी मालिकाना हक का फैसला करने के लिए प्रस्तावना के रूप में हक्के-मिल्कियत की जांच और निर्धारण करना आवश्यक होगा। ऐसी स्थिति में, जहां हक्के-मिल्कियत स्पष्ट और सरल है, अदालत हक्के-मिल्कियत के मुद्दे पर निर्णय ले सकती है, ताकि न्यायिक कब्जे के सवाल पर फैसला किया जा सके, भले ही मुकदमा केवल निषेधाज्ञा के लिए हो। लेकिन जहां हक्के-मिल्कियत के मुद्दे में तथ्य और कानून के कठिन या जटिल प्रश्न शामिल हैं, या जहां अदालत को लगता है कि पार्टियों ने इस आधार पर आगे नहीं बढ़ाया था कि हक्के-मिल्कियत मुद्दा था, अदालत को निषेधाज्ञा के लिए मुकदमे में हक्के-मिल्कियत के मुद्दे पर फैसला नहीं करना चाहिए। उचित तरीका यह है कि अपीलकर्ता को घोषणा और परिणामी राहतों के लिए एक पूर्ण मुकदमे के उपाय के लिए भेज दिया जाए।

48. दीदार सिंह मामले में, उन मामलों के बारे में, जहां केवल निषेधाज्ञा की बजाय घोषणा की मांग करना अनिवार्य होगा, सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह देखा गया था:

"10. जो मुद्दा हमारे विचार के लिए आता है वह यह है: "क्या स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा सुनवाई योग्य है जब प्रतिपक्षी अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत पर विवाद करता है?

11. इस न्यायालय के निर्णयों के वर्गीकरण द्वारा यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि प्रत्येक मामले में जहां प्रतिपक्षी अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत पर विवाद करता है, यह आवश्यक नहीं है कि उन सभी मामलों में अपीलकर्ता को घोषणा की राहत लेनी होगी। केवल निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमा केवल तभी नहीं होता है जब प्रतिपक्षी हक्के-मिल्कियत के संबंध में एक वास्तविक विवाद उठाता है और जब वह अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत पर संदेह उठाता है, तो आवश्यक रूप से उन परिस्थितियों में, अपीलकर्ता बिना किसी निषेधाज्ञा के मुकदमा नहीं रख सकता है।

12. मामले के तथ्यों में प्रतिपक्षी बोर्ड भूमि अधिग्रहण कार्यवाही और कब्जा प्रमाण पत्र पर भरोसा करके अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत पर सफलतापूर्वक संदेह पैदा कर सकता है और उन परिस्थितियों में अपीलकर्ता को घोषणा की राहत की मांग करनी चाहिए थी। निचली अदालतों ने निषेधाज्ञा के लिए मुकदमे पर विचार करने में गलती की।

49. यह सवाल हाल ही में <u>टी.वी.रामकृष्ण रेड्डी बनाम एम. मलप्पा और अन्य, एआईआर 2021 एससी 4293</u> मामले में सुप्रीम कोर्ट के लॉर्डशिप के समक्ष फिर से उठा, जहां यह आयोजित किया गया था:

"10. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि इस न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जहां अपीलकर्ता का हक्के-मिल्कियत विवाद में नहीं है या संदेह के घेरे में नहीं है, वहां कब्जे पर निष्कर्ष के संदर्भ में निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा तय किया जा सकता है। यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि यदि मामले में हक्के-मिल्कियत से संबंधित तथ्य और कानून के जटिल प्रश्न शामिल हैं, तो अदालत केवल निषेधाज्ञा के

अनुवादित

लिए मुकदमे में मुद्दे पर फैसला करने के बजाय, हक्के-मिल्कियत की घोषणा के लिए व्यापक मुकदमे के माध्यम से पार्टियों को उपाय के लिए भेज देगी।

11. इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस न्यायालय ने माना है कि जहां हक्के-मिल्कियत और हक्के-मिल्कियत से संबंधित उचित मुद्दे के बारे में आवश्यक दलीलें हैं, जिस पर पक्षकार साक्ष्य का नेतृत्व करते हैं, यदि इसमें शामिल मामला सरल और सीधा है, तो अदालत हक्के-मिल्कियत के मुद्दे पर फैसला कर सकती है, यहां तक कि निषेधाज्ञा के लिए मुकदमे में भी। हालांकि, यह माना गया है कि ऐसे मामले सामान्य नियम के अपवाद हैं कि आदेश के लिए मुकदमे में हक्के-मिल्कियत के सवाल पर फैसला नहीं किया जाएगा।

12. x x x x

13. अपीलकर्ता-अपीलकर्ता 13.4.1992 को अपने पक्ष में के.पी. गोविंदा रेड्डी द्वारा निष्पादित बिक्री-विलेख के आधार पर मुकदमा संपत्ति का मालिक होने का दावा करता है। बदले में, उनके अनुसार, उक्त संपत्ति को श्रीमती वरलक्ष्म्मा द्वारा 26.3.1971 को अपने विक्रेता के. पी. गोविंदा रेड्डी के पक्ष में बेच दिया गया था। उनका दावा है कि उन्होंने एक वित्तीय संस्थान से ऋण लेने के लिए सूट संपत्ति को गिरवी रखा था। उन्होंने आगे दावा किया कि बैंगलोर शहर निगम द्वारा एक समर्थन भी जारी किया गया था कि मुकदमा संपत्ति के संबंध में खाता अपीलकर्ता को हस्तांतरित किया गया था। अपीलकर्ता-अपीलकर्ता के अनुसार, जब बैंगलोर महानगर पालिका ने अपने पक्ष में खाता वापस ले लिया, तो वह उच्च न्यायालय गया और उसमें सफल रहा।

14. इसके विपरीत, प्रतिपक्षी नंबर 2 (यहां पर प्रतिपक्षी नंबर 1) विशेष रूप से अपीलकर्ता-अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत से इनकार कर रहा है। वह एम. शिवलिंगैया नाम के व्यक्ति से 5.4.1984 के एक बिक्री-विलेख के आधार पर मुकदमा संपत्ति का मालिक होने का दावा करता है। वह उक्त बिक्री-विलेख के आधार पर उसी के शांतिपूर्ण कब्जे और आनंद में होने का भी दावा करता है। यह उनका मामला है कि केपी गोविंदा रेड्डी ने मालिकाना हक को गलत तरीके से स्थापित किया और कब्जे के संबंध में मनगढ़ंत दस्तावेज बनाए। यह भी उनका मामला है कि परिसर की दीवार का निर्माण उन्होंने किया था, न कि अपीलकर्ता द्वारा, जैसा कि दावा किया गया है।

15. इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां अपीलकर्ता-अपीलकर्ता को वाद संपत्ति पर स्पष्ट हक्के-मिल्कियत कहा जा सकता है या मुकदमा संपत्ति पर अपीलकर्ता अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत पर कोई शक नहीं है। इसमें शामिल सवाल वह है जिसमें साक्ष्य के नेतृत्व और तथ्य और कानून के सवालों पर फैसला होने के बाद निर्णय की आवश्यकता होती है।

50. यहां, यह स्पष्ट है कि प्रतिपक्षी वाद संपत्ति और उसके कब्जे के लिए अपीलकर्ता के हक्के-मिल्कियत से पूरी तरह से इनकार करते हैं। यहां तक कि अगर अपीलकर्ता

अनुवादित

कहता है कि उसने सबूतों से स्थापित किया है कि जिस तारीख को कार्रवाई का कारण उठा, वह कब्जे में था, तो यह मामले को एक नहीं बनाता है, जहां हक्के-मिल्कियत के बारे में विवाद है, लेकिन केवल एक तमाशा है। कानून की स्थापित स्थिति के अनुसार, यदि अपीलकर्ता का हक्के-मिल्कियत स्पष्ट, दर्ज और विवाद के बादल से मुक्त है, तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ता निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा ला सकता है, जिसमें घोषणा की मांग करने की कोई अनिवार्यता नहीं है। लेकिन, जहां अपीलकर्ता का हक्के-मिल्कियत विवादों में घिरा हुआ है और प्रतिवादियों द्वारा इसे तर्कसंगत आधार पर चुनौती देने के साथ संदेह है, केवल एक निषेधाज्ञा पर्याप्त नहीं होगी; तब एक घोषणा आवश्यक होगी।

51. ऊपर यह देखा गया है कि प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 का मामला वाद संपत्ति की प्रकृति और निहित होने की तारीख पर इसके दर्ज चरित्र के आधार पर उत्पन्न हक्के-मिल्कियत के बारे में एक गंभीर मुद्दा उठाता है, जहां प्रतिवादियों का कहना है कि इसे खसरा नंबर 3299 के संबंध में बंजर के रूप में दर्ज किया गया था। जहां तक खसरा में दर्ज कुछ प्रविष्टियों के बारे में मुद्दा है जो दर्शाता है कि पजावा था, यह निर्धारित करने की आवश्यकता है कि क्या पजावा अधिनियम की धारा 9 के अर्थ के भीतर एक इमारत के रूप में योग्य है। जहां तक खसरा संख्या 3299 में एक कुआं होने के दावे का संबंध है, वह भी काफी विवादित तथ्य है जिसके लिए सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा यह निर्धारित करने की आवश्यकता है कि कुएं द्वारा कब्जा किया गया क्षेत्र क्या है, किसने कुएं को डुबोया, क्या यह निहित होने की तारीख को अस्तित्व में था और कौन सा क्षेत्र इसके लिए उत्तरदायी है। जिसे अधिनियम की धारा 9 के तहत राज्य सरकार द्वारा अपीलकर्ता के साथ निपटाया जा सकता है।

52. चूंकि इनमें से कोई भी तथ्य प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है, इसलिए ये ऐसे मामले हैं जिन्हें अपीलकर्ता द्वारा सक्षम अधिकार क्षेत्र की अदालत से मांगी गई घोषणा पर निर्धारित करने की आवश्यकता है, न कि केवल अपीलकर्ता द्वारा निषेधाज्ञा की मांग करते हुए, जैसे कि उसके अधिकार स्पष्ट और संदेह या चुनौती से मुक्त थे।

53. इस न्यायालय की राय में, इसलिए, बिना किसी घोषणा के, केवल निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा अपीलकर्ता द्वारा बनाए नहीं रखा जा सकता है।

54. यह प्रश्न और भी स्पष्ट है कि अपीलकर्ता को घोषणा के लिए दायर करना चाहिए था या नहीं, क्योंकि अपीलकर्ता ने पहले प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 के खिलाफ अधिनियम की धारा 229-बी के तहत 1978 का मुकदमा संख्या 307 स्थापित किया था, जिसे यह कहते हुए खारिज कर दिया गया था कि मुकदमा चकबंदी अधिनियम की धारा 49 द्वारा निषिद्ध था। उक्त निर्णय सहायक कलेक्टर द्वारा 25.09.1978 को पारित किया गया था, जिसे अपीलकर्ता द्वारा 1978 की अपील संख्या 330 के माध्यम से आयुक्त, मेरठ

अनुवादित

मंडल, मेरठ के समक्ष चुनौती दी गई थी। आयुक्त ने अपील को स्वीकार कर लिया और मुकदमे को कानून के अनुसार मुकदमे के लिए पहली बार अदालत में भेज दिया, यह कहते हुए कि चकबंदी न्यायालय के पास निर्णय लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था क्योंकि भूमि पजावा थी। धारा 49 की रोक को लागू नहीं किया गया था। राजस्व न्यायालय के समक्ष वाद को आगे नहीं बढ़ाया गया। इसके बजाय, वर्तमान मुकदमा स्थापित किया गया था। जहां तक इस सवाल का सवाल है, प्रासंगिक बात यह है कि अपीलकर्ता ने खुद सोचा कि उसे घोषणा के लिए मुकदमा करना चाहिए और सक्षम राजस्व अदालत में मुकदमा किया। राजस्व न्यायालय के समक्ष हारने के बाद, उन्होंने अपील में मामले को उत्तेजित किया और रिमांड हासिल की।

55. कार्यवाही के इस पाठ्यक्रम से पता चलता है कि अपीलकर्ता इस तथ्य से अवगत था कि उसे मुकदमा संपत्ति के अपने अधिकारों के बारे में घोषणा की आवश्यकता थी और यही कारण है कि उसने घोषणा के लिए एक मुकदमा दायर किया। तब उन्हें अदालत के समक्ष केवल निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा करने के लिए किसने मजबूर किया, यह समझ से परे है।

56. इन परिस्थितियों में, कानून संख्या 8 के पर्याप्त प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप में दिया जाता है और यह माना जाता है कि जहां अपीलकर्ता की उपाधि खतरे में है, उसे घोषणा के लिए मुकदमा करना चाहिए। निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमा सुनवाई योग्य नहीं होगा।

<u>कानून संख्या 2 का महत्वपूर्ण प्रश्न</u>

57. विधि संख्या 2 के पर्याप्त प्रश्न के बारे में, अपीलकर्ता के वकील श्री अर्पित अग्रवाल का तर्क यह है कि निचली अपीलीय अदालत की यह टिप्पणी कि अधिनियम की धारा 229-बी के तहत मुकदमे में, टाउन एरिया कमेटी एक पक्ष नहीं थी, स्पष्ट रूप से त्रुटि से ग्रस्त है। पर्याप्त प्रश्न इस संदर्भ में तैयार किया गया था कि राजस्व न्यायालय ने माना था कि मुकदमा संपत्ति चकबंदी अधिनियम की धारा 3 (5) के तहत परिभाषित भूमि नहीं है, क्योंकि वहां एक पजावा पाया गया था। यह निष्कर्ष आयुक्त द्वारा सहायक कलेक्टर के आदेश से एक अपील में दर्ज किया गया था, जिसमें इस आधार पर मुकदमा खारिज कर दिया गया था कि चूंकि मुकदमा संपत्ति भूमि थी और चकबंदी अधिनियम के तहत कोई कदम नहीं उठाया गया था, इसलिए अधिनियम की धारा 49 के तहत मुकदमा प्रतिबंधित था। इस निष्कर्ष को आयुक्त द्वारा अपील में रद्द कर दिया गया था, जैसा कि पहले ही देखा गया है, विचारण न्यायालय में रिमांड के साथ भूमि को पजावा माना जाता है।

58. अपीलकर्ता के वकील की यह दलील सही है कि निचली अपीलीय अदालत ने यह कहने में स्पष्ट रूप से त्रुटि की है कि राजस्व न्यायालय का निष्कर्ष, जिसका अंतिम उल्लेख किया गया है, प्रतिपक्षी संख्या 2 को बाध्य नहीं करेगा, क्योंकि टाउन एरिया कमेटी राजस्व न्यायालय के समक्ष मुकदमे में पक्षकार नहीं थी, जो अपील में आयुक्त के पास गई थी। 1978

अनुवादित

की अपील संख्या 303 में दिए गए अतिरिक्त आयुक्त के फैसले की एक सच्ची प्रति अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में इस अपील से संबंधित प्रस्ताव पत्रों के रिकॉर्ड पर उपलब्ध है। जाहिर है, इस फैसले की एक प्रमाणित प्रति पेपर नंबर 32-सी के रूप में नीचे की अदालतों के समक्ष रिकॉर्ड पर थी, लेकिन जिला न्यायालय के रिकॉर्ड रूम के अधिकारियों द्वारा किए गए बहुत गंभीर अविवेक के कारण, इस रिकॉर्ड को हटा दिया गया है। पक्षकार इस न्यायालय के समक्ष इस बात पर सहमत हुए हैं कि आयुक्त के आदेश की प्रति 27.04.1979 के आदेश की सच्ची प्रति है, जिसे अतिरिक्त आयुक्त, मेरठ मंडल द्वारा पूर्वोक्त अपील में पारित किया गया था। उक्त आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि राज्य सरकार एक पक्ष थी और टाउन एरिया कमेटी भी थी। अपर आयुक्त के दिनांक 27.04.1979 के रिमांड के आदेश में निम्नलिखित निष्कर्ष दिए गए हैं:

उन्होंने कहा, 'राज्य सरकार ने चुनाव नहीं लड़ा. टाउन एरिया कमेटी ने मुकदमे का विरोध किया।

59. उक्त निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, इस तथ्य से कोई लाभ नहीं है कि निचली अपीलीय अदालत ने रिकॉर्ड के सामने स्पष्ट रूप से एक त्रुटि की थी, जिसमें कहा गया था कि टाउन एरिया कमेटी राजस्व न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में एक पक्ष नहीं थी। इसलिए, कानून संख्या 2 के पर्याप्त प्रश्न को सकारात्मक रूप में तय किया गया है और यह माना जाता है कि निचली अपीलीय अदालत ने यह मानने में स्पष्ट रूप से त्रुटि की है कि टाउन एरिया कमेटी अधिनियम की धारा 229-बी के तहत मुकदमे में एक पक्ष नहीं थी।

कानून संख्या-3 का महत्वपूर्ण प्रश्न

60. यह हमें कानून संख्या 3 के महत्वपूर्ण प्रश्न पर लाता है। अपीलकर्ता के वकील श्री अर्पित अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि अतिरिक्त आयुक्त, मेरठ ने अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 27.04.1979 के फैसले और आदेश के तहत 1978 की अपील संख्या 303 को अनुमति देते हुए और मुकदमे को विचारण न्यायालय को सौंपते हुए कहा कि मुकदमा संपत्ति अधिनियम की धारा 3 (14) के तहत परिभाषित भूमि के दायरे में नहीं आती है और राजस्व न्यायालयों के पास भूमि के संबंध में निर्णय लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। जिसे पजावा के रूप में दर्ज किया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अपील में अतिरिक्त आयुक्त द्वारा दर्ज किए गए उपरोक्त निष्कर्ष को प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई थी और इसने अंतर-पक्षीय रूप प्राप्त कर लिया है। विशेष रूप से, यह तर्क दिया जाता है कि यद्यपि अधिनियम की धारा 229-बी के तहत मुकदमे की सुनवाई करने वाला राजस्व न्यायालय वर्तमान मुकदमे की सुनवाई करने के लिए सक्षम नहीं है, फिर भी यह विशेष अधिकार क्षेत्र का एक न्यायालय है जिसे संपत्ति की प्रकृति से संबंधित मुद्दे को कृषि या गैर-कृषि होने का निर्णय लेने का अधिकार है। यह

अनुवादित

क्षेत्राधिकार भी विशेष रूप से इसे प्रदान किया गया है। यदि यह प्रश्न सिविल न्यायालय के समक्ष उठता है, तो अधिनियम की धारा 331-क के अंतर्गत परिकल्पित विशेष प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए।

61. यह तर्क दिया जाता है कि संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण 8 के अर्थ के भीतर सीमित अधिकार क्षेत्र का न्यायालय होने के नाते, भूमि की प्रकृति के बारे में धारा 229-बी के तहत मुकदमे से उत्पन्न अपील में अतिरिक्त आयुक्त का निष्कर्ष सिविल कोर्ट को न्यायिक रूप से बाध्य करेगा, इस तथ्य के बावजूद कि राजस्व न्यायालय के पास वर्तमान मुकदमे की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है।

62. यह प्रस्तुत किया जाता है कि निचली अपीलीय अदालत ने विचारण न्यायालय को पलटते हुए उपरोक्त मामले को पूरी तरह से विचार से अनदेखा करके कानून में गलती की है। अपनी दलील के समर्थन में, अपीलकर्ता के वकील ने त्रिलोकी नाथ बनाम राम गोपाल और अन्य, 1974 आरडी 5 में इस अदालत के फैसले पर भरोसा किया है। अपीलकर्ता के वकील ने त्रिलोकी नाथ (उपरोक्त) में निम्नलिखित टिप्पणियों की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है:

"14. ऊपर दिए गए कारणों के लिए, हम माननीय न्यायमूर्ति ब्रूम द्वारा व्यक्त किए गए विचार से सहमत हैं कि चूंकि विचाराधीन क्षेत्र का उपयोग ईंट बनाने के प्रयोजनों के लिए किया जा रहा था जो कृषि आदि से असंबद्ध उद्देश्यों के लिए है, इसलिए ऐसा क्षेत्र 'भूमि' शब्द की परिभाषा के दायरे में नहीं आएगा और इसलिए समेकन अदालतों के पास इसके संबंध में पार्टियों के अधिकारों पर निर्णय लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा। केवल इसलिए कि विचाराधीन क्षेत्र का उपयोग भविष्य की तारीख में कृषि के प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है, हमारे विचार से उस अधिनियम द्वारा कवर नहीं की गई भूमि पर समेकन अधिनियम के प्रावधानों के आवेदन को उचित नहीं ठहराया जा सकता है।

63. इसमें शामिल मुद्दे पर पक्षों के वकीलों को सुनने पर, इस न्यायालय ने पाया कि अपील में राजस्व न्यायालय के फैसले के बारे में सवाल, धारा 229-बी के तहत अपीलकर्ता द्वारा पहले दायर मुकदमे में, धारा 229-बी के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर मुकदमे में मामले को पहली बार अदालत में भेजते हुए, भूमि की प्रकृति के बारे में वर्तमान मुकदमे में न्यायिक रूप से काम कर रहा है, प्रश्न ही नहीं उठता।

64. अपीलकर्ता द्वारा पहले स्थापित घोषणात्मक मुकदमे से उत्पन्न अपील में अतिरिक्त आयुक्त का निर्णय अपीलकर्ता और प्रतिपक्षी संख्या 1 और 2 के बीच केवल इस बिंदु पर न्यायकरता है कि वाद संपत्ति पर पजावा (एक स्वदेशी ईंट-भट्ठा) था और इसलिए, चकबंदी अधिनियम की धारा 3 (5) के अर्थ के भीतर भूमि नहीं थी। यही कारण है कि अतिरिक्त आयुक्त ने माना कि मुकदमा चकबंदी अधिनियम की धारा 49 द्वारा प्रतिबंधित नहीं किया जाएगा। फिर भी, अतिरिक्त आयुक्त ने

अनुवादित

धारा 49 के तहत बार के बारे में प्रारंभिक मुद्दे के फैसले पर इसे खारिज करते हुए विचारण न्यायालय के डिक्री को रद्द करने के बाद मुकदमे को नए सिरे से ट्रायल के लिए भेज दिया।

65. रिमांड के आदेश में दर्ज अतिरिक्त आयुक्त का निष्कर्ष केवल यह है कि भूमि वह नहीं है जिसे चक में समेकित किया जा सकता है, क्योंकि यह खेती योग्य नहीं थी। अतिरिक्त आयुक्त ने यह नहीं माना कि पजावा एक इमारत थी जैसा कि अधिनियम की धारा 9 के तहत परिकल्पित है। यदि उन्होंने ऐसा किया होता, तो वह मुकदमा खारिज कर देते या सिविल कोर्ट में प्रस्तुति के लिए वाद की वापसी का निर्देश देते। अतिरिक्त आयुक्त द्वारा वाद की रिमांड से पता चलता है कि यद्यपि उन्होंने पजावा को एक ऐसी संरचना के रूप में पाया, जिसने मुकदमा संपत्ति को चकबंदी अधिनियम की धारा 3 (5) के अर्थ के भीतर 'भूमि' नहीं बनाया, ताकि धारा 49 की रोक को आकर्षित किया जा सके, फिर भी उन्होंने सोचा कि राजस्व न्यायालय के पास अधिनियम की धारा 229-बी के तहत अपीलकर्ता के मुकदमे की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र है। जहां अपीलकर्ता को यह साबित करना होगा कि क्या वाद संपत्ति पर अधिनियम की धारा 9 के अर्थ के भीतर एक इमारत थी, ताकि उसके साथ इसका निपटान हो सके।

66. रिमांड पर, अपीलकर्ता को इस दलील पर अपने हक्के-मिल्कियत की घोषणा के उद्देश्य से राजस्व न्यायालय के समक्ष मुकदमा चलाना चाहिए था कि पजावा एक इमारत थी, जिसे निहित होने की तारीख को अधिनियम की धारा 9 के तहत उसके साथ बसाया गया था। लेकिन, आयुक्त द्वारा सहायक कलेक्टर को रिमांड पर लेने पर अपीलकर्ता ने स्पष्ट रूप से राजस्व न्यायालय के समक्ष अपना कारण त्याग दिया और सिविल कोर्ट के समक्ष वर्तमान मुकदमा दायर किया, और वह भी निषेधाज्ञा के लिए। ऐसा लगता है कि अतिरिक्त आयुक्त के रिमांड के आदेश को समझने में अपीलकर्ता ने लाइनों के बीच यह निष्कर्ष निकाला कि अतिरिक्त आयुक्त ने पजावा को एक इमारत या अन्यथा एक आबादी माना था, जिसके बारे में राहत देने के लिए सिविल कोर्ट में अधिकार क्षेत्र निहित होगा। यह धारणा पूरी तरह से गलत थी। अपीलकर्ता ने यह मान लिया कि अतिरिक्त आयुक्त ने वाद संपत्ति को एक इमारत या आबादी घोषित कर दिया है, जिसके बारे में सिविल कोर्ट में राहत मिल सकती है, राजस्व न्यायालय के समक्ष मुकदमा छोड़ने और सिविल कोर्ट के समक्ष वर्तमान मुकदमा शुरू करने में अपीलकर्ता के आचरण से एकमात्र तार्किक निष्कर्ष निकाला जा सकता है। यह वास्तव में, अपीलकर्ता की दलीलों से स्पष्ट है जो वाद के पैराग्राफ नंबर 9 में आता है:

"9- यह की वादी ने एक वाद धारा 229 कानून जमींदारी विनाश इस संबंध में आयोजित किया परंतु चूंकि संपत्ति धारा 3:14 कानून जमींदारी विनाश के अंतर्गत लैंड की परिभाषा में नहीं जाती इस कारण उपरोक्त वाद निरर्थक रहा उक्त वाद पहले खारिज हुआ जिसकी अपील नंबर 303 सन

अनुवादित

78 श्रीमान कमिश्नर महोदय साहब के यहां की गई और बजरिया आदेश दिनांक 24.7.79 रिमांड हुआ और यह निश्चित हुआ कि उक्त भूमि धारा 3:14 जमींदारी कानून विनाश के अंतर्गत लैंड नहीं है और इस कारण से कानून चकबंदी की धारा 49 इस पर लागू नहीं होती है उपरोक्त सूरते हालत में वाद न्यायालय दीवानी से संबंधित है और योजित किया जाता है!"

(न्यायालय द्वारा जोर)

67. अपीलकर्ता की दलीलों के पूर्वोक्त भाग के अवलोकन से पता चलता है कि उसने सोचा था कि अतिरिक्त आयुक्त ने फैसला किया था कि मुकदमा संपत्ति अधिनियम की धारा 3 (14) के अर्थ के भीतर भूमि नहीं थी, और इसलिए, धारा 49 की रोक लागू नहीं होती है। यह धारणा पूरी तरह से गलत है। अतिरिक्त आयुक्त ने कहा कि मुकदमा संपत्ति चकबंदी अधिनियम की धारा 3 (5) की परिभाषा के भीतर भूमि नहीं थी, जिसे चकबंदी योजना से बाहर रखा जाना था। पजावा होने के नाते, यह स्पष्ट रूप से खेती योग्य भूमि नहीं थी और इसलिए, अतिरिक्त आयुक्त का विचार सही था कि इसे चकबंदी योजना से बाहर रखा जाना चाहिए; और धारा 49 की सीमा लागू नहीं होगी।

68. जैसा कि पहले ही टिप्पणी की गई है, अतिरिक्त आयुक्त ने अधिनियम की धारा 229-बी के तहत मुकदमे को सभी मुद्दों पर नए सिरे से परीक्षण के लिए पहली बार अदालत में भेज दिया, क्योंकि यह वहां है कि अपीलकर्ता को यह साबित करना होगा कि पजावा एक 'इमारत' थी, जिससे मुकदमा संपत्ति को धारा 9 के तहत उसके साथ निपटाया जा सकता है; या मुकदमा संपत्ति का कितना हिस्सा एक कुएं का स्थल था और यह एक कुआं था जो अपीलकर्ता को अधिनियम की धारा 9 के लाभ के लिए पात्र बनाता था। पजावा एक स्वदेशी ईंट-भट्ठा है और धारा 9 के अर्थ के भीतर एक इमारत होने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में, प्रत्येक ईंट-भट्ठा उपरोक्त प्रावधान के तहत 'भवन' के लिए अर्हता प्राप्त नहीं करता है। इसे तथ्यों और सबूतों के आधार पर साबित किया जाना चाहिए कि यह वास्तव में एक इमारत है। इस संबंध में कानून का निपटारा बहुत पहले सुप्रीम कोर्ट ने घनश्याम दास बनाम देबी प्रसाद और एक अन्य, एआईआर 1966 एससी 1998 में किया था, जहां अधिनियम के संदर्भ में मुद्दा सीधे उठा था। उस मामले में, एक ईंट-भट्ठा, जिसे उसके मालिक द्वारा निहित होने की तारीख से पहले पट्टे पर दिया गया था, पट्टेदार द्वारा अधिनियम की धारा 6 के तहत राज्य में निहित होने का अनुरोध किया गया था, ताकि पट्टेदार को किराए की वसूली के लिए पट्टेदार पर मुकदमा करने से वंचित किया जा सके। घनश्याम दास (उपरोक्त) में, यह उनके लॉर्डशिप द्वारा आयोजित किया गया था, इस प्रकार:

"भवन" शब्द को अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है और इसलिए, इसे अपने साधारण व्याकरणिक अर्थों में बनाया जाना चाहिए जब तक कि क़ानून के संदर्भ या उद्देश्य में यह दिखाने के लिए कुछ न हो कि इसका उपयोग इसके सामान्य व्याकरणिक अर्थ से अलग एक विशेष अर्थ में किया जाता है। वेबस्टर्स न्यू

अनुवादित

इंटरनेशनल डिक्शनरी में "बिल्डिंग" शब्द को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:

(क) जैसा कि अब आम तौर पर एक कपड़े या इमारत का उपयोग किया जाता है, जिसे कम या ज्यादा स्थायी रूप से खड़ा करने के लिए डिज़ाइन किया गया है और आवास, भंडार गृह, कारखाने, जानवरों के लिए आश्रय या किसी अन्य उपयोगी उद्देश्य के रूप में उपयोग के लिए भूमि के स्थान को कवर किया गया है। इस अर्थ में इमारत में केवल एक दीवार, बाड़, स्मारक, होर्डिंग या इसी तरह की संरचना शामिल नहीं है, हालांकि इसे स्थायी उपयोग के लिए डिज़ाइन किया गया है, जहां यह खड़ा है, न ही स्टीमबोट जहाज या नेविगेशन का अन्य पोत।

इस परिभाषा से ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि एक संरचना को इमारत के रूप में माना जाने के लिए छत का अस्तित्व हमेशा आवश्यक होता है। आवासीय भवनों में आमतौर पर छतें होती हैं लेकिन एक गैर-आवासीय भवन हो सकता है जिसके लिए छत आवश्यक नहीं है। एक बड़ा स्टेडियम या एक खुली हवा में स्विमिंग पूल काफी खर्च पर बनाया गया एक इमारत होगी क्योंकि यह एक स्थायी संरचना है और एक उपयोगी उद्देश्य के लिए डिज़ाइन किया गया है। अधिनियम की धारा 9 के तहत "भवन" क्या है, यह सवाल हमेशा डिक्री का सवाल होना चाहिए - प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर एक सवाल। जैसा कि ब्लैकबर्न, जे ने आर वी नेथ कैनाल नेविगेशन कं, (1871) 40 एलजेएमसी 193 (197) में देखा।

"एक नहर के किनारों पर चिनाई इसे 'इमारत' बनाने के लिए पर्याप्त नहीं है। लंदन की एक सड़क, हालांकि पक्की है, फिर भी 'भूमि' होगी; जबकि होलबोर्न वायाडक्ट एक 'इमारत' होगी।

इसलिए, वर्तमान मामले में निर्धारण का सवाल यह है कि क्या अपीलकर्ता को पट्टे पर दिया गया भट्ठा अधिनियम की धारा 9 के अर्थ के भीतर एक "इमारत" है। प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा यह पाया गया है कि ईंट भट्टे में कोई स्थल नहीं है और यह छत वाली संरचना नहीं है। यह केवल एक गड्ढा था जिसके किनारों पर कुछ ईंटें थीं। इस मामले में यह भी स्वीकार किया जाता है कि भट्टा पर कोई ढांचा खड़ा नहीं था। इन तथ्यों पर, यह स्पष्ट है कि ईंट भट्टे की कोई दीवार नहीं है और कोई छत नहीं है, लेकिन यह जमीन में खोदा गया एक गड्ढा है जिसके किनारे ईंटें हैं। इन परिस्थितियों में, हमारी राय है कि वर्तमान मामले में अपीलकर्ता को पट्टे पर दिया गया ईंट भट्ठा अधिनियम की धारा 9 के अर्थ के भीतर एक "इमारत" नहीं है। इसलिए यह कहा जाता है कि ईंट भट्टे के साथ प्लॉट संख्या 596 और 597 दोनों का मालिकाना हक 1 जुलाई, 1952 से राज्य सरकार में निहित है और प्रतिपक्षी 1 अक्टूबर, 1952 से 30 सितंबर, 1953 की अवधि के लिए अपीलकर्ता से किसी भी किराए का दावा करने के हकदार नहीं हैं।

69. यह प्रश्न सीधे इस न्यायालय की एक खंडपीठ के विचारार्थ <u>नेवंड राम और अन्य बनाम गांव समाज रूरा और अन्य, 1961 ए.एल.जे. 910</u> में विचाराधीन था। नेवंड

अनुवादित

राम (उपरोक्त) में सवाल यह था कि क्या ईंट-भट्ठा अधिनियम की धारा 9 के अर्थ के भीतर एक इमारत थी। डिवीजन बेंच के लॉर्डशिप ने सेंट पीटर द ग्रेट, चिचेस्टर, 1961 (2) ऑल में दिए गए फैसले के आधार पर तीन गुना परीक्षण के फार्मूले को स्वीकार किया। ई.आर. 513 यह निर्धारित करने के लिए कि क्या ईंट-भट्ठा, उक्त मामले की विषय वस्तु, धारा 9 के उद्देश्य के लिए एक इमारत के रूप में अर्हता प्राप्त करेगा। न्यूएंड राम में निर्णय की रिपोर्ट से उद्धरण में उद्धृत करना बहुत लाभदायक होगा:

"पहले विवाद के संबंध में, निर्णय के लिए जो मुख्य प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या ईंट भट्ठा, जिसे भूमि के एक हिस्से पर स्थित कहा जाता है, को जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 9 में उपयोग किए गए शब्द के अर्थ के भीतर "एक इमारत" माना जा सकता है। एक सहायक प्रश्न यह होगा कि क्या विवाद में बाकी भूमि को इमारत के लिए उपयुक्त कहा जा सकता है यदि ईंट भट्ठा एक इमारत है।

दुर्भाग्य से वर्तमान मामले में अपीलकर्ता के लिए यह बिंदु कि वे जेडए और एलआर अधिनियम की धारा 9 के लाभ के हकदार थे, पहली बार दूसरी अपील में लिया गया था। यह सवाल पहले नहीं उठाया गया था, विचारण न्यायालय में रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं लाई गई थी, जिससे पता चले कि ईंट भट्टे को एक इमारत माना जा सकता है या नहीं। यह सच है कि दलीलों और राजस्व पत्रों में भूमि पर एक ईंट भट्टे का उल्लेख किया गया है। यह भी माना जा सकता है कि ईंटों को पकाया गया था और भूमि पर स्टॉक किया गया था। हालांकि, मौके पर वास्तविक स्थिति के बारे में कोई विवरण सामने नहीं लाया गया है। हम नहीं जानते कि विवाद में ईंट भट्टे में कोई दीवारें, निर्माण या संरचना है या नहीं। बेशक इसकी कोई छत नहीं है। यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि भूमि पर कुछ भी है सिवाय एक खुदाई के जिसमें आसन्न भूखंडों से लाई गई बिना पकी हुई ईंटों को पंक्तियों में व्यवस्थित किया जाता है और बेक किया जाता है। रिकॉर्ड से ऐसा प्रतीत होता है कि एक चरण में मौके पर जाने के लिए एक आयुक्त नियुक्त किया गया था। उन्होंने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है। लेकिन इस रिपोर्ट में भी ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर कोई यह तय कर सके कि ईंट भट्ठा एक इमारत के बराबर है। इस संबंध में यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के अंग्रेजी संस्करण के खंड 9 में दिखाई देने वाले अंग्रेजी शब्द "भवन" के लिए, अधिनियम के हिंदी संस्करण में "इमारत" शब्द का उपयोग किया गया है। इसलिए, हमें इस बात पर विचार करना होगा कि क्या ईंट भट्टे को "इमारत या "इमारत" माना जा सकता है। भवन शब्द को जेडए और एलआर अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है और इसलिए, इसे इसका सामान्य अर्थ दिया जाना चाहिए। सेंट पीटर द ग्रेट, चिचेस्टर, 1961 (2) में हाल ही में रिपोर्ट किए गए एक मामले में ई.आर. 513, चांसलर बकल को

अनुवादित

विचार करना था कि 'बिल्डिंग' शब्द का क्या अर्थ है। प्रश्न के निर्णय के लिए उन्हें तीन परीक्षण सुझाए गए थे और उन्होंने उन्हें सही माना। तीन परीक्षण इस प्रकार थे -

(1) क्या कोई साधारण व्यक्ति यह सोचेगा कि वह संरचना एक इमारत थी।

(2) प्रासंगिक संरचना चार दीवारें और एक छत है, और

(3) क्या कोई कह सकता है कि संरचना बनाई गई थी।

उन्होंने बताया कि पहला परीक्षण चिट्टी, जे द्वारा हैरिस बनाम डी पिन्ना, (1886) 33, सीएच डी 238 में किए गए कुछ सामान्य अवलोकनों के आधार पर तैयार किया गया था। दूसरा परीक्षण मोइर वी ई.आर. 587. से लिया गया था और तीसरा परीक्षण विलियम्स, (1892) 1 Q.B. 264 साउथ वेल्स एल्यूमीनियम कंपनी लिमिटेड बनाम नॉर्थ एरिया असेसमेंट कमेटी, (1943) 2, ऑल में टिप्पणियों पर आधारित था।

तीन परीक्षण हमें इस सवाल को तय करने के लिए लागू किए जाने वाले उचित परीक्षण प्रतीत होते हैं कि क्या ईंट भट्ठा निर्माण कर रहा है। वर्तमान मामले में इन परीक्षणों को लागू करने से पहले हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि प्रश्न का निर्णय लेते समय प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा। विभिन्न प्रकार और डिजाइनों के ईंट भट्टे हैं। अलग-अलग विचार स्वाभाविक रूप से लागू होंगे यदि ईंटों को बेक किया जाता है या दीवारों के साथ विशेष रूप से निर्मित बंद और छत वाली संरचना में संग्रहीत किया जाता है। हम वर्तमान मामले में इस तरह की किसी भी चीज से चिंतित नहीं हैं। हमारे सामने केवल एक ही सामग्री है कि विवादित भूमि पर एक ईंट भट्ठा है जिसमें ईंटें पकाई जाती हैं। अब, आमतौर पर जिसे ईंट भट्टे के रूप में जाना जाता है, वह केवल जमीन में खुदाई है। भूमि को एक निश्चित सीमा तक खोदा जाता है ताकि ईंट भट्ठा मालिक को एक निश्चित तरीके से बिना पकी हुई ईंटों की व्यवस्था करने में सक्षम बनाया जा सके ताकि उन्हें कोयले या लकड़ी में आग लगने के बाद बेक किया जा सके जिसका उपयोग बेकिंग के प्रयोजनों के लिए किया जाता है। इस तरह के भट्टे में आमतौर पर कोई दीवार नहीं होती है और कोई छत होने का कोई सवाल ही नहीं है। यह एक बाड़ा या संरचना भी नहीं है। भट्ठे का उपयोग आवासीय उद्देश्य के लिए करने का इरादा नहीं है और न ही इसका उपयोग किसी भी सामान्य उद्देश्य के लिए किया जा सकता है जिसके लिए आमतौर पर एक इमारत नियोजित होती है। इसलिए, एक साधारण व्यक्ति अपने सामान्य प्रचलित अर्थों में भवन या 'इमारत' शब्द का उपयोग करता है, इसलिए वह ईंट भट्टे के लिए इस शब्द का उपयोग कभी नहीं करेगा। वहां कोई संरचना नहीं है। कोई दीवार या छत नहीं है। जब किसी खास आकार या आकार की धरती में गड्ढा खोदने और उसमें ईंटों को बेक करने के उद्देश्य से व्यवस्था करने के अलावा कुछ नहीं करना पड़ता तो यह देखना मुश्किल है कि यह कैसे कहा जा सकता है कि इस तरह

अवधादिन

के ईंट भट्टे के संबंध में कुछ भी "बनाया" जा रहा है।

अपीलकर्ता के वकील ने सुझाव दिया कि विचाराधीन ईंट भट्टे में पृथ्वी में खुदाई किए गए प्रत्येक गड्ढे पर एक दीवार की परत थी। हालांकि, सुझाव का समर्थन करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं है और इसलिए, हम इसका कोई नोटिस नहीं ले सकते हैं।

इसलिए हमारा मत है कि इस मामले में जिस प्रकार का ईंट भट्ठा विवाद में प्रतीत होता है, उसे जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 9 के प्रयोजन के लिए भवन नहीं कहा जा सकता है और यदि ईंट भट्ठा एक इमारत नहीं है, तो विवाद में शेष भूमि के किसी भी भवन से संबद्ध होने का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है। इसलिए, अपीलकर्ता द्वारा जेडए और एलआर अधिनियम की धारा 9 के प्रावधानों का कोई लाभ इस आधार पर प्राप्त नहीं किया जा सकता है कि अधिनियम के लागू होने की तारीख पर, वह ईंट भट्टे या विवादित भूमि के कब्जे में था।

देवी प्रसाद बनाम घनश्याम दास, 1961 ए.एल.जे. 193 के कथित फैसले से, उस ईंट भट्टे का विवरण स्पष्ट नहीं है, जिसे विद्वान न्यायाधीश द्वारा एक इमारत माना गया था। विद्वान न्यायाधीश ने "भवन" शब्द के शब्दकोश अर्थ पर विचार किया, जिसके लिए आवश्यक था कि कुछ संरचना, इमारत या कपड़े "निर्मित या उठाए गए" होने चाहिए। इसलिए, उन्होंने कहा:

"मेरी राय में भट्ठे के लिए एक इमारत होना संभव है, बशर्ते यह एक स्थायी संरचना हो जिसे भट्टा के रूप में उपयोग के लिए बनाया गया हो।

हम सम्मानपूर्वक इस राय को साझा करते हैं कि यह इतना संभव है। हालांकि, हम यह बताना चाहेंगे कि हर ईंट भट्टे में "स्थायी संरचना नहीं होती है, जिसे भट्टा के रूप में उपयोग के लिए उठाया जाता है"। ईंटों को पकाने के लिए ऐसी संरचना आवश्यक नहीं है। इसे खड़ा किया जा भी सकता है और नहीं भी। यहां तक कि अगर यह वहां है तो यह एक "इमारत" नहीं हो सकता है। विद्वान न्यायाधीश के समक्ष मामले में यह स्वीकार किया गया था कि-

"भट्टा पर कोई संरचना खड़ी नहीं थी"।

विद्वान न्यायाधीश ने इन शब्दों और विचारों को समझने में असमर्थता व्यक्त की,

"एक भट्टा अपने आप में एक संरचना है"

उन्होंने 'भट्टा खष्ठ' की व्याख्या "ईंटों से निर्मित भट्ठा" के रूप में भी की। गहन सम्मान के साथ हम इस व्याख्या का समर्थन करने में असमर्थ हैं। भट्टा का अर्थ है भट्ठा और खिष्ठ का अर्थ है ईंट। लेकिन "भट्टा खिश्त" का मतलब यह नहीं है कि "ईंटों से निर्मित भट्ठा" है। इसका समान रूप से मतलब ईंटों को तैयार करने के लिए भट्ठा हो सकता है और यही वह अर्थ है जिसमें अभिव्यक्ति का उपयोग आमतौर पर किया जाता है (सीएफ भट्टा चूना या भट्टा सुरखी)। जैसा कि हमने कहा है, आमतौर पर एक ईंट भट्टे की अपनी कोई संरचना नहीं होती है। यह केवल पृथ्वी में की गई खुदाई है। इसलिए, जब यह स्वीकार किया गया कि "भट्टा पर कोई संरचना खड़ी नहीं थी" तो यह स्वीकार अर्थहीन नहीं था। यदि

अनुवादित

देवी प्रसाद के मामले, 1961 ए.एल.जे. 193 में यह निर्धारित करने का इरादा था कि सभी ईंट भट्टों को जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 9 के प्रयोजनों के लिए भवन माना जाना चाहिए, तो हम सम्मानपूर्वक उस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं।

70. यहां यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि देवी प्रसाद बनाम घनश्याम दास और अन्य, 1960 एससीसी ऑनलाइन ऑल 150 में विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय, जिसे नेवंड राम में डिवीजन बेंच द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था, ने कहा कि ईंटों से बने ईंट-भट्ठे को अधिनियम की धारा 9 के तहत एक इमारत के रूप में माना जाना चाहिए। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि देवी प्रसाद बनाम घनश्याम दास (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय के फैसले को घनश्याम दास बनाम देबी प्रसाद (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट के उनके लॉर्डशिप द्वारा पलट दिया गया था। इसलिए, अपीलकर्ता के लिए यह स्थापित करने के लिए दलील और सबूत का विषय था कि उसने किस तरह का ईंट भट्ठा कहा है, जिसे उसने पजावा कहा है, और क्या यह 'इमारत' के लिए योग्य है या नहीं। इस सब के लिए अपीलकर्ता को, जैसा कि पहले से ही कानून संख्या 8 के पर्याप्त प्रश्न के उत्तर में माना गया है, घोषणा के लिए मुकदमा करने और अपने साक्ष्य से साबित करने की आवश्यकता होगी कि, वास्तव में, पजावा एक इमारत थी और मुकदमा संपत्ति धारा 9 के तहत उसके साथ तय की जाएगी।

71. उक्त कारण से, यह भी माना गया है कि निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा झूठ नहीं होगा। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 9 के अर्थ के भीतर एक इमारत के रूप में पजावा के चरित्र को स्थापित करने के लिए नीचे दिए गए न्यायालयों के ध्यान में कोई सबूत नहीं लाया गया है या कोई याचिका नहीं उठाई गई है। यह सब अपीलकर्ता द्वारा अतिरिक्त आयुक्त द्वारा पारित रिमांड के आदेश से माना गया है। अतिरिक्त आयुक्त ने, जैसा कि पहले ही कहा है, यह नहीं माना है कि पजावा एक 'इमारत' है और मुकदमा संपत्ति है जिसे धारा 9 के तहत निपटाया गया है। अधिनियम की धारा 229-बी के तहत मुकदमे में आयुक्त द्वारा रिमांड के बाद अपीलकर्ता द्वारा इसे आसानी से साबित किया जा सकता है, जैसा कि पहले ही टिप्पणी की गई थी, जिसे उन्होंने नहीं करने का फैसला किया और इसके बजाय सिविल कोर्ट का रुख किया।

72. रिमांड आदेश में अतिरिक्त आयुक्त का निष्कर्ष, इसलिए, किसी भी तरह से न्यायिक रूप से कार्य नहीं करता है, क्योंकि अतिरिक्त आयुक्त द्वारा यह कभी तय नहीं किया गया था कि पजावा के साथ मुकदमा संपत्ति एक इमारत थी जो अपीलकर्ता के साथ अधिनियम की धारा 9 के तहत तय की गई थी। संभवतः, अतिरिक्त आयुक्त चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के तहत एक बार के प्रारंभिक मुद्दे पर खारिज किए गए मुकदमे को सभी मुद्दों पर नए सिरे से परीक्षण के लिए राजस्व अधिकार क्षेत्र में पहली बार अदालत को भेजते समय उस निष्कर्ष को दर्ज नहीं कर सकते थे।

अनुवादित

73. इसलिए, कानून संख्या 3 के पर्याप्त प्रश्न का उत्तर नकारात्मक रूप से दिया जाता है कि उक्त मुकदमे से उत्पन्न अपील में पारित रिमांड के आदेश के माध्यम से अधिनियम की धारा 229-बी के तहत वाद संख्या 6 में दर्ज निष्कर्ष, जहां तक वाद संपत्ति की प्रकृति का संबंध है, न्यायिक रूप से काम नहीं करेगा।

74. कानून के अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न, हालांकि विचार किए गए और तैयार किए गए थे, सुनवाई में अपीलकर्ता की ओर से अपील के समर्थन में दबाव नहीं डाला गया था।

75. कानून के तीन महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तरों को ध्यान में रखते हुए, जिस पर इस अपील पर सुनवाई की गई है, डिक्री के साथ हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

76. अपील विफल हो जाती है और पूरे समय लागत के साथ खारिज कर दी जाती है।

77. तदनुसार, एक डिक्री तैयार की जाए।

(2023) 2 ILRA 445

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 31.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर,

विशेष अपील संख्या 595 /2022

संलग्न

विशेष अपील संख्या 1206/2019

और

विशेष अपील संख्या 98 और 154 /2020

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

ख़ुशबू कुमारी गुप्ता

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री अजीत कुमार सिंह (अपर ए.जी.), श्री सुधांशु श्रीवास्तव (अपर सी.एस.सी.)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री ओम प्रकाश, श्री जितेंद्र सरीन, श्री पुष्पेंद्र सिंह, सुश्री खुशबू कुमारी गुप्ता, श्री प्रमोद कुमार (व्यक्तिगत रूप से)

सिविल कानून - सेवा मामला - उत्तर प्रदेश ग्रामीण विकास (ग्राम सेवक) सेवा नियम 1980 - प्रतिवादी की उम्मीदवारी इस आधार पर खारिज कर दी गई कि उसके पास डीओईएसीसी/एनआईईएलआईटी से सीसीसी प्रमाणपत्र नहीं है - आयोजित, रिट याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी इस आधार पर खारिज नहीं की जा सकती है कि उसके पास डीओईएसीसी/एनआईईएलआईटी से सीसीसी प्रमाणपत्र नहीं है, जैसा कि नियमों या यहां तक कि जारी किए गए विज्ञापन में भी है, किसी निर्दिष्ट संस्थान यानी डीओईएसीसी/ एनआईईएलआईटी से सीसीसी प्रमाणपत्र की योग्यता का कोई उल्लेख नहीं था - विज्ञापन में उल्लेख किए बिना, जिस संस्थान से वह प्रमाणपत्र होना चाहिए, इस आधार पर किसी उम्मीदवार की उम्मीदवारी को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है - एक उम्मीदवार को उन प्रासंगिक नियमों को जानना चाहिए जिनके तहत भर्ती की जानी है -अंतर्विभागीय

अनुवादित

संचार, जिन्हें विज्ञापन में संदर्भित नहीं किया गया है , उम्मीदवार की जानकारी में नहीं होना चाहिए । (पैरा 20,21) (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

मुकुल कुमार त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2020)4 एससीसी 86

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

और माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

आदेश

1. यह आदेश विशेष अपील संख्या 1206/2019, विशेष अपील संख्या 98/2020 और विशेष अपील संख्या 154/2020 और विशेष अपील संख्या 595/2022 को एक साथ सभी अपीलों को सुनकर दिया गया है, क्योंकि सभी में एक समान विधिक प्रश्न शामिल हैं।

मामले के तथ्य

विशेष अपील संख्या- 595/2022

2. इसमें रिट याचिकाकर्ता/प्रत्यर्थी, जो कि व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए, ग्राम विकास अधिकारी (बाद में इसे "वीडीओ" कहा जाएगा) के पद के लिए उम्मीदवार थे। यह रिट याचिका उन्होंने दायर की थी क्योंकि उत्तर प्रदेश अधीनस्थ चयन आयोग द्वारा की गई सिफारिश के बाद उनकी उम्मीदवारी इस आधार पर निरस्त कर दी गई थी कि उनके पास डीओईएसीसी/एनआईईएलआईटी द्वारा जारी सीसीसी प्रमाणपत्र की योग्यता नहीं है। यह रिट याचिका विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा स्वीकार कर ली गई थी।

3. अभिलेखों का सही विवरण रखने के लिए, यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि पहले याचिकाकर्ता ने रिट(ए) संख्या-14181/2018 वाली रिट याचिका दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था क्योंकि उसे साक्षात्कार में भाग लेने की अनुमति नहीं दी गई थी । उक्त रिट याचिका 27 जून, 2018 को निरस्त कर दी गई थी । हालांकि, उनके द्वारा दायर विशेष अपील संख्या 1165/2018 योजित की गई, जिसमें उन्हें साक्षात्कार में भाग लेने की अनुमति दी गई और उनका परिणाम न्यायालय के समक्ष रखने का निर्देश दिया गया था। उपरोक्त अपील 29 अप्रैल, 2019 को अन्तिम रूप से निस्तारित कर दी गई। जब रिट याचिकाकर्ता की मार्कशीट अदालत के समक्ष रखी गई, तो राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि साक्षात्कार में रिट याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर, मेरिट सूची में उसकी स्थिति की जांच की जाएगी और अंतिम परिणाम के बारे में उसे सूचित किया जाएगा।

विशेष अपील संख्या- 1206/2019

4. वर्तमान मामले में रिट याचिकाकर्ता/प्रत्यर्थी संख्या 1 से 17 पूर्व सैनिक थे और वीडीओ पद के उम्मीदवार थे। यहाँ फिर से यह मुद्दा सीसीसी प्रमाणपत्र की योग्यता के संदर्भ में था। राज्य सरकार केवल डीओईएसीसी/एनआईईएलआईटी से प्राप्त प्रमाणपत्र की

अनुवादित

आवश्यकता के मत पर कायम थी, जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा स्वीकार नहीं किया गया और यह निर्देश जारी किया गया कि रिट याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी को केवल इस आधार पर नजरअंदाज नहीं किया जाएगा कि उनके सीसीसी प्रमाणपत्र डीओईएसीसी/ एनआईईएलआईटी द्वारा जारी नहीं किए गए हैं।

विशेष अपील संख्या-98 और 154/2020

5. विद्वान एकल न्यायाधीश समान तथ्यों पर आधारित रिट याचिकाओं का निपटारा अपने पहले फैसले की रिट याचिका संख्या 1782/2019 शीर्षक: प्रमोद कुमार और अन्य बनाम यू.पी. राज्य सरकार के निर्णय के समान ही किया था और जिसके खिलाफ विशेष अपील संख्या 1206/2019 लंबित है।

मामले में सम्मिलित विवाद्यक

6. रिट याचिकाओं में शामिल विवाद वीडीओ पद के लिए आवश्यक योग्यता के इर्द-गिर्द घूमता है। यह फिर से सीसीसी प्रमाणपत्र तक ही सीमित है। सबसे पहले, क्या वह योग्यता आवश्यक है और दूसरी बात यह कि क्या यह केवल डीओईएसीसी/एनआईईएलआईटी या किसी अन्य संस्थान से भी आवश्यक है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिकाकर्ताओं के पक्ष में फैसला सुनाया था। राज्य सरकार अपील में है।

7. सुनवाई के समय, जब इस न्यायालय ने राज्य के विद्वान अधिवक्ता से एक विनिर्दिष्ट प्रश्न पूछा था कि क्या इस न्यायालय में समान कानूनी मुद्दे सम्बन्धित कोई अन्य रिट याचिका/अपील लंबित है, तो उत्तर नकारात्मक में था।

तर्क

8. राज्य के विद्वान वकील द्वारा तर्क दिया गया कि वीडीओ के पद के लिए विज्ञापन, विज्ञापन संख्या 3 (परीक्षा)/2016 के माध्यम से जारी किया गया था। इसमें स्पष्ट रूप से पद के लिए आवश्यक योग्यताएं के बारे में जानकारी दी गई थी, जिसमें कंप्यूटर संचालन में सीसीसी प्रमाणपत्र शामिल था। यह 27 मार्च 2012 को सरकार द्वारा जारी सरकारी आदेश के अनुसार उपबंधित किया गया था। चूंकि इसे राज्यपाल द्वारा अनुमोदित किया गया था, इसलिए पद के लिए योग्यता आवश्यक है। उपरोक्त शासनादेश के बाद 23 जुलाई, 2013 को एक और शासनादेश आया, जिसमें यह विशेष रूप से उपबंधित किया गया था कि सीसीसी प्रमाणपत्र डीओएईसीसी से होना चाहिए। तर्क यह है कि अपील में किसी भी प्रत्यर्थी के पास डीओईएसीसी/एनआईईएलआईटी का उक्त प्रमाणपत्र नहीं है। इसलिए, वे पात्र नहीं थे और उन्हें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा नियुक्त करने का निर्देश गलत दिया गया है। तर्क के समर्थन में, **मुकुल कुमार त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, एस.सी.सी. 2020(4)86** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया।

9. प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी, जो

अनुवादित

व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए थे ने यह जबाब दिया कि प्रश्नगत पद उत्तर प्रदेश ग्रामीण विकास (ग्राम सेवक) सेवा नियमावली 1980 (बाद में इसे "नियमावली" कहा जाएगा) के अधीन है। प्रश्नगत पद के लिए सीसीसी प्रमाणपत्र अपेक्षित गुणागुण नहीं है। इसलिए, इसे विज्ञापन में नहीं जोड़ा जा सकता था। विज्ञापन में जो मांगा गया है वह महज एक प्रमाणपत्र है, न कि संस्थान से जहां यह होना चाहिए। वास्तव में इस तरह के किसी भी संस्थान को निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता है। आवश्यक प्रमाणपत्र मान्यता प्राप्त संस्थान से होना चाहिए। आगे यह तर्क दिया गया कि सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी पत्राचार द्वारा वैधानिक नियमों में संशोधन नहीं किया जा सकता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए नियमों को केवल पत्र लिखकर नहीं बदला जा सकता है। उचित प्रक्रिया का पालन करना होगा। उत्तर प्रदेश सरकार के प्रमुख सचिव के 27 मार्च 2012 के पत्र से स्पष्ट है। कि राज्यपाल ने वीडीओ पद के लिए योग्यता के रूप में सीसीसी प्रमाणपत्र जोड़ने की अनुमति दे दी है। इसके बाद, नियमावली में संशोधन के लिए उचित प्रक्रिया का पालन किया जाना था। कुछ नहीं किया गया, क्योंकि राज्य में अधिकारी कानून का पालन नहीं करते या फिर वे खुद ही कानून हैं। विशेष सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 23 जुलाई, 2103 को एक और पत्र भेजा गया जिसमें रिक्त पद पर भर्ती के लिए मंजूरी दी गई। इस पत्र में बताया गया था कि सीसीसी प्रमाणपत्र डीओईएसीसी से ही होना चाहिए।

10. यहाँ यह कहना है कि नियमों में योग्यता निर्धारित नहीं की गई है, इसलिए यह प्रत्यर्थियों की उम्मीदवारी को अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकती है। विज्ञापन में कही गई कोई भी बात, जो नियमों के विपरीत है, उसे नजरअंदाज करना होगा, क्योंकि कानूनी स्थिति यह है कि नियमों में निर्धारित योग्यता लागू होगी, भले ही विज्ञापन अलग हो। यहाँ यह तर्क दिया कि विज्ञापन में केवल सीसीसी प्रमाणपत्र की आवश्यकता है और कोई अन्य शर्त नहीं है। हालाँकि, उम्मीदवारी को इस आधार पर निरस्त करने की मांग की गई है कि केवल डीओईएसीसी/एनआईईएलआईटी से जारी सीसीसी प्रमाणपत्र आवश्यक है। इसका उल्लेख अंतर-विभागीय पत्राचार में किया गया था। हालाँकि इस उद्देश्य के लिए 23 जुलाई 2013 के पत्र पर भरोसा करने की कोशिश की गई है, जबकि प्रकाशित विज्ञापन में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है। उम्मीदवार को यह नहीं पता होना चाहिए कि अंतर-विभागीय पत्राचार में क्या उल्लेख किया गया है। वह केवल उन्हीं नियमों को जान सकता है जो अधिसूचित हो और जब तक कि अन्यथा निर्दिष्ट न किया जाए।

11. यहाँ यह कथन है कि भूतपूर्व सैनिक (केंद्रीय, सिविल सेवा और पद पर पुनर्नियोजन) नियमावली, 1979 में 12 फरवरी, 1986 को संशोधन किया गया था, जिसमें यह प्रावधान किया गया था कि यदि

अनुवादित

अपेक्षित योग्यता रखने वाले पर्याप्त संख्या में उम्मीदवार उपलब्ध नहीं हैं, तो योग्यता में इस शर्त के अधीन छूट दी जा सकती है कि ऐसी छूट से कार्य के स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

12. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थियों के पास सीसीसी प्रमाणपत्र के समकक्ष योग्यता है और किसी भी तरह से उनके कार्य प्रदर्शन से समझौता नहीं किया जा सकता है।

13. राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जवाब में यह तर्क दिया गया कि जब छठे वेतन आयोग द्वारा वेतनमान को संशोधित किया गया था, तो आयोग द्वारा यह सिफारिश की गई थी कि सीसीसी प्रमाणपत्र की योग्यता को जोड़ा जाना आवश्यक है। यही कारण था कि पूरा देश डिजिटल मोड में जा रहा था। अतः सरकारी कर्मचारियों के लिए कम्प्यूटर का ज्ञान आवश्यक था। उम्मीदवारों द्वारा इस पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है, क्योंकि यह जनता की सेवा करने के लिए तथा अपने कर्तव्यों के निर्वहन व दक्षता में सुधार के लिए है।

<u>विचार विमर्श</u>

14. उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और पत्रावली का अवलोकन किया।

15. अभिलेख पर निर्विवाद तथ्य यह है कि वीडीओ के पद पर भर्ती के लिए एक विज्ञापन निम्नलिखित योग्यताएं उपबंधित करते हुए जारी किया गया था:

"<u>अनिवार्य अर्हता- 1</u>- विज्ञान या कृषि के साथ माध्यमिक क्षिक्षा परिषद, उ०प्र० की इंटरमीडिएट परीक्षा या राज्यपाल द्वारा उसके समकक्ष मान्यता प्राप्त कोई परीक्षा उत्तीर्ण की हो।

2- कम्प्यूटर संचालन में "सी० सी० सी०" प्रमाण पत्र की अर्हता।"

16. विचाराधीन पद उन नियमों द्वारा विनियमित होता है, जहॉ पद के लिए योग्यता इस प्रकार है:

"शैक्षणिक योग्यता- सेवा में सीधी भर्ती के लिए उम्मीदवार को यूपी बोर्ड ऑफ हाई स्कूल और इंटरमीडिएट एजुकेशन से विज्ञान या कृषि के साथ इंटरमीडिएट परीक्षा पास की हो या उसके समकक्ष राज्यपाल द्वारा मान्यता प्राप्त परीक्षा उत्तीर्ण कर ली हो।"

17. दिनांक 27 मार्च 2012 को प्रमुख सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा आयुक्त, ग्राम विकास, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को जारी एक पत्राचार में प्रश्नगत पद के लिए सीसीसी प्रमाणपत्र की योग्यता का उल्लेख किया गया है तथा वीडीओ के पद के लिए मौजूदा योग्यताओं के साथ सीसीसी प्रमाणपत्र आवश्यक है जिसे राज्यपाल द्वारा मंजूरी दे दी गई है। इसका प्रासंगिक पैरा इस प्रकार है:

"उपर्युक्त विषय के सम्बंध में मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि वित्त विभाग के शासनादेश संख्या- वे०आर०- 2-1987/दस-54(एम)/2008 टी०सी०, दिनांक 22 नवम्बर, 2011 द्वारा लिये गये निर्णय के क्रम में ग्राम विकास विभाग के ग्राम विकास अधिकारी के पदों पर वर्तमान में निर्धारित शैक्षिक अर्हता के साथ कम्प्यूटर संचालन में 'सी०सी०सी०' प्रमाण पत्र की अर्हता को सम्मिलित किये जाने

अनुवादित

की श्री राज्यपाल से महोदय सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते हैं।"

18. 23 जुलाई 2013 के बाद के पत्र में जब रिक्त पदों को भर्ती के लिए मंजूरी दी गई थी, तो यह उल्लेख किया गया था कि डीओईएसीसी/एनआईईएलआईटी से प्राप्त सीसीसी प्रमाणपत्र आवश्यक है।

19. उपरोक्त दो पत्रों के मद्देनजर, जिन्हें राज्य शासनादेश होने का दावा करता है, प्रत्यर्थियों की उम्मीदवारी को इस आधार पर निरस्त करने की मांग की गई है कि उनके पास डीओईएसीसी/ एनआईईएलआईटी से सीसीसी प्रमाणपत्र नहीं है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि उन सभी के पास विभिन्न संस्थानों द्वारा जारी सीसीसी प्रमाणपत्र है जहां से उन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद इसे पास किया है। यहाँ यह तथ्य है कि नियमों या प्रकाशित विज्ञापन में भी किसी निर्दिष्ट संस्थान यानी डीओईएसीसी / एनआईईएलआईटी से सीसीसी प्रमाणपत्र की योग्यता का कोई उल्लेख नहीं है। एक उम्मीदवार से अपेक्षा की जाती है कि वह उन प्रासंगिक नियमों को जानता हो जिनके तहत भर्ती की जानी है और उनके पास यह योग्यता होना चाहिए। अंतर-विभागीय पत्राचार जिसका उल्लेख विज्ञापन में नहीं किया गया है, उम्मीदवार को इसकी जानकारी नहीं होना चाहिए।

वेतन आयोग ने इस योग्यता को जोड़ने का सुझाव दिया था। हालाँकि, विज्ञापन में यह उल्लेख किए बिना कि वह प्रमाणपत्र किस संस्थान से होना चाहिए, इस आधार पर

20. विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट-ए संख्या 13847/2021 रिट याचिका को इस आधार पर अनुमति दी थी कि मुकदमे के पहले दौर में राज्य-प्रत्यर्थियों ने स्वयं स्पष्ट बयान दिया था कि सीसीसी प्रमाणपत्र आवश्यक योग्यता नहीं थी जो नियमों से भी स्पष्ट था। इसके विपरीत कुछ भी रिकॉर्ड में नहीं रखा गया । जबकि रिट याचिका संख्या 1782/2019 , 5076/2019 और 5140/2019 वाली रिट याचिकाओं को विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह कहते हुए अनुमति दी थी कि रिट याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी को इस आधार पर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि उनके पास नियमों के अनुसार डीओईएसीसी/ एनआईईएलआईटी से सीसीसी प्रमाणपत्र नहीं है और जबकि विज्ञापन में भी ऐसा कुछ नहीं कहा गया है।

21. हम राज्य सरकार के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए यह तर्क कि सरकारी कामकाज में बड़े पैमाने पर कम्प्यूटरीकरण के कारण, राज्य में सभी स्तरों पर कंप्यूटर ज्ञान की योग्यता आवश्यक है और यदि ऐसी योग्यता निर्धारित की गई थी और सभी अभ्यर्थी यह जानते हुए भी उन्होंने चयन प्रक्रिया में भाग लिया है, उन्हें किसी भी मुद्दे को उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। हालाँकि यह दावा किया गया था कि छठे किसी उम्मीदवार की उम्मीदवारी को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। सीसीसी प्रमाणपत्र की आवश्यकता हो सकती है, हालांकि, शर्त यह है कि यह

अनुवादित

डीओईएसीसी/एनआईईएलआईटी से ही होना चाहिए, न्यायिक जांच में यह टिक नहीं सकता है।

22. जहां तक **मुकुल कुमार त्यागी के मामले (उपरोक्त)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का सवाल है, वह राज्य के बचाव में नहीं आएगा क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई थी कि डीओईएसीसी / एनआईईएलआईटी के अलावा कोई अन्य संस्थान नहीं है, जो सीसीसी प्रमाणपत्र जारी करता हो। वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थियों ने विभिन्न संस्थानों के प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए हैं और राज्य सरकार के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस योग्यता को इनकार नहीं किया गया है।

23. विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किए गए विचार से सहमति जताते हुए, रिट-ए संख्या 1782/2019 और रिट-ए संख्या 13847/2021 तथा वर्तमान अपीलों का निस्तारण किया जाता है और रिट याचिकाकर्ताओं को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दी गई राहत का हकदार माना जाता है।

24. चूंकि विचाराधीन मुद्दे वर्ष 2016 में जारी एक विज्ञापन से संबंधित हैं, जिसके लिए चयन प्रक्रिया वर्ष 2019 में संपन्न हुई थी, उसी तरह की राहत का दावा करते हुए योजित की गई किसी भी अन्य रिट याचिका पर देरी और विलम्ब के सिद्धांत को ध्यान में रखकर गुणागुण के आधार पर विचार किया जाएगा।

(2023) 2 ILRA 449

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकः लखनऊ 17.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली,

रिट-ए संख्या 3597/2009

सी/एम नेशनल इंटर कॉलेज, बाराबंकी

...याचिकाकर्ता

बनाम

जे.डी. शिक्षा विभाग, फैजाबाद एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: नीरव चित्रवंशी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., शरद पाठक

सिविल कानून - इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 - विनियमन 31 - सेवानिवृत्ति के बाद सजा का आदेश - विपक्षी संख्या 3 सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर दिनांक 30.6.2002 को सेवानिवृत्त हो गया - प्रबंध समिति द्वारा आदेश दिनांक 29.6.2007 के तहत, विपक्षी संख्या 3 की निलंबन का प्रस्ताव पारित किया गया - आक्षेपित आदेश दिनांक 28.5.2009 द्वारा डी.आई.ओ.एस. निलंबन की प्रस्तावित सजा को अस्वीकार कर दिया और देय वेतन के भुगतान का निर्देश दिया - आयोजित - इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के तहत विनियमों में कर्मचारी की सेवानिवृत्ति आयु प्राप्त करने के पश्चात अनुशासनात्मक जांच करने और सजा आदेश पारित करने का कोई प्रावधान नहीं है और न ही ऐसा कोई प्रावधान है कि कदाचार साबित होने की स्थिति में,

अनुवादित

सेवानिवृत्ति लाभों से कटौती की जा सकती है - इसके अलावा गैर-शिक्षण कर्मचारियों की निलंबन के वाद में इंस्पेक्टर या क्षेत्रीय निरीक्षक की पूर्व मंजूरी आवश्यक है और यदि सेवा समाप्ति से पूर्व मंजूरी नहीं ली गई है तो सेवा समाप्ति अवैध है - प्रतिवादी क्रमांक 3 लिपिक पद पर लागू वेतन के बकाया भुगतान का हकदार है। (पैरा 25,26)

निस्तारित। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सी/एम सरस्वती लघु माध्यमिक विद्यालय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री नीरव चित्रवंशी, प्रतिवादी-राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता एवं प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री शरद पाठक को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 28.5.2009 के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हुए उत्प्रेषण प्रकृति की एक रिट जारी करने की प्रार्थना की है, साथ ही आक्षेपित आदेश पर अमल न करने का आदेश देने एवं विपक्षी संख्या 3 को याचिकाकर्ता के दिनांक 29.06.2007 के प्रस्ताव (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 18) के अनुसरण में सेवा से बर्खास्तगी का अनुमोदन देते हुए परमादेश प्रकृति की रिट जारी करने की भी प्रार्थना की है।

3. वाद के तथ्य यह हैं कि प्रबंध समिति नेशनल इंटर कॉलेज, फतेहपुर, बाराबंकी (इसके बाद 'सोसाइटी' के रूप में संदर्भित), सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अंतर्गत पंजीकृत एक सोसायटी है जो अपनी प्रबंधन समिति के माध्यम से नेशनल इंटर कॉलेज, फ़तेहपुर, बाराबंकी का प्रबंधन एवं संचालन करती है, जो इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के साथ-साथ प्रशासन की अनुमोदित योजना के अनुसार निर्वाचित की जाती है। कॉलेज एक मान्यता प्राप्त सहायता प्राप्त संस्थान है।

विरोधी पक्षकार संख्या 3 नेशनल इंटर कॉलेज, फतेहपुर, बाराबंकी (इसके बाद 'कॉलेज' के रूप में संदर्भित) में सहायक लिपिक के पद पर कार्यरत था, जिसे कॉलेज के पुस्तकालय का प्रभार सौंपा गया था। 24.1.2007 को याचिकाकर्ता द्वारा अत्यंत गंभीर प्रकृति के कई आरोपों के संबंध में अनुशासनात्मक जाँच पर विचार करते हुए विपक्षी संख्या 3 को निलंबित कर दिया गया था। निलंबन आदेश दिनांक 24.2.2007 के पत्र द्वारा विपक्षी संख्या 2 को अनुमोदन हेतु भेजा गया था। याचिकाकर्ता के दिनांक 24.01.2007 के प्रस्ताव द्वारा ही विपक्षी संख्या 3 के विरुद्ध जाँच करने हेतु भी कॉलेज के प्रबंधक को जाँच अधिकारी नियुक्त किया गया था।

इसके बाद दिनांक 14.3.2007 को विपक्षी संख्या 2 ने विपक्षी संख्या 3 के निलंबन के आदेश का अनुमोदन कर दिया

अनुवादित

था। इस बीच, जाँच अधिकारी ने दिनांक 9.2.2007 को सभी प्रासंगिक सामग्रियों के साथ सात गंभीर आरोपों से युक्त आरोप पत्र विपक्षी संख्या 3 को सौंप दिया था, जिसे पहले विपक्षी संख्या 3 द्वारा व्यक्तिगत रूप से प्राप्त करने से इनकार कर दिया गया था। उनसे आरोप-पत्र पर निर्धारित समय के भीतर अपना उत्तर प्रस्तुत करने को कहा था।

आरोप पत्र तामील होने के बावजूद विपक्षी क्रमांक 3 द्वारा निर्धारित समयावधि में आरोप पत्र का कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया गया। जाँच अधिकारी ने दिनांक 14.2.07, 17.2.07, 21.02.07, 05.03.07 एवं 14.03.07 सहित कई पत्रों एवं अनुस्मारकों के माध्यम से विपक्षी संख्या 3 को आरोप पत्र पर अपना उत्तर प्रस्तुत करने हेतु कहा एवं साथ ही उनसे जाँच कराने हेतु उक्त पत्रों एवं अनुस्मारक में दिनांक एवं समय निर्धारित करते हुए जाँच में भाग लेने का अनुरोध किया था, एवं विशेष रूप से विपक्षी संख्या 3 को निर्दिष्ट तिथि एवं समय पर उनके समक्ष उपस्थित होने हेतु कहा था, एवं यह भी कि यदि उन्हें कोई दस्तावेज चाहिए या किसी भी अभिलेख की जाँच करनी हो तो वह निर्दिष्ट तिथि एवं समय पर कर सकता है।

कई पत्रों एवं अनुस्मारकों के बावजूद, विपक्षी संख्या 3 ने आरोप पत्र पर कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया एवं न ही वह उक्त पत्रों एवं अनुस्मारकों में निर्दिष्ट तिथि एवं समय पर कभी जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ, अपितु वह इस संबंध में टाल-मटोल की रणनीति अपनाकर एवं पत्र लिखकर जाँच को लम्बा खींचता रहा।

इसके बाद, जाँच अधिकारी ने कोई अन्य विकल्प न होने पर एकपक्षीय जाँच पूर्ण की एवं याचिकाकर्ता को 16.04.2007 को अपनी रिपोर्ट सौंपी, जिसमें याचिकाकर्ता के विरूद्ध लगाए गए सभी आरोप साक्ष्यों एवं अभिलेख पर मौजूद सामग्री के आधार पर सिद्ध पाए गए।

17.4.2007 को, जाँच अधिकारी ने विपक्षी संख्या 3 को जाँच रिपोर्ट के साथ एक कारण बताओ नोटिस जारी किया, जिसमें उनसे आरोप-पत्र या जाँच रिपोर्ट पर कोई भी उत्तर या अभ्यावेदन, यदि कोई हो, प्रस्तुत करने हेतु अंतिम अवसर दिया गया। उक्त नोटिस के उत्तर में, विरोधी पक्षकार संख्या 3 ने कुछ दस्तावेजों की मांग करते हुए एक पत्र प्रस्तुत किया, हालांकि आरोप-पत्र में संदर्भित सभी सामग्री पहले ही विरोधी पक्षकार संख्या 3 को उपलब्ध करा दी गई थी।

तत्पश्चात, जाँच अधिकारी ने कारण बताओ नोटिस एवं सभी प्रासंगिक सामग्री के साथ अपनी जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की एवं 5.5.2007 को याचिकाकर्ता के समक्ष जाँच के दौरान विरोधी पक्षकार संख्या 3 के आचरण की व्याख्या भी की एवं याचिकाकर्ता ने एक नोटिस जारी किया। विरोधी पक्षकार संख्या 3 ने 6.5.2007 को याचिकाकर्ता की बैठक की तारीख 20.5.2007 तय की एवं विरोधी पक्षकार संख्या 3 को याचिकाकर्ता के समक्ष उक्त

अनुवादित

तिथि को उपस्थित रहने हेतु कहा था एवं यह भी कहा था कि यदि वह चाहे तो अपना वाद याचिकाकर्ता के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है।

याचिकाकर्ता के उक्त नोटिस के उत्तर में विरोधी पक्षकार संख्या 3 निर्धारित तिथि पर उसके समक्ष उपस्थित हुआ एवं कुछ दस्तावेजों की मांग करते हुए एक पत्र प्रस्तुत किया। हालाँकि सारी सामग्री विरोधी पक्षकार संख्या 3 को पहले ही उपलब्ध करा दी गई थी, लेकिन उदार रुख अपनाते हुए याचिकाकर्ता ने पत्र दिनांक 20/24.5.07 के माध्यम से विरोधी पक्षकार संख्या 3 को सभी प्रासंगिक दस्तावेज़ उपलब्ध करा दिए। लेकिन उक्त दस्तावेज़ प्राप्त होने के बाद भी, विरोधी पक्षकार संख्या 3 ने कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया एवं मात्र कार्यवाही को लंबा खींचने हेतु पुनः कुछ दस्तावेजों की मांग करते हुए एक पत्र प्रस्तुत किया, हालांकि उत्तर प्रस्तुत करने हेतु उनकी कोई प्रासंगिकता नहीं है।

जब विरोधी पक्षकार संख्या 3 फिर से आरोप-पत्र या जाँच रिपोर्ट पर कोई उत्तर या अभ्यावेदन प्रस्तुत करने या अपना मामला प्रस्तुत करने में विफल रहा, तो जाँच अधिकारी ने जाँच के दौरान एवं निलंबन के उपरांत विपक्षी संख्या 3 के आचरण को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ता के समक्ष 10.6.2007 को अपनी पूरक रिपोर्ट भी प्रस्तुत करी जिसमें पूर्व जाँच रिपोर्ट के दृष्टिगत विरोधी पक्षकार संख्या 3 के विरूद्ध सभी आरोप सिद्ध पाए गए।

तदोपरांत, याचिकाकर्ता ने 29.06.07 को हुई अपनी बैठक में आरोप पत्र, जाँच रिपोर्ट, नोटिस, उसके उत्तर के साथ-साथ अभिलेख पर उपस्थित सभी प्रासंगिक सामग्री एवं साक्ष्य सहित विरोधी पक्षकार संख्या 3 के पूरे मामले पर विचार किया एवं सर्वसम्मति से विपक्षी संख्या 3 की सेवाओं की बर्खास्तगी का प्रस्ताव पारित किया।

इसके बाद, याचिकाकर्ता के उक्त प्रस्ताव को इस संबंध में समस्त प्रासंगिक सामग्री के साथ-साथ आरोप-पत्र, जाँच रिपोर्ट, नोटिस, उसके उत्तर के साथ-साथ अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री को याचिकाकर्ता द्वारा विरोधी पक्षकार संख्या 2 को दिनांक 6.7.07 को उनके पूर्व अनुमोदन हेतु भेजा गया था। दिनांक 6.7.07 को पत्र प्रस्तुत करने के बाद याचिकाकर्ता ने कभी भी विरोधी पक्षकार संख्या 2 से कुछ नहीं सुना एवं न ही उसे इस संबंध में विरोधी पक्षकार संख्या 2 द्वारा की गई किसी कार्यवाही के बारे में कोई जानकारी दी गई। फरवरी, 2009 के मध्य में ही याचिकाकर्ता को पता चला कि विरोधी पक्षकार संख्या 2 ने 10.2.09 को कोई आदेश पारित किया है, जिसके अंतर्गत उसने याचिकाकर्ता के निलंबन के आदेश के साथ-साथ प्रस्ताव को भी अपास्त कर दिया है एवं पत्र दिनांकित 6.7.07 द्वारा विरोधी पक्षकार संख्या 3 की बर्खास्तगी के संबंध में पत्र जारी कर सेवा में पुनः स्थापित करने हेतु निदेशित किया है।

अनुवादित

उक्त आदेश दिनांक 10.02.2009 में विरोधी पक्षकार संख्या 2 ने उल्लेख किया है कि विरोधी पक्षकार संख्या 3 ने उन्हें 29.01.09 को कोई अभ्यावेदन दिया था जिस पर उन्होंने 09.02.09 को मामले में तारीख नियत करते हुए याचिकाकर्ता से रिपोर्ट मांगी थी। लेकिन इससे यह उजागर नहीं होता है कि विरोधी पक्षकार संख्या 2 ने याचिकाकर्ता को मामले की जानकारी देते हुए किस तारीख को कोई पत्र या आदेश जारी किया एवं कॉलेज में उक्त पत्र या आदेश किसे तामील कराया गया। यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि विरोधी पक्षकार संख्या 2 का ऐसा कोई पत्र या आदेश, कॉलेज में कभी प्राप्त नहीं हुआ था एवं न ही ऐसी कोई कथित जानकारी कभी प्राप्त हुई थी, एवं इस प्रकार याचिकाकर्ता को ऐसी किसी भी कथित कार्यवाही के संबंध में कोई जानकारी नहीं थी। चूँकि उक्त आदेश दिनांक 10.02.2009, सहायक प्रबंधक द्वारा किये गए अनधिकृत अभ्यावेदन के आधार पर याचिकाकर्ता को कोई अवसर प्रदान किए बिना एक पक्षीय रूप से पारित किया गया था, साथ ही विरोधी पक्षकार संख्या 2 ने इस संबंध में याचिकाकर्ता के प्रस्ताव एवं जाँच से संबंधित अभिलेखों पर भी विचार नहीं किया, अतः याचिकाकर्ता ने 10.02.2009 के आदेश को चुनौती देते हुए इस माननीय न्यायालय के रिट याचिका संख्या 2495/2009 (एसएस) (नेशनल इंटर कॉलेज प्रबंधन समिति बनाम संयुक्त निदेशक शिक्षा एवं अन्य) दायर की है। उक्त रिट याचिका का निस्तारण, निर्णय एवं आदेश दिनांक 29.4.2009 द्वारा किया गया, जिसमें विरोधी पक्षकार संख्या 2 को, याचिकाकर्ता को अवसर प्रदान करने के साथ-साथ याचिकाकर्ता एवं विरोधी पक्षकार संख्या 3 द्वारा प्रस्तुत अभिलेख को ध्यान में रखते हुए नए सिरे से विचार करने एवं आदेश पारित करने का निदेश दिया गया।

यद्यपि याचिकाकर्ता द्वारा जाँच एवं पारित प्रस्ताव से संबंधित संपूर्ण अभिलेख 06.07.2007 को ही विरोधी पक्षकार संख्या 2 के समक्ष प्रस्तुत किए जा चुके हैं, लेकिन इस न्यायालय द्वारा दिनांक 29.4.2009 को पारित निर्णय एवं आदेश के अनुपालन में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 18.05.2009 को पुनः आरोप-पत्र, जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ याचिकाकर्ता के संकल्प आदि सहित सभी आवश्यक सामग्री के साथ विरोधी पक्षकार संख्या 2 के समक्ष एक विस्तृत अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, ताकि विरोधी पक्षकार संख्या 3 की बर्खास्तगी का अनुमोदन प्राप्त किया जा सके।

विरोधी पक्षकार ने याचिकाकर्ता के उक्त अभ्यावेदन की प्राप्ति की स्वीकृति दी एवं 18.5.2009 को ही एक पत्र जारी कर वाद में सुनवाई की अगली तिथि 27.05.2009 दोपहर 12.00 बजे तय की। विरोधी पक्षकार संख्या 2 ने भी विरोधी पक्षकार संख्या 3 से सामग्री, यदि कोई हो, निर्धारित तिथि पर या उससे पूर्व प्रस्तुत करने की अपेक्षा की। विरोधी पक्षकार संख्या 2 द्वारा निर्धारित तिथि अर्थात 27.5.2009 को महाविद्यालय के प्रबंधक दोपहर 12.00 बजे विरोधी पक्षकार संख्या 2 के कार्यालय गए एवं 2.00 बजे तक उपस्थित रहे, किन्तु विरोधी पक्षकार

अनुवादित

संख्या 2 उक्त अवधि में अपने कार्यालय नहीं आये। इन परिस्थितियों में, प्रबंधक ने विरोधी पक्षकार संख्या 2 के कार्यालय में उपरोक्त स्थिति का उल्लेख करते हुए एक पत्र प्रस्तुत किया, मामले में निर्धारित की जाने वाली अगली तिथि के बारे में सूचित करने का अनुरोध किया एवं फिर उसने विरोधी पक्षकार संख्या 2 का कार्यालय छोड़ दिया। तदोपरांत याचिकाकर्ता ने विरोधी पक्षकार संख्या 2 के कार्यालय से मामले में निर्धारित किसी अगली तिथि या इस संबंध में किसी अन्य सूचना के संबंध में कभी कुछ नहीं सुना। हालाँकि, 30.5.2009 को याचिकाकर्ता को ज्ञात हुआ कि विरोधी पक्षकार संख्या 2 ने दिनांक 28.05.2009 को पुनः एकपक्षीय आदेश पारित किया है, जिसमें निलंबन के आदेश के साथ-साथ सेवा से बर्खास्तगी के अनुमोदन हेतु पत्र को भी अपास्त कर दिया गया है, एवं विपक्षी संख्या 3 के अवशेष वेतन के भुगतान हेतु निदेशित किया गया है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अभिकथन किया कि विरोधी पक्षकार संख्या 2 द्वारा पारित आदेश अवैध, दुर्भावनापूर्ण एवं मस्तष्कि की अप्रयोज्यता से ग्रस्त है, इसलिए यह रद्द किए जाने योग्य है क्योंकि उन्होंने विरोधी पक्षकार संख्या 3 की सेवाओं को बर्खास्त करने की मंजूरी देने के संबंध में निर्णय लेने हेतु उनके समक्ष अभिलेख पर उपस्थित समस्त सामग्री एवं साक्ष्य को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है, जो विस्तृत जाँच के बाद उन्हें सौंपे गए हैं।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 16 के साथ-साथ प्राकृतिक न्याय, साम्य एवं शुद्ध अंतःकरण के सिद्धांतों का पूर्ण उल्लंघन करते हुए, याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना विरोधी पक्षकार संख्या 2 द्वारा प्रश्नगत आदेश पारित किया गया है जो रद्द किये जाने योग्य है।

6. पुनः याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि विरोधी पक्षकार संख्या 2 ने भी याचिकाकर्ता को मामले में तय की गई किसी अगली तिथि के संबंध में सूचित नहीं किया, जैसा कि पत्र दिनांक 27.5.2009 में अनुरोध किया गया था एवं याचिकाकर्ता को तय की गई तिथि अर्थात 28.5.2009 के संबंध में कोई सूचना नहीं दी गई थी अर्थात जैसा कि आक्षेपित आदेश में आरोप लगाया गया है, इस तथ्य का विरोधी पक्षकार संख्या 2 द्वारा भी गलत उल्लेख किया गया है।

7. पुनः याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अभिकथन किया कि विरोधी पक्षकार संख्या 2 ने भी आक्षेपित आदेश में इस तथ्य का गलत उल्लेख किया है कि याचिकाकर्ता ने संदर्भित वाद में कोई भी सामग्री एवं साक्ष्य पेश नहीं किया, यहाँ तक कि वह पूरी सामग्री पर यह विचार करने में भी असफल रहा कि जाँच के साथ-साथ याचिकाकर्ता के प्रस्ताव के संबंध समस्त सामग्री में दिनांक 6.7.2007 के पत्र के साथ उसके समक्ष विरोधी पक्षकार संख्या 3 की बर्खास्तगी के अनुमोदन के अनुरोध

अनुवादित

सहित प्रस्तुत की गई थी। उन्होंने आगे कहा कि विरोधी पक्षकार संख्या 2 इस बात पर भी विचार करने में विफल रहा है कि याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के निर्णय एवं आदेश के अनुपालन में 18.5.2009 को पुनः अपने अभ्यावेदन के साथ याचिकाकर्ता द्वारा जाँच एवं उसके संकल्प से संबंधित समस्त आवश्यक सामग्री प्रस्तुत की है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पुन: कहा कि विरोधी पक्षकार संख्या 2 यह विचार करने में भी विफल रहा है कि याचिकाकर्ता द्वारा विरोधी पक्षकार संख्या 3 को सेवा से बर्खास्त करने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से अभिलेख पर उपस्थित दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर एक विस्तृत जाँच के उपरांत पारित किया गया था एवं उक्त जाँच से संबंधित संपूर्ण सामग्री विरोधी पक्षकार संख्या 2 के समक्ष दिनांक 6.7.2007 के पत्र के साथ प्रस्तुत की गई, जिसमें विरोधी पक्षकार संख्या 3 की सेवाओं को खारिज करने हेतु उनका पूर्व अनुमोदन वांछित था। उन्होंने आगे कहा कि विरोधी पक्षकार संख्या 2 को कोई भी निर्णय मात्र उनके समक्ष अभिलेख पर उपस्थित सामग्री के आधार पर लेना चाहिए था, अन्यथा नहीं।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि एक ओर, विरोधी पक्षकार संख्या 2, विरोधी पक्षकार संख्या 3 की बर्खास्तगी हेतु अनुमोदन देने के निर्णय लेने के मामले में विधि के अनुसार कार्य नहीं कर रहा है एवं बार-बार अन्य कारणों से आदेश पारित कर रहा है एवं दूसरी ओर, विरोधी पक्षकार संख्या 2 याचिकाकर्ता को विरोधी पक्षकार संख्या 3 को वेतन का भुगतान करने हेतु बाध्य कर रहा है।

10. इसके विपरीत, प्रतिवादी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि वर्ष 2009 की रिट याचिका संख्या 2495 (एसएस) में माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.4.2009 के अनुसार प्रबंध समिति एवं अजय कुमार निगम को सुनवाई हेतु पत्र भेजे गए थे एवं उसके बाद उन्हें वाद की सुनवाई का उचित अवसर देते हुए संबंधित पक्षों द्वारा विरोधी पक्षकार संख्या 2 को उपलब्ध कराए गए दस्तावेजों के आधार पर निर्णय लिया गया।

11. राज्य प्रतिवादीगण हेतु विद्वान अधिवक्ता ने पुन:अभिकथन प्रस्तुत किया कि वर्तमान प्रबंध समिति से विरोधी पक्षकार संख्या 3 दिनांक 29.1.2009 के अभ्यावेदन पर प्रस्तरवार उत्तर मांगा गया था, लेकिन कॉलेज के सहायक प्रबंधक ने तत्कालीन जिला विद्यालय निरीक्षक को सूचित किया कि विगत प्रबंध समिति द्वारा वर्तमान प्रबंध समिति को कोई दस्तावेज उपलब्ध कराया गया था एवं वर्तमान प्रबंध समिति को विरोधी पक्षकार संख्या 3 के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है एवं कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराया गया था, एवं इसलिए तदनुसार प्रश्नगत आदेश पारित किया गया, एवं निलंबन तथा विरोधी पक्षकार संख्या 3 की बर्खास्तगी को खारिज कर दिया गया।

12. प्रतिवादी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने अभिकथन प्रस्तुत किया कि तत्कालीन जिला विद्यालय निरीक्षक ने याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन दिनांक

अनुवादित

18.5.2009 एवं 27.5.2009 पर दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर देकर पूरे मामले का निर्णय लिया है, तथा याचिकाकर्ता के अनुरोध पर सुनवाई की तिथि 27.5.2009 के स्थान पर दिनांक 28.05.2009 कर दी गई है।

13. प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता ने, प्रतिवादी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अभिकथनों को मानते हुए यह अभिकथन प्रस्तुत किया कि रिट याचिका में याचिकाकर्ता को निर्वाह भत्ता का भुगतान न करने के संबंध में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि जीवन निर्वाह भत्ते के भुगतान के संबंध में बिल जिला विद्यालय निरीक्षक कार्यालय को भेज दिया गया है, लेकिन जिला विद्यालय निरीक्षक कार्यालय की त्रुटि के कारण जीवन निर्वाह भत्ता का भुगतान नहीं किया गया है।

14. प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता ने पुन: प्रस्तुत किया कि एक और विपरीत रुख अपनाया गया है कि चूँकि याचिकाकर्ता कॉलेज नहीं आया था एवं उसने निर्वाह भत्ते के भुगतान हेतु अनुरोध नहीं किया था, इसलिए निर्वाह भत्ता देने से इनकार कर दिया गया है।

15. प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता का विरोधाभासी रुख ही याचिकाकर्ता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत असाधारण क्षेत्राधिकार के अंतर्गत इस माननीय न्यायालय की शरण में जाने से वंचित करता है। तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता को जीवन निर्वाह भत्ता का भुगतान नहीं किया गया है एवं याचिकाकर्ता ने इसके भुगतान हेतु बार-बार अनुरोध किया है। याचिकाकर्ता के बार-बार जीवन निर्वाह भत्ते के भुगतान के अनुरोध पर तत्कालीन प्रबंधक (श्री प्रभाकर दत्त शुक्ल) ने स्वयं निर्वाह भत्ते के भुगतान का निदेश दिया एवं कार्यवाहक प्रधानाचार्य को निर्वाह भत्ते के भुगतान हेतु दिनांक 13.11.2007 एवं पुन: दिनांक17.11.2008 को बिल तैयार करने का निर्देश दिया।

16. पुनः प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि 27.5.2009 को जिला विद्यालय निरीक्षक ने जब यह पाया कि मामले में कोई जाँच नहीं की गई है, तो यह टिप्पणी की कि अभिसाक्षी के विरूद्ध पूरी कार्यवाही अवैध है एवं फिर श्रीमती सुमन सिंह द्वारा स्थगन की मांग की गई थी।

17. प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता न केवल तथ्यों को छिपाने का दोषी हैं, बल्कि निर्दोष रुप में माननीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत न होने का भी दोषी हैं एवं इसलिए, वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय द्वारा खारिज किये जाने योग्य है।

18. प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि विरोधी पक्षकार संख्या 3 सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है। बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 एवं अधिनियम 1978 में अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए उनका कहना है कि सेवानिवृत्ति के पश्चात अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी

अनुवादित

रखने हेतु अधिनियम के अंतर्गत किसी प्रावधान के अभाव में याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकती है। इस प्रकार वह समस्त उपलब्ध लाभों का अधिकारी है।

अपने वाद के समर्थन में, प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता ने **सी/एम सरस्वती लघु माध्यमिक विद्यालय बनाम उ.प्र.राज्य एवं अन्य** के वाद में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश 18.1.2021 पर विश्वास व्यक्त किया है।

19. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अभिकथनों पर विचार किया है एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया है।

20. प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संदर्भित **सी/एम सरस्वती लघु माध्यमिक विद्यालय (उपरोक्त)** के वाद में, इस न्यायालय ने प्रस्तर 14,15,16 एवं 17 में निम्नवत धारित किया है:-

"14: अभिलेख के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि शिक्षा निदेशक (बेसिक) ने प्रबंध समिति को प्रतिवादी संख्या 5 को वेतन के साथ-साथ अवशेष वेतन का भुगतान करने का निदेश दिया है। शिक्षा निदेशक (बेसिक) को, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा पारित किसी भी आदेश के अभाव में, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी की शक्ति को हड़पने का कोई अधिकार नहीं है। लेकिन वास्तव में, प्रतिवादी संख्या 5 के विरुद्ध प्रारंभ की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही एवं जिला बेसिक को दिया गया प्रस्ताव, वर्ष 1978 की नियमावली के नियम 15 के अंतर्गत अपेक्षित अनुमोदन के अधीन है। उ.प्र. मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (शिक्षकों की भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1978 के नियम 15 के अंतर्गत निहित प्रावधान नीचे उद्धृत किया गया है: -

"15. सेवा की समाप्ति- सिवाय जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी के लिखित पूर्वानुमोदन के किसी मान्यता प्राप्त स्कूल का प्रधानाध्यापक या सहायक अध्यापक न तो सेवा से मुक्त न सेवा से हटाया, न पदच्युत, न पदावनत किया जा सकता है; न उसकी परिलब्धियों में कोई कमी की जा सकती है और न ही उसे सेवा समाप्ति की नोटिस दी जा सकती है।

परन्तु किसी अल्पसंख्यक संस्था के प्रधानाध्यापक या सहायक अध्यापक की स्थिति में, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी का अनुमोदन आवश्यक नहीं होगा।

*15: **भागीरथी जेना बनाम निदेशक मंडल ओ.एस.एफ.जी. एवं अन्य [एआईआर 1999 एससी 1841],** के वाद में अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने एवं सेवानिवृत्ति के बाद वेतन के भुगतान के संबंध में विवाद माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार हेतु प्रस्तुत किया गया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सेवानिवृत्ति के पश्चात अनुशासनात्मक कार्यवाही पर विचार करते हुए निम्नानुसार कहा है:-*

"उपरोक्त नियमों से यह देखा जाएगा कि विभागीय जाँच में निर्धारित किसी भी कदाचार के परिणामस्वरूप भविष्य निधि से

अनुवादित

किसी भी राशि की कटौती हेतु कोई विशेष प्रावधान नहीं किया गया था, एवं न ही अधिवर्षता के पश्चात विभागीय जाँच जारी रखने हेतु कोई प्रावधान किया गया था, उपरोक्त नियमों में इस तरह के प्रावधान की अनुपस्थिति को देखते हुए, यह माना जाना चाहिए कि निगम के पास अपीलकर्ता के सेवानिवृत्ति लाभों में कोई भी कमी करने का कोई विधिक अधिकार नहीं था। अपीलकर्ता की सेवानिवृत्ति के पश्चात अनुशासनात्मक जाँच करने का कोई प्रावधान नहीं है एवं न ही ऐसा कोई प्रावधान है जिसके अनुसार कदाचार स्थापित होने पर सेवानिवृत्ति लाभों में कटौती की जा सकती है। एक बार जब अपीलकर्ता दिनांक 30.6.95 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया था तब उसे देय सेवानिवृत्ति लाभों में कोई कटौती करने के उद्देश्य से भी निगम में कोई अधिकार निहित नहीं था या विभागीय जाँच जारी रखने का कोई अधिकार नहीं था। ऐसे अधिकार के अभाव में, यह माना जाना चाहिए कि जाँच समाप्त हो गई थी एवं अपीलकर्ता सेवानिवृत्ति पर पूर्ण सेवानिवृत्ति लाभों का अधिकारी था।

प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने ***टी.एस. मांकड़ बनाम गुजरात राज्य [1989]Suppl.2 एससीसी 110*** *निर्णय विधि में इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है। यह सत्य है कि यह कर्मचारी की असंतोषजनक सेवा के कारण पेंशन एवं उपादान में कटौती करने का वाद था, जैसा कि एक जाँच में निर्धारित किया गया था, जिसे सेवानिवृत्ति की तारीख से आगे बढ़ा दिया गया था। लेकिन उपरोक्त निर्णय का लाभ प्रतिवादी को नही दिया जा सका क्योंकि उस वाद में जूनागढ़ राज्य पेंशन एवं प्रवाशी भत्ता नियमावली, 1932 के नियम 241-ए जो कि विशिष्ट नियम था का अनुप्रयोग था जो किसी व्यक्ति की सेवानिवृत्ति उपरांत पेंशन या उपादान में कटौती करने में सक्षम बनाता था। इसके अतिरिक्त, उस वाद में ऐसे नियम थे जो यह पता लगाने हेतु सेवानिवृत्ति के बाद भी विभागीय जाँच जारी रखने में सक्षम बनाते थे कि क्या कोई कदाचार स्थापित होता है जिसे नियम 241-ए के प्रयोजन हेतु ध्यान में रखा जा सकता है। प्रतिवादी निगम की विनियमावली में समान प्रावधान के अभाव में, मांकड़ के वाद का उपरोक्त निर्णय का लाभ प्रतिवादी को नहीं दिया जा सकता है।*

अनुवादित

अपील में अपीलकर्ता को निलंबन अवधि के दौरान एवं अधिवर्षता की तिथि तक देय अवशेष एवं अन्य भत्तों के भुगतान के संबंध में भी प्रश्न उठाया गया है। यद्यपि जाँच समाप्त हो गई थी, हमारी राय में, यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता को उपरोक्त अवधि के दौरान भुगतान किए गए निलंबन भत्ते की कटौती के बाद उसे देय परिलब्धियों की शेष राशि प्रदान करनी होगी।

इसलिए प्रतिवादी को उक्त अवधि हेतु अपीलकर्ता को भुगतान किए गए निलंबन भत्ते की कटौती के बाद अधिवर्षता के दिनांक तक निलंबन की अवधि के दौरान उसे देय वेतन एवं भत्तों की शेष राशि का भुगतान करने एवं सभी सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान करने का निदेश देते हुए अपील स्वीकार की जाती है एवं लागू नियमों एवं विनियमों के अनुसार भी उसे अन्यथा देय लाभों का भुगतान करने का निदेश दिया जाता है जैसे कि वहाँ कोई अनुशासनात्मक जाँच या आदेश पारित नहीं किया गया हो।"

ऐसी परिस्थिति में उच्च न्यायालय के निर्णय एवं आदेश को अपास्त किया जाता है। अपीलकर्ता की रिट याचिका ऊपर दिए गए निदेशों के अनुसार स्वीकार की जाती है। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है।"

*16: **रवींद्र सिंह राठौड़ बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक एवं अन्य** के वाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने रिट याचिका संख्या 16905 वर्ष 2000 के निर्णय एवं आदेश दिनांक 26.9.2003 में यह धारित किया है कि प्रावधान के अभाव में, सेवानिवृत्ति के पश्चात कोई भी अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी नहीं रह सकती है एवं कर्मचारी पद हेतु अनुमन्य सभी परिणामी लाभों का अधिकारी है। प्रासंगिक प्रस्तर 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31 एवं 32 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:-*

"23. जैसा कि यहाँ पहले देखा गया है, कि ऐसा कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है जो उ.प्र. राज्य में किसी सहायता प्राप्त संस्थान के कर्मचारी शिक्षक अथवा प्रधानाचार्य के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने का अधिकार देता हो। वर्ष 1964 की नियमावली के नियम 30 एवं 32 भी किसी व्यक्ति के सेवानिवृत्त होने के बाद विभागीय जाँच प्रारंभ रखने का अधिकार नहीं देते हैं। इस प्रकार, अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी

अनुवादित

नहीं रह सकती थी एवं यह समाप्त हो गई।

24. ***भारतीय स्टेट बैंक बनाम ए.एन.गुप्ता एवं अन्य, (1997) 8 एससीसी 60****, के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय इस प्रश्न पर विचार कर रहा था कि क्या भारतीय स्टेट बैंक के कर्मचारी के वाद में सेवानिवृत्ति के बाद विभागीय जाँच प्रारंभ रखी जा सकती है। सर्वोच्च न्यायालय ने* ***टी. नरसैया बनाम भारतीय स्टेट बैंक, (1978) 2 एलएलजे 173*** *में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय पर विचार किया। निर्णय के प्रस्तर 14 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय निम्नानुसार धारित किया:*

*"14. आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष वाद****(टी. नरसैया)*** *में याचिकाकर्ता स्टेट बैंक में एक अधिकारी थे। उनके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी, किन्तु इन्हें पूरा करने से पूर्व अधिकारी को बैंक द्वारा पत्र दिनांक 5.5.1976 के माध्यम से सूचित किया गया था कि अधिकारी के 60 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पूर्व समय पर जाँच पूरी करना बैंक हेतु संभव नहीं था जो उनकी अधिवर्षता की तिथि थी। उन्हें बताया गया कि अपनी अधिवर्षता की तिथि से वह बैंक की सेवा में नियोजित नही रहेंगे एवं उन्हें उस दिनांक से कोई निर्वाह भत्ता नहीं दिया जाएगा अधिकारी को 10.5.1976 से सेवानिवृत्त माना गया एवं बैंक में उनके नियोजन की समाप्ति मानी गई।*

अधिकारी ने अपनी भविष्य निधि एवं पेंशन का दावा किया एवं बैंक द्वारा इसका भुगतान करने से इनकार करने पर एक रिट याचिका प्रस्तुत की गई। रिट याचिका की सुनवाई के दौरान बैंक द्वारा यह अभिकथन किया गया कि उसने अधिकारी को संपूर्ण भविष्य निधि का भुगतान करने का निर्णय लिया है एवं बैंक को पेंशन में उनके योगदान का भुगतान करने में भी कोई आपत्ति नहीं है। जहाँ तक पेंशन निधि में बैंक के योगदान के भुगतान का संबंध है, अधिकारी तब तक इसका हकदार नहीं था जब तक कि बैंक पेंशन नियमावली के नियम 11 को अनुसार इसे स्वीकृति न दे देता। अधिकारी द्वारा आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि नियम 11 की उनके वाद में कोई प्रयोज्यता नहीं है, एवं सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर वह स्वचालित रूप से बैंक की सेवा से बाहर हो गए हैं। हालाँकि, बैंक ने पेंशन निधि में बैंक के

अनुवादित

योगदान को रोकने हेतु नियम 11 पर विश्वास व्यक्त किया। न्यायालय का विचार था कि नियम 11 को उक्त नियम के उद्देश्य के संदर्भ में एवं उसके अनुरूप पढ़ा जाना चाहिए। न्यायालय द्वारा यह धारित किया गया कि उक्त नियम न केवल नियम 19 द्वारा अपेक्षित सेवानिवृत्ति के वाद में लागू होता है, अपितु सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर कर्मचारियों की सेवानिवृत्ति के मामलों में भी लागू होता है। न्यायालय ने टिप्पणी की यह संभव है कि किसी कर्मचारी के कदाचार का पता उसकी सेवानिवृत्ति से पूर्व नहीं लगाया जा सका ताकि वाद में अनुशासनात्मक जाँच प्रारंभ एवं पूर्ण की जा सके, एवं ऐसा मामला भी हो सकता है जहाँ अनुशासनात्मक जाँच प्रारंभ की गई परंतु अपराधी कर्मचारी द्वारा अधिवर्षता की आयु प्राप्त करने से पूर्व पूरा नहीं किया जा सका। अतः न्यायालय का यह मत था कि बैंक की सेवा नियमावली में किसी कर्मचारी की सेवा विस्तार का कोई प्रावधान नहीं है ताकि अधिकारियों को उसके विरूद्ध अनुशासनात्मक जाँच पूर्ण करने में सक्षम बनाया जा सके, जैसा कि सरकारी सेवा नियमावली के अंतर्गत उपलब्ध था। न्यायालय ने कहा कि यदि किसी कर्मचारी के विरूद्ध जाँच लंबित है तो भी उसे अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त होने से कोई नहीं रोक सकता। उसकी सेवानिवृत्ति के पश्चात जाँच जारी नहीं रह सकी। अतः न्यायालय का मत था कि यही कारण है कि बैंक ने नियम 11 के अंतर्गत पेंशन लाभ को स्वीकृति देने की शक्ति अपने पास सुरक्षित रखी है ,एवं यदि किसी कर्मचारी की सेवा में कुछ भी गलत नहीं है, तो बैंक स्वाभाविक रूप से पेंशन की स्वीकृति दे देगा। लेकिन यदि कर्मचारी द्वारा गंभीर अनियमितताओं को प्रकट करने वाली पर्याप्त सामग्री थी, तो बैंक पेंशन लाभों की स्वीकृति देने से इंकार करने अथवा उन्हें मात्र आंशिक रूप से स्वीकृति देने हेतु पर्याप्त सशक्त था। आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने तब निम्नवत धारित किया:

"निश्चित रूप से इस प्रकार का निर्णय न्यायोचित होगा, जिसका अनिवार्य रूप से तात्पर्य है कि जाँच के पश्चात, संबंधित अधिकारी को आरोप के विरूद्ध स्वयं का बचाव करने का उचित अवसर दिया जाए। ऐसी जाँच

अनुवादित

सामान्य तौर पर निबंधन के सामान्य अर्थों के अंतर्गत 'अनुशासनात्मक जाँच' नहीं होगी , किंतु एक ऐसी जाँच होगी जो नियमों के उद्देश्यों तक ही सीमित हो, जैसे कि क्या कर्मचारी को कोई पेंशन लाभ दिया जाना चाहिए; एवं यदि हाँ, तो किस सीमा तक? ऐसी जाँच अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर, सेवानिवृत्ति (कर्मचारी की; एवं विशेष रूप से सेवानिवृत्ति के मामलों में) के पश्चात भी की जा सकती है। संभवतः, ऐसी जाँच सेवानिवृत्ति के बाद ही संपादित की जानी होगी।"

अतः, न्यायालय ने यह निदेश दिया कि अधिकारी के विरुद्ध जाँच कैसे की जाए ताकि दोषमुक्त होने पर वह पेंशन लाभ का हकदार हो सके। हमें भय है कि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण हमें प्रभावित नही करता। आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने वास्तव में नियम 11 का ऐसा निर्वचन कर एक कर्मचारी के विरूद्ध उसकी अधिवर्षिता के पश्चात भी अनुशासनात्मक कार्यवाही को वैधता प्रदान की है, जिस निमित्त पेंशन नियमों या सेवा नियमों में कोई प्रावधान मौजूद नहीं था ,एवं जब कि उच्च न्यायालय ने स्वयं ऐसी टिप्पणी की थी कि कर्मचारी की सेवा अवधि के दौरान भी प्रारंभ की गई कोई जाँच अधिवर्षिता पर उसकी सेवानिवृत्ति के पश्चात जारी नहीं रखी जा सकती।"

अतः माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि किसी कर्मचारी के विरुद्ध, पेंशन नियमावली अथवा सेवा नियमावली में प्रावधान के अभाव में, उसकी अधिवर्षिता के पश्चात कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकती थी।

25. हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***चंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य एवं एक अन्य, जेटी 2003 (6) एससी 20*** *के वाद में निम्नवत धारित किया है:*

"37. .....एक विभागीय कार्यवाही तब तक जारी रह सकती है जब तक कर्मचारी सेवा में है। ऐसी स्थिति में, जब कि नियोक्ता द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही को लंबित रखा जाता है, कर्मचारी को सेवानिवृत्त नहीं किया जा सकता है। पेंशन नियमों में विशिष्ट प्रावधान उपस्थित होना चाहिए जिसके अंतर्गत पूर्ण या आंशिक पेंशन रोकने के लिये कार्यवाही प्रारंभ की जा सके। इसके अतिरिक्त अनुमति देने के पश्चात ऐसी कार्यवाही जारी रखने हेतु

अनुवादित

कोई नियम हमारे समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है जिसमें संबंधित कर्मचारी को सेवानिवृत्त होने की अनुमति देने के पश्चात भी ऐसी कार्यवाही जारी रखे जाने का प्रावधान हो। ऐसी कार्यवाही के अभाव में, उच्च न्यायालय या राज्य यह तर्क नहीं दे सकता कि अपीलकर्ता मातादीन गर्ग के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही जारी रह सकती है।"

*26. **चंद्र सिंह (उपरोक्त)** एवं **भागीरथी जेना (उपरोक्त)** वाद में प्रतिपादित सिद्धांत को वर्तमान वाद के तथ्यों पर लागू करते हुए, नियमावली1964 के नियमों में किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में, सेवानिवृति के बाद जाँच जारी रखने की कार्यवाही निष्क्रिय हो गयी।*

27. वर्तमान वाद में अनुशासनात्मक कार्यवाही को इस आधार पर भी सही नहीं ठहराया जा सकता है कि प्रबंध समिति ने श्री रवींद्र सिंह राठौड़ को कॉलेज में प्राचार्य के पद से बर्खास्त करने का प्रस्ताव पारित किया था एवं 1982 के अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत परिषद द्वारा मात्र प्रस्तावित सजा को स्वीकृति देना अपेक्षित थी । 1982 के अधिनियम की धारा 21 निम्नानुसार है:

"21. शिक्षकों की बर्खास्तगी आदि पर प्रतिबंध। - प्रबंधन, बोर्ड की पूर्व स्वीकृति के बिना, किसी शिक्षक को बर्खास्त नहीं करेगा या उसे सेवा से नहीं हटाएगा, या उसे सेवा से हटाने का कोई नोटिस नहीं देगा, या उसे कम नहीं करेगा ; न ही रैंक में या उसकी परिलब्धियों को कम कर देगा या न ही किसी भी अवधि हेतु उसकी वेतन वृद्धि रोक देगा (चाहे अस्थायी या स्थायी रूप से) एवं ऐसी पूर्व स्वीकृति के बिना किया गया कोई भी काम शून्य होगा।"

28. 1982 के अधिनियम को लागू करने के उद्देश्यों एवं कारणों का विवरण, अन्य बातों के साथ-साथ, इस प्रकार उपबंधित किया गया है; ".....इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 16जी (3) के अंतर्गत, प्रबंध समितियों को अनुशासनात्मक कार्रवाई से संबंधित मामलो में जिला विद्यालय निरीक्षक के अनुमोदन से दंड आरोपित करने हेतु प्राधिकृत किया गया था । यह प्रावधान उन मामलों में अपर्याप्त पाया गया जहां प्रबंधन ने बर्खास्तगी, निष्कासन या पदावनति का दंड प्रदान करने का प्रस्ताव रखा था, एवं इसलिए यह

अनुवादित

आवश्यक माना गया कि इस शक्ति का प्रयोग आयोग अथवा चयन बोर्ड के पूर्व अनुमोदन के अधीन किया जाना चाहिए जो एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निकाय के रूप में कार्य कर सकते हैं।"

29. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रबंध समिति, ***सेंट जॉन इंटर कॉलेज बनाम गिरधारी सिंह एवं अन्य, (2001) 4 एससीसी 296*** *के वाद में, 1982 के अधिनियम के उद्देश्यों एवं कारणों के विवरण पर विचारोपरान्त यह धारित किया कि यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि शिक्षा अधिनियम की धारा 16 जी (3) (ए) के अंतर्गत जारी पूर्व प्रावधान अपर्याप्त पाए गए थे, जहाँ प्रबंधन ने बर्खास्तगी, निष्कासन या पदावनति का दंड प्रदान करने का प्रस्ताव रखा था। दूसरे शब्दों में, विधायिका का विचार था कि प्रबंधन द्वारा आरोपित दंड के आदेश की स्वीकृति/अस्वीकृति की शक्ति जिला विद्यालय निरीक्षक जैसे अवर शैक्षिक प्राधिकारी के पास नहीं होनी चाहिए, अपितु एक स्वतंत्र आयोग या परिषद के पास होनी चाहिए जो एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निकाय के रूप में कार्य करेगा।*

30. 1982 के अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत परिषद को वाद के गुणदोषों का परीक्षण करना होगा एवं इस प्रश्न पर स्वतंत्र रूप से अपने मस्तिष्क का प्रयोग करना होगा कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य निष्कासन को उचित ठहराते हैं या नहीं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***प्रबंध समिति बिशंभर शरण वैदिक इंटर कॉलेज, जसपुर, नैनीताल एवं एक अन्य बनाम उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग एवं अन्य, 1995 (Supp) 3 एससीसी 244,*** *निर्णय विधि के प्रस्तर 4 में निम्नवत धारित किया है:*

"..... हमने अधिनियम की धारा 21 पर भी ध्यान दिया है, जिस पर हमारा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया गया था। हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय ने यह धारित करने में त्रुटि की है कि जाँच दूषित थी , क्योंकि आरोप-पत्र जाँच समिति द्वारा नहीं अपितु प्रबंध समिति द्वारा तैयार किया गया था। उच्च न्यायालय ने यह धारित करने में भी त्रुटि की है कि आयोग मामले के गुणदोषों पर विचार नहीं कर सकता था। हमारे अनुसार, उक्त धारा 21 के प्रावधानों के दृष्टिगत, आयोग को यह निर्णय लेते समय कि किसी शिक्षक के निष्कासन को स्वीकृति देनी है या नहीं, वाद के गुणदोषों पर विचार करना ही होगा एवं इस प्रश्न पर स्वतंत्र रूप

अनुवादित

से अपने मस्तिष्क का प्रयोग करना होगा कि क्या अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य निष्कासन को उचित ठहराते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि अधिनियम के अंतर्गत नियुक्त आयोग एक उच्च शक्ति प्राप्त निकाय है जिसे शिक्षकों के विरूद्ध प्रबंधन द्वारा की गई कार्रवाइयों के पर्यवेक्षण के महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह सावधानीपूर्वक करना होगा। यह तब तक अपना कार्य प्रभावी ढंग से नहीं कर सकता जब तक कि यह सामग्री की जाँच न कर ले एवं अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों पर सावधानीपूर्वक अपने मस्तिष्क का प्रयोग न कर ले....."

*31. **पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य बनाम कुंज बिहारी मिश्रा, (1998) 7 एससीसी 84**, के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही दो चरणों में विभाजित होती है। प्रथम चरण तब प्रारंभ होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी साक्ष्य, जाँच अधिकारी की रिपोर्ट एवं दोषी कर्मचारी के उत्तर के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुँचता है । द्वितीय चरण तब प्रारंभ होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने निष्कर्ष के आधार पर शास्ति आरोपित करने का निर्णय लेता है। चूँकि 1982 के अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया है कि यदि प्रबंधन किसी शिक्षक को बर्खास्त कर देता है या उसे सेवा से हटा देता है या उसे सेवा से हटाने का कोई नोटिस देता है या उसे पदावनत कर देता है या उसकी परिलब्धियाँ कम कर देता है या अस्थायी या स्थायी रूप से, किसी भी अवधि हेतु उसकी वेतन वृद्धि रोक देता है; तब बोर्ड की पूर्व स्वीकृति के अतिरिक्त, ऐसी पूर्वानुमति के बिना की गई ऐसी कार्यवाई शून्य होगी।*

32. इस प्रकार, सुरक्षित रूप से यह कहा जा सकता है कि जब तक बोर्ड प्रासंगिक सामग्री पर विचार करने एवं आरोपों के गुण-दोषों पर विचार करने के बाद सजा के प्रस्तावित आदेश को स्वीकृत या अस्वीकृत नहीं कर देता, तब तक अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रहेगी। चूँकि श्री रवीन्द्र सिंह राठौड़, बोर्ड द्वारा मामले पर अनुमोदन हेतु विचार करने से पूर्व सेवानिवृत्त हो गए हैं, जैसा कि 1982 के अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत आवश्यक है; अतः अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकती है।"

अनुवादित

17: उपरोक्त के दृष्टिगत, क्षेत्राधिकार के आधार पर निदेशक के आदेश को चुनौती देने में वर्तमान में वाद हेतु निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। यह उन पक्षकारों का स्वीकृत वाद है जिसे जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने अभी तक स्वीकृति नहीं प्रदान की है जैसा कि नियम 15 के अंतर्गत अपेक्षित है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादी संख्या 5 के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही विधि की दृष्टि में पूर्ण हो गई है। नियम 15 के अंतर्गत जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी प्रबंधन समिति के प्रस्ताव को अनुमोदित कर सकता हैं एवं उसमें की गई टिप्पणी के आलोक में अनुशासनात्मक कार्यवाही समाप्त करने के निर्देश के साथ उसे अस्वीकृत भी कर सकते हैं। प्रतिवादी संख्या 5, सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर, 30.6.2002 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है, इसलिए, निदेशक के आदेश को चुनौती देना निरर्थक हो गया है।"

21. उ0प्र0 शिक्षा मैनुअल का विनियम 31 जो चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी की सजा, जाँच एवं निलंबन से संबंधित है, अनुवादित रूप में निम्नवत प्रस्तुत है : -

"31. कर्मचारियों को प्राप्य दण्ड, जिसके लिए निरीक्षक अथवा मण्डलीय निरीक्षिका की पूर्व स्वीकृति आवश्यक होगी, निम्नलिखित में से किसी एक रूप में हो सकती हैः-

(क) वियुक्ति।

(ख) पृथक्करण अथवा प्रमुक्ति।

(ग) श्रेणी में अवनति।

(घ) परिलब्धियों में कमी।

चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को उपरोक्त कोई दण्ड देने हेतु प्रधानाचार्य अथवा प्रधानाध्यापक सक्षम होगा। सक्षम अधिकारी द्वारा दण्ड दिये जाने की दशा में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों द्वारा प्रबन्ध समिति के समक्ष अपील की जा सकेगी। यह अपील दण्ड सूचित किये जाने की तिथि से एक माह के अन्दर प्रस्तुत की जानी चाहिये और उस पर प्रबन्ध समिति द्वारा निर्णय कर अपील

अनुवादित

की प्राप्ति की तिथि से अधिकतम 6 सप्ताह के भीतर दे दिया जायेगा। समस्त आवश्यक अभिलेखों पर विचार करने एवं कर्मचारी की, यदि वह प्रबन्ध समिति के समक्ष स्वयं उपस्थित होना चाहे, सुनवाई के पश्चात् प्रबन्ध समिति अपील पर निर्णय देगी।

चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी को यह भी अधिकार होगा कि उसकी अपील पर किये गये प्रबन्ध समिति के निर्णय के विरूद्ध वह जिला विद्यालय निरीक्षक/मण्डलीय बालिका विद्यालय निरीक्षका को, निर्णय सूचित किये जाने की तिथि से एक माह के अन्दर अभ्यावेदन कर सकेगा।

किन्तु प्रतिबन्ध यह होगा कि यदि प्रबन्ध समिति उपर्युक्त निर्धारित छः सप्ताह की अवधि के भीतर अपना निर्णय उपरोक्त अपील पर न दे तो संबंधित कर्मचारी अपना अभ्यावेदन सीधे जिला विद्यालय निरीक्षक/मण्डलीय बालिका विद्यालय निरीक्षिका को उपरोक्त छः सप्ताह बीत जाने पर दे सकता है।

जिला विद्यालय निरीक्षक/मण्डलीय बालिका विद्यालय निरीक्षिका द्वारा उपरोक्त अभ्यावेदन पर अभ्यावेदन की प्राप्ति की तिथि से अधिकतम तीन माह के भीतर निर्णय दिया जायेगा और यह निर्णय अन्तिम होगा।

अभ्यावेदन के प्रस्तुतीकरण, विचार एवं निर्णय के सम्बन्ध में आवश्यक परिवर्तन के साथ इस अध्याय के विनियम 86 से 98 लागू होंगें।

22. उपरोक्त निर्णयानुसार के परिशीलन से, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही दो चरणों में विभाजित है। प्रथम चरण तब प्रारंभ होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी साक्ष्य, जाँच अधिकारी की रिपोर्ट एवं दोषी कर्मचारी के उत्तर के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुँचता है । द्वितीय चरण तब प्रारंभ होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने निष्कर्ष के आधार पर शास्ति आरोपित करने का निर्णय लेता है। यह भी पूर्णतः स्पष्ट है कि किसी कर्मचारी के विरूद्ध उसकी अधिवर्षिता के पश्चात भी कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकती है, जिस हेतु पेंशन नियमों या सेवा नियमों में कोई प्रावधान मौजूद नहीं है।

23. विनियम 31 के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि उ.प्र. इंटरमीडिएट शिक्षा विनियमावली का विनियम 31, चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के वाद में पूर्व अनुमोदन प्रदान करते समय, उक्त प्रस्तर सभी कर्मचारियों को संदर्भित करता है, एवं चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को उक्त विनियमन की प्रयोज्यता से अपवर्जित करने का कोई कारण नहीं है। विनियम 31 के अनुवर्ती

अनुवादित

प्रस्तर में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों का भी उल्लेख है।

24. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन से प्रकट होता है कि दिनांक 24.1.2007 के आदेश के अंतर्गत विरोधी पक्षकार संख्या 3 को प्रबंध समिति द्वारा निलंबित कर दिया गया था। विपक्षी संख्या 3 को आरोप पत्र दिया गया। एकपक्षीय जाँच रिपोर्ट दिनांक16.4.2007 को प्रस्तुत की गई जिस पर विरोधी पक्षकार संख्या 3 ने कारण बताओ नोटिस दिनांक 17.4.2007 पर अपना उत्तर प्रस्तुत किया। आदेश दिनांक 29.6.2007 द्वारा विरोधी पक्षकार संख्या 3 की बर्खास्तगी का प्रस्ताव पारित किया गया। निलंबन के उपरांत जीवन निर्वाह भत्ता का भुगतान नहीं किया गया। दिनांक 10.2.2009 के आदेश के अंतर्गत जिला विद्यालय निरीक्षक ने बर्खास्तगी के प्रस्तावित दंड को अस्वीकृत कर दिया। प्रबंध समिति ने वर्ष 2009 की रिट याचिका संख्या 2495 (एसएस) आयोजित की जिसे जिला विद्यालय निरीक्षक को प्रबंधन समिति को दोबारा सुनने हेतु निदेश देकर निस्तारित कर दिया गया। जिला विद्यालय निरीक्षक ने सुनवाई हेतु 18.5.2009, 26.5.2009 एवं 27.5.2009 की तिथियां तय की। विचार करने के पश्चात जिला विद्यालय निरीक्षक ने बर्खास्तगी की प्रस्तावित सजा को पुनः अस्वीकृत कर दिया है। प्रबंध समिति को सेवा से बर्खास्तगी का अंतिम दंड आदेश तभी पारित करना होगा जब जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पूर्वानुमति दी गई हो, जिसे वर्तमान में इसके विपरीत अस्वीकार कर दिया गया था। नियुक्ति प्राधिकारी अर्थात प्रबंध समिति द्वारा सजा का कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया जा सकता है क्योंकि इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अंतर्गत विनियमों में कर्मचारी के अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने के पश्चात दंड आदेश पारित करने का कोई प्रावधान नहीं है। वाद के इस दृष्टिकोण में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत विधि-रिपोर्ट वाद के वर्तमान तथ्यों एवं परिस्थितियों पर पूरी तरह से लागू होती है।

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में, यह बार-बार धारित किया गया है कि शिक्षणेत्तर कर्मचारियों की बर्खास्तगी के वाद में पूर्व अनुमोदन आवश्यक है एवं यदि ऐसी पूर्व स्वीकृति सेवा समाप्ति से पूर्व नहीं प्राप्त की जाती है तो सेवा-समाप्ति अवैध है एवं निरीक्षक या क्षेत्रीय निरीक्षक की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है।

26. यह स्वीकृत स्थिति है कि विरोधी पक्षकार संख्या 3 अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर दिनांक 30.6.2002 को सेवानिवृत्त हो गया है, इसलिए उसकी सेवानिवृत्ति के पश्चात अनुशासनात्मक जाँच आयोजित करने का कोई प्रावधान नहीं है एवं न ही कोई ऐसा प्रावधान है जिसके अनुसार मामले में कदाचार स्थापित होने की दशा में सेवानिवृत्ति लाभों से कटौती की जा सकती है।

27. वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों की समग्रता पर विचार करते हुए प्रतिवादी संख्या 3 संस्थान में लिपिक के पद हेतु लागू वेतन के भुगतान एवं देय तिथि से अवशेष वेतन

अनुवादित

का अधिकारी है, इसलिए, जिला विद्यालय निरीक्षक को निदेश दिया जाता है कि वह इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन माह की अवधि में प्रतिवादी संख्या 3 को संपूर्ण वेतन के साथ साथ अवशेष वेतन का संपूर्ण भुगतान सुनिश्चित करें।

28. परिणामस्वरूप, रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

(2023) 2 ILRA 462

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट-ए नंबर 8973/2022

पुष्पा सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

जी.एम. बड़ौदा यू.पी. ग्रामीण बैंक, जीकेपी और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: रविशंकर मिश्रा, शिव कुमार सोनी

अधिवक्ता प्रतिवादी: प्रशांत कुमार श्रीवास्तव

ए. सिविल कानून - पारिवारिक पेंशन - पेंशन विनियम, 2018 - विनियम 38(6)(डी) - विनियम 38(6)(डी) (i) जहां एक से अधिक विधवाओं को पारिवारिक पेंशन देय है, वहां विधवाओं को पारिवारिक पेंशन समान शेयरों में दी जाएगी - विनियम 38(6)(डी) (iii) जहां मृत कर्मचारी या पेंशनभोगी एक विधवा द्वारा जीवित है, लेकिन बच्चे या किसी अन्य पत्नी के बच्चों को छोड़ गया है जो जीवित नहीं है, तो पात्र बच्चे या बच्चे पारिवारिक पेंशन के उस हिस्से के हकदार होंगे जो कर्मचारी या पेंशनभोगी की मृत्यु का समय मां को मिलता अगर वह जीवित होती - हिंदू विवाह अधिनियम, धारा 5, 11 - एक हिंदू, एक ही समय में दो विधवाओं के साथ नहीं रह सकता, क्योंकि धारा 5 और धारा 11 के आधार पर दूसरी शादी शून्य विवाह होगी- विनियमन 38(6)(डी) हिंदुओं के वाद में लागू नहीं होगा जब तक कि उक्त व्यक्ति ने हिंदू विवाह अधिनियम के अधिनियमन से पहले शादी नहीं की हो - पेंशन विनियम, 2018 के विनियमन 38(6)(डी) को ध्यान में रखते हुए अधिनियमित किया गया था कि कर्मचारी हिंदू के अलावा अन्य भी हो सकता है, जहां दूसरी शादी व्यक्तिगत कानूनों की प्रयोज्यता के आधार पर शून्य विवाह नहीं है - किसी प्रावधान की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती है कि यह किसी अन्य वैधानिक अधिनियम का उल्लंघन करता है - वर्तमान वाद में हिंदू विवाह अधिनियम लागू है - शाब्दिक ऐसी व्याख्या से बचना चाहिए जहां इसके ऐसे परिणाम हों जिन पर हिंदू विवाह अधिनियम जैसे केंद्रीय अधिनियम द्वारा विचार नहीं किया गया है। (पैरा 12, 13, 15)

बी. पारिवारिक पेंशन के भुगतान के लिए याचिकाकर्ता का दावा - याचिकाकर्ता

अनुवादित

स्वर्गीय तिलक धारी सिंह की पहली पत्नी थी, जिन्होंने याचिकाकर्ता के जीवनकाल के दौरान एक बार पुनः उमा देवी नामक एक अन्य महिला से शादी की -याचिकाकर्ता को पारिवारिक पेंशन के दावे के संबंध में उत्तराधिकार प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए बुलाया गया था - बैंक ने तर्क दिया कि शून्य विवाह से पैदा हुए बच्चे वैध होंगे और संपत्ति के उत्तराधिकारी होंगे - आयोजित, एक बार हिंदू की दूसरी शादी एक शून्य विवाह है, तो विवाह करने वाला व्यक्ति ऐसे व्यक्ति को - वर्तमान मामले में उमा देवी -विधवा के रूप में अर्हता प्राप्त नहीं होगी, इस प्रकार, दूसरी शादी से पात्र बच्चे को समान अनुपात में 'पारिवारिक पेंशन' का लाभ नहीं मिलेगा जैसा कि प्रतिवादी/बैंक की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया जाना प्रस्तावित है (पैरा 16)
अनुमत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. श्रीमती वायलेट इसाक एवं अन्य बनाम भारत संघ और अन्य; (1991) 1 एससीसी 725
2. नीटू बनाम शीला रानी एवं अन्य; (2016) 16 एससीसी 229
3. रामेश्वरी देवी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य; एआईआर 2000 एससी 735

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. वादी के विद्वान अधिवक्ता श्री रविशंकर मिश्रा और प्रतिवादी/बैंक के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशांत कुमार श्रीवास्तव को सुना।

2. वर्तमान याचिका में कहा गया है कि वादी का पति प्रतिवादियों के साथ काम कर रहा था - बैंक चतुर्थ श्रेणी के पद पर चपरासी के रूप में काम कर रहा था और 23.11.2017 को उसकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के बाद, वादी ने सेवानिवृत्ति बकाया राशि जारी करने के लिए एक आवेदन दिया, हालांकि, इसे अस्वीकार कर दिया गया और वादी को उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए कहा गया। उक्त शर्त के पालन में, वादी ने सिविल जज (जूनियर डिवीजन), प्रतापगढ़ के समक्ष 2019 के एमएनआर नंबर 48 के समक्ष कार्यवाही दायर की। उक्त मुकदमे ने इस तथ्य पर विचार किया कि वादी स्वर्गीय तिलक धारी सिंह की पहली पत्नी थी, जिसने एक बार फिर वादी के जीवनकाल में उमा देवी नामक एक महिला के साथ शादी की थी। 2019 की एमएनआर संख्या 48 ने वादी के साथ-साथ उमा देवी के बच्चों के संबंधित दावों पर विचार किया और बकाया राशि के संबंध में एक स्पष्ट निष्कर्ष दिया कि वादी स्वर्गीय तिलक धारी सिंह और उमा देवी की शादी से पैदा हुए बच्चों के साथ अदालत द्वारा निर्धारित अनुपात में सेवानिवृत्ति बकाया राशि के हकदार होंगे।

अनुवादित

3. मुकदमा दायर करने के बाद यह विवाद पारिवारिक पेंशन के भुगतान के लिए वादी के दावे के कारण उत्पन्न हुआ है। वादी द्वारा किए जा रहे दावे पर प्रतिवादी/बैंक ने वादी को पारिवारिक पेंशन के भुगतान की राहत केवल इस आधार पर देने से इनकार कर दिया कि 2019 के एमएनआर संख्या 48 में, पारिवारिक पेंशन के संबंध में मुद्दे पर न्यायालय द्वारा निर्णय नहीं लिया गया था और इस प्रकार, बड़ौदा यूपी बैंक (कर्मचारी) पेंशन विनियमों के विनियमन 38 (6) (डी) के प्रावधानों पर निर्भरता रखते हुए, 2018 (इसके बाद 'पेंशन विनियम, 2018' के रूप में संदर्भित), वादी को पारिवारिक पेंशन के दावे के संबंध में एक नया उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए कहा गया था। वादी ने वादी के उक्त फैसले को चुनौती दी है।

4. अनुदेश प्राप्त करने के बाद प्रतिवादी/बैंक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि पारिवारिक पेंशन का भुगतान पेंशन विनियम, 2018 के विनियमन 38 (6) (डी) के तहत प्रदान किए गए दिशानिर्देशों के अनुसार निर्धारित किया जाना है। वह आगे तर्क देता है कि एक शून्य विवाह से पैदा हुए बच्चे वैध होंगे और संपत्ति के सफल होने के हकदार होंगे जैसा कि पार्टियों के बीच मुकदमेबाजी के माध्यम से निर्धारित किया गया है।

5. वादी के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क देते हुए उक्त तर्क का खंडन किया कि दूसरी शादी के संबंध में कानून काफी अच्छी तरह से तय है और वादी के पति के साथ उमा देवी की दूसरी शादी हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 5 और धारा 11 के आधार पर शून्य थी।

6. उक्त सबमिशन के आलोक में, यह न्यायालय पेंशन विनियम, 2018 के विनियमन 38 (6) (डी) के आयात का निर्णय लेगा। बैंक द्वारा बनाए गए पेंशन विनियम, 2018 के विनियम 38 में परिवार पेंशन के भुगतान के तरीके का प्रावधान है। पेंशन विनियम, 2018 के विनियम 2 (एन) में 'परिवार' को परिभाषित किया गया है, जो निम्नानुसार है:

*"2. **परिभाषाएं**- (1) इन विनियमों में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,- ".....*

*(ढ) कर्मचारी के संबंध में **"परिवार"** से अभिप्रेत है, -*

(i) पुरुष कर्मचारी की दशा में पत्नी या महिला कर्मचारी की दशा में पति (चाहे विवाह सेवानिवृत्ति से पहले हुआ हो या बाद में);

(ii) न्यायिक रूप से अलग हुई पत्नी या पति, व्यभिचार के आधार पर ऐसा अलगाव नहीं दिया जा रहा है और जीवित व्यक्ति को व्यभिचार करने का दोषी नहीं ठहराया गया था;

अनुवादित

(iii) (क) अविवाहित पुत्र या अविवाहित पुत्रियां (दत्तक ग्रहण किए गए पुत्रों सहित सेवानिवृत्ति से पहले या बाद में जन्मे) जिन्होंने पच्चीस वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है;

(ख) अविवाहित पुत्र या अविवाहित पुत्रियाँ जो किसी विकार या मन की अपंगता से ग्रस्त हों या शारीरिक रूप से अपंग हों;

(iv) विधवा पुत्रियां अथवा तलाकशुदा पुत्रियां (सेवानिवृत्ति से पूर्व अथवा बाद में जन्मी हुई पुत्रियां) जिनका जन्म बिना किसी आयु प्रतिबंध के हो;

(v) माता-पिता जो कर्मचारी पर पूरी तरह से निर्भर थे जब ऐसा कर्मचारी जीवित था, निम्नलिखित शर्तों के अधीन:

(ए) मृत कर्मचारी ने न तो विधवा या विधुर और न ही पात्र पुत्र या बेटी या विधवा या तलाकशुदा बेटी को पीछे छोड़ दिया था और माता-पिता की कमाई दो हजार पांच सौ पचास रुपये प्रति माह से कम है।

(ख) जहां मृत कर्मचारी ने निःसंतान विधवा को पीछे छोड़ दिया है, वहां वे निःसंतान विधवा की मृत्यु के बाद ही पारिवारिक पेंशन के लिए पात्र हो जाते हैं या जब अन्य सभी स्रोतों से उसकी स्वतंत्र आय प्रति मास दो हजार पांच सौ पचास रुपये के बराबर या उससे अधिक हो जाती है;

7. विनियमन 38 (6) (डी) जिसके साथ वर्तमान मामले में उठाए गए मुद्दे का संबंध है, यहां नीचे उद्धृत किया गया है: 38. परिवार पेंशन का भुगतान।

- "(6).....

(d) (i) जहां परिवार पेंशन एक से अधिक विधवाओं को देय है, वहां परिवार पेंशन का भुगतान विधवाओं को समान हिस्से में किया जाएगा।

(ii) विधवा की मृत्यु पर, परिवार पेंशन का उसका हिस्सा उसके पात्र बच्चे को देय होगा: बशर्ते कि यदि विधवा किसी बच्चे से नहीं बची है, तो परिवार पेंशन का उसका हिस्सा व्यपगत नहीं होगा, लेकिन अन्य विधवाओं को समान शेयरों में देय होगा, या यदि ऐसी केवल एक अन्य विधवा है, पूर्ण रूप से, उसके लिए।

(iii) जहां मृत कर्मचारी या पेंशनभोगी के परिवार में विधवा है, लेकिन उसने पात्र बच्चे या किसी अन्य पत्नी के बच्चों को छोड़ दिया है, जो जीवित नहीं है, पात्र बच्चा या बच्चे परिवार पेंशन के हिस्से के हकदार होंगे जो मां को प्राप्त होता यदि वह कर्मचारी या पेंशनभोगी की मृत्यु के समय जीवित होती:

बशर्ते कि ऐसे बच्चे या बच्चों को या विधवा या विधवाओं को देय पारिवारिक पेंशन के हिस्से या शेयरों पर,

अनुवादित

ऐसा हिस्सा या शेयर व्यपगत नहीं होगा, लेकिन अन्य विधवा या विधवाओं को या अन्य बच्चे या बच्चों को अन्यथा पात्र समान शेयरों में देय होगा, या यदि ऐसी विधवा या बच्चे के लिए केवल एक विधवा या बच्चा है, तो पूर्ण।

(iv) जहां मृतक कर्मचारी या पेंशनभोगी के परिवार में विधवा है लेकिन उसने तलाकशुदा पत्नी या पत्नियों से पात्र बच्चे या बच्चे छोड़ दिए हैं, ऐसे पात्र बच्चे या बच्चे पारिवारिक पेंशन के हिस्से के हकदार होंगे जो मां को कर्मचारी या पेंशनभोगी की मृत्यु के समय प्राप्त हुई होती यदि वह इस प्रकार तलाकशुदा नहीं होती:

बशर्ते कि ऐसे बच्चे या बच्चों को देय पारिवारिक पेंशन के हिस्से या शेयरों पर या विधवा को देय होने के लिए, ऐसा हिस्सा या शेयर, व्यपगत नहीं होगा, लेकिन अन्य विधवा या विधवाओं या अन्य बच्चे या बच्चों को अन्यथा पात्र होगा, समान शेयरों में, या यदि केवल एक विधवा या बच्चा है, पूर्ण रूप से, ऐसी विधवा या बच्चे को।

8. इस स्तर पर उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि विनियमन 38 (6) (डी) इस मुद्दे से संबंधित है, हालांकि, विनियमन 49 जो नामांकन से संबंधित है और विनियमन 54 जो अवशिष्ट प्रावधान है, वर्तमान याचिका में उठाए गए मुद्दे में भी कुछ असर होगा। विनियमन 49 और 54 को नीचे उद्धृत किया गया है:

"49. नामांकन-

(1) न्यास इन विनियमों द्वारा शासित प्रत्येक कर्मचारी को एक या अधिक व्यक्तियों को उसकी मृत्यु की स्थिति में इन विनियमों के अधीन पेंशन लाभों की राशि प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करते हुए नामांकन करने की अनुमति देगा, इससे पहले कि वह राशि संदेय हो जाए या, संदेय न हो जाए, संदत्त न किया गया हो और ऐसा नामांकन ऐसे प्रारूप में किया जाएगा जो बैंक द्वारा समय-समय पर विनिर्दिष्ट किया जाए।

(2) यदि कोई कर्मचारी उप-विनियमन (1) के तहत एक से अधिक व्यक्तियों को नामित करता है, तो वह अपने नामांकन में, प्रत्येक नामांकित व्यक्ति को देय राशि या शेयर को इस तरह से निर्दिष्ट करेगा कि पेंशन लाभों की पूरी राशि को कवर किया जा सके जो उसकी मृत्यु की स्थिति में देय हो सकता है।

(3) किसी कर्मचारी द्वारा किया गया नामांकन, किसी भी समय, उसके द्वारा ऐसे रूप में ऐसा करने के अपने इरादे के ट्रस्ट को लिखित सूचना देने के बाद संशोधित या रद्द किया जा सकता है, जैसा कि बैंक समय-समय पर निर्दिष्ट कर सकता है।

(4) नामांकन या उसका निरसन या उसका संशोधन उस सीमा तक प्रभावी होगा जिस हद तक वह उस तारीख को वैध है जिस दिन ट्रस्ट द्वारा संशोधित किया जाता है।

*"**54. अवशिष्ट प्रावधान**- संदेह के मामले में, इन विनियमों के आवेदन के मामले में, केंद्रीय सिविल सेवा नियम, 1972 या केंद्रीय सिविल सेवा (पेंशन का कम्यूटेशन)*

अनुवादित

नियम, 1981 के संगत प्रावधानों को ध्यान में रखा जा सकता है, जो बैंक ऑफ बड़ौदा के प्रायोजक बैंक और नेशनल बैंक होने के परामर्श के बाद और केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी के साथ ऐसे अपवादों और संशोधनों के साथ केंद्र सरकार के कर्मचारियों के लिए लागू हैं, समय-समय पर, निर्धारित कर सकते हैं।

9. यह सुस्थापित है कि पारिवारिक पेंशन संपदा का हिस्सा नहीं है और यह केवल उन व्यक्तियों को देय है जिनका नाम पारिवारिक पेंशन प्रदान करने वाले विनियमों/नियमों में है। उक्त मुद्दे पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **श्रीमती वायलेट इसाक एवं अन्य बनाम भारत संघ और अन्य; (1991) 1 एससीसी 725** के मामले में विचार किया गया था। जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है ।

2. पार्टियों के बीच विवाद ग्रेच्युटी, भविष्य निधि, पारिवारिक पेंशन और अन्य भत्तों से संबंधित है, लेकिन इस न्यायालय ने उत्तरदाताओं को नोटिस जारी करते हुए विवाद को केवल पारिवारिक पेंशन तक ही सीमित रखा। इसलिए हम केवल पारिवारिक पेंशन के प्रश्न पर विचार करेंगे। परिवार पेंशन नियमावली, 1964 में रेल कर्मचारी के उत्तरजीवियों को पारिवारिक पेंशन मंजूर करने का प्रावधान है। नियम 801 में प्रावधान है कि सेवा के दौरान मरने वाले रेल कर्मचारी के अवयस्क बच्चों की विधवा/विधुर को पारिवारिक पेंशन दी जाएगी और जहां सेवा के दौरान मारे गए रेल कर्मचारी के अवयस्क बच्चों की कोई विधवा/विधुर नहीं है। नियमों के तहत मृतक का बेटा 25 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक पारिवारिक पेंशन का हकदार है, एक अविवाहित बेटी भी 25 वर्ष की आयु प्राप्त करने या शादी होने तक, जो भी पहले हो, पारिवारिक पेंशन की हकदार है। नियमों में मृतक रेलवे कर्मचारी के भाई या परिवार के किसी अन्य सदस्य या रिश्तेदार को पारिवारिक पेंशन के भुगतान का प्रावधान नहीं है। नियमों के तहत परिवार पेंशन योजना मृत कर्मचारी की असामयिक मृत्यु के मुआवजे के माध्यम से विधवा और बच्चों को राहत प्रदान करने के लिए बनाई गई है। नियम परिवार पेंशन के संबंध में किसी भी नामांकन के लिए प्रदान नहीं करते हैं, इसके बजाय नियम उन व्यक्तियों को नामित करते हैं जो परिवार पेंशन प्राप्त करने के हकदार हैं। इस प्रकार, नियमों के तहत नामित लोगों को छोड़कर कोई अन्य व्यक्ति परिवार पेंशन प्राप्त करने का हकदार नहीं है। परिवार पेंशन योजना मृत रेलवे कर्मचारी की

अनुवादित

पत्नी और बच्चों को मौद्रिक लाभ प्रदान करती है, लेकिन कर्मचारी का इसके लिए कोई शीर्षक नहीं है। कर्मचारी का पारिवारिक पेंशन पर कोई नियंत्रण नहीं है क्योंकि उसे इसमें कोई योगदान करने की आवश्यकता नहीं है। परिवार पेंशन योजना मृत कर्मचारी की विधवा और नाबालिग बच्चों को राहत प्रदान करने के लिए रेल प्रशासन द्वारा बनाई गई कल्याणकारी योजना की प्रकृति है। चूंकि नियमों में परिवार पेंशन के भुगतान के लिए मृत कर्मचारी द्वारा उसके जीवनकाल के दौरान किसी व्यक्ति के नामांकन का प्रावधान नहीं है, इसलिए उसका कोई हक नहीं है। इसलिए, यह उसकी संपत्ति का हिस्सा नहीं है जो उसे वसीयतनामा स्वभाव द्वारा उसी का निपटान करने में सक्षम बनाता है।

3. जोध सिंह बनाम भारत संघ [(1980) 4 एससीसी 306: 1980 एससीसी (एल एंड एस) 549], इस न्यायालय ने एक विस्तृत चर्चा पर माना कि पारिवारिक पेंशन विधवा की स्थिति के कारण स्वीकार्य है, न कि इस तथ्य के कारण कि मृतक की कुछ संपत्ति थी जो विधवा को उसकी मृत्यु पर हस्तांतरित हुई थी। अदालत ने कहा:

"जहां एक निश्चित लाभ स्थिति के कारण स्वीकार्य है और एक स्थिति जो कुछ घटना के होने पर अर्जित की जाती है, अर्थात्, पति की मृत्यु पर विधवा होने पर, कल्पना के किसी भी खिंचाव से ऐसी पेंशन कभी भी मृतक की संपत्ति का हिस्सा नहीं बन सकती है। यदि यह मृतक की संपत्ति का हिस्सा नहीं बनता तो यह कभी भी वसीयतनामा स्वभाव का विषय नहीं हो सकता था।

अदालत ने आगे कहा कि मृतक के जीवनकाल के दौरान जो देय नहीं था, जिस पर उसके पास स्वभाव की कोई शक्ति नहीं थी, वह उसकी संपत्ति का हिस्सा नहीं बन सकता था। चूंकि पारिवारिक पेंशन के भुगतान के लिए मृतक की मृत्यु पर अर्हक घटना होती है, इसलिए पारिवारिक पेंशन का मौद्रिक लाभ मृतक की संपत्ति का हिस्सा नहीं बन सकता है जो उसे वसीयतनामा स्वभाव द्वारा उसी का निपटान करने का हकदार बनाता है।

10. उक्त निर्णय का पालन माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **नीतू बनाम शीला रानी और अन्य (2016) 16 एससीसी 229** के मामले में किया था;, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया है:

अनुवादित

"17. यह ध्यान रखना उचित है कि इस मामले में पेंशन योजना के प्रावधानों के तहत दी जानी है और इसलिए, केवल वही व्यक्ति जो योजना के अनुसार पेंशन प्राप्त करने का हकदार है, इसे प्राप्त करेगा। वायलेट इसाक बनाम भारत संघ मामले में इस न्यायालय के समक्ष भी इसी तरह का मुद्दा उठा था। भारत संघ [वायलेट इसाक बनाम भारत संघ, (1991) 1 एससीसी 725: 1991 एससीसी (एल एंड एस) 551] और प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करने के बाद, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि पारिवारिक पेंशन मृतक की संपत्ति का हिस्सा नहीं है और इसलिए, यहां तक कि एक कर्मचारी को भी अपनी वसीयत में इसका निपटान करने का कोई अधिकार नहीं है, यह निर्देश देकर कि कोई अन्य व्यक्ति जो इसका हकदार है, वही दिया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में, योजना के प्रावधानों के अनुसार, अपीलकर्ता विधवा परिवार की एकमात्र सदस्य है जो पेंशन की हकदार है और इसलिए, प्रतिवादी मां को पेंशन में कोई अधिकार नहीं मिलेगा। बेशक, यह विवादित नहीं हो सकता है कि यदि स्वर्गीय श्री यशपाल द्वारा छोड़ी गई अन्य संपत्तियां हैं, तो प्रतिवादी मां को 50% हिस्सा मिलेगा, अगर स्वर्गीय श्री यशपाल ने कोई वसीयत तैयार नहीं की थी और ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्गीय श्री यशपाल की निर्वसीयत मृत्यु हो गई थी और उनके द्वारा कोई वसीयत निष्पादित नहीं की गई थी।

11. बार में किए गए सबमिशन को ध्यान में रखते हुए, पेंशन विनियम, 2018 के विनियमन 38 (6) (डी), इसके सादे पढ़ने पर, यह प्रदान करता है कि जहां पारिवारिक पेंशन एक से अधिक विधवाओं को देय है, पारिवारिक पेंशन का भुगतान समान शेयरों में खिड़कियों को किया जाएगा; विनियम 38(6)(डी)(ii) में प्रावधान है कि विधवा की मृत्यु की स्थिति में, पारिवारिक पेंशन का उसका हिस्सा उसके पात्र बच्चे को देय होगा, और विनियम 38(6)(डी)(iii) में प्रावधान है कि यदि मृत कर्मचारी विधवा से बच गया है और उसने अपने पीछे पात्र बच्चे या दूसरी पत्नी के बच्चे छोड़ दिए हैं जो जीवित नहीं है, पात्र बच्चा या बच्चे पारिवारिक पेंशन के हिस्से के हकदार होंगे जो मां को प्राप्त होता यदि वह कर्मचारी या पेंशनभोगी की मृत्यु के समय जीवित होती।

12. पेंशन विनियम, 2018 के विनियमन 38 (6) (डी) में निहित प्रावधान का एक सादा पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जहां एक से अधिक विधवाएं हैं, वे समान शेयरों में पारिवारिक पेंशन की हकदार होंगी, हालांकि, हिंदू विवाह अधिनियम के जनादेश को ध्यान में रखते हुए, यह संभव नहीं है कि हिंदू

अवलोकित

विवाह अधिनियम के अधिनियमन के बाद एक हिंदू दूसरी शादी के रूप में एक से अधिक विधवाओं से बच गया हो धारा 5 और धारा 11 के आधार पर एक शून्य विवाह है। पेंशन नियमन, 2018 के नियम 38(6)(डी) को इस बात को ध्यान में रखकर लागू किया गया है कि कर्मचारी हिंदू के अलावा कोई और भी हो सकता है, जहां पर्सनल लॉ लागू होने के कारण दूसरी शादी शून्य नहीं है।

13. पहले ब्रश पर, विनियमन 38 (6) (डी) के एक सादे पढ़ने पर, एक से अधिक विधवाओं का अधिकार स्पष्ट है, हालांकि, यह अच्छी तरह से तय है कि एक प्रावधान की व्याख्या नहीं की जा सकती है ताकि किसी अन्य वैधानिक अधिनियम का उल्लंघन किया जा सके - वर्तमान मामले में हिंदू विवाह अधिनियम है। शाब्दिक व्याख्या से बचा जाना चाहिए जहां यह उन परिणामों की ओर जाता है जो हिंदू विवाह होने के नाते एक केंद्रीय अधिनियमन द्वारा नहीं माने जाते हैं ढोंग।

14. वर्तमान मामले में, पेंशन विनियम, 2018 के विनियमन 38 (6) (डी) के लिए कोई शरारत किए बिना, व्याख्या का एकमात्र नियम जिसे अपनाया जा सकता है वह उद्देश्यपूर्ण व्याख्या है।

15. एक हिंदू के रूप में, हिंदू विवाह अधिनियम के लागू होने के बाद, क़ानून के आधार पर, एक ही समय में दो विधवाएं नहीं रह सकती हैं, मुझे यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि पेंशन विनियम, 2018 का विनियमन 38 (6) (डी) हिंदुओं के मामले में तब तक लागू नहीं होगा जब तक कि उक्त व्यक्ति ने हिंदू विवाह अधिनियम के लागू होने से पहले शादी नहीं की हो।

16. इसी तरह विनियमन 38 (6) (डी) (iii) की व्याख्या करते हुए, उक्त प्रावधान विधवा के पात्र बच्चों को केवल उस स्थिति में हकदार बनाता है जब वह 'विधवा' होने के योग्य हो। एक बार जब हिंदू का दूसरा विवाह एक शून्य विवाह हो जाता है, तो ऐसे व्यक्ति से विवाहित व्यक्ति - वर्तमान मामले में उमा देवी - विधवा के रूप में अर्हता प्राप्त नहीं करेगा, इस प्रकार, दूसरी शादी से पात्र बच्चे को 'पारिवारिक पेंशन' का लाभ उसी अनुपात में नहीं मिलेगा जैसा कि प्रतिवादी/बैंक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया जाना प्रस्तावित है।

17. विनियमन 49 के प्रावधानों पर आते हुए, जो नामांकन प्रदान करता है, यह अच्छी तरह से तय है कि एक नामांकित व्यक्ति को सभी कानूनी उत्तराधिकारियों के लाभ प्राप्त करने का अधिकार है और पेंशन विनियम, 2018 के विनियमन 49 में निहित प्रावधान के साथ कोई झगड़ा नहीं हो सकता है। किसी भी घटना में, **श्रीमती वायलेट इसाक** (सुप्रा) और **नीतू** (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर, 'पारिवारिक पेंशन' के संबंध में

अनुवादित

नामांकन का कोई अधिकार उपलब्ध नहीं है।

18. जहां तक विनियम 54 का संबंध है, जिसमें यह प्रावधान है कि संदेह की स्थिति में, बैंक के पास निर्णय लेने और नियमों को संशोधित करने का विकल्प है ताकि उसे केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी के साथ केंद्रीय सिविल सेवा नियमावली, 1972 या केंद्रीय सिविल सेवा (पेंशन का रूपांतरण) नियम, 1981 के अनुरूप बनाया जा सके, यह स्वीकार किया जाता है कि उक्त दोनों नियमों में से किसी को भी लागू करने का ऐसा कोई निर्धारण पूर्व मंजूरी के साथ लागू नहीं किया गया है बैंक द्वारा अब तक केन्द्र सरकार की ओर से किए गए ऋणों की संख्या में वृद्धि हुई है।

19. इस स्तर पर, उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने भारत सरकार, कार्मिक मंत्रालय, पीजी और पेंशन, पेंशन और पेंशनभोगी कल्याण विभाग द्वारा जारी दिनांक 27.11.2012 के कार्यालय ज्ञापन पर भरोसा किया है, हालांकि, जैसा कि मैंने पहले ही माना है कि बैंक ने अभी तक बैंक कर्मचारियों पर उपरोक्त दो नियमों को लागू करने का कोई निर्णय नहीं लिया है, उक्त कार्यालय ज्ञापन का कोई फायदा नहीं होगा।

20. **रामेश्वरी देवी बनाम बिहार राज्य और अन्य एआईआर 2000 एससी 735**; के मामले में प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों पर आते हुए। माननीय उच्चतम न्यायालय ने के मामले में अपने निर्णय में दूसरी पत्नी के बच्चों को मिलने वाले लाभों पर विचार किया था और न्यायालय ने निर्णय दिया कि वे इसके हकदार होंगे। हालांकि, ऐसा करते समय, न्यायालय ने सीसीएस नियमों के साथ-साथ बिहार सरकारी कर्मचारी आचरण नियमों का उल्लेख किया था और वहां प्रचलित नियमों को देखते हुए व्याख्या दी थी।

21. वर्तमान मामले में, नियम अलग हैं और सीसीएस नियमों या बिहार सरकारी कर्मचारियों आचरण नियमों के समान नहीं हैं, जो दूसरी शादी को प्रतिबंधित करते हैं और न्यायालय ने माना कि कर्मचारी के खिलाफ कोई विभागीय जांच शुरू नहीं की गई थी, जबकि वह उक्त नियमों के आधार पर जीवित था, इस प्रकार, उक्त निर्णय का वर्तमान मामले के तथ्यों पर कोई प्रयोज्यता नहीं होगा।

22. **अमलाती देवी बनाम बिहार राज्य और अन्य**; के मामले में उत्तरदाताओं द्वारा भरोसा किए गए दूसरे निर्णय पर आते हुए। माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय पर भरोसा करते हुए **रामेश्वरी देवी (सुप्रा)** के मामले में यह निर्णय

अनुवादित

दिया है कि दूसरी पत्नी पारिवारिक पेंशन के हिस्से की हकदार होगी।

23. जैसा कि मैंने पहले ही माना है कि **रामेश्वरी देवी (सुप्रा)** के मामले में निर्णय के लिए अग्रणी तथ्य बैंक द्वारा बनाए गए नियमों की व्याख्या करते समय लागू नहीं होंगे, इस प्रकार, **संख्या 7092** के मामले में प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत तीसरे निर्णय पर आते हुए फैसला 14.11.2017 को हुआ था, जहां उच्च न्यायालय के पास वित्त विभाग के 06.09.1996 के परिपत्र से निपटने का अवसर था और यह माना था कि दूसरी पत्नी भी पारिवारिक पेंशन की हकदार होगी। उक्त निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है क्योंकि वर्तमान मामले में ऐसा कोई परिपत्र/प्रावधान मौजूद नहीं है।

25. ऊपर दर्ज की गई व्याख्या के मद्देनजर, **रिट याचिका की अनुमति दी जानी चाहिए और तदनुसार आदेश दिया जाना चाहिए।**

26. अनुलग्नक - 3 में निहित दिनांक 14.10.2022 के आदेश को प्रतिवादी/बैंक को कानून के अनुसार वादी को पारिवारिक पेंशन का भुगतान करने के निर्देश के साथ रद्द कर दिया गया है।

27. पारिवारिक पेंशन की बकाया राशि का भुगतान वादी को इसकी गणना के बाद चार महीने की अवधि के भीतर किया जाएगा।

अमलावती देवी (सुप्रा) के मामले में निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा।

24. इंदु देवी बनाम बिहार राज्य और अन्य; 2016 के सिविल रिट क्षेत्राधिकार केस

(2023) 2 ILRA 470

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकःइलाहाबाद 25.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार -IV

रिट ए संख्या 9739/2018

एवम अन्य संबंधित वाद

बालकृष्ण एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सत्यवीर सिंह, श्री अरुण कुमार यादव, श्री रविन्द्र कुमार पटेल, श्री साकिब मुख्तार, श्री सत्यवीर सिंह, श्री श्री कृष्ण मिश्रा, श्री ठाकुर प्रसाद दुबे, श्री यावर मुख्तार, श्री टी.पी.सिंह (सीनियर एडवोकेट)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री अभिनव कृष्ण श्रीवास्तव, श्रीया आनंद क्र. श्रीवास्तव, श्री अरूण कुमार यादव,

अनुवादित

श्रीअवनीश त्रिपाठी, श्री भरत प्रताप सिंह, श्री एम.एन. सिंह, श्री तरूण अग्रवाल

ए. सिविल कानून - नियुक्ति के लिए योग्यता- सरकारी माध्यमिक इंटरमीडिएट स्कूलों या कॉलेजों में कक्षा 9वीं और 10वीं के छात्रों को पढ़ाने के लिए सहायक शिक्षक (पुरुष / महिला) हिंदी - एनसीटीई (शिक्षा शिक्षक और शारीरिक शिक्षा शिक्षक के रूप में भर्ती होने वाले व्यक्तियों के लिए न्यूनतम योग्यता का निर्धारण) प्री-प्राइमरी, अपर प्राइमरी, सेकेंडरी, सीनियर सेकेंडरी या इंटरमीडिएट स्कूल या कॉलेज) रेगुलेशन 2014 - रेगुलेशन 4 सहायक अध्यापक यूपी के पद के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता के रूप में विषय में स्नातक निर्धारित करता है - अधीनस्थ शैक्षिक (प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड) सेवा नियमावली, 1983, नियम 8(6) - उ.प्र. अधीनस्थ शिक्षा (प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड) सेवा (चौथा संशोधन) नियम, 2016, नियम 8 - सहायक अध्यापक (हिंदी) के पद के लिए शैक्षणिक योग्यता (i) हिंदी के साथ स्नातक की डिग्री और संस्कृत के साथ इंटरमीडिएट (ii) बी.एड. - याचिकाकर्ताओं की शिकायत यह थी कि वे संस्कृत और हिंदी में स्नातक थे और प्रतिवादी इस आधार पर याचिकाकर्ताओं की पात्रता से इनकार नहीं कर सकते कि याचिकाकर्ताओं ने संस्कृत विषय के साथ इंटरमीडिएट नहीं किया है - आयोजित - विवाद का मुद्दा नियम 8(6)(i) के तहत एक विषय के रूप में संस्कृत के साथ इंटरमीडिएट या संस्कृत के साथ समकक्ष परीक्षा - एनसीटीई विनियम, 2014 के विनियमन 4 के तहत निर्धारित न्यूनतम योग्यता के अतिरिक्त, एक विषय के रूप में संस्कृत के साथ इंटरमीडिएट का निर्धारण करने पर कक्षा 9वीं और 10वीं का पाठ्यक्रम विचार किया जा रहा है - अतिरिक्त योग्यता का कक्षा 9वीं और 10वीं के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम से सीधा संबंध है - जिन याचिकाकर्ताओं ने संस्कृत विषय के साथ इंटरमीडिएट उत्तीर्ण नहीं किया है, लेकिन अन्य विषयों के साथ इंटरमीडिएट उत्तीर्ण किया है और संस्कृत में स्नातक किया है, यह नहीं कहा जाएगा कि उनके पास उच्च योग्यता है क्योंकि उन्होंने इंटरमीडिएट में एक विषय के रूप में संस्कृत की निर्धारित योग्यता के चैनल/संकाय के माध्यम से स्नातक की पढ़ाई पूरी नहीं की है। (पैरा 24,20)

बी. सिविल कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - न्यायिक समीक्षा - परिसीमा - नियुक्ति के लिए योग्यता - किसी पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यताएं नियोक्ता के लिए पहुंच, निर्धारण और निर्णय लेने के लिए हैं - न्यायालय न्यायिक समीक्षा की आड़ में नियुक्ति प्राधिकारी के स्थान पर निर्धारित नहीं कर सकता है कि नियोक्ता के लिए सबसे अच्छा क्या है - किसी भी पद के लिए योग्यता की प्रासंगिकता और उपयुक्तता का निर्धारण और निर्णय लेना नियोक्ता का कार्य है और योग्यता निर्धारित करते समय इस पर विचार करना और मूल्यांकन करना न्यायालय का कार्य नहीं है - एक पद, राज्य, नियोक्ता के रूप में, नौकरी की प्रकृति, कर्तव्यों के कुशल निर्वहन के लिए आवश्यक योग्यता, योग्यता की कार्यक्षमता और अध्ययन के पाठ्यक्रम की सामग्री

अनुवादित

सहित कई कारकों को वैध रूप से ध्यान में रख सकता है। (पैरा 15, 16)

सी. सिविल कानून - नियुक्ति के लिए योग्यता - उच्च योग्यता का होना - सामान्य नियम यह है कि उच्च योग्यता वाले उम्मीदवार को किसी पद के लिए निर्धारित निम्न योग्यता को पूर्ण करने वाला माना जाता है - लेकिन वह उच्च योग्यता उसी मध्यम में होनी चाहिए - इसके अतिरिक्त, यह नियम अपवाद के अधीन होगा - जहां किसी विशेष योग्यता का निर्धारण उस पद के कार्यों के निर्वहन के लिए प्रासंगिक पाया जाता है और साथ ही, सरकार यह प्रदर्शित करने में सक्षम है कि उक्त योग्यता के अभाव में कोई उम्मीदवार उस पद के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता है, भले ही उसके पास "बेहतर" योग्यता हो लेकिन उस "बेहतर" योग्यता का पद से जुड़े कार्यों से कोई संबंध नहीं है। (पैरा 19)

डी. सिविल कानून - व्याख्या - संवैधानिक वैधता के सिद्धांत - किसी अधिनियम की संवैधानिक वैधता को केवल दो आधारों पर चुनौती दी जा सकती है, अर्थात (i) विधायी क्षमता की कमी; और (ii) संविधान के भाग III या किसी अन्य संवैधानिक प्रावधान में गारंटीकृत मौलिक अधिकारों में से किसी का उल्लंघन - किसी क़ानून की वैधता पर विचार करते समय धारणा हमेशा संवैधानिकता के पक्ष में होती है और इसका बोझ उस व्यक्ति पर होता है जो इसे चुनौती देता है - यह दिखाने के लिए कि संवैधानिक सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है किसी अधिनियम की संवैधानिकता को बनाए रखने के लिए, न्यायालय सामान्य ज्ञान, रिपोर्ट, प्रस्तावना, समय का इतिहास, कानून का उद्देश्य और अन्य सभी तथ्यों पर विचार कर सकता है जो प्रासंगिक हैं - संवैधानिक अमान्यता से बचने के लिए उदार व्याख्या देने में न्यायसंगत होगा - जहां एक क़ानून मौन है या अस्पष्ट है, न्यायालय अस्पष्ट को परिवर्तित करने का प्रयास करेगा और एक ऐसी संरचना को अपनाएगा जो किसी अधिनियम की संवैधानिकता की चुनौती की जांच करते समय संवैधानिकता की ओर झुक जाएगी - न्यायालय को संवैधानिकता की धारणा से शुरुआत करनी है और जहां तक संभव हो इसकी वैधता को बनाए रखने का प्रयास करना है (पैरा 30)

निरस्त। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. जय प्रकाश यादव एवं अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, रिट-ए संख्या 1154/2018 दिनांक 10.05.2018

2. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम भूपेन्द्र नाथ त्रिपाठी एवं अन्य, (2010) 13 एससीसी 203

3. डॉ. प्रीति श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य, (1999) 7 एससीसी 120

अनुवादित

4. ए.पी. सहकारी तिलहन उत्पादक फेडरेशन लिमिटेड, हैदराबाद, आंध्र प्रदेश बनाम डी. अच्युता राव और अन्य

5. भूपेन्द्र नाथ त्रिपाठी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2009) 2 ऑल एलजे 401 (एफबी)

6. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम भूपेन्द्र नाथ त्रिपाठी एवं अन्य, (2010) 4 एससीसी 606

7. पंजाब राज्य और अन्य बनाम अनीता एवं अन्य, (2015) 2 एससीसी 170

8. जहूर अहमद राथर और अन्य बनाम शेख इम्तियाज अहमद और अन्य, (2019) 2 एससीसी 404

9. महाराष्ट्र लोक सेवा आयोग बनाम संदीप श्रीराम वराडे और अन्य (2019) 6 सुप्रीम कोर्ट वाद 362

10. मुख्य प्रबंधक, पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य बनाम अनित कुमार दास 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 897

11. पंजाब राज्य और अन्य बनाम अनिता एवं अन्य (2015) 2 एससीसी 170

12. जहूर अहमद राथर बनाम इम्तियाज अहमद (2019) 2 एससीसी 404

13. अनंत मिल्स बनाम गुजरात राज्य AIR 1975 SC 1234

14. चरणजीत लाल चौधरी बनाम भारत संघ एवं अन्य, एआईआर 1951 एससी 41

15. भारत संघ बनाम एलफिंस्टन स्पिनिंग एंड वीविंग कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, एआईआर 2001 एससी 724

16. बिहार राज्य और अन्य बनाम श्रीमती चारुसिला दासी, एआईआर 1959 एससी 1002

17. केदार नाथ सिंह बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1962 एससी 955

18. कॉर्पोरेशन ऑफ कलकत्ता बनाम लिबरी सिनेमा, एआईआर 1965 एससी 1107

19. आनंदजी हरिदास एंड कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम एस.पी. कस्तूरे और अन्य, एआईआर 1968 एससी 565

20. सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन एवं अन्य, एआईआर 1978 एससी 1675

21. बिहार राज्य बनाम बिहार डिस्टिलरीज, एआईआर 1997 एससी 1511

22. ज़मीर अहमद लतीफुर रहमान शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, जे.टी. 2010 (4) एससी 256

23. ग्रेटर बॉम्बे को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम यूनाइटेड यार्न टेक्स (पी) लिमिटेड और अन्य, (2007) 6 एससीसी 236

24. प्रमोटर्स एंड बिल्डर्स एसोसिएशन बनाम पुणे नगर निगम (2007) 6 एससीसी 143

25. हुकुम चंद बनाम भारत संघ, (1972) 2 एससीसी 601

26. जनरल ऑफिसर कमांडिंग-इन-चीफ बनाम सुभाष चंद्र यादव एवं अन्य, (1988) 2 एससीसी 351

27. अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (रेव्ह.) दिल्ली प्रशासन बनाम सिरी राम, (2000) 5 एससीसी 451

28. सुखदेव सिंह व अन्य बनाम भगतराम सरदार सिंह रघुवंशी और अन्य, (1975) 1 एससीसी 421

29. कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम एच. गणेश कामथ एवं अन्य, (1983) 2 एससीसी 402

अनुवादित

30. कुंज बिहारी लाल बुटेल एवं अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2000) 3 एससीसी 40
31. भारत संघ बनाम मेसर्स जी.एस. चाथा राइस मिल, (2021) 2 एससीसी 21 209
32 केरल राज्य इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड और अन्य बनाम थॉमस जोसेफ @ थॉमस एम.जे. एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 9252-9253 /2022 दिनांक 16.12.2022

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी, द्वारा प्रदत्त)

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री टी.पी. सिंह, उनके सहायक श्री सत्यवीर सिंह विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राधा कांत ओझा, उनके सहायक श्री ललित कुमार पांडे और श्री रमेश चंद्र तिवारी, याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता, श्री नीरज त्रिपाठी, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री शशांक शेखर सिंह, राज्य-प्रतिवादियों के लिए विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 3 (उ.प्र. लोक सेवा आयोग, इलाहाबाद) के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अवनीश त्रिपाठी को सुना।

2. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से 2018 की रिट- ए संख्या - 9739 को प्रमुख रिट याचिका माना गया है और उसके तथ्यों पर ध्यान दिया जा रहा है।

3. प्रमुख रिट याचिका में मांगी गई राहतें इस प्रकार हैं:

अ. उत्तर प्रदेश अधीनस्थ शैक्षिक (प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड) सेवा (चतुर्थ संशोधन) नियम 2016 के आक्षेपित नियम 8(6) को भारत के संविधान के अनुच्छेद 40 के विपरीत घोषित करते हुए परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें इस सीमा तक कि यह सहायक शिक्षक (प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड) विषय हिंदी से संबंधित योग्यताओं में से एक संस्कृत विषय के साथ इंटरमीडिएट उत्तीर्ण करने की योग्यता के रूप में निर्धारित करता है।

ब. सचिव, लोक सेवा आयोग, इलाहाबाद उ.प्र. द्वारा जारी दिनांक 15.03.2018 के विज्ञापन क्रमांक -ए-1 / ई-1 - / 2018 के आक्षेपित विज्ञापन को खारिज करने और रिकॉर्ड को तलब करने के लिए उत्प्रेरण-लेख की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें। इस सीमा तक कि वह सहायक अध्यापक (प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड) विषय हिंदी की इंटरमीडिएट योग्यता में संस्कृत को एक विषय के रूप में निर्धारित करता है जैसा कि यूपी अधीनस्थ शैक्षिक (प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड) सेवाएँ (चौथा संशोधन) नियम 2016 के विवादित नियम 8(6) में दिया गया है।

स. परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें उत्तरदाताओं को योग्यता बी.ए. हिंदी और संस्कृत के समकक्ष और बी.एड., न कि इंटरमीडिएट में संस्कृत विषय, निर्धारित करने के बाद यूपी के

अनुवादित

राजकीय इंटर कॉलेजों में सहायक शिक्षक (प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड) विषय हिंदी के पद पर चयन शुरू करने का निर्देश दिया जाए।"

तथ्य:

4. वर्तमान मामले के संक्षेप में बताए गए तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता खुद को सहायक शिक्षक (प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड) (पुरुष/महिला शाखा) परीक्षा 2018 के चयन में आवेदन करने के इच्छुक होने का दावा करते हैं, जिसमें **सरकारी माध्यमिक इंटरमीडिएट स्कूलों या कॉलेजों** में कक्षा 9वीं और 10वीं के लिए सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए सहायक शिक्षक (पुरुष/महिला शाखा) के लिए योग्यता - संक्षेप में हिंदी को एक विषय के रूप में **संस्कृत के साथ इंटरमीडिएट** और हिंदी के साथ स्नातक और बी.एड. निर्धारित किया गया है। सभी याचिकाकर्ताओं का दावा है कि उनके पास हिंदी और संस्कृत विषय के साथ स्नातक की डिग्री है और मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों से बीएड डिग्री भी है किन्तु उन्होंने इंटरमीडिएट बिना संस्कृत विषय के उत्तीर्ण किया है। चूंकि इंटरमीडिएट में संस्कृत उनका एक विषय नहीं था, इसलिए, यू.पी. अधीनस्थ शैक्षिक (प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड) सेवा (चौथा संशोधन) नियम 2016 के प्रावधानों के अनुसार, वे सरकारी कॉलेजों में कक्षा 9वीं और 10वीं के लिए सहायक शिक्षक (हिंदी) के पद के लिए आवेदन करने के पात्र नहीं हैं।

5. याचिकाकर्ताओं के अनुसार, उत्तर प्रदेश अधीनस्थ शैक्षिक (प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड) सेवा नियमावली, 1983 के नियम 8(6), जिसे चौथे संशोधन नियमावली 2016 (इसके बाद नियमावली, 1983 के रूप में संदर्भित) द्वारा संशोधित किया गया है, में हाई स्कूल (कक्षा 9वीं और 10वीं) के लिए हिंदी शिक्षकों के लिए संस्कृत को इंटरमीडिएट में एक विषय के रूप में किया जाना मनमाना, अवैध है और यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के तहत प्रदान की गई पात्रता के विपरीत है जो सहायक अध्यापक (हिन्दी) के पद के लिए इंटरमीडिएट में संस्कृत को अनिवार्य विषय के रूप में प्रदान नहीं करता है। नतीजतन, याचिकाकर्ताओं ने वर्तमान रिट याचिकाएं दायर कर संशोधित नियम 1983 के आक्षेपित नियम 8(6) एवं सचिव, लोक सेवा आयोग इलाहाबाद उ.प्र. द्वारा जारी विज्ञापन संख्या ए-I /ई-1/2018, दिनांक 15.03.2018 को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला घोषित करने की प्रार्थना की है, उस सीमा तक जहां यह इंटरमीडिएट में संस्कृत को एक विषय के रूप में सहायक अध्यापक (हिन्दी) पद हेतु योग्यता निर्धारित करता है। उन्होंने उत्तरदाताओं को इंटरमीडिएट में एक विषय के रूप में संस्कृत को हटाकर सहायक शिक्षक (प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड) विषय- हिंदी के पद पर चयन शुरू करने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश देने की भी मांग की है।

याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ

6. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं: -

अनुवादित

(i) राज्य सरकार द्वारा भारत के संविधान अनुच्छेद 309 के परंतुक के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिनियमित उत्तर प्रदेश अधीनस्थ शैक्षिक (प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड) सेवा नियमावली, 1983 (इसके बाद "नियम, 1983" के रूप में संदर्भित) के तहत निर्धारित योग्यता, चौथे संशोधन नियम, 2016 द्वारा संशोधित, सहायक शिक्षक (पुरुष / महिला) (हिंदी) के पद के लिए शैक्षणिक योग्यता प्रदान करता है, इसके तहत बनाए गए परिशिष्ट-ए (विनियम I) अध्याय II के साथ विरोधाभासी है। यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 (बाद में इसे "अधिनियम, 1921" संदर्भित) और राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (स्कूलों में शिक्षकों की भर्ती के लिए न्यूनतम योग्यता का निर्धारण विनियम 2001) के विनियमन 4 (इसके बाद इसे एनसीटीई विनियमन के रूप में जाना जाएगा, 2001), क्योंकि नियम 1983 सहायक शिक्षक (हिंदी) के लिए योग्यता निर्धारित करता है **(I) भारत में किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से हिंदी विषय के साथ स्नातक की डिग्री और संस्कृत विषय के साथ इंटरमीडिएट या संस्कृत के साथ समकक्ष परीक्षा और (II)) बी.एड. या भारत में किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से समकक्ष डिग्री, जबकि अधिनियम, 1921** के तहत बनाए गए नियम हिंदी शिक्षक के लिए हिंदी और संस्कृत में स्नातक होने की शैक्षणिक योग्यता प्रदान करते हैं और एनसीटीई विनियमन न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता सहायक शिक्षक (हिंदी) के लिए शैक्षणिक योग्यता के रूप में स्नातक/स्नातकोत्तर प्रदान करता है। इसलिए, याचिकाकर्ता जो संस्कृत और हिंदी दोनों में स्नातक हैं, सहायक शिक्षक (हिंदी) के पद के लिए आवश्यक शैक्षणिक योग्यता रखते हैं। **इस प्रकार, इंटरमीडिएट में एक विषय के रूप में संस्कृत के साथ हिंद में स्नातक करने का प्रावधान करने वाले नियम 1983, अधिनियम 1921 और एनसीटीई विनियम, 2001 के तहत बनाए गए उपरोक्त नियमों के साथ विरोधाभास में हैं। नतीजतन, यह नियमों के साथ विरोधाभास होने के कारण वैध नहीं है।**

(ii) याचिकाकर्ताओं ने सरकारी स्वामित्व वाले स्कूलों/कॉलेजों में सहायक शिक्षक (हिंदी) के पद के लिए आवेदन किया है, जिसके लिए शैक्षणिक योग्यता नियम 1983 में प्रदान की गई है, जबकि सहायता प्राप्त कॉलेजों के लिए शैक्षणिक योग्यता अधिनियम 1921 के तहत प्रदान की गई है। **नियम 1983 के तहत निर्धारित योग्यता किसी भी उचित वर्गीकरण पर आधारित नहीं है,** इसलिए, नियम, 1983 के तहत सहायक शिक्षक (हिंदी) के लिए शैक्षणिक योग्यता निर्धारित करने वाला प्रासंगिक प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है।

(iii) भले ही यह मान लिया जाए कि राज्य सरकार एनसीटीई विनियमन,2001 के तहत प्रदान किए जाने के बावजूद सहायक शिक्षक के पद के लिए कानूनी रूप से शैक्षणिक योग्यता निर्धारित कर सकती है, फिर भी **राज्य सरकार एनसीटीई विनियमन, 2001 के तहत प्रदान की गई तुलना में केवल उच्च योग्यता निर्धारित कर सकती है। इंटरमीडिएट में संस्कृत की योग्यता प्रदान**

अनुवादित

करना निम्न योग्यता होगी। इसलिए, इस सीमा तक चौथे संशोधन नियम 2016 द्वारा संशोधित नियम 1983 एनसीटीई विनियम 2001 के दायरे से बाहर है।

(iv) **गैर-सरकारी सहायता प्राप्त संस्थानों के लिए अधिनियम, 1921 के तहत बनाए गए नियमों द्वारा और सरकारी संस्थान में सहायक शिक्षक (हिंदी) के लिए चौथे संशोधन नियम, 2016 के तहत अलग-अलग शैक्षणिक योग्यता निर्धारित की गई है, जबकि सरकारी और सहायता प्राप्त गैर सरकारी स्कूलों के सहायक अध्यापकों के वेतनमान और सेवा लाभ बराबर हैं।** दोनों प्रकार के स्कूलों के पाठ्यक्रम आदि अधिनियम, 1921 के प्रावधानों द्वारा शासित होते हैं। इस प्रकार, चौथा संशोधन नियम, 2016 स्पष्ट रूप से **भेदभावपूर्ण** है। सरकारी स्कूलों या गैर सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में पढ़ाने वाले सहायक शिक्षक (हिंदी) छात्रों को एक ही पाठ्यक्रम पढ़ा रहे हैं। **जहूर अहमद राथर और अन्य बनाम शेख इम्तियाज अहमद और अन्य, (2019) 2 एससीसी 404 के मामले में** माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, जैसा कि राज्य के उत्तरदाताओं द्वारा विश्वास किया जा सकता है, स्पष्ट रूप से अलग है क्योंकि यह **कुछ प्रशिक्षण पाठ्यक्रम से संबंधित** है।

7. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अपनी दलीलों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास किया है: -

(i) 2018 की रिट-ए संख्या 11545 (जय प्रकाश यादव और 46 अन्य बनाम भारत संघ और 4 अन्य) में निर्णय दिनांक 10.05.2018।

(ii)उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम भूपेन्द्र नाथ त्रिपाठी एवं अन्य, (2010) 13 एससीसी 203।

<u>उत्तरदाताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ-</u>

8. श्री नीरज त्रिपाठी, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता, निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं: -

(i) यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अंतर्गत सरकारी संस्थानों की कक्षा 9वीं और 10वीं के लिए शैक्षणिक योग्यता निर्धारित की गई, नियमों में 04.05.2016 को संशोधन किया गया था, जिसमें गैर सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों/कॉलेजों के लिए चौथे संशोधन नियम 2016 द्वारा संशोधित नियम 1983 के तहत निर्धारित योग्यता के समान योग्यता निर्धारित की गई थी। इसलिए, सरकारी कॉलेजों और सहायता प्राप्त स्कूलों/कॉलेजों में सहायक शिक्षक की भर्ती के लिए निर्धारित शैक्षणिक योग्यता में कोई अंतर नहीं है। अब दोनों की शैक्षणिक योग्यता बराबर हो गई है। इसलिए, कोई भेदभाव नहीं है।

(ii) **राज्य, एनसीटीई विनियमन, 2014 के तहत निर्धारित योग्यताओं के अतिरिक्त कोई भी अतिरिक्त योग्यता निर्धारित कर सकता है। इसलिए, चौथे संशोधन नियम, 2016 द्वारा (हिंदी) में स्नातक के अलावा संस्कृत विषय के साथ इंटरमीडिएट निर्धारित करना एनसीटीई**

अनुवादित

विनियमन, 2014 के साथ विरोधाभासी नहीं है। डॉ. प्रीति श्रीवास्तव और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, (1999) 7 एससीसी 120 (अनुच्छेद 35 से 38), ए.पी. सहकारी तेल बीज उत्पादक संघ लिमिटेड, हैदराबाद, आंध्र प्रदेश बनाम डी. अच्युता राव और अन्य (पैराग्राफ 41), भूपेन्द्र नाथ त्रिपाठी और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य, (2009) 2 सभी एलजे 401 (एफबी), उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम भूपेन्द्र नाथ त्रिपाठी एवं अन्य, (2010) 4 एससीसी 606 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है।

(iii) विज्ञापन संख्या ए-1/ई-1/2018 दिनांक 15.03.2018 में दिए गए पाठ्यक्रम के अनुसार, विषय (हिंदी) के लिए, संस्कृत साहित्य शामिल है जो **कक्षा 9वीं और 10वीं के छात्रों को प्रारंभिक संस्कृत की शिक्षा प्रदान करने का संकेत देता है।** याचिकाकर्ता जो संस्कृत से इंटरमीडिएट नहीं हैं, लेकिन संस्कृत में स्नातक हैं, वे पाठ्यक्रम में आवश्यक प्रारंभिक संस्कृत की शिक्षा प्रदान करने के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

(iv) विवादित नियम न तो मनमाने हैं और न ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हैं, न ही अधिनियम, 1921 के तहत बनाए गए विनियमन के साथ विरोधाभास में हैं और न ही एनसीटीई विनियमन, 2014 के साथ विरोधाभास में हैं।

(v) जिन उम्मीदवारों के पास निर्धारित शैक्षणिक योग्यता नहीं है, लेकिन उच्च योग्यता है, उन्हें तब तक योग्य उम्मीदवार नहीं माना जा सकता, जब तक कि नियम यह निर्धारित न करें कि उच्च योग्यता रखने वाला उम्मीदवार पात्र होगा। **पंजाब राज्य और अन्य बनाम अनीता और अन्य, (2015) 2 एससीसी 170 (अनुच्छेद 7 से 16) और जहूर अहमद राथर और अन्य बनाम शेख इम्तियाज अहमद और अन्य, (2019) 2 एससीसी 404 (अनुच्छेद 23, 25, 26 और 27) के मामले में** माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया गया है।

9. लोक सेवा आयोग के विद्वान अधिवक्ता श्री अवनीश त्रिपाठी, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों का समर्थन करते हैं।

<u>चर्चा एवं निष्कर्ष-</u>

10. इससे पहले कि हम पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार करें, संशोधित नियम 1983 के नियम 8(6) के प्रासंगिक हिस्से को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत करना उचित होगा: -

"8. शैक्षणिक योग्यता:- *सेवा में विभिन्न पदों पर सीधी भर्ती के लिए उम्मीदवार के पास निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए या समय-समय पर सरकार द्वारा निर्दिष्ट होनी चाहिए -*

(6)	*सहायक अध्यापक*	*(I) भारत में किसी*

अनुवादित

	(पुरुष/ महिला) हिन्दी	*मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से हिंदी विषय के साथ स्नातक की डिग्री और संस्कृत विषय के साथ इंटरमीडिएट या संस्कृत के साथ समकक्ष परीक्षा।* *(ii)बी.एड. या भारत में किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से समकक्ष डिग्री।"*

11. संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के अनुच्छेद 4 में, प्रतिवादी संख्या 6 अर्थात नेशनल काउंसिल फॉर टीचर्स एजुकेशन, (संक्षेप में एनसीटीई) ने कहा है कि धारा 33 की उपधारा (2) के खंड (डीडी) सपठित राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद अधिनियम 1993 की धारा 12 ए तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (स्कूलों में शिक्षकों की भर्ती के लिए न्यूनतम योग्यता का निर्धारण) विनियम 2001 के सुपर सत्र में एनसीटीई ने "राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, वरिष्ठ माध्यमिक या इंटरमीडिएट स्कूलों या कॉलेजों में शिक्षा शिक्षकों और शारीरिक शिक्षा शिक्षकों के रूप में भर्ती होने वाले व्यक्तियों के लिए न्यूनतम योग्यता का निर्धारण) विनियमन 2014 (इसके बाद "एनसीटीई विनियम 2014 के रूप में संदर्भित) बनाया।

12. विनियम 4, एनसीटीई विनियम, 2014 की पहली अनुसूची का खंड 4 निम्नानुसार प्रदान करता है:

"4. भर्ती के लिए योग्यता - पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, वरिष्ठ माध्यमिक या इंटरमीडिएट स्कूलों या वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा प्रदान करने वाले कॉलेजों में किसी भी मान्यता प्राप्त स्कूल में शिक्षकों की भर्ती के लिए योग्यताएं पहली और दूसरी अनुसूची (ओं) में दी गई होंगी जो इन विनियमों के साथ संलग्न।

(बी) शिक्षकों की पदोन्नति के लिए पहली और दूसरी अनुसूची (ओं) में निर्दिष्ट प्रासंगिक न्यूनतम योग्यताएं एक स्तर से अगले स्तर तक विचार के लिए लागू होती हैं।

4. माध्यमिक/उच्च विद्यालय (कक्षा IX-X के लिए)	*(ए) ग्रेजुएशन या पोस्ट ग्रेजुएशन (या इसके समकक्ष) और बैचलर ऑफ एजुकेशन में कम*

अनुवादित

	से कम 50% अंकों के साथ मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक / स्नातकोत्तर। (बी.एड.) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद से मान्यता प्राप्त संस्थान से। या *(बी) मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक या स्नातकोत्तर (या इसके समकक्ष) में कम से कम 45% अंकों के साथ स्नातक/स्नातकोत्तर और राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद से मान्यता प्राप्त संस्थान से बैचलर ऑफ एजुकेशन (बी.एड.) {के अनुसार राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थान (मान्यता के लिए आवेदन पत्र, आवेदन जमा करने की समय सीमा, शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों की मान्यता के लिए मानदंडों और मानकों का निर्धारण और नए पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण शुरू करने की अनुमति) विनियम, 2002 13.11.2002 को अधिसूचित और राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (मान्यता मानदंड और प्रक्रिया) विनियम, 2007 10.12.2007 को अधिसूचित किए गए।* *या* *(सी)* *बी.ए.एड/बी.एससी.एड की 4 साल की डिग्री किसी भी राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद से मान्यता प्राप्त संस्थान से।"*

13. कक्षा 9वीं एवं कक्षा 10वीं के लिए हिन्दी विषय का पाठ्यक्रम उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा निर्धारित है जिसमें संस्कृत व्याकरण से संबंधित थोड़ा प्रारंभिक संस्कृत, संस्कृत से हिंदी में अनुवाद और दो प्रश्नों का उत्तर संस्कृत में दिया जाना शामिल है। कक्षा 11वीं एवं 12वीं का संस्कृत विषय का पाठ्यक्रम माध्यमिक शिक्षा बोर्ड उ.प्र. द्वारा निर्धारित है। नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"संस्कृत
कक्षा-11
खण्ड-क(गद्य)

चन्द्रापीडकथा
(साहं पितृभवने
बालतया ..... सर्व रमणीयकानाम् एकनिवासभूताम्, कादम्बरीं ददर्श)

अनुवादित

खण्ड-ख (पद्य)

रघुवंशमहाकाव्यम् (द्वितीय सर्ग)
(श्लोक संख्या 27 से 40 तक)

खण्ड-च (व्याकरण)

कारक एवं विभक्ति- द्वितीय विभक्ति- अधिशीङस्थासा कर्म, कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे।
स्वर सन्धि- एङिपररूपम्, एङःपदान्तादपि।
शब्दरूप- पुल्लिगं- भगवत्, करिन्, पति, सखि चन्द्रमस्।
स्त्रीलिंग- वाच्, सरित्, श्री, स्त्री, अप्।
धातुरूप- परस्मैपद-अस्, नश्, आप्, शक्, इष्, कृष्।

कक्षा-12
खण्ड क-(गद्य)

चन्द्रापीडकथा
निर्गतायां केयूरकेण सह ..... आनन्दस्य अध्यगच्छन्।

खण्ड-ख (पद्य)

रघुवंशमहाकाव्यम् (द्वितीय सर्ग) श्लोक संख्या 65-75 तक।

खण्ड-च (व्याकरण)

कारक एवं विभक्ति- चतुर्थी विभक्ति स्पृहेरीप्सितः, पंचमी विभक्ति- जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वा०)।,
आख्यातोपयोगे। षष्ठी विभक्ति- क्तस्य च वर्तमाने, षष्ठी चानादरे। सप्तमी विभक्ति- साध्वसाधुप्रयोगे च (वा०)
व्यंजन सन्धि- झलां जश् झशि, तोर्लि, अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः।
विसर्ग सन्धि- अतोरोरप्लुतापप्लुते, वा शरि, रोरि, ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घो•णः।
शब्द रूप- नपुंसकलिंग- जगत्, ब्रह्मन्, धनुष।
सर्वनाम- इदम्, अदस्।
धातुरूप- आत्मनेपद- भाष्, विद्।
उभयपद- चुर, श्रि, क्री, धा। "

14. संस्कृत में स्नातक पाठ्यक्रम में संस्कृत का उच्च मानक शामिल है लेकिन कक्षा 9वीं और 10वीं के हिंदी विषय के पाठ्यक्रम में शामिल संस्कृत का पाठ्यक्रम शामिल नहीं है। सहायक शिक्षक (पुरुष/महिला) - हिंदी को कक्षा 9वीं और 10वीं के छात्रों को थोड़ी प्रारंभिक संस्कृत पढ़ानी होगी। इसलिए, कर्तव्यों के कुशल निर्वहन के लिए योग्यता की कार्यक्षमता, अध्ययन के पाठ्यक्रम की सामग्री और पद से जुड़े कार्य प्रासंगिक हैं। इसलिए, हिंदी विषय के लिए कक्षा 9वीं और 10वीं के पाठ्यक्रम को देखते हुए, राज्य सरकार ने अपने विवेक से और प्रासंगिक पहलुओं पर उचित विचार करते हुए, सहायक शिक्षक (हिंदी) के लिए नियम, 1983 के नियम 8(6) के तहत कुछ शैक्षणिक योग्यता निर्धारित की है। इसमें *"भारत में किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से एक विषय के रूप में हिंदी के साथ स्नातक की डिग्री और एक विषय के रूप में* ***संस्कृत के***

अनुवादित

साथ इंटरमीडिएट या संस्कृत *के साथ समकक्ष परीक्षा और बी.एड."* शामिल है। इस प्रकार, कक्षा 9वीं और 10वीं के पाठ्यक्रम को देखते हुए हिंदी में स्नातक को सहायक शिक्षक (पुरुष/महिला) - हिंदी के पद के लिए शैक्षणिक योग्यता के रूप में निर्धारित किया गया है।

15. यह स्थापित कानून है कि किसी पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यताओं का अभिगम, निर्धारण करना और निर्णय लेना नियोक्ता का अधिकार है। न्यायिक समीक्षा की आड़ में अदालत नियुक्ति प्राधिकारी की कुर्सी पर बैठकर यह तय नहीं कर सकती कि नियोक्ता के लिए सबसे अच्छा क्या है। किसी भी पद के लिए योग्यता की प्रासंगिकता और उपयुक्तता का निर्धारण और निर्णय लेना नियोक्ता का काम है और इस पर विचार करना और मूल्यांकन करना अदालत का काम नहीं है। सहायक शिक्षकों के पद के लिए योग्यता निर्धारित करने के लिए राज्य सरकार को अधिक छूट की अनुमति है, लेकिन यह एनसीटीई विनियम, 2014 के प्रतिकूल नहीं होना चाहिए। हमारे द्वारा लिया गया दृष्टिकोण **महाराष्ट्र लोक सेवा आयोग बनाम संदीप श्रीराम वराडे और अन्य (2019) 6 सुप्रीम कोर्ट केस 362 (अनु. 9), मुख्य प्रबंधक, पंजाब नेशनल बैंक और अन्य बनाम अनित कुमार दास 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 897 (अनु. 21) और पंजाब राज्य और अन्य बनाम अनीता और अन्य (2015) 2 एससीसी 170 (अनु. 14)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून द्वारा भी समर्थित है।

16. यह स्थापित कानून है कि किसी पद के लिए योग्यता निर्धारित करते समय, नियोक्ता के रूप में राज्य वैध रूप से नौकरी की प्रकृति, कर्तव्यों के कुशल निर्वहन के लिए आवश्यक योग्यता, पद की कार्यक्षमता सहित कई कारकों को ध्यान में रख सकता है। योग्यता और अध्ययन के पाठ्यक्रम की सामग्री। इस संबंध में **जहूर अहमद राथर बनाम इम्तियाज अहमद (2019) 2 एससीसी 404** (अनु. 27) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का संदर्भ लिया जा सकता है।

17. इसलिए, प्रश्न में निर्धारित शैक्षणिक योग्यता को मनमाना या अप्रासंगिक विचार पर आधारित नहीं कहा जा सकता है।

18. जहां तक **उच्च योग्यता** का सवाल है, हमारा मानना है कि "उच्च योग्यता" की अवधारणा का सामान्य नियम यह है कि उच्च योग्यता रखने वाले उम्मीदवार की उम्मीदवारी को उस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता, **किन्तु उच्च योग्यता निर्धारित योग्यता के चैनल/संकाय के माध्यम से होनी चाहिए।**

19. इसलिए, जिन याचिकाकर्ताओं ने बिना संस्कृत विषय के इंटरमीडिएट उत्तीर्ण किया है, उन्हें केवल इसलिए उच्च योग्यता वाला नहीं कहा जा सकता क्योंकि उन्होंने संस्कृत विषय में स्नातक किया है, क्योंकि उनके पास इंटरमीडिएट में एक विषय के रूप में संस्कृत की निर्धारित योग्यता चैनल/संकाय के माध्यम से संस्कृत में स्नातक की डिग्री नहीं है। हमारे द्वारा लिया

अप्रमाणित

गया दृष्टिकोण **उत्तराखंड राज्य और अन्य बनाम दीप चंद्र तिवारी और अन्य (2013) 15 एससीसी 557**, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून द्वारा भी समर्थित है। जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च योग्यता की अवधारणा (अनु. 11 और 12) पर विचार किया और निम्नानुसार आयोजित किया:

"11. हम इस सिद्धांत के प्रति सचेत हैं कि जब किसी पद के लिए विशेष योग्यताएं निर्धारित की जाती हैं, तो उच्च योग्यता रखने वाले उम्मीदवार की उम्मीदवारी को उस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है। ***इसमें कोई संदेह नहीं है, सामान्य नियम यह होगा कि उच्च योग्यता वाला उम्मीदवार किसी पद के लिए निर्धारित निचली योग्यता को पूरा करने वाला माना जाएगा। लेकिन वह उच्च योग्यता उसी चैनल में होनी चाहिए। इसके अलावा, यह नियम अपवाद के अधीन होगा। जहां किसी विशेष योग्यता का निर्धारण उस पद के कार्यों के निर्वहन के लिए प्रासंगिक पाया जाता है और साथ ही, सरकार यह प्रदर्शित करने में सक्षम है कि उक्त योग्यता के अभाव में एक उम्मीदवार पद के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता है, भले ही उसके पास "बेहतर" योग्यता हो, लेकिन उस "बेहतर" योग्यता का पद के साथ संलग्न कार्यों से कोई लेना-देना नहीं है।***

12. वर्तमान मामले में, हम स्थिति को इस अपवादित श्रेणी में पाते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है, सहायक शिक्षक का उद्देश्य प्राथमिक स्तर पर छात्रों को शिक्षा प्रदान करना है। प्राइमरी छात्रों को पढ़ाने के लिए बेसिक बी.एड. करते समय पढ़े गए विषय, डिग्री प्रासंगिक और उचित होगी। ***ऐसे छात्रों को पढ़ाने के लिए बी.एड. व्यावसायिक शिक्षा में विशेषज्ञता का कोई फायदा नहीं होगा क्योंकि उन छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान नहीं की जाती है, जो कि यहां उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त डिग्री में जोर दिया गया है। मौजूदा मामले में, प्राथमिक स्तर पर पढ़ाए जाने वाले बुनियादी विषयों में दक्षता आवश्यक है और इस प्रकार व्यावसायिक प्रशिक्षण किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेगा। इस प्रकार, जब हम पाते हैं कि वर्तमान मामले में, आवश्यक शिक्षा योग्यता बी.एड. डिग्री है।जो प्रासंगिक नियमों में निर्धारित है, वैधानिक अर्थ रखती है, उत्तरदाताओं की उम्मीदवारी को इस कारण से खारिज करने में सरकार की कार्रवाई को गलत नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि उनके पास योग्यता नहीं है, जैसा कि विज्ञापन में उल्लिखित है बी.एड. डिग्री सरलीकृत।"***

(जोर मेरे द्वारा दिया गया)

20. ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर, हम मानते हैं कि जिन याचिकाकर्ताओं ने स्वीकार किया है कि उन्होंने संस्कृत विषय के साथ इंटरमीडिएट उत्तीर्ण नहीं किया है, लेकिन अन्य विषयों के साथ इंटरमीडिएट उत्तीर्ण किया है और संस्कृत में स्नातक किया है, उनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि उनके पास उच्च योग्यता है चूंकि इंटरमीडिएट में एक

विषय के रूप में संस्कृत की निर्धारित योग्यता के चैनल/संकाय के माध्यम से स्नातक की पढ़ाई पूरी नहीं की है।

क्या सरकारी स्कूलों/कॉलेजों के कक्षा 9वीं और 10वीं के लिए सहायक अध्यापकों (पुरुष/महिला) हिंदी के लिए नियम 1983 के नियम 8(6) के तहत निर्धारित शैक्षणिक योग्यता, सहायता प्राप्त स्कूलों/कॉलेजों के लिए उ0प्र0 इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत बनाये गये नियमावली के अध्याय 2 के परिशिष्ट-अ में कक्षा 9वीं और 10वीं के लिए प्रदान की गई शैक्षणिक योग्यता से भिन्न है?

21. हमने नियम 1983 के नियम 8(6) के तहत सरकारी स्कूलों/कॉलेजों के लिए कक्षा 9वीं और 10वीं के सहायक शिक्षकों के लिए शैक्षणिक योग्यता के ऊपर अनु. 12 में पहले ही पुनरुत्पादन कर दिया है। इससे पहले अधिनियम, 1921 के तहत बनाए गए विनियमन में इंटरमीडिएट में संस्कृत को एक विषय के रूप में प्रदान नहीं किया गया था। नियम 1983 के नियम 8 को चौथे संशोधन नियम, 2016 द्वारा संशोधित किए जाने के बाद, साथ ही अधिनियम, 1921 के तहत बनाए गए विनियमन के अध्याय II के परिशिष्ट-ए में भी संशोधन किया गया और इंटरमीडिएट या समकक्ष परीक्षा, में संस्कृत को एक विषय के रूप में शामिल किया गया। अधिसूचना संख्या परिषद- 9/133 दिनांक 04.05.2016 द्वारा हाई स्कूल (कक्षा 9वीं और 10वीं) में सहायक शिक्षकों की नियुक्ति के लिए एक आवश्यक शैक्षणिक योग्यता के रूप में प्रदान की गई थी। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं की दलील है कि अधिनियम, 1921 के तहत बनाए गए विनियमों के अध्याय II के तहत सहायता प्राप्त स्कूलों/कॉलेजों में सहायक शिक्षकों (हिंदी) के लिए शैक्षणिक योग्यता में इंटरमीडिएट में एक विषय के रूप में संस्कृत निर्धारित नहीं की गई है। पूरी तरह से निराधार. इसलिए, प्रस्तुतीकरण अस्वीकार किए जाने योग्य है और इसे अस्वीकृत किया जाता है। इसके अलावा, सरकारी कॉलेजों के शिक्षक और निजी/सहायता प्राप्त कॉलेजों के शिक्षक दो अलग-अलग वर्ग हैं, और दोनों अलग-अलग नियमों द्वारा शासित होते हैं। इसलिए, अधिनियम, 1921 के तहत बनाए गए नियमों के अध्याय II में प्रदान की गई शैक्षणिक योग्यता नियम, 1983 के प्रयोजनों के लिए भी प्रासंगिक नहीं है।

क्या एनसीटीई द्वारा शिक्षकों के लिए निर्धारित न्यूनतम योग्यता और नियमावली 1983 के नियम 8(6) के तहत निर्धारित शैक्षणिक योग्यता के बीच विरोधाभास है?

22. संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 के आधार पर, विषय 'शिक्षा' को प्रविष्टि II (सूची-II) - राज्य सूची से हटा दिया गया था, और सूची-III - समवर्ती सूची की प्रविष्टि 25 में रखा गया था। इस प्रकार "शिक्षा" विषय पर कानून

अनुवादित

बनाने की विधायी क्षमता को समवर्ती सूची के अंतर्गत लाया गया। भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 (2) के प्रावधानों के मद्देनजर, खंड (3) में किसी बात के बावजूद, संसद और, खंड (1) के अधीन, किसी भी राज्य के विधानमंडल को भी सातवीं अनुसूची में सूची III में उल्लिखित किसी भी मामले के संबंध में कानून बनाने की शक्ति है। संसद ने योजनाबद्ध लक्ष्य हासिल करने की दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद की स्थापना का प्रावधान करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद अधिनियम, 1993 (1993 का क्रमांक 73) (इसके बाद 'केंद्रीय अधिनियम 1993' के रूप में संदर्भित) पूरे देश में शिक्षक शिक्षा प्रणाली का समन्वित विकास, शिक्षक शिक्षा प्रणाली में मानदंडों और मानकों का विनियमन और उचित रखरखाव और उससे जुड़े मामलों के लिए अधिनियमित किया। 2011 के अधिनियम संख्या 18 द्वारा दिनांक 12.10.2011 से नियोजित दिनांक 01.06.2012 से प्रभावी केंद्रीय अधिनियम, 1993 की धारा 12ए, एनसीटीई को स्कूली शिक्षकों की शिक्षा के न्यूनतम मानक निर्धारित करने की शक्ति प्रदान करती है जिसे नीचे दिया गया है:

*"**12ए- स्कूल शिक्षकों की शिक्षा के न्यूनतम मानकों को निर्धारित करने की परिषद की शक्ति** - स्कूलों में शिक्षा के मानकों को बनाए रखने के उद्देश्य से, परिषद, विनियमों द्वारा, किसी भी पूर्व-प्राथमिक में शिक्षक के रूप में भर्ती होने के लिए व्यक्तियों की योग्यता निर्धारित कर सकती है। प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, वरिष्ठ माध्यमिक या इंटरमीडिएट स्कूल या कॉलेज, चाहे वह किसी भी नाम से जाना जाता हो, केंद्र सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय या अन्य प्राधिकारी द्वारा स्थापित, संचालित, सहायता प्राप्त या मान्यता प्राप्त हो:*

बशर्ते कि इस धारा की कोई भी बात केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए किसी भी नियम, विनियम या आदेश के तहत किसी भी पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, वरिष्ठ माध्यमिक या मध्यवर्ती स्कूलों या कॉलेजों में भर्ती किए गए किसी भी व्यक्ति की निरंतरता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगी। राज्य सरकार, एक स्थानीय या अन्य प्राधिकारी, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (संशोधन) अधिनियम, 2011 के प्रारंभ होने से ठीक पहले केवल ऐसी योग्यताओं को पूरा न करने के आधार पर जो परिषद द्वारा निर्दिष्ट की जा सकती हैं:

बशर्ते कि पहले प्रावधान में निर्दिष्ट शिक्षक की न्यूनतम योग्यता इस अधिनियम में निर्दिष्ट अवधि के भीतर या बच्चों के मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (2009 का 35) के तहत हासिल की जाएगी।"

23. एनसीटीई द्वारा निर्धारित शिक्षा के न्यूनतम मानक का प्रासंगिक भाग पहले ही उपरोक्त अनुच्छेद 12 में पुन: प्रस्तुत किया जा चुका है।

अनुवादित

24. नियमावली, 1983 के नियम 8(6) में सहायक अध्यापक (पुरुष/महिला) - हिन्दी के लिए योग्यता हिन्दी के साथ स्नातक की डिग्री निर्धारित की गई है। इस प्रकार, इस सीमा तक उपरोक्त एनसीटीई विनियम और नियम, 1983 के नियम 8(6) के बीच कोई विरोधाभास नहीं है। विवाद का मुद्दा नियम 8(6)(i) के तहत ***"संस्कृत के साथ एक विषय के रूप में इंटरमीडिएट या संस्कृत के साथ समकक्ष परीक्षा"*** की अतिरिक्त योग्यता निर्धारित करना है। इस प्रकार, एक विषय के रूप में संस्कृत के साथ इंटरमीडिएट का निर्धारण, कक्षा 9वीं और 10वीं के पाठ्यक्रम को देखते हुए एनसीटीई विनियम, 2014 के विनियमन 4 के तहत निर्धारित न्यूनतम योग्यता के अतिरिक्त है। इस अतिरिक्त योग्यता का सीधा संबंध कक्षा 9वीं और 10वीं के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम से है। इसलिए, हमारा मानना है कि एनसीटीई विनियम, 2014 के नियम 8(6) और विनियम 4 के बीच कोई विरोधाभास नहीं है।

25. यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के तहत बनाए गए नियमों में निर्धारित शैक्षणिक योग्यता के संदर्भ में याचिकाकर्ताओं की दलीलों का कोई औचित्य नहीं है। मामले के इस पहलू पर इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा **2018 के रिट ए नंबर 11545 जय प्रकाश यादव और 46 अन्य बनाम भारत संघ और 4 अन्य ने 10.05.2018** को निर्णीत, में विचार किया गया और यू.पी. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921, उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 के विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख किया, इसे निम्नानुसार माना गया है:

"इंटरमीडिएट अधिनियम, अधिनियम 1982 और उसके तहत बनाए गए नियमों और विनियमों को संयुक्त रूप से पढ़ने पर, ***निजी और सहायता प्राप्त स्कूलों की वास्तविक रिक्ति के खिलाफ शिक्षकों का चयन विशेष रूप से चयन बोर्ड के क्षेत्र में है। सरकारी हाई स्कूल / इंटरमीडिएट के लिए शिक्षकों का चयन स्कूल सरकार के पास हैं जो चयन बोर्ड के दायरे से बाहर है।"***

26. इस प्रकार, सरकारी हाई स्कूल/इंटरमीडिएट स्कूलों के लिए शिक्षकों का चयन राज्य सरकार का है और इस संबंध में सरकारी हाई स्कूल/इंटरमीडिएट स्कूलों में सहायक शिक्षक के लिए न्यूनतम योग्यता निर्धारित करने वाले नियम, 1983 अधिनियमित किए गए हैं जो इस क्षेत्र को धारण करते हैं और इसके तहत निर्धारित शैक्षणिक योग्यता तब तक मान्य रहेगी जब तक कि वह एनसीटीई नियमों द्वारा निर्धारित योग्यता के प्रतिकूल न हो। तथ्यों के वर्तमान सेट में हम पहले ही मान चुके हैं कि नियम, 1983 के नियम 8(6) के तहत निर्धारित शैक्षणिक योग्यता एनसीटीई विनियम, 2014 के विनियमन 4 के तहत निर्धारित शैक्षणिक योग्यता के प्रतिकूल या विरोधाभासी नहीं है। इस प्रकार, यूपी के तहत बनाए गए विनियमन का आश्रय लेते हुए याचिकाकर्ताओं की दलीलें इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921,

अनुवादित

अस्वीकृत किये जाने योग्य है और इसे अस्वीकृत किया जाता है।

संवैधानिक वैधता का अनुमान

27. **अनंत मिल्स बनाम गुजरात राज्य एआईआर 1975 एससी 1234 (अनु. 20) में रिपोर्टेड मामले में**, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि:-

"20. वैधानिक प्रावधान की संवैधानिक वैधता की एक धारणा है। *यदि कोई पार्टी किसी प्रावधान की वैधता पर इस आधार पर आक्षेप करती है कि यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है, तो यह उस पार्टी पर निर्भर करता है कि वह आवश्यक दावे करे और भेदभाव को अनुच्छेद 14 का उल्लंघन दिखाने के लिए सामग्री प्रस्तुत करें। याचिकाकर्ताओं द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाओं में कोई दावा नहीं किया गया था कि 1969 के अध्यादेश 6 के लागू होने से पहले का आकलन बॉम्बे रेंट एक्ट के किराया प्रतिबंध प्रावधानों को ध्यान में रखकर किया गया था। उच्च न्यायालय के समक्ष 1970 की याचिका संख्या 233 के पैराग्राफ 2 बी और कुछ अन्य पैराग्राफ, जिस पर श्री तारकुंडे ने हमारा ध्यान आकर्षित किया था, में भी वह कथन शामिल नहीं है। याचिकाकर्ताओं या निगम की ओर से इन परिस्थितियों में इस तथ्यात्मक पहलू पर कोई सामग्री नहीं थी। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, उच्च न्यायालय ने केवल एक अनुमान के आधार पर मामले का फैसला किया। हमारी राय में, कुछ तथ्यों के कल्पित अस्तित्व के आधार पर एक अनुमान लगाकर किसी की संवैधानिक वैधता के प्रश्न पर निर्णय लेना बेहद खतरनाक है। जिन तथ्यों के कथित अस्तित्व के बारे में उच्च न्यायालय ने अनुमान लगाया था वे इस प्रकार के थे कि उनके संबंध में एक निश्चित अनुमान लगाया जा सकता था और उनके अस्तित्व या गैर-अस्तित्व के समर्थन में ठोस सामग्री पेश की जा सकती थी। अनुमानों का सहारा तब लिया जाता है जब मामला प्रत्यक्ष प्रमाण को स्वीकार नहीं करता है या जब किसी विशेष तथ्य को साबित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाई होती है। हालाँकि, जब स्थापित किया जाने वाला तथ्य इस प्रकार का हो कि उसके अस्तित्व या गैर-अस्तित्व के बारे में प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध हो, तो अनुमान का सहारा लेकर मामले का निर्णय करने के बजाय प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त करना उचित है। वैधानिक प्रावधान की संवैधानिक वैधता के बारे में एक घोषणा न केवल न्यायालय के समक्ष पक्षों को प्रभावित करती है, बल्कि अन्य सभी पक्ष भी प्रभावित हो सकते हैं, जो विवादित प्रावधान से प्रभावित होते हों। इसलिए, अदालत के समक्ष संपूर्ण तथ्यात्मक डेटा और संपूर्ण सामग्री रखे बिना किसी विवादित प्रावधान को रद्द करने में अंतर्निहित जोखिम होगा। इसलिए, हमारी राय में, उच्च न्यायालय के लिए यह आवश्यक था कि वह निष्कर्ष दर्ज करने से पहले सही तथ्यात्मक स्थिति का पता लगाए और सामने रखे कि विवादित प्रावधान अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। यह तथ्य भी सामने आता है कि संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर रिट याचिकाओं*

अनुवादित

में हमारे सामने प्रस्तुत की गई सामग्री से पता चलता है उच्च न्यायालय ने गलत धारणा पर काम किया।"

(हमारे द्वारा बल दिया गया)

28. **चरणजीत लाल चौधरी बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 1951 एससी 41 (अनु. 10),** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि ऐसी धारणा है कि विधायिका अपने लोगों की जरूरतों को समझती है और सही ढंग से उनका मूल्यांकन करती है। **भारत संघ बनाम एलफिंस्टन स्पिनिंग एंड वीविंग कंपनी लिमिटेड और अन्य, एआईआर 2001 एससी 724 (अनु. 9)**, में माननीय सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि ऐसी धारणा है कि विधायिका अपने अधिकार क्षेत्र से आगे नहीं बढ़ती है। **बिहार राज्य और अन्य बनाम श्रीमती चारुसिला दासी, एआईआर 1959 एससी 1002 (अनु. 14),** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानून बनाया है कि ऐसी धारणा है कि विधायिका अपने अधिकार क्षेत्र से आगे बढ़ने का इरादा नहीं रखती है। **केदार नाथ सिंह बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1962 एससी 955 (अनु. 26),** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि प्रावधान की व्याख्या उस तरीके से की जानी चाहिए जो इसकी संवैधानिकता को बनाए रखेगी। **कलकत्ता निगम बनाम लिबरी सिनेमा, एआईआर 1965 एससी 1107,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानून बनाया है कि प्रावधान को उस तरीके से पढ़ा जाना चाहिए जो इसे वैध बना देगा। इसी तरह का विचार सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने **आनंदजी हरिदास एंड कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम एस.पी. कस्तूरे और अन्य, एआईआर 1968 एससी 565 (अनु. 32)** में व्यक्त किया है। **सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य, एआईआर 1978 एससी 1675**, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि विधायिका समुदाय के ज्ञान को व्यक्त करती है। **बिहार राज्य बनाम वी.एस. बिहार डिस्टिलरीज, एआईआर 1997 एससी 1511 (अनु. 18),** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि विधायिका द्वारा बनाया गया एक अधिनियम लोगों की इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है और इसमें हल्के ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। **ज़मीर अहमद लतीफुर रहमान शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, जे.टी. 2010 (4) एससी 256 (अनु. 34),** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि वैधता बनाए रखने के लिए कानूनी रूप से हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए। **ग्रेटर बॉम्बे को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम यूनाइटेड यार्न टेक्स (पी) लिमिटेड और अन्य, (2007) 6 एससीसी 236 (अनु. 82 से 85),** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा

***"82 किसी अधिनियम की संवैधानिक वैधता को केवल दो आधारों पर चुनौती दी जा सकती है**, अर्थात (i) विधायी क्षमता की कमी; और (ii) संविधान के भाग III या किसी अन्य संवैधानिक प्रावधान में गारंटीकृत*

अनुवादित

मौलिक अधिकारों में से किसी का उल्लंघन। आ.प्र. राज्य. और अन्य बनाम मैकडॉवेल एंड कंपनी और अन्य में, इस न्यायालय ने राय दी है कि उपरोक्त दो आधारों को छोड़कर, कोई तीसरा आधार नहीं है जिसके आधार पर सक्षम विधायिका द्वारा कानून बनाया गया हो अमान्य किया जा सकता है और अमान्यकरण का आधार आवश्यक रूप से उपर्युक्त दो आधारों के चार कोनों के भीतर आना चाहिए।

83. कानून बनाने की शक्ति राज्य विधानसभा को संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची II से प्राप्त होती है। प्रविष्टि 32 राज्य विधानमंडल को सहकारी समितियों के गठन की शक्ति प्रदान करती है। महाराष्ट्र राज्य और आंध्र प्रदेश राज्य दोनों ने संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि 32 द्वारा निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए एमसीएस अधिनियम 1960 और एपीसीएस अधिनियम, 1964 को अधिनियमित किया था। अधिनियम की शक्ति में राज्य विधानमंडल में कानून के किसी भी प्रावधान को फिर से अधिनियमित करने या मान्य करने की शक्ति शामिल होगी, बशर्ते कि वह संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि में इस प्रतिबंध के साथ आती हो कि ऐसा अधिनियमन सक्षम न्यायालय के किसी निर्णय को रद्द नहीं करना चाहिए। आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ दायर अपील/एसएलपी/याचिका में, राज्य की विधायी क्षमता विचार के लिए शामिल है। न्यायिक प्रणाली की हमारी राजनीतिक व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका है और इसे पूरा करना एक गंभीर दायित्व है। ऐसी परिस्थितियों में, ***विधायी कार्रवाई के दायरे की जांच करते समय अदालतों के लिए यह जरूरी है कि वे कानून की संवैधानिक वैधता के संबंध में धारणा से शुरुआत करने के प्रति सचेत रहें। सबूत का भार उस पदधारी के कंधों पर है जो इसे चुनौती देता है।*** *यह सच है कि हमारे संविधान के तहत संवैधानिक न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि वे संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियमित किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करें, जब संसद या राज्य विधानमंडल ने कोई ऐसा कानून बनाने का निर्णय लिया हो जो या तो संवैधानिक शक्ति के अभाव में अमान्य हो, इसे अधिनियमित करें या क्योंकि संवैधानिक रूपों या शर्तों का पालन नहीं किया गया है या जहां कानून संविधान के भाग III में निहित और गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है।*

84. जैसा कि सीएसटी बनाम राधाकृष्णन मामले में इस न्यायालय ने किसी क़ानून की वैधता पर विचार करते समय देखा था, धारणा हमेशा संवैधानिकता के पक्ष में होती है और यह दिखाने के लिए उस पर आक्षेप करने वाले व्यक्ति पर भार होता है कि संवैधानिक सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है। किसी अधिनियम की संवैधानिकता को बनाए रखने के लिए, एक न्यायालय सामान्य ज्ञान, रिपोर्ट, प्रस्तावना, समय का इतिहास, कानून की आपत्ति और अन्य सभी तथ्यों पर विचार कर सकता है जो

अनुवादित

प्रासंगिक हैं। यह हमेशा माना जाना चाहिए कि विधायिका अपने लोगों की ज़रूरतों को समझती है और सही ढंग से उनका मूल्यांकन करती है और भेदभाव, यदि कोई हो, तो वह पर्याप्त आधार और विचारों पर आधारित है। *यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि संवैधानिक अमान्यता से बचने के लिए अदालतों को उदार व्याख्या देना उचित होगा। प्राधिकार को बहुत व्यापक और विस्तृत शक्तियां प्रदान करने वाले प्रावधान को संवैधानिक सीमाओं के भीतर शक्ति के प्रयोग के विधायी इरादे के अनुरूप माना जा सकता है। जहां कोई क़ानून मौन है या अस्पष्ट है, अदालत उस अस्पष्ट को रूपांतरित करने का प्रयास करेगी और उस सामग्री से विचलित हुए बिना जिससे कानून बुना गया है एक ऐसी रचना को अपनाएगी जो संवैधानिकता की ओर झुके। इन सिद्धांतों ने कानून की वैधता को बनाए रखने के लिए आवश्यक होने पर प्रावधानों को "पढ़ने" के नियम को जन्म दिया है।*

85. बिहार राज्य एवं अन्य बनाम बिहार डिस्टिलरी लिमिटेड और अन्य। [(1997) 2 एससीसी 453], में इस न्यायालय ने उस दृष्टिकोण का संकेत दिया जिसे न्यायालय को किसी कानून की वैधता/संवैधानिकता की जांच करते समय अपनाना चाहिए। स्वयं को निर्धारित सिद्धांतों की याद दिलाना उपयोगी होगा, जो कहते हैं: (एससीसी पृष्ठ 466, अनु. 17):

"किसी अधिनियम की संवैधानिकता को चुनौती की जांच करते समय अदालत का दृष्टिकोण संवैधानिकता की धारणा से शुरू करना है। अदालत को यथासंभव हद तक इसकी वैधता बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए। उसे अधिनियम को तभी रद्द करना चाहिए जब वह ऐसा हो इसे बनाए रखना संभव नहीं है। अदालत को प्रारूपण में खामियां निकालने या दोषों की खोज करने, न्यूनतम रूप में नियोजित भाषा की अशुद्धि के उद्देश्य से अधिनियम के पास नहीं जाना चाहिए। वास्तव में, अधिनियम की वैधता/संवैधानिकता को बनाए रखने के लिए प्रारूपण के ऐसे किसी भी दोष को प्रयास के हिस्से के रूप में नजरअंदाज किया जाना चाहिए। आखिरकार, विधायिका द्वारा बनाया गया एक अधिनियम लोगों की इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है और इसमें हल्के ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। किसी अधिनियम को शून्य घोषित करने से पहले असंवैधानिकता को सर्वथा और स्पष्ट रूप से स्थापित किया जाना चाहिए। किसी अधिनियम के इरादे और उद्देश्य या उसके दायरे और अनुप्रयोग को सुनिश्चित करते समय भी यही दृष्टिकोण अच्छा रहता है।"

उसी अनुच्छेद में, इस न्यायालय ने आगे इस प्रकार टिप्पणी की:

"न्यायालय को विधायी प्रक्रिया की मौलिक प्रकृति और महत्व को पहचानना चाहिए और उसे उचित सम्मान और सम्मान देना चाहिए, जैसे विधायिका और

अनुवादित

कार्यपालिका से न्यायपालिका के प्रति उचित सम्मान और सम्मान दिखाने की उम्मीद की जाती है। यह भी नहीं भुलाया जा सकता है कि हमारा संविधान राज्य के तीनों अंगों के बीच समानता की अवधारणा को मान्यता देता है और ऐसी योजना में निहित "नियंत्रण और संतुलन" की अवधारणा को प्रभावी बनाता है।"

(हमारे द्वारा बल दिया गया)

29. **प्रमोटर्स एंड बिल्डर्स एसोसिएशन बनाम पुणे नगर निगम (2007) 6 एससीसी 143 (अनु. 9),** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि विधायी कार्य करते समय, जब तक कि अतार्किकता और मनमानी को इंगित नहीं किया जाता है, तब तक यह न्यायालय के हस्तक्षेप के लिए खुला नहीं है।

<u>संवैधानिक वैधता के सिद्धांत:-</u>

30. किसी अधिनियम की संवैधानिक वैधता को केवल दो आधारों पर चुनौती दी जा सकती है, अर्थात (i) विधायी क्षमता की कमी; और (ii) संविधान के भाग III या किसी अन्य संवैधानिक प्रावधान में गारंटीकृत मौलिक अधिकारों में से किसी का उल्लंघन। उपरोक्त दो आधारों को छोड़कर कोई तीसरा आधार नहीं है जिसके आधार पर सक्षम विधायिका द्वारा बनाये गये कानून को अमान्य किया जा सके। अमान्यकरण का आधार आवश्यक रूप से उपरोक्त दो आधारों की सीमा के भीतर आना चाहिए। किसी क़ानून की वैधता पर विचार करते समय धारणा हमेशा संवैधानिकता के पक्ष में होती है और उस पर आक्षेप करने वाले व्यक्ति पर यह दिखाने का भार होता है कि संवैधानिक सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है। किसी अधिनियम की संवैधानिकता को बनाए रखने के लिए, न्यायालय सामान्य ज्ञान, रिपोर्ट, प्रस्तावना, समय का इतिहास, कानून का उद्देश्य और अन्य सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार कर सकता है। यह हमेशा माना जाना चाहिए कि विधायिका अपने लोगों की ज़रूरतों को समझती है और सही ढंग से उनका मूल्यांकन करती है और भेदभाव, यदि कोई हो, तो वह पर्याप्त आधार और विचारों पर आधारित होना चाहिए। संवैधानिक अमान्यता से बचने के लिए अदालतों को उदार व्याख्या देना उचित होगा। जहां कोई क़ानून मौन है या अस्पष्ट है, अदालत उस अस्पष्ट को रूपांतरित करने का प्रयास करेगी और उस सामग्री से विचलित हुए बिना जिससे कानून बुना गया है एक ऐसी रचना को अपनाएगी जो संवैधानिकता की ओर झुकी हुई हो। यदि कानून की वैधता को बनाए रखना आवश्यक हो तो ये सिद्धांत प्रावधानों को "पढ़ने" के नियम को जन्म देते हैं। किसी अधिनियम की संवैधानिकता को चुनौती की जांच करते समय, अदालत को संवैधानिकता की धारणा से शुरुआत करनी होती है और जहां तक संभव हो इसकी वैधता को बनाए रखने का प्रयास करना होता है। अदालत अधिनियम में खामियों को दूर करने या प्रारूपण में

अनुवादित

दोषों की खोज करने के उद्देश्य से नहीं आ सकती है, इसमें प्रयुक्त भाषा की अशुद्धि तो दूर की बात है। विधायिका द्वारा बनाया गया कोई अधिनियम लोगों की इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है और उसमें हल्के ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। यह माना जाता है कि विधायिका समुदाय के ज्ञान को व्यक्त करती है, अपने अधिकार क्षेत्र से आगे बढ़ने का इरादा नहीं रखती है एक अधीनस्थ कानून की वैधता का परीक्षण करने के लिए एक अतिरिक्त आधार उपलब्ध है। अतिरिक्त आधार यह है कि अधीनस्थ कानून बनाने वाले प्राधिकारी को अपनी शक्ति की सीमा के भीतर कार्य करना चाहिए और उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए। अधीनस्थकानून की वैधता के इन स्थापित सिद्धांतों के संबंध में संदर्भ **हुकुम चंद बनाम भारत संघ, (1972) 2 एससीसी 601, जनरल ऑफिसर कमांडिंग-इन-चीफ बनाम सुभाष चंद्र यादव और अन्य, (1988) 2 एससीसी 351, अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (रेव्ह.) दिल्ली प्रशासन बनाम सिरी राम, (2000) 5 एससीसी 451, सुखदेव सिंह और अन्य बनाम भगतराम सरदार सिंह रघुवंशी और अन्य, (1975) 1 एससीसी 421, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम एच. गणेश कामथ और अन्य, (1983) 2 एससीसी 402, कुंज बिहारी लाल बुटेल और अन्य बनाम एच.पी. राज्य और अन्य, (2000) 3 एससीसी 40, भारत संघ बनाम मेसर्स जी.एस. चाथा राइस मिल, (2021) 2 एससीसी 209 और 2022 की सिविल अपील संख्या 9252-9253 में निर्णय दिनांक 16.12.2022 (केरल राज्य** और अपने लोगों की आवश्यकता को सही ढंग से समझती है।

<u>किसी अधीनस्थ विधान की वैधता को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत:-</u>

31. संवैधानिक वैधता निर्धारित करने के लिए उपरोक्त सिद्धांतों के अलावा,

विद्युत बोर्ड) और अन्य बनाम थॉमस जोसेफ @ थॉमस एम.जे. और अन्य) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में पाया जा सकता है।

32. हम पहले ही सरकारी स्वामित्व वाले कॉलेजों में कक्षा 9वीं और 10वीं के छात्रों को पढ़ाने के लिए हिंदी में सहायक शिक्षकों के पद के लिए हिंदी में स्नातक और बीएड के अलावा इंटरमीडिएट में एक विषय के रूप में संस्कृत होने की अतिरिक्त योग्यता निर्धारित करने के पीछे तर्क पा चुके हैं ताकि शिक्षा के स्तर को बनाए रखा जा सके। नियम 1983 के नियम 8(6) के तहत प्रदान की गई शैक्षणिक योग्यता, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है; न तो यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के तहत बनाए गए विनियमन के विरोध में है न तो एनसीटीई विनियमन, 2014 के विनियमन 4 के विपरीत है और न ही यह राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति से परे है। इसलिए, आक्षेपित नियम पूर्णतः वैध हैं। राज्य सरकार ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत नियम 8(6) के तहत सहायक

अनुवादित

शिक्षकों (पुरुष/महिला) - हिंदी के लिए योग्यता निर्धारित करने वाले नियम, 1983 को बनाने की अपनी शक्ति का उल्लंघन नहीं किया है। इस प्रकार, आक्षेपित नियम और आक्षेपित विज्ञापन पूरी तरह से वैध हैं। सभी रिट याचिकाओं में कोई दम नहीं है और इसलिए ये खारिज किए जाने योग्य हैं।

33. उपरोक्त सभी कारणों से, सभी रिट याचिकाएँ **खारिज** की जाती हैं।

(2023) 2 ILRA 486

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 23.01.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह,

रिट-ए नंबर 15574/2022

अमित नारायण राय एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: सृष्टि गुप्ता, श्री कार्तिकेय सरन, श्री एम.सी. चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - सेवा वाद - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप - स्थानांतरण नीति का उल्लंघन - स्थानांतरण नीति केवल एक दिशानिर्देश है और यद्यपि इसका पालन किया जाना चाहिए लेकिन इसका उल्लंघन किसी पीड़ित पक्ष को किसी भी प्रवर्तनीय अधिकार को जन्म नहीं देता है - किसी भी कर्मचारी को अपनी पसंद भी स्थान पर सेवा करने का निहित अधिकार नहीं हैं - स्थानांतरण सेवा की एक क्रम है और यदि कोई कर्मचारी जो स्थानांतरणीय पद पर है, उसका स्थानांतरण किया जाता है, तो वह यह आग्रह नहीं कर सकता कि कानूनी अधिकार का कोई उल्लंघन है - स्थानांतरण का आदेश एक प्रशासनिक आदेश है और न्यायालय स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए अनिच्छुक हैं जब तक कि स्थानांतरण का आदेश दुर्भावना का परिमाण या वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन नहीं प्रदर्शित करता है - ऐसे किसी भी स्थानांतरण नियोक्ता को कर्मचारी की उपयुक्तता का न्याय करने के लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है और जिस स्थान पर काम किया जाना है, उसमें न्यायालय द्वारा रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है (पैरा 25, 31, 33)

बी. सिविल कानून - सेवा वाद - 2022-23 की स्थानांतरण नीति - स्थानांतरण आदेश - वैधता - स्थानांतरण नीति के खंड 12 में प्रावधान है कि यदि जिला स्तर के किसी पदाधिकारी का स्थानांतरण किया जाना है तो जिला मजिस्ट्रेट की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है लिया जाना चाहिए - आयोजित, प्रत्येक याचिकाकर्ता लगभग 20 वर्षों से अपनी पोस्टिंग के स्थान पर है और

अनुवादित

स्थानांतरण आदेश का परिणामस्वरूप पहले ही अपनी पोस्टिंग के स्थान पर सम्मिलित हो चुका है - तत्काल वाद में प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी नियुक्ति से एक रैंक अधिक प्राधिकार से प्राप्त किया गया है, जो प्राधिकार जिला मजिस्ट्रेट से भी उच्च अधिकारी है - स्थापित किसी भी स्पष्ट पूर्वाग्रह के अभाव में, खंड 12 के अनुपालन में मात्र विचलन दिखावटी है, विशेषकर जब सेवा शर्तों में ऐसे स्थानांतरण पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जाता है, स्थानांतरण आदेशको निरस्त नहीं किया जाता है - कोई हस्तक्षेप नहीं (पैरा 25, 31, 33)

निरस्त। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. एस.के. नौशाद रहमान और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य.; एआईआर 2022 एससी 1494
2. शांति कुमारी बनाम क्षेत्रीय उप निदेशक, स्वास्थ्य सेवाएं, पटना प्रमंडल, पटना एवं अन्य; (1981) 2 एससीसी 72
3. गुजरात विद्युत बोर्ड एवं अन्य बनाम आत्माराम सुंगोमल पोशानी; 1989 (2) एससीसी 602-
4. भारत संघ और अन्य बनाम एस.एल. अब्बास; 1993 (4) एससीसी 351
5. एन.के. सिंह बनाम भारत संघ और अन्य (1994) 6 एससीसी 98
6. एस.सी.सक्सेना बनाम भारत संघ और अन्य.; (2006) 9 एससीसी 583
7. राजेंद्र सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2009) 15 एससीसी 178
8. धर्मेन्द्र कुमार सक्सैना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2013 (7) एडीजे 53
9. अजय कुमार श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य विशेष अपील क्रमांक 411/2022 दिनांक 11.10.2022

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री कार्तिकेय सरन और साथ ही राज्य-प्रतिवादियों के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एम.सी. चतुर्वेदी के साथ विद्वान अधिवक्ता श्री अंकित गौड़ को सुना।

2. वर्तमान याचिकाकर्ता प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा पारित दिनांक 20.06.2022 और 06 जुलाई, 2022 के आक्षेपित स्थानांतरण आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेरण-लेख प्रकृति में एक रिट जारी करने की प्रार्थना करते हैं। उपरोक्त स्थानांतरण आदेश को चुनौती देने का प्राथमिक आधार यह है कि जहां तक यह याचिकाकर्ता से संबंधित है, यह 2022-23 की स्थानांतरण नीति का उल्लंघन है।

3. याचिकाकर्ताओं द्वारा स्थापित मामला यह है कि वे सभी तृतीय श्रेणी लिपिक कर्मचारियों के रूप में चयनित और नियुक्त हैं और वर्तमान में उत्तर प्रदेश राज्य में विभिन्न स्थानों पर अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं। यह भी कहा गया है कि सभी याचिकाकर्ता मिनिस्ट्रीयल

अनुवादित

कर्मचारी होने के साथ-साथ उत्तर प्रदेश मेडिकल एंड पब्लिक हेल्थ मिनिस्ट्रियल एसोसिएशन के पदाधिकारी भी हैं। प्रत्येक याचिकाकर्ता का विवरण उसके पद, तैनाती का स्थान, प्रत्येक के चुने जाने की तारीख, जब वे प्रतिवादी संख्या 4-एसोसिएशन में चुने गए थे और उन्हें कहां स्थानांतरित किया गया है, का विवरण एक चार्ट में दर्शाया गया है जो कि याचिका के अनु. 4 का भाग है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री सरन का कहना है कि सरकार ने 15.06.2022 को वर्ष 2022-23 के लिए स्थानांतरण नीति में संशोधन किया था। इस दलील को बल देने के लिए स्थानांतरण नीति के खंड 12 पर भारी निर्भरता रखी गई है कि उक्त खंड यह स्पष्ट करता है कि यदि स्थानांतरण जिला स्तर के किसी पदाधिकारी का किया जाना है (जो वर्तमान याचिकाकर्ताओं का मामला है) तो उक्त मामले में जिला मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति लेनी होगी। यह आग्रह किया गया है कि वर्तमान मामले में, जिला मजिस्ट्रेट की कोई मंजूरी नहीं है, बल्कि महानिदेशक (चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं) उत्तर प्रदेश द्वारा केवल एक सामान्य मंजूरी दी गई है जो स्थानांतरण नीति को निषेध करती है।

5. यह भी आग्रह किया गया है कि महानिदेशक (चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं) उत्तर प्रदेश ने 30.06.2022 को अपनी सेवानिवृत्ति से ठीक एक दिन पहले 260 मंत्रालयिक कर्मचारियों को स्थानांतरित करने की मंजूरी दी थी जिसमें वर्तमान याचिकाकर्ता भी शामिल थे। यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि उक्त स्थानांतरण आदेश दुर्भावनापूर्ण तरीके से पारित किया गया है क्योंकि 260 कर्मचारियों को एक बार में स्थानांतरण के लिए मंजूरी दे दी गई है जो इंगित करता है कि इसमें मस्तिष्क का कोई उपयोग नहीं किया गया है। यह भी आग्रह किया गया है कि स्थानांतरण नीति का खंड 12 का स्पष्ट उल्लंघन हो रहा है और उक्त कारण से, जहां तक याचिकाकर्ता का संबंध है, स्थानांतरण का आदेश खराब है और तदनुसार रद्द किए जाने योग्य है।

6. राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री अंकित गौड़ ने उपरोक्त दलीलों का विरोध करते हुए कहा कि खंड 12 का कोई उल्लंघन नहीं है, क्योंकि नियुक्ति प्राधिकारी से एक रैंक ऊपर के प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी ली गई है। यह आग्रह किया गया है कि इसी तरह का मुद्दा तृतीय श्रेणी के मंत्रालयिक कर्मचारियों के एक अन्य समूह द्वारा उठाया गया था, जिन्होंने ***रिट-ए संख्या 4766/ 2022 रिट-ए संख्या 5568/2022 के साथ संलग्न अजय कुमार श्रीवास्तव बनाम यूपी राज्य और अन्य के मामले में*** लखनऊ में इस न्यायालय के समक्ष अपने स्थानांतरण को चुनौती दी थी। जिसमें समान आधार लिए गए थे और उक्त याचिका दिनांक 12.09.2022 के आदेश के माध्यम से यह कहते हुए खारिज कर दी गई कि स्थानांतरण वैध था।

7. आगे यह आग्रह किया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश के उक्त

अनुवादित

आदेश को 2022 की विशेष अपील संख्या 411 में चुनौती दी गई थी, जहां स्थानांतरण नीति के खंड 12 सहित इस मुद्दे पर फिर से विचार किया गया था और उसके बाद यह माना गया था कि स्थानांतरण में हस्तक्षेप करने के लिए कोई त्रुटि या आधार नहीं है और इस प्रकार विशेष अपील दिनांक 11.10.2022 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दी गई थी।

8. इस प्रकार यह आग्रह किया जाता है कि एक बार स्थानांतरण के मुद्दे पर इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा विचार और निर्णय लिया गया है, जिसकी विशेष अपील में पुष्टि की गई है, स्थानांतरण की अमान्यता के संबंध में स्थानांतरण नीति के खंड 12 का उल्लंघन अब प्रचार के लिए खुला नहीं है और इसे अस्वीकार किया जा सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सभी याचिकाकर्ताओं ने अपने संबंधित तैनाती स्थानों पर कार्यभार ग्रहण कर लिया है और यह भी बताया गया है कि जहां तक याचिकाकर्ता संख्या 13 और 19 का संबंध है, उन्हें उनकी इच्छा पर स्थानांतरित किया गया है क्योंकि उन्होंने ऑनलाइन पोर्टल पर सक्षम प्राधिकारी को एक आवेदन देकर स्थानांतरण का अनुरोध किया था।

9. यह भी बताया गया है कि जहां तक याचिकाकर्ताओं का सवाल है, प्रतिवादी को उत्तर प्रदेश मेडिकल पब्लिक हेल्थ मिनिस्ट्रियल एसोसिएशन के विभिन्न प्रतिद्वंद्वी समूहों के पदाधिकारियों की दो सूचियां प्राप्त हुई थीं और शासनादेश दिनांक 16.01.2009 के अनुसरण में नए सिरे से चुनाव कराने के लिए कदम उठाए जा रहे हैं। चूँकि नए चुनाव होने हैं और पहले के चुनावों को रद्द करके, यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता जिला स्तरीय संघों के निर्वाचित पदाधिकारी हैं, इसलिए, उक्त कारण से भी, खंड 12 की कोई प्रयोज्यता नहीं है।

10. यह भी बताया गया है कि लगभग सभी याचिकाकर्ता अपने तैनाती स्थान/क्षेत्र में 15 वर्षों से अधिक समय से तैनात हैं और इस कारण से भी कोई त्रुटि नहीं है जिसे स्थानांतरण आदेश में इंगित किया जा सके जिसके लिये इस न्यायालय से किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता है और रिट याचिका खारिज किये जाने योग्य है।

11. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री सरन ने प्रत्युत्तर में उपरोक्त प्रस्तुतियों का जवाब देते हुए बताया है कि उत्तर प्रदेश मेडिकल एंड पब्लिक हेल्थ मिनिस्ट्रियल एसोसिएशन ने पहले ही संख्या- 35634/2022 (रिट-सी) वाली एक रिट याचिका दायर की है, जिसमें न्यायालय ने पाया कि एसोसिएशन के चुनाव दो साल के लिए होते हैं और आखिरी चुनाव 14.08.2021 को हुआ था और एक साल के अंतराल के बाद, राज्य-प्राधिकारी कुछ व्यक्तियों के अभ्यावेदन पर जाग गए हैं और विवादित आदेश पारित किया है और दिनांक 25.11.2022 के आदेश के माध्यम से उपरोक्त छूट को ध्यान में रखते हुए प्रावधान किया गया कि भले ही

अनुवादित

चुनाव हो जाएं लेकिन अंतिम परिणाम घोषित नहीं किए जाएंगे।

12. यह भी बताया गया है कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने अपने आदेश दिनांक 30.11.2022 में विद्वान स्थायी अधिवक्ता का बयान इस आशय से दर्ज किया था कि चुनाव के परिणामों को एक सीलबंद कवर में रखा गया है और उन्हें आज तक लागू नहीं किया गया है और यह प्रभार पहले से निर्वाचित व्यक्तियों के पास ही है।

13. इस प्रकार उपरोक्त आदेशों के आधार पर यह आग्रह किया जाता है कि जहां तक वर्तमान याचिकाकर्ताओं का संबंध है, वे वर्ष 2021 में हुए चुनाव में निर्वाचित हुए थे और जैसा कि दूसरे पक्ष ने माना, उत्तरदायित्व अभी भी पहले से निर्वाचित पदाधिकारी के पास है जिनमें याचिकाकर्ता भी शामिल हैं, इसलिए, मौजूदा मामले में, उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता की यह दलील कि स्थानांतरण नीति के खंड -12 का कोई असर नहीं है, बिल्कुल गलत धारणा है।

14. यह भी आग्रह किया गया है कि खंड -12 का स्पष्ट उल्लंघन है और हालांकि राज्य ने अपना जवाबी हलफनामा दायर किया है, लेकिन यह विवाद नहीं है कि स्थानांतरण के आदेश पारित करने से पहले जिला मजिस्ट्रेट की कोई पूर्व मंजूरी नहीं है, इसलिए, उक्त कारणों से स्थानांतरण आदेश खराब है।

15. न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अजय कुमार श्रीवास्तव (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ के फैसले और इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के दिनांक 11.10.2022 के फैसले सहित विशेष अपील संख्या 411 सन् 2022 (अजय कुमार श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में रिट-सी संख्या 35634 सन् 2022 (उत्तर प्रदेश मेडिकल एण्ड पब्लिक हेल्थ मिनिस्टीरियल एसोसिएशन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में भी दिनांक 25.11.2022 एवं 30.11.2022 को पारित अंतरिम आदेश एवं रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का भी अवलोकन किया है।

16. प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करने से पहले, उन रूपरेखाओं को तैयार करना उचित होगा जिसके तहत यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करके न्यायिक घोषणाओं की सहायता लेकर स्थानांतरण के आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है।

17. हाल ही में शीर्ष न्यायालय ने ***एस.के. नौशाद रहमान और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य; एआईआर 2022 एससी 1494 में*** स्थानांतरण से संबंधित सेवा न्यायशास्त्र के बुनियादी सिद्धांतों पर विचार करने का अवसर था और उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ निम्नानुसार हैं:-

24. सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, अखिल भारतीय सेवा में स्थानांतरण सेवा की एक घटना है, क्या, और यदि हां, तो कहां, एक कर्मचारी को तैनात किया जाना चाहिए, ये ऐसे मामले हैं जो सेवा की अत्यावश्यकताओं द्वारा

अनुवादित

शासित होते हैं। किसी कर्मचारी के पास अपनी पसंद के स्थानांतरण या तैनाती का दावा करने का कोई मौलिक अधिकार या निहित अधिकार नहीं है।

25. दूसरा, स्थानांतरण और तैनाती से संबंधित कार्यकारी निर्देश और प्रशासनिक निर्देश स्थानांतरण या तैनाती का दावा करने का अपरिहार्य अधिकार प्रदान नहीं करते हैं। सेवा में कार्यरत व्यक्तियों की व्यक्तिगत सुविधा प्रशासन की व्यापक आवश्यकताओं के अधीन है।

26. तीसरा, नीतियां जो यह निर्धारित करती हैं कि पति-पत्नी की तैनाती अधिमानतः और उस हद तक व्यावहारिक रूप से एक ही स्टेशन पर होनी चाहिए, प्रशासन की आवश्यकता के अधीन है।

27. उपरोक्त सिद्धांत को भारत संघ बनाम एसएल अब्बास, मामले में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था। जहां न्यायालय ने माना कि स्थानांतरण सेवा की एक घटना है।.....

28. चौथा, सिविल सेवाओं से संबंधित अधिकारियों की भर्ती और सेवा की शर्तों पर लागू मानदंड निर्धारित किए जा सकते हैं;

(I) सक्षम विधायिका द्वारा अधिनियमित एक कानून;

(ii) संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत बनाए गए नियम; और

(iii) संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत जारी कार्यकारी निर्देश संघ के अधीन सिविल सेवाओं के मामले में और अनुच्छेद 162, राज्यों के अधीन सिविल सेवाओं के मामले में।

29. पांचवां, जहां कार्यकारी निर्देशों और अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए नियमों के बीच विरोधाभास है, वहां नियम प्रभावी होने चाहिए। अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए नियमों और उपयुक्त विधायिका द्वारा बनाए गए कानून के बीच टकराव की स्थिति में, कानून प्रभावी होता है। जहां नियम कमज़ोर हैं या ऐसी स्थिति में जब नियमों में कोई अंतर है, कार्यकारी निर्देश नियमों में बताई गई बातों के पूरक हो सकते हैं।

30. छठा, संघ को संविधान के अनुच्छेद 73 और राज्यों को अनुच्छेद 162 के तहत प्रदत्त शक्ति के संदर्भ में लिया गया नीतिगत निर्णय उन भर्ती नियमों के अधीन है जो एक विधायी अधिनियम या प्रावधान के तहत संविधान का अनुच्छेद 309 नियमों के तहत बनाए गए हैं।

18. ***शांति कुमारी बनाम क्षेत्रीय उप निदेशक, स्वास्थ्य सेवाएँ, पटना प्रमंडल, पटना एवं अन्य; (1981) 2 एससीसी 72, के मामले में*** सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है: -

"2. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हमारी राय है कि उच्च न्यायालय ने उचित ही आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। किसी सरकारी कर्मचारी का स्थानांतरण सेवा की अत्यावश्यकता या प्रशासनिक कारण से हो सकता है। ऐसे मामलों में अदालतें हस्तक्षेप नहीं कर सकतीं। हालाँकि, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ग्रोवर का तर्क है कि आक्षेपित आदेश स्वास्थ्य विभाग में

अनुवादित

तबादलों के संबंध में सरकारी निर्देशों का उल्लंघन था। यदि ऐसा हो, तो, अधिकारी इस मामले को देखेंगे और अपीलकर्ता की शिकायत का निवारण करेंगे।"

19. ***गुजरात बिजली बोर्ड और अन्य बनाम आत्माराम सुंगोमल पोशानी; 1989 (2) एससीसी 602 में*** सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

"4. स्थानान्तरणीय पदों के किसी विशेष संवर्ग में नियुक्त सरकारी सेवक का एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण सेवा की एक घटना है। किसी भी सरकारी कर्मचारी या सार्वजनिक उपक्रम के कर्मचारी को किसी विशेष स्थान पर तैनात होने का कानूनी अधिकार नहीं है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण आम तौर पर सेवा की एक शर्त है और कर्मचारी के पास इस मामले में कोई विकल्प नहीं है। जनहित एवं लोक प्रशासन की कुशलता के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण आवश्यक है। जब भी किसी लोक सेवक का स्थानांतरण होता है, तो उसे आदेश का पालन करना चाहिए, लेकिन यदि स्थानांतरण पर आगे बढ़ने में कोई वास्तविक कठिनाई होती है, तो वह स्थानांतरण आदेश पर रोक लगाने, संशोधन करने या रद्द करने के लिए सक्षम प्राधिकारी को प्रतिनिधित्व करने के लिए खुला है। यदि स्थानांतरण के आदेश पर रोक, संशोधन या रद्द नहीं किया जाता है तो संबंधित लोक सेवक को स्थानांतरण के आदेश का पालन करना होगा। यदि वह स्थानांतरण आदेश के अनुपालन में स्थानांतरण पर आगे बढ़ने में विफल रहता है, तो वह संबंधित नियमों के तहत अनुशासनात्मक कार्रवाई का भागी बनेगा, जैसा कि इस मामले में हुआ है। प्रतिवादी ने अपनी सेवा खो दी क्योंकि उसने एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने स्थानांतरण के आदेश का पालन करने से इनकार कर दिया था।"

20. ***भारत संघ एवं अन्य बनाम एस.एल. अब्बास; 1993 (4) एससीसी 351*** जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

"7. किसे कहाँ स्थानांतरित किया जाना चाहिए, यह निर्णय लेने का अधिकार उपयुक्त प्राधिकारी का विषय है। जब तक स्थानांतरण का आदेश दुर्भावना से दूषित न किया गया हो या किसी वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन न किया गया हो, न्यायालय इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इसमें कोई संदेह नहीं कि स्थानांतरण का आदेश देते समय प्राधिकरण को इस विषय पर सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देशों को ध्यान में रखना होगा। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति अपने स्थानांतरण के संबंध में कोई अभ्यावेदन देता है, तो उचित प्राधिकारी को प्रशासन की अत्यावश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उस पर विचार करना चाहिए। दिशा-निर्देशों में कहा गया है कि जहां तक संभव हो पति-पत्नी को एक ही स्थान पर तैनात किया जाना चाहिए। हालाँकि उक्त दिशानिर्देश सरकारी कर्मचारी को कानूनी रूप से लागू करने योग्य अधिकार प्रदान नहीं करता है।"

21. ***एन.के. में सिंह बनाम भारत संघ और अन्य (1994) 6 एससीसी 98***

अनुवादित

जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

"6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राम जेठमलानी ने इस बात पर विवाद नहीं किया कि सेवा या करियर की संभावनाओं पर किसी भी प्रतिकूल परिणाम के बिना किसी सरकारी कर्मचारी को समकक्ष पद पर स्थानांतरित करने के मामलों में न्यायिक समीक्षा का दायरा दुर्भावनापूर्ण और ऐसे स्थानांतरणों को विनियमित करने वाले किसी विशिष्ट प्रावधान या दिशानिर्देश का उल्लंघन, जो मनमाना हो, तक ही सीमित है। जवाब में, विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल और प्रतिवादी-2 के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त सिद्धांत पर विवाद नहीं किया, लेकिन उन्होंने आग्रह किया कि ऐसा कोई आधार नहीं बनाया गया है; और सार्वजनिक हित के प्रति किसी पूर्वाग्रह का संकेत देने का कोई आधार नहीं है।"

22. ***एस.सी. सक्सेना बनाम भारत संघ और अन्य; (2006) 9 एससीसी 583;*** जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

"6. हमने विद्वान अधिवक्ता की मदद से रिकॉर्ड का अध्ययन किया है और विद्वान अधिवक्ता को बहुत धैर्यपूर्वक सुना है। हमने पाया कि हमारे हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनाया गया है। सबसे पहले, एक सरकारी कर्मचारी अपनी नियुक्ति के स्थान पर रिपोर्ट न करके स्थानांतरण आदेश की अवज्ञा नहीं कर सकता है और फिर अपनी शिकायतों को व्यक्त करने के लिए अदालत में जा सकता है। यह उसका कर्तव्य है कि जहां उसका स्थानांतरण हो, वहां सबसे पहले वह वहां पहुंचे और बताए कि उसकी व्यक्तिगत समस्याएं क्या हो सकती हैं। तैनाती के स्थान पर रिपोर्ट न करने और मुकदमेबाजी में शामिल होने की इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने की जरूरत है। इसके अलावा, यदि अपीलकर्ता को वास्तव में तेजपुर में काम के लिए रिपोर्ट करने में कुछ वास्तविक कठिनाई होती, तो वह अमृतसर में ड्यूटी के लिए रिपोर्ट कर सकता था, जहां वह तैनात था। हम भी उनके बीमार रहने की कहानी पर यकीन करने से इनकार करते हैं। यह मानते हुए कि कोई बीमारी थी, हम इस बात से संतुष्ट नहीं हैं कि इसने उन्हें तेजपुर या अमृतसर में ड्यूटी में शामिल होने से रोका। डॉ. राम मनोहर लोहिया अस्पताल द्वारा जारी किया गया मेडिकल सर्टिफिकेट इस बात को साबित करता है. इन परिस्थितियों में, हमारी भी राय है कि अपीलकर्ता अनाधिकृत रूप से ड्यूटी से अनुपस्थित रहने के कदाचार का दोषी था।"

23. ***राजेंद्र सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2009) 15 एससीसी 178,*** जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

"8. एक सरकारी कर्मचारी को अपनी पसंद के स्थान पर तैनात रहने का कोई निहित अधिकार नहीं है और न ही वह इस बात पर जोर दे सकता है कि उसे एक या दूसरे स्थान पर तैनात किया जाना चाहिए। उसे प्रशासनिक अत्यावश्यकताओं में एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया

अनुवादित

जा सकता है। किसी कर्मचारी का स्थानांतरण न केवल नियुक्ति की शर्तों में अंतर्निहित घटना है, बल्कि इसके विपरीत किसी विशिष्ट संकेत के अभाव में सेवा की एक आवश्यक शर्त के रूप में भी निहित है। कोई भी सरकार कार्य नहीं कर सकती है यदि सरकारी कर्मचारी इस बात पर जोर देता है कि एक बार किसी विशेष स्थान या पद पर नियुक्त या तैनात होने के बाद, जब तक वह चाहे तब तक उसे उस स्थान या पद पर बने रहना चाहिए (यूपी राज्य बनाम गोबरधन लाल देखें) मनु/एससी/0281/2004;(2004)11 एससीसी 402; 2005 एससीसी (एल एंड एस) 55, एससीसी पी. 406, अनु.7)।"

24. ***धर्मेन्द्र कुमार सक्सैना बनाम यूपी राज्य और अन्य 2013 (7) एडीजे 53;*** जिसमें इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नानुसार निर्णय लिया:-

"24. उपरोक्त मामलों से यह स्पष्ट है कि सरकार कार्यकारी आदेश/नीतियों से बंधी है। दिशानिर्देश इसका पालन करने के लिए बनाए गए हैं न कि बिना किसी उचित कारण के इसका उल्लंघन न करने के लिए। जब भी सरकार अपनी नीतियों/दिशानिर्देशों/कार्यकारी निर्देशों से विचलित होती है, तो आदेश को उचित ठहराने के लिए ठोस और मजबूत कारण होने चाहिए; जब स्थानांतरण आदेश को अभ्यावेदन के माध्यम से चुनौती दी जाती है, तो यह स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर सामग्री होनी चाहिए कि निर्णय सार्वजनिक हित में था और यह किसी वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन नहीं करता है, अन्यथा आदेश को मनमाना और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन मानते हुए रद्द किया जा सकता है। अधिकारी अपने आदेशों को उचित नहीं ठहरा सकते कि कार्यकारी आदेशों का उल्लंघन पीड़ित व्यक्ति को कानूनी रूप से अप्रवर्तनीय अधिकार नहीं देता है। जैसा कि जस्टिस फ्रैंकफर्टर ने कहा था, "एक कार्यकारी एजेंसी को उन मानकों का कड़ाई से पालन करना चाहिए जिनके आधार पर वह अपनी कार्रवाई का मूल्यांकन करती है।"

25. स्थानांतरण से संबंधित मामलों में हस्तक्षेप के दायरे के संबंध में स्थापित कानूनी सिद्धांतों पर ध्यान देने के बाद, अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि कोई भी कर्मचारी अपनी पसंद के किसी भी स्थान पर सेवा करने का निहित अधिकार नहीं मांग सकता है। स्थानांतरण सेवा की एक घटना है और एक कर्मचारी जो स्थानांतरणीय पद पर है और यदि स्थानांतरित हो जाता है तो यह आग्रह नहीं कर सकता कि कानूनी अधिकार का कोई उल्लंघन हुआ है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि स्थानांतरण का आदेश एक प्रशासनिक आदेश है और न्यायालय सार्वजनिक हित में और प्रशासनिक कारणों से किए गए स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए अनिच्छुक हैं जब तक कि स्थानांतरण का आदेश दुर्भावनापूर्ण परिणाम या ऐसे किसी भी स्थानांतरण पर रोक लगाने वाले वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन नहीं दर्शाता।

अनुवादित

26. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, यदि विवादित आदेश की जांच की जाती है, तो यह पता चलेगा कि चुनौती के तहत स्थानांतरण आदेश को दुर्भावना का परिणाम नहीं कहा जा सकता है और न ही ऐसा आरोप लगाया गया है। न ही इसे किसी वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन कहा जा सकता है जो इस तरह के स्थानांतरण पर रोक लगाता है। हालाँकि, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील का सार यह है कि उक्त स्थानांतरण आदेश दिनांक 15.06.2022 की स्थानांतरण नीति के खंड 12 का उल्लंघन है।

27. उचित विचार के लिए, स्थानांतरण नीति के खंड 12 को इसके बाद तत्काल संदर्भ के लिए पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"12. सरकारी कर्मचारियों के मान्यता प्राप्त सेवा संघो के पदाधिकारियों के स्थानान्तरणः-

सरकारी सेवकों के मान्यता प्राप्त सेवा संघों के अध्यक्ष /सचिव, जिनमें जिला शाखाओं के अध्यक्ष एवं सचिव भी सम्मिलित हैं, के स्थानान्तरण, उनके द्वारा संगठन में पद धारित करने की तिथि से 02 वर्ष तक न किए जाएँ। यदि स्थानान्तरण किया जाना अपरिहार्य हो, तो स्थानान्तरण हेतु प्राधिकृत अधिकारियों से एक स्तर उच्च अधिकारी का पूर्वानुमोदन प्राप्त किया जाय। जिला शाखाओं के पदाधिकारियों के स्थानान्तरण प्रकरणों पर जिलाधिकारी की पूर्वानुमति प्राप्त की जाए।"

28. उपरोक्त खंड में केवल यह प्रावधान है कि ऐसे कर्मचारी जो पदाधिकारी हैं, जिसमें एसोसिएशन के अध्यक्ष और सचिव भी शामिल हैं, जिन्हें मान्यता प्राप्त है, उन्हें पदाधिकारी का प्रभार ग्रहण करने की तारीख से दो साल की अवधि के लिए स्थानांतरित नहीं किया जाना चाहिए, हालांकि यदि स्थानान्तरण आवश्यक हो तो विहित प्राधिकारी से एक स्तर उच्च प्राधिकारी का अनुमोदन अवश्य लिया जाए तथा जिला एसोसिएट्स के पदाधिकारियों के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट की पूर्वानुमति ली जाए।

29. यह ध्यान रखना भी प्रासंगिक होगा कि **धर्मेंद्र कुमार सक्सेना (सुप्रा)** मामले में, इस न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विचार करने के बाद माना कि स्थानांतरण नीति बाध्यकारी नहीं है क्योंकि यह किसी पीड़ित व्यक्ति को विधिक रूप से प्रवर्तनीय अधिकार को जन्म नहीं देती है। मौजूदा मामले में, यह विवादित नहीं है कि निर्धारित प्राधिकारी की तुलना में एक रैंक उच्च प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी ली गई है और इसे **विशेष अपील संख्या 2022 का 411 (अजय कुमार श्रीवास्तव बनाम यूपी राज्य और अन्य)** में दिनांक 11.10.2022 के अपने फैसले में इस न्यायालय की एक खण्ड न्यायपीठ द्वारा भी देखा गया है जिसमें स्थानांतरण नीति के खंड 12 पर विचार किया गया और नोटिस दिया गया।

30. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी आग्रह किया है कि **अजय कुमार श्रीवास्तव (सुप्रा)** के मामले

अनुवादित

में, खण्ड न्यायपीठ ने खंड 12 का संदर्भ दिया था, लेकिन इसने जिला स्तरीय संघों के पदाधिकारियों से संबंधित जिला मजिस्ट्रेट के पूर्व अनुमोदन के गैर-अनुपालन सा सम्बन्धित मुद्दे का निपटारा नहीं किया।

31. जो भी हो, खंड 12 से संबंधित मुद्दे को खण्ड न्यायपीठ ने देखा है और खारिज कर दिया गया है जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, स्थानांतरण नीति केवल एक दिशानिर्देश है और यद्यपि इसका पालन किया जाना चाहिए लेकिन इसका उल्लंघन किसी पीड़ित पक्ष को किसी भी प्रवर्तनीय अधिकार को जन्म नहीं देता है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता केवल इस कारण से उत्पन्न किसी भी दृश्य पूर्वाग्रह को प्रदर्शित नहीं कर सके क्योंकि अनुमोदन एक स्तर उच्च प्राधिकारी से मौजूद है जो कि जिला मजिस्ट्रेट से भी उच्च है लेकिन जिला मजिस्ट्रेट से नहीं। किसी भी स्पष्ट पूर्वाग्रह के अभाव में, खंड 12 के अनुपालन में विचलन मात्र दिखावटी प्रतीत होता है, खासकर जब सेवा शर्तों में ऐसे स्थानांतरण पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया।

32. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सके कि सभी याचिकाकर्ता आक्षेपित स्थानांतरण से पहले 15 वर्षों से अधिक समय से अपनी तैनाती के स्थान पर थे और राज्य द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के अनुच्छेद 5 में उल्लिखित विवरण प्रत्येक याचिकाकर्ता से संबंधित यह तथ्य स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि सभी याचिकाकर्ता पिछले लगभग 20 वर्षों से एक ही स्थान पर हैं। जहाँ तक याचिकाकर्ता नं. 13 और 19 का सवाल है, उन्होंने स्वयं अपनी इच्छा से अपना स्थानांतरण मांगा है।

33. उपरोक्त सामग्री, संबंधित पक्षों द्वारा की गई दलीलों पर विचार करते हुए और इस तथ्य सहित एक समग्र दृष्टिकोण लेते हुए कि याचिकाकर्ता पहले ही अपनी तैनाती के स्थान पर कार्यभार ग्रहण कर चुके हैं और यहां ऊपर उल्लिखित घोषणाओं से निर्धारित कानूनी सिद्धांतों से बल प्राप्त कर रहे हैं, यह नहीं पाया गया कि इस न्यायालय के पास स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई ठोस कारण है। वृहद जनहित के साथ-साथ यह तथ्य भी कि प्रत्येक याचिकाकर्ता लगभग 20 वर्षों या उससे अधिक समय से अपनी तैनाती के स्थान पर है, स्थानांतरण नीति के संदर्भ में इस पर विचार करने की आवश्यकता है और उक्त कारण से, कर्मचारी की उपयुक्तता और जिस स्थान पर काम लिया जाना है, नियोक्ता निर्णय के लिए सबसे उपयुक्त है, उसमें न्यायालय द्वारा रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

34. यहां ऊपर बताए गए कारणों से, इस न्यायालय को याचिकाकर्ता का पक्ष नहीं मिला और याचिका बिना योग्यता के है, तदनुसार, इसे खारिज कर दिया जाता है। इन तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

(2023) 2 ILRA 494

मूल न्यायाधिकार

अनुवादित

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.02.2023

समक्षमाननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र,

रिट-सी संख्या 4745/2023

लीलू

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अमीश कुमार श्रीवास्तव, सुश्री संजू लता

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री कौशल किशोर मणि

A. सिविल कानून - उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 - धारा 67, 225-ए एवं 233 - उ.प्र. राजस्व संहिता नियम, 2016 - नियम 67, 186 और 192 - ग्राम पंचायत की संपत्ति पर अनधिकृत अतिक्रमण - निष्कासन की कार्यवाही - प्राकृतिक न्याय - नियम 192 के अनुसार, धारा 67 के तहत कार्यवाही सारांश कार्यवाही है, और इसलिए, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना नियम 186 के अनुसार एक वैधानिक अनिवार्य है - धारा 67(2) के अंतर्गत कारण बताने के लिए नोटिस देने का समय - हालांकि कारण बताने के लिए कोई विशेष अवधि निर्धारित नहीं की गई है, लेकिन फिर भी आपत्तियां प्रस्तुत करने के लिए नोटिस को पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए - प्राकृतिक सिद्धांतों का उल्लंघन - न्यायालय ने तहसीलदार के आचरण की निंदा की, जिन्होंने धारा 67 के तहत कार्यवाही प्रारंभ की और कुछ ही समय में अर्थात इसकी शुरुआत की तारीख से 11 दिनों की अवधि के भीतर समाप्त कर दी - याचिकाकर्ता को प्रस्तावित निष्कासन के विरुद्ध कारण बताने के लिए केवल दो दिन का समय दिया गया - याचिकाकर्ता को इस मामले में अपनी बात रखने से वंचित कर दिया गया - अदालत ने माना कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और संहिता और नियमों की योजना का तहसीलदार द्वारा पालन नहीं किया गया - विवादित आदेश निरस्त कर दिया गया (पैरा 8, 22, 33,35, 36)

बी. भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - न्यायिक समीक्षा - प्रशासनिक कानून - आनुपातिकता और वेडनसबरी सिद्धांत - किसी भी प्रशासनिक आदेश की वैधता का आकलन करने के लिए आम तौर पर वेडनसबरी परीक्षण लागू किया जाता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या निर्णय अवैध था या प्रक्रियात्मक विसंगतियों से ग्रस्त था या इस अर्थ में अतार्किक था कि यह तर्क या नैतिक मानकों की अपमानजनक अवहेलना थी या ऐसा था जिस पर कोई भी समझदार निर्णयकर्ता, उसके सामने मौजूद सामग्री पर और कानून के ढांचे के भीतर, इस पर नहीं पहुंच सकता था - इस पर विचार कर सकता था कि क्या प्रासंगिक तथ्य को ध्यान में नहीं रखा गया या क्या अप्रासंगिक मामलों को ध्यान में रखा गया था या क्या कार्रवाई प्रामाणिक नहीं थी या क्या निर्णय बेतुका या विकृत था - अदालत हालांकि उसे विभिन्न विकल्पों के बीच प्रशासक द्वारा

अनुवादित

की गई पसंद की शुद्धता पर ध्यान नहीं देगी। (पैरा 31)

अनुमत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. केनरा बैंक बनाम वी.के. अवस्थी, 2005 (6) एससीसी 321

2. भारत संघ और अन्य बनाम जी. गनयुथम, [1997] 7 एससीसी 463

3. ऋषिपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य., 2023 (1) ऑल 4

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अमीश कुमार श्रीवास्तव को सुश्री संजू लता, राज्य के उत्तरदाताओं के लिए स्थायी अधिवक्ता और प्रतिपक्षी नंबर 4 के अधिवक्ता श्री कौशल किशोर मणि को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में दो प्रार्थनाएं की हैं। पहली प्रार्थना दिनांक 04.01.2023 के आदेश को रद्द करने की है, जिसके तहत संबंधित तहसीलदार ने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत कार्यवाही में याचिकाकर्ता को बेदखल करने का निर्देश दिया है और 1,36,600/- रुपये तक का जुर्माना भी लगाया है। दूसरी प्रार्थना याचिकाकर्ता द्वारा 16.01.2023 को दायर बहाली आवेदन पर निर्णय लेने के लिए है, जिसमें दिनांक 04.01.2023 के आदेश को वापस लेने की मांग की गई है।

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि तहसीलदार, नकुड़, सहारनपुर ने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 (2) के तहत शक्तियों के कथित प्रयोग में दिनांक 26.12.2022 को एक नोटिस जारी किया, जिसमें याचिकाकर्ता को नोटिस के अनुपालन और कारण बताओ के लिए 28.12.2022 को सुबह 10.00 बजे निर्धारित करने वाले दो दिनों की अवधि के भीतर अपने कथित अनधिकृत कब्जे को हटाने के लिए कहा गया। नोटिस में कहा गया है कि यदि उपरोक्त तारीख और समय के भीतर कारण बताओ नोटिस के खिलाफ आपत्तियां दर्ज नहीं की जाती हैं, तो मामले का फैसला एकपक्षीय किया जाएगा।

4. दिनांक 26.12.2022 के नोटिस का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार है:

"अतः एतदद्वारा आपको नोटिस दी जाती है कि आप ०२ दिनों के अंदर अवैध अध्यासन को हटा लें, और रुपये की नुकसानी जमा कर दें। नुकसान की मरम्मत करें, अथवा दुर्वियोजन के कारण हुई क्षति को पूर्ण करें अथवा रुपये २७३२०००/- ग्राम सभा को सौंपी गयी भूमि के नुकसान अथवा दुर्वियोजन के कारण हुई क्षति को पूर्ण करें अथवा रुपये २७३२०००/- रुपये नुकसान के रूप में जमा करें, अथवा करने से विराट रहें. दिनांक २८.12.२०२२ को समय १० बजे मेरे न्यायालय में मेरे समक्ष इस नोटिस के पालन की सूचना के लिए अथवा उसके विरुद्ध कारण बताने के लिये उपस्थित हो।

आपको यह भी सूचित किया जाता है कि यदि आप उल्लिखित दिनांक और समय को या तो व्यक्तिगत रूप से अथवा

अनुवादित

अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित नहीं होते है, और कारण बताओं नोटिस के विरुद्ध आपत्ति दाखिल नहीं करते तो मामले में विनिश्चय किया जायेगा और आपके विरुद्ध एक पक्षीय रूप से आदेश पारित किया जायेगा।

मेरे हस्ताक्षर व न्यायालय की मुहर से दिनांक २६.12.२०२२ को जारी किया गया।"

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अगले ही सप्ताह, दिनांक 04.01.2023 का आक्षेपित आदेश यह देखते हुए पारित किया गया है कि नोटिस की तामील के बावजूद, याचिकाकर्ता ने कोई विरोध नहीं किया है इसलिए मामला दिन-प्रतिदिन आगे बढ़ता रहा। याचिकाकर्ता का यह मामला है कि दिनांक 04.01.2023 का आदेश एकपक्षीय और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए, उसने तुरंत 16.01.2023 को वापस बुलाने के आवेदन को प्राथमिकता दी, जिसमें कहा गया था कि 04.01.2023 के आदेश के बारे में पता चलने के तुरंत बाद, बहाली/वापस बुलाने का आवेदन पेश किया जा रहा है, जिसकी अनुमति दी जानी चाहिए।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67, उप-धारा (2) और (3) के प्रावधानों पर भरोसा किया है, जिसमें से निम्नानुसार पढ़ा गया है:

67. ग्राम पंचायत की संपत्ति की क्षति, दुवनियोजन और सदोष कब्जे को रोकने की शक्ति -

(2) जहाँ उपधारा (1) के अधीन या अन्यथा प्राप्त जानकारी से सहायक समाहर्ता का यह समाधान हो जाता है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट कोई सम्पत्ति क्षतिग्रस्त या दुवनियोजित हो गई है या कोई व्यक्ति इस संहिता के उपबन्धों के उल्लंघन में उस उपधारा में निर्दिष्ट किसी भूमि पर कब्जा कर रहा है, वहाँ वह सम्बन्धित व्यक्ति को कारण बताओ नोटिस जारी करेगा कि क्षति के लिए प्रतिकर क्यों, नोटिस में विनिदष्ट राशि से अधिक का दुवनियोजन या गलत कब्जा उससे वसूल नहीं किया जाना चाहिए और उसे ऐसी भूमि से बेदखल क्यों नहीं किया जाना चाहिए।

(3) यदि वह व्यक्ति, जिसे उपधारा (2) के अधीन सूचना जारी की गई है, सूचना में विनिर्दिष्ट समय के भीतर या ऐसे विस्तारित समय के भीतर, जो सहायक समाहर्ता इस निमित्त अनुज्ञात करे, कारण बताने में असफल रहता है या यदि दर्शाया गया कारण अपर्याप्त पाया जाता है तो सहायक समाहर्ता निदेश दे सकेगा कि ऐसे व्यक्ति को भूमि से बेदखल कर दिया जाएगा, और उस प्रयोजन के लिए, ऐसे बल का उपयोग या उपयोग करवा सकेगा जो आवश्यक हो, और निदेश दे सकेगा कि संपत्ति की क्षति या दुवनियोजन के लिए या गलत तरीके से कब्जे के लिए, जैसा भी मामला हो, प्रतिकर की रकम ऐसे व्यक्ति से भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जाए।

7. उन्होंने 2016 में अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के नियम 67 पर भी भरोसा किया है, जो इस प्रकार है:

अनुवादित

67. ***सहायक कलेक्टर द्वारा आगे की जांच (धारा 67)।*** *(1) नियम 66 के अधीन सूचना प्राप्त होने पर या अन्यथा तथ्यों की जानकारी प्राप्त होने पर सहायक समाहर्ता ऐसी जांच कर सकेगा जो वह उचित समझे और निम्नलिखित बिन्दुओं के संबंध में और जानकारी प्राप्त कर सकेगा:-*

(क) किए गए नुकसान या दुवनियोजन या गलत कब्जे का पूर्ण विवरण और गांव, भूखंड संख्या, क्षेत्र, सीमा, क्षतिग्रस्त या दुवनियोजित संपत्ति और उसके बाजार मूल्य के ब्यौरे;

(बी) इस तरह के नुकसान, दुवनियोजन या गलत कब्जे के लिए जिम्मेदार व्यक्ति के माता-पिता के साथ पूरा पता;

(ग) गलत कब्जे, क्षति या दुवनियोजन की अवधि और शामिल भूखंडों की मिट्टी का वर्ग;

(घ) क्षतिग्रस्त या दुवनियोजित संपत्ति का मूल्य कलेक्टर द्वारा निर्धारित सर्कल रेट पर गणना की गई और नुकसान के रूप में वसूल की जाने वाली राशि।

(2) सहायक समाहर्ता, तत्पश्चात् धारा 67(2) के अधीन कार्रवाई करने की कार्यवाही करेगा और उस प्रयोजन के लिये सम्बन्धित व्यक्ति को आरसी प्रपत्र-20 में कारण बताने के लिए नोटिस जारी करेगा कि क्यों न सूचना में विनिर्दिष्ट राशि से अधिक क्षति, दुवनियोजन या सदोष कब्जे के लिये प्रतिकर वसूल न किया जाए और उसे ऐसी भूमि से क्यों न बेदखल किया जाए।

(3) यदि धारा 67(2) में निर्दिष्ट सूचना का अनुपालन नहीं किया जाता है या यदि संबंधित व्यक्ति द्वारा दर्शाया गया कारण अपर्याप्त पाया जाता है तो सहायक समाहर्ता आदेश द्वारा निदेश दे सकेगा कि-

(ए) ऐसे व्यक्ति को ऐसे बल का उपयोग करके बेदखल किया जा सकता है जो आवश्यक हो सकता है; नहीं तो

(ख) सहायक समाहर्ता द्वारा आदेशित क्षति या सदोष कब्जे के लिए प्रतिकर की राशि, यदि विनिर्दिष्ट समय में संदत्त न की गई हो, उपनियम (3) में निर्दिष्ट व्यय की राशि सहित भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जा सकेगी।

(4) वसूल की जाने वाली क्षति की राशि और आदेश के निष्पादन के व्यय को ऐसी सूचना में विनिर्दिष्ट किया जाएगा, जो निम्नलिखित रीति से अवधारित की जाएगी:-

(ए) क्षति या दुवनियोजन के मामले में, नुकसान की राशि का आकलन प्रचलित बाजार दर पर किया जाएगा।

(ख) किसी भूमि के अनधिकृत कब्जे के मामले में, नुकसान की राशि अनधिकृत कब्जे के प्रत्येक वर्ष के लिए कलेक्टर द्वारा निर्धारित सर्कल दर पर गणना की गई भूमि के बाजार मूल्य के पांच प्रतिशत के बराबर राशि होगी।

(ग) आदेश के निष्पादन के व्यय का निर्धारण प्रतिनियुक्त कर्मचारियों को देय एक दिन के वेतन और भत्तों के आधार पर किया जाएगा।

(5) यदि भूमि पर गलत ढंग से कब्जा करने वाले व्यक्ति ने उसमें खेती की है तो उसे फसल काटने तक उसका कब्जा रखने की अनुमति दी जा सकेगी, बशर्ते कि वह

अनुवादित

सकलित दर के अनुसार परिकलित भूमि के बाजार मूल्य के पांच प्रतिशत के बराबर रकम का संदाय करे जो ग्राम पंचायत से भिन्न समेकित गाँव निधि या स्थानीय प्राधिकारी की निधि में जमा की जाएगी। मामला हो सकता है। यदि संबंधित व्यक्ति आरसी फॉर्म 20 में नोटिस में निर्दिष्ट अवधि के भीतर उपरोक्त राशि का भुगतान नहीं करता है, तो भूमि का कब्जा भूमि प्रबंधन समिति या स्थानीय प्राधिकारी को दिया जाएगा, जैसा भी मामला हो, फसल के साथ:

परन्तु जहां ऐसा व्यक्ति ग्राम पंचायत या स्थानीय प्राधिकारी की अधिकारिता के भीतर यथास्थिति, उसी भूमि या किसी अन्य भूमि पर पुनः सदोष अधिभोग करता है, वहां से उसे तत्काल बेदखल कर दिया जाएगा और खाली पड़ी भूमि का कब्जा या उस पर फसल सहित भूमि प्रबंध समिति या स्थानीय प्राधिकारी को, यथास्थिति, दी जाएगी।

(6) सहायक समाहर्ता, कारण बताओ नोटिस जारी होने की तारीख से नब्बे दिन की अवधि के भीतर संहिता की धारा 67 के अधीन कार्यवाही को समाप्त करने का प्रयास करेगा और यदि कार्यवाही ऐसी अवधि के भीतर समाप्त नहीं होती है तो उसके कारणों को अभिलिखित किया जाएगा।

(7) उपनियम (5) की कोई बात भूमि प्रबंध समिति या स्थानीय प्राधिकारी को, यथास्थिति, उस व्यक्ति को, जो भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 447 के अधीन संहिता या नियमों के अधीन बेदखल किए जाने के बावजूद दूसरी बार उसी भूमि पर अतिक्रमण करता है, अभियोग चलाने से वंचित नहीं करेगी।

(8) प्रत्येक कलेक्टर के कार्यालय में आरसी फार्म-21 में एक रजिस्टर रखा जाएगा जिसमें धारा 67 के अधीन कार्यवाहियों में हर्जाने और प्रतिकर के कारण वसूल की जाने वाली राशि का विवरण दर्शाया गया हो।

(9) प्रत्येक तहसीलदार द्वारा एक समान रजिस्टर भी रखा जाएगा जिसमें ऐसी कार्यवाही में दिए गए नुकसान और मुआवजे की वसूली दिखाई देगी। तहसील में रखे गए रजिस्टर में की गई प्रविष्टियों की तुलना कलेक्टर द्वारा रखे गए रजिस्टर के साथ की जाएगी ताकि उसमें की गई प्रविष्टियों की सटीकता सुनिश्चित हो सके।

(10) धारा 67 के तहत कार्यवाही में दिए गए नुकसान और मुआवजे की वसूली को दर्शाने वाली एक प्रगति रिपोर्ट हर साल अप्रैल के पंद्रहवें दिन और रिट सी नंबर 4745 वर्ष 2023 अक्टूबर तक राजस्व बोर्ड, यूपी, लखनऊ को भेजी जाएगी। बोर्ड जिलों से प्राप्त रिपोर्ट को समेकित करने के बाद इसे सरकार को भेजेगा।

(11) नियम 66 और 67 की कोई बात किसी व्यक्ति को किसी ऐसे विषय के संबंध में, जिसके लिए संहिता की धारा 67 के अधीन कोई आदेश किया गया है, तत्समय प्रवृत्त विधि के अनुसार सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में अपने अधिकार, स्वत्वाधिकार या हित की स्थापना से विषिद्ध नहीं करेगी.....

अनुवादित

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि कारण बताने के लिए धारा 67 की उप-धारा (2) के तहत नोटिस जारी करने से नोटिस देने वाले को आपत्तियां प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त समय मिल गया होगा और केवल इसलिए कि संहिता की धारा 67 या नियम 67 के तहत, नोटिस देने वाले को आपत्तियां प्रस्तुत करने के लिए बुलाने के लिए कोई समय अवधि निर्धारित नहीं की गई है, यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि नोटिस जारी करने वाला प्राधिकरण संपत्ति को खाली करने के लिए केवल दो दिन का समय देते हुए नोटिस जारी करने की निरंकुश शक्ति के अधीन है, और इसलिए, आक्षेपित कार्यवाही का आधार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के साथ-साथ संहिता और नियमों के प्रावधानों के विपरीत है।

9. दूसरी ओर, स्थायी अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि चूंकि याचिकाकर्ता द्वारा 04.01.2023 के आदेश को वापस लेने की मांग करते हुए बहाली आवेदन को पहले ही प्राथमिकता दी जा चुकी है, इसलिए इस न्यायालय के लिए 04.01.2023 के आदेश की वैधता की जांच करना उचित नहीं होगा, क्योंकि यदि रिकॉल आवेदन किसी भी तरह से तय किया जाता है, तो वह बहाली/रिकॉल आवेदन के परिणाम के आधार पर आगे की कार्यवाही को जन्म देगा। स्थायी अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि चूंकि यूपी राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत या नियम, 2016 के नियम 67 के तहत कोई विशिष्ट अवधि निर्धारित नहीं की गई है, इसलिए वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता को दो दिनों की अवधि के भीतर कारण बताने के लिए नोटिस जारी करना, किसी भी दुर्बलता या अवैधता से ग्रस्त नहीं है।

10. मैंने पक्षों के अधिवक्ता को सुना है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

11. उ0प्र0 राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 ग्राम पंचायत की संपत्ति के नुकसान, दुवनियोजन और गलत कब्जे को रोकने की शक्ति का वर्णन करने वाला एक महत्वपूर्ण प्रावधान है। प्रावधान को विभिन्न उप-वर्गों में विभाजित किया गया है और नियमों के नियम 67 में स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 67 के तहत निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले व्यापक और विशिष्ट कार्यवाही आयोजित करने का प्रावधान है।

12. उपर्युक्त के अतिरिक्त जहाँ तक उ0प्र0 राजस्व संहिता, 2006 के अधीन कार्यवाही के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की प्रयोज्यता का सम्बन्ध है, उ0प्र0 राजस्व संहिता नियम, 2016 के नियम 186 का संदर्भ किया जाना चाहिए।

13. उ0प्र0 राजस्व संहिता नियमावली, 2016 के नियम 186 में निम्न प्रकार है:

"186. सीपीसी की गैर-प्रयोज्यता (धारा 214) - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के प्रावधान संहिता या इन नियमों के तहत सारांश कार्यवाही पर लागू नहीं होंगे, लेकिन सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में निहित सिद्धांत और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत ऐसी कार्यवाही के निपटान में देखे जाएंगे।

14. यद्यपि, नियम 186 में उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता 2006 के तहत सारांश कार्यवाही के संबंध में प्रयोज्यता के

अनुवादित

प्रावधानों को शामिल नहीं किया गया है, हालांकि यह स्पष्ट रूप से अनिवार्य करता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में निहित सिद्धांतों और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को ऐसी कार्यवाही के निपटान में देखा जाएगा।

15. उपरोक्त के अलावा, नियमों के नियम 192 के साथ पठित धारा 225-ए यूपी राजस्व संहिता, 2006 के तहत किसी भी सारांश कार्यवाही में प्रश्नों के निर्धारण के लिए प्रदान करती है। तैयार संदर्भ के लिए, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 225-ए और यूपी राजस्व संहिता नियम, 2016 के नियम 192 को नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"225-क संक्षिप्त कार्यवाही में प्रश्नों का अवधारण- इस संहिता के अन्य उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, इस संहिता के अधीन किसी संक्षिप्त कार्यवाही में अवधारण के लिए उठने वाले सभी प्रश्नों का विनिश्चय शपथ पत्रों पर, विहित रीति से किया जाएगा:

परन्तु यदि राजस्व न्यायालय या राजस्व अधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि किसी साक्षी का, जिसने शपथ पत्र दायर किया है, की प्रतिपरीक्षा आवश्यक है तो वह साक्षी को ऐसी प्रतिपरीक्षा के लिए प्रस्तुत करने का निदेश दे सकेगा।

"192. संक्षिप्त कार्यवाहियों में प्रश्नों का अवधारण (धारा 225क)-(1) इस संहिता या इन नियमों के अधीन किसी संक्षिप्त कार्यवाही में अवधारण के लिए उठने वाले सभी प्रश्नों का विनिश्चय शपथ पत्रों पर किया जाएगा। (2) निम्नलिखित कार्यवाहियों को सारांश कार्यवाही के रूप में माना जाएगा, अर्थात:

धारा	विवरण
24	सीमांकन की कार्यवाही
25	रास्ते के अधिकार एवं अन्य सुख सुविधाओं के संबंध में कार्यवाही।
26	बाधा दूर करने के संबंध में कार्यवाही.
30(2)	मिनजुम्ला संख्या के भौतिक विभाजन के संबंध में कार्यवाही
31(1)	शेयरों के निर्धारण के संबंध में कार्यवाही.
32	अभिलेखों को दुरूस्त करने के संबंध में कार्यवाही।
35	नामांतरण की कार्यवाही.
38	त्रुटि अथवा लोप के सुधार के संबंध में कार्यवाही
49	मानचित्र एवं अभिलेखों के पुनरीक्षण के संबंध में कार्यवाही।
58	धारा 54, 56 या 57 में निर्दिष्ट किसी संपत्ति के संबंध में उत्पन्न विवाद के संबंध में कार्यवाही
66	आबादी स्थलों के अनियमित आवंटन की जांच के संबंध में कार्यवाही।

अनुवादित

67	अनाधिकृत कब्जाधारियों को बेदखल करने के संबंध में कार्यवाही
80	गैर-कृषि उपयोग हेतु घोषणा के संबंध में कार्यवाही
82	घोषणा पत्र निरस्त करने के संबंध में कार्यवाही।
98	भूमिधरी भूमि को अनुसूचित जाति के अलावा अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित करने की अनुमति के संबंध में कार्यवाही।
101	विनिमय हेतु कार्यवाही
105(5)	भूमि के कब्जे के लिए कार्यवाही।
128	आवंटन और पट्टे को रद्द करने की कार्यवाही
149 & 150	सरकारी पट्टेदार की बेदखली के लिए कार्यवाही।
193	अनियमितता के लिए बिक्री को अलग रखने के लिए आगे बढ़ना।
195	कलेक्टर या आयुक्त द्वारा बिक्री को रद्द करने के लिए कार्यवाही
212	मामलों के हस्तांतरण के लिए कार्यवाही।

(3) राज्य सरकार या बोर्ड संहिता या इन नियमों के अधीन वादों को छोड़कर किसी अन्य कार्यवाही को संक्षिप्त कार्यवाही के रूप में घोषित कर सकेगा।
(4) संक्षिप्त कार्यवाहियों के निपटान की प्रक्रिया राजस्व न्यायालय नियमावली में अंतवष्ट है।

16. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 233 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा 2016 के उपरोक्त नियम बनाए गए हैं। तत्काल मामले के प्रयोजनों के लिए, धारा 233 (2) (xiv) यहां नीचे दी गई है:

"233. नियम. (1) राज्य सरकार, इस संहिता के प्रयोजनों के लिए ले जाने के लिये नियम अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी।

(2) पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम-(xiv) वादों, अपीलों और अन्य कार्यवाहियों के संचालन और अभियोजन से संबंधित प्रक्रिया, जिसके अंतर्गत इस संहिता के उपबंधों के अधीन विभिन्न जांच-पड़ताल करने की प्रक्रिया भी है, उपबंध कर सकेंगे।

17. उपर्युक्त उद्धृत प्रावधानों से, यह स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत कार्यवाही सारांश कार्यवाही है, और इसलिए, उपरोक्त उद्धृत प्रावधानों के मद्देनजर, प्राकृतिक

अनुवादित

न्याय के सिद्धांतों का पालन एक वैधानिक जनादेश है।

18. वर्तमान मामले में निर्णय लेने के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है; और यदि हां, तो किस हद तक कोई पूर्वाग्रह पैदा किया गया है। इस मोड़ पर यह ध्यान दिया जा सकता है कि कुछ मामलों में यह देखा गया है कि जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के संदर्भ में अवसर प्रदान करने से स्थिति में सुधार नहीं होता है, "बेकार औपचारिकता सिद्धांत" को सेवा में दबाया जा सकता है।

19. सर्वोच्च न्यायालय ने केनरा बैंक बनाम वीके अवस्थी, 2005 (6) सुप्रीम कोर्ट केस, 321 के मामले में सुनाए गए अपने फैसले में, प्राकृतिक न्याय की अवधारणा को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों और न्यायिक/अर्ध न्यायिक/प्रशासनिक कार्यवाही में इसके अनुप्रयोग का विस्तार से वर्णन किया और यह न्यायालय इस मुद्दे पर विभिन्न न्यायालयों द्वारा किए गए विचार-विमर्श को दोहराने में उक्त निर्णय की सहायता ले रहा है, आगामी पैराग्राफ में:

20. प्राकृतिक न्याय 'कॉमन्सेंस जस्टिस' का दूसरा नाम है। प्राकृतिक न्याय के नियम संहिताबद्ध सिद्धांत नहीं हैं। लेकिन वे मनुष्य के विवेक में निहित सिद्धांत हैं। प्राकृतिक न्याय एक सामान्य उदार तरीके से न्याय का प्रशासन है। न्याय काफी हद तक प्राकृतिक आदर्शों और मानवीय मूल्यों पर आधारित है। न्याय के प्रशासन को संकीर्ण और प्रतिबंधित विचारों से मुक्त किया जाना है जो आमतौर पर भाषाई तकनीकी और व्याकरणिक बारीकियों से जुड़े एक तैयार कानून से जुड़े होते हैं। यह न्याय का पदार्थ है जिसे इसके रूप को निर्धारित करना है।

21. अभिव्यक्ति 'प्राकृतिक न्याय' और 'कानूनी न्याय' एक तंग वर्गीकरण प्रस्तुत नहीं करते हैं। यह न्याय का सार है जिसे दोनों द्वारा सुरक्षित किया जाना है, और जब भी कानूनी न्याय इस गंभीर उद्देश्य को प्राप्त करने में विफल रहता है, तो प्राकृतिक न्याय को कानूनी न्याय की सहायता में कहा जाता है। प्राकृतिक न्याय कानूनी न्याय को अनावश्यक तकनीकीता, व्याकरणिक पांडित्य या तार्किक छल-कपट से मुक्त करता है। यह एक तैयार कानून की चूक की आपूर्ति करता है। जैसा कि लॉर्ड बकमास्टर ने कहा, किसी भी रूप या प्रक्रिया को कभी भी वादियों की प्रस्तुति को बाहर करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। रक्षा।

22. सभी सभ्य राज्यों द्वारा मान्यता प्राप्त प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन सर्वोच्च महत्व का है जब एक अर्ध-न्यायिक निकाय पार्टियों के बीच विवादों का निर्धारण करता है, या नागरिक परिणामों से जुड़ी कोई प्रशासनिक कार्रवाई जारी है। ये सिद्धांत अच्छी तरह से तय हैं। पहला और सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत वह है जिसे आमतौर पर ऑडी अल्टरम पार्टेम नियम के रूप में जाना जाता है। इसमें कहा गया है कि किसी को भी बिना सुने निंदा नहीं की जानी चाहिए। नोटिस इस सिद्धांत का पहला अंग है। यह सटीक और असंदिग्ध होना चाहिए। उसे पार्टी को उस मामले से

अनुवादित

अवगत कराना चाहिए जिससे उसे मिलना है। इस प्रयोजन के लिए दिया गया समय पर्याप्त होना चाहिए ताकि वह अपना अभ्यावेदन दे सके। इस तरह के नोटिस और इस तरह के उचित अवसर के अभाव में, पारित आदेश पूरी तरह से दूषित हो जाता है। इस प्रकार, यह आवश्यक है कि किसी भी पक्ष को उसके खिलाफ कोई प्रतिकूल आदेश पारित करने से पहले मामले की सूचना दी जानी चाहिए। यह प्राकृतिक न्याय के सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांतों में से एक है। आखिरकार, यह निष्पक्ष खेल का एक अनुमोदित नियम है। अवधारणा ने समय के साथ महत्व और रंग प्राप्त किया है। जब 1215 में रनीमेड में ऐतिहासिक दस्तावेज बनाया गया था, तो इस सिद्धांत की पहली वैधानिक मान्यता ने "मैग्ना कार्टा" में अपना रास्ता खोज लिया। प्राकृतिक न्याय के सर एडवर्ड कोक के क्लासिक प्रदर्शन के लिए "वोक, पूछताछ और न्यायनिर्णय" की आवश्यकता होती है। कूपर बनाम वैंड्सवर्थ बोर्ड ऑफ वर्क्स, (1963) 143 ई.आर 414 के प्रसिद्ध मामले में, सिद्धांत इस प्रकार कहा गया था:

"यहां तक कि भगवान ने आदम पर एक सजा पारित नहीं की, इससे पहले कि उसे अपना बचाव करने के लिए बुलाया गया था। "आदम," भगवान कहते हैं, "तू ने उस पेड़ में से नहीं खाया है जिसके बारे में मैंने तुझे आज्ञा दी थी कि हालांकि नहीं खाना चाहिए"।

तब से सिद्धांत को छेनी, सम्मानित और परिष्कृत किया गया है, इसकी सामग्री को समृद्ध किया गया है। न्यायिक उपचार ने अवधारणा में प्रकाश और चमक को जोड़ा है, जैसे हीरे की पॉलिशिंग।

23. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत वे नियम हैं जिन्हें न्यायालयों द्वारा उन अधिकारों को प्रभावित करने वाले आदेश करते समय न्यायिक, अर्ध-न्यायिक और प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा अपनाई जा सकने वाली मनमानी प्रक्रिया के खिलाफ व्यक्ति के अधिकारों के न्यूनतम संरक्षण के रूप में निर्धारित किया गया है। इन नियमों का उद्देश्य ऐसे प्राधिकरण को अन्याय करने से रोकना है।

24. "प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत" शब्द का क्या अर्थ है, यह निर्धारित करना आसान नहीं है। लॉर्ड समर (तब हैमिल्टन, एल.जे.) में रे बनाम स्थानीय सरकारी बोर्ड, (1914) 1 केबी 160, ने वाक्यांश को सटीकता में दुखद रूप से कमी के रूप में वर्णित किया। जनरल काउंसिल ऑफ मेडिकल एजुकेशन एंड रजिस्ट्रेशन ऑफ यूके बनाम सैंकमैन, (1943) एसी 627; लॉर्ड राइट ने देखा कि 'इसे किसी भी प्रोक्रिस्टियन बिस्तर में मजबूर करने' का प्रयास करना वांछनीय नहीं था और उल्लेख किया कि एक आवश्यक आवश्यकता यह थी कि ट्रिब्यूनल निष्पक्ष होना चाहिए और विवाद में कोई व्यक्तिगत रुचि नहीं होनी चाहिए, और आगे यह कि इसे 'पूर्ण और निष्पक्ष अवसर' देना चाहिए, हर पार्टी को सुना जा रहा है।

25. लॉर्ड राइट ने इस विषय पर प्रमुख मामलों का उल्लेख किया। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा बोर्ड बनाम चावल, (1911)

अनुवादित

एसी 179 है, जहां लॉर्ड लोरबर्न, एलसी ने निम्नानुसार देखा:

"तुलनात्मक रूप से हाल के कानूनों ने राज्य के विभागों या कार्यालयों पर विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को तय करने या निर्धारित करने का कर्तव्य लागू करने की प्रथा का विस्तार किया है। मेरे विचार से यह सामान्यत प्रशासनिक प्रकार का होगा, लेकिन कभी-कभी इसमें कानून के साथ-साथ तथ्य भी शामिल होंगे या केवल विधि के मामले पर ही निर्भर होंगे। ऐसे मामलों में शिक्षा बोर्ड को कानून का पता लगाना होगा और तथ्यों का पता भी लगाना होगा। मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है और ऐसा करने में उन्हें सद्भाव से कार्य करना चाहिए और दोनों पक्षों को निष्पक्ष रूप से सुनना चाहिए क्योंकि यह एक कर्तव्य है जो हर किसी पर निर्भर है जो कुछ भी तय करता है। लेकिन मुझे नहीं लगता कि वे इस तरह के सवाल का इलाज करने के लिए बाध्य हैं जैसे कि यह एक परीक्षण था..... बोर्ड मध्यस्थ न्यायाधिकरण की प्रकृति में है, और कानून की अदालत के पास कानून या तथ्य पर निर्धारण से अपील सुनने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है. लेकिन अगर न्यायालय या तो संतुष्ट है कि बोर्ड ने न्यायिक रूप से उस तरह से कार्य नहीं किया है जैसा मैंने वर्णित किया है, या उस प्रश्न का निर्धारण नहीं किया है जिसे निर्धारित करने के लिए अधिनियम द्वारा आवश्यक है, तो परमादेश और उत्प्रेषण द्वारा एक उपाय है।

लॉर्ड राइट ने उसी निर्णय से लॉर्ड चांसलर के अवलोकन पर भी जोर दिया कि बोर्ड किसी भी तरह से जानकारी प्राप्त कर सकता है जो वे सबसे अच्छा सोचते हैं, हमेशा उन लोगों को उचित अवसर देते हैं जो किसी भी प्रासंगिक बयान को सही करने या उनके विचार के प्रतिकूल होने के लिए विवाद के पक्षकार हैं। इसी आशय के लिए अर्ल ऑफ सेलबोर्न, एलओ इन स्पैकमैन वर्सस प्लमस्टेड डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ऑफ वर्क्स, (1885) 10 एसी 229 की टिप्पणियां हैं, जहां विद्वान और महान लॉर्ड चांसलर ने इस प्रकार देखा:

"इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिस व्यक्ति को निर्णय लेना है, उसे कैसे आगे बढ़ना है, इस बारे में विशेष प्रावधानों के अभाव में, कानून का इससे अधिक अर्थ नहीं होगा कि न्याय की ठोस आवश्यकताओं का उल्लंघन नहीं किया जाएगा। वह शब्द के उचित अर्थों में न्यायाधीश नहीं है; लेकिन उसे पार्टियों को उसके सामने सुनवाई करने और अपने मामले और अपने विचार को बताने का अवसर देना चाहिए। जब वह मामले को आगे बढ़ाएगा तो उसे नोटिस देना चाहिए और उसे ईमानदारी और निष्पक्ष रूप से कार्य करना चाहिए न कि किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के आदेश के तहत जिसे प्राधिकार कानून द्वारा नहीं दिया गया है। किसी भी प्रकार की कोई गड़बड़ी नहीं होनी चाहिए। क़ानून के अर्थ के भीतर कोई निर्णय नहीं होगा यदि न्याय के सार के विपरीत ऐसा कुछ किया गया हो।

लॉर्ड सेलबोर्न ने यह भी कहा कि न्याय का सार यह आवश्यक है कि सभी पक्षों को उस व्यक्ति को प्रस्तुत करने का अवसर मिलना

अनिल दिवे

चाहिए जिसके निर्णय से उन्हें बाध्य होना है, इस तरह के विचार उनके फैसले में उनके सामने लाए जाने चाहिए। ये सभी मामले अक्सर उद्धृत वाक्यांश 'न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि होते हुए दिखना चाहिए' में निहित प्राकृतिक न्याय के बहुत महत्वपूर्ण नियम को निर्धारित करते हैं।

26. हाल के वर्षों में प्राकृतिक न्याय की अवधारणा में काफी बदलाव आया है। प्राकृतिक न्याय के नियम ऐसे नियम नहीं हैं जो हमेशा किसी क़ानून में या उसके तहत बनाए गए नियमों में स्पष्ट रूप से सन्निहित होते हैं। उन्हें एक क़ानून के तहत किए जाने वाले कर्तव्य की प्रकृति से निहित किया जा सकता है। प्राकृतिक न्याय का कौन सा विशेष नियम निहित होना चाहिए और किसी दिए गए मामले में इसका संदर्भ क्या होना चाहिए, यह उस मामले के तथ्य और परिस्थितियों पर काफी हद तक निर्भर होना चाहिए, उस क़ानून की रूपरेखा जिसके तहत जांच की जाती है। न्यायिक अधिनियम और प्रशासनिक अधिनियम के बीच पुराना अंतर दूर हो गया है। यहां तक कि एक प्रशासनिक आदेश जिसमें नागरिक परिणाम शामिल हैं, प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुरूप होना चाहिए। अभिव्यक्ति 'नागरिक परिणाम' में न केवल संपत्ति या व्यक्तिगत अधिकारों का उल्लंघन शामिल है, बल्कि नागरिक स्वतंत्रता, भौतिक अभाव और गैर-आर्थिक क्षति भी शामिल है। इसकी विस्तृत छतरी में वह सब कुछ आता है जो एक नागरिक को उसके नागरिक जीवन में प्रभावित करता है।

27. प्राकृतिक न्याय को विभिन्न न्यायाधीशों द्वारा विभिन्न रूप से परिभाषित किया गया है। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। ड्र बनाम ड्र और लेबुरा में, (1855) 2 मैक। 1, लॉर्ड क्रैनवर्थ ने इसे 'सार्वभौमिक न्याय' के रूप में परिभाषित किया। जेम्स डनबर स्मिथ बनाम आर., (1878) 3 एसी 614, (पी.सी) सर रोबोर्ट पी. कोलियर ने प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति के लिए बोलते हुए, 'पर्याप्त न्याय की आवश्यकताओं' वाक्यांश का इस्तेमाल किया, जबकि आर्थर जॉन स्पेकमैन बनाम प्लमस्टेड डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ऑफ वर्क्स, (1885) 10 एसी 229, अर्ल ऑफ सेलबोर्न, एससी ने 'न्याय की पर्याप्त आवश्यकता' वाक्यांश को प्राथमिकता दी। वायनेट वर्सेज बैरेट, (1885) 55 एलजेआरडी 39 में, लॉर्ड एशर, एमआर ने प्राकृतिक न्याय को 'सही और गलत की प्राकृतिक भावना' के रूप में परिभाषित किया। हालांकि, हुकिंग बनाम स्मेथविक लोकल बोर्ड ऑफ हेल्थ, (1890) 24 क्यूबीडी 712 का निर्णय लेते हुए, लॉर्ड फाशर, एमआर ने वायनेट के मामले (सुप्रा) में उनके द्वारा पहले दी गई परिभाषा का उपयोग करने के बजाय प्राकृतिक न्याय को 'मौलिक न्याय' के रूप में परिभाषित करने का विकल्प चुना रिज बनाम बाल्डविन, (1963) 1 क्यूबी 539, हरमन एलजे ने अपील की अदालत में प्राकृतिक न्याय का मुकाबला 'फेयर-प्ले इन एक्शन' के साथ भगवती के पक्ष में एक वाक्यांश के रूप में किया, J. मेनका गांधी बनाम भारत संघ, [1978] 1 एस.सी.सी 248

अनुवादित

में। Re (1967) 2 QB 617 में H.K (एक शिशु) में, लॉर्ड पार्कर, CJ, ने प्राकृतिक न्याय को 'निष्पक्ष रूप से कार्य करने का कर्तव्य' के रूप में वर्णित करना पसंद किया। फेयरमाउंट इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड बनाम सेक्रेटरी टू स्टेट फॉर एनवायरनमेंट, (1976) 1 डब्ल्यूएल.आर 1255 में विलोवन के लॉर्ड रसेल ने कुछ हद तक प्राकृतिक न्याय को 'चाबुक की एक निष्पक्ष दरार' के रूप में वर्णित किया, जबकि जेफ्री लेन, एलजे। आर बनाम गृह मामलों के राज्य सचिव एक्स पार्टे होसेनबॉल, (1977) 1 डब्ल्यू.एल.आर 766 ने घरेलू वाक्यांश 'सामान्य निष्पक्षता' को प्राथमिकता दी।

28. फिर न्यायालयों में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की व्याख्या कैसे की गई है और उन्हें किन सीमाओं के भीतर सीमित किया जाना है? वर्षों से न्यायिक व्याख्या की एक प्रक्रिया द्वारा न्यायिक प्रक्रिया में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करने के रूप में दो नियम विकसित किए गए हैं, जिनमें अर्ध-न्यायिक और प्रशासनिक प्रक्रिया शामिल है। वे एक निष्पक्ष सुनवाई के मूल तत्वों का गठन करते हैं, जिनकी जड़ें निष्पक्ष खेल और न्याय के लिए मनुष्य की सहज भावना में होती हैं जो किसी विशेष जाति या देश का संरक्षण नहीं है बल्कि सभी पुरुषों द्वारा साझा किया जाता है। पहला नियम 'निमो जुडेक्स इन कॉसा सुआ' या 'निमो डेबेट एस्से जुडेक्स इन प्रोप्रिया कॉसा सुआ' है, जैसा कि (1605) 12 Co. Rep.114 में कहा गया है, अर्थात, 'कोई भी व्यक्ति अपने कारण में न्यायाधीश नहीं होगा' कोक ने फॉर्म का इस्तेमाल किया 'एलिकिस नॉन डेबेट एस्से जुडेक्स इन प्रोप्रिया कॉसा क्वाया नॉन पोटेस्ट एस्से जुडेक्स एट पार्स पर। (Co.Litt. 1418), अर्थात्, 'किसी भी व्यक्ति को अपने मामले में न्यायाधीश नहीं होना चाहिए' क्योंकि वह न्यायाधीश के रूप में कार्य नहीं कर सकता है और साथ ही एक पक्ष भी नहीं हो सकता है' फॉर्म 'निमो पोटेस्ट एस्से सिमुल अभिनेता एट जुडेक्स', अर्थात, 'कोई भी एक बार में सूटर और जज नहीं हो सकता' भी कई बार उपयोग किया जाता है। दूसरा नियम है 'ऑडी अल्टरम पार्टम', यानी 'दूसरे पक्ष को सुनें' कई बार और विशेष रूप से महाद्वीपीय देशों में, 'ऑडिटूर एट अल्टेरा पार्स' फॉर्म का उपयोग किया जाता है, जिसका अर्थ बहुत ही समान है। उपरोक्त दो नियमों और विशेष रूप से ऑडी अल्टरम पार्टेम नियम से एक परिणाम निकाला गया है, अर्थात् 'क्वी एलिक्विड स्टैच्यूरिट पार्टे इनऑडिटा अल्टरम एक्टक्वाम लिसेट डिक्सरिट, हौड एक्वम फेसरिट' अर्थात, 'वह जो दूसरे पक्ष को सुने बिना कुछ भी तय करेगा, हालांकि उसने कहा होगा कि क्या सही है, वह सही नहीं होगा' (बोसवेल का मामला देखें (1605) 6 कंपनी प्रतिनिधि 48-बी, जब कभी किसी आदेश को नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए अवैध करार दिया जाता है तो मामले का कोई अंतिम निर्णय नहीं होता है और नई कार्यवाहियां छोड़ दी जाती हैं। जो कुछ भी किया जाता है वह अपने अंतर्निहित दोष के आधार पर आदेश को रद्द करने के लिए किया जाता है, लेकिन कार्यवाही समाप्त नहीं होती है।

29. जिसे 'बेकार औपचारिकता सिद्धांत' के रूप में जाना जाता है, उस पर एमसी मेहता

अनुवादित

बनाम भारत संघ, [1999] 6 एस.सी.सी 237 में इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया है। यह निम्नानुसार देखा गया था:

"22. इससे पहले कि हम इस विवाद के अंतिम पहलू में जाएं, हम यह बताना चाहेंगे कि प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन से संबंधित मामले भी होते हैं जहां सभी तथ्यों को स्वीकार नहीं किया जाता है या सभी विवाद से परे नहीं होते हैं। उन मामलों के संदर्भ में काफी केस-लॉ और साहित्य है कि क्या राहत से इनकार किया जा सकता है, भले ही अदालत को लगता है कि आवेदक का मामला 'वास्तविक पदार्थ' का नहीं है या उसकी सफलता की कोई पर्याप्त संभावना नहीं है या परिणाम अलग नहीं होगा, भले ही प्राकृतिक न्याय का पालन किया जाए। (देखें मैलोच बनाम एबरडीन कॉर्पोरेशन, [1971] 2 ऑल ई.आर 1278, (लॉर्ड रीड और लॉर्ड विल्बरफोर्स के अनुसार), ग्लिन बनाम कील यूनिवर्सिटी, [1971] 2 ऑल ई.आर 89; दालचीनी बनाम ब्रिटिश एयरपोर्ट अथॉरिटी, [1980] 2 सभी ई.आर 368, सीए और अन्य मामले जहां ऐसा दृष्टिकोण रखा गया है। इस दृष्टिकोण का नवीनतम जोड़ आर बनाम ईलिंग मजिस्ट्रेट है। कोर्ट, पूर्व पी। फन्नारन, (1996) 8 प्रशासन। एल.आर 351, (देखें डी स्मिथ, सप्ल पी .89) (1998) जहां स्ट्रौटन, एलजे ने कहा कि 'संदेह से परे प्रदर्शन होना चाहिए कि परिणाम अलग होता। लॉयड बनाम मैकमोहन में लॉर्ड वूल्फ, [1987] 1 ऑल ई.आर 1118, ने भी प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन के कुछ मामलों में विवेक से इनकार करने का विरोध नहीं किया है। मैकार्थी बनाम ग्रांट, (1959) एन.जेड.एल.आर 1014 में न्यूजीलैंड कोर्ट हालांकि आधे रास्ते में चला जाता है जब यह कहता है कि (पूर्वाग्रह के मामले में), आवेदक के लिए यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि 'वास्तविक संभावना-निश्चितता नहीं- पूर्वाग्रह की। दूसरी ओर, गार्नर प्रशासनिक कानून (8 वां संस्करण। 1996. पी.पी.271-72) का कहना है कि मामूली सबूत है कि परिणाम अलग होता, पर्याप्त है। तर्क के दूसरी तरफ, हमारे पास रिज बनाम बाल्डविन, (1964) एसी 40 मेगारी, जे इन जॉन वर्सस रीस, [1969] 2 ऑल ई.आर 274 के अलावा यह कहते हुए है कि हमेशा 'खुले और बंद मामले होते हैं। और पूर्वाग्रह के प्रमाण का कोई पूर्ण नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। योग्यता अदालत के लिए नहीं बल्कि प्राधिकरण के विचार के लिए है। एकनर, जे ने कहा है कि 'बेकार औपचारिकता सिद्धांत' एक खतरनाक है और, हालांकि असुविधाजनक, प्राकृतिक न्याय का पालन किया जाना चाहिए। लॉर्डशिप ने देखा कि 'सुविधा और न्याय अक्सर बोलने की शर्तों पर नहीं होते हैं'। हाल ही में, लॉर्ड बिंघम ने टेम्स वैली पुलिस बलों के आर। बनाम मुख्य कांस्टेबल, पूर्व पी। (ख) मैसर्स कॉटन (1990 आई.आरएल.आर 344) में छह कारण दिए गए हैं। (उनका लेख भी देखें 'क्या सार्वजनिक कानून उपचार विवेकाधीन होना चाहिए?' 1991 पीएल पी .64)। 'बेकार औपचारिकता सिद्धांत' की एक विस्तृत और जोरदार आलोचना बहुत पहले कनाडा के प्रोफेसर डीएच क्लार्क (1975 PL.pp.27-63 देखें) द्वारा 'प्राकृतिक

अनुवादित

न्याय, पदार्थ या छाया' में की गई है, जिसमें तर्क दिया गया है कि मैलोच (सुप्रा) और ग्लिन (सुप्रा) गलत तरीके से तय किए गए थे। फाउलकेस (प्रशासनिक कानून, 8 वां संस्करण 1996, पृष्ठ 323), क्रेग (प्रशासनिक कानून, तीसरा संस्करण। (क) क्या यह सच है कि निर्णय लेने वाले प्राधिकारी द्वारा क्या निर्णय लिया जाना है, इसका न्यायालय पूर्वनिर्धारित नहीं कर सकता। डी स्मिथ (5th Edn. 1994, पैरा 10.031 से 10.036) का कहना है कि अदालतों ने अभी तक किसी एक दृष्टिकोण के लिए खुद को प्रतिबद्ध नहीं किया है, हालांकि विवेक हमेशा अदालत के साथ होता है। वेड (प्रशासनिक कानून, 5 वां संस्करण 1994, पी.पी.526-530) का कहना है कि जबकि व्यर्थ रिट जारी नहीं की जा सकती है, निर्णय की प्रकृति के अनुसार एक अंतर किया जाना चाहिए। इस प्रकार, स्वीकृत या निर्विवाद तथ्यों से संबंधित मामलों के अलावा अन्य मामलों के संबंध में, राय का काफी विचलन है कि क्या आवेदक को यह साबित करने के लिए मजबूर किया जा सकता है कि परिणाम उसके पक्ष में होगा या उसे पदार्थ का मामला साबित करना होगा या यदि वह सफलता की 'वास्तविक संभावना' साबित कर सकता है या यदि वह राहत का हकदार है, भले ही सफलता का कुछ दूरस्थ मौका हो। हालांकि, हम यह बता सकते हैं कि उन मामलों में भी जहां तथ्य सभी स्वीकार नहीं किए गए हैं या विवाद से परे हैं, वहां भी काफी सर्वसम्मति है कि अदालतें अपने 'विवेक' का प्रयोग करते हुए, उत्प्रेषण, निषेध, परमादेश या निषेधाज्ञा से इनकार कर सकती हैं, भले ही प्राकृतिक न्याय का पालन न किया गया हो। हम यह भी कह सकते हैं कि स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम एसके शर्मा, [1996] 3 एस.सी.सी 364 और राजेंद्र सिंह बनाम एम.पी राज्य, [1996] 5 एस.सी.सी 460 के मामले में मामलों की एक और पंक्ति है कि नोटिस की आवश्यकता वाले वैधानिक प्रावधानों के संबंध में भी, उन मामलों के बीच अंतर किया जाना चाहिए जहां प्रावधान व्यक्तिगत लाभ के लिए है और जहां एक प्रावधान सार्वजनिक हित की रक्षा के लिए है। पूर्व मामले में, इसे माफ किया जा सकता है जबकि बाद के मामले में, इसे माफ नहीं किया जा सकता है।

23. हम 'बेकार औपचारिकता सिद्धांत' की शुद्धता या अन्यथा पर कोई राय व्यक्त करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं और मामले को एक उपयुक्त मामले में निर्णय के लिए छोड़ देते हैं, क्योंकि हमारे सामने मामला है, 'स्वीकृत और निर्विवाद' तथ्यों से पता चलता है कि रिट का अनुदान व्यर्थ होगा जैसा कि चिन्नप्पा रेड्डी, जे द्वारा इंगित किया गया है।

xxxx xxx xxx xxxx xxxx

30. लेकिन जहां एक प्रशासनिक कार्रवाई को रॉयप्पा [1974] 4 एस.सी.सी 3 (उन मामलों में जहां अनुशासनात्मक मामलों में दंड को चुनौती दी जाती है) के आधार पर अनुच्छेद 14 के तहत "मनमाना" के रूप में चुनौती दी जाती है, सवाल यह होगा कि

अनुवादित

प्रशासनिक आदेश "तर्कसंगत" है या "उचित" और परीक्षण तब वेडनेसबरी परीक्षण है। तब अदालतें केवल एक माध्यमिक भूमिका तक ही सीमित रहेंगी और उन्हें केवल यह देखना होगा कि क्या प्रशासक ने अपनी प्राथमिक भूमिका में अच्छा प्रदर्शन किया है, क्या उसने अवैध रूप से काम किया है या प्रासंगिक कारकों को विचार से छोड़ दिया है या अप्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखा है या क्या उसका विचार ऐसा है जिसे कोई भी उचित व्यक्ति नहीं ले सकता था। यदि उसकी कार्रवाई इन नियमों को पूरा नहीं करती है, तो इसे मनमाना माना जाना चाहिए। जी.बी. महाजन बनाम जलगांव नगर परिषद, [1991] 3 एस.सी.सी 91 में पृष्ठ 111 वेंकटचलैय्या, जे. (जैसा कि वह तब थे) ने बताया कि प्रशासनिक कानून के संदर्भ में अनुच्छेद 14 के तहत प्रशासक की "तर्कसंगतता" को बुधवार के नियमों के दृष्टिकोण से आंका जाना चाहिए। टाटा सेल्युलर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, [1994] 6 एस.सी.सी 651 एट पीपी 679-80), इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स बॉम्बे (पी) लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, [1985] 1 एस.सी.सी 641 एट पी। बनाम भारत संघ, [1989] 4 एस.सी.सी 187 पृष्ठ 241 पर और उत्तर प्रदेश वित्तीय निगम। बनाम जेम कैप (इंडिया) (पी) लिमिटेड, [1993] 2 एस.सी.सी 299 पृष्ठ 307 पर यह निर्णय लेते हुए कि क्या प्रशासनिक कार्रवाई अनुच्छेद 14 के तहत "मनमानी" है (यानी अन्यथा भेदभावपूर्ण है), इस न्यायालय ने खुद को हमेशा एक वेडनेसबरी समीक्षा तक सीमित रखा है।

xx xxx xxx xxx xxx xxx xxx

31. भारत संघ और अन्य बनाम जी. गणयुतम, [1997] 7 एस.सी.सी 463 में, इस न्यायालय ने पैराग्राफ 31 और 32 में आनुपातिकता से संबंधित स्थिति को अभिव्यक्त किया, जो इस प्रकार है:

"31. इंग्लैंड और भारत में प्रशासनिक कानून में आनुपातिकता की वर्तमान स्थिति को संक्षेप में निम्नानुसार किया जा सकता है:

(1) किसी भी प्रशासनिक आदेश या वैधानिक विवेक की वैधता का न्याय करने के लिए, आम तौर पर वेडनेसबरी परीक्षण को यह पता लगाने के लिए लागू किया जाना चाहिए कि क्या निर्णय अवैध था या प्रक्रियात्मक अनौचित्य से पीड़ित था या कोई समझदार निर्णय निर्माता नहीं कर सकता था, उसके सामने सामग्री पर और कानून के ढांचे के भीतर, पहुंचे हैं। अदालत इस बात पर विचार करेगी कि क्या प्रासंगिक मामलों को ध्यान में नहीं रखा गया था या क्या अप्रासंगिक मामलों को ध्यान में रखा गया था या क्या कार्रवाई प्रामाणिक नहीं थी। अदालत यह भी विचार करेगी कि क्या निर्णय बेतुका था या विकृत। हालांकि, अदालत प्रशासक द्वारा उसके लिए खुले विभिन्न विकल्पों में से किए गए विकल्प की शुद्धता में नहीं जाएगी। न ही अदालत अपने फैसले को प्रशासक के फैसले से बदल सकती थी। यह वेडनेसबरी (1948 1 केबी 223) परीक्षण है।

अनुवादित

(2) अदालत प्रशासक के फैसले में हस्तक्षेप नहीं करेगी जब तक कि यह अवैध न हो या प्रक्रियात्मक अनौचित्य से पीड़ित न हो या इस अर्थ में तर्कहीन न हो कि यह तर्क या नैतिक मानकों की अपमानजनक अवहेलना में था। भविष्य में अंग्रेजी प्रशासनिक कानून में आनुपातिकता सहित अन्य परीक्षणों को लाए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जाता है। ये सी.सी.एस.यू (1985 एसी 374) सिद्धांत हैं।

(3) (ए) बगडेके (1987 एसी 514), ब्रिंड (1991 (1) एसी 696) और स्मिथ (1996 (1) ऑल ई.आर 257) के अनुसार जब तक कन्वेंशन को अंग्रेजी कानून में शामिल नहीं किया जाता है, अंग्रेजी अदालतें केवल यह पता लगाने के लिए एक माध्यमिक निर्णय का प्रयोग करती हैं कि क्या निर्णयकर्ता अपने समक्ष सामग्री पर, प्राथमिक निर्णय पर पहुंच सकता है जिस तरह से उसने किया है।

(3) (ख) यदि कन्वेंशन को आनुपातिकता के सिद्धांत को उपलब्ध कराने के लिए इंग्लैंड में शामिल किया गया है, तो अंग्रेजी अदालतें प्रशासनिक कार्रवाई की वैधता पर प्राथमिक निर्णय देंगी और पता लगाएंगी कि क्या प्रतिबंध अनुपातहीन या अत्यधिक है या मौलिक स्वतंत्रता के उचित संतुलन पर आधारित नहीं है और उस पर प्रतिबंध की आवश्यकता है।

(4) (क) प्रशासनिक कानून में हमारे देश की स्थिति, जहां पूर्वोक्त के अनुसार कोई मौलिक स्वतंत्रता शामिल नहीं है, यह है कि न्यायालय/अधिकरण केवल द्वितीयक भूमिका निभाएंगे जबकि तार्किकता के संबंध में प्राथमिक निर्णय कार्यपालक या प्रशासनिक प्राधिकारी के पास ही रहेगा। अदालत का द्वितीयक निर्णय क्रमशः लॉर्ड ग्रीन और लॉर्ड डिप्लॉक द्वारा बताए गए वेडनेसबरी और सी.सी.एस.यू सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि कार्यकारी या प्रशासनिक प्राधिकरण प्राथमिक प्राधिकारी के रूप में अपने निर्णय पर यथोचित रूप से पहुंचे हैं या नहीं।

(4) (ख) क्या मौलिक स्वतंत्रताओं को प्रभावित करने वाली प्रशासनिक या कार्यपालिका कार्रवाई के मामले में, हमारे देश के न्यायालय 'आनुपातिकता' के सिद्धांत को लागू करेंगे और प्राथमिक भूमिका ग्रहण करेंगे, इसका निर्णय किसी उपयुक्त मामले में किया जाएगा जहां ऐसी कार्रवाई मौलिक स्वतंत्रता का कथित उल्लंघन करने के लिए की जाती है। तब यह तय करना आवश्यक होगा कि क्या अदालतों की प्राथमिक भूमिका केवल तभी होगी जब अनुच्छेद 19, 21 आदि के तहत स्वतंत्रता शामिल हो, न कि अनुच्छेद 14 के लिए।

32. अंत में, हम वर्तमान मामले पर आते हैं। हमारे समक्ष यह तर्क नहीं दिया गया है कि कोई मौलिक स्वतंत्रता प्रभावित होती है। इसलिए हमें 'आनुपातिकता' के प्रश्न में जाने की आवश्यकता नहीं है। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि लगाई गई सजा अवैध है या प्रक्रियात्मक अनौचित्य से दूषित है। "तर्कहीनता" के रूप में, ट्रिब्यूनल

अनुवादित

द्वारा कोई निष्कर्ष नहीं है कि निर्णय एक ऐसा है जो पेशेवरों और विपक्षों को तौलने वाला कोई समझदार व्यक्ति नहीं पहुंच सकता था और न ही कोई निष्कर्ष है, सामग्री के आधार पर, कि सजा तर्क की "अपमानजनक" अवज्ञा में है। न तो वेडनेसबरी और न ही सी.सी.एस.यू परीक्षण संतुष्ट हैं। हमें अभी भी "रंजीत ठाकुर, [1987] 4 एस.सी.सी 611" की व्याख्या करनी है।

32. इस न्यायालय ने हाल ही में ऋषिपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में, 2023 (1) ए.डब्ल्यू.सी 4 में रिपोर्ट किया गया है, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 और उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियम, 2016 के नियम 67 के प्रावधानों के गैर-अनुपालन के प्रभाव को विस्तृत रूप से समझाया है और स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है कि जब भी कानून के उपरोक्त प्रावधानों का उल्लंघन किया गया है उक्त प्रावधान के तहत मामलों से निपटने वाले अधिकारियों को उनकी कार्रवाई को रद्द कर दिया जाएगा।

33. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि संबंधित तहसीलदार द्वारा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत कार्यवाही करने में अनुचित जल्दबाजी दिखाई गई है, जो दिनांक 26.12.2022 के नोटिस के अवलोकन से स्पष्ट है, जिसके तहत नोटिस प्राप्तकर्ता (याचिकाकर्ता) को कथित अनधिकृत कब्जे को मौके से हटाने के लिए केवल दो दिन का समय दिया गया था, जिसमें धमकी दी गई थी कि यदि नोटिस का अनुपालन नहीं किया जाता है ऐसी समयावधि के भीतर, एकपक्षीय आदेश पारित किया जाएगा। इसके अलावा दिनांक 04.01.2023 का आक्षेपित आदेश दर्शाता है कि यह केवल इस आधार पर पारित किया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता नोटिस के खिलाफ जवाब प्रस्तुत करने में विफल रहा है, इसलिए मामला दिन-प्रतिदिन के आधार पर तय किया गया था, और इसलिए, याचिकाकर्ता के खिलाफ यह निर्णय लिया गया है कि उसे बेदखल करने और उपरोक्त सीमा तक नुकसान पहुंचाने का निर्देश दिया गया है। इससे पहले कि यह न्यायालय वर्तमान रिट याचिका में लगाए गए दिनांक 04.01.2023 के नोटिस की वैधता पर टिप्पणी करे, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की आत्मा, जहां तक यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन से संबंधित है, को कुछ प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों की सहायता से निपटा जाना आवश्यक है।

34. वर्तमान मामले में, माना जाता है कि 04.01.2023 का आक्षेपित आदेश दिनांक 26.12.2022 के नोटिस का परिणाम है, जिसमें याचिकाकर्ता को प्रस्तावित बेदखली के खिलाफ कारण बताने के लिए केवल दो दिन का समय दिया गया है।

35. यह न्यायालय तहसीलदार, नकुद, सहारनपुर के आचरण की गंभीरता से निंदा करता है, जिसने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत कार्यवाही शुरू की है और समाप्त की है, बिना किसी समय के भीतर यानी उनकी स्थापना की तारीख से 11 दिनों की अवधि के भीतर।

अनुवादित

तहसीलदार को इतनी जल्दबाजी में काम करने के लिए किसने राजी किया, यह रिकॉर्ड से स्पष्ट नहीं है। हालांकि, एक बात स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को इस मामले में अपनी बात रखने से वंचित कर दिया गया है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को पूरी तरह से छोड़ दिया गया है।

36. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67, 225-ए और 233 और नियम, 2016 के नियम 67, 186 और 192 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए और दिनांक 26.12.2022 के नोटिस के साथ-साथ दिनांक 04.01.2023 के आदेश को ध्यान में रखते हुए, बहाली/वापस लेने के आवेदन पर विचार करने के लिए निर्देश जारी करना एक निरर्थक कवायद होगी क्योंकि इससे मामले में और देरी हो सकती है। इस न्यायालय ने पाया कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पूरी तरह से उल्लंघन किया गया है और संबंधित तहसीलदार द्वारा संहिता और नियमों की योजना की पिटाई की गई है, दिनांक04.01.2023 के आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

37. उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है। दिनांक 04.01.2023 के आदेश (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 4) को रद्द करते हुए उत्प्रेषण रिट जारी की जाती है, जिसमें रिकॉल/बहाली आवेदन को निरर्थक माना जाता है। 2022 के केस नंबर 260 द्वारा कवर किए गए यूपी राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत कार्यवाही को उनकी मूल संख्या और स्थिति में बहाल किया जाता है।

38. याचिकाकर्ता आज से एक महीने की अवधि के भीतर नोटिस के खिलाफ अपनी आपत्तियां प्रस्तुत करेगा। इसके बाद, संबंधित प्राधिकारी 2016 के नियमों के नियम 67 के साथ पठित उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के अनुरूप कार्यवाही करेगा और याचिकाकर्ता को प्रमुख साक्ष्य आदि के लिए सुनवाई का पूरा अवसर देने के बाद, इस आदेश की प्रमाणित प्रति उसके समक्ष पेश किए जाने की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर कार्यवाही का निर्णय लिया जाएगा।

(2023) 2 ILRA 508

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 05.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन,

आपराधिक विविध प्रथम जमानत आवेदन संख्या 29318 / 2022

नीलम देवी

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री विवेक शर्मा

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - जमानत - स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 - धारा 21/22, धारा 42- बिना वारंट या प्राधिकरण के प्रवेश,

अनुवादित

तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी की शक्ति धारा 37 - अपराध संज्ञेय और गैर-जमानती हों, वाणिज्यिक मात्रा से जुड़े किसी आरोपी को जमानत केवल हो सकती है जब यह उचित आधार हो कि वह दोषी नहीं है और जमानत पर रिहा होने के बाद वह कोई अपराध नहीं करेगा। (पैरा-11)

(बी) स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 - धारा 50 - शर्तें जिनके तहत व्यक्तियों की तलाशी ली जाएगी - यदि आरोपी के अधिकार का मूल्यांकन करने के बावजूद उसने मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष तलाशी लेने का विकल्प नहीं चुना तो अधिकार प्राप्त अधिकारी द्वारा लिया तलाशी किया जा सकता है और उसकी ओर से आरोपी को मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष ले जाना अनिवार्य नहीं है। (पैरा 15)

अल्प्राजोलम पाउडर की वाणिज्यिक मात्रा (240 ग्राम) - आवेदक के कब्जे से बरामद - वाणिज्यिक मात्रा से अधिक - तलाशी लेने से पूर्व - अधिकार प्राप्त अधिकारी को अवगत कराया गया - मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष तलाशी लेने का अधिकार - आवेदक ने एक मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष तलाशी लेने का विकल्प भी नहीं चुना - सहमति से दो महिला पुलिस कांस्टेबलों द्वारा तलाशी ली गई - सशक्त अधिकारी द्वारा एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के प्रावधानों का अनुपालन किया गया। (पैरा - 16)

आयोजित:- यह प्रश्न कि निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है या नहीं और एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 की आवश्यकता पूरी की गई है या नहीं, यह परीक्षण का विषय है (विजयसिंह चंदुभा जाडेजा का वाद)। एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 का अनुपालन किया गया है, इसलिए कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया जा सकता है कि इसका अनुपालन नहीं किया गया था। आवेदक को जमानत पर रिहा करने के लिए उपयुक्त वाद नहीं है। **(पैरा-20,21,22)**

जमानत आवेदन निरस्त। **(ई-7)**

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. विजयसिंह चंदूभा जडेजा बनाम गुजरात राज्य, (2011) 1 एससीसी 609

2. पंजाब राज्य बनाम बलदेव सिंह (1999) 6 SCC172

3. नबी आलम बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार) MANU/DE/1045/2021

(माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक शर्मा और राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रविकांत कुशवाहा को सुना गया।

2. प्रस्तुत याचिका आवेदक की ओर से

अनुवादित

जमानत पर रिहा करने के लिए एनडीपीएस अधिनियम की धारा 21/22 के मुकदमा अपराध संख्या 608 वर्ष 2022, थाना-हाईवे, जिला-मथुरा में विचारण के दौरान तत्काल याचिका दायर की गई है।

3.अभियोजन पक्ष के अनुसार दिनांक 3.6.2022 को प्रातः लगभग 10:29 बजे प्रार्थी के कब्जे से 240 ग्राम अल्प्राजोलम पाउडर बरामद हुआ।

4. वेदक के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि आवेदक के विरुद्ध लगाया गया पूरा आरोप पूरी तरह से असत्य और निराधार है और आवेदक के कब्जे से कुछ भी आपत्तिजनक बरामद नहीं हुआ है।

4.1 उन्होंने आगे कहा कि तलाशी और बरामदगी के समय भी एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के अनिवार्य प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है।

4.2. उनका कहना है, हालांकि पुनर्प्राप्ति ज्ञापन के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक को एक विकल्प दिया गया था कि यदि वह चाहे तो अपनी तलाशी किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष दे सकती है, लेकिन वास्तव में ऐसा कोई विकल्प कभी नहीं दिया गया था। आवेदक और केवल एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 का अनुपालन दिखाने के आशय से, इसे पुनर्प्राप्ति ज्ञापन में अंकित किया गया है।

4.3 उन्होंने आगे कहा, आरिफ खान उर्फ आगा खान बनाम उत्तराखंड राज्य, 2018 एआईआर (एससी) 2123 के मामले में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार तलाशी के समय एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 का कोई अनुपालन नहीं किया गया था। निर्विवाद रूप से आवेदक न तो मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत हुआ और संदिग्ध स्थल पर पुलिस कर्मियों द्वारा उसकी तलाशी ली गई।

4.4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आरिफ खान (सुप्रा) के मामले में निर्धारित विधि के अनुसार, तलाशी अधिकारी के लिए आवेदक को मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करना अनिवार्य था, जो वर्तमान मामले में नहीं किया गया है और इसलिए, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के अनिवार्य प्रावधानों का अनुपालन संपूर्ण पुनर्प्राप्ति के उल्लंघन के साथ नहीं किया गया है।

4.5. विद्वान अधिवक्ता ने मोहम्मद असगीर बनाम एनसीबी आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 27291 वर्ष 2020 में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश पर भी विश्वास किया।

4.6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा, आवेदक एक महिला है और उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह वर्तमान मामले में 03.06.2022 से अर्थात पिछले छह महीने से अधिक समय से कारावास में है और इसलिए, तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार कर रही है। मामले और आवेदक की अभिरक्षा को देखते हुए उसे जमानत पर रिहा किया जाना चाहिए।

5. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने जमानत के लिए प्रार्थना पत्र का विरोध किया और कहा कि आवेदक के

अनुवादित

कब्जे से 240 ग्राम अल्प्राजोलम पाउडर बरामद किया गया था, जिसमें वाणिज्यिक मात्रा शामिल है क्योंकि अल्प्राजोलम पाउडर की वाणिज्यिक मात्रा केवल 100 ग्राम है।

6. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे कहा कि तलाशी से पहले आवेदक को एक विकल्प दिया गया था कि यदि वह चाहे तो उसकी तलाशी किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष ली जा सकती है और उसका (आवेदक) पुनर्प्राप्ति ज्ञापन के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि यह भी कहा गया था कि यह उसका (आवेदक) अधिकार है, लेकिन उसे दिए गए विकल्प के बावजूद, उसने मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष तलाशी लेने का विकल्प नहीं चुना और उसने कहा कि उसकी तलाशी अधिकारी द्वारा की जा सकती है और उसके बाद उसकी तलाशी ली जा सकती है। दो महिला पुलिस आरक्षी द्वारा बनाया गया था और इसलिए, पुनर्प्राप्ति ज्ञापन दिनांक 03.06.2022 के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के प्रावधानों का अक्षरश: पालन किया गया है और इसलिए, गैर-अप्रत्याशित खंड पर विचार किया जा रहा है। एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 के अन्तर्गत आवेदक को जमानत पर रिहा नहीं किया जाना चाहिए।

7. मैंने दोनों पक्षों को सुना है और मामले के अभिलेखों का अवलोकन किया है।

8. प्रार्थी के कब्जे से निर्विवाद रूप से व्यवसायिक मात्रा में अल्प्राजोलम पाउडर (240 ग्राम) बरामद हुआ।

9. एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 वाणिज्यिक मात्रा से सम्बन्धित जमानत को नियंत्रित करती है और निम्नानुसार चलती है:

"37. अपराधों का संज्ञेय और गैर-जमानती होना-

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी-

(ए) इस अधिनियम के अन्तर्गत दंडनीय प्रत्येक अपराध संज्ञेय होगा;

(बी) किसी भी व्यक्ति पर दंडनीय अपराध का आरोप नहीं लगाया जाएगा [धारा 19 या धारा 24 या धारा 27 ए के अन्तर्गत अपराध और वाणिज्यिक मात्रा से जुड़े अपराधों के लिए भी] जमानत पर या अपने स्वयं के बांड पर रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि-

I. लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया गया है और,

II. जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, न्यायालय संतुष्ट है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके कोई अपराध करने की संभावना नहीं है।

(2) उप-धारा (1) के खंड (बी) में निर्दिष्ट जमानत देने की सीमाएं आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या उस समय के किसी अन्य विधि के अन्तर्गत सीमाओं के अतिरिक्त हैं। ज़मानत देने पर दबाव डालें।""

10. इसलिए, एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 के अनुसार, एनडीपीएस

अनुवादित

अधिनियम के अन्तर्गत वाणिज्यिक मात्रा से जुड़े अपराधों के लिए आरोपी किसी भी व्यक्ति को जमानत पर रिहा नहीं किया जाएगा, जब तक कि:

(ए) सरकारी अधिवक्ता को जमानत आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया गया है,

(बी) न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि अभियुक्त ऐसे अपराध का दोषी नहीं है,

(सी) जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है।

11. इसलिए, एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि वाणिज्यिक मात्रा से जुड़े आरोपी को जमानत केवल तभी दी जा सकती है जब यह उचित आधार हो कि वह दोषी नहीं है और जमानत पर रिहा होने के बाद वह कोई अपराध नहीं करेगा।

12. एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 की शर्त "(बी)" के संबंध में आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि तलाशी के समय धारा 50 के अनिवार्य प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है, इसलिए, यह मानने का कारण है कि वह दोषी नहीं है क्योंकि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 अनिवार्य है और इसका अनुपालन न करने पर आवेदक को बरी कर दिया जाएगा। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क का विश्लेषण करने के लिए, एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 का उल्लेख करना आवश्यक है जो नीचे दी गई है:

"50. वे शर्तें जिनके अन्तर्गत व्यक्तियों की तलाशी ली जाएगी-

1. जब धारा 42 के अन्तर्गत विधिवत अधिकृत कोई अधिकारी धारा 41, धारा 42 या धारा 43 के प्रावधानों के अन्तर्गत किसी व्यक्ति की तलाशी लेने वाला है, तो वह, यदि ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता हो, तो ऐसे व्यक्ति को अनावश्यक देरी के बिना निकटतम राजपत्रित अधिकारी के पास ले जाएगा। धारा 42 में उल्लिखित किसी भी विभाग या निकटतम मजिस्ट्रेट के पास।

2. यदि ऐसी मांग की जाती है, तो अधिकारी उस व्यक्ति को तब तक अभिरक्षा में रख सकता है जब तक कि वह उसे राजपत्रित अधिकारी या उपधारा (1) में निर्दिष्ट मजिस्ट्रेट के सामने नहीं ला सके।

3. राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट जिसके समक्ष ऐसे किसी व्यक्ति को लाया जाता है, यदि उसे तलाशी के लिए कोई उचित आधार नहीं दिखता है, तो वह व्यक्ति को तुरंत रिहा कर देगा, लेकिन अन्यथा निर्देश देगा कि तलाशी ली जाए।

4. एक महिला को छोड़कर किसी भी महिला की तलाशी नहीं ली जाएगी।

5. जब धारा 42 के अन्तर्गत विधिवत प्राधिकृत किसी अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि तलाशी के लिए व्यक्ति को निकटतम राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के पास ले जाना संभव नहीं है, बिना इस संभावना के कि तलाशी लिए जाने वाले व्यक्ति के पास कोई मादक दवा या मनोदैहिक पदार्थ, या नियंत्रित पदार्थ या वस्तु या दस्तावेज़, वह ऐसे व्यक्ति को निकटतम राजपत्रित

अनुवादित

अधिकारी या मजिस्ट्रेट के पास ले जाने के बजाय, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 100 के अन्तर्गत प्रदान किए गए अनुसार व्यक्ति की तलाशी ले सकता है।

6. उप-धारा (5) के अन्तर्गत तलाशी लेने के बाद, अधिकारी ऐसे विश्वास के कारणों को रिकॉर्ड करेगा जिसके कारण ऐसी तलाशी की आवश्यकता हुई और बहत्तर घंटे के भीतर उसकी एक प्रति अपने तत्काल आधिकारिक वरिष्ठ को भेजेगा।"

13. एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 (1) के अनुसार तलाशी के लिए अधिकृत अधिकारी को यदि आवश्यकता हो तो ऐसे व्यक्ति को किसी भी विभाग के निकटतम राजपत्रित अधिकारी के पास ले जाना होगा। एनडीपीएस अधिनियम की धारा 42 में या निकटतम मजिस्ट्रेट के पास उल्लेख करें, इसलिए, एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के अनुसार, यदि किसी आरोपी व्यक्ति ने राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने का विकल्प चुना है, तो तलाशी अधिकारी की ओर से यह अनिवार्य है। उसे ऐसे अधिकारी के सामने ले जाएं, लेकिन अगर विकल्प देने के बाद भी आरोपी ने मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के सामने तलाशी लेने का विकल्प नहीं चुना है तो वह आरोपी को मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के सामने ले जाए बिना खुद ही तलाशी ले सकता है।

14. विजयसिंह चंदूभा जड़ेजा बनाम गुजरात राज्य (2011) 1 एससीसी 609 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने पंजाब राज्य बनाम बलदेव सिंह (1999) 6 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की एक अन्य संविधान पीठ के निर्णय पर चर्चा के बाद एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के प्रावधानों के संबंध में एससीसी 172 इस प्रकार देखा गया:

"23. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, अब हम मौजूदा विवाद पर ध्यान देंगे। इस उद्देश्य के लिए, बलदेव सिंह मामले (सुप्रा) में संविधान पीठ द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को दोबारा दोहराना आवश्यक होगा। हम इससे चिंतित हैं निम्नलिखित निष्कर्ष: (एससीसी पीपी. 208-10, पैरा 57)।

"(1) कि जब कोई अधिकार प्राप्त अधिकारी या पूर्व सूचना पर कार्रवाई करने वाला विधिवत अधिकृत अधिकारी किसी व्यक्ति की तलाशी लेने वाला हो, तो उसके लिए संबंधित व्यक्ति को धारा 50 की उप-धारा (1) के अन्तर्गत अपने अधिकार के बारे में सूचित करना अनिवार्य है। तलाशी के लिए निकटतम राजपत्रित अधिकारी या निकटतम मजिस्ट्रेट के पास ले जाया गया। हालाँकि, ऐसी जानकारी जरूरी नहीं कि लिखित रूप में हो।

(2) किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी के अपने अधिकार के अस्तित्व के बारे में संबंधित व्यक्ति को सूचित करने में विफलता एक आरोपी के प्रति पूर्वाग्रह का कारण बनेगी।

(3) किसी अधिकार प्राप्त अधिकारी द्वारा, पूर्व सूचना पर, व्यक्ति को उसके अधिकार के बारे में सूचित किए बिना की गई तलाशी, यदि उसे इसकी आवश्यकता

अनुवादित

है, तो उसे राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी के लिए ले जाया जाएगा और यदि वह ऐसा विकल्प चुनता है, तो विफलता होगी। किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के सामने उसकी तलाशी लेने से विचारण तो दूषित नहीं होगा लेकिन अवैध वस्तु की बरामदगी अभियुक्त की दोषसिद्धि और सजा को संदिग्ध और दूषित हो जायेगी, जहाँ दोषसिद्धि केवल कब्जे के आधार पर दर्ज की गई है अधिनियम की धारा 50 के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए की गई तलाशी के दौरान उसके पास से अवैध वस्तु बरामद की गई।

(5) यह कि धारा 50 में प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों का विधिवत पालन किया गया है या नहीं, यह न्यायालय द्वारा मुकदमे में दिए गए सबूतों के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए। उस मुद्दे पर किसी न किसी तरह से निष्कर्ष निकालना, दोषसिद्धि या दोषमुक्ति का आदेश दर्ज करने के लिए प्रासंगिक होगा। मुकदमे में अभियोजन पक्ष को यह स्थापित करने का अवसर दिए बिना, कि धारा 50 के प्रावधानों और, विशेष रूप से, उसमें प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों का विधिवत अनुपालन किया गया था, विचारण को संक्षिप्त करने की अनुमति नहीं होगी।

(6) जिस संदर्भ में खोजे जाने वाले व्यक्ति के लाभ के लिए धारा 50 में सुरक्षा सम्मिलित की गई है, हम इस पर कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं कि धारा 50 के प्रावधान अनिवार्य हैं या निर्देशिका, लेकिन उस विफलता को मानते हैं संबंधित व्यक्ति को धारा 50 की उप-धारा (1) से प्राप्त उसके अधिकार के बारे में सूचित करने से प्रतिबंधित पदार्थ के संदिग्ध की बरामदगी और आरोपी की दोषसिद्धि और सजा विधि की दृष्टि से बुरा एवं अल्पकालिक हो सकती है।

(7) अधिनियम की धारा 50 में प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों का उल्लंघन करते हुए की गई तलाशी के दौरान किसी आरोपी के पास से जब्त की गई अवैध वस्तु को आरोपी के अवैध कब्जे के सबूत के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है, हालांकि कोई अन्य सामग्री बरामद की गई है। उस तलाशी के दौरान, किसी अवैध तलाशी के दौरान उस सामग्री की बरामदगी के बावजूद, किसी आरोपी के खिलाफ अन्य कार्यवाहियों में अभियोजन पक्ष पर भरोसा किया जा सकता है।"

24. हालांकि बलदेव सिंह मामले में संविधान पीठ ने इस सवाल पर पूर्ण रूप से फैसला नहीं किया कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 निर्देशिका थी या अनिवार्य थी, फिर भी यह माना गया कि धारा 50 की उपधारा (1) के प्रावधान इसे अनिवार्य बनाते हैं। अधिकार प्राप्त अधिकारी के लिए संबंधित व्यक्ति (संदिग्ध) को उसके अधिकार के अस्तित्व के बारे में "सूचित" करने के लिए कि यदि उसे आवश्यकता हो, तो उसकी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी ली जाएगी; संदिग्ध को उसके उक्त अधिकार के अस्तित्व के बारे में "सूचित" करने में विफलता उसके लिए पूर्वाग्रह का कारण बनेगी, और यदि वह ऐसा विकल्प चुनता है, तो किसी राजपत्रित अधिकारी या

अनुवादित

मजिस्ट्रेट के समक्ष उसकी तलाशी लेने में विफलता से मुकदमा दूषित नहीं हो सकता है, लेकिन वसूली हो जाएगी अवैध वस्तु संदिग्ध है और किसी आरोपी की दोषसिद्धि और सजा को दूषित करती है, जहां दोषसिद्धि केवल अवैध वस्तु के कब्जे के आधार पर दर्ज की गई है, जो कि धारा 50 के प्रावधानों के उल्लंघन में की गई तलाशी के दौरान व्यक्ति से बरामद की गई थी। एनडीपीएस अधिनियम. न्यायालय ने यह भी कहा कि यह आवश्यक नहीं है कि धारा 50 के अन्तर्गत दी जाने वाली जानकारी निर्धारित प्रारूप में या लिखित रूप में हो, लेकिन यह अनिवार्य है कि संदिग्ध को राजपत्रित से पहले तलाशी लेने के उसके अधिकार के अस्तित्व के बारे में अवगत कराया जाए। अधिकारी या मजिस्ट्रेट, यदि उसके द्वारा आवश्यक हो। हम सम्मानपूर्वक इन निष्कर्षों से सहमत हैं। प्रावधान की कोई अन्य व्याख्या संदिग्ध को प्रदत्त मूल्यवान अधिकार को भ्रामक और दिखावा बना देगी।

25. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, 2001 के अधिनियम 9 द्वारा धारा 50 में उप-धारा (5) और (6) सम्मिलित किए गए थे। यह ध्यान रखना उचित है कि हालांकि उक्त दो उप-धाराओं के सम्मिलन से, सख्त प्रक्रियात्मक की कठोरता उप-अनुभागों में उल्लिखित परिस्थितियों के अन्तर्गत आवश्यकता को कम करने की मांग की गई है, अर्थात। जब प्राधिकृत अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि व्यक्ति की तलाशी में किसी भी तरह की देरी से तलाशी लिए जाने वाले व्यक्ति के किसी नशीली दवा या मन:प्रभावी पदार्थ आदि, या वस्तु या दस्तावेज से अलग होने की संभावना है, तो वह तलाशी के लिए आगे बढ़ सकता है। व्यक्ति को निकटतम राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के पास ले जाने के बजाय। हालाँकि, ऐसे मामलों में भी उप-धारा (6) के अन्तर्गत शक्ति के किसी भी मनमाने उपयोग के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की गई है। उक्त उपधारा के अन्तर्गत, अधिकार प्राप्त अधिकारी तलाशी के बहत्तर घंटे के भीतर अपने तत्काल अधिकारी को दर्ज किए गए कारणों की एक प्रति भेजने के लिए बाध्य है। हमारी राय में, इन दो उप-धाराओं को शामिल करने से धारा 50 की उप-धारा (1) के उस आदेश को समाप्त नहीं किया जाता है, जिसके अन्तर्गत तलाशी लिए जाने वाले व्यक्ति को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाए जाने के उसके अधिकार के बारे में सूचित किया जाता है।

26. करनैल सिंह बनाम हरियाणा राज्य 13मामले में उप-धाराओं (5) और (6) को शामिल करने के उद्देश्य और प्रभाव पर इस न्यायालय की एक संविधान पीठ द्वारा विचार किया गया था, जिसमें से हम में से एक (डी.के. जैन, जे.) सदस्य थे। हालांकि उक्त निर्णय में न्यायालय ने यह देखा कि उप-धारा (5) और (6) को शामिल करने के कारण, बलदेव सिंह मामले (सुप्रा) में दी गई अनिवार्यता कमजोर हो गयी है, लेकिन न्यायालय ने यह भी कहा कि यह यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त सम्मिलन से, संदिग्ध को दी गई सुरक्षा या सुरक्षा उपाय पूरी तरह से छीन लिए गए

अनुवादित

हैं। न्यायालय ने कहा: (करनैल सिंह केस 13, एससीसी पृष्ठ 553, पैरा 31)

"31. ...इस संशोधन के माध्यम से बलदेव सिंह मामले में अनिवार्य सख्त प्रक्रियात्मक आवश्यकता से बचा गया था क्योंकि वरिष्ठ अधिकारी को अभिलेख भेजने के लिए उचित समय की छूट और निर्धारण के साथ-साथ धारा 100 सीआरपीसी का प्रयोग शामिल किया गया था। विधायिका। बलदेव सिंह मामले में धारा 50 के पहले अनिवार्य सख्त अनुपालन का प्रभाव यह था कि प्रक्रियात्मक आवश्यकताएं जो तलाशी और जब्ती की आपातकालीन आवश्यकता को बाधित कर सकती थीं और संदिग्ध को भागने का मौका दे सकती थीं, उन्हें तर्कसंगतता के आधार पर निर्देशिका बनाया गया था। ऐसी आपातकालीन स्थिति। हालांकि यह नहीं कहा जा सकता है कि संदिग्धों को दी गई सुरक्षा या सुरक्षा पूरी तरह से हटा ली गई है, लेकिन प्रक्रियात्मक मानदंडों में परिणामस्वरूप बलदेव सिंह मामले में दिया गया आदेश कुछ लचीलापन केवल एक जरूरी स्थिति को संतुलित करने के लिए अपनाया गया था कमजोर है ।"

27. इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि इस तथ्य के अलावा कि करनैल सिंह में, मुद्दा वारंट या प्राधिकरण के बिना तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी के मामले में एनडीपीएस अधिनियम की धारा 42 के दायरे और प्रयोज्यता के बारे में था, जहां तक एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 की उप-धारा (1) में निहित अपने अधिकार के बारे में संदिग्ध को सूचित करने के लिए सशक्त अधिकारी के दायित्व का संबंध है, यह निर्णय बलदेव सिंह मामले में निर्धारित सिद्धांतों से अलग नहीं है। उक्त पैराग्राफ से यह भी स्पष्ट है कि दो नए सम्मिलित उप-अनुभागों के संदर्भ में प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं में लचीलेपन का सहारा केवल आपातकालीन और अत्यावश्यक स्थितियों में ही लिया जा सकता है, प्रावधान में विचार किया गया है, न कि पाठ्यक्रम के रूप में। इसके अतिरिक्त, एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 की उप-धारा (6) प्राधिकृत अधिकारी को उप-धारा (5) के संदर्भ में उसके विश्वास के लिए दर्ज किए गए कारणों की एक प्रति उसके तत्काल भेजने के लिए अनिवार्य और अनिवार्य बनाती है। वरिष्ठ अधिकारी, निर्धारित समय के भीतर, जो परीक्षण के दौरान फिर से न्यायिक जांच के अधीन होगा।

28. अब हम निर्दिष्ट आदेश में उल्लिखित दो निर्णयों से निपटेंगे, जिसमें एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 में सन्निहित आवश्यकता के साथ "पर्याप्त अनुपालन" को पर्याप्त माना गया है। प्रभा शंकर दुबे मामले में, इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने हमारे सामने मौजूद मुद्दे पर बलदेव सिंह मामले का अनुपात इस प्रकार निकाला: (प्रभा शंकर दुबे मामला, एससीसी पृष्ठ 64, पैरा 11)

"11. ...संबंधित अधिकारी को यह बताना आवश्यक है कि आरोपी की इच्छा क्या है। आरोपी (संदिग्ध) को इस प्रकार बताया जाना चाहिए कि उसे पता चल जाए कि इच्छा उसकी है, अधिकारी की नहीं

अनुवादित

चिंतित, भले ही इसका कोई विशिष्ट रूप नहीं है। बलदेव सिंह मामले के फैसले में प्रासंगिक स्थानों पर "सही" शब्द का उपयोग इस बात पर प्रभावी जोर देता प्रतीत होता है कि यह चुनाव अधिकारी की कृपा से नहीं होना चाहिए। बल्कि उस स्तर पर "संदिग्ध" को ऐसा विकल्प देने का अधिकार दिया गया है और इसका उल्लंघन करने पर अपरिहार्य परिणाम भुगतने होंगे।"

हालाँकि, उस मामले के तथ्यों पर धारा 50 की बताई गई आवश्यकताओं को पूरा किया गया था या नहीं, इसका आकलन करते समय, मामले और जोसेफ फर्नांडीज के बीच इस पहलू पर साक्ष्य की प्रकृति में समानता पाते हुए, न्यायालय ने प्रतिध्वनित विचारों का पालन करना चुना। बाद वाला मामला, जिसमें यह माना गया था कि संदिग्ध को तलाशी अधिकारी की जानकारी इस आशय की थी कि "यदि आप चाहें तो किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में आपकी तलाशी ली जा सकती है" धारा 50 की आवश्यकता के अनुरूप थी। एनडीपीएस अधिनियम. फिर भी, न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्ति "पर्याप्त अनुपालन" के उपयोग का कारण बताया: (प्रभा शंकर दुबे केस 2, एससीसी पृष्ठ 64, पैरा 12)

"12. अभिव्यक्ति "पर्याप्त अनुपालन" का उपयोग इस पृष्ठभूमि में किया गया था कि तलाशी अधिकारी के मन में धारा 50 थी और बलदेव सिंह मामले में संविधान पीठ द्वारा इस पर रखी गई व्याख्या से उसे कोई सहायता नहीं मिली थी। एक पंक्ति या एक शब्द किसी निर्णय को अलग करके नहीं पढ़ा जा सकता है या मानो किसी वैधानिक प्रावधान की व्याख्या की जा रही हो, ताकि टिप्पणियों का एक अलग अर्थ लगाया जा सके।"

उपरोक्त निकाले गए अनुच्छेद से यह स्पष्ट है कि जोसेफ फर्नांडीज बलदेव सिंह के अनुपात पर ध्यान नहीं देते हैं और प्रभा शंकर दुबे के मामले में जोसेफ फर्नांडीज बलदेव सिंह मामले में निर्धारित नियम को अनदेखा कर अनुसरण कर रहे हैं।

29. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमारी दृढ़ राय है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50(1) के अन्तर्गत सुरक्षा के माध्यम से जिस उद्देश्य से संदिग्ध को अधिकार दिया गया है, वह है जांच करना। सत्ता के दुरुपयोग, निर्दोष व्यक्तियों को नुकसान से बचाने और विधि प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा झूठे मामले लगाने या थोपने के आरोपों को कम करने के लिए, अधिकार प्राप्त अधिकारी के लिए यह अनिवार्य होगा कि वह तलाशी लेने वाले व्यक्ति को उसकी जानकारी दे। राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने का अधिकार। हमें यह मानने में कोई झिझक नहीं है कि जहां तक एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 की उप-धारा (1) के अन्तर्गत अधिकृत अधिकारी के दायित्व का सवाल है, यह अनिवार्य है और इसके सख्त अनुपालन की आवश्यकता है। प्रावधान का अनुपालन करने में विफलता अवैध वस्तु की बरामदगी को संदिग्ध बना देगी और दोषसिद्धि को निष्फल कर देगी यदि इसे केवल ऐसी तलाशी के दौरान आरोपी के शरीर से अवैध वस्तु की

अनुवादित

बरामदगी के आधार पर दर्ज किया गया हो। इसके बाद, संदिग्ध उक्त प्रावधान के अन्तर्गत उसे दिए गए अधिकार का प्रयोग करना चुन भी सकता है और नहीं भी।"

15. इसलिए, विजयसिंह चंदुभा जड़ेजा (सुप्रा) के मामले में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से, यह स्पष्ट है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के प्रावधान अनिवार्य हैं और यह अधिकार प्राप्त अधिकारी का कर्तव्य है कि वह आरोपी को सूचित करे कि वह किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष तलाशी लेने का अधिकार है और यदि अभियुक्त को ऐसा कोई विकल्प नहीं दिया जाता है तो पूरी पुनर्प्राप्ति ख़राब हो जाएगी, लेकिन एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के प्रावधानों के साथ-साथ निर्णयों से भी बलदेव सिंह (सुप्रा) और विजयसिंह चंदुभा जाडेजा (सुप्रा) के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठों ने यह भी स्पष्ट किया है कि यदि आरोपी के अधिकार का मूल्यांकन करने के बावजूद उसने मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने का विकल्प नहीं चुना या राजपत्रित अधिकारी तो तलाशी अधिकार प्राप्त अधिकारी द्वारा ली जा सकती है और उसके लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वह आरोपी को मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष ले जाए।

16. इसी तरह का मुद्दा दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष उठा और आरिफ खान (सुप्रा) के निर्णय के आलोक में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने नबी आलम बनाम राज्य (सरकार) एनसीटी ऑफ दिल्ली) एमएएनयू/डीई/1045/2021 के मामले में मामले को दिल्ली उच्च न्यायालय की बड़ी पीठ और डिवीजन बेंच को भेज दिया। विजयसिंह चंदुभा जड़ेजा (सुप्रा) और बलदेव सिंह (सुप्रा) के निर्णय का विश्लेषण करने के बाद निम्नानुसार देखा गया:

"20. उपरोक्त निर्णय को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 की उप-धारा (1) के अन्तर्गत अधिकार प्राप्त अधिकारी का दायित्व उसकी ओर से उस व्यक्ति को सूचित करना अनिवार्य बनाता है, जिसकी तलाश की जानी है। राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने के उसके अधिकार के बारे में; किस नुस्खे का अनुपालन करने में विफलता, जिसके लिए सख्त अनुपालन की आवश्यकता है, अवैध वस्तु की बरामदगी को संदिग्ध बना देगा और दोषसिद्धि को समाप्त कर देगा यदि इसे केवल के आधार पर दर्ज किया गया है ऐसी तलाशी के दौरान आरोपी व्यक्ति से अवैध वस्तु की बरामदगी या उक्त तलाशी के दौरान उसके पास किसी नशीली दवा या मनोदैहिक पदार्थ होने का संदेह है। हालाँकि, तत्काल मामले में निर्धारित किए जाने वाले मुद्दे के प्रयोजनों के लिए, यह प्रासंगिक है और यह ध्यान देने योग्य है कि भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने विजयसिंह चंदुभा जाडेजा (सुप्रा) में स्पष्ट रूप से कहा कि "इसके बाद, संदिग्ध उक्त प्रावधान के अन्तर्गत उसे दिए गए अधिकार का प्रयोग करना चुन भी सकता है और नहीं भी।" सर्वोच्च न्यायालय की इस टिप्पणी के अनुक्रम में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि एक बार संदिग्ध को

अनुवादित

राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने के उसके अधिकार के बारे में अधिकार प्राप्त अधिकारी द्वारा अवगत करा दिया गया है, लेकिन वह उस अधिकार का प्रयोग नहीं करने का विकल्प चुनता है, तो अधिकार प्राप्त अधिकारी उक्त उद्देश्य के लिए ऐसे व्यक्ति को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए बिना उसकी तलाशी ली जा सकती है।

21. अब आरिफ खान उर्फ आगा खान (सुप्रा) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर आवेदक/अभियुक्त की ओर से दिए गए जोर पर आते हुए, जिस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या वह निर्णय प्रस्ताव के लिए एक अधिकार है इसके बावजूद कि जिस व्यक्ति की तलाशी लेने का प्रस्ताव है, उसे राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने के अपने अधिकार के बारे में विधिवत अवगत कराया गया है, लेकिन उसने स्पष्ट और सुस्पष्ट शब्दों में इस अधिकार को स्पष्ट रूप से माफ कर दिया है; यह अभी भी अनिवार्य है कि उसकी तलाशी किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष ही ली जाए।

22. इस संबंध में, आरिफ खान उर्फ आगा खान (सुप्रा) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों पर विचार करना आवश्यक है, जिसके निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे दिए जा रहे हैं:

"18. एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 का वास्तविक दायरा और उद्देश्य क्या है, धारा 50 के अन्तर्गत अधिकारियों को दिए गए कर्तव्य, दायित्व और शक्तियां क्या हैं और क्या धारा 50 की आवश्यकताओं का अनुपालन अनिवार्य है या निर्देशिका, कोई नहीं अधिक रेस इंटीग्रा और अब पंजाब राज्य बनाम बलदेव सिंह [पंजाब राज्य बनाम बलदेव सिंह, मनु/एससी/0981/1999: (1999) 6 एससीसी 172: 1999 मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के दो निर्णयों द्वारा तय किया गया है। एससीसी (सीआरआई) 1080] और विजयसिंह चंदूभा जड़ेजा [विजयसिंह चंदूभा जड़ेजा बनाम गुजरात राज्य, मनु/एससी/0913/2010: (2011) 1 एससीसी 609]।

19. वास्तव में, विजयसिंह चंदुभा जाडेजा (सुप्रा) में दिए गए बाद के संविधान पीठ के फैसले ने इस विषय पर पिछले सभी मामलों पर विचार करने के बाद उपरोक्त प्रश्नों का निपटारा कर दिया है।

20. विजयसिंह चंदुभा जाडेजा के आधिपत्य में उन्होंने माना है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 की आवश्यकताएं अनिवार्य हैं और इसलिए, धारा 50 के प्रावधानों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। यह माना जाता है कि पुलिस अधिकारी के लिए यह अनिवार्य है कि जिस व्यक्ति की तलाशी ली जानी है उसे धारा 50 के अन्तर्गत उसके अधिकार के बारे में अवगत कराया जाए कि उसकी तलाशी केवल राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष ही की जा सकती है। यह माना जाता है कि प्राधिकृत अधिकारी के लिए यह समान रूप से अनिवार्य है कि वह संदिग्ध को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने के उसके

अनुवादित

अधिकार के अस्तित्व के बारे में अवगत कराए, यदि उसके लिए ऐसा आवश्यक हो और इसके लिए सख्त अनुपालन की आवश्यकता होती है। यह निर्णय दिया गया है कि संदिग्ध व्यक्ति एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के अन्तर्गत उसे प्रदान किए गए अधिकार का प्रयोग करना चुन सकता है या नहीं भी कर सकता है, लेकिन जहां तक अधिकारी का सवाल है, एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के अन्तर्गत उसे अवगत कराने का दायित्व उस पर डाला गया है। किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष संदिग्ध व्यक्ति की तलाशी लेने का अधिकार है।"

23. उपरोक्त निकाले गए पैराग्राफों को पढ़ने से एक अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आधिपत्य ने विजयसिंह चंदुभा जाडेजा (सुप्रा) में संविधान पीठ के निर्णय के अनुपात का पालन करते हुए माना कि वही तय हो गया है इस संबंध में विधि की स्थिति इस आशय की है कि, जबकि सशक्त अधिकारी के लिए यह अनिवार्य है कि वह व्यक्ति को केवल राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष ही तलाशी लेने के अधिकार से अवगत कराए; और इसके लिए सख्त अनुपालन की आवश्यकता है; माननीय न्यायालय ने साथ ही यह भी दोहराया कि, विजयसिंह चंदुभा जड़ेजा (सुप्रा) में "यह निर्णय सुनाया गया है कि संदिग्ध व्यक्ति एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के अन्तर्गत उसे प्रदान किए गए अधिकार का प्रयोग करना चुन भी सकता है और नहीं भी।" मामले के इस दृष्टिकोण में, आरिफ खान उर्फ आगा खान (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर आवेदक/अभियुक्त के अधिवक्ता द्वारा की गई निर्भरता, हमारे सम्मानजनक विचार में उनकी सहायता के लिए नहीं आती है।

24. इस विषय पर केस विधि पर विचार करने के बाद, हम निम्नलिखित तरीके से संदर्भ का उत्तर देने के इच्छुक हैं।

25. उपरोक्त पैराग्राफ में चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम वर्तमान संदर्भ में विचार के लिए उठने वाले मुद्दे का उत्तर नकारात्मक में देते हैं।

26. स्पष्टता के लिए यह माना जाता है कि, स्वयंसिद्ध रूप से, किसी व्यक्ति की तलाशी केवल राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में करने की आवश्यकता नहीं है, जिसके पास मादक दवा या मनोदैहिक पदार्थ होने का संदेह है। एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के अन्तर्गत राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी के अधिकार के बारे में सशक्त अधिकारी द्वारा अवगत कराए जाने के बाद, यदि व्यक्ति की तलाशी का प्रस्ताव रखा जाता है, तो वह सशक्त अधिकारी द्वारा तलाशी कराए जाने का चुनाव करके ऐसे अधिकार को स्पष्ट रूप से त्याग देता है। एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50(1) में प्रयुक्त शब्द "यदि ऐसे व्यक्ति को इसकी आवश्यकता है" को निरर्थक बना दिया जाएगा, यदि तलाशी के लिए प्रस्तावित व्यक्ति की तलाशी केवल राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष ही की जानी होगी, इसके बावजूद जैसा कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 की

अग्रिम

उप-धारा (2) के शुरुआती वाक्य में उल्लिखित है, "ऐसी मांग" को स्पष्ट रूप से माफ कर दिया गया है। दूसरे शब्दों में, जिस व्यक्ति की तलाशी ली जानी है, उसे राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तावित तलाशी के संचालन के लिए सशक्त अधिकारी द्वारा अनिवार्य रूप से केवल "यदि उसे इसकी आवश्यकता हो" के बारे में सूचित किए जाने पर ले जाना आवश्यक है। किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने का अधिकार, न कि तब जब वह स्वेच्छा से इस प्रकार तलाशी लेने के अपने अधिकार को छोड़ देता है, और एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के अन्तर्गत उसे प्रदान किए गए अधिकार का प्रयोग नहीं करने का विकल्प चुनता है।"

17. इसलिए, हालांकि आरिफ खान (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि तलाशी अधिकारी के लिए यह अनिवार्य था कि वह आरोपी को मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष ले जाए और उसकी तलाशी पहले की जानी चाहिए थी एक मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी, इस तथ्य के बावजूद कि उसने विजयसिंह चंदूभा जाडेजा (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय के आलोक में मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष तलाशी लेने का अपना अधिकार त्याग दिया था। आरिफ खान (सुप्रा) के मामले में की गई टिप्पणी के मद्देनजर आवेदक के पक्ष में कोई लाभ नहीं दिया जा सकता है।

18. जैसा कि तत्काल मामले में, आवेदक के कब्जे से 240 ग्राम अल्प्राजोलम पाउडर बरामद किया गया जो वाणिज्यिक मात्रा से अधिक है और तलाशी लेने से पहले अधिकार प्राप्त अधिकारी ने उसे अवगत कराया कि उसे मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष तलाशी लेने का अधिकार है, लेकिन इसके बावजूद उसने (आवेदक) तलाशी लेने का विकल्प नहीं चुना। या तो एक मजिस्ट्रेट या एक राजपत्रित अधिकारी के समक्ष और उसकी सहमति से उसकी तलाशी दो महिला पुलिस कांस्टेबलों द्वारा की गई थी, इसलिए विजयसिंह चंदूभा जड़ेजा (सुप्रा) अधिकार प्राप्त अधिकारी के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय में निर्धारित विधि के मद्देनजर एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के प्रावधानों का अनुपालन किया है और यह नहीं कहा जा सकता कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 का उल्लंघन है।

19. इसके अलावा, जमानत के चरण में केवल यह देखना है कि प्रथम दृष्टया एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के प्रावधानों का अनुपालन किया गया है या नहीं।

. 20. जमानत के चरण में यह निश्चित रूप से सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 का अनुपालन पर्याप्त रूप से किया गया है या नहीं, यह केवल विचारण के दौरान ही सुनिश्चित किया जा सकता है।

21. विजयसिंह चंदूभा जाडेजा (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने पाया कि यह प्रश्न कि

अनुवादित

क्या निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है या नहीं और एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 की आवश्यकता पूरी की गई है, परीक्षण का विषय है (देखें) पैरा 31).

22. वर्तमान मामले में, पुनर्प्राप्ति के अवलोकन से प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 का अनुपालन किया गया है, इसलिए, इस स्तर पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया जा सकता है कि इसका अनुपालन नहीं किया गया था।

23. ऊपर की गई चर्चा से, मुझे आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क में कोई योग्यता नहीं मिली और आवेदक के कब्जे से अप्राज़ोलम पाउडर की वाणिज्यिक मात्रा में, एक मादक पदार्थ बरामद किया गया था, इसलिए, धारा 37 के प्रावधानों पर विचार करते हुए एनडीपीएस अधिनियम के अन्तर्गत, मेरे विचार से यह उपयुक्त मामला नहीं है जिसमें आवेदक को जमानत पर रिहा किया जाना चाहिए।24. इस प्रकार प्रस्तुत जमानत आवेदन **निरस्त** किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 518

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद,

आपराधिक अपील संख्या 1405/1990

ओमपाल

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री एम.एम. त्रिपाठी, श्री अपुल मिश्रा, श्री भुवनेश कुमार सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 हत्या का वाद - परिस्थितिजन्य साक्ष्य - दोषसिद्धि - परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि का आदेश केवल तभी दिया जा सकता है जब अभियोजन पक्ष विशेष रूप से आरोपी अपीलकर्ता की ओर से अपराध की परिकल्पना की ओर इशारा करने वाली घटनाओं की श्रृंखला स्थापित करता है और अन्यथा अभियुक्त की बेगुनाही से संगत कोई परिकल्पना उपलब्ध नहीं है (पैरा 31)

बी. भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या का वाद - मृतिका का नग्न शरीर, कई चोटों के साथ, आरोपी के पिता के खेत में पाया गया, और उसकी फटी हुई साड़ी पास में पाई गई - मृतिका अपने पिता को सुबह का भोजन देने के लिए आरोपी के खेत से होकर गई थी लेकिन वह घर नहीं लौटी - परिस्थिति जो अभियुक्त के विरुद्ध है - आरोपी के हमले के हथियार यानी दांतेदार दरांती को तुरंत मानव रक्त और बाल के साथ बरामद कर लिया गया, जो आरोपी की ओर इशारा कर रहे थे - डॉक्टर की राय में दांतेदार हंसिया के कारण आरोपी को चोटें आईं - उसके शरीर पर पपड़ी के

अनुवादित

निशान मिले जो घटना का संभावित समय से मेल खाते हैं- आरोपी की शर्ट के बटन गायब और घटनास्थल पर मिली टूटी चूड़ियाँ संघर्ष का संकेत देती हैं - झूठे आरोप का कोई तर्क या आधार नहीं - स्वतंत्र गवाह ने घटना के बाद आरोपी को बिना किसी स्पष्ट स्पष्टीकरण के भ्रमित अवस्था में देखा - अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपी अपीलकर्ता को अपराध के घटित होने से जोड़ने का तथ्य उचित संदेह से परे स्थापित किए गए । (पैरा 33, 34, 35, 36, 37, 38)

निरस्त। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा,

&

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद, द्वारा प्रदत्त)

1. यह अपील अभियुक्त अपीलार्थी ओमपाल द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 459 वर्ष 1987 (राज्य बनाम ओमपाल) में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, बिजनौर द्वारा पारित दिनांक 27.03.1990 के निर्णय और सजा के आदेश को चुनौती देने वाली है, जो केस अपराध संख्या 69 वर्ष 1987, थाना-शेरकोट, जिला बिजनौर से उत्पन्न हुई है, जिसके तहत उसे दोषी ठहराया गया है और धारा 302 भ०द०वि० के तहत आजीवन कारावास और धारा 376/511 भ०द०वि० के तहत 1000/- जुर्माने के साथ सात साल की कैद की सजा सुनाई गई है जुर्माने में चूक की स्थिति में उसे छह माह का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतना होगा। सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

2. अभियोजन पक्ष के मामले का आधार मृतका के भाई चैन सुख (अ०सा०-1) की लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) है, जिसमें कहा गया है कि उसकी 27 वर्षीय बहन गीता देवी की शादी लगभग 4 महीने पहले हुई थी और लगभग 09.00 बजे वह अपने छोटे भाई हेतराम के साथ बैलगाड़ी पर अपने पिता को सुबह का भोजन देने गई थी, जो कृषि क्षेत्र में थे। वह सुबह करीब 11.00 बजे लौटी। जब सूचनाकर्ता दोपहर 02.00 बजे खेतों में घास लाने आया तो उसके पिता ने कहा कि मृतका दोपहर का भोजन नहीं लाया है। सूचनाकर्ता ने पिता को बताया कि वह खाना परोसकर घर नहीं लौटी है। सूचनाकर्ता के पिता ने बताया कि मृतका यह कहकर लौटी कि वह भाभी के साथ घास काटने के लिए लौटेगी। सूचनाकर्ता कृषि कार्य में व्यस्त था और जब वह लगभग 04.00 बजे घर लौटा तो पाया कि उसकी बहन (मृतका) वापस नहीं आई थी। उसकी गुमशुदगी का खुलासा सुरेश सिंह, हरि सिंह, चुन्नू सिंह, रामचंद्र

अनुवादित

सिंह, लीला सिंह, तेजपाल सिंह आदि को हुआ, जो उसकी बहन का पता लगाने के लिए सूचनाकर्ता के साथ जुड़ गए। गन्ने के खेत में उसकी (मृतका) तलाशी लेने पर पता चला कि जयदेव (आरोपी अपीलार्थी के पिता) के खेत में शीशम के पेड़ के नीचे 100 मीटर की दूरी पर मृतका का नग्न शरीर पड़ा था और उसका पेटीकोट शीशम की लकड़ी से बंधा हुआ था और उसकी साड़ी तीन हिस्सों में थी, जिनमें से एक गन्ने की फसल से बंधी हुई थी। मृतका के सिर, गर्दन और गाल पर चोटें आई थीं और उसे जानबूझकर मारा गया था।

3. उपरोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) को मामला अपराध संख्या 69 वर्ष 1987 के रूप में धारा 302 भ०द०वि०, थाना-शेरकोट, जिला बिजनौर के तहत 22.08.1987 को 09.30 बजे दर्ज किया गया था। पंचनामा कार्यवाही 23.08.1987 को सुबह 06.30 बजे शुरू हुई और 08.00 बजे समाप्त हुई। पंचनामा के गवाहों ने पाया कि वहाँ मृतका के सिर और शरीर के अन्य हिस्सों पर चोटों के अलावा उसके गाल पर चोटें आई हैं। पंचनामा के गवाहों की राय में मृतका गीता की मौत चोटों के कारण हुई और मौत के कारणों का पता लगाने के लिए शव परीक्षण कराया जाए। इसके बाद शव को सील कर शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया।

4. शव परीक्षण (प्रदर्श क-3) 23.08.1987 को 02.30 दोपहर आयोजित किया गया था, जिसमें निम्नलिखित विवरण शामिल हैं:

उम्र- 17 साल

<u>बाहरी परीक्षा</u>

औसत कद काठी की युवा महिला। रीगर मोर्टिस शरीर के निचले हिस्से से जा चुका था और रीगर मोर्टिस ऊपरी हिस्से से जाने के चरण में था; दोनों आँखें बंद; कोहनी के निचले हिस्से के बाईं ओर / बाईं जांघ ऊपरी धब्बे खरोंच देखा गया।

<u>मृत्यु पूर्व चोटें</u>

(1) पार्श्व पहलू (दोनों तरफ) गर्दन के सामने 8 " x 3 " x नरम ऊतक तक गहरा घाव।

(2) चेहरे के बाईं ओर 1" x 1/4" x मांसपेशियों तक गहरा घाव।

(3) बाएं हाथ के पृष्ठ पर 3 चीरा हुआ घाव प्रत्येक 1/2 " x 1/4 " x मांसपेशी तक गहरा।

(4) बाएं इलियाक फोसा पर घाव 1 " x 1/2 " x मांसपेशी तक गहरा।

(5) घर्षण 4 " x 1/2 " डेल्टॉइड प्रमुखता पर बाएं ऊपरी बांह तक।

(6) चीरा हुआ घाव 1 " x 1/4 " x मांसपेशी पीछे दाईं ओर लम्बर रीढ़ के क्षेत्र पर।

<u>मृत्यु का कारण</u>

2 मृत्यु पूर्व चोटों के कारण शॉक और हैमरेज होना।

अवधि - लगभग एक दिन पुराना।

5. विवेचनाधिकारी ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत गवाहों का बयान दर्ज किया, जिसमें रमेश सिंह (अ०सा०-2) और छोटे सिंह (अ०सा०-3) शामिल थे, जिन्होंने कहा है कि घटना के तुरंत बाद उन्होंने आरोपी अपीलकर्ता को घबराहट की अवस्था में देखा और पूछे जाने पर उसने कुछ नहीं कहा।

अनुवादित

बाद में मृतका का शव इलाके में मिला। इन दोनों गवाहों के बयान घटना की तारीख यानी 22.08.1987 को ही दर्ज किए गए थे।

6. अभियुक्त अपीलकर्ता को 24.08.1987 को गिरफ्तार किया गया और 25.08.1987 को 01.30 बजे चिकित्सकीय जांच की गई, जिसमें उसके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"(1) घर्षण 1.5 सेमी x 1 सेमी छाती के बाईं ओर, निप्पल के 8 सेमी ऊपर 10 बजे की स्थिति में पपड़ी के साथ।

(2) कंठमणि पर गर्दन के सामने घर्षण 1 सेमी x 1/2 सेमी, पपड़ी मौजूद है, कठोर है।

(3) कंधे के जोड़ के शीर्ष के दाईं ओर घर्षण 1.5 सेमी x 1 सेमी, पपड़ी मौजूद है, कठोर है।"

7. अभियुक्त अपीलकर्ता की निशानदेही पर 24.08.1987 को एक खून से सनी दरांती (प्रदर्श क-3) भी बरामद की गई। विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल से रक्तरंजित मिटटी और सादी मिटटी (प्रदर्श क-12) भी एकत्र की। फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-13) के तहत एक शर्ट बटन के साथ-साथ कपड़े, चूड़ी के टुकड़े आदि बरामद किए गए थे और आरोपी अपीलकर्ता द्वारा पहनी गई शर्ट भी फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-15) के माध्यम से बरामद की गई थी, जिसमें एक बटन गायब था। बरामद सामान को फॉरेंसिक रिपोर्ट के लिए भेजा गया। फोरेंसिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-17) के अनुसार दरांती पर मानव रक्त और मानव बाल थे। मृतका द्वारा पहने गए कपड़ों पर भी खून पाया गया। रक्तरंजित और सादी मिटटी बिखरी हुई पाई गई। हालांकि, आरोपी अपीलकर्ता द्वारा पहनी गई शर्ट पर कोई खून नहीं मिला।

8. जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ 29.08.1987 को धारा 302, 376/511 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र (प्रदर्श क-16) दायर किया गया। संबंधित मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया जहां आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप तय किए गए। आरोपी अपीलकर्ता को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उसने इन्कार किया और विचारण चाहा!

9. मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-1 (प्रथम सूचनाकर्ता, चैन सुख) की मौखिक गवाही दी है, जिसने यह कहते हुए अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है कि आरोपी अपीलकर्ता जयदेव का बेटा है और उसके गांव का निवासी है। मृतका उसकी बहन थी, जिसकी शादी करीब 3-4 महीने पहले हुई थी। उनके अनुसार जयदेव का कृषि क्षेत्र उनके भूखंडों के बीच पड़ता है और अपनी कृषि भूमि तक पहुंचने के लिए उन्हें जयदेव के क्षेत्र को पार करना आवश्यक है। अ०सा०-1 ने यह भी कहा है कि जब भी वे खेत में कार्य करने जाते हैं तो उनकी महिलाएं अथवा बच्चे उन्हें खेत में भोजन परोसने के लिए आते हैं। उन्होंने बताया है कि मृतका अपने पिता को सुबह का भोजन परोसने के बाद लगभग 11-11

अनुवादित

1/2 बजे खेत से घर के लिए निकली थी। हालांकि, उसकी बहन कभी घर नहीं पहुंची। दोपहर में वह घास काटने के लिए लगभग 02.00 बजे खेत में आया तो उसके पिता ने सूचित किया कि मृतका उसका दोपहर का भोजन नहीं लायी है। अ०सा०-1 ने अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन किया है कि मृतका अपने पिता को सुबह का भोजन परोसने के बाद घर नहीं लौटी थी। अ०सा०-1 ने तब बताया कि किस तरह से अन्य लोगों को मृतका के लापता होने के बारे में सूचित किया गया था और यह तथ्य कि मृतका का मृत शरीर जयदेव के खेत में नग्न पाया गया था, जिसमें चोटों के कई निशान थे। मृतका की साड़ी को तीन हिस्सों में फाड़ दिया गया था और उसका पेटीकोट शीशम के पेड़ पर लटका दिया गया था। यह भी कहा जाता है कि साड़ी का एक हिस्सा मृतका के चारों ओर बंधा हुआ था जबकि दूसरा हिस्सा उसके सिर के नीचे था। मृतका द्वारा पहने गए कपड़ों की बरामदगी भी इस गवाह से साबित हुई थी। जिरह में अ०सा०-1 काफी हद तक बरकरार रहा है।

10. अ०सा०-2 एक रमेश सिंह है जिसने कहा है कि वह आरोपी अपीलकर्ता को जानता है और वह जयदेव का बेटा है। उसने दावा किया है कि अपने घर से जंगल की ओर जाते समय जब वह जयदेव के खेत में पहुंचा, जहां गन्ने की फसल खड़ी थी, तो उसने आरोपी अपीलकर्ता को घबराहट की अवस्था में बाहर आते देखा और पूछने पर आरोपी ने कुछ नहीं कहा और गांव की ओर चला गया। अ०सा०-2 ने यह भी कहा कि जब वह शाम 5-5.30 बजे के आसपास लौटा तो उसे पता चला कि मृतका की हत्या कर दी गई है। यह गवाह पंचनामा गवाह भी है और इसे सत्यापित भी कर चुका है। जिरह में बचाव पक्ष द्वारा बहुत कुछ नहीं निकाला जा सका क्योंकि वह मुख्य परीक्षण में दिए गए अपने बयान पर बरकरार रहा।

11. अ०सा०-3 छोटे सिंह है, जिसने कहा है कि वह आरोपी अपीलकर्ता को जानता है और घटना की तारीख को लगभग 12-12.15 बजे उसने आरोपी अपीलकर्ता को तिराहे पर देखा, जो पूर्व से हैरान अवस्था में आ रहा था और वह तेजी से आगे बढ़ रहा था। पूछने पर वह कुछ नहीं बोला और अपने घर की ओर चल दिया। उनका दावा है कि शाम को उन्हें पता चला कि मृतका की हत्या कर दी गई है। इस गवाह की जिरह में उसकी गवाही को प्रभावी ढंग से चुनौती नहीं दी जा सकी।

12. अ०सा०-4 एक बेनामी सिंह है, जिसने मेड़ के पास आरोपी के पिता के खेत से दरांती की बरामदगी की पुष्टि की है। उन्होंने कहा है कि वह पुलिस पार्टी के साथ थे और उन आरोपियों के साथ फील्ड में गए थे जिन्हें तब तक पहले ही गिरफ्तार किया जा चुका था। यह भी कहा गया है कि आरोपी अपीलकर्ता उन्हें अपने पिता के खेत में ले आया था जहाँ गन्ने की फसलें खड़ी थीं और शीशम का पेड़ था। दरांती को मेड़ से निकाला गया था। जिरह में इस गवाह ने कहा है कि दूर से बरामद वस्तु दिखाई नहीं दे रही थी क्योंकि गन्ने की फसल खड़ी थी

अनुवादित

और आरोपी अपीलकर्ता द्वारा मेड़ से दरांती निकाली गई थी और पुलिस को दी गई थी।

13. अ०सा०-5 डॉ. यू.एस फौजदार हैं, जिन्होंने शव परिक्षण रिपोर्ट को साबित किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि मृतका पर चोटें दरांती के कारण हो सकती हैं और दरांती का इस्तेमाल चोट संख्या-1 से 4 और 6 के कारण किया जा सकता है। डॉक्टर से विशेष रूप से हथियार की प्रकृति के बारे में पूछा गया है जिससे मृतका को चोट लग सकती है और उनकी राय में मृतका पर चोटों की प्रकृति दरांती के कारण हो सकती है।

14. अ०सा०-6 (राम भगवान) हेड कांस्टेबल है, जिसने चिक प्राथमिकी और जी.डी. प्रविष्टि को साबित किया है।

15. अ०सा०-7 डॉ. वी. के. नरूला हैं, जिन्होंने 25.08.1987 को अभियुक्त की जांच की है और उस पर लगी चोटों को साबित किया है। उनकी राय में अभियुक्त पर चोटें 22.8.1987 को सुबह 11 बजे से शाम 4 बजे के बीच किसी भी समय संघर्ष करते समय उंगली के नाखूनों के कारण हो सकती हैं। जिरह में इस गवाह ने कहा है कि वह 8 घंटे से 10 घंटे के बीच हुई खुजली के बीच अंतर नहीं कर सकता है और वह केवल 24 घंटे और ताजा खुजली के बीच के अंतर को इंगित कर सकता है। उन्होंने आगे कहा कि 24 घंटे से तीन दिनों के बाद खुजली का रंग समान होगा। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि पपड़ी को छूकर खुजली की अवधि का पता लगाया जा सकता है।

16. अ०सा०-8 (मोहन सिंह) कांस्टेबल हैं, जो शव को शव परिक्षण के लिए ले गया था।

17. अ०सा०-9 (राम सिंह) मृतका का पिता है और उसने अपने बयान में सत्यापित किया है कि आरोपी अपीलकर्ता की ओर इशारा करने पर जयदेव के कृषि क्षेत्र से खून से सनी दरांती बरामद की गई थी जो उसकी बेटी की थी। उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है और जिरह के दौरान भी उनसे बहुत कुछ नहीं निकाला जा सका।

18. अ०सा०-10 (रवि चतुर्वेदी) विवेचनाधिकारी है, जिसने पुलिस के कागजात का सत्यापन किया है और यह भी कहा है कि आरोपी को 24.08.1987 को लगभग 04.00 बजे गिरफ्तार किया गया था। आरोपियों की ओर इशारा करने पर हुई बरामदगी को भी उन्होंने साबित किया है। जिरह में उसने स्वीकार किया है कि आरोपी की शर्ट पर खून नहीं था और बटन (प्रदर्श क-9) अन्यथा बाजार में उपलब्ध है।

19. मुकदमे के दौरान पेश की गई चुनौती देने वाली सामग्री के आधार पर अभियुक्त का बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया है, जिसमें उसने घटना के बारे में अनभिज्ञता का दावा किया है। उन्होंने केवल यह स्वीकार किया है कि मृत शरीर उनके पिता के खेत में था। प्रश्न संख्या 8 के उत्तर में उसने कहा है कि वह घर पर था और उसे नहीं पता कि अ०सा०-2 ने उसे कैसे देखा। उन्होंने यह भी कहा है

अनुवादित

कि घर लौटने के दौरान उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उसने यह भी कहा है कि वह शेरकोट में था। उन्होंने दावा किया कि उन्हें गलत तरीके से फंसाया गया है।

20. इस मामले में इस प्रकार के साक्ष्य के आधार पर विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है, और आरोपी ने मृतका पर बलात्कार का प्रयास किया और बाद में उसकी हत्या करने के बाद भाग गया।

21. अभियुक्त अपीलकर्ता की ओर से वर्तमान अपील में दोषसिद्धि और सजा के फैसले पर मुख्य रूप से इस आधार पर हमला किया गया है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला होने के नाते, घटनाओं की श्रृंखला विशेष रूप से अभियुक्त की ओर से अपराध की परिकल्पना की ओर इशारा करती, नहीं लगती है और अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप एक वैकल्पिक परिकल्पना से इंकार नहीं किया जा सकता है। यह भी तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्र किए गए सबूत यह स्थापित नहीं करते हैं कि बलात्कार का अपराध मृतका पर किया गया है और अभियोजन पक्ष का मामला कि धारा 376 भ०द०वि० के तहत अपराध करने का प्रयास किया गया था, विशुद्ध रूप से अनुमानों और क़यास पर आधारित है।

22. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री अपुल मिश्रा ने जोरदार ढंग से तर्क दिया कि रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से पता चलता है कि अपराध का मकसद बलात्कार कारित करना नहीं था, बल्कि मृतका को खत्म करना था, जिसके लिए स्पष्ट रूप से आरोपी अपीलकर्ता का कोई मकसद नहीं बताया जा सकता था। यह भी आग्रह किया जाता है कि आरोपी को चोटें पुलिस की हिरासत में होने के दौरान हो सकती थीं, क्योंकि ग्रामीण स्पष्ट रूप से इस घटना को देखकर क्रोधित हो गए थे और संदेह था कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा उसके साथ मारपीट की गई थी, जिससे उसे चोटें आईं। प्रस्तुत यह करना है कि आरोपी अपीलकर्ता को झूठा फंसाया गया है और चूंकि सूचनाकर्ता के क्षेत्र की ओर जाने वाला मार्ग आरोपी अपीलकर्ता के पिता के क्षेत्र से होकर गुजरता है, इसलिए उनके बीच कुछ कलह की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है, जो झूठे निहितार्थ का कारण हो सकता है।

23. दूसरी ओर, अपर शासकीय अधिवक्ता श्रीमती अर्चना सिंह का तर्क है कि इस मामले में घटनाओं की श्रृंखला स्पष्ट रूप से अभियोजन पक्ष द्वारा जुड़ी हुई है, जो एक अपरिहार्य निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि यह अकेले आरोपी अपीलकर्ता था, जिसने अपराध किया था। यह बताया गया है कि रिकॉर्ड पर परिस्थितियां स्पष्ट रूप से दिखाती हैं कि दुष्कर्म का प्रयास किया गया और जब मृतका ने इसका विरोध किया तो आरोपी ने उसकी दरंती का इस्तेमाल कर उसके ऊपर हमला किया, जिसे आरोपी की निशानदेही पर बरामद कर लिया गया है। वह आगे प्रस्तुत करती है कि दोषसिद्धि और सजा के निर्णय और आदेश में आरोपी

अनुवादित

अपीलकर्ता की सजा के लिए विस्तृत कारण हैं, जो न तो विकृत है और न ही किसी भी प्रासंगिक पहलू को विचार से हटा दिया गया है और इसलिए, अपील में कोई हस्तक्षेप की ज़रूरत नहीं है।

24. हमने पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेखों की सावधानीपूर्वक जांच की है।

25. अभियोजन पक्ष का मामला अ०सा०-1 द्वारा दी गई जानकारी पर आधारित है, जिसके अनुसार उसकी बहन खेत में गई थी और अपने पिता को सुबह का भोजन परोसने के बाद वापस नहीं आई थी, हालांकि उसे दोपहर में घास काटने के लिए फिर से वापस आना था। मृतका के सुबह खेत में जाने और फिर घर न लौटने के संबंध में तथ्य स्थापित होता है। रिकॉर्ड आगे बताते हैं कि चूंकि मृतका वापस नहीं आई थी, इसलिए उसकी तलाशी लेने का प्रयास किया गया था, जिसमें उसका मृत शरीर आरोपी अपीलकर्ता के पिता जयदेव के खेत में मिला था। आरोपी अपीलकर्ता ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में यह भी स्वीकार किया है कि शव उसके पिता के कृषि क्षेत्र से बरामद किया गया था।

26. रिकॉर्ड पर चिकित्सा साक्ष्य स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि मृतका की मृत्यु हत्या थी। शव परिक्षण रिपोर्ट को ऑटोप्सी सर्जन ने साबित कर दिया है, जिन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतका के शरीर पर मृत्यु पूर्व चोटें उसकी मौत का कारण थीं। चोटों में गर्दन के दोनों तरफ सामने और पार्श्व पहलू पर घाव शामिल हैं; बाईं ओर के चेहरे पर घाव और बाएं हाथ के पृष्ठभाग पर तीन घाव हुए। चोटों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि मृतका पर दाँतेदार दरांती से हमला किया गया था और डॉक्टर की राय में भी उसकी चोटें दाँतेदार दरांती के कारण हो सकती थीं। इस मामले के तथ्यों में यह रिकॉर्ड पर है कि आरोपी अपीलकर्ता की ओर इशारा करने पर एक दाँतेदार दरांती बरामद की गई थी। अभियोजन पक्ष के गवाहों ने दावा किया है कि आरोपी अपीलकर्ता की ओर इशारा करने पर बरामद दाँतेदार दरांती वास्तव में मृतका की थी।

27. जहां तक दाँतेदार दरांती की बरामदगी का संबंध है, यह एक स्वतंत्र गवाह अर्थात् बेनामी सिंह द्वारा साबित किया गया है। उन्होंने उन परिस्थितियों को स्पष्ट रूप से समझाया है जिनमें आरोपी अपीलकर्ता की ओर इशारा करने पर दरांती बरामद की गई थी। हालांकि बरामदगी आरोपी अपीलकर्ता के मेड़ के पास एक खुले मैदान से हुई है, लेकिन गवाह द्वारा यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि खेत में खड़ी फसलों के कारण दाँतेदार दरांती दूर से दिखाई नहीं दे रही थी। उन्होंने कहा है कि यह आरोपी अपीलकर्ता था जिसने दाँतेदार दरांती को बाहर निकाला और विवेचनाधिकारी को दिया। इसलिए दरांती की बरामदगी साबित हो चुकी है। इस वसूली के लिए कोई विश्वसनीय चुनौती नहीं है।

28. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए फोरेंसिक रिपोर्ट भी पेश की है जिसमें यह पाया गया है कि आरोपी अपीलकर्ता की निशानदेही पर बरामद दरांती में मानव रक्त और बाल थे। आरोपी के खिलाफ दूसरी महत्वपूर्ण स्थिति

अनुवादित

घटना के अगले दिन घटनास्थल से एक बटन की बरामदगी है। यह भी पाया गया है कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा पहनी गई शर्ट में एक गायब बटन था, जो वास्तव में घटनास्थल पर पाया गया बटन था।

29. आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ अगली परिस्थिति गवाहों अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के बयान के रूप में है, जिन्होंने कहा है कि उन्होंने आरोपी अपीलकर्ता को एक परेशान अवस्था में घटना की जगह से बाहर आते देखा है, और पूछे जाने पर उसके द्वारा कोई सुसंगत जवाब नहीं दिया गया और वह चला गया। इस परिस्थिति पर अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ भी भरोसा किया जाता है। यह उपरोक्त सामग्रियों के आधार पर है कि विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है।

30. वर्तमान अपील के तथ्यों में विचार के लिए उठता है कि क्या अभियोजन पक्ष इसके नेतृत्व में साक्ष्य के आधार पर आरोपी अपीलकर्ता के अपराध को उचित संदेह से परे स्थापित करने में सक्षम है। यह भी देखा जाना चाहिए कि क्या निचली अदालत सजा देने में न्यायसंगत थी जैसा कि आक्षेपित निर्णय के तहत किया गया है।

31. यह निश्चित रूप से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामला है। किसी ने भी वास्तव में अपराध को अंजाम देते हुए नहीं देखा है। अब तक यह अच्छी तरह से तय हो चुका है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि का आदेश केवल तभी दिया जा सकता है जब अभियोजन पक्ष विशेष रूप से आरोपी अपीलकर्ता की ओर से अपराध की परिकल्पना की ओर इशारा करते हुए घटनाओं की श्रृंखला स्थापित करता है और अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप कोई परिकल्पना अन्यथा उपलब्ध नहीं है। इस संबंध में कानून शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एस.सी.सी 116 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले में स्पष्ट है, जिसका तब से लगातार पालन किया गया है। पैराग्राफ 152 से 154 में, शरद बिरधीचंद सारदा (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार देखा:

"152. उच्च न्यायालय द्वारा जिन मामलों पर भरोसा किया गया है, उन पर चर्चा करने से पहले हम एक आपराधिक मामले में आवश्यक प्रकृति, चरित्र और आवश्यक प्रमाण पर कुछ निर्णयों का हवाला देना चाहेंगे जो केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिकी हुई हैं। इस न्यायालय का सबसे मौलिक और बुनियादी निर्णय हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य है। (1) इस मामले का समान रूप से पालन किया गया है और इस न्यायालय द्वारा बाद के निर्णयों की एक बड़ी संख्या में लागू किया गया है, उदाहरण के लिए, तुफैल (उपनाम) सिम्मी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले (2) और रामगोपाल बनाम महाराष्ट्र राज्य (3)। हनुमंत के मामले (उपरोक्त) में न्यायमूर्ति महाजन ने जो निर्धारित किया है, उसे संदर्भित करना उपयोगी हो सकता है:

"यह याद रखना अच्छा है कि ऐसे मामलों में जहां सबूत एक परिस्थितिजन्य प्रकृति

अनुवादित

के हैं, जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पहली बार में पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए और इस तरह स्थापित सभी तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए। फिर, परिस्थितियां एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए और वे ऐसी होनी चाहिए कि हर परिकल्पना को बाहर रखा जाए लेकिन सिर्फ एक को साबित करने का प्रस्ताव हो। दूसरे शब्दों में, सबूतों की एक श्रृंखला होनी चाहिए जो अब तक पूरी हो गई हो ताकि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप कोई उचित निष्कर्ष न निकले और यह ऐसा होना चाहिए जिससे यह पता चले कि सभी मानवीय संभावना के भीतर कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

153. इस निर्णय का एक करीबी विश्लेषण, इससे पहले कि एक अभियुक्त के खिलाफ एक मामले को पूरी तरह से स्थापित किया जाए, निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए।

यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया कि संबंधित परिस्थितियों को 'ज़रूर स्थापित किया जाना चाहिए' और ' संभावित नहीं' होना चाहिए। न केवल व्याकरणिक बल्कि 'साबित किया जा सकता है' और 'होना चाहिए या साबित किया जाना चाहिए' के बीच एक कानूनी अंतर है जैसा कि शिवाजी साहबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था। जहां निम्नलिखित टिप्पणियां की गई थीं;

"निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त को अदालत को दोषी ठहराए जाने से पहले न केवल दोषी होना चाहिए; और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच मानसिक दूरी लंबी है और निश्चित निष्कर्षों से अस्पष्ट अनुमानों को विभाजित करती है।

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात् उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्या नहीं की जानी चाहिए सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है;

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए।

(4) उन्हें साबित होने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और

(5) साक्ष्य की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जाए और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावना में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

154. ये पांच स्वर्णिम सिद्धांत, यदि हम ऐसा कह सकते हैं, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले के प्रमाण का पंचशील बनाते हैं।

32. यह शरद बिरधीचंद सारदा (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के प्रकाश में है कि इस न्यायालय को वर्तमान मामले के तथ्यों में नेतृत्व किए

अनुवादित

गए अभियोजन साक्ष्य की जांच करने की आवश्यकता है।

33. रिकॉर्ड से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि आरोपी उसी गांव का निवासी है और उसका घर सूचनाकर्ता से सटा हुआ है। यह भी रिकॉर्ड में है कि सूचनादाता का कृषि क्षेत्र आरोपी अपीलकर्ता के पिता के खेत से होकर गुजरता है। वर्तमान मामले में शव आरोपी अपीलकर्ता के खेत में मिला है। रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य से यह भी पता चलता है कि आरोपी अपीलकर्ता के क्षेत्र के माध्यम से मृतका अपने पिता को भोजन परोसने गई थी और उसी मार्ग से लौटनी थी। स्वीकार किया गया है कि मृतका घर नहीं लौटी, और इसलिए यह स्पष्ट है कि उसकी मृत्यु की घटना तब हुई जब वह आरोपी अपीलकर्ता के खेत से गुजरते हुए अपने खेत से लौट रही थी। तथ्य यह है कि उसका मृत शरीर आरोपी अपीलकर्ता के खेत में पाया गया है, यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि उसकी वापसी के दौरान उसे स्पष्ट रूप से इस मार्ग से खेतों में खींच लिया गया था, जहां घटना हुई थी।

34. शव परिक्षण रिपोर्ट से साफ पता चलता है कि उसके शरीर पर कई घाव थे। ये घाव डॉक्टर की राय में एक दाँतेदार दरांती के कारण हो सकते हैं। आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ रिकॉर्ड पर तीन अलग-अलग परिस्थितियां उभर रही हैं, जिन्हें इस स्तर पर देखा जा सकता है। पहली परिस्थिति यह है कि हमले का हथियार, जो स्पष्ट रूप से चोट पहुंचाने के लिए इस्तेमाल किया गया, जिससे मृतका की मौत हो गई, आरोपी अपीलकर्ता के इशारा करने पर बरामद किया गया है। घटना के दूसरे ही दिन हमले के हथियार की बरामदगी की गई है। बरामद दाँतेदार दरांती में मानव रक्त और बाल थे। हालांकि बरामदगी पर इस आधार पर सवाल उठाने का प्रयास किया गया है कि इसे एक खुले मैदान से बरामद किया गया था, लेकिन उस संबंध में तर्क विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि बरामदगी को साबित करने के लिए औपचारिक गवाहों के अलावा एक स्वतंत्र गवाह था। यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पास में खड़ी फसलों के कारण दाँतेदार दरांती दूर से दिखाई नहीं दे रही थी और आरोपी पुलिस कर्मियों को मौके पर ले गए और दाँतेदार दरांती को बाहर निकाला और विवेचनाधिकारी को दे दिया।

35. अन्य महत्वपूर्ण परिस्थिति आरोपी अपीलकर्ता पर पाई गई चोट है। हालांकि यह आग्रह करने की मांग की गई है कि ग्रामीणों द्वारा किए गए हमले के कारण चोटें हो सकती हैं, एक बार जब उन्हें पता चला कि अपीलकर्ता पर अपराध करने का आरोप है, लेकिन हमें इस तरह के तर्क में ज्यादा दम नहीं मिला। बेशक, आरोपियों पर चोटें किसी कुंद या तेज वस्तु के कारण नहीं हैं, जैसा कि उम्मीद की जा सकती थी, अगर ग्रामीणों को ऐसी परिस्थितियों में प्रतिक्रिया देनी होती। चोटें मुख्य रूप से पपड़ी के निशान हैं, जो दो व्यक्तियों के बीच हाथापाई के कारण हो सकती हैं। पंचनामा के कागजात यह भी दर्शाते हैं कि

अनुवादित

घटनास्थल पर टूटी हुई चूड़ियां पाई गई थीं और मृतका को लगी चोटों के तरीके से पता चलता है कि अभियुक्त द्वारा उस पर हमला किए जाने के दौरान मृतका की ओर से कुछ प्रतिरोध किया गया था। यह बहुत संभव है कि मृतका ने खुद को बचाने के लिए नाखून आदि से खरोंच का कारण बना, जिसके परिणामस्वरूप आरोपी अपीलकर्ता पर पपड़ी के निशान थे। अन्यथा ऐसी चोटों के अस्तित्व के लिए अभियुक्त द्वारा कोई ठोस स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। आरोपी अपीलकर्ता की जांच करने वाले डॉक्टर ने स्पष्ट रूप से कहा है कि आरोपी अपीलकर्ता को परीक्षा से 24 घंटे से अधिक समय पहले और उससे 03 दिन पहले चोटें आई होंगी। इसलिए, घटना का समय, अभियुक्त पर चोट के संभावित समय से मेल खाता है। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण परिस्थिति है जो आरोपी अपीलकर्ता को अपराध के कमीशन से जोड़ती है।

36. इसके साथ युग्मित, यह देखा जाना चाहिए कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा पहनी गई शर्ट में एक गायब बटन था, जिसे घटनास्थल से बरामद किया गया है। यह देखा जा सकता है कि आरोपी द्वारा पहने गए बटन और शर्ट की बरामदगी घटना के समय के संदर्भ में समीपस्थ है। यह वह परिस्थिति है जो आरोपी अपीलकर्ता को दृढ़ता से फंसाती है। इस स्तर पर हम यह भी देख सकते हैं कि बचाव पक्ष किसी विशिष्ट दलील या झूठे आरोप के आधार के साथ आगे नहीं आया है।

37. यह उपरोक्त विचार-विमर्श के संदर्भ में है कि हम अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही का उल्लेख कर सकते हैं, जो स्वतंत्र व्यक्ति हैं और स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना के तुरंत बाद उन्होंने आरोपी को घटना की जगह से आते देखा और आरोपी अपीलकर्ता द्वारा इस तरह के आचरण का कोई ठोस कारण नहीं बताया गया। यह एक बहुत मजबूत परिस्थिति है, जिसे बचाव पक्ष द्वारा ठीक से स्पष्ट नहीं किया गया है।

38. घटनाओं की श्रृंखला अभियुक्त की ओर से अपराध की परिकल्पना के लिए विशेष रूप से इंगित करते हुए इस प्रकार पूरा हो गया है, के रूप में तथ्यों अपराध के कमीशन के साथ आरोपी अपीलकर्ता जोड़ने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा उचित संदेह से परे स्थापित किया गया है आरोपी अपीलकर्ता की निर्दोषता के अनुरूप कोई वैकल्पिक परिकल्पना मौजूद नहीं है। हमने विचारण न्यायालय के फैसले की जांच की है, जो इस तथ्य को भी नोट करता है कि पक्षों के बीच कोई दुश्मनी नहीं थी और आरोपी अपीलकर्ता के झूठे फंसाने का कोई कारण मौजूद नहीं था। विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया है कि घटना के समय आरोपी अपीलकर्ता को लगी चोटें अस्पष्ट हैं। मौके से बटन की बरामदगी भी एक निश्चित परिस्थिति है जो आरोपी अपीलकर्ता को अपराध करने के साथ जोड़ती है। इस मामले में पेश किए गए सबूतों के विस्तृत विश्लेषण के आधार

अनुवादित

पर हमें अदालत द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से असहमत होने का कोई कारण नहीं मिलता है कि अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को उचित संदेह से परे स्थापित किया है।

39. जहां तक आरोपी अपीलकर्ता पर लगाए गए दंड का संबंध है, हम पाते हैं कि अपराध प्रकृति में क्रूर है जिसमें आरोपी अपीलकर्ता द्वारा मृतका को मौत के घाट उतार दिया गया है। इसलिए, आजीवन कारावास के लिए विचारण न्यायालय द्वारा लगाई गई सजा उचित पाई जाती है।

40. उपरोक्त चर्चाओं और विचार-विमर्श से, हम पाते हैं कि इस अपील में योग्यता का अभाव है और तदनुसार, इसे ख़ारिज किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 528

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 31.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद,

आपराधिक अपील संख्या 3069/2015

संलग्न

आपराधिक अपील संख्या 2339/2015

वीरपाल

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री प्रीतपाल सिंह राठौर, अभिलाषा सिंह, श्री आशुतोष यादव, श्री श्याम लाल

अधिवक्ता विपक्षीगण: ए.जी.ए.

ए. भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या- पी.डब्लू.-2 की गवाही के आधार पर अभियोजन मामला निर्भर है, जो मृतक का भाई है - हालांकि, घटना के स्थान पर पी.डब्ल्यू.-2 की उपस्थिति उचित संदेह से परे अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित नहीं की गई है न पी.डब्ल्यू 2 के शरीर पर कोई खरोंच या चोट का निशान न ही उसके कपड़ों पर खून का कोई दाग मिला - पी.डब्लू.-2 का दावा है कि वह मृतक के साथ गया था, लेकिन न तो वह पंचायतनामा का गवाह है और न ही वह खून से सने हुए और सादे मिट्टी के साथ-साथ खाली कारतूस की बरामदगी का गवाह है - हालाँकि यह आरोप लगाया गया था कि पी.डब्लू. 2 मोटरसाइकिल पर यात्रा कर रहा था लेकिन मोटरसाइकिल को न तो प्रस्तुत किया गया है और न ही कोई स्पष्टीकरण दिया गया है कि यह मोटरसाइकिल कहां गई - किसी ने भी पी.डब्लू. 2 को शोक मनाते या रोते नहीं देखा- पी.डब्लू.-2 इस तथ्य का एकमात्र गवाह है जिसने घटना को देखा है और अभियोजन वाद का समर्थन किया है - घटना के स्थान पर उसकी उपस्थिति के संबंध में संदेह गंभीर रूप से अभियोजन पक्ष के संस्करण को धूमिल करता है - विचारणीय न्यायालय ने उन कारकों पर विचार करना छोड़ दिया जो घटना स्थल

अनुवादित

पर पी.डब्ल्यू.-2 की उपस्थिति पर संदेह पैदा करते हैं। (पैरा 53, 55)

बी. भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 3 - साक्ष्य मूल्यांकन - गवाह के साक्ष्य में चूक और विरोधाभासों - हत्या वाद - पी.डब्ल्यू.-2 (मृतक का सगा भाई) का बयान विरोधाभासी है क्योंकि एक स्थान पर वह कहता है यह घटना तब घटी जब वे सआदत वाडी मंदिर जा रहे थे, जबकि उन्होंने बाद में कहा कि यह घटना तब घटी जब वे एक स्थान पर मंदिर से लौट रहे थे - पी.डब्ल्यू.-2 ने दावा किया है कि घटना स्थल के आसपास जंगल थे, जबकि बाद में उन्होंने दावा किया कि आस-पास कृषि भूखंड थे - एक स्तर पर उन्होंने दावा किया कि आसपास बड़ी संख्या में लोग काम कर रहे थे और बाद में उन्होंने यह कहकर खुद का खंडन किया कि आस-पास कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं था - अभियोजन उचित संदेह से परे आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को स्थापित करने में सक्षम नहीं है और अभियुक्त अपीलकर्ता वाद में संदेह का लाभ पाने के अधिकारी हैं (पैरा 55)

सी. भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 3 - साक्ष्य की सराहना - स्वतंत्र गवाह को पेश न करना - अभियोजन पक्ष के अनुसार घटना का स्वतंत्र गवाह रुकम सिंह था, जिसे मुकदमे के समय पेश नहीं किया गया था - रुकम सिंह एक चश्मदीद गवाह है, उसे अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किया जाना चाहिए था- रुकम सिंह को पेश न करने का कोई कारण नहीं बताया गया, जबकि वह एक महत्वपूर्ण गवाह था - रुकम सिंह परिवार का सदस्य नहीं है और कुछ हद तक उसकी गवाही का महत्व अधिक होता - रुकम सिंह को बतौर गवाह पेश न किया जाना मुकदमे के दौरान गवाही अधिक महत्व रखती है क्योंकि इस गवाह के विरुद्ध मृतक पर चोटें लिखने का आरोप था - तथ्य यह है कि रुकम सिंह को पेश नहीं किया गया है, यह भी ध्यान देने योग्य परिस्थिति है - एफ.आई.आर. के लेखक इंद्रपाल भी प्रस्तुत नहीं किया गया। (पैरा 42)

अनुमत। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा,

&

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद, द्वारा प्रदत्त)

ये अपीलें आरोपी गण- वीरपाल और भद्रपाल द्वारा की गई हैं, जिन्हें 2010 के सत्र परीक्षण संख्या 629 और 2010 के 630 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, चंदौसी, (मुरादाबाद) द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 02.06.2015 के तहत दोषी ठहराया गया है, जो 2009 के केस अपराध संख्या 743 और 2010 के 22 से उत्पन्न है, भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 और शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत, पुलिस थाना बहजोई, जिला मुरादाबाद और भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और 25,000 रुपये का जुर्माना

लगाया गया, ऐसा न करने पर प्रत्येक को दो महीने का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा।

अभियोजन प्रकरण मुखबिर विजयपाल (अभियोजन पक्ष का गवाह .-2) पुत्र नवाब सिंह की लिखित प्रतिवेदन पर आधारित है, जो ग्राम लेहरा नगला श्याम, थाना गुन्नौर, जिला बदायूं का निवासी होने का दावा करता है। आरोप है कि मुखबिर की वीरपाल पुत्र सिपत्तर सिंह यादव (आरोपी वादी) से रंजिश है। आरोपी वीरपाल का भाई मुनिपाल गंगा सहाय शर्मा की बेटी सुनीता के साथ भाग गया था। सुनीता को लुभाने के लिए मुनिपाल के खिलाफ धारा 366 भारतीय दंड संहिता के तहत दर्ज प्रथम सूचना विवरण में मुखबिर का भाई महिपाल (मृतक) गवाह था। इस रंजिश के चलते कुछ समय पहले आरोपी और मुखबिर के बीच फायरिंग हुई थी। दिनांक 16.11.2009 को मुखबिर का भाई महिपाल मुखबिर विजयपाल और नवाब सिंह यादव के पुत्र रुकम सिंह के साथ मोटरसाइकिल पर सादात वाड़ी मंदिर में पूजा करने और पानी (जल) परोसने और उसके बाद उर्वरक खरीदने के लिए रवाना हुआ। सादात वाडी मंदिर से एक किलोमीटर पहले दोपहर करीब 02:30 बजे रास्ते में आरोपियों वीरपाल, मुनिपाल पुत्र सिपत्थर सिंह और भद्रपाल पुत्र लतूरी सिंह ने उन्हें रोका और तीनों आरोपियों ने मुखबिर के भाई महिपाल को एक तरफ खींचकर अंधाधुंध फायरिंग कर दी। महिपाल के सिर और छाती पर गोली लगने से चोटें आई हैं। महिपाल की मौके पर ही मौत हो गई और शव वहीं पड़ा था। उपरोक्त संदर्भित लिखित प्रतिवेदन की सामग्री को जीडी में दर्ज किया गया था और मामले में एक प्रथम सूचना विवरण दर्ज की गई थी और आरोपी वादी वीर पाल, मुनिपाल और भद्रपाल के खिलाफ धारा 302 भारतीय दंड संहिता के तहत 2009 के केस अपराध संख्या 743 के रूप में दर्ज किया गया था। आरोपी मुनिपाल को नाबालिग घोषित कर दिया गया है। दो अन्य आरोपियों वीरपाल और भद्रपाल को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई है और वर्तमान अपीलों में इस अदालत के समक्ष हैं।

मामले में दर्ज प्रथम सूचना विवरण के क्रम में जांच अधिकारी ने मौके पर कार्रवाई की और मौके से 315 बोर के तीन खाली कारतूस के साथ खून से सना और सादी मिट्टी एकत्र की। मौके से की गई बरामदगी को का-2 के रूप में प्रदशत किया गया है। एक महेंद्रपाल और छत्रपाल इस बरामदगी के गवाह हैं। पुलिस ने शव की जांच भी की और इसकी प्रतिवेदन का-1 के रूप में प्रदशत की गई है। जांच प्रतिवेदन में अधिलेखन होती है और सूचना प्राप्त करने का समय शाम 05:00 बजे के स्थान पर शाम 04:00 बजे दिखाया जाता है। पूछताछ के गवाह महेन्द्र सिंह, छत्रपाल, मनोज कुमार, भरत सिंह व छोटे हैं, जो सभी गांव सादात वाडी व सतनौली के रहने वाले हैं। जांच में कोई भी गवाह गांव लेहरा नगला श्याम का नहीं है, जिससे मुखबिर या

अनुवादित

मृतक संबंधित था। जांच के अंतिम पृष्ठ पर जांच अधिकारी ने पूछताछ पूरी होने का समय शाम 05:30 बजे दर्ज किया है। जांच के गवाहों की राय के अनुसार, मृतक की मौत बंदूक की चोटों के कारण हुई और मौत के कारण का पता लगाने के लिए शव-परीक्षा किया जाना चाहिए। शव को तदनुसार सील कर दिया गया और सिपाही सुरेंद्र कुमार और वीरेंद्र को शवगृह भेजने के लिए सौंप दिया गया।

शव का शव-परीक्षा अगले दिन अर्थात दिनांक 17.11.2009 को अपराह्न 03:00 बजे डॉ. एन.एल.शर्मा (अभियोजन पक्ष का गवाह .-6) द्वारा किया गया है। शव-परीक्षक के अनुसार, मृतक को निम्नलिखित पूर्व-मृत्यु चोटें आईं: -

"(I) दाहिनी भौं के पार्श्व से पार्श्व छोर के ठीक ऊपर पार्श्व भाग के दाईं ओर माथे पर प्रवेश 2 सेमी x 18 सेमी का गन शॉट घाव।

(II) बाएं कान के पिन्ना के पीछे बाईं ओर सिर पर 11 सेमी x 4 सेमी बाहर निकलने का बंदूक की गोली का घाव। चोट संख्या 1 के साथ बाहर आने वाले मस्तिष्क के ऊतक जारी हैं।

(III) मुंह के पार्श्व दाएं कोण से 3 सेमी नीचे चेहरे के दाईं ओर प्रवेश 1 सेमी x 0.8 सेमी का बंदूक की गोली का घाव।

(IV) प्रवेश की बंदूक की गोली का घाव 3 सेमी x 1 सेमी बाईं ओर छाती के पीछे 4 सेमी नीचे, स्कैपुला का औसत दर्जे का निचला सिरा, घाव के चारों ओर मौजूद गन पाउडर; दिशा तिरछी।

(V) निकास का गन शॉट घाव 2 सेमी x 1 सेमी दाईं ओर ललाट छाती पर 6 सेमी निप्पल के ऊपर 11 बजे दिशा में चोट संख्या 4 के साथ जारी है।

(VI) बाएं कंधे के पीछे प्रवेश 2 सेमी x 1 सेमी की बंदूक की गोली का घाव हड्डी के चारों ओर देखा गया हड्डी का काला पड़ना, गन पाउडर मौजूद होना।

(VII) बाएं कंधे के पूर्व पहलू पर निकास 28 सेमी x 18 सेमी की बंदूक की गोली का घाव, चोट संख्या 6 के साथ जारी है।

(VIII) दाएं पूर्वकाल इलियाक शिखा क्षेत्र पर प्रवेश 2.8 सेमी x 2 सेमी के गन शॉट घाव।

(IX) दाहिने नितंब के ऊपरी हिस्से पर निकास 3.2 सेमी x 2.5 सेमी का गन शॉट घाव, चोट संख्या 8 के साथ जारी है।

(X) लेसरेटेड घाव 3 सेमी x 1 सेमी x दाहिनी तर्जनी औसत दर्जे का पहलू मध्य भाग पर गहरी मांसपेशी, वर्तमान काला करना

(XI) दाहिनी मध्यमा उंगली पार्श्व पहलू मध्य भाग पर 2 सेमी x 1 सेमी घाव करना, वर्तमान में काला होना।

चोट नंबर 3-1 के गहरे विच्छेदन पर दाईं ओर से बड़ी धातु की गोली बरामद हुई। गर्दन की मांसपेशी फ्रैक्चर, दाईं ओर जबड़ा मौजूद है। सभी प्रवेश घाव के मार्जिन लैकरेटेड, उल्टे, और सभी निकास घाव लैकरेटेड और एवरटेड।"

अनुवादित

मृतक द्वारा पहने गए कपड़ों के साथ खून के धब्बे और सादी मिट्टी को फोरेंसिक प्रयोगशाला में भेजा गया था और इसकी दिनांक 22-02-2011 की प्रतिवेदन प्रदर्श का-9 के रूप में रिकॉर्ड पर है।

यह पता चलता है कि जांच अधिकारी ने दोनों आरोपियों को उसी तारीख (प्रदर्श का -6) के रिकवरी मेमो के तहत 14.01.2010 को गिरफ्तार किया, जब उन्होंने भागने की कोशिश की और उनके कब्जे से दो जिंदा गोलियों के साथ 315 बोर के दो तमंचा (देशी पिस्तौल) बरामद किए गए। अभियुक्त मुनिपाल के संबंध में शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत 2010 की धारा 307 भारतीय दंड संहिता के तहत केस अपराध संख्या 21 और 2010 के केस अपराध संख्या 22 के रूप में प्रथम सूचना विवरण दर्ज की गई।

जांच अधिकारी ने बरामद देशी पिस्तौलों के साथ-साथ घटना स्थल से बरामद किए गए खाली कारतूसों को भी फोरेंसिक जांच के लिए भेजा और आगरा स्थित फोरेंसिक प्रयोगशाला से बैलिस्टिक विशेषज्ञों की प्रतिवेदन को प्रदर्श का-8 के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर और धारा 161 सीआरपीसी के तहत गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद आरोपी गण के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, सबसे पहले 17.01.2010 को शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत और उसके बाद 18.03.2010 को धारा 302 भारतीय दंड संहिता के तहत जिला अधिकारी से अनुमति भी प्राप्त की गई, आयुध अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत कार्यवाही करने के लिए मुरादाबाद।

मजिस्ट्रेट ने आरोप पत्र का संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया।

तदनुसार, इस मामले में दो अलग-अलग सत्र विचारण दर्ज किए गए थे। वर्ष 2010 का सत्र परीक्षण संख्या 629 भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपराध के संबंध में दर्ज किया गया था, जबकि 2010 का सत्र परीक्षण संख्या 630 आरोपी वीरपाल द्वारा शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत किए गए अपराध के संबंध में दर्ज किया गया है। इन दोनों सत्र परीक्षणों को एक साथ आयोजित किया गया है और अंततः 02.06.2015 के नीचे न्यायालय के निर्णय और आदेश द्वारा निर्णय लिया गया है। जहां तक 2010 के केस अपराध संख्या 21 से उत्पन्न धारा 307/34 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध का संबंध है, सत्र न्यायालय ने दिनांक 19.11.2010 के पिछले फैसले के तहत आरोपी गण को बरी कर दिया। इस पर भरोसा करते हुए निचली अदालत ने आरोपी वीरपाल को शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत अपराध से बरी कर दिया है। इसलिए दोनों आरोपियों की दोषसिद्धि और सजा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत है, जो इस याचिका में निहित है।

सत्र न्यायालय ने दिनांक 24.07.2010 के आदेश के तहत आरोपी गण के खिलाफ

अनुवादित

धारा 302/34 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप तय किए। आरोपी गण को आरोप पढ़कर सुनाए गए जिन्होंने इससे इनकार किया और मुकदमे की मांग की।

मुकदमा शुरू हुआ जिसमें अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य पेश किए हैं, जिन्हें विधिवत साबित किया गया है और परिणामस्वरूप प्रदर्श के रूप में चिह्नित किया गया है:

"16.11.2009 की प्रथम सूचना विवरण को प्रदर्श-का-11 के रूप में चिह्नित किया गया है; दिनांक 16-11-2009 की लिखित प्रतिवेदन को प्रदर्श-का-3 के रूप में चिह्नित किया गया है; खून के धब्बे और सादी मिट्टी और तीन गोलियों के रिकवरी मेमो दिनांक 16.11.2009 को प्रदर्श-का-2 के रूप में चिह्नित किया गया है; दिनांक 16.11.2009 के पंचायतनामा को प्रदर्श-का-1 के रूप में चिह्नित किया गया है; दिनांक 17-11-2009 की शव-परीक्षा प्रतिवेदन को प्रदर्श-का-10 के रूप में चिह्नित किया गया है; प्रथम सूचना विवरण दिनांक 14.01.2010 को प्रदर्श-का-19 के रूप में चिह्नित किया गया है; दिनांक 14-01-2010 को दो जीवित गोलियों के साथ दो तमंचा 315 बोर के रिकवरी मेमो को प्रदर्श-का-6 के रूप में चिह्नित किया गया है; दिनांक 17.01.2010 के आरोप पत्र को प्रदर्श-का-21 के रूप में चिह्नित किया गया है; दिनांक 18-03-2010 के आरोप पत्र को प्रदर्श-का-4 के रूप में चिह्नित किया गया है; विधि विज्ञान प्रयोगशाला की दिनांक 23.08.2010 की प्रतिवेदन को प्रदर्श-का-8 के रूप में चिह्नित किया गया है; और विधि विज्ञान प्रयोगशाला की दिनांक 22-02-2011 की प्रतिवेदन को प्रदर्श-का-9 के रूप में चिन्हित किया गया है।"

दस्तावेजी साक्ष्य के अलावा अभियोजन पक्ष ने महेंद्रपाल (अभियोजन पक्ष का गवाह .-1) को पेश किया है, जो सादात वाडी, पुलिस थाना बहजोई, जिला मुरादाबाद का निवासी है। अभियोजन पक्ष का गवाह .-1 जांच का गवाह है और खून से सना हुआ और सादी पृथ्वी के साथ-साथ खाली कारतूस (प्रदर्शनी का-2) की वसूली ज्ञापन है। उन्होंने कहा है कि घटना स्थल उनके गांव से लगभग 01 किलोमीटर दूर है और पुलिस घटना स्थल पर आने के बहुत बाद पहुंची। उन्होंने कहा कि घटनास्थल पर बड़ी संख्या में लोग जमा हो गए थे और मुखबिर ने खुलासा किया कि शव उसके भाई महिपाल का है।

अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 की गवाही की जांच करने से पहले, जो घटना का एकमात्र चश्मदीद गवाह है, दो अन्य गवाहों अर्थात् अभियोजन पक्ष का गवाह -3 और अभियोजन पक्ष का गवाह -4 की गवाही पर ध्यान देना उचित हो सकता है जो जांच के गवाह हैं। अभियोजन पक्ष का गवाह .-3 गांव सादात वाडी का निवासी है और उसने कहा है कि घटना लगभग 04:00 बजे की है और जब पुलिस पहले ही आ चुकी थी तब तक वह घटना स्थल पर पहुंच गया। जांच की गई और वह इसके गवाहों में से एक है। अपनी जिरह में इस गवाह ने कहा है कि वह सूचना देने वाले को नहीं

अनुवादित

जानता है और उसने उसे घटना स्थल पर भी नहीं देखा था।

अभियोजन पक्ष का गवाह .-4 छत्रपाल पुत्र हरि सिंह का दावा है कि घटना सुबह 11:00 बजे की है और जब तक वह घटना स्थल पर पहुंचे तब तक पुलिस पहुंच चुकी थी। उन्होंने जांच को साबित कर दिया है जिसमें उनके हस्ताक्षर हैं। उन्होंने दावा किया है कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 उन्हें ज्ञात नहीं था और मौके पर कोई भी शोक नहीं पाया गया था।

अभियोजन का मामला अनिवार्य रूप से अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की गवाही पर आधारित है, जो मृतक का भाई है। उन्होंने दावा किया है कि मृतक उनका भाई था और यह घटना 16.11.2009 को दोपहर 02:30 बजे सादात वाडी से लगभग 01 बजे पहले हुई थी। उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है जिसके अनुसार अभियोजन पक्ष का गवाह -2 मृतक और रुकम सिंह के साथ मोटरसाइकिल पर सवार होकर सआदत वाडी मंदिर के लिए रवाना हुए थे ताकि देवता पर पवित्र जल डालकर पूजा की जा सके और बहजोई से उर्वरक खरीदा जा सके। उनका दावा है कि आरोपी वीरपाल, मुनिपाल और भद्रपाल उनसे सादात वाडी से एक किलोमीटर पहले मिले थे। इन व्यक्तियों ने मोटरसाइकिल रोकी और मृतक को घसीटते हुए ले गए जिसके बाद उन्होंने उस पर गोली चला दी। गोली लगने से मृतक की मौके पर ही मौत हो गई। इस गवाह ने दो आरोपी गण की पहचान अपराध के अपराधियों के रूप में की है। उन्होंने कहा है कि आरोपियों ने उन्हें धमकी भी दी थी। बाद में बड़ी संख्या में लोग घटना स्थल पर जमा हो गए। उन्होंने कहा है कि लिखित प्रतिवेदन उनके गांव के एक इंद्रपाल द्वारा लिखी गई थी, जिस पर अभियोजन पक्ष का गवाह -2 ने अपने अंगूठे का निशान चिपकाया और इसे पुलिस थाना बहजोई को दिया। उन्होंने स्वीकार किया है कि लिखित प्रतिवेदन उनके निर्देश पर लिखी गई थी और इसकी सामग्री उन्हें पढ़कर सुनाई गई थी। इस प्रकार लिखित प्रतिवेदन को उनके द्वारा सत्यापित किया गया है। उन्होंने यह भी कहा है कि साथी ग्रामीण गंगा सहाय शर्मा की बेटी को आरोपी वीरपाल और मुनिपाल द्वारा प्रलोभन दिया गया था, जिसके संबंध में एक मामला लंबित था और मृतक इस घटना का गवाह था, जिसके कारण आरोपी पक्ष ने मुखबिरों के साथ दुश्मनी बनाए रखी। उन्होंने यह भी कहा है कि केवल इसी कारण से मृतक को मौत के घाट उतार दिया गया है। मृतक के हाथों, आंखों और छाती में चोटें आई थीं।

जिरह में अभियोजन पक्ष का गवाह -1 ने कहा है कि देवता को पवित्र जल चढ़ाकर प्रार्थना किसी भी समय की जा सकती है और यह आवश्यक नहीं था कि यह केवल सुबह में ही हो। उन्होंने कहा है कि उन्हें उस मोटरसाइकिल का पंजीकरण संख्या याद नहीं है जिससे वह गए थे। उन्होंने यह भी कहा है कि रुकम सिंह अपने निवास से मोटरसाइकिल पर निकले थे और वह चक्की (आटा चक्की) नहीं गए थे। उनके गांव और घटना स्थल के बीच की

अनुवादित

दूरी लगभग 15-20 किमी है। रास्ते में गवाह को कोई नहीं मिला। हालांकि ये लोग पथरिया चौकी पर रुके लेकिन वह वहां किसी से नहीं मिल सके। स्टे लगभग आधे घंटे के लिए था और मोटरसाइकिल की मरम्मत में खर्च किया गया था जिसमें कुछ दोष विकसित हुए थे। गवाह मंदिर जा रहा था जहां खाद खरीदी जानी थी और अभियोजन पक्ष का गवाह -2 और आरोपी वीरपाल के बीच कोई विवाद नहीं हुआ। घटना स्थल को प्रत्यक्षदर्शियों ने चारों ओर से जंगल से घिरा हुआ बताया है। यह कहा गया है कि आरोपी व्यक्तियों ने मोटरसाइकिल को उस स्थान से 3-4 कदम पहले रोक दिया जहां वे खड़े थे। तब यह आरोप लगाया जाता है कि आरोपी वीरपाल ने मृतक को खींच लिया था, जो उससे 2-3 कदम की दूरी पर था। तीनों आरोपियों ने मृतक पर फायरिंग कर दी। लगभग 4-5 फायर किए गए। पहली गोली आरोपी वीरपाल ने मारी। दूसरी गोली आरोपी मुनिपाल ने मारी, जो मृतक की आंखों के पास लगी। तीसरी गोली आरोपी भद्रपाल ने मारी लेकिन उसे वह जगह याद नहीं है जहां गोली लगी थी। गवाह का कहना है कि जब मृतक को आरोपी द्वारा घसीटा गया तो उसने शोर मचाया, लेकिन बंदूक की गोली सुनने के बाद भी किसी ने जवाब नहीं दिया। यह भी कहा गया है कि लोग वन क्षेत्र में काम कर रहे थे और वह वहां लगभग 10-15 मिनट तक रहे और इसके बाद वह पाठकपुर चौकी के लिए रवाना हो गए। दूसरा साथी रुकम सिंह भी उनके साथ पाठकपुर चौकी के लिए रवाना हो गया। उनका दावा है कि मुंशी इंद्रपाल उनसे मिले थे क्योंकि वह भी भगवान की पूजा करने आए थे। अपनी आगे की जिरह में अभियोजन पक्ष का गवाह -2 ने कहा है कि रुकम सिंह का ननिहाल उसके गांव में है। वह अपने गांव के ऊदल को जानने का भी दावा करता है, जो बुरा इंसान नहीं है। हालांकि गवाह को इस बात की जानकारी नहीं थी कि उदल ने लखन की आंखें निकाल ली हैं। मृतक द्वारा धारा 307, 324 भारतीय दंड संहिता के तहत ऊदल और बनवारी के खिलाफ कोई प्रतिवेदन दर्ज नहीं कराई गई थी। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि ऊदल के खिलाफ लगभग 10-12 मामले थे और उनके खिलाफ गैंगस्टर एक्ट के तहत कार्यवाही शुरू की गई है। उन्होंने आगे स्वीकार किया है कि जब कुआंराम को उदल ने गोली मारी थी, तब मृतक महिपाल एक मुखबिर था। कुआंराम गवाह अभियोजन पक्ष का गवाह -2 विजयपाल का चाचा है। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि महिपाल और मुकेश ने उदाल द्वारा गोलीबारी की घटना के बाद कुआंराम पर तीन महीने बाद गोलीबारी की थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि वह देर से पहुंचे थे और घटना के समय मृतक के साथ नहीं थे। आगे यह कहा गया है कि जब महिपाल वहां से निकला तो वह उर्वरक खरीदने के लिए लगभग 10,000/- रुपये ले जा रहा था। उन्होंने यह भी दावा किया कि उन्हें इस बात की जानकारी नहीं थी कि पटरिया में कोई पुलिस चौकी है या नहीं। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें

अनुवादित

मोटरसाइकिल के निर्माण का कोई ज्ञान नहीं है जिससे वह मृतक और रुकम पाल के साथ गए थे। मोटरसाइकिल का रंग पीला था और पंजीकरण संख्या उसे याद नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि मोटरसाइकिल पुलिस द्वारा ली गई थी।

अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 ने 11.11.2011 को आयोजित अपनी जिरह में कहा कि उसने सआदत वाडी मंदिर में प्रार्थना की थी लेकिन उसके आने का समय उसे याद नहीं है क्योंकि उसके पास कोई घड़ी नहीं थी। यह कहा गया है कि उसके पास कोई मोबाइल नहीं था और वह मोबाइल उसके भाई के पास था लेकिन उसका संख्या और मेक उसे ज्ञात नहीं है। उसका दावा है कि आरोपी ने मृतक से मोबाइल निकाला था। उन्होंने स्वीकार किया है कि यह गायन प्रथम सूचना विवरण में नहीं किया गया है। उनका दावा है कि घर से निकलने के बाद वह कहीं नहीं रुके। उन्होंने आगे कहा कि आज तक उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि महिपाल किसकी मोटरसाइकिल ले गया था। तब आरोप है कि मोटरसाइकिल उधार नहीं ली गई थी और महिपाल की थी। उनका दावा है कि वे करीब डेढ़ घंटे में सादात वाडी मंदिर पहुंचे थे। वे बहजोई के लिए खाद खरीदने के लिए मंदिर से निकले लेकिन वहां पहुंचने से पहले ही मृतक की मौत हो गई। उनका दावा है कि घटना स्थल सादात वाडी मंदिर से करीब डेढ़ से दो किलोमीटर की दूरी पर है। आरोप है कि उसने खेतों के पास किसी को काम करते नहीं देखा। उन्होंने कहा है कि फायरिंग के समय वह 10-15 पेस की दूरी पर खड़े थे। आग 2-3 मिनट तक जारी रही और अभियोजन पक्ष का गवाह -2 और रुकम सिंह ने महिपाल को बचाने की कोशिश की। आगे यह दावा किया गया है कि गवाह को खुद कोई चोट नहीं आई थी, लेकिन उसे धमकियां दी गई थीं।

गवाह को सीआरपीसी की धारा 161 के तहत उसके बयान के साथ सामना कराया गया है, जहां उसने पुलिस को ऐसा कोई खुलासा नहीं किया है। उसने इस बात से भी इनकार किया है कि वह घटना स्थल से भाग गया था। गवाह ने आगे कहा कि आरोपी ने मृतक की जेब से 10,000 रुपये निकाले थे। उनके अनुसार मृतक के पास से लगभग 2500/- रुपये बरामद किए गए थे जो उसे पुलिस द्वारा दिए गए थे। उन्होंने आगे कहा कि मृतक के पास से 25,000 रुपये बरामद किए गए थे और जांच अधिकारी द्वारा उन्हें दिए गए थे। इस गवाह का सामना पुलिस उपमहानिरीक्षक को दिए गए अपने नोटरी हलफनामे से किया गया है, जिसमें आरोपी व्यक्तियों को दोषमुक्त किया गया था, जिससे उन्होंने विशेष रूप से इनकार किया था। उन्होंने कहा कि उनके द्वारा ऐसा कोई हलफनामा नहीं दिया गया था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि मृतक आपराधिक प्रकृति का था या वह घटना स्थल पर मौजूद नहीं था।

अभियोजन पक्ष का गवाह .-8 पहले जांच अधिकारी हैं, जिन्होंने वसूली को साबित किया है। हालांकि उन्होंने विशेष रूप से कहा है कि मोटरसाइकिल का कब्जा

अनुवादित

पुलिस के पास नहीं है और न ही मोटरसाइकिल के संबंध में कोई रिकवरी मेमो तैयार किया गया था। उन्होंने दावा किया कि घटना स्थल पर पहुंचने के समय कोई मोटरसाइकिल नहीं थी। उन्होंने आगे स्वीकार किया है कि साइट प्लान अभियोजन पक्ष का गवाह -2 से प्राप्त जानकारी के आधार पर तैयार किया गया है।

पीडब्लू-5 दूसरे जांच अधिकारी हैं, जिन्होंने आग्नेयास्त्र की बरामदगी साबित की है और चार्जशीट भी दाखिल कर दी है।

अभियोजन पक्ष का गवाह .-6 शव-परीक्षक है जिसने निर्दिष्ट किया है कि मृतक के शरीर पर 11 घाव थे। आग्नेयास्त्र के पांच प्रवेश घाव थे, जबकि दो अन्य घाव के साथ चार निकास घाव मौजूद थे।

अभियोजन पक्ष का गवाह .-8 ने यह भी कहा है कि घटना स्थल के आसपास कोई झाड़ियां नहीं थीं। उन्होंने यह भी कहा है कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 ने उन्हें सूचित नहीं किया था कि आरोपी व्यक्तियों द्वारा मृतक से 10,000/- रुपये लिए गए थे और न ही उन्होंने अभियोजन पक्ष का गवाह -2 को राशि वापस करने का समर्थन किया है, जैसा कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 ने अपनी गवाही में आरोप लगाया है।

अभियोजन पक्ष का गवाह .-9 उप-निरीक्षक है, जिसने मृतक की पूछताछ की थी। इस गवाह ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जब वह वहां पहुंचा तो उसने घटना स्थल पर गांव लेहरा नगला श्याम से किसी को नहीं देखा। अभियोजन पक्ष का गवाह .-10 ने साबित कर दिया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के तहत दर्ज प्रथम सूचना विवरण अभियोजन पक्ष का गवाह -11 ने साबित कर दिया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 अभियोजन पक्ष का गवाह -12 के तहत दर्ज चिक प्रथम सूचना विवरण स्वामी शरण शस्त्र अधिनियम के तहत दर्ज मामले के जांच अधिकारी थे।

आरोपी गण के खिलाफ मुकदमे के दौरान पेश की गई आपत्तिजनक सामग्री के आधार पर, धारा 313 सीआरपीसी के तहत अभियुक्त का बयान दर्ज किया गया था। आरोपी वीरपाल ने आगे कहा है कि दुश्मनी के कारण उसके खिलाफ झूठे आरोप लगाए गए हैं।

अपने मामले के समर्थन में बचाव पक्ष ने मुरादाबाद रेंज के पुलिस उपमहानिरीक्षक को अभियोजन पक्ष का गवाह -2 द्वारा कथित रूप से दिए गए एक हलफनामे पर भरोसा किया है, जिसमें उन्होंने दावा किया है कि मृतक को रुकम सिंह और अन्य ने मार डाला था और प्रथम सूचना विवरण संस्करण सही नहीं है। इस शपथ पत्र को प्रदर्श खा-1 के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है। नोटरी हलफनामे को साबित करने के लिए बचाव पक्ष ने कल्याण दास (डीडब्ल्यू -1) को पेश किया है, जो एक अधिवक्ता हैं और उन्होंने दावा किया है कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 के निर्देशों पर हलफनामा तैयार किया गया था। इसी तरह, डीडब्ल्यू -2 नोटरी है जिसने कथित रूप से अभियोजन पक्ष का गवाह -2 द्वारा दिए गए हलफनामे को सत्यापित किया है।

इस मामले में प्रस्तुत उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर विचारण न्यायालय ने

अनुवादित

अभियुक्त वादी गण के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत उचित संदेह से परे साबित किया है। तथापि, आयुध अधिनियम के अंतर्गत अपराध के संबंध में अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया गया है।

वादी गण की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता श्री श्याम लाल ने प्रस्तुत किया कि आरोपी-वादी गण को दुश्मनी के कारण वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है और उन्होंने अभियोजन पक्ष द्वारा कथित अपराध नहीं किया है। उन्होंने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार घटना का स्वतंत्र गवाह रुकम सिंह था, जिसे मुकदमे के समय पेश नहीं किया गया था और रुकम सिंह के न होने के कारण का खुलासा नहीं किया गया था, हालांकि वह एक महत्वपूर्ण गवाह था। वह आगे प्रस्तुत करता है कि स्टार अभियोजन गवाह अभियोजन पक्ष का गवाह -2 वास्तव में निम्नलिखित कारणों से घटना स्थल पर मौजूद नहीं था: -

(i) हालांकि यह आरोप लगाया गया है कि तीन व्यक्ति मोटरसाइकिल पर यात्रा कर रहे थे, लेकिन अन्य दो व्यक्तियों अर्थात् अभियोजन पक्ष का गवाह -2 और रुकम सिंह को कोई चोट नहीं आई है, जो घटना के स्थान पर अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की उपस्थिति पर संदेह पैदा करता है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि सगा भाई होने के नाते, अभियोजन पक्ष का गवाह - 2 से उम्मीद की गई थी कि उसने आरोपी के मोटरसाइकिल से उसे खींचने के कदम का विरोध किया था और यह तथ्य कि उस पर कोई चोट नहीं थी, अभियोजन पक्ष के मामले को असंभव बनाता है।

(ii) यद्यपि यह आरोप लगाया गया है कि मोटरसाइकिल पर तीन व्यक्ति यात्रा कर रहे थे लेकिन मोटरसाइकिल का उत्पादन नहीं किया गया है और न ही कोई स्पष्टीकरण दिया गया है कि यह मोटरसाइकिल कहां गई है। यहां तक कि मोटरसाइकिल या उसके निर्माण का पंजीकरण संख्या भी ज्ञात नहीं है। इसलिए, यह तर्क दिया गया है कि मोटरसाइकिल की दलील केवल मौके पर अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की उपस्थिति दिखाने के लिए इंजीनियर की गई है।

(iii) अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की उपस्थिति इस तथ्य से झुठलाती है कि न तो वह जांच का गवाह है और न ही वह खाली कारतूस और खून से सने और सादे मिट्टी की बरामदगी का गवाह है।

(iv) अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 की उपस्थिति भी मौके पर संदिग्ध है क्योंकि उसके कपड़ों पर कोई खून का धब्बा आदि नहीं पाया गया है।

(v) यह भी आग्रह किया जाता है कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 का बयान विरोधाभासी है क्योंकि एक स्थान पर वह कहता है कि यह घटना तब हुई जब वे सआदत वाडी मंदिर जा रहे थे, जबकि बाद में उन्होंने कहा कि यह घटना तब हुई जब वे मंदिर से लौट रहे थे। निवेदन यह है कि उसकी गवाही में यह विरोधाभास इसे अविश्वसनीय बनाता है। यह भी आग्रह किया गया है कि एक स्थान पर अभियोजन

अनुवादित

पक्ष का गवाह -2 ने दावा किया है कि घटना स्थल के आसपास जंगल थे, जबकि बाद में वह दावा करता है कि आस-पास कृषि भूखंड थे। अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 की गवाही में भी विरोधाभास की ओर इशारा किया गया है क्योंकि एक स्तर पर वह दावा करता है कि आसपास बड़ी संख्या में लोग काम कर रहे थे और बाद में यह कहकर खुद का खंडन किया कि आस-पास कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं था।

(vi) विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करता है कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 द्वारा दिया गया हलफनामा साबित हो गया है जिसके अनुसार अपराध अभियुक्त द्वारा नहीं बल्कि रुकम सिंह के साथ किसी और द्वारा किया गया था। इस हलफनामे में यह भी बताया गया है कि रुकम सिंह को साक्ष्य में पेश क्यों नहीं किया गया।

(vii) यह भी तर्क दिया जाता है कि बयान दर्ज करने के चरण में मोबाइल फोन लूटने के आरोप की किसी अन्य सामग्री द्वारा पुष्टि नहीं की जाती है और बाद में स्वयं गवाह द्वारा इसका खंडन किया जाता है। इसी तरह, 25,000/- रुपये की वापसी के आरोप की किसी भी स्वतंत्र सामग्री द्वारा पुष्टि नहीं की जाती है। यह भी तर्क दिया जाता है कि पूछताछ और अन्य पुलिस कागजात में विभिन्न स्थानों पर कटिंग और अधिलेखन शामिल है और अधिकांश कागजात में जांच के समापन के समय आदि का उल्लेख नहीं किया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि पूछताछ शाम को समाप्त हो गई, जबकि शव-परीक्षा 24 घंटे के बाद किया गया था, बिना यह बताए कि रात भर शव को कहां रखा गया था।

जवाब में, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि बचाव पक्ष द्वारा इंगित विरोधाभास मामूली है और अभियोजन पक्ष के मामले को हिलाता नहीं है। सबमिशन यह है कि अभियोजन पक्ष के गवाह पूरी तरह से भरोसेमंद हैं और नीचे की अदालत ने उन पर भरोसा किया है। यह तर्क दिया गया है कि यह एक निश्चित मकसद के लिए किए गए व्यापक दिन के उजाले हत्या का मामला है और अभियोजन पक्ष का गवाह -2 के चश्मदीद गवाह के खाते पर नीचे के न्यायालय द्वारा सही भरोसा किया गया है और याचिका में कोई हस्तक्षेप नहीं है।

<u>तथ्यों का विश्लेषण</u>:-

रिकॉर्ड पर रखे गए तथ्यों से यह पता चलता है कि अभियोजन पक्ष का मामला स्पष्ट रूप से यह है कि मृतक अभियोजन पक्ष का गवाह -1 और एक रुकम सिंह के साथ पूजा करने के लिए सादात वाडी मंदिर की ओर जा रहे थे और जब वे मंदिर से एक किलोमीटर पहले थे, आरोपी व्यक्तियों ने मुखबिर टीम पर घात लगाकर हमला किया और मृतक को थोड़ा दूर ले जाया गया और फिर तीनों आरोपियों द्वारा अंधाधुंध गोली चलाई गई। अभियोजन पक्ष के अनुसार अपराध का मकसद यह तथ्य है कि आरोपी मुनिपाल ने एक गंगा सहाय की बेटी को प्रलोभन दिया था जिसमें मृतक, महिपाल एक गवाह था और इसलिए, बाधा को दूर करने के इरादे से ताकि मृतक

अनुवादित

मुकदमे में खड़ा न हो सके या अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन न कर सके कि उसे मौत के घाट उतार दिया गया है। निचली अदालत ने माना है कि अभियोजन पक्ष घटना को साबित करने में सफल रहा है। इसलिए, इस न्यायालय को यह जांचने की आवश्यकता है कि क्या अभियोजन पक्ष ने मुकदमे में पेश किए गए सबूतों के आधार पर उचित संदेह से परे अपना मामला साबित किया है या नहीं?

उपरोक्त प्रश्न का उत्तर तब निर्धारित करेगा कि क्या नीचे की अदालत ने अभियुक्त को सही तरीके से दोषी ठहराया है और इस तरह इस याचिका के भाग्य का निर्धारण किया है।

अभियोजन मामला अनिवार्य रूप से दस्तावेजी साक्ष्य के अलावा अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की गवाही पर निर्भर करता है जो जांच प्रतिवेदन की प्रकृति में हैं; शव-परीक्षा प्रतिवेदन; फोरेंसिक प्रयोगशाला आदि की प्रतिवेदन।

शव-परीक्षा प्रतिवेदन रिकार्ड में है जो स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि मृतक की मृत्यु शव-पूर्व आग्नेयास्त्रों की चोटों के कारण कोमा के कारण हुई थी। कुंद वस्तु के कारण दो अन्य चोटों के अलावा बंदूक की गोली की चोटों के पांच प्रवेश घाव और चार निकास घाव हैं। जांच प्रतिवेदन से यह भी पता चलता है कि मृतक की मौत बंदूक की गोली लगने से हुई थी। इसलिए, यह मुद्दा नहीं है कि मृतक की मृत्यु मानव वध थी। तथ्य यह है कि उन्हें गोली मार दी गई थी, निर्विवाद बनी हुई है।

सवाल मुख्य रूप से यह है कि क्या अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में सफल रहा है कि यह आरोपी था जिसने मृतक पर गोली चलाई थी और इस घटना को अभियोजन पक्ष के गवाह ने देखा है?

अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 को एकमात्र चश्मदीद गवाह के रूप में पेश किया गया है और इसलिए, उसकी गवाही पर सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। वादी गण का मामला यह है कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 मौजूद नहीं था और इसलिए, अभियोजन पक्ष घटना को उसके द्वारा कथित तरीके से स्थापित नहीं कर पाया है। अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 अन्यथा मृतक का भाई होने के नाते एक संबंधित गवाह है और आरोपी के साथ दुश्मनी स्वीकार की जाती है। यह तय है कि दुश्मनी अपराध करने का कारण हो सकती है और झूठे फंसाने का एक कारण भी हो सकती है। इस प्रकार यह देखा जाना चाहिए कि क्या अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की गवाही विश्वसनीय है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध अन्य सबूतों से पुष्टि मिलती है।

वादी गण की ओर से दिए गए तर्कों को पहले ही ऊपर देखा जा चुका है और अब हम अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की गवाही और उपस्थित परिस्थितियों के संदर्भ में इसकी जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 के अनुसार वह मृतक और रुकम सिंह के साथ सादात वाडी मंदिर में पूजा-अर्चना करने जा रहा था और फिर उन्हें खाद खरीदने के

अनुवादित

लिए बहजोई जाना था। इस गवाह ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि वे सादात वाडी मंदिर जा रहे थे जब तीनों आरोपियों ने उन पर घात लगाकर हमला किया और मृतक की गोली मारकर हत्या कर दी। घटना स्थल को एक स्थान के रूप में निर्दिष्ट किया गया है जो मंदिर से एक किलोमीटर पहले था। इस गवाह ने अपनी जिरह में स्पष्ट रूप से कहा है कि तीनों आरोपियों ने उन्हें मंदिर से एक किलोमीटर पहले रोक दिया, जिसके बाद मृतक को एक तरफ खींच लिया गया और आरोपी व्यक्तियों द्वारा गोली मार दी गई। उनके बयान का प्रासंगिक हिस्सा यहां नीचे दिया गया है:

"मृतक महीपाल मेरा भाई था। घटना दिनांक 16.11.2009 की दिन के ढाई बजे की है। घटना सादात बाड़ी से एक किलोमीटर पहले जंगल की है। उस दिन मेरा भाई महीपाल और मैं तथा हुकम सिंह एक ही मोटर साईकिल से सादात बाड़ी जल बढ़ाने तथा बहजोई खाद लेने घर से साथ चले थे। वीरपाल मुनीपाल व भद्रपाल सादात बाड़ी से एक किलोमीटर पहले मिले। मोटर साइकिल मेरा भाई महीपाल चला रहा था। इन लोगों ने मोटर साइकिल रोक कर और मेरे भाई महीपाल को खीच कर जान से मारने की नियत से फायर किये। फायर लगने से मेरा भाई महीपाल की मौके पर मृत्य हो गयी।"

हालांकि, जिरह में गवाह ने एक अलग बयान दिया कि वे लगभग डेढ़ घंटे में मंदिर पहुंचे थे, प्रार्थना की और फिर उर्वरक खरीदने के लिए आगे बढ़े, लेकिन इससे पहले कि वे खाद खरीदने के लिए बहजोई पहुंच पाते, मृतक को मौत के घाट उतार दिया गया। अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 के कथन जो उनके पूर्व के कथन का खंडन करते हैं, उनके मुख्य परीक्षा में नीचे उद्धृत किया गया है: -

"गांव से सादात वाड़ी मंदिर लगभग एक डेढ़ घंटे में पहुँच गये थे। मुझे नही मालुम पूजा करने और जल चढ़ाने में कितना समय लगा होगा। फिर मंदिर से वहजोई खाद लेने गये थे। बहजोई खाद लेने नहीं पहुँच पाये थे उससे पहले ही महीपाल को मार दिया था।"

अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 ने तब कहा है कि उनमें से तीन मोटरसाइकिल से निकले थे, लेकिन उन्हें इसका पंजीकरण संख्या याद नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें मोटरसाइकिल का निर्माण भी याद नहीं है। यह केवल कहा गया है कि मोटरसाइकिल का रंग पीला था। प्रासंगिक बात यह है कि इस मोटरसाइकिल को न तो मौके से बरामद किया गया है और न ही इसे केस प्रॉपर्टी बनाया गया है। अभियोजन पक्ष का गवाह -2 ने बताया कि पुलिस मोटरसाइकिल को ले गई। हालांकि, अभियोजन पक्ष का गवाह -8 यानी जांच अधिकारी ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि उसके द्वारा मौके पर कोई मोटरसाइकिल नहीं मिली थी। मोटरसाइकिल का पता नहीं चलने से संबंधित परिस्थिति भी एक परिस्थिति है, जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा साबित नहीं

अनुवादित

किया गया है। यदि मृतक अभियोजन पक्ष का गवाह -2 और रुकम सिंह के साथ मोटरसाइकिल पर जा रहे थे और मृतक पर घात लगाकर हमला किया गया था, तो यह उम्मीद की गई थी कि जिस मोटरसाइकिल पर वे यात्रा कर रहे थे, उसके संबंध में कुछ स्पष्टीकरण दिया जाएगा। अभियोजन पक्ष का गवाह -2 ने भी एक समय जिरह में बताया कि वह मोटरसाइकिल से थाने के लिए निकला था लेकिन फिर पैदल ही लौट आया। अभियोजन पक्ष का गवाह -2 के बयान में यह स्पष्ट विरोधाभास और यह तथ्य भी कि मोटरसाइकिल बरामद नहीं की गई थी, इस प्रकार विचार-विमर्श के इस स्तर पर ध्यान देने योग्य परिस्थिति है।

वादी गण की ओर से उजागर की गई अगली परिस्थिति घटना स्थल के परिवेश के संबंध में है। अभियोजन पक्ष का गवाह -2 ने उल्लेख किया है कि घटना स्थल पर चारों ओर जंगल मौजूद थे, तथापि स्थल योजना में घटना स्थल के आस-पास कोई जंगल नहीं दर्शाया गया है। अभियोजन पक्ष का गवाह -2 ने अपनी जिरह के बाद के चरणों में साइट प्लान में उल्लिखित टेन्योर धारकों के नाम लेकर साइट प्लान का समर्थन किया है। हालांकि उनकी जानकारी केवल साइट प्लान में पहले किए गए खुलासे तक ही सीमित है। हम इस विवाद में कुछ तथ्य पाते हैं कि घटना का स्थान या तो जंगल के पास हो सकता है या यह कृषि क्षेत्रों के पास हो सकता है। दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते। घटना स्थल के परिवेश का विरोधाभासी वर्णन देने में अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 का कथन भी ध्यान देने योग्य परिस्थिति है।

हम इस स्तर पर वादी गण के विद्वान अधिवक्ता के तर्क पर भी ध्यान दे सकते हैं कि रुकम सिंह मृतक और अभियोजन पक्ष का गवाह -2 के साथ यात्रा करने वाले तीसरे व्यक्ति थे और एक चश्मदीद गवाह होने के नाते उन्हें अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किया जाना चाहिए था। रिकॉर्ड से पता चलता है कि रुकम सिंह का बयान सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया था और हालांकि आरोप पत्र के साथ संलग्न गवाहों की सूची में उनके नाम का उल्लेख किया गया था, लेकिन बाद में उन्हें अभियोजन पक्ष द्वारा निचली अदालत में पेश होने से बरी कर दिया गया है। अभियोजन पक्ष की ओर से कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि रुकम सिंह को पेश क्यों नहीं किया गया है। यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि जबकि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 मृतक का भाई है और एक संबंधित गवाह है, रुकम सिंह परिवार का सदस्य नहीं है और कुछ हद तक उसकी गवाही अधिक वजन रखती है। यह तथ्य कि रुकम सिंह का निर्माण नहीं किया गया है, यह भी ध्यान देने योग्य परिस्थिति है।

हम इस स्तर पर बचाव पक्ष के नेतृत्व में साक्ष्य के एक अन्य टुकड़े का उल्लेख कर सकते हैं जो कथित तौर पर अभियोजन पक्ष का गवाह -2 द्वारा पुलिस उप महानिरीक्षक, मुरादाबाद रेंज को भेजे गए

अनुवादित

नोटरी हलफनामे की फोटो कॉपी है। इस दस्तावेज़ को पूर्व खा -1 के रूप में प्रदर्शित किया गया है और इसमें एक पुनरावृत्ति है कि वास्तव में हत्या रुकम सिंह द्वारा की गई है और वादी गण के चोटों के लेखक होने के बारे में प्रथम सूचना विवरण में किए गए कथन गलत हैं। एक्सएच को साबित करने का प्रयास किया गया है। शपथ पत्र तैयार करने वाले अधिवक्ता अर्थात डीडब्ल्यू-1 और नोटरी को प्रस्तुत करके, जिसने शपथ पत्र पर अपने अंगूठे के निशान को डी.डब्ल्यू.-2 के रूप में सत्यापित किया था।

विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने इस दस्तावेज पर इस आधार पर महाभियोग लगाने का प्रयास किया है कि इस हलफनामे की मूल या प्रमाणित प्रति प्रस्तुत नहीं की गई है और न तो स्टाम्प पेपर में स्टाम्प विक्रेता की उचित मुहर है और न ही इसके जारी होने की किसी तारीख का उल्लेख किया गया है और इसलिए, इस दस्तावेज़ पर भरोसा नहीं किया जा सकता है, खासकर जब अभियोजन पक्ष का गवाह -2 ने अपने अस्तित्व से इनकार किया है।

विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता के तर्क के खिलाफ, वादी गण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस हलफनामे का मूल पुलिस उपमहानिरीक्षक, मुरादाबाद के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और इसलिए, बचाव पक्ष द्वारा मूल प्रस्तुत नहीं किया जा सकता क्योंकि दस्तावेज स्वयं उनके पास उपलब्ध होने की उम्मीद नहीं थी। यह भी आग्रह किया जाता है कि इसकी प्रमाणित प्रति भी केवल राज्य के अधिकारियों द्वारा जारी की जा सकती थी, जो उनका विरोध कर रहे थे। यह तर्क दिया गया है कि एकमात्र तरीका जिसमें इस दस्तावेज़ को साक्ष्य के द्वितीयक टुकड़े के रूप में साबित किया जा सकता था, वह उस अधिवक्ता को पेश करके था जिसने हलफनामा तैयार किया था और नोटरी का उत्पादन करके, जिसने गवाह के अंगूठे के निशान को प्रमाणित किया था। दोनों का उत्पादन किया गया है।

हम इस हलफनामे की वास्तविकता या अन्यथा के संबंध में बहस में शामिल होने के इच्छुक नहीं हैं। जिस सीमित उद्देश्य के लिए हम हलफनामे पर ध्यान देते हैं, वह यह है कि बचाव पक्ष द्वारा एक दलील दी गई थी कि चोटों का लेखक आरोपी नहीं था, बल्कि यह रुकम सिंह और रूप किशोर थे। इस प्रकार मुकदमे के दौरान गवाह के रूप में रुकम सिंह का पेश न होना तब और अधिक महत्व रखता है जब यह रिकॉर्ड पर सामने आता है कि इस गवाह के खिलाफ मृतक पर चोटों को लिखने का आरोप लगाया गया था। हम आगे पाते हैं कि अभियोजन पक्ष द्वारा रुकम सिंह को पेश नहीं करने का कोई कारण नहीं बताया गया है। भले ही हलफनामे को नजरअंदाज कर दिया जाए, फिर भी रुकम सिंह के न होने के तथ्य को कम करके नहीं आंका जा सकता है। यह फिर से इस मामले में ध्यान देने योग्य परिस्थिति बन जाती है। एक और परिस्थिति जो मामले के तथ्यों में देखी जा सकती है, वह यह है कि प्रथम सूचना विवरण इंद्रपाल के मुंशी, जो रुकम सिंह के मामा हैं, को भी पेश नहीं किया गया है।

अनुवादित

घटना स्थल पर इंद्र पाल की उपस्थिति सबसे अच्छी बात है। अभियोजन पक्ष का आरोप है कि घटना के समय वह भी मंदिर की ओर जा रहा था और अभियोजन पक्ष का गवाह -2 साक्षर व्यक्ति होने के नाते लिखित प्रतिवेदन लिखने के लिए उसकी सेवाओं का लाभ उठाया। लिखित प्रतिवेदन लिखने के लिए घटना स्थल पर रुकम सिंह के मामा की संयोग से उपस्थिति का संयोग भी ध्यान देने योग्य है। रुकम सिंह और इंद्र पाल दोनों का उत्पादन न होना अस्पष्ट है।

हम अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 के बयान से यह भी देख सकते हैं कि अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 के चाचा कुआंराम की हत्या के आरोपी उदल के बीच कुछ दुश्मनी थी। यह अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 के कथन में निम्नलिखित परिच्छेद से परिलक्षित होता है, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"मैं अपने गांव के ऊदल को जानता हैं। यह वदमाश किस्म का आदमी नहीं है सही है। मेरे गांव के ऊदल ने लाखन की आंखे निकाली यह मुझे नहीं मालूम। मेरे भाई महीपाल ने धारा 307, 324 आई पी सी के तहत ऊदल व बनवारी के खिलाफ कोई रिपोर्ट नहीं लिखाई। मुझे नहीं मालूम कि विकास निवासी लावर थाना गुन्नौर के कत्ल में ऊदल जेल गया था या नही मुझे नहीं मालुम। मुझे नहीं पता कि इस ऊदल पर करीव 10-12 मुकदमे कत्ल जान लेवा हमले तथा 25 ए ऐक्ट व गैंगस्टर एक्ट के मुकदमे लगे हो। ऊदल ने कुवाराम को गोली नहीं मारी और न ही कुंवाराम पर गोली मारने का मुकदमा चला यह कूवाराम मेरे सगे चाचा है। कूवाराम को ऊदल ने जब गोली मारी थी उस मुकदमे में मेरा भाई महीपाल मृतक वादी था इस बात की मुझे जानकारी है।

यह कहना गलत है कि मृतक महीपाल व मौहकम निवासी नूरपुर व मुकेश? पुत्र सुरेश निवासी वहरौलपुर ने कुवाराम को गोली लगने के तीन महीने वाद ऊदल पर गोली चलाई थी तथा गांव वालों ने घेर कर मोहम्मद को मार दिया था। इस घटना में महीपाल व मुकेश जेल गये थे इस बात की मुझे कोई जानकारी नहीं है।

अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 के उपरोक्त बयानों से ऐसा प्रतीत होता है कि हत्या और मुखबिर के परिवार से संबंधित अपराधों के अन्य उदाहरण थे, जो वादी गण के इस तर्क का समर्थन करते हैं कि मृतक की दूसरों के साथ दुश्मनी थी और उन व्यक्तियों द्वारा अपराध करने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है।

हालांकि अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 का दावा है कि वह घटना स्थल पर मौजूद था, लेकिन यह स्वीकार किया गया है कि घटना में उसे कोई चोट नहीं आई थी। वह स्वीकार करता है कि वह उसी मोटरसाइकिल पर था जब मृतक को घात में मोटरसाइकिल रोकने के बाद कुछ कदम दूर घसीटा गया था। यदि आरोपी द्वारा अभियोजन पक्ष का गवाह -2 के भाई को जबरन ले जाया जा रहा था, तो आमतौर पर अभियोजन पक्ष का गवाह -2 या उपलब्ध तीसरे व्यक्ति यानी रुकम सिंह की

अनुवादित

ओर से कुछ प्रतिरोध की उम्मीद की जाती है। आमतौर पर किसी तरह की चोट या हाथापाई की उम्मीद की जाती थी। तथ्य यह है कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 एक ऐसी घटना में मूक दर्शक बना रहा, जहां उसके असली भाई को बिना खरोंच या खरोंच के गोली मार दी गई थी, घटना के स्थान पर उसकी उपस्थिति के बारे में संदेह पैदा करता है। वादी की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 हालांकि दावा करता है कि वह मृतक के साथ गया था, लेकिन न तो वह जांच की कार्यवाही का गवाह है और न ही वह पुलिस द्वारा खून से सने और सादे मिट्टी के साथ-साथ खाली कारतूस की बरामदगी का गवाह है। वास्तव में, अभियोजन पक्ष के कुछ गवाह अर्थात् अभियोजन पक्ष का गवाह -3, जो जांच के गवाह हैं, ने स्पष्ट रूप से कहा है कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 घटना स्थल पर मौजूद नहीं था। अभियोजन पक्ष का गवाह .-4, जो अभियोजन पक्ष के अन्य गवाह हैं, ने कहा है कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 के गांव से कोई भी नहीं यानी लेहरा नगला श्याम घटना स्थल पर मौजूद था।

अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 की उपस्थिति से संबंधित पहलू पर हमारे द्वारा देखी गई परिस्थिति, संचयी रूप से लेते हुए, घटना के स्थान पर अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की उपस्थिति के बारे में संदेह पैदा करती है। अभियोजन पक्ष का गवाह .-4 ने यह भी कहा है कि घटना के स्थान पर उसने किसी को भी शोक या रोते हुए नहीं देखा, जो अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की उपस्थिति पर संदेह करने की भी एक परिस्थिति है क्योंकि यह उम्मीद करना स्वाभाविक होगा कि अपने भाई अभियोजन पक्ष का गवाह -2 को खोने के बाद दुःख के लक्षण दिखाई देते, अगर वह मौजूद होता।

अभियोजन पक्ष का गवाह .-9- जांच अधिकारी, जिसने जांच की कार्यवाही तैयार की थी, ने भी स्पष्ट रूप से कहा है कि उन्होंने घटना स्थल पर गांव लेहरा नगला श्याम से कोई नहीं देखा। अभियोजन पक्ष का गवाह .-9 का यह कथन महत्वपूर्ण है क्योंकि वह एक स्वतंत्र गवाह है और उसका यह दावा कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 गांव का कोई भी व्यक्ति मौजूद नहीं था, घटना स्थल पर अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की उपस्थिति पर गंभीर संदेह पैदा करता है।

ऊपर किए गए विचार-विमर्श के मद्देनजर, हम पाते हैं कि घटना के स्थान पर अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की उपस्थिति अभियोजन पक्ष द्वारा उचित संदेह से परे स्थापित नहीं की गई है। अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 अन्यथा तथ्य का एकमात्र गवाह है जिसने घटना को देखा है और अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। घटना के स्थान पर उनकी उपस्थिति के संबंध में एक संदेह इसलिए गंभीरता से अभियोजन पक्ष के संस्करण पर सेंध लगाता है।

अनुवादित

विद्वान राज्य अधिवक्ता का तर्क कि अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की उपस्थिति इस तथ्य से साबित होती है कि उसने मृतक पर चोटों का वर्णन किया है, बहुत प्रासंगिक नहीं है क्योंकि जिस तारीख को अभियोजन पक्ष का गवाह -2 गवाह बॉक्स में पेश हुआ था, वह शव-
परीक्षा प्रतिवेदन के अस्तित्व को देखते हुए मृतक द्वारा बनाए गए चोटों के बारे में जानता था। इस प्रकार, मृतक द्वारा उन स्थानों का खुलासा किया गया जहां बंदूक की गोली से चोटें आई थीं, इसलिए उसकी उपस्थिति का निर्णायक नहीं होगा।

हालांकि निचली अदालत ने आरोपी वादी को दोषी ठहराया है, लेकिन दोषसिद्धि न करना; अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 पूछताछ या बरामदगी आदि का गवाह नहीं होने के कारण स्पष्ट रूप से अनदेखी की गई है। इसलिए हमारा विचार है कि नीचे के न्यायालय ने स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कानून में गलती की है कि अभियोजन पक्ष ने मामले में किए गए सबूतों के आधार पर उचित संदेह से परे अपना मामला स्थापित किया है।
वर्तमान मामले के तथ्यों में, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी गण के अपराध को स्थापित करने में सक्षम नहीं है और आरोपी वादी मामले में संदेह के लाभ के हकदार हैं।

नतीजतन, याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है। न्यायालय के दिनांक 02.06.2015 के नीचे के आक्षेपित का निर्णय हमारे द्वारा देखे गए कारकों पर विचार करने के लिए छोड़ देता है जो घटना के स्थान पर अभियोजन पक्ष का गवाह -2 की उपस्थिति पर संदेह पैदा करता है। उनकी गवाही में विरोधाभासों और अलंकरणों की भी अनदेखी की गई है। अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 की गवाही में घटना स्थल के संबंध में विरोधाभास अर्थात मंदिर जाते समय या मंदिर से लौटते समय; मोटरसाइकिल का गायब होना और उस संबंध में विवरण प्रस्तुत न करना; घटना के स्थान के परिवेश के संबंध में अभियोजन पक्ष का गवाह .-2 का विरोधाभासी संस्करण; रुकम सिंह और उनके मामा इंद्रपाल (मुंशी) का उत्पादन

निर्णय और आदेश को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

आरोपी वादी, जो पिछले लगभग 13 वर्षों से जेल में हैं, उन्हें धारा 437-ए सीआरपीसी के अनुपालन पर रिहा कर दिया जाएगा, जब तक कि वे किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हैं।

(2023) 2 ILRA 542

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 24.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद,

आपराधिक अपील संख्या 3866/2013

संलग्न

आपराधिक अपील संख्या 3867/2013

श्रीमती रमा देवी

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री आर.आर.सिंह, श्री ए.के. मिश्रा, श्रीकृष्ण मोहन त्रिपाठी

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

ए. भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या का वाद - फर्द बरामदगी - पी.डब्ल्यू.-6 ने कथन दिया कि मृतक के शरीर के पास चाकू पड़े थे - जब मृतक के शव के पास पहले से ही चाकू मौजूद थे तो अभियोजन यह दावा कैसे कर सकता था कि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की निशानदेही पर अलग से चाकू (अला कत्ल) बरामद किए गए हैं - (पी.डब्लू.-2), चाकू की बरामदगी के गवाह (अला कत्ल) ने फर्द बरामदगी का समर्थन नहीं किया - फर्द बरामदगी के अन्य गवाहों को विचरण के दौरान प्रस्तुत नहीं किया गया - अभियोजन यह सिद्ध करने में विफल रहा कि कैसे और किस प्रकार आरोपी अपीलकर्ताओं की निशानदेही पर बरामदगी की गई - फर्द बरामदगी विश्वसनीय नहीं है - संदेह का लाभ - अभियोजन उचित संदेह से परे अभियुक्तों- अपीलकर्ताओं के अपराध को स्थापित करने में सक्षम नहीं है। (पैरा 32)

बी. भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या का वाद - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 3 और 8 - साक्ष्य की सराहना, गवाह के बयान में भौतिक विरोधाभास और असंगति - हत्या का कारण - सबूत गवाह - मुख्य गवाह पी.डब्लू.-6 (मृतक का सगा भाई)) मुख्य परीक्षण में, पी.डब्ल्यू.-6 ने कहा कि मृतक और आरोपी-अपीलकर्ता के बीच अवैध संबंध थे, लेकिन जिरह में, पी.डब्ल्यू. 6 ने कहा कि मृतक और अभियुक्त-अपीलकर्ता के बीच कोई अवैध संबंध नहीं था - पी.डब्ल्यू.-6 ने दरवाजा तोड़ दिया और घर में प्रवेश किया, जबकि पी.डब्ल्यू.-6 ने अपनी जिरह में कहा कि वे दीवार कूद कर घर पहुंचे घर के अंदर और अंदर पहुंचने के बाद, उसने अंदर से दरवाजा खोला और फिर अन्य लोग घर के अंदर आए - अन्य अभियोजन पक्ष के गवाह पक्षद्रोही हो गए - पी.डब्ल्यू.-6 के विरोधाभासी बयान के आधार पर अपने बयान से पलट गए, अभियोजन पक्ष आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ आशय स्थापित करने में विफल रहा - अभियोजन पक्ष अभियुक्तों-अपीलकर्ताओं के अपराध को उचित संदेह से परे स्थापित करने में सक्षम नहीं है और वे स्पष्ट रूप से संदेह के लाभ के हकदार हैं । (पैरा 27, 28)

अनुमत। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद द्वारा प्रदत्त)

1. ये आपराधिक अपीलें, अपराध संख्या 172/2010 से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 193/2010 (राज्य बनाम राम किशोर व अन्य) में अपर सत्र न्यायाधीश-प्रथम, रामपुर द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय व आदेश दिनांक 14.8.2013 के विरुद्ध योजित हैं, जिसके द्वारा अभियुक्त-

अपीलकर्ता श्रीमती रमा देवी और राम किशोर को धारा 302 के अपराध का दोषी ठहराते हुए आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है, और धारा 302 आईपीसी का अपराध कारित करने के कारण 50,000 रुपये का अर्थदण्ड आरोपित किया गया है; जिसमे विफल रहने पर, उन्हें एक-एक वर्ष का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना पड़ेगा। चूंकि दोनों अपीलें एक सामान्य निर्णय और आदेश के विरुद्ध योजित हैं और एक साथ सुनी गई हैं, इसलिए उनका निर्णय इस सामान्य निर्णय द्वारा किया जा रहा है। हमने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण मोहन त्रिपाठी और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. अभियोजन के अनुसार, प्रीतम सिंह (पी.डब्ल्यू.-1/प्रथम सूचनादाता), जो मृतक का भाई है, द्वारा पुलिस स्टेशन टांडा, जिला रामपुर पर 9.2.2010 को एक लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) दी गई थी, जिसमें कहा गया था कि उसके गाँव के राम किशोर पुत्र श्री सोहन सिंह की उसके भाई धर्मपाल (मृतक) के साथ किसी कारण से दुश्मनी थी और उनमे बातचीत बंद थी। दिनांक 9.2.2010 को जब सूचनादाता, उसका भाई महेंद्र सिंह (पी.डब्ल्यू.-6), प्रेम सिंह (पी.डब्ल्यू.-3) एवं जगन सिंह (पी.डब्ल्यू.-2) मोड (तिराहा) पर आपस में बात कर रहे थे, तभी धर्मपाल उत्तर दिशा में स्थित दुकान से कुछ सामान खरीदकर आ रहा था और जैसे ही राम किशोर के घर के सामने आया, राम किशोर ने उसे अपने घर के अंदर बुलाया और दरवाजा बंद कर दिया। कुछ देर बाद शाम करीब 7.30 बजे धर्मपाल की चीख सुनाई दी। इतना सुनते ही सूचनादाता समेत चारों लोग राम किशोर के दरवाजे पर पहुंचे, लेकिन दरवाजा अंदर से बंद था और धर्मपाल अंदर चिल्ला रहा था। उन्होंने दरवाजा तोड़ा और राम किशोर के घर में घुस गए। जब वे घर के उत्तरी कमरे में पहुंचे तो देखा कि धर्मपाल दर्द से कराह रहा है। जब प्रथम सूचनादाता ने उससे पूछा कि क्या हुआ है, तो जवाब में उसने बताया कि राम किशोर और उसकी पत्नी अर्थात् रमा देवी ने उसे चाकू मार दिया और वह अब नहीं बचेगा और इन शब्दों को कहते हुए उसकी मृत्यु हो गई। राम किशोर और उसकी पत्नी की तलाश करने पर प्रथम सूचनादाता सहित सभी चार व्यक्तियों ने पाया कि वे पहले ही भाग चुके थे और मृतक का शव मौके पर पड़ा था।

3. उपर्युक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 9.02.2010 (प्रदर्श क-14) मुकदमा अपराध संख्या-172/2010 अंतर्गत धारा 302 के रूप में दर्ज की गई थी।

4. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद पीडब्लू-7 यानी उपनिरीक्षक सुरेश चंद्र शर्मा घटना स्थल पर पहुंचे। प्रीतम सिंह (पीडब्ल्यू-1/प्रथम सूचनादाता), महेंद्र सिंह (पीडब्ल्यू-6), प्रेम सिंह (पीडब्ल्यू-3) और जगन सिंह (पीडब्ल्यू-2) के साथ मदनपाल, पंचायतनामा के गवाह थे। पंचायतनामा के गवाहों की राय में, मृतक की मृत्यु, मृतक

अनुवादित

के शरीर पर लगी चोटों के कारण हुई थी, लेकिन मृत्यु का सही कारण पता लगाने के लिए, पोस्टमार्टम किया जाना चाहिए था, जिसके बाद मृतक के शव को सील कर पोस्टमार्टम के लिए मोर्चरी भेज दिया गया।

5. पोस्टमार्टम किया गया, जिसमें मृत्यु का कारण मृतक के शरीर पर निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव पाया गया है: -

1. कटा घाव 4 सेमी x 0.5 सेमी सिर के दाईं ओर दाहिने कान से 10 सेमी ऊपर।
2. कटा घाव सिर के दाईं ओर 2.5 सेमी x 0.5 सेमी, चोट नंबर 1 से 2 सेमी नीचे।
3. कटा घाव बाएं कान के पिन्ना पर 3 सेमी x 1 सेमी का घाव।
4. कटा घाव 1.5 सेमी x 0.5 सेमी, बाएं कान के 1.5 सेमी नीचे ।
5. थायरॉयड उपास्थि के ठीक नीचे बाईं ओर गर्दन पर 2 सेमी x 1 सेमी का कटा घाव।
6. जबड़ा के समकोण पर 2 सेमी x 0.5 सेमी का कटा घाव।
7. जबड़ा के समकोण के निचले पहलू पर 3 सेमी x 0.5 सेमी का कटा घाव।
8. कटा घाव गर्दन के दाईं ओर 5 सेमी x 2 सेमी, थायरॉयड उपास्थि के ठीक पार्श्व में।
9. कटा घाव जबड़ा के समकोण से 2 सेमी x 1 सेमी, 1 सेमी नीचे
10. चोट नंबर 8 के ठीक पार्श्व में गर्दन के दाईं ओर 3 सेमी x 2 सेमी कटा घाव
11. चोट नंबर 8 के ठीक नीचे 3 सेमी x 1 सेमी कटा घाव
12. चोट नंबर 11 के ठीक नीचे 1 सेमी x 0.5 सेमी कटा घाव
13. गर्दन के दाईं ओर 1 सेमी x 0.5 सेमी, दाएं कान के नीचे 8 सेमी कटा घाव
14. दाहिनी ओर गर्दन पर 2 सेमी x 1 सेमी, दाहिने कान के नीचे 9 सेमी कटा घाव
15. कटा घाव दाहिनी ओर छाती पर 2 सेमी x 1 सेमी, दाएं निप्पल से 10 सेमी नीचे
16. कटा घाव 7 सेमी x 4 सेमी गुहा गहरी, ओमेंटम और छोटी आंत का हिस्सा घाव के बाहर निकाल रहा है, जो पेट के दाईं ओर गर्भनाल के पार्श्व में 5 सेमी पार्श्व मे है।
17. कटा घाव 2 सेमी x 1 सेमी, चोट नंबर 16 से 7 सेमी नीचे।
18.पेट के बाईं ओर 14 सेमी x 4 सेमी के क्षेत्र में कई कटे घाव
19. कटा घाव दाहिने हाथ के पामर पहलू पर 8 सेमी x 1 सेमी गहरा
20. कटा घाव दाहिने घुटने के ऊपर 3 सेमी x 1 सेमी
21. कटा घाव बाएं कूल्हे के पार्श्व पहलू पर 3 सेमी x 0.5 सेमी।
22. कटा घाव 2 सेमी x 0.5 सेमी, चोट संख्या 21 के 5 सेमी पीछे।
23. कटा घाव बाएं घुटने के ऊपर बाईं जांघ के पार्श्व पहलू पर 5 सेमी x 2 सेमी
24. कटा घाव 2 सेमी x 1 सेमी, चोट संख्या 23 के 3 सेमी पीछे।
25. कटा घाव बाएं टखने के पार्श्व पहलू पर 2 सेमी x 1 सेमी

6. इस मामले के जांच अधिकारी, स्टेशन हाउस ऑफिसर गणेश दत्त जोशी

अनुवादित

(पी.डब्ल्यू.-8) घटना स्थल पर पहुंचे और घटनास्थल से खून से सनी मिट्टी, सादी मिट्टी, एक चादर और खून से सने कपड़े प्रदर्श क-3 के माध्यम से एकत्र किए।

7. दिनांक 10.02.2010 को आरोपी व्यक्तियों की गिरफ्तारी के बाद एसएचओ गणेश दत्त जोशी (पी.डब्ल्यू.-8) नामजद अभियुक्तों-राम किशोर एवं रमा देवी के घर आए, जहां से अभियुक्त राम किशोर की निशानदेही पर एक चाकू बरामद किया गया। पूछताछ में राम किशोर ने बताया कि मृतक धर्मपाल पर उक्त चाकू से वार उसने ही किया था। दूसरे आरोपी रमा देवी की निशानदेही पर एक और चाकू बरामद किया गया है, जिसे अन्न भंडार के नीचे रखा गया था। पूछताछ में रमा देवी ने भी बताया कि उसने मृतक पर उक्त चाकू से वार किया था। पुलिस ने दोनों चाकू को मारपीट के हथियार यानी आला कत्ल (प्रदर्श-क-11) के रूप में कब्जे मे लिया है।

8. अंततः जांच, दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 12 के अनुसार समाप्त हुई और आरोपी-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध 21 फरवरी, 2010 (प्रदर्श क-13) को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। दिनांक 21 फरवरी, 2010 का आरोप पत्र प्रस्तुत करने पर, संबंधित मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया, जिसमें 24 जनवरी, 2011 को अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 302/34 आईपीसी के अंतर्गत आरोप विरचित किए। आरोपी-अपीलकर्ताओं को आरोप पढ़े गए, जिन्होंने उनसे इनकार किया और विचारण की मांग की।

9. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के खिलाफ लगाए गए आरोप को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्यों पर भरोसा किया है, जो विधिवत साबित हुए और परिणामस्वरूप प्रदर्श के रूप में चिह्नित किए गए।

"9.2.2010 की लिखित रिपोर्ट को प्रदर्श क-1 के रूप में चिह्नित किया गया है; दिनांक 9.2.2010 की एफआईआर को प्रदर्श क-14 के रूप में चिह्नित किया गया है; दिनांक 10.2.2010 के नक्शा नज़री को प्रदर्श क-12 के रूप में चिह्नित किया गया है; रक्त से सनी हुई और सादी मिट्टी के रिकवरी मेमो दिनांक 10.2.2010 को प्रदर्श क-3 के रूप में चिह्नित किया गया है; दो चाकुओं के रिकवरी मेमो दिनांक 10.2.2010 को प्रदर्श क-11 के रूप में चिह्नित किया गया है; दिनांक 10.2.2010 की पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रदर्श क-4 के रूप में चिह्नित किया गया है; पंचायतनामा दिनांक 10.2.2010 को प्रदर्श क-5 के रूप में चिह्नित किया गया है; दिनांक 21.2.2010 के आरोप पत्र को प्रदर्श क-13 के रूप में चिह्नित किया गया है और दिनांक 21.2.2010 की फोरेंसिक साइंस लैब रिपोर्ट को प्रदर्श क-19 के रूप में चिह्नित किया गया है।

10. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों का मौखिक साक्ष्य भी दिया है: -

"पी.डब्ल्यू.-1/सूचनादाता, अर्थात्, प्रीतम सिंह; पी.डब्ल्यू.-2, अर्थात् जगन सिंह; पी.डब्ल्यू.-3, अर्थात् प्रेम सिंह; पी.डब्ल्यू.-4, अर्थात् जमुना देवी, मृतक की पत्नी, पी.डब्ल्यू.-5, अर्थात्, डॉ. आर.के.शर्मा,

अनुवादित

जिन्होंने मृतक का पोस्टमार्टम किया; पी.डब्ल्यू.-6, अर्थात् महेंद्र सिंह, पी.डब्ल्यू.-7 एसआई, सुरेश चंद्र शर्मा, जिन्होंने पंचायतनामा तैयार किया और शव को सील किया; पी.डब्ल्यू.-8 एसएचओ गणेश दत्त जोशी, जांच अधिकारी।

11. मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्र और प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं का सीआरपीसी की धारा 313 के अंतर्गत उनका बयान किया गया। आरोपी-अपीलकर्ताओं ने अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान गलत होने की बात कही है। उन्हें परोक्ष उद्देश्य के कारण वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। आरोपी-अपीलकर्ता राम किशोर ने कहा है कि उसकी पत्नी रमा देवी और उनके बीच 2 साल पहले विवाद हुआ था और उक्त विवाद के कारण, वह अपना घर छोड़कर अपने मायके चली गई। आरोपी-अपीलकर्ता भी अपने काम के सिलसिले में बाहर रहता था। घटना के समय वह अपने घर में नहीं रह रहा था। अभियुक्त-अपीलार्थी ने आगे कहा है कि चूंकि मृतक धर्मपाल एक दबंग, झगड़ालू और गुस्सैल आदमी था, इसलिए उसका गांव के कई लोगों से विवाद था, हालांकि मृतक धर्मपाल से उसका कोई विवाद नहीं था। उसने अपनी पत्नी रमा देवी और मृतक धर्मपाल के बीच अवैध संबंधों से भी इनकार किया है। उन्होंने आगे कहा है कि चूंकि मृतक धर्मपाल का विभिन्न व्यक्तियों से विवाद था, इसलिए किसी और ने मृतक धर्मपाल की हत्या कर दी और उसके घर का दरवाजा तोड़कर उसके शव को उसके घर में रख दिया क्योंकि वह बंद था। आरोपी-अपीलकर्ताओं ने कहा है कि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है और उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है और उक्त तर्क के समर्थन में, बचाव पक्ष ने झंडू सिंह (डीडब्ल्यू-1) को पेश किया है, जो आरोपी-अपीलकर्ताओं का पड़ोसी है।

12. ट्रायल कोर्ट ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि पीडब्ल्यू-6 महेंद्र सिंह घटना का चश्मदीद गवाह है। उनकी जिरह में उनकी विश्वसनीयता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। पी.डब्ल्यू.-6 के बयान की पुष्टि मृतक की पोस्टमार्टम रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) से भी होती है, जिसमें चाकू के 25 कटे घाव हैं, जिन्हें घटना के समय आना संभव बताया गया है। अभियुक्त की निशानदेही पर हमले के हथियार की बरामदगी, साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत पूरी तरह से विश्वसनीय है। आरोपी-अपीलकर्ताओं ने बरामद चाकुओं से मृतक की हत्या करना स्वीकार किया है। अभियुक्त-अपीलकर्ता साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 के सबूत के बोझ का निर्वहन नहीं कर सके क्योंकि उनके घर में शव पाया गया था, जिसे गवाहों ने देखा था। उपरोक्त निष्कर्ष को दर्ज करने के बाद, ट्रायल कोर्ट ने माना है कि मृतक की हत्या अभियुक्त-अपीलकर्ताओं द्वारा छुरा घोंपकर की गई है और यह घटना आरोपी-अपीलकर्ताओं के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नहीं की जा सकती है। ट्रायल कोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष आईपीसी की धारा 302 के अंतर्गत आरोपी-अपीलकर्ताओं के अपराध

अनुवादित

को उचित संदेह से परे साबित करने में सफल रहा है और तदनुसार आरोपी-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है और उन्हें जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई है। दोषसिद्धि के इस फैसले के विरुद्ध यह दोनों अपीलें योजित की गई है।

13. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष के अधिकांश गवाह पक्षद्रोही हो गए हैं, इसलिए, अभियोजन पक्ष के मामले के कोई आधार नहीं है। आगे तर्क यह है कि चूंकि अभियोजन पक्ष प्रकाश के स्रोत को साबित करने में सफल नहीं रहा है, अतः अभियोजन पक्ष के गवाहों का साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है। अगला तर्क यह है कि आला कत्ल (दो चाकू) की बरामदगी में हेरफेर किया गया है, इसलिए उनकी बरामदगी संदिग्ध है, क्योंकि जगन सिंह, जो आला कत्ल (दो चाकू) की बरामदगी के गवाह हैं, ने रिकवरी मेमो का समर्थन नहीं किया है। उक्त रिकवरी मेमो के समर्थन में रिकवरी के अन्य गवाहों को पेश नहीं किया गया है। यह आगे तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष के अनुसार, पीडब्ल्यू-6 के बयान में असंगति है, जो एक स्टार गवाह है। आरोपी-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि पीडब्ल्यू-6 ने अपने बयान में कहा है कि घटना के समय, वह अगले दिन काम के लिए अपनी सेवाएं देने के लिए क्रॉस-रोड (तिराहा) पर खड़ा था, लेकिन कोई आया ही नहीं। आमतौर पर और समान्यतः मजदूर सुबह जल्दी मोड (चौराहा) या किसी विशेष स्थान पर श्रम कार्य करने के लिए खड़े होते हैं और शाम को नहीं और यदि किसी व्यक्ति को अगले दिन के लिए भी श्रम कार्य करवाना होता है, तो वह शाम को काम खत्म होने के बाद उसी दिन मजदूर को सूचित करता है। इसलिए, न केवल घटना स्थल पर पीडब्ल्यू-6 की उपस्थिति संदिग्ध है, बल्कि उसका बयान भी विश्वसनीय नहीं है। इसके बाद उनका तर्क है कि दोनों आरोपी-अपीलकर्ता राम किशोर और रमा देवी ने कथित अपराध नहीं किया है। पति और पत्नी यानी राम किशोर और रमा देवी के बीच विवादों के कारण, आरोपी-अपीलकर्ता रमा देवी ने घटना से दो साल पहले अपने मायके में रहना शुरू कर दिया था और आरोपी-अपीलकर्ता राम किशोर भी नौकरी/काम करने के लिए बाहर रहने लगे थे और घटना के समय उनका घर बंद था क्योंकि दोनों आरोपी-अपीलकर्ता बाहर रहते थे। इस तथ्य का समर्थन डीडब्ल्यू-1 ने भी अपने बयान में किया है।

14. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया है कि हालांकि अभियोजन पक्ष के अधिकांश गवाह पक्षद्रोही हो गए हैं, लेकिन स्टार गवाह यानी पीडब्ल्यू-6 का साक्ष्य सुसंगत और विश्वसनीय है, और यह कि आरोपी-अपीलकर्ताओं के लिए अपराध कारित करने का निश्चित मकसद था। विद्वान ए.जी.ए. का आग्रह है कि इन परिस्थितियों में, निचली अदालत द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता को दी गई दोषसिद्धि और सजा में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

अग्रिम दिन

15. हमने पक्षकारों के लिए विद्वान वकीलों द्वारा दिये संबंधित तर्कों की जांच की है और निचली अदालत के रिकॉर्ड सहित वर्तमान अपील के रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

16. इस अपील में जिस एकमात्र प्रश्न को संबोधित करने और निर्धारित करने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या ट्रायल कोर्ट द्वारा अपराध का निष्कर्ष निकाला गया है और दी गई सजा कानून की नजर में विधिपूर्ण और टिकाऊ है और इसमें कोई दुर्बलता और विकृति नहीं है।

18. पी.डब्ल्यू.-1, जिसने एफआईआर दर्ज की है, पक्षद्रोही हो गया है। पी.डब्ल्यू.-1 मृतक का भाई है, जिसने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि उसे नहीं पता कि मृतक की हत्या किसने और कैसे की। आरोपी-अपीलकर्ताओं की उसके भाई की हत्या में कोई भूमिका नहीं है। उसने अपने भाई धर्मपाल की हत्या के संबंध में कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई थी, न ही मदनपाल द्वारा कोई लिखित रिपोर्ट लिखवाई थी। वह घटना वाले दिन चौराहे पर मौजूद नहीं थे। उसे अपने भाई की हत्या की जानकारी गांव के लोगों से मिली। उन्होंने जांच के दौरान सीआरपीसी की धारा 161 के अंतर्गत दर्ज अपने बयान का समर्थन नहीं किया है। उन्होंने इस आरोप से इनकार किया है कि आरोपियों ने उनके भाई की हत्या की है। पी.डब्ल्यू.-1 को इस प्रकार पक्षद्रोही घोषित किया गया है।

19. अभियोजन पक्ष ने श्री बाबूराम (पी.डब्ल्यू.-2) के पुत्र जगन सिंह का साक्ष्य भी पेश किया है, और वो भी पक्षद्रोही हो गया है और उसने कहा है कि उसे रमा देवी और धर्मपाल के संबंधों के बारे में कोई जानकारी नहीं है। उसने आगे कहा कि उसे नहीं पता कि धर्मपाल की मृत्यु कैसे हुई, क्योंकि वह उस मनहूस दिन दूसरे गांव गया हुआ था। उन्होंने सीआरपीसी की धारा 161 के अंतर्गत दर्ज अपने बयान का समर्थन नहीं किया है। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि पुलिस ने उनकी मौजूदगी में चाकू (आला कत्ल) बरामद किया था।

20. पी.डब्ल्यू.-3 को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया है। पीडब्ल्यू-4 अर्थात मृतक की पत्नी जमुना देवी ने बताया है कि उसकी शादी तीन साल पहले मृतक से हुई थी। उसे अपने पति धर्मपाल और आरोपी अपीलकर्ता-रमा देवी के बीच संबंधों के बारे में नहीं पता था। लेकिन अपनी जिरह में उसने कहा है कि घटना की तारीख को वह अपने मायके चाहापुरा गई थी। उसके देवर प्रीतम सिंह ने उसे उसके पति की हत्या की जानकारी दी। उसके पति धर्मपाल और आरोपी-अपीलकर्ता राम किशोर की आपस में कोई दुश्मनी नहीं थी। उसे बहुत जल्दी गुस्सा आ जाता था और अक्सर गांव के लोगों से झगड़ा करता था।

21. डॉ. आर. के. शर्मा, जिन्होंने पोस्टमार्टम किया है, को पी.डब्ल्यू.-5 के रूप में पेश किया गया है और उन्होने पोस्टमार्टम रिपोर्ट को सिद्ध किया है, और कहा कि पोस्टमार्टम उनके द्वारा किया गया था और उन्होंने मृत्यु का कारण एंटी मॉर्टम चोटों से अत्यधिक रक्तस्राव के कारण हुआ सदमा, पाया था। जिरह में

अनुवादित

उन्होंने विशेष रूप से कहा है कि मृतक का स्वर रज्जु कट गया था, यह स्वर रज्जु वह होता है, जिससे मुंह से आवाज निकलती है। उन्होंने आगे कहा कि चोट नंबर 4 से 14 से किसी व्यक्ति का तुरंत मरना संभव है क्योंकि इन घावों से बहुत सारा खून बहा होगा।

22. पी.डब्ल्यू.-6, अर्थात् मृतक के भाई महेंद्र सिंह ने बताया कि रमा देवी, राम किशोर की पत्नी है। मृतक धर्मपाल के रमा देवी से अवैध संबंध थे। राम किशोर को इस बात पर धर्मपाल से द्वेष हुआ करता था और वे बात नहीं करते थे। घटना के दिन वह अपने भाई प्रीतम सिंह, जगन सिंह और प्रेम सिंह के साथ जगन सिंह के घर के पीछे चौराहे पर खड़े थे और आपस में बात कर रहे थे। उसका भाई धर्मपाल उत्तर दिशा से दुकान से सामान ला रहा था। धर्मपाल, राम किशोर के घर के सामने पहुंचे तो आरोपियों ने उन्हें घर के अंदर बुलाया और दरवाजा बंद कर दिया। उस समय शाम के 7:30 बज रहे थे। राम किशोर के घर से धर्मपाल की आवाज सुनाई दी कि उसे बचा लो। चारों लोग राम किशोर के मुख्य दरवाजे की ओर भागे और दरवाजे के छेद से देखा कि राम किशोर और रमा देवी धर्मपाल पर चाकुओं से हमला कर रहे हैं; कमरे के अंदर दीपक जल रहा था; दरवाजे के छेद से दीपक की रोशनी में घटना साफ दिखाई दे रही थी। दोनों आरोपियों के पास चाकू थे। उन्होंने आगे कहा है कि उन्होंने दरवाजा तोड़कर घर के अंदर प्रवेश किया। राम किशोर और उनकी पत्नी रमा देवी घर के उत्तर में कमरे से बाहर आ रहे थे, धर्मपाल चोटों के कारण कराह रहे थे। धर्मपाल ने उन्हें बताया कि आरोपी-अपीलकर्ता ने उसे चाकुओं से मारा था और वह बच नहीं पाएगा और यह कहते हुए कि उसकी मृत्यु हो गई। जब वे धर्मपाल से बात कर रहे थे, तभी आरोपी व्यक्ति भाग गए।

23. जिरह में इस गवाह ने बताया कि मृतक धर्मपाल का रमा देवी से कोई अवैध संबंध नहीं था। इस घटना से करीब दो साल पहले धर्मपाल, राम किशोर के घर जाया करते थे। धर्मपाल के घर राम किशोर भी आया करता था। दोनों साथ बैठकर खाना खाते थे। घटना से पहले तक उनके बीच संबंध सामान्य थे। उन्होंने आगे कहा कि इस घटना से दो साल पहले, दोनों के बीच विवाद हुआ था, लेकिन वह यह बताने में असमर्थ थे कि विवाद कब हुआ था। उन्होंने यह भी कहा कि घटना से दो साल पहले, रमा देवी अपने मायके गई थीं। घटना के दिन, वे अगले दिन के लिए काम पाने के लिए मोड (तिराहा) पर खड़े थे। धर्मपाल दुकान से सामान लेकर आगे बढ़ा तो रास्ते में राम किशोर का घर पड़ा था, इसलिए वह अपने घर चला गया। आरोपी के घर में घुसते ही दो-तीन मिनट में धर्मपला की चीखें सुनाई देने लगीं। चीख सुनकर वे तुरंत राम किशोर के घर गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने दरवाज़े के पीप-होल से देखा; उन्होंने शोर मचाया लेकिन दरवाजा नहीं खुला। वह दीवार फांदकर घर के अंदर पहुंचा और अंदर से दरवाजा खोला और फिर प्रीतम, जगन और प्रेम सिंह नाम के अन्य व्यक्ति घर

अनुवादित

के अंदर आ सके। उन्होंने विशेष रूप से कहा है कि चाकू शव के पास पड़े थे।

24. पी.डब्ल्यू.-7 एसआई सुरेश चंद्र शर्मा, जिन्होंने पंचायतनामा तैयार किया है और मृतक के शव को सील कर पोस्टमार्टम के लिए भेजा है, ने कहा है कि 10.2.2010 को उन्हें एसओ गणेश दत्त जोशी और अन्य पुलिस कर्मियों के साथ आरोपी-अपीलकर्ताओं यानी राम किशोर के घर पर घटना स्थल पर ले जाया गया था। आरोपी व्यक्ति अपने घर के कमरे के अंदर चले गए। आरोपी राम किशोर खुद चारपाई के ऊपर चढ़ गया और भंडारण शेल्फ (टांड) से खून से सना चाकू निकाला। बताया कि इसी चाकू से धर्मपाल की हत्या उसने की थी और आरोपी रमा देवी ने घर में रखा एक चाकू, जिस पर खून लगा था, उसे यह कहते हुए दिया कि उसने इसी चाकू से धर्मपाल की हत्या की है। दोनों चाकुओं को पुलिस ने अलग-अलग कपड़ों में सिलवाकर अपने कब्जे में ले लिया। उन्होंने आगे कहा है कि वे रात में 10:00 बजे घटना स्थल पर पहुंचे और उन्होंने सुबह पंचायतनामा बनाया। उन्होंने रात में घटना की जगह की तलाशी नहीं ली क्योंकि वहाँ अंधेरा था और उनके पास केवल टॉर्च थीं।

25. पी.डब्ल्यू.-8, एसआई गणेश दत्त जोशी, एसएचओ, पीएस केमरी, जिला रामपुर, जिन्होंने नकल तहरीर हिंदी, नकल रपत कायमी दर्ज की है और सीडी में सूचनादाता प्रीतम सिंह का बयान भी दर्ज किया है, उन्होंने कहा कि वह अन्य पुलिस कर्मियों के साथ आरोपी-अपीलकर्ताओं को घटना स्थल यानी उनके घर ले गए और घर के सामने जीप को रोकने के बाद, आरोपी राम किशोर चारपाई पर चढ़ गए और 17-15 बजे स्टोरेज शेल्फ (टांड) से चाकू निकाला और हत्या में इस्तेमाल होने के बारे मे बताया।

26. रिकॉर्ड पर लाए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच और मूल्यांकन करने पर, हम पाते हैं कि पीडब्ल्यू -6 की गवाही को छोड़कर, जिसे स्टार अभियोजन गवाह कहा गया है, अभियोजन पक्ष के अधिकांश गवाह, विचारण के स्तर पर पक्षद्रोही हो गए हैं और उसके एवं अन्य साक्ष्यों पर भरोसा करते हुए, ट्रायल कोर्ट ने आरोपी-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है।

27. ऊपर संदर्भित पी.डब्ल्यू.-6 के बयान की सावधानीपूर्वक जांच करने पर, हम पाते हैं कि पी.डब्ल्यू.-6 के बयान में महत्वपूर्ण विरोधाभास और असंगति है। अपनी मुख्य परीक्षा में उन्होंने कहा है कि मृतक धर्मपाल के अभियुक्त-अपीलकर्ता-रमा देवी के साथ अवैध संबंध थे, जिसके कारण उनके पति राम किशोर (आरोपी-अपीलकर्ता) धर्मपाल से द्वेष रखते थे और वे एक-दूसरे से बात नहीं करते थे, जबकि अपनी जिरह में उन्होंने कहा है कि मृतक धर्मपाल का रमा देवी के साथ कोई अवैध संबंध नहीं था। घटना से पहले तक इन दोनों के बीच संबंध मधुर थे। उन्होंने आगे कहा है कि इस घटना से दो साल पहले मृतक और आरोपी राम किशोर के बीच विवाद हुआ था। उन्होंने यह भी कहा है कि घटना से दो साल पहले, रमा देवी अपने मायके गई थी, जिसका अर्थ है कि घटना के समय आरोपी रमा देवी घटना स्थल पर मौजूद नहीं

अनुवादित

थी। उन्होंने आगे कहा कि जब वह अन्य लोगों के साथ घटना स्थल पर पहुंचे तो उन्होंने दरवाजे के पीप-होल से देखा कि राम किशोर और रमा देवी धर्मपाल को चाकुओं से वार कर रहे थे, कमरे के अंदर दीपक था और दरवाजे से दीपक की रोशनी स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी। दोनों आरोपियों के पास चाकू थे। उन्होंने आगे कहा है कि उन्होंने दरवाजा तोड़कर घर में प्रवेश किया है, जबकि अपनी जिरह में पीडब्लू-6 ने कहा है कि उन्होंने दरवाजे में पीप-होल से देखा, उसके बाद उन्होंने शोर मचाया और जब दरवाजा नहीं खुला तो वह दीवार कूदकर घर के अंदर पहुंचा और अंदर पहुंचने के बाद, उसने अंदर से दरवाजा खोला और फिर प्रीतम, जगन और प्रेम सिंह नाम के अन्य व्यक्ति घर के अंदर आए। हालांकि, पीडब्ल्यू-8 सब इंस्पेक्टर गणेश दत्त जोशी ने अपनी जिरह में कहा है कि जांच के दौरान, पीडब्ल्यू-6 सहित अभियोजन पक्ष के किसी भी गवाह ने उन्हें यह नहीं बताया है कि पीडब्ल्यू-6 द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ताओं का दरवाजा खोलने पर, वे उनके घर में घुस गए। पी.डब्ल्यू.-8 ने यह भी कहा है कि जांच के दौरान, उसने आरोपी-अपीलकर्ताओं के मुख्य द्वार का टूटा हुआ दरवाजा देखा है। अभियोजन पक्ष के गवाहों के उपरोक्त विरोधाभासी बयानों से यह स्पष्ट नहीं है कि कैसे और किस तरीके से, आरोपी-अपीलकर्ताओं के घर के दरवाजे के पीपहोल से घटना को देखने के बाद, पीडब्ल्यू-6 सहित अभियोजन पक्ष के गवाहों ने घर में प्रवेश किया।

28. पी.डब्ल्यू.-6 ने कहा है कि घटना के समय, दीपक की रोशनी में, जो जल रहा था, उसने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं द्वारा अन्य लोगों के साथ दरवाजे के पीप-होल से अपराध को कारित होते देखा, लेकिन जांच अधिकारी ने घटना स्थल से कोई दीपक बरामद नहीं किया है और न ही विचारण के दौरान इसे पेश किया। पीडब्ल्यू-7, उपनिरीक्षक सुरेश चंद्र ने अपनी जिरह में कहा है कि घटना स्थल पर टॉर्च की रोशनी के अलावा प्रकाश का कोई अन्य स्रोत नहीं था। इसलिए, घटना स्थल से किस दीपक के मिलने और बरामद होने के अभाव में, पीडब्ल्यू-6 सहित किसी भी गवाह के लिए अंधेरे में यानी शाम 07.30 बजे हुई घटना को दरवाजे के पीपहोल से देखना असंभव है।

29. पी.डब्ल्यू.-6 ने स्वीकार किया है कि मृतक और आरोपी-अपीलकर्ता रमा देवी (अभियुक्त-अपीलकर्ता राम किशोर की पत्नी) के बीच अवैध संबंध के कारण, वे एक-दूसरे से बात नहीं करते थे। अगर ऐसा था तो आरोपी-अपीलकर्ता राम किशोर मृतक धर्मपाल को अपने घर क्यों बुलाएगा और मृतक उसके घर क्यों जाएगा? घटना की तारीख पर मृतक के लिए अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के पास जाने का क्या अवसर था, यह साक्ष्य से साबित नहीं हुआ है।

30. हालांकि अभियोजन पक्ष ने मृतक की हत्या के मकसद को, मृतक और आरोपी-अपीलकर्ता रमा देवी के बीच अवैध संबंध के रूप में स्थापित करने की कोशिश की है, लेकिन उक्त मकसद अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों से साबित नहीं हुआ है, जिसमें पीडब्ल्यू-6 और रिकॉर्ड पर लाए गए अन्य साक्ष्य शामिल हैं। पीडब्लू-6 ने

अनुवादित

हालांकि कहा है कि मृतक और अभियुक्त-अपीलकर्ता के बीच अवैध संबंध थे, लेकिन प्रति-परीक्षा में पीडब्ल्यू 6 ने कहा है कि मृतक और अभियुक्त-अपीलकर्ता रमा देवी के बीच कोई अवैध संबंध नहीं था। अभियोजन पक्ष के अन्य गवाह पक्षद्रोही हो गए हैं। इसलिए, पीडब्ल्यू -6 के विरोधाभासी बयान एवं वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर, अभियोजन पक्ष अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के खिलाफ मकसद स्थापित करने में विफल रहा है।

31. आरोपी-अपीलकर्ताओं की निशानदेही पर कथित रूप से बरामद दो चाकू यानी आला कत्ल की बरामदगी भी संदिग्ध है। अभियोजन पक्ष यह साबित करने में विफल रहा है कि आरोपी-अपीलकर्ताओं की निशानदेही पर यह बरामदगी कैसे और किस तरीके से की गई है। उपरोक्त के अलावा, जगन सिंह (पीडब्ल्यू -2), जो इस तरह के चाकू (आला कत्ल) की बरामदगी के गवाह हैं, ने रिकवरी मेमो का समर्थन नहीं किया है। अन्यथा भी, रिकवरी मेमो के अन्य गवाहों को परीक्षण के दौरान पेश नहीं किया गया है। दिलचस्प बात यह है कि पीडब्लू-6 ने कहा है कि धर्मपाल के शरीर के पास चाकू पड़े थे। यह आश्चर्य की बात है कि जब मृतक धर्मपाल के शव के पास चाकू पहले से ही मौजूद थे, तो अभियोजन पक्ष यह दावा कैसे कर सकता था कि आरोपी-अपीलकर्ताओं की अलग-अलग निशानदेही पर चाकू (आला कत्ल) बरामद किए गए थे। इस प्रकार रिकवरी मेमो विश्वसनीय नहीं है।

32. ट्रायल कोर्ट ने हालांकि पीडब्ल्यू-6 की गवाही का उल्लेख किया है और बरमादगी पर भरोसा किया है, लेकिन उस संबंध में रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों की सावधानीपूर्वक जांच नहीं की गई है। हम मानते हैं कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी-अपीलकर्ताओं के अपराध को स्थापित करने में सफल नहीं रहा है। वर्तमान मामले के तथ्यों में आरोपी-अपीलकर्ता स्पष्ट रूप से संदेह के लाभ के हकदार हैं।

33. नतीजतन, दोनों अपीलें सफल होती हैं और स्वीकृत की जाती है। आरोपी अपीलकर्ताओं के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या-172/2010 से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या-193/2010 (राज्य बनाम राम किशोर व अन्य) में अपर सत्र न्यायाधीश,कक्ष संख्या-1, रामपुर द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं आदेश दिनक 14.8.2013 को निरस्त किया जाता है। आरोपी-अपीलकर्ताओं को संदेह के लाभ का हकदार माना जाता है।

34. आरोपी-अपीलकर्ताओं, अर्थात्, रमा देवी और राम किशोर, जिन्हें क्रमशः 14 अगस्त, 2013 और 10.02.2010 से जेल में बताया गया है, को तुरंत रिहा कर दिया जाएगा, जब तक कि वह धारा 437-ए सीआरपीसी के अनुपालन मे किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

35. इस निर्णय की एक प्रति मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रामपुर को तत्काल भेजी जाए, जो इस निर्णय के संदर्भ में अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की रिहाई के लिए संबंधित जेल अधीक्षक को प्रेषित करेंगे।

अनुवादित

(2023) 2 ILRA 551

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकः 27.01.2023 इलाहाबाद

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आपराधिक अपील संख्या 6192/2011

संलग्न

आपराधिक अपील संख्या 5681 /2011

लाल जीत एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता : श्री सुरेश सिंह यादव, श्री कुलदीप जौहरी, श्री अंकुर सिंह कुशवाहा (न्यायमित्र)

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376(2)(जी) - सामूहिक बलात्कार - वादी, लगभग 7 वर्षीय पीड़िता के पिता ने प्राथमिकी दर्ज कराई, जिसमें आरोप लगाया गया कि उनकी बेटी, कक्षा तीन की छात्रा, लगभग 7 बजे घर के बाहर खेल रही थी जब तीन आरोपी गुटखा लाने के बहाने उसे नाले में ले गए और उसके साथ जबरन बलात्कार किया - आयोजित - पीड़िता ने बयान दिया कि तीनों आरोपियों ने उसके साथ बुरा काम किया - उन्होंने उसके अंडरवियर उतार दिए और उसके पैरों को चाटा - घटना के समय पीड़िता केवल 7 साल की थी और मेडिकल रिपोर्ट और सबूतों से उसकी गवाही की पुष्टि हुई है - यह देखते हुए कि यह 7 साल की बच्ची के साथ तीन लोगों द्वारा सामूहिक बलात्कार का मामला था, न्यायालय का मानना था कि विचारणीय न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास एवं प्रत्येक को 10,000/- रुपए जुर्माने की सजा सुनना उचित था- पीड़िता, एक युवा अविवाहित लड़की, उम्र लगभग 19 वर्ष और आरोपी पड़ोसी गांव के निवासी थे, न्यायालय का मानना था कि उन्हें रिहा करने से पीड़िता की सामाजिक और व्यक्तिगत सुरक्षा को गंभीर खतरा हो सकता है - विचारणीय न्यायालय द्वारा पूर्व आरोपित सजा को कम करने के लिए कोई परिस्थिति नहीं हैं । (पैरा 60, 61, 63)

निरस्त। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बबले बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, एआईआर 2012 एससी 2621
2. जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009) 9 एससीसी 719
3. भगवान जगन्नाथ मारकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537
4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मनोज कुमार पांडे, एआईआर 2009 एससी 711
5. संतोष मूल बनाम कर्नाटक राज्य, (2010) 5 एससीसी 445
6. मुकेश बनाम दिल्ली राज्य एवं अन्य, एआईआर 2017 एससी 2161

अनुवादित

7. मुंशी प्रसाद बनाम बिहार राज्य, 2002 (1) जेआईसी 186 (एससी)

8. सुदीप कुमार सेन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2016) 3 एससीसी 26

9. जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2009 (1) सुप्रीम 224

10. सैयद इब्राहिम बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 2006 एससी 2908

11. अवतार सिंह बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2013 एससी 286

12. सुच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2003) 7 एससीसी 643

13. भगवान सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2002 (44) एसीसी 1112 (एससी)

14. श्यामला घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 2012 एससी 3539,

15. अमित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2012 एससी 1433

16. हुकुम सिंह बनाम राजस्थान राज्य, 2000 (41) ए.सी.सी 662 (एससी)

17. साधु शरण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2016) 4 एससीसी 357

18. अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य, 2008 (61) एसीसी 972 (एससी)

19. नंद कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2015) 1 एससीसी 776

20. रोहताश कुमार बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 14एससीसी 434

21. संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 6 एससीसी 107

22. हुकुम सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य, 2001 सीआरएलजे 511 (एससी)

23. छोटन्नी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2009 एससी 2013

24. गंगाधर बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य, (2002) 8एससीसी 381

25. राजा बनाम कर्नाटक राज्य, (2016) 10 एससीसी 506

26. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम छोटेलाल, एआईआर 2011 एससी 697

27. गंगा सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 2013 एससी 3008

28. टी.एन. बनाम रवि @ नेहरू, 2006 (55) एसीसी 1005 (एससी)

29. बैजनाथ सिंह बनाम बिहार राज्य, 2010 (70) एसीसी 11 (एससी)

30. उत्पल दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 2010 एससी 1894

31. विष्णु @ उंद्र्या बनाम महाराष्ट्र राज्य., (2006) 15 एससीसी 283

32. सोलंकी चिमनभाई उकाभाई बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1983 एससी 484

33. गोपाल कृष्ण बनाम पंजाब राज्य, (2003) एससीसी ऑनलाइन 280 (पी एंड एच)

34. कृष्ण लाल बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 1980 एससी 1252

35. हिमाचल प्रदेश बनाम आशाराम, एआईआर 2006 एससी 381-

36. पंजाब राज्य बनाम गुरमित सिंह, (1996) 2 एससीसी 384

37. पंजाब राज्य बनाम रामदेव सिंह, एआईआर 2004 एससी 1290

38. भूरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) एससीसी ऑनलाइन (ऑल) 151

अनुवादित

39. थोंगम तरूण सिंह बनाम मणिपुर राज्य, (2019) 18 एससीसी 77

40. मनोज मिश्र उर्फ छोटकऊ बनाम उ0प्र0 राज्य (आपराधिक अपील संख्या 1167 /2021 (एसएलपी (सीआरआई) संख्या 7828 /2019 से उत्पन्न)

41. बावो @ मनुभाई अंबालाल ठाकोर बनाम गुजरात राज्य, (2012) 2 एससीसी 684

42. राजेंद्र दत्त ज़रेकर बनाम गोवा राज्य, (2007) 14 एससीसी 560

43. दिनेश @ बुद्धा बनाम राजस्थान राज्य., (2006) 3 एससीसी 771

44. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नौशाद, एआईआर 2014 एससी 384

45. श्याम नारायण बनाम राज्य, दिल्ली, एआईआर 2013 एससी 2209

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. इन अपीलों को अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 4, पीलीभीत द्वारा अपराध संख्या 1051/2010 अंतर्गत धारा 376 (2) (जी) भा0दं0सं0, थाना नेवरिया, जिला पीलीभीत में अभियुक्त अपीलकर्ता के खिलाफ पारित दोषसिद्धि और सजा के आदेश दिनांकित 28.08.2011 के खिलाफ दायर किया गया है, जिसके तहत आरोपी अपीलकर्ताओं को धारा 376 (2) (जी) भा0दं0सं0 के तहत दोषी ठहराया गया था और उन्हें आजीवन कारावास और प्रत्येक को 10000/- रुपये की सजा सुनाई गई थी, और जुर्माना अदा न करने की स्थिति में उन्हें एक वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतने की सजा सुनाई गई थी।

2. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान न्यायमित्र श्री कुलदीप जौहरी और श्री अंकुर सिंह कुशवाहा, राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया।

3. सीजेएम की रिपोर्ट दिनांक 11.05.2022 और कार्यालय रिपोर्ट दिनांक 17.11.2022 के अनुसार शुरू में अभियुक्त-अपीलकर्ता, लाल जीत की मृत्यु हो गई है, इसलिए, जहां तक लालजीत का संबंध है, अपील समाप्त हो गई है।

4. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि लगभग 7 साल की पीड़िता के पिता तेज राम ने थाना नेवरिया, जिला पीलीभीत में एफआईआर दर्ज कराई, जिसमें आरोप लगाया गया कि 30.09.2010 को उसकी बेटी, प्राथमिक विद्यालय टंडोला में कक्षा-तीन की छात्रा, शाम लगभग 7 बजे घर के बाहर खेल रही थी, जब लाल जीत, पुत्र बुध सेन, पड़ोस के गांव हिम्मत नगर @ चिरैंदापुर निवासी होरी लाल पुत्र तेज बहादुर और चिंटू पुत्र काली चरण गुटखा लाने के बहाने गांव के पूर्व में स्थित नाले में ले गए और उसके साथ जबरन दुष्कर्म किया। काफी देर तक पीड़िता वापस नहीं लौटी, उसके माता-पिता अन्य ग्रामीणों के साथ मशाल लेकर खोजबीन करने गए, और नाले के किनारे से पीड़िता की चीख सुनाई दी, तभी सूचनाकर्ता, उसकी पत्नी तारावती, उसका बड़ा भाई रामपाल, छोटा भाई प्रेम

अनुवादित

पाल और कई अन्य गांव वाले वहां पहुंचे तो देखा कि लालजीत और चिंटू उसकी बेटी को पकड़ रहे थे और तेज बहादुर उसके साथ बुरा काम कर रहा था। उन्हें देखकर तीनों आरोपी पीड़ित को खून से लथपथ छोड़कर भाग गए। सुबह तीनों को फिर गांव में देखा गया। गांव वाले बहुत आक्रोशित और उत्तेजित हुए, उन्होंने उन्हें पकड़ लिया। पीड़िता को रात में इलाज के लिए पीलीभीत के कुसुम अस्पताल ले जाया गया। सुविधाओं के अभाव में वे थाने नहीं जा सके और उसके बाद लड़की और आरोपी को थाने ले आए। सूचनाकर्ता ने रिपोर्ट दर्ज कर आवश्यक कार्रवाई करने का अनुरोध किया।

5. लिखित शिकायत के आधार पर तीनों आरोपियों के खिलाफ भा0दं0सं0 की धारा 376 के तहत 2010 का अपराध संख्या 1051 दर्ज किया गया था। विवेचना अधिकारी (आईओ) ने विवेचना शुरू की, गवाहों के बयान दर्ज किए। पीड़िता की मेडिकल विवेचना की गई, एक्स-रे किया गया और पूरक मेडिकल रिपोर्ट तैयार की गई। शिकायतकर्ता के साथ घटनास्थल का दौरा करने पर एक नक्शा तैयार किया गया और आरोपी की शर्ट और अंडरवियर को कब्जे में ले लिया गया और आईओ द्वारा एफएसएल को भेज दिया गया। तीनों अपीलकर्ताओं के खिलाफ पर्याप्त सबूत मिलने पर भा0दं0सं0 की धारा 376 के तहत चार्जशीट न्यायालय में पेश की गई। मामला सत्र न्यायालय को सौंपा गया था जहां से फाइल संबंधित न्यायालय को स्थानांतरित कर दी गई थी।

6. दिनांक 31.01.2011 को आरोपी व्यक्तियों पर भा0दं0सं0 की धारा 376 (2) (जी) के तहत आरोप लगाए गए। उन्होंने आरोप से इनकार किया और मुकदमे का दावा किया।

7. अभियोजन पक्ष ने आरोपों को साबित करने के लिए निम्नलिखित **गवाहों** की विवेचना की:-

(i) पीडब्लू-1, सूचनाकर्ता, तेज राम; (ii) पीडब्लू-2, पीड़ित; (iii) पीडब्लू-3, डा आरके माहेश्वरी; (iv) पीडब्लू-4, कांस्टेबल नेत्रा पाल सिंह; (v) पीडब्ल्यू-5, डॉ महावीर सिंह; (vi) पीडब्ल्यू-6, एसओ, तपेश्वर सागर; (vii) पीडब्ल्यू-7, डा विजय लक्ष्मी।

8. अभियोजन पक्ष ने अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करने के लिए निम्नलिखित **दस्तावेजी सबूत** को प्रस्तुत किया:-

(i) प्रदर्श क-1, लिखित शिकायत; (ii) प्रदर्श क-2, एक्स-रे रिपोर्ट; (iii) प्रदर्श क -3, चिक एफआईआर; (iv) प्रदर्श क -4, फोटोकॉपी जीडी; (v) प्रदर्श क-5, योनि स्लाइड की रिपोर्ट; (vi) प्रदर्श क-6, नक्शा; (vii) प्रदर्श क-7, पीड़ित के अंडरवियर और शर्ट का रिकवरी मेमो और अभियुक्त तेज बहादुर की शर्ट की जेब का ऊपरी कपड़ा; (viii) प्रदर्श क-8, आरोपी व्यक्तियों के खून से सने अंडरवियर का रिकवरी मेमो, जिस पर विवेचना अधिकारी के अनुसार पीड़ित का खून था; (ix) प्रदर्श क-9, आरोप पत्र; (x) प्रदर्श क-10, पीड़ित की चिकित्सा रिपोर्ट; और (xi) प्रदर्श क-11, पीड़ित की पूरक चिकित्सा रिपोर्ट।

अनुवादित

9. परीक्षण के दौरान निम्नलिखित सामग्री प्रदर्शन का उत्पादन किया गया था:

(i) पीड़ित की सामग्री प्रदर्श1, एक्स-रे प्लेट और अंडरवियर;

(ii) सामग्री प्रदर्श2, पीड़ित की शर्ट;

(iii) सामग्री प्रदर्श3, आरोपी व्यक्तियों के अंडरवियर।

10. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के बंद होने के बाद आरोपी व्यक्तियों का बयान दं0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया। सभी आरोपी व्यक्तियों ने मामले और आरोपों से इनकार किया। इसके अलावा आरोपी लालजीत ने बताया कि इस घटना से पहले उसके गांव के सालिग राम और भीमसेन ग्राम प्रधान का चुनाव लड़ चुके हैं। भीमसेन चुनाव जीत गए थे। शिकायतकर्ता और भीमसेन को बुरा लगा। सूचना देने वाले की बेटी को चोट किसी अन्य स्थान पर या किसी अन्य तरीके से लगी थी, लेकिन चुनावी रंजिश के कारण उसे झूठा फंसाया गया है।

11. आरोपी चिंटू ने भी मामले के अभियोजन पक्ष के संस्करण से इनकार किया था और इसके अलावा वही स्पष्टीकरण दिया है। तेज बहादुर ने भी ऐसी ही सफाई दी है। आरोपी अपीलकर्ताओं ने अपने बचाव में कोई सबूत पेश नहीं किया है।

12. गवाहों के साक्ष्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना उचित होगा।

13. पीडब्लू-1 सूचनाकर्ता तेज राम के अनुसार आरोपी व्यक्ति पड़ोसी गांव चरैंदपुर के निवासी हैं। घटना के समय उनकी बेटी लगभग 7 वर्षीय, कक्षा तीन की छात्रा, लगभग 7 बजे घर के बाहर खेल रही थी। गुटखा लाने के बहाने आरोपी उसे गांव के बाहर गंदे नाले में ले गए। तीनों आरोपियों ने पीड़िता के साथ दुष्कर्म किया। जब वह नहीं दिखी तो पीडब्लू-1 और अन्य लोग उसकी तलाशी लेने निकले। उसकी चीख सुनकर वह राम पाल, प्रेम पाल और उसकी पत्नी के साथ नाले के पास पहुंचा। उन्होंने देखा कि तेज बहादुर और लालजीत ने उसे पकड़ रखा था जबकि लालजीत उसके साथ दुष्कर्म कर रहा था। वह खून से लथपथ थी। उन्हें देखकर तीनों आरोपी भाग खड़े हुए। पीडब्लू-1 पीड़ित को अस्पताल ले गया। अगले दिन सुबह तीनों आरोपी फिर से गांव में दिखाई दिए। उसने ग्रामीणों की मदद से उन्हें पकड़ लिया। इसके बाद वे थाने गए। यह रिपोर्ट अमरजीत ने थाने के बाहर लिखी थी। गवाह ने लिखित शिकायत एक्स.ए-1 साबित कर दी है। उन्होंने दीवानजी को शिकायत दी थी जिन्होंने उसी आधार पर एक रिपोर्ट लिखी थी। विवेचना अधिकारी ने थाने में उसका बयान लिया था।

14. जिरह के दौरान गवाह ने सभी आरोपियों को पहचान लिया और सवालों के जवाब में परीक्षा-इन-चीफ के बयान को दोहराया और स्वीकार किया कि उसके सामने आरोपी व्यक्ति उसकी बेटी को गुटखा लेने के लिए नहीं ले गए थे। जब लड़की एक घंटे तक नहीं आई तो वह 10-15 ग्रामीणों के साथ मशाल लेकर उसकी तलाशी लेने निकला, लेकिन बिना लाठी के। जब उसे ले जाया गया तो उसने काली शर्ट और नीली जींस पहन रखी थी। जब वह

अनुवादित

नाले के पास पहुंचा तो उसके रोने की आवाज सुनाई दी। उसकी खून से सनी पैंट और शर्ट वहीं पड़ी थी। लड़की घायल अवस्था में थी। वह थोड़ी देर के लिए होश में रही और फिर बेहोश हो गई। जब वह मौके पर पहुंचे तो तीनों आरोपी भी वहीं थे। उन्होंने उन्हें पकड़ने की कोशिश की लेकिन वे भाग गए। उनकी बेटी लगभग 300 गज की दूरी पर थी जब उन्होंने प्रकाश दिखाया। वे लड़की के पश्चिम में थे। जब पहले टॉर्च जलाई गई तो ये आरोपी व्यक्ति लड़की के पास थे और उसे पकड़ लिया था, लेकिन बाद में रोशनी देखकर फरार हो गए। उनके चेहरे दिखाई दे रहे थे। आरोपी लालजीत और तेज बहादुर की पैंट उतर गई थी और अंडरवियर नीचे खिसक रहा था। वे लड़की को ले जाने की कोशिश कर रहे थे। आरोपी अपनी पैंट लेकर भाग गए थे। वहां पहुंचने के बाद वे लड़की को अस्पताल ले गए जहां उन्हें उसे सरकारी अस्पताल ले जाने की सलाह दी गई। इसके बाद, लड़की को पुलिस स्टेशन ले जाया गया और वहां से सरकारी अस्पताल, नेवरिया ले जाया गया, जहां उन्हें जिला अस्पताल, पीलीभीत रेफर कर दिया गया। उसकी तीन शर्ट लड़की के खून से सनी हुई थी। मुंशी ने कहा था कि जो देना है लिखो। पत्नी की दो साड़ियां खून से सनी हुई थीं। अमर दीप ने उनके हस्ताक्षर लिए थे। उन्होंने यह शिकायत अमर दीप को सुनाई थी, किसी और को नहीं। उसने खून से सनी शर्ट और पत्नी की साड़ियां विवेचना अधिकारी को नहीं दीं लेकिन लड़की के खून से सने कपड़े उसे दे दिए गए। वह सरकारी अस्पताल गए जहां डॉक्टर ने लड़की की बिगड़ती हालत देखकर उसे पीलीभीत के सरकारी अस्पताल में रेफर कर दिया, जहां उसे 13 दिनों के लिए भर्ती कराया गया। दो दिन तक लड़की बेहोश रही, फिर उसे होश आने लगा। सुबह आरोपियों को एक साथ पकड़कर अपने साथ ले जाया गया। लड़की को भर्ती करने के बाद वह गांव नहीं गया और साथ रहने लगा। उनकी बेटी एक खाली जगह पर मिली थी और उसके सामने एक खाई थी। इसके पश्चिम में गंगा राम का बगीचा है। उत्तर एक सड़क है जो संजना तक जाती है। दक्षिण में एक नाला है जो 1.5 मीटर चौड़ा और 1 मीटर गहरा होगा और बरसात के मौसम में बाढ़ आ जाती है। उस समय धान की कटाई की जाती थी। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि ग्राम प्रधान चुनाव की दुश्मनी के कारण उसे बुरा लगा और उसने आरोपियों को झूठा फंसाया है। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उनकी बेटी को कहीं और और किसी अन्य तरीके से चोट लगी थी। उसने विवेचना अधिकारी से कहा था कि वह टॉर्च लेकर चल रहा है, अगर वह नहीं लिखता है तो कारण नहीं बता सकता। शिकायत में नहीं लिखा है तो वह कारण नहीं बता सकते। उन्होंने जवाब दिया कि यह कहना गलत है कि आज न्यायालय में पहली बार वह टॉर्च की रोशनी में घटना को देखने की बात कह रहे थे। इंस्पेक्टर को दो मशालें दिखाई गईं, लेकिन उन्होंने न तो इसे अपने कब्जे में लिया और न ही उन्होंने इसे लिखा।

15. पीडब्लू -2, पीड़िता को पहली बार भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप

अनुवादित

में "अधिनियम, 1872') की धारा 118 के तहत परीक्षण किया गया था, और जब न्यायालय ने पाया कि वह हलफनामे का अर्थ समझती है और गवाही देने में सक्षम है, तो उसे शपथ पर गवाही दी गई, उसने गवाही दी कि वह आरोपी व्यक्तियों को जानती है लेकिन उन्हें नाम से नहीं जानती है। वे चिरैंदापुर के रहने वाले हैं। घटना के समय वह अपने घर के बाहर खेल रही थी। ये तीनों आरोपी उसके पास आए, उसे गुटखा लाने के लिए कहा और उसे गांव के बाहर ले गए। दोनों तरफ खेत था जहां ये तीनों उसके साथ गंदा काम करते थे। उन्होंने उसका अंडरवियर उतार दिया और उसके पैरों को चाटा। आरोपी तेज बहादुर की ओर इशारा करते हुए गवाह ने कहा कि पहले उसने उसके साथ बुरा किया था। फिर लालजीत की तरफ इशारा करते हुए उसने बताया कि उसने उसके साथ बुरा किया है तो तीसरे आरोपी चिंटू की तरफ इशारा करते हुए उसने कहा कि उसने उसके साथ बुरा किया है। वह खेल रही थी। चिंटू ने उसे कुछ दवा दी थी। चिंटू की ओर इशारा करते हुए उसने बताया कि उसने उसकी गर्दन दबाई थी। उसके साथ बदतमीजी करने के बाद तीनों आरोपी भाग खड़े हुए। उसके पिता, चाचा और बड़े चाचा उसके घर से आए थे और इन लोगों को मौके पर देखा था। उसकी मम्मी ने उसे घर पर ही कपड़े पहनाए। उसके पिता उसे रात में डॉक्टर के पास ले गए।

16. जिरह में उसने जवाब दिया कि जब वह घर के बाहर खेल रही थी, तो आरोपी व्यक्ति अंधेरी रात में उसे अपनी बाहों में ले गए। उस समय उसके पिता और चाचा वहां नहीं थे, भाई वहां थे। वह रोई और चिल्लाई तो इन आरोपियों ने उसे दवा दी। उसका भाई रोया नहीं। जब वह रोई तो ग्रामीण उस जगह नहीं पहुंचे जहां उसे ले जाया गया था। उसके बड़े भाई ने उसके माता-पिता को बुलाया था। बाद में पिता, चाचा और बड़े चाचा आए थे। आरोपी व्यक्ति उसे गांव के बाहर ले गए और धक्का दिया, वह जमीन पर गिर गई। उसका सिर जमीन पर टकरा गया और उसकी पीठ में चोट लगी। चोट गंभीर थी। जब उसके पिता वहां आए तो वह होश में थी। कुछ देर बाद उसे होश आया। वहां से वह अपने माता-पिता के साथ सरकारी नल के पास आई थी जो उसके घर से दूर है और खेत के सामने लगा है। उसने अपने माता-पिता, चाचा और बड़े चाचा को सूचित किया था कि तीन लोग उसे ले गए हैं। गांव वाले इन तीनों को पकड़कर ले आए थे। यह कहना गलत है कि वह अपने माता-पिता और अन्य लोगों के कहने पर झूठी गवाही दे रही थी। यह कहना गलत है कि आरोपी व्यक्ति उसे नहीं ले गए थे। यह कहना गलत है कि उसे किसी अन्य तरीके से या किसी अन्य स्थान पर चोट लगी थी।

17. पीडब्लू -3, डॉ आरके माहेश्वरी, रेडियोलॉजिस्ट ने गवाही दी कि उन्होंने पीड़ित की एक्स-रे रिपोर्ट तैयार की थी और पाया: (i) घुटने के जोड़ के आसपास दाहिने घुटने के जोड़ को फ्यूज नहीं किया गया था (ii) दाईं कलाई के जोड़ के बारे में, उन्होंने पाया कि कलाई के चारों ओर एपिफेसिस फ्यूज नहीं थे। उन्होंने एक्स-रे

अनुवादित

रिपोर्ट प्रदर्श क-2 और एक्स-रे प्लेट सामग्री प्रदर्श1 को साबित किया। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने पीड़िता के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति का एक्स-रे कराया था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उनके द्वारा जाली एक्स-रे रिपोर्ट तैयार की गई थी।

18. पीडब्लू -4, कांस्टेबल मोहर्रिर, नेत्र पाल सिंह ने चिक एफआईआर प्रदर्श क-3 और केमी जीडी प्रदर्श क-4 साबित की है और गवाही दी है कि 30.09.2010 को सुबह 10:20 बजे, उन्होंने चिक एफआईआर तैयार की थी और मूल जी.डी. जिरह में उन्होंने स्वीकार किया कि संबंधित सीओ के समक्ष चिक एफआईआर प्रस्तुत करने के संबंध में कोई तारीख का उल्लेख नहीं है। उन्होंने आगे जवाब दिया कि यह चिक एफआईआर 04.10.2010 को सीजेएम के समक्ष प्रस्तुत की गई थी। उन्होंने स्वीकार किया कि फाइल में विशेष रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है। वह यह भी स्वीकार करता है कि एफआईआर दर्ज कराने आए व्यक्तियों का नाम जीडी प्रदर्श क-4 में नहीं बताया गया है। यह भी उल्लेख नहीं किया गया है कि आरोपियों को कैसे बांधा गया था और उन्हें किस वाहन से पुलिस स्टेशन ले जाया गया था। वह स्वीकार करता है कि प्रदर्श क-4 में आरोपी व्यक्तियों की चोटों का उल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन उन्होंने इस सुझाव से इनकार किया कि प्रदर्श क-3 और प्रदर्श क-4 जाली और पूर्व-समय पर थे।

19. पीडब्लू-5, डॉ. महावीर सिंह, वरिष्ठ सलाहकार, जिला अस्पताल, पीलीभीत ने गवाही दी कि 01.10.2010 को उन्होंने पीएचसी, न्यूरिया के डॉ. विजय लक्ष्मी द्वारा भेजी गई पीड़िता की योनि स्मीयर स्लाइड की विवेचना की थी। उन्होंने गवाही दी कि विवेचना में उन्हें शुक्राणुजोज़ा नहीं मिला, लेकिन उन्हें बड़ी मात्रा में लाल रक्त कोशिकाएं मिलीं। उन्होंने अपनी रिपोर्ट प्रदर्श क-5 को साबित किया। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि वह गलत गवाही दे रहे थे।

20. पीडब्लू -6, एसओ, तपेश्वर सागर ने गवाही दी कि 30.09.2010 को उनकी उपस्थिति में मामला दर्ज किया गया था। उन्होंने विवेचना शुरू की, चिक एफआईआर की नकल की, सूचनाकर्ता का बयान, एफआईआर लिखने वाले नेत्र पाल सिंह और आरोपियों के बयान दर्ज किए। उन्होंने मेडिकल रिपोर्ट की नकल की, घटना स्थल का निरीक्षण किया और नक्शा प्रदर्श क-6 तैयार किया। उन्होंने आरोपी तेज बहादुर की जेब की लाइनिंग और पीड़िता द्वारा पहने गए अंडरवियर और शर्ट को लेकर सील कर सैंपल सील तैयार की। उन्होंने अपने हाथ से लिखावट में रिकवरी मेमो प्रदर्श क-7 तैयार किया। उन्होंने तीनों आरोपियों के खून से सने अंडरवियर भी लिए और पॉलीथिन में रखा, चितबंदी की और कपड़े में सीलबंद किया, सैंपल सील और रिकवरी मेमो प्रदर्श क-8 को अपने हैंड राइटिंग में तैयार किया, सीडी में रिकवरी मेमो दोनों की नकल की, रिकवरी के गवाहों के बयान दर्ज किए, गवाह प्रेम पाल, पीड़ित और तारावती, पैथोलॉजी रिपोर्ट और एक्स-रे रिपोर्ट की नकल की, एसआई, राजेंद्र बाबू, कांस्टेबल नेत्रपाल सिंह, होमगार्ड दौलत राम

अनुवादित

और शिकायत लेखक अमर दीप का बयान दर्ज किया। दिनांक 27-10-2010 को उन्होंने कांस्टेबल सूबेदार सिंह के माध्यम से ये कपड़े एफएसएल, लखनऊ भेजे। उन्होंने डॉकेट प्रदर्श क-8 साबित किया। उन्होंने पूरक रिपोर्ट की नकल की और आरोप पत्र प्रदर्श क-9 को न्यायालय में प्रस्तुत किया। गवाही के दौरान उन्होंने पीड़ित के अंडरवियर और काली शर्ट को सामग्री प्रदर्श1 और 2 के रूप में साबित किया, अभियुक्त-व्यक्तियों के अंडरवियर क्रमशः सामग्री प्रदर्श3, 4 और 5 के रूप में।

21. जिरह में इस गवाह ने जवाब दिया कि गवाह तेज राम या ग्रामीणों ने उनके द्वारा इस्तेमाल की गई मशाल पेश नहीं की थी। तेज राम ने कुछ गवाहों के नाम बताए थे, जैसे प्रेम पाल, राम पाल और तारावती और 10-15 व्यक्तियों के नाम नहीं बताए थे। वह स्वीकार करते हैं कि आरोप पत्र जमा करने के समय तक, एफएसएल रिपोर्ट प्राप्त नहीं की गई थी। उन्होंने स्वीकार किया है कि संबंधित जीडी को केस डायरी में संदर्भित नहीं किया गया है, इसकी प्रतियां भी फाइल पर उपलब्ध नहीं हैं। वह स्वीकार करता है कि उसने सीडी में विवेचना के करीब समय दर्ज नहीं किया है। उनके अनुसार, उन्हें मौके पर खून नहीं मिला, लेकिन पीड़ित की शर्ट पर खून मिला था, जो प्रदर्श क-7 में नहीं लिखा है। उनके अनुसार आरोपी व्यक्तियों के अंडरवियर पर खून था जो रिकवरी मेमो में लिखा है। इसे थाने में तैयार किया गया। पीड़ित के कपड़ों का रिकवरी मेमो (प्रदर्श क-7) मौके पर तैयार किया गया था। वह स्वीकार करता है कि प्रदर्श क-6, 7 और 8 में आरोपी व्यक्तियों के नामों का उल्लेख नहीं किया गया है। आरोपी व्यक्तियों के अंडरवियर का रंग पूछने पर उन्होंने जवाब दिया कि एक अंडरवियर भूरे रंग का है और दूसरा हरे रंग का है और दूसरा हल्के बादाम रंग का है। उन्होंने आगे कहा कि पीड़िता का अंडरवियर भूरे रंग का है। एक शर्ट काली है। उन्होंने आगे कहा कि तेज राम और उनकी पत्नी ने न तो अपने खून से सने कपड़े दिखाए और न ही उन्हें कब्जे में लिया। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने पुलिस स्टेशन में बैठकर सारी विवेचना की थी और फर्जी विवेचना के आधार पर झूठी चार्जशीट जमा की है। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि प्रदर्शक-6, 7 और 8 को पूर्व-समय पर तैयार किया गया था।

22. पीडब्लू-7, डॉ. विजय लक्ष्मी ने गवाही दी कि 30.09.2010 को अपनी पोस्टिंग के दौरान उन्होंने सुबह 11:30 बजे कांस्टेबल दुर्गा प्रसाद, पुलिस स्टेशन न्यूरिया द्वारा चोट पत्र के साथ पीड़िता की विवेचना की थी।

23. आंतरिक परीक्षा के दौरान उसने पाया कि पीड़िता की योनि का बाहरी हिस्सा सूजा हुआ और लाल रंग का था। आंतरिक विवेचना करना बहुत मुश्किल था। दर्द और सूजन के कारण पीड़िता बार-बार बेहोश हो रही थी। योनि दोनों तरफ से कट गई थी और ताजा खून बह रहा था। योनि के अंदर ऊपर नीचे गहरे घाव थे जिनसे खून निकल रहा था। निचला घाव गुदा तक था। अंदर की योनि का निचला हिस्सा गुदा तक आ

अनुवादित

रहा था। योनि के अंदर गहरा घाव था कि उसकी विवेचना मुश्किल थी। उक्त स्थिति में पीड़िता को तुरंत अग्रिम उपचार के लिए सर्जरी विभाग में भेजा गया। एक्स-रे को उसकी उम्र निर्धारित करने की सलाह दी गई थी, इसलिए, रेडियोलॉजिस्ट को भेजा गया। पीड़िता के योनि स्राव के दो नमूने तैयार किए गए। इसे विवेचना के लिए पैथोलॉजी भेजा गया। उन्होंने दिनांक 20-10-2010 को मेडिकल रिपोर्ट प्रदर्श क-10 और पूरक चिकित्सा रिपोर्ट प्रदर्श क-11 अपने स्वयं के लेखन में तैयार की थी। पीड़िता की चोट गंभीर प्रकृति की थी और उसके जीवन के लिए घातक थी जिसके कारण उसकी मृत्यु हो सकती थी।

24. जिरह में इस गवाह ने स्वीकार किया कि उसने बलात्कार के बारे में कोई राय नहीं दी थी। न्यायालय के पूछने पर गवाह ने जवाब दिया कि बच्ची की हालत इतनी गंभीर थी कि उसने बलात्कार की राय के बारे में नहीं सोचा। लड़की बेहोश हो रही थी और भारी खून बह रहा था जो घातक साबित हो सकता था। इसके अलावा, उससे सवाल किया गया कि लड़की को आपके पास क्यों भेजा गया। उसने जवाब दिया कि पीड़िता को परीक्षण के लिए भेजा गया था, अगर वह परीक्षा के दौरान मर गई थी तो इसकी जिम्मेदारी उस पर आ जाएगी। यह पूछने पर कि क्या उसने चोट पत्र पढ़ा है। उसने जवाब दिया कि उसने इसे पढ़ा था, जिसमें, चिकित्सा परिणाम के बारे में सूचित करने और रिपोर्ट करने का अनुरोध किया गया था कि क्या पीड़िता के साथ बलात्कार किया गया था। यह पूछने पर कि पीड़िता के साथ बलात्कार हुआ था या नहीं, उसने जवाब दिया कि बलात्कार के बारे में कोई स्पष्ट कथा नहीं थी, इसीलिए उसने स्पष्ट रिपोर्ट नहीं दी। जब किसी के मरने की आशंका नहीं होती तो पीड़िता बलात्कार को लेकर स्पष्ट राय देती है, लड़की की हालत इतनी खराब थी कि वह इस बारे में सोच भी नहीं पाई। जब एक महिला बहुत गंभीर स्थिति में होती है, तो पूछने पर व्यक्ति भावुक हो जाता है और सब कुछ भूल जाता है। उसने भावुक होकर जवाब दिया, वह पीड़िता को उचित इलाज के लिए रेफर करना चाहती थी। पुन एक प्रश्न पूछा गया कि क्या इन परिस्थितियों में यह संकेत मिलेगा कि पीड़िता के साथ बलात्कार हुआ था। उसने जवाब दिया कि अगर आंतरिक अंगों में ताजा चोट लगी है तो मैं एक राय दूंगा, मुझे यकीन है कि उसके साथ बलात्कार किया गया है। एक सवाल फिर से पूछा गया कि इस मामले की पीड़िता के आंतरिक अंगों पर चोट लगी थी तो उस मामले में उसने बलात्कार के संबंध में कोई राय क्यों नहीं दी। उसने जवाब दिया कि उसने उस समय गलती की, ध्यान नहीं दिया। यह पूछे जाने पर कि क्या उसने जानबूझकर ऐसा किया। उसने जवाब दिया कि यह असंभव है।

25. उसके बाद आरोपी व्यक्तियों के विद्वान अधिवक्ता ने जिरह शुरू की, जिस पर उसने जवाब दिया कि चोट रिपोर्ट, पैथोलॉजी रिपोर्ट, पूरक चिकित्सा रिपोर्ट और एक्स-रे रिपोर्ट में उसने बलात्कार की राय के बारे में उल्लेख नहीं किया था। उसने आगे जवाब दिया कि पीड़िता के साथ

अनुवादित

बलात्कार किया गया था, वह स्मृति के आधार पर नहीं बल्कि रिपोर्ट देखने के बाद कह रही है। वह स्वीकार करती है कि उसने अपनी रिपोर्ट में पीड़िता के बलात्कार के बारे में कोई राय नहीं दी थी। पीड़िता की जान चली जाती, उसकी रिपोर्ट में ऐसा नहीं है। पीड़िता के साथ दुष्कर्म होने पर हाइमन फट जाता है। उनकी रिपोर्ट में लिखा है कि हाइमन को अलग से पहचानना मुश्किल है। पीडब्लू-7 ने आगे जवाब दिया कि पीड़िता के अंदरूनी अंगों में वीर्य कहीं नहीं मिला। यदि कोई कन्या कटे हुए गन्ने या कटे हुए ढाँचे या कटी हुई गोल छड़ी पर गिर जाए या टकरा जाए और काटने वाला गुदा की ओर चला जाए तो ऐसी पूछताछ करना संभव नहीं है। गिरने पर चोट एक जगह आ जाती। पीड़ित को लगी चोट की प्रकृति फिसलने और गिरने से नहीं आ सकती है। यह कहना सही है कि पीड़िता के साथ बलात्कार हुआ होगा। लेकिन पीडब्लू-7 ने स्वीकार किया कि उसने आज पहली बार न्यायालय में यह बात कही है और किसी भी रिपोर्ट में इसका जिक्र नहीं किया है। उसने इस बात से इनकार किया कि वह सही बातें नहीं बता रही है और वह न्यायालय में झूठ बोल रही है और मेडिकल विवेचना रिपोर्ट के आधार पर सही बयान नहीं दे रही है।

26. अभियोजन साक्ष्य के बंद होने के बाद, सभी तीन अभियुक्तों के बयान दं0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत दर्ज किए गए थे, जैसा कि पहले ही पृष्ठ -4 पर उल्लेख किया गया है, जिसमें उन्होंने आरोपों से इनकार किया और बचाव में कोई सबूत पेश नहीं किया।

27. अपील का निर्णय उपर्युक्त विख्यात साक्ष्यों की पृष्ठभूमि में निम्नानुसार किया जा रहा है: -

I. इस मामले में, अभियोजन पक्ष के अनुसार घटना 29.09.2010 को हुई, शाम को लगभग 07:00 बजे, 30.09.2010 को 2011 की अपराध संख्या 1051 के रूप में, नामित अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 376 भा0दं0सं0 के तहत सुबह 10:20 बजे प्राथमिकी दर्ज की गई थी। घटना के बाद पीड़िता को रात में पहले कुसुम अस्पताल, पीलीभीत में भर्ती कराया गया और उसके बाद उसे सरकारी अस्पताल, नेवरिया, पीलीभीत रेफर कर दिया गया, वहां से पीड़िता को आगे के इलाज के लिए जिला अस्पताल, पीलीभीत रेफर कर दिया गया।

II. अगले दिन 30.09.2010 को आरोपी व्यक्तियों को सूचनाकर्ता और ग्रामीणों द्वारा पकड़ा गया। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि एफआईआर दर्ज करने में कोई अनुचित देरी हुई थी।

III. **बबली बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, एआईआर 2012 एससी 2621** में यह अभिनिर्धारित गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट कोई ठोस साक्ष्य नहीं है और यह विश्वकोश नहीं है। **जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009) 9 एससीसी 719 और भगवान जगन्नाथ मारकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537 में** यह भी अभिनिर्धारित जाता है कि एकमात्र आवश्यकता यह है कि एफआईआर दर्ज

करते समय, सूचनाकर्ता को उन सभी तथ्यों को बताना चाहिए जो आम तौर पर दिमाग में आते हैं और अपराध की गंभीरता या अपराधी की पहचान का संक्षेप में आकलन करने में मदद करते हैं।

IV. **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मनोज कुमार पांडेय, एआईआर 2009 एससी 711, (तीन न्यायाधीशों की पीठ)** और **संतोष मूल्या बनाम कर्नाटक राज्य, (2010) 5 एससीसी 445**, में यह अभिनिर्धारित जाता है कि आम तौर पर अभियोजन पक्ष को देरी की व्याख्या करनी होती है और विवेक की कमी बलात्कार के मामलों पर स्वतः लागू नहीं होती है।

V. **मुकेश बनाम राज्य राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और अन्य, एआईआर 2017 एससी 2161 (तीन-न्यायाधीश-बेंच), मुंशी प्रसाद बनाम बिहार राज्य, 2002 (1) जेआईसी 186 (एससी)** और कई अन्य मामलों में यह अभिनिर्धारित गया है कि यदि कारण एक संस्करण गढ़ने के किसी भी प्रयास के कारण नहीं हैं और अभियोजन पक्ष द्वारा देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया गया है, तो एफआईआर दर्ज करने में केवल देरी के लिए कोई परिणाम नहीं जोड़ा जाएगा और देरी अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगी। यदि अभियोजन पक्ष विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा अपने मामले को साबित करने में सक्षम रहा है तो मजिस्ट्रेट को एफआईआर की प्रति भेजने में होने वाली देरी भी महत्वहीन होगी। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि इस मामले में एफआईआर दर्ज करने में कोई देरी नहीं हुई है।

VI. वर्तमान मामला प्रत्यक्ष साक्ष्य और पीड़ित के साक्ष्य पर आधारित है। इसलिए, अपराध करने के पीछे के मकसद को साबित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सबूतों से कथित अपराध करने के लिए मेन्स रिया उचित संदेह से परे साबित हुआ है। अभियोजन पक्ष के गवाह के साक्ष्य से यह भी साबित होता है कि आरोपी व्यक्तियों की कोई दुश्मनी या झूठा आरोप नहीं था। उक्त अपराध में हालांकि आरोपी व्यक्तियों ने गवाहों को इस तथ्य का सुझाव दिया है कि ग्राम प्रधान चुनाव की दुश्मनी के कारण आरोपी व्यक्तियों को झूठा फंसाया गया है, लेकिन यह साबित नहीं हुआ है कि आरोपी व्यक्ति या उनके परिवार का कोई सदस्य या कोई दोस्त ग्राम प्रधान चुनाव में उम्मीदवार था।

VII.**सबूत का बोझ** अभियोजन पक्ष के कंधे पर टिकी हुई है। अधिनियम, 1872 की धारा 134 के अनुसार, किसी तथ्य को साबित करने के लिए गवाहों की कोई विशेष संख्या आवश्यक नहीं है। एक आपराधिक मुकदमे में गवाहों की बहुलता विधायी इरादा नहीं है। यदि एकमात्र गवाह की गवाही विश्वसनीयता की कसौटी पर विश्वसनीय पाई जाती है, तो अभियुक्त को ऐसी एकमात्र गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है जैसा कि **सुदीप कुमार सेन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2016) 3 एससीसी 26, जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2009 (1) सर्वोच्च 224, सैयद इब्राहिम बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर**

अनुवादित

2006 एससी 2908, अवतार सिंह बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2013 एससी 286।

VIII. इस मामले में केवल सूचनाकर्ता, पीड़िता के पिता और पीड़ित से चश्मदीद गवाह के रूप में पूछताछ की गई।

IX. में **सुच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2003) 7 एससीसी 643, भगवान सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2002 (44) एसीसी 1112 (एससी), भगवान जगन्नाथ मरकड (पूर्वोक्त), श्यामला घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 2012 एससी 3539, अमित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2012 एससी 1433** और कई अन्य मामलों में यह अभिनिर्धारित जाता है कि आपराधिक मुकदमे में गवाह की गवाही को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि गवाह अपराध के पीड़ित का रिश्तेदार या परिवार का सदस्य है, ऐसी स्थिति में न्यायालय को ऐसे गवाह के साक्ष्य का विश्लेषण करने में सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यदि संबंधित गवाह की गवाही अन्यथा विश्वसनीय पाई जाती है, आरोपी को ऐसे संबंधित गवाह की गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है।

X. **हुकुम सिंह बनाम राजस्थान राज्य, 2000 (41) एसीसी 662 (एससी), साधु सरन सिंह बनाम यूपी राज्य, (2016) 4 एससीसी 357, अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य, 2008 (61) एसीसी 972 (एससी) और भगवान जगन्नाथ मरकड (पूर्वोक्त) में,** यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि भौतिक साक्ष्य की गैर-परीक्षा अभिलेख पर उपलब्ध गवाही के वजन को त्यागने के लिए एक गणितीय सूत्र नहीं है, हालांकि यह स्वाभाविक, भरोसेमंद और आश्वस्त हो सकता है। यह स्थापित कानून है कि चश्मदीद गवाह से पूछताछ न करने पर अभियोजन के मामले को कलम से खारिज करने के लिए एक रस्मी फार्मूले की तरह काम नहीं किया जा सकता। न्यायालय एकमात्र गवाह के बयान पर एक अभियुक्त को दोषी ठहरा सकती है, भले ही वह मृतक का रिश्तेदार हो और स्वतंत्र गवाह की परीक्षा न करना अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं होगा।

XI. **नंद कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2015) 1 SCC 776, रोहताश कुमार बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 14 SCC 434 और भगवान जगन्नाथ मरकड (पूर्वोक्त) में,** यह माना जाता है कि अभियोजन पक्ष को अपने सभी गवाहों की विवेचना करने की आवश्यकता नहीं है। विवेक अभियोजन पक्ष के पास है कि वह अपने मामले को साबित करने के लिए निविदा दे या नहीं, गवाह को पेश करे। अभियोजन के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष केवल तभी निकाला जा सकता है जब गवाह को रोकना परोक्ष उद्देश्य से हो।

XII. आम तौर पर आजकल लोग गवाह बनने से बचते हैं और शत्रुता के डर से विशेष रूप से आपराधिक मामलों में गवाह बनने से बचते हैं, इसलिए स्वतंत्र गवाह कानून की न्यायालय में शपथ लेने के लिए आगे नहीं आते हैं।

अनुवादित

XIII. **संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 6 एससीसी 107, हुकुम सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य, 2001 सीआरएलजे 511 (एससी),** दं0प्र0सं0 की धारा 226 और 231 की विवेचना की गई है और यह माना गया है कि लोक अभियोजक से अभियोजन पक्ष के समर्थन में सबूत पेश करने की उम्मीद की जाती है, न कि अभियोजन के मामले की अवहेलना में। अगर वह इस स्तर पर जानते थे कि कुछ गवाह अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं कर सकते हैं, तो वह न्यायालय के समक्ष इस तथ्य को बताने के लिए स्वतंत्र हैं। अभियोजन पक्ष के लिए गवाहों के रूप में उन व्यक्तियों की विवेचना करने के लिए लोक अभियोजक पर जोर देना अनुचित होगा।

XIV. **छोटाने बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2009 एससी 2013, गंगाधर बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य, (2002) 8 एससीसी 381 और भगवान जगन्नाथ मरकड (पूर्वोक्त) में** यह माना जाता है कि संदेह उचित होना चाहिए तभी आरोपी व्यक्तियों को संदेह का लाभ दिया जा सकता है। संदेह को उचित कहा जाएगा यदि वे अमूर्त अटकलों के लिए उत्साह से मुक्त हैं। कानून सत्य के अलावा किसी अन्य को पसंद नहीं कर सकता। एक उचित संदेह का गठन करने के लिए, यह एक अति-भावनात्मक प्रतिक्रिया से मुक्त होना चाहिए। संदेह वास्तविक और पर्याप्त संदेह होना चाहिए। एक उचित संदेह एक काल्पनिक, तुच्छ या केवल संभव संदेह नहीं है; लेकिन कारण और सामान्य ज्ञान के आधार पर एक उचित संदेह। यह मामले में सबूतों से विकसित होना चाहिए। संदेह के लाभ के नियम की अतिशयोक्ति के परिणामस्वरूप न्याय की हत्या हो सकती है। दोषियों को बच निकलने देना न्याय नहीं है। एक न्यायाधीश मुकदमे की अध्यक्षता न केवल यह सुनिश्चित करने के लिए करता है कि किसी निर्दोष को दंडित न किया जाए, बल्कि यह भी देखने के लिए कि दोषी बच न जाए।

XV. **राजा बनाम कर्नाटक राज्य, (2016) 10 एससीसी 506, यूपी राज्य बनाम छोटेलाल, एआईआर 2011 एससी 697 और संतोष मूल्या (पूर्वोक्त)** और अन्य मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि बलात्कार के मामले में अभियोक्ता की गवाही एक घायल गवाह के बराबर है। यदि अभियोक्ता के साक्ष्य आत्मविश्वास को प्रेरित करते हैं और विश्वसनीय प्रतीत होते हैं तो पुष्टि के लिए जोर देना वास्तव में आवश्यक नहीं है। अभियुक्त को बिना किसी और पुष्टि के अभियोक्ता की एकमात्र गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है, बशर्ते कि अभियोक्ता के साक्ष्य आत्मविश्वास को प्रेरित करते हों और स्वाभाविक और तुच्छ प्रतीत होते हों। महिला या लड़की के साथ बलात्कार एक उपलब्धि नहीं है और गवाही की पुष्टि के लिए जोर देना नारीत्व का अपमान है। यौन अपराध के शिकार व्यक्ति के साक्ष्य के बावजूद पुष्टि की अनुपस्थिति के लिए महान वजन का हकदार है। एक स्वतंत्र गवाह के चश्मदीद गवाह के रूप में पुष्टि अक्सर शारीरिक हमले के मामलों में हो

अनुवादित

सकती है, लेकिन अपराध की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए यौन अपराधों में इस तरह के सबूत की उम्मीद नहीं की जा सकती है। इसलिए पश्चिमी दुनिया में अदालतों द्वारा तैयार किए गए नियमों से प्रेरणा लेते हुए पुष्टि पर जोर देना पीड़ित का अपमान होगा। एक सामान्य नियम के रूप में, चिकित्सा साक्ष्य को छोड़कर पुष्टि पर जोर देने का कोई कारण नहीं है, जहां मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, चिकित्सा साक्ष्य को अयोग्यता के अधीन होने की उम्मीद की जा सकती है कि जब एक महिला ने बहुमत प्राप्त किया है तो इस बात पर जोर दिया जा सकता है कि जब एक महिला ने समझौता करने की स्थिति में पाया है और आत्म-संरक्षण की वृत्ति के कारण या जब संभाव्यता कारक धुन से बाहर पाया जाता है।

XVI. वर्तमान मामले में घटना के समय पीड़िता केवल 7 वर्ष की थी और मेडिकल रिपोर्ट और सबूतों से, उसकी गवाही की पुष्टि की गई है। **गंगा सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 2013 एससी 3008** में यह माना जाता है कि जहां एक लड़की भा0दं0सं0 की धारा 376 के तहत दंडनीय बलात्कार के अपराध की शिकार है, उसे कुछ वजन दिया जाना चाहिए जैसा कि एक घायल गवाह को दिया जाता है और उसके साक्ष्य को पुष्टि की आवश्यकता नहीं है।

XVII. **तमिलनाडु राज्य बनाम रवि @ नेहरू, 2006 (55) एसीसी 1005 (एससी)** में पांच साल की बच्ची के साथ बलात्कार किया गया और डॉक्टर की राय थी कि लड़की की योनि के अंदर लिंग नहीं गया होगा, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि हाइमन फटा हुआ पाए जाने पर डॉक्टर की राय तर्कहीन थी। यहां तक कि हाइमन को तोड़ने के बिना योनि में लिंग का थोड़ा सा प्रवेश भी बलात्कार का गठन करेगा। यौन उत्पीड़न के शिकार के साक्ष्य एक घायल गवाह के साक्ष्य के बराबर हैं। बिना पुष्टि के उसकी एकमात्र गवाही की सजा उचित है।

XVIII. इस मामले में अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा एक तर्क दिया गया है कि दं0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा पीड़ित का बयान दर्ज नहीं किया गया है। **बैजनाथ सिंह बनाम बिहार राज्य, 2010 (70) एसीसी 11 (एससी), उत्पल दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 2010 एससी 1894** में यह माना जाता है कि दं0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत दर्ज बयान को ठोस सबूत के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। इसका उपयोग केवल साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 और 157 के प्रावधानों के अनुसार गवाह की पुष्टि या खंडन करने के लिए किया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पीड़िता की कम उम्र को देखते हुए, आईओ ने उसे दं0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत बयान दर्ज करने के लिए मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं किया।

XIX. विवेचना अधिकारी की गलती के लिए अभियोजन पक्ष को नुकसान नहीं होगा।

28. मामले में सूचनाकर्ता पीडब्लू-1 ने मामले के तथ्यों को साबित कर दिया है, एकमात्र विरोधाभास यह है कि एफआईआर संस्करण के अनुसार जब सूचनाकर्ता और

अनुवादित

अन्य व्यक्ति मौके पर पहुंचे, तो उन्होंने पाया कि लालजीत और चिंटू पीड़िता को पकड़ रहे थे और तेज बहादुर उसके साथ बलात्कार कर रहे थे। इसके विपरीत, पीडब्लू -1 ने न्यायालय में गवाही दी है कि जब वह अन्य व्यक्तियों के साथ मौके पर पहुंचा तो उन्होंने देखा कि तेज बहादुर और लालजीत पीड़िता को पकड़ रहे थे, जबकि लालजीत उसके साथ बलात्कार कर रहा था। यह लेखन की गलती हो सकती है। साक्ष्य पर समग्र रूप से विचार किया जाना चाहिए।

29. जहां तक पीड़िता का सवाल है, उसने गवाही दी है कि तीनों आरोपियों ने उसके साथ बुरा काम किया। उन्होंने उसका अंडरवियर उतार दिया और उसके पैरों को चाटा। आरोपी तेज बहादुर, लालजीत और चिंटू की ओर इशारा करते हुए, उसने बयान दिया कि उन्होंने उसके साथ बुरा काम किया। तीनों आरोपी उसे गांव से बाहर ले गए और जमीन पर धकेल दिया, इसके बाद उन्होंने उसके साथ बलात्कार किया। इस प्रकार, तर्क में कोई बल नहीं है और तदनुसार खारिज कर दिया गया है।

<u>चिकित्सा साक्ष्य</u>

30. इससे पहले चिकित्सा साक्ष्य पर विस्तार से चर्चा की गई है। पीडब्लू-3 डॉ. आर.के. माहेश्वरी, रेडियोलॉजिस्ट के साक्ष्य से यह साबित होता है कि घुटने और कलाई के जोड़ों में कोई संबंध नहीं था और पीड़ित की उम्र बहुत कम थी।

31. पीडब्लू-5 डॉ. महावीर सिंह ने पीड़ित की योनि स्मीयर स्लाइड की विवेचना की थी, हालांकि उन्हें शुक्राणुजोज़ा नहीं मिला, लेकिन उन्हें बड़ी मात्रा में लाल रक्त कोशिकाएं मिलीं।

32. पीडब्लू-7, डॉ. विजय लक्ष्मी द्वारा पीड़िता की चिकित्सकीय विवेचना की गई, उसके साक्ष्य पर पृष्ठ संख्या 12-14 पर चर्चा की गई है, जिसमें, उसने अंततः स्वीकार किया है और गवाही दी है कि पीड़िता के साथ बलात्कार किया गया था।

33. साक्ष्य अधिनियम की धारा 45 के अनुसार, एक डॉक्टर एक चिकित्सा विशेषज्ञ है और चिकित्सा साक्ष्य केवल राय का प्रमाण है और निर्णायक नहीं है। में **विष्णु @ एंड्रिया बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 15 एससीसी 283,** सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि चिकित्सा अधिकारी की राय न्यायालय की सहायता करने के लिए है, वह तथ्य का गवाह नहीं है, और चिकित्सा अधिकारी द्वारा दिया गया साक्ष्य एक सलाहकार चरित्र का है और तथ्य के गवाहों पर बाध्यकारी नहीं है। में **सोलंकी चिमनभाई उकाभाई बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1983 एससी 484,** सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि आमतौर पर, चिकित्सा साक्ष्य का मूल्य केवल पुष्टिकारक होता है। यह साबित करता है कि चोटें कथित तरीके से हो सकती हैं और इससे ज्यादा कुछ नहीं। बचाव पक्ष चिकित्सा साक्ष्य का जो उपयोग करता है, वह यह साबित करने के लिए है कि चोटें संभवतः कथित तरीके से नहीं हो सकती थीं और इस तरह चश्मदीद गवाह को बदनाम करती हैं।

34. वर्तमान मामले में चोट की रिपोर्ट और पीडब्लू -7 के सबूत अभियोजन पक्ष के

अनुवादित

साक्ष्य के विपरीत नहीं हैं और यह कहा जा सकता है कि दोनों एक दूसरे की पुष्टि करते हैं। यह साबित नहीं हुआ है कि पीड़ित को चोटें किसी अन्य स्थान पर और किसी अन्य तरीके से लगी थीं।

35. गवाहों के साक्ष्य की ओर इशारा करते हुए अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि घटना का स्थान उचित संदेह से परे साबित नहीं हुआ है। इस संबंध में साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया जा सकता है।

36. गुटखा लाने के बहाने एफआईआर संस्करण के अनुसार पीड़िता को गांव के पूर्व में स्थित एक नाले में ले जाया गया, जहां उसके साथ जबरन बलात्कार किया गया। तलाशी के दौरान प्रत्यक्षदर्शियों और ग्रामीणों ने नाले के किनारे से पीड़िता की चीख सुनी, वे वहां पहुंचे तो पाया कि लालजीत और चिंटू पीड़िता को पकड़ रहे थे और तेज बहादुर उसके साथ दुष्कर्म कर रहा था। पीडब्ल्यू-1 ने अपने साक्ष्य में यही तथ्य प्रस्तुत किया है। जिरह में भी इस गवाह ने गवाही दी है कि जहां उसकी बेटी मिली थी, वह एक खाली जगह है और उससे पहले एक खाई है। पश्चिम में, गंगाराम का बगीचा है, उत्तर में एक सड़क है जो संजना तक जाती है। दक्षिण में एक नाला है।

37. नक्शा प्रदर्श क-6 आईओ, पीडब्लू-6 द्वारा सिद्ध किया गया है। घटना का स्थान अक्षर 'X' द्वारा दिखाया गया है जो कथित नाली के कुछ दक्षिण में है। स्थान 'ए' पर 'एक्स' स्थान के ठीक बगल में, आरोपी तेज बहादुर (जिसे पीड़ित द्वारा फाड़ा गया था) की शर्ट की जेब का ऊपरी हिस्सा पाया गया था। इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि एफआईआर के तथ्यों और सूचनाकर्ता पीडब्लू -1 के साक्ष्य के बीच घटना के स्थान के बारे में कोई भिन्नता नहीं है। पीडब्लू-2 के मामले में पीड़िता ने यह भी बयान दिया है कि ये लोग उसे गांव से बाहर ले गए थे, दोनों तरफ खेत था जहां इन तीनों ने उसके साथ गंदे काम किए। हालांकि जिरह में इस गवाह ने गवाही दी है कि वहां से वह अपने माता-पिता के साथ सरकारी नल में आई थी जो उसके घर से दूर है और खेत के सामने स्थापित है। इस साक्ष्य के आधार पर अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि घटना स्थल के पास कोई सरकारी नल नहीं है।

38. पीड़िता यह नहीं कह रही है कि उसके साथ सरकारी नल पर या उसके पास बलात्कार किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि घटना स्थल से कुछ कदम की दूरी पर नाले के नीचे सरकारी पाइप है जिसके बारे में यह गवाह गवाही दे रहा था या घटना के स्थान के पास नल हो सकता है जिसे आईओ द्वारा मानचित्र प्रदर्श क-6 में नहीं दिखाया गया है। न्यायालय की राय है कि इस साक्ष्य के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि शिकायत में वर्णित घटना के स्थान के बारे में पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के साक्ष्य के बीच विरोधाभास या भिन्नता है।

39. कथित घटना के समय धारा 376 भा0दं0सं0 की स्थिति की विवेचना करना

अनुवादित

उचित होगा। भा0दं0सं0 की धारा 376 को 2013 के अधिनियम संख्या 13 द्वारा 03.02.2013 से संशोधित किया गया था। इससे पहले धारा 376 को 1983 के अधिनियम 43 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, (25.12.1983 से) धारा 376 2013 के 13 के अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापन से पहले, निम्नानुसार थी: -

> *"1. 2013 के अधिनियम 13 द्वारा धारा 9 द्वारा धारा 376 के स्थान पर (3-2-2013 से) प्रतिस्थापित। इससे पहले धारा 376 को 1983 के अधिनियम 43, धारा 3 (25-12-1983 से) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। धारा 376 (1) और स्पष्टीकरण, 2013 के 13 पर प्रतिस्थापन से पहले, निम्नानुसार निहित था:(1) जो कोई, उपधारा (2) द्वारा उपबंधित मामलों के सिवाय, बलात्कार करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से अन्यून होगी किंतु जो आजीवन या ऐसी अवधि के लिए हो सकेगी जो दस वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा जब तक कि बलात्कार की गई स्त्री उसकी अपनी पत्नी न हो और बारह वर्ष से कम आयु की न हो, जुर्माने से भी दण्डनीय होगा। जिन मामलों में, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से या दोनों से, दंडित किया जाएगा:*
>
> *परन्तु न्यायालय निर्णय में उल्लिखित किए जाने वाले पर्याप्त और विशेष कारणों से सात वर्ष से कम अवधि के कारावास का दण्ड अधिरोपित कर सकेगा।*
>
> *स्पष्टीकरण 1 - जहां किसी महिला का बलात्कार उनके सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए कार्य करने वाले व्यक्तियों के समूह में एक या अधिक द्वारा किया जाता है, वहां प्रत्येक व्यक्ति को इस उपधारा के अर्थ के भीतर सामूहिक बलात्कार करने वाला माना जाएगा।*

40. यह स्थापित किया गया है कि अपराध के समय पीड़ित की आयु लगभग 7 वर्ष और 12 वर्ष से कम थी। इसलिए, एक निविदा उम्र की लड़की के साथ बलात्कार के मामले में, यदि आरोप उचित संदेह से परे साबित हो जाते हैं, तो अभियुक्त को किसी भी भांति के कारावास से दंडित किया जाएगा, जो 7 वर्ष से कम नहीं होगा, लेकिन जो आजीवन या एक अवधि के लिए हो सकता है जो 10 साल तक का हो सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है। हालांकि परंतुक के अनुसार, न्यायालय फैसले में उल्लिखित पर्याप्त और विशेष कारणों के लिए, 7 साल से कम की अवधि के लिए कारावास की सजा दे सकती है। स्पष्टीकरण-1 के अनुसार, जहां एक महिला के साथ एक या एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए कार्य करते हुए एक समूह में बलात्कार

अनुवादित

किया जाता है, तो प्रत्येक व्यक्ति को इस उप-धारा के अर्थ के भीतर सामूहिक बलात्कार करने वाला माना जाएगा। यह साबित हो गया है कि यह पीड़िता के साथ सभी आरोपियों द्वारा सामूहिक बलात्कार का मामला है।

कुछ प्रासंगिक निर्णय:-

41. **गोपाल कृष्ण बनाम पंजाब राज्य, (2003) एससीसी ऑनलाइन 280 (पी एंड एच),** में आरोपी ने 6 साल की नाबालिग लड़की के साथ बलात्कार किया। अभियोक्ता, उसकी मां और मेडिकल और मेडिको-लीगल रिपोर्ट के सबूतों से पता चला कि पीड़िता का लीबिया मिनोरा और हाइमन लगभग एक इंच तक फट गया था और उसका खून बह रहा था। आरोपी ने अपने बचाव में दलील दी कि उसके कपड़ों और पीड़िता के कपड़ों में कोई वीर्य नहीं मिला। याचिका को खारिज करते हुए, न्यायालय ने कहा कि बलात्कार के मामले में दोषसिद्धि के लिए वीर्य का उत्सर्जन एक आवश्यक आवश्यकता नहीं थी क्योंकि धारा 375 से जुड़ा स्पष्टीकरण स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट करता है कि बलात्कार के अपराध का गठन करने के लिए केवल प्रवेश पर्याप्त है। इसलिए अभियुक्त की दोषसिद्धि और सजा उचित थी।

42. **कृष्णा लाल बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 1980 एससी 1252** में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि एक सामाजिक रूप से संवेदनशील न्यायाधीश लैंगिक आक्रोश के खिलाफ एक जटिल धारा के लंबे खंडों की तुलना में बेहतर वैधानिक कवच है, जिसमें सभी सुरक्षा निहित हैं। न्यायालय जीवाश्म फार्मूले से चिपक नहीं सकता है और पुष्ट गवाही पर जोर नहीं दे सकता है। मानवाधिकारों के प्रति न्यायिक प्रतिक्रिया को कानूनी कट्टरता से कुंद नहीं किया जा सकता है।

43. **हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम आशाराम, एआईआर 2006 एससी 381** में शीर्ष न्यायालय ने दोहराया कि बलात्कार की पीड़िता के सबूत बहुत वजन, पुष्टि के अभाव के बावजूद हकदार हैं। न्यायालय ने बलात्कार के मामलों में नियम का पालन करने के लिए निम्नलिखित कारकों को तर्क के रूप में पहचाना: -

(1) भारत के परम्परागत अस्वीकार्य समाज में कोई महिला/लड़की यह स्वीकार करने में भी अनिच्छुक होगी कि कोई भी घटना जो उसकी पवित्रता को प्रतिबिंबित करने की संभावना है, कभी हुई थी।

(2) वह सोसाइटी द्वारा बहिष्कृत होने या समाज द्वारा अपने परिवार के सदस्यों, रिश्तेदारों, दोस्तों और पड़ोसियों सहित नीचे देखे जाने के खतरे के प्रति सचेत होगी। उसे पूरी दुनिया का सामना करना पड़ेगा।

(३) उसे अपने पति और निकट के रिश्तेदारों के प्यार और सम्मान को खोने और अपने वैवाहिक घर और खुशी के बिखरने के जोखिम का सामना करना पड़ेगा।

(4) यदि वह अविवाहित है, तो उसे आशंका होगी कि एक सम्मानित परिवार से उपयुक्त विवाह के साथ गठबंधन करना मुश्किल होगा।

अनुवादित

(5) यह लगभग अनिवार्य रूप से खुद को बड़ी मानसिक यातना और पीड़ा का परिणाम देगा।

(6) दूसरों द्वारा ताना मारे जाने का डर उसे हमेशा परेशान करेगा।

(7) वह स्वाभाविक रूप से घटना के प्रचार से बचना चाहेगी और इसलिए उसके पति, परिवार के सदस्य आदि भी सामाजिक कलंक के डर से प्रचार से बचेंगे।

(8) पीड़ित के खुद को होनहार माने जाने का डर उसकी बेगुनाही की परवाह किए बिना उसे परेशान करेगा।

(9) विवेचना एजेंसी, न्यायालय द्वारा पूछताछ का सामना करने और बचाव पक्ष के अधिवक्ता (अभियुक्त) द्वारा कड़ी जिरह का सामना करने का डर और अविश्वास किए जाने का जोखिम पीड़ित के लिए एक निवारक के रूप में कार्य कर सकता है।

44. **पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह, (1996) 2 एससीसी 384** में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि बलात्कार केवल शारीरिक हमला नहीं है, यह अक्सर पीड़ित के पूरे व्यक्तित्व का विनाशकारी होता है। एक हत्यारा पीड़ित के भौतिक शरीर को नष्ट कर देता है, एक बलात्कारी असहाय महिला की आत्मा को नीचा दिखाता है। इसलिए, बलात्कार और यौन उत्पीड़न के आरोपों पर आरोपी की सुनवाई करते समय न्यायालय को अधिक जिम्मेदारी निभानी चाहिए।

45. **पंजाब राज्य बनाम रामदेव सिंह, एआईआर 2004 एससी 1290,** में उच्चतम न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायालयों को सलाह दी कि वे महिलाओं, विशेषकर कम उम्र की लड़कियों पर यौन उत्पीड़न से जुड़े मामलों से निपटते समय जिम्मेदारी की भावना का अधिक प्रदर्शन करें और अधिक संवेदनशील हों। ऐसे मामलों से सख्ती से निपटा जाना चाहिए। न्यायालय ने अपने पहले के रुख को दोहराया जो कि **कृष्ण लाल** (पूर्वोक्त) में लिया गया था।

46. उपर्युक्त उदाहरणों और चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि आरोपी अपीलकर्ताओं ने पीड़िता, एक छोटी उम्र की लड़की के साथ सामूहिक बलात्कार किया, सेक्स और उससे संबंधित आनंद की किसी एक विशेषता को नहीं समझा। यहां तक कि उसके यौन अंगों का भी ठीक से विकास नहीं हुआ था। पीड़िता आरोपी व्यक्तियों की एक लड़की की उम्र की थी, फिर भी उन्होंने उसके साथ ऐसी क्रूर, निर्दयी, अवैध और असभ्य हरकत की।

47. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों को सामूहिक बलात्कार करने का दोषी ठहराने में कोई अवैधता नहीं की है।

48. वैकल्पिक रूप से, आरोपी अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि आरोपी अपीलकर्ता 2010 से जेल में हैं। अभियुक्त की उम्र और भविष्य के जीवन को ध्यान में रखते हुए, यदि यह न्यायालय पाता है कि आरोप उचित संदेह से परे साबित हो गए हैं, तो जहां तक सजा का संबंध है, एक उदार दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है। इस संबंध में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित न्यायिक उदाहरणों पर भरोसा किया: -

अनुवादित

49.(1) **भूरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) एससीसी ऑनलाइन (ऑल) 151** मामले में, जिसमें 14 साल की लड़की के साथ बलात्कार करने के लिए भा0दं0सं0 की धारा 376 (2) (जी) के तहत आजीवन कारावास की सजा को 13 साल के लिए संशोधित किया गया और 3,000 रुपये का जुर्माना लगाया गया। मामले में एक आरोपी को नाबालिग माना गया था।

50.(2) **थोंगम तरुण सिंह बनाम मणिपुर राज्य, (2019) 18 एससीसी 77,** में भा0दं0सं0 की धारा 376 (2) (जी) के तहत 15 साल और 10 साल की कैद की सजा को घटाकर 8 साल और 2 साल कर दिया गया था। मामले में पीड़िता की उम्र करीब 16 साल थी।

51.(3) **मनोज मिश्रा @ छोटकाऊ बनाम यूपी राज्य (2021 की आपराधिक अपील संख्या 1167 (2019 की एसएलपी (सीआरआई) संख्या 7828 से उत्पन्न)** में एफआईआर के अनुसार, पीड़िता की उम्र लगभग 14 साल थी (डॉक्टर के अनुसार, वह 16 साल की थी) अपीलकर्ता ने 8 साल से अधिक की सजा काट ली थी। शीर्ष न्यायालय ने निर्देश दिया कि अपीलकर्ता को जुर्माना भरने पर रिहा किया जाए। शीर्ष न्यायालय ने जेल में बिताए गए समय को पूर्ण सजा के रूप में स्वीकार किया और आरोपियों को रिहा करने का निर्देश दिया।

52. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि पीड़ितों की उम्र, तथ्यों और उद्धृत मामलों की परिस्थितियों और वर्तमान मामले में अंतर को ध्यान में रखते हुए, आजीवन कारावास की सजा को कम नहीं किया जा सकता है।

53.(4) **बावो @ मनुभाई अंबालाल ठाकोर बनाम गुजरात राज्य, (2012) 2 एससीसी 684,** में पीड़िता की उम्र करीब 7 साल थी। विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को भा0दं0सं0 की धारा 376 (2) (एफ) के तहत दोषी ठहराया और उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई। उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की। घटना करीब 10 साल पहले की है, घटना के समय आरोपी की उम्र करीब 18/19 साल थी। वह पहले ही लगभग 10 साल के कठोर कारावास की सजा काट चुका था। शीर्ष न्यायालय ने कहा कि इस मामले में आजीवन कारावास की सजा देना उचित नहीं है। इसे 10 वर्षों के लिए आरआई में संशोधित किया गया था।

54. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वर्तमान मामले के तथ्यों में, यह तीन जिम्मेदार व्यक्तियों द्वारा सामूहिक बलात्कार का मामला है, जिन्होंने 7 साल की बच्ची के साथ क्रूर यौन अपराध किया है, इसलिए, उक्त मामले में निर्धारित सिद्धांतों को वर्तमान मामले में लागू नहीं किया जा सकता है। अपीलकर्ता परिपक्व और पारिवारिक व्यक्ति थे, इसलिए उन्हें 18/19 वर्ष की आयु के अभियुक्त के बराबर नहीं माना जा सकता है।

55.(5) **राजेंद्र दत्ता ज़रेकर बनाम गोवा राज्य, (2007) 14 एससीसी 560** में पीड़िता की उम्र करीब 6 साल थी। यह 20 वर्ष के एकल युवक द्वारा बलात्कार था, जिसमें केवल जुर्माने को 10,000/- रुपये

अनुवादित

से घटाकर 1,000/- रुपये कर दिया गया था लेकिन 10 वर्ष की सजा-सजा-स-I को उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाए रखा गया था। इसलिए, अपीलकर्ता मामले के साथ समानता का दावा नहीं कर सकते।

56. अभियोजन पक्ष प्रशस्ति पत्र पर भरोसा **दिनेश @ बुद्ध बनाम राजस्थान राज्य, (2006) 3 एससीसी 771,** जिसमें पीड़िता की उम्र 12 साल से कम थी। यह धारा 376 (2) परंतुक और 376 (2) (एफ) भा0दं0सं0 के तहत एक मामला था, सजा 10 साल आरआई के तहत दी गई थी। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि ऐसे मामले में सामान्यत सजा दस साल से कम नहीं होनी चाहिए। अदालतें इस संबंध में विधायी जनादेश का सम्मान करने के लिए बाध्य हैं। उपर्युक्त परंतुक का सहारा केवल विशेष और पर्याप्त कारणों से ही लिया जा सकता है न कि आकस्मिक तरीके से जो विभिन्न कारकों और प्रत्येक मामले की विशिष्ट परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। पैराग्राफ - 12 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि सजा अभियुक्त के आचरण, पीड़ित की स्थिति और उम्र और आपराधिक कृत्य की गंभीरता, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, धर्म, नस्ल, जाति या अभियुक्त या पीड़ित के पंथ पर निर्भर होनी चाहिए। महिलाओं पर हिंसा के अपराधों से सख्ती से निपटने की जरूरत है, कानून का उद्देश्य समाज की रक्षा करना और उचित सजा देकर अपराधी को हासिल करने से रोकना है। अदालतों को अपराध की गंभीरता के अनुरूप उचित सजा देनी चाहिए। पैराग्राफ -6 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अदालतों को महिलाओं के खिलाफ यौन अपराध के मामलों को सख्ती से और गंभीर रूप से निपटना चाहिए

57. खंडन में अभियोजन पक्ष निर्णय पर भरोसा किया **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नौशाद, एआईआर 2014 एससी 384**, जिसमें आजीवन कारावास की सजा को बरकरार रखा गया था।

58. **श्याम नारायण बनाम स्टेट एनसीटी ऑफ दिल्ली, एआईआर 2013 एससी 2209** में करीब 8 साल की एक बच्ची के साथ आरोपियों ने बेरहमी से बलात्कार किया। अवर न्यायालय और उच्च न्यायालय ने बलात्कार के आरोप की पुष्टि की और आरोपी को आजीवन कारावास की सजा सुनाई। अपील पर, सर्वोच्च न्यायालय ने आरोपी के कृत्य के लिए आजीवन कारावास की सजा को बरकरार रखा और सजा को अनिवार्य 10 साल तक कम करने के लिए रखी गई परिस्थितियों को कम करने की याचिका को खारिज कर दिया। न्यायालय ने कहा कि सजा अपराध की गंभीरता के अनुरूप होनी चाहिए और आरोपी को सजा के निवारण पहलू के अलावा "बस रेगिस्तान" में जाना चाहिए।

59. न्यायालय ने कहा कि "बलात्कार अंधेरे में लड़की की गरिमा का राक्षसी दफन है। उसकी गरिमा और शारीरिक ढांचे की पवित्रता बिखर गई है और वह बिना किसी गलती के एक महिला के सम्मान का दावा करने में सक्षम नहीं हो सकती है।

60. यह किशोर द्वारा बलात्कार का मामला नहीं है, एक एकल आरोपी एक परिपक्व महिला के साथ या एक लड़की के साथ जो

अनुवादित

यौवन या बहुमत की आयु प्राप्त करने की कगार पर है। पीड़िता को अपराध की प्रकृति का भी पता नहीं था। इसलिए, चोटों की प्रकृति, पीड़िता की उम्र, आरोपी व्यक्तियों की उम्र और यह एक छोटी लड़की के साथ सामूहिक बलात्कार का मामला है, इस न्यायालय का विचार है कि विचारण न्यायालय ने प्रत्येक को आजीवन कारावास और 10,000 रुपये के जुर्माने की सजा दी है। इस न्यायालय को सजा को कम करने के लिए कोई पर्याप्त और ठोस आधार नहीं मिला। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा सूचित किया गया है कि वर्तमान में पीड़िता एक युवा-अविवाहित लड़की है। वर्तमान में उसकी उम्र करीब 19 साल है। आरोपी पड़ोस के गांव के रहने वाले हैं। यदि सजा कम हो जाती है और उन्हें रिहा कर दिया जाता है, तो सामाजिक और व्यक्तिगत सुरक्षा समस्याएं पीड़ित को गंभीर पूर्वाग्रह पैदा कर सकती हैं।

61. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि विचारण न्यायालय द्वारा पहले से लगाई गई सजा को कम करने के लिए कोई शमन परिस्थितियां मौजूद नहीं हैं। तदनुसार, विचारण न्यायालय द्वारा सजा और सजा का आदेश उचित पाया जाता है और इसमें कोई हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

62. गुण-दोष से रहित होने के कारण अपील खारिज किए जाने योग्य हैं।

<u>आदेश</u>

63. अपील **खारिज** की जाती है। विचारण न्यायालय द्वारा पारित सजा और सजा के आदेश की पुष्टि की जाती है। अपीलकर्ता, तेज बहादुर और चिंटू @ तेज प्रकाश पहले से ही जेल में सजा भुगत रहे हैं।

64. अपर सत्र न्यायाधीश-IV, पीलीभीत, अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए।

65. विचारण न्यायालय के अभिलेख के साथ इस आदेश की एक प्रति अपर सत्र न्यायाधीश-IV, पीलीभीत को आवश्यक कदम उठाने और अभिलेखों की सुपुर्दगी के बावत वापस प्रेषित की जाए।

66. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान न्याय मित्र श्री कुलदीप जौहरी और श्री अंकुर सिंह कुशवाहा प्रत्येक को शुल्क के रूप में 7,500/- अदा किया जाए।

(2023) 2 ILRA 569

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकःइलाहाबाद 21.04.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन,

आपराधिक अपील संख्या 7544 /2019

सुनील कुमार

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री संजीव कुमार पांडे, श्री रोहित नंदन पांडे

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - साक्ष्य

अनुवादित

अधिनियम, 1872 - धारा 106 - विशेष रूप से ज्ञान के भीतर तथ्य सिद्धि भार - जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान में होता है, तो उस तथ्य को सिद्ध करने का भार उस पर होता है - साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे अभियोजन मामले को साबित करने के अपने प्राथमिक दायित्व का निर्वहन करने से मुक्त नहीं करती है - यह केवल तब होता है जब अभियोजन पक्ष ने साक्ष्य का नेतृत्व किया है, यदि विश्वास किया जाता है, तो दोषसिद्धि कायम रहेगी, या जो प्रथम दृष्टया वाद स्थापित करता है, उन तथ्यों पर विचार करने का प्रश्न उठता है जिनके सबूत का भार आरोपी पर होगा - यह अच्छी तरह से तय है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 सीधे तौर पर एक ही छत के नीचे निवासी पति या पत्नी और मृतक के साथ देखा गया अंतिम व्यक्ति होना के विरुद्ध काम नहीं करती है। (पैरा 14)

बी. आपराधिक कानून - आपराधिक आरोप पर दोषसिद्धि - संदेह - आपराधिक वाद में संदेह चाहे कितना भी गंभीर हो, सबूत का स्थान नहीं ले सकता - अभियोजन पक्ष को अपने वाद को "सच्चा हो सकता है" के दायरे से ऊपर उठाकर "सच्चा होना चाहिए" के स्तर पर लाना होगा - किसी आपराधिक आरोप पर आपराधिक न्यायशास्त्र का मौलिक सिद्धांत यह है कि अभियुक्त को दोषी होना चाहिए, न कि अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने से पूर्व वह केवल दोषी हो सकता है और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और अस्पष्ट अनुमानों को निश्चित निष्कर्षों से विभाजित करती है। (पैरा 18,19)

सी. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 106 - अपीलकर्ता की पत्नी की शादी दिनांक 20.2.2015 को हुई थी - दिनांक 24.3.2017 को उसके वैवाहिक घर में उसकी मृत्यु हो गई - उस समय आरोपी का विशिष्ट रुख था कि घटना के समय वह एटा बाजार में थे, उनके पिता और मां दिल्ली में थे और उनका भाई अपनी दुकान पर था, तभी कुछ बदमाशों ने घर में लूटपाट की और उनकी पत्नी की हत्या कर दी - उन्हें घटना की जानकारी दिन में 12:30 बजे हुई लेकिन रिपोर्ट शाम 4:30 बजे उनके द्वारा नहीं बल्कि मृतक के पिता द्वारा दर्ज की गई - विचारणीय न्यायालय ने यह ध्यान में रखा गया था कि मृतक की मृत्यु एक हत्या के कारण हुई थी और उसकी मृत्यु उसके वैवाहिक घर में हुई थी जहाँ वह अपने पति के साथ रहती थी, साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के आलोक में अभियुक्त-अपीलकर्ता पर उन परिस्थितियों को स्पष्ट करने का भार डाला, जिनमें मृतक को चोटें लगी थीं - क्योंकि कोई स्वीकार्य स्पष्टीकरण नहीं था, विचारणीय न्यायालय ने दोषसिद्धि दर्ज की - आयोजित - भले ही अभियुक्त समय पर एफ.आई.आर. दर्ज न कराने का दोषी था, यह किसी दोषी मन को प्रतिबिंबित करने

अनुवादित

वाली निर्णायक परिस्थिति के रूप में नहीं लिया जा सकता - इसका प्रारंभिक बोझ अभियोजन पक्ष पर था जिन्हें पहले यह स्थापित करना होगा कि मृतक की हत्या के समय अभियुक्त घर में मौजूद था - यदि अभियोजन ने यह तथ्य स्थापित कर दिया होता, तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के आधार पर, उन परिस्थितियों की व्याख्या करने के लिए भार अभियुक्त-अपीलकर्ता पर आ जाता जिनमें मृतिका को वे चोटें लगी थीं जिसके कारण उसकी मृत्यु कारित हुई - लेकिन चूंकि अभियोजन पक्ष मृतिका की मृत्यु के समय घर में अपीलकर्ता की उपस्थिति के संबंध में अपने प्रारंभिक बोझ का निर्वहन करने में पूर्ण रूप से विफल रहा है, इसलिए अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया, केवल इस आधार पर कि उन्होंने एफआईआर दर्ज नहीं की और उन परिस्थितियों को समझाने में विफल रहे जिनमें मृतक की मृत्यु हुई, यह विधिक रूप में बिल्कुल भी टिकाऊ नहीं है।

अनुमत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य 2021(5)एससीसी 626

2. विजय शंकर बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 12 एससीसी 644

3. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116

4. बब्लू बनाम राजस्थान राज्य, (2006) 13 एससीसी 116

5. शिवाजी साहबराव बोबडे और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1973) 2 एससीसी 793

6. देवीलाल बनाम राजस्थान राज्य, (2019) 19 एससीसी 447

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा,
एवं
माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन, द्वारा प्रदत्त)

यह याचिका 2018 के एसटी संख्या 70 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, गैंगस्टर अधिनियम, कोर्ट संख्या 5, एटा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 2.11.1999 के खिलाफ दायर की गई है, जिसके तहत वादी सुनील कुमार, सह आरोपी गजराज सिंह और निर्मला देवी को धारा 498 ए के तहत दंडनीय अपराधों के आरोप से बरी कर दिया गया है। 304 बी आईपीसी और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम लेकिन, वादी - सुनील कुमार को आईपीसी की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया गया है और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है, जबकि सह-आरोपी गजराज सिंह और निर्मला देवी को धारा 34 आईपीसी के साथ पठित धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध के आरोप से बरी कर दिया गया है। इस याचिका को स्वीकार करते हुए, दिनांक 7.12.2019 के आदेश के तहत, निचली अदालत के रिकॉर्ड को तलब किया

अनुवादित

गया था और कार्यालय को याचिका की पेपर बुक तैयार करने का निर्देश दिया गया था। याचिका की पेपर बुक तैयार है, इसलिए वादी के विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव कुमार पांडे और राज्य के लिए एजीए विद्वान श्री अमित सिन्हा की सहमति से, इस याचिका पर सुनवाई की गई है और इस आदेश द्वारा अंतिम रूप से निर्णय लिया जा रहा है।

परिचयात्मक तथ्य

वादी-सुनील कुमार की पत्नी, संगीता की शादी वादी से 20.2.2015 को हुई थी। 24.3.2017 को उसके ससुराल में उसकी मृत्यु हो गई, जिसमें से एक प्रथम सूचना रिपोर्ट (लिखित रिपोर्ट- पूर्व का -1) मृतक के पिता अभियोजन पक्ष का गवाह-1 (जमुना प्रसाद) द्वारा दर्ज की गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में, यह आरोप लगाया गया है कि आरोपी, अर्थात् सुनील कुमार (पति); गजराज सिंह (ससुर); सुधीर और योगेंद्र (देवर्स) और निर्मला देवी (सास) शादी में दिए गए दहेज से खुश नहीं थे और तिपहिया वाहन और पचास हजार रुपये नकद के लिए दबाव बना रहे थे। आरोप है कि उक्त मांग के संबंध में मृतक को आरोपियों द्वारा प्रताड़ित किया जा रहा था और मारपीट की जा रही थी। यह भी आरोप है कि उस संबंध में कई बार पंचायतों का आयोजन किया गया था, लेकिन आरोपी नहीं माने, और मांग पूरी नहीं होने के कारण, आरोपियों ने संगीता की हत्या कर दी। यह प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 24-3-2007 को 1625 बजे मिरहाची, जिला-एटा पुलिस स्टेशन में दर्ज की गई थी। जिनमें से एक चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट (पूर्व का -3) और जीडी एंट्री (पूर्व का -4) अभियोजन पक्ष का गवाह -10 द्वारा तैयार/बनाई गई थी। 24.3.2017 को 18.25 बजे मृतका के ससुराल में उसके परिवार के सदस्यों की उपस्थिति में जांच की गई, जिसकी जांच रिपोर्ट (पूर्व का 10) तैयार की गई।

मृतक के शव का पोस्टमार्टम अभियोजन पक्ष का गवाह-9 द्वारा दिनांक 25.03.2017 को अपराह्न लगभग 2:50 बजे किया गया। शव परीक्षण रिपोर्ट (पूर्व का -2) में तीन पूर्व मृत्यु चोटों का पता चला:

(i) घर्षण आकार 3 सेमी X 1 सेमी बाएं जबड़े के कोण के नीचे गर्दन का बायां आकार तिरछा रखा गया है।

(ii) श्वासनली के सामने घर्षण सामने 2 सेमी X 1 सेमी थायरॉयड उपास्थि के ऊपर गर्दन के सामने क्षैतिज रूप से रखा गया है।

(iii) घर्षण 5 सेमी X 1 सेमी गर्दन के पीछे (दाईं ओर) तिरछा रखा गया।

चोट के तहत विच्छेदन पर संख्या 1 मांसपेशियों के टूटने के साथ रक्त के थक्के को नोट किया गया था।

अनुवादित

मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व गला घोंटने के परिणामस्वरूप श्वासावरोध के कारण पता चला था।

मौत का अनुमानित समय करीब एक दिन पहले था।

जांच के बाद, तीन व्यक्तियों, सुनील कुमार (वादी), गजराज सिंह और श्रीमती निर्मला देवी के खिलाफ आरोप पत्र (विस्तार का - 5) प्रस्तुत किया गया था।

आरोप पत्र पर संज्ञान लेने और सत्र न्यायालय में प्रतिबद्ध होने के बाद, निचली अदालत ने उक्त तीन आरोपियों के खिलाफ धारा 498-ए, 304-बी आईपीसी और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत दंडनीय अपराधों के लिए आरोप तय किए, जिसमें धारा 34 आईपीसी के साथ धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध का वैकल्पिक आरोप लगाया गया।

<u>अभियोजन साक्ष्य।</u>

मुकदमे के दौरान, अभियोजन पक्ष ने ग्यारह गवाहों की जांच की, जिनमें से छह, अर्थात्, अभियोजन पक्ष का गवाह -1 (मृतक के पिता); अभियोजन पक्ष का गवाह-2 (लिखित रिपोर्ट का मुंशी); अभियोजन पक्ष का गवाह-3 (मृतक की माँ); अभियोजन पक्ष का गवाह 4 भी मुखबिर का रिश्तेदार; अभियोजन पक्ष का गवाह-5 मुखबिर का एक और रिश्तेदार; अभियोजन पक्ष का गवाह -6 (मुखबिर का भाई) तथ्य के गवाह थे। अभियोजन पक्ष का गवाह -6 को छोड़कर सभी को विरोधी घोषित कर दिया गया था। विशेष रूप से, अभियोजन पक्ष का गवाह -6, हालांकि, उन्हें मुकर घोषित नहीं किया गया था, लेकिन उन्होंने अपनी जिरह में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया। महत्वपूर्ण बात यह है कि तथ्य के सभी गवाहों ने एक साथ दहेज की मांग के संबंध में मृतक के उत्पीड़न से इनकार किया है और दहेज की कथित मांग के संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। बल्कि उन्होंने खुलासा किया कि घर का सामान चारों तरफ बिखरा पड़ा था जैसे घर में डकैती/चोरी हुई हो। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि घटना के समय मृतक के ससुर और सास दिल्ली में थे। यह ध्यान दिया जा सकता है कि अभियोजन पक्ष का गवाह -6 ने हालांकि अपने मुख्य परीक्षण में, दहेज की मांग के संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने की मांग की, लेकिन अपनी जिरह में उसने दहेज की मांग के संबंध में आरोप का समर्थन नहीं किया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अभियोजन पक्ष के किसी भी गवाह ने घटना के संभावित समय पर या उसके बारे में वादी की उपस्थिति के संबंध में गवाही नहीं दी है।

अभियोजन पक्ष का गवाह -7 और अभियोजन पक्ष का गवाह -8 जो जांच कार्यवाही के गवाह ने कहा है कि मौके पर उन्होंने देखा कि सामान पूरे घर में बिखरे हुए थे और ऐसा प्रतीत होता है कि एक डाकू या चोर ने मृतक की हत्या कर दी थी।

अनुवादित

अभियोजन पक्ष का गवाह -9 (ऑटोप्सी सर्जन) ने उनके द्वारा तैयार की गई शव परीक्षा रिपोर्ट को साबित किया और कहा कि उन्होंने 25.3.2017 को दोपहर 2.20 से 2.50 बजे के बीच शव परीक्षण किया और उनके अनुसार मृतक की मृत्यु शव परीक्षण से एक दिन पहले हो सकती है।

अभियोजन पक्ष का गवाह-10, हेड मोहर्रिर संबंधित थाने में पदस्थ ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कर जी.डी.

अभियोजन पक्ष का गवाह -11 (जांच अधिकारी) ने जांच के विभिन्न चरणों को साबित किया। हालांकि, जांच अधिकारी ने घर में चोरी या डकैती होने के सिद्धांत का समर्थन नहीं किया क्योंकि उन्होंने निरीक्षण के समय मौके पर कुछ भी असामान्य नहीं देखा। उन्होंने कहा कि उन्होंने जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज बयानों के आधार पर आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

अभियोजन पक्ष के साक्ष्य में दिखाई देने वाली आपत्तिजनक परिस्थितियों को अभियुक्तों के सामने रखा गया था। चूंकि यह याचिका वादी-सुनील कुमार द्वारा दायर की गई है, इसलिए हम संक्षेप में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत दर्ज सुनील कुमार के बयान पर ध्यान देने का प्रस्ताव करते हैं। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत दर्ज अपने बयान में, आरोपी वादी ने दहेज के संबंध में तिपहिया वाहन और 50,000 रुपये की मांग के संबंध में आरोप से इनकार किया और इसके संबंध में मृतक के उत्पीड़न के आरोप से भी इनकार किया। विशेष रूप से, आरोपी वादी सुनील कुमार का दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत दो बार बयान दर्ज किया गया था। एक 30.11.2018 को और दूसरा 17.10.2019 को। दोनों बयानों में, विशिष्ट रुख यह है कि घटना के समय वह एटा बाजार में थे, उनके पिता और मां दिल्ली में थे और उनका भाई उनकी दुकान पर था जब कुछ बदमाशों ने घर को लूट लिया और उनकी पत्नी संगीता की हत्या कर दी। 30.11.2018 को दर्ज बयान में, उन्होंने विशेष रूप से कहा कि घटना के समय, मृतक के अलावा कोई और घर में नहीं था। आरोपियों ने बचाव पक्ष के दो गवाहों से भी पूछताछ कर साक्ष्य पेश किए। उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत अपने बयान में अभियुक्त-वादी द्वारा अपनाए गए रुख का भी समर्थन किया।

<u>निचली अदालत के निष्कर्ष।</u>

निचली अदालत ने यह देखने पर कि आरोपी द्वारा दहेज की मांग और मृतक के उत्पीड़न के संबंध में कोई सबूत नहीं है, आरोपी को धारा 498 ए, 304 बी आईपीसी और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत दंडनीय अपराधों के आरोप से बरी कर दिया। हालांकि, अदालत ने वर्तमान वादी के खिलाफ परिस्थितियों के आधार पर प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला कि आरोपी के अनुसार यानी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा

अनुवादित

313 के तहत बयान के अनुसार उसे दिन में 12:30 बजे घटना के बारे में पता चला, लेकिन रिपोर्ट शाम 4:30 बजे उसके द्वारा नहीं बल्कि मृतक के पिता द्वारा दर्ज कराई गई थी। जिससे पता चलता है कि सही तथ्यों को छिपाया जा रहा था। दूसरे, आईओ ने मौके पर ऐसा कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं देखा था जिससे घर में चोरी या डकैती की संभावना का पता चलता हो। नतीजतन, इस बात को ध्यान में रखते हुए कि मृतक की मृत्यु एक हत्या की मौत हो गई और उसकी मृत्यु उसके ससुराल के घर में हुई, जहां वह साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की सहायता लेकर अपने पति के साथ रहती थी और अभियुक्त-वादी पर उन परिस्थितियों की व्याख्या करने का भार डालती थी जिनमें मृतक को चोटें लगी थीं, यह पता लगाने पर कि कोई स्वीकार्य स्पष्टीकरण नहीं था, दर्ज की गई सजा।

<u>वादी की ओर से प्रस्तुतियाँ।</u>

वादी के विद्वान अधिवक्ता ने निचली अदालत के फैसले और आदेश पर इस आधार पर सवाल उठाया है कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य बताते हैं कि घटना दिन के समय हुई थी। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि अभियुक्त-वादी घटना के समय घर में था, जबकि अभियुक्त-वादी का स्पष्टीकरण है कि वह कहीं और था, इसलिए, अभियुक्त-वादी पर उन परिस्थितियों की व्याख्या करने का भार डालते हुए, जिनमें मृतक को उन चोटों का सामना करना पड़ा था, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई, अदालत ने कानून की स्पष्ट त्रुटि की। इसलिए, दर्ज की गई दोषसिद्धि को रद्द किया जा सकता है।

वादी के विद्वान अधिवक्ता ने **शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य 2021 (5) एससीसी 626** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के हालिया तीन-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें, अनुच्छेदग्राफ संख्या 23 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है:

> *"इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 सीधे पति या पत्नी के एक ही छत के नीचे रहने और मृतक के साथ देखे जाने वाले अंतिम व्यक्ति होने के खिलाफ काम नहीं करती है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे अभियोजन मामले को साबित करने के अपने प्राथमिक बोझ का निर्वहन करने से मुक्त नहीं करती है। यह केवल तभी होता है जब अभियोजन पक्ष ने सबूत का नेतृत्व किया है, जो विश्वास किया जाता है, एक दोषसिद्धि को बनाए रखेगा, या जो एक प्रथम दृष्टया मामला बनाता है, कि सवाल उन तथ्यों पर विचार करने का उठता है जिनके बारे में सबूत का बोझ अभियुक्त पर होगा।*

उस निर्णय (सुप्रा) के **अनुच्छेद** ग्राफ संख्या 25 में यह भी देखा गया है कि "यह कानून का अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है,

अनुवादित

कि गलत स्पष्टीकरण या गैर-स्पष्टीकरण का उपयोग केवल एक अतिरिक्त परिस्थिति के रूप में किया जा सकता है, जब अभियोजन पक्ष ने परिस्थितियों की श्रृंखला को साबित कर दिया हो और अभियुक्त के अपराध के अलावा कोई अन्य निष्कर्ष न निकल जाए। हालांकि, इसे श्रृंखला को पूरा करने के लिए एक लिंक के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है।

कानून के पूर्वोक्त प्रदर्शन पर भरोसा करते हुए, वादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि भले ही वादी अपनी पत्नी की मृत्यु के संबंध में सूचना प्राप्त करने पर तुरंत प्राथमिकी दर्ज नहीं करने का दोषी था, इसे दोषी मन को दर्शाने वाली निर्णायक परिस्थिति के रूप में नहीं लिया जा सकता है। अभियोजन पक्ष पर पहले यह स्थापित करने का भार था कि वादी मृतक की हत्या के समय घर में मौजूद था। अगर अभियोजन पक्ष ने इस तथ्य को स्थापित कर लिया होता, तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के आधार पर आरोपी वादी पर यह जिम्मेदारी आ जाती, कि वह उन परिस्थितियों की व्याख्या करे जिनमें मृतका को वे चोटें आई थीं, जिनके कारण उसकी मृत्यु हुई थी। लेकिन जैसा कि अभियोजन पक्ष मृतक की मृत्यु के समय घर में वादी की उपस्थिति के संबंध में अपने प्रारंभिक बोझ का निर्वहन करने में पूरी तरह से विफल रहा है, वादी की दोषसिद्धि, केवल इस आधार पर कि उसने प्राथमिकी दर्ज नहीं की और उन परिस्थितियों की व्याख्या करने में विफल रहा जिसमें मृतक की मृत्यु हुई, कानून में बिल्कुल भी टिकाऊ नहीं है।

<u>राज्य की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>

प्रति प्रतिरोध, श्री अमित सिन्हा, विद्वान एजीए ने प्रस्तुत किया कि वादी मृतक का पति होने के नाते सामान्य रूप से मृतक के साथ रहने वाला माना जाएगा और जैसा कि वादी द्वारा कोई ठोस सबूत नहीं दिया गया है कि वह घटना के समय और कहां मौजूद था, निचली अदालत ने वादी पर धारा 106 की सहायता से दोषसिद्धि दर्ज करने का बोझ सही रखा। साक्ष्य अधिनियम। मोरेसो, जब जांच अधिकारी की गवाही से डकैती/चोरी के तथ्य की पुष्टि नहीं की गई थी।

<u>विश्लेषण</u>

प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करने और अभियोजन पक्ष के सबूतों पर ध्यान देने के बाद, यह विवाद में नहीं है कि अपराध के लिए निर्धारित मकसद, जो दहेज की मांग और उसके संबंध में उत्पीड़न है, साबित नहीं हुआ है और निचली अदालत ने विशेष रूप से उस संबंध में अपना निष्कर्ष दर्ज किया है और अभियुक्त-वादी सहित सभी अभियुक्तों को उस आरोप पर मुकदमा चलाया गया था, बरी कर दिया गया है। एक बार जब यह स्थिति हो जाती है तो कानूनी अनुमान का लाभ, जो अभियोजन पक्ष को साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख के अंतर्गत मिल सकता है, उपलब्ध नहीं है।

अनुवादित

इसलिए, प्रत्यक्ष साक्ष्य या परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा हत्या के आरोप को साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर पड़ेगा। बेशक, कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि के लिए कानून अच्छी तरह से तय हो गया है। सर्वोच्च न्यायालय के हाल के निर्णयों में से एक में, **विजय शंकर बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 12 एससीसी 644, शरद बिरधीचंद शारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116 और बबलू बनाम राजस्थान राज्य, (2006) 13 एससीसी 116** में अपने पहले के फैसलों के बाद, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले के संबंध में, यह माना गया था कि *"सामान्य सिद्धांत यह है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले में, जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें दृढ़ता से और दृढ़ता से स्थापित किया जाना चाहिए; कि ये परिस्थितियाँ एक निश्चित प्रवृत्ति की होनी चाहिए जो अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करती हैं; कि संचयी रूप से ली गई परिस्थितियों को एक श्रृंखला इतनी पूर्ण बनानी चाहिए कि इस निष्कर्ष से कोई बच न सके कि सभी मानवीय संभावना के भीतर अपराध अभियुक्त द्वारा किया गया था और उन्हें अभियुक्त के अपराध के अलावा किसी भी परिकल्पना की व्याख्या करने में असमर्थ होना चाहिए और उनकी बेगुनाही के साथ असंगत होना चाहिए। आगे* (**शरद बिरधीचंद सारदा के मामले में अनुच्छेदग्राफ 153 के अनुसार**), यह तय हो गया है, जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए, जिसका अर्थ है कि उन्हें 'होना चाहिए या होना चाहिए' और 'हो सकता है' स्थापित नहीं होना चाहिए।

उपरोक्त के अलावा, हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि आपराधिक न्यायशास्त्र का सबसे बुनियादी सिद्धांत यह है कि अभियुक्त को अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने से पहले दोषी होना चाहिए और न केवल दोषी हो सकता है और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और निश्चित निष्कर्षों से अस्पष्ट अनुमानों को विभाजित करती है (**शिवाजी सहबराव बोबडे और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1973) 2 एससीसी 793)।**

इन स्थापित कानूनी सिद्धांतों को फिर से **देवी लाल बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (2019) 19 एससीसी 447** के मामले में उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय में दोहराया गया है।, जिसमें, निर्णय के अनुच्छेदग्राफ 18 और 19 में, यह निम्नानुसार आयोजित किया गया था: -

> "18. तत्काल मामले में समग्र तथ्य की स्थिति के विश्लेषण पर, और अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किए गए परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला पर विचार करते हुए और आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा देखा गया, यह साबित करने के लिए आरोप स्पष्ट रूप से अधूरा और असंगत है कि

वादीओं को संदेह के किसी भी निशान के बिना उसके आधार पर दोषी ठहराने की अनुमति दी जाए। हालांकि रिकॉर्ड पर सामग्री उनके प्रति कुछ संदेह रखती है, लेकिन अभियोजन पक्ष अपने मामले को "सच हो सकता है" के दायरे से "सच होना चाहिए" के विमान तक बढाने में विफल रहा है जैसा कि आपराधिक आरोप में सजा के लिए कानून में अनिवार्य रूप से आवश्यक है। यह कहना ठीक है कि एक आपराधिक मुकदमे में, संदेह, चाहे वह कितना भी गंभीर हो, सबूत का विकल्प नहीं हो सकता है।

19. *इसके अलावा, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, रिकॉर्ड के मामले पर दो विचार संभव हैं, एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी बेगुनाही की ओर इशारा करता है। अभियुक्त वास्तव में उस व्यक्ति का लाभ पाने का हकदार है जो उसके अनुकूल है। सभी न्यायिक रूप से निर्धारित मापदंडों, परिस्थितिजन्य साक्ष्य की गुणवत्ता और सामग्री को परिभाषित करते हुए, एक आपराधिक आरोप पर अभियुक्त के अपराध को घर लाते हैं, हमें यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होती है कि अभियोजन पक्ष मामले में इसे पूरा करने में विफल रहा है।*

(महत्त्व सन्निविष्ट)

वर्तमान मामले में, हमें यह प्रदर्शित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं मिला है कि घटना के समय, अभियुक्त-वादी को मृतक के साथ घर में देखा गया था। पोस्टमार्टम सर्जन सहित अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार घटना दिन के समय की थी। दिन के समय, यह नहीं माना जा सकता है कि घर के सभी सदस्य, विशेष रूप से, पुरुष सदस्य, घर पर होंगे क्योंकि वे अपने दैनिक कार्यों को पूरा करने के लिए बाहर हो सकते हैं। वादी द्वारा विशिष्ट मामला लिया गया है कि वह एटा बाजार में था जब घटना के संबंध में लगभग 12:30 बजे उसके पास सूचना आई। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि घटना के संभावित समय पर या उसके आसपास, वादी को घर में या आसपास देखा गया था या उसे घर से बाहर निकलते देखा गया था। इन परिस्थितियों में, अभियोजन पक्ष यह साबित करने के लिए उस पर रखे गए प्रारंभिक बोझ का निर्वहन करने में बुरी तरह विफल रहा है कि वादी घर में था या सभी संभावना में घटना के समय घर में रहा होगा। परिस्थिति यह है कि अभियुक्त-वादी ने तुरंत पुलिस को घटना की सूचना नहीं दी, हमारे विचार में वादी को दोषी ठहराने की प्रवृत्ति में इतनी निर्णायक या निर्णायक नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मामले के दिए गए तथ्यों में अभियुक्त का आचरण महत्व रखता है। लेकिन, यहां, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में मुश्किल से 4 घंटे की देरी होती है। विशेष रूप से, वादी को सूचना प्राप्त हुई थी, जैसा कि उसका मामला है, 12.30 बजे, जब वह बाजार में था। वादी के ससुराल वालों ने उसी दिन 16.25 बजे रिपोर्ट दर्ज कराई,

अनुवादित

इसलिए, वादी के पास अपने आचरण से प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए जवाब देने के लिए शायद ही पर्याप्त समय था। एक बार जब यह स्थिति हो जाती है, तो **शिवाजी चिंताप्पा पाटिल (सुप्रा)** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को ध्यान में रखते हुए, हमारे विचार में, निचली अदालत ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की सहायता से दोषसिद्धि दर्ज करके खुद को गुमराह किया।इसके अलावा, अभियोजन मामले की एक और महत्वपूर्ण विशेषता है, जो यह है कि जांच के गवाहों सहित तथ्य के सभी अभियोजन पक्ष के गवाहों ने घर में डकैती या चोरी का संकेत देने वाले पूरे घर में बिखरे सामान के संबंध में लगातार गवाही दी है। चूंकि यह परिस्थिति अभियोजन पक्ष के साक्ष्य में ध्यान देने योग्य है, इसलिए वादी द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को स्वीकार करने का और भी कारण था। इसलिए, हमारे विचार में, निचली अदालत द्वारा दर्ज किए गए निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

याचिका को अनुमति दी जाती है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, गैंगस्टर अधिनियम, कोर्ट संख्या 5, एटा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 2.11.2019 को वादी को दोषी ठहराने और सजा देने की सीमा तक रद्द किया जाता है। वादी को हत्या के अपराध के आरोप से बरी कर दिया जाता है जिसके लिए उसे दोषी ठहराया गया है। वादी के जेल में होने की सूचना है, उसे निचली अदालत की संतुष्टि के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437-ए के प्रावधानों के अनुपालन के अधीन तुरंत रिहा कर दिया जाएगा।

इस आदेश/निर्णय की एक प्रति और निचली अदालत के मूल रिकॉर्ड को आवश्यक जानकारी और अनुपालन के लिए संबंधित निचली अदालत को तुरंत प्रेषित किया जाए। कार्यालय को आगे निर्देश दिया जाता है कि वह न्यायालय के उद्देश्य के लिए बनाए गए अनुपालन रजिस्टर में निर्णय दर्ज करे।

(2023) 2 ILRA 576

अपील क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 817 /1993

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

गौरी शंकर सिंह

...वादी/विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: एस. सी.

अधिवक्ता विपक्षीगण: श्री ए.के. सक्सेना

ए. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1940- धारा 30,33 और 20- मध्यस्थता पुरस्कार- अपास्त- वैधता- प्रतिवादी ने

अनुवादित

अधिनियम की धारा 20 के तहत एक मुकदमा दायर किया- मध्यस्थ ने निर्णय द्वारा ठेकेदार/प्रतिवादी को PWD को 4,47,875 रु और रप्रतिवादी को 97,650 रु. भुगतान करने का निर्देश दिया गया - उपरोक्त सुविचारित मध्यस्थ निर्णय के विरुद्ध चुनौती - न्यायालय द्वारा इस आधार पर हस्तक्षेप किया गया कि निष्कर्ष दूषित है - मध्यस्थ पुरस्कार को अपास्त गलत पाया गया - आपेक्षित आदेश में हस्तक्षेप से इनकार किया गया। (पैरा 1 से 24)

अपील निरस्त की जाती है. (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. के. मरप्पन (मृत) बनाम अधीक्षण अभियंता टी.बी.पी.एच.एल.सी सर्कल अनंतपुर (2019) जेएक्स एससी 391
2. रवीची एंड कंपनी बनाम भारत संघ (2018) एयर एसएच 3109
3. पुरी कंस्ट्रक्शन प्रा. लिमिटेड बनाम भारत संघ (1989) एआईआर एससी 777
4. उड़ीसा राज्य बनाम बी.एन अग्रवाल (1997) 2 एससीसी 469
5. एफसीआई बनाम जोगिंदर पाल मोहिंदर पाल (1989) 2 एससीसी 347
6. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम जे.एम. विपक्ष। कंपनी एफएएफओ नंबर 2005 का 714
7. के.पी. पॉलोज़ बनाम केरल राज्य और अन्य (1975) 2 एससीसी 236
8. हिंद बिल्डर्स बनाम भारत संघ (1990) 3 एससीसी 338
9. दंदासी साहू बनाम उड़ीसा राज्य (1990) 1 एससीसी 214
10. थावर दास बनाम भारत संघ (1955) एआईआर एससी 468
11. रायपुर देव प्राधिकरण एवं अन्य बनाम चोखामल एवं अन्य (1989) एससीसी 721

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता-राज्य के लिए श्री राठौर को सुना।
2. राज्य अपर जिला न्यायाधीश-VI, गोरखपुर द्वारा पारित दिनांक 1-5-1993 के आदेश से व्यथित है, जिसमें मध्यस्थ द्वारा दिए गए दिनांक 5-2-1993 के अधिनिर्णय को रद्द करने के आवेदन से राज्य व्यथित हुआ है।
3. मामले की सुनवाई पर, अपीलकर्ता - राज्य को दिनांक 13.8.1993 के आदेश के तहत 3 महीने के भीतर राशि जमा करने का निर्देश दिया गया था और जिसका भुगतान प्रतिवादी को किया जाना था।
4. अभिलेख, अपील ज्ञापन और निर्णय से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि अधीक्षण अभियंता, निर्माण प्रभाग, पी.डब्ल्यू.डी., गोरखपुर द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से अलग-अलग अनुबंध निष्पादित किए गए थे, जो बीआरडी मेडिकल कॉलेज गोरखपुर में क्षेत्रीय स्वास्थ्य और परिवार नियोजन कल्याण प्रशिक्षण केंद्र में क्लिनिक ब्लॉक, शैक्षणिक ब्लॉक और छात्रावास भवन के निर्माण से जुड़े थे।

अनुवादित

5. मुकदमेबाजी तब शुरू हुई जब प्रतिवादी ने मध्यस्थता अधिनियम, 1939 की धारा 20 के तहत एक मुकदमा दायर किया और पार्टियों के बीच विवाद के लिए एक मध्यस्थ नियुक्त किया गया। विचारण न्यायालय ने श्री डीएन श्रीवास्तव, गोरखपुर और श्री एससी श्रीवास्तव, मुख्य निजी अधिकारी, पूर्वोत्तर रेलवे, गोरखपुर को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया, जिसे 1993 के एफ.ए.एफ.ओ संख्या 746 के रूप में भी चुनौती दी गई थी।

6. दावा याचिका मध्यस्थ के समक्ष दायर की गई। अपीलकर्ता ने भी इसका विरोध किया। मध्यस्थ ने अपने पंचाट दिनांक 5.2.1993 द्वारा ठेकेदार-प्रतिवादी को लोक निर्माण विभाग, निर्माण प्रभाग, गोरखपुर को 4,47,875/- रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया और अपीलकर्ता द्वारा प्रतिवादी को 97,650/- रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया गया और न्यायालय का अधिनिर्णय नियम बनाया गया।

7. मध्यस्थों के विस्तृत आदेश के बाद इसे न्यायालय का पंचाट बनाया गया था जिसे मध्यस्थता अधिनियम की धारा 39 के तहत चुनौती दी गई है। कुछ कार्यों को करने के लिए पार्टियों के बीच 5 अनुबंध बांड थे और मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रक्रिया के लिए, पार्टियों के बीच विवाद के मामले में, अनुबंध की शर्तों के खंड 34 में निर्धारित किया गया था तथा मध्यस्थता अधिनियम की धारा 20 के तहत वादी द्वारा दायर मुकदमे पर मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रक्रिया एवं अनुबंध की शर्तों के खंड 34 के प्रावधानों के खिलाफ मध्यस्थों की नियुक्ति, अवैध और अधिकार क्षेत्र के बिना था।

8. यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 34 के तहत, एक विवाद को संदर्भित किए जाने पर, मुख्य अभियंता के पास मध्यस्थ नियुक्त करने का अधिकार क्षेत्र है एवं अनुबंध के नियमों और शर्तों के अनुसार प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, बोर्ड द्वारा नामित मध्यस्थों की नियुक्ति अवैध थी और ऐसे मध्यस्थों द्वारा दिया गया अधिनिर्णय शून्य है।

9. केवल यह प्रस्तुत करते हुए कि मध्यस्थ का अवचार है, इस न्यायालय को नीचे की अदालत के समक्ष ऐसा कोई तर्क नहीं मिलता है। यह निर्णय मध्यस्थता के तथ्यों पर नीचे के विद्वान न्यायालय का एक अच्छी तरह से तर्कसंगत निर्णय है।

10. यह मध्यस्थता सुलह अधिनियम, 1940 के तहत अपील है।

11. विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि **के. मारप्पन (मृत) बनाम अधीक्षण अभियंता टी.बी.पी.एच.एल.सी. सर्कल अनंतपुर, 2019 जेएक्स (एससी) 391** और **रवीची एंड कंपनी बनाम भारत संघ, एआईआर 2018 एससी 3109,** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले ने मध्यस्थता अधिनियम के तहत मामलों की सुनवाई करते समय न्यायालयों की भूमिका की व्याख्या की है। निर्णय यह दिखाता है कि पेंडेंट लाइट ब्याज कई कारकों पर निर्भर करेगा जैसे; मध्यस्थता से संबंधित शक्ति प्रदान करने वाले करार खंडों में प्रयुक्त वाक्यांशविज्ञान, मध्यस्थ को संदर्भित दावे और विवाद की प्रकृति, और किन मदों पर

अनुवादित

ब्याज देने की शक्ति छीन ली गई है और किस अवधि के लिए। कोर्ट ने कहा:

"34. इस प्रकार संदर्भ के लिए हमारा उत्तर यह है कि यदि अनुबंध स्पष्ट रूप से ब्याज पेंडेंट लाइट के अधिनिर्णय पर रोक लगाता है, तो इसे मध्यस्थ द्वारा नहीं दिया जा सकता है। और यह कि विलंबित भुगतान पर ब्याज देने के लिए बार को मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा ब्याज पेंडेंट लाइट देने के लिए एक्सप्रेस बार के रूप में आसानी से अनुमान नहीं लगाया जाएगा, क्योंकि मध्यस्थ की शक्ति के निष्कासन पर इस न्यायालय के निर्णयों में निर्दिष्ट विभिन्न प्रासंगिक पहलुओं पर विचार किया जाना है, यह डिवीजन बेंच के लिए होगा कि वह मामले पर गुण-दोष के आधार पर विचार करे।

12. पुरी कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ, एआईआर 1989 एससी 777 और उड़ीसा राज्य बनाम बीएन अग्रवला, (1997) 2 एससीसी 469, में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय और प्रस्तुत करता है कि उक्त निर्णय के मद्देनजर, अपील की अनुमति देने की आवश्यकता है क्योंकि कोई भी पहलू जो अच्छी तरह से तर्कसंगत मध्यस्थ अधिनिर्णय को पलटने और तथ्यों की खोज और उसी को बनाए रखने के लिए आवश्यक नहीं है, यह नहीं दर्शाता है कि कोई भी विकृति है, हालांकि यह साबित नहीं हुआ था कि कोई कदाचार या मध्यस्थता अधिनियम के तहत किसी भी प्रावधान का उल्लंघन हुआ था जो इस न्यायालय द्वारा अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप की मांग करेगा।

13. **एफसीआई बनाम जोगिंदरपाल मोहिंदरपाल, (1989) 2 एससीसी 347** में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि एक मध्यस्थ अधिनिर्णय के खिलाफ आपत्ति केवल तभी उठाई जा सकती है जब वह अधिनियम, 1940 की धारा 14 और 33 के प्रावधानों द्वारा निर्धारित मापदंडों के भीतर आती है। यदि अधिनिर्णय संतुष्ट करता है कि यह न्यायसम्य, निष्पक्ष खेल, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत और स्थापित अभ्यास और प्रक्रिया पर आधारित है, तो अधिनिर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। मध्यस्थता की कार्यवाही में न्याय, इक्विटी, कानून और निष्पक्षता का पालन होना चाहिए। कार्यवाहियों को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना चाहिए और ऐसी प्रथा और प्रक्रिया के अनुरूप होना चाहिए जिससे विवाद का उचित समाधान हो सके और उन लोगों का विश्वास पैदा हो सके जिनके लाभ के लिए इन प्रक्रियाओं का सहारा **एफसीआई बनाम जोगिंदरपाल मोहिंदरपाल (सुप्रा)** के लिए लिया जाता है।

14. अधिनियम, 1940 की धारा 30 निम्नानुसार पठित है:

"धारा 30। अधिनिर्णय को रद्द करने के लिए आधार। एक अधिनिर्णय निम्नलिखित आधारों में से एक या अधिक को छोड़कर अलग नहीं रखा जाएगा, अर्थात्: -

(ए) कि एक मध्यस्थ या अंपायर ने खुद को या कार्यवाही को गलत तरीके से संचालित किया है

अनुवादित

(बी) कि मध्यस्थता को अधिक्रमित करने वाले न्यायालय द्वारा आदेश जारी करने के बाद या मध्यस्थता कार्यवाही धारा 35 के तहत अमान्य हो जाने के बाद एक अधिनिर्णय दिया गया है;

(ग) कि कोई अधिनिर्णय अनुचित रूप से प्राप्त किया गया है या अन्यथा अमान्य है।

15. अधिनियम,1940 की धारा 33 इस प्रकार पठित है:

"33. मध्यस्थता समझौता या अधिनिर्णय आवेदन द्वारा लड़ा जाना है। मध्यस्थता समझौते के लिए कोई भी पक्ष या उसके तहत दावा करने वाला कोई भी व्यक्ति जो मध्यस्थता समझौते या अधिनिर्णय के अस्तित्व या वैधता को चुनौती देना चाहता है या या तो पूर्व अवधारित का प्रभाव न्यायालय पर लागू होगा और न्यायालय हलफनामे पर सवाल तय करेगा: बशर्ते कि जहां न्यायालय इसे उचित और समीचीन समझे, यह अन्य साक्ष्यों पर भी सुनवाई के लिए आवेदन को निर्धारित कर सकता है, और यह खोज और विवरण के लिए ऐसे आदेश पारित कर सकता है जैसा कि यह एक वाद में कर सकता है।"

16. इस प्रकार, **एफसीआई बनाम जोगिंदरपाल मोहिंदरपाल (सुप्रा)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक पंचाट की न्यायिक समीक्षा को परिचालित किया गया है, जिसमें यह माना गया है कि पार्टियों के बीच विवादों के निपटारे के लिए एक तरीके के रूप में मध्यस्थता भारत में एक परंपरा है। आज उसका एक सामाजिक उद्देश्य पूरा हो रहा है। आज जब संप्रभु सत्ता द्वारा स्थापित न्यायालयों में मुकदमेबाजी का विस्फोट हो रहा है, तो आज इसकी अत्यधिक आवश्यकता है। इसलिए, यह देखना न्यायालयों का कार्य है कि मध्यस्थ न्याय के मानदंडों के भीतर कार्य करते हैं। एक बार जब वे ऐसा करते हैं और अधिनिर्णय स्पष्ट होता है, न्यायसंगत और निष्पक्ष, न्यायालयों को, जहां तक संभव हो, पार्टियों के अधिनिर्णय को प्रभावी बनाना चाहिए और पार्टियों को अपने चुने हुए अधिनिर्णायक के निर्णय का पालन करने और पालन करने के लिए मजबूर करना चाहिए। यह इस परिप्रेक्ष्य में है कि किसी को मध्यस्थ द्वारा किए गए पंचाट के न्यायालय द्वारा सुधार की गुंजाइश और सीमा को देखना चाहिए।

17. इसकी पृष्ठभूमि में यह तय करना होगा कि क्या यह कहा जा सकता है कि नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा मध्यस्थ का निर्णय खराब है और इसे गलत तरीके से मध्यस्थता अधिनियम, 1940 के अनुसार न्यायालय का नियम नहीं बनाया गया था।

18. अधिनिर्णय 26.7.1998 का अवलोकन करते समय, यह पाया गया है कि मध्यस्थ ने प्रत्येक मद पर गहन विचार किया है और अपने निष्कर्ष दिए हैं। क्या यह कहा जा सकता है कि मध्यस्थ पंचाट उन सिद्धांतों की रूपरेखा को पूरा नहीं करता है जिनका अधिनियम, 1940 के तहत मध्यस्थ द्वारा पालन किया जाना आवश्यक है। मद संख्या 5 को दृष्टांत के

अनुवादित

रूप में लिया गया है ताकि निर्णय पर बोझ न पड़े बल्कि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि मध्यस्थ और न्यायाधीश दोनों ने कानूनी कौशल का प्रयोग किया था।

19. इस न्यायालय **आदेश से प्रथम अपील संख्या 714 वर्ष2005, उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम जेएम कंस्ट्रक्शन कंपनी**, जिसका निर्णय 11.4.2019 को हुआ था, ने मध्यस्थता अधिनियम, 1940 और 1996 के तहत मामलों को तय करने के सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है, जिसमें पैराग्राफ संख्या 24 में निम्नानुसार कहा गया है: -

"**राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम** में, प्रतिवादी-कंपनी के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि वास्तव में ऐसी कोई तथ्य नहीं था जिस पर मध्यस्थ द्वारा निष्कर्ष दर्ज किया गया था। इसके समर्थन में, विद्वान वकील ने **केपी पॉलोज बनाम केरल राज्य और अन्य**,[1975] 2 एससीसी 236 में रिपोर्ट, के मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। जिसमें यह आयोजित किया गया था कि पंचाट को कदाचार के आधार पर अलग रखा जा सकता है यदि मध्यस्थ द्वारा प्रासंगिक दस्तावेजों पर विचार नहीं किया जाता है। इसलिए, हमने अपीलकर्ता-कॉरपोरेशन के विद्वान वकील से मध्यस्थ द्वारा दर्ज निष्कर्ष को साबित करने के लिए कहा कि यह रिकॉर्ड पर दर्ज तथ्य पर आधारित है। इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश के अनुसरण में, कॉरपोरेशन के विद्वान वकील ने 12.7.2006 को एक हलफनामा दायर किया और प्रस्तुत किया कि वह दस्तावेज जिसमें विभिन्न अवधियों के लिए गारंटीकृत किलोमीटर में औसत कमी के साथ-साथ नए टायरों और रीट्रेड टायरों के डिवीजनवार औसत किलोमीटर का विवरण मध्यस्थ के रिकॉर्ड में था और इसे हमारे समक्ष पेश किया गया था। सभी संभागों अर्थात भरतपुर, जयपुर, सीकर, कोटा, अजमेर, बीकानेर, जोधपुर और उदयपुर का विवरण दिया गया था। इन सभी आठ मंडलों में विभिन्न अवधि अर्थात जून 1991 से फरवरी, 1994 तक इन आरोपों को प्रमाणित करने के लिए विवरण दिया गया है कि नए टायर का औसत माइलेज क्या था और रीट्रेड टायरों द्वारा दिया गया औसत माइलेज क्या था और उस आधार पर, कमी दी गई थी और तदनुसार, नुकसान की राशि का हिसाब लगाया गया। ये विवरण, जो हमारे समक्ष रखे गए थे, मध्यस्थ के समक्ष रिकॉर्ड का हिस्सा बने। मध्यस्थ ने अपने विस्तृत पंचाट में कंपनी के रीट्रेड टायरों के साथ नए वाहन टायरों के औसत प्रदर्शन के आधार पर अपनी खोज दर्ज की है और उस आधार पर उसने अवार्ड के पैराग्राफ 17 में मूल्यांकन की गणना की है। पंचाट के अनुच्छेद 17 इस प्रकार है:

"आरएसआरटीसी ने प्रत्येक डिवीजन में नए टायरों के प्रदर्शन के साथ रीट्रेड टायरों के प्रदर्शन की तुलना की है। प्रत्येक डिवीजन में, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, सड़क की स्थिति, उपयोग किए गए वाहन, मौसम की स्थिति, ड्राइवरों के सामान्य ड्राइविंग कौशल और वाहनों के रखरखाव और रखरखाव का स्तर नए टायरों

अनुवादित

के साथ-साथ रीट्रेड टायरों के लिए समान थे। रीट्रेड टायरों को नए टायरों के जीवन का 46,000 या 95% का किलोमीटर दिया जाना चाहिए था। इसलिए, आरएसआरटीसी द्वारा किए गए प्रदर्शन का मूल्यांकन समझौते के खंड 5 के प्रावधानों के अनुरूप है। प्रतिवादी द्वारा एक रीट्रेड टायर के लिए 46,000 किलोमीटर की गारंटी देने में निर्णय की त्रुटि की स्वीकृति के बावजूद, इस आदेश के पैरा 5 में उल्लिखित अपने पत्रों के साथ दावेदार द्वारा संलग्न बयानों से, यह स्पष्ट है कि पीछे हटने वाले टायर का प्रदर्शन गारंटीकृत स्तर से कम था। इसलिए, मुझे लगता है कि आरएसआरटीसी का दावा पूरी तरह से उचित है।

"9. यह मध्यस्थ द्वारा दिए गए तथ्य का निष्कर्ष है। इसके विपरीत, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना है कि समान परिस्थितियों में प्रत्येक डिवीजन में कोई मूल्यांकन नहीं किया गया था। इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने अधिनिर्णय को रद्द कर दिया लेकिन यह तथ्यात्मक रूप से सही नहीं है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, निगम द्वारा एक तुलनात्मक मूल्यांकन दिया गया था और वह मध्यस्थ के समक्ष रिकॉर्ड का हिस्सा था और उस आधार पर मध्यस्थ द्वारा तथ्य का निष्कर्ष दर्ज किया गया था। उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने हमारे सामने जोरदार आग्रह किया कि जयपुर-लालसोट की सड़क की तुलना में जयपुर-दिल्ली जैसी सड़कों पर नए टायरों और रीट्रेड टायरों का प्रदर्शन बेहतर होगा। इसलिए, समान परिस्थितियों में कंपनी द्वारा आपूर्ति किए गए रीट्रेड टायरों की तुलना में नए टायरों के प्रदर्शन का कोई आकलन नहीं किया गया था। वास्तव में, प्रत्येक डिवीजन का औसत लिया जाना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि निगम के प्रत्येक मंडल में सड़क की स्थिति समान होगी। एक बार कंपनी ने राजस्थान राज्य में प्राप्त शर्तों को अच्छी तरह से जानते हुए एक समझौता कर लिया है कि राज्य में सभी मार्ग श्रेणी क श्रेणी की सड़कें नहीं हैं बल्कि श्रेणी क, श्रेणी ख और श्रेणी ग श्रेणियों की सड़कें भी हैं। इसलिए, इस पहलू को ध्यान में रखते हुए औसत प्रदर्शन दर्ज किया गया है। यह संभावना नहीं है कि पूरे राजस्थान राज्य में जयपुर-दिल्ली जैसी सड़क की स्थिति अन्य सभी मंडलों के लिए उपलब्ध होगी। इसलिए, सभी डिवीजनों में औसत प्रदर्शन को ध्यान में रखा गया है। यह आकलन सड़कों की समान स्थितियों यानी अच्छी गुणवत्ता के साथ-साथ खराब गुणवत्ता के औसत पर आधारित है। इसलिए, राजस्थान में उपलब्ध सड़कों के आधार पर नए टायरों के साथ पुराने टायरों का औसत प्रदर्शन लिया जाना चाहिए। इन सड़क स्थितियों पर नए टायरों के औसत चलने की तुलना रीट्रेड टायरों के साथ की जानी थी ताकि यह पता लगाया जा सके कि रीट्रेड टायरों का प्रदर्शन 95% औसत था या नहीं। तुलनात्मक मूल्यांकन का आकलन करने और रिकॉर्ड पर सामग्री के माध्यम से , मध्यस्थ ने अपनी खोज दर्ज की है। यह कंपनी के लिए था कि अगर वे अधिक जानकारी चाहते थे या आरोप लगाना चाहते थे कि सड़क की स्थिति समान नहीं है या टायर जो रियर एक्सल या फ्रंट एक्सल पर फिट किए गए थे, उनका प्रदर्शन समान नहीं होगा, ये सभी विवरण यदि वह चाहते थे, तो यह निगम से प्राप्त कर सकते थे लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया और केवल

अनुवादित

इस स्तर पर कंपनी तथ्यात्मक विवाद लाना चाहती है कि रीट्रेड टायरों का उपयोग समान परिस्थितियों में नहीं किया गया था। इस विलम्बित अवस्था में इस तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि सभी सामग्रियों पर मध्यस्थ द्वारा विचार किया गया है और निगम के प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक टायर के औसत को ध्यान में रखते हुए यह पता लगाया गया है कि रीट्रेड किए गए टायरों का निष्पादन 95% की सीमा तक नहीं था। यह मध्यस्थ द्वारा दर्ज किए गए तथ्य का निष्कर्ष था और इसे जिला न्यायाधीश द्वारा न्यायालय का नियम बनाया गया था। लेकिन विद्वान एकल न्यायाधीश ने गलती से अपील की अदालत के रूप में बैठने का बीड़ा उठाया और तथ्य के इस निष्कर्ष को बिगाड़ दिया। हमारी राय में, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को कायम नहीं रखा जा सकता है।

20. इस अपील के लंबित रहने के दौरान, स्थगन नहीं दिया गया है। अपीलकर्ता ने देखा है कि जिला न्यायाधीश द्वारा दी गई राशि बैंक गारंटी या किसी अन्य सुरक्षा के माध्यम से सुरक्षित है। संविदा का खण्ड-9 निम्नानुसार है:-

"(iii) <u>खंड -9 विशेष शर्तें (संशोधित):</u>

<u>संयंत्र और मशीनरी:</u>

बोर्ड द्वारा खरीदे गए संयंत्र और उपकरण ठेकेदार को निम्नानुसार निर्धारित नियमों और शर्तों पर उपलब्ध कराए जाएंगे: -

(ए) <u>ठेकेदार द्वारा अनन्य उपयोग के लिए कार्य के लिए उपलब्ध संयंत्र/उपकरण:</u>

(i) ठेके के अंतर्गत कार्य के एक भाग के निष्पादन के लिए बोर्ड द्वारा खरीदे गए अनुबंध-VII के अनुसार संयंत्र और उपकरण को ठेकेदार द्वारा बोर्ड को दी गई लागत पर लेना होगा जिसे उक्त अनुबंध के कॉलम 4 में दर्शाया गया है। इस तट ? का मुआवज़ा ठेके की सामान्य शर्तों के खंड-8 (संशोधित) के तहत ठेकेदार को स्वीकार्य उपस्कर के लिए अग्रिम की कुल राशि के प्रति किया जाएगा और संविदा की इसी शर्त के खण्ड-9 के अनुसार वसूल किया जाएगा।

21. सामान्य शर्तों का खण्ड-9 ब्याज के भुगतान के बारे में नहीं बताता है, श्री खन्ना को एक विशेष शर्त के रूप में प्रस्तुत करना है जो पेपरबुक के पृष्ठ 180 पर है। उन्होंने **हिंद बिल्डर्स बनाम भारत संघ, (1990) 3 एससीसी 338, के मारप्पन (मृत) द्वारा एकमात्र एलआर बालासुब्रमण्यम बनाम अधीक्षण अभियंता टीबीपीएचएलसी सर्कल अनंतपुर,1019 लॉसूट (एससी) 977 एवं उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम जेएम कंस्ट्रक्शन कंपनी, 2005 के एफएएफओ नंबर 714**, इस उच्च न्यायालय द्वारा 11.4.2019 को तय किए गए फैसले पर भरोसा किया है जिसने अनुबंध की व्याख्या इस अर्थ में की है कि जहां दो व्याख्याएं संभव हैं, मध्यस्थ का दृष्टिकोण प्रबल होगा। इस मामले में, वास्तव में कोई दो विचार संभव नहीं थे। मध्यस्थ द्वारा लिया गया दृष्टिकोण प्रशंसनीय और स्पष्ट है और मध्यस्थ का दृष्टिकोण ऐसा था कि पहले न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था। इसी तरह के विचार हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा और इस न्यायालय दोहराए गए हैं, यह श्री खन्ना का प्रस्तुतीकरण है।

अनुवादित

22. ठेकेदार के वकील द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि अरिबट्रल अवार्ड को पढ़ते समय, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अधिनियम, 1940 की धारा 30 के तहत परिकल्पित मापदंडों के भीतर आता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि मध्यस्थ ने खुद को गलत तरीके से पेश किया है और रिकॉर्ड के स्तर पर कोई त्रुटि स्पष्ट है। तथ्यात्मक त्रुटियां न्यायालय द्वारा सुधार के लिए खुली नहीं हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि तथ्य की कोई गलती न्यायसंगत नहीं है, इसलिए **दंडासी साहू बनाम उड़ीसा राज्य, (1990) 1 एससीसी 214** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को देखते हुए, जिसमें यह माना गया है कि मध्यस्थ को , पार्टियों के बीच एक मध्यस्थता समझौते के अनुसरण में उसे किए गए संदर्भ के मामले जा सकता है। इस स्थिति में न्यायालय को परिनिरीक्षण के साथ पंचाट का परीक्षण करना होगा.

23. तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए और मध्यस्थ पंचाट और जिला न्यायाधीश के आदेश की व्याख्या करते हुए, मध्यस्थ का पंचाट अनुबंध के खंड 8 और 9 के अनुरूप है। ऐसा लगता है कि जिला न्यायालय ने निर्णय को वापस कर दिया है जैसे कि न्यायालय द्वारा अपील देखा जा रहा था और सूट का फैसला किया जा रहा था जो कि नहीं किया जा सकता था। अधिकारियों का यह भी विचार था कि अपीलकर्ता से कोई ब्याज नहीं लिया जा सकता था, लेकिन उन्होंने अपने स्वयं के निर्णय की समीक्षा की जो मध्यस्थता का विषय बन गया और मध्यस्थ ने अपीलकर्ता के आवेदन को अनुमति देने के लिए ठोस कारण दिए और कहा में, पार्टियों द्वारा चुने गए व्यक्ति होने के नाते और सभी प्रश्नों के एकमात्र मध्यस्थ के रूप में अवगत कराया गया था एवं पार्टियां अधिनिर्णय को अंतिम और निर्णायक के रूप में स्वीकार करने के लिए खुद को एक नियम के रूप में बांधती हैं । मध्यस्थ को कोई कारण बताने की आवश्यकता नहीं है जब यहां तक कि अगर वह कानून में या वास्तव में उसे संदर्भित मामले का निर्धारण करने में गलती करता है, जहां ऐसी गलती अधिनिर्णय के स्तर पर प्रकट नहीं होती है, तो उस पर हमला नहीं किया जा सकता है या रद्द नहीं किया जा सकता है या पलटा नहीं जा सकता है. मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 16 और 30 के तहत प्रदान की गई सीमित परिस्थितियों में ही पंचाट में हस्तक्षेप किया कि कोई ब्याज देय नहीं था। इस सुविचारित मध्यस्थ पुरस्कार में न्यायालय द्वारा इस आधार पर हस्तक्षेप किया गया था कि निष्कर्ष खराब है, हालांकि उन्होंने कई निर्णयों का उल्लेख किया, उन्होंने स्वयं तथ्य खोज मिशन शुरू किया और इस आधार पर सराहना की कि मध्यस्थ ने एक त्रुटि की थी और थावर दास बनाम भारत संघ के मामले में एआईआर 1955 एससी 468 पर भरोसा किया था और पंचाट को गलत तरीके से पढ़ा था जैसे कि रिकॉर्ड पर एक त्रुटि स्पष्ट थी। संशोधित खंड 9 में किसी ब्याज की अनुमति नहीं थी और अग्रिम राशि बिना किसी ब्याज के दी जानी थी। मध्यस्थ पंचाट भी 1989 (2) एससीसी 721, रायपुर विकास प्राधिकरण और अन्य बनाम चोखामल और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर आधारित था। मध्यस्थ द्वारा कारणों को अच्छी तरह

अनुवादित

से सौंपा गया था, इस प्रकार, मध्यस्थ पंचाट को उलटने वाले जिला न्यायालय का निर्णय कानून की नजर में बुरा है और अदालतों द्वारा मध्यस्थ पंचाट की रूपरेखा के विपरीत है.

24. इस न्यायालय के पास इस मामले में हस्तक्षेप करने का सीमित अधिकार क्षेत्र है। विचारण न्यायालय के सुविचारित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई मामला नहीं बनता है। इसलिए यह अपील खारिज की जाती है।

25. यदि राशि अभी भी जमा नहीं की गई है, तो उन्हें ब्याज के साथ जमा किया जाएगा।

26. रिकॉर्ड और कार्यवाही विचारण न्यायालय को वापस भेजी जाए।

(2023) 2 ILRA 583

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दिनांक: इलाहाबाद 05.01.2023

सिविल पक्ष

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 1907 /2004

शाखा प्रबंधक, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

...अपीलकर्ता

बनाम

प्रमोद कुमार यादव एवं अन्य

...विपक्षीगण /प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री वी.के. बिड़ला

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री सज्जन कुमार यादव, श्री कैलाश सिंह यादव

ए. दुर्घटना दावा-कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923-धारा 3, 4(ए) - अनुदान को चुनौती-कानून का पर्याप्त प्रश्न-मृतक एक चालक था और उसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था-बीमा कंपनी द्वारा कुछ भी सिद्ध नहीं किया गया है कि चालक के पास उचित ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था - शीर्ष अदालत ने राशि की छोटी राशि पर भी बीमा कंपनी की देनदारी तय की है - वास्तव में कानून के जो महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए गए हैं, वे तथ्यों के प्रश्न हैं - आयुक्त का निष्कर्ष विकृत नहीं है - बीमा कंपनी द्वारा बनाए गए कानून के प्रश्न का उत्तर इसके विरुद्ध दिया गया है। (पैरा 1 से 11)

बी. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार बीमा कंपनी को दुर्घटना की तिथि से बीमा का भुगतान करना होगा - इस प्रकार, यह वाद अब पुन: एकीकृत नहीं है और अपीलकर्ता के विरुद्ध तय किया गया है। (पैरा 4)

अपील निरस्त की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद की सूची:</u>

1. ओरिएंटल इंस. कंपनी बनाम सिबी जियोगे एवं अन्य (2012) 4 टी.ए.सी. 4 एससी
2. न्यू इंडिया अस्र. कंपनी लिमिटेड बनाम कमला एवं अन्य

अनुवादित

3. उत्तर पूर्व कर्नाटक रोड ट्रांस निगम बनाम श्रीमती सुजाता, सिविल अपील संख्या 7470/2009

4. गोला राजन्ना आदि बनाम डिवी.एमजीआर और अन्य (2017) 1 टीएसी 259

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. इस अपील के माध्यम से, अपीलार्थी ने फैसले को चुनौती दी थी और अधिवक्ता के आरोप के बाद, इस तथ्य के बावजूद कि नोटिस तामील किया गया था, अपीलार्थी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है।

2. जहां तक प्रतिवादीगण का सवाल है, नोटिस तामील हो चुका है और श्री कैलाश सिंह यादव, विद्वान अधिवक्ता को उनकी ओर से उपस्थित होने का निर्देश दिया गया है।

3. वर्तमान अपील में कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल हैं:

क) भले ही कोई कर्मचारी कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के तहत मुआवजे का हकदार है, तो भी क्या बीमाकर्ता के पास इस दायित्व से इस आधार पर बचने का विकल्प है कि मृतक ड्राइवर के पास ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था और पॉलिसी की शर्तों का कोई उल्लंघन हुआ था?

ख) क्या मामला कर्मकार प्रतिकर अधिनियम 1923 की धारा 3 के अंतर्गत आता था, और यदि नहीं, तो क्या अपीलार्थी कंपनी, केवल क्षतिपूरक होने के नाते, कोई मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी है?

ग) क्या निचली अदालत 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज दे सकती थी, वह भी दुर्घटना की तारीख से?

4. जहां तक प्रश्न संख्या 'ग' का सवाल है, यह अधिनियम की धारा 4(ए) के तहत वैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत आता है। **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी बनाम सिबी जॉर्ज और अन्य, 2012 (4) टीएसी 4 (एससी)** में शीर्ष न्यायालय के हालिया निर्णय ने माना कि बीमा कंपनी को दुर्घटना की तारीख से ब्याज का भुगतान करना होगा। इसलिए, उक्त मुद्दा अब अनिर्णित विषय नहीं रह गया है और अपीलार्थी के खिलाफ निर्णित होता है।

5. जहां तक महत्वपूर्ण प्रश्न संख्या 'ख' का सवाल है, मामला बीमा पॉलिसी में समाविष्ट था। तथ्यात्मक सामग्री न्यायालय को कर्मकार प्रतिकर आयुक्त द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण अपनाने की अनुमति नहीं देगी। तथ्य यह है कि वाहन ट्रक से टकराया और चालक जीप में था और इसलिए, पॉलिसी ने चालक की मृत्यु को कवर किया। प्रश्न संख्या 1 और 2 ठोस कारण बताते हुए अपीलार्थी के विरुद्ध उत्तरित हुए हैं और इसलिए जब मृतक की मृत्यु उसके रोजगार के कारण दुर्घटना जनित चोटों के कारण हुई और ड्राइवर के पास उसका लाइसेंस था, इस प्रकार, मुद्दा संख्या 1 और 2 का निर्णय अपीलार्थी के विरुद्ध होता है। यहां तथ्यों का प्रश्न है और क्योंकि वाहन का बीमा था, इसलिए वाहन के मालिक जिसके साथ मृतक कार्यरत था, को क्षतिपूर्ति देना बीमा कंपनी का दायित्व था। मौत, रोज़गार

अनुवादित

और दुर्घटना के बीच एक संबंध था। यह ठोस सबूतों से साबित होता है कि दुर्घटना रोजगार के कारण उत्पन्न हुई। अत: उक्त प्रश्न भी अपीलार्थी के विरूद्ध उत्तरित होता है।

6. जहां तक कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न का संबंध है, तथ्य की खोज बहुत स्पष्ट है कि मृतक एक ड्राइवर था और मृतक के पास ड्राइविंग लाइसेंस था जो एक वैध ड्राइविंग लाइसेंस है। बीमा कंपनी द्वारा पत्रावली से ऐसा कुछ भी साबित नहीं किया गया है कि ड्राइवर के पास उचित ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। विद्वान न्यायाधीश ने **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम कमला और अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर बहुत अधिक भरोसा किया है और इसलिए, बीमा कंपनी का दायित्व तय किया है, भले ही राशि छोटी हो, अपील को खारिज करने की आवश्यकता है।

7. सबसे पहले, कर्मकार प्रतिकर आयुक्त द्वारा प्रदत्त मुआवजे की राशि के खिलाफ अपील पर विचार करने के लिए इस न्यायालय के दायरे पर चर्चा करना प्रासंगिक है।**2.11.2018 को निर्णित सिविल अपील संख्या 7470 वर्ष 2009 उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाता** में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है कि:

"9. शुरुआत में, हम इस तथ्य पर ध्यान दे सकते हैं, एक स्थापित सिद्धांत होने के नाते, कि यह प्रश्न कि क्या कर्मचारी किसी दुर्घटना का शिकार हुआ, क्या दुर्घटना रोजगार की अवधि के दौरान हुई, क्या यह रोज़गार से उत्पन्न हुआ था, दुर्घटना कैसे और किस प्रकार हुई, दुर्घटना कारित करने में किसकी लापरवाही थी, क्या कर्मचारी और नियोक्ता के बीच कोई संबंध था, कर्मचारी की आयु और मासिक वेतन क्या था, दुर्घटना में घायल होने के कारण मृत कर्मचारी पर कितने आश्रित हैं, क्या घटना को कवर करने के लिए नियोक्ता द्वारा कोई बीमाकृत राशि प्राप्त की गई थी, आदि कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जो किसी दावा याचिका में जब किसी कर्मचारी को उसके रोजगार के दौरान कोई शारीरिक चोट लगती है या उसकी मृत्यु हो जाती है और वह/उसके विधिक प्रतिनिधि अधिनियम के अंतर्गत मुआवजे का दावा करने के लिए अपने नियोक्ता पर मुकदमा करता/करते हैं, तो आयुक्त के उचित निर्णय के लिए उत्पन्न होते हैं।

10. उपरोक्त प्रश्न अनिवार्य रूप से तथ्य के प्रश्न हैं और इसलिए, उन्हे साक्ष्य की सहायता से सिद्ध करना आवश्यक है। एक बार जब वे किसी भी तरह से साबित हो जाते हैं, तो उस पर दर्ज किए गए निष्कर्षों को तथ्य के निष्कर्ष के रूप में माना जाता है।"

8. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे ऐसा निर्धारित किया कि:

"15. ऐसी अपील को प्रवेश के प्रश्न पर यह पता लगाने के लिए सुना जाता है कि क्या इसमें कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल है या नहीं। अपील में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर

अनुवादित

करता है और उच्च न्यायालय द्वारा इसकी परीक्षा की आवश्यकता होती है। यदि कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है, तो उच्च न्यायालय योग्यता के आधार पर अपील को अंतिम सुनवाई के लिए स्वीकार कर लेगा, अन्यथा इसे इस कारण से खारिज कर देगा कि इसमें कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं है।

16. अब इस मामले के तथ्यों पर आते हुए, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में ऊपर दिए गए महत्वपूर्ण प्रश्नों पर कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं था। दूसरे शब्दों में, हमारे विचार में, आयुक्त ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर मामले में उत्पन्न होने वाले सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों का उचित निर्णय लिया और प्रतिवादी को देय मुआवजे का सही निर्धारण किया। इसलिए, तथ्यों के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा इसकी सही पुष्टि की गई।

17. मामले के इस दृष्टिकोण में, दो निचले न्यायालयों के तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष होने के कारण इस न्यायालय पर बाध्यकारी हैं। अन्यथा भी, हमें किसी भी तथ्यात्मक निष्कर्ष पर हस्तक्षेप करने के लिए कोई उचित आधार नहीं मिलता है। कोई भी तथ्यात्मक निष्कर्ष विकृत या मनमाना या बिना किसी सबूत पर आधारित या कानून के किसी भी प्रावधान के खिलाफ नहीं पाया गया। हम तदनुसार इन निष्कर्षों को बरकरार रखते हैं।"

9. जहां तक वर्तमान अपील का प्रश्न है, यहां बनाए गए कानून के तथाकथित महत्वपूर्ण प्रश्न तथ्यात्मक प्रश्न हैं और इन मुद्दों पर आयुक्त के निष्कर्ष विकृत नहीं हैं। जहां तक प्रश्न (घ) अर्थात् ब्याज का सवाल है, यह **उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम मामले (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के दृष्टिगत बीमा कंपनी के विरुद्ध उत्तरित होता है। **गोला राजन्ना आदि आदि बनाम मंडल प्रबंधक और अन्य, 2017 (1) टीएसी 259 (एससी)** में भी यह माना गया है कि धारा 30 के तहत, उच्च न्यायालय तथ्यों के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकता जब तक कि वे विकृत साबित न हो जाएं।

10. उपरोक्त के दृष्टिगत, अपील विफल हो जाती है और खारिज की जाती है। बीमा कंपनी द्वारा बनाए गए कानून के तथाकथित प्रश्न उसके विरुद्ध उत्तरित होते है। वास्तव में उठाए गए महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न तथ्य के प्रश्न हैं।

11. अंतरिम राहत, यदि कोई हो, तुरंत समाप्त कर दी जाएगी। दावेदार को तुरंत राशि का भुगतान किया जाए।

(2023) 2 ILRA 585

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दिनांक: इलाहाबाद 17.01.2023

सिविल पक्ष

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 2682 /2017

रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

...अपीलकर्ता

बनाम

राघव शरण और अन्य

अनुवादित

...परिवादी/प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री सुशील कुमार मेहरोत्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री राम सिंह, श्री एस.के. सिंह यादव

ए. आपराधिक कानून - मोटर्स वाहन अधिनियम, 1988-धारा 166, 163-ए और 168- दावा/क्षतिपूर्ति-चोट का मामला- न्यायाधिकरण ने भविष्य की संभावनाओं पर विचार नहीं किया- ऐसे मुद्दों को उच्च न्यायालय ने स्वयं निर्धारित किया होगा और सीधे एक पुरस्कार पारित किया होगा, लेकिन न्यायाधिकरण ने दावेदार द्वारा कायम कार्यात्मक विकलांगता के आकलन के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं दिया- वाद पर पुनर्विचार किया गया। (पैरा 1 से 40)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सरला वर्मा (श्रीमती) एवं अन्य बनाम डीटीसी एवं अन्य (2009) 6 एससीसी 121
2. श्रीराम कुशवाह बनाम उ.प्र. जनरल एमजीआर के माध्यम से सेंट शुगर कार्पोरेशन लिमिटेड (2015) 2 एडीजे 578
3. राज कुमार बनाम अजय कुमार एवं अन्य (2011) 1 एससीसी 343
4. यूनाइटेड इंडिया इं.स. कंपनी लिमिटेड बनाम संजय दीक्षित (2022) 2 एडब्ल्यूसी 1596
5. जगदीश बनाम मोहन एवं अन्य (2018) 4 एससीसी 571
6. न्यू इंडिया अस्र. कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य। (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 822
7. राष्ट्रीय इं.सं. कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य (2017) 16 एससीसी 680

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

बीमा कंपनी द्वारा यह अपील मोटर दुर्घटना न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, बांदा दिनांक 29.05.2 version. Not for Legal Use ज्यायाधिकरण/अतिरिक्त जिला निर्णय और अधिनिर्णय के खिलाफ निर्देशित है, जिसमें मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 39/70/2012 की अनुमति दी गई थी। आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय द्वारा, दुर्घटना में दावेदार-प्रतिवादी द्वारा 2. अपीलकर्ता-बीमा द्वारा 10 लाख रुपये की राशि एक मोटर स्थायी विकलांगता के लिए दी गई है।

2. अपीलकर्ता बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री एसके मेहरोत्रा और दावेदार-प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से पेश होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री राम सिंह को सुना। मालिक-प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से पेश नहीं होता है।

3. इस अपील को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि दावेदार-प्रतिवादी संख्या 1 (संक्षेप में, 'दावेदार') ने न्यायाधिकरण के समक्ष दावा याचिका दायर की, जिसमें इस अपील को जन्म दिया गया और इस मामले के साथ कि 26.09.2011 को शाम के लगभग साढ़े पांच बजे, वह गांव अहिला से अपने गांव

अनुवादित

के लिए साइकिल पर जा रहा था। जैसे ही दावेदार ग्राम अहिला से निकलकर बांदा-बबेरू रोड पर पुलिया पहुंचने के लिए आगे बढ़ा, उसकी मुलाकात ग्राम पून निवासी बासदेव के पुत्र राम किशन से हुई। दावेदार सड़क के किनारे खड़ा था और दोनों आपस में बात कर रहे थे।अचानक बांदा की ओर से एक मार्शल मैक्स मेक वाहन, जिसका रजिस्ट्रेशन नंबर यूपी-90बी/9067है, जिसे कालका प्रसाद उर्फ केला तेजी, लापरवाही और तेज गति से चला रहा था, आ गया। उक्त वाहन ने दावेदार को टक्कर मार दी, जिससे वह गंभीर रूप से घायल हो गया। दावेदार के बेटे और राम किशन ने उसे चिकित्सा सहायता के लिए जिला अस्पताल पहुंचाया। उसके शरीर औरनिचले अंगों पर गंभीर चोटें पाई गई, जिसके उपचार के लिए उसे जिला अस्पताल द्वारा कानपुर के एक उच्च केंद्र में रेफर कर दिया गया। दावेदार को कानपुर के नॉर्थ स्टार अस्पताल में इलाज के लिए भर्ती कराया गया था। वहां के डॉक्टरों ने सलाह दी कि उसका एक निचला अंग पूरी तरह से कुचल गया था और उसकी जान बचाने के लिए उसे काटना होगा। इसलिए, उसके अंग का निचला हिस्सा काट दिया गया था। दावेदार ने आग्रह किया कि उसे 10 लाख रुपये का नुकसान हुआ है, जिसे उसने उल्लंघन करने वाले वाहन के मालिक और प्रतिवादी-बीमा कंपनी('बीमाकर्ता') से वसूलने की मांग की थी।

4. दुर्घटनाग्रस्त वाहन के चालक और मालिक भैयादीन के पुत्र कालका द की ओर से एक लिखित बयान दायर किया गया था। उन्होंने आम तौर पर दावा याचिक में दावों से इनकार किया है, लेकिन स्वीकार किया कि वह उल्लंघन करने वाले वाहन के मालिक हैं। यह भी स्वीकार किया जाता है कि वह वाहन चला रहा था। यह दलील दी गई है कि उल्लंघन करने वाले वाहन का बीमा बीमाकर्ताओं के पास एक पॉलिसी के तहत किया गया है जो 23.12.2010 से 22.12.2011 तक वैध था। दावेदार कोई मुआवजा प्राप्त कर हकदार नहीं है।आगे यह कहा गया है कि यदि न्यायालय दावेदार को हकदार पाता है तो यह बीमाकर्ता है जिसे मुआवजे का अच्छा भुगतान करना होगा।

5. बीमाकर्ताओं की दावेदार के क्योंकि अलग लिखित बयान दायर किया गया था। उन्होंने आम तौर पर नकार किया है। यह दावा किया जाता है कि दुर्घटना इसलिए नहीं हुई करने वाले वाहन के चालक ने इसे लापरवाही से और तेज गति से चलाया। यह दलील दी गई है कि दावेदार को कोई स्थायी विकलांगता नहीं हुई है है और वह मुआवजे का दावा करने का हकदार नहीं है। यह बीमाकर्ताओं का मामला भी है कि मुआवजे में दावा की गई 10 लाख रुपये की राशि अधिक और अत्यधिक है।

6. पक्षकारों की दलीलों पर, न्यायाधिकरण ने निम्नलिखित मुद्दों को तैयार किया (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

1. क्या दिनांक 26.09.2011 को सायं लगभग 5:30 बजे पुलिस थाना बिसंदा,

अनुवादित

जिला बांदा के अंतर्गत आने वाले ग्राम अहिला की सीमा के भीतर बांदा-बबेरू राज्य राजमार्ग पर स्थित पुलिया पर वाहन मार्शल मैक्स, जिसका पंजीकरण नं. यूपी-90बी/9067 चालक कालका प्रसाद द्वारा तेज गति से और लापरवाही से चलाई जा रही कार ने सड़क किनारे खड़े राघव शरण को टक्कर मार दी, जिससे वह गंभीर रूप से घायल हो गया।

2. क्या दुर्घटना की तारीख और समय पर, वाहन के चालक, कालका प्रसाद के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था और वाहन के पास अन्य वैध कागजात उपलब्ध थे?

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

3. चाहे दुर्घटना की तारीख और समय पर, वाहन, पंजीकरण संख्या वाला हो। यूपी-90बी/9067 का बीमा विपक्षी संख्या 2, रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के साथ किया गया था और वाहन बीमा पॉलिसी की शर्तों के अनुसार संचालित किया जा रहा था?

4. क्या दावेदार मुआवजे का हकदार है? यदि हां, तो कितना और किस विपक्षी से?

7. दावेदार ने अपने मामले के समर्थन में पीडब्लू-1, राघव शरण, पीडब्लू २, राम किशन, पीडब्लू 3. जवाहर लाल राजपूत और पीडब्लू-4 कामता प्रसाद की जाँच की। दावेदार के मामले में समर्थन में , कई दस्तावेज दायर किए गए थे, जिसका सारांश आक्षेपित निर्णय में विस्तृत है। रिकॉर्ड की संक्षिप्तता के लिए, इसे पुनरावृत्ति करने की कोई आवस्यकता नहीं है। हलाकि , इस साक्ष्य प्रासंगिक को इस निर्णय के दौरान संदर्भित किया जाएगा।

8. बीमाकर्ताओं ने एक सूची, पेपर संख्या 17-ग. बीमा पॉलिसी. फोटोस्टेट कॉपी दायर 16 ग-1 के माध्यम से पंजीकरण प्रमाणपत्र, पेपर संख्या 18-ग और कालका प्रसाद के डाइविंग लाइसेंस की एक पेपर संख्या 19-ग के रूप में गिना गया।

9. मुद्दा संख्या 1,2और 3 सभी को न्यायाधिकरण द्वारा एक साथ निपटाया गया था। इन सभी मुद्दों का जवाब दावेदारों के पक्ष में दिया गया था और यह माना गया था कि दुर्घटना कालका प्रसाद द्वारा तेज गति और लापरवाही से वाहन चलाने के कारण हुई थी। दुर्घटना की तारीख को, उसके पास एक वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था। इसके अलावा, बीमाकर्ताओं द्वारा उस तारीख को वाहन का वैध बीमा किया गया था।

10. मुद्दा संख्या 4 न्यायाधिकरण द्वारा अलग से तय किया गया था। न्यायाधिकरण ने दावेदार द्वारा किए गए उपचार पर खर्च के बारे में साक्ष्य स्वीकार किया, जिसके कारण न्यायाधिकरण ने कहा कि इलाज में 3,46,182/- रुपये की राशि खर्च की गई थी। न्यायाधिकरण ने

अनुवादित

विकलांगता प्रमाण पत्र को देखा, जिसमें से उसने 70% की स्थायी विकलांगता को प्रमाणित पाया। दस्तावेजी साक्ष्य के अभाव में, न्यायाधिकरण ने दावेदार के लिए यह नहीं पाया कि उसके पास अपने डेयरी व्यवसाय और कृषि से 30,000 रुपये की मासिक आय थी। दरअसल, न्यायाधिकरण ने दावेदार के लिए 3000 रुपये की अनुमानित आय निर्धारित की। इसके बाद, न्यायाधिकरण ने यह माना है, बल्कि दिलचस्प बात यह है कि एक आदमी का जीवन अपेक्षित रूप से 100 वर्ष है। चूंकि दावेदार की आयु 50 वर्ष है, इसलिए संभावना है कि वह 25 वर्ष तक जीवित रहेगा। दावेदार के जीवन के शेष के लिए कुल आय उसकी वार्षिक आय को '25' के गुणक से गुणा करके निर्धारित की गई है।

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

11. न्यायाधिकरण द्वारा 70% की प्रमाणित चिकित्सा विकलांगता को 75% कार्यात्मक विकलांगता के लिए अग्रणी माना गया है, जो आनुपातिक रूप से दावेदार को उसकी आय के 75% से वंचित करता है। न्यायाधिकरण ने '25' के गुणक को अपनाकर जो कुल आय प्राप्त की है, उसमें से 75% को खोई हुई आय के रूप में छूट दी गई है, जिससे 6,75,000/- रुपये का अकड़ा हो गया है। यह, न्यायाधिकरण के अनुसार, आय का नुकसान है जो दावेदार ने बनाये रखा है। इस आंकड़े में चिकित्सा उपचार पर खर्च की गई 3,46,182/- रुपये की राशि जोड़ दी गई है।

12. मानसिक पीड़ा के कारण नुकसान के लिए 2,00,000/- रुपये की एक और राशि प्रदान की गई है, विशेष रूप से इस तथ्य के कारण कि दावेदार ने अपना एक अंग स्थायी रूप से खो दिया था। अपने तर्क के अंत में, न्यायाधिकरण होगा, 12,21,182/- रुपये का आंकड़ version. Not for Legal Use है कि कुल मुआवजा जिसके लिए दावेदार हकदार लेकिन चूंकि दावेदार ने अकेले 10,00,000/- रुपये के मुआवजे की मांग की है, इसलिए उसे इसका हकदार ठहराया जा सकता है।

13. श्री सुशील कुम में उल्लंघन करने के Translated श्रा, बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि दुर्घटना वाहन की भागीदारी साबित नहीं हुई है। उक्त प्रस्तुतीकरण का समर्थन वह इस तथ्य पर भरोसा करता है कि घटना के बारे में प्रथम सूचना रिपोर्ट 20 दिन बाद दर्ज की गई थी। जांच अधिकारी ने अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। उनका कहना है कि उक्त तथ्य से पता चलता है कि आपत्तिजनक वाहन को बाद में पेश किया गया था और दावे के समर्थन में सबूत बनाने के लिए बहुत देरी के बाद प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

14. अगला प्रस्तुतीकरण यह है कि यह मानते हुए कि दुर्घटना जिस तरह से कथित है, नक्शा नजरी से पता चलता है कि दावेदार सड़क के किनारे खड़े एक परिचित

अनुवादित

से बात कर रहा था। यह उनकी ओर से कठोर व्यवहार था और उन्होंने खुद दुर्घटना को आमंत्रित किया। इसलिए, अंशदायी लापरवाही को विभाजित किया जाना चाहिए।

15. परिमाण के बारे में, श्री मेहरोत्रा प्रस्तुत करते हैं कि न्यायाधिकरण ने यह मानने के लिए गंभीर त्रुटि की है कि '25' का गुणक यह मानते हुए लागू होगा कि दावेदार 25 वर्षों तक जीवित रहेगा। उन्होंने सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य, (2009) 6 एससीसी 121 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख किया है ताकि सरला वर्मा (उपरोक्त) में फैसले के पैराग्राफ संख्या 40 में निर्धारित तालिका के अनुसार, दावेदार 46-50 वर्ष की आयु वर्ग में है, लागू गुणक '13' होगा।

16. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि दावेदार ने 75% विकलांगता को बनाए रखा है, इस धारणा पर काम किया गया मुआवजा स्पष्ट रूप से अवैध है, क्योंकि विकलांगता प्रमाण पत्र 70% स्थायी विकलांगता के बारे में बोलता है, जिसे कार्यात्मक विकलांगता के समान आंकड़े के लिए बराबर नहीं किया जा सकता है। ऐसा कोई तरीका नहीं है कि 70% चिकित्सा विकलांगता को 75% कार्यात्मक विकलांगता में for Legal Use

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

17. श्री मेहरोत्रा ने अंतिम में कहा है कि तय सिद्धांतों के अनुसार मोटर दुर्घटना के दावे में दिया गया मुआवजा ऐसा होना चाहिए जो न्यायसंगत और उचित हो। यह न तो मामूली राशि होनीचाहिए और न ही कोई लाभ।

18. दूसरी ओर, दावेदार के विद्वान अधिवक्ता ए श्री राम सिंह का कहना है कि न्यायाधिकरण ने उचित निर्णय दिया है और जिसे नजर अंदाज नहीं किया जा सकता वह यह है कि दावेदार को अपने निचले अंगों में से एक को काटने का सामना करना पड़ा है। चोट अक्षम और स्थायी है। उन्होंने आगे कहा कि कहना गलत है कि घायल व्यक्ति अपनी लापरवाही के कारण दुर्घटना यह कि दुर्घटना करने वाला वाहन दर्घटना का शिकार हुआ या यह की दुर्घटना करने वाला वाहन दुर्घटना में शामिल नहीं था। उन्होंने यह प्रस्तुत करने के लिए मौखिक गवाही और नक्शा नजरी की ओर इशारा किया है कि दुर्घटना के तथ्य, हमलावर वाहन की संलिप्तता और हमलावर वाहन के चालक की एकमात्र लापरवाही को स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर भारी सबूत हैं, जिसमें दावेदारों की ओर से कोई योगदान नहीं है।

19. पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ता को सुनकर, निर्धारित किया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या उल्लंघन करने वाला वाहन दुर्घटना में

अनुवादित

शामिल था और यदि घायल की ओर से कोई लापरवाही हुई थी।

20. दुर्घटना में आपत्तिजनक वाहन की भागीदारी के बारे में बीमाकर्ताओं की ओर से शुरू किया गया तीखा हमला मुख्य रूप से विलम्बित प्राथमिकी पर आधारित है। प्राथमिकी के अवलोकन से पता चलता है कि देरी के बारे में स्पष्टीकरण इसकी सामग्री में पाया जाना है। इस न्यायालय को टिप्पणी करनी चाहिए कि उसके चेहरे पर स्पष्टीकरण उचित और स्वीकार्य है। दिनांक 13-10- 2011 को पुलिस अधीक्षक, बांदा को एक लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत करके प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई जिसके आधार पर पुलिस अधीक्षक के दिनांक 14-10-2011 के आदेश के पश्चात् दिनांक 16-10-2011 को मामला दर्ज किया गया और एक चिक प्राथमिकी जारी की गई। लिखित जानकारी में जिला अस्पताल, बांदा और कानपुर के बीच दुर्घटना और घायल के इलाज हुआ, इसका वर्णन करने के बाद, सूचनाकर्ता, जो दावेदार का बेटा है, ने कहा स्टेशन बिसंडा में प्राथमिकी दर्ज करने गया था, लेकिन वहां की पुलिस ने इसे दर्ज नहीं किया .उसी हिसाब से वह एसपी को रिपोर्ट दे रहे थे।

21. यह आम बात है कि दुर्घटनाओं के बारे में प्राथमिकी पुलिस द्वारा बहुत बेरहमी से निपटाया जाता है, जो तुच्छ कारणों से पंजीकरण से इनकार करते हैं। यह भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि आम जनता में से कोई भी अपने प्रतिष्ठित प्रतिशोध के डर से पोलिश से अपना मामला दर्ज करने के लिए जोर देने की हिम्मत नहीं करता है। पोलिश ने आम जनता के बीच इस प्रकार की प्रतिष्ठा अर्जित की है कि विलंब सहित इस मामले में जो वयवहार पारलचित होता है वह सुरक्षित साधनों के माध्यम से यथाशीघ्र घटना की ईमानदारी रिपोर्टिंग के पुढता अनुरूप है। तथ्य यह है कि जांच के बाद पुलिस ने एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की है, घटना पर अविश्वास करने का कोई कारन नहीं है ,खासकर जहां अंतिम रिपोर्ट मजिस्ट्रेट के समक्ष विधिवत विरोध की गई थी। विरोध आदि की प्रमाणित प्रतियां रिकॉर्ड पर हैं।

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

22. पीडब्लू 1 कि गवाही के अवलोकन से संकेत मिलता है कि उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में सभी भौतिक विवरणों में घटना का समर्थन किया है। बीमाकर्ताओं के कहने पर अपनी प्रति परीक्षण में, दावेदार ने कहा है कि उसने ट्रक संख्या को धीमा होने के कारण देखा था। यह स्वीकार किया गया है कि दावेदार ट्रक के मालिक चालक को जानता था और वह लगभग 10-15 वर्षों से दावेदार का परिचित था। केवल तथ्य यह है कि ट्रक के मालिक चालक को दावेदार के लिए जाना जाता था, अपने आप में एक अज्ञात वाहन के कारण दुर्घटना में आपत्तिजनक वाहन के धोखाधड़ी के मामले

अनुवादित

का अनुमान लगाने के लिए एक परिस्थिति नहीं है। कई गवाह हैं, जिन्होंने आपत्तिजनक वाहन की भागीदारी की गवाही दी है, जो दावेदार के मामले को आपत्तिजनक वाहन की पहचान के बारे में आश्वासन देता है। गवाहों के साक्ष्य की बारीकी से जांच करने से आपत्तिजनक वाहन की भागीदारी के बारे में संदेह की छाया नहीं छोड़ी जाती है और इस पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। पुलिस द्वारा तैयार की गई नक्शा नजरी से पता चलता है कि उल्लंघन करने वाला वाहन, वास्तव में, दावेदार को अपने रास्ते से भटककर टक्कर मार देता है, जो उल्लंघन करने वाले वाहन के चालक की ओर से विशेष लापरवाही को दर्शाता है।

23. यह न्यायालय इसलिए, मुद्दे संख्या 1 और 2 पर अपने निष्कर्षों के बारे में न्यायाधिकरण से सहमत होने के लिए इच्छुक है।

24. जहां तक मुआवजे की मात्रा का संबंध है, यह न्यायालय श्री मेहरोत्रा के स्वीकार करने के लिए इच्छुक है कि न्यायाधिकरण ने '25' के गुणक को अपनाने स्पष्ट त्रुटि की है। स्थापित कानून द्वारा गुणक का चयन सरला वर्मा मामले में उच्चतम न्यायालय को ने में कानून की द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार शासित होता है। सरला वर्मा मामले में दिए गए फैसले के पैराग्राफ संख्या 40 में विभिन्न गुणकों को इंगित किया गया है जो मोटर दुर्घटनाओं के पीड़ितों के मामलों में लागू होंगे, घातक और गैर-घातक दोनों। आयु वर्ग दिए गए हैं और ऐसे प्रत्येक कोष्ठक के लिए, अपनाए जाने वाले उचित गुणक का संकेत दिया गया है। सरला वर्मा मामले में दिए गए फैसले के पैराग्राफ संख्या 40 की तालिका के अनुसार, घायलों की आयु 46-50 वर्ष के बीच है, लागू गुणक '13' होगा। यह 25 नहीं हो सकता, क्योंकि सरला वर्मा में इसकी परिकल्पना बिल्कुल नहीं की गई है। सरला क्मों में निर्धारित उच्चतम गुणक '18' है और इससे अधिक कुछ नहीं। बहुत कम उम्र के पीड़ितों के मामले में '18' के गुणक को अपनाया जा सकता है। इस मामले में अपनाए जान ated version. उचित गुणक के बारे में बहुत कुछ।

25. जहा तक मुआवजे के दावेदार की पात्रता का संबंध है, निर्धारित किया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा शारीरिक विकलांगता से उत्पन्न कार्यात्मक विकलांगता है, जिसका चिकित्सकीय मूल्यांकन किया गया है। दस्तावेज़, जिसके आधार पर न्यायाधिकरण ने 75% विकलांगता का अनुमान लगाया है, मुख्य चिकित्सा अधिकारी, बांदा के कार्यालय में मेडिकल बोर्ड द्वारा जारी 'विकलांग व्यक्तियों के लिए प्रमाण पत्र' है। इसमें तीन डॉक्टर, एक नेत्र सर्जन, एक ई एंड टी सर्जन और एक आर्थोपेडिक सर्जन शामिल हैं। यह स्वयं मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित है। इसमें घायलों की तस्वीर है। यह उसे अपने दाहिने निचले अंग के बिना दिखाता है। विकलांगता का वर्णन दाहिने घुटने पर विच्छेदन है और विकलांगता प्रमाणित आंकड़ों में 70% है। प्रमाण पत्र एक मुद्रित प्रोफार्मा पर जारी

अनुवादित

किया गया है और इस न्यायालय को टिप्पणी करनी

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

चाहिए कि आंकड़ों में दर्ज विकलांगता प्रतिशत '70%' है, लेकिन कोष्ठक में रखे गए शब्दों में यह 75% प्रतीत होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दस्तावेज भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 74 और 77 के अर्थ के भीतर एक सार्वजनिक दस्तावेज है। ऐसे दस्तावेज़ के औपचारिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में, श्री राम कुशवाहा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य चीनी निगम लिमिटेड द्वारा महाप्रबंधक के माध्यम से, 2015 (2) एडीजे 578 में इस न्यायालय की एक खंडपीठ निर्धारित सिद्धांत स्पष्ट है। लेकिन, इस मामले में, इस प्रमाण पत्र की वास्तविकता के बारे में बहुत झगड़ा नहीं दिखता है; न तो न्यायाधिकरण के समक्ष और न ही इस न्यायालय के सामने।

26. यहां यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि जवाहर लाल राजपूत, मुख्य फॉर्मिस्ट जिला अस्पताल, बांदा की ओर से दावेदार की ओर से पीडब्लू -3 के रूप में जांच की गई थी और उन्होंने रिकॉर्ड के आधार पर इस तथ्य की गवाही दी थी कि 29.09.2011 को 8:40 बजे जिला अस्पताल में दावेदार की चिकित्सकीय जांच की गई थी। जिला अस्पताल से मेडिकल जांच रिपोर्ट, पेपर संख्या 70-ग 1 साबित हुई। यह गवाही दी गई कि रिपोर्ट में आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी, डॉ विनीत सचान के हस्ताक्षर थे। गवाह ने यह भी कि डॉ. विनीत सचान ने दावेदार से पूछताछ की। इस गवाह ने डिस्चार्ज रेफरल स्लिप को भी साबित किया, जिसमें दावेदार को कानपुर के एक हायर सेंटर, पेपर संख्या 40ख में भेजा गया। हालांकि, इस गवाह ने परिस्थितियों और इस तथ्य को देखते हुए विकलांगता प्रमाण पत्र को विशेष रूप से साबित नहीं किया कि इसकी वास्तविकता विवादित नहीं है , प्रमाद पत्र एक सार्वजनिक दस्तावेज होने के अलावा , इसे विधिवत साबित किया जाना चाहिए।

27. इस मामले में इस मुद्दे का जोर विकलांगता प्रमाण पत्र की वैधता के बारे में नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या मेडिकल बोर्ड द्वारा मूल्यांकन की गई 70% शारीरिक विकलांगता 70% या 75% कार्यात्मक विकलांगता में तब्दील हो जाती है, जैसा कि न्यायाधिकरण ने माना है। अधिकरण ने इस मुद्दे पर बिल्कुल विचार नहीं किया है। मेडिकल बोर्ड द्वारा प्रमाणित स्थायी शारीरिक विकलांगता के प्रतिशत से अंकगणितीय रूप से अनुमान लगाया गया है जो दावेदार के लिए एक समान कार्यात्मक विकलांगता है। वास्तव में, न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय यह इंगित नहीं करता है कि न्यायाधिकरण चिकित्सकीय रूप से प्रमाणित 'स्थायी शारीरिक विकलांगता' और प्रतिशत 'कार्यात्मक विकलांगता' के बीच अंतर के बारे में जानता

अनुवादित

था। यह प्रमुख महत्व का है, क्योंकि यह कार्यात्मक विकलांगता है, जो अकेले मुआवजे को निर्धारित करने के लिए प्रासंगिक है जिसके लिए घायल हकदार है। कानून अच्छी तरह से तय है कि स्थायी शारीरिक विकलांगता, चिकित्सकीय रूप से पाई जाती है, कार्यात्मक विकलांगता के समान प्रतिशत में अनुवाद नहीं कर सकती है।

28. कार्यात्मक विकलांगता का निर्धारण कई कारकों पर निर्भर करता है। स्थायी शारीरिक विकलांगता के एक निर्दिष्ट प्रतिशत से उत्पन्न कार्यात्मक विकलांगता के प्रतिशत को निर्धारित करने के लिए न्यायाधिकरण या न्यायालय के लिए आवेदन करने के लिए इस संबंध में एक तीन चरण परीक्षण को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आवश्यक माना गया है। मोटर दुर्घटना के परिणामस्वरूप पीड़ित को हुई कार्यात्मक विकलांगता के प्रतिशत का आकलन करने के सिद्धांत सर्वो द्वारा राज कुमार बनाम अजय कुमार और अन्य, (2011) 1 एससीसी 343 में निधारित किए गए हैं। राज कुमार (उपरोक्त) में, यह अभिनिर्धारित किया गया हैः

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

"13. वास्तविक कमाई क्षमता पर स्थायी विकलांगता के का पता लगाने में तीन चरण शामिल हैं। न्यायाधिकरण को पहले यह पता लगाना होगा कि स्थायी विकलांगता के बावजूद दावेदार क्या गतिविधियां कर सकता है और स्थायी विकलांगता के परिणामस्वरूप वह क्या नहीं कर सका (यह जीवन की सुविधाओं के नुकसान के शीर्ष के तहत मुआवजा देने के लिए भी प्रासंगिक है). दूसरा कदम दुर्घटना से पहले उसके व्यवसाय, पेशे और काम की प्रकृति का पता लगाना है, साथ ही उसकी उम्र भी। तीसरा कदम यह पता लगाना है कि क्या (ीी)दावेदार किसी भी प्रकार की आजीविका अर्जित करने से पूरी तरह से अक्षम है, या (ii) क्या स्थायी विकलांगता के बावजूद, दावेदार अभी भी उन गतिविधियों और कार्यो को प्रभावी ढंग से कर सकता है, जिन्हें वह पहले कर रहा था, या (iii) क्या उसे अपनी पिछली गतिविधियों और कार्यों का निर्वहन करने से रोका गया था या प्रतिबंधित किया गया था, लेकिन कुछ अन्य या कम पैमाने की गतिविधियों और कार्यों को कर सकता है ताकि वह कमाई करना जारी रखे या अपनी आजीविका अर्जित करना जारी रख सके।

14. उदाहरण के लिए, यदि किसी दावेदार का बायां हाथ विच्छेदित है, तो स्थायी शारीरिक या कार्यात्मक विकलांगता का मूल्यांकन लगभग 60% किया जा सकता है। यदि दावेदार ड्राइवर या बढ़ई था, तो कमाई क्षमता का वास्तविक नुकसान वस्तुतः सौ प्रतिशत हो सकता है, यदि वह न तो ड्राइव करने में सक्षम है और न ही बढ़ईगीरी करने में सक्षम है। दूसरी ओर,

अनुवादित

यदि दावेदार सरकारी सेवा में क्लर्क था, तो उसके बाएं हाथ के नुकसान से रोजगार का नुकसान नहीं हो सकता है और उसे अभी भी एक क्लर्क के रूप में जारी रखा जा सकता है क्योंकि वह अपने लिपिक कार्यों को कर सकता है; और उस स्थिति में कमाई क्षमता का नुकसान ड्राइवर या बढ़ई के मामले में 100% नहीं होगा, न ही 60% जो वास्तविक शारीरिक विकलांगता है, लेकिन बहुत कम है। वास्तव में, "भविष्य की कमाई के नुकसान" के शीर्ष के तहत कोई मुआवजा देने की आवश्यकता नहीं हो सकती है, यदि दावेदार सरकारी सेवा में जारी रहता है, हालांकि उसे अपना हाथ खोने के परिणामस्वरूप सुविधाओं के नुकसान के शीर्ष के तहत मुआवजा दिया जा सकता है। कभी-कभी घायल दावेदार को सेवा में जारी रखा जा सकता है, लेकिन उसकी विकलांगता के कारण उस पद या नौकरी से जुड़े कर्तव्यों के निर्वहन के लिए उपयुक्त नहीं पाया जा सकता है, जिसे वह पहले धारण कर रहा था, और इसलिए उसे कम परिलब्धियों के साथ किसी अन्य उपयुक्त लेकिन कम पद पर स्थानांतरित किया जा सकता है, जिस स्थिति में भविष्य की कमाई क्षमता के नुकसान के शीर्ष के तहत एक सीमित अधिनिरणय होना चाहिए कम कमाई क्षमता पर ध्यान देना।

15. यह ध्यान दिया जा सकता है कि जब भविष्य की कमाई छमता के नुकसान को 100% (या यहां तक कि 50% से अधिक कुछ भी) के रूप में मानते हुए मुआवजा दिया जाता है, तो सुविधाओं के नुकसान या जीवन की उम्मीद की हानि के शीर्ष के तहत अलगसे मुआवजा देने की आवश्यकता गायब हो सकती है और परिणामस्वरूप, सुविधाओं के नुकसान या जीवन की उम्मीद की हानि के शीर्ष के तहत केवल एक टोकन या नाममात्र राशि प्रदान की जा सकती है. अन्यथा मुआवजे के अधिनिर्णय में दोहराव हो सकता है।जैसा भी हो सकता है।

29. राज कुमार में इस बात पर भी जोर दिया गया है कि न्यायाधिकरण को पूरे शरीर के संदर्भ में कार्यात्मक विकलांगता के प्रतिशत का पता लगाने में एक सक्रिय या जिज्ञासु भूमिका निभानी होगी। यह निर्धारित करने के लिए आवश्यक है कि मुआवजा क्या होगा। राज कुमार में, यह आगे अभिनिर्धारित किया गया है:

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

"16. जब चोटों और उनके प्रभाव, विशेष रूप से स्थायी विकलांगता की सीमा के संबंध में चिकित्सा साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है, तो न्यायाधिकरण को मूक दर्शक नहीं बनना चाहिए। अधिनियम की धारा 168 और 169 यह स्पष्ट करती है कि न्यायाधिकरण एक सिविल वाद के रूप में एक तटस्थ अंपायर के रूप में कार्य नहीं करता है, लेकिन एक सक्रिय खोजकर्ता और सत्य के साधक के रूप में जिसे "उचित मुआवजे का निर्धारण करने के लिए "दावे की जांच करने" की आवश्यकता होती है।

इसलिए न्यायाधिकरण को सही और सही स्थिति का पता लगाने के लिए सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए ताकि वह "न्यायसंगत मुआवजे" का आकलन कर सके। व्यक्तिगत चोट के मामलों से निपटने के दौरान, न्यायाधिकरण को अधिमानतः चिकित्सा साक्ष्य को समझने और शारीरिक और कार्यात्मक विकलांगता का आकलन करने के लिए अमेरिकन एकेडमी ऑफ ऑर्थोपेडिक सर्जन या इसके भारतीय समकक्ष या अन्य अधिकृत ग्रंथों द्वारा तैयार किए गए ऑर्थोपेडिक सर्जनों के लिए स्थायी शारीरिक हानि के मूल्यांकन के लिए एक चिकित्सा शब्दकोश और एक पुस्तिका से लैस करना चाहिए। अधिकरण कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की प्रथम अनुसूची को भी ध्यान में रख सकता है जो कामगारों के मामले में विभिन्न प्रकार की चोटों में स्थायी निशक्तता की सीमा के बारे में कुछ संकेत देती है ।

17. यदि साक्ष्य देने वाला कोई डॉक्टर तकनीकी चिकित्सा शर्तों का उपयोग करता है, तो न्यायाधिकरण को उसे सरल गैर-चिकित्सा शर्तों में, चोट की प्रकृति और प्रभाव के बारे में बताने का निर्देश देना चाहिए। यदि कोई डॉक्टर स्थायी विकलांगता के प्रतिशत के बारे में साक्ष्य देता है, तो न्यायाधिकरण इतना प्रतिशत पूरे शरीर के के संदर्भ में है। यदि मांगना होगा कि क्या विकलांगता का में कार्यात्मक विकलांगता है या क्या यह केवल एक अंग का प्रतिशत एक अंग के संदर्भ में बताया गया है, तो न्यायाधिकरण को डॉक्टर की राय लेनी होगी कि क्या पूरे शरीर के संदर्भ में संबंधित कार्यात्मक स्थायी विकलांगता को घटाना संभव है और यदि हां, तो प्रतिशत ।

18. न्यायाधिकरण को भी सावधानी के साथ कार्य करना चाहिए, अगर यह उन डॉक्टरों विशेषज्ञ साक्ष्य को स्वीकार करने का प्रस्ताव करता है जिन्होंने घायलों का इलाज नहीं किया था, लेकिन जो उचित चिकित्सा मूल्यांकन के बिना "उपयोग के लिए तैयार" विकलांगता प्रमाण पत्र देते हैं। बेईमान डॉक्टरों के कई उदाहरण हैं जो घायलों का इलाज किए बिना, दावेदारों की मदद करने के लिए आसानी से उदार विकलांगता प्रमाण पत्र देते हैं। लेकिन जहां विकलांगता प्रमाण पत्र विधिवत गठित चिकित्सा बोर्डों द्वारा दिए जाते हैं, उन्हें ऐसे प्रमाण पत्रों की वास्तविकता के बारे में साक्ष्य के अध्यधीन स्वीकार किया जा सकता है। न्यायाधिकरण हमेशा उस डॉक्टर के साक्ष्य की आवश्यकता के लिए एक बिंदु बना सकता है जिसने घायल का इलाज किया या जिसने स्थायी विकलांगता का आकलन किया। विकलांगता प्रमाण पत्र या डिस्चार्ज सर्टिफिकेट का उत्पादन केवल उसमें बताई गई विकलांगता की सीमा का प्रमाण नहीं होगा जब तक कि दावेदार का इलाज करने वाले डॉक्टर या जिसने चिकित्सकीय जांच की और दावेदार की विकलांगता की सीमा का आकलन किया, प्रमाण पत्र के संदर्भ में प्रतिपरीक्षा के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता है। यदि न्यायाधिकरण दावेदार द्वारा पेश किए गए

अनुवादित

चिकित्सा साक्ष्य से संतुष्ट नहीं है, तो वह एक मेडिकल बोर्ड (प्रतिष्ठित स्थानीय अस्पतालों / मेडिकल कॉलेजों के परामर्श से इसके द्वारा बनाए गए पैनल से) का गठन कर सकता है और विकलांगता के आकलन के लिए दावेदार को ऐसे मेडिकल बोर्ड को संदर्भित कर सकता है।

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

19. अब हम ऊपर चर्चा किए गए सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत कर सकते है :

(i) सभी चोटें (या चोटों से उत्पन्न स्थायी विकलांगता), कमाई क्षमता के नुकसान नहीं होती हैं।

(ii) किसी व्यक्ति के संपूर्ण शरीर के संदर्भ में स्थायी विकलांगता के प्रतिशत को अर्जन क्षमता की हानि का प्रतिशत नहीं माना जा सकता। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, अर्जन क्षमता के नुकसान का प्रतिशत स्थायी विकलांगता के प्रतिशत के समान नहीं है (कुछ मामलों को छोड़कर, जहां साक्ष्य आधार पर न्यायाधिकरण यह निष्कर्ष निकालता है कि प्रतिशत स्थायी विकलांगता के प्रतिशत के समान है)।

(iii) वह डाक्टर जिसने घायल दावेदार का उपचार किया अथवा जिसने बाद में उसकी स्थायी Translated ऐसा है जिसका मूल्यांकन न्यायाधिकरण द्वारा पूरी तरह से साक्ष्य के संदर्भ में किया की सीमा का मूल्यांकन करने के लिए उसकी जांच की, केवल स्थायी सीमा के संबंध में साक्ष्य दे सकता है। कमाई की क्षमता का नुकसान कुछ जाना होगा।

(iv) एक ही स्थायी विकलांगता के परिणामस्वरूप पेशे, व्यवसाय अथवा नौकरी, आयु,शिक्षा और अन्य कारकों की प्रकृति के आधार पर विभिन्न व्यक्तियों की अर्जन क्षमता की हानि की अलग-अलग प्रतिशतता हो सकती है।

20. भविष्य की कमाई के नुकसान का आकलन निम्नलिखित उदाहरणों के संदर्भ में नीचे समझाया गया है:

उदाहरण क - घायल, एक कामगार, 30 वर्ष का था और दुर्घटना के समय प्रति माह 3000 रुपये कमा रहा था। डॉक्टर के साक्ष्य के अनुसार, चोट के परिणामस्वरूप अंग की स्थायी विकलांगता 60% थी और व्यक्ति को परिणामी स्थायी विकलांगता 30% पर निर्धारित की गई थी। हालांकि न्यायाधिकरण द्वारा कमाई क्षमता के नुकसान का आकलन किया जाता है 15% साक्ष्य के आधार पर, क्योंकि दावेदार रोजगार में जारी है, लेकिन निचले ग्रेड में है। मुआवजे की गणना इस प्रकार होगी:

(क) दुर्घटना से पहले वार्षिक आय: रु. 36,000

(ख) प्रति वर्ष भविष्य की कमाई का नुकसान (पूर्व वार्षिक आय का 15%) रुपये

(ग) आयु के संदर्भ में लागू गुणक: 17

(घ) भावी आय की हानिः (5400 × 17): रु. 91,800

अनुवादित

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

उदाहरण ख -घायल 30 साल का ड्राइवर था, जो उसका हाथ काट दिया गया है और उसकी रुपये प्रति माह कमाता था। विकलांगता का आकलन 60% किया गया है। उसे नौकरी से निकाल दिया गया क्योंकि वह अब गाड़ी नहीं चला सकता था। कोई अन्य रोजगार पाने की उनकी संभावना बहुत कम थी और अगर उन्हें कोई नौकरी मिलती भी थी, तो वेतन बह की कमाई क्षमता के होगी: होने की संभावना थी। इसलिए न्यायाधिकरण ने भविष्य न का आकलन 75% किया। मुआवजे की गणना इस प्रकार

(क) दुर्घटना से पहले वार्षिक आय: रु. 36,000
(ख) प्रति वर्ष भविष्य की कमाई की हानि (पूर्व वार्षिक आय का 75%): 27,000 रुपये
(ग) आयु के संदर्भ में लागू गुणक: 17
(घ) भावी आय की हानिः (27,000 × 17): रु. 4,59,000

उदाहरण ग - घायल की उम्र 25 साल है और वह इंजीनियरिंग अंतिम वर्ष का छात्र है। दुर्घटना के परिणामस्वरूप, वह दो महीने तक कोमा में था, उसका दाहिना हाथ काट दिया गया था और दृष्टि प्रभावित हुई थी। स्थायी विकलांगता का आकलन 70% के रूप में किया गया था। चूंकि घायल अपने चुने हुए करियर को आगे बढ़ाने में असमर्थ था और जैसा कि उसे जीवन भर एक नौकर की सहायता की आवश्यकता थी, भविष्य की कमाई क्षमता का नुकसान भी 70% के रूप में आंका गया था। मुआवजे की गणना इस प्रकार होगी:
(क) यदि उसे इंजीनियर के रूप में नियोजित किया गया होता तो उसे न्यूनतम वार्षिक आय प्राप्त होती 60,000 रुपये
(ख) प्रति वर्ष 42,000 रुपये की भावी आय की हानि (प्रत्याशित वार्षिक आय का 70%)
(ग) लागू गुणक (25 वर्ष): 18
घ) भविष्य की आय की हानिः (42,000 × 18): रु. 7,56,000 (
[नोट- उदाहरण (क) और (ख) में अपनाए गए आंकड़े काल्पनिक हैं। उदाह हालांकि अरविंद कुमार मिश्रा [(2010) 10 एससीसी 254: (2010) आंकड़े एससीसी (सीआरआई) 1258: (2010) 10 स्केल 298] में निर्णय से लिए गए वास्तविक पर आधारित हैं।

30. यह न्यायालय स्पष्ट राय का है, जैसा कि पहले ही का प्रतिशत अंकगणितीय रूप से एक समान कार्याल है। है, कि शारीरिक विकलांगता विकलांगता में अनुवाद नहीं कर सकता . **अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी**

अनुवादित

उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

31. मुझे यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम संजय दीक्षित ,२०२२(२) ए डब्लू सी 1596 में इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर मिला था। संजय दीक्षित (उपरोक्त) में यह अभिनिर्धारित किया गया था :

"10.इस मामले की जड़ यह है कि शारीरिक विकलांगता का एक विशेष प्रतिशत अंकगणितीय रूप से कार्यात्मक विकलांगता के समान माप में अनुवाद नहीं कर सकता है।कार्यात्मक विकलांगता का अर्थ होगा दुर्घटना में लगी चोटों के कारण पीड़ित की समग्र क्षमता में कटौती उसके पेशे, व्यवसाय, कॉलिंग, व्यवसाय या सेवा को आगे बढ़ाने के लिए और परिणामस्वरूप कमाई क्षमता के नुकसान का कुल । चिकित्सकीय रूप से प्रमाणित स्थायी विकलांगता के एक ही उपाय के लिए कार्यात्मक विकलांगता की डिग्री विभिन्न व्यवसायों, नौकरियों या व्यवसायों के लिए अलग-अलग हो सकती है। यह शारीरिक विकलांगता के बारे में डॉक्टरों की राय नहीं है जो कार्यात्मक विकलांगता का निर्धारण करेगी। डॉक्टर से यह पता लगाने के बाद कि अदालत को जिन चोटों का फैसला करना है,उनके व्यवसाय, पेशे आदि की प्रकृति, उसकी कमाई के नुकसान की डिग्री और सीमा को ध्यान में रखते हुए डॉक्टर से सीमाओं की प्रकृति का पता लगाने के बाद..

32. इस मामले में, न्यायालय ने पाया कि न्यायाधिकरण ने चिकित्सीय रूप से प्रमाणित 70% शारीरिक विकलांगता से उत्पन्न होने वाली कार्यात्मक विकलांगता के बारे में ज़रा भी विचार किए बिना विवादित निर्णय दिया है। न्यायाधिकरण का विकलांगता का आकलन 75% आधारहीन प्रतीत होता है क्योंकि विकलांगता प्रमाण पत्र जो रिकॉर्ड पर है, स्पष्ट रूप से आंकड़ों में 70% की स्थायी विकलांगता का उल्लेख करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शब्दों में 'पचहत्तर प्रतिशत' के उल्लेख पर न्यायाधिकरण द्वारा 75% शारीरिक विकलांगता के प्रमाणन के रूप में स्वीकार करने के लिए कार्रवाई की गई है। इसके बाद, निश्चित रूप से, न्यायाधिकरण चोट से उत्पन्न कार्यात्मक विकलांगता का निर्धारण करने की परवाह किए बिना प्रतिशत विकलांगता का प version Not for Legal Use पता लगाने के लिए पूरी तरह से भटक गया है। मेडिकल बोर्ड दवारा मूल्यांकन की गई स्थायी शारीरिक विकलांगता ने दावेदार की आय को प्रभावित करने के तरीके के बारे किया है। इस मामले में कार्यात्मक विकलांगता के विकलांगता की प्रकृति में जाने की आवश्यकता में न्यायाधिकरण दद्वारा कोई आकलन नहीं लिए न्यायाधिकरण को शारीरिक सकती है और यह दावेदार की क्षमता और शारीरिक क्षमता को अपनी आजीविका अर्जित करने के लिए कैसे प्रभावित करता है. इसके लिए दावेदार की नौकरी, व्यवसाय या पेशे भावनाओं पर शारीरिक विकलांगता के प्रभाव पर विचार करने की आवश्यकता होगी।

अनुवादित

33. इस न्यायालय प्रतिशत मामले में पाया शारीरिक विकलांगता कार्यात्मक विकलांगता के उत्पादन नहीं कर सकता है कि कहने का मतलब नहीं है, लेकिन फिर यह दावेदार के काम है कि वह अपनी आजीविका कमाने के लिए करता है की प्रकृति पर विचार करके न्यायाधिकरण द्वारा जांच की जानी है और कैसे चोट से प्रभावित हो जाएगा। यह पता चल सकता है कि कार्यात्मक विकलांगता स्थायी शारीरिक विकलांगता के बराबर प्रतिशत है। यह प्रतिशत के मामले में कुछ पूरी तरह से अलग भी हो सकता है। इसके लिए चिकित्सा बोर्ड के किसी डाक्टर, जिसने निशक्तता प्रमाणपत्र दिया है, से कुछ जांच कराने की आवश्यकता हो सकती है। डॉक्टर के साक्ष्य न्यायाधिकरण के समक्ष इसकी सच्चाई या अन्यथा के निर्धारण के लिए नहीं होंगे। यह निर्धारित करने के लिए सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि चोट की प्रकृति को देखते हुए स्थायी विकलांगता, अपनी आजीविका कमाने में घायल की संभावनाओं को कैसे प्रभावित करेगी। यहां, डॉक्टर को दावेदार द्वारा गवाह के रूप में कभी नहीं बुलाया गया था। न्यायाधिकरण ने भी डॉक्टर को बुलाना उचित नहीं समझा। इस न्यायालय की राय है कि मेडिकल बोर्ड के डॉक्टरों में से एक, अधिमानतः आर्थोपेडिक सर्जन, को बुलाया जाना चाहिए ताकि

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

न्यायाधिकरण दावेदार की विकलांगता की सटीक प्रकृति का पता लगा सके और फिर दावेदार की कार्यात्मक विकलांगता पर इसके प्रतिशत प्रभाव का निर्धारण कर सके। इस न्यायालय की राय में, मेडिकल बोर्ड के डॉक्टरों में से एक की विशेष रूप से जांच की जानी आवश्यक है, जो किसी भी मामले में किया जाना चाहिए, क्योंकि विकलांगता प्रमाण पत्र एक मुद्रित प्रोफार्मा पर है। यह विकलांगता के बारे में जानकारी देता है जो मोटे तौर पर निरंतर है, और बल्कि, बहुत व्यक्तिगत मूल्यांकन से रहित है।

34. इस मामले में आगे बढ़ने से पहले इस न्यायालय को टिप्पणी करनी चाहिए कि जहां तक चिकित्सा व्यय से संबंधित न्यायाधिकरण के अधिनिर्णय का संबंध यह असाधारण है। 3,46,182/- रुपये की राशि जिसे न्यायाधिकरण ने उपचार सुरक्षित शामिल चिकित्सा व्यय के रूप में स्वीकार किया है, इस इसे बरकरार रखा गया है। लिए दावेदार के लिए द्वारा सही पाया गया है और Not for Legal Use

35. न्यायाधिकरण ने 3000/- रुपये प्रति माह की अनुमानित आय के आधार पर घायलों द्वारा किए गए नुकसान का निर्धारण करने के Translated version. आगे बढ़ा है, जिसमें कृषि और डेयरी व्यवसाय से आय के दावेदार के मामले को 30,000/- रुपये की राशि में खारिज कर दिया गया है। रिकॉर्ड पर पूरे साक्ष्य पर विचार करने। ह न्यायालय न्यायाधिकरण

अनुवादित

के साथ समझौते में है, जहां तक दावेदार की मासिक आय का संबंध है। इसलिए, यह माना जाता है कि दुर्घटना से पहले दावेदार की आय को उस आधार पर काम किया जाना है, प्रासंगिक समय पर, इसमें कुछ भी जोड़े बिना। यह कहना सही नहीं है कि भविष्य की संभावनाओं के लिए कुछ भी नहीं जोड़ा जाना है। दावेदार की मासिक आय 3000/- रुपये थी। न्यायाधिकरण के इस निष्कर्ष की भी पुष्टि की जाती है।

36. लागू गुणक, निश्चित रूप से, '13' होगा और न्यायाधिकरण द्वारा अभिनिर्धारित '25' का काल्पनिक आंकड़ा नहीं होगा, जिसे पहले ही यहां संदर्भित किया जा चुका है। न्यायाधिकरण ने मानसिक दर्द और पीड़ा के लिए मुआवजे का आदेश दिया है, इसे 2,00,000 रुपये के आंकड़े पर समाप्त कर दिया है। इस न्यायालय की राय में कि दावेदार को हुए मानसिक दर्द का आकलन न्यायसंगत और निष्पक्ष है, यह देखते हुए कि उसने घुटने पर अपना दाहिना निचला अंग खो दिया है।

37. न्यायाधिकरण ने जो एकमात्र गलती की है, वह मेडिकल बोर्ड के डॉक्टरों में से एक को नहीं बुलाना और राज कुमार में दिए गए मापदंडों के आधार पर चिकित्सकीय रूप से प्रमाणित स्थायी विकलांगता से उत्पन्न प्रतिशत कार्यात्मक विकलांगता का आकलन नहीं करना है। केवल इसी कारण से और सीमित कारण से ही इस मामले को पुनः निर्धारण के लिए अधिकरण के पास वापस भेजा जाना चाहिए। इसके अलावा, न्यायाधिकरण के अन्य निष्कर्ष, जैसा कि ऊपर बताया गया है, की पुष्टि की जाती है और जो कुछ भी इस न्यायालय द्वारा मुआवजे को समाप्त करने में पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण करने के लिए माना गया है, उसे न्यायाधिकरण द्वारा फिर से नहीं खोला जाएगा। इसमें मासिक आय, लागू गुणक, दिए गए चिकित्सा व्यय और दावेदारों को हुई मानसिक पीड़ा और पीड़ा के लिए दिए गए 2,00,000 रुपये का मुआवजा शामिल है।

अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

38. इसके अलावा, विभिन्न शीर्षों, जिनके तहत मुआवजे पर काम किया जाना चाहिए , को जगदीश बनाम मोहन और अन्य, (2018) 4 एससीसी 571 में सर्वोच्च न्यायालय के उनके लॉर्डशिप द्वारा व्यापक रूप से इंगित किया गया है। इनमें से अधिकांश शीर्षों को न्यायाधिकरण द्वारा ध्यान में रखा गया है और मुआवजे के उद्देश्य से सुनाया गया है और न्यायाधिकरण के कुछ निष्कर्षों की इस न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है। फिर भी, जगदीश (उपरोक्त) में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 8 से पता चलता है कि न्यायाधिकरण, एक न्यायपूर्ण अधिनिर्णय

अनुवादित

बनाने के लिए मुवावजे के अधिनिर्णय के लिए किसी भी प्रमुख पर विचार करसकता है जिसे आक्षेपित अधिनिर्णय पारित करते समय विचार नहीं किया गया है। इन सबसे ऊपर, न्यायाधिकरण द्वारा जिस पर विचार किया जाना है ,वह भविष्य की संभावनाओं का अधिनिर्णय है, जो फिर से जगदीश में विचार के लिए गए।

39. उत्तर प्रदेश राज्य में, न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य,2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को ध्यान में रखते हुए,भविष्य की संभावनाओं के नुकसान के लिए आय का निर्धारण यूपी मोटर वाहन नियम, 1998के नियम 220-ए (3) के अनुसार किया जाना है (संक्षेप में, 1998 के नियम) और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, (2017) 16 एससीसी 680 में परिकल्पित भविष्य की संभावनाओं के पैमाने के अनुसार नहीं।

40. ये ऐसे मुद्दे हैं जो इस न्यायालय ने अपने लिए निर्धारित किए होंगे और सीधे एक अधिनिर्णय पारित किया होगा, लेकिन न्यायाधिकरण ने हमें दावेदार द्वारा बनाए गए कार्यात्मक विकलांगता का आकलन करने में विकलांग बना दिया है

41. यह भी स्पष्ट किया जाना चाहिए कि न्यायाधिकरण किसी भी तरह से मुआवजे के अधिनिर्णय को सीमित करने में विकलांग नहीं है जो दावेदार ने प्रार्थना की है. अब तक यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि मुआवजा देने में न्यायाधिकरण को एक न्यायपूर्ण अधिनिर्णय देना चाहिए; और यह अच्छी तरह से दावेदार की मांग से अधिक हो सकता है। न्यायाधिकरण को नए सिरे से निर्णय पारित करते समय ध्यान में रखना होगा, निश्चित रूप से, उन निष्कर्षों के अधीन जो इस न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई हैं और जो नए सिरे से निर्धारण के लिए खुले नहीं हैं।

42. परिणाम में, यह अपील सफल होती है और भाग में अनुमति दी जाती है। आक्षेपित अधिनिर्णय को रद्द कर दिया गया है, न्यायाधिकरण को दावा याचिका के रिमांड के साथ, अब इसे सुनने के लिए सक्षम है। न्यायाधिकरण इस फैसले में की गई टिप्पणियों के अनुसार और केवल उन मुद्दों पर दावा याचिका पर नए सिरे से सुनवाई करेगा और फैसला करेगा जो निधर्धारण के लिए किए गए हैं। इस न्यायालय द्वारा जिन निष्कर्षों और मुद्दों की पुष्टि की गई है, उन्हें फिर से नहीं खोला जाएगा। न्यायाधिकरण द्वारा आवश्यक साक्ष्य की जाँच की जाएगी, विशेष रूप से, मेडिकल बोर्ड के डॉक्टरों में से एक को बुलाना और जांच करना,दावेदार को विकलांगता प्रमाण पत्र जारी किया है, एक अधिनिर्णय पारित करने के उद्देश्य से जो सिर्फ मुआवजे का निर्धारण करता है न्यायाधिकरण के अधिनिर्णय के तहत दावेदार को पहले से भुगतान की गई धनराशि की राशि, चूंकि अलग रखा गया है, इस फैसले के संदर्भ में ,दावेदार से वसूल नहीं किया जाएगा और दावे के बारे में किए जाने वाले अतिम

अनुवादित

निर्धारण का पालन किया जाएगा. इस मामले में पारित अंतरिम आदेशों के तहत न्यायाधिकरण या बैंक के पास जमा किए गए मुआवजे का कोई भी हिस्सा, हालांकि, अपीलकर्ता को वापस कर दिया जाएगा। न्यायाधिकरण इस फैसले की एक प्रति प्राप्त होने के 3महीने के भीतर दावा याचिका पर नए सिरे से फैसला करने के लिए आगे बढ़ेगा, पक्षकारों को सुनने के बाद, अर्थात्, बीमा कंपनी और दावेदार, इस फैसले में दिए गए निर्देशों को ध्यान में रखते हुए। दोनों पक्ष 30.01.2023 को पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, बांदा के समक्ष पेश होंगे।

43. इस आदेश की एक प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, बांदा को तुरंत सूचित की जाए।

(2023) 2 ILRA 598

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 30.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा,

रिट-सी संख्या 3796/2005

देवेन्द्र बहादुर सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री प्रदीप कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 धारा 47-ए & 56 - शासनादेश दिनांक 31.05.2001, 30.06.2001 और 01.07.2004 - नीलामी कार्यवाही के बाद निष्पादित विक्रय पत्र - स्टाम्प शुल्क में छूट -जीओ में प्रावधान है कि स्टांप शुल्क का भुगतान वास्तविक प्रतिफल राशि पर किया जाएगा, जिसे यू.पी.एफ.सी. द्वारा नीलामी कार्यवाही में स्वीकार किया गया है - कबाड़ कोल्ड स्टोरेज को नीलामी में उच्चतम बोली के आधार पर खरीदा गया था - कोल्ड स्टोरेज की भूमि के मूल्य का आकलन स्टाम्प की कमी वास्तविक कीमत के आधार पर लगाया गया जुर्माना भी लगाया गया - वैधता को चुनौती दी गई - आयोजित, स्टांप शुल्क नीलाम मूल्य और बाजार मूल्य को छोड़कर शेष बाजार मूल्य पर देय होगा। (पैरा 20, 24 और 27)

रिट याचिका निस्तारित। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार, राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री सतीश मोहन तिवारी को सुना और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

यह रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा कलेक्टर, इटावा द्वारा पारित दिनांक 20.07.2004 के विवादित आदेश और पुनरीक्षण न्यायालय (सी.सी.आर.ए.) द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.12.2004 को रद्द करने

अनुवादित

के लिए एक रिट आदेश या निर्देश जारी करने के लिए दायर की गई है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि यू.पी.एफ.सी. ने राज्य वित्तीय निगम अधिनियम के उ. प्र. वित्तीय निगम अधिनियम 29 कीधारा 29 के तहत ने अपने ऋण की वसूली की कार्रवाई में ग्राम लखना में स्थित एक कोल्ड स्टोरेज, जिसे दुर्गा कोल्ड स्टोरेज के नाम से जाना जाता है, को अपने कब्जे में ले लिया है। यह उ. प्र. वित्तीय निगम के स्वामित्व में नष्ट होने की स्थिति में पड़ा हुआ था और जब वर्ष 2002 में यू.पी.एफ.सी. ने इसे बेचने हेतु विज्ञापित किया तो यह लगभग कबाड़ हो चुकी स्थिति में था ।

यू.पी.एफ.सी. द्वारा कोल्ड स्टोरेज की बिक्री के लिए याचिकाकर्ता की उच्चतम बोली 15,00,000/- (पंद्रह लाख) रुपये की राशि पर स्वीकार की गई थी, जिसे बाद में 14.06.2002 को उप-रजिस्ट्रार भरथना, जिला इटावा के समक्ष पंजीकृत किया गया है।

कलेक्टर, इटावा ने नोटिस जारी किया है और बिक्री-पत्र को इस आधार पर जब्त कर लिया है कि बिक्री- प्रतिफल की राशि वास्तविक मूल्य से कम है आदि। याचिकाकर्ता ने भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के तहत जारी नोटिस के खिलाफ कलेक्टर, इटावा को जवाब प्रस्तुत किया जो 2003-04 के वाद क्रमांक 04 के रूप में दर्ज किया गया था - (राज्य बनाम देवेन्द्र बहादुर सिंह) । याचिकाकर्ता ने अपनी आपत्ति में स्पष्ट रूप से कहा है कि बिक्री-प्रतिफल राशि, जो उसके द्वारा भुगतान की गई है, जीर्ण-शीर्ण कोल्ड स्टोरेज इमारत की वास्तविक कीमत थी, जहां कोई संयंत्र और मशीनरी नहीं थी और यह काम करने की स्थिति में नहीं थी। याचिकाकर्ता द्वारा यू.पी.एफ.सी. द्वारा जारी विज्ञापन पर प्रस्ताव दिया गया था और याचिकाकर्ता की उच्चतम पेशकश को यू.पी.एफ.सी. द्वारा 15,00,000/- रुपये की राशि के लिए स्वीकार कर लिया गया था। जिस पर याचिकाकर्ता द्वारा स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया गया था। प्रमुख सचिव ने दिनांक 26.11.2001 को विभागीय आदेश जारी किया है। यह राशि संपत्ति का वास्तविक बाजार मूल्य है, याचिकाकर्ता द्वारा इससे कम स्टांप का भुगतान नहीं किया गया है। प्रमुख सचिव द्वारा पारित उक्त आदेश परिशिष्ट क्रमांक 1 के रूप में संलग्न है।

इससे पहले राज्य सरकार ने एक आदेश 31.05.2001 जारी किया था, जिसके तहत राज्य सरकार ने

अनुवादित

निर्णय लिया था कि यदि किसी निगम ने कुर्क संपत्ति बेची है तो भुगतान की गई प्रतिफल राशि को वास्तविक प्रतिफल राशि माना जाएगा और पंजीकरण बिक्री प्रतिफल राशि पर किया जाएगा। उक्त जी.ओ. को अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न किया गया है।

राज्य सरकार ने 30 जून, 2001 को फिर से निर्देश जारी किया है, जो अनुलग्नक संख्या 3 के रूप में संलग्न है। हाल ही में 01.07.2004 को, राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा 9 (1) (ए) के तहत फिर से एक अधिसूचना जारी की है कि स्थानांतरण किसी भी नीलामी कार्यवाही के लिए प्रस्तावित प्रतिफल राशि पर किया जाना है, जिसे अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में संलग्न किया गया है। (इस जी.ओ. में पहली बार यू.पी.एफ.सी. को अन्य निगमों के साथ शामिल किया गया है।)

कलेक्टर, इटावा ने अवैध रूप से दिनांक 20.07.2004 को एक आदेश पारित किया, जिसके तहत उन्होंने कोल्ड स्टोरेज की 7695 वर्ग मीटर भूमि का मूल्य रु. 53,86,500/- तथा संयंत्र, मशीनरी एवं परिसर का मूल्य 15,00,000/- रूपये आंका गया है, जिस पर 5,50,960 रूपये कम स्टाम्प शुल्क के रूप में आगणित की गई है। भुगतान की गई 1,20,000/- रुपये की राशि घटाकर उन्होंने शेष स्टांप शुल्क के रूप में 4,30,960/- रुपये निर्धारित किए हैं साथ ही 1,75,040.00 रुपये का जुर्माना लगाया गया, जो अनुलग्नक संख्या 5 के रूप में संलग्न है।

व्यथित महसूस करते हुए, याचिकाकर्ता ने मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण यू.पी. इलाहाबाद-सह-राजस्व बोर्ड के समक्ष भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 56 (आई) के तहत संशोधन की मांग की। उक्त संशोधन को संशोधन संख्या 35 वर्ष 2004-05-इटावा (देवेन्द्र बहादुर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) के रूप में अंकित किया गया है, जो परिशिष्ट संख्या 6 के रूप में संलग्न है।

याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से यह आधार लिया है कि उसने कबाड़ हो चुके कोल्ड स्टोरेज को खरीदा था, जो उ.प्र. वित्तीय निगम के कब्जे में था। लगभग खस्ताहाल स्थिति में था और उसने नीलामी में रु. 15,00,000/- की उच्चतम कीमत की पेशकश की। जिसे यू.पी.एफ.सी. द्वारा स्वीकृत किया गया। विक्रय-पत्र उसके पक्ष में निष्पादित किया गया है, याचिकाकर्ता ने कोई तथ्य नहीं छुपाया है, विक्रय-पत्र बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर लिया गया है, इसलिए अधिनियम की धारा 47-ए के तहत स्टांप शुल्क और जुर्माना लगाया जाना अवैध है। मामले की सुनवाई के बाद, पुनरीक्षण

अनुवादित

न्यायालय ने अपने निर्णय और आदेश दिनांक 27.12.2004 द्वारा पुनरीक्षण को मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता दिनांक 01.07.2004 के शासनादेश का कोई भी लाभ पाने का हकदार नहीं है चूंकि इससे पूर्व यू.पी. वित्तीय निगम को छूट वाले विभागों की सूची में शामिल नहीं किया गया था, उन्होंने इस मामले पर अन्य पहलुओं पर विचार नहीं किया और उन्होंने एक गलत और विधिक दृष्टि में बुरा आदेश पारित किया। पुनरीक्षण न्यायालय का आक्षेपित आदेश दिनांक 27.12.2004 को इस रिट याचिका में अनुबंध संख्या 07 के रूप में जोड़ा गया है।

उपरोक्त अधिकारियों ने विवाद का निर्णय करने में स्पष्ट त्रुटि की है और उन्होंने बिना किसी आधार के गलत तरीके से रुपये 4,30,960/- की स्टांप ड्यूटी और जुर्माना रु. 1,75,040/- लगाया है। राज्य सरकार ने यू.पी.एफ.सी. द्वारा नीलाम की जाने वाली सम्पत्तियों को छूट दे दी है।

समय-समय पर जारी किए गए सरकारी आदेशों और विभागीय आदेशों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि स्टांप शुल्क का भुगतान वास्तविक प्रतिफल राशि पर किया जाएगा, जिसे नीलामी कार्यवाही में यू.पी.एफ.सी. द्वारा स्वीकार किया गया है। इसलिए, आदेश विकृत है और रद्द किये जाने योग्य है। आदेशों में ठोस निष्कर्ष दर्ज नहीं किए गए हैं और न ही कलेक्टर, इटावा द्वारा सर्कल रेट निर्धारित किया गया है और न ही *तहसीलदार* की रिपोर्ट है कि प्रश्नगत संपत्ति की कीमत रुपये 15,00,000/- से कम नहीं थी। इस पहलू पर, कलेक्टर, इटावा और राजस्व अधिकारियों ने कोई निष्कर्ष नहीं दिया है और उन्होंने बिना किसी आधार के गलत आदेश पारित कर दिए हैं।

उपरोक्त आधार पर, याचिकाकर्ता ने उपरोक्त विवादित आदेशों को रद्द करने की प्रार्थना की है।

उत्तरदाताओं ने 09.05.2005 को जवाबी हलफनामा दायर किया है जिसमें आरोप लगाया गया है कि यह सच है कि याचिकाकर्ता ने भवन और उस पर मौजूद मशीनरी सहित एक कोल्ड स्टोरेज खरीदा था और विलेख 14.06.2002 को पंजीकृत किया गया था, लेकिन उचित स्टांप शुल्क का भुगतान नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता को कलेक्टर द्वारा जारी सर्कल रेट के अनुसार और संपत्ति, उस पर खड़ी इमारत के मूल्यांकन पर भी ध्यान देना चाहिए, इसलिए याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किए गए थे।

याचिकाकर्ता ने आपत्ति दर्ज की और 31 मई, 2021 के शासनादेश के अनुसार स्टांप शुल्क में छूट का दावा किया है, जिसे पहले ही 23.06.2021 के बाद के जी.ओ. द्वारा रद्द कर दिया गया है, इसके बाद 26.11.2021 को

अनुवादित

राज्य सरकार ने शासनादेश जारी कर उसमें प्रावधान किया गया है कि उ.प्र. राज्य वित्तीय निगम जिन विलेखों को निष्पादित किया जा रहा है, उन पर कोई छूट नहीं दी जा सकती है। इस तथ्य को शासनादेश दिनांक 07.12.2002 द्वारा और भी स्पष्ट किया गया है। यह स्पष्ट किया जाता है कि जी.ओ., जो रिट याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 3 के रूप में संलग्न है, 23 जून 2001 को जारी किया गया था, न कि 30.06.2001 को जैसा कि याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में पैरा संख्या 07 में संदर्भित किया है।

01 जुलाई, 2004 को जारी शासनादेश पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं है क्योंकि दिनांक 01.07.2004 के जी.ओ. द्वारा दी गई छूट 14 जून, 2002 को निष्पादित बिक्री विलेख पर पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं की जा सकती है, क्योंकि बिक्री-विलेख की प्रस्तुति के समय यू.पी.एफ.सी. द्वारा याचिकाकर्ता को ऐसी कोई छूट उपलब्ध नहीं थी।

कलेक्टर द्वारा 20 जुलाई 2004 को पारित आदेश याचिकाकर्ता की आपत्ति को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ता को पूर्ण अवसर प्रदान करते हुए पारित किया गया था। दिनांक 20 जुलाई 2004 का आदेश स्वतः स्पष्ट है जिसमें यह निर्देश दिया गया है कि कलेक्टर ने स्टांप शुल्क की कमी को वाणिज्यिक दर पर न लगाकर बहुत उचित कदम उठाया है और चूँकि संपत्ति गाँव के क्षेत्र में स्थित है इसलिए संपत्ति का सही मूल्य निर्धारित करने के लिए कलेक्टर द्वारा आवासीय दर को ध्यान में रखा गया है। कलेक्टर ने सही फॉर्मूला लागू किया है और यूपी स्टाम्प (संपत्ति का मूल्यांकन) नियम, 1997 के प्रावधानों के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए उनके द्वारा जारी दर को ध्यान में रखा है तथा तथ्यों के बहुत समवर्ती निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं कि कुल मूल्यांकन 53,86,500/- रुपये के करीब आता है और उसमें खड़े भवन और कोल्ड स्टोरेज का मूल्य 1,50,000/- रुपये आंका गया है और इस प्रकार कुल मूल्यांकन रु. 68,86,500/- हो गया है तथा उपरोक्त राशि पर कुल स्टाम्प शुल्क रु. 5,50,960/- का भुगतान देय था लेकिन याचिकाकर्ता ने विमर्शपूर्वक और जानबूझकर केवल बचने के लिए, 1,20,000/- रुपये की स्टांप ड्यूटी का भुगतान किया है और इस प्रकार, सही रूप से स्टांप ड्यूटी की कमी रु. 4,30,960/- की है। कलेक्टर द्वारा दिनांक 20 जुलाई 2004 को पारित आदेश स्वतः स्पष्ट है। हालाँकि, *नायब तहसीलदार* ने 23.10.2002 को रिपोर्ट प्रस्तुत की कि विचाराधीन संपत्ति व्यावसायिक थी।

अनुवादित

रिट याचिका में लिए गए आधार पूरी तरह से गलत हैं। सी.सी.आर.ए. ने कोल्ड स्टोरेज और उसके भवन, उस पर मौजूद क्षमता और मशीनरी प्लांट की स्थिति को ध्यान में रखते हुए कलेक्टर द्वारा पारित आदेश की सही व विधिक पुष्टि की है। चूंकि जी.ओ. दिनांक 26.11.2001 और 07.12.2002 में, याचिकाकर्ता द्वारा दावा की गई छूट उसे उपलब्ध नहीं है, इसलिए, अधिकारियों ने याचिकाकर्ता को छूट का कोई लाभ नहीं दिया है। दो अधिकारियों ने तथ्यों के समवर्ती निष्कर्ष दर्ज किए हैं, इसलिए रिट याचिका पूरी तरह से गलत है और खारिज किए जाने योग्य है।

याचिकाकर्ता ने 19 जनवरी, 2006 को जवाबी हलफनामा दायर किया है और जवाबी हलफनामे के दावों से इनकार किया है और आरोप लगाया है कि कोल्ड स्टोरेज की इमारत की जर्जर स्थिति और इमारत के अंदर गैर-कार्यात्मक मशीनरी रखी गई थी जिसे याचिकाकर्ता ने यू.पी.एफ.सी. से नीलामी/ बातचीत खरीदा था और यू.पी.एफ.सी. ने विक्रय-पत्र निष्पादित कर दिया है, जिसे 14.06.2002 को पंजीकृत किया गया था।

यह कहना गलत है कि 01 जुलाई 2004 का शासनादेश वर्तमान विवाद में लागू नहीं होता। पिछला जी.ओ. दिनांक 31.05.2001 भी क्रेता को स्टाम्प ड्यूटी में छूट प्रदान करने के लिए जारी किया गया था, यदि कोई यूनिट यू.पी.एफ.सी. से खरीदी जाएगी और स्टाम्प ड्यूटी का भुगतान उक्त जी.ओ. दिनांक 31.01.2001 तथा 23.5.2001 के आलोक में वास्तविक प्रतिफल राशि पर किया जाएगा। अनुवर्ती जी.ओ. दिनांक 01 जुलाई 2004 को राज्य शासन द्वारा पुनः जारी किया गया है।

कलेक्टर द्वारा पारित आदेश दिनांक 20 जुलाई, 2004 पूरी तरह से अवैध है और इसे मामले के पूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किए बिना पारित किया गया है और उन्होंने भूमि, भवन और कबाड़ हो चुकी मशीनरी के मूल्य का गलत मूल्यांकन किया है, जिस कीमत पर याचिकाकर्ता ने कोल्ड स्टोरेज खरीदा है। प्रतिवादी द्वारा अधिरोपित किरायेदारी की राशि और जुर्माना पूरी तरह से मनमाना है। कोल्ड स्टोरेज शहरी क्षेत्र के बाहर कृषि भूमि के सामने स्थित है। इमारत लगभग कबाड़ की हालत में थी और प्रभारी तहसीलदार की दिनांक 23.10.2002 की रिपोर्ट के अनुसार, यह साबित होता है कि कोल्ड स्टोरेज फरवरी, 2002 के महीने में आग से क्षतिग्रस्त हो गया था। फायर ब्रिगेड यूनिट बचाव के लिए वहां आई थी। दोनों

अनुवादित

अधिकारियों ने मामले के इन तथ्यों पर विचार नहीं किया और गलत मूल्यांकन किया है। इसलिए, दिनांक 20 जुलाई, 2004 और 27.12.2004 के आदेश पूर्णतया अवैध हैं और रद्द किये जाने योग्य हैं। याचिकाकर्ता द्वारा 28 जनवरी, 2005 के सशर्त आदेश का पालन किया गया है और उसने इस माननीय न्यायालय द्वारा 28 जनवरी, 2015 को पारित आदेश के अनुपालन में 43,000/- रुपये की राशि जमा कर दी है, इसलिए याचिका की अनुमति दी जाए और विवादित आदेश रद्द किए जाएं।

इस मामले के निष्कर्ष इस प्रकार हैं:

विक्रय-पत्र में प्रतिफल राशि 15,00,000/- रूपये थी। धारा 29 के तहत वसूली की कार्यवाही में यू.पी.एफ.सी. द्वारा कोल्ड स्टोरेज बंद कर दिया गया था। यह कहना गलत है कि याचिकाकर्ता द्वारा उक्त मूल्य का भुगतान नहीं किया गया था। सर्कल रेट का मूल्यांकन प्रतिवादी द्वारा किया गया था और उप रजिस्ट्रार ने मामले को स्टांप प्राधिकरण को भेज दिया, जहां याचिकाकर्ता ने आपत्ति दर्ज की। मामले के समर्थन में लागू जीओ पेश किया गया और कहा गया कि प्रतिवादी अधिकारियों ने शासनादेश और मामले के तथ्यों की अनदेखी करते हुए याचिका पर अवैध रूप से निर्णय लिया है।

जुर्माना भी गैरकानूनी तरीके से 1,75,040/- रुपए लगाया गया। पुनरीक्षण को भी सी.सी.आर.ए. द्वारा खारिज कर दिया गया।

इस मामले में याचिकाकर्ता द्वारा 04.06.2002 को उच्चतम बोली के आधार पर यू.पी.एफ.सी. से प्रश्नगत संपत्ति खरीदी गई थी, जिसे उप रजिस्ट्रार, भरथना, जिला इटावा के समक्ष पंजीकृत किया गया था। उक्त तिथि से पहले स्टांप शुल्क के भुगतान के संबंध में निम्नलिखित जी.ओ. जारी किए गए थे, जो इस प्रकार हैं:

1. जी.ओ.दिनांक 31.05.2001,

2. जी.ओ. दिनांक 23.06.2001, जिसके द्वारा शासनादेश दिनांक 31.05.2001 निरस्त कर दिया गया।

26.11.2001 को एक डी.ओ. पत्र श्री टी. जॉर्ज जोखन, आई.ए.एस., सदस्य सचिव (कर एवं पंजीकरण विभाग), उ.प्र.शासन, लखनऊ, द्वारा जारी किया गया था। अपर सचिव, राजस्व परिषद, इलाहाबाद द्वारा परिपत्र जारी करने के लिए दिनांक 08 नवम्बर, 2001 को भेजे गए पत्र

अनुवादित

के परिप्रेक्ष्य में यू.पी.एफ.सी. पर भी विचार करे।

01 जुलाई 2004 को यू.पी. वित्तीय निगम के संबंध में विशेष रूप से एक सरकारी अधिसूचना जारी की गई थी कि यदि बोलीदाताओं और यू.पी.एफ.सी. के बीच किसी अवसर पर कोई निर्देश निष्पादित होता है, तो स्टांप शुल्क यू.पी.एफ.सी. अधिनियम, 1951 के अनुच्छेद 23 खंड 'ए' की अनुसूची 1-बी के अनुसार देय होगा एवं स्टाम्प शुल्क बाजार मूल्य को छोड़कर, नीलाम मूल्य एवं शेष बाजार मूल्य पर देय होगा।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि 01 जुलाई 2004 के अध्यादेश का लाभ याचिकाकर्ता को उपलब्ध था। इसके विपरीत उत्तरदाताओं का तर्क यह है कि चूंकि नीलामी और विलेख का पंजीकरण अध्यादेश जारी होने की तारीख से पहले का था और नीलामी के समय और बिक्री विलेख के निष्पादन के समय यू.पी.एफ.सी. को विशेषाधिकार नहीं दिया गया था, इसलिए, 01 जुलाई 2004 के अध्यादेश द्वारा प्रदत्त लाभ याचिकाकर्ता को उपलब्ध नहीं था। 04.06.2002 को केवल 30 जून 2001 का जी.ओ. उपलब्ध था, जिसके द्वारा 31 मई 2001 की अधिसूचना निरस्त कर दी गई थी। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ऐसा कोई कानून पेश नहीं कर सके, जो याचिकाकर्ता को 01 जुलाई 2004 के अध्यादेश का लाभ प्रदान करता हो। इस अध्यादेश में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि इसका कोई पूर्वव्यापी प्रभाव है, इसलिए हालांकि याचिकाकर्ता और यू.पी.एफ.सी. के बीच 15,00,000/- (पंद्रह लाख) रुपये की राशि के लिए नीलामी को अंतिम रूप दिया गया था, फिर भी भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अनुच्छेद 23 (ए) अनुसूची 1 (बी) के तहत सर्कल रेट के अनुसार स्टांप शुल्क देय था।।

आक्षेपित आदेशों के अवलोकन से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि चूँकि विचाराधीन संपत्ति ग्रामीण क्षेत्र में स्थित थी, इसलिए कलेक्टर को संपत्ति का मूल्यांकन वाणिज्यिक दर पर नहीं करना चाहिए था। चूंकि विचाराधीन संपत्ति बकेवर कस्बे के बाहर ग्रामीण क्षेत्र में थी, इसलिए उन्होंने संपत्ति का मूल्यांकन 7,00/- रुपये प्रति वर्ग मीटर की दर से किया और क्षेत्रफल को 700/- रुपये से गुणा कर दिया, अर्थात 7,695x700, और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जमीन का मूल्यांकन 53,86,500/- रुपये है।

इसके विपरीत, याचिकाकर्ता द्वारा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जा सका कि नीलामी एवं विक्रय-पत्र निष्पादन की कार्यवाही के समय कोल्ड स्टोरेज की भूमि की दर 7,00/- रूपये प्रति वर्ग मीटर से भी कम थी।

अनुवादित

जहां तक कोल्ड स्टोरेज बिल्डिंग, प्लांट और मशीनरी के मूल्यांकन का सवाल है, रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि विद्वान कलेक्टर ने बिना किसी आधार के और काल्पनिक तरीके से इसका अनुमान 15,00,000/- रुपये लगाया। कोल्ड स्टोरेज और बिल्डिंग प्लांट और मशीनरी की कीमत का मूल्यांकन स्थिति को ध्यान में रखते हुए और मूल्यह्रास मूल्य में कटौती के बाद उचित रूप से किया जाना चाहिए था।

इस प्रकार, यह पाया गया है कि जहां तक कोल्ड स्टोरेज भवन, संयंत्र और मशीनरी के मूल्य का सवाल है, कलेक्टर और सी.सी.आर.ए. ने साक्ष्यों का उचित मूल्यांकन नहीं किया और काल्पनिक तरीके से उन्होंने इसकी कीमत 1500,000/- रुपये तय की और 15,00,000/- रुपये की इस राशि को 53,86,500/- रुपये में जोड़कर स्टाम्प शुल्क में कमी मानते हुए स्टाम्प शुल्क और जुर्माना तय किया गया है।

उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि जहां तक कोल्ड स्टोरेज भवन और मशीनरी के मूल्यांकन का सवाल है, उसका उचित मूल्यांकन नहीं किया गया है, इसलिए मामले के तथ्यों में कलेक्टर और सी.सी.आर.ए का आदेश विधिक दृष्टि से बुरे हैं। इसलिए, विशेष रूप से कोल्ड स्टोरेज की इमारत, संयंत्र और मशीनरी के मूल्यांकन के संबंध में विधि के अनुसार नए निर्णय के लिए जिलाधिकारी, इटावा को मामला वापस भेजे जाने योग्य है।

आदेश

उपरोक्त टिप्पणी के साथ, तदनुसार रिट याचिका को आंशिक रूप से **स्वीकार** किया जाता है और कलेक्टर, इटावा को मामले का नए सिरे से उचित मूल्यांकन करने का निर्देश दिया जाता है। इसके लिए कलेक्टर प्लांट की मशीनरी और कोल्ड स्टोरेज की इमारत के सही आकलन के संबंध में पी.डब्ल्यू.डी. विभाग की भी मदद ले सकते हैं। निर्देशित किया जाता है कि कलेक्टर, इटावा इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने/ प्राप्त करने की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को सुनवाई का पूरा अवसर प्रदान करने के बाद मामले का निर्णय करें।

इस आदेश की एक प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) के माध्यम से अनुपालन हेतु कलेक्टर, इटावा को भी भेजी जाये।

तदनुसार रिट याचिका का **निस्तारण** किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 604

अनुवादित

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 11.05.2022

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर,

रिट-सी संख्या 12112/2022

हीरा सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री गौतम कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अजय प्रकाश पॉल, राज्य विधि अधिकारी, सुश्री इशिता सैंड, सुश्री अंजलि उपाध्याय

भारत का संविधान, अनुच्छेद 226 - परमादेश - उत्तर प्रदेश शहरी नियोजन और विकास अधिनियम, 1973 - धारा 17 - भूमि की बहाली - आयोजित - धारा 17 के तहत अधिग्रहण की कोई स्वचालित चूक नहीं है - अधिनियम की धारा 17 (1) का प्रावधान एक बेदखल भूमि धारक को राज्य सरकार की बहाली के लिए आवेदन करने का अधिकार देता है, यदि अधिग्रहण की तिथि से पांच वर्ष की अवधि की समाप्ति के बाद भूमि विकास प्राधिकरण द्वारा अप्रयुक्त रह जाती है - उसे बहाली के लिए आवेदन करने का अधिकार है, न कि किसी प्रकार की स्वचालित बहाली के लिए न्यायालय लागू कर सकता है - यदि कोई व्यक्ति धारा 17(1) के तहत अपने अधिकारों के प्रवर्तन के लिए आवेदन करता है, तो यह निर्णय लेना सरकार का काम है, जिसे सरकार स्वीकृत या अस्वीकार कर सकती है - भले ही सरकार इसे मूल भूमि धारक को भूमि की बहाली का एक मामला मानती हो, अधिग्रहण के संबंध में किए गए विकास शुल्क के पुनर्भुगतान के साथ-साथ 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज भी शामिल है, यदि कोई हो, जैसा कि किया गया है - अधिग्रहण के बाद पांच वर्ष की समय अवधि के बीत जाने पर सरकार या ग्रेटर नोएडा को कोई परमादेश जारी नहीं किया जा सकता है, जिसके दौरान भूमि का उपयोग नहीं किया गया है। (पैरा 6)

निरस्त। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

श्योराज सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2022) 1 ऑल एल 546

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

&

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

<u>आदेश</u>

1. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना।

2. ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने अपनी इस याचिका के माध्यम से खसरा संख्या 375, रकबा 3240/2 वर्ग मीटर, स्थित ग्राम दाबरा, परगना और तहसील दादरी, जिला गौतमबुद्ध नगर की अपनी भूमि को मोचन करने की मांग की है, जिसे राज्य द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम,

अनुवादित

1894 *(संक्षेप में 'अधिनियम 1894')* के तहत ग्रेटर नोएडा औद्योगिक विकास प्राधिकरण *(इसके बाद 'ग्रेटर नोएडा' के रूप में संदर्भित)* द्वारा आयोजित औद्योगिक विकास के उद्देश्य से अधिग्रहित किया गया है। उपरोक्त भूमि को इसके बाद 'विवादित भूमि' के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

3. ऐसा प्रतीत होता है कि विवादित भूमि को अधिनियम 1894 की धारा 4/17 के तहत दिनांक 31 अक्टूबर, 2005 की अधिसूचना द्वारा और उसके बाद अधिनियम की धारा 6/17 के तहत दिनांक 1 सितंबर, 2006 की घोषणा द्वारा अधिग्रहित किया गया था। वर्ष 1409-1414 फसल, जो कैलेंडर वर्ष 2001-2006 के समकक्ष है, की *खतौनी* की जांच से पता चलता है कि अतिरिक्त जिलाधिकारी (भूमि अधिग्रहण) ग्रेटर नोएडा के आदेश के अनुपालन में, बेदखल किए गए भूमि धारक हीरा सिंह, याचिकाकर्ता का नाम कटा दिया गया है और ग्रेटर नोएडा का नाम दर्ज किया गया है। प्रतीत होता है, विवादित भूमि का कब्जा ले लिया गया है और यह लोक प्राधिकरण की अधिग्रहित भूमि है। याचिकाकर्ता, किसी तरह से, अधिग्रहित भूमि पर एक खुले अतिक्रमणकारी के रूप में कब्जे में बना हुआ है और भूमि के एक हिस्से पर एक जर्जर संरचना मौजूद है। ग्रेटर नोएडा के अधिकारियों के लिए बेहतर कारणों से, याचिकाकर्ता के निवेदन पर ग्रेटर नोएडा के कार्यपालकों द्वारा एक रिपोर्ट दाखिल की गई है कि टेक जोन-2 के औद्योगिक विकास के लिए 24 मीटर चौड़ी सड़क को प्लॉट नंबर 6365 से हटा दिया जाए, जहां इसकी योजना बनाई गई है। दिनांक 6 जुलाई, 2016 की रिपोर्ट में दिया गया कारण यह है कि उक्त भूमि का एक हिस्सा हरित पट्टी में आता है और उसके कुछ हिस्से पर भूमि धारक की दो कमरे और एक बरामदा मौजूद हैं। उन संरचनाओं के अलावा, कुछ पेड़ भी हैं और भूमि धारक ने भूमि के लिए मुआवजा नहीं लिया है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता वास्तव में इस न्यायालय से यह चाहते हैं कि वह ग्रेटर नोएडा के कुछ अनामित कार्यपालकों द्वारा प्रस्तुत दिनांक 6 जुलाई, 2016 की आंतरिक रिपोर्ट को लागू करे, ताकि वह उक्त प्राधिकरण की अधिग्रहित भूमि पर अपने अवैध कब्जे को जारी रख सके। इस न्यायालय की राय में, याचिकाकर्ता अधिग्रहित भूमि के जारी अवैध कब्जे जैसी कार्रवाइयों द्वारा, जो सार्वजनिक भूमि का खुला अतिक्रमण है या अधिग्रहण के लिए किए गए पुरस्कार के अनुसरण में अपना देय मुआवजा लेने से परहेज करके, अंतिम अधिग्रहण से खुद को मुक्त नहीं कर सकता। विवादित भूमि सभी बोझों से मुक्त ग्रेटर नोएडा में निहित है। याचिकाकर्ता द्वारा दावा की गई पहली राहत, इसलिए, स्पष्ट रूप से निरर्थक है।.

5. राहत के अन्य हिस्से में उत्तर प्रदेश नगर योजना और विकास अधिनियम, 1973 *(संक्षेप में 'अधिनियम 1973')* की धारा 17 के आलोक में प्रतिवादियों को विवादित भूमि लौटाने का निर्देश मांगा गया है। अधिनियम 1973 की धारा 17 निम्नानुसार है:

अनुवादित

"17. भूमि का अनिवार्य अधिग्रहण - (1) यदि राज्य सरकार की राय में इस अधिनियम के अधीन विकास या किसी अन्य प्रयोजन के लिए कोई भूमि आवश्यक है तो राज्य सरकार भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के उपबंधों के अधीन ऐसी भूमि का अधिग्रहण कर सकेगी: बशर्ते कि जिस किसी व्यक्ति से कोई भूमि इस प्रकार अधिग्रहित की जाए वह ऐसे अधिग्रहण की तारीख से पाँच वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् राज्य सरकार से उस आधार पर कि भूमि का उपयोग उस प्रयोजन के लिए नहीं किया गया है जिसके लिए उसका अधिग्रहण किया गया था, उसे वह भूमि प्रत्यावर्तित करने के लिए आवेदन कर सकेगा और यदि राज्य सरकार इस आशय से संतुष्ट हो जाए तो वह उसे उस भूमि को प्रत्यावर्तित करने का आदेश देगी, किंतु उसे अधिग्रहण से संबंधित व्यय जिनमें अधिग्रहण के पश्चात् किए गए विकास व्यय भी सम्मिलित हैं, के साथ बारह प्रतिशत वार्षिक दर से ब्याज का पुनर्भुगतान करना होगा।

(2) जहां राज्य सरकार द्वारा कोई भूमि अधिग्रहित की गई है वहां वह सरकार पश्चात्वर्ती अधिग्रहण के लिए उस अधिनियम के अधीन बीतें हुए मुआवजे और सरकार द्वारा अधिग्रहण से संबंधित उपगत व्ययों का प्राधिकरण या स्थानीय प्राधिकरण द्वारा संदाय किए जाने पर भूमि का उस प्रयोजन के लिए प्राधिकरण या स्थानीय प्राधिकरण को अंतरण कर सकेगी जिसके लिए उसका अधिग्रहण किया गया था।"

6. अधिनियम 1973 की धारा 17 के प्रावधानों को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि धारा 17 के तहत अधिग्रहण स्वत: समाप्त नहीं होता है। अधिनियम की धारा 17(1) के परंतुक में बेदखल किए गए भूमि धारक को अधिग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद, यदि भूमि किसी विकास प्राधिकरण द्वारा अनुपयोगित रहती है, तो राज्य सरकार से भूमि के प्रत्यावर्तन के लिए आवेदन करने का अधिकार दिया गया है। यह प्रत्यावर्तन के लिए आवेदन करने का अधिकार है, न कि किसी स्वचालित प्रत्यावर्तन का जिसे न्यायालय लागू कर सकता है। यह सरकार पर निर्भर करता है कि यदि कोई व्यक्ति धारा 17(1) के तहत अपने अधिकारों के प्रवर्तन के लिए आवेदन करता है, तो सरकार उसे स्वीकृत कर सकती है या अस्वीकृत कर सकती है। यदि सरकार इसे मूल भूमि धारक को भूमि प्रत्यावर्तित करने का मामला मानती है, तो इसके लिए अधिग्रहण से संबंधित उपगत व्यय के साथ-साथ 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज और विकास व्यय, यदि कोई हों, का पुनर्भुगतान करना होगा। इस प्रावधान से यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट होता है कि अधिग्रहण के बाद पांच वर्ष की अवधि बीत जाने मात्र से, जिसके दौरान भूमि का उपयोग नहीं किया गया है, सरकार या ग्रेटर नोएडा को कोई परमादेश नहीं दिया जा सकता। यहां याचिकाकर्ता ने यह मामला उठाया नहीं है कि उन्होंने अधिग्रहण की तारीख से पांच वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए विवादित भूमि अनुपयोगित रहने के आधार

अनुवादित

पर भूमि के प्रत्यावर्तन के लिए राज्य सरकार से आवेदन किया है। इसलिए, अधिनियम 1973 की धारा 17(1) के परंतुक के तहत याचिकाकर्ता के पक्ष में कोई अधिकार स्पष्ट नहीं हुआ है। इससे अलग, यहां भूमि को ग्रेटर नोएडा द्वारा 'टेक जोन-2' के रूप में जाने वाले औद्योगिक विकास की एक योजना के हिस्से के रूप में 24 मीटर चौड़ी सड़क के निर्माण के लिए चिह्नित किया गया है। यह तथ्य कि ग्रेटर नोएडा के कुछ अधिकारियों ने 24 मीटर की सड़क जैसी महत्वपूर्ण चीज को किसी अन्य स्थान पर स्थानांतरित करने का प्रस्ताव रखा है, का अर्थ यह नहीं है कि भूमि अनुपयोगित है। बड़ी परियोजनाओं को पूरा करने में लंबा समय लगता है और यह तथ्य कि गया है, उसे देखा और खारिज किया जाना चाहिए। 1973 के अधिनियम की धारा 17 की जांच से पता चलता है कि यदि अधिग्रहित भूमि का उपयोग उसके अधिग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि के लिए नहीं किया जाता है, तो भूमि स्वामी अपने प्रत्यावर्तन के लिए राज्य को आवेदन कर सकता है। यदि राज्य सरकार को संतोष हो जाता है कि भूमि का उपयोग उस प्रयोजन के लिए नहीं किया गया है जिसके लिए उसका अधिग्रहण किया गया था, तो वह अधिग्रहण के लिए उपगत राशि के पुनर्भुगतान पर, उस पर ब्याज सहित विकास प्रभार, यदि कोई हों, के साथ भूमि स्वामियों को उसके प्रत्यावर्तन का आदेश दे सकती है।

परियोजना के किसी विशेष हिस्से का निर्माण पांच वर्ष की अवधि बीतने के बाद भी नहीं किया गया है, का अर्थ यह नहीं है कि अधिनियम 1973 की धारा 17(1) के परंतुक के अर्थ में भूमि का उपयोग विकास प्राधिकरण द्वारा नहीं किया गया है। बस इतना है कि किसी बड़ी आयोजित विकास के हिस्से के रूप में भौतिक विकास वास्तव में किसी विशेष स्थान तक नहीं पहुंचा है।

7. इस न्यायालय की एक खंडपीठ के समक्ष **शैयोराज सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2022) 1 एएलएल एलजे 546** में इसी प्रकार का प्रश्न विचाराधीन था, जहां यह अवधारित किया गया था:

"16. जहां तक याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा 1973 के अधिनियम की धारा 17 को लागू करने का तर्क उठाया

17. प्रस्तुत मामले में, अभिलेख पर राज्य का निश्चित रुख है कि भूमि के अधिग्रहण के तुरंत बाद, जो निगम द्वारा एक औद्योगिक इस्टेट के विकास के लिए था, उसका कब्जा लिया गया और निगम को सौंप दिया गया था, जिसने उस पर प्लॉट भी बनाए थे और औद्योगिक इस्टेट विकसित हो गया था। कई औद्योगिक इकाइयाँ संचालित हो रही हैं। 10 अगस्त, 2021 की अवैध निर्माण को हटाने के लिए याचिकाकर्ताओं को जारी नोटिस की समीक्षा से भी यह तथ्य स्थापित होता है। इसमें उल्लेख किया गया है कि प्लॉट जिस पर याचिकाकर्ताओं ने अवैध निर्माण किया था, वह 28 सितंबर, 2007 को श्रीमती अमरजीत कौर को आवंटित प्लॉट का हिस्सा है, इसलिए यह दावा कि

अनुवादित

याचिकाकर्ता 1973 के अधिनियम की धारा 17 को लागू करने के हकदार हैं ताकि उन्हें भूमि वापस मिल सके क्योंकि इसका उपयोग नहीं किया गया है, पूरी तरह से गलत धारणा है और इसलिए इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए।"

8. अधिग्रहित भूमि को एक आयोजित परियोजना के लिए विकास प्राधिकरण को सौंपना, जितनी बड़ी एक तकनीकी जोन है, जिसमें विवादित भूमि भी शामिल है, का मतलब यह नहीं है कि भूमि का उपयोग नहीं किया जा रहा है क्योंकि प्राथमिकताएं हैं या परियोजना के कार्यान्वयन में देरी हो रही है ।

9. इस मामले में, हस्तक्षेप के लिए कोई मामला नहीं बनता है।

10. परिणामस्वरूप, यह याचिका विफल होती है और खारिज कर दी जाती है।

11. लागत के बारे में कोई आदेश नहीं ।

(2023) 2 ILRA 607

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 30.01.2023समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा,

रिट-सी संख्या 20121/2000

श्री पुरुषोत्तम अग्रवाल एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री माधव जैन

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1889 - धारा 47-ए (1) - लिखत का कम मूल्यांकन - उ.प्र. स्टाम्प नियम, 1942, नियम 341 (iii) (ए) - अचल संपत्ति का न्यूनतम बाजार मूल्य - नियम 1942 341 (iii) (ए) के अनुसार, जहां भवन पर नगरपालिका बोर्ड द्वारा गृह कर का निर्धारण किया जाता है और उस पर मालिक द्वारा या पूरी तरह या आंशिक रूप से कब्जा कर लिया जाता है, किरायेदार को किराए पर दिया गया है, तो वास्तविक या निर्धारित वार्षिक किराये मूल्य का 25 गुना, जो भी अधिक हो, स्टांप शुल्क के भुगतान के लिए विचार किया जाएगा - वर्ष 1997 में, यू.पी. स्टाम्प नियम 1942 निरस्त किया गया। (पैरा 16)

बी. यू.पी. स्टाम्प नियम, 1942 - नियम 341 (iii) (ए) - विचाराधीन संपत्ति दिनांक 17.04.1993 को क्रय की गई और स्टाम्प शुल्क यूपी स्टाम्प नियम, 1942 के नियम 341 (iii) (ए) के प्रावधानों के अनुसार देय था - विचाराधीन संपत्ति एक इमारत थी और उसका मूल्यांकन घर, पानी आदि के प्रयोजनों के लिए किया गया था - नगर पालिका ने रु. 3,600/- संबंधित संपत्ति का वार्षिक किराया मूल्य निर्धारित किया - 3,600/- रुपये को 25 गुना में गुणा करने पर, संपत्ति का मूल्य 90,000 रुपये हो जाता है - याचिकाकर्ता ने रू. 1,43,005 में संपत्ति खरीदी और उस राशि पर, उन्होंने स्टांप शुल्क का भुगतान किया जो नियम 341 (iii) (ए) के अनुसार गणना किए गए बाजार मूल्य से अधिक था - उप रजिस्ट्रार ने काल्पनिक रूप से राय दी कि प्रश्न में कमरे का किराया इससे कम नहीं होगा 2,500/- रुपये प्रति माह होगा - निचली अदालत ने

अनुवादित

किराया मूल्य 2,500/- रुपये प्रति माह मानते हुए गणना की कि स्टांप शुल्क के भुगतान में कमी है और किराए की दर 2,500/- रुपये निर्धारित करने के लिए जुर्माना भी लगाया - विद्वान सब रजिस्ट्रार ने पास की दुकान या आसपास से कोई डेटा एकत्र नहीं किया। विवादित आदेश रद्द कर दिया गया - प्रतिवादियों को छह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ याचिकाकर्ताओं को वसूली गई राशि वापस करने का निर्देश दिया गया (पैरा 31)

अनुमत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. विजय कुमार एवं सुरेंद्र कुमार दोनों पुत्र श्री दौलत राम बनाम आयुक्त, मेरठ मंडल एवं अपर जिलाधिकारी (वित्त एवं राजस्व) MANU/0682/2008
2. महाबीर प्रसाद बनाम कलेक्टर, कटक [1987] 2 एससीआर 289
3. राम खेलावन @बच्चन बनाम कलेक्टर, हेयरपुर, उत्तर प्रदेश और अन्य 2005 (98) आरडी 511
4. प्रकाशवती बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी राजस्व परिषद, इलाहाबाद 1996 (87) आर.डी. 419
5. कलेक्टर, नीलगिरी, ऊटाकामुंड बनाम महावीर प्लांटेशन प्राइवेट लिमिटेड, मनु/टीएन/0285/1982

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री माधव जैन और राज्य उत्तरदाताओं के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री जितेंद्र नारायण सिंह को सुना गया।

यह रिट याचिका अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व), आगरा द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.06.1999 और आयुक्त, आगरा मंडल, आगरा द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.01.2000 को रद्द करने के लिए दायर की गई है, जिसके तहत दोनों प्राधिकारियों द्वारा दिनांक 17 अप्रैल, 1993 के समनुदेशन से सम्बन्धित याचिकाकर्ताओं के पक्ष में 1,43,005/- रुपये की राशि के लिए सौंपी गई निर्मित संरचना वाली भूमि में अनातीत पट्टेदारी अधिकारों के सन्दर्भ में स्टांप शुल्क की कमी का निष्कर्ष निकाला गया।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि आलोक सहकारी गृह निर्माण समिति लिमिटेड, आगरा के नाम से जानी जाने वाली सोसायटी ने संजय प्लेस, आगरा में ब्लॉक संख्या-34 की भूमि पर आगरा विकास प्राधिकरण, आगरा से अस्सी वर्षों की अवधि के लिए पट्टा अधिकार प्राप्त कर लिया है। दिनांक 16.06.1980 को पंजीकृत पट्टा विलेख के माध्यम से और 17.04.1993 को पट्टे का एक समझौता विलेख निष्पादित किया (अनुलग्नक संख्या 1)। उप रजिस्ट्रार, आगरा ने संदर्भ (अनुलग्नक संख्या 2) के माध्यम से स्टांप शुल्क की वसूली के लिए स्टांप अधिनियम की धारा 33, 47-ए (ए) और (4) के तहत

अनुवादित

शक्ति का प्रयोग किया, जो पूर्णतया अवैध और अधिकार क्षेत्र विहीन है।

संदर्भ के अनुसरण में, 1995-96 का स्टाम्प केस संख्या 1255 दर्ज किया गया था और याचिकाकर्ताओं को नोटिस दिए गए थे, जिन्होंने संदर्भ के समर्थन में रिट याचिका पर आपत्ति (अनुलग्नक संख्या 3) दायर की थी, उत्तरदाताओं की ओर से कोई संदर्भ नहीं दिया गया था। हालाँकि, प्रतिवादी सं. 3 ने अपने निर्णय और आदेश दिनांक 19.06.1999 (अनुलग्नक संख्या 4) के तहत स्टांप शुल्क की कमी के लिए 96,540/- रुपये का जुर्माना लगाया।

याचिकाकर्ताओं ने स्टाम्प रिवीजन क्रमांक 30/ 1999-2000 दिनांक 22.09.1999 के माध्यम से इसकी वैधता को चुनौती दी। पुनरीक्षण लंबित होने के बावजूद, प्रतिवादी संख्या 1 के अधिकारियों ने अंतरिम आदेश प्राप्त करने का अवसर दिए बिना बलपूर्वक अवैध तरीके से कार्रवाई की धमकी के तहत राशि वसूल की। प्रतिवादी नं. 1 याचिकाकर्ता की ऐसी राशि को 18 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ लौटाने के लिए बाध्य है। पुनरीक्षण न्यायालय ने इस रिट याचिका के अपने आदेश दिनांक 11 जनवरी, 2000 (अनुलग्नक-05) के अनुसार, पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है।

नीचे दिए गए दोनों अधिकारी इसका विचारण करने में विफल रहे हैं और कार्यवाही की वैधता पर विचार करने में विफल रहे हैं क्योंकि स्टांप अधिनियम की धारा 47-ए के तहत असाइनमेंट-डीड पर इसके बाजार मूल्य पर स्टांप शुल्क नहीं लगता है। प्रतिवादी नं. 2 और 3 इस बात पर विचार करने में विफल रहे कि निर्माण के तहत भूमि आगरा विकास प्राधिकरण, आगरा से एक पट्टा समझौते के तहत सोसायटी के पास थी और सोसायटी ने पट्टा क्षेत्र प्रीमियम और लागत वसूलने के बाद निर्माण के साथ भूमि के संबंध में असमाप्त पट्टे का अधिकार सौंपा था। निर्माणों की, इस परिस्थिति में प्रतिवादी नं. 2 और 3 को कार्यवाही बंद कर देनी चाहिए थी, लेकिन ऐसा करने के बजाय याचिकाकर्ताओं के खिलाफ स्टांप ड्यूटी की कमी लगाते हुए अवैध रूप से काम किया। स्टाम्प ड्यूटी की कमी का निर्धारण करना बिल्कुल अनावश्यक है और उपयुक्त है क्योंकि यह स्थापित करने के लिए किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है कि किराए की दर उनके द्वारा मान ली गई है।

उत्तरदाता इस बात पर विचार करने में विफल रहे हैं कि याचिकाकर्ता ने अपने उपभोग का आनंद लेने के लिए सीमित अधिकार प्राप्त किए हैं और यह भी विचार करने में विफल रहे हैं कि प्रश्नगत संपत्ति का किराया प्रति माह 2,500/- है। प्रतिवादी सं. 2 ने पुनरीक्षण को रखरखाव योग्य न होने के आधार पर खारिज करते समय रिकार्ड में स्पष्ट त्रुटि की। उत्तरदाताओं ने लेन-देन को इमारत की बिक्री के लेन-देन के रूप में मानते हुए अवैध रूप से कार्य किया है, बिना इस बात पर विचार किए कि जिस सोसायटी से याचिकाकर्ताओं को इसका अधिकार सौंपा गया है, उसका भूमि में कोई बिक्री योग्य हित नहीं था और जहां तक, निर्माण के मूल्य का सम्बन्ध है उत्तरदाताओं

अनुवादित

की ओर से कोई विवाद नहीं उठाया गया। याचिकाकर्ताओं के पास कोई अन्य वैकल्पिक उपाय नहीं होने के कारण उन्होंने यह रिट याचिका दायर की है। उपरोक्त अनुलग्नक रिट याचिका के साथ संलग्न किए गए हैं।

उत्तरदाताओं ने 13 जनवरी, 2004 को जवाबी हलफनामा दायर किया और रिट याचिका के आरोपों से इनकार किया और स्वीकार किया कि उक्त भूमि अस्सी साल के पट्टे के लिए हासिल की गई थी। स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कार्यवाही प्रारम्भ की गई। उत्तरदाताओं ने शेष स्टांप शुल्क के साथ जुर्माना लगाया है क्योंकि याचिकाकर्ताओं ने जानबूझकर शुल्क की चोरी की थी। स्टाम्प अधिनियम में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार याचिकाकर्ताओं को आरसी तामील कराई गई । प्रश्नगत संपत्ति का बाजार मूल्य स्टाम्प अधिनियम की प्रक्रिया के अनुसार निर्धारित किया गया । संपत्ति का उपयोग व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए किया गया था। जमीन और दुकानें भी लीज-डीड में हैं। केवल भूमि पट्टे पर दी गई थी, न कि व्यावसायिक उपयोग के उद्देश्य से बनाई गई दुकानें, इसलिए बाजार मूल्य का आकलन वर्तमान आधार पर किया जा सकता है।

भारत के संविधान का अनुच्छेद 226 इस मामले पर लागू नहीं होगा, इसलिए वर्तमान रिट याचिका खारिज की जाती है।

याचिकाकर्ताओं ने आवेदन संख्या 86990/2008 के साथ प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल किया है और जवाबी हलफनामे के कथनों से इनकार किया है और रिट याचिका में पहले से ही गिनाए गए तथ्यों को दोहराया है और कहा है कि 17.04.1993 को उक्त विलेख के निष्पादन के समय, क्षेत्र विकसित नहीं किया गया था और यहां तक कि आवश्यक सुविधाएं भी नहीं थीं क्योंकि भवन स्थल पर बिजली, पानी, सीवर आदि उपलब्ध नहीं थे। कलेक्टर, आगरा द्वारा भवन के अनुमानित किराये के मूल्य का कोई आधार नहीं बताया गया। कलेक्टर द्वारा मूल्यांकन की गई संपत्ति का बाजार मूल्य उप रजिस्ट्रार की रिपोर्ट के विपरीत है। न तो उप-रजिस्ट्रार की रिपोर्ट संपत्ति के बाजार मूल्य को बताती है और न ही इसमें मूल्यांकन, अनुमानित या वास्तविक किराये के मूल्य का उल्लेख किया गया है। संपत्ति के अनुमानित किराये के मूल्य का समर्थन करने के लिए उत्तरदाताओं द्वारा कोई आधार नहीं दिया गया है। प्रथम दृष्टया अनुमानित किराये का मूल्य अत्यधिक है और इसके प्रयोजन की तिथि पर संपत्ति के किराये के मूल्य के अनुरूप नहीं है। संपत्ति की खरीद की तारीख के बाद उसकी प्रकृति, मूल्य या उपयोग में कोई भी बदलाव बिल्कुल अप्रासंगिक है, लेकिन संबंधित अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ताओं द्वारा भवन की खरीद के बाद के विकास को ध्यान में रखते हुए लिया गया फैसला इससे प्रभावित है। चूंकि याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती के पास भवन के निर्माण के पट्टेदारी अधिकार थे, इसलिए जहां तक भवन के निर्माण के मूल्य का संबंध है, उक्त अधिकार के हस्तांतरण को उच्च दर पर मूल्यांकित नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ताओं ने निर्माण की लागत के

अनुवादित

साथ-साथ अनातीत पट्टेदारी अधिकारों के आधार पर स्टांप शुल्क का भुगतान किया है। प्रतिवादियों द्वारा मूल्यांकन की गई इमारत का मूल्य साक्ष्य विहीन एवं आधारहीन है, आक्षेपित निर्णय और आदेश पूर्ण रूपेण अवैध और विकृत हैं, तथ्यों के विपरीत हैं तथा रद्द किए जाने योग्य हैं।

पत्रावली को सुना और अवलोकन किया। नियम 341 का प्रावधान किसी उपकरण के स्टांप शुल्क के निर्धारण और निर्धारण के लिए संपत्ति के बाजार मूल्य की गणना के लिए विधि प्रदान करता है।

नियम 341 इस प्रकार है:-

स्टांप शुल्क के भुगतान के प्रयोजनों के लिए, अधिनियम की धारा 47-ए (1) में निर्दिष्ट परिवहन, विनिमय, उपहार, निपटान, पुरस्कार या ट्रस्ट के साधन का विषय बनने वाली अचल संपत्ति का न्यूनतम बाजार मूल्य, नीचे दिए गए गुणकों के आधार पर प्राप्त राशि से कम नहीं माना जाएगा:-

(i) जहां विषय भूमि है:-

(a) भूमिदारी के मामले में - भू-राजस्व का 800 गुना।

(b) सिरदारी भूमि के मामले में - भू-राजस्व का 400 गुना।

(c) जहां भूमि का मूल्यांकन राजस्व के रूप में नहीं किया गया है, लेकिन लिखत की तारीख से ठीक पहले के तीन वर्षों के दौरान उससे शुद्ध लाभ उत्पन्न हुआ है, जो ऐसे मुनाफे के वार्षिक औसत से 25 गुना अधिक है।

(d) जहां भूमि का राजस्व मूल्यांकन नहीं किया गया है और तीन वर्षों के दौरान इससे कोई लाभ नहीं हुआ है लिखत की तारीख से ठीक पहले अनुमानित वार्षिक किराए का 400 गुना।

(e) जहां भूमि गैर-कृषि है और नियम 340 के उप-नियम (i) के खंड (सी) में निर्दिष्ट किसी स्थानीय निकाय की सीमा के भीतर स्थित है-प्रति वर्ग औसत मूल्य के आधार पर निकाले गए मूल्य के बराबर मीटर, उपकरण की तारीख पर इलाके में प्रचलित।

(ii) जहां विषय उपवन या उद्यान है:

(a) यदि राजस्व का निर्धारण किया जाता है तो भूमि का मूल्य नियम 341 (i) (ए) में निर्धारित तरीके से निकाला जाएगा और उस पर खड़े पेड़ों का मूल्य उसी के पेड़ों की औसत कीमत के अनुसार निकाला जाएगा। उपकरणों की तिथि के अनुसार इलाके में प्रचलित आकार और उम्र।

(b) यदि राजस्व का आकलन नहीं किया गया है या इससे छूट दी गई है तो उसका मूल्य वार्षिक किराया प्लस प्रीमियम का 20 गुना या आय के वार्षिक औसत का 20 गुना निर्धारित किया जाएगा जो कि लिखत की तारीख से ठीक पहले तीन वर्षों के दौरान उत्पन्न हुआ है और उस पर लगे पेड़ों का मूल्य नियम 341 (ii) (ए) के अनुसार निर्धारित किया जाएगा।

(iii) जहां विषय निर्माण है:

(a) जहां भवन पर गृह कर का निर्धारण किया गया है और उस पर मालिक का कब्जा है या पूरी तरह या आंशिक रूप से किरायेदारों को किराए पर दिया गया है

अनुवादित

- वास्तविक या निर्धारित वार्षिक किराये मूल्य का 25 गुना, जो भी मामला हो, अधिक हो।

(b) जहां भवन पर गृह कर का निर्धारण नहीं किया गया है और उस पर मालिक का कब्जा है या पूरी तरह या आंशिक रूप से किरायेदारों को किराए पर दिया गया है - वास्तविक या अनुमानित वार्षिक किराये मूल्य का 25 गुना, जो भी मामला हो, अधिक हो।

गौरतलब है कि वर्ष 1997 में उ.प्र. स्टाम्प नियम 1942 निरस्त कर दिया गया। चूंकि यह 1993 का मामला है और प्रश्नगत संपत्ति 17.04.1993 को खरीदी गई थी, इसलिए स्टांप शुल्क स्टाम्प नियम, 1942 यूपी के प्रावधानों के अनुसार देय होगा।

यह निर्विवाद है कि विचाराधीन संपत्ति एक इमारत है जिसका मूल्यांकन गृह, जल और अन्य संबंधित नगरपालिका कर उद्देश्यों के लिए किया गया है, अतः, नियम 341 (iii)(बी) के प्रावधान प्रश्नगत संपत्ति पर लागू होते हैं।

उपरोक्त प्रावधान यह उपबन्धित करते हैं कि यदि संपत्ति के बाजार मूल्य का मूल्यांकन नगरपालिका बोर्ड द्वारा किया गया है, तो इसकी गणना केवल मूल्यांकन किए गए या वास्तविक उचित मूल्य के 25 गुना से गुणा करके की जा सकती है। नगर निगम बोर्ड के रजिस्टर के उद्धरणों से विचाराधीन संपत्ति का मूल्यांकन रु. मात्र 3,600/- (रु. 900X 12) है ।

इसलिए, नियमानुसार संपत्ति का मूल्यांकन 90,000/- रुपये ही बनता है। विद्वान निचली अदालत ने किराया मूल्य रु. 2,500/- प्रति माह मानते हुए गणना की कि स्टांप शुल्क के भुगतान में कमी है और जुर्माना भी लगाया है, हालांकि जुर्माना आयुक्त, आगरा संभाग आगरा / (सी.सी.आर.ए.) द्वारा हटा दिया गया है। उपरोक्त चर्चाओं से यह स्पष्ट है कि उप रजिस्ट्रार की संलग्न रिपोर्ट के आधार पर, ए.डी.एम. (एफ एंड आर) ने प्रश्नगत कमरे का किराया मूल्य रु. 2,500/- प्रति माह स्वीकार किया। किराये की दर 2,500/- रुपये निर्धारित करने के लिए विद्वान उप रजिस्ट्रार ने पास की दुकान या आसपास से कोई डेटा एकत्र नहीं किया। यदि नगर पालिका परिषद द्वारा किराये के मूल्य का गलत उल्लेख किया गया था, तो यह उत्तरदाताओं का कर्तव्य था कि वे आपत्ति उठाएं और इसे सही कराएं, लेकिन कानूनी तरीके से उचित और ठोस तरीका अपनाने के बजाय, उप रजिस्ट्रार ने काल्पनिक रूप से यह राय दी कि प्रश्नगत कमरे का किराया रु. 2,500/- प्रति माह से कम नहीं होगा।

इस न्यायालय की राय है कि यदि प्रश्न में संपत्ति का मूल्यांकन नगर पालिका परिषद द्वारा नहीं किया गया होगा, तो उप रजिस्ट्रार और प्रतिवादी के पास धारा 341 (iii) (बी) के प्रावधानों को लागू करने का विकल्प था।

जब प्रश्नगत संपत्ति का मूल्यांकन नगर पालिका द्वारा किया गया, जो कि

अनुवादित

संबंधित रजिस्टर और यू.पी. स्टाम्प नियम, 1942 अस्तित्व में था के उद्धरण से बहुत स्पष्ट है कि, उत्तरदाताओं और उप रजिस्ट्रार के पास नियम 341 (iii) (ए) के अनुसार कार्य करने के अलावा कोई अवसर नहीं था, जिसके अनुसार भवन का गृह कर निर्धारण किया जाता है और मालिक द्वारा उस पर कब्जा कर लिया जाता है अथवा पूरी तरह या आंशिक रूप से, किरायेदार को वास्तविक या निर्धारित वार्षिक किराया मूल्य के 25 गुना किराए पर दिया जाता है, जो भी मामला हो, और जो अधिक हो, उसपर स्टांप शुल्क के भुगतान के लिए विचार किया जाएगा।

इस मामले में नगर पालिका ने रुपये का आकलन किया है। प्रश्न में संपत्ति का वार्षिक किराया मूल्य 3,600/- है, इसलिए वर्ष 1993 में मौजूदा कानून के अनुसार, याचिकाकर्ता नियम 341 (iii) (ए) के अनुसार स्टांप शुल्क का भुगतान करने के लिए बाध्य था। यदि हम रु. 3,600/- को 25 गुना में गुणा करते हैं, तो संपत्ति का मूल्य रु. 90,000/-हो जाता है। याचिकाकर्ता ने संपत्ति 1,43,005/- रुपये में खरीदी है और इस राशि पर, उन्होंने तदनुसार स्टांप शुल्क का भुगतान किया है, जो नियम 341 (iii) (ए) के अनुसार गणना किए गए बाजार मूल्य से अधिक है।

चूंकि उ.प्र. स्टाम्प नियम, 1997 के नियम लागू नहीं हुए था और उप रजिस्ट्रार ने संपत्ति के किराए के संबंध में कोई डेटा नहीं दिया था, उत्तरदाताओं को उ. प्र. स्टाम्प नियम, 1942 के प्रावधानों के अनुसार कार्रवाई करनी थी।.

विजय कुमार और सुरेंद्र कुमार दोनों पुत्र श्री दौलत राम बनाम आयुक्त, मेरठ मंडल एवं अपर जिलाधिकारी (वित्त एवं राजस्व) MANU/0682/2008 दिनांक 27.03.2008 के निर्णय में यह माना गया कि नियम के अंतर्गत कलेक्टर द्वारा निर्धारित न्यूनतम से अधिक बाजार मूल्य को साबित करने का भार कलेक्टर पर है। सब-रजिस्ट्रार या तहसीलदार की रिपोर्ट ही उस भार से मुक्ति के लिए पर्याप्त नहीं है।

महावीर प्रसाद बनाम कलेक्टर, कटक [1987] 2 एससीआर 289 में, यह माना गया कि भूमि के 'बाजार मूल्य' का अर्थ वह कीमत, बाजार या वर्तमान कीमत, जिस पर खरीदार और विक्रेता दोनों व्यवसाय करने के इच्छुक हैं।

राम खेलावन उर्फ बच्चन बनाम कलेक्टर, हेयरपुर एवं अन्य के माध्यम से उ.प्र.राज्य 2005 (98) आरडी 511 में, यह माना गया है कि तहसीलदार की रिपोर्ट अधिनियम की धारा 47-ए के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए एक प्रासंगिक कारक हो सकती है लेकिन उपरोक्त धारा के तहत आदेश पारित करने के लिए इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में उक्त रिपोर्ट अधिनियम की धारा 47-ए के तहत पारित आदेश का आधार नहीं बन सकती।

अनुवादित

प्रकाशवती बनाम में मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी राजस्व बोर्ड, इलाहाबाद 1996 (87) आर.डी. 419 "माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि एक सभ्य कॉलोनी के नजदीक के क्षेत्र में एक संपत्ति की स्थिति स्वयं ही इसका हिस्सा नहीं होगी और बाजार मूल्य निर्धारित करने में प्राधिकारी के दृष्टिकोण के लिए एक कारक नहीं होनी चाहिए।

ऊटाकामुंड में नीलगिरी के कलेक्टर बनाम महावीर प्लांटेशंस प्रा. लिमिटेड MANU/TN/0285/1982, मद्रास उच्च न्यायालय ने मूल्यांकन दिशानिर्देशों से निपटते हुए माना है कि धारा 47-ए के तहत कलेक्टर दिशानिर्देशों को अपनाकर बाजार मूल्य निर्धारित करने की अपनी जिम्मेदारी से बच नहीं सकता है और न ही इसके समर्थन करने के लिए उचित सामग्री और साक्ष्यों के अभाव में वह बाजार मूल्य को निर्धारित कर सकता है। धारा 47-ए द्वारा विचारित जांच का विचार और संबंधित नियमों में निर्धारित विस्तृत प्रक्रिया यह दर्शाती है कि कलेक्टर के निष्कर्ष को साक्ष्य द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए। राजस्व बोर्ड के कहने पर राजस्व अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए मूल्यांकन दिशानिर्देश संबंधित पक्षों की किसी खुली सुनवाई या संबंधित संपत्तियों के बाजार मूल्य को जानने की दृष्टि से किसी दस्तावेज के आधार पर तैयार नहीं किए गए थे। वे मोटे तौर पर भूमि के वर्गीकरण, भूमि के समूहीकरण आदि के संदर्भ में एकत्र किए गए आंकड़ों पर आधारित थे। ऐसा होने पर, धारा 47-ए के तहत कार्य करने वाला कलेक्टर बाजार मूल्य के विषय पर दिशानिर्देशों के मूल्यांकन को अंतिम शब्द नहीं मान सकता है।

उपरोक्त चर्चाओं से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं ने यू.पी. स्टाम्प नियम, 1942 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है,जो विक्रय-पत्र के निष्पादन के समय प्रचलित था।

उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, इस न्यायालय की राय है कि उत्तरदाताओं ने उचित रूप से और मौजूदा यू.पी. स्टाम्प नियम, 1942 के अनुसार कार्य नहीं किया है और आक्षेपित आदेशों को मनमाने और अवैध तरीके से पारित किया है, इसलिए रिट याचिका **स्वीकार** करने योग्य है।

<u>आदेश</u>

रिट याचिका को **स्वीकार** किया जाता है और इस रिट याचिका के दिनांक **19.06.1996** के आक्षेपित निर्णय और आदेश, **अनुलग्नक संख्या 4** और आदेश दिनांक **11.01.2000 के अनुलग्नक संख्या 5** को रद्द किया जाता है।

इस मामले में याचिकाकर्ताओं से 96,500/- रुपये की वसूली की गई है जिसके लिए वे इस निर्णय के अनुसार हकदार नहीं थे। याचिकाकर्ताओं ने उक्त राशि को अठारह प्रतिशत (18%) वार्षिक ब्याज सहित लौटाने की प्रार्थना की है।

इस न्यायालय की राय में, प्रतिवादी छह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से उत्पन्न ब्याज के साथ याचिकाकर्ताओं को वसूल की

अनुवादित

गई 96,500/- रुपये की राशि वापस करने के लिए उत्तरदायी हैं। इसलिए, यह भी आदेश दिया जाता है कि उत्तरदाताओं को उपरोक्त राशि रुपये का भुगतान करना होगा। याचिकाकर्ताओं को वसूली की तारीख से याचिकाकर्ताओं को उक्त राशि वापस करने की तारीख तक छह प्रतिशत (6%) साधारण ब्याज के साथ 96,500/- रुपये दिए जाएंगे, ऐसा न करने पर याचिकाकर्ता उत्तरदाताओं से नियमानुसार इसे वसूलने के हकदार होंगे।

(2023) 2 ILRA 613

मूल क्षेत्राधिकार

दिनांक: इलाहाबाद 23.01.2023

सिविल पक्ष

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ,

रिट-सी संख्या 69115/2009

लाल सिंह एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

सक्षम प्राधिकारी शहरी भूमि (सीमा एवं विनियमन) अधिनियम, 1976, अलीगढ़ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री जे.के. शिशोधा, श्री बी.उपाध्याय, श्री रजनीश प्रताप सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

उत्तर प्रदेश शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 - धारा 10 - सीमा से अधिक खाली भूमि का अधिग्रहण शहरी भूमि सीमा और विनियमन (निरसन) अधिनियम, 1999 - भारत का संविधान, अनुच्छेद 226- रिट याचिका- विलंब और परिसीमा - सीमा से अधिक भूमि के अधिग्रहण के संबंध में धारा 10(1) के तहत अधिसूचना जारी की गई, जिसके पश्चात दिनांक 31.05.1993 को अधिनियम की धारा 10(5) के तहत नोटिस जारी किया गया और भूमि का हिस्सा सक्षम प्राधिकारी द्वारा बिना किसी आपत्ति के अधिग्रहित कर लिया गया - रिट याचिका, 13 वर्ष के बाद दायर की गई, जिसमें 1976 के अधिनियम के तहत कार्यवाही में अधिशेष घोषित भूमि से बेदखल न करने की प्रार्थना की गई - आयोजित, रिट याचिका को अत्यधिक अस्पष्टीकृत खामियों से प्रभावित है - विलंब दोष समानता" - विवेकाधीन राहत प्राप्त की जा सकती है, बशर्ते कि किसी ने अपने कार्य या आचरण से अपने अधिकारों को नजरअंदाज न किया हो - समानता अकर्मण्य वादी के बजाय सतर्क वादी का पक्ष समर्थित करती है। (पैरा 14, 15)

निरस्त। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य, (2015) 5 एससीसी 321
2. शिव राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2015 (7) एडीजे 630

अनुवादित

3. शिवगोंडा अन्ना पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1999) 3 एससीसी 5
4. नगर परिषद, अहमदनगर बनाम शाह हैदर बेग (2000) 2 एससीसी 48
5. कपिलाबेन अंबालाल पटेल और अन्य बनाम गुजरात राज्य, 2021 (12) एससीसी 95

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,
एवं
माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV, द्वारा प्रदत्त)

1. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता और उसके बाद के खरीदार राज्य-प्रतिवादी को यह निर्देश देने की मांग करते हैं कि वह याचिकाकर्ताओं को यूपी शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) अधिनियम, **1976** (संक्षेप में 'अधिनियम') के तहत कार्यवाही में अधिशेष घोषित भूमि से बेदखल न करें।

3. विवादित भूमि प्लॉट संख्या **397** है, जिसकी माप **1.370** हेक्टेयर है, जो असदपुर कायम, तहसील कोइल, अलीगढ़ में स्थित है। याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों के अनुसार, याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती चुन्नी लाल ने अधिनियम की धारा **6** के तहत विवरण दाखिल किया। धारा **8(4)** के तहत **18** मार्च **1985** को सक्षम प्राधिकारी द्वारा चुन्नी लाल के खिलाफ आदेश पारित किया गया। भू-स्वामी की ओर से कोई आपत्ति दर्ज नहीं करायी गयी। इसके बाद, अंतिम विवरण, **4** अक्टूबर **1985** को धारा **9** के तहत जारी किया गया था। इसके बाद, अधिकतम सीमा से अधिक भूमि के अधिग्रहण के संबंध में धारा **10(1)** के तहत अधिसूचना जारी की गई, जिसके बाद भूमि को सभी बाधाओं से मुक्त करके राज्य सरकार में निहित घोषित कर धारा **10(3)** के तहत अधिसूचना का प्रकाशन किया गया। धारा **10(1)** के तहत अधिसूचना **27** फरवरी **1988** को जारी की गई, जिसके बाद **20** सितंबर **1988** को धारा **10(3)** के तहत घोषणा की गई। इसके बाद, **31** मई **1993** को जारी अधिनियम की धारा **10(5)** के तहत नोटिस के अनुसार, किसी भी आपत्ति का सामना किए बिना सक्षम प्राधिकारी द्वारा भूमि का कब्जा ले लिया गया।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ताओं से बलपूर्वक कब्जा लेने के लिए धारा **10(6)** के तहत कोई नोटिस जारी नहीं किया गया, इसके अलावा, यह आरोप लगाया गया है कि धारा **10(5)** के तहत नोटिस के अनुसार, अतिरिक्त भूमि समर्पण नहीं किया गया था। यह आरोप लगाया गया है कि भूमि का कब्ज़ा पूर्ववर्ती चुन्नी लाल द्वारा कभी नहीं दिया गया।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि, इसके बाद, याचिकाकर्ताओं ने, बाद में, अतिरिक्त भूमि को बेच दिया और परिणामस्वरूप प्रस्तावित याचिकाकर्ताओं के पक्ष में स्थानांतरित कर

अनुवादित

दिया, जिन्होंने पक्षकार बनाने की मांग की है।

6. उत्तरदाताओं की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में, एक स्पष्ट रुख अपनाया गया है कि अधिनियम की धारा **10 (5)** के तहत नोटिस के खिलाफ भू-स्वामी द्वारा कोई आपत्ति दायर नहीं की गई थी, परिणामस्वरूप, धारा **10(6)** के तहत आगे बढ़ने का कोई अवसर नहीं था।

7. इसके अलावा, यह कहा जा रहा है कि विचाराधीन भूमि **24** फरवरी **2001** को अलीगढ़ विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दी गई है, और उक्त भूमि पर विकास कार्य शुरू कर दिया गया है।

8. विशिष्ट प्रश्न पर, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह खुलासा नहीं किया है कि धारा **10(1)/10(3)** के तहत अधिसूचना के बाद भूमि पंजीकृत बिक्री-विलेख के माध्यम से कब हस्तांतरित की गई थी।

9. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया है।

10. यह विवादित नहीं है कि धारा **10(5)** के तहत नोटिस **31** मई **1993** को जारी किया गया था, जिस पर भू-स्वामी ने कोई आपत्ति नहीं जताई थी, इसलिए भू-स्वामी को धारा **10(6)** के तहत नोटिस जारी करने का अवसर उत्पन्न नहीं हुआ। याचिकाकर्ताओं ने लंबे समय तक इंतजार किया और पहली बार **2006** में रिट याचिका संख्या **49369/2006** दायर करके इस अदालत का दरवाजा खटखटाया, जिसे **7** सितंबर **2009** के आदेश द्वारा निपटाया गया, जिसमें कलेक्टर को अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अभ्यावेदन पर निर्णय नहीं लिया गया था, इसलिए, वर्तमान रिट याचिका **2009** में दायर की गई।

11. इस पृष्ठभूमि में, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं ने **13** साल की अवधि के बाद अधिनियम की धारा **10(6)** के तहत कब्जे और नोटिस का मुद्दा उठाया है और इस देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

12. असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य, (2015) 5 एससीसी 321 (अनु. 16, 17 और 19) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:

*"**16.** मामले को दूसरे नजरिये से भी देखा जा सकता है, यह मानते हुए कि कब्जे वाला व्यक्ति शिकायत कर सकता है, भले ही अंतिम विश्लेषण में बहुत अधिक लाभ न हो, सवाल यह है कि क्या ऐसी शिकायत धारा **10(5)** के कथित उल्लंघन के लंबे समय बाद की जा सकती है। यदि वास्तविक भौतिक कब्ज़ा **7** दिसंबर, **1991** को तत्कालीन भूमि मालिक से ले लिया गया था जैसा कि वर्तमान मामले में आरोप लगाया गया है, तो धारा **10(5)** के आधार पर कोई भी शिकायत ऐसी बेदखली के उचित समय के भीतर की जानी चाहिए थी। **यदि मालिक ने ऐसा नहीं किया, तो जबरन** कब्ज़ा लेना समय की चूक से वैधता प्राप्त कर लेगा। **ऐसी किसी भी स्थिति में मालिक या कब्जे वाले व्यक्ति को अधिनियम की धारा 10(5) के तहत अपने अधिकार का अधित्याग माना जाना चाहिए। हमारी राय***

में, कोई भी अन्य दृष्टिकोण, एक वादी को शिकायत करने का लाइसेंस देगा, इसलिए नहीं कि उसे किसी वास्तविक पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा है जिसका निवारण किया जाना चाहिए, बल्कि केवल इसलिए कि निरसन अधिनियम की आकस्मिक परिस्थिति, बेदखल किए जाने की निर्धारित प्रक्रिया के उल्लंघन ने उसे अपने संबंध में मुद्दा उठाने के लिए प्रेरित किया।

17. प्रतिवादियों द्वारा हरि राम के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया। हमारे विचार में, वह निर्णय उत्तरदाताओं को अधिक सहायता नहीं देता है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं, क्योंकि यह न्यायालय हरि राम के मामले (सुप्रा) में इस बात पर विचार कर रहा था कि क्या धारा 10(5) में आने वाला शब्द 'हो सकता है' सक्षम प्राधिकारी को धारा 10(6) के अंतर्गत विचाराधीन भूमि पर भौतिक कब्ज़ा लेने से पहले नोटिस जारी करने या न जारी करने का विवेक देता है। यह सवाल कि क्या धारा 10(5) का उल्लंघन और बिना किसी नोटिस के संभावित बेदखली, बेदखली के कार्य को ख़राब कर देगी या इसे कानून की नज़र में गैर-स्थायी बना देगी, उस मामले में विचार के लिए नहीं आया। *हमारी राय में, धारा **10(5)** जो निर्धारित करती है वह कार्रवाई का एक सामान्य और तार्किक तरीका है जिसका पालन अधिकारियों द्वारा धारा **10(6)** के तहत कब्जेदार को बेदखल करने के लिए बल का उपयोग करने का निर्णय लेने से पहले किया जाना चाहिए। मौजूदा मामले में यदि दिसंबर **1991** में पूर्ववर्ती मालिक को बेदखल करने के संबंध में अपीलकर्ता का बयान सही है, तो यह तथ्य कि धारा **10(5)** के तहत बिना किसी नोटिस के इस तरह की बेदखली की गई थी, इसका कोई परिणाम नहीं होगा और यह निरसित अधिनियम की धारा **3** के उद्देश्यों के लिए कब्ज़ा लिये जाने हेतु अधिनियम को निष्फल या विरूपित नहीं करेगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि भाबादेब सरमा-तत्कालीन मालिक ने अपने जीवनकाल के दौरान किसी भी स्तर पर धारा **10(5)** के उल्लंघन के आधार पर कोई शिकायत नहीं की थी, जिसका अर्थ यह है कि उन्होंने ऐसा करने का अपना अधिकार छोड़ दिया था।*

19. इस तर्क के समर्थन में कि उत्तरदाताओं के पास आज भी प्रश्नाधीन भूमि का वास्तविक भौतिक कब्ज़ा है, निर्भरता कुछ बिजली बिलों और टेलीफोन कनेक्शन के लिए भुगतान किए गए बिलों पर रखी गई है जो किसी श्री सनातन वैश्य के नाम पर थे। यह तर्क दिया गया कि श्री सनातन वैश्य कोई और नहीं बल्कि प्रतिवादियों की संपत्ति के देखभालकर्ता थे। हालाँकि, उस दावे को पुष्ट करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है। टेलीफोन बिल और बिजली बिल भी **2001** के बाद की अवधि के ही हैं। हमारे समक्ष रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष ऐसा कुछ रखा गया है जो यह सुझाव दे कि **7** दिसंबर, **1991** से दिसंबर, **2003** में जीएमडीए को संबंधित भूमि आवंटित होने की तारीख के बीच मालिक

अनुवादित

या उनके निधन के बाद उनके कानूनी उत्तराधिकारी कब्जे में बने रहे हों। हमारे पास पार्टियों के प्रतिद्वंद्वी दावे हैं जो उनके समर्थन में हलफनामों पर आधारित हैं। हमने बार-बार पार्टियों के विद्वान अधिवक्ता से पूछा कि क्या वे ज्ञानबा दिलावरसिंह जडेगा (सुप्रा) के मामले में फैसले की सादृश्यता पर प्रतिप्रेषण पर, कोई दस्तावेजी सबूत पेश कर सकते हैं जो उच्च न्यायालय को वास्तविक कब्जे के संबंध में निष्कर्ष दर्ज करने में सक्षम करेगा। वे ऐसे किसी भी सबूत को इंगित या संदर्भित करने में असमर्थ थे। **ऐसा होने पर यह प्रश्न कि क्या वास्तविक भौतिक कब्ज़ा लिया गया था, तथ्य का एक गंभीर रूप से विवादित प्रश्न बना हुआ है, जो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में उच्च न्यायालय द्वारा संतोषजनक निर्धारण के लिए उत्तरदायी नहीं है, भले ही उच्च न्यायालय कुछ मामलों में ऐसे निर्धारण की स्थितियाँ में अपने विवेक से काम ले।** इसलिए, बेदखली के सवाल पर निष्कर्ष निकालने के लिए उच्च न्यायालय को भेजा गया रिमांड हमें कोई व्यवहार्य समाधान प्रतीत नहीं होता है।"

(हमारे द्वारा बल दिया गया)

13. भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय का **शिव राम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2015 (7) एडीजे 630 के मामले में** इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा पालन किया गया है और अति-विलंब के आधार पर रिट याचिका खारिज कर दी गई, निम्नानुसार अवलोकन करें:

*"हमें मामले के दूसरे पहलू पर भी ध्यान देना चाहिए, विशेषकर भास्कर ज्योति सरमा (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले के संबंध में। याचिकाकर्ता ने निरसित अधिनियम लागू होने के लगभग तीन साल बाद **2002** में पहली रिट याचिका दायर की। याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर जिला मजिस्ट्रेट को आदेश पारित करने का निर्देश देकर पिछली रिट याचिका का निपटारा करने के बाद, **10** मई **2007** को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा एक आदेश पारित किया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ता ने दो साल से अधिक की अवधि तक प्रतीक्षा की तब वर्तमान रिट याचिका जुलाई **2009** में दायर की गई थी। **यदि याचिकाकर्ता को धारा 10(5) के तहत उचित नोटिस के बिना भूमि से बेदखल कर दिया गया था, तो ऐसी शिकायत प्रासंगिक समय पर उठाई जा सकती थी।** दरअसल, यह राज्य का हमेशा से मामला रहा है कि धारा **10(5)** के तहत एक नोटिस, वास्तव में, वर्तमान मामले में जारी किया गया था जो कि मूल फ़ाइल से लिया जाएगा जिसे न्यायालय के समक्ष पहले प्रस्तुत किया गया है। **मुद्दा यह है कि क्या ऐसी शिकायत लंबे समय बाद न्यायालय के समक्ष की जा सकती है। याचिकाकर्ता ने निरसित अधिनियम लागू होने के बाद पहली रिट याचिका दायर करने के लिए लगभग तीन साल तक इंतजार किया और उसके बाद प्रत्यावेदन के निपटान के बाद दो साल से अधिक की अवधि तक इंतजार किया, जिला मजिस्ट्रेट*

अनुवादित

के निर्णय के बावजूद कि 25 जून 1993 को कब्जा ले लिया गया था। हमारे विचार में, किसी भी स्थिति में, इतनी देर से दी गई चुनौती पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।"

(हमारे द्वारा बल दिया गया)

14. शिवगोंडा में अन्ना पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1999) 3 एससीसी 5 जिसमें, अधिनियम की धारा **10** से निपटते समय उच्चतम न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद **226** के तहत इस आधार पर कार्यवाही को फिर से खोलने के लिए रिट याचिका कि सक्षम प्राधिकारी ने कुछ तथ्यों पर विचार नहीं किया था, अतिरिक्त भूमि राज्य सरकार में निहित होने के दस साल बाद दायर की गई याचिका को उच्च न्यायालय द्वारा सरसरी तौर पर खारिज कर दिया गया था।

15. अनुच्छेद **226** के तहत याचिका को प्राथमिकता देने में देरी और देरी के सवाल पर फैसला करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने **नगरपालिका परिषद, अहमदनगर बनाम शाह हैदर बेग (2000) 2 एससीसी 48 में** माना कि न्यायसंगत सिद्धांत, अर्थात्, "विलंब साम्य को विफल करता है" का संविधान के अनुच्छेद **226** के तहत राहत देने के मामले में पूर्ण प्रयोज्य है। विवेकाधीन राहत मिल सकती है बशर्ते कि किसी ने अपने कार्य या आचरण से अपने अधिकारों को नजरअंदाज न किया हो। समानता एक अकर्मण्य वादी के बजाय एक सतर्क वादी का पक्ष लेती है और यही कानून का मूल सिद्धांत है।

16. हाल ही में **कपिलाबेन अम्बालाल पटेल एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य, 2021 (12) एससीसी 95,** उच्चतम न्यायालय ने अत्यधिक देरी के आधार पर मूल भूमि धारक के कानूनी उत्तराधिकारियों/प्रतिनिधियों द्वारा दायर याचिका को स्वीकार करने से इनकार कर दिया।न्यायालय ने भू-स्वामी की दलील पर गौर किया:

*"व्यथित महसूस करते हुए, भूस्वामियों ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। यह आग्रह किया जाता है कि प्रतिवादी राज्य द्वारा दावा किए गए इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि प्रश्नगत भूमि का भौतिक कब्ज़ा **20-3-1986** को ले लिया गया है। यह केवल कब्ज़ा पंचनामा के रूप में एक कागजी-कब्जा था। अपीलकर्ताओं के अनुसार, निरसित अधिनियम की तारीख पर विषय भूमि का वास्तविक कब्ज़ा महत्वपूर्ण है और इसमें **1976** अधिनियम के तहत राज्य अधिकारियों की सभी कार्रवाइयों का उन्मूलन शामिल है। भूमि को राज्य में निहित करने के संबंध में **1976** अधिनियम की धारा **10(3)** के तहत केवल अधिसूचना जारी करना निरसित अधिनियम के प्रयोजनों के लिए पर्याप्त नहीं है। **विनायक काशीनाथ शिल्कर बनाम कलेक्टर एवं सक्षम प्राधिकारी, (2012) 4***

अनुवादित

एससीसी 718, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम (2013) 4 एससीसी 280, गजानन कमल्या पाटिल बनाम अतिरिक्त कलेक्टर एवं सक्षम प्राधिकारी (यूएलसी) (2014) 12 एससीसी 523 और मंगलसेन बनाम यूपी राज्य (2014) 15 एससीसी 332 पर *विश्वास जताया गया है। इस न्यायालय का सुसंगत दृष्टिकोण यह है कि राज्य के अधिकारियों द्वारा भौतिक कब्ज़ा लिया जाना चाहिए, ऐसा न करने पर निरसित अधिनियम के कारण कार्यवाही समाप्त हो जाएगी। अपीलकर्ताओं ने यह दिखाने के लिए राजस्व रिकॉर्ड पर भरोसा किया है कि **20-3-1986** को कब्ज़ा पंचनामा बनने के बाद भी अपीलकर्ताओं/भू-धारकों के पास लगातार कब्ज़ा बना रहा। राजस्व प्रविष्टियों का मूल्य अनुमानित है और प्रतिवादी राज्य इसका खंडन करने में विफल रहा है।"*

17. कपिलाबेन अंबालाल पटेल (सुप्रा) के अनुच्छेद 25 में, न्यायालय ने देरी को नोट किया और उच्च न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

*"इसके अलावा, जो कुछ भी दावा किया गया है वह यह है कि उच्च न्यायालय ने यह मानने में गलती की कि रिट याचिका दायर करने में **14** साल की देरी हुई और **1976** के अधिनियम की धारा **10 (5)** के तहत नोटिस दिनांकित **23-1-1986,** का मूल्यांकन नहीं किया इसे अंबालाल परसोत्तमभाई पटेल को तामील नहीं किया गया क्योंकि उनकी मृत्यु पहले ही **31-12-1985** को हो चुकी थी और उन्हें भेजा गया नोटिस **2-2-1986** को बिना तामील हुए यह टिप्पणी के साथ वापस कर दिया गया था कि "उक्त मालिक की मृत्यु हो गई है"। इसके अलावा, अंबालाल परसोत्तमभाई पटेल के कानूनी उत्तराधिकारियों को उक्त नोटिस दिया जाना चाहिए था..... जैसा भी हो, हम उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष को उलटने के इच्छुक नहीं हैं कि अपीलकर्ताओं द्वारा रिट याचिका दायर करने में निराशाजनक रूप से देरी हुई और उन्हें अति विलंब का सामना करना पड़ा। वर्तमान मामले के तथ्यों में यह एक संभावित दृष्टिकोण है।"*

18. उपरोक्त कारणों से और **भास्कर ज्योति शर्मा (सुप्रा), कपिलाबेन अंबालाल पटेल (सुप्रा) के मामले में** माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून और **शिव राम सिंह (सुप्रा) मामले में,** इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के फैसले के मद्देनजर भी हमें रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं दिखती, सिवाय इस तथ्य के कि यह असामान्य अस्पष्ट विलम्ब से भी प्रभावित है। परिणामस्वरूप, रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

(2023) 2 ILRA 618

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता,

आपराधिक अपील संख्या 466/2001

अबू तालिब और अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

अनुवादित

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: अजमल खान

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता, प्रेम प्रकाश सिंह

आपराधिक कानून - अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 - धारा 4 - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 357, धारा 360 - धारा 360 सीआरपीसी का प्रभाव, प्रासंगिकता और प्रयोज्यता विचारणीय न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है और अपीलकर्ता आईपीसी की धारा 325 के तहत परिवीक्षा के पात्र हैं - चूंकि घटना लगभग 31 वर्ष पूर्व हुई थी और बीच की अवधि के दौरान वह किसी भी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं था और न ही उसकी कोई आपराधिक पृष्ठभूमि थी -धारा 357 सीआरपीसी न्यायालय को अपराध के पीड़ित(पीड़ितों) को हुई हानि/चोट के संबंध में मुआवजा देने का अधिकार देता है। इस अनुभाग का उद्देश्य न्याय के उद्देश्यों को बेहतर तरीके से पूरा करना है। यह धारा पीड़ित को आश्वस्त करने के लिए बनाई गई थी कि आपराधिक न्याय प्रणाली में उसे भुलाया नहीं गया है। सीआरपीसी की धारा 357 के तहत दी जाने वाली मुआवजे की राशि अपराध की प्रकृति, नुकसान/नुकसान की सीमा और आरोपी की भुगतान करने की क्षमता पर निर्भर करता है, जिसके लिए न्यायालय को एक सारांश जांच करनी होती है-प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ अपीलकर्ता को प्रदान किया जाना चाहिए - प्रत्येक पर 10,000/- रुपये का जुर्माना बढ़ाकर 30,000/- रुपये किया जाता है, जिसे विचारणीय न्यायालय के समक्ष जमा किया जाएगा।

अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम न्यायालय को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर कुछ अपराधियों को रिहा करने की शक्ति प्रदान करता है, वही अधिनियम सीआरपीसी की धारा 357 के साथ अदालतों को पीड़ित को मुआवजा प्रदान करने की शक्ति भी देता है और इसलिए उक्त प्रावधान आरोपियों को सजा सुनाने के चरण में अदालतों द्वारा इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। (पैरा 22, 23, 24, 25)

आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-</u>

1. अंकुश शिवाजी गायकवाड बनाम महाराष्ट्र राज्य मनु/एससी/0461/2013: (2013) 6 एससीसी 770
2. जीतेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एससी/0679/2013: (2013) 11 एससीसी 193

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अज़मल खान, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रेम प्रकाश सिंह और राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता सुश्री शिखा सिन्हा को सुना गया और

अनुवादित

विचारण न्यायालय के अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. यह आपराधिक अपील अपीलकर्ताओं द्वारा भा०दं०सं० की धारा 307/34 व 323/34, थाना रानीगंज, जनपद प्रतापगढ़ के अंतर्गत, मु०अ०सं० 22/1990 से उत्पन्न, सत्र परीक्षण सं० 103/1994 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक कोर्ट), प्रतापगढ़ द्वारा आक्षेपित निर्णय और आदेश दि० 26.06.2001 को चुनौती देते हुए दायर की गई है। उक्त निर्णय द्वारा, अपीलकर्ताओं को भा०दं०सं० की धारा 307/34 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया और प्रत्येक को दस वर्ष के कठोर कारावास और 10,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई। जुर्माना अदा न करने पर तीन माह अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा। भा०दं०सं० की धारा 323/34 के तहत अपराध में छह माह का सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई। दोनों सजाएं एक साथ समकालिक रूप से चलाने का निर्देश दिया गया।

3. इस मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:-

शिकायतकर्ता इस्माइल द्वारा प्राथमिकी दर्ज करायी गयी थी कि 02.02.1990 को सुबह 9 बजे उसके घर के पास रास्ते में बबूल की सूखी झाड़ी पड़ी थी, जिससे रास्ता बाधित हो गया था। जब सूचनाकर्ता इस्माइल एवं उसकी पुत्री किस्मतुलनिशां ने उक्त झाड़ी को हटाने का प्रयास किया , फिर पुरानी रंजिश के कारण अपीलकर्ताओं ने सह-अभियुक्त फरीदुद्दीन के उकसाने पर, अन्य अपीलकर्ताओं ने गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी देनी शुरू कर दी और किस्मतुलनिशा के सिर पर लाठी से हमला कर दिया। शिकायतकर्ता ने अपनी बेटी को बचाने की कोशिश की तो सभी अपीलकर्ताओं ने शिकायतकर्ता पर भी लाठियां बरसाईं। शिकायतकर्ता के चिल्लाने पर शमशाद अली, मुर्तजा और अन्य ग्रामीण घटनास्थल की ओर दौड़े और हस्तक्षेप किया। इस घटना से घायल किस्मतुलनिशां को गंभीर चोटें आयीं। इस मामले की प्राथमिकी शिकायतकर्ता इस्माइल ने दर्ज कराई थी। इस लिखित तहरीर के आधार पर, इस मामले की प्राथमिकी 02.02.1990 को 15:05 बजे आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ दर्ज की गई थी। इस प्राथमिकी के दर्ज होने के बाद इस मामले की जांच, जांच अधिकारी नेहाल अहमद को सौंपी गई थी।

4. प्राथमिकी दर्ज करने से पहले घायल किस्मतुलनिशां की दिनांक 02.02.1990 को प्रातः 11:45:00 बजे जिला अस्पताल प्रतापगढ़ में जांच की गई और उसके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं: -

(i) फटा हुआ घाव 5 सेमी. x 1 सेमी. x 2 सेमी. ऊपर गहरी सिर के बायीं ओर खोपड़ी पर, बाँयां कान, ताजा रक्तस्राव मौजूद था।

(ii) सांस लेते समय छाती के बायीं ओर दर्द की शिकायत होना। जांच करने पर निचली पसली में दाबवेदना मौजूद होना।

5. दोनों घायलों को निगरानी में रखा गया। चोट किसी कठोर और कुंद वस्तु से लगी थी। अवधि तीन-चार घंटे से ज्यादा की थी।

6. घायल किस्मतुलनिशां की चोट को निगरानी में रखा गया। एक्स-रे रिपोर्ट के अनुसार जहाँ तक चोट नं. 1 का सवाल है, किस्मतुलनिशां के सिर पर कोई विसंगति नहीं देखी गई। लेकिन छाती के एक्स-रे के अनुसार बायीं तरफ की 9वीं, 10वीं और 11वीं पसली में फ्रैक्चर था।

7. अन्य घायल इस्माइल की भी उसी दिन 12:02 बजे जिला अस्पताल, प्रतापगढ़ में जांच की गई और निम्नलिखित चोटें देखी गईं: -

(i) फटा हुआ घाव 1 सेमी. x ½ सेमी. x 11 सेमी गहरी सिर के दायीं ओर खोपड़ी पर दाहिने पिन्ना के साथ, ताजा रक्तस्राव मौजूद था।

8. चोट सामान्य प्रकृति की थी और किसी कठोर और कुंद वस्तु से लगी थी और इसकी अवधि लगभग 3-4 घंटे से ज्यादा की थी।

9. अन्वेषण के दौरान, अन्वेषण अधिकारी ने घायल व्यक्तियों की मेडिकल रिपोर्ट एकत्र की और प्रथम सूचनाकर्ता और घायल और कई अन्य व्यक्तियों के बयान दर्ज किए गए। अन्वेषण के दौरान भी अन्वेषण अधिकारी ने प्रथम सूचनाकर्ता की निशानदेही पर स्थल योजना तैयार किया।

10. अन्वेषण की सभी औपचारिकताएं पूरी करने के बाद, अन्वेषण अधिकारी ने सभी अपीलकर्ताओं के विरुद्ध भा०दं०सं० की धारा 323, 504, 506, 325 और 307 के तहत संबंधित न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र दायर किया। इसके बाद मामला 27.10.1994 को सुनवाई के लिए सत्र न्यायालय को सौंपा गया, जो सत्र परीक्षण सं० 103 / 1994 के रूप में पंजीकृत है।

11. आरोप तय करने के समय, सह-अभियुक्त फ़रीदुद्दीन के जीवित न रहने की सूचना दी गई थी, इसलिए विचारण न्यायालय ने मुकदमा निरस्त कर दिया था। दोनों पक्षों को सुनने के बाद, आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ भा०दं०सं० की धारा 307/34 और 323/34 के तहत आरोप विरचित किए गए, जिसमें अपीलकर्ताओं को हिंदी में आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिसमें उन्होंने अपने विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से इनकार किया और विचारण हेतु प्रार्थना की गयी।

12. अपने मामले को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित साक्षियों का परीक्षण किया:

(i) अभियोजन साक्षी-1 मो. इस्माइल जो इस मामले के शिकायतकर्ता हैं। उन्होंने लिखित तहरीर प्रदर्श क-1 को साबित किया।

(ii) अभियोजन साक्षी-2 किस्मतुलनिशां से पूछताछ की गई। वह एक घायल साक्षी भी

है। उसने अपने बयान में कहा है कि पुरानी रंजिश के कारण हमलावर ने लाठी, लात और घूंसों से मारपीट की, इस कारण उसके सिर और पसलियों के बायीं तरफ चोटें आईं। वह करीब 13 दिन अस्पताल में रहीं। इस प्रकार उसने अभियोजन के संपूर्ण संस्करण का समर्थन किया।

(iii) अभियोजन साक्षी-3 डॉ. अजित कुमार कुलश्रेष्ठ, जिन्होंने अभियोजन साक्षी-2 घायल किस्मतुलनिशां की इंजरी रिपोर्ट को प्रदर्श क-2 और अभियोजन साक्षी-1 शिकायतकर्ता घायल इस्माइल की चोट आख्या को प्रदर्श क-3 के रूप में साबित किया। उन्होंने एक्स-रे रिपोर्ट, प्रदर्श क-4 को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में भी साबित किया।

(iv) अभियोजन साक्षी-4 शमशाद अहमद, कथित घटना के प्रत्यक्षदर्शी है। वह स्वतंत्र साक्षी हैं और उन्होंने अभियोजन मामले का समर्थन किया है। इस साक्षी के बयान में कोई तात्विक विरोधाभास नहीं है।

(v) अभियोजन साक्षी-5 नेहाल अहमद ने विवरणित किया कि यह मामला उनकी अनुपस्थिति में दर्ज किया गया था और बाद में इस मामले की जांच उन्हें न्यस्त की गई थी। जांच के दौरान उन्होंने स्थल योजना तैयार किया, जो प्रदर्श क-5 के रूप में भी साबित किया। एक्स-रे और एक्स-रे रिपोर्ट और चोट आख्या प्राप्त करने के उपरान्त, उन्होंने मामले को भा०दं०सं० की धारा 307 और 325 के तहत परिवर्तित कर दिया। अन्वेषण के दौरान उसने खून से सने कपड़ों का वसूली ज्ञापन तैयार किया, जो प्रदर्श क-6 के रूप में सिद्ध हुआ। आरोप-पत्र को उनके द्वारा प्रदर्श क-7 के रूप में प्रमाणित किया गया। इस प्रकार वह एक औपचारिक साक्षी है।

13. इस प्रकार अभियोजन पक्ष ने अभियोजन साक्षी-1 से अं 5 के मौखिक साक्ष्य और दस्तावेजी साक्ष्य प्रदर्श क-1 से क-7 पर विश्वास किया है।

14. अभियोजन साक्ष्य के समापन के पश्चात, अपीलकर्ताओं का बयान, दं०प्र०सं० की धारा 313 के तहत विचारण न्यायालय द्वारा पूरे साक्ष्य और अन्य आलिप्तकारी परिस्थितियों को समझाते हुए अभिलिखित किया गया। दं०प्र०सं० की धारा 313 के तहत दर्ज किए गए बयान में, आरोपी अपीलकर्ता ने अभियोजन पक्ष की बात से इनकार किया और कहा कि घटना के समय वे घटना स्थल पर मौजूद नहीं थे। अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाया गया है। बचाव में, उन्होंने कोई साक्ष्य पेश नहीं किया।

15. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का विवेचन करने के बाद, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त अपीलकर्ताओं को उपरोक्त के अनुसार दोषी ठहराया।

16. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता निर्दोष हैं और उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है। पुनः यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन साक्षी-1 और अभियोजन साक्षी-2 के बयानों में तात्विक विरोधाभास हैं। अभियोजन पक्ष के कथानुसार, तीन

लोगों ने लाठी से हमला किया, लेकिन घायल किस्मतुलनिशां के शरीर पर केवल दो चोटें देखी गईं। आगे कहा गया कि किस्मतुलनिशां को जो चोट पहुंचाई गई थी, वो किसी महत्वपूर्ण अंग पर नहीं था। इसलिए, अपीलकर्ताओं के खिलाफ भा०दं०सं० की धारा 307 के तहत मामला नहीं बनता है। विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों की अनदेखी करते हुए, अपीलकर्ताओं को भा०दं०सं० की धारा 307 के तहत गलत तरीके से दोषी ठहराया है। यदि अभियोजन का मामला संपूर्णतः स्वीकार कर लिया जाता है, तो मामला भा०दं०सं० की धारा 325 के दायरे से बाहर नहीं जाता है।

17. अपीलकर्ताओं के विद्वान **अधिवक्ता** ने अंततः प्रस्तुत किया कि मामला वर्ष 1990 से संबंधित है और 33 वर्ष पहले घटित हुआ। प्रथम **सूचनाकर्ता** इस्माइल और सह-अभियुक्त फरीदुद्दीन अब नहीं रहे। वे दोनों सगे भाई थे लेकिन घायल अभियोजन साक्षी-2 किस्मतुलनिशां प्रथम **सूचनाकर्ता** की बेटी है और अन्य अपीलकर्ता चचेरे भाई हैं। वर्तमान में दोनों पक्षकार , अपीलकर्ता और घायल किस्मतुलनिशां, जिनकी उम्र 76 वर्ष है और उनके बीच सौहार्दपूर्ण संबंध विकसित हुए हैं, **समाज में सुप्रतिष्ठित** है। उन्होंने आगे कहा कि यह एक पुराना मामला है और अपीलकर्ताओं को जेल भेजने से कोई सार्थक उद्देश्य पूरा नहीं होगा। पुनः यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता घायलों को मुआवजा देने के लिए तैयार हैं। अपीलकर्ताओं को पहले किसी भी अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया गया है, इसलिए अपीलकर्ताओं के खिलाफ उदार दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है।

18. पुनः यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि यदि अभियोजन पक्ष का मामला संपूर्णतः स्वीकृत कर लिया जाता है, तो मामला भा०दं०सं० की धारा 325 के दायरे से आगे नहीं बढ़ता है। अपीलकर्ताओं के लिए आगे विद्वान **अधिवक्ता** ने प्रस्तुत किया कि हालांकि योग्यता के आधार पर निर्णय को चुनौती देने के लिए पर्याप्त कारण हैं, फिर भी वे चुनौती को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 (संक्षेप में "परिवीक्षा अधिनियम") एवं दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 में निहित प्रावधान की प्रयोज्यता पर विचार न करने तक सीमित कर रहे हैं, चूंकि अपीलकर्ता के विरुद्ध भा०दं०सं० की धारा 325 के तहत अपराध बनता है।

19. राज्य की तरफ से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपील का विरोध करते हुए प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय द्वारा कोई महत्वपूर्ण अनियमितता या अवैधता नहीं की गई है। पुनः यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए आरोपी-अपीलकर्ता को विचारण न्यायालय द्वारा उचित तौर पर दोषी ठहराया गया है।

20. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 का हवाला देना उचित होगा। दं०प्र०सं०

की धारा 360 निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"360. **सदाचरण की परिवीक्षा पर या भर्त्सना के पश्चात् छोड़ देने का आदेश-**

(1) जब कोई व्यक्ति जो इक्कीस वर्ष से कम आयु का नहीं है केवल जुर्माने से या सात वर्ष या उससे कम अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है अथवा जब कोई व्यक्ति जो इक्कीस वर्ष से कम आयु का है या कोई स्त्री ऐसे अपराध के लिए, जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, दोषसिद्ध की जाती है और अपराधी के विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं की गई है तब, यदि उस न्यायालय को, जिसके समक्ष उसे दोषसिद्ध किया गया है, अपराधी की आयु, शील या पूर्ववृत्त को और उन परिस्थितियों को, जिनमें अपराध किया गया, ध्यान में रखते हुए यह प्रतीत होता है कि अपराधी को सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ देना समीचीन है तो न्यायालय उसे तुरन्त कोई दंडादेश देने के बजाय निदेश दे सकता है कि उसे प्रतिभुओं सहित या रहित उसके द्वारा यह बंधपत्र लिख देने पर छोड़ दिया जाए कि वह (तीन वर्ष से अनधिक) इतनी अवधि के दौरान, जितनी न्यायालय निदिष्ट करे, बुलाए जाने पर हाजिर होगा और दंडादेश पाएगा और इस बीच परिशांति कायम रखेगा और सदाचारी बना रहेगा :

बशर्ते जहां कोई प्रथम अपराधी किसी द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा, जो उच्च न्यायालय द्वारा विशेषतया सशक्त नहीं किया गया है, दोषसिद्ध किया जाता है और मजिस्ट्रेट की यह राय है कि इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए वहां वह उस भाव की अपनी राय अभिलिखित करेगा और प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को वह कार्यवाही निवेदित करेगा और उस अभियुक्त को उस मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा अथवा उसकी उस मजिस्ट्रेट के समक्ष हाजिरी के लिए जमानत लेगा और वह मजिस्ट्रेट उस मामले का निपटारा उपधारा(2) द्वारा उपबंधित रीति से करेगा।

(2) जहां कोई कार्यवाही प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को उपधारा (1) द्वारा उपबंधित रूप में निवेदित की गई है, वहां ऐसा मजिस्ट्रेट उस पर ऐसा दंडादेश या आदेश दे सकता है जैसा यदि मामला मूलतः उसके द्वारा सुना गया होता तो वह दे सकता और यदि वह किसी प्रश्न पर अतिरिक्त जांच या अतिरिक्त साक्ष्य आवश्यक समझता है तो वह स्वयं ऐसी जांच कर सकता है या ऐसा साक्ष्य ले सकता है अथवा ऐसी जांच किए जाने या ऐसा साक्ष्य लिए जाने का निदेश दे सकता है ।

(3) किसी ऐसी दशा में, जिसमें कोई व्यक्ति चोरी, किसी भवन में चोरी, बेईमानी से दुर्विनियोग, छल या भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन दो वर्ष से अनधिक के कारावास से दंडनीय किसी अपराध के लिए या केवल जुर्माने से दंडनीय किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं की गई है, यदि वह न्यायालय, जिसके समक्ष वह ऐसे दोषसिद्ध किया गया है, ठीक समझे, तो वह अपराधी की आयु, शील, पूर्ववृत्त या

शारीरिक या मानसिक दशा को और अपराध की तुच्छ प्रकृति को, या किन्हीं परिशमनकारी परिस्थितियों को, जिनमें अपराध किया गया था, ध्यान में रखते हुए उसे कोई दंडादेश देने के बजाय सम्यक् भर्त्सना के पश्चात् छोड़ सकता है ।

(4) इस धारा के अधीन आदेश किसी अपीलीय न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय द्वारा भी किया जा सकेगा जब वह अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग कर रहा हो।

(5) जब किसी अपराधी के बारे में इस धारा के अधीन आदेश दिया गया है तब उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय, उस दशा में जब उस न्यायालय में अपील करने का अधिकार है, अपील किए जाने पर, या अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते हुए, ऐसे आदेश को अपास्त कर सकता है और ऐसे अपराधी को उसके बदले में विधि के अनुसार दंडादेश दे सकता है :

बशर्ते उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय इस उपधारा के अधीन उस दंड से अधिक दंड नहीं देगा जो उस न्यायालय द्वारा दिया जा सकता था जिसके द्वारा अपराधी दोषसिद्ध किया गया था।

(6) धारा 121, 124 और 373 के उपबंध इस धारा के उपबंधों के अनुसरण में पेश किए गए प्रतिभुओं के बारे में जहां तक हो सके, लागू होंगे ।

(7) किसी अपराधी के उपधारा(1) के अधीन छोड़े जाने का निदेश देने के पूर्व न्यायालय अपना समाधान कर लेगा कि उस अपराधी का, या उसके प्रतिभू का (यदि कोई हो) कोई नियत वास स्थान या नियमित उपजीविका उस स्थान में है जिसके संबंध में वह न्यायालय कार्य करता है या जिसमें अपराधी के उस अवधि के दौरान रहने की सम्भाव्यता है, जो शर्तों के पालन के लिए उल्लिखित की गई है ।

(8) यदि उस न्यायालय का, जिसने अपराधी को दोषसिद्ध किया है, या उस न्यायालय का, जो अपराधी के संबंध में उसके मूल अपराध के बारे में कार्यवाही कर सकता था, समाधान हो जाता है कि अपराधी अपने मुचलके की शर्तों में से किसी का पालन करने में असफल रहा है तो वह उसके पकड़े जाने के लिए वारण्ट जारी कर सकता है ।

(9) जब कोई अपराधी ऐसे किसी वारण्ट पर पकड़ा जाता है तब वह वारण्ट जारी करने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष तत्काल लाया जाएगा और वह न्यायालय या तो तब तक के लिए उसे अभिरक्षा में रखे जाने के लिए प्रतिप्रेषित कर सकता है जब तक मामले में सुनवाई न हो, या इस शर्त पर कि वह दंडादेश के लिए हाजिर होगा, पर्याप्त प्रतिभूति लेकर जमानत मंजूर कर सकता है और ऐसा न्यायालय मामले की सुनवाई के पश्चात् दंडादेश दे सकता है।

(10) इस धारा की कोई बात, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (20 / 1958) या बालक अधिनियम, 1960 (60 / 1960) या किशोर अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या सुधार से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी

अन्य विधि के उपबंधों पर प्रभाव नहीं डालेगी ।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 निम्नवत उद्धृत है:

361. कुछ मामलों में विशेष कारणों का अभिलिखित किया जाना-जहां किसी मामले में न्यायालय,-

(क) किसी अभियुक्त व्यक्ति के संबंध में कार्रवाई धारा 360 के अधीन या अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (20 / 1958) के उपबंधों के अधीन कर सकता था; या

(ख) किसी किशोर अपराधी के संबंध में कार्रवाई, बालक अधिनियम, 1960 (60 / 1960) के अधीन या किशोर अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या सुधार से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन कर सकता था,

किन्तु उसने ऐसा नहीं किया है वहां वह ऐसा न करने के विशेष कारण अपने निर्णय में अभिलिखित करेगा ।

प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3, 4 और 5 निम्नानुसार पठित है-

धारा 3. कतिपय अपराधियों को भर्त्सना के पश्चात् छोड़ देने की न्यायालय की शक्ति-जब कोई व्यक्ति भारतीय दण्ड संहिता, (1860 का 45) की धारा 379 या धारा 380 या धारा 381 या धारा 404 या धारा 420 के अधीन दण्डनीय कोई अपराध अथवा भारतीय दण्ड संहिता या किसी अन्य विधि के अधीन दो वर्ष से अनधिक के लिए कारावास या जुर्माने अथवा दोनों से दण्डनीय कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है और जिस न्यायालय ने उस व्यक्ति को दोषी पाया है उसकी यह राय है कि मामले की परिस्थितियों को, जिनके अंतर्गत अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी है ध्यान रखते हुए ऐसा करना समीचीन है जब तब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी वह न्यायालय उसे दंडित करने या उसे धारा 4 के अधीन सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने के बजाय उसे सम्यक् भर्त्सना के पश्चात् छोड़ सकेगा ।

स्पष्टीकरण - इस धारा के प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति के विरुद्ध पूर्व दोषसिद्धि के अन्तर्गत इस धारा या धारा 4 के अधीन उसके विरुद्ध किया गया कोई पूर्व आदेश भी है ।

धारा 4. कतिपय अपराधियों को सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने की न्यायालय की शक्ति-

(1) जब कोई व्यक्ति ऐसा कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डनीय नहीं है और जिस न्यायालय ने उस व्यक्ति को दोषी पाया है उसकी यह राय है कि मामले की परिस्थितियों को जिनके अन्तर्गत अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी है, ध्यान में रखते हुए उसे सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ देना समीचीन हो तब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी वह न्यायालय उसे

तुरन्त दंडित करने के बजाय, निदेश दे सकेगा कि उसे, प्रतिभुओं के सहित या उनके बिना, उसके द्वारा ऐसा बंधपत्र देने पर छोड़ दिया जाए कि वह तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी कालावधि के दौरान, जैसी न्यायालय निर्दिष्ट करे, आहूत किए जाने पर उपस्थित होगा और दण्डादेश प्राप्त करेगा और इस बीच परिशान्ति कायम रखेगा और सदाचारी रहेगा :

बशर्ते न्यायालय किसी अपराधी के ऐसे छोड़ दिए जाने का निदेश तब तक नहीं देगा जब तक उसका समाधान नहीं हो जाता कि अपराधी या उसके प्रतिभू का, यदि कोई हो, नियत निवास-स्थान या उस स्थान में नियमित उपजीविका है, जिस पर वह न्यायालय अधिकारिता का प्रयोग करता है या जिसमें अपराधी के उस कालावधि के दौरान रहने की संभाव्यता है जिसके लिए वह बंधपत्र देता है ।

(2) *उपधारा (1)* के अधीन कोई आदेश करने से पूर्व न्यायालय, मामले के बारे में, संबंधित परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट पर, यदि कोई हो, विचार करेगा ।

(3) जब *उपधारा (1)* के अधीन आदेश किया जाता है तब यदि न्यायालय की यह राय है कि अपराधी और जनता के हितों में ऐसा करना समीचीन है, तो वह उसके अतिरिक्त एक पर्यवेक्षण आदेश पारित कर सकेगा जिसमें यह निदेश होगा कि अपराधी आदेश में नामित किसी परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण के अधीन एक वर्ष से कम न होने वाली ऐसी कालावधि के दौरान रहेगा जो उसमें विनिर्दिष्ट हो, और ऐसे पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें अधिरोपित कर सकेगा जैसी वह अपराधी सम्यक् पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझता है ।

(4) *उपधारा (3)* के अधीन पर्यवेक्षण आदेश करने वाला न्यायालय अपराधी से अपेक्षा करेगा कि छोड़े जाने से पूर्व, वह ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट शर्तों का और निवास-स्थान मादक पदार्थों से प्रवरित या किसी अन्य बात के बारे में ऐसी अतिरिक्त शर्तों का, जैसी न्यायालय विशिष्ट परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए उसी अपराध की पुनरावृत्ति को या अपराधी द्वारा अन्य अपराधों के किए जाने को रोकने के लिए अधिरोपित करना ठीक समझे, पालन करने के लिए प्रतिभूओं के सहित या बिना एक बंधपत्र दे।

(5) *उपधारा (3)* के अधीन पर्यवेक्षण आदेश करने वाला न्यायालय आदेश के निबंधनों और शर्तों को अपराधी को समझाएगा और प्रत्येक अपराधी, प्रतिभू, यदि कोई हो, और संबंधित परिवीक्षा अधिकारी को तुरन्त पर्यवेक्षण आदेश की एक प्रति देगा ।

धारा 5. छोड़े गए अपराधियों से प्रतिकर और खर्च देने की अपेक्षा करने की न्यायालय की शक्ति-

(1) धारा 3 या धारा 4 के अधीन अपराधी को छोड़ने का निदेश देने वाला न्यायालय, यदि ठीक समझता है, तो उसी समय तक अतिरिक्त आदेश कर सकेगा जिसमें उसे निम्नलिखित संदत्त करने के लिए निर्दिष्ट किया जाएगा-

अनुवादित

(क) अपराध के किए जाने से किसी व्यक्ति की हुई हानि या क्षति के लिए इतना प्रतिकर जितना न्यायालय युक्तियुक्त समझता है; और

(ख) कार्यवाहियों के इतने खर्चे जितने न्यायालय युक्तियुक्त समझता है।

(2) *उपधारा (1)* के अधीन संदत्त किए जाने के लिए आदिष्ट रकम संहिता की धारा 386 और 387 के उपबंधों के अनुसार जुर्माने के रूप में वसूल की जा सकेगी।

(3) उसी मामले से जिसके लिए अपराधी अभियोजित किया जाता है पैदा होने वाले किसी वाद का विचारण करने वाला सिविल न्यायालय नुकसानी दिलाने में उस किसी रकम को गणना में लेगा जो उपधारा (1) के अधीन प्रतिकर के रूप में संदत्त या वसूल की गई हो ।

21. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उचित प्रतिवाद दिया गया कि विचारण न्यायालय द्वारा दं०प्र०सं० की धारा 360 के प्रभाव, प्रासंगिकता और प्रयोज्यता पर विचार नहीं किया गया है और अपीलकर्ता भा०दं०सं० की धारा 325 के तहत भी परिवीक्षा के पात्र हैं।

22. अन्य विधायी आवश्यकताएँ भी हैं जिन्हें ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 5 में अपराध के पीड़ित को मुआवजे के भुगतान का प्रावधान है (जैसा कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 357 में है)। फिर भी, 2006 में आपराधिक प्रक्रिया संहिता में पीड़ित मुआवजा योजना और अपराध के पीड़ित को अतिरिक्त अधिकार प्रदान करने के लिए अतिरिक्त बदलाव लाए गए, जिसमें अपर्याप्त मुआवजे के अनुदान के खिलाफ अपील दायर करने का अधिकार भी शामिल था। न्यायालयों ने कितनी बार इन प्रावधानों का उपयोग किया है?

23. ***अंकुश शिवाजी गायकवाड़ बनाम महाराष्ट्र राज्य मनु/एससी/0461/2013: (2013) 6 एससीसी 770 और जितेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एससी/0679/2013: (2013) 11 एससीसी 193*** में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किसी अपराध के पीड़ित को मुआवजा देने पर विचार करना अनिवार्य है, अंकुश शिवाजी गायकवाड़ से लिए गए निम्नलिखित शब्दों में:

"हालाँकि किसी विशेष मामले में मुआवज़ा देना या अस्वीकार करना अदालत के विवेक के अंतर्गत हो सकता है, लेकिन अदालत का अनिवार्य कर्तव्य है कि प्रत्येक आपराधिक मामले में सवाल पर अपने विवेक का प्रयोग करे। सवाल पर अपने विवेक का प्रयोग, मुआवज़ा देने/अस्वीकार करने के कारणों को अभिलिखित करके सही तरीके से प्रकट किया जा सकता है।"

24. अपीलकर्ता को दी जाने वाली सजा की बात करें तो, चूंकि घटना लगभग 31 साल पहले हुई थी और अन्तःकालीन अवधि में, वह किसी भी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं हुए और न ही उनकी कोई

अनुवादित

आपराधिक पृष्ठभूमि थी, इसलिए उपरोक्त मामले में पूरे तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचार किया जा रहा है।

25. वर्तमान अपील में विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्येक अपीलकर्ताओं पर 10,000/- रु0 का जुर्माना लगाया गया है। दं०प्र०सं० की धारा 357, न्यायालय को अपराध के पीड़ित(पीड़ितों) को हुई हानि/चोट के संबंध में मुआवजा देने का अधिकार देता है। इस धारा का लक्ष्य न्याय के उद्देश्यों को बेहतर तरीके से पूर्ण करना है। यह धारा पीड़ित को आश्वस्त करने के लिए बनाई गई थी कि आपराधिक न्याय प्रणाली में उसे विस्मृत नहीं किया गया है। दं०प्र०सं० की धारा 357 के तहत दी जाने वाली मुआवजे की राशि, अपराध की प्रकृति, हानि/क्षति की सीमा और अभियुक्त की भुगतान करने की क्षमता पर निर्भर करता है, जिसे न्यायालय **दिया जाता है। प्रथम अपराधी अधिनियम की परिवीक्षा में निर्धारित शर्त यह है कि वह न्यायालय के समक्ष मु0 40,000/- रु0 के स्वीय बंधपत्र और इतनी ही धनराशि की दो - दो प्रतिभू इस आशय से प्रस्तुत करेंगे कि इस बीच वे एक वर्ष तक परिशांति कायम रखेंगे और सदाचारी बने रहेंगे।**

26. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून को ध्यान में रखते हुए और भा०दं०सं० की धारा 357 के प्रावधानों के अनुसार, मेरा विचार है कि पीड़ित परिवार को मुआवजा दिया जाना चाहिए।

27. इसलिए, मु0 10,000/- रु0 प्रत्येक को बढ़ाकर मु0 30,000/- रु0 प्रत्येक किया जाता है, जिसे विचारण न्यायालय के समक्ष जमा किया जाएगा। घायल किस्मतुलनिशां को मु0 90,000/- रु0 में से मु0 60,000/- रु0 का भुगतान किया जाएगा। मु0 30,000/-रु0 राज्य राजकोष में जमा किये जायेंगे। यदि अपीलकर्ता उपरोक्त राशि का भुगतान करने में विफल रहते हैं, तो उन्हें विचारण न्यायालय के निर्देशानुसार कारावास और दण्डादेश भुगतनी होगी। इस न्यायालय द्वारा उल्लिखित जुर्माना जमा करने के लिए अपीलकर्ताओं को पंद्रह दिन का समय दिया जाता है। अपीलकर्ता जमानत पर हैं। उन्हें आत्मसमर्पण करने की जरूरत नहीं है।

को एक संक्षिप्त जांच करनी होती है और साथ ही अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की पूर्वोक्त प्रस्तुति पर विचार करना होता है। इस न्यायालय का विचार है कि प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ अपीलकर्ताओं को प्रदान किया जाना चाहिए। अत: ***अपील अंशतः स्वीकृत*** की जाती है। भारतीय दंड संहिता के धारा 307 के तहत विचारण न्यायालय द्वारा निर्देशित दोषसिद्धि को भा०दं०सं० की धारा 325 में परिवर्तित कर दिया जाता है क्योंकि प्रथम दृष्टया अपराध भा०दं०सं० की धारा 325 के दायरे से बाहर नहीं जाता है। इस प्रकार भा०दं०सं० की धारा 325/34 और 323/34 के तहत दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है और **अपीलकर्ताओं को उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के तहत निर्धारित शर्तों के साथ परिवीक्षा पर रिहा करने का निर्देश**

अनुवादित

28. अपीलकर्ताओं को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से जुर्माना राशि जमा करने के लिए पंद्रह दिन का समय दिया जाता है।

29. **इस प्रकार, दोषसिद्धि के बिंदु पर अपील ख़ारिज की जाती है और सजा के बिंदु पर आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है।**

30. कार्यालय को इस आदेश को संबंधित विचारण न्यायालय को संसूचित करने का निर्देश दिया गया है। विचारण न्यायालय का अभिलेख वापस प्रेषित किया जाए।

(2023) 2 ILRA 626

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 15.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद,

आपराधिक अपील संख्या 943/2009

मुन्ना लाल पटेल

...अपीलकर्ता

बनाम

राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: जेल से, श्रीमती अलका श्रीवास्तव, श्री अमित राय, श्री सी.एल. चौधरी (ए.सी.), श्री मो. अख्तर, सुश्री सूफिया बानो

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3 और 45- वाद में प्रत्यक्ष साक्ष्य उन चश्मदीदों का है जिन्होंने पूरी घटना को देखा और बताया था। किसी डॉक्टर या विशेषज्ञ का साक्ष्य महज एक राय है जो वाद में प्रत्यक्ष साक्ष्य की पुष्टि करता है। जहां संपूर्ण अभियोजन कहानी के संबंध में प्रत्यक्ष साक्ष्य और चिकित्सा साक्ष्य के बीच स्पष्ट असंगतता है, यह निस्संदेह अभियोजन वाद में एक स्पष्ट दोष है। प्रत्यक्ष साक्ष्य और चिकित्सीय साक्ष्य के बीच कोई विसंगति नहीं है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के साथ-साथ पी.डब्ल्यू.-3 का बयान जिसने शव परीक्षण किया था, जिसके अनुसार मृतक की मौत का कारण गला घोंटने के कारण श्वासावरोध था और अभियोजन पक्ष के बयान अर्थात तथ्य के गवाहों के बयान पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू. -2 की पूरी तरह से पुष्टि करता है। वर्तमान मामले में आशय भी मौजूद है।

जहां चिकित्सा साक्ष्य प्रत्यक्ष साक्ष्य की पुष्टि करता है तो अभियोजन पक्ष के वाद पर तब तक विश्वास नहीं किया जा सकता जब तक कि प्रत्यक्ष साक्ष्य और चिकित्सा साक्ष्य के बीच स्पष्ट विरोधाभास न हो।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3- केवल इसलिए कि अभियोजन द्वारा जांचे गए गवाह पीड़ित/मृतक के रिश्तेदार हैं, रिश्तेदार गवाहों के साक्ष्य को खंडित करने और बदनाम करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा, यदि अन्यथा वे सच्चे गवाह पाए जाते हैं और सावधानी का नियम यह है कि रिश्तेदार

अनुवादित

गवाहों के साक्ष्य विश्वसनीय साक्ष्य होने चाहिए जिन्हें गहन और गहन जांच के बाद स्वीकार किया जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष ने कोई भी स्वतंत्र गवाह पेश करने में सक्षम नहीं है, लेकिन स्वतंत्र चश्मदीद गवाहों से पूछताछ न किए जाने के आधार पर अभियोजन पक्ष पर संदेह नहीं किया जा सकता है।

स्थापित कानून है कि अभियोजन पक्ष द्वारा स्वतंत्र गवाहों की जांच न करना घातक नहीं है जहां अदालत द्वारा उचित सावधानी और जांच के बाद संबंधित गवाहों की गवाही सच्ची और विश्वसनीय पाई जाती है। (पैरा 36, 40)

आपराधिक अपील निरस्त। (ई-3)

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद, द्वारा प्रदत्त)

1. यह जेल अपील अभियुक्त-अपीलकर्ता मुन्ना लाल द्वारा विशेष न्यायाधीश (ईसी एक्ट), मिर्जापुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 229 / 2007 (राज्य बनाम मुन्ना लाल पटेल) में पारित 28 जनवरी, 2009 के निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है, जो मुकदमा अपराध संख्या 433 / 302 भा.द.सं. पुलिस स्टेशन कछवां जनपद मिर्जापर से उत्पन्न होता है। जिसके अंतर्गत अंतर्गत अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया है और भा.द.सं. की धारा 302 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है, जिसमें 10,000/- रुपये का अर्थदण्ड लगाया गया है, इसके चूक में, दो वर्ष की अतिरिक्त कारावास काटने के लिए दण्ड दिया गया है।

2. हमने अभियुक्त-अपीलकर्ता के लिए उपस्थित हुए विद्वान न्याय मित्र श्री सीएल चौधरी, और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता कुमारी मीना को सुना।

3. अभियोजन पक्ष का मामला प्रथम सूचना दाता बदामा देवी (पी.डब्ल्यू. 1) की दिनांक 13 जुलाई, 2007 की लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श-क/1) पर आगे बढ़ता है, जिसे दया शंकर सिंह, पुत्र लालमन पटेल निवासी ग्राम दियाव रघौना, पुलिस स्टेशन कछवां, जनपद मिर्जापुर द्वारा लिखा गया था, जिसके आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श-क/11) उसी दिन दोपहर 13:25 बजे भा.द.सं. की धारा 302 के अंतर्गत अपराध संख्या 433 / 2007 के रूप में पंजीकृत की गई थी। रिपोर्ट पीडब्लू 1 द्वारा साबित की गई है जिसमें यह आरोप लगाया गया है कि उसकी पुत्री, अर्थात् रेखा देवी (मृतका) का विवाह लगभग 24 वर्ष की आयु में तीन वर्ष पहले आरोपी अपीलकर्ता के साथ हुई थी और उसकी पुत्री की लगभग 8 से 9 महीने की एक बच्ची है। रेखा पिछले 15 दिनों से अपने घर पर आकर रह रही थी और आरोपी अपीलकर्ता भी 2 से 3 दिन से उसके घर पर रह रहा था। आरोपी अपीलार्थी उसकी दूसरी पुत्री, सुलेखा (पी.डब्ल्यू.-2) के साथ करता था, जिस पर मृतका को बुरा लगता था और आपत्ति होती Translated Version Not For Legal Use के साथ अभद्र मजाक थी जिसके कारण पति-पत्नी

अनुवादित

के बीच विवाद और झगड़ा होता था। यह आरोप लगाया गया है कि कल अर्थात् 12 जुलाई, 2007 को भी इसी विवाद को लेकर पर उनके बीच झगड़ा हुआ था। बीती मृतका एक ही कमरे में सो रहे थे तो रात करीब रात जब आरोपी-अपीलार्थी और 4 बजे मृतका उसकी दूसरी पुत्री सुलेखा (पी.डब्ल्यू.-2) और अजय उठे और वहां जाकर देखा ने मुंह दबाकर मृतका की हत्या कर दी चिल्लाई जिस पर वह, कि आरोपी-अपीलकर्ता जब आरोपी-अपीलकर्ता मृतका का अंतिम संस्कार करने जा रही थी रहा था तो उसने और ग्रामीणों ने आपत्ति की और उसे रोक दिया। चूंकि आरोपी-अपीलकर्ता ने मृतका का कार्रवाई की जाए घोंटकर हत्या की है. इसलिए उसकी रिपोर्ट दर्ज की जाए और उचित है कि घटना के समय चिल्लाने पर उसका पड़ोसी रामजतन पुत्र भुक्खल बसंत मौके पर आए।

4.उपरोक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत होने के बाद मामले में जांच आगे बढ़ी और उपनिरीक्षक सुरेश राय (पी.डब्ल्यू.-7) ने केस डायरी में प्रथम सूचना रिपोर्ट और प्रथम सूचना दाता/पी.डब्ल्यू.-1 का लिखित बयान दर्ज करने के बाद प्रथम सूचना दाता/पी.डब्ल्यू. 1, पी.डब्ल्यू.-2 और पी.डब्ल्यू.-1 अजय के पुत्र (प्रस्तुत नहीं किया गया) का बयान पुलिस स्टेशन में धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दर्ज किया है। उसी को दर्ज करने के बाद, पी.डब्लू.-7, प्रथम सूचना दाता/पी.डब्लू.-1 के साथ घटना स्थल पर पहुँचा और उसके संकेत पर, पी.डब्लू. -7 ने स्थल योजना (प्रदर्श-क/13) तैयार किया है।

5. नायब तहसीलदार मनोज कुमार तिवारी (पीडब्ल्यू-4) के निर्देश पर मृतका की जांच की कार्यवाही उसी दिन अर्थात् 13 जुलाई, 2007 को की गई जो रात्रि 19:30 बजे शुरू हुई और रात्रि 20:30 बजे समाप्त हुई। पीडब्ल्यू-4 के लिखाने पर पीडब्ल्यू-7 द्वारा जांच रिपोर्ट (प्रदर्श-का/3) तैयार की गई है। जांचकर्ता साक्षियों ने कहा कि चूंकि मृतका रेखा की मृत्यु संदिग्ध प्रतीत होती है, इसलिए मृत्यु के सही कारण का पता लगाने के लिए, पोस्टमार्टम कराया जाना चाहिए। इसके बाद मृतका के शव को सील कर मोर्चरी भेज दिया गया।

6.मृतका रेखा के शव का पोस्टमार्टम 14 जुलाई, 2007 को शाम 04:00 बजे ऑटोप्सी सर्जन, डॉ. एचआर मौर्य, चिकित्सा अधिकारी (पी.डब्ल्यू.-3) ने डॉ. वी.के. तिवारी के पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट के अनुसार, मृत्यु का कारण गला घोंटने के कारण ने मृतका पर निम्नलिखित पूर्व-मृत्यु चोटों को भी पाया है:

"सिर और गर्दन-सूजन और त्वचा छील गई।

झिल्ली और मस्तिष्क संकुल ।

बाएं और दाएं फेफड़े-संकुल ।

स्वरयंत्र, श्वासनली और अकुल, हायोइड अस्थि खंडित ।

हृदय-बायाँ भाग और दायां भाग भरा हुआ।

चमड़े के नीचे के ऊतक संकुल फुस्फुस ग्रथि संकुल। घुटना है।

अनुवादित

अपघटन के कारण त्वचा छील जाती है, इसलिए, कोई भी बाहरी चोट मिट सकती है।"

7.14 जुलाई, 2007 को जांच उप-निरीक्षक गोपाल सिंह (पीडब्ल्यू-5) द्वारा आरंभ की गई, जो उस समय पुलिस स्टेशन कछवाँ, जनपद मिर्जापुर के भारसाधक अधिकारी के रूप में कार्यरत थे। पीडब्ल्यू-5 ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अंतर्गत रामजतन और मुन्नालाल पुत्र बसंता (जिनके नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित हैं) के बयान दर्ज किए हैं। 17 जुलाई. 2007 को पी.डब्ल्यू.-5 ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को गिरफ्तार कर लिया। अध्याय XII दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत वैधानिक जांच पूरी होने के बाद, अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध 25 जुलाई, अस्वीकरणः-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा। 2007 को पीडब्ल्यू 5 द्वारा आरोप-पत्र (प्रदर्श-क/10) प्रस्तुत किया गया। दिनांक 25 जुलाई, 2007 के आरोप-पत्र पर संज्ञान लेने के बाद संबंधित मजिस्ट्रेट ने मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया, जहां 19 नवंबर, 2007 को भा.द.सं. की धारा 302 के अंतर्गत अभियुक्त अपीलकर्ता के प्रति निम्नलिखित आरोप निर्धारित किए गए थेः

"मैं, बो० डी० वर्मा, विशेष न्यायाधीश, ई० सी० एक्ट, मिर्जापुर आप अभियुक्त मुन्ना लाल को निम्न आरोप से आरोपित करता हूँ।

प्रथम- यह कि दिनांक 12/13.7.2007 को समय करीब 3,4 बजे, रात बहद स्थान मौजा दियांव . थाना कछवां जनपद मिर्जापुर में आपने वादिनी मुकदमा बदामा देबी की लड़की रेखा देबी को जान बुझकर नियत पूर्वक मृत्यु कारित कर हत्या की। इस प्रकार आपने जान बूझ दं० सं० की धारा 302 का दण्डनीय अपराध किया है जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान

एतद्वारा मैं निर्देशित करता हूँ कि उपरोक्त आरोप में आपका जायेगा।" इसी न्यायालय द्वारा किया

आरोपी-अपीलकर्ता को आरोप भी पढ़ कर सुनाय विचारण की मांग की। . Not जिन्होंने आरोप को अस्वीकार किया और

Translated Version है।

8. अपने मामले को साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं: के लिए, अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित अभिलेखीय

सिंह द्वारा प्रतिलिपित सूचनादाता/ पी.डब्ल्यू.-1 की दिनांक 13 जुलाई, लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श-क/1), जिसे प्रदर्श-क/1 के रूप में चिह्नित किया

अनुवादित

ii). 13 जुलाई, 2007 की प्रथम सूचना रिपोर्ट को प्रदर्श-क/11 के रूप में चिह्नित किया गया है;

iii). 13 जुलाई, 2007 की जांच रिपोर्ट (पंचायतनामा) को प्रदर्श-क/3 के रूप में चिह्नित किया गया है;

iv). 13 जुलाई, 2007 के सूची के साथ स्थल योजना को प्रदर्श-क/13 के रूप में चिह्नित किया गया है

v). 14 जुलाई, 2007 की पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रदर्श-क/2 के रूप में चिह्नित किया गया है; और

vi). 25 जुलाई, 2007 के आरोप-पत्र को प्रदर्श-क/10 के रूप में चिह्नित किया गया है।

9. उपरोक्त अभिलेखीय साक्ष्य के अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष ने तथ्य के दो साक्षियों को भी प्रस्तुत किया है, अर्थात्, बादामा देवी (पी.डब्ल्यू.-1/प्रथम सूचना दाता) और सुलेखा (पी.डब्ल्यू.-2), जो क्रमशः मृतका की मां और छोटी बहन हैं। मृतका का पोस्टमार्टम करने वाले पोस्टमार्टम सर्जन डॉ. एचआर मौर्य को पीडब्ल्यू-3 बताया गया है। पीडब्ल्यू-4 अर्थात् मनोज कुमार नायब तहसीलदार, तहसील सदर, जनपद मिर्जापुर के रूप में तैनात थे, जिनके निर्देश पर मृतका की जांच कार्यवाही की गई थी। पी.डब्ल्यू. 5 उप निरीक्षक गोपाल सिंह, तत्कालीन पुलिस स्टेशन कछवां, जनपद मिर्जापुर थाने के भार साधक अधिकारी, के मामले में दूसरे जांच अधिकारी ने आरोप पत्र प्रस्तुत किया है और विचारण के दौरान इसे साबित भी किया है। कांस्टेबल - 138 सुदामा यादव, जो तब हेड मोहर्रिर के रूप में कार्यस्त थे, जिन्होंने चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट तैयार की है और विचारण के समय इसे साबित किया है, को पीडब्ल्यू-6 के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पीडब्ल्यू-7 सब इंस्पेक्टर सुरेश राय, नक्शा नजरी और जांच रिपोर्ट जांच अधिकारी, जिन्होंने पीडब्ल्यू-4 के लिखाने पर और उन्होंने भी यही साबित किया है।

10. विचारण के र प्रपत्रावली पर रखी गई उपरोक्त आपत्तिजनक सामग्री के आधार पर, अभियुक्त-अपीलकर्ता का बयान दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत दर्ज किया गया है, जिसमें Translated आरोप से इनकार किया है। उसने स्वीकार किया है कि उसका विवाह घटना से तीन वर्ष पूर्व मृतका रेखा देवी से हुई थी और उनके विवाह से एक पुत्री पैदा हुई थी और घटना के समय वह 8 से 9 माह की थी। घटना के विषय में आरोपी अपीलकर्ता ने बताया है कि उस समय वह बाहर सो रहा था और शोर सुनकर वह कमरे के अंदर आ गया। उन्होंने अभियोजन पक्ष के बाकी संस्करण से इनकार किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि जांच अधिकारी ने गलत जांच करके उनके प्रति आरोप पत्र प्रस्तुत किया है। अभियोजन पक्ष के साक्षियों ने उनके विरुद्ध गलत बयान दिए हैं। बचाव पक्ष द्वारा बचाव पक्ष का कोई साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया है।

अनुवादित

11. अपने निष्कर्ष पर आने से पहले, विचारण न्यायालय ने अपने निष्कर्ष को दर्ज किया है कि पीडब्ल्यू -3 ऑटोप्सी सर्जन से बचाव पक्ष द्वारा जिरह की गई है, लेकिन इसमें ऐसा कुछ भी नहीं आया है जिससे उसके बयान को गलत माना जा सके। अपनी जिरह में इस साक्षी ने स्पष्ट किया है कि गला घोंटने से गर्दन की हायोइड अस्थि टूट जाती है। यदि किसी व्यक्ति की तकिये या किसी अन्य चीज से गला घोंटने से मौत हो जाती है तो उसके गले की हायोइड अस्थि नहीं टूटेगी। अभियोजन पक्ष के दोनों साक्षियों के बयानों में यह साक्ष्य आया है कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा मृतका की का गला घोंटा गया था। मृतका का गला घोंटकर उसकी हत्या करना उसके आशहेतु पर्याप्त साक्ष्य है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, गला घोंटने के कारण मृतका की हायोइड अस्थि टूटना इंगित करता है कि आरोपी-अपीलकर्ता ने उसका इतना बलपूर्वल मृतका की हायोइड अस्थि टूट गई, जो उसे मारने के उसके आशय को दर्शाता है।उपरोक्त से, यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने मृतका की गर्दन का गला घोंट दिया केवल उसे डराने के लिए जैसा कि पीडब्ल्यू 2 द्वारा सुझाया गया था। इसलिए, रोक्त के आधार पर, विचारण न्यायालय ने कहा कि आरोपी ने मृतका की गर्दन का गला घोंटकर हत्या की है। इसलिए, इस मामले को गैर इरादतन हत्या नहीं माना जा सकता है।

12. विचारण न्यायालय पत्रावली करने के उपरांत इस निष्कर्ष पूरे मौखिक और अभिलेखीय साक्ष्यों का अवलोकन है कि आरोपी-अपीलकर्ता ने सूचनादाता/पीडब्ल्यू-1 की वित्तीय स्थिति का फायदा उठाते हुए कुमारी सुलेखा के साथ अवैध संबंध स्थापित करने के आशय से मृतका का गला नोट दिया है। इसलिए अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित करने में सफल रहा है। इसलिए. विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता को भा.द.सं. की धारा 302 के अंतर्गत अपनी पत्नी यानी मृतका रेखा देवी की हत्या का दोषी ठहराया और उसे 10,000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई।

13. पूर्वोक्त निर्णय और दोषसिद्धि और सजा के आदेश से व्यथित, वर्तमान जेल अपील इस आधार पर योजित की गई है कि दोषसिद्धि पत्रावली पर साक्ष्य के भार के विरुद्ध और विधि के विपरीत है और अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को दी गई सजा अत्यंत गंभीर है।

14. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वाद मित्र ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, यह घटना 13 जुलाई, 2007 की रात को 03:00 बजे से 04:00 बजे के बीच हुई थी। प्रकाश का कोई स्रोत नहीं था और अंधेरा था, जैसे कि किसी भी प्रकाश के अभाव में किसी भी व्यक्ति के लिए घटना को देखना या उस व्यक्ति की पहचान करना असंभव था जो इस तरह की घटना को अंजाम दे रहा था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने मृतका को डराने के आशय से उसकी गर्दन दबा दी थी,

अनुवादित

लेकिन गलती से, उसकी मृत्यु हो गई, इस तरह इस मामले को गैर इरादतन हत्या माना जाए, जो हत्या की श्रेणी में नहीं आता है, जैसा कि पीडब्ल्यू 2 के उसकी जिरह में और पीडब्ल्यू 5 के अपनी मुख्य- परीक्षा में बयानों से स्पष्ट है। अगला निवेदन यह है कि घटना के समय, आरोपी अपीलकर्ता कमरे के बाहर कुएं पर सो रहा था और जब उसने शोर सुना तो वह कमरे के अंदर आया। आगे यह कहना है कि अभियोजन पक्ष के साक्षियों यानी पीडब्ल्यू-1 और पीडब्ल्यू-2 में से किसी ने भी इस घटना को नहीं देखा है, जब यह उनकी अपनी आंखों के सामने हो रही थी। दोनों कथित प्रत्यक्षदर्शी साक्षी पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 मृतका की मां और बहन होने के नाते हितबद्ध साक्षी हैं, इसलिए, उनकी गवाही विश्वसनीय और प्रवर्तनीय नहीं है। अपीलकर्ता को वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष के दोहों साक्षियों साक्षियों दवारा कारण झूठा फंसाया गया है। यह आग्रह किया जात गया है कि अभियुक्त-केवल आशंका/संदेह के कि आरोपी-अपीलकर्ता का कथित अपराध करने का कोई मकसद नहीं है। आगे यह आग्रह किया गया है कि जांच अधिकारी द्वारा तैयार की गई स्थल योजना (प्रदर्श-क/13) पीडब्ल्यू 1 के बयान का समर्थन नहीं करती है, जिसमें उसने स्वीकार किया है कि कमरे सो रहे थे, जबकि कमरे चारपाई पर, आरोपी अपीलकर्ता और मृतका एक साथ की ओर खाट पर, पीडब्ल्यू-2 सुलेखा सो रही थी, जिससे अभियोजन पक्ष के मामले मामले में संदेह होता है।

पूर्वोक्त शक्ति पर, अभियुक्त-अपीलकर्ता के लिए उपस्थित विद्वान वाद मित्र प्रस्तुत निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश को विधिक रूप से स्थिर नहीं रखा जा सकता है और इसे रद्द किया जा सकता है।

15. दूसरी ओर, राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता कुमारी मीना, अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हुए प्रस्तुत करती हैं कि पी.डब्ल्यू.-1 बादामा देवी और पी.डब्ल्यू.2- सुलेखा के बयानों के रूप में अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध प्रत्यक्ष साक्ष्य हैं, जो क्रमशः मृतका की मां और बहन हैं और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विश्वसनीय और प्रवर्तनीय हैं। तथ्य के दोनों साक्षी सुसंगत और अक्षुण्ण हैं और प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने के नाते, उन्होंने हत्या के अपराध को अंजाम देने के विषय में स्पष्ट रूप से खुलासा किया है। चिकित्सकीय साक्ष्य भी पूर्वोक्त प्रत्यक्ष साक्ष्य का पूरी तरह से समर्थन करता है। इसलिए, विचारण न्यायालय ने भा.द.सं. की धारा 302 के अंतर्गत अभियुक्त-अपीलकर्ता की सजा को सजा देने में कोई त्रुटि नहीं की है। उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी शक्ति पर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि चूंकि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है, इसलिए आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश किसी भी अवैधता और दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है और इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप वांछित नहीं है। इस प्रकार, मृतका रेखा की हत्या करके जघन्य अपराध करने वाले आरोपी अपीलकर्ता

अनुवादित

द्वारा योजित वर्तमान अपील निरस्त किए जाने योग्य है।

16. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण दद्वारा की गई प्रस्तुतियाँ प वर्तमान अपील के पत्रावली, विशेष रूप से निर्णय और दोषसिद्धि के के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों का अध्ययन किया है।

17. इस अपील में एकमात्र प्रश्न जिस पर वह यह है कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा दण्ड विधि के अंतर्गत वैधानिक और नहीं है। ध्य निर्धारित करने की आवश्यकता है, राध का निष्कर्ष निकाला गया है और अधिरोपित योग्य है और इसमें कोई दुर्बलता और विकृति नहीं है।

18. वर्तमान अपील साक्षियों के संक्षि फलित निष्कर्ष पर आने के लिए, हमारे लिए अभियोजन पक्ष के दर्ज करना महत्वपूर्ण है।

19. न्यायालय दर्ज कर सकता है कि पीडब्ल्यू 1 ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। उसने अपने मुख्य परीक्षा में कहा है कि उसकी पुत्री, रेखा (अब मृतका) का विवाह घटना से 3 वर्ष पूर्व अभियुक्त-अपीलकर्ता, मुन्नालाल के साथ हुई थी। उस समय उनकी एक बच्ची थी जो 8 से 9 माह की थी। वह घटना से 15 दिन पहले अपने घर आई थी और उसके साथ रही। आरोपी-अपीलार्थी भी घटना से 2 से 3 दिन तक उसके घर पर रह रहा था। वह अपनी दूसरी पुत्री, सुलेखा (पी.डब्ल्यू.-2) के साथ अश्लील मजाक करता था, जिसके कारण मृतका को बुरा लगता था और उसे डांटती थी और इसीलिए वे दोनों लड़ते थे। इस साक्षी ने आगे कहा है कि लगभग 10 माह पूर्व, आषाढ़ के माह में, मृतका और आरोपी अपीलकर्ता के मध्य झगड़ा हुआ था और उसके बाद उसी रात दोनों (आरोपी-अपीलकर्ता और मृतका) एक खाट पर सोए थे और दूसरी पुत्री (पी.डब्ल्यू.-2) उसी कमरे में दूसरी खाट पर सोई थी, जबकि वह अपने पुत्र अजय और मृतका की पुत्री के साथ उसी कमरे के बगल में एक भुक्खल पुत्र अलियार की झोपड़ी में सो रही थी। सुबह 3 से 4 बजे मृतका ने चीखा चिल्लाया जिस पर वह, उसका पुत्र अजय और पी.डब्ल्यू. 2 उठे और टॉर्च जलाकर देखा कि आरोपी अपीलार्थी ने मृतका का मुंह और गला दबा दिया जिससे वह बेहोश हो गई। पी.डब्ल्यू.-1, मट्टू, श्रीमती चिरौंजी देवी, मुन्नालाल पुत्र बसंता मृतका को इलाज के लिए सुक्खू हरिजन के एक टेम्पो द्वारा डॉ. शिव शंकर पटेल के पास ले गई, जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया, जिसके बाद वे उसके मृत शरीर को उसके घर ले गए। उसके बाद जब आरोपी-अपीलार्थी मृतका के शव को अंतिम संस्कार के लिए ले जा रहा था तो उसने विरोध किया जिस पर कुछ ग्रामीण आ गए और आरोपी अपीलकर्ता को उन्होंने डॉ. मदन मोहन सिंह की दवा की दुकान के सामने रोक दिया। पी.डब्ल्यू.-1 ने आगे कहा है कि आरोपी अपीलकर्ता ने मृतका की गला घोंटकर हत्या कर दी क्योंकि वह पीडब्ल्यू 2 के साथ मजाक करने पर उसका विरोध करती थी और उसे डांटती थी। शोर सुनकर घटना के समय

अनुवादित

रामजतन और मुन्नालाल पुत्र बसंत भी मौके पर आ गए। घटना के संबंध में दयाशंकर ने उन को दे दिया गया है। उक्त लिखित रिपोर्ट अंगूठे के निशान भी संलग्न पर एक आवेदन लिखा था, जिसे थाने किए गए थे। उसने भी प्रदर्श क-1 के साथ साबित किया ।

20. प्रतिपरीक्षण में ने कहा है कि उसके परिवार में छह सदस्य अर्थात् वह, उसके दो पुत्र, दो पुत्रियाँ और पोती (मृतका की पुत्री) हैं और वे एक ही कमरे में सोते थे। उन्होंने आगे कहा है कि रात बरसात हो रही थी। घटना के समय रात चार बजे बारिश थम गई। उसकी झोपड़ी में बिजली नहीं थी। झोपड़ी में दीपक जलाया गया। उसने झोपड़ी में दो चारपाई रखी थी और एक चारपाई पर वह, उसका छोटा बेटा और पोती सो रहे थे, जबकि दूसरी खाट पर उसका बड़ा बेटा चंद्रशेखर सो रहा था।

21. इस साक्षी ने आगे कहा है कि उसने जानबूझकर पीडब्ल्यू 2 को उस कमरे में सोने के लिए नहीं रखा, लेकिन जगह की कमी के कारण उसने आरोपी के कमरे में उसे अलग से सुला दिया। उसने अपनी पोती और बेटे को उस कमरे में सोने के लिए नहीं रखा। पी.डब्ल्यू.-2 की चारपाई उस कमरे में मृतका की चारपाई से कुछ दूरी पर थी। आरोपी अपीलकर्ता के साथ नींद नहीं आई। पी.डब्ल्यू.-2 लेकिन मृतका के साथ सोया। आरोपी अपीलकर्ता और मृतका कमरे के उत्तर की ओर एक खाट पर सो रहे थे, जबकि पीडब्ल्यू 2 कमरे के पूर्वी हिस्से में एक अलग खाट पर सोया था।

22. इस साक्षी ने आगे कहा है कि पीडब्ल्यू-2 उसकी दूसरी पुत्री है। उनकी तीसरी पुत्री का नाम संगीता है, जो घटना की रात उनके साथ सोई थी। दोपहर 2 बजे पुलिस मौके पर आई। जब पुलिस आई तो आरोपी-अपीलकर्ता वहां मौजूद था। पूछताछ के बाद पुलिस उसे ले गई। शोर सुनकर उसने अपने बेटों चंद्रशेखर, अजय और पुत्री सगीता के साथ कमरे में टॉर्च जलाकर घटना देखी। वह यह नहीं बता सकती कि घटनास्थल पर हुई घटना को देखने के लिए उसके बयान सगीता का नाम क्यों नहीं लिया गया। पीडब्लू 2 मृतका के कमरे में सो रही थी और वह वहां तो उसे जगाया और फिर वह उठ गई। पीडब्लू-2 सिर दर्द की दवा लेने के बाद सो गया। जब वह कमरे में पहुंची तो उसकी पुत्री यानी मृतका बेहोश हो गई। जब उसने टॉर्च की Version Not For Legal Use लाइट जलाई, तो उसने उसे बेहोश देखा। जब उसने लाइट जलाई, तो आरोपी अपीलकर्ता उसके बगल में खड़ा था और फिर कहा कि उसने उसकी पुत्री (मृतका) की गला सभी बच्चों को जगाया गया। जब उसने चीखें दबाकर हत्या कर दी है। टॉर्च जलाकर उसके साथ मौजूद सभी लोग जाग गए और कमरे में चले गए। उसके घर में बिजली नहीं है और उसने टॉर्च की रोशनी में घटना देखी।

23. इस साक्षी ने आगे मृतका को पसंद नहीं आरोपी-अपीलकर्ता आरोपी-अपीलकर्ता पीडब्ल्यू-2 के साथ मजाक करता था जो संदेह था कि उनके अवैध

अनुवादित

संबंध थे। घटना की शाम मृतका ने एक साड़ी (धोती) लाने के लिए कहा, जो वह नहीं दे सका, जिसके Translated झगड़ा हुआ। उस रात दोनों एक ही चारपाई पर सोए। जब वह घटना के समय तो आरोपी-अपीलकर्ता ने कहा कि वह मृतका को डरा रहा था।

24. इस साक्षी ने इस बात से इनकार किया है कि घटना की रात आरोपी कुएं के पास सोया था। उसने इस बात से भी इनकार किया है कि जब वह उसके साथ कमरे में पहुंचा, तो मृतका बेहोश थी।

25. इसी तरह पीडब्ल्यू-2 ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। इस साक्षी ने कहा है कि आरोपी-अपीलकर्ता ने मृतका की गला घोंटकर हत्या कर दी क्योंकि वह अपनी बहन यानी पीडब्ल्यू -2 के साथ उसके अवैध संबंध होने और उसके साथ मजाक करने की आशंका पर आपत्ति करती थी और उसे डांटती थी। उपरोक्त के अतिरिक्त, अपनी परीक्षा में इस साक्षी ने वही संस्करण अपनाया है जो पी.डब्ल्यू.-1 द्वारा कहा गया है, इसलिए, हमें जिरह में उसके बयान को छोड़कर एक बार फिर से दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

26. जिरह में इस साक्षी ने कहा है कि घटना के दिन वह सो रही थी तभी उसकी बहन चिल्लाई। पी.डब्ल्यू.-1 ने आकर उसे जगाया। वह जाग रही थी जब आरोपी-अपीलकर्ता रात में कमरे में अपनी बहन (मृतका) के साथ लड़ रहा था। जब लड़ाई खत्म हो गई, तो वह सो गई। मृतका और आरोपी-अपीलकर्ता भी सो गए थे। जब वह जाग गई, तो मृतका बेहोश थी। वह कमरे में कमरे में थी, पी.डब्ल्यू.-1, उसका भाई, आरोपी-अपीलकर्ता, रामजतन, मुन्नालाल पुत्र बसंता उसके जागने से पहले आए। वे मृतका को चिकित्सक के पास ले गए, जहां उसे मृत आरोपी अपीलकर्ता को पकड़ घोषित कर दिया गया। जब पुलिस मौके पर आई, तो उन्होंने लिया और उसे पुलिस स्टेशन ले गए। आरोपी-अपीलकर्ता के परिवार के सभी सदस्य भाग गए। इस साक्षी ने आगे कहा है कि मृतका उसकी बड़ी बहन थी, जबकि संगीता उसकी छोटी बहन है। संगीता अपने कमरे से सटी झोपड़ी में सो रही पीडब्ल्यू-1 के साथ सौती था। मृतका की गला दबाकर हत्या की गई थी। इस साक्षी ने इस बात से इनकार किया में नहीं सोया था या वह कुएं पर गवाही दे रही थी। आरोपी अपीलकर्ता घटना की तिथि को कमरे उसने इस बात से इनकार किया है कि वह झूठी

27. पीडब्ल्यू-3 डॉ. की बनावट सा रही थी। मौर्य, ऑटोप्सी सर्जन ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि शरीर अकड़न खत्म हो गई थी। शरीर सड़ने लगा था। जगह-जगह चमड़ी छिल बाहर की ओर मुड़ गईं। जीभ बाहर निकली हुई थी। धड़ का ऊपरी हिस्सा नीला था। उन्होंने आगे कहा है कि सड़न के कारण खाल विभिन्न स्थानों से हट गया था। त्वचा को हटाने के बाद शरीर पर बाहरी चोट के कोई निशान नहीं पाए गए। गर्दन पर सूजन आ गई थी

अनुवादित

और त्वचा हट गई थी। झिल्ली और मस्तिष्क संकुल थे। दोनों स्तनों के बीच त्वचा के नीचे ऊतक संकुल (रक्तस्राव के कारण) था। फुफ्फुस संकुल वाला था। मुखर तार और श्वासनली भी संकुल थे। हायोइड अस्थि टूटी हुई पाई गई। दाएं और बाएं फेफड़े संकुल थे। हृदय का बायां कक्ष खाली था और दायां कक्ष भरा हुआ था। दांत 16/16 थे और जीभ बाहर की ओर मुड़ी हुई थी। छोटी आंत में बिना पचा हुआ भोजन और गैस तथा बड़ी आंत में पचा हुआ भोजन और गैस पाई गई। इस साक्षी ने आगे कहा है कि उसकी राय में मृतका की मृत्यु गला घोंटने पर दम घुटने से हुई है। उन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट को भी साबित किया। इस साक्षी ने यह भी कहा है कि मृतका की मृत्यु उसकी छाती पर जबरदस्ती गला घोंटने के कारण हुई प्रतीत होती है।

28. जिरह में इस साक्षी ने कहा है कि गले को निचोड़ने से गले में हायोइड अस्थि में फ्रैक्चर हो जाता है। यदि किसी को तकिए या किसी अन्य चीज से गला घोंटने से मृत्यु हो जाती है, तो हायोइड अस्थि में कोई फ्रैक्चर नहीं होगा। इस साक्षी ने इस बात से इनकार किया है कि वह गलत बयान दे रहा था।

29. इस साक्षी के बयान के प्रासंगिक भाग को उसकी जिरह में दिए गए प्रासं भाग को पुनः प्रस्तुत करना सार्थक होगाः

'मेरी राय मे मृतका मृत्यु गला दबा कर दम घुटन के वजह से उसकी यु हुई है। पोस्ट मॉर्टम रिपोर्ट मैने अपने लेख हस्ताक्षर में तैयार किया , इस समय मेरे सामने है। इस पर मेरा व डाक्टर बी० के० तिवारी के हस्ताक्षर है इस पर प्रदर्श क 2 डाला गया। मृतका की मृत्यु दिनांक 12/13-7-07 के 3-4 बजे भोर की हो स पंचायतनामा के समय जो पुलिस पेपर जिसमे चिक की कार्बन कापी जी०डी० पचायत नामा, प्रपत्र 13 नक्शा नाश सी० एम० ओ० को लिखा गया पत्र, प्रतिसार निरीक्षक 3 अ/14, 3 अ/ 15, 3 अ/12, तो उसपर अपने लघु खा गया पत्र व नमूना मोहर जो क्रमशः कागज संख्या व 3 अ/16 लगायत 3 अ/20 है। गवाह को दिखाया गया तो उस पैर लघु हस्तचार बनाये जाने का शिनाख्त किया।

मृतका का मृत्यु सीने पर चढ़कर हुमचकर गला दबा कर किया जाना प्रतीत होता है।"

30. पी.डब्ल्यू. -4 नायब तहसीलदार, तहसील-सदर, जनपद-मिर्जापुर मनोज कुमार तिवारी ने पीडब्लू-7 को जांच रिपोर्ट तैयार कर यह सुनिश्चित करने के निर्देश दिए हैं कि मृतका के शव को सील कर पोस्टमार्टम के लिए शवगृह भेजा जाए।

31. पुलिस ने दिनांक 14 जुलाई, 2007 को घटना के दूसरे दिन अर्थात् 14 जुलाई, 2007 से मामले की जांच की है और आरोप पत्र प्रस्तुत कर इसे सिद्ध किया है। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि जांच के बाद उन्होंने पाया कि आरोपी अपीलार्थी पीडब्ल्यू-2 यानी मृतका की छोटी बहन के साथ हंसी और मजाक करता था, जिसे वह

अनुवादित

बुरा समझती थी और वे इसे लेकर आपस में बहस और झगड़ा करते थे। घटना की तिथि अर्थात 12.07.2007 को भी, उनके मध्य विवाद और झगड़ा हुआ था और केवल अपनी पत्नी यानी मृतका, को डराने के लिए, आरोपी अपीलकर्ता ने रात में उसका गला और मुंह दबाया जिसके कारण वह बेहोश हो गई और गिर गई और अंततः उसकी मृत्यु हो गई।

32. पी.डब्ल्यू.-6, कांस्टेबल-138 सुदामा यादव, थाना-कछवां में तत्कालीन प्रमुख मोहर्रिर ने चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट तैयार कर इसे साबित कर दिया है। पीडब्लू-7 के उपनिरीक्षक सुरेश राय ने घटना के पहले दिन ही मामले की जांच कर पीडब्ल्यू-4 के निर्देश पर जांच रिपोर्ट स्थल योजना भी तैयार कर उन्हें साबित कर दिया है। Use तैयार कर

33. आरोपी-अपीलकर्ता का बयान धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता था जिसमें उसने स्वीकार किया है कि उसका विवाह घटना से 3 व गैल दर्ज किया गया मृतका रेखा देवी से हुई थी और उनके विवाह से एक पुत्री का जन्म हुआ था, जो उस समय 8 से 9 माह की थी। आरोपी- अपीलकर्ता ने कहा है कि घटना के समय वह बाहर सो रहा था और शोर सुनकर कमरे के अंदर चला गया। जांच अधिकारी ने जानबूझकर अभियोजन पक्ष के साक्षियों के झूठे बयान दर्ज किए हैं और आरोपी अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप Version Not For Legal स्तुत करने के लिए पक्षपातपूर्ण जांच की है।

34. मौखिक साक्ष्य (तथ्य पी.डब्ल्यू.-1 और पी. अभिलेखीय साक्ष्य उठाए क्षियों सहित सभी अभियोजन पक्ष के साक्षियों के बयान, अर्थात् के साथ-साथ विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में अबलोकन पर, हम राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा सार पाते हैं।

35. तथ्य के साक्षियों यानी पीडब्ल्यू-1 और पीडब्ल्यू-2 की गवाही, जिनकी पूरी लंबाई में जिरह की गई है, को हमारे द्वारा पढ़ा गया है और अभियुक्त द्वारा कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता है क्योंकि तथ्य के दोनों साक्षियों ने घटना के स्थान पर अपनी उपस्थिति स्थापित की है, जब यह हुआ था।

36. यह बहाली-भाँति तय है कि मामले में प्रत्यक्ष साक्ष्य उन प्रत्यक्षदर्शियों का है जिन्होंने पूरी घटना को देखा और सुनाया था। एक चिकित्सक या एक विशेषज्ञ का साक्ष्य केवल एक राय है जो मामले में प्रत्यक्ष साक्ष्य की पुष्टि करता है। जहां संपूर्ण अभियोजन कहानी के संबंध में प्रत्यक्ष साक्ष्य और चिकित्सा साक्ष्य के बीच एक स्पष्ट असंगति है, यह निस्संदेह अभियोजन पक्ष के मामले में एक प्रकट दोष है। हालांकि यहां स्थिति ऐसी नहीं है। प्रत्यक्ष साक्ष्य और चिकित्सा साक्ष्य के बीच कोई असंगति नहीं है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के साथ-साथ शव परीक्षण करने वाले पीडब्ल्यू-3 का बयान, जिसके अनुसार मृतका की मौत का कारण गला घोंटने के कारण श्वासावरोध है और अभियोजन पक्ष के बयान यानी पीडब्ल्यू-1 और पीडब्ल्यू-2

अनुवादित

के साक्षियों के बयानों की पूरी तरह से पुष्टि करता है। वर्तमान मामले में आशय भी उपस्थित है।

37. अब हम अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वाद मित्र द्वारा दिए गए तर्कों पर आ सकते हैं। पहला विवाद यह है कि प्रकाश का कोई स्रोत नहीं था को सुबह 03:00 बजे से 04:00 बजे के मध्य अंधेरा था अर्थात 13 जुलाई, 2007 को केवल इस आधार पर खारिज किया गया है कि उनके बयानों में, तथ्य/प्रत्यक्षदर्शी यानी पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2, मृतका के चिल्लाने की बेटे अजय और रामजतन ने कमरे में पहुंचकर टॉर्च जलाई जिम कि आरोपी-अपीलकर्ता मृतका का मुंह और गला दब के दोनों साक्षी आवाज सुनने पर, पीडब्लू-1, उसके उन्होंने पीडब्ल्यू 2 के साथ देखा था जिसके कारण वह बेहोश हो गई।

. Not For Legal Use

38. विद्वान वाद मित्र द्वारा प्रस्तुत तीसरा और चौथा तर्क अलग-अलग विवाद हैं, क्योंकि पहला विवाद यह है कि केवल Translated Version से डराने के लिए, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने मृतका के चेहरे और गले को दबाया और गलती से उसकी मृत्यु हो गई, जबकि दूसरा विवाद यह है कि घटना के समय, वह कमरे के बाहर सो रहा था अर्थात, कुएं के पास और शोर सुनकर वह कमरे के अंदर चला गया। दोनों तर्कों पर एक साथ नहीं बल नहीं दिया जा सकता है। या तो उसने उसे डराने के आशय से मृतका के चेहरे और गले को दबाया और गलती से उसकी मृत्यु हो गई या फिर उसने अपराध नहीं किया क्योंकि वह कमरे के बाहर था जब यह हुआ। यहां तक कि यदि यह स्वीकार किया जाता है कि मृतका को अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा गलती से मौत के घाट उतार दिया गया था, क्योंकि उसने मात्र उसे डराने के लिए उसके मुंह और चेहरे को दबाया था, तो भी हमारे द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता है। पीडब्ल्यू-3 ने अपने बयान में कहा है कि मृतका की मौत उसकी छाती पर जबरदस्ती गला घोंटने के कारण हुई प्रतीत होती है। जिरह में इस साक्षी ने कहा है कि जोर से गले को निचोड़ने से गले में हायोइड अस्थि में फ्रैक्चर हो जाता है। केवल डराने के लिए किसी का इतने बल या दबाव से गला घोंटा नहीं जाता है कि वह गले की हड्डी को तोड़ देता है जिससे वह बेहोश हो जाए। अभियुक्त अपीलकर्ता की ओर से दिया गया चौथा तर्क कि घटना के समय और तिथि पर वह कमरे के बाहर सो रहा था और वह अंदर गया शोर सुनकर भी इस आधार पर अस्वीकार कर दिया जा सकता है कि पीडब्ल्यू 1 ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना की रात बरसात हो रही थी और रात 4 बजे बारिश बंद हो गई।

39. आरोपी-अपीलकर्ता की ओर से दिया गया पांचवां तर्क कि अभियोजन पक्ष के किसी भी साक्षी ने अपनी आंखों से घटना को नहीं देखा है, गलत है। मृतका की मां और बहन होने के नाते, पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 प्राकृतिक साक्षी हैं और उनकी गवाही को अविश्वसनीय या अप्रवर्तनीय नहीं कहा जा सकता है क्योंकि वे हितबद्ध साक्षी हैं। अभियोजन पक्ष के साक्ष्य से यह

अनुवादित

स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि पीडब्ल्यू-1 और पीडब्ल्यू-2 तथ्य/प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के विचारण के दौरान बचाव पक्ष द्वारा विस्तार से जिरह की गई है, किन्तु उनकी जिरह में, दोनों ने अभियोजन पक्ष के मामले का पूरा समर्थन किया है।

40. यह बहाली-भाँति तय है कि मात्र इसलिए कि अभियोजन पछ द्वारा जाँच किये गए साक्षी पीड़ित/मृतका के रिश्तेदार हैं, रिश्तेदार साक्षियों पक्ष द्वारा जांच किए गए साक्षी को अस्वीकृत और अमान्य करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा, यदि अन्यथा वे सच्चे साक्षी पाए जाते हैं और सावधानी का नियम यह है कि रिश्तेदार साक्षियों का साक्ष्य विश्व के बाद स्वीकार किया जाना साक्ष्य होना चाहिए जिसे गहराई और गहन जांच कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष किसी भी स्वतंत्र साक्षी को प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं है, किन्तु स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों की परीक्षा न होने के आ दिनों में, आम संबंध अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह नहीं किया जा सकता है। इन रूप से असंवेदनशील होते हैं और किसी भी आपराधिक अपराध के देने के लिए आगे नहीं आते हैं। जब तक यह अपरिहार्य न हो, लोग साधारण रूप न्यायालय से दूर रहते हैं क्योंकि उन्हें यह परेशान और तनावपूर्ण लगता है। हालांकि इस तरह का मानव व्यवहार वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है, किन्तु यह एक सामान्य घटना है। हम पूरे मामले को केवल स्वतंत्र साक्षी की अनुपस्थिति के आधार पर पटरी से नहीं उतार सकते, जब तक कि प्रत्यक्षदर्शी का साक्ष्य, हालांकि दिलचस्पी रखता है, विश्वसनीय है।

41. जहां तक अभियुक्त अपीलकर्ता की ओर से छठे तर्क का संबंध है कि केवल आशंका या संदेह पर, अभियुक्त-अपीलकर्ता को वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है, हम दर्ज कर सकते हैं कि तथ्य के साक्षियों यानी पीडब्ल्यू 1 और पीडब्ल्यू 2 के बयानों की गहन जांच से, यह स्पष्ट है कि टॉर्च की रोशनी में उन्होंने देखा है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने मृतका के चेहरे और गले को दबाया था 12 जुलाई, 2007 की शाम को उनके बीच झगड़ा हुआ क्योंकि अभियुक्त- अपीलकर्ता ने पीडब्ल्यू-2 के साथ मजाक किया, जिसका मृतका ने विरोध किया और आरोपी अपीलकर्ता को डांटा। अतः अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपी-अपीलकर्ता को झूठा फंसाने के लिए किसी संदेह या आशंका की कोई संभावना नहीं है। अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर से दिए गए सातवें तर्क के लिए कि अभियुक्त-अपीलकर्ता का कथित अपराध करने का कोई हेतुक या आशय नहीं है, यह ध्यान देने योग्य हो सकता है कि अभियुक्त का इस आधार पर कथित अपराध करने का शक्तिशाली हेतुक/आशय है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने अपनी साली (पीडब्ल्यू -2) के साथ अश्लील मजाक किया और उसके साथ संबंध बनाना चाहता था, जिसके कारण उसकी पत्नी (मृतका) ने उसे डांटा और झगड़ा किया और साथ ही वह उसके और बाधा थी,

अनुवादित

इसलिए आरोपी अपीलकर्ता ने उसकी बाधा को दूर करते गला घोंटकर हत्या कर दी है।

42. अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर से की गई 3 प्रस्तुति कि नक्शा नजरी अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं करता है, जहां मृतका और अभियुक्त-अपीलकर्ता के साथ-साथ पीडब्ल्यू 2 घटना की रात अलग-अलग सो हम दर्ज कर सकते हैं कि पीडब्ल्यू-7 (प्रदर्श-क/13) द्वारा तैयार की गई स्थल योजना के अनुसार कमरे के पश्चिम की ओर रखी खाट पर, पी.डब्ल्यू.-2 सो रहा था, जबकि की ओर रखी खाट पर, आरोपी अपीलकर्ता और मृतका सो रहे थे, जब तथ्य की बात के अनुसार, पी.डब्ल्यू.-1 के बयान के अनुसार, अभियुक्त अपीलकर्ता और मृतका कमरे के उत्तर की ओर की खाट पर एक साथ सो रहे थे, जबकि पी.डब्ल्यू.-2 कमरे के पूर्व की खाट पर अकेले सो रहा था, अर्थात स्थल योजना और पी.डब्ल्यू.-1 के बयान में केवल उस खाट के स्थान/दिशा में अंतर है, जिस पर मृतका और अभियुक्त-अपीलकर्ता एक साथ सो रहे थे, जिसे मामूली त्रुटि कहा जा सकता है। इसलिए, इस प्रस्तुति में भी कोई सार नहीं है।

43. उपरोक्त तथ्यों से, जिन्हें ऊपर उल्लेखित किया गया है, हम विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों में सार पाते हैं कि यह घटना के दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों, अर्थात् पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 के प्रत्यक्ष और निर्णायक साक्ष्य का मामला है। चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का पूरी तरह से समर्थन करते हैं। यह घटना 12/13 जुलाई, 2007 को प्रात 03:00 बजे से 04:00 बजे के बीच हुई और सूचनादाता द्वारा अपराह्न 01:35 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई। हालांकि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में नौ घंटे का विलंब हुआ है, किन्तु अभियोजन पक्ष द्वारा इसे संतोषजनक रूप से समझाया गया है। आरोपी- अपीलकर्ता का भी ऐसा अपराध करने का आशय था। घटना और घटनास्थल पर बचाव पक्ष द्वारा कोई विवाद नहीं किया गया था।

44. जैसा कि पहले ही ऊपर चर्चा की गई है, हम पाते हैं कि दोनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों यानी पीडब्ल्यू -1 और पीडब्ल्यू 2 की गवाही विश्वसनीय और भरोसेमंद है क्योंकि उन्हें लंबी जिरह के अधीन किया गया था लेकिन उनकी गवाही को अविश्वसनीय करने के लिए कुछ भी किया जा सकता था। पुलिस अभिलेख और जांच अधिकारी और शव परीक्षण साथ-साथ चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के संस्करण का पूरी तरह से प्राप्त नहीं के हैं।

45. साक्ष्य के संचयी प्रभाव को लेते हुए, हमारा विचार है कि विचरण न्यायालय अपीलकर्ताको दोषी ठहराने में पूरी तरह से न्यायसंगत था। तदनुसार, विचरण न्यायालय के निर्णय और आदेश की पुष्टि करते हैं।

अनुवादित

46. इस जेल अपील में कोई बल नहीं को इस न्यायालय द्वारा दिनांक दिया गया है। उनकी जमानत दिया गया है और उन् र इसे निरस्त किया जाता है। अभियुक्त-अपीलकर्ता 2022 के आदेश के अंतर्गत जमानत पर रिहा कर निरस्त कर दी गई है और जमानतदारों को उन्मुक्त कर ण्ड काटने के लिए अभिरक्षा में लिया जाना चाहिए।

47. आपराधिक अपील को निरस्त किया जाना अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिकारों के लिए आवेदन करने के लिए पूर्वाग्रह नहीं करेगी, जिसे योग्यता के आधार पर विधि के अनुसार निस्तारित किया जाएगा।

48. हम श्री सीएल चौधरी, विद्वान वाद मित्र द्वारा मामले में प्रदान की गई सक्षम सहायता के लिए अपनी प्रशंसा दर्ज करते हैं, जो उच्च न्यायालय विधिक सेवा प्राधिकरण से अपने शुल्क के पात्र होंगे।

49. इस निर्णय की एक प्रति मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मिर्जापुर को भेजी जाए, जो अभियुक्त- अपीलकर्ता की जानकारी के लिए संबंधित जेल अधीक्षक को प्रेषित करेंगे।

(2023) 2 ILRA 638

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद,

आपराधिक अपील संख्या 1099 /2021

सुशील कुमार जयसवाल एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: अभिषेक कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून- उ.प्र. गैंगस्टर और असामाजिक (गतिविधियों की रोकथाम) अधिनियम, 1986- धारा 3(1), 14(1) और 15- धारा 16(2)- संपत्ति को अधिनियम की धारा 14 के तहत कुर्की का विषय बनाया जाना चाहिए, जिसे एक गैंगस्टर द्वारा अर्जित किया जाना चाहिए और वह भी अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन द्वारा- जिला मजिस्ट्रेट को इस बिंदु पर अपनी संतुष्टि दर्ज करनी होगी। संहिता की धारा 16 के तहत न्यायिक जांच की शक्ति प्रदान करने के पीछे का उद्देश्य किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित करने में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा शक्ति के मनमाने ढंग से प्रयोग की जांच करना और कानून के शासन को बहाल करना है, इसलिए न्यायालय पर एक भारी कर्तव्य है कि वह इस प्रश्न के संबंध में सच्चाई का पता लगाने के लिए एक औपचारिक जांच करें कि क्या संपत्ति अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन के परिणाम के रूप में अर्जित की गई थी। अधिनियम की धारा 17 के तहत पारित किए जाने वाले आदेश में न्यायालय के निष्कर्ष के समर्थन में कारणों और सबूतों का खुलासा होना चाहिए। कुर्की का आदेश पारित करते समय जिला मजिस्ट्रेट को अपनी

अनुवादित

व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज करनी होती है कि कुर्क की गई संपत्ति एक गैंगस्टर के रूप में उसकी गतिविधियों का परिणाम है और न्यायालय को भी इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए औपचारिक जांच करनी होती है कि कुर्क की गई संपत्ति संपत्ति अधिनियम के तहत दंडनीय अपराधों के कमीशन की आय है। **(पैरा 16,17,18,21)**

आपराधिक अपील स्वीकृत। **(ई-3)**

<u>केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-</u>

1. श्रीमती मैना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2013(83) एसीसी 902
2. श्रीमती शांति देवी पत्नी श्री राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2007(2) एएलजे 483 (सभी)

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा प्रदत्त)

1. पक्षों के मध्य दलीलों का आदान-प्रदान पहले ही हो चुका है और ये अभिलेख पर हैं। प्रकरण अंतिम सुनवाई के लिए तैयार है।

2. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक कुमार सिंह की ओर से वादधारक-अधिवक्ता सुश्री शुभांगी सिंह को, राज्य-विपक्षी की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री दिवाकर सिंह को सुना गया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

3. विचारण न्यायालय के अभिलेख का अवलोकन किया।

4. वर्तमान अपील को उ.प्र. गैंगस्टर और असामाजिक (गतिविधियों की रोकथाम) अधिनियम, 1986 (इसके बाद 'गैंगस्टर एक्ट' के रूप में संदर्भित) की धारा 18 के अंतर्गत अपीलकर्ताओं सुशील कुमार जयसवाल और कमल किशोर जयसवाल द्वारा फौजदारी प्रकीर्ण प्रकरण संख्या-94/2021, सुशील कुमार जयसवाल बनाम राज्य, मुकदमा अपराध संख्या 336/ 2017, अंतर्गत धारा 3 (1) गैंगस्टर अधिनियम, थाना हसनगंज, जिला उन्नाव में विद्वान विशेष न्यायाधीश, गैंगस्टर एक्ट/अपर सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 5, उन्नाव द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 10.03.2021, जिसके तहत विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं की ओर से गैंगस्टर अधिनियम की धारा 16 (2) के तहत दायर आवेदन को खारिज कर दिया है और जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव द्वारा पारित आदेश दिनांक 01.01.2021, जिसमें अपीलकर्ताओं की संपत्ति की कुर्की का निर्देश दिया गया था, की पुष्टि की, के विरुद्ध दायर की गई है।

5. संक्षेप में, प्रकरण के तथ्य यह है कि सर्वप्रथम श्री हनुमान प्रसाद पांडे, प्रभारी निरीक्षक, थाना हसनगंज, जिला उन्नाव द्वारा अपीलकर्ताओं के विरुद्ध एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 06.09.2017 दर्ज कराई गई जिसका मुकदमा अपराध संख्या 336/ 2017 था, जिसमें यह आरोप लगाया गया कि वह जब 06.09.2017 को अन्य उपस्थित पुलिस कर्मियों के साथ हसनगंज और कुरील गांव का दौरा कर रहे थे, तो कुछ ग्रामीणों ने उन्हें सूचित किया कि सुशील कुमार जयसवाल ने अपने पुत्र कमल

अनुवादित

किशोर जयसवाल के साथ मिलकर एक संगठित गिरोह बनाया है, वे मिट्टी के तेल और निकेल को मिलाकर डीजल में बदलने के कार्य में लिप्त हैं और पेट्रोल में मिलावट कर अवैध धन कमा रहे हैं, जिससे राज्य के खजाने को भारी राजस्व का नुकसान हो रहा है और उनके आचरण पर पूर्व में उनके विरुद्ध एक मुकदमा अपराध संख्या 132/17, अन्तर्गत धारा 420 भारतीय दंड संहिता सहपठित धारा 3/7 आवश्यक वस्तु अधिनियम थाना हसनगंज, जनपद उन्नाव दर्ज किया गया, जिसमें विवेचना उपरांत इनके विरुद्ध आरोप पत्र संबंधित न्यायालय में प्रस्तुत किया जा चुका है। आरोपी-सुशील कुमार सिंह असामाजिक गतिविधियों में लिप्त है और इलाके में उसके भय के कारण किसी में भी उसके विरुद्ध साक्ष्य प्रस्तुत करने की हिम्मत नहीं है। वह भारतीय दंड संहिता के अध्याय 16, 17 और 22 के अंतर्गत अवैध गतिविधियों में लिप्त है।

6. अपीलकर्ताओं के निहितार्थ पर, विद्वान अधिवक्ता सुश्री शुभांगी सिंह का कथन है कि मुकदमा अपराध संख्या 336/ 2017, अंर्तगत धारा 3 (1) उ.प्र. गैंगस्टर और समाज विरोधी (गतिविधियों की रोकथाम) अधिनियम, थाना हसनगंज, जिला उन्नाव में उन्हें पहले ही जमानत पर रिहा कर दिया गया है, जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव ने, अपने आदेश दिनांक 22.09.2020 द्वारा गैंगस्टर एक्ट की धारा 14(1) के अंतर्गत निहित अपनी शक्ति का प्रयोग करके दो वाहन अर्थात् उ.प्र. 35 एजे 5623 मारुति सुजुकी अर्टिगा कार व पिकअप डाला नंबर यूपी 35टी 4181 के साथ ही ग्राम कुरौली, तहसील हसनगंज, जिला उन्नाव, खसरा नंबर 256 रकबा 0.014 हेक्टेयर पर स्थित पांच दुकानें, कुर्क किये।

7. सुश्री शुभांगी सिंह का कथन है कि उक्त कुर्की अपीलकर्ताओं को पूर्व सूचना या जानकारी के बिना की गई थी और यह जानकारी मिलने पर अपीलकर्ताओं ने संबंधित जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष गैंगस्टर अधिनियम की धारा 15 के तहत एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। अपीलार्थियों द्वारा अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करने पर संबंधित जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अपने आदेश दिनांक 01.01.2021 द्वारा केवल वाहन पंजीकरण संख्या यूपी 35 एजे 5623 मारुति सुजुकी अर्टिगा कार को अवमुक्त करने का आदेश दिया गया है, परंतु दुकानें/भूमि एवं अन्य वाहन यानी पिकअप डाला पंजीकरण संख्या यूपी 35 टी 4181 को अवमुक्त नहीं किया गया।

8. सुश्री शुभांगी सिंह का आगे कथन है कि जिला मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ताओं की दुकानों / भूमि और वाहन को गलत तरीके से इस गलत अवधारणा पर कुर्क किया है कि उक्त संपत्तियां अपीलकर्ताओं द्वारा असामाजिक गतिविधियों में शामिल होकर की गयी अर्जित आय से बनाई गई हैं, जबकि, अपीलकर्ता न तो गैंगस्टर थे और न ही उन्होंने ये संपत्तियां असामाजिक गतिविधियों में शामिल होकर अर्जित की हैं। आगे यह तर्क दिया गया है कि विवादित दुकानें/ भूमि और वाहन अपीलकर्ताओं के नाम दर्ज नहीं हैं, लेकिन जिला मजिस्ट्रेट ने अपने आदेश दिनांक

अनुवादित

22.09.2020 और 01.01.2021 में यह माना है कि उनके द्वारा असामाजिक गतिविधियों में शामिल होने से, इसे अर्जित किया गया है, जबकि ये कुर्क की गई संपत्तियां उनके पिता और अपीलकर्ता संख्या 1 के बेटे, विमल जयसवाल के नाम पर हैं।

9. सुश्री शुभांगी सिंह ने आगे कथन किया है कि अपनी प्रश्नगत संपत्तियों की कुर्की से व्यथित होकर अपीलकर्ताओं ने विचारण न्यायालय के समक्ष गैंगस्टर अधिनियम की धारा 16 (2) के तहत एक आवेदन दायर किया, जो लंबित रहा, इसलिए, अपीलकर्ताओं ने इस न्यायालय में रिट याचिका संख्या 3566 (एमबी) 2021, सुशील कुमार जयसवाल एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य दायर की, जिसमें इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने दिनांक 17.02.2021 के आदेश द्वारा विचारण न्यायालय को अपीलकर्ताओं के उपरोक्त लंबित आवेदन पर एक निर्धारित समय के भीतर निर्णय लेने का निर्देश दिया।

10. सुश्री शुभांगी सिंह ने आगे कथन किया कि विद्वान विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय, आवेदन की अंतर्वस्तु और उक्त आवेदन के साथ संलग्न दस्तावेजों को ठीक से परिशीलन किए बिना तथा अपीलकर्ता की ओर से दायर किए गए दस्तावेजी सबूतों का अध्ययन किए बिना उक्त आवेदन को, गलत तरीके से यह मानकर कि प्रश्नगत दुकानें/भूमि असामाजिक गतिविधियों में लिप्त होने से हुई आय से अर्जित की गई है, खारिज कर दिया है और यह गलत व्याख्या यह दी कि अपीलकर्ताओं ने यह साबित करने के लिए कोई दस्तावेज दाखिल नहीं किया है कि उक्त प्रश्नगत दुकानें/भूमि असामाजिक गतिविधियों से संबंधित आय से अर्जित नहीं की गई है और आवेदक संख्या 1- सुशील कुमार जयसवाल के पिता के नाम पर है।

11. सुश्री शुभांगी सिंह ने आगे कथन किया कि विद्वान विचारण न्यायालय ने, विवादग्रस्त संपत्ति की रिहाई के लिए प्रस्तुत अपीलकर्ताओं के आवेदन को, इस तथ्य के बावजूद कि विचाराधीन कार और विचाराधीन भूमि अपीलकर्ता संख्या-1 के पिता के नाम पर दर्ज है और यह संपत्ति उनको उनके पूर्वजों से विरासत में मिली थी, और विचाराधीन वाहन विमल जयसवाल का है जो अपीलकर्ता नंबर 1 का पुत्र है, जो जीएसटी पंजीकरणधारी एक व्यापारी है और जिसने आयकर विवरणी भी दाखिल किया है और उसने उक्त वाहन को अपनी आय से खरीदा है, जो कि उक्त की खतौनी एवं पंजीकरण प्रमाण पत्र से स्पष्ट है, खारिज करके विधिक त्रुटि की है।

12. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री दिवाकर सिंह, ने प्रबल रूप से तर्क प्रस्तुत कियाहै कि विद्वान विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले उपलब्ध अभिलेख का सही मूल्यांकन किया है। जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव ने, पूरी तरह संतुष्ट होने के बाद कि अपीलकर्ताओं ने गैंगस्टर अधिनियम के तहत निर्धारित असामाजिक गतिविधियों में शामिल होकर अवैध तरीकों से प्रश्नगत संपत्तियां अर्जित की हैं, आदेश दिनांक 22.09.2020 और 01.01.2021 पारित

अनुवादित

किये हैं, इसलिए आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, दुर्बलता या विकृति नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजी साक्ष्य सहित संपूर्ण सामग्री पर भली प्रकार विचार करके, सही परिप्रेक्ष्य में आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित किया है और इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

13. मैंने उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश का अध्ययन किया।

14. गैंगस्टर अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लेख करना उचित एवं समीचीन प्रतीत होता है जो इस प्रकार हैं:-

*2- **परिभाषा**- इस अधिनियम में,- (क) "संहिता" का तात्पर्य दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 से है;*

(ख) "गिरोह" का तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों के समूह से है जो लोक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करने या अपने या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित दुनियावी (टेम्पोरल), आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से या तो अकेले या सामूहिक रूप से हिंसा, या हिंसा की धमकी या प्रदर्शन, या अभित्रास, या प्रपीडन द्वारा, या अन्य प्रकार से निम्नलिखित समाज विरोधी कियाकलाप करते हैं, अर्थात्-

(एक) भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय 16, या अध्याय 17, या अध्याय 22 के अधीन दण्डनीय अपराध; या

(दो) संयुक्त प्रान्त आबकारी अधिनियम, 1910 या नारकोटिक ड्रग्स एण्ड साइकोट्रापिक सब्सटैन्सेज ऐक्ट, 1985 या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के किन्हीं उपबन्धों का उल्लंघन करके किसी शराब या मादक या अनिष्टकर मादक द्रव्य या अन्य मादकों या स्वापकों का आसवन या निर्माण या संग्रह या परिवहन या आयात या निर्यात, या विक्रय या वितरण या किन्हीं पौधों की खेती करना; या

(तीन) विधि सम्मत प्रकिया से भिन्न प्रकिया द्वारा स्थावर सम्पत्ति पर अध्यासन करना या कब्जा लेना, या स्थावर सम्पत्ति पर चाहें स्वयं या अन्य किसी व्यक्ति के पक्ष में हक या कब्जा के लिए मिथ्या दावा करना; या

(चार) किसी लोक सेवक या किसी साक्षी को अपने विधिपूर्ण कर्तव्यों का पालन करने से रोकना या रोकने के लिए प्रयत्न करना; या

(पाँच) स्त्री तथा लड़की अनौतिक व्यापार दमन अधिनियम, 1956 के अधीन दण्डनीय अपराध; या

(छः) सार्वजनिक द्यूत अधिनियम, 1867 की धारा 3 के अधीन दण्डनीय अपराध; या

(सात) किसी सरकारी विभाग, स्थानीय निकाय या सार्वजनिक या निजी उपक्रम द्वारा या उसकी ओर से किसी पट्टे या अधिकार के लिए, या माल के संभरण या किये जाने वाले कार्य के लिए, विधिपूर्वक संचालित किसी नीलाम में बोली लगाने या

अनुवादित

विधिपूर्वक मांगे गये टेण्डर देने से किसी व्यक्ति को रोकना; या

(आठ) किसी व्यक्ति को अपने विधिपूर्ण कारबार, वृत्ति, व्यापार या जीविका या उससे सम्बद्ध किसी अन्य विधिपूर्ण कियाकलाप को सुचारू रूप से करने से रोकना या उसमें विघ्न डालना; या

(नौ) भारतीय दण्ड संहिता की धारा 171-ड के अधीन दण्डनीय अपराध, या मतदाता को अपने मताधिकार का प्रयोग करने से शारीरिक रूप से रोककर किसी विधिपूर्वक होने वाले किसी सार्वजनिक निर्वाचन को रोकना या उसमें बाधा डालना; या

(दस) अन्य व्यक्तियों को साम्प्रदायिक सामंजस्य में विघ्न डालने के लिए हिंसा करने के लिए उद्दीप्त करना; या

(ग्यारह) जनता में दहशत, संत्रास या आतंक फैलाना; या

(बारह) सार्वजनिक या निजी उपक्रमों या कारखानों के कर्मचारियों या स्वामियों या अध्यासियों को आतंकित करना या उन पर हमला करना और उनकी सम्पत्ति को हानि पहुंचाना; या

(तेरह) किसी व्यक्ति को इस मिथ्या व्यपदेशन पर कि उसे विदेश में कोई सेवायोजन, व्यापार या वृत्ति उपलब्ध करायी जायेगी, ऐसे विदेश में जाने के लिए उत्प्रेरित करना या उत्प्रेरित करने का प्रयास करना; या

(चौदह) फिरौती उद्यापित करने के आशय से किसी व्यक्ति का व्यपहरण या अपहरण करना; या

(पन्द्रह) किसी वायुयान या सार्वजनिक परिवहन यानों को उसके पूर्वनिर्धारित मार्ग से जाने से पथान्तरित करना या अन्यथा रोकना;

(सोलह) साहूकारी विनियमन अधिनियम, 1976 के अधीन दण्डनीय अपराध;

(सत्रह) गोवध निवारण अधिनियम, 1955 और पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम, 1960 में उपबन्धों के उल्लंघन में मवेशियों के अवैध परिवहन और/या तस्करी के कार्यों में संलिप्तता;

(अठारह) वाणिज्यिक शोषण, बंधुआ श्रम, बालश्रम, यौन शोषण, अंग हटाने तथा दुर्व्यापार, भिक्षावृत्ति और इसी प्रकार के कियाकलापों के प्रयोजनों हेतु मानव दुर्व्यापार करना;

(उन्नीस) विधि विरुद्ध कियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1966 के अधीन दण्डनीय अपराध;

(बीस) जाली भारतीय करेंसी नोट का मुद्रण, परिवहन और परिचालन करना;

(इक्कीस) नकली दवाओं का उत्पादन, विकय और वितरण में अन्तर्ग्रस्त होना;

(बाइस) आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 5, 7 और 12 के उल्लंघन में आयुध एवं गोला, बारूद के विनिर्माण, विक्रय और परिवहन में अन्तग्रस्त होना;

(तेइस) भारतीय वन अधिनियम, 1927 और वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972 के उल्लंघन में आर्थिक अभिलाभ के

अनुवादित

लिए गिराना अथवा वध करना, उत्पादों की तस्करी करना;

(चौबीस) आमोद तथा पणकर अधिनियम, 1979 के अधीन दण्डनीय अपराध;

(पच्चीस) राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था और जीवन की गति को भी प्रभावित करने वाले अपराधों में संलिप्त होना।"

(ग) "गिरोहबन्द" का तात्पर्य किसी गिरोह के सदस्य या सरगना या संगठक से है और इसके अन्तर्गत कोई ऐसा व्यक्ति भी है जो खण्ड (ख) में प्रगणित किसी गिरोह के कियाकलाप के लिए, चाहे ऐसे क्रियाकलाप के किए जाने के पूर्व या पश्चात्, दुष्प्रेरित करता है या उसमें सहायता देता है, या किसी ऐसे व्यक्ति को जिसने ऐसे क्रियाकलाप किये हों, संश्रय देता है;

(घ) "लोक सेवक" का तात्पर्य भारतीय दण्ड संहिता की धारा 21 में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में यथापरिभाषित लोक सेवक से है और इसके अन्तर्गत कोई ऐसा व्यक्ति भी है जो राज्य की पुलिस या अन्य प्राधिकारियों को इस अधिनियम के अधीन दण्डनीय किसी अपराध के अन्वेषण या अभियोजन या दण्ड में, चाहें ऐसे अपराध या अपराधी के सम्बन्ध में सूचना या साक्ष्य देकर या किसी अन्य रीति से, विधिपूर्वक सहायता करता है;

(ङ) "किसी लोक सेवक के कुटुम्ब का सदस्य" का तात्पर्य उसके माता-पिता या पति या पत्नी, और भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री, पौत्र, पौत्री, या इनमें से किसी के पति या पत्नी से है और इसके अन्तर्गत लोक सेवक पर आश्रित या उसके साथ निवास करने वाला कोई व्यक्ति और कोई ऐसा व्यक्ति भी है जिसके कल्याण में लोक सेवक हित रखता हो;

(च) इस अधिनियम में प्रयुक्त किन्तु अपरिभाषित, और दण्ड प्रकिया संहिता, 1973 या भारतीय दंड संहिता में परिभाषित शब्दों और पदों के कमशः वहीं अर्थ होंगे जो ऐसी संहिताओं में उनके लिए दिए गये हैं।

*3-**शास्ति**-(1) किसी गिरोहबन्द को दोनों में से किसी भांति के कारावास से ऐसी अवधि के लिए जो दो वर्ष से कम न होगी और जो दस वर्ष तक हो सकेगी और जुर्माने से भी जो पांच हजार रूपये से कम नहीं होगा, दण्डित किया जायगाः*

परन्तु किसी गिरोहबन्द को जो किसी लोक सेवक के शरीर के प्रति या लोक सेवक के कुटुम्ब के किसी सदस्य के शरीर के प्रति कोई अपराध करता है दोनों में से किसी भांति के कारावास से ऐसी अवधि के लिए जो तीन वर्ष से कम न होगी और जुर्माना से भी, जो पांच हजार रूपये से कम नहीं होगा, दण्डित किया जायगा।

(2) किसी ऐसे व्यक्ति को जो लोक सेवक होते हुये चाहे स्वयं या अन्य के माध्यम से किसी गिरोहबन्द की किसी रीति से अवैध रूप से सहायता या समर्थन, चाहे गिरोहबन्द द्वारा कोई अपराध किये जाने के पूर्व या पश्चात् करता है, या विधिपूर्ण उपाय करने से विरत रहता है या इस संबंध में किसी न्यायालय या अपने वरिष्ठ

अनुवादित

अधिकारियों के निदेशों को कार्यान्वित करने से जानबूझकर बचता है, दोनों में से किसी भांति के कारावास से ऐसी अवधि के लिए जो दस वर्ष तक की हो सकेगी, किन्तु तीन वर्ष से कम न होगी और जुर्माने से भी दंडित किया जायगा।

15. वर्तमान प्रकरण में शामिल मुद्दे को गैंगस्टर अधिनियम की धारा 14, 15 और 17 के प्रावधानों पर विचार करके हल किया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं:

14- सम्पत्ति की कुर्की- *(1) यदि जिला मजिस्ट्रेट को यह विश्वास करने का कारण हो कि किसी व्यक्ति के कब्जे में स्थित कोई सम्पत्ति, चाहे वह जंगम हो या स्थावर, किसी गिरोहबन्द के द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गयी है तो वह ऐसी सम्पत्ति को कुर्क करने का आदेश दे सकता है, चाहे किसी न्यायालय द्वारा ऐसे अपराध का संज्ञान किया गया हो या नहीं।*

(2) प्रत्येक ऐसी कुर्की पर संहिता के उपबन्ध, यथावश्यक परिवर्तन सहित, लागू होगें।

(3) संहिता के उपबन्धों के होते हुए भी, जिला मजिस्ट्रेट, उपधारा (1) के अधीन कुर्क की गयी किसी सम्पत्ति का प्रशासक नियुक्त कर सकता है और प्रशासक को ऐसी सम्पत्ति के सर्वोत्तम हित में उसका प्रबन्ध करने की सभी शक्तियां होंगी।

(4) जिला मजिस्ट्रेट ऐसी सम्पत्ति के उचित और प्रभावी प्रबन्ध के लिए प्रशासक को पुलिस सहायता की व्यवस्था कर सकता है।

15- सम्पत्ति को निर्मुक्त करना- *(1) जहाँ कोई सम्पत्ति धारा 14 के अधीन कुर्क की जाय, वहीं उसका दावेदार, ऐसी कुर्की की जानकारी के दिनांक से तीन मास के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को अपने द्वारा उस सम्पत्ति के अर्जन की परिस्थितियों और स्रोतों को दर्शाते हुए अभ्यावेदन कर सकता है।*

(2) यदि उपधारा (1) के अधीन किये गये दावे की वास्तविकता के बारे में जिला मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाय तो वह कुर्क की गयी सम्पत्ति को तत्काल निर्मुक्त कर देगा और तदुपरांत ऐसी सम्पत्ति दावेदार को सौंप दी जायेगी।

16- न्यायालय द्वारा सम्पत्ति के अर्जन के स्वरुप के बारे में जांच- *(1) जहाँ धारा 15 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर कोई अभ्यावेदन न दिया जाय या जिला मजिस्ट्रेट धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन सम्पत्ति को निर्मुक्त नहीं करता है, वहीं वह मामले को अपनी रिपोर्ट के साथ इस अधिनियम के अधीन अपराध का विचाराण करने के लिए अधिकारितायुक्त न्यायालय को निर्दिष्ट करेगा।*

(2) जहाँ जिला मजिस्ट्रेट ने किसी सम्पत्ति को धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन कुर्क करने से इन्कार किया है या किसी सम्पत्ति को धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन निर्मुक्त करने का आदेश दिया है, वहीं राज्य सरकार या कोई व्यक्ति जो इस प्रकार इन्कार करने या निर्मुक्त करने से व्यथित हो, यह जांच करने के लिए कि क्या सम्पत्ति इस अधिनियम के अधीन विचारणीय

अनुवादित

किसी अपराध कार्य के द्वारा या उसके परिणामस्वरूप अर्जित की गयी थी, उपधारा (1) में निर्दिष्ट न्यायालय को आवेदन-पत्र दे सकता है। ऐसा न्यायालय, यदि वह न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझे, ऐसी सम्पत्ति को कुर्क करने का आदेश दे सकता है।

(3) (क) उपधारा (1) के अधीन निर्देश या उपधारा (2) के अधीन आवेदन-पत्र की प्राप्ति पर न्यायालय जांच के लिए कोई दिनांक नियत करेगा और उसकी नोटिस उपधारा (2) के अधीन आवेदन पत्र देने वाले व्यक्ति या, यथास्थिति, धारा 15 के अधीन अभ्यावेदन देने वाले व्यक्ति और राज्य सरकार और किसी अन्य व्यक्ति को भी जिसका हित मामले में अन्तर्ग्रस्त प्रतीत हो, देगा।

(ख) इस प्रकार नियत दिनांक को या किसी पश्चातवर्ती दिनांक को जब तक के लिए जांच आस्थगितकी जाय, न्यायालय पक्षकारों की सुनवाई करेगा, उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य ग्रहण करेगा, ऐसे और साक्ष्य लेगा जिसे वह आवश्यक समझे, यह विनिश्चय करेगा कि क्या सम्पत्ति किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गयी थी और धारा 17 के अधीन ऐसा आदेश देगा जैसा मामले की परिस्थितियों में न्यायसंगत और आवश्यक हो।

(4) उपधारा (3) के अधीन जांच के प्रयोजनों के लिए विशेष न्यायालय को निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में ऐसी शक्तियां होंगी जो सिविल प्रकिया संहिता, 1908 के अधीन किसी वाद पर विचारण करते समय सिविल न्यायालय की होती है, अर्थात्-

(क) किसी व्यक्ति को समन कराना और उसे हाजिर कराना और शपथ पर उसका परीक्षण करना;

(ख) दस्तावेजों का पता लगाने और उन्हें प्रस्तुत करने की अपेक्षा करना;

(ग) शपथ-पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से कोई सार्वजनिक अभिलेख या उसकी प्रति अधियाचित करना;

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों के परीक्षण के लिए कमीशन जारी करना;

(च) व्यतिक्रम के लिए निर्देश को खारिज करना या उसे एक पक्षीय विनिश्चित करना; (छ) व्यतिक्रम के लिए खारिज करने के आदेश या एकपक्षीय विनिश्चय को अपास्त करना।

(5) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, इस धारा के अधीन किसी कार्यवाही में यह साबित करने का भार कि प्रश्नगत सम्पत्ति या उसका कोई भाग किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं किया गया था, सम्पत्ति पर दावा करने वाले व्यक्ति पर होगा।

अनुवादित

17. जॉच के पश्चात् आदेश- *यदि ऐसी जांच पर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सम्पत्ति किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं की गयी थी तो वह उस सम्पत्ति को ऐसे व्यक्ति के पक्ष में निर्मुक्त करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से वह कुर्क की गयी थी। किसी अन्य मामले में न्यायालय सम्पत्ति को कुर्क करके, अधिहरण करके या सम्पत्ति पर कब्जा पाने के लिए हकदार व्यक्ति को देकर, या अन्य प्रकार से उसका निस्तारण करने का ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह उचित समझे।*

16. यह अब सुस्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 14 के तहत कुर्की की विषयवस्तु संपत्ति को एक गैंगस्टर द्वारा और वह भी अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कारित करने के फलस्वरूप अर्जित किया गया होना चाहिए। जिला मजिस्ट्रेट को इस बिन्दु पर अपनी संतुष्टि दर्ज करनी होगी। जिला मजिस्ट्रेट की संतुष्टि को किसी भी अपील में चुनौती नहीं दी जा सकती। उसके लिए केवल, अधिनियम की धारा 15 के अंर्तगत जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष ही एक प्रत्यावेदन प्रस्तुत किया जा सकता है और यदि वह ऐसे प्रत्यावेदन पर संपत्ति निर्मुक्त करने से इंकार कर देता है, तो उस स्थिति में क्षुब्ध व्यक्ति को अपराध विचारण की अधिकारिता वाले न्यायालय के समक्ष संदर्भ प्रस्तुत करना होगा। अधिनियम की धारा 15 की उप-धारा (2) के तहत प्रस्तुत किए गए संदर्भ का निस्तारण करते समय न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या संपत्ति अधिनियम के अंर्तगत विचारणीय अपराध के कारित करने के परिणामस्वरूप एक गैंगस्टर द्वारा अर्जित की गई थी और उसे इस प्रश्न का समुचित समाधान करना होगा और अधिनियम की धारा 16 के तहत उसके द्वारा किए गए परीक्षण के आधार पर अपने स्वयं के निष्कर्ष को दर्ज करना होगा। यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि संपत्ति, गैंगस्टर द्वारा, अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कारित करने के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं की गई थी, तो न्यायालय उस व्यक्ति, जिसके कब्जे से यह कुर्क की गई थी, उसके पक्ष में संपत्ति निर्मुक्त करने का आदेश पारित करेगा।

17. संहिता की धारा 16 के अंर्तगत न्यायिक जांच की शक्ति प्रदान करने का उद्देश्य किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित करने में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा शक्ति का मनमाने ढंग से प्रयोग रोकना है और विधि-व्यवस्था को पुर्नस्थापित करना है, इसलिए न्यायालय का यह परम कर्तव्य है कि वह इस प्रश्न के संबंध में सच्चाई का पता लगाने के लिए एक औपचारिक जांच करेगा कि क्या संपत्ति अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कारित करने के परिणामस्वरूप या उसके द्वारा अर्जित की गई थी। अधिनियम की धारा 17 के अंर्तगत पारित किए जाने वाले आदेश में न्यायालय के निष्कर्ष के समर्थन में कारणों और प्रमाणों का खुलासा होना चाहिए। न्यायालय को डाकघर की तरह या राज्य या जिला मजिस्ट्रेट के मुखपत्र के रूप में कार्य करने का अधिकार नहीं है। यदि किसी

अनुवादित

व्यक्ति का कोई अपराधिक इतिहास नहीं है, जिस अवधि के दौरान संपत्ति उसके द्वारा अर्जित की गई थी, उस संपत्ति को अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप या उसके द्वारा अर्जित संपत्ति कैसे माना जा सकता है, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका उत्तर न्यायालय को देना होगा। उपरोक्त प्रश्न के अलावा, न्यायालय द्वारा विचार किया जाने वाला अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या वह संपत्ति, जोकि अभियुक्त के खिलाफ अधिनियम के तहत मामला दर्ज होने से पहले या गैंगस्टर चार्ट के प्रथम मामले के पंजीकरण से पहले अर्जित की गई थी, अधिनियम की धारा 14 के तहत जिला मजिस्ट्रेट द्वारा कुर्क की जा सकती है।

18. उपरिसन्दर्भित, अधिनियम की धारा 14 के प्रावधान, जिला मजिस्ट्रेट को गैंगस्टर द्वारा इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कारित किए जाने के परिणामस्वरूप अर्जित संपत्ति को कुर्क करने का अधिकार देते हैं। जिला मजिस्ट्रेट कुर्क की गई किसी भी संपत्ति के सर्वोत्तम हित में ऐसी संपत्ति का प्रबंधन करने के लिए एक प्रशासक नियुक्त कर सकता है, लेकिन यह विश्वास करने का कारण होना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति के कब्जे में कोई भी संपत्ति, चाहे वह चल हो या अचल, एक गैंगस्टर द्वारा इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कारित किए जाने के परिणामस्वरूप अर्जित की गई है, लेकिन जिला मजिस्ट्रेट ने अपने आदेश में कुर्क की गई संपत्ति के संबंध में कि इसे गैंगस्टर अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कारित किए जाने के परिणामस्वरूप अपीलकर्ताओं द्वारा अर्जित किया गया था, यह विश्वास करने का कारण के साथ अपनी संतुष्टि दर्ज नहीं की है। यद्यपि, अधिनियम की धारा 16 के तहत संदर्भ पर निर्णय लेते समय, विचारण न्यायालय ने साक्ष्यों का मूल्यांकन नहीं किया और यांत्रिक तरीके से, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा की गई टिप्पणियों पर भरोसा करते हुए, विवादित आदेश पारित कर दिया, जो कि अवैध और अनुचित दृष्टिकोण है।

19. इस न्यायालय की इलाहाबाद में एक समन्वय पीठ ने **श्रीमती मैना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2013(83) एसीसी 902** के मामले में, पैरा-8, 9 और 10 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है:-

8. *प्रकरण के तथ्यों, परिस्थितियों, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने और अभिलेख के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान प्रकरण में शामिल मुद्दे को गैंगस्टर अधिनियम की धारा 14, 15 और 17 के प्रावधानों पर विचार करने की मदद से सुलझाया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं:*

15. सम्पत्ति को निर्मुक्त करना- *(1) जहाँ कोई सम्पत्ति धारा 14 के अधीन कुर्क की जाय, वहीं उसका दावेदार, ऐसी कुर्की की जानकारी के दिनांक से तीन मास के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को अपने द्वारा उस सम्पत्ति के अर्जन की परिस्थितियों और स्रोतों को दर्शाते हुए अभ्यावेदन कर सकता है।*

अनुवादित

(2) यदि उपधारा (1) के अधीन किये गये दावे की वास्तविकता के बारे में जिला मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाय तो वह कुर्क की गयी सम्पत्ति को तत्काल निर्मुक्त कर देगा और तदुपरांत ऐसी सम्पत्ति दावेदार को सौंप दी जायेगी।

17. जॉच के पश्चात् आदेश- *यदि ऐसी जांच पर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सम्पत्ति किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं की गयी थी तो वह उस सम्पत्ति को ऐसे व्यक्ति के पक्ष में निर्मुक्त करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से वह कुर्क की गयी थी। किसी अन्य मामले में न्यायालय सम्पत्ति को कुर्क करके, अधिहरण करके या सम्पत्ति पर कब्जा पाने के लिए हकदार व्यक्ति को देकर, या अन्य प्रकार से उसका निस्तारण करने का ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह उचित समझे।*

9. *गैंगस्टर अधिनियम के उपर्युक्त प्रावधानों के आलोक में जिला मजिस्ट्रेट को किसी भी व्यक्ति की चल या अचल संपत्तियों को कुर्क करने का अधिकार है जोकि इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कारित किए जाने के परिणामस्वरूप, गैंगस्टर द्वारा अर्जित की गई हो। लेकिन, ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट को यह विश्वास करने की वजह होना चाहिए कि ऐसी संपत्ति को एक गैंगस्टर द्वारा इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कारित किए जाने के परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी। विश्वास करने की वजह शब्द "संतुष्टि" शब्द से अधिक प्रबल है, इसे उन कारणों के आधार पर पारित किया जाना चाहिए जो प्रासंगिक और भौतिक हैं। वर्तमान प्रकरण में, अधीनस्थ न्यायालय के अभिलेख के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि केवल थाना प्रभारी अधिकारी सराय लक-हांसी, जिला मऊ द्वारा प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट के आधार पर, जिला मजिस्ट्रेट, मऊ ने अपीलकर्ता के दो घरों को कुर्क कर लिया है, जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष ऐसा कोई तथ्य प्रस्तुत नहीं किया गया जो विश्वास करने की वजह बने कि विचाराधीन संपत्ति गैंगस्टर राज बहादुर सिंह के द्वारा इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कारित करने के द्वारा अर्जित की गई थी, परिणामस्वरूप जिला मजिस्ट्रेट की भी विषयपरक संतुष्टि दूषित हुई है। विद्वान जिला मजिस्ट्रेट के पास पुलिस आख्या के समर्थन में कोई सामग्री नहीं थी कि अपीलकर्ता के दोनों मकान उसके पुत्र राज बहादुर सिंह द्वारा अधिगृहीत कर लिए गए थे। विद्वान जिला मजिस्ट्रेट द्वारा गैंगस्टर एक्ट की धारा 15 के अंर्तगत कुर्क किए गए घर की रिहाई के लिए अपीलकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया। आवेदन समयान्तर्गत था, आवेदन जिला मजिस्ट्रेट, मऊ, को प्रत्यावेदन था जिसमें उन सभी स्रोतों का विवरण था जिनके द्वारा दोनों घर अपीलार्थी द्वारा अर्जित किए गए थे। लेकिन विद्वान जिला मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता द्वारा बताए गए स्रोतों पर विचार नहीं किया तथा आदेश दिनांक 29.12.2008 के द्वारा आवेदन खारिज कर दिया। स्रोतों के स्पष्टीकरण, जिसके*

अनुवादित

माध्यम से अपीलकर्ता ने घरों का अधिग्रहण किया, पर विचार नहीं किया गया। अतः आक्षेपित आदेश दिनांक 29.12.2008, अवैध है। विद्वान विशेष न्यायाधीश (गैंगस्टर) अधिनियम), आज़मगढ़ ने गैंगस्टर अधिनियम की धारा 17 के तहत अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन को गैंगस्टर एक्ट की धारा 14 के प्रावधानों तथा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किया गया 'कारणों की प्रासंगिकता' को विश्वास करने के लिए कि कुर्क किए गए दोनों मकानों को अपीलार्थी के पुत्र एक गैंगस्टर राज बहादुर सिंह ने इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कारित किए जाने के फलस्वरुप अर्जित किया था पर विचार किए बिना खारिज कर दिया। विद्वान विशेष न्यायाधीश (गैंगस्टर एक्ट)/अपर सत्र न्यायाधीश, आज़मगढ़ द्वारा आपराधिक विविध आवेदन क्रमांक- 2/ 2009 में पारित किया गया आदेश दिनांक 17.3.2009, भी अवैध है।

10. *उपरोक्त विवेचना के दृष्टिगत , जिला मजिस्ट्रेट द्वारा गैंगस्टर एक्ट की धारा 14 के अंतर्गत अपीलकर्ता के दोनों घरों को कुर्क करने का आदेश, जिला मजिस्ट्रेट, मऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.12.2008, जिसके द्वारा गैंगस्टर एक्ट की धारा 15(1)(2) के तहत आवेदन खारिज कर दिया गया तथा विद्वान विशेष न्यायाधीश (गैंगस्टर एक्ट)/अपर सत्र न्यायाधीश, आज़मगढ़ द्वारा आपराधिक विविध आवेदन क्रमांक 2/ 2009 में पारित आदेश अवैध है, एतद्द्वारा अपास्त किए जाते हैं तथा जिला मजिस्ट्रेट, मऊ को आदेशित किया जाता है कि दोनों मकानों संख्या- 204-डी/8 तथा 205-डी/9 स्थिति मोहल्ला चांदमारी, इमिलियान, थाना- सराय लक-हंसी, जिला मऊ को अपीलकर्ता के पक्ष में अविलम्ब निर्मुक्त करें।*

20. अग्रेतर, **श्रीमती शांति देवी पत्नी श्री राम बनाम उ.प्र. राज्य 2007(2) एएलजे 483 (इला०)** के मामले में, इस न्यायालय की इलाहाबाद में एक अन्य समन्वय पीठ ने प्रस्तर-9, 10 और 11 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

9. *इन धाराओं को संयुक्त रूप से पढ़ने से पता चलता है कि पहले यह सिद्ध करना होगा कि गैंगस्टर या उसकी ओर से किसी व्यक्ति का संपत्ति पर कब्जा है या रहा है, और ऐसी संपत्ति इस अधिनियम के तहत विचारणीय किसी अपराध के कारित करने के फलस्वरुप अर्जित की गई है केवल तभी जिला मजिस्ट्रेट को मामले में आगे कार्यवाही करने और संपत्ति कुर्क करने का अधिकार क्षेत्र प्राप्त होता है। केवल जब प्रारम्भिक दायित्व का निर्वहन हो जाता है, तब इसका संतोषजनक लेखा-जोखा देने की जिम्मेदारी गैंगस्टर या ऐसे व्यक्ति पर आ जाती है। लेकिन यदि यह पाया जाता है कि संबंधित व्यक्ति गैंगस्टर नहीं था और उसने इस अधिनियम के तहत विचारणीय किसी अपराध करके संपत्ति अर्जित नहीं की थी, तो उसे धारा 17 के प्रावधान के अनुसार मुक्त किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह दिखाने के लिए प्रारंभिक दायित्व अभियोजन पर है कि संबंधित व्यक्ति एक गैंगस्टर है और उसने अधिनियम के तहत*

अनुवादित

विचारणीय अपनी आपराधिक गतिविधि के कारण संपत्ति अर्जित की है।

10. *इसलिए, धारा 14 के तहत कार्यवाही करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष वस्तुनिष्ठ निर्धारण के लिए सामग्री होनी चाहिए कि व्यक्ति या तो किसी गिरोह का सदस्य, सरगना या संगठक है और उसने अधिनियम के तहत किसी भी अपराध को कारित कर कोई संपत्ति अर्जित की है। उसमें बताए गए उसके आपराधिक कृत्यों और उसके द्वारा अर्जित की गई संपत्ति के बीच कोई संबंध होना चाहिए। किसी भी अपराध में उसकी संलिप्तता ही उसकी संपत्ति कुर्क करने के लिए पर्याप्त नहीं है। दूसरे शब्दों में यह पता लगाना आवश्यक है कि क्या उसकी संपत्ति का अधिग्रहण उसके किसी गिरोह का सदस्य, सरगना या संगठक होने, अधिनियम में उल्लिखित किसी अपराध के कारित होने का परिणाम था। हो सकता है कि किसी ने कई अपराध किए हों, लेकिन यदि उसके द्वारा अर्जित संपत्ति कानूनी संसाधनों से की गई आय की सहायता से है, तो अधिनियम की धारा 14 के तहत उसके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है।*

11. *बदन सिंह उर्फ बद्दो बनाम उ.प्र. राज्य, 2002 Cri LJ 1392: 2001 All. LJ 2852 के मामले में इस न्यायालय द्वारा यह व्यवस्था दी गई है कि अधिनियम की धारा 14 एक कठोर प्रावधान है जो किसी के संपत्ति के अधिकार को प्रभावित करती है, जो कि संविधान के तहत एक मौलिक अधिकार है। इसलिए, प्रारंभिक भार राज्य पर था कि वह आवश्यक सामग्रियों के साथ जिला मजिस्ट्रेट को संतुष्ट करे कि एक गैंगस्टर ने किसी अपराध के कारित किए जाने के परिणामस्वरूप संपत्ति अर्जित की थी। इस मामले में यह व्यवस्था दी गई है कि अधिनियम में यह प्रावधान नहीं है कि संपत्ति को कुर्की से मुक्त कराने की मांग करने वाले पीड़ित व्यक्ति को उसके अधिग्रहण के लिए आय का स्रोत साबित करना होगा।*

21. विधि की उपरोक्त स्थापित प्रस्थापना और **श्रीमती मैना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2013(83) एसीसी 902** और **श्रीमती शांति देवी पत्नी श्री राम बनाम उ.प्र. राज्य 2007(2) एएलजे 483 (इला०)** के मामलों में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह मत है कि कुर्क की गई भूमि संपत्ति अपीलकर्ताओं की पैतृक संपत्ति है और कुर्क किया गया वाहन अपीलकर्ता नंबर 1 के बेटे का है और अभियोजन पक्ष अपना पक्ष साबित करने में विफल रहा है कि जिन प्रश्नगत संपत्तियों की कुर्की की जा रही है, वे अपराध करने के बाद धन इकट्ठा करके अर्जित की गई थीं, क्योंकि यह विधि स्थापित है कि जिस संपत्ति को अधिनियम की धारा 14 के तहत कुर्की का विषय बनाया जा रहा है, वह किसी गैंगस्टर द्वारा अर्जित की गई होनी चाहिए और वह भी अधिनियम के तहत विचारणीय कारित अपराध के करने के द्वारा अर्जित की गई होनी चाहिए। विवादित आदेश उन कारणों से पारित नहीं किए गए जो प्रासंगिक और भौतिक हैं। वर्तमान मामले

अनुवादित

में न्यायालय के आदेशों और अभिलेखों के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि पुलिस रिपोर्ट के आधार पर ही जिला मजिस्ट्रेट ने प्रश्नगत संपत्ति को कुर्क कर लिया है, जिला मजिस्ट्रेट को इस बात पर विश्वास करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं कराई गई कि विचाराधीन संपत्ति गैंगस्टर वर्तमान अपीलकर्ताओं, द्वारा इस अधिनियम के तहत विचारणीय किसी भी अपराध के कारित किए जाने के परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी। इससे जिला मजिस्ट्रेट की व्यक्तिपरक संतुष्टि प्रभावित हुई, अभिलेख से भी ऐसा प्रतीत होता है कि जिला मजिस्ट्रेट के पास पुलिस रिपोर्ट के समर्थन में कोई सामग्री नहीं है कि प्रश्नगत संपत्ति वर्तमान अपीलकर्ताओं द्वारा गैंगस्टर के रूप में अर्जित की गई थी, इसके बावजूद कार्यवाही अधिनियम में विफल रहा है कि गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2 और 3 के प्रावधान अपीलकर्ताओं के मामले में आकर्षित होते हैं, और इसके अलावा अपीलकर्ताओं की संपत्ति भी कानून के अनुसार कुर्क नहीं की गई है, क्योंकि अभियोजन यह सिद्ध करने में असफल रहा है कि अपीलकर्ताओं द्वारा अर्जित और स्वामित्व वाली संपत्ति और वाहन असामाजिक गतिविधियों में शामिल होने की आय से अर्जित किए गए हैं। अधिनियम की धारा 16 के अनुसार जांच नहीं की गई थी, धारा 14, 15 और 17 के प्रावधानों का भी अधिनियम के अनुसार पालन नहीं किया गया था, इस के प्रावधानों के अनुसार नहीं की गयी थी। कुर्की के आक्षेपित आदेशों को पारित करते समय, विवेक का इस्तेमाल किए बिना ही यांत्रिक तरीके से आदेश पारित किया गया और यह मनमाना है। इस प्रकार, विद्वान विशेष न्यायाधीश गैंगेस्टर एक्ट/अपर सत्र न्यायाधीश कोर्ट संख्या-5 उन्नाव द्वारा पारित आदेश भी अवैध है और वह भी निरस्त किये जाने योग्य है।

22. मामले के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, विद्वान अधीनस्थ न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश को सही परिप्रेक्ष्य में पारित किया गया नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह विधि की दृष्टि में संधारणीय नहीं है और इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता है, अभियोजन यह सिद्ध करने प्रकार उसके अनुसरण में प्रारम्भ की गई पूरी कार्यवाही दूषित हो गई है।

23. तद्नुसार, वर्तमान अपील **स्वीकार** की जाती है। विद्वान विशेष न्यायाधीश, गैंगस्टर एक्ट/अपर सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 5, उन्नाव द्वारा आपराधिक विविध प्रकरण संख्या 94/2021, सुशील कुमार जयसवाल बनाम राज्य, मुकदमा अपराध संख्या 336/ 2017, अंर्तगत धारा 3 (1) गैंगस्टर अधिनियम थाना हसनगंज, जिला उन्नाव में पारित आक्षेपित निर्णय एवं आदेश दिनांक 10.03.2021 को रद्द किया जाता है।

अनुवादित

24. फलस्वरूप जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.09.2020 एवं 01.01.2021 को भी निरस्त किया जाता है।

25. जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव को अविलम्ब वाहन पिकअप डाला संख्या यूपी 35 टी 4181 के साथ-साथ ग्राम कुरौली, तहसील हसनगज, जिला उन्नाव में स्थित खसरा संख्या 256, माप 0.014 हेक्टेयर पर स्थित पांच दुकानों को अपीलकर्ताओं के पक्ष में निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है।

26. वादव्यय के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 648

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 20.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता,

आपराधिक अपील संख्या 2490/2022

ताजीम

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: सुशील पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 304-बी - भारतीय दंड संहिता, 1860 - दहेज हत्या - दंड - सजा - एक अदालत का कर्तव्य है कि वह अपने न्यायिक विवेक का उपयोग करके ऐसी सजा दे जो मामले की परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में "उचित" हो, और अपराधी के अपराध बोध से "मेल खाता हो" - अदालत कम करने वाली और गंभीर करने वाली परिस्थितियों की एक बैलेंस शीट तैयार करेगी और उसके आधार पर "सजा' का निर्धारण करेगी - इस वाद में अपीलकर्ता दिनांक 10.4.2013 यानी लगभग 10 वर्षों से जेल में था - मृतक ने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी और आरोपी घटनास्थल पर उपस्थित नहीं था - न्यायालय ने आईपीसी की धारा 304-बी के तहत अधिकतम सजा को 14 साल से घटाकर 10 साल कर दिया। (पैरा 24)

अनुमत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. हेम चंद बनाम हरियाणा राज्य (1994) 6 एससीसी 727
2. कश्मीर कौर बनाम पंजाब राज्य एआईआर 2013 एससी 1039
3. गजानन दशरथ खराटे बनाम महाराष्ट्र राज्य 2016 (4) एससीसी पेज 604
4. शेर सिंह @ प्रतापा बनाम हरियाणा राज्य 2015 (89) एसीसी 288 (एससी)
5. गुरुख सिंह बनाम हरियाणा राज्य., 2009 (11) स्केल 688
6. जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2009 (13) स्केल 578

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता, द्वारा प्रदत्त)

अनुवादित

1. यह आपराधिक अपील दं०प्र०सं० की धारा 374 (2) के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 51/2013 से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या- 809/2013 में अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, सीतापुर, पुलिस थाना-खैराबाद, जिला-सीतापुर द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 14.9.2022 के विरुद्ध, जिसके अंतर्गत अपीलकर्ता को भा०दं०सं० की धारा-304-बी के अंतर्गत अपराध हेतु दोषी ठहराया गया तथा चौदह वर्ष के सश्रम कारावास एवं रुपये 5,000/- के जुर्माने की सजा सुनाई गई तथा जुर्माना न दिये जाने पर तीन माह का अतिरिक्त साधारण कारावास; भा०दं०सं० की धारा-498-ए के अंतर्गत तीन वर्ष के सश्रम कारावास एवं 2000 रूपये का जुर्माना एवं जुर्माना अदा न करने की स्थिति में दो माह का अतिरिक्त साधारण कारावास; भा०दं०सं० की धारा- 201 के अंतर्गत दो वर्ष का कारावास एवं 2000 रूपये का जुर्माना एवं जुर्माना अदा न करने की स्थिति में दो माह का अतिरिक्त साधारण कारावास; एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा- 4 के अंतर्गत एक वर्ष का सश्रम कारावास एवं रूपये 1000/- का जुर्माना एवं जुर्माना अदा न करने की स्थिति में एक माह का अतिरिक्त साधारण कारावास प्रदान किया गया, प्रस्तुत की गई है।

2. संक्षेप में अभियोजन कथानक यह है कि शिकायतकर्ता कमर जहां पत्नी इमामुद्दीन बिसवां, सीतापुर की निवासी है। शिकायतकर्ता ने अपनी बेटी तरन्नुम की शादी लगभग 18 महीने पूर्व ताजीम (अपीलकर्ता) के साथ की थी। शादी में प्रार्थी ने अपनी हैसियत के अनुसार दहेज दिया था, परंतु अभियुक्त अपीलार्थी व उसकी मां आसिया, आफाक व व उसकी पत्नी साजिया बानो दिये गये दहेज से खुश नहीं थे तथा अतिरिक्त दहेज में मोटरसाइकिल की मांग की जा रही थी। मांग पूरी न होने पर, वे शिकायतकर्ता की पुत्री को उसकी शादी के पश्चात से ही प्रताड़ित करते थें तथा दिनांक 01.04.2013 को उन्होंने शिकायतकर्ता की पुत्री की मारपीट कर तथा गले में रस्सी से लटका कर हत्या कर दी तथा गुपचुप तरीके से शव को दफना दिया। अन्य व्यक्तियों से जानकारी मिलने पर, जब शिकायतकर्ता अपनी बेटी के ससुराल गई एवं अपनी बेटी (मृतक) के बारे में पूछताछ की, तो अपीलकर्ता के परिवार के सदस्यों ने शिकायतकर्ता को गाली-गलौज करते हुए अपने घर से भगा दिया तथा धमकी दी कि यदि तुम कोई कानूनी कार्रवाई करोगे तो मैं तुम्हें भी मार डालूंगा। लिखित रिपोर्ट के आधार पर, अपीलकर्ता एवं परिवार के अन्य सदस्यों के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 51/2013, दिनांक 02.04.2013 को भा०दं०सं० की धारा 498 ए, 304 बी, 302, 201, 504, 506 एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की 3/4 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट थाना-खैराबाद, जनपद-सीतापुर पर दर्ज कराई गई थी।

3. अन्वेषण के दौरान दिनांक 3.4.2013 को सिटी मजिस्ट्रेट से मौखिक सूचना मिलने पर नायब तहसीलदार रोहित कुमार मौर्य कब्रिस्तान सचिवालय के पास

अनुवादित

घटनास्थल पर पहुंचे। वहां थाना खैराबाद के उपनिरीक्षक विद्याशंकर शुक्ला पहले से ही मौजूद थे. अपर जिलाधिकारी, सीतापुर एवं सिटी मजिस्ट्रेट के निर्देशानुसार उनके द्वारा पंचायतनामा की कार्यवाही सम्पादित की गयी। वहां उपस्थित लोगों में से एक मध्यस्थ नियुक्त किया गया तथा मध्यस्थों की राय लेने के पश्चात एस.आई.विद्याशंकर ने अपने निर्देशन में पंचायतनामा तैयार किया। तत्पश्चात शव को सील कर दिया गया तथा शव-परीक्षा हेतु संबंधित पुलिस दस्तावेज कांस्टेबल विजय कुमार वर्मा एवं पिंदरलाल को सौंप दिए गए। शव-परीक्षा से संबंधित दस्तावेज तैयार करने के पश्चात शव को शव-परीक्षण हेतु भेजा गया तथा दिनांक 3.4.2013 को पीडब्लू-4, डॉ. राकेश कुमार, वरिष्ठ सलाहकार द्वारा जिला अस्पताल, सीतापुर में शव-परीक्षण किया गया एवं शव-परीक्षा रिपोर्ट तैयार की गई। डॉक्टर ने बताया कि मौत का कारण फांसी लगाना है। मृतक की मृत्यु का समय लगभग तीन दिन पूर्व अर्थात दिनांक 1.4.2013 को हो सकता है।

4. अन्वेषण होने के पश्चात, अन्वेषण अधिकारी ने अपीलकर्ता तथा अभियुक्त साजिया सहित परिवार के अन्य सदस्यों के विरुद्ध दिनांक 23.6.2013 तथा 25.7.2013 को भा०दं०सं० की धारा 498 ए, 304 बी, 302, 201, 504, 506 एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट न्यायालय, जिसने संज्ञान लिया, के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किया एवं दिनांक 26.11.2013 को सत्र न्यायालय को वाद सौंप दिया गया, जहां वाद एस.टी.संख्या 809/2013 के रूप में दर्ज किया गया था, तत्पश्चात यह वाद विचारण हेतु अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, सीतापुर में स्थानांतरित कर दिया गया। अपीलकर्ता एवं अन्य सह-अभियुक्तगण के विरुद्ध भा०दं०सं० की धारा 498ए, 304बी, 302/34, 201, 504, 506 तथा दहेज निषेध अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत कई तथियाँ अर्थात 26.8.2014, 2.4.2015 एवं 20.4.2015 को आरोप निर्धारित किए गए थे। अपीलकर्ता एवं अन्य सह- अभियुक्तगण के आरोप पढ़कर सुनाए गए किंतु उन्होंने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों को संपूर्णतः इनकार कर दिया एवं विचारण किये जाने का दावा किया।

5. अभियोजन पक्ष ने अपने वाद को साबित करने हेतु निम्नलिखित साक्षीगण का परीक्षण किया है:-

(i) पीडब्लू-1, कमरजहाँ जो शिकायतकर्ता होने के साथ मृतक की माँ भी है। उसने सम्पूर्ण अभियोजन कथानक का समर्थन किया और लिखित रिपोर्ट को प्रदर्श ka-1 के रूप में सिद्ध किया।

(ii) पीडब्लू-2, जियाउद्दीन जो मृतक का चाचा है। उसने सम्पूर्ण अभियोजन कथानक का भी समर्थन किया।

अनुवादित

(iii) पीडब्लू-3, इमाउद्दीन जो मृतक का पिता है। उसने सम्पूर्ण अभियोजन कथानक का भी समर्थन किया।

(iv) पीडब्लू-4, डॉ. राकेश कुमार जिन्होंने दिनांक 3.4.2013 को शाम 05.25 बजे मृतक का शव-परीक्षण किया तथा मृतक के शरीर पर निम्नवत चोटें पाई गईं:
(1) बंध चिह्न थायरॉयड कार्लवेज़ के ऊपर गर्दन के मध्य में मौजूद था, जो गर्दन के चारों ओर मौजूद था, जिसकी लंबाई 31 सेमी, चौड़ाई 1.5 से 2 सेमी थी, जो ठोड़ी के 6 सेमी और 5.5 सेमी नीचे था। बंद चिन्ह के किनारे पर हल्का यूनिटोसिस मौजूद था। बंध चिह्न काटने पर बाएं आधे हिस्से की हड्डी टूट गई थी।

(2) बाएं पैर के अंदरूनी हिस्से पर 6 सेमी x 4 सेमी के कई फटे हुए घाव वर्तमान थें।
(3) दाहिने घुटने के अंदरूनी हिस्से पर 5 सेमी x 3 सेमी के कई फटे हुए घाव वर्तमान थें।
डॉक्टर ने बताया कि मृतक की मौत का कारण फांसी है। उन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रदर्श ka-3 के रूप में सिद्ध किया।

(v) पीडब्लू-5, रोहित कुमार मौर्य, नायब तहसीलदार जिन्होंने पंचायतनामा रिपोर्ट को प्रदर्श-ka-3 के रूप में एवं संबंधित पुलिस दस्तावेज को प्रदर्श-ka-4 लगायत प्रदर्श-ka-8 के रूप में सिद्ध किया।

(vi) पीडब्लू-6, राधे लाल, सेवानिवृत्त एस.आई. जिन्होंने शिकायतकर्ता द्वारा दी गई लिखित रिपोर्ट के आधार पर प्र०सू०रि० दर्ज की। उन्होंने चिक एवं जी.डी. की प्रति को क्रमशः प्रदर्श-ka-9 एवं प्रदर्श-ka-10 के रूप में सिद्ध किया।

(vii) पीडब्लू-7, अखिलेश कुमार चौरसिया, क्षेत्राधिकारी जिन्होंने अन्वेषण किया। अन्वेषण के दौरान, उन्होंने उस स्थान की नक्शा-नजरी तैयार किया जहां मृतक को दफनाया गया था तथा आरोपी-अपीलकर्ता का निवास था एवं इसे क्रमशः प्रदर्श-ka-11 तथा प्रदर्श-ka-12 के रूप में सिद्ध किया। तत्पश्चात दिनांक 10.4.2013 को उन्होंने अपीलकर्ता ताजीम को गिरफ्तार कर लिया एवं दिनांक 23.6.2013 को अपीलकर्ता एवं परिवार के अन्य सदस्यों के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया तथा इसे प्रदर्श-ka-13 के रूप में सिद्ध किया है। उन्होंने दिनांक 25.7.2013 को अभियुक्त साजिया बानो के विरुद्ध एक अन्य आरोप पत्र प्रस्तुत किया तथा इसे प्रदर्श-ka-14 के रूप में सिद्ध किया है। उन्होंने मैरून, पीले, लाल, सफेद स्कार्फ (दुपट्टे) के फर्द बरामदगी को भी प्रदर्श-ka-15 के रूप में सिद्ध किया है।

(viii) पीडब्लू-8, इंस्पेक्टर जगदीश यादव, जिन्होंने साक्षी शकील अहमद एवं इलियास की उपस्थिति में मृतक का दुपट्टा बरामद किया तथा उसे सील कर दिया। उन्हें एडीएम कार्यालय से अग्रिम कार्यवाही सुनिश्चित करने हेतु पत्र प्राप्त हुआ, जो प्रदर्श-ka-16 के रूप में सिद्ध हुआ है।

6.अतः अभियोजन पक्ष ने PW-1 से PW-8 के मौखिक साक्ष्य के साथ प्रदर्श-ka-1

अनुवादित

से प्रदर्श-ka-16 के दस्तावेजी साक्ष्य पर विश्वास व्यक्त किया।

7. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के समापन के पश्चात, दं०प्र०सं० की धारा 313 के अंतर्गत अपीलकर्ता का बयान दर्ज किया गया जिसमें अभियुक्त-अपीलकर्ता ने आरोपों से इनकार किया और कहा कि वह निर्दोष हैं तथा उसे मामले में झूठा फंसाया गया है। उसने आगे बताया कि उनकी सहमति से मृतक के मायका पक्ष के साक्षीगण की उपस्थिति में मृतक का अंतिम संस्कार किया गय। अंतिम संस्कार के पश्चात मृतक के परिजन शादी में हुए खर्च की मांग कर रहे थे। पूरा न होने पर उन पर झूठा एवं सारहीन मुकदमा दर्ज कराया गया। घटना के समय मृतक घर पर अकेला था। इस घटना को अज्ञात लोगों ने घर में घुसकर अंजाम दिया था।

8. बचाव में, साक्षी D. W. -1, शकील अहमद से पूछताछ की गई, जिसने अपीलकर्ता ताजीम के कथन का समर्थन किया और कहा कि मृतका के अंतिम संस्कार के पश्चात, मृतका के परिवार के सदस्यों ने शादी में हुए खर्च की अपीलकर्ता से मांग की। जब उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया, तब मृतका के परिवार के सदस्यों ने अपीलकर्ता एवं उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध झूठी एवं सारहीन प्र०सू०रि० दर्ज कराई।

9. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात, विचारण न्यायालय ने अन्य सह-अभियुक्तगण को दोषमुक्त कर दिया तथा अपीलकर्ता को उपरोक्त आदेश दिनांक 14.9.2022 के अंतर्गत दोषी ठहराया।

10. उपरोक्त आदेश दिनांक 14.9.2022 से व्यथित एवं असंतुष्ट होकर, दं०प्र०सं० की धारा 374(2) के अंतर्गत यह आपराधिक अपील प्रस्तुत की गई है।

11. मैंने अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुशील पांडे, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री विजय श्रीवास्तव को सुना एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का अभिकथन है कि विचारण न्यायालय ने अनुमान एवं शंका के आधार पर अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है। विचारण न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के मूल्यांकन करने में विफल रही। अभियोजन साक्षीगण के बयान में तात्विक विरोधाभास हैं। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मात्र हितबद्ध साक्षीगण के आधार पर, विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराया तथा इस मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा कोई स्वतंत्र साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि घटना के समय जब मृतक ने फांसी लगाकर आत्महत्या की, वह मौके पर मौजूद नहीं था। आगे कहा गया कि मृतका के अंतिम संस्कार के पश्चात, शिकायतकर्ता एवं मृतक के परिवार के अन्य सदस्यों ने अभियुक्त-अपीलकर्ता से शादी में हुए खर्च की मांग

अनुवादित

की। जब उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया तब मृतक की माँ ने अपीलकर्ता के विरुद्ध प्र०सू०रि० दर्ज करायी। यह अभिकथन भी प्रस्तुत किया गया है कि मृतक का अंतिम संस्कार अपीलार्थी की उपस्थिति में किया गया था। अतः अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यह दहेज हत्या का नहीं अपितु आत्महत्या का मामला है, अतः अभियुक्त को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए क्योंकि उसके विरुद्ध भा०दं०सं० की धारा 304-बी स्थापित नहीं होती है।

13. पुनः विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यह कहीं भी सिद्ध नहीं हुआ है कि मांग की तिथि क्या थी? यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि मांग की तारीख एवं मृत्यु के मध्य एक कड़ी गायब है, जैसा कि हेम चंद बनाम हरियाणा राज्य (1994) 6 SCC 727 में शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित किया गया है। अतः अभियोजन यह स्थापित करने में विफल रहा है कि मृतक (तरन्नुम) की मृत्यु अपीलकर्ता द्वारा क्रूरता एवं उत्पीड़न के कारण हुई थी। उन्होंने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता के विरुद्ध संदेहमुक्त आरोप स्थापित करने में विफल रहा है।

14. अंततः, अपीलकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि अपीलकर्ता दिनांक 10.4.2013 से जेल में बंद है। अतः अपीलकर्ता लगभग 10 वर्षों से जेल में बंद है। वाद के गुण-दोष पर तर्क करने के अतिरिक्त, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपीलकर्ता के विरुद्ध उसके द्वारा की गई क्रूरता अथवा उत्पीड़न के संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है। यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अपीलकर्ता दोषी था, तब उसकी सजा को भा०दं०सं० की धारा 498ए, 304बी, 201 एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत पूर्व में भुगती गई अवधि तक कम कर दिया जाए।

15. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि मृतका ने अपनी ससुराल में आत्महत्या की तथा मृतका की मृत्यु अप्राकृतिक परिस्थितियों में हुई। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन ने पूर्णतया स्थापित किया है कि मृतका की मृत्यु अप्राकृतिक परिस्थितियों में हुई थी और विवाह के समय से ही उसकी मृत्यु से ठीक पहले दहेज की मांग के कारण उसे उत्पीड़न और क्रूरता का शिकार होना पड़ा था, तथा भा०दं०सं० की धारा 498ए, 304बी, 201 एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया, एवं निर्णय के परिशीलन से ज्ञात होता है कि अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को स्पष्ट रूप से स्थापित किया है। अतः अभियोजन संदेहमुक्त आरोप स्थापित करने में विफल नहीं हुआ है, और विद्वान विचारण न्यायालय ने उपरोक्त के अनुसार उसे सही रीति से दोषी ठहराया एवं सजा सुनाई। अत: इन परिस्थितियों में न्यायालय द्वारा उदारता बरते जाने हेतु कोई आधार नहीं है।

अनुवादित

16. पक्षकारों के तर्क का मूल्यांकन करने हेतु, भा०दं०सं० की धारा 498ए, 304बी एवं साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 के प्रावधानों पर गौर करना आवश्यक है।

17. **कश्मीर कौर बनाम पंजाब राज्य AIR 2013 (SC 1039)** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भा०दं०सं० की धारा 304 बी के अंतर्गत अपराध के घटकों की व्याख्या की है जो निम्नवत है: -

उपरोक्त निर्णयों से निम्नवत सिद्धांत प्राप्त किये जा सकते हैं:

क) भा०दं०सं० की धारा 304बी के प्रावधानों को लागू करने हेतु स्थापित किए जाने वाले अपराध का मुख्य घटक यह है कि मृतक की मृत्यु से ठीक पहले दहेज की मांग के संबंध में उसके साथ क्रूरता तथा उत्पीड़न किया गया था।

ख) मृत महिला की मृत्यु किसी जलने, शारीरिक चोट अथवा किसी अन्य परिस्थिति के कारण हुई जो सामान्य नहीं थी।

ग) ऐसी मृत्यु उसके विवाह की तिथि से सात वर्ष के भीतर होती है।

घ) पीड़िता के साथ उसके पति अथवा उसके पति के किसी रिश्तेदार द्वारा क्रूरता तथा उत्पीड़न किया गया था।

ड.) ऐसी क्रूरता तथा उत्पीड़न दहेज की मांग हेतु उसके संबंध में होना चाहिए।

च) यह स्थापित किया जाना चाहिए कि उसकी मृत्यु से ठीक पहले ऐसी क्रूरता तथा उत्पीड़न किया गया था।

छ) अभिव्यक्ति "ठीक पूर्व" एक सापेक्ष शब्द है तथा यह प्रत्येक वाद की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा एवं घटना से ठीक पूर्व की अवधि क्या होगी, इसके लिए कोई सीधा सूत्र प्रतिपादित नहीं किया जा सकता है।

ज) किसी भी निश्चित अवधि को इंगित करना घातक होगा तथा यह दहेज हत्या के अपराध के साक्ष्य के साथ साक्ष्य अधिनियम की धारा 113बी के अंतर्गत अनुमान लगाने हेतु निकटता परीक्षण के महत्व को लाता है।

i) अतः अभिव्यक्ति "ठीक पूर्व" का सामान्य अर्थ यह होगा कि संबंधित निर्दयता अथवा उत्पीड़न और संबंधित मृत्यु के मध्य अधिक अंतराल नहीं होना चाहिए। दहेज की मांग पर आधारित निर्दयता के प्रभाव एवं संबंधित मृत्यु के मध्य निकटतम अथवा जीवन संबंध का अस्तित्व होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, यह समय के हिसाब से दूरस्थ नहीं होना चाहिए जो फलस्वरुप इसे निर्बल कर दे।

j) यद्यपि अभिव्यक्ति "ठीक पूर्व" को एक संकीर्ण अर्थ नहीं दिया जाना चाहिए जो अन्यथा अधिनियम के प्रावधानों के मूल उद्देश्य को विफल कर देगा तथा निर्रथक परिणाम नहीं देगा।

अनुवादित

k) धारा 304बी आपराधिक विधिशास्त्र के प्रमुख सिद्धांतों का एक अपवाद है कि भारतीय विधि में कोई संदिग्ध व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 20 के संरक्षण का अधिकारी है, एवं साथ ही, उसके पक्ष में निर्दोषिता का अनुमान भी है। काल्पनिक कथा की अवधारणा शायद ही आपराधिक विधिशास्त्र पर लागू होती है, किंतु आपराधिक विधि के इस पहलू के विपरीत, विधायिका ने धारा 304 बी के प्रावधानों पर मानित कल्पना की अवधारणा को लागू किया।

l) इस प्रकार की मानित कल्पना जो पूर्वधारणा की रचना करती है, यद्यपि एक खंडनीय अनुमान है तथा पति और उसके रिश्तेदार, अपने बचाव का नेतृत्व करके यह सिद्ध कर सकते हैं कि धारा 304बी के घटक संतुष्ट नहीं हो रहे थें।

एम) विशेष महत्व का तथ्य यह है कि पीड़िता के साथ कथित निर्दयता तथा उत्पीड़न का समय, उसकी मृत्यु का समय एवं क्या दहेज की कथित मांग शादी के संबंध में थी- एक बार जब उक्त घटकों की संतुष्टि हो जाती है तब इसे दहेज हत्या कहा जाएगा एवं विधि की मानित कल्पना के अनुसार पति अथवा रिश्तेदारों का वह अपराध कारित किया हुआ माना जाएगा।

अधिनियम की धारा 113 ख इस प्रकार है:
[113 ख.दहेज मृत्यु के विषय में उपधारणा.--जब प्रश्न यह है कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री की दहेज मृत्यु की है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व ऐसे व्यक्ति ने दहेज की किसी मांग के लिए या उसके संबंध में उस स्त्री के साथ क्रूरता की थी या उसको तंग किया था, तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की थी।

स्पष्टीकरण.--इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "दहेज मृत्यु" का वही अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता, (45/1860) की धारा 304 ख में है।]

18. भारतीय दंड संहिता की धारा 304 ख के अन्तर्गत दहेज मृत्यु की परिभाषा और अधिनियम में उपधारणा प्रदान करने वाली धारा 113 ख में शब्दों के अनुसार, यदि यह सिद्ध हो जाता है कि स्त्री की मृत्यु जलने या शारीरिक चोट के कारण हुई है या उसकी विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों के अलावा हुई है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु से ठीक पूर्व (i) उसके पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा उसके साथ क्रूरता या उत्पीड़न किया गया था, या (ii) ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में था, या (iii) ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न उसकी मृत्यु से ठीक पूर्व हुआ था; तो न्यायालय यह उपधारणा करने के दायित्वाधीन है कि अभियुक्त ने दहेज मृत्यु कारित की थी।

19. ***गजानन दशरथ खराटे बनाम महाराष्ट्र राज्य [2016 (4) एससीसी पृष्ठ 604] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्तिगण ने धारित किया है*** कि मामले को सिद्ध करने का प्रारंभिक भार निस्संदेह

अनुवादित

अभियोजन पक्ष पर होगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के दृष्टिगत, घर के निवासियों पर ठोस स्पष्टीकरण देने का तत्सम्बन्धी भार होगा कि अपराध कैसे कारित किया गया था। घर के लोग चुप रहकर और इस कथित आधार पर कोई स्पष्टीकरण नहीं देकर बच नहीं सकते कि अपना मामला सिद्ध करने का भार पूर्णतः अभियोजन पक्ष पर है और स्पष्टीकरण देने का अभियुक्त पर कोई कर्तव्य नहीं है। प्रस्तर संख्या 13 में, न्यायमूर्तिगण ने निम्नानुसार धारित किया है: -

"13. जैसा कि साक्ष्य से देखा गया है, अपीलकर्ता गजानन और उसके पिता दशरथ और मां मनकर्णबाई एक साथ रह रहे थे। 7-4-2002 को, अपीलकर्ता-अभियुक्त की मां अन्य गांव दहीगांव गई थी। अभियोजन पक्ष ने 7-4-2002 की रात को अपने घर पर अपीलकर्ता की उपस्थिति सिद्ध कर दी है। इसलिए, अपीलकर्ता यह बताने के लिए बाध्य है कि उसके पिता की मृत्यु कैसे कारित हुई। जब हत्या जैसा कोई अपराध घर के अंदर गुप्त रूप से किया जाता है, तो मामले को सिद्ध करने का प्रारंभिक भार निस्संदेह अभियोजन पक्ष पर होगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के दृष्टिगत, अपराध कैसे कारित किया गया, इस विषय में ठोस स्पष्टीकरण देने के लिए घर के निवासियों पर तत्सम्बन्धी भार होगा। घर के लोग चुप रहकर और इस कथित आधार पर कोई स्पष्टीकरण नहीं देकर बच नहीं सकते कि अपना मामला सिद्ध करने का भार पूर्णतः अभियोजन पक्ष पर है और स्पष्टीकरण देने का अभियुक्त पर कोई कर्तव्य नहीं है। घटना की तिथि पर, जब अभियुक्त और उसके पिता दशरथ घर में थे और जब अभियुक्त के पिता को मृत पाया गया, तो यह अभियुक्त को स्पष्टीकरण देना था कि उसके पिता को चोटें कैसे लगीं। जब अभियुक्त अपने पिता की हत्या के विषय में कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सका, तो यह अभियुक्त के विरूद्ध एक प्रबल परिस्थिति है कि वह अपराध के लिए जिम्मेदार है।"

20. अब यह देखना होगा कि मृत्यु से ठीक पूर्व, दहेज की मांग के संबंध में मृतिका को उसके पति और पति के किसी रिश्तेदार द्वारा क्रूरता या उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा था। दहेज मृत्यु के मामले को सिद्ध करने के इस तत्व और भार को ***शेर सिंह @ प्रतापा बनाम हरियाणा राज्य 2015 (89) एसीसी 288 (एससी) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय*** द्वारा विस्तार से विचार किया गया है। ***सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत धारित किया है:***

12. हमारे मत में, जहां एक ही शब्द का उपयोग किसी धारा और/या किसी विधि के विविध खंडों में किया जाता है, तो उसका समान अर्थ लगाया जाना चाहिए, जब तक कि अन्यथा हेतु बाध्यकारी कारण न हों। उचित यह है कि जहां अलग-अलग शब्दों को निकटता में, या एक ही खंड में, या एक ही अधिनियम में प्रयुक्त किया जाता है, यह धारणा होनी चाहिए कि विधायिका का उद्देश्य असमान स्थितियों को चित्रित करना एवं असमान तथा विविध प्रभावों को

अनुवादित

वर्णित करना है। फलस्वरूप, आम तौर पर संसद यह आदेश देने का प्रस्ताव नहीं कर सकती थी कि धारा 304 ख में "दर्शाया गया" शब्द का प्रयोग करने के बावजूद, अभियोजन पक्ष को तथ्यों के एक महत्वपूर्ण अनुक्रम के अस्तित्व को "सिद्ध" करना चाहिए। प्रश्न यह है कि क्या इन दो शब्दों का समानार्थी के रूप में अर्थ निकाला जा सकता है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यदि अभियोजन पक्ष से यह सिद्ध करना अपेक्षित है, जिसका अर्थ हमेशा युक्तियुक्त संदेह से परे होता है, कि दहेज मृत्यु की गई है, तो एक आशंका है कि प्रावधान में उल्लिखित उद्देश्य को शून्य तक कम किया जा सकता है। वैधानिक निर्वचन की इस पद्धति को असाधारण मामलों को छोड़कर निरंतर अस्वीकृत और तिरस्कृत किया गया है, जहां वाक्यविन्यास विषयगत उपबंधों के कुछ शब्दों के सकारात्मक तथा अतिरिक्त निर्वचन की अनुमति देता है।

13. साक्ष्य अधिनियम की धारा 113क में संसद ने पत्नी की आत्महत्या के मामले में पति और उसके परिवार के सदस्यों की दोषिता "उपधारित" किया है। महत्वपूर्ण है कि धारा 113 ख में, जो स्पष्ट रूप से दहेज मृत्यु को संदर्भित करती है, संसद ने पुनः "उपधारणा करना" शब्द प्रयुक्त किया है। हालाँकि, वास्तव में ऐसी ही परिस्थितियों में, पत्नी की अप्राकृतिक मृत्यु की स्थिति में, संसद ने धारा 304ख में पति और उसके परिवार के सदस्यों की दोषिता "मानित" किया है। संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार "उपधारणा करना" शब्द को सत्य माना जाता है, मान लिया जाता है; जबकि "मानित" को मानना, विचार करना; और जबकि "दर्शाना" को इंगित करना और सिद्ध करना, परिभाषित किया जाता है। ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी (5वां संस्करण) में "दर्शाना" शब्द को साक्ष्य द्वारा स्पष्ट या पारदर्शी करना, सिद्ध करना, "मानित" शब्द को कायम रखना, विचार करना, विनिश्यच करना, विश्वास करना, निंदा करना, निर्धारित करना, सत्य मानना; "उपधारणा करना" शब्द को संभावित साक्ष्य पर विश्वास करना या स्वीकार करना परिभाषित किया गया है तथा ब्लैक के अनुसार,"उपधारणा" "विधि का एक वैधानिक या न्यायिक नियम है, जिसके द्वारा एक मौलिक तथ्य का निष्कर्ष उपधारित तथ्य के अस्तित्व को जन्म देता है, जब तक कि उपधारणा का खंडन नहीं किया जाता है।" द कॉन्साइज डिक्शनरी ऑफ लॉ, ऑक्सफोर्ड पेपरबैक्स में सबूत के भार की यह व्यापक लेकिन संक्षिप्त परिभाषा है जो पुनःप्रस्तुत करने योग्य है:

"सबूत का भार: किसी वादबिन्दु पर किसी तथ्य या तथ्यों को सिद्ध करने हेतु मुकदमे में एक पक्षकार का कर्तव्य है । सामान्यतः सबूत का भार उस पक्षकार पर पड़ता है जो किसी विशेष तथ्य (अभियोजन या वादी) की सच्चाई पर बल देता है। प्रत्यायक (या विधिक) भार, जो उस पक्ष द्वारा वहन किया जाता है जो विधि के अनुसार वाद में असफल हो जायेगा यदि वह वाद में तथ्य सिद्ध करने में विफल रहता है; तथा साक्ष्य भार (साक्ष्य प्रस्तुत का भार या आगे बढ़ने का भार), जो किसी वाद के तथ्य के पोषणीय होने

अनुवादित

या न होने के विषय में यह दर्शित करने का कर्तव्य है कि किसी वाद के विचारण हेतु उपयुक्त विषय को उठाने के लिए पर्याप्त सबूत हैं , के मध्य अंतर है।

सामान्य नियम यह है कि प्रतिवादी को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि वह दोषी सिद्ध न हो जाए; इसलिए यह अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि वह अपराध के आपराधिक कृत्य तथा अपराधिक मनोवृत्ति दोनों स्थापित कर अपना मामला सिद्ध करे। इसे यह दर्शाने हेतु पहले साक्ष्य संबंधी भार को संतुष्ट करना होगा कि उसके अभिकथनों के समर्थन हेतु कोई सामग्री है। यदि यह इस भार को संतुष्ट नहीं कर सकता है, तो बचाव पक्ष यह प्रस्तुत कर सकता है या न्यायाधीश यह निर्देश दे सकता है कि उत्तर देने का कोई मामला नहीं है, और न्यायाधीश को जूरी को दोषमुक्त करने का निर्देश देना चाहिए। अभियोजन पक्ष कभी-कभी सबूत के साक्ष्यिक भार को संतुष्ट करने हेतु तथ्य की उपधारणाओं पर विश्वास कर सकता है (उदाहरण के लिए यह तथ्य कि एक स्त्री को यौन क्रिया के दौरान हिंसा का शिकार होना पड़ा था, आमतौर पर बलात्संग के अभियोग का समर्थन करने और यह सिद्ध करने के लिए एक उपधारणा बनाई जाएगी कि उसने सहमति नहीं दी थी)। हालाँकि, यदि अभियोजन पक्ष ने अपने मामले हेतु एक आधार स्थापित कर लिया है, तो उसे अपने मामले को युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध करके प्रत्यायक भार को संतुष्ट करना जारी रखना चाहिए (युक्तियुक्त संदेह से परे सबूत देखें)। न्यायाधीश का यह कर्तव्य है कि वह जूरी को स्पष्ट रूप से निर्देशित करें कि अभियोजन पक्ष को अपना मामला युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध करना होगा; और यदि वह यह स्पष्ट निर्देश नहीं देता है, तो प्रतिवादी दोषमुक्त होने का अधिकारी है।

सामान्य नियम के कुछ अपवाद हैं कि सबूत का भार अभियोजन पक्ष पर है। मुख्य अपवाद इस प्रकार हैं. (1) जब प्रतिवादी अपराध के तत्वों (आपराधिक कृत्य तथा अपराधिक मनोवृत्ति) को स्वीकार करता है, लेकिन एक विशेष बचाव का अभिवचन करता है, तो अपने बचाव को सिद्ध करने का साक्ष्यात्मक भार उस पर होता है। उदाहरण के लिए हत्या के अभियोजन में, जिसमें प्रतिवादी आत्मरक्षा के लिए बचाव का कदम उठाता है, ऐसा हो सकता है। (2) जब प्रतिवादी स्वतः अभिवचन करता है, तो साक्ष्य का भार उस पर होता है। (3) जब प्रतिवादी पागलपन का अभिवचन करता है, तो साक्ष्य और प्रत्यायक दोनों भार उस पर होते हैं। हालाँकि, इस मामले में, यह पर्याप्त है यदि वह संभावनाओं के संतुलन पर अपना मामला सिद्ध करता है (अर्थात उसे जूरी को इस बात के लिए सहमत करना होगा कि इस बात की अधिक संभावना है कि वह सच ही बोल रहा है)। (4) कुछ मामलों में विधि स्पष्ट रूप से प्रतिवादी पर प्रत्यायक भार डालती है; उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति जो सार्वजनिक रूप से आक्रामक हथियार रखता है, वह अपराध का दोषी है जब तक कि वह यह सिद्ध नहीं कर देता कि उसके पास

अनुवादित

इसे ले जाने के लिए वैध अधिकार या उचित कारण था।

14. जैसा कि ऊपर पहले ही उल्लेख किया गया है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख और भारतीय दंड संहिता की धारा 304 ख को उनसे संबंधित विधियों में एक साथ प्रस्तुत किया गया था और इसलिए, आमतौर पर यह माना जाना चाहिए कि संसद ने जानबूझकर धारा 304 ख में 'मानित' शब्द प्रयुक्त किया है ताकि इस प्रावधान को अन्य प्रावधानों से अलग करें। हालाँकि, वास्तविकता में, इन प्रावधानों को एक बोधगम्य और विधिक रूप से स्वीकार्य अर्थ देना लगभग असंभव है, जब तक कि 'दर्शाया गया' शब्द का उपयोग 'सिद्ध करना' के पर्याय के रूप में और 'उपधारणा' शब्द का प्रयोग 'मानित' शब्द के साथ स्वतंत्र रूप से अन्तःपरिवर्तनीय रूप में नहीं किया जाता है। नागरिक और राजकोषीय विधि के दायरे में, परिस्थितियों के एक समूह को दर्शाने हेतु 'मानना' शब्द के सामान्य अर्थ को द्योतित करना जटिल नहीं है, जिसे वास्तव में जो है उसके विपरीत माना जाता है। हालाँकि, आपराधिक विधि में, इस दृष्टिकोण को कण्ठस्थ कर अपनाना अरुचिकर है। त्रावणकोर-कोचीन राज्य बनाम शानमू विलास कैश्यूनट फैक्ट्री, AIR 1953 एससी 333 तथा तमिलनाडु राज्य बनाम अरूरन शुगर्स लिमिटेड (1997) 1 SCC 326 दोनों मामलों में हमारे पास इस न्यायालय की संविधान पीठ का उच्च प्राधिकार है, जिसमें न्यायालय से 'डीम्ड' शब्द के प्रयोग द्वारा विधि को पूर्ण रूप से प्रभावी बनाने और उसे उसके तार्किक निष्कर्ष तक ले जाने हेतु वैधानिक कल्पना के पीछे के उद्देश्य का पता लगाना अपेक्षित है। सामान्य तौर पर यह माना जाता है कि खंडन योग्य और साथ ही अखंडनीय उपधारणा भी होती हैं, अखंडनीय उपधारणा प्रायः एक काल्पनिक प्रावधान के माध्यम से कृत्रिमता को वास्तविकता मान लेती हैं। किसी व्यक्ति को, जिसका अपराध करने का न तो कोई आशय था और न ही अपराध करने में सक्रिय भागीदारी थी, अपराध के लिए दोषी ठहराना आपराधिक विधिशास्त्र के लिए निन्दनीय है। गहन विचार-विमर्श के बाद ही हम भारतीय दंड संहिता की धारा 304 ख में 'दर्शाना' शब्द का अर्थ लगाना अनिवार्य मानते हैं, जो वास्तव में 'सिद्ध' अर्थ धारण करता है। दूसरे शब्दों में, अभियोजन पक्ष को यह सिद्ध करना है कि 'दहेज मृत्यु' हुई है, अर्थात्, (i) कि एक स्त्री की मृत्यु असामान्य परिस्थितियों में उसके जलने या शारीरिक रूप से घायल होने के कारण हुई है, (ii) विवाह के सात वर्ष के भीतर, (iii) और वह अपने पति या पति के किसी रिश्तेदार द्वारा क्रूरता या उत्पीड़न का शिकार हुई हो, (iv) दहेज की किसी भी मांग के संबंध में, और (v) दहेज की मांग के साथ निरंतर आकस्मिक संबंध या जीवंत संबंध बने रहते उसके साथ यह क्रूरता या उत्पीड़न किया गया हो। हम जानते हैं कि 'शीघ्र' शब्द धारा 304ख में उपलब्ध है; परन्तु हम इसके प्रयोग का निर्वचन दिनों या महीनों या वर्षों के संदर्भ में नहीं करना चाहेंगे, बल्कि आवश्यक रूप से यह इंगित करते हुए करना चाहेंगे कि दहेज की मांग पुरानी या अतीत

अनुवादित

की भूल नहीं होनी चाहिए, बल्कि धारा 304ख के अन्तर्गत मृत्यु या भारतीय दंड संहिता की धारा 304बी के अन्तर्गत आत्महत्या का निरंतर हेतुक होनी चाहिए। एक बार जब अभियोजन पक्ष द्वारा इन सहवर्ती लोगों की उपस्थिति स्थापित या दर्शा दी जाती है या सिद्ध कर दी जाती है, यहां तक कि संभावना की प्रमुखता से भी निर्दोषता की प्रारंभिक उपधारणा को अभियुक्त के अपराध की धारणा से बदल दिया जाता है, तब सबूत का भार उस पर स्थानांतरित हो जाता है और उसके अपराध को खारिज करने वाले युक्तियुक्त संदेह से परे साक्ष्य प्रस्तुत करना उससे अपेक्षित होता है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि 'मानित' शब्द का प्रयोग करने से संसद का आशय यह था कि केवल सबूतों की प्रमुखता ही पति या उसके परिवार के सदस्यों को उनके अपराध से दोषमुक्त करने के लिए अपर्याप्त होगी। यह निर्वचन अभियुक्तों को अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का अवसर प्रदान करती है। यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 101 की भी अभिधारणा है। हमारे मत में साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख और भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख का उद्देश्य, सामान्य तौर उस प्रश्न के समाधान हेतु आवश्यक है जो समक्ष उपस्थित होता है, अर्थात - विवाह के सात वर्ष के भीतर एक स्त्री की आत्महत्या या मृत्यु के मामले में साक्ष्य की कमी या अभाव। यदि "दर्शाया गया" शब्द को इसका सामान्य अर्थ दिया जाना है तो इसके लिए अभियोजन पक्ष को केवल न्यायालय में अपना साक्ष्य प्रस्तुत करना होगा। आवश्यक नहीं कि मौखिक बयान के माध्यम से, और इसके बाद अभियुक्त को अभियोजन पक्ष द्वारा अनुसरण किए जाने वाले विस्तृत साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु कहा जाएगा। यह प्रक्रिया सामान्य विधि प्रणालियों के लिए अज्ञात है, और दंण्ड प्रक्रिया संहिता के चिंतन से परे है।

21. यह सुस्थापित सिद्धांत है कि जब एक बार अभियोजन पक्ष ने यह सिद्ध कर दिया कि मृत्यु विवाह के 7 वर्ष के भीतर हुई थी और मृतका/पीड़िता को दहेज की मांग के संबंध में उसकी मृत्यु से ठीक पूर्व उसके पति और उसके पति के रिश्तेदार द्वारा क्रूरता और उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा था, तो सबूत का भार अभियुक्त पर होता है कि वह युक्तियुक्त संदेह से परे अपने अपराध को खारिज करने वाले सबूत प्रस्तुत करे। वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष यह सिद्ध करने में विफल रहा कि मृतिका (तरन्नुम) ने स्वयं फांसी लगाकर आत्महत्या क्यों की।

22. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का अंतिम तर्क यह है कि अपीलकर्ता 10.4.2013 से कारागार में बंद है। अपीलार्थी अत्यंत गरीब व्यक्ति है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मृतका ने फांसी लगाकर आत्महत्या की थी और इसलिए, उसने जेल में बिताई गई अवधि को कम करने की प्रार्थना की। स्पष्ट है कि अपीलकर्ता लगभग 10 वर्षों से जेल में बंद है।

23. अन्य प्रमुख दंड संहिताओं की तरह भारतीय दंड संहिता इसके अन्तर्गत

अनुवादित

विभिन्न अपराधों के लिए दंड विहित करती है। इसमें चार प्रकार के दंडो का प्रावधान है;

(i) मृत्यु; (ii) आजीवन कारावास; (iii) विभिन्न अवधियों हेतु कारावास जो या तो सरल या सश्रम हो सकता है, और (iv) जुर्माना। संहिता के विधायी प्रतिमान पर और प्रकाश डालने से ज्ञात होता है कि कुछ अपराधों को अधिकतम सीमा के साथ न्यूनतम दंड के साथ, जुर्माने के साथ या बिना जुर्माने के दंडनीय बनाया गया है। कुछ अपराधों के लिए यह दंड की ऊपरी सीमा निर्धारित करता है, न्यूनतम दंड को न्यायालय के विवेक पर छोड़ देता है, जो एक दिन का भी हो सकता है।

24. इस प्रकार, संहिता, न्यायपालिका को वैकल्पिक दंड चुनने के लिए बहुत अधिक छूट देती है और व्यापक विवेक प्रदान करती है, यदि संबंधित अपराध को वैकल्पिक दंड के विभिन्न रूपों द्वारा दंडनीय बनाया गया है और उसे इनमें से किसी एक विकल्प को चुनने, अलगाव या संयोजन में, और/या "न्यूनतम" और "अधिकतम" दंड की सीमा के भीतर "दंड" की मात्रा निर्धारित करने के लिए, यदि कोई हो, अपराध हेतु विहित किया गया है। भारत में किसी भी दंडादेश नीति या मानकीकृत मार्गदर्शक सिद्धांतों के अभाव में, एक न्यायालय को वास्तव में दंड निर्धारित करने के लिए छोड़ दिया जाता है, जो उसके मत में, न्याय के उद्देश्यों को पूर्ण करती है। हालाँकि, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करके ऐसा दंडादेश दे जो मामले की परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में 'उचित' हो और अपराधी के अपराध से 'मेल खाती' हो।

25. **गुरुख सिंह बनाम हरियाणा राज्य 2009(11) स्केल 688,** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने न केवल इस बात पर बल दिया कि उचित दंड देना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य और दायित्व है, बल्कि न्यायालय के लिए सजा निर्धारित करते समय विचार करने हेतु आवश्यक विभिन्न कारकों की भी गणना की। वे हैं- (i) हेतुक या पूर्व शत्रुता; (ii) क्या घटना अचानक घटित हुई थी; (iii) आघात या चोट पहुंचाते समय अभियुक्त का आशय/बोध; (iv) चोट की गंभीरता, आयाम और प्रकृति; (v) अभियुक्त की आयु और सामान्य स्वास्थ्य स्थिति; (vi) क्या चोट अचानक हुई लड़ाई में बिना पूर्वचिन्तन के लगी थी; (vii) चोट पहुंचाने के लिए प्रयुक्त शस्त्र की प्रकृति और आकार और जिस बल से हमला किया गया था; (viii) अभियुक्त की आपराधिक पृष्ठभूमि और प्रतिकूल पूर्ववृत्त; (ix) अभियुक्त के विरूद्ध लंबित अन्य आपराधिक मामलों की संख्या; (x) परिवार के सदस्यों या करीबी रिश्तेदारों के बीच हुई घटना, और (xi) घटना के बाद अभियुक्त का आचरण और व्यवहार, क्या अभियुक्त ने घायल/मृतक को तुरंत अस्पताल पहुंचाया ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि उसे उचित चिकित्सा उपचार मिल जाए? साथ ही, शीर्ष न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ये कारक केवल

अनुवादित

उदाहरणात्मक हैं, व्यापक नहीं। ये कुछ प्रासंगिक कारक हैं जिन्हें दंड प्रदान करने वाले न्यायालय को ध्यान में रखना आवश्यक है। स्पष्ट है, प्रत्येक मामले को उसके विशेष परिप्रेक्ष्य से देखा जाना चाहिए। न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अभियुक्त को उचित दंड मिले और यह दोषी द्वारा किए गए अपराध की गंभीरता के अनुरूप होनी चाहिए। "अपराध" और "दंड" के बीच अनुपात आपराधिक न्याय प्रणाली के स्वीकृत लक्ष्यों में से एक है। अपराध और दंड के बीच अनुपात के सिद्धांत के लिए अनिवार्य रूप से न्यायालय को कम करने वाली और गंभीर करने वाली परिस्थितियों की एक बैलेंस-शीट तैयार करने और उसके आधार पर "दंड" निर्धारित करने की आवश्यकता होती है। दण्ड प्रक्रिया में मनमानेपन को दूर करने (या कम से कम करने) हेतु आनुपातिकता का सिद्धांत विकसित किया गया है।

26. **जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2009(13) स्केल 578** के मामले में, शीर्ष न्यायालय ने और बल दिया कि उचित दंड देना वह विधि है जिससे न्यायालय अपराधियों के विरूद्ध न्याय के लिए समाज की पुकार का उत्तर देती हैं। न्यायालय ने कहा, न्याय की मांग है कि न्यायालयों को अपराध के अनुरूप दंड देनी चाहिए ताकि न्यायालयें अपराध के प्रति सार्वजनिक घृणा और समाज की अंतरात्मा को प्रतिबिंबित कर सकें। इसने न्यायालयों को इस बात की भी याद दिलायी कि दंड में संशोधन करते समय, जब भी किसी मामले की तथ्यात्मक स्थिति की आवश्यकता हो, उन्हें कठोर होने या दया का स्वभाव अपनाने की जरूरत है। अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और कारित की गयी, अपराध करने का आशय, अभियुक्त का आचरण, प्रयोग किए गए शस्त्रों की प्रकृति तथा अन्य उपस्थित परिस्थितियां न्यायालय के लिए "उचित' दंड निर्धारित करने में आवश्यक संकेतक हो सकती हैं।

27. जहां तक दंड के प्रश्न का विषय है, यह विद्वान विचारण न्यायाधीश के विवेक का मामला है। यह सुस्थापित विधि है कि जब विद्वान विचारण न्यायाधीश को विवेकाधिकार दिया गया है जो यदि मनमाने ढंग से या विकृत रूप से नहीं बल्कि स्वीकृत न्यायिक मानदंडों द्वारा उचित रूप से प्रयोग
किया गया है, तो अपीलीय न्यायालय को अभियुक्त को परेशान करने हेतु इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जब तक कि बहुत प्रबल कारण न हों, जिन्हें कम दंड के लिए निर्णय के स्तर पर प्रकट नहीं किया जाता है।

28. विधि की उपरोक्त प्रस्थापनाओं और वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मेरा मत है कि अपीलकर्ता 10.4.2013 से कारागार में है और इस तरह लगभग 10 साल पहले ही बीत चुके हैं। इसलिए, न्यायहित में, भारतीय दंड संहिता की **धारा 304-बी**

अनुवादित

भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत समस्त छूट देते हुए धारा 304-बी के अन्तर्गत अधिकतम दंड 14 वर्ष से घटाकर 10 वर्ष किया जाता है। लेकिन भारतीय दंड संहिता की धारा 498-ए, 201 एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अन्तर्गत दिया गया दंड अपरिवर्तित रहेगा। सभी दंड एक साथ प्रभावी रहेंगे। यह स्पष्ट किया गया है कि जुर्माने का खंड अपरिवर्तित रहेगा।

29. जेल प्राधिकरण उसकी कारावास की अवधि की गणना छूट के साथ करेगा और जेल मैनुअल के अनुसार इसका निर्णय करेगा।

30. **इस प्रकार दोषसिद्धि के बिंदु पर अपील खारिज की जाती है एवं दंडादेश के बिंदु पर आंशिक रूप से स्वीकृति दी जाती है।**

31. विचारण न्यायालय का अभिलेख वापस प्रेषित किया जाये। इस आदेश की एक प्रति संबंधित न्यायालय के साथ-साथ जिला जेल अधीक्षक, सीतापुर को भी आवश्यक अनुपालन हेतु भेजी जाये।

(2023) 2 ILRA 659

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 18.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरविन्द कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव,

आपराधिक अपील संख्या 3426/2010

बब्लू@रंजीत सिंह

... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री अपुल मिश्रा, श्री पी.एन. मिश्रा, श्रीन रघुवंश मिश्रा, श्री सी.एल. चौधरी (ए.सी.), श्री अनिल कुमार सिंह बिशेन

अधिवक्ता प्रतिवादी: सरकारी वकील, श्री आई.के. उपाध्याय

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या - एक आम का बाग वीरेंद्र सिंह (आरोपी के पिता), दूध नाथ सिंह और मृतक कैलाश के संयुक्त स्वामित्व में था - आम रुपये 1,500 में बेचे गए थे , कैलाश (मृतक) को रु. 600, दूध नाथ सिंह को रु. 500, और आरोपी बब्लू सिंह को रु. 400 प्राप्त हुए- बब्लू ने अपने हिस्से से असंतुष्ट होकर कैलाश के घर के प्रवेश द्वार को बांस के डंडे से रोक दिया - कैलाश के लौटने पर बब्लू ने उसकी गर्दन और छाती पर 'सब्बल' से हमला किया, जिसके परिणामस्वरूप कैलाश की मृत्यु हो गई - प्रत्यक्षदर्शी की गवाही और आरोपी द्वारा पहुंचाई गई चोटें डॉक्टर की गवाही के अनुसार मौत का कारण बनने के लिए प्रकृति की सामान्य घटनाओं के लिए पर्याप्त थीं - धन का असमान वितरण , जो वास्तव में आरोपी-अपीलकर्ता को परेशान करता था और अपराध करने के आशय के रूप में कार्य करता था - अपीलकर्ता का कार्य पूर्व नियोजित था और यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अचानक

अनुवादित

झगड़े का मामला था, आरोपी को अपने स्वयं के दुष्कर्म का लाभ नहीं मिल सकता है, जो अकेले है मृतक की मृत्यु के रूप में परिणत हुआ - संकट की उत्पत्ति किसी और ने नहीं बल्कि अभियुक्त ने स्वयं मृतक के घर से आने-जाने में बाधा डालकर की थी - उसके घर के सामने बांस की बाधा डालकर अभियुक्त ने सब्बल से मृतक का सिर और छाती पर वार किया - डॉक्टर ने सही राय दी है कि जो चोट लगी है वह स्वाभाविक रूप से मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थी। (पैरा 28, 36, 37, 40)

निरस्त। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति अरविन्द कुमार मिश्रा-I,
&
माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य के सरकारी अधिवक्ता को सुना एवं रिकार्ड पर लाई सामग्री का अवलोकन किया गया। विशेष/अपर सत्र न्यायाधीश बलिया द्वारा **सत्र परीक्षण संख्या 187/2008 मु.अ.सं.-93/2008,** पारित निर्णय एवं दोषसिद्ध आदेश दिनांक 01.05.2010 के विरुद्ध अपील की गयी है, प्र.सू.रि. अन्तर्गत धारा 302 भा.द.वि. थाना-नगरा, जनपद-बलिया में दर्ज करायी गयी थी, इस मामले में अपील को भा.द.वि. की धारा 302 के अन्तर्गत आजीवन कारावास की सजा साथ ही साथ 3000 रु. का जुर्माना भी लगाया गया एवं जुर्माना न देने पर दो साल की अतिरिक्त कठोर कारावास की सजा भी सुनाई गयी।

इस मामले में रिकार्ड पर लिये गये तथ्यों से पता चलता है कि श्रीमती सुमन सिंह पत्नी मृतक कैलाश सिंह द्वारा आरोपी बबलू उर्फ रणजीत पुत्र श्री वीरेन्द्र सिंह निवासी ग्राम देवरिया, थाना नगरा, जनपद बलिया के विरुद्ध लिखित रिपोर्ट प्रातः 10.00 बजे दर्ज करायी। घटना जो 10.06.2008 को घटित हुयी, पुलिस स्टेशन से लगभग 4 किलोमीटर उ.प्र. में स्थित है सूचनाकर्ता के अनुसार वहाँ एक आम का बाग था जो साझेदारी का था, जो 1500/- रु. में बेचा गया था जिसमें से 600/- रु. कैलाश सिंह को 500/- रु. दूधनाथ सिंह को तथा 400/- रु. बबलू उर्फ रणजीत सिंह (पुत्र वीरेन्द्र सिंह) को मिलेंगे और इसी अनुसार पैसों का वितरण किया भी गया था। बबलू उर्फ रणजीत सिंह को 100/- रु. कम मिला था इस बात की उसे पीड़ा थी, इसी कारण उसने मृतक कैलाश सिंह के घर पर के सामने मिट्टी पर बाँस लगाकर उसे घर में प्रवेश करने से रोकने का प्रयास किया गया सूचनाकर्ता के पति मृतक कैलाश सिंह जब अपने खेत से घर लौटा तो उसने ये बाधा देखी तथा उसे हटाने का प्रयास किया तभी अपीलकर्ता बबलू उर्फ रणजीत सिंह घटना स्थल पर हाथों में सब्बल लेकर पहुँच गया था उसने मृतक कैलाश सिंह के गर्दन पर वार करते हुये हमला कर दिया, अपीलकर्ता द्वारा मृतक के छाती पर सब्बल से प्रहार किया गया जिससे मृतक जमीन पर गिर गया, सूचनाकर्ता एवं अन्य सह-ग्रामीणों के द्वारा

अनुवादित

मृतक को अस्पताल ले जाने का प्रयास किया गया परन्तु रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गयी, घटना दिनांक 10.06.2008 की प्रातः 09:00 बजे की बतायी जा रही है। अपीलकर्ता बबलू उर्फ रणजीत सिंह के विरुद्ध प्र.सू.रि. अन्तर्गत धारा-304 भा.द.वि., **मु.अ.सं. 93/2008** पुलिस स्टेशन-नगरा, जनपद-बलिया में दर्ज करायी गयी। प्र.सू.रि. में प्रविष्ठ तथ्यों के आधार पर उक्त दिनांक के क्रमांक 20 पर सम्बन्धित जनरल डायरी में **मु.अ.सं. 93/2008** अन्तर्गत धारा 304 भा.द.वि. पर प्रासंगिक प्रविष्ठी प्रातः 10:00 बजे की गयी। परिणामस्वरूप विवेचना पी.डब्ल्यू-6 विजय बहादुर सिंह को सौंप दी गयी, विवेचना प्रारम्भ हुयी पी.डब्ल्यू-7 रमेश चन्द्र मिश्रा घटना स्थल पर गये वहाँ 12:05 बजे पी.एच.सी. गये तथा सभी प्रासंगिक कागजात तैयार किया जांच रिपोर्ट के साथ-साथ आर.आई. नमूना सी.एम.ओ. को रिपोर्ट भी तैयार किया जिसे पूर्वोक्त गवाहों द्वारा साबित भी किया गया, फोटोनाश, पुलिस फार्म न.-13, प्रदर्श का-8 से (प्रदर्श का-12) जांच रिपोर्ट तैयार करने के बाद कैलाश सिंह के शव को पोस्टमार्टम हेतु सदर अस्पताल बलिया भेजा गया जहाँ चिकित्सा अधिकारी डा. पी.के. सिंह द्वारा दिनांक 10.06.2008 को सायं 05:00 बजे शव विच्छेदन किया गया जिसमें मृत्युपूर्व 2 चोटों का उल्लेख किया गया-

1. *खोपड़ी के पश्चकपाल क्षेत्र में दाहिनें कान से दूर, 4 सेमी.×1 सेमी. फटा हुआ घाव जिसकी गहराई 6.2 सेमी. पायी गयी।*
2. *छाती के दाहिनें निपल स्तर पर पंचर घाव 4 सेमी.×3 सेमी. × 2 सेमी. दाएं फेफड़े के फुस्फुस आवरण पर घार के साथ 3, 4 चीर फैक्चर जो औसत दर्जे का पाया गया, वक्षगुहा पंचर घाव के अनुरूप पूर्ण रक्त (2½) ली. और रक्त के थक्के।*

मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व छाती की चोट के परिणामस्वरूप सदमा एव रक्तस्राव बताया गया, शवविच्छेदन की रिपोर्ट को चिकित्सक पी.डब्ल्यू.-5 ने प्रदर्श के.ए.-2 के रूप में प्रमाणित किया है। विवेचना अधिकारी पी.डब्ल्यू.-6 घटनास्थल पर गये निरीक्षण किया गवाहों एवं सूचनाकर्ता के बयान के आधार पर साइट प्लान तैयार किया तथा केस डायरी में प्रविष्ठ किया अभियोजन पक्ष के विभिन्न गवाहों का बयान दर्ज किया, साइट प्लान प्रदर्श का-5 के अतिरिक्त का-6 आरोप पत्र (का-6) भी दायर किया। आरोप पत्र न्यायालय में प्रेषित हो जाने के बाद अभियोजन पक्ष द्वारा सबूतों के आधार पर आरोप लगाया गया, आरोपी के विरुद्ध भा.द.वि. की धारा-302 के अन्तर्गत प्रथम दृष्टया मामला पाया गया आरोपी पर लगाये गये आरोप इस प्रकार हैं-

"कि दिनांक 10.06.2008 को प्रातः 10:00 बजे ग्राम-देवरिया, थाना-नगरा, जनपद-बलिया में मृतक कैलाश सिंह की गर्दन एवं छाती पर सब्बल से हमला किया एवं जनबूझकर कैलाश सिंह की मृत्यु

अनुवादित

कारित की, ऐसा कृत्य भा.द.वि. की धारा-302 के अन्तर्गत अपराध है और न्यायालय की संज्ञान में है"

वैकल्पिक रूप से, अभियुक्त पर निम्नानुसार आरोप लगाया गया-

आपने दिनांक 10.06.2008 को लगभग प्रातः 09:00 बजे मृतक कैलाश सिंह की छाती एवं गर्दन पर सब्बल से हमला किया और ग्राम-देवरिया, थाना-नगरा, जनपद-बलिया में इस घटना को अंजाम दिया जो कैलाश सिंह की मृत्यु का कारण बना इस प्रकार आपने गैर इरादतन हत्या का अपराध किया है जो भा.द.स. की धारा-304 के अन्तर्गत दण्डनीय है, जो न्यायालय के संज्ञान में है।

आरोप को हिन्दी में पढ़कर आरोपी को सुनाया एवं समझाया गया आरोपी द्वारा इस बात से इन्कार किया गया एवं परीक्षण मांग की गयी। परिणामस्वरूप अभियोजन पक्ष द्वारा गवाहें के बयान आवश्यक था अभियोजन पक्ष द्वारा सभी सात गवाह पेश किए, पी.डब्ल्यू-1 सुमन सिंह हैं जो मृतक की पत्नी है, पी.डब्ल्यू-2 दूधनाथ सिंह हैं जो मृतक का भाई है, पी.डब्ल्यू-3 विश्वनाथ सिंह है, ये तीनों गवाह तथ्यात्मक गवाह हैं जो घटना के समय उपस्थित होने का दावा करते हैं, पी.डब्ल्यू-4 डा. पी.के. सिंह हैं जो चिकित्सक हैं तथा जिन्होंने शव का विच्छेदन कराया है। पी.डब्ल्यू.-5 कांस्टेबल भगवान राम हैं जिन्होंने 10.06.2008 को थाना-नगरा में सूचनाकर्ता सुमन सिंह पत्नी मृतक कैलाश सिंह द्वारा प्रस्तुत की गयी लिखित रिपोर्ट को प्रमाणित किया तथा चेक एफ.आई.आर. तैयार किया। प्रदर्श-के.ए. और सम्बन्धित (प्रदर्श-के.ए.-4), पी.डब्ल्यू-6 एस.आई. विजय बहादुर सिंह जो विवेचना अधिकारी हैं उन्होंने विवेचना पूरी करके आरोप पत्र प्रेषित किया है, पी.डब्ल्यू-7, एल.आई. रमेश चन्द्र मिश्रा हैं जिन्होंने मृतक कैलाश सिंह की जांच रिपोर्ट (प्रदर्श का-7) तैयार किया तथा साबित किया है।

अभियोजन पक्ष के गवाहों का बयान हो जाने के उपरान्त आरोपी बबलू का बयान दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा-313 के अन्तर्गत दर्ज किया गया जिसमें उसने आरोपों से इन्कार किया तथा मामले में झूठा फँसाये जाने की बात कहीं है। ऐसा किये जाने के पीछे का कारण आरोपी ने बताया कि सूचनाकर्ता तथा दूधनाथ सिंह के बीच अवैध सम्बन्ध था जिसकी जानकारी मुखबिर को थी जिसने इसका विरोध भी किया था उसने यह भी बताया कि सूचनाकर्ता अपने पति से उम्र में 20 वर्ष छोटी थी और मृतक को जान से मारने के लिये ही उसने ऐसा किया है उन दोनों ने मिलकर मृतक की हत्या की है तथा आरोपी को इस माममले में झूठा फँसाया गया है।

बचाव पक्ष द्वारा डी.डब्ल्यू-1 मुकुर धन का परीक्षण कराकर साक्ष्य बन्द कर दिया गया मामले की सुनवाई गुण-दोष के आधार पर की गयी तथा तथ्यों के विश्लेषण के बाद भा.द.सं. की धारा-302 के अन्तर्गत दोषसिद्धी के उपरोक्त निष्कर्ष को वापस ले लिया गया तथा 01.05.2010 के निर्णय और आदेश में एक वर्ष के लिये अतिरिक्त

अनुवादित

व्यक्तिक्रम कारावास जुर्मानें के लिये तथा आजीवन कारावास की सजा सुनाई। परिणामस्वरूप अपीलकर्ता के लिये विद्वान न्यायमित्र का यह दावा है कि जिन गवाहों ने घटना को देखने का दावा किया है संदिग्ध हैं, यदि पी.डब्ल्यू-1 की गवाही मान ली जाय तो ऐसा लगता है कि वह सत्य नहीं बोल रही है पी.डब्ल्यू-1 तथा पी.डब्ल्यू-2 के बीच अवैध सम्बन्ध बन गये थे जिसे अपीलकर्ता द्वारा देख लिया गया था। विद्वान न्यायमित्र द्वारा आग्रह किया गया कि सूचनाकर्ता ने सूचना 10.06.2008 को दर्ज करायी तथा हस्ताक्षर उसी दिन दोपहर में किया था। इसके अलावा पी.डब्ल्यू-4 की गवाही का सवाल है यह अपने आप में संकेत है कि मृतक की मृत्यु गिरने के कारण हुयी होगी इसके लिये केवल अपीलकर्ता को कृत्य के लिये जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। रिकार्ड पर दी गयी गवाही आत्मविश्वास को प्रेरित नहीं करती है इसके विपरीत श्री अश्वनी त्रिपाठी ए.जी.ए. ने इस विवाद का पुरजोर विरोध किया तथा कहा कि जहाँ तक पी.डब्ल्यू-1 तथा पी.डब्ल्यू-2 की गवाही का सवाल है यदि तथ्य समग्र रूप से देखा जाय तो साबित होगा कि यह कुल उनके द्वारा किया गया था जिसका कारण अवैध सम्बन्ध था और वे फँसाये गये थे।

जहाँ तक घटना के समय मौके पर तथ्य के दोनों गवाहों की उपस्थिति का सवाल है एफ.आई.आर. में शामिल घटना विवरण के अनुरूप है पी.डब्ल्यू-4 ने बयान में कहा चोट प्रातः 09:00 बजे लगी हो सकती थी इसके अतिरिक्त विद्वान सरकारी अधिवक्ता संक्षेप में कहा कि तथ्यों और परिस्थितियों का संचयी अध्ययन गवाही के आधार पर यथोचित रूप से संदेह से परे साबित हुआ कि अभियुक्त का अपराध है। घटना का कारण पैसों का बटवारा था जिसमें बबलू उर्फ रणजीत सिंह को कम पैसा मिलने के कारण वह नाराज हो गया था और उसने इस घटना को अंजाम दिया जिसकी रिपोर्ट दिनांक 10.06.2008 को प्रातः 10:20 बजे अंकित करायी।

उपरोक्त तथ्य एवं परिस्थितियों में यदि पोस्टमार्टम रिपोर्ट का अवलोकन करें तो शव विच्छेदन में ज्ञात चोटें मृत्यु के कारण की पुष्टी करती हैं जो दिनांक 10.06.2008 की ही है और मृत्यु का कारण छाती की चोट, सदमा एवं रक्तस्राव है, पी.डब्ल्यू-1, पी.डब्ल्यू-2 और पी.डब्ल्यू-3 की गवाही से यह स्पष्ट होता है कि उनकी गवाही उसी दायरे तक है जहाँ तक कि विवाद की उत्पत्ति का तथ्य, हमें विश्वनाथ सिंह पी.डब्ल्यू-3 की स्वतंत्र गवाही से भी पुष्टी जो घटनास्थल पर उपस्थिति का दावा करता है तथा उस समय स्नान कर रहा था, यह अस्वीकृत है कि पी.डब्ल्यू-1 एवं पी.डब्ल्यू-2 दोनों ने षड़यन्त्र रचा था गुप्तरूप से कैलाश सिंह की हत्या कर दी।

अभियोजन पक्ष के गवाहों में डी.डब्ल्यू-1 की गवाही से भी इस बात का खण्डन मिलता है कि उनके बीच अवैध सम्बन्ध था इसलिए डी.डब्ल्यू.-1 की गवाही से हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते हैं कि वास्तव में सुमन सिंह एवं दूधनाथ सिंह के बीच कोई अवैध सम्बन्ध था और उन्होंने

अनुवादित

हत्या की साजिश रची और हत्या कर दी, यह ध्यान देने योग्य बात यह है कि आरोपी ने अपने बयान अन्तर्गत धारा 313, दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रश्न संख्या-16 के उत्तर में अवैध सम्बन्ध के बिन्दु पर यही दावा किया है कि अवैध सम्बन्ध मौजूद थे, सूचनाकर्ता महिला अपने पति से 20 वर्ष छोटी थी हालांकि इस सम्बन्ध में मौखिक दावों और स्पष्टीकरण के अलावां रिकार्ड पर कुछ भी ठोस तथ्य सामने नहीं आया। पी.डब्ल्यू-3 घटना में एक स्वतंत्र गवाह के रूप में अपीलकर्ता को मृतक के घर के सामने बाँस की बाधा डालकर अवरुद्ध करते हुये देखा गया था तथा जब कैलाश सिंह लौटा तो उसने बाधा को हटाने का भी प्रयास किया उसी समय अपीलकर्ता रणजीत सिंह अपने हाथ में सब्बल लेकर आया तथा मृतक पर सब्बल से प्रहार किया जिस कारण मृतक गिर गया, जहाँ तक पोस्टमार्टम जांच रिपोर्ट में उल्लिखित मृत्युपूर्व चोट के साथ पढ़ने पर आँखों देखी गवाही का प्रश्न है अभियुक्त द्वारा पहुँचाई गयी चोटें मृत्युपूर्व चोटों के विवरण के अनुरूप है, पी.डब्ल्यू-3 डा. पी.के. सिंह की गवाही अभियोजन मामले को और भी बल देता है कि दिनांक 10.06.2008 को प्रातः 09:00 बजे के आसपास लगी चोट सामान्य क्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिये पर्याप्त है, एफ.आई.आर. सुमन सिंह द्वारा दर्ज करायी गयी जिसे चेक एफ.आई.आर. बनाने वाले भगवान राम (पी.डब्ल्यू-5) द्वारा प्रमाणित किया गया है तथा मामला मु.अ.सं. 93/2008 अन्तर्गत धारा-304 भा.द.वि. में थाना-नगरा, जनपद-बलिया में दर्ज है तथा सामान्य डायरी में प्रविष्ठ है।

यह घटना पूर्व नियोजित थी तथा यह नहीं कहा जा सकता है कि अचानक हुये झगड़े का मामला था संकट की उत्पत्ति स्वयं आरोपी ने की थी तथा जब मृतक बाँस हटा रहा था तब आरोपी द्वारा यह अपराध किया इसी कारण चिकित्सक द्वारा यह सही कहा गया कि मृत्यु पूर्व कारित चोटें मृत्यु का कारण बनने के लिये पर्याप्त हैं, यह अचानक हुये झगड़े का मामला नहीं हो सकता क्योंकि आरोपी को स्वयं के कुकर्म का लाभ नहीं मिल सकता क्योंकि विवेचना अधिकारी द्वारा साइट प्लान (प्रदर्शन-के.ए.-5) को साबित किया गया है जिसमें एक्स को उस जगह के रूप में दर्शाया गया है जहाँ सब्बल का वार किया गया था। रिकार्ड पर मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि विचारण न्यायालय ने दोषसिद्धी के निष्कर्ष को दर्ज करना उचित ठहराया था इस प्रकार दिनांक 01.05.2010 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा आजीवन कारावास की सजा सुनाई गयी थी, विशेष/अपर सत्र न्यायाधीश, बलिया द्वारा पारित निर्णय और सजा का आदेश 01.05.2010 को बरकरार रखा जाता है तथा अपील गुणहीन होने के कारण खारिज की जाती है। अपीलकर्ता कारावास में हैं सत्र न्यायालय द्वारा दी गयी कारावास की सजा का शेष भाग कारावास में व्यतीत करेगा।

अनुवादित

इस निर्णय/आदेश की एक प्रति आवश्यक सूचना और अनुवर्ती कार्यवाही के लिये सम्बन्धित न्यायालय को प्रमाणित की जाय।

(2023) 2 ILRA 668

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 20.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1165/2013

सर्वजीत एवं अन्य

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री मनीष तिवारी, श्री अश्विनी कुमार अवस्थी, श्री अशोक कुमार सिंह, श्री निर्भय सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 156(3), 161 और 319 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498-ए और 306 - आपराधिक पुनरीक्षण - आदेश जिसके विरुद्ध विचारणीय न्यायालय ने अभियोजन के एक आवेदन पर अतिरिक्त आरोपी को तलब किया - वैधता- आईपीसी की धारा 498-ए और 306 के तहत अपराध - एफआईआर - एफआईआर का संस्करण कि पीड़िता अपने पति की प्रताड़ना से तंग आकर आत्महत्या करने के लिए अपने दो नाबालिग बेटों के साथ कुएं में कूद गई थी - प्रस्तावित आरोपी का नाम एफआईआर में उल्लेखित नहीं है - पीड़िता और वादी ने प्रस्तावित आरोपियों को उनकी कथनों में नहीं संबोधित किया - प्रस्तावित आरोपियों को प्रथम बार न्यायालय के समक्ष कथन में लिप्त किया - न्यायालय ने पाया कि, निचली अदालत ने सीआरपीसी की धारा 319 के तहत आवेदन को अनुमति देने में भौतिक रूप से गलती की है - इसमें अभियोजन पक्ष में अंतर्निहित विरोधाभास है और विचारणीय न्यायालय भी अभियुक्तों को बुलाने के लिए आवश्यक अपनी संतुष्टि को दर्ज करने में विफल रहा था - इसलिए, अतिरिक्त अभियुक्तों को सम्मन आदेश कानून संशोधन की दृष्टि से टिकाऊ नहीं है। (पैरा-9,10)

पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. सुनील त्यागी बनाम एनसीटी दिल्ली सरकार, (2021) 0 सुप्रीम (डेल) 831,
2. पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट एवं अन्य, (1998) 5 एससीसी 749,
3. धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2009) 2 एससीसी 370,
4. विष्णु अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2011) 14 एससीसी 813,
5. मधु लिमये और अन्य बनाम अज्ञात, (1969) 1 एससीसी 292,

अनुवादित

6. इंदर मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य, (2007) 12 एससीसी 1,
7. अदालत प्रसाद बनाम रूपल जिंदल और अन्य, (2004)
7 एससीसी 338,
8. के.एम. मैथ्यू बनाम केरल राज्य, (1992) 1 एससीसी 217,
9. मो. जाकिर बनाम शबाना और अन्य, (2018 खंड 15 एससीसी 316),

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

नोटिस तामील होने के बावजूद विपक्षी संख्या 2 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

यह आपराधिक पुनरीक्षण, सत्र परीक्षण संख्या 755 वर्ष 2011(राज्य बनाम राम बाबू) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 24, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.02.2013 के विरुद्ध है। आक्षेपित आदेश के द्वारा, विद्वान विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अभियोजन के एक आवेदन पर पुनरीक्षणवादी-अभियुक्त को सह-अभियुक्त राम बाबू के साथ भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498ए और 306 के अंतर्गत अपराध के लिए विचारण का सामना करने के लिए बुलाया है।

पत्रावली के परिशीलन से पता चलता है कि कथित तौर पर दिनांक 05.06.2002 को लगभग 2:30 बजे हुई घटना के संबंध में विपक्षी संख्या 2 के भाई रामेंद्र सिंह द्वारा दिनांक 05.06.2002 को शाम 04:00 बजे एक प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी। यह कथित किया गया था कि शिकायतकर्ता की बहन की शादी वर्ष 1993 में राम बाबू सिंह के साथ हुई थी। चूंकि शिकायतकर्ता गरीब व्यक्ति था, इसलिए पर्याप्त दहेज नहीं दिया गया था। विगत दो वर्षों से उसकी बहन पर जंजीर की चोरी का आरोप लगाकर प्रताड़ित किया जा रहा था। आज उसे पीटा गया जिसके कारण वह अपने दो नाबालिग बेटों के साथ कुएं में कूद गयी। उसके दोनों बेटों की मृत्यु हो चुकी है जबकि बहन को बचा लिया गया है। प्रश्न/उत्तर में इस प्राथमिकी में यह भी उल्लेख किया गया है कि शिकायतकर्ता की बहन का नाम तारा है और उसे उसके पति राम बाबू द्वारा प्रताड़ित किया जा रहा था, जिसने उसे गोलू और मोलू नामक अपने दो बेटों, उम्र करीब पांच और तीन वर्ष, के साथ आत्महत्या करने के लिए उकसाया। जांच के बाद राम बाबू सिंह के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया। विचारण के दौरान, पीड़िता/अभियोजन द्वारा एक आवेदन अंतर्गत धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता दायर किया गया था जिसमें कहा गया कि पीड़िता का विवाह राम बाबू के साथ हुआ था और उनके विवाह से दो पुत्र, गोलू उम्र लगभग 5 वर्ष और मोलू उम्र लगभग 3 वर्ष पैदा हुए थे। दहेज की मांग को लेकर उसे पति राम बाबू, देवर शिव बाबू, सास-ससुर सोना

अनुवादित

देवी और सर्वजीत सिंह द्वारा परेशान और प्रताड़ित किया जा रहा था। दिनांक 05.06.2002 को प्रताड़ना से तंग आकर वह अपने पुत्रों के साथ मायके जा रही थी तब उसके पति एवं सास ने उसे कुएँ में धकेलने का प्रयास किया जबकि उसके ससुर एवं देवर उन्हें समझा रहे थे। पति और सास के धक्का देने से वह अपने दोनों बेटों के साथ कुएं में गिर गई। उपरोक्त घटना के संबंध में मुकदमा अपराध संख्या 194/2002 अंतर्गत धारा 498 ए और 306 भारतीय दंड संहिता, थाना सराय इनायत, जिला इलाहाबाद दर्ज किया गया था, जिसमें उल्लेख किया गया है कि घटना में सास-ससुर, पति और देवर शामिल थे। इस तथ्य की, धारा 156 (3) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दायर आवेदन और विचारण न्यायालय के समक्ष दर्ज पीड़िता के बयान, में भी पुष्टि होती है। उक्त आधार पर सर्वजीत सिंह, सोना देवी एवं शिव बाबू को बुलाने की प्रार्थना की गयी। आक्षेपित आदेश द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय ने आवेदन को स्वीकार कर लिया है और पुनरीक्षणवादी-अभियुक्त को धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत तलब किया है। पुनरीक्षण वादियों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्राथमिकी केवल तारा देवी के पति राम बाबू सिंह के खिलाफ दर्ज की गई थी और यह आरोप लगाया गया था कि वह अपनी पत्नी तारा देवी को प्रताड़ित कर रहे थे, उनकी प्रताड़ना के कारण वह अपने दो बेटों गोलू और मोलू के साथ कुएं में कूद गई। धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दर्ज बयान में प्रथम शिकायतकर्ता रामेंद्र सिंह और तारा देवी ने प्राथमिकी के उपरोक्त आरोपों को दोहराया और पुनरीक्षणवादी-आरोपियों का नाम नहीं लिया है। आरोप पत्र भी केवल राम बाबू सिंह के विरुद्ध ही दाखिल किया गया था। विचारण न्यायालय के समक्ष बयानों में, प्रथम शिकायतकर्ता रामेंद्र सिंह, अभियोजन साक्षी-1 और तारा देवी, अभियोजन साक्षी-2 ने पुनरीक्षणवादी-अभियुक्त को फंसाते हुए एक अलग कहानी पेश की है। पूर्व के बयानों में इस बात का विशेष उल्लेख है कि पीड़िता तारा देवी अपने पति राम बाबू सिंह के साथ अलग रहती है। यह भी तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश यह नहीं दर्शाता है कि पुनरीक्षणवादी को तलब करने के लिए कोई बाध्यकारी कारण मौजूद हैं। विचारण न्यायालय ने अपनी संतुष्टि भी दर्ज नहीं की है कि साक्ष्यों के आधार पर पुनरीक्षणवादियों ने कथित अपराध किया है। आक्षेपित आदेश सामान्य तरीके से पारित किया गया है। उन्हें तलब करने हेतु कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है और उनके विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता है। निचली अदालत द्वारा पारित आदेश पूरी तरह से अवैध, विकृत और कानून के स्थापित सिद्धांत के विरुद्ध है।

विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यद्यपि पुनरीक्षणवादियों का नाम प्राथमिकी में नहीं था, लेकिन शिकायतकर्ता और पीड़िता ने न्यायालय के समक्ष अपने बयान में उन्हें शामिल किया है। अपराध में उनकी संलिप्तता के बारे में विशिष्ट कथन हैं। विद्वान विचारण

अनुवादित

न्यायालय पत्रावली पर मौजूद साक्ष्यों का विश्लेषण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि पर्याप्त सबूत हैं और उसने सम्मन आदेश पारित किया है जो न्यायसंगत और उचित है।

हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एआईआर 2014 एससी 1400 के मामले में संविधान पीठ ने धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्तियों को लागू करने के लिए परीक्षण निर्धारित किया है। प्रासंगिक पैरा नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"98. धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयमित ढंग से और केवल उन्हीं मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियों के अनुसार ऐसा आवश्यक हो। इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल जब न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्यों में किसी व्यक्ति के विरुद्ध मजबूत और ठोस सबूत हों, तभी ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, न कि असावधान और लापरवाह तरीके से।

99. अतः, हम मानते हैं कि यद्यपि केवल प्रथम दृष्टया मामला अदालत के समक्ष साक्ष्य से स्थापित किया जाना है जिसका जरूरी नहीं कि जिरह के आधार पर परीक्षण किया गया हो, किंतु उसकी मिलीभगत साबित करने के लिए मात्र संभावना से कहीं अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता होती है। जो परीक्षण लागू किया जाना है वह आरोप तय करने के समय लागू किए गए प्रथम दृष्टया मामले से कहीं अधिक है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम है कि यदि साक्ष्य का खंडन नहीं किया जाता है तो दोषसिद्धि हो जाएगी। इस तरह की संतुष्टि के अभाव में, अदालत को धारा 319, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319, दंड प्रक्रिया संहिता में यह प्रावधान कि यदि 'साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने, जो आरोपी नहीं है, कोई अपराध किया है' करने का उद्देश्य इन शब्दों से स्पष्ट है कि "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है।" इस्तेमाल किए गए शब्द यह नहीं हैं कि 'जिसके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सकता है।' इसलिए, धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कार्य करने वाली अदालत के लिए आरोपी के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।"

शीर्ष अदालत ने **रमेश चंद्र श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2021 0 सुप्रीम (एस सी) 519** के मामले में आगे कहा है कि "धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति का प्रयोग करने के लिए इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा निर्धारित परीक्षण में अन्य बातों के साथ-साथ यह सिद्धांत शामिल है कि केवल जब साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत मिलते हैं तो ही धारा 319 दंड प्रक्रिया

संहिता के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस शक्ति का प्रयोग असावधानी और लापरवाही से नहीं किया जा सकता। लागू किया जाने वाला परीक्षण, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है, वह आरोप तय करने के समय लागू प्रथम दृष्टया मामले से कहीं अधिक है।"

इस मामले की प्राथमिकी तारा देवी (पीड़िता) के भाई रामेंद्र सिंह ने दर्ज कराई है और इसमें पुनरीक्षणवादी- आरोपी की घटना में संलिप्तता के बारे में कोई

सुगबुगाहट नहीं है। प्राथमिकी के अनुसार, तारा देवी अपने पति की प्रताड़ना से तंग आकर अपने नाबालिग पुत्रों के साथ आत्महत्या करने के लिए कुएं में कूद गई। जांच के दौरान, प्रथम शिकायतकर्ता रामेंद्र सिंह और पीड़िता तारा देवी ने भी इसी तरह का बयान दिया है। उन्होंने पुनरीक्षणवादी आरोपी को नहीं फंसाया है। विचारण न्यायालय के समक्ष अपने बयान में प्रथम पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है और अपनी संतुष्टि जो धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आरोपी को तलब करने के लिए आवश्यक है, को दर्ज करने में विफल रही है। अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य ठोस नहीं है और पुनरीक्षणवादी-आरोपी को बुलाने का आधार नहीं हो सकता है, जिनका नाम न तो प्राथमिकी में है और न ही धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दर्ज किए गए गवाहों के पिछले बयानों में है। आक्षेपित आदेश भारी अवैधता से ग्रस्त है जिसे लापरवाही पूर्ण तरीके से बार एक नई कहानी विकसित करते हुए उन्होंने पुनरीक्षणवादी-आरोपी को फंसाया है। विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी गवाही के दौरान गवाहों द्वारा स्थापित की गई कहानी पहली बार सामने आई है और जो प्राथमिकी के आरोपों और इन गवाहों के पिछले बयानों के विरुद्ध है।

वर्तमान मामले के तथ्यों पर शीर्ष अदालत द्वारा निर्धारित कानून को लागू करने पर, यह स्पष्ट है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन को अनुमति देने में वास्तव में गलती की है। अभियोजन के मामले, जैसा कि प्राथमिकी में सामने आया है, जैसा कि धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत परीक्षित किए गए गवाहों के बयान और मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए बयानों में बताया गया है, में अंतर्निहित विरोधाभास हैं। निचली अदालत ने धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन पर फैसला करते समय मामले के उपरोक्त पहलू को पारित किया गया है और कानून की नजर में पोषणीय नहीं है।

तदनुसार पुनरीक्षण की अनुमति दी जाती है। आक्षेपित आदेश दिनांक 27.02.2013 को अपास्त किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 671

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकःइलाहाबाद 25.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी,

अनुवादित

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4154 /2022

इबरार@राजू

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री राम बहादुर, श्री विशाल श्रीवास्तव, श्री अनिल कुमार (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री मनोज कुमार भट्ट, श्री प्रीत पाल सिंह राठौड़

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 164 और 319 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 354, 376-डी, 452 और 506 - आपराधिक पुनरीक्षण - जिसके विरुद्ध, विद्वान विचारणीय न्यायालय में अभियोजन पक्ष द्वारा दायर एक आवेदन पर पुनरीक्षणकर्ता को तलब किया गया - वैधता - सामूहिक बलात्कार के अपराध - एफआईआर - एफआईआर दर्ज करने की तिथि से लेकर आरोप-पत्र प्रस्तुत करने तक न तो पुनरीक्षणवादी का नाम लिया गया और न ही उसके विरुद्ध कोई आरोप लगाया गया - सीआरपीसी की धारा 319 के तहत प्रदत्त शक्ति असाधारण है और इसका प्रयोग संयमित ढंग से और सचेत दृष्टिकोण के साथ किया जाना चाहिए - न्यायालय ने पाया कि, विचारणीय न्यायालय ने उन आधारों को नजरअंदाज कर दिया, जिन पर जांच के दौरान संशोधनकर्ता/अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया गया था - धारा 319 सीआरपीसी के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए आवश्यक साक्ष्य के मानक - इसलिए, आक्षेपित आदेश कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है - संशोधन की अनुमति है। (पैरा 11,12)

पुनरीक्षण स्वीकृत। **(ई-11)**

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. रमेश चंद श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, क्रिमिनल अपील संख्या 990/2021 निर्णय दिनांक 13.09.2021,
2. पेरियासामी और अन्य बनाम नल्लासामी (2019 खंड 4 एससीसी 342)
3. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य 2014 खंड. 3 एससीसी 92
4. बृजेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य, 2017 वॉल्यूम. 7 एससीसी 706.,

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल कुमार को श्री राम बहादुर और श्री विशाल श्रीवास्तव की सहायता से सुना, श्री प्रीत पाल सिंह राठौर, विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता, के साथ ही विद्वान शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों मे दर्ज सामग्री/साक्ष्यों का अवलोकन किया।

2. पुनरीक्षणकर्ता ने वर्तमान पुनरीक्षण दायर करके अतिरिक्त सत्र

अनुवादित

न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट नं. 1, इलाहाबाद द्वारा सत्र ट्रायल नं. 132 वर्ष 2020 (राज्य बनाम महफूज) में दिनांक 15.09.2022 को पारित आदेश को रद्द करने की मांग की है, जो अपराध संख्या 331 वर्ष 2018 धारा 354, 452, 376-डी और 506 भारतीय दंड संहिता, थाना नवाबगंज, जिला इलाहाबाद से उत्पन्न हुआ है। आक्षेपित आदेश द्वारा, विद्वान परीक्षण न्यायालय ने धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अभियोजन द्वारा दायर एक आवेदन पर पुनरीक्षणकर्ता को परीक्षण का सामना करने के लिए समन किया है।

3. दिनांक 20.07.2018 को विपरीत पक्ष क्रमांक 2 (अभियोकत्री) द्वारा एक प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उसके पड़ोसी इसरार उर्फ राजू पुत्र हारून उर्फ बाबू और महफूज पुत्र शमुम की उस पर बुरी नजर थी। दिनांक 05.07.2018 को लगभग दोपहर 2 बजे जब अभियोकत्री फतेहपुर के सामने से मंसूराबाद से अपने घर लौट रही थी, तो उन्होंने उसका उत्पीड़न किया। अभियोकत्री ने 100 नंबर पर शिकायत की, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई। दिनांक 08.07.2018 को लगभग रात 1 बजे उपरोक्त दो व्यक्ति और दो अज्ञात साथियों ने छत से घर में प्रवेश किया। गर्मी के कारण अभियोकत्री दरवाजा खोलकर सो रही थी। इसी बीच, चारों ने उसके मुंह पर रुमाल बांध दिया और देशी बंदूक की नोक पर उन सभी ने उसके साथ बलात्कार किया। उन्होंने उसे धमकी दी कि यदि वह किसी को इसके बारे में बताएगी तो उसे और उसकी मां को मार दिया जाएगा। अभियोकत्री ने सुबह में थाना नवाबगंज में घटना की सूचना दी, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई, इसलिए पुलिस महानिरीक्षक, इलाहाबाद को एक आवेदन दिया गया है। जांच के बाद दिनांक 17.04.2019 को महफूज पुत्र शमुम के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया। तत्पश्चात दिनांक 11.08.2019 के सीडी परचे के माध्यम से दो आरोपी इसरार उर्फ राजू और बब्लू उर्फ शरीफ को बरी कर दिया गया। परीक्षण के दौरान दो गवाहों, अभियोकत्री पीडब्ल्यू 1 और अनवरी बानो पीडब्ल्यू 2 के बयान के बाद, अभियोग पक्ष ने धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें आरोप लगाया गया कि अभियोकत्री की रिपोर्ट थाना नवाबगंज में दर्ज नहीं की गई थी, उसने दिनांक 12.07.2018 को पुलिस महानिरीक्षक, प्रयागराज को एक आवेदन दिया और इस आवेदन पर अपराध संख्या 331 वर्ष 2018 धारा 354, 452, 376-डी और 506 भारतीय दंड संहिता के तहत इसरार उर्फ राजू पुत्र हारून उर्फ बाबू और महफूज पुत्र शमुम के विरुद्ध दर्ज की गई। प्राथमिकी के आरोपों का उल्लेख करने के बाद, यह भी आरोप लगाया गया कि पीड़िता का बयान धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें उसने इबरार उर्फ राजू पुत्र खलील उर्फ बाबू और शरीफ उर्फ बब्लू पुत्र हनीफ के नाम लिए थे। धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज बयान में भी उसने उपरोक्त आरोपियों के नाम लिए थे। आवेदक ने उच्च

अनुवादित

न्यायालय में पुनरीक्षण के लिए भी एक आवेदन दिया है। उसका बयान परीक्षण न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया है, जिसमें उसने इबरार उर्फ राजू और शरीफ उर्फ बब्लू को लिप्त करते हुए दोहराया है कि उन्होंने उसके साथ बलात्कार किया है। अनवरी बानो का भी बयान दर्ज किया गया और उसने पूरी घटना का वर्णन किया कि इबरार उर्फ राजू पुत्र खलील उर्फ बाबू और शरीफ उर्फ बब्लू पुत्र हनीफ ने उसके साथ बलात्कार किया है। उपरोक्त आधारों पर आरोपियों को समन करने की प्रार्थना की गई। विद्वान परीक्षण न्यायालय ने उपरोक्त आवेदन को स्वीकार कर लिया और पुनरीक्षणकर्ता आरोपी और बब्लू उर्फ शरीफ को समन किया।

4. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्राथमिकी में पुनरीक्षणकर्ता का नाम नहीं था। प्राथमिकी इसरार उर्फ राजू पुत्र हारून उर्फ बाबू और महफूज पुत्र शमुम तथा उनके दो अज्ञात साथियों के विरुद्ध दर्ज की गई थी। अभियोकत्री का बयान धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें उसने प्राथमिकी के संस्करण को दोहराया था और इसरार उर्फ राजू तथा महफूज पुत्र शमुम को आरोपी व्यक्तियों के रूप में नामित किया था, जिन्होंने अपराध किया है। अभियोकत्री ने धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज बयान में भी यही बात दोहराई है। जब अभियोकत्री को यह पता चला कि घटना के समय इसरार उर्फ राजू गांव में मौजूद नहीं था और वह मुंबई में था, तो उसने झूठे तौर पर इबरार को फंसाया। इबरार का नाम पहली बार परीक्षण न्यायालय के समक्ष अभियोकत्री के बयान में आया है। यह भी तर्क दिया गया है कि महफूज पुत्र शमुम के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। सह-आरोपी इसरार उर्फ राजू और शरीफ उर्फ बब्लू को जांच के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था और उनके खिलाफ जांच लंबित रखी गई थी। स्वतंत्र गवाहों ने बताया है कि नालियों को लेकर विवाद हुआ था और अभियोकत्री ने पुलिस बुलाई, जिन्होंने पक्षों को शांत कर दिया। कोई अन्य घटना नहीं घटी। 25.10.2019 को जांच अधिकारी द्वारा अंतिम परचा तैयार किया गया, जिसमें कहा गया कि जांच के दौरान इसरार उर्फ राजू और बब्लू उर्फ शरीफ की संलिप्तता झूठी पाई गई, इसलिए उनके खिलाफ कोई आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया। यह भी तर्क दिया गया है कि विद्वान परीक्षण न्यायालय ने बिना यह विचार किए कि प्राथमिकी दर्ज होने की तारीख से लेकर आरोप-पत्र दाखिल करने तक न तो पुनरीक्षणकर्ता का नाम लिया गया था और न ही उसके खिलाफ कोई आरोप लगाया गया था। जो भी आरोप है, वह केवल इसरार उर्फ राजू के विरुद्ध है, लेकिन परीक्षण न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता को समन किया है। आक्षेपित आदेश पूरी तरह से गैर-कानूनी और मनमाना है और परीक्षण न्यायालय द्वारा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और सामग्री पर विचार किए बिना पारित किया गया है। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता और विपरीत पक्ष क्रमांक 2 पड़ोसी हैं और उनके घर एक-दूसरे के

अनुवादित

सामने स्थित हैं। गांव की पर्तिबंदी के कारण उनके रिश्ते अच्छे नहीं हैं और इसी वजह से प्राथमिकी दर्ज होने के लगभग तीन साल बाद 28.06.2022 को पहली बार पुनरीक्षणकर्ता का नाम सामने आया है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि सर्वोच्च न्यायालय ने **अपराधिक अपील नं. 990 वर्ष 2021 रमेश चंद्र श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** के मामले में दिनांक 13.09.2021 के आदेश द्वारा धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत न्यायालय की शक्तियों का निर्णय करते हुए यह निर्णय दिया है कि:

"इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने के लिए निर्धारित परीक्षण में यह सिद्धांत अंतर्निहित है कि केवल तभी जब साक्ष्य से किसी व्यक्ति के विरुद्ध मजबूत और तर्कसंगत साक्ष्य प्राप्त होता है, तभी धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस शक्ति का प्रयोग अनौपचारिक और लापरवाह तरीके से नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण, जो आरोप लगाने के समय लागू किया जाता है, वह प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है लेकिन परीक्षण के अंत में आरोपी को दोषी ठहराने के लिए अपेक्षित संतुष्टि से कम है।"

5. यह भी तर्क दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने **पेरियासामी और अन्य बनाम नल्लासामी (2019) 4 एससीसी 342** में निम्न प्रकार से निर्णय दिया है:

"मजबूत और तर्कसंगत साक्ष्य की अनुपस्थिति में धारा 319 के अंतर्गत अतिरिक्त आरोपी को अनौपचारिक और लापरवाह तरीके से समन नहीं किया जा सकता। धारा 319 के अंतर्गत अतिरिक्त आरोपी को केवल तभी समन किया जा सकता है जब आरोप लगाने के समय अपेक्षित प्रथम दृष्टया मामले से अधिक प्रमाण उपलब्ध हो लेकिन परीक्षण के अंत में आरोपी को दोषी ठहराने के लिए अपेक्षित संतुष्टि से कम हो।"

6. यह भी तर्क दिया गया है कि विद्वान परीक्षण न्यायालय पर यह बाध्यता थी कि वह परीक्षण के दौरान जांच अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए सभी सामग्री और साक्ष्य को देखे, और जहां तक विपरीत पक्ष क्रमांक 2 द्वारा धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दायर किए गए आवेदन का सवाल है, उसे नहीं लेना चाहिए था क्योंकि वह पूरे साक्ष्य के विपरीत है। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराए जाने की तारीख से लगभग तीन साल छह महीने तक कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं होने पर, पुनरीक्षणकर्ता-आवेदक को केवल विपरीत पक्ष क्रमांक 2 के अहंकार को संतुष्ट करने के लिए वर्तमान मामले में नहीं फंसाया जा सकता है। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि यह आवेदक-पुनरीक्षणकर्ता की पारिवारिक विवाद और गांव की पर्तिबंदी के कारण झूठा फंसाव का स्पष्ट मामला है और किसी भी विश्वसनीय साक्ष्य की अनुपस्थिति में आवेदक-पुनरीक्षणकर्ता के झूठे फंसाव को नकारा नहीं जा सकता है। यह भी तर्क दिया गया

अनुवादित

है कि विद्वान परीक्षण न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता-आवेदक को समन करते समय अपना न्यायिक मन नहीं लगाया बल्कि सबसे यांत्रिक तरीके से पुनरीक्षणकर्ता को समन किया है। पुनरीक्षणकर्ता को समन करते समय विद्वान परीक्षण न्यायालय इस तथ्य को समझने में पूरी तरह विफल रहा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट से भी और उसके समक्ष दर्ज बयानों से भी पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध कोई अपराध घटित नहीं हुआ।

7. विपरीत पक्ष क्रमांक 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर महाधिवक्ता ने तर्क दिया कि पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी का नाम शुरू से ही लिया गया था। दिनांक 12.07.2018 के पुलिस महानिरीक्षक को संबोधित आवेदन में इबरार उर्फ राजू का नाम लिया गया था, लेकिन आरोपी पक्ष के लोगों की ओर से गलत बयानी की गई और उनके इशारे पर इबरार का नाम इसरार कर दिया गया, लेकिन उपनाम राजू वही रहा। यह भी तर्क दिया गया कि इबरार और इसरार वास्तव में एक ही व्यक्ति हैं। राजू उपनाम आम है और बाबू पिता का उपनाम भी आम है। विद्वान अधिवक्ताओं ने यह भी तर्क दिया कि पुलिस ने आरोपियों के साथ मिलीभगत कर कहानी गढ़ी है कि पक्षों के बीच नालियों को लेकर विवाद है, जिसके कारण झूठा फंसाव किया गया है जो बहुत ही असंभव है। एक महिला अपना सम्मान दांव पर नहीं लगाएगी। यह भी तर्क दिया गया कि पुनरीक्षणकर्ता और अन्य सह-आरोपी तथा उनके सहयोगी अभियोकत्री और उसके परिवार के सदस्यों पर दबाव बना रहे थे कि वे प्राथमिकी दर्ज न कराएं। घटना से कुछ दिन पहले ही अभियोकत्री अपने मायके आई थी। वह पुनरीक्षणकर्ता को उसके उपनाम राजू और पिता के उपनाम बाबू से जानती थी और उसे उसके वास्तविक नाम इबरार या इसरार में गलतफहमी थी। उसने दिनांक 12.07.2018 को उच्च अधिकारियों के समक्ष आवेदन दिया था। पुनरीक्षणकर्ता और अन्य सह-आरोपी बहुत प्रभावशाली व्यक्ति हैं। उन्होंने मामले की जांच को प्रभावित किया। अभियोकत्री ने निष्पक्ष और निर्वपक्ष जांच के लिए इस न्यायालय में रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 24381 वर्ष 2018 दायर की थी। जांच अधिकारी निष्पक्ष जांच नहीं कर रहा था और अभियोकत्री को दिनांक 23.01.2019 को सर्किल अधिकारी के समक्ष यह आवेदन करना पड़ा कि पुनरीक्षणकर्ता और उसके पिता का उपनाम राजू और बाबू है, इसलिए उसने प्राथमिकी में उनका यही नाम लिखा है। अब उन्होंने इबरार उर्फ राजू पुत्र खलील उर्फ बाबू के नाम से आधार कार्ड बनवा लिया है, इसलिए नाम सही किया जाए। इसके बाद, पुनरीक्षणकर्ता ने दिनांक 29.01.2019 को निचली अदालत में इसरार पुत्र खलील उर्फ बाबू के नाम से आत्मसमर्पण आवेदन दायर किया। पुलिस ने दिनांक 02.02.2019 को एक रिपोर्ट दाखिल की, जिसमें कहा गया कि पुनरीक्षणकर्ता उपरोक्त मामले में वांछित है। दिनांक 02.02.2019 की रिपोर्ट को देखने के बाद, पुनरीक्षणकर्ता निचली अदालत के समक्ष नहीं पेश हुआ, परिणामस्वरूप दिनांक 02.03.2019 के आदेश द्वारा उसका

अनुवादित

आत्मसमर्पण आवेदन खारिज कर दिया गया। इसके बाद, अभियोकत्री ने दिनांक 11.03.2019 को जांच अधिकारी के समक्ष एक और आवेदन दिया, जिसमें कहा गया कि इसरार उर्फ राजू के बजाय आरोपी का सही नाम इबरार उर्फ राजू है। इसके बावजूद, जांच अधिकारी पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं कर रहा था, तो उसने इस न्यायालय में आपराधिक मिस्च अप्लीकेशन (धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता) संख्या 30986 वर्ष 2019 दायर की, जिसका निपटारा इस निर्देश के साथ किया गया कि अभियोकत्री जांच अधिकारी के समक्ष आवेदन दे। इसके बाद, उसने दिनांक 03.10.2019 को जांच अधिकारी के समक्ष शिकायत दर्ज कराई, लेकिन जांच अधिकारी ने इस न्यायालय के आदेश का अनुपालन नहीं किया, तो एक अवमानना आवेदन भी दायर किया गया। प्राथमिकी में शुरू से ही पुनरीक्षणकर्ता का नाम लिया गया था। वह मुख्य अपराधियों में से एक है। उसके नाम में गलती केवल इसलिए हुई क्योंकि गांव में उसे जिस नाम से पुकारा जाता है उसमें गलतफहमी हुई। यह भी तर्क दिया गया है कि अभियोकत्री ने परीक्षण न्यायालय के समक्ष अपने बयान में स्पष्ट रूप से पुनरीक्षणकर्ता की घटना में संलिप्तता दर्शाते हुए उसे लिप्त किया है। वह मुख्य अपराधी है जिसने पीड़िता के साथ बलात्कार किया है। परीक्षण न्यायालय के समक्ष पेश अन्य गवाहों ने भी पूरा साक्ष्य बयान किया है। उनके गवाहियों से पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी की संलिप्तता पूरी तरह स्थापित हो गई है। परीक्षण न्यायालय ने अभिलेखित साक्ष्य और सामग्री पर विचार करने के बाद यह पाया है कि पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध पर्याप्त और मजबूत साक्ष्य है और उसने समन जारी करने का आदेश पारित किया है। इसलिए, आक्षेपित समन आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

8. अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि प्राथमिकी में एक आरोपी का नाम इसरार उर्फ राजू पुत्र हारून उर्फ बाबू है जबकि पुनरीक्षणकर्ता इबरार उर्फ राजू पुत्र खलील अहमद है। प्राथमिकी के आरोपों से यह भी स्पष्ट है कि अभियोकत्री और आरोपी पड़ोसी हैं। नाम इसरार और इबरार में गलतफहमी हो सकती है, लेकिन प्रस्तुत मामले में वंश में भी अंतर है। प्राथमिकी में नामित आरोपी इसरार की वंश हारून है जबकि पुनरीक्षणकर्ता इबरार की वंश खलील अहमद है न कि हारून। वंश का यह अंतर प्रमुख है। इस अंतर के संबंध में कोई तर्कसंगत स्पष्टीकरण नहीं है। जांच के बाद महफूज के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। आगे की जांच में जांच अधिकारी ने कई स्वतंत्र गवाहों के बयान दर्ज किए, जिन्होंने 05.07.2018 की घटना के बारे में बताया और एक अलग कहानी पेश की। उन्होंने इस संबंध में प्राथमिकी के आरोपों की पुष्टि नहीं की। पुनरीक्षणकर्ता इबरार का नाम अभियोकत्री और अभियोकत्री द्वारा बहुत देर से लिया गया है। जांच अधिकारी ने यह भी देखा है कि जब अभियोकत्री को पता चला कि आरोपित घटना के समय इसरार मुंबई में था और उसे बरी कर दिया जाएगा, तो उसने नाम बदल दिया और इबरार को फंसाया।

अनुवादित

प्राथमिकी में, धारा 161 के तहत दर्ज बयान में और धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान में प्रकट किया गया नाम इसरार उर्फ राजू है।

8. अभिलेख की समीक्षा से पता चलता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) में आरोपियों में से एक का नाम इसरार उर्फ राजू पुत्र हारून उर्फ बाबू है, जबकि पुनरीक्षणकर्ता इब्रार उर्फ राजू पुत्र खलील अहमद है। एफआईआर के आरोपों से यह भी स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता और आरोपी पड़ोसी हैं। इसरार और इब्रार के नाम में भ्रम हो सकता है, लेकिन प्रस्तुत मामले में संतानत्व में भी अंतर है। एफआईआर में, नामित आरोपी इसरार की संतान हारून है, जबकि पुनरीक्षणकर्ता इब्रार की संतान खलील अहमद है, न कि हारून। संतानत्व का यह अंतर महत्वपूर्ण है। इस अंतर के बारे में कोई वास्तविक स्पष्टीकरण नहीं है। जांच के बाद महफूज के खिलाफ आरोप-पत्र दायर किया गया। आगे की जांच में जांच अधिकारी ने कई स्वतंत्र गवाहों के बयान दर्ज किए हैं, जिन्होंने 05.07.2018 की घटना के बारे में बताया है और एक अलग कहानी पेश की है। उन्होंने इस संबंध में एफआईआर के आरोपों की पुष्टि नहीं की है। पुनरीक्षणकर्ता इब्रार का नाम शिकायतकर्ता और पीड़िता द्वारा बहुत बाद में उजागर किया गया है। जांच अधिकारी ने यह भी देखा है कि जब पीड़िता को यह पता चला कि आरोपित घटना के समय इसरार मुंबई में था और उसे बरी कर दिया जाएगा, तो उसने नाम बदल दिया और इब्रार को फंसा दिया। एफआईआर में, धारा 161 के तहत दर्ज बयान और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत बयान में उजागर किया गया नाम इसरार उर्फ राजू है।

9. सर्वोच्च न्यायालय ने **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2014(3) एससीसी 92** में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और असामान्य शक्ति है। इसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां इसकी मांग करती हैं। इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायाधीश की राय है कि कोई और व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल तभी जब किसी व्यक्ति के खिलाफ न्यायालय के समक्ष पेश किए गए सबूतों से मजबूत और स्पष्ट सबूत प्राप्त होता है, तो ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, न कि एक आकस्मिक और अनावश्यक तरीके से। इस प्रकार, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यद्यपि न्यायालय के समक्ष पेश किए गए सबूतों से केवल एक प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, जिसे आवश्यक रूप से क्रॉस-एग्जामिनेशन की कसौटी पर नहीं परखा गया है, लेकिन इसके लिए उसकी संलिप्तता की केवल संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है। लागू किए जाने वाला परीक्षण वह है जो आरोप तय करने के समय अपनाए गए प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है, लेकिन दोषसिद्धि की संतुष्टि से कम है कि अगर

अनुवादित

सबूत अखंडित रहता है, तो वह दोषसिद्धि की ओर ले जाएगा। ऐसी संतुष्टि की अनुपस्थिति में, न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग करने से परहेज करना चाहिए।"

10. **बृजेन्द्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 एससीसी 706** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किए हैं:

"13. इस प्रश्न के उत्तर के लिए, हरदीप सिंह के मामले में प्रतिपादित कुछ सिद्धांतों को संक्षेप में दोहराया जा सकता है: दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग परीक्षण न्यायालय द्वारा परीक्षण के किसी भी चरण में, अर्थात् परीक्षण के समापन से पहले, किसी भी व्यक्ति को आरोपी के रूप में समन करने और चल रहे मामले में परीक्षण का सामना करने के लिए किया जा सकता है, एक बार परीक्षण न्यायालय को यह पता चलता है कि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कुछ 'सबूत' है जिस आधार पर यह सबूत इकट्ठा किया जा सकता है कि वह अपराध का दोषी प्रतीत होता है। यहां 'सबूत' का अर्थ है कि परीक्षण के दौरान न्यायालय के समक्ष लाया गया सामग्री। जहां तक जांच के चरण पर जांच अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए सामग्री/सबूत का संबंध है, उसका उपयोग धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए सबूत को पुष्ट करने और समर्थन करने के लिए किया जा सकता है। निस्संदेह, बिना गवाहों के क्रॉस-एग्जामिनेशन के मुख्य परीक्षा में उभरने वाले ऐसे सबूत पर भी विचार किया जा सकता है। हालांकि, चूंकि यह एक विवेकाधीन शक्ति है जो न्यायालय को धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दी गई है और यह एक असाधारण भी है, इसलिए इसका उपयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां इसकी मांग करती हैं। संतुष्टि का स्तर उस स्तर से अधिक है जो आरोप तय करने के समय अन्य लोगों के खिलाफ, जिनके लिए आरोप-पत्र दायर किया गया था, अपेक्षित होता है। केवल वहां जहां न्यायालय के समक्ष पेश किए गए सबूत से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और स्पष्ट सबूत उभरता है कि इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसका प्रयोग आकस्मिक या अनावश्यक तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। प्रथम दृष्टया राय जो बनानी है, उसके लिए उसकी संलिप्तता की केवल संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है।"

11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत एक आरोपी को समन करने के लिए परीक्षण न्यायालय को प्रदत्त शक्ति यद्यपि एक विवेकाधीन शक्ति है, लेकिन यह एक असाधारण शक्ति है और इसका उपयोग सावधानी और सतर्कता से किया जाना चाहिए। मजबूत और पर्याप्त सबूत होना चाहिए। प्रस्तुत मामले में, परीक्षण न्यायालय ने पूरी तरह से उन आधारों को नजरअंदाज कर दिया है जिन पर पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी को जांच अधिकारी द्वारा बरी कर दिया गया था।

अनुवादित

पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी का नाम एफआईआर में नहीं था। उसका नाम पीड़िता के बयान में भी नहीं आया, जो धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता या 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किया गया था। बहुत देर से, पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी का नाम लाया गया है जबकि आरोपी के संतानत्व में एक प्रमुख अंतर है। परीक्षण न्यायालय ने धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अभियोजन द्वारा दायर किए गए आवेदन को स्वीकृत करने में गलती की है। धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए आवश्यक सबूत का स्तर कम है। परीक्षण न्यायालय ने धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन पर निर्णय लेते समय रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है। उपरोक्त कारणों से परीक्षण न्यायालय को धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत एक आरोपी को समन करने के लिए आवश्यक कुछ संतुष्टि का स्तर दर्ज करने में विफल रहा है। परिणामस्वरूप, निचली अदालत ने एक गलत निष्कर्ष दर्ज करी और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों के अनुसार अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रही है। आक्षेपित आदेश कानून की दृष्टि में टिकने योग्य नहीं है, इसलिए विवादित आदेश रद्द किये जाने योग्य है। आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि से पोषणीय नहीं है और इसलिए आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाना उचित है।

12. तदनुसार, यह दांडिक पुनरीक्षण स्वीकृत किया जाता है। नवाबगंज पुलिस स्टेशन, जिला इलाहाबाद के आपराधिक मामला संख्या 331 साल 2018 के तहत धाराएं 354, 452, 376-डी और 506 भा.द.वि. से उपजा सत्र परीक्षण संख्या 132 वर्ष 2020 (राज्य बनाम महफूज) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट संख्या 1, इलाहाबाद द्वारा पारित दिनांक 15.09.2022 के आक्षेपित आदेश को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 677

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 18.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेंद्र सिंह-I,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4894/2022

भूरा एवं अन्य

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री एमजे अख्तर, श्री मो. अकबर शाह आलमखान, श्री सत्य धीर सिंह जादौन, श्रीउमा शंकर तिवारी, श्री वी.एम जैदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री जीतेन्द्र प्रसाद मिश्रा

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 और 319 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 34, 302 और 452 - आपराधिक पुनरीक्षण - आपेक्षित आदेश के विरुद्ध - विचारणीय न्यायालय ने अभियोजन पक्ष की ओर से

अनुवादित

दायर एक आवेदन पर पुनरीक्षणकर्ताओं को वाद के लिए तलब किया - हत्या का अपराध - वर्तमान पुनरीक्षण दोषसिद्धि का आदेश के विरुद्ध योजित - क्या पुनरीक्षण पोषणीय है - सीआरपीसी की धारा 319 का दायरा और दायरा हरदीप सिंह वाद में संविधान पीठ के निर्णय के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अच्छी तरह से तय किया गया है - अदालत ने पाया कि, पुनरीक्षणकर्ता की ओर से दी गई तर्कों में कोई कारण नहीं बताया गया है कि वादी अपने भाई की हत्या में सम्मिलित वास्तविक आरोपियों पर आरोप लगाने के बजाय, उसकी हत्या के लिए पुनरीक्षणकर्ता का नाम लेगा - माननीय सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रा) द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में, उन व्यक्तियों को तलब करने के संबंध में जिनका नाम आरोप-पत्र में नहीं है - वर्तमान संशोधन को स्वतंत्रता के साथ निरस्त कर दिया गया है - पुनरीक्षणकर्ताओं 30 दिनों के भीतर जमानत के लिए आवेदन करेंगे तो उनके विरुद्ध कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी - तदनुसार निर्देश पारित। (पैरा - 14, 19, 20)

पुनरीक्षण अस्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. सागर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, आपराधिक अपील संख्या 397/2022, एसएलपी (सीआरएल) संख्या 7373/2021 से उत्पन्न, दिनांक 10.03.2022,

2. रमेश चन्द्र श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, आपराधिक अपील संख्या 290/2021, एसएलपी (सीआरएल) संख्या 6381/2020 से उत्पन्न, दिनांक 13.09.2021,

3. मंजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 825 / 2021, निर्णय 24.08.2021,4. भोलू राम बनाम पंजाब राज्य और अन्य, आपराधिक अपील संख्या 1366/2008, एसएलपी (सीआरएल) संख्या 39 /2001 से उत्पन्न,

5. राजिन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 2007 एससी 2786,

6. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2014) 3 एससीसी 92,

7. एस. मोहम्मद इस्पहानी बनाम योगेन्द्र चांडक, (2017) 16 एससीसी 226,

8. राजेश बनाम हरियाणा राज्य, (2019) 6 एससीसी 368

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेंद्र सिंह-प्रथम, द्वारा प्रदत्त)

1. श्री वी.एम. ज़ैदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री सत्य धीर सिंह जादौन, श्री मोहम्मद अकबर शाह आलम खान और श्री उमा शंकर तिवारी, पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, श्री सुनील कुमार त्रिपाठी विद्वान ए.जी.ए. राज्य के लिए और विपरीत पक्ष संख्या 2 के लिए विद्वान

अनुवादित

अधिवक्ता श्री जीतेन्द्र प्रसाद मिश्रा को सुना ।

2. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, देवबंद, जिला-सहारनपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 20/2022 (पुराना एस.टी. संख्या 1402/2022), "यूपी राज्य बनाम रकीब और अन्य" मुकदमा अपराध संख्या 14/2022 से उत्पन्न, धारा 302/34, 452/34 आईपीसी, पुलिस स्टेशन-बडगांव, जिला-सहारनपुर, में पारित आदेश दिनांक 09.11.2022 के खिलाफ तत्काल पुनरीक्षण दायर किया गया है।

3. आक्षेपित आदेश के अनुसार, ट्रायल कोर्ट ने सीआरपीसी की धारा 319 के तहत आवेदन संख्या 9ख जो अभियोजन द्वारा प्रस्तुत की गई थी, स्वीकार कर लिया और पुनरीक्षणकर्ता क्रमांक नं. 1 भूरा, पुनरीक्षणकर्ता नं. 2 लिला उर्फ मोबीन, दोनों सलामू के बेटे, पुनरीक्षणकर्ता नं. 3 उस्मान पुत्र भूरा, पुनरीक्षणकर्ता नं. 4 सलीम पुत्र लिल्ला और पुनरीक्षणकर्ता नं. 5 इनाम पुत्र खलील को अन्य सह-अभियुक्तों के साथ धारा 302/34, 452/34 आईपीसी के तहत मुकदमा चलाई जाने के लिए तलब किया गया है ।

4. पुनरीक्षणकर्ताओं ने अपने पुनरीक्षण के आधार में कहा है कि जांच के दौरान जांच अधिकारी ने पाया कि गांव की दुश्मनी के कारण सूचक ने पुनरीक्षणवादियों को प्राथमिकी में अभियुक्त बनाया था, लेकिन उनके विरुद्ध कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं होने के कारण जांच अधिकारी ने उनके खिलाफ आरोपपत्र दाखिल नहीं किया।

5. जांच अधिकारी ने दिनांक 05.03.2022 को चश्मदीद गवाह,मुरसलीन, एहसान एवं अर्शे आलम के बयान दर्ज किये। इन चश्मदीद गवाहों ने विशेष रूप से कहा कि आरोपी रकीब, जुल्फेकार राणा और मोबीन ने आसिफ पुत्र आस मोहम्मद की हत्या की थी । इन आरोपियों ने इकबालिया बयान भी दिये और हथियार की बरामदगी भी की गयी, जांच अधिकारी ने आसिफ पुत्र आस मोहम्मद की हत्या में शामिल होने के संबंध में रकीब, जुल्फेकार राणा और मोबीन के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने केवल पीडब्लू-1 राशिद की 08.09.2022 को दर्ज की गई मुख्य परीक्षा के आधार पर, बिना चश्मदीद गवाहों, मुरसलीन, एहसान और अर्शे आलम के बयान अंतर्गत धारा 161 सीआरपीसी पर विचार किए बिना मुकदमे का सामना करने के लिए पुनरीक्षणवादियों को तलब कर लिया|

6. पुनरीक्षणवादियों द्वारा यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, ट्रायल कोर्ट को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत अपनी शक्ति का संयमपूर्वक प्रयोग करना चाहिए। धारा 319 सीआरपीसी के तहत एक आरोपी को तलब करने के लिए आरोपी के खिलाफ आरोप तय करने के लिए उच्च गुणवत्ता वाले साक्ष्य की आवश्यकता होती है, लेकिन ट्रायल कोर्ट

अनुवादित

ने केवल पीडब्लू-1, राशिद की मुख्य परीक्षा के आधार पर, प्रथम दृष्टया मामला पाते हुए, आरोपी को अवैध रूप से तलब किया।

7. यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त घटना से पहले, पुनरीक्षणकर्ता सं. 1, भूरा ने रकीब और अन्य लोगों के खिलाफ पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी, जो वर्तमान सूचक राशिद का रिश्तेदार है। उस मामले की सुनवाई विद्वान निचली अदालत में चल रही है। पुनरीक्षणकर्ता सं. 2 से 5 उक्त घटना के गवाह हैं, इसलिए उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है।

8. पुनरीक्षणकर्ता ने अपने तर्क के समर्थन में सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों की सहायता ली :

1. सागर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2022 की आपराधिक अपील संख्या 397, 2021 की एसएलपी (सीआरएल) संख्या 7373 से उत्पन्न, निर्णय की तारीख 10.03.2022।

2. रमेश चन्द्र श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2021 की आपराधिक अपील संख्या 290, 2020 की एसएलपी (सीआरएल) संख्या 6381 से उत्पन्न, निर्णय की तारीख 13.09.2021।

9. प्रतिपक्षी, विपरीत पक्ष नं. 2/सूचनाकर्ता, राशिद ने पुनरीक्षण का विरोध किया है और आक्षेपित आदेश का समर्थन करते हुए कहा है कि ट्रायल कोर्ट ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा करते हुए और रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर, पुनरीक्षणवादियों को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया है।

10. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सूचक राशिद और गवाह वसीम ने प्राथमिकी में पुनरीक्षणकर्ताओं का नाम लिया है, लेकिन बाह्य विचार के कारण, जांच अधिकारी ने उनके बयानों पर भरोसा नहीं किया और मुर्सलीन एहसान और अर्शे आलम के बयान के आधार पर, प्राथमिकी से आरोपियों का नाम हटा दिया और रकीब, जुल्फेकार राणा और मोबीन के खिलाफ अवैध तरीके से आरोप पत्र दाखिल किया।

11. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सूचक और चश्मदीद गवाह, पीडब्लू-1 राशिद ने अदालत में अपने बयान में प्राथमिकी में उल्लिखित अभियोजन मामले का समर्थन किया है और ट्रायल कोर्ट ने सबूतों पर भरोसा करते हुए, पुनरीक्षणकर्ताओं को परीक्षण का सामना करे ने के लिए तलब किया है।

12. विपक्षी नं. 2 ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों की सहायता ली:

1. मंजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 825/2021, निर्णय 24.08.2021

2. भोलू राम बनाम पंजाब राज्य और अन्य, 2008 की आपराधिक अपील संख्या 1366, 2001 की एसएलपी (सीआरएल) संख्या 39 से उत्पन्न।

अनुवादित

3. राजिन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, एआईआर 2007 एससी 2786 में रिपोर्ट किया गया

13. अभियोजन पक्ष के अनुसार जैसा कि सूचक राशिद पुत्र आस मोहम्मद निवासी ग्राम-नूना बड़ी, थाना-बडगांव, जिला-सहारनपुर द्वारा दर्ज कराई गई एफआईआर में इस आशय का वरवर्णन है कि मुकदमेबाजी के कारण उसकी दुश्मनी फारुख पुत्र खलील से थी। आरोपी भूरा व मोबीन उर्फ लिल्ला पुत्र सलामू, उस्मान पुत्र भूरा, सलीम पुत्र लिल्ला व इनाम पुत्र खलील दुश्मनी के चलते बदला लेने के लिए उसे व उसके परिवार वालों को धमकी देते थे। दिनांक 02.02.2022 को प्रातः लगभग 4-5 बजे सूचक राशिद, वसीम पुत्र ताहिर व इदरीश के साथ जंगल से जंगली जानवरों को भगाकर अपने घर लौट रहा था। उन्होंने देखा कि सलामू के पुत्र भूरा और मोबीन उर्फ लिल्ला, उस्मान पुत्र भूरा, सलीम पुत्र लिल्ला और इनाम पुत्र खलील जिनके हाथों में खून से सनी तलवारें और चाकू थे, वे आपस में बात कर रहे थे कि आज उन्होंने अपने भाई की हत्या का बदला ले लिया है| उन्होंने आसिफ की हत्या कर दी है| उन्होंने सूचना देने वाले और उसके साथियों को धमकी दी कि वे उन्हें भी मार डालेंगे| इसके बाद आरोपी वहां से भाग गया| जब सूचक और उसका साथी उसके घर के परिसर में पहुंचे तो परिसर का दरवाजा खुला था तो और उस ने अपने भाई आसिफ को खून से लथपथ मृत पड़ा देखा।

14. सीआरपीसी की धारा 319 का दायरा और सीमा **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य, (2014) 3 एससीसी 92** और पैरा 105 और 106 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ की घोषणा से अच्छी तरह से तय हो गया है। जो इस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं, यहां पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

"105. सीआरपीसी, 1973 की धारा 319 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयमित रूप से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां उचित हों। इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल तभी जब अदालत के समक्ष पेश किए गए साक्ष्यों में से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत हों, तो ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, न कि आकस्मिक और अभिमानपूर्ण ढंग से।

106. इस प्रकार, हम मानते हैं कि यद्यपि अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से केवल प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, जरूरी नहीं कि जिरह के आधार पर परीक्षण किया जाए, इसके लिए उसकी मिलीभगत की संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है। जो परीक्षण लागू किया जाना है वह ऐसा है जो आरोप तय करने के समय किए गए प्रथम दृष्टया मामले से कहीं अधिक है, लेकिन

अनुवादित

इस हद तक संतुष्टि से कम है कि सबूत, अगर खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि हो जाएगी। इस तरह की संतुष्टि के अभाव में, अदालत को धारा 319 सीआर.पी.सी., 1973 के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319 सीआर.पी.सी., 1973 में, यह प्रदान करने का उद्देश्य कि "साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति आरोपी नहीं है लेकीन कोई अपराध किया है" शब्दों से स्पष्ट है "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है"। इस्तेमाल किए गए शब्द ऐसे नहीं हैं "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सके"। इसलिए धारा 319 सीआरपीसी, 1973 के तहत कार्रवाई करने वाली अदालत के लिए आरोपी के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।"

15. **एस. मोहम्मद इस्पहानी बनाम योगेन्द्र चांडक (2017) 16 एससीसी 226**, इस न्यायालय ने निम्नानुसार आंकलन कर ये माना:

"35. इस बात पर प्रकाश डालने की जरूरत है कि जब शिकायतकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति का नाम एफ.आई.आर.*में दर्ज किया जाता है, लेकिन जांच के बाद पुलिस को उस व्यक्ति विशेष की कोई भूमिका नहीं मिलती है और उसे फंसाए बिना आरोप पत्र दाखिल करती है, तो न्यायालय शक्तिहीन नहीं है, और सम्मन के चरण में, यादि ट्रायल कोर्ट को लगता है कि किसी विशेष व्यक्ति को आरोपी के रूप में बुलाया जाना चाहिए, भले ही आरोप-पत्र में उसका नाम न हो, तो वह ऐसा कर सकता है। उस स्तर पर, शिकायतकर्ता को भी एक विरोध याचिका दायर करने का मौका दिया जाता है, जिसमें ट्रायल कोर्ट से अन्य व्यक्तियों को भी बुलाने का आग्रह किया जाता है, जिनका नाम* एफ.आई.आर. *में था लेकिन आरोप पत्र में शामिल नहीं किया गया था। एक बार वह चरण बीत जाने के बाद भी न्यायालय सीआरपीसी की धारा 319 के आधार पर शक्तिहीन नहीं है। हालाँकि, यह धारा तब लागू होती है जब मुकदमे के दौरान प्रस्तावित आरोपी के खिलाफ कुछ सबूत सामने आते हैं।"*

16. **राजेश बनाम हरियाणा राज्य (2019) 6 एससीसी 368** के मामले में, इस न्यायालय द्वारा ऊपर उल्लिखित **हरदीप सिंह (सुप्रा)** में की गई टिप्पणियों पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने आगे देखा और माना कि ऐसे मामले में भी जहां शिकायतकर्ता को अवसर देने का चरण है एक विरोध याचिका दायर कर ट्रायल कोर्ट से उन अन्य व्यक्तियों को भी बुलाने का आग्रह किया जाएगा जिनका नाम एफ.आई.आर. में दर्ज किया गया था। लेकिन आरोप पत्र में आरोपी नहीं बनाया गया है, उस मामले में भी धारा 319 सीआरपीसी के आधार पर न्यायालय अभी भी शक्तिहीन नहीं है। और यहां तक कि उन लोगों को भी, जिनके नाम एफ.आई.आर. में हैं लेकिन आरोप-पत्र में आरोपी नहीं बनाया गया है को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जा सकता है, बशर्ते मुकदमे के दौरान प्रस्तावित आरोपी के खिलाफ कुछ सबूत सामने आएं।

अनुवादित

17. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश दिनांक 09.11.2022, प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति, मुखबिर पीडब्लू-1 राशिद का दिनांक 08.09.2022 का बयान और अन्य तथ्या जो इस अपील में अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत किए, का आंकलन किया।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों से, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ट्रायल कोर्ट गवाह के मुख्य परीक्षण के आधार पर उन व्यक्तियों को आरोपी के रूप में बुला सकता है, जिनके खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया है। यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे व्यक्ति को धारा 319 सीआरपीसी के तहत समन करने से पहले गवाह से जिरह की जाए। आवश्यक साक्ष्य ऐसे व्यक्तियों को धारा 319 सीआरपीसी के तहत समन करने के लिए यह प्रथम दृष्टया मामले से अधिक होना चाहिए, लेकिन इसमें ऐसे सबूतों की कमी है, जिनका अगर खंडन नहीं किया गया तो मुकदमे के लिए बुलाए गए व्यक्तियों को दोषी ठहराया जा सकता है।

19. सूचक राशिद ने दिनांक 02.02.2022 को अपने भाई आसिफ पुत्र आस मोहम्मद की हत्या के लिये पुनरीक्षणकर्ताओं के विरूद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी थी। जांच अधिकारी ने विवेचना के दौरान मुरसलीन के बयान दिनांक 05.03.2022 धारा अंतर्गत 161 सीआरपीसी के आधार पर नामित पुनरीक्षणवादियों/अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया और मुरसलीन के बयान के आधार पर आसिफ की हत्या करने के लिए रकीब, जुल्फेकार राणा और मोबीन के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया। जबकि सूचक राशिद एवं वसीम ने धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज अपने बयान में प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित अभियुक्तों/पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ लगाए गए आरोपों का समर्थन किया है। मुर्सलीन का बयान घटना दिनांक से 1 माह 2 दिन की देरी से दर्ज किया गया। पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से दिए गए तर्क में इस बात का जिक्र नहीं है कि सूचना देने वाला अपने भाई की हत्या में शामिल वास्तविक आरोपियों पर आरोप लगाने के बजाय उसकी हत्या के लिए पुनरीक्षणकर्ताओं का नाम क्यों लेगा।

20. धारा 319 सीआरपीसी के तहत आरोप-पत्र में आरोपी के रूप में नामित नहीं किए गए व्यक्तियों को तलब करने के संबंध में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून प्रकाश में और अदालत में दर्ज किए गए राशिद के बयान के आलोक में आक्षेपित आदेश पर विचार करते हुए मुझे ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता अनियमितता या क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि नहीं मिली।

21.तदनुसार, आपराधिक पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

22. यदि पुनरीक्षणकर्ता भूरा व मोबीन उर्फ लिला पुत्रगण सलामू, उस्मान पुत्र भूरा, सलीम पुत्र लिला तथा इनाम पुत्र खलील आज से 30 दिन के अन्दर सम्बन्धित न्यायालय में आत्मसमर्पण कर जमानत हेतु आवेदन करते हैं। तब तक उनके खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी।

अनुवादित

23. इस आदेश की एक प्रति आवश्यक कार्यवाही हेतु संबंधित न्यायालय को भेजी जाये।

(2023) 2 ILRA 681

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.02.2023.

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 666 /2023

प्रेम नारायण पाण्डेय

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: राजेंद्र प्रसाद मिश्र

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 321- अभियोजन वापस लेना- यदि लोक अभियोजक यह प्रदर्शित करने में सक्षम है कि वह आरोपों को कायम रखने के लिए पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं है, तो अभियोजन से वापसी के लिए एक आवेदन वैध रूप से दायर किया जा सकता है- लोक अभियोजक न केवल साक्ष्य की कमी के आधार पर, बल्कि सार्वजनिक न्याय के व्यापक उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए भी अभियोजन से पीछे हट सकता है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्य सम्मिलित हो सकते हैं। अभियोजन से हटने की अनुमति देते समय अंतिम मार्गदर्शक विचार हमेशा न्याय प्रशासन का हित होना चाहिए। विद्वान विचारणीय न्यायालय इस बात की जांच नहीं कर सकता है कि अभियोजन वापस लेने के लिए आवेदन किस उद्देश्य से दायर किया गया है, क्योंकि अभियोजन से वापसी लोक अभियोजक का एक कार्यकारी कार्य है। न्यायालय एक पर्यवेक्षी कार्य करता है और वापसी के लिए अपनी सहमति देने में उसका विशेष कर्तव्य है। न्यायलय का कर्तव्य उन आधारों की फिर से सराहना करना नहीं है जिसके कारण लोक अभियोजक ने अभियोजन से वापसी का अनुरोध किया, बल्कि यह विचार करना है कि क्या लोक अभियोजक ने एक स्वतंत्र एजेंट के रूप में अपना दिमाग लगाया है।

जहां शासकीय अधिवक्ता द्वारा अभियोजन वापस लेने के लिए आवेदन दायर किया जाता है, अदालत उक्त आवेदन दाखिल करने के लिए साक्ष्य या उद्देश्य की जांच नहीं कर सकती है, लेकिन उसे केवल यह देखना होगा कि अभियोजन वापस लेना सार्वजनिक हित में होगा और क्या लोक अभियोजक उसने अपना दिमाग स्वतंत्र रूप से और बिना किसी दबाव या प्रभाव के लगाया है। **(पैरा 15, 17, 18)**

आपराधिक आवेदन स्वीकृत। **(ई-3)**

<u>केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-</u>

1. श्योनंदन पासवान बनाम बिहार राज्य (1987) 1 एससीसी 288 (उद्धृत)

अनुवादित

2. पंजाब राज्य बनाम भारत संघ (1986) 4 एससीसी 335 (उद्धृत)
3. राजेंद्र कुमार जैन बनाम राज्य (1980) 3 एससीसी 435 (उद्धृत)
4. केरल राज्य बनाम के. अजित और अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 510

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह-चौहान, जे. द्वारा प्रदत्त)

1. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्तागण श्री प्रदीप कुमार शुक्ला के साथ श्री राजेंद्र प्रसाद मिश्रा और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्तागण श्री राजेश कुमार सिंह के साथ श्री आलोक सरन को सुना।

2. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेंद्र प्रसाद मिश्रा ने आज न्यायालय में अनुपूरक शपथ-पत्र दायर किया है, जिसे अभिलेख पर लिया गया है।

3. द०प्र०सं० की धारा 482 के अन्तर्गत दायर इस प्रार्थना पत्र/याचिका के माध्यम से, प्रार्थी ने निम्नलिखित अनुतोष के लिए प्रार्थना की है: -

"(I) आबकारी अधिनियम की धारा 60/72 के अन्तर्गत थाना-तरबगंज, जिला-गोंडा के मुकदमा अपराध संख्या 109/2003 से उत्पन्न आपराधिक वाद सं० 100/2019 राज्य बनाम प्रेम नारायण पांडे में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय सं० 3/ विशेष न्यायाधीश (एमपी/एमएलए), गोंडा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 04.11.2020 को रद्द करने हेतु।

(ii) द०प्र०सं० की धारा 321 के अन्तर्गत लोक अभियोजक द्वारा दायर प्रार्थना पत्र सं०-26क को स्वीकृति देने हेतु।

(iii) आबकारी अधिनियम की धारा 60/72 के अन्तर्गत थाना-तरबगंज, जिला-गोंडा के मुकदमा अपराध संख्या 109/2003 से उत्पन्न मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय सं०1/विशेष न्यायाधीश एम.पी./एम.एल.ए., गोण्डा में लम्बित आपराधिक वाद सं० 100/2019;राज्य बनाम प्रेम नारायण पांडे Crl की संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने हेतु।"

4. सर्वप्रथम, प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 04.02.2023 के आदेश की ओर आकर्षित किया, जिसमें याचिकाकर्ता के उन्मोचन प्रार्थनापत्र को खारिज कर दिया गया था, जो इस माननीय न्यायालय द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थनापत्र सं० संख्या 8615 /2022 (द०प्र०सं० की धारा 482 के अन्तर्गत) में पारित आदेश दिनांक 01.12.2022 के अनुपालन में दायर किया गया था, जो 57ख के रूप में अवस्थित है, जैसा कि आदेश 09.02.2023 को दायर अनुपूरक शपथ-पत्र के अनुलग्नक संख्या एसए-1 के रूप में संलग्न किया गया है।

अनुवादित

5. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि जिला मजिस्ट्रेट, गोंडा के कार्यालय से पत्र दिनांक 14.11.2019 संयुक्त निदेशक, अभियोजन, गोंडा को संबोधित करते हुए प्रेषित किया गया है, जिसमें वर्तमान प्रार्थी के विरुद्ध (अनुलग्नक संख्या 3) अभियोजन वापस लेने हेतु दिनांक 01.11.2019 के एक पत्र का सन्दर्भ दिया गया है। इसके अनुसरण में द०प्र०सं० की धारा 321 के अन्तर्गत सहायक लोक अभियोजक (आपराधिक) द्वारा संबंधित विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष 23.11.2019 को प्रार्थना-पत्र दायर किया गया था।

6. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने द०प्र०सं० की धारा 321 के अन्तर्गत दायर प्रार्थना पत्र को अनुमति देने से मात्र इस आधार पर अस्वीकार कर दिया है कि ऐसी कोई दस्तावेजी सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है जो दर्शाती हो कि ऐसा प्रत्याहरण सार्वजनिक न्याय के हित में है।

7. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि द०प्र०सं० की धारा 321 द्वारा लोक अभियोजक को अपराध के आरोपी किसी भी व्यक्ति के विरूद्ध अभियोजन प्रत्याहयत करने का प्रावधान करता है, दोनो ही स्थितियों में - जब कोई साक्ष्य नहीं लिया गया हो या भले ही पूर्ण साक्ष्य लिया गया हो जो कि निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय इस शक्ति के प्रयोग की बाहरी सीमा है। द०प्र०सं० की धारा 321 के अन्तर्गत प्रार्थनापत्र को अग्रसारित करने की सावधानी है कि लोक अभियोजक को कोई ऐसा आधार बनाना होगा जो सार्वजनिक न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाए। यदि लोक अभियोजक दर्शाते है कि वह आरोप को कायम रखने हेतु पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत करने में सक्षम नही है तो उनके द्वारा वैध रूप से प्रत्याहरण हेतु प्रार्थना पत्र तैयार किया जायेगा, जैसा कि **श्योनंदन पासवान बनाम बिहार राज्य (1987) 1 SCC 288** के मामले में धारित किया गया था।

8. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि जिस मामले के प्रत्याहरण की मांग की गई है उसकी प्रकृति बड़े पैमाने पर समाज को प्रभावित नहीं करेगी, इस प्रका, ऐसा प्रत्याहरण सार्वजनिक न्याय के विरूद्ध नहीं होगा।

9. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि **पंजाब राज्य बनाम भारत संघ (1986) 4 SCC 335** के मामले में यह धारित किया गया है कि लोक अभियोजक न केवल साक्ष्यों के अभाव के आधार पर किसी मामले के अभियोजन से पीछे हट सकता है अपितु सार्वजनिक न्याय के व्यापक उद्देश्यों जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्य सम्मिलित हो को आगे बढ़ाने के लिए भी पीछे हट सकता है। अभियोजन के प्रत्याहरण की अनुमति देते समय अंतिम मार्गदर्शक विचार सदैव न्याय प्रशासन का हित होना चाहिए।

अनुवादित

10. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि **राजेंद्र कुमार जैन बनाम राज्य (1980) 3 SCC 435** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभियोजन प्रत्याहरण के लिए विधिक स्थिति को प्रस्तुत किया है और धारित किया है कि लोक अभियोजक न केवल साक्ष्यों के अभाव के आधार पर बल्कि अन्य प्रासंगिक आधार पर सार्वजनिक न्याय, सार्वजनिक व्यवस्था और शांति के व्यापक लक्ष्यों को आगे बढ़ाने हेतु अभियोजन प्रत्याहृयत कर सकता है। सार्वजनिक न्याय के व्यापक लक्ष्यों में निश्चित रूप से उचित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्य सम्मिलित होंगे।

11. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि यद्यपि आरोप तय होने के पश्चात अभियोजन पक्ष द्वारा साक्षियों के साक्ष्य के तथ्यों की जांच की गई है, परन्तु निर्णय की घोषणा से पूर्व किसी भी स्तर पर प्रत्याहरण हेतु प्रार्थनापत्र की अनुमति दी जा सकती है, इस प्रकार, इस स्तर पर भी द०प्र०सं० की धारा 321 के अन्तर्गत प्रार्थनातर्क पत्र की अनुमति पर कोई रोक नहीं है।

12. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि कोविड-19 महामारी के कारण वह उक्त आदेश दिनांक 04.11.2020 पारित होने के तुरंत बाद आदेश को चुनौती नहीं दे सके। हालांकि, शीर्ष न्यायालय ने स्वत: संज्ञान लेते हुए कोविड-19 महामारी अवधि के दौरान पारित आदेशों को चुनौती देने हेतु रिट (सिविल) संख्या 03 /2020 में समय बढ़ा दिया है।

13. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्तागण, श्री आलोक सरन और श्री राजेश कुमार सिंह ने तर्क प्रस्तुत किया है कि इस न्यायालय द्वारा निर्गत निर्देशों के अनुसार प्रार्थी ने उन्मोचन प्रार्थना पत्र दायर किया और उसे विद्वान विचारण न्यायालय ने खारिज कर दिया है।

14. हालाँकि, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्तागण से यह पूछे जाने पर कि क्या दिनांक 04.11.2020 का प्रश्नगत आदेश शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के संगत पारित किया गया है, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्तागण ने निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने यह इंगित करते हुए प्रश्नगत आदेश पारित करने में गलती की है कि अभियोजन पक्ष वर्तमान प्रार्थी के विरूद्ध अभियोजन वापस लेने के लिए न्यायालय के विश्वास हेतु कोई दस्तावेज/सामग्री दाखिल नहीं कर सका। उन्होंने आगे कहा है कि आरोप तय होने के बाद भी स्थापित विधि के अनुसार अभियोजन वापस लेने के प्रार्थना पत्र को उस स्तर पर अनुमति दी जा सकती है, इसलिए कोई भी उचित आदेश पारित किया जा सकता है।

15. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन के बाद, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि यदि लोक अभियोजक यह

अनुवादित

दर्शाता है कि वह आरोपों को कायम रखने के लिए पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं हो सकता है, तो अभियोजन प्रत्याहरण हेतु प्रार्थना पत्र उसके द्वारा वैध रूप से दायर किया जा सकता है।

16. **केरल राज्य बनाम के. अजित एवं अन्य, (2021) SCC ऑनलाइन SC 510** के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के हाल के निर्णय के प्रस्तर-26 में निम्नवत टिप्पणी की गयी: -

"26. द०प्र०सं० की धारा 321 के अन्तर्गत अभियोजन प्रत्याहरण पर इस न्यायालय के निर्णयों से जो सिद्धांत सामने आते हैं, उन्हें अब सूत्रबद्ध किया जा सकता है:

(i) धारा 321 अभियोजन प्रत्याहरण का निर्णय लोक अभियोजक को सौंपती है परन्तु अभियोजन वापस लेने के लिए न्यायालय की सहमति आवश्यक है;

(ii) लोक अभियोजक न केवल साक्ष्यों के अभाव के आधार पर, बल्कि सार्वजनिक न्याय के व्यापक उद्देश्यों को अग्रसर करने के लिए भी अभियोजन प्रत्याहृयत कर सकता है;

(iii) लोक अभियोजक को अभियोजन प्रत्याहरण हेतु न्यायालय की सहमति लेने से पूर्व एक स्वतंत्र मत बनाना चाहिए;

(iv) जबकि केवल यह तथ्य कि पहल सरकार की ओर से हुई है, प्रत्याहरण हेतु प्रार्थनापत्र दूषित नहीं होगा, न्यायालय को प्रत्याहरण के कारणों को स्पष्ट करने का प्रयास करना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि लोक अभियोजक संतुष्ट है कि अच्छे और प्रासंगिक कारणों हेतु अभियोजन का प्रत्याहरण आवश्यक है;

(v) यह निर्धारित करने में कि प्रत्याहरण के लिए अपनी सहमति देनी है या नहीं, न्यायालय एक न्यायिक कार्य करती है परन्तु इसे प्रकृति में पर्यवेक्षी बताया गया है। अपनी सहमति देने का निर्णय लेने से पहले न्यायालय को इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि:

(क) लोक अभियोजक के कार्य का अनुचित तरीके से प्रयोग नहीं किया गया है या यह अवैध कारणों या उद्देश्यों के लिए न्याय के सामान्य क्रम में हस्तक्षेप करने का प्रयास नहीं है;

(ख) प्रार्थना पत्र सद्भाव से सार्वजनिक नीति और न्याय के हित में किया गया है, न कि कानून की प्रक्रिया को विफल करने या बाधित करने के लिए:

(ग) प्रार्थना पत्र ऐसी अनियमितताओं या अवैधताओं से ग्रस्त नहीं है जिससे सहमति दिए जाने पर स्पष्ट अन्याय हो सकता है;

(घ) सहमति का प्रदान किया जाना न्याय प्रशासन की सहायता करता है; और

(च) अनुमति विधि की पुष्टि से असंबद्ध किसी गुप्त उद्देश्य से नहीं मांगी गई है,

अनुवादित

जिसे बनाए रखना लोक अभियोजक का कर्तव्य है;

(vi) यह निर्धारित करते समय कि क्या अभियोजन वापस लेने से न्याय प्रशासन को सहायता मिलती है, न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता और सार्वजनिक जीवन पर इसके प्रभाव की जांच करना उचित होगा, विशेषतः जहां सार्वजनिक धन और सार्वजनिक ट्रस्ट के निर्वहन से जुड़े मामले हों ; और

(vii) ऐसी स्थिति में जहां विचारण न्यायाधीश तथा पुनरीक्षण न्यायालय दोनों सहमति देने या अस्वीकार करने में सहमत हैं, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए समवर्ती निष्कर्षों को प्रभावित करने से पहले सावधानी बरतेगा। न्यायालय इस क्षेत्राधिकार के प्रयोग से जुड़े सुस्थापित सिद्धांतों का प्रयोग करते हुए, ऐसे मामले में हस्तक्षेप कर सकता है जहां विचारण न्यायधीश या उच्च न्यायालय सहमति देने या रोकने का निर्णय लेने में सही सिद्धांतों को लागू करने में विफल रहे हो।"

17. इसके अतिरिक्त, शीर्ष न्यायालय ने मामलों की श्रृंखला में, जिनमें से कुछ को प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने सन्दर्भित किया है, धारित किया है कि लोक अभियोजक न केवल साक्ष्य के अभाव के आधार पर, बल्कि सार्वजनिक न्याय के व्यापक उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए भी अभियोजन प्रत्याहृयत कर सकता है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्य सम्मिलित हो सकते हैं। अभियोजन के प्रत्याहरण की अनुमति देते समय अंतिम मार्गदर्शक विचार हमेशा न्याय प्रशासन का हित होना चाहिए। विद्वान विचारण न्यायालय उस उद्देश्य की जांच नहीं कर सकता है जिसके लिए अभियोजन वापस लेने हेतु प्रार्थना पत्र दायर किया गया है क्योंकि अभियोजन प्रत्याहरण लोक अभियोजक का अधिशासी कार्य है। अभियोजन प्रत्याहरण का स्वविवेकाधिकार मात्र लोक अभियोजक का है एवं इसलिए वह यह स्वविवेकाधिकार किसी को नही दे सकता। स्वीकार्यतः लोक अभियोजक न्यायालय का अधिकारी है तथा इसलिए वह न्यायालय के प्रति उत्तरदायी है। न्यायालय का कार्य पर्यवेक्षकीय है तथा प्रत्याहरण की सहमति प्रदान करना इनका विशेष कर्तव्य है। न्यायालय का कर्तव्य उन आधारों का पुनः मूल्यांकन करना नहीं है जिसके कारण लोक अभियोजक ने अभियोजन प्रत्याहरण का अनुरोध किया, बल्कि यह विचार करना है कि क्या लोक अभियोजक ने एक स्वतंत्र अभिकर्ता के रूप में अपना विवेक प्रयुक्त किया। इस संबंध में न्यायालय का विशेष कर्तव्य है क्योंकि वह अभियोजन से वापसी के लिए अपनी सहमति देने या रोकने में विधायी विश्वास का चरम है।

18. शीर्ष न्यायालय द्वारा इस विषय पर निर्धारित विधिक स्थिति एवं वर्तमान मामले के तथ्यों तथा परिस्थितियों को

अनुवादित

ध्यान में रखते हुए, मुझे प्रतीत होता है कि दिनांक 04.11.2020 का प्रश्नगत आदेश स्पष्ट अवैधता और विकृति से ग्रस्त है, इसलिए इसे अपास्त किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, मुझे प्रतीत होता है कि यदि द०प्र०सं० की धारा 321 के अन्तर्गत दायर प्रार्थना पत्र सभी आवश्यक शर्तों को पूरा करता है तो मामले को उचित आदेश पारित करने हेतु विद्वान विचारण न्यायालय में प्रतिप्रेषित किया जाना एक व्यर्थ प्रयास होगा।

19. इस प्रकार, वर्तमान याचिका को **स्वीकार** किया जाता है और आबकारी अधिनियम की धारा 60/72 के अन्तर्गत थाना-तरबगंज, जिला-गोंडा के मुकदमा अपराध संख्या 109/2003 से उत्पन्न आपराधिक वाद सं० 100/2019 राज्य बनाम प्रेम नारायण पांडे में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय सं० 3/ विशेष न्यायाधीश (एमपी/एमएलए), गोंडा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 04.11.2020 को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है और द०प्र०सं० की धारा 321 के अन्तर्गत विद्वान लोक अभियोजक द्वारा अभियोजन से वापसी हेतु दायर प्रार्थना पत्र स्वीकृत किया जाता है।

20. आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

(2023) 2 ILRA 686

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 28.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 28523/2022

सादाब

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अखिलेश कुमार मिश्रा

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री सैयद शाहनवाज शाह

आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा-190(1)(बी) - मजिस्ट्रेट के पास सीआरपीसी की पुलिस रिपोर्ट से असहमत होने का अधिकार है और यदि धारा 173(2) सीआरपीसी के तहत प्रस्तुत रिपोर्ट के अवलोकन से वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आरोपी के खिलाफ विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध बनता है, तो वह संज्ञान लेने के पश्चात वाद को सत्र न्यायालय में भेज सकता है और मजिस्ट्रेट धारा 173(2) सी.आर.पी.सी. के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट से बाध्य नहीं है - मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को नजरअंदाज कर सकता है और उसे जांच से सामने आने वाले तथ्यों पर स्वतंत्र रूप से अपना दिमाग लगाना चाहिए - यदि मजिस्ट्रेट किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई कर सकता है जिसके खिलाफ आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है तो यह

अनुवादित

नहीं कहा जा सकता है कि मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार नहीं है, जिसमें आरोप पत्र समर्पित नहीं किया गया था, हालांकि पुलिस रिपोर्ट से ऐसे अपराध का भी खुलासा होता है।

चूँकि मजिस्ट्रेट को उस व्यक्ति के विरुद्ध संज्ञान लेने का अधिकार है जिसके विरुद्ध जांच एजेंसी द्वारा आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो मजिस्ट्रेट उस अपराध का भी संज्ञान ले सकता है जिसका उल्लेख आरोप पत्र में नहीं किया गया है।

आधिकारिक निर्णय- बाध्यकारी मिसाल नहीं - यद्धपि, गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (सुप्रा) में, शीर्ष अदालत की दो न्यायाधीशों की खंडपीठ ने माना कि मजिस्ट्रेट को संज्ञान लेने के समय आरोप-पत्र में अनुभाग जोड़ने या घटाने का अधिकार नहीं है और वह केवल उन्हीं अपराधों का संज्ञान ले सकता है जो, आरोप पत्र समर्पित किया गया तथा केवल आरोप तय करने के समय ही उन्होंने ऐसे अनुभागों को जोड़ या घटा सकते हैं लेकिन गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (सुप्रा) का निर्णय 25.11.2013 को दिया गया, जबकि धरम पाल (सुप्रा) में शीर्ष अदालत की संविधान पीठ का निर्णय दिनांक 18.07.2013 को सुनाया गया था, लेकिन इसके बावजूद धरम पाल (सुप्रा) का वाद गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (सुप्रा) में शीर्ष अदालत के समक्ष नहीं रखा जा सका - न तो मीनू कुमारी (सुप्रा) और न ही अजय कुमार परमार (सुप्रा) के निर्णय शीर्ष अदालत की दो न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष रखे गए, जिन्होंने निर्णय पारित किया इसलिए, गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (सुप्रा) में संविधान पीठ द्वारा धरम पाल (सुप्रा) के मामले के साथ-साथ मीनू कुमारी (सुप्रा) और अजय कुमार परमार (सुप्रा) में शीर्ष अदालत द्वारा की गई टिप्पणी के अनुसार, गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (सुप्रा) में व्यक्त विचार मान्य नहीं है। इसलिए, यह नहीं माना जा सकता कि मजिस्ट्रेट के पास उन अपराधों के लिए संज्ञान लेने का कोई अधिकार नहीं है, जिनमें आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है। श्रीमती शालिनी कश्यप (सुप्रा) में इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश के रूप में गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (सुप्रा) मामले में पारित शीर्ष न्यायालय के फैसले का अध्ययन करने के पश्चात ही कहा कि मजिस्ट्रेट को आरोप-पत्र में किसी भी धारा को जोड़ने या घटाने का अधिकार नहीं है, इसलिए, यह मामला किसी के लिए मददगार नहीं होगा। आवेदक ने इस तरह की टिप्पणी करते समय, इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने धरम पाल (सुप्रा), मीनू कुमारी (सुप्रा), बलवीर सिंह (सुप्रा) और अजय कुमार परमार (सुप्रा) में संविधान पीठ द्वारा निर्धारित कानून पर चर्चा नहीं की। हालाँकि, एकल न्यायाधीश ने निर्णय के बाद के भाग में अतिरिक्त आरोपियों को तलब करने के अलग-अलग प्रश्न के संबंध में धर्मपाल (सुप्रा) की संविधान पीठ द्वारा की गई टिप्पणी पर चर्चा की।

जैसा कि संविधान पीठ ने पहले धर्मपाल सिंह में दिए गए निर्णय के साथ-साथ मीनू कुमारी, बलवीर सिंह और अजय कुमार परमार के पूर्व निर्णय में सुप्रीम कोर्ट द्वारा

अनुवादित

दिए गए निर्णय पर गिरीश राधाकृष्णन वर्दे के बाद में निर्णय पारित करते समय और शालिनी कश्यप में एकल न्यायाधीश द्वारा फैसला सुनाते समय सुप्रीम कोर्ट द्वारा ध्यान नहीं दिया गया और विचार नहीं किया गया, इसलिए गिरीश राधाकृष्णन वर्दे का निर्णय और शालिनिया कश्यप में दिए गए फैसले को अच्छा कानून नहीं माना गया और यह बाध्यकारी उदाहरण नहीं हैं। **(पैरा 12, 15, 16, 20, 23, 24, 25, 26)**

आपराधिक आवेदन निरस्त। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-</u>

1. गुजरात राज्य बनाम गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (2014) 3 एससीसी 659 (प्रतिष्ठित)
2. श्रीमती शालिनी कश्यप एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2021 का आवेदन यू/एस 482 संख्या 23830 (प्रतिष्ठित)
3. धरम पाल एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (2014) 3 एससीसी 306
4. नाहर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2022 क्रि. एल.जे. 1787 (एससी)
5. अजय कुमार परमार बनाम राजस्थान राज्य (2012) 12- एससीसी 406
6. बलवीर सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (2016) 6 एससीसी 680

(माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन, द्वारा प्रदत्त)

1. श्री अखिलेश कुमार मिश्रा, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, श्री सैयद शहनवाज शाह, विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और श्री वरुण कुमार अग्निहोत्री, राज्य के विद्वान संक्षिप्त धारक को सुना गया।

2. वर्तमान आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने सिविल जज जूनियर डिवीजन एफटीसी-II/न्यायिक मजिस्ट्रेट, हापुड़ द्वारा केस संख्या 14536 वर्ष 2021 में पारित आदेश दिनांक 10.01.2022 को रद्द करने की प्रार्थना की, जो केस क्राइम संख्या 264 वर्ष 2021 से उत्पन्न हुआ था, जो धारा 498ए, 323, 506, 376 भारतीय दंड संहिता के तहत, पुलिस स्टेशन धौलाना, जिला हापुड़ में दर्ज किया गया था, जिसके द्वारा मजिस्ट्रेट ने आवेदक को धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत भी समन किया था, इस तथ्य के बावजूद कि उसके विरुद्ध केवल धारा 498ए, 323, 506 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था।

<u>तथ्यात्मक परिदृश्य</u>

3.1 आवेदक विपक्षी पक्ष संख्या 2 का देवर (पति का भाई) है। 29.06.2021 को विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने वर्तमान मामले की प्राथमिकी धारा 376, 323, 506, 498ए भारतीय दंड संहिता और मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 2019 की धारा 3/4 के तहत पुलिस स्टेशन धौलाना, जिला हापुड़ में केस क्राइम संख्या 0264 वर्ष 2021 के रूप में आवेदक और अन्य लोगों के खिलाफ दर्ज कराई, जिसमें उसका पति और सास भी शामिल थे।

3.2 प्राथमिकी के अनुसार 27.06.2021 को रात लगभग 11 बजे आवेदक विपक्षी पक्ष संख्या 2 के कमरे में प्रवेश किया और चाकू

अनुवादित

की नोक पर उसके पति की अनुपस्थिति में उसके साथ बलात्कार किया। जब उसने अपने पति और उसके परिवार के सदस्यों से शिकायत की तो उन्होंने आवेदक के साथ मिलकर उसे मारा-पीटा। प्राथमिकी में यह भी आरोप लगाया गया है कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 के पति ने उसे मौखिक रूप से तीन तलाक भी दिया।

3.3 प्राथमिकी दर्ज होने के बाद जांच शुरू की गई और जांच के दौरान विपक्षी पक्ष संख्या 2, मामले की पीड़िता, का बयान धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किया गया और दोनों बयानों में उसने प्राथमिकी के संस्करण को दोहराया और कहा कि आवेदक यानी उसके देवर ने 27.06.2021 को रात लगभग 11 बजे चाकू की नोक पर उसके पति की अनुपस्थिति में उसके कमरे में उसके साथ बलात्कार किया।

3.4 इसलिए, प्राथमिकी के साथ-साथ धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए पीड़िता (विपक्षी पक्ष संख्या 2) के बयानों में आरोप है कि आवेदक ने 27.06.2021 को रात लगभग 11 बजे चाकू की नोक पर उसके साथ बलात्कार किया।

3.5 जांच के दौरान, जांच अधिकारी ने कुछ अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए और उसके बाद 28.11.2021 को आवेदक और अन्य आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया। आवेदक के खिलाफ धारा 323, 506, 498ए भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप पत्र दायर किया गया था और उसके खिलाफ धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था।

3.6 आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद, विपक्षी पक्ष संख्या 2, वर्तमान मामले की सूचनाकर्ता और पीड़िता ने 18.12.2021 को संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि प्राथमिकी और उसके धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए बयानों के मद्देनजर आवेदक को धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत भी समन किया जाना चाहिए। 10.01.2022 को, विद्वान मजिस्ट्रेट ने विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत आवेदन को स्वीकार कर लिया और संज्ञान लेने के बाद आवेदक को धारा 498ए, 323, 506, 376 भारतीय दंड संहिता के तहत समन किया। इस प्रकार, विद्वान मजिस्ट्रेट ने आवेदक को धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत भी अन्य अपराधों के साथ समन किया, हालांकि उसके खिलाफ धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था।

3.7 अतः, वर्तमान आवेदन।

<u>आवेदक की ओर से प्रस्तुतीकरण</u>

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.01.2022 अवैध और अधिकार क्षेत्र से बाहर है और उसके पास आरोप पत्र में किसी भी धारा को जोड़ने या घटाने का कोई अधिकार नहीं था। उन्होंने सर्वोच्च

अनुवादित

न्यायालय द्वारा *गुजरात राज्य बनाम गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (2014) 3 एससीसी 659* के मामले में पारित निर्णय का हवाला दिया और कहा कि गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर आवेदक को धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत समन नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके खिलाफ धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था। वह आगे कहते हैं, गिरीश राधाकृष्णन वर्दे के मामले (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के मद्देनजर, केवल आरोप तय करने के समय मजिस्ट्रेट रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन कर सकता है कि क्या आवेदक के खिलाफ धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत कोई अपराध बनता है, न कि संज्ञान लेने के समय।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की समकक्ष पीठ द्वारा **श्रीमती शालिनी कश्यप और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** के मामले में पारित निर्णय का भी हवाला दिया, **जो धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 23830 वर्ष 2021** में पारित किया गया था और कहा कि गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, इस न्यायालय की समकक्ष पीठ ने अवलोकन किया कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा भी और साथ ही मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लेने के समय धारा जोड़कर त्रुटि की है ।

6. वह आगे कहते हैं, चूंकि मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लेने के समय धारा 376 भारतीय दंड संहिता जोड़ दी और धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध का भी संज्ञान लिया, इस तथ्य के बावजूद कि आवेदक के खिलाफ धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था, इसलिए गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय और श्रीमती शालिनी कश्यप (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर, गंभीर अवैधता की गई है। इस प्रकार, विवादित आदेश दिनांक 10.01.2022 अवैध है और इसलिए रद्द किए जाने योग्य है।

<u>अभियोजन पक्ष की ओर से प्रस्तुत</u>

7. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान संक्षिप्त धारक और विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क का विरोध किया और कहा कि मजिस्ट्रेट द्वारा विवादित आदेश दिनांक 10.01.2022 पारित करते समय कोई अवैधता नहीं की गई थी। दोनों अधिवक्ताओं ने कहा कि मजिस्ट्रेट मूक दर्शक नहीं है और कानून बहुत पहले से तय है कि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से असहमत हो सकता है और अपने सामने उपलब्ध सामग्री के आधार पर, वह उन अपराधों के लिए भी संज्ञान ले सकता है, जिनमें आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था यदि पुलिस रिपोर्ट से ऐसे अपराध प्रकट होते हैं।

अनुवादित

8. विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ **द्वारा धरम पाल और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और एक अन्य (2014) 3 एससीसी 306 और नाहर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य 2022 क्रि. एल.जे. 1787 (एससी)** के मामले में पारित निर्णय का हवाला दिया और कहा कि जैसा कि धरम पाल (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ ने स्पष्ट रूप से अवलोकन किया था कि यदि जांच के बाद किसी आरोपी के पक्ष में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है लेकिन यदि मजिस्ट्रेट रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद पाता है कि आरोपी के खिलाफ सामग्री उपलब्ध है, तो वह संज्ञान लेने के बाद उसे भी समन कर सकता है, इसलिए यदि मजिस्ट्रेट को उस व्यक्ति को समन करने का अधिकार है जिसके खिलाफ आरोप पत्र भी प्रस्तुत नहीं किया गया है तो यह नहीं कहा जा सकता कि मजिस्ट्रेट उस अपराध के लिए संज्ञान नहीं ले सकता, जिसमें आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है यदि रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, उसे लगता है कि आरोपी ने ऐसा अपराध भी किया है। मजिस्ट्रेट की शक्ति को केवल उन अपराधों तक सीमित नहीं किया जा सकता जिनमें आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था।

9. वह आगे कहते हैं कि नाहर सिंह (उपरोक्त) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने धरम पाल मामले (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा पारित निर्णय पर विचार करने के बाद फिर से कानून को दोहराया और अवलोकन किया कि यदि किसी व्यक्ति का धारा 173(2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट में कोई स्थान नहीं है लेकिन यदि जांच अधिकारी द्वारा जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री का अवलोकन करने के बाद, मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि उसके खिलाफ भी समन जारी करने के लिए सामग्री है तो संज्ञान लेने के बाद वह उसे भी समन जारी कर सकता है, इसलिए धरम पाल (उपरोक्त) और नाहर सिंह (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट के पास उन अपराधों के लिए भी संज्ञान लेने की पर्याप्त शक्ति है जिनमें आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था और जोड़ी गई धारा में आरोपी को समन कर सकता है, इसलिए विवादित आदेश दिनांक 10.01.2022 को अवैध नहीं कहा जा सकता और वर्तमान आवेदन खारिज किए जाने योग्य है।

<u>विश्लेषण</u>

10. वर्तमान आवेदन में मुख्य मुद्दा यह है कि क्या मजिस्ट्रेट संज्ञान लेने के समय किसी धारा को जोड़ने का अधिकार रखता है और आरोप पत्र में उल्लिखित अपराध के साथ-साथ ऐसे अपराध के लिए आरोपी को समन जारी कर सकता है।

11. मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने की शक्ति धारा 190 दंड प्रक्रिया संहिता में निर्धारित की गई है, जो इस प्रकार है:-

"190. मजिस्ट्रेट द्वारा अपराधों का संज्ञान। *(1) इस अध्याय के प्रावधानों के*

अनुवादित

अधीन, प्रथम श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट, और द्वितीय श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट जो उप-धारा (2) के तहत इस संबंध में विशेष रूप से अधिकृत किया गया हो, किसी भी अपराध का संज्ञान ले सकता है-

(क) ऐसे अपराध का गठन करने वाले तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर;

(ख) ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर;

(ग) किसी पुलिस अधिकारी से भिन्न किसी व्यक्ति से प्राप्त सूचना पर, या अपनी स्वयं की जानकारी पर, कि ऐसा अपराध किया गया है।

(2) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय श्रेणी के किसी भी मजिस्ट्रेट को उप-धारा (1) के तहत ऐसे अपराधों का संज्ञान लेने के लिए अधिकृत कर सकता है जो उसकी जांच या परीक्षण की क्षमता के भीतर हैं।"

12. धारा 190(1)(ब) दंड प्रक्रिया संहिता के अनुसार एक मजिस्ट्रेट को ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर किसी भी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार है। इसलिए, प्रथम दृष्टया धारा 190(1)(ब) दंड प्रक्रिया संहिता के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट धारा 173(2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट पर "किसी भी अपराध" का संज्ञान ले सकता है।

13. मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने की शक्ति के संबंध में प्रश्न सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मीनू कुमारी और एक अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य (2006) 4 एससीसी 356 के मामले में आया था और सर्वोच्च न्यायालय ने निम्न रूप से अवलोकन किया:-

"11. ..... स्थिति अब अच्छी तरह से तय हो गई है कि धारा 173(2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर एक मजिस्ट्रेट को धारा 190(1)(ब) के तहत किसी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार है, भले ही पुलिस रिपोर्ट इस प्रभाव की हो कि आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है। मजिस्ट्रेट जांच के दौरान पुलिस द्वारा परीक्षण किए गए गवाहों के बयानों को ध्यान में रख सकता है और शिकायत किए गए अपराध का संज्ञान ले सकता है और आरोपी को प्रक्रिया जारी करने का आदेश दे सकता है। धारा 190(1)(ब) यह नहीं कहती कि मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान केवल तभी ले सकता है जब जांच अधिकारी यह राय दे कि जांच से आरोपी के खिलाफ मामला बन गया है। मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को नजरअंदाज कर सकता है और जांच से उभरने वाले तथ्यों पर स्वतंत्र रूप से विचार कर सकता है और यदि वह उचित समझता है तो मामले का संज्ञान ले सकता है, धारा 190(1)(ब) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है और आरोपी को प्रक्रिया जारी करने का निर्देश दे सकता है।"

14. सर्वोच्च न्यायालय ने **अजय कुमार परमार बनाम राजस्थान राज्य (2012) 12 एससीसी 406** के मामले में धारा 190 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत मजिस्ट्रेट की शक्ति के संबंध में निम्न रूप से अवलोकन किया:-

"18. ..... संहिता की योजना केवल यह प्रदान करती है कि मजिस्ट्रेट यह निर्धारित कर सकता है कि क्या रिपोर्ट में कथित तथ्य विशेष रूप से सत्र न्यायालय

अनुवादित

द्वारा विचारणीय अपराध का गठन करते हैं। एक बार जब वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि रिपोर्ट में कथित तथ्य विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध का गठन करते हैं, तो उसे मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द करना चाहिए।"

15. इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त प्राधिकरणों से, यह प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट से असहमत होने का अधिकार है और यदि धारा 173(2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रस्तुत रिपोर्ट के अवलोकन से वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आरोपी के खिलाफ विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध बनता है तो वह संज्ञान लेने के बाद मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर सकता है और मजिस्ट्रेट धारा 173(2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट से बाध्य नहीं है। मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को नजरअंदाज कर सकता है और उसे जांच से उभरने वाले तथ्यों पर स्वतंत्र रूप से विचार करना चाहिए।

16. इसके अलावा, धारा 190 (1) दंड प्रक्रिया संहिता में प्रयुक्त वाक्यांश "किसी भी अपराध" महत्वपूर्ण है। इसका तात्पर्य है कि मजिस्ट्रेट विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध का भी संज्ञान ले सकता है। धारा 190(1)(ब) दंड प्रक्रिया संहिता के अनुसार मजिस्ट्रेट ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर किसी भी अपराध का संज्ञान ले सकता है, इसलिए, धारा 190(1)(ब) दंड प्रक्रिया संहिता के अनुसार यदि धारा 173(2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट के अवलोकन के बाद मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि किसी आरोपी के खिलाफ विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध बनता है तो वह ऐसे अपराध का संज्ञान ले सकता है और मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर सकता है भले ही आरोपी के खिलाफ ऐसे अपराध में कोई आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया हो।

17. सर्वोच्च न्यायालय ने **बलवीर सिंह और एक अन्य बनाम राजस्थान राज्य और एक अन्य (2016) 6 एससीसी 680** के मामले में भी निम्न रूप से अवलोकन किया:-

"13. संहिता की धारा 190 का एक सरल पठन जो "किसी भी अपराध" अभिव्यक्ति का उपयोग करता है, पर्याप्त रूप से दिखाता है कि मजिस्ट्रेट पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है कि मजिस्ट्रेट केवल मजिस्ट्रेट न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध का ही संज्ञान ले सकता है और सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध के संबंध में नहीं। इस प्रकार, उसके पास सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध का संज्ञान लेने की शक्ति है।"

18. इसलिए, बलवीर सिंह मामले (उपरोक्त) के मद्देनजर भी, मजिस्ट्रेट के पास विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध का संज्ञान लेने का पूरा अधिकार है यदि पुलिस रिपोर्ट यानी आरोप पत्र के अवलोकन के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आरोपी के खिलाफ ऐसा अपराध भी बनता है।

19. धारा 190 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत मजिस्ट्रेट की संज्ञान लेने की शक्ति पर

अनुवादित

सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने धरम पाल (उपरोक्त) के मामले में विशेष रूप से चर्चा की और इसे निपटाया, हालांकि सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के समक्ष मामला उस व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही करने के संबंध में थोड़ा अलग था जिसके खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था लेकिन सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने धारा 190 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत मजिस्ट्रेट की शक्ति का बहुत विस्तृत विश्लेषण किया और अवलोकन किया कि भले ही किसी आरोपी के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया हो और उसका नाम आरोप पत्र के कॉलम 2 में प्रकट किया गया हो, तब भी मजिस्ट्रेट उसके खिलाफ कार्यवाही कर सकता है यदि धारा 173(2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट में उसके खिलाफ सामग्री है और मजिस्ट्रेट संज्ञान लेने के बाद मामले को सुपुर्द कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने धारा 190(1)(ब) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत मजिस्ट्रेट की शक्ति के संबंध में निम्न रूप से अवलोकन किया:-

"35. हमारी राय में, मजिस्ट्रेट को धारा 173(3) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उसके समक्ष प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लेने के बाद मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द करते समय एक भूमिका निभानी होती है। यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से असहमत होता है, तो उसके पास दो विकल्प हैं। वह दायर की जा सकने वाली विरोध याचिका के आधार पर कार्य कर सकता है, या वह पुलिस रिपोर्ट से असहमत होते हुए, प्रक्रिया जारी कर सकता है और आरोपी को समन कर सकता है। उसके बाद, यदि इस बात से संतुष्ट होने पर कि रिपोर्ट के कॉलम नंबर 2 में नामित व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही करने का मामला बन गया है, तो वह उक्त व्यक्तियों का परीक्षण कर सकता है या यदि वह संतुष्ट था कि एक ऐसा मामला बन गया है जो सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, तो वह मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर सकता है ताकि मामले में आगे की कार्यवाही की जा सके।"

20. इसलिए, धरम पाल (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा पारित निर्णय से यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट उस व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही कर सकता है जिसका नाम पुलिस रिपोर्ट यानी आरोप पत्र के कॉलम 2 में प्रकट किया गया था और जिसके खिलाफ आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था यदि मजिस्ट्रेट की दृष्टि में जांच अधिकारी द्वारा जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री प्रथम दृष्टया यह प्रकट करती है कि उसने ऐसा अपराध किया। इसलिए, यदि मजिस्ट्रेट उस व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही कर सकता है जिसके खिलाफ आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है तो यह नहीं कहा जा सकता कि मजिस्ट्रेट को उस अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार नहीं है, जिसमें आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था हालांकि पुलिस रिपोर्ट से ऐसा अपराध भी प्रकट होता है।

21. हम स्थिति का विश्लेषण एक अलग दृष्टिकोण से भी कर सकते हैं, यदि मजिस्ट्रेट को उन अपराधों के लिए संज्ञान

अनुवादित

लेने का अधिकार नहीं है, जिनमें आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था, जिसमें सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध भी शामिल है और आरोप पत्र केवल उन अपराधों में प्रस्तुत किया गया था, जो मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय हैं (जैसा कि वर्तमान मामला है) तो मजिस्ट्रेट को आरोप तय करने तक इंतजार करना होगा भले ही पुलिस रिपोर्ट विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध का भी खुलासा करती हो और केवल आरोप तय करने के समय मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया जाएगा क्योंकि पुलिस रिपोर्ट ने विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध का भी खुलासा किया। इसलिए, ऐसे मामले में अंततः मामला सत्र न्यायालय के समक्ष सुपुर्द करना होगा और उस उद्देश्य के लिए मजिस्ट्रेट को आरोप तय करने तक इंतजार करना होगा, यह अनुचित प्रतीत होता है क्योंकि यदि पुलिस रिपोर्ट ने संज्ञान लेने के समय भी ऐसे अपराधों का खुलासा किया तो मजिस्ट्रेट को आरोप तय करने तक क्यों इंतजार करना चाहिए। इससे न्यायालय का मूल्यवान समय भी बर्बाद होगा, इसलिए, इस दृष्टिकोण से भी, मेरी विचारित राय में, मजिस्ट्रेट को आरोप तय करने तक इंतजार नहीं करना चाहिए और यदि संज्ञान लेने के समय वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि धारा 173(2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि आरोपी ने सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध भी किया है तो वह ऐसे अपराध का संज्ञान ले सकता है और मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर सकता है।

22. सर्वोच्च न्यायालय ने नाहर सिंह (उपरोक्त) के मामले में भी धरम पाल (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय पर चर्चा करने के बाद अवलोकन किया कि भले ही किसी व्यक्ति को आरोप पत्र यानी धारा 173(2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट में नामित नहीं किया गया हो लेकिन यदि मजिस्ट्रेट रिपोर्ट के अवलोकन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि उसके खिलाफ एक अपराध बनता है तो वह ऐसे अपराधों का संज्ञान ले सकता है और उसे समन कर सकता है।

23. इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा निर्धारित कानून और उपरोक्त उल्लिखित सर्वोच्च न्यायालय के अन्य निर्णयों से यह प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट को जांच के दौरान जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री के आधार पर किसी भी अपराध का संज्ञान लेने का पूरा अधिकार है और यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि एक अपराध भी बनता है, जिसमें आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है तो वह ऐसे अपराध(ओं) का भी संज्ञान ले सकता है और आरोपी को समन कर सकता है और यदि कोई ऐसा अपराध विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है तो वह मामले को सत्र न्यायालय के समक्ष सुपुर्द करेगा।

24. हालांकि, गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय

अनुवादित

की दो न्यायाधीशों की पीठ ने माना था कि मजिस्ट्रेट को संज्ञान लेने के समय आरोप पत्र में किसी धारा को जोड़ने या घटाने का अधिकार नहीं है और वह केवल उन अपराधों का संज्ञान ले सकता है, जिनमें आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था और केवल आरोप तय करने के समय वह ऐसी धाराओं को जोड़ या घटा सकता है लेकिन गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त) का निर्णय 25.11.2013 को दिया गया था जबकि धरम पाल (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ का निर्णय 18.07.2013 को दिया गया था लेकिन इसके बावजूद धरम पाल (उपरोक्त) का मामला गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष नहीं रखा जा सका। इसके अलावा, न तो मीनू कुमारी (उपरोक्त) और न ही अजय कुमार परमार (उपरोक्त) के निर्णय सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष रखे गए थे, जिसने गिरीश राधाकृष्णन वर्दे मामले (उपरोक्त) का निर्णय दिया था, इसलिए, धरम पाल (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ द्वारा किए गए अवलोकन के साथ-साथ मीनू कुमारी (उपरोक्त) और अजय कुमार परमार (उपरोक्त) के मामलों में सर्वोच्च (उपरोक्त) के मामले में केवल गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त) में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलोकन करने के बाद माना था कि मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र में किसी धारा को जोड़ने या घटाने का अधिकार नहीं है, इसलिए यह मामला आवेदक के लिए कोई मदद नहीं न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार के मद्देनजर गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त) में व्यक्त किया गया दृष्टिकोण प्रचलित नहीं है। इसलिए, यह नहीं माना जा सकता कि मजिस्ट्रेट के पास उन अपराधों के लिए संज्ञान लेने का कोई अधिकार नहीं है, जिनमें आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है।

25. इसके अलावा, बलवीर सिंह (उपरोक्त) के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के बाद के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने धरम पाल (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ के सिद्धांत पर विचार करने के बाद स्पष्ट रूप से माना कि मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट से असहमत होने का पूरा अधिकार है और वह स्वतंत्र रूप से विचार कर सकता है और ऐसे अपराधों के लिए भी संज्ञान ले सकता है, जिनमें आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था यदि आरोप पत्र यानी धारा 173(2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट के अवलोकन से वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि ऐसे अपराध भी बनते हैं। नाहर सिंह (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी समान आशय है।

26. चूंकि इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने श्रीमती शालिनी कश्यप करेगा क्योंकि ऐसा अवलोकन करते समय, इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने धरम पाल (उपरोक्त), मीनू कुमारी (उपरोक्त), बलवीर सिंह (उपरोक्त) और अजय कुमार परमार (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ द्वारा निर्धारित कानून पर चर्चा नहीं की। हालांकि, एकल न्यायाधीश

अवधादिव

ने निर्णय के बाद के भाग में धरम पाल (उपरोक्त) की संविधान पीठ द्वारा किए गए अवलोकन पर चर्चा की लेकिन अतिरिक्त आरोपी को समन करने के अलग प्रश्न के संबंध में।

27. इसलिए, ऊपर की गई चर्चा से, मेरी विचारित राय में, चूंकि विपक्षी पक्ष संख्या2, मामले की सूचनाकर्ता और पीड़िता, के धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए बयान के अवलोकन से प्रथम दृष्टया आवेदक के खिलाफ धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध बनता है, इसलिए मजिस्ट्रेट ने इस तथ्य के बावजूद कि आवेदक के खिलाफ धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत कोई आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था, उसे धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत समन करने में कोई अवैधता नहीं की।

28. तदनुसार, धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत वर्तमान आवेदन **खारिज** किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 694

अपील क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

विशेष अपील दोष क्रमांक 30 / 2023

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

डॉ. रूद्र प्रताप

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: सी.एस.सी.

अधिवक्ता प्रतिवादी: शरद भटनागर

ए. सेवा कानून - पेंशन से वसूली - सिविल सेवा विनियम - अनुच्छेद 351- ए(ए)(ii) - सिविल सेवा विनियम का अनुच्छेद 351ए राज्य सरकार को किसी अधिकारी की पेंशन से न्यायिक या विभागीय कार्यवाही में ऐसे अधिकारी की सेवा के दौरान लापरवाही या धोखाधड़ी के कारण सरकार को हुई हानि के ज्ञापन के संबंध में किसी भी राशि की वसूली के लिए आदेश पारित करने का अधिकार प्रदान करती है। (पैरा 12)

सिविल सेवा विनियम के अनुच्छेद 351-ए के उपरोक्त प्रावधान के अवलोकन से प्रतीत होता है कि सेवानिवृत्ति के पश्चात, पेंशन को रोकना या वापस लेना और पेंशन से वसूली का आदेश केवल राज्यपाल यानी राज्य सरकार द्वारा ही व्यवसाय के नियम में न केवल ऐसे मामले में जब ऐसा कर्मचारी अपने कदाचार या लापरवाही से सरकार को आर्थिक नुकसान पहुंचाता हुआ पाया जाता है, बल्कि ऐसे मामलों में भी दिया जा सकता है जब संबंधित कर्मचारी गंभीर कदाचार का दोषी पाया जाता है। (पैरा 13,14)

सिविल सेवा विनियम का अनुच्छेद 351-ए सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी के वाद में विभागीय कार्यवाही शुरू करने पर रोक लगाता है। हालाँकि, ऐसी कार्यवाही

अनुवादित

राज्यपाल की मंजूरी से शुरू करने की अनुमति है, वह भी ऐसी घटना के संबंध में जो ऐसी कार्यवाही शुरू होने से चार साल से अधिक पहले नहीं हुई हो। प्रावधान यह भी प्रदान करता है कि ऐसी घटना में विभागीय जांच ऐसे प्राधिकारी द्वारा और ऐसे स्थान पर आयोजित की जाएगी जैसा कि राज्यपाल निर्देश दे सकते हैं और लागू प्रक्रिया के अनुसार किया जाएगा। (पैरा 15)

माननीय एकल न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अनुच्छेद 351-ए(ए)(ii) के घोर उल्लंघन में प्रतिवादी के विरुद्ध जांच अग्रसित की है और इस तरह, संपूर्ण अनुशासनात्मक कार्यवाही उक्त के अनिवार्य प्रावधानों से प्रभावित होती है। माननीय एकल न्यायाधीश ने सजा के आदेश दिनांक 14.03.2022 को रद्द कर दिया और आक्षेपित आदेश (दिनांक 07.09.2022) के माध्यम से रिट याचिका को स्वीकार कर लिया। (पैरा 19)

प्रतिवादी ने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली थी और दिनांक 30.06.2018 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया था। महामहिम राज्यपाल से अनुमति प्राप्त करने के बाद, प्रतिवादी को 25.10.2019 को आरोप पत्र दिया गया, जो 2013-14 के दौरान उसके द्वारा किए गए कदाचार को दर्शाता है, जो कि आरोप पत्र की तामील की तारीख से चार साल से अधिक पहले का माना जाता है। (पैरा 16)

माननीय एकल न्यायाधीश ने, रिकॉर्ड देखने के बाद, इस तथ्य पर ध्यान दिया कि अपीलकर्ताओं/प्रतिवादियों ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया है कि रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी के खिलाफ **अनुशासनात्मक कार्यवाही आरोप-पत्र की तारीख से चार साल बाद शुरू करने की मांग की गई है।** माननीय एकल न्यायाधीश ने दिनांक 12.12.2017 के आदेश (जिसमें 2013-14 की अवधि के दौरान पशुधन प्रसार अधिकारी (पशु चिकित्सा पशुधन अधिकारी) के पद के लिए भर्ती और चयन प्रक्रिया में की गई अनियमितताओं का संज्ञान लिया गया था और राज्य सरकार को अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने और एफआईआर दर्ज करने का निर्देश दिया) का अध्ययन करने के बाद, डब्ल्यूपी नंबर 19975/2015 में पारित किया गया, इस तथ्य पर ध्यान दिया गया कि 'पूरे आदेश के अवलोकन से, **यह नहीं दिखाया जा सका कि यह न्यायालय को इस तथ्य से अवगत कराया गया कि या तो याचिकाकर्ता या अन्य व्यक्ति जिनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी, सेवानिवृत्त हो गए हैं,** यदि यह तथ्य इस न्यायालय के ज्ञान में लाया गया होता, तो उन्होंने सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351-ए के प्रावधानों का पालन किया होता। (पैरा 18, 20)

विशेष अपील निरस्त। (ई 4)

वर्तमान विशेष अपील माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा की रिट-ए संख्या 2854 /2022 में पारित दिनांक 07.09.2022 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध योजित है, जिसके तहत माननीय एकल न्यायाधीश ने उक्त रिट याचिका की अनुमति दी थी।

(माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा, द्वारा प्रदत्त)

अनुवादित

सिविल प्रकीर्ण आवेदन संख्या. 1/2023:
विलंब माफी हेतु आवेदन।

(1) यह अंतर न्यायालयीय अपील 105 दिनों की सीमा से वर्जित है।

(2) अपीलकर्ताओं हेतु विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अजय कुमार सिंह और प्रतिवादी/रिट याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री शरद भटनागर द्वारा सहाय्यित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित को सुना।

(3) चूँकि वर्तमान अपील दायर करने में विलम्ब माफी हेतु आवेदन के समर्थन में प्रस्तुत शपथपत्र में प्रस्तुत कारण संतोषजनक है, अतः विलम्ब माफी हेतु उपरोक्त आवेदन को स्वीकृत किया जाता है। अपील प्रस्तुत करने में हुआ विलंब क्षमा किया जाता है।

<u>अपील के ज्ञापन पर आदेश</u>

(4) राज्य और उसके प्राधिकारियों ने वर्ष2022 की रिट-ए संख्या 2854: डॉ. रुद्र प्रताप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य में माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 07.09.2022 के निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए यह अंतर न्यायालयीय अपील दायर की है जिसके अंतर्गत माननीय एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित टिप्पणियों/निदेशों के साथ उक्त रिट याचिका को स्वीकृत किया:-

"23. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, इस न्यायालय का विचार है कि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुच्छेद 351-ए (ए) (ii) का घोर उल्लंघन करते हुए जांच आगे बढ़ाई गई है और परिणामस्वरूप पूरी अनुशासनात्मक कार्यवाही सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351-ए के अनिवार्य प्रावधानों से प्रभावित होती है। अतः राज्य सरकार द्वारा पारित दिनांक 14.03.2022 का प्रश्नगत आदेश अपास्त किया जाता है।

24. रिट याचिका स्वीकार की जाती है। परिणामी लाभ अनुमत होंगे।"

(5) वर्ष2015 की रिट-ए संख्या 19975 वीजी राव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य में इस न्यायालय द्वारा जारी अंतरिम आदेश दिनांक 12.12.2017 के अनुसरण में, वर्ष 2013-14 की अवधि के दौरान पशुधन प्रसार अधिकारी के पद के लिए भर्ती में हुई अनियमितताओं के संबंध में एक जाँच विशेष जाँच दल को सौंपी गयी थी, जिसने 11.12.2018 को अपनी रिपोर्ट सौंपी, जिसमें कहा गया कि चयन में बड़े पैमाने पर अनियमितताएं हुई थीं।

(6) प्रतिवादी/रिट याचिकाकर्ता (डॉ. रुद्र प्रताप) प्रासंगिक समय पर पशुपालन निदेशक के पद पर अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे और पूर्ण चयन प्रक्रिया के प्रभारी भी थे। चूँकि वह 30.06.2018 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवा से सेवानिवृत्त हो गए, इसलिए उत्तर प्रदेश राज्य के महामहिम राज्यपाल से अनुमोदन प्राप्त करने के बाद एस.आई.टी.

अनुवादित

की रिपोर्ट के आधार पर प्रतिवादी के विरुद्ध अनुशासनात्मक जाँच प्रारंभ की गई थी। आरोप-पत्र के साथ-साथ एस.आई.टी. की रिपोर्ट प्रतिवादी को 25.10.2019 को सौंपी गई थी।

आरोप-पत्र प्राप्त होने पर प्रतिवादी ने 16.12.2019 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें उसने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इनकार किया। जाँच अधिकारी ने उचित जाँच के उपरान्त अपनी रिपोर्ट दिनांक 02.12.2020 को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को सौंप दी। प्रतिवादी को दिनांक 02.12.2020 की जाँच रिपोर्ट की एक प्रति के साथ दिनांक 14.12.2020 को एक कारण बताओ नोटिस दिया गया था। कारण बताओ नोटिस प्राप्त होने पर प्रतिवादी ने 02.01.2021 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया। दिनांक 14.03.2022 के आदेश द्वारा प्रतिवादी के विरूद्ध दण्डात्मक आदेश पारित किया गया, उसकी समस्त भुगतान की गई पेंशन वापस लेने तथा भविष्य में पेंशन का भुगतान न करने का आदेश दिया गया।

(7) उपरोक्त दण्ड आदेश दिनांक 14.03.2022 से व्यथित होकर प्रतिवादी ने इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 2854/2022 दायर की। दिनांक 07.09.2022 के निर्णय व आदेश द्वारा, माननीय एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को उपरोक्त अनुच्छेद-4 में वर्णित रीति से स्वीकृति दी। राज्य और उसके अधिकारियों ने माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 07.09.2022 के निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए वर्तमान अपील दायर की है।

(8) दिनांक 07.09.2022 के प्रश्नगत निर्णय व आदेश को चुनौती देते हुए, राज्य/अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पशुधन प्रसार अधिकारी के पद के लिए भर्ती में प्रतिवादी/रिट याचिकाकर्ता सहित विभिन्न व्यक्तियों द्वारा घोर अनियमितताएं बरती गई थीं। इस न्यायालय ने वर्ष 2015 की रिट याचिका संख्या 19975 पर निर्णय सुनाते हुए चयन प्रक्रिया में उक्त अनियमितताओं का संज्ञान लिया और अंतरिम आदेश दिनांक 12.12.2017 के माध्यम से राज्य सरकार को अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ करने और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निदेश दिया। इसके अनुपालन में, राज्य सरकार ने एक विशेष जाँच दल का गठन किया था जिसने प्रतिवादी सहित विभिन्न व्यक्तियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ करने की अनुशंसा की थी।

(9) श्री अजय कुमार सिंह, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने कथन किया है कि दिनांक 12.12.2017 को इस न्यायालय के निर्देश के अनुसरण में प्रतिवादी / रिट याचिकाकर्ता के विरुद्ध सम्पूर्ण अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ की गई थी, अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादी के विरुद्ध प्रारंभ की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही विधिसम्मत नहीं है और यह सिविल सेवा

अनुवादित

विनियमों के अनुच्छेद 351-ए (ए) (ii) के प्रावधानों का उल्लंघन है। इसलिए उनका तर्क है कि माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित प्रश्नगत निर्णय अपास्त किये जाने योग्य है।

(10) इसके विपरीत, प्रतिवादी/रिट याचिकाकर्ता की ओर से सहयोगी अधिवक्ता श्री शरद भटनागर, अधिवक्ता सहित उपस्थित हुए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित ने विद्वान स्थायी अधिवक्ता के उपरोक्त तर्कों का कड़ा विरोध किया है व तर्क दिया है कि जब एक बार प्रतिवादी ने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली और 30.06.2018 को सेवानिवृत्त हो गया तो सभी उद्देश्यों के लिए, प्रतिवादी और राज्य अधिकारियों के बीच कर्मचारी और नियोक्ता का संबंध समाप्त हो गया। उन्होंने कहा है कि प्रतिवादी को 25.10.2019 को आरोप पत्र दिया गया था, जिसमें 2013-14 की अवधि के दौरान किए गए कथित कदाचार का आरोप लगाया गया था, जो आरोप-पत्र की तामील के दिनांक से चार वर्ष से अधिक पूर्व का था। इसलिए, सिविल सेवा विनियम के अनुच्छेद 351-ए (ए) (ii) का उल्लंघन करते हुए दंड आदेश पारित किया गया है। श्री दीक्षित का कथन है कि माननीय एकल न्यायाधीश ने प्रतिवादी द्वारा दायर अपील को स्वीकृत कर उचित किया है।

(11) हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों का परीक्षण किया है और माननीय एकल न्यायाधीश के प्रश्नगत निर्णय सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का भी अध्ययन किया है।

(12) सिविल सेवा विनियमों का अनुच्छेद 351ए राज्य सरकार को किसी अधिकारी की, अपनी सेवा के दौरान, उसकी लापरवाही या धोखाधड़ी के कारण सरकार को हुए घाटे के कारण किसी अधिकारी की पेंशन से किसी भी राशि की वसूली के लिए न्यायिक या विभागीय कार्यवाही में आदेश पारित करने का अधिकार देता है। सिविल सेवा विनियम का अनुच्छेद 351-ए इस प्रकार है: -

"351-ए. राज्यपाल के पास पेंशन या उसके किसी हिस्से को स्थायी रूप से या एक निर्दिष्ट अवधि के लिए रोकने या वापस लेने का अधिकार सुरक्षित है और सरकार को होने वाली किसी भी आर्थिक हानि की स्थिति में पेंशन से पूरी राशि या उसका कुछ हिस्सा वसूल करने का आदेश देने का अधिकार राज्यपाल के पास सुरक्षित है। विभागीय या न्यायिक कार्यवाही में पेंशनभोगी को अपनी सेवा के दौरान गंभीर कदाचार का दोषी पाया गया है, या कदाचार या लापरवाही से सरकार को आर्थिक हानि पहुंचाई गई है, जिसमें सेवानिवृत्ति के बाद पुन: रोजगार प्रदान की गई सेवा भी शामिल है:

बशर्ते कि:

(ए) ऐसी विभागीय कार्यवाही, यदि अधिकारी के सेवानिवृत्ति से पहले या पुन: रोजगार के दौरान ड्यूटी पर रहते हुए प्रारंभ नहीं की गई है:

अनुवादित

(i) राज्यपाल की मंजूरी के बिना प्रारंभ नहीं की जाएगी;

(ii) ऐसी घटना के संबंध में होगी जो ऐसी कार्यवाही प्रारंभ होने से चार साल से अधिक पहले नहीं हुई थी, और

(iii) ऐसे प्राधिकारी द्वारा और ऐसे स्थान या स्थानों पर आयोजित की जाएगी जैसा कि राज्यपाल निर्देशित कर सकते हैं और कार्यवाही पर लागू प्रक्रिया के अनुसार जिस पर सेवा से बर्खास्तगी का आदेश दिया जा सकता है।

(बी) यदि न्यायिक कार्यवाही तब प्रारंभ नहीं की गई जब अधिकारी सेवानिवृत्ति से पहले या पुन: रोजगार के दौरान ड्यूटी पर था तो उप-खंड (ii) (ए) के अनुसार प्रारंभ की जाएगी, और

(सी) अंतिम आदेश पारित करने से पूर्व लोक सेवा आयोग, उत्तर प्रदेश से परामर्श किया जाएगा।

स्पष्टीकरण। - इस लेख के प्रयोजनों के लिए:

(ए) विभागीय कार्यवाही तब प्रारंभ की गई मानी जाएगी जब पेंशनभोगी के विरुद्ध लगाए गए आरोप उसे जारी किए जाते हैं, या यदि अधिकारी को पूर्व तिथि या उस तिथि पर निलंबित कर दिया गया है, और

(बी) न्यायिक कार्यवाही प्रारंभ की गई मानी जाएगी:

(i) आपराधिक कार्यवाही के मामले में, जिस तारीख को शिकायत की जाती है या आपराधिक न्यायलय में आरोप-पत्र प्रस्तुत किया जाता है; और

(ii) सिविल कार्यवाही के मामलों में, जिस तारीख को वादपत्र प्रस्तुत किया जाता है या जैसा भी मामला हो, सिविल न्यायालय में आवेदन किया जाता है।

टिप्पणी: - जैसे ही कार्यवाही या इस लेख में निर्दिष्ट प्रकृति प्रारंभ की जाती है, ऐसी कार्यवाही प्रारंभ करने वाला प्राधिकारी बिना किसी विलंब के, संबंधित लेखापरीक्षा अधिकारी को तथ्य सूचित करेगा।

(13) सिविल सेवा विनियम के अनुच्छेद 351-ए के उपरोक्त प्रावधान के अवलोकन से ज्ञात होता है कि यदि एक बार सरकारी कर्मचारी सेवानिवृत्त हो जाता है, तो राज्यपाल को पेंशन या उसके किसी भी भाग को स्थायी रूप से एक निर्दिष्ट अवधि के लिए रोकने या वापस लेने का अधिकार होता है। यदि विभागीय या न्यायिक कार्यवाही में यह पाया गया है कि कर्मचारी ने अपनी सेवा के दौरान कदाचार या लापरवाही से सरकार को आर्थिक हानि पहुंचाई है या उसे घोर कदाचार का दोषी पाया गया है, उक्त प्रावधान के अंतर्गत राज्यपाल को यह भी अधिकार है कि वह सरकार को हुई किसी आर्थिक हानि की पूरी या आंशिक भरपाई पेंशन से वसूलने का आदेश पारित कर सकते हैं।

(14) इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि सेवानिवृत्ति के बाद, पेंशन को रोकना या वापस लेना और पेंशन से वसूली का आदेश केवल राज्यपाल अथवा राज्य सरकार द्वारा कार्यकारी नियमों के अनुसार ही किया जा सकता है, न केवल उस स्थिति में जब ऐसा कर्मचारी अपने कदाचार या लापरवाही से सरकार को आर्थिक हानि पहुँचाता हुआ पाया जाता है अपितु ऐसे मामलों में भी

अनुवादित

जब संबंधित कर्मचारी गंभीर कदाचार का दोषी पाया जाता है।

(15) सिविल सेवा विनियम के अनुच्छेद 351-ए से संलग्न प्रथम प्रावधान का परंतुक स्पष्ट रूप से राज्यपाल की स्वीकृति के अलावा विभागीय कार्यवाही प्रारंभ करने पर रोक लगाता है, यदि ऐसी कार्यवाही तब प्रारंभ नहीं की गई थी, जब कर्मचारी सेवानिवृत्ति से पूर्व या पुन: रोजगार के दौरान ड्यूटी पर था। इस प्रकार, सिविल सेवा विनियम का अनुच्छेद 351-ए सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी के मामले में विभागीय कार्यवाही प्रारंभ करने पर रोक लगाता है। हालाँकि, ऐसी कार्यवाही राज्यपाल की स्वीकृति से संस्थित करना अनुमन्य है, वह भी ऐसी घटना के संबंध में जो ऐसी कार्यवाही प्रारंभ होने से चार वर्ष से अधिक पहले न हुई हो। प्रावधान यह भी उपबंध करता है कि ऐसी घटना में विभागीय जांच ऐसे प्राधिकारी द्वारा और ऐसे स्थान पर आयोजित की जाएगी जैसा कि राज्यपाल निर्देश दे सकते हैं और ऐसा प्रयोज्य प्रक्रिया के अनुसार किया जाएगा।

(16) स्वीकार्य रूप से, प्रतिवादी ने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली थी और 30.06.2018 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया था। महामहिम राज्यपाल से अनुमति प्राप्त करने के बाद, प्रतिवादी को 25.10.2019 को आरोप-पत्र दिया गया, जो 2013-14 के दौरान उसके द्वारा किए गए कदाचार को दर्शाता है, जो कि आरोप-पत्र की तामील की तारीख से चार वर्ष से अधिक पहले का माना जाता है।

(17) माननीय एकल न्यायाधीश ने, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों का अध्ययन एवं सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351-ए के प्रावधानों उप-खंड (ए) (ii) काअध्ययन करने के पश्चात मत व्यक्त किया है कि "*इस न्यायालय के विचारार्थ यह प्रश्न उठता है कि क्या प्रतिवादी सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351-ए (ए) (ii) के प्रावधानों का पालन करने के कर्तव्य के अधीन थे, या इस न्यायालय के आदेश के अनुसरण में सिविल सेवा विनियम के अनुच्छेद 351ए के उल्लंघन में अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती थी।*"

(18) माननीय एकल न्यायाधीश ने अभिलेख के अवलोकन के पश्चात, इस तथ्य पर ध्यान दिया कि अपीलकर्ताओं/प्रतिवादियों ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया है कि रिट याचिकाकर्ता/ प्रतिवादी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही उस दिनांक से चार वर्ष के पश्चात प्रारंभ करने की मांग की गई है जब उन्हें आरोप-पत्र दिया गया था। माननीय एकल न्यायाधीश ने वर्ष 2015 की रिट याचिका संख्या 19975 में पारित आदेश दिनांक 12.12.2017 के अध्ययन पश्चात इस तथ्य पर ध्यान दिया कि *"समग्र आदेश के अवलोकन से यह प्रदर्शित नहीं जा सका कि इस न्यायालय को यह तथ्य सूचित किया गया था कि या तो याचिकाकर्ता या अन्य व्यक्ति, जिनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ की गई थी, सेवानिवृत्त हो*

अनुवादित

गए हैं, यदि यह तथ्य इस न्यायालय के संज्ञान में लाया गया होता, तो उन्होंने सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351-ए के प्रावधानों का पालन किया होता।"

(19) उपरोक्त टिप्पणियों के दृष्टिगत, माननीय एकल न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351-ए (ए) (ii) के घोर उल्लंघन हेतु प्रतिवादी के विरुद्ध जाँच की गई है और इस प्रकार, संपूर्ण अनुशासनात्मक कार्यवाही सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351-ए के अनिवार्य प्रावधानों से प्रभावित होती है। इन पृष्ठभूमियों में, माननीय एकल न्यायाधीश ने दिनांक 14.03.2022 के सजा के आदेश को रद्द कर दिया और प्रश्नगत आदेश के माध्यम से रिट याचिका को स्वीकृत किया।

(20) विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने भी हमारे समक्ष इस बात पर विवाद नहीं किया कि प्रतिवादी के विरुद्ध प्रारंभ की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही उस घटना से उद्भूत हुई जो कार्यवाही संस्थित होने से चार वर्ष से अधिक पूर्व हुई थी।

(21) उपरोक्त टिप्पणी के दृष्टिगत हम माननीय एकल न्यायाधीश के दृष्टिकोण से पूर्णतः सहमत हैं और हमें इसमें हस्तक्षेप करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

(22) तदनुसार विशेष अपील खारिज की जाती है। हालाँकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अंतर्गत वाद-व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

(2023) 2 ILRA 699

अपील क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी,

विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 40/2023

अंजलि चौरसिया

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: अविनाश चंद्र

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - अनुशासनात्मक कार्यवाही - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम: अध्याय VIII का नियम 5; सिविल प्रक्रिया संहिता 1908: धारा 2(9)। पोषणीयता- प्रतिवादियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही अग्रसित करने और अपीलकर्ता को किसी भी स्थान पर तैनात करने की स्वतंत्रता देने वाला दिनांक 28.11.2022 का आक्षेपित आदेश, न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII नियम 5 के अर्थ में एक "निर्णय" के बराबर है, जो इसे विशेष अपील के लिए उत्तरदायी बनाता है- वर्तमान वाद में, आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि आक्षेपित आदेश में माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्देश, प्रतिवादियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही

अनुवादित

जारी रखने की स्वतंत्रता प्रदान करते हुए, अंतिमता के लक्षण और जाल हैं और ऐसी प्रकृति भी है इससे अपीलकर्ता के साथ गंभीर अन्याय होगा। इस प्रकार, तत्काल विशेष अपील सुनवाई योग्य है और विद्वान स्थायी वकील द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत टिकाऊ नहीं है। (पैरा 13,23)

बी. किसी अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही उन सूचना पर नहीं हो सकती है, जो अस्पष्ट और अनिश्चित है और ऐसे वाद में संदेह की कोई भूमिका नहीं होती है जब विभाग ने अपीलकर्ता द्वारा पारित आदेश को चुनौती नहीं देने का सचेत निर्णय लिया है (जो उसके निलंबन और उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का आधार बना है) और इसे अंतिम रूप देने की अनुमति दी है। अपीलकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही केवल इसलिए प्रारंभ की गई है क्योंकि निर्धारिती ने बहुत कम समय के भीतर जुर्माना जमा कर दिया है जिससे अपीलार्थी द्वारा पारित दण्ड आदेश में संदेह पैदा हुआ। प्रथम दृष्टया, इस स्तर पर ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त आदेश पारित करने के लिए अपीलकर्ता को दंडित करने के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की जा सकती है। (पैरा 24,26)

इस तथ्य पर विचार करते हुए प्रतिवादियों को अपीलकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही आगे बढ़ाने और कही भी स्थानांतरित करने की स्वतंत्रता नहीं दी जानी चाहिए थी कि उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित है। (पैरा 27)

सी. शब्द और वाक्यांश "निर्णय" - सीपीसी, 1908 की धारा 2(9) में दी गई परिभाषा के लिए उस लेटर्स पेटेंट के प्रयोजनों के अभिव्यक्ति के अर्थ में और "निर्णय" शब्द को प्रोजेक्ट करना उचित नहीं होगा। लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के उद्देश्यों को सीपीसी में "निर्णय" अभिव्यक्ति की तुलना में व्यापक और अधिक उदार व्याख्या मिलनी चाहिए। आगे यह माना गया कि 'निर्णय' एक व्यापक अर्थ में अंतिमता की अवधारणा को आयात करता है, न कि संकीर्ण अर्थ में और तीन प्रकार का हो सकता है:

(i) अंतिम निर्णय;

(ii) प्रारंभिक निर्णय; और

(iii) एक मध्यस्थ या अंतर्वर्ती निर्णय...

ऐसे अंतर्वर्ती आदेश हो सकते हैं जो आदेश XLIII नियम 1 सी.पी.सी. के अंतर्गत नहीं आते हैं। लेकिन उनमें अंतिमता की विशेषता भी होती है। प्रत्येक अंतर्वर्ती आदेश एक निर्णय नहीं है। केवल कुछ श्रेणियों के अंतर्वर्ती आदेशों को ही निर्णय माना जा सकता है, जो क्षणिक मामलों का निर्णय करते हैं या पार्टियों के महत्वपूर्ण और मूल्यवान अधिकारों को प्रभावित करते हैं और जो संबंधित पक्ष के साथ गंभीर अन्याय करते हैं। (पैरा 17)

अनुवादित

विशेष अपील स्वीकृत।(ई-4)

<u>उद्धृत वाद:</u>

1. आशुतोष श्रोत्रिय एवं अन्य बनाम कुलपति, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय एवं अन्य, एआईआर 2015 ऑल 187 (एफबी) (पैरा 5)
2. प्रो. वाई.सी. सिम्हाद्रि, कुलपति, बी.एच.यू. एवं अन्य बनाम दीना बंधु पाठक, छात्र, 2001- (4) ए.डब्ल्यू.सी. 2688 (पैरा 6)
3. हिंद लैम्प्स लिमिटेड बनाम उप श्रम आयुक्त, आगरा एवं अन्य, 2002 (3) ए.डब्ल्यू.सी. 1908 (पैरा 6)
4. जुंजरो भीकाजी नागरकर बनाम भारत संघ और अन्य, (1999) 7 एससीसी 409 (पैरा 10)
5. शाह बाबूलाल खिमजी बनाम जयबेन डी कानिया, 1981 (4) एससीसी 8 (पैरा 17)
6. सेंट्रल माइन प्लानिंग एंड डिज़ाइन इंस्टीट्यूट लिमिटेड बनाम भारत संघ, 2001 (2) एससीसी 588 (पैरा 18)
7. मिदनापुर पीपुल्स कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम चुनीलाल नंदा, 2006 (5) एससीसी 399 (पैरा 19)

वर्तमान विशेष अपील माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित अंतरिम आदेश दिनांक 28.11.2022 को चुनौती दी गई।

(माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
&
माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

सी.एम प्रार्थनापत्र संख्या 1 वर्ष 2023 : विलंब क्षमा हेतु प्रार्थनापत्र

(1) यह *अंतः न्यायालय* अपील 25 दिनों के बाद दायर की गई है।

(2) अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अविनाश चंद्रा द्वारा सहाय्यित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री विवेक राज सिंह, को सुना गया तथा राज्य/प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री वी.पी. नाग को सुना गया।

(3) चूंकि उपरोक्त आवेदन के समर्थन में दायर शपथ पत्र में दिखाया गया कारण संतोषजनक है, इसलिए विलंब क्षमा के लिए प्रार्थनापत्र **स्वीकार** किया जाता है। वर्तमान अपील दायर करने में विलंब, क्षमा की जाती है।

(अपील ज्ञापन पर आदेश)

(4) रिट-ए संख्या 7888 वर्ष 2022 : *अंजलि चौरसिया बनाम यूपी राज्य और 5 अन्य*, में माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित अंतरिम आदेश दिनांक 28.11.2022 के पैरा -14 में दिए गए निर्देश, जिसमें माननीय एकल न्यायाधीश ने प्रतिवादियों/राज्य को आदेश में दर्ज निष्कर्षों से प्रभावित हुए बिना

अनुशासनात्मक कार्यवाही के साथ आगे बढ़ने की स्वतंत्रता दी और रिट याचिकाकर्ता को किसी भी स्थान पर स्थानांतरित करने की छूट दी। अपने खिलाफ लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही पर विचार करते हुए तथा इस निर्देश से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए, अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता ने वर्तमान अपील को प्रस्तुत किया है।

(5) आशुतोष श्रोत्रिय एवं अन्य बनाम कुलपति, डॉ. बी.आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय एवं अन्य मामले : एआईआर 2015 एएलएल 187 (एफबी), में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले के पैरा 25, 27 और 36 पर विश्वास करते हुए, विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री वी.पी. नाग का कहना है कि माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित अपील के तहत आदेश "निर्णय" के अर्थ में नहीं आता है, लेकिन यह एक अन्तर्वर्ती आदेश है, इसलिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII के नियम 5 के उपबंध को दृष्टि में रखते हुए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित अंतरिम आदेश के खिलाफ रिट याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता द्वारा दायर वर्तमान अंतः न्यायालय अपील सुनवाई योग्य नहीं है।

(6) दूसरी ओर, अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विवेक राज सिंह ने **प्रोफेसर वाई.सी. सिम्हाद्री, कुलपति, बी.एच.यू. एवं अन्य बनाम दीन बंधु पाठक, छात्र:** 2001 (4) ए.डब्ल्यू.सी. 2688 **और हिंद लैंप लिमिटेड बनाम उप श्रम आयुक्त, आगरा और अन्य:** 2002 (3) एडब्ल्यूसी 1908 मामले में इस न्यायालय की खण्ड पीठ के फैसले पर भरोसा जताया है और प्रस्तुत किया है कि माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित अपील के तहत आदेश की अंतिमता की संभावना है क्योंकि माननीय एकल न्यायाधीश ने स्वतंत्रता दी है कि प्रतिवादियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने और रिट याचिकाकर्ता को किसी भी स्थान पर तैनात करने का निर्देश दिया। उनका कहना है कि यदि गुमनाम शिकायत के आधार पर दिनांक 21.04.2022 के आदेश के अनुसरण में शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही पूरी की जाती है और अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता को दंडित किया जाता है, तो रिट याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता द्वारा दायर की गई रिट याचिका अंततः निष्फल हो जाएगी।

(7) अपनी दलील को विस्तार से बताते हुए, श्री विवेक राज सिंह ने तर्क दिया है कि 19.11.2022 को, अपीलकर्ता ने, सहायक आयुक्त, वाणिज्यिक कर, मोबाइल स्क्वाड, बाराबंकी के रूप में काम करते हुए, पंजीकरण संख्या HR38AA6286 वाले एक वाहन को रोका और पाया कि उसमें 2.5 मीट्रिक टन माल रद्दी धातु था, जिसे उपरोक्त वाहन के माध्यम से ले जाए जा रहे प्लास्टिक रद्दी की आड़ में अज्ञात रखा गया था और इस

प्रकार, अपीलकर्ता ने अपनी अर्द्ध न्यायिक शक्तियों का प्रयोग किया और कानून की उचित प्रक्रिया के बाद, 90,000/- रुपये का जुर्माना लगाया। इसके बाद, राज कुमार नाम के एक व्यक्ति ने एक गुमनाम शिकायत की, जिसमें आरोप लगाया गया कि उक्त वाहन द्वारा रद्दी धातु का परिवहन किया जा रहा था, लेकिन अपीलकर्ता ने पूरे माल पर जुर्माना लगाने के बजाय केवल 2.5 मीट्रिक टन रद्दी धातु मानते हुए जुर्माना लगाया।

(8) श्री सिंह ने आगे कहा है कि शिकायतकर्ता के नाम के अलावा, शिकायत में किसी अन्य विवरण का खुलासा नहीं किया गया है ताकि शिकायतकर्ता की पहचान सुनिश्चित की जा सके। प्रतिवादियों ने उक्त गुमनाम शिकायत पर संज्ञान लिया और अपीलकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की और दिनांक 21.04.2022 के आदेश के माध्यम से अपीलकर्ता को निलंबित कर दिया, जिसे अपीलकर्ता ने रिट-ए संख्या 7888 / 2022 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी थी।

(9) श्री सिंह का कहना है कि दिनांक 09.05.1997, 01.08.1997, 19.04.2012 और 06.08.2018 के शासनादेशों में विशेष रूप से प्रावधान है कि इन आदेशों को जारी करने का उद्देश्य न केवल सरकारी अधिकारियों को अनावश्यक उत्पीड़न से बचाना है, बल्कि सरकारी कर्मचारी के खिलाफ तुच्छ और गुमनाम शिकायत करने की इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना भी है। । उनका कहना है कि उक्त गुमनाम शिकायत के आधार पर प्रतिवादियों द्वारा शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही उपरोक्त शासनादेश के विपरीत है।

(10) श्री विवेक राज सिंह ने अगला तर्क प्रस्तुत किया है कि माननीय एकल न्यायाधीश के समक्ष, अपीलकर्ता ने **ज़ुंजरराव भीकाजी नागरकर बनाम भारत संघ और अन्य**: (1999) 7 एससीसी 409 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय का मनना है कि अस्पष्ट और अनिश्चित जानकारी के आधार पर किसी अधिकारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती और ऐसे मामले में संदेह की कोई भूमिका नहीं होती है। माननीय एकल न्यायाधीश ने, आक्षेपित अंतरिम आदेश पारित करते समय, हालांकि शीर्ष न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश पर ध्यान दिया, लेकिन आक्षेपित अंतरिम आदेश के पैरा -14 में निर्देश जारी करने में गलती की, जिससे प्रतिवादियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने की स्वतंत्रता मिल गई और अपीलकर्ता को किसी भी स्थान पर तैनात करने की शक्ति मिल गयी।

(11) उपरोक्त दलीलें देते हुए, अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विवेक राज सिंह ने प्रार्थना की कि वर्तमान विशेष अपील सुनवाई योग्य है और दिनांक 28.11.2022

के आक्षेपित अंतरिम आदेश के पैरा -14 में निहित निर्देश अपास्त करने योग्य है।

(12) हमने पक्षों द्वारा दी गई दलीलों की जांच की है और विवादित आदेश के साथ-साथ अभिलेख पर लाई गई सामग्री का भी अध्ययन किया है।

(13) विचार के लिए मुख्य मुद्दा यह है कि क्या माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा 28.11.2022 के आक्षेपित आदेश के पैरा-14 में प्रतिवादियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही के साथ आगे बढ़ने और अपीलकर्ता को किसी भी स्थान पर तैनात करने की स्वतंत्रता प्रदान करने का निर्देश, न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII नियम 5 के अर्थ में एक "निर्णय" जो इसे न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII नियम 5 के तहत विशेष अपील के लिए उत्तरदायी बनाता है, के समान है?

(14) न्यायालय के नियमों का अध्याय VIII नियम 5 इस प्रकार है:

"5. **विशेष अपील**.- एकल न्यायाधीश के न्यायनिर्णय से अपील न्यायालय में लाई जायेगी, जो, न्यायालय के अधीक्षण के प्रभावाधीन रहने वाले न्यायालय द्वारा किसी डिक्री या आदेश के संबंध मे अपीलीय क्षेत्राधिकार के इस्तेमाल मे पारित न्यायनिर्णय नहीं है या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के इस्तेमाल मे या इसके अधीक्षण की शक्ति के इस्तेमाल में या आपराधिक क्षेत्राधिकार के इस्तेमाल मे [या किसी न्यायनिर्णय या आदेश या अवार्ड के संबंध मे संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 के द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार के इस्तेमाल में, (क) किसी उत्तर प्रदेश अधिनियम या किसी केन्द्रीय अधिनियम के अधीन, संविधान की सातवीं अनुसूची मे राज्य सूची या समवर्ती सूची मे वर्णित किन्हीं मामलों के संबंध में, बनाये गये या इस्तेमाल मे लाने के उद्देश्य से या क्षत्राधिकार के इस्तेमाल के उद्देश्य से, एक अधिकरण, न्यायालय या सांविधिक माध्यस्थ के, (ख) किसी ऐसे अधिनियम के अधीन सरकार या किसी ऑफिसर या प्राधिकरण, जो बनाया गया है या इस्तेमाल मे लाने के उद्देश्य से या अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के इस्तेमाल के उद्देश्य से]"

(15) उपरोक्त प्रावधान के अवलोकन से पता चलता है कि उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के फैसले या आदेश से अपवादित श्रेणियों या अपवर्जन के अधीन अपील प्रदान की गई है जहां विशेष अपील पोषणीय नहीं होगी। इस प्रकार, सब कुछ न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII नियम 5 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "निर्णय" के अर्थ पर निर्भर करता है।

(16) न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII नियम 5 के तहत विशेष अपील के लिए उत्तरदायी बनाने के लिए एक निर्णय का गठन करने वाला मुद्दा, अब और *अनिर्णीत* नहीं है।

(17) बॉम्बे हाई कोर्ट के पत्र पेटेंट के खंड 15 के अर्थ और दायरे के भीतर

माननीय एकल न्यायाधीश के विनिश्चय को कब 'निर्णय' माना जा सकता है, का मुद्दा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष **शाह बाबूलाल खिमजी बनाम जयाबेन डी कानिया:** 1981 (4) एससीसी 8, के मामले में विचार के लिए आया था। जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 2 (9) में प्रदर्शित परिभाषा को इसके पत्र पेटेंट के प्रयोजनों के लिए अभिव्यक्ति के अर्थ में प्रस्तुत करना उचित नहीं होगा। और पत्र पेटेंट के खंड 15 के प्रयोजनों के लिए शब्द "निर्णय" को सीपीसी में अभिव्यक्ति "निर्णय" की तुलना में व्यापक और अधिक उदार व्याख्या प्राप्त होनी चाहिए। आगे यह माना गया कि 'निर्णय' एक व्यापक अर्थ में अंतिमता की अवधारणा को द्योतित करता है न कि संकीर्ण अर्थ में और ये तीन प्रकार का हो सकता है:

(i) अंतिम निर्णय;
(ii) प्रारंभिक निर्णय; और
(iii) एक मध्यस्थ या अंतर्वर्ती निर्णय.

शीर्ष अदालत ने आगे कहा कि ऐसे अंतर्वर्ती आदेश हो सकते हैं जो आदेश XLIII नियम 1 सी.पी.सी. के अंतर्गत नहीं आते हैं। लेकिन उनमें अंतिमता की विशेषता भी होती है। इसे इस प्रकार देखा गया:

"**(3)** मध्यस्थ या अंतर्वर्ती निर्णय - अधिकांश अंतर्वर्ती आदेश जिनमें अंतिमता की गुणवत्ता शामिल है, आदेश 43 नियम 1 के खंड (ए) से (डब्ल्यू) में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट हैं और हमारे द्वारा पहले से ही लेटर्स पेटेंट के अर्थ के भीतर निर्णय अभिनिर्धारित है और इसलिए, अपीलीय है। ऐसे अंतर्वर्ती आदेश भी हो सकते हैं जो आदेश 43 नियम 1 के अंतर्गत नहीं आते हैं, लेकिन जिनमें अंतिमता की विशेषताएं और जाल भी होते हैं, आदेश पार्टी के मूल्यवान अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं या सहायक कार्यवाही में परीक्षण के एक महत्वपूर्ण पहलू पर निर्णय ले सकते हैं। इससे पहले कि ऐसा आदेश कोई निर्णय बने, संबंधित पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव अप्रत्यक्ष या दूरस्थ के बजाय प्रत्यक्ष और तत्काल होना चाहिए।"

सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि प्रत्येक अंतर्वर्ती आदेश एक निर्णय नहीं है। अंतर्वर्ती आदेशों की केवल कुछ श्रेणियों को ही निर्णय माना जा सकता है। इस संबंध में, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:

"...प्रत्येक अंतर्वर्ती आदेश को निर्णय नहीं माना जा सकता है, लेकिन केवल वे आदेश ही निर्णय होंगे जो विशेष मामलों का निर्णय करते हैं या पार्टियों के महत्वपूर्ण और मूल्यवान अधिकारों को प्रभावित करते हैं और जो संबंधित पक्ष के साथ गंभीर अन्याय करते हैं।"

(जोर दिया गया)

(18) सेंट्रल माइन प्लानिंग एंड डिज़ाइन इंस्टीट्यूट लिमिटेड बनाम भारत संघ: 2001 (2) एससीसी 588

के मामले में जाँच अधिकथित करते समय कब अंतर्वर्ती आदेश, पत्र पेटेंट के प्रयोजनों के लिए "निर्णय" के अर्थ में आएगा, शीर्ष न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"...इस सवाल का निर्धारण करने के लिए कि क्या उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश द्वारा पारित एक अंतर्वर्ती आदेश पत्र पेटेंट के प्रयोजनों के लिए "निर्णय" के अर्थ में आता है, परीक्षण यह है: क्या आदेश संबंधित पक्षों के महत्वपूर्ण और मूल्यवान अधिकारों और दायित्वों को प्रभावित करने वाला अंतिम अवधारण है। इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों पर सुनिश्चित किया जाना चाहिए।"

(19) मिदनापुर पीपुल्स कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम चुन्नीलाल नंदा: 2006 (5) एससीसी 399 मामले में, शीर्ष न्यायालय ने निम्नलिखित दो प्रश्नों की जांच की है: -

जहां उच्च न्यायालय अवमानना की कार्यवाही में पक्षों के बीच विवाद के गुण-दोष के आधार पर या तो अंतर्वर्ती आदेश या अंतिम निर्णय द्वारा निर्णय देता है, क्या वह न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 19 के तहत अपील योग्य होगा और यदि नहीं, तो पीड़ित व्यक्ति के लिए क्या उपाय होगा; और

जहां गुण-दोष के आधार पर ऐसा निर्णय किसी विद्वान एकल न्यायाधीश के अंतर्वर्ती आदेश द्वारा दिया जाता है, तो क्या कलकत्ता उच्च न्यायालय के पत्र पेटेंट के खंड 15 के तहत एक अंतः न्यायालय अपील सुनवाई योग्य होगी।

इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि किसी मामले के लंबित रहने के दौरान पारित किए गए अंतर्वर्ती या अंतरिम आदेश निम्नलिखित श्रेणियों में से एक या अन्य के अंतर्गत आएंगे:

"(i) आदेश जो अंततः मुख्य मामले में विवाद में किसी प्रश्न या मुद्दे का निर्णय करते हैं;

(ii) आदेश जो अंततः किसी मुद्दे का निर्णय करते हैं जो मुख्य मामले में अंतिम निर्णय को तात्विक रूप से और सीधे प्रभावित करता है;

(iii) आदेश जो अंततः एक संपार्श्विक मुद्दे या प्रश्न का निर्णय करते हैं जो मुख्य मामले की विषय-वस्तु नहीं है;

(iv) नियमित आदेश जो अंतिम निर्णय तक मामले की प्रगति को सुविधाजनक बनाने के लिए पारित किए जाते हैं;

(v) ऐसे आदेश जो किसी पार्टी को कुछ असुविधा या कुछ पूर्वाग्रह का कारण बन सकते हैं, लेकिन जो अंततः पार्टियों के अधिकारों और दायित्वों को निर्धारित नहीं करते हैं।"

(20) आशुतोष श्रोत्रिय और अन्य बनाम कुलपति, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय और अन्य (सुप्रा) में, जिस पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने विश्वास जताया है तथा दो खण्ड पीठ के फैसले में विरोधाभास को देखते हुए, निम्नलिखित

प्रश्नों को पूर्ण न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया :

"(1) जहां एक विद्वान एकल न्यायाधीश किसी रिट याचिका की सुनवाई करते समय प्रतिशपथ और प्रत्युत्तर शपथ पत्र की मांग करता है, लेकिन स्थगन आवेदन पर स्थगन देने या अस्वीकार करने का कोई आदेश पारित नहीं करता है, क्या यह आदेश याचिकाकर्ता को अस्थायी या परोक्ष रूप से अंतरिम राहत देने से इनकार के समान होगा और न्यायालय के नियम, 1952 के अध्याय VIII नियम 5 के अर्थ में एक 'निर्णय' होगा। (2) क्या कोई आदेश जो अंतरिम राहत के अस्थायी या निहित इनकार द्वारा किसी पक्ष के मूल्यवान अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, उसमें निर्णय का प्रभाव होता है।"

(21) इस विषय पर कानून पर चर्चा करने के बाद, पूर्ण पीठ ने निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दिए:

"**44**.तदनुसार, हमारा विचार है कि एक रिट याचिका की सुनवाई के दौरान विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा जारी एक निर्देश, एक प्रतिशपथ और एक प्रत्युत्तर दाखिल करने या, दूसरे शब्दों में, अभिवचन पूरा करने के लिए कहता है, मामले की अंतिम प्रगति में सहायता के लिए एक प्रक्रियात्मक प्रकृति की दिशा है। इस तरह के निर्देश का ध्येय और उद्देश्य एकल न्यायाधीश को याचिका के जवाब का सुविचारित लाभ प्राप्त करने में सक्षम बनाना है ताकि अदालत प्रतिद्वंद्वी दृष्टिकोणों के निष्पक्ष विचार पर एक अंतर्वर्ती प्रकृति के आवेदन से निपटने में सक्षम हो सके और अंततः अंतिम चरण में मामले के निपटारे के उद्देश्य में सफल हो सके। इस प्रकृति का एक विशुद्ध प्रक्रियात्मक निर्देश आम तौर पर किसी विशेष अपील के समाधान के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, भले ही ऐसे निर्देश जारी करने का परिणाम एक या दूसरे पक्ष के लिए कुछ असुविधा या पूर्वाग्रह पैदा करना हो। न्यायालय, किसी मामले पर निर्णय लेने के लिए, या तो वार्ता के दौरान या अंतिम चरण में, आम तौर पर एक पक्ष द्वारा दायर की गई प्रतिक्रिया के लाभ की आवश्यकता होगी जो कि मांगे गए आदेश और दावा की गई राहत से प्रभावित होगी। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन पक्षों के लिए उतना ही सुरक्षित है जितना कि अंतिम निर्णय देने से पहले मामले पर उसके सभी परिप्रेक्ष्यों पर विचार करना न्यायालय के लिए है। यदि कार्यवाही में कोई पक्ष अत्यधिक अत्यावश्यकता के आधार पर या इस आधार पर जवाब दाखिल करने से पहले ही अंतरिम राहत के लिए आवेदन पर दबाव डालना चाहता है कि स्थिति अपरिवर्तनीय रूप से बदल जाएगी या सुरक्षात्मक आदेश पारित होने तक अपूरणीय अन्याय होगा, इस तरह की प्रस्तुति के लिए एकल न्यायाधीश के समक्ष आग्रह किया जाना चाहिए। यदि इस तरह के अनुरोध का आग्रह किया जाता है, तो इसे दर्ज किया जाना चाहिए और इस शिकायत को दूर करने के लिए संक्षेप में निपटाया जाना चाहिए कि विज्ञापन अंतरिम राहत के लिए एक आवेदन दबाया गया था लेकिन निपटा नहीं गया। प्रतिशपथ और प्रत्युत्तर के लिए बुलाने की पूरी तरह से

प्रक्रियात्मक दिशा एक विशेष अपील के लिए उत्तरदायी नहीं होगी क्योंकि यह किसी भी अधिकार का फैसला नहीं करती है और पार्टियों के महत्वपूर्ण और मूल अधिकारों को प्रभावित नहीं करती है। हालाँकि, अपीलीय अदालत के पास यह तय करने का निर्विवाद अधिकार क्षेत्र है कि क्या निर्देश एक प्रक्रियात्मक प्रकृति का है जिसके खिलाफ एक विशेष अपील सुनवाई योग्य नहीं है या क्या अंतर्वर्ती आदेश क्षणिक मामलों का निर्णय करता है या पार्टियों के महत्वपूर्ण और मूल्यवान अधिकारों को प्रभावित करता है और संबंधित पार्टी के साथ गंभीर अन्याय करता है। जहां एक विशेष अपील में खण्ड पीठ का विचार है कि विद्वान एकल न्यायाधीश का आदेश केवल एक प्रक्रियात्मक निर्देश नहीं है, बल्कि इसके परिणामस्वरूप अपरिवर्तनीय प्रकृति के मूल अधिकारों को गंभीर नुकसान होगा, न्यायालय का अधिकार क्षेत्र इतना व्यापक है कि वह किसी पीड़ित वादी के आदेश पर हस्तक्षेप कर सकता है। न्यायालय के नियम न्याय की सहायता में हैं। इसलिए, हम इस सिद्धांत की पुष्टि करते हैं कि प्रकृति का एक विशुद्ध प्रक्रियात्मक आदेश, जिस पर संदर्भ दिया गया है, एक विशेष अपील के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, जो निर्णय नहीं होगा। खण्ड पीठ को प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की प्रकृति का निर्धारण करते हुए यह तय करना होगा कि अपील पोषणीय है या नहीं।

44. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, हम पूर्ण पीठ को संदर्भित कानून के प्रश्न का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए देते हैं कि, संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत एक याचिका पर एक विद्वान एकल न्यायाधीश का आदेश केवल प्रतिशपथ और प्रत्युत्तर शपथपत्र के लिए कहना, मामले की प्रगति में सहायता के लिए मात्र एक प्रक्रियात्मक आदेश है। इस प्रकृति का एक आदेश जो मामले की प्रगति में सहायता के लिए पूरी तरह से प्रक्रियात्मक प्रकृति का है और अदालत को एक प्रतिशपथ और एक प्रत्युत्तर दायर करने के बाद एक सुविचारित दृष्टिकोण बनाने में सक्षम बनाता है, अध्याय VIII के नियम 5 के तहत एक विशेष अपील के लिए अध्यधीन नहीं होगा। ऐसा आदेश कुछ भी तय नहीं करता है और न ही इसमें अंतिमता का जाल होता है। यदि कार्यवाही में कोई पक्ष प्रतिशपथ दायर करने से पहले ही सुरक्षात्मक प्रकृति की अंतरिम राहत के लिए इस आधार पर आवेदन करना चाहता है कि इस बीच अपूरणीय अन्याय की स्थिति उत्पन्न हो सकती है या उसके मूल अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। , ऐसे तर्क को एकल न्यायाधीश के समक्ष संबोधित किया जाना चाहिए। यदि इस तरह के तर्क का आग्रह किया जाता है, तो इसे एकल न्यायाधीश द्वारा, मामले के चरण के अनुरूप, संक्षिप्त रूप से निपटाया जाना चाहिए। **विशेष अपील की सुनवाई करने वाली खंडपीठ को इस बात पर विचार करना है कि क्या आदेश विशेष मामलों का निर्णय करता है या ऐसी प्रकृति का है जो पार्टियों**

के महत्वपूर्ण और मूल्यवान अधिकारों को प्रभावित करेगा और संबंधित पक्ष के साथ गंभीर अन्याय करेगा।"

(जोर दिया गया)

(22) विषय पर पूर्वोक्त निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, हमने इस मामले में जो पाया वह यह है कि अपीलकर्ता को आदेश दिनांक 21.04.2022 के माध्यम से निलंबित करके उसके खिलाफ उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी। इस बहाने से कि अपीलकर्ता ने सहायक आयुक्त, वाणिज्यिक कर, सचल दल इकाई, बाराबंकी के पद पर कार्य करते हुए, अपने स्तर पर गलत तथ्य, साक्ष्य और मनगढ़ंत दस्तावेज तैयार करके वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन किया है। सुविधा के साथ-साथ व्यापारियों की मिलीभगत से, अधिक मूल्यवान और अधिक कर योग्य धातु/गैर-धातु वस्तुओं के स्थान पर कम मूल्यवान और कम कर योग्य प्लास्टिक रद्दी घोषित कर दिया गया और राज्य के खजाने में आवश्यक कर/जुर्माना के बजाय बहुत कम राशि जमा की गई, जिसके कारण सरकार को राजस्व हानि हुई। अपीलकर्ता ने 21.04.2022 के निलंबन के उपरोक्त आदेश को रिट-ए संख्या 7888 / 2022 दायर करके चुनौती दी है। आक्षेपित आदेश के माध्यम से, माननीय एकल न्यायाधीश ने पार्टियों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा अग्रेषित निवेदन नोट करने के बाद साथ ही अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किए गए **ज़ुंजरराव भीकाजी नागरकर (सुप्रा)** में शीर्ष अदालत के फैसले ने 21.04.2022 के निलंबन आदेश के प्रचालन और कार्यान्वयन पर रोक लगा दी, हालांकि, प्रतिवादियों को अनुशासनिक कार्यवाही हेतु आगे बढ़ने की स्वतंत्रता दी गई है ।

(23) वर्तमान मामले में, आक्षेपित आदेश से यह पता चलता है कि आक्षेपित आदेश के पैरा-14 में माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्देश, प्रतिवादियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने की स्वतंत्रता देते हुए, अंतिमता के लक्षण और जाल हैं और साथ ही ऐसी प्रकृति जिससे अपीलकर्ता के साथ गंभीर अन्याय होगा। इस प्रकार, वर्तमान विशेष अपील पोषणीय है और विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत संवहनीय नहीं है।

(24) माननीय एकल न्यायाधीश ने दर्ज किया है कि ऐसे मामले में जहां जुर्माना, वजन आदि के क्रम में कोई दुर्बलता नहीं है, या माल की गुणवत्ता की मात्रा में कमी है, प्रतिवादियों को यूपी के वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम के प्रावधानों का पालन करना चाहिए एवं उक्त आदेश को उ0प्र0 वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम की धारा 108 के अनुसार संशोधित किया जाना चाहिए। हालाँकि, अपीलकर्ता द्वारा पारित आदेश, जिसने उसके निलंबन और उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का आधार बनाया है, को प्रतिवादियों द्वारा संशोधित या ख़ारिज नहीं किया गया

है। बल्कि, अपीलकर्ता द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध कोई कार्रवाई न करने का एक सचेत निर्णय लिया गया। जब प्रतिवादियों ने स्वयं अपीलकर्ता द्वारा पारित आदेश को अंतिम रूप देने की अनुमति दी है और उन्होंने आदेश को चुनौती न देने का सचेत निर्णय लिया है, तो केवल इस आधार पर उठाए गए संदेह के आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई कि निर्धारिती ने जुर्माना जमा कर दिया है आदेश पारित होने के बाद बहुत ही कम समय के भीतर, अपीलकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का कोई अच्छा आधार प्रतीत नहीं होता है।

(25) माननीय एकल न्यायाधीश ने **जुंजरराव भीकाजी नागरकर बनाम भारत संघ और अन्य (सुप्रा)** के मामले से निम्नलिखित अंश उद्धृत किया है: -

"**41**. जब जुर्माना नहीं लगाया जाता है, तो निर्धारिती को निश्चित रूप से लाभ होता है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि जुर्माना न लगाकर अधिकारी ने निर्धारिती का पक्ष लिया है या उसके प्रति अनुचित पक्षपात किया है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए प्रथम दृष्टया भी ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कुछ आधार होना चाहिए। वर्तमान मामले में रिकॉर्ड यह नहीं दिखाता है कि क्या अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास ऐसी कोई जानकारी थी जिससे वह यह राय बना सके कि अपीलकर्ता ने जुर्माना न लगाकर निर्धारिती के प्रति 'पक्ष' दिखाया। हो सकता है कि उसने अपने अधिकार क्षेत्र का ग़लत इस्तेमाल किया हो. लेकिन उस ग़लती को अपील में सुधारा जा सकता है। यह हमेशा एक अधिकारी के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का आधार नहीं बन सकता है, जबकि वह अर्द्ध न्यायिक प्राधिकारी के रूप में कार्य कर रहा है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि एक अर्द्ध न्यायिक प्राधिकारी होने के नाते, वह अपील में हमेशा न्यायिक पर्यवेक्षण के अधीन होता है। यह हमेशा किसी अधिकारी के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का आधार नहीं बन सकता, जबकि वह अर्द्ध न्यायिक प्राधिकारी के रूप में कार्य कर रहा हो। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि एक अर्द्ध न्यायिक प्राधिकारी होने के नाते, वह अपील में हमेशा न्यायिक पर्यवेक्षण के अधीन होता है।

42. किसी अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही ऐसी सूचना पर नहीं की जा सकती जो अस्पष्ट या अनिश्चित हो। ऐसे मामले में संदेह की कोई भूमिका नहीं होती। दोषी अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास उचित आधार मौजूद होना चाहिए। केवल इसलिए कि जुर्माना नहीं लगाया गया था और बोर्ड ने अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अपीलीय न्यायाधिकरण में उस आदेश के खिलाफ अपील दायर करने का निर्देश दिया था, अपीलकर्ता के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। यह दिखाने के लिए कोई अन्य उदाहरण नहीं है कि

इसी तरह के मामले में अपीलकर्ता ने हमेशा जुर्माना लगाया हो।

43. यदि, कानून की प्रत्येक त्रुटि कदाचार का आरोप बनाती है, तो यह अपीलकर्ता जैसे अर्द्ध न्यायिक अधिकारियों की स्वतंत्र कार्यप्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी। चूंकि अपीलकर्ता द्वारा कुल मिलाकर यह अनुमान लगाने की कोशिश की गई है कि उसने कानूनी गलती की है, इसलिए आरोप-पत्र किसी भी कानूनी आधार पर आगे नहीं बढ़ता है, जिससे इसे रद्द किया जा सके। दूसरे शब्दों में, अर्द्ध न्यायिक प्राधिकारी के खिलाफ किसी भी आरोप पत्र को बनाए रखने के लिए केवल कानून की गलती से अधिक कुछ आरोप लगाया जाना चाहिए, उदाहरण के लिए, अर्द्ध न्यायिक आदेश को प्रभावित करने वाले कुछ बाहरी विचार की प्रकृति में। चूंकि यहां इस तरह का कुछ भी आरोप नहीं लगाया गया है, इसलिए विवादित आरोप-पत्र अवैध करार दिया गया है। यदि आरोप-पत्र कायम रहता है, तो यह एक अर्द्ध न्यायिक प्राधिकरण के विश्वास और स्वतंत्र कामकाज पर आघात करेगा। प्रशासनिक न्यायनिर्णयन की पूरी प्रणाली, जिसके तहत अर्द्ध न्यायिक शक्तियां प्रशासनिक अधिकारियों को प्रदान की जाती हैं, वो अपमानित हो जाएंगी यदि ऐसे कार्य करने वाले अधिकारियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही के लगातार खतरे के कारण बिना किसी डर या पक्षपात के अपने कार्य करने से रोका जाता है।"

(26) अपीलकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही केवल इसलिए शुरू की गई है क्योंकि निर्धारिती ने बहुत कम समय के भीतर जुर्माना जमा कर दिया है, जिससे अपीलकर्ता द्वारा पारित दंड आदेश के संबंध में संदेह पैदा हो गया है। **ज़ुंजरराव भीकाजी नागरकर (सुप्रा)** मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि किसी अधिकारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही जानकारी पर नहीं हो सकती है, जो अस्पष्ट और अनिश्चित है और ऐसे मामलों में संदेह की कोई भूमिका नहीं है जब विभाग ने अपीलकर्ता द्वारा पारित आदेश को चुनौती न देने का एक सचेत निर्णय लिया हो और इसे अंतिम रूप देने की अनुमति दी गई है। प्रथम दृष्टया, इस स्तर पर ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त आदेश पारित करने के लिए अपीलकर्ता को दंडित करने के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की जा सकती है।

(27) उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित है, हमारा विचार है कि प्रतिवादियों को अपीलकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही आगे बढ़ाने और उसे कहीं भी तैनात करने की स्वतंत्रता नहीं दी जानी चाहिए थी।

(28) तदनुसार, वर्तमान विशेष अपील की **अनुमति** दी जाती है। माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा रिट-ए संख्या 7888 / 2022 : *अंजलि चौरसिया बनाम यूपी राज्य और 5 अन्य*, में दिनांक 28.11.2022 को पारित आदेश में, जहां तक यह प्रावधान है कि *"प्रतिवादी इस आदेश में दर्ज निष्कर्षों*

से प्रभावित हुए बिना अनुशासनात्मक कार्यवाही आगे बढ़ाने के लिए स्वतंत्र हैं। प्रतिवादियों को इस तथ्य पर विचार करते हुए कि उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित है, याचिकाकर्ता को किसी भी स्थान पर तैनात करने की भी स्वतंत्रता है, " को इसके द्वारा अपास्त कर दिया गया है।

(29) यह स्पष्ट किया जाता है कि मामले को गुण-दोष के आधार पर तय करते समय, माननीय एकल न्यायाधीश यहां ऊपर की गई किसी भी टिप्पणी से निर्देशित या प्रभावित नहीं होंगे, जो केवल वर्तमान अपील के निस्तारण के प्रयोजन के लिए की गई है।

(2023) 2 ILRA 708

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 19.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर,

विशेष अपील दोष क्रमांक 122 / 2022

सी/एम, गांधी राष्ट्रीय विद्यालय, रथ, जिला हमीरपुर और अन्य।

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री प्रभाकर अवस्थी, श्री सौरभ त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री ए. के. रॉय, (अतिरिक्त सी.एस.सी.), श्री हरिन्द्र प्रसाद, श्रीकृष्ण कांत द्विवेदी, श्री अंकित गौड़ (एस.सी.), श्री बृजेश दुबे

ए. सोसायटी/चुनाव कानून - सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 - एक विवाद उत्पन्न होता है कि सोसायटी की सामान्य सभा और प्रबंधन समिति बहुत भिन्न हैं। सोसायटी के उपनियमों और संस्थान की प्रबंधन योजना को देखकर इस तथ्य पर प्रभाव देना होगा। सोसायटी की सामान्य सभा में सदस्यों के नामांकन को लेकर भी गहरा विवाद है, जिसकी सदस्यता को कई बार संशोधित किया गया है और सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट्स द्वारा अनुमोदित किया गया है। यह वाद संस्थान की प्रबंधन समिति के चुनाव से संबंधित है जिसमें मूल निकाय, यानी सोसायटी की भागीदारी शामिल है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने पक्षों के मध्य शपथपत्र के आदान-प्रदान के बिना रिट याचिका को अनुमति दे दी है। (पैरा 11)

इस जटिलता के तथ्यात्मक विवादों से संलिप्त मूल रिट याचिकाओं में, कार्रवाई का बेहतर तरीका पक्षों को शपथपत्र का आदान-प्रदान करने की अनुमति देना और फिर वाद की सुनवाई करना है। यह मामला संबंधित पक्षों को अपने शपथपत्र प्रस्तुत करने की अनुमति देने और सभी संबंधित पक्षों को सुनने के बाद वाद पर नवीन सिरे से निर्णय लेने के निर्देश के साथ विद्वान एकल न्यायाधीश के पास वापस जाना चाहिए। (पैरा 12)

अनुवादित

विशेष अपील स्वीकार की गयी। दिनांक 24 फरवरी, 2022 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है। तीनों रिट याचिकाएं कानून के अनुसार नए सिरे से सुनवाई और निर्णय के लिए विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष पुनर्स्थापित रहेंगी। (ई 4)

विशेष अपील विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 24.02.2022 के विरुद्ध योजित है।

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल
एवं
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

आदेश

<u>अवकाश हेतु सिविल प्रकीर्ण आवेदन की अपील संख्या 2 वर्ष 2022</u> पर

1. अवकाश का आवेदन स्वीकार किया जाता है। अपीलार्थियों/आवेदकों को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांकित 24 फरवरी, 2022 के विरुद्ध अपील करने की अनुमति दी जाती है।

<u>सिविल प्रकीर्ण छूट आवेदन संख्या 3/2022</u>पर

2. छूट आवेदन स्वीकृत किया जाता है।

<u>अपील के ज्ञापन</u> पर

3. यह विशेष अपील, विद्वान एकल न्यायाधीश के एक निर्णय एवं आदेश दिनांकित 24 फरवरी, 2022 जिसके द्वारा रिट-सी संख्या 703 वर्ष 2022, 3056 वर्ष 2021 और 30573 वर्ष 2021 की अनुमति दी गई है, के विरुद्ध है।

4. आक्षेपित निर्णय द्वारा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने, अन्य के साथ साथ, सहायक निबंधक, फर्म, सोसायटी और चिट्स, झाँसी क्षेत्र, झाँसी द्वारा पारित आदेश दिनांकित 5 दिसंबर, 2019 और 30 अक्टूबर, 2021 को निरस्त कर दिया है। आदेश दिनांकित 5 दिसंबर, 2019 द्वारा, सहायक निबंधक ने उस समय सोसायटी के सामान्य निकाय जिसमें 1397 सदस्य शामिल थे, में 307 सदस्यों को शामिल करने की मंजूरी दी थी। 30 अक्टूबर, 2021 के अन्य आदेश द्वारा, सहायक निबंधक ने सोसायटी के सामान्य निकाय के सदस्यों की एक पुनरीक्षित और संशोधित सूची जारी की, जिनकी संख्या 1025 थी।

5. विद्वान न्यायाधीश ने सहायक निबंधक द्वारा सोसायटी के सामान्य निकाय की सदस्यता के निर्धारण के परिणामस्वरूप होने वाली सभी परिणामी कार्यवाहियों को भी निरस्त कर दिया है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय का एक और प्रभाव यह है कि 16 जनवरी, 2022 को आयोजित और 18 जनवरी, 2022 को अपीलार्थियों की अध्यक्षता में सहायक निबंधक द्वारा पंजीकृत सोसायटी की प्रबंधन समिति के चुनाव भी निरस्त हो जाएंगे।

6. इस अपील को जन्म देने वाली रिट याचिकाओं में शामिल विवाद श्री गांधी राष्ट्रीय विद्यालय, राठ, जिला हमीरपुर से संबंधित है, जो सोसायटी पंजीकरण

अनुवादित

अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत एक सोसायटी (संक्षेप में, 'सोसाइटी') है। सोसायटी ने एक शैक्षणिक संस्थान की स्थापना की है, जिसे गांधी राष्ट्रीय विद्यालय, राठ, जिला हमीरपुर (संक्षेप में, 'संस्थान') के नाम से जाना जाता है। संस्थान को संचालित करने के लिए अधिकृत प्रबंधन समिति के निर्विवाद चुनाव वर्ष 2000 में और फिर वर्ष 2003 में हुए। बाद में, सामान्य निकाय की सदस्यता में वृद्धि हुई।

7. अपीलार्थियों का मामला यह है कि 20 अप्रैल, 2018 को, सहायक निबंधक ने 1397 सदस्यों की एक सूची को मंजूरी दी, जिसमें कुछ 307 सदस्य भी शामिल थे, जिन्हें 18 दिसंबर, 2014 के आदेश द्वारा अनुमोदित किया गया था। उक्त सूची के आधार पर, संस्थान की प्रबंधन समिति के चुनाव 3 फरवरी, 2019 को आयोजित हुए। 5 दिसंबर, 2019 को 1397 के अतिरिक्त, कुछ 307 सदस्यों को सामान्य निकाय के सदस्य के रूप में मंजूरी दी गई।

8. 5 दिसंबर, 2019 के आदेश को अपीलार्थियों द्वारा रिट-सी संख्या 30573 वर्ष 2021 द्वारा चुनौती दी गई। 30 अक्टूबर, 2021 के अनुवर्ती आदेश द्वारा, सहायक निबंधक ने उन सदस्यों को छोड़कर जिनका तीन साल का कार्यकाल समाप्त हो गया था, एक संशोधित सूची जारी की। इस आदेश को यहां अपीलार्थियों द्वारा फिर से रिट-सी संख्या 30956 वर्ष 2021 द्वारा चुनौती दी गई। ऐसा प्रतीत होता है कि इस याचिका में प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा इस वचन पर, याचिका में एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था कि सहायक निबंधक द्वारा पारित आदेश दिनांकित 30 अक्टूबर, 2021 के आधार पर संस्थान की प्रबंधन समिति के लिए कोई चुनाव नहीं किया जा रहा था और केवल सोसायटी की प्रबंधन समिति के चुनाव को अधिसूचित किया गया था।

9. अतः, न्यायालय ने एक अंतरिम आदेश पारित किया कि प्रतिवादियों को 3 फरवरी, 2019 को हुए चुनावों के आधार पर, याचिकाकर्ता की सोसायटी जैसा कि 6 मार्च, 2019 को अनुमोदित की गई थी, के शांतिपूर्ण कामकाज में हस्तक्षेप करने से रोका जाता है। इस आदेश को अनुवर्ती आदेश दिनांकित 22 दिसंबर, 2021 द्वारा सही किया गया था कि अंतरिम आदेश में "याचिकाकर्ता की सोसायटी" के लिए "कॉलेज की प्रबंधन समिति" का उल्लेख किया जाए। सोसायटी की प्रबंधन समिति के चुनाव 16 जनवरी, 2022 को हुए, जिसमें अपीलार्थी संख्या 2 को सचिव/सभापति के रूप में निर्वाचित किया गया।

10. ऐसा प्रतीत होता है कि 14 फरवरी, 2022 को सोसायटी के आम निकाय की एक बैठक आयोजित की गई थी, जिसमें आम निकाय के 477 सदस्यों जिनकी मृत्यु हो चुकी थी, के नाम हटा दिए गए और अन्य 103 का नामांकन किया गया। सहायक निबंधक ने सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 4-बी के तहत सोसायटी के आम निकाय के 651 सदस्यों की सूची को मंजूरी दी। इस अवसर पर,

अनुवादित

आम निकाय के 56 सदस्यों ने सहायक निबंधक द्वारा पारित आदेश दिनांकित 30 अक्टूबर, 2021 को रिट-सी संख्या 703 वर्ष 2022 द्वारा चुनौती दी। सभी तीन रिट याचिकाओं को एकसाथ जोड़कर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सुना गया, जिन्होंने आक्षेपित निर्णय द्वारा, उपरोक्त दो आदेशों को रद्द करते हुए और विभिन्न निर्देश जारी करते हुए, उन्हें स्वीकार किया है।

11. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने पर, हमने पाया कि एक विवाद उठाने की मांग की जा रही है कि सोसायटी का आम निकाय और प्रबंधन समिति बहुत अलग हैं। इस तथ्य का दावा सोसायटी के उपनियमों और संस्थान की प्रबंधन योजना को देखकर करना होगा। सोसायटी के आम निकाय में सदस्यों के नामांकन को लेकर भी गहरा विवाद है, जिसकी सदस्यता को कई बार संशोधित किया गया है और सहायक निबंधक, फर्म, सोसायटी और चिट्स द्वारा अनुमोदित किया गया है। मुद्दा,मूल निकाय यानी सोसायटी की भागीदारी के साथ, संस्थान की प्रबंधन समिति के चुनावों से संबंधित है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने पक्षकारों के बीच हलफनामों के आदान-प्रदान के बिना रिट याचिकाओं को स्वीकार कर लिया है।

12. हमारी राय है कि इस जटिलता के तथ्यात्मक विवादों से जुड़ी मूल रिट याचिकाओं में, कार्रवाई का बेहतर तरीका पक्षकारों को हलफनामे का आदान-प्रदान करने की अनुमति देना और फिर मामले की सुनवाई करना है। अतः हमारा विचार है कि यह मामला, संबंधित पक्षकारों को अपने हलफनामे देने की अनुमति प्रदान करने और सभी संबंधित पक्षों को सुनने के बाद मामले को नए सिरे से तय करने के निर्देश के साथ, विद्वान एकल न्यायाधीश के पास वापस जाना चाहिए।

13. तदनुसार, हम इस अपील को स्वीकार करते हैं, आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांकित 24 फरवरी, 2022 को निरस्त करते हैं। सभी तीन रिट याचिकाएं, विधि अनुसार नए सिरे से सुनवाई और निर्णय के लिए विद्वान एकल न्यायाधीश की फाइल में बहाल कर दी जाएंगी। हम विद्वान एकल न्यायाधीश से सुनवाई में तेजी लाने का अनुरोध करते हैं।

14. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 2 ILRA 711

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी,

रिट ए संख्या 1051/2023

अवनीश कुमार पांडे एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: व्यास नारायण शुक्ला, राघवेंद्र ओझा, शिव कुमार सोनी

अनुवादित

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - नियम 17 की संवैधानिकता - उत्तर प्रदेश पुलिस कंप्यूटर स्टाफ (अराजपत्रित) सेवा नियमावली 2011 - उत्तर प्रदेश सरकार विभाग इलेक्ट्रॉनिक डाटा प्रोसेसिंग (ग्रेड-सी) संवर्ग सेवा नियमावली, 2016: नियम 18; कांस्टेबल और हेड कांस्टेबल सेवा नियम, 2015: नियम 17; उत्तर प्रदेश उप-निरीक्षक और निरीक्षक (सिविल पुलिस) सेवा नियम, 2015: नियम 17; उत्तर प्रदेश पुलिस रेडियो अधीनस्थ सेवा नियम, 2015; उत्तर प्रदेश पुलिस मंत्रालयिक लेखा एवं गोपनीय सहायक संवर्ग सेवा नियम, 2015; उत्तर प्रदेश प्रादेशिक सशस्त्र कांस्टेबुलरी अधीनस्थ अधिकारी सेवा नियम, 2015; सूचना का अधिकार अधिनियम 2005; पुलिस अधिनियम, 1861: धारा 46(2)(सी) सपठित धारा 2।

किसी भी अधिनियम को केवल यह कह कर निरस्त नहीं किया जा सकता कि यह मनमाना या अनुचित है। किसी अधिनियम को अमान्य करने से पूर्व किसी न किसी संवैधानिक कमज़ोरी का पता लगाना होगा। किसी अधिनियम को इस आधार पर अपास्त नहीं किया जा सकता कि न्यायालय इसे अनुचित मानती है। संसद और विधानमंडल, जिनकी रचना जनता के प्रतिनिधियों से होती है, उससे अपेक्षा की जाती है कि वे जनता की जरूरतों को जानें और जागरूक रहें और जानें कि उनके लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है। न्यायालय उनकी बुद्धिमत्ता पर निर्णय नहीं दे सकती। (पैरा 10)

याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया है कि 2011 के नियमों का नियम 17 अधिकारातीत है और इस आधार पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है कि यू.पी. पुलिस रेडियो अधीनस्थ सेवा नियमावली 2015, उ.प्र. पुलिस अनुसचिवीय, लेखा एवं गोपनीय सहायक संवर्ग सेवा नियमावली 2015 एवं उ.प्र. प्रादेशिक सशस्त्र कांस्टेबुलरी अधीनस्थ अधिकारी सेवा नियम 2015 में पदोन्नति करने के लिए विभागीय परीक्षा आयोजित करने का कोई प्रावधान नहीं है और इसलिए, नियम 2011 के नियम 17 में जहां तक पदोन्नति करने के लिए विभागीय परीक्षा आयोजित करने का प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधान अधिकारातीत है। (पैरा 16) याचिकाकर्ता द्वारा संदर्भित उपरोक्त सभी नियम कर्मचारियों की सेवा शर्तों से संबंधित हैं, जो कर्मचारियों के एक विशेष वर्ग का निर्माण करते हैं और कर्मचारियों के सभी वर्ग एक दूसरे से भिन्न और भिन्न होते हैं। किसी अन्य नियम में ऐसे व्यक्तियों की पदोन्नति करने का प्रावधान नहीं है, जिनके बारे में कहा जा सकता है कि वे यूपी पुलिस में ग्रेड-ए कंप्यूटर ऑपरेटरों के वर्ग के समान वर्ग से संबंधित हैं। कंप्यूटर ऑपरेटर ऐसे कर्तव्य का वहन करते हैं, जो तकनीकी प्रकृति के होते हैं और जिनके लिए कंप्यूटर संचालन में विशेष कौशल की आवश्यकता होती है। **यदि सरकार ने उम्मीदवारों की उपयुक्तता सुनिश्चित करने के लिए कंप्यूटर ऑपरेटर, ग्रेड-ए से कंप्यूटर ऑपरेटर, ग्रेड-बी की पदोन्नति करने के लिए लिखित परीक्षा आयोजित करने का निर्णय लिया है, तो यह नहीं कहा जा सकता**

अनुवादित

है कि लिखित परीक्षा आयोजित करने का निर्णय प्राप्त किये जाने वाले उद्देश्य के साथ उचित संबंध नहीं है। (पैरा 17)

बी. केवल इसलिए कि राज्य सरकार नियम में संशोधन करने पर विचार कर रही है, नियमों को अधिकारातीत घोषित नहीं किया जा सकता। याचिकाकर्ताओं ने नियमों की वैधता को इस आधार पर भी चुनौती दी है कि राज्य सरकार स्वयं विभागीय परीक्षा आयोजित करने के बजाय विभागीय वरिष्ठता के आधार पर कंप्यूटर ऑपरेटर, ग्रेड-ए से कंप्यूटर ऑपरेटर, ग्रेड-बी की पदोन्नति करने की प्रक्रिया में संशोधन पर विचार कर रही है। राज्य सरकार नियम निर्माण करने के अपने अधिकार क्षेत्र में थी और उसे नियमों में संशोधन करने का अधिकार है। (पैरा 18)

राज्य सरकार ने पहले ही इस क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले नियम बना दिए हैं। राज्य ने नियम बनाने में अपनी क्षमता के अनुरूप कार्य किया है। **नियम भारत के संविधान के किसी भी प्रावधान के दायरे से बाहर नहीं हैं और इस न्यायालय के पास नियमों में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है।** (पैरा 19)

रिट याचिका निरस्त। (ई 4)

<u>संदर्भित वाद:</u>

1. प्रवीण सिंह इनरासिंह महिदा बनाम गुजरात राज्य, 2021 SCC ऑनलाइन गुजरात 1293 (पैरा 8)
2. सुब्रमण्यम स्वामी बनाम निदेशक, केंद्रीय जांच ब्यूरो एवं अन्य, (2014) 8 एससीसी 682 (पैरा 9)
3. लोक सेवा अधिकरण बार एसोसिएशन बनाम यू.पी. राज्य (2003) 4 एससीसी 104 (पैरा 9)
4. ए.पी. राज्य एवं अन्य बनाम मैकडॉवेल एंड कंपनी एवं अन्य, (1996) 3 एससीसी 709 (पैरा 9)
5. शायरा बानो बनाम भारत संघ, (2017) 9 एससीसी 1 (पैरा 12)

वर्तमान याचिका में उत्तर प्रदेश पुलिस कंप्यूटर स्टाफ (अराजपत्रित) सेवा नियमावली 2011 (इसके बाद "2011 की नियमावली" के रूप में संदर्भित) की वैधता को चुनौती दी गई है और उन्होंने विपरीत पक्षों को उपरोक्त नियमों में इस सीमा तक इसमें कंप्यूटर ऑपरेटर ग्रेड-ए के पद से कंप्यूटर ऑपरेटर ग्रेड-बी के पद पर पदोन्नति करने के लिए विभागीय परीक्षा आयोजित करने के प्रावधान में संशोधन करने का निर्देश देते हुए एक परमादेश रिट जारी करने की मांग की है।

(माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
&
माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव कुमार सोनी और राज्य-प्रतिवादी के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री वी.पी. नाग को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया गया।

वर्तमान रिट-याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ताओं ने उत्तर प्रदेश पुलिस कंप्यूटर कर्मचारी (अराजपत्रित) सेवा नियमावली 2011 (इसमें इसके पश्चात

अनुवादित

"2011 की नियमावली" के रूप में संदर्भित) की वैधता को चुनौती दी है और उन्होंने प्रतिवादियों को उक्त नियमों में उस सीमा तक संशोधन करने का निर्देश देने वाली परमादेश रिट जारी करने की मांग की है, जिसमें कंप्यूटर ऑपरेटर, समूह 'क' के पद से कंप्यूटर ऑपरेटर समूह 'ख' के पद पर पदोन्नति करने के लिए विभागीय परीक्षा आयोजित करने का प्रावधान है।

याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया है कि सरकारी कर्मचारियों की पदोन्नति को नियंत्रित करने वाले कई अन्य नियमों में, परीक्षा आयोजित करने का कोई प्रावधान नहीं है, जैसा कि 2011 के नियमावली के नियम 17 में है।

उत्तर प्रदेश सरकारी विभाग इलेक्ट्रॉनिक डाटा प्रोसेसिंग समूह 'ग' संवर्ग सेवा नियमावली 2016 का नियम 18, जिसमें कंप्यूटर ऑपरेटर, समूह 'ख' और कंप्यूटर ऑपरेटर, समूह 'ग' के पद पर पदोन्नति द्वारा भर्ती की प्रक्रिया शामिल है और उत्तर प्रदेश पुलिस आरक्षी तथा मुख्य आरक्षी सेवा नियमावली, 2015 का नियम 17, जिसमें मुख्य आरक्षी के पद पर पदोन्नति का प्रावधान है, और उत्तर प्रदेश उप-निरीक्षक और निरीक्षक (नागरिक पुलिस) सेवा नियमावली, 2015 का नियम 17, जिसमें उप-निरीक्षक के पद पर पदोन्नति का प्रावधान है, में पदोन्नति करने के लिए परीक्षा आयोजित करने का कोई प्रावधान नहीं है।

रिट याचिका में आगे प्रस्तुत किया गया है कि उ.प्र. पुलिस रेडियो अधीनस्थ सेवा नियमावली 2015, उ.प्र. पुलिस अनुसचिवीय लेखा एवं गोपनीय सहायक संवर्ग सेवा नियमावली 2015 एवं उ.प्र. प्रादेशिक सशस्त्र कांस्टेबुलरी अधीनस्थ अधिकारी सेवा नियम 2015 में भी पदोन्नति के लिए लिखित परीक्षा आयोजित करने का कोई प्रावधान नहीं है।

रिट याचिका में कहा गया है कि सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के तहत सूचना मांगने वाले एक पत्र के जवाब में उ.प्र. पुलिस कम्प्यूटर सेंटर ने जानकारी दी है कि विभागीय परीक्षा को वरिष्ठता से प्रतिस्थापित करने हेतु नियमावली 2011 में संशोधन की कार्यवाही शासन के समक्ष लंबित है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता शिव कुमार सोनी ने तर्क प्रस्तुत किया कि चूंकि कोई अन्य नियम पदोन्नति के लिए लिखित परीक्षा आयोजित करने की आवश्यकता नहीं बताता है, इसलिए उपरोक्त नियमावली 2011 के नियम 17 में निहित लिखित-परीक्षा आयोजित करने की आवश्यकता भेदभावपूर्ण है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है।

अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने प्रवीण सिंह इंद्रसिंह महिदा बनाम गुजरात राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन गुजरात 1293

में माननीय गुजरात उच्च न्यायालय के फैसले पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि : -

"74(13) इस प्रकार, यह किसी भी संदेह से परे है कि विशेष अधिसूचना की न्यायसंगतता को संविधान के अनुच्छेद 14 की कसौटी पर परखा जा सकता है। अनुच्छेद 14, जिसे संविधान की मूल विशेषता माना जाता है, कानून के समक्ष समानता या कानूनों की समान सुरक्षा सुनिश्चित करता है। समान सुरक्षा का अर्थ है प्रदत्त विशेषाधिकारों और अधिरोपित उत्तरदायित्वों दोनों में समान परिस्थितियों में समान व्यवहार का अधिकार। इसलिए, यदि दो व्यक्ति या व्यक्तियों के दो समूह समान स्थिति में हैं/रखे गए हैं, तो उनके साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। साथ ही, समानता के सिद्धांत का मतलब यह नहीं है कि प्रत्येक कानून का उन सभी व्यक्तियों के लिए सार्वभौमिक अनुप्रयोग होना चाहिए जो स्वभाव, उपलब्धि या परिस्थितियों से समान स्थिति में नहीं हैं। इसका मतलब यह होगा कि राज्य के पास वैध उद्देश्यों के लिए व्यक्तियों को वर्गीकृत करने की शक्ति है। विधायिका अपने विवेक का प्रयोग करने और वर्गीकरण करने में सक्षम है। इस प्रकार, प्रत्येक वर्गीकरण कुछ हद तक कुछ असमानता उत्पन्न करने की संभावना रखता है लेकिन केवल असमानता का उत्पादन ही पर्याप्त नहीं है। अनुच्छेद 14 का उल्लंघन केवल तभी माना जाएगा जब दो व्यक्तियों के एक ही वर्ग/श्रेणी के होने पर भी समान सुरक्षा से इनकार किया जाता है, इसलिए, अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के रूप में राज्य के अधिनियम को चुनौती देने वाले व्यक्ति को यह प्रस्तुत करना होगा कि राज्य द्वारा निर्मित दो वर्गों के बीच विभेदन के लिए कोई युक्तियुक्त आधार नहीं है। अनुच्छेद 14 वर्ग विधान पर प्रतिषेध लगाता है न कि उचित वर्गीकरण पर।

(जोर दिया गया)

9. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री वी.पी. नाग ने तथ्य प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं द्वारा संदर्भित सभी उपरोक्त नियम अलग-अलग और विशिष्ट पदों पर पदोन्नति से संबंधित हैं और सरकार ने पदों के प्रत्येक सेट से संबंधित विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अलग-अलग नियम बनाए हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि किसी भी अन्य पद पर पदोन्नति को नियंत्रित करने वाले किसी विशिष्ट नियम में निहित प्रावधानों को प्रश्नगत पद पर पदोन्नति करने की प्रक्रिया निर्धारित करने के लिए एक मानदंड के रूप में नहीं माना जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, श्री. नाग ने सुब्रमण्यम स्वामी बनाम निदेशक, केंद्रीय जांच ब्यूरो एवं अन्य, (2014) 8 एससीसी 682, लोक सेवा न्यायाधिकरण बार एसोसिएशन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2003) 4 एससीसी 104 और आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम मैकडॉवेल एंड कंपनी एवं अन्य, (1996) 3 एससीसी 709, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है।

10. आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम मैकडॉवेल एंड कंपनी, (1996) 3 एससीसी 709 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि: -*"43. ...संसद या उस मामले के लिए, राज्य विधानमंडल की शक्ति दो तरह से प्रतिबंधित है। संसद या विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून को अदालतें केवल दो आधारों पर ख़ारिज कर सकती हैं और केवल दो आधारों अर्थात, (1) विधायी सक्षमता की कमी और (2) संविधान के भाग III या किसी अन्य संवैधानिक प्रावधान में प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों में से किसी का उल्लंघन। कोई तीसरा आधार नहीं है...चाहे इसे किसी भी नाम से वर्णित किया जाए, अमान्यकरण का आधार ऊपर उल्लिखित दो आधारों के चारों कोनों के भीतर आना चाहिए। दूसरे शब्दों में, मान लीजिए, यदि किसी अधिनियम को अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के रूप में चुनौती दी जाती है, तो इसे केवल तभी ख़ारिज किया जा सकता है जब यह पाया जाए कि यह उसमें निहित समानता खंड/समान सुरक्षा खंड का उल्लंघन है। इसी प्रकार, यदि किसी अधिनियम को अनुच्छेद 19(1) के खंड (ए) से (जी) द्वारा प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों में से किसी के उल्लंघन के रूप में चुनौती दी जाती है, तो इसे केवल तभी ख़ारिज किया जा सकता है जब यह पाया जाए कि यह अनुच्छेद 19 के खंड (2) से (6) इत्यादि में से किसी भी खंड द्वारा संरक्षित नहीं है। किसी भी अधिनियम को केवल यह कह कर ख़ारिज नहीं किया जा सकता कि यह मनमाना या अनुचित है। किसी अधिनियम को अमान्य करने से पहले किसी न किसी संवैधानिक दुर्बलता का पता लगाना होगा। किसी कानून को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि अदालत इसे अनुचित समझती है। संसद और विधानमंडल, जिनकी संरचना जनता के प्रतिनिधियों से होती है, से अपेक्षा की जाती है कि वे लोगों की जरूरतों को जानें और जागरूक रहें कि उनके लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है। अदालत उनके विवेक पर निर्णय नहीं दे सकती।"*

11. लोक सेवा न्यायाधिकरण बार एसोसिएशन बनाम उ.प्र.राज्य, (2003) 4 एससीसी 104 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त सिद्धांतों को दोहराया। पुनः, सुब्रमण्यम स्वामी बनाम सीबीआई, (2014) 8 एससीसी 682 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि: -

"49. जहां विधायिका द्वारा अधिनियमित किसी कानून की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी जाती है, वहाँ न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि किसी अधिनियम की संवैधानिकता का अनुमान हमेशा होता है, और संवैधानिक सिद्धांतों का स्पष्ट उल्लंघन दिखाया जाना चाहिए। मौलिक विधायी प्रक्रिया की प्रकृति और महत्व को न्यायालय द्वारा मान्यता दी जानी चाहिए और विधायी प्रक्रिया को उचित सम्मान दिया जाना चाहिए। जहां कानून को असंवैधानिक और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला बताकर चुनौती देने की मांग की जाती है,

वहां न्यायालय को कानून को अमान्य करने के संबंध में अनुच्छेद 14 की प्रासंगिकता से संबंधित सिद्धांतों की याद दिलानी चाहिए। कानून में इसके अनुप्रयोग और कानून को अमान्य बनाने में अनुच्छेद 14 के दो आयाम अब अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त हैं और ये हैं: (i) भेदभाव, एक अस्वीकार्य या अमान्य वर्गीकरण के आधार पर, और (ii) शक्तियों का अत्यधिक प्रत्यायोजन; कार्यपालिका को असंबद्ध और अनिर्देशित शक्तियाँ प्रदान करना, चाहे वह प्रत्यायोजित विधान के रूप में हो या प्रशासनिक आदेश पारित करने के अधिकार प्रदान करके - यदि ऐसा प्रदान करना बिना किसी मार्गदर्शन, नियंत्रण या जाँच के है, तो यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। न्यायालय को यह भी ध्यान रखने की आवश्यकता है कि कोई कानून केवल इसलिए असंवैधानिक नहीं हो जाता क्योंकि वहां कोई अन्य दृष्टिकोण है या क्योंकि कोई अन्य तरीका सामाजिक या यहां तक कि आर्थिक नीति के किसी भी मुद्दे की तरह अच्छा या उससे भी अधिक प्रभावी माना जा सकता है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि नीति क्या है, इस पर अदालतें अपने विचार नहीं रखतीं।

58. संविधान राज्य को वर्गीकरण की प्रक्रिया द्वारा यह निर्धारित करने की अनुमति देता है कि कानून के प्रयोजनों के लिए और किसी विशेष विषय पर अधिनियमित कानून के संबंध में किसे एक वर्ग माना जाना चाहिए। जब एक वर्ग को दूसरे से अलग किया जाता है तो कुछ हद तक असमानता अवश्य होती है। हालाँकि, ऐसा अलगाव तर्कसंगत होना चाहिए न कि कृत्रिम या अस्पष्ट। दूसरे शब्दों में, वर्गीकरण केवल कुछ गुणों या विशेषताओं पर आधारित नहीं होना चाहिए, जो एक साथ समूहीकृत सभी व्यक्तियों में पाए जाते हैं, न कि अन्य लोगों में जो छूट गए हैं, बल्कि विशेषताओं का विधि निर्माण के उद्देश्य से उचित संबंध होना चाहिए। वर्गीकरण का आधार जो भिन्नता है, वह ठोस होनी चाहिए और उसका कानून के उद्देश्य से उचित संबंध होना चाहिए। यदि वस्तु स्वयं भेदभावपूर्ण है, तो यह स्पष्टीकरण कि प्राप्त की जाने वाली वस्तु के साथ तर्कसंगत संबंध रखते हुए वर्गीकरण उचित है, तत्वहीन है।

96.....इसके अलावा, जहां वर्गीकरण के आधार या कसौटी पर किसी कानून की संवैधानिकता को चुनौती दी जाती है, तो इसे प्रत्येक मामले में अच्छी तरह से स्थापित दो परीक्षणों को लागू करके निर्धारित किया जाना चाहिए: (i) कि वर्गीकरण बोधगम्य विभेद पर आधारित है, और (ii) कि विभेद का कानून द्वारा प्राप्त की जाने वाली वस्तु के साथ एक तर्कसंगत संबंध है। प्रत्येक मामले की जांच अनुच्छेद 14 के संदर्भ में स्वतंत्र रूप से की जानी चाहिए, न कि किसी सामान्य नियम को लागू करके।

12. शायरा बानो बनाम भारत संघ, (2017) 9 एससीसी 1 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि *"एक वैधानिक प्रावधान को स्पष्ट स्वेच्छाचारिता के आधार*

पर ख़ारिज किया जा सकता है, जब प्रावधान अनुचित, तर्कहीन और/ या पर्याप्त निर्धारण सिद्धांत के बिना, और यह भी कि यह अत्यधिक या अनुपातहीन है।"

13. उपरोक्त संदर्भित मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समझाए गए विधि के सामान्य सिद्धांत, उत्तर प्रदेश पुलिस कंप्यूटर कर्मचारी (अराजपत्रित) सेवा नियमावली 2011 सहित अधीनस्थ कानूनों को चुनौती देने वाले मामलों पर भी लागू होंगे। ऊपर उल्लिखित विधि के अनुसार, हमें यह परीक्षण करना होगा कि क्या याचिकाकर्ताओं की यह दलील कि 2011 के नियमावली के नियम 17, इस हद तक अधिकारातीत है कि इसमें कंप्यूटर ऑपरेटर ग्रेड ए से कंप्यूटर ऑपरेटर ग्रेड बी में पदोन्नति के लिए विभागीय परीक्षा आयोजित करने का प्रावधान है।

14. 2011 के नियमावली के नियम 17 को तत्काल संदर्भ के लिए नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"नियम 17: पदोन्नति द्वारा भर्ती की प्रक्रिया- कम्प्यूटर ऑपरेटर ग्रेड-बी हेतु पदोन्नति द्वारा भर्ती प्रक्रिया-

(1) कंप्यूटर ऑपरेटर ग्रेड-ए से कंप्यूटर ऑपरेटर ग्रेड-बी के पद पर पदोन्नति उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ द्वारा गठित चयन समिति के माध्यम से आयोजित विभागीय परीक्षा के आधार पर की जाएगी।

(2) लिखित परीक्षा वस्तुनिष्ठ प्रकार की होगी। परीक्षा कुल 200 अंकों की होगी। लिखित परीक्षा का प्रश्नपत्र सामान्य ज्ञान, मानसिक सामर्थ्य, तर्कशक्ति और कंप्यूटर विज्ञान से संबंधित होगा। प्रश्न पत्र का स्तर कंप्यूटर ऑपरेटर ग्रेड-ए पद हेतु न्यूनतम अपेक्षित शैक्षणिक योग्यता के अनुसार होगा।

(3) लिखित परीक्षा में न्यूनतम चालीस प्रतिशत अंक प्राप्त करना आवश्यक है। ऐसे अभ्यर्थी जो 40 प्रतिशत अंक प्राप्त करने में विफल रहते हैं, पदोन्नति के लिए पात्र नहीं होंगे।

(4) सेवा अभिलेख के 50 अंक होंगे जो अभ्यर्थियों को सेवा अभिलेख के आधार पर अंक निम्नवत प्रदान किये जायेंगे-

(क) सेवा की कालावधि के लिए अधिकतम 10 अंक होंगे।(अधिकतम अंक 10)।

(ख) स्नातक अथवा उससे ऊपर की शैक्षणिक योग्यता के लिए अधिकतम 05 अंक और शैक्षणिक अर्हता के अतिरिक्त तकनीकी कंप्यूटर कोर्स हेतु 05 अंक। (अधिकतम अंक 10)

(ग) अधिकतम 15 अंकों के अधीन प्रशिक्षण (तीन दिवस या अधिक अवधि का) के लिए 03 अंक। (अधिकतम अंक 15)।

(घ) वार्षिक प्रविष्टि के लिए 15 अंक होंगे।(अधिकतम अंक 15)

प्रत्येक वृहद् दण्ड के लिए 03 अंक, प्रत्येक लघु दण्ड के लिए 02

अंक और प्रत्येक प्रतिकूल प्रविष्टि और सूक्ष्म दण्ड के लिए 01 अंक काट लिया जाएगा। इस प्रयोजन हेतु पिछले 10 वर्षों के सेवा अभिलेख पर विचार किया जाएगा। सेवा अभिलेखों का परीक्षण इस दृष्टिकोण से भी किया जायेगा कि क्या अभ्यर्थी को कोई ऐसा दंड दिया गया है जो उसे पदोन्नति के लिए अनुपयुक्त ठहराता हो। कोई अभ्यर्थी जिसकी सत्यनिष्ठा गत पांच वर्षों में एक बार भी रोकी गयी हो, पदोन्नति के लिए पात्र न होगा।

(5) नियम -6 में निर्दिष्ट आरक्षण के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए बोर्ड लिखित परीक्षा में सफल अभ्यर्थियों की लिखित परीक्षा एवं सेवा अभिलेख में प्राप्त अंकों के योग के आधार पर श्रेष्ठता क्रम में सफल अभ्यर्थियों की सूची तैयार करेगा और उक्त सूची नियुक्ति प्राधिकारी को अग्रसारित करेगी। 15. उपरोक्त नियम सरकार द्वारा, पुलिस अधिनियम 1861 की धारा 2 के साथ पठित धारा 46 (2) (सी) द्वारा प्रदत्त वैधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उत्तर प्रदेश पुलिस कंप्यूटर कर्मचारी (अराजपत्रित) सेवा, के भर्ती और व्यक्तियों की सेवा शर्तों को विनियमित करने की दृष्टि से बनाए गए हैं। जिसे शासनादेश दिनांक 26.09.2011 नहीं है, जिनके बारे में कहा जा सकता है कि वे उ.प्र. पुलिस में ग्रेड-ए कंप्यूटर ऑपरेटरों संवर्ग के समान वर्ग से संबंधित हैं। कंप्यूटर ऑपरेटर ऐसे कर्तव्य निभाते हैं, जो तकनीकी प्रकृति के होते हैं और जिनके लिए कंप्यूटर संचालन में विशेष कौशल की आवश्यकता होती है। यदि द्वारा पुलिस अधिनियम के प्रावधानों के तहत पुलिस बल का एक हिस्सा घोषित किया गया है।

16. याचिकाकर्ताओं ने उपरोक्त नियमों को अधिकारातीत और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला बताया है, इस आधार पर कि उ.प्र. पुलिस रेडियो अधीनस्थ सेवा नियमावली 2015, उ.प्र. पुलिस अनुसचिवीय, लेखा एवं गोपनीय सहायक संवर्ग सेवा नियमावली 2015 एवं उ.प्र. प्रादेशिक सशस्त्र कांस्टेबुलरी अधीनस्थ अधिकारी सेवा नियमावली 2015 में पदोन्नति करने के लिए विभागीय परीक्षा आयोजित करने का कोई प्रावधान नहीं है और इसलिए, नियमावली 2011 के नियम 17 में जहां तक पदोन्नति करने के लिए विभागीय परीक्षा आयोजित करने का प्रावधान है, यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधान के अधिकारातीत है।

17. याचिकाकर्ता द्वारा संदर्भित उपरोक्त सभी नियम कर्मचारियों की सेवा शर्तों से संबंधित हैं, जो कर्मचारियों के एक विशेष वर्ग का निर्माण करते हैं और कर्मचारियों के सभी वर्ग एक दूसरे से भिन्न और विशिष्ट हैं। किसी अन्य नियम में ऐसे व्यक्तियों की पदोन्नति करने का प्रावधान सरकार ने उम्मीदवारों की उपयुक्तता सुनिश्चित करने के लिए कंप्यूटर ऑपरेटर ग्रेड-ए, से कंप्यूटर ऑपरेटर ग्रेड-बी, की पदोन्नति करने के लिए लिखित परीक्षा आयोजित करने का निर्णय लिया है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि लिखित परीक्षा आयोजित करने के निर्णय का उस

प्राप्य उद्देश्य से कोई उचित संबंध नहीं है।

18. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने नियमों की वैधता को इस आधार पर भी चुनौती दी है कि राज्य सरकार स्वयं कंप्यूटर ऑपरेटर ग्रेड-ए से कंप्यूटर ऑपरेटर ग्रेड-बी की पदोन्नति विभागीय परीक्षा के स्थान पर विभागीय वरिष्ठता के आधार पर करने की प्रक्रिया में संशोधन पर विचार कर रही है। राज्य सरकार नियम बनाने हेतु सक्षम थी और उसे नियमों में संशोधन करने का अधिकार है। केवल इसलिए कि राज्य सरकार नियम में संशोधन करने पर विचार कर रही है, नियमों को अधिकारातीत घोषित नहीं किया जा सकता।

19. जहाँ तक नियमावली 2011 के नियम 17 में संशोधन करने के लिए राज्य को निर्देश देने के लिए परमादेश रिट की माँग करने वाले याचिकाकर्ताओं द्वारा की गई प्रार्थना का सवाल है, तो यह कहना उपयुक्त है कि राज्य सरकार ने पहले ही इस क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले नियम बना दिए हैं। राज्य ने नियम बनाने में अपनी क्षमता के अनुरूप कार्य किया है। नियम भारत के संविधान के किसी भी प्रावधान के दायरे से बाहर नहीं हैं और इस न्यायालय के पास नियमों में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है। हालाँकि, राज्य को नियम में संशोधन करने का अधिकार है और भले ही राज्य ऐसा कोई संशोधन करने पर विचार कर रहा हो, अदालत नियमों में संशोधन करने के लिए राज्य को परमादेश जारी नहीं कर सकती है।

20. उपरोक्त कारणों से, हमें रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं लती है। तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 2 ILRA 718

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी,

रिट ए संख्या 2000686/2015

यू.पी.एस.आर.टी.सी.

...याचिकाकर्ता

बनाम

श्रीपाल सिंह

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: प्रभु रंजन त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: मयंकर सिंह, प्रदीप कुमार शर्मा

ए. सेवा कानून - पेंशन - सड़क परिवहन निगम अधिनियम, 1950 - धारा 45(2)(सी) - सड़क परिवहन निगम कर्मचारी (अधिकारियों के अलावा) सेवा विनियम 1981: विनियम 4, 39; उत्तर प्रदेश राज्य रोडवेज संगठन (पदों की समाप्ति और कर्मचारियों का आमेलन) नियम, 1982 - निगम के कर्मचारियों के

रूप में रोजगार के नियमों और शर्तों को स्वीकार करने के बाद, उन्हें निगम में प्रतिनियुक्ति पर सरकारी सेवकों के रूप में सेवानिवृत्ति और सेवा शर्तों की प्रयोज्यता का दावा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। (पैरा 27)

प्रत्येक व्यक्तिगत भविष्य निधि सेवानिवृत्त का अधिकार उसकी सेवानिवृत्ति पर स्पष्ट हो जाता है जिसके बाद कोई निरंतर दायित्व नहीं रहता है, जबकि दूसरी ओर, पेंशन सेवानिवृत्त लोगों के संबंध में राज्य का एक निरंतर दायित्व होता है। (पैरा 27)

चूंकि प्रतिवादी निगम में सम्मिलित होते समय कंडक्टर के गैर-पेंशन योग्य पद पर काम कर रहा था, इसलिए उसकी सेवाएं गैर-पेंशन योग्य रहीं। प्रतिवादी के साथ यह उचित व्यवहार किया गया कि उसे निगम में गैर-पेंशन योग्य पद पर नियुक्त किया गया और उसने ई.पी.एफ. में योगदान देना जारी रखा। उनकी सेवानिवृत्ति तक और, तदनुसार, उनकी सेवानिवृत्ति के बाद, उन्हें ई.पी.एफ. का भुगतान किया गया। राशि, नियोक्ता के योगदान के साथ, जिसे प्रतिवादी ने बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर लिया था। वर्ष 2001 में, अर्थात उनकी सेवानिवृत्ति के सात वर्ष पश्चात, यह पहली बार था कि प्रतिवादी ने वर्ष 2001 में दावा याचिका दायर करके पेंशन के भुगतान का दावा किया। (पैरा 26)

न्यायाधिकरण ने दावा याचिका को इस निराधार धारणा पर अनुमति दी कि निगम में प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति से पूर्व, प्रतिवादी एक पेंशन योग्य पद पर कार्यरत था जबकि प्रतिवादी निगम में कंडक्टर के पद पर काम कर रहा था, जो एक गैर-पेंशन योग्य पद था। (पैरा 31)

बी. एक परिपत्र वैधानिक विनियमों के प्रावधानों को खत्म नहीं कर सकता है - जब प्रतिवादी की सेवाएं 1981 के विनियमों के विनियमन 39 में निहित प्रावधानों के अनुसार पेंशन योग्य नहीं थीं, तो उसे केवल निगम द्वारा एक परिपत्र जारी करके पेंशन योग्य नहीं बनाया जा सकता था। (पैरा 32)

न्यायाधिकरण ने गलत माना कि निगम में पेंशन का प्रावधान एक जीओ दिनांक 03.02.1994 के माध्यम से पेश किया गया था, जबकि न्यायाधिकरण द्वारा जीओ के रूप में जिस दस्तावेज़ पर भरोसा किया गया था, वह निगम द्वारा जारी किया गया एक परिपत्र मात्र था और इसमें पेंशन प्रावधान पेश नहीं किया गया था, बल्कि निगम ने केवल अधिकारियों से अपने कर्मचारियों को पेंशन के भुगतान के संबंध में संबंधित जीओ का संचार सुनिश्चित करने के संबंध में पूछा। (पैरा 31)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई 4)

<u>उद्धृत वाद:</u>

राम चन्द्र पाठक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2003) आईएलआर 2 सभी 379 (पैरा 25)

<u>वाद प्रतिष्ठित:</u>

1. बद्री प्रसाद दुबे बनाम प्रबंध निदेशक, उ.प्र. राज्य सड़क परिवहन निगम लखनऊ एवं अन्य, 2012 (2) एलबीईएसआर 299 (ऑल) (पैरा 9)

अनुवादित

2. बद्री प्रसाद दुबे बनाम प्रबंध निदेशक, उ.प्र. राज्य सड़क परिवहन निगम, (2011) 89 एएलआर 832 (पैरा 29)

वर्तमान याचिका राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 16.09.2014 को चुनौती देती है, जिसमें कर्मचारी भविष्य निधि (ई.पी.एफ.) के बजाय पेंशन के भुगतान के लिए दावा याचिका संख्या 1482/2001 की अनुमति दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

1.याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभु रंजन त्रिपाठी तथा प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री मयंकर सिंह को सुना।

2.वर्तमान रिट याचिका याचिकाकर्ता उ०प्र० राज्य सड़क परिवहन निगम (जिसे इसके पश्चात 'निगम' कहा जाएगा) ने राज्य लोक सेवा अधिकरण द्वारा दावा याचिका सं० 1482/2001 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 16.09.2014 को चुनौती देते हुए दायर किया है, जो प्रतिवादी द्वारा कर्मचारी भविष्य निधि (ई०पी०एफ०) के स्थान पर पेंशन के भुगतान का दावा करते हुए दायर की गयी थी।

3. संक्षेप में कहा गया है, मामले के तथ्य यह हैं कि प्रतिवादी को शुरुआत में दिनांक 22.04.1960 को तत्कालीन उ०प्र० राज्य रोडवेज में क्लीनर-सह-कंडक्टर के पद पर नियुक्त किया गया था। उसे दिनांक 18.06.1961 को कंडक्टर के पद पर प्रोन्नत किया गया और 01.04.1972 को कंडक्टर के पद पर उसकी सेवायें स्थायी की गई। इसके पश्चात निगम अस्तित्व में आया और याचिकाकर्ता को दिनांक 05.07.1972 के शासनादेश के अनुसार प्रतिनियुक्ति पर नियुक्त किया गया। दिनांक 13.04.1984 को, प्रतिवादी को सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर प्रोन्नत किया गया और उसके पश्चात दिनांक 30.06.1989 को उसे यातायात निरीक्षक के पद पर प्रोन्नत किया गया। प्रतिवादी दिनांक 28.02.1994 को सेवानिवृत्त हो गया जब वह उपरोक्त पद पर कार्यरत था। प्रतिवादी को गैर-पेंशन योग्य पदों पर कार्यरत माना गया और उसकी सेवानिवृत्ति के पश्चात, उसे ई.पी.एफ. राशि का भुगतान नियोक्ता के योगदान के साथ किया गया।

4. वर्ष 2001 में यह प्रथम बार था कि प्रतिवादी ने अपनी सेवानिवृत्ति के सात वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात पेंशन के भुगतान का दावा करते हुए एक प्रत्यावेदन दिया एवं तत्पश्चात उसने पेंशन के भुगतान का दावा करते हुए अधिकरण के समक्ष दावा याचिका संख्या 1482 /2001 प्रस्तुत की। निगम ने प्रतिवादी के दावे पर विवाद करते हुए हुए एक लिखित बयान प्रस्तुत किया।

5. अधिकरण ने यह धारित करते हुए दावा याचिका स्वीकार कर ली कि निगम में प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति से पूर्व, प्रतिवादी एक पेंशन योग्य पद पर काम कर रहा था और उसके पश्चात उसे सहायक यातायात

अनुवादित

निरीक्षक के पद पर प्रोन्नत किया गया था, जो स्टेशन प्रभारी के पद के साथ अन्तःपरिवर्तनीय था और इसलिए पेंशन योग्य था। अधिकरण ने धारित किया कि दिनांक19.06.1981 के शासनादेश के माध्यम से यह प्रावधान किया गया था कि निगम के कर्मचारियों की सेवा शर्तें उन शर्तों से कम नहीं होंगी जिन पर वे पूर्व में कार्य कर रहे थे। अधिकरण ने आगे धारित किया कि निगम में पेंशन का प्रावधान एक शासनादेश दिनांक 03.02.1994 के माध्यम से प्रस्तुत किया गया था, जिसमें यह प्रावधान था कि जो कर्मचारी सेवानिवृत्त हो चुके थे और जिन्होंने ई.पी.एफ. लाभ लिया था, ई.पी.एफ. राशि अदायगी के पश्चात पेंशन पाने के अधिकारी होंगे। हालाँकि, उपरोक्त शासनादेश के संदर्भ में प्रतिवादी को कोई सूचना नहीं दी गई थी कि उसके पास ई.पी.एफ. लाभ के बजाय पेंशन प्राप्त करने का विकल्प था तथा उनसे कोई विकल्प नहीं लिया गया। अधिकरण ने यह भी टिप्पणी किया कि भगवान दास, जो निगम में एक लोहार थे, को शुरू में पेंशन देने से इनकार कर दिया गया था, लेकिन बाद में उनके द्वारा प्रस्तुत प्रत्यावेदन पर उन्हें पेंशन दी गई। अधिकरण ने धारित किया कि प्रतिवादी एक पेंशन योग्य पद से सेवानिवृत्त हुआ था और उसे मात्र इसलिए पेंशन से वंचित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह सूचना के अभाव में अपने विकल्प का प्रयोग नहीं कर सका। अधिकरण ने निगम को प्रतिवादी को ई.पी.एफ. के रूप में भुगतान की गई राशि को समायोजित करने के पश्चात पेंशन का भुगतान करने का निदेश दिया।

6. निगम ने अधिकरण के आदेश को मुख्य रूप से इस आधार पर चुनौती दी है कि प्रतिवादी राजकीय सेवा में रहते हुए किसी भी पेंशन योग्य पद पर काम नहीं कर रहा था और इसलिए, वह पेंशन पाने हेतु अधिकृत नहीं था; प्रतिवादी को वर्ष 1982 में निगम में समाविष्ट कर लिया गया था, उसने निगम में नियुक्ति की शर्तों को स्वीकार किया था जिसके अन्तर्गत उसकी सेवा गैर-पेंशन योग्य थी और उसकी सेवानिवृत्ति तक, उसने कोई आपत्ति या दावा नहीं किया कि उसकी सेवा पेंशन योग्य की जानी चाहिए; कि प्रतिवादी ई.पी.एफ. लाभ का अधिकारी था, जिसका लाभ उन्होंने वर्ष 1994 में अपनी सेवानिवृत्ति पर उठाया था और पेंशन का दावा करने वाली दावा याचिका ई.पी.एफ. लाभ उठाने के सात वर्ष की अवधि के पश्चात दायर की गई थी।

7. प्रतिवादी ने एक प्रति-शपथपत्र दायर किया है जिसमें कहा गया है कि दिनांक 13.02.1979 के एक कार्यालय ज्ञाप के माध्यम से, निगम ने स्पष्ट किया था कि जूनियर स्टेशन-प्रभारी और यातायात निरीक्षक ग्रेड I के पद समकक्ष और अंतःपरिवर्तनीय थे, कनिष्ठ स्टेशन प्रभारी का पद पेंशन योग्य है और इसलिए, यातायात निरीक्षक ग्रेड I का समकक्ष पद भी पेंशन योग्य होगा।

अनुवादित

8. निगम के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभु रंजन त्रिपाठी ने तर्क दिया कि अधिकरण ने निगम द्वारा शासनादेश के रूप में निर्गत दिनांक 03.02.1994 के परिपत्र को गलत प्रकार से संदर्भित किया है, जिस परिपत्र में मात्र यह कहा गया है कि शासनादेश दिनांक 07.01.1984, 22.06.1991 एवं 19.08.1993 को तत्कालीन उ०प्र० राज्य रोडवेज के उन कर्मचारियों/अधिकारियों को पेंशन भुगतान हेतु निर्गत किए गए थे, जो दिनांक 28.07.1982 से पूर्व किसी भी पेंशन योग्य पद पर कार्यरत थे। परिपत्र में कहा गया है कि कुछ व्यक्ति जो दिनांक 01.06.1972 से पहले गैर-पेंशन योग्य पद पर काम कर रहे थे, उन्हें दिनांक 28.07.1982 तक पेंशन योग्य पद पर प्रोन्नत किया गया होगा और ऐसे व्यक्ति उपरोक्त शासनादेश निर्गत होने से पूर्व सेवानिवृत्त हो सकते हैं और वे शासनादेशों के विषय में नहीं जान सकते हैं। परिपत्र में प्राधिकारियों को निदेश दिया गया कि वे उन कर्मचारियों/अधिकारियों की एक सूची तैयार करें जो शासनादेशों के लाभार्थी होंगे तथा उन्हें सूचित करें कि यदि वे ई.पी.एफ. और ग्रेच्युटी की अधिक राशि हेतु अदायगी के पश्चात पेंशन प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें औपचारिकताएं पूर्ण करनी चाहिए। परिपत्र ने आगे प्राधिकारियों को उन व्यक्तियों से जो पेंशन लाभ प्राप्त नहीं करना चाहते हैं, लिखित घोषणा प्राप्त करने हेतु निर्देशित किया।

9. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री मयंकर सिंह ने तर्क दिया है कि प्रतिवादी यातायात निरीक्षक के पद पर कार्यरत था, जो कनिष्ठ थाना प्रभारी के समकक्ष और अंतःपरिवर्तनीय था एवं चूंकि बाद वाला पद पेंशन योग्य है, इसलिए यह यातायात निरीक्षक का पद भी पेंशन योग्य होगा। उन्होंने बद्री प्रसाद दुबे बनाम प्रबंध निदेशक, उ.प्र. राज्य सड़क परिवहन निगम लखनऊ और अन्य, 2012 (2) LBESR 299 (All) के मामले में एकल पीठ के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है।

10. हमने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री एवं पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों से स्पष्ट तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार किया है।

11. उ०प्र० राजकीय रोडवेज की स्थापना राज्य सरकार द्वारा अपनी परिवहन सेवा के संचालन हेतु वर्ष 1947 में एक अस्थायी विभाग के रूप में की गई थी। दिनांक 16.9.1960 को, रोडवेज के अस्थायी कर्मचारियों के लिए पुनरीक्षित नियम और शर्तें निर्धारित करने वाला एक शासनादेश निर्गत किया गया था। शासनादेश दिनांक 16.9.1960 इस प्रकार है:

"शासनादेश सं० 3014 D/XXX-135/59 दिनांक 16 सितंबर, 1960

विषय: ***उ०प्र० रोडवेज में अस्थायी कर्मचारियों की सेवा के नियम एवं शर्तों - का पुनरीक्षण।***

मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि रोडवेज कर्मचारियों की सेवा शर्तों और

अवलोकित

नियमों को पुनरीक्षित करने का प्रश्न, जो एक राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक उपक्रम है तथा जिनको नियमित राजकीय कार्यालयों में प्रचलित स्थितियों से भिन्न परिस्थितियों में काम करना पड़ता है, कुछ समय से सरकार के विचाराधीन है।

चाहे रविवार हो या त्यौहार, यात्री एवं माल सेवाएँ तो चलनी ही हैं। राज्य उपक्रम द्वारा संचालित यात्री सेवाओं की समय-सारणी में यदा-कदा बदलाव नहीं किया जा सकता है। रोडवेज सेवाओं को चालू रखने के लिए, कार्यशालाओं में विषम समय में भी वाहनों के रखरखाव और मरम्मत पर ध्यान देना होगा। वर्तमान में उ0प्र0 राजकीय रोडवेज और केंद्रीय कार्यशाला, कानपुर के कर्मचारियों की सेवा शर्तें राज्यपाल की नियम बनाने की शक्तियों के अन्तर्गत अन्य अस्थायी राजकीय सेवकों पर लागू सरकार के विभिन्न नियमों और स्थायी आदेशों द्वारा शासित होती हैं। रोडवेज के कर्मचारियों की विशेष सेवा शर्तों के दृष्टिगत, अपने कर्मचारियों हेतु सेवा शर्तों का एक नया सेट विकसित करना आवश्यक प्रतीत होता है, जो संगठन के कार्यों एवं कार्य की प्रकृति के अनुकूल हो। तदनुसार, इस विषय पर सभी पूर्व आदेशों को अधिक्रमित करते हुए, राज्यपाल ने यू.पी. रोडवेज के अस्थायी कर्मचारियों की सेवा की पुनरीक्षित शर्तों और नियमों को निर्धारित करने वाले निम्नलिखित आदेश पारित किये है, जिसमें निम्नलिखित प्रस्तर 2 में वर्णित नियम और शर्तें भी शामिल हैं। सेवा के पुनरीक्षित नियम और शर्तें रोडवेज संगठन में सभी भावी प्रवेशकों पर लागू होंगी तथा कार्य प्रभार वाले एवं मासिक आधार पर भुगतान किये जाने वाले कर्मचारी सहित अस्थायी कर्मचारियों के मामले में उसमें उल्लिखित प्रकार से लागू की जाएंगी। प्रस्तर-2 में निर्दिष्ट कर्मचारियों को छोड़कर सभी अस्थायी कर्मचारियों को सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार सात दिनों की प्रत्येक अवधि में एक दिन का आराम मिलेगा। यदि कर्मचारी को किसी भी दिन या आराम से वंचित किया जाता है, तो उसे न प्रदान किये गये आराम के दिनों के बराबर संख्या में क्षतिपूर्ति अवकाश उसी या अगले महीने के भीतर दी जायेंगी।

वे पूर्व कैलेंडर वर्ष के दौरान उनके द्वारा किए गए प्रत्येक 20 दिनों के काम के लिए एक दिन की सवैतनिक छुट्टियां पाने के अधिकारी होंगे, बशर्ते कि कर्मचारी ने पिछले कैलेंडर वर्ष के दौरान 240 दिनों या उससे अधिक की अवधि के लिए काम किया हो। यदि कर्मचारी कैलेंडर वर्ष के दौरान उसे स्वीकार्य पूर्ण या आंशिक अवकाश का लाभ उठाने में सक्षम नहीं है, तो इसे अधिकतम 30 दिनों के अधीन अगले वर्ष में ले जाया जाएगा।

उन्हें सरकार द्वारा निर्धारित और इस उद्देश्य हेतु बनाए जाने वाले नियमों के अधीन एक कैलेंडर वर्ष में पांच दिन की पर्व अवकाश मिलेगा।

कार्य के निर्धारित घंटों से अधिक समय तक किए गए कार्य के संबंध में उन्हें

सामान्य मजदूरी दर के दोगुने दर से अतिरिक्त मजदूरी का भुगतान किया जाएगा।

अनुवादित

उनकी सेवाएँ दोनो तरफ से एक महीने के नोटिस पर या उसके बदले में एक महीने के वेतन पर समाप्त की जा सकती हैं।

अन्य मामलों में सेवा शर्तें वर्तमान की तरह ही प्रभावी रहेंगी।

2.परोक्त प्रस्तर 1 में उल्लिखित सेवाओं के पुनरीक्षित नियम और शर्तें निम्नलिखित रैंक के कर्मचारियों पर लागू नहीं होंगी: -

सहायक महाप्रबंधक, महाप्रबंधक, सेवा प्रबंधक, मुख्य यांत्रिक इंजीनियर, रोडवेज केंद्रीय कार्यशाला, कानपुर और परिवहन आयुक्त के मुख्यालय के कार्यालयों के अधिष्ठान में कार्यरत सभी कर्मचारी।

यातायात पक्ष में कनिष्ठ स्टेशन प्रभारी के रैंक के पर्यवेक्षी कर्मचारी और उससे ऊपर रैंक के कर्मचारी;

इंजीनियर पक्ष में जूनियर फोरमैन के रैंक के तकनीकी कर्मचारी और उससे ऊपर रैंक के कर्मचारी;

रोडवेज कर्मचारियों की उपरोक्त तीन श्रेणियों को नियमित राजकीय सेवकों के रूप में माना जाता रहेगा और वे उस रैंक के किसी भी अन्य राजकीय कर्मचारियों के लिए स्वीकार्य लाभों के अधिकारी होंगे।

3. जिन रोडवेज एवं सेंट्रल वर्कशॉप कर्मचारियों पर पुनरीक्षित सेवा नियम लागू किये जा रहे हैं, वे कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार भविष्य निधि लाभ के अधिकारी होंगे। इसके लिए शासनादेश संख्या 1488-डी/ XXX 2198/59 दिनांक 29 जुलाई, 1960 में आवश्यक आदेश पूर्व में ही अलग से निर्गत किए जा चुके हैं। उपरोक्त शासनादेश में निर्गत आदेशों के कार्यान्वयन हेतु कृपया तत्काल कार्रवाई की जाये। कर्मचारियों द्वारा शासित नई सेवा शर्तों के अन्तर्गत उन्हें अब तक मिल रही चिकित्सा उपचार की सुविधाएं मिलती रहेंगी। सभी भावी प्रवेशकर्ता राजकीय कर्मचारियों को अनुमन्य चिकित्सा उपचार की सुविधाओं के भी अधिकारी होंगे। सरकार द्वारा विहित कैंटीन और विश्राम गृह सुविधाएं भी उन्हें समय पर उपलब्ध कराई जाएंगी।

4. ये आदेश दिनांक 1 अक्टूबर, 1960 से लागू होंगे और ये रोडवेज संगठन की सेवा में सभी भावी प्रवेशकर्ताओं और मौजूदा अस्थायी कर्मचारियों जो सेवा के पुनरीक्षित नियमों और शर्तों पर काम जारी रखना स्वीकार करते हैं, पर भी लागू होंगे। पहले से स्थायी किए गए रोडवेज कर्मचारियों की स्थिति पर कोई असर नहीं पड़ा है। ऊपर प्रस्तर 2 में उल्लिखित कर्मचारियों को छोड़कर सभी वर्तमान अस्थायी कर्मचारियों को लिखित रूप में यह प्रस्तुत करने हेतु कहा जा सकता है कि क्या ऊपर उल्लिखित नई सेवा शर्तें उन्हें स्वीकार्य हैं। जो लोग सेवा के नए नियम और शर्तें स्वीकार करते हैं, उन्हें एक अलग स्वीकृति भरनी होगी, जिसे उनके सेवा रिकॉर्ड के साथ रखा जाएगा। हालाँकि, यदि कोई भी कर्मचारी नई शर्तों को स्वीकार नहीं करता है तो उसकी सेवाएँ उसके नियोजन की शर्तों के अनुसार समाप्त कर दी जाएंगी।

मेरा सुझाव है कि पुनरीक्षित आदेशों के निहितार्थों को महाप्रबंधकों एवं सहायक महाप्रबंधकों तथा मुख्य यांत्रिक अभियंता द्वारा सभी संबंधितों को समझाया जा

अनुवादित

सकता है तथा उपरोक्त आदेशों को लागू करने हेतु कृपया आवश्यक कार्रवाई के बारे में तुरंत सूचित किया जाए।"

12. दिनांक 28.10.1960 को परिवहन एवं रोडवेज विभाग में कुछ पदों को पेंशन योग्य पद घोषित करते हुए निम्नलिखित शासनादेश निर्गत किया गया:-

"शासनादेश संख्या 31040/XXX-135V/1959, दिनांक 16 सितंबर, 1960 के क्रम में, मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि रोडवेज संगठन (रोडवेज केन्द्रीय वर्कशॉप, कानपुर सहित) में स्थायी पदों को पेंशन योग्य घोषित करने का प्रश्न पिछले कुछ समय से सरकार के विचाराधीन है। इस संबंध में, राज्यपाल ने आदेश दिया है कि निम्नलिखित तीन श्रेणियों के स्थायी राजपत्रित और अराजपत्रित पदधारी अंशदायी भविष्य निधि-सह-पेंशन नियमों के अधिकारी होंगे:

सहायक महाप्रबंधक, महाप्रबंधक, सेवा प्रबंधक, मुख्य यांत्रिक इंजीनियर, रोडवेज केंद्रीय कार्यशाला, कानपुर और परिवहन आयुक्त के मुख्यालय के कार्यालयों के अधिष्ठान में कार्यरत सभी कर्मचारी।

यातायात पक्ष में कनिष्ठ स्टेशन प्रभारी के रैंक के पर्यवेक्षी कर्मचारी और उससे ऊपर रैंक के कर्मचारी;

इंजीनियर पक्ष में जूनियर फोरमैन के रैंक के तकनीकी कर्मचारी और उससे ऊपर रैंक के कर्मचारी; "रैंक" का अर्थ स्थिति/स्तर है लेकिन कोई पद नहीं।

राज्यपाल ने आगे सिविल सेवा विनियमन के अनुच्छेद 350 के नीचे नोट 3 के अन्तर्गत यह आदेश दिया है कि संगठन के यातायात और इंजीनियरिंग दोनों वर्गों में शेष स्थायी अराजपत्रित रोडवेज कर्मचारियों को गैर-पेंशन योग्य माना जाएगा। ऊपर उल्लिखित स्थायी गैर-पेंशन योग्य पदों के पदाधिकारी कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार भविष्य निधि लाभ के लिए पात्र होंगे।

मुझे यह भी जोड़ना है कि ऊपर प्रस्तर 1 में उल्लिखित श्रेणियों के अस्थायी नियोजन कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम के अन्तर्गत प्रदान किए गए भविष्य निधि लाभ हेतु अधिकृत होंगे। जब भी वे स्थायी होंगे, उनके पास कर्मचारी भविष्य निधि के स्थान पर अंशदायी भविष्य निधि सह पेंशन लाभ का चयन करने का विकल्प होगा।

रोडवेज संगठन के अन्य अस्थायी एवं कार्य प्रभारित कर्मचारियों को भविष्य निधि लाभ दिये जाने के संबंध में शासनादेश संख्या 1488/XXX-219/50 दिनांक 29.7.1960 द्वारा आवश्यक आदेश से आपको पहले ही अवगत कराये जा चुके हैं।"

(बल दिया गया)

13. दिनांक 21.4.1961 को एक और शासनादेश निर्गत किया गया जिसके द्वारा दिनांक 28.10.1960 के शासनादेश के प्रस्तर-1 में उल्लिखित पदों को स्थायी पद में परिवर्तित होने की तिथि से पेंशन योग्य माना गया। दिनांक 08.09.1961 के एक अन्य शासनादेश में प्रावधान किया गया कि दिनांक 28.10.1960 के शासनादेश के प्रस्तर-2 में उल्लिखित स्थायी रोडवेज

अनुवादित

कर्मचारियों को गैर-पेंशन योग्य माना जाएगा और वे कर्मचारी भविष्य निधि एवं विविध प्रावधान अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार भविष्य निधि के लिए पात्र होंगे।

14. राज्य सरकार ने दिनांक 07.06.1972 और 05.07.1972 को दो शासनादेश निर्गत किए थे, जिसमें प्रावधान किया गया था कि स्थायी पेंशन योग्य पदों पर कार्यरत पूर्ववर्ती राजकीय रोडवेज के सभी कर्मचारी समान लाभ के अधिकारी थे, जबकि तदर्थ आधार पर नियक्त; जो कर्मचारी दैनिक वेतन पर काम कर रहे थे; जिन लोगों ने पद पर सेवा की न्यूनतम निर्धारित अवधि पूरी नहीं की थी, वे पेंशन लाभ के अधिकारी है; जो लोग ऐसे पदों पर हैं जिन्हें पेंशन योग्य घोषित नहीं किया गया है और जिन्हें घरेलू जांच के पश्चात सेवा से नहीं हटाया गया है, वे उन लाभों को प्राप्त करने के अधिकारी नहीं हैं।

15. इसके पश्चात, सड़क परिवहन निगम अधिनियम, 1950 की धारा 45(2)(सी) के अन्तर्गत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, सड़क परिवहन निगम कर्मचारी (अधिकारियों के अतिरिक्त) सेवा विनियमावली 1981 (इसके पश्चात इसे "1981 के विनियमन" के रूप में जाना जाएगा") का निर्माण किया गया। विनियमावली 1981 के विनियम 4 और 39 निम्नवत उपबंध करते हैं: -

"4. पूर्ववर्ती राजकीय रोडवेज विभाग के कर्मचारियों और अन्य कर्मचारियों द्वारा विकल्प। - *(1) पूर्ववर्ती उ०प्र० राजकीय रोडवेज विभाग का कर्मचारी जिसे निगम में प्रतिनियुक्ति पर रखा गया था और जिसने इसमें समाविष्ट होने हेतु सहमति दी है या उत्तर प्रदेश राज्य रोडवेज संगठन (पदों उन्मूलन और कर्मचारियों का आमेलन) विनियमावली, 1982 (इसके पश्चात उक्त नियमावली के रूप में संदर्भित) के नियम 4 के अनुसार ऐसा माना गया है, दिनांक 28 अगस्त, 1982 से निगम की सेवा में समाविष्ट हो जाएगा एवं तदनुसार, उक्त तिथि से राज्य सरकार का कर्मचारी नहीं रहेगा।*

बशर्ते कि निगम की सेवा में समाविष्ट कर्मचारियों की सेवा के नियम एवं शर्तें, शासनादेश संख्या 3414/XXX-2-170-एन-72, दिनांक 5 जुलाई, 1972 तथा इन विनियमों द्वारा शासित उक्त नियमों के प्रावधानों के अधीन होंगी।

वर्तमान कर्मचारी, जो उप-विनियम (1) के अंतर्गत नहीं आते हैं या जिन्हें विनियम 2के अन्तर्गत छूट नहीं है, उन्हें इन विनियमों के शुरू होने के एक महीने के भीतर नियुक्ति प्राधिकारी या महाप्रबंधक जिसे प्राधिकारी नियुक्त करें, को इस संबंध में वे इन विनियमों द्वारा शासित होना चाहते हैं या नहीं, सूचित करना होगा।

(ii) यदि वे इन विनियमों द्वारा शासित होने हेतु अपने विकल्प का चयन करते हैं या असफल होते हैं, तो उनकी नियुक्ति के नियम एवं शर्तें, जहां तक वे

अनुवादित

इन विनियमों के साथ असंगत हैं, रद्द कर दी जाएंगी:

बशर्ते कि, श्रमिकों के संबंध में जहां इन विनियमों का कोई भी प्रावधान उ०प्र० औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947, वेतन भुगतान अधिनियम, 1936, न्यूनतम वेतन अधिनियम, 1948, कारखाना अधिनियम, 1948 या उन पर प्रयोज्य किसी अन्य अधिनियम के प्रावधानों से कम अनुकूल है, ऐसे अधिनियम के प्रावधान लागू होंगे।

(iii) यदि ऐसे व्यक्ति इन विनियमों द्वारा शासित होने का विकल्प नहीं चुनते हैं, तो उनकी नियुक्ति की शर्तों के अनुसार उनकी सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं।"

"39. पेंशन और अन्य सेवानैवृत्तिक लाभ-(1)

इस उप-विनियम के खंड (ii) के प्रावधानों के अधीन, निगम का एक कर्मचारी पेंशन का अधिकारी नहीं होगा, लेकिन वह उप-विनियम (2) में उल्लिखित सेवानैवृत्तिक लाभों का अधिकारी होगा।

(ii) एक व्यक्ति, जो तत्कालीन उ०प्र० राजकीय रोडवेज में राज्य सरकार का कर्मचारी था तथा निगम की सेवा का विकल्प चुना है, वह 5 जुलाई, 1972 के शासनादेश संख्या 3414/302-170-एन-72 के अनुसार पेंशन और अन्य सेवानैवृत्तिक लाभों का अधिकारी होगा।

(2) उप-विनियम (1) के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, एक कर्मचारी (उस कर्मचारी सहित जो पूर्ववर्ती उ०प्र० राजकीय रोडवेज विभाग में राज्य सरकार की सेवा में था), निम्नलिखित सेवानैवृत्तिक लाभों का अधिकारी होगा:

कर्मचारी भविष्य निधि या सामान्य भविष्य निधि, जैसा भी मामला हो;

(ii) ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 या संबंधित शासकीय नियमों, जो भी प्रयोज्य हो, के अनुसार ग्रेच्युटी;

(iii) समूह बीमा योजना, 1976 के अन्तर्गत देय राशि;

(iv) राज्य के भीतर यात्रा हेतु एक वर्ष में एक निःशुल्क पारिवारिक पास;

(v) यदि वह रेलवे किराया स्वीकार नहीं करता है तो सेवानिवृत्ति के समय पोस्टिंग स्थान से अपने घर लौटने के लिए एक निःशुल्क पारिवारिक पास;

(vi) कोई अन्य लाभ जो निगम द्वारा समय-समय पर स्वीकृत किया जा सकता है।"

16. तत्पश्चात, राज्य सरकार ने संविधान के अनुच्छेद 309 (संक्षेप में, 'नियमावली 1982') के अन्तर्गत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए उ०प्र० राज्य रोडवेज संगठन (पदों का उन्मूलन और कर्मचारियों का आमेलन) नियमावली 1982 के रूप में जाना जाने वाला नियम बनाया, जिसे दिनांक 28.4.1982 को अधिसूचित किया गया था। नियम (2) (ii) "कर्मचारी" से संबंधित है, जिसका अर्थ है उ०प्र० राज्य रोडवेज संगठन में कार्यरत राजकीय कर्मचारी एवं जो निगम में प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत हैं। नियमावली

अनुवादित

1982 के नियम 4 यह प्रावधान है कि नियमावली की अधिसूचना की तिथि से तीन मास की समाप्ति पर, निगम में प्रतिनियुक्ति पर राज्य सरकार के अधीन सेवारत कर्मचारी निगम के कर्मचारी बन जाएंगे और रोडवेज में उनके प्रासंगिक पद समाप्त कर दिये जायेगे। यदि कोई व्यक्ति सरकार को सूचित करता है कि वह समाविष्ट होने का इच्छुक नहीं है, तो उसे तीन मास का नोटिस देकर उसकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएंगी और अस्थायी कर्मचारियों के मामले में नोटिस की अवधि एक मास होगी। यदि ऐसी कोई सूचना नहीं दी गई थी, तो कर्मचारी को समाविष्ट माना जाएगा। नियमावली 1982 का प्रासंगिक नियम 4 इस प्रकार है: -

"4(1) उ०प्र० राज्य रोडवेज संगठन का कोई कर्मचारी, जिसे निगम में प्रतिनियुक्ति पर रखा गया था और जो निगम की सेवा में समाविष्ट नहीं होना चाहता है, राजपत्र में इन नियमों की अधिसूचना से 3 मास के भीतर, परिवहन विभाग में सरकार के सचिव को सूचित करें कि वह इसमें समाविष्ट नहीं होना चाहते हैं।

(2) प्रत्येक अन्य कर्मचारी जिसने उप-नियम (1) के अनुसार सूचना नहीं दी है, यह माना जाएगा कि उसने निगम की सेवा में समाविष्ट हेतु अपने विकल्प का प्रयोग किया है।

(3) एक कर्मचारी, जिसे उप-नियम (2) के अनुसार, निगम की सेवा में समाविष्ट का विकल्प चुना गया माना जाता है, को इन नियमों के अधिसूचना की तिथि से तीन मास की समाप्ति की तिथि से समाविष्ट माना जाएगा और राज्य सरकार के अधीन उसकी सेवा उसी तिथि से समाप्त हो जाएगी।"

17. विनियमावली 1981 के विनियम 39 के उपखंड 1 (ii) में यह स्पष्ट किया गया है कि पूर्ववर्ती उ०प्र० राजकीय रोडवेज में राज्य सरकार का एक कर्मचारी जिसने निगम की सेवा का विकल्प चुना है, वह शासनादेश दिनांक 05.07.1972 के अनुसार पेंशन एवं अन्य सेवानैवृत्तिक लाभ का अधिकारी होगा। दिनांक 05.07.1972 का शासनादेश पेंशन एवं सेवानैवृत्तिक लाभों सहित सभी लाभों की सुरक्षा करता है, जो निगम में प्रतिनियुक्ति होने के पश्चात भी पूर्ववर्ती रोडवेज के कर्मचारियों को उपलब्ध थे।

18. प्रतिवादी को प्रारंभ में दिनांक 22.04.1960 को तत्कालीन उ०प्र० राज्य रोडवेज में क्लीनर- सह-कंडक्टर के पद पर नियुक्त किया गया था, और शासनादेश दिनांक 16.09.1960 निर्गत होने की तिथि पर जो दिनांक 01.10.1960 को लागू हुआ था, वह एक अस्थायी कर्मचारी के रूप में काम कर रहा था। दिनांक 28.10.1960 को, एक और शासनादेश निर्गत किया गया था जिसमें परिवहन और रोडवेज विभाग में कुछ पदों को पेंशनरी पदों के रूप में घोषित किया गया था और उक्त शासनादेश में प्रावधान था कि संगठन के यातायात और इंजीनियरिंग दोनों वर्गों में शेष स्थायी अराजपत्रित रोडवेज कर्मचारी गैर-पेंशन

अनुवादित

योग्य माने जायेंगे। ऊपर उल्लिखित स्थायी गैर-पेंशन योग्य पदों के पदाधिकारी कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार भविष्य निधि लाभ के लिए पात्र होंगे।

19. इसके पश्चात, प्रतिवादी को दिनांक 18.06.1961 को कंडक्टर के पद पर प्रोन्नत किया गया और दिनांक 01.04.1972 को कंडक्टर के पद पर उनकी सेवाओं को स्थायी किया गया।

20. दिनांक 01.04.1972 को उनकी सेवाओं के स्थायीकरण से पूर्व, प्रतिवादी अस्थायी आधार पर काम कर रहा था और इस कारण उसकी सेवाएं पेंशन योग्य नहीं थीं। उनकी स्थायीकरण के पश्चात भी, प्रतिवादी कंडक्टर के पद पर कार्यरत था, जो एक गैर-पेंशन योग्य पद था।

21. जब वह पूर्ववर्ती राज्य रोडवेज विभाग में कंडक्टर के गैर-पेंशन योग्य पद पर कार्यरत थे, तब प्रतिवादी को दिनांक 05.07.1972 के शासनादेश के अनुसार निगम में प्रतिनियुक्ति पर नियुक्त किया गया था।

22. शासनादेश दिनांक 05.07.1972, जैसा कि शासनादेश दिनांक 07.06.1972 द्वारा पुनरीक्षित किया गया था, में प्रावधान किया गया था कि स्थायी पेंशन योग्य पदों पर कार्यरत पूर्ववर्ती राजकीय रोडवेज के सभी कर्मचारी समान लाभ के अधिकारी थे, जबकि वे कर्मचारी जो उन पदों पर काम कर रहे थे, जिन्हें पेंशन योग्य घोषित नहीं किया गया है, वे पेंशन का लाभ लेने के अधिकारी नहीं हैं। इसलिए, प्रतिवादी उपरोक्त शासनादेशों के अन्तर्गत पेंशन पाने का अधिकारी नहीं था।

23. दिनांक 13.04.1984 को प्रतिवादी को सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर प्रोन्नत किया गया और उसके पश्चात दिनांक 30.06.1989 को उसे यातायात निरीक्षक के पद पर प्रोन्नत किया गया। प्रतिवादी दिनांक 28.02.1994 को सेवानिवृत्त हो गया जब वह उपरोक्त पद पर कार्यरत था।

24. विनियमावली 1981 के विनियम 39 में यह प्रावधान है कि उन व्यक्तियों को छोड़कर जो दिनांक 07.06.1972 के पुनरीक्षित शासनादेश दिनांक 5 जुलाई 1972 के शासनादेश के अनुसार पेंशन पाने के अधिकारी थे, निगम के कर्मचारी पेंशन के अधिकारी नहीं होंगे, लेकिन वे ई.पी.एफ. सहित अन्य सेवानैवृत्तिक लाभों के अधिकारी होंगे।

25. **राम चन्द्र पाठक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य**, (2003) ILR 2 All 379 में, इस न्यायालय की एकल पीठ ने समान मामले पर विचार किया और धारित किया कि: -

"19. राज्य सड़क संगठन के समस्त अधिकारियों/कर्मचारियों को शासनादेश दिनांक 7 जून 1972 के प्रस्तर 4 में यह आश्वासन दिया गया है कि सेवा विनियमावली में समाविष्ट किये जाने वाले प्रावधानों की स्थिति में उनकी सेवा शर्तें निगम के अन्तर्गत, किसी भी स्थिति में

अनुवादित

उन शर्तों से कमतर नहीं होंगी जो उनके समाविष्ट से ठीक पहले सरकार के अन्तर्गत उपलब्ध थीं और राजकीय सेवा के उनके कार्यकाल को उनकी वरिष्ठता, पदोन्नति, वेतन निर्धारण, अवकाश के लिए पात्रता और सेवानिवृत्ति के लाभों को उसी तरह जैसे कि राजकीय सेवा के अन्तर्गत होता, हेतु माना जाएगा और जहां तक पेंशन का संबंध है, 19.6.1981 को अधिसूचित 1981 के सेवा विनियमावली के वैधानिक विनियमन 39 (1) (ii) में फलित होता है। यह प्रावधानित किया गया है कि एक व्यक्ति जो पूर्ववर्ती सरकार में कार्यरत था और जिसने निगम की सेवा का विकल्प चुना है, वह शासनादेश दिनांक 5.7.1972 के अनुसार पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का अधिकारी होगा, यह पाया गया है कि उसने प्रस्तर 1 (1) (क) को छोड़कर सभी प्रस्तरों को हटाकर दिनांक 7.6.1972 के शासनादेश में संशोधन किया है कि परिवहन आयुक्त, मुख्यालय के रोडवेज के कार्य से संबंधित सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को उनकी सेवा की वर्तमान शर्तों के अन्तर्गत प्रतिनियुक्ति पर विचार करने का प्रावधान करते हुए यह आश्वासन दिया गया कि जब भी सेवा विनियमन बनाया जाएगा, उनकी सेवा की शर्तें उन शर्तों से कमतर नहीं होंगी जो राजकीय कर्मचारियों पर उनके आमेलन से पहले लागू थीं और उनकी वरिष्ठता, पदोन्नति, वेतन निर्धारण और अन्य वित्तीय लाभों के संबंध में सेवा की वही शर्तें लागू होंगी जो उन्हें जब वे राजकीय सेवा में रहते हुए मिलतीं। यह स्वीकार किया गया कि सभी याचिकाकर्ता निगम की सेवा में समाविष्ट हो गये थे। अपनी सेवा शर्तों के अन्तर्गत, वे कर्मचारी जो पेंशन योग्य पद पर नहीं थे और कर्मचारी भविष्य निधि में योगदान दे रहे थे, उनके समाविष्ट के पश्चात भी उन्होनें निधि की सदस्यता जारी रखी। वे निगम के कर्मचारी बन गए और उनकी सेवा शर्तें यू.पी. राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी (अधिकारी के अलावा) सेवा विनियमावली, 1981 द्वारा विनियमित की गईं। ***निगम कर्मचारी के रूप में, वे पेंशन के अधिकारी नहीं थे। सेवा में समाविष्ट के समय याचिकाकर्ता, निगम में प्रतिनियुक्ति पर यू.पी. रोडवेज के कर्मचारियों के रूप में, पेंशन योग्य पद धारण नहीं कर रहे थे और इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि उनके समाविष्ट पर, इस तथ्य के संबंध में सेवा शर्त कि वे पेंशन के हकदार नहीं थे, कम लाभप्रद थी क्योंकि यह उनके समाविष्ट से पहले रोडवेज के कर्मचारियों पर लागू थी।***

20. शासनादेश का सन्दर्भ द्वारा विधान के रूप में कोई प्रभाव नहीं है। दिनांक 5.7.1972 के शासनादेश का आशय सरकारी सेवा पर लागू नियमों को जारी रखना नहीं था जो निगम धारक और न ही पेंशन योग्य सेवा के कर्मचारियों पर लागू होते थे। निगम के कर्मचारियों के रूप में समाविष्ट होने के पश्चात, निगम पर लागू सेवा विनियमन ऐसे कर्मचारियों पर लागू हो गया। 5 जुलाई 1972 के शासनादेश में दिया गया आश्वासन, निगम के कर्मचारियों के लिए बनाए जाने वाले नियमों के अधीन था, और इस प्रकार आश्वासन के बाद का

भाग कि उनकी सेवा शर्तें कम लाभप्रद नहीं होंगी, तब तक लागू थी जब तक उनकी सेवा शर्तों के संबंध में निगम द्वारा सेवा नियम नही बनाए गए थे। ***यदि सेवा विनियमावली, 1981, ऐसे कर्मचारियों के लिए स्वीकार्य नहीं थी, तो वे सेवा विनियमावली, 1981 के विनियम 4 (1) (iii) के अन्तर्गत निगम की सेवा से बाहर हो सकते थे।***

(बल दिया गया)

26. चूँकि प्रतिवादी निगम में समाविष्ट के समय कंडक्टर के गैर-पेंशन योग्य पद पर कार्यरत था, इसलिए उसकी सेवाएँ गैर-पेंशन योग्य रहीं। प्रतिवादी के साथ यह उचित व्यवहार किया गया कि उसे निगम में गैर-पेंशन योग्य पद पर नियुक्त किया गया और उसने ई.पी.एफ. में अपनी सेवानिवृत्ति तक योगदान देना जारी रखा तथा, तदनुसार, उनकी सेवानिवृत्ति के पश्चात, उसे नियोक्ता के योगदान के साथ ई.पी.एफ. राशि का भुगतान किया गया, जिसे प्रतिवादी ने बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर लिया था। यह पहली बार था कि वर्ष 2001 में, अर्थात उसकी सेवानिवृत्ति के सात वर्ष पश्चात, प्रतिवादी ने वर्ष 2001 में दावा याचिका दायर करके पेंशन के भुगतान का दावा किया।

27. इस संबंध में **राम चन्द्र पाठक** (उपरोक्त) में यह कहा गया कि:-

"22. इस मामले का एक और पहलू यह है कि लगभग सभी याचिकाकर्ता बहुत पहले सेवानिवृत्त हो चुके हैं। उदाहरण के लिए 2001 की रिट याचिका संख्या 2603 में, याचिकाकर्ता निगम, फजलगंज डिपो, कानपुर के वरिष्ठ स्टेशन प्रभारी के रूप में दिनांक 30.5.1994 को सेवानिवृत्त हुए; 2001 की रिट याचिका संख्या 2604में याचिकाकर्ता दिनांक 28.2.1986 को निगम के क्षेत्रीय प्रबंधक, इलाहाबाद क्षेत्र, इलाहाबाद के अधीन चालक के पद से सेवानिवृत्त हुए और रिट याचिका संख्या 19726/2000 में याचिकाकर्ता दिनांक 30.6.1997 को वाराणसी ग्रामीण डिपो से सेवानिवृत्त हुए। सभी याचिकाकर्ताओं को कर्मचारी भविष्य निधि, ग्रेच्युटी और अन्य लाभों की पूरी राशि सहित सेवानिवृत्ति लाभ प्राप्त हुए हैं। उन्हें वर्ष 1982 में निगम की सेवा में समाविष्ट किया गया था और सके पश्चात उनकी सेवानिवृत्ति की तिथि तक, उन्होंने विनियमों की प्रयोज्यता के संबंध में कोई विरोध नहीं किया। ***निगम के कर्मचारियों के रूप में रोजगार के नियमों और शर्तों को स्वीकार करने के पश्चात, उन्हें सेवानिवृत्ति के पश्चात निगम में प्रतिनियुक्ति पर राजकीय कर्मचारियों के रूप में सेवा शर्तों की प्रयोज्यता का दावा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।*** *राजस्थान राज्य बनाम राजस्थान पेंशनर्स समाज 1991 Supp (2) SCC 141 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कृष्ण कुमार बनाम भारत संघ (1990) 4 SCC 207 में संविधान पीठ के निर्णय को बरकरार रखा, डी.एस.नकारा, (1983) 1 SCC 305 के मामले में शीर्ष न्यायालय के निर्णय को समझाया और स्पष्ट किया तथा धारित किया कि अंशदायी भविष्य निधि के*

अनुवादित

सेवानैवृत्तिकों को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आधार पर भविष्य निधि योजना से पेंशन योजना में स्थानान्तरित करने के अधिकार का दावा करने का अधिकार नहीं हैं। यह पाया गया कि जोधपुर सी.पी.एफ. सेवानैवृत्तिकों की विधवाएँ पेंशन सेवानैवृत्तिक एक सजातीय वर्ग नहीं बनाते बल्कि दो अलग-अलग वर्ग बनाते हैं और इसलिए, सी.पी.एफ सेवानैवृत्तिकों की विधवाएँ पेंशन योजना का विकल्प चुनने की अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि पेंशन योजना का विकल्प चुनने का अधिकार सेवानिवृत्त लोगों की विधवाओं को विरासत में नहीं मिल सकता है या इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

23. कृष्ण कुमार के मामले में यह धारित किया गया था कि प्रत्येक व्यक्तिगत भविष्य निधि सेवानैवृत्तिक का अधिकार उसकी सेवानिवृत्ति पर स्पष्ट हो जाता है जिसके पश्चात कोई निरंतर दायित्व नहीं रहता है, जबकि दूसरी ओर, पेंशन से सेवानैवृत्तिक के संबंध में राज्य का एक निरंतर दायित्व है। वर्तमान मामले में गैर-पेंशन योग्य पदों पर कार्यरत कर्मचारी को निगम में समाविष्ट करने पर राज्य सरकार की बाध्यता समाप्त हो गयी। ये कर्मचारी निगम के कर्मचारी बन गए और कर्मचारी भविष्य निधि के अपने खाते से निधि के अंतरण के पश्चात कर्मचारी भविष्य निधि की सदस्यता लेना शुरू कर दिये। वे कर्मचारी भविष्य निधि के सदस्य बन गये। राज्य सरकार को उन कर्मचारियों के मामले में उनके पेंशन फंड में योगदान करने की आवश्यकता नहीं थी जो पेंशन योग्य पद धारण किये हुये थे। वर्ष 1982 में निगम में उनके समाविष्ट की तिथि पर उनके अधिकार स्पष्ट हो गए। अब उनकी सेवानिवृत्ति के पश्चात, सेवानिवृत्ति लाभ प्राप्त करने और निगम के कर्मचारियों के रूप में संबंध समाप्त करने के पश्चात,वे लंबी अवधि के पश्चात अपने अधिकारों के लिए आंदोलन नहीं कर सकते हैं। वे समाविष्ट की तिथि पर पेंशन योग्य पद धारण करने वाले राज्य सरकार के कर्मचारियों की तुलना में एक अलग वर्ग बनाते हैं।

(बल दिया गया)

28. हम माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित और माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पालन किए गए उपर्युक्त विधि द्वारा प्रतिपादित विधि से सहमत हैं।

29. **बद्री प्रसाद दुबे बनाम प्रबंध निदेशक, उ.प्र. राज्य सड़क परिवहन निगम** (2011) 89 ALR 832, जिस पर प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने विश्वास व्यक्त किया, एक ऐसे व्यक्ति द्वारा दायर किया गया था जिसे तत्कालीन उ०प्र० राजकीय रोडवेज में सहायक यातायात निरीक्षक के रूप में दिनांक 18.8.1964 को नियुक्त किया गया था एवं उसके पश्चात उक्त पद पर स्थायीकरण भी किया गया। निगम के निर्माण पर दिनांक 01.06.1972 से उन्हें प्रतिनियुक्ति पर भेजा गया जहां उन्हें दिनांक 28.07.1982 से समाविष्ट कर लिया गया। इसके पश्चात उन्हें कनिष्ठ स्टेशन प्रभारी और उसके पश्चात वरिष्ठ स्टेशन प्रभारी के रूप में तैनात किया गया

और फिर दिनांक 29.09.1995 के आदेश द्वारा यातायात अधीक्षक के पद पर प्रोन्नत किया गया और इस पद पर उन्होंने दिनांक 31.7.2001 को सेवानिवृत्त होने तक कार्य किया। उन्होंने पेंशन का दावा किया और दावा मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि शासनादेश दिनांक 28.10.1960 के अनुसार यातायात निरीक्षक ग्रेड- I का पद सरकार के अन्तर्गत एक गैर पेंशन योग्य पद था एवं नियोक्ता के अंश की मांग की गई तथा क्षेत्रीय प्रबंधक, इलाहाबाद द्वारा त्रुटि से लिया गया था। इस न्यायालय ने धारित किया कि:-

"4. यह प्रश्न कि क्या अपने समाविष्ट की तिथि पर याचिकाकर्ता सरकार के अन्तर्गत पेंशन योग्य पद पर था, विवाद में नहीं है क्योंकि राम सिंह सिंगरौर बनाम उ०प्र० राज्य [2007 (7) एडीजे 137 ।] के मामले में इस न्यायालय ने यह धारित किया है कि चूंकि सहायक यातायात निरीक्षक का पद दिनांक 5.5.1978 से यातायात निरीक्षक ग्रेड- I के रूप में स्तरोन्नयन कर दिया गया था और यह पद कनिष्ठ स्टेशन प्रभारी के पद के समकक्ष था और वे अन्तःपरिवर्तनीय थे, अतः यह धारित किया गया कि सहायक यातायात निरीक्षक का पद धारण करने वाले व्यक्ति समाविष्ट की तिथि पर पेंशन के अधिकारी थे। उपरोक्तनिर्णय की अपील में पुष्टि की गई है।"

03.02.1994 के एक शासनादेश के माध्यम से प्रस्तुत किया गया था, जबकि अधिकरण द्वारा शासनादेश के रूप में जिस दस्तावेज़ पर विश्वास किया गया था, वह निगम द्वारा निर्गत किया गया एक परिपत्र मात्र था और इसने पेंशन का प्रावधान प्रस्तुत

30. हालाँकि, याचिकाकर्ता को कंडक्टर के पद पर तत्कालीन यू.पी.एस.आर.टी.सी. के राजकीय विभाग में नियुक्त किया गया था, जो एक गैर-पेंशन योग्य पद था और निगम में उनके आमेलन की तिथि पर भी वह कंडक्टर के उपरोक्त गैर-पेंशन योग्य पद पर कार्य कर रहे थे, इसलिए **बद्री प्रसाद दुबे** (उपरोक्त) के मामले का निर्णय जो सहायक यातायात निरीक्षक के पद पर नियुक्त किये गये थे और निगम में समाविष्ट होने के समय उक्त पद पर थे, वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा।

31. अधिकरण ने दावा याचिका को इस निराधार धारणा पर स्वीकार्यता दी कि निगम में प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति से पूर्व प्रतिवादी एक पेंशन योग्य पद पर कार्य कर रहा था, जबकि हमने ऊपर देखा है कि प्रतिवादी निगम में कंडक्टर के पद पर काम कर रहा था, जो एक गैर-पेंशन योग्य पद था। अधिकरण ने गलत धारित किया कि पेंशन का प्रावधान निगम में दिनांक नहीं किया था, बल्कि इसने निगम के अधिकारियों को पेंशन के भुगतान के संबंध में प्रासंगिक शासनादेशों की संसूचना निगम के कर्मचारियों को सुनिश्चित करने हेतु कहा।

अनुवादित

32. अन्यथा भी, जब प्रतिवादी की सेवाएँ विनियमावली 1981 के विनियम 39 में उल्लिखित प्रावधानों के अनुसार पेंशन योग्य नहीं थीं, इसे मात्र निगम द्वारा निर्गत एक परिपत्र द्वारा पेंशन योग्य नहीं बनाया जा सकता था क्योंकि एक परिपत्र वैधानिक विनियमों के प्रावधानों को अध्यारोही नहीं कर सकता है।

33. इसलिए, हमारा सुविचारित मत है कि अधिकरण ने यह धारित कर त्रुटि की है कि प्रतिवादी की सेवाओं को पेंशन योग्य माना जाना चाहिए तथा अधिकरण द्वारा पारित निर्णय और आदेश कायम रहने योग्य नही है।

34. उपरोक्त विचार-विमर्श के दृष्टिगत, वर्तमान रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। राज्य लोक सेवा अधिकरण द्वारा 2001 की दावा याचिका संख्या 1482 को स्वीकारते हुए पारित निर्णय और आदेश दिनांक 16.09.2014 को अभिखण्डित किया जाता है और दावा याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 2 ILRA 730

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 क्रमांक 655 / 2023

ननकू @ ननकूलाल एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: शैलेंद्र कुमार दुबे, राम कृष्ण प्रताप सिंह, संत प्रसाद सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 202 (1)- प्रक्रिया जारी करने से पूर्व मजिस्ट्रेट द्वारा कोई जांच नहीं की गई है और यहां तक कि मजिस्ट्रेट ने वाद में जांच के लिए पुलिस अधिकारी को निर्देश भी नहीं दिया है। मजिस्ट्रेट द्वारा आक्षेपित समन आदेश पारित करते समय, उन्होंने अपने न्यायिक मस्तिस्क का उपयोग नहीं किया - मजिस्ट्रेट ने धारा 200 और 202 सीआर.पी.सी. के तहत कार्यवाही में न ही क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के मुद्दे के संबंध में पूछताछ करने की कोशिश की और न ही उन्होंने अलग से कोई जांच की है या किसी जांच के लिए निर्देशित किया है-सीआरपीसी की धारा 202 (1) के प्रावधान का स्पष्ट रूप से उल्लंघन किया गया है और इस प्रकार, लागू आदेश मान्य नहीं है।

सीआरपीसी की धारा 202 की उप-धारा (1) में संशोधन से मजिस्ट्रेट के लिए यह अनिवार्य हो गया है कि वह अपने क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र से बाहर रहने वाले किसी आरोपी को बुलाने से पूर्व न्यायिक मस्तिस्क का प्रयोग करेगा और स्वयं या किसी जांच अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से जांच कराए। (पैरा 11, 12, 12)

अनुवादित

आपराधिक आवेदन स्वीकृत। (ई-3)

केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-

महबूब एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2017 (98) एसीसी 593

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना एवं अभिलेख का अवलोकन किया।

2. पारित किए जाने वाले प्रस्तावित आदेश के दृष्टिगत, विपक्षी संख्या 2 के प्रति नोटिस जारी करने से छूट दी गई है।

3. यह आवेदन धारा 482 द.प्र.सं. के अन्तर्गत आपराधिक विविध/शिकायत वाद संख्या 1571/2019 में ए.सी.जे.एम.-प्रथम, लखनऊ द्वारा जारी किए गए आक्षेपित समन आदेश दिनांक 18.2.2021, अन्तर्गत धारा 323, 504, 506 भारतीय दण्ड संहिता, पुलिस थाना- चिनहट, जिला- लखनऊ एवं सत्र न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 488/2022 में पारित पुनरीक्षण आदेश दिनांक 19.9.2022 को रद्द करने की प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

4. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि विपक्षी संख्या 2 ने द.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अन्तर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें आरोप लगाया गया कि दिनांक 22.2.2019 को शाम 7.30 बजे जब वादी पुलिस में भर्ती हेतु दौड़ने का अभ्यास करके लौट रहा था तभी अचानक आरोपी-आवेदकगण जी.एस. लॉन पहुँचे एवं उसे लात-घूंसों से पीटना शुरू कर दिया । यह भी कथन किया गया है कि आरोपी-आवेदकगणों ने शिकायतकर्ता से 1800 रुपये, एक अंगूठी एवं एक नोकिया मोबाइल, जिसका मोबाइल नंबर 7518452656 है, लूट लिये हैं । शिकायतकर्ता ने कहा कि उसने तुरंत उक्त घटना के संबंध में पुलिस स्टेशन चिनहट को सूचित किया एवं आवेदकगण के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए दिनांक 25.2.2019 को एस.एस.पी., लखनऊ को सूचित किया, किन्तु प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई । इस प्रकार इस आवेदन को द.प्र.सं. की धारा 156(3) के अन्तर्गत एक शिकायत मामले के रूप में माना गया है । इसके बाद, विपक्षी संख्या 2 एवं दो गवाहों, सुरेश कुमार यादव एवं महेश सिंह का बयान क्रमशः दिनांक 30.7.2019 एवं 12.1.2021 को द.प्र.सं. की धारा 200 एवं 202 के अन्तर्गत दर्ज किया गया । तदोपरान्त क्रमशः धारा 200 एवं 202 द.प्र.सं. के अन्तर्गत दर्ज किए गए विपक्षी संख्या 2 एवं गवाहों के बयानों के आधार पर, विचारण न्यायालय ने न्यायिक विवेक का उपयोग किए बिना आवेदकों को गलत तरीके से समनित किया ।

5. आवेदकगण के अधिवक्ता समन आदेश दिनांक 18.2.2021 को इस आधार पर चुनौती दे रहे हैं कि ए.सी.जे.एम प्रथम, लखनऊ ने न्यायिक विवेक का उपयोग किए बिना समन आदेश पारित करते समय

अनुवादित

गलत निष्कर्ष दर्ज किया है कि आवेदकगण द्वारा शिकायतकर्ता की पत्नी को पीटा गया था, एवं उसे चोट लगी है, लेकिन शिकायतकर्ता का मामला ऐसा नहीं था । शिकायतकर्ता एवं गवाहों के द.प्र.सं. की क्रमशः धारा 200 एवं 202 के अन्तर्गत अभिलिखित बयान के परिशीलन से ज्ञात होता है कि आवेदकों ने शिकायतकर्ता को चोट पहुँचाई है, किन्तु घटना स्थल पर विपक्षी संख्या दो की पत्नी की मौजूदगी के संबंध में कोई सुगबुगाहट नहीं है । इस प्रकार विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष दोषपूर्ण हैं एवं ऐसे में समन आदेश रद्द किये जाने योग्य है। सम्मन आदेश से व्यथित होकर, आवेदकों ने पुनरीक्षण दायर किया किन्तु विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने बिना किसी आख्यापक आदेश के इसे प्रारम्भिक स्तर पर ही खारिज कर दिया । अत: यह भी निरस्त किये जाने योग्य है।

6. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि द.प्र.सं. की धारा 202(1) के प्रावधान के अनुसार, जैसे ही मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत प्रस्तुत की जाती है, वह या तो मामले की जाँच करेगा या जाँच के आदेश पारित करेगा- यदि आरोपी संबंधित मजिस्ट्रेट के स्थानीय क्षेत्राधिकार से बाहर रह रहा है । किन्तु शिकायत वाद में उपरोक्त किसी भी अधिकृत व्यक्ति द्वारा कोई जाँच नहीं की गई है ।

7. द.प्र.सं. की धारा 202 के प्रावधान निम्नानुसार है:-

"202. आदेशिका के जारी किए जाने को मुल्तवी करना- (1) यदि कोई मजिस्ट्रेट ऐसे अपराध का परिवाद प्राप्त करने पर, जिसका संज्ञान करने के लिए वह प्राधिकृत है या जो धारा 192 के अधीन उसके हवाले किया गया है, ठीक समझता है तो एवं ऐसे मामले में, जहाँ अभियुक्त ऐसे किसी स्थान में निवास कर रहा है जो उस क्षेत्र से परे है जिसमें वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है, अभियुक्त के विरुद्ध आदेशिका का जारी किया जाना मुल्तवी कर सकता है एवं यह विनिश्चित करने के प्रयोजन से कि कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है अथवा नहीं, या तो स्वयं ही मामले की जाँच कर सकता है या किसी पुलिस अधिकारी द्वारा या अन्य ऐसे व्यक्ति द्वारा, जिसको वह ठीक समझे अन्वेषण किए जाने के लिए निदेश दे सकता है :

परन्तु अन्वेषण के लिए ऐसा कोई निदेश वहाँ नहीं दिया जाएगा –

(क) जहाँ मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि वह अपराध जिसका परिवाद किया गया है अनन्यतः सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है; अथवा

(ख) जहाँ परिवाद किसी न्यायालय द्वारा नहीं किया गया है जब तक कि परिवादी की या उपस्थित साक्षियों की (यदि कोई हो) धारा 200 के अधीन शपथ पर परीक्षा नहीं कर ली जाती है।

(2) उपधारा (1) के अधीन किसी जाँच में यदि मजिस्ट्रेट ठीक समझता है तो साक्षियों का शपथ पर साक्ष्य ले सकता है: परन्तु यदि मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि वह अपराध जिसका परिवाद किया

अनुवादित

गया है अनन्यतः सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है तो यह परिवादी से अपने सब साक्षियों को पेश करने की अपेक्षा करेगा एवं उनकी शपथ पर परीक्षा करेगा।

(3) यदि उपधारा (1) के अधीन अन्वेषण किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो पुलिस अधिकारी नहीं है तो उस अन्वेषण के लिए उसे वारण्ट के बिना गिरफ्तार करने की शक्ति के सिवाय पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को इस संहिता द्वारा प्रदत्त सभी शक्तियाँ होंगी।

8. अपने तर्को के समर्थन में, आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता ने महबूब एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य 2017 (98) एसीसी 593 के वाद में इस न्याायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया । उक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर अधोवर्णित हैं: -

(6) सोनू गुप्ता बनाम दीपक गुप्ता (2015) वाल्यूम 3 एससीसी 424 के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया था कि:-

"संज्ञान एवं सम्मन के चरण में मजिस्ट्रेट को मात्र अपराध का संज्ञान लेने के लिए, या दूसरे शब्दों में, यह पता लगाने के लिए अपने न्यायिक विवेक का उपयोग करने की आवश्यकता होती है कि क्या आरोपी व्यक्तियों को समनित करने के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनता है । इस स्तर पर, मजिस्ट्रेट को बचाव पक्ष के कथन या सामग्री या तर्कों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है एवं न ही उसे शिकायतकर्ता की सामग्री या साक्ष्य के गुणों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता है, क्योंकि मजिस्ट्रेट को इस स्तर पर यह पता लगाने की कवायद नहीं करनी चाहिए कि क्या सामग्रियों से दोषसिद्धि होगी या नहीं। (प्रस्तर 8)"

(7) विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 9318/ 2012 से उद्भूत आपराधिक अपील संख्या 1225/ 2016, अभिजीत पवार बनाम हेमंत मधुकर निंबालकर एवं अन्य में हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 14.12.2016 को दिए गए एक निर्णय में यह अवधारित किया गया कि विधि द्वारा स्वीकृत स्थिति यह है कि उन मामलों में जहाँ अभियुक्त उस क्षेत्र से परे किसी स्थान पर रह रहा है जिसमें मजिस्ट्रेट अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है, तो मजिस्ट्रेट की ओर से उसे सम्मन/वारंट जारी करने से पहले पूछताछ या जाँच करना अनिवार्य है। द.प्र.सं. की धारा 202 को दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा संशोधित किया गया था, जो 22 जून, 2006 से प्रभावी हुआ एवं इसमें यह शब्दसमूह युक्त किया गया कि " एवं करेगा, ऐसे मामले में जहाँ आरोपी उस क्षेत्र से परे किसी स्थान पर रह रहा है जहाँ वह अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है' । इस संशोधन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य या लक्ष्य है, दूर-दराज के स्थानों पर रहने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध झूठी शिकायतों को समाप्त करना ताकि उन्हें अनावश्यक उत्पीड़न से बचाया जा सके । इस प्रकार, संशोधित प्रावधान मजिस्ट्रेट पर सम्मन/वारंट जारी करने से पूर्व जाँच करने या प्रत्यक्ष अन्वेषण करने का दायित्व डालता है, ताकि झूठी शिकायतों को फ़िल्टर

अनुवादित

किया जा सके एवं खारिज किया जा सके ।

*(8) विजय धानुका बनाम नजिमा ममताज (*2014) 14 एससीसी 638 के वाद निर्णय का सन्दर्भ निम्नवत ग्रहण किया गया हैः-

"11. संहिता की धारा 202, अन्य बातों के अलावा, सम्मन वारंट जारी करने को स्थगित करने पर विचार करती है "ऐसे मामले में जहाँ आरोपी उस क्षेत्र से परे किसी स्थान पर रह रहा है जहाँ वह अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है" एवं उसके बाद या तो मामले की स्वयं जाँच करता है या किसी पुलिस अधिकारी या ऐसे अन्य व्यक्ति जिसे वह उचित समझे द्वारा अन्वेषण किए जाने का निर्देश देता है । इसके दृष्टिगत हमें यह विनिश्चयन करना है कि क्या ऐसे मामले में जहाँ आरोपी उस क्षेत्र से परे किसी स्थान पर रह रहा है जिस क्षेत्र में मजिस्ट्रेट अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है, वहाँ जाँच अनिवार्य है या नहीं ।

12. शब्द समूह "और करेगा, ऐसे मामले में जहाँ अभियुक्त उस क्षेत्र से परे किसी स्थान पर रह रहा है जिसमें वह अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है" दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम (केंद्रीय अधिनियम 25/2005) की धारा 19 द्वारा सन्निविष्ट किए गए थे जो 23.6.2006 से प्रभावी है। विधायिका के मत में उपरोक्त संशोधन अत्यावश्यक था क्योंकि दूर-दराज के स्थानों पर रहने वाले व्यक्तियों का उत्पीड़न करने के लिए उनके विरुद्ध झूठी शिकायतें दर्ज की जाती हैं । संशोधन हेतु नोट इस प्रकार हैः-

"दूर-दराज के स्थानों पर रहने वाले व्यक्तियों को उत्पीड़न करने के लिए उनके विरुद्ध झूठी शिकायतें दर्ज की जाती हैं । यह सुनिश्चित करने के लिए कि निर्दोष व्यक्तियों को विवेकहीन व्यक्तियों द्वारा उत्पीड़ित नहीं किया जाए, उस खंड, द्वारा धारा 202 की उप-धारा (1) में संशोधन वांछित है ताकि इसे मजिस्ट्रेट के लिए अनिवार्य बनाया जा सके कि अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर रहने वाले आरोपी को सम्मन जारी करने से पूर्व वह स्वयं मामले की जाँच करेगा या किसी पुलिस अधिकारी या ऐसे अन्य व्यक्ति जिसे वह उचित समझे द्वारा अन्वेषण किए जाने का निर्देश देगा, ताकि यह पता लगाया जा सके कि आरोपी के विरुद्ध कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है या नहीं ।

अभिव्यक्ति "करेगा" का प्रयोग प्रथम दृष्टया मजिस्ट्रेट द्वारा जाँच या अन्वेषण, जैसा भी मामला हो, को अनिवार्य बना देता है । शब्द "करेगा" सामान्यतः अनिवार्य है, किन्तु कभी-कभी संदर्भ या आशय को ध्यान में रखते हुए, इसे निर्देशिका माना जा सकता है । सभी परिस्थितियों में "करेगा" शब्द का प्रयोग निर्णायक नहीं है। उपरोक्त सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, जब हम विधायिका के आशय को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि इसका उद्देश्य निर्दोष व्यक्तियों को बेईमान व्यक्तियों द्वारा की गयी झूठी शिकायतों के उत्पीड़न से रोकना है । इसलिए, हमारी राय में अभिव्यक्ति "करेगा" का उपयोग, एवं पृष्ठभूमि एवं

अनुवादित

उद्देश्य, जिसके लिए संशोधन लाया गया है, के सम्बन्ध में हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि पूछताछ या जाँच, जैसा भी मामला हो, मजिस्ट्रेट के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र से बाहर रहने वाले आरोपियों के विरुद्ध समन जारी करने से पहले अनिवार्य है। "

(9) महमूद यूआई रहमान बनाम खज़ीर मोहम्मद टुंड (2016) 1 एससीसी (Crl.) 124 में इसे निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

"20. निर्णय विधि का व्यापक संदर्भ स्पष्ट रूप से यह दर्शाएगा कि शिकायत पर अपराध का संज्ञान आरोपी को आदेशिका जारी करने के उद्देश्य से लिया जाता है । चूँकि यह कुछ ऐसे तथ्यों का न्यायिक नोटिस लेने की प्रक्रिया है जो एक अपराध का गठन करते है, इसलिए इस तथ्य पर विवेक का प्रयोग करना होगा कि क्या परिवाद में उल्लिखित आरोपों पर, जब अभिलिखित किए गए बयानों या उस पर की गई जाँच के साथ विचार किया जाता है, तो क्या यह विधि का उल्लंघन होगा यदि किसी व्यक्ति को आपराधिक न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होने के लिए बुलाया जा सके । यह यांत्रिक प्रक्रिया या परिपाटी नही है, जैसा कि पेप्सी फूड्स लिमिटेड [पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम न्यायिक मजिस्ट्रेट, (1998) 5 एससीसी 749: 1998 एससीसी (Crl.) 1400] में इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था कि एक व्यक्ति के विरुद्ध आपराधिक कानून की प्रक्रिया को प्रारम्भ करना एक गंभीर मामला है.

22. मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 190(1)(ए) द.प्र.सं. एवं तदोपरान्त धारा 204 द.प्र.सं. के अन्तर्गत की गयी कार्यवाही से यह दर्शित होना चाहिए कि मजिस्ट्रेट ने तथ्यों एवं बयानों पर स्वविवेक का प्रयोग किया है एवं वह संतुष्ट है कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध विधि के उल्लंघन का आरोप है, उसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होने का निर्देश देकर वाद में अग्रिम कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है। कार्यवाही हेतु आधार के सम्बन्ध में संतुष्टि का तात्पर्य यह होगा कि शिकायत में कथित तथ्य एक अपराध का गठन करेंगे एवं जब इन पर अभिलिखित बयानों के साथ विचार किया जाएगा, तो प्रथम दृष्टया, यह आरोपी को न्यायालय के प्रति उत्तरदायी बना देगा । निस्संदेह उस स्तर पर कोई औपचारिक आदेश या आख्यापक आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है । दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत शिकायत खारिज होने पर द.प्र.सं. की धारा 203 के अन्तर्गत आख्यापक आदेश पारित करने की आवश्यकता होती है एवं कारणों को भी मात्र संक्षेप में बताने की आवश्यकता होती है । दूसरे शब्दों में, मजिस्ट्रेट को उसके समक्ष दायर की गई प्रत्येक शिकायत का संज्ञान लेने एवं इस अनुक्रम में आदेशिका जारी करने के सम्बन्ध में डाकघर के रूप में कार्य नहीं करना है । मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में पर्याप्त संकेत होना चाहिए कि वह संतुष्ट है कि शिकायत में लगाए गए आरोप किसी अपराध का गठन करते है एवं जब अभिलिखित बयानों एवं धारा 202 द.प्र.सं. के अन्तर्गत जाँच के

अनुवादित

परिणाम या अन्वेषण रिपोर्ट, यदि कोई हो, के साथ विचार किया जाएगा तो अभियुक्त आपराधिक न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी होगा, एवं धारा 204 द.प्र.सं. के अन्तर्गत अभियुक्त के विरुद्ध उपस्थिति हेतु आदेशिका जारी कर कार्यवाही करने का आधार है। विवेक का प्रयोग प्रकटीकरण या संतुष्टि पर विवेक द्वारा सर्वोत्तम रूप से प्रदर्शित किया जाता है। यदि ऐसे मामले में ऐसा कोई संकेत नहीं है जहाँ मजिस्ट्रेट धारा 190/204 द.प्र.सं. के अन्तर्गत कार्यवाही करता है, तो उच्च न्यायालय धारा 482 द.प्र.सं. के अन्तर्गत आपराधिक न्यायालय की शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्ति को लागू करने के लिए बाध्य है । एक अभियुक्त के रूप में आपराधिक न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए बुलाया जाना एक ऐसा गम्भीर मामला है जो किसी की गरिमा, आत्म-सम्मान एवं समाज में छवि को प्रभावित करता है। अतः आपराधिक न्यायालय की प्रक्रिया को उत्पीड़न का हथियार नहीं बनाया जाएगा। "महत्व प्रदान किया गया ।"

(10) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः ऐसी जाँच की प्रकृति पर विचार किया जिसे मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाना आवश्यक है एवं विजय धानुका (उपरोक्त) के मामले का संदर्भ देते हुए निम्नवत धारित किया:-

"14. उपरोक्त प्रश्न के हमारे उत्तर के दृष्टिगत, अगला प्रश्न जो हमारे निर्धारण के लिए आता है वह यह है कि क्या विद्वान मजिस्ट्रेट ने सम्मन जारी करने से पूर्व जाँच की थी जैसा कि संहिता की धारा 202 में उपबंधित है। संहिता की धारा 2(जी) के अन्तर्गत "जाँच" शब्द को निम्नवत परिभाषित किया गया है : -

"2. (जी) 'जाँच' से अभिप्राय विचारण के अलावा किसी मजिस्ट्रेट या न्यायालय द्वारा इस संहिता के अन्तर्गत की जाने वाली हर जाँच है ।"

उपरोक्त प्रावधान से यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट या न्यायालय द्वारा विचारण के अतिरिक्त की गयी प्रत्येक जाँच एक जाँच है। संहिता की धारा 202 के अन्तर्गत जाँच की कोई विशिष्ट रीति या पद्धति प्रस्तुत नहीं की गई है । संहिता की धारा 202 के अन्तर्गत जाँच में साक्षियों का परीक्षण किया जाता है, जबकि संहिता की धारा 200 के अन्तर्गत, मात्र परिवादी का परीक्षण आवश्यक है एवं उपस्थित साक्षियों का परीक्षण भी होता है, यदि कोई हो । मजिस्ट्रेट द्वारा यह निर्णय लेने के उद्देश्य से की गयी कार्यवाही कि आरोपी के विरुद्ध अग्रिम कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है या नहीं, संहिता की धारा 202 में उपबंधित जाँच के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है ।"

9. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रार्थना का सशक्त विरोध किया एवं कथन किया कि समन आदेश पारित करना विचारण न्यायालय की विवेकाधीन शक्ति है, अतः न्यायिक विवेक का प्रयोग करने के उपरान्त मजिस्ट्रेट द्वारा आक्षेपित समन आदेश पारित किया गया है।

10. मैंने आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान

अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना एवं अभिलेखो का अवलोकन किया।11.

सम्मन आदेश दिनांक 18.2.2021 के साथ-साथ विपक्षी संख्या 2 एवं द.प्र.सं. की धारा 200 एवं 202 के अन्तर्गत अभिलिखित अन्य साक्षियों के बयानों के अवलोकन से, यह स्पष्ट होता है कि आदेशिका जारी करने के पूर्व मजिस्ट्रेट द्वारा कोई पूछताछ नहीं की गई है एवं यहाँ तक कि मजिस्ट्रेट ने पुलिस अधिकारी को मामले की जाँच के लिए निर्देशित भी नहीं किया । मजिस्ट्रेट द्वारा आक्षेपित सम्मन आदेश पारित करते समय, उन्होंने अपने न्यायिक विवेक का उपयोग नहीं किया एवं सम्मन आदेश में मजिस्ट्रेट ने संकेत दिया कि घटना के कारण परिवादी की पत्नी को चोट लगी थी, किन्तु अभियोजन का वाद यह नहीं है । इस प्रकार, इस आधार पर मजिस्ट्रेट द्वारा पारित समन आदेश विधिक दृष्टि से हीन है।

12. इस तथ्य पर भी बल दिया गया कि चूँकि धारा 200 के अन्तर्गत कार्यवाही धारा 202 (1) के अन्तर्गत एक जाँच कार्यवाही के समान है, एवं इसलिए यदि किसी मजिस्ट्रेट ने द.प्र.सं. की धारा 200 एवं 202 के अन्तर्गत जाँच के दौरान कार्यवाही की है या जाँच की है, तो जाँच अथवा अन्वेषण हेतु पृथक कार्यवाही अपेक्षित नही है । वर्तमान वाद में मजिस्ट्रेट ने न तो धारा 200 एवं 202 द.प्र.सं. के अन्तर्गत कार्यवाही में क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के मुद्दे के संबंध में जाँच करने का प्रयास किया, न ही कोई पृथक जाँच की है एवं न ही किसी अन्वेषण हेतु निर्देशित किया है ।

13. इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि यह एक स्थापित विधि है कि यदि कोई बात किसी विधि में विहित रीति से की जानी है, तो उसे उसी रीति से संपादित किया जाना चाहिए, किसी अन्यथा रीति से नहीं। वर्तमान मामले में, प्रथम दृष्टया, यह एक ऐसा मामला है जहां द.प्र.सं. की धारा 202 (1) के प्रावधान का स्पष्ट रूप से उल्लंघन किया गया है एवं इस प्रकार, आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं है ।

14. परिणामस्वरूप, वर्तमान आवेदन को स्वीकार किया जाता है एवं शिकायती वाद संख्या 1571/2019 में पारित आक्षेपित समन आदेश दिनांक 18.2.2021 के साथ-साथ दिनांक 19.9.2022 के पुनरीक्षण आदेश को रद्द किया जाता है।

15. विद्वान मजिस्ट्रेट को उपरिवर्णित टिप्पणियों के आलोक में इस आदेश को उनके समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तिथि से दो माह की अवधि में एक नया समन आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 2 ILRA 735

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 19.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 क्रमांक 1319 / 2023

श्याम बाबू शर्मा

...आवेदक

बनाम

अनुवादित

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: सुश्री ममता सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री अमित डागा

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 437 और 439 - आपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482 सीआरपीसी संख्या 18472/2022 का निस्तारण इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा आवेदक के विद्वान वकील के अनुरोध पर किया गया था कि वह उक्त आदेश की तारीख से तीन सप्ताह के भीतर विचारणीय न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करेगा और एक उचित आवेदन दाखिल करेगा जिसका निर्णय सतेंद्र कुमार अंतिल के मामले में पारित निर्णय के संदर्भ में किया जाएगा और तीन सप्ताह की अवधि के लिए गैर-जमानती वारंट स्थगित रखने का निर्देश दिया गया। इसके बाद आरोपी आवेदक ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से जमानत के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसे ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 07.12.2022 के आदेश के तहत इस आधार पर निस्तारण दिया कि आरोपी ने आत्मसमर्पण के लिए कोई आवेदन दायर नहीं किया है और व्यक्तिगत/शारीरिक रूप से अदालत में उपस्थित नहीं है- जब तक आरोपी हिरासत में न हो तब तक जमानत आवेदन योजित नहीं होगी - अधिवक्ता के माध्यम से जमानत आवेदन दाखिल करना न्यायालय में आवेदक की पर्याप्त व्यक्तिगत उपस्थिति नहीं है और यदि वह शारीरिक रूप से / व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं है तो न्यायालय उस पर सुनवाई और निर्णय लेने के लिए आगे नहीं बढ़ सकती है। सीआरपीसी की धारा 438 के तहत दायर अग्रिम जमानत के मामले में स्थिति अलग है जैसा कि गिरफ्तारी की आशंका पर भी निहित है।

नियत कानून है कि जब तक आरोपी हिरासत में नहीं है तब तक जमानत आवेदन सुनवाई योग्य नहीं होगी और जमानत की कोई भी आवेदन अधिवक्ता के माध्यम से नहीं दी जाएगी क्योंकि यह अदालत के समक्ष आरोपी की व्यक्तिगत उपस्थिति नहीं मानी जाएगी। (पैरा 23)

आपराधिक आवेदन निरस्त। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-</u>

1. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई और अन्य, (2021)10 एससीसी 773 (उद्धृत)
2. अमन प्रीत सिंह बनाम सी.बी.आई. द्वारा निदेशक एआईआर 2021 एससी 4154 (उद्धृत)
3. निरंजन सिंह बनाम प्रभाकर राजाराम खरोट, (1980) 2 एससीसी 559
4. सुनीता देवी बनाम बिहार राज्य (2005) 1 एससीसी 608

(माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल, द्वारा प्रदत्त)

1. सूची पुनरीक्षित।

2. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता सुश्री ममता सिंह, श्री अमित डागा, विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की

अनुवादित

ओर से विद्वान एजीए श्री बी.बी. उपाध्याय को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

3. श्री अमित डागा, अधिवक्ता का नाम कॉज-लिस्ट में विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता के रूप में मुद्रित किया गया है। उनका वकालतनामा रिकॉर्ड पर नहीं है जिसे उन्होंने 16.01.2023 को कार्यालय में दायर किया है।कार्यालय को इसका पता लगाने और इसे रिकॉर्ड पर रखने और इसके बारे में आदेश पत्र में एक नोट बनाने का निर्देश दिया जाता है।

4. शुरुआत में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि असावधानी के कारण, एक आदेश दिनांक 19.11.2022 जिसे हलफनामे के अनुलग्नक 8 के रूप में दायर किया जाना था, गलत तरीके से दायर किया गया है क्योंकि वही आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 482 संख्या 18472/2022 (श्याम बाबू शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित उक्त तिथि का आदेश होना चाहिए था। ।

5. विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अमित डागा ने न्यायालय के समक्ष तीन आदेश प्रस्तुत किए हैं जो आदेश पर लिए गए हैं और हैं:

(i) दं0प्र0सं0 संख्या 482 के तहत आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र संख्या 11061/2022 (श्याम बाबू शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 19.11.2022,

(ii) दं0प्र0सं0 संख्या 438 के तहत आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 1425/2022 (श्याम बाबू शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 25.02.2022; तथा

(iii) दं0प्र0सं0 संख्या 482 के तहत आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र संख्या 18472/2022 (श्याम बाबू शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 19.11.2022.

6. दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत वर्तमान प्रार्थना पत्र निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ दायर किया गया है:

"इसलिए, यह अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय इस आवेदन को अनुमति देने और अतिरिक्त सिविल जज (सीनियर डिवीजन)/अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 2, मथुरा की विद्वान न्यायालय द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 229/2019 (राज्य बनाम रामेश्वर) अन्तर्गत धारा 406 भा0दं0सं0, थाना गोवर्धन, जिला मथुरा में पारित 07.12.2022 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने की कृपा करे।

अतिरिक्त सिविल जज (सीनियर डिवीजन)/अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 2, मथुरा की विद्वान न्यायालय द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 229/2019 (राज्य बनाम रामेश्वर) अन्तर्गत धारा 406 भा0दं0सं0, थाना गोवर्धन, जिला मथुरा में पारित 07.12.2022 के आक्षेपित आदेश के वर्तमान प्रार्थना पत्र के प्रभाव और संचालन पर रोक लगा सकते हैं।

अनुवादित

7. वर्तमान प्रकरण में विवाद, जो वर्तमान प्रकरण में उत्पन्न हुआ है और जिसका निर्णय किया जाना है, एक संकीर्ण कम्पास में है और इसे स्पष्ट किया जाना है कि क्या अधिवक्ता के माध्यम से जमानत प्रार्थना पत्र दायर करना आवेदक की न्यायालय में पर्याप्त व्यक्तिगत उपस्थिति है या नहीं और न्यायालय सुनवाई और निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ सकता है, भले ही वह उप-पैरा **(सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य के प्रकरण में निर्णय के पैरा 3 के खंड (2021) 10 एससीसी 773 हो।**

8. अभियोजन पक्ष का प्रकरण होने के कारण प्रकरण के तथ्यों को फैलाया नहीं गया है क्योंकि वर्तमान प्रकरण में इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है। केवल उन तथ्यों का संदर्भ दिया जा रहा है जो प्रार्थनाओं के लिए वर्तमान याचिका और ऊपर बताए गए विवाद्यक से संबंधित हैं।

9. आवेदक ने अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ प्रभाग)/अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट न्यायालय संख्या 2, मथुरा द्वारा दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत एक आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र संख्या 18472/2022 (श्याम बाबू शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 13.06.2022 को रद्द करने के लिए दायर किया। उक्त याचिका पर सुनवाई की गई और आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कुछ समय तक बहस करने के बाद, निर्देशों पर प्रस्तुत किया कि आवेदक विचारण न्यायालय के समक्ष पेश होने के लिए कुछ समय चाहता है और अनुरोध करता है कि उसके खिलाफ जारी गैर-जमानती वारंट को तीन सप्ताह की अवधि के लिए स्थगित रखा जाए। आवेदक द्वारा दिए गए वचन पर विचार करते हुए इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा उक्त याचिका का निस्तारण कर दिया गया था, जिसमें निर्देश दिया गया था कि उसके खिलाफ जारी गैर-जमानती वारंट को एक बार के उपाय के रूप में तीन सप्ताह की अवधि के लिए स्थगित रखा जाए और यह भी निर्देश दिया गया था कि इस बीच, आवेदक विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करेगा और उचित प्रार्थना पत्र दायर करेगा और विचारण न्यायालय को निर्देश दिया गया था कि वह **सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य, (2021) 10 एससीसी 773** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश की शर्तें यदि कोई अन्य कानूनी बाधा नहीं है। उक्त आदेश यहां नीचे दिया गया है: -

"1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री वी.पी. श्रीवास्तव, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री हृदयानारायण पांडेय के साथ, राज्य की ओर से विद्वान एजीए और विपक्षी संख्या 2 की ओर से श्री अमित डागा को सुना।

2. दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत वर्तमान प्रार्थना पत्र अतिरिक्त सिविल जज (सीनियर डिवीजन)/अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 2, मथुरा द्वारा अपराध संख्या 229/2019 अंतर्गत धारा 406, 420, 409 भा0दं0सं0,

अनुवादित

थाना गोवर्धन, जिला मथुरा से उत्पन्न आपराधिक मुकदमा संख्या 21925/2021 (196/21) में पारित आदेश दिनांकित 13.06.2022 को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।

3. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, कुछ समय के लिए बहस करने के बाद, निर्देश पर, प्रस्तुत करता है कि आवेदक विचारण न्यायालय के समक्ष पेश होने के लिए कुछ समय चाहता है और अनुरोध करता है कि उसके खिलाफ जारी गैर-जमानती वारंट को आज से तीन सप्ताह की अवधि के लिए स्थगित रखा जाए।

4. राज्य के लिए उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. और श्री अमित डागा, विपक्षी संख्या 2, पूर्वोक्त प्रार्थना के विरुद्ध कोई आपत्ति न करें।

5. तदनुसार इस प्रार्थना पत्र में की गई प्रार्थनाओं को अस्वीकार किया जाता है। हालांकि, आवेदक द्वारा दिए गए वचन पर विचार करते हुए, उसके खिलाफ जारी गैर-जमानती वारंट को एक बार के उपाय के रूप में आज से तीन सप्ताह की अवधि के लिए स्थगित रखा जाता है। इस बीच, आवेदक विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करेगा और उचित प्रार्थना पत्र दायर करेगा और विचारण न्यायालय को सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य, (2021) 10 एससीसी 773 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित फैसले के संदर्भ में फैसला करने का निर्देश दिया जाता है, यदि कोई अन्य कानूनी बाधा नहीं है। चूक की स्थिति में, विचारण न्यायालय कानून के अनुसार गैर-जमानती वारंट निष्पादित करने के लिए स्वतंत्र है।

6. पूर्वोक्त निर्देशों के साथ, इस प्रार्थना पत्र का निस्तारण किया जाता है।"

10. दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत एक और आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र।11061/2022 (श्याम बाबू शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर किया गया था जिसे आरोप-पत्र के खिलाफ बताया गया था जिसे दिनांक 19.11.2022 के आदेश द्वारा दबाया नहीं गया मानकर खारिज कर दिया गया था।

11. एक अग्रिम जमानत आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र के तहत धारा 438 दं0प्र0सं0 संख्या 1425/2022 (श्याम बाबू शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) इस न्यायालय के समक्ष दायर किया गया था जिसे इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित दिनांक 25.02.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

12. इसके बाद, आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र में पारित आदेश दिनांक 19.11.2022 के अनुपालन में दं0प्र0सं0 संख्या 482 के तहत आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र संख्या 18472/2022 में आवेदक ने विचारण न्यायालय के समक्ष जमानत याचिका दायर की (हालांकि इसकी प्रति वर्तमान याचिका के साथ संलग्न नहीं की गई है) लेकिन अतिरिक्त सिविल जज (सीनियर डिवीजन/मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट न्यायालय संख्या 2, मथुरा) द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.12.2022 के तहत इसका निस्तारण किया गया। इस टिप्पणी के साथ कि अभियुक्त श्याम बाबू शर्मा ने अपने

अनुवादित

अधिवक्ता के माध्यम से जमानत याचिका दायर की है, उसने आत्मसमर्पण के लिए कोई प्रार्थना पत्र दायर नहीं किया है और न ही वह व्यक्तिगत रूप से न्यायालय में उपस्थित है। सतेन्द्र कुमार अंतिल बनाम केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के निदेशों के अनुसार, उसे अपनी जमानत याचिका की सुनवाई के समय न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने का निदेश दिया जाता है और इस प्रकार उक्त जमानत प्रार्थना पत्र का निपटान कर दिया गया था।

इस प्रकार दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत वर्तमान याचिका उक्त आदेश दिनांक 07.12.2022 के खिलाफ दायर की गई है, जिसे यहां आक्षेपित किया गया है।

13. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 07.12.2022 का आदेश अवैध और मनमाना है क्योंकि आवेदक की उपस्थिति उक्त न्यायालय के समक्ष उसके अधिवक्ता के माध्यम से थी जो पेश हुआ था और उसने अपनी जमानत याचिका दायर की थी। यह तर्क दिया जाता है कि 482 दं0प्र0सं0 याचिका में पारित इस न्यायालय के दिनांक 19.11.2022 के आदेश का अनुपालन अधिवक्ता के माध्यम से जमानत याचिका दायर करने के रूप में किया गया था और इस तरह, उक्त न्यायालय के समक्ष आवेदक की उपस्थिति के लिए पर्याप्त था। विद्वान अधिवक्ता ने **सतेन्द्र कुमार अंतिल बनाम केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो और अन्य: (2021) 10 एससीसी 773** और उसी के पैराग्राफ 3 को रखते हुए तर्क दिया कि अपराधों की श्रेणियों/प्रकार के बीच वर्तमान प्रकरण का अपराध श्रेणी ए में आता है जो सात साल या उससे कम के कारावास के साथ दंडनीय अपराध है और श्रेणी बी और डी के तहत नहीं आता है। इसके अलावा, उक्त पैराग्राफ में श्रेणी ए रखते समय विद्वान अधिवक्ता ने उसी के उप-पैरा (ई) को रखा है जो निम्नानुसार पढ़ता है: -

> **"(ई) ऐसे अभियुक्त की जमानत अर्जियों पर उपस्थित होने पर अभियुक्त को शारीरिक हिरासत में लिए बिना या जमानत प्रार्थना पत्र पर निर्णय होने तक अंतरिम जमानत देकर निर्णय लिया जा सकता है।**

यह तर्क दिया जाता है कि तय किए जाने वाले जमानत आवेदनों के निर्देशों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि इसमें यह उल्लेख किया गया है कि ऐसे अभियुक्त के जमानत आवेदनों पर सुनवाई के बाद आरोपी को शारीरिक हिरासत में लिए बिना फैसला किया जा सकता है और वर्तमान प्रकरण में अभियुक्त विचारण न्यायालय के समक्ष पेश हुआ था जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट है कि उसका प्रतिनिधित्व उसके अधिवक्ता के माध्यम से किया गया था और इस तरह उसकी व्यक्तिगत/शारीरिक उपस्थिति नहीं थी आवश्यक। उसी में आगे पढ़ते हुए यह तर्क दिया गया है कि यहां तक कि सर्वोच्च न्यायालय ने भी माना है कि इस तरह के जमानत प्रार्थना पत्र पर आरोपी को शारीरिक हिरासत में लिए बिना फैसला किया जा सकता है, जिसका मतलब यह

अनुवादित

होगा कि आत्मसमर्पण की आवश्यकता नहीं है।

14. विद्वान अधिवक्ता ने **अमन प्रीत सिंह बनाम सीबीआई जरिए निदेशक: एआईआर 2021 एससी 4154** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को न्यायालय के समक्ष रखा है और उसी के पैराग्राफ 11 को रखते हुए तर्क दिया है कि यह उचित है कि आरोपी को जमानत पर रिहा किया जाए और जांच के दौरान उसे गिरफ्तार नहीं किया गया या नहीं, हिरासत में पेश किया गया था उसे जमानत पर रिहा करने के लिए खुद ही काफी है। इसे रखते हुए आगे यह तर्क दिया गया है कि उक्त निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि किसी व्यक्ति को जांच के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया है, तो अचानक उसकी गिरफ्तारी का निर्देश देना और केवल इसलिए कैद में रखा जाना क्योंकि आरोप-पत्र दायर किया गया है, जमानत देने के लिए शासी सिद्धांत के विपरीत होगा और वर्तमान प्रकरण में स्थिति समान है क्योंकि आवेदक ने जमानत प्रार्थना पत्र दायर किया है और उसका प्रतिनिधित्व न्यायालय के समक्ष अधिवक्ता की आवश्यकता नहीं है और इस तरह, शारीरिक रूप से उसकी उपस्थिति की आवश्यकता नहीं है और इसके अलावा चूंकि उसे जांच के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था और उसने जांच में सहयोग किया था, इसलिए सर्वोच्च न्यायालय के उक्त निर्देश आवेदक की मदद करेंगे। यह तर्क दिया जाता है कि वर्तमान अपराध सात साल से कम के साथ दंडनीय है। जमानत याचिका की सुनवाई के समय आवेदक की उपस्थिति की आवश्यकता नहीं है। विचारण न्यायालय को जमानत याचिका पर फैसला करना चाहिए था जो आवेदक के अधिवक्ता के माध्यम से उसके समक्ष उसकी शारीरिक / व्यक्तिगत उपस्थिति के लिए दबाव डाले बिना दायर किया गया है। इसलिए, आक्षेपित आदेश कानून की नजर में खराब है और इस तरह, इसे रद्द कर दिया जाना चाहिए और न्यायालय में आवेदक की व्यक्तिगत और भौतिक उपस्थिति के बिना जमानत याचिका पर फैसला करने के लिए विचारण न्यायालय को उचित निर्देश जारी किए जाने चाहिए।

15. इसके विपरीत, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने याचिका में की गई प्रार्थना और आवेदक के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों का भी विरोध किया और प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में कोई त्रुटि नहीं की है। इसने आक्षेपित आदेश पारित करते समय अपने अधिकार क्षेत्र और स्थापित कानून का अतिक्रमण नहीं किया है। यह तर्क दिया जाता है कि एक अभियुक्त की जमानत को विचारण न्यायालय के समक्ष उसकी उपस्थिति में आवश्यक रूप से सुना जाना चाहिए। निचली न्यायालय द्वारा किसी अभियुक्त की जमानत पर फैसला करने के लिए जमानत याचिका की सुनवाई के समय अभियुक्त की व्यक्तिगत/शारीरिक उपस्थिति एक जरूरी और पूर्व शर्त है। यह तर्क दिया जाता है कि यहां तक कि सतेंद्र कुमार अंतिल (पूर्वोक्त) के प्रकरण में भी श्रेणी ए में पैराग्राफ 3 में उप-पैरा (ई) में यह निर्दिष्ट

अनुवादित

किया गया है कि उपस्थिति पर ऐसे अभियुक्त की जमानत याचिका का फैसला किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है, लेकिन केवल एक तर्कसंगत निष्कर्ष है कि अभियुक्त की भौतिक उपस्थिति की आवश्यकता है, वही उसके अधिवक्ता के माध्यम से नहीं हो सकता है। एकमात्र राइडर यह है कि उसे शारीरिक हिरासत में लिए बिना ही तय किया जा सकता है लेकिन उस समय आरोपी की उपस्थिति आवश्यक है और यह जरूरी है। यह तर्क दिया जाता है कि आगे इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र में पारित आदेश दिनांक 19.11.2022 में दं0प्र0सं0 संख्या 482 के तहत आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र संख्या 18472/2022 में आगे कहा गया है। आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता का वचन इस आशय का था कि वह विचारण न्यायालय के समक्ष पेश होने के लिए कुछ समय चाहता है और इस तरह उक्त उपक्रम पर प्रकरण का निस्तारण किया गया था जिसे उसी के पैराग्राफ 5 में भी देखा गया है। यह तर्क दिया जाता है कि उक्त पैराग्राफ में भी, एक विशिष्ट निर्देश है कि आवेदक विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करेगा, जिसका अर्थ होगा कि वह विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत और शारीरिक रूप से पेश होगा। आगे यह तर्क दिया गया है कि आवेदक विचारण न्यायालय के समक्ष पेश होने से बच रहा है जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि यह धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत उसके द्वारा दायर किया जा रहा तीसरा प्रार्थना पत्र है। इस बीच, यहां तक कि उनकी अग्रिम जमानत याचिका भी इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई जो आरोप पत्र दाखिल करने के बाद दायर की गई थी। यह तर्क दिया जाता है कि प्रकरण के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, वर्तमान प्रार्थना पत्र किसी भी योग्यता से रहित है और खारिज करने योग्य है।

16. राज्य के लिए विद्वान एजीए ने भी विपक्षी संख्या 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता के तर्कों को अपनाया है।

17. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, मुद्दों पर रिकॉर्ड और कानून का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट है कि आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र दं0प्र0सं0 संख्या 482 के तहत 18472/2022 (श्याम बाबू शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) का निस्तारण इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के अनुरोध पर दिनांक 19.11.2022 के आदेश द्वारा किया गया था, जिसमें उसने अपने वचन पर कहा था कि वह उक्त आदेश की तारीख से तीन सप्ताह के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करेगा और एक उपयुक्त प्रार्थना पत्र दायर करेगा जिसका निर्णय निम्नलिखित के प्रकरण में पारित निर्णय के संदर्भ में किया जाएगा। सतेंद्र कुमार अंतिल और उनके खिलाफ जारी गैर-जमानती वारंट को तीन सप्ताह की अवधि के लिए स्थगित रखने का निर्देश दिया गया था। आरोपी - आवेदक ने तब अपने अधिवक्ता के माध्यम से जमानत के लिए एक प्रार्थना पत्र दायर किया जिसे विचारण

अनुवादित

न्यायालय ने दिनांक 07.12.2022 के आदेश के तहत इस आधार पर निपटा दिया कि आरोपी ने आत्मसमर्पण के लिए कोई प्रार्थना पत्र दायर नहीं किया है और वह व्यक्तिगत/शारीरिक रूप से न्यायालय में उपस्थित नहीं है।

18. दं0प्र0सं0 की धारा 437 उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय के अलावा अन्य न्यायालयों द्वारा जमानत देने से संबंधित है, जबकि दं0प्र0सं0 की धारा 439 उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय पर लागू होती है।

19. वह व्यक्ति जो किसी गैर-जमानती अपराध का अभियुक्त है, जब उसे बिना वारंट के गिरफ्तार या हिरासत में लिया जाता है या न्यायालय के समक्ष लाया जाता है, उसे दं0प्र0सं0 की धारा 437 के अनुसार जमानत पर रिहा किया जा सकता है ।

20. वर्तमान प्रकरण में शामिल विवाद्यक अब पुन: एकीकृत नहीं है।

21. निरंजन सिंह बनाम प्रभाकर राजाराम खरोट: (1980) 2 एससीसी 559 के प्रकरण में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जमानत प्रार्थना पत्र तब तक झूठ नहीं होगा जब तक कि अभियुक्त हिरासत में न हो। यह निम्नानुसार आयोजित किया गया है:

"6. यहां उत्तरदाताओं पर अपराधों का आरोप लगाया गया था, लेकिन वे हिरासत में नहीं थे, याचिकाकर्ता का तर्क है कि जमानत नहीं है, क्योंकि जेल में रहने की यह बुनियादी शर्त पूरी नहीं हुई है। इस सबमिशन को नीचे की न्यायालयों ने सही तरीके से खारिज कर दिया है। हम इस बात से सहमत हैं कि, एक दृष्टिकोण में, एक डाकू कानून के लाभ की मांग नहीं कर सकता है और जो न्याय से भागता है वह न्याय का दावा नहीं कर सकता है। लेकिन यहां स्थिति अलग है। आरोपी फरार नहीं थे, लेकिन सत्र न्यायाधीश के समक्ष पेश हुए और आत्मसमर्पण कर दिया। न्यायिक क्षेत्राधिकार केवल तभी उत्पन्न होता है जब व्यक्ति पहले से ही हिरासत में होते हैं और न्यायालय की प्रक्रिया को बढ़ाना चाहते हैं। हम इस बात से सहमत हैं कि अपराध का आरोपी कोई भी व्यक्ति दं0प्र0सं0 की धारा 439 के तहत जमानत के लिए न्यायालय नहीं जा सकता है जब तक कि वह हिरासत में न हो।

7. दं0प्र0सं0 की धारा 439 के अर्थ के भीतर कोई व्यक्ति कब हिरासत में है ? जब वह दबाव में होता है या तो इसलिए कि वह जांच एजेंसी या अन्य पुलिस या संबद्ध प्राधिकारी द्वारा आयोजित किया जाता है या न्यायालय के नियंत्रण में होता है, जिसे न्यायिक आदेश द्वारा रिमांड पर लिया जाता है, या न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में खुद को पेश किया जाता है और भौतिक उपस्थिति से अपने आदेशों को प्रस्तुत किया जाता है। यथार्थवादी निष्कर्ष पर आने के लिए किसी शाब्दिक निपुणता और न ही पूर्ववर्ती प्रचुरता की आवश्यकता है कि वह जो न्यायालय के नियंत्रण में है या जबरदस्ती शक्ति वाले अधिकारी की भौतिक पकड़ में है, वह धारा 439 के उद्देश्य से हिरासत में है। यह शब्द लोचदार शब्दार्थ का है लेकिन इसका मूल अर्थ यह है कि कानून ने व्यक्ति पर नियंत्रण कर लिया है। कभी-कभी न्यायालय में सुनी

अनुवादित

जाने वाली गोलमोल बातें और लुका-छिपी की बातें कभी-कभी न्यायालय में सुनी जाती हैं कि पुलिस ने एक व्यक्ति को अनौपचारिक हिरासत में ले लिया है, लेकिन उसे गिरफ्तार नहीं किया है, उसे पूछताछ के लिए हिरासत में लिया है, लेकिन उसे औपचारिक हिरासत में नहीं लिया है और अन्य शब्दावली संबंधी डबिटी कानून की सीधेपन की अनुचित चोरी है। हमें यहां इस संदेहपूर्ण पहलू पर विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हम संतुष्ट हैं कि अभियुक्त ने सत्र न्यायाधीश के समक्ष शारीरिक रूप से प्रस्तुत किया और इस प्रकार जमानत देने का अधिकार क्षेत्र उत्पन्न हुआ।

8. हिरासत, धारा 439 के संदर्भ में, (हम नहीं हैं, यह ध्यान दिया गया है, धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत से निपटने) शारीरिक नियंत्रण या कम से कम न्यायालय में अभियुक्त की शारीरिक उपस्थिति है जो न्यायालय के अधिकार क्षेत्र और आदेशों को प्रस्तुत करने के साथ युग्मित है।"

22. इसके अलावा **सुनीता देवी बनाम बिहार राज्य: (2005) 1 एससीसी 608** के प्रकरण में यह फिर से अभिनिर्धारित किया गया है कि जमानत प्रार्थना पत्र तब तक झूठ नहीं होगा जब तक कि अभियुक्त हिरासत में न हो। यह निम्नानुसार आयोजित किया गया है:

"14. महत्वपूर्ण सवाल यह है कि संहिता की धारा 439 के अर्थ के भीतर कोई व्यक्ति कब हिरासत में है ? जब वह दबाव में होता है या तो इसलिए कि वह जांच एजेंसी या अन्य पुलिस या संबद्ध प्राधिकारी द्वारा आयोजित किया जाता है या न्यायालय के नियंत्रण में होता है, जिसे न्यायिक आदेश द्वारा रिमांड पर लिया जाता है, या न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में खुद को पेश किया जाता है और भौतिक उपस्थिति से अपने आदेशों को प्रस्तुत किया जाता है। यथार्थवादी निष्कर्ष पर आने के लिए किसी शाब्दिक निपुणता और न ही पूर्ववर्ती प्रचुरता की आवश्यकता है कि वह जो न्यायालय के नियंत्रण में है या जबरदस्ती शक्ति वाले अधिकारी की भौतिक पकड़ में है, वह धारा 439 के उद्देश्य से हिरासत में है। यह शब्द लोचदार शब्दार्थ का है लेकिन इसका मूल अर्थ यह है कि कानून ने व्यक्ति पर नियंत्रण कर लिया है। कभी-कभी न्यायालय में सुनी जाने वाली गोलमोल बातें और लुका-छिपी की बातें कभी-कभी न्यायालय में सुनी जाती हैं कि पुलिस ने एक व्यक्ति को अनौपचारिक हिरासत में ले लिया है, लेकिन उसे गिरफ्तार नहीं किया है, उसे पूछताछ के लिए हिरासत में लिया है, लेकिन उसे औपचारिक हिरासत में नहीं लिया है और अन्य शब्दावली संबंधी डबिटी कानून की सीधेपन की अनुचित चोरी है।

15. चूंकि धारा 439 सहित संहिता के विभिन्न प्रावधानों में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "हिरासत" को संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है, इसलिए इसे उस सेटिंग में समझा जाना चाहिए जिसमें इसका उपयोग किया जाता है और धारा 437 में निहित प्रावधान जो मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र से संबंधित हैं कुछ परिस्थितियों में जमानत

अनुवादित

पर एक अभियुक्त को रिहा करने के लिए जिसे एक सामान्य अर्थ में "हिरासत में" के रूप में वर्णित किया जा सकता है। धारा 439 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "हिरासत" को उन घटनाओं का उल्लेख करते हुए एक व्यापक अभिव्यक्ति के रूप में लिया जाना चाहिए जिनके घटित होने पर मजिस्ट्रेट किसी अभियुक्त की जमानत याचिका पर विचार कर सकता है। धारा 437 में अन्य बातों के साथ-साथ यह परिकल्पना की गई है कि यदि ऐसा अभियुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होता है तो मजिस्ट्रेट किसी अभियुक्त को जमानत पर रिहा कर सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि मजिस्ट्रेट के समक्ष इस तरह की उपस्थिति शारीरिक उपस्थिति और मजिस्ट्रेट की न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में परिणामी आत्मसमर्पण होनी चाहिए।

16. हेनरी कैंपबेल ब्लैक, एमए (6 वें संस्करण) द्वारा ब्लैक के लॉ डिक्शनरी में, अभिव्यक्ति "हिरासत" को निम्नलिखित तरीके से समझाया गया है:

"शब्द बहुत लोचदार है और इसका अर्थ वास्तविक कारावास या शारीरिक निरोध हो सकता है ...। क़ानून के भीतर, यह आवश्यक है कि याचिकाकर्ता संघीय बंदी प्रत्यक्षीकरण राहत के हकदार होने के लिए 'हिरासत में' हो, इसका मतलब जेल या जेल में वास्तविक शारीरिक हिरासत नहीं है, बल्कि स्वतंत्रता के संयम का पर्याय है। ... तदनुसार, बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए परिवीक्षा या पैरोल पर या जमानत पर रिहा या स्वयं की मान्यता पर रिहा किए गए व्यक्तियों को हिरासत में अभिनिर्धारित किया गया है।

23. उपरोक्त प्राधिकरणों से यह स्पष्ट है कि जमानत के लिए प्रार्थना पत्र बनाए रखने के लिए अभियुक्त को हिरासत में होना चाहिए। अधिवक्ता के माध्यम से जमानत प्रार्थना पत्र दायर करना न्यायालय में आवेदक की व्यक्तिगत उपस्थिति के लिए पर्याप्त नहीं है और यदि वह शारीरिक रूप से / व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं है तो न्यायालय सुनवाई और निर्णय लेने के लिए आगे नहीं बढ़ सकती है।

दं0प्र0सं0 की धारा 438 के तहत दायर अग्रिम जमानत के प्रकरण में स्थिति अलग है क्योंकि गिरफ्तारी की आशंका पर भी यही है।

24. इस प्रकार उपरोक्त चर्चा से और इस विवाद्यक पर कानून के मद्देनजर, हस्तक्षेप का कोई प्रकरण नहीं बनता है। दिनांक 07.12.2022 का आक्षेपित आदेश एक न्यायसंगत, उचित और कानूनी आदेश है जिसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करने का आह्वान किया गया है। दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत वर्तमान प्रार्थना पत्र किसी भी गुण-दोष से रहित है और इस प्रकार इसे खारिज किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 742

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 13.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर),

अनुवादित

आवेदन अंतर्गत धारा 482 क्रमांक 21765 / 2022

सुनील एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री शेषाद्रि त्रिवेदी

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री घनश्याम दास मिश्रा

आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 173(8)- अग्रिम जांच- किसी अपराध के संबंध में जहां उपधारा (2) के तहत पुलिस रिपोर्ट दर्ज की गई है, पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी अग्रिम जांच कर सकता है और जब स्पष्ट प्रावधान है कि पुलिस अधिकारी अग्रिम जांच कर सकता है, तो आवेदकों की ओर से विद्वान वकील का तर्क कि मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अग्रिम जांच नहीं कर सकती है, कानून के विरुद्ध है। जबकि सीआरपीसी की धारा 173(8) के तहत स्पष्ट प्रावधान है। पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को अग्रिम जांच से वंचित नहीं माना जाएगा, जहां वह अतिरिक्त साक्ष्य, मौखिक या दस्तावेजी प्राप्त करता है, वह मजिस्ट्रेट को निर्धारित प्रपत्र में ऐसे साक्ष्य के संबंध में आगे की रिपोर्ट या रिपोर्ट अग्रेषित करेगा। विचारणीय न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष पहले जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य और अंतिम और तीसरे जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए बयानों की चर्चा से पहले नहीं है।

चूंकि जांच एजेंसी को संहिता की धारा 173(8) के तहत अग्रिम जांच करने की शक्ति प्रदान की गई है, इसलिए कानून के तहत जांच अधिकारी को आगे की जांच करने से पहले मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति लेने की कोई आवश्यकता नहीं है।

आपराधिक कानून दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 173(8) - विचारणीय न्यायालय ने अभियुक्त को तामिल के आधार के संबंध में अपनी प्रथम दृष्टया संतुष्टि भी दर्ज नहीं की है। प्रथम जांच अधिकारी द्वारा दायर अंतिम रिपोर्ट का आदेश में उल्लेख तक नहीं किया गया है। इस प्रकार, लक्कोस जकारिया @ जैक नेदुमचिरा ल्यूक और अन्य (सुप्रा) के निष्कर्ष के अनुपालन में, संबंधित मजिस्ट्रेट ने यह निर्धारित करने के लिए अंतिम रिपोर्ट और आरोप पत्र दोनों को एक साथ नहीं पढ़ा है कि विश्वास करने के लिए प्रथम दृष्टया आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है-दोनों अंतिम रिपोर्ट और एक ही मामले में दायर आरोप पत्र को एक साथ पढ़ने की जरूरत है, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि आरोपी व्यक्तियों को बुलाने या न बुलाने के लिए प्रथम दृष्टया आधार मौजूद है या नहीं।

स्थापित कानून है कि जहां जांच एजेंसी-सीआरपीसी की धारा 173(2) के तहत एक पुलिस रिपोर्ट/चार्जशीट के साथ-साथ अग्रिम जांच करने के बाद एक अंतिम रिपोर्ट भी दाखिल करती है, तो मजिस्ट्रेट के लिए यह आवश्यक है कि वह आरोपी को तामिल से

अवधादिन

पूर्व दोनों रिपोर्टों पर एक साथ विचार करे। . (पैरा 15, 16, 18, 24, 25)

आपराधिक आवेदन स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-</u>

1. विनय त्यागी बनाम इरशाद अली @ दीपक, (2013) एआईआर एससीडब्ल्यू 220
2. लक्कोस जकारिया @ जैक नेदुमचिरा ल्यूक और अन्य बनाम जोसेफ जोसेफ और अन्य, अपराधिक अपील संख्या 256/2022 (एससी)
3. एड. - जांच एजेंसी को अग्रिम जांच करने से पूर्व मजिस्ट्रेट की पूर्व मंजूरी लेनी होगी, विनुभाई हरिभाई मालवीय बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 2019 एससी 5233, पैरा 49

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर), द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता, विपक्षी पक्ष क्र. **2** के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

धारा **482** सीआर.पी.सी. के तहत इस आवेदन के माध्यम से आवेदक वाद सं. **5136/2022,** उ. प्र. राज्य बनाम राम मोहन शर्मा और अन्य, में बरेली के विद्वत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित समन आदेश दिनांक **18.4.2022,** धारा **420, 467, 468, 471, 447, 386, 120-B** आई.पी.सी. के तहत वाद अपराध सं. **76/2021,** पुलिस थाना प्रेम नगर, जिला बरेली से जनित धारा **173 (2)** सीआर.पी.सी. के तहत आक्षेपित आरोप पत्र/ पुलिस रिपोर्ट दिनांक **10.10.2021** के साथ-साथ मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट बरेली के समक्ष लंबित वाद **5136/2022** की पूरी कार्यवाही को रद्द करने के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का आह्वान करना चाहता है।

समन आदेश दिनांक **18.4.2022** द्वारा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट बरेली ने उपरोक्त तीनों आवेदकों के साथ अन्य सह अभियुक्त व्यक्तियों को धारा **420, 467, 468, 471, 447, 386, 120-**बी आई.पी.सी. के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए तलब किया।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि **11.2.2021** को अभयचंद कणकण द्वारा **19** नामित आरोपियों के खिलाफ धारा **420, 467, 468, 471, 447, 386, 120-**बी आई.पी.सी. के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी। आवेदकों सहित सभी नामित अभियुक्तों पर भूमाफिया होने का आरोप लगाते हुए कहा कि वे लोग फर्जी विक्रय पत्र बनाकर कुंवर दया शंकर एडवर्ड मेमोरियल इंटरमीडिएट कॉलेज, बरेली की भूमि का गबन कर रहे हैं। वे कॉलेज स्टाफ को धमकियां भी दे रहे थे और फिरौती भी मांग रहे थे। जबकि दान पत्रों के आधार पर यह जमीन वर्ष **1920** में कॉलेज के नाम पर बरेली शहर के कुछ धनी व्यक्तियों द्वारा छात्रों के लिए छात्रावास बनाने के लिए कॉलेज को दान कर दी गई थी, जो आज तक राजस्व रिकार्ड में दर्ज है।

पूर्व में सब इंस्पेक्टर प्रदीप कुमार ने अंतिम रिपोर्ट संख्या **41/21** दिनांक **12.3.2021** द्वारा वर्तमान मामले में जांच

अनुवादित

बंद कर दी। इस अंतिम रिपोर्ट पर न्यायालय ने संज्ञान भी लिया। जब प्रथम सूचक को इस अंतिम रिपोर्ट के बारे में पता चला, तो अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक, (अपर डी.जी.पी.) बरेली जोन के समक्ष किसी अन्य थाने की पुलिस द्वारा आगे की जांच हेतु एक आवेदन किया। जिन्होंने सीआर.पी.सी. की धारा **173(8)** के तहत आगे की जांच क्राइम ब्रांच मुरादाबाद द्वारा किए जाने के आदेश दिए। आगे की जांच इंस्पेक्टर संजीव कुमार ने शुरू की। उन्होंने अदालत से आवश्यक दस्तावेज प्राप्त किए और पूरक केस डायरी के **8** कागजात जमा किए, लेकिन उनकी व्यक्तिगत परिवेदना के कारण, जांच क्षेत्राधिकारी अपराध शाखा, मुरादाबाद द्वारा महेश बाबू शर्मा, तत्कालीन उप निरीक्षक अपराध शाखा, मुरादाबाद को स्थानांतरित कर दी गई, जिन्होंने आवश्यक दस्तावेज प्राप्त करने के बाद, पूरी केस डायरी और अन्य दस्तावेजों का अध्ययन करते हुए, गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद दिनांक **10.10.2021** को उपरोक्त तीन आवेदकों सहित **16** आरोपियों के खिलाफ धारा **420, 467, 468, 471, 447, 386, 120-**बी आई.पी.सी. के तहत मुकदमा चलाने के लिए आरोप पत्र दायर किया।

आरोप पत्र प्राप्त होने के बाद, परीक्षण न्यायालय ने दिनांक **18.4.2022** को आक्षेपित समन आदेश पारित किया और वर्तमान आवेदकों और बाकी सह अभियुक्त व्यक्तियों को उपरोक्त धाराओं के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए तलब किया।

आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्ता की दलीलें तीन प्रकार की हैं; **(i)** कि विवाद पूरी तरह से दीवानी था, इसलिए आपराधिक धाराओं के तहत एफआईआर कायम करने योग्य नहीं थी, **(ii)** जब पहले जांच अधिकारी द्वारा अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, तब मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना, कोई आगे की जांच नहीं की जा सकती और **(iii)** जब संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष अंतिम रिपोर्ट और आरोप पत्र दोनों थे, तो वह विवादित संज्ञान आदेश/ समन आदेश पारित करने से पहले दोनों दस्तावेजों पर विचार करने के लिए बाध्य था।

यह दावा किया गया है कि संबंधित मजिस्ट्रेट ने न तो अंतिम रिपोर्ट पर विचार किया और अभिलेखों पर पिछले साक्ष्यों पर चर्चा की, न ही वर्तमान आवेदकों सहित आरोपी व्यक्तियों को बुलाने के लिए अपनी प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज की, न ही पूरक केस डायरी या बाद में क्षेत्राधिकारी द्वारा दायर आरोप पत्र पर चर्चा की। अत: समन आदेश, आरोप पत्र और उपरोक्त मामले की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना की जाती है।

विपक्षी पक्ष क्र. **2** के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दीवानी मामलों के अलावा आवेदकों, आरोपी व्यक्तियों पर कुछ आपराधिक मुकदमे भी हैं। वे कॉलेज/ स्कूल के अधिकारियों/ कर्मचारियों को धमकी दे रहे हैं और कॉलेज/ स्कूल की संपत्ति का दुरुपयोग करने और बेचने की कोशिश कर रहे हैं। वे उनसे फिरौती की मांग कर रहे हैं। उन्होंने कॉलेज/ स्कूल की संपत्ति के संबंध में फर्जी विक्रय

अनुवादित

विलेख भी निष्पादित किया है। अब वे विवादित संपत्ति पर जबरन कब्ज़ा करने की कोशिश कर रहे हैं, इसलिए, नागरिक दायित्व के अलावा आवेदक अपने द्वारा किए गए कृत्यों के लिए आपराधिक रूप से भी उत्तरदायी हैं।

विपरीत पक्ष के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि जहां तक आगे की जांच का सवाल है, सीआर.पी.सी. की धारा **176(8)** की प्रारम्भिक पंक्तियां स्वयं पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को आगे की जांच करने के लिए अधिकृत करतीं है।

विपक्ष के लिए विद्वान अधिवक्ता पार्टी ने यह भी तर्क दिया कि वर्तमान तीन आवेदकों के अलावा और पांच अन्य सह आरोपी व्यक्तियों ने भी सीआर.पी.सी. की धारा **482** के तहत इसी प्रार्थना के साथ एक आवेदन दायर किया था जिसे इस अदालत ने खारिज कर दिया है।

इस तर्क का उत्तर आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने दिया कि अस्वीकृति आदेश में कोई समानता नहीं है।

यदि हम एफ.आई.आर. का अध्ययन करें तो विपक्षी पक्ष क्र. **2** ने आवेदकों पर भूमाफिया होने का आरोप लगाया है, जिन्होंने विभिन्न व्यक्तियों की संपत्तियों का दुरुपयोग किया है और अब जाली विक्रय विलेख निष्पादित करके वे बरेली शहर के कुछ धनी व्यक्तियों द्वारा दान में दिए गए बच्चों के छात्रावास के लिए कॉलेज/ स्कूल की संपत्ति, जो अभी भी कॉलेज/ स्कूल के नाम पर है, को हड़पने की कोशिश कर रहे हैं। यह भी आरोप लगाया गया है कि विवादित संपत्ति के संबंध में राजस्व रिकॉर्ड में आवेदकों और सह आरोपी व्यक्तियों द्वारा हेरफेर किया गया है और जाली विक्रय विलेख के आधार पर वे स्कूल अधिकारियों को विवादित भूमि से बेदखल करने की धमकी दे रहे हैं। इस संबंध में वे फिरौती की मांग कर रहे हैं। स्वीकारित है कि पक्षों के बीच दीवानी मुकदमे लंबित हैं।

न्यायालय की राय में, उपरोक्त सभी कृत्य उन व्यक्तियों पर आपराधिक दायित्व थोपते हैं जिन्होंने ऐसा किया है। माना कि पहले जांच अधिकारी ने इस मामले में अंतिम रिपोर्ट दाखिल कर दी थी। विपक्षी पक्ष क्र. **2** ने यह आरोप लगाया है कि अंतिम रिपोर्ट इस आधार पर दायर की गई थी कि विवाद विशुद्ध रूप से दीवानी है। उक्त अंतिम रिपोर्ट न्यायालय के समक्ष नहीं है। अंतिम रिपोर्ट दाखिल करने का आधार जो भी हो, यह सर्वमान्य तथ्य है कि अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी और केवल विपक्षी पक्ष क्र. **2** स्कूल के अधिकारी के आवेदन पर धारा **173(8)** सीआर.पी.सी. के तहत अपर पुलिस महानिदेशक, (अपर डी.जी.पी.) बरेली जोन ने आगे की जांच के आदेश दिये।

जहां तक आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील का सवाल है कि मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना आगे कोई जांच नहीं की जा सकती, सीआर.पी.सी. की धारा **173 (8)** यहाँ उल्लेख करना उचित है;

अनुवादित

धारा 173 (8) सीआर.पी.सी.: - इस धारा की कोई बात उप-धारा (**2**) के अधीन किसी अपराध के संबंध में रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को भेजे जाने के पश्चात् आगे के अन्वेषण को बाधित करने वाली नहीं समझी जाएगी और जहां ऐसी जांच के बाद, पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी अतिरिक्त साक्ष्य, मौखिक या दस्तावेजी प्राप्त करता है, तो वह मजिस्ट्रेट को निर्धारित प्रपत्र में ऐसे साक्ष्य के संबंध में एक और रिपोर्ट या रिपोर्ट अग्रेषित करेगा; और उप-धारा (**2**) से (**6**) के प्रावधान, जहां तक संभव हो, ऐसी रिपोर्ट या रिपोर्ट के संबंध में वैसे ही लागू होंगे जैसे वे उप-धारा (**2**) के तहत अग्रेषित रिपोर्ट के संबंध में लागू होते हैं।" ऊपर धारा **173** सीआर.पी.सी. की उप धारा (**8**) में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि उस अपराध के संबंध में जहां उपधारा (**2**) के तहत पुलिस रिपोर्ट दायर की गई है, पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी आगे की जांच कर सकता है और जब यह स्पष्ट प्रावधान हो कि पुलिस अधिकारी आगे की जांच कर सकता है, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस आगे की जांच नहीं कर सकती, विधि विरुद्ध है।

अन्यथा, **विनय त्यागी बनाम इरशाद अली उर्फ दीपक, (2013) एआईआर एससीडब्ल्यू 220,** निर्णय में भी शीर्ष अदालत ने 'जांच', 'प्रारंभिक जांच', 'आगे की जांच' और 'पुनः जांच' शब्द को परिभाषित किया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह स्पष्ट किया गया था कि 'आगे की जांच' वह है जहां जांच अधिकारी सीआर.पी.सी. की धारा **173 (8)** के संदर्भ में अदालत के समक्ष अंतिम रिपोर्ट दायर किए जाने के बाद आगे मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्राप्त करता है। यह पिछली जांच की निरंतरता है और इसलिए, इसे 'आगे की जांच' के रूप में समझा और वर्णित किया गया है। ऐसी जांच के दायरे आगे के मौखिक और दस्तावेजी सबूतों की खोज तक ही सीमित है। इसका उद्देश्य सही तथ्यों को अदालत के सामने लाना है, भले ही वे प्राथमिक जांच के बाद के चरण में पाए गए हों। आगे की जांच से जांच एजेंसी द्वारा की गई प्रारंभिक जांच को सीधे या परोक्ष रूप से ख़त्म करने का प्रभाव नहीं पड़ता है। यह एक तरह से पिछली जांच की ही निरंतरता है'।

शीर्ष अदालत की यह भी राय है कि 'नयी जांच', 'पुनः जांच' या 'नए सिरे से जांच' के मामले में अदालत का एक निश्चित आदेश होना चाहिए। अदालत के आदेश में स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए कि क्या पिछली जांच, दर्ज किए जाने वाले कारणों से कार्रवाई करने में असमर्थ है। शीर्ष अदालत द्वारा यह माना गया कि 'नई जांच', 'पुनः जांच' या 'नए सिरे से जांच' का आदेश केवल उच्च न्यायपालिका द्वारा दिया जा सकता है और जिन मामलों में ऐसे निर्देश जारी किए जा सकते हैं, वे बहुत कम हैं। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि मजिस्ट्रेट के पास पुलिस रिपोर्ट दाखिल करने के बाद आगे की जांच का निर्देश देने की शक्ति है, लेकिन पुलिस की

अनुवादित

शक्ति को प्रतिबंधित नहीं कहा जा सकता है।

जबकि सीआर.पी.सी. की धारा **173 (8)** के तहत स्पष्ट प्रावधान है कि पुलिस थाना का प्रभारी अधिकारी आगे की जांच से वंचित नहीं समझा जाएगा, जहां वह मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्राप्त करता है, वह मजिस्ट्रेट को आगे की रिपोर्ट या निर्धारित प्रपत्र में ऐसे साक्ष्य के बारे में रिपोर्ट अग्रेषित करेगा। इस प्रकार इस प्रावधान के खिलाफ आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलें विफल हो गईं।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि दिनांक **10.10.2021** को आरोप पत्र दाखिल करने से पहले अदालत ने **25.3.2021** को अंतिम रिपोर्ट पर पहले ही संज्ञान ले लिया था। विपक्षी पक्ष क्र. **2** को नोटिस जारी करते हुए एक विविध वाद संख्या **82/2021** दर्ज किया गया था। आवेदकों के अधिवक्ता के इस संस्करण से पता चलता है कि अंतिम रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद केवल विपक्षी पक्ष क्र. **2** को नोटिस जारी किए गए थे और प्रथम सूचक को नोटिस जारी करने को अंतिम रिपोर्ट पर संज्ञान लेना नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार, आवेदकों के अधिवक्ता का तर्क विफल है कि अंतिम रिपोर्ट पर संज्ञान लेने के बाद आरोप पत्र दाखिल नहीं किया जा सकता।

जहाँ तक आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता के अंतिम तर्क का संबंध है कि संज्ञान लेने/ समन आदेश पारित करने के समय, संबंधित अदालत को अंतिम रिपोर्ट और आरोप पत्र दोनों पर विचार करना था, जो संबंधित अदालत द्वारा नहीं किया गया। आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए इस तर्क में सार है।

स्वीकारित है कि, वर्तमान मामले में अंतिम रिपोर्ट सब इंस्पेक्टर प्रदीप कुमार द्वारा **12.3.2021** को प्रस्तुत की गई थी और आगे की जांच के बाद अन्य जांच अधिकारी महेश बाबू शर्मा, अपराध शाखा, मुरादाबाद द्वारा **10.10.2021** को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। **विनय त्यागी बनाम इरशाद अली** (**सुप्रा**), निर्णय में शीर्ष न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया-

"आगे की जांच चाहे मजिस्ट्रेट द्वारा आदेशित हो या पुलिस द्वारा अपनी इच्छा से की गई हो, पूरक रिपोर्ट दाखिल करने का कारण बन सकती है। ऐसी पूरक रिपोर्ट को प्राथमिक रिपोर्ट के एक भाग के रूप में निपटाया जाएगा। इसके अलावा अनुच्छेद **32** में शीर्ष अदालत ने कहा कि "इन दोनों रिपोर्टों को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए और यह रिपोर्टों और उनके साथ संलग्न दस्तावेजों का संचयी प्रभाव है, जिससे अदालत से अपेक्षा की जाएगी कि वह यह निर्धारित करने के लिए अपने मस्तिष्क का प्रयोग करे कि क्या यह अनुमान लगाने के लिए कोई आधार मौजूद है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। यदि उत्तर नकारात्मक है, तो इन रिपोर्टों के आधार पर, अदालत संहिता की धारा **227** के प्रावधानों के अनुपालन में एक आरोपी को आरोपमुक्त करेगी।

अनुवादित

उसी दृष्टिकोण के बाद, शीर्ष न्यायालय ने **लक्कोस जकारिया @ जैक नेदुमचिरा ल्यूक और अन्य बनाम जोसेफ जोसेफ और अन्य** के निर्णय में **2022** की आपराधिक अपील संख्या **256** में दिनांक **18.2.2022** के फैसले में कहा कि "धारा **173** सीआर.पी.सी. की उप धारा (**2**) और (**8**) के तहत प्रस्तुत क्रमशः सकारात्मक और नकारात्मक रिपोर्ट यह निर्धारित करने के लिए एक साथ पढ़ा जाना चाहिए कि क्या यह मानने का प्रथम दृष्टया आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। रिपोर्टों का कोई अलग अस्तित्व नहीं है।"

वर्तमान मामले में पहले जांच अधिकारी प्रदीप कुमार ने **12.3.2021** को अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की, इस प्रकार प्रथम दृष्टया अपराध से जुड़ा कोई मामला स्थापित नहीं हुआ, लेकिन आगे की जांच के बाद जांच अधिकारी महेश बाबू शर्मा ने आदेश दिनांक **10.10.2021** के द्वारा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर आवेदकों एवं सह अभियुक्तों को प्रथम दृष्टया धारा **420, 467, 468, 471, 447, 386, 120-**बी आई.पी.सी. के तहत अपराध करने का दोषी पाते हुए आरोप पत्र दाखिल किया गया।

स्वीकारित है कि, पहले अंतिम रिपोर्ट पर मजिस्ट्रेट द्वारा नोटिस जारी किया गया था, इस प्रकार, आरोप पत्र दाखिल करने की तारीख तक अंतिम रिपोर्ट पर कोई संज्ञान नहीं लिया गया था। दिनांक **18.4.2022** के आक्षेपित आदेश द्वारा परीक्षण न्यायालय ने वर्तमान आवेदकों और अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों को धारा **420, 467, 468, 471, 447, 386, 120-**बी आई.पी.सी. के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए तलब कर उनके खिलाफ संज्ञान लिया।

यदि हम मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बरेली द्वारा पारित दिनांक **18.4.2022** के आक्षेपित आदेश को देखें, तो यह एक गूढ़ आदेश है। परीक्षण न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष प्रथम अन्वेषक अधिकारी द्वारा अभिलिखित साक्ष्य और अंतिम और तीसरे अन्वेषक अधिकारी द्वारा अभिलिखित बयानों के उल्लेख से पूर्व नहीं है। परीक्षण न्यायालय ने अभियुक्तों को तलब करने के आधार के संबंध में अपनी प्रथम दृष्टया संतुष्टि भी दर्ज नहीं की है। प्रथम जांच अधिकारी द्वारा दायर अंतिम रिपोर्ट का आदेश में उल्लेख तक नहीं किया गया है। इस प्रकार, **लक्कोस जकारिया @ जैक नेदुमचिरा ल्यूक और अन्य (सुप्रा)** में फैसले के निष्कर्ष के अनुपालन में, संबंधित मजिस्ट्रेट ने यह निर्धारित करने के लिए अंतिम रिपोर्ट और आरोप पत्र दोनों को संयुक्त रूप से नहीं पढ़ा है कि प्रथम दृष्टया यह विश्वास करने के लिए आधार हैं कि आरोपी ने अपराध किया है।

इस प्रकार, जहां आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि विवाद मात्र दीवानी है या कि पुलिस अधिकारी को मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना, आगे की जांच करने का कोई अधिकार नहीं था, बलहीन है, अदालत आवेदकों के अधिवक्ता के तर्क से आश्वस्त है कि अंतिम रिपोर्ट और उसी मामले में दायर आरोप पत्र दोनों को संयुक्त रूप से पढ़ने की आवश्यकता है, यह निर्धारित करने के लिए कि क्या आरोपी व्यक्तियों को समन करने या समन नहीं करने के लिए प्रथम दृष्टया आधार मौजूद है, मुख्य

अनुवादित

न्यायिक मजिस्ट्रेट बरेली ने निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अंतिम रिपोर्ट और आरोप पत्र दोनों को एक साथ नहीं पढ़ा है। यह सुस्पष्ट है कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट बरेली द्वारा पारित आक्षेपित संज्ञान/ समन आदेश एक गूढ़ आदेश है जिसमें अधिकारी ने उपरोक्त उल्लिखित विभिन्न निर्णयों में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आदेश का पालन नहीं किया है। आक्षेपित आदेश दिनांक **18.4.2022** को विधिक अधिदेश के विरुद्ध होने के कारण रद्द किया जाता है। परीक्षण न्यायालय को ऊपर दिए गए कानून का पालन करते हुए एक नया समन/ संज्ञान आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

सीआर.पी.सी. की धारा **482** के तहत आवेदन उपरोक्त सीमा तक अनुमत है।

(2023) 2 ILRA 748

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अत्ताउ रहमान मसूदी,

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल,

आपराधिक अपील संख्या 221/1988

मुन्ना उर्फ ओम प्रकाश

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: सुबोध कुमार शुक्ला, अशोक वर्मा, आर.पी. पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3- परिस्थितिजन्य साक्ष्य का वाद- शीर्ष अदालत ने विभिन्न निर्णयों में माना है कि आपराधिक मामले में आवश्यक प्रकृति, चरित्र और आवश्यक सबूत, जो केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित हैं, (i) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए; और (ii) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए।

निर्धारित कानून है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित किसी वाद में अभियोजन पक्ष को प्रत्येक परिस्थिति को सिद्ध करना और एक श्रृंखला में जोड़ना होता है, जिससे मृतक के अपराध का एकमात्र अपरिहार्य निष्कर्ष प्राप्त होता है।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 3- शव पहचान को सिद्ध करना- अभियोजन पक्ष के अनुसार, वादी और मृतक के पिता ने कथन दिया कि उन्होंने विश्वनाथ के शरीर की पहचान कपड़ों के आधार पर की थी जो कथित तौर पर कंकाल के पास पड़े पाए गए थे - केवल कपड़े पहचानने से यह स्थापित नहीं होगा कि उक्त कंकाल विश्वनाथ का है। अभियोजन पक्ष के लिए उपलब्ध उचित रास्ता यह था कि कंकाल का डीएनए परीक्षण कराया जाए और उसे पिता या परिवार के किसी अन्य सदस्य से मिलान कराया जाए ताकि बिना किसी संदेह के यह स्थापित हो सके कि यह अकेले विश्वनाथ का शव था और किसी का नहीं। संदेह चाहे कितना भी मजबूत क्यों न हो, स्वीकार्य साक्ष्य का विकल्प नहीं हो सकता।

अनुवादित

मृतक के कथित कपड़ों के आधार पर शव शिनख्यात को साबित करने के लिए केवल संदेह पर्याप्त नहीं है, जहां अभियोजन पक्ष डीएनए परीक्षण करके मृतक की पहचान करने में विफल रहा है।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3- अंतिम बार देखा गया साक्ष्य- (पी.डब्लू.-2) को पक्षपातपूर्ण और आकस्मिक गवाह के रूप में वर्णित किया जा सकता है जिसकी गवाही को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है और उसे भरोसेमंद गवाह नहीं कहा जा सकता है- राम किशोर, जिस पर (पी.डब्लू.-2) की कंपनी में होने का आरोप है, चंदा (पी.डब्लू.-2) द्वारा दिए गए संस्करण की पुष्टि के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है - दोषसिद्धि केवल मृतक के साथ आखिरी बार देखे जाने की परिस्थिति पर आधारित नहीं हो सकती है - आखिरी बार देखा गया सिद्धांत ऐसी स्थिति में होता है जहां अभियुक्त और मृतक को आखिरी बार जीवित देखा गया था और जब मृतक मृत पाया गया था, उसके बीच समय का अंतर इतना कम है कि अभियुक्त के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के अपराध का लेखक होने की संभावना असंभव हो जाती है।

दोषसिद्धि केवल अंतिम बार देखे गए साक्ष्य के आधार पर सुरक्षित नहीं की जा सकती, जो न तो भरोसेमंद है और न ही बिना किसी पुष्टि के है, क्योंकि अंतिम बार देखे गए साक्ष्य न केवल विश्वसनीय होने चाहिए, बल्कि उन बिंदुओं के बीच समय का अंतर भी होना चाहिए जब मृतक को आखिरी बार देखा गया था आरोपी की कंपनी और मृत पाए जाने का मामला इतना संकीर्ण होना चाहिए कि अपराध में किसी अन्य व्यक्ति की भागीदारी से इंकार किया जा सके।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 8- वर्तमान वाद में आशय अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सका। यद्धपि, चश्मदीद गवाहों से जुड़े महत्वहीन मामले में मकसद फीका पड़ सकता है, हालाँकि जब किसी आरोपी को परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर फंसाया जाता है तो ऐसा नहीं हो सकता है।

यद्धपि प्रत्यक्ष साक्ष्य के बाद में आशय महत्वहीन हो जाता है, लेकिन परिस्थितिजन्य साक्ष्य के वाद में आशय प्रासंगिक होता है और यह उन कड़ियों में से एक है जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध करना होता है। (पैरा 22, 32, 33, 37, 43, 44)

आपराधिक अपील स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-</u>

1. पडाला वीरा रेड्डी बनाम ए.पी. राज्य एआईआर 1990 एससी 79
2. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अशोक कुमार श्रीवास्तव: [1992] 1 एससीआर 37
3. शरद बिरधीचंद सारडा बनाम महाराष्ट्र राज्य क्रि. एल.जे. 178/1984
4. सनातन नस्कर और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2010) 8 एससीसी 249
5. संपत कुमार बनाम इंस्पेक्टर पुलिस कृष्णागिरी, क्रि. एल.जे. 3889/2010 (एससी)

अनुवादित

6. भगवान जगन्नाथ मारकड बनाम महाराष्ट्र राज्य:(2016) 10 एससीसी 537
7. चंद्रकांत गणपत सोवितकर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1975) 3 एससीसी 16
8. राम प्रकाश @ जालिम बनाम छत्तीसगढ़ राज्य (सीआरएल. आवेदन संख्या 462 / 2016, 12.05.2016, एससी)
9. राम प्रताप बनाम हरियाणा राज्य (सीआरएल। आवेदन संख्या 804 / 2011) निर्णित 1.12.2022
10. तरसेम कुमार बनाम दिल्ली राज्य (1994) सप्लीमेंट 3 एससीसी 367

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल द्वारा प्रदत्त)

वर्तमान आपराधिक अपील मुकदमा अपराध संख्या 134 /1985 थाना पिहानी, जिला हरदोई अन्तर्गत धारा 419/420/364/302/201/411 भारतीय दंड संहिता से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 144/1986 में द्वितीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, हरदोई द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 02.05.1987 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थी को धारा 302/201 भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत दोषी ठहराया गया और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और धारा 404 भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत दोषमुक्त कर दिया गया।

अप्रासंगिक विवरणों से परे, वाद के तथ्य यह हैं कि वादी श्याम रस्तोगी (अभियोजन साक्षी-1) की पिहानी शहर में एक दुकान थी जहाँ वह किराए पर लाउडस्पीकर उपलब्ध कराता था। दिनांक 06.06.1985 को अपराह्न लगभग 4 बजे अपीलकर्ता मुन्ना वादी की दुकान पर आया और 10 जून 1985 को रु०105/- किराये पर दो दिनों के लिए एक लाउडस्पीकर बुक किया और 10/- रुपये अग्रिम के रूप में जमा किये। यह सेट उनकी रिश्तेदारी में एक विवाह समारोह के लिए ग्राम धोबिया से ग्राम गजुआ खेड़ा ले जाने के लिए बुक किया गया था। यह कहा गया है कि अपीलकर्ता मुन्ना ने अपना नाम राम प्रसाद पुत्र छोटे लाल यादव निवासी ग्राम खकरा, थाना मैगलगंज, जिला खीरी बताया।

दिनांक 10.6.1985 को मुन्ना लगभग सायं 4.30 बजे वादी की दुकान पर आया, तब वादी ने लाउडस्पीकर सेट अपने ऑपरेटर विश्वनाथ (मृतक) को सौंप दिया, जो अपीलकर्ता मुन्ना के साथ वादी की साइकिल पर ग्राम गजुआ खेड़ा गया था। दिनांक 10.6.1985 को शाम लगभग 5.00 बजे मुन्ना (अपीलकर्ता) और ऑपरेटर विश्वनाथ को चंदा (अभियोजन साक्षी-2) और किन्हीं राम किशोर द्वारा साइकिल और लाउडस्पीकर के साथ शहादत नगर बस स्टैंड पर देखा गया था। हालाँकि, जब विश्वनाथ 12.6.1985 को वापस नहीं आये, तो वादी ने ऑपरेटर और लाउडस्पीकर सेट की तलाश की। तलाश के दौरान उसे ग्राम गजुआ खेड़ा और ग्राम धोबिया से पता चला कि ऐसी कोई बारात नहीं आई थी, तब वादी ग्राम खकरा गया और उसे मुन्ना का सही नाम और पता ज्ञात हुआ। वादी ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लेख किया है कि

अनुवादित

अब तक उसे विश्वनाथ (ऑपरेटर) और साउंड सिस्टम का पता-ठिकाना नहीं ज्ञात हुआ है। रिपोर्ट में उसने संदेह व्यक्त किया कि मुन्ना ने विश्वनाथ को गायब कर दिया है और उसकी साइकिल व सेट ले लिया है।

दिनांक 15.6.1985 की सुबह, वादी श्याम रस्तोगी ने एक लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) तैयार की और सुबह 8 बजे इसे थाना पिहानी के पुलिस अधिकारियों को सौंप दिया। पिहानी थाने के हेड मोहर्रिर जगदीश सारा ने प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-11) लिखी और जी.डी. रिपोर्ट संख्या-12 दिनांक 15.6.1985 द्वारा धारा 419/420/364 भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत अपीलार्थी मुन्ना के विरूद्ध वाद दर्ज किया। वाद का अन्वेषण उपनिरीक्षक सुरेश चंद्र गौतम को सौंपा गया।

यह कहा गया है कि दिनांक 15.6.1985 की शाम को ही पुलिस ने बहादुरनगर गांव के पूर्व राम सागर के गन्ने के खेत में एक अज्ञात व्यक्ति का कंकाल देखा। उपनिरीक्षक ने जाँच रिपोर्ट (प्रदर्श क-14), शव का चालान (प्रदर्श क-15), शव का फोटो नाश (प्रदर्श क-16), मुख्य चिकित्साधिकारी को दो पत्र (प्रदर्श क-17 और क-18) और प्रतिदर्श निरीक्षक को पत्र (प्रदर्श क-19) तैयार किए। कंकाल को एक कपड़े में सील कर दिया गया था और नमूना सील प्रदर्श क-20 है। कंकाल को कांस्टेबल हरीश चंद्र (पीडब्लू -5) और गांव लुहार खेड़ा के चौकीदार राजा राम के माध्यम से शव-परीक्षण हेतु भेजा गया था। उपनिरीक्षक ने मृतक के वस्त्र भी कब्जे में ले लिए और उसका फर्द (प्रदर्श क-20) तैयार किया।

दिनांक16.5.1985 को सायं 5.50 बजे डॉ. एम.एल. टंडन, चिकित्सा अधिकारी, जिला चिकित्सालय, हरदोई (पीडब्लू-4) ने अज्ञात शव का शव-परीक्षण किया, जिसकी मृत्यु 5-6 दिन पूर्व होने का आंकलन किया गया था। वह एक वयस्क का कंकाल था। कशेरुका, खोपड़ी की हड्डी और बाएं हाथ की हड्डी मौजूद नहीं थी। बड़ी संख्या में हड्डियां गायब थी। चिकित्सा अधिकारी ने शव पर निम्नलिखित मृत्युपूर्व चोटें पायी: -

1. सामने चौथी ग्रीवा कशेरुका पर तीव्र घाव के साथ कटे का निशान और किनारों पर सूखा खून मौजूद है।

2. जबड़े के बीच में और उसके आधार पर कटे का निशान।

डॉक्टर की राय के अनुसार मृत्युपूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण मृत्यु हुई थी। शव-परीक्षण आख्या प्रदर्श क-5 के रूप मे चिह्नित हैः-

पुलिस ने मृतक के वस्त्रों की पहचान मृतक के पिता राम दयाल (अभियोजन साक्षी-3) और वादी से भी कराई। उन्होंने बरामद वस्त्रों के मृतक विश्वनाथ के होने की पहचान की। इसके बाद, यह मानते हुए कि विश्वनाथ की हत्या की गई थी, वाद को धारा 419, 420, 364, 302, 201 और 411 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत वाद में परिवर्तित कर दिया गया और वाद का

अनुवादित

अन्वेषण थानाध्यक्ष श्याम सिंह परिहार (पीडब्लू -7) द्वारा 18.6.1985 को ग्रहण किया गया।

दिनांक18.6.1985 को जाँच अधिकारी, थानाध्यक्ष श्री परिहार ने राम सागर का बयान दर्ज किया और उस स्थल का निरीक्षण किया, जहाँ से शव बरामद किया गया था। उन्होंने नक्शा नजरी (प्रदर्श क-6) तैयार किया। उन्होंने अपीलकर्ता की तलाश का प्रयास दिनांक 7.7.1985, 12.7.1985, 19.7.1985, 3.8.1985, 9.8.1985, 2.8.1985, 25.8.1986 और 17.10.1985 को किया, किन्तु सफल नहीं हो सके। दिनांक 10.12.1985 को, जब अन्वेषण अधिकारी वादी श्याम रस्तोगी और पुलिस बल के साथ अपीलकर्ता मुन्ना की तलाश में लगभग 1 बजे मैगलगंज की ओर बढ़ रहे थे, तो अन्वेषण अधिकारी उस स्थान पर पहुँचे जहाँ जहानीखेड़ा शाहजहाँपुर-सीतापुर मार्ग को पिहानी मार्ग से जोड़ता है, तो उन्होंने अभियुक्त मुन्ना को शाहजहाँपुर से साइकिल द्वारा शाहानपुर-सीतापुर मार्ग पर आते देखा। कहा जाता है कि वादी ने अभियुक्त को पहचान लिया। साक्षी राम सेवक (अभियोजन साक्षी-6) और प्रदीप कुमार टंडन उक्त टी-पॉइंट पर मौजूद थे। पूर्व की ओर लगभग 20 कदम तक पीछा करने पर, अपीलकर्ता मुन्ना को गिरफ्तार कर लिया गया और "एवन" ब्रांड की एक साइकिल, जिस पर संख्या 403288 (प्रदर्श-5), उसके कब्जे से बरामद (प्रदर्श क-3) किया गया। पूछताछ करने पर, अपीलकर्ता ने बताया कि लाउडस्पीकर उसके द्वारा ग्राम खखरा में भीम (सह-अभियुक्त) के पास रखा गया था। इसके बाद अन्वेषण अधिकारी मुन्ना और गवाहों के साथ भीम के घर खखरा गांव पहुंचे। भीम के घर से चंद्र पाल और मोती लाल नामक दो व्यक्तियों को बुलाया गया, जिन्होंने रिकॉर्ड प्लेयर के आंतरिक भाग और सात रिकॉर्ड की बरामदगी देखी। इसके बाद अन्वेषण अधिकारी ने इन वस्तुओं की बरामदगी के स्थान का निरीक्षण किया और नक्शा नजरी (प्रदर्श क-7) तैयार किया, अभियुक्त भीम और साक्षीगण श्याम रस्तोगी और राम सेवक के बयान दर्ज किए और गांव जहानी खेड़ा तिराहा गए जहाँ उन्होंने साइकिल की बरामदगी के संबंध में नक्शा नजरी तैयार किया। जाँच अधिकारी पुलिस स्टेशन पिहानी पहुंचे और बरामद माल को पुलिस के 'मालखाने' में और अभियुक्त व्यक्तियों को 'हवालात' (लॉक-अप) में रखा। इस आशय की प्रविष्टि जीडी रिपोर्ट संख्या 30 में की गई थी, जिसकी एक प्रति प्रदर्श क-9 है।

अन्वेषण अधिकारी ने उचित अन्वेषण और आवश्यक औपचारिकताएं पूर्ण करने के उपरान्त न्यायालय में आरोप पत्र प्रस्तुत किया। उपान्तरण कार्यवाही के बाद, वाद की सुनवाई सत्र न्यायालय में की गई, जिसमें दिनांक 23.8.1986 को अभियुक्त-अपीलकर्ता मुन्ना उर्फ ओम प्रकाश और भीम के विरुद्ध धारा302, 201 और 404 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराध हेतु आरोप निर्धारित किए गए।

अनुवादित

अभियुक्तगण ने स्वयं को निर्दोष बताते हुए मुकदमा चलाए जाने का दावा किया।

अभियोजन पक्ष द्वारा अपने वाद के समर्थन हेतु समस्त 7 साक्षियों की परीक्षा की गयी। अभियोजन साक्षी-1 श्याम रस्तोगी (वादी), अभियोजन साक्षी-2 चंदा, अभियोजन साक्षी-3 राम दयाल एवं अभियोजन साक्षी-4 तथ्य के गवाह हैं। डॉ. एम.एल. टंडन (अभियोजन साक्षी-5), कांस्टेबल हरीश चंद्र मिश्रा, (अभियोजन साक्षी-6) राम सेवक और (अभियोजन साक्षी-7) एस.ओ. एस.एस. परिहार वाद के औपचारिक साक्षी हैं।

अभियोजन पक्ष को वादी द्वारा सिद्ध किये गये दस्तावेज़ अर्थात लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1), मृतक के वस्त्रों की फर्द बरामदगी (प्रदर्श क-2), साइकिल की फर्द बरामदगी (प्रदर्श क-3) और रिकॉर्ड प्लेयर और रिकॉर्ड की फर्द बरामदगी (प्रदर्श क-4) प्राप्त हुए। वादी ने बिना कैबिनेट के रिकॉर्ड प्लेयर (प्रदर्श क-1), सात रिकॉर्ड (प्रदर्श 2/1 से 2/7), मृतक का कुर्ता (प्रदर्श क-3), मृतक की पतलून (प्रदर्श क-4) और साइकिल (प्रदर्श क-5) भी सिद्ध किया। डॉ. एम.एल. टंडन (अभियोजन साक्षी-4) ने शव-परीक्षण आख्या (प्रदर्श क-5) सिद्ध किया। अभियोजन साक्षी-7 अन्वेषण अधिकारी श्री परिहार ने शव की बरामदगी के स्थान की नक्शा नजरी (प्रदर्श क-6) एवं साइकिल की बरामदगी के स्थान की नक्शा नजरी (प्रदर्श क-8), जीडी रिपोर्ट संख्या 30 (प्रदर्श क-2) और आरोप पत्र (प्रदर्श क-10) की प्रति को सिद्ध किया।

अभियुक्त-अपीलकर्ता का बयान दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अन्तर्गत अभिलिखित किया गया, जिसमें उसने अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित वाद से इनकार किया। उसने बताया कि वह मैगलगंज कस्बे के एक होटल में काम करता था। श्याम रस्तोगी ने उस होटल में खाना खाया था, जहाँ बिल के भुगतान को लेकर विवाद हुआ था। इसी बात से वह रुष्ट था और उसने उसे इस मामले में झूठा फंसाया है। अभियुक्त भीम ने बताया कि उसके घर से कुछ भी बरामद नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि वह और वादी श्याम रस्तोगी लाउडस्पीकर किराये पर देने का व्यवसाय करते थे और उनके प्रति पेशेवर ईर्ष्या थी जिसके परिणामस्वरूप उसे फंसाया गया। उसने बताया कि विवादित लाउडस्पीकर उसने लल्लू राम से 10000/- रुपये में खरीदा था। अन्वेषण अधिकारी उनके घर से सामान ले गए थे और उसे भी दो दिनों तक थाने में रखा गया था और उसके बाद चालान कर दिया गया था।

अभियुक्तगण पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अन्तर्गत मृतक विश्वनाथ की हत्या करने, धारा 201 भा०द०सं० के अन्तर्गत अपराध का साक्ष्य मिटाने और धारा 404 भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत उसकी मृत्यु के समय मृतक के पास उपलब्ध संपत्ति के दुर्विनियोजन का आरोप लगाया गया है।

अनुवादित

सत्र न्यायाधीश ने साक्ष्यों की जाँच और मूल्यांकन के उपरांत, अपीलकर्ता के विरुद्ध दोषसिद्धि का निर्णय अभिलिखित किया, जैसा कि ऊपर कहा गया है। हालाँकि, सह-अभियुक्त भीम को यह कहते हुए दोषमुक्त कर दिया गया कि अभियोजन पक्ष उसके विरुद्ध आरोप सिद्ध नहीं कर सका और उसे संदेह का लाभ दिया गया।

अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह कहते हुए अभिलिखित निष्कर्षों को चुनौती दी कि निष्कर्ष दोषपूर्ण हैं और ये साक्ष्यों के सही मूल्यांकन पर आधारित नहीं हैं।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सशक्त तर्क दिया कि सत्र न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित अपराध के निष्कर्ष पूर्णतः त्रुटिपूर्ण और अन्यायपूर्ण हैं। यह तथ्य स्थापित करने हेतु अभिलेख पर कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है कि अपीलकर्ता ने मृतक की हत्या की थी। वास्तव में, किसी ने भी प्रश्नगत अपराध होते हुए नहीं देखा है। वाद के तथ्यों से सरलतापूर्वक यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और घटनाओं की श्रृंखला पूर्ण न होने के उपरान्त भी अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया है और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है।

पुनः यह भी प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने इस तथ्य को अनदेखा करते हुए कि इसमें प्रमुख विरोधाभास और त्रुटियाँ हैं जो अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित मामले को हीन बनाते हैं, अभियोजन पक्ष के साक्षियों की साक्ष्य पर अत्यधिक बल दिया। वास्तव में, वादी द्वारा अपीलकर्ता को विगत शत्रुता के कारण झूठा फंसाया गया है क्योंकि अपीलकर्ता के साथ मैगलगंज के एक होटल में काम करने के दौरान बिल के भुगतान को लेकर कुछ विवाद हुआ था। अंत में, यह तर्क दिया गया है कि समान साक्ष्यों पर सह-अभियुक्त भीम को दोषमुक्त कर दिया गया है जबकि अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया है। इन परिस्थितियों में, आक्षेपित निर्णय अपास्त किये जाने योग्य है।

अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अभिकथनों का खंडन करते हुए, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय आधिकारिक तौर पर साक्ष्य के सही मूल्यांकन पर आधारित सुविचारित और तर्कसंगत आदेश है।

पुनः यह प्रस्तुत किया गया है कि निर्विवाद रूप से यह वाद परिस्थितिजन्य साक्ष्य का है किन्तु यह कहना गलत है कि साक्ष्य की श्रृंखला पूर्ण नहीं है। सत्र न्यायाधीश ने दोष सिद्ध करते हुए आधिकारिक तौर पर उपलब्ध ठोस सबूतों के आधार पर पर्याप्त निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं और उनकी संपुष्टि चिकित्सा साक्ष्यों से भी होती है। अत: अपील खारिज किये जाने योग्य है।

अनुवादित

पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने और आधिकारिक तौर पर मौजूद सामग्री के परिशीलन के उपरान्त, यह तथ्य पूर्णतः स्पष्ट है कि इस वाद में कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है और यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का वाद है। शीर्ष न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों में धारित किया है कि मात्र परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर किसी आपराधिक वाद में आवश्यक साक्ष्य, प्रकृति और चरित्र निम्नवत हैंः (i) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूर्णतः स्थापित होना चाहिए; और (ii) इस प्रकार स्थापित तथ्य मात्र अभियुक्त के अपराध की प्रकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात 'अभियुक्त दोषी है', इसके अतिरिक्त किसी अन्य प्रकल्पना पर व्याख्या नहीं की जानी चाहिए, परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए, जिसमें सिद्ध की जाने वाली प्रकल्पना के अतिरिक्त हर संभावित प्रकल्पना को वर्जित किया जाना चाहिए और साक्ष्यों की श्रृंखला इस सीमा तक पूर्ण होनी चाहिये ताकि अभियुक्त की निर्दोषिता के अनुरूप निष्कर्ष हेतु कोई उचित आधार न छूटे और यह प्रदर्शित किया जाना चाहिए कि समस्त मानवीय संभावनाओं के अंतर्गत अपराध अभियुक्त द्वारा अवश्य किया गया होना चाहिए।

इस संबंध में, ***पदाला वीरा रेड्डी बनाम एपी राज्य एआईआर 1990 एससी 79*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विषय पर मार्गदर्शक सिद्धांत का उल्लेख करना उपयोगी होगा, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मूल्यांकन के संबंध में मार्गदर्शक सिद्धांत निर्धारित किया था:-

"(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें सुसंगततापूर्वक और दृढ़तापूर्वक सिद्ध किया जाना चाहिए;

(2) वे परिस्थितियाँ एक निश्चित प्रवृत्ति की होनी चाहिए जो त्रुटिहीन रूप से अभियुक्त के अपराध को इंगित करती हों;

(3) परिस्थितियों को, संचयी रूप से ग्रहण करते हुए, इतनी पूर्ण श्रृंखला बननी चाहिए कि इस निष्कर्ष से कोई पलायन न हो सके कि समस्त मानवीय संभावनाओं के अंतर्गत अपराध अभियुक्त द्वारा कारित किया गया था, अन्य किसी द्वारा नहीं; और

(4) दोषसिद्धि को पोषित करने के लिए परिस्थितिजन्य साक्ष्य पूर्ण होने चाहिए और अभियुक्त के अपराध के अलावा किसी भी अन्य प्रकल्पना की व्याख्या करने में असमर्थ होने चाहिए, और ऐसे साक्ष्य न केवल अभियुक्त के अपराध के अनुरूप होने चाहिए, अपितु उसकी निर्दोषिता के असंगत होने चाहिए।।"

इसी प्रकार, ***उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अशोक कुमार श्रीवास्तव: [1992] 1 एससीआर 37***, के वाद में शीर्ष न्यायालय ने कहा कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मूल्यांकन में अत्यन्त सावधानी बरतनी चाहिए और जिस साक्ष्य पर विश्वास व्यक्त

अनुवादित

किया गया है, यदि उससे दो युक्तियुक्त निष्कर्ष प्राप्त होते हो, तो अभियुक्त के पक्ष का निष्कर्ष अवश्य स्वीकृत होना चाहिए।। यह भी कहा गया कि जिन परिस्थितियों पर विश्वास व्यक्त किया गया है वे पूर्णरूपेण स्थापित होनी चाहिए और स्थापित सभी तथ्यों का संचयी प्रभाव मात्र अपराध की प्रकल्पना के संगत होना चाहिए।

परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मूल्यांकन के संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य: 1984 Cr.L.J. 178***निर्णय-विधि के प्रस्तर-150 से 158 में निम्नवत धारित किया है:-

"150. यह सुस्थापित है कि अभियोजन पक्ष को स्वतः सशक्त होना चाहिये और यह बचाव पक्ष की दुर्बलता से शक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। यह अतिसामान्य विधि है और किसी भी निर्णय में इसके विपरीत दृष्टिकोण ग्रहण नहीं किया गया है। कुछ वादो में निम्नवत धारित किया गया है: जहाँ एक श्रृंखला में विभिन्न कड़ियाँ स्वयमेव पूर्ण हैं, तब एक झूठी दलील या झूठ/बचाव, न्यायालय को मात्र आश्वस्त करने हेतु प्रस्तुत किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, अतिरिक्त कड़ियों का उपयोग करने से पहले यह सिद्ध किया जाना चाहिये कि शृंखला की समस्त कड़ियाँ पूर्ण हैं और उनमें कोई दुर्बलता नहीं है। यह विधि नहीं है कि जहाँ अभियोजन मामले में कोई दुर्बलता या त्रुटि है, उसका उपचार झूठे बचाव या ऐसी दलील, जो न्यायालय द्वारा अमान्य हो, से किया जा सकता है।

इसी प्रकार, ***सनातन नस्कर एवं एक अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2010) 8 एससीसी 249*** के वाद में शीर्ष अदालत ने निम्नानुसार प्रतिपादित किया: -

"इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है क्योंकि घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं था। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि यदि कोई अभियुक्त परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों में भी दोषी पाया जाता है तो उसे दंडित किया जा सकता है यदि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे घटनाओं और परिस्थितियों की सम्पूर्ण श्रृंखला को सिद्ध करने में सक्षम हो जो संदिग्ध या अभियुक्त की संलिप्तता और अपराध को निश्चित रूप से इंगित करता हो, जैसा भी मामला हो। अभियुक्त मात्र इसलिए दोषमुक्त होने का अधिकारी नहीं होगा कि मामले में कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है। यह भी उतना ही सच है कि किसी अभियुक्त को परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है, यदि उस संबंध में स्वीकृत सिद्धांतों की संतुष्टि हो।"

जहां तक आशय का प्रश्न है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***संपत कुमार बनाम पुलिस निरीक्षक कृष्णागिरी 2010 Cr.L.J. 3889 (एससी)***,निर्णय-विधि के प्रस्तर 15 में निम्नानुसार धारित किया है: -

"15. ..... कोई यह भी कह सकता है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों

अनुवादित

में आशय की उपस्थिति अपीलकर्ता के विरूद्ध एक प्रबल संशय पैदा करती है किन्तु संशय, चाहे कितना भी प्रबल हो, अभियुक्त के अपराध को युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध करने का विकल्प नहीं हो सकता ।"

उपरोक्त के अतिरिक्त, ***भगवान जगन्नाथ मरकड बनाम महाराष्ट्र राज्य: (2016) 10 एससीसी 537*** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना उपयोगी होगा जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने साक्षी के बयान, जिसमें विसंगतियां या कमजोरियां हैं, की विश्वसनीयता के मूल्यांकन हेतु सिद्धांतों को प्रतिपादित किया था। प्रासंगिक अनुच्छेद 19 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"19. किसी साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय, न्यायालय को यह आंकलन करना होगा कि क्या समग्र रूप से पढ़े जाने पर यह सत्य होगा। ऐसा करने में न्यायालय को कमियों, दोषों और दुर्बलताओं को ध्यान में रखना होगा ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या ऐसी विसंगतियां सत्यता को प्रभावित करती है या नही।

..न्यायालय साक्ष्य को केवल तब अस्वीकृत कर सकती है जब विसंगतियां इतनी असंगत हों कि साक्षी के कथन की विश्वसनीयता को प्रभावित करने लगें, ...न्यायालय को अनाज से भूसी को छांटना होगा और सत्य का पता लगाना होगा। एक कथन को आंशिक रूप से अस्वीकार या आंशिक रूप से स्वीकार किया जा सकता है।"

इस प्रकार के मामलों में उपरोक्त तथ्यात्मक और विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, प्रथम प्रश्न जिसका उत्तर दिया जाना आवश्यक है, वह यह है कि क्या अभियोजन पक्ष अपराध सार को साबित करने में सफल रहा था और द्वितीय यह कि क्या निष्कर्षात्मक साक्ष्य ऐसे थे कि अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत इस प्रकार लागू किया जा सकता है कि यह युक्तियुक्त संदेह से परे साक्ष्य के सिद्धांत को संतुष्ट करता हो।

अपराध सार को सिद्ध करने के संबंध में, प्रथम सूचना रिपोर्ट के परिशीलन से ज्ञात होता है कि वादी ने आरोप लगाया है कि मृतक अपीलकर्ता मुन्ना के साथ 10.06.1985 को लगभग सांय 04:00 बजे निकला था, किन्तु वह 12.06.1985 तक वापस नहीं आया। वादी ने यह भी आरोप लगाया है कि उसने विश्वनाथ (मृतक) का पता लगाने का पूर्ण प्रयास किया, किन्तु जब वह असफल रहा तो उसने रिपोर्ट दर्ज कराई। विश्वनाथ दिनांक 12.06.1985 से लापता था लेकिन वादी ने तीन दिन बाद दिनांक 15.06.1985 को सुबह लगभग 08:00 बजे पुलिस स्टेशन पिहानी, जिला हरदोई में रिपोर्ट दर्ज कराई। प्रथम सूचना रिपोर्ट में वादी ने उस तिथि का उल्लेख नहीं किया है जब उसे बताया गया था कि चंदा और राम किशोर ने मृतक को देखा था। इस कमी को पूर्ण करने के लिए, न्यायालय के समक्ष दिए गए बयान में सुधार किया गया है कि 13.06.1995 को

अनुवादित

चंदा और राम किशोर ने आश्चर्यजनक रूप से उसे बस स्टेशन पर देखा था। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में वादी ने विश्वनाथ के वस्त्रों का विवरण या उस विशिष्ट समय का उल्लेख नहीं किया है जब वह मुन्ना के साथ गजुआ खेड़ा जाने के लिए दुकान से निकला था।

यह कहा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष के अनुसार, वादी और मृतक के पिता ने खुलासा किया था कि उन्होंने विश्वनाथ के शरीर की पहचान वस्त्रों के आधार पर की थी जो कथित तौर पर कंकाल के पास पाए गए थे।

मात्र वस्त्र पहचानने से यह स्थापित नहीं होगा कि उक्त कंकाल विश्वनाथ का है। अभियोजन पक्ष के लिए उचित यह था कि कंकाल का डीएनए परीक्षण कराया जाता और उसे पिता या परिवार के किसी अन्य सदस्य से मिलान कराया जाता ताकि किसी संदेह के परे यह स्थापित हो सके कि यह मात्र विश्वनाथ का शव था, अन्य किसी का नहीं। बरामद कंकाल विश्वनाथ का ही है, यह सिद्ध करने के लिए अन्वेषण अधिकारी ने हड्डियों का डीएनए विश्लेषण कराने का कोई प्रयास नहीं किया। संक्षेप में, अभियोजन पक्ष विश्वनाथ की मृत्यु को मानव हत्या सम्बन्धी या अन्यथा सिद्ध करने में विफल रहा है। अभियोजन पक्ष द्वारा यह तथ्य स्वीकृत है कि विश्वनाथ 10.06.1985 को गजुआ खेड़ा गाँव गए थे और कथित कंकाल 15.06.1985 को पाया गया था, अर्थात वह दिन, जिस दिन प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गयी। अज्ञात मानव कंकाल का शव-परीक्षण 16.06.1985 को सायं 5:50 बजे किया गया था और डॉक्टर ने शव-परीक्षण आख्या में "अज्ञात मनुष्य का कंकाल" मिलने की बात कही है। ऐसे में शव-परीक्षण के समय तक यह स्थापित नहीं हो सका कि कंकाल मृतक विश्वनाथ का है। श्याम रस्तोगी (अभियोजन साक्षी-1) ने साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि उन्होंने 17.06.1985 को विश्वनाथ के वस्त्र पहचान लिए थे, जिन्हें राम दयाल ने भी पहचान लिया था, और तदोपरान्त फर्द बरामदगी तैयार किया गया था। आश्चर्य की बात यह है कि तब उसके द्वारा न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई बयान नहीं दिया गया है, जब न्यायालय में राम दयाल ने कपड़े देखे। कहा गया है कि उसने मात्र यह कहा था कि विश्वनाथ यह वस्त्र पहनकर गए थे।

स्पष्ट है, विचारण न्यायालय ने बिना किसी तर्कसंगतता और किसी वैज्ञानिक प्रमाण के अभाव में मात्र इस संदेह पर कार्यवाही की है कि चूँकि वस्त्र मृतक के थे, अतः कंकाल भी मृतक का ही था। हालाँकि, यह न्यायालय विचारण न्यायालय के दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सकती है क्योंकि विधि की स्थापित स्थिति अब इस विषय पर अनिर्णीत नहीं है कि मात्र संदेह, चाहे वह कितना भी प्रबल क्यों न हो, स्वीकार्य साक्ष्य का विकल्प नहीं हो सकता है, जैसा कि शीर्ष न्यायालय ने ***चंद्रकांत गणपत सोवितकर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1975) 3 एससीसी 16*** के वाद में भी माना है।

अनुवादित

"16. .....यह सुस्थापित है कि मात्र संदेह, चाहे वह कितना भी प्रबल क्यों न हो, के आधार पर किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता,..."

राम दयाल (अभियोजन साक्षी-3) मृतक के पिता हैं, जिन्होंने न्यायालय के समक्ष साक्ष्य दिया कि उनका पुत्र श्याम रस्तोगी की दुकान पर काम करता था। दिनांक 10.06.1985 को वह साउंड सिस्टम ठीक करने गया था और वापस नहीं लौटा। पुनः उन्होंने बयान दिया कि विश्वनाथ ने कुर्ता और पायजामा पहना हुआ था (प्रदर्श क-3 और प्रदर्श क-4)।

स्पष्ट विसंगतियों और विरोधाभासों में से एक जो कहानी को संदिग्ध बनाती है, वह मृतक के वस्त्रों के रंग के बारे में है, जो उसने आखिरी बार देखे जाने के समय पहना था। न्यायालय के समक्ष श्याम रस्तोगी (अभियोजन साक्षी-1) ने बयान दिया है कि जब विश्वनाथ दुकान से बाहर निकला तो उसने कढ़ाई वाला भूरे रंग का कुर्ता और सफेद पायजामा (लोअर) पहना हुआ था। जबकि, पंचनामा (प्रदर्श क-14) में सफेद रंग की बरामदगी दिखाई गई है *"कुर्ता कालीदार सफेद मिट्टी में सना हुआ व फटा हुआ व पजामा सफेद"*। ऊपर उल्लिखित विसंगतियों और कमियों के दृष्टिगत, हमारी सुविचारित राय में, विचारण न्यायालय ने विशेष तौर पर डीएनए विश्लेषण के अभाव में यह विश्वास करने में गलती की है कि कथित कंकाल विश्वनाथ का था।

यहाँ, यह इंगित करना प्रासंगिक है कि अभियोजन पक्ष इस बात पर मौन है कि राम दयाल, जिसका पुत्र दिनांक12.06.1985 से लापता था, अपने पुत्र की गुमशुदगी के सम्बन्ध में पुलिस को सूचित करने या रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए आगे क्यों नहीं आया और यहाँ तक कि ढूंढने का कोई प्रयास भी नहीं किया, जो कि उसके बयान से पता चलता है। राम दयाल (अभियोजन साक्षी-3) ने यह भी नहीं बताया कि उसे अपने बेटे की मौत के बारे में कब और कैसे पता चला। श्याम रस्तोगी (अभियोजन साक्षी-1) के कथनानुसार, वह और राम दयाल (मृतक के पिता) ने दिनांक 17.06.1985 को विश्वनाथ के वस्त्र पहचान लिए थे। पुनः, यह स्पष्ट नहीं है कि वह दिनांक 17.06.1985 को पुलिस स्टेशन कैसे और किसकी सूचना पर पहुँचा।

अंतिम बार देखे गए साक्ष्य के संबंध में, अभियोजन पक्ष का कथन यह है कि वादी ने कहा था कि चंदा (अभियोजन साक्षी-2) और राम किशोर ने मृतक को मुन्ना के साथ दिनांक 10.06.1985 को शहादत नगर बस स्टैंड पर देखा था। उन्होंने यह तथ्य वादी को 13.06.1985 को बताया जब वे उनसे मिले, क्योंकि चंदा उनसे परिचित थी। इसके विपरीत, चंदा (अभियोजन साक्षी-2) ने न्यायालय के समक्ष अपने बयान में कहा था कि सोमवार को जब वह सायं करीब साढ़े पांच बजे राम किशोर के साथ शहादत नगर बाजार गयी थी तब उसने विश्वनाथ (मृतक) और

अनुवादित

अपीलार्थी मुन्ना को देखा था। विश्वनाथ साइकिल पर लाउडस्पीकर सेट लेकर चल रहा था। अपनी प्रति-परीक्षा में, (अभियोजन साक्षी-2) चंदा ने पूर्णतः भिन्न कहानी प्रस्तुत की और कहा कि वह डॉ. मोहर्रम अली से मिलने के लिए शहादत नगर गया था, किन्तु उसने इस तथ्य का उपनिरीक्षक के समक्ष प्रकट नहीं किया था। वह पिहानी से बस द्वारा शहादतनगर गया था। उसने आगे बयान दिया कि जब वह डॉक्टर से मिलकर वापस आ रहा था तो बाजार में उसकी मुलाकात राम किशोर से हो गई और वह राम किशोर के साथ साइकिल से पिहानी आ गया। बस-स्टेशन पर वे पानी पीने के लिए रुके थे जहाँ उन्होंने विश्वनाथ (मृतक) को देखा, जो उन्हें बहुत पहले से जानता था। इस साक्षी ने स्वीकार किया था कि वह लाउडस्पीकर किराये पर लेता था। हालांकि उसने इस सुझाव से इनकार किया कि वह श्याम रस्तोगी से सेट लेते थे और उनके कहने पर झूठी गवाही दे रहे थे। इस प्रकार, चंदा (अभियोजन साक्षी-2) को पक्षपातपूर्ण और संयोगी साक्षी के रूप में वर्णित किया जा सकता है, जिसके साक्ष्य को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है और उसे विश्वसनीय साक्षी नहीं कहा जा सकता है। विचारण न्यायालय चंदा (अभियोजन साक्षी-2) के साक्ष्य पर बहुत अधिक विश्वास करके भूल कर बैठी। इसके अतिरिक्त, एक और स्पष्ट विशेषता है जो अभियोजन कथानक को संदिग्ध बनाती है, अर्थात राम किशोर, जो कथित रूप से अभियोजन साक्षी-2 के साथ था, को चंदा (अभियोजन साक्षी-2) द्वारा कही गयी कहानी की पुष्टि के लिए पेश नहीं किया गया है।

एक और तथ्य जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है वह यह कि श्याम रस्तोगी की वह दुकान जहाँ मृतक काम करता था, पिहानी कस्बे में स्थित है। साउंड सिस्टम दिनांक 10.06.1985 को बुक किया गया बताया गया था जिसे ग्राम धोबिया से ग्राम गजुआ खेड़ा ले जाया जाना था। न तो वादी और न ही किसी अन्य गवाह ने यह बयान दिया है कि पिहानी कस्बे से ग्राम धोबिया होते हुए गजुआ खेड़ा तक जाते समय शहादत नगर बस स्टैंड रास्ते में पड़ेगा। शहादत नगर बस स्टैंड पर मृतक की मौजूदगी साबित करने के लिए इस तरह का बयान महत्वपूर्ण था।

उपरोक्त विसंगतियों के अतिरिक्त यह उल्लेख करना उपयोगी होगा कि साउंड सिस्टम और लाउडस्पीकर की बरामदगी के संबंध में, अभियोजन साक्षी-7 थाना प्रभारी श्री राम सिंह परिहार ने बयान दिया था कि अभियुक्त मुन्ना ने खुलासा किया था कि लाउडस्पीकर और अन्य सामान खकरा गांव में भीम के घर में रखे हुए हैं। इस सूचना पर वह पुलिस कर्मियों व गवाहों के साथ अभियुक्त भीम के घर गये। हालाँकि, प्रति-परीक्षा में थाना प्रभारी ने स्वीकार किया कि वह ग्राम खकरा से साक्षियो को नहीं ले गए हैं, बल्कि राहगीर चंद्रभान और मोतीलाल को ले गए हैं। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि भीम के घर से साउंड सिस्टम और अन्य सामान की बरामदगी के समय भीम के घर से जुड़ा कोई साक्षी या ग्राम खकरा से संबंधित कोई भी साक्षी उपलब्ध नहीं था।

अनुवादित

अभियुक्त (अपीलकर्ता) की गिरफ्तारी के संबंध में, श्याम रस्तोगी (अभियोजन साक्षी-1) ने कहा कि दिनांक 10.12.1985 को यानी छह महीने की अवधि के बाद, थाना प्रभारी, पिहानी उनके साथ पिहानी से सीतापुर तक मुन्ना की तलाश में गए। मुन्ना साइकिल पर नजर आया और वादी ने थाना प्रभारी को बताया कि यह वही व्यक्ति है जिसने साउंड सिस्टम लिया था। इसके बाद अभियुक्त को गिरफ्तार कर लिया गया। उसने यह भी पहचान लिया कि विश्वनाथ जो साइकिल ले जा रहा था, वह उसी की है। दूसरी ओर, इस गवाह ने अपनी प्रति-परीक्षा में बताया कि गिरफ्तारी के दिन वह लगभग 11:00 बजे पुलिस थाना गया था। जहाँ से दो उपनिरीक्षक और चार कांस्टेबल एक जीप में गए और जब वे एक टी-पॉइंट पर पहुंचे, तो अभियुक्त अचानक सामने आ गया, जिसे पुलिस कर्मियों ने ढूंढ लिया और गिरफ्तार कर लिया। यह बेहद आश्चर्य की बात है कि छह महीने की लंबी अवधि तक पुलिस अभियुक्त की गिरफ्तारी हेतु लगातार छापेमारी करती रही और जब अपीलकर्ता की गिरफ्तारी बिना किसी विशेष जानकारी के उसी क्षेत्र में दिखाई गई तो यह कुछ संदेह पैदा करता है।

इस समय, हम **राम प्रकाश उर्फ जालिम बनाम छत्तीसगढ़ राज्य** (माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 12.05.2016 को निर्णीत वर्ष 2016 की आपराधिक अपील संख्या 462) के वाद का उल्लेख करना चाहेंगे, जिस पर अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किया गया है, जिसमें अभियोजन पक्ष का वाद यह था किकथित तौर पर राम सेवक के कुछ कंकाल अवशेष पाए गए थे, जो 07.10.1992 को अपीलकर्ता राम प्रकाश उर्फ जालिम के साथ गया था। यह मामला भी परिस्थितिजन्य साक्ष्य का था। माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों की जाँच के उपरान्त निम्नानुसार धारित किया:-

"यह सामान्य विधि है कि अभियुक्त के विरुद्ध दोषसिद्धि मात्र इस आधार पर अभिलिखित नहीं की जा सकती कि अभियुक्त को अंतिम बार मृतक के साथ देखा गया था। दूसरे शब्दों में, दोषसिद्धि मात्र अंतिम बार एक साथ देखे जाने की परिस्थितियों के आधार पर नहीं की जा सकती। सामान्यतः, अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत तब लागू होता है जब अभियुक्त और मृतक को आखिरी बार जीवित देखे जाने के समय और जब मृतक मृत पाया जाता है, के मध्य समयान्तराल इतना कम होता है कि अभियुक्त के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के अपराध का अपराधी होने की संभावना, असंभव हो जाती है। किसी दोषसिद्धि को अभिलिखित करने के लिए, अंतिम बार एक साथ देखा जाना ही पर्याप्त नहीं होगा और अभियोजन पक्ष को अभियुक्त के अपराध को सिद्ध करने हेतु परिस्थितियों की श्रृंखला को पूर्ण करना होगा।"

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिनांक 1.12.2022 को निर्णीत राम प्रताप बनाम हरियाणा राज्य (वर्ष2011 की आपराधिक अपील संख्या 804) के वाद में अभियुक्त-अपीलकर्ता को विचारण

अनुवादित

न्यायालय द्वारा धारा 302 भा०द०सं० के अन्तर्गत दोषी ठहराया गया था, जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई थी। जब वाद उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुआ तो माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और अपीलकर्ता को दोषमुक्त करते समय प्रस्तर 9 में निम्नानुसार धारित किया गया -

"इस न्यायालय द्वारा शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984), 4 एससीसी 116 सहित कई मामलों में यह कहा गया है कि संदेह, चाहे कितना भी प्रबल हो, युक्तियुक्त संदेह से परे साक्ष्य का स्थान नहीं ले सकता। इस न्यायालय ने कहा है कि "may" एवं "must" का भेद मात्र व्याकरणिक ही नहीं है, अपितु इनके मध्य विधिक भेद भी है। युक्तियुक्त संदेह से परे परिस्थितियों के आधार पर किसी वाद को सिद्ध करने के लिए, और इसके अतिरिक्त, सिद्ध की गई परिस्थितियों को साक्ष्य की संपूर्ण श्रृंखला का निर्माण करना चाहिए ताकि ऐसा न हो कि अभियुक्त की निर्दोषिता के संगत निष्कर्ष हेतु कोई युक्तियुक्त आधार छूट जाए, और समस्त मानवीय संभावनाओं के अंतर्गत यह प्रदर्शित करना होगा कि अपराध अभियुक्त द्वारा कारित किया गया है। इसके अतिरिक्त, यह धारित किया गया है कि इस प्रकार स्थापित तथ्यों को अभियुक्त के अपराध के अतिरिक्त प्रत्येक प्रकल्पना का वर्जन करना चाहिए।"

उपरोक्त तथ्यात्मक और विधिक स्थिति की पृष्ठभूमि में, दोषसिद्धि मात्र अंतिम बार मृतक के साथ देखे जाने की परिस्थिति पर आधारित नहीं हो सकती है। मात्र अंतिम बार देखे जाने से इस निष्कर्ष को दर्ज करने के लिए परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण नहीं होगी कि यह मात्र अभियुक्त-अपीलकर्ता के अपराध की प्रकल्पना के संगत है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'अंतिम बार देखा गया' सिद्धांत वहाँ प्रयुक्त होता है, जब अभियुक्त और मृतक को अंतिम बार जीवित देखा गया था और जब मृतक मृत पाया गया था, के मध्य समयांतराल इतना अल्प है कि अभियुक्त के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के अपराधी होने की संभावना, असंभव हो जाती है।

इसके अतिरिक्त, विचारण न्यायालय से इस पक्ष पर चूक हो गयी कि वर्तमान वाद का आशय अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सका। यद्यपि, प्रत्यक्षदर्शियों से सम्बन्धित मामले में आशय महत्वहीन हो सकता है,तथापि जब किसी अभियुक्त को परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर फंसाया जाता है तो ऐसा नहीं हो सकता है। इस विधिक स्थिति को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तरसेम कुमार बनाम दिल्ली प्रशासन (1994) Supp 3 SCC 367 के वाद में अधोवर्णित पदों में व्यक्त किया गया है:

"8. सामान्यतया प्रत्येक आपराधिक कृत्य के पीछे एक आशय होता है और यही कारण है कि जाँच एजेंसी के साथ-साथ न्यायालय भी

अनुवादित

किसी अभियुक्त की संलिप्तता की जाँच करते समय यह पता लगाने का प्रयास करती है कि अभियुक्त की ओर से विचाराधीन अपराध करने का आशय क्या था। इस न्यायालय द्वारा बार-बार यह कहा गया है कि जहाँ अभियोजन का वाद न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर सभी युक्तियुक्त संदेहों से परे सिद्ध हो गया है, वहाँ आशय अपना महत्व खो देता है। लेकिन ऐसे मामले जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, वहाँ अभियुक्त की ओर से अपराध करने का आशय अधिक महत्व रखता है। निश्चय ही, यदि अभियोजन पक्ष की ओर से सिद्ध की गई प्रत्येक परिस्थिति को न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष अभिलिखित करने के उद्देश्य से स्वीकार किया जाता है कि अभियुक्त ने ही प्रश्नगत अपराध कारित किया है, यहाँ तक कि ऐसे अपराध करने के आशय के साक्ष्य के अभाव में भी अभियुक्त को दोषी ठहराया जा सकता है। किन्तु जाँच एजेंसी के साथ-साथ न्यायालय को भी जहाँ तक संभव हो, यह पता लगाना चाहिए कि अभियुक्त की ओर से तत्काल प्रेरक आशय क्या था जिसने उसे विचाराधीन अपराध करने के लिए प्रेरित किया।

अंत में, हम यह भी कह सकते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में अस्पष्ट देरी हुई है, जो उस दुकान के स्वामी द्वारा दर्ज कराई गई है जहां मृतक घटना के तीन दिन बाद कार्य कर रहा था। आश्चर्य की बात है कि राम दयाल (अभियोजन साक्षी-3) जो मृतक के पिता हैं, ने अपने बेटे विश्वनाथ को खोजने का कोई प्रयास नहीं किया और पुलिस को उसके लापता होने की सूचना नही दी, जो अभियोजन की कहानी पर स्वयं संदेह उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त, भीम के फंसाये जाने के संबंध में वादी के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया गया था, अतः उसने साक्ष्य की विश्वसनीयता खो दी थी।

उपरोक्त विस्तृत चर्चा के दृष्टिगत, द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, हरदोई द्वारा दिनांक 02.05.1987 को पारित आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि आदेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी जमानत पर है। अपीलकर्ता को आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं हैः उसके जमानत बंध रद्द कर किये जाते हैं और जमानतदारों को अवमुक्त किया जाता है।

तदनुसार अपील स्वीकार की जाती है। इस आदेश की एक प्रति संबंधित न्यायालय को सूचना एवं अनुपालन हेतु भेजी जाये।

(2023) 2 ILRA 759

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

अभ्यासार्थ

दिनांक: इलाहाबाद 03.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर,
माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,

आपराधिक अपील संख्या 386/2014

पुत्तन यादव @ विपिन
... अपीलकर्ता (जेल में)
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य
...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री निखिल कुमार, श्री जितेंद्र सिंह, श्री लालजी यादव, श्री सुधाकर यादव, श्री यशपाल यादव

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3- चिकित्सा साक्ष्य महत्वपूर्ण और महत्वपूर्ण साक्ष्य है, जो यदि अभियोजन पक्ष के संस्करण और चश्मदीद गवाह के बयान की पुष्टि करता है, तो अभियोजन पक्ष निश्चित रूप से अपना मामला साबित करने में सफल होगा- डॉक्टर द्वारा मृतक के शरीर पर जो चोटें पाई गईं उसी तरह चोट पहुंचाई गई होगी जैसा कि पीडब्लू-2 द्वारा दर्शाया गया है- गरीब बच्ची को लगी चोटें उसकी मौत का कारण बनने के लिए व्यवसाय के सामान्य क्रम में पर्याप्त थीं और अभियोजन की कहानी पूरी तरह से सही है जो चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा पुष्टि की गई।

जहां प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य की पुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से होती है, तो उस आधार पर दोषसिद्धि सुनिश्चित की जा सकती है।

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 134- पीडब्लू-2 की पूरी गवाही की बारीकी से जांच से यह पता चला है कि उसके साक्ष्य काफी निर्दोष और भरोसेमंद हैं और वह पूरी तरह से विश्वसनीय गवाह है। उसकी निरंतरता में उसका बयान काफी सहज है और हमले के तरीके, घटना की जगह, अपराध के लेखक और अन्य सभी संबंधित कारकों जैसे भौतिक विवरणों में कोई विरोधाभास नहीं है। घटना के समय घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति बिल्कुल स्वाभाविक है - उसका बयान सभी कमजोरियों से मुक्त है और वह एक विश्वसनीय और प्राकृतिक गवाह सिद्ध हुई है और ऐसे गवाह के बयान के आधार पर दोषसिद्धि सुरक्षित रूप से दर्ज की जा सकती है - और चिकित्सीय साक्ष्यों से भी इसकी पुष्टि होती है।

किसी अकेले गवाह की गवाही पर भी किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि सुनिश्चित की जा सकती है, जहाँ ऐसी गवाही सच्ची, विश्वसनीय और चिकित्सा साक्ष्य के साथ पुष्टि की जाती है, क्योंकि यह साक्ष्य की गुणवत्ता है न कि मात्रा, जो महत्वपूर्ण है।

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3- आपराधिक वाद में किसी गवाह की गवाही को केवल इसलिए अपास्त नहीं किया जा सकता क्योंकि गवाह अपराध के पीड़ित का

अनुवादित

रिश्तेदार या परिवार का सदस्य है। ऐसे मामले में न्यायालय को ऐसे गवाह के साक्ष्य का विश्लेषण करने में सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यदि संबंधित गवाह की गवाही अन्यथा विश्वसनीय पाई जाती है, तो ऐसे संबंधित गवाह की गवाही के आधार पर आरोपी को दोषी ठहराया जा सकता है।

स्थापित कानून यह है कि जहां अदालत प्रचुर सावधानी बरतने के बाद यह पाती है कि संबंधित गवाह की गवाही भरोसेमंद और विश्वसनीय है और उसकी उपस्थिति स्वाभाविक है, तो वही पूरी तरह से विश्वसनीय है।

सजा की मात्रा- आनुपातिकता का सिद्धांत- धारा 304 (भाग-1) आईपीसी- विद्वान निचली अदालत द्वारा आजीवन कारावास की सजा दी गई है- प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और पर उचित विचार करने के बाद उचित सजा दी जानी चाहिए, जिस तरीके से इसे क्रियान्वित या प्रतिबद्ध किया गया था। यह न्यायालय का दायित्व है कि वह स्वयं को लगातार स्मरण दिलाए कि पीड़ित का अधिकार, और ऐसा कहा जाए, कुछ अवसरों पर पीड़ित व्यक्ति के साथ-साथ बड़े पैमाने पर समाज भी पीड़ित हो सकता है, कभी भी हाशिए पर नहीं रखा जा सकता है। सजा का माप अपराध की गंभीरता के अनुपात में होना चाहिए- सजा के सुधारात्मक सिद्धांत और "आनुपातिकता के सिद्धांत" को ध्यान में रखते हुए, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि आईपीसी की धारा 304 (भाग-I) के तहत आजीवन कारावास की सजा दी जाती है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता के प्रति बहुत कठोर और कठोर व्यवहार किया है- चूंकि अपीलकर्ता पहले ही दस साल से अधिक की जेल की सजा काट चुका है, धारा 304 (भाग- I) आईपीसी के तहत आजीवन कारावास की सजा को पहले से ही भुगती गई सजा में बदल दिया गया है, जो न्याय के लक्ष्य को पूरा करेंगे।

चूंकि देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, इसलिए वाद के तथ्यों और परिस्थितियों और अभियुक्तों द्वारा जेल में व्यतीत अवधि को देखते हुए, दी गई सजा को सजा की अवधि में संशोधित किया गया है। (पैरा 26, 28, 29, 40, 42, 45, 47, 48, 60, 61)

आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-</u>

1. राज नारायण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2010 एआईआर एससीडब्ल्यू 521
2. कुस्ती मलैया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2013) 12 सुप्रीम कोर्ट वाद 680
3. अमर सिंह बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) (2020) 19 एससीसी 165
4. अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य. 2008 (61), एसीसी 972 (एससी)
5. भगवान जगन्नाथ मारकड बनाम महाराष्ट्र राज्य (2016) 10 एससीसी
6. हेमा बनाम राज्य, (2013) 81 एसीसी 1 (एससी)
7. मो. गियासुद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1977 एससी 1926

अनुवादित

8. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 7 एससीसी 257
9. रावदा शशिकला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2017 एससी 1166
10. जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 12 एससीसी 532
11. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 8 एससीसी 734
12. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह एवं अन्य, (2014) 7 एससीसी 323
13. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, (2015) 3 एससीसी 441
14. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य., (2016) 1 एससीसी 463 15. शाम सुंदर बनाम पूरन (1990) 4 एससीसी 731
16. म.प्र. बनाम सलीम, (2005) 5 एससीसी 554
17. रावजी बनाम राजस्थान राज्य., (1996) 2 एससीसी 175
18. जी. वी. सिद्धारमेश बनाम कर्नाटक राज्य, 2010 (87) एआईसी 43 (एससी)

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता पुत्तन यादव @ विपिन द्वारा सत्र न्यायधीश, कानपुर देहात द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-91 वर्ष 2013 (राज्य बनाम पुत्तन यादव @ विपिन) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 20.1.2014 के खिलाफ वर्तमान आपराधिक अपील दायर की गई है, जो अपराध संख्या-संख्या-638 वर्ष 2012 से उद्भूत है, अपीलकर्ता को भ०द०वि० की धारा 304 (भाग-I) भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराते हुए आजीवन कारावास और 5,000/- रुपये के जुर्माने की सजा डिफ़ॉल्ट क्लॉज़ के साथ सुनाई गई है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य, जैसा कि रिकॉर्ड से लिया गया है, यह है कि शिकायतकर्ता गोरे लाल पुत्र राम नाथ, निवासी ग्राम चकेरी, थाना-चकेरी, जिला कानपुर नगर द्वारा थाना-अकबरपुर, जिला-कानपुर देहात में एक लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, जिसमें कथन किया गया था कि सूचना देने वाले की भांजी लक्ष्मी लगभग दो साल की उम्र में, उसे चोटें आईं और उसे अपीलकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा कानपुर नगर के कबीर अस्पताल में भर्ती कराया गया। इलाज के दौरान उसकी मौत हो गई। आरोपी व्यक्तियों द्वारा सूचनाकर्ता की बहन अनीता को भी परेशान किया गया।

3. लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) के आधार पर मृत्यु सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-2) संबंधित थाना में 30.10.2012 को प्रातः 9.15 बजे दर्ज की गई, जिसमें प्रदर्श क-1 में वर्णित सभी विवरणों का उल्लेख किया गया था। शव परीक्षण और पंचनामा के बाद, मामले के पंजीकरण के लिए एक जी.डी. प्रविष्टि भी बनाई गई थी, जो कि प्रदर्श क-3 है।

4. मामले की जांच आगे बढ़ी। विवेचनाधिकारी ने गवाहों के बयान दर्ज कर मौके का निरीक्षण किया और नक़्शा नज़री तैयार किया। उन्होंने मृतका का पंचनामा

अनुवादित

और शव परीक्षण से संबंधित कागजात भी तैयार किए।

5. मृतका के शव का शव परीक्षण किया गया और डॉ. संजीव कुमार द्वारा दिनांक 30.10.2012 को दोपहर 2.30 बजे शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) तैयार की गई। मृतका के शव की जांच करने पर निम्नलिखित शव के निशान पाए गए:

"(1). घर्षण - 3 सेमी X 2 सेमी माथे के दाईं ओर दाईं ओर लगभग 3 सेमी दाहिनी आंख भौंह से ऊपर।

(2) घर्षण - 2 सेमी X 1 सेमी माथे के बाईं ओर, बाईं आंख भौंह से लगभग 4 सेमी।

(3) संलयन - 2 सेमी X 2 सेमी, शीर्ष पर (खोपड़ी के ऊपर)।

(4) संलयन - सूजन - 4 सेमी X 4 सेमी, पश्चकपाल क्षेत्र पर।

(5) संलयन - 5 सेमी X 4 सेमी, दाहिने गाल पर।

(6) संलयन - 3 सेमी X 3 सेमी, बाएं गाल पर।

6. डॉक्टर की राय में, मृत्यु महत्वपूर्ण भागों (सिर की चोट) पर चोट लगने के कारण सदमे के कारण हुई थी।

7. जांच पूरी करने के बाद, आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र (प्रदर्श क--का-12) दायर किया गया था। संबंधित मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और मामला सत्र न्यायालय द्वारा अनन्य रूप से विचारणीय होने के कारण सत्र न्यायालय के प्रति वचनबद्ध था।

8. आरोपी विचारण न्यायालय के समक्ष पेश हुआ और उसके खिलाफ भ०द०वि० की धारा 304 के तहत आरोप तय किया गया। अपीलकर्ता ने आरोप से इनकार किया और अपने मुकदमे का दावा किया।

9. विचारण आगे बढ़ा और अभियुक्त/अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष ने सभी पांच गवाहों से जिरह की है, जो इस प्रकार हैं:

1	गोरे लाल	अ०सा०-1, सूचनाकर्ता
2	श्रीमती अनीता	अ०सा०-2, मृतका की मां
3	हेड कॉन्सटबल राम औतार	अ०सा०-3, जी डी का मोहर्रिर
4	डॉ संजीव कुमार	अ०सा०-4, शव परीक्षण का डॉक्टर
5	आध्या प्रसाद वर्मा	अ०सा०-5, विवेचनाधिकारी

10. मौखिक संस्करण के समर्थन में, अभियोजन पक्ष की ओर से निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए और साबित किए गए:

1	तहरीरी रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
2	जी डी में मृत्यु की सूचना	प्रदर्श क-2
3	जी डी में इंदेराज	प्रदर्श क-3
4	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-4

अनुवादित

5	पंचनामा	प्रदर्श क-5
6	सी एम ओ को चिट्ठी	प्रदर्श क-6
7	चालान नाश	प्रदर्श क-7
8	सी एम ओ को चिट्ठी	प्रदर्श क-8
9	आर आई को चिट्ठी	प्रदर्श क-9
10	फ़ोटो नाश	प्रदर्श क-10
11	नक़्शा नज़री	प्रदर्श क-11
12	आरोप पत्र	प्रदर्श क-12

11. साक्ष्य के समापन के बाद, आरोपी अपीलकर्ता का बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें उसने अन्य बातों के साथ-साथ अपने झूठे निहितार्थ की दलील दी थी, क्योंकि उसकी पत्नी और ससुराल वालों के साथ उसके संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे। उन्होंने आगे कहा कि जब वह अपनी बेटी के साथ सीढ़ियां चढ़ रहे थे, तो वह फिसल गई और घायल हो गईं।

12. अपने मामले के समर्थन में बचाव पक्ष ने ब०सा०-1 रवींद्र और ब०सा०-2 शिवनाथ पाल से पूछताछ की है। तथापि, कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।

13. अ०सा०-1 और अ०सा०-2 तथ्य के गवाह हैं।

14. अ०सा०-1, अर्थात् गोरे लाल ने अपनी मौखिक गवाही में कहा है कि उसकी बहन की शादी अपीलकर्ता (विपिन @ पुत्तन यादव), निवासी गांव चिरौला, थाना-अकबरपुर, जिला कानपुर देहात के साथ हुई थी। मृतका उसकी भांजी थी। दिनांक 29.10.2012 को उसकी बहन के ससुराल वालों से टेलीफोन पर सूचना मिली कि उसका बहनोई विपिन @ पुत्तन उसकी भांजी को पीटने के बाद उसे कबीर अस्पताल, यशोदा नगर, कानपुर नगर में भर्ती कराया गया है। सूचनाकर्ता अस्पताल पहुंचा तो उसकी भांजी को मृत पाया। इसके बाद वह अपनी भांजी के शव के साथ प्राथमिकी दर्ज कराने के लिए पुलिस चौकी रनिया के पास आया। उसने आगे कहा है कि उसकी बहन और बहनोई के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे और वह उसे पीटता था।

15. अ०सा०-2 अनीता, अपीलकर्ता की पत्नी है। उसने कहा है कि उसकी शादी अपीलकर्ता के साथ आठ साल पहले हुई थी। उनके विवाह से तीन बच्चे पैदा हुए थे, लेकिन दो की मृत्यु हो गई थी। लक्ष्मी की उम्र करीब 2 साल थी। उसके घर के सामने स्थित सड़क पर, वह (मृतका) शौच करने लगी। इससे नाराज होकर अपीलकर्ता अपने भाई को डांटते और घसीटते हुए उसके घर की ओर भागा। वह भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ी। अपने भाई के घर में, उसने उसे जमीन पर पटक दिया, जिसके कारण उसका सिर दीवार से टकरा गया। इसके बाद, वह अपने ससुर और अपीलकर्ता के चचेरे भाई के साथ इलाज के लिए कबीर अस्पताल गई, जहां उसकी बेटी ने दम तोड़ दिया।

16. अ०सा०-3 से अ०सा०-5 औपचारिक गवाह हैं।

17. अ०सा०-3 कांस्टेबल राम औतार, प्राथमिकी के मोहर्रिर हैं, जिन्होंने मृत्यु सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-2 और जी.डी. प्रदर्श क-3 का पंजीकरण साबित किया है।

अनुवादित

18. अ०सा०-4 डॉ. संजीव कुमार ने मृतका का शव परीक्षण किया है और शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-4 तैयार की है।

19. अ०सा०-5 उप-निरीक्षक अध्ययन प्रसाद वर्मा, मामले के विवेचनाधिकारी हैं, जिन्होंने अपनी गवाही में पंचनामा की कार्यवाही को साबित किया है और शव परीक्षण से संबंधित पूछताछ और विभिन्न कागजात भी प्रदर्श क-5 से प्रदर्श क-10 के रूप में साबित किया है। नक़्शा नज़री प्रदर्श क-11 और आरोप पत्र प्रदर्श क-12 भी अ०सा०-5 द्वारा साबित किए गए थे।

20. पूर्वोक्त मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर, विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्त की दोषसिद्धि दर्ज की और उसे सजा सुनाई, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

21. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री सुधाकर यादव और राज्य के लिए श्री नितिन केसरवानी, अपर शासकीय अधिवक्ता और सुश्री मयूरी मेहरोत्रा को सुना।

22. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा विभिन्न आधारों पर आक्षेपित निर्णय और आदेश पर हमला किया गया है। यह तर्क दिया गया है कि अपीलकर्ता मृतका का असली पिता होने के नाते, मृतका को मारने का कोई मकसद नहीं था। घटना का कोई स्वतंत्र चश्मदीद गवाह नहीं है और अपीलकर्ता को इस मामले में झूठा फंसाया गया है, क्योंकि उसके अपनी पत्नी अनीता और उसके भाई, सूचनाकर्ता के साथ तनावपूर्ण संबंध थे। यह सिर्फ एक आकस्मिक मौत थी और अपीलकर्ता की अपराध करने में कोई भूमिका नहीं थी। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता की पत्नी अपने माता-पिता के साथ रहने पर जोर दे रही थी और अपीलकर्ता को खेत बेचने के बाद अपने माता-पिता के घर में उसके साथ रहने के लिए भी कहा था, लेकिन अपीलकर्ता ने इनकार कर दिया था। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन नहीं करते हैं और जांच दोषपूर्ण है।

23. पूर्वोक्त आधारों पर, वर्तमान अपील की अनुमति देकर आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द करने के लिए प्रार्थना की गई है।

24. प्रतिकूल, अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपील का जोरदार विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित निर्णय ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य पर आधारित है और इसमें कोई दुर्बलता नहीं है। यह चश्मदीद गवाह के बयान का मामला है और चश्मदीद गवाह/अ०सा०-2 का बयान विश्वसनीय है और चिकित्सा साक्ष्य से इसकी पुष्टि होती है। आरोपी अपीलकर्ता के झूठे फंसाने की कोई संभावना नहीं थी और मामले की जांच में कोई भौतिक चूक या अनियमितता नहीं पाई गई है। पूर्वोक्त आधारों के आधार पर, यह प्रार्थना की गई है कि अपील योग्यता से रहित है और खारिज करने योग्य है।

25. दोनों पक्षों के प्रतिद्वंद्वी तर्कों के प्रकाश में, हमने रिकॉर्ड पर पूरे मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का अध्ययन किया है।

26. चिकित्सा साक्ष्य साक्ष्य का एक महत्वपूर्ण टुकड़ा है, जो अगर अभियोजन

अनुवादित

पक्ष के संस्करण और चश्मदीद गवाह खाते की पुष्टि करता है, तो अभियोजन पक्ष निश्चित रूप से अपने मामले को साबित करने में सफल होगा।

27. यह सिद्धांत हमें मौखिक और चक्षुक साक्ष्य के प्रकाश में रिकॉर्ड पर चिकित्सा साक्ष्य को छानने की ओर ले जाता है।

28. अ०सा०-4 डॉ. संजीव कुमार ने मृतका का शव परीक्षण किया है, जो केवल दो वर्ष की एक छोटी लड़की थी। शव परीक्षण के समय पाई गई मृत्यु पूर्व चोटें अ०सा०-4 द्वारा दी गई गवाही के अनुसार घर्षण और संलयन थीं। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि डॉक्टर अ०सा०-4, जिन्होंने शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-4 साबित किया है, ने बाहरी रूप से वर्णित चोटों के नीचे खोपड़ी में थक्का रक्त पाया है और शीर्ष के नीचे सिवनी ढीले होने के साथ दोनों पार्श्विका हड्डियों का फ्रैक्चर भी पाया गया था और मेनिन्जेस और मेनिंगियल स्पेस के तहत थक्का रक्त भी मौजूद पाया गया था। मौत का तात्कालिक कारण महत्वपूर्ण अंगों पर लगी चोटों यानी सिर में चोट के कारण सदमा लगना था जो मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त था। माथे, खोपड़ी और गाल के क्षेत्र में घर्षण और संलयन की चोटें भी पाई गईं। अब अगर हम अभियोजन पक्ष के संस्करण पर ध्यान दें, जैसा कि अ०सा०-2 द्वारा उसके बयान में भी समझाया गया है, मृतका को पहले आरोपी द्वारा घसीटा गया और जमीन पर पटक दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप, उसका सिर दीवार से टकरा गया और उसे घातक चोट लगी, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि डॉक्टर द्वारा मृतका के शरीर पर पाई गई चोटें उसी तरह से हुई होंगी जैसे कि अ०सा०-2 द्वारा पेश की गई थीं।

29. चिकित्सा साक्ष्य का विश्लेषण हमें पंचनामा के माध्यम से ले जाता है, जिसे अ०सा०-5 द्वारा प्रदर्श क-5 के रूप में साबित किया गया है, जिसमें पंचों ने यह भी कहा है कि मृतका लक्ष्मी की मृत्यु हमले का परिणाम प्रतीत होती है। यह भी ध्यान देने वाली बात है कि पंचनामा में ही मृतका के शरीर पर मिले चोटों का जिक्र किया गया है। जैसा कि अ०सा०-1 द्वारा कहा गया है, पंचनामा 30.10.2012 को तैयार की गई है और शव परीक्षण भी 30.10.2012 को ही किया गया था। हमारा विचार है कि गरीब बच्ची को लगी चोटें उसकी मृत्यु का कारण बनने के लिए प्रकृति के सामान्य क्रम में पर्याप्त थीं और अभियोजन पक्ष की कहानी पूरी तरह से चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पुष्टि की जाती है।

30. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि केवल अपीलकर्ता की पत्नी, अ०सा०-2 की चक्षुक गवाही, रिकॉर्ड पर उपलब्ध है, जिसके अपने पति, अपीलकर्ता के साथ तनावपूर्ण संबंध थे। यह तर्क दिया जाता है कि यह झूठे निहितार्थ का मामला है और अ०सा०-2 की पूरी गवाही मनगढ़ंत और झूठी है। अपनी दलील को बल देने के लिए, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने बचाव पक्ष के सबूतों पर भी जोर दिया है, जो उनके अनुसार, घटना की सच्ची कहानी है।

31. अपीलकर्ता के अधिवक्ता का पूर्वोक्त तर्क हमें अभियुक्त द्वारा प्रदान किए गए

अनुवादित

साक्ष्य और रिकॉर्ड पर उपलब्ध अन्य सबूतों के माध्यम से ले जाता है।

32. ब०सा०-1 रवींद्र, अपीलकर्ता का पड़ोसी और भाई कहा जाता है। उन्होंने गवाही दी है कि मृतका उनकी भांजी थी और घटना के समय, आरोपी अपीलकर्ता की पत्नी अनीता उनके घर में मौजूद थी। जब उन्होंने लक्ष्मी की चीख सुनी, तो वे आरोपी के घर की ओर दौड़े और पाया कि जब अपीलकर्ता अपनी बेटी के साथ सीढ़ियां चढ़ रहा था, तो अचानक वह फिसल गई और उसे चोटें आईं। उसे कबीर अस्पताल ले जाया गया लेकिन इलाज के दौरान उसकी मौत हो गई। उन्होंने यह भी बताया कि अपीलकर्ता की पत्नी अपने माता-पिता के साथ रहने और आरोपी की जमीन बेचने के लिए तैयार थी, लेकिन जब वह ऐसा करने के लिए तैयार नहीं था, तो उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया। अपनी जिरह में, ब०सा०-1 ने कहा है कि जब वह मौके पर पहुंचा, तो लक्ष्मी पहले से ही घायल थी और उसके सिर, गाल और खोपड़ी पर चोटें आई थीं। ब०सा०-1 का उपरोक्त बयान यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि वह घटना के समय मौके पर मौजूद नहीं था और जब वह मौके पर पहुंचा, तो घटना पहले ही हो चुकी थी। इसलिए वह घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है।

33. ब०सा०-2 शिवनाथ पाल आरोपी अपीलकर्ता का पड़ोसी है। उन्होंने कहा है कि दिनांक 20.10.2012 को अपराह्न लगभग 3.30 बजे उन्होंने देखा कि पुत्तन यादव अपनी पुत्री लक्ष्मी के साथ लकड़ी की सीढ़ी से उनकी छत पर चढ़ रहे थे और अचानक वह फिसल गई और उन्हें चोटें आईं। वह दौड़कर मौके पर पहुंचे और इस बीच पुत्तन के भाई रवींद्र, उनकी पत्नी, पुत्तन की पत्नी और अन्य ग्रामीण भी वहां पहुंच गए और लक्ष्मी को अस्पताल ले जाया गया। अपनी जिरह में, ब०सा०-2 ने कहा है कि उसका घर आरोपी अपीलकर्ता के घर से केवल 12 कदमों की दूरी पर स्थित है।

34. रिकॉर्ड पर साक्ष्य की ठीक से जांच और विश्लेषण करने की दृष्टि से, हम अ०सा०-5 द्वारा सिद्ध नक़्शा नज़री प्रदर्श क-11 के माध्यम से गए हैं, जिसमें घटना के स्थान की स्पष्ट स्थलाकृति शामिल है। नक़्शा नज़री प्रदर्श क-11 के अवलोकन से पता चलता है कि शिवनाथ पाल ब०सा०-2 का कोई भी घर घटनास्थल के पास कहीं भी नहीं दिखाया गया है, जो इस तथ्य का प्रमाण है कि बचाव पक्ष द्वारा पेश किया गया तथाकथित चश्मदीद गवाह ब०सा०-2, दोषी का पड़ोसी नहीं था और घटना का चश्मदीद गवाह भी नहीं था।

35. ब०सा०-1 का बयान यह भी दर्शाता है कि घटना का स्थान दोषी का घर था, जबकि नक़्शा नज़री प्रदर्श क-11 में घटना का स्थान ब०सा०-1/रवींद्र के घर पर ही दिखाया गया है। अ०सा०-2/अनीता भी ब०सा०-1 के अनुरूप कोई बयान नहीं देती है क्योंकि वह बहुत स्पष्ट शब्दों में कहती है कि आरोपी बच्चे को सड़क से खींचकर उसके भाई रवींद्र के घर ले गया और वहां यह घटना हुई। अपनी जिरह में, उसने बताया है कि आरोपी ने उसकी बेटी को रवींद्र के घर के बाहर जमीन पर पटक दिया

अनुवादित

था। उसने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि, उस समय वह अपने जेठ रवींद्र के घर में मौजूद थी, लेकिन उसका बयान इस बिंदु पर विशिष्ट है कि यह घटना रवींद्र के घर पर हुई थी, न कि खुद आरोपी-अपीलकर्ता के घर के अंदर। अ०सा०-2 ने कुछ विश्वसनीय वक्तव्य भी दिए हैं। गौरतलब है कि उन्होंने स्पष्ट किया है कि रविंद्र के घर में और यहां तक कि उनके ससुराल वालों के घर में भी छत पर जाने के लिए सीढ़ी नहीं है। इस कथन की पुष्टि नक़्शा नज़री प्रदर्श क-11 से भी की जाती है। प्रदर्श क-11 के सावधानीपूर्वक अवलोकन से, हम पाते हैं कि ब०सा०-2 रवींद्र और दोषी-अपीलकर्ता के घर में कोई सीढ़ी नहीं दिखाई गई है।

36. उल्लेखनीय है कि आरोपी के घर में सीढ़ी का उल्लेख न करने के संबंध में विवेचनाधिकारी/अ०सा०-5 का बचाव पक्ष द्वारा आमना-सामना नहीं करवाया गया है। अ०सा०-5 ने एक विशिष्ट बयान दिया है कि घटना का स्थान रवींद्र का घर है और सूबेदार का घर अपीलकर्ता और रवींद्र के घर के बीच मौजूद है। मृतका की मां अनीता देवी अ०सा०-2 के इशारे पर नक़्शा नज़री तैयार किया गया है।

37. उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, यह कहानी कि घटना अपीलकर्ता के घर में उस समय हुई थी जब वह अपनी बेटी मृतका के साथ सीढ़ियों पर चढ़ रहा था, जैसा कि बचाव पक्ष द्वारा सामने रखा गया था, समाप्त हो जाता है और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा सही तरीके से खारिज कर दिया गया था।

38. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि घटना का कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है। अ०सा०-2/अनीता मृतका की मां है और एक हितबद्ध गवाह है। आगे यह तर्क दिया गया है कि मृतका की मौत एक आवासीय क्षेत्र में हुई है, लेकिन उक्त आसपास का कोई भी व्यक्ति अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही देने के लिए सामने नहीं आया है और अ०सा०-2 का एकमात्र सबूत रिकॉर्ड पर उपलब्ध है।

39. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा किए गए इस तर्क को पूरा करने के लिए, हमें अ०सा०-2 के बयान को छानना होगा। अ०सा०-2 ने अपने मुख्य परीक्षण में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जब अपीलकर्ता ने मृतका को पटक दिया, तो वह चिल्लायी, लेकिन उसकी चीख पर कोई नहीं आया। यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि अ०सा०-2 से इस बिंदु पर बचाव पक्ष द्वारा कोई जिरह नहीं की गई है। अब हमारे समक्ष प्रश्न उठता है कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा एकमात्र चश्मदीद गवाह को छोड़कर अन्य गवाहों से पूछताछ न करने से अभियोजन की कहानी दूषित हो जाती है। इस मुद्दे की कानूनी स्थिति और रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के आलोक में जांच किए जाने की आवश्यकता है। हम अ०सा०-2 की गवाही के आधार पर पाते हैं कि उसके अलावा आसपास का कोई भी व्यक्ति घटनास्थल पर नहीं आया था।

40. हमें यह ध्यान रखना होगा कि यह कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि किसी दिए गए तथ्य को साबित करने के लिए, गवाहों की विशेष संख्या की जांच

अनुवादित

करने की आवश्यकता नहीं है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 में यह प्रावधान किया गया है कि किसी भी मामले में किसी तथ्य के प्रमाण के लिए गवाहों की कोई विशेष संख्या आवश्यक नहीं होगी। राज नारायण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2010 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 521 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर संदर्भ दिया जा सकता है, जिसमें यह माना गया है कि यह आवश्यक नहीं है कि उन सभी व्यक्तियों, जो मौके पर मौजूद थे, की जांच की जानी चाहिए। यह साक्ष्य की गुणवत्ता है जिस पर न्यायालयों द्वारा ध्यान दिया जाना आवश्यक है न कि मात्रा। अ०सा०-2 की पूरी गवाही की बारीकी से जांच करने से यह पता चलता है कि उसका सबूत काफी निर्दोष और भरोसेमंद है और वह पूरी तरह से विश्वसनीय गवाह है। इसकी निरंतरता में उसका बयान काफी सहज है और सुसंगत विवरणों में कोई विरोधाभास नहीं है जैसे कि हमले का तरीका, घटना का स्थान, अपराध का लेखक और अन्य सभी संबंधित कारक। घटना के समय घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति काफी स्वाभाविक है, क्योंकि वह अपीलकर्ता के असली भाई रवींद्र के घर में बैठी थी, उसके अपने घर के पास, जहां घटना हुई थी। यह ध्यान रखना बहुत महत्वपूर्ण है कि अ०सा०-2 ने अपनी जिरह के समापन भाग में कहा है कि अपीलकर्ता ने अपनी पहली बेटी को भी गर्म पानी डालकर मार डाला था, हालांकि, उसने इसके बारे में किसी से कोई शिकायत नहीं की। इसके अलावा, हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि अ०सा०-2, गरीब मृतका की मां होने के बावजूद, अपीलकर्ता की पत्नी भी है। उसे अपनी बेटी की हत्या के लिए अपने ही पति को झूठा फंसाने का कोई मौका नहीं था। हालांकि बचाव पक्ष द्वारा एक दलील दी गई है कि अ०सा०-2 अपने पति से कृषि क्षेत्र बेचने और अपने माता-पिता के घर में उसके साथ रहने के लिए जोर दे रही थी, फिर भी हमें रिकॉर्ड पर इस आशय का कोई विश्वसनीय सबूत नहीं मिला है। यहां तक कि अपीलकर्ता के सगे भाई ब०सा०-1 रवींद्र का कहना है कि अनीता/अ०सा०-2 मृतका बच्चे के साथ घटना से दो महीने पहले अपने माता-पिता के घर से अपने ससुराल लौट आई थी और उस दिन से लेकर उस दिन तक अपीलकर्ता और अ०सा०-2 / अनीता के बीच कोई झगड़ा नहीं हुआ था। यह कथन सूचनाकर्ता पक्ष द्वारा अपीलकर्ता के झूठे फंसाने की किसी भी संभावना को भी खारिज करता है।

41. हम ध्यान दें कि अ०सा०-1 वर्तमान मामले में प्रचलित तथ्य का गवाह नहीं है। जाहिर है, वह घटना के समय मौजूद नहीं था और वह अपनी भांजी की मौत की सूचना पाकर अस्पताल पहुंचा। वह अ०सा०-2 का भाई है और अपने बयान में लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 साबित करता है और यह भी कहता है कि लिखित रिपोर्ट अनीता द्वारा उसे दी गई जानकारी पर आधारित है। उसने यह भी कहा कि अपीलकर्ता का व्यवहार उसकी बहन के साथ अच्छा नहीं था और वह उसे पीटता था। अ०सा०-2 ने इस तथ्य से इनकार किया है कि उसने

अनुवादित

कभी अपने पति से कानपुर शहर में उसके साथ अलग रहने के लिए जोर दिया था।

42. अ०सा०-2 के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच और विश्लेषण करने के बाद, हमें उसकी गवाही में कोई असंगत बयान या अलंकरण नहीं मिला। उसका बयान सभी दुर्बलताओं से मुक्त है और वह एक विश्वसनीय और प्राकृतिक गवाह साबित हुई है और इस तरह के गवाह के बयान के आधार पर दोषसिद्धि सुरक्षित रूप से दर्ज की जा सकती है, हालांकि वह घटना की एकमात्र गवाह है।

43. कुस्ती मलैया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2013) 12 सुप्रीम कोर्ट केस 680 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्धारित किया है:

"23. इस न्यायालय के निर्णयों की श्रेणी में यह माना गया है कि किसी व्यक्ति को एकल गवाह की एकमात्र गवाही पर दोषी ठहराने में कोई कानूनी बाधा नहीं है यदि उसका संस्करण स्पष्ट और विश्वसनीय है, क्योंकि सिद्धांत यह है कि साक्ष्य को तौला जाना चाहिए और गिना नहीं जाना चाहिए। वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 614 में, यह माना गया है कि यदि अदालत द्वारा एक विलक्षण गवाह की गवाही पूरी तरह से विश्वसनीय पाई जाती है, तो इस तरह के सबूत पर अभियुक्त की दोषसिद्धि दर्ज करने में कोई कानूनी बाधा नहीं है। उक्त घोषणा में आगे यह निर्णय दिया गया है कि साक्ष्य के कानून में किसी विशेष तथ्य के प्रमाण में गवाहों की किसी विशेष संख्या की जांच करने की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, एक गवाह की गवाही का सामना करते हुए, अदालत मौखिक गवाही को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकती है, अर्थात्, (i) पूरी तरह से विश्वसनीय, (ii) पूरी तरह से अविश्वसनीय, और (iii) न तो पूरी तरह विश्वसनीय और न ही पूरी तरह से अविश्वसनीय। पहली दो श्रेणियों में एकल गवाह की गवाही को स्वीकार करने या त्यागने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है। तीसरी श्रेणी के मामलों में कठिनाई उत्पन्न होती है। अदालत को चौकस रहना होगा और किसी एक गवाह की गवाही पर कार्रवाई करने से पहले विश्वसनीय गवाही, प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य द्वारा सुसंगत और अहम विवरणों में पुष्टि की तलाश करनी होगी। इसी प्रकार के विचार लल्लू मांझी और अन्य बनाम झारखंड राज्य (2003) 2 एस.सी.सी. 401, पृथीपाल सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (2012) 1 एस.सी.सी. 10 और झपसा कबरी और अन्य बनाम बिहार राज्य (2001) 10 एस.सी.सी. 94 में व्यक्त किए गए हैं।

44. अमर सिंह बनाम राज्य (दिल्ली के एनसीटी) (2020) 19 सुप्रीम कोर्ट केस 165 में भी यही विचार दोहराया गया है, जिसमें यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

एक सामान्य नियम के रूप में, न्यायालय एकल चश्मदीद गवाह की गवाही पर कार्य कर सकता है बशर्ते वह पूरी तरह से विश्वसनीय हो। किसी एक गवाह की

अनुवादित

एकमात्र गवाही पर किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने में कोई कानूनी बाधा नहीं है। साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 134 का यही तर्क है। लेकिन अगर गवाही के बारे में संदेह है, तो अदालतें पुष्टि पर जोर देंगी। यह संख्या नहीं है, मात्रा है, लेकिन गुणवत्ता अहम है जो वास्तव में सामग्री है। समय से सम्मानित सिद्धांत यह है कि साक्ष्य को तौला जाना चाहिए और गिना नहीं जाना चाहिए। इस सिद्धांत पर साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 का भवन खड़ा है। परीक्षण यह है कि क्या सबूत में सच्चाई है, ठोस, विश्वसनीय और भरोसेमंद है या अन्यथा (देखें सुनील कुमार बनाम राज्य (दिल्ली के एनसीटी) (2003) 11 एस.सी.सी. 367)।

45. अ०सा०-2 के साक्ष्य के विश्लेषण पर, हम पाते हैं कि उसका सबूत ठोस और भरोसेमंद है और आगे चिकित्सा साक्ष्य से पुष्टि हो जाती है। उसकी गवाही हमें इस निष्कर्ष पर ले जाती है कि अ०सा०-2 एक विश्वसनीय और प्राकृतिक गवाह है और उसके साक्ष्य में पाई गई मामूली विसंगतियां, यदि कोई हों, तो अनदेखी की जा सकती हैं।

46. अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य 2008 (61), ए.सी.सी. 972 (एस.सी.) के मामले में यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि यदि किसी प्रत्यक्षदर्शी की गवाही अन्यथा विश्वसनीय और भरोसेमंद पाई जाती है, तो केवल इसलिए क्योंकि उसकी गवाही में कुछ महत्वहीन, सामान्य या प्राकृतिक विरोधाभास दिखाई दिए हैं, उस पर अविश्वास और अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि गवाही में विसंगतियां, विरोधाभास, अतिशयोक्ति, अलंकरण और विसंगतियां केवल सामान्य हैं और प्रकृति में महत्वपूर्ण नहीं हैं, तो एक प्रत्यक्षदर्शी की गवाही को स्वीकार करना होगा और उस पर कार्रवाई करनी होगी। सामान्य विसंगतियों और भौतिक विसंगतियों के बीच अंतर यह है कि जबकि सामान्य विसंगतियां किसी पक्ष की विश्वसनीयता को खराब नहीं करती हैं, भौतिक विसंगतियां ऐसा करती हैं।

47. अ०सा०-2 के साक्ष्य को भी इस आधार पर चुनौती दी गई है कि वह मृतका की असली मां है और इस तरह, वह एक हितबद्ध गवाह है और उसके सबूत को सुसमाचार सत्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

48. जहां तक अ०सा०-2 के एक हितबद्ध और रिश्तेदार गवाह होने का संबंध है, इस संदर्भ में भगवान जगन्नाथ मार्कंड बनाम महाराष्ट्र राज्य (2016) 10 एस.सी.सी. में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक मुकदमे में गवाह की गवाही को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि गवाह अपराध के पीड़ित का रिश्तेदार या परिवार का सदस्य है। ऐसे मामले में न्यायालय को ऐसे गवाह के साक्ष्य का विश्लेषण करने में सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यदि संबंधित गवाह की गवाही अन्यथा विश्वसनीय पाई जाती है, तो आरोपी को ऐसे संबंधित गवाह की गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है।

49. मामले की जांच भी अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई है, जो जोरदार

अनुवादित

प्रस्तुत करता है कि जांच दोषपूर्ण है और जांच में कई विसंगतियां हैं। हालांकि, रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि वर्तमान चश्मदीद गवाह के बयान पर आधारित मामला है और चश्मदीद गवाह/अ०सा०-2 ने घटना का एक ठोस और विश्वसनीय विवरण दिया है। उसके बयान को चिकित्सा साक्ष्य से पूर्ण पुष्टि मिलती है। विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल पर वही पाया है जो अ०सा०-2 द्वारा वर्णित किया गया है। हमें मामले की जांच में कोई भौतिक अनियमितता या चूक/लापरवाही नहीं मिली है। इसके अलावा, चूंकि अभियोजन का मामला अच्छी तरह से स्थापित है और चिकित्सा साक्ष्य के साथ समर्थित चक्षुक साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है, इसलिए विवेचनाधिकारी की ओर से लापरवाही या चूक, यदि कोई हो, अभियोजन पक्ष के संस्करण पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती है।

50. हेमा बनाम राज्य, (2013) 81 ए.सी.सी. 1 (सुप्रीम कोर्ट) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि विवेचनाधिकारी द्वारा जांच में किसी भी अनियमितता या कमी से, जब यह अन्यथा साबित हो जाता है, अभियोजन के मामले को खारिज करने की आवश्यकता नहीं है। केवल आवश्यकता साक्ष्य के मूल्यांकन में अतिरिक्त सावधानी का उपयोग है। जब चक्षुक गवाही विश्वसनीय और ठोस पाई जाती है, एक दोषपूर्ण जांच अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं हो सकती है।

51. पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह दोहराया जा सकता है कि वर्तमान मामले में जांच किसी भी महत्वपूर्ण अनियमितता से ग्रस्त नहीं है। वहीं, प्राथमिकी और जी.डी. का पंजीकरण अ०सा०-3 द्वारा साबित किया गया है, जबकि अ०सा०-1 लिखित रिपोर्ट को साबित करता है। पंचनामा और शव परीक्षण से संबंधित प्रासंगिक कागजात अ०सा०-5 द्वारा ठीक से साबित किए गए हैं।

52. गवाहों के मौखिक साक्ष्य, दस्तावेजी साक्ष्य और शव परीक्षण रिपोर्ट सहित चिकित्सा साक्ष्य पर विचार करते हुए, वर्तमान अपीलकर्ता के अपराध के बारे में हमारे दिमाग में कोई संदेह नहीं बचा है, जैसा कि विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर सबूतों के सावधानीपूर्वक विश्लेषण के बाद निष्कर्ष निकाला है। हम इससे सहमत हैं और तदनुसार, धारा 304 (भाग- 1) भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता की सजा की पुष्टि करते हैं।

53. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने अपने तर्क के दौरान आगे अनुरोध किया है कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज की गई सजा बहुत गंभीर और कठोर है और यह प्रस्तुत करती है कि दोषी/अपीलकर्ता का मृतका को मारने का कोई इरादा नहीं था। वह मृतका का असली पिता था और उसका अपनी बेटी को मारने का कोई मकसद नहीं था और कुछ ही पलों में यह घटना हो गई। वह घटना के समय एक जवान आदमी था और पहले से ही दस साल से अधिक समय तक कैद में बिता चुका है और अब वह एक पश्चाताप करने वाला व्यक्ति होना चाहिए।

अनुवादित

54. अब यह हमें सजा की मात्रा पर ले जाता है, विशेष रूप से धारा 304 (भाग-I) भ०द०वि० के तहत, जहां विचारण न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है। सजा देने के लिए हमें अपने देश में सजा के सिद्धांतों को ध्यान में रखना होगा।

55. प्रतिशोधी सिद्धांत को हतोत्साहित करते हुए, सजा के सुधारक सिद्धांत को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मोहम्मद अली खान में प्रभावित किया गया है। गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1926। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह देखा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आमतौर पर सुधारा जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना होगा। उप-संस्कृति जो असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए उबारना है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' के दृष्टिकोण के बजाय चिकित्सीय होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग की पंगुता पैदा करती है। यदि आप किसी व्यक्ति को प्रतिशोध की सजा देना चाहते हैं, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, मानव का चोटों से सुधार नहीं होगा।

56. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एस.सी.सी. 257] में 'उचित दंड' की व्याख्या यह देखते हुए की गई थी कि दंड अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की मात्रा का निर्धारण करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए।

57. यदि हम विभिन्न निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कानूनी सिद्धांतों का अनुवाद करते हैं, जैसे, रवाडा शशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 1166, जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 12 एस.सी.सी. 532, गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 8 एस.सी.सी. 734, सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह और अन्य, (2014) 7 एस.सी.सी. 323, पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, (2015) 3 एस.सी.सी. 441, राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, (2016) 1 एस.सी.सी. 463, शाम सुंदर बनाम पूरन (1990) 4 एस.सी.सी. 731, एमपी बनाम सलीम, (2005) 5 एस.सी.सी. 554 और रावजी बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एस.सी.सी. 175, हमारे सामने जो स्थापित

अनुवादित

कानूनी स्थिति उभरती है, वह यह है कि प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर उचित विचार करने के बाद उचित सजा दी जानी चाहिए, अपराध की प्रकृति और जिस तरीके से इसे निष्पादित या प्रतिबद्ध किया गया था। यह न्यायालय का दायित्व है कि वह लगातार खुद को याद दिलाए कि पीड़ित का अधिकार, और यह कहा जाए, कुछ अवसरों पर पीड़ित व्यक्ति के साथ-साथ बड़े पैमाने पर समाज भी पीड़ित हो सकता है, कभी भी हाशिए पर नहीं जा सकता है। सजा का माप अपराध की गंभीरता के अनुपात में होना चाहिए। सजा का उद्देश्य समाज की रक्षा करना और कानून के घोषित उद्देश्य को प्राप्त करने में अपराधी को रोकना होना चाहिए। इसके अलावा, यह उम्मीद की जाती है कि न्यायालय सजा देने की प्रणाली का संचालन करेंगे, ताकि ऐसी सजा दी जा सके जो समाज की अंतरात्मा को दर्शाता है और सजा की प्रक्रिया को कठोर होना चाहिए जहां यह होना चाहिए। न्यायालय अपने कर्तव्य में विफल रहेगा, यदि किसी ऐसे अपराध के लिए उचित सजा नहीं दी जाती है जो न केवल व्यक्तिगत पीड़ित के खिलाफ बल्कि उस समाज के खिलाफ भी किया गया है जिससे अपराधी और पीड़ित संबंधित हैं। किसी अपराध के लिए दी जाने वाली सजा अप्रासंगिक नहीं होनी चाहिए, लेकिन यह उस अत्याचार और क्रूरता के अनुरूप होनी चाहिए जिसमें अपराध को अंजाम दिया गया है, अपराध की भयावहता सार्वजनिक घृणा की मांग करती है और इसे 'अपराधी के खिलाफ न्याय के लिए समाज की पुकार का जवाब देना चाहिए'।

58. कानून के उपरोक्त प्रस्तावों को ध्यान में रखते हुए, सर्वोपरि सिद्धांत जो मार्गदर्शक लेजर बीम होना चाहिए, वह यह है कि सजा अपराध की गंभीरता के अनुपात में होनी चाहिए।

59. जी. बनाम सिद्धरमेश बनाम कर्नाटक राज्य, 2010 (87) एआईसी 43 (एस.सी.) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय, जहां दहेज हत्या के मामले में दोषी पति द्वारा अपील दायर की गई थी, अपीलकर्ता की अपील का फैसला करते हुए, सजा को संशोधित किया। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 31 को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"31. निष्कर्ष में, हम संतुष्ट हैं कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अपीलकर्ता को धारा 304-बी भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया था। हालांकि, निचली अदालतों द्वारा लगाई गई आजीवन कारावास की सजा हमें अत्यधिक प्रतीत होती है। अपीलकर्ता एक युवा है और अतिरिक्त सत्र न्यायधीश और उच्च न्यायालय द्वारा दोषी ठहराए जाने के बाद पहले ही 6 साल की कैद काट चुका है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए हमारा विचार है कि 10 साल के सश्रम कारावास की सजा न्याय के उद्देश्यों को पूरा करेगी। तदनुसार, धारा 304-बी, भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता की दोषसिद्धि की पुष्टि करते हुए, आजीवन कारावास की सजा को घटाकर 10 साल के सश्रम कारावास में बदल दिया जाता है। अपीलकर्ता के खिलाफ

अनुवादित

पारित अन्य दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की जाती है।

60. पूर्वोक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को लागू करते हुए और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि धारा 304 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए कोई न्यूनतम सजा प्रदान नहीं की गई है, यह हमें आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से प्रतीत होता है कि आजीवन कारावास के लिए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा की मामले की संपूर्णता को मामले के तथ्य और परिस्थितियां और अपराध की गंभीरता ध्यान में रखते हुए दी गई सजा बहुत कठोर है । माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जैसा कि ऊपर चर्चा की है, ने निर्णय दिया है कि दांडिक न्याय प्रणाली में अंतनहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए। उसी सुधारात्मक दृष्टिकोण को अपनाते हुए, हम मानते हैं कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए।

61. सजा के सुधारात्मक सिद्धांत और "आनुपातिकता के सिद्धांत" को ध्यान में रखते हुए, यह हमें प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता को विचारण न्यायालय द्वारा धारा 304 (भाग- I) भ०द०वि० के तहत दी गई आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर और गंभीर है। अपीलकर्ता 12.11.2012 से यानी पिछले दस साल से अधिक समय से जेल में है। इस तथ्य को अपर शासकीय अधिवक्ता ने भी स्वीकार किया है।

62. इसलिए, हमारा विचार है कि चूंकि अपीलकर्ता पहले ही दस साल से अधिक जेल की सजा काट चुका है, इसलिए धारा 304 (भाग- I) भ०द०वि० के तहत आजीवन कारावास की सजा को पहले से ही भुगती गई सजा में बदला जाता है, जो न्याय के उद्देश्यों को पूरा करेगा।

63. तदनुसार, अपील को, सजा के उपरोक्त संशोधन के अधीन, आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है।

64. रजिस्ट्री को आवश्यक अनुपालन के लिए रिकॉर्ड को निचली अदालत को प्रेषित करने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 2 ILRA 771

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 08.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

आपराधिक अपील संख्या 1213/2020

मिथलेश ...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अनुवादित

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री सूरज कुमार सिंह, श्री अरविंद कुमार सिंह, श्री नूर मोहम्मद, श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 32- मृत्यु पूर्व कथन दर्ज करने की पूरी प्रक्रिया में कोई शिक्षण नहीं और प्रदर्श क13 एक वास्तविक और निर्दोष बयान है। पी.डब्ल्यू.10 आर.के. सिंह, तहसीलदार/कार्यकारी मजिस्ट्रेट एक जिम्मेदार अधिकारी है और कोई इच्छुक गवाह नहीं है - रिकॉर्ड पर साक्ष्य के विश्लेषण से यह स्थापित करने के लिए कोई भौतिक परिस्थिति नहीं मिली है कि तहसीलदार का अभियुक्तों के विरुद्ध कोई आशय था।

मृत्यु पूर्व कथन को सिखाया हुआ नहीं कहा जा सकता, जहां मजिस्ट्रेट ने इसे उचित तरीके से दर्ज किया है और अदालत को यह स्वाभाविक और सत्य प्रतीत होता है।

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 32- मृत्यु पूर्व कथन को दोषसिद्धि का एकमात्र आधार मानने की कानूनी स्थिति यह है कि ऐसा तभी किया जा सकता है जब इसे सिखाया न गया हो, स्वेच्छा से दिया गया हो और पूरी तरह से विश्वसनीय हो- वाद में अदालत यह निष्कर्ष पर पहुंचती है कि मृत्यु पूर्व कथन सत्य और विश्वसनीय है,

व्यक्ति द्वारा उस समय दर्ज किया गया है जब मृतक घोषणा करने के लिए शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ था और यह किसी ट्यूशन/दबाव/संकेत के तहत नहीं किया गया है; यह दोषसिद्धि दर्ज करने का एकमात्र आधार हो सकता है। ऐसी स्थिति में किसी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। डॉक्टर के प्रमाणीकरण के अभाव में मृत्यु पूर्व बयान की विश्वसनीयता घातक नहीं है यदि इसे रिकॉर्ड करने वाला व्यक्ति संतुष्ट था कि मृतक मानसिक स्थिति में था।

निर्धारित कानून है कि दोषसिद्धि पूरी तरह से, बिना किसी अतिरिक्त पुष्टि के और डॉक्टर के प्रमाणपत्र की अनुपस्थिति के बावजूद, मृत्यु पूर्व दिए गए बयान पर आधारित हो सकती है, जहां वह प्राकृतिक, विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया जाता है।

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 300, 302 और 304 - अपराध आईपीसी की धारा 304 भाग-1 के तहत दंडनीय होगा-ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, अभियुक्त का मृतक की मृत्यु का कोई आशय नहीं था, हालाँकि चोटें प्रकृति के सामान्य क्रम में पर्याप्त थीं जो मौत का कारण बना, आरोपी का मृतक को खत्म करने का कोई सहाय नहीं था, इसलिए तत्काल मामला आईपीसी की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है- अपीलकर्ता की भूमिका जो कि मृत्युपूर्व कथन और अन्य रिकॉर्ड से स्पष्ट है और हम भी रखते हैं कि मृतक घटना के बाद 5 दिनों तक जीवित रहा और अंततः सेप्टीसीमिया से मर गया- अपीलकर्ता को आईपीसी की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया गया। आईपीसी की धारा 304 पैरा

अनुवादित

I के तहत इसे परिवर्तित करना आवश्यक है।

जहां आरोपी ने बिना किसी पूर्व-चिंतन या पूर्व आशय के अपराध किया था और मृतक की कई दिनों के बाद सेप्टीसीमिया के कारण मृत्यु हो गई थी, तो हत्या के अपराध के बजाय, आरोपी को आईपीसी की धारा 304 भाग- I के तहत गैर-इरादतन हत्या के अपराध के लिए दोषी ठहराया जाएगा। (पैरा 37, 39, 47 51, 56)

आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-</u>

1. राज्य बनाम वीर पाल एवं अन्य (2022) 2 एससीसी (सीआरएल) 224
2. लाखन बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2010) 8 एससीसी 514
3. कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य (2013) 3 एससीसी 280
4. गुलजारी लाल बनाम हरियाणा राज्य (2016) 4 एससीसी 583
5. शेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (2008) 4 एससीसी 265
6. सुधाकर बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2012) 7 एससीसी 569
7. बी. सांघिकाला बनाम मध्य प्रदेश राज्य., 2005 एससीसी (सीआरएल) 171
8. तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 4 एससीसी 250
9. बी.एन. कवाटकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304
10. वीरन और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2011) 5 एससीआर 300
11. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मो. इकराम और अन्य, (2011) 8 एससीसी 80
12. बेंगाई मंडल @ बेगाई मंडल बनाम बिहार राज्य (2010) 2 एससीसी 91
13. मणिबेन बनाम गुजरात राज्य (2009) 8 एससीसी 796
14. पवन कुमार बनाम उत्तराखंड राज्य (2021) 11 एससीसी 53

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-3, सहारनपुर के न्यायालय ने वर्तमान अपीलकर्ता मिथलेश को धारा 302 भ०द०वि० के तहत सत्र परीक्षण संख्या-520 वर्ष 2015 (राज्य बनाम मिथलेश) में केस अपराध संख्या-38/2015, थाना-तीतरो, जिला-सहारनपुर से उत्पन्न, के लिए दोषी ठहराया और उसे आजीवन कारावास और 20,000/ रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई और जुर्माने का भुगतान न करने के मामले में 6 माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा, अत: यह अपील की गई है।

2. प्राथमिकी से अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि सूचनाकर्ता और अभियुक्त के बीच कुछ भूमि विवाद था। दिनांक 9.4.2015 को सूचनाकर्ता के पुत्र देवेन्द्र ने उस जमीन से कुछ पेड़ काटकर थाने में आरोपियों से शिकायत करवाई। जब देवेंद्र उक्त थाने जा रहा था तो थाने के बाहर

अनुवादित

खड़े आरोपी श्रीमती मिथलेश ने हत्या के इरादे से देवेंद्र पर पेट्रोल डालकर आग लगा दी। घटना को सूचनाकर्ता, उसके पुत्र रविंद्र और रणपाल पुत्र मेहर चंद ने देखा। घायल को उपचार के लिए ले जाया गया और लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 थाना को दी गई, जिसके आधार पर धारा 307 भ०द०वि० के तहत चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-2 दर्ज की गई और संबंधित जीडी प्रदर्श क-3 में प्रवेश किया गया। घायल को जिला अस्पताल सहारनपुर और बाद में उच्चतर केंद्र रेफर किया गया। उन्हें 10.04.2015 को दिल्ली के सफदरजंग अस्पताल में भर्ती कराया गया था, जहां उपचार के दौरान 14.04.2015 को उनकी मृत्यु हो गई। जिला अस्पताल सहारनपुर में घायल देवेंद्र की डॉ. प्रवीण कुमार द्वारा चिकित्सकीय जांच की गई, जिन्होंने दोनों कोहनी, कमर और खोपड़ी को छोड़कर शरीर पर सतही गहरी जलन पाई। डॉक्टर द्वारा यह पाया गया कि चोटें पेट्रोल या मिट्टी के तेल की सहायता से आग लगाने के कारण हो सकती हैं और मेडिको लीगल रिपोर्ट प्रदर्श क-11 तैयार की गई थी। जब घायल को सफदरजंग अस्पताल, दिल्ली लाया गया, तो उसकी डॉ अक्षत वाहन द्वारा चिकित्सकीय जांच की गई, जिसने उसके शरीर पर 85% जलने की चोटें पाईं और उसे आईसीयू में भर्ती कराया गया और मेडिको लीगल रिपोर्ट प्रदर्श क-5 तैयार की गई।

3. मृतक की मृत्यु के बाद मामले को धारा 302 भ०द०वि० में बदल दिया गया था और उसकी शव परीक्षा डॉ मुकेश कुमार बंसल द्वारा की गई थी, जो निम्नानुसार पाया गया था:

"बाहरी परीक्षा (चोट आदि):

संक्रमित एपिडर्मल से त्वचीय थर्मल बर्न चोटें पेट के निचले हिस्से, दाएं अग्रभाग के पीछे और दाहिने हाथ को छोड़कर पूरे शरीर में मौजूद हैं, दोनों हथेलियां, दोनों एकमात्र नेक्रोटिक बेस को कवर करने वाले पीले हरे रंग की दुर्गंधयुक्त मवाद को प्रकट करने वाले स्थानों पर त्वचा छिल गई। स्थानों पर मौजूद त्वचा का काला पड़ना। जगह-जगह मौजूद बालों का झुलसना, जलने का कुल क्षेत्र शरीर की सतह के कुल क्षेत्रफल का लगभग 85% है।

4. डॉक्टर द्वारा यह राय दी गई थी कि मृत्यु शरीर की कुल सतह क्षेत्र के लगभग 85% संक्रमित मृत्यु पूर्व फ्लेम थर्मल बर्न चोटों के परिणामस्वरूप सेप्टिकैमिक शॉक के कारण हुई थी और तदनुसार, शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-12 तैयार की गई थी। मामले की जांच सबसे पहले श्री वीरेश पाल गिरी द्वारा की गई थी, जिन्होंने गवाहों के बयान दर्ज किए और नक़्शा नज़री प्रदर्श क-9 के निरीक्षण के बाद उनके द्वारा भी तैयार किया गया था और अर्ध जले हुए कपड़े, सादी मिट्टी और सड़क के पथरीले हिस्से को भी जब्त कर लिया गया था और फ़र्द प्रदर्श क-10 तैयार किया गया था। विवेचनाधिकारी ने घायल देवेंद्र का बयान भी दर्ज किया, जिसकी फिटनेस टू स्टेटमेंट डॉ. सरसीज शर्मा ने फिटनेस सर्टिफिकेट प्रदर्श क-4 के माध्यम से प्रमाणित की थी। हालांकि, धारा 302 भ०द०वि० के तहत मामले में बदलाव के

अनुवादित

बाद थानाध्यक्ष कपिल गौतम द्वारा जांच की गई, जिन्होंने जांच की बाकी कार्यवाही की और धारा 302 भ०द०वि० के तहत पर्याप्त सबूत मिलने के बाद आरोप पत्र प्रदर्श क-8 अदालत में प्रस्तुत किया गया। हालांकि, 14.04.2015 को उपरोक्त देवेंद्र की मृत्यु पूर्व घोषणा श्री आर.के सिंह, तहसीलदार द्वारा दर्ज की गई थी, जिन्होंने प्रदर्श क-13 तैयार किया था, जिसे सफदरजंग अस्पताल, दिल्ली में दर्ज किया गया था। अभियुक्त न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ और सत्र न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय मामला सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध था। आरोपी के खिलाफ धारा 302 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किया गया था, जिसमें उसने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

5. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए मौखिक और दस्तावेजी सबूतों पर भरोसा किया।

6. मौखिक साक्ष्य में 11 गवाहों की जांच की गई है, जो इस प्रकार हैं:

1	विजयपाल सूचनाकर्ता, मृतक का पिता	अ०सा०-1
2	रवींद्र चश्मदीद गवाह	अ०सा०-2
3	एच सी पी घसीटू प्राथमिकी का लेखक	अ०सा०-3
4	डॉ अनवर अंसारी, सी एच सी गंगोह मेडिकल कॉलेज में चुटैल का परीक्षण किया	अ०सा०-4
5	डॉ आकाश वाहन, मेडिको लीगल रिपोर्ट का गवाह, डेथ समरी और डेथ रिपोर्ट	अ०सा०-5
6	इन्स्पेक्टर कपिल गौतम, दूसरा विवेचक	अ०सा०-6
7	दारोग़ा विरेश पाल गिरी, पहला विवेचक	अ०सा०-7
8	डॉ प्रवीण कुमार, मेडिकल परीक्षण का गवाह	अ०सा०-8
9	डॉ मुकेश कुमार बंसल, शव परीक्षण का गवाह	अ०सा०-9
10	आर के सिंह तहसीलदार, मृत्यु पूर्व बयान का गवाह	अ०सा०-10
11	डॉ सरसीज शर्मा, चुटैल देवेन्द्र की फिट्नेस का गवाह	अ०सा०-11

अनुवादित

7. मौखिक साक्ष्य का समर्थन करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य दायर किए गए हैं:

1	तहरीरी रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
2	चिक प्राथमिकी	प्रदर्श क-2
3	जी डी इंदेराज	प्रदर्श क-3
4	सी एच सी गंगोह का ईमरजेनसी रजिस्टर	प्रदर्श क-4
5	सफदरजंग अस्पताल दिल्ली की मेडिकल रिपोर्ट	प्रदर्श क-5
6	डेथ समरी	प्रदर्श क-6
7	डेथ रिपोर्ट	प्रदर्श क-7
8	आरोप पत्र	प्रदर्श क-8
9	नक़्शा नज़री	प्रदर्श क-9
10	फ़र्द बरामदगी	प्रदर्श क-10
11	जिला अस्पताल सहारनपुर की मेडिकल रिपोर्ट	प्रदर्श क-11
12	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-12
13	मृत्यु पूर्व बयान	प्रदर्श क-13
14	एफ एस एल रिपोर्ट	पेपर न-86 क

8. साक्ष्य समाप्त होने के बाद, अभियुक्त के सामने दोषीकारक परिस्थितियां और साक्ष्य रखे गए, जिसने साक्ष्यों के झूठा होने का दावा किया और भूमि विवाद के संबंध में दुश्मनी के कारण झूठे फंसाने का बचाव किया। अपनी बेगुनाही का दावा करते हुए, आरोपी ने ब०सा०-1 बिल्लू और ब०सा०-2 नफी सिंह का भी परीक्षण करवाया।

9. अ०सा०-1 विजय पाल मृतक देवेंद्र सिंह का सूचनाकर्ता और पिता है, जिसने अपने बयान में अभियोजन पक्ष के बयान की पुष्टि की और कहा है कि घटना के समय, आरोपी थाने के गेट के सामने खड़ा था और देवेंद्र के ऊपर पेट्रोल या मिट्टी का तेल या कोई ज्वलनशील वस्तु फेंकी और उसे माचिस की तीली से आग लगा दी। इस घटना को उसके भाई पाला राम और मदन ने भी देखा, जो उसके साथ मौके पर आए थे। उनके बेटे को गंगोह अस्पताल ले जाया गया और फिर जिला अस्पताल, सहारनपुर ले जाया गया जहां से उसे दिल्ली रेफर कर दिया गया, जहां 14.04.2015 को उसकी मृत्यु हो गई। उन्होंने लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 साबित की है और यह भी कहा है कि 1992 से पक्षों के बीच एक दीवानी मुकदमा लंबित था। हालांकि, अदालत के समक्ष उनके बयान और विवेचनाधिकारी को दिए गए बयान के बीच कुछ विरोधाभास थे, लेकिन विरोधाभास बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं और अभियोजन पक्ष के मामले की जड़ पर

अनुवादित

प्रहार नहीं करते हैं। विरोधाभास, जैसा कि हम ध्यान देते हैं, मामूली और महत्वहीन हैं।

10. अ०सा०-2 रवींद्र को घटना का चश्मदीद गवाह कहा जाता है, जिसने गवाही दी है कि उसने आरोपी को देवेंद्र के शरीर पर कोई ज्वलनशील पदार्थ डालते हुए नहीं देखा था, बल्कि उसे आग लगाते हुए देखा था। पक्षकारों के बीच कुछ भूमि विवाद के संबंध में दुश्मनी के तथ्य की भी इस गवाह द्वारा पुष्टि की गई है। इस गवाह का बयान स्पष्ट रूप से स्वाभाविक और भरोसेमंद है और उसके बयान में कोई महत्वपूर्ण विरोधाभास नहीं पाया जाता है।

11. अ०सा०-3 एचसीपी घसीतु ने चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-2 और केस इंदेराज जी.डी. प्रदर्श क-3 साबित किया है और कहा है कि प्राथमिकी सूचनाकर्ता विजयपाल द्वारा दी गई लिखित रिपोर्ट के आधार पर दर्ज की गई थी।

12. अ०सा०-4 डॉ. अनवर अंसारी ने सी.एच.सी. गंगून में घायल देवेन्द्र की जांच की है, हालांकि इस गवाह के अनुसार घायलों को प्राथमिक उपचार देने के बाद उन्हें एस.बी.डी अस्पताल सहारनपुर रेफर कर दिया। उन्होंने इमरजेंसी रजिस्टर प्रदर्श क-4 साबित कर दिया है।

13. अ०सा०-5 डॉ. अक्षत वाहन ने बताया था कि उन्होंने घायल को अस्पताल में भर्ती कराया था, जो उस समय 85% जल चुका था। उन्हें आईसीयू में भर्ती कराया गया था, जहां इलाज के दौरान 14.04.2015 को उनकी मृत्यु हो गई। इस गवाह ने मेडिको लीगल रिपोर्ट, डेथ समरी और देवेंद्र की डेथ रिपोर्ट को क्रमशः प्रदर्श क-5, प्रदर्श क-6 और प्रदर्श क-7 साबित किया है।

14. अ०सा०-6 थानाध्यक्ष कपिल गौतम धारा 302 भ०द०वि० में बदलाव के बाद मामले का दूसरा विवेचनाधिकारी है। उन्होंने पंचनामा की कार्यवाही को साबित किया है और आरोप पत्र प्रदर्श क-8 भी दायर की है।

15. अ०सा०-7 एसआई वीरेशपाल गिरि, प्रथम विवेचनाधिकारी ने पंचनामा की कार्यवाही, नक़्शा नज़री प्रदर्श क-9 और जब्ती ज्ञापन प्रदर्श क-10 को साबित किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि उन्होंने 13.4.2015 को दिल्ली के सफदरजंग अस्पताल में घायल देवेंद्र का बयान लिया था।

16. अ०सा०-8 डॉ. प्रवीण कुमार ने बताया है कि उन्होंने एस.बी.डी अस्पताल, सहारनपुर में देवेंद्र की मेडिकल जांच की थी। मेडिको लीगल रिपोर्ट प्रदर्श क-11 को इस गवाह ने साबित कर दिया है और उसने इसे जलने का मामला पाया था।

17. अ०सा०-9 मृतक का शव परीक्षण करने वाले डॉ. मुकेश कुमार और शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-12 इस गवाह द्वारा सिद्ध हो चुकी है।

18. अ०सा०-10 आर.के. सिंह, तहसीलदार ने अपने बयान में कहा है कि 14.04.2015 को एस.डी.एम के निर्देश पर, उन्होंने मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया और प्रदर्श क-13 साबित किया।

19. अ०सा०-11 डॉ. सरसीज शर्मा ने इस तथ्य को सिद्ध किया है कि दिनांक 13.04.2015 को जब विवेचनाधिकारी

अनुवादित

वीरेश पाल गिरि द्वारा घायल का बयान दर्ज किया गया तो उन्होंने घायल की स्थिति के लिए फिटनेस सर्टिफिकेट दिया था, जिसे उन्होंने प्रदर्श क-14 साबित किया है।

20. बचाव पक्ष के दो गवाहों से भी अभियुक्त द्वारा पूछताछ की गई है। ब०सा०-1, बिल्लो ने इस तथ्य को साबित कर दिया है कि उनकी दुकान थाना-गंगा के पास स्थित है। घटना के दिन उसने देवेंद्र को थाने में घुसते देखा था और एक-दो मिनट बाद वह बाहर आया, वह जल चुका था और अपनी दुकान के सामने गिर गया।

21. ब०सा०-2 नफी सिंह ने सी.डी मटेरियल प्रदर्श क-1 साबित किया है और अदालत के समक्ष कहा है कि उसने उस सीडी देखी है जिसमें देवेंद्र बोल रहा था कि उसने खुद उसे आग लगा दी थी।

22. उपरोक्त साक्ष्यों और तथ्यों और मामले की परिस्थितियों के आधार पर और दोनों पक्षों की प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों को सुनने के बाद, विचारण न्यायालय ने धारा 302 भ०द०वि० के तहत दोषसिद्धि दर्ज की और तदनुसार उसे सजा सुनाई।

23. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप पूरी तरह से झूठे हैं और अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप का समर्थन करने के लिए कोई ठोस और विश्वसनीय सबूत नहीं है। तथ्य का कोई भी गवाह विश्वसनीय नहीं है और मृत्यु पूर्व घोषणा विश्वास को प्रेरित नहीं करती है। जांच दोषपूर्ण है और रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से झूठे फंसाने का मामला सामने आता है।

24. प्रति प्रतिवाद, अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि वर्तमान मामला चश्मदीद गवाह के वर्णन पर टिका हुआ है। अ०सा०-1 और अ०सा०-2, जो चश्मदीद गवाह हैं, विश्वसनीय और प्राकृतिक गवाह हैं। अभियोजन पक्ष का मामला चिकित्सा साक्ष्य द्वारा भी समर्थित है। मामले की जांच में कोई अहम अनियमितता या कमी नहीं है। चश्मदीद गवाह के आधार पर आरोपी के झूठे फंसाए जाने की कोई संभावना नहीं पाई जाती है। उपरोक्त आधारों पर, इस अपील को खारिज करने के लिए प्रार्थना की गई है।

25. पूरे साक्ष्य के अवलोकन से, बहुत शुरुआत में, हम पाते हैं कि महिला, जो अपीलकर्ता है, इस तथ्य से अच्छी तरह वाकिफ थी कि पक्षों को पुलिस के सामने बुलाया गया था, लेकिन मिट्टी के तेल के केन के साथ वहां उसकी उपस्थिति ही मृतक के प्रति उसकी दुश्मनी को दर्शाती है। उस पर आरोप है कि उसे मृतका के ऊपर मिट्टी का तेल डाला गया था और यह तथ्य अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के चक्षुक साक्ष्य से पूरी तरह से स्थापित होता है और दोनों गवाहों के बयानों का विश्लेषण हमें इस तार्किक निष्कर्ष पर ले जाता है कि यह अभियुक्त और केवल आरोपी था, जिसने मृतक पर मिट्टी का तेल डालकर उसे आग लगा दी थी।

26. हम पाते हैं कि अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के साक्ष्य मृत्यु की घोषणा प्रदर्श क-13 के साथ मिलकर यह दिखाने के लिए जाएंगे

अनुवादित

कि यह शव परीक्षण रिपोर्ट और रिकॉर्ड पर उपलब्ध मेडिकल रिपोर्ट द्वारा पुष्टि की गई एक हत्या की मौत के अलावा और कुछ नहीं था।

27. मृत्युपूर्व बयान की सत्यता पर अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा चुनौती दी गई है, लेकिन हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि मृत्युपूर्व बयान तहसीलदार/कार्यकारी मजिस्ट्रेट अ०सा०-10 द्वारा दर्ज किया गया था, जिन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि बयान देने के समय देवेंद्र सचेत था और बयान देने की स्थिति में था। मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क-13 के अवलोकन से पता चलता है कि बयान के अंत में इसे दाता द्वारा हस्ताक्षरित और दिनांकित किया गया है। आर के सिंह, तहसीलदार/कार्यकारी मजिस्ट्रेट ने भी बयान के अंत में अपना हस्ताक्षर किया है, तारीख और समय के साथ प्रदर्श क-13 पर भी श्री आर.के.सिंह की मुहर लगी हुई है, जिसे यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

<u>बयान</u>

बयान दर्ज किया मैं देवेंद्र पुत्र श्री विजयपाल गांव तबारकपुर थाना-तीतरों, जिला सहारनपुर उत्तर प्रदेश का रहने वाला हूं। मैं दिनांक 9.4.2015 को अपने खेत से सफेदा का पेड़ काटकर घर ला रहा था कि रास्ते में पुलिस ने रोक लिया और उसने कहा कि यह पेड़ किसी और का है जिसका नाम मिथिलेश नाम एक औरत ही है। इसे थाने ले चलो। मैं ट्रैक्टर को थाने ले जा रहा था कि रास्ते में ट्रैक्टर पलट गया और उसके बाद मैं गांव के प्रधान के पास गया। उसने मुझे कोई सहायता करने से मना कर दिया। फिर मैं थाना पहुंचा। वहां पर मिथिलेश नाम की औरत बैठी थी। मैं पुलिस वालों से बात ही कर रहा था कि उस औरत ने मेरे ऊपर मिट्टी का तेल डाल दिया और माचिस की तीली जलाकर मुझे डरने लगी। इसी बीच उसके हाथ से जलती हुई तीली छूट कर मेरे ऊपर आ गई जिससे मैं जलने लगा। मुझे सामने चाय वाला श्री बिल्लू ने आग बुझाई और उसके बाद घर के लोगों ने गंगोह अस्पताल पहुंचाया। इस घटना के समय वहां पर दो पुलिस वाले भी थे जिसको मैं सामने आने पर पहचान सकता हूं। मैं यह बयान अपने होशो-हवास में दे रहा हूं। यह बयान मैंने सुन लिया और समझ कर हस्ताक्षर कर रहा हूं।

अटेस्टेड
अपठित हस्ताक्षर
14.4.2015
टाइम 12:30 से 1.05 a.m
आर.के सिंह
तहसीलदार/एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट
वसंत विहार, न्यू दिल्ली डिस्ट्रिक्ट

28. अभियोजन की पूरी कहानी पूर्वोक्त बयान में अभिव्यक्त की गई है। घटना की पृष्ठभूमि और अपराध के लेखक यानी अभियुक्त, अपराध का तरीका और गवाहों के नाम सहित घटना का स्थान, सभी प्रासंगिक तथ्य पूर्वोक्त बयान प्रदर्श क-13 में हैं।

29. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया है कि इस मामले में मृत्यु पूर्व बयान सबूत का एक वैध टुकड़ा नहीं है। किसी ठोस साक्ष्य से इसकी पुष्टि नहीं हुई

है। दूसरी ओर, एशासकीय अधिवक्ता ने राज्य बनाम वीर पाल और अन्य (2022) 2 एस.सी.सी. (आपराधिक) 224 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर भरोसा किया है जो निम्नानुसार है: -

16 अब, पहलू पर, जहां किसी पुष्टिकारक साक्ष्य के अभाव में, केवल मृत्यु पूर्व बयान पर भरोसा करते हुए दोषसिद्धि हो सकती है, मुन्नू राजा (मुन्नू राजा बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1976) 3 एस.सी.सी. 104: 1976 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 376) में इस न्यायालय का निर्णय और बाद में पानीबेन बनाम गुजरात राज्य [पानीबेन बनाम गुजरात राज्य, (1992)2 एस.सी.सी. 474-1992, एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 403] को संदर्भित किया जाना आवश्यक है। पूर्वोक्त निर्णयों में, यह विशेष रूप से देखा गया है और माना गया है कि न तो कानून का शासन है और न ही इस आशय का विवेक है कि मृत्यु पूर्व घोषणा पर बिना पुष्टि के कार्रवाई नहीं की जा सकती है। यह देखा गया और माना जाता है कि यदि न्यायालय संतुष्ट है कि मृत्यु पूर्व घोषणा सत्य और स्वैच्छिक है, तो वह बिना पुष्टि के उस पर अपनी दोषसिद्धि का आधार बना सकता है। इसी तरह का विचार उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम सागर यादव [उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम सागर यादव] (1985)1 एस.सी.सी. 552; उत्तर में उल्लिखित पत्रों को सभा पटल पर रखने में हुए विलंब के कारणों को दर्शाने वाला विवरण। [रामवती देवी बनाम बिहार राज्य] (1983)1 एस.सी.सी. 211:1983 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 169] इसलिए, बिना पुष्टि के मृत्यु पूर्व बयान के आधार पर ही दोषसिद्धि हो सकती है।

30. अ०सा०-10 के कथन से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मृत्यु पूर्व घोषणा की रिकॉर्डिंग की पूरी प्रक्रिया में कुछ 'लिखाये-पढ़ाये' नहीं है और प्रदर्श क-13 एक वास्तविक और दोषरहित बयान है। अ०सा०-10 आर.के सिंह, तहसीलदार/कार्यकारी मजिस्ट्रेट एक जिम्मेदार अधिकारी हैं और हितबद्ध गवाह नहीं हैं। हम ध्यान दें कि रिकॉर्ड पर साक्ष्य के विश्लेषण से कोई सुसंगत परिस्थिति नहीं मिलती है जिससे यह स्थापित हो सके कि तहसीलदार का अभियुक्त के खिलाफ कोई अभिविन्यास था, इसलिए, अ०सा०-10 द्वारा दर्ज घोषणा पर संदेह का सवाल बिल्कुल नहीं आता है।

31. हमारा ध्यान एक और सहायक तथ्य की ओर आकर्षित किया जाता है कि अ०सा०-7, जो मामले के पहले विवेचनाधिकारी हैं, ने भी 13.4.2015 को सफदरजंग अस्पताल में देवेन्द्र, जो उस समय घायल हुए थे, का बयान दर्ज किया है। साक्ष्य दर्ज करने के समय रोगी की मानसिक स्थिति ठीक थी, इस आशय का प्रमाण पत्र अ०सा०-11 डॉ. सरसीज शर्मा, सीनियर रेजिडेंट, बर्न एंड प्लास्टिक सर्जरी विभाग, सफदरजंग, अस्पताल, नई दिल्ली द्वारा दिया गया था, जिसे उनके द्वारा प्रदर्श क-14 के रूप में सिद्ध किया गया है।

32. अपीलकर्ता की ओर से एक दलील दी गई है कि चूंकि दो मृत्युपूर्व बयान रिकॉर्ड

अनुवादित

पर हैं, इसलिए अदालत को ऐसे बयानों की सत्यता को सत्यापित करना चाहिए और यह भी पता लगाना चाहिए कि कौन सा बयान विश्वसनीय है।

33. इस तर्क की पृष्ठभूमि में और अ०सा०-7 के बयान को पढ़ने के बाद, हम पाते हैं कि घायल ने अ०सा०-7 को जो बयान दिया था, उसका उल्लेख अ०सा०-7 की पूरी गवाही में कहीं नहीं किया गया है। इसके अलावा, उक्त बयान को अ०सा०-7 के समक्ष नहीं रखा गया था और इस तरह के बयान का उद्धरण प्रदर्शित नहीं किया गया है, जिसका अर्थ है कि उक्त मृत्यु पूर्व बयान साक्ष्य के कानून के अनुसार साबित नहीं हुआ है। इसलिए हम अ०सा०-7 द्वारा दर्ज घायल देवेंद्र के बयान को मृत्यु पूर्व बयान के रूप में स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं। यह धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया एक साधारण बयान है और इस बयान पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है, हालांकि, जैसा कि इस फैसले में पहले निष्कर्ष निकाला गया था कि मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क-13 साक्ष्य का एक वैध और विश्वसनीय हिस्सा है और हम उस पर भरोसा करते हैं।

34. विचारण न्यायालय ने मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क-13 पर भी भरोसा किया है और संबंधित सबूतों का अच्छी तरह से विश्लेषण किया है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा यह सही कहा गया था कि इस तरह के मृत्यु पूर्व बयान पर भरोसा करने से पहले डॉक्टर के प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं थी।

35. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि मृत्यु पूर्व बयान संदिग्ध है और तथ्य के गवाहों द्वारा पुष्टि नहीं की गई है, इसलिए, यह दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है। मृत्युपूर्व घोषणा को दोषसिद्धि का एकमात्र आधार माना जाता है कि ऐसा तभी किया जा सकता है जब उसे पढ़ाया न जाए, स्वेच्छा से दिया जाए और यह पूरी तरह विश्वसनीय हो। इस संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने लखन बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(2010)8 उच्चतम न्यायालय मामले 514] में मृत्यु पूर्व घोषणा के संबंध में कानून को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। इस मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि "मृत्यु पूर्व घोषणा का सिद्धांत कानूनी कहावत निमो मोरिटुरस प्रेसुमितुर मेंटायर में निहित है, जिसका अर्थ है, *"एक आदमी अपने निर्माता से अपने मुंह में झूठ के साथ नहीं मिलेगा"*। मृत्युपूर्व घोषणा का सिद्धांत साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 में साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 में निहित सामान्य नियम के अपवाद के रूप में निहित है, जो यह प्रदान करता है कि सभी मामलों में मौखिक साक्ष्य प्रत्यक्ष होना चाहिए, अर्थात, यह एक गवाह का साक्ष्य होना चाहिए, जो कहता है कि उसने इसे देखा था। मृत्यु पूर्व घोषणा वास्तव में एक ऐसे व्यक्ति का बयान है जिसे गवाह के रूप में नहीं बुलाया जा सकता है और इसलिए उसकी प्रतिपरीक्षा नहीं की जा सकती। इस तरह के बयान कुछ मामलों में अपने आप में प्रासंगिक तथ्य हैं।

अनुवादित

36. मृत्यु पूर्व घोषणा की विश्वसनीयता और पुष्टि के बिना उस पर कार्य करने पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य [(2013) 3 उच्चतम न्यायालय केस 280] में अवधारित किया कि "यह कानून का एक पूर्ण सिद्धांत नहीं है कि एक मृत्यु पूर्व बयान एक अभियुक्त की सजा का एकमात्र आधार नहीं बन सकता है। जहां मृत्यु पूर्व घोषणा सत्य और सही है, परिचारक परिस्थितियां इसे विश्वसनीय दिखाती हैं और इसे कानून के अनुसार दर्ज किया गया हो, मृतक ने अपनी इच्छा से मृत्यु पूर्व घोषणा की हो और मन और शरीर की स्थिति के संबंध में डॉक्टर द्वारा उचित प्रमाणीकरण पर, तो अदालत के लिए पुष्टि की तलाश करना आवश्यक नहीं होता है। ऐसे मामलों में, मृत्युपूर्व बयान ही अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बन सकता है। इसलिए, परीक्षण विश्वसनीयता को पारित करने के लिए, एक मृत्यु पूर्व घोषणा को बहुत बारीकी से जांच के अधीन किया जाना चाहिए, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि बयान अभियुक्त की अनुपस्थिति में किया गया है, जिसके पास जिरह द्वारा बयान की सत्यता का परीक्षण करने का कोई अवसर नहीं था। लेकिन एक बार जब अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंच गई कि मृत्यु पूर्व बयान मौत की परिस्थिति और पीड़ित के हमलावरों के बारे में सच्चा बयान था, तो आगे पुष्टि का कोई सवाल ही नहीं है।

37. मृत्यु पूर्व घोषणा के मुद्दे पर कानून को इस आशय से संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि यदि अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि मृत्यु पूर्व घोषणा सत्य और विश्वसनीय है, तो किसी व्यक्ति द्वारा ऐसे समय में दर्ज किया गया है जब मृतक शारीरिक और मानसिक रूप से घोषणा करने के लिए फिट था और यह किसी भी 'लिखाये-पढ़ाये' / दबाव / संकेत के तहत नहीं किया गया है; यह दोषसिद्धि दर्ज करने का एकमात्र आधार हो सकता है। ऐसी स्थिति में किसी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। उपर्युक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी निर्णय दिया गया है कि सक्षम मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित मृत्यु पूर्व बयान निम्न रैंक के पद द्वारा दर्ज की गई घोषणा की तुलना में बहुत अधिक होगा, इस कारण से कि सक्षम मजिस्ट्रेट के पास पीड़ित के मृत्युपूर्व बयान में नामित व्यक्ति के विरुद्ध प्रति परीक्षित करने के लिए कोई अवसर नहीं है।

38. इसलिए वर्तमान मामले में तहसीलदार/कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा मृत्यु पूर्व घोषणा करने वाले की फिटनेस के संबंध में एक डॉक्टर से प्रमाण पत्र लेने की चूक का संबंध है, हम गुलजारी लाल बनाम हरियाणा राज्य (2016) 4 एस.सी.सी. 583 में निर्धारित कानून पर ध्यान देते हैं और उसका पालन करते हैं जिसमें यह माना गया है कि फिटनेस का प्रमाण पत्र प्राप्त किए बिना एक चिकित्सा अधिकारी द्वारा एक वैध मृत्यु घोषणा की जा सकती है। इसी प्रकार शेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (2008) 4 एस.सी.सी. 265 में यह माना गया था कि डॉक्टर के प्रमाणन के अभाव में मृत्यु पूर्व घोषणा की विश्वसनीयता, यदि इसे रिकॉर्ड करने वाला व्यक्ति संतुष्ट था

अनुवादित

कि मृतक मन की फिट स्थिति में था, घातक नहीं है।

39. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हम सुरक्षित रूप से सुधाकर बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2012) 7 एस.सी.सी. 569 पर भरोसा कर सकते हैं, जिसमें यह स्पष्ट किया गया था कि "मृत्यु पूर्व घोषणा" एक व्यक्ति द्वारा एक चरण में दिया गया अंतिम बयान है जब वह अपनी मृत्यु की गंभीर आशंका में है और उसके बचने की कोई संभावना नहीं है। ऐसे समय में, यह उम्मीद की जाती है कि एक व्यक्ति सच और केवल सच बोलेगा। आम तौर पर ऐसी स्थितियों में, अदालतें इस तरह के बयान के लिए सच्चाई का आंतरिक मूल्य संलग्न करती हैं। एक बार ऐसा बयान स्वेच्छा से दिया गया है, यह विश्वसनीय है और मृतक द्वारा सच्चाई को ढकने या किसी व्यक्ति को झूठा फंसाने का प्रयास नहीं है, तो अदालतें सुरक्षित रूप से इस तरह की मृत्यु घोषणा पर भरोसा कर सकती हैं और यह दोषसिद्धि का आधार बन सकती है- इसके अलावा, जहां मृतक द्वारा मृत्युपूर्व बयान के रूप में दिए गए कथन का अभियोजन पक्ष के अन्य साक्ष्यों द्वारा समर्थन और पुष्टि की जाती है, वहां अदालतों के लिए ऐसी मृत्यु पूर्व घोषणा की सत्यता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है।

40. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चिकित्सा साक्ष्य से पता चलता है कि मृतक की मृत्यु घटना की तारीख से लगभग पांच दिनों के बाद सेप्टिसीमिक शॉक के कारण हुई थी और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि मृतक की मौत हो गई थी और उसकी हत्या कर दी गई थी।

41. अपीलकर्ता के अधिवक्ता की प्रस्तुति का जवाब देते हुए कि चूंकि मृत्यु सेप्टीसीमिया के कारण हुई थी और यह घटना की तारीख से लगभग पांच दिनों के बाद हुई थी, मृत्यु की घोषणा विश्वसनीय और अस्वीकार्य नहीं है, अपर शासकीय अधिवक्ता ने बी संघीकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (ग) माननीय उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका (सिविल) 2005 एस.सी.सी. (आपराधिक) 171 के मामले पर भरोसा किया है, जिसमें यह व्यवस्था दी है कि ऐसी कोई कानूनी अपेक्षा नहीं है कि मृत्यु पूर्व घोषणा केवल मृत्यु की प्रत्याशा के अधीन किए जाने पर ही साक्ष्य के रूप में ग्राह्य हो।

42. इन सभी तथ्यों के साथ युग्मित तथ्य यह है कि हमने माना है कि यह एक मानव वध की मौत थी, हम उसी पहलू पर विद्वान विचारण न्यायालय से सहमत हैं।

43. ब०सा०-1 और ब०सा०-2 के साक्ष्य पर अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है। ब०सा०-1 ने बताया है कि मृतक को थाने में ही आग लगा दी गई थी। इस संबंध में अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने डॉ. अक्षत वाहन अ०सा०-5 के बयान की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, जिन्होंने अपने बयान में कहा है कि मरीज ने उसे बताया था कि उसे थाने में जला दिया गया था।

अनुवादित

44. जहां तक अ०सा०-5 के बयान का संबंध है कि यह एक पुलिस अधिकारी था जिसने मृतक को आग लगा दी थी, उसे रिकॉर्ड पर किसी भी अन्य साक्ष्य से समर्थन नहीं मिलता है, विशेष रूप से चक्षुक साक्ष्य से, जो विश्वसनीय और भरोसेमंद है। विद्वान विचारण न्यायालय ने भी आक्षेपित निर्णय में इस मुद्दे पर चर्चा की है और पाया है कि अ०सा०-5 का उपरोक्त बयान इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विश्वसनीय नहीं है और हम उस से सहमत हैं।

45. जहां तक ब०सा०-2 के साक्ष्य का संबंध है, कथित तौर पर मृतक देवेंद्र के बयान की वीडियो रिकॉर्डिंग वाली सी.डी को अदालत के समक्ष कानून के अनुसार साबित नहीं किया गया है और इस तथ्य को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा भी उजागर किया गया है, जो तदनुसार पूर्वोक्त सी.डी पर भरोसा नहीं करता था। हम साक्ष्य अधिनियम की धारा 65ए और 65बी के प्रावधानों को भी ध्यान में रखते हुए विद्वान विचारण न्यायालय के साथ पूर्ण सहमति में खुद को पाते हैं और पाते हैं कि इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य उपरोक्त कानूनी प्रावधानों के अनुरूप साबित नहीं हुए हैं।

46. जहां तक ब०सा०-1 के बयान का संबंध है, उसका बयान भी विशेष रूप से मृत्यु पूर्व घोषणा प्रदर्श क-13 के प्रकाश में और भरोसेमंद और ठोस चक्षुक साक्ष्य के प्रकाश में भी विश्वास को प्रेरित नहीं करता है। नक़्शा नज़री प्रदर्श क-9 में, घटना का स्थान अक्षर "x" द्वारा दिखाया गया है जो थाने के बाहर स्थित है, जो अभियोजन पक्ष का मामला है। अ०सा०-7 ने अपने साक्ष्य में इस नक़्शा नज़री को साबित किया है। इसलिए, बचाव पक्ष द्वारा पेश किया गया मौखिक साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है।

47. पूर्वोक्त चर्चा के परिणाम से, हम पाते हैं कि गवाहों की उपस्थिति, घटना के स्थान आदि के बारे में तथ्य की खोज को मृतक की मृत्यु के साथ दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, हालांकि, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी और मृतक की मृत्यु का कारण बनने का उसका कोई इरादा नहीं था और यह तथ्य इस न्यायालय को सबसे अधिक परेशान करने वाले प्रश्न पर ले जाता है जहां यह होगा अत हम इस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं कि क्या यह हत्या होगी अथवा गैर इरादतन मानव वध होगा जो हत्या की श्रेणी में नहीं आएगा और भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अंतर्गत दंडनीय होगा।

48. विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष और उसके द्वारा लगाई गई सजा पर विचार करते समय, हमें यह देखना होगा कि क्या मृतक को मौत के घाट उतार दिया गया था, जबकि, सेप्टिसीमिक शॉक के कारण मृत्यु का कारण धारा 300 भ०द०वि० के दायरे से बाहर नहीं होगा।

49. हालांकि, जो प्रश्न हमारे विचार के लिए आता है, वह यह है कि क्या मामले के अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों के पुनर्मूल्यांकन पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलकर्ता की सजा को बरकरार रखा जाना चाहिए या दोषसिद्धि

अनुवादित

को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग- I या भाग- II के तहत परिवर्तित किया जाना चाहिए। भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो निम्नानुसार है:

299. सदोष मानव वध: जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जो मृत्यु कारित करने की सम्भावना से हो या इस ज्ञान के साथ कि वह ऐसे कार्य द्वारा मृत्यु कारित करने की सम्भावना रखता है, मृत्यु कारित करेगा, वह सदोष मानव वध का अपराध करेगा।

50. 'हत्या' और 'गैर इरादतन मानव वध' के बीच शैक्षणिक अंतर ने न्यायालयों को हमेशा परेशान किया है। भ्रम पैदा होता है, अगर अदालतें इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग की जाने वाली शर्तों के सही दायरे और अर्थ की दृष्टि खो देती हैं, तो खुद को बारीक अमूर्तताओं में खिंचने की अनुमति देती हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और लागू के दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका भारतीय दंड संहिता की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए की-वर्ड को ध्यान में रखना प्रतीत होता है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दो अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	धारा 300
कोई व्यक्ति गैर इरादतन मानव वध करता है यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु कारित की जाती है-	कुछ अपवादों के अधीन, गैर इरादतन मानव वध हत्या है यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु हुई है, किया जाता है।
आशय	
(a) मौत के इरादे से; नहीं तो	(1) मौत के इरादे से; नहीं तो
(b) ऐसा करने के इरादे से शारीरिक चोट के रूप में मृत्यु का कारण बनने की संभावना है; नहीं तो	2) ऐसा करने के इरादे से शारीरिक चोट के रूप में कि अपराधी जानता है उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनने की संभावना हो जिसे नुकसान हुआ है
ज्ञान	ज्ञान
(c) इस ज्ञान के साथ कि कार्य से मृत्यु होने की संभावना है	4) इस ज्ञान के साथ कि कार्य इतना तुरंत खतरनाक है कि यह सभी संभावनाओं में मृत्यु या इस तरह का कारण होना चाहिए शारीरिक चोट के रूप में मृत्यु का कारण बनने की संभावना है, और मृत्यु के कारण या होने के जोखिम के लिए किसी भी बहाने के बिना या ऐसी चोट जैसा कि ऊपर बताया गया है.

अनुवादित

51. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच के साथ-साथ चिकित्सा अधिकारी की राय और तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर विचार करते हुए, (2011) 4 एस.सी.सी. 250 और बीएन कवताकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य के मामले में, 1994 एसयूपीपी (1) एस.सी.सी. 304 में रिपोर्ट किए गए मामले में, हमारा यह सुविचारित मत है कि अपराध भ०द०वि० की धारा 304 भाग-I के तहत दंडनीय होगा। उपरोक्त चर्चाओं के परिणाम से, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, अभियुक्त का मृतक की मृत्यु कारित करने का कोई इरादा नहीं था, चोटें हालांकि प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं, अभियुक्त का मृतक को दूर करने का कोई इरादा नहीं था, इसलिए वर्तमान मामला भ०द०वि० की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है। उपरोक्त धारा 299 पर विचार करते समय, किया गया अपराध वीरन और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2011) 5 एस.सी.आर 300 में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के अनुसार धारा 304 भाग- I के तहत आएगा, जिसे भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

52. उत्तर प्रदेश राज्य में बनाम मो. इकराम और अन्य, [(2011) 8 एस.सी.सी. 80] के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 26 में निम्नलिखित टिप्पणियां की हैं:

"26. एक बार जब अभियोजन पक्ष अपराध स्थल पर अभियुक्तों की उपस्थिति के सबूत क़ानून के दायरे में ले आया है, तो बचाव पक्ष पर यह सुझाव देने की जिम्मेदारी स्थानांतरित हो गई कि उन्हें रात के अंधेरे में घटनास्थल पर क्या लाया जा सकता था। अभियुक्तों को गिरफ्तार कर लिया गया था और इसलिए, वे अभियोजन पक्ष द्वारा निर्वहन किए गए इस बोझ का खंडन करने के लिए बाध्य थे और ऐसा करने में विफल रहने के बाद, विचारण न्यायालय इस मुद्दे पर अपने निष्कर्षों को दर्ज करने में उचित था। उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालकर एक त्रुटि की कि अभियोजन पक्ष अपने बोझ का निर्वहन करने में विफल रहा है। इस प्रकार, निर्णय एक अनुमान पर आगे बढ़ता है जो इसे अस्थिर बनाता है।

53. बेंगई मंडल उर्फ बेगई मंडल बनाम बिहार राज्य [(2010)2 एस.सी.सी. 91] में, घटना 14.7.1996 को हुई, जबकि मृतक की मृत्यु 10.8.1996 को जलने से हुई सेप्टीसीमिया के कारण हुई। अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया गया था और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा अपील में पुष्टि की गई थी, लेकिन माननीय उच्चतम न्यायालय ने भ०द०वि० की धारा 304 भाग-II भ०द०वि० के तहत मामले को इस आधार पर बदल दिया कि मृत्यु घटना के छब्बीस दिनों के बाद सेप्टीसीमिया के परिणामस्वरूप हुई थी न कि जलने की चोटों के परिणामस्वरूप और, तदनुसार, सात साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई।

अनुवादित

54. मणिबेन बनाम गुजरात राज्य [(2009) 8 एस.सी.सी. 796] में, यह घटना 29.11.1984 को हुई थी। मृतक की मृत्यु 7-12-1984 को हुई। मौत का कारण जलने की चोटें थीं। मृतक को लगभग 60 प्रतिशत जली हुई चोटों के साथ अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उपचार के दौरान सेप्टीसीमिया विकसित हो गया था, जो मृतक की मृत्यु का मुख्य कारण था। विचारण न्यायालय ने आरोपी को धारा 304 भाग-2 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया और पांच साल की कैद की सजा सुनाई, लेकिन अपील में उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को धारा 302 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया। माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि आठ दिनों की उपर्युक्त अवधि के दौरान चोटें इस सीमा तक बढ़ गई और बदतर हो गई कि चोटें पक गईं और मृतक की मृत्यु चोटों के जहरीले प्रभाव से हुई। तदनुसार, विचारण न्यायालय द्वारा धारा 304 भाग-II भ०द०वि० के तहत अभियुक्त को दोषी ठहराने के निर्णय और आदेश को बरकरार रखा गया और उच्च न्यायालय के फैसले को अपास्त किया गया।

55. लगभग समान परिस्थितियों में, धारा 302 भ०द०वि० के तहत अभियुक्त की दोषसिद्धि को पवन कुमार बनाम उत्तराखंड राज्य (2021)11 उच्चतम न्यायालय केस 53 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 304 भाग I भ०द०वि० के तहत आजीवन कठोर कारावास से 10 साल के लिए कठोर कारावास में संशोधित किया गया था और हम सुरक्षित रूप से उस फैसले पर भरोसा कर सकते हैं।

56. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच पर, हम अपीलकर्ता की भूमिका के साथ अप्रतिरोध्य निष्कर्ष पर आए हैं जो मृत्यु की घोषणा और अन्य अभिलेखों से स्पष्ट है और हम यह भी ध्यान में रखते हैं कि मृतक घटना के बाद 5 दिनों तक जीवित रहा था और अंततः सेप्टिसीमिया से मर गया और यही कारण है कि हम इस विचार के हैं कि अपीलकर्ता की सजा के तहत धारा 302 भ०द०वि० को धारा 304 पैरा I भ०द०वि० के तहत परिवर्तित किया जाना आवश्यक है।

57. उपरोक्त के मद्देनजर, अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है और अभियुक्त की सजा छूट के साथ 10 साल की अवधि तक कम हो जाती है। पहले से ही गुज़री हुई अवधि को क़ैद की पूरी अवधि में समायोजित किया जा सकता है। मूल शिकायतकर्ता को भुगतान किए जाने वाले जुर्माने को घटाकर 10,000/- रुपये कर दिया गया है। डिफ़ॉल्ट सजा समान होगी और कैद के 10 साल पूरे होने के बाद चलेगी। कहा जाता है कि आरोपी 2015 से जेल में है और कम से कम लगभग 7 साल की कैद की सजा भुगत चुकी थी और उसने गुस्से में किए गए अपने कृत्य पर पश्चाताप किया होगा।

अनुवादित

58. अभिलेख और कार्यवाही को तत्काल निचली अदालत को वापस भेज दिया जाए।

(2023) 2 ILRA 783

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 13.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी,

आपराधिक अपील संख्या 2203/2016

धर्मेंद्र सिंह

...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राम जनम शाही, श्री राजेश कुमार मिश्र

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 154- विचारणीय न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में कहा है कि अभियोजन पक्ष धारा 498ए, 304बी आईपीसी और धारा 4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत अपराधों के लिए मामला साबित नहीं कर सका। अभियुक्त-अपीलकर्ता को भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की सहायता से वैकल्पिक आरोप के आधार पर आईपीसी की धारा 302 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है - तथ्य के सभी गवाह, अर्थात् पीडब्लू1, पीडब्लू2, पीडब्लू4 और पीडब्लू5 पक्षद्रोही हो गए- पक्षद्रोही गवाह के संबंध में कानून स्पष्ट है कि किसी भी गवाह की गवाही को शत्रुता के आधार पर समग्र रूप से निरस्त नहीं किया जा सकता है।

स्थापित कानून यह है कि, एक पक्षद्रोही गवाह की गवाही का वह हिस्सा साक्ष्य में पढ़ा जा सकता है जो अभियोजन की कहानी का समर्थन या पुष्टि करता है।

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 300- धारा 302- धारा 304 भाग- I- अभियोजन पक्ष के गवाहों के साथ-साथ चिकित्सा साक्ष्यों ने सिद्ध किया कि यह एक मानव वध की मौत थी जो दम घुटने के कारण हुई थी। हालाँकि आरोपी को यह जानकारी और आशय था कि उसके कृत्य से मृतक को शारीरिक नुकसान होगा, लेकिन वह मृतक को खत्म नहीं करना चाहता था। इसलिए तत्काल वाद आईपीसी की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है - उपरोक्त अपराध धारा 304 भाग-1 के अंतर्गत आएगा।

जहां मृत्यु मानव वध है लेकिन कोई पूर्व इरादा या पूर्व-चिंतन नहीं है तो अपराध आईपीसी की धारा 302 के बजाय आईपीसी की धारा 304 भाग- I के अंतर्गत आएगा।

सजा की मात्रा - सजा की आनुपातिकता - देश में अपनाई गई आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा

अनुवादित

जाना चाहिए। आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनावश्यक कठोरता से बचा जाना चाहिए। अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को आईपीसी की धारा 302 से धारा 304 (भाग I) आईपीसी में बदल दिया जाता है और अपीलकर्ता को 10 साल के कठोर कारावास और 5,000/- रुपये के जुर्माने से दंडित किया जाता है।

चूंकि हमारे देश का आपराधिक न्यायशास्त्र सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, इसलिए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए, इसलिए अपीलकर्ता की सजा को तदनुसार संशोधित किया गया है। (पैरा 11, 12, 15, 16, 17, 21, 22, 23, 24)

आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-</u>

1. तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 4 एससीसी 250
2. बी.एन. कवाटकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य., 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304
3. वीरन और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2011) 5 एससीआर 300
4. मो. गियासुद्दीन बनाम ए.पी. राज्य, एआईआर 1977 एससी 1926
5. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 7 एससीसी 257
6. रावदा शशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य AIR 2017 SC 1166

(माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी द्वारा प्रदत्त)

1. इस अपील के माध्यम से अपीलकर्ता धर्मेंद्र सिंह ने विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 17 मार्च 2016 और आदेश दिनांक 18 मार्च 2016 को चुनौती दी है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/एफटीसी) महिला आपराधिक मामला (कोर्ट संख्या 13, शाहजहाँपुर में सत्र परीक्षण 330 सन् 2012 राज्य बनाम धर्मेन्द्र सिंह व अन्य से उत्पन्न मामले में अपराध संख्या 75 सन् 2012 धारा 498ए, 304बी भारतीय दंड संहिता व 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत थाना तिलहर, जिला शाहजहाँपुर में अभियुक्त को सजा सुनाई गई। भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत 20,000 रुपये जुर्माना और जुर्माने का भुगतान न करने पर अपीलकर्ता को 5 महीने के साधारण कारावास की अतिरिक्त सजा भुगतनी होगी।

2. अभिलेखों से निकाले गए मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि मुखबिर ढाकन लाल द्वारा पुलिस स्टेशन-तिलहर, जिला-शाहजहाँपुर में पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी जिसमें कहा गया था कि उसकी 25 वर्षीय बेटी की शादी 2 साल पहले धर्मेंद्र के साथ हुई थी जिसमें उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार दहेज दिया था, लेकिन शादी के बाद धर्मेंद्र और उसके माता-पिता अतिरिक्त दहेज के रूप में एक मोटरसाइकिल की मांग करने लगे। उक्त मांग पूरी न होने पर वे उसकी बेटी को प्रताड़ित करने लगे। आज सुबह

अनुवादित

उन्हें सूचना मिली कि अतिरिक्त दहेज की चाह में धर्मेंद्र व उसके माता-पिता ने उनकी बेटी की हत्या कर दी है। इस सूचना पर सूचक अपनी पुत्री के ससुराल पहुंचा तो देखा कि उसकी पुत्री का शव खाट पर पड़ा हुआ है। थाना तिलहर, जिला शाहजहाँपुर में मुकदमा अपराध संख्या 175 सन् 2012 अंतर्गत धारा 304बी, 498ए भारतीय दंड संहिता और धारा ¾ दहेज निषेध अधिनियम के तहत पंजीकृत किया गया।

3. कानून लागू हुआ और जांच शुरू हुई। जांच कार्यवाही करने के बाद मृतक के शव को पोस्टमॉर्टम के लिए भेज दिया गया। डॉक्टर ने पोस्टमॉर्टम किया और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट तैयार की। जांच के दौरान, सूचना अधिकारी ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत गवाहों के बयान दर्ज किए। जांच पूरी होने के बाद आरोपी धर्मेंद्र सिंह, महेश पाल और श्रीमती प्रेमवती के खिलाफ आरोप पत्र अंतर्गत भारतीय दंड संहिता की धारा 304 बी, 498 ए और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत प्रस्तुत किया गया। आरोपियों ने आरोपों से इनकार किया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

4. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों से पूछताछ की:

1.	दक्कन लाल	PW1
2.	कलावती	PW2
3.	डॉ मनोज कुमार	PW3
4.	कोमाली प्रसाद	PW4
5.	उषा देवी	PW5
6.	झंडू राम	PW6
7.	भगवान दास कोठारिया	PW7

5. गवाहों के नेत्र संबंधी संस्करण के समर्थन में, निम्नलिखित दस्तावेज़ तैयार किए गए और सामग्री को प्रमुख मौखिक साक्ष्य द्वारा साबित किया गया:

1.	प्रथम सूचना रिपोर्ट	Ext. Ka-8
2.	लिखित रिपोर्ट	Ext. Ka-1
3.	पी.एम. रिपोर्ट	Ext. Ka-2
4.	पंचायत नामा	Ext. Ka-3
5.	चार्ट शीट	Ext. Ka-5
6.	साइट प्लान	Ext. Ka-7

6. अभियोजन साक्ष्य पूरा होने के बाद, आरोपी व्यक्तियों, अर्थात् धर्मेंद्र और श्रीमती प्रेमवती के बयान अंतर्गत धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत मामला दर्ज किया गया। अभियुक्त महेश पाल सिंह की विचारण के दौरान मृत्यु हो गई। आरोपी व्यक्तियों द्वारा कोई बचाव गवाह पेश नहीं किया गया।

7. विद्वान निचली अदालत ने दोनों पक्षों को सुनने के बाद आरोपी श्रीमती प्रेमवती को उनके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों

से बरी कर दिया और अपीलकर्ता-अभियुक्त धर्मेंद्र सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत वैकल्पिक आरोप के लिए दोषी ठहराया और आजीवन कारावास और 20000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई। अपीलकर्ता-धर्मेन्द्र सिंह द्वारा अपील

8. अपीलकर्ता के वकील श्री राजेश कुमार मिश्रा, राज्य के ए .जी .ए .श्री पतंजलि मिश्र को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

9. अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता ने सबसे पहले प्रस्तुत किया कि यह बिना किसी सबूत का मामला है और अपीलकर्ता को रिकॉर्ड पर सबूत के बिना दोषी ठहराया गया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि तथ्य के गवाहों की अभियोजन पक्ष द्वारा जांच की गई, अर्थात् पीडब्लू 1 ढाकन, जो मृतक के पिता हैं और पीडब्लू 2 श्रीमती कलावती, जो मृतक की मां है। इन दोनों गवाहों ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है और वे मुकर गए हैं। इन गवाहों के अलावा, अभियोजन पक्ष द्वारा तथ्य के गवाह के रूप में पीडब्लू 4 कोमिल प्रसाद और पीडब्लू 5 उषा देवी से भी पूछताछ की गई, लेकिन वे दोनों मुकर गए और अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया। अतः इस बात का कोई सबूत नहीं है कि अतिरिक्त दहेज की मांग मृतक से अपीलकर्ता अथवा उसके माता-पिता के द्वारा किया गया और इस बात का भी कोई सबूत रिकॉर्ड पर नहीं है कि अतिरिक्त दहेज की मांग के संबंध में मृतक के साथ क्रूरता की गई थी। लेकिन विद्वान ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ता को भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की सहायता से भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया है, जिसकी इस मामले में कोई प्रयोज्यता नहीं है क्योंकि अभियोजन यह साबित करने में विफल रहा है कि कथित घटना के समय अपीलकर्ता घर के अंदर था। यह भी तर्क दिया गया है कि विद्वान निचली अदालत भी इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि अपीलकर्ता के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 498ए और 304बी के तहत कोई अपराध नहीं बनता है।

10. विद्वान ए.जी.ए .ने अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा की गई दलीलों का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि रिकॉर्ड पर पर्याप्त सबूत हैं कि मृतक को अपीलकर्ता ने ही मार डाला था। अपीलकर्ता मृतिका का पति है और मृतिका का शव अपीलकर्ता के घर में पाया गया था। इसलिए, अपीलकर्ता के कंधों पर यह साबित करने का बोझ था कि उसने अपराध नहीं किया है, लेकिन उसने इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है। विद्वान ए.जी.ए .द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन की कहानी की पुष्टि करते हैं और इस तथ्य से संबंधित अभियोजन पक्ष के गवाहों ने मामले का समर्थन नहीं किया है क्योंकि वे अपीलकर्ता के द्वारा राजी कर लिए गए थे। फिर भी, मृतक के पिता, PW1 ने अपनी मुख्य जांच में अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन किया है। यह दम घुटने के कारण मौत का मामला था

और विद्वान ट्रायल कोर्ट ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 का सहारा लिया जाना सही है। यह उचित संदेह से परे साबित हुआ है कि मृतका की मृत्यु अपीलकर्ता के कारण हुई थी, किसी और के द्वारा नहीं। इसलिए, आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है जिसमें इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

11. रिकॉर्ड पर यह स्वीकृत स्थिति है कि विद्वान निचली अदालत ने आक्षेपित फैसले में माना है कि अभियोजन पक्ष भारतीय दंड संहिता की धारा 498ए, 304बी और धारा 4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत अपराधों के लिए मामला साबित नहीं कर सका। अभियुक्त - अपीलकर्ता को भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की सहायता से वैकल्पिक आरोप के आधार पर आईपीसी की धारा 302 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है।

12. हालाँकि, इस तथ्य के सभी गवाह, अर्थात् पीडब्लू 1, पीडब्लू 2, पीडब्लू 4 और पीडब्लू 5 अपने बयान से पलट गए हैं और अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया है। वास्तव में, मृतक के पिता, PW1 ने मुख्य परीक्षण में अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन किया है, लेकिन जिरह के दौरान वह अपने पिछले बयान से मुकर गया है और अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। गवाह की शत्रुता) होस्टिलिटी (के संबंध में कानून स्पष्ट है कि किसी भी गवाह की गवाही को शत्रुता के आधार पर समग्र रूप से खारिज नहीं किया जा सकता है।" फाल्सस इन यूएनओ, फाल्सस इन ऑम्निबस " भारत में लागू नहीं है। अनाज को भूसी से अलग करना न्यायालय का कर्तव्य है। इसलिए, रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के आधार पर, हमारी निश्चित राय है कि मृतक की मृत्यु मानव वध थी और हम आश्वस्त नहीं हैं कि अपीलकर्ता निर्दोष है। लेकिन रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर, चूंकि अतिरिक्त दहेज की मांग साबित नहीं हुई है, इसलिए हमने मामले पर उस कोण से विचार किया है जहां मृतक की हत्या या गैर इरादतन हत्या थी।

13. भारतीय दंड संहिता की धारा 299 को संदर्भित करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है :

*"**299. गैर इरादतन हत्या :** जो कोई मौत कारित करने के इरादे से, या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से कोई कार्य करके मौत का कारण बनता है मृत्यु कारित करने की संभावना, या यह जानते हुए कि ऐसे कृत्य से मृत्यु कारित होने की संभावना है, गैर इरादतन हत्या का अपराध करता है।"*

14.'हत्या' और 'गैर इरादतन हत्या' के बीच अकादमिक अंतर ने हमेशा अदालतों को परेशान किया है। भ्रम तब पैदा होता है, जब न्यायालय इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों के वास्तविक दायरे और अर्थ को भूल जाते हैं, खुद को सूक्ष्म अमूर्तताओं में उलझा

लेते हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका भारतीय दंड संहिता की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में प्रयुक्त मुख्य शब्दों को ध्यान में रखना है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनों अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	**धारा 300**
एक व्यक्ति गैर इरादतन हत्या करता है यदि वह कार्य जिसके कारण मृत्यु हुई है।	कुछ अपवादों के अधीन गैर इरादतन मानववध हत्या है यदि वह कार्य किया गया है जिसके कारण मृत्यु हुई है।

इरादा

(ए)मृत्यु कारित करने के इरादे से; या	(1) मृत्यु कारित करने के इरादे से; या
(बी) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से जिससे मृत्यु होने की संभावना हो; या	(2) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जिसके बारे में अपराधी को पता हो कि जिस व्यक्ति को नुकसान पहुंचाया गया है, उसकी मृत्यु होने की संभावना है;
ज्ञान	**ज्ञान**
(सी) इस ज्ञान के साथ कि इस कार्य से मृत्यु होने की संभावना है।	(4) इस ज्ञान के साथ कि कार्य इतना खतरनाक है कि इससे मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट लगने की पूरी संभावना है, जिससे मृत्यु होने की संभावना है, और जैसा कि ऊपर बताया गया है, मृत्यु या ऐसी चोट का जोखिम उठाने के लिए कोई बहाना नहीं है।

15. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच के साथ-साथ चिकित्सा अधिकारी की राय और शीर्ष अदालत द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर विचार करते हुए) **2011) 4 एससीसी 250** में रिपोर्ट किए गए **तुकाराम व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य** के मामले में, और **1994 एसयूपीपी) 1) एससीसी 304** में रिपोर्ट किए गए **बी.एन.कवटकर व अन्य बनाम कर्नाटक राज्य** के मामले से, हमारी सुविचारित राय है कि यह हत्या की श्रेणी में नहीं आने वाली मानव हत्या का मामला था।

16. अभियोजन पक्ष के गवाहों के साथ-साथ चिकित्सीय साक्ष्यों से साबित हुआ कि यह एक मानव वध था, जो दम घुटने के कारण हुआ था।

अनुवादित

17. उपरोक्त चर्चाओं के निष्कर्ष से, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त को यह ज्ञान और इरादा था कि उसके कृत्य से मृतक को शारीरिक नुकसान होगा, लेकिन वह मृतक को खत्म नहीं करना चाहता था। इसलिए मौजूदा मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है। उपरोक्त अपराध में जैसा कि यहां पुन :प्रस्तुत किया गया है, धारा 299 को ध्यान में रखते हुए, **वीरान व अन्य बनाम एम.पी .राज्य** के**(2011) 5 एस.सी.आर.300** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणी के अनुसार धारा 304 भाग 1 के अंतर्गत आएगा, जिसे भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

18.यह हमें अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील के वैकल्पिक अनुरोध पर ले जाता है कि सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसे संशोधित करने की आवश्यकता है। इस संबंध में हमें भारत में प्रचलित दंड सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा

19.**मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम. एपी राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926],** सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने यह अवलोकन किया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होता है। जो उप-संस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनर्संस्कृति द्वारा किया जाना चाहिए।इसलिए, व्यक्ति में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान और लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और बर्बर सज़ा देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। आज मनुष्य सज़ा देने को एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में देखता है जो अपराधी बन गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'दहशत' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति को क्रूर कारावास से केवल उसके दिमाग को नुकसान पहुंचता है। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे घायल करना होगा। आदमी चोटों से नहीं सुधरता, और यदि आपको उसे सुधारना है, तो आपको उसे सुधारना ही होगा ।

20. यह देखते हुए कि सजा न तो अत्यधिक कठोर होनी चाहिए और न ही हास्यास्पद रूप से कम **देव नारायण मंडल बनाम यूपी राज्य)] 2004) 7 एससीसी 257]** में 'उचित वाक्य' की व्याख्या की गई थी। सजा की मात्रा निर्धारित करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए।अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सज़ा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने

ढंग से या मनमर्जी से नहीं किया जा सकता।

21. **रावदा शशिकला बनाम ए.पी.राज्य एआईआर 2017 एससी 1166 में**, सुप्रीम कोर्ट ने निर्णयों का उल्लेख किया **जमील बनाम यूपी राज्य)] 2010) 12 एससीसी 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]** और दोहराया है कि सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सहसंबंधी मशीनरी या निवारण को अपनाना चाहिए।प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध किया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्तों का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगी। इसके अलावा, सजा सुनाने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी। अपराध की प्रकृति और उसके करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी उचित सजा देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में कानून को समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरे के तहत समाज लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकास नहीं कर सकता है। इसलिए सज़ा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक) रिफॉर्मेटिव (और सुधारात्मक)कलेक्टिव (है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।22.मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई

भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर दें।

23. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना चाहिए और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है।आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए निचली अदालत द्वारा आजीवन कारावास की दी गई सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

24. इसलिए, हम अपीलकर्ता की सजा को संशोधित करते हैं और अपीलकर्ता की सजा को आईपीसी की धारा 302 से 304 (भाग 1) आईपीसी में बदल दिया जाता है और अपीलकर्ता को 10 साल के कठोर कारावास और 5,000 रुपये के जुर्माने की सजा दी जाती है । जुर्माना अदा न करने की स्थिति में अपीलकर्ता को छह महीन की साधारण कारावास की सजा भुगतनी होगी। जेल से रिहा होने के चार सप्ताह के भीतर अपीलकर्ता को जुर्माना अदा करना होगा और जेल प्राधिकरण यह सुनिश्चित करेगा कि यदि उपरोक्त अवधि के भीतर जुर्माना नहीं चुकाया गया तो अपीलकर्ता को फिर से कारावास में डाल दिया जाएगा।

25. तदनुसार, उपरोक्तानुसार सजा में संशोधन के साथ अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है।

26.रिकॉर्ड और कार्यवाही निचली अदालत को वापस भेजी जाए।

(2023) 2 ILRA 790

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति मो. अजहर हुसैन इदरीसी,

आपराधिक अपील संख्या 3592/2010

अमित कुमार दुबे

...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री सुदीप द्विवेदी, श्री दिनेश कुमार यादव, श्री ए.आर. नदीवाल

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून - सजा की मात्रा - आनुपातिकता का सिद्धांत - गवाहों के साक्ष्य और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट पर विचार करते हुए, जिसमें कहा गया है कि मृतक के शरीर पर चोटें मौत का कारण होंगी और यह मानव हत्या थी, हम विचारणीय न्यायालय के निष्कर्ष से सहमत हैं। देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र

प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारवादी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनावश्यक कठोरता से भी बचा जाना चाहिए- उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपाय लागू किए जाने चाहिए- 'सुधारात्मक सिद्धांत' दंड' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि संपूर्ण तथ्यों और मामले की परिस्थितियाँ और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए विद्वान निचली अदालत द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर है।

चूंकि हमारे देश का आपराधिक न्यायशास्त्र सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, इसलिए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए, इसलिए अपीलकर्ता की सजा को तदनुसार संशोधित किया गया है।

आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-</u>

1. मो. गियासुद्दीन बनाम एपी राज्य, एआईआर 1977 एससी 1926
2. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 7 एससीसी 257
3. रावदा शशिकला बनाम ए.पी. राज्य, एआईआर 2017 एससी 1166

(माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अज़हर हुसैन इदरीसी, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री सुदीप द्विवेदी और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. प्रस्तुत अपील में सत्र परीक्षण संख्या-148 वर्ष 2009 (राज्य बनाम अमित कुमार दुबे) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट संख्या-1, मिर्जापुर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 28.04.2010 को चुनौती दी गई है, जिसमें अकेले अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'भ०द०वि०' के रूप में संदर्भित) की धारा 498-ए के तहत दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई, जिसमें 5000 रुपये के जुर्माने के साथ तीन साल की साधारण कैद, इसके अलावा उसे धारा 304-बी भ०द०वि० के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत 10,000 रुपये के जुर्माने के साथ सजा भी सुनाई गई। जुर्माना अदा न करने की स्थिति में 6-6 माह का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा।

3. रिकॉर्ड से प्राप्त तथ्यात्मक आंकड़ों के अनुसार एक प्रथम सूचना रिपोर्ट मामला अपराध संख्या-45 वर्ष 2009 को थाना-पदारी, जिला: मिर्जापुर में एक उमा शंकर, निवासी गांव महदौरी, थाना-पडारी, जिला: मिर्जापुर द्वारा की गई शिकायत पर दर्ज की गई थी, जिन्होंने कहा था कि उनकी बेटी सुनीता कुमारी का विवाह अमित कुमार पुत्र हजरा निवासी रतनबो चित्तम पट्टी, थाना-पदारी, मिर्जापुर से छह वर्ष पूर्व हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार से हुआ था। प्राथमिकी में उल्लेख किया गया था कि

अनुवादित

शादी के तीन साल बाद, मृतका का पति बार-बार 50,000 रुपये की राशि और सोने की चेन की मांग कर रहा था और जब उसकी मांगें पूरी नहीं हुईं, तो उसकी बेटी को परेशान किया जा रहा था और उसे पीटने के बाद, उसे माता-पिता के घर भेज दिया गया था। उनकी बेटी ने अपने पति द्वारा 50,000 रुपये की मांग के बारे में बताया। इसके बाद सूचनाकर्ता के आश्वासन पर उसकी बेटी को दामाद अपने घर ले गया। आगे यह उल्लेख किया गया है कि मृतक को उसके दामाद द्वारा परेशान किया गया था। बेटी द्वारा बुलाए जाने पर, सूचनाकर्ता उसके घर गया और उसकी बेटी ने कहा कि अगर वह अपने घर नहीं ले जाएगा, तो वे उसे मार देंगे। सूचनाकर्ता बेटी को अपने घर ले गया। वर्ष 2008 में धनतेरस के अवसर पर जब सूचनाकर्ता अपने दामाद की दुकान पर गया तो उसने सूचनाकर्ता से उक्त धन की मांग की और सूचनाकर्ता ने कुछ समय मांग तो उसके साथ चाकू से हमला किया गया और वह घायल हो गया। यह घटना थाने में दर्ज की गई थी। उसकी बेटी उसके घर पर रह रही थी। आगे यह भी बताया गया है कि दिनांक 13-12-2008 को थानाद्यक्ष, थाना-पडारी द्वारा दबाव और आश्वासन दिए जाने पर कि उनकी बेटी की सुरक्षा की जाएगी, उनकी बेटी को उनके दामाद के साथ भेज दिया गया था। 10.03.2009 को, उनका बेटा कमलेश होली के अवसर पर अपनी बहन से मिलने गया, जहां अमित कुमार और उसकी दादी उससे मिले, लेकिन उसे अपनी बहन से मिलने से मना कर दिया गया और यह कहकर कि वह गंगा में दवा लेने गई थी, उसके बेटे कमलेश को वापस कर दिया गया। 12.03.2009 को फिर से उनका बेटा कमलेश अपनी बहन से मिलने के लिए उसके घर गया, जहां उसे अमित कुमार और उसकी दादी ने सूचित किया कि उसकी बहन घर नहीं लौटी। दिनांक 13-03-2009 को प्रातः लगभग 11.00 बजे सूचनाकर्ता और उसके पुत्र कमलेश और सुरेश अमित कुमार के घर गए और उनकी पुत्री के बारे में पूछा, वही तथ्य बताया गया। तब सूचनाकर्ता ने पड़ोसी से अपनी बेटी के बारे में पूछा तो उसे पता चला कि अमित द्वारा पीटे जाने पर चीखें सुनाई दीं और कुछ समय बाद वह शांत हो गई। इसके बाद वह अपने बेटों के साथ मृतका के कमरे में गया, जहां दरवाजा बंद था और कुछ बदबू आ रही थी। टेलीफोन पर मैसेज करने के अनुरोध पर दो कांस्टेबल मौके पर आए और ताला तोड़ा गया तो पता चला कि उनकी बेटी को मृत नंगी हालत में रखा गया था। इसके बाद अमित कुमार और उनकी दादी के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई।

4. उपरोक्त प्राथमिकी पर, जांच को गति दी गई थी। शव को शव परीक्षण के लिए भेजा गया था जिसमें यह राय दी गई थी कि मृत्यु का कारण शव से पूर्व चोट लगने और गला घोंटने के कारण सदमा और रक्तस्राव था। विवेचनाधिकारी ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत कई गवाहों के बयान दर्ज किए और आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 498 ए, 304 बी भ०द०वि० और दहेज

निषेध अधिनियम की 3/4 के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

5. अभियुक्तों को उन आरोपों का सामना करना पड़ रहा था जो विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय थे, इसलिए, मामला सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध था, जहां इसे सत्र विचारण संख्या-148 वर्ष 2009 के रूप में पंजीकृत किया गया था।

6. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त/अपीलकर्ता पर धारा 498 ए, 304 बी भ०द०वि० और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत आरोप लगाया। आरोपी/अपीलकर्ता को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा। इसलिए, परीक्षण शुरू हुआ। अभियोजन पक्ष ने लगभग 6 गवाहों की जांच इस प्रकार की:

1	उमा शंकर	अ०सा०-1
2	सुनीता दुबे	अ०सा०-2
3	डॉ एच आर मौर्य	अ०सा०-3
4	शिव शंकर सिंह	अ०सा०-4
5	महेश सिंह राना	अ०सा०-5
6	नन्हे लाल संगमा	अ०सा०-6

7. चक्षुक संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए थे:

1	प्राथमिकी	प्रदर्श क-1
2	तहरीरी रिपोर्ट	प्रदर्श क-2
3	जी डी क़ायमी	प्रदर्श क-3
4	नमूना मोहर	प्रदर्श क-4
5	सी एम ओ को चिट्ठी	प्रदर्श क-5
6	फ़ोटो नाश	प्रदर्श क-6
7	शव परीक्षण के लिए पुलिस की चिट्ठी	प्रदर्श क-7
8	शव परीक्षण के लिए तहसीलदार की चिट्ठी	प्रदर्श क-8
9	रिपोर्ट संख्या-17 समय 14.00 बजे	प्रदर्श क-9
10	कॉन्स्टेबल 38 नन्हे लाल की रवानगी	प्रदर्श क-10
11	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-11
12	पंचायतनामा	प्रदर्श क-12
13	नक़्शा नज़री	प्रदर्श क-13
14	आरोप पत्र	प्रदर्श क-14

8. मुकदमे के अंत में, धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त के बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को

अनुवादित

दोषी ठहराया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

9. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता को सूचनाकर्ता द्वारा झूठा फंसाया गया है क्योंकि अपीलकर्ता की ओर से अतिरिक्त दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी।

10. हमें निर्णय के माध्यम से समझते हुए, जब न्यायालय का यह विचार था कि मृत्यु चिकित्सा साक्ष्य को देखते हुए एक हत्या थी, तो अधिवक्ता ने मामले में उदारता दिखाने का अनुरोध किया और कम सजा की मांग की क्योंकि अभियुक्त-अपीलकर्ता 13 साल से अधिक समय से जेल में है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने 9.12.2022 को तय आपराधिक अपील संख्या-2895 वर्ष 2015 (मनोज शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है।

11. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता का कहना है कि यह एक वीभत्स मामला है जहां मृतका को अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया था। मृतका के शरीर पर चोट के 21 निशान मिले हैं। इसलिए, इस न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता के प्रति कोई उदारता नहीं दिखाई जा सकती है।

12. गवाहों के साक्ष्य और शव परीक्षण रिपोर्ट पर विचार करते हुए, जिसमें कहा गया है कि मृतका के शरीर पर चोट मृत्यु का कारण होगी और यह हत्या की मौत थी, हम निचली अदालत के निष्कर्ष से सहमत हैं। हालांकि, यह देखा जाना चाहिए कि क्या सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसे संशोधित करने की आवश्यकता है। इस संबंध में, हमें भारत में प्रचलित दंड के सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

13. मो. गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1926], सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह देखा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आमतौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना होगा। उपसंस्कृति जो सामाजिक-विरोधी व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए उबारना है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय प्रबल होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग को खराब कर देती है। यदि तुम्हें किसी व्यक्ति को बदला देना है, तो तुम्हें उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा

अनुवादित

और, पुरुषों को चोटों से सुधार नहीं किया जाता है।

14. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एस.सी.सी. 257] में 'उचित दंड' की व्याख्या यह कहते हुए की गई थी कि दंड या तो अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की मात्रा का निर्धारण करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है।

15. रवाडा शशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 2017 एस.सी. 1166 में, सुप्रीम कोर्ट ने जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एस.सी.सी. 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एस.सी.सी. 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एस.सी.सी. 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एस.सी.सी. 441], में निर्णयों को संदर्भित किया और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एस.सी.सी. 463] और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारक को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और उसे अंजाम दिया गया, अपराध करने का उद्देश्य, अभियुक्त का आचरण, प्रयुक्त हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचारणीय क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। इसके अलावा, सजा देने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके कृत्य के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर प्राप्त किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि सजा देने में अनुचित उदारता से बचा जाए। इस प्रकार, देश में अपनाया गया दांडिक

अनुवादित

न्याय विधिशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं है बल्कि सुधारात्मक और संशोधात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

16. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और संशोधात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए।

17. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा दी गई सजा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए बहुत कठोर है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जैसा कि ऊपर चर्चा की है, ने निर्णय दिया है कि दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

18. उपरोक्त के मद्देनजर, निचली अदालतों द्वारा तथ्यों के निष्कर्ष असंगत नहीं हैं। हालांकि, जहां तक सजा का सवाल है, हम इसे 10 साल के सश्रम कारावास से बदल देते हैं। आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा धारा 498 ए भ०द०वि० और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत सजा पहले ही पूरी की जा चुकी है। जुर्माना और चूक बनाए रखी जाती है। चूंकि 10 साल की कैद पहले ही पूरी हो चुकी है, इसलिए अभियुक्त-अपीलकर्ता को, यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है, तो तुरंत रिहा किया जाए। वह रिहाई की तारीख से चार सप्ताह के भीतर जुर्माना जमा करेगा और जुर्माना जमा नहीं करने की स्थिति में उसे डिफ़ॉल्ट (चूक की स्थिति में) सजा की अवधि के लिए फिर से कैद में रखा जाएगा।

19. उपर्युक्त के मद्देनजर, अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित माना जाएगा। अभिलेख को तत्काल निचली अदालत को वापस भेजा जाए।

(2023) 2 ILRA 794

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह,

अनुवादित

आपराधिक अपील संख्या 7783/2010

धर्मेन्द्र एवं अन्य

...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री एस.सी. तिवारी, श्री स्वातश्व अग्रवाल, श्री स्वयंनंद सिसौदिया, श्री कमलेश कुमार त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 32- एकाधिक मृत्यु पूर्व घोषणा- पति उसे अस्पताल ले गया है और यहां तक कि नायब तहसीलदार के समक्ष 1.5.2008 को उसके मृत्यु पूर्व कथन पर भी विचारणीय न्यायालय ने विश्वास कर लिया है। सास-ससुर यहां तक कि पति पर भी कोई आरोप नहीं है। हालांकि, दूसरे मृत्यु पूर्व बयान में पति, सास और ससुर पर आरोप लगाया गया है। यही संदेह उत्पन्न करता है। भले ही हम दूसरे मृत्युपूर्व बयान को स्वीकार कर लें जो कि पहले मृत्युपूर्व बयान के विपरीत है, पति द्वारा मृतक को अस्पताल ले जाना हमें विद्वान न्यायाधीश के साथ सहमत होने की अनुमति नहीं देगा। गवाहों के साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए और पोस्टमार्टम रिपोर्ट सहित चिकित्सा साक्ष्यों पर भी विचार करते हुए, आरोपी-अपीलकर्ता नंबर 1 के अपराध के बारे में हमारे मन में कोई संदेह नहीं बचा है। हालाँकि, चूँकि ससुर और सास ने कोई प्रत्यक्ष कृत्य नहीं किया है और उन पर सामान्य आरोप लगाए गए हैं, इसलिए उन्हें दोषमुक्त किया जाता है। चूंकि मृत्यु पूर्व दिए गए किसी भी बयान में मृतक के ससुर और सास के विरुद्ध कोई आरोप नहीं है, इसलिए ससुर और सास की सजा बरकरार नहीं है।

सज़ा की मात्रा - आनुपातिकता का सिद्धांत - देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए। वाद के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर प्रदान करना चाहिए।चूंकि हमारे देश का आपराधिक न्यायशास्त्र सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है और आरोपी को सजा देने में अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए, इसलिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत अपीलकर्ता संख्या 1 की सजा को पहले से ही पारित अवधि में संशोधित किया गया है। (पैरा 12, 13, 18, 19, 20)

आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों संदर्भित:-</u>

अनुवादित

1. मो. गियासुद्दीन बनाम ए.पी. राज्य, एआईआर 1977 एससी 1926
2. देव नारायण मंडल बनाम यू.पी. राज्य (2004) 7 एससीसी 257
3. रावदा शशिकला बनाम ए.पी. राज्य, एआईआर 2017 एससी 1166

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,
&
माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. यह अपील अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, रमाबाई नगर, कानपुर देहात द्वारा द.प्र.सं. की धारा 498ए / 304 बी और डी.पी. अधिनियम की धारा 3/4 के तहत 2008 के मुकदमा अपराध संख्या 89 थाना सिकन्दरा जिला रमाबाई नगर (कानपुर देहात) द्वारा अपीलार्थीओं को धारा द.प्र.सं. की धारा 498 ए / 304 बी और डी. पी. अधिनियम की धारा 4 के तहत दोष सिद्ध ठहराते हुए अपीलार्थी संख्या 1 को द.प्र.सं. की धारा 304 बी के तहत आजीवन कारावास और द.प्र.सं. की धारा 498 ए के तहत 3 साल का कठोर कारावास और रुपये 5,000/- का जुर्माना एवं डी. पी. अधिनियम की धारा 4 के तहत 2 वर्ष का कठोर कारावास और रुपये 5,000/- का जुर्माना और जुर्माना अदा न करने पर अपीलार्थी संख्या 1 को द.प्र.सं. की धारा 498 ए के तहत 6 मास का अतिरिक्त कठोर कारावास डी. पी. अधिनियम की धारा 4 के तहत 6 मास के अतिरिक्त सश्रम कारावास की सजा सुनाई। अपीलार्थी संख्या 2 अंशो देवी को धारा 304 बी के तहत दोष सिद्ध पाते हुए 6 वर्ष का सश्रम कारावास, द.प्र.सं. की धारा 498 ए के तहत 2 वर्ष का सश्रम कारावास और 2000 रुपये का जुर्माना लगाया गया और जुर्माने का भुगतान न करने पर अपीलार्थी संख्या 2 को द.प्र.सं. की धारा 498 ए के तहत 3 मास का अतिरिक्त सश्रम कारावास और डी.पी. अधिनियम की धारा 4 के तहत 2 मास का अतिरिक्त सश्रम कारावास तथा अपीलार्थी संख्या 3 राम किशुन को धारा 304 बी के तहत 7 वर्ष का सश्रम कारावास तथा द.प्र.सं. की धारा 304 बी के तहत एक वर्ष के सश्रम कारावास एवं 2000 रूपये जुर्माने का प्रावधान किया गया और डी.पी. अधिनियम की धारा 4 के तहत, 6 माह का अतिरिक्त सश्रम कारावास एवं 2000 रूपये जुर्माना एवं जुर्माना न देने पर धारा 498 ए के तहत दोष सिद्ध पाते हुए अपीलार्थी संख्या 3 को 2 माह का अतिरिक्त सश्रम कारावास एवं डी.पी. अधिनियम की धारा 4 के तहत 1 माह का अतिरिक्त सश्रम कारावास की सजा सुनाई जाती है और सभी सजाएं एक साथ चलेंगी, से उत्पन्न, 2009 के सत्र विचारण संख्या 114 (राज्य बनाम धर्मेंद्र और अन्य) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 03.11.2010 को चुनौती देती है। ।

2. संक्षेप में तथ्य यह है कि परिवादी गोरेलाल की पुत्री श्रीमती सीता देवी का विवाह अभियुक्त धर्मेन्द्र पुत्र राम किशुन के साथ दिनांक 10-05-07 को हिन्दू रीति रिवाज के अनुसार हुआ था। शादी के कुछ समय बाद, धर्मेंद्र और उसके पिता राम

अनुवादित

किशुन और राम किशुन की पत्नी श्रीमती अंशो देवी ने परिवादी की बेटी के साथ मारपीट करना शुरू कर दिया और मोटर साइकिल और सोने की चेन की मांग करते थे, अन्यथा वे उसे किसी दिन मार डालेंगे। दिनांक 30-4-08 को रात्रि लगभग 12.00 बजे उपरोक्त अभियुक्त ने परिवादी की पुत्री पर मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी, जिसकी सूचना दिनांक 1.5.08 को प्रातः 4.00 बजे कुछ विश्वसनीय सूत्रों के माध्यम से परिवादी को प्राप्त हुई। परिवादी तुरंत कई लोगों के साथ अपनी बेटी के घर पहुंचा, जहां उसे पता चला कि उसकी बेटी पूरी तरह से जल गई है और उसे कानपुर के अस्पताल में भर्ती कराया गया है। इस घटना को कई ग्रामीणों ने देखा। परिवादी का दृढ़ विश्वास है कि दहेज की मांग पूरी न हो पाने के कारण आरोपियों ने उसकी बेटी को जलाकर मार डाला है।

3. जांच की शुरुआत की गई। विभिन्न व्यक्तियों के बयान दर्ज करने के बाद, विवेचना अधिकारी ने आरोप पत्र प्रस्तुत किया। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जिनके समक्ष आरोप पत्र रखा गया था, ने उसे विद्वान सत्र न्यायाधीश के समक्ष रखा। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने विद्वान सरकारी अधिवक्ता और अभियुक्त की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद आरोप विरचित किये।

4. तलब किए जाने पर, अभियुक्त ने खुद को दोषी नहीं बताया और विचारण चाहा, इसलिए, विचारण शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 9 गवाहों की जांच की, जो इस प्रकार हैं:

1	गोरे लाल	पीडब्लू 1
2	रानी देवी	पीडब्लू 2
3	गोपी श्याम	पीडब्लू 3
4	डॉ. आर.के. चौधरी	पीडब्लू 4
5	कर्मवीर सिंह	पीडब्लू 5
6	चन्द्र शेखर वर्मा	पीडब्लू 6
7	हरी सिंह	पीडब्लू 7
8	अयोध्या प्रसाद सचान	पीडब्लू 8
9	डॉ. अनिल कुमार शुक्ला	पीडब्लू 9

5. निम्नलिखित दस्तावेज़ चश्मदीद बयान के समर्थन में दायर किये गए:

1	एफ. आई.आर.	उदा. का. 2
2	प्रश्न पर लिखित रिपोर्ट	उदा. का. 1
3	पंचायतनामा	उदा. का. 15
4	पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट	उदा. का. 6
5	साइट योजना	उदा. का. 11
6	आरोप पत्र	उदा. का. 5

6. विचारण के अंत में और द.प्र.सं. की धारा 313 के तहत अभियुक्तों का बयान दर्ज करने के बाद अभियोजन पक्ष और

अनुवादित

बचाव पक्ष की दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने उपरोक्त बताए अनुसार अपीलार्थीगण को दोषी ठहराया।

7. श्री स्वमांनंद सिसौदिया को अपीलार्थीगण कमलेश कुमार त्रिपाठी का सहयोग करते हुए और राज्य की ओर से ए.जी.ए. को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया।

8. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि मुखबिर ने अपीलार्थी को झूठा फंसाया है क्योंकि अपीलार्थी की ओर से अतिरिक्त दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी।

9. आगे यह भी कहा गया है कि ससुर और सास की ओर से कोई प्रत्यक्ष कार्य नहीं किया गया है और उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है और उनके खिलाफ केवल सामान्य आरोप लगाए गए हैं।

10. निर्णय के माध्यम से हमें बताते समय, जब न्यायालय का यह विचार था कि चिकित्सा साक्ष्य को देखते हुए मृत्यु एक मानव वध थी, विद्वान अधिवक्ता ने मामले में उदारता दिखाने का अनुरोध किया और कम सज़ा की मांग की क्योंकि अभियुक्त-अपीलार्थी संख्या 1 (पति) 17 साल से अधिक समय से जेल में है। अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने 2015 की आपराधिक अपील संख्या 2895 (मनोज शर्मा बनाम उ.प्र. राज्य) में 9.12.2022 को विनिश्चित इस न्यायालय के निर्णय का अवलम्ब लिया है।

11. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने कहा है कि यह एक गंभीर मामला है जहां मृतक को आरोपी-अपीलार्थीगण द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया था। अपराध की वीभत्सता को देखते हुए, इस न्यायालय द्वारा अभियुक्त अपीलार्थी के प्रति कोई नरमी नहीं दिखाई जा सकती।

12. अपीलार्थी संख्या 1 17 वर्ष से जेल में है, पति उसे अस्पताल ले गया और यहां तक कि नायब तहसीलदार के समक्ष 1.5.2008 को उसके मृत्युकालिक बयान पर भी सत्र न्यायालय ने विश्वास कर लिया। सास-ससुर यहां तक कि पति पर भी कोई आरोप नहीं है। हालांकि, दूसरे मृत्यु पूर्व बयान में पति, सास और ससुर पर आरोप लगाया गया है। अधिवक्ता के अनुसार, विभिन्न मृत्युकालिक बयान को स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह संदेह पैदा करता है। भले ही हम दूसरा मृत्युकालिक बयान स्वीकार कर लें जो पहले मृत्युकालिक बयान के विपरीत है, पति द्वारा मृतका को अस्पताल ले जाना हमें विद्वान न्यायाधीश से सहमत होने की अनुमति नहीं देगा।

13. गवाहों के साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए और पोस्टमार्टम रिपोर्ट सहित चिकित्सा साक्ष्यों पर भी विचार करते हुए, आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 के अपराध के

अनुवादित

बारे में हमारे मन में कोई संदेह नहीं बचा है, हालाँकि, चूंकि ससुर और सास ने कोई प्रत्यक्ष कृत्य नहीं किया है और उनके खिलाफ सामान्य आरोप लगाए गए हैं, इसलिए उन्हें बरी कर दिया गया है।

14. अब हम अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता के वैकल्पिक निवेदन की ओर बढ़ते हैं कि आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर है जिसे मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, विशेष रूप से मृत्युकालिक बयान जो एक-दूसरे के विरोधाभासी हैं, को देखते हुए कम करने की आवश्यकता है।

15. हालाँकि यह देखा जाना चाहिए कि क्या सज़ा की मात्रा बहुत कठोर है और इसमें संशोधन की आवश्यकता है। इस संबंध में, हमें भारत में प्रचलित दंड सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

16. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम ए.पी. राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926], सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने यह देखा है किः

"अपराध एक विकृतिजन्य विपथन है। अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होता है। जो उप-संस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, दंडविद्या में रुचि का ध्यान व्यक्ति पर है और लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और क्रूर दंड देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारे आपराधिक न्यायालयों में 'आतंक से' के दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, चूँकि व्यक्ति के क्रूर कारावास से केवल उसके मस्तिष्क को आघात पहुँचता है। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे चोट पहुंचानी होगा। यदि आपको उसे सुधारना है, तो आपको उसे सुधारना होगा और, लोग चोटों से नहीं सुधरते।"

17. 'देव नारायण मंडल बनाम उ.प्र. राज्य [(2004) 7 एससीसी 257] में 'उचित दण्ड' व्याख्या की गई थी। यह देखते हुए कि दण्ड न तो अत्यधिक कठोर होना चाहिए और न ही हास्यास्पद रूप से कम होना चाहिए। दण्ड की अवधि निर्धारित करते समय न्यायालय को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। दण्ड किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध कारित करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। दण्ड देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमर्जी से नहीं किया जा सकता।

अनुवादित

18. रावदा शशिकला बनाम ए.पी. राज्य एआईआर 2017 एससी 1166 में, सर्वोच्च न्यायालय ने जमील बनाम उ.प्र. राज्य [(2010) 12 एससीसी 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463] में निर्णयों का उल्लेख किया और ये दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक आव्यूह के आधार पर सुधारात्मक तंत्र या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और कारित किया गया, अपराध करने का हेतुक, अभियुक्तों का आचरण, प्रयोग किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगी। इसके अलावा, दण्ड सुनाने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावशीलता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी। अपराध की प्रकृति और कारित करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित दण्ड अधिनिर्णीत करना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि न्यायालयों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, समग्र रूप से समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित देकर हासिल किया जा सकता है। कानून को, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकास नहीं कर सकता है।इसलिए, दण्ड देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और सुधारकारी है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

19. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और सुधारकारी है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का

अनुवादित

अवसर देने के लिए सभी उपाय किए जाने चाहिए।

देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए सत्र न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की दी गई सजा बहुत कठोर है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, यह माना कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

21. उपरोक्त के दृष्टिगत अभियुक्त की दोषसिद्धि- अपीलार्थीगण पर धारा 304 बी के तहत मामला कायम रखा गया है। हालाँकि, जहाँ तक आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 के दण्ड का प्रश्न है, हम इसे 10 साल के सश्रम कारावास में बदल देते हैं। आरोपी अपीलार्थी संख्या 1 को बिना कोई जमानत मांगे तुरंत रिहा किया जाए। हम इस बात से निराश हैं कि 17 साल बीत जाने के बावजूद आरोपी के मामले में परिहार पर विचार नहीं किया गया, जबकि यह कोई जघन्य अपराध नहीं है। बल्कि मृतका के मृत्युकालिक बयान से सास - ससुर के विरुद्ध 304 भाग बी का कोई मामला भी नहीं बनता है। उन्हें बरी किया जाता है और चूंकि वे पहले से ही जमानत पर हैं, इसलिए उन्हें आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता

20. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड का सुधारात्मक सिद्धांत' अपनाया जाना चाहिए और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड नहीं है। उनके जमानत पत्र रद्द किए जाते हैं।

22. अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। रिकॉर्ड और कार्यवाही तुरंत अवर न्यायालय को वापस भेजी जाए। आक्षेपित निर्णय और आदेश उपरोक्त सीमा तक संशोधित माने जायेंगे।

23. यह न्यायालय समर्थ रुप से न्यायालय की सहायता करने के लिए विद्वान अधिवक्ताओं का आभारी है।

(2023) 2 ILRA 799

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 13.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय

माननीय न्यायमूर्ति नरेन्द्र कुमार जौहरी,

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 103/2022

मो. शीबू @ शीबू चौधरी

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: सर्वेश कुमार पांडेय, सुशील कुमार सिंह, त्रिशिता सिंह

अनुवादित

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी.आई., डॉ. पूजा सिंह, जी.ए.

आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950 अनुच्छेद - 22, 22(5) और 226 - राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 - धारा 3(2), 3(3) और - आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, - धारा 7, - - सामान्य खंड अधिनियम , धारा- 21, - भारतीय दंड संहिता, 1860 धारा 124-(ए), 153-(ए), 294, 295-(ए), 298, 354-(केए) और 505-(2) - सूचना और प्रौद्योगिकी अधिनियम - धारा - 67 - बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट - निरोध आदेश अभ्यावेदन के विरुद्ध - निरस्त - पोषणीयता - धारा के प्रावधानों के उल्लंघन - उन्होंने मुख्य रूप से इस आधार पर जोर दिया है कि राज्य सरकार द्वारा नजरबंदी के आदेश के विरुद्ध बंदी द्वारा किए गए अभ्यावेदन के निस्तारण में अनुचित देरी हुई है, यहां तक कि अभ्यावेदन प्राप्त होने के बाद डी.एम. उचित परिश्रम के साथ राज्य सरकार को इसे प्रस्तुत करने में विफल रहा - आयोजित, हिरासत प्राधिकारी द्वारा पारित हिरासत आदेश, यदि राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित किया जाता है, तो राज्य सरकार के अनुमोदन के आदेश के साथ विलय हो जाता है जो हिरासत प्राधिकारी को कार्यशील बनाता है - न्यायालय ने पाया कि, यदि सामान्य खंड अधिनियम की धारा 21 के प्रावधानों के अनुसार, हिरासत आदेश को पूर्ववत करने या रद्द करने की शक्ति राज्य सरकार द्वारा ऐसे हिरासत आदेश की अनुमति के बाद भी हिरासत प्राधिकारी को दी जाती है, तो यह एक बहुत ही असामान्य स्थिति को जन्म दे सकती है जहां डी.एम. वाद में बंदी के प्रतिनिधित्व पर विचार करने पर डी.एम. उसे अनुमति देते हैं और नजरबंदी आदेश को अपास्त कर देते हैं - डी.एम. ने कथन दिया है कि उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन पर निर्णय लेने में कुछ समय लिया, जिसे उन्होंने निरस्त कर दिया - डी.एम. द्वारा उठाया ऐसा कदम पूरी तरह से अनावश्यक और अनुचित था और इस तरह के अभ्यास को करने के लिए उनके द्वारा समर्पित समय को आसानी से बचाया जा सकता था और राज्य सरकार को याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व को प्रस्तुत करने में उपयोग किया जा सकता था, इसलिए बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की अनुमति दी जाती है। (पैरा - 40, 41, 43)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. हरीश पावहा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 1981 एससी 1126

2. राजम्मल बनाम टी.एन. राज्य एवं अन्य, (1999) 1 एससीसी 417

3. के.एम. अब्दुल्ला कुन्ही बनाम भारत संघ, (1991) 1 एससीसी 476: 1991 एससीसी (सीआरआई) 613

4. मो. फैय्याज मंसूरी बनाम भारत संघ एवं अन्य, बंदी प्रत्यक्षीकरण संख्या 23475/2020, निर्णय 07.09.2021

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति देवेंद्र कुमार उपाध्याय द्वारा प्रदत्त)

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत यह कार्यवाही निरूद्ध व्यक्ति-मोहम्मद शीबू उर्फ शीबू चौधरी द्वारा अपने भाई एवं वाद मित्र मुबारक अहमद के माध्यम से बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने की प्रार्थना करते हुए संस्थित की गई है एवं यह प्रार्थना की गई है कि जिला मजिस्ट्रेट, सीतापुर के निर्देशानुसार दिनांक 08.03.2022 के आदेश को अपास्त करते हुए निरुद्ध व्यक्ति को निरूद्धि से मुक्त कर दिया जाए।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुशील कुमार सिंह, राज्य-प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता एवं भारत संघ का प्रतिनिधित्व करने वाली विद्वान अधिवक्ता सुश्री पूजा सिंह को सुना एवं इस रिट याचिका पर हमारे सामने उपलब्ध अभिलेखों का परिशीलन किया।

3. जैसा कि ऊपर देखा गया है, इसमें दिया गया आदेश दिनांक 08.03.2022 को जिला मजिस्ट्रेट, सीतापुर द्वारा पारित किया गया है (इसके बाद 'निरूद्धि आदेश' के रूप में संदर्भित) जिसके अंतर्गत बंदी को राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 (इसके बाद 'एनएसए' के रूप में संदर्भित) की धारा 3(2) और 3(3) में निहित प्रावधानों के संदर्भ में जिला जेल, सीतापुर में निवारक निरूद्धि में रखने का आदेश दिया गया है।

4. यद्यपि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विवादित निरूद्धि आदेश पर महाभियोग चलाने के लिए विभिन्न आधारों का आग्रह किया गया है, तथापि, उन्होंने मुख्य रूप से इस आधार पर बल दिया है कि निरूद्धि के आदेश के विरूद्ध बंदी द्वारा किए गए अभ्यावेदन के निस्तारण में राज्य सरकार द्वारा अनुचित विलंब हुआ है, क्योंकि अभ्यावेदन प्राप्त होने के बाद जिला मजिस्ट्रेट उसे सम्यक् तत्परता के साथ राज्य सरकार को प्रस्तुत करने में विफल रहा, जो घातक है और परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता की निरूद्धि को खंडित कर देता है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि राज्य सरकार को अभ्यावेदन प्रस्तुत करने में जिला मजिस्ट्रेट की ओर से इस तरह के विलंब के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को एनएसए की धारा 8 द्वारा संकल्पित और भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (5) के अनुसार समुचित सरकार को आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन जल्द से जल्द प्रस्तुत करने का अवसर देने के अधिकार से इनकार कर दिया गया है। इस प्रकार, उनका तर्क यह है कि राज्य सरकार को अभ्यावेदन भेजने में जिला मजिस्ट्रेट की ओर से विलंब न केवल याचिकाकर्ता के उस अधिकार का उल्लंघन है जो उसे एनएसए की धारा 8 एवं भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(5) के तहत उपलब्ध है परन्तु यह भी कि यह इस हद तक घातक है कि निरूद्धि का आदेश मान्य नहीं है।

अनुवादित

5. दूसरी ओर, राज्य-प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को राज्य सरकार को प्रस्तुत करने में कथित विलंब हेतु जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दायर पूरक प्रति शपथ पत्र में पर्याप्त स्पष्टीकरण प्रदान किया गया है एवं इस तथ्य के बावजूद कि विलंब को उचित रूप से समझाया गया है, वर्तमान मामले के तथ्यों में एनएसए की धारा 8 एवं भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (5) के प्रावधानों के उल्लंघन का प्रश्न ही नहीं उठता है। उनका कहना है कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिये गए तर्क अत्यधिक गलत समझे गए हैं एवं रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

6. केंद्र सरकार/भारत संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि जहाँ तक भारत संघ का संबंध है, निरूद्धि आदेश के विरूद्ध बंदी द्वारा किए गए अभ्यावेदन के निस्तारण में कोई विलंब नहीं हुई है; न ही रिट याचिका में ऐसा कोई तर्क है। इस प्रकार, उसने तर्क दिया कि रिट याचिका खारिज किये जाने योग्य है।

7. हमने संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा की गई प्रतिस्पर्धी तर्कों पर सचेत रूप से विचार किया है। वाद बिंदु, जो मामले के तथ्यों और पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किए गए संबंधित प्रस्तुतियों के आधार पर, हमारे विचार के लिए उत्पन्न होता है, वह यह है कि क्या जिला मजिस्ट्रेट की ओर से अभ्यावेदन प्रस्तुत करने में विलंभ हुई है राज्य सरकार के निरूद्धि आदेश के विरूद्ध बंदी द्वारा किया गया बयान अस्पष्ट है एवं यह जिला मजिस्ट्रेट की उदासीनता एवं संवेदनहीनता को दर्शाता है, जो प्रश्नगत निरूद्धि आदेश को बनाए रखने हेतु घातक है।

8. ऊपर बताए गए मुद्दे पर उचित निर्णय लेने हेतु, हम कुछ तथ्यों पर ध्यान देते हैं, जिन पर पक्षकारों के मध्य विवाद नहीं है।

9. एनएसए की धारा 3(2) एवं 3(3) के अंतर्गत जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित निरूद्धि आदेश याचिकाकर्ता के विरूद्ध धारा 153-ए, 505(2), 294 भा.द.सं. एवं सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 67 के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 309/2021 में दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट पर आधारित है। उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 21.08.2021 को थाना-महमूदाबाद, जिला-सीतापुर में भा.द.सं. की धारा 124-ए, 295-ए, 298 और 354 (क) एवं आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7 (बाद में जोड़ी गई) के अंतर्गत दर्ज की गई थी।

10. उपरोक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट के संबंध में, याचिकाकर्ता को गिरफ्तार कर लिया गया था और वह 22.08.2021 से जेल में बंद था, हालांकि, उसे इस न्यायालय द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण वाद संख्या 1499/2022 में पारित आदेश दिनांक 02.03.2022 द्वारा

अनुवादित

जमानत पर रिहा करने का आदेश दिया गया था। इससे पहले कि याचिकाकर्ता को इस न्यायालय द्वारा जमानत देने हेतु दिनांक 02.03.2022 को पारित उक्त आदेश के अनुसार रिहा किया जा सके, जिला मजिस्ट्रेट ने 08.03.2022 को निरूद्धि आदेश पारित कर दिया।

11. जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित निरुद्धि आदेश दिनांक 08.03.2022 को राज्य सरकार द्वारा आदेश दिनांक 15.03.2022 के माध्यम से अनुमोदित किया गया।

12. जैसा कि जिला मजिस्ट्रेट ने अपने पूरक प्रति शपथपत्र दिनांक 14.10.2022 में स्वीकार किया, याचिकाकर्ता ने सचिव, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, राज्य सलाहकार बोर्ड एवं सचिव, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली को भी, दिनांक 16.03.2022 को अलग-अलग अभ्यावेदन दिया जो दिनांक 16.03.2022 को जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय में जेल अधीक्षक, सीतापुर द्वारा अपने पत्र दिनांक 16.03.2022 के माध्यम से प्राप्त हुए।

13. जहाँ तक याचिकाकर्ता द्वारा केंद्र सरकार को दिए गए अभ्यावेदन का प्रश्न है, यह रिकॉर्ड पर है कि दिनांक 16.03.2022 के उक्त अभ्यावेदन की जाँच केंद्र सरकार के समुचित प्राधिकारी द्वारा की गई थी एवं उसे खारिज कर दिया गया था। यह अस्वीकृति दिनांक 11.04.2022 को वायरलेस संदेश के माध्यम से सूचित की गई थी।

14. वाद पर उ.प्र. सलाहकार बोर्ड द्वारा दिनांक 01.04.2022 को विचार किया गया जहाँ याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत रूप से सुना गया एवं तदनुसार सलाहकार बोर्ड द्वारा एक रिपोर्ट भेजी गई, जिसके बाद राज्य सरकार ने निरूद्धि आदेश की पुष्टि करने एवं याचिकाकर्ता को 13.04.2022 को तीन माह की अवधि हेतु निरूद्धि में रखने का निर्णय लिया।

15. न्यायालय ने इस रिट याचिका पर विचार करते हुए दिनांक 11.10.2022 को एक आदेश पारित किया जिसमें विद्वान राज्य अधिवक्ता को 16.03.2022 को जेल अधिकारियों से प्राप्त अभ्यावेदन प्रस्तुत करने में उनकी ओर से विलंब के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा एक पूरक प्रति शपथ पत्र दाखिल करने एवं इसे राज्य सरकार/केंद्र सरकार को प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया। इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 11.10.2022 का आदेश निम्नवत है:-

"जैसा कि विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री तिलहरी ने प्रार्थना की थी, इस वाद को दिनांक 18.10.2022 को प्रस्तुत किया जाए ताकि अभ्यावेदन, जो जेल प्राधिकारियों से कार्यालय में दिनांक 16.03.2022 को प्राप्त हुआ था, राज्य सरकार/केंद्र सरकार, जैसा भी मामला हो, को प्रेषित करने में हुए विलम्ब के सम्बन्ध में, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रतिशपथपत्र प्रस्तुत किया जा सके, जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया जा रहा है।"

अनुवादित

16. आदेश दिनांक 11.10.2022 के अनुपालन में, जिला मजिस्ट्रेट ने एक पूरक प्रति शपथ पत्र दायर किया है जिसमें याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को प्रस्तुत करने में उनकी ओर से हुए विलंब को समझाने का प्रयास किया गया है, जो दिनांक 16.03.2022 को जिला मजिस्ट्रेट का कार्यालय, राज्य सरकार को प्राप्त हुआ था। उक्त पूरक प्रति शपथ पत्र में जिला मजिस्ट्रेट ने निम्नलिखित तथ्यों को बताया एवं स्वीकार किया है:

(ए) दिनांक 08.03.2022 के निरूद्धि आदेश के विरूद्ध याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार, केंद्र सरकार एवं उ.प्र. राज्य सलाहकार बोर्ड दिनांक 16.03.2022 को अलग-अलग अभ्यावेदन दिए जो अधीक्षक, जिला जेल, सीतापुर के उक्त दिनांक के पत्र के माध्यम से उसी दिन अर्थात 16.03.2022 को जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय में प्राप्त हुआ।

(बी) दिनांक 17.03.2022 से होली अवकाश प्रारम्भ हुआ जो दिनांक 20.03.2022 को समाप्त हुआ।

(सी) दिनांक 21.03.2022 को अभ्यावेदन दिनांक 16.03.2022 को अपर जिलाधिकारी, सीतापुर को आवश्यक कार्यवाही हेतु अंकित किया गया।

(डी) 22.03.2022 को जिला मजिस्ट्रेट ने अभ्यावेदन को पुलिस अधीक्षक को उनकी टिप्पणियों हेतु भेज दिया।

(ई) पुलिस अधीक्षक ने पत्र दिनांक 24.03.2022 के माध्यम से अपनी टिप्पणियाँ अग्रेषित कीं जो 26.03.2022 को जिला मजिस्ट्रेट, सीतापुर के कार्यालय में प्राप्त हुईं।

(एफ) जिला मजिस्ट्रेट ने तब स्वयं अभ्यावेदन पर विचार किया एवं आदेश दिनांक 26.03.2022 के माध्यम से इसे खारिज कर दिया।

(जी) जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अभ्यावेदन की अस्वीकृति की सूचना 26.03.2022 को अधीक्षक, जिला जेल, सीतापुर के माध्यम से याचिकाकर्ता को दी गई एवं उसके बाद जिला मजिस्ट्रेट ने अपने पत्र दिनांक 26.03.2022 के माध्यम से याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन गृह विभाग, उ0प्र0 शासन को भेज दिया जो दिनांक 27.03.2022 को सचिव गृह विभाग के कार्यालय में प्राप्त हुआ। याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन 27.03.2022 को पंजीकृत डाक के माध्यम से गृह मंत्रालय, भारत सरकार को भी भेजा गया था।

17. उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से दाखिल प्रति शप पत्र के प्रस्तर 6 में, जिसकी शपथ अवर सचिव, गृह (गोपनीय) विभाग द्वारा ली गई है, तथापि, यह कहा गया है कि टिप्पणियों सहित अभ्यावेदन दिनांक 16.03.202, उ.प्र. राज्य के संबंधित अनुभाग में प्राप्त दिनांक 28.03.2022 को जिलाधिकारी, सीतापुर के पत्र दिनांक 26.03.2022 सहित प्राप्त हुआा।

18. राज्य सरकार ने अपने प्रति शपथ पत्र में पुनः कहा है कि याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन का परीक्षण दिनांक 29.03.2022 को गृह विभाग के अवर

अनुवादित

सचिव द्वारा किया गया एवं इसका परीक्षण संयुक्त सचिव एवं विशेष सचिव द्वारा भी उसी दिन अर्थात दिनांक 29.03.2022 को किया गया था। राज्य सरकार के प्रति शपथ पत्र के अनुसार, याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन का परीक्षण अपर मुख्य सचिव द्वारा दिनांक 30.03.2022 को किया गया एवं पत्रावली उच्च अधिकारियों को अंतिम आदेश हेतु प्रस्तुत की गई एवं दिनांक 31.03.2022 को अभ्यावेदन खारिज कर दिया गया एवं तदनुसार राज्य सरकार द्वारा जिला अधिकारियों के माध्यम से याचिकाकर्ता को रेडियोग्राम दिनांक 01.04.2022 के माध्यम से सूचित किया गया।

19. उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, विद्वान राज्य-प्रतिवादियों द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अभ्यावेदन के निस्तारण में कोई विलंब नहीं हुई है एवं जिला मजिस्ट्रेट द्वारा राज्य सरकार को पारित उसके निरूद्धि आदेश के विरूद्ध याचिकाकर्ता द्वारा किए गए अभ्यावेदन को प्रस्तुत करने में हुए विलंब को पर्याप्त एवं उचित रूप से समझाया गया है।

20. इस मामले में, इस प्रकार, पक्षकारों के मध्य विवाद की जड़ यह है कि क्या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को राज्य सरकार को भेजने में हुए विलंब को उचित रूप से समझाया गया है ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि ऐसा विलंब हुआ था जो कि याचिकाकर्ता की निरूद्धि को दूषित करने हेतु घातक नहीं है।

21. विलंब के बारे में अपना निष्कर्ष देने से पहले, हम इस संबंध में प्रासंगिक विधि का परीक्षण कर सकते हैं। अनुच्छेद 22, जो भारत के संविधान के मौलिक अधिकारों वाले भाग अर्थात भाग-III में आता है, जो कुछ मामलों में गिरफ्तारी एवं निरूद्धि के विरूद्ध कुछ सुरक्षा प्रदान करता है। अनुच्छेद 22 का खंड 5 निवारक निरूद्धि प्रदान करने वाले किसी भी विधि के अंतर्गत दिए गए आदेश के अनुसरण में निरूद्धि के संबंध में है। यह निरूद्धि आदेश देने वाले प्राधिकारी पर दो कर्तव्य आरोपित करता है, जो इस प्रकार हैं: -

(i) निरूद्धि आदेश देने वाले प्राधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह निरूद्धि में लिए गए व्यक्ति को यथाशीघ्र उन आधारों के बारे में सूचित करे जिन पर आदेश दिया गया है, एवं

(ii) निरूद्धि में लेने वाला प्राधिकारी उसे निरूद्धि आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन करने का जल्द से जल्द अवसर देगा।

22. भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(5) के प्रावधानों के अनुरूप, एनएसए की धारा 8 में यह भी प्रावधान है कि हिरासत में लेने का अधिकार जितनी जल्दी हो सके, लेकिन आमतौर पर पांच दिनों से अधिक नहीं (असाधारण परिस्थितियों में एवं हिरासत की तिथि से दस दिनों के भीतर लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारण), बंदी को उन आधारों के बारे में सूचित करेंगे

अनुवादित

जिन पर आदेश दिया गया है और यह उसे समुचित सरकार के आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का शीघ्रातिशीघ्र अवसर भी प्रदान करेगा। भारत के संविधान का अनुच्छेद 22(5) नीचे दिया गया है:-

"22. कुछ मामलों में गिरफ्तारी और हिरासत के खिलाफ संरक्षण।-(5) निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन किए गए आदेश के अनुसरण में जब किसी व्यक्ति को निरूद्ध किया जाता है तब आदेश करने वाला प्राधिकारी यथाशक्य शीघ्र उस व्यक्ति को यह संसूचित करेगा कि वह आदेश किन आधारों पर किया गया है और उस आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन करने के लिए उसे शीघ्रातिशीघ्र अवसर देगा।"

23. राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की धारा 8 भी यहाँ उद्धृत की गई है:-

"8. आदेश द्वारा प्रभावित होने वाले व्यक्ति को निरोध आदेश के आधारों का प्रकट किया जाना-(1) जब एक व्यक्ति निरोध के आदेश के पालन पर निरूद्ध किया गया हो, आदेश बनाने वाले प्राधिकारी यथाशीघ्र लेकिन साधारणतः निरोध के दिनांक से पाँच दिन बाद नहीं और असाधारण स्थिति में जिसके कि कारण लिखित में उल्लिखित हों पन्द्रह दिन के बाद नहीं, वे आधार उसे बतायेगा जिन पर वह आदेश बनाया गया हो और आदेश के विरूद्ध उसे उपयुक्त सरकार को आवेदन देने का उसे शीघ्र अवसर देगा। (2) यदि अधिकारी उपधारा (1) के अन्तर्गत तथ्यों को बताना सार्वजनिक हित के विरूद्ध समझता है तो वह तथ्य प्रकट नहीं करेगा।

24. माननीय उच्चतम न्यायालय ने वर्ष 1981 में हरीश पावहा बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, एआईआर 1981 एससी 1126 के मामले में सुनवाई की थी।कि यह राज्य का कर्तव्य है कि वह निरूद्ध व्यक्ति के अभ्यावेदन का निर्धारण करने हेतु अत्यंत शीघ्रता से कार्यवाही करे, जिसका अर्थ है कि इस तरह का अभ्यावेदन प्राप्त होते ही मामले पर विचार किया जाना चाहिए और जब तक किसी सहायता हेतु प्रतीक्षा करना बिल्कुल आवश्यक न हो, तब तक लगातार निस्तारण किया जाता है, जब तक कि कोई अंतिम निर्णय न ले लिया जाए एवं निरोध में लिए गए व्यक्ति को सूचित न कर दिया जाए।

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(1999) 1 एससीसी 417 राजम्मल बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य** के वाद में प्रस्तर 6, 7 एवं 8 में उपरोक्त विधिक स्थिति को दोहराया है, जिन्हें निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"6. विद्वान अधिवक्ता ने राघवेंद्र सिंह बनाम अधीक्षक, जिला जेल, कानपुर [(1986) 1 एससीसी 650: 1986 एससीसी (सीआरआई) 60] वाद में इस न्यायालय के दो-न्यायाधीशों की पीठ के पूर्व निर्णय का भी हवाला दिया, जिसमें अभ्यावेदन पर विचार करने में इसी तरह का विलंब के कारण निरूद्धि को अनुचित पाया गया है। यह एक ऐसा वाद है जहाँ विलंब को "पूरी तरह से अस्पष्ट" माना गया था। रुमाना

अनुवादित

बेगम बनाम आंध्र प्रदेश राज्य में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ [1993 पूरक (2) एससीसी 341: 1993 एससीसी (सीआरआई) 551] ने मात्र इस आधार पर अभ्यावेदन पर विचार करने में विलंब को अस्वीकार कर दिया कि अभ्यावेदन मुख्य सचिव को संबोधित नहीं था। यह एक ऐसा वाद था जहाँ अभ्यावेदन राज्यपाल को भेजा गया था। इसलिए यह पाया गया कि इसमें अस्पष्टीकृत एवं अनुचित विलंब हुआ एवं परिणामस्वरूप निरूद्धि को निष्प्रभावी माना गया। हमें इस न्यायालय द्वारा कुंदनभाई दुलाभाई शेख बनाम जिला मजिस्ट्रेट, अहमदाबाद [(1996) 3 SCC 194: 1996 SCC (Cri) 470:JT (1996) 2 SC 532] : (SCC p. 203, para 21) में की गई निम्नलिखित टिप्पणियों का स्मरण कराया गया है :-

""21. पिछले तीन दशकों में इस न्यायालय द्वारा बार-बार ऊपरप्रतिपादित विधि के बावजूद, कार्यपालिका, अर्थात् राज्य सरकार एवं उसके अधिकारी अपने पुराने, सुस्त अंदाज में और लालफीताशाही सहित कई अन्य कारणों से सचिवालय में जंग खा रही अन्य सभी फाइलों की तरह ही उस अभ्यावेदन से भी बर्ताव कर रहे है जो अपनी स्वतंत्रता से वंचित किसी व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया गया है। सरकार एवं उसके अधिकारी लगातार सुस्ती का रवैया बनाए रखने की अपनी आदत नहीं छोड़ेंगे। इसी तरह, यह न्यायालय उस व्यक्ति की "स्वाधीनता एवं स्वतंत्रता" को बहाल करने हेतु निरूद्धि के आदेश को रद्द करने में संकोच नहीं करेगा, जिसकी निरूद्धि को सरकार ने ही उसके अभ्यावेदन का जल्द से जल्द निस्तारण नहीं होने के कारण दूषित हो जाने दिया हो।"

7. बंदी द्वारा भेजे गए अभ्यावेदन पर बिना किसी विलंभ के विचार करना सरकार का संवैधानिक दायित्व है। यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 22 में अभ्यावेदन पर निर्णय लेने हेतु कोई अवधि निर्धारित नहीं है, तथापि अनुच्छेद 22 के खंड (5) में "जितनी जल्दी हो सके" शब्द यह संदेश देते हैं कि अभ्यावेदन पर विचार किया जाना चाहिए और उसका निस्तारण जल्द से जल्द किया जाना चाहिए। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि प्राधिकारी को अभ्यावेदन के निपटान में होने वाली किसी भी विलंब के बारे में बताने से छूट मिल गई है। न्यायालय निश्चित रूप से इस बात पर विचार कर सकती है कि विलंब अनुमेय कारणों से हुआ है या अपरिहार्य कारणों से। इस स्थिति को के.एम. अब्दुल्ला कुन्ही बनाम भारत संघ [(1991) 1 एससीसी 476: 1991 एससीसी (सीआरआई) 613] में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ द्वारा अच्छी तरह से चित्रित किया गया है। पीठ द्वारा की गई टिप्पणियां निम्नवत उद्धृत है : (एससीसी पृष्ठ 484, पैरा 12)

"यह एक संवैधानिक आदेश है जो संबंधित प्राधिकारी को, जिसे बंदी अपना अभ्यावेदन सौंपता है, अभ्यावेदन पर विचार करने एवं यथासंभव शीघ्रता से उसका निस्तारण करने का आदेश देता है। "जितनी जल्दी हो सके" शब्द अनुच्छेद 22 के खंड (5) में आते हैं जो निर्माताओं की चिंता को

अनुवादित

दर्शाता है कि अभ्यावेदन पर शीघ्रता से विचार किया जाना चाहिए एवं बिना किसी परिहार्य विलंब के तात्कालिकता की भावना के साथ निपटाया जाना चाहिए। हालांकि, इस संबंध में कोई सख्त नियम नहीं हो सकता है। यह प्रत्येक वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है। संविधान या संबंधित निरोध विधि के अंतर्गत ऐसी कोई अवधि निर्धारित नहीं है जिसके भीतर अभ्यावेदन पर विचार किया जाना चाहिए। हालाँकि, आवश्यकता यह है कि अभ्यावेदन पर विचार करने में उदासीनता, शिथिलता या संवेदनहीन रवैया नहीं होना चाहिए। अभ्यावेदन के निस्तारण में अस्पष्टीकृत विलंब संवैधानिक अनिवार्यता का उल्लंघन होगा एवं यह निरंतर निरूद्धि को अस्वीकार्य और अवैध बना देगी।"

8. इसलिए, अब स्थिति यह है कि यदि अभ्यावेदन पर विचार करने में किसी उदासीनता या चूक के कारण विलंब हुआ, तो ऐसे विलंब से कैदी की आगे की निरूद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अन्य शब्दों में, अभ्यावेदन के निस्तारण में विलंब, यदि कोई हो, को स्पष्ट करना संबंधित प्राधिकारी का कार्य है। यह कहना पर्याप्त नहीं है कि विलंब बहुत कम था। इससे भी अधिक विलंब को भी स्पष्ट किया जा सकता है। इसलिए परीक्षण में विलंब की अवधि या सीमा नहीं है, बल्कि संबंधित प्राधिकारी द्वारा इसकी व्याख्या कैसे की जाती है।"

26. राजम्मल (उपरोक्त) के वाद में निर्णय से हमें यह संकेत मिलता है कि निवारक निरूद्धि के किसी भी विधि के अंतर्गत निरूद्धि में लिए गए बंदी की आगे की निरूद्धि पर किस विलंब का प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि यदि अभ्यावेदन पर विचार करने में किसी उदासीनता या चूक के कारण विलंब होता है, तो ऐसे विलंब से निरूद्धि में लिए गए व्यक्ति की आगे की निरूद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। पुनः यह माना गया है कि विलंब की व्याख्या करना संबंधित प्राधिकारी का कार्य है एवं यह भी कि विलंब की अवधि ही परीक्षण नहीं है; बल्कि परीक्षण यह है कि इस तरह की विलंब को संबंधित प्राधिकारी द्वारा कैसे समझाया जाता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना है कि अभ्यावेदन पर विचार करने में लापरवाही, शिथिलता या संवेदनहीन रवैया नहीं होना चाहिए एवं कोई भी अस्पष्ट विलंब संवैधानिक आदेश का उल्लंघन होगा जो निरंतर निरूद्धि को अवैध बना देगी।

27. **के.एम.अब्दुल्ला कुन्ही एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य**, **(1991) 1 एससीसी 476** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के निर्णय में भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(5) के अंतर्गत बंदी के दो अधिकारों की रूपरेखा दी गई है, जिसका उल्लेख हम पहले ही ऊपर कर चुके हैं।

28. **के.एम.अब्दुल्ला कुन्ही** (उपरोक्त) के वाद में निर्णय का प्रस्तर 7 निम्नवत है:

"7. संविधान के अनुच्छेद 22 के खंड (5) के अंतर्गत बंदी को दो अधिकार हैं: (i)

अनुवादित

जिस आधार पर निरूद्धि का आदेश आधारित है उसे जितनी जल्दी हो सके सूचित किया जाए, अर्थात वह आधार जिससे निरूद्धि में लेने वाले प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि हुई, एवं (ii) निरूद्धि के आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन करने का जल्द से जल्द अवसर प्रदान किया जाए।"

29. उक्त संवैधानिक पीठ के निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी माना गया है कि सरकार द्वारा बंदी के अभ्यावेदन पर विचार करने का अधिकार अनुच्छेद भारत के संविधान 22(4) के अंतर्गत बंदी के वाद एवं सलाहकार बोर्ड द्वारा उसके अभ्यावेदन पर विचार करने से स्वतंत्र है। के.एम.अब्दुल्ला कुन्ही (उपरोक्त) के वाद में निर्णय के प्रस्तर 11 को उद्धृत करना प्रासंगिक है जो निम्नवत है:-

"11. यह अब विवाद के दायरे से परे है कि अनुच्छेद 22 के खंड (5) के अंतर्गत अभ्यावेदन करने का संवैधानिक अधिकार आवश्यक निहितार्थ से अभ्यावेदन के उचित विचार के संवैधानिक अधिकार की आश्वस्ति देता है। दूसरा, सरकार का दायित्व वहन करना है कि बंदी को अभ्यावेदन देने एवं इस प्रकार के अभ्यावेदन पर विचार करने का अवसर, बंदियों के वाद को सलाहकार बोर्ड के पास अभ्यावेदन के साथ भेजने के सरकार के दायित्व से भिन्न है ताकि वह अपनी राय बनाने एवं सरकार को एक रिपोर्ट भेजने में सक्षम हो सके। अनुच्छेद 22 के खंड (4) एवं (5) में निहित है कि सरकार अभ्यावेदन पर विचार करने के अपने कर्तव्य का निर्वहन करते समय, ऐसे अभ्यावेदन पर बोर्ड के विचारों पर निर्भर नहीं रह सकती है। उसे बोर्ड के ऐसे किसी भी दृष्टिकोण से प्रभावित हुए बिना स्वयं ही अभ्यावेदन पर विचार करना होगा। अभ्यावेदन पर विचार करने का सरकार का दायित्व संदर्भों की सुनवाई के समय अभ्यावेदन पर विचार करने के बोर्ड के दायित्व से भिन्न है। सरकार अनिवार्य रूप से यह सुनिश्चित करने हेतु अभ्यावेदन पर विचार करती है कि क्या आदेश विधि के अंतर्गत शक्ति के अनुरूप है। दूसरी ओर, बोर्ड निरूद्धि में लिए गए लोगों के अभ्यावेदन एवं वाद पर विचार करता है ताकि यह जांच की जा सके कि निरूद्धि में रखने हेतु पर्याप्त वाद है या नहीं। बोर्ड द्वारा विचार एक अतिरिक्त सुरक्षा है एवं सरकार द्वारा अभ्यावेदन पर विचार का विकल्प नहीं है। सरकार द्वारा प्रतिनिधित्व पर विचार करने का अधिकार, अनुच्छेद 22 के खंड (5) द्वारा सुरक्षित है एवं यह बंदी के मामले और सलाहकार बोर्ड द्वारा अनुच्छेद 22 के खंड 4 सपठित अधिनियम की धारा 8(सी) के अंतर्गत उसके अभ्यावेदन पर विचार से स्वतंत्र है। (देखें: एसके अब्दुल करीम बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [(1969) 1 एससीसी 433]; पंकज कुमार चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [(1969) 3 एससीसी 400: (1970) 1 एससीआर 543]; श्यामल चक्रवर्ती बनाम आयुक्त पुलिस, कलकत्ता [(1969) 2 एससीसी 426]; बी. सुंदर राव बनाम उड़ीसा राज्य [(1972) 3 एससीसी 11]; जॉन मार्टिन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [(1975) 3 एससीसी 836: 1975 एससीसी

अभिमत दिव

(सीआरआई)) 255 : (1975) 3 एससीआर 211]; एसके सेकावत बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [(1975) 3 एससीसी 249 : 1974 एससीसी (सीआरआई) 867 : (1975) 2 एससीआर 161] और हरधन साहा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [(1975) 3 एससीसी 198 : 1974 एससीसी (सीआरआई) 816 : (1975) 1 एससीआर 778])"

30. इस बात पर जोर देते हुए कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(5) के अंतर्गत अभ्यावेदन किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंधित है, जो कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित एक अत्यधिक महत्वपूर्ण अधिकार है, इसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा के.एम.अब्दुल्ला कुन्ही (उपरोक्त) के वाद में माना गया है कि अनुच्छेद 22(5) इस प्रकार सरकार को अभ्यावेदन पर यथाशीघ्र विचार करने का विधिक आदेश प्रदान करता है। पुनः यह माना गया है कि अनुच्छेद 22(5) में आने वाला वाक्यांश "जितनी जल्दी हो सके" संविधान के निर्माताओं की चिंता को दर्शाता है कि अभ्यावेदन पर शीघ्रता से विचार किया जाना चाहिए एवं अपरिहार्य विलंब के बिना तात्कालिकता की भावना के साथ इसका निस्तारण किया जाना चाहिए। यह माना गया है कि यद्यपि संविधान के अंतर्गत या संबंधित निरूद्धि विधि के अंतर्गत कोई अवधि निर्धारित नहीं है जिसके भीतर अभ्यावेदन का निस्तारण किया जाना चाहिए, तथापि, आवश्यकता यह है कि अभ्यावेदन पर विचार करने में लापरवाही, शिथिलता या संवेदनहीन रवैया नहीं होना चाहिए।

31. **के.एम.अब्दुल्ला कुन्ही** (उपरोक्त) में वाद के प्रस्तर 12 यहाँ निम्नवत है:-

"12. अभ्यावेदन व्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंधित है, जो हमारे संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित अत्यधिक महत्वपूर्ण अधिकार है। इसलिए, अनुच्छेद 22 का खंड (5) सरकार पर प्रतिनिधित्व पर जल्द से जल्द विचार करने का विधिक दायित्व डालता है। यह एक संवैधानिक आदेश है जो संबंधित प्राधिकारी को, जिसे बंदी अपना अभ्यावेदन सौंपता है, अभ्यावेदन पर विचार करने एवं यथासंभव शीघ्रता से उसका निस्तारण करने का आदेश देता है। अनुच्छेद 22 के खंड (5) में आने वाले शब्द "जितनी जल्दी हो सके" दर्शाते हैं कि निर्माताओं की चिंता यह है कि अभ्यावेदन पर शीघ्रता से विचार किया जाना चाहिए एवं बिना किसी परिहार्य विलंब के अत्यावश्यकता की भावना से निस्तारण किया जाना चाहिए। हालांकि, इस संबंध में कोई सख्त नियम नहीं हो सकता है। यह प्रत्येक वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है। संविधान या संबंधित निरूद्धि विधि के अंतर्गत कोई अवधि निर्धारित नहीं है, जिसके भीतर अभ्यावेदन पर विचार किया जाना चाहिए। हालाँकि, आवश्यकता यह है कि अभ्यावेदन पर विचार करने में लापरवाही, शिथिलता या संवेदनहीन रवैया नहीं होना चाहिए। अभ्यावेदन के निस्तारण में कोई भी अस्पष्ट विलंब संवैधानिक अनिवार्यता का उल्लंघन होगा एवं यह निरंतर निरूद्धि को अस्वीकार्य एवं अवैध बना देगी। इस

अनुवादित

न्यायालय के निर्णयों की एक श्रृंखला द्वारा इस पर बार-बार जोर दिया गया है । (देखें: जयनारायण सुकुल बनाम डब्ल्यू.एम. राज्य [(1970) 1 एससीसी 219]; फ्रांसिस कोरली मुलिन बनाम डब्ल्यू.सी. खांबरा [(1980) 2 एससीसी 275: 1980 एससीसी (सीआरआई) 419]; राम धोंडू बोराडे बनाम वी.के. सराफ, पुलिस आयुक्त [(1989) 3 एससीसी 173: 1989 एससीसी (सीआरआई) 520] और असलम अहमद ज़हीर अहमद शेख बनाम भारत संघ [(1989) 3 एससीसी 277: 1989 एससीसी (सीआरआई) 554]।)"

32. **मोहम्मद फैय्याज मंसूरी बनाम भारत संघ एवं अन्य**, के वाद में 07.09.2021 (बंदी प्रत्यक्षीकरण संख्या 23475/2020) पर निर्णय दिया गया, जिसमें याचिकाकर्ता का यह तर्क कि उसके अभ्यावेदन को अग्रेषित करने में विलंब हुआ था, तथ्यपूर्ण पाया गया है एवं मात्र उक्त आधार पर, आक्षेपित निरूद्धि आदेश को रद्द कर दिया गया इसी तरह का विचार इस न्यायालय की एक खंड न्याय पीठ द्वारा व्यक्त किया गया है।

33. उपर्युक्त विधिक स्थिति के प्रकाश में, हमारे विवेक में यह स्पष्ट है कि निरूद्धि में लेने वाले प्राधिकारी का दायित्व है कि वह बंदी को निरूद्धि आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन करने का जल्द से जल्द अवसर प्रदान करे। अनुच्छेद 22 के उप खंड 5 में आने वाला प्रासंगिक खंड "उसे आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन करने का जल्द से जल्द अवसर प्रदान करेगा"। एनएसए की धारा 8 के प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (5) के साथ पूरी तरह से मेल खाते हैं और उसमें होने वाला प्रासंगिक वाक्यांश "उचित सरकार को आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन करने का जल्द से जल्द अवसर प्रदान करेगा"। हमारी सुविचारित राय में निरूद्धि में लिए गए व्यक्ति को नजरबंदी आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन करने का जल्द से जल्द अवसर देने का कोई मतलब नहीं होगा एवं उक्त वाक्यांश का अर्थ निरूद्धि में लिए गए आदेश के विरूद्ध जल्द से जल्द प्रतिनिधित्व करने के उसके अधिकार के बारे में जागरूक करने तक ही सीमित नहीं किया जा सकता है, बल्कि यह निरूद्धि में लेने वाले प्राधिकारी का कर्तव्य होगा कि वह निरूद्धि के आदेश के विरूद्ध बंदी द्वारा किए गए अभ्यावेदन को राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की योजना के अनुसार संबंधित अधिकारियों, अर्थात् राज्य सरकार, केंद्र सरकार एवं सलाहकार बोर्ड को यथाशीघ्र अग्रेषित एवं प्रस्तुत करे।

34. तथ्य की स्थिति जहाँ निरूद्धि आदेश पारित होने के बाद निरूद्धि में लेने वाला प्राधिकारी निरूद्धि में लिए गए व्यक्ति को बिना किसी समय की हानि के अभ्यावेदन करने के अपने अधिकार से अवगत कराता है, लेकिन, इस तरह के अभ्यावेदन को जल्द से जल्द राज्य सरकार या केंद्र सरकार या सलाहकार बोर्ड, को अग्रेषित करने में विफल रहता है, हमारी राय में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(5) और राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की धारा 8 की आवश्यकता को पूरा करने हेतु पर्याप्त नहीं होगा।

अनुवादित

35. जब हम उपरोक्त विधिक स्थिति के आलोक में स्वीकृत तथ्यों का परीक्षण करते हैं, तो हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा निरूद्धि के विरूद्ध अभ्यावेदन 16.03.2022 को दिया गया था जो अधीक्षक, जिला जेल, सीतापुर के पत्र दिनांक 16.03.2022 के साथ, उसी दिन जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय में प्राप्त हुआ था हालाँकि, इसे राज्य सरकार को 26.03.2022 को ही भेजा गया था। दूसरे शब्दों में, जिला मजिस्ट्रेट को बंदी द्वारा उसके निरूद्धि आदेश के विरूद्ध प्रस्तुत दिनांक 16.03.2022 के अभ्यावेदन को अग्रेषित करने में दस दिन लग गए।

36. जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 14.10.2022 को दायर पूरक प्रति शपथपत्र में दिए गए स्पष्टीकरण को हमारी राय में पर्याप्त या उचित नहीं कहा जा सकता है। कहा गया है कि याचिकाकर्ता का प्रतिवेदन दिनांक 16.03.2022 को चौथे दिन यानी 21.03.2022 को अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट को चिह्नित किया गया था, हालांकि यह कहा गया है कि 17.03.2022 और 20.03.2022 के बीच होली का अवकाश था। इसके बाद कहा जाता है कि अभ्यावेदन 22.03.2022 को पुलिस अधीक्षक को उनकी टिप्पणियों हेतु चिह्नित किया गया था, जो हमारी राय में 21.03.2022 को ही पुलिस अधीक्षक को चिह्नित किया जा सकता था, यदि उससे पहले नहीं। यदि 21.03.2022 को अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट को अभ्यावेदन चिह्नित किया जा सकता था तो इसे उसी दिन यानी 21.03.2022 को पुलिस अधीक्षक को क्यों चिह्नित नहीं किया जा सका, यह अस्पष्ट है। एक बार जब 22.03.2022 को पुलिस अधीक्षक को अभ्यावेदन भेज दिया गया, तो कहा जाता है कि उन्होंने अपने पत्र दिनांक 24.03.2022 के माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट को अपनी टिप्पणियाँ वापस कर दी थीं, जो 26.03.2022 को जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय में प्राप्त हुआ था। जिला मुख्यालय पर जिला मजिस्ट्रेट एवं पुलिस अधीक्षक का कार्यालय इतनी दूर स्थित नहीं हो सकता कि पुलिस अधीक्षक की टिप्पणी/पत्र दिनांक 24.03.2022 को जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय तक पहुंचने में 26.03.2022 तक का समय लगे।

37. यह भी ध्यान देने योग्य है कि यह 26.03.2022 को है जब जिला मजिस्ट्रेट ने बंदी के अभ्यावेदन को खारिज कर दिया एवं याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को राज्य सरकार को भेज दिया, जो जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दायर पूरक प्रति शपथ पत्र के अनुसार राज्य सरकार के कार्यालय में 27.03.2022 को प्राप्त हुआ था, हालाँकि, राज्य सरकार द्वारा दायर प्रति शपथपत्र के अनुसार यह 20.03.2022 को प्राप्त हुआ था।

38. उपरोक्त कालानुक्रमिक रूप से वर्णित निर्विवाद तथ्य, हमारी सुविचारित राय में, यह निष्कर्ष प्रदान करते हैं कि इस वाद में, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा निरूद्धि आदेश के विरूद्ध याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को

अनुवादित

राज्य सरकार को अग्रेषित करने में विलंब का कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(5) के अंतर्गत याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों के साथ-साथ एनएसए की धारा 8 के तहत उसके अधिकार के प्रति जिला मजिस्ट्रेट का लापरवाह और उदासीन रवैया था।

39. एक और पहलू है जिस पर हम विचार करना चाहेंगे। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दायर संक्षिप्त प्रति शपथपत्र दिनांक 14.10.2022 में उन्होंने कहा है कि याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन दिनांक 16.03.2022 को अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक को भेजा गया था एवं उसके बाद रिपोर्ट/टिप्पणी प्राप्त होने पर पुलिस अधीक्षक ने अपने पत्र दिनांक 24.03.2022 के माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व पर विचार किया एवं दिनांक 26.03.2022 को एक आदेश पारित करके इसे खारिज कर दिया। उक्त आदेश दिनांक 26.03.2022 की एक प्रति उक्त पूरक प्रतिशपथ पत्र के अनुलग्नक-एससीए 4 के रूप में संलग्न की गई है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर विचार करने एवं उसे खारिज करने की कार्रवाई एनएसए की योजना के अंतर्गत की गई थी, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दिनांक 08.03.2022 का निरूद्धि आदेश दिनांक 15.03.2022 के आदेश के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा पहले ही अनुमोदित कर दिया गया था। हम सामान्य खंड अधिनियम की धारा 21 के प्रावधानों के प्रति सचेत हैं, जिन्हें यहाँ उद्धृत किया गया है:

"21. ***अधिसूचनाओं, आदेशों, नियमों या उपविधियों के निकालने की शक्ति के अन्तर्गत उनमें जोड़ने, उनका संशोधन करने, उनमें फेरफार करने या उनका विखण्डन करने की शक्ति का होना-*** *जहाँ कि किसी [केन्द्रीय अधिनियम] या विनियम द्वारा [अधिसूचनाओं] आदेशों, नियमों या उपविधियों के [निकालने] की शक्ति प्रदत की गई है वहाँ इस प्रकार [निकाले गए] किन्ही भी [अधिसूचनाओं,] आदेशों, नियमों या उपविधियों में जोड़ने, उनका संशोधन कने, उनमें फेरफार करने या उनका विखण्डन करने की वैसी ही रीति से तथा वैसी मंजूरी और शर्तों के (यदि कोई हों) अध्यधीन रहते हुए प्रयोक्तव्य शक्ति, उस शक्ति के अन्तर्गत आती है।"*

40. इस प्रकार, इसमें कोई संदेह नहीं है, सामान्य खंड अधिनियम की धारा 21 के आधार पर, निरूद्धि में लेने वाले प्राधिकारी के पास निरूद्धि में लिए गए व्यक्ति के अभ्यावेदन पर निरुद्धि आदेश को रद्द करने की शक्ति हो सकती है, हालांकि, इस शक्ति का प्रयोग निरुद्धि प्राधिकारी द्वारा धारा 3(3) के अंतर्गत पारित निरुद्धि आदेश के धारा 3(4) की अपेक्षा के संदर्भ में राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित किये जाने से पूर्व ही किया सकता है। वास्तव में, एक बार जब निरुद्धि प्राधिकारी धारा 3(3) के तहत निरुद्धि आदेश पारित कर देता है, तो इसे 12 दिनों या 15 दिनों, जैसा भी मामला हो, से अधिक के लिए

अनुवादित

संचालित नहीं किया जा सकता है, जब तक कि इस बीच इसे राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित नहीं किया जाता है। निरुद्धि प्राधिकारी द्वारा पारित ऐसे निरूद्धि आदेश का, यदि राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित है, तो राज्य सरकार के अनुमोदन के आदेश के साथ विलय हो जाता है जो निरूद्धि में लेने वाले प्राधिकारी को पदकार्य निवृत्त कर देता है। यदि सामान्य खंड अधिनियम की धारा 21 के प्रावधानों के अनुसार, हिरासत आदेश को पूर्ववत करने या रद्द करने की शक्ति राज्य सरकार द्वारा ऐसे निरूद्धि आदेश की मंजूरी के बाद भी निरूद्धि प्राधिकारी को दी जाती है, तो यह एक बहुत ही विषम स्थिति को जन्म दे सकता है, जहां जिला मजिस्ट्रेट निरुद्ध व्यक्ति के अभ्यावेदन पर विचार करने पर उसकी अनुमति देता है और निरुद्धि आदेश को रद्द कर देता है। ऐसी स्थिति में विसंगति यह होगी कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा निरुद्धि आदेश को रद्द करने के बावजूद राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त निरुद्धि आदेश के अनुमोदन का आदेश अभी भी अस्तित्व में रहेगा। तदनुसार, हमारी राय में हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा राज्य सरकार द्वारा निरुद्धि आदेश को मंजूरी दिए जाने के बाद अपने निरुद्धि आदेश के खिलाफ बंदी द्वारा किए गए अभ्यावेदन पर विचार करने और निर्णय लेने के लिए सामान्य खंड अधिनियम की धारा 21 के प्रावधानों की सहायता नहीं ली जा सकती है।

41. इस वाद में याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को राज्य सरकार को अग्रेषित करने में विलंब हेतु स्पष्टीकरण देने का प्रयास करते हुए, जिला मजिस्ट्रेट ने कहा है कि उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन पर निर्णय लेने में कुछ समय लिया जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा की गई ऐसी कार्रवाई पूरी तरह से अनावश्यक एवं अनुचित थी एवं इस तरह की कवायद करने हेतु उनके द्वारा व्यतीत समय को आसानी से बचाया जा सकता था एवं राज्य सरकार के समक्ष याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को प्रस्तुत करने में उपयोग किया जा सकता था।

42. ऊपर की गई चर्चा एवं दिए गए कारणों से, हमारी राय है कि याचिकाकर्ता की निरुद्धि रद्द की जा सकती है।

43. परिणामस्वरूप, तत्काल बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की अनुमति दी जाती है। जिला मजिस्ट्रेट, सीतापुर द्वारा पारित प्रश्नगत निरुद्धि आदेश दिनांक 08.03.2022 एवं उसके बाद के सभी परिणामी आदेशों को इसके द्वारा रद्द किया जाता है।

44. निरुद्धि में लिए गए याचिकाकर्ता को उत्तरदाताओं द्वारा तुरंत रिहा करने का आदेश दिया जाता है, जब तक कि उसे किसी अन्य वाद के संबंध में निरुद्धि में लेने की आवश्यकता न हो।

45. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 2 ILRA 811

मूल न्यायाधिकार

अनुवादित

सिविल पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 06.02.2023 एवं 15.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी,

रिट-ए नंबर 576/2023

श्रीमती किरण सोनकर

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री हरिश्चंद्र द्विवेदी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री इकबाल हुसैन, श्री निखिल मिश्रा

A. सेवा कानून - पेंशन - उ.प्र. सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 नियम 3(v) - मृत्यु के बाद, ग्रेच्युटी, पेंशन और सेवांत लाभ का भुगतान नियम, 1961 के नियम 3(3), नियम 5(1) और नियम 6 के अनुसार सख्ती से किया जाएगा और नियमावली 1961 के विपरीत सेवा पुस्तिका में कोई भी नामांकन स्वीकार नहीं की जा सकती। याचिकाकर्ता कानूनी रूप से विवाहित पत्नी होने के नाते सेवांत लाभ की पूरी तरह अधिकारी है। (पैरा 22)

वर्तमान मामले में, तथ्य विवादित नहीं हैं। ग्रेच्युटी, अवकाश नकदीकरण और अन्य सेवांत लाभों के लिए भाई के पक्ष में नामांकन किया गया है, जो परिवार की परिभाषा के आलोक में नियम, 1961 के नियम 3(3), नियम 5(1) और नियम 6 के तहत स्वीकार्य नहीं है। यदि नियम, 1961 के नियम 3(i)(ii)(iii) और (iv) में उल्लिखित परिवार के अन्य सदस्य उपलब्ध नहीं हैं, तो 18 वर्ष से कम आयु का भाई पेंशन लाभ का हकदार हो सकता है। **सिविल मुकदमेबाजी या पति-पत्नी के बीच वैवाहिक विवाद पत्नी को सेवांत लाभ से बाहर करने का आधार नहीं हो सकता। यहां तक कि, यदि नामांकन किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में किया गया है या कोई संदर्भ दिया गया है।** सेवा पुस्तिका में पत्नी के साथ कोई कानूनी या वैवाहिक विवाद, जो ग्रेच्युटी, पेंशन और अन्य टर्मिनल लाभों के लिए पत्नी को बाहर करने का आधार नहीं हो सकता, **जब तक कि पति और पत्नी के बीच वैध तलाक की डिक्री पारित न हो।** इस न्यायालय के समक्ष मृत कर्मचारी और उसकी याचिकाकर्ता पत्नी के बीच तलाक की ऐसी कोई डिक्री अभिलेख पर नहीं है। (पैरा 21)

बी. शब्द और वाक्यांश "परिवार" - नियम 3 "परिवार" से संबंधित है और इसे "परिवार" के रूप में पढ़ा जाता है, जिसका अर्थ है एक अधिकारी के निम्नलिखित रिश्तेदार: (i) पत्नी, किसी भी पुरुष अधिकारी के मामले में;... (ix) पूर्व-मृत पुत्र की संतान" (पैरा 11)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई 4)

<u>विधिव्यवस्था अनुसरित:</u>

अनुवादित

1. गंगूबाई भगवान सलावड़े और अन्य बनाम श्रीमती चिमनाबाई सूर्यभान सलवाडे और अन्य, 2004 खंड। 106 (4) बम्बई (पैरा 16)

2. राम चंदर तलवार और अन्य बनाम देवेन्द्र उमर तलवार, 2011 (2) एडब्ल्यूसी 1576 (एससी) (पैरा 17)

3. वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद, द्वारा आरई, सेवा एकल संख्या 2532/2014 (पैरा 19)

4. चन्द्र काली बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य, रिट ए संख्या 3288/2017, निर्णित दिनांक 31.07.2019 (पैरा 20)

वर्तमान याचिका नगर निगम आयुक्त, नगर निगम, वाराणसी को याचिकाकर्ता के पक्ष में पेंशन देने/जारी करने का निर्देश देने के लिए परमादेश रिट जारी करने के लिए दायर की गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी, द्वारा प्रदत्त)

1.आज प्रत्युत्तर शपथपत्र-दाखिल किया गया, इसे रिकार्ड पर लिया गया।

2.याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री गोविन्द नारायण श्रीवास्तव प्रत्युत्तरदाता सं0 1 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता एंव प्रत्युत्तरदाता सं0 2 लगायत 4 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री इकबाल हुसैन को सुना।

3.वर्तमान याचिका नगर आयुक्त नगर निगम, वाराणासी को याचिकाकर्ता के पक्ष में पेंशन स्वीकृत करने/जारी करने हेतु परमादेश लेख जारी करते हुए निदेर्शित करने हेतु दाखिल किया गया है।

4.पक्षों की सहमति से याचिका पर एडमिशन स्तर पर ही प्रति शपथ पत्र मंगाये बिना ही निर्णय किया जा रहा है।

5.याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता मृतक संजय कुमार सोनकर की विधिक रुप से विवाहित पत्नी है। जो स्वास्थ्य विभाग नगर निगम वाराणासी में सुपरवाइजर के पद पर कार्यरत थे और 05/10/2020 को उनका निधन हो गया। उनकी मृत्यु के बाद याचिकाकर्ता सभी अस्थायी लाभो के लिए पूरी तरह से हकदार है।

6. मामले की सुनवाई 12.01.2023 को हुई और न्यायालय ने नगर आयुक्त, नगर निगम, झांसी प्रतिवादी नंबर 2 को व्यक्तिगत हलफनामा दायर करने का निर्देश दिया था कि नियमों के तहत स्वीकार्य याचिकाकर्ता की पेंशन का भुगतान उसे क्यों नहीं किया गया है। जिस पर, प्रतिवादी नंबर 2 का व्यक्तिगत हलफनामा विशिष्ट कथन के साथ दायर किया गया है कि मृतक कर्मचारी की सेवा पुस्तिका में, उसके बेटे के पक्ष में, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के उद्देश्य से और भाई के पक्ष में, अन्य टर्मिनल लाभों के लिए नामांकन किया गया है। सेवा पुस्तिका में यह भी उल्लेख है कि मृत कर्मचारी का अपनी पत्नी के साथ कानूनी विवाद चल रहा है।

7. आज, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के

अनुवादित

टर्मिनल लाभ यूपी सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 (संक्षेप में "नियम, 1961") के प्रावधानों द्वारा शासित हैं, जो स्पष्ट रूप से प्रदान करता है कि पारिवारिक पेंशन के उद्देश्य के लिए, नामांकन केवल एक या अधिक परिवार के सदस्यों के पक्ष में किया जा सकता है और परिवार के सदस्यों से परे, कोई नामांकन नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि नियम, 1961 में दी गई परिभाषा के अनुसार, 18 वर्ष से कम आयु का भाई क्रम संख्या 1 पर टर्मिनल लाभ के लिए हकदार है। (5) जैसा कि नियम, 1961 के नियम 3 (v) में पदानुक्रम के क्रम में प्रदान किया गया है। वर्तमान मामले में निर्विवाद रुप से याचिकाकर्ता मृतक कर्मचारी की पत्नी है जिसे नियम 1961 के नियम (अ) में क्रमांक संख्या 01 में स्थान का प्रवाधान है। उसे एक पुत्र भी है और वह कभी भी कानूनी रुप से अलग नही हुई है। अपने तर्क के समर्थन में उन्होने इसी तरह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय इस न्यायालय के व कुछ अन्य न्यायालयों के निर्णयों पर भी भरोसा किया। अंत में उन्होने यह बात प्रस्तुत किया कि उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता को सभी टर्मिनल लाभो का भुगतान करने के लिए निर्देश जारी किया जाये।

8.श्री खालिदं महमूद अधिवक्ता, श्री इकबाल हुसैन प्रतिवदी संख्या 02 लगायत 04 के विद्वान अधिवक्ता की ओर से ब्रीफ करते हुए कहा कि मृतक कर्मचारी की सेवा पुस्तिका में अनुकंपा पर नियुक्ति के उदेश्य से अपने बेटे का नाम व अन्य टर्मिनल लाभों के लिये भाई का नामांकन किया गया है। परन्तु कानूनी मान्यता के अनुसार इस पर कोई विवाद नही है।

9.मैने विद्वानों द्वारा उठाए गए प्रतिद्धदी निवेदनों पर विचार किया है। और रिकार्ड के साथ-साथ फैसले को अवलोकन पर भरोसा किया।

10.उपरोक्त मुद्धे से निपटने से पहले नियम 1961 में दी गई कुछ परिभाषाओं को उचित रुप से पुनः प्रस्तुत करना मामले का निर्णय हेतु जरुरी है।

11.नियम 3 परिवार से संबंधित है और इस प्रकार है

(3) परिवार का अर्थ किसी अधिकारी के निम्नलिखित रिश्तेदार है

(I) किसी पुरुष अधिकारी के मामले में पत्नी

(II) महिला अधिकारी के मामले में पति

(III) बेटे (सौतेले बच्चों और गोद लिये गये बच्चों सहित)

(IV) अविवाहित और विधवा बेटियॉ (सौतेले बच्चों और गोद लिये गये बच्चों सहित)

(अ)18 वर्ष से कम आयु के भाई और अविवाहित और विधवा बहनें (सौतेले भाई और सौतेली बहनों सहित)

(VI) पिता

(VII) मा

(VIII) विवाहित बेटिया (सौतेले बेटियो सहित) और

(IX)पूर्व- मृत पुत्र की संताने

12.नियम 5 मृत्यु-सह सेवानिवृत्ति ग्रेच्युटी से संबधित है और नीचे इसे इस रुप में पढा जाता है।

1.

अनुवादित

2 यदि किसी अधिकारी की सेवा के दौरान मृत्यु हो जाती है तो ग्रेच्युटी की राशि जो न्यूनतम 12 गुना और अधिकतम परिलब्धियों का 16 1/2 गुना जो एक चैथाई के बराबर राशि होगी जो अधिकारी की परिलब्धियों को कुल 6 माह की अर्हक सेवा की मासिक अवधि का भुगतान व्यक्ति को किया जायेगा। या जिन व्यक्तियों को उपदान प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

नियमः6 के उपनियम (1) से (8) के तहत प्रदान किया गया है और यदि ऐसा कोई व्यक्ति नही है तो इसका भुगतान उसके उपनियम (9)में बताये गये तरीके से किया जायेगा।

13.नियम 6 (1) नामाकंन से संबंधित है और इस प्रकार है

नामांकन (1) एक सरकारी कर्मचारी, जैसे ही वह अर्जित करता है या यदि उसके पास पहले से ही स्थायी पेंशन भोगी पद पर है, एक या अधिक व्यक्तियों को नामांकन करता है तो उपनियम के तहत स्वीकृत किसी भी ग्रेच्युटी को प्राप्त करने का अधिकार उपनियम 2 या उपनियम 3 के अंतर्गत होगा और ग्रेच्युटी जो उपनियम 1 के तहत उसे स्वीकार्य राशि का भुगतान मृत्यु के पूर्व नही किया जा सकता है।

यदि अधि सूचना जारी करते समय अधिकारी के परिवार है तो नामांकन उसके परिवार के एक या अधिक सदस्यों के अलावा किसी परिवार के बाहरी के पक्ष में नही हो सकता।

14.नियम-7 परिवारिक पंशन से संबंधित है, जो इस प्रकार है,

पारिवारिक पेंशन - (1)। नीचे उप-नियम (2) में निर्दिष्ट राशि से अधिक नहीं होने वाली पारिवारिक पेंशन किसी अधिकारी के परिवार को दस साल की अवधि के लिए दी जा सकती है, चाहे सेवानिवृत्ति के बाद या सेवा में रहते हुए। कम से कम 20 वर्ष की अर्हक सेवा पूरी करने के बाद। बशर्ते कि पारिवारिक पेंशन के भुगतान की अवधि किसी भी स्थिति में उस तारीख से पांच वर्ष की अवधि से अधिक नहीं बढ़ाई जाएगी, जिस दिन मृत अधिकारी अनिवार्य सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंच गया था या पहुंच गया होगा।

15.नियम 1961 के नियम 6 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यदि अधिकारी का परिवार है तो नामांकन परिवार के सदस्यों को छोडकर किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में नही किया जा सकता। वर्तमान वाद में निर्विवाद रुप से मृत कर्मचारी का परिवार के सदस्य थे। और उन्होने अनुकम्पा नियुक्ति के लिये अपने पुत्र के पक्ष में नामाकंन भी किया है लेकिन टर्मिनल लाभ के लिये अपने भाई के पक्ष में नामाकंन किया जाना पत्नि के जीवित रहते नियम 1961 के नियम 3 (3) एंव नियम 6 के अनुसार जिसमें परिवार नामांकन और पात्रता के पदानुक्रम को परिभाषित करता है विधि में स्वीकार नही है।

अनुवादित

16.गंगूबाई भगवान सलावडे और अन्य बनाम श्रीमती चिमनाबाई सूर्यभान सलावडे और अन्य के वाद में जो 2004 वाल्यूम 106 4 बम्बई में रिपोर्टिग है जिसमें यही माना गया है कि नामांकन बनाते समय आवश्यक रुप से यह उसके परिवार के सदस्यो में से किसी एक सदस्य के पक्ष मे किया जाना चाहिए।

फैसले का प्रासंगिक पैराग्राफ 5 इस प्रकार हैः-

इसमें कोई संदेह नही है कि यह सत्य है कि एक बार नामाकंन हो जाने के बाद ग्रेच्युअी एक्ट के तहत रकम का भुगतान नामंकित व्यक्ति को किया जाना चाहिये। नामांकित व्यक्ति मृतक के परिवार का कोई भी व्यक्ति हो सकता है।

अधिनियम की धारा 6 यह स्पष्ट करती है कि नामांकन बनाते समय यदि कर्मचारी का एक परिवार है तो अनिवार्य रुप से अपने परिवार के सदस्यों में से किसी एक सदस्य के पक्ष में किया जाना चाहिए। कर्मचारी द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति के पक्ष में किया गया नामांकन जो उसके परिवार का एक सदस्य नही है शून्य है। यदि कर्मचारी नामांकन बनाते समय उसका कोई परिवार नही था लेकिन बाद में वह एक परिवार प्राप्त कर लेता है तो पहले किया गया नामांकन अवैध हो जाता है और नया नामाकंन कर्मचारी को अनिवार्य रुप से अपने परिवार के सदस्यों के पक्ष में किया जाना चाहिए।

परिवार को अधिनियम की धारा 2 (एच) में परिभाषित किया गया है।

पुरुष कर्मचारी के संबंध में इस शब्द मे शामिल है उसकी पत्नी, उसके बच्चे चाहे विवाहित हो या अविवाहित इस पर आश्रित माता-पिता और उसकी पत्नी के आश्रित माता-पिता और उनके पूर्व मृत बेटे के विधवा व बच्चे।

17.रामचन्दर तलवार एवं अन्य बनाम देवेन्द्र उमर तलवार एवं अन्य 2011 (2) ए डब्लू सी. 1576(एससी0) के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने बैंकिंग विनियमन अधिनियम की धारा 45 जेड ए0 से निपटते हुये यहा कहा है कि जमाकर्ता के नामित व्यक्ति को खाते में पड़े पैसे को उसकी मृत्यु के बाद प्राप्त करने का अधिकार है लेकिन वह प्राप्त किये गये धन का मालिक नही है इस संदर्भ में उपरोक्त निर्णय का पैराग्राफ 5 दुबारा नीचे इस प्रकार दर्शित है

''धारा 45 जेड ए0 (2) में केवल नामांकित व्यक्ति को जमाकर्ता की मृत्यु के बाद उसे विशेष अधिकार प्रदान किया जाता है कि खाते में पड़े पैसे प्राप्त करे। यह उसे जमाकर्ता के सारे अधिकार देता है जहां तक जमाकर्ता के खाते का संबंध है। लेकिन कल्पना का कोई भी विस्तार नामांकित व्यक्ति को खाते में पड़े धन का मालिक नही बनाता है। यह याद रखने की जरूरत है कि बैंकिंग विनियमन अधिनियम को समेकित और संशोधित करने के लिये अधिनियमित किया गया है।

अनुवादित

इसका उत्तराधिकार प्रश्न से कोई सरोकार नहीं है।

नामांकित व्यक्ति द्वारा धारा 45 जेड0 ए0 (2) के अंतर्गत प्राप्त सभी धनराशि मृतक जमाकर्ता की है और वह उत्तराधिकार के नियम जिससे जमाकर्ता शासित है। सौपा जायेगा।

18. यहां तक कि नामांकन के मामले में जो शीर्ष न्यायालय द्वारा कानून बनाये गये है उसमें नामांकित सदस्य व्यक्ति को केवल व्यक्ति के मृत्यु की स्थिती में लाभ प्राप्त करने के लिये अधिकृत किया गया है। वास्तव में नामांकन से सम्पति पर किसी अधिकार या उपाधि का सृजन नही होता है यह केवल मृत्यु व पूर्ण प्रशासन हेतु अंतराल प्रदान करने के लिये हैं और मृतक की सम्पत्ति पर कोई स्थायी अधिकार प्रदान नही करती।

19. इसी तरह का विवाद फिर से इस न्यायालय के समक्ष 2014 का सेवा एकल क्रमांक 2532 (वीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव एंव अन्य बनाम माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद आया, मामले पर विस्तार से विचार करते हुये कोर्ट ने निम्नलिखित टिपणियों के साथ दिनांक 07/04/2015 के आदेश द्वारा याचिका खारिज कर दी

1- जहां तक डाइंग इन हार्नेस रूल्स के तहत नियुक्ति का सवाल है यह रिकार्ड पर उत्तर दाता अधिकारियों द्वारा लाये गये दस्तावेजों से स्थापित किया गया है कि श्रीमती विनीता श्रीवास्तव और कु0 शिल्पी श्रीवास्तव मृतक की पत्नि और बेटी है। इसके अलावा याचिका कर्ता 1974 के नियमों के तहत परिवार की परिभाषा में नही आते, इसलिये उत्तरदाता अधिकारी की कार्यवाही को अनुचित या कानूनी रूप से गलत नहीं कहा जा सकता।

बहस के दौरान यह अदालत के ध्यान में लाया गया कि याचिकाकर्ताओं और मृतक अरविन्द नाथ श्रीवास्तव, की पत्नि से समझौता हुआ था समझौते के अनुसार स्वर्गीय अरविन्द नाथ की मृत्यु बाद उनके सभी लाभ को याचिकाकर्ताओं को बराबर हिस्सा दिया जायेगा। पत्नि-प्रतिवादी को पारिवारिक पेंशन मिलेगी और याचिकाकर्ताओं को, और अन्य निजी उत्तरदाताओं को कु0 शिल्पी श्रीवास्तव, को अनुकंपा नियुक्ति के बाबत कोई आपत्ति नहीं होगी।

प्रासंगिक नियमों के आलोक में मामले की जाँच करने के बाद ऊपर उल्लिखित पक्षों के बीच किया गया समझौता को कानून की नजर में वैध दस्तावेज नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यह कानून के प्रावधानों के खिलाफ है कि याचिकाकर्ता की असली बेटी और पत्नि मौजूद है और मौजूदगी के बावजूद अधिकारिक उत्तरदाताओं को याचिकाकत्ताओ के पक्ष में मृत्यु के बाद का लाभ देने का निर्देश नही दे सकती ।यह कहने की जरूरत नही है कि समझौते को मान्यता देने के लिये अदालत नियम के विपरीत नहीं जा सकती । दूसरे शब्दों में

अनुवादित

सहमति या समझौते से पक्षकारगणं कानून के विपरीत चीजे प्राप्त नहीं कर सकती।

विधिक कार्यवाही के दौरान पक्षकारों के बीच हुये समझौतों को अदालत स्वीकार करने को बाध्य नहीं है।

उपरोक्त विस्तृत चर्चा के मद्देनजर याचिकाकर्ता किसी भी राहत का हकदार नहीं है। और रिट याचिका खारिज की जाती है।

आधिकारिक उत्तरदाता, मृत्यु उपरान्त लाभ का भुगतान, पारिवारिक पेशन और अनुकंपा नियुक्ति का मामले को कड़ाई से प्रासंगिक नियमों के अनुसार निपटायें।

20. चन्द्रकाली बनाम यू०पी० राज्य और 07 अन्य में पारित 2017 की याचिका ए संख्या 3288 जो 31/07/2019 को निर्णित किया गया में न्यायालय ने माना है कि पेशन, नियम 1961 के प्रावधानों के अनुसार वितरित की जाती है। नियम स्पष्ट रूप से कहते है कि परिवार की परिभाषा में परिभाषित केवल योग्य करने व्यक्ति ही फैमिली पेंशन प्राप्त करने के हकदार है तथा नियम 1961 में परिभाषित परिवार के बाहर के सदस्य को पेंशन पाने का अधिकार नही है। उपरोक्त निर्णय का प्रांसगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है।

'जहाँ तक पारिवारिक पेंशन की पात्रता का संबंध है पेंशन नियम 1961 के प्रावधानों के अनुसार संवितरित किया गया । नियम स्पष्ट रुप से कहता है कि केवल पात्र व्यक्ति ही परिवारिक पेंशन प्राप्त करने का हकदार है लेकिन जहाँ दी गई पेन्शन देय नही रह जाती है प्राप्तकर्ता की मृत्यु या विवाह या किसी अन्य कारण से यह होगा वहाँ उल्लिखित क्रम में अगले निचले क्रम के व्यक्तियों जो नियम 7 के उप नियम 4 में उल्लिखित है | हिन्दू दूसरी पत्नी पारिवारिक पेंशन पाने के योग्य नही है जब तक पहली पत्नी जीवित है और पुनर्विवाहित नही है। नियमावली किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में पारिवारिक पेन्शन के लाभ का कोई प्रावधान नही है। आठवां प्रतिवादी कर्मचारी के परिवार की परिभाषा में नही आयेगा। छठे और सातवें प्रतिवादी मृत कर्मचारी के पुत्र है।

नियम 1961 के तहत परिवार की परिभाषा में भाई कर्मचारी के परिवार में नही आता।

21. वर्तमान मामले में तथ्य विवादित नही है। भाई के पक्ष में ग्रेच्युटी, अवकाश नकदीकरण और अन्य टर्मिनल लाभों के लिये नामांकन किया जा चुका है जो नियम 3(3) नियम 5 (1)एंव नियम 6 और नियम 1961 में परिवार की परिभाषा में स्वीकार्य नही है। भाई 18 वर्ष से कम आयु का होने पर पेन्शन लाभ पाने का हकदार हो सकता है। यदि 1961 के नियम 3(i),(ii),(iii) और (iv में उल्लिखित परिवार के अन्य सदस्य उपलब्ध नही है। सिविल मुकदमें बाजी या पति पत्नी के बीच का वैवाहिक विवाद पत्नी को टर्मिनल लाभों से बाहर करने का आधार नही हो सकता। भले ही नामांकन किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में या कोई संदर्भ, सेवा पुस्तिका में पत्नी के साथ कानूनी या

अनुवादित

वैवाहिक विवाद संबंधी किया गया होने के बावजूद पत्नी को ग्रेच्युटी पेन्शन और अन्य टर्मिनल लाभ से बाहर रखने का आधार नही हो सकता।

जब तक कि पति-पत्नी के बीच में वैध तलाक की डिग्री पारित न हो गई हो। इस तरह की मृतक कर्मचारी व उसकी पत्नी के बीच की ऐसी कोई डिग्री रिकार्ड में नही है।
22. इसलिए मृत्यु के बाद ग्रेच्युटी, पेन्शन और सेवातं लाभ का भुगतान सख्ती से नियम 1961 के नियम 3(3) नियम 5 (1)और नियम 6 के अनुसार किया जायेगा। और सेवा पुस्तिका में कोई भी नामांकन नियम 1961 विपरीत किया गया हो तो स्वीकार नही किया जा सकता।
याचिकाकर्ता कानूनी रुप से विवाहित पत्नी है व सेवांत लाभ पाने की पूर्ण हकदार है।
23. तद्नुसार, याचिका स्वीकार की जाती है।

24. परमादेश की एक याचिका जारी करते हुये प्रतिवादी सं0 2 नगर आयुक्त नगर निगम झांसी को निदेर्शित किया जाता है कि याचिकाकर्ता को समस्त टर्मिनल लाभों का भुगतान नियमों के तहत सभी औपचारिकताएं पूर्ण करते हुये इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करते के दिनांक से दो महीने की अवधि के भीतर भुगतान करें।

25. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

<u>सिविल विविध सुधार आवेदन संख्या 2 of 2023</u>

1. आवेदक के विद्वान वकील के साथ-साथ विद्वान स्थायी वकील को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।
2. सुधार आवेदन की अनुमति है।
3. आवेदक के विद्वान वकील द्वारा किए गए प्रस्तुतिकरण के मद्देनजर, दिनांक 6.2.2023 के आदेश में निम्नलिखित सुधार शामिल किया जा रहा है-
4. पैराग्राफ 6 की दूसरी पंक्ति और आदेश दिनांक 6.2.2023 के अंतिम पैराग्राफ की दूसरी पंक्ति में 'नगर निगम, झांसी' के स्थान पर इसे 'नगर निगम, वाराणसी' के रूप में पढ़ा जाए।

(2023) 2 ILRA 817

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 13.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली,

रिट-ए संख्या 6616/2007

सुभाष चंद्रा

...याचिकाकर्ता

बनाम

जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बाराबंकी एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: वेद प्रकाश नाग, अभिनव नाथ त्रिपाठी, अमरेन्द्र नाथ त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: प्रशांत अरोड़ा, राहुल शुक्ला

अनुवादित

ए. सेवा कानून - अनुकंपा नियुक्ति - वेतन भुगतान अधिनियम, 1978 - उ.प्र. बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 - उ.प्र. मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (शिक्षकों की भर्ती और सेवा की शर्तें) नियम, 1978 -डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 - केवल संस्थान को अनुदान सहायता सूची में लाना (01.12.2006 से प्रभावी) याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु की तिथि (उनके पिता की मृत्यु 10.12.2001 को हुई थी, यानी 01.12.2006 से पहले) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के याचिकाकर्ता के दावे पर रोक नहीं लगाती है। (पैरा 10,11)

प्राइमरी स्कूल के साथ-साथ जूनियर बेसिक स्कूल में अनुकंपा नियुक्ति डाइंग-इन-हार्नेस रूल्स, 1974 को अपनाने वाले जीओ के तहत की जाती है। अभ्यर्थी द्वारा उठाए गए दावों के बीच कोई जीओ में भेदभाव नहीं किया जाता है चाहे वह संस्था राज्य सरकार से सहायता प्राप्त कर रही हो अथवा उ.प्र. बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 के प्रावधानों के तहत मान्यता प्राप्त संस्था हो। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी का मामला यह नहीं है कि संस्थान को यूपी बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 के प्रावधानों के तहत प्रासंगिक समय पर मान्यता नहीं दी गई थी. । (पैरा 11)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई 4)

वर्तमान याचिका दिनांक 21.09.2007 के आदेश के विरुद्ध योजित है, और चतुर्थ श्रेणी पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के दावे पर विचार करने का अनुरोध करती है।

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली, द्वारा प्रदत्त)

1. अनस शेरवानी, विद्वान अधिवक्ता, जो श्री अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हुए, और श्री राहुल शुक्ला, प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता, को सुना गया।

2. प्रत्यर्थी संख्या 2 को नोटिस जारी किए जाने के बावजूद प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

3. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने उत्प्रेषण की प्रकृति की एक रिट जारी करने की प्रार्थना की है, जो आक्षेपित आदेश दिनांक 21.9.2007 (रिट याचिका का संलग्नक-9) को निरस्त करे, साथ ही परमादेश की प्रकृति की एक रिट जारी करने की अतिरिक्त प्रार्थना की है जो प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करने और अनुकंपा के आधार पर चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति देने का आदेश दे।

4. मामले का तथ्यात्मक विवरण यह है कि याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु विद्यालय में सहायक अध्यापक के पद पर कार्यरत रहते हुई हुई थी। याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु के समय वे प्रशिक्षित अध्यापक का वेतनमान प्राप्त कर रहे थे। याचिकाकर्ता पूरी तरह से अपने पिता पर

अनुवादित

आश्रित था। अपने पिता की मृत्यु के समय याचिकाकर्ता ने इंटरमीडिएट की शिक्षा पूरी कर ली थी और उसने 9.5.2002 को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति देने के लिए आवेदन किया था। याचिकाकर्ता का आवेदन विद्यालय के प्रबंधक द्वारा प्राप्त किया गया था और विधिवत रूप से प्रत्यर्थी संख्या 1 को अग्रेषित किया गया था, जहां आवेदन 11.9.2002 को प्राप्त हुआ था। याचिकाकर्ता ने निर्धारित प्रारूप में भी अपना आवेदन प्रस्तुत किया था, लेकिन जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा उसके आवेदन पर कुछ नहीं किया गया।

जब प्रत्यर्थीगण ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार नहीं किया, तो याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 1432 (एसएस) 2007 दायर की। दिनांक 21.3.2007 के आदेश द्वारा इस न्यायालय ने प्रत्यर्थी संख्या 1 को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आदेश पारित करने का निर्देश दिया। उक्त आदेश के अनुपालन न होने के कारण, याचिकाकर्ता ने अवमानना याचिका संख्या 1869 of 2007 दायर की जिसमें जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी (प्रत्यर्थी संख्या 1) को 24.9.2007 की तिथि निर्धारित करते हुए नोटिस जारी किया गया था। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने अब 21.9.2007 को एक आदेश पारित किया है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि संबंधित संस्था को 1.12.2006 से वेतन भुगतान अधिनियम, 1978 के दायरे में लाया गया था और याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु 10.12.2001 को हुई थी, इसलिए याचिकाकर्ता के दावे पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति देने के लिए विचार नहीं किया जा सकता।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा निकाला गया निष्कर्ष पूरी तरह से त्रुटिपूर्ण प्रकृति का है। संस्था उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 के प्रावधानों के तहत मान्यता प्राप्त है और शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों को संस्था में जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी के उचित अनुमोदन के बाद नियुक्ति दी जाती है। यदि संस्था को सहायता-प्राप्त सूची में लिया जाता है, तो वेतन भुगतान की देयता राज्य प्राधिकरण के कंधों पर आती है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश पूरी तरह से अवैध है और इस न्यायालय द्वारा निरस्त किए जाने योग्य है। उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 के तहत कोई प्रतिबंध नहीं है या बेसिक शिक्षा अधिनियम के तहत कोई प्रावधान नहीं है जो अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति करने के लिए यह शर्त रखता हो कि संस्था राज्य सरकार से सहायता प्राप्त कर रही हो। उन्होंने आगे तर्क दिया कि दिनांक 21.9.2007 का आक्षेपित आदेश स्वतः अवैध है और बरकरार नहीं रखा जा सकता, इसलिए निरस्त किए जाने योग्य है।

7. दूसरी ओर, श्री राहुल शुक्ला, प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश के समर्थन में तर्क दिया

अनुवादित

कि इसमें कोई त्रुटि या अवैधता नहीं है और यह न्यायोचित तथा वैध आदेश है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि संस्था राज्य सरकार से सहायता प्राप्त नहीं कर रही थी, इसलिए सद्भावनापूर्ण विश्वास के तहत याचिकाकर्ता के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि ऐसी संस्था में कोई नियुक्ति नहीं की जा सकती जो राज्य सरकार से सहायता प्राप्त नहीं कर रही है।

8. प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि रिट याचिका गुणदोष से रहित है और भारी लागत के साथ खारिज किए जाने योग्य है।9. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया है।

10. आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आक्षेपित आदेश में केवल यह आधार लिया गया है कि याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु 10.12.2001 को हुई थी और संस्था को 1.12.2006 से वेतन भुगतान अधिनियम के दायरे में लाया गया था, इसलिए संस्था राज्य सरकार से सहायता प्राप्त न करने के कारण अनुकंपा के आधार पर कोई नियुक्ति नहीं की जा सकती। यह भी स्पष्ट है कि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 के प्रावधानों के तहत विधिवत मान्यता प्राप्त संस्था में की गई नियुक्ति के अनुमोदन के संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है और यदि संस्था राज्य सरकार से सहायता प्राप्त नहीं कर रही हो, तो उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (शिक्षकों की भर्ती और सेवा शर्तें) नियम, 1978 के प्रावधान में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है जो अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति करने से रोकता हो ।

11. प्राथमिक विद्यालय के साथ-साथ जूनियर बेसिक स्कूल में अनुकंपा नियुक्ति सेवाकाल में मृत्यु नियम, 1974 को अपनाने वाले शासनादेश के तहत की जाती है। शासनादेश उम्मीदवारों द्वारा उठाए गए दावों के बीच कोई भेदभाव नहीं करता, चाहे संस्था राज्य सरकार से सहायता प्राप्त कर रही हो या उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 के प्रावधानों के तहत मान्यता प्राप्त संस्था हो। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी का यह मामला नहीं है कि संबंधित समय पर संस्था उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 के प्रावधानों के तहत मान्यता प्राप्त नहीं थी। केवल 1.12.2006 से संस्था को सहायता-प्राप्त सूची में लाने से याचिकाकर्ता के अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के दावे पर रोक नहीं लगती।

12. इस तथ्य पर विचार करते हुए कि आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करने में कोई ठोस कारण दर्ज नहीं करता, दिनांक 21.9.2007 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बाराबंकी को निर्देश दिया जाता है कि वे ऊपर किए गए अवलोकनों के प्रकाश में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करें और इस संबंध में उपयुक्त आदेश इस आदेश की प्रमाणित प्रति के

अनुवादित

प्रस्तुतीकरण की तिथि से छह सप्ताह की अवधि के भीतर पारित करें।

14. परिणामस्वरूप, रिट याचिका **स्वीकृत** की जाती है।

(2023) 2 ILRA 819

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

रिट-सी संख्या 22728 वर्ष 2005

शिवराम

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री एस.सी. वर्मा, श्री मुर्तुजा अली, श्री देवेश कुमार वर्मा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

क आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 धारा 11 शाशनादेश दिनांक 03.07.1++0 खण्ड (7.1) उचित मूल्य की दुकान अनुबन्ध पत्र का निरस्तीकरण आवश्यक वस्तुओं के वितरण में प्रधान द्वारा अनियमितता का आरोप- शासनादेश दिनांक 03.07.1990 के अन्तर्गत निरस्तीकरण के पूर्व प्रारंभिक जांच एवं सुनवाई जांच एवं सुनवाई का असर आवश्यक- जबकि शासनादेश दिनांक 29.07.2004 प्रयोज्य था तथा शासनादेश दिनांकित 29.07.2004 भी लूगा था। अतः यह पाया जाता है कि विपक्षीगण द्वारा सरसरी तौर पर ग्राम-प्रधान/प्रधान-पति के शिकायत पर कार्य करते हुए प्रश्नगत दुकान को निलम्बित एवं अनुबन्ध-पत्र को खण्डित करने का आदेश पारित किया गया है। यद्यपि बाद में शासनादेश दिनांकित 29.07.2007 तथा कंट्रोल आदेश के अनुसार सुनवाई का अवसर सीमित हो गया है परन्तु तत्समय पवृत्त विधियों के अनुसार पारदर्शितापूर्ण ढंग से जांच कर आदेश पारित किया जाना एवं अपील को निस्तारित किया जाना साबित नहीं होता हाईकोर्ट ने आक्षेपित आदेश को निरस्त किया। (पैरा 18 एवं 22) रिट याचिका स्वीकृत (E-1)

<u>उल्लेखित पूर्व निर्णयों की सूची-</u>

1. अबुबकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2010(80) ए.एल.आर.

2. रिट सी संख्या 47073/2013 कोतवाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं दो अन्य में पारित आदेश दिनांक 04.01.

3. पूरन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2010 (3) ए.डी.जे. 6595 (पूर्णपीठ)

4. रिट सी संख्या 15420/2020 नजाकत अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य में पारित आदेश दिनांक 22.10.221

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. यह याचिका विपक्षी संख्या -3 उप-जिलाधिकारी, अमृतपुर, जिला फर्रुखाबाद आदेश दिनांकित 21.09.2004 संलग्नक 4 तथा अपर आयुक्त (खाद्य) कानपुर मण्डल, कानपुर के द्वारा अपील संख्या

अनुवादित

289/2004 शिवराम बनाम उप-जिलाधिकारी अमृतपुर जिला फर्रूखाबाद में पारित आदेश दिनांकित 21 फरवरी, 2005 संलग्नक 7 को खण्डित करने के लिए प्रस्तुत किया गया है जिसके द्वारा उप-जिलाधिकारी अमृतपुर ने याची द्वारा अधिसूचित वस्तुओं के वितरण में अनियमितताएं कारित करने के कारण उसका अनुबन्ध पत्र खण्डित कर दिया गया था तथा उस आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत अपील को भी खण्डित कर दिया गया था।

2. संक्षेप में पत्रावली के तथ्य यह हैं कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 11 के अन्तर्गत अपने शक्ति का प्रयोग करते हुए उत्तर प्रदेश निश्चित वस्तु वितरण आदेश 1990 के अन्तर्गत उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा जारी सरकारी आदेश दिनाँकित 3 जुलाई, 1990 के अनुसार याची को ग्राम सभा चाचूपुर, ब्लाक राजेपुर, तहसील अमृतपुर जिला फर्रुखाबाद में उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति प्रदान की गई एवं तभी से वह उक्त दुकान का संचालन कर रहा है तथा ग्राम चाचूपुर के किसी भी अवैध कार्डधारक द्वारा उसके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं की गई है। ग्रामसभा चाचूपुर, जटपुरा का ग्राम प्रधान चुनावी रंजिश और गाँव की पार्टीबन्दी के कारण याची से दुश्मनी रखता है और इसलिए उसने डिप्टी कलेक्टर अमृतपुर को पूर्णतया झूठी और दुर्भावनापूर्ण शिकायत किया है तथा झूठा आरोप लगाया है कि याची ने मिट्टी का तेल और आवश्यक वस्तुओं का वितरण नहीं किया है उसने अपनी ही पार्टी के लोगों और समर्थकों के लोगों के नाम का उल्लेख किया है कि उनके राशन कार्डों में आवश्यक वस्तुओं का वितरण समुचित ढंग से नहीं किया गया है जबकि ग्रामसभा की अधिकृत प्रशासनिक समिति निश्चित वस्तुओं के वितरण से सर्वथा संतुष्ट है तथा अगले महीने का कोटा प्रशासनिक समिति के प्रमाणीकरण के बाद ही उठाया जा सकता है। उक्त लोगों के राशन कार्ड याची को प्रदान नहीं किये गए थे। शासनादेश दिनाँक 03.07.1990 के खण्ड (7.1) के अनुसार यदि निश्चित वस्तुओं के वितरण में अवैधता एवं अनियमितता कारित किया जाता है तो ग्रामसभा उचित मूल्य की दुकान को निलम्बित या रद्द करने, का प्रस्ताव कर सकती है तथा जनसभा का ऐसा संकल्प कलेक्टर /उप-जिलाधिकारी के समक्ष अग्रिम कार्यवाही हेतु रखा जाना चाहिए परन्तु ग्रामसभा चाचूपुर ने ग्राम प्रधान/प्रधान-पति रमेशचन्द्र के द्वारा व्यक्तिगत हैसियत से किये गए शिकायत पर निलम्बन या रद्द करने की कोई कार्यवाही करने के लिए प्रस्ताव पारित नहीं किया है।

3. शासनादेश दिनांकित 29.07.2004 के खण्ड 2 के अनुसार उचित मूल्य की दुकान के निलम्बन या निरस्तीकरण के किसी भी आदेश को पारित करने के पूर्व जाँच कराना अनिवार्य है तथा यदि प्रारम्भिक या औचक जाँच में अनिश्चित वस्तुओं के वितरण में कोई गम्भीर अवैधता या अनियमितता पाई जाती है तभी ऐसी दुकान के निलम्बन का आदेश कानूनी रूप से पारित किया जा सकता है तथा दुकानदार को कारण बताओ नोटिस जारी किया जा सकता है। प्रारम्भिक

अनुवादित

जाँच के आधार पर उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के सम्बन्ध में कारण बताओ नोटिस और सुनवाई का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिए। डिप्टी कलेक्टर अमृतपुर ने सत्ताधारी पार्टी के वर्तमान ग्राम प्रधान / प्रधान-पति के राजनीतिक दबाव के अन्दर उपखण्ड (2) के अन्तर्गत कोई प्रारम्भिक जाँच नहीं किया तथा ग्राम प्रधान / प्रधान-पति की झूठी और दुर्भावनापूर्ण शिकायत के आधार पर याची के दुकान के अनुज्ञप्ति को दिनाँक 17.08.2004 का निलम्बन आदेश पारित कर दिया।

4. कारण बताओ नोटिस प्राप्त करने के उपरान्त याची ने दिनाँक 15.09.2004 को लिखित उत्तर दिया कि मिट्टी का तेल तथा अन्य अधिसूचित वस्तुएँ निरन्तर वितरित की गई हैं तथा ग्रामसभा के उप-प्रधान के नेतृत्व में गठित प्रशासकीय समिति द्वारा नियमानुसार सत्यापित की गई है एवं उसके उपरान्त अगले माह का सामान उठाया गया है। तमाम राशन कार्डों को ग्राम प्रधान द्वारा अपनी अभिरक्षा में लेकर उन्हें याची के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है तथा ऐसा मात्र शिकायत का आधार बनाने के लिए किया गया। यद्यपि अपने स्पष्टीकरण के साथ याची ने ग्राम प्रधान /प्रधान-पति द्वारा लिये गए कार्डधारकों के प्रमाण पत्र / घोषणा पत्र भी प्रस्तुत किया गया जो संलग्नक 3 के रूप में है।

5. याची का लिखित उत्तर / स्पष्टीकरण प्राप्त करने के उपरान्त उप-जिलाधिकारी अमृतपुर ने सुनवाई की कोई तिथि नहीं नियत किया तथा अवैध एवं मनमाने तौर पर दिनाँक 31.09.2004 को याची का उचित दर की दुकान की अनुज्ञप्ति खण्डित कर दी जब कि ऐसा आदेश मात्र जाँच करने के उपरान्त तथा सुनवाई एवं साक्ष्य प्रस्तुत करने का पूर्ण अवसर डीलर को प्रदान करने के उपरान्त ही पारित किया जा सकता है। अतः आदेश दिनांकित 31.09.2004 उप खण्ड शासनादेश 29.07.2004 के खण्ड (4) के आदेशात्मक प्रावधान के उल्लघंन में पारित किया गया है जो संलग्नक 4 के रूप में है।

6. आदेश निरस्तीकरण आदेश दिनांकित 31.09.2004 से स्पष्ट है कि उप-जिलाधिकारी ने न तो कोई जांच किया न ही याची को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया तथा झूठे एवं आधारहीन शिकायतों पर विश्वास करके प्रश्नगत आदेश पारित कर दिया। उक्त आदेश किसी ग्राह्य साक्ष्य अथवा ठोस या स्वीकार्य साक्ष्य पर आधारित नहीं है। याची द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य अखण्डनीय था।

7. आदेश दिनांकित 31.09.2004 से क्षुब्ध होकर शासनादेश 03.07.1990 के खण्ड 11 के अन्तर्गत याची ने अपील दिनांकित 29.09.2004 को प्रस्तुत किया जो संलग्नक 5 के रूप में है तथा नोटरी शपथ पत्र दिनाँकित 18.10.2004 भी प्रस्तुत किया कि अधिसूचित वस्तुओं का वितरण पूर्णतया सिद्ध है तथा वितरण प्रमाणन के आधार पर अगले माह का कोटा भी नियमानुसार उठाया गया है। विभिन्न कार्डधारकों के बयान/घोषणापत्र के आधार पर यह भी कथन किया कि ग्राम

अनुवादित

प्रधान/प्रधान पति ने अवैध रूप से उक्त व्यक्तियों के राशन कार्डों को रोक रखा है तथा इनका कोई खण्डन नहीं किया जा सका है। ग्राम प्रधान /प्रधान पति ने शपथ पत्र दिनाँक 18.10.2004 का कोई खण्डन नहीं किया तथा उप-जिलाधिकारी ने दिनाँक 21.09.2004 दुकान के अनुज्ञप्ति का निरस्तीकरण का आदेश खण्डित शपथपत्रों के आधार पर पारित किया है। उप कमिश्नर खाद्य ने भी उक्त अखण्डित शपथपत्रों की उपेक्षा किया तथा अवैध रूप से तकनीकी तौर पर उप जिलाधिकारी के आदेश को पुष्ट करते हुए अपील को आदेश दिनांकित 21.02.2005 संलग्नक 7 के द्वारा खारिज कर दिया। नोटरी शपथपत्र संलग्नक 6 रिट याचिका के साथ संलग्न है। प्रश्नगत आदेश ग्राम प्रधान पति के शिकायत पर आधारित है तथा किसी ठोस एवं ग्राह्य साक्ष्य पर आधारित नहीं है जिससे यह सिद्ध होता है कि याची के विरुद्ध ग्राम प्रधान/प्रधान पति द्वारा झूठे एवं दुर्भावनापूर्ण आरोप लगाया गया है। प्रश्नगत आदेश अवैध, मनमाना, विकृत एवं अन्यायपूर्ण है तथा अधिकार-क्षेत्र के प्रकट त्रुटि से ग्रस्त है। अतः प्रश्नगत आदेश निरस्त किया जाए। विपक्षीगण की तरफ से कोई प्रतिशपथ पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया। उभयपक्षों को सुना तथा पत्रावली का अवलोकन किया।

8. खाद्य एवं रसद अनुभाग-6, लखनऊ दिनांक 29.07.2004 के शासनादेश को संलग्नक 1 के रूप में प्रस्तुत किया है। संलग्नक 2 उप-जिलाधिकारी अमृतपुर द्वारा निर्गत कारण बताओ नोटिस दिनांकित 17.08.2004 है जिसमें याची द्वारा प्रस्तुत त्रुटियों को अंकित करते हुए स्पष्टीकरण एक सप्ताह के अन्दर माँगा गया है तथा तीन माह के अन्दर समस्त आवश्यक वस्तुओं के स्टॉक / वितरण रजिस्टर की भी माँग की गई है। संलग्नक-3 के अनुसार दिनाँक 15.09.2004 को स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया कि आरोप पत्र में वर्णित सभी राशन कार्ड ग्राम प्रधान/प्रधान पति के पास काफी समय से जमा हैं जिन्हें कार्डधारकों को नहीं दिया गया। उक्त कार्डों पर देय आवश्यक वस्तुएं ग्राम प्रधान/प्रधान पति प्राप्त करने के लिए उस पर दबाव डालता है तथा ग्राम प्रधान /प्रधान पति के पास जमा कार्डों पर एक साथ आवश्यक वस्तुएं निर्गत न करने के कारण ग्राम प्रधान /प्रधान पति द्वारा शिकायत की गई है उसके विरुद्ध किसी भी कार्डधारक द्वारा कभी कोई शिकायत नहीं की गई है न ही समय-समय पर अधिकारियों द्वारा किये गए जाँच में भी कोई शिकायत ग्रामवासियों द्वारा की गई है।

9. संलग्नक 4 में उप जिलाधिकारी अमृतपुर द्वारा पारित आदेश दिनांकित 21.09.2004 की प्रति संलग्न की गई है, जिसमें उप जिलाधिकारी ने विक्रेता का कथन निराधार एवं असत्य होना कहा तथा राशन कार्ड प्रधान अपने पास जमा किए हुए है को स्वीकार नहीं किया तथा यह तर्क दिया कि जाँच के दौरान कार्डों का अवलोकन करने पर आवश्यक वस्तुओं का वितरण अंकित होना नहीं पाया गया तथा

अनुवादित

विक्रेता द्वारा विक्रय अभिलेख प्रस्तुत न करना भी इसकी पुष्टि करता है कि उसके द्वारा अनिश्चित वस्तुओं के वितरण में अनियमितताएं की गई है तथा उन्हें छिपाने के लिए ही जान बूझकर बिक्री/स्टॉक रजिस्टर प्रस्तुत नहीं किये गए हैं। उप जिलाधिकारी के अनुसार चुनावी रंजिश के कारण शिकायत किया जाना मात्र पेशबन्दी में कहा गया है जिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। अतः स्पष्टीकरण संतोषजनक नहीं मानते हुए विक्रेता द्वारा निष्पादित अनुबन्ध पत्र तत्काल प्रभाव से निरस्त करने का आदेश पारित किया गया।

10. सहायक आयुक्त खाद्य कानपुर मण्डल, कानपुर की अपील में पारित आदेश दिनांकित 31.02.2005 पत्रावली पर विद्यमान है जिसमें अपीलीय न्यायालय ने अंत्योदय कार्डधारकों जगदीश, श्री बालकराम, मुंशीलाल, जगदेव, सलीम, संतराम, जगदीश, रामकिशोर, धर्म नारायण, रामदेवी, राम कुमारी, रामसहाय एवं महीनदास आदि के राशन कार्डों के पड़ताल के आधार पर यह अवधारित किया कि इनमें से विभिन्न व्यक्तियों को तथा कुछ व्यक्तियों को 6 माह से अधिक समय से खाद्यान्न का वितरण नहीं किया गया।

11. अपीलीय न्यायालय ने इस तथ्य का भी संज्ञान लिया कि अपीलार्थी याची द्वारा इसी प्रकार की अनियमितताएं वर्ष 2003 में की गई थीं जिसके लिए पाँच सौ रुपए का अर्थदण्ड लगाते हुए उसका अनुबन्ध पत्र बहाल किया गया था। इस प्रकार अपीलार्थी अनियमितताएं कारित करने का आदी है। आवश्यक वस्तुओं का वितरण न करना गम्भीर अनियमितता है तथा ऐसे व्यक्तियों के साथ अनुबन्ध बनाए रखना सार्वजनिक वितरण प्रणाली के उद्देश्यों के विपरीत है। उपरोक्त आधारों पर अपीलीय न्यायालय ने अवर न्यायालय के आदेश को सही मानते हुए अपील को बलहीन कहते हुए निरस्त कर दिया जिससे क्षुब्ध होकर यह याचिका प्रस्तुत की गई है।

12. अपीलार्थी द्वारा **अबु बकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2010 (80) ए०एल०आर० 769 इलाहाबाद उच्च न्यायालय एकलपीठ** के आदेश पर बल दिया, जिसमें उचित मूल्य के दुकान के अनुज्ञप्तिधारी पर बी० पी०एल० एवं अंत्योदय कार्डधारकों से आवश्यक वस्तुओं की बिक्री के लिए निर्धारित से अधिक धनराशि वसूली करने के आधार पर अनुबन्ध निरस्त करने का आदेश पारित किया गया था। एकल न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया कि याची को साक्षी से प्रतिपरीक्षा करने का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया। साक्ष्यों के बयान की प्रतियाँ एवं संख्या प्रदान नहीं की गई तथा पीठ पीछे दर्ज किये गए बयान के आधार पर दण्डित किया गया जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों के विरुद्ध है, अतः पुनः सुनवाई का अवसर देकर आदेश पारित करने का आदेश पारित किया गया। इस निर्णय वाले बाद में दिनाँक 23.12.2005 को अपील खण्डित की गई थी।

अनुवादित

13. याची द्वारा **कोतवाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं दो अन्य रिट-सी संख्या 47073/2013** के मामले में इसी न्यायालय के कक्ष संख्या 38 द्वारा पारित आदेश दिनाँकित 04.01.2016 पर स्वयं को आधारित किया गया कि जाँच कार्यवाही **पूरन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2010 (3) ए०डी०जे० 659 (पूर्णपीठ)** के निर्णय के अनुसार पूर्ण जाँच के निर्देश के बिना एक तिथि खोज कर जाँच के आधार पर पारित किया गया था। उत्तर प्रदेश शासन के शासनादेश दिनाँकित 29.07.2004 में उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति निरस्त करने की जाँच की प्रक्रिया वर्णित है। राज्य सरकार के उक्त शासनादेश के पैरा 4 एवं 5 के अनुसार अनुज्ञप्ति रद्द करने के लिए कारण बताओ नोटिस एवं मामले में अन्तिम निर्णय के अनुसार एक पूर्ण जाँच की आवश्यकता है। इस निर्णय में रिट-सी संख्या 12737/2013 में पारित एकल न्यायाधीश के निर्णय एवं आदेश दिनाँकित 28.11.2014 का भी उल्लेख किया गया है जिसमें पूरन सिंह उपरोक्त के निर्णय का अनुसरण किया गया, यह पाया गया कि याची को आरोप पत्र भी प्रदान नहीं किया गया था ताकि वह स्पष्टीकरण अथवा उत्तर दे सके, न ही उसे सुनवाई की तिथि की सूचना दी गई थी। इस निर्णयज विधि में यह पाया गया कि उक्त मामले में मात्र प्रारम्भिक प्रकृति की जाँच की गई तथा अनुतोष दिनाँकित 29.07.2014 के आलोक में पूर्ण जाँच किए बगैर आदेश पारित किया गया, जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त के विपरीत है।

14. प्रस्तुत मामले में याची को दिनाँक 03.07.1990 के प्रश्नगत दुकान की अनुज्ञप्ति प्रदान की गई थी। याची ने अपनी याचिका में कहीं भी इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया है कि उसे पूर्व में वर्ष 2003 में अनियमितता बरतने के कारण उसे पाँच सौ रुपए के अर्थदण्ड से दण्डित किया गया था।

15. वर्ष 2004 में ग्राम प्रधान ने यह शिकायत प्रस्तुत किया था कि बालकराम को दिसम्बर 2003 से जुलाई 2004 तक, मुंशीलाल को किसी भी वस्तु का राशन वितरण न करने, जगदेश पुत्र मकरन्द को वर्ष 2003 से जुलाई 2004 तक, नेकराम को जुलाई 2003 से जुलाई 2004 तक, सलीम को जुलाई 2003 से जुलाई 2004 तक, संतराम को जुलाई 2003 से जुलाई 2004 तक, राधेश्याम को जुलाई 2003 से जुलाई 2004 तक कोई भी वस्तु वितरित करने का अंकन नहीं है। जगदीश के राशन कार्ड पर कोई भी वस्तु वितरित करने का अंकन नहीं है। रामकिशोर को दिसम्बर 2003 से जुलाई 2004 तक, धर्म नारायण को जुलाई 2003 से जुलाई 2004 तक, रामदेवी को जुलाई 2003 से जुलाई 2004 तक, राम कुमारी को दिसम्बर 2003 से जुलाई 2004 तक, रामसहाय को दिसम्बर 2003 से जुलाई 2004 तक एवं महीनदास को दिसम्बर 2003 से जुलाई 2004 तक आवश्यक वस्तुओं के वितरण का अंकन नहीं है।

16. याची ने संलग्नक 3 के रूप में स्पष्टीकरण के साथ कुछ व्यक्तियों का

अनुवादित

स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है कि उन्हें या तो आवश्यक वस्तुओं का वितरण होता रहा अथवा ग्राम प्रधान उनका कार्ड माँग कर ले गए तथा वापस नहीं दिए । उक्त व्यक्तिओं की सूची निम्नवत है-

17. राम सहाय की पत्नी का यह बयान अंकित है कि प्रधान-पति उसका कार्ड कई महीनों से उसके घर से माँग कर ले गए तथा अगस्त में दिया तथा इसके पूर्व कोटेदार हर माह राशन देता रहा।

18. बालकराम की पत्नी ने भी इसी प्रकार का बयान दिया है- बालकराम की पत्नी तथा जगदेव की माँ एवं रामदेवी तथा भगवान देवी विधवा रामचन्द्र एवं जगदीश, सूरजपाल, रामकिशोर, संतराम, श्री रामश्री, सूरजमुखी, जगदीश, सुशीला देवी, सलीम, श्रीदेवी एवं मुंशीलाल ने भी इसी आशय का बयान दिया कि उनका कार्ड प्रधान पति के पास जमा था जो बहुत बाद में प्राप्त हुआ। सुशीला देवी विधवा राम प्रसाद के अनुसार उसका अंत्योदय का राशन कार्ड गुम हो गया था तथापि कोटेदार बिना कार्ड उसे हर माह राशन देते थे। नेकराम, राधेश्याम एवं धर्म नारायण, महीनदास एवं राम कुमारी के अतिरिक्त ऐसा अन्य कोई कार्डधारक नहीं है जिसको खाद्यान्न प्रदान न किया गया हो। याची ने शपथ पत्र भी प्रस्तुत किया था जिसके खण्डन हेतु कोई शपथ पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह खण्डन जब का है, उस समय वितरण आदेश 2004 प्रयोज्य था तथा शासनादेश दिनाँकित 29.07.2004 भी लागू था। अतः यह पाया जाता है कि विपक्षीगण द्वारा सरसरी तौर पर ग्राम प्रधान/ प्रधान-पति के शिकायत पर कार्य करते हुए प्रश्नगत दुकान को निलम्बित एवं अनुबन्ध-पत्र को खण्डित करने का आदेश पारित किया गया है। यद्यपि बाद में शासनादेश दिनाँकित 29.07.2007 तथा कंट्रोल आदेश के अनुसार सुनवाई का अवसर सीमित हो गया है परन्तु तत्समय प्रवृत्त दोनों विधियों के अनुसार पारदर्शितापूर्ण ढंग से जाँच कर आदेश पारित किया जाना एवं अपील को निस्तारित किया जाना साबित नहीं होता।

19. अपर मुख्य शासकीय अधिवक्ता की तरफ से **रिट-सी संख्या 15420/2020 नजाकत अली बनाम उत्तर प्रदेश एवं 4 अन्य** में पारित आदेश दिनाँकित 22.10.2021 पर बल दिया गया, जिसकी परिस्थितियाँ प्रस्तुत वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों से भिन्न है, अतः इस निर्णयज विधि में प्रतिपादित सिद्धांत इस याचिका में प्रयुक्त नहीं किये जा सकते हैं।

20. पूरनसिंह के उपरोक्त आदेश में यह अवधारित किया गया था कि निलम्बन का आदेश पारित करने के पूर्व सुनवाई का अवसर दिया जाना आवश्यक है तथा ऐसा न करने पर निलम्बन का आदेश निरस्त किये जाने योग्य होगा। इसी प्रकार अनुबन्ध पत्र/अनुज्ञप्ति-पत्र के खण्डित किये जाने की दशा में भी सुनवाई का अवसर दिया जाना आवश्यक होगा।

अनुवादित

21. यद्यपि अभिलेखों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उप-जिलाधिकारी तथा उप-कमिश्नर ने दोनों अवसरों पर प्रार्थी को सुनवाई का सम्पूर्ण अवसर प्रदान किया परन्तु उक्त दोनों आदेश सर्वांग नहीं विभिन्न कार्डधारकों के कार्डों को माँग कर कई माह से अपने पास रख लिया था जिसके कारण याची उन पर सामग्रियों के वितरण का अंकन नहीं कर सका। इस प्रकार उप-जिलाधिकारी का आदेश एकांगी एवं पूर्वाग्रह से ग्रस्त होना साबित होता है। इसी प्रकार अपीलीय न्यायालय ने सिवाय इस तथ्य के अंकन के वर्ष 2003 में अनियमितता बरतने के कारण याची पर पाँच सौ रुपए का अर्थदण्ड का दण्ड अधिरोपित किया गया था, शेष तथ्यों के सम्बन्ध में अपने अपील के निर्णय को उप-जिलाधिकारी के निर्णय पर ही आधारित करते हुए पारित किया है तथा ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से एक अपीलीय न्यायालय द्वारा आदेश पारित किया गया है। ऐसी दशा में प्रश्नगत दोनों आदेश तथ्यतः एवं विधितः सही एवं वैध नहीं पाए जाते हैं तथा निरस्त किये जाने योग्य हैं।

<u>आदेश</u>

यह दीवानी रिट याचिका स्वीकार की जाती है तथा उत्तरदाता संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनाँकित 21.09.2004 तथा विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनाँकित 21.02.2005 खण्डित किये जाते हैं। विपक्षी संख्या 3 उप-जिलाधिकारी अमृतपुर को आदेशित किया जाता है कि हैं वरन् अपूर्ण हैं जैसे जब उप-जिलाधिकारी ने दिनांक 21.09.2004 को आदेश पारित किया, के समय उन्होंने रिटकर्ता द्वारा प्रस्तुत कार्डधारकों के इस बयान को विचार में नहीं लिया कि ग्राम-प्रधान/प्रधान-पति ने वह इस आदेश की एक प्रति प्रस्तुत करने के उपरान्त पुनः याची शिवराम के उचित मूल्य की दुकान के सम्बन्ध में याची एवं राज्य सरकार के मध्य निष्पादित अनुबन्ध-पत्र /अनुज्ञप्ति-पत्र के सम्बन्ध में प्रधान पति द्वारा लगाए आरोपों के आलोक में उभय पक्षों द्वारा प्रस्तुत समस्त साक्ष्यों के आधार पर इस न्यायालय के इस आदेश से प्रभावित हुए बगैर स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से पुनः आदेश पारित करे।

(2023) 2 ILRA 824

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 181/2023

श्रीमती शारदा देवी एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

डी.जे. हरदोई एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: ए.जेड. सिद्दीकी, सनी सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: संजय कुमार श्रीवास्तव

अनुवादित

सिविल कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 227, - उ.प्र. शहरी भवन (किराया, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 - धारा 3(ए), 3(जे), 14, 21, 21(1), 21(1)(ए) और 21(1)(बी) - संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 - धारा 9, 54, 106 और 109 - पंजीकरण अधिनियम, 1908 धारा - 17 - विविध याचिका- निष्कासन की विवादित कार्यवाही और किराए की बकाया राशि के विरुद्ध - संपत्ति पर स्वामी के अधिकार - अचल संपत्ति की बिक्री - याचिकाकर्ताओं (आश्रितों) को संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 106 के तहत विपरीत पक्ष संख्या 3 (वादी) द्वारा भेजा गया नोटिस प्राप्त होता है जिसमे उसमें दर्शाया है कि वह संबंधित संपत्ति के कब्जे में मालिक है, जिसके लिए याचिकाकर्ता से बेदखली और बकाया किराया और क्षति की आवश्यकता है - शीर्षक की घोषणा के आधार पर आपत्ति - न्यायालय ने पाया कि, एक बार विपरीत पक्ष-मकान मालिक प्रथम दृष्टया इमारत के मकान मालिक के रूप में अपनी स्थिति को संतुष्ट करने में सक्षम हो गया था, मालिकाना हक की घोषणा के लिए याचिका वापस करने का कोई सवाल ही नहीं था और यह माना गया कि - किरायेदार या उसके परिवार का कोई भी सदस्य जो सामान्य रूप से उसके साथ रहता है या उस पर पूरी तरह से निर्भर है, उसने निर्माण किया है या अन्यथा किसी रिक्त स्थान में प्राप्त किया गया है अथवा प्राप्त किया गया है, उसी शहर में एक आवासीय भवन अधिग्रहण के बाद खाली किया गया- उसी शहर में खरीदे गए आवासीय आवास के माध्यम से दावा करना - यह स्पष्ट है कि किरायेदार के रूप में याचिकाकर्ता द्वारा विपरीत पक्ष-मकान मालिक के उत्तर में दायर किए गए आवेदन पर कोई आपत्ति नहीं थी, जैसा कि लागू आदेशों में सही ढंग से रखा गया है - याचिका योग्यता से रहित होने के कारण, निरस्त कर दिया गया। (पैरा 33, 35, 39, 40)

याचिका निरस्त (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. महाबीर प्रसाद एवं अन्य बनाम राम फल, (1988) 4 एससीसी 194
2. नईम अहमद बनाम यशपाल मल्होत्रा एवं अन्य (2012, खंड 9 ई. (दिल्ली) 138),
3. गोपी @ गोवर्धननाथ (डी) द्वारा वारिसन और अन्य बनाम श्री बल्लभ व्यास, [एसएलपी नंबर 27679/2018, दिनांक 22.09.2022 को निर्णय लिया गया],
4. ओम प्रकाश यादव बनाम बाल देव दास यादव, मनु / यूपी / 3190/2011
5. धरम दास गुप्ता बनाम आठवीं एडिशनल डी.जे., वाराणसी एवं अन्य 1992 एस.सी.डी. 381,
6. राम स्वरूप बनाम डी.जे., हरदोई एवं अन्य, 1985 एडब्ल्यूसी 434 में रिपोर्ट किया गया,

अनुवादित

7. अपोलो जिपर इंडिया लिमिटेड बनाम डब्ल्यू न्यूमैन एंड कंपनी लिमिटेड, (2018) 6 एससीसी 744

8. टी. अंजनप्पा एवं अन्य बनाम सोमलिंगप्पा और अन्य, (2006) 7 एससीसी 570

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.जेड. सिद्दीकी और विपक्षी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार श्रीवास्तव को सुना गया ।

2. आदेश दिनांक 17.01.2023 के तहत, विपक्षी पार्टियों 1, 2 और 4 से 9 तक के नोटिसों को केवल प्रोफार्मा प्रकृति का होने के कारण समाप्त कर दिया गया।

3. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से और चूँकि दलीलें पहले ही पूरी हो चुकी हैं, याचिका पर निर्णय प्रवेश चरण में ही किया जा रहा है।

4. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत यह प्रस्तुत याचिका, जो कि, विपक्षी संख्या 3 द्वारा याचिकाकर्ताओं के खिलाफ बेदखली और बकाया किराया और क्षति के लिए दायर की गई, पी.ए. याचिका संख्या-01/ 2015 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 26.05.2022 को चुनौती देते हुए दायर की गई है। अपीलीय निर्णय दिनांक 15.12.2022 जो कि विविध सिविल अपील (किराया) संख्या 13/ 2022 में पारित हुआ, जिसके तहत निर्धारित प्राधिकारी के फैसले को बरकरार रखा गया है, भी चुनौती के अधीन है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि प्रश्नगत संपत्ति, जो कि आवासीय प्रकृति की थी, पूर्व में एक भोला नाथ, श्रीमती राज रानी और प्रह्लाद प्रसाद की सहदायिकी में थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि भोला नाथ के जीवनकाल के दौरान, पक्षकार उपरोक्त संपत्ति में अपने हिस्से में रहते थे और याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती जय नारायण सिंह कुशवाहा को संपत्ति में शामिल किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि भोला नाथ और जय नारायण सिंह कुशवाहा के बीच कभी भी मकान मालिक-किरायेदार का संबंध कभी नहीं रहा। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि तत्पश्चात 1958 में, याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती, जय नारायण सिंह कुशवाहा ने मौखिक बिक्री के माध्यम से भोला नाथ से प्रश्नगत संपत्ति खरीदी और तब से, याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती विचाराधीन संपत्ति पर स्वामी के रूप में काबिज हैं।

6. यह प्रस्तुत किया गया है कि बाद में, याचिकाकर्ता संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के तहत विपक्षी संख्या 3 द्वारा भेजे गए नोटिस को पाकर आश्चर्यचकित रह गए, जिसमें यह दर्शाया गया था कि विपक्षी संख्या-3 संबंधित संपत्ति का मालिक है और याचिकाकर्ता को बेदखल करने और उससे किराए के बकाया और हर्जाने की

अनुवादित

माँग की है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि बाद में विपक्षी संख्या 3 द्वारा उ.प्र. शहरी भवन (किराए पर देने, किराए तथा बेदखली का विनियमन) अधिनियम संख्या 13/ 1972 (इसके बाद से उ.प्र. अधिनियम संख्या 13/ 1972 के रूप में संदर्भित) की धारा 21 (1) (ए) के तहत याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आवेदन वास्तविक आवश्यकता के आधार पर संपत्ति अवमुक्त करने की मांग करते हुए दायर किया गया। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता उपरोक्त कार्यवाही में उपस्थित हुए और याचिकाकर्ताओं और विपक्षी संख्या 3 के बीच किसी भी मकान मालिक-किरायेदार संबंध से विशेष रूप इनकार करते हुए अपना लिखित बयान दायर किया। लिखित बयान में इस आशय की अतिरिक्त दलील की ओर ध्यानाकर्षण किया गया है कि विचाराधीन संपत्ति स्वर्गीय श्री जय नारायण सिंह कुशवाहा के कब्जे में थी और उनके निधन के बाद, उनके उत्तराधिकारी होने के नाते याचिकाकर्ताओं का उत्तराधिकारी के रुप में संबंधित संपत्ति पर कब्जा है। भोला नाथ और जय नारायण सिंह कुशवाहा के बीच संपत्ति की मौखिक बिक्री के संबंध में दलील की ओर ध्यानाकर्षण किया गया। याचिकाकर्ताओं द्वारा लिखित बयान में प्रतिकूल कब्जे की वैकल्पिक दलील भी दी गई है, इस ओर विद्वान अधिवक्ता ने लिखित बयान में दी गई दलीलों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि एक बार याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों द्वारा एक विशिष्ट दलील दी गई है कि वे प्रश्नगत संपत्ति में किरायेदार नहीं थे और वास्तव में संपत्ति के मालिक थे, तो निर्धारित प्राधिकारी द्वारा सक्षम न्यायालय के समक्ष उचित कार्यवाही में प्रस्तुत करने के लिए वादपत्र को वापस करने की उचित कार्रवाई की जानी आवश्यक थी। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि निर्धारित प्राधिकारी के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी को याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों द्वारा दावा किए गए शीर्षक के वाद विषय को मुख्य वाद विषय के लिए प्रासंगिक मानते हुए व्याख्यान करना आवश्यक था, लेकिन अदालतों ने कथित विक्रय विलेख दिनांकित 01.10.1986 जोकि कथित रूप से विपक्षी संख्या 3 के पक्ष में निष्पादित था, दोनों पक्षों के मध्य मकान मालिक-किरायेदार संबंधों के विषय में किसी भी निर्णय के लिए बिना ही वाद विषय को सरसरी तरीके से निर्णीत किया। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उ.प्र. अधिनियम संख्या 13/ 1972 की धारा 3(जे) के अनुसार 'मकान मालिक' की अवधारणा संपत्ति के मालिक की अवधारणा से पूरी तरह से अलग है और इस तरह अधिकारियों द्वारा निर्णय देते समय, याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों द्वारा उठाए गए, उक्त वाद विषय का व्याख्यान करना वांछित था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिकूल कब्जे की वैकल्पिक दलील पर भी सरसरी तौर पर निर्णय लिया गया है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य पर भी जोर दिया है कि मकान

अनुवादित

मालिक की वास्तविक आवश्यकता और तुलनात्मक कठिनाई से संबंधित बनाए गए वाद बिंदु क्रमांक 2 और 3 में, याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों द्वारा उठाए गए तर्कों और आधारों को भी विहित प्राधिकारी द्वारा संबोधित नहीं किया है। विद्वान अधिवक्ता ने **महाबीर प्रसाद और अन्य** बनाम **राम फल** (1988) 4 एससीसी 194 में प्रतिवेदित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले और **नईम अहमद** बनाम **यश पाल मल्होत्रा ¼मृतक) द्वारा एलआर और अन्य** (2012) 9 ईस्वी (दिल्ली) 138 में प्रतिवेदित दिल्ली उच्च न्यायालय की खण्डपीठ के द्वारा पारित निर्णय को अपने कथन के समर्थन में प्रस्तुत किया।

9. उत्तरदाता विपक्षी पक्ष की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों का खंडन, यह प्रस्तुत करते हुए किया कि उ.प्र. अधिनियम संख्या 13/ 1972 की धारा 21(1)(ए) के तहत दायर आवेदन में एक विशिष्ट दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादीगण भोला नाथ के समय से प्रश्नगत संपत्ति के किरायेदार थे, जिसके बाद सम्पत्ति विभाजन के लिए एक नियमित वाद 6/ 1960 सह-दायिकाें के बीच दायर किया गया था, जिसमें प्रारंभिक डिक्री भी 24.04.1961 को जारी की गई थी और अंतिम डिक्री 27.04.1974 को पारित की गई थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रारंभिक डिक्री पारित होने के समय, उक्त भोला नाथ पूरी तरह से जीवित थे और कार्यवाही में एक पक्ष थे और उन्होंने कभी भी इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया है कि उन्होंने कभी भी प्रश्नगत संपत्ति की मौखिक बिक्री जयनारायण सिंह कुशवाहा के पक्ष में की हा। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि 27.04.1974 की अंतिम डिक्री के अनुसरण में, प्रश्नगत संपत्ति का हिस्सा विभाजित हो गया और श्रीमती राज रानी के हिस्से में आ गया, जिन्हाेने दिनांक 01.10.1986 को एक पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से उपरोक्त संपत्ति को विपक्षी- वादी के पक्ष में हस्तांतरित कर दिया। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि न तो अंतिम डिक्री दिनांक 27.04.1974 और न ही पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांकित 01.10.1986 को कभी किसी ने चुनौती दी है और इसलिए वह अंतिम रूप ले चुका है।

10. विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 109 के अनुसार उत्तरदाता विपक्षी-वादी को न केवल स्वामित्व प्राप्त हुआ है, बल्कि प्रश्नगत संपत्ति पर पट्टेदार के अधिकार भी प्राप्त हुए हैं और इसलिए उसे उ.प्र. अधिनियम संख्या 13/ 1972 की धारा 3(जे) के अनुसार 'मकान मालिक' माना जाएगा। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम के अनुसार, अचल संपत्ति की कोई बिक्री मौखिक बिक्री द्वारा नहीं की जा सकती है और इस प्रकार निचली अदालतों ने भी सही व्यवस्था दी है कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी वर्ष 1958 में अपने पूर्ववर्तियों के पक्ष में की गई किसी भी मौखिक बिक्री को साबित करने में विफल रहे हैं। वैकल्पिक रूप से, यह प्रस्तुत किया

अनुवादित

गया है कि अन्यथा भी अचल संपत्ति के विक्रय विलेख का पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 के तहत पंजीकृत होना अनिवार्य है, ऐसा न हाेने पर ऐसे किसी भी विलेख को साक्ष्य के रूप में ग्राहय नहीं किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे की अपनी वैकल्पिक दलील को साबित करने में भी विफल रहे हैं और ऐसी परिस्थितियों में, निचली अदालताेंं के, दोनों के बीच मकान मालिक-किरायेदार संबंध के साथ-साथ वास्तविक आवश्यकता और तुलनात्मक कठिनाई पर दर्ज किए गए निष्कर्ष सही थे क्योंकि याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों के पास पहले से ही उसी शहर में वैकल्पिक आवास था। विद्वान अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **गोपी @ गोवर्धननाथ (डी) द्वारा एलआर और अन्य** बनाम **श्री बल्लभ व्यास** [विशेष अनुमति याचिका संख्या 27679/2018, निर्णीत दि० 22.09.2022] तथा इस न्यायालय द्वारा **ओम प्रकाश यादव** बनाम **बाल देव दास यादव**, MANU/UP/3190/2011 में प्रतिवेदित; **धरम दास गुप्ता** बनाम **अष्टम् अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, वाराणसी और अन्य**, 1992 एस.सी.डी. 381 में प्रतिवेदित; तथा **राम स्वरूप** बनाम **जिला न्यायाधीश, हरदोई और अन्य**1985 एडब्ल्यूसी 434 में प्रतिवेदित निर्णयों को अपने कथन की पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करने और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन करने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त आवेदन उ.प्र. अधिनियम संख्या 13/ 1972 की धारा 21(1)(बी) के तहत विपक्षी पार्टी संख्या 3 द्वारा दायर किया गया है, जो प्रश्नगत संपत्ति के मकान मालिक होने का दावा करता है और याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों को संपत्ति में किरायेदारों के रूप में वर्णित करता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि विपक्षी-वादी ने दावा किया है कि विचाराधीन संपत्ति सहदायिकी में थी और उसके विभाजन के लिए मुकदमा वर्ष 1960 में दायर किया गया था जिसके बाद में अंतिम आज्ञप्ति 27.04.1974 काे जारी की गयी जिसके बाद प्रश्नगत सम्पत्ति श्रीमती राज रानी के हिस्से में आ गयी जिन्हाेंने तत्पश्चात् 01.10.1986 काे एक पंजीकृत विक्रय विलेख उत्तरदाता-विपक्षी के पक्ष में निष्पादित कर दिया।

12. निर्धारित प्राधिकारी ने निरुपण हेतु तीन वाद-विषय तैयार किए जिसमें वाद-विषय संख्या 1 दोनों के बीच मकान मालिक-किरायेदार संबंध के प्रश्न से संबंधित; वाद-विषय संख्या 2 आवेदक की वास्तविक आवश्यकता से संबंधित और वाद-विषय संख्या 3 तुलनात्मक कठिनाई से संबंधित है। सभी तीनों वाद-विषय वादी के पक्ष में निर्णीत हुए।

13. दिनांक 26.05.2022 के निर्णय और आदेश के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि निर्धारित प्राधिकारी ने पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 01.10.1986 के अनुसरण में उत्तरदाता विपक्षी-वादी को प्रश्नगत

अनुवादित

संपत्ति का मालिकाना कब्जेदार माना है और उस आधार पर यह निष्कर्ष दिया है कि उत्तरदाता विपक्षी-वादी को संपत्ति का मकान मालिक माना जाएगा। याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों के विचाराधीन संपत्ति में किरायेदार होने के मुद्दे को इस तरीके से निपटाया गया है कि प्रथम कोई मौखिक बिक्री विलेख नहीं हो सकता था जैसा कि 1958 में दावा किया गया था, खासकर जबकि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ऐसी किसी भी कथित विक्रय को साबित करने में विफल रहे हैं; और द्वितीय, इस आधार पर कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों के हित में पूर्ववर्ती को भोला नाथ द्वारा प्रश्नगत संपत्ति में शामिल किया गया था और याचिकाकर्ता-प्रतिवादी उस क्षमता को इंगित करने में विफल रहे हैं जिसमें उन्हें प्रश्नगत संपत्ति में शामिल किया गया था और इसलिए यह निष्कर्ष निकाला गया कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों के हित में पूर्ववर्ती को केवल किरायेदार के रूप में प्रश्न में संपत्ति में शामिल किया जा सकता था और इसलिए याचिकाकर्ताओं पर किरायेदारी साबित हाेती है। विहित प्राधिकारी ने यह निष्कर्ष भी दर्ज किया है कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे के अपने मामले को साबित करने में भी असमर्थ रहे।

14. वास्तविक आवश्यकता के संबंध में, विहित प्राधिकारी ने एक निष्कर्ष दर्ज किया है कि चूंकि प्रतिवादियों ने अपने लिखित बयानों में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि प्रतिवादी संख्या 2 ने पहले से ही उसी शहर में एक आवासीय घर खरीद लिया है, इसलिए उन्हें वादी-विपक्षी की वास्तविक आवश्यकता को चुनौती देने से रोका जाएगा। एक बार जब वास्तविक आवश्यकता वादी-विपक्षी के पक्ष में पाई गई, तो तुलनात्मक कठिनाई का पहलू भी उसके पक्ष में तय किया गया।

15. अपीलीय अदालत ने अपने फैसले और आदेश में, निर्धारित प्राधिकारी के द्वारा निर्धारित वाद विषयों के साथ एक अतिरिक्त वाद बिंदु तय किया कि क्या निचली अदालत द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में किसी संशोधन या परिवर्तन की आवश्यकता है। निर्णय को पढ़ने से विदित होता है कि अपीलीय अदालत ने विहित प्राधिकारी द्वारा दिए गए फैसले और आदेश में जो तर्क दिया उसका वस्तुतः पालन किया है।

16. उपरोक्त कारकों के अवलोकन से निरुपण हेतु निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं, जो इस प्रकार हैं:-

(ए) क्या उत्तरदाता विपक्षी-वादी और याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के बीच कोई मकान मालिक-किरायेदार संबंध मौजूद था या वादी-प्रतिवादी के पास प्रश्नगत संपत्ति पर स्वामित्व का स्वतंत्र अधिकार था और साथ ही प्रतिकूल कब्जे से संबंधित मुद्दा भी था?

(बी) क्या निचली अदालतों ने वास्तविक आवश्यकता और तुलनात्मक कठिनाई से संबंधित वाद विषय का निर्णय सही परिप्रेक्ष्य में और उ.प्र. अधिनियम क्रमांक 13/ 1972 के अनुरुप किया है?

प्रश्न (ए)

अनुवादित

क्या उत्तरदाता विपक्षी-वादी और याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों के बीच कोई मकान मालिक-किरायेदार संबंध मौजूद था या याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों के पास प्रश्नगत संपत्ति पर स्वामित्व का स्वतंत्र अधिकार था और साथ ही प्रतिकूल कब्जे से संबंधित मुद्दा भी था?

17. उपरोक्त प्रश्न के संबंध में, यह ध्यातव्य है कि वादपत्र में, यह विशेष रूप से कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती, यानी राज नारायण सिंह कुशवाहा प्रश्नगत संपत्ति में किरायेदार थे और श्रीमती राज रानी को प्रतिमाह 33/- रुपये किराया दे रहे थे और उनके निधन पर याचिकाकर्ता-प्रतिवादी किरायेदारी में उत्तराधिकारी रहे और उसी रूप में विचाराधीन संपत्ति पर काबिज रहे। यह भी कहा गया है कि वादी-उत्तरदाता विपक्षी ने श्रीमती राज रानी द्वारा उनके पक्ष में निष्पादित पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 01.10.1986 के माध्यम से प्रश्नगत संपत्ति पर स्वामित्व प्राप्त किया। लिखित बयान में, जबकि यह स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों के हित में पूर्ववर्ती जय नारायण सिंह कुशवाहा प्रश्नगत संपत्ति पर काबिज थे और उनके निधन के बाद, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी प्रश्नगत संपत्ति पर उत्तराधिकारी के रूप में काबिज रहे लेकिन संपत्ति में उनके किरायेदार होने के पहलू से इनकार किया गया है और वास्तव में यह कहा गया है कि संपत्ति के पूर्व मालिक भोला नाथ ने जय नारायण सिंह कुशवाहा को संपत्ति में शामिल किया था क्योंकि वे बहुत अच्छे दोस्त थे और बाद में भोला नाथ और जय नारायण सिंह कुशवाहा बीच एक मौखिक विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था जिसके माध्यम से याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती ने विचाराधीन संपत्ति पर स्वामित्व अधिकार प्राप्त कर लिया। पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 01.10.1986 के निष्पादन के पहलू से इन्कार किया गया है और विकल्प के रूप में वादी-विपक्षी के संबंध में संपत्ति पर प्रतिकूल कब्जे के संबंध में एक दलील दी गई है।

18. प्रश्नगत संपत्ति पर स्वामित्व के निर्धारण के पहलू के संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अपोलो जिपर इंडिया लिमिटेड** बनाम **डब्ल्यू न्यूमैन एंड कंपनी लिमिटेड** (2018) 6 एससीसी 744 में प्रतिवेदित, में यह अवधारित किया है कि किराया नियंत्रण के तहत कार्यवाही में, संपत्ति पर स्वामित्व के पहलू को मुख्य वाद विषय के रूप में तय नहीं किया जा सकता है, हालांकि इसे संपत्ति के मकान मालिक के प्रश्न के निर्धारण के लिए प्रासंगिक रूप में देखा जा सकता है। इस पहलू को ध्यान में रखते हुए है निचली अदालतों ने याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों, जो विचाराधीन संपत्ति पर स्वामित्व अधिकार का दावा कर रहे हैं, की दलीलों पर गौर किया है।

19. संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 54 स्पष्ट रूप से 'विक्रय' के साथ-साथ इस पहलू को भी परिभाषित करती है कि विक्रय कैसे किया जाना आवश्यक है और स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि

अनुवादित

1882 के अधिनियम की धारा 54 के तहत अचल संपत्ति के मामले में केवल पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से ही विक्रय किया जा सकती है। इस अवधारणा को भुगतान की गई या वायदा किए गए मूल्य या आंशिक-भुगतान और आंशिक-वायदे के बदले स्वामित्व के अंतरण के रूप में भी परिभाषित किया गया है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 54 के संदर्भ में होने वाली बिक्री के लिए, न केवल एक पंजीकृत विलेख होना चाहिए, परन्तु उसके संदर्भ में स्वामित्व के अंतरण के लिए, पर्याप्त प्रतिफल भी दिया जाना चाहिए।

20. पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 विशेष रूप से वह तरीका प्राविधानित करती है जिसमें अचल संपत्ति के अंतरण का एक विलेख तैयार किया जाना आवश्यक है। उक्त प्रावधान इस बात पर भी विचार करता है कि एक विलेख, जो विधिवत मुद्रांकित एवं पंजीकृत नहीं है, वह साक्ष्य के रुप में ग्राह्य नहीं है।

21. उपरोक्त पहलू पर विचार करने पर, यह स्पष्ट है कि अचल संपत्ति की बिक्री केवल वैध प्रतिफल के फलस्वरुप पक्षकारों के बीच विधिवत निष्पादित पंजीकृत विलेख के माध्यम से ही हो सकती है। वर्तमान मामले में, भोला नाथ और जय नारायण सिंह कुशवाहा के बीच मौखिक बिक्री के आधार पर स्वामित्व के पहलू को याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों द्वारा एक दलील के रूप में लिया गया है। संपत्ति के अंतरण की ऐसी अवधारणा संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 के प्रतिकूल है और इस तरह इस न्यायालय की सुविचारित राय में, निर्धारित और साथ ही साथ अपीलीय प्राधिकारी के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि उनसे यह निष्कर्ष दर्ज करने में गलती हुई है कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी प्रश्नगत संपत्ति पर अपना प्रथम दृष्टया शीर्षक या स्वामित्व साबित करने में विफल रहे हैं जबकि वादी ऐसा करने में सक्षम रहे। जब तक याचिकाकर्ता-प्रतिवादी प्रथम दृष्टया कानून के अनुसार स्वामित्व की अपनी दलील को पुष्ट नहीं कर लेते, तब तक निर्धारित प्राधिकारी के पास स्वामित्व की घोषणा के लिए याचिका वापस करने का कोई अवसर नहीं था।

22. संपत्ति के मौखिक अंतरण की अनुमति देने वाला एकमात्र प्रावधान संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 9 में दर्शाया गया है, लेकिन इसमें यह भी कहा गया है कि संपत्ति का अंतरण हर उस मामले में बिना लिखे किया जा सकता है, जिसमें कानून द्वारा स्पष्ट रूप से लेखन की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान मामले में, यह स्पष्ट है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 के आधार पर, संपत्ति का एक विशिष्ट अंतरण एक पंजीकृत विलेख माध्यम से अनिवार्य है और इसलिए संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 9 के तहत मौखिक अंतरण के प्रावधानों की परिकल्पना की गई है, लागू नहीं होगा ।

23. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य पर बहुत जोर दिया है कि

अनुवादित

प्रश्नगत संपत्ति का शीर्षक या स्वामित्व स्वचालित रूप से वादी के संपत्ति के मकान मालिक बनने के पहलू में परिणत नहीं होगा क्योंकि दोनों अवधारणाएं प्रकृति में भिन्न हैं और विशेष रूप से प्रस्तुत किया है कि चूंकि वादी, प्रतिवादी के पक्ष में, वादी और प्रतिवादी या पूर्ववर्ती के बीच निष्पादित किसी भी किराए की रसीद उपलब्ध करने में विफल रहे, इसलिए उनके बीच कोई मकान मालिक-किरायेदार संबंध नहीं हो सकता है। यह भी कथन प्रस्तुत किया गया है कि मकान मालिक-किरायेदार संबंध का पहलू जैसा कि उ.प्र. अधिनियम संख्या 13/ 1972 की धारा 3 (जे) के तहत परिकल्पित है पर संबंधित न्यायालयों द्वारा विचार नहीं किया गया है।

24. उपरोक्त प्रस्तुतियों के संबंध में, ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि वादी द्वारा कार्यवाही के दौरान कोई किराया रसीद प्रस्तुत की गई थी। बहरहाल, प्रश्नगत संपत्ति पर वादी के मकान मालिक होने के पहलू की, उ.प्र. अधिनियम संख्या 13/ 1972 की धारा 3(जे) के अनुसार विचार किया जा सकता है, जोकि इस प्रकार है:

"एस.3(जे) "मकान मालिक", किसी भवन के संबंध में, का अर्थ है वह व्यक्ति जिसे इसका किराया देय है या यदि भवन किराए पर दिया गया होता, तो देय होता और इसमें खंड (जी) को छोड़कर, ऐसे व्यक्ति का एजेंट या वकील शामिल होता है।"

25. उपरोक्त परिभाषा का अवलोकन स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि किसी भवन के संबंध में मकान मालिक वह व्यक्ति होगा जिसे किराया देय है या देय होगा और इसमें ऐसे व्यक्ति का एजेंट या वकील भी शामिल है। मकान मालिक की अवधारणा प्रश्नगत संपत्ति के मालिक से काफी अलग है। वर्तमान मामले में मकान मालिक की परिभाषा की प्रयोज्यता पर, यह संकेत मिलेगा कि पक्षकारों के बीच यह स्वीकार किया गया है कि भोला नाथ प्रश्नगत संपत्ति का सहदायिक था। अभिलेख से यह भी स्पष्ट है कि 1960 में भोला नाथ सहित संबंधित संपत्ति के सहदायिकों के बीच एक विभाजन मुकदमा दायर किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप 24.04.1974 को अंतिम डिक्री पारित हुई, जिसके तहत यह कहा गया है कि विचाराधीन संपत्ति श्रीमती राज रानी के हिस्से में आ गई। याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों ने इस पहलू से इनकार नहीं किया है कि उपरोक्त मुकदमा संस्थित किया गया है और जिसके परिणामस्वरूप अंतिम डिक्री पारित हुई है। यह भी स्वीकार किया गया है कि उक्त श्रीमती राज रानी द्वारा वादीगण के पक्ष में निष्पादित दिनांक 01.10.1986 के पंजीकृत विक्रय विलेख को कोई चुनौती नहीं दी गई।

26. संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 109 पट्टेदार-अंतरिती के अधिकारों से, निम्नलिखित शर्तों में, संबंधित है:-

"धारा 109- पट्टाकर्ता के अंतरिती के अधिकार- यदि पट्टाकर्ता पट्टे पर दी हुई संपत्ति को, या उसके किसी भाग को या उसमें के अपने हित के किसी भी भाग को

अनुवादित

अंतरित कर देता है तो अंतरिती तत्प्रतिकूल संविदा के अभाव में उस अंतरित सम्पत्ति या भाग के बारे में पट्टाकर्ता के वे सब अधिकार तब तक रखेगा और यदि पट्टेदार ऐसा निर्वाचन करे तो पट्टाकर्ता के सब दायित्वों के अध्यधीन तब तक रहेगा, जब तक वह उसका स्वामी रहता है, किन्तु पट्टाकर्ता का पट्टे द्वारा अपने पर अधिरोपित दायित्वों में से किसी के अध्यधीन रहना केवल ऐसे अन्तरण के कारण ही परिविरत न हा े जाएगा, जब तक कि पट्टेदार अंतरिती का े अपने प्रतिदायी व्यक्ति मानने का निर्वाचन न कर ले :

परन्तु अंतरिती अन्तरण से पहले के भाटक के शा ेध्य बकाया ेंं का हकदार नहीं है, और यदि पट्टेदार यह विश्वास करने का कारण न रखते हुए कि ऐसा अन्तरण किया गया है, पट्टाकर्ता को भाटक दे देता है, ता े पट्टेदार अंतरिती को ऐसा भाटक पुन: देने का दायी न होगा।

पट्टाकर्ता, अंतरिती और पट्टेदार यह अवधारित कर सकेंगे कि पट्टे द्वारा आरक्षित प्रीमियम या भाटक का कौन सा अनुपात इस प्रकार अंतरित भाटक के लिए देय है और उसमें असहमति होने की दशा में ऐसा अवधारण ऐसे किसी भी न्यायालय द्वारा किया जा सकेगा जो पट्टे पर दी गयी सम्पत्ति के कब्जे के लिए वाद को ग्रहण करने की अधिकारिता रखता हो।"

27. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 109 के प्रावधान, विशेष रूप से एक मकान मालिक के रूप में अंतरिती के अधिकारों के संबंध में, **गोपी @ गोवर्धननाथ (डी) एलआर और अन्य** (उपरोक्त) में, निम्नलिखित ढंग में निस्तारित किया गया है:-

"27.....संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 109 के अवलोकन से विदित होता है कि यदि एक मकान मालिक संपत्ति को पट्टे पर या उसके किसी हिस्से को हस्तांतरित करता है, तो हस्तांतरी के पास, इसके विपरीत किसी भी अनुबंध के अभाव में, मकान मालिक के सभी अधिकार होंगे। इसलिए, किसी भी विपरीत अनुबंध के अभाव में, प्रदर्श.पी3 का प्रभाव यह है कि यहां प्रतिवादी ने श्रीमती फूल कुमारी के स्थान पर कदम रखा है। संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 109 के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि पट्टेदार द्वारा उसे पट्टे पर दी गई संपत्ति के अंतरण के लिए हस्तांतत्रत आवश्यक नहीं है। इस प्रकार, पट्टे पर दी गई संपत्ति के अंतरण का अपरिहार्य परिणाम किसी तीसरे पक्ष के साथ कानून के अनुसार मकान मालिक द्वारा, इसके विपरीत अनुबंध की अनुपस्थिति में, संबंधित तीसरा पक्ष न केवल स्वामित्व वाला मालिक बन जाएगा, बल्कि मकान मालिक के रूप में विक्रेता के स्थान पर भी कदम रखेगा, प्रासंगिक समय पर पट्टा धारक के रुप में। ऐसी परिस्थितियों में, निचली अदालतों के निष्कर्ष कि प्रतिवादी और अपीलकर्ताओं के बीच मकान मालिक और किरायेदार का न्यायिक संबंध मौजूद है, को कानूनी स्थिति के आधार पर रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य के प्रकाश में सही और वैध निष्कर्ष के रूप में माना जा सकता है।"

अनुवादित

28. याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों का यह स्वीकृत मामला है कि वे स्वर्गीय जय नारायण सिंह कुशवाहा के माध्यम से दावा कर रहे हैं, जिनके बारे में कहा गया है कि उन्हें भोला नाथ ने संपत्ति में शामिल किया था। याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों द्वारा इस बारे में कोई दावा नहीं किया गया है कि उन्हें किस क्षमता से प्रश्नगत संपत्ति में शामिल किया गया था।

29. चूंकि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि उ.प्र. अधिनियम संख्या 13/1972 वर्तमान मामले में लागू होगा, विवादित परिसर पर उसके कब्जे के संबंध में याचिकाकर्ता की स्थिति को ऐसे वैधानिक प्रावधानों के संदर्भ में देखा जाना आवश्यक है।

धारा 3(ए) किरायेदार को, एक इमारत के संबंध में, परिभाषित करती है अर्थात् एक व्यक्ति जिसके द्वारा किराया दिया जाना है।

30. किरायेदार की परिभाषा का प्रासंगिक पहलू यह है कि वह व्यक्ति जिससे किराया देय है, चाहे वह वास्तव में भुगतान किया गया हो या नहीं। याचिकाकर्ता, उस क्षमता को इंगित करने में सक्षम नहीं है, जिसमें उसके हित में पूर्ववर्ती को शामिल किया गया, लेकिन उसके बाद उसकी स्थिति 1972 के अधिनियम की धारा 14 के आधार पर आच्छादित होगी जो इस प्रकार है: -

*धारा 14 "**मौजूदा किरायेदारों का विनियमितीकरण या कब्ज़ा-** इस अधिनियम या उस समय लागू किसी भी अन्य कानून में निहित किसी भी बात के बावजूद, कोई भी पट्टाधारी (धारा 2-ए के अर्थ के भीतर) या उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराया, किराया और बेदखली का विनियमन) (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ होने से ठीक पहले के मकान मालिक की सहमति के साथ एक इमारत के कब्जे में किरायेदार हो, जो ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके खिलाफ बेदखली के लिए कोई मुकदमा या कार्यवाही किसी भी न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष लंबित हो, ऐसे प्रारंभ की तिथि को, ऐसे भवन का अधिकृत पट्टाधारी या किरायेदार माना जाएगा।"*

31. उपरोक्त धारा को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिनियम के प्रारंभ होने से ठीक पहले मकान मालिक की सहमति से किसी भवन पर काबिज किसी भी पट्टाधारी या किरायेदार को ऐसी इमारत का अधिकृत पट्टाधारी या किरायेदार माना जाएगा। यह स्पष्ट है कि 1972 के अधिनियम की धारा 14 के प्रादुर्भाव के साथ, याचिकाकर्ता की स्थिति इमारत के अधिकृत लाइसेंसधारी या किरायेदार की होगी।

32. जब याचिकाकर्ता को 1972 के अधिनियम की धारा 14 के अनुसार वैधानिक किरायेदार मान लिया जाएगा, तो आवश्यक रूप से अधिनियम की धारा 21 के अनुसार किरायेदार के कब्जे में इमारत

अनुवादित

को मुक्त करने की कार्यवाही पोषणीय होगी।

33. उपरोक्त पहलुओं पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि विपक्षी-मकान मालिक निर्विवाद रूप से प्रश्नगत परिसर के मालिक-मकान मालिक होने का प्रथम दृष्टया मामला स्थापित करने में सक्षम था जिसमें याचिकाकर्ता किरायेदार के रूप में काबिज रहा था। इसलिए, एक बार जब विपक्षी-मकान मालिक प्रथम दृष्टया इमारत के मकान मालिक के रूप में अपनी स्थिति को संतुष्ट करने में सक्षम हो गया, तो स्वामित्व की घोषणा के लिए याचिका वापस करने का कोई सवाल ही नहीं था। इसलिए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इसके विपरीत दी गई दलीलें खारिज की जाती हैं।

34. प्रतिकूल कब्जे के पहलू के संबंध में भी, टी. अंजनप्पा और अन्य बनाम सोमलिंगप्पा और अन्य, (2006) 7 एससीसी 570, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, ऐसे प्रस्ताव की प्रयोज्यता के लिए निम्नलिखित शर्तों का निर्धारण किया है:-

"20. यह कानून में अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त प्रस्ताव है कि केवल लंबे समय तक काबिज रहने का मतलब यह नहीं है कि यह वास्तविक मालिक के प्रतिकूल है। प्रतिकूल कब्जे का वास्तव में मतलब शत्रुतापूर्ण कब्जा है जो स्पष्ट रूप से या निहित रूप से वास्तविक मालिक के स्वामित्व से इनकार करता है और प्रतिकूल कब्ज़ा गठित करने के लिए साबित किया गया कब्ज़ा पर्याप्त निरंतरता, प्रचार और इस हद तक पर्याप्त होना चाहिए कि यह दिखाया जा सके कि यह वास्तविक मालिक के लिए प्रतिकूल है। प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामित्व के अधिग्रहण की शास्त्रीय आवश्यकताएं यह हैं कि इस तरह के कब्जे में वास्तविक मालिक का स्वामित्व से इनकार किया जाता है जोकि शांतिपूर्ण, खुला और निरंतर होना चाहिए। कब्ज़ा इतना खुला और शत्रुतापूर्ण होना चाहिए कि संपत्ति में रुचि रखने वाले पक्षों को पता चल सके, हालांकि यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिकूल काबिजदार को अपनी शत्रुतापूर्ण कार्रवाई का असली मालिक को वास्तव में सूचित करने का सबूत होना चाहिए।"

35. कानून के उपरोक्त प्रस्ताव की प्रयोज्यता पर, यह स्पष्ट होगा कि याचिकाकर्ता द्वारा इस बारे में कोई दलील नहीं दी गई है कि उसने कब उत्तरदाता विपक्षी के प्रतिकूल स्वामित्व का दावा किया था और जिसे मालिक के संज्ञान में लाया गया था। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामित्व के अधिग्रहण के याचिकाकर्ता का पक्ष किसी भी तरह से मकान मालिक के स्वामित्व को अस्वीकार करने वाला था और इससे भी अधिक, ऐसा प्रतिकूल स्वामित्व शांतिपूर्ण, खुला और निरंतर था या शत्रुतापूर्ण कब्जा मकान मालिक के ज्ञान में था।

36. पूर्वोक्त के मद्देनजर, संपत्ति के प्रतिकूल कब्जे के संबंध में याचिकाकर्ता की

अनुवादित

ओर से दी गई दलीलें भी विफल हो जाती हैं और खारिज होने योग्य हैं।

37. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, प्रश्न (ए) का उत्तर याचिकाकर्ता-किरायेदार के खिलाफ नकारात्मक है।

<u>प्रश्न (बी)</u>

क्या निचली अदालतों ने वास्तविक आवश्यकता और तुलनात्मक कठिनाई से संबंधित मुद्दे का निर्णय सही परिप्रेक्ष्य में और उ.प्र. अधिनियम क्रमांक 13/ 1972 के अनुसार किया है?

38. उपर्युक्त निरुपित प्रश्न के संबंध में, यह प्रासंगिक है कि 1972 के अधिनियम की धारा 21 अपने स्पष्टीकरण (i) से धारा 21(1) में स्पष्ट रूप से निम्नानुसार इंगित करती है: -

*"एस.21- **किरायेदार के अध्यासन में भवन की निर्मुक्ति के लिए कार्यवाहियाँ-***

(1).....

(क).....

(ख).....

प्रतिबन्ध यह है कि.....

प्रतिबन्ध यह भी है कि.....

अग्रेतर प्रतिबन्ध यह भी है कि .....-

(i).....

(ii).....

(iii).....

प्रतिबन्ध यह भी है कि.....

स्पष्टीकरण-किसी आवासिक भवन की दशा में-

(i) यदि किरायेदार या उसके परिवार के किसी सदस्य ने, जो सामान्यतः उसके साथ निवास कर रहा हो या उस पर पूर्णतया आश्रित हों, उसी नगर, म्युनिसिपैलिटी, नोटीफाइड एरिया या टाउन एरिया में कोई आवासिक भवन बनाया हुआ है या अन्यथा रिक्त स्थिति में अर्जित कर ले या अर्जन के पश्चात् करा ले, तो किरायेदार की कोई आपत्ति इस उपधारा के अधीन दिये गये आवेदन-पत्र के विरुद्ध ग्राह्य नहीं होगी:

***टिप्पणी-** इस खण्ड के प्रयोजनार्थ यह समझा जाएगा कि किसी व्यक्ति ने किसी भवन को अन्यथा अर्जित कर लिया है, यदि उसका अध्यासन किरायेदार, प्रदेशनगृहीता या अनुज्ञप्तिधारी के रूप में आवासिक प्रयोजनों के लिए सार्वजनिक भवन पर हो।"*

39. निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा दायर लिखित बयान में, पैराग्राफ 31 में, यह विशेष रूप से स्वीकार किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 2 (यहां याचिकाकर्ता संख्या 2) जो स्वर्गीय जय नारायण सिंह कुशवाहा के माध्यम से दावा कर रहा है, ने उसी शहर में सिविल लाइंस, हरदोई में एक आवास खरीदा है और उसका काबिजदार मालिक है। आगे कहा गया है कि प्रतिवादी 1 से 3 और 5, यानी सभी किरायेदार सिविल लाइन्स, हरदोई में उक्त आवास में उसके साथ रह रहे हैं।

अनुवादित

40. अधिनियम 1972 की धारा 21(1) के स्पष्टीकरण (i) को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता द्वारा किरायेदार के रूप में उत्तरदाता विपक्षी-मकान मालिक द्वारा दायर किए गए आवेदन पर कोई आपत्ति स्वीकार्य नहीं थी जैसा कि विवादित आदेश में उचित ठहराया गया है।

41. उपरोक्त पर विचार करते हुए, याचिकाकर्ता-किरायेदार के खिलाफ प्रश्न (बी) का उत्तर भी नकारात्मक है।

42. परिणामस्वरूप, याचिका गुणहीन होने के कारण खारिज की जाती है। पक्षकार अपना खर्च स्वयं वहन करेंगें।

43. याचिकाकर्ता(ओं) के विद्वान अधिवक्ता प्रश्नगत संपत्ति का खाली कब्ज़ा विपरीत पक्ष को सौंपने के लिए कुछ समय के लिए याचना की है।

44. ऐसी प्रार्थना के मद्देनजर, यह निर्देश दिया जाता है कि याचिकाकर्ता चार महीने की अवधि के भीतर, यानी सकारात्मक रुप से 02.06.2023 तक, संबंधित परिसर का शांतिपूर्ण और खाली कब्जा विपक्षी संख्या 3-मकान मालिक को सौंप देगें। ऐसा करने में विफल होने की स्थिति में, विपक्षी-मकान मालिक को इस याचिका में उचित आवेदन दायर करके फिर इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होने की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है।

(2023) 2 ILRA 833

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 13.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद (आपराधिक)

संख्या 7928 /2022

जागे राम भाटी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री कमलेश कुमार द्विवेदी

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री धर्मेंद्र धर दुबे, श्री आर.पी. पांडे

आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद - 227 - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 145, 145(1), 146, 146(1), 397, 403 और 482 - रिसीवर की नियुक्ति - पुनरीक्षण की पोषणीयता के संबंध में प्रश्न जो धारा 145(1) या 146(1) के तहत पारित किए गए आक्षेपित आदेश के विरुद्ध योजित है, जो कि अंतर्वर्ती आदेश सरल हैं - मुन्ना सिंह वाद में दिए गए पूर्ण पीठ के निर्णय के आलोक में पुनरीक्षण याचिका विचारणीय होगी और प्रश्नगत आक्षेपित आदेश एक अंतर्वर्ती आदेश नहीं कहा गया है - इसलिए, वर्तमान रिट याचिका को निरस्त कर दिया गया है, तदनुसार पुनरीक्षण याचिका के शीघ्र निस्तारण के लिए निर्देश जारी किया गया है। (पैरा - 7, 8, 10, 13)

याचिका निरस्त (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. मुन्ना सिंह उर्फ शिवाजी सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2011 (3) जेआईसी 628 (सभी) एफबी),

2. इंद्रमोहन गौतम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2018 1 एडीजे 550),
3. अशोक कुमार बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य (आपराधिक अपील संख्या 2038/2012, एसएलपी संख्या 3932/2012 से उत्पन्न हुई।

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और श्री धर्मेंद्र धर दुबे, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता तथा श्री आर.पी. पांडेय, जिन्हें मनोज मिश्रा, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता (राज्य) द्वारा सहायता प्रदान की गई, को सुना।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2, गाजियाबाद द्वारा दिनांक 30.8.2022 को पारित आक्षेपित आदेश के विरुद्ध दायर की गई है। यह आदेश आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 387 of 2022 (राज भाटी बनाम जागे राम भाटी और अन्य) में याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन 30-ख दिनांक 17.8.2022 पर पारित किया गया था, जो धारा 146(1) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत, पुलिस स्टेशन लोनी बॉर्डर, जिला गाजियाबाद से संबंधित था। आक्षेपित आदेश द्वारा विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने विपक्षी संख्या 1, जो इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता है, द्वारा प्रस्तुत आवेदन 30-ख को खारिज कर दिया है। आवेदन 30-ख में और पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष विपक्षी ने विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 146 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दिनांक 20.7.2022 को पारित आक्षेपित आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत पुनरीक्षण की पोषणीयता को चुनौती दी थी। आवेदन 30-ख को खारिज करते हुए विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने अवलोकन किया है कि पुनरीक्षण की पोषणीयता के प्रश्न का निर्णय पुनरीक्षण याचिका के साथ किया जाएगा। पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश से व्यथित होकर वर्तमान याचिका दायर की गई है जिसमें मुख्य आधार यह लिया गया है कि आक्षेपित आदेश अवैध और कानून के विपरीत है, क्योंकि पुनरीक्षण की पोषणीयता का प्रश्न पुनरीक्षण के निपटारे के समय निर्णीत नहीं किया जा सकता और पुनरीक्षण न्यायालय प्रारंभिक चरण में ही इसका निर्णय करने के लिए बाध्य है।

आवेदन 30-ख में, आवेदक, जो इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता है, ने कहा है कि विद्वान कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 146 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत मामले में दिनांक 20.7.2022 को पारित आक्षेपित आदेश एक अंतरिम आदेश था जिसके विरुद्ध पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान कार्यपालक मजिस्ट्रेट ने दिनांक 24.11.2020 को धारा 145 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आदेश पारित किया था जिसमें यह निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि धारा 145 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत मामले में आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार था, जिसमें पक्षकारों के बीच एक कृषि भूखंड में स्थित एक मकान का विवाद शामिल था और पक्षकारों को अपने-अपने साक्ष्य/स्पष्टीकरण के साथ न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया था। तत्पश्चात, धारा 145 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत मामला दिनांक 20.7.2022 के आदेश द्वारा धारा 146(1) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत निर्णीत किया गया, जिसमें विद्वान मजिस्ट्रेट ने धारा 146(1)

दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए विवादित संपत्ति की कुर्की का आदेश पारित किया और संबंधित थाना प्रभारी को एक रिसीवर नियुक्त करने का निर्देश दिया, जो संपत्ति को अपनी अभिरक्षा में लेगा और उसे कुर्क रखेगा जब तक कि कोई पक्षकार प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में स्वामित्व या कब्जे के बारे में आवेदन नहीं करता।

याचिककर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **2011 (3) जेआईसी 628 (एएलएल) (एफबी) मे प्रतिवेदित** इस न्यायालय के **मुन्ना सिंह उर्फ शिवाजी सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** मे पूर्ण पीठ के निर्णय के साथ ही **(2018) 1 एडीजे 550 में प्रतिवेदित इंद्रमोहन गौतम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** के मामले में इस न्यायालय की एकल पीठ के बाद के फैसले को उद्धृत किया।

इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिका भ्रामक है और इस न्यायालय के उक्त पूर्ण पीठ के निर्णय के अनुसार, आक्षेपित आदेश जिसके विरुद्ध प्रत्यर्थी द्वारा सत्र न्यायाधीश के न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण दायर किया गया है, को एक अंतरिम आदेश नहीं माना जा सकता और धारा 146(1) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत पारित आक्षेपित आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण पोषणीय है। विद्वान अधिवक्ता ने माननीय उच्चतम न्यायालय के **अशोक कुमार बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य** के निर्णय का उल्लेख किया है जो **आपराधिक अपील संख्या 2038 of 2012 में निर्णीत किया गया था जो विशेष अनुमति याचिका संख्या 3932 of 20212 से उत्पन्न हुआ था।**

मैंने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का अध्ययन किया है और अभिलेखों पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया है। इस न्यायालय ने **मुन्ना सिंह (उपरोक्त)** के पूर्ण पीठ निर्णय में यह प्रश्न संदर्भित किया था कि "क्या संहिता की धारा 145(1) के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश केवल अंतरिम आदेश हैं और उनके विरुद्ध संहिता की धारा 397 या 403 के तहत कोई पुनरीक्षण याचिका या संहिता की धारा 482 के तहत कोई याचिका पोषणीय नहीं है"। संदर्भ का उत्तर पूर्ण पीठ के निर्णय के पैरा-41 में दिया गया, जिसमें यह माना गया है कि "संदर्भित प्रश्न का हमारा उत्तर इसलिए नकारात्मक होगा और हम मानते हैं कि संहिता की धारा 145(1) और 146(1) के तहत पारित आदेश हर परिस्थिति में केवल साधारण आदेश नहीं हैं, और इसलिए इस निर्णय में किए गए अवलोकनों के प्रकाश में प्रत्येक मामले में शामिल तथ्यों के आधार पर पुनरीक्षण पोषणीय होगा।"

उपरोक्त पूर्ण पीठ के निर्णय का उल्लेख इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा **इंद्रमोहन गौतम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2018) 1 एडीजे 550** में किया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने पैरा 6 और 7 में निम्नानुसार अवलोकन किया:

यह स्थापित विधि का सिद्धांत है कि किसी संपत्ति के स्वामित्व का निर्णय केवल सक्षम दीवानी न्यायालयों द्वारा किया जा सकता है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 और 146 के प्रावधानों के तहत, कार्यपालक मजिस्ट्रेट केवल संपत्ति पर वास्तविक कब्जे के संबंध में विवाद के मामले में कार्रवाई कर सकता है, जहां उपरोक्त विवाद के कारण शांति भंग की आशंका हो। 2011 से पहले कई मामलों में, यह माना गया था कि

अनुवादित

धारा 146(1) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कुर्की का आदेश एक अंतरिम आदेश है जिसके विरुद्ध धारा 397 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के तहत पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है। हालांकि, समय के साथ, पुनरीक्षण की पोषणीयता का मामला पूर्ण पीठ को संदर्भित किया गया और इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने मुन्ना सिंह उर्फ शिवजी सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2011 (9) एडीजे 1998 के मामले में माना कि:

"धारा 146(1) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कुर्की का आदेश एक ऐसा आदेश है जिसका कब्जे में रहने वाले पक्ष के अधिकार पर प्रभाव पड़ता है - इसलिए इसे केवल अंतरिम आदेश नहीं कहा जा सकता जो उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र को रोक दे।

धारा 146(1) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आपातकालीन शक्तियों का आह्वान मजिस्ट्रेट की संतुष्टि पर निर्भर है - जब कोई भी पक्ष कब्जे में न हो, या मजिस्ट्रेट यह तय करने में असमर्थ हो कि कौन सा पक्ष कब्जे में था, तब आपातकालीन शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

जहां पक्षों के अधिकार प्रभावित होते हैं, वह कुर्की का केवल अंतरिम आदेश नहीं है और प्रत्येक विशिष्ट मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है।

धारा 145(1) और 146(1) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आदेश हर परिस्थिति में केवल साधारण आदेश नहीं हैं - इसलिए प्रत्येक मामले में शामिल तथ्यों के आधार पर पुनरीक्षण पोषणीय होगा।"

इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित विधि के दृष्टिगत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता का तर्क कि आक्षेपित आदेश एक अंतरिम आदेश है और उसके विरुद्ध पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है, स्वीकार नहीं किया जा सकता और पुनरीक्षण को अपोषणीय के रूप में खारिज नहीं किया जा सकता। उपरोक्त पूर्ण पीठ के निर्णय के दृष्टिगत, राजस्थान उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा याकूब अली (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय का कोई बल नहीं है।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर विचार करते हुए और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के साथ-साथ विद्वान मजिस्ट्रेट के आक्षेपित निर्णय और आदेश का अवलोकन करने पर, यह न्यायालय की राय है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 30.8.2022 का आक्षेपित आदेश पारित करते समय कोई अवैधता या त्रुटि नहीं की थी और विद्वान मजिस्ट्रेट के दिनांक 20.7.2022 के निर्णय, जिसके विरुद्ध वर्तमान प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पुनरीक्षण प्रस्तुत किया गया था, को इस न्यायालय के उपरोक्त उद्धृत निर्णय के प्रकाश में अंतरिम आदेश नहीं कहा जा सकता। याचिका गुणों से रहित है और खारिज किए जाने योग्य है।

तदनुसार रिट याचिका खारिज की जाती है।

पुनरीक्षण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह पक्षकारों को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद कानून के अनुसार पुनरीक्षण याचिका का शीघ्र निस्तारण करे।

(2023) 2 ILRA 836

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार,

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद (सिविल) संख्या 11711/2022

श्रीमती रशीदा बेगम और अन्य

अनुवादित

...याचिकाकर्ता

बनाम

अरशद हुसैन एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अखिलेश चन्द्र शुक्ल, श्री जितेन्द्र प्रताप शाही

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री नमित श्रीवास्तव, श्री क्षितिज शैलेंद्र

सिविल कानून - भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद - 227, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा - 47 - आदेश XXI - नियम 15, 16 - विशिष्ट निष्पादन अपील के लिए वाद - अपील- द्वितीय अपील -डिक्री का निष्पादन- अपीलीय चरण के दौरान, स्थानापन्न के लिए एक प्रतिस्थापन आवेदन - पहले और दूसरे पक्ष के उत्तराधिकारियों को अनुमति - निष्पादन की कार्यवाही के प्रवेश के चरण में - सीपीसी की धारा 47 के तहत आपत्ति - अस्वीकृत - पुनरीक्षण - निरस्त - ड्राफ्ट डीड - उनके अधिकारों का निर्धारण - डिक्री के निर्धारण के लिए एक प्रक्रिया निर्धारित है - संपत्ति-भागी अपने यहां डिक्री निष्पादित नहीं करवा सकता है जब तक कि धनी राम गुप्ता में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के आलोक में सीपीसी के आदेश XXI नियम 16 के तहत निहित प्रावधानों का पालन करने तक पक्ष में रहें - परिवार के सदस्य की एक गैर-विभाजित संपत्ति में मौजूदा अधिकार का भाग हस्तांतरण नहीं है और इसलिए उसे पंजीकरण की आवश्यकता नहीं है - न्यायालय ने पाया कि, निर्धारण का एक विलेख, त्याग विलेख से कुछ भिन्न है - पूर्व किसी तीसरे पक्ष को हस्तांतरण की श्रेणी में है, जिसे निर्णय लेने से पहले ऋणी को नोटिस देना चाहिए, लेकिन बाद में है चर्चा किए गए कानून के आलोक में ऐसा कोई मामला नहीं है - इसलिए धनी राम गुप्ता में निर्णय मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा - इसलिए, याचिका में योग्यता नहीं है और निरस्त कर दी जाती है। (पैरा - 6, 13, 14, 15)

याचिका निरस्त। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. धनी राम गुप्ता एवं अन्य बनाम लाला श्री राम और अन्य (एआईआर 1980 एससी 157),
2. यूपी राज्य बनाम धर्मपाल एवं अन्य। (2008 10 एडीजे 604),
3. राघवेंद्र जीत सिंह बनाम राजस्व बोर्ड, इलाहाबाद एवं अन्य। (2015 4 एडीजे 53),
4. श्रीमती. बलवंत कौर एवं अन्य बनाम राज्य (एआईआर 1984 आईएनओसी) 107 (सभी),

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिककर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अखिलेश चंद्र शुक्ला, उत्तरदाता संख्या 1 की तरफ से श्री क्षितिज शैलेन्द्र, व उत्तरदाता क्रमांक 8 के लिए श्री नमित श्रीवास्तव को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया.

2. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता संविदा के विशिष्ट पालन के लिए वाद संख्या 993 of 1985 में पारित दिनांक 25 मार्च, 1994 के निर्णय और डिक्री के निर्णीत ऋणी हैं।

3. वर्तमान याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रथम अपील न्यायालय और फिर द्वितीय अपील न्यायालय के समक्ष वाद के विरुद्ध असफलतापूर्वक अपील की गई थी। रिकॉर्ड से यह ज्ञात होता है कि अपीलार्थियों ने शमीमा बेगम, जो निःसंतान मृत्यु को प्राप्त हुईं थीं, के कानूनी उत्तराधिकारियों को

प्रतिस्थापित करने के लिए एक प्रतिस्थापन आवेदन प्रस्तुत किया और तदनुसार, पति के भाई के उत्तराधिकारियों को अभिलेखों मे शामिल किया गया।

4. द्वितीय अपील में स्वर्गीय शमीमा बेगम के उत्तराधिकारियों की ओर से फखरुद्दीन द्वारा शपथ लिया गया एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया था जिसमें कहा गया था कि शमीमा बेगम और आलिया बेगम की मृत्यु हो गई है। इस प्रति शपथपत्र के साथ एक पारिवारिक समझौते का दस्तावेज संलग्न था जिसमें कहा गया था कि सालेहा बेगम की अपील की लंबितता के दौरान मृत्यु हो गई थी और उनके कानूनी प्रतिनिधियों को प्रतिस्थापित किया गया था और परिवार के सदस्यों के बीच विवाद से बचने के लिए पक्षकारों के बीच एक मौखिक समझौता किया गया था जिसके तहत पहले और दूसरे पक्ष, अर्थात शमीमा बेगम और आलिया बेगम, के उत्तराधिकारियों ने तीसरे और चौथे पक्षों के पक्ष में अपने दावे का परित्याग कर दिया था, उनसे धन प्राप्त करके और अब वे मामले को आगे बढ़ाने में रुचि नहीं रखते हैं। जब द्वितीय अपील की खारिजी के बाद निष्पादन दायर किया गया, तो निर्णय ऋणी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के तहत एक आपत्ति दायर की गई थी जिसे 15 जनवरी, 2018 को खारिज कर दिया गया था। इसे 7वें अपर जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद के समक्ष पुनरीक्षण में असफलतापूर्वक चुनौती दी गई और पुनरीक्षण याचिका दिनांक 25 फरवरी, 2019 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दी गई। न्यायालय में यह कहा गया है कि उक्त आदेश को इस न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका संख्या 3543 of 2019 में चुनौती दी गई है जिसमें इस न्यायालय ने कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया और केवल पक्षकारों को अपने अभिवचन का आदान-प्रदान करने का निर्देश दिया गया था। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता इस बात से इनकार नहीं करते कि मामला केवल प्रवेश के चरण पर लंबित है।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि निष्पादन न्यायालय के समक्ष मसौदा विलेख प्रस्तुत किए जाने के बाद वर्तमान याचिकाकर्ता द्वारा एक आपत्ति दायर की गई थी, जिसमें यह आधार लिया गया था कि सालेहा बेगम के वारिस संपूर्ण संपत्ति के संबंध में, जो कि डिक्री का विषय थी और जिसके लिए शमीमा बेगम और आलिया बेगम समान रूप से हकदार थीं, विक्रय विलेख का मसौदा प्रस्तुत नहीं कर सकते थे। लेकिन चूंकि शमीमा बेगम के वारिस आगे नहीं आए, इसलिए डिक्री धारक, अर्थात सालेहा बेगम के वारिस, केवल सालेहा बेगम के हिस्से तक ही विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए हकदार थे। यह तर्क दिया गया है कि शमीमा बेगम और आलिया बेगम के वारिसों द्वारा अपने अधिकारों का कोई समनुदेशन नहीं किया जा सकता था। हालांकि, उनकी आपत्तियों को निष्पादन न्यायालय द्वारा दिनांक 29.7.2022 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया, जिसके विरुद्ध पुनरीक्षण को दिनांक 10.06.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया और यहां तक कि पुनर्विचार याचिका को भी 10.12.2022 को खारिज कर दिया गया। अब याचिकाकर्ता इस न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर इस याचिका में उपरोक्त तीनों आदेशों को चुनौती दे रहे हैं।

6. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क यह है कि डिक्री के समनुदेशन के

लिए एक निर्धारित प्रक्रिया है और जब तक डिक्री का उचित समनुदेशन नहीं होता, तब तक समनुदेशिती अपने पक्ष में डिक्री का निष्पादन नहीं करवा सकता। वे कहते हैं कि केवल अपील न्यायालय के समक्ष एक शपथ पत्र दाखिल करना सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 16 के प्रावधानों के अर्थ में एक वैध समनुदेशन नहीं माना जाएगा। वे कहते हैं कि समनुदेशन लिखित रूप में होना चाहिए और उसे पंजीकृत भी कराना आवश्यक है क्योंकि यह चल संपत्ति के समनुदेशन के माध्यम से अधिकारों के हस्तांतरण से संबंधित है, और इसलिए, ऐसा समनुदेशन संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1982 के प्रावधानों द्वारा शासित होता है। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **धनी राम गुप्ता और अन्य बनाम लाला श्री राम और अन्य; एआईआर 1980 एससी 157** के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। उन्होंने उक्त निर्णय के **पैरा-4** का हवाला दिया है जो निम्नानुसार है:-

"हम आदेश XXI नियम 16 को प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता की मूल धारणा के लिए कोई आधार प्रदान करने वाला नहीं पढ़ सकते कि डिक्री में संपत्ति अंतरिती को तब तक नहीं जाती जब तक कि न्यायालय द्वारा अंतरण को मान्यता नहीं दी जाती। समनुदेशन विलेख के तहत डिक्री में संपत्ति अंतरिती को तब जानी चाहिए जब समनुदेशन विलेख के पक्षकार ऐसी संपत्ति को जाने का इरादा रखते हैं। यह न्यायालय द्वारा अंतरण की मान्यता पर निर्भर नहीं करता। आदेश XXI नियम 16 न तो स्पष्ट रूप से और न ही निहितार्थ से यह प्रावधान करता है कि डिक्री का समनुदेशन तब तक प्रभावी नहीं होता जब तक कि न्यायालय द्वारा उसे मान्यता नहीं दी जाती। यह सच है कि जबकि आदेश XXI नियम 16 अंतरिती को डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन करने की अनुमति देता है, आदेश XXI नियम 16 का पहला परंतुक यह निर्देश देता है कि ऐसे आवेदन की सूचना अंतरक और निर्णीत-ऋणी को दी जाएगी और डिक्री का निष्पादन तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि न्यायालय उसके निष्पादन के संबंध में उनकी आपत्तियों, यदि कोई हों, को नहीं सुन लेता। यह कहना एक बात है कि अंतरक द्वारा डिक्री का निष्पादन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि अंतरक और निर्णीत-ऋणी की आपत्तियां नहीं सुनी जातीं, यह पूरी तरह से अलग बात है कि कहा जाए कि समनुदेशन तब तक कोई महत्व नहीं रखता जब तक कि आपत्तियां सुनी और निर्णीत नहीं कर दी जातीं। मूल डिक्रीधारक और अंतरिती के बीच अंतरण समनुदेशन विलेख द्वारा प्रभावित होता है। यदि निर्णीत-ऋणी को अंतरण की सूचना है, तो उसे अंतरक के साथ समायोजन करके अंतरिती के अधिकारों को हराने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यदि निर्णीत-ऋणी को अंतरण की सूचना नहीं है और वह अंतरिती द्वारा आदेश XXI नियम 16 के तहत उसे सूचना देने से पहले अंतरक के साथ समायोजन करता है, तो निर्णीत-ऋणी संरक्षित है। हमारी दृष्टि में यह सामान्य सद्बुद्धि से अधिक कुछ नहीं है। द्वार बख्श सरकार बनाम फातिक जाली के मामले में, डिक्रीधारक ने न्यायालय के समक्ष यह प्रस्तुत किया कि निर्णीत-ऋणी ने भुगतान करके डिक्री को संतुष्ट कर दिया है और वह चाहता था कि उसके निष्पादन आवेदन का तदनुसार निपटारा किया जाए। संतुष्टि दर्ज होने से पहले, मूल डिक्रीधारक से डिक्री का एक अंतरिती हस्तक्षेप करता है और दावा करता है कि संतुष्टि दर्ज नहीं

की जा सकती क्योंकि निर्णीत-ऋणी द्वारा मूल डिक्रीधारक को कथित भुगतान से पहले उसके पक्ष में डिक्री का एक वैध अंतरण हुआ था। उच्च न्यायालय के समक्ष तर्क यह था कि समनुदेशिती डिक्री की संतुष्टि दर्ज होने से नहीं रोक सकता क्योंकि उसने न तो निष्पादन आवेदन दायर किया था और न ही अपने पक्ष में समनुदेशन को मान्यता दिलवाई थी। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने टिप्पणी की:

*"संहिता में डिक्री के समनुदेशन का स्पष्ट रूप से उल्लेख करने वाला एकमात्र प्रावधान धारा 232 में निहित है, और वह निस्संदेह एक ऐसे मामले की परिकल्पना करता है जिसमें समनुदेशिती निष्पादन के लिए आवेदन करता है। ऐसे मामले में न्यायालय, यदि उचित समझे, डिक्रीधारक और निर्णीत-ऋणी को सूचना देने के बाद, समनुदेशिती द्वारा डिक्री के निष्पादन की अनुमति दे सकता है। यदि, हालांकि, डिक्रीधारक द्वारा शुरू की गई निष्पादन कार्यवाही के दौरान कोई समनुदेशन होता है, तो मैं संहिता में ऐसा कुछ नहीं देखता जो संहिता को अंतरिती को निष्पादन जारी रखने वाले व्यक्ति के रूप में मान्यता देने से रोकता हो। न्यायालय की मान्यता निस्संदेह आवश्यक है इससे पहले कि वह डिक्री का निष्पादन कर सके, लेकिन यह लिखित समनुदेशन है, न कि मान्यता, जो उसे कानून में अंतरिती बनाता है। अंतरिती का, यदि यह चूक थी, निष्पादन के लिए औपचारिक आवेदन न करना, केवल प्रक्रिया की त्रुटि थी और यह मामले के गुण-दोष को प्रभावित नहीं करता.....**प्रत्यर्थी की ओर से यह तर्क दिया गया है कि अंतरिती का हक पूर्ण नहीं था क्योंकि अंतरण की स्पष्ट सूचना निर्णीत-ऋणी को नहीं दी गई थी। जैसा कि पहले ही कहा गया है, अंतरक और अंतरिती के बीच अंतरण लिखित समनुदेशन द्वारा प्रभावित होता है। यदि निर्णीत-ऋणी को अंतरण की सूचना नहीं थी और अन्यथा इससे अनजान होकर उसने डिक्रीधारक को धन का भुगतान कर दिया, तो भुगतान निश्चय ही एक अच्छा भुगतान था, और उसे फिर से अंतरिती के प्रति उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता"।***

हम कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों से अपनी सहमति व्यक्त करते हैं।

(महत्व सनन्विष्ट)"

7. इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि दोनों निचली अदालतों ने विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए प्रस्तुत मसौदा विलेख के संबंध में याचिकाकर्ता की आपत्ति को खारिज करने में कानून में स्पष्ट रूप से त्रुटि की है। वे कहते हैं कि यदि वादग्रस्त संपत्ति के संबंध में अधिकार ठीक से समनुदेशित नहीं किए गए थे, जो कि विक्रय के विशिष्ट निष्पादन के लिए वाद का विषय था, तो वे स्वतः ही वाद के प्रतिवादियों/निर्णय ऋणी को वापस चले जाएंगे और डिक्री धारक, अर्थात सालेहा बेगम के वारिस या यहां तक कि आलिया बेगम, यदि वह जीवित हैं, को संपूर्ण भूमि के विक्रय विलेख के निष्पादन के माध्यम से लाभ नहीं मिलेगा, जिसमें शमीमा बेगम का हिस्सा शामिल है। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, इस न्यायालय के लिए संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपने पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके न्याय की विफलता को रोकना आवश्यक हो गया है।

अनुवादित

8. *इसके विपरीत*, श्री खिस्तिज शैलेंद्र और श्री नमित श्रीवास्तव, विद्वान अधिवक्ता जो विरोधी प्रत्यर्थी कैवीएटर के लिए उपस्थित हुए हैं, ने तर्क दिया है कि जो मसौदा विलेख निष्पादन न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था वह स्वर्गीय सालेहा बेगम के वारिसों और स्वयं आलिया बेगम द्वारा प्रस्तुत किया गया था, इसलिए यह तर्क कि आलिया बेगम आगे नहीं आई थीं, कोई योग्यता नहीं रखता। मसौदा विलेख की एक छायाप्रति न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है जिसे रिकॉर्ड में लिया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि आदेश XXI नियम 16 के प्रावधान वर्तमान मामले में लागू नहीं होंगे, क्योंकि यह डिक्री धारक द्वारा किसी तीसरे पक्ष को डिक्री का समनुदेशन नहीं है जिससे ये प्रावधान आकर्षित हों। यह तर्क दिया गया है कि स्वर्गीय शमीमा बेगम के वारिस द्वितीय अपील में पूरी तरह से पक्षकार थे और उन्होंने प्रति शपथ पत्र के साथ एक शपथ पत्र दाखिल करके अपने त्याग को व्यक्त किया था, जिस पर कभी आपत्ति नहीं की गई और द्वितीय अपील को विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि करते हुए खारिज कर दिया गया था। यह कहा गया है कि संयुक्त डिक्री धारक के पक्ष में डिक्री धारक द्वारा अधिकारों के त्याग को त्याग विलेख के अर्थ में लिया जाएगा, जिसे भारतीय पंजीकरण अधिनियम के तहत पंजीकृत करवाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह अचल संपत्ति के हस्तांतरण का मामला नहीं है जिसके लिए अन्यथा संपत्ति अंतरण अधिनियम के तहत विक्रय द्वारा स्थापित पंजीकरण विलेख की आवश्यकता होती है। इस संबंध में, उन्होंने इस न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया है जो **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम धर्म पाल और अन्य; 2008 10 एडीजे 604, राघवेंद्र जीत सिंह बनाम बोर्ड ऑफ रेवेन्यू, इलाहाबाद और अन्य; 215 4 एडीजे 53 और श्रीमती बलवंत कौर और अन्य बनाम राज्य; 1984 एएलएल. एल.जे. L. J. 305** के मामलों में दिए गए हैं।

9. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत तर्कों को सुनने के पश्चात, जो निर्विवाद तथ्य उभरकर सामने आता है, वह यह है कि पंजीकृत विक्रय विलेख के निष्पादन हेतु प्रारूप विलेख स्वर्गीय सालेहा बेगम और आलिया बेगम के वारिसों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि विक्रय के करार में श्रीमती सालेहा बेगम, शमीमा बेगम और आलिया बेगम लाभार्थी थीं और उनका वाद, जो कि मूल वाद संख्या 495 सन् 1981 था, मोहम्मद अहमद के विरुद्ध दिनांक 25.3.1994 के निर्णय द्वारा डिक्री किया गया था और निर्णय ऋणी ने अपना द्वितीय अपील भी खो दिया था। द्वितीय अपील में, अपीलार्थी ने स्वयं स्वर्गीय शमीमा बेगम के प्रतिस्थापन हेतु एक आवेदन प्रस्तुत किया था। स्वर्गीय शमीमा बेगम के वारिसों ने एक प्रति शपथपत्र संलग्न करते हुए जवाबी हलफनामा दाखिल किया, जिसमें यह कथन किया गया था कि शमीमा बेगम और आलिया बेगम ने मोहम्मद अहमद को पहले भुगतान की गई अपनी राशि तृतीय और चतुर्थ पक्षकार अर्थात सालेहा बेगम के वारिसों से वापस प्राप्त कर ली थी और पंचम तथा षष्ठ पक्षकार ने भी तृतीय और चतुर्थ पक्षकार के पक्ष में अपने दावे का परित्याग कर दिया था। पारिवारिक समझौते के तृतीय और चतुर्थ पक्षकार सालेहा बेगम के वारिस थे। न तो इस अधिकार परित्याग के समझौता विलेख को अपील में चुनौती दी गई और न ही किसी ऐसे आधार को

उठाने के लिए कोई संशोधन मांगा गया कि कोई ऐसा समझौता अवैध था। अपील को गुणदोष के आधार पर खारिज कर दिया गया और सभी अधिकार डिक्री में क्रिस्टलीकृत हो गए। यही वह डिक्री है जिसे निष्पादन में लाया गया है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत दायर आपत्ति को भी खारिज कर दिया गया था और संभवतः यह कोई मुद्दा नहीं उठाया गया था। और अब प्रारूप को इस आधार पर प्रश्नगत किया जा रहा है कि परित्याग विलेख अचल संपत्ति में हित के हस्तांतरण के समान था और इसलिए इसका पंजीकरण आवश्यक था और तब स्वामी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 15 के अनुसार डिक्री का निष्पादन नहीं करा सकता।

10. दूसरा मुद्दा उत्पन्न नहीं होता क्योंकि यह किसी तृतीय पक्षकार को डिक्री के समनुदेशन का मामला नहीं है। यह अन्य डिक्रीदार के रूप में निष्पादन के अधिकार के परित्याग का मामला है और इसलिए तृतीय पक्षकार को डिक्री का समनुदेशन उत्पन्न नहीं होता।

11. जहां तक परित्याग विलेख के पंजीकरण का संबंध है, मुझे प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा प्रस्तुत निवेदन में औचित्य प्रतीत होता है।

12. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने **श्रीमती बलवंत कौर और अन्य बनाम राज्य; एआईआर 1984 (एनओसी) 107 (एएलएल)** के मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि परिवार के भीतर, यदि समझौते के परिणामस्वरूप एक सह-स्वामी द्वारा दूसरे सह-स्वामी के पक्ष में अधिकार का परित्याग होता है, जिसके पास स्वामित्व भी निहित है, तो ऐसा परित्याग एक विमोचन होगा और ऐसे में यह एक हस्तांतरण नहीं होगा। पैराग्राफ 12 और 13 में न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:-

"12. हम इस निवेदन को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि कानून के अंतर्गत एक सह-स्वामी के लिए अपने अधिकारों का दूसरे सह-स्वामी के पक्ष में त्याग करना संभव नहीं है। बोर्ड ऑफ रेवेन्यू बनाम वी. एम. मुरुगेसा मुदलियार, एआईआर 1955 मद्रास 641 (FB) के *मामले में, एक विलेख के निष्पादनकर्ता तीन व्यक्ति थे जो उन दो व्यक्तियों के साथ, जिनके पक्ष में विलेख निष्पादित किया गया था, एक पंजीकृत फर्म के साझेदार थे। निष्पादनकर्ता 12-4-1949 से फर्म के साझेदार नहीं रहे थे। विलेख की प्रस्तावना में उल्लेख किया गया था कि विमोचनकर्ता, अर्थात निष्पादनकर्ता, दस्तावेज़ की अनुसूची में वर्णित अचल संपत्ति के सह-स्वामी थे, जो कि कोरल मर्चेंट स्ट्रीट, जी. टी., मद्रास में स्थित दरवाजा संख्या 47 वाला मकान और भूमि थी, जिसमें उनका 3/5 हिस्सा था। वे उक्त संपत्ति में अपने सभी हितों का विलेख द्वारा त्याग करना चाहते थे, जिसके बदले में उन्हें नकद में हिस्से का आनुपातिक मूल्य प्राप्त होना था। विलेख का प्रचालनीय भाग इस प्रकार था:*

"यह विलेख साक्षी है कि, रुपये 9,858-9-7 (रुपये नौ हजार आठ सौ अट्ठावन, नौ आना और सात पाई) के प्रतिफल में, जिसकी प्राप्ति इन प्रस्तुतियों की तिथि पर या उससे पूर्व लेखा समायोजन के माध्यम से हुई है, विमोचनकर्ता एतद्द्वारा नीचे दी गई अनुसूची में निर्धारित और पूर्णतया वर्णित संपत्ति के संबंध में अपने सभी संबंधित अधिकारों, दावों, मांगों या हितों को, किसी भी तरीके से या किसी भी सीमा तक, विमोचित, समाप्त, त्यागते, रद्द और अन्यथा परित्याग करते हैं।"

स्पष्ट रूप से इस मामले में विमोचनकर्ता संबंधित संपत्तियों के स्वामी थे जिनमें वे अपने हितों को सह-स्वामी के रूप में विमोचित करने की मांग कर रहे थे, न कि संयुक्त स्वामी के रूप में। मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष यह स्वीकार किया गया था कि यदि निष्पादनकर्ता संयुक्त स्वामी होते, जो कि सह-स्वामी से भिन्न है, तो उस मामले में निष्पादित प्रकृति के दस्तावेज़ को विमोचन विलेख माना जा सकता था। यह तर्क दिया गया था कि चूंकि दस्तावेज़ एक सह-किरायेदार (सह-स्वामी) द्वारा निष्पादित किया गया था, इसका उद्देश्य केवल निष्पादनकर्ताओं के स्वामित्व के हस्तांतरण द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता था और इस प्रकार उस दस्तावेज़ को विमोचन विलेख नहीं माना जा सकता था। राजामन्नार, मुख्य न्यायाधीश, न्यायालय की पूर्ण पीठ की ओर से बोलते हुए टिप्पणी की कि उस मामले में किसी का भी यह मामला नहीं था कि संपत्ति का विभाजन सीमाओं और बाड़ों द्वारा और उक्त हिस्सों के अनुसार किया गया था। ऐसी परिस्थितियों में वह दस्तावेज़ जिसमें और जिसके द्वारा सह-स्वामी ने उस हिस्से के अपने दावे को त्यागने या परित्याग करने का तात्पर्य व्यक्त किया था, जिसका वह हकदार होता, विमोचन की प्रकृति का होगा। इस निर्णय के अनुसार, ऐसी संपत्ति के सह-स्वामी के लिए, जो सीमाओं और बाड़ों द्वारा विभाजित नहीं है, संपत्ति में अपने दावे का परित्याग या त्याग करना संभव है और यदि वह ऐसा करता है तो कानून के अनुसार शेष सह-स्वामियों का हित बढ़ जाता है। कानून इस बात का समर्थन करता है कि अविभाजित संपत्ति के कुछ सह-स्वामियों को बिना किसी रोक-टोक या बाधा के या अन्य सह-स्वामियों द्वारा किए गए दावे के बिना संपत्ति का उपभोग करने में सक्षम बनाने का उद्देश्य ऐसे अन्य सह-स्वामियों द्वारा एक विमोचन विलेख निष्पादित करके प्राप्त किया जा सकता है और यदि ऐसे सह-स्वामी एक विमोचन विलेख निष्पादित करके उस उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, तो कोई कारण नहीं है कि ऐसे विमोचन विलेख को केवल इसलिए हस्तांतरण विलेख के रूप में क्यों समझा जाए कि ऐसा उद्देश्य एक हस्तांतरण विलेख निष्पादित करके भी प्राप्त किया जा सकता था।

13. कुप्पुस्वामी चेट्टियार बनाम ए.एस.पी.ए. अरुमुगम चेट्टियार, एआईआर 1967एससी 1395 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई निम्नलिखित टिप्पणियां भी बोर्ड ऑफ रेवेन्यू बनाम वी.एम. मुरुगेसे मुदलियार (एआईआर 1955 मद्रास 641) के मामले में राजामन्नार, मुख्य न्यायाधीश द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का समर्थन करती हैं (पृष्ठ 1397 पर):-

-

"अब यह विवादास्पद नहीं हो सकता कि एक विमोचन का उपयोग किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा, जिसके पास कुछ अधिकार या हित है, किसी अन्य व्यक्ति को, जिसके पास सीमित संपदा है, हस्तांतरण के एक रूप के तौर पर उपयोगी ढंग से किया जा सकता है, उदाहरण के लिए, एक अवशेषी द्वारा जीवनपर्यंत किरायेदार को, और तब विमोचन सीमित संपदा के विस्तार के रूप में कार्य करता है।"

यह सत्य है कि कुप्पुस्वामी चेट्टियार बनाम ए.एस.पी.ए. अरुमुगम चेट्टियार (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया प्रश्न यह था कि क्या विमोचन के दस्तावेज़ के रूप में प्रस्तुत एक दस्तावेज़ को स्वामित्व हस्तांतरित करने वाले दस्तावेज़ के रूप में माना

जाना चाहिए। ***उच्चतम न्यायालय अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उक्त दस्तावेज़ एक हस्तांतरण विलेख था; लेकिन यह इसलिए था क्योंकि उसने पाया कि, उक्त विलेख ऐसे व्यक्ति के पक्ष में निष्पादित किया गया था जिसका विमोचित संपत्तियों में बिल्कुल कोई हित नहीं था। तथापि, वर्तमान मामले में, यह नहीं कहा जा सकता कि दो निष्पादनकर्ताओं की माता और भाई, जो संपत्ति के सह-स्वामी थे, का संपत्ति में कोई हित नहीं था।***

(महत्व सनन्विष्ट)"

13. अतः जो विधि का सिद्धांत उभरकर सामने आता है, वह यह है कि संयुक्त संपत्ति में एक सह-स्वामी के पक्ष में अधिकार का समर्पण एक विमोचन होगा, जबकि किसी तृतीय पक्षकार के पक्ष में अधिकार का समर्पण, जिसका समर्पित की जा रही संपत्ति में कोई अधिकार नहीं है, तो ऐसा समर्पण एक हस्तांतरण होगा। अतः एक परिवार के सदस्य की अविभाजित संपत्ति में एक सह-अंशधारक के अंत में विद्यमान अधिकार का विस्तार एक हस्तांतरण नहीं है और इसलिए ऐसे में इसके पंजीकरण की आवश्यकता नहीं है। सिद्धांत को संक्षेपित करते हुए पैराग्राफ 16 और 17 में पूर्ण पीठ ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:-

"16. अतः यह स्पष्ट है कि कानून के अंतर्गत एक व्यक्ति के लिए, जो संपत्ति को सामान्य किरायेदार के रूप में धारण करता है, अन्य सह-स्वामी के पक्ष में एक विमोचन विलेख निष्पादित करना, जिसमें वह अविभाजित संपत्ति में अपने हित के दावे का त्याग करता है, संभव है और इस उद्देश्य के लिए उसके लिए एक हस्तांतरण विलेख निष्पादित करना आवश्यक नहीं है। तदनुसार, जहां वास्तव में ऐसा विलेख निष्पादित किया जाता है जिसके द्वारा वह व्यक्ति जिसके पक्ष में संपत्ति विमोचित की गई है, को बिना किसी रोक-टोक या बाधा के या संपत्ति को इस प्रकार विमोचित करने वाले व्यक्तियों द्वारा किए जाने वाले किसी दावे के बिना संपत्ति का उपभोग करने का अधिकार दिया जाता है, तो उक्त दस्तावेज़ को एक हस्तांतरण विलेख के रूप में पढ़ने या समझने का कोई औचित्य नहीं होगा।

17. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, दिनांक 9 मार्च, 1970 के दस्तावेज़ में दो बहनों द्वारा किए गए कथन स्पष्ट रूप से उनके मृतक पिता द्वारा छोड़ी गई संपत्तियों में उनके हित के त्याग की राशि के बराबर हैं। उनमें कोई ऐसी शर्त नहीं है जिसके तहत वे अपनी माता और भाई को अपना स्वामित्व हस्तांतरित करने की मांग करती हैं। दोनों बहनें अपनी माता और भाई के पक्ष में संपत्ति में अपने अविभाजित हित को विमोचित करने के लिए पूर्णतः सक्षम थीं। जब उनका उद्देश्य केवल एक विमोचन विलेख निष्पादित करके प्राप्त किया जा सकता था, तो यह सोचने का कोई कारण नहीं है कि वे वास्तव में एक हस्तांतरण विलेख निष्पादित कर रही थीं, जिसे गलत तरीके से एक विमोचन विलेख के रूप में वर्णित किया गया था। अतः, प्रश्न संख्या 2 का उत्तर यह कहकर दिया जाना चाहिए कि सरल व्याख्या पर, दिनांक 9 मार्च, 1970 का दस्तावेज़ एक विमोचन विलेख था और भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अर्थ के भीतर एक हस्तांतरण विलेख नहीं था।

(महत्व सनन्विष्ट)"

14. इस निर्णय का अनुसरण बाद में इस न्यायालय की समन्वय पीठों द्वारा **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम धनपाल और अन्य; 2008 10 एडीजे 604 और राघवेंद्र जीत सिंह बनाम राजस्व बोर्ड**

इलाहाबाद और अन्य; 2015 4 एडीजे 2015 में किया गया। समनुदेशन विलेख परित्याग विलेख से भिन्न होता है। पूर्व किसी तृतीय पक्षकार को हस्तांतरण की श्रेणी में आता है जिससे पहले निर्णय ऋणी को सूचना दी जानी चाहिए, परंतु बाद वाला ऊपर चर्चित विधि के प्रकाश में ऐसा मामला नहीं है, और इसलिए, धनी राम गुप्ता और अन्य बनाम लाला श्री राम और अन्य(उपरोक्त) के मामले में दिया गया निर्णय प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा।

15. उपरोक्त के मद्देनजर, "इस याचिका में जिसे आलंबित किया गया है।" मुझे निचली अदालतों द्वारा निर्गत आदेशों में कोई दोष नहीं दिखता है। याचिका में कोई योग्यता नहीं है और इसलिए उसे खारिज किया जाता है।

रिकॉर्ड में सौंपा गया

16. लागत के बारे मे कोई आदेश नहीं।

(2023) 2 ILRA 843

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष दिनांकः इलाहाबाद 02.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र,

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद (आपराधिक)

संख्या 12244 /2022

भरत सिंह चौहान

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सौरभ सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री राज कुमार केसरी

आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950 ,अनुच्छेद - 227, - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 138 और 139 - चेक का अनादर - समन आदेश के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश को अपास्त करना - यहां तक कि बैंक को 'भुगतान रोकने' के निर्देश भी जारी करना भी किसी व्यक्ति को धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध के लिए उत्तरदायी बनाने के लिए ठहराया जाता है - यह प्रश्न कि क्या अभियुक्त द्वारा परिवादी को कोई पैसा दिया गया था, क्या उसने अपने दायित्वों का निर्वहन किया था, यह साक्ष्य का विषय है - अभियुक्त के पास अपने बचाव की संभावना के लिए पर्याप्त अवसर है - आक्षेपित आदेशों को अनुच्छेद 227 के अंतर्गत अपास्त नहीं किया जा सकता है - इसलिए, निरस्त कर दी गई। (पैरा-8,(6

याचिका निरस्त।(ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. मेसर्स इंडस एयरवेज़ प्रा. लिमिटेड एवं अन्य बनाम मैसर्स मैग्नम एविएशन प्रा. लिमिटेड और अन्य. (2014 12 एससीसी 539),
2. पल्सिव टेक्नोलॉजीज प्रा. लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य (2014 (13) एससीसी 18)।

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र, द्वारा प्रदत्त)

याचिककर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री सौरभ सिंह, शिकायतकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री राज कुमार केसरी और राज्य के लिए विद्वान शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया। भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वर्तमान याचिका शिकायत मामला वर्ष 2021 की शिकायत संख्या 895 जिसका कंप्युटर संख्या वर्ष 2021 का संख्या 1240 (सुशील कुमार बनाम भारत सिंह चौहान)

अनुवादित

है, मे परक्राम्य लिखत अधिनियम (एनआई ऐक्ट) की धारा 138 के अंतर्गत पुलिस स्टेशन हापुड़ नगर, डिस्ट्रिक्ट - हापुड़ जो की मुख्य न्यायिक मैजिस्ट्रैट, हापुड़ की अदालत मे मुख्य न्यायिक मैजिस्ट्रैट, हापुड़ द्वारा पारित दिनांक 16.09.2021 के समन आदेश को रद्द करने के लिए लंबित है। साथ ही सत्र न्यायालय, हापुड़ द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 146/2021 में पारित दिनांक 22.07.2022 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित समन आदेश की पुष्टि की गई है, मे याचिककर्ता द्वारा दायर की गई है।

मामले का तथ्यात्मक सार यह है कि शिकायतकर्ता/प्रतिवादी क्रमांक 2 सुनील कुमार चौहान ने धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत निचली अदालत में शिकायत दर्ज कराई थी, जिसमें कहा गया था कि विपक्षीगण ने मार्च 2016 में विपक्षीगण द्वारा शिकायतकर्ता से प्राप्त ऋण के भुगतान के लिए उसके पक्ष में 2 लाख रुपए का चेक जारी किया था। शिकायतकर्ता ने विपक्षीगण के अनुरोध पर उसे 2 लाख रुपए उधार दिए थे, जिसे उसने अपनी पत्नी सुनीता चौहान के खाते से दो अलग-अलग तारीखों में निकाल लिया था। शिकायतकर्ता ने उक्त चेक को 29.12.2020 को अपने बैंकर को प्रस्तुत किया था, लेकिन बैंकर की सलाह पर चेक बाउंस हो गया था, जिस पर "भुगतान रोक दिया गया है" लिखा हुआ था। शिकायतकर्ता ने आरोपी को इस बारे में सूचित किया, उसने 19.01.2021 को फिर से चेक एस.बी.आई. हापुड़ शाखा में अपने बैंकर के समक्ष प्रस्तुत किया, लेकिन इसे फिर से "आहर्ता द्वारा भुगतान रोक दिया गया" के पृष्ठांकनके साथ बाउंस कर दिया गया। इसके बाद उन्होंने आरोपी को नोटिस जारी कर चेक की राशि का भुगतान करने की मांग की, लेकिन आरोपी ने कोई ध्यान नहीं दिया और शिकायत वैधानिक अवधि के भीतर दर्ज की गई।

विचारण न्यायालय ने आक्षेपित समन आदेश दिनांक 16.09.2021 पारित किया है, जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के अधीन परिवादी के कथन और धारा 202 के अधीन गवाह के कथन के साथ-साथ अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों पर निर्भर करता है। उक्त समन आदेश धारा 200 दण्ड प्रक्रिया संहिता को अभियुक्त/विपक्षी पक्षकार द्वारा सत्र न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। तथापि, सत्र न्यायालय ने समन आदेश दिनांक 22.07.2022 के विरुद्ध दायर पुनरीक्षण को खारिज कर दिया और वर्तमान याचिका में विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित समन आदेश की पुष्टि की। विपक्षी पक्षकार-अभियुक्त ने दोनों न्यायालयों के आदेशों को चुनौती दी है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्तमान आवेदन को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि आवेदक (भतीजा) और विपक्षी संख्या 2 (चाचा) चाचा-भतीजे के रूप में संबंधित हैं और उनके बीच सौहार्दपूर्ण संबंध थे। उन्होंने आगे निवेदन किया कि विपक्षी संख्या 2 और आवेदक के पिता के बीच कुछ संपत्ति और बैंक लॉकर को लेकर एक पारिवारिक विवाद चल रहा था। इस प्रकार, विपक्षी संख्या 2 ने विवाद से सौहार्दपूर्वक बाहर निकलने के लिए, 2,00,000/- रुपये (दो लाख) की राशि की मांग की और इसके अनुसरण में, आवेदक के पिता नामत: आशीष सिंह चौहान के पक्ष में विवादित हिस्सों से बाहर रहने का वादा किया। उन्होंने कहा कि उपरोक्त कारण से, आवेदक ने दिनांक 22.12.2020 को एचडीएफसी बैंक, शाखा- बीएसए कॉलेज के सामने, गौशाला

रोड, मथुरा का 2,00,000/- रुपये का चेक नंबर 000001 का हस्ताक्षरित चेक विपक्षी संख्या 2 को प्रदान किया। लेकिन, उपरोक्त चेक प्राप्त करने के बाद विपक्षी संख्या 2 के इरादे में भारी बदलाव आया और उसके द्वारा अधिक धन और संपत्ति में हिस्से की अनुचित मांग की गई। उन्होंने निवेदन किया कि आवेदक विपक्षी संख्या 2 के बुरे इरादों से अवगत होकर अपने संबंधित एचडीएफसी बैंक के समक्ष एक उचित आवेदन प्रस्तुत किया और उपरोक्त चेक का भुगतान रुकवा दिया। यह भी निवेदन किया गया है कि पक्षकार निकट संबंधी हैं और उक्त चेक याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 को पारिवारिक संपत्ति के विभाजन के संबंध में पक्षों के बीच किए गए किसी समझौते के अनुसरण में सुरक्षा के रूप में जारी किया गया था, लेकिन शिकायतकर्ता उक्त समझौते का सम्मान करने में विफल रहा और उस कारण से याचिकाकर्ता द्वारा सद्भावना से चेक का भुगतान रोक दिया गया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अध्याय XVII के अंतर्गत परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 का उल्लेख किया है।

धारा 138 खाते में धन की अपर्याप्तता आदि के कारण चेक का अनादरण। जहां किसी व्यक्ति द्वारा किसी बैंकर के साथ उसके द्वारा बनाए गए खाते पर आहरित कोई चेक, उस खाते से किसी अन्य व्यक्ति को किसी धनराशि के भुगतान के लिए, किसी ऋण या अन्य देयता के पूर्ण या आंशिक निर्वहन के लिए, बैंक द्वारा अदत्त लौटा दिया जाता है, या तो इसलिए कि उस खाते के क्रेडिट में स्थित धनराशि चेक का सम्मान करने के लिए अपर्याप्त है या वह उस बैंक के साथ किए गए किसी करार द्वारा उस खाते से भुगतान किए जाने के लिए व्यवस्थित राशि से अधिक है, तो ऐसा व्यक्ति अपराध का दोषी समझा जाएगा और इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कारावास से, जिसकी अवधि [दो वर्ष तक बढ़ाई जा सकेगी], या जुर्माने से, जो चेक की राशि का दोगुना तक हो सकेगा, या दोनों से, दंडित किया जाएगा: परंतु इस धारा में अंतर्विष्ट कोई बात तब तक लागू नहीं होगी जब तक कि–

(क) चेक बैंक को उस तारीख से, जिसको वह आहरित किया गया है, छह मास की अवधि के भीतर या उसकी विधिमान्यता की अवधि के भीतर, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, प्रस्तुत न कर दिया गया हो;

(ख) आदाता या चेक का सम्यक् धारक, यथास्थिति, चेक के आहर्ता को लिखित सूचना देकर, उक्त धनराशि के संदाय की मांग न कर दे, [तीस दिन के भीतर] उसके द्वारा बैंक से चेक के अदत्त लौटाए जाने के बारे में सूचना प्राप्त होने के; तथा

(ग) ऐसे चेक का आहर्ता उक्त सूचना की प्राप्ति के पन्द्रह दिन के भीतर आदाता या यथास्थिति, चेक के सम्यक् धारक को उक्त धनराशि का संदाय करने में असफल न रहे।

स्पष्टीकरण–इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "ऋण या अन्य देयता" से विधिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण या अन्य देयता अभिप्रेत है।]

उन्होंने अंत में निवेदन किया कि चेक का अनादरण इस आधार पर कि आहर्ता ने चेक के भुगतान को रोक दिया है और यह परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 में अभियोजन प्रारंभ करने के आधार के रूप में शामिल नहीं है और उक्त चेक किसी ऋण या अन्य देयता के निर्वहन में जारी नहीं किया गया था जो कि

अधिनियम की धारा 138 के अंतर्गत अभियोजन प्रारंभ करने के लिए पूर्व शर्त है।

इसके विपरीत, शिकायतकर्ता/प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि बैंकर को दिए गए भुगतान रोकने के निर्देश के कारण चेक का अनादरण अधिनियम की धारा 138 के अंतर्गत अभियोजन के आधार के रूप में शामिल है। अधिनियम की धारा 139 यह प्रावधान करती है कि जब तक इसके विपरीत साबित न हो जाए, यह माना जाएगा कि धारा 138 में संदर्भित प्रकृति के चेक का धारक किसी ऋण या अन्य देयता के पूर्ण या आंशिक निर्वहन के लिए है।

उन्होंने आगे दलील दी कि विद्वान ट्रायल कोर्ट और विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेशों में कोई अवैधता या अनियमितता या क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि नहीं है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका पर निर्णय करते समय विवादित तथ्य के प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता।

मेसर्स इंडस एयरवेज प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम मेसर्स मैग्नम एविएशन प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (2014) 12 एससीसी 539 ने अन्य बातों के साथ-साथ यह माना है कि यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि यदि चेक जारी करने की तिथि को कोई कानूनी देयता मौजूद नहीं है, तो उक्त चेक के संबंध में परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध आकर्षित नहीं होगा। धारा 138 में संलग्न स्पष्टीकरण धारा 138 के प्रयोजन के लिए 'ऋण या अन्य देयता' अभिव्यक्ति के अर्थ को स्पष्ट करता है। यह अभिव्यक्ति एक कानूनी रूप से प्रवर्तनीय ऋण या अन्य देयता का अर्थ रखती है। धारा 138 आहर्ता की चूक के कारण चेक के अनादरण को एक अपराध के रूप में मानती है, यदि चेक उसके द्वारा किए गए किसी ऋण या अन्य देयता के निर्वहन में जारी किया गया हो। स्पष्टीकरण कोई संदेह नहीं छोड़ता कि धारा 138 के तहत अपराध आकर्षित करने के लिए, चेक के आहरण की तिथि पर कानूनी रूप से प्रवर्तनीय ऋण या अन्य देयता मौजूद होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, मौजूदा या पूर्व न्यायनिर्णीत देयता के निर्वहन में चेक का आहरण धारा 138 के तहत अपराध सिद्ध करने के लिए अनिवार्य शर्त है।

पल्सिव टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य और अन्य में माननीय उच्चतम न्यायालय ने 22.08.2014 को अवलोकन किया कि बैंक को जारी किए गए "भुगतान रोको" निर्देश भी व्यक्ति को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध के लिए उत्तरदायी बनाते हैं यदि चेक उस आधार पर अनादरित हो जाता है। एक बार जब आहर्ता द्वारा चेक जारी कर दिया जाता है, तो धारा 139 के तहत एक अनुमान का पालन करना चाहिए और केवल इसलिए कि आहर्ता आदाता को या बैंक को भुगतान रोकने के लिए नोटिस जारी करता है, यह आदाता या समय पर चेक के धारक द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत कार्रवाई को रोक नहीं सकता। यदि अभियुक्त यह दिखाता है कि उसके खाते में चेक के भुनाने के लिए प्रस्तुत करने के समय चेक की राशि को मंजूर करने के लिए पर्याप्त धनराशि थी और भुगतान रोकने का नोटिस अन्य वैध कारणों से जारी किया गया था, जिसमें यह भी शामिल है कि चेक के भुनाने के लिए प्रस्तुत करने के समय कोई मौजूदा ऋण या देयता नहीं थी, तो धारा 138 के तहत अपराध नहीं बनेगा। महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसा साबित करने का भार अभियुक्त पर होगा। इस प्रकार, न्यायालय

अनुवादित

इस आधार पर शिकायत को खारिज नहीं कर सकता। क्या अभियुक्त द्वारा शिकायतकर्ता को कोई धन दिया गया है, यह साक्ष्य का विषय है। अभियुक्त के पास अपना बचाव संभाव्य बनाने का पर्याप्त अवसर है।

से उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के रहित है और खारिज किए जाने योग्य है।

याचिका खारिज की जाती है और आक्षेपित आदेश तदनुसार पुष्ट किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 846

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 09.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता,

आपराधिक अपील संख्या 1181/2003

शैलेंद्र सिंह

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: आर.बी.एल. शुक्ला, नीरज साहू, एस.एच. इब्राहिम

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 324 और 307 - स्वेच्छा से खतरनाक साधनों या हथियारों से चोट पहुंचाना - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 357- अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 - धारा 5 - रिहा किए गए अपराधियों को क्षतिपूर्ति और लागत का भुगतान करने के लिए अदालत की शक्ति - दिनांक 29.3.1992 को आरोपी ने गोली चला दी, जिसके कारण वादी और अन्य व्यक्तियों को शरीर पर चोटें आईं - न्यायालय ने अपीलकर्ता को आईपीसी की धारा 307 के तहत दोषी ठहराया और 5 साल की सश्रम कारावास की सजा सुनाई - आयोजित - पूरक रिपोर्ट में डॉक्टर ने कहा कि सभी घायलों को किसी आग्नेयास्त्र से गोली लगने की चोटें आई हैं, लेकिन चोटें सामान्य प्रकृति की थीं - सभी चोटें शरीर के गैर महत्वपूर्ण हिस्से पर लगी थीं - जीवन को खतरे में डालने वाली चोटें नहीं थीं- अपीलकर्ता की सजा को आईपीसी की धारा 307 से धारा 324 आई.पी.सी. में परिवर्तित कर दिया गया - अपीलकर्ता का घायल के पड़ोसी का कोई पिछला आपराधिक इतिहास नहीं था - वाद वर्ष 1992 से संबंधित है, इस प्रकार, अपीलकर्ता को 31 वर्ष बीत गए और घायल ने समाज में अच्छी जड़ें जमा लीं - अपीलकर्ता को दोबारा जेल भेजने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा - अपीलकर्ता परिवीक्षा का पात्र है - घायल व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति प्रदान की गई - अपीलकर्ता पर 40,000/- रुपये का जुर्माना लगाया गया और 40,000/- रु. प्रत्येक घायल व्यक्ति को 10,000/- का भुगतान किया जाए (पैरा 11, 17)

उपरोक्त चर्चाओं और माननीय अवलोकन के प्रकाश में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 277 के तहत वर्तमान याचिका योग्यता या किसी बल

अनुमत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

अंकुश शिवाजी गायकवाड़ बनाम महाराष्ट्र राज्य (2013) 6एससीसी 770

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता द्वारा प्रदत्त)

1.अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एच. इब्राहिम, राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना साथ ही अभिलेख का परिशीलन किया।

2. वर्तमान अपील अपर सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या 7, लखनऊ द्वारा पुलिस स्टेशन-हसनगंज, जिला-लखनऊ से सम्बन्धित अपराध संख्या 151/1992 से उत्पन्न एस.टी. संख्या 584/1998 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 26.7.2003 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को दोषसिद्ध किया गया और भा०द०सं० की धारा 307 के अन्तर्गत 5 वर्ष का सश्रम कारावास और 5000 रुपये के जुर्माने की सजा तथा जुर्माना अदा न करने पर 2 माह के साधारण कारावास की सजा सुनाई गयी।

3. वर्तमान मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि कथित घटना की प्राथमिकी प्रथम सूचनाकर्ता राज कुमार सिंह ने इस आरोप के साथ अभिलिखित कराई है कि 29.3.1992 को लगभग 9:30 बजे रात में कुछ लोग सूचनाकर्ता के घर पर होली का त्योहार मनाने आए थे। होली मनाने के बाद जब सूचनाकर्ता और उसका बड़ा भाई छोड़ने जा रहे थे तो रास्ते में शिव राज सिंह के बेटे ने जान से मारने की नीयत से अवस्थी जी की छत से गोली चला दी। गोलीबारी की कथित घटना में प्रथम सूचनाकर्ता, उसके बड़े भाई व अन्य लोगों के शरीर पर कई चोटें आयी। उपरोक्त आरोपों के आधार पर शैलेन्द्र सिंह (वर्तमान अपीलकर्ता) पुत्र शिव राज सिंह के विरूद्ध भा०द०सं० की धारा 324/307 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट अभिलिखित की गई थी।

4. वर्तमान मामले का अन्वेषण, अन्वेषण अधिकारी को सौंपा गया। अन्वेषण के क्रम में पहली बार शैलेन्द्र सिंह (वर्तमान अपीलकर्ता) पुत्र शिव राज सिंह का नाम प्रकाश में आया। चिरंजीत लाल, महेंद्र प्रताप सिंह, के.के. सिंह और आर.के. सिंह को वर्तमान घटना में चोटें आयी हैं। अन्वेषण के दौरान, अन्वेषण अधिकारी ने सभी घायल व्यक्तियों की चोट रिपोर्ट एकत्र की और घटना का नक्शा नजरी तैयार किया। अन्वेषण अधिकारी ने साक्षियों के बयान भी अभिलिखित किए और अन्वेषण की औपचारिकताएं पूरी करने के बाद अपीलकर्ता के विरूद्ध भा०द०सं० की धारा 307 के तहत आरोप पत्र दायर किया। आरोप-पत्र मजिस्ट्रेट न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था, जहां मामला 16.4.1998 को सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया था, जहां इसे एस.टी. सं० 584/1998 के रूप में पंजीकृत किया गया था। अपीलकर्ता के विरूद्ध 15.6.1998 को भा०द०सं० की धारा 307 के तहत आरोप तय किए गए थे। अपीलकर्ता को आरोप हिन्दी में पढ़ कर सुनाये गए। अपीलकर्ता ने अपने विरूद्ध लगाए गए आरोपों को अस्वीकार किया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

5. मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित साक्षियों की जांच की गई, जो निम्नानुसार है: -

(i) अभियोजन साक्षी-1 राज कुमार सिंह, जो शिकायतकर्ता है और घायल भी है, ने सम्पूर्ण अभियोजन कथानक की पुष्टि की है। इस प्रकार,

अनुवादित

अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता के विरूद्ध मामला पूर्णतः स्थापित कर दिया। अभियोजन साक्षी-1 ने लिखित रिपोर्ट को प्रदर्श- क-1 के रूप में सिद्ध किया है।

(ii) अभियोजन साक्षी-2 कृष्ण कुमार सिंह भी एक अन्य घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है।
(iii) अभियोजन साक्षी-3 महेंद्र प्रताप सिंह भी एक अन्य घायल प्रत्यक्षदर्शी गवाह है।
(iv) अभियोजन साक्षी-4-ओम प्रकाश श्रीवास्तव, जो कि रेडियोलॉजिस्ट भी हैं, ने महेंद्र प्रताप सिंह की एक्स-रे रिपोर्ट को प्रदर्श क-2, कृष्ण कुमार सिंह की एक्स-रे रिपोर्ट को प्रदर्श क-3 एवं राज कुमार सिंह की एक्स-रे रिपोर्ट को प्रदर्श क-4 के रूप मे सिद्ध किया है।

(iv) अभियोजन साक्षी-5 एन.के. कपिल, अन्वेषण अधिकारी हैं, जिन्होंने नक्शा नजरी को प्रदर्श क-5, आरोप-पत्र को प्रदर्श क-6, चिक एफ.आई.आर को प्रदर्श क-7 तथा जी०डी० सं०-62 को प्रदर्श क-8 के रूप मे सिद्ध किया।

अभियोजन पक्ष द्वारा द०प्र०सं० की धारा 294 के तहत घायल की चोट रिपोर्ट और अनुपूरक शपथ पत्र भी स्वीकार किया गया। चिरंजीत लाल की मेडिकल रिपोर्ट प्रदर्श क-9, महेंद्र प्रताप सिंह की मेडिकल रिपोर्ट प्रदर्श क-10, कृष्ण कुमार सिंह की मेडिकल रिपोर्ट प्रदर्श के-11, आर.के. सिंह की मेडिकल रिपोर्ट प्रदर्श क-12, चिरंजीत लाल की एक्स-रे रिपोर्ट प्रदर्श क-13, कृष्ण कुमार सिंह की अनुपूरक रिपोर्ट प्रदर्श क-14 एवं राज कुमार सिंह की अनुपूरक रिपोर्ट प्रदर्श क-15 थी।

इस प्रकार, अभियोजन पक्ष ने अभियोजन साक्षी-1 से अभियोजन साक्षी-5 के मौखिक साक्ष्यों पर विश्वास व्यक्त किया और प्रदर्श क-1 से प्रदर्श क-15 के दस्तावेजी साक्ष्यों पर विश्वास व्यक्त किया।

6. साक्षियों का साक्ष्य अभिलिखित करने के बाद, विचारण न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता के विरूद्ध पूर्ण साक्ष्य एवं अन्य आपत्तिजनक परिस्थितियों को समझाते हुए अभियुक्त/अपीलकर्ता के बयान द०प्र०सं० की धारा 313 के तहत अभिलिखित किए गए। द०प्र०सं० की धारा 313 के तहत अभिलिखित बयान में, अपीलकर्ता ने सम्पूर्ण अभियोजन कथानक को पूर्णतः अस्वीकार दिया, उसने कहा कि अपीलकर्ता को व्यक्तिगत प्रतिशोध के कारण प्रथम सूचनाकर्ता द्वारा झूठा फंसाया गया है। उन्होंने हत्या करने के लिए गोली चलाने से भी अस्वीकार कर दिया। लेकिन उन्होंने अपने बचाव में कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने का विकल्प नहीं चुना।

7. दोनों पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के मूल्यांकन करने के बाद, विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्त/अपीलकर्ता को उपरोक्तानुसार दोषी ठहराया। दिनांक 26.7.2003 के आदेश से व्यथित होकर अपीलकर्ता द्वारा वर्तमान अपील दायर की गई है।

8. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस मामले में चार व्यक्तियों को चोटें आई हैं, जिसे प्रदर्श क-14 एवं प्रदर्श क-15 की अनुपूरक रिपोर्ट द्वारा स्थापित किया जाएगा।

अनुवादित

अनुपूरक शपथ-पत्र में डॉक्टर ने राय व्यक्त की कि सभी घायलों को किसी आग्नेयास्त्र से गोली लगने की चोटें आई हैं और अनुपूरक रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि चोटें सामान्य प्रकृति की थीं। चोट रिपोर्ट के अनुसार मात्र धात्विक घनत्व पाया गया। इसलिए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि इस मामले में चार लोगों को चोटें आई हैं, लेकिन चिरंजीत लाल, जो घायल थे, को अभियोजन पक्ष ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत नहीं किया था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष हेतुक स्थापित करने में बुरी तरह विफल रहा। उन्होंने आगे कहा कि घटना रात में हुई है और एफआईआर में प्रकाश का कोई स्रोत नहीं बताया गया है, इसलिए अपीलकर्ता की पहचान भी संदिग्ध है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि कथित चोटें अपीलकर्ता द्वारा कारित की गई थीं तो अपीलकर्ता के पक्ष में उदारता दिखाई जाये। अंत में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता घायल का पड़ोसी है और मामला वर्ष 1992 से संबंधित है और इस प्रकार 31 वर्ष बीत चुके हैं।

9. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि घायल को जो चोटें पहुंचाई गईं, वे साधारण प्रकृति की हैं। घायलों को जो चोटें लगी हैं वे शरीर के गैर महत्वपूर्ण हिस्से पर हैं। चोटें जीवन के लिए गम्भीर नहीं थीं। यदि अभियोजन पक्ष के मामले को इस रूप में स्वीकार कर लिया जाता है, तो अपराध भा०द०सं० की धारा 324 के दायरे से बाहर नहीं जाता है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता को परिवीक्षा का लाभ दिया जाना चाहिए, इसलिए वह अपीलकर्ता को परिवीक्षा पर छोड़े जाने की प्रार्थना करता है।

10. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रबल विरोध किया और न्यायालय के समक्ष अभिकथन प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ताओं के विरूद्ध आरोपों को पूर्णतः स्थापित कर दिया है। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के मूल्यांकन करने के बाद अपीलकर्ताओं को उचित दोषी ठहराया।

11. अपीलकर्ता को पहुंचाई गई चोटों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, मेरी सुविचारित राय है कि अपीलकर्ता को आग्नेयास्त्र से लगी चोटें सरल प्रकृति की थीं। चोटों की अनुपूरक रिपोर्ट के अनुसार, मेरी यह भी सुविचारित राय है कि अपराध भा०द०सं० की धारा 324 के दायरे से बाहर नहीं है। इसलिए, अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को भा०द०सं० की धारा 307 से भा०द०सं० की धारा 324 में परिवर्तित कर दिया जाता है। इस प्रकार, अपीलकर्ता को भा०द०सं० की धारा 324 के तहत दोषी ठहराये जाने की पुष्टि की जाती है। यह भी स्वीकृत तथ्य है कि अपीलकर्ता की कारावास की अवधि तीन माह है। अपीलार्थी का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है। वर्तमान में, अपीलकर्ता और घायल व्यक्ति समाज में सुस्थापित व्यक्ति है। 31 वर्ष पहले ही बीत चुके हैं और अपीलकर्ता को दोबारा जेल भेजने का कोई वांछित उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा। **इसलिए, संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता परिवीक्षा का पात्र है।**

अनुवादित

12. चूँकि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों को परिवीक्षा का लाभ देने तक ही सीमित रखा, इसलिए, इन परिस्थितियों में, द०प्र०सं० की धारा 360, 361 को उद्धृत करना उचित होगा, जो इस प्रकार है:-

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 इस प्रकार है:

360. सदाचरण की परिवीक्षा पर या भर्त्सना के पश्चात् छोड़ देने का आदेश-(1) जब कोई व्यक्ति जो इक्कीस वर्ष से कम आयु का नहीं है मात्र जुर्माने से या सात वर्ष या उससे कम अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है अथवा जब कोई व्यक्ति जो इक्कीस वर्ष से कम आयु का है या कोई स्त्री ऐसे अपराध के लिए, जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, दोषसिद्ध की जाती है और अपराधी के विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि सिद्ध नहीं की गई है तब, यदि उस न्यायालय को, जिसके समक्ष उसे दोषसिद्ध किया गया है, अपराधी की आयु, शील या पूर्ववृत्त को और उन परिस्थितियों को, जिनमें अपराध किया गया, ध्यान में रखते हुए यह प्रतीत होता है कि अपराधी को सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ देना समीचीन है तो न्यायालय उसे तुरन्त कोई दंडादेश देने के बजाय निदेश दे सकता है कि उसे प्रतिभुओं सहित या रहित उसके द्वारा यह बंधपत्र लिख देने पर छोड़ दिया जाए कि वह (तीन वर्ष से अनधिक) इतनी अवधि के दौरान, जितनी न्यायालय निदिष्ट करे, बुलाए जाने पर हाजिर होगा और दंडादेश पाएगा और इस बीच परिशांति कायम रखेगा और सदाचारी बना रहेगा :

परन्तु जहां कोई प्रथम अपराधी किसी द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा, जो उच्च न्यायालय द्वारा विशेषतया सशक्त नहीं किया गया है, दोषसिद्ध किया जाता है और मजिस्ट्रेट की यह राय है कि इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए वहां वह उस भाव की अपनी राय अभिलिखित करेगा और प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को वह कार्यवाही निवेदित करेगा और उस अभियुक्त को उस मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा अथवा उसकी उस मजिस्ट्रेट के समक्ष हाजिरी के लिए जमानत लेगा और वह मजिस्ट्रेट उस मामले का निपटारा उपधारा (2) द्वारा उपबंधित रीति से करेगा ।

(2) जहां कोई कार्यवाही प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को उपधारा (1) द्वारा उपबंधित रूप में निवेदित की गई है, वहां ऐसा मजिस्ट्रेट उस पर ऐसा दंडादेश या आदेश दे सकता है जैसा यदि मामला मूलतः उसके द्वारा सुना गया होता तो वह दे सकता और यदि वह किसी प्रश्न पर अतिरिक्त जांच या अतिरिक्त साक्ष्य आवश्यक समझता है तो वह स्वयं ऐसी जांच कर सकता है या ऐसा साक्ष्य ले सकता है अथवा ऐसी जांच किए जाने या ऐसा साक्ष्य लिए जाने का निदेश दे सकता है ।

(3) किसी ऐसी दशा में, जिसमें कोई व्यक्ति चोरी, किसी भवन में चोरी, बेईमानी से दुर्विनियोग, छल या भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन दो वर्ष से अनधिक के कारावास से दंडनीय किसी अपराध के लिए या मात्र जुर्माने से दंडनीय किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि सिद्ध नहीं की गई है, यदि वह न्यायालय, जिसके समक्ष वह ऐसे दोषसिद्ध किया गया है, ठीक समझे, तो वह अपराधी की आयु, शील, पूर्ववृत्त या शारीरिक या मानसिक दशा को और अपराध

अनुवादित

की तुच्छ प्रकृति को, या किन्हीं परिशमनकारी परिस्थितियों को, जिनमें अपराध किया गया था, ध्यान में रखते हुए उसे कोई दंडादेश देने के बजाय सम्यक् भर्त्सना के पश्चात् छोड़ सकता है।

(4) इस धारा के अधीन आदेश किसी अपील न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय द्वारा भी किया जा सकेगा जब वह अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग कर रहा हो ।

(5) जब किसी अपराधी के बारे में इस धारा के अधीन आदेश दिया गया है तब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय, उस दशा में जब उस न्यायालय में अपील करने का अधिकार है, अपील किए जाने पर, या अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते हुए, ऐसे आदेश को अपास्त कर सकता है और ऐसे अपराधी को उसके बदले में विधि के अनुसार दंडादेश दे सकता है:

परन्तु उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय इस उपधारा के अधीन उस दंड से अधिक दंड न देगा जो उस न्यायालय द्वारा दिया जा सकता था जिसके द्वारा अपराधी दोषसिद्ध किया गया था।

(6) धारा 121, 124 और 373 के उपबंध इस धारा के उपबंधों के अनुसरण में प्रस्तुत किए गए प्रतिभुओं के बारे में जहां तक हो सके, लागू होंगे।

(7) किसी अपराधी के उपधारा (1) के अधीन छोड़े जाने का निदेश देने के पूर्व न्यायालय अपना समाधान कर लेगा कि उस अपराधी का, या उसके प्रतिभू का (यदि कोई हो) कोई नियत वास स्थान या नियमित उपजीविका उस स्थान में है जिसके संबंध में वह न्यायालय कार्य करता है या जिसमें अपराधी के उस अवधि के दौरान रहने की सम्भाव्यता है, जो शर्तों के पालन के लिए उल्लिखित की गई है।

(8) यदि उस न्यायालय का, जिसने अपराधी को दोषसिद्ध किया है, या उस न्यायालय का, जो अपराधी के संबंध में उसके मूल अपराध के बारे में कार्यवाही कर सकता था, समाधान हो जाता है कि अपराधी अपने मुचलके की शर्तों में से किसी का पालन करने में असफल रहा है तो वह उसके पकड़े जाने के लिए वारण्ट जारी कर सकता है।

(9) जब कोई अपराधी ऐसे किसी वारण्ट पर पकड़ा जाता है तब वह वारण्ट जारी करने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष तत्काल लाया जाएगा और वह न्यायालय या तो तब तक के लिए उसे अभिरक्षा में रखे जाने के लिए प्रतिप्रेषित कर सकता है जब तक मामले में सुनवाई न हो, या इस शर्त पर कि वह दंडादेश के लिए हाजिर होगा, पर्याप्त प्रतिभूति लेकर जमानत मंजूर कर सकता है और ऐसा न्यायालय मामले की सुनवाई के पश्चात् दंडादेश दे सकता है।

(10) इस धारा की कोई बात, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (1958 का 20) या बालक अधिनियम, 1960 (1960 का 60) या किशोर अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या सुधार से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों पर प्रभाव न डालेगी।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 निम्नानुसार है:-

361. कुछ मामलों में विशेष कारणों का अभिलिखित किया जाना-जहां किसी मामले में न्यायालय,-

(क) किसी अभियुक्त व्यक्ति के संबंध में कार्रवाई धारा 360 के अधीन या अपराधी

अनुवादित

परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (1958 का 20) के उपबंधों के अधीन कर सकता था; या

(ख) किसी किशोर अपराधी के संबंध में कार्रवाई, बालक अधिनियम, 1960 (1960 का 60) के अधीन या किशोर अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या सुधार से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन कर सकता था, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया है वहां वह ऐसा न करने के विशेष कारण अपने निर्णय में अभिलिखित करेगा ।

प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3, 4 और 5 इस प्रकार है:-

धारा 3- कतिपय अपराधियों को भर्त्सना के पश्चात् छोड़ देने की न्यायालय की शक्ति।

जब कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379 या धारा 380 या धारा 381 या धारा 404 या धारा 420 के अधीन दंडनीय कोई अपराध अथवा भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अधीन दो वर्ष से अनधिक के लिए कारावास या जुर्माने, या दोनों, से दंडनीय अपराध करने का दोषी पाया जाता है और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि सिद्ध नहीं होती है और जिस न्यायालय, ने उसको दोषी पाया है उसकी यह राय है कि मामले की परिस्थितियों को, जिनके अन्तर्गत अपराध की प्रकृति तथा अपराधी का चरित्र भी है ध्यान रखते हुए ऐसा करना समीचीन है जब तब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य बात के होते हुए भी वह न्यायालय उसे दंडित करने या उसे धारा 4 के अधीन सदाचरण की परवीक्षा पर छोड़ने के बजाय उसे सम्यक भर्त्सना के पश्चात छोड़ सकेगा।

स्पष्टीकरण.--इस धारा के प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति के विरूद्ध पूर्व दोषसिद्ध के अन्तर्गत इस धारा या धारा 4 के अधीन उसके विरूद्ध किया गया कोई पूर्व आदेश भी है।

धारा 4 कतिपय अपराधियों को सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ देने की न्यायालय की शक्ति।

(1) जब कोई व्यक्ति ऐसा अपराध करने का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है और जिस न्यायालय ने उस व्यक्ति को दोषी पाया है उसकी यह राय है कि मामले की परिस्थितियों को जिनके अन्तर्गत अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी है, ध्यान में रखते हुए, उसे सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ देना समीचीन हो तब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी वह न्यायालय उसे तुरंत दंडित करने के बजाय, निदेश दे सकेगा कि उसे प्रतिभुओं के सहित या उनके बिना, उसके द्वारा ऐसा बंधपत्र देने पर छोड़ दिया जाए कि वह तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी कालावधि के दौरान, जैसा न्यायालय निर्दिष्ट करें, आहूत किये जाने पर उपस्थित होगा और दण्डादेश प्राप्त करेगा और इस बीच परिशांति कायम रखेगा और सदाचारी रहेगा:

परन्तु न्यायालय किसी अपराधी के ऐसे छोड़ दिये जाने का निदेश तब तक नहीं देगा जब तक उसका समाधान नही हो जाता कि अपराधी या उसके प्रतिभू का, यदि कोई हो, नियत निवास स्थान या उस स्थान में नियमित उपजीविका है, जिस पर वह न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है या जिसमें अपराधी के उस कालावधि के दौरान रहने की संभाव्यात है, जिसके लिए वह बंधपत्र देता है।

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश करने से पूर्व न्यायालय मामले के बारे में संबंधित

परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करेगा।

(3) जब उप-धारा (1) के अधीन आदेश किया जाता है तब यदि न्यायालय की यह राय है कि अपराधी और जनता के हित में ऐसा करना समीचीन है, तो वह उसके अतिरिक्त एक पर्यवेक्षण आदेश पारित कर सकेगा जिसमें यह निदेश होगा कि अपराधी आदेश में नामित किसी परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण के अधीन एक वर्ष से कम न होने वाली ऐसी कालावधि के दौरान रहेगा, जो उसमें विनिर्दिष्ट हो, और ऐसे पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें अधिरोपित कर सकेगा जैसी वह अपराधी सम्यक पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझता है।

(4) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश करने वाला न्यायालय अपराधी से अपक्षा करेगा कि छोड़े जाने से पूर्व, वह ऐसे आदेश मे विनिर्दिष्ट शर्तों का और निवास स्थान मादक पदार्थों से प्रवरित या कि सी अन्य बात के बारे में ऐसी अतिरिक्त शर्तों का, जैसी न्यायालय विशिष्ट परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए उसी अपराध की पुनरावृत्ति को या अपराधी द्वारा अन्य अपराधों के किए जाने को रोकने के लिए अधिरोपित करना ठीक समझे, पालन करने के प्रतिभुओं के सहित या बिना एक बंधपत्र दे।

(5) उप-धारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश करने वाला न्यायालय आदेश के निबंधनों और शर्तों को अपराधी को समझाएगा और प्रत्येक अपराधी, प्रतिभू, यदि कोई हो, और संबंधित परिवीक्षा अधिकारी को तुरंत पर्यवेक्षण आदेश की एक प्रति देगा।

धारा 5- **छोड़े गये अपराधियों से प्रतिकर और खर्च देने की अपेक्षा करने की न्यायालय की शक्ति-**

(1) धारा 3 या धारा 4 के अधीन अपराधी को छोड़ने का निदेश देने वाला न्यायालय, यदि ठीक समझता है, तो उसी समय तक अतिरिक्त आदेश कर सकेगा जिसमें उसे निम्नलिखित संदत्त करने के लिए निर्दिष्ट किया जाएगा–

(क) अपराध के किए जाने से किसी व्यक्ति की हुई हानि या क्षति के लिए इतना प्रतिकर जितना न्यायालय युक्तियुक्त समझता है; और

(ख) कार्यवाहियों के इतने खर्चे जितने न्यायालय युक्तियुक्त समझता है।

(2) उप-धारा (1) के अधीन संदत्त किए जाने के लिए आदिष्ट रकम संहिता की धारा 386 और 387 के उपबंधों के अनुसार जुर्माने के रूप में वसूल की जा सकेगी।

(3) उसी मामले से जिसके लिए अपराधी अभियोजित किया जाता है पैदा होने वाले किसी वाद का विचारण करने वाला सिविल न्यायालय नुकसानी दिलाने में उस किसी रकम को गणना में लेगा जो उपधारा(1) के अधीन प्रतिकर के रूप में संदत्त या वसूल की गई हो।

13. अन्य विधायी अपेक्षायें भी हैं जिन्हें ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 5 में अपराध के पीड़ित को प्रतिकर के भुगतान का प्रावधान है (जैसा कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 में है)। फिर भी, 2006 में दण्ड प्रक्रिया संहिता में पीड़ित प्रतिकर योजना और अपराध के पीड़ित को अतिरिक्त अधिकार प्रदान करने के लिए अतिरिक्त बदलाव लाए गए, जिसमें अपर्याप्त प्रतिकर के अनुदान के विरूद्ध अपील दायर करने

का अधिकार भी सम्मिलित था। कितनी बार न्यायालयों ने इन प्रावधानों का उपयोग किया है?

14. ***अंकुश शिवाजी गायकवाड़ बनाम महाराष्ट्र राज्य MANU/SC/0461/2013: (2013) 6 SCC 770*** और ***जितेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य MANU/SC/0679/2013: (2013) 11 SCC 193*** में न्यायालय ने धारित किया कि किसी अपराध के पीड़ित को प्रतिकर देने पर विचार करना अनिवार्य है, अंकुश शिवाजी गायकवाड़ से लिए गए निम्नलिखित शब्दों में:

"हालाँकि किसी विशेष मामले में प्रतिकर प्रदान करना या अस्वीकार करना न्यायालय का विवेकाधिकार हो सकता है, लेकिन प्रत्येक आपराधिक मामले में प्रश्न पर अपना विवेक प्रयोग करना न्यायालय का अनिवार्य कर्तव्य है। प्रश्न पर विवेक प्रयोग करने का सबसे बेहतर प्रकटीकरण प्रतिकर देने/अस्वीकार करने के कारणों को अभिलिखित कर किया जाता है।"

15. द०प्र०सं० की धारा 357 और अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 5 न्यायालय को अपराध के पीड़ित(पीड़ितों) को हुई हानि/क्षति के संबंध में प्रतिकर देने का अधिकार देती है। इस धारा का उद्देश्य न्याय के उद्देश्यों को बेहतर तरीके से पूर्ण करना है। यह धारा पीड़ित को आश्वस्त करने के लिए बनाई गई थी कि आपराधिक न्याय प्रणाली में उसकी उपेक्षा नहीं की गयी है। द०प्र०सं० की धारा 357 के तहत दी जाने वाली प्रतिकर की राशि अपराध की प्रकृति, हुई हानि/क्षति की सीमा और अभियुक्त की भुगतान करने की क्षमता पर निर्भर करता है, जिसके लिए न्यायालय को संक्षिप्त जांच के साथ-साथ पूर्व की तरह अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों पर विचार करते हुए कार्रवाई करनी होती है, इस न्यायालय का मत है कि प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ अपीलकर्ताओं को प्रदान किया जाना चाहिए।

16. **इस प्रकार अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। विचारण न्यायालय द्वारा निदेशित दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 से भारतीय दंड संहिता की धारा 324 में परिवर्तित कर दिया गया है और सजा के विषय में अपीलकर्ता को परिवीक्षा पर छोड़ने का निदेश दिया गया है** तथा उ. प्र. अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के तहत निर्धारित शर्त के साथ कि वह न्यायालय के समक्ष 40,000/- रुपये के व्यक्तिगत बंधपत्र और इतनी ही राशि की दो प्रतिभू राशि प्रस्तुत करने के अधीन एक वर्ष तक परिशांति और सदाचरण बनाए रखेगा।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि को ध्यान में रखते हुए एवं द०प्र०सं० की धारा 357 के प्रावधानों एवं अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 5 के अनुसार, मेरी राय है कि पीड़ित व्यक्तियों, अर्थात् राज कुमार सिंह, कृष्ण कुमार सिंह, महेंद्र प्रताप सिंह और चिरंजीत लाल को प्रतिकर दिया जाना चाहिए। इस प्रकार 40,000/- रुपये का प्रतिकर अपीलकर्ता पर अधिरोपित किया गया है तथा 40,000/- रु में से प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति, कुमार सिंह, कृष्ण कुमार सिंह, महेंद्र प्रताप सिंह और चिरंजीत लाल को 10,000/- रुपये का भुगतान किया जाए। किसी भी पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु के मामले में, पीड़ित व्यक्तियों के विधिक उत्तराधिकारियों को इसका भुगतान करना होगा। **यदि अपीलकर्ता इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से पंद्रह दिवसों के भीतर कथित राशि का**

भुगतान करने में विफल रहता है, तो उसे एक वर्ष का साधारण कारावास भुगतना होगा।

.

18. **इस प्रकार, दोषसिद्धि के बिंदु पर अपील खारिज की जाती है और दण्डादेश के बिंदु पर आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है।**

19. कार्यालय को इस आदेश को संबंधित विचारण न्यायालय को सूचित करने का निदेश दिया जाता है। विचारण न्यायालय का अभिलेख वापस भेजा जाए।

(2023) 2 ILRA 853

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकःइलाहाबाद 23.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति अजित सिंह,

आपराधिक अपील संख्या 4093/2018

जाकिर हुसैन

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री वीरेंद्र कुमार गुप्ता, श्री लाल मणि सिंह, श्री नूर मोहम्मद, श्री इरशाद मोहम्मद

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.जी.ए., श्री ब्रिजेश नाथ राय, श्री राहुल मिश्रा

भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 53 और 302 - उचित दंड - संशोधन - 'दंड का सुधारात्मक और सुधारात्मक सिद्धांत' - 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है - दंड या तो अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम गुरुत्वाकर्षण वाला नहीं होना चाहिए - अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए - सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है - आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए - प्रत्येक आरोपी व्यक्ति सुधार करने में सक्षम है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपाय लागू किए जाने चाहिए (पैरा 16, 18, 19)

भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302- दहेज हत्या - मृतिका का विवाह 3.4.2021 को आरोपी अपीलकर्ता के साथ संपन्न हुआ - अपीलकर्ता और उसके परिवार के अन्य सदस्य दिए गए दहेज से संतुष्ट नहीं थे और अतिरिक्त दहेज की मांग कर रहे थे और जिसके पूरा न होने के कारण, मृतिका को प्रताड़ित किया गया और अंततः 9/10.4.2015 की रात में उसे आग लगा दी गई और 6.5.2015 को इलाज के दौरान उसने जलकर दम तोड़ दिया - मृतिका का मृत्यु पूर्व कथन अपीलकर्ता/पति के खिलाफ था, जिसे नायब तहसीलदार द्वारा डॉक्टर द्वारा फिटनेस प्रमाण पत्र दिए जाने के बाद दर्ज किया गया था कि वह पूरी तरह से सचेत है और अपना कथन देने के लिए स्वस्थ है - मृतक की उसके वैवाहिक घर में शादी के सात साल के भीतर मौत हो गई थी - यह तर्क दी गई थी कि आरोपी/अपीलकर्ता बहुत गरीब व्यक्ति था और वह अपने परिवार में अकेला कमाने वाला था और सात साल से अधिक

अप्रमाणित

समय तक जेल में रहा - विचारणीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों के निष्कर्षों से कोई फर्क नहीं पड़ा, हालांकि न्यायालय ने सजा को 10 साल के कठोर कारावास में परिवर्तित बदल दिया (पैरा 20)

आंशिक रूप से अनुमति। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रावदा शशिकला बनाम ए.पी. राज्य एआईआर 2017 एससी 1166
2. जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2010) 12 एससीसी 532]
3. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734]
4. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323]
5. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441]
6. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]
7. देव नारायण मण्डल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एससीसी 257
8. मो. गियासुद्दीन बनाम ए.पी. राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926]

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,
और
माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. यह अपील सत्र न्यायाधीश, महोबा द्वारा सत्र विचारण संख्या-108 वर्ष 2015 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 02.06.2018 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जो धारा 302 भ०द०वि०, थाना-महोबा, जिला महोबा के तहत केस अपराध संख्या-260 वर्ष 2015 से उत्पन्न हुआ है, जिसमें अपीलकर्ता को धारा 302 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया है और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है और 10000/- रुपये का जुर्माना लगाया गया है। और चूक की अवस्था में जुर्माना अदा न करने पर 4 माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा।

2. संक्षेप में अभियोजन पक्ष की कहानी यह है कि सूचनाकर्ता सत्तार खान @ भूरे ने अपनी बेटी नाज़रीन का विवाह आरोपी ज़ाकिर के साथ 3.4.2021 को मुस्लिम रीति के अनुसार उसकी स्थिति के अनुसार किया था और पर्याप्त दहेज दिया था, लेकिन सूचनाकर्ता की बेटी का पति और उसके परिवार के अन्य सदस्य दिए गए दहेज से संतुष्ट नहीं थे और वे 2,00,000/- रुपये नकद और अतिरिक्त दहेज के रूप में एक कार रुपये की मांग कर रहे थे, और इसकी पूर्ति न होने के कारण, सूचनाकर्ता की बेटी को उनके ससुराल में उनके द्वारा प्रताड़ित किया गया और दुर्व्यवहार किया गया और अंततः 9/10.4.2015 की रात को उसे आग लगा दी गई और 6.5.2015 को उपचार के दौरान उसने जलने के कारण दम तोड़ दिया।

3. मामले की जांच सर्कल ऑफिसर, सदर को सौंपी गई, जिन्होंने घटनास्थल का निरीक्षण किया और नक़्शा नज़री तैयार किया और गवाहों के बयान दर्ज किए। जांच पूरी होने के बाद, विवेचनाधिकारी ने केवल अभियुक्त-अपीलकर्ता जाकिर हुसैन के खिलाफ धारा 498-ए, 304-बी भ०द०वि० और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत 27.06.2015 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया है और मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया गया था और यह विचार करते हुए कि मामला सत्र न्यायाधीश द्वारा विचारणीय था और यह सत्र

अनुवादित

न्यायालय को उपअर्पित कर दिया और सत्र न्यायालय ने अभियुक्त पर धारा 498-ए 304-बी भ०द०वि० और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत आरोपी पर आरोप लगाया।

4. अपने मामले को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने आठ गवाहों की जांच की है, जो इस प्रकार हैं:

1	सत्तार खान	अ०सा०-1
2	ज़ूनैद खान	अ०सा०-2
3	प्रबुद्ध सिंह	अ०सा०-3
4	अफ़सरी खातून	अ०सा०-4
5	राजेन्द्र कुमार	अ०सा०-5
6	विमल कुमार	अ०सा०-6
7	डॉ एस के कुल्लर	अ०सा०-7
8	संदीप सिंह	अ०सा०-8

5. चक्षुक संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए थे:

1	प्राथमिकी	प्रदर्श क-9
2	तहरीरी रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
3	मृत्यु पूर्व बयान	प्रदर्श क-7
4	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-10
5	पंचायतनामा	प्रदर्श क-2
6	आरोप पत्र	प्रदर्श क-12
7	नक़्शा नज़री सारणी के साथ	प्रदर्श क-11

6. अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के खिलाफ सबूत रखे और अदालत ने अभियोजन पक्ष के सबूतों के बाद धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त का परीक्षण किया और आरोपी ने प्रस्तुत किया कि उसे परेशान करने के इरादे से प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और विचारण का दावा किया। सत्र न्यायाधीश ने धारा 498-ए, 304-बी भ०द०वि० और डीपी अधिनियम की धारा 3/4 के तहत आरोप तय किए।

7. रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों पर विचार करने के बाद, विचारण न्यायालय ने आरोपी को पूर्वोक्त के रूप में दोषी ठहराया। दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर यह अपील दायर की गई है।

8. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री इरशाद मोहम्मद, नूर मोहम्मद द्वारा सहायता प्राप्त, को सजा में संशोधन पर और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

9. अभियुक्त/अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता को सूचनाकर्ता द्वारा झूठा फंसाया गया है क्योंकि अपीलकर्ता की ओर से अतिरिक्त दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी। जब कथित घटना हुई तो आरोपी मौके पर मौजूद नहीं था। वह आगे प्रस्तुत करता है कि यह घटना स्टोव के फटने के कारण हुई, जिस पर वह खाना बना रही थी। वह दुर्घटनावश जल गई और इस प्रक्रिया में उसके कपड़ों में आग लग गई, जिससे वह गंभीर रूप से घायल हो गई। मृतका द्वारा शोर मचाने की आवाज सुनकर मृतका के ससुराल वाले मौके पर पहुंचे और उसे बचाने का प्रयास किया और इस प्रक्रिया में वे भी झुलस गए। किसी ने उसे आग नहीं लगाई थी, लेकिन अभियोजन पक्ष ने दहेज हत्या का रंग डालने की

अनुवादित

कोशिश की है। मृतका का मृत्यु पूर्व बयान नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि शव परीक्षण रिपोर्ट रिपोर्ट के अनुसार मृतका की मृत्यु सदमे और सेप्टीसीमिया के परिणामस्वरूप पूर्व-मृत्यु चोटों के कारण हुई है। वह अंत में प्रस्तुत करता है कि एक गरीब व्यक्ति में अभियुक्त/अपीलकर्ता वह अपने परिवार में केवल कमाने वाला है।

10. अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आरोपी और उसके परिवार के अन्य सदस्यों ने मृतका पर मिट्टी का तेल डालकर उसकी हत्या की है। शादी के सात साल के अंदर ही मृतका की मौत हो गयी।

11. मुकदमे के अंत में और धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त के बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त/अपीलकर्ता को दोषी ठहराया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

12. हमें निर्णय के माध्यम से ले जाते हुए, जब न्यायालय ने अपने गंभीरतापूर्वक यह विचार किया कि मृत्यु चिकित्सा साक्ष्य को देखते हुए एक हत्या थी, अधिवक्ता ने मामले में उदारता दिखाने का अनुरोध किया और कम सजा की मांग की क्योंकि अभियुक्त/अपीलकर्ता सात साल से अधिक समय से जेल में है, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने 09.12.2022 को निर्णय लिया गया, आपराधिक अपील संख्या-2895 वर्ष 2015 (मनोज शर्मा बनाम यूपी राज्य) में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है।

13. इसके विपरीत, शासकीय अधिवक्ता का कहना है कि मृतका को उसके ससुराल में शादी के सात साल के भीतर मौत के घाट उतार दिया गया था, इसलिए, इस न्यायालय द्वारा अभियुक्त/अपीलकर्ता के प्रति कोई नरमी नहीं दिखाई जा सकती है।

14. गवाहों के साक्ष्य और शव परीक्षण रिपोर्ट रिपोर्ट पर विचार करते हुए, जिसमें कहा गया है कि मृतका के शरीर पर चोट मृत्यु का कारण होगी और यह हत्या की मौत थी, हम निचली अदालत के निष्कर्ष से सहमत हैं। हालांकि, यह देखा जाना चाहिए कि क्या सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसे संशोधित करने की आवश्यकता है। इस संबंध में, हमें भारत में प्रचलित दंड के सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

15. मो. गियासुद्दीन बनाम स्टेट ऑफ ए.पी, [ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1926], सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट द्वारा देखा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आमतौर पर सुधारा जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना होगा। उप-संस्कृति जो असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए उबारना है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' के दृष्टिकोण के बजाय चिकित्सीय होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग की पंगुता पैदा करती है। यदि आप किसी व्यक्ति

को प्रतिशोध की सजा देना चाहते हैं, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, मानव का चोटों से सुधार नहीं होगा।

16. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एस.सी.सी. 257] में 'उचित दंड' की व्याख्या यह देखते हुए की गई थी कि दंड अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की मात्रा का निर्धारण करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या सनकी तरीके से नहीं किया जा सकता है।

17. रवादा शशिकला बनाम एपी ए.आई.आर. राज्य 2017 एस.सी. 1166 में, सुप्रीम कोर्ट ने जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एस.सी.सी. 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एस.सी.सी. 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एस.सी.सी. 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एस.सी.सी. 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एस.सी.सी. 463] और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारक अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और कारित की गई, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी उपस्थित परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचारणीय क्षेत्र में आएंगे। इसके अलावा, सजा में अनुचित सहानुभूति न्याय वितरण को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके किए जाने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा सुनाए। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित सजा देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और दंड के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज लंबे समय तक अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत सहन और विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए सजा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और उपचरात्मक है। साथ ही, हमारी दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

18. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को

अनुवादित

ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए।

19. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा दी गई सजा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए बहुत कठोर है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जैसा कि ऊपर चर्चा की है, निर्णय दिया है कि दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए। 20. उपरोक्त के मद्देनजर, निचली अदालत द्वारा तथ्यों के निष्कर्ष को छेड़ा नहीं जाता हैं। हालांकि, जहां तक सजा का सवाल है, हम इसे 10 साल के सश्रम कारावास से हटाते हैं। जुर्माना और डिफ़ॉल्ट सजा बनाए रखी जाती है। यदि अभियुक्त/अपीलकर्ता कैद की अवधि से गुजर चुका है, तो अभियुक्त/अपीलकर्ता को, यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है, तुरंत रिहा किया जाए। डिफ़ॉल्ट सजा छूट के साथ दस साल की कैद के बाद शुरू होना है।

21. उपर्युक्त के मद्देनजर, अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित माना जाएगा। अभिलेख को तत्काल निचली अदालत को वापस भेजा जाए।

(2023) 2 ILRA 858

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय,

माननीय न्यायमूर्ति नरेन्द्र कुमार जौहरी,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 481/2023

डेविड मारियो डेनिस

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: रजत गंगवार, अश्मिता सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी.आई., दीपांशु दास, जी.ए., शिव पी. शुक्ल

आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद - 21, 32, 166, 226, - भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 - धारा 7, 7(ए) और 13 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120-(बी), 342, 386, 409, 411, 420, 467, 468, 471, 504 और 506, - दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1942 - धारा 3, 5 और 6 - रिट याचिका - भारत सरकार द्वारा जारी अधिसूचना और उत्तर प्रदेश की सहमति की वैधता को चुनौती - शक्तियां और क्षेत्राधिकार - याचिकाकर्ता जो वादी है - यूपी में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई - हालांकि, रिपोर्ट किए गए अपराध की जांच अन्य राज्य के क्षेत्रों की यात्रा कर सकती है - न्यायालय ने पाया कि 'लोकतांत्रिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए समिति' में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सी.बी.आई. के अधिकार क्षेत्र को बढ़ाने की शक्ति केंद्र सरकार अन्य राज्यों में रिपोर्ट किए गए अपराध की जांच कर

सकती है - प्रश्न यह नहीं है कि क्या आरोपी पीड़ित को रिपोर्ट किए गए अपराध के हस्तांतरण की मांग करने का कोई अधिकार है; बल्कि मुद्दा यह है कि रिपोर्ट किए गए अपराध की सबसे निष्पक्ष और निष्पक्ष तरीके से जांच की जानी चाहिए - एफ.आई.आर. के स्थानांतरण को प्रमाणित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं लाया गया है कि इस वाद में विवेचना को पटरी से उतारने के लिए सी.बी.आई. को जांच सौंपी गई है - राज्य सरकार ने एफ.आई.आर. की जांच करने के लिए सी.बी.आई. की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने का आदेश देने के लिए केंद्र सरकार को अपनी सहमति उचित है - रिट याचिका विफल हो जाती है - और निरस्त कर दी जाती है। (पैरा - 30, 36, 44, 46, 47)

रिट याचिका निरस्त (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. कंवल तनुज बनाम बिहार राज्य एवं अन्य 2020 खंड 20 एससीसी 531),

2. पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम लोकतांत्रिक अधिकारों की सुरक्षा समिति, डब्ल्यू.बी. और अन्य. (2010 खंड 3 एससीसी 571),

3. आनंद अग्रवाल बनाम भारत संघ और अन्य. (2018 एससीसी ऑनलाइन डेल 11713)

(माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय, द्वारा प्रदत्त)

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत यह कार्यवाही प्रारंभ कर, याचिकाकर्ता, जो पुलिस थाना-इंदिरा नगर, जिला-लखनऊ, में भा०द०सं की धारा 342, 386, 504, 506 के अंतर्गत दिनांक 29.10.2022 को दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 0310/2022 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 (भा०द०सं की धारा 409, 411, 420, 467, 468, 471 तथा 120-बी के अंतर्गत अपराध तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 ए, 8 एवं 13 बाद में जांच के दौरान जोड़े गए हैं) का शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता है, ने दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1942 (एतस्मिनपश्चात 'डीएसपीई अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 6 के अंतर्गत उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा उक्त प्र०सू०रि० की जांच हेतु आदेश दिनांक 29.12.2022 केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा (एतस्मिनपश्चात इसे 'सीबीआई' कहा जाएगा) अन्वेषण हेतु दी गई सहमति की वैधता को चुनौती दी है।

याचिकाकर्ता ने डीएसपीई अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत भारत सरकार द्वारा जारी अधिसूचना/आदेश को भी चुनौती दी है, जिसके अंतर्गत दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन के सदस्यों की शक्तियों एवं क्षेत्राधिकार को प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या- 0310/ 2022, दिनांक 29.10.2022 की जांच हेतु पूर्ण उत्तर प्रदेश राज्य तक बढ़ा दिया गया है।

इस याचिका में एक और प्रार्थना की गई है कि राज्य-प्रतिवादीगण को दिनांक 29.10.2022 की प्रथम सूचना रिपोर्ट की जांच स्पेशल टास्क फोर्स, उत्तर प्रदेश, से कराने का निदेश दिया जाए।

अनुवादित

याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अजय तिवारी व उनके सहायक अधिवक्तागण श्री रजत गंगवार एवं सुश्री अश्मिता सिंह, भारत के विद्वान उप सॉलिसिटर जनरल श्री एस.बी. पांडे के सहायक भारत संघ हेतु श्री दीपांशु दास, उत्तर प्रदेश राज्य के अपर शासकीय अधिवक्ता श्री कुलदीप पति त्रिपाठी एवं सीबीआई का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री शिव पी. शुक्ला को सुन। हमने इस याचिका पर हमारे समक्ष उपलब्ध अभिलेखों का भी परिशीलन किया है।

2. संबंधित पक्षकारों के प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्तागण द्वारा दिए गए विरोधी तर्कों पर विचार करने से पूर्व, कुछ तथ्यों पर ध्यान देना उचित होगा जिनके कारण तत्काल रिट याचिका प्रस्तुत की गई है। याचिकाकर्ता द्वारा दो अभियुक्तगण, (i) तत्कालीन कुलपति विनय पाठक, डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा (एतस्मिनपश्चात 'विश्वविद्यालय' के रूप में संदर्भित) एवं (ii) अजय मिश्रा XLICT नामक कंपनी के मालिक के विरुद्ध दिनांक 29.10.2022 को प्र०सू०रि० संख्या 0310/2022 दर्ज की गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट के परिशीलन से ज्ञात होता है कि याचिकाकर्ता मेसर्स DIGITEXT टेक्नोलॉजीज इंडिया प्राइवेट लिमिटेड का प्रबंध निदेशक है तथा विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित परीक्षा से पूर्व एवं परीक्षा से पश्चात संबंधित कुछ कार्यों को वर्ष 2014-2015 से निष्पादित कर रहा है, एवं याचिकाकर्ता के कुछ बिल शैक्षणिक वर्ष 2020-2021, 2021-2022 हेतु उनके द्वारा निष्पादित किए गए कार्यों हेतु लंबित थे। प्रथम सूचना रिपोर्ट में किए गए कथन के अनुसार, याचिकाकर्ता ने लंबित बिलों को मंजूरी देने हेतु विश्वविद्यालय के वर्तमान कुलपति से व्यक्तिगत रूप से अनुरोध किया था जिस पर कुलपति ने उन्हें कानपुर विश्वविद्यालय में अपने आवास पर आने के लिए कहा जहाँ उन्होंने फरवरी 2022 में कुलपति से मुलाकात की तथा उन्हें बताया गया कि कुलपति को बिलों के भुगतान के एवज में 15% कमीशन मिलता है तथा वह बिल तभी पास करेंगे जब उन्हें कमीशन के रूप में 15% राशि का भुगतान किया जाएगा।प्रथम सूचना रिपोर्ट में आगे उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता को बताया गया था कि यदि उसने कमीशन राशि का भुगतान नहीं किया तब उसकी कंपनी को आगरा विश्वविद्यालय तथा अन्य विश्वविद्यालयों से संबंधित कार्यों से हटा दिया जाएगा जैसा कि कानपुर विश्वविद्यालय में किया गया है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि कुलपति ने याचिकाकर्ता को आगे बताया कि वह वही है जिसने आठ विश्वविद्यालयों के कुलपतियों की नियुक्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है तथा उसे ऊपर तक पैसा पहुंचाना था तथा उसने याचिकाकर्ता को धमकी दी थी कमीशन के रूप में 15% बिल राशि का भुगतान करना होगा जिसके कारण वह सहमत हो गया था। प्रथम सूचना रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि इसके बाद कुलपति ने उन्हें अन्य आरोपी व्यक्ति, अजय मिश्रा का टेलीफोन नंबर दिया तथा उनसे कहा कि बिलों के भुगतान के पश्चात उन्हें कमीशन की राशि अजय मिश्रा को देनी होगी और उसके पश्चात ही याचिकाकर्ता की कंपनी को नियोजित किया जाएगा। याचिकाकर्ता ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में आगे कहा कि कुलपति ने याचिकाकर्ता को ऐप्पल मोबाइल के माध्यम से अन्य अभियुक्त अजय मिश्रा से बात करने हेतु कहा तथा उससे कहा कि याचिकाकर्ता उससे संपर्क करेगा और

अनुवादित

आगे कहा कि उसे याचिकाकर्ता को बताना होगा कि कमीशन की राशि का भुगतान कैसे किया जाना है।

3. प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह भी आरोप है कि याचिकाकर्ता ने सह-अभियुक्त-अजय मिश्रा से संपर्क किया, जिन्होंने उन्हें बताया कि बिलों को कुलपति द्वारा मंजूरी दे दी गई है तथा राशि भी उनके खाते में जमा कर दी गई है तथा उन्हें अब कमीशन का भुगतान करना होगा। याचिकाकर्ता ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में आगे कहा कि उन्होंने सह-अभियुक्त को कुछ राशि का भुगतान किया था यद्यपि, अप्रैल माह, 2022 में कुलपति ने पुनः याचिकाकर्ता से कहा कि उन्हें अजय मिश्रा से मिलना चाहिए तथा कमीशन की राशि देनी चाहिए और उसके बाद सह-अभियुक्त अजय मिश्रा के कहने पर याचिकाकर्ता ने रु. 51,62,500/-, रु. 11,80,000/- एवं रु. 10,98,875/- की तीन राशियाँ इलेक्ट्रॉनिक मोड द्वारा एक अन्य फर्म अर्थात इंटरनेशनल बिजनेस फॉर्म्स, अलवर, राजस्थान के बैंक खाते में स्थानांतरित कर दीं। प्रथम सूचना रिपोर्ट में आगे आरोप यह है कि याचिकाकर्ता ने सह-अभियुक्त अजय मिश्रा को 20 लाख रुपये एवं 15,55,000 रुपये नकद दिए। प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, इस तथ्य के कारण कि याचिकाकर्ता रिश्वत की आगे की मांग को पूरा करने में विफल रहा एवं उसकी कंपनी को बंद कर दिया गया तथा उसकी कंपनी के स्थान पर UPDESCO के माध्यम से सह-अभियुक्त अजय मिश्रा को कार्य प्रदान किया गया।

4. दिनांक 29.10.2022 को ही अपर पुलिस महानिदेशक (कानून एवं व्यवस्था) उत्तर प्रदेश, द्वारा पारित आदेश द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या- 310/ 2022 की विवेचना को सक्षम प्राधिकारी से अनुमोदन प्राप्त करने के पश्चात एसटीएफ, उत्तर प्रदेश को स्थानांतरित कर दिया गया था, जैसा कि उक्त आदेश से ज्ञात होता है जिसे रिट याचिका के संलग्नक-5 में संलग्न किया गया है।

5. अभियुक्त-विनय पाठक ने प्रथम सूचना रिपोर्ट रद्द करने की प्रार्थना के साथ, दिनांक 29.10.2022 को आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या- 8079/2022 की कार्यवाही संस्थित की, यद्यपि उक्त रिट याचिका को इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 15.11.2022 द्वारा अपास्त कर दिया था।

6. याचिकाकर्ता की ओर से कहा गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट की विवेचना उचित रूप से की जा रही थी तथा उत्तर प्रदेश राज्य ने आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या- 8079/2022 का विरोध करते हुए प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने हेतु अभियुक्त-विनय पाठक द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका संख्या 8079/2022 में अपने प्रतिशपथपत्र में स्पष्टतः कहा था कि विवेचना के दौरान जांच एजेंसी अर्थात् विशेष कार्य बल द्वारा अभियुक्तगण के विरुद्ध पुख्ता साक्ष्य एकत्र किए गए थे, जिससे रिपोर्ट किए गए अपराध में उनकी सहभागिता स्थापित होती थी। रिट याचिका संख्या 8079/2022 में राज्य द्वारा प्रस्तुत प्रतिशपथपत्र के विभिन्न प्रस्तर रिट याचिका में पुनः प्रस्तुत किए गए हैं तथा याचिकाकर्ता द्वारा इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है कि उक्त रिट याचिका की कार्यवाही में

अनुवादित

राज्य ने इस न्यायालय को अन्य तथ्यों के साथ-साथ इस तथ्य से भी स्पष्टतः अवगत कराया था कि जांच अधिकारी द्वारा निष्पक्ष रीति से जांच की जा रही थी तथा एकत्र किए गए साक्ष्य एवं सह-अभियुक्तों से धन की बरामदगी ने उक्त रिट याचिका के याचिकाकर्ता (विनय पाठक) के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों को स्थापित किया।

7. प्रथम सूचना रिपोर्ट की विवेचना स्पेशल टास्क फोर्स, उत्तर प्रदेश द्वारा की जा रहा थी। यद्यपि, राज्य सरकार ने आदेश दिनांक 29.12.2022 द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 29.10.2022 की विवेचना हेतु सी.बी.आई. की शक्तियों एवं क्षेत्राधिकार के विस्तार हेतु अपनी सहमति प्रदान की। राज्य सरकार द्वारा दी गई उपरोक्त सहमति पर केन्द्र सरकार ने सी.बी.आई. की शक्तियां संपूर्ण उत्तर प्रदेश में दिनांक 29.10.2022 को प्रथम सूचना रिपोर्ट की विवेचना हेतु एक आदेश/अधिसूचना दिनांक 06.01.2023 पारित/जारी करके बढ़ा दी हैं। डीएसपीई अधिनियम की धारा-6 के अंतर्गत राज्य सरकार के सहमति आदेश दिनांक 29.12.2022 एवं उक्त अधिनियम की धारा-5 के अंतर्गत भारत सरकार के आदेश दिनांक 06.01.2023 को इन कार्यवाहियों में चुनौती दी गई है।

8. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अजय तिवारी ने प्रबल तर्क दिया कि जब उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा, प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने की प्रार्थना के साथ अभियुक्त विनय पाठक द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका संख्या- 8079/2022 में, यह तथ्य स्वीकार किया गया कि स्पेशल टास्क फोर्स, उत्तर प्रदेश प्रथम सूचना रिपोर्ट की उचित रूप से विवेचना कर रहा था, तब उत्तर प्रदेश राज्य के पास विवेचना को सी.बी.आई. को स्थानांतरित करने के लिए सहमति देने का और न ही भारत सरकार के पास सी.बी.आई. की शक्तियों एवं क्षेत्राधिकार को बढ़ाने का कोई अवसर था। याचिकाकर्ता की ओर से तर्क दिया गया कि उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दी गई सहमति एवं भारत सरकार द्वारा पारित आदेश द्वारा, जिसके अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट की विवेचना स्पेशल टास्क फोर्स, उत्तर प्रदेश से सी.बी.आई.को स्थानांतरित कर दी गई है, प्रासंगिक सामग्री पर विचार किये जाने से हीन हैं तथा इसके अतिरिक्त प्रतिवादीगण की ओर से इस प्रकार की कार्रवाई औचित्यहीन है। उन्होंने आगे कहा है कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री प्रथम सूचना रिपोर्ट स्थानांतरित करने हेतु विधिक रूप से उचित कारण नहीं बताती है, एवं वास्तव में प्रतिवादीगण की ओर से की गई प्रश्नगत कार्रवाई संविधान की संघीय योजना के विरुद्ध है।

9. सातवीं अनुसूची में सूची 2 की प्रविष्टि II और संविधान की उक्त अनुसूची में प्रविष्टि 80, सूची I की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि पुलिस व्यवस्था राज्य का विषय है, तदनुसार ऐसी स्थिति में जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट, जो लखनऊ में दर्ज की गई है एवं आगरा में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा उसे दिए गए कुछ कार्यों को निष्पादित करने हेतु याचिकाकर्ता द्वारा उत्पन्न बिलों के भुगतान के संबंध में कुछ लेनदेन से संबंधित है, की विवेचना उचित दिशा में की जा रही थी, बिना किसी विधिक रूप से उचित कारण के जांच को

अनुवादित

सी.बी.आई. को स्थानांतरित कर दिया गया जो कि पूर्णतः मनमाना है। अतः राज्य सरकार द्वारा उक्त उद्देश्य हेतु दी गई सहमति एवं इस संबंध में भारत सरकार द्वारा पारित आदेश रद्द किए जाने योग्य हैं। रिट याचिका में राज्य सरकार के आदेश दिनांक 29.12.2022 को अनुच्छेद 166 का उल्लंघन होने तथा भारत सरकार की अधिसूचना दिनांक 06.01.2023 को भारत के संविधान के अनुच्छेद 77 का उल्लंघन होने के संबंध में कुछ अन्य आधार भी प्रस्तुत किये गए हैं।

10. यद्यपि प्रतिवादीगण की ओर से प्रश्नगत कार्रवाई को मुख्य रूप से इस तर्क के आधार पर चुनौती दी गई है कि प्रश्नगत कार्रवाई वास्तव में शक्ति के सामान्य प्रयोग की अभिव्यक्ति है क्योंकि इस वाद में प्रथम सूचना रिपोर्ट की जांच को स्थानांतरित करने की शक्ति तथा क्षेत्राधिकार का प्रयोग उस उद्देश्य हेतु नहीं किया गया है जिसके लिए यह भारत सरकार को उपलब्ध है। याचिकाकर्ता की ओर से जिस अन्य आधार पर बल दिया गया वह यह है कि जांच को सी.बी.आई. को स्थानांतरित करने हेतु किसी तर्कपूर्ण कारण के अभाव में राज्य सरकार की सहमति उक्त उद्देश्य हेतु मात्र अभियुक्तगण को अवैधानिक लाभ पहुंचाने की दृष्टि से दी गई है। चूँकि अभियुक्तगण में से एक विनय पाठक, जो आगरा विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति हैं, के विरुद्ध आरोप है कि उन्होंने याचिकाकर्ता से कहा था कि उन्हें अपने वरिष्ठों को पैसे देने होंगे, ऐसे में जांच को सी.बी.आई. को स्थानांतरित करने की संपूर्ण प्रश्नगत प्रक्रिया अभियुक्त विनय पाठक की मिलीभगत से जांच को रोकने, हेरफेर करने तथा पटरी से उतारने के उद्देश्य से की गई है।

11. पुनः याचिकाकर्ता की ओर से यह निवेदन किया गया है कि यह केवल दुर्लभ एवं असाधारण परिस्थितियों में ही होता है कि कोई भी वाद जिसके संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट की जांच करना राज्य सरकार का क्षेत्राधिकार है, उसे सी.बी.आई. को जांच हेतु हस्तांतरित किया जाना चाहिए एवं राज्य के पास डीएसपीई अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत अपनी सहमति देने के लिए बेलगाम अथवा अनियंत्रित शक्तियां नहीं हो सकतीं अन्यथा हर दिन हमारे संविधान के संघीय ढांचे को क्षति पहुंचेगी।

12. याचिकाकर्ता की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि इस वाद का कोई अंतरराष्ट्रीय अथवा अंतर-राज्यीय प्रभाव नहीं है क्योंकि इस वाद में जांच का स्थानांतरण अनुचित है एवं विधिक रूप से मान्य नहीं है। उपरोक्त तर्कों के आधार पर याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री तिवारी द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट की जांच करने हेतु दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन के सदस्यों को शक्तियों तथा क्षेत्राधिकार का विस्तार करने वाली राज्य सरकार की सहमति तथा भारत सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना को रद्द किये जाने योग्य है। इसके अतिरिक्त चूँकि प्रथम सूचना रिपोर्ट की जांच के पश्चात स्पेशल टास्क फोर्स, उत्तर प्रदेश द्वारा उचित रुप से संचालन किया जा रहा था, उक्त जांच एजेंसी को जांच करने तथा निष्कर्ष निकालने हेतु एक निर्देश जारी किया जा सकता है।

13. रिट याचिका में की गई प्रार्थनाओं का भारत संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता, विद्वान राज्य अधिवक्ता तथा सी.बी.आई. का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने एकस्वर में विरोध किया है। भारत

संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री एस.बी. पांडे द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 29.12.2022 को उत्तर प्रदेश सरकार से प्रथम सूचना रिपोर्ट की सी.बी.आई. जांच हेतु एक संदर्भ प्राप्त हुआ था, जो भारत सरकार, कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग द्वारा अपने पत्र दिनांक 22.11.2018 द्वारा निर्गत दिशानिर्देशों के अनुसार उक्त उद्देश्य हेतु निर्धारित प्रपत्र में बनाया गया था।

14. दिनांक 22.11.2018 के उक्त परिपत्र/पत्र की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए भारत सरकार की ओर से अभिकथन प्रस्तुत किया गया है कि उक्त परिपत्र कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग में सी.बी.आई जांच हेतु प्रस्ताव प्राप्त करने के लिए एकल खिड़की प्रणाली शुरू करने के उद्देश्य से जारी किया गया था, एवं उक्त परिपत्र के अनुसार, राज्य सरकारों को उक्त उद्देश्य हेतु एक निर्धारित प्रपत्र में संदर्भ प्रस्तुत करना आवश्यक है जो प्रासंगिक जानकारी तथा दस्तावेजों को प्रस्तुत करने का प्रावधान करता है, ताकि ऐसे संदर्भ पर भारत सरकार द्वारा उचित निर्णय लिया जा सके। भारत सरकार के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग द्वारा जारी परिपत्र दिनांक 22.11.2018 के साथ संलग्न उक्त प्रपत्र में राज्य सरकार को विभिन्न सूचनाएं एवं विवरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता है तथा किसी भी आपराधिक मामले की जांच हेतु सीबीआई को स्थानांतरित करने का विवरण एवं औचित्य जिसमें यह जानकारी भी सम्मिलित थी कि क्या मामले का अंतरराज्यीय अथवा अंतरराष्ट्रीय प्रभाव है।

15. श्री पांडे ने कहा कि राज्य सरकार द्वारा किया गया वह संदर्भ प्राप्त हुआ जिसमें डीएसपीई अधिनियम की धारा 6 की आवश्यकता अनुसार सहमति के साथ अपेक्षित सूचनाएं सम्मिलित थी। उन्होंने आगे कहा है कि मामले को सी.बी.आई. को सौंपने का औचित्य क्या है? जैसा कि राज्य सरकार ने भारत सरकार के संदर्भ में उल्लेख किया था कि वाद का अंतरराज्यीय प्रसार एवं प्रभाव है क्योंकि अभियुक्त अजय मिश्रा की दो कंपनियों में से अर्थात एक XLICT लखनऊ, उत्तर प्रदेश तथा दूसरी SOLITAIRE PRINTOTECH फ़रीदाबाद, हरियाणा में स्थित है। उक्त संदर्भ में यह भी कहा गया है कि एक अन्य सह-अभियुक्त अजय जैन की कंपनी IBF अलवर, राजस्थान में स्थित है तथा बिना किसी प्राधिकार के XLICT को मुंगेर विश्वविद्यालय, बिहार, CSJM विश्वविद्यालय, कानपुर, लखनऊ विश्वविद्यालय, जमशेदपुर महिला विश्वविद्यालय, ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती भाषा विश्वविद्यालय, लखनऊ, SGGU, सरगुजा, छत्तीसगढ़, MSU, आज़मगढ़, LNMMU, दरभंगा, बिहार के प्रश्न पत्र छापते हुए पाया गया है। संदर्भ में आगे कहा गया है कि वास्तविक अनुबंध सॉलिटेयर प्रिंटोटेक, फ़रीदाबाद के साथ था। भारत संघ की ओर से यह तर्क दिया गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा किया गया संदर्भ भारत सरकार द्वारा दिनांक 05.01.2023 के पत्र के माध्यम से सी.बी.आई. को भेजा गया था, जिसमें मामले की जांच आरंभ करने की व्यवहार्यता के संबंध में उसकी टिप्पणियां मांगी गई थीं। सी.बी.आई. ने अपने पत्र दिनांक 06.02.2023 के माध्यम से वाद की जांच शुरू करने की व्यवहार्यता प्रस्तुत की और भारत सरकार के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग से डीएसपीई अधिनियम की धारा 5 के

अनुवादित

अंतर्गत अधिसूचना जारी करने का अनुरोध किया। अतः भारत सरकार की ओर से यह तर्क दिया गया है कि जांच शुरू करने हेतु सीबीआई द्वारा व्यक्त की गई व्यवहार्यता एवं उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा सीबीआई को जांच स्थानांतरित करने हेतु प्रदान किए गए औचित्य सहित प्रासंगिक कारकों पर विचार करने पर, भारत सरकार ने डीएसपीई अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत दिनांक 06.01.2023 को अधिसूचना जारी की तथा उक्त अधिसूचना में कोई अवैधता नहीं है क्योंकि अधिसूचना जारी करने से पूर्व सभी प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखा गया है। अतः भारत संघ की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि रिट याचिका प्रारंभिक चरण पर खारिज किए जाने योग्य है।

16. सी.बी.आई. का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री शिव पी. शुक्ला ने स्वीकार किया है कि सी.बी.आई. ने प्रथम सूचना रिपोर्ट की जांच करने हेतु भारत सरकार को अपनी व्यवहार्यता प्रस्तुत की है तथा एक बार जांच सी.बी.आई. को सौंपे जाने के पश्चात, सी.बी.आई. ने दिनांक 07.01.2023 को द०प्र०सं की धारा 386, 342, 504, 506, 409, 420, 467, 468, 471 एवं 120बी तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत पुनः प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की है। उसमें वर्णित घटना स्थल आगरा, कानपुर, लखनऊ एवं अन्य स्थान हैं। अतः यह कहा गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के पुनः दर्ज करने और मामले को वैध रूप से सी.बी.आई. को स्थानांतरित कर दिये जाने पर, वह रिपोर्ट किए गए अपराध की जांच कर रही है।

17. उ0प्र0 राज्य की ओर से रिट याचिका में की गई प्रार्थनाओं का विरोध किया गया है तथा यह कहा गया है कि रिपोर्ट किए गए अपराध का अंतरराज्यीय प्रभाव होने के कारण, राज्य सरकार ने केंद्र सरकार से जांच सीबीआई को सौंपने का अनुरोध करना उचित समझा एवं तदनुसार प्रासंगिक विचारों पर डीएसपीई अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत अपनी सहमति दी, जिसके आधार पर भारत सरकार ने उक्त अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत अधिसूचना जारी की तथा वर्तमान में वाद की जांच सीबीआई द्वारा की जा रही है। उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से तर्क प्रस्तुत किया गया है कि किसी को भी इस बात पर बल देने का कोई विधिक अधिकार नहीं है कि किसी भी रिपोर्ट किए गए अपराध की जांच किसी विशेष अथवा विशिष्ट जांच एजेंसी द्वारा की जाए, तदनुसार रिट याचिका भ्रामक है जो खारिज जाने योग्य है।

18. प्रत्युत्तर में याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री अजय तिवारी ने प्रतिवादीगण का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए उपरोक्त प्रस्तुतीकरण का खंडन किया है तथा दृढ़ता से अभिकथन प्रस्तुत किया है कि यद्यपि यह एक ऐसा वाद है जो अंतरराज्यीय प्रभाव रखता है, तथापि सी.बी.आई. डीएसपीई अधिनियम की धारा 6 की आवश्यकतानुसार संबंधित राज्यों की सहमति के अभाव में वाद की जांच हेतु कार्यवाही नहीं कर सकते। उन्होंने आगे कहा है कि अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे ज्ञात होता हो कि उत्तर प्रदेश राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यों ने डीएसपीई अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत अपनी सहमति दी है, तदनुसार सीबीआई द्वारा जांच की धारणा विधि के अनुसार गलत है

अनुवादित

जिसे कार्यवाही की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

19. हमने संबंधित पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत विरोधी तर्कों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है तथा इस रिट याचिका की पत्रावली पर उपलब्ध अभिलेख का भी अवलोकन किया है, साथ ही भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा हमारे समक्ष कुछ दस्तावेज़ प्रस्तुत किए गए जो इस रिट याचिका के अभिलेख का भाग होंगे।

20. संबंधित पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा प्रस्तुत तर्कों के आधार पर एवं अभिलेख पर उपलब्ध अभिवाक के आधार पर हमारे पुनर्विचार एवं समाधान हेतु जो मामले उत्पन्न होते हैं, वे निम्नवत हैं (i) क्या वाद के तथ्यों में डीएसपीई अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत राज्य सरकार द्वारा दी गई सहमति अमान्य है, (ii) क्या कोई ऐसा उचित/ठोस कारण मौजूद है जो डीएसपीई अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत भारत सरकार द्वारा जारी अधिसूचना को उचित ठहराता है एवं (iii) क्या भारत सरकार द्वारा जारी आदेश दिनांक 06.01.2023 के आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट की जांच का क्षेत्राधिकार ग्रहण करने से पूर्व डीएसपीई अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत उत्तर प्रदेश राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यों की सहमति अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

21. हमारे संविधान की योजना के अंतर्गत संविधान की मूल प्रकृति के बारे में कुछ तर्क-वितर्क हो सकता है चाहे वह संघीय हो या अर्ध संघीय (अर्ध एकात्मक), यद्यपि राज्यों एवं भारत संघ की विधायी एवं कार्यकारी शक्तियाँ, जो सह-विस्तृत हैं, भारत के संविधान से जुड़ी सातवीं अनुसूची द्वारा शासित होती हैं। इसमें तीन सूचियाँ शामिल हैं अर्थात् सूची-I-संघ सूची, सूची II-राज्य सूची एवं सूची III-समवर्ती सूची। इन तीन सूचियों में से किसी एक में आने वाली विषय वस्तु के आधार पर, संसद एवं संबंधित राज्य विधानमंडल उन्हें सौंपे गए विषयों पर कानून बनाने हेतु सक्षम हैं, तदनुसार केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारें भी अपनी कार्यकारी शक्तियों/अधिकारों का प्रयोग करने हेतु सशक्त हैं। सूची II की प्रविष्टि-2 में पुलिस (रेलवे तथा ग्राम पुलिस सहित) का उल्लेख, सूची 1 की प्रविष्टि 2A के प्रावधानों के अधीन है। परिनियोजन के दौरान ऐसे बल के सदस्यों की शक्तियां, क्षेत्राधिकार, विशेषाधिकार एवं दायित्व, सूची I की प्रविष्टि 2ए संघ के किसी सशस्त्र बल अथवा संघ के नियंत्रण के अधीन किसी अन्य बल अथवा किसी राज्य में नागरिक शक्ति की सहायता हेतु उसकी किसी टुकड़ी अथवा इकाई की परिनियोजन से संबंधित है।सूची I की प्रविष्टि 80 में किसी भी राज्य से संबंधित पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियों एवं क्षेत्राधिकार को उस राज्य के बाहर किसी भी क्षेत्र को विस्तारित करने का उल्लेख है, परंतु ऐसा नहीं है कि एक राज्य की पुलिस उस राज्य के बाहर किसी भी क्षेत्र में उस राज्य की सरकार की सहमति के बिना शक्तियों एवं क्षेत्राधिकार का प्रयोग एवं किसी भी राज्य से संबंधित पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियों एवं क्षेत्राधिकार के बाहर रेलवे क्षेत्र तक विस्तार, जिसमें ऐसा क्षेत्र स्थित है, करने में सक्षम हो सके ;

22. हमें सातवीं अनुसूची की सूची-I एवं सूची-II में उपरोक्त प्रविष्टियों के आलोक में डीएसपीई

अनुवादित

अधिनियम, 1946 की योजना को समझना होगा। डीएसपीई अधिनियम की धारा 5 निम्नवत है:-

*5. **विशेष पुलिस स्थापना की शक्तियों एवं क्षेत्राधिकार का अन्य क्षेत्रों तक विस्तार-** (1) केंद्र सरकार आदेश द्वारा धारा 3 के अंतर्गत अधिसूचना में निर्दिष्ट किसी भी अपराध अथवा अपराधों के वर्गों की जांच हेतु दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन के सदस्यों की शक्ति एवं क्षेत्राधिकार को किसी भी क्षेत्र (रेलवे क्षेत्रों सहित) [किसी राज्य में, केंद्र शासित प्रदेश नहीं] तक विस्तारित कर सकती है।*

(2) जब उप-धारा (1) के अंतर्गत एक आदेश द्वारा उक्त पुलिस स्थापन के सदस्यों की शक्तियों एवं क्षेत्राधिकार को किसी भी ऐसे क्षेत्र तक बढ़ाया जाता है तब उसका एक सदस्य, केंद्र सरकार द्वारा इस संबंध में किए जाने वाले किसी भी आदेश के अधीन हो सकता है, उस क्षेत्र में पुलिस अधिकारी के कर्तव्यों का निर्वहन करेगा एवं ऐसे कर्तव्यों का निर्वहन करते समय उस क्षेत्र के पुलिस बल का सदस्य माना जाएगा तथा उसमें शक्तियाँ, कार्य तथा विशेषाधिकार निहित होंगे एवं उस पुलिस बल से संबंधित पुलिस अधिकारी के दायित्वों के अधीन होंगे।

[(3) जहां उप-धारा (1) के अंतर्गत ऐसा कोई आदेश किसी क्षेत्र के संबंध में किया जाता है तब उप-धारा 2 के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन का उप-निरीक्षक अथवा उससे ऊपर के पद का कोई भी सदस्य, केंद्र सरकार द्वारा इस संबंध में दिए जाने वाले किसी भी आदेश के अधीन, उस क्षेत्र में पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी की शक्तियों का प्रयोग कर सकता है एवं जब वह ऐसी शक्तियों का प्रयोग करता है तब उसे एक पुलिस थाने का प्रभारी अधिकारी माना जाएगा जो अपने थाने की सीमा के भीतर ऐसे अधिकारी के कार्यों का निर्वहन करता है।]"

डीएसपीई अधिनियम की धारा 6 भी यहाँ निम्नवत प्रस्तुत है:-

*"[6. **शक्तियों और अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए राज्य सरकार की सम्मति-** धारा 5 की कोई बात दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन के किसी सदस्य को इसके लिए समर्थ करने वाली नहीं समझी जाएगी कि वह [संघ राज्यक्षेत्र न होने वाले किसी राज्य के] किसी क्षेत्र अथवा रेल क्षेत्र] में शक्तियों और अधिकारिता का प्रयोग उस राज्य की सरकार की सम्मति के बिना करें।]*

23. जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कंवल तनुज बनाम बिहार राज्य एवं अन्य(2020) 20 एससीसी 531 के मामले में धारित किया है, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम केंद्र शासित प्रदेशों में कुछ अपराधों की जाँच के संबंध में अपने सदस्यों की शक्तियों एवं अधिकार क्षेत्र के अन्य क्षेत्रों में विस्तार हेतु भी दिल्ली में एक विशेष पुलिस बल की स्थापना का प्रावधान करता है। दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम पूरे भारत में लागू है। अधिनियम की धारा 3 केंद्र सरकार को उन अपराधों या अपराधों की श्रेणियों को निर्दिष्ट करने में सक्षम बनाती है जिनकी जाँच इस बल के सदस्यों द्वारा की जानी है।

धारा 5 केंद्र सरकार को केंद्र शासित प्रदेश नहीं होने वाले राज्य में धारा 3 के अंतर्गत जारी अधिसूचना में निर्दिष्ट किसी भी अपराध की जाँच हेतु डीएसपीई के सदस्यों की शक्तियों एवं अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने में सक्षम बनाती है। संविधान के संघीय ढांचे के अनुरूप, ऐसे राज्य

की सहमति, डीएसपीई अधिनियम की धारा 6 की आवश्यकता के अनुसार केंद्र शासित प्रदेश के अधिकार क्षेत्र के बाहर कारित किये गए निर्दिष्ट अपराधों के संबंध में, इस बल के सदस्यों की शक्तियों एवं अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने हेतु आवश्यक बना दी गई है।

24. कंवल तनुज (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के प्रस्तर 16 एवं 18 नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"16. 1946 अधिनियम को केंद्र शासित प्रदेशों में कुछ अपराधों (कारित) की जाँच हेतु, उक्त बल के अधीक्षण एवं प्रशासन हेतु एवं उक्त अपराधों की जाँच के संबंध में सदस्यों की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र को अन्य क्षेत्रों तक विस्तार हेतु दिल्ली में एक विशेष पुलिस बल के गठन का प्रावधान करने हेतु अधिनियमित किया गया है।यह अधिनियम पूरे भारत पर लागू होता है। अधिनियम, 1946 की धारा 2 केंद्र सरकार को धारा 3 के अंतर्गत अधिसूचित निर्दिष्ट अपराधों की किसी भी केंद्र शासित प्रदेश में जाँच हेतु डीएसपीई नामक एक विशेष बल का गठन करने में सक्षम बनाती है। अधिनियम, 1946 की धारा 3 केंद्र सरकार को राजपत्र में अधिकारिक अधिसूचना द्वारा उन अपराधों या अपराधों की श्रेणियों को निर्दिष्ट करने हेतु सक्षम करती है जिनकी जाँच डीएसपीई द्वारा की जानी है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि विषय प्रथम सूचना रिपोर्ट में निर्दिष्ट अपराध धारा 3 के अंतर्गत जारी अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट हैं।

18. अधिनियम, 1946 की धारा 5 का उद्देश्य केंद्र सरकार को केंद्रशासित प्रदेश न होने के कारण धारा 3 के अंतर्गत अधिसूचना में निर्दिष्ट किसी भी अपराध या अपराध के वर्ग की जाँच हेतु डीएसपीई के सदस्यों की शक्तियों एवं अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने में सक्षम बनाना है। विशेष पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियों एवं अधिकार क्षेत्र का ऐसा विस्तार 1946 अधिनियम की धारा 2 एवं 3 में निर्दिष्ट "केंद्र शासित प्रदेश के अधिकार क्षेत्र के बाहर किए गए" निर्दिष्ट अपराधों के संबंध में आवश्यक हो जाता है। हालाँकि, संविधान के मौलिक संघीय ढांचे को ध्यान में रखते हुए, ऐसे राज्य की सहमति को आवश्यक बना दिया गया है, जैसा कि अधिनियम, 1946 की धारा 6 में बताया गया है।"

25. **कंवल तनुज (उपरोक्त)** के उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह राय भी व्यक्त की है कि संघीय क्षेत्र के भीतर किए गए निर्दिष्ट अपराधों के संबंध में डीएसपीई के सदस्यों द्वारा किसी भी जाँच के संबंध में धारा 6 के संदर्भ में सहमति आवश्यक नहीं हो सकती है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः कहा है कि ऐसा तब भी हो सकता है, जब किसी दिए गए मामले में शामिल आरोपियों में से कोई एक केंद्र शासित प्रदेश के बाहर रह रहा हो या नियोजित हो, भले ही ऐसा राज्य/स्थानीय निकाय/निगम या किसी राज्य की कंपनी या बैंक या राज्य द्वारा नियंत्रित या राज्य सरकार से वित्तीय सहायता प्राप्त करने वाली संस्था के मामलों के संबंध में हो। आगे यह धारित किया गया है कि किसी अन्य दृष्टिकोण को अपनाने हेतु संबंधित राज्य से केंद्र शासित प्रदेश के भीतर किए गए निर्दिष्ट अपराध के संबंध में भी जाँच हेतु सहमति लेने की औपचारिकता पूरी करने की आवश्यकता होगी, केवल इस कारण कि संबंधित अपराध का हिस्सा दूसरे राज्य से प्रतिबद्ध है। उक्त मामले में

माननीय न्यायमूर्तिगण ने आगे माना है कि इस तरह की व्याख्या के परिणामस्वरूप एक असंगत स्थिति पैदा होगी, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि डीएसपीई अधिनियम पूरे भारत में विस्तृत है एवं डीएसपीई का गठन एक विशेष उद्देश्य से किया गया है। **कंवल तनुज (उपरोक्त)** के मामले में उक्त निर्णय के प्रस्तर 19 में सम्मिलित प्रासंगिक उद्धरण निम्नानुसार है: -

"केंद्र शासित प्रदेश के भीतर किए गए निर्दिष्ट अपराधों एवं उनसे जुड़े अन्य अपराधों के संबंध में विशेष पुलिस बल (डीएसपीई) द्वारा जाँच के संबंध में ऐसी सहमति आवश्यक नहीं हो सकती है। ऐसा तब भी हो सकता है, जब किसी दिए गए मामले में शामिल आरोपियों में से कोई एक केंद्र शासित प्रदेश के बाहर रह रहा हो या नियोजित हो, भले ही ऐसा राज्य/स्थानीय निकाय/निगम या किसी राज्य की कंपनी या बैंक या राज्य द्वारा नियंत्रित या राज्य सरकार से वित्तीय सहायता प्राप्त करने वाली संस्था के मामलों के संबंध में हो, जैसा भी मामला हो। किसी अन्य दृष्टिकोण को अपनाने हेतु संबंधित राज्य से केंद्र शासित प्रदेश के भीतर किए गए निर्दिष्ट अपराध के संबंध में भी जाँच हेतु सहमति लेने की औपचारिकता पूरी करने की आवश्यकता होगी, मात्र इस कारण कि संबंधित अपराध का एक भाग दूसरे राज्य में कारित किया गया है एवं अपराध में सम्मिलित अभियुक्त राज्य के मामलों के सम्बन्ध में निवास करता हो अथवा नियोजित हो। इस तरह की व्याख्या के परिणामस्वरूप एक असंगत स्थिति पैदा होगी, विशेषतः तब जब अधिनियम, 1946 सम्पूर्ण भारत में लागू होता है एवं विशेष पुलिस बल का गठन अधिनियम, 1946 की धारा 3 के अंतर्गत जारी अधिसूचना के संदर्भ में, केंद्र शासित प्रदेश के भीतर किए गए निर्दिष्ट अपराधों की जाँच हेतु एक विशेष उद्देश्य के साथ किया गया है।"

26. इस प्रकार, जब हम कंवल तनुज (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्याख्या की गई डीएसपीई अधिनियम की धारा 3, 5 और 6 के प्रावधानों की जाँच करते हैं तो हम पाते हैं कि यह योजना किसी भी रूप में हमारे संविधान द्वारा संकल्पित संघीय नीति का उल्लंघन नहीं करती है।

27. अतः उपरोक्त विधिक सिद्धांत के आलोक में हमें याचिकाकर्ता द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच हेतु केंद्रीय जाँच ब्यूरो की शक्तियों एवं अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने वाली भारत सरकार की अधिसूचना को चुनौती देने वाले आधारों एवं उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा उक्त प्रयोजन हेतु दी गई सहमति पर विचार किये जाने की भी आवश्यकता है।

28. यह सच है कि जाँच सी.बी.आई. को हस्तांतरित करने से पूर्व राज्य सरकार की सहमति से प्रथम सूचना रिपोर्ट अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक (कानून एवं व्यवस्था) द्वारा पारित आदेशों के अंतर्गत विशेष कार्य बल, उत्तर प्रदेश द्वारा जाँच की जा रही थी। हालांकि, ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सरकार ने प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच हेतु सी.बी.आई. की शक्तियों एवं अधिकार क्षेत्र के विस्तार हेतु केंद्र सरकार को एक संदर्भ दिया था। इस मामले में विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जा रहा है, जिनमें से एक यह है कि रिपोर्ट किए गए अपराध का अंतरराज्यीय प्रसार और प्रभाव है। राज्य सरकार द्वारा 29.12.2022 को डीएसपीई अधिनियम की धारा

अनुवादित

6 की आवश्यकता के अनुसार सहमति संलग्न करते हुए दिए गए संदर्भ में, यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मामले का अंतरराज्यीय प्रसार और प्रभाव है। राज्य सरकार द्वारा दिए गए संदर्भ में सटीक वाक्यांश यह है कि "मामले का अंतर्राज्यीय प्रसार और प्रभाव है"।

29. राज्य सरकार द्वारा दिए गए संदर्भ में आगे कहा गया है कि अजय मिश्रा की दो कंपनियों में से एक एक्सएलआईसीटी लखनऊ उ.प्र. में स्थित है एवं अन्य सॉलिटेयर प्रिंटोटेक फरीदाबाद हरियाणा में है एवं सह-अभियुक्त अजय जैन की कंपनी आईबीएफ अलवर, राजस्थान में स्थित है। इसमें यह भी उल्लेख किया गया है कि अजय मिश्रा की कंपनी एक्सएलआईसीटी को मुंगेर विश्वविद्यालय (बिहार), सीएसजेएम विश्वविद्यालय (कानपुर), लखनऊ विश्वविद्यालय, जमशेदपुर महिला विश्वविद्यालय, ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती भाषा विश्वविद्यालय (लखनऊ), एसजीजीयू (सरगुजा), छत्तीसगढ़, एमएसयू, आज़मगढ़, एलएनएमएमयू, दरभंगा, बिहार के प्रश्न पत्र छापते हुए पाया गया था, जोकि बिना किसी प्राधिकार के और वास्तविक अनुबंध सॉलिटेयर प्रिंटोटेक, फ़रीदाबाद के साथ था।

30. इस प्रकार, राज्य सरकार द्वारा अपनी सहमति देते समय केंद्र सरकार को दिए गए संदर्भ में यह कारण बताया गया है कि मौजूदा मामले का अंतर्राज्यीय प्रभाव है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य बनाम डेमोक्रेटिक राइट्स प्रोटेक्शन कमेटी, पश्चिम बंगाल एवं अन्य(2010) 3 एससीसी 571*** में रिपोर्ट किए गए मामले में संवैधानिक योजना एवं उसके संदर्भ में कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। ऐसे निष्कर्षों में एक यह है कि एक ओर सातवीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि 2 और दूसरी ओर सूची I की प्रविष्टि 2-ए और प्रविष्टि 80 के संदर्भ में, किसी अन्य एजेंसी द्वारा जाँच की अनुमति, संबंधित राज्य सहमति प्रदान करने के अधीन है। उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के अंतर्गत संवैधानिक न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से विचार कर रहा था एवं उसने माना है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 एवं 226 के अंतर्गत शक्ति की व्यापकता में सावधानी की आवश्यकता है। जहाँ तक किसी मामले में जाँच करने के संबंध में सी.बी.आई. को निदेश जारी करने का प्रश्न है, यह माना गया है कि संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के अंतर्गत ऐसी शक्ति का प्रयोग, सावधानी से एवं असाधारण परिस्थितियों में किया जाना चाहिए एवं ऐसी शक्ति का प्रयोग वहां किया जा सकता है जहां घटना राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय हो सकती है या जहाँ पूर्ण न्याय करने एवं मौलिक अधिकारों को लागू करने हेतु ऐसा आदेश आवश्यक हो सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***डेमोक्रेटिक राइट्स प्रोटेक्शन कमेटी, पश्चिम बंगाल एवं अन्य (उपरोक्त)*** के मामले में जो कहा गया है, उससे संकेत लेते हुए यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि अन्य राज्यों में रिपोर्ट किए गए अपराध की जाँच करने हेतु सी.बी.आई. के अधिकार क्षेत्र को बढ़ाने की शक्ति का कार्य केंद्र सरकार द्वारा कुछ परिस्थितियों में किया जा सकता है, जिनमें से एक वह है जहां रिपोर्ट किए गए अपराध का राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय या अंतर-राज्य प्रभाव हो।

अनुवादित

31. इस मामले में, हमने पहले ही देखा है कि राज्य सरकार ने प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच सौंपने हेतु केंद्र सरकार का हवाला देते हुए स्पष्ट रूप से कहा है कि मौजूदा मामले का अंतर्राज्यीय प्रभाव है एवं उसने इसके कारण बताए हैं। राज्य सरकार द्वारा दी गई सहमति एवं केंद्र सरकार द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट की जांच हेतु सी.बी.आई. की शक्ति एवं अधिकार क्षेत्र को बढ़ाने हेतु जारी आदेश में जब तक किसी दुर्भावना के कारण गड़बड़ी नहीं पाई जाती, हमारा मानना है कि राज्य सरकार की सहमति एवं केंद्र सरकार द्वारा पारित आदेश विधिक रूप से अमान्य नहीं कहा जा सकता।

32. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क प्रस्तुत किया गया है कि राज्य सरकार ने अपनी शक्ति भारत सरकार को सौंप दी है जो हमारे संविधान की संघीय योजना का उल्लंघन करती है क्योंकि पुलिस व्यवस्था मुख्य रूप से राज्य का विषय है। इस संबंध में हम देख सकते हैं कि संघीय ढांचे को प्रभावित करने वाले किसी रिपोर्ट किए गए अपराध की जाँच करने के राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप के संबंध में उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से हमारे समक्ष ऐसी कोई आपत्ति नहीं की गई है। राज्य सरकार द्वारा ऐसी किसी भी आपत्ति के अभाव में एवं इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि राज्य सरकार द्वारा दिनांक 29.12.2022 को प्रस्तुत संदर्भ के आधार पर केंद्र सरकार ने 06.01.2023 को निर्णय लिया, वह भी केंद्रीय जांच ब्यूरो से अन्वेषण की व्यवहार्यता के संबंध में अधिप्राप्ति के बाद, हम याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई इस दलील से सहमत नहीं हैं। हमने यह भी देखा है कि राज्य सरकार द्वारा 29.12.2022 को प्रस्तुत संदर्भ, कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग, भारत सरकार द्वारा परिपत्र दिनांक 22.11.2018 एवं संलग्न प्रपत्र के अंतर्गत जारी दिशानिर्देशों के अनुरूप था।

33. यह ऐसा मामला नहीं है जहां राज्य सरकार ने केंद्र सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी के पूछने पर अपनी सहमति व्यक्त की हो; बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रक्रिया 29.12.2022 को एक संदर्भ के रुप में राज्य सरकार द्वारा ही शुरू की गई थी, जिसके अंतर्गत केंद्र सरकार को उसकी सहमति के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच हेतु सीबीआई द्वारा केंद्र सरकार को सूचित की गई व्यवहार्यता पर विचार सहित प्रासंगिक विचारों पर केंद्र सरकार द्वारा 06.01.2023 को सीबीआई को जाँच सौंपने के कारण प्रस्तुत किए गए थे, जो आदेश पारित करने के साथ समाप्त हुआ।

34. जैसा कि ऊपर देखा गया है, याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया है कि विवादित कार्रवाई, जिसके परिणामस्वरूप प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच सी.बी.आई. स्थानांतरित हो गई है, प्रासंगिक भौतिक विचारों से रहित है एवं बिना किसी औचित्य या विधिक रूप से स्वीकार्य संतुष्टि से हीन है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, मामले के तथ्यों में इस तरह के तर्क मान्य नहीं हैं। राज्य सरकार द्वारा सीबीआई को जाँच स्थानांतरित करने की मांग करने वाली प्रासंगिक सामग्री केंद्र सरकार को दिनांक 29.12.2022 के पत्र के माध्यम से संदर्भित की गई थी, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया था कि मामले का अंतरराज्यीय प्रभाव है।

35. डेमोक्रेटिक राइट्स प्रोटेक्शन कमेटी, पश्चिम बंगाल एवं अन्य (उपरोक्त) के मामले में माननीय

अनुवादित

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि को ध्यान में रखते हुए हमारी राय है कि ऐसी स्थिति में जहां रिपोर्ट किया गया अपराध अंतर्राज्यीय प्रभाव का है, यह केंद्र सरकार हेतु डीएसपीई अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने हेतु एक प्रासंगिक सामग्री होगी। प्रथम सूचना रिपोर्ट को स्थानांतरित करने की मांग का औचित्य इस मामले में राज्य सरकार द्वारा केंद्र सरकार को अपने पत्र दिनांक 29.12.2022 द्वारा प्रस्तुत संदर्भ में उल्लिखित है। इस प्रकार, यह तर्क कि इस मामले में जाँच के हस्तांतरण का कोई औचित्य नहीं है, हमारी राय में, अस्वीकृति योग्य है।

36. जहां तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत इस तर्क का प्रश्न है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट स्थानांतरित करने की शक्ति, इस मामले में सीबीआई द्वारा छद्मपूर्ण रीति से कार्य करने का संबंध है, हम केवल यह नोट कर सकते हैं कि इस तरह के तर्कों को प्रमाणित करने हेतु किसी भी सामग्री के अभाव में, यह आधार विफल हो जाता है। जैसा कि पहले ही टिप्पणी की जा चुकी है, केंद्र सरकार द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच हेतु सीबीआई की शक्तियों एवं अधिकार क्षेत्र को बढ़ाने का प्राथमिक कारण, जो हमें प्रतीत होता है, इस मामले में रिपोर्ट किए गए अपराध का अंतर-राज्यीय प्रभाव है, जो राज्य सरकार द्वारा उसके पत्र दिनांक 29.12.2022 द्वारा प्रस्तुत संदर्भ से परिलक्षित होता है।

37. अंत में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की ओर से यह तर्क दिया गया है कि भले ही इस मामले में रिपोर्ट किए गए अपराध का अंतरराज्यीय प्रभाव हो, जब तक डीएसपीई अधिनियम की धारा 6 के संदर्भ में सभी संबंधित राज्यों द्वारा, सीबीआई को विधिक तौर पर प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच करने का अधिकार क्षेत्र ग्रहण करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

38. याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त तर्कों पर विचार करने हेतु हम पुनः **कंवल तनुज (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं। इस मामले के तथ्य यह हैं कि अपीलकर्ता (कंवल तनुज) को, प्राप्त सूचना के आधार पर सी.बी.आई. द्वारा पंजीकृत प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर श्री सी. शिवकुमार, सीईओ, भारतीय रेल बिजली कंपनी लिमिटेड, नबीनगर, जिला-औरंगाबाद, बिहार के साथ एक अभियुक्त के रूप में नामित किया गया था। यह मामला बिहार के औरंगाबाद जिले के स्थानीय जिला प्रशासन के साथ आपराधिक मिलीभगत से भारतीय रेल बिजली कंपनी लिमिटेड के संयंत्र हेतु भूमि अधिग्रहण में बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार एवं सरकारी धन की हेराफेरी से संबंधित है। कंवल तनुज ने प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने हेतु माननीय पटना उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की एवं यह घोषणा करने की प्रार्थना भी की कि चूंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट उसके विरूद्ध थी, जो राज्य सरकार का कर्मचारी था, एवं यह राज्य सरकार की पूर्व अनुमति के बिना दर्ज की गई थी। इस प्रकार, डीएसपीई अधिनियम, 1946 की धारा 6 का उल्लंघन करते हुए प्रथम सूचना रिपोर्ट अधिकार क्षेत्र के अभाव में पंजीकृत की गई थी।

39. माननीय पटना उच्च न्यायालय ने मामले पर विचार किया एवं इस तथ्य पर भी

अनुवादित

गौर किया कि भारतीय रेल बिजली कंपनी क्रमशः नेशनल थर्मल पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं रेलवे से संबद्ध है, एवं भारतीय रेल बिजली कंपनी का पंजीकृत कार्यालय दिल्ली में था, एवं संबंधित आरोप कंपनी के साथ धोखाधड़ी एवं धन की हेराफेरी दिल्ली में हुई थी, और इस प्रकार सीबीआई दिल्ली में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने और उस संबंध में जांच करने हेतु सक्षम थी। इस प्रकार, उच्च न्यायालय उक्त तथ्यों के आलोक में ***कंवल तनुज*** के तर्कों से सहमत नहीं हुआ एवं रिट याचिका खारिज कर दी। अपीलकर्ता द्वारा इस मामले को माननीय सर्वोच्च न्यायालय में ले जाया गया एवं ***माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में अन्य बातों के साथ-साथ यह निष्कर्ष निकाला कि दिल्ली में केंद्र शासित प्रदेश के भीतर किए गए निर्दिष्ट अपराध के संबंध में सीबीआई को संबंधित राज्य से सहमति लेने की आवश्यकता है, मात्र आकस्मिक स्थिति के कारण कि संबंधित अपराध का एक हिस्सा अन्य राज्य में किया गया है, राज्य एवं अपराध में शामिल अभियुक्त उस राज्य के मामलों के संबंध में निवास कर रहा है या कार्यरत है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि डीएसपीई का विस्तार पूरे भारत में है, एक बेतुकी स्थिति पैदा होगी।***

(न्यायालय द्वारा विशेष महत्व धारित)

40. ***कंवल तनुज (उपरोक्त)*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तर 19 में की गई प्रासंगिक टिप्पणियाँ पहले ही ऊपर प्रस्तुत की जा चुकी हैं। ***कंवल तनुज (उपरोक्त)*** के उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी देखा है कि अपराध दिल्ली में किया गया था, जिसके कारण दिल्ली की न्यायालयों के पास इसका संज्ञान लेने एवं कथित अपराध की जाँच करने का अधिकार क्षेत्र होगा, अपीलकर्ता, जो बिहार का निवासी था और बिहार राज्य के मामलों के संबंध में कार्यरत था, के कृत्यों और चूक के कारण संयोगवश बिहार राज्य के क्षेत्र में स्थानांतरित हो सकता है और इस प्रकार उक्त कारण सी.बी. आई. द्वारा जाँच के मार्ग में बाधा नहीं बनेगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा है कि ***"यदि राज्य पुलिस के पास पंजीकृत अपराध की जाँच करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, तो ऐसे अपराध के संबंध में राज्य की सहमति मांगने का कोई सवाल ही नहीं उठता है। कोई अन्य दृष्टिकोण अधिनियम, 1946 के विशेष प्रावधानों को निरर्थक बना देगा।"*** इस प्रकार, ***कंवल तनुज (उपरोक्त)*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षणों में से एक यह है कि यदि किसी राज्य के पास रिपोर्ट किए गए अपराध की जाँच करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, तो सी.बी.आई. द्वारा जाँच किये जाने हेतु ऐसे राज्य की सहमति आवश्यक नहीं होगी, अन्यथा डीएसपीई अधिनियम के प्रावधान अव्यवहारिक हो जायेंगे।

41. हम ***आनंद अग्रवाल बनाम भारत संघ एवं अन्य (2018) SCC Online Del 11713*** के मामले में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के खण्ड पीठ के निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं। उक्त मामले के पृष्ठभूमि तथ्यों में यह माना गया है कि यद्यपि उस विशेष राज्य में मामला दर्ज करने हेतु राज्य सरकार की सहमति आवश्यक हो सकती है, तथापि, यह कहना कि सी.बी.आई. को प्रत्येक राज्य की पूर्व सहमति लेनी होगी जहां जाँच की जानी है, इससे डीएसपीई अधिनियम की धारा 5 और 6 की योजना अव्यवहारिक हो जाएगी। माननीय दिल्ली उच्च

न्यायालय ने ***आनंद अग्रवाल (उपरोक्त)*** के उक्त मामले में माननीय पटना उच्च न्यायालय द्वारा ***कंवल तनुज (उपरोक्त)*** के मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण पर ध्यान दिया है, जिसके संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपील का (2020) 2 एससीसी 531 में निर्णय दिया था। ***कंवल तनुज (उपरोक्त)*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियां एवं निर्धारित विधि पर पहले ही हमारे द्वारा ऊपर विचार किया जा चुका है।

42. यदि हम इस मामले के तथ्यों पर पुनः गौर करें तो पाते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट उत्तर प्रदेश में दर्ज की गई है और राज्य सरकार ने इसकी जाँच सी.बी.आई. को स्थानांतरित करने हेतु केंद्र सरकार को अपना संदर्भ भेजा है। यह कहा गया है कि मामले का अंतरराज्यीय प्रभाव है, यानी इसका प्रभाव उ.प्र. राज्य, बिहार राज्य, राजस्थान राज्य, हरियाणा राज्य और छत्तीसगढ़ राज्य पर है। हालाँकि, यदि हम प्रथम सूचना रिपोर्ट में निहित आरोपों की प्रकृति पर विचार करते हैं, तो हमें यह ऐसा मामला नहीं लगता है जहाँ उ.प्र राज्य को छोड़कर, किसी अन्य राज्य के पास प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच करने का अधिकार क्षेत्र होगा एवं इसलिए ***कंवल तनुज (उपरोक्त)*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय में, इस कारण से, इस मामले में अन्य राज्यों की सहमति की आवश्यकता नहीं है।

43. ***कंवल तनुज (उपरोक्त)*** के मामले में निर्णय का प्रस्तर 24 निम्नवत है:

"24. निर्विवाद रूप से, बीआरबीसीएल का पंजीकृत कार्यालय केंद्र शासित प्रदेश दिल्ली (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) के अधिकार क्षेत्र में है एवं कथित तौर पर अपराध दिल्ली में किया गया है, इस कारण से दिल्ली न्यायालय के पास इसका संज्ञान लेने का अधिकार क्षेत्र होगा। इसे अलग ढंग से कहें तो, विचाराधीन अपराध बिहार राज्य के बाहर किया गया है। कथित अपराध की जांच, अपीलकर्ता, जो उस राज्य का निवासी है एवं बिहार राज्य के मामलों के संबंध में कार्यरत है, के कृत्यों एवं चूक के कारण संयोगवश बिहार राज्य के क्षेत्र में स्थानांतरित हो सकती है। हालाँकि, यह दिल्ली में हुए अपराध की जाँच करने में विशेष पुलिस बल (डीएसपीई) के मार्ग में नहीं आ सकता है एवं जिसके द्वारा इसे पंजीकृत किया गया है एवं इस मामले की जाँच की जा रही है। यदि यह राज्य के आधिकारिक रिकॉर्ड में हेरफेर एवं बिहार राज्य के अधिकारियों की भागीदारी तक सीमित अपराध होता, तो यह एक अलग मामला होता। यह अपीलकर्ता या बिहार राज्य का मामला नहीं है कि भारत सरकार के उपक्रम (दिल्ली में पंजीकृत कार्यालय) को धोखा देने एवं दिल्ली में उसके धन की हेराफेरी के दिल्ली में किए गए अपराध की जाँच भी बिहार राज्य द्वारा की जा सकती है। यदि राज्य पुलिस के पास पंजीकृत अपराध की जाँच करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, तो ऐसे अपराध के संबंध में राज्य की सहमति मांगने का प्रश्न ही नहीं उठता। कोई भी अन्य दृष्टिकोण अधिनियम, 1946 के विशेष प्रावधानों को निरर्थक बना देगा।"

44. भारत संघ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों से, हम पाते हैं कि यद्यपि प्रथम सूचना रिपोर्ट उ.प्र. में पंजीकृत की गई है। हालांकि, रिपोर्ट किए गए अपराध की

जाँच अन्य राज्यों के क्षेत्रों में भी हो सकती है, जैसा कि ऊपर देखा गया है। हालाँकि, प्रथम सूचना रिपोर्ट में की गई बातों एवं आरोपों को ध्यान में रखते हुए, हमारी सुविचारित राय है कि उसमें उल्लिखित अपराध की जाँच उत्तर प्रदेश राज्य की एक जाँच एजेंसी द्वारा की जा सकती है, न कि अन्य राज्यों की जाँच एजेंसियों द्वारा, क्योंकि इस मामले में एफआईआर की जांच केवल संयोगवश अन्य राज्यों में जा सकती है क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट में खुलासा किया गया कथित अपराध उ.प्र.राज्य में किया गया था। इस प्रकार, अन्य राज्यों को प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा एवं तदनुसार, सी.बी.आई. की शक्तियों एवं अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने वाला आदेश जारी करने हेतु डीएसपीई अधिनियम की धारा 6 के संदर्भ में, इस मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच हेतु अन्य राज्यों की सहमति की आवश्यकता नहीं है।

45. उत्तरदाताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि किसी अपराध के अभियुक्तगण की ओर से उनकी पसंद की जाँच एजेंसी द्वारा जाँच कराने का कोई आग्रह नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में हम केवल यह देख सकते हैं कि किसी विशेष जाँच एजेंसी द्वारा जाँच कराना किसी भी अभियुक्त की कोई विशिष्ट रुचि नहीं हो सकती है। हालांकि, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **डेमोक्रेटिक राइट्स प्रोटेक्शन कमेटी, वेस्ट बंगाल और अन्य (उपरोक्त)** के मामले में माना है कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 21, पीड़ित एवं आरोपी दोनों पक्षों के अधिकारों को लागू करने की घोषणा करता है। आगे यह माना गया है कि संज्ञेय अपराध के आरोपी किसी भी व्यक्ति के विरूद्ध निष्पक्ष जाँच कर प्रत्येक नागरिक के अधिकार को लागू करना राज्य का कर्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय ने यहाँ तक कहा है कि कुछ स्थितियों में अपराध के साक्षी भी सुरक्षा की माँग कर सकते हैं एवं उन्हें सुरक्षा दी जाएगी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित निष्कर्ष (ii) का उल्लेख रिपोर्ट के प्रस्तर 68 में किया गया है जो कि निम्नवत् हैं:-

"(ii) संविधान का अनुच्छेद 21 अपने व्यापक परिप्रेक्ष्य में विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया द्वारा ही व्यक्तियों के जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा का प्रावधान प्रस्तुत करता है। अपने व्यापक अनुप्रयोग में उक्त अनुच्छेद न केवल एक अभियुक्त के अधिकारों का प्रवर्तन करता है , अपितु उसके साथ-साथ पीड़ित के अधिकार को भी अपनी परिधि में आवृत करता है। राज्य का कर्तव्य है कि वह संज्ञेय अपराध के आरोपी किसी भी व्यक्ति के विरूद्ध निष्पक्ष एवं निष्पक्ष जाँच हेतु नागरिक के मानवाधिकारों को लागू करे, जिसमें उसके अपने अधिकारी भी शामिल हो सकते हैं। निश्चित रूप से यहाँ तक कि अपराध का साक्षी भी ऐसी स्थितियों की माँग कर सकता है और उसे राज्य द्वारा सुरक्षा प्रदान की जाएगी।"

46. इस प्रकार, प्रश्न यह नहीं है कि क्या किसी आरोपी या पीड़ित को रिपोर्ट किए गए अपराध के हस्तांतरण की मांग करने का कोई अधिकार है; बल्कि मुद्दा यह है कि रिपोर्ट किए गए अपराध की सबसे निष्पक्ष एवं तटस्थ रीति से जाँच की जानी चाहिए।

47. इस संबंध में, हालांकि, यह भी ध्यान देने योग्य है कि याचिकाकर्ता यह प्रदर्शित नहीं कर सका है कि उस स्थिति में उस पर क्या प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जब प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच सी.बी.आई. द्वारा

अनुवादित

की जाती है। यह कहने के अतिरिक्त कि प्रथम सूचना रिपोर्ट यह प्रकट करती है कि अभियुक्त विनय पाठक ने याचिकाकर्ता से कहा था कि उसे अपने वरिष्ठों को रिश्वत में पैसे देने होंगे, यह सिद्ध करने हेतु कि प्रथम सूचना रिपोर्ट को अन्वेषण हेतु सी.बी. आई. को स्थानांतरित किये जाने का उद्देश्य मामले को पटरी से उतारना है, अभिलेख पर पर कुछ भी नहीं प्रस्तुत किया। स्थानांतरण का कारण, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, राज्य सरकार द्वारा इस मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच हेतु सीबीआई की शक्तियों एवं अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने का आदेश देने हेतु केंद्र सरकार को उसकी सहमति के साथ दिए गए संदर्भ में उपलब्ध है।

48. ऊपर की गई चर्चा एवं दिए गए कारणों के कारण, हम याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों से सहमत होने में असमर्थ हैं।

49. परिणामस्वरूप, रिट याचिका विफल होती है जिसे एतद्द्वारा **खारिज** किया जाता है।

50. हालाँकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 2 ILRA 873

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 02.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय,

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार पचौरी,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 7522/2022

ज्ञानेन्द्र मौर्य@गुल्लू

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: ज्ञानेंद्र सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी.आई.

(ए) आपराधिक कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226, - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(v), 4(2)(ई) - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 - नियम 5, 7(2), - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376-डी और 506, - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 4, 156, 156(3) 190: - रिट याचिका - एससी/एसटी अधिनियम की धारा 4(2)(ई) सपठित एससी/एसटी नियमों के नियम 7(2) को असंवैधानिक घोषित करने के लिए - आरोप-पत्र दाखिल करने के लिए वैधानिक प्रावधान - अनुचित तरीके से पढ़ा, समझा और लागू नहीं किया जा सकता है ताकि बेतुकापन हो और/या नागरिक के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो - प्रावधानों में जरूरी नहीं है कि जांच अधिकारी को प्रत्येक वाद में आरोप-पत्र दाखिल करना अनिवार्य हो जहां अधिनियम 1989 के तहत अपराध का आरोप लगाते हुए एक एफआईआर दर्ज की गई है, लेकिन यह केवल उस पर आरोप पत्र दाखिल करने का आदेश देता है, जहां जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर अपराध बनता है - तदनुसार असंवैधानिक घोषित करने के लिए प्रार्थना को निरस्त कर दिया गया है। (पैरा-6,7)

(बी) आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(v) और 4(2)(ई),

अनुवादित

- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 - नियम 5, 7(2), भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376-डी और 506, - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 4, 156, 156(3) और 190 - रिट याचिका - विशिष्ट विशेष न्यायालय की शक्ति को चुनौती दी गई है, जिसके तहत निर्दिष्ट एससी/एसटी एक्ट के संबंध में सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत निर्धारित एफआईआर दर्ज करने और जांच करने का आदेश दिया गया है - अधिनियम 1989 के तहत स्थापित ऐसे न्यायालयों के लिए संहिता 1973 की धारा 156(3) के तहत निर्धारित शक्तियों का कोई बहिष्कार नहीं है - एक बार ऐसे न्यायालयों के पास किसी अपराध का संज्ञान लेने की शक्ति है जो सीधे संहिता 1973 की धारा 190 के संदर्भ में है, तो, संहिता 1973 की धारा 156 में प्रयुक्त भाषा के अनुसार वे सीआरपीसी के कुछ प्रावधानों के तहत संहिता 1973 की धारा 156(3) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिनियम 1989 के तहत अपराध की एफआईआर दर्ज करने और जांच का आदेश दे सकते हैं - विशेष रूप से एससी/एसटी अधिनियम के तहत कार्यवाही में उनके आवेदन से बाहर रखा गया है - एफआईआर दर्ज करने का अधिकार अधिनियम 1989 की धारा 4 के तहत कर्तव्य की उपेक्षा के लिए संज्ञान लेने के अधिकार से अलग है - विशिष्ट विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय मूल आपराधिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हैं - अधिनियम 1989 के तहत सभी अपराधों की सुनवाई अधिनियम 1989 के तहत ऐसे न्यायालयों द्वारा की जानी है और किसी अन्य न्यायालय के पास इस संबंध में क्षेत्राधिकार नहीं है, वे सीधे अपराध का संज्ञान भी ले सकते हैं - इसलिए विवादित आदेश क्षेत्राधिकार के बिना नहीं है, रिट याचिका में प्रस्तुत प्रार्थना स्वीकृत नहीं है। (पैरा 23, 25, 33, 34, 36, 40)

(सी) आपराधिक कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226, - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(v) और 4(2)(ई), - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 - नियम 5, 7(2), - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376-डी और 506 - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 4, 156, 156(3) और 190 -रिट याचिका - आक्षेपित आदेश को इस आधार पर चुनौती देना कि याचिकाकर्ता को दो प्रावधानों के तहत एक ही अपराध के लिए दंडित किया जाएगा - सामूहिक बलात्कार का अपराध, जैसा कि एफआईआर में आरोप लगाया गया है, धारा 376-डी आईपीसी के अंतर्गत संदर्भित है और इसमें सजा का प्रावधान है जो इससे 12 वर्ष से नहीं होगी, जिसे जीवन तक बढ़ाया जा सकता है, जिसका अर्थ उस व्यक्ति के शेष प्राकृतिक जीवन के लिए कारावास और जुर्माना होगा, स्पष्ट रूप से सामूहिक बलात्कार का अपराध अधिनियम 1989 की धारा 3(2)(v) के अंतर्गत संदर्भित है- धारा 506 आईपीसी जैसा कि एफआईआर में आरोप लगाया गया है, अधिनियम 1989 की धारा 3(2)(v) के साथ पढ़ने योग्य है - इसलिए, ये दोनों अपराध अधिनियम 1989 के लिए संदर्भित हैं और उक्त अधिनियम के तहत विशेष विशेष न्यायालयों या विशेष न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के लिए भी उत्तरदायी हैं - सजा ऐसे अपराधों के लिए आईपीसी में निर्दिष्ट अनुसार होगा और जुर्माना भी लगाया जाएगा - इस प्रकार, दो प्रावधानों के तहत दंडित करने की

अनुवादित

याचिका गलत है, रिट याचिका निरस्त कर दी जाती है। (पैरा - 41, 42, 43)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:-

1. शांताबेन बुराभाई भूरिया बनाम आनंदअथाभाई चौधरी (2021 एसएससी ऑनलाइन एससी 974)
2. रामवीर उपाध्याय एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2021 एससी ऑनलाइन एससी 484)

(माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय, द्वारा प्रदत्त)

1. सुना।

2. याचिकाकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत दायर इस याचिका में निम्नलिखित अनुतोषों की याचना की है:

"i). अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 की धारा 4(2)(ङ) को एवं अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियमावली, 1995 के नियम 7(2) को, उस सीमा तक, जहां तक वे दोनों आवश्यक रूप से 'चार्जशीट'दाखिल करने का निर्देश देते हैं, को भारत के संविधान के भाग III के अधिकारातीत घोषित करते हुए एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें।

ii) अनन्य विशेष न्यायालय, प्रतापगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.03.2022 (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 3 के रूप में संलग्न) को रद्द करते हुए उत्प्रेषण-लेख प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, या,

iii). विपक्षी संख्या 2 और 3 को थाना महेशगंज, जिला प्रतापगढ़, में दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या- 100/2022 अन्तर्गत धारा 376-डी, 506 भारतीय दंड संहिता और धारा 3(2)(ङ) और 3(2)(ङ क) अधिनियम 1989 से धारा 376-डी और 506 भारतीय दंड संहिता, को हटाने के लिए आदेश देते हुए एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।"

3. अनुतोष संख्या 1 के माध्यम से, उन्होंने यह घोषणा करने की मांग की है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 (संक्षेप में अधिनियम 1989) की धारा 4(2)(ङ) और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण नियमावली) 1995 (संक्षेप में 'नियमावली, 1995') के नियम 7(2) को उस सीमा तक भारत के संविधान के भाग III के अधिकारातीत घोषित किया जाए, जहां तक उक्त प्रावधान आवश्यक रूप से आरोप पत्र दाखिल करने के निर्देश देते हैं।

4. इस विवाद-विषय पर विचार करने और मांगे गए अनुतोष के लिए, हमें अधिनियम 1989 की धारा 4 सहित उपधारा (2)(ङ) का संदर्भ लेना होगा जो इस प्रकार हैं:

"4. कर्तव्य उपेक्षा के लिए दण्ड- *(1) कोई भी लोक सेवक, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है, इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन उसके द्वारा पालन किए जाने के लिए अपेक्षित अपने कर्तव्यों की जानबूझकर उपेक्षा करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी, किंतु जो एक वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा।*

अनुवादित

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट लोक सेवक के कर्तव्यों में निम्नलिखित सम्मिलित होगा- *(क) पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा सूचनाकर्ता के हस्ताक्षर लेने से पहले मौखिक रूप से दी गई सूचना का, सूचनाकर्ता को पढ़कर सुनाना और उसको लेखबद्ध करना;*

(ख) इस अधिनियम और अन्य सुसंगत उपबंधों के अधीन शिकायत या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को रजिस्टर करना और अधिनियम की उपयुक्त धाराओं के अधीन उसको रजिस्टर करना,

(ग) इस प्रकार अभिलिखित की गई सूचना की एक प्रति सूचनाकर्ता को तुरंत देना,

(घ) पीडितों या साक्षियों के कथन को अभिलिखित करना;

(ङ) अन्वेषण करना और विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय में साठ दिन की अवधि के भीतर आरोपपत्र फाइल करना तथा विलंब, यदि कोई हो, लिखित में स्पष्ट करना; किसी दस्तावेज या इलेक्ट्रानिक अभिलेख को सही रूप से तैयार, विरचित करना तथा उसका अनुवाद करना;

(छ) इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों में विनिर्दिष्ट किसी अन्य कर्तव्य का पालन करनाः

परन्तु लोक सेवक के विरुद्ध इस संबंध में आरोप, प्रशासनिक जांच की सिफारिश पर दर्ज किए जाएंगे।

(3) लोक सेवक द्वारा उपधारा (2) में निर्दिष्ट कर्तव्य की अवहेलना के संबंध में संज्ञान विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय द्वारा लिया जाएगा और ऐसे लोक सेवक के विरुद्ध दांडिक कार्यवाहियों के लिए निदेश दिया जाएगा।

नियमावली, 1995 का नियम 7, उसके उप-नियम (2) सहित, जिसके अधिकार को चुनौती दी गई है, इस प्रकार है:

"7. अन्वेषक अधिकारी:- *(1) अधिनियम के अधीन किए गए किसी अपराध का अन्वेषण ऐसे पुलिस अधिकारी द्वारा किया जाएगा जो पुलिस उप अधीक्षक से रैंक से कम का न हो। अन्वेषक अधिकारी की नियुक्ती राज्य सरकार/पुलिस अधीक्षक द्वारा उसके पुर्व अनुभव, मामले की विविक्षाओं को समझने और मामले का अन्वेषण सही दिशा में कम से कम समय के भीतर करने की योग्यता और न्याय की भावना को ध्यान में रख कर की जाएगी।*

(2) उपनियम (1) के अधीन इस प्रकार नियुक्त अन्वेषक अधिकारी अन्वेषण उच्च प्राथमिकता पर तीस दिन के भीतर पूरा करेगा और पुलिस अधीक्षक को रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा जो उसके पश्चात उसे उस राज्य सरकार के पुलिस महानिदेशक को तत्काल भेज देगा। संबंधित थाने का प्रभारी अधिकारी विशेष अदालत में आरोप पत्र दाखिल करेगा या साठ दिनों की अवधि के भीतर विशेष अदालत में आरोप पत्र दाखिल करेगा (इस अवधि में जांच और आरोप पत्र दाखिल करना शामिल है)।

(2-ए) उप-नियम (2) के अनुसार जांच या आरोप पत्र दाखिल करने में देरी, यदि कोई हो, तो अन्वेषक अधिकारी द्वारा लिखित रूप में स्पष्ट की जाएगी।

(3) सचिव, गृह विभाग और सचिव, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति विकास

अनुवादित

विभाग (विभाग का नाम अलग-अलग राज्यों में भिन्न हो सकता है) राज्य सरकार या केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन, अभियोजन निदेशक, प्रभारी अधिकारी अभियोजन पक्ष और पुलिस महानिदेशक या संबंधित राज्य या केंद्र शासित प्रदेश के प्रभारी पुलिस आयुक्त प्रत्येक तिमाही के अन्त में अन्वेषण अधिकारीयों द्वारा किए गए सभी अन्वेषणों की स्थिति का पुनर्विलोकन करेंगे।

5. इस संदर्भ में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह था कि उपरोक्त दोनों प्रावधानों में इस्तेमाल की गई भाषा, अन्वेषण अधिकारी के लिए उस मामले में जहां, अधिनियम 1989 के अन्तर्गत कोई अपराध नहीं बनता है, अंतिम रिपोर्ट दाखिल करने की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती है, इसका तात्पर्य यह हुआ कि उसे आवश्यक रूप से और अनिवार्य रूप से प्रत्येक मामले में आरोप पत्र दाखिल करना होगा, जिसमें अधिनियम के अन्तर्गत अपराध का आरोप लगाते हुए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है। इस संदर्भ में, उन्होंने आगे कहा कि उपरोक्त प्रावधानों में प्रयुक्त शब्द 'आरोप पत्र दाखिल करना' है न कि 'पुलिस आख्या दाखिल करना' है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद 'संहिता 1973'के रूप में संदर्भित) की धारा 173 के अन्तर्गत, इस्तेमाल किया गया शब्द पुलिस रिपोर्ट है जो आरोप-पत्र या अंतिम रिपोर्ट के रूप में हो सकता है; ऐसे मामले जहां अपराध एकत्र किए गए साक्ष्य के आधार पर किया जाना पाया जाता है, आरोप-पत्र दायर किया जाना है और ऐसे मामले में अंतिम रिपोर्ट, जहां अपराध नहीं किया जाना पाया जाता है, लेकिन, संहिता 1973 की धारा 173 में इस्तेमाल की गई भाषा से पृथक, अधिनियम 1989 में निहित प्रावधान और नियमावली, 1995 के नियमों में 'आरोप-पत्र' शब्द का उल्लेख है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यह प्रावधान को अतार्किक बनाता है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के विपरीत है।

6. उपरोक्त उद्धृत प्रावधानों में 'पुलिस रिपोर्ट'के स्थान पर 'आरोप-पत्र' शब्द के उपयोग के कारण याचिकाकर्ता के मन में आशंका उत्पन्न हुई प्रतीत होती है। प्रावधानों को तार्किक तरीके से पढ़ना और समझना होगा। उपरोक्त दोनों प्रावधानों का तात्पर्य यह है कि जहां भी जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्यों के आधार पर अधिनियम 1989 के तहत अपराध किया जाना पाया जाता है, वहां एक आरोप-पत्र दाखिल करना आवश्यक है, जैसा कि उनमें उल्लेखित है। यदि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के सुझाव या तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है कि भले ही कोई अपराध नहीं हुआ पाया जाता है, तो भी आवश्यक रुप से आरोप पत्र दाखिल करना है या प्रत्येक प्रकरण में जहां अधिनियम 1989 के तहत अपराध का आरोप लगाने वाली प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है, अन्वेषण अधिकारी, विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय में, आरोप-पत्र दाखिल करने के लिए बाध्य है। यह स्पष्ट रूप से अनुचित, बेतुका और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के विपरीत होगा। वैधानिक प्रावधानों को अनुचित तरीके से पढ़ा, समझा और लागू नहीं किया जा सकता, जिससे बेतुकापन पैदा हो और/अथवा किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इस प्रावधान पर हमारा मत और निर्वचन विधि की सही समझ है और याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता का तर्क भ्रामक है।

अनुवादित

7. उपरोक्त के दृष्टिगत, यह व्यवस्था दी जाती है कि उपरोक्त प्रावधान, अन्वेषण अधिकारी को प्रत्येक मामले में आवश्यक रुप से आरोप-पत्र दायर करने के लिए बाध्य नहीं करते हैं जहां अधिनियम 1989 के अन्तर्गत अपराध के आरोप में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है, लेकिन वे केवल उसे ऐसे मामलों में आरोप-पत्र दायर करने का आदेश देते हैं, जहां जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्यों के आधार पर अपराध करना पाया जाता है। तदनुसार, अनुतोष संख्या 1 खारिज की जाती है।

8. याचिकाकर्ता ने अनुतोष संख्या 2 के अन्तर्गत, विशेष न्यायालय, प्रतापगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.03.2022 को चुनौती दी है।

9. आक्षेपित आदेश दिनांक 02.03.2022 को सत्र न्यायालय द्वारा पारित किया गया है जिसे विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम), प्रतापगढ़ के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।

10. इस संबंध में यह तर्क दिया गया कि अनन्य विशेष न्यायालय/विशेष न्यायालय, प्रतापगढ़ के पास प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने और उसके संबंध में जांच करने का आदेश देने की शक्ति नहीं है जैसा कि संहिता 1973 की धारा 156 (3) के तहत निर्धारित है। इस संदर्भ में धारा 2(खघ) में "अनन्य विशेष न्यायालय" की निहित परिभाषा पर बल दिया गया है जिसमें यह परिभाषित किये जाने का तात्पर्य, अनन्य रूप से अधिनियम 1989 के अन्तर्गत किए गए अपराधों के लिए विचारण हेतु, अधिनियम 1989 की धारा 14 की उप-धारा (1) के तहत, स्थापित अनन्य विशेष न्यायालय है। यह प्रस्तुत किया गया कि इस तरह के न्यायालय की स्थापना **अधिनियम 1989 के तहत अपराधों के विचारण हेतु** के लिए की गई है। विचारण, आरोप तय होने के बाद ही शुरू होता है, उससे पहले नहीं। संहिता 1973 की धारा 156(3) के तहत प्रक्रिया, विचारण के पूर्व का एक चरण है, इसलिए, उपरोक्त प्रावधान के मद्देनजर अनन्य विशेष न्यायालय के पास संहिता 1973 की धारा 156(3) के तहत निर्धारित शक्ति नहीं है। विशेष न्यायालय शब्द, अधिनियम 1989 की धारा 2(घ) के तहत परिभाषित है जिसका तात्पर्य धारा 14 में एक विशेष न्यायालय के रूप में निर्दिष्ट सत्र न्यायालय है। धारा 14(1) के प्रावधान के अनुसार, अधिनियम 1989 के अन्तर्गत अपराधों की सुनवाई के लिए, विशेष न्यायालयों को भी निर्दिष्ट किया गया है।

11. अधिनियम 1989 की धारा 14 इस प्रकार है:

*"**14. विशेष न्यायालय और अनन्य विशेष न्यायालय-** (1) शीघ्र विचारण का उपबंध करने के प्रयोजन के लिए, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, एक या अधिक जिलों के लिए एक अनन्य विशेष न्यायालय स्थापित करेगी*

परन्तु ऐसे जिलों में जहां अधिनियम के अधीन कम मामले अभिलिखित किए गए हैं, राज्य सरकार उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे जिलों के लिए सेशन न्यायालयों को, इस अधिनियम के अधीन अपराधों का विचारण करने के लिए विशेष न्यायालय होना विनिर्दिष्ट करेगी :

परंतु यह और कि इस प्रकार स्थापित या विनिर्दिष्ट न्यायालयों को इस अधिनियम के

अनुवादित

अधीन अपराधों का सीधे संज्ञान लेने की शक्ति होगी।

(2) राज्य सरकार का, यह सुनिश्चित करने के लिए कि इस अधिनियम के अधीन मामले, यथासंभव, दो मास की अवधि के भीतर निपटाए गए हैं, पर्याप्त संख्या में न्यायालयों की स्थापना करने का कर्तव्य होगा।

(3) विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय में प्रत्येक विचारण में कार्यवाहियां, दिन-प्रतिदिन के लिए तब तक जारी रहेंगी, जब तक कि उपस्थित सभी साक्षियों की परीक्षा न हो जाए, जब तक कि विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय. अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से उसको आगामी दिन से परे स्थगन करना आवश्यक नहीं पाता हो।

परन्तु जब विचारण. इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध से संबंधित है. तब विचारण, यथासंभव, आरोप पत्र को फाइल करने की तारीख से दो मास की अवधि के भीतर पूरा किया जाएगा।"

12. उपरोक्त प्रावधानों के आधार पर प्रस्तुत किया गया तर्क यह था, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, कि ऐसे न्यायालयों को केवल अधिनियम 1989 के तहत अपराधों के विचारण का अधिकार है, अर्थात उनके संबंध में ही विचारण करने का, लेकिन किसी अन्य शक्ति के प्रयोग करने का अधिकार नहीं है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क प्रस्तुत किया कि अनन्य विशेष न्यायालय/विशेष न्यायालय को धारा 14(1) के द्वितीय प्रावधान में किसी प्रकरण का सीधे संज्ञान लेने की शक्ति प्रदान की गई है, लेकिन उक्त न्यायालयों को संहिता 1973 की धारा 156(3) के अन्तर्गत प्रावधानित, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने और जांच का आदेश देने की कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई है। इस संदर्भ में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान नियमावली, 1995 के नियम 5 की ओर आकर्षित करते हुए तर्क दिया कि नियमावली, 1995 का नियम 5(3) संहिता 1973 की धारा 154(3) के समविषयक है और यदि संबंधित थाने के अधिकारियों द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की जाती है तो यह क्षुब्ध व्यक्ति को, कि वह संबंधित अधिकारी का सहारा ले सकने का, एक उपाय/ साधन प्रदान करता है।

14. नियमावली, 1995 का नियम 5 इस प्रकार है:

*"5. **पुलिस थाने के भारसाधक पुलिस अधिकारी को सुचना:-** (1) अधिनियम के अधीन अपराध किये जाने से संबंधित प्रत्येक सूचना यदि पुलिस थाने के भारसाधक किसी अधिकारी को मौखिक रुप से दी जाती है तो उसके द्वारा या उसके निर्देश से लेखबद्ध कर ली जाएगी और सुचना देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी और ऐसी प्रत्येक सूचना, चाहे लिखित में दी जाती है या यथापूर्वोक्त लेखबद्ध की जाती है, इसे देने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित की जाएगी ओर उसके सार को उस पुलिस थाने द्वारा रखी जाने वाली पुस्तिका में प्रविष्ट किया जाएगा।*

(2) उपयुक्त उपनियम (1) के अधीन इस प्रकार लेखबद्ध की गई सूचना की एक प्रति सूचना देने वाले को तत्काल मुफ्त दी जाएगी।

अनुवादित

(3) उपनियम (1) में निर्दिष्ट सूचना को लेखबद्ध करने से पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी की ओर से इंकार होने से व्यथित कोई व्यक्ति इस प्रकार की सूचना का सार लिखित रुप में डाक द्वारा संबंधित पुलिस अधीक्षक को भेज सकता है जो स्वयं अपने द्वारा या एक पुलिस अधिकारी द्वारा जो पुलिस उप अधीक्षक के रैंक से कम न हो. अन्वेषण के पश्चात लिखित रुप में एक आदेश उस सुचना के सार को उस पुलिस थाने के द्वारा रखी जाने वाली पुस्तिका में प्रविष्टि किए जाने के लिए संबधित पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को देगा।"

15. उन्होंने कर्तव्यों की उपेक्षा के लिए दंड से संबंधित अधिनियम 1989 की धारा 4 की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया, जिसके तहत यदि उसमें उल्लिखित कर्तव्यों, जिसमें अधिनियम 1989 के तहत शिकायत दर्ज करना या प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना और अन्य प्रासंगिक प्रावधान शामिल हैं, का संबंधित अधिकारी द्वारा पालन नहीं किया जाता है तो अधिनियम 1989 की धारा 4 की उपधारा 2 में निर्दिष्ट कर्तव्य के प्रति लोक सेवक की ऐसी लापरवाही के संबंध में विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जाएगा और और वह ऐसे लोक सेवक के खिलाफ दंडात्मक कार्यवाही के लिए निर्देश देगा।

16. उन्होंने प्रस्तुत किया कि हालांकि कर्तव्य के प्रति इस तरह की लापरवाही का संज्ञान लेने और दंडात्मक कार्यवाही का आदेश देने की शक्ति विशेष न्यायालय को प्रदान की गई है, लेकिन उन्हें, संहिता 1973 की धारा 156(3) के संदर्भ में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने और जांच का आदेश देने के लिए, उन्हें सशक्त बनाने का कोई प्रावधान नहीं किया गया है। विधिनिर्माता ने अपने विवेक से, ऐसा कहना बंद कर दिया है और नियमावली, 1995 के नियम 5 में एक समान प्रावधान शामिल करके संहिता 1973 की धारा 154(3) के चरण पर रुक गया है, लेकिन संहिता 1973 की धारा 156(3) के अनुरूप ऐसा कोई प्रावधान अधिनियम 1989 या नियमावली, 1995 में शामिल नहीं किया है। इसके आधार पर, उन्होंने प्रस्तुत किया कि यह स्वयं विधिनिर्माता और नियम बनाने वाले प्राधिकारी की मंशा को स्पष्ट करता है कि ऐसी कोई शक्ति अनन्य विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय में निहित नहीं की गयी है।

17. इस संदर्भ में, उन्होंने न्यायालय का ध्यान अधिनियम 1989 की धारा 18ए, अधिनियम संख्या 27/ 2018 द्वारा जोड़ी गयी, 20.08.2018 से लागू, की ओर भी आकर्षित किया, जिसे द्वारा किसी भी व्यक्ति के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए प्रारंभिक जांच की आवश्यकता नहीं है और न ही गिरफ्तारी के लिए अनुमोदन की आवश्यकता है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क था कि यह प्रावधान, बिना किसी प्रारंभिक जांच के, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने को अनिवार्य बनाता है।

18. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह भी तर्क था कि धारा 156 में प्रयुक्त शब्द मजिस्ट्रेट है, जो, अनन्य विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय नहीं है। मौजूदा मामले में, आदेश सत्र न्यायालय द्वारा पारित किया गया है जिसे विशेष न्यायालय कहा जाता है, न कि मजिस्ट्रेट।

अनुवादित

19. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क, जैसा कि पूर्व में ध्यातव्य है, प्रथमदृष्टया अत्यंत आकर्षक लगा, हालांकि, हमने पाया कि जहां तक अधिनियम 1989 सहपठित उक्त अधिनियम की धारा 14 के अन्तर्गत अनन्य विशेष न्यायालय और विशेष न्यायालय की परिभाषा संबंधित है, उक्त के पढ़ने पर इसमें कोई संदेह नहीं है कि उक्त न्यायालयों की स्थापना अधिनियम 1989 के तहत किए गए अपराधों के विचारण के लिए की गई थी, लेकिन, 2016 के अधिनियम संख्या 1 द्वारा, धारा 14 में संशोधन किए गए हैं, जिसके द्वारा, अन्य बातों के अलावा, धारा 14(1) में द्वितीय प्रावधान जोड़ा गया है। धारा 14(1) के तहत इस प्रकार स्थापित या निर्दिष्ट न्यायालयों को अधिनियम 1989 के तहत सीधे अपराध का संज्ञान लेने की शक्ति दी गई है। संज्ञान लेना विचारण के पूर्व का एक चरण है, इसलिए, यह तर्क गलत है कि ऐसे न्यायालयों को केवल विचारण का अधिकार प्राप्त है।

20. अब, हम अधिनियम 1989 के अन्तर्गत अनन्य/ विशेष न्यायालय के समक्ष दण्ड प्रक्रिया संहिता की प्रयोज्यता पर विचार कर सकते हैं।

21. अधिनियम 1989 या नियमावली, 1995 में, अधिनियम 1989 के तहत इन न्यायालयों द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रिया निर्धारित नहीं की गई है। ऐसी प्रक्रिया, संहिता 1973 में निर्धारित की गई है जिसमें दण्ड प्रक्रिया से संबंधित सामान्य कानून शामिल है।

22. इस संदर्भ में, संहिता 1973 की धारा 4 का उल्लेख करना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:

"4. भारतीय दण्ड संहिता और अन्य विधियों के अधीन अपराधों का विचारण- *(1) भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45) के अधीन सब अपराधों का अन्वेषण, जांच, विचारण और उनके सम्बन्ध में अन्य कार्यवाही इसमें इसके पश्चात् अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अनुसार की जाएंगी।*

(2) किसी अन्य विधि के अधीन सब अपराधों का अन्वेषण, जांच, विचारण और उनके सम्बन्ध में अन्य कार्यवाही इन्हीं उपबन्धों के अनुसार किन्तु ऐसे अपराधों के अन्वेषण, जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही की रीति या स्थान का विनियमन करने वाली तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति के अधीन रहते हुए, की जाएगी।"

संहिता 1973 की धारा 5 इस प्रकार है:

"5. व्यावृत्ति-इससे प्रतिकूल किसी विनिर्दिष्ट उपबन्ध के अभाव में इस संहिता की कोई बात तत्समय प्रवृत्त किसी विशेष या स्थानीय विधि पर, या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा प्रदत्त किसी विशेष अधिकारिता या शक्ति या उस विधि द्वारा विहित किसी विशेष प्रक्रिया पर प्रभाव नहीं डालेगी।"

23. संहिता 1973 की धारा 4 और 5 के अनुसार किसी भी अन्य कानून (जिसमें अधिनियम 1989 शामिल होगा) के तहत सभी अपराधों की जांच, पूछताछ, विचारण और अन्यथा दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार निस्तारित किया जाएगा, बशर्ते कि किसी अधिनियम में, जिसमें इसके विपरीत विषयक, एक विशिष्ट प्रावधान हो। हमने पाया कि संहिता 1973 के कुछ प्रावधानों को विशेष रूप से, अधिनियम 1989 के अन्तर्गत कार्यवाही में, लागू करने से पृथक रखा गया है। अधिनियम 1989 की धारा 18, अग्रिम जमानत के संबंध में संहिता 1973 की धारा 438, के लागू करने से वर्जित करती है। अधिनियम 1989 की धारा 18 और 18ए, संहिता

1973 की धारा 154 और 156 में निहित प्रावधानों के विपरीत प्रथम सूचना रिपोर्ट के पंजीकरण से पहले कोई प्रारंभिक जांच, वर्जित करती हैं। धारा 19, संहिता 1973 की धारा 360 की प्रयोज्यता को वर्जित करती है। संहिता 1973 के अन्य प्रावधानों की प्रयोज्यता को विशेष रूप से या आम तौर पर वर्जित नहीं किया गया है, इसलिए, यह हमें उचित रूप से निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित करता है कि संहिता 1973 के अन्य प्रावधान अधिनियम 1989 के तहत स्थापित और निर्दिष्ट न्यायालयों पर, इसकी धारा 20 के अधीन, लागू होंगे।

अधिनियम 1989 की धारा 20 निम्नानुसार प्रावधानित करती है:

*"**20. अधिनियम का अन्य विधियों पर अध्यारोही होना-**इस अधिनियम में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या किसी रूढ़ि या प्रथा या किसी अन्य विधि के आधार पर प्रभाव रखने वाले किसी लिखत में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे।"*

24. अधिनियम 1989 की धारा 20 के अनुसार, इस अधिनियम 1989 में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या किसी रूढ़ि या प्रथा या किसी अन्य विधि के आधार पर प्रभाव रखने वाले किसी लिखत में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे। इस प्रकार, अधिनियम 1989 और संहिता 1973 के बीच किसी भी असंगतता के अधीन, उक्त संहिता 1973 लागू होगी जब तक कि इसे अधिनियम 1989 में ही अन्यथा प्रावधानित नहीं किया गया हो। यह स्पष्ट रूप से अधिनियम 1989 की धारा 18, 18ए और 19 में संदर्भित संहिता 1973 की धारा 438 आदि की प्रयोज्यता को वर्जित करेगा। इन तीन प्रावधानों के अलावा, अधिनियम 1989 में, संहिता 1973 की प्रयोज्यता को वर्जित करने वाले कोई अन्य प्रावधान नहीं है, जो कि संहिता 1973 की धारा 156(3) सहित संहिता 1973 के अन्य प्रावधानों की अधिनियम 1989 के तहत कार्यवाही में प्रयोज्यता का भी संकेत है। संहिता 1973 की धारा 4(2) और 5 इस तर्क का समर्थन करते हैं।

25. अधिनियम 1989 की धारा 4 और नियमावली, 1995 के नियम 5 के प्रावधान न्यायालय को यह व्यवस्था स्थापित करने के लिए प्रेरित नहीं करते हैं कि उक्त प्रावधानों के परे कुछ भी नहीं कहा गया है कि विशेष रूप से अधिनियम 1989 के तहत न्यायालयों को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज और जांच करने का आदेश देने का अधिकार देता है, उक्त प्रावधानों से परे शक्ति का प्रयोग ऐसे न्यायालयों द्वारा नहीं किया जा सकता है। अधिनियम 1989 की धारा 4 या नियमावली, 1995 का नियम 5, जिन पर याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता भरोसा कर रहे हैं, उस स्थिति का जवाब नहीं देते हैं जहां संबंधित पुलिस अधिकारी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं करता है और 1995 की नियमावली के नियम 5 में दी गई शर्तों के अधीन सूचित होने के बाद भी पुलिस अधीक्षक कोई कार्यवाही नहीं करता है। यहीं पर अदालतें सामने आती हैं क्योंकि पीड़ित को उपचार विहीन नहीं छोड़ा जा सकता है। अधिनियम 1989 की धारा 4 इस स्थिति का

अनुवादित

उत्तर या समाधान नहीं देती है। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का अधिकार, अधिनियम 1989 की धारा 4 के अन्तर्गत कर्तव्य की उपेक्षा के लिए संज्ञान लेने के अधिकार से पृथक है। यह कहना कि अनन्य विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय के पास धारा 4 के अन्तर्गत कर्तव्य की उपेक्षा के संबंध में संज्ञान लेने और दंडात्मक कार्यवाही का निर्देश देने की शक्ति है लेकिन उनके पास प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने और जांच का आदेश देने की शक्ति नहीं है, अनुचित और असंगत प्रतीत होता है और यह अधिनियम 1989 के मूल उद्देश्य को विफल करता है।

26. प्रश्न यह है कि नियमावली, 1995के नियम 5(3) का अनुपालन न होने पर क्या होता है, यानी, यदि संबंधित थाना का भारसाधक अधिकारी/ एसएचओ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से इनकार करता है और उच्च अधिकारी के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया जाता है जोकि पुलिस अधीक्षक हैं, लेकिन वह भी कोई कार्रवाई नहीं करते? अधिनियम 1989 की धारा 4 के तहत कार्यवाही, जो अनन्य विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय को उक्त अधिकारियों अर्थात भारसाधक अधिकारी/ एसएचओ और अधीक्षक की ओर से प्रथम सूचना रिपोर्ट न दर्ज करने के मामले में कर्तव्य की उपेक्षा का संज्ञान लेने का अधिकार देता है, का क्या उपयोग होगा, यदि अनन्य विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय के पास ऐसी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का आदेश देने की कोई शक्ति नहीं है? अधिनियम 1989 या उसके तहत बनाए गए नियमों में अपराधों की जांच के लिए संहिता 1973 की धारा 156(3) की प्रयोज्यता को वर्जित करने संबंधी कुछ भी नहीं है।

27. आख़िर क्यों विधिनिर्माता ने संहिता 1973 के केवल कुछ प्रावधानों को विशेष रूप से अधिनियम 1989 के तहत होने वाली कार्यवाही में लागू होने से वर्जित रखा। अधिनियम 1989 में या नियमावली, 1995 में, अधिनियम 1989 के अन्तर्गत स्थापित ऐसे न्यायालयों द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रिया उपलब्ध नहीं है, इसलिए, संहिता 1973 के अनुसार, ऐसी प्रक्रिया जो कि दण्ड प्रक्रिया से संबंधित सामान्य कानून हैं, दाण्डिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले सभी न्यायालयों में अपनाई जानी चाहिए। इस संदर्भ में, हम पुनः संहिता 1973 की धारा 4(2) का उल्लेख कर सकते हैं, जिसके अनुसार किसी भी अन्य कानून के तहत सभी अपराधों का अन्वेषण, परीक्षण एवं विचारण किया जाएगा और अन्यथा उन्हीं प्रावधानों (1973 की संहिता) के अनुसार निस्तारित किया जाएगा जब तक कि लागू किसी भी अधिनियम के अधीन ऐसे अपराधों का अन्वेषण, परीक्षण, विचारण या अन्यथा निस्तारण के तरीके या स्थान को विशिष्ट रुप से विनियमित न कर दिया गया हो। हमने पहले ही देखा है कि अधिनियम 1989 या नियमावली, 1995 में, जैसा कि संहिता 1973 की धारा 156(3) में निहित प्रावधान, कुछ भी असंगत नहीं है जिसे स्पष्ट रूप से नियमावली, 1995 के नियम 5 में उल्लिखित आकस्मिकताओं की संतुष्टि के बाद लागू किया जा सकता है। नियम 5 निश्चित रूप से संहिता 1973 की धारा 154 के अनुरूप है और अधिनियम 1989 की धारा 4, उन अधिकारियों, जो कोई भी मामला दर्ज न करके कर्तव्यों के निर्वहन की उपेक्षा के लिए उत्तरदायी हैं, पर जवाबदेही तय करने का एक अतिरिक्त प्रावधान है, लेकिन, यह प्रावधान, अन्नय विशेष न्यायालय/ विशेष न्यायालय को

अनुवादित

प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने और उसकी जांच का आदेश देने की शक्ति को, संहिता 1973 की धारा 4 और 5 सहपठित अधिनियम 1989 की धारा 20 के अन्तर्गत वर्जित नहीं करेगा, जैसा कि चर्चा की गई है, जिसके दृष्टिगत संहिता की धारा 156(3) 1973 लागू होगी।

28. उपरोक्त चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, संहिता 1973 की धारा 4 एवं 5 सहपठित अधिनियम 1989 की धारा 20 के संदर्भ में, अधिनियम 1989 के अंतर्गत किसी अपराध के अन्वेषण के मामले में, संहिता 1973 की धारा 156(3) लागू होगी।

29. अब हम संहिता 1973 की धारा 156(3) और 190 पर विचार कर सकते हैं।

संहिता 1973 की धारा 190 इस प्रकार है:

*"**190. मजिस्ट्रेटों द्वारा अपराधों का संज्ञान-** (1) इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, कोई प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट और उपधारा (2) के अधीन विशेषतया सशक्त किया गया कोई द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट, किसी भी अपराध का संज्ञान निम्नलिखित दशाओं में कर सकता है :-*

(क) उन तथ्यों का, जिनसे ऐसा अपराध बनता है, परिवाद प्राप्त होने पर;

(ख) ऐसे तथ्यों के बारे में पुलिस रिपोर्ट पर;

(ग) पुलिस अधिकारी से भिन्न किसी व्यक्ति से प्राप्त इस इत्तिला पर या स्वयं अपनी इस जानकारी पर कि ऐसा अपराध किया गया है।

(2) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट किसी द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट को ऐसे अपराधों का, जिनकी जांच या विचारण करना उसकी क्षमता के अन्दर है, उपधारा (1) के अधीन संज्ञान करने के लिए सशक्त कर सकता है।"

30. इस मामले में शामिल मुद्दे पर विचार करते हुए, अब हम संहिता 1973 की धारा 156 का उल्लेख कर सकते हैं, जो इस प्रकार है:

*"**156. संज्ञेय मामलों का अन्वेषण करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति-** (1) कोई पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी ऐसे संज्ञेय मामले का अन्वेषण कर सकता है, जिसकी जांच या विचारण करने की शक्ति उस थाने की सीमाओं के अन्दर के स्थानीय क्षेत्र पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय को अध्याय 13 के उपबन्धों के अधीन है।*

(2) ऐसे किसी मामले में पुलिस अधिकारी की किसी कार्यवाही को किसी भी प्रक्रम में इस आधार पर प्रश्नगत न किया जाएगा कि वह मामला ऐसा था जिसमें ऐसा अधिकारी इस धारा के अधीन अन्वेषण करने के लिए सशक्त न था।

(3) धारा 190 के अधीन सशक्त किया गया कोई मजिस्ट्रेट पूर्वोक्त प्रकार के अन्वेषण का आदेश कर सकता है।

31. संहिता 1973 की धारा 156(3) के तहत, धारा 190 के अधीन सशक्त कोई भी मजिस्ट्रेट ऐसी जांच का आदेश दे सकता है जैसा कि यहां ऊपर उद्धृत धारा 156 में उल्लिखित है।

32. अधिनियम 1989 की धारा 14(1) के द्वितीय प्रावधान में प्रावधानित है कि इस प्रकार स्थापित या निर्दिष्ट न्यायालयों को अधिनियम 1989 के अपराधों का सीधे संज्ञान लेने की शक्ति होगी, अर्थात ऐसे न्यायालय अधिनियम 1989

अधिवक्ता

के तहत किसी अपराध का संज्ञान लेने की अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं जो कि 1973 की संहिता के अनुसार विचारण के पूर्व का चरण है और धारा 190 से संदर्भित है। 1973 की संहिता, दण्ड प्रक्रिया से संबंधित कानून को समेकित और संशोधित करने के लिए एक अधिनियम है। किसी अपराध का संज्ञान लेना उक्त संहिता की धारा 190 के अन्तर्गत प्राविधानित है। उक्त प्रावधान के अनुसार किसी भी अपराध का संज्ञान लेने की शक्ति मजिस्ट्रेट के पास निहित है। धारा 193 के अनुसार, इस संहिता या तत्समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा अन्यथा स्पष्ट रूप से प्राविधानित किए बिना, कोई भी सत्र न्यायालय मूल क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के रूप में किसी भी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं लेगा, जब तक कि उसके पास कोई मामला इस संहिता के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा सौंपा न गया हो। अधिनियम 1989 की धारा 14 के अन्तर्गत विशेष न्यायालय एक सत्र न्यायालय है। हालाँकि, धारा 14 (1) का द्वितीय प्रावधान, एक अनन्य विशेष न्यायालय या एक विशेष न्यायालय (जो कि सत्र न्यायालय है) को, अधिनियम 1989 के अन्तर्गत किसी अपराध का, प्रकरण को इसके संज्ञान लेने के बाद संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा सौंपे बिना, सीधे संज्ञान लेने की शक्ति प्रदान करता है। इसलिए संहिता 1973 की धारा 190 को आवश्यक परिवर्तनों सहित अधिनियम 1989 के तहत अनन्य विशेष न्यायालय/ विशेष न्यायालय के लिए लागू किया जाना है, जिसका तात्पर्य यह है कि उसमें मजिस्ट्रेट के संदर्भ को अधिनियम 1989 के तहत इन न्यायालयों के संदर्भ के रूप में समझा जाना चाहिए। संहिता 1973 की धारा 190 सहपठित अधिनियम 1989 की धारा 14(1) का द्वितीय प्रावधान, यह स्पष्ट करेगा कि अनन्य विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय, जो सत्र न्यायालय है, किसी अपराध का सीधे संज्ञान लेने के लिए सशक्त है, इस प्रकार, यह मूल दाण्डिक क्षेत्राधिकार के न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग कर सकता है और इस संबंध में इसका क्षेत्राधिकार, संहिता 1973 की धारा 193 के प्रावधानों से बाधित नहीं है। इस प्रकार, जैसा कि पूर्व में चर्चा की जा चुकी है, अधिनियम 1989 की धारा 14 के द्वितीय प्रावधान के दृष्टिगत मजिस्ट्रेट द्वारा संहिता 1973 की धारा 190 के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्ति अनन्य विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकती है।

33. यह तथ्य कि अधिनियम 1989 में, अनन्य विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का आदेश देने और उसमें उल्लिखित अपराध की जांच करने का अधिकार देने वाला कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है, अप्रासंगिक है, अधिनियम 1989 की धारा 14(1) का द्वितीय प्रावधान इसमें कोई संदेह नहीं छोड़ता है कि ऐसे न्यायालय मूल आपराधिक क्षेत्राधिकार का रखते हैं। अधिनियम 1989 के तहत सभी अपराधों का विचारण, अधिनियम 1989 के अन्तर्गत स्थापित ऐसे न्यायालयों द्वारा की जानी है और किसी अन्य न्यायालय के पास इस संबंध में क्षेत्राधिकार नहीं है। वे किसी अपराध का सीधे संज्ञान भी ले सकते हैं। अब, संहिता 1973 की धारा 190 के मद्देनजर किसी ऐसे अपराध का संज्ञान, किसी निजी शिकायत पर भी, लिया जा सकता है, जिसकी प्रायोज्यता को अधिनियम 1989 के तहत कार्यवाही से वर्जित नहीं किया गया है।

अनुवादित

34. हमने पहले ही व्यवस्था दी है कि संहिता 1973 की धारा 156(3), अधिनियम 1989 के तहत किसी अपराध की जांच पर लागू होगी और संहिता 1973 की धारा 156(3) के अनुसार संहिता 1973 की धारा 190 के तहत सशक्त एक मजिस्ट्रेट ऐसी जांच का आदेश दे सकता है और चूंकि, अधिनियम 1989 की धारा 14 के प्रावधानों सहपठित संहिता 1973 की धारा 190 के मद्देनजर, अधिनियम 1989 के तहत स्थापित या निर्दिष्ट न्यायालय, अधिनियम 1989 के तहत किसी अपराध के संबंध में सीधे संज्ञान ले सकते हैं, इसलिए, अधिनियम 1989 के अन्तर्गत एक मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान नहीं ले सकता और नहीं लेना चाहिए, जब कि ऐसी शक्ति विशेष रूप से अधिनियम 1989 के तहत विशेष न्यायालयों के पास निहित है, तो उत्तरवर्ती द्वारा इसका प्रयोग किया जाना चाहिए जैसा कि ***शांताबेन बुराभाई भूरिया बनाम आनंद अथाभाई चौधरी'*** , ***(2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 974*** में व्यवस्था दी गई है, इसलिए, संहिता 1973 की धारा 156(3) के अन्तर्गतइस शक्ति का प्रयोग, ऐसे अनन्य या विशेष न्यायालयों द्वारा किया जाना चाहिए, न कि मजिस्ट्रेट द्वारा।

35. यह बेहतर होता यदि विधिनिर्माता ने अनन्य विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली ऐसी शक्तियों के लिए विशेष रूप से प्रावधान किया होता, लेकिन मामले का तथ्य यह है कि संहिता 1973 की धारा 156(3) के अन्तर्गत शक्ति को, अधिनियम 1989 की धारा 14 के तहत स्थापित या निर्दिष्ट न्यायालयों द्वारा, प्रयोग किए जाना विशिष्ट रुप से वर्जित नहीं है और अधिनियम 1989 की धारा 14 के द्वितीय प्रावधान को दृष्टिगत रखते हुए कि इन न्यायालयों के पास किसी अपराध का सीधे संज्ञान लेने और साथ ही संहिता 1973 की धारा 190 के अनुसार सीधे किसी शिकायत पर विचार करने की शक्ति है, तब अधिनियम 1989 के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट के पास किसी अपराध के संबंध में धारा 190 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने की शक्ति नहीं होगी और इस शक्ति का प्रयोग केवल इन विशेष न्यायालयों द्वारा किया जाना चाहिए, हालांकि यदि किसी दिए गए मामले में मजिस्ट्रेट गलती से अधिनियम 1989 के अन्तर्गत किसी अपराध का संज्ञान ले लेता है और फिर मामले को विशेष न्यायालय को सौंप देता है, तो यह अपने आप में कार्यवाही/विचारण को दूषित नहीं करेगा जैसा कि ***शांताबेन बुराभाई भूरिया*** (उपरोक्त) और ***रामवीर उपाध्याय एवं अन्य बनाम उ.प्र.राज्य एवं अन्य,*** **(2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 484** के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने व्यवस्था दी है। संहिता 1973 की धारा 156(3) के मद्देनजर, जहां अधिनियम 1989 के अन्तर्गत अपराध आरोपित किया गया है, वहां वे भी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने और जांच करने का आदेश दे सकते हैं।

36. अधिनियम 1989 के तहत स्थापित ऐसे न्यायालयों के लिए संहिता 1973 की धारा 156(3) के अन्तर्गत निर्धारित शक्तियाँ वर्जित नहीं हैं। जब एक बार ऐसे न्यायालयों के पास किसी अपराध का संज्ञान लेने की शक्ति है, जो संहिता 1973 की धारा 190 से संदर्भित है, तब सीधे तौर पर, संहिता 1973 की धारा 156 में प्रयुक्त भाषा को दृष्टिगत रखते हुए, वे संहिता 1973 की धारा 156(3) के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अधिनियम 1989 के अन्तर्गत किसी अपराध के लिए प्रथम सूचना

अनुवादित

रिपोर्ट दर्ज करने और जांच का आदेश दे सकते हैं।

37. संहिता 1973 की धारा 156(3) के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट शब्द का यह अर्थ नहीं है कि अनन्य विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय, जो कि सत्र न्यायालय है, के पास किसी विशिष्ट वर्जना के अभाव में, प्रावधान के अन्तर्गत शक्ति उपलब्ध नहीं होगी, जबकि उक्त प्रावधान यथोचित परिवर्तनों सहित लागू होगें।

38. वास्तव में, अनन्य विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय द्वारा ऐसी शक्तियों का प्रयोग भी आवश्यक है ताकि अधिनियम 1989 के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके और पीड़ित को शीघ्र न्याय सुनिश्चित किया जा सके क्योंकि ये न्यायालय विशेष रूप से, अधिनियम 1989 के अन्तर्गत अपराधों से निपटने के लिए स्थापित या निर्दिष्ट हैं।

39. इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने हाल ही में, संहिता 1973 की धारा 482 के अन्तर्गत आवेदनों के एक समूह, जिसमें नेतृत्वकर्ता प्रकरण आवेदन अन्तर्गत धारा 482 संख्या- 14443/ 2022 ***नरेश कुमार वाल्मिकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य*** में निर्णय और आदेश दिनांक 17.10.2022 के द्वारा व्यवस्था दी है; अधिनियम 1989 के अन्तर्गत अनन्य विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय, संहिता 1973 की धारा 156(3) के अन्तर्गत आवेदन को एक शिकायत के रूप में दर्ज कर सकता है और तदनुसार आगे कार्यवाही कर सकता है ।

40. उपरोक्त चर्चा के परिप्रेक्ष्य में, विशेष न्यायालय द्वारा दिनांक 02.03.2022 को पारित आदेश बिना क्षेत्राधिकार के नहीं है। हमारा मत यह है कि अनुतोष संख्या 2 प्रदान किये जाने के योग्य नहीं है।

41. अनुतोष संख्या 3 के संबंध में, हम पाते हैं कि अधिनियम 1989 के तहत अपराध ऐसे हैं जिन्हें धारा 2 (ए) में अत्याचार के रूप में संदर्भित किया गया है, जिसे धारा 3 के तहत दंडनीय अपराध के रूप में परिभाषित किया गया है। अब, अधिनियम 1989 की धारा 3 में विभिन्न अपराधों का उल्लेख है। धारा 3(2)(ङ) में प्रावधान है कि जो कोई भी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न होते हुए किसी व्यक्ति के खिलाफ, भारतीय दंड संहिता (45/ 1860) के अन्तर्गत दस वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध करता है उसे यह जानते हुए कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति ऐसे सदस्य की है, को आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडित किया जाएगा। अब, सामूहिक बलात्कार का अपराध जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप लगाया गया है, आईपीसी की धारा 376-डी के अंतर्गत संदर्भित है और इसमें 12 साल से कम की सजा नहीं होगी, जिसे आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकता है, जिसका तात्पर्य व्यक्ति के शेष नैसर्गिक जीवन भर के लिए कारावास और जुर्माने के साथ होगा, इसलिए, स्पष्ट रूप से सामूहिक बलात्कार का अपराध अधिनियम 1989 की धारा 3(2)(ङ) के लिए संदर्भित है। धारा 506 भारतीय दंड संहिता, जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप लगाया गया है, अनुसूची सहपठित अधिनियम 1989 की धारा 3(2)(ङ) से संदर्भित है, इसलिए, ये दोनों अपराध अधिनियम 1989 से संदर्भित हैं और उक्त अधिनियम के अंतर्गत अनन्य विशेष न्यायालयों या विशेष न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत हैं।

अनुवादित

42. अधिनियम 1989 की धारा 3(2) (डक) अनुसूची, उसमें उल्लिखित आकस्मिकताओं के अधीन, निर्दिष्ट अपराध की सजा का प्रावधान करती है। ऐसे अपराधों के लिए सजा भारतीय दंड संहिता में निर्दिष्ट होगी और जुर्माना भी आरोपित किया जाएगा। इस प्रकार, यह कहना गलत है कि याचिकाकर्ता को दो प्रावधानों के तहत दंडित किया जाएगा। ऐसा नहीं होगा।

43. किसी भी प्रकरण में, रिट याचिका के आधारों (जीजी) और (एचएच) को संबंधित न्यायालय के समक्ष उचित स्तर पर उठाया/ देखा जा सकता है और अभी तक यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता को एक ही अपराध के लिए दो प्रावधान के अन्तर्गत दंडित किया जाएगा।

44. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमें अनुतोष संख्या 3 स्वीकृत करने का कोई कारण नहीं दिखता है।

45. यह सब निश्चित रूप से, लंबित जांच में या विचारण न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता के अधिकारों पर, यदि ऐसा अवसर आता है तो, प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना है।

46. उपरोक्त के अधीन, याचिका **निरस्त** की जाती है।

(2023) 2 ILRA 885

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 381/2022

डॉ. सुरेखा सक्सैना एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री कृष्णकांत विश्वकर्मा, श्री राजेश कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री दीपक कुमार श्रीवास्तव, श्री इंद्र बहादुर यादव

(ए) सिविल कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226, - हिंदू विवाह अधिनियम, धारा 9 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 44(ए) - बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट - अवैध हिरासत के विरुद्ध - अव्यस्क बालक - कॉर्पस के दादा-दादी द्वारा दायर याचिका, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट - पोषणीयता - न्यायालय ने पाया कि, हिरासत के लिए बच्चे, सामान्य उपचार में, वाद आम तौर पर वाद की तथ्यों की स्थिति के आधार पर हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम, 1956 और वार्ड अधिनियम, 1890 के प्रावधान के तहत योजित होगा - हालांकि, वर्तमान वाद के तथ्य और परिस्थितियों में, यदि मां और दादी के बीच टकराव होने पर, संतुलन निश्चित रूप से मां के पक्ष में झुक जाएगा - अपनी मां के साथ कॉर्पस की कस्टडी को किसी भी तरह से अवैध, गैरकानूनी नहीं कहा जा सकता है - आयोजित, कॉर्पस की कस्टडी के हस्तांतरण की प्रार्थना, जो प्रतिवादी संख्या 4 का आठ वर्ष का बच्चा है, उसकी दादी के पक्ष में, अस्वीकार कर दिया गया है और इनकार कर दिया गया है - हालांकि, अदालत प्रतिवादी संख्या 4 को निर्देश देती है कि याचिकाकर्ताओं को नियमित आधार पर कॉर्पस को मिलने का अधिकार प्रदान करने के लिए, तदनुसार निर्देश जारी किए गए - याचिका का निस्तारण किया गया। (पैरा-21,22,)

अनुवादित

रिट याचिका निस्तारित (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. कॉक्स बनाम हेट्स, (1890) 15 एसी 506 (एचएल),
2. बरनार्डो बनाम फोर्ड, (1862) एसी 326,
3. आर. बनाम सचिव, होम अफेयर्स के लिए सेंट की (1941) 3 सभी ईआर 104, 105,
4. कानू सान्याल बनाम डी.एम., दार्जिलिंग और अन्य, (1973) 2 एससीसी 674,
5. नित्या आनंद राघवन बनाम सेंट ऑफ एनसीटी ऑफ दिल्ली एवं अन्य। (2017) 8 एससीसी 454,
6. सैयद सलीमुद्दीन बनाम डॉ. रुखसाना और अन्य, (2001) 5 एससीसी 247,
7. तेजस्विनी गौड़ एवं अन्य बनाम शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी और अन्य, (2019) 7 एससीसी 42,
8. यशिता साहू बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, (2020) 3 एससीसी 67,
9. कानू सान्याल बनाम डी.एम., दार्जिलिंग और अन्य, (2001) 5 एससीसी 247(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा प्रदत्त)

1 याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, निजी प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना।

2. याचिकाकर्ताओं द्वारा बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट की मांग करते हुए तत्काल रिट याचिका दायर की गई है, जिसमें कहा गया है कि याचिकाकर्ता नं. 1 पत्यक्षीकरण (अंकुर) की दादी हैं जिनकी ओर से याचिका दायर की गई है।

3. पक्षों के बीच अनुरोधों का आदान-प्रदान किया गया है।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 4 याचिकाकर्ता संख्या 2 (प्रत्यक्षीकरण) की मां है। प्रत्यक्षीकरण प्रतिवादी नंबर 4 रिमझिम पत्नी अमित सक्सेना का बेटा है। यह कोष प्रतिवादी

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

संख्या 4 और उसके पति अमित सक्सेना के विवाह से उत्पन्न हुआ हैप्रत्यक्षीकरण का जन्म 24.8.2014 को सिंगापुर में अपने माता-पिता की उपस्थिति में हुआ, जिसका नाम अंकुर रखा गया। याचिकाकर्ता नंबर 1 और प्रतिवादी नंबर 4 के बेटे अमित सक्सेना की शादी अरेंज मैरिज थी, जो 30.1.2013 को तब संपन्न हुई जब यह जोड़ा हनीमून पर गया और पहले बैंकॉक और उसके बाद सिंगापुर गया जहां प्रत्यक्षीकरण का जन्म हुआ। बच्चे के जन्म के बाद, दंपति 4.10.2014 को भारत लौट आए। सिंगापुर के लिए उनका वापसी टिकट 15.11.2014 के लिए निर्धारित था, लेकिन प्रतिवादी संख्या 4 सिंगापुर की वापसी यात्रा में अपने पति के साथ नहीं गई। उसकी टिकट दो बार बढ़ाया गया लेकिन उसने याचिकाकर्ता संख्या 1 के बेटे के साथ रहने के लिए सिंगापुर वापस जाने से इनकार कर दिया और प्रत्यक्षीकरण को अपनी अभिरक्षा में रखा क्योंकि उसने अपने पति के पास जाने के लिए

अनुवादित

प्रत्यक्षीकरण के साथ सिंगापुर वापस जाने से इनकार कर दिया और इस आधार पर प्रत्यक्षीकरण की अभिरक्षा अवैध हो गई। इसके बाद पति-पत्नी के बीच रिश्ते तनावपूर्ण हो गए। प्रत्यर्थी नं. 4 का पति 24.8.2015 को भारत आया और प्रत्यर्थी संख्या 4 को प्रत्यक्षीकरण का जन्मदिन मनाने के लिए अंकुर के साथ अपने घर आने के लिये राजी किया। लेकिन उसने मना कर दिया। पति-पत्नी के बीच मामला मध्यस्थता के लिए भेजा गया। प्रत्यर्थी संख्या 4 के पति द्वारा पारिवारिक न्यायालय में विवाह विच्छेद का मुकदमा दायर किया गया था। सिंगापुर में जिसमें 28.11.2017 को विवाह विच्छेद की डिक्री पारित की गई। प्रत्यर्थी संख्या 4 के पति को मासिक आधार पर प्रत्यक्षीकरण के नियमित रखरखाव का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। पारिवारिक न्यायालय, सिंगापुर द्वारा दोनों जैविक माता-पिता के पक्ष में पत्यक्षीकरण की संयुक्त अभिरक्षा का आदेश दिया गया था। चूंकि प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा डिक्री का अनुपालन नहीं किया गया था। उसके पति ने धारा 44-ए सी.पी.सी. के तहत भारतीय न्यायालय के समक्ष एक निष्पादन याचिका दायर की। सिंगापुर अदालत द्वारा पारित डिक्री के निष्पादन की मांग। हालाँकि, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 4 उपस्थित हुए और कहा कि निष्पादन 30.7.2019 को डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दिया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 4 के भाई की शादी रजत मोवार की घटना हुई जिसमें प्रत्यर्थी क्रमांक 4 को अभिषेक चौधरी (प्रत्यर्थी संख्या 7) के साथ प्रिया चौधरी द्वारा प्रदान की गई कुछ तस्वीरों में देखा गया था, जो एस.आर.एम. संस्थान और इंजीनियरिंग कॉलेज, चेन्नई, बी.टेक/बायो-टेक पाठ्यक्रम में पढ़ाई के दौरान रिमझिम से जूनियर थी। दरअसल रिमझिम ने 1.12.2020 को लखनऊ में उक्त अभिषेक चौधरी के साथ दूसरी शादी की और 3.12.2020 को एसएस पैलेस, गोरखपुर में रिसेप्शन का आयोजन किया गया। चूंकि प्रत्यक्षीकरण की मां ने दूसरी शादी कर ली है, इसलिए उसकी जैविक मां की अभिरक्षा में प्रत्यक्षीकरण का कल्याण सुरक्षित नहीं है और प्रत्यर्थी संख्या 4 की भाभी प्रिया चौधरी ने देखा था कि प्रत्यर्थियों द्वारा प्रत्यक्षीकरण के साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है। ये तथ्य उनके द्वारा 10.9.2021 को फैमिली कोर्ट, दिल्ली के समक्ष वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के तहत दायर एक याचिका में बताए गए हैं। इस तथ्य के बावजूद कि प्रत्यक्षीकरण के पिता सिंगापुर न्यायालय के आदेश के अनुसार रखरखाव के लिए लगभग 16,500/- रुपये का भुगतान कर रहे हैं। हालांकि, प्रत्यर्थियों द्वारा प्रत्यक्षीकरण को उचित तरीके से शिक्षित नहीं किया जा रहा है और उसे कानपुर के निम्न स्तर के स्कूल में प्रवेश दिया गया है। प्रतिवादी संख्या 4 और उसके पति के बीच तनावपूर्ण संबंधों के कारण, प्रत्यक्षीकरण की उज्ज्वल भविष्य खतरे में है और प्रत्यक्षीकरण की अभिरक्षा के अभाव में, उसकी दादी, जो उच्च शिक्षित और साधन संपन्न वृद्ध महिला है, उसकी ओर मदद का हाथ बढ़ाने में असमर्थ है। प्रत्यक्षीकरण अपने दादा-दादी को पहचानने में भी असमर्थ है और प्रत्यर्थियों के कहने पर वह अपने दादा-दादी के प्यार और स्नेह से वंचित है। मृतक की उम्र करीब 8 साल है और उसकी उम्र को ध्यान में रखते हुए उसे जैविक मां के संरक्षण की सख्त जरूरत नहीं है। याचिकाकर्ता नं. 1 उसकी दादी है और उसे

अनुवादित

अस्वीकरणःअनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

अपनी अभिरक्षा में लेने और उसकी शैक्षिक और अन्य जरूरतों का ख्याल रखने के लिए शारीरिक रूप से स्वस्थ और आर्थिक रूप से सक्षम है, इसलिए यह प्रार्थना की जाती है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश राज्य-प्रतिवादियों को निर्देशित करते हुए जारी किया जाए। प्रत्यक्षीकरण को निजी प्रत्यर्थियों से मुक्त करने और उसे याचिकाकर्ता संख्या 1 की अभिरक्षा में सौंपने के लिए, कोष के कल्याण के सर्वोपरि विचार को ध्यान में रखते हुए।

5. दूसरी ओर, याचिका में की गई प्रार्थना का निजी प्रत्यर्थियों द्वारा जोरदार विरोध किया गया है और प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 4, जो प्रत्यक्षीकरण की मां है, ने अभिषेक चौधरी यानी प्रत्यर्थी संख्या 7 के साथ कभी दूसरी शादी नहीं की है। जो उसका परिचित मित्र है न कि उसका दूसरा पति। प्रत्यर्थी नं. 4 ने आज तक प्रत्यर्थी संख्या 7 से विवाह करने का निर्णय नहीं लिया है। या कोई भी व्यक्ति, प्रत्यर्थी नं. 4 प्रत्यक्षीकरण की मां होने के नाते वह उसकी प्राकृतिक संरक्षक है और अपने बेटे की पूरी देखभाल करने में सक्षम है। याचिकाकर्ता क्रमांक १ के पति डॉ. अशोक कुमार सक्सेना ने उसे परेशान करने की दृष्टि से प्रत्यर्थी संख्या 4 के खिलाफ एस.एस.पी, आगरा के समक्ष झूठी शिकायत दर्ज की है। प्रत्यक्षीकरण अपनी मां, जो कि कानपुर में सम्मानित शिक्षिका हैं, के मार्गदर्शन में अपनी सह-पाठ्यचर्या संबंधी गतिविधियों में बहुत अच्छा प्रदर्शन कर रहा है। प्रत्यक्षीकरण निजी प्रत्यर्थियों की अवैध अभिरक्षा में नहीं है। आगे यह भी कहा गया है कि प्रत्यक्षीकरण के माता- पिता का विवाह 30.1.2013 को हुआ था। प्रत्यर्थी नं. 4 मल्टी नेशनल कंपनी में काम करता था. उस समय उसे याचिकाकर्ता संख्या 1 और उसके पति ने अतिरिक्त दहेज की मांग द्वारा परेशान किया गया था। जब जोड़े शादी के बाद सिंगापुर में थे, तो प्रत्यर्थी नं. 4 पता चला कि उसका पति किसी अन्य महिला के साथ संबंध में था और जब उसने इस बारे में चिंता जताई तो उसके पति ने उसका शारीरिक शोषण किया। याचिकाकर्ता नं. 1 ने सिंगापुर का भी दौरा किया और प्रत्यर्थी संख्या 4 के साथ शारीरिक दुर्व्यवहार किया और उसे धमकी दी। शादी के बाद से ही उसके सास-ससुर और उसके पति द्वारा उसे लगातार प्रताड़ित किया जाता था, जिसके कारण वह अपने पति के साथ रहने के लिए मजबूर थी और वर्तमान में वह अपने पैतृक स्थान कानपुर में रह रही है। प्रत्यक्षीकरण कानपुर में अपने स्कूल में शैक्षणिक और अन्य गतिविधियों में अच्छी प्रगति कर रहा है। इन तथ्यों को जवाबी हलफनामे में विस्तार से बताया गया है।

6. निजी प्रत्यर्थियों के लिए विद्वान अधिवक्ता और विद्वान ए.जी.ए. ने प्रस्तुत किया कि चूंकि प्रत्यक्षीकरण उसकी मां की अभिरक्षा में है, इसलिए इसे अवैध अभिरक्षा नहीं कहा जा सकता है और याचिकाकर्ता नंबर 1 का अपनी मां से उसकी अभिरक्षा के हस्तांतरण के लिए प्रत्यक्षीकरण की दादी होने का दावा निराधार है और बिना किसी कानूनी औचित्य के है। बच्चे के साथ याचिकाकर्ता संख्या 1 की स्थिति और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वह आगरा में

अनुवादित

रह रही है, तथ्यों और परिस्थितियों में प्रत्यक्षीकरण के मुलाक़ात अधिकारों के लिए याचिकाकर्ता नंबर 1 की वैकल्पिक प्रार्थना भी उसे दी जाने के लिए उत्तरदायी नहीं है। उस स्थान से दूर है जहां कॉर्पस निवास कर रहा है। याचिकाकर्ता संख्या 1 को मुलाकात का अधिकार दिए जाने पर भी नाबालिग का कल्याण खतरे में पड़ सकता है। उसकी, बच्चे की मां के साथ बहुत गहरी दुश्मनी है

अस्वीकरणःअनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

7. बंदी प्रत्यक्षीकरण "एड सबजिसिएन्डम" का अर्थ है "आपके पास प्रस्तुत करने या जवाब देने के लिए शरीर है" जिसे फेस्टिनम रेमेडियम कहा जाता है एक त्वरित उपाय, जिसे इस तत्काल मामले में याचिकाकर्ता द्वारा मांगा गया है।

8. बंदी प्रत्यक्षीकरण का लैटिन में अर्थ है "शशरीर उपस्थित हो एवं उत्तर दे" है। रिट को कानूनी ग्रंथों में पूर्ण रूप से बंदी प्रत्यक्षीकरण फेस्टियम रेमिडियम या अधिक दुर्लभ रूप से फेस्टियम रेमिडियम और प्राप्तकर्ता के रूप में संदर्भित किया जाता है। इसे कभी-कभी "महान रिट" के रूप में वर्णित किया जाता है। इसे कानून के तहत उपलब्ध सबसे शीघ्र उपाय माना जाता है।

9. बंदी प्रत्यक्षीकरण शब्द का अर्थ है "आपके पास शरीर होना ही चाहिए"। हेल्सबरी ने अपने लॉज ऑफ़ इंग्लैंड, चौथे संस्करण में इस प्रकार कहा है:-

"बंदी प्रत्यक्षीकरण और अधीनता का रिट, जिसे आमतौर पर बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट के रूप में जाना जाता है, गैरकानूनी या अनुचित अभिरक्षा से तत्काल रिहाई का एक प्रभावी साधन प्रदान करके विषय की स्वतंत्रता को सुरक्षित करने के लिए एक विशेषाधिकार प्राप्त प्रक्रिया है, चाहे वह जेल में हो या निजी अभिरक्षा में हो। यह एक विशेषाधिकार रिट है जिसके द्वारा रानी को उन कानूनों की जांच करने का अधिकार है जिसके लिए उसकी कोई भी प्रजा अपनी स्वतंत्रता से वंचित है।"

10. प्रत्यक्षीकरण ज्यूरिस सेकुंडम में, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट की प्रकृति को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है:"बंदी प्रत्यक्षीकरण का रिट दूसरे को अभिरक्षा में लेने वाले व्यक्ति को निर्देशित एक रिट है, जो उसे कैदी को शशरीर को उसके कैप्शन और अभिरक्षा के दिन और कारण के साथ एक निर्दिष्ट समय और स्थान पर पेश करने, प्रस्तुत करने और जो कुछ भी प्राप्त करने का आदेश देता है रिट देने वाली अदालत या न्यायाधीश उस संबंध में विचार करेगा। 'बंदी प्रत्यक्षीकरण' का शाब्दिक अर्थ है "शशरीर उपस्थित करना"। इस रिट के द्वारा, अदालत यह सुनिश्चित करने के लिए हिरासत में लिए गए व्यक्ति के शशरीर को उसके समक्ष लाने का निर्देश दे सकती है। चाहे हिरासत वैध हो या अवैध। एंग्लो-सैक्सन न्यायशास्त्र में रिट की यही प्रमुख स्थिति है।"

11. कॉक्स बनाम हेट्स, (1890) 15 एसी 506 में लॉर्ड हैल्सबरी एलसी ने माना कि 'मौजूदा कारावास की वैधता के तत्काल निर्धारण का अधिकार इस रिट द्वारा उपलब्ध कराया गया महत्वपूर्ण अधिकार है।

अनुवादित

12. इसी तरह बरनार्डो बनाम फोर्ड, (1862) एसी 326 में, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट को अधिकार की रिट के रूप में वर्णित किया गया है जिसे पूर्व डेबिटो जस्टिटिया प्रदान किया जाना है। यद्यपि यह अधिकार का रिट है, यह निःसंदेह रिट नहीं है। आवेदक को प्रथम दृष्टया अपनी गैरकानूनी हिरासत का मामला दिखाना होगा। हालाँकि, एक बार जब वह ऐसा कोई मामला दिखाता है और रिटर्न अच्छा और पर्याप्त नहीं होता है, तो वह अधिकार के रूप में इस रिट का हकदार है।

अस्वीकरणःअनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

13. आर. बनाम सचिव गृह राज्य मामलों के विभाग (1941) 3 सभी ईआर 104, 105, यह माना गया है कि यदि कोई अवैध रोक नहीं है तो कोई व्यक्ति बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका पर रिहा होने का हकदार नहीं है। "बंदी प्रत्यक्षीकरण अदालत के लिए सवाल यह है कि क्या विषय को कानूनी रूप से हिरासत में लिया गया है। यदि वह है, तो रिट जारी नहीं की जा सकती है, यदि वह नहीं है, तो इसे जारी किया जाना चाहिए।"

14. इसी तरह कॉक्स बनाम हेक्स, (1890) 15 एसी 506 (एचएल) में, यह माना गया है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के द्वार गैरकानूनी हिरासत से तत्काल रिहाई का एक प्रभावी साधन है, चाहे जेल में हो या निजी हिरासत में हिरासत में रखने के लिए शारीरिक कारावास आवश्यक नहीं है। नियंत्रण और अभिरक्षा पर्याप्त है.

15. कानू सान्याल बनाम जिला मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग और अन्य, (1973) 2 एससीसी 674 के मामले में सुप्रीम कोर्ट की एक संविधान पीठ के फैसले ने बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के इतिहास, प्रकृति और दायरे का पता लगाया। यह माननीय न्यायाधीश महोदय द्वारा माना गया है कि यह अति प्राचीन पुरातनता का एक लेख है जिसके पहले धागे "इतिहास के निर्बाध जाल के भीतर गहराई से बुने गए हैं और अनगिनत घटनाओं के बीच अप्राप्य हैं जो एंग्लो-सैक्सन न्यायशास्त्र के कुल ऐतिहासिक पैटर्न का गठन करते हैं"। उनके आधिपत्य ने आगे कहा कि इस रिट का प्राथमिक उद्देश्य आवेदक की स्वतंत्रता के अधिकार का तत्काल निर्धारण है और यही इसका सार और इसका अंत है। उनके आधिपत्य ने बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट की प्रकृति और दायरे को इस प्रकार समझायाः

"बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट अनिवार्य रूप से एक प्रक्रियात्मक रिट है। यह न्याय की मशीनरी से संबंधित है, न कि मूल कानून से। रिट का उद्देश्य उस व्यक्ति की रिहाई सुनिश्चित करना है जिसने अवैध रूप से अपनी स्वतंत्रता पर रोक लगा दी है। रिट, नहीं है संदेह, एक ऐसे व्यक्ति को संबोधित एक आदेश, जिस पर आरोप है कि उसने किसी अन्य व्यक्ति को गैरकानूनी तरीके से अपनी हिरासत में रखा है, जिससे उसे ऐसे व्यक्ति के शरीर को अदालत के सामने लाने की आवश्यकता होती है, लेकिन हिरासत में लिए गए व्यक्ति के शरीर का उत्पादन अदालत के सामने लाने के लिए निर्देशित किया जाता है। उसकी हिरासत की जांच की जा सकती है, या इसे अलग

अनुवादित

ढंग से कहें तो, "ताकि कथित गैरकानूनी रोक की न्यायिक जांच पर उचित निर्णय दिया जा सके। लेकिन रिट मुख्य रूप से किसी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता पर शीघ्र और प्रभावी तरीके से रोक लगाने के लिए डिज़ाइन की गई है। उसकी हिरासत की वैधता की जांच करने और निर्धारित करने के लिए उपाय और यदि हिरासत गैरकानूनी पाई जाती है, तो खुद को इस तरह के प्रतिबंध से मुक्त कर दिया जाए। रिट का सबसे विशिष्ट तत्व इसकी अनिवार्यता है। पूरी प्रक्रिया का आवश्यक और अग्रणी सिद्धांत आवेदक की स्वतंत्रता और उसकी रिहाई के अधिकार का तत्काल निर्धारण है, यदि हिरासत गैरकानूनी पाई जाती है। यही रिट का प्राथमिक उद्देश्य है, यही इसका सार और अंत है। गलत तरीके से हिरासत में लिए गए कथित व्यक्ति के शरीर का उत्पादन रिट के इस मुख्य उद्देश्य के लिए सहायक है। यह केवल उस लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन है जो अवैध रूप से हिरासत में लिए गए विषय की स्वतंत्रता को सुरक्षित करना है।"

अस्वीकरणःअनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

16. अतः उपरोक्त उद्धृत न्यायिक उदाहरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण जारी किये जाने योग्य नहीं है। निस्संदेह, यह एक अधिकार रिट है, यह कोई रिट नहीं है और आवेदक को अपनी गैरकानूनी हिरासत का प्रथम दृष्टया मामला दिखाना होगा। रिट केवल स्पष्ट और निर्दिष्ट आधार स्थापित करने पर ही जारी की जा सकती है जो कानूनी रूप से मान्य हों। बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति, जो कानूनी औचित्य के बिना कैद में है, अपने कारावास से रिहाई सुनिश्चित कर सकता है। रिट, रूप में, उच्च न्यायालय द्वारा जारी किया गया एक आदेश है जिसमें उस व्यक्ति को बुलाया जाता है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को कारावास में रखे जाने का आरोप लगाया जाता है कि वह ऐसे व्यक्ति को अदालत के सामने लाए और अदालत को बताए कि किस आधार पर उस व्यक्ति को कैद किया गया है। यदि याचिकाकर्ता अदालत को यह समझाने में सफल हो जाता है कि हिरासत में रखने का कोई कानूनी औचित्य नहीं है, तो व्यक्ति को रिहा करने का आदेश दिया जाएगा, हालांकि, गैरकानूनी तरीके से हिरासत में लिए गए कथित व्यक्ति के शरीर (प्रत्यक्षीकरण) को प्रस्तुत करना अंतिम सुनवाई से पहले आवश्यक नहीं है और बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने के लिए एक याचिका का निस्तारण आवश्यक है।

17. नित्या आनंद राघवन बनाम दिल्ली एनसीटी राज्य और अन्य (2017) 8 एससीसी 454, यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा देखा गया है:

"44. वर्तमान अपील एक नाबालिग बच्चे की पेशी और अभिरक्षा के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट की मांग करने वाली याचिका से उत्पन्न हुई है। इस न्यायालय ने कानू सान्याल बनाम जिला मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग और अन्य, (2001) 5 एससीसी 247 में फैसला सुनाया है बंदी प्रत्यक्षीकरण अनिवार्य रूप से न्याय की मशीनरी से संबंधित एक प्रक्रियात्मक रिट था। रिट का अंतर्निहित उद्देश्य उस व्यक्ति की रिहाई सुनिश्चित करना था जो अवैध रूप से अपनी

अनुवादित

स्वतंत्रता से वंचित है। बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट उस व्यक्ति को संबोधित एक आदेश है जिस पर आरोप लगाया गया है किसी अन्य को गैरकानूनी हिरासत में रखने के लिए, उसे ऐसे व्यक्ति के शरीर को अदालत के समक्ष पेश करने की आवश्यकता होती है। अदालत के समक्ष व्यक्ति को पेश करने पर, अदालत द्वारा उन परिस्थितियों की जांच की जा सकती है जिनमें संबंधित व्यक्ति को हिरासत में लिया गया है और कथित गैरकानूनी अवरोध की उचित जांच पर उचित दिशा- निर्देश पारित करें जो उचित और न्यायपूर्ण समझा जा सकता है। ऐसी कार्यवाही में उच्च न्यायालय व्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के तत्काल निर्धारण और हिरासत के गैरकानूनी पाए जाने पर उसकी रिहाई के लिए जांच करता है।

45. एक नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा के संबंध में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने की याचिका में, सैयद सलीमुद्दीन बनाम डॉ. रुखसाना और अन्य, (2001) 5 एससीसी 247 में इस न्यायालय ने माना है कि मुख्य कर्तव्य न्यायालय को यह सुनिश्चित करना है कि क्या बच्चे की अभिरक्षा गैरकानूनी है और क्या बच्चे के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि उसकी वर्तमान अभिरक्षा को बदल दिया जाए और बच्चे को किसी अन्य व्यक्ति की देखभाल और अभिरक्षा में सौंप दिया जाए। ऐसा करते समय सर्वोपरि विचार बच्चे के कल्याण के बारे में होना चाहिए। श्रीमती एलिजाबेथ (उपरोक्त) के मामले में, यह माना जाता है कि ऐसे मामलों में मामले का निर्णय पार्टियों के कानूनी अधिकारों के संदर्भ में नहीं किया जाना चाहिए,

अस्वीकरणःअनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

बल्कि एकमात्र और प्रमुख मानदंड पर किया जाना चाहिए जो हितों और कल्याण की सर्वोत्तम सेवा करेगा। नाबालिग की अभिरक्षा के मामलों की जांच में उच्च न्यायालय की भूमिका माता-पिता के अधिकार क्षेत्र के सिद्धांत की कसौटी पर है, क्योंकि नाबालिग न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में है (पॉल मोहिंदर गहुन बनाम दिल्ली एनसीटी राज्य और अन्य देखें), (2004) 113 दिल्ली लॉ टाइम 823, अपीलकर्ता द्वारा भरोसा किया गया)। इस प्रस्ताव पर अधिकारियों को उनके अनुपात में विभाजित करना आवश्यक नहीं है।

47. जैसा कि ऊपर कहा गया है, बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में, उच्च न्यायालय को इस बात की जांच करनी चाहिए कि क्या नाबालिग किसी अन्य व्यक्ति (रिट याचिका में नामित निजी प्रत्यर्थी) की कानूनी या गैरकानूनी अभिरक्षा में है। उस मुद्दे पर विचार करने के लिए, वर्तमान मामले जैसे मामले में, यह नोट करना पर्याप्त है कि निजी प्रत्यर्थी कोई और नहीं बल्कि नाबालिग की प्राकृतिक अभिभावक थी जो उसकी जैविक मां थी। एक बार जब यह तथ्य सुनिश्चित हो जाता है, तो यह माना जा सकता है कि नाबालिग की उसकी मां के पास अभिरक्षा वैध है। ऐसे मामले में, केवल असाधारण स्थिति में ही रिट के तहत नाबालिग (बालिका) की अभिरक्षा उसकी मां के क्षेत्राधिकार को छीनकर पति (बच्चे के पिता) सहित किसी अन्य व्यक्ति को देने का आदेश दिया जा सकता है।। इसके बजाय, दूसरे

अनुवादित

माता-पिता को बच्चे की कस्टडी पाने के लिए एक ठोस निर्धारित उपाय का सहारा लेने के लिए कहा जा सकता है।"

18. आगे, में सईद सलीम्मुद्दीन बनाम डा. रुखसाना एवं अन्य, (2001) 5 Scc 247, यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है:

"11. उपरोक्त मामलों में निर्धारित सिद्धांतों से यह स्पष्ट है कि नाबालिग बच्चों की अभिरक्षा के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण की मांग करने वाले एक आवेदन में न्यायालय के लिए मुख्य विचार यह सुनिश्चित करना है कि क्या बच्चों की अभिरक्षा के बारे में कहा जा सकता है अनियमित या गैरकानूनी और क्या बच्चों के कल्याण के लिए आवश्यक है कि वर्तमान अभिरक्षा को बदल दिया जाए और बच्चों को किसी और की देखभाल और अभिरक्षा में छोड़ दिया जाए। सिद्धांत अच्छी तरह से स्थापित है कि एक बच्चे की अभिरक्षा के मामले में बच्चे का कल्याण होता है यह न्यायालय के लिए सर्वोपरि विचारणीय है। दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय के फैसले से यह नहीं पता चलता है कि न्यायालय ने इन महत्वपूर्ण और प्रासंगिक प्रश्नों पर कोई ध्यान दिया है। उच्च न्यायालय ने इस बात पर विचार नहीं किया है कि बच्चों की कस्टडी उनके पिता के पास रह सकती है या नहीं। तथ्यों और परिस्थितियों में, इसे गैरकानूनी कहा जा सकता है। न्यायालय ने इस सवाल पर भी ध्यान नहीं दिया है कि क्या बच्चों के कल्याण के लिए उन्हें उनके पिता की अभिरक्षा से निकालकर उनकी मां की देखभाल में छोड़ दिया जाना चाहिए। हालाँकि, श्री एम.एन. द्वारा दी गई उचित रियायत को देखते हुए हमारे लिए इस प्रश्न पर आगे विचार करना आवश्यक नहीं है। राव की पीठ से कहा कि अपीलकर्ता को कोई आपत्ति नहीं है यदि बच्चे मां की अभिरक्षा में रहते हैं और पिता को उनसे मिलने का अधिकार है, जैसा कि उच्च न्यायालय के फैसले में कहा गया है, जब तक कि पारिवारिक न्यायालय अभिरक्षा के लिए अपीलकर्ता द्वारा दायर याचिका का निपटारा नहीं कर देता। उसके बच्चों का।"

19. निजी प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तेजस्विनी गौड़ और अन्य बनाम शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी और अन्य, (2019) 7 एससीसी 42, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया। जहां यह माना गया कि बंदी

अनुवादित

अस्वीकरणःअनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

प्रत्यक्षीकरण की याचिका कायम रहेगी जहां माता-पिता या अन्य लोगों द्वारा अभिरक्षा को अवैध और कानून के किसी भी अधिकार के बिना और विशेषाधिकार रिट के असाधारण उपाय के बिना पाया जाता है। बंदी प्रत्यक्षीकरण का लाभ असाधारण मामलों में लिया जा सकता है जहां कानून द्वारा प्रदान किया गया सामान्य उपाय या तो अनुपलब्ध है या अप्रभावी है। इस फैसले में शीर्ष न्यायालय की प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:-

"14. बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट किसी अवैध या किसी से तत्काल रिहाई के प्रभावी साधन प्रदान करके विषय की अनुचित हिरासत से स्वतंत्रता को सुरक्षित करने की एक विशेषाधिकार प्रक्रिया है। रिट गलत तरीके से वंचित किए जाने पर किसी नाबालिग की अभिरक्षा उसके अभिभावक को बहाल करने के लिए भी अपना प्रभाव बढ़ाती है।

किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा नाबालिग की अभिरक्षा, जो उसकी कानूनी अभिरक्षा का हकदार नहीं है, को नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा का निर्देश देने के लिए रिट देने के उद्देश्य से अवैध अभिरक्षा के बराबर माना जाता है। किसी ऐसे व्यक्ति से नाबालिग की अभिरक्षा की बहाली के लिए, जो व्यक्तिगत कानून के अनुसार, उसका कानूनी या प्राकृतिक अभिभावक नहीं है, उपयुक्त मामलों में, रिट अदालत के पास अधिकार क्षेत्र है।

19. बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही अभिरक्षा की वैधता को उचित ठहराने या उसकी जांच करने के लिए नहीं है। बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से बच्चे की अभिरक्षा को अदालत के विवेक पर निर्भर किया जाता है। बंदी प्रत्यक्षीकरण एक विशेषाधिकार रिट है जो एक असाधारण उपाय है और रिट तब जारी की जाती है जहां विशेष मामले की परिस्थितियों में, कानून द्वारा प्रदान किया गया सामान्य उपाय या तो उपलब्ध नहीं है या अप्रभावी है; अन्यथा रिट जारी नहीं की जायेगी। बच्चों की अभिरक्षा के मामलों में, रिट देने में उच्च न्यायालय की शक्ति केवल उन मामलों में योग्य है जहां किसी नाबालिग को ऐसे व्यक्ति द्वारा अभिरक्षा में रखा जाता है जो उसकी कानूनी अभिरक्षा का हकदार नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा विचाराधीन मुद्दे पर फैसले के मद्देनजर, हमारे विचार में, बच्चों की अभिरक्षा के मामलों में, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट कायम रखने योग्य है, जहां यह साबित हो जाता है कि माता-पिता द्वारा नाबालिग बच्चे को अभिरक्षा में रखा गया है या अन्य अवैध और कानून के किसी भी अधिकार के बिना था।

20. बच्चों की अभिरक्षा के मामलों में, सामान्य उपचार केवल हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम या संरक्षक और वार्ड अधिनियम, जैसा भी मामला हो, के तहत निहित है। संरक्षक और वार्ड अधिनियम के तहत कार्यवाही से उत्पन्न होने वाले मामलों में, अदालत का क्षेत्राधिकार इस बात से निर्धारित होता है कि क्या नाबालिग आमतौर पर उस क्षेत्र में रहता है जिस पर अदालत ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती है। संरक्षक और वार्ड अधिनियम के तहत जांच और रिट अदालत द्वारा शक्तियों के प्रयोग के बीच महत्वपूर्ण अंतर हैं जो संक्षेप प्रकृति का है। जो महत्वपूर्ण है वह है बच्चे का कल्याण। रिट कोर्ट में अधिकारों का निर्धारण शपथ पत्र के आधार पर ही किया जाता है। जहां अदालत का मानना है कि विस्तृत जांच की आवश्यकता है, अदालत असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर सकती है और पार्टियों को सिविल अदालत से संपर्क करने का निर्देश दे सकती है। यह केवल असाधारण मामलों में है, बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका पर असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में नाबालिग की अभिरक्षा के पक्षों के अधिकार निर्धारित किए जाएंगे।"

अस्वीकरणःअनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

20. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने याचिका में दिए गए कथनों और उद्धृत किए गए बयानों के समर्थन में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है। यशिता साहू बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, (2020) 3 एससीसी 67, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय

ने नाबालिग बच्चे के एक अंतर्देशीय अभिरक्षा मामले में, जहां पत्नी अपने नाबालिग बच्चे को अमेरिकी अदालत के आदेश का उल्लंघन करते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका से भारत ले आई, यह माना गया कि बच्चे की अभिरक्षा को सख्ती से कानूनी नहीं कहा जा सकता है। हालाँकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की राय में, उच्च न्यायालय अपीलकर्ता पत्नी को संयुक्त राज्य अमेरिका जाने का निर्देश नहीं दे सकता था। पत्नी एक वयस्क है और कोई भी अदालत उसे उस स्थान पर रहने के लिए बाध्य नहीं कर सकती जहाँ वह नहीं रहना चाहती। बच्चे की कस्टडीअभिरक्षा एक अलग मुद्दा है, लेकिन यहां तक कि किसी बच्चे की अभिरक्षा के मुद्दे पर निर्णय लेते समय, वयस्क पति या पत्नी को रिट अधिकार क्षेत्र में दूसरे तनावग्रस्त पति या पत्नी के साथ जाने और रहने के लिए कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है।

बच्चों का कल्याण सर्वोपरि है

बच्चे की अभिरक्षा के मामलों पर निर्णय लेते समय, प्राथमिक और सर्वोपरि विचार बच्चे का कल्याण है। यदि बच्चे के कल्याण की मांग है तो तकनीकी आपत्तियां आड़े नहीं आ सकतीं। हालाँकि, बच्चे के कल्याण का निर्णय लेते समय, केवल एक पति या पत्नी के विचार को ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए। अदालतों को अभिरक्षा के मुद्दे पर केवल इस आधार पर निर्णय लेना चाहिए कि बच्चे के सर्वोत्तम हित में क्या है।

(पैरा 20)

अभिरक्षा की लड़ाई में बच्चा पीड़ित होता है। दो पति-पत्नी के बीच अहंकार की इस लड़ाई और बढ़ती तीखी लड़ाइयों और मुकदमों में, हमारा अनुभव बताता है कि अक्सर, माता-पिता जो अन्यथा अपने बच्चे से प्यार करते हैं, ऐसी तस्वीर पेश करते हैं जैसे कि दूसरा पति या पत्नी खलनायक है और केवल वह ही इसका हकदार है। बच्चे की अभिरक्षा में. इसलिए अदालत को पति-पत्नी में से प्रत्येक द्वारा कही गई बातों पर बहुत अलग-अलग विचार करना चाहिए।

(पैरा 21)

एक बच्चे, विशेष रूप से कम उम्र के बच्चे को माता-पिता दोनों के प्यार, स्नेह, साथ और सुरक्षा की आवश्यकता होती है। यह न केवल बच्चे की आवश्यकता है बल्कि उसका बुनियादी मानवाधिकार है। सिर्फ इसलिए कि माता-पिता एक-दूसरे के साथ युद्ध में हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चे को देखभाल, स्नेह, प्यार या सुरक्षा से वंचित किया जाना चाहिए।

दो माता-पिता में से कोई एक। बच्चा कोई निर्जीव वस्तु नहीं है जिसे एक माता-पिता से दूसरे माता-पिता की ओर फेंका जा सके। प्रत्येक अलगाव, प्रत्येक पुनर्मिलन का बच्चे पर दर्दनाक और मनोदैहिक प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि अदालत यह निर्णय लेने से पहले प्रत्येक परिस्थिति पर बहुत सावधानी से विचार करे कि बच्चे की अभिरक्षा को माता-पिता दोनों के बीच कैसे और किस तरीके से साझा किया जाना चाहिए। भले ही अभिरक्षा एक माता-पिता को दी गई हो, दूसरे माता-पिता के पास यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त मुलाकात के अधिकार होने चाहिए कि बच्चा दूसरे माता-पिता के साथ संपर्क में रहे और दोनों माता-पिता में से किसी एक के साथ सामाजिक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक संपर्क न खोए। केवल विषम परिस्थितियों में ही माता-पिता में से किसी एक को बच्चे से संपर्क करने से मना

अनुवादित

अस्वीकरणःअनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

किया जाना चाहिए। यदि माता-पिता में से किसी एक को बच्चे से मिलने या उससे संपर्क करने के अधिकार से वंचित किया जाना है तो कारण बताए जाने चाहिए। अभिरक्षा के मामलों से निपटने वाली अदालतों को अभिरक्षा के मुद्दों पर निर्णय लेते समय मुलाक़ात अधिकारों की प्रकृति, तरीके और विशिष्टताओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए। मुलाक़ात अधिकारों की अवधारणा भारत में पूरी तरह से विकसित नहीं है। अधिकांश अदालतें एक पति या पत्नी को अभिरक्षा प्रदान करते समय दूसरे पति या पत्नी को मुलाकात का अधिकार देने वाला कोई आदेश पारित नहीं करती हैं। जैसा कि पहले देखा गया है, एक बच्चे को माता-पिता दोनों का प्यार और स्नेह पाने का मानवाधिकार है और अदालतों को यह सुनिश्चित करने के लिए आदेश पारित करना चाहिए कि बच्चा अपने माता-पिता में से किसी एक के प्यार, स्नेह और साथ से पूरी तरह वंचित न हो।

(पैरा 22 और 23)

आम तौर पर, यदि माता-पिता एक ही शहर या क्षेत्र में रह रहे हैं, तो जिस पति या पत्नी को अभिरक्षा नहीं दी गई है, उन्हें केवल सप्ताहांत पर मुलाकात का अधिकार दिया जाता है। यदि पति-पत्नी एक- दूसरे से दूर रह रहे हैं, तो बार-बार ब्रेक लेकर बच्चे की शिक्षा में बाधा उत्पन्न करना संभव नहीं होगा या बच्चे के हित में नहीं होगा, ऐसे मामलों में मुलाकात का अधिकार लंबे सप्ताहांत, अवकाश और छुट्टियाँ तक दिया जाना चाहिए। वर्तमान जैसे मामलों में जहां माता-पिता दो अलग-अलग महाद्वीपों में हैं, उन माता-पिता को अधिकतम मुलाक़ात का अधिकार देने का प्रयास किया जाना चाहिए जिन्हें अभिरक्षा से वंचित किया गया है।

(24 के लिए)

21. उपरोक्त उद्धृत न्यायिक उदाहरणों पर विचार करने पर, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता नं. 1 ने प्रथम दृष्टया यह मामला सफलतापूर्वक स्थापित कर लिया है कि उसकी मां के पास जमा राशि को रोके रखना अवैध या गैरकानूनी है और कानूनी स्थिति यह है कि केवल निकटता तथ्य की स्थापना पर कि प्रत्यर्थी के हाथ में जमा राशि को रोकना गैरकानूनी है, आवेदक हकदार हो जाएगा बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट अधिकांश मामलों में नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा के लिए दायर की जाती है। अदालत के लिए मुख्य विचार यह सुनिश्चित करना होगा कि क्या बच्चे की अभिरक्षा को गैरकानूनी, अनियमित कहा जा सकता है और क्या बच्चे को किसी और की देखभाल और अभिरक्षा में सौंपा जाना चाहिए। बंदी प्रत्यक्षीकरण का विशेषाधिकार रिट, असाधारण उपाय की प्रकृति में है और रिट तब जारी की जाती है, जहां किसी विशेष मामले की परिस्थितियों में, कानून के तहत प्रदान किया गया सामान्य उपाय या तो उपलब्ध नहीं है या अप्रभावी है। यह स्पष्ट है कि बच्चे की अभिरक्षा के मामलों में उपचार आम तौर पर मामले की तथ्यों की स्थिति के आधार पर हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम, 1956 और वार्ड अधिनियम, 1890 के प्रावधानों के तहत होगा।

22. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, इस न्यायालय की सुविचारित राय में यदि माँ (प्रत्यर्थी संख्या 4) और दादी (याचिकाकर्ता संख्या

1) के बीच संतुलन बनाना है, तो संतुलन निश्चित रूप से किसके पक्ष में झुकेगा माँ, जो प्रत्यर्थी संख्या 4 है। हालाँकि, मुझे यह गलत नहीं समझा जा सकता है कि दादी नाबालिग की उचित देखभाल नहीं कर सकती है, जो उसका पोता है, इसलिए उसकी मां के पास जमा राशि की कस्टडी किसी भी तरह से गैरकानूनी, अवैध और बच्चे की नहीं कही जा सकती है। हमेशा उसकी माँ की अभिरक्षा में रहा है और किसी भी समय याचिकाकर्ता संख्या 1 की अभिरक्षा में नहीं था।, इसलिए, प्रत्यक्षीकरण की मां से उसकी दादी को अभिरक्षा के हस्तांतरण का कोई मामला नहीं बनता है।

अस्वीकरणःअनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

हालाँकि, तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता में और दादी की अपने पोते से मिलने और स्नान करने की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए उनके प्रति उनके प्यार और स्नेह को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और इस तथ्य के संबंध में मानवीय हाथ से निपटा जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता संख्या 1 और प्रत्यर्थी नं. 4 द्वारा आरोप और प्रत्यारोप लगाए गए हैं। वर्तमान याचिका में एक दूसरे और बच्चे के पिता के खिलाफ की तस्वीर कुछ अलग है। इस प्रकार, यद्यपि याचिकाकर्ता संख्या 1 की प्रार्थना प्रत्यर्थियों के खिलाफ बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने और प्रत्यक्षीकरण की अभिरक्षा के हस्तांतरण के लिए, जो प्रत्यर्थी संख्या 4 का आठ वर्षीय बच्चा है और उसके पति ने, अपनी दादी के पक्ष में, ऊपर उल्लिखित चर्चा के आधार पर इस न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया। मेरी सुविचारित राय में, याचिकाकर्ता नं. 1 के पास बच्चे (याचिकाकर्ता संख्या 2) पर मुलाकात का अधिकार होगा। हालाँकि, यह न्यायालय प्रत्यर्थी संख्या 4 को निर्देशित करता है। याचिकाकर्ता संख्या 1 को प्रत्यक्षीकरण को पूरा करने का अधिकार प्रदान करने के लिए जो उसकी दादी है, नियमित आधार पर, अधिमानतः महीने में एक बार, बच्चे की सुविधा के अधीन, छुट्टी पर, प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा पूर्व व्यवस्था के साथ, याचिकाकर्ता संख्या 1 के साथ टेलीफोनिक परामर्श के माध्यम से, जो उसकी सास है, प्रत्यर्थी संख्या 4 की पसंद के स्थान पर प्रत्येक दिन की बैठक की अवधि में एक बार में तीन से छह घंटे की अवधि शामिल हो सकती है, हालांकि, यदि बच्चे की परीक्षाएं चल रही हैं या कार्ड पर हैं तो एक महीने में बैठक स्थगित की जा सकती है। बैठक की निगरानी प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा की जा सकती है।

23. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, याचिका का अंततः निस्तारित किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 894

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दिनांक: इलाहाबाद 25.06.2021

सिविल पक्ष

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी,

विशेष अपील (डी) संख्या 27/ 2021

उत्तर प्रदेश राज्य

...अपीलकर्ता

बनाम

मैसर्स एस.जे.पी. इन्फ्रा. लिमिटेड और अन्य

अनुवादित

...विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री संजय गोस्वामी

अधिवक्ता विपक्षी: सुश्री श्रेया गुप्ता, श्री रवि आनंद अग्रवाल, श्री रामेंद्र प्रताप सिंह, श्री शशि नंदन (सीनियर एडवोकेट)

ए. राजस्व/कर कानून - स्टाम्प शुल्क की वापसी - स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची 1-बी: अनुच्छेद 23(ए), 35(बी) - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 3(एए), 49(डी)(1)) (2) और (5); भारत के संविधान: सातवीं अनुसूची: सूची III (समवर्ती सूची) की प्रविष्टि 44 - कानूनी स्थिति है:

(i) स्टाम्प अधिनियम एक कर आरोपित करने वाला क़ानून है;

(ii) कर निर्धारण कानूनों में समानता और कठिनाई प्रासंगिक नहीं हैं, किसी को इस्तेमाल किए गए शब्दों/भाषा को सख्ती से देखना होगा और कर संबंधी क़ानून के प्रावधानों की व्याख्या करते समय आशय की खोज या कोई अनुमान के लिए कोई स्थान नहीं है;

(iii) आरोपण में अस्पष्टता के वाद में प्रावधानों के अनुसार, लाभ आवश्यक रूप से विषय/निर्धारिती के पक्ष में जाना चाहिए, लेकिन छूट प्रावधान में अस्पष्टता के मामले में, अस्पष्टता के लाभ की व्याख्या राजस्व/राज्य के पक्ष में सख्ती से की जानी चाहिए। हालांकि, यदि, एक सख्त निर्माण द्वारा छूट खंड, अस्पष्टता का समाधान हो जाता है और विषय छूट खंड के अंतर्गत आता है तो छूट खंड को पूर्ण रूप देने के लिए एक उदार निर्माण किया जा सकता है। (पैरा 12)

बी. रिट याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान किया गया स्टांप शुल्क आरोपण अनुभाग के अनुसार पट्टा विलेख पर देय से अधिक नहीं था। निकाले गए चार्जिंग प्रावधान को पढ़ने से प्रतीत होता है कि स्टांप शुल्क पट्टा विलेख में निर्धारित प्रीमियम या अग्रिम के मूल्य के अनुसार देय है। दोनों पक्षों के मध्य इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि पट्टा विलेख पर भुगतान किया गया स्टांप शुल्क पट्टा विलेख में निर्धारित प्रीमियम के मूल्य के अनुसार है। महत्वपूर्ण बात यह है कि संशोधन विलेख, दिनांक 7 फरवरी 2013, जिसे अभिलेख पर लाया गया है, हालांकि पट्टे पर दी गई भूमि के क्षेत्र को कम करता है, इसके अलावा देय प्रीमियम में कमी के संबंध में कोई संकेत नहीं देता है। बल्कि, सुधार विलेख, एक घोषणा करने के पश्चात पट्टे पर दी गई भूमि के क्षेत्र में कमी की घोषणा करते हुए कहा गया है कि "इसके बाद मूल पट्टा विलेख दिनांक 15.11.2010 को संशोधित/संशोधित करने के अलावा, जो विधिवत उप-रजिस्ट्रार गौतमबुद्ध नगर के कार्यालय में 16.11.2010 बही नंबर 1 में पंजीकृत किया गया था, क्रमांक 23383 पर गिल्ड नंबर 77 से 110 तक प्लॉट नंबर, स्थान और सीमाएं समान रहेंगी।" एक बार यह स्थिति हो जाने पर, सुधार विलेख के साथ पढ़े गए पट्टा विलेख पर भुगतान स्टांप शुल्क स्टांप अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार था, और यह अधिक भुगतान नहीं किया गया था, विशेषकर, जब, चार्जिंग प्रावधान के अनुसार, स्टांप शुल्क पट्टा विलेख में निर्धारित प्रीमियम के मूल्य पर देय है। **इन परिस्थितियों में, भले ही बाद के पत्र द्वारा जीएनआईडीए ने प्रीमियम कम कर दिया हो, जैसा कि प्रथम प्रतिवादी का वाद में है, देय स्टांप शुल्क पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि यह पट्टा विलेख में**

अनुवादित

निर्धारित प्रीमियम पर होगा, जो अपरिवर्तित रहा। (पैरा 8(i), 13, 15)

C. **सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार कानूनी सिद्धांत इस प्रकार** हैं:

(i) **जहां लिखत उस उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त हो जाता है जिसके लिए इसे निष्पादित किया गया था, दावेदार स्टाम्प अधिनियम की धारा 50(3) सपठित धारा 49(डी)(2) के तहत रिफंड की मांग कर सकते हैं;**

(ii) जहां एक लिखत न्यायालय के आदेश के तहत निष्पादित किया जाता है और न्यायालय के आदेश से लिखत को भुगतान किए गए स्टांप शुल्क की वापसी की मांग करने की स्वतंत्रता के साथ रद्द कर दिया जाता है, सीमा के तकनीकी आधार पर धन वापसी के लाभ से इनकार नहीं किया जा सकता है। क्योंकि न्यायालय का कोई भी कार्य किसी पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला नहीं है; और

(iii) जहां धारा 50(3) सपठित धारा 49(डी)(2) के तहत स्टांप शुल्क की वापसी का वाद लाया जा सकता है, एक व्याख्या जो न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाती है और समानता के सिद्धांत पर आधारित है, उसे प्राथमिकता प्रदान करनी चाहिए । (पैरा 25)

डी. भत्ते के लिए प्रथम प्रतिवादी का दावा (स्टांप शुल्क की वापसी जो उसने भूमि के उस हिस्से के पट्टे के लिए भुगतान किया था जिसे उसे आत्मसमर्पण करना था) न तो उप-खंड (1) और न ही उप-खंड (2) या स्टाम्प अधिनियम की धारा 49 के खंड (डी) का उप-खंड (5) के अंतर्गत स्थिर रहने योग्य है। जब हम प्रस्तुत प्रावधान को समग्र रूप से पढ़ते हैं, तो ध्यान देने योग्य बात यह है कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 49 के खंड (डी) के उप-खंड (2) के तहत उपलब्ध भत्ता एक उपकरण को निष्पादित करने के लिए खराब किए गए प्रभावित टिकटों के लिए है जो बाद में मूल रूप से इच्छित उद्देश्य के लिए उसमें किसी भी त्रुटि या त्रुटि के कारण अयोग्य पाया गया है। **सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 13(2) के आधार पर, एकवचन में बहुवचन सम्मिलित होगा, और इसके विपरीत, इसलिए खंड (डी) में प्रयुक्त स्टांप शब्द में स्टांप शामिल होंगे। क्या किसी उपकरण को निष्पादित करने के लिए खराब किए गए स्टांप के किसी हिस्से के लिए भत्ता स्वीकार्य होगा जो आंशिक रूप से विफल हो जाता है, अर्थात क्या भत्ते का दावा केवल खराब हिस्से के लिए किया जा सकता है, यह एक मुद्दा है जिसे विशेष रूप से स्टाम्प अधिनियम की धारा 49 (d) के प्रावधानों द्वारा संबोधित नहीं किया गया है।**

स्टाम्प अधिनियम के प्रावधान, कम से कम वे जो हमारे सामने प्रस्तुत किए गए हैं, वे ऐसी किसी घटना के लिए मौन हैं। **स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों में स्पष्टता के अभाव में किसी भत्ते की स्वीकार्यता जहां उपकरण आंशिक रूप से विफल हो जाता है, भत्ते के दावे को सामान्य कानूनी सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए अपास्त करना होगा कि छूट प्रावधान में अस्पष्टता के वाद में, अस्पष्टता के लाभ का राजस्व/राज्य के पक्ष में सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए।** हालांकि, एक भत्ते को, सख्ती से, छूट के बराबर नहीं किया जा सकता है, लेकिन एक भत्ते की

अनुवादित

व्याख्या के लिए व्याख्या के सख्त नियम को यह पता लगाने के लिए सीमा पर लागू करना होगा कि क्या विषय इसके दायरे में आता है या नहीं क्योंकि प्रारंभिक भत्ते के लिए मामला बनाने का बोझ उस विषय पर है जो भत्ता चाहता है। धारा 49(डी) स्टाम्पों की लूट के लिए छूट पर विचार नहीं करती है, जहां अधिकारों और देनदारियों को समाहित करने वाला एक समग्र उपकरण केवल आंशिक रूप से विफल होता है और शेष भाग के लिए अच्छा होता है। अन्यथा भी, सरल तर्क पर, कई प्रभावित टिकटों को खराब करके निष्पादित एक उपकरण को अच्छे से बुरे हिस्से को अलग करने के लिए विच्छेदित नहीं किया जा सकता है, ताकि अच्छे का उपयोग संभव हो सके। वर्तमान वाद में, पट्टा विलेख का एक हिस्सा क्रियाशील रहा, इसलिए यह लिखत मूल रूप से इच्छित उद्देश्य में विफल नहीं हुआ। (पैरा 8(ii), 12, 28)

ई. कर मामलों में समानता की सीमित भूमिका होती है। अन्यायपूर्ण संवर्धन का सिद्धांत न्यायसंगत सिद्धांतों पर आधारित है और अनुबंध अधिनियम की धारा 65 और 72 में इसे वैधानिक मान्यता प्राप्त है। चूंकि कर कानून की अनुमति के साथ एक संप्रभु द्वारा धन की अनिवार्य वसूली है और प्रदान की गई या प्रदान की जाने वाली सेवाओं के लिए भुगतान नहीं है, राजकोषीय क़ानून के तहत भुगतान किए गए कर या शुल्क का रिफंड तब तक नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि कर्तव्य भुगतान देय नहीं पाया गया। भुगतान किया गया स्टाम्प शुल्क लिखत की अवधि के अनुसार था, इसलिए, राज्य का कोई अन्यायपूर्ण संवर्धन नहीं हुआ क्योंकि भुगतान किया गया स्टाम्प शुल्क स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार था। इसमें कोई संदेह नहीं है, स्टाम्प अधिनियम भत्ते का प्रावधान करता है, लेकिन, जैसा कि पहले ही ऊपर कहा जा चुका है, रिट याचिकाकर्ता का वाद उन भत्तों के दायरे में नहीं आता है। (पैरा 8(iii), 29)

एफ. एक रिट न्यायालय को आम तौर पर किसी आदेश को अपास्त नहीं करना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप एक अवैध आदेश को पुनर्जीवित करना या अवैधता को कायम रखना होगा। स्टाम्प अधिनियम (अर्थात धारा 49 (डी)) के प्रावधानों के तहत भत्ते का दावा टिकाऊ नहीं था, संयुक्त सचिव के आदेश का अनुपालन करने के निर्देश के साथ प्रमुख सचिव के आदेश को रद्द करना, अवैधता को कायम रखना होगा। यद्यपि प्रधान सचिव का आदेश वास्तव में संयुक्त सचिव द्वारा पारित पूर्व आदेश की समीक्षा थी और इसलिए, उचित नहीं था, लेकिन, संयुक्त सचिव का आदेश दिनांक 28.2.2019 विधिक दृष्टि से सही नहीं था और इसलिए, इसका अनुपालन सुनिश्चित करने का निर्देश 'अवैधता' को कायम रखने की एक कवायद होगी। इसलिए संयुक्त सचिव के आदेश के अनुपालन के लिए कोई निर्देश जारी नहीं किया जाना चाहिए था। (पैरा 8(iv), 8(v), 30)

वर्तमान वाद में, भत्ते के लिए कवायद प्रमुख सचिव के समक्ष रिट याचिकाकर्ता द्वारा दायर एक आवेदन पर प्रारंभ हुई। जब यह एक आदेश में परिणित नहीं हुआ, तो एक रिट याचिका दायर की गई जिसमें दावे पर निर्णय लेने का निर्देश जारी किया गया। जिसके क्रम में जब आवेदन दिया गया तो रिट याचिकाकर्ता को सूचना प्राप्त हुई कि वाद निर्णित हो चुका है और प्रमुख सचिव

अनुवादित

द्वारा दावा खारिज कर दिया गया है। दावे की अस्वीकृति को चुनौती देते हुए एक नवीन रिट याचिका दायर की गई, जिसे स्वीकार कर लिया गया और संयुक्त सचिव को नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। इसके बाद संयुक्त सचिव ने दिनांक 28.2.2019 को आदेश पारित किया। दिनांक 28.5.2019 को प्रमुख सचिव ने विपरीत आदेश पारित कर दिया। दिलचस्प बात यह है कि दिनांक 28.5.2019 का आदेश संयुक्त सचिव के दिनांक 28.2.2019 के आदेश पर ध्यान नहीं देता है। हमें ऐसा लगता है कि चूंकि, पहले, न्यायालय का निर्देश प्रमुख सचिव को था, इसलिए उन्होंने सद्भावनापूर्वक दिनांक 28.5.2019 का आदेश पारित किया होगा। लेकिन चूंकि इस बीच संयुक्त सचिव ने पहले ही 28.2.2019 को आदेश पारित कर दिया था, इस न्यायालय के बाद के आदेश के अनुसार, प्रमुख सचिव का आदेश अनुचित था क्योंकि **विद्वान एकल न्यायाधीश ने इसे सही ठहराया था।** यदि प्रधान सचिव अकेले आदेश पारित करने में सक्षम थे, तो राज्य के लिए उचित कदम आदेश में स्पष्टीकरण/सुधार की मांग करते हुए एक सुधार या स्पष्टीकरण आवेदन दायर करना था। (पैरा 30)

इस स्तर पर, यह अवलोकन पर्याप्त होगा कि चूंकि जीएनआईडीए द्वारा स्टांप शुल्क एकत्र नहीं किया गया था, इसलिए इसके विरुद्ध स्टांप शुल्क की वापसी का दावा टिकाऊ नहीं होगा। लेकिन क्या जीएनआईडीए क्षति/नुकसान के लिए उत्तरदायी है, यह प्रश्न कानून के अनुसार उचित मंच के समक्ष उचित कार्यवाही में उचित चरण में उठाने के लिए प्रथम प्रतिवादी के लिए खुला छोड़ दिया गया है। (पैरा 8(vi),31)

विशेष अपील स्वीकार की गयी। (ई 4)

<u>विधिव्यवस्था अनुसरित:</u>

1. एस.एन. माथुर बनाम राजस्व मंडल एवं अन्य, (2009) 13 एससीसी 301 (पैरा 6(i))

2. मो. मुस्तफा अली खान बनाम राज राजेश्वरी देवी, एआईआर 1959 इलाहाबाद 583 (एसबी) (पैरा 6(ii))

3. बिक्री कर आयुक्त, उ.प्र. बनाम मोदी शुगर मिल्स लिमिटेड, एआईआर 1961 सुप्रीम कोर्ट 1047 (पैरा 6(iii))

4. आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य बनाम पी. लक्ष्मी देवी (श्रीमती), (2008) 4 एससीसी 720 (पैरा (6)

5. सीआईटी बनाम वी.एम.आर.पी. फर्म मुआर, एआईआर 1965 एससी 1216 (पैरा 9)

6. गोविंद सरन गंगा सरन बनाम सीएसटी, 1985 सपोर्ट एससीसी 205 (पैरा 10)

7. सीमा शुल्क आयुक्त (आयात), मुंबई बनाम दिलीप कुमार एंड कंपनी, (2018) 9 एससीसी 1 (पैरा 11)

8. मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी, राजस्व बोर्ड, मद्रास बनाम बी.पी. ईश्वरन एवं अन्य, एआईआर 1970 मद्रास 349 (एफबी) (पैरा 20)

<u>विधिव्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

1. समिति GIFL बनाम लिब्रा बिल्डटेक प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य, (2015) 16 एससीसी 31 (पैरा 2(iv))

2. आईटीसी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2011) 7 एससीसी 493 (पैरा 6(iv))

अनुवादित

विशेष अपील प्रस्तुतकर्ता ने माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 01.12.2020 के विरुद्ध योजित की है।

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्र द्वारा प्रदत्त)

1. यह अंतः-न्यायालय अपील एकल न्यायाधीश के दिनांक 01.12.2020 के निर्णय और आदेश से उत्पन्न हुई है, जो रिट-सी संख्या 17744 वर्ष 2020 में प्रथम प्रत्यर्थी की रिट याचिका को स्वीकार करते हुए पारित किया गया था।

अपील के उद्गम के तथ्य

2. इस अपील से उत्पन्न होने वाले तथ्यों का संक्षिप्त विवरण इस अपील में शामिल मुद्दों की स्पष्ट समझ के लिए उपयुक्त होगा। ये तथ्य निम्नानुसार हैं:

2(i) प्रथम प्रत्यर्थी, अर्थात रिट याचिकाकर्ता, जो आवास परियोजनाओं के विकास और विपणन के व्यवसाय में संलग्न एक कंपनी है, जिसमें भूखंड आदि शामिल हैं, को द्वितीय प्रत्यर्थी (ग्रेटर नोएडा औद्योगिक विकास प्राधिकरण - जीएनआईडीए) द्वारा 198135.62 वर्ग मीटर का एक भूखंड आवंटन पत्र दिनांक 30.08.2010 के माध्यम से आवंटित किया गया था। तदनुसार, एक पट्टा विलेख, दिनांक 15.11.2010 को निष्पादित और 16.11.2010 को पंजीकृत किया गया था, जिसके तहत भूखंड संख्या जीएच-05, सेक्टर 16-बी, ग्रेटर नोएडा, क्षेत्रफल 198135.62 वर्ग मीटर, जीएनआईडीए द्वारा 90 वर्षों की अवधि के लिए प्रथम प्रत्यर्थी को ₹228,94,57,090 (दो सौ अट्ठाईस करोड़ चौरानवे लाख सत्तावन हजार नब्बे मात्र) के प्रीमियम पर, प्रथम 10 वर्षों के लिए प्रीमियम का 1% वार्षिक किराए के साथ, जो प्रत्येक 10 वर्षों के बाद 50% बढ़ाया जा सकता है, पट्टे पर दिया गया था। पट्टा विलेख पर प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा ₹12,70,64,900/- (बारह करोड़ सत्तर लाख चौंसठ हजार नौ सौ मात्र) की स्टांप शुल्क का भुगतान किया गया था। बाद में, 26.07.2011 को, जीएनआईडीए ने एक पत्र जारी किया, जिसके बाद 29.07.2011 को एक और पत्र जारी किया, जिसमें प्रथम प्रत्यर्थी को पट्टे की गई भूमि के 71833.62 वर्ग मीटर क्षेत्र का कब्जा सौंपने की आवश्यकता थी, यह कहते हुए कि जीएनआईडीए के पक्ष में की गई उस भूमि के हिस्से के अधिग्रहण को उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 12.05.2011 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था, जिसे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 06.07.2011 के आदेश द्वारा बरकरार रखा गया था। परिणामस्वरूप, प्रथम प्रत्यर्थी को 71833.62 वर्ग मीटर भूमि का कब्जा सौंपना पड़ा और इसके साक्ष्य में, एक शुद्धि विलेख, दिनांक 07.02.2013 को निष्पादित किया गया था, जिसके तहत पट्टे का क्षेत्र (अर्थात 198135.62 वर्ग मीटर) 71833.62 वर्ग मीटर घटाकर 126302 वर्ग मीटर कर दिया गया था।

2(ii) पट्टे के क्षेत्र में कमी होने पर, प्रथम प्रत्यर्थी, जिसने स्टांप शुल्क वहन किया था, ने प्रधान सचिव, स्टांप एवं राजस्व, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ (संक्षेप में प्रधान सचिव) को स्टांप शुल्क की उस राशि की वापसी के लिए अभ्यावेदन किया, जो उस क्षेत्र से संबंधित था जिसे प्रथम प्रत्यर्थी को सौंपना पड़ा था। यह अभ्यावेदन भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 (संक्षेप में स्टांप अधिनियम) की धारा 49(घ) (1) (2) और (5) के प्रावधानों का आह्वान करते हुए किया गया था।

अशुद्धमाहित

मैं इस कानूनी पाठ को हिंदी में अनुवाद करने का प्रयास करूंगा। यहां हिंदी में कानूनी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत है:

2(iii) जब उक्त अभ्यावेदन पर कोई निर्णय नहीं लिया गया, तो प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा रिट-सी संख्या 3183 वर्ष 2018 दायर की गई, जिसमें राज्य प्राधिकारियों को अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का निर्देश देने की मांग की गई थी। इस याचिका का निस्तारण दिनांक 24.01.2018 के आदेश द्वारा किया गया, जिसमें प्रमुख सचिव को मामले की जांच करने और एक निर्दिष्ट अवधि के भीतर विधि के अनुसार निर्णय लेने का निर्देश दिया गया था। परंतु, इससे पहले कि प्रथम प्रत्यर्थी इस न्यायालय के दिनांक 24.01.2018 के आदेश (उपरोक्त) की तामील कर पाता, दिनांक 08.02.2018 के पत्र द्वारा प्रथम प्रत्यर्थी को सूचित किया गया कि दिनांक 14.08.2017 के आदेश द्वारा उसके धन-वापसी के दावे को पहले ही खारिज कर दिया गया है।

2(iv) दिनांक 14.08.2017 के आदेश से, जैसा कि दिनांक 08.02.2018 के पत्र द्वारा संप्रेषित किया गया था, व्यथित होकर, प्रथम प्रत्यर्थी ने उच्चतम न्यायालय के **द कमेटी जीएफआईएल बनाम लिब्रा बिल्डटेक प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, (2015) 16 एससीसी 31,** मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा करते हुए, रिट-सी संख्या 16639 वर्ष 2018 दायर की। इस याचिका पर, रिट न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि **लिब्रा बिल्डटेक मामले (उपरोक्त)** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के प्रकाश में एक नए सिरे से विचार की आवश्यकता थी। तदनुसार, दिनांक 28.05.2018 के आदेश द्वारा, रिट-सी संख्या 16639 वर्ष 2018 को स्वीकार किया गया और संयुक्त सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को मामले पर नए सिरे से निर्णय लेने का निर्देश दिया गया।

2(v) रिट न्यायालय के दिनांक 28.05.2018 के आदेश (उपरोक्त) के अनुसरण में, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा संयुक्त सचिव, स्टांप एवं पंजीकरण, अनुभाग-2, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ (संक्षेप में संयुक्त सचिव) के समक्ष दिनांक 09.08.2018 को एक नया अभ्यावेदन प्रस्तुत किया गया। जिसकी प्राप्ति पर, संयुक्त सचिव (उपरोक्त) ने दिनांक 28.02.2019 के आदेश द्वारा, यह ध्यान में रखते हुए कि उच्च न्यायालय के निर्णय के कारण प्रथम प्रत्यर्थी को पट्टे पर दी गई भूमि का क्षेत्रफल कम हो गया था, यह दृष्टिकोण अपनाया कि प्रथम प्रत्यर्थी उसके द्वारा भुगतान किए गए अतिरिक्त स्टांप शुल्क की वापसी का हकदार है। तदनुसार, उन्होंने उस सीमा तक स्टांप शुल्क की वापसी का निर्देश दिया, जिस सीमा तक यह उस भूमि के पट्टे के लिए भुगतान किया गया था जिसे प्रथम प्रत्यर्थी को अपने पट्टेदाता (जीएनआईडीए) के स्वामित्व के नुकसान के परिणामस्वरूप सौंपना पड़ा था। यह वापसी, हालांकि, वापसी योग्य राशि के 10% की कटौती के अधीन थी। लेकिन इससे पहले कि संयुक्त सचिव के इस आदेश को लागू किया जा सकता, दिनांक 28.05.2019 को प्रधान सचिव ने एक और आदेश पारित किया, जिसमें यह माना गया कि **लिब्रा बिल्डटेक मामले (उपरोक्त)** में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि का सिद्धांत राज्य के विरुद्ध दावे को बनाए रखने के लिए लागू नहीं होगा और चूंकि वापसी का दावा खराब हो चुके स्टांपों के संबंध में स्वीकार्य छूट के दायरे में नहीं था, राज्य को स्टांप शुल्क की वापसी के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, हालांकि प्रथम प्रत्यर्थी के लिए जीएनआईडीए के विरुद्ध

अनुवादित

दावा करने का विकल्प खुला था।. 2(vi) दिनांक 28.05.2019 के आदेश पर कार्रवाई करते हुए, प्रथम प्रत्यर्थी ने जीएनआईडीए को धन-वापसी के लिए एक अभ्यावेदन दिया। लेकिन इस पर कोई निर्णय लिए जाने से पहले, प्रथम प्रत्यर्थी ने इस न्यायालय की एकल न्यायाधीश पीठ के समक्ष रिट-सी संख्या 17744 वर्ष 2020 दायर की। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 01.12.2020 द्वारा रिट याचिका को स्वीकार किया, दिनांक 28.05.2019 के आदेश को निरस्त किया, राज्य पर ₹25,000/- का खर्च लगाया, और राज्य को अपने पूर्व आदेश दिनांक 28.02.2019 का पालन करने का निर्देश दिया। इससे व्यथित होकर, राज्य द्वारा यह अंतः-न्यायालय अपील दायर की गई है।

3. हमने अपीलार्थी के लिए श्री संजय गोस्वामी, अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता; और प्रथम प्रत्यर्थी के लिए श्री शशि नंदन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिन्हें श्री रवि आनंद अग्रवाल ने सहायता प्रदान की, को सुना है।

4. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा हमारे समक्ष किए गए निवेदनों पर विचार करने से पहले, आक्षेपित निर्णय में विद्वान एकल न्यायाधीश के तर्क पर ध्यान देना उपयोगी होगा। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष, राज्य (यहां अपीलार्थी) की ओर से यह तर्क दिया गया था: कि खराब हो चुके स्टांपों के लिए छूट केवल तभी स्वीकार्य है जब कोई मामला स्टांप अधिनियम के अध्याय V के प्रावधानों के दायरे में आता हो; कि अध्याय V के प्रावधान, विशेष रूप से स्टांप अधिनियम की धारा 49 (घ) (1) और (2), जिन पर रिट याचिकाकर्ता (यहां प्रथम प्रत्यर्थी) ने अपना दावा आधारित किया था, मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते थे क्योंकि मूल पट्टा विलेख न तो आरंभ से पूरी तरह से शून्य था और न ही मूल रूप से इच्छित उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त था, क्योंकि यह 126302 वर्ग मीटर के कम क्षेत्र के लिए प्रचालनीय रहा; और कि, अन्यथा भी, छूट स्टांप नियमों के अधीन हैं जिनके तहत यह आवश्यक है कि खराब हो चुके स्टांपों को पृष्ठांकन के लिए प्रस्तुत किया जाए, जबकि, यहां, पट्टा विलेख का मुद्रित स्टांप न तो प्रस्तुत किया गया था और न ही पृष्ठांकन के लिए प्रस्तुत किया जा सकता था, क्योंकि पट्टा कम क्षेत्र के लिए होने के बावजूद प्रचालन में रहा। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि एक बार जब प्रथम प्रत्यर्थी को पट्टे पर दी गई 71833.62 वर्ग मीटर भूमि की सीमा तक अधिग्रहण कार्यवाही न्यायिक आदेश के तहत रद्द हो गई, तो उस सीमा तक पट्टा विलेख शून्य हो गया और, इसलिए, उस सीमा तक स्टांप शुल्क की वापसी का मामला बन गया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी दृष्टिकोण अपनाया कि चूंकि राज्य सरकार ने, अपने संयुक्त सचिव के माध्यम से, इस न्यायालय के दिनांक 28.05.2018 के निर्देश के अनुपालन में, दिनांक 28.02.2019 के आदेश द्वारा पहले ही धन-वापसी का निर्णय ले लिया था, राज्य के प्रधान सचिव के स्तर पर पुनर्विचार की कोई गुंजाइश नहीं थी। अन्यथा भी, यह राज्य था जिसने स्टांप शुल्क एकत्र किया था, इसलिए रिट याचिकाकर्ता को जीएनआईडीए के विरुद्ध दावा करने की कोई छूट नहीं दी जा सकती थी। परिणामस्वरूप, विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को स्वीकार किया, दिनांक 28.05.2019 के आदेश को निरस्त किया और राज्य सरकार को एक

अनुवादित

निर्दिष्ट अवधि के भीतर अपने पूर्व आदेश दिनांक 28.02.2019 को लागू करने का निर्देश दिया।

अपीलार्थी (उत्तर प्रदेश राज्य) की ओर से प्रस्तुतियां

5. राज्य (अपीलार्थी) की ओर से उपस्थित श्री संजय गोस्वामी ने निवेदन किया कि स्टाम्प अधिनियम एक कर कानून है। कर कानून होने के नाते, न्यायसंगत विचार पृष्ठभूमि में चले जाते हैं। जो विचारणीय है वह यह है कि क्या दस्तावेज पर लगाया गया स्टाम्प शुल्क वैध है। यदि हां, तो क्या स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों के तहत प्रथम प्रतिवादी को स्टाम्प शुल्क की वापसी हो सकती है। उनके अनुसार, स्टाम्प अधिनियम की धारा 3 के द्वारा अनुसूची में निर्दिष्ट दर पर दस्तावेज पर स्टाम्प शुल्क प्रभार्य है। उत्तर प्रदेश राज्य में, स्टाम्प अधिनियम की धारा 3 (एए) के माध्यम से, पट्टे के दस्तावेज पर प्रभार्य स्टाम्प शुल्क अनुसूची 1-बी के अनुच्छेद 35 में निर्दिष्ट है। स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची I-बी का अनुच्छेद 35 (बी) लागू होता है जहां पट्टा जुर्माने या प्रीमियम या अग्रिम धन के लिए दिया जाता है और जहां कोई किराया आरक्षित नहीं है; और अनुसूची I-बी का अनुच्छेद 35 (सी) लागू होता है जहां पट्टा जुर्माने या प्रीमियम या अग्रिम धन के लिए आरक्षित किराए के अतिरिक्त दिया जाता है। अनुसूची 1-बी के अनुच्छेद 35 (बी) या अनुच्छेद 35 (सी) के तहत विचारित दस्तावेजों पर, स्टाम्प शुल्क अनुसूची 1-बी के अनुच्छेद 23 (ए) के तहत हस्तांतरण विलेख पर देय होता है, या तो पट्टे में निर्धारित प्रीमियम पर या पट्टे के विषय के बाजार मूल्य पर। जीएनआईडीए और प्रथम प्रतिवादी के बीच मूल पट्टा दस्तावेज दिनांक 15.11.2010 में प्रीमियम रु. 228,94,57,090/- निर्दिष्ट किया गया था और तदनुसार स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया गया था। जीएनआईडीए और प्रथम प्रतिवादी के बीच दिनांक 07.02.2013 का सुधार विलेख यद्यपि पट्टे पर दी गई क्षेत्र को 198135.62 वर्ग मीटर से घटाकर 126302 वर्ग मीटर करता है, लेकिन मूल पट्टा दस्तावेज में निर्धारित प्रीमियम में संशोधन नहीं करता है। इस प्रकार, कोई अतिरिक्त स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया गया है। अन्यथा भी, रिट याचिकाकर्ता (यहां प्रथम प्रतिवादी) द्वारा दिनांक 15.11.2010 के पट्टा दस्तावेज या दिनांक 07.02.2013 के सुधार विलेख पर लगाए गए स्टाम्प शुल्क की सत्यता को चुनौती नहीं दी गई है। इन परिस्थितियों में, अतिरिक्त भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क की वापसी का दावा अनुचित है। जहां तक कथित खराब स्टाम्पों के संबंध में भत्ते के दावे का संबंध है, वह स्वीकार्य नहीं है क्योंकि ऐसे भत्तों से संबंधित प्रावधान लागू नहीं होते हैं। उनके अनुसार, स्टाम्प अधिनियम की धारा 49 (डी) (1) और (2) के प्रावधान लागू नहीं होते हैं क्योंकि पट्टा दस्तावेज शुरुआत से पूरी तरह से अमान्य नहीं है और न ही यह मूल रूप से इच्छित उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त हो गया है क्योंकि इसके द्वारा किया गया हस्तांतरण कम क्षेत्र के लिए भी लागू रहता है। उन्होंने कहा कि उच्चतम न्यायालय का **लिब्रा बिल्डटेक मामले (उपरोक्त)** का निर्णय इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है क्योंकि वह एक ऐसा मामला था जहां स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य दस्तावेज न्यायालय के आदेश के तहत निष्पादित किया गया था और न्यायालय के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था। इस प्रकार, वहां दस्तावेज मूल रूप से इच्छित उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त हो गया था। जबकि

यहां पट्टा दस्तावेज कार्यशील रहता है। उन्होंने कहा कि यदि यह मान भी लिया जाए कि प्रधान सचिव के पास समीक्षा करने की शक्ति नहीं थी, तो संयुक्त सचिव द्वारा पारित पूर्व आदेश स्पष्ट रूप से अवैध था और, इसलिए, रिट न्यायालय को उस आदेश को लागू करने का निर्देश नहीं देना चाहिए था जिसका कानून में कोई महत्व नहीं था। इस प्रकार, उन्होंने प्रार्थना की कि माननीय एकल न्यायाधीश का निर्णय और आदेश कानूनी रूप से पोषणीय न होने के कारण निरस्त किया जाए। वैकल्पिक रूप से, उन्होंने आग्रह किया कि यदि याचिकाकर्ता को जीएनआईडीए के आचरण के कारण कोई नुकसान हुआ है तो वह कानून के अनुसार उसके खिलाफ कार्रवाई कर सकता है, लेकिन राज्य के खिलाफ वापसी का दावा पोषणीय नहीं है।

6. अपने तर्कों के समर्थन में, श्री गोस्वामी ने निम्नलिखित प्राधिकरणों का उल्लेख किया:

(i) **(2009) 13 एससीसी 301: एस एन माथुर बनाम राजस्व बोर्ड और अन्य** -- इस निर्णय में, उच्चतम न्यायालय ने स्टाम्प अधिनियम की योजना के संबंध में निम्नानुसार टिप्पणी की: *(क) कि स्टाम्प अधिनियम का उद्देश्य राजस्व सृजन है, इसलिए यह एक राजकोषीय अधिनियमन है और तदनुसार इसकी व्याख्या की जानी चाहिए; (ख) कि स्टाम्प शुल्क दस्तावेज के संदर्भ में लगाया जाता है न कि लेनदेन के संबंध में, जब तक कि अधिनियम में अन्यथा विशेष रूप से प्रदान न किया गया हो; (ग) कि स्टाम्प शुल्क दस्तावेज में निहित लेनदेन के सार के संदर्भ में निर्धारित किया जाता है न कि दस्तावेज के शीर्षक, कैप्शन या नामकरण के संदर्भ में; (घ) कि एक दस्तावेज के वर्गीकरण के लिए, यानी यह निर्धारित करने के लिए कि क्या एक दस्तावेज अधिनियम की अनुसूची में किसी विशेष विवरण के अंतर्गत आता है, दस्तावेज को पूरा पढ़ना और समझना चाहिए; (ङ) जहां एक दस्तावेज अधिनियम की अनुसूची में दो या अधिक विवरणों के अंतर्गत आता है, दस्तावेज पर केवल एक शुल्क लगाया जाएगा, जो विभिन्न विवरणों पर लागू शुल्कों में से सबसे अधिक होगा। लेकिन जहां एक दस्तावेज कई अलग-अलग मामलों से संबंधित है, वहां उस पर उन शुल्कों की कुल राशि लगाई जाएगी जो अलग-अलग दस्तावेजों पर लगाए जाने योग्य होंगे।*

(ii) **एआईआर 1959 इलाहाबाद 583 (एसबी): मोहम्मद मुस्तफा अली खान बनाम राज राजेश्वरी देवी** -- इस निर्णय में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों वाली विशेष पीठ ने, अन्य बातों के साथ-साथ, इस कानूनी सिद्धांत को दोहराया कि किसी दस्तावेज पर देय स्टाम्प शुल्क का निर्धारण दस्तावेज की शर्तों का संदर्भ लेकर किया जाना चाहिए, और न्यायालय स्वयं दस्तावेज के अलावा अन्य साक्ष्य पर विचार करने का हकदार नहीं है।

(iii) **एआईआर 1961 सुप्रीम कोर्ट 1047, बिक्री कर आयुक्त, यू.पी. बनाम मोदी शुगर मिल्स लिमिटेड** -- इस मामले में उच्चतम न्यायालय की पांच न्यायाधीशों वाली संविधान पीठ ने, अन्य बातों के साथ-साथ, यह माना कि: कर कानून की व्याख्या करते समय, न्यायसंगत विचार पूरी तरह से अप्रासंगिक हैं। न ही कर कानूनों की व्याख्या किसी अनुमान या मान्यता के आधार पर की जा सकती है। न्यायालय को कानून के शब्दों को सीधे देखना चाहिए और उनकी व्याख्या करनी चाहिए। उसे कर कानून की व्याख्या उस चीज के प्रकाश में करनी चाहिए जो स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई है: वह कुछ भी निहित नहीं कर सकता

अनुवादित

जो व्यक्त नहीं किया गया है; वह कानून में प्रावधान नहीं ला सकता ताकि किसी अनुमानित कमी को पूरा किया जा सके।

(iv) **(2011) 7 एससीसी 493: आईटीसी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** -- इस मामले में, उच्चतम न्यायालय ने यह पाते हुए कि *नोएडा* ने पट्टे के लिए प्रीमियम के रूप में कम वसूला था, पट्टा दस्तावेज के निष्पादन और पंजीकरण के बाद भी, पट्टे को बचाने के लिए, आवंटी (पट्टेदार) को एक निर्दिष्ट अवधि के भीतर कमी को पूरा करने का अवसर दिया। वैकल्पिक रूप से, यह निर्देशित किया गया था कि यदि आवंटी कमी की राशि को पूरा करके पट्टा बनाए रखने में रुचि नहीं रखता है, तो वह *नोएडा* से अपने द्वारा पहले से भुगतान की गई राशि, जिसमें पट्टा दस्तावेज पर भुगतान किया गया स्टाम्प शुल्क शामिल है, वापस पाने का हकदार है। *यह निर्णय यह दर्शाने के लिए उद्धृत किया गया है कि न्यायालय ने स्टाम्प शुल्क वापस करने की जिम्मेदारी राज्य पर नहीं बल्कि नोएडा पर डाली थी।*

<u>प्रथम प्रतिवादी (रिट याचिकाकर्ता) की ओर से प्रस्तुतियां</u>

7. इसके विपरीत, प्रथम प्रतिवादी के लिए उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन ने निवेदन किया कि अतिरिक्त स्टाम्प शुल्क की वापसी के लिए प्रथम प्रतिवादी का मामला स्टाम्प अधिनियम की धारा 49 (डी) (1) (2) और (5) के प्रावधानों के अंतर्गत पूरी तरह से आता है, क्योंकि, (क) अतिरिक्त क्षेत्र की सीमा तक स्टांपित पट्टा दस्तावेज अमान्य था जिससे स्टाम्प अधिनियम की धारा 49 के खंड (डी) के उप-खंड (1) के तहत भत्ता प्राप्त करने का अधिकार मिलता है; (ख) पट्टा दस्तावेज मूल रूप से इच्छित उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त हो गया था क्योंकि पट्टे पर दी गई भूमि के एक हिस्से का अधिग्रहण विफल हो गया था जिससे स्टाम्प अधिनियम की धारा 49 के खंड (डी) के उप-खंड (2) के तहत भत्ता प्राप्त करने का अधिकार मिलता है; और (ग) पट्टादाता ने उसमें पट्टे पर दिए गए क्षेत्र की सीमा तक मूल पट्टा दस्तावेज के तहत कार्य करने से इनकार कर दिया, इसलिए स्टाम्प अधिनियम की धारा 49 के खंड (डी) का उप-खंड (5) भी लागू होता है। उपरोक्त तर्कों को समझाने के लिए, उन्होंने कहा कि मूल रूप से दस्तावेज का उद्देश्य 198135.62 वर्ग मीटर भूमि का पट्टा देना था जबकि दस्तावेज केवल 126302 वर्ग मीटर के लिए कार्यशील रहा, इस प्रकार यह मूल रूप से इच्छित उद्देश्य को पूरा करने में विफल रहा। इसके अलावा, मूल रूप से पट्टे पर दिए गए क्षेत्र के लिए लगाए गए प्रीमियम को आनुपातिक रूप से कम कर दिया गया था, जो जीएनआईडीए द्वारा जारी किए गए एक अलग पत्र, दिनांक 17.04.2012, द्वारा भुगतान योजना में संशोधन करके कम किए गए क्षेत्र के अनुरूप किया गया था। उन्होंने कहा कि पट्टे के लिए कुल देय प्रीमियम, मूल रूप से, रु. 228,94,57,090 था, लेकिन बाद में, 126302 वर्ग मीटर के कम किए गए क्षेत्र पर, दिनांक 17.04.2012 के पत्र के अनुसार, देय प्रीमियम रु. 145,94,19,610 था। इस प्रकार, मूल पट्टा दस्तावेज में उल्लिखित मूल प्रीमियम पर लगाया गया स्टाम्प शुल्क उस सीमा तक वापसी योग्य था जिस सीमा तक प्रीमियम कम हो गया था। श्री शशि नंदन ने कहा कि, निःसंदेह, स्टाम्प शुल्क एक दस्तावेज पर प्रभार्य होता है, लेकिन धारा 49 (डी) के प्रावधान खराब स्टाम्पों के लिए भत्ते प्रदान करने के लिए हैं ताकि कोई अनुचित

अनुवादित

समृद्धि न हो, या भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क को बनाए न रखा जाए, यदि, शुल्क लगाने की घटना के बाद, कुछ घटनाओं के कारण, दस्तावेज अमान्य या अनुपयुक्त पाया जाता है या उस पर कार्य नहीं किया जा सकता। इन भत्तों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि असहाय करदाता की कीमत पर राज्य की कोई अनुचित समृद्धि न हो और, इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 265 की भावना को ध्यान में रखते हुए, **लिब्रा बिल्डटेक (उपरोक्त)** के मामले में निर्णय के अनुसार इन लाभकारी प्रावधानों की व्यापक व्याख्या की जानी चाहिए। इसलिए संयुक्त सचिव ने सही ढंग से राशि की वापसी का निर्देश दिया था जबकि प्रमुख सचिव ने अधिकार क्षेत्र के बिना विपरीत आदेश पारित किया था। इस प्रकार, किसी भी परिस्थिति में, रिट याचिका में चुनौती दिया गया आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना था और माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा सही ढंग से निरस्त कर दिया गया था। इसलिए उन्होंने प्रार्थना की कि अपील खारिज कर दी जाए।

हमारे विचार के लिए उठने वाले मुद्दे

8. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किए गए तथ्यों और प्रस्तुतियों की जांच के उपरांत, हमारे विचार के लिए निम्नलिखित मुद्दे उठते हैं:

(i) क्या रिट याचिकाकर्ता (यहां प्रथम प्रतिवादी) ने दिनांक 15.11.2010 के पट्टा दस्तावेज पर, जैसा कि दिनांक 07.02.2013 के दस्तावेज द्वारा सुधारा गया था, देय स्टाम्प शुल्क से अधिक का भुगतान किया था? यदि हां, तो इसका क्या प्रभाव है?

(ii) क्या, पट्टे पर दिए गए क्षेत्र का हिस्सा बनने वाली भूमि के अधिग्रहण को रद्द करने वाले उच्च न्यायालय के बाद के निर्णय के कारण, रिट याचिकाकर्ता स्टाम्प अधिनियम की धारा 49 (डी) (1) या धारा 49 (डी) (2) या धारा 49 (डी) (5) के प्रावधानों के मद्देनजर खराब स्टाम्पों के लिए भत्ते या स्टाम्प शुल्क के एक हिस्से की वापसी का हकदार था?

(iii) क्या रिट याचिकाकर्ता न्यायसंगत सिद्धांतों जैसे प्रतिस्थापन का सिद्धांत या अनुचित समृद्धि के सिद्धांत पर स्टाम्प शुल्क के किसी भाग की वापसी का हकदार है?

(iv) क्या प्रधान सचिव का दिनांक 28.05.2019 का आदेश शून्य है? यदि हां, तो इसका क्या प्रभाव है?

(v) क्या संयुक्त सचिव का आदेश कानून के विपरीत था और, इसलिए, माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा इसके प्रवर्तन के लिए कोई निर्देश नहीं दिया जाना चाहिए था?

(vi) क्या रिट याचिकाकर्ता, यदि राज्य सरकार के विरुद्ध राहत का हकदार नहीं है, मामले के तथ्यों पर, रिट क्षेत्राधिकार में जीएनआईडीए से अतिरिक्त भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क की वापसी मांग सकता था?

विश्लेषण

9. हमारे द्वारा तैयार किए गए मुद्दों पर विचार करने से पहले, स्टाम्प अधिनियम की प्रकृति और व्याख्या के नियमों की जांच करना उचित होगा जो इसके प्रावधानों की स्पष्ट समझ के लिए लागू होंगे। स्टाम्प अधिनियम की प्रकृति के संबंध में, इस बात में कोई संदेह नहीं है कि यह भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची III (समवर्ती सूची) की प्रविष्टि 44 के तहत

अनुवादित

बनाया गया एक राजकोषीय / कराधान कानून है **{देखें एस.एन. माथुर बनाम राजस्व बोर्ड और अन्य, (उपरोक्त)}**। स्टाम्प शुल्क कर का एक रूप है, जिसका उद्देश्य राजस्व उत्पन्न करना है। **आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य बनाम पी. लक्ष्मी देवी (श्रीमती), (2008) 4 एससीसी 720** में, उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 19 में टिप्पणी की: *"यह सुस्थापित है कि स्टाम्प शुल्क एक कर है, और कठिनाई कराधान कानूनों की व्याख्या करने में प्रासंगिक नहीं है जिनकी कड़ाई से व्याख्या की जानी चाहिए। जैसा कि अक्सर कहा जाता है, कर में कोई समानता नहीं होती, देखें सीआईटी बनाम वी.एम आर पी फर्म मुआर, एआईआर 1965 एससी 1216। यदि कर कानून में प्रयुक्त शब्द स्पष्ट हैं, तो कोई कानून के उद्देश्य और लक्ष्य का पता लगाने का प्रयास नहीं कर सकता। इसलिए, उच्च न्यायालय स्टाम्प अधिनियम के कथित उद्देश्य और आशय के अनुसार चलने का प्रयास करने में, और 1998 के विवादित संशोधन द्वारा एक पक्ष को होने वाली कठिनाई का पता लगाने का प्रयास करने में त्रुटि में पड़ गया।"*

10. जब कोई कानून कर लगाता है तो वह ऐसा एक प्रभार खंड डालकर करता है जिसके द्वारा देयता बनाई या निर्धारित की जाती है और फिर देयता को प्रभावी बनाने के लिए तंत्र प्रदान करता है। इसलिए, यह प्रभार खंड द्वारा पहले से निर्धारित देयता के आकलन के लिए तंत्र प्रदान करता है, और फिर कर की वसूली और संग्रह के लिए तरीका प्रदान करता है, जिसमें चूककर्ताओं से निपटने के लिए दंडात्मक प्रावधान शामिल हैं। कर की अवधारणा में प्रवेश करने वाले घटक हैं: (1) अधिरोपण का चरित्र जो अपनी प्रकृति से जाना जाता है जो कर लगाने वाली कर योग्य घटना को निर्धारित करता है; (2) उस व्यक्ति का स्पष्ट संकेत जिस पर कर लगाया जाता है और जो कर का भुगतान करने के लिए बाध्य है; (3) वह दर जिस पर कर लगाया जाता है; (4) वह माप या मूल्य जिस पर कर देयता की गणना के लिए दर लागू की जाएगी **(देखें गोविंद सरन गंगा सरन बनाम सीएसटी, 1985 पूरक एससीसी 205, पैरा 6)**। स्टाम्प अधिनियम के संदर्भ में (देखें प्रभार धारा 3), कर योग्य घटना अनुसूचियों में निर्दिष्ट दस्तावेज का निष्पादन है। स्टाम्प शुल्क दस्तावेज के संदर्भ में लगाया जाता है न कि लेनदेन के, जब तक कि अन्यथा विशेष रूप से प्रदान न किया गया हो। स्टाम्प शुल्क अनुसूचियों में निर्दिष्ट दर पर लगाया जाता है और स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी व्यक्ति स्टाम्प अधिनियम की धारा 29 में निर्दिष्ट है।

11. कराधान कानून के प्रावधानों की व्याख्या कैसे की जानी चाहिए, इस संबंध में बहुत से प्राधिकरण हैं। इस निर्णय को उनमें से कई का उल्लेख करके बोझिल बनाने से बचने के लिए, उच्चतम न्यायालय के हाल के एक संविधान पीठ के निर्णय का उल्लेख करना उचित होगा। **आयुक्त, सीमा शुल्क (आयात), मुंबई बनाम दिलीप कुमार एंड कंपनी, (2018) 9 एससीसी 1** में, उच्चतम न्यायालय की एक संविधान पीठ ने अपने निर्णय के पैरा 29 में निम्नानुसार टिप्पणी की:

"... यह सुस्थापित है कि एक कराधान कानून में, किसी आशय के लिए कोई जगह नहीं है; कि शब्दों के स्पष्ट अर्थ पर ध्यान दिया जाना चाहिए और मामले को पूरी तरह से अधिसूचना की भाषा

अनुवादित

द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए। कराधान कानून की व्याख्या में समानता का कोई स्थान नहीं है। कड़ाई से प्रयुक्त भाषा को देखना होगा; आशय की खोज करने या कोई अनुमान लगाने की कोई गुंजाइश नहीं है। इसके अलावा, सिवाय आवश्यक निष्कर्षों के, कराधान कानून पर विचार करते समय कुछ भी पढ़ा नहीं जाना चाहिए और न ही कुछ भी निहित किया जाना चाहिए।"

निर्णय के पैरा 53 में, विभिन्न प्राधिकरणों का अवलोकन करने के बाद, उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

".....हम यह निष्कर्ष निकालने के लिए न्यायोचित होंगे और यह मानने के लिए बाध्य भी होंगे कि प्रत्येक कराधान कानून, जिसमें प्रभार, गणना और छूट खंड (प्रारंभिक चरण पर) शामिल हैं, की कड़ाई से व्याख्या की जानी चाहिए। इसके अलावा, प्रभार प्रावधानों में अस्पष्टता के मामले में, लाभ अनिवार्य रूप से विषय/करदाता के पक्ष में जाना चाहिए, लेकिन यह छूट अधिसूचना के लिए सही नहीं है जिसमें अस्पष्टता का लाभ राजस्व/राज्य के पक्ष में कड़ाई से व्याख्या किया जाना चाहिए।"

निर्णय के पैरा 58, 59 और 60 में, उच्चतम न्यायालय ने पूर्व निर्णयों को ध्यान में रखते हुए यह टिप्पणी करके स्थिति को स्पष्ट किया कि यदि कोई विषय व्याख्या के कठोर नियम का प्रयोग करने के बाद छूट खंड के अंतर्गत आता है, तो न्यायालय उसके बाद इसकी उदार व्याख्या कर सकता है। प्रासंगिक टिप्पणियां निर्णय के पैरा 59 और 60 में निहित हैं जो नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"59.....यह प्रश्न कि क्या कोई विषय अधिसूचना में या छूट खंड में आता है, की कड़ाई से व्याख्या की जानी चाहिए। जब एक बार छूट खंड की प्रयोज्यता की कड़ाई से व्याख्या करके अस्पष्टता या संदेह का समाधान कर लिया जाता है, तो न्यायालय व्यापक और उदार निर्माण प्रदान करके अधिसूचना की व्याख्या कर सकता है। पारले एक्सपोर्ट्स मामले {सीसीई बनाम पारले एक्सपोर्ट्स (पी) लिमिटेड (1989) 1 एससीसी 345} का निष्कर्ष निम्नानुसार निकाला गया:

(वुड पेपर्स मामला {भारत संघ बनाम वुड पेपर्स लिमिटेड, (1990) 4 एससीसी 256, पृ. 262, पैरा 6}

"6. .....प्रयोज्यता के चरण पर दायरे का विस्तार या विस्तार न करें। लेकिन एक बार वह बाधा पार हो जाए, तो इसकी उदारतापूर्वक व्याख्या करें"

60. हम इससे भिन्न राय लेने के लिए कोई मजबूत और बाध्यकारी कारण नहीं पाते हैं। हम इस दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक अपनी सहमति दर्ज करते हैं जिसे बाद में हरी चंद मामले {सीसीई बनाम हरी चंद श्री गोपाल, (2011) 1 एससीसी 236} में संविधान पीठ द्वारा विस्तृत किया गया है।"

12. उपरोक्त उल्लिखित कानून से, जो कानूनी स्थिति उभरती है वह निम्नानुसार है: (i) स्टाम्प अधिनियम एक कराधान कानून है; (ii) कराधान कानूनों की व्याख्या करते समय समानता और कठिनाई प्रासंगिक नहीं हैं, किसी को कड़ाई से प्रयुक्त शब्दों/भाषा को देखना होगा और कराधान कानून के प्रावधानों की व्याख्या करते समय आशय की खोज करने या कोई अनुमान लगाने की कोई गुंजाइश नहीं है; (iii) प्रभार प्रावधानों में अस्पष्टता के मामले में, लाभ अनिवार्य रूप से विषय/करदाता के पक्ष में जाना चाहिए, लेकिन

छूट प्रावधान में अस्पष्टता के मामले में, अस्पष्टता का लाभ राजस्व/राज्य के पक्ष में कड़ाई से व्याख्या किया जाना चाहिए। हालांकि, यदि, छूट खंड की कठोर व्याख्या द्वारा, अस्पष्टता का समाधान हो जाता है और विषय छूट खंड के अंतर्गत आता है तो छूट खंड को पूर्ण प्रभाव देने के लिए एक उदार व्याख्या की जा सकती है।

मुद्दा संख्या (i)

13. अब हम इस मुद्दे पर विचार करते हैं कि क्या रिट याचिकाकर्ता ने पट्टा दस्तावेज पर देय स्टाम्प शुल्क से अधिक का भुगतान किया था। दस्तावेज के प्रासंगिक खंडों की जांच करने से पहले, प्रभार प्रावधान पर एक नजर डालना प्रासंगिक होगा। स्टाम्प अधिनियम की धारा 3 प्रभार खंड है। उत्तर प्रदेश राज्य (संक्षेप में यू.पी.) में, एक पट्टा दस्तावेज स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची I-बी के अनुच्छेद 35 में प्रदान किए गए अनुसार स्टाम्प शुल्क के अधीन है। उत्तर प्रदेश राज्य में लागू स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची I-बी के अनुच्छेद 35 का खंड (सी) उस पट्टा दस्तावेज पर देय स्टाम्प शुल्क निर्धारित करने के लिए लागू किया जाना है जहां पट्टा जुर्माने या प्रीमियम या अग्रिम धन के लिए आरक्षित किराए के अतिरिक्त दिया जाता है। जीएनआईडीए द्वारा रिट याचिकाकर्ता (यहां प्रथम प्रतिवादी) के पक्ष में निष्पादित पट्टा दस्तावेज उसी प्रकृति का है और, इसलिए, उस पर देय स्टाम्प शुल्क अनुसूची I-बी के अनुच्छेद 35 (सी) में निर्धारित प्रावधानों के अनुसार निर्धारित किया जाना है। स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची I-बी का अनुच्छेद 35(सी) नीचे उद्धृत किया गया है:-

(सी) जहां पट्टा जुर्माने या प्रीमियम या अग्रिम धन के लिए आरक्षित किराए के अतिरिक्त दिया जाता है -

(i) जहां पट्टा तीस वर्ष से अनधिक अवधि के लिए होने का तात्पर्य रखता है।

वही शुल्क जो एक हस्तांतरण [(संख्या 23 खंड (ए)] पर पट्टे में निर्धारित ऐसे जुर्माने या प्रीमियम या अग्रिम के राशि या मूल्य के बराबर प्रतिफल के लिए लगता है, उस शुल्क के अतिरिक्त **जो ऐसे पट्टे पर देय होता** यदि कोई जुर्माना या प्रीमियम या अग्रिम का भुगतान या वितरण नहीं किया गया होता।

बशर्ते कि ऐसे मामले में जब पट्टे के लिए एक समझौते पर पट्टे के लिए आवश्यक मूल्यानुसार स्टीम्प के साथ मुहर लगाई जाती है, और इस तरह के समझौते के

अनुवादित

	अनुसरण में एक पट्टा बाद में निष्पादित किया जाता है, तो ऐसे पट्टे पर शुल्क पचास रुपये से अधिक नहीं होगा।	
(ii) जहां पट्टे की अवधि तीस वर्ष से अधिक के लिए हो	पट्टे की विषयवस्तु वाली संपत्ति के बाजार मूल्य के बराबर प्रतिफल के लिए हस्तांतरण संख्या 23 खंड (ए) के समान शुल्क/कर।	

आसान संदर्भ के लिए, अनुसूची I-बी के अनुच्छेद 23 (ए) के प्रावधानों को भी नीचे उद्धृत किया गया है:

23. परिवहन [जैसा कि धारा 2(10) द्वारा परिभाषित किया गया है, संख्या 62 के तहत स्थानांतरण शुल्क या छूट नहीं है -

(a) परिवहन [जैसा कि धारा 2(10) द्वारा परिभाषित किया गया है, संख्या 62 के तहत स्थानांतरण शुल्क या छूट नहीं है -	साठ रूपये।	
(ए) यदि अचल संपत्ति से संबंधित है, जहां ऐसे हस्तांतरण के विचार की राशि या मूल्य, जैसा कि उसमें निर्धारित है या अचल संपत्ति का बाजार मूल्य, जो ऐसे हस्तांतरण का विषय है, जो भी अधिक हो, 500 रुपये से अधिक नहीं है।		
जहां ये 500 रुपये से अधिक हो पर 1000 रुपये से अधिक न हो	एक सौ पचीस रुपये।	

अनुवादित

और प्रत्येक 1,000 रुपये अथवा उसके भाग के लिए जो 1,000 रुपये से अधिक हो।	एक सौ पचीस रुपये। बशर्ते कि देय शुल्क को दस रुपये के अगले गुणक में पूर्णांकित किया जाएगा।

यह देखा जा सकता है कि उद्धृत प्रावधान में यह संभव है कि दर के संबंध में कुछ वैधानिक संशोधन किए गए हों, लेकिन यह विवाद के लिए प्रासंगिक नहीं है।

14. दिनांक 15.11.2010 का विषयगत पट्टा दस्तावेज, जो रिट याचिका के अनुलग्नक 2 के रूप में रिकार्ड में है, यह दर्शाता है कि पट्टा आरक्षित किराये के अतिरिक्त प्रीमियम पर प्रदान किया गया था।

देय प्रीमियम के संबंध में पट्टा दस्तावेज में प्रासंगिक खंड नीचे उद्धृत है:

"यह कि 198135.62 वर्ग मीटर का कुल प्रीमियम रु. 228,94,57,090.00 (रुपये दो सौ अट्ठाईस करोड़ चौरानवे लाख सत्तावन हजार नब्बे मात्र) है, जिसमें से लगभग रु. 22,93,16,140.00 (रुपये बाईस करोड़ तिरानवे लाख सोलह हजार एक सौ चालीस मात्र) पट्टेदार द्वारा पट्टाकर्ता को भुगतान किए गए हैं (जिसकी प्राप्ति पट्टाकर्ता एतद्द्वारा स्वीकार करता है)। आवंटन की तिथि से 24 महीने का अधिस्थगन होगा और केवल 12% प्रति वर्ष की दर से अर्धवार्षिक रूप से चक्रवृद्धि ब्याज, जो अधिस्थगन अवधि के दौरान उपचित हुआ है, समान अर्धवार्षिक किस्तों में देय होगा। अधिस्थगन अवधि समाप्त होने के बाद, शेष लगभग 90% प्रीमियम यानी रु. 206,01,40,950 (रुपये दो सौ छह करोड़ एक लाख चालीस हजार नौ सौ पचास मात्र) ब्याज सहित 16 अर्धवार्षिक किस्तों में निम्नलिखित तरीके से चुकाया जाएगा:-

..... (इस मामले के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक नहीं होने के कारण हटा दिया गया)

किस्तों या किसी भुगतान को जमा करने में चूक के मामले में, चूक की अवधि के लिए चूक की गई राशि पर 15% प्रति वर्ष की दर से अर्धवार्षिक रूप से चक्रवृद्धि ब्याज लगाया जाएगा।

सभी भुगतान ग्रेटर नोएडा औद्योगिक विकास प्राधिकरण के पक्ष में आहरित और नई दिल्ली/ग्रेटर नोएडा में स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट/पे ऑर्डर के माध्यम से किए जाने चाहिए। पट्टेदार को डिमांड ड्राफ्ट/पे ऑर्डर के पीछे अपना नाम और आवेदित/आवंटित प्लॉट का विवरण स्पष्ट रूप से इंगित करना चाहिए।.

इस दस्तावेज़ में संदर्भित प्रीमियम का अर्थ आवंटित प्लॉट के लिए पट्टाकर्ता को देय कुल राशि है।

सभी भुगतान नियत तिथि तक किए जाने चाहिए। यदि नियत तिथि बैंक अवकाश है, तो पट्टेदार को पिछले कार्य दिवस पर विप्रेषण सुनिश्चित करना चाहिए।

पट्टेदार द्वारा किए गए भुगतान को पहले देय ब्याज, यदि कोई हो, के प्रति समायोजित

अनुवादित

किया जाएगा, और उसके बाद शेष राशि को देय प्रीमियम और देय पट्टा किराए के प्रति समायोजित किया जाएगा। .

अतिरिक्त भूमि के आवंटन के मामले में, अतिरिक्त भूमि के प्रीमियम का भुगतान अतिरिक्त भूमि के संचार की तिथि से 30 दिनों के भीतर एकमुश्त किया जाएगा।

पट्टेदार द्वारा जमा की गई राशि को पहले ब्याज के प्रति और उसके बाद क्रमशः आवंटन राशि, किस्त और पट्टा किराए के प्रति समायोजित किया जाएगा। इसके विपरीत पट्टेदार का कोई अनुरोध स्वीकार नहीं किया जाएगा।

देय प्रीमियम के अतिरिक्त, पट्टा प्रपत्र के अनुसार देय किराया और अन्य शुल्क नीचे दिए गए हैं:

"और पट्टेदार एतद्द्वारा पट्टाकर्ता के साथ निम्नलिखित तरीके से घोषणा करता है और वचन देता है:

क) उक्त अवधि के दौरान पट्टाकर्ता को नीचे दर्शाए गए वार्षिक पट्टा किराए का अग्रिम भुगतान करना:

(i) पट्टेदार ने पट्टा अवधि के पहले 10 वर्षों के लिए प्लॉट प्रीमियम का 1% होने वाले रु. 2,28,94,571 का वार्षिक पट्टा किराया का भुगतान किया है।

(ii) पट्टा किराए में प्रत्येक 10 वर्ष के बाद 50% की वृद्धि की जा सकती है, अर्थात प्रचलित पट्टा किराए का 1.5 गुना।

(iii) पट्टा किराया प्रत्येक वर्ष अग्रिम देय होगा। पहला ऐसा भुगतान पट्टा विलेख के निष्पादन की तिथि को देय होगा और उसके बाद, प्रत्येक वर्ष, पिछले वित्तीय वर्ष की अंतिम तिथि को या उससे पहले।

(iv) अग्रिम पट्टा किराए के भुगतान में देरी पर चूक की अवधि के लिए चूक की गई राशि पर 15% प्रति वर्ष की दर से अर्धवार्षिक रूप से चक्रवृद्धि ब्याज लगाया जाएगा।

(v) पट्टेदार को अपने संभावित खरीदारों के पक्ष में त्रिपक्षीय उप-पट्टा विलेख निष्पादित करने की अनुमति प्राप्त करने से पहले प्लॉट के प्रीमियम के 1% की दर से 11 वर्षों के समतुल्य पट्टा किराए का भुगतान "एकमुश्त पट्टा किराया" के रूप में चरणबद्ध तरीके से करना होगा, जब तक कि पट्टाकर्ता इस सुविधा को वापस लेने का निर्णय न ले। एकमुश्त पट्टा किराए के भुगतान पर, शेष पट्टा अवधि के लिए कोई और वार्षिक पट्टा किराया देय नहीं होगा। यह विकल्प पट्टा अवधि के दौरान किसी भी समय प्रयोग किया जा सकता है, बशर्ते पट्टेदार ने पहले का देय पट्टा किराया चुका दिया हो और पहले से भुगतान किए गए पट्टा किराए को एकमुश्त पट्टा किराया विकल्प में नहीं माना जाएगा।

ख) पट्टेदार भूमि के प्लॉट या उस पर निर्मित भवन के संबंध में पट्टाकर्ता या किसी प्राधिकरण/सरकार द्वारा समय-समय पर निर्धारित या लगाए गए हर प्रकार के सभी दरों, करों, शुल्कों और निर्धारणों का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा। असाधारण परिस्थितियों में पट्टाकर्ता द्वारा देय भुगतान के लिए जमा करने का समय बढ़ाया जा सकता है। लेकिन ऐसे समय विस्तार के मामले में चूक की अवधि के लिए 15% प्रति वर्ष की दर से अर्धवार्षिक रूप से चक्रवृद्धि ब्याज लगाया जाएगा। यदि पट्टेदार उपरोक्त शुल्कों का भुगतान करने में

अनुवादित

विफल रहता है, तो उसके सदस्यों/उप-पट्टेदारों के लिए आवंटित क्षेत्रों के लिए आनुपातिक शुल्कों का भुगतान करना अनिवार्य होगा। ....."

15. "उद्धृत प्रभार प्रावधान का सरल पाठ यह दर्शाता है कि स्टांप शुल्क पट्टा दस्तावेज में निर्धारित प्रीमियम या अग्रिम राशि के मूल्य के अनुसार देय है। पक्षकारों के बीच इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि पट्टा दस्तावेज पर भुगतान किया गया स्टांप शुल्क पट्टा दस्तावेज में निर्धारित प्रीमियम के मूल्य के अनुसार है। महत्वपूर्ण रूप से, दिनांक 7 फरवरी 2013 का शुद्धि विलेख, जो रिट याचिका के अनुलग्नक 5 के रूप में अभिलेख पर लाया गया है, यद्यपि पट्टे पर दी गई भूमि के क्षेत्रफल को कम करता है, फिर भी देय प्रीमियम में कमी के संबंध में कोई संकेत नहीं देता है। बल्कि, अपील की पेपर-बुक के पृष्ठ 179 पर, शुद्धि विलेख, पट्टे पर दी गई भूमि के क्षेत्रफल में कमी के संबंध में घोषणा करने के बाद, यह घोषणा करता है कि "इसके बाद परिवर्तित/संशोधित किए गए को छोड़कर, मूल पट्टा विलेख दिनांक 15.11.2010 जो उप-रजिस्ट्रार गौतम बुद्ध नगर के कार्यालय में 16.11.2010 को बही संख्या 1, जिल्द संख्या 7558 पृष्ठ संख्या 77 से 110 पर क्रम संख्या 23383 पर विधिवत पंजीकृत किया गया था, पूर्ण बल और प्रभाव में रहेगा। प्लॉट संख्या, स्थान और सीमाएं वही हैं। परिणामस्वरूप स्टांप शुल्क की विश्वसनीयता अप्रभावित रहती है।" जब यह स्थिति है, तो श्री गोस्वामी का यह प्रस्तुतीकरण कि शुद्धि विलेख के साथ पढ़े जाने वाले पट्टा दस्तावेज पर भुगतान किया गया स्टांप शुल्क स्टांप अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार था, और यह अधिक भुगतान नहीं किया गया था, सही प्रतीत होता है, विशेष रूप से जब, प्रभार प्रावधान के अनुसार, स्टांप शुल्क पट्टा दस्तावेज में निर्धारित प्रीमियम के मूल्य पर देय है। इन परिस्थितियों में, यदि बाद के एक पत्र द्वारा जीएनआईडीए ने प्रीमियम को कम कर दिया था, जैसा कि पहले प्रतिवादी का मामला है, तो लगाए जाने वाले स्टांप शुल्क पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि वह पट्टा दस्तावेज में निर्धारित प्रीमियम पर होगा, जो अपरिवर्तित रहा। इस प्रकार यह निर्धारित किया जाता है कि रिट याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान किया गया स्टांप शुल्क प्रभार धारा के अनुसार पट्टा दस्तावेज पर देय राशि से अधिक नहीं था। यह हमें ऊपर निर्मित मुद्दा संख्या (ii) पर ले जाता है।

मुद्दा संख्या (ii)

16. मुद्दा संख्या (ii) को संबोधित करते हुए, हमें यह निर्धारित करना होगा कि क्या पट्टे पर दी गई भूमि के क्षेत्रफल में कमी और पट्टा दस्तावेज के निष्पादन के बाद हुए विकास के मद्देनजर, स्टांप अधिनियम की धारा 49 (डी) (1) (2) और (5) के प्रावधानों के आधार पर, पहला प्रतिवादी उस स्टांप शुल्क की वापसी का हकदार है जो उसने उस भूमि के हिस्से के पट्टे के लिए भुगतान किया था जिसे उसे सरेंडर करना पड़ा। जैसा कि हमने पहले ही देखा है कि एक कर कानून में इक्विटी का कोई स्थान नहीं है, न्यायालय को यह पता लगाना होगा कि क्या स्टांप अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या पर उस अतिरिक्त क्षेत्र के पट्टा दस्तावेज बनाने में खराब हुए मुद्रित स्टांपों के लिए छूट देने का मामला बनता है या नहीं।

अनुवादित

17. पहले प्रतिवादी ने अपने दावे को स्टांप अधिनियम की धारा 49 के खंड (d) (1), (2) और (5) के प्रावधानों पर आधारित किया है। प्रासंगिक प्रावधान नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"49. खराब स्टांपों के लिए छूट. -- राज्य सरकार द्वारा आवश्यक साक्ष्य या की जाने वाली जांच के संबंध में बनाए गए नियमों के अधीन, कलेक्टर, धारा 50 में निर्धारित अवधि के भीतर किए गए आवेदन पर, और यदि वह तथ्यों से संतुष्ट है, तो इसके बाद उल्लिखित मामलों में खराब हुए मुद्रित स्टांपों के लिए छूट दे सकता है, अर्थात्:--

(ए) .....

(बी) .....

(सी) .....

(डी) किसी पक्षकार द्वारा निष्पादित किसी दस्तावेज के लिए प्रयुक्त स्टांप जो-

(1) बाद में शुरुआत से ही कानून में पूर्णतया शून्य पाया गया हो:

(2) बाद में उसमें किसी त्रुटि या गलती के कारण मूल रूप से अभिप्रेत उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त पाया गया हो:

(3) .....

(4) .....

(5) किसी व्यक्ति द्वारा उसके अंतर्गत कार्य करने से इनकार करने, या उसके द्वारा सुरक्षित किए जाने के लिए अभिप्रेत किसी धन को अग्रिम करने से इनकार करने, या उसके द्वारा प्रदान किए गए किसी पद को स्वीकार करने से इनकार या अस्वीकृति के कारण, अभिप्रेत उद्देश्य पूर्णतया विफल हो जाता है:"

18. आगे बढ़ने से पहले यह जांचने के लिए कि क्या ऊपर उद्धृत प्रासंगिक खंड पहले प्रतिवादी के पक्ष में धनवापसी का दावा करने के लिए लागू होंगे, हम यह देख सकते हैं कि स्टांप अधिनियम की धारा 49 के खंड (क) और (ख) निष्पादन से पहले स्टांपों के खराब होने या अनुपयोगी हो जाने के मामलों को संदर्भित करते हैं, और खंड (ग) विनिमय पत्रों और वचन पत्रों को संदर्भित करता है। अतः, धारा 49 के खंड (क), (ख) और (ग) में निहित प्रावधान विवादास्पद मुद्दे के लिए प्रासंगिक नहीं हैं और, इसलिए, उन्हें उद्धृत नहीं किया गया है। इसी प्रकार, धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड (3), (4), (6), (7) और (8) मामले के तथ्यों के लिए प्रासंगिक नहीं हैं, इसलिए हमने उन प्रावधानों को उद्धृत नहीं किया है। लेकिन, संक्षेप में, हम उल्लेख कर सकते हैं कि धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड (3) और (4) उन मामलों को संदर्भित करते हैं जहां आवश्यक पक्षकार की मृत्यु या अक्षमता के कारण या ऐसे व्यक्ति द्वारा दस्तावेज़ के तहत निष्पादन या कार्य करने से इनकार करने के कारण दस्तावेज़ का निष्पादन पूरा नहीं होता है। उप-खंड (6) उस मामले को संदर्भित करता है जहां एक दस्तावेज़ को उन्हीं पक्षकारों के बीच दूसरे दस्तावेज़ के निष्पादन द्वारा अधिक्रमित किया जाता है और जो कम मूल्य का स्टांप नहीं लगा होता है। उप-खंड (7) एक नए दस्तावेज़ के निष्पादन को संदर्भित करता है क्योंकि पहला कम स्टांप वाला था। उप-खंड (8) उस मामले को संदर्भित करता है जहां निष्पादन के बाद स्टांप खराब हो जाता है, और पक्षकार एक दूसरा दस्तावेज़ प्रतिस्थापन में निष्पादित करते हैं जो विधिवत स्टांपित होता है।

19. अब हम यह जांच करेंगे कि क्या स्टांप अधिनियम की धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड

अनुवादित

(1) के तहत छूट/धनवापसी का मामला बनता है। प्रावधान के सामान्य पठन पर यह प्रतीत होगा कि धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड (1) की प्रयोज्यता के लिए निम्नलिखित शर्तें पूरी होनी चाहिए: (क) कि मुद्रित स्टांप का उपयोग किसी दस्तावेज़ के निष्पादन के लिए किया जाना चाहिए; (ख) कि दस्तावेज़ का निष्पादन उसके किसी भी पक्षकार द्वारा किया जाना चाहिए; और (ग) कि बाद में दस्तावेज़ को शुरुआत से ही कानून में पूर्णतया शून्य पाया जाना चाहिए। धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड (1) की प्रयोज्यता की कुंजी *"शुरुआत से ही कानून में पूर्णतया शून्य"* वाक्यांश में निहित है। वर्तमान मामले में, पट्टा दस्तावेज़ आंशिक रूप से शून्य है, अर्थात्, 71833.62 वर्ग मीटर के क्षेत्र तक, जो भूमि अधिग्रहण अधिसूचना के बाद में रद्द होने के परिणामस्वरूप है, और शुरुआत से ही पूर्णतया शून्य नहीं है।

20. मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष **मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण, राजस्व बोर्ड, मद्रास बनाम बी.पी. ईश्वरन और अन्य, एआईआर 1970 मद्रास 349 (एफबी)** के मामले में न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष एक प्रश्न उठा कि क्या स्टांप अधिनियम की धारा 49 (घ) छूट की परिकल्पना करती है जहां अधिकारों और देयताओं को समाहित करने वाला संयुक्त दस्तावेज़ केवल आंशिक रूप से विफल होता है और शेष भाग के लिए अच्छा है। उस मामले के तथ्य यह थे कि एक संपत्ति के हस्तांतरण विलेख का निष्पादन किया गया था जिसमें यह दावा किया गया था कि स्वामित्व विक्रेता के पास था और यदि संपत्ति के संबंध में किसी तीसरे पक्ष में कोई अधिकार पाया जाता है तो विक्रेता उससे उत्पन्न होने वाली हानि के लिए स्वयं को उत्तरदायी बनाएगा और ऐसी हानि को खरीदार विक्रेता की अन्य संपत्तियों से पूरी तरह से वसूल कर सकता था। संपत्ति के हस्तांतरण विलेख को पूर्णतया शून्य पाया गया क्योंकि विक्रेता के पास दस्तावेज़ द्वारा कवर की गई संपत्ति का कोई स्वामित्व नहीं था और, इसलिए, स्टांप अधिनियम की धारा 49 (घ) पर भरोसा करते हुए स्टांप शुल्क की वापसी का दावा किया गया। पूर्ण पीठ ने यह माना कि इस तथ्य के बावजूद कि हस्तांतरण, जो निस्संदेह दस्तावेज़ का मुख्य उद्देश्य था, विफल हो गया है, दस्तावेज़ समग्र रूप से शुरुआत से ही पूर्णतया शून्य नहीं है। पूर्ण पीठ ने यह देखा कि यदि यह क्षतिपूर्ति के लिए वचनों के बिना केवल एक हस्तांतरण का मामला होता और हस्तांतरण विफल हो जाता, तो छूट का मामला बन सकता था। लेकिन जहां दस्तावेज़ ने परिसमापन हर्जाने या वसूली के तरीके का प्रावधान किया या उस स्रोत को इंगित किया जिससे हानि की प्रतिपूर्ति की जा सकती थी, वे प्रावधान स्वामित्व की कमी के कारण हस्तांतरण की विफलता के बावजूद अभी भी वैध होंगे और कार्रवाई योग्य होंगे। उस तर्क के साथ, पूर्ण पीठ ने निष्कर्ष निकाला कि प्रश्नगत दस्तावेज़ समग्र रूप से शुरुआत से ही पूर्णतया शून्य नहीं था। पूर्ण पीठ ने इस प्रकार निष्कर्ष निकाला: *धारा 49 (घ) स्टांपों के खराब होने के लिए छूट की परिकल्पना नहीं करती है, जहां अधिकारों और देयताओं को समाहित करने वाला संयुक्त दस्तावेज़ केवल आंशिक रूप से विफल होता है और शेष भाग के लिए अच्छा है।*

21. स्टांप अधिनियम की धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड (1) की प्रयोज्यता के लिए सह-अस्तित्व में होने वाली शर्तों की जांच करने और मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय

अनुवादित

(उपरोक्त) की जांच करने और यह पाने पर कि विषयगत पट्टा दस्तावेज़ शुरुआत से ही कानून में पूर्णतया शून्य नहीं है, हम इस विचारित मत के हैं कि पहला प्रतिवादी स्टांप अधिनियम की धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड (1) के तहत छूट/धनवापसी का मामला बनाने में सक्षम नहीं हुआ है।

22. इसी प्रकार, स्टांप अधिनियम की धारा 49 के खंड (घ) का उप-खंड (5) भी पहले प्रतिवादी के मामले में सहायक नहीं होगा क्योंकि विषयगत पट्टा दस्तावेज़ आंशिक रूप से विफल हुआ, न कि पूरी तरह से, अभिप्रेत उद्देश्य के लिए। धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड (5) की प्रयोज्यता के लिए, एक आवश्यक शर्त यह है कि किसी व्यक्ति द्वारा दस्तावेज़ के तहत कार्य करने से इनकार करने के कारण, दस्तावेज़ अभिप्रेत उद्देश्य के लिए पूरी तरह से विफल हो जाता है। वर्तमान मामले में, यहां तक कि अगर हम मान लें कि जीएनआईडीए ने भूमि के अतिरिक्त क्षेत्र के संबंध में दस्तावेज़ के तहत कार्य करने से इनकार कर दिया, तो भी दस्तावेज़ पूरी तरह से विफल नहीं हुआ क्योंकि पट्टा आंशिक रूप से प्रभावी रहा। इस प्रकार हम यह मानते हैं कि स्टांप अधिनियम की धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड (5) के तहत छूट/धनवापसी का मामला भी नहीं बनता है।

23. अब, हम यह जांच करेंगे कि क्या पहले प्रतिवादी (रिट याचिकाकर्ता) का समर्पित क्षेत्र के लिए उसके द्वारा भुगतान किए गए स्टांप शुल्क की छूट/धनवापसी का दावा स्टांप अधिनियम की धारा 49 (घ)(2) के प्रावधानों के अंतर्गत आएगा। इस मुद्दे पर आगे बढ़ने से पहले, हमें सर्वोच्च न्यायालय के **लिब्रा बिल्डटेक (उपरोक्त)** के निर्णय पर ध्यान देना चाहिए, जिस पर पहले प्रतिवादी के विद्वान वकील ने अपने दावे के समर्थन में बहुत अधिक भरोसा किया है। **लिब्रा बिल्डटेक के मामले (उपरोक्त)** में, तथ्य इस प्रकार थे: "एक कंपनी परिसमापन के अधीन थी। न्यायालय के आदेशों के तहत कंपनी की संपत्तियों का निपटान करने के लिए एक समिति नियुक्त की गई थी। उस समिति द्वारा बिक्री विलेख निष्पादित किए गए थे। लेकिन भुगतान और बिक्री विलेखों के निष्पादन के बावजूद, समिति खरीदारों को संपत्तियों का कब्जा नहीं दे सकी। परिणामस्वरूप, न्यायालय के आदेश से, बिक्री रद्द कर दी गई। बिक्री प्रतिफल को वापस करने का निर्देश दिया गया और खरीदारों को उन बिक्री विलेखों पर भुगतान किए गए स्टांप शुल्क की वापसी मांगने की स्वतंत्रता दी गई। एसडीएम, जिसके समक्ष स्टांप शुल्क की वापसी के लिए आवेदन किया गया था, ने आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि यह परिसीमा द्वारा वर्जित है। खरीदारों की ओर से (यानी सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दावेदारों), तीन प्रस्तुतियां दी गईं: (क) जब, स्वीकार्य रूप से, वह उद्देश्य जिसके लिए आवेदकों ने न्यायालय के निर्देशानुसार धन-बिक्री प्रतिफल जमा किया था, विफल हो गया था और न्यायालय ने, परिणामस्वरूप, बिक्री प्रतिफल की वापसी का निर्देश दिया था, तो a fortiori, दावेदार राज्य कोष से संपूर्ण स्टांप शुल्क की वापसी के हकदार थे; (ख) स्टांप शुल्क की राशि की वापसी का निर्देश हमेशा अनुबंध अधिनियम, 1872 की धारा 65 के साथ पठित स्टांप अधिनियम की धारा 49 और 50 में निहित शक्तियों का सहारा लेकर राज्य सरकार के विरुद्ध जारी किया जा सकता था, विशेषकर जब न्यायालय का कोई

कार्य किसी व्यक्ति को हानि न पहुंचाए और संपूर्ण लेनदेन में दावेदारों की कोई गलती न हो; और (ग) एसडीएम वापसी के दावे को परिसीमा के आधार पर खारिज करने में उचित नहीं था क्योंकि वापसी का दावा करने का अधिकार केवल तब उत्पन्न हुआ जब न्यायालय ने समिति को बिक्री प्रतिफल वापस करने का निर्देश दिया क्योंकि समिति बेची गई संपत्तियों का कब्जा खरीदार को देने में विफल रही।

24. उपरोक्त तथ्यों पर, सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के पैराग्राफ 24 से 32 में निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:-

"24. हमारी विचारित राय में, ऊपर उल्लिखित अविवादित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, आवेदक राज्य कोष से 6.22 करोड़ रुपये की संपूर्ण स्टांप शुल्क राशि की वापसी का दावा करने के भी हकदार हैं, जो उन्होंने प्रश्नगत संपत्तियों के संबंध में अपने पक्ष में बिक्री विलेखों के निष्पादन के लिए खर्च की थी। हम यह निम्नलिखित कारणों से कहते हैं।

25. सबसे पहले, स्वीकार्य रूप से पक्षकारों के बीच मूल रूप से अभिप्रेत लेनदेन, अर्थात् जीएफआईएल-समिति द्वारा आवेदकों को प्रश्नगत संपत्तियों की बिक्री, पक्षकारों के नियंत्रण से बाहर के कारणों से पूरा नहीं हुआ और विफल हो गया। दूसरा, इस न्यायालय ने सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद यह भी निष्कर्ष निकाला कि पक्षकारों के लिए मूल रूप से अभिप्रेत लेनदेन को पूरा करना संभव नहीं था और उसे रद्द करते हुए विक्रेता (जीएफआईएल-समिति) को आवेदकों को संपूर्ण बिक्री प्रतिफल वापस करने का निर्देश दिया और साथ ही आवेदकों को 26.09.2012 के आदेश द्वारा राज्य सरकार से स्टांप शुल्क राशि की वापसी का दावा करने की अनुमति दी। तीसरा, इस न्यायालय के आदेश के परिणामस्वरूप, स्टांप शुल्क के रूप में भुगतान की गई राशि की वापसी का दावा करने का अधिकार आवेदकों को प्राप्त हुआ। चौथा, यह एक न्यायालय द्वारा निगरानी किया गया लेनदेन होने के कारण, कोई भी पक्ष न्यायालय की अनुमति के बिना मामले में कोई कदम उठाने की स्थिति में नहीं था। पांचवां, आवेदकों ने पूरे समय अनुबंध के अपने हिस्से का पालन किया और यह सुनिश्चित किया कि प्रश्नगत लेनदेन मूल रूप से अभिप्रेत के अनुसार पूरा हो जाए, लेकिन ऐसे कारणों से जिनके लिए वे जिम्मेदार नहीं थे, लेनदेन पूरा नहीं हो सका। अंत में, आवेदक कानून में राज्य से ऐसे सभी लाभों/फायदों की बहाली का दावा करने के हकदार थे जब एक बार इस न्यायालय द्वारा 26.09.2012 को लेनदेन रद्द कर दिया गया था, अनुबंध अधिनियम की धारा 65 में निहित सिद्धांत के प्रकाश में जो अनुबंध के एक पक्ष को दूसरे पक्ष से ऐसे सभी फायदों की बहाली मांगने में सक्षम बनाता है जो उन्होंने ऐसे अनुबंध से लिए थे जब अनुबंध शून्य पाया जाता है या शून्य हो जाता है। यह एक ऐसा मामला था जहां प्रश्नगत अनुबंध इस न्यायालय के 26.09.2012 के आदेश द्वारा रद्द होने के परिणामस्वरूप शून्य हो गया था, जिसने आवेदकों को स्टांप पेपर खरीदने के लिए राज्य को भुगतान किए गए धन की प्रतिस्थापना मांगने का अधिकार दिया।

26. हमारी विचारित राय में, इस प्रकृति के मामले का निर्णय करते समय, हमें एक इक्विटी के सूत्र को भी ध्यान में रखना होगा, जो अच्छी तरह से स्थापित है, नामत: "एक्टस

क्यूरीए नेमिनेम ग्रावाबिट" जिसका अर्थ है - न्यायालय का कोई कार्य किसी व्यक्ति को हानि नहीं पहुंचाएगा। ब्रूम्स लीगल मैक्सिम्स के 10वें संस्करण, 1939 के पृष्ठ 73 पर इस सूत्र की व्याख्या की गई है, यह कहते हुए कि यह न्याय और सामान्य बुद्धि पर आधारित है और कानून के प्रशासन के लिए एक सुरक्षित और निश्चित मार्गदर्शक प्रदान करता है। इस सूत्र की व्याख्या जेंक. सेंट.118 में भी इन्हीं शब्दों में की गई है। यह सिद्धांत किसी भी न्याय प्रणाली के लिए मौलिक है और हमारे न्यायशास्त्र पर लागू होता है। (देखें: बुशिंग शिमट्ज़ (प्रा.) लिमिटेड बनाम पी.टी. मेंघानी और अन्य तथा राज कुमार दे और अन्य बनाम तारापदा दे और अन्य)

27. इस प्रकार यह कानून का एक स्थापित सिद्धांत है जो इक्विटी के सिद्धांत पर आधारित है कि किसी व्यक्ति को उसकी कोई गलती न होने पर दंडित नहीं किया जा सकता और न्यायालय का कार्य उसके किसी भी अधिकार को कोई हानि नहीं पहुंचाएगा।

28. हमारे विचारपूर्वक मत में, उपरोक्त सिद्धांत इस मामले के तथ्यों पर पूर्ण शक्ति के साथ लागू होगा और यदि यह स्थिति है तो आवेदक, हमारी राय में, राज्य सरकार से संपूर्ण स्टांप शुल्क राशि की वापसी का दावा करने के हकदार हैं, जो उन्होंने प्रश्नगत संपत्तियों के संबंध में विक्रय विलेख के निष्पादन हेतु स्टांप शुल्क खरीदने में व्यय किया था। वास्तव में, ऊपर वर्णित छह कारणों के प्रकाश में, जो हमारी विचारपूर्वक राय में, स्पष्ट रूप से उपरोक्त सिद्धांत में निहित सिद्धांत को आकर्षित करते हैं, राज्य के पास एसडीएम के आदेश का बचाव करने का कोई अधिकार नहीं है जो आवेदकों द्वारा भुगतान किए गए स्टांप शुल्क की राशि को अपने पास रखने का है। आवेदकों के सद्भावपूर्ण वास्तविक वापसी के दावे को ऐसे तकनीकी आधारों पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

29. यह मामला हमें फर्म कालूराम सीताराम बनाम डोमिनियन ऑफ इंडिया में एम.सी. छगला, मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गई टिप्पणियों की याद दिलाता है। विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने अपनी विशिष्ट लेखन शैली में पैरा 19 में निम्नानुसार अवलोकन किया:

"19..... हमें अक्सर यह कहने का अवसर मिला है कि जब राज्य किसी नागरिक के साथ व्यवहार करता है तो उसे सामान्यतः तकनीकी बातों पर निर्भर नहीं होना चाहिए, और यदि राज्य इस बात से संतुष्ट है कि नागरिक का मामला न्यायसंगत है, तो भले ही कानूनी बचाव उसके लिए खुले हों, उसे, जैसा कि प्रख्यात न्यायाधीशों ने कहा है, एक ईमानदार व्यक्ति के रूप में कार्य करना चाहिए।"

हम उपरोक्त अवलोकनों से सम्मानपूर्वक सहमत हैं, क्योंकि हमारी विचारपूर्वक राय में ये अवलोकन राज्य के विरुद्ध हाथ में मौजूद मामले पर पूरी तरह से लागू होते हैं क्योंकि परिसीमा के अतिरिक्त, राज्य के पास अपनी कार्रवाई का बचाव करने का कोई मामला नहीं है।

30. उपरोक्त के अलावा, जब हम अधिनियम की धारा 49 और 50 के प्रकाश में आवेदकों के मामले की जांच करते हैं, तो हमें लगता है कि आवेदकों का मामला अधिनियम की धारा 49 (घ)(2) के साथ पठित धारा 50(3) के अंतर्गत लाया जा सकता है ताकि राज्य को आवेदकों द्वारा स्टांप शुल्क राशि की वापसी मांगने वाले आवेदन पर विचार करने में सक्षम बनाया जा सके। वह व्याख्या, जो न्याय के कारण को आगे बढ़ाती है

और समानता के सिद्धांत पर आधारित है, को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। हम एतद्द्वारा ऐसा करते हैं।

31. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह विवादास्पद नहीं है कि इस न्यायालय ने 26.09.2012 को प्रश्नगत लेनदेन को रद्द कर दिया था, और इसलिए इस न्यायालय के आदेशों के कारण, आवेदकों द्वारा निष्पादित लिखत के लिए उपयोग किए गए स्टांप अनुपयुक्त पाए गए, जिससे मूल रूप से इच्छित उद्देश्य विफल हो गया। यह या तो किसी त्रुटि या गलती के कारण हुआ। चूंकि विक्रय विलेखों का निष्पादन और उसका कार्यान्वयन न्यायालय के आदेशों के अधीन था, पक्षकारों को प्रत्येक कदम के लिए उचित आदेशों हेतु न्यायालय में आवेदन करना आवश्यक था। इसी कारण से, स्टांप शुल्क की राशि की वापसी का दावा करने का अधिकार पहली बार 26.09.2012 को आवेदकों के पक्ष में उत्पन्न हुआ। तदनुसार आवेदकों ने इस आदेश की तारीख से 6 महीने के भीतर अपने आवेदन दाखिल किए थे, जैसा कि धारा 50 में प्रावधान किया गया है। इन तथ्यों के प्रकाश में, आवेदनों को अधिनियम की धारा 49 (घ)(2) के साथ पठित धारा 50 के अंतर्गत दायर मानते हुए स्वीकार किया जाना चाहिए था ताकि आवेदकों द्वारा उसमें दावा की गई स्टांप शुल्क राशि की वापसी प्रदान की जा सके।

32. हमारी सुविचारित राय में, भले ही हम पाते हैं कि स्टांप शुल्क राशि की वापसी के आवेदन दावा करने के लिए अधिनियम की धारा 50 के अंतर्गत निर्धारित परिसीमा के आधार पर एसडीएम द्वारा उचित रूप से खारिज कर दिए गए थे, फिर भी यह ध्यान में रखते हुए कि किसी भी कानून के तहत निर्धारित परिसीमा अवधि की समाप्ति उपचार को रोक सकती है लेकिन अधिकार को नहीं, आवेदक अभी भी ऊपर उल्लिखित आधारों पर स्टांप शुल्क राशि की वापसी का दावा करने के हकदार माने जाते हैं। दूसरे शब्दों में, परिसीमा के आधार पर आवेदनों की खारिजी के बावजूद, हमारा मत है कि आवेदक ऊपर उल्लिखित आधारों के प्रकाश में राज्य से स्टांप शुल्क राशि की वापसी का दावा करने के हकदार हैं।"

25. उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णय से निकलने वाले कुछ कानूनी सिद्धांत इस प्रकार हैं:-

(क) जहां लिखत उस उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त हो जाती है जिसके लिए इसका निष्पादन किया गया था, वहां दावेदार स्टांप अधिनियम की धारा 49 (घ) (2) के साथ पठित धारा 50 (3) के अंतर्गत वापसी की मांग कर सकते हैं;

(ख) जहां न्यायालय के आदेश के अधीन कोई लिखत निष्पादित की जाती है और न्यायालय के आदेश द्वारा भुगतान किए गए स्टांप शुल्क की वापसी मांगने की स्वतंत्रता के साथ लिखत रद्द कर दी जाती है, वहां परिसीमा के तकनीकी आधारों पर वापसी का लाभ नहीं नकारा जाना चाहिए, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि न्यायालय का कोई कृत्य किसी को हानि नहीं पहुंचाना चाहिए; और

(ग) जहां स्टांप शुल्क की वापसी का मामला धारा 49(घ)(2) के साथ पठित धारा 50(3) के अंतर्गत लाया जा सकता है, वहां ऐसी व्याख्या को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो न्याय के कारण को आगे बढ़ाती है और समानता के सिद्धांत पर आधारित है।

अनुवादित

26. **लिब्रा बिल्डटेक के मामले (उपरोक्त)** का तथ्यात्मक परिदृश्य वर्तमान मामले से पूरी तरह से भिन्न है। **लिब्रा बिल्डटेक के मामले (उपरोक्त)** में विक्रय विलेख न्यायालय के आदेश के अधीन, न्यायालय द्वारा नियुक्त समिति द्वारा निष्पादित किया गया था। विक्रय विलेख के निष्पादन के बाद, किसी गलती या त्रुटि के कारण खरीदार को कब्जा नहीं दिया जा सका। वहां, न्यायालय के आदेश के अधीन, विक्रय विलेख रद्द कर दिया गया और खरीदार को विक्रय मूल्य की वापसी के लिए निर्देश जारी किया गया, साथ ही उसे भुगतान किए गए स्टांप शुल्क की वापसी के लिए आवेदन करने की स्वतंत्रता दी गई। उस पृष्ठभूमि में, उच्चतम न्यायालय ने ऊपर उल्लिखित कुछ टिप्पणियां करते हुए स्टांप शुल्क की वापसी का निर्देश दिया। वर्तमान मामले में, सबसे पहले, पट्टा लिखत न तो न्यायालय के आदेशों के अधीन निष्पादित की गई थी और न ही रद्द की गई थी। इस प्रकार, यह सिद्धांत कि न्यायालय का कोई कृत्य किसी को हानि नहीं पहुंचाना चाहिए, यहां लागू नहीं होगा। दूसरा, मूल रूप से इच्छित पट्टे का उद्देश्य पूरी तरह से विफल नहीं हुआ क्योंकि लिखत कम क्षेत्र के लिए संचालित होती रही। महत्वपूर्ण रूप से, **लिब्रा बिल्डटेक के मामले (उपरोक्त)** में उच्चतम न्यायालय को यह टिप्पणी करने का अवसर नहीं मिला कि क्या धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड (2) के प्रावधान ऐसे मामले पर भी लागू होंगे जहां लिखत केवल आंशिक रूप से विफल होती है।

27. स्टांप अधिनियम की धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड (2) के वास्तविक अर्थ की बेहतर समझ के लिए, इसे धारा 49 के प्रारंभिक भाग के साथ संयुक्त रूप से पढ़ना उपयोगी होगा, धारा के अन्य भागों को छोड़कर। वह इस प्रकार पढ़ा जाएगा:

"राज्य सरकार द्वारा बनाए गए ऐसे नियमों के अधीन, जो अपेक्षित साक्ष्य या की जाने वाली जांच के संबंध में हों, कलेक्टर, धारा 50 में निर्धारित अवधि के भीतर किए गए आवेदन पर, और यदि वह तथ्यों से संतुष्ट है, तो इसके बाद उल्लिखित मामलों में खराब हुए मुद्रांकित स्टांपों के लिए भत्ता दे सकता है, अर्थात्:-(घ) किसी पक्षकार द्वारा निष्पादित लिखत के लिए प्रयुक्त स्टांप जो-- (2) बाद में किसी त्रुटि या गलती के कारण मूल रूप से इच्छित उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त पाया गया हो:"

28. जब हम उद्धृत प्रावधान को समग्र रूप से पढ़ते हैं, तो जो ध्यान देने योग्य है वह यह है कि स्टांप अधिनियम की धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड (2) के अंतर्गत उपलब्ध भत्ता उन मुद्रांकित स्टांपों के लिए है जो ऐसी लिखत के निष्पादन के लिए खराब हो गए हैं जो बाद में किसी त्रुटि या गलती के कारण मूल रूप से इच्छित उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त पाई गई हो। इस स्तर पर, हम यह अवलोकन कर सकते हैं कि यद्यपि खंड (घ) में स्टांप शब्द का प्रयोग किया गया है, जो एकवचन है, लेकिन साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 13 (2) के आधार पर, एकवचन में बहुवचन और बहुवचन में एकवचन शामिल होगा, इसलिए खंड (घ) में प्रयुक्त स्टांप शब्द में स्टांप शामिल होंगे। इस प्रकार, एक बार जब भत्ता किसी पक्षकार द्वारा निष्पादित लिखत के निष्पादन के लिए खराब हुए मुद्रांकित स्टांपों के लिए है, जो बाद में मूल रूप से इच्छित उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त पाई

गई हो, तो भत्ता उस लिखत के निष्पादन के लिए खराब हुए स्टांपों के लिए है। क्या आंशिक रूप से विफल होने वाली लिखत के निष्पादन के लिए खराब हुए स्टांपों के किसी भाग के लिए भत्ता स्वीकार्य होगा, अर्थात क्या केवल खराब भाग के लिए भत्ता का दावा किया जा सकता है, यह एक ऐसा मुद्दा है जिसे स्टांप अधिनियम की धारा 49 (घ) के प्रावधानों द्वारा विशेष रूप से संबोधित नहीं किया गया है। क्या ऐसी परिस्थितियों में धारा 49 के खंड (घ) के अंतर्गत केवल खराब भाग के लिए भत्ते का दावा किया जा सकता है? इसका उत्तर कर कानून की व्याख्या के नियमों को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के संदर्भ में प्रावधान की व्याख्या के आधार पर दिया जाना होगा क्योंकि यह सुस्थापित है कि स्टांप अधिनियम एक कर कानून है। कर कानून की व्याख्या को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों का हमने ऊपर पहले ही उल्लेख किया है, और वे नीचे दोहराए जा रहे हैं: (i) कर कानूनों की व्याख्या में समानता और कठिनाई प्रासंगिक नहीं है, किसी को सख्ती से प्रयुक्त शब्दों/भाषा को देखना होता है और प्रावधानों की व्याख्या करते समय अभिप्राय की खोज करने या कोई अनुमान लगाने की कोई गुंजाइश नहीं होती; (ii) प्रभार लगाने वाले प्रावधान में अस्पष्टता के मामले में, लाभ अनिवार्य रूप से विषय/करदाता के पक्ष में जाना चाहिए लेकिन, छूट प्रावधान में अस्पष्टता के मामले में, अस्पष्टता का लाभ सख्ती से राजस्व/राज्य के पक्ष में व्याख्या किया जाना चाहिए। हालांकि, यदि छूट खंड की सख्त व्याख्या से अस्पष्टता का समाधान हो जाता है और विषय छूट खंड के अंतर्गत आता है, तो छूट खंड को पूर्ण प्रभाव देने के लिए एक उदार व्याख्या की जा सकती है। वर्तमान मामले में, हमने पहले ही ऊपर पाया है कि पट्टा लिखत पर स्टांप शुल्क का कोई अतिरिक्त भुगतान नहीं हुआ है। यहां, पट्टा लिखत के निष्पादन के बाद, आंशिक रूप से पट्टे की विफलता के कारण, भत्ते की मांग की गई है। स्टांप अधिनियम के प्रावधान, कम से कम वे जो हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं, ऐसी स्थिति के लिए मौन हैं।. हमारी राय में, स्टांप अधिनियम के प्रावधानों में आंशिक रूप से विफल होने वाली लिखत के लिए भत्ते की स्वीकार्यता के संबंध में स्पष्टता के अभाव में, भत्ते के दावे को इस सामान्य कानूनी सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए अस्वीकार करना होगा कि छूट प्रावधान में अस्पष्टता के मामले में, अस्पष्टता का लाभ सख्ती से राजस्व/राज्य के पक्ष में व्याख्या किया जाना चाहिए। यद्यपि, सख्त अर्थों में, भत्ते को छूट के समान नहीं माना जा सकता, लेकिन भत्ते की व्याख्या के लिए व्याख्या का कठोर नियम प्रारंभ में लागू करना होगा यह पता लगाने के लिए कि क्या विषय इसके दायरे में आता है या नहीं, क्योंकि प्रारंभिक भार उस विषय पर है जो भत्ते का दावा करने के लिए भत्ते का मामला बनाता है। ऊपर दर्ज किए गए सभी कारणों के लिए, हम सम्मानपूर्वक मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के विचार से सहमत हैं जो **मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण, राजस्व बोर्ड, मद्रास बनाम बी.पी. ईश्वरन और अन्य (उपरोक्त)** के मामले में व्यक्त किया गया था कि धारा 49 (घ) स्टांपों के खराब होने के लिए भत्ते की परिकल्पना नहीं करती है, जहां अधिकारों और दायित्वों को समाहित करने वाली एक संयुक्त लिखत केवल आंशिक रूप से विफल होती है और शेष भाग के लिए उपयुक्त रहती है।

अन्यथा भी, सरल तर्क पर, कई मुद्रांकित स्टांपों को खराब करके निष्पादित की गई लिखत को अच्छे भाग से खराब भाग को अलग करने के लिए विच्छेदित नहीं किया जा सकता, ताकि अच्छे का उपयोग किया जा सके। **लिब्रा बिल्डटेक के मामले (उपरोक्त)** में उच्चतम न्यायालय का निर्णय प्रथम प्रत्यर्थी के बचाव में नहीं आता क्योंकि उस मामले में पूरी लिखत मूल रूप से इच्छित उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त पाई गई थी और इसलिए रद्द कर दी गई थी। वर्तमान मामले में, पट्टा लिखत का एक भाग प्रचालनीय रहा इसलिए लिखत मूल रूप से इच्छित उद्देश्य में विफल नहीं हुई। ऊपर की गई चर्चा के परिणामस्वरूप, हम यह मानते हैं कि भत्ते के लिए प्रथम प्रत्यर्थी का दावा न तो स्टांप अधिनियम की धारा 49 के खंड (घ) के उप-खंड (1) के अंतर्गत और न ही उप-खंड (2) या उप-खंड (5) के अंतर्गत टिकाऊ है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिया गया विपरीत दृष्टिकोण अपास्त किया जाता है। मुद्दा संख्या (ii) तदनुसार निर्णीत किया जाता है।

मुद्दा संख्या (iii)

29. हमारे द्वारा तैयार किए गए तीसरे मुद्दे के संबंध में, यह कहना पर्याप्त होगा कि कर मामलों में समानता की सीमित भूमिका होती है। अनुचित समृद्धि का सिद्धांत न्यायसंगत सिद्धांतों पर आधारित है और संविदा अधिनियम की धारा 65 और 72 में वैधानिक मान्यता प्राप्त है। चूंकि कर कानून के प्राधिकार के साथ एक संप्रभु द्वारा धन का अनिवार्य उद्ग्रहण है और यह प्रदान की गई या की जाने वाली सेवाओं के लिए भुगतान नहीं है, एक राजकोषीय कानून के तहत भुगतान किए गए कर या शुल्क की वापसी तब तक नहीं की जानी चाहिए जब तक कि भुगतान किया गया शुल्क अदेय नहीं पाया जाता। यह दोहराया जा सकता है कि स्टांप शुल्क लिखत पर देय होता है; कि, प्रभार लगाने वाले प्रावधान के अनुसार, स्टांप शुल्क पट्टा लिखत में निर्धारित प्रीमियम पर देय होता है; कि मुद्दा संख्या (i) का निर्णय करते समय, यह पहले ही पाया जा चुका है कि स्टांप शुल्क का भुगतान लिखत में निर्धारित प्रीमियम पर देय राशि से अधिक नहीं किया गया था; और बाद के सुधार/संशोधन विलेख में प्रीमियम में कमी के संबंध में कोई उल्लेख नहीं था। इन परिस्थितियों में, भुगतान किया गया स्टांप शुल्क लिखत के स्वरूप के अनुसार था, इसलिए, राज्य की कोई अनुचित समृद्धि नहीं हुई क्योंकि उसे भुगतान किया गया स्टांप शुल्क स्टांप अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार था। निःसंदेह, स्टांप अधिनियम भत्तों का प्रावधान करता है, लेकिन, जैसा कि ऊपर पहले ही माना गया है, रिट याचिकाकर्ता का मामला उन भत्तों के दायरे में नहीं आता। इस प्रकार, यह तर्क कि रिट याचिकाकर्ता न्यायसंगत विचारों पर राहत का हकदार था, के पास खड़े होने के लिए कोई पैर नहीं हैं। मुद्दा संख्या (iii) तदनुसार निर्णीत किया जाता है।

मुद्दा संख्या (iv) और (v)

30. ऊपर तैयार किए गए मुद्दे (iv) और (v) परस्पर संबंधित हैं इसलिए इनका एक साथ निपटान किया जा रहा है। मुद्दा संख्या (iv) यह है कि क्या प्रधान सचिव का दिनांक 28.5.2019 का आदेश शून्य है। रिट याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क, जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश ने स्वीकार किया है, यह है कि एक बार जब संयुक्त सचिव ने पहले ही अपना निर्णय दिनांक 28.02.2019

अनुवादित

के आदेश द्वारा ले लिया था तो प्रधान सचिव के पास नया आदेश पारित करने की कोई शक्ति नहीं थी क्योंकि पुनर्विलोकन की कोई शक्ति मौजूद नहीं है। इस मुद्दे पर स्पष्ट समझ के लिए तथ्यों को दोहराना उपयोगी होगा। वर्तमान मामले में, भत्ते के लिए प्रक्रिया रिट याचिकाकर्ता द्वारा प्रधान सचिव के समक्ष प्रस्तुत एक आवेदन पर शुरू हुई थी। जब यह एक आदेश में परिणत नहीं हुआ, तो एक रिट याचिका दायर की गई जिसमें दावे पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया था। इसके अनुसरण में, जब आवेदन दिया गया, तो रिट याचिकाकर्ता को सूचना प्राप्त हुई कि मामले पर पहले ही निर्णय लिया जा चुका है और प्रधान सचिव द्वारा दावे को खारिज कर दिया गया है। दावे की खारिजी को चुनौती देते हुए, एक नई रिट याचिका दायर की गई, जिसे स्वीकार किया गया और संयुक्त सचिव को एक नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। इसके बाद, संयुक्त सचिव ने दिनांक 28.2.2019 का आदेश पारित किया। 28.05.2019 को, प्रधान सचिव ने एक विपरीत आदेश पारित किया। दिलचस्प बात यह है कि दिनांक 28.5.2019 के आदेश में संयुक्त सचिव के दिनांक 28.2.2019 के आदेश का संज्ञान नहीं लिया गया है। हमें लगता है कि चूंकि, पहले, न्यायालय का निर्देश प्रधान सचिव को था, उन्होंने सद्भावना से दिनांक 28.05.2019 का आदेश पारित किया होगा। लेकिन चूंकि इस बीच संयुक्त सचिव ने पहले ही दिनांक 28.02.2019 को आदेश पारित कर दिया था, इस न्यायालय के बाद के आदेश के अनुसरण में, प्रधान सचिव का आदेश अनुचित था जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने सही ढंग से माना था। यदि प्रधान सचिव ही आदेश पारित करने के लिए सक्षम था, तो राज्य के लिए उचित मार्ग यह था कि वह आदेश में स्पष्टीकरण/सुधार मांगते हुए एक सुधार या स्पष्टीकरण आवेदन प्रस्तुत करता। हालांकि, इस पर ज्यादा कुछ निर्भर नहीं करता क्योंकि जो महत्वपूर्ण है वह यह है कि एक रिट न्यायालय को सामान्यतः ऐसे आदेश को अपास्त नहीं करना चाहिए जिसका परिणाम एक अवैध आदेश को पुनर्जीवित करना या अवैधता को स्थायी बनाना होगा। जैसा कि हमने पहले ही पाया है कि भत्ते का दावा स्टांप अधिनियम के प्रावधानों (अर्थात धारा 49(घ)) के तहत टिकाऊ नहीं था, प्रधान सचिव के आदेश को अपास्त करना, संयुक्त सचिव के आदेश का पालन करने के निर्देश के साथ, अवैधता को स्थायी बनाना होगा। विशेषकर, जब हमने पाया है कि न तो स्टांप अधिनियम के प्रावधान और न ही **लिब्रा बिल्डटेक के मामले (उपरोक्त)** में उच्चतम न्यायालय का निर्णय रिट याचिकाकर्ता के दावे को बनाए रखने में सहायक होगा। इस प्रकार हम मानते हैं कि यद्यपि प्रधान सचिव का आदेश वास्तव में संयुक्त सचिव द्वारा पारित पूर्व आदेश का पुनर्विलोकन था और, इसलिए, उचित नहीं था, लेकिन, हम साथ ही यह भी मानते हैं कि संयुक्त सचिव का दिनांक 28.02.2019 का आदेश कानून में सही नहीं था और, इसलिए, इसके अनुपालन को सुनिश्चित करने का निर्देश अवैधता को स्थायी बनाने का प्रयास होगा। अतः, संयुक्त सचिव के आदेश के अनुपालन के लिए कोई निर्देश नहीं दिया जाना चाहिए था। मुद्दे (iv) और (v) तदनुसार निर्णीत किए जाते हैं।

मुद्दा संख्या (vi)

अनुवादित

31. क्या मामले के तथ्यों में याचिकाकर्ता समर्पित क्षेत्र के लिए भुगतान किए गए स्टांप शुल्क की वापसी के लिए जीएनआईडीए के विरुद्ध राहत का हकदार है, यह एक जटिल मुद्दा है क्योंकि संविदा अधिनियम की धारा 65 में निहित प्रत्यावर्तन का सिद्धांत इस पर लागू नहीं होगा क्योंकि जीएनआईडीए वह प्राधिकरण नहीं है जिसने एक शून्य अनुबंध के तहत कोई लाभ प्राप्त किया। क्या याचिकाकर्ता उस आधार पर जीएनआईडीए से हर्जाने का हकदार है, इसमें तथ्यों की जांच शामिल होगी, विशेष रूप से, यह पता लगाने के लिए कि क्या जीएनआईडीए की ओर से कोई गलत बयानी थी या भूमि अधिग्रहण से संबंधित किसी लंबित मुकदमेबाजी के संबंध में उनके द्वारा महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाया गया था। ये सभी जटिल तथ्य उस आधार पर निर्णय लेने में सक्षम बनाने के लिए हमारे समक्ष नहीं हैं और, अन्यथा भी, रिट याचिकाकर्ता का दावा जीएनआईडीए के समक्ष लंबित है। इसलिए, इस स्तर पर, यह अवलोकन करना पर्याप्त होगा कि चूंकि स्टांप शुल्क जीएनआईडीए द्वारा एकत्र नहीं किया गया था, इसके विरुद्ध स्टांप शुल्क की वापसी का दावा टिकाऊ नहीं होगा। लेकिन क्या जीएनआईडीए हर्जाने/नुकसान के लिए उत्तरदायी है, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसे प्रथम प्रत्यर्थी के लिए उचित स्तर पर कानून के अनुसार उपयुक्त मंच के समक्ष उचित कार्यवाही में उठाने के लिए खुला छोड़ा जाता है। आईटीसी लिमिटेड (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को, जहां विकास प्राधिकरण से स्टांप शुल्क की वापसी का दावा करने का विकल्प दिया गया था, कानून के किसी बाध्यकारी सिद्धांत को निर्धारित करने वाले पूर्व निर्णय के रूप में नहीं लिया जा सकता। उच्चतम न्यायालय के पास पक्षकारों के बीच ठोस न्याय करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति है, जो हमारे पास उपलब्ध नहीं है। मुद्दा संख्या (vi) तदनुसार तय किया जाता है।

32. उपरोक्त सभी कारणों से, हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से सहमत होने में असमर्थ हैं। परिणामस्वरूप अपील **स्वीकार** की जाती है।. दिनांक 01.12.2020 के विद्वान एकल न्यायाधीश के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है। उपरोक्त के अधीन प्रथम प्रतिवादी की रिट याचिका खारिज की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(2023) 2 ILRA 917

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 31.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे मुनीर

विशेष अपील संख्या 576/2022

विकास आयुक्त एवं अन्य

... अपीलकर्ता

बनाम

डॉ. आलोक कुमार एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री अशोक (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री शशि शंकर त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री आर. के. ओझा (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री शिवेन्दु ओझा, श्री प्रतीक राय, श्री संजय कुमार ओम।

ए. सेवा कानून - अस्थायी/नियमित नियुक्ति - आईआईसीटी सेवा नियम, 2016: अध्याय-2 के

अनुवादित

अंतर्गत आने वाले सामान्य सेवा नियम के नियम 8.2 - **किसी भी पक्ष को एक ही चीज़ को स्वीकार और अस्वीकार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, और इस प्रकार कोई गर्म या ठंडा नहीं हो सकता है।** चुनाव के सिद्धांत के पीछे का सिद्धांत एप्रोबेट और रिप्रोबेट की अवधारणा में अंतर्निहित है। कोई एक हिस्से का लाभ नहीं उठा सकता जबकि बाकी हिस्से को अस्वीकार कर सकता है। किसी व्यक्ति को किसी उपकरण पर प्रश्न उठाते हुए उसका लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। ऐसे पक्ष को लेनदेन की या तो पुष्टि करनी होगी या अपुष्ट करना होगा। इस सिद्धांत में निष्पक्ष खेल का एक तत्व अंतर्निहित है। यह किसी पक्ष के आचरण से संबंधित रोक की एक प्रजाति भी है। (पैरा 9)

स्वीकृति का अर्थ मौन या निष्क्रिय स्वीकृति होगा। जब सहमति होती है, तो यह किसी विशेष कार्य के विरुद्ध ज्ञान का अनुमान लगाता है। ज्ञान से निष्क्रिय स्वीकृति आती है, इसलिए इसकी शर्तों के पर्याप्त ज्ञान के बावजूद, मूल अनुबंध को निष्पादित करने से किसी भी कथित इनकार के खिलाफ कोई कार्रवाई करने के बजाय, और इसके बजाय इसे जानबूझकर अनदेखा करके जारी रखने की अनुमति दी जाती है और उसके बाद आगे बढ़ने से, सहमति होती है। परिणामस्वरूप, यह पक्षों में मध्य एक नए निहित समझौते को फिर से प्रस्तुत करता है। **एक बार ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर, यह उस पक्ष के लिए स्वतंत्र नहीं है जिसने मूल शर्तों के अनुपालन पर जोर देने के लिए खुद को तैयार किया है। इसलिए, पक्षों का आचरण आवश्यक है। जब सहमति के बाद देरी होती है, तो यह अभाव बन सकता है।** (पैरा 9)

वर्तमान वाद में, प्रतिवादी संख्या 1 ने अपनी नियुक्ति की शर्तों को स्वीकार कर लिया और उसके पश्चात निदेशक के रूप में सम्मिलित हो गया, इसलिए, उसे अनुमोदन और पुनर्निरीक्षण की अनुमति नहीं दी जा सकती। यहां तक कि निदेशक के रूप में कार्यभार ग्रहण करने के तुरंत बाद उनकी नियुक्ति की शर्तों के संबंध में भी कोई वाद नहीं उठाया गया। यहां तक कि उनकी नियुक्ति की प्रारंभिक अवधि यानी तीन साल जो 31 मार्च 2022 को समाप्त हो गई, पूरी होने तक भी यह मुद्दा नहीं उठाया गया। छह महीने का विस्तार दिया गया। उस वक्त भी कोई मुद्दा नहीं उठाया गया। ऐसा तभी हुआ जब निदेशक के पद पर भर्ती के लिए नया विज्ञापन प्रकाशित किया गया, प्रतिवादी संख्या 1 ने मुद्दा उठाया, इसलिए, प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दायर याचिका देरी और देरी के कारण भी रोक दी गई थी। (पैरा 10)

बी. सीधी भर्ती की परिभाषा का अर्थ नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया के माध्यम से भर्ती होगा। इसलिए, कल्पना के किसी भी विस्तार से, कोई यह व्याख्या नहीं कर सकता है कि सभी सीधी भर्तियाँ नियमित रोजगार द्वारा की जानी हैं। इसलिए, कार्यकाल के आधार पर पद को भरने के लिए सीधी भर्ती भी की जा सकती है। इसलिए, नियमों के तहत किसी वैधानिक रोक के अभाव में, उचित प्रक्रिया का पालन करके सीधी भर्ती के माध्यम से की गई कार्यकाल नियुक्ति को कानून के विपरीत नहीं कहा जा सकता है। सीधी भर्ती में, नियमित या कार्यकाल के आधार पर नियुक्ति नियोक्ता का विवेक है, खासकर जब नियम निषिद्ध नहीं हैं। कानून की

अनुवादित

अदालत किसी कर्मचारी को दिए गए और स्वीकार किए गए दर्जे से अलग दर्जा नहीं दे सकती, खासकर तब जब वह नियमों के तहत निषिद्ध न हो। (पैरा 11)

प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा उद्धृत कोई भी नियम उसे कोई अधिकार प्रदान नहीं करेगा क्योंकि उसमें अस्थायी आधार पर या निश्चित कार्यकाल के लिए नियुक्ति पर कोई रोक नहीं है। (पैरा 11)

विशेष अपील स्वीकार की गयी। (ई 4)

<u>विधिव्यवस्था अनुसरित:</u>

भारत संघ बनाम एन. मुरुगेसन और अन्य, (2022) 2 एससीसी 25 (पैरा 4)

<u>विधिव्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

1. सोमेश थपलियाल बनाम कुलपति, एच.एन.बी. गढ़वाल विश्वविद्यालय, (2021) 10 एससीसी116 (पैरा 5)

2. कृष्णा राय एवं अन्य बनाम बनारस हिंदू विश्वविद्यालय एवं अन्य, एआईआर 2022 एससी 2924 (पैरा 5)

वर्तमान विशेष अपील विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 14.10.2022 के विरुद्ध योजित की गई है।

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल
&
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे मुनीर द्वारा प्रदत्त)

<u>आदेश</u>

1. विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित 14 अक्टूबर, 2022 के आदेश को वर्तमान इंट्रा-कोर्ट अपील दायर करके चुनौती दी गई है।

2 यह एक ऐसा मामला है जिसमें प्रतिवादी नंबर 1, जो यूपी टेक्सटाइल टेक्नोलॉजी इंस्टीट्यूट, कानपुर (बाद में 'संस्थान' के रूप में संदर्भित) में प्रोफेसर के रूप में काम करने वाला एक नियमित कर्मचारी था, को भारतीय कालीन प्रौद्योगिकी संस्थान (इसके बाद 'आईआईसीटी' के रूप में संदर्भित) के निदेशक के रूप में दिनांक 15 नवंबर, 2018 के आदेश द्वारा नियुक्त किया गया था। यह तीन वर्ष की अवधि के लिए या उसके 60 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर, जो भी पहले हो, के लिए था। प्रतिवादी संख्या 1 ने नियुक्ति की शर्तों को स्वीकार करते हुए पद पर कार्यभार ग्रहण किया और तीन वर्ष की समाप्ति तक कार्य किया। इसके बाद, 1 अप्रैल, 2022 के पत्र के माध्यम से, उन्हें छह महीने की अवधि के लिए यानी 30 सितंबर, 2022 तक विस्तार दिया गया। निदेशक, आईआईसीटी के पद पर चयन के लिए प्रकाशित 19 अगस्त, 2022 के विज्ञापन को रद्द करने के लिए इस न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की गई थी; आदेश दिनांक 6 जुलाई, 2022 जिसके तहत आईआईसीटी, भदोही के नए निदेशक के चयन की प्रक्रिया शुरू करने के लिए निर्देश जारी किया गया था; आदेश दिनांक 26 जुलाई, 2022 के माध्यम से रोजगार समाचार पत्र में निदेशक, आईआईसीटी के पद के लिए विज्ञापन प्रकाशित करने और प्रतिवादी नंबर 1 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने तक पद पर बने रहने की अनुमति देने का अनुरोध किया गया था।

3. विद्वान एकल न्यायाधीश ने 6 जुलाई और 27 जुलाई 2022 के आदेश और 19 अगस्त

अनुवादित

2022 के विज्ञापन को भी रद्द करते हुए घोषित किया कि प्रतिवादी नंबर 1, आईआईसीटी सेवा नियम, 2016 के अध्याय- II के तहत आने वाले सामान्य सेवा नियम के नियम 8.2 के अनुसार सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने तक, यानी 65 वर्ष तक निदेशक, आईआईसीटी के पद पर काम करने का हकदार है।

4. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा उठाया गया तर्क यह है कि जारी किए गए विज्ञापन के अनुसरण में, संस्थान में प्रोफेसर के रूप में कार्यरत प्रतिवादी नंबर 1 ने इस पद के लिए आवेदन किया था। उनका चयन और नियुक्ति पूर्णतः अस्थायी आधार पर तीन वर्ष की अवधि के लिए या 60 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर, जो भी पहले हो, के लिए किया गया था। उनके प्रदर्शन और पद के लिए उपयुक्तता के आधार पर कार्यकारी समिति द्वारा आगे के विस्तार पर विचार किया जाना था। प्रतिवादी नंबर 1 ने समझबूझकर और बिना शर्त नियुक्ति की शर्तों को स्वीकार कर लिया था और जुड़ गया था। प्रतिवादी नं. 1 एक सुशिक्षित व्यक्ति है और मामले में असमान सौदेबाजी की शक्ति शामिल नहीं है। प्रतिवादी नंबर 1 ने नियुक्ति की शर्तों को स्वीकार करते हुए तीन साल की अवधि तक बिना कोई मुद्दा उठाए काम करना जारी रखा। चूंकि निदेशक के पद पर नियमित चयन की प्रक्रिया में देरी हुई, इसलिए उन्हें 1 अप्रैल, 2022 के पत्र के माध्यम से छह महीने की अवधि के लिए विस्तार दिया गया, जो 30 सितंबर, 2022 को समाप्त होना था। उपरोक्त अवधि समाप्त होने से पहले, निदेशक, आईआईसीटी के पद पर चयन के लिए 19 अगस्त, 2022 को एक विज्ञापन जारी किया गया था। यह इस स्तर पर था कि प्रतिवादी नंबर 1 ने रिट याचिका दायर की, जो बहुत देर हो चुकी थी और स्वीकृति और रोक के सिद्धांतों द्वारा वर्जित थी। दरअसल, प्रतिवादी नंबर 1 को दिए गए एक्सटेंशन की समाप्ति के बाद, उन्होंने 30 सितंबर, 2022 को पद का प्रभार सौंप दिया था और उसके बाद वह अपने मूल विभाग यानी यूपी टेक्सटाइल टेक्नोलॉजी इंस्टीट्यूट, कानपुर से जुड़ गए थे। इस स्तर पर, प्रतिवादी नंबर 1 के यह दावा करने के लिए बहुत देर हो चुकी है कि उसे संस्थान के निदेशक के रूप में बने रहने की अनुमति दी जानी चाहिए। संस्थान महज एक सोसायटी है. इसके द्वारा जारी किए गए नियमों या निर्देशों का कोई कानूनी बल नहीं है क्योंकि ये भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत नहीं बनाए गए हैं। प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति अस्थायी होने के कारण, जैसा कि नियुक्ति पत्र में विशेष रूप से उल्लेख किया गया था, उसे नियमित आधार पर नियुक्त निदेशक मानने का कोई अधिकार नहीं मिलेगा। तर्कों के समर्थन में, **भारत संघ और अन्य बनाम एन. मुरुगेसन और अन्य मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के** फैसले पर भरोसा किया गया है।

5. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि चूंकि विज्ञापन में यह उल्लेख नहीं किया गया था कि प्रतिवादी संख्या 1 की नियुक्ति एक निश्चित कार्यकाल के लिए अस्थायी आधार पर होगी, इसलिए नियुक्ति पत्र में रखी गई शर्त पूरी तरह से अवैध थी। तथ्य यह है कि नियुक्ति पत्र में परिवीक्षा अवधि का भी उल्लेख किया गया था, यह दर्शाता है कि नियुक्ति प्राधिकारी का इरादा प्रतिवादी नंबर 1 को नियमित नियुक्ति की पेशकश करना था, अन्यथा कार्यकाल के बाद परिवीक्षा अवधि का कभी उल्लेख नहीं किया जाता है। तर्क के समर्थन

अनुवादित

में, **सोमेश थपलियाल बनाम कुलपति, एच.एन.बी गढ़वाल विश्वविद्यालय** 2 और **कृष्णा राय और अन्य बनाम बनारस हिंदू विश्वविद्यालय और अन्य 3** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया गया है।

पक्षों के विद्वान वकील को सुना और पेपर बुक का अवलोकन किया।

रिकॉर्ड में मौजूद तथ्यों से यह पता चलता है कि प्रतिवादी नंबर 1 संस्थान में प्रोफेसर के रूप में काम कर रहा था। 15 नवंबर, 2018 को आईआईसीटी के निदेशक के रूप में नियुक्ति के लिए आईआईसीटी द्वारा एक विज्ञापन जारी किया गया था। प्रतिवादी नंबर 1 को सफल होने पर नियुक्त किया गया था। नियुक्ति पत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि यह पूरी तरह से अस्थायी आधार पर था तीन साल के कार्यकाल के लिए, जिसे बढ़ाया जा सकता है, यदि उनका काम संतोषजनक पाया जाता है।

नियुक्ति की शर्तों में यह भी प्रावधान है कि दो वर्ष की परिवीक्षा होगी। प्रतिवादी नंबर 1 ने विशेष रूप से उन शर्तों को स्वीकार कर लिया जिन पर उसे नियुक्ति की पेशकश की गई थी, वह पद पर शामिल हुआ और तीन साल तक काम किया। चूंकि भर्ती की प्रक्रिया शुरू नहीं की जा सकी, इसलिए प्रतिवादी नंबर 1 को 1 अप्रैल, 2022 को छह महीने की अवधि के लिए विस्तार दिया गया। इसे 30 सितंबर 2022 को समाप्त होना था। फिर भी बिना कोई उंगली उठाए, प्रतिवादी नंबर 1 सेवा विस्तार की शर्तों को स्वीकार करते हुए पद पर बना रहा। निदेशक, आईआईसीटी के पद पर भर्ती के लिए रोजगार समाचार, 13-19 अगस्त, 2022 में एक विज्ञापन जारी किया गया था। इस स्तर पर प्रतिवादी नंबर 1 ने इस मुद्दे को उठाते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया कि प्रारंभिक चरण में उसकी नियुक्ति को नियमित नियुक्ति माना जाना चाहिए, न कि अस्थायी या एक निश्चित कार्यकाल के लिए। आज तक, तथ्य यह है कि 30 सितंबर, 2022 को छह महीने की विस्तारित अवधि समाप्त होने के बाद, प्रतिवादी नंबर 1 ने पहले ही आईआईसीटी के निदेशक के रूप में अपना कार्यभार छोड़ दिया था और संस्थान में अपने मूल कैडर में वापस लौट आया है और वहां शामिल हो गया है। प्रतिवादी नंबर 1 ने जानबूझकर नियुक्ति की शर्तों को स्वीकार कर लिया था और शामिल हो गया था। यह अनुचित हो सकता है, यदि यहां उल्लेख नहीं किया गया है, कि प्रतिवादी नंबर 1 एक अनपढ़ कर्मचारी नहीं है जहां सौदेबाजी की शक्ति नहीं थी। वह एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं, जो पहले से ही संस्थान में प्रोफेसर के रूप में कार्यरत थे और उन्हें आईआईसीटी के निदेशक के रूप में नियुक्ति की पेशकश की गई थी। उनका मामला असमान सौदेबाजी की शक्ति का नहीं है।

वर्तमान मामले के तथ्य एन.मुरुगेसन और अन्य के मामले (सुप्रा) के समान हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त मामले में, सेंट्रल पावर रिसर्च इंस्टीट्यूट (सीआरपीआई) के महानिदेशक के पद को सीधी भर्ती या नियमों के अनुसार प्रतिनियुक्ति पर भरने के लिए एक विज्ञापन दिया गया था। इसमें प्रतिवादी ने सीधी भर्ती के पद के लिए आवेदन किया था। विद्युत मंत्रालय द्वारा नियुक्ति का आदेश जारी किया गया, जिसे प्रतिवादी ने स्वीकार कर लिया। प्रतिवादी बिना किसी आपत्ति के अपने कर्तव्यों का पालन करता रहा। जब उन्हें लगा कि उनका कार्यकाल समाप्त हो रहा है, तो उन्होंने यह कहते

अनुवादित

हुए एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया कि चूंकि उनकी नियुक्ति सीधी भर्ती के माध्यम से की गई थी, इसलिए उन्हें नियमित कर्मचारी माना जाना चाहिए और इसलिए, वह अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख तक बने रहने के हकदार हैं। हालाँकि, प्रतिवादी के कार्यकाल का विस्तार संस्थान के हित में नहीं पाया गया और एक अन्य व्यक्ति को भर्ती किया गया और नए महानिदेशक के रूप में चुना गया। व्यथित, प्रतिवादी ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष दो रिट याचिकाएं दायर कीं, जिसमें उन्हें दिए गए कार्यमुक्ति आदेश और नए महानिदेशक की भर्ती के लिए जारी विज्ञापन पर भी सवाल उठाए गए। एकल न्यायाधीश ने देरी और विलंब के आधार पर रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया। प्रतिवादी द्वारा डिवीजन बेंच के समक्ष दायर की गई अपील को प्रतिवादी को मुआवजा देकर बहाली का आदेश दिए बिना अनुमति दी गई थी। प्रतिवादी द्वारा मांगी गई अन्य राहत पर भी विचार नहीं किया गया और उसे प्रदान नहीं किया गया। डिवीजन बेंच का उक्त आदेश माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विवाद का विषय था। अपील को खारिज करते हुए, एन.मुरुगेसन और अन्य के मामले (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राय दी कि ऐसे मामले देरी, विलंब, स्वीकृति के बाद अनुमोदन और पुनर्परिवीक्षा के सिद्धांतों द्वारा शासित होते हैं। प्रासंगिक पैराग्राफ 25, 26, 37 और 38 को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"25. सहमति का अर्थ मौन या निष्क्रिय स्वीकृति होगा। यह किसी कार्य के लिए निहित और अनिच्छुक सहमति है। दूसरे शब्दों में, ऐसी कार्रवाई निष्क्रिय सहमति के योग्य होगी। इस प्रकार, जब सहमति होती है, तो यह किसी विशेष कार्य के विरुद्ध ज्ञान का अनुमान लगाता है। ज्ञान से निष्क्रिय स्वीकृति आती है, इसलिए इसकी शर्तों के पर्याप्त ज्ञान के बावजूद, मूल अनुबंध को निष्पादित करने से किसी भी कथित इनकार के खिलाफ कोई कार्रवाई करने के बजाय, और जानबूझकर इसे अनदेखा करके जारी रखने की अनुमति दी जाती है और उसके बाद आगे बढ़कर, सहमति होती है। परिणामस्वरूप, यह पार्टियों के बीच एक नए निहित समझौते को फिर से प्रस्तुत करता है। एक बार ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर, यह उस पार्टी के लिए खुला नहीं है जिसने मूल शर्तों के अनुपालन पर जोर देने के लिए खुद को तैयार किया है। इसलिए, जो आवश्यक है, वह है पार्टियों का आचरण। हमने केवल सहमति से जुड़े भेद को निपटाया। जब सहमति के बाद देरी होती है, तो यह लैचेस बन सकता है। यहां फिर से, हम यह मानने के इच्छुक हैं कि स्वीकृति की अवधारणा को मामले-दर-मामले के आधार पर देखा जाना चाहिए।

26. ये वाक्यांश स्कॉट्स कानून से उधार लिए गए हैं। उनका तात्पर्य केवल यह होगा कि किसी भी पक्ष को एक ही चीज़ को स्वीकार करने और अस्वीकार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, और इस प्रकार कोई गर्म या ठंडा नहीं हो सकता है। चुनाव के सिद्धांत के पीछे का सिद्धांत एप्रोबेट और रिप्रोबेट की अवधारणा में अंतर्निहित है। एक बार फिर, यह सामान्य कानून के दायरे में आने वाला समानता का सिद्धांत है। इसलिए, जो जानता है कि यदि वह किसी साधन पर आपत्ति करता है, तो उसे वह लाभ नहीं मिलेगा जो वह चाहता है, उसे फल का आनंद लेते हुए ऐसा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। कोई एक हिस्से का लाभ नहीं उठा सकता जबकि

बाकी हिस्से को अस्वीकार कर सकता है। किसी व्यक्ति को किसी उपकरण पर सवाल उठाते हुए उसका लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। ऐसी पार्टी को लेनदेन की या तो पुष्टि करनी होगी या अपुष्ट करना होगा। इस सिद्धांत को एक सामान्य कानून सिद्धांत के रूप में अधिक सख्ती से लागू किया जाना चाहिए, यदि ऐसा पक्ष वास्तव में एक भाग का पूरी तरह से आनंद लेता है और उक्त आनंद के पूरा होने के करीब है, तो उसके बाद दूसरे भाग पर सवाल उठाता है। इस सिद्धांत में निष्पक्ष खेल का एक तत्व अंतर्निहित है। यह किसी पार्टी के आचरण से संबंधित रोक की एक प्रजाति भी है। हम पहले ही किसी पक्ष के आचरण और बिना शर्त उसकी स्वीकृति के माध्यम से किसी प्रस्ताव की पुष्टि करते समय उसके ज्ञान के अनुमान से संबंधित अनुबंध अधिनियम के प्रावधानों से निपट चुके हैं।

x x x x

37. हम पहले ही कानून के उन सिद्धांतों से निपट चुके हैं जिनका इस मामले पर असर हो सकता है। इसमें असमान सौदेबाजी की शक्ति का कोई तत्व शामिल नहीं है। किसी ने भी प्रतिवादी को अनुबंध करने के लिए मजबूर नहीं किया है। वह वास्तव में 23 वर्षों तक सोसायटी के कर्मचारी थे। हम इस सवाल पर नहीं जाना चाहते कि यह पुनर्नियुक्ति का मामला है या नहीं, क्योंकि तथ्य यह है कि प्रतिवादी नौकरी चाहता था। यही कारण है कि उनके स्थायी/नियमित कर्मचारी होने के मुद्दे को उठाने में एक अस्पष्ट और अध्ययनित अनिच्छा थी, लेकिन केवल उनके कार्यकाल के अंतिम समय में।

38. पहला अभ्यावेदन 30.12.2014 को दिया गया था, उसके बाद अन्य। आचरण स्वयं बोलता है. इसलिए, विलंब, विलंब और सहमति के बाद अनुमोदन और पुनर्परिवीक्षा को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत पर, प्रतिवादी नंबर 1 को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 को लागू करके कोई राहत नहीं दी जानी चाहिए। नियमों की व्याख्या पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि कार्यकाल नियुक्ति पर कानून में कोई रोक नहीं है। हम एक ऐसे पद से निपट रहे हैं जो प्रशासन के शीर्ष पद पर है। पोस्ट के साथ एक इच्छित उद्देश्य और तर्क जुड़ा हुआ है। इस पद के पदाधिकारी को ही अनुसंधान के क्षेत्र में वस्तु एवं दृष्टिकोण को आगे बढ़ाना होता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, इसमें निश्चित रूप से भारी सार्वजनिक हित शामिल है। नियोक्ता के पास विवेक का रास्ता उपलब्ध है। किसी भी मनमानी के अभाव में कोई भी इसकी बुद्धिमत्ता पर सवाल नहीं उठा सकता। आखिरकार उच्चतम स्तर पर निर्णय लिया गया है. हम यह अनुमान नहीं लगा सकते कि निर्णय लेने से पहले सामग्री नहीं रखी गई है। डिवीजन बेंच का यह मानना सही नहीं था कि कार्यपालिका के सर्वोच्च संवैधानिक प्राधिकार को निचले अधिकारियों ने गुमराह किया था। हमें ऐसे अनुमान के लिए कोई जगह नहीं मिलती। समाज के हित में कार्यकाल नियुक्ति के लिए एक सचेत निर्णय लिया गया है। इसी तरह, नई भर्ती के लिए भी एक सचेत निर्णय लिया गया।

मौजूदा मामले में, प्रतिवादी नंबर 1 ने अपनी नियुक्ति की शर्तों को स्वीकार कर लिया और उसके बाद निदेशक के रूप में शामिल हो गया, इसलिए, उसे अनुमोदन और पुनर्निरीक्षण की अनुमति नहीं दी जा सकती। यहां तक कि निदेशक के रूप में कार्यभार ग्रहण करने के तुरंत बाद उनकी नियुक्ति की शर्तों के संबंध में भी

अनुवादित

कोई मुद्दा नहीं उठाया गया। उनकी नियुक्ति की प्रारंभिक अवधि यानी तीन साल पूरी होने तक भी यह मुद्दा नहीं उठाया गया, जो 31 मार्च, 2022 को समाप्त हो गई। छह महीने का विस्तार दिया गया। उस वक्त भी कोई मुद्दा नहीं उठाया गया. ऐसा तभी हुआ जब निदेशक के पद पर भर्ती के लिए नया विज्ञापन प्रकाशित किया गया, प्रतिवादी नंबर 1 ने मुद्दा उठाया, इसलिए, प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा दायर याचिका देरी और देरी के कारण भी रोक दी गई थी।

प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा उद्धृत कोई भी नियम उसे कोई अधिकार प्रदान नहीं करेगा क्योंकि उसमें अस्थायी आधार पर या निश्चित कार्यकाल के लिए नियुक्ति पर कोई रोक नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **एन.मुरुगेसन और अन्य के मामले (सुप्रा)** में पैराग्राफ 32 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"32. नियम अपने आप में कार्यकाल नियुक्ति पर रोक नहीं लगाते हैं। सीधी भर्ती की परिभाषा का अर्थ नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया के माध्यम से भर्ती करना होगा। इसलिए, कल्पना के किसी भी विस्तार से, कोई यह व्याख्या नहीं कर सकता है कि सभी सीधी भर्तियाँ नियमित रोजगार द्वारा की जानी हैं। इसलिए, कार्यकाल के आधार पर पद को भरने के लिए सीधी भर्ती भी की जा सकती है। इसलिए, नियमों के तहत किसी वैधानिक रोक के अभाव में, उचित प्रक्रिया का पालन करके सीधी भर्ती के माध्यम से की गई कार्यकाल नियुक्ति को कानून के विपरीत नहीं कहा जा सकता है। सीधी भर्ती में, नियमित या कार्यकाल के आधार पर नियुक्ति नियोक्ता का विवेक है, खासकर जब नियम निषिद्ध नहीं हैं। नियम 48 एक नियमित कर्मचारी के लिए सेवानिवृत्ति की आयु की बात करता है, जो साठ वर्ष पूरा होगा। उक्त नियम की सराहना करने में कोई कठिनाई नहीं है, जो केवल एक नियमित कर्मचारी से संबंधित है और इसलिए कार्यकाल के आधार पर की गई नियुक्ति से निपटने के दौरान इसका कोई उपयोग नहीं हो सकता है। आख़िरकार, कानून की अदालत किसी कर्मचारी को दिए गए और स्वीकार किए गए दर्जे से अलग दर्जा नहीं दे सकती, खासकर तब जब वह नियमों के तहत निषिद्ध न हो।'

जहां तक **सोमेश थपलियाल के मामले (सुप्रा)** में फैसले का सवाल है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एन.मुरुगेसन और अन्य के मामले (सुप्रा) में इस पर विचार किया है। **सोमेश थपलियाल के मामले (सुप्रा)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लागू सौदेबाजी की शक्ति की अवधारणा भी वर्तमान मामले में गायब है। जहां तक **कृष्णा राय के मामले (सुप्रा)** में फैसले का सवाल है, यह दोहराया गया कि कानून के खिलाफ कोई रोक नहीं हो सकती है। उक्त मामला भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए वैधानिक नियमों की व्याख्या के संबंध में था। वर्तमान मामले में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत ऐसे कोई नियम नहीं बनाए गए हैं और, इस प्रकार, क़ानून के विरुद्ध कोई रोक नहीं होने का सिद्धांत लागू नहीं है।

ऊपर उल्लिखित कारणों से, हमारे विचार में, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 14 अक्टूबर, 2022 का आदेश कानूनी रूप से बरकरार नहीं रखा जा सकता है। इसे रद्द कर दिया गया है और इसके परिणामस्वरूप, प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा दायर रिट याचिका खारिज कर दी गई है।

तदनुसार, विशेष अपील स्वीकार की जाती है।

(2023) 2 ILRA 923

अनुवादित

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट-ए नंबर 8155/2022

एवम अन्य संबंधित वाद

सी/एम इंटरमीडिएट कॉलेज नटौली एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: राकेश चंद्र तिवारी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., ऋषभ त्रिपाठी

ए. शिक्षा कानून - नियुक्ति/चयन - उ.प्र. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 - उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन बोर्ड) अधिनियम, 1982 - धारा 2(ए), 2(1), 10, 11, 12, 16, 34 एवं 35 - उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियमावली, 1998 - नियम 10, 11, 12, 12(6), 12(8) एवं 13 - उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड (प्रक्रिया और व्यवसाय का संचालन) प्रथम विनियम, 1998- विनियम 8(6) - **यह अच्छी तरह से स्थापित है कि आवश्यकता पात्रता को विज्ञापन में निर्धारित अंतिम तिथि तक पूर्ण करना है और उसके बाद अर्जित योग्यता किसी व्यक्ति को पात्र नहीं बनाएगी।** (पैरा 65)

वर्तमान वाद में, 2013 के विज्ञापन संख्या 03 के अनुसार विचार के लिए पात्रता विज्ञापन में निर्धारित अंतिम तिथि के अनुसार पात्रता होनी चाहिए और बाद में अर्जित योग्यता व्यक्ति को चयन के लिए विचार के लिए पात्र नहीं बनाएगी। मार्च, 2022 में बोर्ड द्वारा उठाए गए कदमों के तहत उसने विभिन्न संस्थानों के दो वरिष्ठतम शिक्षकों की सूची मांगी, ताकि उन्हें नियम 12 के आधार पर निहित अधिकार की शर्तों के तहत चयन प्रक्रिया में भाग लेने का मौका दिया जा सके। 1998 के नियमों के (6) गहरे घाव पर एक बैंड सहायता समाधान के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं थे और असफल होने के लिए बाध्य थे क्योंकि उक्त शिक्षकों के पास पात्रता नहीं थी क्योंकि वे निश्चित रूप से 2013 के विज्ञापन क्रमांक 03 में निर्दिष्ट आवश्यकता के संदर्भ में सबसे वरिष्ठ शिक्षक नहीं थे। (पैरा 39, 67)

चयन के मानदंड को बीच में या चयन की प्रक्रिया शुरू होने के बाद अधिकारियों द्वारा नहीं बदला जा सकता है और एकमात्र उचित उपाय पूर्वगामी विज्ञापन को वापस लेना और नियमों के अनुसार एक नया विज्ञापन जारी करना है। (पैरा 48)

बी. बोर्ड ने चयन के लिए उपलब्ध उम्मीदवारों के पूल को स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित कर दिया है और अधिसूचित होते ही लिखित परीक्षा आयोजित करने के 1982 अधिनियम की धारा 11 के तहत निर्धारित आदेश का पालन नहीं किया है। (पैरा 66)

नियम 13 इंस्पेक्टर के लिए यह अनिवार्य बनाता है कि वह चयन होने के तुरंत बाद नियुक्तियां करे। अधिनियम की योजना और उसके तहत बनाए गए नियमों से, यह स्पष्ट है कि हेडमास्टर के पद पर चयन करने के लिए बोर्ड को प्रदत्त शक्तियां एक विज्ञापन जारी करके शुरू की जानी हैं और नियम 12 में निहित अनिवार्य प्रावधानों का पालन करने के

अनुवादित

बाद बोर्ड चयन में समाप्त होनी हैं। **1982 अधिनियम की धारा 10(1) के तहत रिक्तियां अधिसूचित होते ही बोर्ड द्वारा उक्त अभ्यास आयोजित किया जाना है**, जो उक्त अधिनियम की धारा 2(1) के तहत परिभाषित भर्ती के वर्ष के साथ भी इसका सीधा संबंध है। इस प्रकार अधिनियम और 1998 के नियमों के अधिदेश के संदर्भ में समय का कुछ महत्व है। (पैरा 36)

वर्तमान वाद में स्वीकृत रूप से विज्ञापन वर्ष 2013 में जारी किया गया था, जो कि 1982 अधिनियम की धारा 10 के तहत रिक्तियों की अधिसूचना के बाद नियम 12 के संदर्भ में बोर्ड द्वारा उठाया गया कदम है। बिना किसी अच्छे कारण के, बोर्ड ने कोई कदम नहीं उठाया जो उन्हें 1982 अधिनियम की धारा 11 के तहत करना आवश्यक था और परीक्षा आयोजित करने के लिए लगभग 9 वर्षों तक इंतजार करना जारी रखा। (पैरा 37)

धारा 11 के तहत कदम उठाने में देरी का परिणाम यह हुआ कि विभिन्न उम्मीदवार जो योग्य पाए गए और 2013 के विज्ञापन संख्या 03 के अनुसार आवेदन किया था, या तो अनिच्छुक हो गए या अन्यथा अयोग्य हो गए, उन्होंने साक्षात्कार में भाग नहीं लिया। संस्थानों के दो वरिष्ठतम शिक्षक, जिनके पास 1998 के नियमों के नियम 12(6) के आधार पर चयन के लिए विचार किए जाने का निहित अधिकार था और वे विज्ञापन के संदर्भ में पात्र थे, उन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। चूँकि सबसे वरिष्ठ शिक्षक या तो सेवानिवृत्त हो गए थे या अत्यधिक देरी के कारण इस प्रक्रिया में रुचि खो चुके थे। इस प्रकार **जिस निकाय से चयन किया जाना था वह काफी सूक्ष्म हो गया।** (पैरा 38)

बोर्ड द्वारा की गई देरी ने स्पष्ट रूप से अधिनियम को लागू करने के मूल उद्देश्य की अवहेलना की क्योंकि इसने चयन के क्षेत्र को प्रतिबंधित कर दिया। नियुक्तियाँ करने में बोर्ड द्वारा की गई देरी ने इन सभी वर्षों में प्रचलित धारा 18 के तहत निर्धारित तदर्थवाद को बढ़ावा दिया है। यह स्पष्ट रूप से रिक्तियों को अधिसूचित होते ही लिखित परीक्षा आयोजित करने की प्रक्रिया शुरू करने की धारा 11 के आधार पर बोर्ड को दिए गए आदेश के विपरीत था, उक्त कार्रवाई सर्वोत्तम संभव प्रतिभा को आकर्षित करने के लिए नियुक्ति का प्रयास बोर्ड को प्रदत्त शक्तियों का भी उल्लंघन करती है। । (पैरा 40,41)

सी. भारत का संविधान: अनुच्छेद 14 और 16 - अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 16 के तहत नागरिकों के अधिकारों को उस स्थिति में संरक्षित किया जाना आवश्यक है जब राज्य की कार्रवाई या उसके साधन अनुच्छेद 14 और 16 के अनुरूप नहीं पाए जाते हैं। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यद्यपि राज्य को उम्मीदवारों के चयन के लिए निर्णय लेने की स्वतंत्रता है, तथापि, यह राज्य को प्रक्रियात्मक आवश्यकता का पालन किए बिना निर्दिष्ट या निष्पक्ष खेल की कीमत पर और मनमानी के आधार पर ऐसा करने के लिए कोई बेलगाम शक्ति प्रदान नहीं करता है। (पैरा 43,44)

भारत के संविधान का अनुच्छेद 14 राज्य की किसी भी कार्रवाई को अस्वीकार करता है जो

अनुवादित

मनमाना है और मूल या प्रक्रियात्मक उचित प्रक्रिया के अनुरूप नहीं है। अनुच्छेद 14 जीनस है और अनुच्छेद 16 प्रजाति है। अनुच्छेद 16 राज्य या उसके साधन पर यह सुनिश्चित करने का कर्तव्य रखता है कि राज्य के तहत किसी भी कार्यालय में रोजगार और नियुक्ति से संबंधित वाद में अनुच्छेद 16(4), अनुच्छेद 16(4)(ए) और अनुच्छेद 16(4)(बी) के तहत निर्धारित प्रावधान करने की राज्य को प्रदत्त शक्तियों के अधीन भेदभाव सभी नागरिकों (बेशक उनके पास योग्यता होने पर) के लिए अवसरों की समानता है। (पैरा 42,43)

एक योग्य उम्मीदवार को संविधान के अनुच्छेद 16(1) के तहत किसी कार्यालय या पद पर भर्ती के लिए अपने अधिकार में विचार के लिए अपना दावा पेश करने का मौलिक अधिकार है। उचित प्राधिकारी द्वारा अधिसूचना नहीं दिये जाने के कारण चयन की प्रक्रिया नहीं हो पाने से लोगों के मानस पर हानिकारक प्रभाव पड़ रहा है। कर्तव्य की उपेक्षा अनुच्छेद 16(1) के तहत संवैधानिक अधिकारों को गंभीर रूप से नष्ट कर रही है और चयन की उचित प्रक्रिया को बाधित करने का एक स्रोत है। (पैरा 54)

नौ वर्ष पश्चात भर्ती करने का बोर्ड का कदम भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। (पैरा 68)

डी. शब्द और वाक्यांश - "जितनी जल्दी हो सके" अर्थात उस समय के भीतर जो उचित रूप से सुविधाजनक या अपेक्षित हो वाक्यांश की परिभाषा "जितनी जल्दी हो सके" अर्थात उस समय के भीतर जो उचित रूप से अपेक्षित हो, 1982 अधिनियम की धारा 11(1) की व्याख्या पूरी ताकत के साथ लागू होगी। अभिव्यक्ति "जैसे ही" की व्याख्या यह नहीं की जा सकती कि कार्रवाई नौ साल बाद की गई है, हालांकि कोई समय सीमा तय नहीं है, "जैसे ही" वाक्यांश की व्याख्या उचित समय के भीतर भर्ती के संदर्भ में की जानी चाहिए, भर्ती का वर्ष और वह आशय जिसके लिए विज्ञापन जारी किया गया है। (पैरा 66)

इस प्रकार किए गए चयनों ने स्पष्ट रूप से योग्य उम्मीदवारों (दो वरिष्ठतम शिक्षकों) को 1998 के नियमों के नियम 12 (6) के तहत उनके अधिकारों से वंचित कर दिया है और साथ ही 2014 के बाद योग्यता हासिल करने वाले उम्मीदवारों को भी देरी के कारण बोर्ड द्वारा विचार किए जाने से वंचित कर दिया गया है। याचिकाकर्ताओं के अधिकारों का भी उल्लंघन किया गया है, क्योंकि सीधी भर्ती के माध्यम से नियुक्ति अप्रत्यक्ष रूप से वरिष्ठतम शिक्षकों के लिए उपलब्ध पदोन्नति का एक अवसर है जो अन्यथा 1998 के नियम 10 के संदर्भ में उपलब्ध नहीं है। चयन की पूरी प्रक्रिया भी खराब है क्योंकि जिस पूल से बोर्ड द्वारा चयन किया जाना है वह नियुक्ति की प्रक्रिया पूरी करने में अत्यधिक देरी के कारण सीमित गया है और इस प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16 का उल्लंघन हुआ है। (पैरा 69)

रिट याचिकाएँ स्वीकार की गईं। (ई 4)

<u>विधिव्यवस्था अनुसरित :</u>

1. चंदगी राम बनाम राजस्थान विश्वविद्यालय, (2001) 10 एससीसी 556 (पैरा 46)
2. मदन मोहन शर्मा बनाम राजस्थान राज्य, (2008) 3 एससीसी 724 (पैरा 48)

अनुवादित

3. महाराष्ट्र राज्य रोड ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन एवं अन्य बनाम राजेंद्र भीमराव मांडवे और अन्य, (2001) 10 एससीसी 51 (पैरा 48)

4. बलप्रित सिंह और अन्य बनाम चंडीगढ़ प्रशासन एवं अन्य, 2016 एससीसी ऑनलाइन पी एंड एच 9902 (पैरा 49)

5. सैयद मेहदी बनाम एनसीटी दिल्ली सरकार एवं अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन डेल 9015 (पैरा 50)

6. नौशाद अनवर और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2014) 11 एससीसी 203 (पैरा 51)

7. रेनू एवं अन्य बनाम जिला एवं सत्र न्यायाधीश तीस हजारी कोर्ट, दिल्ली एवं अन्य, (2014) 14 एससीसी 50 (पैरा 52)

8. के. शेखर बनाम वी. इंदिरामन और अन्य, (2002) 3 एससीसी 586 (पैरा 53)

9. प्रदीप गोगोई और अन्य बनाम असम राज्य एवं अन्य, (1998) 8 एससीसी 726 (पैरा 54)

10. जगदीश प्रसाद बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, (2011) 7 एससीसी 789 (पैरा 55)

11. सचिन कुमार एवं अन्य बनाम दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड (डीएसएसएसबी) और अन्य, (2021) 4 एससीसी 631 (पैरा 55)

12. डॉ. सुश्री ओ.जेड. हुसैन बनाम भारत संघ, 1990 सप्प एससीसी 688 (पैरा 56)

13. एफ.सी.आई. और अन्य बनाम परशोतम दास बंसल एवं अन्य, (2008) 5 एससीसी 100 (पैरा 56)

14. दीपक अग्रवाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2011) 6 एससीसी 725 (पैरा 56)

15. अब्दुल जबर बट बनाम जम्मू कश्मीर राज्य, 1957 एससीआर 51 (पैरा 66)

<u>विधिव्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

1. विवेक कुमार उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-ए संख्या 364/2022, 25.02.2022 दिनांक को निर्णय लिया गया (पैरा 11, 57)

2. मोहन सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-ए संख्या 700/2022, दिनांक 20.06.2022 को निर्णय लिया गया (पैरा 58)

3. मनीष कुमार त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-ए संख्या 14975 /2019(पैरा 59)

4. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम अजय वालिया (सुश्री), (1997) 6 एससीसी 255 (पैरा 60)

5. रमेश चंद्र शाह एवं अन्य बनाम अनिल जोशी और अन्य, सिविल अपील संख्या 2802-2804/2013 एसएलपी (सी) संख्या 30581-30583 /2012 से उत्पन्न, दिनांक 03.04.2013 को निर्णय लिया गया] (पैरा 61)

6. शंकर मंडल बनाम पश्चिम बंगाल के सेंट और अन्य, सिविल अपील संख्या 1924, 2010, 15.02.2022 को निर्णय लिया गया (पैरा 62)

7. भारत संघ और अन्य बनाम एन. मुरुगेसन और अन्य, (2022) 2 एससीसी 25 (पैरा 63)

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाओं का यह समूह, उत्तर प्रदेश उच्चतर माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921 के प्रावधानों के तहत मान्यता प्राप्त उच्चतर माध्यमिक कॉलेजों और उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन *बोर्ड*) अधिनियम, 1982 (संक्षेप में '1982 अधिनियम') सहपठित उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन *बोर्ड* नियमावली, 1998 के प्रावधानों के तहत मान्यता प्राप्त हाईस्कूलों में प्रधानाचार्यों के पदों को भरने के लिए समिति को

अनुवादित

प्रदत्त शक्तियों के संदर्भ में प्रतिवादी संख्या 2 के द्वारा प्रकाशित विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के आधार पर की गई नियुक्तियों के संदर्भ में, विविध आधारों पर दायर किया गया है। इन विविध रिट याचिकाओं में, किए गए चयनों को चुनौती देने के संख्येय आधार हैं, हालाँकि, सभी रिट याचिकाओं में एक उभयनिष्ठ सूत्र है, जिसका प्रार्दुभाव रिक्तियों के भरे जाने हेतु जारी विज्ञापन संख्या 03/ 2013 से हुआ और समापन वर्ष 2022 में, लगभग 9 वर्षों के पश्चात, की गई नियुक्तियों के रुप में हुआ है जोकि स्वयं में मनमाना और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन है। मैं इस उभयनिष्ठ प्रश्न, जो विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के अनुसरण में किए गए चयनों से संबंधित सभी रिट याचिकाओं में उत्पन्न हुआ है, को तय करने की प्रस्थापना करता हूँ इस प्रकार, सभी रिट याचिकाओं का निर्णय इस साझा आदेश के माध्यम से किया जा रहा है।

2. संक्षिप्तता के लिए, निदर्शक रिट-ए संख्या 1612/ 2022 में वर्णित कथनों का उल्लेख किया जा रहा है।

3. उक्त रिट याचिका में याचिका कर्ता का दावा है कि वह राजर्षि टंडन इंटरकॉलेज, रामनगर, अठगवां, जिला प्रतापगढ़ नामक संस्थान, जोकि उ.प्र. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा अधिनियम के प्रावधानों के तहत एक मान्यताप्राप्त संस्थान है, में नियुक्त हुआ एवं अध्यापक पद पर वेतन आहरित कर चुका है। प्रतिवादी संख्या 2 ने संबद्ध उच्चतर माध्यमिक कॉलेजों में प्रधानाचार्य के पद को भरने हेतु विज्ञापन संख्या 03/ 2013 जारी किया। उक्त विज्ञापन रिट याचिका में अनुलग्नक- 1 के रूप में संलग्न है। उक्त विज्ञापन के अनुसार पात्र अभ्यर्थियों से दिनांक 31.01.2014 तक आवेदन पत्र आमंत्रित किये गये थे। यह सूचित किया गया है कि उक्त तिथि को बाद में फरवरी, 2014 तक बढ़ा दिया गया था। अनुलग्नक संख्या 1 के साथ उन संस्थानों के नाम, जहाँ प्रधानाचार्यों के पद रिक्त थे, भी संलग्न हैं।

4. यह कथन किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा विज्ञापन जारी करने के बावजूद कोई कदम नहीं उठाया गया और अचानक वर्ष 2022 में, दो वरिष्ठतम शिक्षकों को ऑनलाइन पोर्टल पर अपना विवरण भरने के लिए बुलाने का निर्णय ले लिया गया। 10.01.2022 के बाद, प्रपत्र भरने के तरीके आदि को भी एक विज्ञापन के माध्यम से अधिसूचित किया गया था जिसे रिट याचिका में अनुलग्नक संख्या 5 के रूप में संलग्न किया गया है। कुछ याचिकाकर्ताओं द्वारा यह दावा किया गया है कि याचिकाकर्ताओं के नाम प्रबंधन बोर्ड द्वारा भेजे गए थे, और याचिकाकर्ताओं को साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था, हालांकि, उन्हें साक्षात्कार देने की अनुमति नहीं दी गई, जिस कारण रिट याचिका संख्या 372/ 2022 दायर की गई। उक्त रिट याचिका का निर्णय अन्य रिट याचिकाओं के साथ दिनांक 25.02.2022 के एक साझा निर्णय के माध्यम से किया गया था, जिसके तहत उच्च न्यायालय ने पक्षों द्वारा दी गई दलीलों और प्रस्तुतियों पर दो मुद्दे तय किए जो कि इस प्रकार हैं:

"1. क्या याचिकाकर्ता, उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियमावली 1998 के नियम 11-(2)(ख) के तहत और विज्ञापन संख्या 1/ 2011 या विज्ञापन संख्या 3/ 2013 के अनुसरण में विज्ञापित किए गये, जैसा

अनुवादित

भी प्रकरण हो, अपने संस्थान में रिक्त हुए प्रधानाचार्य के पद पर चयन और नियुक्ति के लिए पात्र थे और विचार के दायरे में थे?

2. क्या याचिकाकर्ताओं की पात्रता और नियमावली 1998 के नियम 11(2)(ख) के तहत प्रधानाचार्य के रूप में चयन और नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के उनके दावे को विज्ञापन संख्या 1/ 2011 या 3/ 2013 के अनुसरण में, जैसा भी प्रकरण हो, अभ्यर्थियों को साक्षात्कार हेतु आमंत्रित करने के लिए निर्धारित तिथि के संबंध में विचार किया जाना है, यदि नहीं; क्या याचिकाकर्ताओं के पास नियमावली 1998 के नियम 11(2)(ख) के तहत नियुक्ति के लिए जारी उक्त विज्ञापनों के अनुसरण में संस्थान, जिसमें वे अब तक तदर्थ प्रधानाचार्य के रूप में काम करने का दावा करते हैं, के प्रधानाचार्य के पद पर विचार किए जाने हेतु अपना दावा जताते हुए प्रस्तुत इन रिट याचिकाओं को पोषणीय रखने की अधिस्थिति है?

5. अंततः न्यायालय ने उपरोक्त मुद्दों पर याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध निर्णय देते हुए व्यवस्था दी कि याचिकाकर्ता न तो विज्ञापन के समय संस्थान के सबसे वरिष्ठ अध्यापक थे और न ही उनके पास विज्ञापन की तिथि पर अपेक्षित योग्यता थी और इस प्रकार, रिट याचिकाएं खारिज कर दी गईं, हालाँकि, रिट याचिका को खारिज करने के बाद, याचिकाकर्ताओं की योग्यता पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिलिखित किया:

"उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, इस न्यायालय का यह मत है कि नियमावली 1998 के नियम 11(2)(ख) के अनुसार मांग प्रेषित करने के प्रासंगिक समय पर याचिकाकर्ताओं में से कोई भी संस्थान के दो ज्येष्ठतम अध्यापकों में से नहीं था इसलिए वे विज्ञापन संख्या 1/ 2011 या 3/ 2013 के तहत विज्ञापित प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक के पद पर विचार किए जाने के लिए दायरे में नहीं थे। वे प्रासंगिक समय पर अपेक्षित योग्यता या अनुभव को पूर्ण नहीं करते थे। उन की पात्रता और विचार किए जाने के लिए दायरे में होने के दावे को विज्ञापन संख्या 01/ 2013 या 03/ 2013 के संबंध में साक्षात्कार की तिथि के आधार पर तय नहीं किया जाना है। इसलिए, उनके पास इन रिट याचिकाओं को उनके वर्तमान स्वरूप में पोषणीय रखने की कोई अधिस्थिति नहीं है, खासकर चूंकि, उन्होंने चयन को आयोजित करने में लगभग 10 या अधिक वर्षों की अत्यधिक विलंब के आधार पर उक्त विज्ञापनों को चुनौती नहीं दी है, सिवाय रिट-ए संख्या 317/ 2022 को छोड़कर, जहां, विज्ञापन संख्या 3/ 2013 को चुनौती दी गई है, लेकिन इस आधार पर नहीं और जैसा कि पहले ही ऊपर चर्चा की जा चुकी है, इस आधार के बिना, पहले से ही दिए गए कारणों से, उक्त याचिकाकर्ताओं के लिए जारी आदेश पर चुनौती सुनवाई योग्य नहीं है।

सभी विरचित प्रश्नों का उत्तर तदनुसार है।

यदि याचिकाकर्ता विधि में अन्यथा अनुमति हों और यदि विज्ञापन संख्या 03/ 2013 से संबंधित चयन प्रक्रिया को पूरा करने के लिए न्यायालयों का कोई आदेश या निर्देश नहीं हो और यदि अभी तक चयन पूरा नहीं हुआ हो तात्पर्य साक्षात्कार आदि सम्पन्न नहीं हुआ हो, यदि वे प्रश्नगत पदों के लिए अन्यथा पात्र हैं, इस संबंध में विपक्षियों के अधिकारों के अन्तर्गत विलंब व असावधानियों की आदि की दलील देते हुए, यदि कोई हो, तो इसे पूरा करने में हुए लंबे विलंब के आधार पर चुनौती दे सकते हैं। विज्ञापन

अनुवादित

संख्या 01/ 2011 के संबंध में याचिकाकर्ताओं की संस्था का चयन पूरा हो चुका है, इसलिए उनके लिए बहुत देर हो चुकी है।

इसके अलावा, यह राज्य सरकार और/या समिति को भी विचार करना है कि किसी भर्ती प्रक्रिया को लगभग 10 या अधिक वर्षों तक लंबित रखना कितना न्यायोचित और तर्कसंगत है, जिसके मध्य कई उम्मीदवार चाहे वे सीधी भर्ती के लिए एक या अन्य स्रोत से हों, विभिन्न कारणों यथा अधिकतम आयु से अधिक होने अथवा सेवानिवृत्त होने आदि से अपात्र हो गये हों और क्या ऐसे परिदृश्य में यदि भर्ती प्रक्रिया 2 या 3 वर्ष की उचित अवधि के भीतर पूरी नहीं होती है, तो क्या ऐसे विज्ञापन को रद्द नहीं कर दिया जाना चाहिए और रिक्त पदों को पुनःविज्ञापित किया जाना चाहिए ताकि अन्य लोग, जो इस अंतराल में भर्ती के किसी भी स्रोत से विचार के लिए पात्र हो गए हों, भी इसमें सम्मिलित हो सकें? भविष्य के लिए इस संबंध में उचित कदम उठाए जाने चाहिए।"

6. उक्त स्वतंत्रता और उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 25.02.2022 के निर्णय में की गई टिप्पणियों के आलोक में, याचिकाकर्ताओं ने विज्ञापन जारी होने के पश्चात नियुक्तियाँ करने में हुये अत्यधिक विलंब सहित विभिन्न आधारों पर विज्ञापन को चुनौती देते हुए वर्तमान याचिकाएं दायर की हैं।

7. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री शरद पाठक के तर्क उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन बोर्ड) अधिनियम, 1982 और 1982 अधिनियम (उ.प्र. अधिनियम संख्या 5/ 1982) की धारा 35 के अनुसरण में बनाए गए नियमों, जिन्हें 'उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियम, 1998' के नाम से जाना जाता है, के प्रावधानों की व्याख्या पर आधारित हैं। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने 1982 अधिनियम के प्रावधानों विशेष रूप से 1982 अधिनियम की धारा 2(ए), 2(1), 10, 11, 12, 16 को इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया। अधिनियम की धारा 35 के तहत प्रदत्त शक्तियों के आधार पर बनाए गए नियम 10, 11 और 12 की ओर भी उन्होंने मेरा ध्यान आकर्षित किया।

8. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का प्रथम तर्क यह है कि विज्ञापन के अनुसरण में 9 वर्षों से अधिक की अवधि के लिए नियुक्ति में विलंब करना पूरी चयन प्रक्रिया के लिए घातक है और अधिनियम के अधिदेश के विपरीत है, जिसके लिए अधिनियम अधिनियमित किया गया था और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन है।

9. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने अग्रेतर तर्क दिया कि विज्ञापन के अनुसार चयन करते समय नियम 11 और 12 विशेष रूप से नियम 12(6) और 12(8) में निहित अनिवार्य प्रावधानों का पालन नहीं किया गया है। इस प्रकार उनका तर्क है कि विज्ञापन और उसके अनुसरण में किए गए चयन रद्द किए जाने योग्य हैं।

10. समिति की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आर.के. सिंह सूर्यवंशी ने जवाबी हलफनामे पर भरोसा व्यक्त किया जिसमें उन्होंने विज्ञापन के वर्ष 2013 में जारी होने के बाद चयन में विलंब को उचित ठहराने के लिए मेरा ध्यान आकर्षित किया। लंबे विलंब को उचित ठहराते हुए प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दायर जवाबी हलफनामे का प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 3, इस प्रकार है:

"3. माननीय न्यायालय के विचारार्थ प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:-

I. यह कि बोर्ड द्वारा संस्था के प्रधानाचार्य पद पर नियुक्ति के लिए विज्ञापन (विज्ञापन संख्या 03/ 2013) प्रकाशित किया गया था जिसे 06.02.2014 को संशोधित किया गया और आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि 25.02.2014 थी परन्तु विज्ञापन संख्या 01/2011 के तहत प्रधानाचार्य पद पर चयन को रिट याचिका संख्या 6550/2014 में चुनौती दी गई थी जिसमें 03.02.2014 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था जिसे 28.11.2018 को संशोधित किया गया।

II. यह कि माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 24.10.2018 को पारित आदेश को विशेष अपील संख्या 1289/ 2019 के माध्यम से चुनौती दी गई है, जिसका निस्तारण इस माननीय न्यायालय द्वारा 08.01.2019 को किया गया इसलिए बाद में विज्ञापन संख्या 01/ 2011 के अनुसार चयन कार्यवाही को अंतिम रूप दिया गया है। यहां यह इंगित करना सुसंगत होगा कि रिट याचिका के लंबित होने के कारण, विज्ञापन संख्या 01/ 2011 के अनुसार चयन कार्यवाही पूरी नहीं की जा सकी और चयन प्रक्रिया पूर्ण होने के बाद, समिति द्वारा अंतिम परिणाम प्रकाशित किया गया जिसमें कुछ चयनित अभ्यर्थियों ने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली। माननीय न्यायालय के संज्ञान में यह भी लाया गया कि विज्ञापन संख्या 01/1999-2000 के संबंध में चयन प्रक्रिया निर्धारित समय-सीमा में सफल नहीं हो पाई, क्योंकि प्रकरण माननीय न्यायालय एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन था तथा बलबीर कौर के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 16-05-2008 के पश्चात उक्त विज्ञापन के संबंध में चयन प्रक्रिया अंततः पूर्ण हुयी। इसी प्रकार, विज्ञापन संख्या 01/ 2011 के लिए चयन रिट याचिका संख्या 6550/ 2014 (हरीश चंद्र दीक्षित और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य) में माननीय न्यायालय के निर्णय के बाद ही पूरा किया जा सका, जिसमें एक अंतरिम आदेश 03.02.2014 को पारित किया गया था जिसे 28.11.2018 को संशोधित किया गया और विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 1289/ 2018 (प्रेम चंद्र त्रिपाठी और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य) में आदेश दिनांक 18.10.2019 पारित किया गया। ***माननीय न्यायालय के संज्ञान में यह भी लाया गया है कि विज्ञापन संख्या 02/ 2013 और 03/ 2013 निर्धारित समय में अंतिम रूप नहीं ले सके क्योंकि प्रवक्ता पद के लिए लिखित परीक्षा और साक्षात्कार जारी था और बोर्ड के अध्यक्ष सहित सदस्य 2017 से लगभग डेढ़ वर्ष की अवधि तक उपस्थित नहीं रहे और इसलिए विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के तहत भर्ती की प्रक्रिया निर्धारित समयावधि में पूरी नहीं हो सकी। माननीय न्यायालय के समक्ष यह अत्यंत विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत है कि चयन प्रक्रिया में जो विलंब हुआ वह विशेष समय पर मौजूद परिस्थितियों और स्थिति के कारण हुआ और पूरी कार्यवाही में जानबूझकर उपेक्षा या विलंब नहीं किया गया है, बल्कि चयन प्रक्रिया निर्धारित समय के भीतर ऊपर बताए गए कारणों से ही पूर्ण नहीं हो पायी।***

III. यह कि विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के संबंध में, एक रिट याचिका रिट-ए संख्या 10609/ 2021 डॉ. दिलीप कुमार अवस्थी और अन्य द्वारा बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य दायर की गई थी, जिसका निस्तारण दिनांक 07.10.2021 को यह निर्देशित करते हुए किया गया कि उन अभ्यर्थियों

को बाहर करें जो सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुके हैं।

IV. यह कि विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के अनुसार चयन पूरा करने के लिए, एक रिट याचिका रिट-ए संख्या 14975/ 2019 इस माननीय न्यायालय के समक्ष दायर की गई थी, जिसको निस्तारित करते हुए दिनांक 30.09.2019 को बोर्ड को एक निर्देश दिया गया कि विज्ञापन संख्या 03/2013 के अनुसार चयन पूरा करने के लिए उचित कदम उठाएं। माननीय न्यायालय द्वारा दिनांक 30.09.2019 को पारित आदेश के अनुपालन में बोर्ड ने चयन प्रक्रिया को 31.01.2022 तक पूर्ण करने का निर्णय लिया। अग्रेतर यह कथन है कि इस माननीय न्यायालय द्वारा दिनांक 30.09.2019 को पारित आदेश का अनुपालन न करने पर एक अवमानना याचिका संख्या 3069/ 2021 दायर की गई है जिसमें माननीय न्यायालय ने चयन प्रक्रिया को पूरा करने के लिए एवं उपरोक्त आदेश के अनुपालन में एक विस्तृत आदेश पारित किया। बोर्ड ने दिनांक 02.01.2022 के आदेश द्वारा आवश्यक निर्देश जारी किए, जिसके माध्यम से जिला विद्यालय निरीक्षक और प्रबंधन को दो वरिष्ठतम शिक्षकों, जो आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि यानी 25.02.2014 को पात्र थे, के प्रासंगिक दस्तावेज ऑनलाइन माध्यम से, प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया।"

11. श्री आर.के. सिंह सूर्यवंशी ने आगे मेरा ध्यान इस तर्क की ओर आकर्षित किया है कि जब एक बार विवेक कुमार उपाध्याय बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य [रिट-ए संख्या 364/2022),के प्रकरण में इस न्यायालय द्वारा इस मुद्दे का निर्णय किया जा चुका है, तो इस न्यायालय द्वारा निर्णय किए जाने हेतु कुछ भी शेष नहीं बचा है।

12. विद्वान शासकीय अधिवक्ता श्री रणविजय सिंह ने श्री सूर्यवंशी के तर्कों को अंगीकृत किया और लंबे विलंब के बावजूद विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के अनुसरण में की गई नियुक्तियों को उचित ठहराया।

13. कुछ चयनित अभ्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सोम कार्तिक शुक्ला ने नियुक्तियों को उचित ठहराया और बोर्ड के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को अंगीकृत किया। उनका यह भी तर्क है कि विवेक कुमार उपाध्याय (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा मुद्दे निर्णीत किए जाने के पश्चात याचिकाकर्ताओं को याचिकाएं दायर करने का कोई अधिकार नहीं है।

14. श्री जी.सी. वर्मा और श्री बी.के. सिंह ने श्री शरद पाठक द्वारा दिये तर्कों को अंगीकृत करने के अलावा विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के अनुसरण में की गई नियुक्तियों में कुछ अन्य विसंगतियों को इंगित किया; जैसे कि समिति ने, उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड (प्रक्रिया और कार्य संचालन) प्रथम विनियम, 1998 के विनियम 8(6) के तहत पंजीकृत डाक द्वारा साक्षात्कार पत्र जारी करने के लिए 21 दिनों की वैधानिक अवधि का पालन नहीं किया है। बोर्ड ने 16.03.2022 की मांग के बाद वरिष्ठतम शिक्षकों की नई सूची प्रकाशित नहीं की। बोर्ड की वेबसाइट पर अभ्यर्थियों के प्रमाणपत्रों की जांच के लिए पोर्टल 16.01.2022 को बंद कर दिया गया था और चूँकि मांग 16.03.2022 को ही की गई थी, इस प्रकार, याचिकाकर्ता को विवरणों की जांच करने के अपने अधिकारों से वंचित और प्रतिबंधित कर दिया गया।

15. अग्रेतर यह तर्क दिया गया कि बोर्ड ने चयन की प्रक्रिया 24.03.2022 से 12.04.2022

अवमानित

तक चलायी, उन तिथियों में कुछ याचिकाकर्ता आयोजित होने वाली परीक्षाओं के प्रभारी होने के अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे जिससे उनकी साक्षात्कार में उपस्थिति प्रतिबंधित हुयी। अग्रेतर यह तर्क दिया गया कि बोर्ड के अध्यक्ष ने अकेले ही पूरी भर्ती प्रक्रिया संपन्न की और भर्ती के समय बोर्ड में, यथासंशोधित 1982 अधिनियम की धारा 4 के तहत वैधानिक रुप से आवश्यक होने के बावजूद, कोई भी सदस्य विधिवत नियुक्त नहीं था।

16. जैसा कि पहले ही ऊपर दर्ज किया जा चुका है, मैंने उस उभयनिष्ठ प्रश्न, जिसका प्रार्दुभाव रिट याचिकाओं में हुआ है, पर रिट याचिकाओं का निर्णय करने का प्रस्ताव किया कि क्या विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के जारी होने से प्रारम्भ हुयी और वर्ष 2022 में किए गए चयनों में परिणत चयन प्रक्रिया, अत्यधिक विलंब के आधार पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के मापदण्डों पर खरी उतरेगी।

17. निर्णय के लिए उठे मुद्दे का मूल्यांकन करने के लिए, वैधानिक अधिनियम के प्रावधानों पर गौर करना आवश्यक है जिसके माध्यम से चयन किये गये हैं।

18. उ.प्र. राज्य ने उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शैक्षणिक संस्थानों को विनियमित करने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश उच्चतर माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921 प्रख्यापित किया। उक्त अधिनियम में निहित प्रावधानों के संदर्भ में समय-समय पर विभिन्न संशोधन हुए हैं। उ.प्र. राज्य ने उत्तर प्रदेश में हाईस्कूल और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा प्रणाली को विनियमित करने और पर्यवेक्षण करने और पाठ्यक्रमों के निर्धारण के लिए, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के स्थान पर एक बोर्ड स्थापित करने का प्रस्ताव और अधिनियमन किया। इसके पश्चात उ.प्र. राज्य ने वर्ष 1982 में, उत्तर प्रदेश उच्चतर माध्यमिक शिक्षा अधिनियम के तहत मान्यता प्राप्त संस्थानों में शिक्षकों के चयन के लिए सेवा चयन बोर्ड की स्थापना हेतु उ.प्र. अधिनियम संख्या 05/ 1982 के तहत "उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन समिति) अधिनियम, 1982' के रूप में जाना जाने वाला अधिनियम प्रख्यापित किया गया। उक्त अधिनियम के प्रख्यापन के लिए अभिव्यक्ति और उद्देश्य इस प्रकार हैं:

"हाईस्कूल और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा समिति द्वारा मान्यता प्राप्त माध्यमिक संस्थानों में शिक्षकों की नियुक्ति उच्चतर माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921 और उसके तहत बनाए गए नियमों से शासित होती थी। यह महसूस किया गया कि उक्त अधिनियम और विनियमों के प्रावधानों के तहत होने वाला शिक्षकों का चयन किसी-किसी समय में स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं होता था। इसके अलावा, चयन का दायरा भी बहुत सीमित था। इससे उपयुक्त शिक्षकों की उपलब्धता और शिक्षा के स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसलिए ऐसे संस्थानों के लिए, राज्य स्तर पर, प्रधानाचार्यों, प्रवक्ताओं, प्रधानाध्यापकों और एल.टी. ग्रेड अध्यापकों के चयन हेतु माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग तथा क्षेत्रीय स्तर पर, सी.टी./जे.टी.सी./बी.टी.सी. ग्रेड में तुलनात्मक रूप से निचले पदों के लिए उपयुक्त अभ्यर्थियों का चयन करने और उपलब्ध कराने के लिए माध्यमिक शिक्षा चयन बोर्डों का गठन करना आवश्यक समझा गया।"

19. उक्त 1982 अधिनियम के माध्यम से शिक्षकों और प्रधानाचार्यों या प्रधानाध्यापकों के

चयन के लिए एक 'बोर्ड' की स्थापना की गई। 1982 अधिनियम की धारा 2(ट) में निहित 'अध्यापक' की परिभाषा इस प्रकार है:

(ट)."अध्यापक" का तात्पर्य किसी संस्था में शिक्षण के लिए सेवायोजित व्यक्ति से है और "अध्यापक" के अन्तर्गत प्राचार्य या प्रधानअध्यापक भी है।"

20. अधिनियम 1982 की धारा 2 की उपधारा(1) में 'भर्ती का वर्ष' परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है:

"(ठ). "भर्ती का वर्ष" का तात्पर्य किसी कैलेण्डर वर्ष की जुलाई के प्रथम दिवस से प्रारम्भ होने वाले बारह मास की अवधि से है।"

21. उक्त 1982 अधिनियम की धारा 3 के तहत स्थापित बोर्ड को धारा 9 के तहत परिभाषित शक्तियां और कर्तव्य प्रदान किए गए हैं, उनमें से एक शिक्षकों की सीधी भर्ती की पद्धति से संबंधित मामलों पर निर्णय लेना है। उक्त 1982 अधिनियम की धारा 10 के आधार पर सीधी भर्ती की प्रक्रिया और चयन का प्रावधान करता है, जिसे यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

*"**10- सीधी भर्ती द्वारा चयन की प्रक्रिया.-** (1) सीधी भर्ती द्वारा किसी अध्यापक की नियुक्ति करने के प्रयोजन के लिए, प्रबन्धतंत्र विद्यमान या भर्ती के वर्ष के दौरान होने वाली रिक्तियों की संख्या और संस्था के प्रधान के पद से भिन्न पद की स्थिति में, उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 के अनुसार अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित की जाने वाली रिक्तियों की संख्या भी अवधारित करेगा और रिक्तियों को ऐसी रीति से और ऐसे अधिकारी या प्राधिकारी के माध्यम से जैसा विहित किया जाये, बोर्ड को अधिसूचित करेगा।*

(2) अध्यापकों के पदों पर सीधी भर्ती के लिए अभ्यर्थियों के चयन की प्रक्रिया ऐसी होगी जैसी विहित की जाये।

परन्तु बोर्ड प्रतिभाशाली व्यक्तियों को आमंत्रित करने की दृष्टि से उपधारा(1) के अधीन अधिसूचित रिक्तियों का राज्य में व्यापक प्रचार करेगा।"

22. धारा 10 के तहत कार्यवाही के पश्चात, बोर्ड का दायित्व है कि धारा 11 के तहत, अभ्यर्थियों का पैनल बनाकर चयन करे, जिसे यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

*"**11- अभ्यर्थियों का पैनल-** (1) बोर्ड धारा 10 की उपधारा(1) के अधीन रिक्ति के अधिसूचित किये जाने के पश्चात यथाशक्यशीघ्र जहाँ आवश्यक हो, परीक्षा लेगा, और अभ्यर्थियों का साक्षात्कार करेगा और जो नियुक्ति के लिए सर्वाधिक उपयुक्त पाये जाये, उनका पैनल तैयार करेगा।*

(2) बोर्ड उपधारा(1) में निर्दिष्ट पैनल की धारा 10 की उपधारा(1) निर्दिष्ट अधिकारी या प्राधिकारी को, ऐसी रीति से जैसी विहित की जाये, अग्रसारित करेगा।

(3) उपधारा(2) के अधीन पैनल प्राप्त होने के पश्चात सम्बद्ध अधिकारी या प्राधिकारी धारा 10 की उपधारा(1) के अधीन अधिसूचित रिक्तियों के सम्बन्ध में संस्था के प्रबन्धतंत्र को चयन किये गये अभ्यर्थियों के नाम विहित रीति से सूचित करेगा।

(4) प्रबन्धतंत्र, ऐसी सूचना की प्राप्ति के दिनांक से एक मास की अवधि के भीतर ऐसे चयनित अभ्यर्थी को नियुक्ति-पत्र जारी करेगा।

(5) जहाँ ऐसे चयनित अभ्यर्थी नियुक्ति-पत्र में अनुमत समय के भीतर या ऐसे बढ़ाये गये समय के भीतर जैसा प्रबन्धतंत्र इस निमित्त स्वीकार करे, ऐसी संस्था में पद का कार्यभार ग्रहण नहीं करता है या जहाँ ऐसे अभ्यर्थी नियुक्ति के लिए अन्यथा उपलब्ध नहीं है वहाँ सम्बद्ध अधिकारी या प्राधिकारी प्रबन्धतंत्र के अनुरोध पर बोर्ड द्वारा उपधारा(2) के अधीन अग्रसारित पैनल से नये नाम, विहित रीति से सूचित करेगा।"

23. जब तक कि बोर्ड धारा 10 और 11 के अधिदेश के अनुसार चयन करे, तब तक तदर्थ प्रधानाध्यापकों या प्रधानाध्यापकों के पदों को भरने के संबंध में 1982 अधिनियम की धारा 18 के तहत विस्तृत प्रावधान हैं, जिसे यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"18. तदर्थ प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक- *(1) जहां प्रबन्धतंत्र ने धारा 10 की उपधारा(1) के अनुसार बोर्ड को, किसी रिक्ति की सूचना दी हो, और किसी प्रधानाचार्य या प्रधानअध्यापक का पद वास्तव में दो मास से अधिक रिक्त रहा हो, वहां प्रबन्धतंत्र ऐसी रिक्ति को,-*

(क) प्रधानाचार्य के पद पर किसी रिक्ति के संबंध में, प्रवक्ता श्रेणी को

(ख) प्रधानाध्यापक के पद में किसी रिक्ति के सम्बन्ध में प्रशिक्षित स्नातक श्रेणी के

ज्येष्ठतम अध्यापक की पदोन्नति करके पूर्णतया तदर्थ आधार पर भरेगा।

(2) जहाँ प्रबन्धतन्त्र उपधारा(1) के अधीन ज्येष्ठत्म अध्यापक की पदोन्नति करने में विफल रहे, वहाँ निरीक्षक ऐसे अध्यापक की पदोन्नति का आदेश स्वयं जारी करेगा और सम्बन्धित अध्यापक उस दिनांक से जब वह पदोन्नति के ऐसे आदेश के अनुसरण में ऐसे पद का कार्यभार ग्रहण करें, यथास्थिति, प्रधानाचार्य या प्रधानअध्यापक के रूप में अपना वेतन पाने का हकदार होगा।

(3) जहाँ ऐसा अध्यापक, जिसे उपधारा(2) के अधीन पदोन्नति का आदेश जारी किया गया हो, प्रबन्धतंत्र के किसी कार्य या लोप के कारण, यथास्थिति प्रधानाचार्य या प्रधानअध्यापक के पद का कार्यभार ग्रहण करने में असमर्थ हो, वहाँ ऐसा अध्यापक अपने कार्यभार ग्रहण करने की रिपोर्ट निरीक्षक को प्रस्तुत कर सकता है और तत्पश्चात वह उक्त रिपोर्ट निरीक्षक को प्रस्तुत करने के दिनांक से यथास्थिति, प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक के रूप में अपना वेतन पाने का हकदार होगा।

(4) उपधारा(1) या उपधारा(2) के अधीन तदर्थ प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक की प्रत्येक नियुक्ति उस दिनांक से प्रभावहीन हो जायेगी, जब ऐसा अभ्यर्थी जिसकी सिफारिश समिति द्वारा की गयी हो, कार्यभार ग्रहण कर ले।"

24. 1982 अधिनियम की धारा 34, राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति से, बोर्ड को चयन हेतु शुल्क निर्धारित करने, साक्षात्कार आयोजित करने और अपने कर्तव्यों के निर्वहन और अधिनियम के तहत बोर्ड द्वारा अपने कार्यों को संपन्न करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया निर्धारित करने के लिए, नियम बनाने का अधिकार देती है। धारा 35 राज्य सरकार को अधिनियम के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है।

25. 1982 अधिनियम की धारा 35 के आधार पर प्रदत्त शक्तियों के संदर्भ में, राज्य सरकार ने 'उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियमावली, 1998' (इसके बाद 1998

अनुवादित

के नियमावली' के रूप में संदर्भित) के रूप में अधिसूचित किया।

26. उक्त नियमों के भाग- II में अध्यापक के पद पर सीधी भर्ती के लिए आवश्यक योग्यताओं का वर्णन है। उक्त नियमों के भाग-III में विशेष रूप से, विभिन्न श्रेणियों में शिक्षकों की भर्ती, का प्रावधान है। भाग-III के नियम 10(ए) में प्रावधान है कि उच्चतर माध्यमिक कॉलेज के प्रधानाचार्य या हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक की नियुक्ति केवल सीधी भर्ती द्वारा की जा सकती है, जबकि उक्त भर्ती में प्रवक्ताग्रेड के शिक्षकों और प्रशिक्षित स्नातक श्रेणी के शिक्षकों के लिए तथा सम्बद्ध प्राथमिक अनुभाग के शिक्षकों के लिए भर्ती का अलग तरीका है। नियम 10 यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:

"**10. *भर्ती का स्रोत.-*** *अध्यापकों की विभिन्न श्रेणियों में भर्ती निम्न लिखित स्रोतों से की जायेगी-*

(क) किसी इण्टरमीडिएट कॉलेज का प्रधानाचार्य या किसी हाईस्कूल का प्रधानअध्यापक	*(एक) सीधी भर्ती द्वारा।*	
(ख) प्रवक्ता श्रेणी के अध्यापक	*(एक) 50 प्रतिशत सीधी भर्ती द्वारा।* *(दो) 50 प्रतिशत प्रशिक्षित स्नातक (एल०टी०) श्रेणी के मौलिक रूप में नियुक्त अध्यापकों में से पदोन्नति द्वारा।*	
(ग) प्रशिक्षित स्नातक श्रेणी के अध्यापक		*परन्तु यह कि ऐसे इण्टरमीडिएट कॉलेजों और हाईस्कूलों में, जिनमें सम्बद्ध प्राइमरी के अध्यापक उत्तर प्रदेश हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट कॉलेज (अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों के वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1971 के उपबन्धों के अधीन वेतन प्राप्त कर रहे हैं, 75 प्रतिशत पद सीधी भर्ती द्वारा भरे जायेंगे और शेष 25 प्रतिशत पद सम्बद्ध प्राइमरी सेक्शन के ऐसे प्रशिक्षित स्नातक अध्यापकों में से पदोन्नति द्वारा भरे जायेंगे, जो 5 वर्ष की संतोषजनक सेवा पूरी कर चुके हों:* *परन्तु यदि भर्ती के किसी वर्ष में पदोन्नति द्वारा भर्ती के लिए*

अनुवादित

	उपयुक्त पात्र अभ्यर्थी उपलब्ध न हों तो पदों को सीधी भर्ती द्वारा भरा जा सकता है:	*अंश एक बढ़ाकर एक पद सृजित किया जाएगा।*
	परन्तु यह और कि इस नियम के अधीन विभिन्न पदों के प्रतिशत की गणना करते समय यदि कोई भिन्न आ जाय तो सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने वाले पदों की भिन्न को छोड़ दिया जायेगा और पदोन्नति द्वारा भरे जाने वाले पदों की भिन्न को एक पद बनाने के लिए बढ़ा दिया जायेगा।	
(घ) सम्बद्ध प्राथमिक अनुभाग के अध्यापक शत प्रतिशत की भर्ती द्वारा	*नोट- सम्बद्ध प्राथमिक अनुभाग के अध्यापक की भर्ती हेतु न्यूनतम योग्यता राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के अनुसार होगी। भर्ती को अपवर्जित रखा जाएगा और पदोन्नति के माध्यम से भरे जाने वाले पदों का*	

27. नियमावली 1998 के नियम 11 में रिक्तियों के निर्धारण एवं अधिसूचना का प्रावधान है। नियम 12, जो वर्तमान प्रकरण के लिए बहुत प्रासंगिक है, सीधी भर्ती के लिए समिति द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को निर्धारित करता है। नियम 12 को पूरी तरह से यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

*"**12. सीधी भर्ती प्रक्रिया** (1) बोर्ड, सीधी भर्ती द्वारा जाने वाली रिक्तियों के सम्बन्ध में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और नागरिकों के अन्य पिछड़ों वर्गों और अन्य आरक्षित श्रेणियों जैसा कि सरकारी, सेवाओं में समय-समय पर लागू हो, के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित रिक्तियों को सम्मिलित करते हुए रिक्तियों का विज्ञापन कम से कम दो ऐसे दैनिक समाचार-पत्र में करेगा, जिनका राज्य में व्यापक प्रचलन हो, और विज्ञापन में प्रकाशित प्रपत्र के लिए विचार किये जाने के लिए आवेदन पत्र आमन्त्रित करेगा। इण्टरमीडिएट कॉलेज के प्रधानाचार्य या हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक के पद के लिए विज्ञापन में संस्था के नाम और स्थान का भी उल्लेख किया जायेगा और अभ्यर्थियों के अधिमानता के क्रम में तीन से अनधिक संस्थाओं के इच्छानुसार नाम देने की अपेक्षा की जायेगी और यदि किसी अभ्यर्थी की यह इच्छा हो कि किसी विशिष्ट संस्था या संस्थाओं के लिए ही और किसी अन्य संस्था के लिए नहीं, उनके नाम पर विचार किया जाये तो वह अपने आवेदन पत्र में इस तथ्य का उल्लेख कर सकता है।*

(2) बोर्ड आवेदन-पत्रों की संवीक्षा करेगा और प्रवक्ता और प्रशिक्षित

अनुवादित

स्नातक श्रेणी में अध्यापक पद के सम्बन्ध में लिखित परीक्षा आयोजित करेगा। लिखित परीक्षा में दो घंटे की कालावधि के विषय पर आधारित एक प्रश्न-पत्र सामान्य योग्यता परीक्षा का होगा। लिखित परीक्षा के आयोजन के लिए केवल जिला मुख्यालयों पर ही केन्द्रों का निर्धारण किया जायेगा और निरीक्षकों को मानदेय का भुगतान ऐसे दर पर किया जायेगा जैसा बोर्ड निर्धारित करना चाहे।

(3) समिति, उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन समिति द्वारा नियुक्त किये गये परीक्षक से या कम्प्यूटर द्वारा करायेगा और परीक्षक को मानदेय का भुगतान बोर्ड द्वारा निर्धारित की गई दर पर किया जायेगा।

(4) बोर्ड, प्रत्येक श्रेणी के पद के लिए लिखित परीक्षा व साक्षात्कार में प्राप्त अंकों और विशेष योग्यता के लिए अंकों के आधार पर निम्न सूची तैयार करना-

(क) लिखित परीक्षा के आधार पर 85 प्रतिशत;

(ख) साक्षात्कार के आधार पर 10 प्रतिशत जो निम्नलिखित रीति से विभाजित किये जायेंगे, अर्थात्-

(एक) सामान्य ज्ञान के आधार पर 4% अंक,

(दो) व्यक्तित्व परीक्षण के आधार पर 3% अंक,

(तीन) अभिव्यक्ति की योग्यता के आधार पर 3% अंक,

(ग) निम्नलिखित विशेष योग्यता के आधार पर 5 प्रतिशत अंक, अर्थात्-

(एक) डाक्टर की उपाधि रखने के लिए 2% अंक,

(दो) शिक्षा-निष्णात (एम०एड०) की उपाधि रखने के लिए 2% अंक,

(तीन) शिक्षा-स्नातक (बी०एड०) की उपाधि के लिए 1% अंक,

परन्तु किसी ऐसे अभ्यर्थी को, जिसने उपखण्ड(दो) के अधीन अंक प्राप्त कर लिये हों, इस उपखण्ड के अधीन कोई अंक प्रदान नहीं किया जायेगा,

(चार) किसी राष्ट्रीय स्तर की खेलकूद प्रतियोगिता में राज्य की टीम के माध्यम से भाग लेने के लिए 1% अंक,

(5) समिति अभ्यर्थियों का साक्षात्कार करेगा और साक्षात्कार के लिए 15% अंक आवंटित किया जायेंगे। साक्षात्कार में अंकों को निम्नलिखित रीति से विभाजित किया जायेगा अर्थात्-

(क) विषय/ सामान्यज्ञान के आधार पर 6% अंक;

(ख) व्यक्तित्व परीक्षण के आधार पर 4% अंक;

(ग) अभिव्यक्ति की योग्यता के आधार पर 5% अंक।

(6) समिति, प्रवक्ता और प्रशिक्षित स्नातक श्रेणी में अध्यापक के पद के संबंध में अनुसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों और नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्गों से सम्बन्धित अभ्यर्थियों के सम्यक्प्रतिनिधित्व की सुनिश्चित करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ऐसे

अनुवादित

अभ्यर्थियों को, जिन्होंने ऊपर उपखण्ड(4) के अधीन अधिकतम अंक प्राप्त किया हो तथा प्रधानाचार्य/ प्रधानाध्यापक पद के लिए ऐसे अभ्यर्थियों को जिन्होंने ऊपर उपखण्ड(5) से अधिकतम अंक प्राप्त किया हो, साक्षात्कार के लिए इस रीति से बुलायेगा कि अभ्यर्थियों की संख्या रिक्तियों की संख्या से तीन गुने से अन्यून और पाँच गुने से अनधिक हो।

परन्तु यह कि प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक के पद के सम्बन्ध में समिति संस्था के दो ज्येष्ठतम अध्यापकों को जिनके नाम नियम11 के उपनियम(2) के खण्ड(ख) के अधीन निरीक्षक के माध्यम से प्रबन्धतंत्र द्वारा अग्रसारित किये गये हों, अतिरिक्त रूप से साक्षात्कार के लिए बुलायेगा।

(7) अर्ह अभ्यर्थियों द्वारा उपनियम(5) में यथानिर्दिष्ट गुणवत्ता बिन्दु में प्राप्त किये गये अंकों को साक्षात्कार समिति के सदस्यों को प्रकट नहीं किया जायेगा।

(8) समिति तब, प्रत्येक श्रेणी के पद के लिए साक्षात्कार में प्राप्त हुए अंकों के साथ यथास्थिति, ऊपर उपखण्ड(4) या उपखण्ड(5) के अधीन प्राप्त हुए अंकों को जोड़कर उसके द्वारा प्राप्त हुए अंकों से प्रकट योग्यता के क्रम में उनका, जो नियुक्ति के लिए सर्वाधिक उपयुक्त पायें जायें, एक पैनल तैयार करेगा। किसी अभ्यर्थी द्वारा किसी विशिष्ट संस्था में नियुक्ति के लिए दी गई वरीयता आदि कोई हो को सम्यक रूप से ध्यान में रखते हुए प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक के पद के लिए संस्थावार पैनल तैयार किया जायेगा, जबकि प्रवक्ता और प्रशिक्षित स्नातक श्रेणी के पदों के लिए इसे क्रमशः विषयवार और समूहवार तैयार किया जायेगा। यदि दो या अधिक अभ्यर्थी बराबर-बराबर अंक प्राप्त करें तो उस अभ्यर्थी का नाम जिसके उच्चतर गुणवत्ता बिन्दु हों, पैनल में उच्चतर स्थान पर रखा जायेगा और यदि गुणवत्ता बिन्दु में प्राप्त अंक भी बराबर-बराबर हों तो उस अभ्यर्थी का नाम, जो अधिक आयु का हो, उच्चतर स्थान पर रखा जायेगा। प्रधानाचार्य या प्रधानअध्यापक के पद के लिए पैनल में नामों की संख्या, पदों की संख्या की तिगुनी होगी और प्रवक्ता और प्रशिक्षित स्नातक श्रेणी में अध्यापकों के पदों के लिये यह रिक्तियों की संख्या से अधिक (किन्तु पच्चीस प्रतिशत से अनधिक) होगी।

स्पष्टीकरण- इस उप-नियम के प्रयोजनों के लिये शब्द समूहवार का तात्पर्य, नियम 11 के उप-नियम(2) के स्पष्टीकरण में विनिर्दिष्ट समूहों के अनुसार है।

(9) प्रवक्ता श्रेणी में अध्यापकों के पद के लिए अभ्यर्थियों के साक्षात्कार के समय आयोग उन संस्थाओं की सूची, जिन्होंने उसे रिक्ति अधिसूचित की हो, दिखाने के पश्चात् अभ्यर्थियों से यह अपेक्षा करेगा कि यदि वह इच्छुक हो तो अधिमानता के क्रम में अधिक से अधिक पाँच ऐसी संस्थाओं को चुन ले जहाँ पर चयन हो जाने पर वे नियुक्ति के इच्छुक हों, एवं प्रशिक्षित स्नातक तथा सम्बद्ध प्राथमिक शिक्षकों की श्रेणी में ऐसे विकल्प बोर्ड द्वारा लिखित परिक्षा की श्रेष्ठता सूची के आधार पर दिये जाएंगे।

(10) उपनियम(8) के अनुसार पैनल तैयार करने के पश्चात् आयोग प्रवक्ता और प्रशिक्षित स्नातकों (एल०टी०) श्रेणी में अध्यापकों के पदों के सम्बन्ध में चयनित अभ्यर्थियों को इस रीति से संस्थाओं का आवंटन करेगा कि वह अभ्यर्थी जिसका नाम पैनल में शीर्ष पर हो, उपनियम(9) के अनुसार उसके द्वारा दिये गये प्रथम अधिमानता की संस्था में आवंटित होगा।

अनुवादित

जहाँ किसी चयनित अभ्यर्थियों को इस आधार पर उसके अधिमान की संस्थायें आवंटित नहीं की जा सकती कि पैनल में उससे उच्चतर स्थान वाले अभ्यर्थियों को पहले ही ऐसी संस्थायें आवंटित की जा चुकी है, और उनमें कोई रिक्ति शेष नहीं है तो समिति उसको कोई भी संस्था, जो वह उचित समझे, आवंटित कर सकता है।

(11) समिति उपनियम(8) के अधीन तैयार किये गये पैनल को उपनियम(10) के अनुसार चयनित अभ्यर्थियों को आवंटित संस्थाओं के नामों सहित निरीक्षक को अग्रसारित करेगा और उसकी एक प्रति संयुक्त निदेशक को भेजेगा और उसे अपने सूचनापट्ट पर भी अधिसूचित करेगा।"

28. उपरोक्त नियमावली, 1998 के नियम 13 में निरीक्षक को नियम 12 के तहत संस्थान के आवंटन के लिए समिति द्वारा चयनित पैनल को सूचित करने का आदेश दिया गया है। नियम 13 को नीचे उद्धृत किया गया हैः

"13. चयन किये गये अभ्यर्थियों के नामों की सूचना- *(1) निरीक्षक, पैनल की प्राप्ति के दस दिन के भीतर और नियम 12 के अधीन संस्था के आवंटन पर-*

(i)इसे अपने कार्यालय के सूचनापट्ट पर अधिसूचित करेगा: (ii) चयन किये गये अभ्यर्थी का नाम संस्था के प्रबन्धतंत्र को,जिसने रिक्ति को अधिसूचित किया है, ऐसे निदेश के साथ सूचित करेगा कि प्रबन्धतंत्र के संकल्प के अधीन प्राधिकृत किये जाने पर परिशिष्ट "ई" में दिये गये प्रारूप के अनुसार अभ्यर्थी को नियुक्ति का आदेश रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा जारी किया जाये जिसमें उससे आदेश प्राप्त होने के पन्द्रह दिन के भीतर या ऐसे बढ़ाये गये समय के भीतर, जिसकी अनुमति प्रबन्धतंत्र द्वारा उसे दी जाए, कार्यभार ग्रहण करने की अपेक्षा की जाए और उसे यह भी चित किया जाये कि विनिर्दिष्ट समय के भीतर उसके कार्यभार ग्रहण न करने पर उसकी नियुक्ति रद्द कर दी जायेगी;

(iii) खण्ड (ii) में निर्दिष्ट अभ्यर्थी को इस निर्देश के साथ सूचना भेजेगा कि वह प्रबन्धक से नियुक्ति का आदेश प्राप्त करने के दिनांक से पन्द्रह दिन के भीतर, या ऐसे बढ़ाये गये समय के भीतर, जिसकी अनुमति प्रबन्धतंत्र द्वारा उसे दी जाये, प्रबन्धक को अपनी उपस्थिति सूचित करे।

(2) प्रबन्धतंत्र उपनियम (1) के अधीन दिये गये आदेशों का अनुपालन करेगा और इसके अनुपालन की सूचना निरीक्षक के माध्यम से आयोग को देगा।

(3) जब उपनियम(1) में निर्दिष्ट अभ्यर्थी नियुक्ति-पत्र में अनुमन्य समय के भीतर या ऐसे बढ़ाये गये समय के भीतर, जैसा प्रबन्धतंत्र इस निमित्त देय, पद का कार्यभार ग्रहण करने में असफल रहे या जहाँ ऐसा अभ्यर्थी नियुक्ति के लिए अन्यथा उपलब्ध न हो, वहाँ निरीक्षक प्रबन्धतंत्र के अनुरोध पर ऐसे नये अभ्यर्थी या अभ्यर्थियों के नाम, जो पैनल से योग्यता क्रम में उसके बाद हो, भेजेगा और उसकी सूचना संयुक्त निदेशक और आयोग को देगा,और उपनियम(1) और (2) के उपबंध यथावश्यक परिवर्तन सहित लागू होंगे।

(4) संयुक्त निदेशक पर्यवेक्षण करेगा और सुनिश्चित करेगा कि समिति द्वारा चयनित अभ्यर्थी संस्था में विनिर्दिष्ट समय में कार्यभार ग्रहण करें और इस प्रयोजन के लिये वह निरीक्षक को ऐसे निर्देश जारी कर सकता है, जैसा उचित समझे।

(5) जहाँ समिति द्वारा चयनित अभ्यर्थी रिक्ति की अनुपलब्धता या किसी अन्य कारण से आवंटित संस्था में कार्यभार ग्रहण नहीं कर सका,तो जिला विद्यालय निरीक्षक ऐसे अभ्यर्थी के समायोजन के लिए समिति को अधिसूचित किसी अन्य रिक्ति के प्रति समिति को संस्तुति करेगा। जिला विद्यालय निरीक्षक की संस्तुति प्राप्त होने पर समिति अधिसूचित रिक्ति के विरुद्ध ऐसे अभ्यर्थी को कोई दूसरी संस्था आवंटित करेगा।"

29. इस न्यायालय को अन्य नियमों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे इस न्यायालय द्वारा उपरिविरचित वादबिंदुओं से संबंधित नहीं हैं।

30. 1982 अधिनियम के उद्देश्यों की अभिव्यक्ति, धाराओं के साथ-साथ उसके तहत बनाए गए 1998 नियमों को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर, यह सहजता से समझा जा सकता है कि भर्ती करने के लिए समिति की स्थापना की अभिलाषा और उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि-(i) अध्यापको का चयन स्वतंत्र और निष्पक्ष है,

(ii) अवरुद्ध नहीं है; और

(iii) समयबद्ध तरीके से उपयुक्त अध्यापक उपलब्ध कराये जाएं ताकि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के मुख्य उद्देश्य को बढ़ावा दिया जा सके।

बोर्ड की स्थापना से पूर्व भर्ती में जो जो दोष व्याप्त थें, इसप्रकार, बोर्ड द्वारा संस्थान के प्रधानाचार्यों के संबंध में की जाने वाली भर्ती, जिसके लिए हम वर्तमान प्रकरण में चिंतन कर रहे हैं,बोर्ड पर यह सुनिश्चित करने का कर्तव्य निर्धारित करता है कि प्रधानाचार्य का चयन बहुत निष्पक्ष हो, समय से हो एवं अवरुद्ध न हो ताकि उपलब्ध सर्वोत्तम प्रतिभा को कार्य हेतु आकर्षित किया जा सके।

31. उक्त 1982 अधिनियम की धारा 10 के तहत सीधी भर्ती करने के लिए समिति को प्रदान किए गए दायित्वों से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि समिति प्रतिभाशाली व्यक्तियों को आमंत्रित करने की दृष्टि से चयन प्रक्रिया को प्रारम्भ करेगी और उस उद्देश्य हेतु राज्य में उपधारा(1) के अंतर्गत अधिसूचित रिक्तियों के संबंध में व्यापक प्रकाशन करेगी। उक्त अधिनियम की धारा 11 समिति के लिए यह अग्रेतर अनिवार्यता प्रदान करती है कि वह धारा 10 की धारा(1) के तहत रिक्तियों के अधिसूचित होने के बाद यथाशीघ्र नियुक्ति के लिए उपयुक्त पाए गए अभ्यर्थियों की नियुक्ति के लिए कदम उठाए। 1982 अधिनियम की धारा 10 सहपठित धारा 11 इसे अनिवार्य बनाती हैं और समिति पर यह सुनिश्चित करने का दायित्व डालती हैं कि रिक्तियों की अधिसूचना जारी होते ही शीघ्रातिशीघ्र चयन किया जाना चाहिए।

32. यह ध्यान देना रुचिकर है कि नियमावली,1998 के नियम 10 में निर्दिष्ट प्रधानाचार्यों की भर्ती के स्रोत यह स्पष्ट करते हैं कि एक उच्चतर माध्यमिक कॉलेज के प्रधानाचार्य या हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक की नियुक्ति केवल सीधी भर्ती द्वारा ही की जा सकती है।

33. किसी भी संस्थान में कार्यरत शिक्षकों के पदानुक्रम में दो श्रेणियां होती हैं, एक प्रवक्ता, जिनकी नियुक्ति 50% सीधी भर्ती द्वारा होती है और 50% मूलरूप से नियुक्त प्रशिक्षित स्नातक शिक्षकों में से पदोन्नति द्वारा होती है।

34. 'प्रशिक्षित स्नातक श्रेणी' के तहत शिक्षकों की भर्ती 75% के अनुपात में सीधी भर्ती द्वारा और 25% सम्बद्ध प्राथमिक अनुभाग के

अनुवादित

उन प्रशिक्षित स्नातक शिक्षकों की पदोन्नति के माध्यम से की जानी होती है, जिन्होंने 5 वर्षों की संतोषजनक सेवाएँ पूरी कर ली हैं। इसप्रकार नियम 10 सहज अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अध्यापक के प्रवक्ता बनने के बाद पदोन्नति के रास्ते बंद हो जाते हैं और इसप्रकार पदोन्नति का अवसर प्रदान करने की दृष्टि से नियम 12 में 2 ज्येष्ठतम अध्यापकों को, सीधी भर्ती के लिए आवेदन करने वाले व्यक्तियों और जिन्हें लिखित परीक्षा से गुजरना होगा, के साथ साक्षात्कार का अवसर देने का प्रावधान किया गया। नियमावली, 1998 के नियम 12 को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि प्रधानाध्यापक का पद सीधे आवेदकों के माध्यम से भरा जाना है जिन्हें लिखित परीक्षा से गुजरना पड़ता है और जिन्हें संस्थानों के 2 ज्येष्ठतम अध्यापकों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी होती है जिनके नाम प्रबंधन द्वारा 1998 की नियमावली के नियम 11(2)(ख) के तहत निरीक्षक के माध्यम से अग्रेषित किए जाने हैं।

35. अधिनियम के अधिदेश के संदर्भ में सर्वोत्तम प्रतिभा को आकर्षित करने के उद्देश्य से, नियम 12(ए) में एक प्रावधान है जो बोर्ड के लिए प्रधानाचार्य और प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए नाम भेजना अनिवार्य बनाता है जोकि रिक्तियों की संख्या से तीन गुना होनी चाहिए।

36. यह टिम्पणी करना आवश्यक है कि नियम 13 निरीक्षक के लिए चयन के तुरंत बाद नियुक्तियां करना अनिवार्य बनाता है। अधिनियम की योजना और उसके अन्तर्गत बनाए गए नियमों से, यह स्पष्ट है कि बोर्ड को प्रदत्त शक्तियां प्रधानाध्यापक के पद पर चयन करने के लिए एक विज्ञापन को जारी करने से प्रारम्भ होकर और नियम 12 में निहित अनिवार्य प्रावधानों के अनुपालन में बोर्ड द्वारा चयन करने के पश्चात समाप्त हो जाती हैं। अधिनियम 1982 की धारा 10(1) के तहत रिक्तियां अधिसूचित होते ही बोर्ड द्वारा उक्त प्रक्रिया को किया जाना है, जिसका भर्ती के वर्ष, जैसा कि उक्त अधिनियम की धारा 2(1) के तहत परिभाषित किया गया है, से भी सीधा संबंध है। इसप्रकार अधिनियम और 1998 के नियमावली के अधिदेश के संदर्भ में समय का कुछ महत्व है।

37. वर्तमान प्रकरण में स्वीकार्य है कि विज्ञापन वर्ष 2013 में जारी किया गया था, जो कि अधिनियम, 1982 की धारा 10 के तहत रिक्तियों की अधिसूचना के बाद नियम 12 के संदर्भ में बोर्ड द्वारा उठाया गया कदम है। बिना किसी पर्याप्त कारण के, बोर्ड ने कोई कदम, जो उन्हें अधिनियम, 1982 की धारा 11 के तहत करना आवश्यक था, नहीं उठाया और परीक्षा आयोजित करने के लिए लगभग 9 वर्षों तक इंतजार करना जारी रखा। श्री सूर्यवंशी द्वारा प्रस्तुत तर्क के अनुसार विलंब के लिए बचाव यह है कि पूर्व के विज्ञापन संख्या 01/ 2011 द्वारा प्रस्तावित भर्ती के विरुद्ध कुछ मुकदमे लंबित थे, इसप्रकार, बोर्ड द्वारा 1982 के अधिनियम की धारा 11 या 1998 की नियमावली के नियम 12 के आधार पर विशिष्ट बोर्ड पर खंड के अधिदेश के संदर्भ में अभ्यर्थियों के चयन के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया; यह तर्क पूरी तरह से मनमाना होने के कारण अस्वीकार किए जाने योग्य है, तो और अधिक, विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के तहत की जाने वाली नियुक्तियों के संबंध में किसी भी न्यायालय द्वारा कोई आदेश नहीं दिया गया था। यह न्यायालय तथ्यों को नजरअंदाज नहीं कर सकती है कि राज्य या बोर्ड

अनुवादित

द्वारा कोई बचाव नहीं प्रस्तुत किया गया है कि किसी भी न्यायालय द्वारा बोर्ड को धारा 11 के तहत परीक्षा आयोजित करने के लिए कदम उठाने से रोकने वाला या नियम 11 के तहत दिए गए अधिदेश के संदर्भ में चयन सूची को अंतिम रूप देने से रोकने वाला कोई अंतरिम आदेश पारित किया गया था।

38. धारा 11 के अन्तर्गत कदम उठाने में विलम्ब का परिणाम यह हुआ कि विभिन्न अभ्यर्थी जो पात्र पाए गए थे और विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के अनुसार आवेदन किया था, या तो अनिच्छुक हो गए या अन्यथा अयोग्य हो गए, उन्होंने साक्षात्कार में भाग नहीं लिया। संस्थानों के 2 ज्येष्ठतम अध्यापक, जिनके पास 1998 के नियमों के नियम 12(6) के आधार पर निहित अधिकार के संदर्भ में चयन के लिए विचार किए जाने का निहित अधिकार था और वे विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के संदर्भ में पात्र थे, भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुए क्योंकि अत्यधिक विलंब के कारण ज्येष्ठतम अध्यापक या तो सेवानिवृत्त हो गए या प्रक्रिया में रुचि त्याग दी। इसप्रकार जिस पूल से चयन किया जाना था वह काफी संकुचित हो गया।

39. बोर्ड द्वारा मार्च, 2022 में उठाए गए कदम, जिसके तहत विभिन्न संस्थानों के दो ज्येष्ठतम अध्यापकों की सूची मांगी गई ताकि नियमावली, 1998 के नियम 12(6) के आधार पर उनके निहित अधिकार के संदर्भ में उन्हें चयन प्रक्रिया में भाग लेने का मौका दिया जा सके, गहरे घाव पर औपचारिक मरहम पट्टी के अतिरिक्त और कुछ नहीं था और असफल होना ही उआकी परिणति थी क्योंकि उक्त अध्यापकों के पास पात्रता नहीं थी क्योंकि वे स्वीकार्य रूप से विज्ञापन संख्या 03/ 2013 में निर्दिष्ट आवश्यकतानुरुप वरिष्ठतम अध्यापक नहीं थे। इस तथ्य को, **विवेक कुमार उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य (रिट-ए संख्या 364/2022; 25.02.2022 को अन्य संबंधित याचिकाओं के साथ निर्णीत)** के मामले में, इस न्यायालय के निर्णय से बल मिला जिसमें इस न्यायालय ने पाया कि विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के संदर्भ में विचार किये जाने हेतु पात्रता के अनुसार, पात्रता विज्ञापन में निर्धारित अंतिम तिथि पर होनी चाहिए और उसके बाद अर्जित योग्यता व्यक्ति को चयन के लिए विचार के लिए पात्र नहीं बनाएगी, और इस कारण इस न्यायालय द्वारा दिनांक 25.02.2022 के निर्णय के माध्यम से रिट याचिका भी खारिज कर दी गई।

40. बिना किसी उचित कारण के बोर्ड द्वारा की गई देरी का परिणाम यह हुआ कि नियम 12(1) के तहत निर्धारित चयन के लिए सीधी भर्ती संकुचित हो गई क्योंकि या तो व्यक्ति की रुचि समाप्त हो गई या वह अन्यथा अयोग्य हो गया, और नियम 12(6) के तहत दो ज्येष्ठतम शिक्षकों का पूल यातो संकुचित हो गया या पूर्णतया समाप्त हो गया, क्योंकि दो ज्येष्ठतम अध्यापक, जो विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के जारी होने के समय पात्र थे, या तो वे सेवानिवृत्त हो गए या किसी तरह उन्होने रुचि त्याग दी। जैसा कि ऊपर बताया गया है, बोर्ड द्वारा कारित विलंब के परिणामस्वरूप संकुचित पूल से चयन करना पड़ा। बोर्ड की उक्त कार्यवाही ने स्पष्ट रूप से अधिनियम के अधिनियमन के मूल उद्देश्य की अवहेलना की क्योंकि इसने चयन के दायरे को प्रतिबंधित कर दिया। नियुक्तियाँ करने में बोर्ड द्वारा किए गए विलंब ने धारा 18 के तहत

अनुवादित

निर्धारित तदर्थवाद को बढ़ावा दिया है जो इन सभी वर्षों में प्रचलित रहा।

41. यह स्पष्ट रूप से धारा 11 के आधार पर रिक्तियां अधिसूचित होते ही लिखित परीक्षा कराए जाने की प्रक्रिया अपनाए जाने संबंधी बोर्ड को नियुक्ति के लिए प्रयास करने हेतु, ताकि उपलब्ध सर्वोत्तम प्रतिभा को आकर्षित किया जा सके, दिए गए अधिदेश के भी विपरीत था, तथा उक्त कार्यवाही बोर्ड को प्रदत्त शक्तियों का भी उल्लंघन है। चयन करने में अत्यधिक विलंब करने वाली बोर्ड की उक्त कार्यवाही को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के आधार पर दिए गए अधिदेश के आधार पर इस न्यायालय द्वारा प्रमाणित की जानी है।

42. भारत के संविधान का अनुच्छेद 14 राज्य की किसी भी ऐसी कार्यवाही को अस्वीकार करता है जो मनमानी है और मूल या प्रक्रियात्मक उचित प्रक्रिया के अनुरूप नहीं है। अनुच्छेद 14 वर्ग है जिसकी प्रजाति अनुच्छेद 16 है। अनुच्छेद 16 राज्य या उसके तंत्र पर यह सुनिश्चित करने का दायित्व डालता है कि राज्य के तहत किसी भी कार्यालय में रोजगार और नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों के लिए बिना किसी भेदभाव के अवसरों की, प्रावधान बनाने के लिए राज्य को प्रदत्त शक्तियों के अधीन, समानता हो जैसा कि अनुच्छेद 16(4), अनुच्छेद 16(4)(ए) और अनुच्छेद 16(4)(बी) के तहत निर्धारित है।

43. अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 16 के तहत नागरिक के अधिकारों को उस स्थिति में संरक्षित किया जाना आवश्यक है जब राज्य या उसके तंत्र की कार्यवाही अनुच्छेद 14 और 16 के अधिदेश के अनुरूप नहीं पाई जाती है। अनुच्छेद 16 भी राज्य को एक दायित्व प्रदान करता है कि वह अपने सभी नागरिकों को राज्य की सेवा में समानता और अवसर प्रदान करे (बशर्ते उनके पास योग्यता हो)। इसप्रकार कोई भी कार्यवाही जो सभी नागरिकों को अवसर की समानता को नकारती है वह स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 16 का उल्लंघन होगी।

44. यह सुस्थापित है कि यद्यपि राज्य को अभ्यर्थियों के चयन के लिए निर्णय लेने की स्वतंत्रता है, तथापि, वह राज्य को निर्दिष्ट प्रक्रियात्मक आवश्यकता का पालन किए बिना या निष्पक्षता को ताक पर रखकर और मनमानी के आधार पर ऐसा करने के लिए कोई अनियंत्रित शक्ति प्रदान नहीं करता है। यह भी उतना ही सत्य है कि राज्य की कोई भी कार्यवाही जिसके परिणाम स्वरूप अनिष्पक्षता होती है, उसे अन्यायपूर्ण और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन माना जाएगा।

45. उक्त पृष्ठ भूमि में, मैं पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा संदर्भित निर्णयों के अवलोकन का प्रस्ताव करता हूँ।

46. ***चंदगी राम बनाम राजस्थान विश्वविद्यालय; (2001) 10 एससीसी 556*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भर्ती प्रक्रिया के पूर्ण होने में हुए विलंब के प्रभाव और न्यायालयों द्वारा स्वीकार्य हस्तक्षेप पर विचार किया गया और उक्त निर्णय के पैरा 7 में निम्नानुसार दर्ज किया:

"7. हालाँकि, पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात, इस प्रकरण के तथ्यों के आधार पर हमें राज्य सरकार की ओर से किसी भी उत्तर का इंतजार करना उचित नहीं लगता। हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तारपूर्वक सुना। हमारे पाते

हैं कि हमारे समक्ष ऐसी समस्याएं, जैसा कि वर्तमान मामले में है, अक्सर तब उत्पन्न होती है जब नियमित चयन करने में विलम्ब होता है। यदि प्राधिकारियों द्वारा इन रिक्तियों को शीघ्रातिशीघ्र भर लिया जाता है, तो तदर्थवाद की यह संस्कृति विकसित नहीं हो सकती है। यह संस्थान की प्रकृति को दूषित करता है, जिससे हमारी संस्कृति की नींव पर असर पड़ता है, विशेष रूप से जब यह शैक्षिक क्षेत्र में हो। यहां तक कि अधिनियम की धारा 3(3) तदर्थ नियुक्ति की अनुमति देती है, लेकिन केवल अल्पसमय के लिए, वर्षों तक जारी रखने की नहीं। लंबे समय तक रिक्तियां नहीं भरने वाले संस्थान तदर्थ नियुक्ति की संस्कृति विकसित करते हैं। कभी-कभी भर्ती न करना एक या दूसरे के लिए पक्षपात के उद्देश्य से होता है। इसे हतोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे न केवल अनियमित नियुक्तियाँ लंबे समय तक जारी रहती हैं, बल्कि नियमित रूप से सक्षम नियुक्तियों के आड़े भी आती है, जिससे संस्थान के मानकों का ह्रास होता है। इससे एक या अन्य तदर्थ नियुक्तियों को नियुक्त करने या जारी रखने के लिए आंतरिक संघर्ष होता है, जिससे न्यायालयों में परस्पर प्रतिस्पर्धा होती है, जैसा कि वर्तमान मामले में है और न्यायालयों में बड़ा समय व्यर्थ होता है। हालाँकि, उपरोक्त तथ्यों से यह विदित होता है कि जिस पद हेतु प्रतिस्पर्धा है, उसे भरे जाने के लिए वर्ष 1998 में ही विज्ञापन जारी किया जा चुका है, फिर भी प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ी। अब इसमें कोई विवाद नहीं है कि यह पद एक स्वीकृत पद है जिसके लिए विश्वविद्यालय पहले ही उपरोक्त विज्ञापन जारी कर चुका है। यद्यपि देर से, विश्वविद्यालय द्वारा महसूस की गई एक मात्र कठिनाई राज्य सरकार द्वारा राजस्थान विश्वविद्यालय को जारी किया गया समझौता ज्ञापन [एमओयू] है, जो राजस्थान विश्वविद्यालय के सहायक निबंधक (स्थापन II) राजेंद्र बाबो श्रीवास्तव के शपथ पत्र के साथ संलग्न है। निवेदन यह है कि, इसके तहत राजस्थान सरकार की अनुमति के बिना, राजस्थान विश्वविद्यालय न तो कोई नया पद सृजित कर सकता है और न ही कोई रिक्त पद भर सकता है। हमारे विचार के लिए संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, यह समझौता ज्ञापन उपरोक्त रिक्त पद को भरने के लिए विश्वविद्यालय के मार्ग में बाधक बन सकता है। हमें नहीं लगता कि यह किसी तरह से विश्वविद्यालय के मार्ग में बाधक है। सर्वप्रथम हम यह दर्ज करना चाहते हैं, विश्वविद्यालय ने कई वर्षों तक इन रिक्त पदों को न भरकर यह सारी स्थिति उत्पन्न की और अब इस समझौता ज्ञापन की आड़ में बचाव कर रहा है। हम यह पाते हैं कि समझौता ज्ञापन का यह अवलम्ब अब इस न्यायालय के समक्ष लिया गया है। पूर्व में ऐसा कोई अवलम्ब उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं लिया गया। यहां तककि इस समझौता ज्ञापन को बिना किसी तिथि के एक हलफनामे, जिसमें यह नहीं बताया गया है कि यह समझौता ज्ञापन विश्वविद्यालय को कब और कैसे संसूचित किया गया, के साथ संलग्न किया गया है। हालाँकि यह विवादित नहीं है कि यह समझौता ज्ञापन, यदि यह अस्तित्व में था, पदों को भरने के लिए उपरोक्त विज्ञापन के बाद उत्पन्न हुआ। स्वीकृत तथ्यों के आधार पर इस समझौता ज्ञापन के गुणदोषों पर विचार किये बिना, जब रिक्तियों को भरने की प्रक्रिया इस समझौता ज्ञापन के उत्पन्न होने के बहुत पहले प्रारम्भ हो गई थी, तो यह

समझौता ज्ञापन इन पदों को भरने में कोई बाधा नहीं बन सकता।"

47. अग्रेतर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 142 के तहत निर्धारित शक्तियों का प्रयोग करते हुए साक्षात्कार आयोजित करने और नए विज्ञापन के लिए निर्देश जारी करने के बाद अभ्यर्थियों को अनुमति देने के लिए कुछ निर्देश जारी किए, उक्त निर्देश चंदगी राम (उपरोक्त) के मामले के पैरा 9 में निहित हैं, जो इस प्रकार है:

"9. हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि उक्त पूर्व विज्ञापन के अनुसरण में इस चयन में भाग लेने के हकदार अभ्यर्थियों के अलावा, नियमों के अनुसार, यदि कोई हो, विश्वविद्यालय आज से तीन सप्ताह के भीतर एक नया विज्ञापन जारी करेगा, जिसमें नए अभ्यर्थियों को भी इसके लिए आवेदन करने का अधिकार होगा। इस अंतराल के दौरान, विश्वविद्यालय चयन समिति के उचित गठन के लिए राज्य सरकार से नामांकन प्राप्त करने सहित, यदि कोई आवश्यकता हो, सभी कार्यवाहियाँ शीघ्रता से करेगा। चूंकि इस प्रकरण में, राज्य सरकार पर पहले ही तामीला हो चुकी है, हम राज्य सरकार को निर्देश देते हैं कि चयन समिति के गठन के लिए यदि आवश्यक हो तो किसी को नामांकित करें, ताकि उपरोक्त समय सारणी के भीतर चयन करने में कोई विलम्ब न हो। हमने चयन में शीघ्रता लाने के लिए यह समय सारणी नहीं दी होती यदि इस चयन को करने में विश्वविद्यालय द्वारा अत्यधिक विलंब न किया गया होता। हम तदर्थवाद की इस संस्कृति की निंदा करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में इसका उपयोग स्थानापन्न व्यवस्था के लिए होगा यानी अल्प अवधि के लिए।"

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई और ऊपर दर्ज टिप्पणियाँ वर्तमान प्रकरण में पूर्ण बल के साथ लागू होती हैं क्योंकि विलम्ब के कारण तदर्थवाद की संस्कृति को बढ़ावा मिला है।

48. ***मदन मोहन शर्मा बनाम राजस्थान राज्य; (2008) 3 एससीसी 724*** और ***महाराष्ट्र राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य बनाम राजेंद्र भीम राव मांडवे और अन्य; (2001) 10 एससीसी 51*** के प्रकरणों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि चयन के मानदंडों को प्राधिकारियों द्वारा चयन की प्रक्रिया के मध्य में या शुरू होने के बाद बदला नहीं जा सकता है और एकमात्र उचित उपाय पूर्वगामी विज्ञापन को वापस लेना और नियमानुसार एक नया विज्ञापन जारी करना था।

49. चंदगी राम (उपरोक्त) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अनुसरण, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने ***बलप्रीत सिंह और एक अन्य बनाम चंडीगढ़ प्रशासन और अन्य; 2016 एससीसी ऑनलाइन पीएंडएच 9902*** के प्रकरण में निर्णय सुनाते समय किया, जिसमें तीन साल के विलंब को अत्यधिक विलंब माना गया और न्यायालय इस तथ्य से भी प्रभावित था कि इस तरह के विलंब के कारण कुछ व्यक्ति पात्र हो गए थे।

50. कुछ समरुप मुद्दों पर दिल्ली उच्च न्यायालय ने ***सैयद मेहदी बनाम एनसीटी दिल्ली सरकार और अन्य; 2019 एससीसी ऑनलाइन डेल 9015*** के प्रकरण में भी विचार किया जिसमें उच्च न्यायालय को विलंब के पहलू पर विचार करने का अवसर मिला और उसके समक्ष उठाए गए विवाद के संदर्भ में विभिन्न व्यक्तियों को आयु में छूट देने का निर्देश दिया गया।

51. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने ***नौशाद अनवर और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य; (2014) 11 एससीसी 203*** के प्रकरण पर विश्वास व्यक्त किया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भर्ती की प्रक्रिया में चार वर्ष के अत्यधिक विलंब के आरोपों पर निम्नलिखित निर्देश जारी किए थे:

"19. हम चयन प्रक्रिया के 2008 और 2012 के बीच चार वर्षों तक खींचे जाने के विचार से ही व्यथित हैं। इस तरह का अत्यधिक विलंब और आलस्य पूर्णतया अवांछनीय है क्योंकि न केवल यह मध्यावधि में नियुक्ति के लिए अर्हता प्राप्त करने वाले अभ्यर्थियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है, बल्कि इसलिए भी क्योंकि इस चयन और नियुक्ति प्रक्रिया, यह सुनिश्चित करने हेतु कि यह निष्पक्ष, उद्देश्यपूर्ण और पारदर्शी है, को विनियमित करने में सभी संबंधित पक्षों की ओर से पूर्ण विफलता को दर्शाता है। यह कहने से हमें कोई लाभ नहीं होगा कि स्वयं चयन प्रक्रिया के संबंध में कई प्रश्नों ने हमें चुनौती दी है, जिनका समाधान अभी भी शेष है, लेकिन चूंकि चयन या उसके अनुसार की गई नियुक्तियों को कोई चुनौती नहीं दी गयी है, इसलिए हम उन पहलुओं के संबंध में कोई भी टिप्पणी करने से विलग हो रहे हैं। हमें बस इतना कहना है कि स्थानीय निकायों के अन्तर्गत इतनी बड़ी संख्या में कर्मचारियों का चयन और उनकी नियुक्ति अधिक व्यवस्थित तरीके से की जानी चाहिए थी और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इसे उद्देश्य से निर्धारित समय-सीमा के भीतर, बिल्कुल अपरिहार्य होने पर उसके ऐसे उचित विस्तार के पूरा किया जाना चाहिए था। वर्षों तक विलंबित चयन प्रक्रिया शायद ही वस्तुनिष्ठता, निष्पक्षता और पारदर्शिता की मांगों को पूरा कर सकती है, खास कर तब जब अभ्यर्थियों की पारस्परिक योग्यता निर्धारित करने की विधि न तो नियमों में निर्धारित है और न ही चयन समिति के द्वारा पालन किए जाने हेतु जारी किए गए कोई दिशानिर्देश हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं।"

52. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत अगला निर्णय ***रेनू और अन्य बनाम जिला और सत्र न्यायाधीश, तीस हजारी न्यायालय, दिल्ली और अन्य; (2014) 14 एससीसी 50*** के प्रकरण में है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रोजगार के मुद्दे पर विचार करते हुए निम्नलिखित टिप्पणियाँ की थीं:

"16. सार्वजनिक नियुक्ति की एक अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकता है, पारदर्शिता। इसलिए, विज्ञापन में चयन और भर्ती के लिए उपलब्ध पदों की संख्या निर्दिष्ट होनी चाहिए। उसमें ऐसे पदों के लिए योग्यता और अन्य पात्रता मानदंड स्पष्टरूप से दिए जाने चाहिए और भर्ती प्रक्रिया की अनुसूची निश्चितता और स्पष्टता के साथ प्रकाशित की जानी चाहिए। विज्ञापन में उन नियमों को भी निर्दिष्ट किया जाना चाहिए जिनके तहत चयन किया जाना है और नियमों के अभाव में, वह प्रक्रिया जिसके तहत चयन किया जाना है। यह मनमानी को रोकने और चयन प्रक्रिया प्रारम्भ होने के पश्चात चयन के मानदंडों में बदलाव, जिससे दूसरों की कीमत पर किसी को अनुचित लाभ पहुंचाया जा सके, की वर्जना हेतु आवश्यक है।"

53. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने ***के. शेखर बनाम वी. इंदिराम्मन और अन्य; (2002) 3 एससीसी 586*** के प्रकरण में दिए गए निर्णय का हवाला दिया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ की थीं:

"29. हालाँकि अपीलकर्ताओं की दलील सही है कि उच्च न्यायालय को 1989 के विज्ञापन के आधार पर सहायक प्राध्यापक के चयन का निर्देश नहीं देना चाहिए था। वह विज्ञापन नशामुक्ति इकाई में नियुक्तियों से संबंधित था। एनआईएमएचएएनएस का यह कथन, कि धन की कमी के कारण एनआईएमएचएएनएस में नशामुक्ति इकाई की स्थापना को त्याग दिया गया था, को प्रतिवादी सं. 1 द्वारा स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया है। विभिन्न न्यायालयों के समक्ष लंबित होने के कारण, कई वर्षों के व्यतीत हो जाने के संबंधी विवाद में जाए बिना, 1989 में प्रारम्भ की गई प्रक्रिया को 11 वर्ष से अधिक समय बाद पूरा करने का निर्देश देना उचित नहीं होगा। अपीलकर्ता की नियुक्ति को रद्द करने से हुई रिक्ति को भरना होगा और एनआईएमएचएएनएस द्वारा अपने संवर्ग और भर्ती नियमों के अनुसार एक नया विज्ञापन जारी करना होगा। एनआईएमएचएएनएस में सहायक प्राध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति को रद्द करने के कारण अपीलकर्ता को जो दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम भुगतना पड़ेगा, उसे किसी भी न्यायसंगत विचार से टाला नहीं जा सकता है, हालांकि उसकी कठोरता को कुछ हद तक कम किया जा सकता है।"

54. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत अगला निर्णय ***प्रदीप गोगोई और अन्य बनाम असम राज्य और अन्य; (1998) 8 एससीसी 726*** का प्रकरण है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 1 और 2 में आदेश पारित करते हुए निम्नलिखित टिप्पणियाँ की थीं, जो इस प्रकार हैं:

"1. इस साझा वैशिष्टय को इंगित करने में पीड़ा हो रही है कि विज्ञापन और भर्ती आयोजित करने के बाद, जो विद्यमान रिक्तियां उत्पन्न हुयीं, उन्हें लोक सेवा आयोग के माध्यम से अधिसूचित करने और भर्ती करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की गयी, ताकि सभी पात्र उम्मीदवारों को नियमों के अनुसार भर्ती के लिए आवेदन करने का अवसर मिल सके और उनके दावे पर विचार किया जा सके। यह कहानी इस प्रकरण में दोहराई गई है। हालांकि विज्ञापन 1991 में जारी किया गया था, 19.11.1993 को चयन सूची तैयार होने के बाद नियुक्तियां की गईं, लेकिन उसके बाद मौजूद रिक्तियां नहीं भरी जा सकीं। परिणामस्वरूप याचिकाकर्ताओं सहित लोग अपनी नियुक्ति के लिए उच्च न्यायालय पहुँचे। उच्च न्यायालय ने, इस न्यायालय के बिहार राज्य बनाम सचिवालय सहायक सफल परीक्षार्थी संघ 1986 में प्रतिवेदित निर्णय के पालन करते हुए लोक सेवा आयोग द्वारा अनुशंसा तिथि तक विद्यमान रिक्तियों को प्रतीक्षा सूची से भरने का निर्देश दिया। प्रतीक्षा सूची की तैयारी भ्रष्टाचार, और भर्ती की प्रतीक्षा कर रहे योग्य अभ्यर्थियों को समानता के संवैधानिक अधिकार से वंचित करने का अड्डा बन गई। यह देखने लायक एक स्थानिक तमाशा बन गया है। यह स्थापित विधि है कि एक योग्य उम्मीदवार को भी संविधान के अनुच्छेद 16(1) के तहत राज्य के अन्तर्गत किसी कार्यालय या पद पर भर्ती के लिए अपने अधिकार के लिए विचारार्थ अपना दावा प्रस्तुत करने का मौलिक अधिकार है। समुचित प्राधिकारी द्वारा अधिसूचना नहीं जारी किये जाने के कारण चयन की प्रक्रिया नहीं हो पाने से लोगों के मानस पर हानिकारक प्रभाव पड़ रहा है। कर्तव्य की उपेक्षा अनुच्छेद 16(1) के तहत संवैधानिक अधिकारों को गंभीर रूप से नष्ट कर रही है और चयन की उचित प्रक्रिया को बाधित करने का एक स्रोत है।

2. हालांकि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री गोस्वामी का यह तर्क सही है कि ऐसे लोगों और याचिकाकर्ताओं, जिन्होने भी

नियुक्ति के लिए अपने प्रकरणों पर विचार करके आवेदन किया होगा क्योंकि उनके प्रकरणों का परीक्षण लोक सेवा आयोग द्वारा किया गया था और प्रतीक्षा सूची में रखे गये, को अवसर दिया जाना चाहिए क्योंकि उनकी नियुक्ति में चूक से संविधान के अनुच्छेद 16(1) के तहत उनके अधिकार गंभीर रूप से प्रभावित होते हैं। हम उनके प्रकरणों में प्रतीक्षा सूची से नियुक्ति करने के लिए विचार करने का दिशा निर्देश नहीं दे सकते। इस शिथिल होती समस्या और नैतिक पतन के लिए सहानुभूतिपूर्ण स्पंदन भी उत्तरदायी हैं। इन परिस्थितियों में, हम श्री गोस्वामी द्वारा किए गए प्रेरक अनुरोध को स्वीकार नहीं करने के लिए बाध्य हैं। हालाँकि, लोक सेवा आयोग को तत्काल रिक्तियों को अधिसूचित करने का निर्देश प्राधिकारियों को दिया जाता है और लोक सेवा आयोग भर्ती के लिए आवश्यक त्वरित कार्रवाई करेगा और शीघ्र ही प्राधिकारियों को नामों की सिफारिश करेगा, ताकि मौजूदा रिक्तियों को भरा जा सके तथा याचिकाकर्ताओं और सभी योग्य उम्मीदवार भी आवेदन करने के पात्र होंगे।"

55. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने ***जगदीश प्रसाद बनाम राजस्थान राज्य और अन्य; (2011) 7 एससीसी 789*** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया जिसमें चयन प्रक्रिया को दूषित माना गया क्योंकि इसने नियमों के साथ-साथ ***सचिन कुमार और अन्य बनाम दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन समिति (डीएसएसएसबी) और अन्य; (2021) 4 एससीसी 631*** के प्रकरण में निर्णय का उल्लंघन किया।

56. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने ***डॉ. सुश्री ओ.जेड. हुसैन बनाम भारत संघ; 1990 सप्प एससीसी 688, भारतीय खाद्य निगम और अन्य बनाम परषोतम दास बंसल और अन्य; (2008) 5 एससीसी 100*** के प्रकरणों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों का भी हवाला दिया है और यह तर्क देने के लिए कि सरकारी सेवा में पदोन्नति के अवसर आवश्यक हैं, दीपक अग्रवाल और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; (2011) 6 एससीसी 725 के प्रकरण का हवाला दिया है।

57. दूसरी ओर, प्रतिवादी के अधिवक्ता श्री सूर्यवंशी ने ***विवेक कुमार उपाध्याय बनाम उ.प्र. राज्य*** (रिट-ए संख्या 364/ 2022, अन्य संबंधित रिट याचिकाओं सहित 25.02.2022 को निर्णीत) प्रकरण में दिए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया, जिसमें याचिकाकर्ताओं ने उसी विज्ञापन संख्या 03/ 2013 से उत्पन्न अपने दावे पर विचार न करने को चुनौती दी थी। न्यायालय ने उन्हें विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के अन्तर्गत निर्धारित आवश्यकताओं के संदर्भ में अयोग्य होना पाया, हालांकि, उक्त विज्ञापन के आधार पर नियुक्ति की प्रक्रिया में विलंब के संबंध में मुद्दा मुक्त छोड़ दिया गया था और उक्त निर्णय के संबंधित पैराग्राफ को यहां पहले ही ऊपर सम्मिलित किया जा चुका है।

58. प्रतिवादी के अधिवक्ता श्री सूर्यवंशी द्वारा उद्धृत अगला निर्णय ***मोहन सिंह और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य*** (रिट-ए संख्या 700/ 2022, 20.06.2022 को निर्णीत) के प्रकरण में है जिसमें याचिकाकर्ताओं को विज्ञापन की तिथि के अनुसार उनकी योग्यता के आधार पर अयोग्य पाया गया था। उक्त निर्णय के विरुद्ध दायर की गई विशेष अपील संख्या 515/ 2022 (18.08.2022 को निर्णीत) भी खारिज कर दी गई।

अनुवाद

59. प्रतिवादी के अधिवक्ता श्री सूर्यवंशी ने ***रिट-ए संख्या 14975/ 2019 (मनीष कुमार त्रिपाठी बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य)*** में पारित एक आदेश दिनांक 30.09.2019 का भी हवाला दिया जिसमें याचिकाकर्ता को बोर्ड से संपर्क करने के निर्देश दिए गए थे। यह अबोधगम्य है कि उक्त आदेश की वर्तमान प्रकरण में क्या प्रासंगिकता है।

60. प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री सूर्यवंशी ने अग्रेतर ***हरियाणा राज्य और अन्य बनाम अजय वालिया (सुश्री) ; (1997) 6 एससीसी 255*** के प्रकरण में निर्णय का हवाला दिया। उक्त प्रकरण को अतिविलंब के आधार पर खारिज कर दिया गया।

61. प्रतिवादी के अधिवक्ता ने अग्रेतर ***रमेश चंद्र शाह और अन्य बनाम अनिल जोशी और अन्य*** [विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 30581-30583/ 2012 से उत्पन्न दीवानी अपील संख्या 2802-2804/ 2013, 03.04.2013 को निर्णीत] के प्रकरण में निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भर्ती में भाग लेने वाले और विज्ञापन पर सवाल उठाने के उनके अधिकारों को खो चुके, अभ्यर्थियों की ओर से भर्ती को दी गयी चुनौती को खारिज कर दिया। उक्त निर्णय वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर लागू नहीं होगा क्योंकि याचिकाकर्ताओं को विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के संदर्भ में भाग लेने के लिए अयोग्य माना गया था।

62. प्रतिवादी के अधिवक्ता श्री सूर्यवंशी द्वारा उद्धृत अगला निर्णय ***शंकर मंडल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य*** (सिविल अपील संख्या 1924/ 2010, 15.02.2022 को निर्णीत) के प्रकरण में है जिसमें पुलिस सत्यापन का मुद्दा था। इसपर, सर्वोच्च न्यायालय ने उनके पक्ष में हस्तक्षेप नहीं किया क्योंकि भर्ती प्रक्रिया पूरी होनी चाहिए और याचिकाकर्ताओं ने शिकायतें करने में सात वर्ष तक इंतजार किया।

63. उत्तरदाताओं के अधिवक्ता श्री सूर्यवंशी द्वारा उद्धृत अगला निर्णय ***भारत संघ और अन्य बनाम एन. मुरुगेसन और अन्य; (2022) 2 एससीसी 25*** है। उक्त प्रकरण में, याचिकाकर्ता को केवल विलंब और कालातीत के आधार पर राहत नहीं दी गयी।

64. वर्तमान प्रकरण में, प्रतिवादियों के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय किसी प्रकार से सहायक नहीं हो सके क्योंकि याचिकाकर्ताओं को इस न्यायालय के समक्ष आने के लिए मजबूर करने वाली कार्रवाई का कारण, समिति द्वारा वर्ष 2022 में दो ज्येष्ठतम शिक्षकों की सूची आमंत्रित करने की कार्रवाई थी और विवेक कुमार उपाध्याय (उपरोक्त) के प्रकरण में न्यायालय द्वारा उन्हें विचार के लिए अपठनीय माने जाने की व्यवस्था देते हुए और उन्हें अत्यधिक विलंब के सीमित आधार पर चुनौती देने की स्वतंत्रता प्रदान की। प्रतिवादियों के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत अन्य निर्णय विज्ञापन जारी करने के समय योग्यता की आवश्यकता से संबंधित हैं, जो मुद्दा अंतिम रूप ले चुका है।

65. यह सुस्थापित है कि पात्रता की आवश्यकता को विज्ञापन में निर्धारित अंतिम तिथि के अनुसार पूरा किया जाना है और बाद में अर्जित योग्यता किसी व्यक्ति को पात्र नहीं बनाएगी, हालांकि, वर्तमान मामले में, हम भर्ती की प्रक्रिया में विलंब पर चिंतन कर रहे हैं और क्या उक्त विलंब भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 की कसौटी पर खरी उतरेगा। यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि इस न्यायालय ने

रिट-ए संख्या 20668/ 2022 बृजपाल सिंह बनाम उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन समिति में उसी विज्ञापन से उत्पन्न रिट याचिकाओं पर विचार किया था, जिसमें इस न्यायालय ने एक अंतरिम आदेश दिया था, हालाँकि, चूँकि मैं संपूर्ण रिट याचिकाओं पर निर्णय ले रहा हूँ, इसलिए अंतरिम आदेश का निर्णय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

66. बार में उठाए गए तर्कों के आलोक में, यह स्थापित हो चुका है कि समिति ने चयन के लिए उपलब्ध अभ्यर्थियों के पूल को स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित कर दिया है और 1982 अधिनियम की धारा 11 के तहत लिखित परीक्षा आयोजित करने के लिए, जैसे ही उन्हें सूचित किया जाता है, निर्धारित अधिदेश का पालन नहीं किया है। अभिव्यक्ति "जैसे ही" की व्याख्या यह नहीं की जा सकती कि कार्रवाई नौ वर्ष बाद की गई है, हालांकि कोई समय सीमा तय नहीं है, "जैसे ही" वाक्यांश की व्याख्या, की जाने वाली भर्ती, भर्ती का वर्ष और आशय, जिस लिए विज्ञापन जारी किया गया, के संदर्भ में, एक उचित समय के भीतर मानना चाहिए। "जितनी जल्दी हो सके" वाक्यांश के दायरा और परिधि पर ***अब्दुल जबर बट बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य; 1957 एससीआर 51*** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा निम्नानुसार विचार किया गया,

"6....सवाल यह है कि समय की अवधि क्या है, जिसे "जितनी जल्दी हो सके" शब्दों द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है? स्ट्राउड के न्यायिक शब्दकोश के तीसरे संस्करण, खंड1, पृष्ठ 200 में उद्धृत किंग्स ओल्ड कंट्री, लिमिटेड बनाम लिक्विड कार्बोनिक कैन कॉर्पोरेशन, लिमिटेड [(1942) 2 डब्लूडब्लूआर 603, 606] में न्यायाधीश डिसेंट, की टिप्पणियां उपयुक्त हैं। विद्वान न्यायाधीश ने कहा, "जितनी जल्दी हो सके एक काम करना' इसका तात्पर्य यह है कि इसे उचित समय के भीतर करना है, इसे कम से कम संभव समय के भीतर करने की समझ के साथ करना है।" इसी तरह आधारों को जितनी जल्दी हो सके सूचित करने का तात्पर्य सही तरह से कहा जा सकता है कि उसे उचित समय के भीतर ऐसा करना है कि इसे सब से कम संभव समय के भीतर ऐसा करने की समझ के साथ करना है। हालाँकि, उचित समय या सबसे कम संभव समय के रूप में क्या माना जाना चाहिए? "जितनी जल्दी हो सके" शब्द विचार के लिए इस न्यायालय के समक्ष उजागर सिंह बनाम पंजाब राज्य [1951 एससीसी 170: (1952) एससीआर 756] में आए थे। पृष्ठ 761-62 पर, इस न्यायालय ने पाया कि इस अभिव्यक्ति का अर्थ "उचित प्रेषण" है और फिर कहा कि "जो उचित था वह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए और कोई मनमानी समयसीमा निर्धारित नहीं की जा सकती"। केशव नीलकंठ जोगलेकर बनाम पुलिस आयुक्त, ग्रेटर बॉम्बे [सर्वोच्च न्यायालय याचिका संख्या 102/ 1956, निर्णीत दिनांक 17 सितंबर 1956] में भारतीय निवारक निरोध अधिनियम (4/ 1950) की धारा 3(3) में प्रयुक्त शब्द "तुरंत" विचारार्थ प्रस्तुत हुआ। यह देखने के बाद कि उस अधिनियम की धारा 3(3) में आने वाले "तुरंत" शब्द का वही अर्थ नहीं है जो उसी अधिनियम की धारा 7 में प्रयुक्त "जितनी जल्दी हो सके" का है और यह कि पहले वाले का अर्थ बाद वाले की तुलना में अधिक अनुपेक्षणीय था, इस न्यायालय ने पाया कि हिरासत में लिए गए लोगों को कारण बताने के लिए प्राधिकारी को जो समय दिया गया था और "जितनी जल्दी हो सके" अभिव्यक्ति द्वारा निर्धारित किया गया था वह "उचित रूप से

अनुवादित

सुविधाजनक" या "उचित रूप से अपेक्षित" था। जब भी समय की अवधि की गणना करने में तर्कसंगतता का प्रश्न उठता है तो न्यायालय को उस मामले की विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखना पड़ता है जिसमें निर्णय के लिए प्रश्न उठता है। कई मामलों में सकारात्मक रूप से कहना या सटीक रूप से समय की अवधि को घंटों, दिनों या महीनों के संदर्भ में मापना संभव नहीं हो सकता है, फिर भी, मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह कहना संभव है कि "जितनी जल्दी हो सके" अर्थात उस समय के भीतर जो उचित रूप से सुविधाजनक या अपेक्षित था, क्या किया गया या नहीं किया गया। इस पर विवाद नहीं किया जा सकता है और वास्तव में विद्वान अटॉर्नी-जनरल द्वारा इस पर विवाद नहीं किया गया है कि उप-धारा(1) समय की एक समयावधि निर्धारित करती है जिसके भीतर संचार उपाध्याय (उपरोक्त) के प्रकरण से भी पुष्ट होता है।

68. मुझे यह व्यवस्था देने में कोई झिझक नहीं है कि बोर्ड उक्त सभी मोर्चों पर विफल रहा है और इस प्रकार ऊपर दर्ज किए गए सभी आधारों पर मुझे यह व्यवस्था देने में कोई झिझक नहीं है कि नौ वर्ष बाद भर्ती करने में बोर्ड की कार्यवाही, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है।

69. इस प्रकार किए गए चयनों ने स्पष्ट रूप से योग्य अभ्यर्थियों (दो ज्येष्ठतम अध्यापकों) को नियमावली, 1998 के नियम 12(6) के तहत उनके अधिकारों से वंचित कर दिया और उन अभ्यर्थियों को भी, जिन्होंने 2014 के बाद योग्यता हासिल की है, क्योंकि वे केवल बोर्ड द्वारा विलंब के कारण विचार किए जाने से वंचित हैं। याचिकाकर्ताओं के *किया जाना है और यह समय हिरासत के आदेश के प्रभावी होने की तिथि से प्रारम्भ होता है।*

यद्यपि उपर्युक्त टिप्पणियाँ अनुच्छेद 22 की व्याख्या के संदर्भ में की गई थीं, वाक्यांश "जितनी जल्दी हो सके" की परिभाषा अर्थात युक्तिपूर्वक आवश्यक समय के भीतर, 1982 अधिनियम की धारा 11(1) की व्याख्या के लिए पूरे बल के साथ लागू होगी।

67. समिति ने अग्रेतर वर्ष 2022 में दो ज्येष्ठतम अध्यापकों के नाम मांगने में भी त्रुटि की, जबकि वे विज्ञापन में निर्धारित अंतिम तिथि के अनुसार ज्येष्ठतम नहीं थे, इसप्रकार, समिति ने नियमों को मध्य में ही बदल दिया, जो अनुमेय नहीं है और उस आधार पर भी, उक्त नामों को बुलाने पर भी समिति की गलती थी, यह तथ्य विवेक कुमार अधिकारों का भी उल्लंघन किया गया है, क्योंकि सीधी भर्ती के माध्यम से नियुक्ति अप्रत्यक्ष रूप से ज्येष्ठतम अध्यापकों के लिए उपलब्ध पदोन्नति का एक अवसर है जो नियमावली, 1998 के नियम 10 के संदर्भ में उपलब्ध नहीं है। चयन की पूरी प्रक्रिया भी दूषित है क्योंकि जिस पूल से समिति द्वारा चयन किया जाना है वह केवल नियुक्ति की प्रक्रिया पूरी करने में अत्यधिक विलंब के कारण संकुचित गया और इस प्रकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 का उल्लंघन के रुप में परिणत हुआ।

70. इस प्रकार ऊपर दर्ज सभी कारणों से, विज्ञापन संख्या 03/ 2013 के अनुसरण में समिति द्वारा की गई सभी नियुक्तियों को, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के उल्लंघन के कारण, निरस्त किया जाता है।

अनुवादित

अब समिति दृढ़ता पूर्वक विधि के अनुसार सभी अभियानों के साथ नए विज्ञापन जारी करके भर्ती के लिए कदम उठाएगा।

71. जब तक समिति द्वारा निर्देशित ऐसे कदम नहीं उठाए जाते, तब तक 1982 अधिनियम विशेष रूप से धारा 18 में प्रदान की गई व्यवस्था प्रधानाचार्यों और प्रधानाध्यापकों के पदों पर भर्ती को शासित करती रहेगी।

72. उपरोक्त के दृष्टिगत, सभी रिट याचिकाएं **स्वीकार** की जाती हैं।

(2023) 2 ILRA 947

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकःइलाहाबाद 21.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह,

रिट-ए नंबर 19308/2022

कांस्टेबल महेश चंद्रा (महेश सिंह)

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सुधीर सिंह चौहान, श्री आशुतोष विश्वकर्मा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - ग्रेच्युटी - आपराधिक मामले का लंबित होना - अधिकारियों के लिए याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी रोकने के लिए, यह रिकॉर्ड करना अनिवार्य होगा कि पेंशनभोगी दोषी होगा या किसी गंभीर अपराध के लिए मुकदमा चल रहा है। अधिकारियों को यह देखना जरूरी होगा कि जिस अपराध में पेंशनभोगी संलिप्त है उसकी प्रकृति गंभीर अपराध के अंतर्गत में आती है या नहीं। (पैरा 15)

बी. सक्षम प्राधिकारी को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि क्या याचिकाकर्ता के विरुद्ध शिकायत या आरोप पत्र सेवा अवधि के दौरान दायर किया गया था और क्या याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप पत्र में लगाए गए आरोप गंभीर अपराध के दायरे में आते हैं जो कि सरकारी सेवक के लिए अशोभनीय है, तो फिर कैसे और किस आकस्मिक स्थिति में पेंशनभोगी को रोजगार में बने रहने की अनुमति दी गई, जबकि विभाग को पेंशनभोगी के खिलाफ आपराधिक मामला लंबित होने की जानकारी थी और क्या ऐसी परिस्थितियों में आपराधिक मामला लंबित होने के आधार पर पेंशनभोगी की ग्रेच्युटी रोकना उचित होगा? (पैरा 15)

याचिकाकर्ता वर्ष 1982 में सेवाओं में सम्मिलित हुआ था और 39 वर्ष, 11 महीने और 23 दिनों से अधिक की सेवा के बाद वह 31.01.2022 को सेवानिवृत्त हो गया। (पैरा 16)

विभाग को याचिकाकर्ता के खिलाफ 2005 के क्रमांक 207 के तहत लंबित आपराधिक मामले की जानकारी थी। आरोप पत्र वर्ष 2006 में दायर किया गया था और वाद अभी भी संबंधित न्यायालय के समक्ष विचाराधीन कर रहा है। कोई उचित मामला बनता है या नहीं, यह संबंधित न्यायालय को तय करना है, लेकिन साथ ही, उक्त वाद पंजीकरण के 16 वर्ष से अधिक समय के पश्चात और जहां याचिकाकर्ता 31.01.2022 को सेवानिवृत्त हो गया है, इस पर निष्पक्ष रूप से विचार किया जाना था। प्राधिकारियों से पूछा जाए

अनुवादित

कि क्या इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उचित सामग्री है कि याचिकाकर्ता किसी गंभीर अपराध में शामिल है। यदि ऐसा था तो किन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को बिना किसी विभागीय कार्यवाही के सेवा में बने रहने की अनुमति दी गई, ये सभी प्रासंगिक वाद हैं, जिन पर विचार किया जाना चाहिए था लेकिन दुर्भाग्य से मामले के इस पहलू पर प्राधिकरण द्वारा विचार नहीं किया गया है। (पैरा 17)

जो ग्रेच्युटी रोकी गई है वह केवल आपराधिक मामले के लंबित होने के कारण है और यह इंगित नहीं करता है कि इस तथ्य के संबंध में कोई गंभीर विचार-विमर्श हुआ है कि क्या याचिकाकर्ता किसी गंभीर अपराध में शामिल था। विवादित आदेश स्पष्ट रूप से निरर्थक है और न्यायिक दिमाग के किसी भी प्रयोग को प्रतिबिंबित नहीं करता है। (पैरा 20)

रिट याचिका स्वीकार की गई। वाद संबंधित प्राधिकारी को प्रेषित कर दिया गया है। (ई 4)

<u>विधिव्यवस्था अनुसरित:</u>

1. शिव गोपाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2019 (5) एडीजे (41) (एफबी) (पैरा 8)
2. उदय नारायण ओझा बनाम एस.टी.ओ. यू.पी. एवं अन्य, 2020 (6) एडब्ल्यूसी 5502 (पैरा 8)
3. देवेन्द्र कुमार शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2021 (0) सुप्रीम 1154 इलाहाबाद (पैरा 8)
4. भारत संघ और अन्य बनाम एस.एल. अब्बास, 1993 एससीसी 351 (14 के लिए)

वर्तमान याचिका में पुलिस अधीक्षक, उरई, जिला जालौन द्वारा जारी आदेश दिनांक 31.01.2022 को चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक आपराधिक मामला लंबित होने के आधार पर याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी रोक दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुधीर सिंह चौहान के साथ साथ राज्य-प्रत्यर्थियों के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री श्रवण कुमार दुबे को सुना।
2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भी राज्य-प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता को एक प्रति देने के बाद आज एक पूरक शपथपत्र दायर किया है और उसे रिकॉर्ड पर लिया गया है।

3. वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना किया है जो निम्नानुसार है: -

"(I) प्रत्यर्थी संख्या 3 यानी पुलिस अधीक्षक उरई, जिला जालौन द्वारा जारी किए गए आक्षेपित आदेश/पत्र संख्या Sa-96/2021 दिनांक 31.01.2022 को रद्द करने/हटाने के लिए उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए।

(II) याचिकाकर्ता को ब्याज सहित ग्रेच्युटी का भुगतान/अनुमति देने के लिए प्रत्यर्थियों को आदेश देने और

अनुवादित

निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए।"

4. याचिकाकर्ता ने दिनांक 31.01.2022 के आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जिसके तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ एक आपराधिक मामला लंबित होने के आधार पर याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी रोक दी गई है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता को पुलिस अधीक्षक, फतेहगढ़, जिला फर्रुखाबाद द्वारा दिनांक 01.02.1982 को कांस्टेबल के पद पर नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता 39 वर्ष 11 माह और 23 दिन की सेवा पूरी करने के बाद दिनांक 31.01.2022 को सेवानिवृत्त हो गया है। याचिकाकर्ता का यह भी मामला है कि अपने सेवा कार्यकाल के दौरान, उन्हें नकद पुरस्कार से सम्मानित किया गया था और उनकी सेवाओं के लिए सराहना भी की गई थी और अपने पूरे सेवाकाल के दौरान याचिकाकर्ता के खिलाफ किसी भी गबन या सरकार को नुकसान पहुंचाने का कोई मामला नहीं था या लंबित नहीं है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि दिनांक 29.06.2005 को हुई एक कथित घटना के संबंध में याचिकाकर्ता के खिलाफ आईपीसी की धारा 307/332/333/504/506/120-बी के तहत दिनांक 29.06.2005 को मामला संख्या 207 वर्ष 2005 दर्ज किया गया था। यह कहा गया है कि उक्त मामला अभी भी लंबित है और उक्त लंबन के कारण याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी रोक दी गई है। यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता को झूठा फंसाया गया है, क्योंकि घटना की कथित तारीख पर, यानी 29.06.2005 को, याचिकाकर्ता ड्यूटी पर था और घटना के कथित स्थल पर नहीं था और उपरोक्त दलीलों को पुष्ट करने के लिए उन्होंने रिट याचिका के साथ संलग्नक संख्या 1 और 2 के रूप में दस्तावेज़ भी रिकॉर्ड में लाए हैं।

7. मुकदमा संख्या 207 वर्ष 2005 के विचारण में विसंगतियों को दर्शित करने वाले पूरक शपथपत्र की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा गया है कि याचिकाकर्ता को झूठा फंसाया गया है और याचिकाकर्ता की कोई गलती नहीं है, बावजूद इसके मामला 16 वर्षों से अधिक समय से लंबित है और उपरोक्त जानकारी पुलिस विभाग के पास हमेशा उपलब्ध थी, फिर भी, सेवानिवृत्ति तक इस संबंध में याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई विभागीय जांच शुरू नहीं की गई थी।

8. यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी रोकने का कोई औचित्य नहीं है, विशेषकर जब अधिकारियों ने स्वयं यह नहीं पाया कि याचिकाकर्ता किसी गंभीर अपराध का दोषी था और न ही कथित मामला संख्या 207 वर्ष 2005 ने प्रत्यर्थी-अधिकारियों को याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई भी विभागीय कार्यवाही शुरू करने के लिए प्रेरित किया और अब जब वह सेवानिवृत्त हो गया है, तो प्रत्यर्थियों के लिए ग्रेच्युटी रोकना वैध नहीं है, जो कि इस मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले द्वारा ***शिव गोपाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2019 (5) एडीजे (441) (एफबी)*** मामले में प्रतिपादित कानूनी सिद्धांतों के खिलाफ है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता भी ***उदय नारायण ओझा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2020 (6) एडब्ल्यूसी***

अनुवादित

5502 और ***देवेन्द्र कुमार शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य; 2021 (0) सुप्रीम 1154 इलाहाबाद*** मामले में निर्णय पर अवलम्ब लिया है।

9. उपरोक्त निर्णयों के आधार पर, यह कहा गया है कि दिनांक 31.01.2022 का आक्षेपित आदेश जिसके तहत ग्रेच्युटी रोकी गई है, गलत है ऐसे में आक्षेपित आदेश को रद्द करते हुए याचिकाकर्ता को ब्याज सहित रुकी हुई ग्रेच्युटी शीघ्र जारी करने का निर्देश जारी किया जाए।

10. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने लिखित निर्देशों के आधार पर कहा कि आपराधिक मामला लंबित होने के कारण ग्रेच्युटी रोक दी गई है। यह कहा गया है कि अधिकारियों द्वारा ग्रेच्युटी रोकने में कोई त्रुटि या क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि नहीं हुई है और इसलिए रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है और खारिज किए जाने योग्य है।

11. न्यायालय ने दलीलों पर विचार किया और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का भी परिशीलन किया।

12. यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता वर्ष 1982 में सेवाओं में शामिल हुआ था और दिनांक 31.01.2022 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली थी। यह भी विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ उसके पूरे सेवाकाल में कोई विभागीय जांच लंबित नहीं थी। यह भी विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता किसी भी चूक या अपराध कारित होने के लिए दोषी नहीं है जिससे सरकार को कोई नुकसान हुआ हो। एकमात्र आधार जिस पर याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी रोकी गई है वह आपराधिक मामला संख्या 207 वर्ष 2005 का लंबित होना है।

14. केवल आपराधिक मामला लंबित होने के आधार पर याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी रोकने की सत्यता के साथ-साथ औचित्य का पता लगाने के लिए, ***यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य बनाम एस.एल. अब्बास 1993 (4) एससीसी 351*** की पूर्ण पीठ के फैसले के आलोक में इस मुद्दे की जांच करना आवश्यक होगा; जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:- इस न्यायालय ने ***शिव गोपाल (उपरोक्त)*** मामले में और उसके संबंधित भाग को इस प्रकार प्रस्तुत किया है:-

"31. स्पष्ट रूप से पढ़ने पर, अनुच्छेद 351 राज्य सरकार को पेंशन या उसके किसी भी हिस्से को रोकने या वापस लेने की शक्ति प्रदान करता है, यदि पेंशनभोगी को 'गंभीर अपराध' का दोषी ठहराया जाता है या गंभीर कदाचार का दोषी ठहराया जाता है। दूसरे शब्दों में राज्य सरकार दो आधारों पर पेंशन रोक सकती है या वापस ले सकती है: (i) गंभीर अपराध का दोषी; (ii) गंभीर कदाचार का दोषी; लेकिन अन्यथा नहीं। दूसरे शब्दों में, केवल आपराधिक मामले या अनुशासनात्मक कार्यवाही का लंबित होना अनुच्छेद 351 के तहत पेंशन रोकने/या वापस लेने के लिए पर्याप्त नहीं है।

*------******------****----------***----*****

39. 'गंभीर अपराध' अभिव्यक्ति को सरकारी कर्मचारी से जुड़े सेवा न्यायशास्त्र के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। यह चूक का कोई भी कार्य हो सकता है जो सक्षम प्राधिकारी की राय में काफी गंभीर है और अनुच्छेद 351 के संदर्भ में दंडात्मक कार्रवाई की मांग करता है। इसका दण्ड की मात्रा से कोई लेना-देना नहीं है, बल्कि अपराध की प्रकृति और अपराध के कारित करने/चूक करने

में सरकारी कर्मचारी की भागीदारी की डिग्री से है।

40. अनुच्छेद 351-ए राज्यपाल को पेंशन या उसके एक हिस्से को स्थायी रूप से या निर्दिष्ट अवधि के लिए रोकने या वापस लेने का अधिकार देता है और यदि पेंशनभोगी विभागीय कार्यवाही या न्यायिक कार्यवाही में (i) गंभीर कदाचार का दोषी या (ii) अपनी सेवा के दौरान कदाचार या लापरवाही से सरकार को आर्थिक नुकसान पहुंचाया पाया गया है तो सरकार को होने वाली आर्थिक हानि के लिए पेंशन से वसूली का आदेश दे सकता है। अनुच्छेद का परंतुक उन परिस्थितियों/शर्तों को बताता है जिनमें पेंशन रोकने/निकासी के उद्देश्य के लिए विभागीय कार्यवाही/न्यायिक कार्यवाही शुरू करने की आवश्यकता होती है। अनुच्छेद 351-ए इस प्रकार है:

"351-A21. यदि पेंशनभोगी को विभागीय या न्यायिक कार्यवाही में गंभीर कदाचार का दोषी पाया जाता है, या उसकी सेवा के दौरान कदाचार या लापरवाही से सरकार को आर्थिक हानि हुई है, जिसमें सेवानिवृत्ति के बाद पुन: रोजगार पर प्रदान की गई सेवा भी शामिल है, तो राज्यपाल के पास पेंशन या उसके किसी हिस्से को स्थायी रूप से या एक निर्दिष्ट अवधि के लिए रोकने या वापस लेने का अधिकार सुरक्षित है और सरकार को हुई किसी भी आर्थिक हानि की पूरी राशि या उसके कुछ हिस्से को पेंशन से वसूल करने का आदेश देने का अधिकार राज्यपाल के पास सुरक्षित है: परंतु यह कि-

(क) ऐसी विभागीय कार्यवाही, यदि अधिकारी सेवानिवृत्ति से पहले या पुनर्नियुक्ति के दौरान ड्यूटी पर था तब संस्थित नहीं किया गया था-

(i) राज्यपाल की मंजूरी के बिना स्थापित नहीं किया जाएगा।

(ii) ऐसी घटना के संबंध में होगी जो ऐसी कार्यवाही शुरू होने से चार साल से अधिक पहले नहीं हुई हो; और

(iii) ऐसे प्राधिकारी द्वारा और ऐसे स्थान या स्थानों पर आयोजित किया जाएगा जैसा कि राज्यपाल निर्देशित कर सकते हैं और कार्यवाही पर लागू प्रक्रिया के अनुसार जिस पर सेवा से बर्खास्तगी का आदेश दिया जा सकता है।

(ख) यदि अधिकारी सेवानिवृत्ति से पहले या पुनर्नियुक्ति के दौरान ड्यूटी पर था, तब संस्थित नहीं किया गया था, तो न्यायिक कार्यवाही खंड (क) के उप-खंड (ii) के अनुसार संस्थित की जाएगी; और

(ग) अंतिम आदेश पारित करने से पहले लोक सेवा आयोग उ.प्र. से परामर्श किया जाएगा।

[परंतु यह कि राज्यपाल द्वारा पारित आदेश उत्तर प्रदेश अनुशासनात्मक कार्यवाही, (प्रशासनिक न्यायाधिकरण) नियम, 1947 के तहत नकद लेनदेन से संबंधित हो, तो लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा]।

स्पष्टीकरण - इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए-

(ए) विभागीय कार्यवाही तब शुरू की गई मानी जाएगी जब पेंशनभोगी के खिलाफ तय किए गए आरोप उसे जारी किए जाएंगे या यदि अधिकारी को किसी पहले की तारीख से ऐसी तारीख पर निलंबित किया गया हो; और

(बी) न्यायिक कार्यवाही शुरू की गई मानी जाएगी:

(i) आपराधिक कार्यवाही के मामले में, जिस तारीख को शिकायत की जाती है, या किसी आपराधिक न्यायालय में आरोप-पत्र प्रस्तुत किया जाता है; और

(ii) सिविल कार्यवाही के मामले में, जिस तारीख को वाद प्रस्तुत किया जाता है या, जैसा भी मामला हो, सिविल न्यायालय में आवेदन किया जाता है।

नोट- जैसे ही इस लेख में निर्दिष्ट प्रकृति की कार्यवाही शुरू की जाती है, ऐसी कार्यवाही शुरू करने वाला प्राधिकारी बिना किसी देरी के संबंधित लेखापरीक्षा अधिकारी को तथ्य सूचित करेगा।

41. अनुच्छेद 351-ए का स्पष्टीकरण स्पष्ट करता है कि विभागीय कार्यवाही शुरू की गई मानी जाएगी: (i) जब पेंशनभोगी के खिलाफ आरोप तय किए जाते हैं; या (ii) अधिकारी को ऐसी तारीख से निलंबित कर दिया गया हो। इसके अलावा, न्यायिक कार्यवाही को पेंशनभोगी के खिलाफ शुरू किया गया माना जाता है: (i) आपराधिक कार्यवाही के मामले में, जिस तारीख को शिकायत की जाती है या आपराधिक अदालत में आरोप पत्र प्रस्तुत किया जाता है; (ii) सिविल कार्यवाही के मामले में जिस तारीख को वादपत्र प्रस्तुत किया जाता है या जैसा भी मामला हो, सिविल न्यायालय में आवेदन किया जाता है।

42. अब हम अनुच्छेद 351-ए के प्रावधान का उल्लेख करेंगे। प्रावधान सेवानिवृत्ति के बाद सरकारी कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही या न्यायिक कार्यवाही शुरू करने की बात करता है। कार्यवाही शुरू करने के लिए उसमें निर्दिष्ट शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए, अर्थात, परंतुक (ए) में दर्शाए अनुसार विभागीय कार्यवाही यदि अधिकारी के ड्यूटी पर रहने के दौरान संस्थित नहीं की गई है तो इसे इसके अलावा तब संस्थित नहीं किया जाएगा:-

(i). राज्यपाल की मंजूरी से;

(ii). इसे उस घटना पर शुरू किया जाएगा जो कार्यवाही शुरू होने से 4 वर्ष से अधिक पहले नहीं हुई हो;

(iii). ऐसी कार्यवाही ऐसे प्राधिकारी द्वारा और ऐसे स्थान पर आयोजित की जाएगी जैसा कि राज्यपाल निर्देशित कर सकते हैं और कार्यवाही पर लागू प्रक्रिया के अनुसार जिस पर सेवा से बर्खास्तगी का आदेश दिया जा सकता है।

*------******------****----------***-----****

48. सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351 और 351-ए को संयुक्त रूप से पढ़ने पर यह स्पष्ट रूप से दर्शित होता है कि राज्य सरकार/राज्यपाल के पास पेंशन या उसके किसी हिस्से को स्थायी रूप से या निर्दिष्ट अवधि के लिए रोकने या वापस लेने का अधिकार और अधिकार सुरक्षित है। निम्नलिखित परिस्थितियों में सरकार को हुई किसी भी आर्थिक हानि की पूरी या आंशिक भरपाई पेंशन से की जाए:-

(i). पेंशनभोगी को गंभीर अपराध का दोषी ठहराया जाए;

(ii). पेंशनभोगी गंभीर कदाचार का दोषी हो;

iii. पेंशनभोगी ने सेवा के दौरान कदाचार या लापरवाही से सरकार को आर्थिक हानि पहुंचाई हो, जिसमें सेवानिवृत्ति के बाद पुनर्नियुक्ति पर प्रदान की गई सेवा भी शामिल है;

iv. अनुच्छेद 351 और 351-ए के तहत शक्ति का प्रयोग राज्यपाल/राज्य सरकार द्वारा अनुशासनात्मक/न्यायिक कार्यवाही के समापन पर

किया जा सकता है, न कि कार्यवाही की शुरुआत में। दूसरे शब्दों में, इन अनुच्छेदों के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए पूर्ववर्ती शर्त कार्यवाही के समापन और सक्षम प्राधिकारी द्वारा उस पर पारित किए जाने वाले आदेश पर है।

अनुच्छेद 351-एए/अनुच्छेद 919-ए:

49. अनुच्छेद 351-एए को उन सरकारी कर्मचारियों को पूर्ण पेंशन (पेंशन का विनिमय) के मुकाबले अनंतिम पेंशन का अधिकार देने के लिए शामिल किया गया, जिनके खिलाफ विभागीय या न्यायिक कार्यवाही या प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा कोई जांच सेवानिवृत्ति की तारीख पर लंबित है या सेवानिवृत्ति के बाद संस्थित की जानी है। ऐसे सरकारी कर्मचारी को अनुच्छेद 919-ए में दिए गए प्रावधानों के अनुसार अनंतिम पेंशन स्वीकृत की जा सकती है।

50. अनुच्छेद 351-एए इस प्रकार है:

"[351-एए25. एक सरकारी कर्मचारी के मामले में जो सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर या अन्यथा सेवानिवृत्त होता है और जिसके खिलाफ सेवानिवृत्ति की तारीख पर कोई विभागीय या न्यायिक कार्यवाही या प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा कोई जांच लंबित है या सेवानिवृत्ति के बाद एक अनंतिम पेंशन संस्थित की जानी है, जैसा कि अनुच्छेद 919-ए में प्रावधानित है, स्वीकृत किया जा सकता है।"

51. अनुच्छेद 351-एए को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर, यह पता चलता है कि सेवानिवृत्ति की तारीख पर एक सरकारी कर्मचारी के खिलाफ उसमें संदर्भित कार्यवाही/जांच लंबित होने की स्थिति में, सरकारी कर्मचारी अनंतिम पेंशन का हकदार होगा। दूसरे शब्दों में, विभागीय/न्यायिक कार्यवाही या सेवानिवृत्ति के बाद संस्थित की जाने वाली किसी जांच या पूछताछ के लंबित रहने से राज्य सरकार को पेंशन रोकने का अधिकार नहीं होगा, लेकिन सरकारी कर्मचारी को नियमों के अनुसार गणना करके अनंतिम पेंशन स्वीकृत की जा सकती है। इसका मतलब यह है कि पूरी पेंशन की गणना, जैसा भी मामला हो, कार्यवाही/जांच के समापन पर की जानी चाहिए।"

15. उपरोक्त प्रस्तरों के अवलोकन से, यह नोट करना प्रासंगिक होगा कि अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी रोकने के लिए यह अभिलिखित करना अनिवार्य होगा कि पेंशनभोगी दोषी होगा या किसी गंभीर अपराध के लिए मुकदमा चल रहा है। अधिकारियों को यह देखना जरूरी होगा कि जिस अपराध में पेंशनभोगी शामिल है उसकी प्रकृति गंभीर अपराध के दायरे में आती है या नहीं। मामले के उपरोक्त पहलू पर विचार करते समय, सक्षम प्राधिकारी को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि क्या याचिकाकर्ता के खिलाफ शिकायत या आरोप पत्र सेवाकाल के दौरान दायर किया गया था और यदि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप-पत्र में लगाए गए आरोप गंभीर अपराध के दायरे में आते हैं जो एक सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय है, तो फिर कैसे और किस आकस्मिक स्थिति में पेंशनभोगी को रोजगार में बने रहने की अनुमति दी गई, जबकि विभाग को पेंशनभोगी के खिलाफ आपराधिक मामला लंबित होने की जानकारी थी और क्या ऐसी परिस्थिति में, आपराधिक मामला लंबित होने के आधार पर, पेंशनभोगी की ग्रेच्युटी रोकना उचित होगा।

16. उपरोक्त के मद्देनजर, यदि वर्तमान मामले के तथ्यों को देखा जाए, तो यह ध्यान में आएगा कि याचिकाकर्ता वर्ष 1982 में सेवाओं में शामिल हुआ था और और वह 39 वर्ष, 11 महीने और

अनुवादित

23 दिनों से अधिक की सेवा के बाद दिनांक 31.01.2022 को सेवानिवृत्त हो गया।

17. प्रत्यर्थियों का यह मामला नहीं है कि विभाग को याचिकाकर्ता के खिलाफ लंबित आपराधिक मामले संख्या 207 वर्ष 2005 के विषय में जानकारी नहीं थी। प्रत्यर्थियों द्वारा इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि उक्त मामले में आरोप पत्र वर्ष 2006 में दायर किया गया था और मामला अभी भी संबंधित न्यायालय के संज्ञान में है। संबंधित न्यायालय को इस मामले पर गौर करना है कि क्या कोई उचित मामला बनता है, लेकिन साथ ही उक्त मामले के संस्थित होने के 16 वर्ष से अधिक समय के बाद और जहां याचिकाकर्ता दिनांक 31.01.2022 को सेवानिवृत्त हो गया है, वहां प्राधिकारियों को इस बात पर निष्पक्ष रूप से विचार करना होगा कि क्या इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उचित सामग्री है कि याचिकाकर्ता कुछ हद तक गंभीर अपराध में शामिल है। यदि ऐसा था तो किन परिस्थितियों में याचिकाकर्ता को बिना किसी विभागीय कार्यवाही के सेवा में बने रहने की अनुमति दी गई, ये सभी प्रासंगिक मुद्दे हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए था लेकिन दुर्भाग्य से मामले के इस पहलू पर प्राधिकारियों द्वारा विचार नहीं किया गया है।

18. इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने ***देवेन्द्र कुमार शर्मा (उपरोक्त)*** मामले में उपरोक्त पहलू पर निम्नलिखित प्रस्तर में ध्यान दिया गया है जो इस प्रकार है:-

"21. इस प्रकार, उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि पूर्ण पेंशन या पेंशन के किसी भी हिस्से को रोकने के लिए जिस अपराध का पेंशनभोगी पर आरोप लगाया गया है वह 'गंभीर अपराध' होना चाहिए। यदि पेंशनभोगी के विरुद्ध कथित अपराध 'गंभीर अपराध' के दायरे में नहीं आता है, तो राज्यपाल या राज्य सरकार पेंशनभोगी की पेंशन या उसका कोई हिस्सा या ग्रेच्युटी नहीं रोक सकती।

22. हालाँकि, पूर्ण पीठ ने निर्णय के प्रस्तर संख्या-66 से 69 में अवधारित किया है कि पेंशनभोगी के लिए हेतुक कार्यवाही के समापन और उस पर वापस आए निष्कर्षों पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित करने के बाद उत्पन्न होगा, लेकिन निर्णय के प्रस्तर संख्या 31 में पूर्ण पीठ ने कहा है कि केवल आपराधिक मामले या अनुशासनात्मक कार्यवाही का लंबित होना सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351 के तहत पेंशन रोकने या वापस लेने के लिए पर्याप्त नहीं है।

23. इसके अलावा, इसके अलावा, निर्णय के प्रस्तर संख्या 39 में यह देखा गया है कि सेवा न्यायशास्त्र के संदर्भ में सरकारी कर्मचारी से संबंधित 'गंभीर अपराध' अभिव्यक्ति किसी भी कार्य या चूक को संदर्भित करती है जो सक्षम प्राधिकारी की राय में काफी गंभीर है और अनुच्छेद 351 के संदर्भ में दंडात्मक कार्रवाई की मांग करती है। इसमें आगे कहा गया है कि दण्ड की मात्रा प्रासंगिक नहीं है, लेकिन अपराध की प्रकृति और अपराध के कारित करने या चूक में सरकारी कर्मचारी की भागीदारी की डिग्री प्रासंगिक है।

24. चूंकि, निर्णय के प्रस्तर संख्या 31 में पूर्ण पीठ ने अवधारित किया है कि केवल आपराधिक मामले या अनुशासनात्मक कार्यवाही का लंबित होना सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351 के तहत पेंशन रोकने या वापस लेने के लिए पर्याप्त नहीं है और निर्णय के प्रस्तर

अनुवादित

संख्या 39 में 'गंभीर अपराध' की विस्तृत अभिव्यक्ति है, इसलिए, निर्णय के उपरोक्त दो प्रस्तरों को संयुक्त रूप से पढ़ने से, इसका निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि सक्षम प्राधिकारी को पेंशनभोगी की ग्रेच्युटी और पेंशन रोकते समय अपने विवेक का प्रयोग यह देखने के लिए करना चाहिए कि पेंशनभोगी जिस प्रकृति के अपराध में शामिल है, वह 'गंभीर अपराध' के दायरे में आता है अथवा नहीं। ऐसा करते समय सक्षम प्राधिकारी को यह भी ध्यान रखना होगा कि क्या पेंशनभोगी के खिलाफ शिकायत और आरोप पत्र सेवा अवधि के दौरान दायर किया गया था, और यदि शिकायत में लगाए गए आरोप और याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप 'गंभीर अपराध' के दायरे में आते हैं जो एक सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय है, तो फिर कैसे और किस आकस्मिक स्थिति में, पेंशनभोगी को रोजगार में बने रहने की अनुमति दी गई, भले ही विभाग को पेंशनभोगी के खिलाफ आपराधिक मामला लंबित होने की जानकारी थी, और क्या ऐसी परिस्थितियों में, पेंशनभोगी के खिलाफ आपराधिक मामला लंबित होने के आधार पर उसकी ग्रेच्युटी और पेंशन रोकना उचित होगा।

25. एक बार, मामले की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर सक्षम प्राधिकारी ने पूर्ण पीठ के निर्णय के प्रस्तर संख्या 31 और 39 और उसके ऊपर की गई टिप्पणियों के आलोक में निर्णय लिया है कि पेंशनभोगी के विरुद्ध कथित अपराध 'गंभीर अपराध' के दायरे में आता है, सक्षम प्राधिकारी की राय अंतिम होगी और पेंशनभोगी को अनुशासनात्मक या न्यायिक कार्यवाही के समापन तक इंतजार करना होगा, और न्यायालय को सक्षम प्राधिकारी के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य होना चाहिए जब तक कि निष्कर्ष विवेक के प्रयोग के बिना न हो या अप्रासंगिक विचारों पर आधारित हो या विकृत हो या अन्यथा कानून में बरकरार रखने योग्य न हो।

26. अब, अब इस मामले के तथ्यों पर आते हुए, सक्षम प्राधिकारी को दिनांक 02.02.2011 को आपराधिक मामले में याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल करने के बारे में जानकारी थी, और याचिकाकर्ता को उसके बाद सेवानिवृत्ति यानी 31.12.2020 तक लगभग 09 वर्षों तक सेवा में बने रहने की अनुमति दी गई थी; फिर भी इन्होंने केवल एक पंक्ति का आदेश पारित किया कि "आपराधिक मामला लंबित होने के कारण याचिकाकर्ता की 10% ग्रेच्युटी और अंतिम पेंशन रोक दी गई है"। आक्षेपित आदेश सक्षम प्राधिकारी द्वारा विवेक के प्रयोग को प्रतिबिंबित नहीं करता है और न ही ऐसा कोई निष्कर्ष निकाला गया है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कथित अपराध 'गंभीर अपराध' की श्रेणी में आता है, जो उसे सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351 के तहत शक्ति का उपयोग करने का अधिकार देता है।

27. यह न्यायालय सामान्य परिस्थितियों में मामले को सक्षम प्राधिकारी को भेज देता, लेकिन इस तथ्य पर विचार करते हुए कि आपराधिक मामले में आरोप पत्र दिनांक 02.02.2011 को दायर किया गया था और याचिकाकर्ता को उसके बाद सेवानिवृत्ति तक लगभग 09 वर्ष, यानी 31.12.2020 तक सेवा में बने रहने की अनुमति दी गई थी, इसलिए इस न्यायालय का मानना है कि सक्षम प्राधिकारी की राय थी कि जिस अपराध में याचिकाकर्ता पर आरोप पत्र दायर किया गया है वह 'गंभीर अपराध' नहीं है, ताकि याचिकाकर्ता के खिलाफ किसी भी अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सके और

अनुवादित

तदनुसार, उसे सेवानिवृत्ति तक निर्बाध रूप से सेवा में बने रहने की अनुमति दी गई थी। इसलिए, शिवगोपाल और अन्य (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय के प्रस्तर-31 को ध्यान में रखते हुए, तदनुसार इस न्यायालय का मानना है कि आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं है और प्रत्यर्थियों को 10% अवैतनिक ग्रेच्युटी जारी करने और इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से तीन महीने के भीतर याचिकाकर्ता को बकाया सहित अंतिम पेंशन तय करने और भुगतान करने के निर्देश के साथ अपास्त किया जाता है।"

19. यहां तक कि ***उदय नारायण ओझा (उपरोक्त)*** में भी, इस पहलू पर निम्नलिखित प्रस्तरों पर विचार किया गया है जो इस प्रकार है:

"8. इसलिए, पेंशन और ग्रेच्युटी रोकने की राज्य की शक्ति का प्रयोग लागू कानून के अनुसार सख्ती से किया जाना चाहिए और यदि राज्य की कार्रवाई इसके अनुरूप नहीं पाई जाती है, तो ग्रेच्युटी रोकना भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए का उल्लंघन होगा।

9. अन्यथा भी, घटना की तारीख से 4 वर्ष की अवधि एक पर्याप्त अवधि है, जिससे आरोप-पत्र प्रस्तुत किया जा सकता है और कर्मचारी को राज्य या जांच एजेंसी की ओर से किसी भी अस्पष्टीकृत या अनुचित देरी के लिए पीड़ित नहीं किया जा सकता है। अन्यथा, प्रत्यर्थियों द्वारा यह दर्शित नहीं किया गया है कि इस तरह का लंबन याचिकाकर्ता के किसी कार्य या चूक के कारण हुई थी। कानून के अनुसार आगे बढ़ने का राज्य का अधिकार, अन्यथा सिविल सेवा विनियम के अनुच्छेद 351 के आधार पर उपलब्ध है यदि आरोप न्यायिक कार्यवाही में सिद्ध पाए जाते हैं और यदि सरकारी कर्मचारी को बकाया ग्रेच्युटी का भुगतान किया जाता है, तो लोक हित पर भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, इस न्यायालय को यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि याचिकाकर्ता को ग्रेच्युटी का भुगतान रोकने में प्रत्यर्थियों की कार्रवाई पूरी तरह से अवैध, मनमाना है और इसे बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

10. रिट याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है। जहां तक याचिकाकर्ता को देय ग्रेच्युटी रोकने का सवाल है, प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 28.1.2012 अपास्त किया जाता है। प्रत्यर्थियों को ग्रेच्युटी की रोकी गई राशि को 6% ब्याज के साथ तुरंत जारी करने के लिए परमादेश रिट जारी की जाती है। यदि आज से चार महीने के भीतर राशि का भुगतान नहीं किया जाता है, तो याचिकाकर्ता 8% प्रति वर्ष की दर से बढ़ी हुई ब्याज दर का हकदार होगा, और राज्य के प्राधिकारियों के लिए यह विकल्प होगा कि वे इस आदेश के अनुसार याचिकाकर्ता को ग्रेच्युटी जारी न करने के लिए जिम्मेदार पाए गए अधिकारी के वेतन से अतिरिक्त ब्याज वसूल करें।.... "

20. उपरोक्त के आलोक में और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आक्षेपित आदेश के अवलोकन से, जो ग्रेच्युटी रोकी गई है वह केवल आपराधिक मामला लंबित होने के कारण रोकी गई है और यह दर्शित नहीं करता है कि इस तथ्य के संबंध में कोई गंभीर विचार-विमर्श किया गया है कि क्या याचिकाकर्ता किसी गंभीर अपराध में शामिल था और जिन पहलुओं को ऊपर विशेष रूप से ***शिव गोपाल (उपरोक्त), देवेन्द्र कुमार शर्मा***

अनुवादित

(उपरोक्त) और ***उदय नारायण ओझा (उपरोक्त)*** मामले की पूर्ण पीठ के निर्णय के आलोक में नोट किया गया है, उन्हें यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है। आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से निरर्थक है और न्यायिक विवेक के किसी भी प्रयोग को प्रतिबिंबित नहीं करता है। शिव गोपाल (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून को ध्यान में रखते हुए ही उचित आदेश पारित करना प्राधिकारियों पर निर्भर था।

21. स्पष्टतः, प्राधिकारियों ने अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग नहीं किया और न ही पूर्ण पीठ के निर्णय के आलोक में याचिकाकर्ता के मामले पर विचार किया है, तदनुसार उपरोक्त परिस्थितियों में, जहां तक याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी रोकने का संबंध है, आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं है।

22. उपरोक्त परिस्थितियों में, मामला संबंधित प्राधिकारी को भेज दिया गया है और याचिकाकर्ता को दो सप्ताह के भीतर इस निर्णय की एक प्रति के साथ एक विस्तृत अभ्यावेदन दाखिल करने की अनुमति दी जाती है, जो संबंधित प्राधिकारी के समक्ष इस मुद्दे को उठाएगा, जो उक्त अभ्यावेदन पर विचार करेगा और शिव गोपाल (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय के निर्णय के साथ-साथ इस निर्णय में की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए एक तर्कसंगत और स्पष्ट आदेश पारित करेगा। संबंधित प्राधिकारियों द्वारा चार सप्ताह की अवधि के भीतर निर्णय लिया जाएगा और इसकी सूचना याचिकाकर्ता को दी जाएगी।

23. उपरोक्त शर्तों के साथ रिट याचिका को अनुमति दी जाती है। तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

(2023) 2 ILRA 956

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी,

रिट-ए नंबर 26819/2019

एवम अन्य संबंधित वाद

एकलव्य कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: अनवर अशफाक, रीना पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून-विभागीय जांच - उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियम, 1999: नियम 7 - इस राज्य में बड़ी सजा के लिए एक भी विभागीय जांच कानून के अनुसार नहीं की जा रही है। उचित प्रक्रिया का पालन न करने के कारण सभी दोषी कर्मचारियों को बार-बार निलंबित किया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय के आदेश, इस न्यायालय के आदेश तथा मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी किये गये शासनादेश से प्रतीत होता है कि ये बातें बहरे कानों पर पड़ रही हैं। (पैरा 166)

प्रमुख रिट याचिका संख्या 26819/2019 में, याचिकाकर्ता राज्य सरकार द्वारा पारित दंड आदेश दिनांकित 02.08.2019 को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुआ है। इससे पहले भी याचिकाकर्ता को दिनांक 04.04.2013 के आदेश से दंडित किया गया था। उक्त आदेश दिनांक 04.04.2013 को इस

अनुवादित

न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 30422/2016 (एस/बी) में रद्द कर दिया गया था। रिट याचिका को इस आधार पर अनुमति दी गई थी कि जांच यूपी सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 के नियम 7 के उल्लंघन में की गई थी। इस न्यायालय ने एक स्पष्ट निष्कर्ष दिया कि पिछली जांच नियम, 1999 के नियम 7 के अनुसार कोई मौखिक जांच किए बिना, केवल याचिकाकर्ता का जवाब लेने के बाद समाप्त कर दी गई थी। **प्रतिवादियों ने पुनः अग्रिम जांच प्रारंभ की और दिनांक 02.08.2019 को आक्षेपित आदेश पारित किया।** (पैरा 8)

जांच रिपोर्ट के अवलोकन से प्रतीत होता है कि आरोप-पत्र पर केवल दोषी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया जाता है और उसके बाद उस रिट-ए संख्या 8408 /2022 को छोड़कर **सभी रिट याचिकाओं को अनुमति दी जाती है** और अंतिम रूप से निपटाया जाता है, जिसका अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए अंतिम रूप से निपटारा नहीं किया जा रहा है। प्रतिवादी दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र प्रस्तुत करके और विधिनुसार उचित प्रक्रिया का पालन करके नवीन जांच के लिए आगे बढ़ सकते हैं। (ई 4)

<u>विधिव्यवस्था अनुसरित:</u>

1. प्रकाश चन्द्र अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-ए संख्या 2555 /2022, दिनांक 07.05.2022 को निर्णय लिया गया (पैरा 3)

पर निष्कर्ष दिया जाता है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य का कोई संदर्भ नहीं है और जिस तरीके से दस्तावेजी साक्ष्य साबित किया गया, वह जांच रिपोर्ट में दर्शाया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर सजा का अंतिम आदेश दिनांक 02.08.2019 पारित किया जाता है। जांच रिपोर्ट और सजा आदेश 1999 की नियमावली के नियम 7 का उल्लंघन है। (पैरा 9, 10, 11)

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता -III निर्देश पर, इस न्यायालय के समक्ष एक बयान देता है, कि राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि दोषी जांच अधिकारियों के साथ-साथ अनुशासनात्मक अधिकारियों के विरुद्ध उचित विभागीय कार्यवाही शुरू की जाए। उन्होंने न्यायालय को आश्वासन दिया कि इन कार्यवाही को भी कानून के अनुसार दो माह की अवधि के भीतर तार्किक निष्कर्ष पर लाया जाएगा। (पैरा 168)

2. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम विजया नंद तिवारी, विशेष अनुमति अपील संख्या 10331/2022 (पैरा 3)

3. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम प्रकाश चंद्र अग्रवाल, विशेष अपील दोष क्रमांक 97/2022, आदेश दिनांक 22.07.2022 को पारित (पैरा 4)

4. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम प्रकाश चंद्र अग्रवाल, विशेष अपील क्रमांक 351 / 2022, निर्णय दिनांक 05.09.2022 (पैरा 5)

वर्तमान याचिकाओं में बड़ी सज़ा देने वाले आदेशों को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्तागण श्री जयदीप नारायण माथुर और श्री उपेन्द्र नाथ मिश्रा,

अनुवादित

अधिवक्तागण श्री गौरव मेहरोत्रा, श्री रमेश कुमार श्रीवास्तव, श्री राज कुमार उपाध्याय, श्री पंडित एस. चंद्रा, श्री अपूर्व तिवारी और याचिकाकर्ताओं के अन्य अधिवक्तागण को सुना, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री कुलदीप पति त्रिपाठी, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता-III श्री रवि सिंह सिसौदिया, श्री रत्नेश चंद्र और संबंधित विभाग के विद्वान अधिवक्ता उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित हुए।

उ.प्र.राज्य में दीर्घ शास्ति के संबंध में लम्बे समय से चल रही विभागीय जाँच पूर्णतः अराजक स्थिति में हैं। आए दिन, सज़ा के आदेशों को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जाती है, जिसमें उ.प्र.सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 (इसके बाद 'नियमावली, 1999' के रूप में संदर्भित) के नियम 7 का उल्लंघन किया गया है। वास्तव में, एक न्यायाधीश का सम्पूर्ण रोस्टर उसके समक्ष दीर्घ शास्ति का भी मामला प्रस्तुत किये बिना ही व्यतीत हो सकता है, जिसमें नियमावली, 1999 के नियम 7 का अनुपालन किया जाता है। नियमावली, 1999 के नियम 7 (iii) और (vii) इस प्रकार हैं:-

"7. दीर्घ शास्ति अधिरोपित करने के लिये प्रक्रिया - किसी सरकारी सेवक पर दीर्घ शास्ति अधिरोपित करने से पूर्व निम्नलिखित रीति से जांच की जाएगी:

(iii) विरचित आरोप इतने संक्षिप्त और स्पष्ट होंगे जिससे आरोपित सरकारी सेवक के विरूद्ध तथ्यों और परिस्थितियों के पर्याप्त उपदर्शन हो सके। आरोप-पत्र में प्रस्तावित दस्तावेजी साक्ष्यों और उसे सिद्ध करने के लिए प्रस्तावित गवाहों के नाम मौखिक साक्ष्यों के साथ, यदि कोई हो, आरोप-पत्र में उल्लिखित किये जायंगे।

(vii) जहां आरोपित सरकारी सेवक आरोपों को इनकार करता है, वहां जांच अधिकारी आरोप-पत्र में प्रस्तावित साक्षी को बुलाने की कार्यवाही करेगा और आरोपित सरकारी सेवक की उपस्थिति में जिसे ऐसे साक्षियों की प्रति परीक्षा का अवसर दिया जाएगा, उनके मौखिक साक्ष्य को अभिलिखित करेगा। उपर्युक्त साक्ष्यों को अभिलिखित करने के पश्चात् जांच अधिकारी उस मौखिक साक्ष्य को मांगेगा और उसे अभिलिखित करेगा जिसे आरोपित सरकारी सेवक ने अपनी प्रतिरक्षा में अपने लिखित कथन में प्रस्तुत करना चाहा थाः

प्रतिबंध यह है कि जांच अधिकारी ऐसे कारणों से जो लिखित रूप में अभिलिखित किये जायंगे, किसी साक्षी को बुलाने से इन्कार कर सकेगा।

स्थिति की गंभीरता के परिणामस्वरूप सर्वोच्च न्यायालय एवं इस न्यायालय द्वारा भी बार-बार आदेश पारित किए गए। शासनादेश भी जारी किये गए। इनमें से प्रासंगिक निम्नवत हैं:-

*इस न्यायालय द्वारा **प्रकाश चंद्र अग्रवाल बनाम उ.प्र.राज्य एवं अन्य(2022 की रिट-ए संख्या 2555, निर्णय दिनांक 7.5.2022**, में निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:*

"1. वर्तमान रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा अपर मुख्य सचिव/प्रमुख सचिव, सचिवालय प्रशासन विभाग, लखनऊ (प्रतिवादी संख्या 2) द्वारा पारित दिनांक 11.04.2022 के दंड आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है।

2. आक्षेपित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को निन्दा प्रविष्टि तथा अवर सचिव के पद से

अनुवादित

अनुभाग अधिकारी के पद पर पदावनत करने का दण्ड दिया गया है।

3. सबसे पहले, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि जांच विशेष सचिव, चिकित्सा शिक्षा सेवा, उ.प्र. द्वारा की गई थी, जिन्होंने दिनांक 25.08.2021 को अपनी रिपोर्ट सौंपी थी। उनका कहना है कि वर्तमान मामले में, जांच अधिकारी को वे दस्तावेज़ कभी उपलब्ध नहीं कराए गए जिन पर उसने जांच में विश्वास व्यक्त किया था। जांच अधिकारी द्वारा जांच के दौरान उक्त दस्तावेजों को तलब किया गया था एवं उनका परिशीलन भी किया गया था। हालाँकि, याचिकाकर्ता को उक्त दस्तावेजों की न तो प्रति प्रदान की गई और न ही याचिकाकर्ता को उसका परिशीलन करने की अनुमति दी गई। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पुनः कहा कि रिपोर्ट के परिशीलन मात्र से पता चलता है कि जांच उ.प्र.सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 (बाद में '1999 के नियम' के रूप में संदर्भित), के नियम -7 का उल्लंघन करके की गई थी क्योंकि जांच में कोई तिथि, समय और स्थान तय नहीं किया गया था।

4. मैंने जांच रिपोर्ट के साथ-साथ आक्षेपित दंड आदेश का भी परिशीलन किया है। इसका परिशीलन करने से पता चलता है कि जांच अधिकारी, वास्तव में, न केवल 1999 के नियमों के नियम -7 द्वारा प्रदान की गई प्रक्रिया का पालन करने में विफल रहा है, बल्कि दोषी कर्मचारी पर यह साबित करने का बोझ भी डाल दिया है कि वह दोषी नहीं है। चर्चा की पहली पंक्ति में, जांच अधिकारी का कहना है कि, दोषी कर्मचारी अपने आरोप-पत्र के उत्तर/बयानों के माध्यम से कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका जो यह सिद्ध कर सके कि दोषी कर्मचारी पर गलत आरोप लगाया गया है।

5. मौजूदा मामले में अपर मुख्य सचिव को पत्रावली सहित तलब किया गया था। आज वह पत्रावली के साथ न्यायालय में उपस्थित हैं और उनकी सहायता के साथ-साथ पक्षकारों के अधिवक्ताओं की सहायता से पत्रावली का परिशीलन किया गया। विद्वान स्थायी अधिवक्ता भी मामले की पत्रावली से यह प्रदर्शित नहीं कर सके कि जांच के संचालन में 1999 के नियमों के नियम -7 के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया था एवं साक्ष्य हेतु कोई तिथि, समय एवं स्थान तय किया गया था अथवा तलब किया गया साक्ष्य याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराया गया था।

6. हालाँकि यह मामला सरल है क्योंकि इसे प्रतिप्रेषित किया जाना है, किन्तु, इस न्यायालय के समक्ष दायर बड़ी संख्या में मामलों में, यह पाया गया है कि प्रमुख दंड के संबंध में जांच, नियमावली 1999 के नियम -7 के उल्लंघन में की गई है। वर्तमान मामला उसी का ज्वलंत उदाहरण है। जांच अधिकारी एक विशेष सचिव है एवं दंड देने वाला प्राधिकारी एक प्रमुख सचिव है। फिर भी जांच अधिकारी द्वारा जांच के संचालन में, और दंड आदेश जारी होने से पहले दंड प्राधिकारी द्वारा इसकी जांच करने में विफलता में एक गंभीर त्रुटि हुई है। नियम-7 का अनुपालन करना न केवल जांच अधिकारी का कर्तव्य है, बल्कि दंड देने वाले प्राधिकारी का भी कर्तव्य यह सुनिश्चित करना है कि दंड का आदेश पारित करते समय, जांच निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की जाए।

7. प्रदेश में पिछले कुछ समय से बड़ी संख्या में ऐसी गलतियां हो रही हैं। राज्य सरकार

अनुवादित

ने 22.04.2015 को एक विस्तृत शासनादेश जारी किया था जिसमें विस्तार से बताया गया था कि लघु शास्ति अथवा दीर्घ शास्ति के संबंध में किस तरह से जांच की जानी चाहिए। शासनादेश में विस्तार से बताया गया है कि नियम-7 में पहले से क्या निर्धारित है। जब जांच अभी भी उचित तरीके से नहीं की जा रही थी, तो फिर से इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 12110/ 2020 'उ.प्र.राज्य' एवं अन्य बनाम विजय आनन्द तिवारी" में दिनांक 13.01.2021 को पारित आदेश के अनुसरण में राज्य सरकार द्वारा, नियम-7 के अनुपालन हेतु, शासनादेश दिनांक 10.02.2021 जारी किया गया। उपरोक्त दो शासनादेशों के बावजूद, अभी भी जांच उचित तरीके से नहीं की जाती है। दुखद यह है कि उक्त दोनों शासनादेशों का भी अधिकारियों द्वारा अनुपालन नहीं किया जा रहा है। यह भी देखा गया है कि बड़ी संख्या में मामलों में, प्रतिप्रेषण के बाद जब दोबारा जांच की जाती है, तो वही प्रक्रियात्मक त्रुटि फिर से की जाती है और नियम -7 के अनुसार उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना फिर से जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है। इससे इस न्यायालय पर अनावश्यक मुकदमेबाजी का बोझ भी पड़ रहा है। नियम-7 का अनुपालन सुनिश्चित करना जांच अधिकारी के साथ-साथ दंड प्राधिकारी का भी कर्तव्य है।

8. चूंकि ये घटनाएं संख्या में प्रचुर हैं, इसलिए, यह न्यायालय अब यह सुनिश्चित करना आवश्यक समझता है कि प्रत्येक जांच अधिकारी, जो वर्तमान में जांच कर रहा है या भविष्य में कोई जांच करने हेतु नियुक्त किया गया है, को जांच-प्रक्रिया के संबंध में उचित प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। इसी प्रकार अनुशासनात्मक अधिकारियों हेतु भी जांच-प्रक्रिया और उसके बाद दंड आदेश पारित करने की प्रक्रिया के संबंध में प्रशिक्षण अपेक्षित है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जांच अधिकारियों द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति प्रकृति में अर्ध-न्यायिक है और इसके लिए न्यायिक रूप से प्रशिक्षित मस्तिष्क की आवश्यकता होती है। राज्य सरकार के पास पहले से ही एक न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान (जे.टी.आर.आई.) है जो राज्य सरकार के अधिकारियों को विधिक अनुपालन/प्रक्रियाओं हेतु प्रशिक्षित/शिक्षित करता है।

9. इसलिए, निदेशक, जे.टी.आर.आई., लखनऊ को निदेश दिया जाता है कि वे जांच अधिकारियों के प्रशिक्षण के साथ-साथ अनुशासनात्मक अधिकारियों के प्रशिक्षण हेतु तत्काल एक उचित कार्यक्रम तैयार करें ताकि ऐसी गलतियाँ दोहराई न जाएँ। प्रशिक्षण सत्र पूरा करने के पश्चात जे.टी.आर.आई प्रत्येक अधिकारी को एक उचित पहचान योग्य प्रमाण पत्र भी जारी करेगा। उक्त प्रशिक्षण सत्र/प्रमाणपत्रों का प्रासंगिक विवरण संबंधित अधिकारी द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक जांच रिपोर्ट या पारित सजा आदेश में संदर्भित किया जाएगा। राज्य में वर्तमान में कोई भी जांच करने वाले अधिकारी अविलम्ब ऐसे प्रशिक्षण में भाग लेंगे और ऐसे जांच अधिकारी प्रशिक्षण पूरा होने के बाद ही अपनी जांच समाप्त करेंगे। इसी प्रकार दंड देने वाले प्राधिकारी को भी कोई दंड आदेश पारित करने से पहले आवश्यक प्रशिक्षण से गुजरना होगा और अपने सत्र/प्रमाणपत्र का भी उल्लेख करना होगा। यह भी निदेशित किया जाता है कि भविष्य में ऐसे किसी भी जांच अधिकारी को विभागीय जांच के लिए नियुक्त नहीं किया

जाएगा जिसने जे.टी.आर.आई. से प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया हो। राज्य सरकार जे.टी.आर.आई. में उपरोक्त प्रशिक्षण की लागत वहन करेगी।

10. इस न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार अविलंब इस आदेश की एक प्रति अनुपालन हेतु उ.प्र.राज्य के मुख्य सचिव एवं निदेशक, जे.टी.आर.आई., लखनऊ को भेजेंगे।

11. चूँकि वर्तमान मामले में स्वीकृत रूप से नियम -7 का उल्लंघन है क्योंकि जाँच अधिकारी द्वारा जिन दस्तावेजों पर विश्वास व्यक्त किया गया था, वे याचिकाकर्ता को कभी भी प्रदान नहीं किए गए थे एवं न ही नियम -7 के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए जांच की गई थी अर्थात विभाग के साक्षियों को बुलाना, जिरह का मौका देना, दोषी कर्मचारी/याचिकाकर्ता को अपने साक्षियों को बुलाने का अवसर प्रदान करना आदि प्रक्रिया सम्पादित नहीं की गई थी, इसलिए दिनांक 11.04.2022 का आक्षेपित आदेश कायम नहीं रह सकता एवं खारिज किया जाता है।

12. नियम-7 के अंतर्गत निर्धारित उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद नए सिरे से जाँच करने हेतु मामले को प्रतिवादी संख्या 2 को वापस भेज दिया जाता है।

13. उपरोक्त के साथ, रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।"

उ.प्र.राज्य एवं अन्य बनाम विजया नंद तिवारी की विशेष अनुमति याचिका संख्या 10331/2022 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने, राज्य सरकार के कार्य के संबंध में दिनांक13.7.2022 को निम्नलिखित टिप्पणियाँ पारित की है:

"चूंकि जांच में उ.प्र.सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील),नियम, 1999 (1999 से कम समय के लिए") के नियम 7 (vii) का उल्लंघन पाया गया, इसलिए विद्वान न्यायाधिकरण ने सजा के आदेश को सही ढंग से रद्द कर दिया। वास्तव में, विद्वान न्यायाधिकरण ने केवल 50% की सीमा तक बकाया वेतन की अनुमति दी। उच्च न्यायालय ने इसकी सही पुष्टि की है। इसलिए, विशेष अनुमति याचिका में कोई योग्यता नहीं है एवं यह खारिज किए जाने योग्य है और तदनुसार खारिज की जाती है।

इस स्तर पर, यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि आक्षेपित आदेश पारित करते समय, उच्च न्यायालय ने अपनी नाराजगी दिखाई एवं उत्तर प्रदेश राज्य के मुख्य सचिव को निदेश जारी किए की वे मामले को देखें और संबंधित विभागों के सचिवों को यह सुनिश्चित करने हेतु उचित रूप से निर्देशित करें कि 1999 के नियमों के नियम 7 का कड़ाई से पालन करने के बाद और विशेष रूप से आरोपों को साबित करने हेतु मौखिक साक्ष्य का नेतृत्व करने के बाद जांच की जाए। उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया है -

"चूँकि जाँच में उ.प्र.सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील)नियमावली, 1999 के नियम 7 (vii) का उल्लंघन पाया गया, इसलिए विद्वान न्यायाधिकरण ने सजा के आदेश को अपास्त कर उचित किया। वास्तव में, विद्वान न्यायाधिकरण ने केवल 50% की सीमा तक बकाया वेतन अनुमन्य किया। उच्च न्यायालय ने इसकी सही पुष्टि की है। इसलिए, विशेष अनुमति याचिका गुणविहीन होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है और तदनुसार खारिज की जाती है।

इस स्तर पर, यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि आक्षेपित आदेश पारित करते समय, उच्च न्यायालय ने अपनी नाराजगी दिखाई एवं उत्तर प्रदेश राज्य के मुख्य सचिव को निदेश जारी किए कि वे मामले को देखें और संबंधित विभागों के सचिवों को यह सुनिश्चित करने हेतु उचित रूप से निदेशित करें कि नियमावली, 1999 के नियम 7 का कठोरता से पालन करने के बाद, विशेष रूप से आरोपों को सिद्ध करने हेतु मौखिक साक्ष्य के संबंध में, जाँच संपादित की जाए। उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया है -

"निर्णय घोषित करने से पूर्व, यह इंगित करना आवश्यक है कि बार-बार अधिकरण नियमावली, 1999 के नियम 7 (vii) का उल्लंघन पाते हुए सजा के आदेश में हस्तक्षेप कर रहा है।

नियमावली, 1999 का नियम 7(vii) मौखिक साक्ष्य हेतु प्रावधान करता है एवं इस न्यायालय के ऐसे निर्णयों की श्रृंखला के बावजूद जिनमे सजा के आदेश में हस्तक्षेप हुआ है, जाँच में सदैव इसका पालन नहीं किया जाता है। नियमावली, 1999 के नियम 7(vii) के उल्लंघन के परिणामस्वरूप न केवल सजा के आदेश में हस्तक्षेप होता है, बल्कि अवशेष वेतन के रूप में सरकार पर वित्तीय बोझ भी पड़ता है।

मुख्य सचिव को निदेश दिया जाता है कि वे मामले को देखें और संबंधित विभागों के सचिवों को यह सुनिश्चित करने हेतु उचित रूप से निदेशित करें कि नियमावली, 1999 के नियम 7 का कठोरता से पालन करने के बाद, विशेष रूप से आरोपों को सिद्ध करने हेतु मौखिक साक्ष्य के संबंध में, जाँच संपादित की जाए।

इस आदेश के अनुपालन में आवश्यक दिशा-निर्देश कार्यालय मुख्य सचिव, उ0प्र0 द्वारा वर्तमान आदेश के संदर्भ में इस न्यायालय को सूचना के साथ जारी किये जायेंगे।

रजिस्ट्री को इस आदेश के अनुपालन हेतु इसकी प्रति मुख्य सचिव, उ.प्र.राज्य को इसकी प्राप्ति की तिथि से एक माह की अवधि में भेजने का निर्देश दिया गया है।"

उच्च न्यायालय द्वारा जारी उपरोक्त निदेशों अनुसरण में उ.प्र.राज्य के मुख्य सचिव द्वारा की गई किसी भी कार्रवाई को प्रदर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है। । केवल उस उद्देश्य के लिए, रजिस्ट्री को 18.07.2022 को इस पीठ के समक्ष मामले को अधिसूचित करने का निर्देश दिया गया है ताकि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता को अभिलेख पर यह तथ्य प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त हो सके कि इस न्यायालय द्वारा उपरोक्तानुसार जारी निर्देशों के अनुपालन में, मुख्य सचिव, उ.प्र. राज्य द्वारा क्या कदम उठाए गए हैं।

लंबित प्रार्थनापत्रों का निस्तारण किया जाएगा।"

इसके अतिरिक्त, **विजया नंद तिवारी (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 18.7.2022 को निम्नलिखित आदेश पारित किया।**

"हमारे पूर्व आदेश दिनांक 13.07.2022 के अनुक्रम में, उ.प्र.राज्य द्वारा एक शपथ पत्र दायर किया गया है। शपथ पत्र किन्हीं चिंतन द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो प्रभागीय निदेशक, वन विभाग, मऊ, उ.प्र. के रूप में नियुक्त है। इस शपथपत्र को मुख्य सचिव अथवा मुख्य सचिव कार्यालय द्वारा प्रस्तुत किया जाना चाहिए था। शपथ पत्र मे यह बताया गया है कि, उच्च

अनुवादित

न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश के अनुक्रम में, मुख्य सचिव ने दिनांक 10.02.2021 को परिपत्र जारी किया है, जिसमें निर्देश दिया गया है कि राज्य में समस्त विभागीय जाँच कार्यवाही में उ0प्र0 सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम 7(vii) का पालन करना होगा।

जब राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता से यह विशिष्ट प्रश्न पूछा गया कि क्या उत्तरवर्ती विभागीय जाँचों में दिनांक 10.02.2021 के परिपत्र का ईमानदारी से पालन किया गया है अथवा नहीं, तब उन्होंने कहा है कि इस मामले में उनके पास कोई और निर्देश नहीं है और वह उस पर कोई बयान नहीं दे सकते। नियमों के पालन हेतु मुख्य सचिव द्वारा मात्र परिपत्र निर्गत करना ही पर्याप्त नहीं है। जब मुख्य सचिव ने परिपत्र निर्गत किया है तो यह सुनिश्चित करना उनका कर्तव्य है कि उनके स्वयं के परिपत्र का पालन हो। इसलिए, हम मुख्य सचिव को निर्देश देते हैं कि वे उ0प्र0 सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम 7(vii) के पालन संबंधी अपने स्वयं के परिपत्र दिनांक 10.02.2021 का पालन सभी संबंधित अधिकारियों द्वारा विभागीय जाँच में करवाएं ताकि विभागीय जाँच के निष्कर्षस्वरुप दंड का आदेश, नियमावली, 1999 के नियम 7 (vii) के तहत अपेक्षित प्रक्रिया का पालन न करने के तकनीकी आधार पर रद्द न किया जाए। मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य को तदनुसार कार्रवाई करने का निर्देश दिया जाता है। उन्हें यह भी सुनिश्चित करना होगा कि यदि उनके स्वयं के परिपत्र का पालन नहीं किया जाता है, तो उस स्थिति में दोषी अधिकारियों के विरुद्ध विभागीय जाँच प्रारंभ की जाएगी, जिसमें मुख्य सचिव की अवज्ञा एवं उनके द्वारा जारी परिपत्र का पालन न करना सम्मिलित हो सकता है।

इसके साथ ही हम वर्तमान कार्यवाही को समाप्त करते हैं।"

राज्य सरकार द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 10.8.2022 इस प्रकार है:

सर्वोच्च प्राथमिकता

संख्या-10/2022/738रिट/का-1-2022/13(9)1998

प्रेषक,

दुर्गा शंकर मिश्र,

मुख्य सचिव

उत्तर प्रदेश शासन।

सेवा में,

समस्त अपर मुख्य सचिव/प्रमुख सचिव/सचिव,

उत्तर प्रदेश शासन।

कार्मिक अनुभाग-1 लखनऊः दिनांक 10अगस्त,2022

विषय- विभागीय कार्यवाहियों (विभागीय जांच) में सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम-7(viii) का अनुपालन न किये जाने के संबंध में।

महोदय,

माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष दायर एस.एल.पी.(सिविल) संख्या-10331/2022 उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम विजयानन्द तिवारी में मा.उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.07.2022 सपठित आदेश दिनांक 18.07.2022 के मुख्य क्रियात्मक अंश निम्नवत् है-

अनुवादित

"..... नियमों के पालन हेतु मुख्य सचिव द्वारा मात्र परिपत्र निर्गत करना ही पर्याप्त नहीं है। जब मुख्य सचिव ने परिपत्र निर्गत किया है तो यह सुनिश्चित करना उनका कर्तव्य है कि उनके स्वयं के परिपत्र का पालन हो।

इसलिए, हम मुख्य सचिव को निर्देश देते हैं कि वे उ0प्र0 सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम 7(vii) के पालन संबंधी अपने स्वयं के परिपत्र दिनांक 10.02.2021 का पालन सभी संबंधित अधिकारियों द्वारा विभागीय जाँच में करवाएं ताकि विभागीय जाँच के निष्कर्षस्वरुप दंड का आदेश, नियमावली, 1999 के नियम 7 (vii) के तहत अपेक्षित प्रक्रिया का पालन न करने के तकनीकी आधार पर रद्द न किया जाए। मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य को तदनुसार कार्रवाई करने का निर्देश दिया जाता है। उन्हें यह भी सुनिश्चित करना होगा कि यदि उनके स्वयं के परिपत्र का पालन नहीं किया जाता है, तो उस स्थिति में दोषी अधिकारियों के विरुद्ध विभागीय जाँच प्रारंभ की जाएगी, जिसमें मुख्य सचिव की अवज्ञा एवं उनके द्वारा जारी परिपत्र का पालन न करना सम्मिलित हो सकता है।

इसके साथ ही हम वर्तमान कार्यवाही को समाप्त करते हैं।"

2. मा. उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त आदेशों के समादर में अपका ध्यान शासनादेश संख्या-01/2021/13(9)998-20रिट/का-1-2021 दिनांक-10.02.2021 की ओर आकृष्ट करते हुए मुझे आपसे यह कहने का निदेश हुआ है कि प्रत्येक विभागीय जांच के प्रकरण में उ.प्र.सरकारी सेवक(अनुशासन एढ़ं अपील) नियमावली,1999 के नियम-(7) vii का अनिवार्य रूप से अनुपालन सुनिश्चित कराया जाय, यदि उक्त का अनुपालन सुनिश्चित नहीं किया जाता है तो दोषी (erring) अधिकारियों के विरूद्ध विभागीय जांच संस्थित करने की कार्यवाही भी की जाये।

राज्य सरकार द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 16.8.2022 इस प्रकार है:

"संख्या-11/2022/सैतालिस-का-1/2022/13(3)/2022
प्रेषक,
दुर्गा शंकर मिश्र,
मुख्य सचिव,
उत्तर प्रदेश शासन।

सेवा में,

समस्त अपर मुख्य सचिव/प्रमुख सचिव/सचिव,
उत्तर प्रदेश शासन ।
कार्मिक अनुभाग-1 लखनऊः दिनांक 16 अगस्त, 2022

विषयः उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक के अन्तर्गत विभागीय कार्यवाहियों का नियमानुसार निस्तारण के संबंध में जाँच अधिकारियों को प्रशिक्षण दिए जाने के संबंध में।

कृपया रिट याचिका संख्या-2555/2022 रिट-ए प्रकाश चन्द्र अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य में मा. उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 07 मई 2022 के विरूद्ध राज्य सरकार द्वारा योजित विशेष अपील संख्या- 97/2022 में मा. उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक-22.07.2022 को पारित किये गए आदेश का सन्दर्भ ग्रहण

अनुवादित

करने का कष्ट करें, जिसका कार्यकारी अंश निम्नवत् हैः

".....इस स्तर पर, हम मात्र राज्य में जाँच अधिकारियों के प्रशिक्षण भाग से संबंधित मुद्दे की जाँच कर रहे हैं। एकल न्यायाधीश ने 7 मई, 2022 के आदेश के तहत निदेश जारी किया कि कोई भी जाँच अधिकारी, जिसने न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान (इसके बाद "जेटीआरआई" के रूप में संदर्भित) से प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया है, भविष्य में विभागीय जाँच हेतु नियुक्त न किया जाएगा। हम 2022 की विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 97 में यह पाते हैं कि जेटीआरआई में उपलब्ध बुनियादी ढांचे को ध्यान में रखते हुए यह व्यापक निदेश ऐसी कई जाँचो को रोक देगा जो राज्य के विभिन्न विभागों में लंबित हैं। ऐसी जाँच के लिए,प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और ऐसी जाँचो को नियंत्रित करने वाले नियमों के बार-बार उल्लंघन के दृष्टिगत, विभागीय जाँच करने वाले अधिकारियों के प्रशिक्षण के महत्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

5. आज प्रस्तुत शपथपत्र में, कुछ पत्राचार एवं संलग्न किए गए हैं और उपरोक्त आदेश पारित होने के बाद और 1 अप्रैल, 2022 से आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों के संबंध में आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। यह दावा किया जाता है कि अधिकारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में विभागीय जाँच एक विषय है, लेकिन प्रथम दृष्टया हमने पाया है कि जो प्रशिक्षण दिया जा रहा है, उसके अपेक्षित परिणाम नहीं मिल रहे हैं, क्योंकि अभी भी प्राकृतिक न्याय के नियमों और सिद्धांतों का पालन नहीं किया जा रहा है। ऐसे अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम अधिक सशक्त एवं विशिष्ट होना चाहिए, जिसके लिए राज्य को न्यायालय के समक्ष एक व्यापक योजना प्रस्तुत का निदेश दिया गया है।

6. जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीशद्वारा जारी निदेश के परिणामस्वरूप सभी विभागीय जाँचे रुक जाएंगी, अतः हम उन निदेशों को इस सीमा तक स्थगित करते हैं - "कोई अधिकारी, जिसने जेटीआरआई से प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया है, भविष्य में विभागीय जाँच हेतु नियुक्त न किया जाएगा।" हालाँकि, हम उम्मीद करते हैं कि लंबित जाँचों में, जाँच अधिकारी अविलम्ब संवेदनशील बनाये जाएंगे एवं अधिकारियों का प्रशिक्षण कार्यक्रम एक नियमित प्रक्रिया होगी।"

2. मा. उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक-22.7.2022 के क्रम में अवगत कराना है कि उत्तर प्रदेश राज्य के सरकारी सेवकों के विरूद्ध अनुशासनिक कार्यवाहियाँ किए जाने के संबंध में उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 प्रथम संशोधन नियमावली, 2014, शासनादेश क्रमशः दिनांक 22.04.2015, दिनांक- 11.08.2015, दिनांक 10.02.2021 और दिनांक 19.07.2022 मुख्य रूप से निर्गत किए गए हैं।

3. उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम-7 के अधीन संस्थित अनुशासनिक जाँच के प्रकरण में नियुक्त जाँच अधिकारियों के मार्गदर्शन हेतु मुख्य रूप से निम्नांकित दिशा निर्देश शासनादेश दिनांक 19.07.2022 के माध्यम से निर्गत किए गए हैंः

(अ)-जिसका अनुपालन आवश्यक है(Do's)-

अनुवाद

(I) अपचारी कार्मिक द्वारा यदि अभिलेखों के निरीक्षण की अपेक्षा की जाती हो तो उसे निरीक्षण का अवसर अवश्य प्रदान किया जाये।

(II) अपचारी कार्मिक से अपना लिखित स्पष्टीकरण 15 दिन से 01 माह के अन्दर प्रस्तुत करने को कहा जाये।

(III) यदि जांच, पूर्व नियुक्ति के स्थान से संबंधित है तो अपचारी सरकारी सेवक को उस स्थान पर जाने की अनुमति दे दी जाये, जहाँ उसे अभिलेख आदि देखने है।

(IV) जाँच अधिकारी द्वारा अपचारी कार्मिक को साक्ष्य के अन्तर्गत दिये गये अभिलेखों की स्वीकार्यता के संबंध में आपत्ति प्रकट करने का अवसर भी दिया जाये।

(V) आरोपित सरकारी सेवक को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का युक्तियुक्त अवसर दिया जाना चाहिए। यदि आरोपित सरकारी सेवक आरोपों से इन्कार करता हैं, वहां जांच अधिकारी आरोप पत्र में प्रस्तावित साक्षियों(Witnesses) को प्रतिपरीक्षण(Cross-Examination) हेतु बुला सकता है। जांच अधिकारी द्वारा उनके मौखिक साक्ष्यों को आरोपित अधिकारी की उपस्थिति में अभिलिखित किया जाये। उपर्युक्त साक्ष्यों को अभिलिखित करने के पश्चात जाणच अधिकारी उस मौखिक साक्ष्य को माँगेगा और उसे अभिलिखित करेगा जिसे आरोपित सरकारी सेवक ने अपनी प्रतिरक्षा में अपने लिखित कथन में प्रस्तुत करना चाहा था।

प्रतिबन्ध यह है कि जाँच अधिकारी ऐसे कारणों से जो लिखित रूप से अभिलिखित किए जाएगें, किसी साक्षी को बुलाने से इन्कार कर सकेगा।

(VI) जाँच अधिकारी द्वारा जाँच के दौरान गवाहों के बयान आरोपित सरकारी सेवक के समक्ष तथा विधिवत शपथ दिलवाने के उपरान्त लिया जाये।

(VII) जाँच अधिकारी द्वारा संपूर्ण जांच की कार्यवाही में कृत कार्यवाहियों का आदेश पत्रक (order Sheet) तैयार किये जाये जिस पर यथासमय आरोपित अधिकारी एवं अन्य साक्षियों के हस्ताक्षर कराया जाये। जाँच आख्या प्रस्तुत करते समय जाँच आख्या के साथ उक्त आदेश पत्रक को संलग्नक के रूप में अनुशासनिक प्राधिकारी को प्रेषित किया जाये।

(ब)-निषेधात्मक निर्देश(Dont's)

(I) सामान्यतया अपचारी कार्मिक को अपना स्पष्टीकरण दिये जाने हेतु 02 माह से अधिक का समय न दिया जाये। किन्तु अपरिहार्य परिस्थितियों में उक्त समय सीमा में युक्ति-युक्त (Reasonable) वृद्धि की जा सकती है।

(II) जाँच अधिकारी को जाँच आख्या में प्रस्तावित दण्ड के विषय में कोई मंतव्य अथवा संस्तुति अंकित नही की जाये।

(III) बिना उचित कारण के जांच कार्यवाही लम्बित नही रखी जाये।

(IV) सुनवाई, साक्ष्य अथवा अन्य कार्यवाही हेतु नियत तिथियों को आगे न टाला जाये। यदि ऐसा करना अपरिहार्य हो तो उसे सकारण आदेश पत्रक में उल्लिखित किया जाये।

4. <u>वर्तमान में प्रचलित अनुशासनिक कार्यवाहियों से सम्बन्धित जांच</u>

अधिकारियों को प्रस्तर-3 में उल्लिखित निर्देशों को उपलब्ध, कराते हुए उनसे इस आशय

अनुवादित

का प्रमाण पत्र प्राप्त कर लिया जाये कि उनके द्वारा उक्त निर्देशों को पढ़कर भली-भांति समझ लिया गया है। भविष्य में भी जितनी अनुशासनिक कार्यवाहियां संस्थित की जाएं उनके जांच अधिकारियों को भी उनकी नियुक्ति पत्र के साथ ही इसकी प्रति संलग्न करते हुए इस आशय का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत कर लिया जाये कि उनके द्वारा इन निर्देशों को पढ़कर भली-भांति समझ लिया गया है।

5. उपर्युक्त के आलोक में अनुरोध है कि अपने विभाग के नियंत्रणाधीन समस्त प्रशिक्षण संस्थाओं को उपर्युक्त प्रस्तर-2 में उल्लिखित नियमावलियों/शासनादेशों की व्यवस्थाओं का संज्ञान लेते हुए आधार भूत प्रशिक्षण(Induction Training) कार्यक्रमों में पांच/छः सत्र(Period) एवं सेवा कालीन प्रशिक्षण(In Service Training) के कार्यक्रमों में एक/दो सत्र(Period) अनुशासनिक जाँच कार्यवाही/प्रक्रिया के संबंध में रखा जाये। इसके साथ ही शीर्ष प्राथमिकता के आधार पर, अधिक से अधिक संख्या में प्रभावी प्रशिक्षण कराये जाने हेतु व्यापक योजना (Comprehensive plan) तथा प्रस्तर-4 में उल्लिखित बिन्दु के सम्बन्ध में की गई कार्यवाही की सूचना कार्मिक विभाग को दिनांक 15.09.2022 तक उपलब्ध कराने का कष्ट करें।

6. उपर्युक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों में उन अधिकारियों को वरीयता प्रदान की जाये जिन्हें संप्रति प्रचलित किसी अनुशासनिक कार्यवाही में जाँच अधिकारी नामित किया गया हो।

इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने उ.प्र.राज्य एवं अन्य बनाम प्रकाश चंद्र अग्रवाल (विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 97/2022) के मामले में दिनांक 22.7.2022 को एक आदेश पारित किया, जिसका प्रासंगिक भाग निम्नानुसार है:

".....इस स्तर पर, हम मात्र राज्य में जाँच अधिकारियों के प्रशिक्षण भाग से संबंधित मुद्दे की जाँच कर रहे हैं। एकल न्यायाधीश ने 7 मई, 2022 के आदेश के तहत निदेश जारी किया कि कोई भी जाँच अधिकारी, जिसने न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान (इसके बाद "जेटीआरआई" के रूप में संदर्भित) से प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया है, भविष्य में विभागीय जाँच हेतु नियुक्त न किया जाएगा। हम 2022 की विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 97 में यह पाते हैं कि जेटीआरआई में उपलब्ध बुनियादी ढांचे को ध्यान में रखते हुए यह व्यापक निदेश ऐसी कई जाँचो को रोक देगा जो राज्य के विभिन्न विभागों में लंबित हैं। ऐसी जाँच के लिए,प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और ऐसी जाँचो को नियंत्रित करने वाले नियमों के बार-बार उल्लंघन के दृष्टिगत, विभागीय जाँच करने वाले अधिकारियों के प्रशिक्षण के महत्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

5. आज प्रस्तुत शपथपत्र में, कुछ पत्राचार एवं संलग्न किए गए हैं और उपरोक्त आदेश पारित होने के बाद और 1 अप्रैल, 2022 से आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों के संबंध में आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। यह दावा किया जाता है कि अधिकारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में विभागीय जाँच एक विषय है, लेकिन प्रथम दृष्टया हमने पाया है कि जो प्रशिक्षण दिया जा रहा है, उसके अपेक्षित परिणाम नहीं मिल रहे हैं, क्योंकि अभी भी प्राकृतिक न्याय के नियमों और सिद्धांतों का पालन नहीं किया जा रहा है। ऐसे अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम अधिक सशक्त एवं विशिष्ट होना चाहिए, जिसके लिए राज्य को

न्यायालय के समक्ष एक व्यापक योजना प्रस्तुत का निदेश दिया गया है।

6. जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीशद्वारा जारी निदेश के परिणामस्वरूप सभी विभागीय जाँचे रुक जाएंगी, अतः हम उन निदेशों को इस सीमा तक स्थगित करते हैं - "कोई अधिकारी, जिसने जेटीआरआई से प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया है, भविष्य में विभागीय जाँच हेतु नियुक्त न किया जाएगा।" हालाँकि, हम उम्मीद करते हैं कि लंबित जाँचों में, जाँच अधिकारी अविलम्ब संवेदनशील बनाये जाएंगे एवं अधिकारियों का प्रशिक्षण कार्यक्रम एक नियमित प्रक्रिया होगी।"

7. 24 अगस्त, 2022 तक स्थगित।"

तत्पश्चात, **इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने उ.प्र राज्य एवं अन्य बनाम प्रकाश चंद्र अग्रवाल: विशेष अपील संख्या 351/2022 के मामले में दिनांक 5.9.2022 को विस्तृत आदेश पारित किया है।** आदेश दिनांक 5.9.2022 इस प्रकार है:

"इस न्यायालय ने 22.07.2022 के एक आदेश के माध्यम से राज्य सरकार के उन अधिकारियों के प्रशिक्षण हेतु एक व्यापक योजना न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था, जिन्हें विभागीय कार्यवाही में जाँच का दायित्व सौंपा गया है एवं जिन्हें नियुक्ति प्राधिकारी/अनुशासनात्मक प्राधिकारी के रूप में अंतिम निर्णय लेना है।"। 02.09.2022 को न्यायालय ने पुनः राज्य को उक्त शपथ पत्र प्रस्तुत करने को कहा।

उक्त आदेश दिनांक 22.07.2022 एवं 02.09.2022 के अनुपालन में विशेष सचिव, सचिवालय प्रशासन विभाग का शपथपत्र विद्वान राज्य अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है। उक्त शपथ पत्र को अभिलेख पर ग्रहण किया गया है।

आज प्रस्तुत शपथ पत्र में कहा गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य के मुख्य सचिव ने अपने पत्र/आदेश दिनांक 16.08.2022 के माध्यम से सभी विभागों में विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम जारी रखने के निदेश जारी किये हैं। पत्र/आदेश कार्मिक विभाग के अपर मुख्य सचिव द्वारा प्रसारित किया गया है। उक्त पत्र/आदेश के अनुसार विभागों को प्राथमिकता के आधार पर बड़ी संख्या में अधिकारियों के प्रभावी प्रशिक्षण हेतु एक व्यापक योजना तैयार करने की आवश्यकता है एवं आवश्यक सूचना, 15.09.2022 तक कार्मिक विभाग के समक्ष प्रस्तुत करने का भी निदेश दिया गया है।

विद्वान राज्य अधिवक्ता ने अभिकथन प्रस्तुत किया है कि उक्त सूचना कार्मिक विभाग द्वारा 15.09.2022 तक प्राप्त की जानी है, इस प्रकार आवश्यक सूचना प्राप्त होने पर न्यायालय के दिनांक 22.07.2022 के आदेशानुसार शपथ पत्र प्रस्तुत किया जाएगा।

उक्त उद्देश्य हेतु हम निदेश देते हैं कि उ.प्र.राज्य के मुख्य सचिव के आदेश दिनांक 16.08.2022 में उल्लिखित सूचना एकत्र करने के बाद,अगली बार सूचीबद्ध होने की तिथि तक इस न्यायालय के समक्ष एक शपथ पत्र प्रस्तुत किया जाएगा जिसमें प्रशिक्षण हेतु व्यापक योजना का विवरण दिया जाएगा।

विद्वान राज्य अधिवक्ता ने यह अभिकथन भी किया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश, जिसके विरुद्ध यहाँ अपील की गई है, के परिणामस्वरूप, पूरे उ.प्र.राज्य में विभागीय कार्यवाही पर रोक लगा दी गई है। यद्यपि

अनुवादित

न्यायालय ने दिनांक 22.07.2022 के आदेश द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा जारी किए गए कुछ निर्देशों पर इस सीमा तक रोक लगा दी थी, "भविष्य में किसी भी अधिकारी को विभागीय जाँच हेतु नियुक्त नहीं किया जाएगा जब तक कि उसने जेटीआरआई से प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया हो।" हालाँकि, आगे यह कहा गया है कि दिनांक 22.07.2022 के उक्त स्थगन आदेश के बाद अब जेटीआरआई से प्रशिक्षण प्राप्त किए बिना ही विभागीय जाँच हेतु जाँच अधिकारियों को नियुक्त किया जा रहा है, लेकिन जहाँ तक नियुक्ति/अनुशासनात्मक अधिकारियों का प्रश्न है, वे उन मामलों में अंतिम निर्णय ले सकने में असमर्थ हैं जहाँ जाँच अंतिम चरण में पहुंच चुकी है।

तदनुसार, हम प्रदान करते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा जारी निदेश कि "दंड देने वाला प्राधिकारी किसी भी दंड आदेश को पारित करने से पूर्व अपेक्षित प्रशिक्षण प्राप्त करेगा और सत्र/ प्रमाणपत्र का सन्दर्भ भी प्रस्तुत करेगा" पर इस सीमा तक रोक रहेगी। हालाँकि, इस आदेश, जिसमें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के एक भाग पर रोक लगा दी गई है, का अर्थ यह नहीं है कि विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्देशानुसार उत्तर प्रदेश राज्य में नियुक्ति/दंड देने वाले प्राधिकारी जेटीआरआई में अपेक्षित प्रशिक्षण प्राप्त नहीं करेंगे।

हम यह स्पष्ट करते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा जारी निदेश विभिन्न अनियमितताओं से संबंधित न्यायालय की चिंताओं की अभिव्यक्ति हैं, जो विभागीय कार्यवाही से संबंधित मामलों में न्यायालय द्वारा लगभग प्रतिदिन देखी जाती हैं, जहाँ विभागीय कार्यवाही संपादित करने एवं उसके बाद उचित दंड आदेश पारित करने की उचित प्रक्रिया से परिचित न होने के कारण, चूक करने वाले अधिकारी कई बार बच निकलते हैं।"

दिनांक 2.1.2023 से अद्यतन, कमोबेश वे सभी याचिकाएँ, चाहे वे नए वाद की भाँति अथवा सुनवाई हेतु सूचीबद्ध हुई हो, जिनमें दीर्घ शास्ति के आदेश को चुनौती दी जा रही है, इस समूह का भाग हैं। इनमें से प्रत्येक में नियमावली, 1999 के नियम 7 (iii) एवं (vii), दोनों के उल्लंघन के संबंध में तर्क प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार, इन सभी रिट याचिकाओं का निर्णय एक ही आधार पर किया जा सकता है। हालाँकि, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता-III ने न्यायालय से प्रत्येक मामले को अलग से विनिश्चित करने का अनुरोध किया।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता-III श्री रवि सिंह सिसौदिया के अनुरोध पर, इस न्यायालय ने प्रत्येक मामले की पृथक सुनवाई की है।

<u>रिट-ए संख्या 26819/2019</u>

प्रमुख रिट याचिका संख्या 26819/ 2019 में, याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार द्वारा पारित दंड आदेश दिनांक 02.08.2019 को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी है। इससे पूर्व भी याचिकाकर्ता को दिनांक 04.04.2013 के आदेश द्वारा दंडित किया गया था। उक्त आदेश दिनांक 04.04.2013 को इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 30422/ 2016 (एस/बी) (एकलव्य कुमार बनाम उ.प्र.राज्य एवं अन्य) में रद्द कर दिया गया था।

अनुवादित

रिट याचिका को इस आधार पर अनुमति दी गई थी कि जाँच उ.प्र.सरकारी सेवक(अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 (इसके बाद इसे 'नियमावली, 1999' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) के नियम 7 का उल्लंघन करते हुए की गई थी। इस न्यायालय ने स्पष्ट निष्कर्ष दिया कि विगत जाँच नियमावली, 1999 के नियम 7 के अनुसार मात्र याचिकाकर्ता का उत्तर लेने के बाद ही, बिना कोई मौखिक जाँच किए समाप्त कर दी गई थी। प्रतिवादीगण ने पुनः जाँच प्रारंभ की एवं दिनांक 02.08.2019 को आक्षेपित आदेश पारित किया। अब, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि दिनांक 02.08.2019 के आक्षेपित आदेश से पता चलता है कि आरोप पत्र पर याचिकाकर्ता का उत्तर प्राप्त किया गया था एवं कोई मौखिक जाँच नहीं हुई, एवं इस प्रकार पुनः नियम 7 में विहित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय के समक्ष दिनांक 21.09.2018 की जाँच रिपोर्ट (रिट याचिका का संलग्नक -9) प्रस्तुत की है। जाँच रिपोर्ट के परिशीलन से पता चलता है कि आरोप-पत्र पर मात्र दोषी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया गया है एवं उसके बाद उस पर निष्कर्ष दिया गया है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य का कोई संदर्भ नहीं है एवं जिस रीति से दस्तावेजी साक्ष्य सिद्ध किया गया था, वह जाँच रिपोर्ट में दर्शाया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर दंड का अंतिम आदेश दिनांक 02.08.2019 पारित किया गया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि पूरी जाँच नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता के विरूद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है एवं याचिकाकर्ता को उनसे प्रतिपरीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंड आदेश नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

अतः दिनांक 02.08.2019 का आक्षेपित आदेश कायम नहीं रह सकता है एवं इसे अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

उत्तरदाता, यदि चाहें तो, दस्तावेजी एवं मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दे कर एवं विधि की उचित प्रक्रिया का पालन कर, याचिकाकर्ता के विरूद्ध नई जाँच प्रारंभ कर सकते हैं। रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दंडादेश दिनांक 13.1.2021 को चुनौती दी है।

दिनांक 13.1.2021 के आक्षेपित आदेश के परिशीलन से ज्ञात होता है कि आरोप पत्र पर मात्र याचिकाकर्ता का उत्तर प्राप्त किया गया था।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जाँच रिपोर्ट दिनांक 24.7.2020 प्रस्तुत की है। जाँच

अनुवादित

रिपोर्ट का परिशीलन यह दर्शाता है कि आरोपों पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया जाता है और तत्पश्चात उस पर निष्कर्ष दिया जाता है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है, और जिस प्रकार से दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध किया गया, वह जाँच रिपोर्ट में परिलक्षित हुआ है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर दंड का अंतिम आदेश दिनांक 13.1.2021 पारित किया जाता है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षण करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य पर आक्षेप नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट और साथ ही दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसे ध्यान में रखते हुए, दिनांक 13.1.2021 का आक्षेपित आदेश कायम नहीं रह सकता और इसे अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादी, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र देकर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन करके याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं। रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 3909/2021</u>

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने आक्षेपित दंडादेश दिनांक 16.2.2016 को चुनौती दी है।

प्रारम्भ में याचिकाकर्ता को आदेश दिनांक 16.02.2016 द्वारा दंडित किया गया। उक्त आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा राज्य लोक सेवा अधिकरण, लखनऊ के समक्ष दावा याचिका संख्या 2251/2016 (मिथलेश कुमार बनाम यूपी राज्य एवं अन्य) के माध्यम से चुनौती दी गई थी। अधिकरण ने अपने निर्णय और आदेश दिनांक 27.03.2021 द्वारा, यह पाकर कि "चूंकि जाँच करने में घोर अनियमितता की गई है, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के चरण से मामले को नए सिरे से जाँच हेतु वापस प्रेषित करना उचित होगा", दंडादेश को अपास्त कर दिया।

इसके बाद, याचिकाकर्ता के विरुद्ध नए सिरे से जाँच की गई और 13.09.2019 को जाँच आख्या प्रस्तुत की गई। जाँच रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि कोई मौखिक जाँच नहीं की गई और विभाग के साक्ष्य को सिद्ध करने हेतु विभाग की ओर से कोई साक्षी जाँच में प्रस्तुत नहीं किया गया, और मात्र अपचारी अधिकारी के उत्तर के आधार पर जाँच समाप्त कर दी गई। उक्त जाँच के आधार पर, आक्षेपित आदेश दिनांक 31.12.2020 पारित किया गया है।

अनुवादित

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच आख्या के साथ-साथ दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, दिनांक 31.12.2020 का आक्षेपित आदेश टिक नहीं सकता और खारिज किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादी, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन करके याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 19998/2021</u>

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने दिनांक 16.6.2021 और 18.6.2021 के आक्षेपित आदेशों को चुनौती दी है।

दिनांक 16.6.2021 और 18.6.2021 के आक्षेपित आदेशों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि आरोप पत्र पर याचिकाकर्ता का उत्तर प्राप्त किया गया था।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 2.11.2020 की जाँच आख्या प्रस्तुत की। जाँच रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि आरोपों पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया गया है और उसके बाद उस पर निष्कर्ष दिया गया है। आरोप सिद्ध करने हेतु विभाग की ओर से मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया। उक्त रिपोर्ट के आधार पर दिनांक 16.6.2021 एवं 18.6.2021 के आक्षेपित आदेश पारित किये जाते हैं।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क है कि सम्पूर्ण जाँच, नियमावली1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता को साक्षियों से प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, दिनांक 16.6.2021 और 18.6.2021 के आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं हैं और खारिज किए जाते हैं। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादीगण, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन कर

अनुवादित

याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

रिट-ए संख्या 23387/2021

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने दिनांक 13.11.2018 और 24.7.2019 के आक्षेपित आदेशों को चुनौती दी है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जाँच रिपोर्ट दिनांक 8.9.2016 प्रस्तुत की। जाँच रिपोर्ट के अवलोकन से ज्ञात होता है कि जाँच हेतु कोई तिथि, समय और स्थान तय नहीं किया गया था और आरोपों पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया गया है और उसके बाद उस पर निष्कर्ष दिया गया है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध करने की रीति पर विचार नहीं किया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर दण्डादेश दिनांक 13.11.2018 पारित किया गया है। उक्त आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने अपील दायर की, जिसे 24.7.2019 को अस्वीकृत कर दिया गया।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, दिनांक 13.11.2018 और 24.7.2019 के आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं हैं और अपास्त किए जाते हैं। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादी, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन कर याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

रिट-ए संख्या 5364/2022

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने दिनांक 20.7.2022 के आक्षेपित दंडादेश को चुनौती दी है।

दिनांक 20.7.2022 के आक्षेपित आदेश का अवलोकन यह दर्शाता है कि आरोप पत्र पर याचिकाकर्ता का उत्तर प्राप्त किया गया था।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जाँच रिपोर्ट दिनांक 13.02.2022 प्रस्तुत की है। जाँच रिपोर्ट का अवलोकन दर्शाता है कि आरोप पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया गया है और उसके बाद उस पर निष्कर्ष दिया गया है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है और जिस प्रकार से दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध

अनुवादित

किया गया, वह जाँच रिपोर्ट में दर्शाया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर अंतिम दंडादेश दिनांक 20.7.2022 पारित किया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, दिनांक 20.7.2022 का आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं है और खारिज किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादी, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन कर याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 7508/2022</u>

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने दिनांक 22.9.2022 के आक्षेपित दंडादेश को चुनौती दी है।

दिनांक 22.9.2022 के आक्षेपित आदेश का अवलोकन दर्शाता है कि आरोप पत्र पर याचिकाकर्ता का उत्तर प्राप्त हो गया था।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जाँच रिपोर्ट दिनांक 22.4.2022 प्रस्तुत की है। जाँच रिपोर्ट का अवलोकन दर्शाता है कि आरोप पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया गया है और उसके बाद उस पर निष्कर्ष दिया गया है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है और जिस प्रकार से दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध किया गया, वह जाँच रिपोर्ट में दर्शाया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर अंतिम दंडादेश दिनांक 22.9.2022 पारित किया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

अनुवादित

इसलिए, दिनांक 22.9.2022 का आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं है और खारिज किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादी, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन कर याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

रिट-ए संख्या 8737/2022

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने दिनांक 18.10.2022 के आक्षेपित दंडादेश को चुनौती दी है। आक्षेपित आदेश दिनांक 18.10.2022 का अवलोकन दर्शाता है कि आरोप पत्र पर याचिकाकर्ता का उत्तर प्राप्त किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जाँच रिपोर्ट दिनांक 18.1.2020 प्रस्तुत की है। जाँच रिपोर्ट के अवलोकन पुनः दर्शाता है कि आरोप पर, मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया गया है और उसके बाद उस पर निष्कर्ष दिया गया है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य और दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध करने के प्रकार पर विचार नहीं किया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर अंतिम दंडादेश दिनांक 18.10.2022 पारित किया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, आक्षेपित आदेश दिनांक 18.10.2022 पोषणीय नहीं है और खारिज किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादी, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन करके याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

रिट-ए संख्या 8750/2022

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने आक्षेपित दंडादेश दिनांक 22.9.2022 को चुनौती दी है। याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस दिनांक 29.7.2022 के साथ एक दिनांकरहित जाँच रिपोर्ट दी गई। जब कारण बताओ नोटिस के उत्तर में प्रक्रियात्मक अनियमितताओं का प्रश्न उठाया गया, तब दंड प्राधिकारी ने उस पर विचार करना अस्वीकार कर दिया, जैसा कि दिनांक 22.9.2022 के आक्षेपित आदेश में उल्लेख किया गया है।

अप्रमाणित

किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है और जिस प्रकार से दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध किया गया, वह जाँच रिपोर्ट में दर्शाया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर अंतिम दंडादेश दिनांक 22.9.2022 पारित किया जाता है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है। यहां तक कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा उनकी आपत्ति पर भी विचार नहीं किया गया है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, दिनांक 22.9.2022 का आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं है और खारिज किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादीगण, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन करके याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 8860/2022</u>

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने दिनांक 17.8.2022 और 5.12.2022 के आक्षेपित आदेशों को चुनौती दी है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 12.4.2018 को जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की। जाँच रिपोर्ट का परिशीलन दर्शाता है कि जाँच करने हेतु कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया गया था तथा आरोप पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया गया है और उसके बाद उस पर निष्कर्ष दिया गया है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है और जिस प्रकार से दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध किया गया, वह जाँच रिपोर्ट में दर्शाया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर दण्डादेश दिनांक 17.8.2022 पारित किया जाता है। उक्त आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने अपील दायर की, जिसे भी 5.12.2022 को खारिज कर दिया गया।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच, नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

अनुवादित

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, दिनांक 17.8.2022 और 5.12.2022 के आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं हैं और अपास्त किए जाते हैं। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादीगण, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन कर याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 8982/2022</u>

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने दिनांक 13.4.2022 के आक्षेपित दंडादेश को चुनौती दी है।

आक्षेपित आदेश दिनांक 13.4.2022 का परिशीलन दर्शाता है कि आरोप पत्र पर याचिकाकर्ता का उत्तर प्राप्त किया गया था।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने जाँच रिपोर्ट दिनांक 22.1.2021 प्रस्तुत की। जाँच रिपोर्ट के अवलोकन से ज्ञात होता है कि आरोप पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया जाता है और उसके बाद उस पर निष्कर्ष दिया जाता है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है और जिस प्रकार से दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध किया गया, वह जाँच रिपोर्ट में दर्शाया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर अंतिम दंडादेश दिनांक 13.4.2022 पारित किया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, आक्षेपित आदेश दिनांक 13.4.2022 पोषणीय नहीं है और अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादीगण, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन कर याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 108/2023</u>

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने आक्षेपित दंडादेश दिनांक 13.9.2022 को चुनौती दी है।

अनुवादित

याचिकाकर्ता ने दंडादेश दिनांक 11.10.2013 को चुनौती देते हुए रिट याचिका संख्या 1685/2013 (एसबी) दायर की, जिसे 05.08.2016 को यह कहते हुए कि कोई मौखिक जाँच नहीं की गई थी और निर्देश देते हुए अनुमति दी गई कि आदेश की तिथि से पाँच माह की अवधि में याचिकाकर्ता द्वारा दायर आरोप पत्र के उत्तर प्रस्तुत करने के चरण से नई जाँच की जाए। न्यायालय ने मात्र पाँच माह का समय दिया था। इसके बावजूद, ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध जाँच करने में पाँच वर्ष लग गए जो अब सेवानिवृत्त हो चुका है।

याचिकाकर्ता को सह-पत्र दिनांक 25.08.2018 के साथ एक दिनांकरहित जाँच रिपोर्ट दी गई।

जाँच रिपोर्ट का परिशीलन दर्शाता है कि विभाग ने अपने दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु कोई साक्षी प्रस्तुत नहीं किया। इस प्रकार जाँच बिना किसी मौखिक साक्ष्य के संपादित की गई है।

दिनांक 04.12.2018 को जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पश्चात याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर दिनांक 6.3.2019 के आधार पर ही दिनांक 13.09.2022 को दण्डादेश पारित किया गया।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच, नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है। जाँच मात्र याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि कोई मौखिक जाँच नहीं की गई है।

इसलिए, दिनांक 13.9.2022 का आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं है और अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादीगण, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन करके याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं और आज से छह माह की अवधि में सकारात्मक रूप से जाँच पूर्ण कर सकते हैं। छह माह की अवधि में इसे पूर्ण करने में विफलता की दशा में, इसे समाप्त कर दिया जाएगा।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 388/2023</u>

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार द्वारा पारित दंडादेश दिनांक 31.10.2022 को चुनौती दी है।

आक्षेपित आदेश दिनांक 31.10.2022 का परिशीलन दर्शाता है कि आरोप पत्र पर याचिकाकर्ता का उत्तर प्राप्त किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जाँच रिपोर्ट दिनांक 23.01.2020 प्रस्तुत की। जाँच रिपोर्ट का परिशीलन दर्शाता है कि आरोप पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर

अनुवादित

विचार किया गया है और उसके बाद उस पर निष्कर्ष दिया गया है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध करने के प्रकार पर विचार नहीं किया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर अंतिम दंडादेश दिनांक 31.10.2022 पारित किया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है। इसलिए, दिनांक 31.10.2022 का आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं है और इसे अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे। प्रतिवादीगण , यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन करके याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 940/2023</u>

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार द्वारा पारित आक्षेपित दंडादेश दिनांक 04.11.2022 को चुनौती दी है।

आक्षेपित आदेश दिनांक 04.11.2022 का परिशीलन दर्शाता है कि आरोप पत्र दिनांक 23.10.2020 एवं अतिरिक्त आरोप पत्र दिनांक 18.01.2021 पर याचिकाकर्ता का उत्तर प्राप्त किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जाँच रिपोर्ट दिनांक 17.10.2022 प्रस्तुत की है। जाँच रिपोर्ट का परिशीलन दर्शाता है कि आरोपों पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया गया है और उसके बाद उस पर निष्कर्ष दिया गया है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध करने की रीति पर विचार नहीं किया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर अंतिम दण्डादेश दिनांक 04.11.2022 पारित किया गया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है; क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

अनुवादित

इसलिए, दिनांक 04.11.2022 का आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं है और अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादीगण, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन कर याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 6838/2022</u>

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार द्वारा पारित आक्षेपित दंडादेश दिनांक 29.09.2022 को चुनौती दी है।

इससे पहले भी याचिकाकर्ता को दिनांक 28.07.2021 के आदेश द्वारा दंडित किया गया था। उक्त आदेश दिनांक 28.07.2021 को इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 445/ 2022 (दिनेश कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में अपास्त कर दिया गया था। न्यायालय ने स्पष्ट रूप से पाया कि जाँच कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के साथ-साथ उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम 7 में निहित प्रावधानों का घोर उल्लंघन करते हुए की गई है तथा जाँच अधिकारी द्वारा कोई तिथि, समय एवं स्थान निर्धारित नहीं किया गया था। विभाग को विधि के अनुसार नई जाँच करने की अनुमति देते हुए रिट याचिका स्वीकार कर ली गई।

आक्षेपित आदेश दिनांक 29.09.2022 का परिशीलन दर्शाता है कि आरोप पत्र दिनांक 07.08.2020 पर याचिकाकर्ता का उत्तर प्राप्त हो गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जाँच रिपोर्ट दिनांक 05.09.2022 प्रस्तुत की है। जाँच रिपोर्ट का परिशीलन दर्शाता है कि आरोपों पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया गया है और उसके बाद उसके निष्कर्ष दिए गए हैं। कोई भी मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और जिस प्रकार से दस्तावेजी साक्ष्य सिद्ध किए गए, वह जाँच रिपोर्ट में परिलक्षित होता है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर अंतिम दंडादेश दिनांक 29.09.2022 पारित किया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, आक्षेपित आदेश दिनांक 29.09.2022 पोषणीय नहीं है और अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादीगण, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन कर

अनुवादित

याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

"चूंकि, याचिकाकर्ता पहले ही 30.09.2022 को सेवानिवृत्त हो चुका है, इसलिए, यदि प्रतिवादी चाहें तो नई जाँच 30.06.2023 तक पूर्ण कर ली जाएगी। यदि प्रतिवादी उपरोक्त समयावधि में जाँच समाप्त करने में विफल रहते हैं, तब उन्हें जाँच को आगे बढ़ाने से प्रतिबंधित किया जाता है।" (रिट-ए संख्या 6838/ 2022 में संशोधन आवेदन I.A. संख्या 04/2023 पर पारित आदेश दिनांक 28.02.2023 द्वारा संशोधित किया गया)।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 2922/2019</u>

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा पारित आक्षेपित दंडादेश को चुनौती दी है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान दिनांक 27.07.2018 की जाँच रिपोर्ट की ओर आकर्षित किया है। जाँच रिपोर्ट का परिशीलन दर्शाता है कि जाँच अधिकारी ने कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया है और कोई मौखिक साक्ष्य/पूछताछ नहीं की गई है, इस प्रकार नियमावली 1999 के नियम (vii) का घोर उल्लंघन है। दंड प्राधिकारी ने कारण बताओ नोटिस के उत्तर पर भी विचार नहीं किया है। आक्षेपित आदेश पूर्णतः कारणविहीन है है और दिए गए निष्कर्ष को अभिलिखित करने का कोई कारण स्पष्ट नहीं किया गया है, जो दंड प्राधिकारी की ओर से अनिवार्य था।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है

उक्त के दृष्टिगत, आक्षेपित दण्डादेश दिनांक 07.01.2019 अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादीगण, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन कर याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं। रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 25694/2019</u>

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने दण्डादेश दिनांक 7.10.2016 और आदेश दिनांक 15.4.2019 और सह-पत्र दिनांक 20.7.2012 के साथ प्रस्तुत जाँच रिपोर्ट को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित आदेश अत्यन्त मनमानी रीति से पारित किए गए हैं जो 1999 की नियमावली का उल्लंघन है। याचिकाकर्ता द्वारा आरोप पत्र का उत्तर दाखिल करने के पश्चात, कोई मौखिक जाँच नहीं की गई और न ही कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित किया

अनुवादित

गया। याचिकाकर्ता द्वारा आरोप पत्र का उत्तर दाखिल करने के पश्चात जाँच अधिकारी ने प्रत्यक्ष रूप से जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है। दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध करने हेतु जाँच अधिकारी द्वारा किसी भी साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

उक्त के दृष्टिगत, आक्षेपित दंडादेश दिनांक 07.10.2016 और आदेश दिनांक 15.04.2019 को अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादीगण, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन कर याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 31943/2019</u>

इस याचिका में भी चुनौती का सामान्य आधार यह है कि जाँच रिपोर्ट दिनांक 16.4.2019 पर दण्डादेश दिनांक 10.6.2019 पारित करते समय प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को साक्षियों से प्रति-परीक्षा करने और लगाए गए आरोपों के विरुद्ध मौखिक साक्ष्य दर्ज करने का अवसर नहीं दिया है, जो पूर्णतः नियमावली, 1999 के नियम 7(vii) का घोर उल्लंघन है। आक्षेपित आदेश पारित करते समय याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए उत्तर को ध्यान में नहीं रखा गया और याचिकाकर्ता को एक दीर्घ शास्ति प्रदान की गई। अपीलीय आदेश पारित करते समय अपीलीय प्राधिकारी ने भी अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया और परिस्थितियों, दण्डादेश और अपीलीय आदेश को अवैध माना और यह विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, आक्षेपित दंडादेश के साथ-साथ अपीलीय आदेश को अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादीगण, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन करके याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 32749/2019</u>

इस याचिका में, याचिकाकर्ता ने विभागीय कार्यवाही में याचिकाकर्ता के विरुद्ध पारित दंडादेश दिनांक 11.1.2010 के साथ-साथ अपीलीय आदेश दिनांक 16.1.2013 और समीक्षा याचिका पर पारित आदेश को चुनौती देते हुए न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 8.7.2009 की

अनुवादित

जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की। जाँच रिपोर्ट का परिशीलन दर्शाता है कि आरोप पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया गया है और उसके बाद निष्कर्ष दिया गया है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है और जिस प्रकार से दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध किया गया, वह जाँच रिपोर्ट में दर्शाया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर अंतिम दण्डादेश दिनांक 8.7.2009 पारित किया गया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है; क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, आक्षेपित दण्डादेश दिनांक 11.1.2010 के साथ-साथ अपीलीय आदेश दिनांक 16.1.2013 और समीक्षा याचिका में पारित आदेश दिनांक 16.09.2019 पोषणीय नहीं है और अपास्त किए जाते हैं। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादीगण, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन करके याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 3286/2020</u>

इस याचिका में प्रतिवादी सं०-2 द्वारा पारित दंडादेश दिनांक 30.11.2018 को चुनौती दी जा रही है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जाँच रिपोर्ट दिनांक 12.9.2018 प्रस्तुत की। जाँच रिपोर्ट का परिशीलन दर्शाता है कि आरोप पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया गया है और उसके बाद निष्कर्ष निकाला गया है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है और जिस प्रकार से दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध किया गया, वह जाँच रिपोर्ट में दर्शाया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर अंतिम दण्डादेश दिनांक 30.11.2018 पारित किया गया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है; क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया

अनुवादित

है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, आक्षेपित दंडादेश दिनांक 30.11.2018 और अपीलीय आदेश दिनांक 1.11.2019 पोषणीय नहीं है और इन्हें अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

प्रतिवादीगण, यदि चाहें तो, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के साथ एक नया आरोप पत्र दायर कर और विधि की उचित प्रक्रिया का पालन करके याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई जाँच प्रारम्भ कर सकते हैं।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 4614/2020</u>

इस याचिका में प्रतिवादी संख्या 1 और 2 द्वारा पारित दंडादेश दिनांक 19.10.2010 और अपीलीय आदेश दिनांक 29.11.2010 को चुनौती दी गई है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जाँच रिपोर्ट को सह-पत्र दिनांक 4.2.2010 के साथ प्रस्तुत किया है। जाँच रिपोर्ट का परिशीलन दर्शाता है कि आरोप पर मात्र अपचारी अधिकारी/याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किया गया है और उसके बाद उसका निष्कर्ष दिया गया है। किसी भी मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है और जिस प्रकार से दस्तावेजी साक्ष्य को सिद्ध किया गया, वह जाँच रिपोर्ट में दर्शाया गया है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर अंतिम दण्डादेश दिनांक 19.10.2010 पारित किया गया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण जाँच नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है; क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच समाप्त की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, दंडादेश दिनांक 19.10.2010 के साथ-साथ अपीलीय आदेश दिनांक 29.11.2019पोषणीय नहीं है और अपास्त किए जाते हैं। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 24001/2020</u>

इस याचिका में प्रतिवादी संख्या-1 द्वारा पारित बर्खास्तगी आदेश दिनांक 7.8.2020 को चुनौती दी गई है।

अनुवादित

आरोप पत्र दिनांक 24.1.2020 के अनुसार, याचिकाकर्ता के विरुद्ध दो आरोप तय किए गए थे और उनमें कुछ दस्तावेजों को साक्ष्य के रूप में संदर्भित किया गया था। आरोप पत्र में उक्त दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु विभाग की ओर से किसी साक्षी का भी उल्लेख नहीं है। आरोप पत्र में याचिकाकर्ता से 15 दिनों की अवधि में उत्तर मांगा गया है और यह भी कहा गया है कि यदि वह सुनवाई का कोई व्यक्तिगत अवसर चाहता है और यदि वह कोई गवाह प्रस्तुत करना चाहता है तो उसका विवरण दे।

यह आश्चर्य की बात है कि विभाग अपने दस्तावेजों को सिद्ध करने हेतु अपना साक्षी प्रस्तुत करने के बजाय, अपचारी अधिकारी को अपना प्रारम्भिक साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु कह रहा है। वास्तव में, मामले में प्रारंभिक साक्ष्य की तिथि और स्थान के मामले में कोई मौखिक साक्ष्य नहीं प्रस्तुत है, जैसा कि आक्षेपित आदेश से परिलक्षित होता है, जो बिना किसी जाँच के मात्र 'कारण बताओ नोटिस' के क्रम में पारित किया गया है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है।

इसलिए, दिनांक 7.8.2020 का आक्षेपित दंडादेश कायम नहीं रह सकता और इसे अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

यदि कोई जाँच की जानी है तो उसे दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य सहित एक नया आरोप-पत्र दायर कर प्रारम्भ किया जाएगा और उसे चार माह की अवधि में समाप्त किया जाएगा। यदि राज्य चार माह की अवधि में जाँच समाप्त करने में विफल रहता है,तब उन्हें जाँच को आगे बढ़ाने से प्रतिबंधित किया जाता है।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

<u>रिट-ए संख्या 8408/2022</u>

इस याचिका में याचिकाकर्ता ने आक्षेपित दंडादेश दिनांक 24.1.2022 और पुनर्विलोकन आदेश दिनांक 19.7.2022 को चुनौती दी है।

वर्तमान जाँच के तथ्य दर्शाते हैं कि उ०प्र० राज्य में किस प्रकार जाँच की जा रही है। याचिकाकर्ता को दिनांक 15.12.2018 को आरोप पत्र दिया गया जिसमें मात्र दस्तावेजी साक्ष्य का उल्लेख किया गया था, और विभाग की ओर से कोई मौखिक साक्ष्य या साक्षियों के नाम नहीं दिए गए थे। पूछताछ के दौरान भी विभाग की ओर से कोई साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया। अपचारी अधिकारी ने दिनांक 27.02.2019 को एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत कर प्रार्थना की कि अनुभाग अधिकारी श्री दीपक माथुर को नोट-शीट और शिकायत पत्रावली के साथ बुलाया जाए। उक्त आवेदन को जाँच अधिकारी अर्थात आयुक्त, लखनऊ क्षेत्र, लखनऊ द्वारा दिनांक 18.03.2021 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी, जिसमें श्री दीपक माथुर का दिनांक 25.03.2021 को उपस्थित होना अपेक्षित था। इसके बाद, निर्धारित तिथि, यानी 25.03.2021 को, राज्य के अनुरोध पर मामले को स्थगित कर दिया गया और उसके बाद, बुलाए गए गवाह के कथन हेतु कोई तिथि निर्धारित किए बिना,

अनुवादित

15.9.2021 को एक अंतिम जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

न्यायालय का ध्यान आयुक्त, लखनऊ क्षेत्र, लखनऊ के कार्यालय में प्रधान सहायक लल्लू प्रसाद और प्रशासनिक अधिकारी श्री राम कुमार द्वारा हस्ताक्षरित दिनांक 03.09.2021 की नोट शीट की ओर भी आकर्षित किया गया है। इसके अंतिम प्रस्तर में उल्लेख किया गया है कि प्रधान सहायक और प्रशासनिक अधिकारी ने अंतिम जाँच रिपोर्ट तैयार कर ली है और यदि जाँच अधिकारी इससे सहमत है, तो वह उस पर हस्ताक्षर कर सकता है। इससे यह पता चलता है कि जाँच अधिकारी द्वारा जाँच रिपोर्ट तैयार नहीं की गई। विभाग द्वारा इससे अधिक घोर अवैधानिकता नहीं की जा सकती। जाँच अधिकारी जाँच करने और जाँच रिपोर्ट तैयार करने की जिम्मेदारी अपने अधीनस्थ लिपिक कर्मचारी को नहीं सौंप सकता। दिनांक 15.09.2021 की जाँच रिपोर्ट यह भी दर्शाती है कि जाँच बिना किसी मौखिक साक्ष्य के की गई है।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य का प्रतिवाद नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट के साथ-साथ दंडादेश नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन है, तथा इस तथ्य का प्रतिवाद भी नहीं कर सके कि जाँच रिपोर्ट जाँच अधिकारी द्वारा स्वयं तैयार नहीं की गई है।

इसलिए, आक्षेपित दंडादेश दिनांक 24.01.2022 और पुनर्विलोकन आदेश दिनांक 19.07.2022 पोषणीय नहीं है और इन्हें अपास्त किया जाता है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

इस मामले को दिनांक 11.4.2023 को सूचीबद्ध करें।

******

उपरोक्त से यह भी स्पष्ट है कि इस राज्य में दीर्घ शास्ति हेतु एक भी विभागीय जाँच विधिसंगत नहीं हो रही है। उचित प्रक्रिया का पालन न करने के कारण सभी अपचारी कर्मचारियों को बार-बार सेवामुक्त किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वोच्च न्यायालय के आदेश, इस न्यायालय के आदेश तथा मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत शासनादेश उपेक्षित किये जा रहे हैं।

श्री कुलदीप पति त्रिपाठी, विद्वान अपर महाधिवक्ता और श्री रवि सिंह सिसौदिया, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता-III सहमत हैं कि इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता-III इस न्यायालय के समक्ष यह कथन करते है कि निदेशों पर राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि अपचारी जाँच अधिकारियों के साथ-साथ अनुशासनात्मक प्राधिकारियों के विरुद्ध उचित विभागीय कार्यवाही प्रारम्भ की जाए। उन्होंने न्यायालय को आश्वासन दिया कि इन कार्यवाही को भी विधि के अनुसार दो माह की अवधि में तार्किक निष्कर्ष पर लाया जाएगा।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता-III का बयान रिकॉर्ड पर लिया गया है।

अनुवादित

उपरोक्त कथन के दृष्टिगत, यह न्यायालय कोई और निर्देश निर्गत नहीं कर रहा है। यह अपना विश्वास मुख्य सचिव पर करता है कि उ.प्र. सरकार अपनी बात पर कायम रहेगी।

उक्त के दृष्टिगत, उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं में आक्षेपित आदेशों/आरोप-पत्रों को अपास्त किया जाता है जैसा कि प्रत्येक याचिका में दर्शाया गया है. और प्राधिकारियों को विधि के अनुसार कार्यवाही करने की अनुमति दी जाती है। रिट-ए संख्या 8408/2022, जिसका अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु अंतिम रूप से निस्तारण नहीं किया जा रहा है, के अतिरिक्त सभी रिट याचिकाओं को स्वीकृत किया जाता है और अंतिम रूप से निस्तारित किया जाता है।

दिनांक 11.4.2023 को रिट-ए सं०-8408/2022 प्रस्तुत करें।

सूचीबद्ध होने की अगली तिथि तक मुख्य सचिव, की गई कार्रवाई के संबंध में एक रिपोर्ट दाखिल किया जाना सुनिश्चित करेंगे।

(2023) 2 ILRA 981

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति गजेन्द्र कुमार,

सी.आर.एल. विविध रिट याचिका संख्या 14344/2022

नफ़ीसा और अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अजातशत्रु पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री कमलेश कुमार तिवारी, श्री मनोज कुमार श्रीवास्तव

आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 156(3), 173(3), 200, 202, 376-डी, 438 और 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120(बी) , 195, 211, 384, 420 और 506 - रिट याचिका - एफ.आई.आर. को निरस्त करना और गिरफ्तारी से सुरक्षा - पोषणीयता- आरोप यह है कि याचिकाकर्ता एक वकील के संरक्षण में एक गिरोह के रूप में काम कर रहे हैं और वे कई निर्दोष व्यक्तियों के विरुद्ध सामूहिक बलात्कार और वसूली आदि के संबंध में कई एफआईआर में भी सम्मिलित हैं - न्यायालय ने पाया कि, प्रथम दृष्टया से याचिकाकर्ताओं के खिलाफ संज्ञेय अपराध स्थापित है, जिसके लिए अधिकारियों द्वारा विस्तृत जांच की आवश्यकता है, ऐसे मामले में याचिकाकर्ताओं की गिरफ्तारी पर रोक लगाने का कोई व्यापक आदेश पारित नहीं किया जा सकता है - वर्तमान वाद दुर्लभतम मामलों की श्रेणी में नहीं आता है - रिट याचिका पर विचार नहीं किया गया - हालाँकि, सीआरपीसी की धारा 438 अग्रिम जमानत की मांग करना और, सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत एफआईआर निरस्त के लिए उचित आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता दी गई -रिट याचिका खारिज की जाती है। (पैरा 8, 12, 14, 16)

रिट याचिका निरस्त (ई-11)

अनुवादित

उद्धृत वाद सूची:-

1. निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्रा. लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 315),2. तेलंगाना बनाम हबीब अब्दुल्ला जिलानी (2017 खंड 2 एससीसी 779), 3. निवेदिता शर्मा बनाम सेल्युलर ऑपरेटर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया (2011 खंड 14 एससीसी 337)

(माननीय न्यायमूर्ति गजेंद्र कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. शुरुआत में, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि वह उत्तरदाताओं द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के जवाब में कोई प्रत्युत्तर हलफनामा दायर करने का प्रस्ताव नहीं करता है।

2. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री अजातशत्रु पांडे को और राज्य-उत्तरदाताओं के अधिवक्ता को सुना।

3. याचिकाकर्ताओं की ओर से दिनांक 07.08.2022 की प्राथमिकी को रद्द करने की प्रार्थना के साथ प्रस्तुत याचिका दायर की गई है, जिससे धारा 384, 420, 195, 506, 120-बी, 211 भ०द०वि०, थाना-कैंट, जिला-गोरखपुर के तहत केस अपराध संख्या-0582 वर्ष 2022 उद्भूत हुआ है और साथ ही आक्षेपित प्राथमिकी के अनुसरण में याचिकाकर्ताओं को गिरफ्तार नहीं किया गया है।

4. संक्षेप में अभियोजन कहानी इस प्रकार है:

याचिकाकर्ता संख्या-1 (नफीसा) "नफीसा गैंग" के रूप में एक गिरोह का नेतृत्व कर रही है और उसकी टीम में, पांच अन्य सदस्य (सह-आरोपी) हैं, अर्थात् बिंदावती (याचिकाकर्ता संख्या-2), सोनी (आक्षेपित प्राथमिकी में नामित आरोपी), आरती (याचिकाकर्ता संख्या-3), इंद्रावती (याचिकाकर्ता संख्या-4) और तारा चौहान (याचिकाकर्ता संख्या-5) उक्त गिरोह के सदस्य हैं और उपरोक्त गिरोह को सह-आरोपी द्वारा निर्देशित/संरक्षित किया जा रहा है। अर्थात्, माधव तिवारी, अधिवक्ता (आक्षेपित प्राथमिकी में नामित आरोपी)। यह भी आरोप लगाया गया है कि उपरोक्त गिरोह धारा 156(3) द०प्र०स०/शिकायत मामलों के साथ-साथ सामूहिक बलात्कार और भ०द०वि० और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की विभिन्न धाराओं के बारे में प्राथमिकी दायर करने में कई निर्दोष व्यक्तियों के खिलाफ कई अस्पष्ट आवेदन दायर करने में शामिल है और इसे दर्ज करके, वे पैसे निकालते थे।

5. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वे निर्दोष हैं और उन्हें वर्तमान मामले में गलत मकसद से फंसाया गया है। तत्काल मामला और कुछ नहीं बल्कि याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिवादी संख्या-4 और अन्य आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ विभिन्न समय पर दर्ज किए गए पहले के मामलों का एक प्रतिवाद है और केवल याचिकाकर्ताओं पर दबाव डालने और पहले के मामलों में समझौता करने के उद्देश्य से, वर्तमान प्राथमिकी दर्ज की गई है। यहां तक कि याचिकाकर्ता संख्या-1 द्वारा सूचनाकर्ता/प्रतिवादी संख्या-4 (खालिद @ जियाउररहमान) और अन्य के खिलाफ एक घटना के बारे में धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत दायर एक आवेदन में, जिसके बारे में कहा जाता है कि यह 04.09.2016 को सुबह 10:00 बजे हुआ था, क्योंकि उपरोक्त आरोपी व्यक्ति याचिकाकर्ता संख्या-1 पर उपरोक्त मामले से समझौता करने के लिए दबाव डाल रहे थे, और जब उसने इनकार कर दिया, तो सभी आरोपी व्यक्ति (प्रतिवादी संख्या-4 और

अनुवादित

अन्य सह-आरोपी व्यक्ति) उसके घर के अंदर जबरन घुस गए और उसे लाठी-डंडा से बेरहमी से पीटा और उसके कपड़े फाड़ दिए, जिसके कारण उसे गंभीर चोटें आईं। उक्त आवेदन को 05.01.2017 को शिकायत मामले के रूप में माना गया था, और उसके बाद, धारा 200 और धारा 202 द०प्र०स० के तहत गवाहों के बयान दर्ज किए गए थे और सूचनाकर्ता सहित आरोपी व्यक्तियों को 28.08.2019 को निचली अदालत द्वारा तलब किया गया था। सूचनाकर्ता/प्रतिवादी संख्या-4 और उसके सहयोगी आपराधिक प्रकृति के व्यक्ति हैं और कई मौकों पर, उन्होंने गंभीर अपराध किए थे, जिसके लिए याचिकाकर्ताओं द्वारा उनके खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी। याचिकाकर्ताओं ने झूठे फंसाये जाने का आरोप लगाया है। याचिकाकर्ताओं ने कभी भी किसी व्यक्ति को ब्लैकमेल करने की कोशिश नहीं की और ऐसा कोई गिरोह नहीं है जैसा कि प्रतिवादी संख्या-4 ने आक्षेपित प्राथमिकी में आरोप लगाया है। याचिकाकर्ताओं के खिलाफ रिकॉर्ड पर कोई ठोस सबूत उपलब्ध नहीं है ताकि उन्हें वर्तमान मामले में फंसाया जा सके।

6. प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने पूर्वोक्त तर्कों का जोरदार विरोध किया और प्रस्तुत किया कि याचिका स्वयं भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत सुनवाई योग्य नहीं है। यह बताया गया है कि याचिकाकर्ताओं के आचरण को वर्तमान मामले में देखा जाना आवश्यक है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि सूचनाकर्ता/प्रतिवादी संख्या-4 को याचिकाकर्ताओं द्वारा कई मामलों में झूठा फंसाया गया है, और यहां तक कि केस अपराध संख्या-182 वर्ष 2016 के रूप में दर्ज एक मामले में भी, जैसा कि रिट याचिका के ज्ञापन में वर्णित किया गया है। संबंधित विवेचनाधिकारी द्वारा अंतिम रिपोर्ट भी प्रस्तुत की गई। इसके बाद, याचिकाकर्ता संख्या-1 द्वारा एक विरोध याचिका दायर की गई थी और उक्त विरोध याचिका की अनुमति दी गई थी और अंतिम रिपोर्ट नंबर-146 वर्ष 2017 थी को निचली अदालत ने खारिज कर दिया था और इसे 03.03.2020 को एक शिकायत मामले के रूप में माना गया था। इसके बाद, निचली अदालत ने सूचना देने वाले/प्रतिवादी संख्या-4 और अन्य आरोपी व्यक्तियों को धारा 376-डी और 506 भ०द०वि० के तहत तलब किया था। सम्मन आदेश के खिलाफ, उन्होंने (वर्तमान मामले में प्रतिवादी) धारा 482 संख्या-28592 वर्ष 2022 (शाहनाज अंसारी और 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) के तहत आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन दायर किया था, जिसमें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 10.10.2022 के आदेश द्वारा उन्हें अंतरिम संरक्षण प्रदान किया गया था।

7. प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि इस मामले में जांच की जानी बाकी है। इस स्तर पर, यह पता नहीं लगाया जा सकता है कि अधिकारी याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आरोप पत्र दायर कर रहे हैं या क्लोजर रिपोर्ट प्रस्तुत की जा रही है। निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं करने के लिए निर्देश जारी करना भी स्वीकार्य नहीं है; 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 315 के साथ-साथ तेलंगाना राज्य बनाम हबीब अब्दुल्ला जिलानी के मामले में; (2017) 2 एस.सी.सी. 779, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालयों द्वारा आकस्मिक

तरीके से निर्देश जारी करने की अत्यधिक निंदा की है। यह प्रस्तुत किया गया है कि वैधानिक प्रावधान उपलब्ध हैं और याचिकाकर्ताओं को कानून के तहत उपलब्ध वैधानिक प्रावधानों का पालन करना चाहिए और कम से कम धारा 438 द०प्र०स० के तहत अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन दायर करना चाहिए। अग्रिम जमानत के उपाय का लाभ उठाने के लिए सक्षम न्यायालयों से संपर्क किए बिना, उन्होंने सीधे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह याचिका दायर की है। प्राथमिकी रद्द करने की मांग के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत वैधानिक प्रावधान हैं। उपर्युक्त वैधानिक प्रावधानों को दरकिनार करते हुए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह याचिका एक प्राथमिकी के साथ कार्यवाही को रद्द करने की मांग करते हुए दायर की गई है जो कानून के तहत स्वीकार्य नहीं है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता अवैध मांगों को उठाने के लिए निर्दोष व्यक्तियों के खिलाफ इस तरह की प्राथमिकी के साथ-साथ शिकायत के मामले दर्ज करने में शामिल हैं और एक माधव तिवारी, अधिवक्ता की मदद से "नफीसा गैंग" के नाम से एक गिरोह चला रहे हैं। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा इसमें लिए गए आधार कानून की नजर में टिकाऊ/पुख्ता नहीं हैं और याचिका खारिज होने योग्य है।

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और पक्षों के वकीलों को सुनने और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त आदेश के अवलोकन के बाद, यह प्रकट रूप से स्पष्ट है कि मामले की लंबित जांच में गिरफ्तार नहीं करने या कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं करने का कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ताओं के पास धारा 438 द०प्र०स० के तहत अग्रिम जमानत याचिका दायर करके संबंधित न्यायालयों से संपर्क करने का एक उपाय है और उसके बाद, धारा 482 द०प्र०स० के तहत सहारा ले सकते हैं, जिसमें उच्च न्यायालय के पास प्राथमिकी को रद्द करने की अंतर्निहित शक्ति है, लेकिन वर्तमान मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का पालन किए बिना, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रस्तुत याचिका दायर की गई है, जिसमें प्राथमिकी को रद्द करने के साथ-साथ याचिकाकर्ताओं की गिरफ्तारी पर रोक लगाने की मांग की गई है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ताओं को अनावश्यक रूप से परेशान किया जा रहा है। हालांकि, तथ्य यह है कि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ दर्ज की गई प्राथमिकी का अवलोकन प्रथम दृष्टया एक संज्ञेय मामला बनता है जिसके लिए मामले में जांच की आवश्यकता है।

16. उच्च न्यायालय द्वारा इस तरह के आदेश जारी करने को हबीब अब्दुल्ला जिलानी (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ध्यान में रखा गया था और निहारिका (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा फिर से ध्यान दिया गया था जो निम्नानुसार है: -

"67. हबीब अब्दुल्ला जिलानी (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने उच्च न्यायालयों द्वारा पारित इस तरह के अभ्यास/आदेशों की निंदा की, यहां तक कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों के प्रयोग में रद्द याचिका में हस्तक्षेप करने से इनकार करते हुए, पुलिस को गिरफ्तार नहीं करने का निर्देश दिया। इस अदालत के समक्ष उपरोक्त मामले में, उच्च न्यायालय ने प्राथमिकी को रद्द करने के लिए

धारा 482 द०प्र०स० के तहत दायर याचिका को खारिज कर दिया। हालांकि, याचिका को खारिज करते हुए उच्च न्यायालय ने पुलिस को निर्देश दिया कि जांच लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ताओं को गिरफ्तार न किया जाए। इस तरह के आदेश को रद्द करते हुए, इस न्यायालय द्वारा यह देखा गया है कि इस तरह का निर्देश धारा 438 द०प्र०स० के तहत एक आदेश के बराबर है, यद्यपि उक्त प्रावधान की शर्तों की संतुष्टि के बिना यह कानूनी रूप से अस्वीकार्य है। पूर्वोक्त निर्णय में, यह विशेष रूप से देखा गया है और इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि "पुलिस को जांच पूरी होने तक गिरफ्तार न करने का निर्देश देने वाला आदेश पारित करना बिल्कुल अकल्पनीय है, जबकि हस्तक्षेप करने या राय व्यक्त करने से इनकार करते हुए कि जांच पर रोक लगाना उचित नहीं है"। आगे यह देखा गया है कि इस तरह का आदेश वास्तव में अनुचित है और कानून में इसकी कोई मंजूरी नहीं है। आगे यह देखा गया है कि अदालतों को बेईमान वादियों को प्राथमिकी या जांच शुरू करने के रद्द करने के लिए आवेदन दायर करने के लिए बड़ी तत्परता से अदालत के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र को लागू करने से बाहर और बाधित करना चाहिए और फिर एक अंतरिम आदेश द्वारा राहत मांगनी चाहिए। आगे यह भी देखा गया है कि इस तरह के सिद्धांतहीन और अनैतिक वादियों को दूर रखना अदालत का दायित्व है।

68. पूर्वोक्त निर्णय में, इस न्यायालय ने धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदनों को खारिज करते हुए उच्च न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों की और निंदा की है कि यदि याचिकाकर्ता-अभियुक्त ट्रायल मजिस्ट्रेट के समक्ष आत्मसमर्पण करता है, तो उसे ऐसे नियमों और शर्तों पर जमानत के लिए स्वीकार किया जाएगा जो संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा लगाए जाने के लिए उपयुक्त और उचित समझे जाते हैं। यह देखा गया है कि इस तरह के आदेश धारा 438 द०प्र०स० के तहत प्रदत्त शक्तियों से वंचित हैं। इसके बाद, पैराग्राफ 25 में इस न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"25. इसे याद दिलाने के बाद, वर्तमान में हम केवल यह कह सकते हैं कि वर्तमान की तरह के आदेश पूरी तरह से अस्थिर हैं, क्योंकि यह पूर्वोक्त स्थापित सिद्धांतों और न्यायिक उदाहरणों के विपरीत है। ऐसे पूर्वोदाहरणों से बचना और ऐसे निर्देश जारी करना बौद्धिक तुच्छता है जो कानून के अनुरूप नहीं हैं। न्यायाधीश का यह कर्तव्य है कि वह न्यायिक संतुलन बनाए रखे और ऐसे आदेश के बारे में न सोचे जिससे अधिनिर्णय की प्रक्रिया को आघात पहुंचे। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि बौद्धिक अनुशासन बनाए रखने पर और आगे जब इस तरह का अनुशासन लगातार दिमाग पर पहरा देता है, तो अधिनिर्णय की संस्कृति स्थिर होती है।

69. हमें यह नोट करते हुए दुख हो रहा है कि हबीब अब्दुल्ला जिलानी (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के बावजूद, उच्च न्यायालयों द्वारा पारित ऐसे आदेशों की निंदा करते हुए कि जांच के लंबित रहने के दौरान गिरफ्तारी न करें, भले ही धारा 482 द०प्र०स० या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाएं खारिज कर दी गई हों, इसके बाद भी कई उच्च न्यायालय ऐसे आदेश पारित कर रहे हैं। इस न्यायालय द्वारा घोषित/निर्धारित कानून सभी उच्च न्यायालयों पर बाध्यकारी हैं और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का पालन नहीं

करने से न्याय प्रशासन में बहुत गंभीर प्रभाव पड़ेगा।

70. रावुरी कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के हालिया फैसले में, इस पीठ ने आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा पारित इसी तरह के आदेश को अलग कर दिया, जिसमें, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद भी कि रद्द करने का कोई मामला स्थापित नहीं किया गया था, गिरफ्तारी से सुरक्षा का एक वृहद आदेश दिया गया था। उच्च न्यायालय ने याचिका का निपटारा करते हुए और धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने से इनकार करते हुए दूसरे याचिकाकर्ता-ए2 को गिरफ्तार किए बिना अपराध की जांच पूरी करने और कानून के अनुसार अंतिम रिपोर्ट, यदि कोई हो, दायर करने का निर्देश दिया। उच्च न्यायालय ने यह भी आदेश पारित किया कि दूसरे याचिकाकर्ता को जब भी आवश्यकता हो, जांच एजेंसी के समक्ष पेश होना होगा और जांच एजेंसी के साथ सहयोग करना होगा। हबीब अब्दुल्ला जिलानी (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया, जिसमें विवेचनाधिकारी को दूसरे आरोपी को गिरफ्तार करने से रोक दिया गया था।

71. इस प्रकार, यह पाया गया है कि हबीब अब्दुल्ला जिलानी (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के पूर्ण प्रस्ताव के बावजूद कि जांच पूरी होने और अंतिम रिपोर्ट दायर होने तक गिरफ्तारी न करने का ऐसा आदेश पारित किया गया है, जबकि धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों के प्रयोग में आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने से इनकार करते हुए, जैसा कि ऊपर देखा गया है, उच्च न्यायालयों ने ऐसे आदेश पारित करना जारी रखा है। इसलिए, हम हबीब अब्दुल्ला जिलानी (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को फिर से दोहराते हैं और हम सभी उच्च न्यायालयों को निर्देश देते हैं कि वे हबीब अब्दुल्ला जिलानी (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून और वर्तमान मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का ईमानदारी से पालन करें। जिसका अन्यथा उच्च न्यायालय पालन करने के लिए बाध्य हैं। हम उच्च न्यायालयों को फिर से चेतावनी देते हैं कि जब तक जांच पूरी नहीं हो जाती है और अंतिम रिपोर्ट दायर नहीं की जाती है, तब तक गिरफ्तारी नहीं करने या "कोई कठोर कदम नहीं उठाए जाने" के ऐसे आदेश पारित करने के खिलाफ हम फिर से चेतावनी देते हैं, जबकि धारा 482 द०प्र०स० और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाओं को रद्द करने पर विचार नहीं किया जाता है।

72. अब जहां तक उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित अंतरिम आदेश की वैधता का संबंध है, जिसमें जांच एजेंसी/पुलिस को अभियुक्त के खिलाफ "कोई कठोर कदम नहीं उठाने" का निर्देश दिया गया है, नीचे बताए गए कारणों से यह अस्थिर/कमज़ोर है:

(i) कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित ऐसा पूर्ण अंतरिम आदेश संज्ञेय अपराधों की जांच करने के लिए जांच एजेंसी की शक्तियों को प्रभावित करता है, जो अन्यथा दंड प्रक्रिया संहिता के संगत उपबंधों के अंतर्गत पुलिस का सांविधिक अधिकार/कर्तव्य है;

(ii) कि अंतरिम आदेश एक गूढ़ आदेश है;

अनुवादित

(iii) कि पुलिस द्वारा कोई अवपीड़क कदम न उठाने का ऐसा व्यापक आदेश पारित करते समय उच्च न्यायालय द्वारा कोई कारण नहीं बताया गया है;

(iv) यह स्पष्ट नहीं है कि उच्च न्यायालय का कोई अवपीड़क कदम न उठाने का आदेश पारित करने का क्या अभिप्राय है, क्योंकि आक्षेपित अंतरिम आदेश से यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय के ध्यान में यह लाया गया था कि जहां तक अभियुक्तों का संबंध है, वे पहले से ही विद्वान सत्र न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए अंतरिम संरक्षण द्वारा संरक्षित हैं, और इसलिए उच्च न्यायालय के पास "कोई कठोर कदम नहीं उठाने" का अंतरिम आदेश पारित करने का कोई और कारण और/या औचित्य नहीं था। यदि उच्च न्यायालय का मतलब जांच एजेंसी/पुलिस को आगे जांच न करने का निर्देश देने के लिए "कोई दंडात्मक कदम नहीं" का अंतरिम आदेश पारित करना है, तो उस मामले में, बिना कोई कारण बताए और यहां तक कि जांच एजेंसी को संज्ञेय अपराध के आरोपों की आगे जांच करने की अनुमति दिए बिना ऐसा आदेश अन्यथा टिकाऊ/पुख्ता नहीं है। इसने संज्ञेय अपराधों की जांच करने के लिए जांच एजेंसी के अधिकार को प्रभावित किया है। इस तरह का आदेश पारित करते समय, उच्च न्यायालय ने किसी भी कारण का संकेत नहीं दिया है।

10. उपरोक्त पहलू पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर (उपरोक्त) के मामले में विचार किया गया था, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आपराधिक कानून के विभिन्न प्रावधानों और विभिन्न निर्णयों के विस्तृत विश्लेषण के बाद निर्णय के पैरा 80 में निष्कर्ष निकाला गया है जो निम्नानुसार है: -

"80. उपरोक्त के मद्देनजर और ऊपर बताए गए कारणों से, मुख्य/कोर मुद्दे पर हमारे अंतिम निष्कर्ष, क्या उच्च न्यायालय को धारा 482 द०प्र०स० और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रद्द करने वाली याचिका के लंबित रहने के दौरान जांच पर रोक लगाने का अंतरिम आदेश पारित करना और/या "कोई कठोर कदम नहीं उठाना" उचित होगा और क्या उच्च न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही/शिकायत/प्राथमिकी को खारिज करते हुए/निपटाते हुए/व्यवरहत नहीं करते हुए/नहीं हटाते हुए, जांच के दौरान या धारा 173 द०प्र०स० के तहत अंतिम रिपोर्ट/चार्जशीट दायर किए जाने तक आरोपी को गिरफ्तार नहीं करने या "कोई कठोर कदम नहीं उठाने" का आदेश पारित करने में न्यायसंगत होना चाहिए; हमारे अंतिम निष्कर्ष इस प्रकार हैं:

(i) संहिता के अध्याय XIV में अंतर्विष्ट दंड प्रक्रिया संहिता के संगत उपबंधों के अंतर्गत पुलिस को संज्ञेय अपराध की जांच करने का सांविधिक अधिकार और कर्तव्य है;

(ii) अदालतें संज्ञेय अपराधों की किसी जांच को विफल नहीं करेंगी;

(iii) यह केवल उन मामलों में है जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में किसी भी प्रकार के संज्ञेय अपराध या अपराध का खुलासा नहीं किया गया है कि न्यायालय जांच जारी रखने की अनुमति नहीं देगा; (iv) रद्द करने की शक्ति का प्रयोग सतर्कता के साथ संयम से किया जाना चाहिए, जैसा कि दुर्लभतम मामलों में देखा गया है

(मृत्युदंड के संदर्भ में गठन के साथ भ्रमित नहीं होना चाहिए)।

(v) किसी प्राथमिकी/शिकायत, जिसे रद्द करने की मांग की गई है, की जांच करते समय, न्यायालय प्राथमिकी/शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के बारे में जांच शुरू नहीं कर सकता है;

(vi) आपराधिक कार्यवाहियों को प्रारंभिक चरण में बाधित नहीं किया जाना चाहिए;

(vii) शिकायत/प्राथमिकी को रद्द करना सामान्य नियम की बजाय एक अपवाद होना चाहिए;

(viii) सामान्यतया, न्यायालयों को पुलिस के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करने से रोका जाता है क्योंकि राज्य के दोनों अंग गतिविधियों के दो विशिष्ट क्षेत्रों में कार्य करते हैं और एक अंग को दूसरे क्षेत्र में अतिक्रमण नहीं करना चाहिए;

(ix) न्यायपालिका और पुलिस के कार्य परस्पर प्रसंग के नहीं बल्कि पूरक हैं;

(x) अपवादिक मामलों को छोड़कर, जहां गैर-हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप न्याय की हत्या हो जाएगी, न्यायालय और न्यायिक प्रक्रिया को अपराधों की जांच के चरण में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए;

(xi) न्यायालय की असाधारण और अंतर्निहित शक्तियाँ न्यायालय को उसकी सनक या छल के अनुसार कार्य करने के लिए मनमानी अधिकारिता प्रदान नहीं करती हैं;

(xii) प्रथम सूचना रिपोर्ट विश्वकोश नहीं है जिसमें सूचित किए गए अपराध से संबंधित सभी तथ्यों और ब्यौरों को प्रकट किया जाना चाहिए। इसलिए, जब पुलिस द्वारा जांच चल रही है, तो अदालत को प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों के गुण-दोष में नहीं जाना चाहिए। पुलिस को जांच पूरी करने की अनुमति दी जानी चाहिए। अस्पष्ट तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना असामयिक होगा कि शिकायत/प्राथमिकी जांच के योग्य नहीं है अथवा यह कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। जांच के बाद, यदि विवेचनाधिकारी यह पाता है कि शिकायतकर्ता द्वारा किए गए आवेदन में कोई सार नहीं है, तो विवेचनाधिकारी विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष एक उपयुक्त रिपोर्ट/सारांश दायर कर सकता है जिस पर ज्ञात प्रक्रिया के अनुसार विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा विचार किया जा सकता है;

(xiii) धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति बहुत व्यापक है, लेकिन व्यापक शक्ति प्रदान करने के लिए अदालत को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। यह अदालत पर एक कठिन और अधिक मेहनती कर्तव्य डालता है;

(xiv) हालांकि, साथ ही, न्यायालय, यदि वह उचित समझता है, तो रद्द करने के मापदंडों और कानून द्वारा लगाए गए आत्म-संयम के संबंध में, विशेष रूप से आर.पी कपूर (उपरोक्त) और भजन लाल (उपरोक्त) के मामलों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों के संबंध में, प्राथमिकी / शिकायत को रद्द करने का अधिकार क्षेत्र है;

(xv) जब कथित अभियुक्त द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने का अनुरोध किया जाता है और न्यायालय जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करता है, तो उसे केवल यह विचार करना होता है कि क्या प्राथमिकी में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध होने का खुलासा करते हैं या नहीं। अदालत को गुण-दोष के आधार पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि आरोपों के गुण-दोष संज्ञेय अपराध हैं या नहीं और अदालत को जांच

अनुवादित

एजेंसी/पुलिस को प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों की जांच करने की अनुमति देनी होगी;

(xvi) धारा 482 द०प्र०स० और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए रद्द करने वाली याचिका में अंतरिम आदेश पारित करते समय उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त मानदंड लागू होंगे और/या पूर्वोक्त पहलुओं पर विचार किया जाना आवश्यक है। तथापि, रद्द करने वाली याचिका के लंबित रहने के दौरान जांच पर रोक लगाने का अंतरिम आदेश सावधानी से पारित किया जा सकता है। इस तरह के अंतरिम आदेश को नियमित, आकस्मिक और / या यांत्रिक रूप से पारित करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। आम तौर पर, जब जांच प्रगति पर होती है और तथ्य धुंधले होते हैं और सभी साक्ष्य/सामग्री उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं होती है, तो उच्च न्यायालय को गिरफ्तार नहीं करने या "कोई कठोर कदम नहीं उठाने" का अंतरिम आदेश पारित करने से खुद को रोकना चाहिए और आरोपी को सक्षम अदालत के समक्ष धारा 438 द०प्र०स० के तहत अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने के लिए कहा जाना चाहिए। उच्च न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका को खारिज करते हुए या जांच पूरी होने तक और/या धारा 173 द०प्र०स० के तहत अंतिम रिपोर्ट/चार्जशीट दायर होने तक या जांच पूरी होने तक गिरफ्तार नहीं करने और/या "कोई कठोर कदम नहीं उठाने" का आदेश पारित करने में न्यायसंगत नहीं होगा।

(xvii) यहां तक कि ऐसे मामले में जहां उच्च न्यायालय की प्रथम दृष्टया राय है कि धारा 482 द०प्र०स० और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय व्यापक मापदंडों पर विचार करने के बाद आगे की जांच के अंतरिम स्थगन के लिए एक असाधारण मामला बनता है, उच्च न्यायालय को संक्षिप्त कारण बताना होगा कि इस तरह के अंतरिम आदेश की आवश्यकता क्यों है और/या पारित करने की क्या आवश्यकता है ताकि यह न्यायालय द्वारा बुद्धि प्रयोग को प्रदर्शित कर सके और उच्च मंच इस बात पर विचार कर सके कि इस तरह के अंतरिम आदेश को पारित करते समय उच्च न्यायालय में क्या तौला गया था।

(xviii) जब कभी उच्च न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त पैरामीटरों के भीतर कोई अवपीड़क कदम न उठाने का अंतरिम आदेश पारित किया जाता है, तो उच्च न्यायालय को यह स्पष्ट करना चाहिए कि कोई अवपीड़क कदम न उठाने से इसका क्या अर्थ है क्योंकि शब्द कोई अवपीड़क कदम नहीं अपनाया जाना चाहिए जिसे बहुत अस्पष्ट और/या व्यापक कहा जा सकता है जिसे गलत समझा जा सकता है और/या गलत तरीके से लागू किया जा सकता है।

11. यह देखा गया है कि उपरोक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस हद तक कहा है कि याचिका को खारिज करते या रद्द करते समय धारा 173 द०प्र०स० (3) के तहत अंतिम रिपोर्ट या आरोप पत्र दायर किए जाने तक जांच के दौरान या जांच पूरी होने तक गिरफ्तार न करने या कोई कठोर कदम उठाने के ऐसे कोई आदेश धारा 482 द०प्र०स० के तहत या भारत के संविधान का अनुच्छेद 226 के तहत पारित नहीं किए जाएंगे।

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा है कि ऐसे मामले में भी जहां उच्च न्यायालय की प्रथम दृष्टया राय है कि व्यापक मापदंडों पर

अनुवादित

विचार करने के बाद आगे की जांच पर अंतरिम रोक लगाने के लिए एक असाधारण मामला बनाया गया है, तब भी अंतरिम आदेश पारित करते समय कारणों को दर्ज किया जाना आवश्यक है ताकि यह विद्वान न्यायालय द्वारा बुद्धि के प्रयोग को प्रदर्शित कर सके। वर्तमान मामले में, यह प्रतिवादी संख्या-4 द्वारा 25.04.2022 को दायर की गई आक्षेपित प्राथमिकी के साथ-साथ शिकायत से स्पष्ट है, जिसमें प्रतिवादी संख्या-2/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, गोरखपुर के निर्देश के बाद, संबंधित सर्कल अधिकारी ने मामले की जांच करने के बाद, 29.05.2022/30.05.2022 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें कहा गया था कि "याचिकाकर्ता अधिवक्ता माधव तिवारी के मार्गदर्शन में" नफीसा गैंग "के नाम से एक गिरोह चलाने में शामिल हैं, और ये एक सक्रिय गिरोह है", इसलिए, प्रथम दृष्टया, गिरोह के सदस्यों की भागीदारी जैसा कि माधव तिवारी, अधिवक्ता के संरक्षण में दिनांक 25.04.2022 की शिकायत में आरोप लगाया गया है, बनता है। ऐसी परिस्थितियों में, जब स्पष्ट रूप से संज्ञेय अपराध का मामला बनता है, तो ऐसा कोई व्यापक आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। अधिकारियों को मामले की जांच पूरी करनी होती है और खुद को निर्दोष व्यक्ति दिखाने वाले व्यक्ति आपराधिक कानून के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत सहारा ले सकते हैं जो धारा 438 द०प्र०स० के तहत मामले में अग्रिम जमानत मांगने के लिए है।

20. निवेदिता शर्मा बनाम सेल्युलर ऑपरेटर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय; (2011) 14 एस.सी.सी. 337, ने माना है कि "जहां क़ानून द्वारा अपील का पदानुक्रम प्रदान किया गया था, एक पक्ष को राहत के लिए रिट क्षेत्राधिकार का सहारा लेने से पहले वैधानिक उपायों को समाप्त करना चाहिए, लेकिन वैकल्पिक उपाय होने के बावजूद रिट याचिका को कई राहतों की मांग करते हुए पसंद किया गया है, इसलिए, याचिका पर विचार नहीं किया गया था क्योंकि योग्यता से रहित है और सुनवाई योग्य नहीं है और खारिज कर दिया गया। वर्तमान मामले में, धारा 438 द०प्र०स० के तहत अग्रिम जमानत मांगने या धारा 482 द०प्र०स० के तहत याचिका दायर करने के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाए बिना, प्राथमिकी या आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की मांग करते हुए, उन्होंने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका दायर करने का सहारा लिया है।

15. प्राथमिकी की सामग्री को देखते हुए, याचिकाकर्ताओं के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है, जिसके लिए अधिकारियों द्वारा विस्तृत जांच की आवश्यकता होती है। ऐसी परिस्थितियों में, मामला दुर्लभतम मामलों की श्रेणी में नहीं आता है, इसलिए, आपराधिक न्यायशास्त्र के वैधानिक प्रावधानों का पालन किए बिना, प्राथमिकी को रद्द करने और याचिकाकर्ताओं को गिरफ्तार नहीं करने के लिए अंतरिम राहत की प्रार्थना करने वाली राहत के संबंध में, यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका पर विचार करने से बचता है।

15. पूर्वोक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका खारिज की जाती है।

16. हालांकि, याचिकाकर्ता अग्रिम जमानत के लिए धारा 438 द०प्र०स० के तहत उचित आवेदन दायर करने के लिए स्वतंत्र हैं और उसके बाद, धारा 482 द०प्र०स० के तहत प्राथमिकी रद्द करने के लिए आवेदन दायर कर सकते हैं।

अनुवादित

(2023) 2 ILRA 989

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 31.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मयंक कुमार जैन,

आपराधिक अपील संख्या 404/1988

किशोरी

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री वी.एस.सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.जी.ए.

आपराधिक कानून - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 3 - गवाह की परीक्षण - सूक्ष्म विरोधाभास - जब सारहीन - किसी को अभिलेख पर मौजूद अन्य सबूतों के साथ संपूर्ण साक्ष्य पर विचार करना आवश्यक है - केवल एक वाक्य यहां या वहां और वह भी पूछे गए प्रश्न के लिए जिरह में बचाव पक्ष को अकेले नहीं माना जा सकता - यदि गवाह की गवाही में मामूली विरोधाभासों पर मामूली विसंगतियां हैं जो अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती हैं तो इसे मामूली विसंगतियों पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए - अभियोजन वाद में सूक्ष्म विसंगति , गवाहों या अभियोजन मामले की विश्वसनीयता को प्रभावित नहीं करेगा (पैरा 31, 34)

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 धारा 308 - गैर इरादतन हत्या करने का प्रयास - एफ.आई.आर. में, पीडब्लू-1, वादी ने उल्लेख किया है कि घटना के समय, वह सिद्ध और महिपाल के साथ मौके पर मौजूद था - अपने में सबूतों के आधार पर, उन्होंने घटनास्थल पर मौजूद होने की पुष्टि की - जिरह में सूक्ष्म विरोधाभास हुआ, जब पीडब्लू-1 ने कहा कि जब घायल ने शोर मचाया, तो वे उसकी ओर दौड़े - लेकिन उसी क्षण पीडब्लू1, वादी ने कहा कि वह स्वयं घटना देखी थी - जिरह के दौरान इस गवाह से खास सवाल पूछा गया, "जब आपने घटना देखी थी तो पूछा क्यों?" जिस पर उन्होंने उत्तर दिया "मैंने यह नहीं पूछा कि मेरे भाई को किसने मारा, मैंने केवल यह पूछा कि उसे भाले से कहाँ मारा गया था" - आयोजित, समग्र रूप से पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के सबूत, आत्मविश्वास को प्रेरित करता है और सच्चाई का आभास देता है - घायल गवाह पीडब्लू-2 राम सनेही, पीडब्लू-1 राम आसरे के साक्ष्यों के साथ-साथ सूचक के साथ-साथ चश्मदीद गवाह की हैसियत से और चिकित्सीय साक्ष्यों पर विचार करते हुए, आरोपी किशोरी द्वारा बचाव में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य अभियोजन तथ्य के बारे में कोई संदेह पैदा नहीं करते हैं - विचारणीय न्यायालय ने अपीलकर्ता को आईपीसी की धारा 308 के तहत सही दोषी ठहराया। (पैरा 39, 40)

अनुमत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राकेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 (3) एससीसी (सीआरआई) 149
2. सचिन कुमार सिंहराहा बनाम एम.पी. राज्य (2019) 3 एससीसी सीआरआई 575

अनुवादित

3. जय प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2021) 3 एससीसी क्रि. 306

(माननीय न्यायमूर्ति मयंक कुमार जैन द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान आपराधिक अपील, अपराध संख्या 110/1985 थाना, खन्ना पुलिस स्टेशन, हमीरपुर जिले में पंजीकृत हुआ, भा.दं.सं. की धारा 308 में पंजीकृत से उत्पन्न, सत्र परीक्षण संख्या 3/1987 (राज्य बनाम किशोरी) के तहत, विद्वान विशेष सत्र न्यायाधीश (आवश्यक वस्त्रादि अधिनियम) हमीरपुर श्री उदई प्रताप सिंह कुशवाहा द्वारा दिनांक 12.02.1988 को अभियुक्त को भा.दं.सं. की धारा 308 के तहत दोषी माना गया और उसे तीन साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई, से व्यथित हो कर दायर की गई है।

2. मामले का संक्षिप्त तथ्य हैं कि सूचनाकर्ता राम आसरे ने 28.06.1985 को पुलिस स्टेशन खन्ना, मोहरहा उप-मण्डल, हमीरपुर जिले में एक लिखित रिपोर्ट **(एक्स. का-1)** प्रस्तुत की, जिसमें उन्होंने यह कहा कि उनके भाई राम सनेही सुबह लगभग 8:45 बजे जानवरों के साथ तालाब को पार कर रहे थे। जब वह तिर्रा के घर के सामने पहुंचा, तो अपीलार्थी किशोरी वहां मौजूद थे और उनके हाथ में एक बरमा था। सूचना देने वाले के भाई को देखकर उसने कहा, 'तुम मेरे खिलाफ हो बहुत सारे।' उसने अपने भाई के पेट के दाहिने ओर बरमे से मारा। सिद्धा पुत्र बैजू, सूचना देने वाले खुद और उनके रिश्तेदार महिपाल पुत्र भगीरथ ने तुरंत आकर राम सनेही को बचाया।"

3. उपर्युक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, आपील द्वारा आरोपित किशोरी के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 324 के तहत मामला संख्या 110/1985 पंजीकृत किया गया।

4. जांच प्रक्रिया को प्रारंभ किया गया और यह उप-निरीक्षक प्रदीप कुमार सिंह को सौंपा गया और इसके बाद सहायक-उप-निरीक्षक राम मिलन दुबे को सौंपा गया, जिन्होंने प्रारंभिक औपचारिक प्रक्रियाओं को पूरा करने के बाद घायल राम सनेही का चिकित्सा परीक्षण करवाया। उन्होंने सूचना देने वाले, राम सनेही, घायल, गवाह सिद्धा, महिपाल, और अन्यों के बयान दर्ज किए। उन्होंने घटना स्थल की जांच की और स्थल योजना तैयार की। जांच पूर्ण होने के बाद, उन्होंने आवेदक-अपीलार्थी के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 327/307 के तहत आरोपनामा प्रस्तुत किया।

5. मामला सत्र न्याय के पास प्रेषित किया गया और इसे सत्र विचारण संख्या 3/87 के रूप में पंजीकृत किया गया, जिसका शीर्षक "राज्य बनाम किशोरी" था।

6. अपीलार्थी-मुकदमा के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 307 के तहत आरोपनामा तैयार किया गया, जिसे उसने नकारा और खुद को याचिका दर्ज करने का दावा किया।

7. अपीलकर्ता ने अपने मामले को साबित करने के लिए दो साक्ष्यों को पेश किया: पी.डब्ल्यू.-1 राम आसरे, शिकायतकर्ता और पी.डब्ल्यू.-2 राम सनेही, चोटिल व्यक्ति। इसके अलावा, औपचारिक साक्ष्यों के रूप में पी.डब्ल्यू.-3 डॉक्टर पी.के. भदौरा, पी.डब्ल्यू.-4 एच.सी. नरवादा प्रसाद, पी.डब्ल्यू.-5, एस.आई. राम मिलन दुबे, जांच अधिकारी, और पी.डब्ल्यू.-6 डॉक्टर के.सी. गुप्ता शामिल थे।

8. मुकदमा गवाह के साक्ष्यों के बाद, अपीलार्थी-मुकदमा किशोरी का बयान धारा 313 के तहत दर्ज की गई। उन्होंने मुकदमे की कथा

अनुवादित

का खंडन किया और साथ ही इस बात खंडन किया कि उन्होंने किसी भी तरह की चोट राम सहेनी को बरमे से पहुंचाई। उन्होंने इसके अलावा कहा कि उनके खिलाफ आरोपनामा झूठी और अन्यायपूर्ण जांच के आधार पर दाखिल किया गया है। उन्होंने कहा कि उस पर शत्रुता के कारण मामला दर्ज किया गया है और इस तथ्य पर विशेष बल दिया कि गवाह राम आसरे और राम सनेही उनके खिलाफ नफ़रत रखते हैं।

उन्होंने आगे कहा कि राम रति सूचना देने वाले राम आसरे के चचेरे भाई हैं। इस घटना से पहले राम रति के ससुराली राम कृपाल की हत्या हुई थी। बांके लाल और अन्य लोगों को अपीलार्थी बताया गया और उन्हें उच्च न्यायालय द्वारा सजा सुनाई गई। राज्य सरकार के आदेशों के तहत, बांके लाल को पैरोल पर छोड़ दिया गया था। अपीलार्थी के भाई राम चरण ने वर्तमान घटना से पहले बांके लाल के लिए सुरेटी दी थी। उन्होंने दावा किया कि उन्होंने राम सनेही और राम आसरे को अपनी खेत में अपने फसल रखने की अनुमति नहीं दी थी, और इस कारण उन्हें इस मामले में झूठा आरोप लगा दिया गया है।

9. अपीलार्थी-मुकदमा द्वारा अपनी बचाव के रूप में डी.डब्ल्यू-१ रमेश्वर प्रसाद पाण्डेय प्रस्तुत किए गए।

10. मैंने अपीलार्थी के पक्ष के प्रशासक श्री वी.एस. सिंह और राज्य के लिए सहायक सरकारी विद्वान अधिवक्ता श्री एम.पी. सिंह गौर की बात सुनी है। मैंने मामले के रिकॉर्ड का अवलोकन किया और जो सबूत रिकॉर्ड पर उपलब्ध है, उसे फिर से मूल्यांकित किया है।

11. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह दावा किया है कि विद्वान विचरण न्यायालय ने साक्ष्यों को सही तरीके से मूल्यांकन नहीं किया और अपीलार्थी को गलत तरीके से सजा दी. प्र.सू.रि में शिकायतकर्ता ने दावा किया कि उन्होंने घटना को अपनी नजर से देखा, लेकिन यह कहा जा रहा है कि वास्तविक घटना को उन्होंने देखा नहीं। उन्हें तभी पता चला जब चोटिल व्यक्ति राम सनेही ने उन्हें घटना के बारे में सूचित किया। इसका मतलब है कि उन्होंने घटना को उनके सामने नहीं देखा। इसके अलावा, घटना के पीछे की प्रेरणा अस्पष्ट है। महत्वपूर्ण गवाह त्रिया और सिद्धा, जिनका दावा किया गया कि वे घटना के समय मौजूद थे, उन्हें मुकदमा द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया, साक्ष्यों के द्वारा तथ्य प्रकट होता है कि शिकायतकर्ता ने चोटिल व्यक्ति से कहा कि वह अपीलकर्ता के खिलाफ संकेत करें और इसके परिणामस्वरूप, चोटिल व्यक्ति ने अपीलकर्ता के खिलाफ संकेत किया, हालांकि ऐसा कोई घटना नहीं घटी थी। जांच अधिकारी ने मामले की न्यायिक जांच न्यायपूर्ण रूप से नहीं किया और उन्होंने अपीलकर्ता के खिलाफ अनित्य ढंग से आरोपनामा प्रस्तुत किया। इसके अलावा, शिकायतकर्ता पी. डब्ल्यू-1 राम आसरे और घायल पी. डब्ल्यू-2 राम सनेही के साक्ष्यों के बीच महत्वपूर्ण प्रतिरोध है। चिकित्सा रिपोर्ट दृष्टिकोण के साथ मेल नहीं खाती है। शिकायतकर्ता द्वारा बताई गई चोट के स्थान की विवरण घायल के द्वारा उनके बयान के साथ समर्थन नहीं पाती है। यह भी दावा किया जा रहा है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को गलत तरीके से सजा दी है। अपीलकर्ता ने अपनी बचाव में डी.डब्ल्यू-१ रमेश्वर प्रसाद पाण्डेय को पेश किया, शिकायतकर्ता के साथ अपीलार्थी के बीच की दुश्मनी को समर्थन करने के लिए। इसके परिणामस्वरूप, यह दावा किया जा रहा है कि

अनुवादित

इस मामले में अपीलार्थी को गलत तरीके से शामिल किया गया था। इसलिए, यह दावा किया जा रहा है कि इस आपील को मंजूरी देनी चाहिए।

12. उपर्युक्त के खिलाफ, शिकायतकर्ता और चोटिल व्यक्ति ने अपनी गवाही द्वारा घटना को समर्थन दिया है। दृष्टिकोण और चिकित्सा तथ्यों में कोई विरोध नहीं है। प्रकरण के अपीलकर्ता ने अपराध के पीछे के किसी कारण को अभियोग पक्ष ने सफलतापूर्वक सिद्ध किया है। इसके आगे यह दावा किया जा रहा है कि अपीलकर्ता को सही तरीके से दोषी पाया गया है और न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों को सही तरीके से मूल्यांकन किया है। इस अपील को खारिज कर देना चाहिए और न्यायालय का निर्णय मान्य किया जाना चाहिए।

13. वर्तमान मामले में तय करना है कि क्या 28.06.1985 को, प्रस्तावित अभियुक्त किशोरी ने राम सनेही को छेनी से मारकर उसके पेट में चोट पहुंचाई।

14. पी. डब्ल्यू-1 राम आसरय मामले के सूचनाकर्ता हैं। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षा में कहा कि घटना के दिन, लगभग सुबह 8:45 बजे, वे तिर्रा के घर के सामने मौजूद थे। सिद्धा और महीपाल पहले से ही वहां बैठे थे। जब उनके भाई अपने पशुओं के साथ तिर्रा के घर के सामने पहुंचे, तो प्रस्तावित अभियुक्त किशोरी, जिनके पास एक छेनी थी, उनके पास आकर बोले कि वह उसके खिलाफ बहुत खड़ा है। प्रस्तावित अभियुक्त ने उसे मरने की धमकी दी। किशोरी ने राम सनेही को छेनी से मारा और उनके पेट के बाएं ओर चोट पहुंचाई। छेनी पेट की ओर मारी गई थी, जो शरीर से गुजरकर पीठ की ओर थोड़ी बहुत आगे निकली। उन्हें बचाया गया। अभियुक्त किशोरी वहां से भाग गए। इस साक्षी ने लिखित रिपोर्ट को (एक्स. का-1) के रूप में साबित किया है।

15. पी.डब्ल्यू.-2 राम सनेही घायल साक्षी हैं। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षा में कहा कि वह अपीलार्थी/प्रस्तावित अभियुक्त को जानते हैं। घटना के समय, वह अपने पशुओं को तालाब के पार ले जा रहे थे। जब उन्होंने तालाब के पास तिर्रा के घर के सामने पहुंचा, तो अपीलार्थी किशोरी एक भारी छेनी के साथ उससे मिला। उसने कहा कि इस साक्षी के वह बहुत खिलाफ है और वह उसे मार देगा। इसके कहने पर, अपीलार्थी किशोरी ने उसे छेनी से पीठ के दाएं ओर मारा, जो उसके शरीर से गुजरकर थोड़ी देर के लिए बाहर निकल आई। वहां पहुंचे राम आसरय, महीपाल और गिड्डा ने उसे बचाया। अपीलार्थी-प्रस्तावित अभियुक्त ने उसके शरीर से छेनी को हटा दिया और छेनी के साथ भाग गए। उसके भाई उसे पुलिस स्टेशन खन्ना ले गए। उसके चोट को पुलिस कर्मियों ने देखा। उसका चिकित्सा परीक्षण मौदहा अस्पताल में किया गया। वहां से वह हमीरपुर गए, जहां उसका एक्स-रे किया गया।

16. पी.डब्ल्यू.-3 डॉक्टर पी.के. भदौरा अपने मुख्य परीक्षा में कहते हैं कि 28.06.1985 को सुबह 10:00 बजे, मौदहा के सार्वजनिक स्वास्थ्य केंद्र (PHC) के चिकित्सक के रूप में, उन्होंने राम सनेही की जाँच की। उनके शरीर पर निम्नलिखित चोटें मिलीं; -

1. पीछे के दाएं ओर पेट के पीछे के हिले हुए रिब की मार्जिन के नीचे सेमी सर्कुलर आकार की चोट, 1.5 सेंमीटर लंबाई और 1 सेंमीटर चौड़ा, है, जिसके मार्जिन अंदर की ओर मोड़े हुए हैं।

अनुवादित

मांसपेशियाँ बाहर निकल रही हैं और वांछित रक्तस्राव जारी है।

2. पेट पर ½ सेमी सर्कुलर चोट, नाभि से ऊपर 4 सेमीटर और उम्बिलिकल के दाएं ओर, है। मार्जिन अंदर की ओर मोड़ी हुई है और ताजा खून निकल रहा है।

एक्स-रे की सलाह दी गई थी।

17. उनकी राय में, रोगी की स्थिति खराब थी। रोगी को निगरानी में रखा गया। उपरोक्त चोटें संभवत: तीर की तरह किसी तीक्ष्ण वस्तु द्वारा हो सकती हैं। चोट नंबर 1 वाहन के प्रवेशन चोट थी और चोट नंबर 2 बाहर निकलने वाली चोट थी। इसकी अवधि ताजा थी। दोनों चोटें संभावित रूप से 23.06.1985 को सुबह 8:45 बजे को हुई हो सकती हैं। साक्षी ने चिकित्सा रिपोर्ट को **एक्स. का-3** के रूप में साबित किया है।

18. पी.डब्ल्यू.-4 एच.सी. नर्वदा आवस्थी ने अपने मुख्य परीक्षा में कहा कि 28.06.1985 को उन्होंने सूचना देने वाले राम आसरय द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट के आधार पर प्र.सू.रि तैयार की। इसकी प्रमाणीकरण जी.डी. में रिपोर्ट नंबर 14 के साथ 28.06.1985 को सुबह 9:30 बजे में किया गया था। इस साक्षी ने प्र.सू.रि को **एक्स. का-3** और जी.डी. को **एक्स. का-4** के रूप में साबित किया। उन्होंने राम सनेही की चोटों को देखा था। उसे मौदहा के सरकारी अस्पताल में चिकित्सा परीक्षण के लिए भेजा गया था।

19. पी.डब्ल्यू.-5 एस.आई. राम मिलन दुबे इस मामले के जांच अधिकारी हैं। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षा में कहा कि मामला उनकी उपस्थिति में पंजीकृत हुआ था, क्योंकि पहले जांच अधिकारी अवकाश पर थे, इसलिए जांच उन्हें सौंपी गई थी। उन्होंने प्रारंभिक प्रक्रिया पूरी की और घटनास्थल पर पहुंचकर सूचना देने वाले, सिद्धा, महीपाल और अन्य लोगों के बयानों को दर्ज किया। उन्होंने घटनास्थल की जांच की और साइट प्लान तैयार किया, जिसे उन्होंने **एक्स. का-5** के रूप में साबित किया। उन्होंने मामले को धारा 324 आई.पी.सी. से धारा 307 आई.पी.सी. में बदल दिया। उन्होंने घायल के बयान को दर्ज किया। उन्होंने अपीलार्थी-प्रस्तावित अभियुक्त किशोरी के खिलाफ चार्जशीट प्रस्तुत की, जिसे उन्होंने **एक्स. का-6** के रूप में साबित किया।

20. पी.डब्ल्यू.PW-6 डॉक्टर के.सी. गुप्ता ने अपने मुख्य परीक्षा में कहा कि 06.07.1985 को वह जिला अस्पताल में रेडियोलॉजिस्ट के पद पर नियुक्त थे। घायल राम सनेही की पेट और छाती का एक्स-रे उनकी निगरानी में किया गया और वह एक्स-रे रिपोर्ट तैयार की। एक्स-रे प्लेट के आधार पर, उन्होंने दाएं पसली के आखिरी कोने पर एक फ्रैक्चर पाया। साक्षी ने एक्स-रे रिपोर्ट को **एक्स. का-7** और एक्स-रे प्लेट को **एम एक्स. 1** के रूप में साबित किया।

21. डी.डब्ल्यू-1 रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय ने अदालत में दिखाया कि वह बांके लाल के संबंधित रिकॉर्ड के आधार पर गवाह थे। एंट्री सीरियल नंबर 72 में बांके लाल के बॉण्ड्स से संबंधित है। राम चरण, गणेश के पुत्र, ने बांके लाल के लिए सुरक्षा जमा की थी, जिसे परोल अधिकारी द्वारा 25.08.1984 को स्वीकृत किया गया था। उन्होंने संबंधित अधिकारी के हस्ताक्षर की पहचान की। उन्होंने सुरक्षा बॉण्ड की प्रतिलिपि को **एक्स.खा -1** के रूप में साबित किया।

22. "आईपीसी की धारा 308 प्रदान करती है: -

सदोष मानव वध का प्रयास -

"जो कोई भी ऐसे इरादे या ज्ञान के साथ और ऐसी परिस्थितियों में कोई कार्य करता है कि, यदि उस कार्य के कारण उसकी मृत्यु हो

जाती है, तो वह गैर इरादतन हत्या का दोषी होगा, उसे एक अवधि के लिए कारावास से दंडित किया जाएगा जिसे बढ़ाया जा सकता है। तीन साल, या जुर्माना, या दोनों; और, यदि ऐसे कृत्य से किसी व्यक्ति को चोट पहुंचती है, तो उसे सात साल तक की कैद या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जाएगा।"

23. "अपने उच्चरण के दौरान अदालत के समक्ष एक (पी. डब्ल्यू-1) राम आसरे, जो उपयुक्त और पीड़ित गवाह थे, और (पी. डब्ल्यू2) राम सनेही, जो चोट प्राप्त गवाह थे, अभियोजन पक्ष की ओर से जो कहानी प्रमाणित की थी, कि घटना के दिन, लगभग सुबह 8:45 बजे, जब राम आसरे झील की ओर बढ़ रहे थे, तब वे आरोपी -अपीलेंट किशोरी से मिले। किशोरी, जिनके हाथ में एक भाला था, ने कहा कि वह उसके खिलाफ बहुत गुस्सा है और उसको मारने की धमकी दी। किशोरी ने राम सनेही को भाला से मारा और उनके पेट के बाएं ओर चोट पहुँचाई। भाला पेट की ओर मारा गया था, जो उनके शरीर के अंदर गया और पीठ की ओर थोड़ा सा बाहर आया। चोट प्राप्त गवाह ने बताया कि आरोपी ने उनके शरीर से भाला निकाल लिया और भाले के साथ भाग गए।"

26. प्राप्त किए गए गवाहों में, तथ्य सूचना देने वाले व्यक्ति और चोट प्राप्त गवाह के बयानों में चोट के स्थान के बारे में एक असंगतता को दिखाया गया। प्राप्त बयानिका के हिसाब से, तथ्य सूचना देने वाले व्यक्ति ने प्राथमिक सूचना रिपोर्ट (प्र.सू.रि) में यह कहा कि उनके भाई, राम सनेही, को आरोपी ने पेट के दाहिने ओर मारा था। हालांकि, उनके न्यायालय में दिये गए बयान में, तथ्य सूचनाकर्ता व्यक्ति ने कहा कि आरोपी ने उनके भाई को एक भाले से पेट के बाएं ओर मारा ! यहाँ नेत्र साक्ष्य एवं मेडिकल साक्ष्य के मध्य विसंगति है जो की अभियोग पक्ष के कथन को झूठ साबित करता है।

27. इस तर्क को ध्यान में रखते हुए, इसे यहाँ उल्लिखित करना महत्वपूर्ण है कि प्र.सू.रि में और चोट प्राप्त गवाह द्वारा वर्णित चोट का स्थान एक ही है। इसके अलावा, (पी. डब्ल्यू) 3 डॉक्टर पी.के. भदुरा ने दायीं ओर के पेट के पीठ में चोट संख्या 1 और 2 को पाया। चोट संख्या 1 वाहन की घुसपैठ चोट थी और चोट संख्या 2 बाहर निकलने वाली चोट थी। दोनों चोटें ताजगी से थीं और संभावना है कि इन्हें 23.06.1985 को सुबह 8:45 बजे किया गया था। इसके अलावा, (पी. डब्ल्यू) 6 डॉक्टर के.सी. गुप्ता, रेडियोलॉजिस्ट, ने दायीं पसली के आखिरी कोने में एक टूट की रिकॉर्ड की। इसलिए, चोट प्राप्त गवाह के पेट के दाहिने ओर स्थित चोट को चोट प्राप्त गवाह के मौखिक साक्ष्य और चिकित्सा साक्ष्य से समर्थन मिलता है। उपर्युक्त मूल्यांकन के दृष्टिकोण से, यह पाया जाता है कि मौखिक साक्ष्य चिकित्सा साक्ष्य के साथ मेल खाता है।

28. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने बलपूर्वक यह दावा किया कि शिकायतकर्ता ने अपनी प्र.सू.रि में कहा कि उसने आरोपी द्वारा एक भाले से अपने भाई राम सनेही को मारते देखा। उसने अपने आप को घटना के साक्षी कहा, लेकिन वास्तव में वह घटना के साक्षी नहीं थे। उसे तब पता चला जब राम सनेही ने उसे बताया। वह घटना को नहीं देखा था। कथित साक्षी सिद्धा को सरकार द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया था। इस प्रकार, इस घटना के स्वतंत्र साक्षी नहीं हैं।

29. यहाँ पर उल्लिखित करना पर्याप्त है कि (पी. डब्ल्यू) 2, चोट प्राप्त गवाह ने कहा है कि इस मामले के साक्षी सिद्धा आरोपी के साथ

अनुवादित

मिलकर मिल गए थे और उन्होंने उसके खिलाफ अदालत में साक्ष्य देने के लिए तैयार नहीं थे। इन परिस्थितियों के अंतर्गत, सरकार द्वारा वहां मौजूद एक साक्षी को प्रस्तुत नहीं करने के लिए एक उचित व्याख्या दी गई है, जो आरोपी द्वारा बहलाया गया था और न्यायालय में सरकार के मामले का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं थे। जब तक कि तथ्य किया जा रहा है कि जानकार गवाह नहीं है, तो यह उल्लिखित करना महत्वपूर्ण है कि पहली जानकारी रिपोर्ट में सूचना देने वाले ने उल्लेख किया कि घटना के समय, वह सिद्धा और महीपाल के साथ स्थिति पर मौजूद थे। अपने साक्ष्य में, उन्होंने अपनी मौजूदगी की पहली जानकारी रिपोर्ट के संस्करण की पुष्टि की और पुष्टि की कि घटना उनके सामने हुई थी। सूचना देने वाले के साक्ष्य के दौरान एक छोटी सी विरोधिता उत्पन्न हुई जब चोट प्राप्त गवाह राम सनेही ने अलार्म दिया। उन्होंने बताया कि उसके भाई को आरोपी किशोरी ने भाले से मारा था। लेकिन उसी समय (पी. डब्ल्यू) 1, जनकर्ता ने कहा कि उन्होंने खुद घटना को देखा था। उनके साक्ष्य के दौरान इस गवाह से विशेष प्रश्न पूछा गया, "जब आपने घटना को देखा तो फिर आपने क्यों पूछा?" जिसका उत्तर दिया, "मैंने नहीं पूछा कि किसने ने मेरे भाई को मारा, मैंने केवल यह पूछा कि वह भाले से कहाँ मारे गए थे।"

30. निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है कि प्रोसेक्यूशन के पक्ष में यहाँ पर उल्लिखित प्रमाण के आधार पर, पूछे गए प्रश्न जनकर्ता द्वारा उसके भाई से केवल इस सीमा तक ही किया गया था कि चोट के स्थान के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए, आरोपी किशोरी के बारे में नहीं। इसलिए साबित हो गया है कि सूचना देने वाले घटना के स्थान पर मौजूद थे घटना के समय।

31. "**राकेश बनाम यूपी राज्य मामले में, 2021 (3) एस.सी.सी.(क्रि.) 149**, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह देखा कि एक गवाह के साक्ष्य को सामग्रिक रूप से विचारित किया जाना चाहिए।"

"व्यक्ति को अन्य साक्ष्य पर आधारित करके सारे साक्ष्य को एक साथ देखने की आवश्यकता है। केवल यहाँ या वहाँ का एक ही वाक्य, और वो भी केवल प्रतिरोध में किसी के द्वारा किए गए पूर्वपूछन में पूछे गए सवाल का निर्धारण किया जा सकता है। फिर भी, ध्यान देने योग्य है कि डॉक्टर/मेडिकल अधिकारी द्वारा जो कुछ कहा जाता है, उसे सबसे अधिक उसका राय कहा जा सकता है। वह घटना के साक्षी नहीं है। पी. डब्ल्यू1 और पी. डब्ल्यू2 ने स्पष्ट रूप से कह दिया है कि अन्य आरोपी ने चाकू से कई घाव किए।"

32. वर्तमान मामले में भी, (पी. डब्ल्यू) 1 जनकर्ता राम आसरे और (पी. डब्ल्यू) 2 चोट प्राप्त गवाह राम सनेही ने सुसम्पन्न रूप से कहा है कि आरोपी किशोरी ने चोट प्राप्त गवाह राम सनेही को चोट पहुंचाई। पी. डब्ल्यू-1 और पी. डब्ल्यू-2 के साक्ष्य को सम्पूर्ण रूप से पढ़ने पर, इसमें विश्वास उत्पन्न होता है और यह सत्य की ध्वनि होता है।

33. सर्वोच्च न्यायालय ने **सचिन कुमार सिंहराहा बनाम मध्यप्रदेश राज्य मामले (2019) 3 एस.सी.सी. क्री. 575** में यह देखा कि यदि साक्षाता के गवाह के प्रमाण में छोटे से अंतर या सूक्ष्म विरोध होता है, जो अभियोग के मामले को नहीं करता है, तो उसे मध्यस्थ करना चाहिए नहीं होना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: -

"अदालत को याद दिलाना होगा कि गांववालों के वकालतों की ग्रामीण प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, विद्वेषी भूगोलिक स्थानों के बारे में सटीक गणना के साथ गवाहों के आंच नहीं बचेगा। इस प्रकार की विरोधन जिन्हें मामले की मूल बात पर पहुंचने नहीं देते हैं, वह अन्यथा स्वीकार्य प्रमाण को मिटा नहीं देते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अब तक यह ठीक हो गया है कि गवाह साक्ष्य की विश्वसनीयता और प्रोसेक्यूशन संस्करण की सम्पूर्णता का मूल्यांकन करते समय मामूली अंतरों को ध्यान में नहीं लेना चाहिए।"

34. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जय प्रकाश बनाम यूपी राज्य मामले में, (2021) 3 एस.सी.सी.(क्रि.) 306** में गवाहों के साक्ष्य के तथ्यात्मक विरोधों को छोटे विरोधों से भिन्न किया। मान्य सर्वोच्च ने कहा कि:-

"उन गवाहों की जिन्होंने सुनवाई के बाद समय के कुछ दीर्घिकृत बाद गवाही दी है, उनसे मामले की फ़ोटोग्राफिक मेमोरी की उम्मीद नहीं की जा सकती है। हम उस स्थिर स्थान के दोषों को जानने की अच्छुत दशा के बारे में जागरूक हैं कि जो प्रोसेक्यूशन मामले के केंद्र को छूने नहीं वाले छोटे से विरोध होते हैं, वे गवाहों या प्रोसेक्यूशन मामले के विश्वसनीयता को प्रभावित नहीं करेंगे।"

35. उपर्युक्त में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा की गई टिप्पणी के प्रकार, वर्तमान मामले में, पी. डब्ल्यू 1 और पी. डब्ल्यू 2 के साक्ष्य को पूर्ण रूप से पढ़ने पर, इसमें विश्वास उत्पन्न होता है और यह सत्य की ध्वनि होता है। पी. डब्ल्यू 1 राम आसरे के साक्ष्य में, जिसमें विक्षेप नहीं है, जो प्रोसेक्यूशन के मामले को हानि पहुंचा सकता है। अपने कथन में, जनकर्ता ने सिद्ध किया है कि आरोपी -अपीलेंट ने अपने भाई पर भाल से हमला किया और चोटें पहुंचाई। पी. डब्ल्यू 2 राम सनेही के साक्ष्य ने प्रोसेक्यूशन संस्करण की पुष्टि की और इसमें विश्वास करने के लिए किसी भी तथ्यात्मक विरोध का सामना नहीं कर रहा है, जो प्रोसेक्यूशन की कहानी पर संदेह उत्पन्न कर सकता है।

36. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह दावा किया कि गवाह डी.डब्ल्यू-१ रमेश्वर प्रसाद पांडेय ने रिकॉर्ड के आधार पर साबित किया है कि रामचरण ने बनकेलाल के लिए स्पष्टता किया था। राम रति जनकर्ता राम आसरे के चचेरे भाई थे। रामकृपाल, राम रति के ससुरालवाले, इस घटना से पहले ही बनकेलाल और अन्यों द्वारा निर्दोष बताए जाने वाले एक मुकदमे में गोली मारकर मर गए थे, जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा उन्हें दोषी पाया गया था। राज्य सरकार ने बनकेलाल को पैरोल पर रिहा किया था। आरोपित बनकेलाल के लिए उनके भाई रामचरण ने स्पष्टता की थी, इसलिए जनकर्ता राम आसरे के प्रति आपराधित थे। इस कारण से, अपीलार्थी किशोरी को इस मामले में दुरुस्ती रूप से शामिल किया गया है।

37. उपर्युक्त विचार को मध्यस्थ करते हुए, (पी. डब्ल्यू) 1 राम आसरे ने यह स्वीकार किया है कि बंकेलाल और अन्यों को राम कृपाल की हत्या के लिए सजा सुनाई गई थी, लेकिन रामचरण ने बंकेलाल के लिए स्पष्टता दिलाई है, यह उसके ज्ञान के अंदर नहीं है। इस साक्ष्य ने स्पष्ट रूप से इनकार किया है कि इस कारण से वह आरोपित किशोरी के प्रति दुश्मनी रखते थे। और, चोट प्राप्त गवाह (पी. डब्ल्यू) 2 राम सनेही के साक्ष्य, (पी. डब्ल्यू) 1 राम आसरे जो जनकर्ता के रूप

अनुवादित

में हैं और रिकॉर्ड पर उपलब्ध चिकित्सा प्रमाण को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी किशोरी द्वारा पेश किए गए प्रमाण को प्रोसेक्यूशन संस्करण के बारे में कोई भी संदेह नहीं पैदा करता।

38. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आखिरी में दावा किया कि (पी. डब्ल्यू) 2 राम सनेही को अपने भाई (पी. डब्ल्यू) 1 राम आसरे द्वारा अपीलार्थी-अपीलेंट के खिलाफ साक्ष्य देने के लिए बाध्य किया गया था। (पी. डब्ल्यू) 1 राम आसरे ने अपने साक्ष्य में कहा कि उन्होंने अपने भाई राम सनेही को भाले कि उसने राम सनेही के विरुद्ध पुलिस थाने में उसको भाले से मारे जाने के बारे में एक सुचना दर्ज कराई है। उसने अपने भाई राम सनेही से ानियुक्त किशोरी के विरुद्ध गवाही देने के लिए भी कहा। राम सनेही ने इसे स्वीकार किया।

39. जो शिकायतकर्ता के अपीलकर्ता के द्वारा प्रस्तावित किए गए हैं, उन्हें मध्यस्थ करते समय, ध्यान देने योग्य है कि (पी. डब्ल्यू) 2 राम सनेही, घायल, अपने साक्ष्य में यह कह चुके हैं कि उनके भाई राम आसरे ने उनके साथ होने वाले घातक मामले के बाद उन्हें घातक किशोरी के खिलाफ आरोप सबमिट किया था और उनके भाई ने उन्हें बताया था कि उन्होंने अपीलार्थी किशोरी के खिलाफ मामले में साक्ष्य करने के साथ भी उन्होंने उनके द्वारा प्रस्तावना की पुष्टि की। इस सूचना को उन्हें एफआईआर दर्ज करने के समय दी गई थी। उपर्युक्त साक्ष्य और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिकोण से देखते हुए, मेरा मानना है कि (पी. डब्ल्यू)2, घायल साक्षात्कारी, अपीलार्थी किशोरी के खिलाफ केवल अपने भाई के दिए गए मार्गदर्शन पर ही साक्ष्य नहीं दिया जा सकता है क्योंकि (पी. डब्ल्यू) 2 ने अपने प्रमाण के साथ अभियोग पक्ष के संस्करण की पुष्टि की है और उन्होंने उसके द्वारा हमले के तरीके और उनके द्वारा प्राप्त चोट के बारे में भी पुष्टि की है, इसलिए नहीं कहा जा सकता कि (पी. डब्ल्यू) 2 को सुनवाई के लिए केवल जनकर्ता (पी. डब्ल्यू) 1 राम आसरे के उकसाने पर ही दर्ज किया गया।

40. मामले के तथ्य और परिस्थितियों के तहत उपलब्ध प्रमाण को मूल्यांकन करते समय, विद्वान विचारण न्यायालय ने सही तरह से धारा 308 आईपीसी के तहत अपीलेंट को सजा सुनाई है। विद्वान विचारण न्यायालय ने मामले के हर पहलू का विचार करने के बाद और साथ ही अभियोग पक्ष द्वारा पेश किए गए प्रमाण और बचाव द्वारा पेश किए गए प्रमाण को ध्यान में रखते हुए, हुई न्यायालय ने आपत्तिजनक निर्णय और सजा का आदेश दिया है।

निर्णय

41. क्रिमिनल अपील को एतद् द्वारा खारिज किया जाता है। दिनांक 07.11.2017 के विद्वान ट्रायल कोर्ट के फैसले और आदेश को मंजूरी दी जाती है।

42. अपीलेंट अपील के दौरान जमानत पर थे। उन्हें हिरासत में लिया जाना चाहिए और उन्हें कारावास में सजा पूरी करने के लिए भेज दिया जाना चाहिए।

43. फैसले की प्रतिलिपि को विद्वान ट्रायल कोर्ट को भेज दी जानी चाहिए ताकि उसका पालन किया जा सके।

44. अधीनस्थ न्यायालय के रिकॉर्ड को तुरंत संबंधित न्यायालय को भेज दिया जाए।

(2023) 2 ILRA 997

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.01.2023

समक्ष

अनुवादित

माननीय न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर,
माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,
आपराधिक अपील संख्या 1982/2009

संजू @ संजय

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री योगेश श्रीवास्तव, श्री मनु शर्मा न्यायमित्र

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री जे. के. उपाध्याय, ए.जी.ए., श्री के.के. द्विवेदी, श्री मोहित सिंह, श्री सतीश त्रिवेदी, श्री शशिधर पांडे

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या - मृतक की मृत्यु उसके कनपटी क्षेत्र पर एक बंदूक की गोली लगने से हुई - कोई चश्मदीद गवाह नहीं था, - मुख्य साक्ष्य पी.डब्लू.3 और पी.डब्लू.4 के बयान थे, जिन्होंने अपीलकर्ताओं को मृतक का घर से बाहर आते देखा था - आयोजित, सिर्फ उस सबूत के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना सुरक्षित नहीं है कि आरोपी ने हत्या की - इसका कोई सबूत नहीं है कि अभियुक्तों द्वारा मृतक की हत्या किस प्रकार की गई, - अभियुक्तों के पास से चाकू जब्त किए गए, लेकिन मृतक के शरीर पर चाकू के कोई घाव नहीं पाए गए, - किसी भी स्वतंत्र गवाह द्वारा बरामदगी साबित नहीं हुई - आरोपियों के पास से एक देशी पिस्तौल जब्त की गई, लेकिन जब्ती को अपराध से जोड़ने वाली कोई बैलिस्टिक विशेषज्ञ रिपोर्ट नहीं थी - अपीलकर्ता परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर संपूर्ण अभियोजन मामले में संदेह का लाभ पाने के हकदार थे - अभियोजन उचित संदेह से परे अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोपों को साबित करने में विफल रहा। (पैरा 19, 25)

अनुमत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सततिया @ सतीश रंजना करतल्ला बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 3 एससीसी 210
2. देवीलाल बनाम राजस्थान राज्य (2019) 19 एससीसी 447
3. रामानन्द उर्फ नन्दलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 64-6/2022, 13.10.2022

(माननीय न्यायमूर्ति प्रिटिंकर दिवाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता संख्या-2, 3 और 4 के लिए श्री योगेश श्रीवास्तव, अपीलकर्ता संख्या-1 के लिए श्री मनु शर्मा, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) और राज्य के लिए श्री जे. के उपाध्याय, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2- यह अपील विशेष न्यायाधीश (डी.ए.ए.), आगरा द्वारा सत्र विचारण संख्या 85 वर्ष 2002 (राज्य बनाम संजू @ संजय और अन्य) में पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 26.03.2009 से उत्पन्न होती है, जो अपराध संख्या 78 वर्ष 2002 धारा 394, 302, 411, 120-बी, भ०द०वि० से उद्भूत है, और सत्र परीक्षण संख्या 97 वर्ष 2002, धारा 25 और 25/4 शस्त्र अधिनियम के तहत अपराध संख्या 84 और 85 वर्ष 2002 से उत्पन्न, पुलिस स्टेशन-न्यू आगरा, जिला आगरा, से उद्भूत है,

और जिनमें अपीलकर्ता संजय @ संजू, प्रवीण दुबे, बनवारी और लाला @ किशन को दोषी ठहराते हुए और धारा 394 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए सात साल के कठोर कारावास की सजा के साथ 5,000/- रुपये (प्रत्येक) का जुर्माना लगाया गया है, जिसमें चूक करने पर एक वर्ष के लिए अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा दी गयी है; धारा 302/34 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए आजीवन कारावास की सजा के साथ 20,000/- रुपये (प्रत्येक) के जुर्माने के साथ, और चूक कि स्थिति में दो साल के अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा भुगतने के लिए; और धारा 120-बी भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए आजीवन कारावास की सजा के साथ 10,000 रुपये (प्रत्येक) के जुर्माने के साथ, और चूक कि स्थिति में एक वर्ष के साधारण कारावास की सजा भुगतने के लिए; अपीलकर्ता संजय @ संजू, प्रवीण दुबे और बनवारी को दोषी ठहराते हुए और उन्हें धारा 411 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए दो साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गयी; अपीलकर्ता संजय @ संजू को दोषी ठहराते हुए और उसे धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत अपराध के लिए दो साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई और 5,000 रुपये का जुर्माना लगाया गया; और चूक की स्थिति में और एक वर्ष के अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा भुगतने के लिए, और अपीलकर्ता प्रदीप दुबे और बनवारी को दोषी ठहराते हुए और उन्हें धारा 25/4 के तहत अपराध के लिए एक साल के कठोर कारावास की सजा के साथ 2,000/- रुपये (प्रत्येक) के जुर्माने के साथ, और चूक की स्थिति में छह महीने के अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा काटने की सजा सुनाई गयी है और यह निर्देश दिया गया कि सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी.

3. प्रस्तुत मामले में, मृतक का नाम संजय है, जिसकी मृत्यु उसकी कनपटी के पास एक बंदूक की गोली लगने से हुई थी। दिनांक 21.01.2002 को रात्रि 8.55 बजे लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 के आधार पर अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध धारा 302 भ०द०वि० के अन्तर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-26 दर्ज की गई।

4. शव का पंचनामा 21.01.2002 को प्रदर्श क-2 के माध्यम से की गई थी, और शव को शव परीक्षण के लिए भेजा गया था जो दूसरे दिन, यानी 22.01.2002 को अ०सा०-2 द्वारा प्रदर्श क-3 के माध्यम से किया गया था। शव परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, मृतक के कनपटी पर बंदूक की गोली से एक चोट पाई गई थी और मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोट के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव था।

5. आरोप तय करते समय, विचारण न्यायाधीश ने अभियुक्त-व्यक्तियों के खिलाफ धारा 394, 302, 411, 120-बी, भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए हैं; जबकि आरोपी अपीलकर्ताओं, संजय @ संजू, प्रवीण दुबे और बनवारी के खिलाफ शस्त्र अधिनियम की धारा 25 और 25/4 के तहत अलग आरोप भी तय किए गए हैं।

6. आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने के लिए, अभियोजन पक्ष ने ग्यारह गवाहों का परीक्षण किया है। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं का बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें उन्होंने अपनी बेगुनाही और झूठे फँसाये जाने की दलील दी थी।

7. आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा, विचारण न्यायाधीश ने दोषी ठहराया है और सजा सुनाई

है, जैसा कि इस फैसले के पैराग्राफ-2 में उल्लेख किया गया है।

8. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं:

(i) कि घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है और अपीलकर्ताओं को केवल कमजोर परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषी ठहराया गया है।

(ii) अपीलकर्ताओं के खिलाफ साक्ष्य का मुख्य टुकड़ा अ०सा०-3 पुनीत कुमार गौतम और अ०सा०-4 हरिओम गौतम के बयान हैं, जिन्होंने कथित तौर पर अपीलकर्ताओं को मृतक के घर से बाहर आते देखा था। यहां तक कि यह मानते हुए कि आरोपी व्यक्ति मृतक के घर गए थे, यह कुछ व्यावसायिक लेनदेन या कुछ अन्य कारणों से हो सकता है।

(iii) अभियोजन पक्ष द्वारा यह मंशा साबित नहीं की गई है।

(iv) कि अभियोजन द्वारा एकत्र किए गए परिस्थितिजन्य साक्ष्य निर्णायक नहीं हैं और सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर विचार करते हुए, इस न्यायालय के लिए दोषसिद्धि को बरकरार रखना सुरक्षित नहीं होगा।

(v) कि आरोपी बनवारी और प्रवीण दुबे के पास से चाकू जब्त किए गए हैं, तथापि, मृतक के शरीर पर चाकू की कोई चोट नहीं पाई गई है। इसी तरह, आरोपी संजू @ संजय से, एक देशी पिस्तौल जब्त की गई है, लेकिन मृतक की हत्या से या उसके द्वारा लगी चोटों से उक्त जब्ती को जोड़ने का कोई सबूत नहीं है।

(vi) कि अपराध को गंभीर बनाने के लिए अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध धन की कथित वसूली की साजिश रची गई है, अन्यथा अभियोजन पक्ष द्वारा वसूली सिद्ध नहीं की गई है जैसा कि कानून के अंतर्गत अपेक्षित है।

(vii) कि अपीलकर्ता पहले ही लगभग 14 वर्ष की सजा काट चुके हैं।

9. दूसरी ओर, विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश का समर्थन करते हुए, राज्य के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है: -

(i) अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि, यद्यपि परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, कानून के अनुसार है और इसमें कोई दुर्बलता नहीं है।

(ii) कि मृतक के अभियुक्त संजू @ संजय और बनवारी प्रत्येक से 10,000/- रुपए और अभियुक्त प्रवीण दुबे से 5,348/- रुपए की राशि जब्त की गई है।

10. हमने पक्षकारों को सुन और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

11. अ०सा०-1 मुकेश गुप्ता मृतक का पड़ोसी है, जो मृतक के रोने की आवाज सुनकर तुरंत उसके घर पहुंचा, लेकिन उसने आरोपी व्यक्तियों को घटनास्थल के पास नहीं देखा है। उसने प्राथमिकी भी दर्ज कराई।

12. अ०सा०-2 डॉ. योगेश भार्गव ने मृतक का शव परीक्षण किया, मृतक के कनपटी पर एक बंदूक की गोली की चोट पाई गई और मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोट के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव था।

13. अ०सा०-3 पुनीत कुमार गौतम ने कहा है कि वह आरोपी व्यक्तियों को जानता था और घटना की तारीख पर, उसने एक आरोपी को कॉल बेल दबाते हुए देखा और फिर आरोपी व्यक्ति मृतक के घर में घुस गए थे। उसने आरोपी व्यक्तियों को मृतक के घर से लौटते हुए भी देखा। उन्होंने कहा कि उनके चाचा ने पूछा है कि क्या उन्होंने बंदूक की गोली की आवाज सुनी है, हालांकि,

अनुवादित

उन्होंने इससे इनकार किया। वह स्वीकार करता है कि 10 मिनट के भीतर, पुलिस घटनास्थल पर पहुंच गई, लेकिन उसने पुलिस को मृतक के घर में घुसने वाले आरोपी व्यक्तियों के बारे में सूचित नहीं किया। वह आगे कहता है कि उसने वहां जमा भीड़ को भी आरोपी व्यक्तियों के बारे में सूचित नहीं किया। वह स्वीकार करता है कि उसके चाचा एक सहायक लोक अभियोजक हैं, लेकिन उसके द्वारा कितनी रिपोर्ट दर्ज की गई हैं, वह नहीं जानता। वह आगे स्वीकार करता है कि उसने खुद बंदूक की गोली की आवाज नहीं सुनी थी। उनका कहना है कि उनकी मौजूदगी में अ०सा०-1 मुकेश गुप्ता रिपोर्ट दर्ज कराने गए थे, लेकिन उसने उन्हें कुछ भी जानकारी नहीं दी।

14. अ०सा०-4 हरिओम गौतम, जो प्रासंगिक समय पर शौच कर रहे थे, ने कहा है कि उन्होंने बंदूक की गोली की आवाज सुनी। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें अ०सा०-3 पुनीत कुमार गौतम ने कुछ बंदूक की गोली की आवाज सुनने की सूचना दी थी। उन्होंने कहा कि मृतक अनिल कुमार के घर में प्रवेश करने के बाद और वहां मौजूद अन्य पुलिस अधिकारियों ने उन्हें घर का दौरा करने के लिए कहा था और जब दरवाजा खोलने का प्रयास किया गया, तो वह नहीं खुला; उसे दबाया गया और फिर वे उक्त कमरे में घुस गए, ड्राइंग रूम में चले गए जहां मृतक का शव पड़ा था। घटना के स्थान पर प्रकाश की उपस्थिति के बारे में, वह बहुत निश्चित प्रतीत नहीं होता है। हालांकि, जब विवेचनाधिकारी का सामना किया गया था, तो उन्होंने कहा था कि इस गवाह ने उन्हें प्रकाश की उपस्थिति के बारे में सूचित किया था।

15. अ०सा०-5 योगेंद्र कुमार गोयल ने आरोपी व्यक्तियों को मृतक के घर से करीब 100 मीटर की दूरी पर देखा। वह एक खाली कारतूस और खून से सना चाकू बरामद होने का गवाह भी है, लेकिन विधि विज्ञान प्रयोगशाला या बैलिस्टिक विशेषज्ञ की कोई रिपोर्ट नहीं है।

16. अ०सा०-6 रामपाल यादव विवेचनाधिकारी हैं, जिन्होंने अभियोजन मामले का विधिवत समर्थन किया है।

17. अ०सा०-7 अनिल कुमार सिंह, अ०सा०-8 जितेंद्र कुमार गोयल, अ०सा०-10 घनश्याम दास और अ०सा०-11 नाथूराम मौर्य ने पंचनामा के दौरान सहायता की है।

18. अ०सा०-9 कुंदन लाल आर्म्स एक्ट के विवेचनाधिकारी हैं।

19. सबूतों की बारीकी से जांच करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है और अभियोजन का पूरा मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। साक्ष्य का मुख्य टुकड़ा अ०सा०-3 पुनीत कुमार गौतम का बयान है, जिन्होंने आरोपी व्यक्तियों को मृतक के घर में प्रवेश करते हुए देखा और उसके बाद उसी से बाहर आ गए, हालांकि, केवल इस सबूत के आधार पर, इस न्यायालय के लिए सकारात्मक निष्कर्ष पर पहुंचना सुरक्षित नहीं होगा कि यह आरोपी व्यक्ति हैं जिन्होंने मृतक की हत्या की है। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि आरोपी व्यक्तियों द्वारा मृतक की हत्या किस तरीके से की गई थी। आरोपी संजू @ संजय से एक देशी पिस्तौल जब्त की गई है, लेकिन अपराध करने में उक्त बरामदगी को जोड़ने वाली कोई बैलिस्टिक विशेषज्ञ रिपोर्ट नहीं है। इसके अलावा, आरोपी बनवारी और प्रवीण दुबे के पास से चाकू जब्त किए गए हैं, लेकिन निर्विवाद रूप से मृतक के शरीर पर चाकू की कोई चोट नहीं मिली है। जहां तक राशि की वसूली का सवाल है, उक्त वसूली किसी भी स्वतंत्र गवाह द्वारा साबित नहीं

की गई है और धारा 411 भ०द०वि० के मूल तत्व भी अभियोजन पक्ष द्वारा कानून के तहत आवश्यक साबित नहीं हुए हैं। यहां भी, अपीलकर्ता संदेह का लाभ पाने के हकदार हैं।

20. साक्ष्य के संचयी प्रभाव को लेते हुए, हमारा विचार है कि अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर्याप्त प्रतीत नहीं होते हैं कि किस आधार पर अपीलकर्ताओं की सजा को बरकरार रखा जा सकता है।

21. परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि के संबंध में कानून बहुत स्पष्ट है। सत्तातिया @ सतीश रंजना करतल्ला बनाम महाराष्ट्र राज्य में, सुप्रीम कोर्ट ने परिस्थितिजन्य साक्ष्य से निपटने के दौरान निम्नानुसार देखा:

"11. हनुमंत गोविंद नरगुंडकर बनाम मध्य प्रदेश राज्य [ए.आई.आर. 1952 एस.सी. 343] में, जो इस विषय पर सबसे शुरुआती निर्णयों में से एक है, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

"10. ..... यह याद रखना उचित है कि मामलों में जहां सबूत एक परिस्थितिजन्य प्रकृति का है, परिस्थितियों से जो अपराध का निष्कर्ष निकाला जा रहा है पहली बार में पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए और सभी तथ्यों को स्थापित केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के साथ संगत होना चाहिए. फिर, परिस्थितियां एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृति की होनी चाहिए और वे ऐसी होनी चाहिए कि हर परिकल्पना को बाहर कर दिया जाए, लेकिन जिसे साबित करने का प्रस्ताव है। दूसरे शब्दों में, अब तक सबूतों की एक श्रृंखला पूरी होनी चाहिए ताकि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जा सके और यह ऐसा होना चाहिए जो यह दर्शाता हो कि सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

12. पडाला वीरा रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [(1989) पूरक (2) एस.सी.सी. 706] में, इस अदालत ने कहा कि जब कोई मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिका होता है, तो निम्नलिखित परीक्षणों को संतुष्ट किया जाना चाहिए: "(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकालने की मांग की जाती है, उन्हें दृढ़ता से से स्थापित किया जाना चाहिए;

(2) उन परिस्थितियों को एक निश्चित प्रवृति की होनी चाहिए जो अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करती है;

(3) परिस्थितियों को संचयी रूप से लिए जाने पर, एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि इस निष्कर्ष से कोई बच न सके कि सभी मानवीय संभावना के भीतर अपराध अभियुक्त द्वारा किया गया था और किसी और ने नहीं।

13. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1984) 4 एस.सी.सी. 116] में, यह माना गया था कि यह साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष पर जिम्मेदारी थी कि श्रृंखला पूरी हो गई है और अभियुक्त द्वारा स्थापित बचाव की असत्यता या असमर्थनीयता को अभियोजन पक्ष के मामले में गंभीर दुर्बलता या कमी की अनदेखी करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है। इसके बाद न्यायालय ने उन शर्तों को इंगित करने के लिए आगे बढ़े, जिन्हें परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि से पहले पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। ये हैं:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। संबंधित परिस्थितियों को

स्थापित किया जाना चाहिए या 'जरूर होना चाहिए' और 'किया जा सकता है' नहीं होना चाहिए;

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्या नहीं की जानी चाहिए, सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है;

(3) परिस्थितियाँ एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए;

(4) उन्हें साबित होने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए; और

(5) साक्ष्य की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़े और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभाव्यता में कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।

22. देवीलाल बनाम राजस्थान राज्य में सुप्रीम कोर्ट ने परिस्थितिजन्य साक्ष्य से निपटने के दौरान निम्नानुसार देखा:

16. परिस्थितिजन्य साक्ष्य, इसकी प्रासंगिकता और निर्णायकता से संबंधित कानून का क्लासिक प्रतिपादन, एक आपराधिक अपराध के आरोप के प्रमाण के रूप में, शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य 1984 (4) एस.सी.सी. 116 में न्यायालय के अन्य निर्णयों के बीच पता लगाने योग्य निर्णय है। निर्णय के पैरा 153 के प्रासंगिक अंश निश्चित रूप से उचित हैं:

153. इस निर्णय का एक करीबी विश्लेषण दिखाता है कि इससे पहले कि एक अभियुक्त के खिलाफ एक मामले को पूरी तरह से स्थापित किया जा सकता है, निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए।

यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया कि संबंधित परिस्थितियों को "स्थापित किया जाना चाहिए या होना चाहिए" और "स्थापित किया जा सकता है" नहीं होना चाहिए। न केवल व्याकरणिक बल्कि "साबित किया जा सकता है" और 'साबित किया जा सकता है' या 'साबित किया जाना चाहिए' के बीच एक कानूनी अंतर है, जैसा कि शिवाजी सहबराव बोबडे और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1973) 2 एस.सी.सी. 793 में इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था जहां टिप्पणियां की गई थीं: (एस.सी. पी.807, पैरा 19)

निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त को अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने से पहले दोषी होना चाहिए, और न केवल दोषी हो सकता है और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और निश्चित निष्कर्षों से अस्पष्ट अनुमानों को विभाजित करती है।

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात्, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्या नहीं की जानी चाहिए, सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है,

(3) परिस्थितियाँ एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए,

(4) उन्हें साबित होने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और

(5) साक्ष्य की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़े और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभाव्यता में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

17. इस न्यायालय द्वारा सुजीत बिस्वास बनाम असम राज्य 2013(12) एस.सी.सी. 406 और राजा उर्फ राजिंदर बनाम हरियाणा राज्य 2015 (11) एस.सी.सी. 43 में इस पर विचार किया गया है। यह प्रतिपादित किया गया है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की जांच करते समय, एक न्यायालय को यह सुनिश्चित करने के लिए इसका मूल्यांकन करना होगा कि घटनाओं की श्रृंखला स्पष्ट रूप से और पूरी तरह से स्थापित की गई है ताकि अभियुक्त की बेगुनाही की किसी भी उचित संभावना को खारिज किया जा सके। अंतर्निहित सिद्धांत यह है कि श्रृंखला पूरी है या नहीं, वास्तव में यह साक्ष्य से उत्पन्न होने वाले प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया जा सकने वाला कोई सीधा-सटीक सूत्र नहीं हो सकता है। लेकिन परिस्थितियों पर जब सामूहिक रूप से विचार किया जाता है, तो यह केवल इस निष्कर्ष पर ले जाना चाहिए कि अभियुक्त के अलावा कोई अन्य व्यक्ति नहीं हो सकता है जो अकेले कथित अपराध का अपराधी है और परिस्थितियों को केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप निर्णायक प्रकृति स्थापित करनी चाहिए।

18. प्रस्तुत मामले में समग्र तथ्य की स्थिति के विश्लेषण पर, और अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किए गए परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला पर विचार करते हुए और आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा ध्यान दिया गया, यह साबित करने के लिए आरोप स्पष्ट रूप से अधूरा और असंगत है कि अपीलकर्ताओं को संदेह के किसी भी निशान के बिना उसके आधार पर दोषी ठहराया जा सके। हालांकि रिकॉर्ड पर सामग्री उनके प्रति कुछ संदेह रखती है, लेकिन अभियोजन पक्ष अपने मामले को "सच हो सकता है" के दायरे से "सच होना चाहिए" तक बढ़ाने में विफल रहा है जैसा कि आपराधिक आरोप में सजा के लिए कानून में अनिवार्य रूप से आवश्यक है। यह कहना ठीक है कि एक आपराधिक मुकदमे में, संदेह, चाहे वह कितना भी गंभीर हो, सबूत का विकल्प नहीं हो सकता है।

19. इसके अलावा, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, रिकॉर्ड के मामले पर दो विचार संभव हैं, एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी बेगुनाही की ओर इशारा करता है। अभियुक्त वास्तव में उस व्यक्ति का लाभ पाने का हकदार है जो उसके अनुकूल है। सभी न्यायिक रूप से निर्धारित मापदंडों, परिस्थितिजन्य साक्ष्य की गुणवत्ता और सामग्री को परिभाषित करते हुए, एक आपराधिक आरोप पर अभियुक्त के अपराध को क़ानून के दायरे में लाते हैं, हमें यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होती है कि अभियोजन पक्ष मामले में इसे पूरा करने में विफल रहा है।

23. हाल ही में, सुप्रीम कोर्ट ने रामानंद उर्फ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में परिस्थितिजन्य साक्ष्य के सवाल पर पिछले निर्णयों का उल्लेख करते हुए, पैरा 105, 106 और 117 में निम्नानुसार देखा: -

"105. इस पहलू को संबोधित करते हुए, हालांकि, पृष्ठ 483 पर इयान डेनिस द्वारा पांचवें संस्करण "द लॉ ऑफ एविडेंस" के एक ही ग्रंथ से निम्नलिखित उद्धरण भी है:

अनुवादित

"जहां अभियुक्त के खिलाफ मामला पूरी तरह से या आंशिक रूप से परिस्थितिजन्य साक्ष्य से निष्कर्ष पर निर्भर करता है, तथ्य-खोजकर्ता तार्किक रूप से उसे दोषी नहीं ठहरा सकते हैं जब तक कि वे अच्छी तरह से निश्चित न हों कि अपराध के निष्कर्ष केवल वही हैं जो उचित रूप से तैयार किए जा सकते हैं। अगर उन्हें लगता है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के लिए संभावित निर्दोष स्पष्टीकरण हैं जो "केवल काल्पनिक" नहीं हैं, तो इसका पालन करना चाहिए कि अपराध के बारे में एक उचित संदेह है। हालांकि, ऐसा कोई नियम नहीं है कि न्यायाधीशों को जूरी को दोषी न ठहराने के संदर्भ में निर्देशित करना चाहिए जब तक कि वे सुनिश्चित न हों कि सबूत अपराध के अलावा कोई अन्य स्पष्टीकरण नहीं देते हैं। यह केवल यह निर्देशित करने के लिए पर्याप्त है कि अभियोजन पक्ष पर बोझ उचित संदेह से परे जूरी को संतुष्ट करना है, या ताकि वे सुनिश्चित हों।

आपराधिक मामलों में आवश्यक प्रमाण का बहुत उच्च मानक गलत तरीके से दोषसिद्धि के जोखिम को कम करता है। इसका मतलब यह है कि कोई व्यक्ति, जिसे सबूत पर, तथ्य-खोजक का मानना है कि "शायद" दोषी है, या दोषी होने की "संभावना" है, बरी हो जाएगा, क्योंकि संभावना के ये निर्णय आवश्यक रूप से स्वीकार करते हैं कि तथ्य-खोजक "निश्चित" नहीं है। यह आम तौर पर स्वीकार किया जाता है कि इनमें से कम से कम कुछ बरी अभियुक्त उन व्यक्तियों में से होंगे जो वास्तव में आरोपित अपराधों के दोषी हैं, और जिन्हें दोषी ठहराया जाएगा यदि सबूत का मानक संभावनाओं के संतुलन के निचले सामाजिक मानकों में से थे। इस तरह के बरी होने की कीमत गलत सजा के खिलाफ "उचित संदेह से परे" मानक द्वारा प्रदान की गई सुरक्षा के लिए भुगतान की जाती है। [महत्त्व सन्निविष्ट]

106. हमें खुद को याद दिलाना चाहिए कि इस न्यायालय ने शंकरलाल ग्यारसीलाल दीक्षित बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में (1981)2 एस.सी.सी. 35 में क्या कहा था। हम निम्नानुसार उद्धृत करते हैं:

"32. ..... लेकिन, अपना विचार तैयार करते समय उच्च न्यायालय ने सम्मान के साथ यह कहते हुए सही कानूनी स्थिति बताने में त्रुटि की कि अदालत को इस बात पर विचार करना है कि क्या परिस्थितियों का संचयी प्रभाव अभियुक्त के अपराध को "संदेह की छाया" से परे स्थापित करता है। पहले स्थान में, "संदेह की छाया", यहां तक कि उन मामलों में भी जो प्रत्यक्ष साक्ष्य पर निर्भर करते हैं, "उचित" संदेह की छाया है। दूसरे, इसके व्यावहारिक अनुप्रयोग में, जिस परीक्षण के लिए अन्य वैकल्पिक परिकल्पनाओं के बहिष्करण की आवश्यकता होती है, वह उचित संदेह से परे प्रमाण के परीक्षण की तुलना में कहीं अधिक कठोर है। [महत्त्व सन्निविष्ट]

xxx xxx

117. इस प्रकार, निचली अदालतों द्वारा दोषी ठहराए जाने के रूप में भरोसा किए गए साक्ष्य के टुकड़ों में से कोई भी, अभियुक्त के खिलाफ परिस्थितिजन्य साक्ष्य के चुनौतीजनक टुकड़ों के रूप में नहीं माना जा सकता है। वास्तविकता या सच्चाई के अलावा, आपराधिक कानून और न्याय वितरण प्रणाली के प्रशासन में मौलिक और बुनियादी धारणा कथित अभियुक्त की बेगुनाही है और जब तक स्पष्ट, ठोस, विश्वसनीय या असंदिग्ध साक्ष्य के आधार पर उचित संदेह से

अभियुक्त

परे आरोप साबित नहीं होते हैं, तब तक अभियुक्त को दोषी ठहराने या दंडित करने का सवाल ही नहीं उठता। केवल अपराध की जघन्य प्रकृति या उस वीभत्स तरीके से किया गया अपराध जिसमें यह पाया गया था, हालांकि अपराध वीभत्स है और मानवीय अंतरात्मा को झकझोरता है, लेकिन एक अभियुक्त को केवल कानूनी साक्ष्य के आधार पर या यदि केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य की एक श्रृंखला को इस तरह से ग़लत ढंग से बनाया गया है कि अभियुक्त के अपराध को छोड़कर किसी अन्य उचित परिकल्पना की संभावना को खारिज कर दिया जाए, तो ही दोषी ठहराया जा सकता है। शंकरलाल ग्यारसीलाल (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने चेतावनी दी - "जब क्रूर अपराधों का सामना करना पड़ता है, तो कहानियों को मजबूत संदेह से बाहर निकालने के लिए मानव प्रकृति बहुत हितबद्ध है।' इस न्यायालय ने बार-बार कहा है कि "सच हो सकता है" और "सच होना चाहिए" के बीच यात्रा करने के लिए एक लंबी दूरी है जिसे इससे पहले कि एक अभियुक्त को दोषी ठहराया जाए, अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट, ठोस और असंदिग्ध सबूतों द्वारा कवर किया जाना चाहिए। [देखें आशीष बाथम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2002) 7 एस.सी.सी. 317]।

24. प्रस्तुत मामले के कानून के उपरोक्त प्रस्ताव, तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता संदेह के लाभ के हकदार हैं और इसलिए, उन्हें सभी आरोपों से बरी किया जाता है।

25. पूर्वगामी कारणों से, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोपों को साबित करने में विफल रहा है और इसलिए, निचली अदालत का निर्णय और आदेश अलग रखा जा सकता है।

26. विचारण न्यायालय के फैसले और आदेश को रद्द किया जाता है। अपीलकर्ताओं की अपील की अनुमति दी जाती है। अपीलकर्ताओं को, जब तक कि किसी अन्य मामले में वांछित न हो, जेल से तुरंत मुक्त किया जाएगा।

27. हम पक्षों के लिए एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) सहित अन्य अधिवक्ता द्वारा दी गई सहायता की सराहना करते हैं, जो नियमों के अनुसार शुल्क प्राप्त करने के हकदार होंगे।

28. रिकॉर्ड के साथ इस आदेश की एक प्रति सूचना और अनुपालन के लिए निचली अदालत को भेजी जाए।

(2023) 2 ILRA 1004

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 19.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह,

आपराधिक पुनरीक्षण क्रमांक 65/2023

अतीक अहमद

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री चंद्रकेश मिश्रा, श्री अभिषेक कुमार मिश्रा, श्री शादाब अली (वरिष्ठ अधिवक्ता) श्री दयाशंकर मिश्रा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 82, 83, 195, 309, 340, 362, 397(1) और 401 - भारतीय दंड संहिता, 1860

- धारा 147, 148, 174-ए, 323, 341, 364, 504 और 506 - आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम - धारा - 7 आपराधिक पुनरीक्षण - रिमांड का आदेश और संज्ञान का आदेश प्रारंभ से ही शून्य था और रिमांड अब नहीं दिया जाएगा और रिमांड के लिए आवेदन खारिज कर दिया गया था - इससे व्यथित होकर, राज्य ने आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया - आपराधिक अदालत द्वारा अपने आदेश की समीक्षा करने के लिए विशिष्ट रोक है, यह अमान्य और अधिकार क्षेत्र के बिना होगा - संज्ञान लेने या जारी करने की प्रक्रिया एक अंतरिम आदेश नहीं है जैसा कि अदालत प्रसाद बनाम रूपल जिंदल और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था - उक्त वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि, के.एम. मैथ्यू बनाम केरल राज्य में इस न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण कि अदालत इस बात से संतुष्ट होने पर कि समन जारी करना कानून के अनुरूप नहीं था और जारी करने की प्रक्रिया एक अंतरिम आदेश है, न कि कोई निर्णय, समन जारी करने के लिए स्वतंत्र होगा और इसलिए, यह परिवर्तन किया जा सकता है या वापस लिया जा सकता है, यह सही दृष्टिकोण नहीं है - यह स्पष्ट है कि संज्ञान लेने का आदेश एक अंतिम आदेश है और यह गलत आदेश है या नहीं, इसे उचित कार्यवाही में वरिष्ठ न्यायालय द्वारा देखा जा सकता है, न कि उसी न्यायालय द्वारा, जो इस प्रकार संज्ञान लिया गया है - चुनौती के तहत आदेश किसी अवैधता या क्षेत्राधिकार या कानून की त्रुटि से ग्रस्त नहीं है, इसलिए पुनिरीक्षण निरस्त कर दिया गया है। (पैरा - 17, 21, 22)

पुनरीक्षण निरस्त। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. सुनील त्यागी बनाम एनसीटी दिल्ली सरकार, (2021) 0 सुप्रीम (डेल) 831,
2. पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट एवं अन्य, (1998) 5 एससीसी 749,
3. धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2009) 2 एससीसी 370,
4. विष्णु अग्रवाल बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य, (2011) 14 एससीसी 813,
5. मधु लिमये और अन्य बनाम अज्ञात, (1969) 1 एससीसी 292,
6. इंदर मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य, (2007) 12 एससीसी 1,
7. अदालत प्रसाद बनाम रूपल जिंदल और अन्य, (2004) 7 एससीसी 338,
8. के.एम. मैथ्यू बनाम केरल राज्य, (1992) 1 एससीसी 217,
9. मो. जाकिर बनाम शबाना और अन्य, (2018 खंड 15 एससीसी 316),

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. प्रस्तुत आपराधिक पुनरीक्षण अतीक अहमद, पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 401 द०प्र०स० सपठित धारा 397 (1) के तहत अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एमपी/एमएलए), इलाहाबाद, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-249 वर्ष 2008 में पारित आदेश दिनांक 17.11.2022 के खिलाफ दायर किया गया है, जिसके तहत विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश/न्यायिक मजिस्ट्रेट न्यायालय नं 6, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 7.3.2008 के खिलाफ राज्य द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण की अनुमति दी थी।

अनुवादित

2. मामले के तथ्य, संक्षेप में, यह है कि 5.7.2007 को जिला पंचायत, इलाहाबाद के एक सदस्य श्री ओमपाल ने धारा 147, 148, 323, 341, 342, 364, 504 और 506 भ०द०वि० और धारा 7 आपराधिक कानून पुनरीक्षण अधिनियम के तहत पुनरीक्षणकर्ता, एक वर्तमान सांसद और अन्य के खिलाफ प्राथमिकी संख्या- 270 वर्ष 2007 दर्ज की। उक्त अपराध की जांच श्री के.के.मिश्रा, थानाध्यक्ष द्वारा की गई थी।

3. जांच के दौरान, विवेचनाधिकारी द्वारा आरोपी-पुनरीक्षक को गिरफ्तार करने का प्रयास किया गया, हालांकि, अभियुक्तों को गिरफ्तार नहीं किया जा सका और न ही उन्होंने विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण किया। आरोपियों के खिलाफ वारंट जारी किए गए और उसके बाद, धारा 82/83 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही की गई। तथापि, अभियुक्तों को गिरफ्तार नहीं किया जा सका और न ही उन्होंने निर्धारित समय के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष समर्पण किया। इसके मद्देनजर, दिनांक 26-8-2007 को भारतीय दंड संहिता की धारा 174क के अंतर्गत एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

4. विवेचनाधिकारी ने अपराध की जांच करने के बाद, आरोप पत्र प्रस्तुत करने और पुनरीक्षक सहित अभियुक्तों पर मुकदमा चलाने के लिए एक आवेदन दायर किया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोप पत्र प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की और तत्पश्चात् विवेचनाधिकारी द्वारा न्यायालय में दिनांक 13-9-2007 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। आरोप पत्र के साथ एक आवेदन भी दायर किया गया था, जिसमें कहा गया था कि धारा 340 द०प्र०स० सपठित धारा 195 द०प्र०स० के प्रावधानों के अनुसार, अदालत संज्ञान लेने के लिए सक्षम अदालत को अपने हस्ताक्षर में आरोप पत्र भेज सकती है। विचारण न्यायालय ने विवेचनाधिकारी द्वारा दायर दिनांक 13-11-2007 के आवेदन पर निर्णय लिए बिना दिनांक 16-01-2008 को आरोप पत्र का संज्ञान लिया और दस्तावेजों की प्रतियां तैयार करने का आदेश दिया।

5. सह-आरोपी एजाज अख्तर ने विचारण न्यायालय के सामने आत्मसमर्पण किया और जमानत के लिए आवेदन दायर किया। उक्त आरोपी को हिरासत में ले लिया गया और जमानत के लिए उसका आवेदन खारिज कर दिया गया। इसके बाद सत्र न्यायालय ने उनकी जमानत अर्जी मंजूर कर ली थी। वर्तमान पुनरीक्षक को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और उसे न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया। सह-आरोपी अशरफ @ काले अभी भी फरार था।

6. ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांक 6.1.2008 के आदेश के विरुद्ध अपर सिविल न्यायाधीश/न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद के न्यायालय में पीठासीन अधिकारी के परिवर्तन के बाद एक आवेदन दायर किया गया था और पीठासीन अधिकारी ने अपने स्वयं के आदेश के विरुद्ध अपीलों में बैठते हुए यह माना था कि न्यायालय द्वारा लिए गए संज्ञान के विरुद्ध, अभियुक्त की ओर से आपत्ति पर, जब आपत्ति न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के नीचे जाएगी, विचार किया जा सकता है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने माना है कि धारा 195 द०प्र०स० के प्रावधानों से बचा नहीं जा सकता था और 16.1.2008 का संज्ञान लेने का आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना था और शुरू से ही शून्य था।

7. यह आगे कहा गया कि चूंकि संज्ञान का आदेश शुरू से ही शून्य था, इसलिए धारा 309 द०प्र०स०

अनुवादित

के तहत रिमांड को अब मंजूरी नहीं दी जाएगी और रिमांड के लिए आवेदन दिनांक 7.3.2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

8. उक्त आदेश से व्यथित होकर, राज्य ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-249 वर्ष 2008 दायर की है और विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने माना है कि आक्षेपित आदेश के माध्यम से, विद्वान मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लेने के अपने आदेश की समीक्षा की थी। यह अच्छी तरह से तय है कि आपराधिक अदालत के पास अपने स्वयं के आदेश की समीक्षा करने की शक्ति नहीं है। विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने वर्तमान पुनरीक्षण में आक्षेपित दिनांक 7-3-2008 के आदेश को रद्द कर दिया था।

9. श्री दया शंकर मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता को एस/श्री अभिषेक कुमार मिश्रा और शादाब अली, पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता और श्री मनीष गोयल, अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री संजय कुमार सिंह, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदान की गई, को सुना।

10. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता श्री दया शंकर मिश्रा ने प्रस्तुत किया है कि धारा 174-ए भ०द०वि० के तहत अपराध का संज्ञान धारा 195 द०प्र०स० के प्रावधानों का पालन किए बिना नहीं लिया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि पुलिस रिपोर्ट पर अदालत में आरोप पत्र दायर किया गया था और विवेचनाधिकारी ने उक्त रिपोर्ट को संबंधित अदालत को अग्रेषित करने के लिए एक आवेदन दायर किया था। हालांकि, मजिस्ट्रेट ने विवेचनाधिकारी के आवेदन पर निर्णय नहीं लिया और स्वयं संज्ञान लिया और दस्तावेजों की प्रतियां जारी करने का आदेश दिया। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि ऐसे मामले में धारा 309 द०प्र०स० के तहत रिमांड जहां रिकॉर्ड के चेहरे पर संज्ञान का आदेश शून्य है और पारित नहीं किया जा सकता है, इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने क्षेत्राधिकार या कानून की कोई त्रुटि नहीं की है, जिसके लिए पुनरीक्षण न्यायालय को आरोपी पुनरीक्षणकर्ता की रिमांड से इनकार करने वाले दिनांक 7.3.2008 के सुविचारित आदेश में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता हो।

11. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि संज्ञान का आदेश अंतिम आदेश नहीं है और एक आवेदन पर, संबंधित न्यायालय उक्त आदेश को रद्द/वापस ले सकता है। आरोपी-पुनरीक्षणकर्ता के आवेदन पर विद्वान विचारण न्यायालय ने आदेश को वापस ले लिया है कि संज्ञान लेने का आदेश शुरू से ही शून्य था क्योंकि यह धारा 195 द०प्र०स० के उल्लंघन में पारित किया गया था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि पुनरीक्षणकर्ता को पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था और इसलिए, आक्षेपित आदेश कानून में खराब है क्योंकि अभियुक्त-प्रतिवादी को धारा 401 द०प्र०स० में प्रदान किए गए अनुसार सुना जाना आवश्यक था और यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

12. श्री दया शंकर मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:-

1. सुनील त्यागी बनाम एनसीटी दिल्ली सरकार, (2021) 0 उच्चतम (डेल) 831;

2. पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य, (1998) 5

3. धारीवाल तंबाकू उत्पाद लिमिटेड और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य; (2009) 2 एस.सी.सी. 370: और

अनुवादित

4. विष्णु अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2011) 14 एस.सी.सी. 813.

5. मधु लिमये और अन्य बनाम अज्ञात, (1969) 1 एस.सी.सी. 292.

6. इंद्र मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य, (2007) 12 एस.सी.सी. 1"

13. दूसरी ओर, श्री मनीष गोयल, अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि संज्ञान लेने का आदेश एक अंतिम आदेश है। धारा 362 द०प्र०स० के तहत आपराधिक अदालत द्वारा अपने स्वयं के आदेश की समीक्षा करने के लिए एक विशिष्ट रोक है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि विचारण न्यायालय ने न केवल धारा 309 द०प्र०स० के तहत आरोपी पुनरीक्षणकर्ता की रिमांड से इनकार कर दिया है, बल्कि उसी अदालत द्वारा पारित आदेश (हालांकि एक अन्य पीठासीन अधिकारी द्वारा) की भी समीक्षा की है और माना है कि संज्ञान लेने का आदेश शुरू से ही शून्य था। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि इस तरह के क्रम को विद्वान मजिस्ट्रेट के लिए नहीं खोला गया था क्योंकि वह अपने पहले के आदेश की समीक्षा करने के लिए सशक्त नहीं है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि संज्ञान लेने और जारी करने की प्रक्रिया एक अंतिम आदेश है और यह एक वादकालीन आदेश नहीं है, जिसे उसी अदालत द्वारा वापस नहीं लिया जा सकता है या समीक्षा नहीं की जा सकती है।

14. अतिरिक्त महाधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित आदेश ही दिखाएगा कि अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता को प्रस्तुतियाँ करने के लिए कई अवसर दिए गए थे। हालांकि, आरोपी ने दलीलों को संबोधित करने से परहेज किया। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को रद्द करने में क्षेत्राधिकार या कानून की कोई त्रुटि नहीं की है, क्योंकि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश अपील या अपने स्वयं के आदेश की समीक्षा करने के आदेश के बराबर होगा, जो कानून के तहत स्वीकार्य नहीं है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि इसके मद्देनजर, वर्तमान पुनरीक्षण में कोई योग्यता नहीं है, जिसे खारिज किया जा सकता है।

15. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ता की ओर से दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

16. तर्क के लिए, धारा 362 द०प्र०स० इस प्रकार है: -

"362. न्यायालय निर्णय के बाद नहीं। इस संहिता द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवाय, कोई न्यायालय जब किसी मामले के निपटान के लिए अपने निर्णय या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर कर चुका हो, लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के अलावा उसमें परिवर्तन या समीक्षा नहीं करेगा।

17. इस प्रकार, आपराधिक न्यायालय द्वारा अपने स्वयं के आदेश की समीक्षा करने के लिए एक विशिष्ट बार है। समीक्षा की शक्ति एक वैधानिक शक्ति है और यदि अदालत अपने स्वयं के आदेश की समीक्षा करती है, तो यह एक अमान्य और अधिकार क्षेत्र के बिना होगा।

18. अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश/न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 7.3.2008 के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लेने के आदेश के खिलाफ अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर आवेदन पर विचार करते हुए, आवेदन का निर्णय इस तरह किया है जैसे कि वह अपीलीय

क्षेत्राधिकार या समीक्षा क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा था। विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 16-01-2008 के संज्ञान लेते हुए पूर्व आदेश को प्रारंभ से ही शून्य माना है। इस तरह के क्रम को धारा 362 द०प्र०स० के प्रावधानों के तहत पूरी तरह से वर्जित किया गया है।

19. संज्ञान लेने या जारी करने की प्रक्रिया का आदेश एक वादकालीन आदेश नहीं है जैसा कि अदालत प्रसाद बनाम रूपल जिंदल और अन्य, (2004) 7 एस.सी.सी. 338 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया था। उक्त निर्णय में, उच्चतम न्यायालय ने माना कि के.एम मैथ्यू बनाम केरल राज्य, (1992)1 एस.सी.सी. 217 के मामले में इस न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण कि ये संतुष्टि होने पर कि समन जारी करना कानून और जारी करने की प्रक्रिया के आदेश के अनुसार नहीं था, यह अदालत के लिए खुला होगा कि वह समन जारी करने के लिए उसे वापस लेने के लिए स्वतंत्र होगा, एक अंतरिम आदेश है और निर्णय नहीं है और इसलिए, इसे बदल ये वापस किया जा सकता है, यह एक सही दृष्टिकोण नहीं है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 14, 15 और 16, जो प्रासंगिक होंगे, यहां उद्धृत किए गए हैं: -

"14. लेकिन शिकायत का संज्ञान लेने और शिकायतकर्ता और गवाहों की जांच करने के बाद, यदि वह संतुष्ट है कि शिकायत के साथ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है, तो वह संहिता की धारा 204 के तहत सम्मन के माध्यम से प्रक्रिया जारी कर सकता है। इसलिए, धारा 204 के तहत प्रक्रिया जारी करने के लिए जो आवश्यक है या पूर्ववर्ती शर्त है, वह, या तो शिकायतकर्ता और गवाहों की परीक्षा द्वारा या धारा 202 के तहत चिंतन की गई जांच द्वारा, मजिस्ट्रेट की संतुष्टि है कि शिकायत के साथ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है, इसलिए संहिता की धारा 204 के तहत प्रक्रिया जारी करें। इनमें से किसी भी चरण में संहिता ने स्पष्ट कारणों से समन किए गए अभियुक्त की सुनवाई के लिए प्रावधान नहीं किया है क्योंकि यह केवल एक प्रारंभिक चरण है और अभियुक्त की सुनवाई का चरण केवल संहिता में बाद के प्रावधान में प्रदान किए गए बाद के चरण में उत्पन्न होगा। यह सच है जैसा कि मैथ्यू [(1992) 1 एस.सी.सी. 217:1992 एस.सी.सी. (Cri) 88] में इस न्यायालय द्वारा माना गया है कि सम्मन जारी करने से पहले मजिस्ट्रेट को संतुष्ट होना चाहिए कि शिकायत के साथ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है, लेकिन यह संतुष्टि उसके द्वारा की गई जांच द्वारा प्राप्त की जानी है जैसा कि धारा 200 और 202 के तहत विचार किया गया है, और शिकायत को खारिज करने का एकमात्र चरण संहिता की धारा 203 के तहत उत्पन्न होता है, जिस चरण में अभियुक्त की कोई भूमिका नहीं होती है, इसलिए, अभियुक्त द्वारा समन प्राप्त होने पर न्यायालय का दरवाजा खटखटाने और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर पुनर्विचार करने पर संहिता की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज करने के लिए आवेदन करने का प्रश्न अस्वीकार्य है क्योंकि तब तक धारा 203 पहले ही समाप्त हो चुकी है और मजिस्ट्रेट धारा 204 के चरण में आगे बढ़ गया है।

15. यह सच है कि यदि कोई मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान लेता है, तो अभियुक्त के खिलाफ कोई आरोप या अभियुक्त को फंसाने वाली कोई सामग्री या धारा 200 और 202 के प्रावधानों के उल्लंघन के बिना प्रक्रिया जारी करता है, तो मजिस्ट्रेट का आदेश दूषित हो सकता है,

लेकिन फिर उस स्तर पर पीड़ित अभियुक्त को जो राहत मिल सकती है, वह संहिता की धारा 203 को लागू करके नहीं है क्योंकि ये दंड प्रक्रिया संहिता नहीं है कि एक आदेश की समीक्षा पर विचार करें। इसलिए अधीनस्थ आपराधिक न्यायालयों के पास किसी भी समीक्षा शक्ति या अंतर्निहित शक्ति के अभाव में, उपाय संहिता की धारा 482 को लागू करने में निहित है।

16. इसलिए, हमारी राय में मैथ्यू [(1992) 1 एस.सी.सी. 217: 1992 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 88] के मामले में इस न्यायालय की टिप्पणी कि प्रक्रिया जारी करने के गलत आदेश को वापस लेने के लिए, कानून के किसी विशिष्ट प्रावधान की आवश्यकता नहीं है, संहिता की योजना के विपरीत होगा जिसने समीक्षा के लिए प्रदान नहीं किया है और इंटरलोक्यूटरी चरणों में हस्तक्षेप को प्रतिबंधित करता है। इसलिए, हमारी राय है कि मैथ्यू मामले [(1992) 1 एस.सी.सी. 217: 1992 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 88] में इस न्यायालय का दृष्टिकोण कि अधिकार क्षेत्र के बिना एक गलत आदेश को वापस लेने के लिए किसी विशिष्ट प्रावधान की आवश्यकता नहीं है, सही कानून निर्धारित नहीं करता है।

20. मोहम्मद जाकिर बनाम शबाना और अन्य, (2018) 15 एस.सी.सी. 316 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने माना है कि एक आपराधिक अदालत अंतिम आदेश का सुधार नहीं कर सकती है, भले ही पहले का आदेश स्पष्ट रूप से गलत हो। इस तरह के आदेश को केवल कानून के लिए ज्ञात प्रक्रिया में ही ठीक किया जा सकता है, न कि धारा 362 द०प्र०स० के तहत। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 2 और 3 यहां दिए गए हैं: -

"2. अपीलकर्ता व्यथित है क्योंकि उच्च न्यायालय ने धारा 362 द०प्र०स० दिनांक 28-4-2017 के तहत एक आदेश पारित किया था [मोहम्मद अली अशरफ फातमी। जाकिर बनाम शबाना, 2017 एस.सी.सी. ऑनलाइन कर 4719] अपने स्वयं के आदेश दिनांक 18-4-2017 को याद करते हुए [मो. जाकिर बनाम शबाना, 2017 एस.सी.सी. ऑनलाइन कर 1000: (2017) 2 सीसीसी 515 (1)]। आदेश दिनांक 28-4-2017 [मो. जाकिर बनाम शबाना, 2017 एस.सी.सी. ऑनलाइन कार 4719] निम्नानुसार है:

"धारा 362 द०प्र०स० के बावजूद, इस न्यायालय द्वारा 18-4-2017 को दिए गए आदेश [मोहम्मद अली अशरफ फातमी] जाकिर बनाम शबाना, 2017 एस.सी.सी. ऑनलाइन कर 1000: (2017) 2 सीसीसी 515(1)] स्पष्ट रूप से गलत पाया गया है और इसलिए आदेश वापस लिया जाता है। याचिका को दायर करने के लिए बहाल किया जाता है और रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह पहले पारित आदेश को वेबहोस्ट (मिश्रित) न करे और इस तथ्य पर ध्यान दे कि आदेश वापस ले लिया गया है।

3. उच्च न्यायालय को गुण-दोष के आधार पर सुधार के लिए धारा 362 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए था। हालांकि पहले का आदेश स्पष्ट रूप से गलत है। इसे केवल कानून के लिए ज्ञात प्रक्रिया में ठीक किया जा सकता है, धारा 362 द०प्र०स० के तहत नहीं। 1878 का पूरा उद्देश्य केवल एक लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करना है। उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में जो करने की मांग की, वह एक लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के लिए नहीं है; इसने गुण-दोष के आधार पर मामले की फिर से सुनवाई

करने की मांग की, क्योंकि विद्वान न्यायाधीश के अनुसार, पहले का आदेश स्पष्ट रूप से गलत था। कानून के तहत इसकी अनुमति नहीं है। तदनुसार, हम 28-4-2017 के आदेश को रद्द करते हैं।

21. पूर्वोक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि संज्ञान लेने का आदेश एक अंतिम आदेश है और यह गलत आदेश है या नहीं, इसे उचित कार्यवाही में उच्चतर न्यायालय द्वारा देखा जा सकता है, न कि उसी न्यायालय द्वारा, जिसने संज्ञान लिया है।

22. इसके मद्देनजर, मेरा विचार है कि वर्तमान पुनरीक्षण में चुनौती के तहत आदेश किसी भी अवैधता या क्षेत्राधिकार या कानून की त्रुटि से ग्रस्त नहीं है। विद्वान मजिस्ट्रेट के पास संज्ञान लेते हुए दिनांक 16.1.2008 के पहले के आदेश की समीक्षा करने की कोई शक्ति नहीं है और इसलिए, मुझे वर्तमान पुनरीक्षण में कोई योग्यता नहीं मिलती है, जिसे एतद्द्वारा खारिज किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 1010

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चन्द्र त्रिपाठी,

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 472/2022

सऊद अख्तर एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री मलय प्रसाद, श्री रमेश चन्द्र अग्रहरि, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री मधु शुक्ला, श्री पीयूष शुक्ला, सुश्री सलोनी माथुर, सुश्री तान्या मक्कड़

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी.आई., श्री अरविंद सिंह जी.ए.

आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 21, 22(3)(बी), 226, - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 167 और 167(2)(सी), - राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 - धारा 3(2) और 3(4) -लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 - धारा 123(2) 123(3) और 123(3)(ए)- भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 34, 120(बी), 147, 148, 149, 302 और 307 - आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम - धारा - 7, यूपी गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, - धारा 3(1), - निवारक निरोध अधिनियम, 1950 - धारा 3(2), 123 (2), 123 (3) और 123 (3ए), - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1972: - बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट, - हिरासत आदेश के खिलाफ - प्रतिनिधित्व - अस्वीकृत - पोषणीयता - सक्षम प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि की कमी, - कानून और आदेश और सार्वजनिक आदेश परिभाषित - अदालत ने पाया कि, हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने केवल हिरासत के संबंध में आधार में उल्लेख किया है कि याचिकाकर्ता ने अदालत के समक्ष अपनी जमानत याचिका दायर की है और जेल से बाहर आने पर याचिकाकर्ता के सार्वजनिक आदेश के रखरखाव के लिए हानिकारक इसी तरह की गतिविधियों में शामिल होने की संभावना थी, - उसने आपेक्षित आदेश में अपनी संतुष्टि दर्ज नहीं की है, - उसके

अनुवादित

जमानत पर रिहा किए जाने की संभावना थी, हमारी राय में चूक ने आक्षेपित आदेश को पूरी तरह से निष्फल कर दिया है - इसलिए, एनएसए, 1980 की धारा 3 (2) के प्रावधानों के तहत हिरासत में लिए गए व्यक्ति को हिरासत में लिया जाना टिकाऊ नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप आक्षेपित आदेशों को निरस्त कर दिया जाता है - याचिका अनुमति - तदनुसार निर्देश जारी किए गए। (पैरा 36, 38, 39, 40)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सऊद अख्तर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (विविध जमानत आवेदन संख्या 31658/2021, निर्णय दिनांक 15.2.2022),
2. सऊद अख्तर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, क्रिमिनल विविध जमानत आवेदन क्रमांक 10417 / 2022, आदेश दिनांक 30.3.2022,
3. सऊद अख्तर और अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, (एसएलपी (सीआरएल) संख्या 10091/2022, दिनांक 12.9.2022 को निर्णय लिया गया),
4. क़मरुल इस्लाम बनाम एस.के. कांता एवं अन्य (1994 (1) एससीआर 210),
5. नवल किशोर शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (मामला यू/ए 227 संख्या 6178/2022, निर्णय 30.9.2022),
6. युम्मन ओंग्बी लेम्बी लीमा बनाम मणिपुर राज्य और अन्य। (आपराधिक अपील संख्या 26/2012, दिनांक 04.1.2012 को निर्णय लिया गया),
7. अभयराज गुप्ता बनाम अधीक्षक, जेल, बरेली (बंदी प्रत्यक्षीकरण डब्ल्यू.पी. नं. 362/2021, दिनांक 23.12.2021 को निर्णय लिया गया),
8. हुइड्रोम कोनुंगजाओ सिंह बनाम मणिपुर राज्य एवं अन्य। (2012 खंड 7 एससीसी 181),
9. कानू विश्वास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य., एआईआर 1972 एससी 1656,
10. डॉ. राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य एवं अन्य., (1966 (1) एससीआर 709,
11. किशोरी मोहन बेरा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 1972 (3) एससीसी 845,
12. हराधन साहा एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य., (1975) 3 एससीसी 198,
13. कमरुन्निसा बनाम भारत संघ एवं अन्य, 1990 (27) एसीसी 621 एससी,
14. धर्मेन्द्र सुगनचंद चेलावत बनाम भारत संघ, एआईआर 1990 एससी 1196,
15. अरुण घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 1970 (3) एससीआर 288,
16. रिवाडेनेटा रिकार्डो अगस्टिन बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार एवं अन्य, 1994 पूरक 1 एससीसी 597,
17. विजय नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य, (1984) 3 एससीसी 14,
18. बिनोद सिंह बनाम डी.एम., धनबाद, (1986) 4 एससीसी 416,
19. एस.के. माबुद बनाम ओडिशा राज्य और अन्य, रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 82 /2020, 03.08.202 को निर्णय लिया गया,

(माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं की अधिवक्ता सुश्री सलोनी माथुर और सुश्री तान्या मक्कड़ के साथ श्री मलय प्रसाद; श्री अरविंद सिंह, भारत संघ के अधिवक्ता और राज्य प्रतिवादी के लिए श्री ए.एन मुल्ला और श्री एस.ए मुर्तजा, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

अनुवादित

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका को निम्नलिखित राहतों की मांग करते हुए प्राथमिकता दी जाती है: -

"1. मैं राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 (अनुलग्नक संख्या 1) की धारा 3 (2) के तहत प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 31.03.2022 को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

II. राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 (अनुलग्नक संख्या 2) की धारा 3 (3) (4) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा जारी आक्षेपित अधिसूचना संख्या 111/2/04/2022- C.X-6 लखनऊ दिनांक 07.04.2022 को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।

III. प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 11.04.2022 को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं के प्रतिनिधित्व को खारिज कर दिया गया है (अनुलग्नक संख्या 3)।

IV. प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 20.05.2022 को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें (याचिकाकर्ता को प्रति प्रदान नहीं की गई)।

V. बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करना और संबंधित उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता नंबर 1 (हिरासत में) को इस माननीय न्यायालय के समक्ष पेश करने का निर्देश देना और याचिकाकर्ता नंबर 1 को तुरंत स्वतंत्र करना, जो प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3 (2) के तहत दिनांक 31.03.2022 के आक्षेपित हिरासत आदेश के तहत अवैध हिरासत में है।

VI. उसे मुआवजा देने के लिए एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसका निर्णय इस माननीय न्यायालय द्वारा उसकी अवैध हिरासत के लिए किया जाएगा।

VII. एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्य और परिस्थितियों के तहत बेहतर और उचित समझे।

VIII. याचिकाकर्ताओं को याचिका की लागत प्रदान करें।

3. रिकॉर्ड से ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांक 31.3.2022 को जिलाधिकारी कानपुर नगर ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3(2) के तहत नजरबंदी का आदेश पारित किया है। उक्त हिरासत आदेश पारित करने में, जिला मजिस्ट्रेट ने संतुष्ट महसूस किया कि चूंकि याचिकाकर्ता नंबर 1 को सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए किसी भी तरह से प्रतिकूल कार्य करने से रोकना आवश्यक था, इसलिए एन.एस.ए, 1980 के तहत आदेश पारित करना अनिवार्य था। उन्होंने एन.एस.ए, 1980 के तहत कार्यवाही के आह्वान के लिए अपनी संतुष्टि को निम्नलिखित आधारों पर आधारित किया, जो रिकॉर्ड से परिलक्षित होते हैं: -

अनुवादित

(1) शिकायतकर्ता धर्मेंद्र सिंह सेंगर द्वारा दिनांक 20.06.2020 को एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी जिसे केस क्राइम 425 / 2020 की धारा 147, 148, 149, 302/34 भ०द०वि० और आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की धारा 7 के तहत थाना-चकेरी, जिला कानपुर नगर में इस आरोप के साथ दर्ज किया गया था कि तीन साल पहले याचिकाकर्ता नंबर 1 सऊद अख्तर और सह-आरोपी मो. असीम @ पप्पू ने उसके भाई पिंटू सेंगर को मारने के इरादे से फायरिंग की, जिसमें उसका भाई पिंटू सेंगर फरार हो गया और इस संबंध में कोर्ट में केस लंबित था। उक्त पिछली दुश्मनी के कारण, आरोपी-याचिकाकर्ता सऊद अख्तर ने अन्य सह-आरोपियों के साथ साजिश रची और उसके भाई को समझौते

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

के लिए बुलाया, जिस पर दिनांक 20.06.2020 को दोपहर लगभग 1:00 बजे शिकायतकर्ता अपने भाई पिंटू सेंगर और

ड्राइवर रूपेश के साथ इनोवा कार से उनसे मिलने जा रहा था, लेकिन रास्ते में, आरोपी याचिकाकर्ता और अन्य सह-आरोपी उसे मारने के इरादे से, उसके भाई पर अंधाधुंध गोलीबारी की जिससे वह गंभीर रूप से घायल हो गया और नीचे गिर गया। शिकायतकर्ता और ड्राइवर ने छिपकर खुद को बचाया। शिकायतकर्ता अपने भाई को अस्पताल ले गया जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया। उपरोक्त मामले अपराध संख्या 425 वर्ष 2020 में जांच के बाद जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के खिलाफ धारा 147, 148, 149, 302, 307, 34, 120बी भ०द०वि० और आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की धारा 7 के तहत आरोप पत्र दिनांक 20.11.2020 प्रस्तुत किया। यह भी कहा गया है कि प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने कई दिनों तक अखबारों में अपनी समाचार रिपोर्टों में उक्त घटना को उजागर किया। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट; सूचनाकर्ता का बयान; मृतक के चालक के बयान और मृतक के परिवार के सदस्यों के बयान का उल्लेख किया जाता है और याचिकाकर्ता नंबर 1/ बंदी के खिलाफ दिनांक 20.11.2020 को एक पूरक आरोप पत्र संख्या 605-ए भी धारा 120 बी भ०द०वि० के साथ दायर किया गया है। उक्त आपराधिक मामले में याचिकाकर्ता नंबर 1 को इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 31658 वर्ष 2021 (सऊद अख्तर बनाम यूपी राज्य) में पारित आदेश दिनांक 15.2.2022 द्वारा जमानत दी गई है। (2) हिरासत के आधार में पुलिस द्वारा यूपी गैंगस्टर्स एंड एंटी सोशल एक्टिविटीज (प्रिवेंशन) एक्ट, 1986 की धारा 3 (1) के तहत दर्ज की गई बाद की प्राथमिकी दिनांक 06.3.2021 को भी संदर्भित किया गया है, जो थाना-चकेरी, जिला कानपुर नगर में अपराध संख्या 212 वर्ष 2021 के रूप में दर्ज की गई है और जांच के बाद उक्त मामले में चार्जशीट दायर की गई है। आपराधिक इतिहास के कैप्शन में हिरासत के आधार में 34 आपराधिक मामलों का विवरण भी उल्लेख किया गया है। याचिकाकर्ता नंबर 1 की रिहाई की अपार संभावना थी क्योंकि केस संख्या 212 वर्ष 2021 में उसकी जमानत याचिका इस अदालत के समक्ष लंबित थी। अंततः, उक्त मामले में याचिकाकर्ता को इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध

अनुवादित

जमानत आवेदन संख्या 10417 वर्ष 2022 (सऊदअख्तर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित आदेश दिनांक 30.3.2022 के तहत जमानत दे दी गई है।

(3) इस बीच, संबंधित थानाध्यक्ष ने एन.एस.ए. 1980 के तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही शुरू करने के लिए सहायक पुलिस आयुक्त को दिनांक 30.3.2022 को एक रिपोर्ट सौंपी। सहायक पुलिस आयुक्त ने इसे दिनांक 31.3.2022 को पुलिस उपायुक्त को भेज दिया। इसे आगे कानपुर नगर के पुलिस आयुक्त को भेज दिया गया था और उसी दिन पुलिस आयुक्त ने अपनी रिपोर्ट जिला मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर को भेज दी है। रिकॉर्ड पर उपलब्ध पूरी सामग्री को देखने के बाद जिला मजिस्ट्रेट संतुष्ट थे कि याचिकाकर्ता नंबर 1 को हिरासत में लिया जाना चाहिए ताकि उन्हें सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए किसी भी तरह से प्रतिकूल कार्य करने से रोका जा सके, जिसका उल्लंघन आसन्न है और परिणामस्वरूप, उन्होंने दिनांक 31.3.2022 को आक्षेपित हिरासत आदेश पारित किया है। हिरासत के आधार पर, जिला मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा करने और सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने वाले अपराधों को दोहराने के संबंध में मोबाइल कांस्टेबलों की एक बीट सूचना भी भेजी है। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अंततः आपराधिक इतिहास के कॉलम पर विचार करने के बाद हिरासत के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ हिरासत आदेश पारित करना आवश्यक है।

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

4. याचिकाकर्ता नंबर 1 को दिनांक 20.5.2020 की प्राथमिकी के अनुसरण में उसकी गिरफ्तारी के बाद दिनांक 20.10.2020 से जिला जेल, कानपुर नगर में बंद कर दिया गया था। हिरासत आदेश दिनांक 31.3.2022 को हिरासत में लेने के आधार और अन्य प्रासंगिक सामग्रियों के साथ उसी दिन जेल अधिकारियों के माध्यम से याचिकाकर्ता को प्रभावी प्रतिनिधित्व करने का अवसर देने के लिए दिया गया था। हिरासत के आधार के साथ हिरासत आदेश दिनांक 01.4.2022 को विशेष संदेशवाहक के माध्यम से राज्य सरकार को भेजा गया था। अंत में, राज्य सरकार ने दिनांक 07.4.2022 के आदेश के तहत हिरासत आदेश को मंजूरी दे दी। याचिकाकर्ता नंबर 1 ने दिनांक 04/08.04.2022 को सलाहकार बोर्ड, राज्य सरकार के साथ-साथ केंद्र सरकार को भी अभ्यावेदन दिया। हालांकि, दिनांक 09.4.2022 को दो दिनों की अंतराल अवधि थी और दिनांक 10.4.2022 को दूसरा शनिवार और रविवार था और इसलिए, जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 11.4.2022 को प्रत्यावेदन को खारिज कर दिया है। इसकी सूचना उसी दिन जेल अधिकारियों के माध्यम से याचिकाकर्ता को दे दी गई। अभ्यावेदन की अस्वीकृति की सूचना दिनांक 11.4.2022 को विशेष संदेशवाहक के माध्यम से राज्य सरकार और केंद्र सरकार को भी दी गई थी। टिप्पणियां प्राप्तहोने के बाद, राज्य सरकार ने उनके अभ्यावेदन पर रिपोर्ट केन्द्र सरकार को अग्रेषित कर दी। राज्य सरकार ने दिनांक 26.4.2022 को याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व को खारिज कर दिया है और केंद्र सरकार ने दिनांक 27.4.2022 को उनके प्रतिनिधित्व को खारिज

कर दिया है। दोनों अस्वीकृति आदेशों को उसी दिन जेल अधिकारियों के माध्यम से याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था। सलाहकार बोर्ड ने भी याचिकाकर्ता को दिनांक 09.5.2022 को सुना। सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद, उक्त हिरासत आदेश की पुष्टि राज्य सरकार द्वारा दिनांक 20.5.2022 के आदेश द्वारा शुरू में हिरासत की तारीख यानी दिनांक 31.3.2022 से तीन महीने की अवधि के लिए की गई थी, जिसे याचिका में चुनौती दी गई है।

5. पूर्वोक्त से व्यथित महसूस करते हुए, निरुद्ध याचिकाकर्ता ने अपने अगले दोस्त /बेटे नवाज अख्तर (याचिकाकर्ता नंबर 2) के माध्यम से प्रार्थना के साथ तत्काल बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की है, जैसा कि ऊपर पैराग्राफ 2 में उल्लिखित है। तत्काल बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के लंबित रहने के दौरान, राज्य सरकार ने दिनांक 14.6.2022 के आदेश के तहत हिरासत की अवधि को तीन महीने की और अवधि के लिए बढ़ा दिया और फिर दिनांक 22.9.2022 को राज्य सरकार ने नजरबंदी की तारीख यानी दिनांक 31.3.2022 से नौ महीने के लिए हिरासत की अवधि बढ़ा दी, लेकिन रिकॉर्ड से यह पता चलता है कि दिनांक 14.6.2022 और 22.9.2022 के विस्तार आदेशों को निरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा तत्काल बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में चुनौती नहीं दी गई है!

6. यह याचिका शुरू में इस न्यायालय में दिनांक 01.7.2022 को प्रस्तुत की गई थी जब विरोधी पक्षों को जवाबी हलफनामा दायर करने का समय दिया गया था। राज्य सरकार, जिला मजिस्ट्रेट और जिला जेल अधीक्षक ने ऐसा किया है। याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 09.9.2022 को प्रत्युत्तर शपथ पत्र भी दायर किया गया है। इसके बाद, मामले को दिनांक 12.9.2022 को लिया गया और उक्त तिथि पर, इसे दिनांक 21.9.2022 को सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया। इस बीच, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय दवारा दिनांक 12.9.2022 को पारित आदेश से उत्पन्न अपील (Crl.) No(s) 10091/2022 (सऊद अख्तर और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य) के लिए विशेष अनुमति दायर की थी और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 14.11.2022 के आदेश के तहत निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ उक्त एस.एल.पी का निपटान करने के लिए कार्यवाही की है:-

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

"1. बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 472 वर्ष 2022 पर विचार करते हुए, इलाहाबाद में न्यायिक उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने अपने 12 सितंबर 2022 के आदेश द्वारा निर्देश दिया कि कार्यवाही 21 सितंबर 2022 को सूचीबद्ध की जाए। इस न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका 14 अक्टूबर, 2022 को स्थापित की गई थी। सामान्यत हम इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विशेष अनुमति याचिका पर विचार नहीं करते कि बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को केवल दस दिनों की अवधि तक स्थगित करने का निर्देश दिया गया था। हालांकि, श्री सिद्धार्थ लूथरा, याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री रोहित अमित स्टालेकर के साथ पेश होने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इसके बाद याचिका को 21 सितंबर 2022, 28 सितंबर 2022, 12 अक्टूबर 2022, 19 अक्टूबर 2022,

2 नवंबर 2022 और 14 नवंबर 2022 को स्थगित कर दिया गया है और सुनवाई के लिए नहीं लिया गया है।

2. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिका राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3 (2) के तहत पारित हिरासत के आदेश को चुनौती देना चाहती है, हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि वह याचिका को सभी उचित प्रेषण के साथ उठाए और इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर इसे शीघ्रता से निपटाने का प्रयास करे।

3. पूर्वोक्त के अधीन, विशेष अनुमति याचिका का निपटारा किया जाता है।

4. लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का निपटान किया जाता है।

7. इस पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया कि इस रिट याचिका में, याचिकाकर्ता नंबर 1 की हिरासत की वैधता को चुनौती दी गई है। याचिकाकर्ता नंबर 1 को जिला मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर ने एन.एस.ए, 1980 की धारा 3 (2) के तहत किए गए आदेश दिनांक 31.3.2022 (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1) द्वारा हिरासत में लिया है। राज्य सरकार ने सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त होने के बाद दिनांक 07.4.2022 के आदेश के तहत एन.एस.ए, 1980 की धारा 3 (4) के तहत आवश्यक हिरासत आदेश को मंजूरी दे दी है। नजरबंदी के आधारों में यह पाठ है कि उपरोक्त घटना के परिणामस्वरूप जिला कानपुर नगर की आम जनता में भय और आतंक फैल गया था। सार्वजनिक व्यवस्था और जीवन की गति पूरी तरह से प्रभावित अस्त व्यस्त थी। उपर्युक्त घटनाओं को मीडिया द्वारा विभिन्न राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर के समाचार पत्रों में व्यापक कवरेज दिया गया था। पहले से गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को अभी भी एन.एस.ए अधिनियम के तहत हिरासत में लिया जा सकता है, लेकिन उस शक्ति का प्रयोग करने के लिए, अधिकारियों को कुछ आवश्यकताओं को पूरा करना होगा। सक्षम प्राधिकारी की वैध "व्यक्तिपरक संतुष्टि" दर्ज करने के लिए आवश्यक सामग्री दिनांक 31.3.2022 के आक्षेपित आदेश में अनुपस्थित है।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एन.एस.ए, 1980 की धारा 3 (2) के अनुसार किसी व्यक्ति को राज्य की सुरक्षा या सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए किसी भी तरह से प्रतिकूल कार्य करने से रोकने के लिए हिरासत का आदेश पारित किया जा सकता है। वर्तमान मामला मुख्य रूप से "कानून और व्यवस्था" की गड़बड़ी की श्रेणी में आता है न कि "सार्वजनिक व्यवस्था"। कहा जाता था कि सार्वजनिक व्यवस्था कानून और व्यवस्था की तुलना में समुदाय को अधिक

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

गले लगाती है। सार्वजनिक व्यवस्था समुदाय के जीवन की सम गति है जो देश को संपूर्ण या यहां तक कि एक निर्दिष्ट इलाके के रूप में लेती है। सार्वजनिक व्यवस्था की गड़बड़ी को व्यक्तियों के खिलाफ निर्देशित कृत्यों से अलग किया जाना है, जो समाज को सार्वजनिक शांति की सामान्य गड़बड़ी पैदा करने की सीमा तक परेशान नहीं करते हैं। यह अशांति की स्थिति है और एक

इलाके में समुदाय के जीवन पर इसका प्रभाव है जो निर्धारित करता है, क्या गड़बड़ी केवल कानून और व्यवस्था का उल्लंघन है। इसलिए, यह सवाल, कि क्या किसी व्यक्ति ने कानून और व्यवस्था का उल्लंघन किया है या इस तरह से काम किया है जिससे सार्वजनिक व्यवस्था में गड़बड़ी होने की संभावना है, यह सवाल है कि समाज पर अधिनियम की पहुंच कितनी है।

9. यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान मामले में आग्नेयास्त्रों द्वारा हमले के कथित कार्य व्यक्ति के खिलाफ निर्देशित हैं और सार्वजनिक व्यवस्था के विध्वंसक नहीं हैं। इसलिए, सार्वजनिक व्यवस्था के प्रतिकूल किसी भी तरह से उसे रोकने के दिखावटी आधार पर हिरासत आदेश उचित नहीं था। यह कानून और व्यवस्था का उल्लंघन करने वाला एक अधिनियम है और अधिनियम की पहुंच और प्रभाव इतना व्यापक नहीं है कि सोसायटी के एक बड़े सदस्य को प्रभावित किया जा सके। दूसरे शब्दों में, याचिकाकर्ता का कथित कृत्य सार्वजनिक शांति को भंग नहीं करता है और न ही यह इलाके के लोगों के मन में कोई आतंक या आतंक पैदा करता है और न ही यह समुदाय के जीवन की गति को प्रभावित करता है। यह आपराधिक कृत्य हिरासत में लिए गए व्यक्ति और शिकायतकर्ता के बीच कथित व्यक्तिगत शत्रुता से उत्पन्न होता है और इसलिए, इस तरह का कृत्य हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि का आधार नहीं हो सकता है कि वह इस आधार पर हिरासत में लेने का आदेश पारित करे कि यह अधिनियम सार्वजनिक व्यवस्था का अभिप्राय है अर्थात समुदाय के जीवन की सम गति जो हिरासत के आदेश को लागू करने का एकमात्र आधार है।

10. यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप यह है कि उसने कानपुर के जेके कॉलोनी में दिनदहाड़े मृतक पिंटू सेंगर की हत्या को अंजाम देने के लिए पेशेवर निशानेबाजों को काम पर रखा था। कहा जाता है कि इस घटना ने सार्वजनिक शांति को बाधित किया है, जिसे याचिकाकर्ता की हिरासत के लिए प्रमुख आधार के रूप में बताया गया है। उन्होंने उक्त मामले की केस डायरी से नक्शा नज़री पर भरोसा किया है, जिसे पूरक हलफनामे के अनुलग्नक एस.ए-1 के रूप में जोड़ा गया है, जिसमें घटना बहुत घनी आबादी वाले क्षेत्र में नहीं हुई थी ताकि बड़े पैमाने पर जनता को परेशान या प्रभावित किया जा सके। घटना स्थल केवल दोनों छोरों पर खाली भूखंडों से घिरा हुआ है और घटना स्थल से 50 मीटर की दूरी पर केवल एक जनरल स्टोर है। घटना स्थल पर कई लोग मौजूद नहीं थे। जांच के दौरान बरामद घटना के सीसीटीवी फुटेज में याचिकाकर्ता की पहचान हमलावर के रूप में नहीं की गई है। दरअसल, याचिकाकर्ता की मौजूदगी भी सीसीटीवी फुटेज में कैद नहीं हुई है।

11. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि हिरासत आदेश बिना किसी ठोस सामग्री के पारित किया जाता है। 2020 की एक पुरानी घटना नजरबंदी का आदेश पारित करने का कारण बनी। उक्त मामले में, याचिकाकर्ता को इस न्यायालय दद्वारा दिनांक 15.2.2022 के आदेश के तहत पहले ही जमानत दे दी गई है। पिछले रिकॉर्ड में हिरासत के कारण के साथ एक

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी

और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

मज़बूत और निकटवर्ती लिंक होना चाहिए। अन्यथा, ऐसी पुरानी सामग्री/मामला हिरासत आदेश पारित करने का आधार नहीं हो सकता है। वर्तमान हिरासत आदेश में, मीडिया क्लिपिंग को सार्वजनिक व्यवस्था के विघटन के एकमात्र प्रमाण के रूप में बनाया गया है और रिकॉर्ड पर घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1972 के अनुसार, समाचार पत्रों की रिपोर्ट स्वयं उसकी विषय- वस्तु का साक्ष्य नहीं हैं। इस प्रकार, जिला मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर ने मामले के तथ्यों और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर अपना दिमाग नहीं लगाया है और उन्होंने पुलिस अधिकारियों द्वारा उन्हें सौंपी गई रिपोर्ट पर नियमित रूप से आक्षेपित आदेश पारित किया है। हिरासत में लेने वाला प्राधिकारी आक्षेपित आदेश में कोई संतुष्टि दर्ज करने में विफल रहा है कि याचिकाकर्ता, जो पहले से ही न्यायिक हिरासत में था, को जमानत पर रिहा किए जाने की वास्तविक संभावना थी। इसके अलावा हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के समक्ष सामग्री उसे संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं थी कि जमानत पर रिहा होने के बाद याचिकाकर्ता फिर से सार्वजनिक व्यवस्था के प्रतिकूल गतिविधियों में लिप्त होगा और इसलिए, आक्षेपित आदेश, जो कि अवैध है, को रद्द किया जा सकता है और याचिकाकर्ता को तुरंत स्वतंत्रता दी जा सकती है। अपनी दलील के समर्थन में, उन्होंने कमरुल इस्लाम बनाम एसके कांता और अन्य 2 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के साथ-साथ नवल किशोर शर्मा बनाम यूपी राज्य और अन्य में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

12. यह प्रस्तुत किया गया है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने हिरासत के आदेश को पारित करने से पहले अपने दिमाग का इस्तेमाल नहीं किया और आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता पर लगाए गए संवैधानिक और कानूनी दायित्व और हिरासत की शक्ति का प्रयोग करने के तरीके के बीच संतुलन बनाने में विफल रहा। ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि इसका तर्कसंगत रूप से प्रयोग किया गया है। जिला मजिस्ट्रेट ने 34 मामलों की आपराधिक सूची पर भरोसा किया है, जिसमें से याचिकाकर्ता को 10 आपराधिक मामलों में बरी कर दिया गया है; 9 मामलों में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी गई है; 4 मामले याचिकाकर्ता से संबंधित नहीं हैं और दो आपराधिक मामलों की कार्यवाही रद्द कर दी गई है। इसके अलावा, जिला मजिस्ट्रेट कथित अपराधों और हिरासत के आदेश के बीच संबंध बनाने में विफल रहे हैं। आपराधिक मामलों का विवरण रिट याचिका के पैराग्राफ -36 में दिया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि निवारक हिरासत किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए किसी काम के लिए दंडित करने के लिए नहीं है, बल्कि उसे ऐसा करने से रोकने के लिए है। इसलिए, चूंकि हिरासत में लिए गए व्यक्ति के कई आपराधिक मामलों में शामिल होने के आरोप पर पुलिस अधीक्षक की रिपोर्ट में किसी भी सामग्री या हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के समक्ष उपलब्ध सामग्री का खुलासा किए बिना कि सार्वजनिक व्यवस्था का उल्लंघन होने की संभावना है, हिरासत आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है। इस संबंध में,उन्होंने युम्मन ऑगबी लेम्बी लीमा बनाम मणिपुर राज्य और अन्य 4 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के साथ-साथ एसके माबूद बनाम ओडिशा राज्य

और अन्य 5 में उड़ीसा उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है। उन्होंने आगे कहा कि यह घटना दिनांक 20.6.2020 को हुई थी और यह एक पुरानी घटना है, जो उस समय के निकट नहीं है जब दिनांक 31.3.2022 को हिरासत आदेश पारित किया गया था। लगभग दो वर्षों के लंबे विलंब के बाद, एन.एस.ए, 1980 के प्रावधानों को लागू करना न तो आवश्यक था और न ही उचित था और हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया नहीं गया था। उन्होंने अभयराज गुप्ता बनाम अधीक्षक,जेल, बरेली में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

13. अंत में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि अपराध संख्या 425 वर्ष 2020 में याचिकाकर्ता को इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 31658 वर्ष 2021 में पारित आदेश दिनांक 15.2.2022 के तहत जमानत दी गई है, हिरासत आदेश पारित करने से पहले। जमानत याचिका में जमानत के आधार शामिल थे, जिसमें यह आधार भी शामिल था कि उन्हें उक्त मामले में झूठा फंसाया गया था। सूचनाकर्ता को एक अविश्वसनीय गवाह कहा गया था क्योंकि उसने कई मौकों पर अपने बयान बदले थे। प्राथमिकी में निर्धारित अभियोजन पक्ष के संस्करण और जांच अधिकारी के समक्ष समय-समय पर सूचनाकर्ता द्वारा दिए गए बाद के बयानों में सामग्री असंगति थी। प्राथमिकी में मुख्य अपराधियों के रूप में नामित कुछ अपराधियों के खिलाफ चार्जशीट तक नहीं की गई थी। रिकॉर्ड पर घटना के सीसीटीवी फुटेज में याचिकाकर्ता की उपस्थिति नहीं दिखती है। याचिकाकर्ता के आपराधिक इतिहास को विधिवत समझाया गया था। पर्याप्त सामग्री थी जो हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के निर्णय को यथोचित रूप से प्रभावित कर सकती थी लेकिन हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने उन पर विचार नहीं किया है। हालांकि, अगर अधिकारी याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा करने से संतुष्ट नहीं थे, तो इसे उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती थी। जब प्रतिवादियों के पास विकल्प उपलब्ध था तो रासुका, 1980 के तहत याचिकाकर्ता की हिरासत को लागू करना अन्यायपूर्ण था और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन था। यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि देश का सामान्य कानून स्थिति से निपट सकता है, तो निवारक हिरासत कानून का सहारा अवैध होगा।

14. इसके विपरीत, एजीए और भारत संघ के अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश के समर्थन में अपनी प्रस्तुतियाँ दीं और प्रस्तुत किया कि उपरोक्त घटना के कारण, सार्वजनिक व्यवस्था और इलाके की शांति भंग हो गई थी। याचिकाकर्ता की रिहाई की अपार संभावना थी क्योंकि केस 212 वर्ष 2021 में उसकी जमानत याचिका इस अदालत के समक्ष लंबित थी, इसलिए, थानाध्यक्ष ने एन.एस.ए, 1980 के तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही शुरू करने के लिए सहायक पुलिस आयुक्त को दिनांक 30.3.2022 को अपनी रिपोर्ट सौंपी। सहायक पुलिस आयुक्त की रिपोर्ट से पता चलता है कि याचिकाकर्ता के इसी तरह के कृत्यों में शामिल होने की संभावना से इनकार नहीं किया गया था।

अनुवादित

यह रिपोर्ट हिरासत आदेश पारित करने का आधार बनी। रिकॉर्ड पर उपलब्ध पूरी सामग्री और प्रायोजक प्राधिकारी की रिपोर्ट को देखने के बाद, हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने उसके सामने पेश की गई सामग्री के आधार पर पूरी तरह से संतुष्ट होने के बाद आक्षेपित आदेश पारित किया है कि जमानत पर रिहा होने पर याचिकाकर्ता फिर से सार्वजनिक व्यवस्था के प्रतिकूल गतिविधियों में लिप्त हो सकता है और यह किसी भी अवैधता या दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है, इसलिए वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका खारिज की जा सकती है।

15. यह प्रस्तुत किया गया था कि याचिकाकर्ता को हिरासत आदेश की सूचना दी गई थी और इसे राज्य सरकार द्वारा दिनांक 07.4.2022 को यानी वैधानिक सीमा के भीतर अनुमोदित किया गया था। कोनुंगजाओ सिंह बनाम मणिपुर राज्य और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार, याचिकाकर्ता हिरासत के आधार के बारे में एक जानकारी प्राप्त करने का हकदार था और इसके खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का अवसर पाने का हकदार था। दोनों आवश्यकताओं का ध्यान रखा गया था और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन दिनांक 04.4.2022 और 08.4.2022 को राज्य सरकार और केंद्र सरकार द्वारा दिनांक 26.4.2022 और 27.4.2022 को विधिवत विचार किया गया और खारिज कर दिया गया और तदनुसार, संबंधित अधिकारियों के साथ हिरासत में लिए गए लोगों को सूचित किया गया।

16. पक्षों के वकीलों द्वारा की गई प्रस्तुतियों की बहुत सावधानी से जांच करने और आक्षेपित आदेश के साथ-साथ रिकॉर्ड पर लाई गई अन्य सामग्री का अवलोकन करने के बाद, हम पाते हैं कि इस रिट याचिका में शामिल मुद्दा यह है कि क्या जिला मजिस्ट्रेट की विफलता आक्षेपित आदेश में दर्ज करने के लिए, कि याचिकाकर्ता की प्रबल संभावना थी, जो पहले से ही 212 वर्ष 2021 में जमानत पर रिहा होने के आरोपी होने के कारण न्यायिक हिरासत में थी (?), ने आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया है और क्या उसकी संतुष्टि की बाद की रिकॉर्डिंग कि जमानत पर रिहा होने पर याचिकाकर्ता के इसी तरह की गतिविधियों में लिप्त होने की संभावना थी जो सार्वजनिक व्यवस्था के लिए पूर्वाग्रही थी, आक्षेपित आदेश को मान्य करेगी।

17. इस मामले में, यह पता चलता है कि कॉर्पस के खिलाफ आरोप यह था कि उसने जेके कॉलोनी, कानपुर में दिन-दहाड़े मृतक पिंटू सेंगर की हत्या को अंजाम देने के लिए पेशेवर निशानेबाजों को काम पर रखा था। कॉर्पस का रुख यह है कि उसे अपराध संख्या 425 वर्ष 2020 में झूठा फंसाया गया है, जिसमें उसे इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 31658 वर्ष 2021 को पारित आदेश दिनांक 15.2.2022 के तहत जमानत दी गई है। बाद के मामले अपराध संख्या 212 वर्ष 2021 में यूपी गैंगस्टर्स एंड एंटी सोशल एक्टिविटीज (प्रिवेंशन)

एक्ट, 1986 की धारा 3 (1) के तहत कॉर्पस को भी इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 10417 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 30.3.2022 के तहत जमानत दी गई है। इस बीच, संबंधित थानाध्यक्ष ने याचिकाकर्ता के खिलाफ एन.एस.ए. 1980 के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए सहायक पुलिस आयुक्त को दिनांक 30.3.2022 को अपनी रिपोर्ट सौंपी। अंत में, जिला मजिस्ट्रेट ने एक मीडिया ट्रायल के आधार पर अपनी राय बनाई और दिनांक 31.3.2022 को याचिकाकर्ता के खिलाफ एन.एस.ए, 1980 लगाया। हिरासत आदेश वर्ष 2020 के एक पुराने मामले को संदर्भित करता है जिसमें उन्हें इस न्यायालय द्वारा दिनांक 15.2.2022 को जमानत दी गई है। 2020 की घटना और कार्रवाई के बीच कोई मज़बूत संबंध नहीं है जिसके लिए हिरासत आदेश पारित किया गया है। हिरासत के आदेश ने कानून और व्यवस्था की स्थिति से संबंधित मामलों को इंगित किया और इसका सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव से कोई लेना-देना नहीं था और हिरासत के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक माना था।

18. राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3 (2) में कहा गया है कि किसी नागरिक को राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के तहत गिरफ्तार किया जा सकता है (i) उसे राज्य की सुरक्षा के लिए किसी भी तरह से हानिकारक कार्य करने से रोकने के लिए; (ii) उसे लोक व्यवस्था बनाए रखने के प्रतिकूल किसी भी रीति से कार्य करने से रोकने के लिए; (iii) उसे समुदाय को आपूत और सेवाओं के अनुरक्षण के प्रति किसी भी प्रकार से प्रतिकूल कार्य करने से रोकने के लिए। धारा 3(2) का 'स्पष्टीकरण' केवल आकस्मिकता (iii) से संबंधित है। निवारक कानून को किसी को राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण तरीके से कार्य करने या समुदायों के लिए आवश्यक आपूर्ति और सेवाओं को बनाए रखने से रोकने के लिए लागू किया जा सकता है। यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति के कथित कृत्यों ने जीवन की गति को भी परेशान किया। चूंकि कॉर्पस एक आपराधिक मामले का सामना कर रहा है, इसलिए हम इस पहलू पर कोई निष्कर्ष देने के इच्छुक नहीं हैं, जिसका विचारण पर प्रभाव पड़ सकता है। उपर्युक्त तीन अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए, हम केवल यह देखने के इच्छुक हैं कि विद्वान जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष यह विश्वास करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि कॉर्पस फिर से पेशेवर निशानेबाजों को काम पर रखने की इसी तरह की गतिविधि में लिप्त होगा।

19. हम आगे पाते हैं कि हिरासत आदेश में इस आशय का कोई संकेत नहीं है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को पता था कि हिरासत में लिया गया व्यक्ति पहले से ही हिरासत में था और उसके पास विश्वसनीय सामग्री के आधार पर विश्वास करने का कारण है कि उसके जमानत पर रिहा होने की संभावना है और इस तरह रिहा होने पर हिरासत में लिया गया व्यक्ति सभी संभावनाओं में पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधियों में लिप्त होगा और बाध्यकारी कारणों से एक निवारक

होगा हिरासत आदेश बनाने की आवश्यकता है। यह कानून की स्थापित स्थिति है कि अधिकारियों को हिरासत में लेने का आदेश पारित करने से नहीं रोका जाता है जब संबंधित व्यक्ति जेल में होता है, लेकिन नजरबंदी का आदेश पारित करते समय, उन्हें इस तथ्य पर अपना दिमाग लगाने की आवश्यकता होती है कि संबंधित व्यक्ति पहले से ही जेल में है और इस तथ्य के बावजूद कि हिरासत में लिया गया व्यक्ति पहले से ही हिरासत में था, इस तरह की नजरबंदी को सही ठहराने के लिए बाध्यकारी कारण हैं। पहले से ही हिरासत में रखे गए व्यक्ति को हिरासत में रखने का आदेश देने के संदर्भ में अभिव्यक्ति "बाध्यकारी कारण" का अर्थ है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के समक्ष ठोस सामग्री होनी चाहिए जिसके आधार पर यह संतुष्ट हो सकता है कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति को निकट भविष्य में हिरासत से रिहा किए जाने की संभावना है या हिरासत में लिए गए व्यक्ति की पूर्ववर्ती गतिविधियों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, यह संभावना है कि हिरासत से रिहा होने के बाद वह संभवतः पूर्वाग्रही गतिविधियों में लिप्त होगा और उसे ऐसी गतिविधियों में शामिल होने से रोकने के लिए उसे हिरासत में लेना आवश्यक है।

20. महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि क्या हिरासत में लिए गए व्यक्ति की गतिविधियां सार्वजनिक व्यवस्था के लिए प्रतिकूल थीं। जबकि अभिव्यक्ति 'कानून और व्यवस्था' दायरे में व्यापक है क्योंकि कानून का उल्लंघन हमेशा व्यवस्था को प्रभावित करता है। 'सार्वजनिक व्यवस्था' का दायरा संकीर्ण है और लोक व्यवस्था केवल ऐसे उल्लंघनों से प्रभावित हो सकती है, जो बड़े पैमाने पर समुदाय या जनता को प्रभावित करती है। सार्वजनिक व्यवस्था समुदाय के जीवन की सम गति है जो देश को संपूर्ण या यहां तक कि एक निर्दिष्ट इलाके के रूप में लेती है। 'कानून और व्यवस्था' और 'सार्वजनिक व्यवस्था' के क्षेत्रों के बीच अंतर समाज पर विचाराधीन अधिनियम की पहुंच की डिग्री और सीमा में से एक है। यह समुदाय के जीवन की सम गति को बिगाड़ने के लिए अधिनियम की क्षमता है जो इसे सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए पूर्वाग्रही बनाता है। यदि इसके प्रभाव में उल्लंघन केवल कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित है जो सीधे तौर पर जनता के व्यापक स्पेक्ट्रम से अलग हैं, तो यह केवल कानून और व्यवस्था की समस्या को उठा सकता है। यह अव्यवस्था के एक विशेष विस्फोट द्वारा फैलाई गई आतंकी लहर की लंबाई, परिमाण और तीव्रता है जो इसे 'कानून और व्यवस्था' से संबंधित 'सार्वजनिक व्यवस्था' को प्रभावित करने वाले कार्य के रूप में अलग करने में मदद करती है। यह निर्धारित करने के लिए अपनाया जाने वाला परीक्षण

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

है कि क्या कोई कार्य कानून और व्यवस्था या सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करता है, यह है:

क्या यह समुदाय के वर्तमान जीवन में अशांति पैदा करता है ताकि सार्वजनिक व्यवस्था की गड़बड़ी हो या क्या यह केवल एक व्यक्ति को प्रभावित करता है जिससे समाज की शांति बाधित

नहीं होती है? (संदर्भ कानू बिस्वास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य)।

21. "सार्वजनिक व्यवस्था" सार्वजनिक सुरक्षा और शांति का पर्याय है। सार्वजनिक व्यवस्था यदि बाधित होती है, तो सार्वजनिक अव्यवस्था को जन्म देना चाहिए। शांति भंग होने से सार्वजनिक अव्यवस्था नहीं फैलती। जब दो शराबी झगड़ते हैं और लड़ते हैं तो अव्यवस्था होती है लेकिन सार्वजनिक अव्यवस्था नहीं होती है। उनसे कानून और व्यवस्था बनाए रखने की शक्तियों के तहत निपटा जा सकता है, लेकिन उन्हें इस आधार पर हिरासत में नहीं लिया जा सकता कि वे सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ रहे थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कानून और व्यवस्था के रखरखाव से भी अव्यवस्था को रोका जाता है, लेकिन अव्यवस्था एक व्यापक स्पेक्ट्रम है, जिसमें एक छोर पर छोटी गड़बड़ी और दूसरे पर सबसे गंभीर और प्रलयकारी घटनाएं शामिल हैं। (सन्दर्भ डा राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य एवं अन्य)।

22. 'लोक व्यवस्था', 'कानून और व्यवस्था' और 'राज्य की सुरक्षा' काल्पनिक रूप से तीन संकेंद्रित वृत्तों को आकर्षित करते हैं, जिनमें से सबसे बड़ा कानून और व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है, अगला लोक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है और सबसे छोटा राज्य की सुरक्षा का प्रतिनिधित्व करता है। कानून के हर उल्लंघन को आवश्यक रूप से आदेश को प्रभावित करना चाहिए, लेकिन कानून और व्यवस्था को प्रभावित करने वाला कार्य जरूरी नहीं कि सार्वजनिक व्यवस्था को भी प्रभावित करे। इसी तरह, एक अधिनियम सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है, लेकिन जरूरी नहीं कि राज्य की सुरक्षा हो। असली परीक्षा, प्रकार की नहीं है, बल्कि प्रश्न में अधिनियम की क्षमता है। एक कार्य केवल व्यक्तियों को प्रभावित कर सकता है जबकि दूसरा, हालांकि एक समान प्रकार का, ऐसा प्रभाव डाल सकता है कि यह समुदाय के जीवन की गति को भी परेशान करेगा। इसका मतलब यह नहीं है कि कोई अतिव्यापी नहीं हो सकता है, इस अर्थ में कि एक अधिनियम एक ही समय में दो अवधारणाओं के अंतर्गत नहीं आ सकता है। उदाहरण के लिए, सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाले एक अधिनियम का प्रभाव हो सकता है कि यह सार्वजनिक व्यवस्था और राज्य की सुरक्षा दोनों को प्रभावित करेगा (संदर्भ किशोरी मोहन बेरा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य ।

23. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हरधन साहा और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य के मामले में दिए गए अपने फैसले के पैराग्राफ 35 में कहा कि जहां संबंधित व्यक्ति वास्तव में उस समय जेल हिरासत में है जब उसके खिलाफ नजरबंदी का आदेश पारित किया जाता है, और काफी लंबे समय तक रिहा होने की संभावना नहीं है, यह तर्क देना संभव हो सकता है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की ओर से इस बात से कोई संतुष्टि नहीं हो सकती है कि ऐसे व्यक्ति के उन गतिविधियों में लिप्त होने की संभावना है जो राज्य की सुरक्षा या सार्वजनिक व्यवस्था को खतरे में डाल देंगी।

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

अनुवादित

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सिद्धांतों को निर्धारित किया है कि कमरुन्निसा बनाम भारत संघ और अन्य 12 के मामले में पहले से ही न्यायिक हिरासत में एक व्यक्ति के संबंध में एक हिरासत आदेश कब पारित किया जा सकता है और पूर्वोक्त मामले के पैराग्राफ 13 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया है: -

"13. ऊपर उल्लिखित निर्णयों की श्रेणी से, यह हमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि हिरासत में किसी व्यक्ति के मामले में भी एक हिरासत आदेश वैध रूप से पारित किया जा सकता है (1) यदि आदेश पारित करने वाला प्राधिकारी इस तथ्य से अवगत है कि वह वास्तव में हिरासत में है; (2) यदि उसके पास उसके सामने रखी गई विश्वसनीय सामग्री के आधार पर विश्वास करने का कारण है (क) कि उसके जमानत पर रिहा होने की वास्तविक संभावना है, और (ख) कि इस प्रकार रिहा होने पर वह सभी संभावनाओं में पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधि में लिप्त होगा; और (3) यदि उसे ऐसा करने से रोकने के लिए उसे हिरासत में लेना आवश्यक समझा जाता है। यदि प्राधिकरण अपनी ओर से अपनी संतुष्टि दर्ज करने के बाद एक आदेश पारित करता है, तो इस तरह के आदेश को इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि प्राधिकरण के लिए उचित तरीका जमानत का विरोध करना था और यदि उच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न के इस तरह के विरोध के बावजूद जमानत दी जाती है।

25. इसी मुद्दे पर एक अन्य प्रमुख प्राधिकरण हुइड्रोम कोनुंगजाओ सिंह बनाम मणिपुर राज्य (उपरोक्त) के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय है, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि एक व्यक्ति को हिरासत में लेते समय, जिसे पहले ही गिरफ्तार किया गया था, उचित देखभाल की जानी चाहिए:

"यदि आपराधिक मामले के संबंध में पहले से ही हिरासत में बंद व्यक्ति के खिलाफ पारित हिरासत आदेश को चुनौती दी जाती है, तो हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को अदालत को निम्नलिखित तथ्यों को संतुष्ट करना होगाः

1. प्राधिकरण इस तथ्य से पूरी तरह अवगत था कि हिरासत में लिया गया व्यक्ति वास्तव में हिरासत में था।
2. उक्त प्राधिकारी के समक्ष विश्वसनीय सामग्री थी जिसके आधार पर यह विश्वास करने के कारण हो सकते थे कि जमानत पर उसकी रिहाई की वास्तविक संभावना थी और रिहा होने पर वह संभवतः उन गतिविधियों में लिप्त होगा जो सार्वजनिक व्यवस्था के लिए हानिकारक हैं।
3. उपरोक्त के मद्देनजर, प्राधिकरण ने उसे ऐसी गतिविधियों में लिप्त होने से रोकना आवश्यक समझा और इसलिए, हिरासत आदेश आवश्यक था।

यदि इनमें से कोई भी तथ्य मौजूद नहीं है, तो हिरासत आदेश समाप्त हो जाएगा और रद्द किया जा सकता है। केवल इसलिए कि इसी तरह के मामलों में किसी और को जमानत दी गई थी, इस बात का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता था कि इस मामले में हिरासत में लिए गए व्यक्ति ने जमानत के लिए आवेदन किया होता, उसे जमानत पर रिहा किया जा सकता था। यदि उक्त जमानत आदेश उसी मामले के सह-अभियुक्तों से संबंधित नहीं हैं, तो समान प्रकृति के इन मामलों में

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

जमानत पर रिहा किए गए अभियुक्तों को वर्तमान मामले से कोई लेना-देना नहीं है, उनके जमानत आदेश यह मानने का आधार नहीं हो सकते हैं कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति को भी जमानत पर रिहा किया जा सकता है।
अपील सफल होती है और उसे अनुमति दी जाती है। आक्षेपित हिरासत आदेश को रद्द किया जाता है।

26. धर्मेंद्र सुगनचंद चेलावत बनाम भारत संघ 13 में सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:
"21. हिरासत में एक व्यक्ति के खिलाफ हिरासत के लिए एक आदेश वैध रूप से पारित किया जा सकता है और उस उद्देश्य के लिए यह आवश्यक है कि हिरासत के आधार को यह दिखाना चाहिए कि -
1. हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को इस तथ्य के बारे में पता था कि हिरासत में लिया गया व्यक्ति पहले से ही हिरासत में है।
2. इस तथ्य के बावजूद कि हिरासत में लिया गया व्यक्ति पहले से ही हिरासत में है, इस तरह की हिरासत को सही ठहराने के लिए बाध्यकारी कारण थे।

पहले से ही हिरासत में रखे गए व्यक्ति की हिरासत के लिए आदेश देने के संदर्भ में अभिव्यक्ति "बाध्यकारी कारण" का अर्थ है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के समक्ष ठोस सामग्री होनी चाहिए जिसके आधार पर यह संतुष्ट हो सकता है कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति को निकट भविष्य में हिरासत से रिहा किए जाने की संभावना है और हिरासत में लिए गए व्यक्ति की पूर्ववर्ती गतिविधियों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, यह संभावना है कि हिरासत से रिहा होने के बाद वह पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधियों में लिप्त होगा और उसे इस तरह की गतिविधियों में शामिल होने से रोकने के लिए उसे हिरासत में लेना आवश्यक है।

27. अरुण घोष बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में। पश्चिम बंगाल राज्य 14 के मामले में, प्रश्न यह था कि क्या हिरासत आदेश में उल्लिखित आधारों को सार्वजनिक व्यवस्था का उल्लंघन माना जा सकता है और इस तरह, हिरासत आदेश वैध रूप से किया जा सकता है। उक्त मामले में अपीलकर्ता ने दो सम्मानित युवतियों के साथ छेड़छाड़ की थी, उनके पिता के जीवन को खतरे में डाला था और दो अन्य व्यक्तियों पर हमला किया था। उन्हें निवारक हिरासत अधिनियम, 1950 की धारा 3 (2) के तहत हिरासत में लिया गया था ताकि उन्हें सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए प्रतिकूल कार्य करने से रोका जा सके। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि यह सवाल कि क्या किसी व्यक्ति ने केवल कानून और व्यवस्था का उल्लंघन किया है, या सार्वजनिक व्यवस्था की गड़बड़ी पैदा करने की संभावना वाले तरीके से कार्य किया है, यह डिग्री और समाज पर अधिनियम की पहुंच की सीमा का सवाल है। परीक्षण यह है कि क्या

अनुवादित

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

इससे समुदाय के जीवन की सम गति में व्यवधान होता है जिससे लोक व्यवस्था भंग होती है या क्या यह समाज की शांति को प्रभावित किए बिना केवल एक व्यक्ति को प्रभावित करती है। इसलिए, इसे आशंका या सार्वजनिक व्यवस्था के उल्लंघन के रूप में नहीं कहा जा सकता है, और इसलिए, वह रिहा होने का हकदार था।

28. युम्मन ऑगबी लेम्बी लीमा बनाम (ग) माननीय उच्चतम न्यायालय ने मणिपुर राज्य और अन्य (उपरोक्त) के मामले में निर्णय दिया है कि निवारक हिरासत का अर्थ किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए कार्य के लिए दंडित करना नहीं है बल्कि उसे ऐसा करने से रोकना है। केवल हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की आशंका पर कि जमानत पर रिहा होने के बाद, याचिकाकर्ता-हिरासत इसी तरह की गतिविधियों में लिप्त होगा, जो सार्वजनिक व्यवस्था के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण होगा, अधिनियम के तहत आदेश आमतौर पर पारित नहीं किया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता संविधान के भाग III में संविधान के तहत गारंटीकृत सबसे कीमती और बेशकीमती अधिकार है। राज्य को आपराधिक कानूनों के साथ-साथ निवारक हिरासत के कानूनों के तहत भी ऐसे अधिकारों पर अंकुश लगाने की शक्ति प्रदान की गई है, इसलिए, उचित सावधानी के साथ-साथ तथ्यों की उचित समझ पर प्रयोग किया जाना आवश्यक है कि क्या ऐसे कृत्य किसी भी तरह से राज्य और उसके नागरिकों के हित और सुरक्षा के लिए हानिकारक हैं, या सार्वजनिक कानून और व्यवस्था को बिगाड़ने की कोशिश करते हैं, इस तरह के आदेश को जारी करने की आवश्यकता होती है।

29. कमरुल इस्लाम बनाम एस. के कांता (उपरोक्त) के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने एक ऐसे मामले पर विचार किया है जहां एक रिटर्न उम्मीदवार के भाषण वाले कैसेट को एक पुलिस अधिकारी द्वारा रिकॉर्ड किया गया था, जिसे चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा धारा 123 (2) के तहत रिटर्न उम्मीदवार के खिलाफ भ्रष्ट आचरण साबित करने के लिए प्रस्तुत किया गया था, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 की धारा 123 (3) और 123 (3क) के अनुसार। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ 48 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"48. समाचार पत्रों की रिपोर्ट अपने आप में इसकी सामग्री का प्रमाण नहीं है। वे खबरें केवल सुनी-सुनाई बातें हैं। इन्हें साबित करना होगा और समाचार पत्र की रिपोर्ट को साबित करने का तरीका अच्छी तरह से तय है। चूंकि, इस मामले में, न तो भाषण सुनने वाले और रिपोर्ट भेजने वाले रिपोर्टर की जांच की गई और न ही उसकी रिपोर्ट का उत्पादन किया गया, संपादक और प्रकाशक, पीडब्ल्यू 4 द्वारा अखबार का उत्पादन अपने आप में अखबार की खबरों की सामग्री को साबित करने के बराबर नहीं हो सकता है। समाचार पत्र, इसकी सामग्री का सबसे अच्छा माध्यमिक साक्ष्य है और भारतीय साक्ष्य अधिनियम के तहत सामग्री के उचित प्रमाण के बिना साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं है। विद्वान विचारण न्यायाधीश समाचार पत्र की रिपोर्टों को केवल

समाचार पत्र की प्रतियों के उत्पादन से विधिवत 'साबित' नहीं मान सकते थे। चुनाव याचिकाकर्ता ने अबरार रजी, पीडब्लू-5 से भी पूछताछ की, जो चुनाव याचिकाकर्ता के मतदान एजेंट थे और उक्त समाचार पत्र में प्रकाशित विज्ञापनों और संदेशों सहित रिपोर्टों की शुद्धता के समर्थन में इलाके के निवासी थे।

हमने उनकी गवाही का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और पाया है कि उनके साक्ष्य भी कथित भाषणों की रिपोर्टों या संदेशों और विज्ञापनों की सामग्री को साबित करने में कम हैं, जो समाचार पत्र के विभिन्न मुद्दों में प्रकाशित हुए थे। चूंकि, रिपोर्ट के निर्माता, जो प्रकाशनों के आधार (18) का गठन करते थे, उनके द्वारा कथित तथ्यों के बारे में गवाही देने के लिए अदालत

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

में उपस्थित नहीं हुए, प्रकाशित रिपोर्टों में निहित तथ्य स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य थे। चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा संदेशों और

विज्ञापनों की सामग्री को साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं दिया गया था क्योंकि विज्ञापनों या संदेशों की मूल पांडुलिपि परीक्षण में पेश नहीं की गई थी। कोई भी गवाह पांडुलिपि के अनुसार किसी भी विज्ञापन या संदेश या उसके प्रकाशन की पांडुलिपि की प्राप्ति को साबित करने के लिए आगे नहीं आया। रिकॉर्ड पर कोई संतोषजनक और विश्वसनीय सबूत भी नहीं है जो यह स्थापित करता हो कि वास्तव में आई.यू.एम.एल या एम.वाई.एल द्वारा जारी किए गए थे, इस बात की अनदेखी करते हुए कि अपीलकर्ता का आई.यू.एम.एल या एम.वाई.एल से कोई संबंध था या नहीं या यह उसके द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रकाशित किया गया था या उसके चुनाव एजेंट या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रकाशित किया गया था। हमारी राय में अखबार में संदेशों और विज्ञापनों की सामग्री को साबित करने के लिए चुनाव याचिकाकर्ता या पीडब्ल्यू 4 और पीडब्ल्यू 5 के साक्ष्य को गलत तरीके से स्वीकार किया गया था और उसमें निहित बयान की सामग्री के सबूत के रूप में भरोसा किया गया था।

30. नवल किशोर शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा पैराग्राफ 20, 21 और 26 में निम्नानुसार आयोजित किया गया है: -

"20. उपरोक्त निर्णयों से यह स्पष्ट है कि समाचार पत्र की रिपोर्ट अपने आप में इसकी सामग्री का प्रमाण नहीं है। रिपोर्ट केवल सुनी-सुनाई बातें हैं। उन्हें या तो उस रिपोर्टर के उत्पादन से साबित करना होगा जिसने उक्त बयानों को सुना और उन्हें रिपोर्टिंग के लिए भेजा या ऐसे रिपोर्टर द्वारा भेजी गई रिपोर्ट के उत्पादन और अखबार के संपादक या उक्त रिपोर्ट को साबित करने के लिए उसके प्रकाशक के उत्पादन द्वारा। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि समाचार पत्रों की रिपोर्ट सबसे अच्छा माध्यमिक साक्ष्य है और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के तहत इसकी सामग्री के उचित प्रमाण के बिना साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समाचार पत्र की रिपोर्ट एक "कानूनी साक्ष्य" नहीं है जिसे शिकायतकर्ता के समर्थन में जांचा जा सकता है।

अनुवादित

21. यह कानून है कि किसी व्यक्ति के खिलाफ लगाए गए आरोपों के समर्थन में कानूनी सबूत होने चाहिए। वर्तमान मामले में एकमात्र सबूत जिस पर भरोसा किया गया है वह अखबार की रिपोर्टिंग है और कुछ नहीं। जो ऊपर कहा गया है और स्थापित कानूनी स्थिति के अनुसार, एक समाचार पत्र की रिपोर्ट "कानूनी साक्ष्य" नहीं है।

26. गणेशी लाल बनाम नंद किशोर, 1912 एस.सी.सी ऑनलाइन ऑल 76: 1912 (वॉल्यूम एक्स) ए.एल.जे.आर 45 के मामले में धारा 179 द०प्र०स० में आने वाले "परिणाम" शब्द से निपटने के दौरान, यह निम्नानुसार आयोजित किया गया है: "इस धारा में" परिणाम 'शब्द', मेरी राय में, एक परिणाम का अर्थ है जो अपराध का एक हिस्सा और पार्सल बनाता है। इसका मतलब ऐसा परिणाम नहीं है जो अपराधी के कार्य का ऐसा प्रत्यक्ष परिणाम नहीं है जो उस अपराध का कोई हिस्सा नहीं है। बाबू लाल बनाम घनशाम दासः (1908) 5 ए.एल.जे.आर 333 में, यह टिप्पणी की गई है: "यह तर्क दिया गया है कि धारा 179 शब्दों के कारण 'इसमें निहित' और 'किसी भी परिणाम के कारण' इस मामले में अलीगढ़ में मजिस्ट्रेट को अधिकार क्षेत्र देता है। लेकिन एकमात्र उचित व्याख्या जो इन शब्दों पर रखी जा सकती है, वह यह है कि उनका उद्देश्य **अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।**

केवल ऐसे परिणामों को गले लगाना है जैसे कि अपराध के रूप में कथित कृत्यों को संशोधित या पूरा करना। उपरोक्त टिप्पणियां मेरे द्वारा लिए गए दृष्टिकोण का समर्थन करती हैं।

31. रिवाडेनेटा रिकार्डो अगस्टिन बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार और अन्य में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है:

"यदि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के समक्ष कोई सामग्री नहीं है जो यह संकेत देती है कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति को रिहा किए जाने की संभावना है या इस तरह की रिहाई आसन्न है, तो इस तरह की संतुष्टि के बिना पारित हिरासत आदेश रद्द किया जा सकता है।

32. विजय नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य 16 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है किः

"निवारक हिरासत का कानून एक सख्त और कठोर कानून है, इसे सख्ती से लागू किया जाना चाहिए और आमतौर पर किसी अभियुक्त के पर कतरने के लिए इसका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए, यदि आपराधिक अभियोजन पर्याप्त होगा।

33. बिनोद सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट, धनबाद 17 में, सर्वोच्च न्यायालय ने जोर देकर कहा है किः

"जेल में बंद व्यक्ति के संबंध में हिरासत का आदेश पारित करने से पहले, संबंधित प्राधिकारी को खुद को संतुष्ट करना चाहिए और यह संतुष्टि ठोस सामग्री के आधार पर प्राप्त की जानी चाहिए कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति को जमानत पर रिहा किए जाने की वास्तविक संभावना है और आगे यदि जमानत पर रिहा किया जाता है तो वह हिरासत में नहीं लिए जाने पर प्रतिकूल गतिविधि में लिप्त होगा।

अनुवादित

34. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमने कुछ उदाहरणों की विस्तार से जांच करने के लिए भी आगे बढ़े ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या वर्तमान मामले के तथ्य "सार्वजनिक व्यवस्था" में गड़बड़ी का मामला बनाते हैं या यह केवल "कानून और व्यवस्था" में गड़बड़ी की श्रेणी में आता है। अभयराज गुप्ता बनाम अधीक्षक, केंद्रीय जेल, बरेली (उपरोक्त) में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने पैराग्राफ 54 से 61 में मामले के उक्त पहलू पर विस्तार से विचार किया था और इसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः-

"54. पूर्वोक्त घोषणाओं के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि हिरासत में किसी व्यक्ति के मामले में भी एक हिरासत आदेश वैध रूप से पारित किया जा सकता है (1) यदि आदेश पारित करने वाला प्राधिकारी इस तथ्य से अवगत है कि वह वास्तव में हिरासत में है; (2) यदि उसके पास उसके सामने रखी गई विश्वसनीय सामग्री के आधार पर विश्वास करने का कारण है

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

(क) कि उसके जमानत पर रिहा होने की वास्तविक संभावना है और, और (ख) कि इस प्रकार रिहा होने पर वह सभी संभावनाओं में पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधि में लिप्त होगा; और (3) यदि उसे ऐसा करने से रोकने के लिए उसे हिरासत में लेना आवश्यक समझा जाता है। यदि प्राधिकारी अपनी ओर से अपनी संतुष्टि दर्ज करने के बाद एक आदेश पारित करता है, तो इस तरह के आदेश को इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि प्राधिकरण के लिए उचित तरीका जमानत का विरोध करना था और यदि इस तरह के विरोध के बावजूद उच्च न्यायालय के समक्ष उस पर सवाल उठाने के लिए जमानत दी जाती है (?)

55. कमरुन्निसा (उपरोक्त) में, अभियुक्तों में से एक ने अपने मलाशय में हीरे और कीमती पत्थरों को छिपाया था, जबकि अन्य दो बंदियों ने विदेशी मुद्रा नोटों वाले 100 कैप्सूल निगल लिए थे। हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी इस तथ्य से अवगत थे कि दो अभियुक्तों ने जमानत के लिए आवेदन किया था और ऐसे मामलों में अदालतें आमतौर पर अभियुक्त को जमानत पर बढ़ा देती हैं। वह इस तथ्य से भी अवगत था कि हिरासत में लिए गए एक व्यक्ति ने जमानत के लिए आवेदन नहीं किया था। इस तथ्य के प्रति सचेत कि तीनों बंदी हिरासत में थे, उन्होंने हिरासत के आक्षेपित आदेश पारित किए क्योंकि उनके पास यह विश्वास करने का कारण था कि हिरासत में लिए गए सभी लोगों को जमानत मिल जाएगी और यदि वे बड़े पैमाने पर हैं, तो वे उसी पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधि में लिप्त होंगे क्योंकि जिस तरह से तीन बंदी हीरे अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा। और मुद्रा नोटों की तस्करी की प्रक्रिया में थे, वह स्वयं इस बात का संकेत था कि उन्होंने इस ओर से। तथ्य यह है कि उनमें से एक ने अपने मलाशय

अनुवादित

में दो गुब्बारे रोल में हीरे और कीमती पत्थरों को छिपाया था और अन्य दो बंदियों ने अपने शरीर में 100 कैप्सूल के रूप में कई गुहाओं को सावित करने के लिए गुहाएं बनाई थीं, इस तथ्य का संकेत था कि यह एक अकेला उदाहरण नहीं था। तीनों बंदियों ने प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद अपने शरीर में कैविटी बनाकर तस्करी में लिप्त होने के लिए खुद को तैयार किया था। बेबी देवासी चुल्ली (उपरोक्त) में भी राजस्व आसूचना निदेशालय ने विदेशी मूल का डीजल तेल ले जा रहे एक समुद्री जहाज को रोका था जिसकी भारत में तस्करी की गई थी। डी. आर. आई के अधिकारियों ने सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 के तहत लगभग 770 मीट्रिक टन वजन का लगभग 2 करोड़ रुपये का डीजल तेल जब्त किया, जिसे आरोपी व्यक्ति को दिया जा रहा था। आरोपी को जमानत दे दी गई थी, लेकिन उसने इसका लाभ नहीं उठाया था। माननीय उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त मामलों के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हिरासत आदेशों को इस आधार पर बरकरार रखा था कि अभियुक्त व्यक्ति पेशेवर तस्कर थे, इस आधार पर कि जेल में बंद बंदियों के विरुद्ध वैध रूप से नजरबंदी आदेश पारित किए जा सकते हैं, बशर्ते कि आदेश पारित करने वाला अधिकारी हिरासत में होने के तथ्य के प्रति सजग हो और उसके इस निष्कर्ष को न्यायोचित ठहराने के लिए रिकॉर्ड पर सामग्री मौजूद हो कि यदि वे स्वतंत्र किये जाएं तो ऐसा ही गतिविधि करेंगे।

56. पूर्वोक्त निर्णयों की प्रयोज्यता की जांच करते समय, उदाहरणों के आवेदन के संबंध में कानून पर एक नज़र रखना उचित होगा, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रोजर शाशोआ बनाम मुकेश शर्मा 19 में निम्नलिखित शब्दों में समझाया है: -

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

"55. यह कानून में अच्छी तरह से तय है कि प्रत्येक मामले के अनुपात को सही ढंग से समझा जाना चाहिए। क्षेत्रीय प्रबंधक बनाम पवन कुमार दुबे में, तीन न्यायाधीशों की पीठ ने फैसला सुनायाः (एस.सी.सी पृष्ठ 338, पैरा 7)

"7.... यह किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के लिए कानून के आवेदन से कटौती योग्य नियम है जो इसके अनुपात का निर्णय लेता है और तथ्यों के आधार पर कुछ निष्कर्ष नहीं है जो समान प्रतीत हो सकते हैं। एक अतिरिक्त या अलग तथ्य दो मामलों में निष्कर्षों के बीच अंतर की दुनिया बना सकता है, भले ही समान सिद्धांतों को समान तथ्यों के लिए प्रत्येक मामले में लागू किया जाता है।

56. निदेशक सेटलमेंट बनाम एम. आर अप्पाराव में, एक तीन-न्यायाधीश पीठ ने इस अवधारणा से निपटने के लिए कि 'क्या कोई निर्णय "घोषित कानून" है', कहाः (एस.सी.सी पी. 650, पैरा -7)

"7. ... लेकिन जो बाध्यकारी है वह निर्णय का अनुपात है न कि तथ्यों का कोई निष्कर्ष। यह वह सिद्धांत है जो न्यायालय के समक्ष प्रश्नों के आलोक में समग्र रूप से निर्णय पढ़ने पर पाया जाता है जो अनुपात बनाता है न कि किसी विशेष शब्द या वाक्य का। यह निर्धारित करने के लिए कि क्या किसी निर्णय में "घोषित कानून" है, इसे कानून नहीं कहा जा सकता है जब रियायत पर

अनुवादित

एक बिंदु का निपटान किया जाता है और जो बाध्यकारी है वह निर्णय में अंतर्निहित सिद्धांत है। न्यायालय के निर्णय को उन प्रश्नों के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए जो उस मामले में विचार के लिए उठे थे जिसमें निर्णय दिया गया था। ..."

57. इस संदर्भ में, सीआईटी बनाम सन इंजीनियरिंग से एक मार्ग। वर्क्स (पी) लिमिटेड बिल्कुल उपयुक्त होगाः (एस.सी.सी पीपी 385-86, पैरा 39)

"39. विचाराधीन प्रश्न के संदर्भ से अलग इस न्यायालय के फैसले से एक शब्द या वाक्य निकालना और इसे इस न्यायालय द्वारा घोषित पूर्ण "कानून" मानना न तो वांछनीय है और न ही अनुमेय है। निर्णय को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और निर्णय की टिप्पणियों पर उन प्रश्नों के प्रकाश में विचार किया जाना चाहिए जो इस न्यायालय के समक्ष थे। इस न्यायालय का निर्णय उस मामले में शामिल प्रश्नों से अपना रंग लेता है जिसमें इसे प्रस्तुत किया गया है और निर्णय को बाद के मामले में लागू करते समय, अदालतों को सावधानीपूर्वक इस न्यायालय के निर्णय द्वारा निर्धारित सही सिद्धांत का पता लगाने की कोशिश करनी चाहिए और निर्णय से शब्दों या वाक्यों को नहीं चुनना चाहिए, इस न्यायालय द्वारा विचाराधीन प्रश्नों के संदर्भ से अलग, उनके तर्कों का समर्थन करने के लिए।

58. इस संदर्भ में, हम गुजरात राज्य बनाम अंबिका क्वारी वर्क्स (एस.सी.सी पृष्ठ 221, पैरा 18) में न्यायालय ने जो कहा था, उसे दोहराते हैं।

"18. ... किसी भी निर्णय के अनुपात को उस मामले के तथ्यों की पृष्ठभूमि में समझा जाना चाहिए। यह बहुत समय पहले कहा गया है कि एक मामला केवल एक अधिकार है कि वह वास्तव में क्या निर्णय लेता है, न कि तार्किक रूप से इसका अनुसरण करता है। (क्विन बनाम लीथेम43 में लॉर्ड हल्सबरी देखें। ..."

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

59. पूर्वोक्त अधिकारियों से, यह काफी ज्वलंत है कि एक निर्णय का अनुपात पूर्ववर्ती मूल्य है और यह अदालत की ओर से अनिवार्य है कि वह निर्णय के संबंध में उसमें उजागर तथ्यों और उस संदर्भ पर ध्यान दे जिसमें प्रश्न उठे थे और कानून घोषित किया गया है। निर्णय को संपूर्णता में पढ़ना भी आवश्यक है और यदि कोई सिद्धांत निर्धारित किया गया है, तो मामले में विचार के लिए उठने वाले प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए उस पर विचार किया जाना चाहिए। किसी से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह संदर्भ से निर्णय लेने वाले निर्णय से एक शब्द या वाक्य उठाए, और अनुपात निर्णय को समझे जिसका एक पूर्ववर्ती मूल्य है। इसके अलावा, जिस न्यायालय के समक्ष किसी प्राधिकरण का हवाला दिया गया है, उसे इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि उसमें क्या निर्णय लिया गया है, लेकिन यह नहीं कि एक न्यायसंगत प्रक्रिया का पालन करके क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

57. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश को ध्यान में रखते हुए, उन मामलों के विशिष्ट तथ्यों को देखते हुए कमरुन्निसा, बेबी देवासी चुली, अहमद नासर और पंकज (उपरोक्त)

में निर्धारित उपरोक्त सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं।

58. इसके अलावा, बेबी देवासी चुल्ली (उपरोक्त) में भी, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यदि कोई व्यक्ति हिरासत में है और उसके रिहा होने की कोई आसन्न संभावना नहीं है, तो नियम यह है कि निवारक हिरासत की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप यह है कि उसने एक ऐसे व्यक्ति की हत्या की, जिसके बारे में याचिकाकर्ता पुरानी पारिवारिक दुश्मनी होने का दावा करता है। उस पर पेशेवर हत्यारा होने का आरोप नहीं है, जो जमानत पर बाहर आते ही फिर से इसी तरह की गतिविधियों में लिप्त होना शुरू कर देगा। इसके अलावा, याचिकाकर्ता के खिलाफ उसी घटना के आधार पर उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3 के तहत थाना सदर बाजार, शाहजहांपुर में अपराध संख्या 221/20 के रूप में प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसमें याचिकाकर्ता 01-05-2020 से हिरासत में था और हिरासत आदेश पारित करने की तारीख तक, उन्होंने जमानत के लिए आवेदन भी नहीं दिया था। उपरोक्त मामले में जमानत याचिका 25-01-2021 को दायर की गई थी, हालांकि श्री मुर्तजा की प्रस्तुतियों के अनुसार, जमानत आवेदन की एक प्रति 21-01-2021 को दी गई थी।

59. उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के तहत एक मामले में एक जमानत आदेश उस तरीके से पारित नहीं किया जा सकता है जिसमें यह धारा 19 भ०द०वि० के तहत किसी भी अपराध के मामले में पारित किया जाता है।

"19. संहिता के कुछ प्रावधानों का संशोधित अनुप्रयोग (1) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दंडनीय प्रत्येक अपराध संहिता की धारा 2 के खंड (ग) के अर्थान्तर्गत संज्ञेय अपराध समझा जाएगा और उस खंड में यथापरिभाषित संज्ञेय मामला तदनुसार समझा जाएगा।

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

(2) संहिता की धारा 167, ऐसे मामले के संबंध में लागू होगी जिसमें इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दंडनीय अपराध अंतर्वलित है, बशर्ते कि उपांतरों-

(क) उसकी उपधारा (1) में "न्यायिक मजिस्ट्रेट" के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह "न्यायिक मजिस्ट्रेट या कार्यपालक मजिस्ट्रेट" के प्रति निर्देश है,

(ख) "पंद्रह दिन", "नब्बे दिन" और "साठ दिन" के लिए उप-धारा (2) में निर्देश, जहां भी वे होते हैं, क्रमशः "साठ दिन", "एक वर्ष" और "एक वर्ष" के संदर्भ के रूप में माना जाएगा;

(ग) उसकी उपधारा (2क) लोप की गई समझी जाएगी।

(3) संहिता की धारा 366, 367, 368 और 371 किसी विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध वाले मामले के संबंध में लागू होगी, इस संशोधन के अधीन रहते हुए कि "सत्र न्यायालय" के प्रति

निर्देश, जहां कहीं भी यहां होता है, "विशेष न्यायालय" के संदर्भ के रूप में माना जाएगा।

(4) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दंडनीय अपराध का कोई अभियुक्त व्यक्ति, यदि अभिरक्षा में है, जमानत पर या अपने मुचलके पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जबः

(क) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया गया है, और

(ख) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, वहां न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध किए जाने की संभावना नहीं है।

(5) उपधारा (4) में विनिर्दिष्ट जमानत देने की सीमाएं संहिता के अधीन सीमाओं के अतिरिक्त हैं।

60. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता पहले से ही उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3 के तहत एक मामले में जेल में था, कि उसने पूर्वोक्त मामले में जमानत के लिए आवेदन दायर नहीं किया था और जब वह जमानत के लिए आवेदन दायर करेगा, तब तक उसे जमानत पर रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि (ए) लोक अभियोजक को आवेदन का विरोध करने का अवसर नहीं दिया जाता है (बी) और न्यायालय संतुष्ट है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह इस तरह के अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके कोई अपराध करने की संभावना नहीं है, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की संतुष्टि को रिकॉर्ड करने के लिए कोई सामग्री थी कि याचिकाकर्ता को सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए किसी भी तरह से प्रतिकूल कार्य करने से रोकने के उद्देश्य से यह था एन.एस.ए, 1980 के तहत याचिकाकर्ता को हिरासत में लेना आवश्यक है। इस बात का संतोष कि याचिकाकर्ता को सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

पूर्वाग्रहपूर्ण तरीके से कार्य करने से रोकने के उद्देश्य से हिरासत में लेना आवश्यक है, इस प्रकार, एन.एस.ए, 1980 की धारा 3 (2) के तहत आदेश का आधार है और यह आधार वर्तमान मामले में स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है। इसलिए, दिनांक 23-01-2021 का हिरासत आदेश इस आधार पर भी कानून में अस्थिर है।

61. पूर्वोक्त चर्चा के मद्देनजर, वर्तमान रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। जिला मजिस्ट्रेट, शाहजहांपुर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 23-01-2021 को एन.एस.ए, 1980 की धारा 3 (3) के तहत याचिकाकर्ता अभय राज गुप्ता को हिरासत में लेने का आदेश दिया जाता है। उत्तरदाताओं को आदेश दिया जाता

अनुवादित

है कि वे याचिकाकर्ता को 23-01-2021 के उपरोक्त आदेश के तहत हिरासत से रिहा करें।

35. एस. के. माबूद @ मामुद बनाम ओडिशा राज्य और अन्य (उपरोक्त) मामले में, उड़ीसा उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने कहा कि एन.एस.ए, 1980 के तहत निवारक हिरासत के आदेश को रद्द करते हुए कि राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के तहत हिरासत से संबंधित मामलों में कानूनी दायित्वों का निर्वहन जिम्मेदारी की बड़ी भावना के साथ किया जाना चाहिए। फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ 14 और 15 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"14. निवारक हिरासत सामान्य प्रक्रिया का अपवाद है और सुरक्षा उपायों के अच्छे सौदे के साथ अनुच्छेद 22 (3) (बी) के तहत बहुत सीमित उद्देश्य के लिए स्वीकृत और अधिकृत है। निवारक हिरासत की उस शक्ति का प्रयोग उचित सावधानी और उचित सतर्कता के साथ होना चाहिए। संवैधानिक शासन में, इसके लिए उन लोगों के बीच समझ की आवश्यकता होती है जो शक्ति का प्रयोग करते हैं और उन लोगों के बीच जिनके संबंध में या जिनके संबंध में ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के मामले में कानूनी दायित्व को जिम्मेदारी की बड़ी भावना के साथ निर्वहन करने की आवश्यकता होती है, भले ही प्राप्त की जाने वाली संतुष्टि एक व्यक्तिपरक संतुष्टि हो, ऐसी व्यक्तिपरक संतुष्टि वस्तुनिष्ठ तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। यदि व्यक्तिपरक संतुष्टि के लिए आने के उद्देश्य से वस्तुनिष्ठ तथ्य गायब हैं, तो वस्तुनिष्ठ तथ्यों के अभाव में बिना किसी आदेश के उचित और बेहतर उपयोग के लिए संतुष्टि आदेश को अस्थिर कर देगी। उपरोक्त कानूनी स्थिति के मद्देनजर, इस न्यायालय ने हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी से अपेक्षा की है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि वस्तुनिष्ठ तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए।

15. इसी तरह, वर्तमान मामले में, कथित जमानत आवेदन का विवरण हिरासत के आदेश, हिरासत के आधार या पुलिस अधीक्षक, बालासोर के आवेदन में प्रदान नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, कथित समान मामलों के बारे में कोई ब्यौरा नहीं दिया गया है जिनमें संबंधित न्यायालय द्वारा कथित रूप से जमानत दी गई थी। जमानत के बारे में एकमात्र उल्लेख पुलिस अधीक्षक, बालासोर द्वारा दिनांक 26.12.2019 के पत्र में है, जिसमें उन्होंने बताया था कि यह उनकी जानकारी में आया है कि याचिकाकर्ता ने उनकी जमानत की व्यवस्था की है। हालाँकि, यह कथन पूरी तरह से अस्पष्ट है और यह न्यायालय इस पर भरोसा नहीं कर सकता है। उपरोक्त प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि इस न्यायालय को याचिकाकर्ता-हिरासत में लिए गए व्यक्ति को हिरासत में रखने की अनुमति नहीं देनी चाहिए, जो अवैध है, कानून में गलत है इसलिए याचिकाकर्ता को हिरासत में लेने के बराबर है।

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

36. कानून और व्यवस्था और सार्वजनिक व्यवस्था के क्षेत्रों के बीच सही अंतर केवल अधिनियम की प्रकृति या गुणवत्ता में नहीं है,

अनुवादित

बल्कि समाज पर इसकी पहुंच की डिग्री और सीमा में है। प्रकृति में समान कार्य, लेकिन विभिन्न संदर्भों और परिस्थितियों में प्रतिबद्ध, अलग-अलग प्रतिक्रियाओं का कारण बन सकता है। एक मामले में यह केवल विशिष्ट व्यक्तियों को प्रभावित कर सकता है, और इसलिए केवल कानून और व्यवस्था की समस्या को छूता है, जबकि दूसरे में यह सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है। इसलिए, यह कार्य अपने आप में अपने स्वयं के गुरुत्वाकर्षण का निर्धारक नहीं है। इसकी गुणवत्ता में यह अन्य समान कृत्यों से भिन्न नहीं हो सकता है,लेकिन इसकी क्षमता में, अर्थात्, समाज पर इसके प्रभाव में, यह बहुत भिन्न हो सकता है।

37. हिरासत आदेश पारित करते समय 2020 की पुरानी घटना पर बहुत जोर दिया जा रहा है जिसमें याचिकाकर्ता नंबर 1 को इस न्यायालय द्वारा पहले ही जमानत दे दी गई थी। मीडिया क्लिपिंग को सार्वजनिक व्यवस्था के विघटन के प्रमाण के रूप में बनाया गया है। समाचार पत्र की रिपोर्ट अपने आप में सामग्री का प्रमाण नहीं है। रिपोर्ट भी सुनी-सुनाई सबूत हैं। समाचार पत्रों की रिपोर्ट सर्वाधिक द्वितीयक साक्ष्य हैं और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अंतर्गत इसकी विषय-वस्तु के समुचित प्रमाण के बिना साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समाचार पत्र की रिपोर्ट एक "कानूनी साक्ष्य" नहीं है जिसे शिकायतकर्ता के समर्थन में जांचा जा सकता है। यह कानून है कि किसी व्यक्ति के खिलाफ लगाए गए आरोपों के समर्थन में कानूनी सबूत होने चाहिए। वर्तमान मामले में, एकमात्र सबूत जिस पर भरोसा किया गया है वह अखबार की रिपोर्टिंग है और कुछ नहीं। जो ऊपर कहा गया है और स्थापित कानूनी स्थिति के अनुसार,एक समाचार पत्र की रिपोर्ट "कानूनी साक्ष्य" नहीं है।

38. वर्तमान मामले में, हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने केवल हिरासत के आधार में उल्लेख किया है कि याचिकाकर्ता ने 15.2.2022 को इस न्यायालय के समक्ष अपनी जमानत याचिका दायर की है और याचिकाकर्ता के जेल से बाहर आने पर सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए इसी तरह की गतिविधियों में लिप्त होने की संभावना थी। उसने आक्षेपित आदेश में अपनी संतुष्टि दर्ज नहीं की है कि उसे जमानत पर रिहा किए जाने की वास्तविक संभावना थी, जो हमारी राय में चूक ने आक्षेपित आदेश को पूरी तरह से दूषित कर दिया है।

39. इसलिए, पूर्वगामी विश्लेषण के मद्देनजर, हमारी सुविचारित राय है कि एन.एस.ए, 1980 की धारा 3 (2) के प्रावधानों के तहत हिरासत में लिए गए व्यक्ति की नजरबंदी अस्थिर है। परिणाम में दिनांक 31.3.2022 के हिरासत के आदेश और परिणामी आदेशों को एतद्वारा रद्द किया जाता है।

40. वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की अनुमति दी जाती है और प्रतिवादियों द्वारा निरुद्ध याचिकाकर्ता को तुरंत स्वतंत्रता देने का आदेश दिया जाता है जब तक कि किसी अन्य मामले के संबंध में आवश्यक न हो।

(2023) 2 ILRA 1030

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 16.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार,

विशेष अपील संख्या 17/2023

अनुवादित

संलग्न

विशेष अपील संख्या 18/2023

संलग्न

विशेष अपील संख्या 19/2023

बी.एच.यू., वाराणसी एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

डॉ. आलोक कुमार

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह, श्री हेमप्रताप सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री अजीत सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अजित कुमार सिंह, श्री पवन कुमार सिंह, श्री वी.के. ओझा, श्री एन.के. ओझा, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. शिक्षा कानून - चयन/नियुक्ति - विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता पर यूजीसी विनियम और उच्च शिक्षा में मानकों के रखरखाव के लिए उपाय, 2010 - यह अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी दस्तावेज़ या क़ानून में किसी भी खंड को अलग से नहीं पढ़ा जाना चाहिए ताकि इसका सही अर्थ खोजा जा सके। विज्ञापन में यह विशेष रूप से प्रदान किया गया है कि "मात्र योग्यता किसी भी उम्मीदवार को साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने का अधिकार नहीं देगी। साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले उम्मीदवारों को चयन करने के लिए अधिक कड़े मानदंड लागू किए जा सकते हैं। उच्च योग्यता और वरीयता योग्यता वाले आवेदकों को मौका दिया जाएगा। शिक्षण पदों के लिए चयनित विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित दिशानिर्देशों के अनुसार की जाएगी।" (पैरा 21)

विज्ञापन में उपरोक्त प्रावधान को पढ़ने से पता चलता है कि चयनित उम्मीदवारों के लिए अधिक कड़े मानदंड हो सकते हैं और शिक्षण पदों के लिए चयन विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित दिशानिर्देशों के अनुसार की जाएगी। कथन में अनुमोदित शब्द "विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित दिशानिर्देशों के अनुसार" शब्द "पहले से ही" के उपयोग से योग्य नहीं है। इसमें बस इतना कहा गया है कि चयन विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित दिशानिर्देशों के अनुसार की जानी है। यह विश्वविद्यालय को चयन के लिए उन दिशानिर्देशों को लागू करने में सक्षम बनाता है जो विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित हैं। वर्तमान वाद में, कार्यकारी परिषद के दिनांक 2.11.2010 के संकल्प द्वारा अनुमोदित संशोधित दिशानिर्देशों के आधार पर 11.01.2011 को चयन प्रक्रिया की गई थी। (पैरा 22)

विश्वविद्यालय ने विज्ञापन के अनुसार आवेदन पत्र प्राप्त होने की अंतिम तिथि से पहले ही चयन दिशानिर्देशों में बदलाव करने का निर्णय ले लिया था। विश्वविद्यालय द्वारा यह निर्णय यूजीसी विनियम, 2010 के कारण लिया गया था। कार्यकारी परिषद के प्रस्ताव के अनुसार, विश्वविद्यालय में शिक्षण पदों के लिए साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले आवेदकों का चयन करने के दिशानिर्देश प्रभावी हो गए। (पैरा 23,26)

B. खेल के नियमों को बीच में बदलने पर रोक लगाने वाला सामान्य सिद्धांत तब लागू नहीं होगा जब परिवर्तन चयन प्रक्रिया के संबंध में हो, न कि योग्यता या योग्यता पर। (पैरा 31)

अनुवादित

विज्ञापन का सामान्य निर्देश संख्या 2: "उम्मीदवार की पात्रता और किसी अन्य चयन मानदंड की संतुष्टि को आवेदन की प्राप्ति की अंतिम तिथि के अनुसार माना जाएगा", इसका मतलब होगा: -

(ए) कि **किसी उम्मीदवार की पात्रता पर आवेदन प्राप्त होने की अंतिम तिथि के संदर्भ में विचार किया जाना है,** यानी आवेदन प्राप्त होने की अंतिम तिथि के बाद प्राप्त कोई भी पात्रता योग्यता विचार में नहीं होगी।; और

(बी) **कि क्या कोई उम्मीदवार चयन मानदंडों को पूरा करता है या नहीं, यह उसकी साख (अर्थात योग्यताएं, आदि) के आधार पर आवेदन प्राप्त होने की अंतिम तिथि तक निर्धारित किया जाएगा।** इसका तात्पर्य यह है कि यदि यह निर्धारित करने के लिए कि क्या उसने चयन मानदंडों को पूरा किया है या नहीं, किसी उम्मीदवार की साख को वेटेज दिया जाना है, तो ऐसे क्रेडेंशियल्स को कोई वेटेज नहीं दिया जाएगा जो आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि पर उसके पास नहीं थे। (पैरा 3, 30)

सी. आवेदकों की संख्या के आधार पर चयन मानदंडों को कठोर बनाया जा सकता है ताकि चयन निकाय के लिए चयन किए गए उम्मीदवारों का प्रभावी ढंग से साक्षात्कार करना सुविधाजनक हो सके। (पैरा 31)

जहां चयन केवल साक्षात्कार के आधार पर किया जाना है, वहां आयोग या चयन बोर्ड साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले उम्मीदवारों की संख्या तय करने के लिए कोई तर्कसंगत प्रक्रिया अपना सकता है। चूंकि चयन प्रक्रिया आवेदन प्राप्त होने के बाद ही आयोजित की जानी है, इसलिए प्राप्त आवेदनों की संख्या को ध्यान में रखते हुए चयन मानदंड आवेदन पत्र प्राप्त होने की अंतिम तिथि के बाद तय किए जा सकते हैं। भले ही चयन के लिए कोई नियम नहीं है और न ही पद के लिए आवेदन मांगने वाले विज्ञापन में इसका कोई उल्लेख है, यदि बड़ी संख्या में पात्र उम्मीदवार आवेदन करते हैं तो चयन निकाय चयन प्रक्रिया का सहारा ले सकता है। प्राधिकरण के लिए उन सभी का साक्षात्कार लेना संभव नहीं है। (पैरा 27)

इसलिए, साक्षात्कार के लिए उम्मीदवारों को चयन करने के लिए दिशानिर्देशों को संशोधित करके, विश्वविद्यालय ने चयन प्रक्रिया शुरू होने के बाद खेल के नियमों को बीच में नहीं बदला था।

वर्तमान वाद में, समाजशास्त्र के सहायक प्रोफेसर के एक अकेले पद के लिए लगभग 200 आवेदक थे। चयन दिशानिर्देशों के अनुसार, एक पद में 10 उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाया जाना था। चूँकि अपनाए गए चयन मानदंडों के आधार पर 3 उम्मीदवारों ने समान अंक प्राप्त किए थे, इसलिए विश्वविद्यालय द्वारा साक्षात्कार के लिए 12 उम्मीदवारों का चयन किया गया था। विशेष रूप से, रिट याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) चयन किए गए 12 उम्मीदवारों में से एक नहीं थे। (पैरा 28)

रिट याचिका में कहा गया है कि संशोधित दिशानिर्देशों को चयन के लिए लागू नहीं किया जाना चाहिए था लेकिन ऐसा कोई बयान नहीं है कि पुराने दिशानिर्देशों के तहत उन्होंने अन्य 10

अनुवादित

चयनित उम्मीदवारों की तुलना में अधिक अंक प्राप्त किए होंगे। इसके अलावा, जो दिलचस्प है वह यह है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) की पहली प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है, जिसमें चयन दिशानिर्देशों को लागू करके विश्वविद्यालय द्वारा की गई चीन को चुनौती दी गई थी। एक बार यह स्थिति हो जाने पर, रिट याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) को बाहर कर दिया गया, वह किसी भी राहत का हकदार नहीं था जैसा कि उसे दिया गया था। (पैरा 29)

विशेष अपील संख्या 17/2023 और 18/2023 स्वीकार की जाती हैं। (ई 4)

विशेष अपील संख्या 19 /2023 को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है और रिट-ए संख्या 45120 /2013 को विश्वविद्यालय को उन उम्मीदवारों को दिए गए साक्षात्कार अंकों के आधार पर चयन/नियुक्ति प्रक्रिया को पूरा करने की स्वतंत्रता देकर निस्तारित जाता है, जिन्हें संशोधित चयन दिशानिर्देशों के आधार पर साक्षात्कार के लिए सूचीबद्ध किया गया था।

<u>विधिव्यवस्था अनुसरित:</u>

1. मध्य प्रदेश लोक सेवा आयोग बनाम नवनीत कुमार पोतदार एवं अन्य, (1994) 6 एससीसी 293 (पैरा 16(ए))

2. बी. रामकिचेनिन @ बालागांधी बनाम भारत संघ और अन्य, (2008) 1 एससीसी 362 (पैरा 16(बी))

3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम करुणेश कुमार और अन्य, सिविल अपील संख्या 8822-8823 / 2022 (एसएलपी (सी) संख्या 10386-10387 / 2020 (2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1706 से उत्पन्न), निर्णित दिनांक 12 दिसंबर 2022 (पैरा 16(सी))

4. शंकरशन दाश बनाम भारत संघ, (1991) 3 एससीसी 47 (पैरा 18)

वर्तमान विशेष अपील माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 02.09.2022 के विरुद्ध योजित है।

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा, द्वारा प्रदत्त)

1. विशेष अपील सं. - 17 वर्ष 2023 और विशेष अपील सं. - 18 वर्ष 2023 डॉ. आलोक कुमार द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 4963 वर्ष 2011 को अनुमति देने वाले एकल न्यायाधीश के दिनांक 02.09.2022 के निर्णय और आदेश के खिलाफ हैं, जबकि 2023 की विशेष अपील संख्या 19 2013 के रिट ए नंबर 45120 में उसी तारीख के फैसले और आदेश के खिलाफ है। डॉ. रश्मि रंजन द्वारा 2011 के रिट ए नंबर 4963 वर्ष 2011 में फैसले और आदेश के आलोक में निरर्थक के रूप में दायर किया गया और इनमें निर्णय और आदेश की संख्या, चूंकि इन तीन अपीलों में विचार के लिए कानून और तथ्यों के सामान्य प्रश्न उठते हैं, इसलिए पक्षों के वकील की सहमति से उन्हें एक साथ सुना गया और एक सामान्य निर्णय और आदेश द्वारा तय किया जा रहा है।

<u>तथ्य:</u>

2. 2011 की रिट संख्या 4963 डॉ. आलोक कुमार (प्रतिवादी) द्वारा निम्नलिखित राहतों की मांग करते हुए दायर की गई थी: -

"(i) बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से प्रासंगिक रिकॉर्ड प्राप्त करने के बाद प्रमाण पत्र

अनुवादित

की प्रकृति में एक उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसमें याचिकाकर्ता के पोस्ट की पूरी शॉर्ट लिस्टिंग को रद्द कर दिया जाए, जो 02.11.2010 से प्रभावी शॉर्टलिस्टिंग दिशानिर्देशों को लागू करके किया गया है।

(ii) परमादेश की प्रकृति में एक उपयुक्त रिट, आदेश या निदेश जारी करना जिसमें प्रतिवादी-विश्वविद्यालय और उसके प्राधिकारियों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के दिशा-निर्देशों, विनियमों और शॉर्ट-लिस्टिंग के प्रयोजनार्थ विज्ञापन में उल्लिखित पात्रता अर्हताओं के अनुसार संपूर्ण चयन करने का निदेश दिया जाए।

(iii) ऐसा अन्य और आगे आदेश पारित करना, जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त समझे।

(iv) पुरस्कार लागत"

3. रिट याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) का मामला संक्षेप में यह था कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (संक्षेप में 'विश्वविद्यालय') ने समाजशास्त्र में सहायक प्रोफेसर (पोस्ट कोड 3712) सहित विभिन्न पदों के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए एक विज्ञापन जारी किया था। चयन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए आवेदन पत्र प्राप्त करने की अंतिम तिथि 21.09.2010 थी। विज्ञापन में निर्दिष्ट किया गया है कि:

पीठ ने कहा, "केवल पात्रता किसी भी उम्मीदवार को साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने का हकदार नहीं बनाएगी। साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले उम्मीदवारों को शॉर्टलिस्ट करने के लिए अधिक कड़े मानदंड लागू किए जा सकते हैं। उच्च योग्यता और योग्यता रखने वाले आवेदकों को वरीयता दी जाएगी। शिक्षण पदों के लिए विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित दिशानिर्देशों के अनुसार शॉर्ट-लिस्टिंग की जाएगी।

विज्ञापन के सामान्य अनुदेश संख्या 2 में इस प्रकार बताया गया है: -

"एक उम्मीदवार की पात्रता और किसी अन्य शॉर्टलिस्टिंग मानदंड की संतुष्टि पर आवेदन के लिए प्राप्ति की अंतिम तिथि के दिन विचार किया जाएगा!

4. रिट याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) के अनुसार, विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित दिनांक 10.04.2010 को एक शॉर्टलिस्टिंग दिशानिर्देश मौजूद थे, लेकिन उन दिशानिर्देशों को लागू करने के बजाय, कार्यकारी परिषद के दिनांक 02.11.2010 के संकल्प के अनुसरण में तैयार किए गए संशोधित दिशानिर्देश, जो 02.11.2010 से प्रभावी थे, का उपयोग समाजशास्त्र में सहायक प्रोफेसर के पद के लिए साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले 200 से अधिक आवेदकों में से 12 को शॉर्टलिस्ट करने के लिए किया गया था। चूंकि रिट याचिकाकर्ता शॉर्टलिस्ट किए गए लोगों में से नहीं था, इसलिए रिट ए नंबर 4963 वर्ष 2011 दायर की गई थी। रिट याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) की शिकायत यह थी कि 02.11.2010 से लागू किए गए शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों को सेवा में नहीं रखा जाना चाहिए था क्योंकि विज्ञापन के अनुसार, आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि 21.09.2010 थी, जबकि संशोधित शॉर्टलिस्टिंग दिशानिर्देश 02.11.2010 से प्रभावी हो गए, इसलिए, सामान्य निर्देश संख्या 2 को ध्यान में रखते हुए, बाद में अपनाए गए किसी भी शॉर्टलिस्टिंग मानदंड को लागू नहीं किया जा सकता था।

अनुवादित

5. रिट संख्या 4963 वर्ष 2011 में 28.01.2011 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"श्री रवि किरण जैन, वरिष्ठ अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता की ओर से पेश श्री आरके अवस्थी के साथ प्रस्तुत किया कि यद्यपि याचिकाकर्ता आवश्यक योग्यता के रूप में पीएचडी के साथ पात्र है, लेकिन नेट / एसएलईटी की अतिरिक्त योग्यता को 2.11.2010 से प्रभावी शॉर्टलिस्टिंग के दिशानिर्देशों में 20 अंक दिए गए हैं, जबकि विज्ञापन में आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि 21.9.2010 थी। उन्होंने कहा कि उम्मीदवारों के लिए सामान्य निर्देशों के तहत: (आइटम नंबर 2) एक उम्मीदवार की पात्रता और किसी अन्य शॉर्टलिस्टिंग मानदंड की संतुष्टि को आवेदन की प्राप्ति की अंतिम तिथि के दिन विचार किया जाना आवश्यक था। इस प्रकार नेट/एसएलईटी की आवश्यकता को बाद में लागू किया गया है जिससे पात्र उम्मीदवारों के बीच भेदभाव हो रहा है। नेट/एसएलईटी के साथ पीएचडी/डीफिल करने वाले उम्मीदवारों को शॉर्टलिस्टिंग में 20 अतिरिक्त अंक दिए जाएंगे, जबकि पीएचडी डिग्री रखने वाले याचिकाकर्ता जैसे पूरी तरह से पात्र उम्मीदवार को अतिरिक्त अंकों से वंचित कर दिया जाएगा।

विश्वविद्यालय की ओर से पेश श्री के एस चौहान द्वारा एक आपत्ति की गई है कि उसी विज्ञापन में यह प्रावधान है कि केवल पात्रता किसी भी उम्मीदवार को साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने का हकदार नहीं होगा और शॉर्टलिस्टिंग के लिए अधिक कठोर मानदंड लागू किए जा सकते हैं। उच्च योग्यता और योग्यता रखने वाले आवेदकों को वरीयता दी जानी थी। श्री चौहान यह बताने की स्थिति में नहीं हैं कि दिनांक 2-11-2010 के दिशा-निर्देशों को विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित किया गया है या नहीं। इस मामले पर विचार किए जाने की आवश्यकता है।

एक अंतरिम उपाय के रूप में, हम प्रावधान करते हैं कि यदि याचिकाकर्ता की श्रेणी में सहायक प्रोफेसर (समाजशास्त्र) के पद के लिए साक्षात्कार अब तक आयोजित नहीं किया गया है, तो याचिकाकर्ता को अस्थायी रूप से साक्षात्कार में उपस्थित होने की अनुमति दी जाएगी। पद के लिए चयन का परिणाम, हालांकि, न्यायालय के अगले आदेश तक घोषित नहीं किया जाएगा। इस मामले को 14 फरवरी, 2011 को रखा जाएगा। याचिकाकर्ता द्वारा विश्वविद्यालय में दायर किए जाने वाले आदेश के अलावा, विश्वविद्यालय की ओर से पेश वकील भी आज विश्वविद्यालय को इस आदेश के बारे में सूचित करेंगे। आदेश की प्रति आज पक्षों के वकीलों को दी जाए।

6. अंतरिम आदेश के अनुसार, शॉर्टलिस्ट किए गए उम्मीदवारों के साथ-साथ रिट याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) के साक्षात्कार आयोजित किए गए और साक्षात्कार के परिणाम को एक सीलबंद कवर में रिट कोर्ट के समक्ष पेश किया गया। दिनांक 28.02.2013 को रिट कोर्ट ने सीलबंद कवर खोला और पाया कि साक्षात्कार में डॉ आलोक कुमार ने सर्वाधिक 85 अंक प्राप्त किए थे। अगले शीर्ष तीन डॉ रश्मि रंजन (83 अंक) (रिट ए नंबर 45120 वर्ष 2013 में रिट याचिकाकर्ता); डॉ मनीष तिवारी (81 अंक); और डॉ सिया सरन पांडे (80 अंक)। इस प्रकार प्रस्तुत परिणाम को देखने के बाद, 28.02.2013 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था: -

"इस न्यायालय के दिनांक 6.2.2013 के आदेश के अनुपालन में, साक्षात्कार का परिणाम, जिसमें

याचिकाकर्ता को इस न्यायालय के 28.1.2011 के आदेश के तहत अस्थायी रूप से उपस्थित होने की अनुमति दी गई थी, हमारे सामने सीलबंद कवर में पेश किया गया है। न्यायालय द्वारा सीलबंद लिफाफे में परिणाम खोला गया है और उसका अवलोकन किया गया है। उसी के अनुसार समिति ने याचिकाकर्ता की नियुक्ति के लिए सिफारिश की है जिसे 85 अंक प्राप्त करने के बाद क्रम संख्या 1 पर रखा गया है। तीन उम्मीदवारों की प्रतीक्षा सूची तैयार की गई है जो इस प्रकार है:

1. डॉ रश्मि रंजन (83 अंक)
2. डॉ मनीष तिवारी (81 अंक)
3. डॉ सिया सरन पांडे (80 अंक)
उक्त परिणाम जैसा कि इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, प्रतिवादी-विश्वविद्यालय की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वीके सिंह को लौटाया जा रहा है।
दिनांक 13.03.2013 को सूची।"

7. जबकि रिट ए संख्या 4963 वर्ष 2011लंबित थी, डॉ रश्मि रंजन, जिन्होंने साक्षात्कार में 83 अंक प्राप्त किए थे और शॉर्टलिस्ट किए गए बारह उम्मीदवारों में से एक थीं, ने रिट ए नंबर 45120 वर्ष 2013 दायर की, जिसमें डॉ आलोक कुमार को प्रतिवादी नंबर 4 के रूप में पेश किया गया, जिसमें निम्नलिखित राहत की मांग की गई: -

(क) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में सहायक प्रोफेसर (समाजशास्त्र) के पद पर नियुक्ति के लिए प्रतिवादी संख्या 4 के पक्ष में जारी साक्षात्कार पत्र और चयन समिति की सिफारिश को रद्द करने के लिए प्रमाण पत्र की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करना;

(ख) प्रतिवादियों 1 से 3 तक याचिकाकर्ता को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में सहायक प्रोफेसर (समाजशास्त्र) के पद पर उसके पक्ष में नियुक्ति पत्र जारी करके नियुक्त करने का निदेश देते हुए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।

(ग) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करेगा जिसे यह माननीय न्यायालय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उपयुक्त समझे।

(घ) याचिकाकर्ता के पक्ष में रिट याचिका की लागत निर्धारित करना।

8. रिट ए नंबर 45120 वर्ष 2013 में, डॉ रश्मि रंजन द्वारा लिया गया मामला यह था कि शॉर्ट-लिस्टिंग की प्रक्रिया के संबंध में कोई निहित अधिकार नहीं हो सकता है, इसलिए, जब विश्वविद्यालय ने शॉर्ट-लिस्टिंग के लिए दिशानिर्देश तैयार किए और उन दिशानिर्देशों को लागू करके साक्षात्कार के लिए उनके सहित 12 उम्मीदवारों को शॉर्टलिस्ट किया, तो डॉ आलोक कुमार, जिनकी स्क्रीनिंग की गई थी, उन्हें साक्षात्कार में उपस्थित होने का कोई अधिकार नहीं था, इसलिए उनका साक्षात्कार पत्र रद्द किया जाना चाहिए और चूंकि उन्हें साक्षात्कार के लिए चुने गए उम्मीदवारों की सूची में सबसे ऊपर रखा गया था, इसलिए वह नियुक्त होने की हकदार थीं।

9. विश्वविद्यालय द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में यह रुख अपनाया गया था कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) ने विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता और उच्च शिक्षा में मानकों के रखरखाव के उपाय, 2010 (संक्षेप में यूजीसी विनियम

अनुवादित

2010) पर यूजीसी विनियम लागू किए थे, जो 30.06.2010 से प्रभावी थे। जिन्हें विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा दिनांक 31 अगस्त, 2010 के ईसीआर सं. 200 के तहत अपनाया गया था, इसलिए शुद्धिपत्र संख्या 1 द्वारा यूजीसी विनियम, 2010 द्वारा निर्धारित संशोधित अर्हताओं को अधिसूचित किया गया था और आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि 20.06.2010 से बढ़ाकर 21.09.2010 कर दी गई थी। विश्वविद्यालय ने जवाबी हलफनामे में कहा कि यूजीसी विनियम, 2010 को अपनाते समय, कार्यकारी परिषद ने 31 अगस्त, 2010 के ईसीआर संख्या 200 के माध्यम से, अन्य बातों के साथ-साथ निम्नानुसार संकल्प लिया: -

यूजीसी ने एक बयान में कहा, "यह भी संकल्प लिया गया है कि कुलपति को नए यूजीसी विनियम, 2010 के प्रावधानों के आलोक में कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित विश्वविद्यालय में संकाय पदों के लिए शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों में आवश्यक बदलाव करने के लिए अधिकृत किया जाए।

10. विश्वविद्यालय का यह भी मामला था कि पूर्व में शॉर्टलिस्टिंग दिशा-निर्देशों को यूजीसी विनियम, 2010 द्वारा निर्धारित शिक्षण पदों के लिए योग्यता और अन्य पात्रता शर्तों के अनुरूप संशोधित किया गया था और कुलपति, बीएचयू द्वारा अपने दिनांक 29.10.2010 के आदेश के माध्यम से अनुमोदित किया गया था, जिसे कार्यकारी परिषद द्वारा ईसीआर संख्या 208, दिनांक 2 नवम्बर 2010 के तहत अनुमोदित किया गया था। यह विश्वविद्यालय का मामला था कि भर्ती प्रक्रिया एक सतत् प्रक्रिया है और इसे यूजीसी/मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा समय-समय पर निर्धारित अर्हताओं के आलोक में किया जाना है; और साक्षात्कार के लिए उम्मीदवारों की शॉर्ट-लिस्टिंग कुलपति, बीएचयू द्वारा अनुमोदित शॉर्टलिस्टिंग के संशोधित मानदंडों के अनुसार की गई थी, जिसे कार्यकारी परिषद द्वारा पुष्टि और अनुमोदित किया गया था। विश्वविद्यालय ने तर्क दिया कि विज्ञापन में एक विशिष्ट खंड था कि केवल पात्रता किसी भी उम्मीदवार को साक्षात्कार के लिए बुलाने का हकदार नहीं होगी और साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले उम्मीदवारों को शॉर्ट-लिस्ट करने के लिए अधिक कड़े मानदंड लागू किए जा सकते हैं और इसके आगे, विश्वविद्यालय ने शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों को अपनाया / लागू किया, इसलिए, याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) को साक्षात्कार के लिए चुने गए उम्मीदवारों की सूची से बाहर किए जाने के खिलाफ कोई शिकायत नहीं हो सकती है।

11. एकल न्यायाधीश ने विचार किया कि चूंकि सामान्य अनुदेश संख्या 2 द्वारा आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि के अनुसार एक उम्मीदवार की पात्रता का परीक्षण किया जाना था, जो वर्तमान मामले में 21.09.2010 था, इसलिए 02.11.2010 से लागू शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों को लागू नहीं किया जा सकता है और चूंकि डॉ आलोक कुमार की पात्रता के संबंध में कोई विवाद नहीं है। साक्षात्कार में और साक्षात्कार में उच्चतम अंक प्राप्त करने के बाद, वह नियुक्त होने का हकदार था। नतीजतन, एकल न्यायाधीश ने डॉ आलोक कुमार की रिट याचिका को स्वीकार कर लिया। डॉ आलोक कुमार द्वारा दायर रिट ए संख्या 4963 वर्ष 2011 में पारित आदेश का ऑपरेटिव हिस्सा नीचे दिया गया है: -

"उपरोक्त के मद्देनजर, विश्वविद्यालय को संबंधित विज्ञापन के संबंध में नए दिशानिर्देशों को लागू करने की अनुमति देने के लिए कोई जगह नहीं है। पुराने दिशानिर्देशों के तहत याचिकाकर्ता की पात्रता और नियुक्ति के लिए उसकी उपयुक्तता के बारे में, कोई विवाद नहीं है। याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के आदेशों के तहत विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित साक्षात्कार में उच्चतम अंक प्राप्त किए हैं।

याचिकाकर्ता द्वारा की गई पहली प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया जाता है। ऊपर की गई चर्चा को ध्यान में रखते हुए, विश्वविद्यालय को एक महीने की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को नियुक्ति का आवश्यक पत्र जारी करने के लिए एक परमादेश जारी किया जाता है। सभी परिणामी प्रभाव तदनुसार उत्पन्न होंगे।

तदनुसार, रिट याचिका को अनुमति दी जाती है।
"

12. चूंकि डॉ. आलोक कुमार की रिट याचिका को स्वीकार कर लिया गया था, इसलिए डॉ. रश्मि रंजन की रिट संख्या 45120 वर्ष 2013 को निरर्थक मानते हुए खारिज कर दिया गया था। रिट ए नंबर 45120 वर्ष 2013 में पारित दिनांक 02.09.2022 का आदेश नीचे दिया गया है: -

"रिट नंबर 4963 वर्ष 2011 में पारित आदेश के मद्देनजर, याचिकाकर्ता शॉर्ट-लिस्टिंग के मुद्दे पर सुनवाई के लायक है। हालांकि, चूंकि उन्हें रिट- 4963 वर्ष 2011 में याचिकाकर्ता डॉ आलोक कुमार से कम अंक दिए गए हैं, इसलिए याचिकाकर्ता को कोई राहत नहीं दी जा सकती है। साथ ही, इस रिट याचिका में साक्षात्कार के परिणाम को भी शामिल नहीं किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि रिट याचिका निरर्थक हो गई है। इस प्रकार, रिट याचिका को निरर्थक मानते हुए खारिज किया जाता है।

<u>प्रस्तुतियाँ</u>

13. हमने डॉ. रश्मि रंजन के लिए श्री संतोष कुमार सिंह की सहायता से श्री गजेंद्र प्रताप, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को सुना है; श्री अजीत कुमार सिंह, विद्वान वरिष्ठ वकील, विश्वविद्यालय के लिए श्री हेम प्रताप सिंह द्वारा सहायता प्राप्त; और डॉ. आलोक कुमार की जगह श्री वीके ओझा की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

14. इन तीन संबंधित अपीलों में अपीलकर्ताओं की ओर से दलीलों का नेतृत्व करते हुए, श्री गजेंद्र प्रताप ने प्रस्तुत किया कि एकल न्यायाधीश ने विज्ञापन के सामान्य निर्देश संख्या 2 की गलत व्याख्या की ताकि यह कहा जा सके कि यह साक्षात्कार के लिए उम्मीदवारों की शॉर्ट-लिस्टिंग के लिए किसी भी नए दिशानिर्देशों को अपनाने पर प्रतिबंध लगाता है। उनके अनुसार, निर्देश संख्या 2 की सही व्याख्या यह होगी कि यदि शॉर्ट-लिस्टिंग के प्रयोजनों के लिए कोई मानदंड अपनाया जाता है, तो क्या उम्मीदवार द्वारा उस मानदंड को पूरा किया गया है, यह आवेदन पत्र की प्राप्ति की अंतिम तिथि को उसकी योग्यता के आधार पर निर्धारित किया जाएगा। उनके अनुसार, निर्देश संख्या 2 का मतलब यह नहीं होगा कि कोई नया शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देश लागू नहीं किया जा सकता है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि शॉर्ट लिस्टिंग का उद्देश्य उम्मीदवारों की संख्या को कम करना है ताकि चयन के लिए आवश्यक कदम प्रभावी ढंग से उठाए जा सकें। इसलिए आवेदकों की संख्या के आधार पर शॉर्ट-लिस्टिंग के लिए अधिक कड़े दिशानिर्देश लागू

अनुवादित

किए जा सकते हैं। ऐसी परिस्थितियों में, किसी भी विशेष शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों के आवेदन के संबंध में किसी भी उम्मीदवार में कोई निहित अधिकार नहीं हो सकता है। एकल न्यायाधीश ने यह कहते हुए गलती की कि 02.11.2010 से प्रभावी शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों को उस भर्ती अभ्यास में लागू नहीं किया जा सकता था जिसमें आवेदन पत्र प्राप्त करने की अंतिम तिथि 21.09.2010 थी। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि संशोधित दिशानिर्देशों को अपनाने के बाद शॉर्ट-लिस्टिंग अभ्यास किया गया था और शॉर्ट-लिस्ट किए गए उम्मीदवारों की सूची 11.01.2011 को प्रकाशित की गई थी। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि विश्वविद्यालय द्वारा दायर जवाबी हलफनामे से यह स्थापित हुआ था कि यूजीसी विनियम, 2010 के परिणामस्वरूप नए शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देश आवश्यक थे, जो 30.06.2010 को प्रभावी हो गए थे, जबकि शॉर्ट-लिस्टिंग के लिए पुराने दिशानिर्देश 10.04.2010 के थे, इसलिए विश्वविद्यालय ने नए मानदंडों को उचित महत्व देने के लिए शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों को संशोधित करना उचित समझा। यह तर्क दिया गया था कि विश्वविद्यालय द्वारा पात्रता मानदंड में बदलाव नहीं किया गया था, केवल शॉर्टलिस्टिंग के उद्देश्य से कुछ योग्यताओं के लिए वेटेज अंक बदल दिए गए थे।

15. उपरोक्त प्रस्तुतियों को विश्वविद्यालय की ओर से पेश वरिष्ठ वकील श्री अजीत कुमार सिंह द्वारा अपनाया गया था।

16. अपनी दलीलों के समर्थन में, अपीलकर्ताओं के वकील ने कई अधिकारियों का हवाला दिया, अर्थात्:

(क) मध्य प्रदेश लोक सेवा आयोग बनाम नवनीत कुमार पोतदार और अन्य, (1994) 6 एससीसी 293। इस मामले में यह माना गया था कि जब भी विभिन्न पदों पर भर्ती के लिए आवेदन आमंत्रित किए जाते हैं, तो कुछ बुनियादी योग्यताएं और मानदंड तय किए जाते हैं और आवेदकों के पास उन बुनियादी योग्यताओं और मानदंडों को होना चाहिए, इससे पहले कि उनके आवेदनों पर विचार किया जा सके। चयन बोर्ड या आयोग को यह तय करना है कि आवेदकों में से सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवारों का चयन करने के लिए किस प्रक्रिया का पालन किया जाना है। अधिकांश सेवाओं में, स्क्रीनिंग टेस्ट या लिखित परीक्षा शुरू की गई है ताकि उन उम्मीदवारों की संख्या को सीमित किया जा सके जिन्हें साक्षात्कार के लिए बुलाया जाना है। इस तरह के स्क्रीनिंग टेस्ट या लिखित परीक्षा संबंधित विधियों या प्रॉस्पेक्टस में प्रदान की गई है जो उम्मीदवारों के चयन को नियंत्रित करती है। लेकिन जहां चयन केवल साक्षात्कार के आधार पर किया जाना है, आयोग या चयन बोर्ड साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले उम्मीदवारों की संख्या तय करने के लिए कोई तर्कसंगत प्रक्रिया अपना सकता है।

(ख) बी. रामकिचेनिन @ बालागांधी बनाम भारत संघ और अन्य, (2008) 1 एससीसी 362। इस मामले में, नवनीत कुमार पोतदार के मामले (सुप्रा) में पहले के फैसले के बाद, यह माना गया था कि भले ही शॉर्टलिस्टिंग के लिए कोई नियम नहीं है और न ही पद के लिए आवेदन आमंत्रित करने वाले विज्ञापन में इसका कोई उल्लेख है, चयन निकाय बड़ी संख्या में योग्य उम्मीदवारों के होने पर शॉर्ट-लिस्टिंग प्रक्रिया का सहारा ले सकता है, जिन्होंने आवेदन किया है, और उन सभी का साक्षात्कार करना संभव नहीं है।

(ग) उत्तर प्रदेश राज्य बनाम करुणेश कुमार और अन्य ने दिनांक 12 दिसंबर, 2022 को 2022

की सिविल अपील संख्या 8822-8823 (2020 की एसएलपी © संख्या 10386-10387 से उत्पन्न) (2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1706) में उत्तर प्रदेश राज्य बनाम करुणेश कुमार और अन्य के मामले में कहा है कि इस सिद्धांत के संबंध में खेल के नियमों को बीच में नहीं बदला जाना चाहिए। यह देखा गया कि उस सिद्धांत का कोई अनुप्रयोग नहीं होगा जब परिवर्तन चयन प्रक्रिया के संबंध में हो न कि योग्यता या पात्रता के संबंध में।

17. उपरोक्त निर्णयों पर भरोसा करते हुए, अपीलकर्ताओं के वकील ने प्रस्तुत किया कि विज्ञापन में एक विशिष्ट शर्त मौजूद है कि केवल पात्रता किसी भी उम्मीदवार को साक्षात्कार के लिए बुलाने का हकदार नहीं होगी और साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले उम्मीदवारों को शॉर्ट-लिस्ट करने के लिए अधिक कठोर मानदंड लागू किया जा सकता है, इसलिए, विश्वविद्यालय को साक्षात्कार के लिए उम्मीदवारों को शॉर्ट-लिस्टिंग करने के लिए किसी भी तर्कसंगत शॉर्ट-लिस्टिंग प्रक्रिया को अपनाने का अयोग्य अधिकार था; और चूंकि विश्वविद्यालय द्वारा अपनाए गए और लागू किए गए शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों की वैधता को कोई चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए डॉ आलोक कुमार की रिट याचिका खारिज होने योग्य थी। 18. उपर्युक्त के अलावा, विश्वविद्यालय की ओर से एक वैकल्पिक निवेदन भी प्रस्तुत किया गया था, जो यह है कि एकल न्यायाधीश डॉ. आलोक कुमार की नियुक्ति के लिए निर्देश जारी नहीं कर सकता था क्योंकि एक चयनित उम्मीदवार को नियुक्त होने का अपरिहार्य अधिकार प्राप्त नहीं है। इस दलील के समर्थन में शंकरशान दास बनाम भारत संघ, (1991) 3 एससीसी 47 मामले में सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले का हवाला दिया गया था। यह भी तर्क दिया गया कि एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश तकनीकी रूप से दोषपूर्ण है क्योंकि रिट याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) की शॉर्ट-लिस्टिंग के आदेश को रद्द करने के लिए पहली प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया है। पहली प्रार्थना को अस्वीकार करने के बाद, दूसरी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया जा सकता था क्योंकि याचिकाकर्ता की जांच की गई थी और अंतरिम आदेश के अनुसार साक्षात्कार में उसकी भागीदारी नियुक्ति का कोई अधिकार प्रदान नहीं करेगी क्योंकि ऐसा अधिकार स्पष्ट रूप से रिट याचिका के अंतिम निर्णय के अधीन होगा। इस प्रकार यह तर्क दिया गया कि चूंकि रिट याचिका में की गई पहली प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया था, इसलिए रिट याचिकाकर्ता को दी गई राहत गलत थी और उपरोक्त सभी कारणों से, अपीलों को अनुमति दी जानी चाहिए।

19. रिट याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने कहा कि याचिकाकर्ता के पात्र होने के संबंध में कोई विवाद नहीं है और इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि शॉर्ट-लिस्टिंग के लिए संशोधित दिशानिर्देश 02.11.2010 से प्रभावी थे, जबकि आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि 21.09.2010 थी। चूंकि अनुदेश संख्या 2 में स्पष्ट रूप से विनिदष्ट किया गया था कि आवेदन प्राप्त होने की अंतिम तिथि को उम्मीदवार की पात्रता और किसी अन्य शॉर्ट-लिस्टिंग मानदंड की संतुष्टि पर विचार किया जाएगा, इसलिए 02.11.2010 से प्रभावी हुए संशोधित दिशानिर्देश लागू नहीं किए जा सकते थे। ऐसी परिस्थितियों में, एक बार जब यह पाया जाता है कि डॉ.

अनुवादित

आलोक कुमार ने साक्षात्कार में उच्चतम अंक प्राप्त किए थे, तो एकल न्यायाधीश द्वारा जारी निर्देश में कोई हस्तक्षेप नहीं करने की आवश्यकता होती है। इसलिए, उन्होंने प्रार्थना की कि तीनों अपीलों को खारिज कर दिया जाए।

विचार-विमर्श

20. विज्ञापन के निबंधन और शर्तों सहित प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों, पक्षकारों की प्रासंगिक दलीलों को ध्यान में रखते हुए, हमारे विचार के लिए जो मुद्दा उठता है वह यह है कि विज्ञापन के सामान्य अनुदेश संख्या 2 की क्या व्याख्या की जानी है, जो निम्नानुसार है: -

"एक उम्मीदवार की पात्रता और किसी भी अन्य शॉर्टलिस्टिंग मानदंड की संतुष्टि को आवेदन प्राप्त होने की अंतिम तिथि के रूप में माना जाएगा।

21. यह अच्छी तरह से तय है कि किसी दस्तावेज या क़ानून के किसी खंड को अलग से नहीं पढ़ा जाना चाहिए ताकि उसका सही अर्थ मिल सके। इसलिए हमें विज्ञापन में अन्य प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करना होगा जो विश्वविद्यालय को शॉर्ट-लिस्टिंग प्रक्रिया अपनाने में सक्षम बनाता है। विज्ञापन में विशेष रूप से यह प्रावधान किया गया है कि

पीठ ने कहा, "केवल पात्रता किसी भी उम्मीदवार को साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने का हकदार नहीं बनाएगी। साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले उम्मीदवारों को शॉर्ट-लिस्ट करने के लिए अधिक कड़े मानदंड लागू किए जा सकते हैं। उच्च योग्यता और योग्यता रखने वाले आवेदकों को वरीयता दी जाएगी। शिक्षण पदों के लिए विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित दिशानिर्देशों के अनुसार शॉर्ट-लिस्टिंग की जाएगी।

22. विज्ञापन में उपर्युक्त प्रावधान को पढ़ने से पता चलेगा कि उम्मीदवारों को शॉर्टलिस्ट करने के लिए अधिक कड़े मानदंड हो सकते हैं और शिक्षण पदों के लिए विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित दिशानिर्देशों के अनुसार शॉर्ट-लिस्टिंग की जाएगी। बयान में अनुमोदित शब्द "विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित दिशानिर्देशों के अनुसार" "पहले से ही" शब्द के उपयोग से योग्य नहीं है। इसमें बस इतना कहा गया है कि शॉर्ट-लिस्टिंग विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित दिशानिर्देशों के अनुसार की जानी है। यह विश्वविद्यालय को शॉर्ट-लिस्टिंग के लिए उन दिशानिर्देशों को लागू करने में सक्षम बनाता है जो विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित हैं। इस मामले में, कार्यकारी परिषद के दिनांक 2-11-2010 के संकल्प द्वारा अनुमोदित संशोधित दिशानिर्देशों के आधार पर 11-01-2011 को शॉर्ट-लिस्टिंग कार्य किया गया था।

23. विश्वविद्यालय के जवाबी हलफनामे से यह स्पष्ट है कि दिनांक 10-04-2010 को तैयार किए गए पूर्व दिशा-निर्देशों में यूजीसी विनियम, 2010 के परिणामस्वरूप संशोधन की आवश्यकता थी जो 30-06-2010 से प्रभावी हुआ। विश्वविद्यालय के जवाबी हलफनामे से यह भी संकेत मिलता है कि यूजीसी विनियम, 2010 को अपनाते हुए कार्यकारी परिषद ने 31 अगस्त, 2010 के ईसीआर संख्या 200 के तहत कुलपति को कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित विश्वविद्यालय में संकाय पदों के लिए शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों में आवश्यक बदलाव करने के लिए अधिकृत करने का संकल्प लिया था। इसलिए यह स्पष्ट है कि विश्वविद्यालय ने

अनुवादित

विज्ञापन के अनुसरण में आवेदन पत्र प्राप्त करने की अंतिम तिथि से पहले ही शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों में बदलाव करने का निर्णय लिया था। विश्वविद्यालय द्वारा यह निर्णय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम, 2010 के कारण लिया गया था।

24. ईसीआर संख्या 200, दिनांक 31 अगस्त, 2010, जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न, नीचे दिया गया है: -

"31 अगस्त, 2010 के ईसीआर नंबर 200 की प्रति

आइटम 17 पर विचार किया गया।

(ख) विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य शैक्षिक स्टाफ की नियुक्ति के लिए न्यूनतम अर्हताओं पर यूजीसी विनियमों को अपनाने और उच्चतर शिक्षा में मानकों के अनुरक्षण के उपाय, 2010 के लिए कुलपति के आदेश।

कार्यकारी परिषद को सूचित किया गया कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य शैक्षिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम अर्हताओं और उच्चतर शिक्षा में मानकों के अनुरक्षण के उपायों के संबंध में यूजीसी विनियम, 2010 प्रख्यापित किया है जो 30 जून, 2010 से लागू हो गया है। इन विनियमों को सभी संस्थानों के निदेशकों, संकायों के डीन और विश्वविद्यालय के अन्य वरिष्ठ अधिकारियों की बैठक में उनके विभिन्न प्रावधानों पर चर्चा के लिए रखा गया था। इस मामले पर विस्तार से विचार-विमर्श किया गया और यह पाया गया कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विनियमों में अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान है कि कृषि और पशु चिकित्सा विज्ञान संकायों में शिक्षकों के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के मानदण्ड/विनियम; चिकित्सा, दंत चिकित्सा, नर्सिंग और आयुष संकाय के लिए, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के मानदंड / लागू होगा। इससे पहले एमसीआई के मानदंडों में चिकित्सा संकाय के लिए, दंत चिकित्सा के लिए डीसीआई के मानदंड और कृषि और आयुर्वेद के लिए भर्ती के मामले में यूजीसी के मानदंड लागू थे।

तदनुसार, निदेशक, आयुर्विज्ञान विज्ञान संस्थान ने भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद को यह स्पष्ट करने के लिए पत्र लिखा है कि क्या चिकित्सा में शिक्षकों की भर्ती और पदोन्नति में एमसीआई के मानदंड या स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के कोई अन्य मानदंड लागू होंगे। भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद ने सूचित किया है कि चिकित्सा संकाय की भर्ती के लिए भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद के मानदंड लागू होंगे क्योंकि भारतीय चिकित्सा परिषद विभिन्न मेडिकल कॉलेजों में चिकित्सा में विभिन्न विषयों की मान्यता प्रदान करती है। कार्यकारी परिषद को यह भी अवगत कराया गया कि विनियम, 2010 में सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के लिए नेट से छूट केवल उन्हीं लोगों को दी गई है जिन्होंने पीएचडी डिग्री प्रदान करने के लिए यूजीसी विनियम 2009 के अनुसार पीएचडी की है।

कार्यकारी परिषद को यह भी सूचित किया गया कि यूजीसी विनियम, 2009 के प्रभावी होने से पहले ही पीएचडी की डिग्री प्राप्त कर चुके उम्मीदवारों से इस खंड के खिलाफ कई अभ्यावेदन प्राप्त हुए हैं और वे नेट से छूट देने का भी अनुरोध कर रहे हैं। कुलपति ने इस संबंध में यूजीसी और एमएचआरडी को पत्र लिखकर

अनुवादित

उनके मामलों पर विचार करने का अनुरोध किया है।

यह भी सूचित किया गया कि चूंकि ये विनियम अनिवार्य हैं, इसलिए विश्वविद्यालय ने इन्हें कार्यान्वयन के लिए अपनाया है। इसे ध्यान में रखते हुए और प्रवेशों में अन्य पिछड़ा वर्ग आरक्षण के कार्यान्वयन पर छात्र संख्या में वृद्धि के कारण बढ़े हुए शिक्षण भार को उठाने के लिए शिक्षकों की उपलब्धता की तत्काल आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, अनुवर्ती कार्रवाई के रूप में, पूर्व में विज्ञापित किए गए पदों को नए यूजीसी विनियमों के प्रावधानों के अनुसार पुन: विज्ञापित किया गया है।

(ख) वर्ष 2010 में पूर्व के विज्ञापनों के लिए शुद्धिपत्र जारी करके अद्यतन आवेदन प्रस्तुत करने की अंतिम तिथि 21-09-2010 निर्धारित की गई थी। कुछ सदस्यों ने यूजीसी विनियमों में कुछ विसंगतियों का उल्लेख किया जैसे कि सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के लिए नेट क्लॉज से छूट और यह भी कि प्रबंधन में सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के लिए नेट की आवश्यकता नहीं है जबकि यह प्रबंधन विषयों में यूजीसी द्वारा आयोजित किया जाता है, आदि।

संकल्प लिया गया कि विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता पर यूजीसी विनियमों को अपनाने और उच्च शिक्षा में मानकों के रखरखाव के उपाय, 2010 और इस संबंध में की गई अनुवर्ती कार्रवाई के लिए कुलपति के आदेशों को मंजूरी दी जाए। यह भी संकल्प लिया गया है कि इन विनियमों में यथा अपेक्षित अनुवर्ती कार्रवाई भी शुरू की जाए।

यह भी संकल्प लिया गया है कि यूजीसी/एमएचआरडी को प्रबंधन में सहायक प्रोफेसर के लिए योग्यता में विसंगतियों के बारे में सूचित किया जा सकता है, जहां नेट को आवश्यक योग्यता के रूप में निर्धारित नहीं किया गया है, इस तथ्य के बावजूद कि नेट प्रबंधन में आयोजित किया जाता है।

और यह भी संकल्प लिया गया है कि कुलपति को नए यूजीसी विनियम, 2010 के प्रावधानों के आलोक में कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित विश्वविद्यालय में संकाय पद के लिए शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए अधिकृत किया जाए। (जोर दिया गया)

25. दिनांक 31 अगस्त, 2010 की ईसीआर संख्या 200 को आगे बढ़ाते हुए कार्यकारी परिषद ने दिनांक 2 नवम्बर, 2010 के ईसीआर सं. 208 के तहत निम्नानुसार संकल्प लिया:- "ईसीआर सं. 208 दिनांक 2 नवम्बर, 2010 की प्रति।

<u>आइटम-2</u>

31 अगस्त, 2010 को आयोजित कार्यकारी परिषद की बैठक के निर्णयों पर की गई कार्रवाई पर विचार किया।

31 अगस्त, 2010 को आयोजित कार्यकारी परिषद की बैठक के निर्णयों पर की गई कार्रवाई रिपोर्ट पर विचार करते हुए, कार्यकारी परिषद ने नोट किया कि विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता ओं पर यूजीसी विनियमों को अपनाने और उच्च शिक्षा में मानकों के रखरखाव के उपायों के लिए कुलपति के ईसीआर संख्या 200 आदेशों के तहत, वर्ष 2010 और इस संबंध में की गई अनुवर्ती कार्रवाई अनुमोदित की गई थी और कुलपति को नए

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम, 2010 के उपबंधों के आलोक में कार्यकारी परिषद द्वारा यथा अनुमोदित विश्वविद्यालय में संकाय पदों के लिए लघु-सूचीकरण दिशा-निर्देशों में अपेक्षित परिवर्तन करने के लिए प्राधिकृत किया गया था। कुलपति ने यूजीसी विनियमों 2010 के तहत निर्धारित संशोधित योग्यताओं और अन्य पात्रता शर्तों के अनुसार विश्वविद्यालय में शिक्षण पदों के लिए साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले आवेदकों को शॉर्ट-लिस्ट करने के लिए मौजूदा दिशानिर्देशों की समीक्षा करने के लिए रेक्टर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया, जिसमें निदेशक, कृषि विज्ञान संस्थान, डीन, कला, प्रबंधन अध्ययन और विज्ञान संकाय के सदस्य होंगे।

कार्यकारी परिषद ने यह भी नोट किया कि समिति ने विश्वविद्यालय में शिक्षण पदों के लिए आवेदनों को सूचीबद्ध करने के लिए मौजूदा दिशानिर्देशों की समीक्षा करते समय यूजीसी विनियम, 2010 में निर्धारित प्रावधानों पर विचार किया, विशेष रूप से यूजीसी विनियम, 2010 में श्रेणी-III 'अनुसंधान और अकादमिक योगदान' के तहत निर्धारित एपीआई के अनुसार स्कोर प्रदान करने और 2010 के सिविल विविध रिट याचिका संख्या 27647 में माननीय उच्च न्यायालय की टिप्पणी पर भी विचार किया और फिर सिफारिश की। विश्वविद्यालय में शिक्षण पदों के लिए साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले आवेदकों की शॉर्ट-लिस्टिंग के लिए संशोधित दिशानिर्देश।

कार्यकारी परिषद ने संशोधित दिशानिर्देशों का अध्ययन किया और पाया कि चीजों को बहुत ही ठोस तरीके से कवर किया गया है। कुलपति ने सदस्यों को सूचित किया कि यूजीसी विनियम-2010 में कला, मानविकी, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कानून, वाणिज्य और अन्य विषयों में सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के लिए नेट एक आवश्यक आवश्यकता है और नेट की आवश्यकता से छूट केवल उन लोगों को दी जाएगी जिन्होंने पीएचडी डिग्री प्रदान करने के लिए यूजीसी विनियम 2009 के प्रावधानों के अनुसार पीएचडी की है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने जुलाई, 2009 में पीएचडी डिग्री प्रदान करने के लिए उपर्युक्त विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम, 2009 प्रख्यापित किया। तदुपरांत, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने दिनांक 28 अगस्त, 2009 के अपने पत्र एफ सं 1-1/2002 (पीएस) पं फाइल-III द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह सूचित किया कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विभिन्न संस्थाओं के उन अभ्यथयों की पहचान करने की प्रक्रिया में है जिन्हें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम 2009 के उपबंधों के अनुपालन में पीएचडी की डिग्री प्रदान की गई है ताकि उन्हें सहायक प्रोफेसर की भर्ती के लिए नेट की पात्रता आवश्यकता से छूट दी जा सके। इसमें कुछ समय लग सकता है, इसलिए जनहित और छात्रों के हित को ध्यान में रखते हुए आयोग ने तदर्थ उपाय के रूप में यह निर्णय संबंधित विश्वविद्यालयों/संस्थानों पर छोड़ने का निर्णय लिया है कि क्या विभिन्न उम्मीदवारों को प्रदान की गई पीएचडी डिग्री यूजीसी विनियम 2009 के प्रावधान के अनुपालन में है ताकि उन्हें नेट की आवश्यकता से छूट दी जा सके। इस बीच, इस मुद्दे पर यूजीसी और विश्वविद्यालय के बीच कई पत्रों का आदान-प्रदान हुआ।

अब यह पता चला है कि यूजीसी ने 10 मानदंडों की पहचान की है और जो पीएचडी डिग्री में प्रवेश में इन 10 मानदंडों में से 6 को पूरा करते हैं,

अनुवादित

उनकी डिग्री को पीएचडी डिग्री प्रदान करने के लिए यूजीसी विनियम 2009 के अनुरूप माना जाएगा, और इसलिए उन्हें नेट की आवश्यकता से छूट दी जाएगी। तथापि, इस संबंध में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अभी तक औपचारिक सूचना प्राप्त नहीं हुई है। विस्तृत विचार-विमर्श के बाद कार्यकारी परिषद ने निम्नानुसार संकल्प लिया:

यह संकल्प लिया गया कि यूजीसी विनियम, 2010 के तहत निर्धारित संशोधित योग्यता ओं और अन्य पात्रता शर्तों के अनुसार विश्वविद्यालय में शिक्षण पदों के लिए साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले आवेदकों के लिए संशोधित दिशानिर्देशों को अनुमोदित किया जाए।

यह भी संकल्प लिया गया कि असिस्टेंट प्रोफेसर की नियुक्ति में नेट से छूट यूजीसी के समय-समय पर प्राप्त दिशा-निर्देशों और निर्देशों के अनुसार दी जाए।

31 अगस्त, 2010 को आयोजित कार्यकारी परिषद की बैठक के निर्णयों पर की गई कार्रवाई को मंजूरी दी जाएगी। (जोर दिया गया)

26. कार्यकारी परिषद के उपर्युक्त संकल्प के अनुसरण में, विश्वविद्यालय में शिक्षण पदों के लिए साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले आवेदकों को शॉर्ट-लिस्टिंग के लिए दिशानिर्देश प्रभावी हो गए।

27. चूंकि शॉर्ट-लिस्टिंग अभ्यास केवल आवेदन प्राप्त होने के बाद आयोजित किया जाना है, इसलिए प्राप्त आवेदनों की संख्या को ध्यान में रखते हुए आवेदन पत्र प्राप्त करने की अंतिम तिथि के बाद शॉर्ट-लिस्टिंग मानदंड तय किए जा सकते हैं। यह स्थिति मध्य प्रदेश लोक सेवा आयोग बनाम नवनीत कुमार पोतदार के मामले (सुप्रा) और बी. रामकिचेन @ बालागांधी बनाम भारत संघ और अन्य मामले (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से स्पष्ट है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि जहां चयन केवल साक्षात्कार के आधार पर किया जाना है, आयोग या चयन बोर्ड साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले उम्मीदवारों की संख्या तय करने के लिए कोई भी तर्कसंगत प्रक्रिया अपना सकता है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विशेष रूप से यह माना गया है कि भले ही पद के लिए आवेदन आमंत्रित करने वाले विज्ञापन में शॉर्ट-लिस्टिंग का कोई नियम नहीं है और न ही इसका कोई उल्लेख है, चयन निकाय एक शॉर्ट-लिस्टिंग प्रक्रिया का सहारा ले सकता है यदि बड़ी संख्या में योग्य उम्मीदवार हैं जो आवेदन करते हैं और प्राधिकरण के लिए उन सभी का साक्षात्कार करना संभव नहीं है।

28. इस मामले में हम पाते हैं कि समाजशास्त्र के लिए सहायक प्रोफेसर के एक पद के खिलाफ लगभग 200 विषम आवेदक थे। शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों के अनुसार, एक पद के मुकाबले 10 उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाया जाना था। चूंकि 3 उम्मीदवारों ने अपनाए गए शॉर्ट-लिस्टिंग मानदंडों के आधार पर समान अंक प्राप्त किए थे, इसलिए 12 उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए विश्वविद्यालय द्वारा शॉर्टलिस्ट किया गया था। विशेष रूप से, रिट याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) शॉर्टलिस्ट किए गए 12 उम्मीदवारों में से एक नहीं थे।

29. डॉ. आलोक कुमार द्वारा दायर रिट याचिका में, इस बात का कोई विशिष्ट उल्लेख नहीं है कि यदि संशोधित दिशानिर्देश जारी करने से पहले पहले लागू किए गए दिशानिर्देश लागू किए गए थे, तो वह साक्षात्कार के लिए

अनुवादित

चुने गए शीर्ष 10 उम्मीदवारों में से एक होते। रिट याचिका में कोई संदेह नहीं है कि संशोधित दिशानिर्देशों को शॉर्ट-लिस्टिंग के लिए लागू नहीं किया जाना चाहिए था, लेकिन ऐसा कोई बयान नहीं है कि पुराने दिशानिर्देशों के तहत उन्होंने अन्य 10 शॉर्ट-लिस्ट किए गए उम्मीदवारों की तुलना में अधिक अंक प्राप्त किए होंगे। इसके अलावा, दिलचस्प बात यह है कि एकल न्यायाधीश ने रिट याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) की पहली प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है, जिसमें शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों को लागू करके विश्वविद्यालय द्वारा की गई शॉर्ट-लिस्टिंग को चुनौती दी गई थी। एक बार यही स्थिति होने के बाद, रिट याचिकाकर्ता (डॉ. आलोक कुमार) की जांच की गई थी, वह किसी भी राहत के हकदार नहीं थे जैसा कि उन्हें दिया गया था।

30. एकल न्यायाधीश के अनुसार, विज्ञापन के सामान्य निर्देश संख्या 2 ने यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट कर दिया कि उम्मीदवारों की पात्रता और शॉर्ट-लिस्टिंग मानदंडों की संतुष्टि को आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि के रूप में माना जाएगा, जिसका मतलब होगा कि एकल न्यायाधीश के अनुसार, किसी भी उम्मीदवार को शॉर्ट-लिस्टिंग के उद्देश्य से विचार की जाने वाली किसी भी पात्रता को प्राप्त करने की अनुमति नहीं दी गई थी, यदि यह कट-ऑफ तिथि यानी 21.09.2010 के बाद प्राप्त किया गया था। उपर्युक्त खंड की व्याख्या ऊपर उल्लिखित सीमा तक किसी भी दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है। लेकिन, उपरोक्त के रूप में निष्कर्ष निकालने के बाद, एकल न्यायाधीश ने कहा:

"इसके परिणामस्वरूप, विश्वविद्यालय आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि के बाद शॉर्ट-लिस्टिंग के प्रयोजनों के लिए कोई और शर्त निर्धारित नहीं कर सकता है। विश्वविद्यालय को ऐसा करने की अनुमति देना, उसे विज्ञापन में निर्धारित अपनी शर्तों का उल्लंघन करने की अनुमति देना होगा। हमारे विचार में, साक्षात्कार के लिए आवेदकों की शॉर्ट-लिस्टिंग से संबंधित विज्ञापन के अन्य भाग के साथ पढ़े जाने पर उपरोक्त उद्धृत भाग सामान्य निर्देश संख्या 2 की सही व्याख्या नहीं करता है। हमारे अनुसार कि एक उम्मीदवार की पात्रता और किसी अन्य शॉर्ट-लिस्टिंग मानदंड की संतुष्टि को आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि के रूप में माना जाएगा, इसका मतलब होगा:

(ए) कि आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि के संदर्भ में उम्मीदवार की पात्रता पर विचार किया जाना है, अर्थात आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि के बाद प्राप्त किसी भी पात्रता योग्यता को ध्यान में नहीं रखा जाएगा; और

(ख) कि क्या किसी उम्मीदवार ने शॉर्ट-लिस्टिंग मानदंडों को पूरा किया था, यह आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि को उसके क्रेडेंशियल्स (यानी योग्यता, आदि) के आधार पर निर्धारित किया जाएगा। इसका तात्पर्य यह है कि यदि किसी उम्मीदवार के क्रेडेंशियल्स को यह निर्धारित करने के लिए महत्व दिया जाना है कि क्या उसने शॉर्टलिस्टिंग मानदंडों को पूरा किया है, तो ऐसे क्रेडेंशियल्स को कोई महत्व नहीं दिया जाएगा जो आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि पर उसके पास नहीं थे। इस प्रकार यह आवेदन प्राप्त करने के लिए

अनुवादित

निर्धारित अंतिम तिथि के बाद प्राप्त किसी भी योग्यता, आदि पर विचार करने से बाहर होगा।

31. साक्षात्कार के लिए उम्मीदवारों को शॉर्ट-लिस्ट करने के दिशानिर्देशों को संशोधित करके, हमारे विचार में, विश्वविद्यालय ने दो कारणों से चयन प्रक्रिया शुरू होने के बाद खेल के नियमों को बीच में नहीं बदला था: -

(क) खेल के नियमों को बीच में बदलने पर रोक लगाने वाला सामान्य सिद्धांत तब लागू नहीं होगा जब परिवर्तन चयन प्रक्रिया के संबंध में हो न कि योग्यता या पात्रता के संबंध में (12 दिसंबर, 2022 के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैरा 32 के अनुसार, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम करुणेश कुमार और अन्य)। (सुप्रा); और

(ख) आवेदकों की संख्या के आधार पर शॉर्ट-लिस्टिंग मानदंड ोंं को कठोर बनाया जा सकता है ताकि चयन निकाय के लिए शॉर्ट-लिस्ट किए गए उम्मीदवारों (मध्य प्रदेश लोक सेवा आयोग बनाम नवनीत कुमार पोतदार और अन्य (सुप्रा) और बी रामकिचेनिन @ बालागांधी बनाम भारत संघ और अन्य (सुप्रा) के अनुसार प्रभावी ढंग से साक्षात्कार करना सुविधाजनक हो सके।

.

32. उपर्युक्त के अलावा, कार्यकारी परिषद द्वारा दिनांक 31-08-2010 को लिए गए निर्णय के अनुसरण में शॉर्ट-लिस्टिंग दिशा-निर्देशों को संशोधित किया गया था ताकि इसे यूजीसी विनियम, 2010, जो 30-06-2010 से लागू हुआ था, के अनुरूप बनाया जा सके। शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों को संशोधित करने का निर्णय आवेदन प्राप्त करने के लिए निर्धारित अंतिम तिथि से पहले लिया गया था।

इस प्रकार, उपरोक्त सभी कारणों से, हमारे विचार में, एकल न्यायाधीश ने डॉ आलोक कुमार की रिट याचिका को अनुमति देने में गलती की। इससे भी अधिक, जब एकल न्यायाधीश ने उक्त याचिकाकर्ता की पहली प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया। नतीजतन, अपील संख्या 17 वर्ष 2023 और 18 वर्ष 2023 अनुमति के हकदार हैं और इसके द्वारा अनुमति दी जाती है। रिट याचिका संख्या 4963 वर्ष 2011 में पारित एकल न्यायाधीश के दिनांक 02.09.2022 के निर्णय और आदेश को निरस्त किया जाता है और रिट संख्या 4963 वर्ष 2011 को खारिज किया जाता है।

33. जैसा कि हमने उपरोक्त दो अपीलों को स्वीकार कर लिया है और डॉ. आलोक कुमार द्वारा दायर रिट ए संख्या 4963 वर्ष 2011 को खारिज कर दिया है, डॉ रश्मि रंजन द्वारा दायर विशेष अपील संख्या 19 वर्ष 2023 को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है और डॉ रश्मि रंजन द्वारा दायर रिट ए नंबर 45120 वर्ष 2013 को विश्वविद्यालय को उम्मीदवारों को दिए गए साक्षात्कार के अंकों के आधार पर चयन /नियुक्ति प्रक्रिया को पूरा करने की स्वतंत्रता देकर निपटाया जाता है। जिन्हें संशोधित शॉर्ट-लिस्टिंग दिशानिर्देशों के आधार पर साक्षात्कार के लिए शॉर्टलिस्ट किया गया था। लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 2 ILRA 1044

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 31.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे मुनीर

विशेष अपील दोष क्रमांक 381 / 2022

सुरेंद्र यादव

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री विवेक सरन

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री प्रतीक सिन्हा, राज्य विधि अधिकारी

ए. सेवा कानून - निलंबन - भौतिक तथ्य को छुपाना - उत्तर प्रदेश सरकारी विभाग चालक सेवा नियमावली, 1993 - नियम 17(1) - एक बार जब किसी कर्मचारी को वर्तमान वाद की तरह नियमित और स्थायी आधार पर सरकारी सेवा में नियुक्त किया जाता है, इसमें सम्मिलित होने के तथ्य को छिपाने का आरोप लगाया जाता है तो अवतार सिंह के मामले में एक आपराधिक मामले का पक्ष नहीं लिया गया है, जिसे उचित स्पष्टीकरण मांगे जाने या कारण बताओ दिए जाने पर सेवाओं को समाप्त करने के साथ संक्षेप में निस्तारित किया जाए। सरकारी सेवकों के वाद में, जो नियमित रूप से नियुक्त होते हैं, अवतार सिंह मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समर्थित कार्रवाई का तरीका दमन के आरोप और संबंधित कर्मचारी की अपराध में संलिप्तता का पता लगाने के लिए उचित जांच के साथ अनुशासनात्मक कार्यवाही करना है। (पैरा 15)

इस वाद में, ऐसा कुछ भी प्रस्तुत या प्रदर्शित नहीं किया गया है कि रिट याचिकाकर्ता एक अस्थायी कर्मचारी या परिवीक्षाधीन था। यदि होता तो उसे आसानी से सेवा से मुक्त किया जा सकता था। पत्रावली से प्रतीत होता है कि प्रतिवादियों ने रिट याचिकाकर्ता को पक्का कर्मचारी मानकर उसके खिलाफ कार्रवाई की है। अन्यथा भी, जब आक्षेपित आदेश पारित हुआ, तब तक रिट याचिकाकर्ता लगभग चार वर्षों की अवधि के लिए सेवा में था। इन परिस्थितियों में, प्रतिवादियों के लिए अनिवार्य कदम रिट याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करना होगा। उन्हें कारण बताओ नोटिस जारी कर 15 दिन में उत्तर प्रस्तुत करने का निर्देश देकर निलंबित नहीं किया जा सकता था। रिट याचिकाकर्ता को दिनांक 27.02.2004 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिस पर रिट याचिकाकर्ता ने 15.04.20024 को जवाब प्रस्तुत किया, लेकिन आपेक्षित आदेश 21.07.2006 को पारित किया गया। इस लंबी अवधि के दौरान, नियमित विभागीय कार्यवाही आसानी से आयोजित की जा सकती थी, जहां हर तथ्य का बारीकी से पता लगाया जा सकता था। (पैरा 16)

बी. इससे पहले कि किसी व्यक्ति को सप्रेसियो वेरी या सजेस्टियो मिथ्या का दोषी ठहराया जाए, तथ्य का ज्ञान उसके लिए जिम्मेदार होना चाहिए। अवतार सिंह मामले में निर्णय एक आपराधिक मामले में सम्मिलित होने के तथ्य को दबाने के आधार पर शक्तियों के प्रयोग की जांच को भी प्रासंगिक बनाता है, कि क्या कर्मचारी को उसकी संलिप्तता के बारे में तथ्य की जानकारी थी। (पैरा 15,16)

यह आग्रह किया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने अवतार सिंह के मामले (इन्फ्रा) में निर्धारित मापदंडों की अनदेखी की है और केवल इस आधार पर रिट याचिकाकर्ता की सेवाओं की

समाप्ति को बरकरार रखा है कि उसके विरुद्ध आपराधिक मुकदमा लंबित था, जो उसने सत्यापन के समय खुलासा नहीं किया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि रिट याचिकाकर्ता को सत्यापन फॉर्म भरते समय एफआईआर के बारे में जानकारी नहीं थी। इसलिए, खुलासा न करना छिपाना नहीं माना जाएगा। याचिकाकर्ता 8वीं कक्षा तक बहुत कम पढ़ा-लिखा है और उसे मामले से संबंधित सत्यापन फॉर्म में गैर-प्रकटीकरण के महत्व या परिणामों के बारे में शायद ही पता था और एक बार रिट याचिकाकर्ता को दोषमुक्त कर दिया गया, तो उसके विरुद्ध आरोप समाप्त कर दिए गए। (पैरा 10)

सी. किसी दिए गए वाद में केवल सामग्री/झूठी जानकारी को दबाने का मतलब यह नहीं है कि नियोक्ता मनमाने ढंग से कर्मचारी को सेवा से बर्खास्त/समाप्त कर सकता है। इस तथ्य की परवाह किए बिना कि दोषसिद्धि हुई है या दोषमुक्ति दर्ज की गई है, केवल सामग्री/झूठी जानकारी को दबाने मात्र से, कर्मचारी/भर्ती को केवल कलम के एक झटके से सेवा से बर्खास्त/समाप्त नहीं किया जा सकता है। साथ ही, किसी आपराधिक मामले में शामिल सामग्री/झूठी जानकारी को दबाने का प्रभाव, यदि कोई हो, नियोक्ता पर छोड़ दिया गया है कि वह पूर्ववृत्त के संबंध में उपलब्ध सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करे और वस्तुनिष्ठ मानदंड और प्रासंगिक कर्मचारी की सेवा में निरंतरता/उपयुक्तता के संबंध में उचित निर्णय लेते समय सेवा नियमों को ध्यान में रखें। (पैरा 17)

डी. कुछ वस्तुनिष्ठ तथ्यों से सूत्र निष्कर्ष उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण नहीं होना चाहिए। अन्यथा, प्रतिवादियों की कार्रवाई मनमानी होगी। आक्षेपित आदेशों का अवलोकन, जो कि उत्पाद शुल्क आयुक्त और राज्य सरकार दोनों द्वारा पारित किए गए हैं, उन विभिन्न कारकों पर ज़रा भी विचार नहीं करते हैं जिन्हें किसी कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने का निर्णय लेने से पहले एक आपराधिक मामले में उसकी संलिप्तता के तथ्य को छिपाना को ध्यान में रखा जाना चाहिए। दोनों आदेश यांत्रिक दृष्टिकोण और फॉर्मूला निर्णय को धोखा देते हैं कि अपराध आईपीसी की धारा 308 के तहत आरोप से जुड़ा हुआ है, जिसे रिट याचिकाकर्ता द्वारा सत्यापन की तारीख पर पंजीकृत किया गया था, लेकिन खुलासा नहीं किया गया, अनिवार्य रूप से रिट याचिकाकर्ता की सेवाएँ समाप्ति का कारण बनना चाहिए। इस तथ्य को छोड़कर यह पूरी तरह से त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण है कि इस मामले में नियमित विभागीय जांच होनी चाहिए थी। (पैरा 18,19)

विशेष अपील स्वीकार की गयी। (ई 4)

विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को निरस्त किया जाता है। रिट याचिका स्वीकार की जाती है। आबकारी आयुक्त, उ.प्र., इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 21 जुलाई 2006 और प्रमुख सचिव, उ.प्र. सरकार, आबकारी विभाग, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 10 मार्च, 2008 को अपास्त किया जाता है।

<u>विधिव्यवस्था अनुसरित :</u>

1. अवतार सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2016) 8 एससीसी 471 (पैरा 9)
2. भारत संघ और अन्य बनाम मेथु मेडा, (2022) 1 एससीसी 1 (पैरा 9)

अनुवादित

3. पवन कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 532 (पैरा 17)

वर्तमान विशेष अपील माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 13.07.2022 के विरुद्ध योजित है।

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

&

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

आदेश

1 यह एक रिट याचिकाकर्ता की अपील है, जो विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित एक' निर्णय और आदेश से उत्पन्न होती है, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा की गई रिट-ए संख्या 40480/2008 को खारिज कर दिया गया था, जिसमें 21 जुलाई, 2006 के आदेश पर सवाल उठाया गया था, जिसमें उसकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था, साथ ही राज्य सरकार द्वारा पारित 10 मार्च, 2008 के आदेश को भी रिट याचिकाकर्ता की विभागीय अपील को खारिज कर दिया गया था।

2. वर्तमान अपील को जन्म देने वाले तथ्य ये हैं:

रिट याचिकाकर्ता को आबकारी आयुक्त, उत्तर प्रदेश द्वारा 5 मई, 2003 के आदेश द्वारा एक मूल और रिक्त पद के खिलाफ एक ड्राइवर के रूप में नियुक्त किया गया था। रिट याचिकाकर्ता का चयन उत्तर प्रदेश सरकार विभाग चालक सेवा नियम, 1993 के नियम 17 (1) के अनुसार विधिवत गठित चयन समिति द्वारा किया गया था। उनका नाम नियुक्ति पत्र में रखा गया था, जिसमें ओबीसी श्रेणियों में नियुक्तियों की सूची के क्रम संख्या 5 पर सभी नियुक्तियों के नाम थे। नियुक्ति के समय, रिट याचिकाकर्ता को उससे संबंधित सभी आवश्यक विवरणों के साथ एक सत्यापन फॉर्म भरना आवश्यक था। रिट याचिकाकर्ता ने सभी आवश्यक जानकारी का खुलासा करते हुए विधिवत फॉर्म भरा। उपरोक्त प्रपत्र 12 मई, 2003 को भरा गया था। उपरोक्त औपचारिकता समाप्त होने के बाद, रिट याचिकाकर्ता को 17 मई, 2003 को आबकारी विभाग में एक ड्राइवर के रूप में शामिल होने की अनुमति दी गई थी और तब से वह नियमित रूप से अपने कर्तव्यों का पालन कर रहा है, जैसा कि वह अपने वरिष्ठों की संतुष्टि के लिए कहता है।

3. रिट याचिकाकर्ता को शुरू में जिला मथुरा में गोवर्धन चेक पोस्ट पर तैनात किया गया था और उसके बाद 30 मई, 2005 के आदेश के तहत जिला महाराजगंज में स्थानांतरित कर दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि 27 फरवरी, 2004 को, रिट याचिकाकर्ता को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसमें कहा गया था कि उसने अपने खिलाफ किसी भी आपराधिक मामले के संबित न होने के संबंध में गलत घोषणा की थी, क्योंकि एसएसपी, गोरखपुर की एक रिपोर्ट के अनुसार,' धारा 323, 504 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 302/2002, उसके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 308, 506, थाना शाहजनवा, जिला गोरखपुर लंबित है। रिट याचिकाकर्ता का कहना है कि उसने 15 अप्रैल 2015 को कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत किया जिसमें यह रुख अपनाया गया कि उसने 2002 के अपराध संख्या 302 के लंबित रहने के संबंध में कोई जानकारी नहीं छिपाई थी।

अनुवादित

4. यह रिट याचिकाकर्ता का मामला है कि कि उपरोक्त अपराध कृषि भूमि से संबंधित सह-बटाईदारों के बीच परिवार में विवाद के कारण दर्ज किया गया था। जब उन्होंने अपना सत्यापन फॉर्म भरा तो उन्हें अपराध के लंबित होने के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, यह कहते हुए कि उनके खिलाफ कोई मामला नहीं है। जवाब में उनका बचाव भी था कि पारिवारिक

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

विवाद के कारण अपराध में उनका नाम बिना किसी आधार के लिया गया था। याचिका में रिट याचिकाकर्ता द्वारा इस तथ्य का भी उल्लेख किया गया है कि उसके खिलाफ मामला पुलिस महानिदेशक, यूपी, लखनऊ के कार्यालय में तैनात एक कांस्टेबल ड्राइवर, रवींद्र नाथ यादव के कहने पर दर्ज किया गया था, जिसने रिट याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ झूठा मामला दर्ज कराने के लिए अपने पद का दुरुपयोग किया था। रिट याचिका में यह भी दलील दी गई है कि रिट याचिकाकर्ता के परिवार ने पहले ही रवींद्र नाथ यादव के खिलाफ अपराध संख्या 302-ए/2002 के तहत धारा 323, 308, 504, 506, 325 भा.दं.सं., पुलिस स्टेशन शाहजनवा, जिला गोरखपुर के तहत प्राथमिकी दर्ज की है। सत्र परीक्षण संख्या 116/2004, राज्य बनाम विराई और अन्य में परीक्षण के बाद रिट याचिकाकर्ता को अपर सत्र न्यायाधीश ने 14 अगस्त, 2006 के निर्णय और आदेश के माध्यम से बरी कर दिया है। उस निर्णय के आने से पहले ही, आबकारी आयुक्त ने रिट याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण को देखते हुए, मनमाने और यांत्रिक तरीके से उसके जवाब को खारिज कर दिया और 21 जुलाई, 2006 के आदेश के तहत रिट याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त कर दिया।

5. रिट याचिकाकर्ता का मामला यह है कि 21 जुलाई, 2006 का आदेश सुनवाई के पर्याप्त अवसर के बिना पारित किया गया था और उस आदेश से पहले, न तो अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी, न ही आरोप पत्र जारी की गई थी और न ही विभागीय जांच की गई थी। रिट याचिकाकर्ता ने 18 अगस्त, 2006 को आयुक्त, आबकारी विभाग, इलाहाबाद को एक अभ्यावेदन दिया जिसमें कहा गया कि उसे कभी भी किसी भी मामले में दोषी नहीं ठहराया गया है और जहां तक अपराध संख्या 302/2002, धारा 323, 504, 308, 506 भा.दं.सं. के तहत है, यह उसकी पीठ के के पीछे दर्ज किया गया था, जिसके बारे में उसे तब तक कोई जानकारी नहीं थी जब तक कि उसने अपना सत्यापन फॉर्म नहीं भरा था। 19 अगस्त, 2006 को, अतिरिक्त आयुक्त, आबकारी विभाग, महाराजगंज ने आयुक्त, आबकारी विभाग, इलाहाबाद को रिट याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर एक समर्थन किया, जिसमें आयुक्त से रिट याचिकाकर्ता के माम मामले में सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का अनुरोध किया गया।

6. रिट याचिकाकर्ता ने अपनी ओर से 21 जुलाई 2006 को अपनी सेवाओं को समाप्त करने के आदेश के खिलाफ प्रधान सचिव, आबकारी विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को एक विभागीय अपील दी। राज्य सरकार की ओर से

अनुवादित

कार्य करने वाली प्रधान सचिव ने 10 मार्च, 2008 की रिट याचिका में आक्षेपित अन्य आदेश द्वारा रिट याचिकाकर्ता की अपील को खारिज कर दिया और 21 जुलाई, 2006 की उसकी सेवाओं को समाप्त करने के आदेश कि पुष्टि की ।

7. यह इन परिस्थितियों में था कि रिट याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका शुरू की, जो हलफनामों के आदान प्रदान के बाद विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष आई। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा रिट याचिका को खारिज कर दिया है, जिससे रिट याचिकाकर्ता ने न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII नियम 5 के तहत वर्तमान अपील को प्राथमिकता दी है।

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

8. श्री विवेक सरन, रिट याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और श्री प्रतीक सिन्हा, प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित राज्य विधि अधिकारी को सुना।

9. विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि विद्वान न्यायाधीश ने इस तथ्य को ध्यान में रखा है कि रिट याचिकाकर्ता ने अपनी नियुक्ति के समय, भौतिक जानकारी को दबा दिया था कि वह धारा 323, 504, 308, 506 भा.दं.सं. के तहत एक आपराधिक मामले में मुकदमे का सामना कर रहा था। विद्वान न्यायाधीश ने प्रतिवादियों के साथ यह निष्कर्ष निकालने में सहमति व्यक्त की कि बरी करने का निर्णय, जो रिट याचिकाकर्ता के मामले में पारित किया गया था, एक समझौते पर स्थापित किया गया था, जहां अभियोजन पक्ष के गवाहों ने खुद का खंडन किया था। विद्वान न्यायाधीश ने अवतार सिंह बनाम भारत संघ और अन्य, (2016) 8 एससीसी 471 और भारत संघ और अन्य बनाम मेथु मेडा, (2022) 1 एससीसी 1 में निर्धारित कानून के मापदंडों को लागू किया है ताकि यह कहा जा सके कि रिट याचिकाकर्ता द्वारा भौतिक तथ्यों को दबाया गया था, और आगे, इस आधार पर रिट याचिकाकर्ता को कोई लाभ नहीं दिया जा सकता है कि उसे बरी कर दिया गया था, क्योंकि भा.दं.सं. की धारा 308 के तहत आरोप मामूली प्रकृति का नहीं था। यह भी माना गया कि बरी होना एक साफ बरी नहीं था।

10. इस न्यायालय के समक्ष, रिट याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक सरन ने आग्रह किया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने ने अवतार सिंह के मामले (उपरोक्त) में निर्धारित मापदंडो की अनदेखी की है ,जिसमें उन्होंने रिट याचिकाकर्ता की उपयुक्तता और उस पद के लिए उपयुक्तता का न्याय करने के उद्देश्य से उनके खिलाफ मामले के प्रभाव का आकलन नहीं किया है, जो कि वह एक ड्राइवर है। यह तर्क दिया जाता है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिकाकर्ता की सेवाओ को समाप्त करने के लिए केवल इस आधार पर कार्यवाही की है कि उसके खिलाफ एक आपराधिक मुकदमा लंबित था, जिसका उसने सत्यापन के समय खुलासा नहीं किया था। यह भी आग्रह किया जाता है कि रिट याचिकाकर्ता को सत्यापन फॉर्म भरने के समय प्राथमिकी के बारे में जानकारी नहीं थी। इसलिए, प्रकटीकरण न छिपाना नहीं होगा। याचिकाकर्ता 8 वीं कक्षा तक कम शिक्षित है और मामले से

अनुवादित

संबंधित सत्यापन फॉर्म में गैर-प्रकटीकरण के महत्व या परिणामों के बारे में शायद ही जानता था। विद्वान अधिवक्ता द्वारा अंत में यह प्रस्तुत किया गया है कि एक बार रिट याचिकाकर्ता को बरी कर दिए जाने के बाद, उसके खिलाफ आरोप मिटा दिए जाते हैं।

11. श्री प्रतीक सिन्हा, विद्वान राज्य विधि अधिकारी ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है और कहा है कि रिट याचिकाकर्ता एक जघन्य अपराध में शामिल था। जिस समय उसने अपना सत्यापन फॉर्म भरा था, उस समय इस तथ्य का खुलासा करना उसका कर्तव्य था। श्री सिन्हा के अनुसार, रिट याचिकाकर्ता का कदाचार इस तथ्य के गैर-प्रकटीकरण और दमन से उत्पन्न होता है जब उसने फॉर्म भरा था, इस तथ्य को देखते हुए कि वह एक जघन्य अपराध में शामिल था। यह भी तर्क दिया जाता है कि रिट याचिकाकर्ता की आपराधिक प्रवृत्तियों को समाप्त नहीं किया जा सकता है, क्योंकि विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय से पता चलता है कि बरी होना अभियोजन पक्ष के गवाहों के पक्षों के बीच हुए समझौते की पृष्ठभूमि में मुकरने का परिणाम था। इसलिए, दलील यह है कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां अवतार सिंह के मामले में कानून रिट याचिकाकर्ता के बचाव में आएगा।

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

12. प्रतिवादियों के समक्ष रिट याचिकाकर्ता के बचाव का जोर यह था कि जिस दिन उसने अपना सत्यापन फॉर्म भरा था, 12 मई, 2003 को, उसे नहीं पता था कि उसके खिलाफ 31 जुलाई, 2002 को प्राथमिकी दर्ज की गई थी। प्रतिवादियों ने रिट याचिकाकर्ता के इस रुख पर विश्वास नहीं किया है और जवाबी हलफनामे में वे कहते हैं कि यह संभव नहीं है कि 31 जुलाई, 2002 को रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज प्राथमिकी के बारे में उसे 12 मई, 2003 तक पता न चले। यह दोनों तरह से इस न्यायालय की राय में एक संभावना है।रिट याचिकाकर्ता ने लगातार यह रुख अपनाया है कि उसे अपराध में कभी गिरफ्तार नहीं किया गया था या जेल नहीं भेजा गया था। यदि उन्हें गिरफ्तार किया गया होता और जमानत पर रिहा कर दिया जाता , तो उन दस्तावेजों से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता कि उन्हें उस तारीख की जानकारी थी या नहीं, उन्होंने सत्यापन फॉर्म भरा, अर्थात् 12 मई, 2003। प्रतिवादियों को इस तथ्य का पता लगाना चाहिए था, क्योंकि रिट याचिकाकर्ता का रुख यह है कि उसे कभी गिरफ्तार नहीं किया गया था। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय के अवलोकन से इस मामले के बारे में एक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है। इसमें उल्लेख किया गया है। कि यह मामला मजिस्ट्रेट द्वारा मार्च, 2004 के महीने में में सत्र के लिए सौंपा गया था। तारीख का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है और र यह सामग्री भी नहीं है। इसका कारण यह है कि जब तक मामला सत्र के लिए प्रतिबद्ध था, तब तक रिट याचिकाकर्ता उपस्थित हो गया होगा और प्रतिबद्ध होने से पहले जमानत प्राप्त कर चुका होगा। वह दिन मार्च, 2004 का है। इसलिए, इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है कि 12 मई, 2003 को, जब रिट याचिकाकर्ता ने

अनुवादित

सत्यापन फॉर्म भरा, तो उसे अपराध के बारे में पूरी तरह से से पता नहीं था।

13. यह रिट याचिकाकर्ता का मामला है कि यह उसके परिवार के सदस्यों और सह-बटाईदारों के बीच जमीन पर प्राथमिकी में, इसमें कोई संदेह नहीं है, याचिकाकर्ता को कुडाल के साथ हमले की भूमिका के साथ नामित किया गया है। यह सच या असत्य हो सकता है। लेकिन, इस तथ्य को देखते हुए कि गवाह मुकर गए हैं और समझौते में प्रवेश करने की पृष्ठभूमि में पक्षकारों के साथ खुद का खंडन किया है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता वास्तव में शामिल था या नहीं। यह संभव है कि वह था। और, यह भी उतना ही संभव है कि उनका नाम किसी रिश्तेदार या सह-हिस्सेदार द्वारा द्वेष और दुर्भावना से घसीटा गया हो और उस समय तक उनका चयन सरकारी सेवा में हो गया हो।

14. इन आरोपों की सच्चाई का अंदाजा लगाने और कार्रवाई करने के लिए कार्यवाही करने में, राज्य नियोक्ता अंगूठे के नियम या स्ट्रेटजैकेट सूत्र नहीं अपना सकते हैं। भारतीय जीवन शैली के सामाजिक परिवेश में कुछ कठोर वास्तविकताएं हैं, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां दूसरे के परिवार के एक युवा के सरकारी सेवा में शामिल होने की संभावना, अक्सर रिश्तेदारों, सह-साझीदारों और दोस्तों के बीच ईर्ष्या और घृणा की मूल भावनाओं को जन्म देती है, जो चाहते हैं कि सरकारी नियुक्ति बिना किसी प्रत्यक्ष लाभ के पूर्ववत हो जाए। इस तरह की कई प्राथमिकी सरकारी नौकरियों में युवाओं के चयन या नियुक्ति की पूर्व संध्या पर दर्ज की जाती हैं। कोई सोच सकता है कि राज्य के विद्वान अधिवक्ता जो कहते हैं वह एक जघन्य अपराध के मामले में पालन करने का दृष्टिकोण है। क्योंकि आखिरकार, अगर कोई जघन्य अपराध किया गया है, तो कोई यह नहीं सोच सकता कि कॉर्पस डेलिक्टी ईर्ष्या या षड्यंत्र का निर्माण है। इस तरह की स्थिति में, अवतार सिंह का मामला व्यापक दिशा-निर्देश देता है, जिनका कार्रवाई करने से पहले पालन किया जाना चाहिए।

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

15. शायद इसी कारण से कि एक बार किसी कर्मचारी को वर्तमान मामले की तरह नियमित और अस्थाई आधार पर सरकारी सेवा में नियुक्त कर दिया जाता है, , तो अवतार सिंह के मामले में आपराधिक मामले में संलिप्तता के तथ्य को दबाने के आरोप का पक्ष नहीं लिया गया है, जिसे केवल एक स्पष्टीकरण पर सेवाओं की समाप्ति के साथ सरसरी तौर पर निपटाया जाना चाहिए, या कारण बताओ नोटिस दिया गया है। नियमित रूप से नियुक्त किए जाने वाले सरकारी कर्मचारियों के मामले में, अवतार सिंह मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जिस कार्रवाई का पक्ष लिया जाता है, का पता लगाने के लिए उचित जांच के वह दमन की भागीदारी । इस संबंध में, अवतार सिंह मामले में में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित व्यापक दिशा-निर्देशों का संदर्भ दिया जा सकता है कि किसी ऐसे कर्मचारी की सेवाओं को लेने से पहले नियोक्ता का मार्गदर्शन किया जाना चाहिए जिसने किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता या दोषसिद्धि आदि के बारे में सूचना रोक रखी है। अवतार सिंह में यह अभिनिर्धीरत किया गया है :

"38. हमने विभिन्न निर्णयों पर ध्यान दिया है और जहां तक संभव हो उन्हें समझाने और समेटने की कोशिश की है। उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए,। हम अपने निष्कर्ष को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत करते है :

38.1. किसी उम्मीदवार द्वारा नियोक्ता को दोषसिद्धि, बरी या गिरफ्तारी, या आपराधिक मामले की लंबितता, चाहे सेवा में प्रवेश करने से पहले या बाद में दी गई जानकारी सच होनी चाहिए और आवश्यक जानकारी का कोई दमन या गलत उल्लेख नहीं होना चाहिए।

38.2. झूठी जानकारी देने के लिए सेवाओं की समाप्ति या उम्मीदवारी को रद्द करने का आदेश पारित करते समय, नियोक्ता ऐसी जानकारी देते समय मामले की विशेष परिस्थितियों, यदि कोई हो, का नोटिस ले सकता है।

38.3. नियोक्ता निर्णय लेते समय कर्मचारी पर लागू सरकारी आदेशों/निर्देशों/नियमों को ध्यान में रखेगा।

38.4. यदि किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता का दमन या झूठी जानकारी है, जहां आवेदन/सत्यापन फॉर्म भरने से पहले ही दोषसिद्धि या बरी कर दिया गया था और इस तरह के तथ्य बाद में नियोक्ता के संज्ञान में आते हैं, तो मामले के लिए उपयुक्त निम्नलिखित में से कोई भी सहारा अपनाया जा सकता है:

38.4.1. प्रकृति में तुच्छ मामले में जिसमें दोषसिद्धि दर्ज की गई थी, जैसे कि कम उम्र में या एक छोटे अपराध के लिए नारे लगाना जो अगर खुलासा किया जाता है तो प्रश्न में अयोग्य नहीं होता, नियोक्ता अपने विवेक से, चूक को माफ करके तथ्य या दमन की अनदेखी कर सकता है।

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

38.4.2. जहां दोषसिद्धि ऐसे मामले में दर्ज की गई है जो प्रकृति में तुच्छ नहीं है, नियोक्ता कर्मचारी की उम्मीदवारी रद्द कर सकता है या सेवाओं को समाप्त कर सकता है।

38.4.3. यदि तकनीकी आधार पर नैतिक अधमता या जघन्य/गंभीर प्रकृति के अपराध से में बरी कर दिया गया था और यह क्लीन बरी का मामला नहीं है, या उचित संदेह का लाभ दिया गया है, तो नियोक्ता पूर्ववृत्त रूप में उपलब्ध सभी के प्रासंगिक तथ्यों पर विचार कर सकता है, और कर्मचारी की निरंतरता के बारे में उचित निर्णय ले सकता है।

38.5. ऐसे मामले में जहां कर्मचारी ने एक संपन्न आपराधिक मामले की सच्चाई से घोषणा की है,नियोक्ता को अभी भी पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार है, और उम्मीदवार को नियुक्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।

38.6. मामले में जब तुच्छ प्रकृति के आपराधिक मामले के लंबित रहने के संबंध में चरित्र सत्यापन फॉर्म में तथ्य को सच्चाई से घोषित किया गया है, तो नियोक्ता, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अपने विवेक से, ऐसे मामले के

अनुवादित

निर्णय के अधीन उम्मीदवार को नियुक्त कर सकता है।

38.7. कई लंबित मामलों के संबंध में तथ्य के जानबूझकर दमन के एक मामले में, इस तरह की झूठी जानकारी अपने आप में महत्व ग्रहण करेगी और एक नियोक्ता उम्मीदवारी रद्द करने या सेवाओं को समाप्त करने के लिए उचित आदेश पारित कर सकता है क्योंकि एक व्यक्ति की नियुक्ति जिसके खिलाफ कई आपराधिक मामले लंबित थे, उचित नहीं हो सकता है।

38.8. यदि आपराधिक मामला लंबित था, लेकिन फॉर्म भरने के समय उम्मीदवार को ज्ञात नहीं था, तब भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है और नियुक्ति प्राधिकारी अपराध की गंभीरता पर विचार करने के बाद निर्णय लेगा।

38.9. यदि कर्मचारी को सेवा में पक्का कर दिया जाता है, तो सत्यापन फॉर्म में गलत जानकारी जमा करने या दबाने के आधार पर बर्खास्तगी या बर्खास्तगी का आदेश पारित करने से पहले विभागीय जांच करना आवश्यक होगा।

38.10. दमन या झूठी सूचना का निर्धारण करने के लिए सत्यापन/सत्यापन फॉर्म विशिष्ट होना चाहिए , अस्पष्ट नहीं। केवल ऐसी सूचना जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया जाना अपेछित था ,प्रकट किया जाना है। यदि नियोक्ता के संज्ञान में

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

सूचना नहीं मांगी जाती है लेकिन प्रासंगिक है तो फिटनेस के प्रश्न को सम्बोधित करते समय उस पर वस्तुनिष्ठा तरीके से विचार किया जा सकता है। हलाकि ऐसी मामले में कारवाही छिपाने या गलत जानकारी प्रस्तुत करने के आधार पर कार्यवाही नहीं कि जा सकती , जिसमे एक तथ्य कि मांग भी नहीं कि गयी थी।

38.11. इससे पहले कि किसी व्यक्ति को दमन का दोषी ठहराया जाये या सुझाव दिया जाये , तथ्य का ज्ञान उसके लिए जिम्मेदार होना चाहिए।

16. अब इस मामले में , कुछ भी दलील या दिखाया नहीं गया है कि रिट याचिकाकर्ता एक अस्थायी हाथ या परिविचाधीन था। उन्हें नियमित रूप से चना गया और एक महत्वपूर्ण पद पर नियुक्त किया गया। २१ जुलाई २००६ को सेवा समाप्ति का आदेश या २७ फरवरी २००४ को कारण बताओ नोटिस , एक संकेत के रूप में यह जो दिखता है कि रिट याचिका कर्ता एक परविचधीन था। अगर वह होते तो उन्हें आसानी से सेवा से मुक्त किया जा सकता था। रिकॉर्ड से पता चलता है कि प्रतिवादियों ने रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ उसे एक पक्का कर्मचारी मानते हुएहुए कार्यवाही की है। अन्यथा भी, जब तक आक्षेपित आदेश पारित किया गया, तब तक रिट याचिकाकर्ता लगभग चार साल की अवधि के लिए सेवा में था। इन परिस्थितियों में, विभिन्न तथ्यों को देखते हुए, जिन्हें आपराधिक मामले में शामिल होने के बारे में दमन के आधार पर किसी कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने के निर्णय से पहले जांच की जानी है, प्रतिवादियों के लिए अनिवार्य मार्ग रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ

अनुवादित

अनुशासनात्मक कार्यवाही करना होगा। उन्हें कारण बताओ नोटिस जारी करके और 15 दिनों में जवाब देने के लिए कहकर उन्हें बाहर नहीं किया जा सकता था। आश्चर्यजनक रूप से, इस मामले में, 27 फरवरी, 2004 को रिट याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिस पर रिट याचिकाकर्ता ने 15 अप्रैल, 2004 को जवाब प्रस्तुत किया, लेकिन आक्षेपित आदेश 21 जुलाई, 2006 को पारित किया गया।

इस लंबी अवधि के दौरान, नियमित विभागीय कार्यवाही आसानी से अभिनिर्धारित की जा सकती है, जहां हर तथ्य का बारीकी से पता लगाया जा सकता है। जैसा कि पहले ही टिप्पणी की गई है, अवतार सिंह के मामले में निर्णय भी एक आपराधिक मामले में भागीदारी के तथ्य को दबाने के आधार पर शक्तियों के प्रयोग के लिए प्रासंगिक जांच करता है, क्या कर्मचारी को उसकी भागीदारी के बारे में तथ्य का ज्ञान था। इस संबंध में अवतार सिंह में रिपोर्ट का पैराग्राफ संख्या 38.11 प्रासंगिक है। अवतार सिंह में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 38.9 में एक पुष्ट कर्मचारी के खिलाफ विभागीय जांच करने की आवश्यकता का उल्लेख किया गया है। यही कारण है कि यह न्यायालय यह सोचने के लिए इच्छुक है कि ऐसे मामलों में नियमित विभागीय जांच होनी चाहिए। ऐसे कई मापदंड हैं जो नियोक्ता को सेवा से एक कर्मचारी को समाप्त करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करने का निर्णय लेने से पहले पता लगाना चाहिए, जिसने आपराधिक मामले में शामिल होने के बारे दबा दिया है। अवतार सिंह के मामले में इन विभिन्न तथ्यों को विस्तृत है: रूप से रखा गया है तथ्य को यह देखा गया है :

"28. इस न्यायालय ने यह भी कहा है कि किसी व्यक्ति को तथ्य को छिपाने का दोषी ठहराए जाने से पहले यह विचार किया जाना चाहिए कि क्या सत्यापन फॉर्म सटीक है और अस्पष्ट नहीं है, और इसका खुलासा करने के लिए क्या आवश्यक है। दया शंकर [दया शंकर यादव बनाम भारत संघ, (2010) 14 एससीसी 103: (2011) 2 एससीसी (एल एंड एस) 439] में यह माना गया था कि यदि सत्यापन फॉर्म अस्पष्ट है तो पर कोई गलती नहीं पाई जा सकती है। हालांकि, **अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।**

जो तथ्य ज्ञान में आए हैं, उन्हें नियोक्ता द्वारा निर्धारित किया जाना है कि क्या अवलंबी के पूर्ववृत्त सेवा के लिए अच्छे हैं, किसी को दमन का दोषी ठहराने के लिए, फॉर्म में क्वेरी विशिष्ट होनी चाहिए। इसी तरह, बी. चिन्नाम नायडू (गृह विभाग, आंध्र प्रदेश बनाम बी. चिन्नाम नायडू, (2005) 2 एससीसी 746: 2005 एससीसी (एल एंड एस) 323] में जब सत्यापन फॉर्म में कॉलम को हिरासत या दोषसिद्धि का खुलासा करने की आवश्यकता होती है, तो इसे लंबित आपराधिक मामले या गिरफ्तारी के तथ्य का खुलासा करने की आवश्यकता नहीं होती है, लंबित मामले के भौतिक दमन के आधार पर हटाने और गिरफ्तारी को अलग रखा गया था क्योंकि इसका खुलासा करने की आवश्यकता नहीं थी।

29. पूर्ववृत्त का सत्यापन अवलंबी की फिटनेस का पता लगाने के लिए आवश्यक है, इस प्रक्रिया में यदि कोई घोषणाकर्ता पूर्ववृत्त के उचित

अनुवादित

सत्यापन पर अच्छे नैतिक चरित्र का पाया जाता है, केवल तुच्छ अपराध में भागीदारी के दमन से, जो सत्यापन फॉर्म भरने की तारीख को लंबित नहीं था, तो क्या उसे रोजगार से वंचित किया जा सकता है? नैतिक अधमता/गंभीर अपराध से जुड़े मामले हो सकते हैं जिनमें कर्मचारी को तकनीकी कारणों से या संदेह का लाभ देने के कारण बरी कर दिया गयाहै। ऐसी स्थिति हो सकती है जब सत्यापन फॉर्म भरने से पहले व्यक्ति को अपराध के लिए दोषी ठहराया गया हो या मामला लंबित हो और इसके बारे में जानकारी दबा दी गई हो, क्या नियोक्ता को निर्णय लेने के लिए लंबित आपराधिक मामले के परिणाम तक इंतजार करना चाहिए या मामले में जब कार्रवाई शुरू की गई है तो आपराधिक मामले का पहले से ही निष्कर्ष है जिसके परिणामस्वरूप दोषसिद्धि / बरी हो सकता है। ऐसे मामले में विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिए स्थिति उत्पन्न हो सकती है जहां आवश्यक जानकारी का सही तरीके से खुलासा किया गया है, फिर भी नियुक्ति के लिए उपयुक्तता पर विचार करने और सत्यापित करने के लिए प्राधिकरण की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, छिपाए जाने के मामले में भी, यदि सूचना के सत्यापन की प्रक्रिया मैं कतिपय सूचना ध्यान में आती है तो भी नियोक्ता को अवलंबी को अयोग्य ठहराने से पहले विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए निर्णय लेना अपेक्षित होता है। । यदि पूर्ववृत्त के सत्यापन पर एक व्यक्ति को उसी समय फिट पाया जाता है, , तो प्राधिकारी को इस तथ्य को छिपाने के प्रभाव होगा कि उस पर तुच्छ अपराध के लिए मुकदमा चलाया गया थां जो उसे अयोग्य नहीं बनाता है, इ इस तरह के गैर-प्रकटीकरण को क्या महत्व दिया जाए। क्या सभी प्रकार के मामलों से निपटने के लिए एक ही मापदंड हो सकता है?

30. नियोक्ता को चूक को समाप्त करने या अन्यथा माफ करने के लिए "विवेक" दिया जाता है। अन्यथा भी, एक बार नियोक्ता के पास निर्णय लेने की शक्ति होती है जब सत्यापन फॉर्म भरने के समय घोषणाकर्ता को पहले ही दोष/ बरी कर दिया गया हो, ऐसे मामले में, यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी तथ्यों और उपस्थित परिस्थितियों, जिसमें दमन या झूठी जानकारी का प्रभाव शामिल है, को विचाराधीन सेवाओं के लिए किसी पदधारी की उपयुक्तता का निर्णय करते समय ध्यान में रखा जाताजाता है। यदि नियोक्ता इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि दमन सारहीन है और भले ही तथ्यों का खुलासा किया तो भी यह एक पदधारी की फिटनेस पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा, दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, उसके पास चूक को माफ करने की शक्ति है। हालांकि, ऐसा करते समय नियोक्ता को पद की प्रकृति और प्रदान किए जाने वाले कर्तव्यों पर उचित विचार करने पर विवेकपूर्ण कार्य करना होगा। उच्च पदाधिकारियों/उच्चतर पदों के लिए मानक बहुत ऊंचा होना चाहिए और जरा सी भी गलत सूचना या दमन अपने आप में किसी व्यक्ति को पद के लिए अनुपयुक्त बना सकता है। हालांकि, प्रत्येक पद पर समान मानक लागू नहीं किया जा सकता है। समाप्त आपराधिक मामलों में, यह देखा जाना चाहिए कि जो

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

अनुवादित

दबा दिया गया है वह भौतिक तथ्य है और नियुक्ति के लिए एक अवलंबी को अयोग्य बना दिया होगा। एक नियोक्ता को नियुक्त नहीं करने या यदि नियुक्त किया जाता है, तो विभिन्न पहलुओं पर उचित विचार करने पर ऐसे पदधारी की सेवाओं को समाप्त करने के लिए उचित होगा। यहां तक कि अगर प्रकटीकरण सच्चाई से किया गया है, तो नियोक्ता को फिटनेस पर विचार करने का अधिकार है और ऐसा करते समय दोषसिद्धि के प्रभाव और मामले की पृष्ठभूमि के तथ्यों, अपराध की प्रकृति आदि पर विचार किया जाना चाहिए। यहां तक कि अगर बरी कर दिया गया है, तो नियोक्ता अपराध की प्रकृति पर विचार कर सकता है, चाहे बरी करना सम्मानजनक हो या तकनीकी कारणों से संदेह का लाभ दे रहा हो और ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करने से इनकार कर दे जो अयोग्य या संदिग्ध चरित्र का हो। यदि नियोक्ता इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आपराधिक मामले में दोषसिद्धि या बरी होने का आधार रोजगार के लिए उपयुक्तता को प्रभावित नहीं करेगा, तो पदधारी को नियक्त किया जा सकता है या सेवा में जारी रखा जा सकता है।

17. इस मामले में पूछताछ करना भी प्रासंगिक होगा कि एक तरफ रिट याचिकाकर्ता के अपराध की प्रकृति और दूसरी तरफ रिट याचिकाकर्ता की नौकरी की प्रकति खिलाफ कथित और स्तर को देखते हुए, क्या नियोक्ता उसे इसे धारण करने के लिए अनुपयुक्त पाएगा। इस सब पर आवधानीपूर्वक विचार करने और नियमित विभागीय जांच की आवश्यकता होगी, जो संघ और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा और मार्गदर्शन किया इस मामले में नहीं की गई है। ई है। पवन कुमार बनाम भारत हालिया फैसले में इस बिंदु पर 532 में उनके लॉर्डशिप के कुमार (उपरोक्त) में, यह देखा गया है:

"13. इस न्यायालय द्वारा निर्धारित व्याख्या से जो उभरता है वह यह है कि इस तथ्य की परवाह किए बिना कि क्या दोषसिद्धि या बरी दर्ज की गई है, केवल सामग्री/झूठी जानकारी को छिपाकर, कर्मचारी/भर्ती को केवल कलम के एक झटके से स्वयंसिद्ध र रूप से सेवा से मुक्त / समाप्त नहीं किया जाना है। साथ ही, आपराधिक मामले में शामिल सामग्री/मिथ्या सूचना के छिपाने, यदि कोई हो, का प्रभाव नियोक्ता पर छोड़ दिया जाता है कि वह। पूर्ववृत्त के रूप में उपलब्ध सभी प्रासंगिक तथ्यों और प्रभाव नियोक्ता पर छोड़ दिया जाता है कि वह पूर्ववृत के रूप में उपलब्ध्या सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करे और सेवा में कर्मचारी की निरंतरता/उपयुक्तता के संबंध में उचित निर्णय लेते समय वस्तुनिष्ठ मानदंड और संबंधित सेवा नियमों को ध्यान में रखे। इस न्यायालय ने जिस बात पर गौर किया है, वह यह है कि किसी दिए गए मामले में केवल सामग्री/झूठी जानकारी को छिपाने का मतलब यह नहीं है कि नियोक्ता मनमाने ढंग से कर्मचारी को सेवा से मुक्त कर सकता है।

18. यहां, आबकारी आयुक्त और राज्य सरकार दोनों द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों का अवलोकन उन विभिन्न कारकों पर जरा भी विचार नहीं करता है, जिन्हें किसी कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने का निर्णय लेने से पहले ध्यान में रखा जाना चाहिए। दोनों आदेश यांत्रिक दृष्टिकोण और सूत्र निर्णय लेने का उल्लंघन करते हैं कि अपराध धारा 308 भा.दं.सं. के तहत एक

अनुवादित

आरोप से जुड़ा है, जो रिट याचिकाकर्ता द्वारा सत्यापन की तारीख पर दर्ज किया गया था, लेकिन खुलासा नहीं किया गया था, अनिवार्य रूप से रिट याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करना चाहिए। यह, हमारी सुविचारित राय में, एक पूरी तरह से त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण है। यह हम इस तथ्य से काफी अलग कहते हैं कि इस मामले में एक नियमित विभागीय जांच होनी चाहिए थी।

अस्वीकरण:-अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

19. हमें यह कहने में कोई गलतफहमी नहीं हो सकती है कि नियमित विभागीय कार्यवाही करने और सभी मापदंडों पर मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद भी प्रतिवादियों के लिए यह दृष्टिकोण नहीं है। हम केवल इतना कहते हैं कि कुछ वस्तुनिष्ठ तथ्यों से एक सूत्र निष्कर्ष प्रतिवादियों का दृष्टिकोण नहीं होना चाहिए। अन्यथा, प्रतिवादियों की कार्रवाई मनमानी होगी जैसा कि यहां लगाए गए आदेशों के मामले में है।

20. परिस्थितियों में, यह अपील सफल होती है और अनुमति दी जाती है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है। । रिट याचिका को अनुमति दी जाती है।: आबकारी आयुक्त, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद द्वारा पारित दिनांक 21 जुलाई, 2006 के आक्षेपित आदेश और प्रधान सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, आबकारी विभाग, लखनऊ द्वारा दिनाक 10 मार्च, 2008 के आदेश को र रद्द किया जाता है। रिट याचिकाकर्ता सेवा की निरंतरता और र वेतन, बरिष्ठता आदि सहित सभी परिणामी लाओं के साथ एक कल्पित आधार पर सेवा में बहाल होने का हकदार होगा। हालांकि, रिट याचिकाकर्ता उस अवधि के लिए वेतन की बकाया राशि का हकदार नहीं होगा, Not for एके दौरान वह सेवा में नहीं था। यह प्रतिवादियों के लिए रिट याचिकाकर्ता को आरोप पत्र जारी करने और कानून के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए खुला होगा।

(2023) 2 ILRA 1054

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

रिट-ए नंबर 10560/2020

संलग्न

रिट-ए नंबर 2190 /2020

संलग्न

रिट-ए नंबर 21463/2019

अरविन्द सिंह एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री आर. के. ओझा (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री चंद्रशेखर सिंह, श्री शिवेन्दु ओझा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. शिक्षा कानून - सेवानिवृत्ति लाभ/पेंशन - बच्चों का निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009; उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बेसिक विद्यालय (शिक्षकों की भर्ती एवं सेवा की शर्तें एवं अन्य शर्तें) नियमावली, 1975; उत्तर

प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972; सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860; उत्तर प्रदेश सेंट एडेड-एजुकेशनल इंस्टीट्यूशन कर्मचारी अंशदायी भविष्य निधि-बीमा-पेंशन नियमावली, 1964; उत्तर प्रदेश जूनियर हाई स्कूल (शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1978; उत्तर प्रदेश हाई स्कूल और इंटरमीडिएट कॉलेज (शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1971; उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (शिक्षकों की भर्ती एवं सेवा शर्तें) नियमावली, 1978

कोई भी व्यक्ति शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने के लिए स्वतंत्र है, लेकिन यह अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी को भी उस उद्यम को वित्तपोषित करने के लिए राज्य से संबद्धता या अनुदान सहायता मांगने का अधिकार नहीं है। ऐसा अध्याय III में अनुच्छेद 21-ए की प्रारंभ और अधिनियम 2009 के अधिनियमन द्वारा इसके वैधानिक कार्यान्वयन के बावजूद है। (पैरा 34)

यदि राज्य ने यह नीतिगत निर्णय लिया है कि वे उन शिक्षा को वित्त पोषित नहीं करेंगे जहां निजी संस्थान स्थापित किए गए हैं, विशेष रूप से कक्षा V तक पढ़ाते हैं, तो किसी को भी राज्य को पेंशन का समर्थन करने के लिए सहायता अनुदान देने के लिए मजबूर करने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसे निजी संस्थानों के सेवानिवृत्त शिक्षकों को, नियम 1964 के तहत, केवल इसलिए कि समाज कल्याण विभाग द्वारा शिक्षकों को वेतन भुगतान का समर्थन करने के लिए एक आकस्मिक अनुदान प्रदान किया गया है, जो विशेष रूप से एक निश्चित वर्ग के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने की शर्त के अधीन है। (पैरा 38) **बी. 1964 के नियमों के नियम 3 और 4 को पढ़ने से प्रतीत होता है कि वे राज्य सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों में सेवारत स्थायी कर्मचारियों पर लागू होते हैं, चाहे वे स्थानीय निकाय या निजी प्रबंधन द्वारा द्वारा संचालित हों।** 1964 के नियमों को लागू करने की शर्त एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा सहायता अनुदान के भुगतान के उद्देश्य से मान्यता है। 1978 के अधिनियम के लागू होने के बाद नियमों के तहत परिकल्पित सहायता अनुदान का अर्थ 1978 के अधिनियम की धारा 2 (एफ) के तहत परिकल्पित रखरखाव अनुदान होगा। उक्त क़ानून बुनियादी विद्यालयों के शिक्षकों को वेतन के भुगतान को नियंत्रित करता है और वैधानिक रूप से सहायता अनुदान को परिभाषित करता है। इसमें संपूर्ण रखरखाव अनुदान की परिकल्पना की गई है, न कि किसी प्रकार के तदर्थ या सीमित अनुदान की, जिसे वापस लिया जा सकता है, जैसे कि उस कक्षा के प्राथमिक विद्यालयों को प्रदान किया जाता है जहां याचिकाकर्ता आकस्मिकताओं के बारे में पढ़ाते हैं, जैसे कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियाँ के छात्रों की संख्या 50% से नीचे आ रही हैं। (पैरा 46)

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने वाले समाज के अधिकारहीन रहने वाले वर्गों तक शिक्षा का विस्तार करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, राज्य का समाज कल्याण विभाग अतीत में आवर्ती सहायता अनुदान की सुविधा का विस्तार कर रहा था। प्राथमिक संस्थान अर्थात कक्षा I से V तक के बच्चों को पढ़ाने वाले संस्थान, जहां

अनुवादित

न्यूनतम 50% विद्वान अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के हैं। राज्य सरकार द्वारा यह नीति भी वर्ष 1994 के बाद बंद कर दी गई है। (पैरा 41)

सी. बुनियादी शिक्षा विभाग द्वारा जूनियर हाई स्कूलों को प्रदान किया जाने वाला 1978 के अधिनियम की धारा 2 (एफ) के तहत परिभाषित रखरखाव अनुदान, समाज कल्याण विभाग द्वारा वित्त पोषित निजी तौर पर प्रबंधित प्राथमिक स्कूलों को प्रदान किए जाने वाले आवर्ती अनुदान से सामान्य रूप से अलग है। समाज कल्याण विभाग को इस तरह के अनुदान को रोकने का अधिकार है और उनका दायित्व निजी प्रबंधन द्वारा प्रबंधित प्राथमिक संस्थान की विशेष कक्षा में पढ़ाने वाले शिक्षकों को वेतन के भुगतान से अधिक कुछ भी नहीं है, जिन्हें राज्य द्वारा विलक्षण कारण से सहायता की पेशकश की गई थी। प्रासंगिक समय में और तत्कालीन आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, ये संस्थान निर्दिष्ट आयु में नागरिकों के एक विशेष वर्ग को शिक्षा प्रदान कर रहे थे। (पैरा 36,44)

एक विशेष आयु वर्ग में समाज के कुछ वंचित वर्गों के बीच शिक्षा को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रासंगिक समय पर समाज कल्याण विभाग द्वारा बिना कोई स्थायित्व या निरंतरता अनुदान प्रदान किया गया, इसे 1964 के नियमों के तहत परिकल्पित सहायता अनुदान में शामिल नहीं किया जा सकता है। उक्त नियमों के तहत परिकल्पित अनुदान सहायता किसी भी सिद्धांत से अपने दायरे में तदर्थ या सीमित अनुदान को समाज कल्याण विभाग द्वारा उन संस्थानों को शामिल नहीं कर सकती है, जहां याचिकाकर्ता पढ़ाते हैं। (पैरा 46)

डी. 1964 के नियमों को आकर्षित करने के उद्देश्य से भविष्य निधि की कटौती की कोई प्रासंगिकता नहीं है। चूंकि निजी शैक्षणिक संस्थानों में पढ़ाने वाले शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के लिए एक सामान्य भविष्य निधि योजना शुरू की गई है। 1 मार्च 1977 को विद्यालय प्रबंधन द्वारा कोषागार के माध्यम से भविष्य निधि योजना के तहत शिक्षकों के वेतन से प्रत्येक माह कटौती कर भविष्य निधि खाते में जमा किया जाता है। 1964 के नियमों के नियम 3 और 4, याचिकाकर्ताओं के पेंशन, बीमा और अंशदायी भविष्य निधि प्राप्त करने के अधिकार का आधार नहीं बन सकते। विशेष अपील संख्या 180 /2000 में खंडपीठ के दिनांक 11.08.2006 के आदेश से याचिकाकर्ताओं को वेतन के अलावा अन्य लाभ भी मिलेंगे, यदि नियम या शर्तें लागू हों। (पैरा 37,47)

रिट याचिकाएँ निरस्त। (ई 4)

<u>विधिव्यवस्था अनुसरित:</u>

1. उन्नी कृष्णन, जे.पी. एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, (1993) 1 एससीसी 645 (पैरा 23)
2. एच.पी. का सेंट. बनाम एच.पी. राज्य मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त स्कूल प्रबंध समितियां और अन्य, (1995) 4 एससीसी 507 (पैरा 23)
3. टी.एम.ए. पै फाउंडेशन और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, और अन्य, (2002) 8 एससीसी 481 (पैरा 23)
4. विनोद शर्मा एवं अन्य बनाम शिक्षा निदेशक (बेसिक), उ.प्र. एवं अन्य, (1998) 3 एससीसी 404 (पैरा 26)

अनुवादित

5. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम पवन कुमार दिवेदी एवं अन्य, (2006) 7 एससीसी 745 (पैरा 27)

6. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम पवन कुमार दिवेदी एवं अन्य, (2014) 9एससीसी 692 (पैरा 28)

7. सी/एम आदर्श ग्रामीण विद्यालय सोनकपुर, हरथला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-ए संख्या 20751/2019 (पैरा 31)

वर्तमान याचिकाएं दिनांक 27.02.201 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध योजित हैं, जिसमें निर्धारित किया गया था कि समाज कल्याण विभाग से अनुदान प्राप्त करने वाले प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक पेंशन, पारिवारिक पेंशन आदि के अधिकारी नहीं हैं क्योंकि कोई नीति, नियम या योजना नहीं है जो ऐसे विद्यालयों के शिक्षकों को बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा वित्त पोषित विद्यालयों के समान परिस्थिति वाले शिक्षकों के समान पेंशन का लाभ प्रदान किया जा रहा है।

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

यह निर्णय रिट-ए सं. 10560 सन् 2020, 2190 सन् 2020 और 21463 सन् 2019 को निस्तारित करेगा, क्योंकि इनमें तथ्य और कानून के उभयनिष्ठ प्रश्न शामिल हैं। रिट-ए सं. 10560 सन् 2020 को प्रमुख मामले के रूप में माना जाएगा, जिसमें दलीलें दी गई हैं और तर्कों पर विचार किया गया है; बेशक, अन्य दो याचिकाओं के संदर्भ में भी। यह न्यायालय प्रमुख मामले के तथ्यों पर ध्यान देने का प्रस्ताव करता है।

2. याचिकाकर्ता सहायक शिक्षक और प्रधानाध्यापक हैं, जो या तो कार्यरत हैं या सेवानिवृत्त हैं, जिन्हें उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (शिक्षक भर्ती और सेवा की शर्तें एवं अन्य) नियमावली, 1975 (संक्षेप में, '1975 की नियमावली') और साथ ही समय-समय पर जारी किए गए अन्य सरकारी आदेश के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों में नियुक्त किया गया है। इन संस्थानों की स्थापना और प्रबंधन, प्रबंधन समिति के माध्यम से सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत सोसायटी द्वारा किया जाता है। सभी स्कूल, जहां याचिकाकर्ताओं को नियुक्त किया गया था, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 (संक्षेप में, '1972 का अधिनियम') के तहत विधिवत मान्यता प्राप्त हैं। वे राज्य सरकार से सहायता अनुदान प्राप्त कर रहे हैं, लेकिन अंतर यह है कि बेसिक शिक्षा विभाग से अनुदान प्राप्त करने वाले कुछ अन्य प्राथमिक विद्यालयों के विपरीत, जिन स्कूलों में याचिकाकर्ताओं को नियुक्त किया गया था, उन्हें अनुदान समाज कल्याण विभाग से प्राप्त होता है।

3. याचिकाकर्ताओं का दावा है कि वे उत्तर प्रदेश राज्य सहायता प्राप्त-शैक्षिक संस्था कर्मचारी अंशदायी भविष्य निधि-बीमा-पेंशन नियमावली, 1964 (संक्षेप में, '1964 की नियमावली) के आधार पर तिहरे सेवानिवृत्ति लाभों के हकदार हैं, यानी अंशदायी भविष्य निधि, बीमा और पेंशन। इस याचिका में सवाल यह है कि क्या 1964 की नियमावली निजी प्रबंधन द्वारा संचालित, बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा मान्यता प्राप्त और उत्तर प्रदेश सरकार के समाज कल्याण विभाग द्वारा वित्त पोषित प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों पर

अनुवादित

लागू होंगे। जबकि याचिकाकर्ताओं का कहना है कि वे पेंशन सहित 1964 की नियमावली के तहत सभी लाभ प्राप्त करने के हकदार हैं, राज्य का रुख यह है कि बेसिक शिक्षा बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त निजी प्रबंधन द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालय, जहां अनुदान समाज कल्याण विभाग द्वारा प्रदान किया जाता है और निजी प्रबंधन द्वारा संचालित वे विद्यालय, जहां बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा अनुदान दिया जाता है के बीच अंतर है। यह अंतर दिनांक 31.03.1994 के एक सरकारी आदेश के आधार पर किया जाता है।

4. याचिकाकर्ताओं का कहना है कि 1964 की नियमावली एक या दूसरे सरकारी विभाग द्वारा विधिवत मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त निजी स्कूलों के बीच अंतर नहीं करती है। स्कूलों के दो सेटों के बीच राज्य द्वारा किए गए अंतर और दूसरी तरफ याचिकाकर्ताओं द्वारा अस्वीकार किए जाने की बात पर , इस फैसले में बाद में कुछ विस्तार से बताया जाएगा।

5. इस मुद्दे की उत्पत्ति और पक्षों के बीच शुरुआती मुकदमेबाजी का उल्लेख करना उचित होगा जिसके कारण वर्तमान याचिका में आक्षेपित आदेश दिया गया है। एक रिट याचिका, जो कि सिविल मिस्लेनियस रिट याचिका सं. 2766 सन् 1996 है किसी संघर्ष समिति शिक्षक समुदाय विभाग पाठशाला, उ.प्र., इलाहाबाद द्वारा अपने सचिव और पांच अन्य लोगों के माध्यम से संस्थित की गई थी, जो उन शिक्षकों के हित में बनाई गई थी जो ऐसे प्राथमिक संस्थानों में कार्य कर रहे थे, जो राज्य सरकार के समाज कल्याण विभाग से सहायता अनुदान प्राप्त कर रहे थे। याचिका को ऐसे सभी शिक्षकों की ओर से प्रतिनिधि हैसियत से दायर करने का दावा किया गया था। याचिका पर इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सुनवाई की गई और निर्णय एवं आदेश दिनांकित 01.11.1996 द्वारा, निम्नलिखित शर्तों अनुमति दी गई :-

"यह याचिका स्वीकार की जाती है। प्रत्यर्थी सं. 1 को समाज कल्याण विभाग के तहत प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को समान वेतन, भत्ते और अन्य लाभ देने के लिए एक परमादेश जारी किया जाता है जैसा कि उन शिक्षकों को दिया जाता है जो बेसिक बोर्ड उ.प्र. द्वारा संचालित हैं, या जो निजी तौर पर प्रबंधित हैं लेकिन बेसिक शिक्षा बोर्ड द्वारा सहायता प्राप्त और मान्यता प्राप्त हैं। समाज कल्याण विभाग के अंतर्गत संचालित प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को 1.1.1996 से आज तक के बकाया का भुगतान संबंधित प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन माह के भीतर किया जाएगा। अन्य लाभ भी इसी अवधि में लागू किये जायेंगे।"

6. उक्त निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, राज्य ने विशेष अपील सं. 180 सन् 2000 दायर किया, जिसका निस्तारण बड़े पैमाने पर विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को बरकरार रखते हुए किया गया, लेकिन इसे एक बहुत ही महत्वपूर्ण विवरण में संशोधित किया गया। उपरोक्त विशेष अपील में पारित डिवीजन बेंच का आदेश दिनांकित 11.08.2006 इस प्रकार है:

"हम 1 नवंबर, 1996 को माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए तर्क और पारित आदेश से सम्मानजनक सहमत हैं, और अपील खारिज की जाती है, सिवाय इसके कि उक्त निर्णय और आदेश का अंतिम वाक्य हटा दिया जाएगा। उक्त

अनुवादित

अंतिम वाक्य इस प्रकार है:- "अन्य लाभ भी इसी अवधि के भीतर लागू किये जायेंगे।"

सविनय कहना चाहेंगे कि यह वाक्यांश थोड़ा अस्पष्ट है। यह कई अन्य मामलों को सामने लाएगा, जैसे पेंशन जिसके लिए आमतौर पर योगदान करना होता है। इस प्रकार, हमारी राय में, रिट याचिकाकर्ताओं-प्रत्यर्थीगण को समानीकरण के आधार पर वेतन के अलावा किसी अन्य लाभ का हकदार नहीं होना चाहिए, लेकिन, उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है, कि हमारा आदेश रिट याचिकाकर्ताओं-प्रत्यर्थीगण को अन्य सभी लाभ प्राप्त करने से नहीं रोकेगा जिसे वे स्वयं पर लागू स्पष्ट नियमों या शर्तों के आधार पर स्वयं प्राप्त करने के हकदार हैं।"

7. राज्य ने मामले को विशेष अनुमति द्वारा अपील में सर्वोच्च न्यायालय में आगे बढ़ाया, जहां सिविल अपील सं. 2028 सन् 2011 पर सुनवाई हुई और 27 जुलाई, 2017 को डिवीजन बेंच के निर्णय की पुष्टि करते हुए एक संक्षिप्त आदेश द्वारा खारिज कर दी गई। सिविल अपील सं. 2028 सन् 2011 में सर्वोच्च न्यायालय का आदेश इस प्रकार है:

"हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है।

हमें आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं मिला।

तदनुसार, अपील खारिज की जाती है। लंबित आवेदन, यदि कोई हो, भी निस्तारित किए जाते हैं।"

8. याचिकाकर्ताओं का पक्ष यह है कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को केवल इस हद तक संशोधित किया था कि सरकार के बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा वित्त पोषित सहायता प्राप्त प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के बराबर वेतन के अलावा, समाज कल्याण विभाग द्वारा वित्त पोषित प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक - याचिकाकर्तागण, पूर्व श्रेणी के स्कूलों के शिक्षकों के बराबर वेतन के अलावा, अन्य लाभों के हकदार नहीं होंगे। लेकिन एक और स्पष्ट उल्लेख के साथ कि डिवीजन बेंच का आदेश याचिकाकर्ताओं को अन्य सभी लाभ प्राप्त करने से वंचित नहीं करेगा, जिसके वे नियमावली के तहत हकदार हैं।

9. याचिकाकर्ताओं का पक्ष यह है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राज्य की अपील खारिज होने के बाद उन्हें बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा वित्त पोषित अन्य प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के बराबर वेतन दिया गया था, लेकिन उनकी पेंशन का भुगतान नहीं किया गया था। याचिकाकर्ताओं का पक्ष यह है कि डिवीजन बेंच के आदेशों के अनुसार, वे पेंशन प्राप्त करने के बिल्कुल भी अयोग्य नहीं हैं, क्योंकि वे 1964 की नियमावली के तहत इसके पात्र हैं, जो राज्य द्वारा सहायता प्राप्त सभी प्राथमिक विद्यालयों पर लागू होते हैं, भले ही उन्हें किसी विभाग से सहायता प्रदान की जाती हो।

10. 1964 की नियमावली के तहत पेंशन प्राप्त करने के लिए लंबे समय तक प्रयास करने के बाद, जिसमें कुछ शिक्षकों द्वारा रिट कार्यवाही, याचिकाकर्ताओं जैसी परिस्थितियाँ वाले और अवमानना के लिए मुकदमा भी शामिल है, दिनांक

अनुवादित

27.02.2019 को आक्षेपित आदेश पारित किया गया, जिसमें कहा गया है कि समाज कल्याण विभाग से सहायता अनुदान प्राप्त करने वाले प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक पेंशन, पारिवारिक पेंशन आदि के हकदार नहीं हैं क्योंकि ऐसे विद्यालयों के शिक्षकों को समान रूप से पेंशन का लाभ प्रदान करने वाली कोई नीति, नियम या योजना लागू नहीं है जो ऐसे शिक्षकों को बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा वित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों की तरह पेंशन का लाभ प्रदान करता हो। आक्षेपित आदेश के इसी भाग को याचिकाकर्तागण ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से चुनौती दिया है। आदेश, अन्य मामलों के संबंध में, याचिकाकर्ताओं के वेतनमान में संशोधन और बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा वित्त पोषित स्कूलों में उनके समकक्षों के बराबर वेतन भुगतान के अधिकारों को स्वीकार करता है।

11. इस तथ्य के अलावा कि याचिकाकर्ताओं की शिकायत पेंशन और पारिवारिक पेंशन न दिए जाने के बारे में है, इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ताओं ने 1964 की नियमावली का अवलंब लेते हुए यह आग्रह भी किया है कि वे उक्त नियमों के अंतर्गत आते हैं और अन्य स्वीकार्य लाभ, यानी बीमा और अंशदायी भविष्य निधि - के साथ तिहरे लाभ प्राप्त करने के हकदार हैं।

12. यहां यह दर्ज किया जाना चाहिए कि दिनांक 27.02.2019 के आक्षेपित आदेश ने याचिकाकर्ताओं के सामान्य भविष्य निधि प्राप्त करने के अधिकार को मान्यता दी है, जिसके लिए याचिकाकर्ताओं और समान परिस्थिति वाले शिक्षकों के वेतन से कटौती उनके संबंधित जीपीएफ खाते में जमा की जाती है। हालाँकि, कोई अन्य लाभ नहीं दिया गया है।

13. प्रमुख वाद रिट-ए सं. 21463 सन् 2019में याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता अधिवक्ता श्री आर.के. ओझा व उनके सहयोगी विद्वान अधिवक्ता श्री चन्द्र शेखर सिंह और प्रत्यर्थीगण की ओर से राज्य विधि अधिकारी विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री विनोद कांत तथा उनके सहयोगी श्री शरद चंद्र उपाध्याय को सुना गया।

14. रिट-ए सं. 2190 सन् 2020 के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री संतोष कुमार शुक्ला को सुना गया और और प्रत्यर्थीगण की ओर से राज्य विधि अधिकारी विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री विनोद कांत तथा उनके सहयोगी श्री शरद चंद्र उपाध्याय को सुना गया।

15. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.के. ओझा द्वारा दलील दी गई कि सामाजिक कल्याण विभाग द्वारा वित्त पोषित प्राथमिक विद्यालय समाज के कमजोर वर्गों के अलावा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के उत्थान के लिए हैं। ये संस्थान 1972 के अधिनियम के तहत मान्यता प्राप्त हैं और कक्षा-5 तक शिक्षा प्रदान करते हैं। शिक्षकों की सेवा शर्तें 1975 की नियमावली द्वारा शासित होती हैं। यह तर्क दिया गया कि इन संस्थानों के नियंत्रण और नियमों के मामले में, जो अन्यथा निजी प्रबंधन द्वारा प्रबंधित होते हैं, जिला समाज कल्याण अधिकारी द्वारा प्रयोक किए जाने वाले नियंत्रण और, बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा शासित स्कूलों में अंतर है। लेकिन, चाहे जो भी हो, सरकार का कोई भी विभाग उन संस्थानों को धन मुहैया कराए, जहां याचिकाकर्ता कार्यरत हैं, यह

अनुवादित

आखिरकार राज्य सरकार द्वारा दिया जाने वाला अनुदान है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि राज्य का कौन सा हाथ उस अनुदान को देता है।

16. विशेष रूप से यह निवेदन किया गया है कि इस मुद्दे को सिविल मिस्लेनियस रिट याचिका सं. 2766 सन् 1996, निर्णीत दिनांक 01.11.1996, में विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले के तहत निस्तारित कर दिया गया है। जिसकी अपील में काफी हद तक अभिपुष्टि की गई है। जहां तक डिवीजन बेंच द्वारा उक्त फैसले में संशोधन का सवाल है, यह कहा गया है कि डिवीजन बेंच उन याचिकाकर्ताओं को पेंशन के भुगतान पर रोक नहीं लगाती है, जो समाज कल्याण विभाग द्वारा वित्त पोषित स्कूलों में सेवारत हैं। डिवीजन बेंच का कहना केवल यह है कि वेतन के अलावा पेंशन और अन्य लाभों का भुगतान इस न्यायालय के रिट के आधार पर बराबर नहीं किया जाना चाहिए। यह स्पष्ट किया गया है कि यदि लागू सेवा नियमावली के तहत पेंशन और अन्य लाभ स्वीकार्य हैं, तो डिवीजन बेंच का फैसला याचिकाकर्ताओं के हक में बाधा नहीं बनेगा।

17. श्री ओझा ने इस बात पर जोर दिया कि 1964 की नियमावली स्कूलों के सभी वर्गों के शिक्षकों की सेवा शर्तों को नियंत्रित करती है, चाहे स्थानीय निकाय द्वारा चलाए जाएं या निजी प्रबंधन द्वारा। ये प्राथमिक विद्यालयों, जूनियर हाई स्कूलों, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों, डिग्री कॉलेजों और प्रशिक्षण कॉलेजों पर लागू होती है। एकमात्र आवश्यकता यह है कि अनुदान सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से संबंधित संस्थान को सक्षम प्राधिकारी द्वारा मान्यता प्राप्त होना चाहिए। यह तर्क दिया गया है कि संस्थान, जहां याचिकाकर्ता कार्यरत हैं/थे, निस्संदेह सहायता अनुदान प्राप्त करने के उद्देश्य से सक्षम अधिकारियों द्वारा मान्यता प्राप्त हैं। इसलिए, दलील यह है कि याचिकाकर्ताओं के लिए पेंशन का अधिकार 1964 की नियमावली से आता है, जिसे प्रत्यर्थीगण ने स्पष्ट त्रुटि वश अस्वीकार कर दिया है।

18. दूसरी ओर, विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री विनोद कांत समय-समय पर जारी विभिन्न सरकारी आदेशों के आधार पर कहते हैं कि 1964 की नियमावली समाज कल्याण विभाग से अनुदान प्राप्त करने वाले संस्थानों पर लागू नहीं होती है। जैसा कि वह उन स्कूलों पर लागू होती है जिन्हें बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा दी जाने वाला अनुदान सहायता प्राप्त होता है। विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा इस बात पर जोर दिया गया है कि समाज कल्याण विभाग प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षकों को वेतन के भुगतान में सहायता के लिए आवर्ती अनुदान देता है, जो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से संबंधित 50% छात्रों को पढ़ाते हैं। उक्त शर्त पूरी नहीं होने की स्थिति में अनुदान रोक दिया जा सकता है। यह कहा गया है कि भविष्य निधि के लिए याचिकाकर्ताओं के वेतन से की गई कटौती शिक्षकों के लाभ के लिए है और यह किसी भी तरह से 1964 की नियमावली को उन स्कूलों तक विस्तारित नहीं करता है, जहां याचिकाकर्ता पढ़ाते हैं। सेवानिवृत्ति पेंशन या पारिवारिक पेंशन के भुगतान के लिए याचिकाकर्ताओं के दावे का समर्थन करने के लिए कोई नियम नहीं है।

अवलोकित

19. पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुनने और निजी शैक्षणिक संस्थानों को सहायता अनुदान को नियंत्रित करने वाले कानूनों को देखने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि बेसिक शिक्षा विभाग प्राथमिक विद्यालयों या कक्षा पांचवी तक के छात्रों को शिक्षा प्रदान करने वाले स्कूलों को अनुदान सहायता प्रदान नहीं करता है। यह विशेष रूप से उन प्राथमिक विद्यालयों के लिए सच है जो अकेले कक्षा-V तक शिक्षा प्रदान करते हैं, जो उन विद्यालयों से अलग हैं जो कक्षा-VIII तक बुनियादी शिक्षा प्रदान करते हैं, जिनमें संलग्न प्राथमिक खंड कक्षा I से V तक के छात्रों को भी पढ़ाते हैं। इसका कारण यह है कि 1972 के अधिनियम के लागू होने के बाद, राज्य ने कक्षा I से V तक शिक्षा प्रदान करने वाले पहले से स्थापित संस्थानों की स्थापना और संचालन या उन्हें स्वयं को स्थानांतरित करने का कार्य अपने ऊपर ले लिया। राज्य द्वारा यह 1972 के अधिनियम के तहत स्थापित बोर्ड के माध्यम से करने का प्रयास किया गया, जो प्राथमिक स्तर या कक्षा I से V तक के बुनियादी स्कूलों का सीधे प्रबंधन करते थे। राज्य ने इस दायित्व का निर्वाह संविधान के अनुच्छेद 45 के अधिदेश के अनुसार करने का प्रयास किया।

20. चूँकि इसका उद्देश्य छात्रों को बुनियादी शिक्षा का प्राथमिक भाग राज्य द्वारा स्वयं प्रदान करना था, इसलिए बोर्ड के माध्यम से कार्य करते हुए, बोर्ड द्वारा बहुत बड़ी संख्या में प्राथमिक विद्यालय स्थापित किए गए। दरअसल, पहले वे स्कूल, जिनका प्रबंधन स्थानीय निकाय, जैसे जिला पंचायत या नगर पालिका द्वारा किया जाता था, उन्हें 1972 के अधिनियम की धारा 9 के तहत शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के साथ बोर्ड द्वारा अपने अधिकार में ले लिया गया था। बाद में, प्रशासन और रखरखाव के साथ-साथ बुनियादी विद्यालयों की स्थापना का कार्य भी उ.प्र. अध्यादेश संख्या 4 सन् 2000 द्वारा स्थानीय निकायों को फिर से दे दिया गया। संक्षेप में, राज्य ने प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के अपने दायित्वों का निर्वहन करने के लिए कक्षा I-V तक पढ़ाने वाले संस्थानों की स्थापना और रखरखाव में विशाल संसाधन खर्च किए। इसका प्रबंधन या तो विशेष रूप से बोर्ड द्वारा स्थापित और संचालित संस्थानों द्वारा या राज्य के किसी साधन जैसे स्थानीय निकायों द्वारा किया जाता था। प्राथमिक शिक्षा, यानी कक्षा I से V तक के स्कूलों की स्थापना और प्रबंधन में इतने अधिक निवेश के साथ, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि राज्य ने बहुत पहले ही कक्षा I से V तक पढ़ाने वाले निजी तौर पर प्रबंधित संस्थान को धन उपलब्ध न कराने की एक दृढ़ और अनम्य नीति अपना ली थी।

21. हालाँकि, यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि चूंकि राज्य बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता के सभी पहलुओं को पूरा नहीं कर सका, इसलिए निजी संस्थानों को कक्षा VI से VIII या जैसा कि इसे कहा जाता है, बेसिक शिक्षा के सीनियर बेसिक या जूनियर हाई स्कूल स्तर तक पढ़ाने के लिए अनुदान सहायता का प्रावधान किया गया था। यह मुद्दा कि क्या जूनियर हाई स्कूलों के संलग्न प्राथमिक अनुभागों, जिसमें कक्षा I से V तक शामिल हैं, जहां जूनियर हाई स्कूल अनुभाग (कक्षा VI से VIII) को सहायता अनुदान प्राप्त हो रहा था, को रखरखाव अनुदान का लाभ दिया जा सकता है, यह विषय बहुत विवाद का विषय था। राज्य ने जूनियर हाई स्कूलों के साथ-साथ हाई

स्कूल और इंटरमीडिएट संस्थानों से संलग्न प्राथमिक वर्गों को धन प्रदान करने के अपने दायित्व का निर्वाह नहीं किया। हालाँकि, इसमें कोई संदेह नहीं था कि निजी संस्थानों द्वारा संचालित सीनियर बेसिक या जूनियर हाई स्कूलों को हमेशा अनुदान सहायता और उनके शिक्षकों को राज्य अनुदान द्वारा समर्थित वेतन का हकदार माना जाता था।

22. अनुदान सहायता के तहत लाए गए जूनियर हाई स्कूलों के शिक्षकों को पारिश्रमिक का सुचारू और समय पर भुगतान सुनिश्चित करने के लिए, राज्य ने उत्तर प्रदेश जूनियर हाई स्कूल (शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1978 (संक्षेप में, '1978 का अधिनियम') लागू किया। इसी तरह, निजी प्रबंधन द्वारा स्थापित और संचालित हाई स्कूल और इंटरमीडिएट संस्थानों के शिक्षकों और कर्मचारियों को वेतन के भुगतान के लिए, जिन्हें राज्य के रखरखाव अनुदान द्वारा समर्थित किया गया था, उत्तर प्रदेश हाई स्कूल और इंटरमीडिएट कॉलेज (शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1971 अधिनियमित किया गया। जब छठी कक्षा से ऊपर की कक्षाओं को पढ़ाने वाले स्कूलों की बात आती है तो राज्य द्वारा शिक्षा के अपने संसाधनों को निजी हाथों के साथ साझा करने के बारे में कोई मुद्दा नहीं होता है। जो भी मुद्दे उठे वे इन जूनियर हाई स्कूलों, हाई स्कूलों या इंटरमीडिएट कॉलेजों के संलग्न प्राथमिक वर्गों के संबंध में थे, जिन्हें राज्य अनुदान सहायता देने के लिए अनिच्छुक था।

23. राज्य को प्राथमिक शिक्षा यानी कक्षा I से V तक के वित्तपोषण को निजी प्रबंधन के हाथों में बहाल करने के लिए मजबूर करने के प्रयासों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **उन्नी कृष्णन, जे.पी. और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, (1993) 1 एससीसी 645** के मामले में दिए गए निर्णय के बाद जोड़ा गया। **उन्नी कृष्णन** (ऊपरोक्त) के मामले में, प्राथमिक शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार माना गया। 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का विचार रखा गया। **हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम एच.पी. राज्य मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त स्कूल प्रबंध समितियाँ और अन्य, (1995) 4 एससीसी 507** के मामले में इसे दोहराया गया। इस सिद्धांत की 11 न्यायाधीशों की संविधान पीठ द्वारा **टी.एम.ए. पाई फाउंडेशन और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य, (2002) 8 एससीसी 481**, के मामले में गहन जांच की गई जिसमें **उन्नी कृष्णन** के मामले में दिया गया सिद्धान्त कि प्राथमिक शिक्षा एक मौलिक अधिकार है, का अनुमोदन किया गया।

24. सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों के माननीय न्यायाधीश महोदय के क्रमिक निर्णयों के माध्यम से किए गए महान संवैधानिक प्रगति का उल्लेख करना अधिक लाभदायक नहीं होगा, लेकिन यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इन सभी के फलस्वरूप संविधान (छियासीवाँ संशोधन) अधिनियम, 2002 हुआ, जिसने अनुच्छेद 21-क को दिनांक 01.04.2010 से अध्याय III में शामिल किया गया । संविधान का अनुच्छेद 21-क इस प्रकार है:

अनुवादित

"21ए. शिक्षा का अधिकार.- राज्य छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा उस तरीके से प्रदान करेगा जैसा राज्य, कानून द्वारा निर्धारित करे।

25. अनुच्छेद 21-क के लागू होने के समसामयिक रूप से, बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (संक्षेप में, अधिनियम सं. 35, सन् 2009) भी दिनांक 01.04.2010 से प्रवृत्त हुआ। इसने 6-14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के राज्य के दायित्व के क्षितिज को बदल दिया। इसने कक्षा I से V तक शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों को अपने दायरे में ले लिया। इसमें न केवल संबंधित आयु वर्ग के बच्चों का हित शामिल था, बल्कि उन प्रबंधनों का भी हित शामिल था जो निर्दिष्ट आयु वर्ग के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों की स्थापना और प्रबंधन कर रहे थे। इसका असर उन शिक्षकों के हित पर भी पड़ा, जो इस आयु वर्ग के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के कार्य में लगे थे।

26. संवैधानिक क्षितिज पर इन सभी विकासों के बावजूद, उत्तर प्रदेश राज्य 6-14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के अपने दायित्वों को स्वीकार करते हुए, कक्षा I से V में पढ़ने वाले छात्रों को पढ़ाने वाले संस्थानों पर एकाधिकार स्थापित करने के अपने दृष्टिकोण पर दृढ़ था। उत्तर प्रदेश राज्य प्राथमिक वर्गों, यानी कक्षा I से V तक के छात्रों को पढ़ाने वाले निजी संस्थानों के साथ संसाधनों को साझा नहीं करना चाहता था, हालांकि, जैसा कि पहले ही कहा गया है, कक्षा VI से VIII के संबंध में इसकी एक अलग कानूनी नीति थी। जूनियर हाई स्कूलों के संलग्न प्राथमिक वर्गों को सहायता अनुदान देने से इनकार करने के उत्तर प्रदेश राज्य के रुख के कारण **विनोद शर्मा एवं अन्य बनाम शिक्षा निदेशक (बेसिक) उ.प्र. और अन्य, (1998) 3 एससीसी 404,** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय आया जिसमें एक मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूल के संलग्न प्राथमिक अनुभाग के शिक्षकों को 1978 के अधिनियम के तहत राज्य अनुदान द्वारा समर्थित वेतन प्राप्त करने का हकदार माना गया था।

27. उत्तर प्रदेश राज्य ने कक्षा I से V तक शिक्षा प्रदान करने वाले निजी संस्थानों के साथ अपने संसाधनों को साझा करने के लिए मजबूर करने के निजी संस्थानों के प्रबंधन और शिक्षकों के प्रयास का फिर से विरोध किया। राज्य ने जूनियर बेसिक स्कूलों के बीच अपनी नीतियों में अंतर पर जोर दिया, जैसा कि इसके क़ानून में बताया गया है अर्थात एक ओर जूनियर हाई स्कूल और दूसरी ओर जूनियर हाई स्कूल, अर्थात् पहले वाले में कक्षा I से V और दूसरे वाले में कक्षा VI से VIII को पढ़ाने वाले स्कूलों के बीच। इससे सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ को **उ.प्र. राज्य और अन्य बनाम पवन कुमार दिवेदी और अन्य, (2006) 7 एससीसी 745** के मामले में **विनोद शर्मा** (ऊपरोक्त) में दिए गए निर्णय की सत्यता पर संदेह हुआ और मामले को तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष रखने का निर्देश दिया गया क्योंकि **विनोद शर्मा** का मामला तीन माननीय न्यायाधीशों की खंडपीठ द्वारा निर्णीत था। **पवन कुमार दिवेदी** (ऊपरोक्त) में मामले को तीन माननीय न्यायाधीशों की पीठ को सौंपने के सर्वोच्च न्यायालय के आदेश में उत्तर प्रदेश

अनुवादित

राज्य का रुख संक्षेप में सामने आया , जहां यह धारित किया गया :

"**20**. इस तथ्य पर ध्यान देते हुए कि "जूनियर बेसिक स्कूल" और "जूनियर हाई स्कूल" के साथ अलग-अलग व्यवहार किया जाता था, उच्च न्यायालय और उसके बाद, यह न्यायालय इस तथ्य से प्रभावित हुआ कि कुछ स्कूल कक्षा I से X तक की शिक्षा एक ही रूप में प्रदान करते थे। हालाँकि, इकाई को अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया गया था, जैसे, प्राथमिक अनुभाग, जूनियर हाई स्कूल अनुभाग, जिन्हें कक्षा I से VIII तक जूनियर बेसिक अनुभाग बनाने के लिए एक साथ जोड़ा गया था, और हाई स्कूल अनुभाग में कक्षा IX और कक्षा X शामिल थे। वास्तव में, इन अपीलों में से एक में जहां एक मान्यता प्राप्त संस्कृत संस्थान शामिल है, उक्त संस्थान प्राथमिक अनुभाग, हाई स्कूल अनुभाग, इंटरमीडिएट अनुभाग और बीए अनुभाग के लिए शिक्षा प्रदान कर रहा है। इस प्रकार महाविद्यालय संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से संबद्ध मान्यता संस्थान में कक्षा I से स्नातक स्तर तक शिक्षा प्रदान कर रहा है। संस्था की ओर से डॉ. पाडिया द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उक्त संस्था विभिन्न वर्गों वाली एक इकाई है और संस्था के शिक्षक विभिन्न वर्गों के नहीं बल्कि संस्था के ही शिक्षक हैं और परिणामस्वरूप उन लोगों के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है। यह वास्तव में विनोद शर्मा के मामले में दिए गए तर्कों में से एक था जिसे इस न्यायालय ने स्वीकार कर लिया।

21. हालाँकि, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय और इस न्यायालय दोनों ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया है कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा को जूनियर हाई स्कूल स्तर से अलग कर दिया गया है और अलग-अलग अधिनियमों के तहत इसे एक बोर्ड को सौंप दिया गया है। उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 की धारा 3 के तहत उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड का गठन किया गया था और उसी बोर्ड को 1975 की नियमावली में पांचवी कक्षा तक शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों के रूप में संदर्भित "जूनियर बेसिक स्कूलों" पर नियंत्रण रखने का अधिकार सौंपा गया था।

22. हमारे विचार में, विधायिका ने "जूनियर बेसिक स्कूल" और "जूनियर हाई स्कूल" के बीच एक ईमानदार अंतर बनाया है और उन्हें उत्तर प्रदेश राज्य में "जूनियर बेसिक शिक्षा" के दो अलग-अलग घटकों के रूप में माना है। तदनुसार, पहले के सरकारी आदेशों को ध्यान में रखते हुए, वेतन भुगतान अधिनियम, 1978 ने 1978 के अधिनियम के दायरे में प्राथमिक वर्गों और/या अलग प्राथमिक विद्यालयों को शामिल नहीं किया था।

23. बेशक, राज्य सरकार की ओर से यह स्वीकार किया गया है कि उन 393 स्कूलों के संबंध में छूट दी गई थी जो 1973 से पहले से संचालित हो रहे थे और शिक्षकों को राज्य सरकार द्वारा लगातार उनके वेतन का भुगतान किया गया था। उक्त स्कूलों के मामले में, राज्य सरकार ने ऐसे स्कूलों के प्राथमिक अनुभाग के शिक्षकों के वेतन का भुगतान जारी रखने का निर्णय लिया।

24. उपरोक्त के अलावा, उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दिनेश द्विवेदी द्वारा यह भी कहा गया कि

अनुवादित

मान्यता प्राप्त प्राथमिक संस्थानों के शिक्षकों के वेतन का भुगतान राज्य की वित्तीय स्थिति और ऐसा भुगतान करने की क्षमता के अनुरूप होना चाहिए।

25. संबंधित पक्षों की दलीलों को ध्यान में रखते हुए विनोद शर्मा केस [विनोद शर्मा बनाम शिक्षा निदेशक (बेसिक) उ.प्र., (1998) 3 एससीसी 404] के मामले में निर्णीत यह मुद्दा कि मान्यता प्राप्त जूनियर बेसिक स्कूलों, जूनियर हाई स्कूलों और हाई स्कूलों के प्राथमिक वर्गों के शिक्षक वेतन भुगतान अधिनियम, 1978 के तहत अपने वेतन के भुगतान के हकदार थे, पुनर्विचार के योग्य है।

28. पवन कुमार दिवेदी के मामले में वृहद पीठ को किया गया संदर्भ अंततः सर्वोच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ के समक्ष विचार के लिए आया। अंततः मुद्दा यह था कि क्या एक जूनियर हाई स्कूल जिसे कक्षा VI से VIII के लिए मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त थी, बाद में, एक प्राथमिक अनुभाग या जूनियर बेसिक स्कूल अनुभाग, यानी कक्षा I से V तक जोड़ सकता है और जूनियर हाई स्कूल के अभिन्न अंग के रूप में राज्य से इसके लिए अनुदान सहायता का दावा कर सकता है। संविधान पीठ के न्यायाधीश महोदय ने **विनोद शर्मा** के मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण का अनुमोदन किया और **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम पवन कुमार दिवेदी और अन्य, (2014) 9 एससीसी 692** में धारित किया कि यदि संस्थान एक इकाई है, तो अलग मान्यता प्राप्त करने के बाद, मौजूदा जूनियर हाई स्कूल में स्थापित होने पर जूनियर हाई स्कूल में कक्षा I से V तक अनिवार्य रूप से शामिल होगा। जूनियर बेसिक या प्राइमरी स्कूलों और जूनियर हाई स्कूलों के बीच अंतर को मंजूरी नहीं दी गई थी और यह माना गया कि 1978 के अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार देय अनुदान सहायता के विस्तार के उद्देश्य से उन्हें एक इकाई के रूप में माना जाना चाहिए। **पवन कुमार दिवेदी** (ऊपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ के निर्णय में निम्नवत धारित किया गया:

"**39.** अपीलकर्ताओं की ओर से, 1978 की नियमावली में "जूनियर हाई स्कूल" की परिभाषा पर भारी निर्भरता रखी गई है। क्या 1978 की नियमावली में "जूनियर हाई स्कूल" की परिभाषा 1978 के अधिनियम में होने वाली समान अभिव्यक्ति को नियंत्रित करती है? हम ऐसा नहीं सोचते। 1978 की नियमावली के नियम 2 (e) में "जूनियर हाई स्कूल" की परिभाषा 1978 के अधिनियम में स्पष्ट या परोक्ष रूप से शामिल नहीं की गई है। व्याख्या का सिद्धांत कि किसी क़ानून द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में बनाए गए किसी नियम या उप-कानून में प्रयुक्त अभिव्यक्ति का वही अर्थ होना चाहिए जो क़ानून के तहत उसे सौंपा गया है, वर्तमान स्थिति जैसी स्थिति में इसका कोई उपयोग नहीं होता है जहां अभिव्यक्ति का क़ानून में स्वयं ही निर्धारित किया जाना है। जाहिर है कि किसी अलग क़ानून के तहत बने नियमावली की मदद से ऐसा नहीं किया जा सकता।

40. 1978 के अधिनियम की धारा 2 (j) में कहा गया है कि 1972 के अधिनियम में परिभाषित और इस अधिनियम में परिभाषित नहीं किए गए शब्दों और अभिव्यक्तियों के वही अर्थ होंगे जो उन्हें 1972 के अधिनियम में दिए गए हैं। लेकिन, 1972 का अधिनियम "जूनियर हाई स्कूल" पद को भी परिभाषित नहीं करता है, यह केवल इसे

अनुवादित

परीक्षा के रूप में संदर्भित करता है। अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुनील गुप्ता ने क़ानून की व्याख्या के सिद्धांत को लागू करने की मांग की कि किसी क़ानून के तहत बनाए गए नियमों को निर्माण और दायित्व के सभी उद्देश्यों के लिए ठीक उसी तरह माना जाना चाहिए जैसे कि वे अधिनियम में थे और कानून के अधीन वही प्रभाव दिया जाना चाहिए जैसा कि अधिनियम में निहित है, और निर्माण और दायित्व के सभी उद्देश्यों के लिए न्यायिक रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। इस सिद्धांत का प्रयोग गलत है। सबसे पहले, क्योंकि हम 1972 के अधिनियम में किसी पद के निर्माण पर विचार नहीं कर रहे हैं जिसके तहत 1978 की नियमावली बनाई गई है। दूसरी, और अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है कि एक अलग और विशिष्ट क़ानून के तहत बनाए गए नियमों को निर्माण के उद्देश्यों के लिए माना जाना चाहिए जैसे कि वे अधिनियम का हिस्सा थे। हमारे विचार में, 1978 की नियमावली में "जूनियर हाई स्कूल" की परिभाषा को 1978 के अधिनियम के निर्माण और दायित्व के प्रयोजनों के लिए न्यायिक रूप से ध्यान में नहीं रखा जा सकता है।

41. हम श्री सुनील गुप्ता के इस कथन से भी सहमत नहीं हैं कि चूंकि पद "जूनियर हाई स्कूल" को 1978 के अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है, इसलिए इस सिद्धांत को लागू करके 1978 की नियमावली से इसका अर्थ सुनिश्चित किया जा सकता है कि जब बाद के क़ानून में एक पद अस्पष्ट है, इसका अर्थ वर्तमान उद्देश्य के लिए समान विषय-वस्तु पर विचार करने वाले पूर्व क़ानून या वैधानिक उपकरण में इसके उपयोग और/या अर्थ से पता लगाया जा सकता है। व्याख्या के उपरोक्त सिद्धांत पर अधिक चुनौती नहीं है। प्रश्न वर्तमान मामले में इसकी प्रयोज्यता का है। 1978 की नियमावली 1972 के अधिनियम के तहत राज्यपाल द्वारा बनाए गए हैं, जो किसी मान्यता प्राप्त स्कूल के शिक्षकों और कर्मचारियों को वेतन भुगतान के पहलू से बिल्कुल भी संबंधित नहीं हैं। राज्य विधानमंडल ने वेतन के भुगतान के लिए एक अलग अधिनियम 1978 का अधिनियम बनाया है। 1978 की नियमावली में "जूनियर हाई स्कूल" की परिभाषा "जूनियर हाई स्कूल" पद के दायरे को समाप्त नहीं करती है। इसके अलावा, बाद के अधिनियम का अर्थ लगाने के लिए किसी पूर्व नियम की सहायता नहीं ली जा सकती।

42. यहां यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि मान्यता प्राप्त जूनियर हाई स्कूल तीन प्रकार के हो सकते हैं:

(मैं) कक्षा I से VIII अर्थात कक्षा I से V (जूनियर बेसिक स्कूल) और इसी प्रकार कक्षा VI से VIII (सीनियर बेसिक स्कूल);

(द्वितीय) उपरोक्त के अनुसार एक स्कूल और हाई स्कूल या इंटरमीडिएट मानक में अपग्रेड किया गया और;

(तृतीय) कक्षा VI से VIII (सीनियर बेसिक स्कूल) जिसमें प्रारंभ में कोई जूनियर बेसिक स्कूल (कक्षा I से V) न हो :

42.1. जहां तक जूनियर हाई स्कूलों की पहली दो श्रेणियों का संबंध है, 1978 के अधिनियम की धारा 10 की प्रयोज्यता कोई कठिनाई पैदा नहीं करती है। अपीलों के इस समूह में जिस पर बहस केन्द्रित है, वह स्कूलों की

तीसरी श्रेणी के संबंध में है जहां कक्षा I से V तक को उन स्कूलों में मान्यता प्राप्त करने के बाद जोड़ा जाता है जो कक्षा VI से VIII में शिक्षा प्रदान करने के लिए मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त हैं। क्या ऐसे स्कूलों में प्राथमिक अनुभाग कक्षा I से V तक के शिक्षक 1978 के अधिनियम की धारा 10 के लाभ के हकदार हैं, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

42.2. जैसा कि देखा गया है, 14 वर्ष की आयु पूरी होने तक बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का राज्य का संवैधानिक दायित्व अब संदेह से परे है। खंड (xxvi) से जुड़ा नोट, शैक्षिक संहिता (संशोधित संस्करण 1958) के पैरा 1 में अन्य बातों के साथ-साथ प्रावधान है कि बेसिक स्कूलों में कक्षा I से VIII तक के एकल स्कूल शामिल हैं। हमारे विचार में, यदि एक जूनियर बेसिक स्कूल (कक्षा I से V) को किसी मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त सीनियर बेसिक स्कूल (कक्षा VI से VIII) में आवश्यक मान्यता प्राप्त करने के बाद जोड़ा जाता है, तो निश्चित रूप से ऐसा जूनियर बेसिक स्कूल एक स्कूल यानी बेसिक स्कूल जिसमें कक्षा I से VIII तक की पढ़ाई होती है, का अभिन्न अंग बन जाता है। 1978 के अधिनियम में पद "जूनियर हाई स्कूल" का उद्देश्य बुनियादी शिक्षा यानी आठवीं कक्षा तक की शिक्षा प्रदान करने वाले स्कूलों को संदर्भित करना है। जैसा कि राज्य के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है, हमें नहीं लगता कि "जूनियर हाई स्कूल" पद को संकीर्ण अर्थ देना उचित है। यह कि विधायिका ने जूनियर हाई स्कूल पद का उपयोग किया, न कि बेसिक स्कूल, जैसा कि 1972 के अधिनियम में परिभाषित, प्रयोग किया गया है, हमारे विचार में यह महत्वहीन है। हमने जो दृष्टिकोण अपनाया है, वह इस तथ्य से पुष्ट होता है कि 1978 के अधिनियम की धारा 2 (j) में, 1972 के अधिनियम में परिभाषित पदों को शामिल किया गया है।

43. उ.प्र. राज्य की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री पी.पी. राव का विषयगत स्कूल, अर्थात्, रियाज़ जूनियर हाई स्कूल (कक्षा VI से VIII) के संदर्भ में यह निवेदन कि, उक्त स्कूल शुरू में एक निजी मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त स्कूल था और प्राथमिक खंड (कक्षा I से V) अलग मान्यता प्राप्त करके प्रबंधन द्वारा बाद में खोला गया था। जो कि वित्तपोषित नहीं था, नियम 2(B) और नियम 4 के तहत परिभाषा के संदर्भ में, ऐसे प्राथमिक अनुभाग के शिक्षकों 1975 की नियमावली के तहत 1978 के अधिनियम की धारा 10 के लाभों के हकदार नहीं हैं, उस दृष्टि से हमें सही नहीं लगता जो हमने ऊपर कहा है। प्रथम चरण में उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया विनोद शर्मा [विनोद शर्मा बनाम शिक्षा निदेशक (बेसिक) उ.प्र., (1998) 3 एससीसी 404: 1998 एससीसी (एल एंड एस) 892] में अपनाया गया दृष्टिकोण कि संस्थान में पढ़ाई जाने वाली कक्षा I से VIII एक इकाई है, शिक्षक एक प्रबंधन और एक हेडमास्टर के तहत काम करते हैं और इसलिए, प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षकों को 1978 के अधिनियम के लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता है, को गलत नहीं कहा जा सकता है। बल्कि यह 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा संबंधी संवैधानिक योजना के अनुरूप है।

अनुवादित

44. हालाँकि, संदर्भ आदेश में, दो न्यायाधीशों की पीठ ने पाया कि विनोद शर्मा [विनोद शर्मा बनाम शिक्षा निदेशक (बेसिक) यूपी, (1998) 3 एससीसी 404: 1998 एससीसी (एल एंड एस) 892] मामले में पहले दौर में उच्च न्यायालय ने इसका मूल्यांकन नहीं किया कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा को जूनियर हाई स्कूल स्तर से अलग कर दिया गया है और अलग-अलग अधिनियमों के तहत 1972 अधिनियम की धारा 3 के तहत गठित बोर्ड को सौंपा गया है और वही बोर्ड जूनियर बेसिक स्कूलों पर नियंत्रण रखता है और यह एक सचेत अंतर बनाया गया था स्कूलों के दो समूहों के बीच विधायिका द्वारा और उन्हें दो अलग-अलग घटकों के रूप में माना जाता है और, इसलिए, विनोद शर्मा [विनोद शर्मा बनाम शिक्षा निदेशक (बेसिक) यूपी, (1998) 3 एससीसी 404: 1998 एससीसी (एल एंड एस) 892] मामले में सही दृष्टिकोण नहीं रखते हैं लेकिन हमारा मानना है कि संदर्भ क्रम में उल्लिखित विशेषताएं विनोद शर्मा [विनोद शर्मा बनाम शिक्षा निदेशक (बेसिक) यूपी, (1998) 3 एससीसी 404: 1998 एससीसी (एल एंड एस) 892] मामले में लिए गए दृष्टिकोण को दूषित नहीं करती हैं। हमें डॉ. एमपी राजू के इस तर्क में बल नजर आता है कि जिन स्कूलों में जूनियर बेसिक स्कूल और सीनियर बेसिक स्कूल अलग-अलग या एक साथ हैं, वे 1972 के अधिनियम के अनुसार एक ही बोर्ड यानी बेसिक शिक्षा बोर्ड के अधीन हैं। इसके अलावा, कोई भी अन्य दृष्टिकोण भेदभाव के आधार पर 1978 अधिनियम के प्रावधानों को असंवैधानिक बना सकता है। हमारे विचार में, ऐसी किसी भी व्याख्या से बचना चाहिए जो प्रावधान की असंवैधानिकता का कारण बन सकती है। हमारा मानना है कि, जैसा कि होना ही चाहिए, जूनियर हाई स्कूल में आवश्यक रूप से कक्षा I से V तक की कक्षाएँ शामिल होती हैं, जब वे अलग से मान्यता प्राप्त करने के बाद किसी सीनियर बेसिक स्कूल (कक्षा VI से VIII) में खोली जाती हैं और जिसके लिए सरकार द्वारा सहायता अनुदान का कोई अलग आदेश नहीं हो सकता है।"

29. इस निर्णय के कारण उत्तर प्रदेश राज्य को क्रमशः अधिनियम, 1972 और अधिनियम, 1978 को यूपी अधिनियम संख्या 2 सन् 2018 और यूपी अधिनियम संख्या 3 सन् 2018 द्वारा संशोधित करना पड़ा। अधिनियम, 1972 को दिनांक 19 अगस्त 1972 से पूर्वव्यापी रूप से यूपी अधिनियम संख्या 2 सन् 2018 द्वारा संशोधित किया गया था और उस संशोधन द्वारा, जूनियर बेसिक स्कूल और जूनियर हाई स्कूल की परिभाषा को अधिनियम, 1972 की धारा 2 की उप-धारा (1) के खंड (डी-1) और (डी-2) के माध्यम से अधिनियम में पेश किया गया था। धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (डी-1) और (डी-2) इस प्रकार है:

"(डी-1) "जूनियर बेसिक स्कूल" का मतलब एक बेसिक स्कूल है जिसमें पांचवीं कक्षा तक शिक्षा प्रदान की जाती है।

(डी-2) "जूनियर हाई स्कूल" का अर्थ एक बुनियादी स्कूल है जिसमें कक्षा छह से कक्षा आठ तक लड़के या लड़कियों या दोनों को शिक्षा प्रदान की जाती है।"

30. इसी प्रकार, अधिनियम,1978 को यूपी अधिनियम संख्या 3 सन् 2018 द्वारा दिनाक

अनुवादित

22.01.1979 से पूर्वव्यापी रूप से संशोधित किया गया था ताकि धारा 2 में खंड (ईई) को शामिल किया जा सके, जिसमें लिखा है:

"(ईई) "जूनियर हाई स्कूल" का अर्थ एक ऐसा संस्थान है जो हाई स्कूल या इंटरमीडिएट कॉलेज से अलग है जिसमें कक्षा छह से कक्षा आठ तक लड़कों या लड़कियों या दोनों को शिक्षा प्रदान की जाती है।"

31. यूपी अधिनियम संख्या 2 सन् 2018 और यूपी अधिनियम संख्या 3 सन् 2018 द्वारा लाए गए उपरोक्त संशोधनों को **सी/एम आदर्श ग्रामीण विद्यालय सोनकपुर, हरथला और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य, रिट-ए संख्या 20751 सन् 2019** में इसके विरूद्ध इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, और याचिकाओं का एक समूह, जिसकी सुनवाई दिनांक 14.03.2022 को इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच द्वारा की गई और निर्णय लिया गया। **सी/एम आदर्श ग्रामीण विद्यालय 2022 एससीसी ऑनलाइन ऑल 271** मामले का निर्णय है। डिवीजन बेंच ने संशोधित अधिनियमों की वैधता का आकलन करने के उद्देश्य से संस्थानों को वर्गीकृत किया और इन्हें रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 5 में उल्लिखित चार श्रेणियों में रखा। **सी/एम आदर्श ग्रामीण विद्यालय** में संस्थानों की श्रेणियों को रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 5 को पुन: प्रस्तुत करके सबसे अच्छी तरह से समझा जा सकता है, जिसमें लिखा है:

"5. यहां याचिकाकर्ता कक्षा I से VIII तक शिक्षा प्रदान करने वाले मान्यता प्राप्त संस्थान हैं। विद्वान महाधिवक्ता की दलीलों के मद्देनजर उन्हें चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

श्रेणी ए-गैर सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूल

श्रेणी बी-प्रथम और जूनियर हाई स्कूल को प्राइमरी सेक्शन की मान्यता दी गई।

श्रेणी सी-जूनियर हाई स्कूल को पहले मान्यता दी गई और बाद में प्राइमरी सेक्शन संलग्न किए गए।

श्रेणी डी-मान्यता प्राप्त प्राथमिक और जूनियर हाई स्कूल गलत आदेशों से सहायता अनुदान प्राप्त कर रहे हैं।"

32. संशोधन अधिनियमों के प्रावधानों को डिवीजन बेंच द्वारा केवल श्रेणी बी और सी के स्कूलों के लिए यह मानते हुए पढ़ा गया कि संशोधनों ने पवन कुमार दिवेदी मामले में संविधान पीठ के निर्णय के आधार को आंशिक रूप से हटा दिया है, संपूर्ण रूप से नहीं। संशोधनों को निम्नलिखित शब्दों में पढ़ा गया:

"208.उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमारे निष्कर्ष हैं:-

1. चूंकि हमने पाया है कि वेतन भुगतान अधिनियम 1978 में संशोधन लाने वाले यूपी अधिनियम संख्या 3 सन् 2018 को संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित समानता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करते हुए भेदभावपूर्ण होने के रूप में चुनौती दी गई है और श्रेणी 'बी' और 'सी' में आने वाले याचिकाकर्ता संस्थानों के शिक्षकों के संदर्भ में ऐसा पाया गया है, इस आधार पर रिट याचिकाओं की विचारणीयता पर आपत्ति है कि याचिकाकर्ता के संस्थानों को नहीं कहा जा सकता है संशोधनों द्वारा पूर्वाग्रहित होना पोषणीयता नहीं है, क्योंकि यह स्थापित कानून है कि ऐसे मामलों में जहां मौलिक अधिकार के उल्लंघन का दावा/आरोप लगाया जाता है, किसी

भी पूर्वाग्रह को साबित करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे निष्कर्ष में, रिट याचिकाकर्ताओं को इस आधार पर गैर-अनुकूलित नहीं किया जा सकता है कि न्यायालय के समक्ष कार्रवाई उनके द्वारा नियोजित शिक्षकों द्वारा नहीं की गई है; और यह कि प्रबंधन के पास सहायता अनुदान मांगने का मौलिक अधिकार तो दूर कोई कानूनी अधिकार भी नहीं है, चाहे जूनियर हाई स्कूल की स्थापना से पहले या बाद में स्थापित और मान्यता प्राप्त भेदभावपूर्ण थी, यह संशोधन अधिनियम '2017 (यूपी अधिनियम संख्या 3 वर्ष 2018) को असंवैधानिक होने के लिए असुरक्षित बनाता है।

इसके अलावा, याचिकाकर्ता संस्थानों के लिए अनुदान सहायता मांगने वाले उनके आवेदनों की अस्वीकृति के आदेशों को चुनौती देते हुए संशोधन अधिनियम 2017 की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने का विकल्प खुला था क्योंकि उनके दावे की अस्वीकृति का एकमात्र आधार चुनौती के तहत संशोधन हैं। यह तय है कि राज्य या कार्यपालिका की किसी भी कार्रवाई या आदेश को चुनौती देते समय, सभी संभावित आपत्तियों को एक ही कार्रवाई में उठाया जाना चाहिए और कार्रवाई के एक ही कारण के लिए अलग-अलग रिट याचिकाओं पर विचार नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, याचिकाकर्ता प्रबंधन के पास उनके अभ्यावेदन को खारिज करने वाले निर्णयों की शुद्धता को चुनौती देने के लिए संशोधन अधिनियम 2017 की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने के अलावा कोई विकल्प नहीं है, क्योंकि उनके दावों को अस्वीकार करने का एकमात्र आधार संशोधन अधिनियमों 2017 के माध्यम से बहिष्कार है।

इस प्रकार, इस बैच में रिट याचिकाओं को, रिट याचिकाकर्ताओं के स्थान के संबंध में राज्य की आपत्ति पर, शुरुआत में ही खारिज नहीं किया जा सकता है।

(2) यूपी अधिनियम संख्या 3 सन् 2018 वेतन भुगतान अधिनियम 1978 में संशोधन ला रहा है, जिसे मान्यता अधिनियम कहा गया है, उसका पवन कुमार दिवेदी मामले में संवैधानिक पीठ के फैसले के पूरे आधार को नष्ट करने का कोई प्रभाव नहीं है, जिसने विनोद शर्मा मामले में फैसले को बरकरार रखा था। ऐसे संस्थानों की अभिन्नता या एकता का मुद्दा जिसमें प्राथमिक खंड (जूनियर बेसिक स्कूल) (कक्षा I से V) और सीनियर बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (कक्षा VI से VIII) दोनों हैं, जैसा कि संविधान पीठ द्वारा प्रतिपादित किया गया है, ध्यान दें यूपी की शिक्षा संहिता (संशोधन संस्करण 1958) के अध्याय I में खंड (xxvi) भाग -1 को यूपी अधिनियम संख्या 3, 2018 (संशोधन अधिनियम '2017) के आधार पर समाप्त नहीं किया जा सकता है।

(3) वेतन भुगतान अधिनियम 1978 की धारा 2(ईई) में पूर्वव्यापी प्रभाव से, यानी मूल अधिनियम के लागू होने की तारीख, यानी 22.01.1979 में "जूनियर हाई स्कूल" की परिभाषा की शुरूआत के परिणामस्वरूप शत्रुतापूर्ण भेदभाव हुआ है। जूनियर हाई स्कूल के प्राथमिक वर्गों (कक्षा I से V) में शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों के शिक्षकों को राज्य निधि से अनुदान मिलता है। ऐसा वर्गीकरण समानता को नकारता है क्योंकि यह वर्गीकरण के दोहरे परीक्षण को संतुष्ट नहीं कर सकता है जो एक समझदार अंतर

अनुवादित

पर आधारित है जो व्यक्तियों या चीजों को अलग करता है जिन्हें एक साथ समूहीकृत किया जाता है या जिन्हें समूह से बाहर रखा जाता है और उस अंतर का वांछित वस्तु के साथ तर्कसंगत संबंध होता है, क़ानून द्वारा प्राप्त किया जाना है।

राज्य हमारे सामने वह तर्क नहीं ला सका जिस पर वर्गीकरण आधारित है और जो इसे प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से सह-संबंधित करता है।

4. 22.01.1979 को वेतन भुगतान अधिनियम 1978 नामक मूल अधिनियम लाने में विधायिका का इरादा सहायता प्राप्त गैर-सरकारी जूनियर हाई स्कूलों के शिक्षकों और गैर-शिक्षण कर्मचारियों की उनके वेतन का समय पर भुगतान न होने के कारण होने वाली कठिनाइयों का समाधान करना था, ऐसी शिकायत सही पाए जाने पर प्रबंधन के खिलाफ अधिनियम के तहत कार्रवाई करने को कहा गया है। अधिनियम, 1978 में "जूनियर हाई स्कूल" की परिभाषा को शामिल करने के लिए संशोधन अधिनियम 2017 लाने का उद्देश्य, यह स्पष्ट करना है कि मूल अधिनियम राज्य निधि से सहायता प्राप्त करने वाले जूनियर हाई स्कूल (कक्षा VI से VIII तक शिक्षा प्रदान करने वाले) के शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों को वेतन के भुगतान के मामले को नियंत्रित करता है। 1978 के अधिनियम को अधिनियमित करने के लिए विधायिका के इरादे को याद करना करना, वह संदर्भ जिसमें अधिनियम में विनियमन प्रावधान हुआ और जिस उद्देश्य के लिए मूल अधिनियम बनाया गया था, वह "सीमा" जिस तक पद "जूनियर हाई स्कूल" संशोधन अधिनियम 2017 (यूपी अधिनियम संख्या 3, 1978) में मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूल के प्राथमिक वर्गों को छोड़कर सीमित किया है, एक स्पष्ट अंतर के आधार पर नहीं है जो जो 'एक संस्था' की कक्षा VI से VIII के शिक्षकों को कक्षा I से V के शिक्षकों से अलग करता है जो एक सजातीय वर्ग में एक साथ समूहीकृत हैं और इन्हें विभेदित नहीं किया जा सकता है। यह नहीं कहा जा सकता कि जो अंतर पैदा करने की कोशिश की गई है उसका मूल अधिनियम 1978 या संशोधन अधिनियम 2017 द्वारा हासिल किए जाने वाले उद्देश्य से कोई तर्कसंगत संबंध है।

5. चूंकि हमारे द्वारा इस चुनौती पर केवल एक वर्ग के संस्थानों, अर्थात् मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूलों, जिनके प्राथमिक खंड स्कूलों के अभिन्न अंग के रूप में हैं, इसलिए संपूर्ण संशोधन अधिनियम 2017 को असंवैधानिक नहीं बनाया जा सकता है।

यू.पी. अधिनियम संख्या 3/2018 द्वारा सम्मिलित किए गए 1978 के अधिनियम की धारा 2 (ईई) में शब्दों को पढ़कर "एक बेसिक स्कूल सहित जिसमें जूनियर और सीनियर बेसिक स्कूल दोनों स्थापित हैं या कक्षा I से VIII तक 'एकल इकाई' के रूप में चलाए जा रहे हैं", जिस उद्देश्य के लिए मूल अधिनियम अर्थात् वेतन भुगतान अधिनियम 1978 अधिनियमित किया गया था, उसे बहुत अच्छी तरह से प्राप्त किया जा सकता है। क़ानून में पढ़ने के सिद्धांत को लागू करना, क़ानून में सीमा के शब्दों को इस तरह से पढ़ा जाना क़ानून को असंवैधानिक घोषित होने से बचाता है। इस प्रकार, यह घोषित किया जाता है कि प्राथमिक अनुभाग जो जूनियर हाई स्कूलों का अभिन्न अंग हैं, चाहे मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूलों की स्थापना से पहले या बाद में स्थापित किया गया

अनुवादित

हो, उन्हें यूपी अधिनियम संख्या 3/2018 द्वारा संशोधित वेतन भुगतान अधिनियम '1978 के दायरे में लाना होगा। (संशोधन अधिनियम' 2017)।

हालाँकि, यह स्पष्ट किया गया है कि ऐसी संस्था की अभिन्नता या एकता के मुद्दे की जांच उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर प्रत्येक मामले में उस विशेष संस्था के संबंध में की जाएगी। इसका मतलब यह है कि क्या कोई विशेष संस्था उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा पवन कुमार दिवेदी8के मामले में अनुमोदित विनोद शर्मा6 के मामले में तैयार किए गए परीक्षण को पूरा करती है, यह प्रत्येक व्यक्तिगत संस्था के संबंध में निर्धारित किया जाने वाला तथ्य का मुद्दा होगा। जय राम सिंह के मामले13 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विकसित 'समग्र अभिन्नता' के सिद्धांत पर 'किसी संस्था की एकता' का परीक्षण, जैसा कि हमारे द्वारा अनुमोदित है, को मूल्यांकन करते समय लागू किया जाना चाहिए कि एक संस्था कब विभिन्न वर्गों या विभिन्न खंडों से बनी "एक इकाई" हो सकती है। जैसा कि जय राम सिंह के मामले 13 में कहा गया है, 'समग्र अभिन्नता' की कसौटी पर खरा उतरने के लिए, यह स्थापित किया जाना चाहिए कि संस्था विभिन्न घटकों के एक मिश्रण के रूप में मौजूद है जो एक एकल संपूर्ण (इकाई) बनाने के लिए एक साथ अमिट रूप से जुड़े हुए हैं। विनोद शर्मा 6 में प्रतिपादित एक सामान्य परिसर की आवश्यकता को एक निर्धारक कारक के रूप में मान्यता नहीं दी जा सकती है। "समग्र अभिन्नता" के मुद्दे का उत्तर सभी प्रासंगिक कारकों के संचयी विचार पर देना होगा, जिन्हें निर्णय लेने के समय संस्थानों द्वारा सक्षम प्राधिकारी के समक्ष लाया जाना आवश्यक है।

6. 'वेतन भुगतान अधिनियम 1978 में 2017 का संशोधन' विनोद शर्मा6 मामले में शीर्ष अदालत और पवन कुमार दिवेदी8 मामले में संविधान पीठ के फैसले के आधार को केवल आंशिक रूप से हटाता है क्योंकि अभिव्यक्ति "जूनियर हाई स्कूल" अब न्यायालय द्वारा व्याख्या करने के लिये उपलब्ध नहीं है।

7. हम यह भी स्पष्ट कर सकते हैं कि यूपी अधिनियम संख्या 3/2018 में "जूनियर हाई स्कूल" की परिभाषा में उपरोक्त उल्लिखित शब्दों को पढ़ने के मद्देनजर, यूपी जूनियर हाई स्कूल (शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के वेतन का भुगतान) अधिनियम 1978 की धारा 2 में खंड (ईई) को सम्मिलित करने के लिए अधिनियमित किया गया है, यूपी बेसिक शिक्षा अधिनियम 1972 में संशोधन लाने वाले यूपी अधिनियम संख्या 2, 2018 की वैधता पर उतना ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए, जितना कि, आज तक संशोधित 1978 का अधिनियम की धारा 2 (ईई) में अभिव्यक्ति "जूनियर हाई स्कूल" के अर्थ पर, 1978 के अधिनियम के प्रावधानों को नियंत्रित करेगा। यूपी अधिनियम संख्या 2/2018 द्वारा सम्मिलित 1972 अधिनियम की धारा 2 (डी-2) में उक्त अभिव्यक्ति का अर्थ, 1978 के अधिनियम के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक नहीं होगा। यूपी बेसिक शिक्षा अधिनियम 1972 में बेसिक स्कूल को दो श्रेणियों में विभाजित करने से यूपी अधिनियम संख्या 3/2018 द्वारा परिभाषा खंडों को शामिल करने से 1978 की धारा 2 (ईई) में अभिव्यक्ति "जूनियर हाई स्कूल"

अनुवादित

के अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यूपी अधिनियम संख्या 3/ 2018 द्वारा संशोधित अधिनियम, 1978 अधिनियम की धारा 2 (जे) के अनुसार किसी भी संभावित संघर्ष का ख्याल रखता है। यह स्पष्ट करता है कि अभिव्यक्ति के जो शब्द उ.प्र. में परिभाषित हैं। बेसिक शिक्षा अधिनियम' 1972 और 1978 अधिनियम में परिभाषित नहीं किए गए अर्थ उन्हें 1972' अधिनियम में दिए गए अर्थ दिए जाएंगे। यह स्पष्ट किया जाता है कि चूंकि हमने उक्त अधिनियम के उद्देश्य और उद्देश्य पर विचार करते हुए वेतन भुगतान अधिनियम 1978 (आज तक संशोधित) की धारा 2 (ईई) को पढ़ा है, इसलिए हमें अभिव्यक्ति का अर्थ नहीं मिला है। 1972' अधिनियम की धारा 2 (डी-2) में जूनियर हाई स्कूल' संशोधन अधिनियम सं. 3/2018 द्वारा प्रदान किए गए 1978' अधिनियम में उक्त अभिव्यक्ति को दिए गए अर्थ का विरोध करेगा, जैसा कि उपर विवरण दिया गया है।"

33. प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने वाले निजी संस्थानों को वित्त पोषित करने की राज्य की नीति के संबंध में सी/एम आदर्श ग्रामीण विद्यालय की खंडपीठ ने इस प्रकार टिप्पणी की है-

"90. यह प्रस्तुत किया गया है कि राज्य की पुरानी नीति निजी प्राथमिक संस्थानों को धन उपलब्ध नहीं कराना है। इस वर्गीकरण के पीछे तर्क यह है कि कक्षा I से V तक प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने वाले बड़ी संख्या में संस्थान अनुच्छेद 45 के तहत अपने संवैधानिक दायित्व के निर्वहन में राज्य या उसके उपकरणों द्वारा स्थापित और चलाए जा रहे हैं, जैसा कि यह उसके बाद संविधान के छियासीवें संशोधन और अनुच्छेद 21-ए के तहत पहले से था।, एक नीतिगत मामले के रूप में, राज्य सरकार ने उन संस्थानों को सहायता प्रदान की, जहाँ आवश्यकता थी। राज्य द्वारा स्थापित जूनियर हाई स्कूल कम संख्या में पाए गए हैं, इसलिए राज्य की आवश्यकता और निधि की उपलब्धता के अनुसार निजी संस्थानों को अनुदान देने का निर्णय लिया गया है। किसी शैक्षणिक संस्थान को चलाने के लिए राज्य निधि से सहायता लेने के लिए किसी व्यक्ति या प्रबंधन को कोई कानूनी अधिकार तो क्या मौलिक अधिकार भी प्रदान नहीं किया गया है। प्राथमिक संस्थानों को 1978 के अधिनियम के दायरे से बाहर करने के राज्य के नीतिगत निर्णय को वर्तमान मामले में अनुच्छेद 21-ए की कसौटी पर चुनौती दी गई है, जिसका उल्लंघन संस्थानों या उसके प्रबंधन द्वारा नहीं किया जा सकता है।

34. इन विकासों के अवलोकन से अपरिहार्य निष्कर्ष निकलेगा कि उत्तर प्रदेश राज्य, नीति के तहत, कक्षा I से V तक पढ़ने वाले छात्रों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने वाले निजी व्यक्तियों या संघों के साथ अपने संसाधनों को साझा करने की इच्छा नहीं रखता है। कोई भी व्यक्ति शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने के लिए स्वतंत्र है, लेकिन यह अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी को भी उस उद्यम को वित्तपोषित करने के लिए राज्य से संबद्धता या अनुदान सहायता मांगने का अधिकार नहीं है। अध्याय III में अनुच्छेद 21-ए की शुरूआत और 2009 के अधिनियम के अधिनियमन द्वारा इसके वैधानिक कार्यान्वयन के बावजूद ऐसा है।

35. यही कारण है कि राज्य ने अपने पूरक प्रत्युत्तर शपथपत्र दिनांक 24.03.2021 में यह रुख अपनाया है कि प्राथमिक शिक्षा विभाग द्वारा प्राथमिक संस्थानों के प्रबंधन के लिए राज्य द्वारा

मान्यता प्राप्त निजी संस्थानों को अनुदान सहायता की सूची में शामिल नहीं किया गया है। उपरोक्त प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ सं. 5 में यह निवेदन किया गया है कि बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा मान्यता प्राप्त निजी संस्थान, जो कक्षा आठवीं तक शिक्षा प्रदान कर रहे हैं (कक्षा छह से कक्षा आठ तक के छात्रों को पढ़ाने वाले जूनियर हाई स्कूलों का संदर्भ), को इसमें शामिल किया गया है। बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा सहायता अनुदान सूची, जो सचिव, बेसिक शिक्षा, उ.प्र. शासन द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 02.12.2016 से स्पष्ट है। आगे का रुख यह है कि ऐसे संस्थानों में शिक्षकों की नियुक्ति उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (शिक्षकों की भर्ती और सेवा की शर्तें) नियम, 1978 (संक्षेप में, '1978 के नियम') द्वारा शासित होती है और इन शिक्षकों को 1978 के अधिनियम के तहत वेतन दिया जाता है।

36. संदर्भ के तहत प्रति शपथपत्र में राज्य का यह रुख है कि बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा जूनियर हाई स्कूलों को प्रदान किए गए 1978 के अधिनियम की धारा 2 (एफ) के तहत परिभाषित भरण-पोषण अनुदान निजी तौर पर प्रबंधित समाज कल्याण विभाग द्वारा वित्त पोषित प्राथमिक विद्यालय को प्रदान किए जाने वाले आवर्ती अनुदान से सामान्य रूप से अलग है। पैराग्राफ सं. 7 में यह दावा किया गया है कि समाज कल्याण विभाग प्राथमिक विद्यालयों को आवर्ती अनुदान प्रदान करता है जो 50% की संख्या में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के छात्रों को पढ़ाने वाले निजी संस्थान हैं। यह एक ऐसी चीज़ है जो बेसिक शिक्षा विभाग कभी भी किसी प्राथमिक संस्थान को प्रदान नहीं करता है। इसलिए, समाज कल्याण विभाग द्वारा प्रदान किया जाने वाला अनुदान ऐसे निजी तौर पर प्रबंधित संस्थानों में पढ़ाने वाले शिक्षकों के वेतन का प्रावधान करने तक सीमित है, जहां अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के छात्र निर्दिष्ट संख्या में पढ़ते हैं। समाज कल्याण विभाग को इस तरह के अनुदान को रोकने का अधिकार है और उनका दायित्व वेतन के भुगतान से अधिक कुछ भी नहीं है।

37. प्रत्यर्थीगण का यह भी कहना है कि चूंकि निजी शिक्षण संस्थानों में पढ़ाने वाले शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के लिए 1मार्च, 1977 से एक सामान्य भविष्य निधि योजना शुरू की गई है। विद्यालय प्रबंधन द्वारा कोषागार के माध्यम से भविष्य निधि योजना के तहत शिक्षकों के वेतन से प्रत्येक माह कटौती कर भविष्य निधि खाते में जमा किया जाता है। 1964 की नियमावली को लागू करने के उद्देश्य से भविष्य निधि की कटौती की कोई प्रासंगिकता नहीं है।

38. इसलिए, वास्तव में, जो मामला प्रतीत होता है वह यह है कि राज्य की नीति द्वारा प्राथमिक संस्थानों को वित्त पोषण या सहायता अनुदान के प्रावधान पर सामान्य प्रतिबंध है, जो विशेष रूप से जूनियर बेसिक स्कूल या कक्षा I से V तक शिक्षा प्रदान करते हैं। उक्त शिक्षा को राज्य ने इस आकांक्षा के साथ अपने हाथों में रखा है कि वे प्रत्येक बच्चे को कक्षा V तक आवश्यक प्राथमिक शिक्षा प्रदान कर सकें। राज्य ने अपने विवेक से सोचा है कि उन्हें निजी उद्यम के साथ संसाधनों को साझा नहीं करना चाहिए जहां व्यक्ति कक्षा I से V तक के बच्चों को पढ़ाने के लिए प्राथमिक संस्थान स्थापित करते हैं। यदि राज्य ने एक नीतिगत निर्णय लिया है कि वे

शिक्षा को वित्त पोषित नहीं करेंगे जहां निजी संस्थान स्थापित किए गए हैं, विशेष रूप से कक्षा I से V तक पढ़ाने के लिए, तो नियमावली 1964 के तहत राज्य को ऐसे निजी संस्थानों के सेवानिवृत्त शिक्षकों को पेंशन का समर्थन करने के लिए अनुदान सहायता देने के लिए मजबूर करने के लिए किसी को भी कोई अधिकार नहीं है। केवल इसलिए कि विशेष संख्या वाले एक निश्चित वर्ग के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने की शर्त पर समाज कल्याण विभाग द्वारा शिक्षकों को वेतन भुगतान का समर्थन करने के लिए एक आकस्मिक अनुदान प्रदान किया गया है।

39. ध्यान देने के लिए ही कहा गया है कि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी भी नागरिक को राज्य को निजी संस्थान को अनुदान देने के लिए मजबूर करने का कोई अधिकार नहीं है। बेशक, 6-14 आयु वर्ग के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार है और इसे कानून द्वारा निर्धारित तरीके से प्राप्त किया जाना चाहिए। 2009 का अधिनियम पूरी तरह से बिना सहायता प्राप्त निजी संस्थानों के कंधों पर भी इसे साझा करने का बोझ डालता है। 2009 के अधिनियम की धारा 12(1)(C) और 12(2) सपठित धारा 2(N)(iv) में दी गई स्कूल की परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि निजी गैर-सहायता प्राप्त संस्थानों पर उस कक्षा की कम से कम 25% संख्या, "आस-पड़ोस के कमजोर वर्ग और वंचित समूह के बच्चों" को कक्षा I में प्रवेश देने और इसके पूरा होने तक मुफ्त और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा देने का कानूनी दायित्व होता है।

40. अब, कक्षा I से V तक प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने वाले किसी भी निजी स्वामित्व या प्रबंधित संस्थान को वित्त पोषित करने के लिए राज्य की नीति की अनुपस्थिति में, याचिकाकर्ता समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्ग, जो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्य हैं, की आवश्यकताओं को पूरा करने वाले संस्थानों के एक विशेष वर्ग के शिक्षक हैं। जिन स्कूलों में याचिकाकर्ता पढ़ाते हैं, उन्हें दिया जाने वाला अनुदान जाहिर तौर पर बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा नहीं है, जिसकी केवल कक्षा I से V तक शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों को कोई अनुदान सहायता देने की कोई नीति नहीं है।

41. यह दूसरी बात है कि राज्य की नीति द्वारा आवर्ती अनुदान उनको दिया जाता है, जहां प्राथमिक अनुभाग जूनियर हाई स्कूल का एक अभिन्न अंग है। हालाँकि, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों तक शिक्षा का विस्तार करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, राज्य का समाज कल्याण विभाग अतीत में आवर्ती अनुदान सहायता की सुविधा प्रदान करता रहा है। यानी ऐसे कक्षा I से V तक बच्चों को पढ़ाने वाले प्राथमिक संस्थान, जहां न्यूनतम 50% बच्चे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से हैं। राज्य सरकार द्वारा यह नीति भी वर्ष 1994 के बाद बंद कर दी गयी है।

42. 5 अक्टूबर, 2006 दिनांकित एक ऑफिस मेमो है जिसे समाज कल्याण विभाग द्वारा जारी किया गया, जो इंगित करता है कि नीति 1994 के बाद बंद कर दी गई है और आगे कहता है कि संविधान के भाग III में अनुच्छेद 21-क की

अनुवादित

शुरूआत के साथ, 14 वर्ष की आयु तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा राज्य का दायित्व है। उक्त कार्यालय ज्ञापन में यह भी कहा गया है कि सर्व शिक्षा अभियान के तहत उपरोक्त उद्देश्य को साकार करने के लिए बेसिक शिक्षा विभाग ने प्रत्येक गांव में 1.5 किलोमीटर की दूरी पर स्कूल स्थापित किया है। 2008 तक इन्हें एक-एक किलोमीटर की दूरी पर स्थापित कर दिया जाएगा। कार्यालय ज्ञापन में कहा गया है कि 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को इतना बढ़ावा देने के साथ, जिसे बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा स्थापित प्राथमिक विद्यालयों के माध्यम से हासिल किया जाना है, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों को पढ़ाने वाले प्रबंधन के तहत चलने वाले निजी संस्थानों को अनुदान सहायता देने की कोई आवश्यकता नहीं है। उपरोक्त कार्यालय ज्ञापन को दिनांक 20.01.2021 के पूरक जवाबी हलफनामे में एससीए-2 के रूप में संलग्न किया गया है।

43. इस प्रकार, उक्त कार्यालय ज्ञापन को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि राज्य ने संस्थानों के इस विशेष वर्ग को वित्त पोषित करने की अपनी नीति को लंबे समय से छोड़ दिया है, जहां याचिकाकर्ता पढ़ा रहे हैं। नीति में परिवर्तन इसलिए किया गया है, क्योंकि बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा बोर्ड के माध्यम से बड़ी संख्या में विद्यालय स्थापित किये गये हैं या स्थापित किये जाने हैं, जिससे 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का उद्देश्य प्राप्त होगा। नीतिगत परिवर्तन 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए कानून और शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव से तय होता है। समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से निजी संस्थानों की सहायता के माध्यम से प्रयास करने की कोई आवश्यकता नहीं है, जिनकी जरूरतों को अब बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा बोर्ड के तहत कार्यरत अपने स्थापित स्कूलों के माध्यम से पर्याप्त रूप से पूरा किया जा रहा है।

44. उक्त परिवर्तनों के अलावा जो बात सामने आती है वह यह है कि जिन संस्थानों में याचिकाकर्ता कार्यरत हैं या कार्यरत थे और अब सेवानिवृत्त हो गए हैं, उन्हें ऐसे अनुदान से वित्त पोषित किया गया था जो 1978 के अधिनियम की धारा 2 (F) के तहत परिकल्पित रखरखाव अनुदान से बहुत अलग है। समाज कल्याण विभाग द्वारा प्रदान किया जाने वाला आवर्ती अनुदान 1978 के अधिनियम के तहत परिकल्पित रखरखाव अनुदान से बहुत अलग है। यह अनुदान शिक्षकों को वेतन के प्रावधान तक सीमित है। निजी प्रबंधन द्वारा प्रबंधित प्राथमिक संस्थानों के विशेष वर्ग को एकमात्र इस कारण से सहायता की पेशकश की गई थी कि प्रासंगिक समय पर और तत्कालीन आवश्यकता को देखते हुए, इन संस्थानों ने नागरिकों के एक विशेष वर्ग के निर्दिष्ट आयु समूह को शिक्षा प्रदान की। इसलिए, इन संस्थानों को प्रदान किया जाने वाला अनुदान अनुदान की शर्तों तक ही सीमित होना चाहिए। इसे उससे आगे नहीं बढ़ाया जा सकता जो यह है।

45. इसलिए, यह सवाल उठता है कि क्या 1964 की नियमावली के नियम 3 के आधार पर, याचिकाकर्ता उक्त नियमावली के अध्याय V के अनुसार, उसमें परिकल्पित ट्रिपल लाभ, विशेष रूप से पेंशन का भुगतान, के हकदार हैं। 1964

अनुवादित

की नियमावली का नियम 3 और 4 इस प्रकार है:

"3. यह नियमावली सक्षम प्राधिकारी द्वारा मान्यता प्राप्त एवं स्थानीय निकाय या निजी प्रबंधन द्वारा संचालित और वित्तपोषित संस्थानों की निम्नलिखित श्रेणियों में सेवारत स्थायी कर्मचारियों पर लागू होंगे:

(1) प्राथमिक विद्यालय;

(2) जूनियर हाई स्कूल;

(3) उच्चतर माध्यमिक विद्यालय;

(4) डिग्री कॉलेज;

(5) प्रशिक्षण महाविद्यालय।

4.(क) यह नियमावली राज्य सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों के कर्मचारियों के लिए तीन प्रकार के सेवा लाभ, अर्थात् अंशदायी भविष्य निधि, बीमा और पेंशन (ट्रिपल लाभ योजना) के लिए हैं। लाभों की मात्रा और वे शर्तें जिनके द्वारा वे शासित होते हैं, आगामी अध्यायों में वर्णित हैं।

(ख) इन नियमों के लागू होने की तिथि पर पहले से ही स्थायी सेवा में मौजूद कर्मचारी को इन नए नियमों को चुनने या उस पर लागू मौजूदा नियमों द्वारा शासित बने रहने का विकल्प दिया जाएगा।

(ग) किसी भी कर्मचारी को योजना का केवल एक हिस्सा चुनने की अनुमति नहीं दी जाएगी, सिवाय इसके कि इन नियमों में विशेष रूप से प्रावधान किया गया हो।

(घ) एक बार प्रयोग किया गया विकल्प अंतिम होगा।

46. इस नियमावली को पढ़ने से पता चलता है कि ये राज्य सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों में कार्यरत स्थायी कर्मचारियों पर लागू होते हैं, चाहे वे स्थानीय निकाय द्वारा संचालित हों या निजी प्रबंधन द्वारा। 1964 की नियमावली को लागू करने की शर्त सहायता अनुदान के भुगतान के प्रयोजनों के लिए एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा मान्यता प्राप्त होना है। 1978 के अधिनियम के लागू होने के बाद नियमावली के तहत परिकल्पित सहायता अनुदान का अर्थ 1978 के अधिनियम की धारा 2 (F) के तहत परिकल्पित रखरखाव अनुदान होगा। उक्त क़ानून बुनियादी विद्यालयों के शिक्षकों को वेतन भुगतान को वैधानिक रूप से नियंत्रित करता है और सहायता अनुदान को परिभाषित करता है। इसमें संपूर्ण रखरखाव अनुदान की परिकल्पना की गई है न कि किसी प्रकार की तदर्थ या सीमित अनुदान की, जिसे वापस लिया जा सकता हो, जैसे उस वर्ग के प्राथमिक विद्यालयों को प्रदान किया जाता है जहां याचिकाकर्ता आकस्मिकताओं के घटित होने पर पढ़ाते हैं, जैसे कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के छात्रों की संख्या 50% से कम हो जाना। किसी विशेष आयु वर्ग में समाज के कुछ हाशिए पर रहने वाले वर्गों के बीच शिक्षा को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रासंगिक समय पर समाज कल्याण विभाग द्वारा प्रदान किया गया अनुदान जिसमें स्थायित्व या निरंतरता न हो, इसे 1964 की नियमावली के तहत परिकल्पित अनुदान नहीं बनाता है। उक्त नियमावली के तहत परिकल्पित अनुदान सहायता किसी भी सिद्धांत के अंतर्गत समाज कल्याण विभाग द्वारा उन संस्थानों को दिए जाने वाले तदर्थ

अनुवादित

या सीमित अनुदान के अर्थ में शामिल नहीं हो सकती है जहां याचिकाकर्ता पढ़ाते हैं।

47. इसलिए, यह नियमावली याचिकाकर्ताओं की पेंशन, बीमा और अंशदायी भविष्य निधि प्राप्त करने के अधिकार का आधार नहीं बन सकती है। विशेष अपील सं. 180 सन् 2000 में डिवीजन बेंच के दिनांक 11.08.2006 के आदेश से याचिकाकर्ताओं को वेतन के अलावा अन्य लाभ भी मिलेंगे, यदि नियम या शर्तें लागू हों। इस न्यायालय ने पाया कि इस तरह के दावे का समर्थन करने वाला कुछ भी नहीं है।

48. इसलिए, इस न्यायालय के सुविचारित दृष्टिकोण में, आक्षेपित आदेश में कोई कमी नहीं है और याचिकाकर्ता किसी राहत के हकदार नहीं हैं।

49. रिट याचिकाएँ असफल है और खारिज की जाती हैं। कॉस्ट के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

(2023) 2 ILRA 1074

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकःइलाहाबाद 25.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे मुनीर

रिट टैक्स संख्या 1523/2022

मैसर्स एएनएस हस्तशिल्प

...याचिकाकर्ता

बनाम

आयुक्त, वाणिज्यिक कर एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री पूजा तलवार

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अंकुर अग्रवाल, स्थायी वकील

सिविल कानून - उ.प्र. वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017-याचिकाकर्ता का पंजीकरण प्रमाण पत्र-यूपी वस्तु एवं सेवा कर के तहत पंजीकृत - अधिनियम की धारा 74 के तहत मूल्यांकन के लिए नोटिस जारी - सुनवाई का कोई अवसर नहीं - कोई विवरण नहीं जिस पर कार्रवाई प्रस्तावित है - बिना सोचे-समझे आदेश पर आपत्ति जताई गई - निरस्त कर दिया गया।

डब्ल्यू.पी. स्वीकृत। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बजरंग ट्रेडिंग लिमिटेड बनाम यू.पी. राज्य और अन्य (2020) यूपीटीसी (वॉल्यूम 104) 400-
2. बालाजी एंटरप्राइजेज बनाम प्रधान अतिरिक्त महानिदेशक (2022) 80 एमटीएनडीएक्स 448 (दिल्ली)
3. क्रांति एसोसिएट्स प्रा. बनाम मसूद अहमद खान, (2010) 9 एससीसी 496
4. हरिनाग शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम श्याम सुंदर झुनझुनवाला, एआईआर 1961 एससी 1669
5. सोम दत्त दत्ता बनाम भारत संघ, एआईआर 1969 एससी 414; भगत राजा बनाम भारत संघ, एआईआर 1967 एससी 1606;
6. त्रावणकोर रेयॉन लिमिटेड बनाम भारत संघ, (1969) 3 एससीसी 868;
7. महाबीर प्रसाद संतोष कुमार बनाम यूपी राज्य , (1970) 1 एससीसी 764;

अनुवादित

8. केशव मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम भारत संघ, (1973) 1 एससीसी 380;
9. भारत संघ बनाम मोहन लाल कपूर, (1973) 2 एससीसी 836;
10. वूलकोम्बर्स ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम वर्कर्स यूनियन, (1974) 3 एससीसी 318;
11. सीमेंस इंजी. और एमएफक्यू. कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई., (1976) 2 एससीसी 981;
12. मेनका गांधी बनाम भारत संघ, (1978) 1 एससीसी 248;
13. रामा वर्मा भारतन थम्पुरम बनाम केरल राज्य, (1979) 4 एससीसी 782;
14. गुरदयाल सिंह फ़िजी बनाम पंजाब राज्य, (1979) 2 एससीसी 368;
15. श्री अमर मठ के परम पूज्य श्री स्वामीजी, कमिश्नर, हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती विभाग, (1979) 4 एससीसी 642;
16. बॉम्बे ऑयल इंडस्ट्रीज (पी) लिमिटेड बनाम भारत संघ, (1984) 1 एससीसी 141;
17. राम चंदर बनाम भारत संघ, (1986) 3 एससीसी 103;
18. स्टार एंटरप्राइजेज बनाम सिटी एंड इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन ऑफ महाराष्ट्र लिमिटेड, (1990) 3 एससीसी 280;
19. एस.एन मुखर्जी बनाम भारत संघ, (1990) 4 एससीसी 594;
20. महाराष्ट्र सेंट बोर्ड ऑफ सेकेंडरी एंड हायर सेकेंडरी एजुकेशन बनाम के.एस गांधी, (1991) 2 एससीसी 716;
21. एम.एल. जग्गी बनाम एमटीएनएल, (1996) 3 एससीसी 119 और चरण सिंह बनाम हीलिंग टच हॉस्पिटल, (2000) 7 एससीसी 668
22. ओरिक्स फिशरीज प्रा. लिमिटेड बनाम भारत संघ, (2010) 13- एससीसी 427

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

आदेश

1. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता 11 मार्च 2019 के आदेश को चुनौती दे रहा है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का पंजीकरण प्रमाणपत्र रद्द कर दिया गया है।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता एक पंजीकृत फर्म है जो हार्डवेयर और एल्युमीनियम वस्तुओं का व्यापार करती है। इसे यूपी वस्तु एवं सेवा कर के अंतर्गत विधिवत पंजीकृत किया गया था। 11 फरवरी, 2019 को याचिकाकर्ता के व्यावसायिक परिसर में एक सर्वेक्षण किया गया जिसमें 29 गलत कागजात पाए गए। चूंकि विभाग के अनुसार, स्टॉक में कुछ विसंगतियाँ पाई गईं, याचिकाकर्ता का टर्न-ओवर इस अनुमान के आधार पर बढ़ा दिया गया कि कुछ छुपी हुई बिक्री हुई थी। अप्रैल 2018 से फरवरी 2019 की अवधि के लिए यूपी वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 74 के अंतर्गत मूल्यांकन के लिए नोटिस जारी किया गया। ₹6 करोड़ से अधिक की भारी मांग उठाई गई। याचिकाकर्ता ने अपील की, जिसे अंततः आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया गया। दूसरी ओर, याचिकाकर्ता को 26 फरवरी, 2019 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया कि क्यों न याचिकाकर्ता का पंजीकरण प्रमाण पत्र रद्द कर दिया जाए। नोटिस जारी करने के कारणों के

अनुवादित

बारे में इन सामान्य शब्दों के अलावा कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया था "यदि पंजीकरण धोखाधड़ी, जानबूझकर गलत बयानी या तथ्यों को छुपाने के माध्यम से प्राप्त किया गया है।" याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर दिए बिना, क्योंकि पंजीकरण रद्द करने के लिए कोई आधार नहीं बताया गया था, और बिना कोई कारण बताए, याचिकाकर्ता का पंजीकरण रद्द करने का आदेश दिनांक 11 मार्च, 2019 वेबसाइट पर अपलोड कर दिया गया। तर्क यह दिया गया है कि विभाग द्वारा याचिकाकर्ता को जारी किया गया नोटिस परिणामोन्मुखी होना चाहिए जिसमें जिस आधार पर कार्रवाई प्रस्तावित है उसकी पूरी जानकारी दी जानी चाहिए और सुनवाई के उचित अवसर के बाद एक तर्कसंगत आदेश पारित करना आवश्यक है। वर्तमान मामले में दोनों की कमी है, इसलिए आदेश निरस्त किए जाने योग्य है। उपरोक्त तर्कों के समर्थन में, **बजरंग ट्रेडिंग लिमिटेड बनाम यूपी राज्य और अन्य (2020) यूपीटीसी (वॉल्यूम 104) 400** और **बालाजी एंटरप्राइजेज बनाम प्रधान अपर महानिदेशक (2022) 80 एमटीएनडीएक्स 448 (दिल्ली)** का आश्रय लिया गया है।

3. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह तथ्य कि, याचिकाकर्ता के परिसर में एक सर्वेक्षण किया गया था और कुछ गलत कागजात बरामद किए गए थे जिनके आधार पर मूल्यांकन किया गया था, स्वयं ही यह स्पष्ट रूप से स्थापित करता है कि याचिकाकर्ता बेहिसाब बिक्री में लिप्त था और कर चोरी कर रहा था। सर्वेक्षण के तुरंत बाद, याचिकाकर्ता को यह कारण बताने के लिए नोटिस जारी किया गया कि क्यों न याचिकाकर्ता का पंजीकरण प्रमाणन रद्द कर दिया जाए। नोटिस में कारणों का अच्छे तरह से उल्लेख किया गया है। याचिकाकर्ता को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया गया था जिसका याचिकाकर्ता लाभ उठाने में विफल रहा और प्रमाणपत्र रद्द करने का आदेश पारित कर दिया गया। इसमें कुछ भी अवैधता नहीं है।

4. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और पेपर-बुक का अवलोकन किया।

5. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उठाए गए तर्कों को समझने के लिए, सर्वप्रथम 26 फरवरी, 2019 को याचिकाकर्ता को जारी किए गए कारण बताओ नोटिस का उद्धरण उचित होगा। पंजीकरण रद्द करने का प्रस्ताव करने वाले कारण बताओ नोटिस में दिए गए कारण नीचे उद्धृत किए गए हैं :

"यदि पंजीकरण धोखाधड़ी, जानबूझकर गलतबयानी या तथ्यों को छिपाकर प्राप्त किया गया है।"

6. याचिकाकर्ता को 7 मार्च, 2019 को उपस्थित होने के लिए बुलाया गया था।

7. उपरोक्त कारण बताओ नोटिस के बाद पारित आदेश दिनांकित 11 मार्च, 2019 नीचे उद्धृत किया गया है:-

"पंजीकरण निरस्त करने का आदेश

यह कारण बताओ नोटिस दिनांक 26/02/2019 के जवाब में आपके उत्तर दिनांक 08/03/2019 का संदर्भ है जबकि कारण बताओ नोटिस का कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया गया है।

आपके पंजीकरण को निरस्त करने की प्रभावी तिथि 26/02/2019 है।

<u>निरस्तीकरण के बाद देय राशि का निर्धारण:</u>

तदनुसार, आपके द्वारा देय राशि और उसकी गणना और आधार इस प्रकार है:

ऊपर देय के रूप में निर्धारित की गई राशि किसी भी राशि की हानि के बिना है जो आपके द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिटर्न जमा करने पर देय पाई जा सकती है।

आपको 21/03/2019 को या उससे पूर्व निम्नलिखित राशि का भुगतान करना होगा, अन्यथा राशि अधिनियम के प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों के अनुसार वसूल की जाएगी।

मद	केंद्रीय कर	राज्य कर / केंद्रशासित प्रदेश कर	एकीकृत कर	उपकर
कर	0	0	0	0
ब्याज	0	0	0	0
जुर्माना	0	0	0	0
अन्य	0	0	0	0
कुल	0.0	0.0	0.0	0.0

8. संबंधित प्राधिकारी द्वारा पारित उपरोक्त आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि इसमें दिमाग का बिल्कुल भी उपयोग नहीं किया गया है क्योंकि आदेश किसी कारण से रहित है। यहां तक कि मामले के तथ्यों का भी संदर्भ नहीं दिया गया है। संक्षिप्त तथ्यों और किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कारणों के अभाव में, अगले उच्चतर न्यायालय या प्राधिकारी के लिए यह समझना संभव नहीं है कि क्या सोचकर संबंधित प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचा और क्या आदेश पारित करते समय दिमाग का उपयोग किया गया था अथवा आदेश मनमाना है।

9. **क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम मसूद अहमद खान, (2010) 9 एससीसी 496** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, **हरिनगर शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम श्याम सुंदर झुनझुनवाला, एआईआर 1961 एससी 1669; सोम दत्त दत्ता बनाम भारत संघ, एआईआर 1969 एससी 414; भगत राजा बनाम भारत संघ, एआईआर 1967 एससी 1606; त्रावणकोर रेयॉन लिमिटेड बनाम भारत संघ (1969) 3 एससीसी 868; महाबीर प्रसाद संतोष कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1970) 1 एससीसी 764; केशव मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम भारत संघ, (1973) 1 एससीसी 380; भारत संघ बनाम मोहन लाल कपूर, (1973) 2 एससीसी 836; वूलकोम्बर्स ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम वर्कर्स यूनियन, (1974) 3 एससीसी 318; सीमेंस इंजीनियरिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम भारत संघ, (1976) 2 एससीसी 981; मेनका गांधी बनाम भारत संघ, (1978) 1 एससीसी 248; रामा वर्मा भारतन थम्पुरम बनाम केरल राज्य, (1979) 4 एससीसी 782; गुरदयाल सिंह फ़िजी बनाम पंजाब राज्य, (1979) 2 एससीसी 368; श्री अमर मठ के परम पूज्य श्री स्वामीजी बनाम कमिश्नर, हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती विभाग, (1979) 4 एससीसी 642; बॉम्बे ऑयल इंडस्ट्रीज (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम भारत संघ, (1984) 1 एससीसी 141; राम चंदर बनाम भारत संघ, (1986) 3 एससीसी 103; स्टार एंटरप्राइजेज बनाम सिटी एंड इंडस्ट्रियल**

अनुवादित

डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन ऑफ महाराष्ट्र लिमिटेड, (1990) 3 एससीसी 280; एसएन मुखर्जी बनाम भारत संघ, (1990) 4 एससीसी 594; महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा बोर्ड बनाम केएस गांधी, (1991) 2 एससीसी 716; एमएल जग्गी बनाम एमटीएनएल, (1996) 3 एससीसी 119 और चरण सिंह बनाम हीलिंग टच हॉस्पिटल, (2000) 7 एससीसी 668 में अपने पूर्व के निर्णयों का संदर्भ देते हुए राय दी कि किसी अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी अथवा यहां तक कि किसी प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करने वाला प्रत्येक आदेश तर्कसंगत आदेश होना चाहिए। यह "स्फिंक्स के गूढ़ चेहरे" जैसा नहीं होना चाहिए। वरिष्ठ न्यायालय न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रभावी ढंग से प्रयोग नहीं कर सकता जब तक कि आक्षेपित आदेश में तथ्यों और कारणों को विस्तार से नहीं बताया गया हो। केवल सुनवाई का अवसर देना ही पर्याप्त नहीं है। जहां भी कोई आदेश अपील या न्यायिक समीक्षा के अधीन हो सकता है, वहां कारण दर्ज करने की आवश्यकता और भी अधिक है। यह सुनिश्चित करता है कि निर्णय सनक, मर्जी या कल्पना का परिणाम नहीं है, बल्कि प्रासंगिक तथ्यों और कानून पर विचार करने के बाद लिया गया है। यह पीड़ित पक्ष को वरिष्ठ न्यायालय के समक्ष यह प्रदर्शित करने में सक्षम बनाता है कि जिन कारणों से उसका दावा खारिज किया गया है, वे गलत हैं। यह न्यायिक शक्ति से संपन्न किसी भी प्राधिकारी द्वारा संभावित मनमानी कार्रवाई के खिलाफ एक निवारक के रूप में कार्य करता है। इसका उद्देश्य निष्कर्ष तक पहुंचने में अन्याय या मनमानी को रोकना है। कारण, उन सामग्रियों जिन पर कुछ निष्कर्ष आधारित हैं और वास्तविक निष्कर्षों, के बीच के संबंध हैं। प्रशासनिक अधिकारियों में लोगों का विश्वास तभी कायम रह सकता है जब वे निष्पक्षता से कार्य करें और उनके समक्ष आने वाले मामलों को सुविचारित आदेशों द्वारा निपटाएं।

10. **क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड के मामले (उपरोक्त)** में उपरोक्त निर्णय के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ORYX फिशरीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ (2010) 13 SCC 427** में कहा:

"39. एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी द्वारा अपने आदेश के समर्थन में कारणों का खुलासा करने की आवश्यकता पर, इस न्यायालय ने हाल ही में क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम श्री मसूद अहमद खान और अन्य के मामले में 8 सितंबर 2010 को एक निर्णय सुनाया है।

40. मैसर्स क्रांति एसोसिएट्स (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के बाद निर्णय के पैरा 51 में कुछ सिद्धांत तैयार किए जो नीचे दिए गए हैं:

क. भारत में न्यायिक प्रवृत्ति, प्रशासनिक निर्णयों में भी, हमेशा तर्क लेखबद्ध करने की रही है, यदि ऐसे निर्णय किसी पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

ख. एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी को अपने निष्कर्षों के समर्थन में कारणों/ तर्कों को लेखबद्ध करना चाहिए।

ग. तर्कों को लेखबद्ध करने पर जोर देने का मतलब न्याय के इस व्यापक सिद्धांत की पूर्ति करना है कि न्याय को सिर्फ किया नहीं

जाना चाहिए, बल्कि ऐसा प्रतीत भी होना चाहिए कि न्याय किया गया है।

घ. तर्कों को लेखबद्ध करना, न्यायिक और अर्ध-न्यायिक या यहां तक कि प्रशासनिक शक्ति के किसी भी संभावित मनमाने कृत्य पर वैध प्रतिबंध के रूप में भी कार्य करता है।

ङ . तर्क आश्वस्त करते हैं कि निर्णय लेने वाले के द्वारा प्रासंगिक आधारों पर और बाहरी विचारों की उपेक्षा करके विवेक का प्रयोग किया गया है।

च. तर्क वस्तुतः निर्णय लेने की प्रक्रिया का उतना ही अपरिहार्य घटक बन गया है जितना कि न्यायिक, अर्ध-न्यायिक और यहां तक कि प्रशासनिक निकायों द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना।

छ. तर्क वरिष्ठ न्यायालयों द्वारा न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाते हैं।

ज. वैधानिक नियम और संवैधानिक शासन के लिए प्रतिबद्ध सभी देशों में चल रहे न्यायिक चलन, प्रासंगिक तथ्यों के आधार पर तर्कसंगत निर्णयों के पक्ष में है। तर्क न्याय की आत्मा है, इस सिद्धांत को उचित ठहराते हुए, यह वस्तुतः न्यायिक निर्णयन की जीवनी शक्ति है।

झ. इन दिनों न्यायिक या अर्ध-न्यायिक राय भी उतनी ही भिन्न हो सकती हैं जितनी उन्हें देने वाले न्यायाधीश और प्राधिकारी। ये सभी निर्णय एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति करते हैं, जो तर्क द्वारा यह प्रदर्शित करना है कि प्रासंगिक कारकों पर निष्पक्ष रूप से विचार किया गया है। न्याय वितरण प्रणाली में वादियों का विश्वास बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है।

ञ. न्यायिक जवाबदेही और पारदर्शिता दोनों के लिए तर्क पर ज़ोर देना एक आवश्यकता है।

त. यदि कोई न्यायाधीश या अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी अपनी निर्णय लेने की प्रक्रिया के बारे में पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं है तो यह जानना असंभव है कि निर्णय लेने वाला व्यक्ति मिसाल के सिद्धांत या वृद्धिवाद के सिद्धांतों के प्रति वफादार है या नहीं।

थ. निर्णयों के समर्थन में तर्क ठोस, स्पष्ट और संक्षिप्त होने चाहिए। तर्कों का दिखावा या 'रबर-स्टैम्प तर्क' को वैध निर्णयन प्रक्रिया के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए।

द. इसमें संदेह नहीं किया जा सकता कि पारदर्शिता न्यायिक शक्तियों के दुरुपयोग पर रोक लगाने की अनिवार्य शर्त है। निर्णय लेने में पारदर्शिता न केवल न्यायाधीशों और निर्णय निर्माताओं द्वारा त्रुटियों की संभावना कम बनाती है बल्कि उन्हें व्यापक जांच के अधीन भी लाती है। (न्यायिक स्पष्टवादिता के बचाव में डेविड शापिरो देखें (1987) 100 हार्वर्ड लॉ रिव्यू 731-737)।

ध. चूँकि तर्कों को लेखबद्घ करने की आवश्यकता निर्णय लेने में निष्पक्षता के व्यापक सिद्धांत से उत्पन्न होती है, उक्त आवश्यकता अब वस्तुतः मानवाधिकारों का एक घटक है और इसे स्ट्रासबर्ग न्यायशास्त्र का हिस्सा माना जाता है। (1994) 19 ईएचआरआर 553, 562 पैरा 29 पर और आन्या बनाम ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, 2001 ईडब्ल्यूसीए सीआईवी 405 देखें, जिसमें न्यायालय ने मानव अधिकारों के यूरोपीय सम्मेलन के अनुच्छेद 6 का उल्लेख

अनुवादित

किया है जिसके लिए "न्यायिक निर्णयों के लिए पर्याप्त और बुद्धिमत्तापूर्ण कारण दिए जाने चाहिए" आवश्यक है।

न. सभी सामान्य कानून क्षेत्राधिकारों में, निर्णय भविष्य के लिए मिसाल कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए, कानून के विकास के लिए, निर्णय के लिए कारण बताने की आवश्यकता सारगर्भित है और वस्तुतः "उचित प्रक्रिया" का एक हिस्सा है।

11. उपरोक्त बाध्यकारी प्राधिकारियों को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वर्तमान मामले में आक्षेपित आदेश पूर्णरूपेण अनुचित, तर्कहीन और दिमाग का कोई प्रयोग होना नहीं दर्शाता है, हमारी सुविचारित राय में, इसे कायम नहीं रखा जा सकता है।

12. परिणामस्वरूप, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। रिट याचिका का संलग्नक-3, दिनांक 11 मार्च, 2019 का आक्षेपित आदेश, प्राधिकारी को याचिकाकर्ता के विरुद्ध विधि अनुरूप फिर से कार्यवायी करने की स्वतंत्रता के साथ, निरस्त किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 1079

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 16.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे मुनीर,

रिट टैक्स संख्या 33/2023

सदाशिव द्विवेदी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अनुराग दुबे, श्री अमित कुमार शर्मा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री निमाई दास (अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील)

उत्तर प्रदेश मोटर वाहन कराधान नियम 1998-नियम 18-मोटर वाहन कर के कारण जारी वसूली उद्धरण-आक्षेपित-याचिकाकर्ता ने वाहन खरीदा-यह मेसर्स हिंदुजा लीलैंड फाइनेंस लिमिटेड के पास गिरवी रखा गया था-2013 में भुगतान न करने के कारण वाहन को जब्त कर लिया गया था-वर्ष 2015 में बेच गया- याचिकाकर्ता ने कब्ज़ा होने तक कर जमा किया था - फाइनेंसर कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है - याचिकाकर्ता ने वसूली उद्धरण के खिलाफ आपत्ति दायर की - सक्षम प्राधिकारी द्वारा आपत्तियों पर विचार किया जाना आवश्यक है और दायित्व पर फिर से काम किया जा सकता है -

डब्ल्यू.पी. निस्तारित। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

महिंद्रा एंड महिंद्रा फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, (2022) 5 एससीसी 525

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल

&

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

<u>आदेश</u>

अनुवादित

1. मोटर वाहन कर के कारण याचिकाकर्ता के खिलाफ जारी 1 अक्टूबर, 2022 की वसूली प्रशस्ति पत्र वर्तमान याचिका में चुनौती के अधीन है।

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया तर्क यह है कि उसने 10 मार्च, 2011 को एक टाटा मैजिक (छोटा वाणिज्यिक वाहन) खरीदा था, जिसका पंजीकरण संख्या यूपी 90 टी 0839 था। इसे मेसर्स हिंदुजा लीलैंड फाइनेंस लिमिटेड के पास गिरवी रखा गया था। ऋण की अदायगी में चूक के कारण वर्ष 2013 में फाइनेंसर द्वारा वाहन जब्त कर लिया गया था। इसके बाद इसे बेच दिया गया और 28 नवंबर 2015 को याचिकाकर्ता को शेष ऋण राशि के भुगतान के लिए एक नोटिस प्राप्त हुआ। जिस तिथि तक याचिकाकर्ता के पास वाहन था, उसने कर जमा कर दिया था। फाइनेंसर द्वारा वाहन का कब्ज़ा लेने के बाद, कर की देनदारी याचिकाकर्ता पर नहीं डाली जा सकती क्योंकि उस स्थिति में फाइनेंसर कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा। याचिकाकर्ता द्वारा वसूली प्रशस्ति पत्र पर दायर आपत्तियों में उपरोक्त तथ्य बताए गए हैं, हालांकि, उन पर विचार नहीं किया गया। तर्क के समर्थन में महिंद्रा एंड महिंद्रा फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य, (2022) 5 एससीसी 525 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है।

3. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 30प्र0 मोटर वाहन कराधान नियमावली, 1998 (इसके बाद 'नियमावली' के रूप में संदर्भित) के नियम 18 के संदर्भ में, याचिकाकर्ता को कराधान अधिकारी को इस तथ्य के बारे में सूचित करना आवश्यक था कि विचाराधीन वाहन का कब्जा फाइनेंसर द्वारा लिया गया था ताकि प्राधिकरण फाइनेंसर पर दायित्व को बांधने में सक्षम हो सके। चूंकि याचिकाकर्ता ऐसा करने में विफल रहा, इसलिए उसके खिलाफ मांग उठाई गई। हालाँकि, यदि वह कराधान अधिकारी को विवरण बताता है, तो इस मुद्दे की जांच महिंद्रा एंड महिंद्रा फाइनेंशियल सर्विसेज मामले (पूर्वोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में की जाएगी।

4. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हमने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील को सही पाया, क्योंकि उन्होंने कहा था कि विचाराधीन वाहन का कब्ज़ा मई 2013 में फाइनेंसर द्वारा ले लिया गया था और **महिंद्रा एंड महिंद्रा फाइनेंशियल सर्विसेज मामले (पूर्वोक्त)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर उसके बाद कर के भुगतान की देनदारी याचिकाकर्ता पर तय नहीं की जा सकती। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ 12 यहां नीचे दिया गया है:

"उपरोक्त चर्चा के मददेनजर और ऊपर बताए गए कारणों के लिए, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि एक मोटर वाहन/परिवहन वाहन का फाइनेंसर, जिसके संबंध में अवक्रय या पट्टा या आडमान समझौता किया गया है, उक्त समझौते के तहत उक्त वाहन का कब्जा लेने की तारीख से कर के लिए उत्तरदायी है। यदि, कर के भुगतान के बाद, वाहन का उपयोग एक महीने या उससे

अधिक समय तक नहीं किया जाता है, तो ऐसा मालिक अधिनियम, 1997 की धारा 12 के तहत रिफंड के लिए आवेदन कर सकता है और धारा 12 में उल्लिखित रिफंड मांगने के लिए सभी आवश्यकताओं का पालन करना होगा, और धारा 12 (1) में उल्लिखित सभी शर्तों को पूरा करने और/या अनुपालन करने पर, उसे धारा 12 की उप-धारा (1) में प्रदान की गई सीमा तक रिफंड मिल सकता है, धारा 12(1) के तहत भी, मालिक/संचालक पूर्ण रिफंड का हकदार नहीं होगा, बल्कि त्रैमासिक कर की दर के एक तिहाई या वार्षिक कर के बारहवें हिस्से के बराबर राशि के रिफंड का हकदार होगा, जैसा भी मामला हो, ऐसे वाहन के संबंध में ऐसी अवधि के प्रत्येक तीस दिन के लिए देय होगा जिसके लिए ऐसे कर का भुगतान किया गया है। हालाँकि, केवल ऐसे मामले में, जो धारा 12 की उपधारा (2) के अंतर्गत

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

आता है और धारा 12 की उपधारा (2) में उल्लिखित आवश्यक दस्तावेजों के समर्पण के अधीन है, कर का भुगतान करने का दायित्व उत्पन्न नहीं होगा, अन्यथा ऐसे मालिक/संचालक द्वारा कर का भुगतान करने का दायित्व जारी रहेगा।"

(प्रभाव वर्दधित)

5. नियमावली के नियम 18 के संदर्भ में, याचिकाकर्ता ने पहले ही 18 दिसंबर, 2022 को वसूली प्रशस्ति पत्र के खिलाफ आपत्ति दायर की थी, जिसमें उल्लेख किया गया था कि विचाराधीन वाहन का कब्जा फाइनेंसर द्वारा मई 2013 में लिया गया था। इसके बाद, वाहन फाइनेंसर द्वारा बेच दिया गया था। उपरोक्त आपत्तियों पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है और फाइनेंसर द्वारा वाहन के कब्जे की तारीख से, **महिंद्रा एंड महिंद्रा फाइनेंशियल सर्विसेज मामले (पूर्वोक्त)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के संदर्भ में दायित्व को फिर से तय किया जा सकता है। हालाँकि, उससे पहले किसी भी अवधि के लिए, यदि कर का भुगतान नहीं किया गया है, होगा। तो याचिकाकर्ता उसे भुगतान करने के लिए उत्तरदायी

6. तदनुसार, रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है और याचिकाकर्ता के खिलाफ वसूली प्रशस्ति पत्र को रद्द कर दिया जाता है।

(2023) 2 ILRA 1081

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकःइलाहाबाद 25.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे मुनीर

रिट टैक्स संख्या 62/2023

मेसर्स पायनियर इंडस्ट्रीज 485, छोटा कैला, स्क्रैप मार्केट, पीएसी चौक, गाजियाबाद

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री प्रवीण कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अंकुर अग्रवाल (एस.सी.)

सिविल कानून - उ.प्र. वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017- धारा 129 (1) (बी) -

अनुवादित

पारगमन में पारित माल को जब्त कर लिया गया - धारा 129 (1) (बी) के तहत जुर्माना लगाया जाना आवश्यक नहीं है और उचित नहीं है - क्योंकि यह प्रदान करता है जहां सामान का मालिक जुर्माने के भुगतान के लिए आगे आता है तो राशि देय कर का दो सौ प्रतिशत होनी चाहिए - लेकिन जुर्माना माल के मूल्य के सौ प्रतिशत के बराबर लगाया गया है - आपेक्षित आदेश निरस्त किया जाता है।

डब्ल्यू.पी. स्वीकृत। (ई-9)

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,
एवं
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

<u>आदेश</u>

1. जीएसटी एमओवी-06 पर पारित आदेश दिनांक 7 जनवरी, 2023, जिसके द्वारा संबंधित प्राधिकारियों ने पारगमन में माल को जब्त किया था, को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है। इसके अतिरिक्त जीएसटी एमओवी-07 पर जारी कारण बताओ नोटिस और जीएसटी एमओवी-09 पर पारित आदेश दिनांक 11 जनवरी, 2023 को वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई है।

2. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि माल के साथ उचित दस्तावेज थे। माल के स्वामी या तो प्रेषक हैं या प्रेषिती हैं। तथापि, याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए तर्कों की सराहना किए बिना, आक्षेपित आदेश के द्वारा, वाहन के चालक को स्वामी माना गया और उत्तर प्रदेश माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 (आगे से 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 129(1)(ख) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए ₹ 4,01,672/- का जुर्माना लगाया गया है।

3. तर्क यह है कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें पारगमन में माल के साथ उचित दस्तावेज थे। जब वाहन के चालक को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, याचिकाकर्ताओं ने अपने जवाब दाखिल किए थे। अधिनियम की धारा 129(1)(क) के प्रावधानों के अनुसार, यदि माल का स्वामी आगे आता है, तो उस पर जुर्माना लगाया जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 129(1)(ख) के तहत जुर्माना केवल तभी लगाया जा सकता है जब माल का स्वामी आगे नहीं आता। प्रस्तुत मामले में, आक्षेपित आदेश के द्वारा अधिनियम की धारा 129(1)(ख) के तहत जुर्माना लगाया गया है, जो लागू नहीं है। उन्होंने केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क बोर्ड (आगे से 'बोर्ड' के रूप में संदर्भित) द्वारा जारी किए गए परिपत्र दिनांक 31 दिसंबर, 2018 का भी संदर्भ दिया है, जिसके द्वारा अधिनियम की धारा 129(1) के प्रयोजन के लिए किसे माल का स्वामी माना जाना चाहिए, इस संबंध में स्पष्टीकरण जारी किया गया है। यह प्रावधान करता है कि यदि माल के साथ चालान हैं तो प्रेषक को स्वामी माना जाना चाहिए। प्रस्तुत मामले में, याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 प्रेषक हैं, जबकि याचिकाकर्ता संख्या 3 से 5 प्रेषिती हैं, अतः उनकी उपस्थिति में और माल के स्वामित्व को स्वीकार करते हुए, आक्षेपित आदेश अधिनियम की धारा 129(1)(ख) के तहत पारित नहीं किया जाना चाहिए था।

अनुवादित

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें माल चालानों से मेल नहीं खा रहा था क्योंकि कुछ माल चालानों में उल्लिखित मात्रा से या तो अधिक या कम पाया गया था। अतः, जुर्माना उचित रूप से लगाया गया है।

5. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हमारी राय में, वर्तमान रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है और आक्षेपित आदेश दिनांक 11 जनवरी, 2023 को निरस्त किए जाने योग्य है, इस कारण से कि प्रेषक और प्रेषिती उपस्थित हैं और जब्त किए गए माल का स्वामित्व स्वीकार कर रहे हैं। प्रेषक उत्तर प्रदेश राज्य में पंजीकृत व्यापारी हैं।

6. उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए और बोर्ड द्वारा अपने परिपत्र दिनांक 31 दिसंबर, 2018 के माध्यम से दिए गए स्पष्टीकरण के मद्देनजर, हमारी राय में, अधिनियम की धारा 129(1)(ख) के तहत जुर्माना लगाना आवश्यक नहीं था और उचित नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि अधिनियम की धारा 129(1)(क) यह प्रावधान करती है कि जहां माल का स्वामी जुर्माना भुगतान के लिए आगे आता है, वहां राशि देय कर का दो सौ प्रतिशत होनी चाहिए, जबकि प्रस्तुत मामले में, माल के मूल्य के सौ प्रतिशत की दर से जुर्माना लगाया गया है।

7. उपरोक्त कारणों से, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 11 जनवरी, 2023 को निरस्त किया जाता है। रिट याचिका स्वीकार की जाती है। मामले को सक्षम प्राधिकारी के पास आदेश की प्रति प्राप्त होने की तिथि से दो सप्ताह की अवधि के भीतर नया आदेश पारित करने के लिए वापस भेजा जाता है।

(2023) 2 ILRA 1083

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 18.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट टैक्स संख्या 194/2022

राजेंद्र प्रताप सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री शंभू चोपड़ा (वरिष्ठ अधिवक्ता), सुश्री महिमा जयसवाल, श्री राकेश कुमार त्रिपाठी, सुश्री अनुपमा त्रिपाठी **अधिवक्ता प्रतिवादी:** सी.एस.सी., श्री निमाई दास (अतिरिक्त मुख्य वकील), श्री अपूर्व हजेला (स्थायी वकील)

उत्तर प्रदेश सिनेमैटोग्राफ नियम, 1951 - ग्रामीण क्षेत्र में सिनेमा हॉल स्थापित करने के बाद सहायक अनुदान का दावा निरस्त कर दिया गया और वसूली नोटिस जारी किया गया - याचिकाकर्ता ने 21 जुलाई, 1986 की सरकारी योजना के अनुसार सहायक अनुदान का दावा किया - केवल इसलिए कि याचिकाकर्ता ने निर्दिष्ट अवधि के भीतर लाइसेंस प्रदान करने के लिए पूर्व एक आवेदन दिया था-आवश्यकताओं को पूरा न करने पर वह लाभ का हकदार नहीं होगा - लाइसेंस केवल सिनेमा हॉल चलाने के लिए दिया जाता है - यह वास्तव में योजना का लाभ उठाने का अधिकार नहीं है - इसके बजाय निर्धारित शर्तों का पालन करना होगा पूरा हुआ। **डब्ल्यू.पी. निरस्त।** (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

अवलोकन

1. सीमा शुल्क आयुक्त (आयात), मुंबई बनाम मेसर्स दिलीप कुमार एंड कॉम और अन्य. (2018)9 एससीसी 1

2. सन एक्सपोर्ट कॉर्पोरेशन बनाम सीमा शुल्क कलेक्टर (1997) 6 एससीसी 564

3. कनाई लाल सूर बनाम परमनिधि साधुखान, एआईआर 1957 एससी 907

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,
एवं
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

आदेश

1. वर्तमान रिट याचिका संयुक्त सचिव, राज्य कर विभाग यूपी द्वारा पारित 13 जुलाई 2021 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए दायर की गई है। रिट याचिका का अनुलग्नक-1, जिसके तहत याचिकाकर्ता के ग्रामीण क्षेत्र में सिनेमा हॉल स्थापित करने के बाद सहायक अनुदान प्रदान करने के दावे को खारिज कर दिया गया था। रिट याचिका में सहायक आयुक्त, व्यापार कर, चंदौली, अनुबंध-27 द्वारा जारी 24 अगस्त, 2021 के वसूली नोटिस को भी चुनौती दी गई है। इसके अलावा, 21 जुलाई 1986 की योजना में उल्लिखित अवधि के संदर्भ में याचिकाकर्ता को सहायक अनुदान प्रदान करने के लिए प्रतिवादी नंबर 1 को निर्देश देने की मांग की गई है।

2. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शंभू चोपड़ा ने प्रस्तुत किया कि सरकार नए स्थायी सिनेमा हॉलों की स्थापना से संबंधित 21 जुलाई, 1986 को एक योजना लेकर आई थी (इसके बाद इसे 'योजना' कहा जाएगा। योजना के तहत ऐसे सिनेमा हॉलों को, पहले वर्ष के लिए, प्रदर्शित फिल्म के संबंध में देय मनोरंजन कर की राशि के 100% के बराबर सहायक अनुदान का भुगतान किया जाना था। इसके बाद, दूसरे और तीसरे वर्ष के लिए उन्हें मनोरंजन कर के क्रमशः 74% और 50% के बराबर भुगतान किया जाना था। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में मनोरंजन के अधिक साधन स्थापित करने को बढ़ावा देना था, जिसके लिए यह योजना बनाई गई थी। योजना के एक खंड में प्रावधान है कि लाभ किसी भी उद्यमी को उपलब्ध होगा, जो 1 जनवरी, 1984 से 31 मार्च, 1990 के बीच सिनेमा हॉल चलाने के लिए लाइसेंस के लिए आवेदन करता है। मौजूदा मामले में, याचिकाकर्ता ने लाइसेंस के लिए आवेदन किया था। 26 फरवरी, 1990, श्री चोपड़ा ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के मामले की सिफारिश विभिन्न प्राधिकारियों द्वारा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए की गई थी कि यह योजना कुछ लाभ प्रदान करने के लिए राज्य की एक कवायद थी, उदार निर्माण की आवश्यकता थी लेकिन फिर भी उसके बावजूद बार-बार प्रयास करने पर भी उसे लाभ नहीं दिया गया। याचिकाकर्ता ने योजना पर भरोसा करते हुए सिनेमा हॉल की स्थापना की थी।

3. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री चोपड़ा ने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को 21 फरवरी, 1991 से सिनेमा हॉल चलाने और किसी भी देरी के लिए उत्तर प्रदेश सिनेमैटोग्राफ नियम, 1951 (इसके बाद "नियम" के रूप में संदर्भित) के तहत लाइसेंस दिया गया था। प्रक्रिया प्रतिवादियों के हाथ में थी, जो याचिकाकर्ता के नियंत्रण से परे थी। उन्होंने आगे कहा कि विवादित आदेश पारित करने से पहले, इस न्यायालय द्वारा पारित पहले के आदेश के बावजूद याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया, जिसके

अनुवादित

परिणामस्वरूप वह उचित विचार के लिए संबंधित प्राधिकारी के समक्ष अपना मामला पेश करने में असमर्थ था।

4. यह तर्क भी उठाया गया है कि योजना में कहीं भी यह प्रावधान नहीं है कि सिनेमा हॉल का निर्माण 31 मार्च, 1990 तक पूरा किया जाना है, क्योंकि इसमें केवल सिनेमा हॉल चलाने के लिए लाइसेंस देने के लिए आवेदन दाखिल करने का प्रावधान था, जो याचिकाकर्ता ने दायर किया था. उन्हें 21 फरवरी, 1991 को लाइसेंस प्रदान किया गया था, जो स्पष्ट रूप से स्थापित करता है कि याचिकाकर्ता ने इस उद्देश्य के लिए निर्धारित सभी शर्तों को पूरा किया था। वर्तमान याचिका में जिस मुद्दे को उठाने की मांग की गई है वह राज्य द्वारा अपनाई गई निर्णय लेने की प्रक्रिया है, जो निष्पक्ष होनी चाहिए थी। उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद लिए गए किसी भी निर्णय की उसके बाद योग्यता के आधार पर जांच की जानी चाहिए। उन्होंने आगे कुछ उदाहरणों का हवाला दिया, जहां याचिकाकर्ता के अनुसार, 2022 की योजना का लाभ उन उद्यमियों को दिया गया है, जिन्होंने समान परिस्थितियों में सिनेमा हॉल स्थापित किया था।

5. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के विद्वान वकील का रुख यह है कि याचिकाकर्ता को जारी नोटिस का जवाब देने के लिए उचित अवसर दिया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा दायर जवाब पर विधिवत विचार किया गया। योजना में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि लाइसेंस देने के लिए आवेदन 1 जनवरी 1984 से 31 मार्च 1990 के बीच दाखिल किया जाना चाहिए। नियमों के प्रावधानों के अनुसार, ऐसा आवेदन कुछ शर्तों को पूरा करने के बाद ही दायर किया जा सकता है। मौजूदा मामले में, जब याचिकाकर्ता ने लाइसेंस के लिए आवेदन किया था तब सिनेमा हॉल की इमारत निर्माणाधीन थी, जैसा कि विवादित आदेश में उल्लिखित तथ्यों से स्पष्ट है। निरीक्षण के समय, कई विसंगतियाँ पाई गईं और याचिकाकर्ता द्वारा आवेदन के साथ संलग्न किए जाने वाले प्रमाणपत्रों / दस्तावेजों की कमी थी। केवल इसलिए कि याचिकाकर्ता को 21 फरवरी, 1991 को सिनेमा हॉल चलाने का लाइसेंस दिया गया है, इसका मतलब यह नहीं होगा कि वह योजना के तहत लाभ पाने का हकदार होगा, क्योंकि वह इसमें निर्धारित शर्तों को पूरा नहीं करता है। ऐसी किसी भी योजना की व्याख्या सख्ती से की जानी चाहिए। यह ऐसा मामला नहीं है जहां उत्तरदाताओं की ओर से कोई देरी हुई थी, बल्कि याचिकाकर्ता ने केवल योजना के तहत लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से, निर्माण से पहले ही सिनेमा हॉल चलाने के लिए नियमों के तहत लाइसेंस देने के लिए आवेदन दायर किया था उत्तरदाताओं द्वारा किये गये निरीक्षण में ऐसा पाया गया।

6. याचिकाकर्ता के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार के संबंध में तर्क के संदर्भ में, उन्होंने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त तर्क याचिकाकर्ता के लिए उपलब्ध नहीं है क्योंकि वह अदालत में नकारात्मक भेदभाव की याचिका नहीं उठा सकता है।

7. पक्षों के विद्वान वकील को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

8. यह मुद्दा सरकार के 21 जुलाई, 1986 के एक संचार के संदर्भ में उठता है जिसे योजना कहा जाता है। इसे सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में नए स्थायी सिनेमा हॉल की स्थापना को प्रोत्साहित करने के लिए प्रसारित किया गया था, जो कि 17 सितंबर, 1983 को 2022 सरकार के 4 रिट टैक्स नंबर 194 द्वारा पहले जारी की गई

अनुवादित

एक योजना का संदर्भ है। इसके कार्यान्वयन में नई योजना जारी की गई थी। इसमें प्रदर्शित फिल्म के संबंध में देव मनोरंजन कर की 100% राशि के बराबर सहायक अनुदान प्रदान किया गया। इसके बाद दूसरे और तीसरे वर्ष के लिए उन्हें मनोरंजन कर के क्रमश: 74% और 50% के बराबर भुगतान किया जाना था। यह शर्त भी रखी गई कि उक्त अनुदान का भुगतान योजना के तहत निर्मित नए स्थायी सिनेमा हॉलों को किया जाएगा। योजना में यह भी प्रावधान किया गया कि सिनेमा हॉल चलाने के लिए नियमों के तहत लाइसेंस देने के लिए आवेदन 1 जनवरी, 1984 से 31 मार्च, 1990 के बीच किया जाना चाहिए योजना में कुछ अन्य शर्तें भी रखी गई, जिनका होना आवश्यक नहीं है। इस कारण से विस्तार से उल्लेख किया गया है कि वर्तमान याचिका में विचार करने के लिए आवश्यक कानूनी मुद्दा उस पर निर्भर नहीं है। यह ऐसा मामला नहीं है जहां कोई प्रक्रियात्मक त्रुटि है, बल्कि यह ऐसा मामला है जहां योजना के तहत लाभ प्राप्त करने के लिए पाचिकाकर्ता की पात्रता ही मुख्य प्रश्न है।

9. योजना के खंड 4 के अनुसार, इसमें लाभ प्राप्त करने के लिए नियमों के तहत लाइसेंस अनुदान के लिए एक आवेदन 1 जनवरी, 1984 से 31 मार्च, 1990 के बीच दायर किया जाना चाहिए। यह माना जाता है कि ऐसा आवेदन दायर किया गया था 26 फरवरी 1990 को हालांकि नियमों के नियम 4 के अनुसार, सिनेमा हॉल चलाने के लिए लाइसेंस देने के लिए एक आवेदन के साथ कुछ दस्तावेज़ संलग्न करना आवश्यक है, जो इस प्रकार है

"(ए) आदेश या अनुमोदन नियम 3(1) के तहत योजना का,

(बी) नियम 3 के उप-नियम (2) में उल्लिखित विशिष्टताओं से युक्त भवन और परिसर की योजना

(सी) प्रत्येक कक्षा के लिए अलग से बैठने की व्यवस्था की योजना

(डी) विद्युत निरीक्षक से सरकार को प्रमाण पत्र कि विद्युत प्रतिष्ठान आवश्यक मानकों और मौजूदा नियमों के अनुरूप हैं.

(ई) क्षेत्राधिकार वाले स्वास्थ्य चिकित्सा अधिकारी से प्रमाण पत्र कि स्वच्छता की व्यवस्था मौजूदा नियमों की आवश्यकताओं के अनुरूप है और 2022 की 5 रिट टैक्स संख्या 194

(एफ) क्षेत्राधिकार वाले क्षेत्रीय अग्निशमन अधिकारी से प्रमाण पत्र कि प्रदान की गई अग्निशमन उपकरणों की व्यवस्था और आग के खिलाफ बरती गई सावधानियां मौजूदा नियमों की आवश्यकताओं के अनुरूप है।

10. चूंकि योजना में लाभ प्राप्त करने के लिए पात्र होने की अंतिम अंतिम तिथि 31 मार्च, 1990 थी, जैसा कि विवादित संचार से स्पष्ट है, 1 अप्रैल, 1990 को सहायक मनोरंजन आयुक्त, वाराणसी द्वारा एक निरीक्षण किया गया था। और निम्नलिखित विसंगतियाँ पाई गई

(1) सिनेमा भवन की दीवारों और कमरों का निर्माण कार्य पूरा हो चुका है।

(ख) ऑडिटोरियम के अंदर 3/4 भाग का काम पूरा हो चुका है और बाकी का काम जारी है 7 कोण (छत के लिए dSapk) स्थापित कर दिए गए हैं और छत की 4 पंक्तियों के लिए टिन शेड स्थापित कर दिए गए हैं और इन्हें दो के लिए स्थापित किया जाना बाकी है।

अनुवादित

(iii) चरण पूरा हो गया है, लेकिन स्क्रीन नहीं लगाई गई है और न ही प्रोजेक्टर लगाया गया है केबिन में स्थापित किया गया है और न ही फाउंडेशन का कार्य प्रगति पर पाया गया है। सभागार में बालकनी और ग्राउंड फ्लोर के किसी भी कमरे में कोई सीट नहीं रखी गई है। छह दरवाजे लगाए गए हैं लेकिन फ्लैप को ठीक किया जाना है। हॉल के फर्श का कार्य किया जाना है प्रगति पर है। सभागार व बरामदे में मिट्टी डालने का काम पूरा हो चुका है, प्लास्टर होना है।

(iv) सभागार में कोई बिजली पंखा एवं अग्निशमन यंत्र नहीं है, ऐसा बताया गया कि इसे एक कमरे में रखा गया है

(v) हॉल के बाहर प्लास्टरिंग का काम चल रहा है। बाहरी खुली जगह के समतलीकरण का काम अधूरा पड़ा है। सीमा का निर्माण नहीं किया गया है।"

11. निरीक्षण प्रतिवेदन में निरीक्षण अधिकारी द्वारा यह भी उल्लेख किया गया है कि निरीक्षण के समय फिल्म प्रदर्शन प्रारंभ होने की स्थिति में नहीं थी। इसके बाद 9 जनवरी 1991 को सहायक मनोरंजन कर आयुक्त द्वारा पुनः सिनेमा हॉल का स्थलीय निरीक्षण किया गया जिसमें निम्नलिखित कमियाँ/ खामियाँ पाई गई. ए. प्रोजेक्शन रूम में मशीनों से निकलने वाले धुएं को बाहर निकालने के लिए वेंटिलेशन फ्ली एग्जॉस्टर नहीं लगाए गए हैं वही स्थापित किया जाए. बी बालकनी के पास बने महिला शौचालय व मूत्रालय में कोई दरवाजा नहीं लगा है. वहीं ठीक किया जाए सी रिवाइंडिंग रूम तक जाने वाला रास्ता प्रोजेक्शन रूम से होकर गुजरता है हालांकि नियमानुसार यह प्रोजेक्शन रूम से बाहर होना चाहिए।

12. निरीक्षण की उपरोक्त रिपोर्ट इस तथ्य को स्पष्ट रूप से स्थापित करती है कि जिस तिथि पर याचिकाकर्ता ने लाइसेंस देने के लिए आवेदन दायर किया था या योजना के तहत प्रदान की गई अंतिम तिथि पर यहां तक कि बुनियादी ढांचा भी पूरा नहीं था और याचिकाकर्ता के पास अपेक्षित सुविधाएं भी नहीं थीं। अनुमति जिसके आधार पर सिनेमा हॉल चलाने का लाइसेंस जारी किया जा सकेगा।

13. केवल इसलिए कि याचिकाकर्ता ने योजना के तहत निर्दिष्ट अवधि के भीतर लाइसेंस देने के लिए आवेदन दिया था, वह योजना के तहत लाभ प्राप्त करने का हकदार नहीं होगा, जब लाइसेंस देने के लिए पूर्व आवश्यकताएं पूरी नहीं हुई हों।

14. यह तर्क कि नियमों के तहत 21 फरवरी, 1991 को याचिकाकर्ता को लाइसेंस प्रदान करना स्पष्ट रूप से स्थापित करता है कि याचिकाकर्ता योजना के तहत लाभ का हकदार है, पूरी तरह से गलत है। दो मुद्दों को मिलाने की कोशिश की जा रही है. लाइसेंस देना महज सिनेमा हॉल चलाने के लिए है। यह वास्तव में याचिकाकर्ता को योजना के तहत प्रदान किए गए लाभों का लाभ उठाने का अधिकार नहीं देता है, क्योंकि योजना के तहत लाभ प्राप्त करने के लिए, उसमें निर्धारित शर्तों को भी पूरा करना होगा.

15. जहां तक याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के अन्य तक का सवाल है, उन पर भी केवल ध्यान दिया जाना चाहिए और उन्हें खारिज कर दिया जाना चाहिए याचिकाकर्ता द्वारा इस न्यायालय के समक्ष उठाए जाने वाले सभी मुद्दों को आक्षेपित आदेश में विधिवत निपटाया गया है। हमने याचिकाकर्ता को अपना पक्ष रखने के लिए सुनवाई का अवसर दिया है। हम याचिकाकर्ता को

अनुवादित

पदच्युत नहीं करना चाहते क्योंकि पहले भी उसने एक रिट याचिका दायर की थी। केवल इसलिए कि उनके मामले की सिफारिश योजना में विभिन्न खंडों की गलत धारणा पर की गई थी याचिकाकर्ता को उन लाभों का दावा करने का अधिकार नहीं होगा जिनके लिए वह हकदार नहीं है, क्योंकि वह उसमें निर्धारित शर्तों को पूरा नहीं करता है।

16. जहां तक योजना के उदार निर्माण के लाभकारी होने का सवाल है, यह तर्क खारिज करने योग्य है, क्योंकि योजना में लाभ प्राप्त करने के लिए इसमें निर्धारित सभी शर्तों को सख्ती से पूरा करना होगा।

17. किसी कर छूट प्रावधान अधिसूचना की व्याख्या करते समय लागू किए जाने वाले व्याख्या उपकरणों के प्रश्न पर जब इसकी प्रयोज्यता या निर्धारिती की पात्रता के संबंध में कोई अस्पष्टता हो, माननीय संविधान पीठ द्वारा विचार करने के लिए भेजा गया था। **सीमा शुल्क आयुक्त (आयात), मुंबई बनाम मेसर्स दिलीप कुमार एंड कंपनी और अन्य (2018)9 एससीसी** में सुप्रीम कोर्ट उपरोक्त निर्णय के पैरा 1 और 2 माननीय संविधान पीठ द्वारा जांचे गए मुद्दों पर प्रकाश डालते हैं।

1.सर्वोच्च न्यायालय को धन्यवाद दो ये इस प्रकार है. यह संविधान पीठ सन एक्सपोर्ट कॉर्पोरेशन में अनुपात की शुद्धता की जांच करने के लिए स्थापित की गई है। वी. सीमा शुल्क कलेक्टर (1997) 6 एससीसी 564 (संक्षिप्तता के लिए इसे इसके बाद सन एक्सपोर्ट केस के रूप में संदर्भित किया गया है, अर्थात्, प्रश्न यह है कर छूट प्रावधान अधिसूचना की व्याख्या करते समय लागू किया जाने वाला व्याख्यात्मक नियम क्या है? क्या निर्धारिती की पात्रता वा लागू किए जाने वाले कर की दर के संदर्भ में इसकी प्रयोज्यता के बारे में अस्पष्टता है?

2. सन एक्सपोर्ट मामले (सुप्रा) में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने फैसला सुनाया कि कर छूट प्रावधान या अधिसूचना में अस्पष्टता की व्याख्या की जानी चाहिए ताकि ऐसी छूट के लाभ का दावा करने वाले निर्धारिती का पक्ष लिया जा सके। जब यह अपील दो जजों की बेंच के सामने रखी गई तो ऐसे नियम पर संदेह हुआ। इसके बाद मामला तीन जजों की बेंच के सामने गया, जिसमें हममें से एक (रंजन गोगोई, जे.) भी शामिल थे तीन जजों की बेंच ने कानून की आज की स्थिति की असंतोषजनक स्थिति को देखते हुए राय दी कि सन एक्सपोर्ट मामले (सुप्रा) में दिए गए आदेश पर पुनर्विचार की आवश्यकता है और इसी तरह इस मामले को इस संविधान पीठ के समक्ष रखा गया है।

18. उपरोक्त निर्णय में आगे यह देखा गया कि जब किसी कानून में शब्द स्पष्ट स्पष्ट और असंदिग्ध होते हैं और केवल एक ही अर्थ निकाला जा सकता है, तो न्यायालय परिणाम की परवाह किए बिना उक्त अर्थ को प्रभावी करने के लिए बाध्य है। उसके पैरा 21, 22 और 23 नीचे दिए गए है

"21. सुस्थापित सिद्धांत यह है कि जब किसी क़ानून में शब्द स्पष्ट स्पष्ट और स्पष्ट होते हैं और केवल एक ही अर्थ निकाला जा सकता है, तो अदालतें परिणामों की परवाह किए बिना उक्त अर्थ को प्रभावी करने के लिए बाध्य होती है। यदि कानून में शब्द स्पष्ट और स्पष्ट है, तो उन शब्दों को उनके प्राकृतिक और सामान्य अर्थ में व्याख्या करना आवश्यक हो

जाता है। प्रयुक्त शब्द विधायिका की मंशा को उजागर करते है

22. कनाई लाल सूर बनाम परमनिधि साधुखान, एआईआर 1957 एससी 907 में, यह माना गया था कि यदि इस्तेमाल किए गए शब्द केवल एक निर्माण के लिए सक्षम हैं तो अदालतों के लिए इस आधार पर किसी अन्य काल्पनिक निर्माण को अपनाने के लिए खुला नहीं होगा। निर्माण अधिनियम की कथित वस्तु और नीति के साथ अधिक सुसंगत है।

23. सामान्य अर्थ के नियम को लागू करने में कोई भी कठिनाई और असुविधा कानून द्वारा प्रयुक्त भाषा के अर्थ को बदलने का आधार नहीं हो सकती। ऐसा विशेषकर राजकोषीय कानूनों और दंडात्मक क़ानूनों में है। फिर भी, यदि 2022 की भाषा के साढ़े के परिणामस्वरूप बेतुकापन आता है, तो अदालत विधार्थी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उस संदर्भ में शब्द का अर्थ निर्धारित करने का हकदार है जिसमें इसका उपयोग किया जाता है। इतना ही नहीं, यदि सादा निर्माण विसंगति और बेतुकेपन की ओर ले जाता है, तो अदालत ऐसे प्रावधान से होने वाली कठिनाई और परिणामों को ध्यान में रखते हुए कानून के वास्तविक इरादे को भी समझा सकती है। वैधानिक व्याख्या पर लागू सामान्य सिद्धातों का अवलोकन करने के बाद अब कराधान के संबंध में व्याख्या के नियमों पर विचार करने का समय आ गया है।

19. उपरोक्त निर्णय के पैरा 29 में यह राय दी गई कि किसी क़ानून की सखर व्याख्या में निश्चित रूप से शाब्दिक या स्पष्ट अर्थ परीक्षण शामिल होता है व्याख्या के अन्य उपकरण, अर्थात् प्रासंगिक या उद्देश्यपूर्ण व्याख्या को लागू नहीं किया जा सकता है और न ही अन्य सहायक सामग्री को देखने के लिए कोई सहारा लिया जाता है, खासकर कराधान कानून में यह सर्वविदित है कि कराधान कानून में किसी भी इरादे के लिए कोई जगह नहीं है। शब्दों के स्पष्ट अर्थ को ध्यान में रखना होगा और मामले को पूरी तरह से उसमें इस्तेमाल की गई भाषा से नियंत्रित करना होगा। समता का कोई स्थान नहीं है. उसका पैरा 29 नीचे दिया गया है.

"29 हम यह सुझाव नहीं दे रहे हैं कि शाब्दिक नियम सख्त व्याख्या को अस्वीकार करता है और न ही किसी को 'सख्त व्याख्या' और 'शाब्दिक व्याख्या के बीच परस्पर क्रिया को सुनिश्चित करने की उपेक्षा करनी चाहिए। हम दोहराव की कीमत पर दोहरा सकते हैं कि किसी कानून की सख्त व्याख्या में निश्चित रूप से शाब्दिक या स्पष्ट अर्थ परीक्षण शामिल होता है। व्याख्या के अन्य उपकरण, अर्थात् प्रासंगिक या उद्देश्यपूर्ण व्याख्या को लागू नहीं किया जा सकता है और न ही अन्य सहायक सामग्री को देखने के लिए कोई सहारा लिया जा सकता है, खासकर कराधान कानून में वास्तव में यह अच्छी तरह से स्थापित है कि कराधान कानून में किसी भी इरादे के लिए कोई जगह नहीं है, शब्दों के स्पष्ट अर्थ पर ध्यान दिया जाना चाहिए और मामला पूरी तरह से अधिसूचना की भाषा से नियंत्रित होना चाहिए। कर कानून की व्याख्या में इक्विटी का कोई स्थान नहीं है। किसी को सख्ती से इस्तेमाल की जाने वाली भाषा पर ध्यान देना होगा, इरादे की खोज के लिए कोई जगह नहीं है और न ही में कोई अनुमान लगाया गया है। इसके अलावा, कराधान कानून पर विचार करते समय आवश्यक निष्कर्षो के अलावा कुछ भी नहीं पड़ा जाना चाहिए और न ही कुछ निहित किया जाना चाहिए

20. निर्णय में पैरा 55 में उन चरणों के संबंध में चर्चा, जिन पर सख्त व्याख्या का नियम लागू किया जाना है और अस्पष्टता के मामले में उसके लाभार्थी वर्तमान रिट याचिका में मुद्दे पर विचार करने के लिए काफी प्रासंगिक है। यह राय दी गई कि किसी विषय पर कर लगाने के चरण में अस्पष्टता के मामले में लाभ विषय को जाता है जबकि छूट प्रावधान में अस्पष्टता के मामले में लाभ राजस्व को जाता है। पैरा 55 नीचे निकाला गया है:

"55. इसके लिए प्रचुर न्यायशास्त्रीय औचित्य मौजूद है। लिखित संविधान द्वारा कानून के शासन के शासन में कराधान की कोई निहित शक्ति नहीं होती है। कर शक्ति विशेष रूप से प्रदान की जानी चाहिए और यह संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति के अनुरूप ही होनी चाहिए। यही कारण है कि अदालतें किसी राज्य द्वारा अपने नागरिकों से विभिन्न करों की मांग करने और उनसे धन निकालने से पहले कड़ाई से अनुपालन पर जोर देती हैं इसलिए, कराधान प्रावधान में किसी भी अस्पष्टता की व्याख्या विषय/ निर्धारिती के पक्ष में की जाती है। कानून का यह कथन कि कराधान कानून में अस्पष्टता की कड़ाई से व्याख्या की जानी चाहिए और अस्पष्टता की स्थिति में लाभ विषय निर्धारिती को जाना चाहिए, विभिन्न स्थितियों की कल्पना करना उचित हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि कर के विषय में अस्पष्टता है, यानी कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी व्यक्ति या चीजें कौन है, और क्या राजस्व ने नांग बढ़ाने और उचित ठहराने से पहले शर्तें स्थापित की है। सभी व्यक्तियों को कर के दायरे में लाने का मामला भी ऐसा ही है. ऐसी स्थिति में राज्य को व्यक्तियों के दायित्व को साबित करना होता है, जैसा कि कानून की सख्त भाषा में उत्पन्न हो सकता है। कर के विषय या कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी व्यक्ति की पहचान करने में कोई निहित अवधारणा नहीं हो सकती है। इसीलिए यह अक्सर कहा जाता है कि विषय पर कर नहीं लगाया जाना चाहिए, जब तक कि क़ानून के शब्द स्पष्ट रूप से उस पर कर नहीं लगाते हैं कि किसी को केवल स्पष्ट रूप से बताए गए शब्दों को देखना होगा और वहां कर के संबंध में किसी भी इरादे या अनुमान के लिए कोई जगह नहीं है। यह केवल कानून का अक्षर है, न कि कानून की भावना जो दुभाषिया को किसी भी कठिनाई की अनदेखी करते हुए और कराधान में इक्विटी से बचते हुए कर की देनदारी तय करने के लिए मार्गदर्शन करती है। इस प्रकार हम दृढ़तापूर्वक दोहरा सकते है कि यदि कराधान दायित्व कानून में अस्पष्टता की स्थिति में, लाभ विषय निर्धारिती को जाना चाहिए। लेकिन, **स्थिति में जहां कर छूट की व्याख्या की जानी है, संदेह का लाभ राजस्व के पक्ष में जाना चाहिए, उपरोक्त निष्कर्ष केवल हमारे निष्कर्ष के लिए न्यायशास्त्रीय आधार को बेहतर ढंग से समझने के लिए एक प्रस्तावना के रूप में सामने रखे गए हैं। ऐसी** अब हम उन निर्णयों पर विचार कर सकते हैं जो हमारे दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं

(जोर दिया गया)

21. सभी मुद्दों पर विस्तृत चर्चा के बाद, संविधान पीठ का संदर्भ निम्नलिखित शब्दों में उत्तर दे रहा था.

"66. संक्षेप में, हम संदर्भ होल्डिंग का उत्तर इस प्रकार देते हैं

अनुवादित

66.1, छूट अधिसूचना की सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए प्रयोज्यता साबित करने का भार निर्धारिती पर होगा कि वह यह दिखाए कि उसका मामला छूट खंड या छूट अधिसूचना के मापदंडों के भीतर आता है।

66.2. जब छूट अधिसूचना में अस्पष्टता होती है जो सख्त व्याख्या के अधीन होती है, तो ऐसी अस्पष्टता का लाभ विषय निर्धारिती द्वारा दावा नहीं किया जा सकता है और इसकी व्याख्या राजस्व के पक्ष में की जानी चाहिए।

66.3. सन एक्सपोर्ट मामले (प्रा) में अनुपात सही नहीं है और सन एक्सपोर्ट मामले (सुप्रा) के समान दृष्टिकोण वाले सभी निर्णयों को खारिज कर दिया गया है।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय में यह आधिकारिक रूप से माना गया है कि छूट अधिसूचनाओं की सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए और यह साबित करना होगा कि एक निर्धारिती छूट अधिसूचना के 2022 के चार कोनों 12 रिट टैक्स संख्या 194 के अंतर्गत आता है। उस पर झूठ बोलता है. यदि मामले के तथ्यों की उस प्रकाश में जांच की जाती है, जो याचिकाकर्ता यह साबित करने में सक्षम नहीं है कि वह योजना के चहल दिए गए लाभों का लाभ उठाने के लिए पात्र है, क्योंकि उसने उसमें निर्धारित शर्तों को पूरा नहीं किया है।

23. ऊपर उल्लिखित कारणों से हमें वर्तमान रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं मिलती है। तदनुसार उसे खारिज किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 1090

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 06.02.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर,

रिट टैक्स संख्या 208/2017

प्रधान आयुक्त, आयकर (केंद्रीय)

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री मनीष मिश्रा, अधिवक्ता

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री डी.डी. चोपड़ा और श्री एस.बी. पांडे वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री शिशिर चंद्रा और शैलेश वर्मा, अधिवक्ता

सिविल कानून - आयकर अधिनियम, 1961 - आयोग ने करदाताओं के आवेदन पर कार्रवाई की - आयकर विभाग द्वारा उठाए गए आपत्तियों को निरस्त करते हुए वाद निस्तारित किया - इसके अलावा निपटान आयोग ने केवल दो आवेदकों के आदेश पर आदेश को आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 245 डी (6बी) के अंतर्गत संशोधन करने के लिए आगे बढ़ाया - प्रतिवादियों और दो करदाताओं द्वारा हेरफेर, जो आयोग के समक्ष नहीं थे, लेकिन तलाशी जब्ती अभियान के भाग थे, स्पष्ट-लाभ है - जिस तरह से आयोग आगे बढ़ा, वह संदिग्ध है।

आयोग ने तय कानूनी स्थिति के विपरीत गैरकानूनी और मनमाने ढंग से इसकी समीक्षा की - आक्षेपित आदेश अपास्त कर दिया गया।

डब्ल्यू.पी. स्वीकृत। (ई-9)

अनुवादित

उद्धृत वाद सूची:

1. आयकर आयुक्त बनाम अंजुम एम. एच. घासवाला और अन्य, (2002) 1 एससीसी 633

2. ज्योतेन्द्रसिंहजी बनाम एस.आई.त्रिपाठी एवं अन्य, 1993 अनुपूरक(3) एससीसी 389 पृष्ठ 399

3. अजमेरा हाउसिंग कॉर्पोरेशन और अन्य बनाम आयकर आयुक्त (2010) 8 एससीसी 739
4. अंजुम एम.एच. घासवाला और अन्य (सुप्रा) और अन्य
5. बृज लाल एवं अन्य बनाम आयकर आयुक्त, जालंधर, (2011) 1 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर, द्वारा प्रदत्त)

आदेश

1. प्रधान आयकर आयुक्त (केंद्रीय), लखनऊ ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से आय कर समझौता आयोग (इसके पश्चात आयोग के रूप में संदर्भित) के दिनांक 19/22.08.2016 और 17.02.2017 के आदेशों को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का रुख किया है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दिनांक 31.07.2013 को 5 व्यक्तियों, जिनमें शामिल हैं (1) डॉ. ए.के. सचान, (2) सुश्री रिचा मिश्रा, (3) शेखर हॉस्पिटल (प्रा॰) लिमिटेड, (4) श्री बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट और (5) मेसर्स हिंद चैरिटेबल ट्रस्ट, के विभिन्न परिसरों पर छापेमारी और जब्ती की कार्रवाई की गई। छापेमारी के दौरान डॉ. ए.के. सचान और सुश्री रिचा मिश्रा के आवासीय परिसर और कार्यालय कक्षों से रु॰ 1,76,94,500/- की नकद राशि जब्त की गई। तलाशी के दौरान एक निर्धारिती सुश्री रिचा मिश्रा ने अघोषित आय के रूप में रु॰ 8.00 करोड़ इस प्रकार से अभ्यर्पित कर दिया: -

तालिका-1

1	सुश्री रिचा मिश्रा		रु॰ 5 करोड़
2	श्री बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट		रु॰ 1.50 करोड़
3	शेखर हॉस्पिटल (प्रा॰) लिमिटेड		रु॰ 1.50 करोड़

3. **31** जुलाई **2013** को जिन **5** इकाइयों पर छापेमारी की गई थी**,** उनमें से तीन ने आयकर अधिनियम की धारा **245** के अंतर्गत **27** फरवरी **2015** को समझौता आयोग के समक्ष अलग-अलग आवेदन दायर किए**,** जिसमें उन्होंने अपनी अघोषित आय का खुलासा इस प्रकार किया:

तालिका-2

4. आवेदन प्राप्त होने पर, समझौता आयोग ने आवेदन पर आगे कार्यवाही करने का निर्णय लिया, और संबंधित प्रधान आयकर आयुक्त को आयकर समझौता (प्रक्रिया) नियमावली, 1997 के नियम 9 के अंतर्गत उनकी प्रतिक्रिया प्राप्त करने हेतु एक प्रति भेजी और अंततः आयकर

अनुवादित

विभाग द्वारा उठाई गई आपत्तियों को दिनांक 19/22.8.2016 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज करते हुए मामले का निपटारा कर दिया।

5. वर्तमान रिट याचिका समझौता आयोग के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई थी। वर्तमान याचिका के लंबित रहने के दौरान समझौता आयोग ने आयकर अधिनियम, 1961 (इसके पश्चात 'अधिनियम 1961' के रूप में संदर्भित) की धारा 245डी(6बी) के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केवल दो आवेदकों की याचना पर आदेश को संशोधित करने हेतु अग्रेतर कार्यवाही की और दिनांक 17.02.2017 के आदेश द्वारा आवेदकों को अतिरिक्त लाभ प्रदान किया, जिसे रिट में संशोधन किए जाने के पश्चात वर्तमान याचिका में भी चुनौती दी गई है।

<u>समझौता आयोग के समक्ष पक्षकार:</u>

6. **समझौता आयोग के समक्ष आवेदन निम्नलिखित इकाइयों/व्यक्तियों द्वारा दायर किए गए थे, जिनका विवरण इस प्रकार है:**

ए:- सुश्री रिचा मिश्रा: आवेदिका ने आवेदन में स्वयं को मेसर्स शेखर हॉस्पिटल (प्राइवेट लिमिटेड) के प्रशासन को नियंत्रित करने वाली निदेशक के रूप में वर्णित किया है, जो एक अस्पताल चलाता है और नर्सिंग व स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, वह एक ट्रस्टी के रूप में मेसर्स श्री बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट के मामलों को भी नियंत्रित और प्रबंधित कर रही हैं, जो एक नर्सिंग कॉलेज चलाता है और स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करता है। उसने आगे प्रस्तुत किया है कि इन दो संस्थानों के प्रबंधन के अलावा वह अन्य संस्थान भी चला रही है, डॉ. ए.के. सचान की पत्नी, जो कि किंग जॉर्ज चिकित्सा विश्वविद्यालय, लखनऊ में नियमित कर्मचारी हैं और नैदानिक औषध विज्ञान के प्राध्यापक के रूप

1	सुश्री रिचा मिश्रा	रु॰ 1,93,16,254/-
2	श्री बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट	रु॰ 1,69,04,560/-
3	शेखर हॉस्पिटल (प्रा॰) लिमिटेड	रु॰ 4,84,46,020/-

में कार्य कर रहीं हैं।

बी:- **<u>शेखर हॉस्पिटल (प्राइवेट) लिमिटेड</u>**:

आवेदक शेखर हॉस्पिटल (प्राइवेट लिमिटेड) को 26.12.1995 को निगमित किया गया था और यह इंदिरा नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश में एक अस्पताल चला रहा है। अस्पताल के निदेशक हैं: (1) डॉ. रिचा मिश्रा; (2) श्री के.के. सचान; (3) डॉ. हरिश चंद्र और (4) डॉ. ए.के. सचान।

सी:- **<u>मेसर्स बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट</u>**:सुश्री रिचा मिश्रा प्रबंध ट्रस्टी हैं और डॉ. ए.के. सचान भी उक्त ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं। ट्रस्ट एक नर्सिंग कॉलेज चला रहा है और स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान कर रहा है। डॉ. ए.के. सचान किंग जॉर्ज चिकित्सा विश्वविद्यालय, लखनऊ में नियमित कर्मचारी है और नैदानिक औषध विज्ञान के प्राध्यापक हैं।

7. उपरोक्त तीन आवेदकों की ओर से समझौता आयोग के समक्ष दायर आवेदन में, प्रकटीकरण राशि की पुनः गणना की गई और तालिका 2 में दर्शाई गई राशि के अनुसार पुनः वितरित किया गया।

तर्क-विवेचना

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मनीष मिश्रा ने समझौता आयोग के आदेशों को चुनौती दी है

ए. सर्वप्रथम इस आधार पर कि आवेदकों द्वारा निपटारे के लिए अपने आवेदनों में किए गए प्रकटीकरण अधिनियम, 1961 की धारा 245(सी) द्वारा अधिदेशित पूर्ण और सत्य प्रकटीकरण नहीं थे। यह तर्क दिया गया कि समझौता आयोग के समक्ष आवेदन करने के लिए यह एक पूर्व शर्त है कि अघोषित आय की घोषणा पूर्ण और सत्य होनी चाहिए, इसलिए अकेले इस आधार पर ही समझौता आयोग द्वारा आवेदन को खारिज कर दिया जाना चाहिए था।

बी. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया दूसरा आधार यह था कि डॉ. ए.के. सचान को तलाशी अभियान के अधीन रखा गया था और कई अघोषित बैंक खाते खोजे गए थे, किन्तु उक्त बैंक खातों में प्राप्तियों को मेसर्स हिंद चैरिटेबल ट्रस्ट की आय के रूप में बताया गया था। यह प्रस्तुत किया गया कि डॉ. ए.के. सचान आयोग के समक्ष पक्षकार नहीं थे, न ही वे आयोग के समक्ष उपस्थित हुए। उन्होंने कोई साक्ष्य नहीं दिया, इसलिए, आयोग इस संबंध में प्रतिवादियों के पक्ष में कोई निर्णय नहीं दे सकता था।

सी. आगे यह तर्क दिया गया कि डॉ. ए.के. सचान को नियमित मूल्यांकन के अधीन रखा गया था, और आयकर विभाग ने अघोषित खाते में मिली प्राप्तियों का उनकी आय के रूप में आकलन किया था, जो आयोग के समक्ष निपटारे का विषय नहीं हो सकता था क्योंकि यह अब "अघोषित आय" नहीं रह गया था। इसके अतिरिक्त, डॉ. ए.के. सचान का यह कभी भी दावा नहीं था कि आय किसी और की है, न कि उनकी। अतः आक्षेपित आदेश अवैध और बिना क्षेत्राधिकार के है।

डी. आयोग के दिनांक 17.02.2017 के आदेश को इस आधार पर भी चुनौती दी गई है कि संशोधन आवेदन को अनुमति देते समय आयोग ने नए तथ्यों के आधार पर अपने प्रारंभिक आदेश दिनांक 19/22.08.2016 में महत्वपूर्ण परिवर्तन और पुनर्विलोकन किया, जो बिना क्षेत्राधिकार के था क्योंकि आयोग के पास पुनर्विलोकन की कोई शक्ति नहीं है।

इ. आयोग ने प्रतिवादियों के पक्ष में ब्याज माफ कर दिया है जो याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, उच्चतम न्यायालय द्वारा **आयकर आयुक्त बनाम अंजुम एम.एच. घसवाला व अन्य**[1] के मामले में दिये गए निर्णय के आलोक में नहीं किया जा सकता था। उन्होंने तर्क दिया कि आयोग ने न कोई कारण दिया है और न ही बोर्ड के दिशानिर्देशों पर विचार किया है।

एफ. अंत में यह तर्क दिया गया कि जिस तरीके से आयोग ने कार्यवाही की है और मामले का निपटारा किया है, वह सतही तौर पर मनमाना है, क्योंकि आयकर विभाग की आपत्तियों पर भी विचार नहीं किया गया है या उनका निपटारा नहीं किया गया है, जो यह दर्शाता है कि आक्षेपित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है।

9. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डी.डी. चोपड़ा ने समझौता आयोग

द्वारा पारित आक्षेपित आदेश का समर्थन किया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि तलाशी अभियान के दौरान खातों विवरण निजी प्रतिवादियों के पास उपलब्ध नहीं था। बाद में खातों की जांच की गई और आयोग के समक्ष आवेदन दाखिल करते समय देखा गया। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि समझौता आयोग का अधिकार क्षेत्र केवल मामले को सुलझाने तक ही सीमित था, न कि विभाग द्वारा उठाए गए सभी आधारों पर निर्णय लेने के लिए, इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया कि आयोग द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं थी।

चर्चाएँ

10. वर्तमान याचिका में उठाए गए प्रश्नों पर विचार करने के लिए, आयकर अधिनियम, 1961 के अध्याय XIX-A की योजना को ध्यान में रखना होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने **ज्योतेंद्रसिंहजी बनाम एस.आई. त्रिपाठी व अन्य**[2] के मामले में, आयोग के दायरे और अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट किया है, जो इस प्रकार है:

"15. पहला प्रश्न जिसका हमें उत्तर देना है वह यह है कि संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत समझौता आयोग के आदेशों के खिलाफ दायर की गई इन अपीलों का दायरा क्या है। सवाल यह है कि क्या आयोग द्वारा तय किए गए सभी तथ्यों और विधि के प्रश्न इस अपील में पुनर्विलोकन के योग्य हैं। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए अध्याय XIX-A की योजना को ध्यान में रखना होगा। उक्त अध्याय को 1 अप्रैल, 1976 से प्रभावी होने हेतु कराधान विधि (संशोधन) अधिनियम, 1975 द्वारा अन्तःस्थापित किया गया था। आयकर अधिनियम, 1922 की धारा 34 की उप-धारा (1-ए) से (1-डी) तक कुछ हद तक समान प्रावधान था, जिसे वर्ष 1954 में प्रस्तावित किया गया था। हालांकि, अध्याय XIX-A के प्रावधान, 1922 अधिनियम के उक्त प्रावधानों की तुलना में गुणात्मक रूप से भिन्न और अधिक विस्तृत हैं। इस अध्याय के अंतर्गत कार्यवाही निर्धारिती द्वारा धारा 245-सी के अंतर्गत आवेदन के माध्यम से शुरू होती है। धारा 245-डी धारा 245-सी के अंतर्गत आवेदन प्राप्त होने पर आयोग द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रिया को निर्धारित करती है। उप-धारा (4) कहती है:

"अभिलेख की और उपधारा (1) के अधीन प्राप्त आयोग की आख्या की तथा उपधारा (3) के अधीन प्राप्त आयुक्त की आख्या की, यदि कोई हो, परीक्षा करने के पश्चात् और आवेदक को तथा आयुक्त को स्वयं या इस निमित्त सम्यक् रूप से प्राधिकृत प्रतिनिधि की मार्फत सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् और ऐसे अतिरिक्त साक्ष्य की जो उसके समक्ष रखा जाए या उसके द्वारा प्राप्त किया जाए, परीक्षा करने के पश्चात समझौता आयोग, आवेदन के अन्तर्गत आने वाले विषयों और मामलों से संबंधित किसी ऐसे अन्य विषय के बारे में, जो आवेदन के अंतर्गत नहीं आता है किन्तु उपधारा (1) या उपधारा (3) के अधीन आयुक्त की आख्या में निर्दिष्ट है, इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझता है।"

धारा 245-ई आयोग को उपयुक्त मामलों में पूर्ण की गई कार्यवाही को फिर से प्रारंभ करने का अधिकार देती है, जबकि धारा 245-एफ आयोग को आयकर प्राधिकारी की सभी शक्तियां प्रदान करती है। धारा 245-एच आयोग को ऐसे मामलों में, जहां वह संतुष्ट है कि निर्धारिती ने अपनी आय और उसके स्रोतों का पूरा खुलासा किया है,

शर्तों के साथ या बिना शर्तों के दंड और अभियोजन से छूट देने का अधिकार देता है। धारा 245-एचए के अंतर्गत, आयोग मामले को मूल्यांकन अधिकारी को वापस भेज सकता है, जहां यह ज्ञात हो जाए कि आवेदक उसके साथ सहयोग नहीं कर रहा है। धारा 245-आई घोषित करती है कि धारा 245-डी की उप-धारा (4) के अंतर्गत पारित निपटान का प्रत्येक आदेश उसमें बताए गए मामलों के लिए निर्णायक होगा और अध्याय XIX-ए में अन्यथा प्रदान किए गए मामलों को छोड़कर, ऐसे आदेश के अंतर्गत आने वाला कोई भी मामला अधिनियम या तत्समय लागू किस अन्य विधि के अंतर्गत कार्यवाही के दौरान पुनः खोला नहीं जा सकेगा। धारा 245-एल घोषित करती है कि समझौता आयोग के समक्ष अध्याय XIX-ए के अंतर्गत किसी भी कार्यवाही को धारा 193 व 228 के अर्थ में और दंड संहिता, 1860 की धारा 196 के प्रयोजनों हेतु न्यायिक कार्यवाही माना जाएगा।

16. यह सत्य है कि धारा 245-आई में निहित निश्चायक खंड उच्च न्यायालय के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार या इस न्यायालय के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत अथवा यथास्थिति अनुच्छेद 136 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार को बाधित नहीं करता है और न ही बाधित कर सकता है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सीधे इस न्यायालय में दायर अपील के मामले में इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार किसी भी तरह से उस मामले से भिन्न है जिसमे निर्धारिती ने पहले अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय का रुख किया होता और फिर अनुच्छेद 136 के अंतर्गत इस न्यायालय में अपील में आता। एक पक्षकार को अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय जाने के बजाय अनुच्छेद 136 के अंतर्गत सीधे इस न्यायालय में आने से कोई लाभ नहीं होता है और न ही हो सकता है। यह अनुच्छेद 136 में निहित सीमा नहीं है; यह एक ऐसी सीमा है जो यह न्यायालय आयोग द्वारा किए गए कार्य की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए और न्यायिक समीक्षा के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए स्वयं पर अधिरोपित करता है। संभवतः, डॉ गौरी शंकर की इस बात में भी कुछ बल है कि आयोग का आदेश एक पैकेज डील की प्रकृति का है और सामान्यतया, इसके आदेश को विच्छेदित करना संभव नहीं हो सकता है और निर्धारिती को यह अनुमति नहीं दी जानी चाहिए कि वह उसे स्वीकार कर ले जो उसके अनुकूल है और उसे अस्वीकार कर दे जो अनुकूल नहीं है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, आयोग को एक तर्कपूर्ण आदेश पारित करने की आवश्यकता या दायित्व भी नहीं है। यथास्थिति, यह तथ्य बना रहता है कि आयोग निपटारे के माध्यम से कर की राशि स्वीकार करने और उस राशि को भुगतान करने के तरीके को निर्धारित करने हेतु स्वतंत्र है। वह निर्धारिती की ओर से चूक और त्रुटियों को क्षमा कर सकता है और ब्याज, दंड या अभियोजन को माफ कर सकता है, जहाँ वह उचित समझता है। वास्तव में, आयोग को किसी विशेष आदेश को पारित करने हेतु प्रेरित करने वाले कारणों और विचारों का पूर्वानुमान लगाना कठिन होगा, जब तक कि निश्चित रूप से आयोग स्वयं अपने आदेश के लिए कारण बताना न चुन ले। भले ही वह किसी विशिष्ट मामले में कारण बताता है, अपील में जांच का दायरा उपरोक्तानुसार ही रहता है, अर्थात क्या यह अधिनियम के किसी भी प्रावधान के विरुद्ध है। इस संदर्भ में, यह ध्यान रखना उचित है कि प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत

(निष्पक्ष सुनवाई का नियम) धारा 245-डी में ही शामिल किया गया है। इस प्रकार आयोग पर एकमात्र समग्र सीमा यह प्रतीत होती है कि उसे अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कार्य करना चाहिए। उच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 226 के अंतर्गत या इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 136 के अंतर्गत जांच का दायरा भी वही है - क्या आयोग का आदेश अधिनियम के किसी भी प्रावधान के विरुद्ध है और यदि हां, तो क्या उसने पूर्वाग्रह, धोखाधड़ी और द्वेष के आधार के अलावा याचिकाकर्ता/अपीलार्थी को पक्षपातपूर्ण बनाया है, जो निश्चित रूप से एक अलग और स्वतंत्र श्रेणी का गठन करते हैं। इस संबंध में इस न्यायालय के आर॰बी॰ श्रीराम दुर्गा प्रसाद और फतेचंद नर्सिंग दास बनाम समझौता आयोग (आईटी और डब्ल्यूटी) [(1989) 1 SCC 628 : 1989 SCC (Tax) 124 : (1989) 176 ITR 169] के मामले में दिये गए निर्णय को संदर्भित किया जा सकता है, जो कि समझौता आयोग के आदेशों के खिलाफ ही एक अपील थी। माननीय न्यायमूर्ति सव्यसाची मुखर्जी और माननीय न्यायमूर्ति एस.आर. पांडियन की पीठ की ओर से कहते हुए माननीय न्यायमूर्ति सव्यसाची मुखर्जी ने टिप्पणी की कि ऐसे मामले में यह न्यायालय "अनुसरण की गई प्रक्रिया की वैधता से सरोकार रखता है, न कि आदेश की वैधता से"। विद्वान न्यायाधीश ने आगे कहा कि "न्यायिक समीक्षा निर्णय से नहीं बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया से संबंधित है"। एन॰डबल्यू॰ पुलिस के चीफ़ कांस्टेबल बनाम इवांस [(1982) 1 WLR 1155 : (1982) 3 All ER 141] के मामले में हाउस ऑफ लॉर्ड्स के निर्णय पर विश्वास किया गया। इस प्रकार, अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपीलीय शक्ति को न्यायिक समीक्षा की शक्ति के समान माना गया, जहां अपील समझौता आयोग के आदेशों के खिलाफ निर्देशित की जाती है। उपरोक्त सभी कारणों से, हमारी राय है कि एकमात्र आधार जिस पर यह न्यायालय इन अपीलों में हस्तक्षेप कर सकता है, वह यह है कि आयोग का आदेश अधिनियम के प्रावधानों के विरुद्ध है और इस तरह के उल्लंघन ने अपीलकर्ता को पूर्वाग्रहित कर दिया है। इन अपीलों में मुख्य विवाद निपटान विलेखों की व्याख्या से संबंधित है - हालांकि यह सच है, कुछ विधि संबंधी विवाद भी उठाए गए हैं। आयोग ने न्यास विलेखों की एक विशेष व्याख्या की है। यद्यपि आयोग द्वारा उक्त विलेखों पर की गई व्याख्या सही नहीं है, फिर भी यह इन अपीलों में हस्तक्षेप करने का आधार नहीं होगा, क्योंकि न्यास विलेख की गलत व्याख्या आयकर अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं हो सकती। यह भी उतना ही स्पष्ट है कि आयोग द्वारा उक्त विलेखों पर की गई व्याख्या प्राधिकारियों को अधिनियम के अंतर्गत अन्य निर्धारण वर्षों से संबंधित कार्यवाहियों में बाध्य नहीं करती है।"

<u>आय का सही और पूर्ण प्रकटीकरण:</u>

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया पहला तर्क यह था कि प्रतिवादियों ने 1961 के अधिनियम की धारा 245(सी) के अंतर्गत आवेदन करते समय आय का पूर्ण और सत्यप्रकटीकरण नहीं किया था और फलस्वरूप आयोग को तथ्यों को देखते हुए आवेदन खारिज कर देना चाहिए था। अपने तर्क के समर्थन में यह प्रस्तुत किया गया था कि तलाशी कार्यवाही के दौरान निर्धारिती ने स्वेच्छा

से 8.00 करोड़ अघोषित आय के रूप में निम्न प्रकार से अभ्यर्पित कर दिया था: रु॰5.00 करोड़ को सुश्री रिचा मिश्रा द्वारा अघोषित आय बताया गया था, रु॰1.50 करोड़ श्री बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा तथा रु॰1.50 करोड़ शेखर हॉस्पिटल प्राइवेट लिमिटेड द्वारा किन्तु आयोग के समक्ष आवेदनों में यह रकम परिवर्तित थी। डॉ. रिचा मिश्रा द्वारा रु॰1,93,16,254/-, श्री बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा रु॰1,69,04,560/- एवं शेखर हॉस्पिटल प्राइवेट लिमिटेड द्वारा रु॰4,84,46,020/- की आय एवं प्रकटीकरण किया गया था। इसके पश्चात कहा गया कि आगे की जांच करने के लिए विभाग द्वारा 7.7.2015 को आवेदन दायर किए गए थे किन्तु आयोग द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। अंत में, यह भी तर्क दिया गया कि श्री बी.डी. अग्रवाल की इलाहाबाद बैंक से कथित प्राप्तियों में से रु॰1.20 करोड़ की राशि का पहली बार प्रकटीकरण किया गया और संशोधन आवेदन में उस पर विचार किया गया। उक्त तथ्य यह निर्विवाद रूप से स्थापित करने के लिए पर्याप्त थे कि प्रतिवादियों ने आय का सही और पूर्ण प्रकटीकरण नहीं किया था और इसलिए, अधिनियम की धारा 245 (सी) की वैधानिक आवश्यकता का स्पष्ट उल्लंघन किया था। जब समझौता आयोग के समक्ष तथ्यों के विवरण (एस.ओ.एफ.) का आवेदन दायर किया गया था तब रु॰1.20 करोड़ की प्राप्ति का जानबूझकर खुलासा नहीं किया गया था। बल्कि यह संशोधन आवेदन में नये तथ्य प्रस्तुत करते हुए दिया गया स्पष्टीकरण था। समझौता आयोग को अघोषित आय का वास्तविक और पूर्ण प्रकटीकरण नहीं करने के कारण निपटान के आवेदन को अमान्य मानकर खारिज कर देना चाहिए था।

12. तलाशी के दौरान, सुश्री रिचा मिश्रा द्वारा तालिका 1 में उल्लिखित तीन इकाइयों से संबंधित अघोषित आय के रूप में रु॰8.00 करोड़ घोषित किए गए थे। समझौता आयोग के समक्ष पर्याप्त भिन्नता के साथ आवेदन दायर किया गया था, जिसके अंतर्गत आय का समायोजन 3 इकाइयों के बीच, जो कि समझौता आयोग के समक्ष आवेदक थे, इस प्रकार से किया गया कि उनकी आय का सही और पूर्ण प्रकटीकरण चित्रित न हो।

समझौता आयोग द्वारा 27.2.2015 को अंतिम आदेश पारित करने के पश्चात, रु॰1.20 करोड़ की राशि के अघोषित आय को और उजागर करते हुए एक संशोधन आवेदन दायर किया गया था, जिसे स्वीकार कर लिया गया है और समझौता आयोग द्वारा दिनांक 17.02.2017 के अपने आदेश में समायोजित कर दिया गया है। उपरोक्त तथ्य स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि प्रतिवादियों ने अपनी अघोषित आय का सही और पूर्ण प्रकटीकरण नहीं किया।

13. ये सभी तथ्य समझौता आयोग के समक्ष उस समय लाए गए थे जब याचिकाकर्ताओं ने निपटारे के आवेदन पर अपनी आपत्तियां दायर की थीं, जो इस प्रकार हैं:

निपटान हेतु आवेदन पर आयकर विभाग की आपत्ति :

14. प्रधान आयकर आयुक्त ने श्री बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट के आवेदन पर 1997 की नियमावली के नियम 9 के अंतर्गत अपनी आख्या प्रस्तुत की, जिसमें कहा गया कि आवेदक द्वारा बताई गई अतिरिक्त आय तलाशी कार्यवाही के दौरान अभिग्रहीत की गई सामग्री को देखते हुए अपर्याप्त थी। यह आगे अभिलिखित किया गया था कि इस तथ्य पर विचार करते हुए कि तलाशी

के दौरान डॉ. रिचा मिश्रा ने वित्तीय वर्ष 2009-10 में ट्रस्ट के एक्सिस बैंक खाते में रु॰1.50 करोड़ की राशि नकद जमा करने की बात स्वीकार की थी, जबकि मात्र रु॰25,40,030/- की राशि ही वित्तीय वर्ष 2009-10 में घोषित की गई थी और घोषित की गई आय के समर्थन में कोई सबूत प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया था कि शेखर स्कूल ऑफ नर्सिंग के नाम से एक्सिस बैंक में बनाया गया खाता जो कि मेसर्स बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट के प्रबंधन के अंतर्गत चलाए जा रहा है, विभिन्न खातों में गैर-लेखाबद्ध नकद और गैर-नकद जमा राशि पाई गई थी। विभाग द्वारा एकत्र किए गए तथ्यों के आधार पर यह विचार किया गया कि मेसर्स बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट 1961 के अधिनियम की धारा 10 (23-सी) के अंतर्गत किसी भी कटौती का हकदार नहीं है क्योंकि यह उक्त प्रावधान के अंतर्गत कटौती की पात्रता हेतु आवेदन के लिए निर्धारित दोहरी शर्तों को पूरा नहीं करता है, क्योंकि शैक्षणिक संस्थान मात्र शिक्षा के उद्देश्यों हेतु नहीं वरन विशाल नकद जमा राशि को देखते हुए लाभ प्राप्ति के लिए मौजूद है, और यह भी कि इसकी कुल वार्षिक प्राप्ति आयकर नियमावली के नियम 2 (बी-सी) के अनुसार निर्धारित सीमा से अधिक है। अभिलेखों के अनुसार यह बताया गया था कि समूह का प्रबंधन और नियंत्रण सुश्री रिचा मिश्रा और डॉ. ए.के. सचान द्वारा किया जा रहा है।

15. मेसर्स बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट के खातों की जांच के बाद, यह आगे प्रस्तुत किया गया था कि ट्रस्ट न केवल लाभदायक गतिविधियों में लगा हुआ है, बल्कि आयकर अधिनियम की धारा 132(4) के अंतर्गत कार्यवाही के दौरान स्वयं ट्रस्टी द्वारा दिए गए बयान के अनुसार, ट्रस्टियों के व्यक्तिगत लाभ के लिए धनराशि का दुरुपयोग भी किया गया है। यह आग्रह किया गया था कि खाते में जमा सम्पूर्ण राशि को निर्धारिती की आय के रूप में माना जाना चाहिए और 15% प्राप्तियों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए क्योंकि 85% राशि के व्यय की अनुमति देने के लिए कोई दस्तावेज या साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए गए थे। तलाशी के दौरान, यह प्रमाण भी मिला कि भवन निधि के लिए किसी विशेष छात्र से रु॰65,000/- रुपये प्राप्त हुए थे, और इसलिए यह माना गया कि अन्य सभी छात्रों से भी नकद में समान राशि प्राप्त हुई थी। तलाशी अभियान के दौरान खोजी गई सामग्री के आधार पर, यह प्रस्तुत किया गया था कि मेसर्स बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट की निर्धारण वर्ष 2007-08 से 2014-15 तक की अघोषित आय रु॰16,05,97,986/- रही होगी। उपरोक्त गणनाओं और निष्कर्षों के आलोक में यह बताया गया कि ट्रस्ट द्वारा अपने समस्त आय का सही और पूर्ण प्रकटीकरण नहीं किया गया था।

16. प्रक्रिया नियमावली 1997 के नियम 9 के अंतर्गत प्रस्तुत आख्या में यह उल्लेख किया गया है कि सुश्री रिचा मिश्रा द्वारा दायर आवेदन के संबंध में, आवेदक ने केवल रु॰1,93,16,254/- का ही अभ्यर्पण किया है। आवेदिका मेसर्स शेखर हॉस्पिटल (पी) लिमिटेड की निदेशक है और इसे नियंत्रित करती है, जो एक अस्पताल चलाता है और नर्सिंग एवं स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करता है, साथ ही, वह एक ट्रस्टी के रूप में मेसर्स बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट के मामलों का नियंत्रण और प्रबंधन भी करती हैं, जो एक नर्सिंग कॉलेज चलाता है और स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करता है। प्राप्ति और व्यय के लिए विभिन्न बैंक खातों का उपयोग किया गया था, जिनमें से अधिकांश डॉ.

ए.के. सचान के नाम पर थे। तलाशी कार्यवाही के दौरान अभिग्रहीत दस्तावेजों और बयानों को ध्यान में रखते हुए, समझौता आयोग के समक्ष किया गया रु॰255.30 लाख का प्रकटीकरण अपर्याप्त पाया गया।

17. तलाशी के दौरान, सुश्री रिचा मिश्रा ने 1961 के अधिनियम की धारा 132(4) के अंतर्गत शपथ पर एक बयान दिया था और वित्तीय वर्ष 2009-10 से 2010-11 के लिए रु॰5.00 करोड़ अभ्यर्पित कर दिया था। आयोग के समक्ष, केवल रु॰1,30,40,256/- की राशि का प्रकटीकरण किया गया था, जो कि निर्धारण वर्ष 2010-11 और 2011-12 के लिए अतिरिक्त और कुल आय थी। तलाशी अभियान के दौरान और बाद में, आवेदक ने कहा कि उसने रु॰5.00 करोड़ अभ्यर्पित कर दिए थे, जिसमें से उसने डॉ. ए.के. सचान को रु॰4.00 करोड़ दिए थे। आवेदक द्वारा प्राप्तियों के लिए कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था और दूसरी ओर, उसके द्वारा विभिन्न कथन दिए गए थे, और विभाग को कोई विवरण प्रदान नहीं किया गया था। आयोग के समक्ष उसने आगे एक और मामला पेश किया कि डॉ. ए.के. सचान के अघोषित खातों में पाया गया धन वास्तव में उसके द्वारा दिया गया था। उसने डॉ. ए.के. सचान के नाम से इंदिरा नगर स्थित एक्सिस बैंक खाते में जमा राशि रु॰3,57,92,000/- अभ्यर्पित कर दी, किन्तु निर्धारण वर्ष 2010-11 और 2011-12 के लिए अतिरिक्त और कुल आय के रूप में केवल रु॰1,30,40,256/- की पेशकश के अपने कथन पर वापस आ गई।

18. तलाशी कार्यवाही के दौरान सुश्री रिचा मिश्रा और डॉ. ए.के. सचान के आवास से रु॰79.00 लाख नकद राशि बरामद की गई थी और तलाशी के दौरान दिए गए बयान के अनुसार, यह राशि छात्रों के अभिभावकों से प्रवेश शुल्क के रूप में प्राप्त बताई गई थी किन्तु, समझौता आयोग के समक्ष यह दावा किया गया कि उक्त राशि हिंद चैरिटेबल ट्रस्ट से संबंधित है और यह उनके बहीखाते के अनुसार है। विभाग का मत था कि बहीखाते तलाशी के बाद तैयार किए गए थे और आवास से जब्त नकदी के समर्थन में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया जा सका था।

19. आख्या में विभाग ने डॉ. रिचा मिश्रा की आय रु॰13,87,96,615/- होने का आकलन किया था, जबकि उन्होंने केवल रु॰1,93,16,254/- का प्रकटीकरण किया था। इसी आधार पर यह कहा गया कि आवेदक ने सभी वर्षों के लिए आय का पूर्ण और सत्य प्रकटीकरण नहीं किया है, अतः आवेदन खारिज किए जाने योग्य था।

20. समझौता आयोग द्वारा विचार किए गए एक अन्य आवेदन को मेसर्स शेखर हॉस्पिटल (पी) लिमिटेड द्वारा दायर किया गया था। निपटान के लिए आवेदन में मेसर्स शेखर हॉस्पिटल प्राइवेट लिमिटेड ने अतिरिक्त आय के रूप में रु॰4,84,46,020/- की पेशकश की थी। आयकर विभाग ने आयोग के नोटिस के उत्तर में यह प्रस्तुत किया था कि कर का भुगतान केवल रु॰3,85,80,097/- पर ही किया गया था, न कि पूरी आय पर, जिसे अतिरिक्त आय के रूप में घोषित किया गया था। आगे यह अभिकथन किया गया कि तलाशी के दौरान की गई वसूली को देखते हुए आवेदक द्वारा किया गया प्रकटीकरण अपर्याप्त था। आवेदक ने निर्धारण वर्ष 2013-14 के लिए मात्र रु॰91,33,857/- अभ्यर्पित किए थे, जबकि यह राशि रु॰1,63,12,242/- होनी चाहिए थी और इसलिए यह प्रस्तुत किया गया कि आय का कोई सही प्रकटीकरण नहीं हुआ था। इसी प्रकार, निर्धारण वर्ष 2014-15 के लिए आवेदक ने रु॰2,38,14,005/- अभ्यर्पित किए थे, जबकि

उसकी अतिरिक्त आय रु॰2,65,01,543/- होनी चाहिए थी और निर्धारण वर्ष 2014-15 के लिए अभ्यर्पण में रु॰26,87,538/- का अंतर था। यह प्रस्तुत किया गया था कि समझौता आयोग के समक्ष अभ्यर्पित की गई राशि के अतिरिक्त, आवेदक को रु॰1,26,60,923/- की राशि का अभ्यर्पण करना चाहिए था और आयोग के समक्ष यह प्रदर्शित किया कि आवेदक द्वारा अघोषित/अतिरिक्त आय का कोई सही और वास्तविक प्रकटीकरण नहीं किया गया था।

21. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए पहले आधार के संबंध में, यह तर्क दिया गया कि आयोग के समक्ष आवेदक (प्रतिवादी) अघोषित संपत्तियों का पूर्ण और सही प्रकटीकरण करने हेतु बाध्य थे। इस संबंध में विधि को सर्वोच्च न्यायालय के **अजमेरा हाउसिंग कॉर्पोरेशन और अन्य बनाम आयकर आयुक्त**[3] के मामले में दिये गए निर्णय द्वारा स्पष्ट किया गया है। प्रासंगिक प्रस्तर 26 और 28 इस प्रकार हैं:

"**26.** अधिनियम की धारा 245D के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया में यह विचारण किया गया है कि धारा 245C(1) के अंतर्गत आवेदन प्राप्त होने पर, समझौता आयोग निर्धारित प्रपत्र (संख्या 34B) में दायर आवेदन की एक प्रति अग्रेषित करने आयुक्त से आख्या मँगवाने के लिए के लिए बाध्य है, जिसमें निपटान के लिए आवेदन किए गए मुद्दों का पूर्ण विवरण, मामले की प्रकृति और परिस्थितियाँ और जांच की जटिलताओं को शामिल किया गया है, फॉर्म की मद संख्या 11 में उल्लिखित संलग्नकों को छोडकर। समझौता आयोग द्वारा सम्प्रेषण की तिथि से 45 दिनों की अवधि के भीतर आयुक्त उक्त आख्या प्रस्तुत करने के लिए बाध्य है। इसके पश्चात, समझौता आयोग, उक्त आख्या में निहित सामग्री के आधार पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और/या उसमें शामिल जांच की जटिलता को ध्यान में रखते हुए, आदेश द्वारा आवेदन को आगे बढ़ाने या आवेदन को खारिज करने की अनुमति दे सकता है। धारा 245D(1) के अंतर्गत आदेश दिए जाने के पश्चात, समझौता आयोग द्वारा, नियमावली 1987 का नियम 8 यह अनिवार्य करता है कि आवेदन के संलग्नक की एक प्रति, साथ ही प्रत्येक विवरण और ऐसे संलग्नक के साथ दस्तावेजों की एक प्रति आयुक्त को अग्रेषित की जाएगी और आयुक्त से आगे की आख्या मांगी जाएगी। समझौता आयोग आयुक्त को मामले में आगे की पूछताछ और जांच करने और अपनी आख्या प्रस्तुत करने का भी निर्देश दे सकता है। इसके पश्चात, अभिलेख, आयुक्त की आख्या और उसके समक्ष रखे गए या उसके द्वारा प्राप्त किए गए ऐसे अन्य साक्ष्यों की जांच के उपरांत, समझौता आयोग आवेदन द्वारा आच्छादित मामलों तथा उन सभी मामलों में जो आवेदन द्वारा आच्छादित नहीं है और उक्त धारा के उप-धारा (1) या उप-धारा (3) के अंतर्गत आयुक्त की आख्या में उल्लिखित मामलों में ऐसा आदेश पारित करने हेतु बाध्य है जैसा वह उचित समझे। यह दोहराना महत्वपूर्ण होगा कि अध्याय की योजना के अनुसार, पहले मामले में, आयुक्त की आख्या निर्धारित फॉर्म की मद संख्या 10 के अंतर्गत निर्धारिती द्वारा प्रस्तुत मूलभूत जानकारी और विभाग द्वारा अपने स्वयं के अन्वेषण के माध्यम से एकत्रित सामग्री पर आधारित होती है। धारा 245C(1) के अधिनियम की भाषा से यह स्पष्ट है कि आयुक्त की आख्या प्राथमिक रूप से मामले

की प्रकृति और जांच की जटिलताओं पर आधारित होती है, क्योंकि फॉर्म की मद संख्या 11 के सापेक्ष अघोषित आय के प्रकटीकरण के समर्थन में दायर संलग्नक और आय प्राप्ति के माध्यम को गोपनीय माना जाता है और आयुक्त को उपलब्ध नहीं कराया जाता है। समझौता आयुक्त द्वारा आवेदन को आगे बढ़ाने का निर्णय लेने के बाद ही, उक्त आवेदन के संलग्नक की एक प्रति और ऐसे संलग्नक के साथ आने वाले अन्य विवरणों और दस्तावेजों, जिसमें उपरोक्त जानकारी शामिल है, आयुक्त को उपलब्ध कराने की आवश्यकता होती है। हमारी राय में, यद्यपि समझौता आयोग आवेदन के साथ आगे बढ़ने का फैसला करता है, तथापि उसे यह जांचने की शक्ति से वंचित नहीं किया जाएगा कि क्या निर्धारिती ने अधिनियम की धारा 245C(1) के अंतर्गत अपने आवेदन में, अपनी अघोषित आय का पूर्ण और सही खुलासा किया है। हमें लगता है कि समझौता आयोग द्वारा आवेदन के साथ आगे बढ़ने का निर्णय लेने से पहले या बाद में मामले के विचारण के विभिन्न चरणों में अभिलेख पर आने वाली आयुक्त की आख्या(ओं) और अन्य दस्तावेज उक्त प्रश्न के निर्धारण के लिए सबसे अधिक प्रासंगिक होंगे।

धारा 245डी की उप-धारा (4) की भाषा से यह स्पष्ट है कि समझौता आयोग का ऐसे आदेश पारित करने का क्षेत्राधिकार, जैसा वह उचित समझे, आवेदन द्वारा आच्छादित मामलों तक ही सीमित है और यह केवल उन्हीं मामलों तक विस्तारित हो सकता है जिनका उल्लेख उक्त धारा के उप-धारा (1) या उप-धारा (3) के अंतर्गत आयुक्त की आख्या में किया गया हो। अधिनियम की धारा 245सी(1) के अंतर्गत एक वैध आवेदन हेतु आय का "पूर्ण और सही" प्रकटीकरण एक पूर्व-निर्धारित शर्त है, जिसे निर्धारिती द्वारा पहले प्रकट नहीं किया गया था, अध्याय 19-ए में निहित व्यवस्था फॉर्म की मद संख्या 11 के सापेक्ष आवेदन में प्रकट की गई ऐसी आय के संशोधन की परिकल्पना नहीं करती है। इसके अतिरिक्त, यदि किसी निर्धारिती को अपने प्रकटीकरण को संशोधित करने की अनुमति दी जाती है, तो वह अनिवार्य रूप से पूर्व में दिये आवेदन को वापस लेने के माध्यम से उसी मामले के संबंध में एक नया आवेदन कर रहा होगा। इस संबंध में, अधिनियम की धारा 245सी(3) जो उप-धारा (1) के अंतर्गत एक बार किए गए आवेदन को वापस लेने को प्रतिबंधित करती है, यह इस मायने में इस सीमा तक अनुदेशात्मक है जहां तक यह दर्शाता है कि निर्धारिती को कार्यवाही के दौरान किसी भी चरण में अपने रुख से हटने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इसलिए, आवेदन को संशोधित करके, आवेदक अप्रत्यक्ष रूप से कुछ ऐसा प्राप्त कर सकेगा जो वह अन्यथा प्रत्यक्ष रूप से नहीं प्राप्त कर पाता और इस प्रक्रिया में, अधिनियम की धारा 245सी की उपधारा (3) के प्रावधान को निष्क्रिय और निरर्थक बना देगा। हमारी राय में, उक्त अध्याय में निहित व्यवस्था स्पष्ट है और इसमें कोई अस्पष्टता नहीं है।

x x x x

28. जैसा कि ऊपर बताया गया है, अध्याय 19-ए में निहित व्यवस्था में, अधिनियम की धारा 245सी(1) के अंतर्गत दायर आवेदन के संशोधन के लिए कोई शर्त नहीं है और इसका नैसर्गिक परिणाम यह है कि समझौता आयोग द्वारा (1921) 1 KB 64 (2000) 6 SCC 550 1961 (2) SCR 189 आय का निर्धारण आवश्यक रूप से निर्धारित प्रपत्र में उक्त धारा के अंतर्गत दायर

आवेदन में प्रकट की गई आय के संदर्भ में होनी चाहिए।"

22. उपरोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, यह पाया गया है कि आवेदक ने समझौता आयोग के समक्ष अधिनियम 1961 की धारा 132(4) के अंतर्गत प्रस्तुत हलफनामे से आय के प्रकटीकरण में काफी विचलन किया था। तलाशी के दौरान रिचा मिश्रा ने रु॰8.00 करोड़ अभ्यर्पित कर दिए थे, जिसमें से रु॰5.00 करोड़ की राशि में उनकी प्राप्तियां शामिल थीं। आयोग के समक्ष उन्होंने रु॰1,93,16,254/- की राशि का प्रकटीकरण किया है, जो कि तलाशी के दौरान किए गए प्रकटीकरण से काफी कम है।

आक्षेपित आदेश यह दर्शाता है कि याचिकाकर्ता/विभाग की आपत्तियों का उल्लेख मात्र एक संदर्भ के रूप में किया गया है। उन पर न तो विधिवत विचार किया गया है और न ही उन्हें सरसरी तौर पर खारिज किया गया है।

23. उपरोक्त के अतिरिक्त, संशोधन आवेदन दाखिल करने के चरण में, प्रतिवादियों ने पहली बार रु॰1.20 करोड़ की राशि के अघोषित प्राप्तियों का प्रकटीकरण किया। संशोधन आवेदन में, अघोषित आय की पुनर्गणना करने की मांग की गई थी और साथ ही रु॰1.20 करोड़ की प्राप्ति का प्रकटीकरण भी किया गया था, जिसे समझौता आयोग के समक्ष प्रारंभिक आवेदन (एसओएफ) में कभी नहीं बताया गया था और आयोग द्वारा अंतिम आदेश पारित होने के बाद इतने विलंबित चरण में बताया गया। विभाग ने मेसर्स बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट की 2007-08 से 2014-15 के निर्धारण वर्षों हेतु आय का रु॰16.05 करोड़ होने का अनुमान लगाया था, जबकि सुश्री रिचा मिश्रा की आय रु॰13.87 करोड़ होने का अनुमान लगाया था, किंतु, मेसर्स बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा केवल रु॰1.69 करोड़ और सुश्री रिचा मिश्रा द्वारा रु॰1.93 करोड़ अभ्यर्पित किया गया, जो काफी कम था। उपरोक्त तथ्यों के सामने आने पर, आयोग का यह दायित्व था कि मामले में आगे बढ़ने से पूर्व वह कम से कम विभाग की प्रस्तुतियों पर गौर करे। इस मुद्दे पर गौर किए बिना, आयोग ने आवेदकों द्वारा अभ्यर्पित अघोषित आय को स्वीकार कर लिया।

24. इस स्तर पर, हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि यह ध्यान रखना होगा कि आयोग के समक्ष आवेदक एक ऐसी इकाई है जिसने आयकर अधिकारियों के समक्ष अपनी कुल आय का प्रकटीकरण नहीं किया है और आयकर अधिनियम की धारा 132 या अन्य के अंतर्गत बलपूर्वक तरीकों को अपनाने पर, अपनी आय को समझौता आयोग के समक्ष घोषित किया है। किसी भी दृष्टिकोण से, ऐसी इकाई को एक ईमानदार करदाता के विपरीत अनुचित लाभ नहीं दिया जा सकता, जिसने स्वेच्छा से अपनी सभी आय और संपत्तियों का प्रकटीकरण किया है। वर्तमान मामले में, यह स्पष्ट है कि आवेदक ने तलाशी अभियानों के दौरान आयकर अधिकारियों के समक्ष कुछ प्रकटीकरण किए हैं और इस आशय का एक हलफनामा भी प्रस्तुत किया है। आयोग के समक्ष अपनी आख्या में आयकर अधिकारियों ने आयोग को विधिवत सूचित किया है कि आवेदक की संपत्तियां और प्राप्तियां समझौता आयोग के समक्ष किए गए खुलासे से कहीं अधिक हैं। आवेदिका सुश्री रिचा मिश्रा द्वारा समझौता आयोग के समक्ष आवेदन दाखिल करते समय प्रकट की गई राशियों में भारी अंतर है और इन सभी तथ्यों को विधिवत रूप से आयोग के समक्ष

लाया गया था। समझौता आयोग तलाशी के दौरान प्राप्त सामग्री पर विचार करने के लिए बाध्य था, जिसे विभाग द्वारा दायर जवाब में आयोग के समक्ष रखा गया था और आयोग विभाग के रुख को अस्वीकार कर सकता था, लेकिन विभाग के जवाब पर संज्ञान नहीं लेने और मुद्दे को न निपटाने के कारण आयोग ने मनमाने ढंग से कार्य किया है।

25. अधिनियम की धारा 245डी की उप-धारा (4) की भाषा से यह परिलक्षित होता है कि समझौता आयोग का ऐसे आदेश पारित करने का क्षेत्राधिकार, जैसा वह उचित समझे, आवेदन द्वारा आच्छादित मामलों तक ही सीमित है और यह केवल उन मामलों तक ही विस्तारित हो सकता है जिनका उल्लेख उक्त धारा की उप-धारा (1) या उप-धारा (3) के अंतर्गत आयुक्त की आख्या में किया गया हो। अधिनियम की धारा 245सी(1) के अंतर्गत एक वैध आवेदन हेतु आय का "पूर्ण और सही" प्रकटीकरण एक पूर्व-निर्धारित शर्त है, जिसे निर्धारिती द्वारा पहले प्रकट नहीं किया गया था, अध्याय 19-ए में निहित व्यवस्था फॉर्म की मद संख्या 11 के सापेक्ष आवेदन में प्रकट की गई ऐसी आय के संशोधन की परिकल्पना नहीं करती है। इसके अतिरिक्त, यदि किसी निर्धारिती को अपने प्रकटीकरण को संशोधित करने की अनुमति दी जाती है, तो वह संक्षेप में, पूर्व में दिये आवेदन को वापस लेने के माध्यम से उसी मामले के संबंध में एक नया आवेदन कर रहा होगा। इस संबंध में, अधिनियम की धारा 245सी(3) जो उप-धारा (1) के अंतर्गत एक बार किए गए आवेदन को वापस लेने को प्रतिबंधित करती है, यह इस मायने में इस सीमा तक अनुदेशात्मक है जहां तक यह दर्शाता है कि निर्धारिती को कार्यवाही के दौरान किसी भी चरण में अपने रुख से हटने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इसलिए, आवेदन को संशोधित करके, आवेदक अप्रत्यक्ष रूप से कुछ ऐसा प्राप्त कर सकेगा जो वह अन्यथा प्रत्यक्ष रूप से नहीं प्राप्त कर पाता और इस प्रक्रिया में, अधिनियम की धारा 245सी की उपधारा (3) के प्रावधान को निष्क्रिय और निरर्थक बना देगा। आवेदन (एसओएफ) में किए गए अपर्याप्त प्रकटीकरण के अतिरिक्त, हमारी राय में, केवल यह तथ्य कि आवेदक ने संशोधन आवेदन के माध्यम से अपनी आय को संशोधित करने की मांग की थी, इस तथ्य को दर्शाता है कि उसने आय का पूर्ण और सही खुलासा नहीं किया था, इसलिए अकेले इस आधार पर आवेदन को खारिज कर दिया जाना चाहिए था।

26. उपरोक्त तथ्य स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं कि प्रतिवादियों ने समझौता आयोग के समक्ष पूर्ण और सही प्रकटीकरण नहीं किया था। समझौता आयोग को स्वयं इस तथ्य का संज्ञान लेना चाहिए था और उसका परीक्षण करना चाहिए था, क्योंकि 1961 के अधिनियम की धारा 245सी के अंतर्गत आवेदन के लिए यह एक पूर्व-शर्त है कि आवेदक अपनी उस आय का "पूर्ण और सही प्रकटीकरण" करे जो पहले प्रकट नहीं की गई थी, या बाद के चरण में जब संशोधन आवेदन दाखिल करने के समय उनके संज्ञान में आगे का प्रकटीकरण लाया गया था। तदनुसार, हमारी यह दृढ़ राय है कि आयोग के समक्ष आवेदन को खारिज कर दिया जाना चाहिए था क्योंकि प्रतिवादियों ने अपनी अघोषित आय का पूर्ण और सही खुलासा नहीं किया था। यह मुद्दा याचिकाकर्ता के पक्ष में निर्णित किया जाता है।

डॉ. ए.के. सचान के खाते में प्राप्तियों को आवेदको की आय के प्रति समायोजित करने वाले समझौता आयोग के आदेश की वैधता:

27. याचिकाकर्ता का तर्क यह था कि समझौता आयोग का क्षेत्राधिकार केवल आवेदकों की "अघोषित आय" के संबंध में आदेश पारित करने तक सीमित है। निर्धारण अधिकारी द्वारा निर्धारण वर्ष 2012-13 के आकलन में डॉ. ए.के. सचान की अघोषित आय की राशि को विधिवत रूप से ध्यान में रखा गया था। एक बार जब उक्त खातों में प्राप्तियों का डॉ. ए.के. सचान की आय के रूप में नियमित निर्धारण कार्यवाही के दौरान आकलन कर लिया गया था, तो वही समझौता आयोग द्वारा प्रतिवादियों की अघोषित आय के रूप में नहीं मानी जा सकती थी और आयोग द्वारा ऐसे मुद्दे पर विचार नहीं किया जा सकता था। आयोग के समक्ष यह प्रमाणित करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि डॉ. ए.के. सचान द्वारा धारित उक्त बैंक खातों में प्राप्तियां मेसर्स शेखर हॉस्पिटल (पंजीकृत) लिमिटेड की आय थीं।

28. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री डी.डी. चोपड़ा, वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि आयोग डॉ. ए.के. सचान के खाते में प्राप्तियों के संबंध में निष्कर्ष निकालने के लिए सक्षम था। उनका तर्क था कि आवेदक द्वारा उक्त आय को अपनी आय होने का दावा किया जा रहा था, इसलिए आयोग द्वारा उक्त मुद्दे पर विधिवत विचारण व निर्णय किया जा सकता था। उन्होंने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया था कि डॉ. ए.के. सचान आयोग के समक्ष कार्यवाही के न तो पक्षकार थे और न ही उन्होंने उसमें भाग लिया।

29. विरोधी दलीलों पर विचार करते हुए यह स्पष्ट है कि डॉ. ए.के. सचान, जो लखनऊ के इंदिरानगर में एक्सिस बैंक में कई खातों के खाताधारक हैं, वे न तो कभी निपटान के लिए आवेदन दायर करके और न ही प्रतिवादियों द्वारा शुरू की गई कार्यवाहियों में आयोग के समक्ष एक गवाह के रूप में आयोग के समक्ष गए। निर्धारण अधिकारी के समक्ष उनका यह दावा कभी नहीं रहा कि उनके बैंक खाते में प्राप्तियां वास्तव में मेसर्स शेखर हॉस्पिटल (प्राइवेट) लिमिटेड की आय हैं।

30. यह अभिलेख पर आया है कि मेसर्स बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट, जो सुश्री रिचा मिश्रा के नियंत्रण में है, एक्सिस बैंक, इंदिरानगर लखनऊ में 11 अघोषित बैंक खातों का उपयोग कर रहा था जो डॉ. रिचा मिश्रा और डॉ. ए.के. सचान के नाम पर थे। उक्त बैंक खातों में गतिविधि से प्राप्त राशि जमा की गई और समय-समय पर इन खातों से निकासी के बाद व्यय किया गया। आयकर विभाग ने आवेदक द्वारा किए गए दावों पर आपत्ति जताई थी जिसमें कहा गया था कि डॉ. ए.के. सचान के नाम पर बैंक खातों में बताई गई आय को नियमित निर्धारण में उनकी आय में जोड़ा गया था, और उन्होंने कभी यह दावा नहीं किया कि आय मेसर्स बालाजी चैरिटेबल ट्रस्ट से संबंधित है और यह भी कि वे समझौता आयोग के समक्ष आवेदक नहीं थे, फिर भी समझौता आयोग ने प्रतिवादियों के पक्ष में मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ा, जिससे स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि उसने अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया।

31. आयकर विभाग ने 17.5.2016 को अपनी आख्या में समझौता आयोग को इस तथ्य के बारे में विधिवत सूचित किया था कि "निर्धारण

अधिकारी" ने भी इस संबंध में आख्या दी है कि डॉ. ए.के. सचान से संबंधित छह बैंक खातों में पाई गई अस्पष्टीकृत जमा राशि को 1961 के अधिनियम की धारा 153A और 143(3) के अंतर्गत मार्च, 2016 में संबंधित निर्धारण वर्ष के लिए उनका आकलन पूरा करते समय डॉ. ए.के. सचान के हाथों में जोड़ा गया है, फिर भी आयोग इस मुद्दे पर प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ा और याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर उसने न तो विचार किया और न ही कोई कारण बताया, जो कि स्पष्ट रूप से शक्तियों का मनमाना प्रयोग है। आयोग कम से कम विभाग द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर विचार करने के लिए बाध्य है। लेकिन ऐसी आपत्तियों पर विचार न करके आयोग ने मनमाने ढंग से और वैधानिक प्रावधानों के विरुद्ध कार्य किया है जो आयोग को अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने का आदेश देते हैं। एक बार जब आय का डॉ. ए.के. सचान के हाथों में पहले ही निर्धारण कर लिया गया है, तो वह अब अप्रकटीकृत आय नहीं रह गई और उस संबंध में समझौता आयोग कोई आदेश पारित नहीं कर सकता था क्योंकि यह आयकर अधिनियम की धारा 245 के स्पष्ट प्रावधानों के अनुसार उसके क्षेत्राधिकार से बाहर था। समझौता आयोग द्वारा केवल प्रतिवादियों के आग्रह और दावे पर उक्त मुद्दे पर निर्णय लेना और यह माना जाना कि उनके बैंक खाते में प्राप्तियां मेसर्स शेखर हॉस्पिटल प्रा. लि. की आय थीं, मनमाना है और उसमें निहित शक्ति का दुरुपयोग है। ऐसी प्रक्रिया और निष्कर्ष स्पष्ट रूप से विकृत और स्थापित न्यायिक मानदंडों के विपरीत तथा आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर हैं। केवल इस आधार पर ही आक्षेपित आदेश अपास्त करने योग्य है।

32. जब विभाग द्वारा मामले का विधिवत विरोध किया गया था और सामग्री प्रस्तुत की गई थी, तो आयोग विभाग द्वारा उठाई गई आपत्तियों की जांच करने और उनकी आपत्तियों को स्वीकार या अस्वीकार कर एक विशिष्ट निष्कर्ष निकालने हेतु बाध्य था, किन्तु आपत्तियों पर विचार न करना विवेक के प्रयोग का अभाव माना जाएगा जो स्पष्ट रूप से मनमाने ढंग की ओर इंगित करता है जिसमें समझौता आयोग आवेदक के पक्ष में मामले को निपटाने के लिए आगे बढ़ा है। समझौता आयोग एक न्यायिक निकाय होने के नाते, उसके समक्ष उठाए गए मुद्दों को निर्धारित करने की शक्तियाँ रखते हुए, उसे अपने दायित्व का निर्वहन करना चाहिए और कानून के अनुसार मुद्दों का फैसला करना चाहिए और साथ ही इसके लिए कारणों को भी बताना चाहिए।

33. प्रतिवादियों और दो निर्धारितियों द्वारा हेराफेरी, जो आयोग के समक्ष नहीं थे बल्कि तलाशी और जब्ती अभियान का हिस्सा थे, इस तथ्य से स्पष्ट है कि डॉ. ए.के. सचान द्वारा निर्धारण आदेश के खिलाफ आयुक्त (अपील) के समक्ष अपील दायर की गई थी। आयुक्त (अपील) ने समझौता आयोग द्वारा पारित आक्षेपित आदेश पर विश्वास करते हुए निर्धारण आदेश को अपास्त कर दिया। इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि उन निकायों को भी आक्षेपित आदेश द्वारा लाभ प्रदान किया गया जो आयोग के समक्ष भी नहीं थे। इसके अलावा आयोग द्वारा पारित आदेश अभी भी इस न्यायालय के समक्ष चुनौती के अधीन था। इसलिए जिस प्रकार से आयोग ने कार्यवाही की है वह संदिग्ध है और तदनुसार आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

34. पारदर्शिता, निष्पक्षता, उचित अवसर प्रदान करना और निर्धारित प्रक्रिया का पालन

करना न्यायिक निर्धारण की कुछ प्रमुख विशेषताएं हैं। इनमें से किसी एक की भी अनुपस्थिति आदेश को शून्य कर देगी और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप को आमंत्रित करेगी। आयोग ने याचिकाकर्ता/विभाग के उत्तर पर विचार न करके, उस व्यक्ति की आय के संबंध में विचार और निपटारा करके जो उसके समक्ष नहीं है और उसका पुनर्वितरण करके, विभाग की उस आपत्ति पर विचार न करके कि उक्त आय का नियमित कार्यवाही के दौरान पहले ही निर्धारण कर लिया गया है, स्पष्ट रूप से वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन में आगे बढ़ा है और उसने स्वयं को गलत दिशा प्रदान की है और हमें आक्षेपित आदेशों को अवैध और मनमाना घोषित करने में कोई संकोच नहीं है।

<u>संशोधन आदेश के संबंध में</u>

35. याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाया गया अगला आधार अधिनियम 1961 की धारा 245डी(6बी) के अनुसार आयोग की अपने आदेशों के संशोधन की शक्ति के संबंध में है। आक्षेपित आदेश दिनांक 19/22.08.2016 पारित होने के पश्चात, आवेदकों द्वारा अधिनियम की धारा 245(6बी) के अंतर्गत संशोधन हेतु एक आवेदन इस आधार पर दायर किया गया था कि निर्धारण वर्ष 2012-13 के लिए रु॰1.20 करोड़ जमा होना पाया गया था जो मेसर्स बी.डी. अग्रवाल के बैंक खातों से प्राप्त हुआ था। जैसा कि पहले चर्चा की गई थी, "पूर्ण और सही" आय का खुलासा, जो निर्धारिती द्वारा पहले प्रकट नहीं किया गया था, अधिनियम की धारा 245(सी-1) के अंतर्गत एक वैध आवेदन हेतु एक पूर्व शर्त होने के नाते, अध्याय 19-ए में निहित व्यवस्था फॉर्म की मद संख्या 11 के सापेक्ष आवेदन में प्रकट की गई ऐसी आय के संशोधन की परिकल्पना नहीं करती है। इसके अतिरिक्त, यदि किसी निर्धारिती को अपने प्रकटीकरण को संशोधित करने की अनुमति दी जाती है, तो वह मूल रूप से पहले के आवेदन को वापस लेते हुए उसी मामले के संबंध में एक नया आवेदन कर रहा होगा। इस संबंध में, अधिनियम की धारा 245(सी-3) जो उप-धारा (1) के अंतर्गत एक बार किए गए आवेदन को वापस लेने को प्रतिबंधित करती है, यह इस मायने में इस सीमा तक अनुदेशात्मक है जहां तक यह दर्शाता है कि निर्धारिती को कार्यवाही के दौरान किसी भी चरण में अपने रुख से हटने की अनुमति नहीं प्रदान की जा सकती है। अतः, संशोधन आवेदन में आय के पुनरीक्षण की मांग करना अनुमति देने योग्य नहीं था, और आयोग ने ऐसे आवेदन पर विचार करके और उसे अनुमति प्रदान कर अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है।

36. संशोधन आवेदन को स्वीकार करने वाले आदेश दिनांक 17.02.2017 के अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से इंगित होता है कि आयोग ने अपने द्वारा निर्णीत आदेश के सभी पहलुओं पर पुनर्विचार, समीक्षा और महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। संशोधन आवेदन की आड़ में, आवेदकों की संपूर्ण देनदारियों का आयोग द्वारा पुनर्निर्धारण किया गया। वह आय जो तथ्यों के विवरण (एस.ओ.एफ.) में प्रकट नहीं की गई थी, उसे स्पष्ट करने और उसी के लाभों के लिए स्वीकार करने का प्रयास किया गया। सुश्री रिचा मिश्रा की देयता रु॰4,43,56,930/- से घटाकर रु॰2,81,26,297/- कर दी गई। आयोग ने, स्थापित कानूनी स्थिति के विपरीत अवैध रूप से

और मनमाने ढंग से अपने पूर्व आदेश की समीक्षा की। यह आगे प्रस्तुत किया गया था कि संशोधन आवेदन के अवलोकन से स्पष्ट हो जाएगा कि आवेदकों की आय प्राप्तियों का पूर्ण और सही प्रकटीकरण नहीं किया गया था।

37. वर्तमान मामले में जिस तरीके से आयोग ने न्यायिक निर्धारण के मूलभूत सिद्धांतों यथा सुनवाई का समुचित अवसर प्रदान, पक्षकारों की दलीलों पर विधिवत विचार करना, का पालन किए बिना कार्यवाही की है, उसे देखते हुए हम यह निरीक्षण करना उचित समझते हैं कि समझौता आयोग अपने समक्ष लाए गए मामले को निपटाने की अपनी शक्तियों के प्रयोग में आयकर अधिनियम के अंतर्गत प्राधिकरण के क्षेत्राधिकार से संपन्न है। इन शक्तियों को प्रदान करने का उद्देश्य अघोषित आय से संबंधित मामलों को शीघ्रता और अंतिम रूप से निपटाना है। ऐसे आवेदन में अघोषित आय का सत्य और पूर्ण रूप से प्रकटीकरण किया जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में जहां आवेदक को व्यावसायिक व्ययों के कारण छूट प्रदान की जाती है या कुल आय की गणना हेतु आयकर अधिनियम के किसी भी प्रावधान का लाभ उठाता है, तो समझौता आयोग निर्धारण प्राधिकरण की शक्तियों का प्रयोग करेगा और वह अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य और सामग्री के आधार पर आवेदक के दावों की जांच करने के लिए बाध्य है। निर्धारण अधिकारी की शक्ति का प्रयोग करते समय आयोग को आवश्यक जांच करनी होगी अथवा वह आयकर आयुक्त को भी आवश्यक जांच करने और आयोग को ऐसी जांच के परिणाम से अवगत कराने का निदेश दे सकता है। इसलिए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आयोग किसी भी मामले को निपटाते समय अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ही ऐसा करेगा और जहां आवश्यक हो वहां आवेदकों के पक्ष में किसी भी रिहाई या छूट की अनुमति देने के कारणों को बताते हुए आवश्यक आदेश पारित करना होगा।

<u>ब्याज माफी</u>

38. आयोग ने प्रतिवादियों के पक्ष में ब्याज माफ कर दिया है। इस विषय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **अंज़ुम एम.एच. घसवाला और अन्य (उपरोक्त)** के मामले में और दूसरे उच्च न्यायालय द्वारा **ब्रिज लाल और अन्य बनाम आयकर आयुक्त, जालंधर**[4] के मामले में तय किया जा चुका है। **अंज़ुम एम.एच. घसवाला और अन्य के मामले (उपरोक्त)** में यह माना गया था:

"**35.** उपरोक्त कारणों से, हम यह मानते हैं कि धारा 245डी(4) और (6) के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करने वाले आयोग को बोर्ड द्वारा अधिनियम की धारा 119 के अंतर्गत जारी परिपत्रों के अंतर्गत राहत प्रदान करने की सीमा के अतिरिक्त धारा 234ए, 234बी और 234सी के अंतर्गत वैधानिक रूप से देय ब्याज को कम करने या माफ करने की शक्ति नहीं है।"

39. समझौता आयोग ने बिना यह विचार किए कि क्या प्रतिवादियों का मामला बोर्ड के परिपत्रों के अंतर्गत आता है, यांत्रिक तरीके से ब्याज माफ कर दिया, और इस तरह से ब्याज माफ करना यह संकेत देता है कि धारा 234ए, 234बी और 234सी के अंतर्गत देय वैधानिक ब्याज भी माफ कर दिया गया है, जो स्पष्ट रूप से आयोग की क्षमता और क्षेत्राधिकार से बाहर है। तदनुसार, यह मामला याचिकाकर्ता के पक्ष में तय किया जाता है।

40. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपनी शक्ति के प्रयोग में उच्च न्यायालय द्वारा समझौता आयोग के आदेशों की न्यायिक समीक्षा यह जांचने के लिए सीमित है कि क्या वैधानिक प्रावधानों में निर्धारित उचित प्रक्रिया और विधि का पालन किया गया है। यह वही सीमित क्षेत्र है जिसमें हमने समझौता आयोग के आदेश की जांच की है और पाया है कि उन्होंने विभाग द्वारा आयोग को दिए उत्तर में प्रस्तुत तथ्यों/आपत्तियों पर विचार नहीं किया है। विभाग के उत्तर पर विचार न करना या उसका निपटारा न करना, समझौता आयोग द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया में एक स्पष्ट त्रुटि है और इसलिए ऐसा आदेश स्वेच्छाचारिता की दोषिता से ग्रस्त है और तदनुसार अपास्त किए जाने योग्य है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का स्वर्णिम नियम इस सिद्धांत का निहितार्थ रखता है कि किसी व्यक्ति को बिना सुने उसकी निंदा नहीं की जा सकती। किसी भी न्यायिक या अर्द्ध-न्यायिक प्राधिकरण को उसके समक्ष उपस्थित पक्ष को सुनना अनिवार्य है, पक्षों द्वारा उठाए गए तर्कों पर विधिवत विचार किया जाना चाहिए अन्यथा "सुनवाई का अधिकार" निरर्थक और मात्र एक औपचारिकता बन कर रह जाएगा। आयकर विभाग ने तलाशी के दौरान बरामद संपत्ति के कई विवरण प्रस्तुत किए, जिसमें अघोषित बैंक खातों में प्राप्तियां और दस्तावेज शामिल हैं, किन्तु आयोग द्वारा पारित आदेश में इसका उल्लेख नहीं मिलता है। आयोग द्वारा विभाग के प्रस्तुतीकरण पर इस तरह का विचार न करना मनमाना है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है जो आक्षेपित आदेश को दूषित करता है और इसलिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने के कारण हमें आक्षेपित आदेश दिनांक 19/22.08.2016 और 17.02.2017 को अपास्त करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है। रिट याचिका स्वीकृत की जाती है। आक्षेपित आदेश दिनांक 19/22.08.2016 और 17.02.2017 अपास्त किए जाते हैं। अपने विरुद्ध पारित निर्धारण आदेशों के खिलाफ अपील दाखिल करने पर, डॉ. ए.के. सचान को समझौता आयोग द्वारा पारित आदेशों का लाभ मिला था, जिन्हें इस न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया है। सुनवाई के समय यह स्पष्ट हुआ कि उस चरण में विभाग ने आयकर आयुक्त (अपील) द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध कोई अपील दायर नहीं की थी क्योंकि समझौता आयोग द्वारा पारित आदेशों का लाभ देने के बाद कर प्रभाव, न्यायाधिकरण के समक्ष अपील दायर करने और उसका अनुसरण करने हेतु निर्धारित सीमा से कम था। चूंकि समझौता आयोग द्वारा पारित आदेशों को अपास्त कर दिया गया है, पूर्ण न्याय करने के लिए, हम विभाग को डॉ. ए.के. सचान द्वारा दायर अपील में आयकर आयुक्त (अपील) द्वारा पारित आदेश दिनांक 17 जनवरी, 2019 के विरुद्ध उचित उपाय का लाभ उठाने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। यदि आदेश की प्रति प्राप्त होने की तिथि से एक माह की अवधि के भीतर ऐसा कोई उपाय किया जाता है, तो उसे केवल विलंब के आधार पर अस्वीकार नहीं किया जाएगा और गुणों के आधार पर विचार किया जाएगा।

41. हम यह भी अवलोकन करना उचित समझते हैं कि केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड द्वारा जारी परिपत्र में निहित विभिन्न स्तरों पर अपील दायर करने या उसका अनुसरण करने संबंधी शर्तों पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है और कुछ

अपवादों को जोड़ा जाना चाहिए ताकि ऐसे मामलों का ध्यान रखा जा सके।

42. यह भी अभिलेख पर लाया गया है कि डॉ. ए.के. सचान किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी, लखनऊ में प्रवक्ता के रूप में कार्यरत एक चिकित्सक हैं। यह तथ्य अभिलेख पर आ चुका है साथ ही आयकर आयुक्त द्वारा प्रस्तुत आख्या में भी है। यह आश्चर्यजनक है कि एक राज्य विश्वविद्यालय में कार्यरत व्यक्ति एक निजी संस्था का निदेशक है और तलाशी अभियान के दौरान उसके व्यक्तिगत खाते में भारी मात्रा में धन पाया गया है, जिसमें नकदी भी शामिल है, बावजूद इसके, उसके नियोक्ता, जो कि एक राज्य इकाई है, द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई है। सरकारी कर्मचारी से संबंधित आचरण नियमावली और यहां तक कि सार्वजनिक निगम/संस्थाओं में कार्यरत व्यक्तियों को भी निजी प्रैक्टिस में शामिल होने की अनुमति नहीं है, जब तक कि इस संबंध में कोई विशिष्ट नियम या प्रावधान न हो। इस न्यायालय को सूचित किया गया है कि किंग जॉर्ज मेडिकल विश्वविद्यालय के चिकित्सकों को नान-प्रैक्टिसिंग भत्ता प्राप्त करने का हक है और आगे यह भी बताया गया है कि निजी प्रैक्टिस पर रोक है जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि वे उस विश्वविद्यालय के अलावा कहीं भी काम नहीं कर सकते जहां उन्हें नियुक्त किया गया है।

43. यह न्यायालय अपने समक्ष रखे गए तथ्यों को बहुत गंभीरता से लेती है और अपेक्षा करती है कि संबंधित विश्वविद्यालय और राज्य सरकार उचित जांच करेंगे और ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध उचित कार्रवाई करेंगे जो खुलेआम निजी प्रैक्टिस में लिप्त पाए जाते हैं और निजी कंपनियों में लाभ कमाते हैं और उनके बोर्डों में निदेशक के रूप में भी कार्यरत हैं। निर्णय की एक प्रति इस न्यायालय के वरिष्ठ निबंधक द्वारा प्रमुख सचिव, चिकित्सा शिक्षा, उ॰प्र॰ सरकार एवं किंग जॉर्ज मेडिकल विश्वविद्यालय, लखनऊ के कुलपति को अनुपालन हेतु अग्रेषित की जाए।

(2023) 2 ILRA 1106

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 25.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर,

रिट टैक्स नंबर 1290/2022

श्री सुबोध अग्रवाल

...याचिकाकर्ता

बनाम

प्रधान मुख्य आयकर आयुक्त, कानपुर एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री ध्रुव अग्रवाल (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री शुभम अग्रवाल, संयुक्ता सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री गौरव महाजन (वरिष्ठ स्थायी वकील)

सिविल कानून - आयकर अधिनियम, 1961 - धारा 148 ए (बी) - धारा 148 के तहत नोटिस और नोटिस के विरुद्ध उठाई गई आपत्ति को निरस्त करने का आदेश लागू किया गया है - प्रथम दृष्टया सामग्री की उपलब्धता पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही को फिर से खोलने और पर्याप्तता के

लिए पर्याप्त है और उस स्तर पर सामग्री की शुद्धता पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।
डब्ल्यू.पी. निरस्त (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. राम बल्लभ गुप्ता बनाम सहायक आयकर आयुक्त एवं अन्य, (2005) 199 सीटीआर

2. कार्गो क्लियरिंग एजेंसी बनाम संयुक्त आयकर आयुक्त, (2008) 218 सीटीआर
3. आयकर आयुक्त बनाम केल्विनेटर ऑफ इंडिया लिमिटेड, (2010) 228 सीटीआर (एससी) 488
4. आयकर आयुक्त बनाम केल्विनेटर ऑफ इंडिया लिमिटेड, (2017) 392 आईटीआर 336
5. प्रधान आयकर आयुक्त बनाम मीनाक्षी ओवरसीज प्रा. लिमिटेड, (2017) 395 आईटीआर 677
6. सीडब्ल्यूपी नंबर 10219/2022-अंशुल जैन बनाम प्रधान आयकर आयुक्त एवं अन्य
7. जीकेएन ड्राइवशाफ्ट्स (इंडिया) लिमिटेड बनाम आयकर अधिकारी, 259 आईटीआर 19 (एससी)
8. कृष्णा डेवलपर्स एंड कंपनी बनाम आयकर उपायुक्त, (2017) 94 टैक्समैन.कॉम 166 (गुजरात)
9. सीआईटी बनाम विशाल गुप्ता, (2012) 22 टैक्स mann.com 82/210 टैक्समैन 65 (मैग) (दिल्ली)
10. रेमंड वूलेन मिल्स लिमिटेड बनाम आईटीओ एवं अन्य, (1999) 236 आईटीआर 34 (एससी)
11. सहायक आयकर आयुक्त बनाम राजेश झावेरी स्टॉक ब्रोकर्स प्राइवेट लिमिटेड, (2007) 291 आईटीआर 500 (एससी)
12. टीओ बनाम चयनित डालूरबैंड कोल कंपनी प्रा. लिमिटेड (1996) 217 आईटीआर 597 (एससी)
13. रेमंड वूलेन मिल्स लिमिटेड बनाम आईटीओ (1999) (236) आईटीआर 34 (एससी)

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,
एवं
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

आदेश

1. याचिकाकर्ता ने आयकर अधिनियम, 1961 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 148ए(बी) के अंतर्गत जारी नोटिस दिनांक 28 मार्च, 2022 (अनुलग्नक-13), अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत जारी नोटिस दिनांक 24 अप्रैल, 2022 (अनुलग्नक-15) और अधिनियम की धारा 148ए(बी) के अंतर्गत नोटिस जारी करने के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियों को खारिज करते हुए प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा पारित 24 अप्रैल, 2022 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। इसके अलावा, अधिनियम की धारा 148 (1) के अंतर्गत नोटिस के अनुसरण में शुरू की गई पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही को रोकने के लिए भी अनुरोध किया गया है।
2. याचिकाकर्ता की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री ध्रुव अग्रवाल ने तर्क दिया कि 31 अगस्त, 2015 को याचिकाकर्ता के परिसर में तलाशी ली गई थी। ब्लॉक मूल्यांकन के लिए अधिनियम की धारा 153 ए के अंतर्गत 1 जून, 2016 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। कर आकलन का आदेश 31 दिसंबर, 2017

अनुवादित

को पारित किया गया था, जिसे याचिकाकर्ता के साथ-साथ विभाग ने आयकर न्यायाधिकरण के समक्ष चुनौती दी थी। याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को स्वीकार कर लिया गया जबकि विभाग द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया गया। विभाग द्वारा इस न्यायालय के समक्ष अपील दायर करके आदेश को और चुनौती दी गई, जिसे 12 दिसंबर, 2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

3. अधिनियम की धारा 153ए के अंतर्गत आदेश पारित करने के बाद, पूर्वोक्त आदेश के विरुद्ध अपील लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता को 28 मार्च, 2022 को अधिनियम की धारा 148ए(बी) के अंतर्गत कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसका याचिकाकर्ता द्वारा विधिवत जवाब दिया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्ति को खारिज करते हुए, 24 अप्रैल, 2022 को आदेश पारित किया गया था, जिसमें अधिनियम की धारा 148 ए (डी) के अंतर्गत याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही शुरू करने की मंजूरी दी गई थी और परिणामस्वरूप, 24 अप्रैल, 2022 को एक नोटिस भी जारी किया गया था। अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करना वर्तमान रिट याचिका में चुनौती का विषय है।

4. अधिनियम की योजना का उल्लेख करते हुए, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अग्रवाल ने बताया कि तलाशी और जब्ती के मामलों में मूल्यांकन/पुनर्मूल्यांकन तैयार करने के लिए अधिनियम में विशेष प्रक्रिया निर्धारित की गई है। अध्याय 14-बी जोड़ा गया था। इसके बाद, 1 जून, 2003 से धारा 153A को जोड़ा गया। धारा 153A का दूसरा परंतुक यह प्रावधान करता है कि धारा 132 के अंतर्गत तलाशी शुरू करने या धारा 132A के अंतर्गत मांग की तिथि को प्रासंगिक अवधि के लिए मूल्यांकन/पुनर्मूल्यांकन के लिए लंबित कोई भी कार्यवाही समाप्त हो जाएगी। मौजूदा मामले में भी, धारा 153 ए के अंतर्गत मूल्यांकन किए जाने के बाद, तलाशी के परिणामस्वरूप, सभी लंबित कार्यवाही समाप्त हो गई। अधिनियम की धारा 149 का उल्लेख किया गया था, जिसमें अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने की सीमा का प्रावधान है। चूंकि याचिकाकर्ता का मूल्यांकन पहले ही अधिनियम की धारा 153 ए के अंतर्गत तैयार किया गया था, जो व्यापक और तैयार किया गया है, उच्च अधिकारियों से अनुमोदन लेने के बाद, अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करके उसी वर्ष के लिए मूल्यांकन को फिर से नहीं खोला जा सकता है। तर्कों के समर्थन में, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के **राम बल्लभ गुप्ता बनाम सहायक आयकर आयुक्त व अन्य (1)** और गुजरात उच्च न्यायालय का **कार्गो क्लियरिंग एजेंसी बनाम आयकर संयुक्त आयुक्त (2)** में दिये गए निर्णयों का उदाहरण दिया गया।

5. जहां तक विवाद के गुण-दोष और अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने की अनुमति देने वाले आदेश को चुनौती देने का संबंध है, यह तर्क दिया गया कि कारण बताओ नोटिस के लिए अनुमोदन देने वाले आदेश में उल्लिखित आधार और कुछ नहीं बल्कि राय में बदलाव है। इस तर्क के समर्थन में माननीय उच्चतम न्यायालय के **आयकर आयुक्त बनाम केल्विनेटर ऑफ इंडिया लिमिटेड (3)** के निर्णय पर भरोसा जताया गया। तलाशी के बाद ब्लॉक मूल्यांकन के समय सभी मुद्दों और उपलब्ध सामग्री पर विचार किया गया था। वास्तव में, पूरी प्रक्रिया एक लेखा

अनुवादित

परीक्षा आपत्ति के बाद शुरू हुई, जिसके लिए निर्धारिती द्वारा उत्तर दिया गया था कि ऑडिट द्वारा उठाई गई आपत्ति क्यों मान्य नहीं थी। कोई ताजा सामग्री उपलब्ध नहीं थी। अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करना केवल लेखा परीक्षा आपत्ति के आधार पर गलत है। तर्कों के समर्थन में, गुजरात उच्च न्यायालय के **रेकिट बेंकिजर हेल्थकेयर इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम आयकर उपायुक्त (4)** और दिल्ली उच्च न्यायालय के **मुख्य आयकर आयुक्त बनाम मीनाक्षी ओवरसीज प्राइवेट लिमिटेड (5)** के निर्णयों पर भरोसा किया गया।

6. जवाब में, राजस्व के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 148 के स्पष्टीकरण-1 के दूसरे परंतुक के खंड (ii) के संशोधित प्रावधानों के संदर्भ में विशिष्ट उल्लेख किया गया है कि निर्धारण अधिकारी के साथ क्या जानकारी बनेगी, जो सुझाव देगा कि 'कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई है'। ऑडिट आपत्ति का उल्लेख उनमें से एक के रूप में किया गया है। उपरोक्त संशोधन 1 अप्रैल, 2022 से प्रभावी किया गया था। इससे पहले, उपर्युक्त परंतुक भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (इसके बाद 'सीएजी' के रूप में संदर्भित) द्वारा उठाई गई आपत्ति हेतु था। इस मामले में भी, ऑडिट द्वारा यह निर्दिष्ट करते हुए एक आपत्ति उठाई गई थी कि भारी आय मूल्यांकन से बच गई थी क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा विभिन्न पक्षों के साथ आदान-प्रदान किए गए टेक्स्ट संदेशों पर मूल्यांकन तैयार करते समय बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया था। इससे राजस्व को भारी नुकसान हुआ है क्योंकि कर प्रभार्य आय आकलन से बच गई थी।

7. ऑडिटर द्वारा उठाई गई आपत्ति को 1 अप्रैल, 2022 से धारा 148 के संशोधन से पहले सूचना के रूप में नहीं माना गया था।

8. यह इस स्तर पर याचिकाकर्ता को केवल कारण बताओ नोटिस है। उसी के विरुद्ध उनकी प्रारंभिक आपत्ति पर पहले ही विचार किया जा चुका है और खारिज कर दिया गया है। मूल्यांकन कार्यवाही के दौरान, याचिकाकर्ता के पास उसके विरुद्ध शुरू की गई कार्यवाही में सभी आपत्तियां उठाने का उचित अवसर होगा, जो करोड़ों रुपये के राजस्व को धोखा देने में सक्षम रहा है। इन कार्यवाहियों को दहलीज पर नहीं रोका जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 153क के दूसरे परंतुक के अनुसार, केवल लंबित कार्यवाही समाप्त हो जाती है। यह धारा बाद में शुरू की जाने वाली कार्यवाही के बारे में बात नहीं करती है। वर्तमान मामला अधिनियम की धारा 153 ए के अंतर्गत पुनर्मूल्यांकन का मामला नहीं था; बल्कि यह बनाया हुआ मूल्यांकन था। उन्होंने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के **सीडब्ल्यूपी संख्या 10219/2022, अंशुल जैन बनाम प्रधान आयकर आयुक्त और अन्य** में 2 जून, 2022 के निर्णय का संदर्भ देते हुए तर्क दिया कि इस स्तर पर विवाद के गुणों पर विचार नहीं किया जा सकता है। एक बार सक्षम प्राधिकारी ने मूल्यांकन को फिर से खोलने के लिए अनुमोदन देते समय अपना दिमाग लगा दिया था, तो विवाद के गुण-दोष पर विचार नहीं किया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त आदेश के विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिका भी 2 सितंबर, 2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई है।

अनुवादित

9. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और पेपर बुक का अवलोकन किया।

पुनर्मूल्यांकन के लिए आयकर अधिनियम की योजना

10. इससे पहले कि हम पक्षों द्वारा उठाए गए तर्कों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ें, हम पुनर्मूल्यांकन के लिए अधिनियम की योजना की जांच करना उचित समझते हैं क्योंकि 1 अप्रैल, 2021 से इसमें बदलाव आया है।

1 अप्रैल, 2021 से पहले की स्थिति

11. अधिनियम की धारा 147 के संदर्भ में, 1 अप्रैल, 2021 से इसके संशोधन से पहले मौजूद, एक आकलन अधिकारी पुनर्मूल्यांकन की कार्यवाही शुरू कर सकता था यदि उसके पास विश्वास करने का कारण था कि कर के लिए प्रभार्य कोई आय मूल्यांकन से बच गई है। धारा 147 का स्पष्टीकरण-2 कुछ उदाहरण प्रदान करता है, जो धारा के प्रयोजन के लिए एक ऐसे मामले के रूप में स्वीकार किए गए थे जहां कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई है।

12. अधिनियम की धारा 148 के उस तिथि के स्वरूप में, धारा 147 के अंतर्गत मूल्यांकन, पुनर्मूल्यांकन या पुनर्गणना करने से पहले, निर्धारण अधिकारी निर्धारिती को एक नोटिस देगा जिसमें उसे अपनी विवरणी प्रस्तुत करने की आवश्यकता होगी। धारा 148 (2) में प्रावधान है कि कर निर्धारण अधिकारी, धारा के अंतर्गत कोई नोटिस जारी करने से पहले, ऐसा करने के अपने कारणों को दर्ज करेगा।

13. जैसा कि उस समय कानून था, विवरणी दाखिल करने पर, निर्धारिती इस तरह के नोटिस जारी करने के कारणों को पूछ सकता था। कारण पता चलने के बाद, निर्धारिती निर्धारण अधिकारी के समक्ष आपत्तियां दर्ज करके पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही शुरू करने पर सवाल उठाने का हकदार था। आगे बढ़ने से पहले, आकलन अधिकारी को निर्धारिती द्वारा उठाई गई आपत्तियों का निपटान करना आवश्यक था, जिसमें पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही शुरू करने के अपने अधिकार क्षेत्र को चुनौती दी गई थी। पारित किए गए किसी भी आदेश को न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार को लागू करके चुनौती दी जा सकती है। माननीय उच्चतम न्यायालय के **जीकेएन ड्राइवशाफ्ट (इंडिया) लिमिटेड बनाम आयकर अधिकारी (6)** में निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है।

14. उस समय विद्यमान पूर्वोक्त प्रावधान की व्याख्या करने वाले कानून में यह भी प्रावधान किया गया है कि विश्वास एक विवेकपूर्ण व्यक्ति का होना चाहिए जिसका सामग्री से संबंध हो। मछली पकड़ना और घूमना संभव नहीं था और न ही राय बदलना। कारणों की पर्याप्तता पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही की शुरुआत को चुनौती देने का आधार नहीं हो सकती है।

15. अधिनियम की धारा 151, अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने से पहले सक्षम प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन का प्रावधान करती है।

1 अप्रैल, 2021 के बाद की स्थिति

16. 1 अप्रैल, 2021 से पुनर्मूल्यांकन के प्रावधानों में काफी बदलाव किए गए हैं।

अनुवादित

17. अधिनियम की धारा 147, जिसमें शुरू में 'विश्वास करने के कारणों के लिए' मूल्यांकन को फिर से खोलने का प्रावधान किया गया था, में संशोधन किया गया था। अब यह प्रावधान है कि यदि कर प्रभार्य कोई आय कर निर्धारण से बच गई है, तो निर्धारण अधिकारी ऐसी आय का आकलन या पुनर्मूल्यांकन कर सकता है या नुकसान की पुनर्गणना कर सकता है। शक्ति का प्रयोग अधिनियम की धारा 148 से 153 के अधीन है।

18. अधिनियम की धारा 147 के अंतर्गत आदेश पारित करने से पहले, निर्धारण अधिकारी को निर्धारिती को अधिनियम की धारा 148 ए के खंड (डी) के अंतर्गत पारित आदेश की प्रति के साथ एक नोटिस देना आवश्यक है, जिसमें उसे विवरणी दाखिल करने की आवश्यकता है। धारा 148 का पहला परंतुक यह प्रदान करता है कि इस धारा के अंतर्गत कोई नोटिस तब तक जारी नहीं किया जाएगा जब तक कि निर्धारण अधिकारी के पास ऐसी जानकारी न हो जो यह सुझाव देती हो कि कर प्रभार्य आय कर निर्धारण से बच गई है। शर्त केवल जानकारी की उपलब्धता है, यह सुझाव देते हुए कि आय मूल्यांकन से बच गई है। शक्ति का ऐसा प्रयोग निर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन से होना चाहिए।

19. पूर्वोक्त धारा के स्पष्टीकरण 1 में, शब्दों का अर्थ "निर्धारण अधिकारी के पास सूचना जो यह बताती है कि कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई है", को परिभाषित किया गया है। इसमें सीएजी द्वारा उठाई गई आपत्ति शामिल है कि संबंधित निर्धारण वर्ष के लिए मूल्यांकन अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नहीं किया गया है।

20. उपर्युक्त प्रावधान में 1 अप्रैल, 2022 से प्रभावी वित्त अधिनियम, 2022 द्वारा निम्न परिवर्तन किया गया है। स्पष्टीकरण 1 के खंड (ii) में अब 'सीएजी द्वारा उठाई गई कोई अंतिम आपत्ति' शब्दों के बजाय 'कोई लेखा परीक्षा आपत्ति' शब्द शामिल हैं। शर्त इस आशय की लेखापरीक्षा आपत्ति के रूप में सूचना है कि अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार मूल्यांकन नहीं किया गया है। प्रासंगिक खंड यहां पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

"स्पष्टीकरण 1- इस धारा और धारा 148A के प्रयोजनों के लिए, निर्धारण अधिकारी के साथ जानकारी जो बताती है कि कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन साधनों से बच गई है, -

(i) समय-समय पर बोर्ड द्वारा तैयार की गई जोखिम प्रबंधन रणनीति के अनुसार प्रासंगिक मूल्यांकन वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले में कोई जानकारी;

(ii) <u>इस आशय की लेखापरीक्षा आपत्ति कि प्रासंगिक निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले में मूल्यांकन इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नहीं किया गया है; या</u>

(iii) अधिनियम की धारा 90 या धारा 90क में निर्दिष्ट करार के अधीन प्राप्त कोई सूचना; या

(iv) धारा 135A के अंतर्गत अधिसूचित योजना के अंतर्गत निर्धारण अधिकारी को उपलब्ध कराई गई कोई भी जानकारी; या

(v) कोई भी जानकारी जिसमें ट्रिब्यूनल या कोर्ट के आदेश के परिणामस्वरूप कार्रवाई की आवश्यकता है। (महत्त्व प्रदत्त)

21. अधिनियम की नई जोड़ी गई धारा 148क में यह प्रावधान है कि कर निर्धारण अधिकारी अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी

करने से पहले विनिदष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन से उस सूचना के संबंध में जांच करेगा, जो यह सुझाव देती है कि कर प्रभार्य आय कर निर्धारण से बच गई है। खंड (बी) प्रदान करता है कि निर्धारिती को कारण बताने के लिए सुनवाई का अवसर दिया जाना है कि अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस उस सूचना के आधार पर जारी क्यों नहीं किया जाए जो बताती है कि कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई है। निर्धारिती के उत्तर, यदि कोई हो, पर विचार किया जाना है और अधिनियम की धारा 148 (डी) के संदर्भ में एक आदेश पारित किया जाना आवश्यक है। उपर्युक्त धारा का दूसरा परंतुक उन घटनाओं का उल्लेख करता है जिनमें स्कीम लागू नहीं होगी।

22. अधिनियम की नई जोड़ी गई धारा 148बी, जिसे वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा 1 अप्रैल, 2021 से जोड़ा गया था, में प्रावधान है कि संयुक्त आयुक्त के रैंक से नीचे के अधिकारी द्वारा मूल्यांकन या पुनर्मूल्यांकन या पुनर्गणना का कोई आदेश पारित नहीं किया जाएगा, जिस पर धारा 148 के स्पष्टीकरण 2 के खंड (i) से (iv) अतिरिक्त आयुक्त या अतिरिक्त निदेशक या संयुक्त आयुक्त या संयुक्त निदेशक के पूर्व अनुमोदन के बिना लागू होते हैं।

<u>चर्चा</u>

23. वर्तमान मामले में, अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस इस आशय की लेखा परीक्षा आपत्ति के आधार पर जारी किए गए हैं कि अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार मूल्यांकन नहीं किया गया है। यह ऐसी जानकारी है जो अधिनियम की धारा 147 और 148 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करने के लिए पर्याप्त है। अधिनियम में किए गए सारभूत संशोधनों के बाद, अब यह प्रावधान है कि कार्यवाही उस मामले में शुरू की जा सकती है जहां कर प्रभार्य आय कर निर्धारण से बच गई है। अधिनियम की धारा 148 के परंतुक में यह प्रावधान है कि इस तरह की सूचना जारी करने से पहले, कर निर्धारण अधिकारी के पास ऐसी जानकारी होनी चाहिए जो यह बताती हो कि कर प्रभार्य आय कर निर्धारण से बच गई है। स्पष्टीकरण 1 के खंड (ii) के संदर्भ में, अर्थ शब्द की जानकारी को सौंपा गया है जो सुझाव देता है कि कर के लिए प्रभार्य आय एक लेखा परीक्षा आपत्ति को भी शामिल करने के लिए मूल्यांकन से बच गई है। इस मामले में भी, अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस एक ऑडिट आपत्ति के आधार पर जारी किया गया है, जिसमें पूरा विवरण दिया गया है कि कर प्रभार्य आय कैसे मूल्यांकन से बच गई है। केवल इसलिए कि तलाशी के बाद मूल्यांकन कार्यवाही के दौरान याचिकाकर्ता को जारी किए गए कुछ कारण बताओ नोटिसों में, कुछ जानकारी का संक्षिप्त संदर्भ दिया गया था, जिस पर अंतिम रूप से विचार नहीं किया गया था, यह दोषमुक्त नहीं होगा या निर्धारिती के बचाव में नहीं आएगा कि इस मुद्दे पर पहले ही विचार किया जा चुका है। इसी कारण से लेखापरीक्षा पर आपत्ति उठाई गई थी।

24. सुविधा के लिए, अधिनियम की धारा 147, 148 और 148A नीचे प्रस्तुत की जाती है:

"147. कर के लिए प्रभार्य कोई आय, जो एक निर्धारिती के मामले में, किसी भी आकलन वर्ष के लिए मूल्यांकन से बच गई है, तो आकलन अधिकारी, धारा 148 से 153 के प्रावधानों के अधीन, आकलन या इस तरह की आय का पुनर्मूल्यांकन या पुनर्गणना कर सकता है या इस तरह के आकलन वर्ष के लिए नुकसान या मूल्यह्रास भत्ता या किसी

अनुवादित

अन्य भत्ता या कटौती (इसके बाद इस खंड में और धारा 148 से 153 में प्रासंगिक मूल्यांकन वर्ष के रूप में संदर्भित).

स्पष्टीकरण - इस धारा के अंतर्गत मूल्यांकन या पुनर्मूल्यांकन या पुनर्गणना के प्रयोजनों के लिए, निर्धारण अधिकारी किसी भी मुद्दे के संबंध में आय का आकलन या पुनर्मूल्यांकन कर सकता है, जो मूल्यांकन से बच गया है, और इस तरह का मुद्दा बाद में इस धारा के अंतर्गत कार्यवाही के दौरान उसके ध्यान में आता है, इस तथ्य के बावजूद कि धारा 148A के प्रावधानों का पालन नहीं किया गया है।

x x x x

"148. धारा 147 के अंतर्गत मूल्यांकन, पुनर्मूल्यांकन या पुनर्गणना करने से पहले, और धारा 148A के प्रावधानों के अधीन, निर्धारण अधिकारी निर्धारिती को एक नोटिस भेजेगा, पारित आदेश की एक प्रति के साथ, यदि आवश्यक हो, खंड (घ) के अंतर्गत धारा 148A की, उसे ऐसी अवधि के भीतर प्रस्तुत करने की आवश्यकता है, जैसा कि इस तरह के नोटिस में निर्दिष्ट किया जा सकता है, उसकी आय या किसी अन्य व्यक्ति की आय की वापसी, जिसके संबंध में वह प्रासंगिक मूल्यांकन वर्ष के अनुरूप पिछले वर्ष के दौरान इस अधिनियम के अंतर्गत मूल्यांकन योग्य है, निर्धारित रूप में और निर्धारित तरीके से सत्यापित और ऐसे अन्य विवरणों को निर्धारित किया जा सकता है; और इस अधिनियम के प्रावधान, जहां तक हो सकता है, तदनुसार लागू होंगे जैसे कि इस तरह की वापसी धारा 139 के अंतर्गत प्रस्तुत की जाने वाली वापसी थी:

बशर्ते कि इस धारा के अंतर्गत कोई नोटिस तब तक जारी नहीं किया जाएगा जब तक कि निर्धारण अधिकारी के पास जानकारी न हो जो यह सुझाव देती है कि कर के लिए प्रभार्य आय प्रासंगिक निर्धारण वर्ष और मूल्यांकन अधिकारी के लिए निर्धारिती के मामले में मूल्यांकन से बच गई है और मूल्यांकन अधिकारी ने ऐसी नोटिस जारी करने के लिए विनिदष्ट प्राधिकारी का पूर्व अनुमोदन प्राप्त कर लिया है।

बशर्ते कि इस तरह के अनुमोदन की वहाँ आवश्यकता नहीं होगी, जहां निर्धारण अधिकारी ने निर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन के साथ, धारा 148A के खंड (d) के अंतर्गत इस आशय का आदेश पारित किया है कि यह इस धारा के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिए एक उपयुक्त मामला है।

स्पष्टीकरण 1-इस धारा और धारा 148A के प्रयोजनों के लिए, निर्धारण अधिकारी के पास जानकारी, जो बताती है कि कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन साधनों से बच गई है, उसका अर्थ होगा,-

(i) समय-समय पर बोर्ड द्वारा तैयार की गई जोखिम प्रबंधन रणनीति के अनुसार प्रासंगिक मूल्यांकन वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले में कोई जानकारी;

(ii) इस आशय की कोई लेखापरीक्षा आपत्ति कि प्रासंगिक निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले में मूल्यांकन इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नहीं किया गया है; या

(iii) अधिनियम की धारा 90 या धारा 90क में निर्दिष्ट करार के अधीन प्राप्त कोई सूचना; या

अनुवादित

(iv) धारा 135A के अंतर्गत अधिसूचित योजना के अंतर्गत निर्धारण अधिकारी को उपलब्ध कराई गई कोई भी जानकारी; या

(v) कोई भी जानकारी जिसके लिए ट्रिब्यूनल या कोर्ट के आदेश के परिणामस्वरूप कार्रवाई की आवश्यकता है।

स्पष्टीकरण 2. - इस खंड के प्रयोजनों के लिए, जहां, -

(i) निर्धारिती के मामले में 1, अप्रैल, 2021 को या उसके बाद, धारा 132 ए के अंतर्गत तलाशी ली जाती है या खाते की किताबें, अन्य दस्तावेज या कोई संपत्ति धारा 132 ए के अंतर्गत मांगी जाती है; या

(ii) निर्धारिती के मामले में 1 अप्रैल, 2021 या उसके बाद, उस धारा की उप-धारा (2A) के अलावा धारा 133A के अंतर्गत एक सर्वेक्षण किया जाता है; या

(iii) मूल्यांकन अधिकारी प्रधान आयुक्त या आयुक्त की पूर्व स्वीकृति से संतुष्ट है, कि 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद किसी अन्य व्यक्ति के मामले में धारा 132 या धारा 132A के अंतर्गत जब्त या मांगी गई कोई भी धन, बुलियन, आभूषण या अन्य मूल्यवान वस्तु या वस्तु, निर्धारिती से संबंधित है; या

(iv) मूल्यांकन अधिकारी प्रधान आयुक्त या आयुक्त की पूर्व स्वीकृति से संतुष्ट है, कि 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद किसी अन्य व्यक्ति के मामले में धारा 132 या धारा 132A के अंतर्गत जब्त या मांगे गए बही खाते या दस्तावेज़ या उनमें निहित कोई भी जानकारी, निर्धारिती से संबंधित हैं

निर्धारण अधिकारी को ऐसी जानकारी के ज्ञान में माना जाएगा जो बताती है कि कर के लिए प्रभार्य आय निर्धारिती के मामले में मूल्यांकन से बच गई है, जहां किसी अन्य व्यक्ति की तलाशी ली गई है या बही खाते, अन्य दस्तावेज या किसी भी संपत्ति की मांग की जाती है या निर्धारिती के मामले में सर्वेक्षण किया जाता है या धन, बुलियन, आभूषण या अन्य मूल्यवान लेख या चीज या खाते की किताबें या दस्तावेज जब्त किए जाते हैं या मांगे जाते हैं ।

स्पष्टीकरण 3. इस धारा के प्रयोजनों के लिए, निर्दिष्ट प्राधिकारी का अर्थ है धारा 151 में निर्दिष्ट प्राधिकारी।

x x x x

"148क. निर्धारण अधिकारी, धारा 148 के अंतर्गत कोई नोटिस जारी करने से पहले, -

(ए) जांच का संचालन करेगा, यदि आवश्यक हो, निर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन के साथ, उस जानकारी के संबंध में जो यह दर्शाती है कि कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई है;

(ख) निर्धारिती को कारण बताओ नोटिस के माध्यम से सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा, उस अवधि में, जैसा कि नोटिस में निर्दिष्ट किया जा सकता है, परंतु सात दिनों से कम नहीं है और लेकिन उस तिथि से तीस दिनों से अधिक नहीं, जिस पर ऐसा नोटिस जारी किया गया है, या ऐसा समय, जैसा कि इस संबंध में एक आवेदन के आधार पर उसके द्वारा बढ़ाया जा सकता है, कि धारा 148 के अंतर्गत नोटिस इस सूचना के आधार पर जारी क्यों नहीं किया जाना चाहिए जो यह दर्शाती है कि कर के लिए प्रभार्य आय प्रासंगिक निर्धारण वर्ष के लिए उसके मामले में मूल्यांकन से बच गई है और साथ में, खंड (ए) के अनुसार जांच के परिणाम, यदि कोई हो तो;

अनुवादित

(ग) खंड (ख) में निर्दिष्ट कारण बताओ नोटिस के प्रत्युत्तर में प्रस्तुत निर्धारिती के उत्तर पर विचार करेगा, यदि कोई हो;

(घ) निर्धारिती के उत्तर सहित रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर, यह तय करना कि क्या धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करना एक उपयुक्त मामला है या नहीं, और निर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन के साथ, उस महीने के अंत से एक महीने के भीतर जिसमें खंड (सी) में निर्दिष्ट उत्तर उसके द्वारा प्राप्त किया जाता है, या जहां ऐसा कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया जाता है, वहाँ एक महीने के भीतर, निर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन के साथ, महीने के अंत से एक महीने के भीतर, जिसमें खंड (बी) के अनुसार उत्तर प्रस्तुत करने के लिए समय या विस्तारित समय की अनुमति दी जाती है:

इस धारा के प्रावधान उस मामले में लागू नहीं होंगे जहां,-

(ए) 1 अप्रैल, 2021 के या उसके बाद निर्धारिती के मामले में धारा 132 ए के अंतर्गत धारा 132 या बही खाते की जांच शुरू की जाती है; या

(बी) मूल्यांकन अधिकारी मुख्य आयुक्त या आयुक्त की पूर्व स्वीकृति से संतुष्ट है कि धारा 132 के अंतर्गत तलाशी में जब्त या धारा 132 ए के अंतर्गत अपेक्षित कोई भी धन, बुलियन, आभूषण या अन्य मूल्यवान लेख या चीज, 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद किसी अन्य व्यक्ति के मामले में, निर्धारिती से संबंधित है; या

(ग) निर्धारण अधिकारी मुख्य आयुक्त या आयुक्त की पूर्व स्वीकृति से संतुष्ट है कि धारा 132 के अंतर्गत तलाशी में जब्त या धारा 132A के अंतर्गत अपेक्षित खाते या दस्तावेजों की कोई भी किताबें, 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद किसी अन्य व्यक्ति के मामले में, संबंधित या उससे संबंधित हैं, या उसमें निहित कोई भी जानकारी, निर्धारिती से संबंधित।

(घ) कर निर्धारण अधिकारी को धारा 135क के अंतर्गत अधिसूचित योजना के अंतर्गत निर्धारिती के मामले में किसी कर निर्धारण वर्ष के लिए कर अपव्यय कर निर्धारण के प्रभार्य आय से संबंधित कोई सूचना प्राप्त हुई है।

स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, निर्दिष्ट प्राधिकारी से धारा 151 में निर्दिष्ट प्राधिकारी अभिप्रेत है।

(महत्त्व प्रदत्त)

25. वर्तमान मामले में, नोटिस के अवलोकन से पता चलता है कि यह एक ऑडिट आपत्ति के आधार पर जारी किया गया था। ₹ 156,45,19,154/- का नकद लेनदेन हुआ। कर निर्धारण के दौरान, लेन-देन के स्रोत और वास्तविकता के बारे में नहीं पूछा गया था। इन्हें अस्पष्टीकृत रहने के कारण, अधिनियम की धारा 68 के अंतर्गत निर्धारिती की आय के रूप में माना जाना आवश्यक था। इस पर 64,34,53,872/- रुपये का टैक्स इफेक्ट हो सकता है। नकद लेनदेन का विवरण भी कारणों के साथ संलग्न किया गया था। यह याचिकाकर्ता के मोबाइल फोन से बरामद विभिन्न संदेशों के आधार पर था, जिसे छापे के दौरान जब्त किया गया था। उपर्युक्त संदेशों के अनुसार, राशि की पहचान किए जाने पर विशेष संख्या वाले करेंसी नोट दिखाकर अलग-अलग व्यक्तियों को दी जानी थी। याचिकाकर्ता की अवैध गतिविधियां स्टेज मैनेज्ड नकली बिक्री और पेनी स्टॉक की खरीद के माध्यम से आवास प्रविष्टियां प्रदान करने की प्रकृति में पाई गईं।

अनुवादित

26. उपरोक्त नोटिस का जवाब याचिकाकर्ता ने स्थगन की मांग के बाद अपने पत्र दिनांक 15 अप्रैल, 2022 के माध्यम से दिया था। दलील यह उठाई गई थी कि अधिनियम की धारा 153 ए के अंतर्गत मूल्यांकन तैयार करते समय विभाग के पास उपलब्ध सभी ग्रंथों और सूचनाओं की विस्तार से जांच की गई थी, इसलिए, अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत कोई नोटिस जारी करने की कोई गुंजाइश नहीं थी। कोई ताजा सामग्री उपलब्ध नहीं थी। उपरोक्त उत्तर को 19 अप्रैल, 2022 के पत्र द्वारा एक अन्य उत्तर द्वारा पूरक किया गया था। यह कहा गया था कि तलाशी के बाद याचिकाकर्ता का फोन भी जब्त कर लिया गया था और उससे संदेश निकाले गए थे। चैट और संदेशों की पूरी तरह से जांच की गई और उसी के आधार पर, मेसर्स कानपुर ऑर्गेनिक्स प्राइवेट लिमिटेड के मामले में अतिरिक्त कार्रवाई की गई, जिसमें ₹ 1,51,00,000/- की राशि वापस कर दी गई थी। साथ ही उक्त सामग्री के आधार पर, अन्य समूह के निर्धारितियों के आकलन तैयार किए गए थे। याचिकाकर्ता द्वारा इस तरह की जानकारी की सामग्री पर कोई विवाद नहीं किया गया था।

27. याचिकाकर्ता के मोबाइल में टेक्स्ट मैसेज से निकाली गई जानकारी के अनुसार जिन व्यक्तियों को नकदी पहुंचाई गई है, उनका विवरण, जो नोटिस का हिस्सा है, नीचे दिया गया है:

तिथि	किसका संदेश प्राप्त हुआ	अनुमति पैली/निर्दिष्ट संदेश	सौदा	धनराशि
23.05.2014	सोनू		23 आए है खाते	2300000
	कानपुर		में	
10.01.2015	अरविंद मित्तल	यूबीआई आरकेडी चेक सं.033805		250000
12.01.2015	-तदैव-	कमलेश जी	10एमटी (दस करोड़ रुपये, दस रुपये के नोट सं.63एम 356014 का हवाला अंतरण के लिए प्रयोग)	100000000
12.01.2015	-तदैव-	पीके सिंह	5एमटी (रु.5 करोड़, दस रुपये की नोट का नकदी के हस्तांतरण के लिए इस्तेमाल	50000000

अनुवादित

			किया गया 52L995010)	
14.01.2015	-तदैव-	कपूरजी	90 का आरटीजीएस	9000000
16.01.2015	-तदैव-	मनीष	45 किग्रा (रु.45 लाख दिल्ली, 10 रुपये का प्रयोग सं.09310088014	4500000
22.01.2015	-तदैव-	सुनील के. गोयल	(स्क्रिप कोड: 538921 स्क्रिप आईडी एल आरएए फएल)	1286000
07.02.2015	-तदैव-	वसुंधरा राजधानी & सिक्योरिटीज लिमिटेड.		130000
14.02.2015	-तदैव-		75 किलो के लिए (रु. 75	7500000
			लाख) के लिए एक रुपये का नोट नंबर 41L679749 प्रयुक्त	
04.03.2015	संजय	HDFCR52015030403430793	**(तत्वेश से ना कहना हम ने दिया है।** यह कहना है संजय का, जो सुबोध अग्रवाल का आदमी है, तत्ववेश श्री का सहस्वत अग्रवाल रिच	865128

अनुवादित

			कैपिटल/ निक्कीग्लोबा1 सबसे बड़ी प्रविष्टि प्रदाता) का भाई है	
19.08.2015	दीपक भारतीय		राजकुमार जी को निर्देश कि एक नोट नं की व्यवस्था करे, हवाला अंतरण 10 किलो अर्थात 10 लाख रुपये का	1000000
16.06.2015	-तदैव-		कृपया 5 किग्रा के लिए नोट दे, अर्थात 5 लाख रुपये का हवाला अंतरण	500000

10.08.2015	-तदैव-		कृपया 15 किग्रा के लिए नोट दे, अर्थात 15 लाख रुपये का हवाला अंतरण	1500000
13.08.2015	-तदैव-		कृपया 10 किग्रा के लिए नोट दे, अर्थात 10 लाख रुपये का हवाला अंतरण	1000000
28 08.2015	अरविंद मित्तल	अरुण कुमार		1300000
	-तदैव-	वंदना सैनी		500000
	-तदैव-	अरुण कुमार		500000
	-तदैव-	अरुण कुमार		1300000
	-तदैव-	वंदना सैनी		500000
03.07.2015	-तदैव-		27 किलोग्राम अर्थात	2.700000

अनुवादित

			रु.2700000 10 रुपये का नोट संख्या.29B524554	
30.6.2015	-तदैव-	स्नेहा कुरेल		145000
28.06.2015	-तदैव-		जीतू भाई को 25 सुभासजी के खाते मे बोल दो	2500000
19.06.2015	-तदैव-		10 रु. नोट 45टी यानी 45 करोड़ रुपये	450000000
20.05.2015	-तदैव-	कोलकाता राजकुमार जी	रु.2 नोट संख्या 04D609437, 40 किलो यानी हवाला का ट्रांसफर निधि रु. 40 लाख	4000000
20.05.2015	-तदैव-	प्रशांत मंडल, कोलकाता	रु। 10 नोट सं.77M690699 40 किलो यानी हवाला का ट्रांसफर	4000000

			निधि रु. 40 लाख	
25.05.2015	-तदैव-	योगेश दिल्ली नोएडा	10 नी नोट No.24N032491, 75 किग्रा के लिए अर्थात हवाला 75 लाख रुपये की धनराशि शामिल	7500000
	-तदैव-	जेके दिल्ली नोएडा	रु.2 नोट संख्या 62h817157, 120 किग्रा के लिए अर्थात। हवाला का पैसा रु.1 करोड़ 20 लाख।	12000000
01.06.2015	-तदैव-	प्रीमियर अल्लौयस लिमिटेड	30दिसम्बर.2014 रु. 17 लाख, 2 जनवरी 2015 10 लाख रुपये, 7 जनवरी 2015 15 लाख रुपये	4200000

अनुवादित

11.05.2015	-तदैव-	कन्हैया लाल अग्रवाल		5500000
	-तदैव-	सपना कपूर		4000000
	-तदैव-	सुमित कपूर		5000000
07.05.2015	-तदैव-	नील, अरविंद मित्तल के स्वामित्व वाली नील इंडस्ट्रीज को संदर्भित करता है, जो संदेशों को श्री सुबोध अग्रवाल को भेजता है	नील से अभिषेक को 80 का पेमेंट दिया है।	8000000
07.05.2015	-तदैव-		नकद	190247
23.04.2015	-तदैव-	नील अर्थात अरविंद मित्तल के स्वामित्व वाली नील इंडस्ट्रीज़	5000 कोडिंग, 50 करोड़ रुपये	500000000
16.04.2015	-तदैव-	सुनीता माहेश्वरी व आनंद माहेश्वरी	कुल निधि	27931994
	-तदैव-	कुंदन डीलर प्राइवेट		2500000
		लिमिटेड		
	-तदैव-		प्रकाश को कानपुर में 200 देना है यानी डिकोड किए गए रुपये	20000000
	-तदैव-		लाला से दिल्ली का 150 का नंबर ले लेना यानी कुछ नोट हवाला फंड के लिए इस्तेमाल होगा	15000000
	-तदैव-		गिव द टोकन फॉर रु. 250 200ओके इन लखनऊ 250 पेड़ टोटल' कुल राशि 2.5 करोड़	25000000

अनुवादित

31.03.2015	-तदैव-		रु.10 नोट संख्या.31सी584165 का उपयोग	
04.04.2015	-तदैव-		देव शंकर पांडे की मात्रा सुलभ शेयर:37500 शेयर @91	
27.03.2015	-तदैव-		अभिषेक अग्रवाल से 10500 भेजें	
25.03.2015	-तदैव-	ब्रह्मावर्त इन्फ्राहाइट्स प्राइवेट लिमिटेड	अंतरण हवाला निधि 45 किलोग्राम अर्थात रु. 45 लाख	4500000
25.03.2015		ब्रह्मावर्त इन्फ्राहाइट्स प्राइवेट लिमिटेड 20 किलोग्राम अर्थात रु. 20 लाख के लिए आरटीजीएस	20 लाख रुपये हवाला अंतरण	2000000
26.03.2015	-तदैव-	ज्ञानदीप खेमका & कंपनी। (विकास अग्रवाल, विकास अग्रवाल एचयूएफ & रेणुका अग्रवाल)		4793250
27.03.2015	-तदैव-	अभिषेक अग्रवाल	10500	1050000

अनुवादित

			भेजो अर्थात रु. 10,50,000/- डिकोडिंग	
28.03.2015	-तदैव-	हरिओम HDFCR520150328613 (4330 के लिए 2294784.84)	4330 डी कोड होता है 43.30 ला	4330000

			ख	
26.03.2015	-तदैव-	ज्ञानदीप खेमका & कंपनी खाता सं.00540340004413		4793250
25.03.2015	-तदैव-	ब्रह्मावर्त इन्फ्राहाइट्स P लिमिटेड खाता सं.32886535860 प्रबंधित आरटीजीएस	45 किलोग्राम अर्थात हवाला का पैसा रु. 45 लाख	4500000
	-तदैव-	ब्रह्मावर्त इन्फ्राहाइट्स प्राइवेट लिमिटेड, खाता सं.33739193894 प्रबंधित आरटीजीएस	45 किलोग्राम अर्थात हवाला का पैसा 45 लाख रुपये	4500000
	-तदैव-	ब्रह्मावर्त इन्फ्राहाइट्स प्राइवेट	20 किलोग्राम अर्थात हवाला धन 20	2000000

अनुवादित

		लिमिटेड, खाता सं.33739193894 प्रबंधित आरटीजीएस	लाख रुपये	
21/03/2015	-तदैव-	आरटीजीएस 55 लाख के लिए प्रबंधित किया गया और 4468702.22		5500000 4468702
	-तदैव-	प्रशांत मंडल	रु. 1 नोट नंबर 24E866968 , 25 किग्रा. अर्थात हवाला पैसा रु.25 लाख	2500000
22/03/2015	-करना।	सूरज	2 रुपये नोट संख्या 67A33365850K के लिए . अर्थात। रु। 50 लाख	5000000
21/03/2015	-तदैव-	एस्कॉर्ट विनकॉम	45 किग्रा अर्थात 45	4500000

		प्राइवेट लिमिटेड	लाख	
20/03/2015	-तदैव-	सुनील कपूर	मुक्ति से 45 किग्रा सुनील कपूर को	4500000
19/03/2015	-तदैव-		200 लाला और 100 पांच गुलाब	
19/03/2015	-तदैव-	प्रशांत मंडल	50 के लिए रु.2 नोट संख्या 63S060829	5000000
18/03/2015	-तदैव-	प्रशांत मंडल	'300000' शेयर मोदी का आलोक दे रहा है, अमर ज्योति में आरटीजीएस 50 का प्रशांत मंडल ने किया	5000000
20/03/2015	-तदैव-	गगनदीप कन्स्ट्रकशन कंपनी प्राइवेट लिमिटेड	रु. 155 अर्थात 1550000	1550000

अनुवादित

18/03/2015	-तदैव-	सूरज	रु.10 नोट नंबर 18 एस 066136 , 50 किलो के लिए अर्थात रु 50 लाख	5000000
	-तदैव-	सूरज	50 किलो के लिए 10 रुपये का नोट नंबर 53पी974097, यानी रु 50 लाख	5000000
17/03/2015	-तदैव-	प्रशांत मंडल	50 रुपये नोट संख्या 8AH386946, 50 किग्रा के लिए, यानी 50 लाख	5000000
12/03/2015	-तदैव-	जय शर्मा	आरटीजी प्रबंधित 40 का	4000000
	-तदैव-	कोठारी	50000 शेयर का विषय	
	-तदैव-	गाबाजी	10 रुपये के 10 किलो के नोट, सं. 60k487337	6000000

11/03/2015	-तदैव-	देवराजी	रु.10 की नोट सं23ए137127 , 15 के लिए	1500000
03/03/2015	-तदैव-	दीनदयालजी	रु. 15 का नोट का रु.5 सं।40सी799140	1500000
24/02/2015	-तदैव-	ओशन एड्वाइज़री प्राइवेट लिमिटेड	द्वारा पवन कुमार कुरेल	1600000
	-तदैव-	प्रशांत मंडल	रु.1 का नोट संख्या 78r493629, 25 किलोग्राम के लिए	2500000
	-तदैव-	प्रशांत मंडल	रु.50 का नोट नंबर 5d1556919, 25 किलोग्राम के लिए	2500000
14/02/2015	-तदैव-	एस्कॉर्ट विंकौम प्राइवेट लिमिटेड, शुभांग निर्यात को	75 किग्रा (1 लाख में फ़ाइनल किया यानी उसका कमीशन)	7500000

अनुवादित

			इसके लिए इस्तेमाल किए गए रु..l का नोट नंबर 41L679749, 75 किलोग्राम प्रशांत मंडल को	
07/02/2015	-तदैव-	एस्कॉर्ट विंकौम प्राइवेट लिमिटेड, ब्रह्मावर्त इन्फ्राहाइट्स को	25 किग्रा	2500000

सुबोध अग्रवाल के मोबाइल । फोन से निकली गए संदेशों का अंश/विश्लेषण दस्तावेज़-2 के रूप में प्रलेखित

तिथि	किस का संदेश प्राप्त हुआ	सहमति पार्टी/निर्दिष्ट संदेश	सौदा	धनराशि
21/07/2015	राजीव अग्निहोत्री	रु. 5 नोट सं 18 के 9416 पिंटू के लिए 5.50+91, और 5 रुपये का नोट संख्या.82D 363143 चिंटू के लिए 7	13.41 लाख	1341000
23/07/2015	बबुआ के के	60 ठीक है।	60 लाख	6000000
24/07/2015	नील इंडस्ट्रीज़	सुनील के गुप्ता द्वारा आरटीजीएस रु. 10 लाख	10 लास	1000000

अनुवादित

23/07/2015	इनट्यूशन इन्फ्रांस्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड	रुपये 5 लाख डेबिट	5 लाख	500000
20/7/2015	N. कुरेल 9999@Yahoo.com	7.75+1 .25=9 ठीक है, हो गया। 1 बाकी	10 लाख	1000000
11/08/2015	91995611111	60 लाख नील इंडस्ट्रीज़ के लिए निकाला	60 लाख	6000000
12/08/2015	9435029042	रामबाबू	3 लाख	300000
13/08/2015	का का 1	3 लाख नकद	3 लाख	300000
24/08/2015	संजय जी हाइड	7 संदूक के लिए	7 लाख	700000
25/08/2015	ला ला	350 चेक प्राप्त, और पुराना खाता चे 91.3	4 करोड़ 41 लाख 30 हज़ार	4413 0000
24/07/2015	सुभाष घोष	खाता संख्या.37641089 मे 40 लाख जमा आरटीजीएस रॉडिक से; और यह खाता 60 लाख से डेबिट हुआ	60 लाख	6000000

अनुवादित

		30/07/2015 को संजीवनी फेर को		
08/08/2015	वीएम एफआरओ एमएससी	खाता No.623xxxx8673 20/08/2015 को 50 लाख रुपये जमा किए और रुपये 20 लाख 26/08/2015 को और रु 10 लाख 28/08/2015 को डेबिट हुए	50 लाख	5000000
26/08/2015	दक्षिणी बाज	सुरेश कुमार, रु.	603300	603300

		102240 मनीष गोयल एचयूएफ 110160 अनुज के सिंह 195300 ऋचा सिंह 195600		
20/08/2015	अरविंद	रु 5 नोट सं J5B779015	5 लाख	500000
28/0/2015	- तदैव -	अरुण कुमार नई दिल्ली वंदना सैनी अरुण	80 लाख 30 लाख 30 लाख 25 लाख	16500000

अनुवादित

		कुमार एचयू एफ संजय कुमार (प्रबंधित खाता सं.913010053203458 एक्सिस बैंक दिल्ली)		
20/07/2015	आर. के. (राज कुमार जी)	चिंटू जी रु. 6 लाख, रु.5 नोट संख्या.82D363143	6 लाख	600000
21/07/2015	R. K. (राज कुमार जी)	5.5 लाख, रु. 5 नोट संख्या 18K941426	5.5 लाख	550000
27/07/2015	- तदैव-	दीपांकर मौर्य डिपॉज़िट एसबीआई खाता	25 हजार	25000
		सं.32970138120		
28/08/2015	- तदैव-	एसबीआई खाता सं. 11288630578 में रु.10000 जमा	10 हजार	10000

सुबोध अग्रवाल के मोबाइल । फोन से निकली गए संदेशों का अंश/विश्लेषण दस्तावेज़-2 के रूप में प्रलेखित

तिथि	किसका संदेश प्राप्त हुआ	अनुमति पार्टी/निर्दिष्ट करना संदेश	सौदा	धनराशि
25/05/2015	एन कुरेल	रु.10 नी	हवाला पैसा	7500000/-

अनुवादित

		नोट 24 N0 324 91, फो सं.0 112 399 288 6 यो गेश के लिए 75 कि ग्रा. दि ल्ली , नोए डा	75 लाख	
07/04/2015	933512662 0	रक्षा गर्ग ने खरीदा जेपी 40000@86.50 कुल धनराशि 3460000	34 लाख 60 हजार	3460000/-
25/08/2015	रॉ डि	10109.00 किग्रा. @ 202.30	20 लाख 45 हजार	2045050/-
	क कॉ फी प्रा इ वे ट लि मि टे ड	किग्रा=2045050 (अर्बिका पार्चमेंट)	& पचास	
10/02/2015	एएन	शेयर का व्यापार, स्नेहा कुरेल 20000, प्रीति कुरेल 20000, मिती सहगल 10000	-	-
02/03/2015	एमए नएस	रमादा जमशेदपुर को किया गया भुगतान 50 लाख नकद आरटीजी एस	75.09 लाख	7509233/-

अनुवादित

		2463880 नकद 45353		
12/06/2015	एमएनएस	प्रीमियर अल्लोयस 42 किग्रा.(30/12/14 को रु.17 लाख, 02/01/2015 रु। 10 लाख, 07/01/2015 रु। 15 लाख)	42 लाख	4200000/-
16/06/2015	एमएनएस	सक्सेस व्यापार लिमिटेड 98 लाख नील इंडस्ट्रीज़ 21.94 लाख	1 करोड़ 19 लाख 94 हजार	11994000/-
19/03/2015	संजीव श्रीवास्तव	खरीद के लिए शेयरों की संख्या का निर्णय इस प्रकार किया जाएगा कि अगले वर्ष	1 करोड़ 8 लाख	10800000/-

		बिक्री पर लाभ निम्नानुसार होगा: सुरेंद्र गुप्ता और अन्य के बारह व्यक्तियों को @ 9.00 आवंटित किया जाने वाला लाभ 108 लाख		
22/06/2015	एकुरेल	मोदी उद्योग लिमिटेड के 320000 भौतिक शेयरों, ओसियन सलाहकार प्राइवेट लिमिटेड के खाता 600350116274 एचडीएफ	-	-

अनुवादित

		सी बैंक और न्यू वेव कॉमो डील प्राइवेट लिमिटेड 600350116508		
08/04/2015	R कां त	रु. 10 का नोट नंबर 87A075453 के लिए 2.5 पेटी	2.5 लाख	250000/-
28/07/2015	कर वा विवे क	10 के लिए 10 दिन और 168000	11 लाख 68हजार	1168000
23/03/2015	ह री श गु प्ता ओ रा ई	उषा देवी 3 लाख, राम आसरे गुप्ता 3 लाख, राजेंद्र कुमार गुप्ता 1.5 लाख	7 लाख 50 हज़ार	750000
26&27/05/2015	- तदैव-	रु. 50 लाख के अंतरण की व्यवस्था करना	50 लाख	5000000
12/06/2015	- तदैव-	मंजीत सिंह रु.42 लाख, सक्सेस व्यापार लिमिटेड के लिए	42 लाख	4200000
8/06/2015	- तदैव-	कल 5.00 का आरटीजीएस सक्सेस मैं कर दिया गया था, क्या कैश आज मिल सकता है (हाँ 2 बजे तक)(आरटीजीएस	5 लाख	500000

अनुवादित

		आशीष अग्रवाल के एसबीआई, उरई चेक संख्या 211836 से किया गया)		
23/06/2015	-तदैव-	कल 25 एंट्री होनी है, 5 लाख रिवर्स एंट्री	25 लाख	2500000
08/04/2015	मोब. 9621325335	फ्लैट नंबर 505 आनंद लक्ष्मी अपार्टमेंट, जंजीर कारखाना शास्त्री नगर, कानपुर; 8 किग्रा	8 लाख	800000
12/05/2015	मोब. 7379 31	40 का आरटीजीएस	40 लाख	400000
	2345			
24/05/2015	-तदैव-	आरटीजीएस अनुरोध 85 लाख (भेजें 50 शाम को श्री हनुमान इंफ्रा प्रमोटर्स प्रा. लिमिटेड	85 लाख	8500000
23/04/2015	मोब. 9839133556	8+9+5=22 अरुणा नेमानी ने भेजा	22 लाख	2200000
18/02/2015	मोब. 9198932222	25 किलो के लिए रु.1 नोट नंबर 78R493629, प्रशांत मंडल और 50 रुपये नं. 5DL556919 25 किग्रा के लिए	50 लाख	5000000

28. अधिनियम की धारा 148 ए (सी) के संदर्भ में याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपत्तियों पर विचार करने के बाद, धारा 148 ए (डी) के अंतर्गत

अनुवादित

आदेश पारित किया गया था और अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत एक नोटिस जारी किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता को निर्धारण वर्ष 2015-16 के लिए निर्धारित फॉर्म पर अपना विवरणी दाखिल करने के लिए कहा गया था। यह उपरोक्त कारण बताओ नोटिस है, जिसे वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई है। अधिनियम की धारा 148 (डी) के अंतर्गत आदेश, जैसा कि पूर्वोक्त नोटिस के साथ संलग्न है, विशेष रूप से ऑडिट आपत्ति को संदर्भित करता है क्योंकि वह जानकारी, जिसके आधार पर कार्यवाही शुरू की गई थी, वह विशिष्ट है। सूचना से यह स्पष्ट था कि याचिकाकर्ता हवाला गतिविधियों/लेनदेन में लिप्त था। यह विशेष रूप से उल्लेख किया गया था कि प्रारंभिक मूल्यांकन के समय ऑडिट आपत्ति में संदर्भित सामग्री पर विचार नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता ने अधिनियम की धारा 148 (बी) के अंतर्गत जारी कारण बताओ नोटिस में की गई प्रविष्टियों की व्याख्या नहीं की थी। उनका जवाब केवल तकनीकी पहलुओं पर आधारित था। असत्यापित और अस्पष्टीकृत लेनदेन ₹ 156,45,19,154/- के हैं।

<u>अधिनियम की धारा 153ए</u>

29. जहां तक अधिनियम की धारा 153ए के अंतर्गत विरचित याचिकाकर्ता के कर निर्धारण का संबंध है, आदेश के विरुद्ध दायर अपील में आयकर आयुक्त (अपील) ने कर निर्धारण के आदेश को सही ठहराया है। आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण, लखनऊ पीठ 'बी', लखनऊ (इसके बाद 'ट्रिब्यूनल' के रूप में संदर्भित) के समक्ष दायर अपील को 7 अक्टूबर, 2021 के आदेश के द्वारा इस आधार पर अनुमति दी गई थी कि मूल्यांकन का आदेश पारित करने से पहले आयकर के अतिरिक्त आयुक्त की पूर्व स्वीकृति के संदर्भ में अधिनियम की धारा 153डी के प्रावधानों का उल्लंघन हुआ था। ट्रिब्यूनल की राय थी कि अधिनियम की धारा 153 डी के अंतर्गत यांत्रिक अनुमोदन देने की प्रक्रिया ने पूरी कार्यवाही को दूषित कर दिया। विभाग ने इस न्यायालय के समक्ष पूर्वोक्त आदेश के विरुद्ध आयकर अपील संख्या 86/2022 दायर की, जिसे 12 दिसंबर, 2022 को खारिज कर दिया गया था, जिसमें ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आदेश को इस आधार पर बरकरार रखा गया था कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा मसौदा मूल्यांकन आदेश का अनुमोदन बिना बुद्धि प्रयोग के था।

30. अधिनियम की धारा 153ए का दूसरा परंतुक याचिकाकर्ता के बचाव में इस कारण से नहीं आएगा कि उसके संदर्भ में, धारा 132 के अंतर्गत तलाशी शुरू करने या धारा 132ए के अंतर्गत मांग करने की तिथि पर विचाराधीन मूल्यांकन वर्षों के लिए लंबित मूल्यांकन या पुनर्मूल्यांकन समाप्त हो जाएगा। बेशक, इस मामले में वर्तमान पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही उस तिथि को लंबित नहीं थी जब याचिकाकर्ता के परिसर में तलाशी ली गई थी। पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही शुरू करने के लिए मामले में नोटिस 24 अप्रैल, 2022 को जारी किया गया था, जबकि तलाशी 31 अगस्त, 2015 को की गई थी।

31. इस बारे में कि क्या एक लेखा परीक्षा आपत्ति वह आधार बन सकती है, जिसके आधार पर पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही शुरू की जा सकती है और ऐसे में अधिनियम की धारा 148 के दूसरे परंतुक के स्पष्टीकरण 1, खंड (ii) का संदर्भ दिया जा सकता है। उपर्युक्त प्रावधान स्पष्ट रूप से प्रदान करता है कि इस आशय की कोई भी लेखा परीक्षा

आपत्ति कि संबंधित निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले में कर निर्धारण अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नहीं किया गया है, "बच गए मूल्यांकन के बारे में जानकारी" शब्द में शामिल है। मौजूदा मामले में, यह विवाद का विषय नहीं है कि एक लेखा परीक्षा आपत्ति उठाई गई है कि निर्धारिती का मूल्यांकन अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ठीक से तैयार नहीं किया गया है। यह एक ऐसा मामला है जहां याचिकाकर्ता प्रविष्टियां प्रदान करने में लिप्त था। उसके मोबाइल फोन से बरामद टेक्स्ट संदेश स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता द्वारा अपनाई गई कार्यप्रणाली की पुष्टि करते हैं। इसमें शामिल राशि ₹156,45,19,154/- है।

32. केवल इसलिए कि एक स्तर पर कर निर्धारण अधिकारी ने अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार होने वाले मूल्यांकन के संबंध में लेखा परीक्षक द्वारा उठाए गए प्रश्नों का उत्तर दिया था और उसमें कोई अवैधता नहीं है, इसका मतलब यह नहीं होगा कि लेखापरीक्षा आपत्ति के रूप में जानकारी पर भरोसा नहीं किया जा सकता है कि कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई थी। सूचना का अस्तित्व या गैर-अस्तित्व मुकदमेबाजी का विषय हो सकता है लेकिन इसकी पर्याप्तता नहीं।

33. जहां तक याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क का सवाल है कि अधिनियम की धारा 153 ए के अंतर्गत मूल्यांकन के बाद विभाग में विभिन्न स्तरों पर बुद्धि का प्रयोग और रिकॉर्ड की परीक्षा हुई थी क्योंकि मूल्यांकन आदेश उच्च अधिकारियों के अनुमोदन से पारित किया जाता है, अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत पुनर्मूल्यांकन के लिए नए सिरे से कार्यवाही शुरू करने की कोई गुंजाइश नहीं थी, हमारी राय में, इस तर्क पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए और इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए। तर्क के समर्थन में अधिनियम की धारा 153 ए के दूसरे परंतुक को छोड़कर कानून के किसी भी प्रावधान का हवाला नहीं दिया गया है, जिसके संदर्भ में केवल लंबित कार्यवाही समाप्त हो जाती है। केवल गुजरात उच्च न्यायालय के **कार्गो क्लियरिंग एजेंसी वाद (उपरोक्त)** के निर्णय का संदर्भ दिया गया था। पूर्वोक्त निर्णय को पढ़ने मात्र से पता चलता है कि यह इस तथ्य पर आधारित है कि तलाशी के बाद ब्लॉक मूल्यांकन तैयार करते समय उच्च स्तर पर भी रिकॉर्ड की विस्तृत जांच होती है, इसलिए, अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करके इस मुद्दे को फिर से उठाने की कोई गुंजाइश नहीं बचती है। हालांकि, मौजूदा मामले में, यह रिकॉर्ड पर निर्विवाद मामला है कि अधिनियम की धारा 153 ए के अंतर्गत याचिकाकर्ता के मामले में पारित मूल्यांकन के आदेश को केवल इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि अधिनियम की धारा 153 डी के अंतर्गत अनुमोदन देने के लिए उच्च अधिकारियों द्वारा बुद्धि का प्रयोग नहीं किया गया था। और जांच के बाद कर निर्धारण के समय लेखापरीक्षा द्वारा उठाए गए मुद्दे की जांच नहीं की गई है। यह आगे जोड़ा जा सकता है कि पूर्वोक्त निर्णय में विचाराधीन अवधि के लिए मूल्यांकन वर्ष में ऑडिट आपत्ति एक ऐसी जानकारी नहीं थी जिसे 1 अप्रैल, 2022 से अधिनियम की धारा 148 के स्पष्टीकरण 1 के दूसरे परंतुक में खंड (ii) में जोड़ा गया है।

34. इसी प्रकार का मुद्दा गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष **कृष्णा डेवलपर्स एंड कंपनी**

अनुवादित

बनाम आयकर उपायुक्त (7) में विचारार्थ आया था, जिसमें न्यायालय ने एक ऐसे मामले पर विचार किया जहां निर्धारिती के मूल मूल्यांकन को इस तकनीकी आधार पर निरस्त किया गया था कि अधिनियम की धारा 143 (2) के अंतर्गत नोटिस नहीं दिया गया था। निर्धारिती द्वारा उठाया गया तर्क यह था कि मूल मूल्यांकन, जांच के लिए अनिवार्य नोटिस जारी नहीं करने के आधार पर विफल हो गया है, धारा 147/148 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करना अवैध था क्योंकि उद्देश्य केवल दोष को ठीक करना था। उक्त तर्क को खारिज कर दिया गया था और याचिका को गुजरात उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने यह कहते हुए खारिज कर दिया था कि केवल इस आधार पर कि मूल्यांकन अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए कारण समान थे, जिसके आधार पर मूल्यांकन अधिकारी ने शुरू में जोड़ने का फैसला किया था, लेकिन असफल रहा क्योंकि तकनीकी आधार पर आदेश को रद्द कर दिया गया था, उसे मूल्यांकन को फिर से खोलने की कवायद करने से नहीं रोका जाएगा। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे के रूप में पुन: प्रस्तुत कर रहे हैं:

".20. धारा 147 की भाषा में निहित कुछ भी हमें यह निर्धारित करने की अनुमति नहीं देगा कि भले ही मूल्यांकन अधिकारी को मूल्यांकन या पुनर्मूल्यांकन करने में सक्षम बनाने के लिए सभी पैरामीटर मौजूद हों, लेकिन उन मामलों में अनुमति नहीं दी जा सकती है जहां निर्धारण अधिकारी द्वारा तैयार किया गया मूल मूल्यांकन किसी भी तकनीकी आधार पर विफल रहा है, जैसे कि वर्तमान मामले में अर्थात अधिनियम की धारा 143 (2) के अंतर्गत नोटिस की तामील की कमी। एक बार जब मूल मूल्यांकन को वैधानिक अवधि के भीतर निर्धारिती पर नोटिस की तामील के बिना पूरा होने के रूप में अमान्य घोषित कर दिया जाता है, तो उसके बाद कानून की नजर में कोई मूल्यांकन नहीं होगा। इसलिए, स्थिति वैसी ही हो जहां निर्धारिती की विवरणी को बिना जांच के स्वीकार कर लिया गया हो। यदि कर निर्धारण अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि कर प्रभार्य आय कर निर्धारण से बच गई है, तो कर निर्धारण अधिनियम की धारा 147 के अंतर्गत पूरी तरह से स्वीकार्य होगा। केवल इस आधार पर कि निर्धारण अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए कारण, उसी दिशा में आगे बढ़े जिन पर निर्धारण अधिकारी शुरू में परिवर्धन करना चाहता था लेकिन जो मूल्यांकन के आदेश के रद्द होने के कारण विफल रहा, कर निर्धारण अधिकारी को कर निर्धारण को पुन खोलने से नहीं रोका जाएगा। वर्तमान मामले में, तथ्य अजीब हैं। ऐसा नहीं है कि कर निर्धारण अधिकारी निर्धारिती की विवरणी में कतिपय विसंगतियों को ध्यान में रखते हुए संवीक्षा कर निर्धारण करने के अपने अधिकार पर सो गया। संवीक्षा कर निर्धारण दिनांक 23.09.2013 को अधिनियम की धारा 143(2) के अंतर्गत नोटिस जारी करके शुरू किया गया था। इसे अंतिम ज्ञात पते पर स्पीड पोस्ट द्वारा दिनांक 24.09.2013 को निर्धारिती को भेजा गया था। हालांकि, आयुक्त (अपील) ने माना कि नोटिस की तामील का कोई सबूत नहीं था और चूंकि धारा 143 (2) के लिए नोटिस की तामील की आवश्यकता होती है, इसलिए अनिवार्य आवश्यकताओं का अनुपालन किए बिना मूल्यांकन तैयार किया गया था।

21. हम इस बिंदु पर कुछ निर्णयों का उल्लेख कर सकते हैं। ए.जी.ग्रुप कॉरपोरेशन (उपरोक्त) के मामले में, न्यायालय ने देखा कि एक बिंदु पर राजस्व ने निर्धारिती के मूल्यांकन

को फिर से खोल दिया था। हालांकि, ऐसा आकलन इस आधार पर विफल रहा कि इस तरह के नोटिस जारी करने के लिए मूल्यांकन अधिकारी द्वारा कारणों को दर्ज नहीं किया गया था। इसी आधार पर राजस्व विभाग ने फिर से खोलने का नया नोटिस जारी किया, जिसे उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई। उच्च न्यायालय ने कहा कि जब पहले के आदेश को अधिनियम की धारा 147 के अंतर्गत बुनियादी आवश्यकता को पूरा करने की कमी के आधार पर रद्द कर दिया गया था, तो कानून के अनुसार उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद उसी आधार पर एक बार फिर से मूल्यांकन को खोलने के विरुद्ध कोई रोक नहीं थी।

(महत्त्व प्रदत्त)

35. गुजरात उच्च न्यायालय का उपर्युक्त आदेश, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारिती की विशेष अनुमति याचिका को खारिज किए जाने के बाद अंतिम हो गया, जो **(2018) 91 taxmann.com 306 (एससी)** में प्रतिवेदित है।

36. इसी प्रकार का मुद्दा, दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष **सीआईटी बनाम विशाल गुप्ता (8)** में विचारार्थ आया था। उस मामले में भी, ट्रिब्यूनल द्वारा मूल्यांकन के आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि अधिनियम की धारा 143 (2) के अंतर्गत वैधानिक नोटिस निर्धारित अवधि के भीतर नहीं दिया गया था। इसके बाद मूल्यांकन को पुनः खोलने का नोटिस जारी किया गया। ट्रिब्यूनल ने फिर से उक्त आदेश को रद्द कर दिया। हालांकि, दिल्ली उच्च न्यायालय ने ट्रिब्यूनल के आदेश को निरस्त करते हुए कहा कि यदि यह मानने का कारण उपलब्ध है कि किसी भी आकलन वर्ष के लिए आय मूल्यांकन से बच गई है, तो अधिनियम की धारा 147/148 के अंतर्गत कार्यवाही खुली हुई है। मूल निर्धारण आदेश को रद्द करने के लिए वैध आधार हो सकता है, लेकिन यह पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं:

"11. ऊपर स्पष्ट किए गए तथ्य, यह साफ दिखाते हैं कि ट्रिब्यूनल ने तकनीकी आधार पर मूल कार्यवाही को रद्द कर दिया है कि धारा 143 (2) के अंतर्गत वैधानिक नोटिस प्रतिवादी-निर्धारिती को उस महीने से 12 महीने की निर्धारित अवधि के भीतर नहीं दिया गया था, जिसमें विवरणी दाखिल किया गया था।

12. इसके बाद निर्धारण अधिकारी ने अधिनियम की धारा 147/148 के अंतर्गत नए कारणों को दर्ज किया और नोटिस जारी किया। अब दर्ज किए गए विश्वसनीय कारणों को अपने पैरों पर खड़ा होना होगा और यह विश्वास करने के कारणों से अलग हैं, जो पहले पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही शुरू करने से पहले दर्ज किए गए थे, और जो समाप्त हो गए थे। अधिनियम की धारा 147/148 के अंतर्गत विश्वास करने और नोटिस जारी करने के उक्त कारणों को गलत नहीं ठहराया जा सकता है और इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि पहले/मूल मूल्यांकन या पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही में, धारा 143 (2) के अंतर्गत नोटिस वैधानिक समय/अवधि के भीतर निर्धारिती को नहीं दिया गया था। यह पहले/मूल मूल्यांकन/पुनर्मूल्यांकन आदेश को रद्द करने का एक वैध आधार था, लेकिन यह पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है, जिसे विश्वास करने के कारणों को दर्ज करने के बाद नए सिरे से शुरू किया गया है।

अनुवादित

37. यह कानून की स्थापित स्थिति है कि प्रथम दृष्टया सामग्री की उपलब्धता पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही को फिर से खोलने के लिए पर्याप्त है और उस स्तर पर सामग्री की पर्याप्तता और शुद्धता पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। **रेमंड वूलन मिल्स लिमिटेड बनाम आईटीओ और अन्य (9)** के मामले में, यद्यपि यह एक ऐसा मामला था जहां कारणों को लिखित रूप में दर्ज किया जाना अपेक्षित था, माननीय उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि केवल प्रथम दृष्टया सामग्री को देखा जाना चाहिए जिसके आधार पर विभाग मामले को फिर से खोल सकता है। सामग्री की पर्याप्तता या शुद्धता पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। मूल्यांकन कार्यवाही के दौरान मुद्दों की विस्तार से जांच की जा सकती है। संबंधित पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है:

"3. इस मामले में, हमें अंतिम निर्णय नहीं देना है कि निर्धारिती द्वारा भौतिक तथ्यों को छिपाया गया है या नहीं। हमें केवल यह देखना है कि क्या प्रथम दृष्टया कोई ऐसी सामग्री थी जिसके आधार पर विभाग मामले को फिर से खोल सकता था। सामग्री की पर्याप्तता या शुद्धता इस स्तर पर विचार करने की बात नहीं है। हमारा विचार है कि अदालत इस मामले के तथ्यों को देखते हुए मामले को फिर से खोलने पर रोक नहीं लगा सकती है। यह निर्धारिती के लिए खुला होगा कि वह साबित करे कि नोटिस में दिये गए तथ्यों की धारणा गलत थी। निर्धारिती यह भी साबित कर सकता है कि कर निर्धारण कार्यवाही पूरी होने के बाद आयकर अधिकारी की जानकारी में कोई नया तथ्य नहीं आया। हम मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं। तथ्य और कानून के सवालों की जांच और मूल्यांकन प्राधिकारी द्वारा निर्णय लेने के लिए खुला छोड़ दिया जाता है। अपीलकर्ता मूल्यांकन प्राधिकारी के समक्ष सभी बिंदुओं को लेने का हकदार होगा। अपील खारिज की जाती है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

(महत्व प्रदत्त)

38. **सहायक आयकर आयुक्त बनाम राजेश झावेरी स्टॉक ब्रोकर्स प्रा लिमिटेड (10)** के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने अधिनियम की धारा 147 के दायरे की जांच की। यह देखा गया कि कार्यवाही शुरू करने के चरण में, उसका अंतिम परिणाम प्रासंगिक नहीं है। उस समय विद्यमान विधि के उपबंधों के संदर्भ में, दीक्षा के चरण में जो आवश्यक है वह है विश्वास करने का कारण, जो आज विद्यमान विधिक स्थिति के साथ, केवल प्राप्त सूचना के आधार पर कार्यवाहियों की शुरुआत प्रदान करता है। यह अधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि है। प्रासंगिक पैराग्राफ 16 नीचे दिया गया है:

"16. धारा 147 निर्धारण अधिकारी को कर के लिए प्रभार्य आय का आकलन या पुनर्मूल्यांकन करने के लिए अधिकृत और अनुमति देती है यदि उसके पास यह मानने का कारण है कि किसी भी निर्धारण वर्ष के लिए आय मूल्यांकन से बच गई है। वाक्यांश "विश्वास करने का कारण" में शब्द "कारण" का अर्थ कारण या औचित्य होगा। यदि निर्धारण अधिकारी के पास यह जानने का कारण या औचित्य है कि आय मूल्यांकन से बच गई थी, तो यह कहा जा सकता है कि यह विश्वास करने का कारण है कि आय मूल्यांकन से बच गई थी। अभिव्यक्ति का अर्थ यह नहीं निकाला जा सकता है कि मूल्यांकन अधिकारी को कानूनी साक्ष्य या निष्कर्ष से तथ्य का पता लगाना चाहिए था। निर्धारण अधिकारी का कार्य करदाताओं के प्रति निष्पक्षता के एक अंतर्निहित विचार के साथ सार्वजनिक खजाने के लिए एकांत के साथ क़ानून का प्रशासन करना है। जैसा कि सेंट्रल प्रोविंस

मैंगनीज ओर कंपनी लिमिटेड बनाम आईटीओ (1991) 191 आईटीआर 662 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा देखा गया है, धारा 147 (ए) के अंतर्गत कार्रवाई शुरू करने के लिए (जैसा कि प्रावधान प्रासंगिक समय पर था) उस संबंध में दो अपेक्षित शर्तों की पूर्ति आवश्यक है। उस स्तर पर, कार्यवाही का अंतिम परिणाम प्रासंगिक नहीं है. दूसरे शब्दों में, दीक्षा के चरण में, जो आवश्यक है वह "विश्वास करने का कारण" है, लेकिन आय के पलायन के स्थापित तथ्य की नहीं। नोटिस जारी करने के चरण में, एकमात्र सवाल यह है कि क्या प्रासंगिक सामग्री थी जिस पर एक उचित व्यक्ति एक अपेक्षित विश्वास बना सकता था। क्या सामग्री निर्णायक रूप से पलायन साबित करेगी, उस स्तर पर चिंता का विषय नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मूल्यांकन अधिकारी द्वारा विश्वास का गठन व्यक्तिपरक संतुष्टि के दायरे में है

(देखें **आईटीओ बनाम चयनित डालर्बन कोल कंपनी प्राइवेट लिमिटेड (1996) 217 आईटीआर 597 (एससी); रेमंड वूलन मिल्स लिमिटेड बनाम आईटीओ (1999) (236) आईटीआर 34 (एससी)**."

39. वर्तमान मामले को इस कारण से राय बदलने का मामला नहीं कहा जा सकता है कि अधिनियम की धारा 153 ए के अंतर्गत पारित पहले के मूल्यांकन आदेश में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है, जिसे अधिनियम की धारा 153 डी के संदर्भ में सक्षम प्राधिकारी के अनुमोदन न होने के तकनीकी आधार पर निरस्त किया गया था।

40. उपरोक्त कारणों से, हमें वर्तमान याचिका में कोई योग्यता नहीं मिलती है। तदनुसार, इसे निरस्त किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 1131

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 19.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 23675 /2022

मदन मोहन सक्सैना

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री भानु भूषण जौहरी, श्री ऋषि भूषण जौहरी

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री मुकेश कुमार सिंह

त्वरित विचरण - विद्युत अधिनियम, 2005 - धारा 39/49 बी-चोरी का आरोप-चार्जशीट समर्पित-समन जारी-आवेदक नियमित रूप से उपस्थित हुए- आरोप तय करने के लिए तिथि निर्धारित - बिना आरोप तय किए - 2018 तक साक्ष्य के लिए तिथियां तय की जाने लगीं - फिर आरोप तय करने के लिए तारीखें तय की गईं - मूल एफआईआर तलब की गई - पिछले 18 वर्षों से न तो आरोप तय किए गए और न ही एफआईआर रिकॉर्ड पर दर्ज की गई - त्वरित सुनवाई का अधिकार एक मौलिक अधिकार है - अत्यधिक विलंब- कार्यवाही निरस्त कर दी गई।

आवेदन स्वीकृत। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

अनुवादित

1. बिहार राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य बनाम नंद किशोर तमाखुवाला, (1986) 2 एससीसी 414
2. आयकर आयुक्त मद्रास बनाम शिवकामी कंपनी प्रा. लिमिटेड, 1986 (2) एससीसी 418
3. वकील प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य, (2009) 3 एससीसी 355
4. महेंद्र सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2020 (9) एडीजे 15
5. महिपाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020 (9) एडीजे 16
6. डॉ. मेराज अली एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, आवेदन यू/एस 482 सीआर.पी.सी. क्रमांक 11924/2022
7. हुसैनारा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, एआईआर 1979 एससी 1360
8. अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर.एस. नाइक (1992) 1 एससीसी 225
9. पी. रामचन्द्र राव बनाम कर्नाटक राज्य (2002) 4 एससीसी 578
10. वकील प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य, (2009) 3 एससीसी 355
11. पंकज कुमार बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य. (2008) 16 एससीसी 117

(माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री बी.बी. जौहरी, उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन (विपक्षी पक्ष संख्या **3)** के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री मुकेश कुमार सिंह और राज्य के लिए विद्वान एजीए श्री रविकांत कुशवाहा को सुना।

2. वर्तमान आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने मुकदमा अपराध संख्या **376 / 2003** से जनित आरोप-पत्र संख्या **404/2003** दिनांक **01.12.2003** और धारा **39/49**बी विद्युत अधिनियम, थाना सदर बाजार, जिला शाहजहाँपुर के तहत एसीजेएम-प्रथम शाहजहाँपुर की अदालत में लंबित वाद संख्या **5276 / 2004** की कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना की।

3. वर्तमान मामले की एफआईआर दिनांक **15.10.2003** को आवेदक के विरुद्ध धारा **39/49** विद्युत अधिनियम के तहत थाना सदर बाजार, जिला शाहजहाँपुर में वाद अपराध संख्या **376** सन् **2003** के तहत दर्ज की गई थी।

4. आरोप के अनुसार आवेदक ने बिजली की चोरी की थी। एफआईआर दर्ज करने के बाद, जांच शुरू की गई और जांच के बाद **01.12.2003** को आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद, संबंधित अदालत ने **22.01.2004** को संज्ञान लिया और आवेदक को समन जारी किया। आवेदक दिनांक **20.02.2006** को अधिवक्ता के माध्यम से संबंधित अदालत के समक्ष उपस्थित हुआ और आवेदक नियमित रूप से अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हो रहा था और दिनांक **06.08.2009** को आरोप तय करने के लिए **07.10.2009** तिथि निर्धारित की गई थी और दिनांक **30.08.2013** तक आरोप तय करने के लिए निर्धारित की जा रही थी और **30.08.2013** को आरोप तय किए बिना साक्ष्य के लिए तिथियां निर्धारित की जा रही थीं। बिना आरोप तय किये साक्ष्य के लिए तारीखें तय की जाने लगीं और **30.08.2013** से **13.12.2018** तक की तारीखें अभियोजन साक्ष्य के लिए लगातार तय की जा रही थीं और **14.01.2019** को आरोप तय करने के लिए **20.02.2019** की तारीख तय की गई थी और मूल एफआईआर तलब की गई थी और उसके

अनुवादित

बाद **20.02.2019** से आरोप तय करने और मूल एफआईआर तलब करने के लिए लगातार तारीखें तय की जा रही हैं। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि पिछले लगभग **18** वर्षों से अधिक समय से वर्तमान मामले में न तो आरोप तय किए जा सके और न ही मूल प्राथमिकी को रिकॉर्ड पर रखा जा सका है।

5. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वह आवेदक के खिलाफ लंबित वर्तमान मामले की कार्यवाही को केवल इस आधार पर चुनौती दे रहा है कि कार्यवाही पिछले लगभग **18** वर्षों से लंबित है और हालांकि वर्तमान मामले की प्राथमिकी वर्ष **2003** में दर्ज की गई थी और आरोप पत्र दिसंबर, **2003** में प्रस्तुत किया गया था और फरवरी, **2004** में संज्ञान लिया गया था, लेकिन आज तक आरोप भी तय नहीं किए जा सके हैं और यहां तक कि मूल प्राथमिकी भी रिकॉर्ड पर नहीं है।

6. उन्होंने प्रस्तुत किया कि त्वरित सुनवाई का अधिकार एक अभियुक्त के साथ-साथ शिकायतकर्ता का भारत के संविधान के अनुच्छेद **21** के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकार है और पिछले लगभग **18** वर्षों से आवेदक बिना किसी गलती के आपराधिक मुकदमे की पीड़ा का सामना कर रहा है और वर्तमान मामले की कार्यवाही पिछले लगभग दो दशकों से लंबित है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद **21** के अनुसार किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा और ऐसी प्रक्रिया उचित, निष्पक्ष और न्यायसंगत होनी चाहिए और मुकदमे के पूरा होने में **18** साल की अत्यधिक देरी को उचित, निष्पक्ष और न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता है। उन्होंने आगे कहा, इसलिए त्वरित सुनवाई का अधिकार एक मौलिक अधिकार है जिसका वर्तमान मामले में उल्लंघन किया गया है। उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा कियाः **(i) (1986) 2** एससीसी **414** बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य बनाम नंदकिशोर तमाखुवाला

(ii) 1986 (2) एससीसी **418** आयकर आयुक्त मद्रास बनाम शिवकामी कंपनी प्राइवेट लिमिटेड

(iii) (2009) 3 एससीसी **355** वकील प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य

(iv) 2020 (9) एडीजे **15** महेंद्र सिंह एवं अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य

(v) 2020 (9) एडीजे **16** महिपाल एवं अन्य बनाम यूपी राज्य

(vi) सीआर.पी.सी. की धारा **482** के तहत आवेदन क्रमांक **11924** दिनांक **2022** डा. मेराज अली एवं अन्य वि.सं. यूपी राज्य और अन्य

7. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान एजीए और उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन (विपक्षी पक्ष संख्या **3)** के लिए विद्वान अधिवक्ता ने हालांकि प्रार्थना का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि मुकदमे में देरी के आधार पर आवेदक के खिलाफ लंबित पूरी कार्यवाही को रद्द करना वांछनीय नहीं होगा, लेकिन वे इस तथ्य पर मतभेद नहीं कर रखते कि आवेदक वर्ष **2004** से धारा **39/49** बी विद्युत अधिनियम के तहत आपराधिक मुकदमे की पीड़ा का सामना कर रहा है। पिछले लगभग **18** वर्षों से और आज तक आरोप भी नहीं बनाए जा सके हैं और मूल एफआईआर भी रिकॉर्ड में नहीं है। दोनों अधिवक्ता आगे इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सके कि आवेदक की कोई गलती नहीं है और वह नियमित रूप से या तो व्यक्तिगत रूप से या

अनुवादित

अपने अधिवक्ता के माध्यम से संबंधित अदालत के समक्ष पेश हो रहा है।

8. मैंने दोनों पक्षों को सुना है और मामले के रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

9. वर्तमान आवेदन को केवल इस आधार पर प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक पिछले लगभग **18** वर्षों से यानी वर्ष **2004** से आपराधिक मुकदमे की पीड़ा का सामना कर रहा है और **18** वर्षों के बाद भी कार्यवाही समाप्त नहीं हो सकी है। माना कि वर्तमान मामले की सुनवाई वर्ष **2004** से आवेदक के खिलाफ लंबित है और **18** वर्ष से अधिक समय बीत चुका है, लेकिन आज तक आरोप भी नहीं बनाए जा सके हैं और आदेश-पत्र से यह प्रतीत होता है कि आवेदक नियमित रूप से या तो व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ता के माध्यम से अदालत में उपस्थित हो रहा है, अतः, अभिलेखों से यह प्रदर्शित होता है कि सुनवाई में देरी के लिए आवेदक को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता।

10. त्वरित सुनवाई का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद **21** के तहत निहित एक मौलिक अधिकार है। **हुसैनारा खातून और अन्य बनाम बिहार राज्य के गृह सचिव एआईआर 1979 एससी 1360** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि त्वरित सुनवाई जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का एक अभिन्न अंग है और इसे इस प्रकार माना गया है: -

*"5. .....ऐसी कोई भी प्रक्रिया जो उचित रूप से त्वरित सुनवाई सुनिश्चित नहीं करती है, उसे 'उचित, निष्पक्ष या न्यायसंगत' नहीं माना जा सकता है और यह अनुच्छेद **21** की अवहेलना होगी। इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि त्वरित सुनवाई, और त्वरित सुनवाई से हमारा आशय है कि उचित रूप से त्वरित सुनवाई, अनुच्छेद **21** में निहित जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का एक अभिन्न और आवश्यक हिस्सा है।"*

11. इसलिए, हुसैनारा खातून (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा कि त्वरित सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन भारत के संविधान के अनुच्छेद **21** के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकार का उल्लंघन है।

12. हुसैनारा खातून (सुप्रा) के मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद **21** की व्याख्या पर **अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर.एस. नाइक (1992) 1 एससीसी 225** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा व्यापक रूप से विचार किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों और उनके संविधान के छठे संशोधन की अमेरिकी दृष्टांत का हवाला देते हुए, त्वरित सुनवाई के अधिकार को एक संवैधानिक गारंटी बनाते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने सावधानी के साथ **11** प्रस्ताव तैयार किए कि ये संपूर्ण नहीं थे और थे। इसका उद्देश्य केवल दिशानिर्देश के रूप में कार्य करना है। ये हैं:-

"1. संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित प्रक्रिया आरोपी को त्वरित सुनवाई का अधिकार देती है। त्वरित सुनवाई का अधिकार अभियुक्त का अधिकार है। तथ्य यह है कि त्वरित सुनवाई भी सार्वजनिक हित में है या यह सामाजिक हित में सहायक है, लेकिन इसे अभियुक्त का अधिकार नहीं बनाता है। यह सभी संबंधितों के हित में है

अनुवादित

कि अभियुक्त का अपराध या निर्दोषता उन परिस्थितियों में जितनी जल्दी हो सके निर्धारित की जाए।

***2.** अनुच्छेद **21** से प्राप्त त्वरित सुनवाई के अधिकार में सभी स्तर शामिल हैं, अर्थात् जांच, पूछताछ, परीक्षण, अपील, पुनरीक्षण और पुन: परीक्षण। इस प्रकार, इस न्यायालय ने इस अधिकार को समझा है और सीमित दृष्टिकोण अपनाने का कोई कारण नहीं है।*

***3.** अभियुक्त के दृष्टिकोण से त्वरित सुनवाई के अधिकार में अंतर्निहित विचार हैं:*

(ए) रिमांड और दोषसिद्धि पूर्व हिरासत की अवधि यथासंभव कम होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, अभियुक्त को उसकी दोषसिद्धि से पहले अनावश्यक या अनुचित रूप से लंबे समय तक कारावास में नहीं रखा जाना चाहिए;

(बी) अनावश्यक रूप से लंबे समय तक जांच, पूछताछ या परीक्षण के परिणामस्वरूप उसके व्यवसाय और शांति में चिंता, व्यग्रता, व्यय और अशांति न्यूनतम होनी चाहिए; और

(सी) अनुचित विलम्ब के परिणामस्वरूप अभियुक्त की अपना बचाव करने की क्षमता में हानि हो सकती है, चाहे वह मृत्यु, गुमशुदगी या गवाहों की अनुपलब्धता के कारण हो या अन्यथा।

***4.** साथ ही, इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि आमतौर पर आरोपी ही कार्यवाही में देरी करने में रुचि रखता है। जैसा कि अक्सर बताया गया है, "देरी एक ज्ञात रक्षा रणनीति है"। चूंकि अभियुक्त का अपराध साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर है, देरी आमतौर पर अभियोजन पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। गवाहों की अनुपलब्धता, समय बीतने पर साक्ष्यों का गायब होना वास्तव में अभियोजन पक्ष के हित के विरुद्ध है। बेशक, ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां अभियोजन पक्ष भी, किसी भी कारण से, कार्यवाही में देरी करता है। इसलिए, हर मामले में, जहां त्वरित सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन होने का आरोप लगाया जाता है, पहला प्रश्न पूछा जाना और उत्तर दिया जाना चाहिए- देरी के लिए कौन जिम्मेदार है? किसी भी पक्ष द्वारा अपने अधिकारों और हितों की पुष्टि के लिए सद्भावना से की गई कार्यवाही, जैसा कि उनका मानना है, को देरी की रणनीति के रूप में नहीं माना जा सकता है और न ही ऐसी कार्यवाही को आगे बढ़ाने में लगने वाले समय को विलम्ब में गिना जा सकता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि निरर्थक कार्यवाही या केवल गणना के दिन की देरी के लिए की गई कार्यवाही को सद्भावना से की गई कार्यवाही के रूप में नहीं माना जा सकता है। केवल यह तथ्य कि एक आवेदन/याचिका स्वीकार कर ली गई है और एक वरिष्ठ न्यायालय द्वारा स्थगन आदेश दे दिया गया है, अपने आप में इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि कार्यवाही निरर्थक नहीं है। अक्सर ये स्थगन आदेश एकपक्षीय प्रतिनिधित्व पर प्राप्त किये जाते हैं।*

***5.** यह निर्धारित करते समय कि क्या अनुचित विलम्ब हुआ है (जिसके परिणामस्वरूप त्वरित विचारण के अधिकार का उल्लंघन हुआ है) अपराध की प्रकृति, अभियुक्तों और गवाहों की संख्या, संबंधित न्यायालय के कार्य-भार, प्रचलित स्थानीय परिस्थितियों आदि सहित सभी परिचर परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए। यह सच है कि त्वरित सुनवाई सुनिश्चित करना राज्य का दायित्व है और राज्य में न्यायपालिका भी शामिल है, लेकिन ऐसे मामलों में पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण*

अभियुक्त

की अपेक्षा यथार्थवादी और व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए।

6. *जरूरी नहीं कि प्रत्येक विलम्ब से आरोपी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। कुछ देरी वास्तव में उसके लाभ के लिए काम कर सकती है। जैसा कि पावेल, जे. ने बार्कर में देखा है, "यह नहीं कहा जा सकता कि उस व्यवस्था में कितना विलम्ब होगा जहां न्याय त्वरित किन्तु इच्छित होना चाहिए"। यही विचार व्हाइट, जे. ने यू.एस. बनाम ईवेल में निम्नलिखित शब्दों में कहा है:*

'... त्वरित विचारण का छठा संशोधन अधिकार अनिवार्य रूप से सापेक्ष है, विलम्ब के अनुरूप है, और इसके आवश्यक घटकों के रूप में अधिक गति के बजाय व्यवस्थित अभियान है; और क्या अभियोजन को पूरा करने में हुआ विलम्ब अधिकारों को असंवैधानिक रूप से वंचित होने के बराबर है, यह सभी परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

हालाँकि, अत्यधिक लंबे विलंब को पूर्वाग्रह के अनुमानित प्रमाण के रूप में लिया जा सकता है। इस संदर्भ में अभियुक्तों के कारावास का तथ्य भी एक प्रासंगिक तथ्य होगा। अभियोजन को उत्पीड़न नहीं बनने देना चाहिए, लेकिन अभियोजन कब अभियोजन बनता है, यह भी किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है।

(बल दिया गया)

7. *जिसे 'अभियाचना' नियम कहा जाता है, हम उसे पहचान नहीं सकते या उस पर अमल नहीं कर सकते। कोई अभियुक्त स्वयं मुकदमा नहीं चला सकता; अभियोजन पक्ष के कहने पर अदालत द्वारा उस पर मुकदमा चलाया जाता है। इसलिए, किसी अभियुक्त की त्वरित सुनवाई से इनकार करने की याचिका को यह कहकर खारिज नहीं किया जा सकता कि अभियुक्त ने कभी भी त्वरित सुनवाई की मांग नहीं की। यदि किसी दिए गए मामले में, उसने ऐसी मांग की थी और फिर भी उस की त्वरित सुनवाई नहीं की गई, तो यह उसके पक्ष में एक मुख्य लाभ होगा, लेकिन केवल त्वरित सुनवाई की मांग न करने को आरोपी के खिलाफ नहीं रखा जा सकता है। यहां तक कि यू.एस.ए. में भी बार्कर और अन्य अनुवर्ती मामलों में अभियाचना नियम की प्रासंगिकता काफी हद तक कम हो गई है।*

8. *अंततः, अदालत को कई प्रासंगिक कारकों- 'संतुलन परीक्षण' या 'संतुलन प्रक्रिया'- को सन्तुलन के साथ मापना होगा और प्रत्येक मामले में यह निर्धारित करना होगा कि क्या किसी दिए गए मामले में त्वरित सुनवाई के अधिकार से इनकार किया गया है।*

9. सामान्यतया, जहां अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि किसी आरोपी के त्वरित सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन किया गया है, आरोप या दोषसिद्धि, जैसा भी मामला हो, रद्द कर दिया जाएगा। लेकिन यह एकमात्र खुला विकल्प नहीं है। किसी मामले में अपराध की प्रकृति और अन्य परिस्थितियां ऐसी हो सकती हैं कि कार्यवाही को रद्द करना न्याय के हित में न हो। *ऐसे मामले में, अदालत ऐसे अन्य उचित आदेश देने के लिए स्वतंत्र है - जिसमें एक निश्चित समय के भीतर मुकदमे को समाप्त करने का आदेश शामिल है, जहां मुकदमा समाप्त नहीं हुआ है या जहां मुकदमा समाप्त हो गया है, वहां सजा को कम करने का आदेश शामिल है - जिसे उचित माना जा सकता है एवं जो मामले की परिस्थितियों में न्यायसंगत है।*

(बल दिया गया)

10. *अपराधों की सुनवाई के लिए कोई समय-सीमा तय करना न तो उचित है और न ही व्यावहारिक है। ऐसे किसी अर्ह नियम का होना अनिवार्य है। इस तरह का नियम केवल औचित्य साबित करने का भार अभियोजन पक्ष के कंधों पर डालने के लिए भी विकसित नहीं किया जा सकता है। त्वरित सुनवाई के अधिकार से इनकार करने की शिकायत के प्रत्येक मामले में, विलम्ब को उचित ठहराना और समझाना मुख्य रूप से अभियोजन पक्ष का काम है। साथ ही, शिकायत पर फैसला सुनाने से पहले किसी मामले की सभी परिस्थितियों पर विचार करना अदालत का कर्तव्य है। संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने भी छठे संशोधन के बावजूद ऐसी किसी भी बाहरी समय सीमा को तय करने से बार-बार इनकार कर दिया। न ही हम यह सोचते हैं कि ऐसी कोई बाहरी सीमा तय न करने से त्वरित सुनवाई के अधिकार की गारंटी प्रभावित होती है।*

11. *त्वरित सुनवाई के अधिकार से इनकार करने और उस आधार पर राहत पाने पर आधारित आपत्ति को पहले उच्च न्यायालय को संबोधित किया जाना चाहिए। भले ही उच्च न्यायालय ऐसी याचिका पर विचार करता है, लेकिन गंभीर और असाधारण प्रकृति के मामले को छोड़कर, आमतौर पर उसे कार्यवाही पर रोक नहीं लगानी चाहिए। हालाँकि, उच्च न्यायालय में ऐसी कार्यवाही को प्राथमिकता के आधार पर निपटाया जाना चाहिए।"*

13. अब्दुल रहमान अंतुले (सुप्रा) के मामले में संविधान पीठ ने इस प्रकार कहा कि यद्यपि प्रत्येक विलम्ब से आरोपी पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है, लेकिन अत्यधिक विलम्ब को पक्षपात के अनुमानित साक्ष्य के रूप में लिया जा सकता है और अभियोजन को उत्पीड़न बनने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और यदि अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि अभियुक्त के त्वरित सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन किया गया है तो उसके खिलाफ लंबित कार्यवाही रद्द कर दी जाएगी।

14. पी.रामचंद्र राव बनाम कर्नाटक राज्य (2002) 4 एससीसी 578 के मामले में यह मुद्दा फिर से शीर्ष अदालत की सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ के समक्ष आया है। पी. रामचन्द्र राव (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की सात न्यायाधीशों की पीठ ने अब्दुल रहमान अंतुले (सुप्रा) के मामले में संविधान पीठ द्वारा निर्धारित कानून को मंजूरी दी और कहा कि अब्दुल रहमान अंतुले (सुप्रा) में निर्धारित दिशानिर्देश संपूर्ण नहीं हैं, बल्कि केवल उदाहरणात्मक हैं और उनकी प्रयोज्यता प्रत्येक मामले के तथ्यों पर आधारित होगी। पी. रामचन्द्र राव (सुप्रा) के मामले में सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने कहा कि उपयुक्त मामलों में भारत के संविधान के अनुच्छेद **226** और **227** एवं सीआर.पी.सी. की धारा **482** के तहत उच्च न्यायालय के उपयुक्त मामलों के क्षेत्राधिकार को उचित राहत या उपयुक्त निर्देश के लिए लागू किया जा सकता है और इस प्रकार देखा जा सकता है: -

"28. *किसी मामले की परिस्थितियों की समग्रता से यह पता लगाने के लिए कि क्या किसी दिए गए समय तक खर्च किए गए समय की मात्रा अनुच्छेद **21** का उल्लंघन है, और यदि ऐसा है, तो विशेष कार्यवाही को समाप्त करने के लिए, और यदि नहीं, तो आगे बढ़ने के लिए यह अदालत के विवेकाधिकार पर छोड़ दिया जाना*

अनुवादित

चाहिए। परीक्षण यह है कि क्या कार्यवाही या परीक्षण इतने समय तक लंबित रहा है कि अत्यधिक विलम्ब को वैध रूप से दमनकारी और अनुचित कहा जा सकता है, जैसा कि ए.आर. अंतुले में सुझाव दिया गया है। कर्तार सिंह के मामले में संविधान पीठ ने इस सिद्धांत को स्वीकार करते हुए कि किसी अभियुक्त के त्वरित सुनवाई के अधिकार से इनकार करने के परिणामस्वरूप अभियोग को खारिज करने या दोषसिद्धि को रद्द करने का निर्णय हो सकता है।"

15. इसलिए, हुसैनारा खातून (सुप्रा) अब्दुल रहमान अंतुले (सुप्रा) और पी. रामचंद्र राव (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के कथन से यह स्पष्ट है कि त्वरित सुनवाई का अधिकार एक मौलिक अधिकार है और इसका उल्लंघन अभियुक्त व्यक्ति के लिए भी पक्षपात का कारण बनता है।

16. वकील प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य (2009) 3 एससीसी 355 के मामले में शीर्ष न्यायालय (आवेदक द्वारा विश्वसनीय) हुसैनारा खातून (सुप्रा), अब्दुल रहमान अंतुले (सुप्रा) और पी. रामचन्द्र राव (सुप्रा) के निर्णयों सहित सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व निर्णयों पर चर्चा करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया गया कि यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अभियुक्त के त्वरित सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन किया गया है, तो आरोप या दोषसिद्धि, जैसा भी मामला हो, निरस्त की जा सकती है जब तक कि न्यायालय को यह महसूस न हो कि अपराध की प्रकृति और अन्य प्रासंगिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कार्यवाहियों को रद्द करना न्याय के हित में नहीं हो सकता है।

17. पंकज कुमार बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2008) 16 एससीसी 117 के मामले में, शीर्ष अदालत ने पाया कि अभियोजन पक्ष किसी भी असाधारण परिस्थिति को दिखाने में विफल रहा है, जिसे संभवतः मुकदमे के लंबे समय तक चलने को माफ करने के लिए विचार में लिया जा सकता है और आठ साल से अधिक के अत्यधिक विलम्ब के आधार पर अभियुक्त के खिलाफ लंबित कार्यवाही को यह देखने के बाद रद्द कर दिया गया कि त्वरित सुनवाई के उसके संवैधानिक अधिकार से इनकार किया गया है।

18. इसलिए, ऊपर की गई चर्चा से, यह स्पष्ट है कि किसी अभियुक्त के त्वरित विचारण का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद **21** के तहत निहित एक मौलिक अधिकार है और यदि न्यायालय को लगता है कि इसका उल्लंघन किया गया है तो आवेदक के खिलाफ लंबित कार्यवाही को रद्द किया जाना चाहिए, लेकिन निम्नलिखित कारकों पर विचार करने के बाद ही:-

(i) क्या विलम्ब के लिए स्वयं अभियुक्त को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है

(ii) अपराध की प्रकृति

(iii) क्या रद्द करना न्याय के हित में है।

(iv) क्या अत्यधिक विलम्ब को दमनकारी और अनुचित कहा जा सकता है।

19. मौजूदा मामले में, रिकॉर्ड के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मुकदमे के पूरा होने में अत्यधिक विलम्ब के लिए आरोपी आवेदक को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि आदेश-पत्रक से पता चलता है कि वह नियमित रूप से या तो व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ता के माध्यम से अदालत में उपस्थित

अनुवादित

हो रहा है और मामले का विचारण विद्युत अधिनियम की धारा **39/49** बी से संबंधित है, जिसे जघन्य अपराध नहीं कहा जा सकता है और इसका परीक्षण वर्ष **2004** से अर्थात पिछले लगभग **18** वर्षों से लंबित है और अभियोजन पक्ष इस तरह की अत्यधिक देरी को माफ करने के लिये कोई असाधारण परिस्थिति प्रदान करने में विफल रहा है। इसलिए, **18** साल की अस्पष्टीकृत अत्यधिक देरी को दमनकारी और अनुचित करार दिया जाना चाहिए। इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, मेरा मानना है कि आवेदक के त्वरित सुनवाई के मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया गया है।

20. ऊपर की गई चर्चा से, इस न्यायालय का विचार है कि आवेदक के खिलाफ लंबित आपराधिक कार्यवाही को आगे जारी रखना अनुचित है, इसलिए, वर्तमान मामले में आवेदक के खिलाफ लंबित न्याय कार्यवाही के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए इसके द्वारा **रद्द** किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 1137

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर),

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 9911/2022

सोनू कुमार गुप्ता ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री आलोक कुमार

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

अपराधिक कानून - स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम 1985 - धारा 52-ए, 53, 60 और 63 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 451 और 457 - विवादित वाहन की रिहाई का आवेदन - 6 नामित आरोपियों के विरुद्ध एफआईआर - आवेदक का तिपहिया वाहन से पकड़े गए चार आरोपी बिना किसी बिल और वाउचर के कफ सिरप की कुछ बोतलों के साथ - आवेदक को मौके पर नहीं पकड़ा गया, - वह सभी वैध दस्तावेजों के साथ वाहन का मालिक है - गलत तरीके से फंसाया गया - आरोपी के दोषमुक्त होने के बाद ही वाहन जब्त किए जाएंगे या छुट्टी दे दी गई - मुकदमा पूरा होने के पश्चात - सीआरपीसी के प्रावधान लागू नहीं होगा - सुनवाई के दौरान जब्त किए गए वाहन को छोड़ने से रोकने वाला कोई प्रावधान नहीं - जब्त किए गए वाहन को सीआरपीसी की धारा 451 के तहत अस्थायी रूप से छोड़ा जाएगा - वाहन को लावारिस खड़ा किया गया है - पिछले 1 साल और 10 महीने से अधिक समय से लावारिस खड़ा करने से यह खराब हो जाएगा - अगर अंतरिम हिरासत नहीं दी गई तो - धूप और बारिश से नुकसान होगा - आवेदक पर अभी तक आरोप पत्र दाखिल नहीं हुआ है - वाहन आवेदक के पक्ष में छोड़ा जाएगा।

आवेदन स्वीकृत। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

सुंदरभाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य 2003(1) आरसीआर (सीआरएल) 380

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर), द्वारा प्रदत्त)

1. धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन को दाखिल करके आवेदक इस न्यायालय के निहित अधिकार क्षेत्र का आह्वान करते हुए आपराधिक प्रकीर्ण मामला संख्या-44 वर्ष 2022, राज्य बनाम पवन कुमार और अन्य में दिनांक 24.3.2022 के आदेश को रद्द करना चाहते हैं, जो धारा 8/21 एन.डी.पी.एस. अधिनियम, थाना-घूरपुर जिला इलाहाबाद के तहत मामला अपराध संख्या-91 वर्ष 2021 से उत्पन्न हुआ है। एक और प्रार्थना उपर्युक्त मामले से संबंधित तिपहिया वाहन नं. यूपी-65-टीडी-9967 कों आवेदक के पक्ष में को छोड़ने के लिए की जाती है

2. आवेदक, अपर शासकीय अधिवक्ता के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

3. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 11.3.2021 को एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 8/21 के तहत छह नामित आरोपियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी, इस आरोप के साथ कि तीन पहिया वाहन संख्या- यूपी-65 टीडी-9967 में चार आरोपी व्यक्ति पवन, कुलदीप कुमार, मो. नासिर और सोनू @ मो. हासिम को पुलिस ने 49 बक्से, कुल 5807 बोतल ओनेरेक्स सीसी कफ सिरप के साथ बिना किसी बिल और वाउचर के गिरफ्तार किया, जिसे न्यू वृद्धि फरमा सप्तनगर मदगिन, वाराणसी से मेसर्स श्याम मेडिकल स्टोर गौहनिया रीवा रोड जसरा प्रयागराज ले जाया जा रहा था।

4. यह तर्क दिया जाता है कि प्रत्येक बोतल में 10 मिलीलीटर कोडाइन फॉस्फेट होता है। कुल कोडाइन फॉस्फेट की मात्रा 580.7 ग्राम कही जा सकती है जो वाणिज्यिक मात्रा वर्ष 1 किग्रा से बहुत कम है। आवेदक को एन.डी.पी.एस. अधिनियम से संबंधित किसी भी सामग्री के कब्जे में पुलिस द्वारा मौके पर न तो पकड़ा गया था, न ही उसके द्वारा सामग्री की आपूर्ति की जा रही थी या यह उसके लिए थी। वह सभी वैध दस्तावेजों के साथ थ्री व्हीलर संख्या- यूपी-65-टीडी-9967 के मालिक हैं। उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। वह एक निर्दोष, कानून का पालन करने वाला और शांतिप्रिय व्यक्ति है, जिसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। आवेदक ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी रिहाई का आवेदन दायर किया, जिसे दिनांक 24.3.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

5. उनका वाहन 11.3.2021 से थाने के परिसर में खड़ा है। उसके पास गाड़ी के पूरे दस्तावेज हैं। बरामद सिरप का जीएसटी चालान और खाता विवरण भी पेपर बुक के साथ संलग्न किया गया है। पुलिस का आरोप है कि बरामद दवा के संबंध में कोई रसीद नहीं दिखाई गई, जबकि संबंधित पुलिस ने बरामदगी के समय दवाओं की प्राप्ति पर विचार नहीं किया।

6. अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदन का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि अदालत के समक्ष रखे गए बिल पर किसी भी व्यक्ति के हस्ताक्षर नहीं हैं। बरामद सिरप में कोडिन की मात्रा 580.7 किलोग्राम थी। जो कि अनुमन्य वाणिज्यिक मात्रा अर्थात 1 किग्रा से बहुत अधिक है, और आवेदक वाहन का मालिक है, वह अपने वाहन में आपूर्ति की गई चीजों के लिए जिम्मेदार है, जब तक कि वह अन्यथा साबित न करे। प्रथम दृष्टया यह स्थापित करना उनके ऊपर है कि उनके वाहन का उपयोग उनकी जानकारी के

अनुवादित

बिना प्रतिबंधित पदार्थ के परिवहन के लिए किया जा रहा था।

7. रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह पाया गया है कि आवेदक के तीन पहिया वाहन से, पुलिस ने 5807 बोतलें बरामद की थीं, प्रत्येक बोतल में 100 मिलीलीटर ओनेरेक्स कफ सिरप था। थ्री व्हीलर पर सवार व्यक्ति इस कफ सिरप का बिल और वाउचर नहीं दिखा सका। कफ सिरप की प्रत्येक बोतल में 10 मिलीलीटर कोडीन फॉस्फेट था और इस प्रकार, कुल 58.07 किलोग्राम कोडीन फॉस्फेट पाया गया, जिसमें इसकी अनुमेय वाणिज्यिक मात्रा 1 किलोग्राम है। जाहिर है, आवेदक को पुलिस ने मौके पर ही नहीं पकड़ा। उसे वाहन का मालिक बताया जा रहा है, जिसमें यह प्रतिबंधित पदार्थ बरामद होने की बात कही जा रही है। वाहन नं. यूपी-65-टीडी-9967। कहा जाता है कि विचारण न्यायालय के समक्ष उनकी रिहाई की अर्जी 24.3.2022 को खारिज कर दी गई थी।

8. विचारण न्यायालय ने पाया कि चूंकि आवेदक के वाहन से प्रतिबंधित पदार्थ बरामद किया गया था, इसलिए यह अनुमान है कि आवेदक को इस प्रतिबंधित पदार्थ के परिवहन का ज्ञान था, जब तक कि वह अन्यथा साबित न करे। माना जाता है कि थ्री व्हीलर वाहन के चालक को जमानत मिल गई है।

9. एन.डी.पी.एस. अधिनियम 1985 में वाहन की रिहाई के संबंध में प्रावधान धारा 52-ए, 53, 60 और 63 हैं। एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 63 निम्नानुसार है: -

63. जब्ती करने की प्रक्रिया।

(1) इस अधिनियम के अधीन अपराधों के विचारण में, चाहे अभियुक्त सिद्धदोष ठहराया गया हो या दोषमुक्त किया गया हो, न्यायालय यह विनिश्चय करेगा कि इस अधिनियम के अधीन जब्त की गई कोई वस्तु धारा 60 या धारा 61 या धारा 62 के अधीन अधिहरण के लिए उत्तरदायी है या नहीं और यदि वह यह विनिश्चय करता है कि वह वस्तु इस प्रकार उत्तरदायी है तो वह तदनुसार अधिहरण का आदेश दे सकेगा।

(2) जहाँ इस अधिनियम के अधीन जब्त की गई कोई वस्तु धारा 60 या धारा 61 या धारा 62 के अधीन अधिहरण के लिए उत्तरदायी प्रतीत होती है, किन्तु वह व्यक्ति जिसने उसके संबंध में अपराध किया है, उसे ज्ञात नहीं है या नहीं पाया जा सकता है, न्यायालय ऐसे दायित्व की जाँच कर सकेगा और विनिश्चय कर सकेगा और तदनुसार अधिहरण का आदेश दे सकेगा:

बशर्ते कि किसी वस्तु या चीज की जब्ती का कोई आदेश जब्ती की तारीख से एक महीने की समाप्ति तक, या किसी भी व्यक्ति को जो उसके किसी अधिकार और साक्ष्य, यदि कोई हो, का दावा कर सकता है, जो वह अपने दावे के संबंध में प्रस्तुत करता है, सुने बिना, नहीं किया जाएगा।

परन्तु यह और कि यदि ऐसी कोई वस्तु, मादक औषध, मनःप्रभावी पदार्थ, [नियंत्रित पदार्थ] के अलावा अफीम खसखस, कोका संयंत्र या भांग का पौधा शीघ्र और प्राकृतिक क्षय के लिए उत्तरदायी है, या यदि न्यायालय की राय है कि इसकी बिक्री उसके मालिक के लाभ के लिए होगी, तो वह किसी भी समय इसे बेचने का निर्देश दे सकता है; और इस उप-धारा के प्रावधान, जितना व्यावहारिक हो सकता है, बिक्री की शुद्ध आय पर लागू होगा।

10. इस प्रकार, अभियुक्त को दोषी ठहराए जाने या बरी किए जाने के बाद ही वाहन को जब्त

अनुवादित

किया जाना है, इसका मतलब है कि उसका मुकदमा पूरा हो गया है।

11. अब सवाल उठता है कि विचारण के दौरान क्या वाहन को वाहन के असली मालिक की अस्थायी कब्ज़े में दिया जा सकता है। एन.डी.पी.एस. अधिनियम वाहन की अंतरिम कस्टडी के बारे में चुप है, जबकि दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 451 और 457 लंबित मुकदमे की संपत्ति की कस्टडी और निपटान की बात करते हैं। अब सवाल यह उठता है कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की इन धाराओं को एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत जब्त किए गए वाहन की अंतरिम ज़ब्ती पर लागू किया जा सकता है? इस संबंध में, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 51 को देखना उचित है जो निम्नानुसार है;

51. वारंट, गिरफ्तारी, तलाशी और जब्ती पर लागू करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रावधान: - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) के प्रावधान, जहां तक वे इस अधिनियम के प्रावधानों से असंगत नहीं हैं, इस अधिनियम के तहत जारी किए गए सभी वारंटों और गिरफ्तारियों, तलाशियों और जब्ती पर लागू होंगे।

12. इस प्रकार, एन.डी.पी.एस. अधिनियम के संबंध में किसी भी लेख या चीजों की जब्ती के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान लागू होंगे, यदि वे एन.डी.पी.एस. अधिनियम के प्रावधानों के असंगत नहीं हैं और एन.डी.पी.एस. अधिनियम में, द०प्र०स० के प्रावधानों के अनुसार परीक्षण के दौरान अधिनियम के तहत जब्त किए गए वाहन की रिहाई पर रोक लगाने का कोई प्रावधान नहीं है। इस प्रकार धारा 451 द०प्र०स० के प्रावधान को एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत किसी भी विशिष्ट प्रावधान के साथ असंगत नहीं कहा जा सकता है, इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की यह धारा एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 51 के तहत जनादेश के अनुसार एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत जब्त किए गए वाहन की अस्थायी रिहाई पर लागू होगी।

451. कुछ मामलों में विचारण लंबित संपत्ति की अभिरक्षा और व्ययन के लिए आदेश- जब कोई संपत्ति किसी जांच या विचारण के दौरान किसी दांडिक न्यायालय के समक्ष पेश की जाती है तो न्यायालय ऐसा आदेश दे सकेगा जो वह जांच या विचारण के समाप्त होने तक ऐसी संपत्ति की उचित अभिरक्षा के लिए ठीक समझे, और यदि संपत्ति शीघ्र और प्राकृतिक क्षय के अधीन है, या यदि ऐसा करना अन्यथा समीचीन है, तो न्यायालय ऐसे साक्ष्य को रिकॉर्ड करने के बाद, जैसा कि वह आवश्यक समझता है, इसे बेचने या अन्यथा निपटाने का आदेश दे सकता है।

13. द०प्र०स० की धारा 457 में संपत्ति की जब्ती पर पुलिस की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। यह खंड निम्नानुसार है;

"457. संपत्ति की जब्ती पर पुलिस द्वारा प्रक्रिया- (1) जब कभी किसी पुलिस अधिकारी द्वारा संपत्ति की अभिग्रहण की सूचना इस संहिता के उपबंधों के अधीन मजिस्ट्रेट को दी जाती है और ऐसी संपत्ति किसी जांच या विचारण के दौरान दांडिक न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं की जाती है तो मजिस्ट्रेट ऐसी संपत्ति के व्ययन या उसके कब्जे के हकदार व्यक्ति को ऐसी संपत्ति के परिदान के संबंध में, या यदि ऐसे व्यक्ति का पता नहीं लगाया जा सकता है, तो ऐसी संपत्ति की ज़ब्ती और उत्पादन का सम्मान करते हुए, ऐसा आदेश कर सकेगा जो वह ठीक समझे।

अनुवादित

(2) यदि इस प्रकार हकदार व्यक्ति ज्ञात है तो मजिस्ट्रेट संपत्ति को ऐसी शर्तों (यदि कोई हो) पर उसे सुपुर्द करने का आदेश दे सकेगा जो मजिस्ट्रेट ठीक समझे और यदि ऐसा व्यक्ति अज्ञात है तो मजिस्ट्रेट उसे निरुद्ध कर सकेगा और ऐसे मामले में ऐसी संपत्ति के अनुच्छेदों को विनिर्दिष्ट करते हुए, और किसी ऐसे व्यक्ति से, जिसका उस पर दावा हो, उसके समक्ष उपस्थित होने और ऐसी उद्घोषणा की तारीख से छह मास के भीतर अपना दावा स्थापित करने की अपेक्षा करके, उद्घोषणा जारी करेगा।

14. जब्त वाहनों और वस्तुओं के निपटान से संबंधित लैंडमार्क निर्णय सुंदरभाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य 2003 (1) आरसीआर (सीआरएल) 380 है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "यदि धारा 451 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का विवेकपूर्ण प्रयोग किया जाता है, तो संपत्ति के मालिक को इसके अप्रयुक्त रहने या इसके दुरुपयोग के कारण नुकसान नहीं होगा। इसके अलावा, अदालत या पुलिस को सामग्री को सुरक्षित ज़ब्ती में रखने की आवश्यकता नहीं होगी। यदि वस्तुओं को सौंपने से पहले उचित पंचनामा तैयार किया जाता है, तो मुकदमे के दौरान अदालत के समक्ष लेख के उत्पादन के बजाय साक्ष्य में इसका उपयोग किया जा सकता है।

15. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि "इस तरह के जब्त वाहन को लंबे समय तक थाने में रखने का कोई फायदा नहीं था और न्यायिक मजिस्ट्रेटों को धारा 451 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग शीघ्रता और न्यायिक रूप से करने का निर्देश दिया और जब्त की गई वस्तुओं और वाहनों की अंतरिम ज़ब्ती संपत्ति के मालिक या उस व्यक्ति को सौंपी जो संपत्ति के कब्जे का हकदार है।

16. वर्तमान मामले में भी वाहन 11.3.2021 से थाने में पड़ा है और जब वाहन को लावारिस पार्क किया जाता है तो वाहन के मूल्यवान पुर्जे ले लिए जाते हैं या चोरी हो जाते हैं। वाहन भी पुलिस विभाग के लिए असुविधा का कारण बनता है और यदि परीक्षण के दौरान वाहन को खुले में रखा जाता है तो यह विशेष रूप से खराब हो जाएगा और यदि अदालत अंततः यह पाती है कि वाहन अपराध में अप्रयुक्त था या यदि इसका उपयोग अपराध में किया गया था, वाहन के मालिक के ज्ञान में नहीं, मालिक को वाहन के केवल स्क्रैप को इकट्ठा करना होगा। इस प्रकार, यदि वाहन थाने में पूरी तरह से लावारिस पार्क किया गया तो किसी को भी लाभ नहीं हो रहा है। इस प्रकार आवेदक का तिपहिया वाहन जिसे अभी तक जब्त नहीं किया गया है और पिछले एक साल और दस महीने से अधिक समय से थाने में खुले में खड़ा किया गया है, अगर इसे आवेदक की अंतरिम जब्ती में नहीं दिया जाता है, तो धूप और बारिश निश्चित रूप से इसके टायर, रंग, मशीनरी और बैटरी और इंटीरियर को भी नुकसान पहुंचाएगी, जो न तो राष्ट्र के हित में है और न ही आवेदक के हित में। माना जाता है कि आवेदक को मामले में आरोपित नहीं किया गया है, इसलिए यह अभी तक साबित नहीं हुआ है कि आवेदक के ज्ञान में वाहन का इस्तेमाल अपराध में किया जा रहा था। इसलिए अदालत की राय में, आवेदक के वाहन को परीक्षण के दौरान आवेदक के पक्ष में जारी करने की आवश्यकता है। जब्ती के एक वर्ष के बाद भी आवेदक के पक्ष में वाहन जारी नहीं करने का विचारण न्यायालय का आदेश कानूनी रूप से अस्थिर है, इसलिए,

अनुवादित

दिनांक 24.3.2022 के आदेश को रद्द किया जाता है

वाहन नं. यूपी-65-टीडी 9967 आवेदक, वाहन के मालिक के पक्ष में सभी आवश्यक दस्तावेजों के उत्पादन के अधीन, एक लाख रुपये का व्यक्तिगत बांड और एक लाख रुपये की दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए निम्नलिखित शर्तों पर जारी किया जाए;

1. आवेदक मुकदमे की पेंडेंसी के दौरान वाहन का निपटान/विक्रय नहीं करेगा।

2. आवेदक अपनी लागत पर, जब भी और जहां भी अदालत द्वारा आदेश दिया जाएगा, अदालत के समक्ष वाहन पेश करेगा।

3. आवेदक किसी भी तरीके से वाहन की प्रकृति को अलग या परिवर्तित नहीं करेगा।

4. वाहन की रिहाई भी जब्ती कार्यवाही, यदि कोई हो, के अधीन रहेगी।

अत: धारा 482 द०प्र०स० के आवेदन को उपर्युक्त शर्तों में अनुमति दी जाती है।

(2023) 2 ILRA 1141

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 03.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 22250/2022

बिलाल एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री रवि प्रकाश सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482- दोनों पक्षों द्वारा क्रॉस वाद- पहले से ही पक्षों के बीच एक वैवाहिक मामला लंबित है - क्रॉस केस पक्षों के बीच दुश्मनी को दर्शाता है - घटना से इनकार नहीं किया जा सकता है।

आवेदन अस्वीकृत। (ई-9)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

प्रार्थी की तरफ से श्री रवि प्रकाश सिंह एवं विपक्षी सं० 1 की तरफ से अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया। सूचना होने के बावजूद विपक्षी सं० 2 की तरफ से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

प्रार्थीगण ने 482 दं०प्र०सं० के अंतर्गत यह याचिका असंज्ञेय अपराध सं० 109/2018 अंतर्गतः धारा 323,504 एवं 506 आई०पी०सी० थाना सिविल लाइन्स, जिला अलीगढ़ लंबित न्यायालय न्यायिक दण्डाधिकारी अलीगढ़ के दाण्डिक वाद सं0 750/11/2018 राज्य बनाम बिलाल और अन्य में सत्र न्यायाधीश अलीगढ़ द्वारा दण्ड निगरानी सं० 490/2021 अयूब उर्फ अनवर सईद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य में पारित आदेश दिनांकित 09.11.2021 तथा मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी अलीगढ़ द्वारा पारित आदेश

अनुवादित

दिनांकित 22.10.2018 को निरस्त करने के लिए प्रस्तुत किया है।

संक्षेप में वाद के तथ्य यह हैं कि प्रारंभतः एक असंज्ञेय दण्ड परिवाद दिनांक 01.10.2018 को विपक्षी 2 द्वारा प्रार्थीगण के विरुद्ध थाना सिविल लाइन्स जिला अलीगढ़ में धारा 323, 504 एवं 506 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दर्ज कराया गया जो संलग्नक 1 है। सूचना दाता के अनुसार दिनांक 29.09.2018 को एक अभियुक्त सुल्तान मुकदमा अपराध सं०- 562/2018 तथा मुकदमा अपराध सं० 207/2017 अंतर्गत धारा 147,148,307,504 एवं 506 भारतीय दण्ड संहिता जिला अलीगढ़ के अंतर्गत अभिरक्षा में था। सूचना दाता उस मुकदमें के नाजिम एवं सगीर के साथ पैरवी करता था तथा उसने देखा कि घटना के समय प्रार्थीगण भी विद्यमान थे तथा उन्होंने भी विपक्षी सं० 2 पर आक्रमण किया तथा विपक्षी सं० 2 के साथ मारपीट किया। शोर मचाने पर वह सभी लोग भाग गये।

असंज्ञेय सूचना दर्ज कराने के उपरान्त विपक्षी सं० 2 सरफराज (सरफराज पुत्र मुन्ना) ने जिला चिकित्सालय अलीगढ़ में दिनांक 1.10.2018 को चिकित्सीय परीक्षण कराया। चिकित्सा परीक्षण आख्या प्रदर्श जो संलग्नक 2 है। विपक्षी सं० 2 ने दिनांक 5.10.2018 को धारा 155 (2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत विवेचना के लिए प्रार्थना पत्र संलग्नक 3 प्रस्तुत किया। जिस पर विवेचना के लिए पारित आदेश दिनांकित 22.10.2018 संलग्नक 4 है। विवेचना की अवधि में विवेचक ने सूचना दाता मो० नाजिर एवं मो० समीर का धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कथन अंकित किया जिनकी प्रतिलिपियां संलग्नक 5 हैं। विवेचना समाप्त करने के उपरान्त विवेचक ने प्रार्थीगण के विरुद्ध आधारहीन तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर उचित साक्ष्य संकलित किये बिना आरोप पत्र संलग्नक 6 प्रस्तुत किया। दिनांक 22.10.2018 को पारित आदेश के विरुद्ध दण्ड निगरानी प्रस्तुत किया गया जो दिनांक 9.11.2021 को पोषणीय न होने के कारण अंगीकरण के स्तर पर सत्र न्यायाधीश अलीगढ़ द्वारा निरस्त कर दिया गया। जिसकी प्रति संलग्नक 7 है।

वास्तविकता यह है कि इस घटना के पूर्व दिनांक 24.08.2015 को प्रार्थी सं० 1 ने सगीर, शहनवाज एवं नाजिम पुत्रगण मुन्ना उर्फ जब्बार, मुस्तकीम पुत्र फिरोज जो विपक्षी सं० 2 के भाई हैं, के विरुद्ध मुकदमा अपराध सं० 307/2015 में धारा 406,323,504,506 एवं 307 आई०पी०सी० के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराया जिसमें विवेचनोपरान्त विवेचक ने कथित अभियुक्तगण के विरुद्ध दिनांक 27.04.2017 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

प्रार्थी सं० 1 की मौसी रुकसाना द्वारा भी एक प्रथम सूचना रिपोर्ट विपक्षी सं० 2 एवं उसके परिजनों के विरुद्ध दिनांक 26 मई 2017 को अपराध सं० 207/2017 अंतर्गत धारा 323,324 एवं 506 आई०पी०सी० भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत थाना कोतवाली नगर, जिला अलीगढ़ में दर्ज कराया गया था। जिसमें दिनांक 29.06.2018 को विवेचक द्वारा अभियुक्तगण के विरुद्ध धारा 323,324,504,506, 147 एवं 326 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। प्रार्थी सं० 1 द्वारा दर्ज

अनुवादित

कराये गये प्रथम सूचना रिपोर्ट एवं आरोप पत्र की प्रतिलिपियाँ संलग्नक 8 एवं 9 हैं।

पक्षकारों के मध्य वैवाहिक विवाद लंबित है। इसी मध्य विपक्षी सं० 2 द्वारा प्रार्थी सं० 1 एवं 4 तथा रुकसाना, सुल्तान एवं केशर के विरुद्ध अपराध सं० 207/2017 में धारा 147, 148, 307, 452 एवं 504 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट थाना कोतवाली नगर, अलीगढ़ में दर्ज कराया गया जिसमें मौसा नाजिम चक्षुदर्शी साक्षी है। उस प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांकित 15.05.2017 की प्रतिलिपियाँ संलग्नक 10 है।

अभियोजन कथानक के अनुसार विपक्षी सं० 2 नाजिम एवं रुकसाना के मध्य लंबित मुकदमे की पैरवी के लिए विपक्षी सं० 2 जिला न्यायालय जाता है। उसके द्वारा दुर्भावनावश झूठा एवं फर्जी आपात आख्या 2 दिन बाद विलय को स्पष्ट किये बगैर तैयार कराया गया। घटना दिनांक 29.10.2018 की है, जब कि असंज्ञेय सूचना दिनांक 1.10.2018 को 2 दिन विलंब से दर्ज करायी गयी है। पक्षकारों के मध्य वैवाहिक विवाद दाण्डिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र सं0 37751/2018 श्रीमती रुक्साना एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य तथा दाण्डिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र सं० 47106/2018 सुल्तान विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य भी लंबित है। जिनमें माननीय न्यायालय द्वारा प्रार्थीगण के पक्ष में आदेश पारित किया गया है। जिनकी संलग्न प्रति संलग्नक 11 है।

रुकसाना ने विपक्षी सं० 2 तथा अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध मुकदमा अपराध सं० 222/2017 अंतर्गत धारा 323,324 एवं 504 भारतीय दण्ड संहिता थाना कोतवाली नगर अलीगढ़ में दर्ज कराया. जिसमें विपक्षी सं० 2 एवं उसके भाई नाजिम ने रुकसाना के साथ मारपीट किया था। रुकसाना ने एक अन्य मुकदमा मुकदमा अपराध सं० 400/2017 अंतर्गत धारा 498 ए,406 एवं 506 भारतीय दण्ड संहित तथा धारा ½ दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अंतर्गत थाना अतरौली जनपद आजमगढ़ में दर्ज कराया गया था जिसके संबंध में विपक्षी सं० 2 ने दाण्डिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र [सं० 39172/2018 नाजिम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 1 अन्य प्रस्तुत किया था जिसमें माननीय न्यायालय ने अंतरिम आदेश संलग्नक 12 पारित किया था।

दुर्भावनावश काउण्टर ब्लास्ट के रूप में प्रार्थीगण को वर्तमान मुकदमें में झूठा फंसाया गया है तथा मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी एवं सत्र न्यायाधीश ने न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग किये बगैर तथा तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार किये बगैर प्रश्नगत आदेश पारित किया है। प्रार्थीगण का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है वह कानून मानने वाले शांतिप्रिय व्यक्ति हैं। यह दण्ड वाद दुर्भावनावश तथा दूरस्थ आशय से प्रार्थीगण को प्रताड़ित करने के लिए प्रस्तुत किया गया है। अतः प्रश्नगत आदेश दिनांक 22.10.2018 तथा दिनांक 9.11.2021 पारित द्वारा मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी एवं सत्र न्यायाधीश निरस्त किया जाये।

विपक्षी सं० 2 पर उसके भाई सगीर के माध्यम से सम्मन तामिला पर्याप्त है परन्तु विपक्षी सं० 2 अथवा विपक्षी सं० 1 उत्तर प्रदेश राज्य की तरफ से कोई प्रति शपथ पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है। सुना तथा पत्रावली का अवलोकन किया।

अनुवादित

स्वीकृत रूप में इस प्रकरण में असंज्ञेय अपराध कारित करने की सूचना दर्ज की गयी थी जिसमें विवेचक धारा 155 (2) द०प्र०सं० के अंतर्गत संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा अनुमन्य किये जाने के बिना विवेचना प्रारंभ नहीं कर सकता। इस स्तर पर प्रस्तावित अभियुक्तगण का कोई अधिकार उत्पन्न नहीं होता अतः उन्हें प्रश्नगत आदेशों को चुनौती देने का अधिकार नहीं है न ही मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी को यह अधिकार प्राप्त होना पाया जाता है कि वह धारा 155 (2) दं०प्र०सं० का प्रार्थना पत्र को निरस्त कर दें। ऐसी कोई सामग्री भी मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष उपलब्ध नहीं थी जब उन्होंने दिनांक 22.10.2018 को धारा 155 (2) दं०प्र०सं० के प्रार्थना पत्र को स्वीकार किया था ऐसा प्रतीत होता है कि चूंकि प्रार्थीगण पूर्व से ही इस प्रकरण पर अपना ध्यान केन्द्रित किये हुए थे, अतः उन्होंने उक्त आदेश के विरुद्ध दण्ड निगरानी सं० 490/2021 प्रस्तुत कर दिया जिसके अंगीकरण के प्रश्न पर सुनवाई करते हुए सत्र न्यायाधीश अलीगढ़ ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश को अंतवर्ती आदेश (Interlocutory Order) मानते हुए तथा यह निष्कर्ष देते हुए कि प्रस्तावित अभियुक्त की निगरानी प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है, निगरानी खारिज कर दिया। सत्र न्यायाधीश ने इस तथ्य का भी संज्ञान लिया हुआ है, अतः इन तथ्यों पर विचार करने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है।

उपरोक्त परिस्थितियों में इस न्यायालय का भी यह अभिमत है कि अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित दोनों आदेश तथ्यतः एवं विधितः सही एवं वैध हैं तथा धारा 482 दं०प्र०सं० के अंतर्गत उक्त दोनों आदेश खण्डित किये जाने योग्य नहीं हैं। धारा 482 दं०प्र०सं० निम्नवत है- गया कि न तो उनके विरुद्ध कोई विधिक प्रक्रिया ही जारी की गयी है न ही मामले का संज्ञान ही लिया गया है।

इस स्तर पर यह निष्कर्ष नहीं दिया जा सकता है कि संज्ञेय सूचना के तथ्य गलत हैं तथा काउण्टर ब्लास्ट के रूप में यह असंज्ञेय सूचना दर्ज करायी गयी है। निश्चित रूप में उभय पक्षों में विवाद एवं दुश्मनी है। विवाद या दुश्मनी दोधारी तलवार होती है, जो घटना कारित करने का कारण भी हो सकता है तथा गलत फंसायें जाने का कारण भी बन सकता है परन्तु इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रश्नगत असंज्ञेय सूचना गलत रूप से प्रार्थीगण को फंसाने के लिए ही दर्ज करायी गयी है।

निगरानीकर्ता की तरफ से यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया कि असंज्ञेय अपराध संख्या गलत लिखी गयी तथा धारा 155 (2) दं०प्र०सं० के प्रार्थना पत्र में सरफराज के स्थान पर उसके भाई नाजिम द्वारा हस्ताक्षर किया गया। जहाँ तक गलत अंज्ञेय अपराध की संख्या लिखने का प्रश्न है यह लिपिकीय त्रुटि हो सकती है। इस न्यायालय के मतानुसार जब यह धारा 482 दं०प्र०सं० की याचिका ही संधार्य नहीं है तथा प्रार्थीगण को अभी वाद कारण ही उत्पन्न नहीं

इस संहिता में कुछ भी उच्च न्यायालय के अंतर्निहित शक्तियां व्यावृत्ति इस संहिता की कोई बात उम्र न्यायालय को ऐसा आदेश देने की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावी करने वाली न समझी जाएगी जैसा इस संहिता के अधीन ऐसे किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए या किसी न्यायालय की कार्यवाही का दुरुपयोग निचारित करने के लिए या किसी अन्य प्रकार से

न्याय के उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है।

इस न्यायालय के अनुसार प्रार्थीगण द्वारा अनुचित तौर पर ऐसे आदेशों की धारा 482 दं०प्र०सं० के अंतर्गत चुनौती दिया गया है, जिन्हें चुनौती देने का अभी कोई वाद कारण उन्हें प्राप्त नहीं है। अतः यह याचिका अपरिपक्व होने के कारण खारिज किये जाने योग्य है।

निगरानीकर्ता की तरफ से प्रभू चावला बनाम राजस्थान राज्य और एक अन्य दण्ड अपील सं० 842/2016 एवं दण्ड अपील सं० 845-846/2016 में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 5 सितंबर 2016 को स्वयं पर आधारित किया गया जिसके तथ्य प्रस्तुत मामले के तथ्यों से पूर्णतया भिन्न थे।

अतः इसमें निर्धारित विधि का सिद्धान्त प्रार्थीगण के के पक्ष में प्रयुक्त नहीं होता।

आदेश

यह याचिका उपरोक्तानुसार निरस्त की जाती है। इस निर्णय की एक प्रति मुख्यन्यायिक दण्डाधिकारी अलीगढ़ को सूचनार्थ एवं अनुपालनार्थ प्रेषित की जाये।

(2023) 2 ILRA 1144

मूल क्षेत्राधिकार

अपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 30.09.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 17101 /2020

और

अन्य संबंधित वाद

जकी उर रहमान सिद्दीकी ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री सदाफुल इस्लाम जाफरी, श्री खालिद महमूद, श्री नजरुल इस्लाम जाफरी (वरिष्ठ वकील)

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - समन आदेश को चुनौती दी गई - कई आपराधिक वाद को निरस्त करने के लिए - अलग-अलग एफआईआर दर्ज की गईं - अलग-अलग अपराध संख्या के खिलाफ 82 याचिकाएं दायर की गईं, जिसे एक ही याचिका में निरस्त करने के लिए चुनौती दी गई - अलग-अलग किसानों के आरोप- पूर्व मंत्री एवं पूर्व सी.ओ. (नगर) के लिए प्रार्थी द्वारा 5 हेक्टेयर भूमि पर जबरन कब्ज़ा कर लिया गया अभिलेखों में हेराफेरी कर उन्हें गलत फंसाने की धमकी देना - और उन्हें विश्वविद्यालय की चारदीवारी के भीतर ले जाना - न्यायालय आरोपियों के बचाव में नहीं जा सकता - केवल प्रथम दृष्टया मामले को देखना होगा - किसी भी मामले में हस्तक्षेप नहीं किया जाता है।

सभी आवेदन निरस्त। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य: एआईआर 1960 एससी 866 (पैरा-6)

अनुवादित

2. हरियाणा राज्य और अन्य. बनाम चौ. भजनलाल एवं अन्य: (1992) एआईआर 604

3. टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य एवं अन्य: 2001 एससीसी ऑनलाइन एससी 805

4. उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश2005 एससीसी (आपराधिक) 211

5. अर्नब रंजन गोस्वामी बनाम भारत संघ: (2020) 14 एससीसी 12

6. प्रेम चंद सिंह बनाम यूपी राज्य : 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 144

7. एम.पी. राज्य बनाम शीतला सहाय एवं अन्य: 2009 एससीसी ऑनलाइन एससी

8. प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य: 2016 एससीसी ऑनलाइन एससी

9. किशन सिंह (मृत) द्वारा वारिसान बनाम गुरपाल सिंह और अन्य: 2009 एससीसी ऑनलाइन एससी 1451

10. धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य: (2009) 2 सुप्रीम कोर्ट मामले 370

11. विजय कुमार घई एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य: 2022 एससीसी

12. इस्साक इसांगा मुसुम्बा और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य: (2014) 15 एससीसी 579-

13. तारक दाश मुखर्जी एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य- 2022 की आपराधिक अपील संख्या 1400

14. मितेश कुमार जे. शा बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य: 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी

15. कर्नाटक राज्य बनाम मुनिस्वामी और अन्य: 1977 सुप्रीम कोर्ट मामले (सीआरआई) 404

16. जे. अंबाजगन बनाम अध्यक्ष, तमिलनाडु विधान सभा एवं अन्य। :(2018) एससीसी ऑनलाइन मैड 1235

17. शशिमणि मिश्रा बनाम एम.पी. राज्य : आई.एल.आर. (2019) म.प्र. 1397

18. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य.: एआईआर 1960 एससी 866

19. माधवराव जीवाजी राव सिंधिया बनाम संभाझीराव चंद्रोजीराव आंग्रे: (1988) 1 एससीसी 692

20. हरियाणा राज्य और अन्य. बनाम भजन लाल और अन्य: 1992 सप्लिमेंट (1) एससीसी 335

21. चिलकमर्थी वेंकटेश्वरलु और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य। (2020) 17 एससीसी 595,

22. टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य: (2001) 6 एससीसी 181

23. बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य: (2010) 12 एससीसी 254

24. अंजू चौधरी बनाम यूपी राज्य: (2013) 6 एससीसी 384

25. अमितभाई अनिचंद्र शाह बनाम सी.बी.आई.: (2013) 6 एससीसी 348

26. एस.के. अलघ बनाम यूपी राज्य: (2008) 5 एससीसी 661

27. अनीता हाड़ा बनाम गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टूर्स प्रा. लिमिटेड: (2012) 5 एससीसी

28. शरद कुमार सांघी बनाम संगीता राणे (2015) 12 एससीसी 781

29. जीएचसीएल कर्मचारी स्टॉक ऑप्शन ट्रस्ट बनाम क्रांति सिन्हा: (2013) 4 एससीसी 505,

अनुवादित

30. क्रांति कुमार बनाम यूपी राज्य: अपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 7050/2002

31. क्रांति कुमार बनाम यूपी राज्य: अपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 7060/2002

32. ओनाली इस्मिलजी सादिकोट बनाम गुजरात राज्य ,(2016) एससीसी ऑनलाइन गुजरात 10055

33. अर्नब रंजन गोस्वामी बनाम भारत संघ.: (2020) 14 एससीसी 51

34. अर्नब रंजन गोस्वामी बनाम भारत संघ.: (2020) 14 एससीसी 12

35. अमीश देवगन बनाम भारत संघ: (2021) 3 एससीसी 306

36. केतकी चितले बनाम महाराष्ट्र राज्य, अपराधिक विविध डब्ल्यू.पी. नंबर 1919/2022

37. निखिल श्यामराव भामारे बनाम महाराष्ट्र राज्य, क्रिमिनल विविध रिट याचिका संख्या 1821/2022

38. उमेश कुमार बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2013) 10 एससीसी 591

39. कृष्ण लाल चावला एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य: एलएल2021 एससी 145

40. मितेश कुमार जे. शा बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य.: एलएल 2021 एससी 592

41. (1) बाबूभाई जमुना भाई पटेल बनाम गुजरात राज्य: (2010) 12 एससीसी 254

42. बरेन्द्र कुमार घोष बनाम सम्राट: आकाशवाणी 1925 पीसी 1(सी)

43. मेसर्स नेहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्रा. लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य: (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 315

44. जगमोहन सिंह बनाम विमलेश कुमार और अन्य:(2022) लाइव लॉ (SC) 546,

45. रामवीर उपाध्याय और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: (2022) लाइव लॉ (एससी) 396;

46. चिलकमर्थी वेंकटेश्वरलु और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य: आपराधिक अपील संख्या 1082/2019

47. कप्तान सिंह बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य: एआईआर 2021 एससी 3931

48. ओडिशा राज्य बनाम प्रतिमा मोहंती: (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 1222,

49. प्रीति सराफ और अन्य बनाम दिल्ली, एनसीटी और अन्य: एआईआर 2021 एससी 1531,

50. अनिल बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य: आपराधिक विविध। सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आवेदन क्रमांक 650/2021, दिनांक 30.6.2021

51. वसीउल्लाह और अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य: 2021(1) सभी। एलजे 42;

52. पंकज त्यागी बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन ऑल 163

53. आशा रंजन बनाम बिहार राज्य एवं अन्य: (2017) 4 एससीसी 397

54. सुरेंद्र कौशिक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य: (2013) 5 एससीसी 148;

55. लालमन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य: (2021) आईएलआर 2 सभी 167;

56. बिक्की वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य: 2021 (5) एडीजे 351.

57. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य: एआईआर 1960 एससी 866;

अनुवादित

58. हरियाणा राज्य और अन्य. बनाम भजन लाल और अन्य: 1992 सप्लिमेंट (1) एससीसी 335;

59. बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा: 1992 सप्लीमेंट (1) एससीसी 222;

60. ट्रिसन्स केमिकल इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल और अन्य: (1999) 8 एससीसी 686;

61. एम. कृष्णन बनाम विजय सिंह एवं अन्य: (2001) 8 एससीसी 645; झंडू फार्मास्यूटिकल्स वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद शरीफुल हक: (2005) 1 एससीसी 122;

62. एम.एन. ओझा बनाम आलोक कुमार श्रीवास्तव: (2009) 9 एससीसी 682;

63. जोसेफ साल्वराज ए बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य: (2011) 7 एससीसी 59;

64. अरुण भंडारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य: (2013) 2 एससीसी 801;

65. मोहम्मद अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य: (2019) 6 एससीसी 107;

66. आनंद कुमार मोहत्ता एवं अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), गृह एवं अन्य विभाग: (2019) 11 एससीसी 706

67. राजीव कौरव बनाम बालासाहेब एवं अन्य: (2020) 3 एससीसी 317;

68. नल्लापारेड्डी श्रीधर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य: (2020) 12 एससीसी 467

69. प्रीति सराफ और अन्य बनाम दिल्ली, एनसीटी और अन्य: आपराधिक अपील संख्या 296/2021

70. डैक्साबेन बनाम गुजरात राज्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 936

(माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल, द्वारा प्रदत्त)

1. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 ("सीआरपीसी") की धारा 482 के तहत दायर ये 82 याचिकाएँ आपस में जुड़ी हुई हैं क्योंकि इनमें आपस में जुड़े हुए सामान्य मुद्दे हैं। ये सभी याचिकाएँ संबंधित मामलों में जाँच पूरी होने, आरोप-पत्र दाखिल होने और अभियुक्तों को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाए जाने के बाद दायर की गई हैं। याचिकाएँ दाखिल करने का चरण संबंधित न्यायालय द्वारा आरोप-पत्रों पर संज्ञान लिए जाने और अभियुक्तों को तलब किए जाने के बाद है। इस प्रकार सभी याचिकाओं में चुनौती समन के चरण में है।

2. इस स्तर पर प्रथम सूचना रिपोर्ट का विवरण तालिकाबद्ध रूप में मामला अपराध संख्यावार देना महत्वपूर्ण होगा। कुल मिलाकर 27 मामला अपराध संख्याएं हैं जो सभी मामलों के समूह को कवर करती हैं। विवरण इस प्रकार है (तालिका-ए):-

<u>तालिका-ए</u>

क्रमांक	प्राथमिकी दर्ज करने की तारीख	मुकदमा अपराध संख्या, धाराएं, पुलिस थाना, जिला	प्रथम सूचनादाता	प्राथमिकी में नामजद आरोपी	भूमि की पहचान
	12.7.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0224/2019, अंतर्गत धारा 342, 447, 506, 384 आई.पी.सी., पी.एस. अज़ीमनगर,	मनोज कुमार, राजस्व निरीक्षक	(i) मोहम्मद आजम खान, (ii) अली हसन खान	गाटा संख्या 1239, क्षेत्रफल 0.114 हेक्टेयर, गाटा

अनुवादित

		जिला रामपुर			संख्या 1232, क्षेत्रफल 0.126 हेक्टेयर, गाटा संख्या 1415 क्षेत्रफल 0.089 हेक्टेयर, गाटा संख्या 1253/1 क्षेत्रफल 0.089 हेक्टेयर, गाटा संख्या 1319 खा, क्षेत्रफल 1.294							हेक्टेयर
							13.7.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0226/2019, धारा 323, 342, 447, 384, 504, 506 आईपीसी, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	यासीन	(i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर	खेत संख्या 1232, क्षेत्र
							13.7.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0227/2019, धारा 323, 342, 447,384, 506 आईपीसी, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	बंदे अली	(i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर।	गाटा संख्या 1232
							14.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0228/2019 धारा 323,342,447,384,506, आईपीसी,थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	मोहम्मद अहमद	(i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर।	गाटा संख्या 1232
							15.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या	कल्लन	i) आजम	भूमि संख्या

अनुवादित

		0232/2019 धारा 342,447,384,506, आईपीसी, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर		खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर।	1230
	16.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0235/2019 धारा 342,447,384,504,506, आईपीसी, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	हनीफ़	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर।	भूमि संख्या 1232
	16.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0236/2019 धारा 323,342,447,384,506, आईपीसी,थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	शरीफ अहमद	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर।	भूमि संख्या 1230
	16.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0237/2019 धारा 323, 342,447,384,506, आईपीसी,	मोहम्मद मुसतकीम	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व	भूमि संख्या 1415

		थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर		सी. ओ., शहर।	
	16.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0238/2019 धारा 323, 342,447,384,506, आईपीसी, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	मतलूब	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर।	भूमि संख्या 1319 ख
	16.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0239/2019 धारा 342,447,384,506, आईपीसी, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	नासिर	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर।	भूमि संख्या 1232
	16.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0240/2019 धारा 323, 342,447,384,506,आईपीसी, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	नाज़िम	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर।	भूमि संख्या 1253/1

अनुवादित

	16.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0241/2019 धारा 323, 342,447,384,506,आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	नबबू	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर।	भूमि संख्या 1253/1
	16.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0242/2019 धारा 342, 447, 384,506, आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	जुम्मा	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर।	भूमि संख्या 1230
	18.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0248/2019 धारा 342,447,384,506,आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	मोहम्मद हसन	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	भूमि संख्या 1319 ख
	18.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0249/2019 धारा 323, 342,447,384,506,आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	रफीक	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	भूमि संख्या 1253/1
	19.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0250/2019 धारा 323, 342,447,384,506,आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	हनीफ़	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस.	भूमि संख्या 1415

अनुवादित

				एच. ओ.	
	19.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0251/2019 धारा 323, 342,447,384,506,आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	भुल्लन	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	भूमि संख्या 1415
	19.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0252/2019 धारा 323, 342,447,384,506,आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	मोहम्मद यासीन	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	भूमि संख्या 1415
	19.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0253/2019 धारा 323, 342,447,384,506,आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	नामे	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	भूमि संख्या 1230
	19.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0254/2019 धारा 323, 342,447,384,506,आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	अबरार	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	भूमि संख्या 1230
	19.07.2019	मुकदमा अपराध	नज़ाकत	i) आज	भूमि सं

अनुवादित

		संख्या 0255/2019 धारा 323, 342,447,384,506,आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर		म खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	ख्या 1230
	19.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0256/2019 धारा 323, 342,447,384,506,आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	अमीर आलम	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	भूमि संख्या 1319ख
	19.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0257/2019 धारा 342, 447,384,504, 506,आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर		(ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	1232
	20.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0260/2019 धारा 323, 342,447,384,506,आईपीसी, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	मोहम्मद आलिम	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	भूमि संख्या 1319ख
	20.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0261/2019 धारा 323,	ज़ाकिर	i) आजम खान (ii) अली	भूमि संख्या 1232

अनुवादित

		342,447,384,506,आईपीसी, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर		हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	
	20.07.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0262/2019 धारा 323, 342,447,384,506,आईपीसी, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	नूर आलम	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	भूमि संख्या 1319 ख
	3.08.2019	मुकदमा अपराध संख्या 0295/2019 धारा 323, 342,447,389,506,आईपीसी, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	असरार	i) आजम खान (ii) अली हसन खान, पूर्व सी. ओ., शहर। (iii) कौशलवीर सिंह पूर्व एस. एच. ओ.	गाटा संख्या 1230

3. पांच याचिकाएं जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत आपराधिक विविध आवेदन हैं, संख्या 9832/2021 (अली हसन खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 31 अन्य), 16848/2020 (मोहम्मद फसीह जैदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 27 अन्य), 1149/2021 (मुश्ताक अहमद सिद्दीकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 27 अन्य), 10254/2021 (अदीब आजम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 27 अन्य) और 9822/2021 (निखत अफलाख बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 27 अन्य) दायर की गई हैं, जिनमें बहुविध आरोप पत्रों और मामलों की कार्यवाहियों को निरस्त करने की प्रार्थना की गई है, जो निम्नानुसार हैं (तालिका-बी):

<u>तालिका-बी</u>

क्रम संख्या	**दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत आपराधिक विविध**	प्रार्थनाएं:-

अनुवादित

	आवेदन संख्या	
1.	9832/2021, अली हसन खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 31 अन्य	निम्नलिखित की कार्यवाही को निरस्त करने और रोकने के लिए: 1. सत्र वाद संख्या 311/2020, वाद अपराध संख्या 224/2019, धारा 120बी, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 2. सत्र वाद संख्या 315/2020, वाद अपराध संख्या 226/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 504, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 3. सत्र वाद संख्या 328/2020, वाद अपराध संख्या 227/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 4. सत्र वाद संख्या 335/2020, वाद अपराध संख्या 228/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 504, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 5. सत्र वाद संख्या 312/2020, वाद अपराध संख्या 232/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 6. सत्र वाद संख्या 320/2020, वाद अपराध संख्या 235/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 504, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 7. सत्र वाद संख्या 336/2020, वाद अपराध संख्या 236/2019, धारा 120बी, 323, 342,

अनुवादित

		386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 8. सत्र वाद संख्या 324/2020, वाद अपराध संख्या 237/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 9. सत्र वाद संख्या 337/2020, वाद अपराध संख्या 238/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 10. सत्र वाद संख्या 310/2020, वाद अपराध संख्या 239/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 11. सत्र वाद संख्या 332/2020, वाद अपराध संख्या

		240/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 12. सत्र वाद संख्या 322/2020, वाद अपराध संख्या 241/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 13. सत्र वाद संख्या 316/2020, वाद अपराध संख्या 242/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 14. सत्र वाद संख्या 334/2020, वाद अपराध संख्या 248/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर।

अनुवादित

		15. सत्र वाद संख्या 331/2020, वाद अपराध संख्या 249/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 16. सत्र वाद संख्या 338/2020, वाद अपराध संख्या 250/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 17. सत्र वाद संख्या 321/2020, वाद अपराध संख्या 251/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 18. सत्र वाद संख्या 325/2020, वाद अपराध संख्या 252/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं.,			पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 19. सत्र वाद संख्या 326/2020, वाद अपराध संख्या 253/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 20. सत्र वाद संख्या 333/2020, वाद अपराध संख्या 254/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 21. सत्र वाद संख्या 329/2020, वाद अपराध संख्या 255/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 22. सत्र वाद संख्या 318/2020, वाद अपराध संख्या 256/2019, धारा 120बी, 323, 342,

अनुवादित

		386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 23. सत्र वाद संख्या 330/2020, वाद अपराध संख्या 257/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 504, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 24. सत्र वाद संख्या 314/2020, वाद अपराध संख्या 260/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 25. सत्र वाद संख्या 319/2020, वाद अपराध संख्या 261/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 26. सत्र वाद संख्या 327/2020, वाद अपराध संख्या 262/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर। 27. सत्र वाद संख्या 317/2020, वाद अपराध संख्या 295/2019, धारा 120बी, 323, 342, 386, 389, 420, 447, 506 भा.द.सं., पुलिस थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर।
2.	16848/2020, मोहम्मद फसीह जैदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 27 अन्य	अनुपूरक आरोप पत्र के साथ-साथ दिनांक 16.9.2020 के समन आदेशों और निम्नलिखित मामलों की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए:- 1. विशेष मामला संख्या 122/2020, अपराध संख्या 224/2019. 2. विशेष मामला संख्या

अनुवादित

		924/2020, अपराध संख्या 226/2019. 3. विशेष मामला संख्या 936/2020, अपराध संख्या 227/2019. 4. विशेष मामला संख्या 123/2020, अपराध संख्या 228/2019. 5. विशेष मामला संख्या 935/2020, अपराध संख्या 232/2019. 6. विशेष मामला संख्या 118/2020, अपराध

		संख्या 235/2019. 7. विशेष मामला संख्या 127/2020, अपराध संख्या 236/2019. 8. विशेष मामला संख्या 927/2020, अपराध संख्या 237/2019. 9. विशेष मामला संख्या 126/2020, अपराध संख्या 238/2019. 10. विशेष मामला संख्या 125/2020, अपराध संख्या 239/2019.

अनुवादित

		11. विशेष मामला संख्या 124/2020, अपराध संख्या 240/2019. 12. विशेष मामला संख्या 115/2020, अपराध संख्या 241/2019. 13. विशेष मामला संख्या 121/2020, अपराध संख्या 242/2019. 14. विशेष मामला संख्या 117/2020, अपराध संख्या 248/2019. 15. विशेष मामला संख्या 933/2020, अपराध संख्या 249/2019. 16. विशेष मामला संख्या 929/2020, अपराध संख्या 250/2019. 17. विशेष मामला संख्या 921/2020, अपराध संख्या 251/2019. 18. विशेष मामला संख्या 120/2020, अपराध संख्या 252/2019. 19. विशेष मामला संख्या 128/2020, अपराध संख्या 253/2019.

अनुवादित

		20. विशेष मामला संख्या 926/2020, अपराध संख्या 254/2019. 21. विशेष मामला संख्या 930/2020, अपराध संख्या 255/2019. 22. विशेष मामला संख्या 925/2020, अपराध संख्या 256/2019. 23. विशेष मामला संख्या 934/2020, अपराध संख्या 257/2019. 24. विशेष मामला संख्या 928/2020, अपराध संख्या 260/2019. 25. विशेष मामला संख्या 931/2020, अपराध संख्या 261/2019. 26. विशेष मामला संख्या 932/2020, अपराध संख्या 262/2019. 27. विशेष मामला संख्या 937/2020, अपराध संख्या 295/2019.
3.	1149/ 2021, मुस्ताक अहमद सिद्दीकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	अनुपूरक आरोप पत्र के साथ-साथ दिनांक 16.9.2020 के समन आदेशों और निम्नलिखित मामलों की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए:-

अनुवादित

	और 27 अन्य	1. विशेष मामला संख्या 122/2020, अपराध संख्या 224/2019. 2. विशेष मामला संख्या 924/2020, अपराध संख्या 226/2019. 3. विशेष मामला संख्या 936/2020, अपराध संख्या 227/2019. 4. विशेष मामला संख्या 123/2020,			अपराध संख्या 228/2019. 5. विशेष मामला संख्या 935/2020, अपराध संख्या 232/2019. 6. विशेष मामला संख्या 118/2020, अपराध संख्या 235/2019. 7. विशेष मामला संख्या 127/2020, अपराध संख्या 236/2019.

अनुवादित

		8. विशेष मामला संख्या 927/2020, अपराध संख्या 237/2019. 9. विशेष मामला संख्या 126/2020, अपराध संख्या 238/2019. 10. विशेष मामला संख्या 125/2020, अपराध संख्या 239/2019. 11. विशेष मामला संख्या 124/2020, अपराध संख्या 240/2019. 12. विशेष मामला संख्या 115/2020, अपराध संख्या 241/2019. 13. विशेष मामला संख्या 121/2020, अपराध संख्या 242/2019. 14. विशेष मामला संख्या 117/2020, अपराध संख्या 248/2019.

अनुवादित

		15. विशेष मामला संख्या 933/2020, अपराध संख्या 249/2019. 16. विशेष मामला संख्या 929/2020, अपराध संख्या 250/2019. 17. विशेष मामला संख्या 921/2020, अपराध संख्या 251/2019. 18. विशेष मामला संख्या 120/2020, अपराध संख्या 252/2019. 19. विशेष मामला संख्या 128/2020, अपराध संख्या 253/2019. 20. विशेष मामला संख्या 926/2020, अपराध संख्या 254/2019. 21. विशेष मामला संख्या 930/2020, अपराध संख्या 255/2019.

अनुवादित

		22. विशेष मामला संख्या 925/2020, अपराध संख्या 256/2019. 23. विशेष मामला संख्या 934/2020, अपराध संख्या 257/2019. 24. विशेष मामला संख्या 928/2020, अपराध संख्या 260/2019. 25. विशेष मामला संख्या 931/2020, अपराध संख्या 261/2019. 26. विशेष मामला संख्या 932/2020, अपराध संख्या 262/2019. 27. विशेष मामला संख्या 937/2020, अपराध संख्या 295/2019.
4.	10254/2021, अदीब आज़म बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 27 अन्य	दिनांक 3.9.2020 के अनुपूरक आरोप पत्र के साथ-साथ दिनांक 16.9.2020 के समन आदेशों और निम्नलिखित मामलों की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए:-

अनुवादित

		1. विशेष मामला संख्या 122/2020, अपराध संख्या 224/2019 2. विशेष मामला संख्या 104/2020, अपराध संख्या 226/2019. 3. विशेष मामला संख्या 114/2020, अपराध संख्या 227/2019. 4. विशेष मामला संख्या 123/2020, अपराध संख्या 228/2019. 5. विशेष मामला संख्या 103/2020, अपराध संख्या 232/2019. 6. विशेष मामला संख्या 118/2020, अपराध संख्या 235/2019. 7. विशेष मामला संख्या 127/2020, अपराध संख्या 236/2019. 8. विशेष मामला संख्या 112/2020, अपराध संख्या 237/2019. 9. विशेष मामला संख्या 126/2020, अपराध संख्या 238/2019.

अनुवादित

		10. विशेष मामला संख्या 125/2020, अपराध संख्या 239/2019. 11. विशेष मामला संख्या 124/2020, अपराध संख्या 240/2019. 12. विशेष मामला संख्या 115/2020, अपराध संख्या 241/2019. 13. विशेष मामला संख्या 121/2020, अपराध संख्या 242/2019. 14. विशेष मामला संख्या 117/2020,

		अपराध संख्या 248/2019. 15. विशेष मामला संख्या 106/2019, अपराध संख्या 249/2019. 16. विशेष मामला संख्या 108/2019, अपराध संख्या 250/2019. 17. विशेष मामला संख्या 107/2019, अपराध संख्या 251/2019. 18. विशेष मामला संख्या 120/2020, अपराध संख्या 252/2019.

अनुवादित

		19. विशेष मामला संख्या 128/2020, अपराध संख्या 253/2019. 20. विशेष मामला संख्या 102/2020, अपराध संख्या 254/2019. 21. विशेष मामला संख्या 110/2019, अपराध संख्या 255/2019. 22. विशेष मामला संख्या 105/2020, अपराध संख्या 256/2019. 23. विशेष मामला संख्या 125/2020, अपराध संख्या 257/2019. 24. विशेष मामला संख्या 113/2020, अपराध संख्या 260/2019. 25. विशेष मामला संख्या 109/2019, अपराध संख्या 261/2019. 26. विशेष मामला संख्या 111/2019, अपराध संख्या 262/2019. 27. विशेष मामला संख्या 129/2020, अपराध संख्या 295/2019.

अनुवादित

		28. विशेष मामला संख्या 134/2020, अपराध संख्या 46/2019. 29. विशेष मामला संख्या 135/2020, अपराध संख्या 53/2019. सभी मामले धारा 447, 420, 120बी भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत हैं।
5.	9822/2021, निकहत अफलाख बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 27 अन्य	दिनांक 3.9.2020 के अनुपूरक आरोप पत्र के साथ-साथ दिनांक 16.9.2020 के समन आदेशों और निम्नलिखित मामलों की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए:- 1. विशेष मामला संख्या 122/2020, अपराध संख्या 224/2019 2. विशेष मामला संख्या 104/2020, अपराध संख्या 226/2019. 3. विशेष मामला संख्या 114/2020, अपराध संख्या 227/2019. 4. विशेष मामला संख्या 123/2020, अपराध संख्या 228/2019. 5. विशेष मामला संख्या 103/2020, अपराध संख्या 232/2019.

अनुवादित

		6. विशेष मामला संख्या 118/2020, अपराध संख्या 235/2019. 7. विशेष मामला संख्या 127/2020, अपराध संख्या 236/2019. 8. विशेष मामला संख्या 112/2020, अपराध संख्या 237/2019. 9. विशेष मामला संख्या 126/2020, अपराध संख्या 238/2019. 10. विशेष मामला संख्या 125/2020, अपराध संख्या 239/2019. 11. विशेष मामला संख्या 124/2020, अपराध संख्या 240/2019. 12. विशेष मामला संख्या 115/2020, अपराध संख्या 241/2019. 13. विशेष मामला संख्या 121/2020, अपराध संख्या 242/2019. 14. विशेष मामला संख्या 117/2020, अपराध संख्या 248/2019.

अनुवादित

		15. विशेष मामला संख्या 106/2019, अपराध संख्या 249/2019. 16. विशेष मामला संख्या 108/2019, अपराध संख्या 250/2019. 17. विशेष मामला संख्या 107/2019, अपराध संख्या 251/2019. 18. विशेष मामला संख्या 120/2020, अपराध संख्या 252/2019. 19. विशेष मामला संख्या 128/2020, अपराध संख्या 253/2019. 20. विशेष मामला संख्या 102/2020, अपराध संख्या 254/2019. 21. विशेष मामला संख्या 110/2019, अपराध संख्या 255/2019. 22. विशेष मामला संख्या 105/2020, अपराध संख्या 256/2019. 23. विशेष मामला संख्या 125/2020, अपराध संख्या 257/2019.

अनुवादित

		24. विशेष मामला संख्या 113/2020, अपराध संख्या 260/2019. 25. विशेष मामला संख्या 109/2019, अपराध संख्या 261/2019. 26. विशेष मामला संख्या 111/2019, अपराध संख्या 262/2019. 27. विशेष मामला संख्या 129/2020, अपराध संख्या 295/2019. 28. विशेष मामला संख्या 134/2020, अपराध संख्या 46/2019. 29. विशेष मामला संख्या 135/2020, अपराध संख्या 53/2019. 30. सभी मामले धारा 447, 420, 120बी भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत हैं।

4. जहां तक **तालिका-बी** में दर्ज आपराधिक विविध आवेदन धारा 482 के अंतर्गत संख्या 9832/2021 (अले हसन खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 31 अन्य), 16848/2020 (मोहम्मद फसीह जैदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 27 अन्य), 1149/2021 (मुस्ताक अहमद सिद्दीकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 27 अन्य), 10254/2021 (अदीब आज़म बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 27 अन्य) और 9822/2021 (निखत अफ़लाख बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 27 अन्य) का संबंध है, यह दर्शाता है कि ये कई आपराधिक मामलों को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर किए गए हैं। बहस के दौरान संबंधित अधिवक्ताओं को इस पर विचार करने और

अनुवादित

विभिन्न अपराध संख्याओं के लिए अलग-अलग याचिकाएं दायर करने का विकल्प दिया गया था, परंतु विद्वान अधिवक्ताओं ने मामलों पर बहस करने पर जोर दिया।

5. इसी के मद्देनजर और जैसा कि **तालिका-बी** में कहा गया है, यह स्पष्ट है कि एक ही याचिका में विभिन्न अपराध संख्याओं को रद्द करने की प्रार्थना की गई है, जिनमें प्रथम सूचनादाता अलग-अलग हैं और विवादित भूमि भी अलग-अलग है। अतः धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत उक्त आवेदन केवल इसी आधार पर **खारिज** किए जाते हैं।

6. उक्त मामलों के आवेदकों को सलाह के अनुसार उचित उपाय करने की स्वतंत्रता होगी।

7. अभियोजन पक्ष का मामला संक्षेप में अपराध संख्या 224/2019 की प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार निम्नानुसार है:-

प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 12.9.2019 को मनोज कुमार, राजस्व निरीक्षक, क्षेत्र खौड़, तहसील सदर, रामपुर द्वारा धारा 384, 506, 447, 342 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत थाना अजीम नगर, जिला रामपुर में पूर्व मंत्री मोहम्मद आज़म खान और अले हसन खान के विरुद्ध दर्ज कराई गई। इसमें कहा गया है कि मोहम्मद अली, वंदे अली और यासीन पुत्रगण धूमी ने एक शिकायत दी जिसकी जांच के बाद यह पता चला कि ग्राम सीगनखेरा, तहसील सदर, जिला रामपुर में गाटा संख्या 1239 क्षेत्रफल 0.114 हेक्टेयर अब्रार हुसैन, असरार हुसैन पुत्रगण अब्दुल, जुम्मा, नामे अली, नजाकत पुत्रगण मोहम्मद रजा और अब्दुल रहमान पुत्र वली मोहम्मद, लल्लन, शरीफ अहमद, जीमल अहमद पुत्रगण झुंडा निवासीगण ग्राम मजरा अलीगंज के नाम दर्ज है। गाटा संख्या 1232 क्षेत्रफल 0.126 हेक्टेयर शायदा पत्नी अहमद नवी, अहमद नवी पुत्र मुल्ला बहादुर, शरीफ मोहम्मद, अहमद, अहमद अली, बंदे अली, रियाजुल नवी, नसीर, जाकिर पुत्रगण मोहम्मद नवी और श्रीमती रेशमा पत्नी जाकिर अली और मौलाना मोहम्मद अली जौहर ट्रस्ट के नाम दर्ज है, गाटा संख्या 1415 क्षेत्रफल 0.089 हेक्टेयर भुल्लन पुत्र अब्दुल हकीम, मोहम्मद हनीफ, मोहम्मद यासीन, मोहम्मद मुस्तकीम, मोहम्मद नईम पुत्रगण इब्राहिम, अब्दुल वाहिद, रईस अहमद, जरीफ अहमद पुत्रगण अब्दुल जफर उर्फ गफूर, जाकिर, नसीर, आरिफ, आसिफ, इमरान पुत्रगण अहमद अशाक, अनंदी पत्नी अहमद अशाक, राशिद, साजिद, दानिश, मोनिश पुत्रगण मोहम्मद अहमद, श्रीमती हलम बेगम पत्नी मोहम्मद अहमद निवासीगण मजरा अलीगंज और मौलाना मोहम्मद अली जौहर ट्रस्ट के नाम दर्ज है, गाटा संख्या 1253/1 क्षेत्रफल 0.089 हेक्टेयर नाजिम, नब्बू, मोहम्मद रफीक पुत्रगण मोहम्मद यासीन, श्रीमती बेगम पत्नी मोहम्मद यासीन, मोहम्मद बिलाल, मोहम्मद हिलाल, मोहम्मद मुनव्वर, मोहम्मद उमर पुत्रगण मोहम्मद सलीम, शकीला बेगम पत्नी मोहम्मद सलीम निवासीगण मजरा अलीगंज के नाम दर्ज है, गाटा संख्या 1319ख क्षेत्रफल 1.294 हेक्टेयर मोहम्मद अलीम, नूर आलम, अमीर आलम पुत्रगण अब्दुल हुसैन, मुमताज बेगम पत्नी अब्दुल हुसैन, मोहम्मद हसन पुत्र अहमद, मतलूब पुत्र छोटे, शाहजहां पत्नी छोटे निवासीगण मजरा अलीगंज के नाम दर्ज है, जो राजस्व अभिलेखों में 'संक्रमणीय भूमिधर' के रूप में दर्ज हैं। इन किसानों ने उक्त भूमि के संबंध में शपथ पत्रों के साथ आवेदन दिए, जिनके आधार पर उनके बयान दर्ज किए गए। इन बयानों में किसानों ने कहा कि पूर्व मंत्री

अनुवादित

आज़म खान और पूर्व सी.ओ. (सिटी) अले हसन खान उन्हें विश्वविद्यालय के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए मजबूर कर रहे थे और धमकी दे रहे थे कि उन्हें चरस और स्मैक के झूठे मामलों में फंसा दिया जाएगा। उन्हें कई दिनों तक अवैध रूप से लॉकअप में रखा गया। इसके बावजूद उन्होंने विश्वविद्यालय के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित नहीं किया, लेकिन पूर्व मंत्री आज़म खान और पूर्व सी.ओ. (सिटी) अले हसन खान ने जबरदस्ती उनकी जमीनों पर कब्जा कर लिया और उसे विश्वविद्यालय परिसर में शामिल कर लिया। जब भी वे अपनी संपत्ति के बारे में पूछते थे, उन्हें जान से मारने की धमकी दी जाती थी और भगा दिया जाता था। जांच में यह पता चला कि गाटा संख्या 1230, 1232, 1415 मौलाना मोहम्मद अली जौहर विश्वविद्यालय की दीवारों के अंदर हैं जबकि गाटा संख्या 1253/1 और 1319ख बाउंड्री वॉल के बाहर हैं। किसानों के आवेदनों में उल्लिखित भूमि पर पूर्व मंत्री आज़म खान और पूर्व सी.ओ. (सिटी) अले हसन खान ने धमकी देकर और झूठे मामलों में फंसाने की बात कहकर जबरदस्ती कब्जा कर लिया है। यह भी कहा गया है कि इससे पहले पूर्व मंत्री आज़म खान ने नदी की 5.000 हेक्टेयर भूमि अवैध रूप से ले ली थी जिसे भी विश्वविद्यालय परिसर की बाउंड्री वॉल के अंदर शामिल कर लिया गया था, जिसके लिए पहले ही एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जा चुकी है। उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि उन्होंने अभिलेखों में हेरफेर करके निजी और सरकारी भूमि पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया है। प्रार्थना की गई है कि उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए मोहम्मद आज़म खान, कुलाधिपति, और अले हसन खान, मुख्य सुरक्षा अधिकारी, मोहम्मद अली जौहर विश्वविद्यालय के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जाए और उचित कार्रवाई की जाए।

इसके अतिरिक्त, एक अन्य प्रथम सूचना रिपोर्ट अपराध संख्या 226/2019 के रूप में धारा 323, 342, 447, 384, 504, 506 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत थाना अजीम नगर, जिला रामपुर में यासीन पुत्र धूमी द्वारा पूर्व मंत्री आज़म खान और पूर्व सी.ओ. (सिटी) अले हसन खान के विरुद्ध दिनांक 13.7.2019 को दर्ज कराई गई। इसमें आरोप लगाया गया है कि वह ग्राम सीगनखेरा मजरा अलीगंज का निवासी है। वह गाटा संख्या 1232 में सह-धारक के रूप में दर्ज है। उक्त भूमि पर वह कृषि कार्य करता है जिससे वह अपने परिवार का पालन-पोषण करता है। मोहम्मद अली जौहर विश्वविद्यालय के निर्माण के समय पूर्व मंत्री आज़म खान और पूर्व सी.ओ. (सिटी) अले हसन खान ने उस पर अपनी जमीन उन्हें देने का दबाव डाला, उसे मारा-पीटा और लॉकअप में बंद कर दिया तथा धमकी दी कि अगर वह जमीन नहीं देगा तो उसे चरस और अफीम के मामलों में फंसा दिया जाएगा और गिरफ्तार कर लिया जाएगा। उसके परिवार की महिलाओं और बच्चों को भी प्रताड़ित किया गया। उसने विश्वविद्यालय के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित नहीं किया लेकिन उसकी जमीन को विश्वविद्यालय की बाउंड्री वॉल के अंदर शामिल कर लिया गया। वह प्रार्थना करता है कि पूर्व मंत्री आज़म खान और पूर्व सी.ओ. (सिटी) अले हसन खान के विरुद्ध रिपोर्ट दर्ज की जाए। न्याय किया जाए।

अन्य प्रथम सूचना रिपोर्टें, जो संख्या में 25 हैं, विभिन्न सूचनादाताओं द्वारा उनकी अलग-अलग भूमि के संबंध में हैं, जिनकी संख्याएं

अनुवादित

वहां दर्ज हैं, जिनका विवरण पहले ही **तालिका-ए** में दिया जा चुका है।

8. संबंधित न्यायालय ने आरोप पत्र प्राप्त होने पर उस पर संज्ञान लिया और संबंधित मामलों में आवेदकों और अन्य नामित व्यक्तियों को विचारण का सामना करने के लिए समन किया। संज्ञान लेने और समन जारी करने के आदेश का विवरण इस प्रकार है (तालिका-सी):-

तालिका-सी

क्रम. संख्या	धारा 482 के अंतर्गत आपराधिक विविध आवेदन	मामला अपराध संख्या, धाराएं, पुलिस स्टेशन, जिला	आरोप पत्र संख्या, धाराएं, उसमें नामित आरोपी	संज्ञान लेने और समन जारी करने के आदेश की तिथि
1.	17101 /2022	ममाला अपराध संख्या. 241/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या 65ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv. अदीब आज़म खान v. सुश्री निखत अफलाक vi. सलीम कासिम vii. मुस्ताक अहमद सिद्दीकी viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020

अनुवादित

2.	17097 /2020	ममाला अपराध संख्या 237 / 2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384, 506 आई.पी. सी., थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 79ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी. सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान , iv. अदीब आज़म खान, v. सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii. मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी ix. मो. फासिह जैदी	16.9. 2020
3.	17099 /2020	ममाला अपराध संख्या 224/2019, अंतर्गत धारा 342, 447, 384, 506 आई.पी. सी., थाना- अजीम नगर,	आरोप पत्र संख्या. 84ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी. सी.	16.9. 2020

अनुवादित

		जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. I. डॉ तनजीन फातमा iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान , iv. अदीब आज़म खान, v. सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii. मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की					ix. मो. फासिह जैदी	
					4.	17100 /2020	ममाला अपराध संख्या 253/2019, अंतर्गत धारा. 323, 342, 384, 447, 506 आई.पी.सी., थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 286ए/2019, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. I. डॉ तनजीन फातमा iii.मो. अब्दुल्ला आज़म खान , iv. अदीब आज़म खान, v. सुश्री निखत	16.9.2020

अनुवादित

			अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii.मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी ix. मो. फासिह जैदी				नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. I. डॉ तनजीन फातमा iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान , iv. अदीब आज़म खान, v. सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii. मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी	
5.	17102 /2020	ममाला अपराध संख्या 255/2019, अंतर्गत धारा 323, 342,384,447, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम	आरोप पत्र संख्या. 288ए/2019, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020					

अनुवादित

			ix. मो. फासिह जैदी	
6.	17103 /2020	ममाला अपराध संख्या 255/2019, अंतर्गत धारा 323, 506, 447,384,342 आई.पी.सी., थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 288ए/2019, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. I. डॉ तनजीन फातमा iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान , iv. अदीब आज़म खान, v. सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii. मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
7.	17127 /2020	ममाला अपराध संख्या 241/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384, 506 आई.पी.सी., थाना-	आरोप पत्र संख्या. 65ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020

अनुवादित

		अजीम नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. I. डॉ तनजीन फातमा iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान , iv. अदीब आज़म खान, v. सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii. मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की	

			ix. मो. फासिह जैदी	
8.	17128 /2020	ममाला अपराध संख्या 224/2019, अंतर्गत धारा 342, 447, 506,384 आई.पी.सी., थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 84ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. I. डॉ तनजीन फातमा iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान , iv. अदीब आज़म खान, v. सुश्री निखत	16.9.2020

अनुवादित

			अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii. मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की ix. मो. फासिह जैदी				नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. I. डॉ तनजीन फातमा iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान , iv. अदीब आज़म खान, v. सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii. मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की	
9.	17131 /2020	ममाला अपराध संख्या 253/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384,447, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम	आरोप पत्र संख्या. 286ए/2019, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020					

अनुवादित

			ix. मो. फासिह जैदी	
10.	17251/2020	ममाला अपराध संख्या 237/2019, अंतर्गत धारा 323, 342,447,384, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 79ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान , iv. अदीब आज़म खान, v. सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii. मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
11.	17257/2020	ममाला अपराध संख्या 46/2020, अंतर्गत धारा 447 आई.पी.सी. और धारा 2/3 सार्वजनिक संपत्ति	आरोप पत्र संख्या. 145ए/2020, दिनांक 11.9.2020, अंतर्गत धारा 447 आई.पी.सी. और धारा	29.9.2020

अनुवादित

		क्षति निवारण अधिनियम, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर.	2/3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, i. नसीर अहमद खान ii. अदीब आज़म खान, iii.सुश्री निखत अफलाक , iv. सलीम कासिम , v. मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , vi. जकिऊर रहमन सिद्दीकी , vii. मो. फासिह जैदी	

12.	17263/2020	ममाला अपराध संख्या 312/2019, अंतर्गत धारा 3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम और धाराएं 120बी, 201, 409, 447, 471, 468, 467, 420 आई.पी.सी., थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 119ए/2020, दिनांक 28.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. और धारा 3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 i. सैयद गुलाम सय्यदन रिजवी ii. रहमत हुसैन जैदी, iii. ऊवैद उल हक	28.9.2020

अनुवादित

			@हक रामपुरी, iv. मसूद खान @गुड्डू , v. नासिर अहमद खान , vi. निखत अफलाक , vii. मो. अदीब आज़म खान, viii. सलीम कासिम , ix. मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , x. मो. फासिह जैदी xi. जेड.आर.					सिद्दीकी	
					13.	17360/2020	ममाला अपराध संख्या 256/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 68ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v. सुश्री निखत	16.9.2020

अनुवादित

			अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				अजीम नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	
14.	17363/2020	ममाला अपराध संख्या 254/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447, 506 आई.पी.सी., थाना-	आरोप पत्र संख्या. 287ए/2019, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020					

अनुवादित

15.	17416/2020	ममाला अपराध संख्या 241/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447,384, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 65ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी , ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
16.	17655/2020	ममाला अपराध संख्या 226/2019, अंतर्गत धारा 323, 342,447,406, 389, 386, 420, 120बी, 504 आई.पी.सी., थाना-अजीम	आरोप पत्र संख्या. 64ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ	16.9.2020

अनुवादित

		नगर, जिला रामपुर	तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				260/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447,384, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	70ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम ,	
17.	17659/2020	ममाला अपराध संख्या	आरोप पत्र संख्या.	16.9.2020					

अनुवादित

			vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	
18.	17663/2020	ममाला अपराध संख्या 239/2019, अंतर्गत धारा 342, 447,384, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 82ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
19.	17669/2020	ममाला अपराध संख्या 232/20	आरोप पत्र संख्या. 71ए/20	16.9.2020

अनुवादित

		19, अंतर्गत धारा 342, 384, 447, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	20, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक					अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी , ix. मो. फासिह जैदी		
					20.	17673/2020	ममाला अपराध संख्या 250/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 76ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला	16.9.2020

अनुवादित

			आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी , ix. मो. फासिह जैदी				447,384, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी ,	
21.	17677/2020	ममाला अपराध संख्या 239/2019, अंतर्गत धारा 342,	आरोप पत्र संख्या. 82ए/2020, दिनांक 3.9.2020,	16.9.2020					

अनुवादित

			viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	
22.	17681/2020	ममाला अपराध संख्या 226/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447,384, 504, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 64ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान	16.9.2020

			iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	
23.	17683/2020	ममाला अपराध संख्या 232/2019, अंतर्गत धारा 342, 384, 447,	आरोप पत्र संख्या. 71ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा	16.9.2020

अनुवादित

		506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी , ix. मो. फासिह जैदी	
24.	17998/2020	ममाला अपराध संख्या 250/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 76ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान,	16.9.2020

अनुवादित

			v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				सी., थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	आई.पी. सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो.	
25.	17999/2020	ममाला अपराध संख्या 260/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384,506 आई.पी.	आरोप पत्र संख्या. 70ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी	16.9.2020					

अनुवादित

			फासिह जैदी	
26.	18942/2020	ममाला अपराध संख्या 254/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 287ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा, iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक, vi. सलीम कासिम, vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी, viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी, ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
27.	18948/2020	ममाला अपराध संख्या 256/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447, 506 आई.पी.सी., थाना-	आरोप पत्र संख्या. 68ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020

अनुवादित

		अजीम नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की ,	

			ix. मो. फासिह जैदी	
28.	18954/2020	ममाला अपराध संख्या 250/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447, 506 आई.पी.सी., थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 76ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत	16.9.2020

अनुवादित

			अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				अजीम नगर, जिला रामपुर	आई.पी. सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की ,	
29.	19070/2020	ममाला अपराध संख्या 242/2019, अंतर्गत धारा 342, 447, 384,506 आई.पी. सी., थाना-	आरोप पत्र संख्या. 74ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी	16.9.2020					

अनुवादित

			ix. मो. फासिह जैदी	
30.	19071/2020	ममाला अपराध संख्या 242/2019, अंतर्गत धारा 342, 447,384, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 74ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा, iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक, vi. सलीम कासिम, vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी, viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी, ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
31.	19072/2020	ममाला अपराध संख्या 254/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447, 506 आई.पी.सी., थाना-	आरोप पत्र संख्या. 287ए/2019, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020

अनुवादित

		अजीम नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की ,						ix. मो. फासिह जैदी	
					32.	19074/2020	ममाला अपराध संख्या 255/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447, 506 आई.पी.सी., थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 288ए/2019, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत	16.9.2020

अनुवादित

			अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की ,	
33.	19078/2020	ममाला अपराध संख्या 242/2019, अंतर्गत धारा 342, 447,384, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर,	आरोप पत्र संख्या. 74ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020					

अनुवादित

			ix. मो. फासिह जैदी	
34.	19710/2020	ममाला अपराध संख्या 242/2019, अंतर्गत धारा 342, 447, 506, 384, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 84ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा, iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक, vi. सलीम कासिम, vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी, viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी, ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
35.	19751/2020	ममाला अपराध संख्या 236/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384,506, आई.पी.सी., थाना-	आरोप पत्र संख्या. 80ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020

अनुवादित

		अजीम नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की ,						ix. मो. फासिह जैदी	
					36.	19785/2020	ममाला अपराध संख्या 238/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 81ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत	16.9.2020

अनुवादित

			अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				अजीम नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की ,	
37.	19904/2020	ममाला अपराध संख्या 262/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384,506, आई.पी.सी., थाना-	आरोप पत्र संख्या. 72ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020					

अनुवादित

			ix. मो. फासिह जैदी	
38.	19907/2020	ममाला अपराध संख्या 251/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447, 506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 77ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा, iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक, vi. सलीम कासिम, vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी, viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी, ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
39.	20167/2020	ममाला अपराध संख्या 260/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384,506, आई.पी.सी., थाना-	आरोप पत्र संख्या. 70ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020

अनुवादित

		अजीम नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की ,						ix. मो. फासिह जैदी	
					40.	20172/2020	ममाला अपराध संख्या 237/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 79ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत	16.9.2020

अनुवादित

			अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की ,	
41.	20176/2020	ममाला अपराध संख्या 248/2019, अंतर्गत धारा 342, 447, 384,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम	आरोप पत्र संख्या. 75ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020					

अनुवादित

			ix. मो. फासिह जैदी	
42.	20180/2020	ममाला अपराध संख्या 235/2019, अंतर्गत धारा 342, 447, 384, 504, 506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 73ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा, iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक, vi. सलीम कासिम, vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी, viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी, ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
43.	20188/2020	ममाला अपराध संख्या 261/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384,506, आई.पी.सी., थाना-	आरोप पत्र संख्या. 86ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020

अनुवादित

		अजीम नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी , ix. मो. फासिह जैदी	
44.	20193/2020	ममाला अपराध संख्या 228/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 69ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत	16.9.2020

अनुवादित

			अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				अजीम नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	
45.	20195/2020	ममाला अपराध संख्या 249/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384, 506, आई.पी.सी., थाना-	आरोप पत्र संख्या. 67ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020					

अनुवादित

46.	20203/2020	ममाला अपराध संख्या 262/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 72ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी , ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
47.	20211/2020	ममाला अपराध संख्या 256/2019, अंतर्गत धारा 323, 342,, 384, 447, 506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 68ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान	16.9.2020

अनुवादित

			ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv. अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				संख्या 261/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384, 506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	संख्या. 86ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम ,	
48.	20228/2020	ममाला अपराध	आरोप पत्र	16.9.2020					

अनुवादित

			vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी					iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी आरोप पत्र संख्या. 78ए/2020, दिनांक	
49.	20234/2020	ममाला अपराध संख्या /2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384,447,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 78ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा ,	16.9.2020					

अनुवादित

			3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद						सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी , ix. मो. फासिह जैदी	
					50.	20238/2020	ममाला अपराध संख्या 240/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384, 506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 63ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला	16.9.2020

अनुवादित

			आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				447, 384, 506, आई.पी. सी., थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी. सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की ,	
51.	155/2021	ममाला अपराध संख्या 239/2019, अंतर्गत धारा 342,	आरोप पत्र संख्या. 82ए/2020, दिनांक 3.9.2020,	16.9.2020					

अनुवादित

			viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	
52.	168/2021	ममाला अपराध संख्या 236/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384, 506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 80ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान	16.9.2020

			iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	
53.	249/2021	ममाला अपराध संख्या 232/2019, अंतर्गत धारा 342, 384, 447,50	आरोप पत्र संख्या. 71ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा	16.9.2020

अनुवादित

		6, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन					सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	
					54.	255/2021	ममाला अपराध संख्या 226/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384, 504, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 64ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान,	16.9.2020

अनुवादित

			v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				अजीम नगर, जिला रामपुर	आई.पी. सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की ,	
55.	262/2021	ममाला अपराध संख्या 238/2019, अंतर्गत धारा323 , 342, 447,384,506, आई.पी. सी., थाना-	आरोप पत्र संख्या. 81ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी	16.9.2020					

अनुवादित

			ix. मो. फासिह जैदी	
56.	276/2021	ममाला अपराध संख्या 249/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 447, 384,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 67ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी , ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
57.	281/2021	ममाला अपराध संख्या 253/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447,506, आई.पी.सी., थाना-	आरोप पत्र संख्या. 286ए/2019, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020

अनुवादित

		अजीम नगर, जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की ,	

			ix. मो. फासिह जैदी	
58.	290/2021	ममाला अपराध संख्या 240/2019, अंतर्गत धारा 323, 342,, 447, 384 506, आई.पी.सी., थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 63ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत	16.9.2020

अनुवादित

			अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				जिला रामपुर	i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	
59.	304/2021	ममाला अपराध संख्या 248/2019, अंतर्गत धारा 342,447 ,384 ,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर,	आरोप पत्र संख्या. 75ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी.	16.9.2020					

अनुवादित

60.	307/2021	ममाला अपराध संख्या 2/2019, अंतर्गत धारा 342, 447,384,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 73ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा, iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक, vi. सलीम	16.9.2020				कासिम, vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी, viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी, ix. मो. फासिह जैदी	
					61.	311/2021	ममाला अपराध संख्या 251/2019, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 77ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ	16.9.2020

अनुवादित

			तनजीन फातमा, iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी , ix. मो. फासिह जैदी				19, अंतर्गत धारा 323, 342, 384, 447,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	20, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक	
62.	317/2021	ममाला अपराध संख्या 252/20	आरोप पत्र संख्या. 78ए/20	16.9.2020					

अनुवादित

			अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	
63.	321/2021	ममाला अपराध संख्या 228/2019, अंतर्गत धारा323 , 342, 447, 384,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 69ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
64.	355/2021	ममाला अपराध संख्या 53/2020, अंतर्गत धारा	आरोप पत्र संख्या. 145ए/2020, दिनांक 11.9.2	29.9.2020

अनुवादित

		447 आई.पी.सी., और धारा 2/3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर.	020, अंतर्गत धारा 447 आई.पी.सी. और धारा 2/3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, i. नसीर अहमद खान ii.अदीब आज़म खान, iii. सुश्री निखत अफलाक , iv. सलीम कासिम , v. मुस्ताक अहमद सिद्दीकी ,					vi. जकिऊर रहमन सिद्दीकी , vii. मो. फासिह जैदी	
					65.	357/2021	ममाला अपराध संख्या 46/2020, अंतर्गत धारा 447 आई.पी.सी., और धारा 2/3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर.	आरोप पत्र संख्या. 142ए/2020, दिनांक 11.9.2020, अंतर्गत धारा 447 आई.पी.सी. और धारा 2/3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, i. नसीर अहमद खान	29.9.2020

अनुवादित

			ii.अदीब आज़म खान, iii. सुश्री निखत अफलाक , iv. सलीम कासिम , v. मुस्ताक अहमद सिद्दी की , vi. जकिऊर रहमन सिद्दी की , vii. मो. फासिह जैदी				6, आई.पी. सी., थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	420, 447, 120बी आई.पी. सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन	
66.	358/2021	ममाला अपराध संख्या 227/2019, अंतर्गत धारा323 , 342, 447, 384,50	आरोप पत्र संख्या. 66ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा	16.9.2020					

अनुवादित

			सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	
67.	1126/2021	ममाला अपराध संख्या 295/2019, अंतर्गत धारा323, 342, 447, 389,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 83ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
68.	1140/2021	ममाला अपराध संख्या 227/2019, अंतर्गत धारा323, 342, 447, 384,506, आई.पी.सी.,	आरोप पत्र संख्या. 66ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी	16.9.2020

अनुवादित

		थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी ,	

			ix. मो. फासिह जैदी	
69.	1141/2021	ममाला अपराध संख्या 295/2019, अंतर्गत धारा323, 342, 447, 389,506, आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 83ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत	16.9.2020

अनुवादित

			अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				निवारण अधिनियम, थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर.	सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, i. नसीर अहमद खान ii. अदीब आज़म खान, iii. सुश्री निखत अफलाक , iv. सलीम कासिम , v. मुस्ताक अहमद सिद्दी की , vi. जकिऊर रहमन सिद्दी की , vii. मो. फासिह जैदी	
70.	1143/2021	ममाला अपराध संख्या 46/2020, अंतर्गत धारा 447 आई.पी.सी. और धारा 2/3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति	आरोप पत्र संख्या. 142ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 447 आई.पी.सी. और धारा 2/3	29.9.2020					

अनुवादित

71.	1398/2021	ममाला अपराध संख्या 257/2019, अंतर्गत धारा 342, 384, 447, 504, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 85ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दीकी , viii. जकिऊर रहमन सिद्दीकी , ix. मो. फासिह जैदी	16.9.2020
72.	1404/2021	ममाला अपराध संख्या 257/2019, अंतर्गत धारा 342, 384, 447, 504, 506 आई.पी.सी., थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर	आरोप पत्र संख्या. 85ए/2020, दिनांक 3.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. i. नसीर अहमद खान	16.9.2020

अनुवादित

			ii. डॉ तनजीन फातमा , iii. मो. अब्दुल्ला आज़म खान iv.अदीब आज़म खान, v.सुश्री निखत अफलाक , vi. सलीम कासिम , vii मुस्ताक अहमद सिद्दी की , viii. जकिऊर रहमन सिद्दी की , ix. मो. फासिह जैदी				53/2020, अंतर्गत धारा 447 आई.पी.सी. और धारा 2/3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर.	145ए/2020, दिनांक 11.9.2020, अंतर्गत धारा 447आई.पी.सी. और धारा 2/3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, i. नसीर अहमद खान ii. अदीब आज़म खान, iii, सुश्री निखत अफलाक , iv सलीम कासिम ,	
73.	2911/2021	ममाला अपराध संख्या	आरोप पत्र संख्या.	29.9.2020					

अनुवादित

			v. मुस्ताक अहमद सिद्दी की , vi. जकिऊर रहमन सिद्दी की , vii. मो. फासिह जैदी				471, 468, 467, 420 आई.पी. सी., थाना- अजीम नगर, जिला रामपुर	अधिनियम, 1984, i. सैय्यद गुलाम सैय्यदिन रिजवी, ii. रहमत हुसैन जैदी, iii. उवैद उल हक @हक रामपुरी, iv. मसूद खान @ गुड्डू, v. नसीर अहमद खान, vi. निखत अफलाक , vii. मो. अदीब आज़म खान,	
74.	2916/2021	ममाला अपराध संख्या 312/2019, अंतर्गत धारा 3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984, और धारा 120बी, 201, 409, 447,	आरोप पत्र संख्या. 119ए/2020, दिनांक 28.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी. सी. और धारा 3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण	30.9.2020					

अनुवादित

			viii. सलीम कासिम , ix. मुश्ताक अहमद सिद्दी की i, x. मो. हसीब जैदी xi. जेड.आर. सिद्दी की	
75.	3039/2021	ममाला अपराध संख्या 46/2019, अंतर्गत धारा 447 आई.पी.सी. और धारा 2/3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर.	आरोप पत्र संख्या. 142ए/2020, दिनांक 11.9.2020, अंतर्गत धारा 447 आई.पी.सी. और धारा 2/3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984, i. नसीर अहमद खान ii. अदीब आज़म खान, iii.सुश्री निखत अफलाक , iv. सलीम कासिम , v. मुस्ताक अहमद सिद्दी की , vi. जकिऊर रहमन सिद्दी की , vii. मो. फासिह जैदी	29.9.2020
76.	14212/2021	ममाला अपराध संख्या	आरोप पत्र संख्या.	30.9.2020

अनुवादित

		312/2019, अंतर्गत धारा 420, 467, 468, 471, 447, 409, 201, 120बी आई.पी.सी. और धारा 2/3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम एct, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर.	119ए/2020, दिनांक 28.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. और धारा 3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम i. सैय्यद गुलाम सैय्यदीन रिज़वी, ii. रहमत हुसैन जैदी, iii. उवैद उल हक @हक रामपुरी,					iv. मसूद खान @ गुड्डू, v. नसीर अहमद खान, vi. निखत अफलाक, vii. मो. अदीब आज़म खान, viii. सलीम कासिम, ix. मुस्ताक अहमद सिद्दीकी, x. मो. मो. हसीब जैदी xi. जेड.आर. सिद्दीकी	

अनुवादित

77.	14851/2021	ममाला अपराध संख्या 312/2019, धारा 420, 467, 468, 471, 447, 409, 201, 120बी आई.पी.सी. और धारा 3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, थाना-अजीम नगर, जिला रामपुर.	आरोप पत्र संख्या 119ए/2020, दिनांक 28.9.2020, अंतर्गत धारा 420, 447, 120बी आई.पी.सी. और 3 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम। i.सैय्यद गुलाम सैय्यदीन रिज़वी, ii. रहमत हुसैन जैदी, iii. उवैद उल हक	30.9.2020				@ हक रामपुरी, iv. मसूद खान @गुड्डू, वी. नसीर अहमद खान, vi. निकहत अफलाक, सातवीं. मो. अदीब आजम खान, viii. सलीम कासिम, ix. मुस्ताक अहमद सिद्दीकी, X. मो. हसीब जैदी xi. जेड.आर. सिद्दीकी	

अनुवादित

09. श्री एन.आई. जाफरी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, सुश्री नासिरा आदिल, विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त, ने आवेदकगण जकी उर रहमान सिद्दीकी, मोहम्मद फसीह जैदी, सलीम कासिम और नसीर अहमद खान के लिए तर्क दिया:-

(1) कि मौलाना मोहम्मद अली जौहर विश्वविद्यालय की स्थापना वर्ष 2012 में हुई थी और राज्य सरकार द्वारा इसे विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान किया गया था।

(2) कि आवेदकों का नाम प्रथम सूचना रिपोर्टों में नहीं है। मामले में आवेदकों का संलिप्तीकरण केस डायरी के पुर्जा संख्या 66 दिनांक 28.3.2020 के आधार पर है।

(3) कि संबंधित प्रथम सूचना रिपोर्टों में घटना के संबंध में कोई तिथि और समय का उल्लेख नहीं है।

(4) कि उक्त प्रथम सूचना रिपोर्टें लगभग 13 वर्षों के अनुचित विलंब के बाद दर्ज कराई गई हैं क्योंकि प्रश्नगत घटना का 2006 में घटित होना बताया गया है परंतु प्रथम सूचना रिपोर्टें वर्ष 2019 में दर्ज कराई गई हैं।

(5) कि प्रथम सूचना रिपोर्टों में संपत्ति का विवरण पहले से ही अपराध संख्या 224/2019 के रूप में दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट का विषय है, जो धारा 342, 447, 506, 384 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत थाना अजीमनगर, जिला रामपुर में दर्ज है और इस प्रकार ये एक ही अपराध के लिए क्रमिक प्रथम सूचना रिपोर्टें हैं।

(6) कि वर्तमान मामले में आरोप समानता रखते हैं और वही घटना है जिसके संबंध में आरोप पहले ही अपराध संख्या 224/2019 के रूप में दर्ज किए जा चुके हैं, इसलिए प्रथम सूचना रिपोर्टों का दर्ज किया जाना कानून में अनुमत नहीं है।

(7) कि आवेदकों के विरुद्ध कोई भी आरोप नहीं है जो संज्ञेय अपराध का गठन करे।

(8) यदि जांच के दौरान एकत्रित सभी सामग्री को उसके मूल रूप में सत्य माना जाए, तो भी आवेदकों के विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनता है।

(9) प्रथम सूचना रिपोर्टों का दर्ज किया जाना राजनीतिक प्रतिशोध के कारण है।

विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

(i) आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य: एआईआर 1960 एससी 866 (पैरा-6)

(ii) हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चौ. भजनलाल और अन्य: (1992) एआईआर 604 (पैरा-108)

(iii) टी.टी. एंटोनी बनाम केरल राज्य और अन्य: 2001 एससीसी ऑनलाइन एससी 805 (पैरा-18,19, 20, 27, 28, 35)

(iv) उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश: 2005 एससीसी (आपराधिक) 211 (पैरा-9, 10, 16, 17)

(v) अर्नब रंजन गोस्वामी बनाम भारत संघ: (2020) 14 एससीसी 12 (पैरा- 28, 29, 31, 53)

(vi) प्रेमचंद सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 144 (पैरा- 2, 3, 5, 10, 11, 13)

(vii) मध्य प्रदेश राज्य बनाम शीतला सहाय और अन्य: 2009 एससीसी ऑनलाइन एससी 1451 (पैरा- 37, 38, 39, 40, 44, 45)

(viii) प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य और अन्य: 2016 एससीसी ऑनलाइन एससी 905 (पैरा- 5, 6, 7, 8)

अनुवादित

(ix) किशन सिंह (मृतक) द्वारा एलआरएस बनाम गुरपाल सिंह और अन्य: 2009 एससीसी ऑनलाइन एससी 1451 (पैरा- 9, 21, 22, 25)

(x) धारीवाल तंबाकू उत्पाद लिमिटेड और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य: (2009) 2 सुप्रीम कोर्ट केसेज 370 (पैरा- 1, 6, 7, 12)

(xi) विजय कुमार घई और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 344, (पैरा- 15, 16, 17, 19, 20)

(xii) इसाक इसंगा मुसुम्बा और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य: (2014) 15 एससीसी 579, (पैरा- 3, 7)

(xiii) तारक दास मुखर्जी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: आपराधिक अपील संख्या 1400/2022 (एसएलपी (आपराधिक) संख्या 503/2020 से उत्पन्न), (पैरा- 9, 11, 12, 13)

(xiv) मितेश कुमार जे. शाह बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य: 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 976 (पैरा- 41, 48)

(xv) कर्नाटक राज्य बनाम मुनिस्वामी और अन्य: 1977 सुप्रीम कोर्ट केसेज (आपराधिक) 404 (पैरा-8)

10. श्री सैयद इमरान इब्राहिम, विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त, श्री मनीष तिवारी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आवेदक मोहम्मद फसीह जैदी के लिए आपराधिक विविध आवेदन धारा 482 संख्या 16848/2020, 17263/2020 और 17257/2020 में तर्क दिया:-

(1) कि आवेदक के विरुद्ध कई प्रथम सूचना रिपोर्टें दर्ज की गई हैं। आवेदक समिति का सदस्य है। आपराधिक कानून में प्रतिनिधिक दायित्व की कोई अवधारणा नहीं है और इसलिए आवेदक का संलिप्तीकरण दोषपूर्ण है। समिति को प्रारंभ में आरोपी नहीं बनाया गया था जो बाद में किया गया।

(2) कि धारा 441 दंड प्रक्रिया संहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन के अनुसार) के तहत नोटिस नहीं दिया गया है और इसलिए धारा 447 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कार्यवाही नहीं की जा सकती।

(3) कि आवेदक के विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनता है।

(4) कि आवेदक को वर्तमान मामले में किसी और के साथ राजनीतिक प्रतिशोध के कारण फंसाया गया है। वह प्रक्रिया का शिकार है।

उन्होंने अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

(1) जे. अंबाझगन बनाम स्पीकर, तमिलनाडु विधान सभा और अन्य : (2018) एससीसी ऑनलाइन मद्र 1235 (पैरा- 29, 30);

(2) शशिमणि मिश्रा बनाम मध्य प्रदेश राज्य : आई.एल.आर. (2019) एम.पी. 1397 (पैरा- 14, 15, 16);

(3) आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य: एआईआर 1960 एससी 866 (पैरा- 6);

(4) माधवराव जीवाजी राव सिंधिया बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव अंग्रे : (1988) 1 एससीसी 692 (पैरा- 7);

(5) हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य: 1992 सप्ल (1) एससीसी 335 (पैरा- 102);

(6) चिलकमर्थी वेंकटेश्वरलु और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य : (2020) 17 एससीसी 595, (पैरा- 22);

(7) टी.टी. एंटोनी बनाम केरल राज्य : (2001) 6 एससीसी 181 (पैरा- 17, 18, 19, 20, 25, 27);

(8) बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य: (2010) 12 एससीसी 254 (पैरा- 20, 21);

(9) अंजू चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : (2013) 6 एससीसी 384 (पैरा- 14);

(10) अमितभाई अनिचंद्र शाह बनाम सीबीआई : (2013) 6 एससीसी 348 (पैरा- 58);

(11) एस.के. अलघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : (2008) 5 एससीसी 661 (पैरा- 14, 16, 19);

(12) अनीता हदा बनाम गॉडफादर ट्रैवल्स एंड टूर्स प्राइवेट लिमिटेड: (2012) 5 एससीसी 661 (पैरा- 58, 59);

(13) शरद कुमार संघी बनाम संगीता राणे : (2015) 12 एससीसी 781 (पैरा- 11, 13);

(14) जीएचसीएल एम्प्लॉयीज स्टॉक ऑप्शन ट्रस्ट बनाम क्रांति सिन्हा: (2013) 4 एससीसी 505, (पैरा- 12, 14, 18, 19);

(15) क्रांति कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : आपराधिक विविध आवेदन यू/एस 482 संख्या 7050/2002 (इलाहाबाद उच्च न्यायालय), (आंतरिक पृष्ठ- 11);

(16) क्रांति कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: आपराधिक विविध आवेदन यू/एस 482 संख्या 7060/2002 (इलाहाबाद उच्च न्यायालय) (आंतरिक पृष्ठ- 7-8);

(17) ओनाली इस्मिलजी सादिकोट बनाम गुजरात राज्य : (2016) एससीसी ऑनलाइन गुज 10055 (पैरा- 63);

(18) अर्नब रंजन गोस्वामी बनाम भारत संघ : (2020) 14 एससीसी 51 (पैरा- 14);

(19) अर्नब रंजन गोस्वामी बनाम भारत संघ : (2020) 14 एससीसी 12 (पैरा-37, 61.5);

(20) अमीश देवगन बनाम भारत संघ: (2021) 3 एससीसी 306 (पैरा- 4,5, 6);

(21) अमीश देवगन बनाम भारत संघ: (2021) 1 एससीसी 1 (पैरा- 126);

(22) केतकी चिटाले बनाम महाराष्ट्र राज्य: आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1919 of 2022 (बॉम्बे उच्च न्यायालय) (पैरा- 3);

(23) निखिल श्यामराव भामरे बनाम महाराष्ट्र राज्य, आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1821/2022 (बॉम्बे उच्च न्यायालय), (पैरा- 3);

(24) उमेश कुमार बनाम आंध्र प्रदेश राज्य : (2013) 10 एससीसी 591 (पैरा- 20)।

11. आवेदक मुस्ताक अहमद सिद्दीकी के लिए श्री राकेश दुबे, विद्वान अधिवक्ता ने आपराधिक विविध आवेदन धारा 482 संख्या 2911/2021, 2916/2021 और 3039/2021 में तर्क दिया :-

(1) कि आवेदक मौलाना मोहम्मद अली जौहर सोसाइटी का सदस्य/उपाध्यक्ष (मानद) है।

(2) कि वह पेशे से अधिवक्ता है और उसकी आयु लगभग 78 वर्ष है।

(3) कि ट्रस्ट की स्थापना 24.4.1995 को मौलाना मोहम्मद अली जौहर ट्रस्ट के नाम से की गई थी।

(4) कि 17.1.2005 को नाम बदलकर मौलाना मोहम्मद अली जौहर कल्याणकारी ट्रस्ट कर दिया गया।

(5) कि आवेदक को वर्ष 2004-2005 में उपाध्यक्ष (मानद) के रूप में शामिल किया गया था।

(6) कि प्रथम सूचना रिपोर्टों के दर्ज कराने में विलंब है। कथित घटना वर्ष 2006 की है जिसकी प्रथम सूचना रिपोर्टें वर्ष 2019 में दर्ज कराई गई हैं जो 13 वर्षों के बाद है।

अनुवादित

(7) कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में कथित घटना की कोई तिथि और समय का उल्लेख नहीं किया गया है। यह अस्पष्ट है।

(8) कि आवेदकों का संलिप्तीकरण केवल राजनीतिक प्रतिशोध के कारण है। आवेदक कथित लेनदेन का लाभार्थी नहीं है और उसे कोई भूमिका नहीं दी गई है।

(9) कि समिति को आरोपी नहीं बनाया गया था जो बाद में मामले में आरोपी बनाया गया।

(10) कि उप-मंडल मजिस्ट्रेट के समक्ष उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2000 की धारा 178 के तहत वाद दायर किए गए हैं और इसलिए उचित मंच सिविल न्यायालय के समक्ष मुद्दों का न्यायनिर्णय कराना होगा।

उन्होंने अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

(i) कृष्ण लाल चावला और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य : एलएल2021 एससी 145 (पैरा- 16, 20);

(ii) मितेश कुमार जे. शा बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य: एलएल 2021 एससी 592 और

(iii) अमीश देवगन बनाम भारत संघ: (2021) 1 सुप्रीम कोर्ट केसेस (आपराधिक) 32

12. जवाब में, श्री एम.सी. चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता/अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री एस.के. पाल, विद्वान शासकीय अधिवक्ता श्री जय नारायण, श्री अभिजीत मुखर्जी, श्री संजय कुमार सिंह, श्री अंकित श्रीवास्तव, विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा सहायता प्राप्त, उत्तर प्रदेश राज्य के लिए, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों के जवाब में तर्क दिया:-

(1) कि आरोपी व्यक्ति तथाकथित समिति के सदस्य हैं। लाभार्थी समिति है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वे इसके लाभार्थी नहीं हैं।

(2) कि कथित समिति की स्थिति स्वयं में स्पष्ट नहीं है। यह न तो ट्रस्ट्स अधिनियम, 2019 के अनुसार एक ट्रस्ट है और न ही सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अनुसार एक सोसाइटी है।

(3) कि व्यक्तियों का समूह सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के तहत उप-रजिस्ट्रार (सोसाइटी) के समक्ष पंजीकृत है। प्रत्येक सदस्य जवाबदेह है और उसका लाभार्थी होगा। समिति भी एक आरोपी है और इसके लिए एक अनुपूरक आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है।

(4) कि समिति के सदस्य उसके अध्यक्ष के साथ समिति के किसी भी कार्य या चूक के लिए जवाबदेह हैं।

(5) कि नब्बू, जो प्रथम सूचनादाताओं में से एक है, का एक शपथ पत्र जांच अधिकारी को दिया गया था जो केस डायरी का हिस्सा है। वह मामले में शामिल आरोपी व्यक्तियों के नाम का खुलासा करता है।

(6) जहां तक राजस्व निरीक्षक द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट का संबंध है, उसने इसे अपनी आधिकारिक क्षमता में दर्ज कराया था क्योंकि वह किसी भी लेनदेन के केवल राजस्व भाग से संबंधित है। उसके द्वारा अपनी प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित लेनदेन लेनदेन में स्टांप शुल्क के भुगतान न करने के संबंध में हैं।

(7) कि अन्य प्रथम सूचना रिपोर्टें मामले के वास्तविक पीड़ितों द्वारा दर्ज कराई गई हैं जिन्होंने कुछ व्यक्तियों के अवैध कृत्यों के कारण अपनी संपत्ति खो दी है। उनका अपना वाद कारण है और इसलिए उक्त प्रथम सूचना रिपोर्टें बरकरार रखने योग्य हैं।

अनुवादित

(8) कि प्रत्येक प्रथम सूचना रिपोर्ट एक स्वतंत्र वाद कारण है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत नुकसान हुआ है। अवैध कृत्यों के कारण उक्त व्यक्तियों की संपत्ति जबरदस्ती ले ली गई थी।

(9) कि संपत्ति को जबरदस्ती लेने के आरोप के अलावा, धमकी देने, उक्त प्रथम सूचनादाताओं को जो पीड़ित हैं, अवैध कैद में रखने और उन्हें विभिन्न प्रकृति के झूठे मामलों में फंसाने की धमकी देने का आरोप है।

(10) कि प्रथम सूचना रिपोर्टें एक ही प्रकृति के आरोपों वाली हैं लेकिन अपराध अलग-अलग हैं। उक्त प्रथम सूचना रिपोर्टों के दर्ज कराने में कोई कानूनी बाधा नहीं है।

(11) कि धारा 441 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत नोटिस जारी न करना एक अनियमितता हो सकती है लेकिन यह कार्यवाही को अमान्य नहीं कर सकती।

(12) कि प्रथम सूचना रिपोर्टों के दर्ज कराने में कोई अनुचित विलंब नहीं है। संबंधित सूचनादाता जो पीड़ित हैं, लंबे समय तक डर और धमकी के अधीन थे और केवल जब उन्होंने राज्य में एक निष्पक्ष वातावरण पाया, तब वे खड़े हुए और आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ अपनी शिकायतें उठाईं।

(13) कि आरोपी व्यक्तियों के पास विचारण न्यायालय के समक्ष उचित समय पर सभी आधारों को उठाते हुए एक डिस्चार्ज आवेदन दाखिल करने का उपाय है जो उनके लिए उपलब्ध उचित और समुचित उपाय है।

(14) कि प्रथम सूचना रिपोर्टें अपने आप में अलग हैं क्योंकि सूचनादाता अलग है और साथ ही विवादित भूमि जो विवाद के विषयों में से एक है, भी अलग है, समानता की परीक्षा इस मामले में इस प्रकार लागू नहीं की जा सकती।

(15) कि सभी 482 दंड प्रक्रिया संहिता आवेदनों में योग्यता का अभाव है और वे खारिज किए जाने योग्य हैं।

उन्होंने अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

(1) बाबूभाई जमुनाभाई पटेल बनाम गुजरात राज्य: (2010) 12 एससीसी 254, (पैरा- 21);

(2) बरेंद्र कुमार घोष बनाम एम्परर: एआईआर 1925 पीसी 1(सी) (पैरा-26);

(3) मेसर्स नेहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य: (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 315, पैरा- 23(iv)(xiii);

(4) जगमोहन सिंह बनाम विमलेश कुमार और अन्य: (2022) लाइवलॉ (एससी) 546, (पृष्ठ- 61, 61);

(5) रामवीर उपाध्याय और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: (2022) लाइवलॉ (एससी) 396, (पैरा - 30, 39);

(6) चिलकमर्थी वेंकटेश्वरलु और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य: आपराधिक अपील संख्या 1082 of 2019 (एसएलपी (आपराधिक) संख्या 10762 of 2018 से उत्पन्न, 31.7.2019 को निर्णीत, (पैरा- 18, 23);

(7) कप्तान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: एआईआर 2021 एससी 3931 (पैरा- 9.1, 9.2);

(8) ओडिशा राज्य बनाम प्रतिमा मोहंती : (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 1222, (पैरा- 6.2., 9);

(9) प्रीति सराफ और अन्य बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य और अन्य: एआईआर 2021 एससी 1531, (पैरा- 28, 32);

(10) अनिल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: आपराधिक विविध आवेदन यू/एस 482 सीआरपीसी संख्या 6504 of 2021, दिनांक 30.6.2021 (पैरा- 28);

(11) वसीउल्लाह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: 2021(1) ऑल एलजे 42;

(12) पंकज त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य : 2022 एससीसी ऑनलाइन ऑल 163 (आवेदन यू/एस 482 संख्या 1395 of 2022, दिनांक 16.3.2022);

(13) आशा रंजन बनाम बिहार राज्य और अन्य: (2017) 4 एससीसी 397, (पैरा- 54-63);

(14) सुरेंदर कौशिक और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: (2013) 5 एससीसी 148;

(15) लालमन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: (2021) आईएलआर 2 ऑल 167;

(16) बीक्की वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: 2021 (5) एडीजे 351।

13. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों के अवलोकन के बाद यह स्पष्ट होता है कि उपरोक्त वर्णित 482 दंड प्रक्रिया संहिता याचिकाओं में आवेदकगण, अले हसन खान को छोड़कर जो तत्कालीन सर्कल अधिकारी (शहर), रामपुर और एक पुलिस अधिकारी थे और बाद में विश्वविद्यालय के मुख्य सुरक्षा अधिकारी थे, सोसायटी/ट्रस्ट के पदाधिकारी हैं। जहां तक अले हसन खान का संबंध है, उनका नाम प्राथमिकी में दर्ज है और उन पर प्रथम सूचनादाताओं को धमकाने (केस क्राइम संख्या 224 of 2019 के प्रथम सूचनादाता को छोड़कर), उन्हें अवैध रूप से बंदी बनाने, उन पर हमला करने, उन्हें चरस और स्मैक के मामलों में फंसाने की धमकी देने यदि वे विश्वविद्यालय के पक्ष में अपनी संबंधित भूमि के विक्रय विलेख निष्पादित नहीं करते हैं और फिर उनकी भूमि पर जबरन कब्जा करने के आरोप हैं।

जहां तक अन्य आवेदकों का संबंध है, वे सोसायटी/ट्रस्ट के पदाधिकारी हैं। सोसायटी के विरुद्ध भी आरोप पत्र दाखिल किया गया है। केस क्राइम संख्या 224/2019 की प्रथम सूचना रिपोर्ट मनोज कुमार, राजस्व निरीक्षक, क्षेत्र खौड़, तहसील सदर, रामपुर द्वारा दर्ज कराई गई थी। इसके पंजीकरण के बाद, विभिन्न व्यक्तियों द्वारा जो अपनी संबंधित भूमि के मालिक थे, कई शिकायतें की गईं जिनमें उन्हें अपहरण करके, शारीरिक रूप से प्रताड़ित करके और गंभीर परिणामों की धमकी देकर उनकी भूमि जबरन लेने की शिकायत की गई थी। अन्य प्रथम सूचना रिपोर्टों में आरोप लगाए गए हैं कि संबंधित प्रथम सूचनादाताओं को धमकाया गया, अवैध रूप से बंदी बनाया गया, विश्वविद्यालय के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए दबाव डाला गया, चरस और स्मैक के मामलों में फंसाने की धमकी दी गई, उन पर हमला किया गया और फिर उनकी भूमि जबरन ले ली गई। मामले की पुलिस द्वारा जांच की गई और सभी में आरोप पत्र दाखिल किए गए। विभिन्न व्यक्तियों द्वारा शिकायतें की गईं जिन्हें अलग-अलग मामलों के रूप में पंजीकृत किया गया। तब जाकर हर पीड़ित व्यक्ति आगे आया और उस तरीके के बारे में खुलकर बताया जिसमें उसकी भूमि उससे अवैध रूप से जबरन ली गई थी।

14. प्रथम सूचना रिपोर्टों में आरोप यह प्रकट करते हैं कि कैसे संबंधित प्रथम सूचनादाताओं का अपहरण किया गया, उन पर हमला किया गया, उन्हें धमकाया गया और उनकी भूमि जबरन और कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना उनसे ले ली गई। उक्त कृत्य विभिन्न तिथियों,

समय, अपहरण के स्थान और गतिविधियों के तरीके के थे। समग्र रूप से, आरोप समान थे लेकिन तिथियां और जबरन ली गई भूमि की पहचान अलग-अलग थी। प्रथम सूचनादाता जो पीड़ित हैं, उनके पास अपने आरोपों का समर्थन और पुष्टि करने के लिए अलग-अलग गवाह होंगे। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि एक ही कृत्य के लिए कई प्रथम सूचना रिपोर्टें दर्ज की गई हैं।

15. प्रत्येक व्यक्ति के विरुद्ध उसकी भूमि, उसके अपहरण और धमकी के लिए किया गया अपराध एक पूरी तरह से अलग अपराध है। प्रत्येक मामले में प्रथम सूचनादाता अलग-अलग हैं और प्रत्येक मामले में भूमि की पहचान अलग-अलग है।

16. स्थिति अलग होती यदि सभी मामलों में, हालांकि वे एक जैसे दिखते हैं, एक ही समय और स्थान पर एक ही घटना की शिकायत की गई होती और सभी में एक ही संपत्ति प्रश्नगत होती। रिपोर्टें विभिन्न तिथियों और समय की अलग-अलग घटनाओं का वर्णन करती हैं जिनमें अलग-अलग पीड़ित और अलग-अलग भूमि शामिल है, हालांकि सभी मामलों में आरोपी समान हैं जिनमें आवेदक भी शामिल है। विभिन्न तिथियों, समय, भूमि की पहचान और पीड़ितों के साथ, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क कि यह समानता के सिद्धांत से प्रभावित है, अस्वीकार्य है।

17. संबंधित आवेदकों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा निर्भर किए गए निर्णय प्रत्येक मामले के तथ्यों पर विभेदनीय हैं क्योंकि उक्त मामलों में एक एकल मामले के लिए कई प्रथम सूचना रिपोर्टें दर्ज की गई थीं। जैसा कि पहले ही देखा गया है, हाथ में मौजूद मामलों में, घटना एकल नहीं है। इसमें हर पहलू अलग है सिवाय इसके कि कुछ मामलों में कार्य प्रणाली समान है। इसलिए, हर पीड़ित जिसके साथ अपराध गठित करने वाले विभिन्न कृत्य किए गए, ने अपनी शिकायत उठाई है और प्रत्येक मामले में घटनाएं अलग-अलग तिथियों, समय की हैं जो अलग-अलग भूखंड को कवर करती हैं। इसलिए, मामले के विशिष्ट तथ्यों में, विभिन्न प्रथम सूचना रिपोर्टों का पंजीकरण दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता और उन्हें निरस्त नहीं किया जा सकता। आरोपी को प्रत्येक मामले में व्यक्तिगत संबंधित पीड़ितों के विरुद्ध स्वतंत्र रूप से अपना बचाव करना होगा। केवल धारा 441 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत नोटिस नहीं देने के कारण संपूर्ण अभियोजन मामले को खारिज करने का आधार नहीं होगा क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट के पठन से ही और जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य से विभिन्न अन्य अपराध प्रकट होते हैं।

18. उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मामलों में यह माना है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग अपवादस्वरूप है:

आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य : एआईआर 1960 एससी 866;
हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य : 1992 सप्ल (1) एससीसी 335;

बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा : 1992 सप्ल (1) एससीसी 222;
ट्राईसन्स केमिकल इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल और अन्य : (1999) 8 एससीसी 686;

अनुवादित

एम. कृष्णन बनाम विजय सिंह और अन्य : (2001) 8 एससीसी 645;

जांडू फार्मास्युटिकल्स वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद शरीफुल हक : (2005) 1 एससीसी 122;

एम.एन. ओझा बनाम आलोक कुमार श्रीवास्तव : (2009) 9 एससीसी 682;

जोसेफ सल्वराज ए. बनाम गुजरात राज्य और अन्य : (2011) 7 एससीसी 59;

अरुण भंडारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य : (2013) 2 एससीसी 801;

मो. अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य : (2019) 6 एससीसी 107;

आनंद कुमार मोहत्ता और अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), गृह विभाग और अन्य : (2019) 11 एससीसी 706;

राजीव कौरव बनाम बालासाहेब और अन्य : (2020) 3 एससीसी 317;

नल्लापरेड्डी श्रीधर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य : (2020) 12 एससीसी 467

उच्च न्यायालय को शिकायत/प्राथमिकी/आरोप पत्र की जांच करने से पहले बहुत सावधानी बरतनी चाहिए यह निर्धारित करने में कि क्या यह अत्यंत दुर्लभ मामला है जिसमें अभियोजन को उसके प्रारंभ में ही रोकने का आधार बनता है।

19. इसके अतिरिक्त, **प्रीति सराफ और अन्य बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य और अन्य : आपराधिक अपील संख्या 296 of 2021 [एसएलपी (आपराधिक) संख्या 6364 of 2019 से उत्पन्न] (निर्णय दिनांक 10 मार्च, 2021) : 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 206** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों पर विचार करते हुए निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"23. यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए, शिकायत की संपूर्णता में शिकायत/प्राथमिकी/आरोप पत्र में किए गए आरोपों के आधार पर जांच की जानी चाहिए और उच्च न्यायालय उस स्तर पर मामले में जाने या उसकी सत्यता की जांच करने के लिए बाध्य नहीं था। शिकायत/प्राथमिकी/आरोप पत्र के मुख पर जो भी दिखाई देता है, उसे बिना किसी गहन परीक्षण के विचार में लिया जाएगा। अपराध शिकायत/प्राथमिकी/आरोप पत्र और अन्य दस्तावेजी साक्ष्य, यदि कोई हो, जो रिकॉर्ड पर है, पर प्रथम दृष्टया दिखाई देना चाहिए।

24. विचार के लिए उठाया गया प्रश्न यह है कि किन परिस्थितियों और मामलों की श्रेणियों में, एक आपराधिक कार्यवाही को या तो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की असाधारण शक्तियों के प्रयोग में, या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में खारिज किया जा सकता है। इस पर अक्सर इस न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों के समक्ष गर्मागर्म बहस होती रही है। हालांकि निर्णयों की एक श्रृंखला में, इस प्रश्न का उत्तर इस न्यायालय द्वारा कई अवसरों पर दिया गया है, फिर भी यह विचार के लिए आता है और गंभीरता से बहस की जाती है।

*25. इस पृष्ठभूमि में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के दायरे और सीमा की जांच इस न्यायालय के निर्णय में **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य, (1992 सप्ल (1) एससीसी 335) में की गई है।***

अनुवादित

प्रासंगिक पैरा यहां उल्लेखित है:-

"102. दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XIV के तहत विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या की पृष्ठभूमि में और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की एक श्रृंखला में प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों के आधार पर, जिन्हें हमने ऊपर उद्धृत और पुनः प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण के तौर पर निम्नलिखित श्रेणियों के मामले देते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि यह संभव नहीं हो सकता कि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलाइज्ड और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित किए जाएं और मामलों के असंख्य प्रकारों की एक व्यापक सूची दी जाए जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में किए गए आरोप, यदि उन्हें उनके मुख मूल्य पर लिया जाता है और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाता है, तो वे प्रथम दृष्टया किसी अपराध का गठन नहीं करते या आरोपी के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनाते।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य सामग्री, यदि कोई हो, जो प्राथमिकी के साथ है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के तहत को छोड़कर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को न्यायोचित ठहराने वाले संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते।

(3) जहां प्राथमिकी या शिकायत में किए गए अविवादित आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के किए जाने का खुलासा नहीं करते और आरोपी के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनाते।

(4) जहां, प्राथमिकी में किए गए आरोप संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते बल्कि केवल गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155(2) के तहत परिकल्पित मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा कोई जांच की अनुमति नहीं है।

(5) जहां प्राथमिकी या शिकायत में किए गए आरोप इतने बेतुके और अंतर्निहित रूप से असंभव हैं जिनके आधार पर कोई विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता कि आरोपी के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां दंड प्रक्रिया संहिता के किसी भी प्रावधान या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है) में कार्यवाही की संस्थापना और निरंतरता के लिए स्पष्ट कानूनी बाधा अंकित है और/या जहां दंड प्रक्रिया संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावना से युक्त है और/या जहां कार्यवाही आरोपी पर प्रतिशोध लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत रंजिश के कारण उसे परेशान करने के दृष्टिकोण से एक छिपे हुए उद्देश्य के साथ दुर्भावनापूर्वक संस्थापित की गई है।"

26. इस न्यायालय ने उन दिशानिर्देशों को निर्धारित करने में व्यापक सीमाओं और मापदंडों को स्पष्ट किया है जिन्हें उच्च न्यायालयों द्वारा

अनुवादित

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त सिद्धांत उदाहरणात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं। फिर भी, यह उन परिस्थितियों और स्थिति पर प्रकाश डालता है जिन्हें ध्यान में रखा जाना चाहिए जब उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करता है।

27. इसे हाल ही में इस न्यायालय द्वारा अर्नब मनोरंजन गोस्वामी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 964 में और स्पष्ट किया गया है जहां भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

28. इस प्रकार यह स्थापित है कि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग एक असाधारण शक्ति है जिसका प्रयोग बड़ी सावधानी और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए, शिकायत/प्राथमिकी/आरोप पत्र की जांच करने से पहले यह निर्धारित करने में कि क्या मामला अत्यंत दुर्लभ मामला है, जिसमें अभियोजन को उसके प्रारंभ में ही रोका जा सकता है।"

20. रामवीर उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : 2002 एससीसी ऑनलाइन एससी 484 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने पैराग्राफ 27, 38 और 39 में यह माना है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके एक आपराधिक मामले को खारिज करना केवल अपवादात्मक मामलों में ही किया जाना चाहिए। आगे यह भी माना गया कि आपराधिक कार्यवाही को शुरुआत में ही समाप्त नहीं किया जा सकता। पैराग्राफ 27, 38 और 39 यहां उद्धृत किए गए हैं:

"27. यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने की उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति व्यापक है, ऐसी शक्ति का प्रयोग सावधानीपूर्वक, केवल अपवादात्मक मामलों में किया जाना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग मांगने मात्र से नहीं किया जाना चाहिए।

38. न्याय के उद्देश्यों की बेहतर पूर्ति होगी यदि न्यायालय का मूल्यवान समय अपीलों की सुनवाई पर खर्च किया जाए बजाय इसके कि अंतरिम स्तर पर धारा 482 के तहत याचिकाओं पर विचार किया जाए, जो अंततः न्याय की विफलता का कारण बन सकता है जैसा कि हमीदा बनाम राशिद उर्फ रशीद और अन्य, (2008) 1 एससीसी 474 में माना गया था।

39. हमारी सुविचारित राय में, आपराधिक कार्यवाही को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग द्वारा केवल इसलिए शुरुआत में ही समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि शिकायत एक राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी द्वारा दर्ज कराई गई है। यह संभव है कि एक झूठी शिकायत राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी के इशारे पर दर्ज कराई गई हो। हालांकि, ऐसी संभावना आपराधिक कार्यवाही को खारिज करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत हस्तक्षेप को उचित नहीं ठहराएगी। जैसा कि ऊपर देखा गया है, पूर्व आपराधिक मामले के बंद होने के बाद आरोपित कृत्यों द्वारा याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रतिशोध की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। शिकायत में लगाए गए आरोप अत्याचार

अनुवादित

अधिनियम के तहत अपराध का गठन करते हैं। आरोप सत्य हैं या असत्य, इसका निर्णय विचारण में किया जाना होगा। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग में, न्यायालय शिकायत में लगाए गए आरोपों की सत्यता की जांच नहीं करता है, सिवाय अत्यंत दुर्लभ मामलों के जहां यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि आरोप तुच्छ हैं या किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं। शिकायत मामला संख्या 19/2018 ऐसा मामला नहीं है जिसे आगे विचारण के बिना शुरुआत में ही खारिज किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन को सही ढंग से खारिज किया।"

21. इसके अतिरिक्त, **दक्षाबेन बनाम गुजरात राज्य : 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 936** के मामले में पैरा 49 में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

"49. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग में, न्यायालय शिकायत में किए गए आरोप की सत्यता की जांच नहीं करता है, सिवाय अत्यंत दुर्लभ मामलों के जहां यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि आरोप तुच्छ हैं या किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं।"

22. अतः, यह सुस्थापित विधि है कि निरस्तीकरण के चरण पर केवल अभियोजन पक्ष की सामग्री को देखा जाना चाहिए और न्यायालय आरोपी के बचाव में नहीं जा सकता और फिर इस प्रकार प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करके मामले की योग्यता पर विचार नहीं कर सकता। मामले के विवादित तथ्यात्मक प्रश्नों का निर्णय और न्यायनिर्णयन इस चरण पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय नहीं किया जा सकता और केवल प्रथम दृष्टया अभियोजन मामले को जैसा है वैसा ही देखा जाना चाहिए। आरोपी के बचाव को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। आरोपी विचारण न्यायालय के समक्ष उचित चरण पर उन्मोचन का दावा करते समय अपनी शिकायतें उठा सकते हैं।

23. मामले के तथ्यों, आवेदकों के विरुद्ध प्रथम दृष्टया आरोप और ऊपर वर्णित सुस्थापित विधि को देखते हुए, हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

24. तदनुसार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत वर्तमान 77 आपराधिक विविध आवेदन **खारिज** किए जाते हैं।

(2023) 2 ILRA 1195

मूल क्षेत्राधिकार

दिनांक: लखनऊ 07.02.2023

आपराधिक पक्ष

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 1177 /2023

वेद कृष्ण ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: रिशद मुर्तजा, ऐश्वर्या मिश्रा, सैयद अली जाफर रिजवी

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता-धारा 190 (1)(बी) - समन आदेश - न्यायिक मस्तिस्क का उपयोग किए बिना - यांत्रिक तरीके से - एक मुद्रित प्रोफार्मा पर जारी किया गया - आपत्तिजनक है - समन आदेश को तथ्यों और

कानून पर मस्तिस्क के प्रयोग को प्रतिबिंबित करना चाहिए -निरस्त कर दिया गया - वाद वापस भेज दिया गया। (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. दिलावर बनाम हरियाणा राज्य, (2018) 16 एससीसी 521,
2. मेनका गांधी बनाम भारत संघ, एआईआर 1978 एससी 597,
3. हुसैनारा खातून (प्रथम) बनाम बिहार राज्य, (1980)1 एससीसी 81,
4. अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर.एस. नायक, (1992) 1 एससीसी 225
5. पी. रामचन्द्र राव बनाम कर्नाटक राज्य, (2002) 4 एससीसी 578
6. एच.एन. रिशबड बनाम दिल्ली राज्य, एआईआर 1955 एससीएच 196
7. भूषण कुमार और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) एवं अन्य, एआईआर 2012 एससी 1747
8. बसरुद्दीन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2011 (1) जेआईसी 335 (सभी)(एलबी)
9. भूषण कुमार और अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) एवं अन्य, एआईआर 2012 एससी 1747
10. सुनील भारती मित्तल बनाम सी.बी.आई., एआईआर 2015 एससीएच 923
11. दर्शन सिंह राम किशन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1971) 2 एससीसी 654
12. अंकित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. आवेदन यू/एस 482 संख्या 19647 /2009
13. मेघ नाथ गुप्ता और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. 2008 (62) एसीसी 826
14. उप मुख्य नियंत्रक आयात एवं निर्यात बनाम रोशन लाल अग्रवाल, 2003 (4) एसीसी 686 (एससी),
15. यूपी प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम मोहन मीकिन्स, 2000 (2) जेआईसी 159 (एससी): एआईआर 2000 एससीएच 1456
16. कांति भद्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2000 (1) जेआईसी 751 (एससी): 2000 (40) एसीसी 441 (एससी)
17, कवि अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3209 /2010
18. अब्दुल रशीद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. 2010 (3) जेआईसी 761 (सभी)

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद, द्वारा प्रदत्त)

आवेदक के अधिवक्ता श्री रिशद मुर्तजा और राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री मनोज सिंह को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया।

यह आवेदन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत दायर किया गया है जिसके द्वारा आवेदक ने अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम, फैजाबाद के न्यायालय में लंबित अपराध संख्या 493/2018 अंतर्गत धारा 427,188 भा॰दं॰सं॰, थाना - पुरा कलंदर, जिला फ़ैज़ाबाद से संबन्धित वाद संख्या 1004/2019 की कार्यवाही तथा अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम, फैजाबाद द्वारा दिनांक 02.04.2019 को अपराध संख्या 493/2018 अंतर्गत धारा 427,188 भा॰दं॰सं॰, थाना - पुरा कलंदर, जिला फ़ैज़ाबाद से संबन्धित

अनुवादित

वाद संख्या 1004/2019 में पारित समन आदेश को रद्द करने की याचना की है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि विरोधी पक्षकार संख्या 2 द्वारा थाना पुरा कलंदर, जिला फैजाबाद में भा॰दं॰सं॰ की धारा 504, 506, 427, 447 और 379 के अंतर्गत प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि प्राथमिकी के अनुसार सूचनाकर्ता श्री लक्ष्मी कांत झुनझुनवाला और श्री प्रकाश चंद्र झुनझुनवाला का पैरोकार है, जिनके पास गाटा संख्या 383 में जमीन है और गाटा संख्या 399 में उनके पास 11 बीघा 15 बिस्वा 5 धूर जमीन है जो राजस्व अभिलेखों में पंजीकृत है और सक्षम अदालत ने इसके बंटवारे का आदेश दिया है। यह भी उल्लेख किया गया है कि सूचनाकर्ता ने जिलाधिकारी को एक आवेदन दिया था जिसके निर्देश पर चकबंदी अधिकारी और पुलिस के लोगों ने 17.05.2018 को मौके पर खूंटे लगवाए थे और उन्होंने संबंधित जिलाधिकारी को आख्या सौंप दी थी जिसे 11.06.2018 को स्वीकृत और निस्तारित किया गया था। आगे आरोप लगाया गया है कि खूंटे के स्थान पर, 40-45 की संख्या में सीमेंट के खंभे लगाए गए थे और आरोपी व्यक्ति ने अपने 20-25 साथियों के साथ उपरोक्त सीमेंट के खंभों को ध्वस्त कर दिया और उनमें से कुछ को ले गए। जब सूचनाकर्ता को इस घटना के बारे में पता चला तो उसने फिर से सीमांकन के लिए आवेदन दिया और जिलाधिकारी के निर्देश पर एक मजबूत मेढ़/सीमा बनाई गई लेकिन आरोपी व्यक्तियों ने इसे पुनः ध्वस्त कर दिया और उन्होंने सूचनाकर्ता के साथ गाली-गलौज भी की और उसे धमकाया भी।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी मिथ्या है। ऐसी कोई घटना नहीं घटी और आवेदकों को वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि वाद के गुण-दोषों पर बहस करने से पूर्व, वह इस न्यायालय का ध्यान अन्वेषण अधिकारी द्वारा भा॰दं॰सं॰ की धारा 427 व 188 के अंतर्गत यांत्रिक तरीके से दाखिल आरोप-पत्र दिनांकित 31.12.2018 की ओर आकृष्ट कराना चाहते हैं, जिसकी प्रति हलफनामे के संलग्नक 7 के रूप में दाखिल की गई है, इसके अतिरिक्त, वह यह भी प्रस्तुत करते हैं कि आरोप पत्र पर, विद्वान मजिस्ट्रेट ने 02.04.2019 को संज्ञान लिया था। संज्ञान एक मुद्रित प्रारूप पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं, तिथियों और संख्या को भरकर लिया गया था और उक्त प्रारूप में विद्वान मजिस्ट्रेट ने बिना कोई कारण बताए आवेदक को मुकदमे का सामना करने हेतु सम्मन जारी कर दिया। संज्ञान आदेश की प्रति भी हलफनामे के साथ संलग्नक संख्या 1 पर संलग्न है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता आगे यह प्रस्तुत करते हैं कि आदेश दिनांकित 02.04.2019 द्वारा विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा मुद्रित प्रपत्र पर बिना कोई कारण बताए संज्ञान लिया जाना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और ऐसा बिना विचार किए और नैत्यिक रीति से किया गया था।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता आगे यह प्रस्तुत करते हैं कि अभियोग पत्र दाखिल होने और मुद्रित प्रारूप पर संज्ञान आदेश के पश्चात, आवेदक को आदेश दिनांक 02.4.2019 के द्वारा यांत्रिक रूप से सम्मन जारी किया गया है और

निचली अदालत ने आवेदक को सम्मन जारी कर तात्विक चूक की है और उच्चतम न्यायालय द्वारा विभिन्न मामलों में प्रतिपादित विधि के आदेश का पालन नहीं किया है जिसके अंतर्गत आपराधिक मामलों में सम्मन जारी करना एक गंभीर विषय है और निचली अदालत को मामले की सामग्री पर ध्यान दिए बिना और संभावना के आधार पर मामले की कल्पना करके अभियुक्त व्यक्ति को आपराधिक परीक्षण हेतु तलब नहीं करना चाहिए। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि विचारण न्यायालय ने अभियोग पत्र के साथ रखी गई सामग्री पर विचार नहीं किया है, और इसलिए, विचारण न्यायालय ने आवेदक को तलब करने में तात्विक चूक की है। निचली अदालत ने आवेदक को एक मुद्रित आदेश के माध्यम से बुलाया है, जो पूरी तरह से अवैध है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रबल तर्क दिया गया है कि आक्षेपित संज्ञान / सम्मन आदेश दिनांकित 02.04.2019 विधि की दृष्टि में धारणीय नहीं है, क्योंकि इसे बिना न्यायिक विवेक का प्रयोग किए यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है, क्योंकि अभिलेख के अवलोकन से यह सुस्पष्ट है कि आक्षेपित संज्ञान / सम्मन आदेश दिनांकित 02.04.2019 संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा मुद्रित प्रारूप पर रिक्त स्थानों को भरकर पारित किया गया है, अतः इसे इस न्यायालय द्वारा रद्द किया जाना चाहिए।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस बात पर काफी बल दिया गया है कि यदि मुद्रित प्रारूप पर संज्ञान लिया गया है तो वह धारणीय नहीं है।

इसके विपरीत, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि उपलब्ध साक्ष्यों और अभिलेख पर आवेदक के विरुद्ध आरोपों के दृष्टिगत, अभियोजन पक्ष के अनुसार, आवेदक के खिलाफ एक संज्ञेय अपराध बनता है, अतः, आवेदन खारिज करने योग्य है। हालांकि, उन्होंने इस बात से इनकार नहीं किया है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने मुद्रित प्रारूप पर संज्ञान लिया है। तदनुसार, इस मामले में अंतिम निर्णय विपक्षी संख्या 2 को नोटिस जारी किए बिना और जवाबी हलफनामे की मांग किए बिना ही इस स्तर पर दिया जा रहा है।

मैंने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

इस न्यायालय के समक्ष विचारण हेतु प्रमुख विषय यह है कि क्या विद्वान मजिस्ट्रेट आरोपी व्यक्ति को बिना कोई कारण बताए मुद्रित प्रोफार्मा पर तलब कर सकता है और दं॰प्र॰सं॰ की धारा 173 के अंतर्गत दायर पुलिस आख्या पर संज्ञान ले सकता है। इस संबंध में, यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि एक न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान तभी ले सकती है, जब निर्धारित कार्यवाही शुरू करने हेतु संहिता के अध्याय XIV में उल्लिखित आवश्यक शर्तें पूरी हों। अन्यथा, न्यायालय को दं॰प्र॰सं॰ की धारा 190 (1) के अंतर्गत अपराधों की सुनवाई का क्षेत्राधिकार नहीं प्राप्त होता है बशर्ते कि "इस अध्याय के प्रावधानों के अधीन, प्रथम श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट, और उपधारा (2) के अंतर्गत इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त द्वितीय श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट, किसी भी अपराध का संज्ञान ले सकता है-

(अ) उन तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं,

(ब) ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर;

(स) पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त जानकारी पर, या अपने स्वयं के ज्ञान पर, कि ऐसा अपराध कारित किया गया है।

(2) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय श्रेणी के किसी भी मजिस्ट्रेट को उपधारा (1) के अंतर्गत ऐसे अपराधों का संज्ञान लेने का अधिकार दे सकता है, जिनकी जांच या सुनवाई करना उसकी क्षमता के भीतर है।"

इस स्तर पर, यह देखना सार्थक होगा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अंतर्गत दायर पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लेकर अभियुक्त व्यक्तियों को तलब करने से संबंधित विधि क्या है, और नीचे उल्लिखित निर्णय विधि का अवलोकन स्पष्ट रूप से बताता है कि शिकायत पर अपराध का संज्ञान अभियुक्त को सम्मन जारी करने के उद्देश्य से लिया जाता है। चूंकि यह कुछ ऐसे तथ्यों का न्यायिक संज्ञान लेने की प्रक्रिया है जो किसी अपराध का गठन करते हैं, अतः इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार बनाती है और क्या किसी व्यक्ति को फ़ौजदारी न्यायालय में पेश होकर मुकदमे का सामना करने हेतु तलब किया जाना विधि का उल्लंघन होगा। यह विवेकाधिकार संबंधित मजिस्ट्रेट पर मामले विशेष के तथ्यों के साथ-साथ विषय पर विधि को दृष्टिगत रखते हुए विवेकपूर्ण ढंग से कार्य करने तथा अपराध का संज्ञान लेते समय मजिस्ट्रेट का आदेश न्यायिक विवेक के अनुपयोग होने से ग्रस्त न हों, यह सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी आरोपित करता है।

निष्पक्ष एवं उचित अन्वेषण विवेचना अधिकारी का प्राथमिक कर्तव्य है। कोई भी जांच अभिकरण विवेचना पूरी करने में अनावश्यक रूप से लंबा समय नहीं ले सकता। त्वरित सुनवाई हेतु अनुच्छेद 21 के अंतर्गत अंतर्निहित अधिकार है जिसमें त्वरित विवेचना, जांच, अपील, पुनरीक्षण और पुनःपरीक्षण शामिल है। विवेचना को पूरा करने हेतु समय सीमा निर्धारित करने की स्पष्ट आवश्यकता है, साथ ही एक आंतरिक निगरानी तंत्र भी होना चाहिए, जहां **दिलावर बनाम हरियाणा राज्य, (2018) 16 SCC 521, मेनका गांधी बनाम भारत संघ, AIR 1978 SC 597, हुसैनारा खातून (आई) बनाम बिहार राज्य, (1980)1 SCC 81, अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर.एस. नायक, (1992) 1 SCC 225** और **पी. रामचंद्र राव बनाम कर्नाटक राज्य, (2002) 4 SCC 578** के अनुसार पदानुक्रम के विभिन्न स्तरों पर निर्धारित समय सीमा का पालन करने की जवाबदेही तय की जा सके।

अन्वेषण के प्रयोजनों हेतु, अपराधों को दो श्रेणियों "संज्ञेय" और "गैर-संज्ञेय" में विभाजित किया गया है। जब किसी संज्ञेय अपराध की सूचना प्राप्त होती है या ऐसे किसी अपराध के कारित होने का संदेह होता है, तो उचित पुलिस अधिकारी को उसका अन्वेषण करने का अधिकार होता है, किन्तु जहां सूचना गैर-संज्ञेय अपराध से संबंधित होती है, वह सक्षम मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना इसका अन्वेषण नहीं करेगा। अन्वेषण में दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक पुलिस अधिकारी या मजिस्ट्रेट को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति (जो मजिस्ट्रेट द्वारा उसकी ओर से अधिकृत किया जाए) द्वारा साक्ष्य एकत्रित किए जाने की सभी कार्यवाहियां शामिल होती हैं।

अनुवादित

अन्वेषण में विभिन्न चरण होते हैं, यथा (i) घटनास्थल पर जाना (ii) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का पता लगाना (iii) संदिग्ध अपराधी की खोज और गिरफ्तारी (iv) अपराध कारित किए जाने से संबंधित साक्ष्य का संग्रह और (v) यह राय बनाना कि क्या एकत्रित सामग्री के आधार पर आरोपी को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाए और यदि हाँ, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अंतर्गत आरोप पत्र दाखिल करके उस के लिए आवश्यक कदम उठाना, जैसा कि **एच.एन. रिषब्ड बनाम दिल्ली राज्य, AIR 1955 SC 196** के मामले में निर्धारित किया गया है। इसके पश्चात, विद्वान मजिस्ट्रेट को न्यायिक विवेक का प्रयोग कर और तर्कसंगत आदेश द्वारा मामले का संज्ञान लेना चाहिये, न कि यांत्रिक तरीके से ।

भूषण कुमार व अन्य बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) व अन्य, AIR 2012 SC 1747 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी कि संहिता की धारा 204 मजिस्ट्रेट को समन जारी करने के कारणों को स्पष्ट रूप से बताने हेतु आदेशित नहीं करती है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि किसी अपराध का संज्ञान ले रहे मजिस्ट्रेट की राय में कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार है, तो सम्मन जारी किया जा सकता है। **बसरुद्दीन व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2011 (1) JIC 335 (All)(LB)**, के मामले में माननीय न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी दी थी:-

"आक्षेपित आदेश के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने शिकायतकर्ता द्वारा दाखिल शिकायत पर यांत्रिक तरीके से टंकित प्रोफार्मा में तारीख भरकर अभियुक्त को तलब किया है। शिकायत पर अपराध का संज्ञान लेते समय विद्वान मजिस्ट्रेट से यह अपेक्षित था कि वह शिकायत में लगाए गए आरोपों का अध्ययन करते और खुद को संतुष्ट करते कि शिकायत में लगाए गए आरोपों के आधार पर आरोपी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया कौन सा अपराध बनता है। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने शिकायत में लगाए गए आरोपों पर गौर करने और यह पता लगाने की जहमत नहीं उठाई कि शिकायत में लगाए गए आरोपों के आधार पर आरोपी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया कौन से अपराध बनते हैं। स्पष्टतः, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान लेते समय पारित आदेश विवेक का प्रयोग न किये जाने की समस्या से ग्रस्त है। आक्षेपित आदेश युक्तियुक्त आदेश नहीं है, अतः यह अपास्त किए जाने योग्य है और याचिका स्वीकृत करने योग्य है तथा मामले को लखीमपुर खीरी के विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास इस निर्देश के साथ वापस भेजा जा सकता है कि वे शिकायत में लगाए गए आरोपों पर गौर करें और अभिनिश्चित करें कि शिकायत में लगाए गए आरोपों के आधार पर आरोपी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया कौन से अपराध बनते हैं और नया आदेश पारित करें, तत्पश्चात, वे विधि के अनुसार कार्यवाही करेंगे।"

भूषण कुमार व अन्य बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) व अन्य, AIR 2012 SC 1747 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी कि संहिता की धारा 204 मजिस्ट्रेट को समन जारी करने के कारणों को

अनुवादित

स्पष्ट रूप से बताने हेतु आदेशित नहीं करती है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि किसी अपराध का संज्ञान ले रहे मजिस्ट्रेट की राय में कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार है, तो सम्मन जारी किया जा सकता है। यह धारा मजिस्ट्रेट को इस बारे में राय बनाने का आदेश देती है कि क्या सम्मन जारी करने हेतु पर्याप्त आधार मौजूद है, लेकिन धारा में यह कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है कि इसका स्पष्ट विवरण देना अनिवार्य है, जिसका अर्थ यह है कि जारी किए गए सम्मन की वैधता तय करने हेतु यह पूर्वापेक्षा नहीं है।

सुनील भारती मित्तल बनाम केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, AIR 2015 SC 923 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय के प्रस्तर संख्या 47 में निम्न टिप्पणी दी है:

"47. किन्तु, धारा में उल्लिखित "कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार" शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये वही शब्द हैं जो स्पष्ट रूप से बताते हैं कि केवल विवेक का प्रयोग कर राय बनाने के पश्चात ही यह माना जाएगा कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है और ऐसा आदेश में भी उल्लिखित किया जाना चाहिए।"

दर्शन सिंह राम किशन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1971) 2 SCC 654 के मामले में माननीय न्यायालय ने यह अवलोकन किया कि संज्ञान लेने की प्रक्रिया में कोई भी औपचारिक कार्यवाही शामिल नहीं है बल्कि यह तभी होता है जब मजिस्ट्रेट आरोपों पर अपना विवेक प्रयोग करता है और तत्पश्चात अपराध का न्यायिक संज्ञान लेता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 के अनुसार, एक मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान ले सकता है, (ए) शिकायत प्राप्त होने पर, या (बी) पुलिस आख्या पर, या (सी) पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त जानकारी पर, या अपने स्वयं के ज्ञान पर, कि ऐसा अपराध कारित किया गया है। जैसा कि प्रायः माना जाता है, संज्ञान लेने में कोई औपचारिक कार्रवाई या वास्तव में किसी भी प्रकार की कार्रवाई शामिल नहीं होती है, किन्तु यह तब होता है जब मजिस्ट्रेट किसी अपराध के कारित होने का संदेह होने पर अपने विवेक का प्रयोग करता है। इसलिए, संज्ञान उस बिंदु पर होता है जब मजिस्ट्रेट पहली बार किसी अपराध का न्यायिक पर्यवेक्षण करता है। यही स्थिति बनती है जब मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान शिकायत, पुलिस आख्या या किसी अन्य व्यक्ति की सूचना के आधार पर लेता है। इसलिए, जब कोई मजिस्ट्रेट किसी पुलिस आख्या के आधार पर किसी अपराध का संज्ञान लेता है, तो प्रथम दृष्टया वह उक्त आख्या में बताए गए अपराध या अपराधों का संज्ञान लेता है।"

अंकित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 19647/2009 में दिनांक 15.10.2009 को दिये अपने निर्णय के प्रस्तर संख्या 8 में निम्न टिप्पणी की गई थी:-

"8. आरंभ में, न्यायालय का नाम, वाद संख्या, राज्य बनाम ..... अंतर्गत धारा ..... पुलिस थाना ..... जिला ..... आपराधिक वाद संख्या ..... /2009 भी छपे हुए हैं और रिक्त स्थानों को किसी कर्मचारी द्वारा वाद संख्या, अभियुक्त का नाम, धारा, पुलिस थाना जिला इत्यादि उल्लिखित करते हुए भरा गया है। उपरोक्त मुद्रित सामग्री के नीचे, निम्नलिखित

अनुवादित

वाक्य उल्लिखित है "अभियुक्त अंकित की गिरफ्तारी मा0 उच्च न्यायायल द्वारा Crl. Writ No. 19559/08 अंकित बनाम राज्य में पारित आदेश दिनांक 5.11.08 द्वारा आरोप पत्र प्राप्त होने तक स्थगित थी।"

उपरोक्त वाक्य के नीचे, तत्कालीन न्यायिक मजिस्ट्रेट-तृतीय श्री तलेवर सिंह के नाम वाली न्यायालय की मुहर लगाई गई है, और विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपने नाम के ऊपर अपना संक्षिप्त हस्ताक्षर (आद्याक्षर) किया है। जिस ढंग से आक्षेपित आदेश तैयार किया गया है, उससे यह परिलक्षित होता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने इस आदेश को पारित करते समय अपना न्यायिक विवेक बिल्कुल नहीं प्रयोग किया और न्यायालय के किसी कर्मचारी द्वारा रिक्त स्थानों को भरने के बाद, उन्होंने न्यायालय की मुहर पर अपना आद्याक्षर कर दिया है। न्यायिक आदेश पारित करने का यह तरीका पूरी तरह से अवैध है। तर्क के लिए यदि यह मान भी लिया जाए कि मुद्रित प्रपत्र पर रिक्त स्थानों को विद्वान मजिस्ट्रेट के हस्तलेख में ही भर दिया गया था, तब भी आक्षेपित आदेश अवैध और अमान्य होगा, क्योंकि किसी अन्य न्यायिक आदेश के समान ही संज्ञान लेने का आदेश भी मुद्रित प्रपत्र पर रिक्त स्थान भरकर नहीं दिया जा सकता। यद्यपि, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **मेघा नाथ गुप्तास व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2008 (62) ACC 826**, के मामले में, जिसमे **उप मुख्य नियंत्रक आयात व निर्यात बनाम रोशन लाल अगरवाल, 2003 (4) ACC 686 (SC), उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम मोहन मीकिंस, 2000 (2) JIC 159 (SC): AIR 2000 SC 1456 तथा कांति भद्र बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2000 (1) JIC 751 (SC): 2000 (40) ACC 441 (SC)** के मामलों को संदर्भित किया गया है, में यह अभिनिर्धारित किया कि मजिस्ट्रेट को अभियोग पत्र पर संज्ञान लेते समय विस्तृत तर्कसंगत आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं होती है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि मुद्रित प्रपत्र पर रिक्त स्थान भरकर संज्ञान लेने का आदेश पारित किया जा सकता है। अभियोग पत्र पर संज्ञान लेने के आदेश सहित किसी भी न्यायिक आदेश को पारित करते समय, न्यायालय को न्यायिक विवेक प्रयोग करने की आवश्यकता होती है और यहां तक कि संज्ञान लेने का आदेश भी यांत्रिक तरीके से पारित नहीं किया जा सकता है। अतः, आक्षेपित आदेश रद्द करने योग्य है और मामले को वापस निचली अदालत को भेजना होगा ताकि अभियोग पत्र पर न्यायिक विवेक प्रयोग करने के पश्चात नया आदेश पारित किया जा सके।"

कवि अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य के मामले में आपराधिक **पुनरीक्षण संख्या 3209/2010** में पारित आदेश में जांच अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए सामग्री के संबंध में अपना न्यायिक विवेक प्रयोग किए बिना मुद्रित प्रपत्र पर धारा 190(1)(b) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान लेने का आदेश अवैध करार दिया गया है।

अब्दुल रशीद व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 2010 (3) JIC 761 (All) के मामले में अभिलिखित प्रासंगिक टिप्पणियाँ और निष्कर्ष नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

अनुवादित

"6. जब भी मजिस्ट्रेट के समक्ष कोई पुलिस आख्या या शिकायत दाखिल की जाती है तब उसे संज्ञान लेने से पूर्व आख्या या शिकायत में उल्लिखित तथ्यों पर अपने विवेक का प्रयोग करना होता है। यदि मामले के तथ्यों पर अपना विवेक प्रयोग करने के पश्चात, मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मामले में कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार है, तब वह संज्ञान ले सकता है। वर्तमान मामले में, सम्मन आदेश को एक सादे कागज पर सम्मन आदेश की पहले से बनी मुहर लगाकर पारित किया गया है और विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने केवल रिक्त स्थान में मामले की अगली तारीख दर्ज कर दी थी। स्पष्टतः विद्वान मजिस्ट्रेट ने आदेश दिनांक 20.12.2018 को पारित करने से पूर्व मामले के तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया था, अतः आक्षेपित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है।

7. न्यायिक आदेशों को मुद्रित प्रारूप पर रिक्त स्थान भरकर अथवा सादे कागज पर आदेश की पहले से बनी मुहर लगाकर यांत्रिक तरीके से पारित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। ऐसी प्रवृत्ति को निरुत्साहित किया जाना चाहिए और इसे जारी नहीं रखा जा सकता। यह न केवल मामले के तथ्यों पर ध्यान न देने का बल्कि स्थापित न्यायिक मानदंडों के भी विरुद्ध है। इसलिए, इस प्रथा को तत्काल प्रभाव से बंद कर देना चाहिए।"

उपरोक्त के आलोक में, इस न्यायालय की यह टिप्पणी है कि न्यायिक अधिकारियों द्वारा बिना विधिक विवेक का प्रयोग किए केवल मुद्रित प्रारूपों पर रिक्त स्थान भरकर आदेश पारित करने का आचरण आपत्तिजनक है और निंदाजनक है। किसी आपराधिक वाद में अभियुक्त को सम्मन जारी करना एक गंभीर मामला है और आदेश में यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होना चाहिए कि मजिस्ट्रेट ने तथ्यों और उस पर लागू विधि पर विचार किया है, जबकि अपेक्षित सम्मन आदेश यांत्रिक तरीके से और बिना विधिक विवेक का प्रयोग किए पारित किया गया था। साथ ही, मजिस्ट्रेट ने शिकायतकर्ता द्वारा लगाए गए आरोपों के आधार पर यह संतुष्ट हुए बिना कि प्रथम दृष्टया कौन सा अपराध बनता है, आदेश पारित किया। अतः, माननीय मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित संज्ञान आदेश स्थापित न्यायिक मानदंडों के विरुद्ध है।

उपरोक्त निर्णयों के आलोक में, यह स्पष्ट है कि अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम, फैजाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.04.2019 अस्पष्ट है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। फलस्वरूप, दिनांक 02.04.2019 का संज्ञान/सम्मन आदेश विधिक रूप से पोषणीय नहीं है, क्योंकि मजिस्ट्रेट अपने विधिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा जिसके परिणामस्वरूप न्याय का पतन हुआ।

तदनुसार, वर्तमान आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन अंतर्गत धारा 482 दं॰प्र॰सं॰ स्वीकृत होती है और अनुमति प्रदान की जाती है। अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट- प्रथम, फ़ैज़ाबाद द्वारा वाद संख्या 1004/2019, अंतर्गत धारा 427, 188, भा॰दं॰सं॰ से संबन्धित अपराध संख्या 493/2018, पुलिस थाना पुरा कलंदर, जिला फ़ैज़ाबाद के मामले में आक्षेपित संज्ञान / सम्मन आदेश दिनांक 02.04.2019 को अपास्त किया जाता है।

मामला अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम, फैजाबाद को इस निर्देश के साथ वापस

अनुवादित

भेजा जाता है कि वे संज्ञान लेने और आवेदक को तलब करने के विषय पर नए सिरे से निर्णय लें और इस न्यायालय द्वारा किए गए अवलोकनों तथा उपरोक्त निर्णयों में दिए गए निर्देशों को ध्यान में रखते हुए इस आदेश की प्रति उपलब्ध कराए जाने की तिथि से दो माह के भीतर विधि के अनुसार उचित आदेश पारित करें।

पक्षकार आदेश की प्रमाणित प्रति या इलाहाबाद उच्च न्यायालय की आधिकारिक वेबसाइट से डाउनलोड की गई ऐसे आदेश की कंप्यूटर जनित प्रति अथवा इलाहाबाद उच्च न्यायालय की रजिस्ट्री द्वारा जारी प्रमाणित प्रति दाखिल करेगा।

संबंधित न्यायालय/ प्राधिकारी/ पदाधिकारी इलाहाबाद उच्च न्यायालय की आधिकारिक वेबसाइट से उक्त आदेश की कम्प्यूटरीकृत प्रति की प्रामाणिकता को सत्यापित करेगा और लिखित रूप में इस प्रकार के सत्यापन की घोषणा करेगा।

(2023) 2 ILRA 1202

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 29725 / 2022

धर्मेंद्र यादव और अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य राज्य और अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अमर नाथ सिंह, श्री राजेश कुमार सिंह, श्री राजेश्वर सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482-समन आदेश आक्षेपित-एफआईआर में नामित नहीं-पीड़िता द्वारा अपने कथन में नामित नहीं- मेडिकल जांच नहीं - धारा 164 सीआर.पी.सी. के अंतर्गत बयान दर्ज नहीं किया -आवेदक घटना के स्थान पर उपस्थित नहीं है-पीड़ित द्वारा शपथ पत्र जिसमें कहा गया है कि आवेदक कथित अपराध में शामिल नहीं है-लेकिन जांच का हिस्सा नहीं है-हस्तक्षेप का कोई वाद नहीं है-क्योंकि यह विचरण का विषय है।

आवेदन निरस्त। (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. अरुण शंकर शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1999 एससीसी2554
2. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कस्तूरी लाल, 2004 सीआरएल] 3866
3. पवन कुमार भालौटिया बनाम पश्चिम बंगाल राज्य ., 2005 सीआरएलजे1810 एससी
4. टी.जे. स्टीफन बनाम पार्ले बैटलिंग कंपनी प्रा. लिमिटेड एआईआर 1985 एससीसी 994
5. मैक कुलोच बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 1947 सीआरएल] 182 कैल एचसी

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. यह प्रार्थना पत्र धारा 482 द०प्र०सं० के अंतर्गत दण्ड वाद सं0 77/2021 उत्तर प्रदेश राज्य बनाम गनेश प्रसाद एवं अन्य अपराध सं०

अनुवादित

606/2020 अंतर्गत धारा 147, 452, 323, 504, 406, 422, 354 एवं 354B भा०द०सं० थाना ताजगंज जनपद आगरा लंबित न्यायालय मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, आगरा की कार्यवाही को स्थगित एवं खण्डित करने के लिए शपथ पत्र सहित प्रस्तुत किया गया है।

2. संक्षेप में याचिका के तथ्य यह हैं कि विपक्षी सं० 2 विकास महाजन ने उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट गनेश यादव एवं कप्तान सिंह यादव व 10-12 अज्ञात सह अभियुक्तों के विरुद्ध दिनांक 31 जुलाई 2020 को समय 10:05 बजे पूर्वाह्न दर्ज कराया कि दिनांक 26.07.2020 को दोपहर में खसरा भूमि सं० 91A, 91B स्थित शमशाबाद सड़क निकट भोला बाबा दुग्ध केन्द्र के समीप मुकेश महाजन एवं उसके पत्नी के संयुक्त स्वामित्व में है। दिनांक 20 जुलाई 2020 को गणेश यादव एवं कमान सिंह यादव 10-12 अन्य गुण्डे साथियों के साथ प्रार्थी के प्लाट पर पहुंचे तथा बाउण्ड्री वाल की गेट पर लगे हुए ताले को तोड़ दिया तथा जब वहाँ जमीन की देखरेख कर रही महिला द्वारा मना करने पर उन्होंने उस से मारपीट किया व धक्कामुक्की की जिससे उसके कपड़े फट गये तथा ताला तोड़कर यह सभी लोग महिला से धक्का मुक्की करते हुए बाउण्ड्री के अंदर बने कमरे में घुस गये। यह देखते हुए उस महिला के लड़के ने पुलिस चौकी एकता पर जाकर सूचना दिया जहाँ से कर्मचारी मौके पर आ गये उनके हस्तक्षेप के उपरान्त महिला को कमरे के अन्दर गाली गलौज व जान से मारने की धमकी देते हुए वापस आने को कहकर चले गये। अतः मुकदमा दर्ज कर आवश्यक कार्यवाही किया जाये जिससे यह असामाजिक तत्व व भू-माफिया दोबारा गैर कानूनी कर्तव्य को अंजाम न दे पावें।

3. विवेचनोपरान्त प्रार्थीगण गनेश यादव, कप्तान सिंह यादव, प्रेम कुमार, धर्मेन्द्र यादव एवं अजय कुमार के विरुद्ध धारा 147,452, 323, 504, 506, 427, 354 एवं 354B भा० द०सं० के अंतर्गत अपराध साबित होने पर आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। दिनांक 9.03.2021 को न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया तथा अभियुक्तगण को समन किया गया। मात्र अभियुक्त गनेश यादव उपस्थित आये जिसे दिनांक 22.08.2022 को जमानत पर अवमुक्त करने का आदेश पारित किया गया तथा शेष अभियुक्तगण के विरुद्ध प्रथमतः समन तदुपरान्त जमानतीय वारण्ट एवं बादहू अजमानतीय वारण्ट जारी किया गया।

4. प्रार्थीगण का यह कथन है कि वह प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित नहीं है, विवेचक ने उचित एवं निष्पक्ष विवेचना किये बिना आरोप पत्र प्रस्तुत कर दिया है। विवेचक ने विपक्षी सं० 2 का बयान अंकित किया है तथा गंभीर सिंह यादव, दुर्गेश कुमार पुनीत यादव का भी बयान अंकित किया है। उन्होंने पीड़िता बृजबाला का बयान भी अंकित किया है जिसमें उसने प्रार्थीगण का नाम नहीं लिया है उसने चिकित्सीय परीक्षण कराने से भी इनकार किया है तथा धारा 164 दण्ड प्रक्रिया संहिता का भी बयान नहीं दिया है। प्रार्थीगण घटना के समय घटना स्थल पर विद्यमान नहीं थे। बृजबाला एवं अन्य साक्षीगण ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक के समक्ष शपथ पत्र प्रस्तुत किया है तथा उसमें प्रार्थीगण की संलिप्तता से इंकार किया है। सूचना के अधिकार के अंतर्गत प्राप्त सूचना के अनुसार पीड़िता ने स्वयं ही स्वयं के साथ घटना कारित होने से इनकार किया है। पूरी कार्यवाही विपक्षी सं० 2 के प्रभाव में दूरस्थ

अवमानित

उद्देश्यों से झूठे तौर पर प्रार्थीगण को संलिप्त करते हुए किया गया है तथा ग्राम पंचायत चुनाव भी इसमें कारण रहा है। प्रार्थीगण का कथित अपराध को कारित करना पूर्णतया संदिग्ध एवं अविश्वसनीय है। विपक्षी सं० 2 तथा सह अभियुक्त गनेश यादव एवं कप्तान सिंह के मध्य जमीन संबंधी विवाद चल रहा है जिससे प्रार्थीगण का कोई संबंध नहीं है। प्रथम सूचना रिपोर्ट विलंब से दर्ज करने का कोई पर्याप्त आधार एवं कोई तार्किक स्पष्टीकरण नहीं है। प्रथम दृष्टया उपरोक्त धाराओं का अपराध प्रार्थीगण के विरुद्ध नहीं बनता है। संज्ञान लेते समय अधीनस्थ न्यायालय ने विवेचना के दौरान संकलित किये गये साक्ष्यों को तकनीकी तरीके से देखते हुए संज्ञान लिया है। प्रार्थीगण को आरोप पत्र की कोई जानकारी नहीं थी तथा जब उन्हें पुलिस कर्मचारियों से दण्ड कार्यवाही की जानकारी हुई तथा उन्होंने आवश्यक अभिलेखों की प्रतिलिपियां प्राप्त किया तब उन्होंने यह याचिका प्रस्तुत किया है। अतः उक्त धारा पर उक्त दण्ड बाद की समस्त कार्यवाही मय आरोप पत्र खण्डित किया जाए।

5. प्रार्थीगण ने सुसंगत अभिलेखों को संलग्नक के रूप में प्रस्तुत किया है।

6. प्रार्थीगण ने पूरक शपथ पत्र 2/2022 संलग्नकों सहित प्रस्तुत किया है जिसमें दिनांक 4.06.2022 को अग्रिम विवेचना के लिए प्रस्तुत प्रार्थना पत्र संलग्नक 1 तथा वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक द्वारा पारित अग्रिम विवेचना संबंधी आदेश संलग्नक 2, पीड़िता बृजबाला का बयान अंतर्गत धारा 164 द०प्र०सं० प्रदर्श 3 एवं उसका शपथ पत्र प्रदर्श 4, पुनीत यादव एवं दुर्गेश कुमार का शपथ पत्र संलग्नक 5 प्रस्तुत किया गया है।

7. सूचनादाता विपक्षी सं० 2 मुकेश महाजन ने अपने बयान में यह बयान दिया है कि सूचना पाकर वह तथा उसके साथी हरीकान्त यादव, गंभीर सिंह यादव, दुर्गेश कुमार एवं पुनीत यादव पहुंचे तो अन्य अभियुक्तगण सहित प्रार्थीगण ने उन लोगों के साथ भी गाली-गलौज व बदतमीजी किया। यदि वह लोग नहीं पहुंचते तो यह लोग महिला के साथ कोई और घटना कारित कर सकते थे। गंभीर सिंह यादव ने अपने बयान में अन्य अभियुक्तगण के साथ प्रार्थीगण को भी विपक्षी सं० 2 के प्लाट पर रहने वाली महिला बृजबाला पत्नी दिनेश तथा उसके पुत्र अनुराग के साथ मारपीट करते हुए देखने का बयान दिया है तथा सूचनादाता विपक्षी सं० 2 की भांति बयान दिया गया। दुर्गेश तथा पुनीत यादव ने भी प्रथम सूचना रिपोर्ट के संबंध में प्रार्थी अभियुक्तगण को नामित करते हुए बयान दिया है। पीड़िता ने प्रथमतः धारा 161 द० प्र०सं० के अंतर्गत गनेश यादव, कप्तान सिंह व प्रेम कुमार उर्फ बग्गा तथा 8-10 अन्य लोगों द्वारा गेट का ताला तोड़ने तथा मना करने पर उसे तथा उसके पुत्र को गन्दी गन्दी गाली देने तथा मना करने पर हाथ पकड़कर उसे खींच लेने तथा कमरे में आ जाने पर पीछे -पीछे कमरे में घुसकर मारपीट करते हुए कपड़ा फाड़ डालने पर शोर मचाने एवं शोर मचाने पर उसके पड़ोसी हरीकान्त यादव व सूचना पाकर सूचनादाता विपक्षी सं० 2 मुकेश महाजन के मौके पर आ जाने का साक्ष्य दिया है। यद्यपि पीड़िता ने धारा 164 द०प्र०सं० का बयान कराने तथा चिकित्सीय परीक्षण कराने से इंकार किया है। विवेचक द्वारा दिनांक

अनुवादित

11.10.2020 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है।

8. प्रार्थीगण ने पीड़िता एवं साक्षीगण द्वारा बाद में प्रस्तुत शपथ पत्रों के आधार पर धारा 482 द०प्र०सं० के अंतर्गत आरोप पत्र एवं दाण्डिक कार्यवाही को खण्डित करने के लिए निवेदन किया है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि पीड़िता श्रीमती बृजबाला ने प्रार्थी अभियुक्तगण को घटना में सम्मिलित न होने का शपथ पत्र दिनांक 2.06.2022 को निष्पादित किया। इस प्रकार पुनीत यादव तथा दुर्गेश कुमार ने दिनांक 30.5.2021 को शपथ पत्र प्रस्तुत कर प्रार्थीगण/ अभियुक्तगण को घटना में सम्मिलित नहीं होने का शपथ पत्र निष्पादित किया गया है। इन शपथ पत्रों के निष्पादन के बहुत पूर्व दिनांक 9.03.2021 को ही संबंधित न्यायालय द्वारा मुकदमे का संज्ञान ले लिया गया था तथा अभियुक्तगण के विरुद्ध समन जारी कर दिया गया था। इस न्यायालय के मतानुसार विचारण के दौरान इस प्रकार के शपथ पत्रों को संज्ञान में नहीं लिया जा सकता तथा यह विचारण में अनुचित हस्तक्षेप के रूप में माना जाएगा तथा यह माना जाएगा कि प्रार्थी अभियुक्तगण ने येन-केन प्रकारेण प्रलोभन अथवा धमकी से उपरोक्त साक्षीगण को प्रभावित कर उन से इस प्रकार का शपथ पत्र निष्पादित करवाकर उसके आधार पर यह धारा 482 द०प्र०सं० का प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया है। यह न्यायिक प्रक्रिया में अनुचित हस्तक्षेप के रूप में लिया जा सकता है। आरोप पत्र प्रस्तुत होने के उपरान्त तथा पूर्व के बयानों के विपरीत शपथ पत्र देने पर उसका संज्ञान लिया जाना किसी भी विधि द्वारा स्थापित न्यायालय के लिए सम्यक एवं उचित नहीं है। इस प्रकार की कार्यवाही किया जाना न्यायिक प्रक्रिया में अनुचित हस्तक्षेप के रूप में है। प्रार्थीगण को चाहिए था कि वह न्यायालय में उपस्थित होकर जमानत कराते तथा आरोप विरचित करते समय उन्मोचन हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करते एवं विचारण में भाग लेते।

9. धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता निम्नवत है-

" अदालत आपराधिक कार्यवाही में, सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, दुर्लभ और असाधारण मामलों में, सीआरपीसी के प्रावधानों को प्रभावी करने के लिए या न्याय के लक्ष्य को सुरक्षित करने के लिए किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग या अन्यथा रोकने के लिए हस्तक्षेप करती है।"

10. अरुण शंकर शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य AIR 1999 उच्चतम न्यायालय 2554 में इस धारा के अंतर्गत उच्च न्यायालय को असीमित शक्तियां प्राप्त नहीं हैं। यह असाधारण शक्तियाँ हैं, जिनका प्रयोग यदा-कदा ही किया जाना चाहिए। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कस्तूरी लाल 2004 CRLJ 3866 में उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया कि धारा 482 द०प्र०सं० के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग अपवाद है और उच्च न्यायालय की कोई नयी शक्तियां प्रदान नहीं करता है। यह मात्र उस अंतर्निहित शक्ति को बचाता है जिसे संहिता के अधिनियमन से पहले न्यायालय न्यायालय के पास विद्यमान थी। यह तीन परिस्थितियों की परिकल्पना करता है जिसके अंतर्गत निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।

अनुवादित

1- संहिता के आदेश को प्रभावी करने के लिए.

2- न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए तथा

3- अन्यथा उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए

11. इस संबंध में किसी कठोर नियम को निर्धारित करना न तो संभव है न ही वांछनीय है जो निहित क्षेत्राधिकार के उपयोग को नियंत्रित करेगा। इस शक्ति के प्रयोग में बहुत सावधानी बरतने की आवश्यकता है। इस शक्ति का प्रयोग किसी वैध अभियोजन को रोकने के लिए प्रयुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

12. पवन कुमार भालोतिया बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 2005 CRLJ 1810 उच्चतम न्यायालय में अवधारित किया गया है कि जहाँ दर्ज किया गया अपराध केवल याचिकाकर्ता को उत्पीड़ित करने का होगा वहाँ इस शक्ति के अंतर्गत दाण्डिक कार्यवाही खण्डित किया जा सकेगा। आमतौर पर उच्च न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालय के आपराधिक मामले की कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, लेकिन अवैध अभियोजन के दुष्परिणाम से सुरक्षित रखने के लिए इस धारा की शक्तियों को उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। जहाँ दण्डाधिकारी के समक्ष प्रक्रिया जारी करने के लिए पर्याप्त सामग्री विद्यमान है। अभियुक्त उसे इस धारा के अंतर्गत चुनौती देने का अधिकारी नहीं है। टी.जे. स्टीफेन बनाम पार्ले बाटलिंग कं०प्रा०लि० AIR 1985 उच्चतम न्यायालय 994 में यह अवधारित किया गया है कि विवेचना के अभिलेखों का संदर्भ देखते हुए जब कि कम्प्लेण्ट में आरोपित तथ्य प्रथम दृष्टया अपराध कारित करने का वर्णन करते हैं। ऐसे कम्प्लेण्ट को खण्डित नहीं किया जा सकता।

13. प्रार्थीगण का यह कथन है कि दुर्भावनापूर्ण ढंग से यह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी गयी तथा आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। मैक कुलोच बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 1974 CRLJ 182 कलकत्ता उच्च न्यायालय में यह अवधारित किया गया कि यह प्रश्न कि अभियुक्त के पास घटना कारित करने का आपराधिक दुराशय विद्यमान था अथवा नहीं, विचारण में सम्यक सामग्री एवं साक्ष्य प्रस्तुत कर ही देखा जा सकता है तथा ऐसी दशा में उच्च न्यायालय द्वारा अपनी अंर्तनिहित शक्तियों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। तथ्य तथा निष्कर्ष के संबंध में अंर्तनिहित शक्ति के अंतर्गत हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। इस स्तर पर उच्च न्यायालय यह जांच नहीं कर सकता कि आरोप साक्ष्य से स्थापित होंगे अथवा नहीं।

आदेश

उपरोक्त आधारों पर इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि प्रार्थीगण द्वारा दिया गया आधार धारा 482 द०प्र०सं० के प्रार्थना पत्र को स्वीकार कर उपरोक्त वाद की कार्यवाही एवं आरोप पत्र को खण्डित करने के लिए युक्तियुक्त आधार नहीं हैं। अतैव प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 द०प्र०सं० तदनुसार खारिज किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 1205

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 1531 /2023

मनीष कुमार पांडे ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: प्रिंस लेनिन

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - समन आदेश-आरोप पत्र और समन आदेश आक्षेपित - अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध एफआईआर दर्ज - विधायक (भाजपा) के नाम से उनके लेटर पैड पर जारी पत्र सोशल मीडिया पर प्रसारित करना - विभिन्न राजनीतिक व्यक्ति के विरुद्ध आपराधिक मामलों की जानकारी मांगना -फर्जी पाया गया-आवेदक पत्रकार है-पत्र को एक प्रतिष्ठित मीडियाकर्मी से प्राप्त बताकर पोस्ट किया गया-विधायक ने पत्र और उनके हस्ताक्षर का खंडन किया-प्रथम दृष्टया वाद स्थापित है।

आवेदक निरस्त। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य., एआईआर 1960 एस.सी. 866,
2. हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल, 1992 एससीसी (सीआरएल)426,
3. बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा, 1992 एससीसी (सीआरएल.)192
4. झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद सराफुल हक एवं अन्य, (पैरा-10) 2005 एससीसी (क्रि.)283
5. एस.डब्ल्यू. पलानकट्टकर और अन्य बनाम बिहार राज्य, 2002 (44) एसीसी 168

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद, द्वारा प्रदत्त)

प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रिंस लेनिन के साथ-साथ राज्य-विरोधी पक्ष संख्या 1 हेतु विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री दिवाकर सिंह की सहायता से श्री विनोद कुमार साही, विद्वान अपर महाधिवक्ता को सुना एवं पत्रावली का अवलोकन किया।

प्रार्थी-मनीष कुमार पांडे द्वारा दिनांक 30.09.2021 के आरोप-पत्र संख्या 1/2021 और प्रार्थी से संबंधित वाद संख्या 1730/2022, विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट,सीमाशुल्क, लखनऊ के समक्ष लंबित कार्यवाही, जो अपराध संख्या 228/2020, थाना हजरतगंज, जनपद लखनऊ अंतर्गत धारा 419, 420, 465, 469, 471, 153-ए, 153-बी, 505 (1) (बी), 505 (2) भा.दं.सं. एवं सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66, से संबंधित है, को एवं साथ ही विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट,सीमाशुल्क, लखनऊ द्वारा पारित तलबी आदेश दिनांक 12.01.2022 को रद्द करने हेतु वर्तमान प्रार्थनापत्र दायर किया गया है।

प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अभियोजन वाद के अनुसार 21.08.2020 को सूचनाकर्ता/उपनिरीक्षक, थाना हजरतगंज, जिला लखनऊ द्वारा अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 0228 अंतर्गत धारा 419, 420, 465, 469, 471, 153-ए, 153-बी, 505(1) (बी), 505(2) भा.दं.सं एवं सूचना एवं प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2008 की धारा 66 के अंतर्गत पंजीकृत किया गया था, जिसने ड्यूटी पर रहते हुए, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर व्हाट्सएप/ट्विटर पर एक पत्र का प्रसार देखा, जो विधायक(भाजपा) श्री देव मणि द्विवेदी के नाम

अनुवादित

से एक लेटर पैड क्रम संख्या क-6, संख्या 459473 एवं पत्र संख्या यूपीएमएलए/2/87 दिनांक 20.08.20 था, जो अपर मुख्य सचिव, गृह को संबोधित किया गया था, एवं जो विभिन्न राजनीतिक व्यक्तियों के विरुद्ध पंजीकृत आपराधिक मुकदमों की सूचना उपलब्ध कराने से संबंधित था। आगे आरोप है कि देखने पर पता चला कि लेटर पैड पर अलग-अलग नाम से हस्ताक्षर थे एवं सत्यापन के बाद यह कूटरचित पाया गया। आगे आरोप है कि उत्तर प्रदेश राज्य में सांप्रदायिक घृणा फैलाने एवं वर्तमान सरकार को बदनाम करने हेतु जाली लेटर पैड तैयार किया गया था।

प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि विवादित प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप गलत एवं पूर्णतः झूठे, सारहीन हैं एवं प्रार्थी के विरूद्ध स्थापित नहीं हैं।

प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने पुनः कहा कि प्रार्थी पेशे से एक पत्रकार है एवं उसके ट्विटर अकाउंट सहित कई सोशल मीडिया अकाउंट भी हैं, जिसमें राजनीतिक एवं सामाजिक घटनाओं से संबंधित कई पोस्ट साझा की जाती हैं एवं प्रार्थी द्वारा सोशल मीडिया और अन्य स्थानों पर वर्तमान मुद्दों पर समाचार के रूप में जानकारी साझा की जाती है।

प्रार्थी के अधिवक्ता ने पुनः कहा कि 21.08.2020 को प्रार्थी को इंडिया न्यूज यू.पी./यू.के. नामक एक क्षेत्रीय समाचार चैनल के संपादक/राज्य प्रमुख के रूप में कार्यरत एक प्रतिष्ठित मीडियाकर्मी से दिनांक 20.08.2020 के पत्र की एक प्रति प्राप्त हुई जो कि श्री देव मणि द्विवेदी, विधान सभा सदस्य, उ.प्र. द्वारा जारी किया गया वर्तमान सत्ताधारी दल की ओर से अपर मुख्य सचिव, गृह, उ.प्र.शासन के नाम से सोशल मीडिया पर फैलाया जा रहा था जिसमें एक समुदाय के कुछ राजनीतिक व्यक्तियों के नाम एवं उनके विरूद्ध कई आपराधिक मामलों का उल्लेख किया गया था, जिससे पिछले तीन वर्षों के भीतर की गई कार्रवाई के बारे में स्पष्टीकरण मांगा गया था। लेटर पैड की प्रति प्रार्थी को प्रार्थनापत्र के समर्थन में संलग्नक संख्या 1 के रूप में दाखिल की गई है।

प्रार्थी के अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक ने भाजपा विधायक द्वारा जारी उक्त पत्र को अपने ट्विटर अकाउंट पर साझा किया। इसके बाद आवेदक ने एक और पोस्ट किया था। ट्विटर अकाउंट पर पोस्ट की प्रति प्रार्थनापत्र के समर्थन में दायर शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या 3 और 4 के रूप में दर्ज की गई है।

प्रार्थी के अधिवक्ता ने आगे कहा कि प्रार्थी द्वारा अपने ट्विटर पर साझा किया गया पत्र पूरी तरह से एक समाचार रिपोर्ट के रूप में था और इसे सांप्रदायिक आतंक फैलाने या वर्तमान सरकार की छवि को बदनाम करने की किसी भी मंशा से साझा नहीं किया गया था।

प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि 30.09.2021 को धारा 419, 420, 465, 469, 471, 153-ए, 153-बी, 505 (1) (बी), 505(2) भा.दं.सं. एवं सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66 के अंतर्गत आक्षेपित आरोप पत्र संख्या 1/2021 की जाँच अधिकारी द्वारा उचित जाँच के बाद संबंधित न्यायालय के समक्ष दायर की गई थी एवं 12.01.2022 को विचारण न्यायालय

अनुवादित

ने संज्ञान लिया था एवं सामग्री के आधार पर प्रार्थी एवं सात अन्य आरोपी व्यक्तियों के विरूद्ध प्रक्रिया जारी की थी कि प्रार्थी ने अपने ट्विटर अकाउंट पर मात्र सांप्रदायिक आतंक फैलाने एवं वर्तमान सरकार की छवि को बदनाम करने के इरादे से भाजपा विधायक के पत्र को पोस्ट एवं साझा किया है।

प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता का आगे का तर्क यह है कि प्रार्थी के विरूद्ध किसी भी अपराध का खुलासा नहीं किया गया है और वर्तमान अभियोजन समाज में प्रार्थी को बदनाम करने एवं परेशान करने के उद्देश्य से गलत इरादे से शुरू किया गया है।

इसके विपरीत, विद्वान अपर महाधिवक्ता ने तर्क दिया है कि प्रार्थी स्वयं के पत्रकार होने का दावा करता है, किंतु उसने किसी भी प्राधिकरण द्वारा अपने पेशे के संबंध में जारी किए गए किसी भी प्रासंगिक दस्तावेज या लाइसेंस को संलग्न नहीं किया है। प्रार्थी ने वर्तमान प्रार्थना पत्र में यह तथ्य स्वयं स्वीकार किया है कि उसने विधायक श्री देव मणि द्विवेदी का उक्त लेटर पैड अपने ट्विटर हैंडल पर साझा किया था। विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने 21 अगस्त को प्रार्थी द्वारा अपने ट्विटर हैंडल पर साझा किए गए ट्वीट की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसे निम्नवत पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"# बीजेपी के लंभुआ विधायक देवमणि द्विवेदी का सरकार पर एक और हमला। 16 माननीयों की लिस्ट उनके मुकदमें के साथ जारी कर अपर मुख्य सचिव गृह से इनके ऊपर लंबित मुकदमों में पिछले तीन सालों की कारवाई का ब्यौरा मांगा।"

विद्वान अपर महाधिवक्ता ने पुनः कहा कि प्रार्थी ने सत्तारूढ़ दल(भाजपा) के विधान सभा सदस्य श्री देव मणि द्विवेदी के उपरोक्त लेटर पैड को राज्य में सत्तारूढ़ दल की छवि को बदनाम करने एवं सांप्रदायिक आतंक का माहौल बनाने की मंशा से ट्वीट किया था, एवं प्रार्थी की उक्त कार्रवाई ने उसे उसके लिए एक षड्यंत्र रचने में मदद की। उन्होंने मुख्यमंत्री के नेतृत्व की उ.प्र. राज्य सरकार को बदनाम करने की कोशिश की। सरकार राज्य में लोगों की शांति एवं सद्भाव एवं राज्य के समग्र विकास हेतु कार्य कर रही है। प्रार्थी की उक्त कार्रवाई राज्य के विरूद्ध अपराध है एवं वह इस न्यायालय द्वारा किसी भी सहानुभूति का पात्र नहीं है।

पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने एवं रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों के अवलोकन एवं वाद के तथ्यों को देखने के बाद, यह नहीं कहा जा सका कि आवेदक के विरूद्ध कोई अपराध स्थापित नहीं किया गया है। वर्तमान प्रार्थी सहित प्रत्येक व्यक्ति को भारत के संविधान द्वारा गारंटीकृत स्वतंत्रता द्वारा बोलने की स्वतंत्रता और आम जनता को अपने विचारों को व्यक्त करने का अधिकार है, लेकिन ऐसी स्वतंत्रता का उपयोग इस तरह से नहीं किया जाना चाहिए कि इसके परिणामस्वरूप शांति प्रभावित हो। कोई भी ऐसा शब्द या टिप्पणी नहीं बोलनी चाहिए जिससे समाज में वैमनस्यता पैदा हो। बिना सत्यापन किए गलत तथ्य फैलाने एवं उसे ट्विटर हैंडल के जरिए साझा करने का आरोप भी प्रार्थी पर लगाया गया है। ट्विटर हैंडल पर गलत तथ्य साझा करने से समाज में सार्वजनिक शांति भंग होने की

संभावना थी। प्रार्थी की मंशा सिर्फ राज्य में वर्तमान सरकार को बदनाम करना एवं सांप्रदायिक आतंक पैदा करना था जो राज्य की शांति एवं सद्भाव को बिगाड़ने हेतु सीधा हमला है। किसी को भी समाज में शांति भंग करने का लाइसेंस नहीं दिया जा सकता है, भले ही प्रार्थी को विधि के अंतर्गत ऐसे सभी प्रकार के कार्य करने का अधिकार नहीं दिया गया है जिसके लिए उसके पास कोई प्राधिकार नहीं है। राज्य की विधि व्यवस्था की देखरेख हेतु राज्य तंत्र पहले से ही मौजूद है, हालांकि प्रार्थी के कृत्य से ऐसा प्रतीत होता है कि उसका इरादा उचित नहीं था एवं वह राज्य की शांति को भंग करना चाहता था, एवं उचित जाँच के बाद आरोप पत्र दायर किया गया और विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोप पत्र पर संज्ञान लिया, जो दर्शाता है कि प्रार्थी के विरूद्ध संज्ञेय अपराध बनता है।

प्रार्थी ने प्रार्थनापत्र के समर्थन में शपथ पत्र के प्रस्तर 9 एवं 10 में स्वयं यह तथ्य बताया है कि जाँच के दौरान विधायक श्री देव मणि द्विवेदी का बयान 23.08.2022 को जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था एवं विधायक ने बयान जारी करने से इनकार कर दिया था। पत्र और उनके हस्ताक्षर से पता चलता है कि संबंधित विधायक का खाली लेटर पैड प्राप्त किया गया था और अनुचित लाभ प्राप्त करने हेतु एवं राज्य की शांति एवं सद्भाव को बिगाड़ने के इरादे से सामग्री लिखी गई थी एवं फर्जी हस्ताक्षर किए गए थे और ट्विटर हैंडल अकाउंट पर पोस्ट किया गया, जो बेहद गंभीर मामला है।

प्रथम सूचना रिपोर्ट/आरोप पत्र एवं संज्ञान आदेश, में लगाए गए आरोपों से प्रथम दृष्टया प्रार्थी के विरूद्ध अपराध बनता है। प्रार्थी की निर्दोषता का निर्णय पूर्व परीक्षण चरण में नहीं किया जा सकता है। इसलिए, प्रार्थी किसी भी रियायत का पात्र नहीं है। विद्वान अपर महाधिवक्ता के इस तर्क में भी बल दिखता है कि वर्तमान सरकार राज्य के हित में, लोगों की शांति एवं सद्भाव तथा राज्य के समग्र विकास हेतु कार्य कर रही है।

आदेशिका जारी करने के चरण में विचारण न्यायालय से रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री की विस्तार से जाँच एवं मूल्यांकन करने की उम्मीद नहीं की जाती है, मात्र यह देखा जाना चाहिए कि क्या प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का खुलासा किया गया है या नहीं एवं वर्तमान वाद में इसे फैलाने का आरोप है, गलत तथ्य बिना सत्यापित किए एवं उन्हें ट्विटर हैंडल के माध्यम से साझा करने से समाज में शांति का उल्लंघन होने की संभावना थी। सर्वोच्च न्यायालय ने दिशानिर्देश भी निर्धारित किए हैं जहाँ निम्नलिखित मामलों में उच्च न्यायालय द्वारा अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप किया जा सकता है एवं रद्द किया जा सकता है: - **(i) आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1960 एस.सी. 866, (ii) हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल, 1992 एससीसी (सीआरएल.) 426, (iii) बिहार राज्य बनाम पी.पी.शर्मा, 1992 एससीसी (सीआरएल.)192 और (iv) झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मो. सराफुल हक एवं अन्य, (प्रस्तर-10) 2005 एससीसी (क्रि.)283** उपरोक्त निर्णयों से सर्वोच्च न्यायालय ने प्रारंभिक चरण में कार्यवाही को रद्द करने की विधिक स्थिति तय कर ली है। न्यायालय द्वारा लागू किया जाने वाला परीक्षण

अनुवादित

यह है कि क्या लगाए गए निर्विवाद आरोप से प्रथम दृष्टया अपराध स्थापित होता है एवं अंतिम दोषसिद्धि की संभावना कम है एवं आपराधिक कार्यवाही जारी रखने की अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा होने की संभावना नहीं है। **एस.डब्लू.पलानकट्टकर एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, 2002 (44) एसीसी 168,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करना एक नियम के बजाय एक अपवाद है। दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियां स्वयं तीन परिस्थितियों की परिकल्पना करती हैं जिनके अंतर्गत अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है: - (i) संहिता के अंतर्गत आदेश को प्रभावी करने हेतु, (ii) न्यायालय प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने हेतु।; (iii) अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करना। **उच्च न्यायालय की शक्ति अत्यंत व्यापक है किंतु वास्तविक एवं पर्याप्त न्याय करने हेतु इसका उपयोग बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए जो न्यायालय के अस्तित्व का उद्देश्य है।**

उच्च न्यायालय कोई जाँच प्रारंभ नहीं करेगा क्योंकि यह विचारण न्यायाधीश/न्यायालय का कार्य है। **आरोप-पत्र को रद्द करने, वाद में कार्यवाही करने एवं मौजूदा वाद में समन आदेश की सीमा पर हस्तक्षेप को असाधारण नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह प्रथम दृष्टया एक संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करता है। परिणामस्वरूप, रद्द करने की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है।** दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत दायर इस प्रार्थनापत्र में कोई बल नहीं है एवं यह खारिज किये जाने योग्य है।

उपरोक्त विवेचना के दृष्टिगत, दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थित अनुतोष हेतु दायर यह प्रार्थनापत्र **खारिज** किया जाता है।

(2023) 2 ILRA 1209

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 23.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर,

रिट टैक्स नंबर 1120/2022

मदन सिंहा

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अंशुल कुमार सिंघल

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., अंकुर अग्रवाल (स्थायी वकील)

उत्तर प्रदेश मोटर वाहन कराधान नियम, 1998 - नियम 18 - मोटर वाहन कर के कारण वसूली उद्धरण - याचिकाकर्ता का वाहन वित्त कंपनी के पास बंधक - ऋण का भुगतान करने में असमर्थ - ऋण राशि की वसूली के लिए वाहन को आत्मसमर्पण कर दिया - आत्मसमर्पण के बारे में सूचित किया गया - जब अधिग्रहण वित्तदाता द्वारा लिया गया तब कोई देयता नही- कर का भुगतान करने के लिए देयता वित्तदता - याचिकाकर्ता की आपत्ति पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा विचार किए जाना चाहिए - देयता पुनः विचारणीय हो सकती है।

रिट याचिका निस्तारित(ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

अनुवादित

महिंद्रा एंड महिंद्रा फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, (2022) 5 एससीसी 525

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,
एवं
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

1. मोटर वाहन कर के कारण याचिकाकर्ता के खिलाफ जारी 3 जुलाई 2022 के रिकवरी उद्धरण को वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई है।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया तर्क यह है कि उसने तीन टाटा सूमो कारें खरीदी थीं, जिनका पंजीकरण नंबर UP 16AT 2265, UP 16AT 2266 और UP 16AT 2267 था। इन्हें मेसर्स मैग्मा फिनकॉर्प लिमिटेड के पास बंधक रखा गया था। ऋण की इएमआई का भुगतान करने में असमर्थ होने के कारण, याचिकाकर्ता ने 31 जुलाई, 2015 को पंजीकरण संख्या UP 16AT 2266 और UP 16AT 2267 तथा दिनांक 12 अगस्त, 2015 को पंजीकरण संख्या UP 16AT 2265 को ऋण राशि की वसूली के लिए वाहनों को बेचने के अनुरोध के साथ वाहनों को सरेंडर कर दिया। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी, गौतम बुद्ध नगर के समक्ष 20 दिसंबर, 2015 को आवेदन दिया, जिसमें उन्हें वित्त कंपनी को वाहनों को सरेंडर करने की जानकारी दी गई। याचिकाकर्ता ने 31 मार्च, 2015 तक विचाराधीन वाहनों के संबंध में कर का भुगतान कर दिया है। वाहन का कब्जा फाइनेंसर द्वारा ले लिए जाने के बाद, कर का दायित्व याचिकाकर्ता पर नहीं डाला जा सकता क्योंकि उस स्थिति में फाइनेंसर को कर का भुगतान करना होगा। तर्क के समर्थन में महिंद्रा एंड महिंद्रा फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य, (2022) 5 एससीसी 525 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया गया है।

3. राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि इस मुद्दे की जांच महिंद्रा एंड महिंद्रा फाइनेंशियल सर्विसेज मामले (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में की जाएगी।

4. पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुनने के बाद, हम याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलील में योग्यता पाते हैं क्योंकि उन्होंने कहा था कि विचाराधीन वाहनों का कब्ज़ा फाइनेंसर द्वारा अगस्त 2015 में लिया गया था और 'महिंद्रा एंड महिंद्रा फाइनेंशियल सर्विसेज' मामले (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर, उसके बाद कर के भुगतान की देनदारी याचिकाकर्ता पर तय नहीं की जा सकती। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ 12 यहां नीचे दिया गया है:

"उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर और ऊपर बताए गए कारणों से, यह माना जाता है कि एक मोटर वाहन/परिवहन वाहन का फाइनेंसर जिसके संबंध में किराया-खरीद या पट्टा या बंधक समझौता दर्ज किया गया है, उक्त समझौते के तहत उक्त वाहन का कब्ज़ा लेने की तिथि से कर के लिए उत्तरदायी है। यदि कर के भुगतान के बाद वाहन का एक माह या उससे अधिक समय तक उपयोग नहीं किया जाता है, तो ऐसा स्वामी अधिनियम, 1997 की धारा 12 के अंतर्गत

अप्रमाणित

धन वापसी के लिए आवेदन कर सकता है और उसे धन वापसी प्राप्त करने के लिए धारा 12 में उल्लिखित सभी अपेक्षाओं को पूरा करना होगा और धारा 12(1) में उल्लिखित सभी शर्तों को पूरा करने और/या उनका अनुपालन करने पर वह धारा 12 की उपधारा (1) में प्रदत्त सीमा तक धन वापसी प्राप्त कर सकता है, क्योंकि धारा 12(1) के अंतर्गत भी स्वामी/संचालक पूर्ण धन वापसी का हकदार नहीं होगा, बल्कि वह त्रैमासिक कर की दर के एक-तिहाई या वार्षिक कर के एक-बारहवें भाग के बराबर राशि की धन वापसी का हकदार होगा, जैसा भी मामला हो, जो ऐसे वाहन के संबंध में ऐसी अवधि के प्रत्येक तीस दिन के लिए देय होगा, जिसके लिए ऐसा कर चुकाया गया है। तथापि, केवल ऐसे मामले में, जो धारा 12 की उपधारा (2) के अंतर्गत आता है और धारा 12 की उपधारा (2) में उल्लिखित आवश्यक दस्तावेजों के समर्पण के अधीन है, कर का भुगतान करने की देयता उत्पन्न नहीं होगी, अन्यथा ऐसे मालिक/संचालक द्वारा कर का भुगतान करने की देयता जारी रहेगी।" (प्रभाव वर्धित)

5. उपरोक्त के मद्देनजर, याचिकाकर्ता नियमावली के नियम 18 के अनुसार 3 जुलाई, 2022 की वसूली के खिलाफ आपत्ति दर्ज कर सकता है, यह उल्लेख करते हुए कि विचाराधीन वाहनों का कब्जा फाइनेंसर ने अगस्त 2015 में लिया था। यदि याचिकाकर्ता आपत्ति दर्ज करता है, तो सक्षम प्राधिकारी द्वारा उस पर विचार किया जाएगा और जिस तारीख से वाहनों का कब्जा फाइनेंसर द्वारा लिया गया था, महिंद्रा एंड महिंद्रा फाइनेंशियल सर्विसेज के मामले (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार देयता को फिर से निर्धारित किया जा सकता है। हालांकि, उससे पहले की किसी भी अवधि के लिए, यदि कर का भुगतान नहीं किया गया है, तो याचिकाकर्ता भुगतान के लिए उत्तरदायी होगा।

6. तदनुसार, रिट याचिका निस्तारित की जाती है और याचिकाकर्ता के खिलाफ वसूली का आदेश रद्द किया जाता है।

अनुवादित